# ब्रह्मवैवर्तपुराणम्

## उत्तरभागः

## श्रीकृष्णजन्मखण्डम्

⊙


अनुवादक एवं सम्पादक

**तारिणीश झा**

व्याकरण-वेदान्ताचार्य

⊙

अनुवादक

**स्वर्गीय पण्डित बाबूराम उपाध्याय**


⊙




शक १९२४ : सन् २००२

**हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग**

१२, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद–२११००३

प्रकाशक

**विभूति मिश्र**

प्रधानमन्त्री : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

⊙

प्रकाशन वर्ष : शक १९२४ : सन् २००२

द्वितीय संस्करण

मूल्य : तीन सौ पचास रुपये

⊙

मुद्रक

सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग

# प्रकाशकीय

⊙ ⊙

भज तं परमानन्दं सानन्दं नन्दनन्दनम् ।
स्वेच्छामयं परं ब्रह्म परमात्मानमीश्वरम् ।।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रवर्तित पुराण-प्रकाशन-योजना के अन्तर्गत सन् १९८१ ई० में 'ब्रह्मवैवर्त-पुराणम्' का पूर्वभाग प्रकाशित हुआ था, जिसके अन्तर्गत ब्रह्मखण्ड, प्रकृतिखण्ड एवं गणपतिखण्ड का मूल पाठ, पाठान्तर एवं हिन्दी-अनुवाद प्रस्तुत किया गया था। यह प्रसन्नता का विषय है कि 'ब्रह्मवैवर्तपुराणम्' के पूर्वभाग की विद्वानों और अध्येताओं ने सराहना की और इसके शेष भाग के शीघ्र प्रकाशन का अनुरोध भी किया। प्रारम्भ में यह अनुमान था कि यह पुराण दो भागों में प्रकाशित हो जायगा, किन्तु पाठकों एवं जिज्ञासुओं की माँग को दृष्टि में रखते हुए यह निश्चय किया गया कि इसे तीन भागों में प्रकाशित किया जाय। तदनुसार श्रीकृष्णजन्मखण्ड उत्तरभाग के पूर्वार्ध को दूसरे भाग के रूप में तथा उत्तरार्ध को तीसरे भाग के रूप प्रकाशित किया गया था। अब पुनर्मुद्रित नये संस्करण को एक ही खण्ड में प्रकाशित किया जा रहा है।

विश्वास है, विद्वानों एवं सहृदय पाठकों के उदार सहयोग एवं प्रोत्साहन से राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन द्वारा प्रवर्तित एवं डॉ० प्रभात शास्त्री द्वारा पोषित पुराण-प्रकाशन-योजना को पूर्ण करने में सम्मेलन समर्थ होगा।

शरद्पूर्णिमा
संवत् २०५९ वि०

विभूति मिश्र
प्रधानमन्त्री

# प्रस्तावना

⊙ ⊙

पुण्यवर्ष भारत में सुदूर प्राचीन काल से ही वेदों और पुराणों की समान मान्यता जनमानस में सुप्रतिष्ठित है। मिथिला के प्राक्कालिक सर्वश्रेष्ठ विद्वान् महर्षि याज्ञवल्क्य की स्मृति तथा उसका मिताक्षरा टीका की सर्वाधिक मान्यता प्राचीन काल से अभी तक सभी न्यायालयों में प्रचलित है। प्रमाण के लिए वह सर्वप्रथम पुराणों का ही उल्लेख करती है। पुराणादि की सहायता से ही वेद-विद्या और धर्म का स्थान निश्चित होता है—

**पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः ।**
**वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश ॥**—याज्ञ० १, २

वेद के परम प्रामाण्य होने पर भी उसके सभी अंश प्राप्त नहीं हैं। भगवान् पतञ्जलि ने अपने महाभाष्य ग्रन्थ के प्रथम आह्निक में लिखा है कि 'सहस्रवर्त्मा सामवेदः'—अर्थात् सामवेद की एक हजार शाखाएँ हैं। आज सामवेद की मात्र तीन शाखाएँ मिल रही हैं। यही दशा अन्य वेदों की भी है। मत्स्य-पुराण के १४४वें अध्याय में भी द्वापरान्त के बाद वेदों की दुर्दशा का विस्तृत विवरण प्राप्त होता है। इसके अनुसार प्राप्त अंशों का अर्थ भी सहज ज्ञानगम्य नहीं है। अतः वेद के अर्थों के निर्णय के लिए पुराण और इतिहास ही साधन हैं, जो वेदांश विदित नहीं हैं, वे भी पुराण के आधार पर ही दृष्ट और अनुमेय हो सकते हैं, अतः पुराण ही वेद के प्रामाण्य का सुगम साधन है। इसीलिए महाभारत में कहा गया है कि इतिहास और पुराणों के आधार पर वेद का अर्थ स्पष्ट समझना चाहिए —

**इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् ।**
**बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरेदिति ॥**—पद्मपुराण २, ५२

उपर्युक्त श्लोक से प्रतीत होता है कि वेदों के साथ ही पुराणों का अस्तित्व रहा है, 'पुरा अनतीति पुराणम्'—इस व्युत्पत्ति के अनुसार भी पुराणों का अस्तित्व बहुत प्राचीन मालूम पड़ता है, क्योंकि पुरा का अर्थ है पहले और अन का अर्थ है श्वास लेना, अर्थात् जिसका अस्तित्व बहुत पहले था। अथर्ववेद में पुराणों के उल्लेख इस प्रकार मिलते हैं—

**तमितिहासश्च पुराणं च गाथाश्च नाराशंसीश्चानुव्यचलन् ।**—१५, ७, ११

**ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह ।**
**उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रिताः ॥**—७, २४

स्कन्दपुराण के प्रभासखण्ड में उल्लिखित है कि पूर्वकाल में देव-पितामह ब्रह्मा ने उग्र तपस्या की। उसके फलस्वरूप षडङ्ग पदक्रम के साथ वेद का आविर्भाव हुआ। अनन्तर ब्रह्मा के मुख से नित्य शब्दमय, शतकोटिश्लोकनिबद्ध, सुविस्तृत, पवित्र, सर्वशास्त्रमय, परमार्थ तत्त्व के प्रतिपादक ब्रह्म, पद्म, विष्णु, वायु, भागवत, नारदीय, मार्कण्डेय, अग्नि, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, लिङ्ग, वराह, स्कन्द, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड़ और ब्रह्माण्ड—इन अठारह पुराणों का आविर्भाव हुआ—

**पुरा तपश्चचारोग्रममराणां पितामहः।**
**आविर्भूतास्ततो वेदाः सषडङ्गपदक्रमाः॥**
**ततः पुराणमखिलं सर्वशास्त्रमयं ध्रुवम्।**
**नित्यं शब्दमयं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम्॥**—स्क० ७, २, २७-२८

ऐसे ही श्रीमद्भागवत के वेदोत्पत्ति-प्रकरण में कहा गया है कि ब्रह्मा के पूर्व आदि मुखों से यथाक्रम से ऋक्, यजुः, साम और अथर्व आविर्भूत हुए एवं इतिहास-पुराणात्मक पञ्चम वेद का सभी मुखों से आविर्भाव हुआ—

**इतिहासपुराणानि पञ्चमं वेदमीश्वरः।**
**सर्वेभ्य एव वक्त्रेभ्यः ससृजे सर्वदर्शनः॥**—श्रीमद्भा०, ३, १२, ३९

यही कारण है कि 'पुराणं पञ्चमो वेदः' साङ्गवेद की कौथुमीय शाखा और तलवकार शाखा की छान्दोग्य उपनिषद् में स्पष्ट शब्दों में पुराणों को पञ्चम वेद के रूप में निर्दिष्ट किया गया है—'**ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासं पुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम्**' (छा० ७, १, २)। इससे स्पष्ट है कि चार वेदों में पुराण के अन्तर्भाव का प्रश्न भी नहीं उठता। वेदाध्ययन के अनूठे, सामान्यजनों के अध्ययन-योग्य महर्षि व्यासकृत पुराण और इतिहास हैं। व्यास ने ही वेद-विभाजन और इतिहास-पुराण की रचना साधारणजन के कल्याण की भावना से की है।

पुराण की पञ्चम वेद के रूप में मान्यता के लिए वायु एवं विष्णु आदि पुराणों में भी प्रमाण उपलब्ध होते हैं। वहाँ वेदों का व्यसन (विस्तार) करने से ही पुराणकर्ता को 'व्यास' संज्ञा दी गयी है—

**'व्यस्यति वेदान् इति व्यासः।'**

—विष्णु पु० ३, ४, ४

आख्यान, उपाख्यान तथा पुरावृत्त आदि से संवलित पञ्चलक्षणात्मक पुराणों का एवं महाभारत आदि संहिताओं का प्रणयन व्यास ने किया। वेदों का मुख्य लक्ष्य यज्ञ-सम्पादन है। यजुर्वेद की प्रधानता यज्ञ-सम्पादन में ही है। सुविधा के लिए फिर उसके चार भेद किये गये, यह बात सूत ने कही है—

**आख्यानैश्चाप्युपाख्यानैर्गाथाभिर्द्विजसत्तमाः।**
**पुराणसंहिताश्चक्रे पुराणार्थविशारदः॥**
**इतिहासपुराणानां वक्तारं सम्यगेव हि।**
**मां चैव प्रतिजग्राह भगवानीश्वरः प्रभुः॥**

एक आसीद् यजुर्वेदस्तं चतुर्धा व्यकल्पयत् ।
चातुर्होत्रमभूत् तस्मिंस्तेन यज्ञमकल्पयत् ॥
आध्वर्यवं यजुर्भिस्तु होत्रमृग्भिरेव च ।
उद्गात्रं सामभिश्चैव ब्रह्मत्वं चाथर्वणेन तु ॥—वायु पु० ६०, १६-१९

मत्स्य पुराण में भगवान् ने भी कहा है कि द्विजवर ! कालधर्म के अनुसार मनुष्य सभी पुराणों को ग्रहण करने में समर्थ नहीं है, अत: प्रत्येक युग में मैं व्यास रूप में अवतीर्ण होकर पूर्वसिद्ध शतकोटि संख्यक पुराण-राशि को मनुष्य के संग्रह की दृष्टि से संक्षिप्त करता हूँ । पुराण को शतकोटिप्रविस्तर, पद्मपुराण में भी कहा है—

कालेनाग्रहणं मत्वा पुराणस्य द्विजोत्तमाः ।
व्यासरूपमहं कृत्वा संहरामि युगे युगे ॥—मत्स्य पु० ११, ८
पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम् ।
त्रिवर्गसाधनं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम् ॥—पद्म पु०, सृष्टिखण्ड १, ५३

फिर मत्स्य पुराण में कहा है– प्रत्येक द्वापर युग में चार लाख श्लोकों में संक्षिप्त एक पुराण को अठारह भागों में विभक्त करके मर्त्यलोक में प्रचारित किया। आज भी देवलोक में पुराण शतकोटि के रूप में उपलब्ध है । उसी का संक्षिप्त रूप मर्त्यलोक में अष्टादश पुराण हैं । इस प्रकार यजुर्वेद का अवशिष्ट अंश ही पुराण है—

चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे द्वापरे सदा ।
तदष्टादशधा कृत्वा भूर्लोकेऽस्मिन् प्रभाष्यते ॥
अद्यापि स्वर्गलोके तु शतकोटिप्रविस्तरम् ।
तदर्थोऽत्र चतुर्लक्षः संक्षेपेण निरूपितः ॥—मत्स्य पु० ५३, ९-१०

शिव पुराण की वायवीय संहिता में भी इस विषय को कहा गया है—

संक्षिप्य चतुरो वेदांश्चतुर्धा व्यभजत् प्रभुः ।
व्यस्ता वेदा यतस्तेन वेदव्यास इति स्मृतः ॥
पुराणमपि संक्षिप्तं चतुर्लक्षप्रमाणतः ।
अद्याप्यमर्त्यलोके तु शतकोटिप्रविस्तरम् ॥—शिव, २, १, १६-१७

विष्णु पुराण में स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि वेद पुराणों में प्रतिष्ठित हैं—'वेदाः प्रतिष्ठिताः सर्वे पुराणे नात्र संशयः ।' वेद के दुरूह अंश की व्याख्या के कारण पुराण का वैशिष्ट्य सर्वथा मान्य है ।

नारदीय पुराण में पुराण को वेद से भी बढ़-चढ़कर बताया गया है । वहाँ शंकर ने पार्वती से कहा कि वेदों में ग्रहसंचार, तिथिनिर्णय आदि स्पष्ट नहीं हैं, वे स्मृतियों में भी नहीं हैं, पर पुराणों ने इसका निर्णय किया है, अतः हे सुमुखि ! मैं वेदार्थ से पुराणों के अर्थ को अधिक मानता हूँ—**'वेदार्थमधिकं मन्ये पुराणार्थं वरानने'** (२, २०, ५); क्योंकि वेदार्थ पुराण में ही प्रतिष्ठित है, इसमें सन्देह नहीं ।

पद्मपुराण के सृष्टिखण्ड के अध्याय १०४ में तो यहाँ तक कहा गया है कि सर्वप्रथम ब्रह्मा के मुख से पुराणों का ही स्मरण किया गया, पश्चात् उनके मुख से वेद-मन्त्र निकले—

**पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम् ।**
**अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः ।।**

इस प्रकार पुराण का प्रामाण्य वेद के समान सुनिश्चित है। ऐसी स्थिति में भारत में जो सृष्टिप्रमेय लोग वेदों को तो मानते हैं, किन्तु पुराणों को नहीं, वे अपने-आपको धोखा देते हैं। उनके लिए उदयनाचार्य के शब्दों में—'काले कारुणिक त्वयैव कृपया ते भावनीया नराः'—यही हम कह सकते हैं।

पुराणों में भारतीय संस्कृति के ज्ञान का अक्षय भाण्डार तो भरा ही है। इस ज्ञान की प्राप्ति के लिए पुराणों का विशेष महत्त्व माना गया है, इसके अतिरिक्त पुराणों का धार्मिक महत्त्व भी है। पुराण सुनने-वालों की विपत्तियों का दूर होना, उनके लिए स्वर्ग में स्थान पाना, उनकी कामनाओं का पूरा होना, पापों से छुटकारा पाना आदि सम्भव होता है। पुराणों की बहुविध उपयोगिता का सांगोपांग वर्णन महापुराण (१, २०४-२०७) में इस प्रकार मिलता है—

**पुराणमृषिभिः प्रोक्तं प्रमाणं सूक्तमाञ्जसम् ।**
**ततः श्रद्धेयमध्येयं ध्येयं श्रेयोऽर्थिनामिदम् ।।**
**इदं पुण्यमिदं पूतमिदं मङ्गलमुत्तमम् ।**
**इदमायुष्यमग्र्यं च यशस्यं स्वर्ग्यमेव च ।।**
**इदमर्चयतां शान्तिस्तुष्टिः पुष्टिश्च पृच्छताम् ।**
**पठतां क्षेममारोग्यं शृण्वतां कर्मनिर्जरा ।।**
**इतो दुःस्वप्ननिर्णाशः सुस्वप्नस्फातिरेव च ।**
**इतोऽभीष्टफलव्यक्तिनिमित्तमभिपश्यताम् ।।**

इस पुस्तक के प्रकाशन में जिन लोगों का प्रत्यक्ष किंवा अप्रत्यक्ष योगदान रहा है, हम उन सबके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं। इन कार्तव्यभाजनों में सर्वप्रथम तो सम्मेलन के भूतपूर्व प्रधान-मन्त्री माननीय श्री प्रभात शास्त्री का ही हम नामोल्लेख करेंगे, जिनकी सदिच्छा एवं सत्प्रयत्न से सम्मेलन की पुराण-प्रकाशन-योजना चल रही है। भूतपूर्व साहित्य-विभागाध्यक्ष श्री हरिमोहन मालवीय तथा अपने पुराण-सहकर्मियों—श्री जगदेव पाण्डेय, श्री रुद्रप्रसाद मिश्र एवं श्री हरिमोहन पाण्डेय के प्रति भी आभार प्रकट करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। सम्मेलन मुद्रणालय के वे कर्मचारी भी मेरे धन्यवाद के पात्र हैं, जो सुरुचिपूर्वक पुराण का मुद्रण-कार्य सम्पन्न कर रहे हैं। अन्त में मैं उन कृतिकारों के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ, जिनकी कृतियों से इस कार्य में मुझे यत्किञ्चित् सहायता मिली है।

हरिशयनी एकादशी
सन् १९८४

प्रश्रयावनत
तारिणीश झा

⊙

# विषय-सूची

## श्रीकृष्णजन्मखण्ड

### (पूर्वार्ध)


**अध्याय १ :** नारद ने नारायण से श्रीकृष्ण के जन्म-सम्बन्ध में प्रश्न किया; नारायण ने विष्णु और वैष्णव के गुणों की प्रशंसा की और प्रश्नोत्तर देना आरम्भ किया ।

**अध्याय २ :** जिस लिए विष्णु गोप के वेश में गोकुल आये तथा राधा गोपी हुईं, वह कारण बताया; नारद ने श्रीदामा और राधा के कलह के बारे में पूछा; रत्नमण्डप में विरजा पर आसक्त श्रीकृष्ण के बारे में सखियों से सुनकर कुपित हुई राधिका रत्नमण्डप में गयीं; राधा का नाम सुनते ही हरि अदृश्य हो गये और डर से विरजा ने प्राण त्यागकर नदी का रूप धारण कर लिया ।

**अध्याय ३ :** सात समुद्रों की उत्पत्ति; कोपभवन के द्वार पर श्रीदामा के साथ आये हुए हरि को राधा ने खरी-खोटी सुनायी, फिर हरि को निकाल देने के लिए सखियों को आज्ञा दी, इस पर श्रीदामा राधा से हरि का महत्त्व बताने लगे; पश्चात् आवेश में आकर राधा और श्रीदामा ने परस्पर शाप दे डाला; फिर शाप के दुःख से व्याकुल राधा और श्रीदामा को हरि ने सान्त्वनापूर्ण वचन कहा ।

**अध्याय ४ :** देवताओं के साथ शरण में आयी हुई पृथ्वी को ब्रह्मा ने आश्वासन दिया; ब्रह्मा के पूछने पर पृथ्वी ने बताया कि किन लोगों का भार उसे असह्य होता है; अनन्तर पृथ्वी एवं देवसमूहों के साथ शिवलोक में जाकर ब्रह्मा ने शिव से पृथ्वी का वृत्तान्त बताया; फिर देवता और पृथ्वी के साथ ब्रह्मा, शिव तथा धर्म वैकुंठ गये; उन लोगों ने श्रीहरि की स्तुति की; श्रीहरि के आदेशानुसार सभी देवताओं का गोलोक-गमन तथा गोलोक-वर्णन ।

**अध्याय ५ :** राधा के मन्दिर तथा उसके सोलह द्वारों का वर्णन; राधा के भीतरी महल में देवताओं का गमन; राधामन्दिर का वर्णन; राधामन्दिर में देवताओं द्वारा श्रीकृष्ण के तेजःस्वरूप का दर्शन; ब्रह्मा, शंकर और धर्म द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति; उस स्तोत्र के पाठ का फल-कथन ।

**अध्याय ६ :** पहले के देखे हुए तेजःस्वरूप के मध्य में देवताओं ने कृष्णमूर्ति की स्तुति की; देवों के स्तोत्र से सन्तुष्ट श्रीकृष्ण ने देवों को अभयदान दिया; गोलोकवर्ती राधा आदि परिजनों को श्रीकृष्ण ने पृथ्वी पर अवतार धारण करने की आज्ञा दी; गोलोक से आये हुए नारायण, विष्णु एवं बलराम श्रीकृष्ण के शरीर में लीन हो गये; पृथ्वी पर अपने-अपने अंश से अवतीर्ण होने के लिए श्रीकृष्ण ने सभी देवताओं को आज्ञा प्रदान की; किसको कहाँ किस नाम से अवतार लेना चाहिए—ऐसा ब्रह्मा के प्रश्न करने पर श्रीकृष्ण ने सब बता दिया । भावी वियोग से कातर होकर रोती हुई राधा को

श्रीकृष्ण ने उद्बोधन दिया। कृष्ण की आज्ञा से सभी देवता अपने-अपने स्थान को चले गये। कृष्ण की आज्ञा से राधा गोप-गोपियों के साथ गोलोक से गोकुल में आ गयीं। श्रीहरि मथुरा आये।

अध्याय ७ : श्रीकृष्ण के जन्म का आख्यान।

अध्याय ८ : श्रीकृष्णजन्माष्टमीव्रत के उपवास का विधान।

अध्याय ९ : नारद के पूछने पर नारायण ने नन्द, यशोदा और रोहिणी के जन्मान्तर का वर्णन किया; बलदेव के जन्म का आख्यान; नन्द के पुत्रोत्सव का वर्णन।

अध्याय १० : कंस की प्रेरणा से कृष्ण को मारने के लिए नन्दगृह में आयी हुई पूतना ने कृष्ण को स्तनपान कराया; जिससे उसे मोक्ष मिला; उसके पूर्वजन्म की कथा।

अध्याय ११ : श्रीकृष्ण द्वारा तृणावर्त नामक दैत्य का वध; उसके जन्मान्तर का वृत्तान्त-वर्णन।

अध्याय १२ : शकटासुर का भंजन; योगनिद्रा का बताया हुआ कवचन्यास।

अध्याय १३ : वसुदेव की प्रार्थना से श्रीकृष्ण का नामकरण आदि संस्कार करने के लिए गर्ग नन्द के घर पहुँचे। गर्ग ने अपने आने का प्रयोजन बताया कि श्रीकृष्ण का मुझे नाम रखना है। फिर उन्होंने नन्द और यशोदा को गोलोक का वृत्तान्त सुनाया, जिसे पूर्वकाल में उन्होंने शिव के मुख से सुन रखा था। गर्ग की आज्ञा से नन्द ने कृष्ण का नामकरण आदि संस्कार किया; गर्ग ने श्रीकृष्ण की स्तुति की; गर्ग अपने घर चले गये।

अध्याय १४ : यमलार्जुन का भंजन; नलकूबर का मोक्ष; वृक्ष का आख्यान।

अध्याय १५ : भाण्डीरवन में राधा-कृष्ण का विवाह; नवसंगम का प्रस्ताव।

अध्याय १६ : बकासुर का वध; प्रलम्बासुर का वध; केशी नामक दैत्य का वध; इनके जन्मान्तर का वृत्तान्त, पार्वती द्वारा अनुष्ठित त्रैमासिक नामक व्रत का विधान; नन्द की आज्ञा से समस्त व्रजवासियों का वृन्दावन में गमन।

अध्याय १७ : वृन्दावन का वर्णन; उसके बीच प्रसंगवश कलावती का इतिहास; वृन्दावन नाम की व्युत्पत्ति आदि; राधा के सोलह नामवाला स्तोत्र; उन नामों की व्युत्पत्ति।

अध्याय १८ : ब्राह्मण-पत्नियों के मोक्ष का प्रस्ताव; विप्रपत्नियों का किया हुआ श्रीकृष्ण का स्तोत्र।

अध्याय १९ : कालियनाग के दर्प का दमन; दावाग्नि का भक्षण।

अध्याय २० : गाय, बछड़े और गोपबालक के प्रसंग में ब्रह्मा द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति।

अध्याय २१ : इन्द्रयाग का खण्डन; गोवर्धन धारण।

अध्याय २२ : धेनुकासुर का वध।

अध्याय २३ : तिलोत्तमा और बलिपुत्र को दुर्वासा का शाप; धेनुकासुर के जन्म का वृत्तान्त।

अध्याय २४ : प्रसंगतः दुर्वासा का आख्यान; बलिपुत्र का मोक्ष।

**अध्याय २५ :** दुर्वासा को और्व ऋषि का शाप; इसी प्रसंग में अम्बरीष का आख्यान।

**अध्याय २६ :** अम्बरीष की कथा के प्रसंग में एकादशीव्रत का निरूपण।

**अध्याय २७ :** गोपियों के वस्त्रों का अपहरण; इस बीच गोपियों ने सर्व-मंगला की स्तुति की; गौरीव्रत के विधान आदि का कथन; राधा का किया हुआ पार्वती-स्तोत्र; श्रीकृष्ण द्वारा गोपिकाओं को अभीष्ट वरदान।

**अध्याय २८ :** रासक्रीड़ा का आख्यान।

**अध्याय २९ :** अष्टावक्र मुनि के मोक्ष का आख्यान।

**अध्याय ३० :** राधा के पूछने पर कृष्ण ने अष्टावक्र का इतिहास बताया।

**अध्याय ३१ :** पुनः राधा के प्रश्न करने पर कृष्ण ने ब्रह्मा के शाप का कारण बताया; वहाँ प्रसंगवश राजा सुचन्द्र का वृत्तान्त कहा; विरहातुर मोहिनी की अवस्था का वर्णन; मोहिनी का व्रत एवं उसके द्वारा कामदेव की स्तुति।

**अध्याय ३२ :** ब्रह्मा और मोहिनी का संवाद।

**अध्याय ३३ :** मोहिनी ने ब्रह्मा को शाप दिया; ब्रह्मा का दर्पहरण।

**अध्याय ३४ :** गंगोत्पत्ति का वर्णन।

**अध्याय ३५ :** राधा और कृष्ण के संवादरूप में ब्रह्मा और भारती का उपाख्यान।

**अध्याय ३६ :** शंकर के दर्प का विमोचन और उनकी प्रशंसा।

**अध्याय ३७ :** शंकर के निर्माल्य को शाप।

**अध्याय ३८ :** सती के गर्व का अपहरण; पार्वती का हिमालय से जन्म-ग्रहण; पार्वती को अपने सौन्दर्य का अभिमान; शिव के दर्शन के लिए हिमालय का अक्षयवट के पास जाना; हिमालय द्वारा शिव की स्तुति।

**अध्याय ३९ :** शिव के सौन्दर्य का वर्णन; शिव के समीप पार्वती का जाना; शिव के क्रोधाग्नि से कामदेव का दहन; पार्वती के गर्व का अपहरण।

**अध्याय ४०-४१ :** पार्वती की तपस्या का प्रकार; शंकर नर्तक के वेश में हिमालय के घर पहुँचे; देवताओं के द्वारा प्रार्थना करने पर अपनी निन्दा करने के लिए शिव हिमालय के पास गये; शिव की निन्दा सुनने से हिमालय शिव को अपनी कन्या देने के प्रति अनिच्छुक हो गये; तब अरुन्धती, वसिष्ठ आदि ने शिव की प्रशंसा करते हुए उपदेश दिया; इस प्रसंग में राजा अनरण्य का वृत्तान्त बताया।

**अध्याय ४२ :** अनरण्य की कन्या पद्मा का पातिव्रत आदि वृत्तान्त कहने के पश्चात् पार्वती के पूर्वजन्मान्तरीय सती-शरीर के त्याग का वर्णन।

**अध्याय ४३ :** सती के लिए शिव का शोकोद्गार; नारायण के उपदेश से शिव ने प्रकृति की स्तुति की; इससे शिव का शोक दूर हुआ।

**अध्याय ४४ :** अरुन्धती और वसिष्ठ के उद्बोधन से प्रसन्नचित्त हिमालय ने शिव को, स्तुति के साथ विधिपूर्वक कन्या प्रदान की।

**अध्याय ४५-४६ :** शिव-पार्वती का विवाहोत्सव; जलाकर भस्म किये गये कामदेव का पुनरुज्जीवन; रति और कन्दर्प के विलास का वर्णन; हर-गौरी के विलास का वर्णन; देवता और नारायण के संवाद-प्रसंग में स्त्री और पुरुष के रतिभंग का दोष-वर्णन।

**अध्याय ४७ :** इन्द्र के गर्व का अपहरण।

**अध्याय ४८ :** सूर्य के दर्प का अपहरण।

**अध्याय ४९ :** अग्नि के दर्प का अपहरण।

**अध्याय ५० :** दुर्वासा के गर्व का अपहरण।

**अध्याय ५१ :** धन्वन्तरि के गर्वनाश के प्रसंग में मनसा का विजय।

**अध्याय ५२ :** राधा और माधव के रास-वर्णन-प्रसंग में 'राधाकृष्ण' इस नाम में कृष्णनाम से पूर्व राधा नाम के उच्चारण करने का कारण-वर्णन।

**अध्याय ५३ :** गोपियों के साथ राधा-कृष्ण का भाण्डीर आदि वनों में गमन तथा वहाँ किये गये विहारों का वर्णन।

**अध्याय ५४ :** श्रीकृष्ण के मथुरा-गमन से लेकर गोलोक-गमन तक के चरित्र का संक्षेप में कथन।

●

## श्रीकृष्णजन्मखण्ड

### उत्तरार्द्ध


| अध्याय | पृष्ठ संख्या |
|---|---|
| ५५. श्रीकृष्णमाहात्म्य | ५२६—५३२ |
| ५६. भगवान् के गुणों का वर्णन | ५३२—५४० |
| ५७. लक्ष्मी का वैराग्यभंग | ५४०—५४४ |
| ५८. धरा, सावित्री, गंगा, मनसा और राधा का दर्प हरण | ५४४—५४६ |
| ५९. इन्द्र के दर्प भंग प्रकरण में सतीकृत बृहस्पति स्तोत्र | ५४६—५६१ |
| ६०. इन्द्रमोक्ष | ५६२—५६७ |
| ६१. बलि द्वारा इन्द्र दर्प हरण | ५६८—५७३ |
| ६२. श्रीराम चरित | ५७४—५८३ |
| ६३. कंस का दुःस्वप्न कथन | ५८३—५८६ |
| ६४. कंस का यज्ञ कथन | ५८६—५९१ |
| ६५. अक्रूर का हर्षोत्कर्ष | ५९२—५९५ |
| ६६. राधा का शोक विमोचन | ५९६—५९८ |
| ६७. आध्यात्मिक योग का कथन | ५९८—६०६ |
| ६८. घर जाने के लिए उद्यत कृष्ण के प्रति उनके विरह से शोकातुर राधा का वचन और कृष्ण का उपदेश | ६०६—६०९ |
| ६९. राधा और कृष्ण की क्रीड़ा का वर्णन | ६०९—६१८ |
| ७०. राम और कृष्ण के मथुरा जाने का प्रयत्न देखकर कुपित गोपियों द्वारा अक्रूर के रथ तोड़ने-फोड़ने की दुर्व्यवस्था, श्रीकृष्ण का सबको समझाने-बुझाने के साथ उस दिन व्रज में निवास करना | ६१८—६२५ |
| ७१. श्रीकृष्ण का प्रस्थान | ६२६—६२८ |
| ७२. कंस वध, वसुदेव और देवकी का कारागृह से मुक्ति | ६२८—६३८ |
| ७३. नन्द आदि का शोकमोचन | ६३८—६४६ |
| ७४. भगवान् और नन्द का संवाद | ६४७—६४९ |
| ७५. नन्द को सांसारिक ज्ञान का उपदेश | ६५०—६५९ |

| अध्याय | पृष्ठ संख्या |
|---|---|
| ७६. दर्शन योग्य वस्तु का निरूपण | ६५६—६६६ |
| ७७. सुन्दर स्वप्न का कथन | ६६७—६७३ |
| ७८. नन्द को आध्यात्मिक ज्ञान का उपदेश | ६७४—६७६ |
| ७९. राहु से ग्रस्त सूर्य दर्शन के निषेध हेतु का कथन | ६८०—६८५ |
| ८०. भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी-चन्द्र के दर्शन-निषेध का हेतु कथन | ६८६—६८९ |
| ८१. तारा हरण | ६९०—६९६ |
| ८२. दुःस्वप्न और उसकी शान्ति का कथन | ६९६—७०१ |
| ८३. ब्राह्मण, वैष्णव, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, संन्यासी और विधवा के धर्मों का कथन | ७०२ —७१४ |
| ८४. गृहस्थ, गृहिणी, शिष्य, पुत्र और कन्या के धर्म | ७१५—७२६ |
| ८५. चारों वर्णों के भक्ष्याभक्ष्य का कथन और कर्म फल | ७२६—७४४ |
| ८६. वृन्दा का उपाख्यान | ७४४—७५८ |
| ८७. भगवान् और नन्द के संवाद के समय सनत्कुमार का आगमन और संवाद | ७५९—७६७ |
| ८८. श्रीकृष्ण द्वारा नन्द को दुर्गा के स्तोत्रराज का वर्णन | ७६७—७७४ |
| ८९. श्रीकृष्ण द्वारा नन्द की प्रार्थना तथा अभीष्ट वरदान | ७७४—७७६ |
| ९०. चारों युगों का धर्म-कथन, नन्द का पुनः प्रतिवचन | ७७६—७८३ |
| ९१. देवकी और वसुदेव का नन्द के साथ संभाषण | ७८४—७८५ |
| ९२. राधा स्तोत्र | ७८६—७९३ |
| ९३. राधा और उद्धव का संवाद | ७९३—८०२ |
| ९४. उद्धव द्वारा राधा की प्रार्थना और गोपियों का संभाषण | ८०२—८१३ |
| ९५. राधा के प्रति उद्धव की संसार-सागर से पार उतारने की याचना | ८१४—८१७ |
| ९६. राधा द्वारा उद्धव को संसार से पार उतरने का उपाय कथन तथा कालगति का निरूपण | ८१७—८२६ |
| ९७. उद्धव को राधा द्वारा ज्ञानोपदेश, उद्धव द्वारा राधा भक्ति का वर्णन, उद्धव के चले जाने के बाद राधा की शोकावस्था | ८२६—८३२ |
| ९८. उद्धव का मथुरा गमन और श्रीकृष्ण के साथ संभाषण | ८३२—८३७ |
| ९९. भगवान् के उपनयन संस्कार में गणेश का विशेष अभिषेक | ८३७—८४१ |
| १००. देवकी आदि के द्वारा गौरी आदि की पूजा और ब्रह्मा आदि द्वारा भगवान् की स्तुति | ८४२— ८४५ |

| अध्याय | पृष्ठ संख्या |
|---|---|
| १०१. राम और कृष्ण के उपनयन के बाद सबका अपने-अपने घर जाना | ८४५–८४६ |
| १०२. राम और कृष्ण का संदीपनि के घर जाकर विद्या ग्रहण करना | ८४६—८५२ |
| १०३. श्रीकृष्ण द्वारा द्वारका का निर्माण और तद्विषयक शास्त्र कथन | ८५३—८५६ |
| १०४. द्वारका प्रवेश, उग्रसेन का अभिषेक वर्णन | ८६०—८६७ |
| १०५. रुक्मिणी का विवाह आरम्भ | ८६८—८७५ |
| १०६. रेवती और बलराम का विवाह, रुक्मिणी और शाल्व आदि द्वारा कृष्ण की स्तुति | ८७५—८७७ |
| १०७. बलभद्र द्वारा शाल्व आदि का मर्दन, भीष्मक द्वारा कृष्ण की स्तुति | ८७८–८८६ |
| १०८. कन्यादान की विधि से श्रीकृष्ण को रुक्मिणी-समर्पण | ८८६—८८७ |
| १०९. श्रीकृष्ण और रुक्मिणी का विवाहोत्सव | ८८८—८९२ |
| ११०. राधा और यशोदा का संवाद | ८९३—८९६ |
| १११. राधा द्वारा यशोदा को भक्ति ज्ञान का उपदेश, अपने नाम की व्युत्पत्ति का कथन | ८९७—९०२ |
| ११२. प्रद्युम्न की उत्पत्ति, कृष्ण द्वारा दुर्वासा को उपदेश | ९०३—९०८ |
| ११३. शिशुपाल और दंतवक्त्र का वध, श्रीकृष्ण के चरित्र का संक्षेप | ९०९—९१४ |
| ११४. ऊषा हरण का आख्यान, ऊषा-अनिरुद्ध का संगम | ९१४—९२२ |
| ११५. बाण और अनिरुद्ध का संवाद | ९२३—९३२ |
| ११६. अनिरुद्ध के द्वारा बाण और कुम्भाण्ड का पराजय | ९३३—९३७ |
| ११७. बाणयुद्ध के प्रसंग में शंकर और गणेश का संवाद | ९३८—९३९ |
| ११८. पार्वती द्वारा कृष्ण का महत्त्ववर्णन | ९४०—९४३ |
| ११९. बलि द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति | ९४३—९५० |
| १२०. बाण और कृष्ण का युद्ध, शंकर की आज्ञा से ऊषा और अनिरुद्ध का विवाह | ९५०—९५७ |
| १२१. शृगाल वासुदेव का मोक्ष | ९५७—९६२ |
| १२२. स्यमन्तक मणि का हरण | ९६३—९६५ |
| १२३. सिद्धाश्रम में राधा द्वारा गणेश का सविधि पूजन | ९६६—९७१ |
| १२४. ब्रह्मा, शंकर, शेष आदि द्वारा राधा की स्तुति | ९७१—९८० |
| १२५. वसुदेव द्वारा राजसूय यज्ञ में सर्वस्व दान | ९८१—९८५ |
| १२६. कृष्ण दर्शन से संतुष्ट राधा द्वारा उनकी स्तुति | ९८६—९९५ |

| अध्याय | पृष्ठ-संख्या |
| --- | --- |
| १२७. राधा और कृष्ण का शृंगार, कृष्ण का व्रजवासियों को दर्शन | ९९५—९९९ |
| १२८. कृष्ण द्वारा कलियुग के देवों का निरूपण और राधा आदि गोपियों का गोलोक गमन | ९९९—१००३ |
| १२९. द्वारका के लय आदि का निरूपण, श्रीकृष्ण का स्वधाम गमन | १००४—१०१३ |
| १३०. नारद द्वारा संजय-कन्या का प्राणिग्रहण | १०१३—१०१९ |
| १३१. सूत द्वारा अग्नि और सुवर्ण की उत्पत्ति का कथन | १०१९—१०२३ |
| १३२. सम्पूर्ण ब्रह्मवैवर्त-कथाओं का संक्षेपतः कथन | १०२३—१०३० |
| १३३. सूत द्वारा पुराण के लक्षण, संख्या आदि का कथन, ब्रह्मवैवर्तपुराण की प्रशंसा, श्रवण, पठन का फल, श्रवण की विधि का निरूपण | १०३०—१०३६ |

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः

श्रीमद्द्वैपायनमुनिप्रणीतं

# ब्रह्मवैवर्तपुराणम्

## तत्र

## चतुर्थं श्रीकृष्णजन्मखण्डम्

### अथ प्रथमोऽध्यायः

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्। देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥१॥

नारद उवाच

श्रुतं प्रथमतो ब्रह्मन्ब्रह्मखण्डं मनोहरम्। ब्रह्मणो वदनाम्भोजात्परमाद्भुतमेव च ॥२॥
ततस्तद्वचनात्तूर्णं समागत्य तवान्तिकम्। श्रुतं प्रकृतिखण्डं च सुधाखण्डात्परं वरम् ॥३॥
ततो गणपतेः खण्डमखण्डभवखण्डनम्। न मे तृप्तं मनो लोलं विशिष्टं श्रोतुमिच्छति ॥४॥
श्रीकृष्णजन्मखण्डं च जन्मादेः खण्डनं नृणाम्। प्रदीपं सर्वतत्त्वानां कर्मघ्नं हरिभक्तिदम् ॥५॥
सद्यो वैराग्यजननं भवरोगनिकृन्तनम्। कारणं मुक्तिबीजानां भवाब्धेस्तारणं परम् ॥६॥

---

चौथा श्रीकृष्णजन्मखण्ड

## अध्याय १

### विष्णु और वैष्णव के गुणों की प्रशंसा

**नारद बोले**—हे ब्रह्मन्! सर्वप्रथम मैंने ब्रह्मा के मुखकमल से मनोहर एवं परम अद्भुत ब्रह्मखण्ड सुना, अनन्तर उन्हीं की आज्ञा से मैंने आपके पास आकर आपके द्वारा अमृतखण्ड से भी परम श्रेष्ठ प्रकृति-खण्ड और अखण्ड संसार (जन्म-मरण)-नाशक गणपति खण्ड का श्रवण किया, किन्तु मेरा चञ्चल मन तृप्त न हुआ, अतः (इससे भी) विशिष्ट कुछ कथाएँ सुनना चाहता हूँ—भगवान् श्रीकृष्ण का जन्मखण्ड सुनाने की कृपा करें, जो मनुष्यों के जन्म-मरण रूप संसार का नाशक, समस्त तत्त्वों का प्रदीप, कर्मनाशक (मुक्तिप्रद), भगवान् की भक्ति देनेवाला, शीघ्र वैराग्य उत्पन्न होने का हेतु, संसार रूपी रोग का नाशक, मुक्तिबीज का कारण,

कर्मोपभोगरोगाणां खण्डने च रसायनम्। श्रीकृष्णचरणाम्भोजप्राप्तिसोपानकारणम् ॥७॥
जीवनं वैष्णवानां च जगतां पावनं परम्। वद विस्तार्य मां भक्तं शिष्यं च शरणागतम् ॥८॥
केन वा प्रार्थितः कृष्ण आजगाम महीतलम्। सर्वांशैरेक एवेशः परिपूर्णतमः स्वयम् ॥९॥
युगे कुत्र कुतो हेतोः कुत्रवाऽऽविर्बभूव ह। वसुदेवोऽस्य जनकः को वा का वा च देवकी ॥१०॥
वद कस्य कुले जन्म मायया सुविडम्बनम्। किं चकार समागत्य केन रूपेण वा हरिः ॥११॥
जगाम गोकुलं कंसभयेन सूतिकागृहात्। कथं कंसात्कीटतुल्याद्भयेशस्य भयं मुने ॥१२॥
हरिर्वा गोपवेषेण गोकुले किं चकार ह। [1]कुतो गोपाङ्गनासार्धं विजहार जगत्पतिः ॥१३॥
का वा गोपाङ्गना के वा गोपाला बालरूपिणः। का वा यशोदा को नन्दः किं वा पुण्यं चकार ह ॥१४॥
कथं राधा पुण्यवती देवी गोलोकवासिनी। व्रजे वा व्रजकन्या सा बभूव प्रेयसी हरेः ॥१५॥
कथं गोप्यो दुराराध्यं संप्रापुरीश्वरं परम्। कथं ताश्च परित्यज्य जगाम मथुरां पुनः ॥१६॥
भारावतरणं कृत्वा किं विधाय जगाम सः। कथयस्व महाभाग पुण्यश्रवणकीर्तनं ॥१७॥
सुदुर्लभां हरिकथां तरणिं [2]भवसागरे। निषेकभोगनिगडक्लेशच्छेदनकर्तनीम् ॥१८॥

---

भवसागर का परम नौका, जन्मान्तरीय कर्मों के उपभोगस्वरूप रोगों आदि के नाश करने के लिए रसायन रूप, भगवान् श्रीकृष्ण के चरण-कमल की प्राप्ति में सोपान (सीढ़ियों) का कारण, वैष्णवों का जीवन और समस्त जगत् को परम पवित्र करनेवाला है। मैं आपका भक्त शिष्य एवं शरणागत हूँ, अतः विस्तारपूर्वक मुझे बताने की कृपा करें ॥१-८॥ किसकी प्रार्थना के वशीभूत होकर भगवान् श्रीकृष्ण, जो परिपूर्णतम एवं एक हैं, संपूर्ण अंशों से स्वयं पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए? ॥९॥ किस युग में, किस कारण और कहाँ प्रकट हुए? उनके पिता वसुदेव कौन हैं और देवकी कौन हैं? ॥१०॥ उन्होंने अपनी माया द्वारा अति विडम्बना करते हुए किसके कुल में जन्म ग्रहण किया? और यहाँ आकर भगवान् ने किस रूप से कौन कार्य किया? ॥११॥ हे मुने! उन्होंने कंस-भय के कारण प्रसूति-गृह (सौरीघर) से गोकुल को प्रस्थान किया था किन्तु कंस (उनके लिए) एक कीड़े के समान था और वे भय के भी ईश हैं, फिर क्यों उन्हें कंस से भय मालूम हुआ? ॥१२॥ भगवान् जगत्पति ने गोकुल में आकर गोपवेश में कौन-सा कार्य किया? और गोपियों के साथ कहाँ विहार (रासक्रीड़ा) किया? ॥१३॥ वे गोपियाँ कौन थीं? बालरूपी गोपाल कौन थे? यशोदा और नंद कौन थे? उन्होंने कौन-सा पुण्य किया था? (जिससे उन्हें भगवान् पुत्र रूप में मिले) ॥१४॥ क्यों गोलोक की रहनेवाली पुण्यवती राधा देवी व्रज में या व्रज की कन्या होकर भगवान् की प्रेयसी बनीं? ॥१५॥ गोपियों ने दुराराध्य परमेश्वर को (पति रूप में) कैसे प्राप्त किया और भगवान् उन्हें छोड़कर पुनः मथुरा क्यों चले गये? ॥१६॥ पवित्र श्रवण और कीर्तनवाले हे महाभाग! आप यह बतायें कि भगवान् पृथ्वी का भार उतारने के बाद क्या करके गये ॥१७॥ भगवान् की यह दुर्लभ कथा भवसागर पार करने की नौका, कर्म-भोग रूपी बेड़ी तथा क्लेश काटने की (कैंची।

---

१ क. कुत्र गो०। २ क. ०वतारणे०।

पापेन्धनानां दहने ज्वलदग्निशिखामिव । पुंसां श्रुतवतां कोटिजन्मकिल्बिषनाशिनीम् ॥१९॥
मुक्तिं कर्णसुधारम्यां शोकसागरनाशिनीम् । मह्यं भक्ताय शिष्याय ज्ञानं देहि कृपानिधे ॥२०॥
तपोजपमहादानात्पृथिव्यां तीर्थदर्शनात् । श्रुतिपाठादनशनाद्व्रताद्देवार्चनादपि ॥२१॥
दीक्षायाः सर्वयज्ञेषु यत्फलं लभते नरः । षोडशीं ज्ञानदानस्य कलां नार्हति तत्फलम् ॥२२॥
पित्राऽहं प्रेषितो ज्ञानादानाय तव संनिधिम् । सुधासमुद्रं संप्राप्य को वाऽन्यत्पातुमिच्छति ॥२३॥

नारायण उवाच

मया ज्ञातोऽसि धन्यस्त्वं पुण्यराशिः सुमूर्तिमान् । करोषि भ्रमणं लोकान्पावितुं कुलपावन ॥२४॥
जनानां हृदयं सद्यः सुव्यक्तं वचनेन वै । शिष्ये कलत्रे कन्यायां दौहित्रे बान्धवेऽपि च ॥२५॥
पुत्रे पौत्रे च वचसि प्रतापे चाऽऽपदि स्त्रियाम् । वृद्धौ वैरिणि विद्यायां ज्ञायते हृदयं नृणाम् ॥२६॥
जीवन्मुक्तोऽसि पूतस्त्वं शुद्धभक्तो गदाभृतः । पुनासि पादरजसा सर्वाधारां वसुंधराम् ॥२७॥
पुनासि लोकान्सर्वांश्च स्वीयविग्रहदर्शनात् । सुमङ्गलां हरिकथां तेन त्वं श्रोतुमिच्छसि ॥२८॥
यत्र कृष्णकथाः सन्ति तत्रैव सर्वदेवताः । ऋषयो मुनयश्चैव तीर्थानि निखिलानि च ॥२९॥

---

पाप रूपी लकड़ी जलाने के लिए प्रज्वलित अग्नि की ज्वाला और सुननेवाले के करोड़ों जन्मों के पापों का नाश करनेवाली, कान को सुन्दर अमृत देनेवाली एवं शोकसागर की नाशिनी मुक्ति-रूप है । हे कृपानिधे ! मुझ भक्त शिष्य को ज्ञान देने की कृपा करें ॥१८-२०॥ क्योंकि तप, जप, महादान, पृथ्वी के तीर्थ-दर्शन, वेदों के पाठ, उपवास, व्रत, देवार्चन और समस्त यज्ञों की दीक्षा से जिन फलों की प्राप्ति होती है, वे इस ज्ञान-दान की सोलहवीं कला के भी समान नहीं हैं ॥२१-२२॥ पिता ने मुझे ज्ञान प्राप्त करने के लिए आपके पास भेजा है । अमृत सागर प्राप्त होने पर कौन अन्य पान की इच्छा करता है ॥२३॥

**नारायण बोले**—कुलपावन ! तुम धन्य हो, पुण्य की राशि एवं सुमूर्तिमान् हो, यह मैंने भली-भाँति जान लिया है और लोकों को पवित्र करने के लिए ही तुम इधर-उधर भ्रमण किया करते हो ॥२४॥ वचन बोलते ही मनुष्यों का हृदय तुरन्त स्पष्ट मालूम हो जाता है । शिष्य, स्त्री, कन्या और कन्यापुत्र (नाती), बन्धु, पुत्र, पौत्र, वाणी, प्रताप (तेज), स्त्री, आपत्ति, वृद्धि, वैरी और विद्या में मनुष्यों का हृदय जाना जाता है ॥२५-२६॥ तुम जीवन्मुक्त हो, पवित्र हो, गदाधारी भगवान् विष्णु के शुद्ध भक्त हो अपनी चरण-धूलि से इस सर्वाधार पृथ्वी को पवित्र कर रहे हो ॥२७॥ अपने स्वरूप के दर्शन प्रदान द्वारा सभी लोकों (लोगों) को पावन कर रहे हो । इसीलिए भगवान् की अति मांगलिक कथा सुनने की तुम्हें विशेष इच्छा हो रही है ॥२८॥ जिस स्थान पर भगवान् श्रीकृष्ण की कथा होती है, उसी स्थान पर समस्त देवगण, ऋषिगण, मुनिवृन्द और समस्त तीर्थ निवास करते हैं ॥२९॥

---

१ क. यशसि ।

कथाः श्रुत्वा कथान्ते ते यान्ति सन्तो निरापदम् । भवन्ति तानि तीर्थानि येषु कृष्णकथाः शुभाः ॥३०॥
सद्यः कृष्णकथावक्ता स्वस्य पुंसां शतं शतम् । समुद्धृत्य श्रुतवतां पुनाति निखिलं कुलम् ॥३१॥
प्रष्टा तु प्रश्नमात्रेण पुनाति कुलमात्मनः । श्रोता श्रवणमात्रेण स्वकुलं स्वस्वबान्धवान् ॥३२॥
शतजन्मतपःपूतो जन्मेदं भारते लभेत् । करोति जन्म सफलं श्रुत्वा हरिकथामृतम् ॥३३॥
अर्चनं वन्दनं मन्त्रजपः सेवनमेव च । स्मरणं कीर्तनं शश्वद्गुणश्रवणमीप्सितम् ॥३४॥
निवेदनं तस्य दास्यं नवधाभक्तिलक्षणम् । करोति जन्म सफलं कृत्वैतानि च नारद ॥३५॥
न च विघ्नो भवेत्तस्य परमायुर्न नश्यति । न याति तत्पुरः कालो वैनतेयमिवोरगः ॥३६॥
न जहाति समीपं च क्षणं तस्य हरिः स्वयम् । उपतिष्ठन्ति तूर्णं तमणिमादिकसिद्धयः ॥३७॥
सुदर्शनं भ्रमत्येव तस्य पार्श्वे दिवानिशम् । कृष्णाज्ञया च रक्षार्थं को वा किं कर्तुमीश्वरः ॥३८॥
न यान्ति तत्समीपं च स्वप्नेऽपि यमकिंकराः । ज्वलदग्निं यथा दृष्ट्वा शलभा न व्रजन्ति तम् ॥३९॥
व्याधयो विपदः शोका विघ्नाश्च न प्रयान्ति तम् । न याति तत्समीपं च मृत्युर्मृत्युभयान्मुने ॥४०॥
ऋषयो मुनयः सिद्धाः संतुष्टाः सर्वदेवताः । स च सर्वत्र निःशङ्कः सुखी कृष्णप्रसादतः ॥४१॥
तव कृष्णकथायां च रतिरात्यन्तिकी सदा । जनकस्य स्वभावो हि जन्ये तिष्ठति निश्चितम् ॥४२॥

---

कथा सुनने के उपरांत कथा-समाप्ति होने पर सन्त लोग (भगवान् का) निरापद स्थान प्राप्त करते हैं और जिन स्थानों में भगवान् कृष्ण की शुभ कथा होती है वे तीर्थ हो जाते हैं ॥३०॥ भगवान् कृष्ण की कथा कहनेवाला (वक्ता) अपनी सौ पीढ़ियों और सुननेवालों के समस्त कुल का उद्धार करता है ॥३१॥ प्रश्नकर्ता केवल प्रश्न मात्र से अपने कुल को पवित्र करता है, और श्रोता उसके सुनने मात्र से बन्धु-बान्धव समेत अपने कुल को पवित्र करता है ॥३२॥ सौ जन्मों में तप करने पर भारत में जन्म प्राप्त होता है, जिससे भगवान् की अमृत-कथा का श्रवण कर अपने जन्म को सफल कर लेता है ॥३३॥ भगवान् की पूजा, वंदना, उनके मंत्र का जप, सेवा, स्मरण, कीर्तन, निरन्तर अभीष्ट गुणों का श्रवण, आत्मसमर्पण और दास्यभाव यही नव प्रकार की भक्ति है। हे नारद ! इन कर्मों को सुसम्पन्न कर मनुष्य अपना जन्म सफल करता है ॥३४-३५॥ उस मनुष्य के यहां कभी विघ्न नहीं होता है, उसकी परमायु नष्ट नहीं होती है और गरुड़ के सामने सर्प की भांति काल उसके सामने कभी भी नहीं ज ता है ॥३६॥ उसके सामीप्य को स्वयं भगवान् किसी क्षण नहीं छोड़ते हैं और अणिमा आदि सिद्धियां शीघ्र उसके समीप पहुँच जाती हैं ॥३७॥ भगवान् की आज्ञा से उनका चक्र सुदर्शन भक्त के रक्षार्थ दिन-रात उसके समीप घूमता रहता है, अतः उस भक्त का कोई क्या बिगाड़ सकता है ॥३८॥ जलते हुए अग्नि को देखकर जिस प्रकार पतिङ्गे वहां नहीं जाते हैं उसी भांति यम के किंकर वर्ग स्वप्न में भी उस भक्त के पास नही जाते हैं ॥३९॥ हे मुने ! रोग, विपत्तियाँ, शोक, विघ्न, उसके पास नहीं फटकते और मृत्यु-भय के कारण मृत्यु भी वहां नहीं जाती है ॥४०॥ ऋषिगण, मुनिवृन्द, सिद्ध तथा समस्त देवता उस पर सन्तुष्ट रहते हैं। इसीलिए भगवान् श्रीकृष्ण के प्रसाद से वह सर्वत्र निःशंक और सुखी रहता है ॥४१॥ भगवान कृष्ण की कथा में तुम्हारा सदैव अत्यन्त प्रेम रहा है। ठीक ही है जनक (पिता) का स्वभाव जन्य (पुत्र) में निश्चित आता ही है ॥४२॥

विप्रेन्द्र का प्रशंसेयं जन्म ते ब्रह्ममानसे। यस्य यत्र कुले जन्म तन्मतिस्तादृशी भवेत् ॥४३॥
पिता विधाता जगतः कृष्णपादाब्जसेवया। नित्यं करोति यः शश्वन्नवधाभक्तिलक्षणम् ॥४४॥
रतिः कृष्णकथायां च यस्याश्रुपुलकोद्गमः। मनो निमग्नं तत्रैव स भक्तः कथितो बुधैः ॥४५॥
पुत्रदारादिकं सर्वं जानाति श्रीहरेरिति। आत्मना मनसा वाचा स भक्तः कथितो बुधैः ॥४६॥
निर्जने तीर्थसंपर्के निःसङ्गा ये मुदाऽन्विताः। ध्यायन्ते चरणाम्भोजं श्रीहरेस्ते च वैष्णवाः ॥४७॥
दयाऽस्ति सर्वजीवेषु सर्वं कृष्णमयं जगत्। यो जानाति महाज्ञानी स भक्तो वैष्णवो मतः ॥४८॥
शश्वद्ये नाम गायन्ति गुणं मन्त्रं जपन्ति च। कुर्वन्ति श्रवणं गाथा वदन्ति तेऽतिवैष्णवाः ॥४९॥
लब्धानीष्टानि वस्तूनि प्रदातुं हरये मुदा। तूर्णं यस्य मनो हृष्टं स भक्तो ज्ञानिनां वरः ॥५०॥
यन्मनो हरिपादाब्जे स्वप्ने ज्ञाने दिवानिशम्। पूर्वकर्मोपभोगं च बहिर्भुङ्क्ते स वैष्णवः ॥५१॥
गुरुवक्त्राद्विष्णुमन्त्रो यस्य कर्णे विशत्ययम्। तं वैष्णवं महापूतं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥५२॥
पूर्वान्सप्त परान्सप्त सप्त मातामहादिकान्। सोदरानुद्धरेद्भक्तः स्वप्रसूं च प्रसूप्रसूम् ॥५३॥
कलत्रं कन्यकां बन्धुं शिष्यं दौहित्रमात्मनः। किंकरान्किंकरीश्चैवमुद्धरेद्वैष्णवः सदा ॥५४॥
सदा वाञ्छन्ति तीर्थानि वैष्णवस्पर्शदर्शने। पापिदत्तानि पापानि तेषां नश्यन्ति सङ्गतः ॥५५॥

---

विप्रेन्द्र ! तुम्हारी क्या प्रशंसा करूँ ? ब्रह्मा के मन से तुम्हारा जन्म हुआ है। जिस प्रकार के कुल में जिसका जन्म होता है, उसकी बुद्धि भी वैसी ही होती है ॥४३॥ तुम्हारे पिता भगवान् कृष्ण के चरण-कमल की सेवा द्वारा जगत् के विधाता हुए जो निरन्तर नित्य नवधा भक्ति करते रहते हैं ॥४४॥ भगवान् कृष्ण की कथा में प्रेम के नाते जिसके नेत्र में आँसू और रोमांच होता रहे और मन सदैव उसी में निमग्न रहे, बुध लोग उसे ही भक्त कहते हैं ॥४५॥ मन, वाणी, कर्म से जो अपने पुत्र, स्त्री आदि समस्त परिवार को श्री भगवान् का ही जानता है, उसे विद्वान् लोग भक्त कहते हैं ॥४६॥ निर्जन स्थान एवं तीर्थों में निःसंग होकर जो सहर्ष श्री हरि के चरण-कमल का ध्यान करते हैं, वे ही वैष्णव हैं ॥४७॥ जो समस्त जीवों पर दया करते हुए समस्त संसार को कृष्णमय देखता है, उसे महाज्ञानी वैष्णव भक्त कहा जाता है ॥४८॥ जो भगवान् के नाम का गान, गुण-कथन, मंत्र जप और उनकी गाथाओं का श्रवण करते हैं वे महावैष्णव हैं ॥४९॥ प्राप्त अभीष्ट वस्तु को भगवान् को समर्पित करने के लिए जिसका मन शीघ्र हर्षित होता है वह भक्त ज्ञानियों में श्रेष्ठ है ॥५०॥ जिसका मन भगवान् के चरण-कमल में स्वप्न, जागरण समेत रात-दिन लगा रहता है और पूर्वकर्मों के फलोपभोग बाहरी मन से (उदासीन भाव से) किया करता है, वह वैष्णव है ॥५१॥ गुरु के मुख से जिसके कान में भगवान् का मंत्र प्रवेश करता है, उसे मनीषीगण महापूत वैष्णव कहते हैं ॥५२॥ वह अपनी पूर्व की सात पीढ़ियों, पर की सात पीढ़ियों, नाना कुल की सात पीढ़ियों, सोदरों तथा अपनी जननी एवं नानी का उद्धार करता है ॥५३॥ स्त्री, कन्या, बंधु, शिष्य, कन्या-पुत्र और नौकर-नौकरानियों का वैष्णव सदा उद्धार करता है ॥५४॥ वैष्णवों के दर्शन-स्पर्शन के लिए समस्त तीर्थगण नित्य लालायित रहते हैं क्योंकि उनके सम्पर्क से तीर्थों के, पापी-प्रदत्त पाप नष्ट हो जाते हैं ॥५५॥

गोदोहनक्षणं यावद्यत्र तिष्ठन्ति वैष्णवाः । तत्र सर्वाणि तीर्थानि सन्ति तावन्महीतले ॥५६॥
ध्रुवं तत्र मृतः पापी मुक्तो याति हरेः पदम् । तथैव ज्ञानगङ्गायामन्ते कृष्णस्मृतौ यथा ॥५७॥
तुलसीकानने गोष्ठे श्रीकृष्णमन्दिरे पदे । वृन्दारण्ये हरिद्वारे तीर्थेष्वन्येषु वा यथा ॥५८॥
पापानि पापिनां यान्ति तीर्थस्नानावगाहनात् । तेषां पापानि नश्यन्ति वैष्णवस्पर्शवायुना ॥५९॥
न हि स्थातुं शक्नुवन्ति पापान्येव कृतानि च । ज्वलदग्नौ यथा क्षिप्रं शुष्काणि हि तृणानि च ॥६०॥
भक्तं वर्त्मनि गच्छन्तं ये पश्यन्ति मानवाः । सप्तजन्मार्जिताघानि तेषां नश्यन्ति निश्चितम् ॥६१॥
ये निन्दन्ति हृषीकेशं तद्भक्तं पुण्यरूपिणम् । शतजन्मार्जितं पुण्यं तेषां नश्यति निश्चितम् ॥६२॥
ते पच्यन्ते महाघोरे कुम्भीपाके भयानके । भक्षिताः कीटसंघेन यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥६३॥
तस्य दर्शनमात्रेण पुण्यं नश्यति निश्चितम् । गङ्गां स्नात्वा रविं नत्वा तदा विद्वान्विशुध्यति ॥६४॥
वैष्णवस्पर्शमात्रेण मुक्तो भवति पातकी । तस्य पापानि हन्त्येव स्वान्तःस्थो मधुसूदनः ॥६५॥
इत्येवं कथितो विप्र विष्णुवैष्णवयोर्गुणः । अधुना श्रीहरेर्जन्म निबोध कथयाम ते ॥६६॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त महापुराण श्रीकृष्णजन्मखण्ड नारदनारायण विष्णुवैष्णवयोर्गुण-
प्रशंसाप्रस्ताववर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

---

गोदोहन समय तक भी वैष्णव जहाँ ठहर जाते हैं वहाँ भूतल में समस्त तीर्थ आ जाते हैं ॥५६॥ वहाँ पर मरनेवाला पापी उसी प्रकार मुक्त होकर निश्चित रूप से भगवान् के लोक में जाता है जैसे अन्तकाल में श्रीकृष्ण की स्मृति होने पर अथवा ज्ञान-गङ्गा में अवगाहन करने पर मनुष्य परम पद को प्राप्त हो जाता है ॥५७॥ जैसे तुलसी वन, गौओं के रहने के स्थान, भगवान् श्रीकृष्ण के मन्दिर, वृन्दावन, हरिद्वार और अन्य तीर्थों में मृत्यु होने पर मनुष्य को परम धाम की प्राप्ति होती है ॥५८॥ तीर्थों में स्नान करने से पापियों के पाप धुल जाते हैं । फिर उन तीर्थों के पाप वैष्णवों को छूकर बहनेवाले वायु के स्पर्श से नष्ट होते हैं ॥५९॥ प्रज्वलित अग्नि में सूखे तृण की भाँति उनके पाप कभी ठहर नहीं सकते हैं ॥६०॥ मार्ग में जाते हुए भक्त को जो लोग देखते हैं, उनके सात जन्मों के पाप निश्चित नष्ट हो जाते हैं ॥६१॥ जो भगवान् हृषीकेश या पुण्यस्वरूप उनके भक्त को निन्दा करते हैं, उसके सौ जन्मों के पुण्य निश्चित नष्ट हो जाते हैं ॥६२॥ और अंत में महाघोर एवं भीषण कुम्भीपाक नरक में सूर्य-चन्द्रमा के समय तक वे पड़े रहते हैं और कीड़े नोंच-नोंचकर उन्हें खाया करते हैं ॥६३॥ उनके दर्शनमात्र से पुण्य निश्चित नष्ट हो जाता है । गंगा-स्नान तथा सूर्य को नमस्कार करने पर ही वह (देखनेवाला) विद्वान् शुद्ध होता है ॥६४॥ वैष्णव के स्पर्शमात्र से पातकी मुक्त होता है क्योंकि भगवान् मधुसूदन उनके भीतर स्थित होकर उसका समस्त पाप नष्ट कर देते हैं ॥६५॥ हे विप्र ! इस प्रकार मैंने तुम्हें विष्णु और वैष्णव का गुण बता दिया, अब श्री हरि का जन्म कह रहा हूँ, सुनो ॥६६॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्ण-जन्मखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में विष्णु-वैष्णव के गुणों की प्रशंसा के प्रस्ताव का वर्णन नामक पहला अध्याय समाप्त ॥१॥

# अथ द्वितीयोऽध्यायः

### नारायण उवाच

येन वा प्रार्थितः कृष्ण आजगाम महीतलम् । यं यं विधाय भूमौ स जगाम स्वालयं विभुः ॥१॥
भारावतरणोपायं दुष्टानां च वधोद्यमम् । सर्वं ते कथयिष्यामि सुविचार्य विधानतः ॥२॥
अधुना गोपवेषं च गोकुलागमनं हरेः । राधा गोपालिका येन निबोध कथयामि ते ॥३॥
शङ्खचूडवधं पूर्वं संक्षेपात्कथितं श्रुतम् । अधुना तत्सुविस्तार्य निबोध कथयामि ते ॥४॥
श्रीदाम्नः कलहश्चैव बभूव राधया सह । श्रीदामा शङ्खचूडश्च शापात्तस्या बभूव ह ॥५॥
राधां शशाप श्रीदामा याहि योनिं च मानवीम् । व्रजे व्रजाङ्गना भूत्वा विचरस्व महीतले ॥६॥
भीता श्रीदामशापात्सा श्रीकृष्णं समुवाच ह । गोपीरूपा भविष्यामि श्रीदामा मां शशाप ह ॥७॥
कमुपायं करिष्यामि वद मां भयभञ्जन । त्वया विना कथमहं धरिष्यामि स्वजीवनम् ॥८॥
क्षणेन मे युगशतं कालं नाथ त्वया विना । चक्षुर्निमेषविरहाद्भवेद्दग्धं मनो मम ॥९॥
शरत्पार्वणचन्द्राभं सुधापूर्णाननं तव । नाथ चक्षुश्चकोराभ्यां पिबाम्यहमहर्निशम् ॥१०॥
त्वमात्मा मे मनः प्राणा देहमात्रं वहाम्यहम् । दृष्टिशक्तिश्च चक्षुस्त्वं जीवनं परमं धनम् ॥११॥

---

# अध्याय २

## विरजा नामक गोपी का नदी-रूप धारण

**नारायण बोले**—जिसकी प्रार्थनावश भगवान् श्रीकृष्ण पृथ्वी पर आये और पृथ्वी पर जो-जो कार्य करके अपने लोक को चले गये; जैसे पृथ्वी का भार उतारना, दुष्टों के वध तथा पृथ्वी के भार उतारने का उपाय एवं दुष्टों के वध का प्रयत्न; इन सबको भली भांति विचारकर सविधान मैं कहूँगा ॥१-२॥ इस समय भगवान् का गोपवेश और गोकुल में आगमन तथा जिस कारण से राधा गोपी होकर अवतरित हुई हैं, मैं कह रहा हूँ, सुनो ॥३॥ मैंने शंखचूड का वध संक्षेप में पहले सुना दिया था, अब उसी को विस्तार से कह रहा हूँ, सुनो ॥४॥ एक बार श्रीदामा का राधा के साथ झगड़ा हुआ, उसी में राधा के शाप से श्रीदामा शंखचूड होकर उत्पन्न हुए ॥५॥ श्रीदामा ने भी राधा को शाप दिया था कि—तू भी मनुष्य होकर उत्पन्न हो—व्रज में स्त्री बनकर वहां की भूमि में विचरण करो ॥६॥ अनन्तर श्रीदामा के शाप से भयभीत होकर राधा ने श्रीकृष्ण से कहा कि—'मुझे श्रीदामा के शाप से गोपी होना पड़ेगा ।' भवभंजन ! अब कौन उपाय करूँ, बताने की कृपा करो, क्योंकि तुम्हारे विना मैं अपना जीवन धारण कैसे कर सकती हूँ ॥७-८॥ हे कालनाथ ! तुम्हारे बिना एक क्षण भी मुझे सैकड़ों युग के समान बीतता है, नेत्र-निमेष मात्र वियोग होने से तो मेरा मन जलने लगता है ॥९॥ हे नाथ ! शारदीय पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान कान्ति और सुधा से पूर्ण आपके मुख (सौन्दर्य) का मैं रात-दिन अपने नेत्र रूपी चकोर से पान करती हूँ ॥१०॥ तुम मेरे आत्मा, मन और प्राण हो, मैं केवल इस देहमात्र का वहन करती हूँ । अतः तुम्हीं मेरी दृष्टि-शक्ति, नेत्र और परम जीवन धन हो ॥११॥ सोते-जागते सभी समय

स्वप्ने ज्ञाने त्वयि मनः स्मरामि त्वत्पदाम्बुजम् । तव दास्यं विना नाथ न जीवामि क्षणं विभो ॥१२॥
कृष्णस्तद्वचनं श्रुत्वा बोधयामास सुन्दरीम् । वक्षसि प्रेयसीं कृत्वा चकार निर्भयां च ताम् ॥१३॥
महीतलं गमिष्यामि वाराहे च वरानने । त्वया सार्धं भूगमनं जन्म तेऽपि निरूपितम् ॥१४॥
व्रजं गत्वा व्रजे देवि विहरिष्यामि कानने । मम प्राणाधिका त्वं च भयं किं ते मयि स्थिते ॥१५॥
तामित्युक्त्वा हरिस्तत्र विरराम जगत्पतिः । अतो हेतोर्जगन्नाथो जगाम नन्दगोकुलम् ॥१६॥
किं वा तस्य भयं कंसाद्भयान्तकारकस्य च । मायाभयच्छलेनैव जगाम राधिकान्तिकम् ॥१७॥
विजहार तया सार्धं गोपवेषं विधाय सः । सह गोपाङ्गनाभिश्च प्रतिज्ञापालनाय च ॥१८॥
ब्रह्मणा प्रार्थितः कृष्णः समागत्य महीतलम् । भारावतरणं कृत्वा जगाम स्वालयं विभुः ॥१९॥

नारद उवाच

श्रीदाम्नः कलहश्चैव कथं वा राधया सह । संक्षेपात्कथितं पूर्वं संव्यस्य कथयाधुना ॥२०॥

नारायण उवाच

एकदा राधया सार्धं गोलोके श्रीहरिः स्वयम् । विजहार महारण्ये[1] निर्जने रासमण्डले ॥२१॥
राधिका सुखसंभोगाद्बुबुधे न स्वकं परम् । कृत्वा विहारं श्रीकृष्णस्तामपृष्ट्वा विहाय च ॥२२॥

---

तुम्हीं में अपना मन लगाकर तुम्हारे चरण-कमल का स्मरण किया करती हूँ । हे नाथ ! हे विभो ! बिना तुम्हारी सेवा के मैं क्षण भर भी जी नहीं सकती ॥१२॥ अनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण ने उनकी बातें सुनकर उस सुन्दरी को समझाया । प्रेयसी को अपने अंक से लगाते हुए उसे निर्भय किया और कहा—हे सुमुखी ! वाराह कल्प में मैं भी पृथ्वी-तल पर चलूँगा उसी समय मेरे साथ तुम्हारा भी जन्म भूतल पर होगा ॥१३-१४॥ हे देवि ! व्रज में हम लोग चलकर जंगल में विहार करेंगे । तुम मेरे प्राणों से भी अधिक प्रिय हो, अतः मेरे रहते तुम्हें भय क्या है ॥१५॥ जगत्पति भगवान् इतना कहकर चुप हो गये । इसी कारण जगन्नाथ भगवान् ने गोकुल में गमन किया ॥१६॥ भयनाशक भगवान् को कंस से भय क्या हो सकता है ? वे मायिक भय के बहाने ही राधा के समीप गये और अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए उनके साथ तथा गोपियों के साथ वहाँ विहार किया ॥१७-१८॥ ब्रह्मा के प्रार्थना करने पर भगवान् श्रीकृष्ण ने पृथ्वी पर आकर इसका भार उतारा और अंत में पुनः अपने लोक चले गये ॥१९॥

**नारद बोले**—श्रीदामा और राधा का कलह आपने पहले संक्षेप में कहा था, अतः इस समय इसे पुनः विस्तारपूर्वक सुनाने की कृपा करें ॥२०॥

**नारायण बोले**—एक बार भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं गोलोक में रासमण्डल में निर्जन महावन में विहार किया ॥२१॥ राधिका को सुख सम्भोग में निमग्न होने के कारण अपने-पराये का ज्ञान नहीं रहा इसलिए

---

१ क. रम्ये ।

गोपिकां विरजामन्यां शृङ्गारार्थं जगाम ह। वृन्दारण्ये च विरजा सुभगा राधिकासमा ॥२३॥
तस्या वयस्याः सुन्दर्यो गोपीनां शतकोटयः। कृष्णप्राणाधिका गोपी धन्या मान्या च योषिताम् ॥२४॥
रत्नसिंहासनस्था सा ददर्श हरिमन्तिके। ददर्श श्रीहरिस्तां च शरच्चन्द्रनिभाननाम् ॥२५॥
मनोहरां सस्मितां च पश्यन्तीं वक्रचक्षुषा। सदा षोडशवर्षीयां प्रोद्भिन्ननवयौवनाम् ॥२६॥
रत्नालंकारशोभाढ्यां भूषितां शुक्लवाससा। पुलकाङ्कितसर्वाङ्गीं कामबाणप्रपीडिताम् ॥२७॥
दृष्ट्वा तां श्रीहरिस्तूर्णं विजहार तया सह। पुष्पतल्पे महारण्ये निर्जने रत्नमण्डपे ॥२८॥
मूर्च्छामवाप विरजा कृष्णशृङ्गारकौतुकात्। कृत्वा वक्षसि प्राणेशं कोटिकन्दर्पसंनिभम् ॥२९॥
तया सक्तं श्रीहरिं च रत्नमण्डपसंस्थितम्। दृष्ट्वा च राधिकाल्यश्च चक्रुस्तां च निवेदनम् ॥३०॥
तासां च वचनं श्रुत्वा सुष्वाप च चुकोप ह। भृशं रुरोद सा देवी रक्तपङ्कजलोचना ॥३१॥
ता उवाच महादेवी मां तं दर्शयितुं क्षमाः। यदि सत्यं ब्रूत यूयं मया सार्धं प्रयच्छत ॥३२॥
करिष्यामि फलं गोप्याः कृष्णस्य च यथोचितम्। को रक्षिताऽद्य तस्याश्च मयि शास्ति प्रकुर्वति ॥३३॥
शीघ्रमानयताल्यश्च तया सार्धं हरिं प्रियम्[1]। अन्तर्वक्रं सस्मितं च विषकुम्भं सुधामुखम् ॥३४॥

---

विहार करने के उपरांत भगवान् श्रीकृष्ण बिना उनसे पूछे उन्हें छोड़कर एक अन्य विरजा गोपी के साथ शृंगार-संभोग करने के लिए चले गये। वह राधा के समान सुन्दरी थी और वृन्दावन में रहती थी॥ २२-२३॥ सौ करोड़ गोप-सुन्दरियाँ उसकी सखी थीं। वह गोपी भगवान् कृष्ण की प्राणों से भी अधिक प्रिय और स्त्रियों में धन्यमान्य थी॥२४॥ रत्नसिंहासन पर बैठी हुई उसने भगवान् को अपने समीप आये हुए देखा और भगवान् ने भी उस गोपी का शारदीय चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख देखा॥२५॥ मनोहर, मन्द मुसुकान एवं कटाक्ष करती हुई, सदा सोलह वर्ष की, प्रस्फुटित नवयौवन से युक्त, रत्नों के आभूषणों की शोभा से सम्पन्न शुक्ल वस्त्र से विभूषित, सर्वांग में रोमांच से युक्त और कामवाण से पीड़ित उसे देखकर भगवान् ने निर्जनमहारण्यवर्ती रत्नमण्डप में पुष्प-शय्या पर उसके साथ शीघ्र विहार करना प्रारम्भ कर दिया॥२६-२८॥ करोड़ों काम के समान सुन्दर एवं प्राणेश कृष्ण को छाती से चिपकाकर रति क्रीड़ा करती हुई विरजा कृष्ण की शृगार-चेष्टाओं के कौतुकवश मूर्च्छित हो गयी—किन्तु भगवान् उसी से लिपटे उस रत्नमण्डप में पड़े रहे। राधिका की सखियों ने यह दृश्य देखकर राधिका जी से निवेदन कर दिया॥२९-३०॥ उनकी बातें सुनकर राधा सो गयीं और कुपित हुई। उन्होंने अत्यन्त रोदन किया, जिससे उनके नेत्र रक्तकमल की भाँति हो गये॥३१॥ महादेवी ने सहेलियों से कहा—'तुम लोग यदि सत्य कह रही हो, तो मेरे साथ चलो और मुझे दिखाओ—मैं उस गोपी समेत कृष्ण को भी इसका उचित फल प्रदान करूँगी (अच्छा मजा चखाऊँगी)। देखती हूँ, मेरे शासन करने पर आज कौन उसकी रक्षा करता है'॥३२-३३॥ सखियो! उस गोपी समेत प्रिय हरि को शीघ्र लाओ, जो भीतर से कुटिल, मन्द मुसकान से युक्त और विष से भरे तथा मुह में अमृत रखे हुए घड़े के समान हैं। किन्तु तुम लोग दास को मेरे आश्रय में आने नहीं दोगी, अतः उसी रमणीय मण्डप में जाओ और प्रभु की सुरक्षा करो।'॥३४-३५॥

---

१ क. प्रियाः।

मदाश्रयं समागन्तुं यूयं दासं न दास्यथ। तमेव मण्डपं रम्यं यात संरक्षतेश्वरम् ॥३५॥
राधिकावचनं श्रुत्वा काश्चिद्गोप्यो भयान्विताः। ताः सर्वाः संपुटाञ्जल्यो भक्तिनम्रात्मकंधराः ॥३६॥
तामूचुः पुरतः स्थित्वा सर्वा एव प्रियां सतीम्। ॥३७॥

## आल्य ऊचुः

वयं तं दर्शयिष्यामो विरजासहितं विभुम्।
तासां च वचनं श्रुत्वा रथमारुह्य सुन्दरी। जगाम सार्धं गोपीभिस्त्रिषष्टिशतकोटिभिः ॥३८॥
रत्नेन्द्रसाररचितं कोटिसूर्यसमप्रभम्। मणीन्द्रसाररचितं कलशानां त्रिकोटिभिः ॥३९॥
राजितं चित्रराजीभिर्वैजयन्तीविराजितम्। लक्षचक्रसमायुक्तं मनोयायि मनोहरम् ॥४०॥
मणिसारविकारैश्च कोटिस्तम्भैः सुशोभितम्। नानाचित्रविचित्रैश्च सहितैः सुमनोहरैः ॥४१॥
सिन्दूराकारमणिभिर्मध्यदेशे विभूषितैः। रत्नकृत्रिमसिंहैश्च रथचक्रोर्ध्वसंस्थितैः ॥४२॥
चतुर्लक्षपरिमितैश्चित्रघण्टासमन्वितैः। चित्रपुत्तलिशोभाढ्यैर्विचित्रैश्च विराजितम् ॥४३॥
रतिमन्दिरलक्षैश्च रत्नसारविनिर्मितैः। मणिसारकपाटैश्च शोभितैश्चित्रवाजिभिः ॥४४॥
मणीन्द्रसारकलशैः शेखरोज्ज्वलितैर्युतम्। भोगद्रव्यसमायुक्तं वेषद्रव्यसमन्वितम् ॥४५॥
शोभितं रत्नशय्याभी रत्नपात्रघटान्वितम्। हरिन्मणीनां वेदीनां समूहेन समन्वितम् ॥४६॥
कुङ्कुमाभमणीनां च सोपानकोटिभिर्युतम्। स्यमन्तकैः कौस्तुभैश्च रुचकैः प्रवरैस्तथा ॥४७॥

---

राधिका की ऐसी बातें सुनकर कुछ गोपियाँ बहुत भयभीत हुई। अनन्तर सभी ने हाथ जोड़े, भक्ति में कन्धे झुकाये, सामने खड़ी होकर उन सती एवं प्रिय राधिका से कहा--॥३६-३७॥

**सखियाँ बोलीं**--विरजा समेत भगवान् को हम सब अवश्य दिखा देंगी। उनकी बातें सुनकर सुन्दरी राधा ने तिरसठ अरब सखियों समेत रथ पर बैठकर वहाँ प्रस्थान किया ॥३८॥ वह रथ रत्नों के उत्तम भाग से रचित, करोड़ों सूर्य के समान प्रभापूर्ण, मणियों के उत्तम भाग से निर्मित, तीन करोड़ कलशों से सुशोभित, चित्रों की पंक्तियों तथा पताकाओं से विभूषित, एक लाख चक्के से युक्त, मन की भाँति वेगगामी, मनोहर, मणियों के सारभाग से बने करोड़ों स्तम्भों से सुशोभित, अनेक भाँति की चित्र-विचित्र कलाओं से पूर्ण, अति मनोहर, मध्य भाग से सिन्दूर जैसे आकारवाली मणियों से शोभित, रथ के चक्के के ऊपर रत्नों के कृत्रिम सिंहों से विराजित, चित्रघंटा समेत चार लाख सुन्दर चित्र-विचित्र तस्वीरों और पुतलियों से सुशोभित, चित्र के सुन्दर घोड़ों तथा मणियों के सार भाग के बने कपाटोंवाले रत्न-निर्मित लाखों रति-मन्दिरों से युक्त, उज्ज्वल शिखर-वाले कलशों से युक्त तथा उपभोग की वस्तुओं वेश रचना की वस्तुओं, रत्नों की शय्याओं, रत्नों के पात्रों एवं घड़ों तथा पन्नों की बनी चौकियों के समूहों से युक्त था ॥३९-४६॥ कुंकुम के समान कान्तिपूर्ण मणियों के करोड़ों सोपान (सीढ़ियों) से, स्यमंतक, कौस्तुभ आदि मणियों और करोड़ों कृत्रिम कमलों से सुशोभित,

पद्मकृत्रिमकोटीनां शतकैश्च सुशोभितम् । चित्रकाननवापीभिर्विशिष्टाभिर्विराजितम् ।।४८।।
रत्नेन्द्रसाररचितकलशोज्ज्वलशेखरम् । शतयोजनमूर्ध्वं च दशयोजनविस्तृतम् ।।४९।।
पारिजातप्रसूनानां मालाकोटिविराजितम् । कुन्दानां करवीराणां यूथिकानां तथैव च ।।५०।।
सुचारुचम्पकानां च नागेशानां मनोहरैः । मल्लिकानां मालतीनां माधवीनां सुगन्धिनाम् ।।५१।।
कदम्बानां च मालानां कदम्बैश्च विराजितम् । सहस्रदलपद्मानां मालाभिश्च विराजितम् ।।५२।।
चित्रपुष्पोद्यानसरःकाननैश्च विभूषितम् । सर्वेषां स्यन्दनानां च श्रेष्ठं वायुवहं परम् ।।५३।।
तत्सूक्ष्मवस्त्रसाराणां वरराच्छादितं परम् । रत्नदर्पणलक्षाणां शतकैश्च समन्वितम् ।।५४।।
श्वेतचामरकोटीभिर्वज्रमुष्टिभिरन्वितम् । चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवचर्चितैः ।।५५।।
पारिजातप्रसूनानां कोटितल्पविराजितम् । कोटिघण्टासमायुक्तं पताकाकोटिभिर्युतम् ।।५६।।
रत्नशय्याकोटिभिश्च चित्रवज्रपरिच्छदैः । चन्दनाक्तैश्चम्पकानां कुङ्कुमैश्च विचित्रितैः ।।५७।।
पुष्पोपधानसंयुक्तैः शृङ्गाराहैभिरन्वितम् । अदृश्यैरश्रुतैर्द्रव्यैः सुन्दरैश्च विभूषितम् ।।५८।।
एवंभूताद्रथात्तूर्णमवरुह्य हरिप्रिया । जगाम सहसा देवी तं रत्नमण्डपं मने ।।५९।।
द्वारे नियुक्तं ददृशे द्वारपालं मनोहरम् । लक्षगोपैः परिवृतं स्मेराननसरोरुहम् ।।६०।।
गोपं श्रीदामनामानं श्रीकृष्णप्रियकिंकरम् । तमुवाच रुषा देवी रक्तपङ्कजलोचना ।।६१।।
गच्छ दूरं गच्छ दूरं रतिलम्पटकिंकर । कीदृशीं मत्परां कान्तां द्रक्ष्यामि त्वत्प्रभोरहम् ।।६२।।

---

चित्र-विचित्र एवं विशिष्ट वनों एवं बावलियों से युक्त तथा रत्नों के सारभाग के बने कलशों के उज्ज्वल शिखरभाग से समन्वित था। वह सौ योजन ऊँचा और दस योजन विस्तृत था ।।४७-४९।। पारिजात पुष्पों की करोड़ों मालाओं तथा कुंद, करवीर (कनेर), जूही, सुन्दर चम्पा, मनोहर नागकेशर, मल्लिका, मालती, सुगन्धित माधवी और कदम्ब की मालाओं से सुशोभित, सहस्र दलवाले कमलों की मालाओं, चित्र पुष्पोद्यानों, तालाबों एवं वनों से विभूषित और सभी रथों से श्रेष्ठ एवं वायु की भाँति अति वेग से चलनेवाला था ।।५०-५३।। वह अतिसूक्ष्म उत्तम वस्त्रों से आच्छादित, सौ लाख रत्नों के दर्पणों से युक्त, एक करोड़ वज्र मणिनिर्मित मूँठवाले श्वेत चामरों से युक्त, चन्दन, अगर, कस्तूरी एवं कुंकुम आदि के लेपों से चर्चित, पारिजात पुष्पों की करोड़ों शय्याओं, करोड़ों घंटाओं, करोड़ों पताकाओं से सुसज्जित, रत्नों की करोड़ों शय्याओं, चित्र वज्रमणि की झालरों, चन्दनलिप्त चम्पकों, विचित्र कुंकुमों, पुष्पों के उपधानों (तकियों-मसनदों), शृंगार की वस्तुओं, अदृश्यों (जो कभी देखे न गये हों) एवं अश्रुतों (जो कहे-सुने न गये हों ऐसे) सुन्दर पदार्थों से सुभूषित था ।।५४-५८।। हे मुने ! इस प्रकार के रथ से शीघ्र उतरकर भगवान् की प्रिया राधा उस रत्न-मण्डप में सहसा पहुँच गयीं ।।५९।। वहाँ दरवाजे पर एक सुन्दर द्वारपाल को देखा, जो एक लाख गोपों से घिरा हुआ तथा मुस्कराते हुए मुखारविन्द से युक्त था ।।६०।। श्रीकृष्ण के प्रिय किंकर श्रीदामा नामक गोप को देखकर राधा देवी ने रक्तकमल के समान नेत्र किये क्रुद्ध भाव से उससे कहा—'हे रति-लम्पट के किंकर ! शीघ्र दूर हटो, मैं तुम्हारे प्रभु की श्रेष्ठ प्रिया को, जो मुझसे भी बढ़कर है, देखूँगी कि वह कैसी है। ।।६१-६२।। राधिका की बातें सुनकर हाथ में बेंत लिये उस महाबली ने उन्हें भीतर नहीं जाने दिया। वह

राधिकावचनं श्रुत्वा निःशङ्कः पुरतः स्थितः । तामेव न ददौ गन्तुं वेत्रपाणिर्महाबलः ॥६३॥
तूर्णं च राधिकाल्यश्च श्रीदामानं सकिंकरम् । बलेन प्रेरयामासुः कोपेन स्फुरिताधराः ॥६४॥
श्रुत्वा कोलाहलं शब्दं गोपिकानां हरिः स्वयम् । ज्ञात्वा च कोपितां राधामन्तर्धानं चकार ह ॥६५॥
विरजा राधिकाशब्दादन्तर्धानं हरेरपि । दृष्ट्वा राधां भयार्ता सा जहौ प्राणांश्च योगतः ॥६६॥
सद्यस्तत्र सरिद्रूपं तच्छरीरं बभूव ह । व्याप्तं च वर्तुलाकारं तया गोलोकमेव च ॥६७॥
कोटियोजनविस्तीर्णं प्रस्थेऽतिनिम्नमेव च । दैर्घ्ये दशगुणं चारु नानारत्नाकरं परम् ॥६८॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० विरजानदप्रस्ताववर्णनं
नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

# अथ तृतीयोऽध्यायः

## नारायण उवाच

राधा रतिगृहं गत्वा न ददर्श हरिं मुने । विरजां च सरिद्रूपां दृष्ट्वा गेहं जगाम सा ॥१॥
श्रीकृष्णो विरजां दृष्ट्वा सरिद्रूपां प्रियां सतीम् । उच्चै रुरोद विरजातीरे नीरमनोहरे ॥२॥

---

आकर उनके सामने निःशंक खड़ा हो गया ॥६३॥ अनन्तर राधिका की सहेलियों ने शीघ्रता से किंकर समेत श्रीदामा को बलपूर्वक हटा दिया । उस समय गोपियों के अधरोष्ठ कोप से फड़फड़ा रहे थे ॥६४॥ गोपियों के इस कोलाहल को सुनकर भगवान् स्वयं राधा को क्रुद्ध जानकर अन्तर्हित हो गये, और विरजा भी राधा के (रोषपूर्ण) शब्दों द्वारा भगवान् को अन्तर्हित देखकर इतना भयभीत हुई कि योग द्वारा उसने अपने प्राण ही छोड़ दिये ॥६५-६६॥ अनन्तर उसकी देह तुरन्त नदी रूप हो गयी, जिसने वर्तुला (गोला)-कार होकर गोलोक को व्याप्त कर लिया तथा जो करोड़ योजन चौड़ी, समतल में बहुत गहरी, चौड़ाई से दसगुनी लम्बी, विविध रत्नों की खान तथा सुन्दर है ॥६७-६८॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में विरजा का
नद-प्रस्ताव-वर्णन नामक दूसरा अध्याय समाप्त ॥२॥

# अध्याय ३

## राधा और श्रीदामा का परस्पर शाप

**नारायण बोले**—हे मुने ! राधा ने रति-गृह में जाकर भगवान् को नहीं देखा और विरजा का नदी रूप देखकर अपने भवन लौट गयीं ॥१॥ अनन्तर श्रीकृष्ण ने अपनी प्रेयसी विरजा को नदी रूप में देखकर

ममान्तिकं समागच्छ प्रेयसीनां परे वरे। त्वया विनाऽहं सुभगे कथं जीवामि सुन्दरि ।।३।।
नद्यधिष्ठात्रि देवि त्वं भव मूर्तिमती सती। ममाऽऽशिषा रूपवती सुन्दरी योषितां वरा ।।४।।
पूर्वरूपाच्च सौभाग्यादिदानीं सुभगा भव। पुरातनं शरीरं ते सरिद्रूपमभूत्सति ।।५।।
जलादुत्थाय चाऽऽगच्छ विधाय तनुमुत्तमाम्। अष्टौ सिद्धीर्मया दत्ताः सुरसुन्दरि सत्वरम् ।।६।।
कृष्णाज्ञया च विरजा विधाय तनुमुत्तमाम्। आजगाम हरेरग्रे साक्षाद्राधेव सुन्दरी ।।७।।
पीतवस्त्रपरीधाना स्मेराननसरोरुहा। पश्यन्तं प्राणनाथं च पश्यन्ती वक्रचक्षुषा ।।८।।
नितम्बश्रोणिभारार्ता पीतोन्नतपयोधरा। मानिनी मानिनीनां च गजेन्द्रमन्दगामिनी ।।९।।
सुन्दरी सुन्दरीणां च धन्या मान्या च योषिताम्। चारुचम्पकवर्णाभा पक्वबिम्बाधरा वरा ।।१०।।
पक्वदाडिमबीजाभदन्तपङ्क्तिमनोहरा। शरत्पार्वणचन्द्रास्या फुल्लेन्दीवरलोचना ।।११।।
कस्तूरीबिन्दुना सार्धं सिन्दूरबिन्दुभूषिता। चारुपत्रकशोभाढ्या सुचारुकबरीयुता ।।१२।।
रत्नकुण्डलगण्डस्था भूषिता रत्नमालया। गजमौक्तिकनासाग्रा मुक्ताहारविराजिता ।।१३।।
रत्नकंकणकेयूरचारुशङ्खकरोज्ज्वला। किंकिणीजालशब्दाढ्या रत्नमञ्जीररञ्जिता ।।१४।।
तां च रूपवतीं दृष्ट्वा प्रेमोद्रेकाज्जगत्पतिः। चकाराऽऽलिङ्गनं तूर्णं चुचुम्ब च मुहुर्मुहुः ।।१५।।

---

उसके जल से मनोहर तट पर उच्च स्वर से रोदन करना आरम्भ किया, कहा—'प्रेयसियों में अतिश्रेष्ठे ! तुम शीघ्र मेरे पास आ जाओ, हे सुभगे, हे सुन्दरि ! तुम्हारे विना मैं जीवित कैसे रहूँगा ? ।।२-३।। तुम नदियां की मूर्तिमती अधिष्ठात्री हो जाओ। मेरे आशीर्वाद से परम सुन्दरी स्त्री हो जाओ। सौभाग्यवश तुम अपने पहले के रूप से अधिक मनोहर बनो, तुम्हारा पुराना शरीर नदी बन गया है। अतः अब उत्तम शरीर धारण कर जल से निकलकर शीघ्र आओ। हे सुरसुन्दरि ! इसीलिए मैंने तुम्हें आठों सिद्धियां प्रदान की हैं ।।४-६।। अनन्तर श्रीकृष्ण की आज्ञा से विरजा साक्षात् राधा के समान सुन्दरी बनकर उनके सामने आकर खड़ी हो गयी ।।७।। पीताम्बर पहने, मुसकराते हुए मुखकमलवाली वह ताकते हुए प्राणनाथ को कटाक्षों से देखने लगी ।।८।। वह नितम्ब और श्रोणी के भार से दबी हुई, मोटे और उन्नत स्तनोंवाली, मानिनी स्त्रियों में प्रमुख मानिनी, गजराज की भाँति मन्द-मन्द चलनेवाली, सुन्दरियों में सुन्दरी और स्त्रियों में धन्या-मान्या थी। चारु चम्पा के समान उसका रूप-रंग, पके बिम्बा के समान अधर, पके अनार के समान दाँतों की मनोहर पंक्तियाँ, शारदीय पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान मुख और खिले कमल की भाँति आँखें थीं। कस्तूरी की बिन्दी के साथ सिन्दूर बिन्दी से भूषित, चारु पत्र ( कामकला ) से अलंकृत, अति मनोहर केशपाश से युक्त, रत्नों के कुण्डलों से भूषित कपोलवाली, रत्नों की माला, नासिका के अग्र भाग में गजमुक्ता तथा कण्ठ में मोती के हार से भूषित, रत्नों के कंकण, केयूर और शंखाभूषण से उज्ज्वल हाथवाली तथा किंकणी के समूहों के शब्दों और रत्नों के नूपुरों की ध्वनि से सुशोभित थी ।।९-१४।। उस सुन्दरी को देखकर प्रेमातिरेक होने से जगत्पति भगवान् ने सहसा उसका आलिंगन और बार-बार चुम्बन किया ।।१५।। प्रभु ने एकान्त में उस प्रेयसी को

नानाप्रकारशृङ्गारं विपरीतादिकं विभुः। रहसि प्रेयसीं प्राप्य चकार च पुनः पुनः ॥१६॥
विरजा सा रजोयुक्ता धृत्वा वीर्यममोघकम्। सद्यो बभूव तत्रैव धन्या गर्भवती सती ॥१७॥
दधार गर्भमीशस्य दिव्यं वर्षशतं च सा। ततः सुषाव तत्रैव पुत्रान्सप्त मनोहरान् ॥१८॥
माता सा सप्तपुत्राणां श्रीकृष्णस्य प्रिया सती। तस्थौ तत्र सुखासीना सार्धं पुत्रैश्च सप्तभिः ॥१९॥
एकदा हरिणा सार्धं वृन्दारण्ये च निर्जने। विजहार पुनः साध्वी शृङ्गारासक्तमानसा ॥२०॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र मातुः क्रोडं जगाम ह। कनिष्ठपुत्रस्तस्याश्च भ्रातृभिः पीडितो भिया ॥२१॥
भीतं स्वतनयं दृष्ट्वा तत्याज तां कृपानिधिः। क्रोडे चकार बालं सा कृष्णो राधागृहं ययौ ॥२२॥
प्रबोध्य बालं सा साध्वी न ददर्शान्तिके प्रियम्। विललाप भृशं तत्र शृङ्गारातृप्तमानसा ॥२३॥
शशाप स्वसुतं कोपाल्लवणोदो भविष्यसि। कदाऽपि ते जलं केचिन्न खादिष्यन्ति जीविनः ॥२४॥
शशाप बालान्सर्वांश्च यान्तु मूढा महीतलम्। गच्छध्वं च महीं मूढ जम्बुद्वीपं मनोहरम् ॥२५॥
स्थितिर्नैकत्र युष्माकं भविष्यति पृथक्पृथक्। द्वीपे द्वीपे स्थितिं कृत्वा तिष्ठन्तु सुखिनः सदा ॥२६॥
द्वीपस्थाभिर्नदीभिश्च सह क्रीडन्तु निर्जने। कनिष्ठो मातृशापाच्च लवणोदो बभूव ह ॥२७॥
कनिष्ठः कथयामास मातृशापं च बालकान्। आजग्मुर्दुःखिताः सर्वे मातृस्थानं च बालकाः ॥२८॥

---

पाकर विपरीत आदि अनेक प्रकार की रति बार-बार उसके साथ की ॥१६॥ अनन्तर उनका अमोघ वीर्य धारण करने से सती विरजा उसी क्षण गर्भवती हो गयी ॥१७॥ ईश्वर का अमोघ वीर्य उसने दिव्य सौ वर्ष तक धारण किया और पश्चात् अति मनोहर सात पुत्रों को जन्म दिया ॥१८॥ भगवान् श्रीकृष्ण की वह प्रेयसी पत्नी, जो सात पुत्रों की माता हुई, अपने सातों पुत्रों समेत सुखपूर्वक वहाँ रहने लगी ॥१९॥ शृंगार में आसक्त रहने के नाते एक बार भगवान् के साथ निर्जन वृन्दावन में घूमती हुई वह पुनः उनके साथ विहार करने लगी ॥२०॥ उसी बीच कनिष्ठ (छोटा) पुत्र भ्राताओं द्वारा पीड़ित एवं भयभीत होकर माता के पास आया और गोद में बैठ गया ॥२१॥ कृपानिधान भगवान् ने अपने पुत्र को भीत देखकर विरजा का त्याग कर दिया। उसने अपने बालक को गोद में उठाया कि कृष्ण राधा के घर चले गये। बालक को समझा-बुझाकर शांत करने के उपरान्त वह अपने प्राणेश्वर भगवान् को अपने समीप न देखकर शृंगारोपभोग से अतृप्त मन रहने के कारण अत्यन्त विलाप करने लगी ॥२२-२३॥ तब अपने उस छोटे पुत्र को उसने शाप दिया कि—"तुम लवण-सागर (खारा समुद्र) हो जाओ, जिससे कोई भी जीव तुम्हारा जल पान नहीं करेगा ॥२४॥ फिर अन्य पुत्रों को भी शाप दिया कि—मूढ़! तुम लोग भूतल पर चले जाओ। मनोहर जम्बूद्वीप में पहुँचने पर तुम मूर्खों की स्थिति एकत्र न रह जायगी। पृथक्-पृथक् द्वीपों में अपनी स्थिति करके तुम लोग वहाँ सदा सुखपूर्वक निवास करोगे और निर्जन स्थान में रहते हुए, द्वीप की नदियों के साथ क्रीड़ा करोगे।" इस प्रकार वह कनिष्ठ (छोटा) पुत्र माता के शाप से लवण-सागर हो गया ॥२५-२७॥ अनन्तर उस कनिष्ठ पुत्र ने सभी बालकों को माता का शाप कह सुनाया, जिससे दुःखी होकर सभी बालक माता के पास आये और वहाँ अपने सम्बन्ध की

श्रुत्वा विवरणं सर्वे प्रजग्मुर्धरणीतलम् । प्रणम्य चरणं मातुर्भक्तिनम्रात्ममूर्तयः ॥२९॥
सप्तद्वीपसमुद्राश्च सप्त तस्थुर्विभागशः । कनिष्ठाद्वृद्धपर्यन्तं द्विगुणं द्विगुणं मुने ॥३०॥
लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलार्णवाः । एतेषां च जलं पृथ्व्यां सस्यार्थं च भविष्यति ॥३१॥
व्याप्ताः समुद्राः सप्तैव सप्तद्वीपां वसुन्धराम् । रुरुदुर्बालकाः सर्वे मातृभ्रातृशुचाऽन्विताः ॥३२॥
रुरोद च भृशं साध्वी पुत्रविच्छेदकातरा । मूर्च्छामवाप शोकेन पुत्राणां भर्तुरेव च ॥३३॥
तां शोकसागरे मग्नां विज्ञाय राधिकापतिः । आजगाम पुनस्तस्याः स्मेराननसरोरुहः ॥३४॥
दृष्ट्वा हरिं सा तत्याज शोकं रोदनमेव च । आनन्दसागरे मग्ना दृष्ट्वा कान्तं बभूव ह ॥३५॥
चकार श्रीहरिं क्रोडे विजहार स्मरातुरा । तां च पुत्रपरित्यक्तां हरिस्तुष्टो बभूव ह ॥३६॥
वरं तस्यै ददौ प्रीत्या प्रसन्नवदनेक्षणः । कान्ते नित्यं तव स्थानमागमिष्यामि निश्चितम् ॥३७॥
यथा राधा तत्समा त्वं भविष्यसि प्रिया मम । पुत्रान्द्रक्ष्यसि नित्यं त्वं मद्वरस्य प्रसादतः ॥३८॥
इत्युक्तवन्तं श्रीकृष्णं वसन्तं विरजान्तिके । दृष्ट्वा राधावयस्याश्च कथयामासुरीश्वरीम् ॥३९॥
श्रुत्वा रुरोष सा देवी सुष्वाप क्रोधमन्दिरे । एतस्मिन्नन्तरे कृष्णो जगाम राधिकान्तिकम् ॥४०॥
स तस्थौ राधिकाद्वारे श्रीदाम्ना सह नारद । रासेश्वरी हरिं दृष्ट्वा रुष्टोवाच[1] प्रियं पुरः ॥४१॥

---

विशेष बातें सुनने पर भक्तिपूर्वक सिर झुकाये माता की चरण-वन्दना करते हुए उन लोगों ने भूतल के लिए प्रस्थान किया ॥२८-२९॥ हे मुने ! इस प्रकार वे विभागपूर्वक.सात द्वीपों में, सात समुद्र होकर स्थित हुए और कनिष्ठ से ज्येष्ठ तक के एक-दूसरे का क्षेत्रफल क्रमशः दुगुना-दुगुना हो गया । वे लवण (खारा), इक्षु (ऊख), सुरा (मद्य), सर्पि (घृत), दही, दूध और जल नामक समुद्र हुए । पृथिवी पर इनका जल खेतों के लिए विशेष हितकर होगा ॥३०-३१॥ उन सातों समुद्रों ने सातों द्वीपवाली पृथिवी को व्याप्त कर लिया । (अनन्तर चलते समय) सबने माता और भ्राताओं के शोक से दुःखी होकर रोदन किया । और वह पतिव्रता तो पुत्रों तथा पति के वियोग-दुःख से अधीर होकर रोदन करते-करते मूर्च्छित हो गयी ॥३२-३३॥ उसे शोक-सागर में निमग्न जानकर राधिका-पति भगवान् श्रीकृष्ण पुनः उसके पास आये, जिनका मुखारविन्द मन्द हास कर रहा था ॥३४॥ अपने कान्त भगवान् को देखते ही उसने शोक और रोदन दोनों का त्याग कर दिया, आनन्द-सागर में वह मग्न हो गयी । कामपीड़ित होने के नाते उसने भगवान् को अपने अंक में कस लिया और उस समय उस पुत्र-परित्यक्ता के ऊपर भगवान् भी प्रसन्न हो रहे थे ॥३५-३६॥ अनन्तर अपने मुख और नेत्र से प्रसन्नता प्रकट करते हुए भगवान् ने उससे प्रीतिपूर्वक कहा––'कान्ते ! मैं नित्य तुम्हारे स्थान पर निश्चित रूप से आऊँगा । राधा के समान ही तुम मेरी प्रिया होगी और मेरे वरदान के प्रभाव से तुम नित्य अपने पुत्रों को देखोगी ॥३७-३८॥ विरजा के पास रहकर भगवान् श्रीकृष्ण इस प्रकार कह ही रहे थे कि––राधा की सखियों ने पुनः जाकर ईश्वरी राधा से कह दिया, जिसे सुनकर राधा देवी क्रुद्ध होकर कोपभवन में चली गयीं । इसी बीच भगवान् श्रीकृष्ण राधा के पास आये ॥३९-४०॥ हे नारद ! श्रीदामा के साथ भगवान् राधिका के दरवाजे पर खड़े हुए कि रासेश्वरी राधा ने उन्हें सामने देखकर रुष्ट होकर कहना आरम्भ किया –'हे हरे ! गोलोक में हमारे समान तुम्हारी अनेक

---

[1] क. वाचाप्रियं पु० ।

मत्तो बहुतराः कान्ता गोलोके सन्ति ते हरे। याहि तासां संनिधानं मया ते किं प्रयोजनम् ॥४२॥
विरजा प्रेयसी कान्ता सरिद्रूपा बभूव ह। देहं त्यक्त्वा मम भयात्तथाऽपि याहि तां प्रति ॥४३॥
तत्तीरे मन्दिरं कृत्वा तिष्ठ तिष्ठ च याहि ताम्। नदी बभूव सा त्वं च नदो भवितुमर्हसि ॥४४॥
नदस्य नद्या सार्धं च सङ्गमो गुणवान्भवेत्। स्वजातौ परमा प्रीतिः शयने भोजने सुखात् ॥४५॥
देवचूडामणेः क्रीडा नद्या सार्धमहो बत। महाजनः स्मेरमुखः श्रुत्वा सद्यो भविष्यति ॥४६॥
ये त्वां वदन्ति सर्वेशं ते किं जानन्ति तत्त्वतः। भगवान्सर्वभूतात्मा नदीं संभोक्तुमिच्छति ॥४७॥
इत्युक्त्वा राधिका देवी विरराम रुषाऽन्विता। नोत्तस्थौ भूमिशयनाद्गोपीलक्षसमन्विता ॥४८॥
काश्चिच्चामरहस्ताश्च काश्चित्सूक्ष्मांशुकाम्बराः। काश्चित्ताम्बूलहस्ताश्च काश्चिन्मालाकरा वराः ॥४९॥
वासितोदकराः काश्चित्काश्चित्पद्मकरावराः। काश्चित्सिन्दूरहस्ताश्च पानहस्ताश्च काश्चन ॥५०॥
रत्नालंकारहस्ताश्च काश्चित्कज्जलवाहिकाः। वेणुवीणाकराःकाश्चित्काश्चित्कङ्कतिकाकराः ॥५१॥
काश्चिदावीरहस्ताश्च यन्त्रहस्ताश्च काश्चन। सुगन्धितैलहस्ताश्च काश्चन प्रमदोत्तमाः ॥५२॥
करतालकराः काश्चिद्गेन्दुहस्ताश्च काश्चन। काश्चिन्मृदङ्गमुरजमुरलीतानकारिकाः ॥५३॥

---

कान्ताएँ हैं, उन्हीं के पास जाओ, मुझसे तुम्हारा क्या प्रयोजन है? ॥४१-४२॥ तुम्हारी विरजा प्रेयसी, जो मेरे भय के कारण देह छोड़कर नदी रूप हो गयी है, तुम्हें अति प्यारी है, क्योंकि तुम अब भी उसके पास जाते हो। अच्छा होता कि तुम उसी के किनारे मन्दिर (घर) बना लो और सब समय वहीं रहो या वह नदी हो गयी है, तो तुम नद हो जाओ, क्योंकि नदी-नद का समागम हितकर होगा। और शयन-भोजन में सुख के होने से अपनी जाति में परम प्रीति होती है। ॥४३-४५॥ अहो! एक नदी के साथ देव-शिरोमणि (आप) रति-क्रीड़ा कर रहे हैं, इसे सुनते ही भले लोग मुसकराने लग जायेंगे ॥४६॥ क्या जो तुम्हें सर्वाधीश्वर कहते हैं वे तुम्हें ठीक-ठीक जानते हैं कि—सब जीवों का आत्मा होकर भी भगवान् नदी के साथ सम्भोग करना चाहते हैं ॥४७॥ इतना कहकर राधिका देवी चुप हो गयीं और रुष्ट होने के नाते भूमि पर पड़ी ही रह गयीं उठीं नहीं। वहाँ उनकी एक लाख गोपियाँ परिचारिका के रूप में थीं—कोई चामर डुला रही थीं, कोई हाथ में अति सूक्ष्म साड़ी लिये खड़ी थीं, कोई हाथ में ताम्बूल, कोई उत्तम माला, कोई सुवासित जल, कोई हाथ में कमल, कोई हाथ में सिन्दूर, कोई हाथ में पेय पदार्थ, कोई हाथ में रत्नों के अलंकार, कोई आँखों के काजल (सुरमा) आदि, कोई हाथ में बाँसुरी और वीणा तथा कोई हाथ में कंघी लिये थीं ॥ ४८-५१॥ कोई हाथ में अबीर, कोई यंत्र और अन्य अनेक उत्तम प्रमदाएँ हाथ में सुगन्धित तेल लिये थीं। तभी कोई हाथ में करताल तो कोई गेंद लिये थीं। कोई मृदंग, ढोल और मुरली की तान करनेवाली थीं। उनमें कोई संगीत में निपुण, कोई नृत्य करनेवाली और कोई क्रीड़ा-

संगीतनिपुणाः काश्चित्काश्चिन्नर्तनतत्पराः। क्रीडावस्तुकराः काश्चिन्मधुहस्ताश्च काश्चन ॥५४॥
सुधापात्रकराः काश्चिदङ्घ्रिपीठकराः पराः। वेषवस्तुकराः काश्चित्काश्चिच्चरणसेविकाः ॥५५॥
पुटाञ्जलिकराः काश्चित्काश्चित्स्तुतिपरा वराः। एवं कतिविधाः सन्ति राधिकापुरतो मुने ॥५६॥
बहिर्देशस्थिताः काश्चित्कोटिशः कोटिशः सदा। काश्चिद्द्वारनियुक्ताश्च वयस्या वेत्रधारिकाः ॥५७॥
कृष्णमभ्यन्तरं गन्तुं न ददुर्द्वारसंस्थिताः। पुरःस्थितं तं प्राणेशं राधा पुनरुवाच सा ॥
नानुरूपमत्यकथ्यमयोग्यमतिकर्कशम् ॥५८॥

## राधिकोवाच

हे कृष्ण विरजाकान्त गच्छ मत्पुरतो हरे। कथं दुनोषि मां लोल रतिचौरातिलम्पट ॥५९॥
शीघ्रं पद्मावतीं गच्छ रत्नमालां मनोरमाम्। अथवा वनमालां वा रूपेणाप्रतिमां व्रज ॥६०॥
हे नदीकान्त देवेश देवानां च गुरोर्गुरो। मया ज्ञातोऽसि भद्रं ते गच्छ गच्छ ममाऽऽश्रमात् ॥६१॥
शश्वत्ते मानुषाणां च व्यवहारस्य लम्पट। लभतां मानुषीं योनिं गोलोकाद्व्रज भारतम् ॥६२॥
हे सुशीले शशिकले हे पद्मावति माधवि। निवार्यतां च धूर्तोऽयं किमस्यात्र प्रयोजनम् ॥६३॥
राधिकावचनं श्रुत्वा तमूचुर्गोपिका हरिम्। हितं तथ्यं च विनयं सारं यत्समयोचितम् ॥६४॥

---

वस्तु (खेल के सामानों) को हाथ में लिये थीं एवं कोई हाथ में मधु, कोई सुधा पात्र, कोई चरण-पीठिका और कोई वेश बनाने की वस्तु लिये थीं, कोई चरण की सेवा कर रही थीं ॥५२-५५॥ कोई हाथ जोड़े खड़ी थीं, कोई सुन्दर स्तुति कर रही थीं। हे मुने! इस प्रकार राधा के सामने कितने प्रकार की दासियाँ उपस्थित थीं ॥५६॥ करोड़ों दासियाँ तो बाहर द्वार पर खड़ी थीं और कुछ हाथ में बेंत लिये, जो उन्हीं की आयु की थीं, द्वारपाल के रूप में नियुक्त थीं ॥५७॥ उन द्वारपालिकाओं ने कृष्ण को भीतर जाने से रोक दिया। फिर प्राणेश कृष्ण को सामने खड़ा देखकर राधा ने पुनः कहना आरम्भ किया, जो उनके अननुरूप, अति अकथनीय, अयोग्य और अति कटु था ॥५८॥

**राधिका बोलीं**—हे कृष्ण! हे विरजाकान्त! मेरे सामने से चले जाओ। हे हरे! हे चंचल! हे रति-चोर! हे अतिलम्पट! मुझे क्यों दुःख देते हो? शीघ्र पद्मावती के यहाँ या मनोरमा रत्नमाला के यहाँ जाओ, अथवा अनुपम रूपवती वनमाला के पास चले जाओ ॥५९-६०॥ हे नदी के कान्त! हे देवाधीश्वर! हे देवों के गुरु के गुरु! मैंने तुम्हें भलीभाँति जान लिया है, अतः तुम्हारा कल्याण इसी में है कि—मेरे यहाँ से शीघ्र चले जाओ ॥६१॥ क्योंकि हे लम्पट! मनुष्यों की भाँति ही तुम्हारा सदैव का व्यवहार रहा है। इसलिए तुम यहाँ गोलोक से जाकर भारत में मनुष्य-योनि में रहो ॥६२॥ हे सुशीले! हे शशिकले! हे पद्मावति! हे माधवि! इस धूर्त को यहाँ से दूर हटाओ, इसका यहाँ क्या प्रयोजन है? ॥६३॥ राधिका की ऐसी बातें सुनकर उन गोपी दासियों ने भगवान् से कहा—जो हितकर, सत्य, विनयपूर्ण, सार और समयानुकूल था। किसी ने कहा—हे हरे! कुछ समय के

काश्चिदूचुरिति हरे गच्छ स्थानान्तरं क्षणम्। राधाकोपापनयने ह्यागमिष्यामहे वयम् ॥६५॥
काश्चिदूचुरिति प्रीत्या क्षणं गच्छ गृहान्तरम्। त्वयैव वर्धिता राधा त्वां विना कं च वक्ष्यति ॥६६॥
काश्चिदूचुरिति प्रेम्णा राधिकायां हरिं मुने। क्षणं वृन्दावनं गच्छ मानापनयनावधि ॥६७॥
काश्चिदित्यूचुरीशं च परिहासपरं वचः। मानापनयनं भक्त्या मानिन्याः कुरु कामुक ॥६८॥
काश्चनोचुरितीशं तं याहि जायान्तरं तव। लोलुपस्य कथं नाथ करिष्यामो यथोचितम् ॥६९॥
काश्चनोचुरिति हरिं सस्मितं पुरतः स्थितम्। गत्वा समीपमुत्थाय मानापनयनं कुरु ॥७०॥
काश्चनोचुरिति प्राणनाथं गोप्यो दुरक्षरम्। कः क्षमः सांप्रतं द्रष्टुं राधिकामुखपंकजम् ॥७१॥
काश्चनोचुरिति विभुं व्रज स्थानान्तरं हरे। कोपापनयने काले पुनरागमनं तव ॥७२॥
काश्चनोचुरितीदं तं प्रगल्भाः प्रमदोत्तमाः। वयं त्वां वारयिष्यामो न चेद्याहि गृहान्तरम् ॥७३॥
काश्चिन्निवारयामासुर्माधवं प्रमदोत्तमाः। स्मितवक्त्रं च सर्वेशं स्वस्थमक्रोधमीश्वरम् ॥७४॥
गोपीभिर्वार्यमाणे च जगत्कारणकारणे। सद्यश्चुकोप श्रीदामा हरौ गेहान्तरं गते ॥७५॥
कोपादुवाच श्रीदामा राधिकां परमेश्वरीम्। रक्तपद्मेक्षणां रुष्टां रक्तपंकजलोचनाम् ॥७६॥

**श्रीदामोवाच**

कथं वदसि मातस्त्वं कटुवाक्यं मदीश्वरम्। विचारणां विना देवि करोषि भर्त्सनं वृथा ॥७७॥

---

लिए कहीं अन्यत्र चले जाओ; और राधिका का कोप शान्त होने पर हम सब बुलाने आयेंगी ॥६४-६५॥ किसी ने सप्रेम कहा—एक क्षण के लिए किसी दूसरे घर में चले जाओ, क्योंकि तुम्हारे ही द्वारा राधा उन्नत हुई है अतः तुम्हारे बिना वह किससे कहेगी ॥६६॥ हे मुने ! कुछ दासियों ने भगवान् से कहा कि—जब तक राधा का मानापनयन नहीं हो रहा है तब तक के लिए आप वृन्दावन चले जायँ ॥६७॥ और कुछ हास्य (मजाक) करनेवाली गोपियों ने भगवान् से कहा—हे कामुक ! भक्ति (सेवा) पूर्वक मानिनी राधा का मान दूर करो ॥६८॥ किसी ने उनसे कहा—अपनी दूसरी स्त्री के पास चले जाओ। हे नाथ ! लोलुप का यथोचित सत्कार हम कैसे कर सकेंगी ॥६९॥ कुछ ने तो सामने मुस्कराते हुए खड़े भगवान् से कहा कि—उनके पास चले जाओ और उन्हें उठाकर उनका मान दूर कर दो ॥७०॥ और किसी ने तो उन प्राणनाथ से यह कटु अक्षर कहा कि —इस समय राधा का मुखकमल देखने में कौन समर्थ हो सकता है ? ॥७१॥ किसी ने उस प्रभु से कहा—हे हरे ! अभी किसी दूसरे स्थान में चले जाओ, और उनका क्रोध शांत हो जाने पर पुनः आ जाना ॥७२॥ अनन्तर कुछ धृष्ट गोपियों ने भगवान् से ऐसा कहा कि—हम लोग तुम्हें रोक देंगी, नहीं तो दूसरे घर में चले जाओ। कुछ प्रमदाओं ने उन्हें वहाँ से हटा दिया—आगे नहीं जाने दिया, किन्तु सर्वेश्वर भगवान् शान्त, क्रोधरहित एवं मन्द मुसुकान करते हुए वहाँ से हट गये ॥७३-७४॥ गोपियों के रोकने से जगत्-कारणों के कारण भगवान् कृष्ण के दूसरे महल में चले जाने पर श्रीदामा बहुत क्रुद्ध हुआ ॥७५॥ उसने परमेश्वरी राधिका से, जो रुष्ट होने के कारण नेत्रों को रक्तकमल की भाँति लाल किये हुई थीं, क्रुद्ध भाव से कहना आरम्भ किया ॥७६॥

**श्रीदामा बोले**—हे मातः ! मेरे स्वामी को तुम इस प्रकार की कटु वाणी क्यों कह रही हो ? हे देवि ! बिना विचारे तुम उन्हें व्यर्थ ही डाँट-फटकार रही हो ॥७७॥ जो ब्रह्मा अनन्त शिव और देवताओं के प्रभु, संसार के

ब्रह्मानन्तेशदेवेशं[1] जगत्कारणकारणम् । वाणीपद्मालयामायाप्रकृतीशं च निर्गुणम् ।।७८।।
स्वात्मारामं पूर्णकामं करोषि त्वं विडम्बनम् । देवीनां प्रवरा त्वं च निबोध यस्य सेवया ।।७९।।
यस्य पादार्चनेनैव सर्वेषामीश्वरी परा । तत्र जानासि कल्याणि किमहं वक्तुमीश्वरः ।।८०।।
भ्रूभङ्गलीलया कृष्णः स्रष्टुं शक्तश्च त्वद्विधाः । कोटिशः कोटिशो देव्यस्तं न जानासि निर्गुणम् ।।८१।।
वैकुण्ठे श्रीहरेरस्य चरणाम्बुजमार्जनम् । करोति केशैः शश्वच्छ्रीः सेवनं भक्तिपूर्वकम् ।।८२।।
सरस्वती च स्तवनैः कर्णपीयूषसुन्दरैः । सततं स्तौति यं भक्त्या न जानासि तमीश्वरम् ।।८३।।
भीता च प्रकृतिर्माया सर्वेषां बीजरूपिणी । सततं स्तौति यं भक्त्या तं न जानासि मानिनि ।।८४।।
स्तुवन्ति सततं वेदा महिम्नः षोडशीं कलाम् । कदाऽपि न विजानन्ति तं न जानासि भामिनि ।।८५।।
वक्त्रैश्चतुर्भिर्यं ब्रह्मा वेदानां जनको विभुः । स्तौति सेवां च कुरुते चरणाम्बुजमीश्वरि ।।८६।।
शंकरः पञ्चभिर्वक्त्रैः स्तौति यं योगिनां गुरुः । साश्रुपूर्णः संपुलकः सेवते चरणाम्बुजम् ।।८७।।
शेषः सहस्रवदनैः परमात्मानमीश्वरम् । सततं स्तौति यं भक्त्या सेवते चरणाम्बुजम् ।।८८।।
धर्मः पाता च सर्वेषां साक्षी च जगतां पतिः । भक्त्या च चरणाम्भोजं सेवते सततं मुदा ।।८९।।

---

कारणों के कारण, वाणी (सरस्वती), लक्ष्मी, माया और प्रकृति के अधीश्वर, निर्गुण, अपने आत्मा में रमण करनेवाले एवं पूर्णकाम हैं तुम उनकी इतनी विडम्बना (भद्द) क्यों करती हो ? जिसकी सेवा करने से तुम देवियों में श्रेष्ठ हुई हो और जिसकी चरण-सेवा से ही तुम सबकी महान् अधीश्वरी हुई हो, हे कल्याणि ! क्या तुम उसे नहीं जानती हो, क्या मैं उसे कहने में कभी समर्थ हो सकता हूँ ।।७८-८०।। अपनी भौंहों को तिरछी करते ही लीला द्वारा कृष्ण तुम्हारे समान करोड़ों-करोड़ों देवियाँ बनाने में समर्थ हैं, क्या उस निर्गुण को तुम नहीं जानती हो ।।८१।। वैकुण्ठ में इन्हीं भगवान् के चरण-कमल को अपने केशों द्वारा पोंछती हुई लक्ष्मी भक्तिपूर्वक उनकी सेवा नित्य करती हैं ।।८२।। कान को अमृत की भाँति सुन्दर लगनेवाले स्तोत्रों से सरस्वती भक्तिपूर्वक निरन्तर जिनकी स्तुति करती हैं, क्या उस ईश्वर को तुम नहीं जानती हो ? ।।८३।। सबकी बीजरूपा प्रकृति माया भीत रहती हुई भक्तिपूर्वक निरन्तर जिसकी प्रार्थना करती है, हे मानिनि ! क्या उसे तुम नहीं जानती हो ? ।।८४।। वेदगण निरन्तर जिनकी महिमा की सोलहवीं कला की स्तुति करते हैं और कभी भी उसे जान नहीं पाते हैं, हे भामिनि ! क्या उसे तुम नहीं जानती हो ? हे ईश्वरि ! वेदों के जनक विभु ब्रह्मा अपने चारों मुखों द्वारा स्तुति करते हुए जिसके चरण-कमल की सेवा करते हैं, योगियों के गुरु शिव अपने पाँचों मुखों द्वारा जिसकी स्तुति करते हैं तथा सजल नयन और पुलकित होकर जिसके चरण-कमल की सेवा करते हैं, शेष अपने सहस्रों मुखों द्वारा भक्तिपूर्वक जिस परमात्मा ईश्वर की सतत स्तुति करते रहते हैं तथा चरण-कमल की सेवा करते हैं, धर्म सबका रक्षक, साक्षी तथा संसार का स्वामी होकर जिसके चरण-कमल की सेवा सदा भक्तिपूर्वक करता है, श्वेत-द्वीप के निवासी विष्णु जो विभु एवं रक्षक हैं, ये स्वयं जिसके अंश हैं, और जो अनेक परम

---

१ क. ०शधर्मेशं ।

श्वेतद्वीपनिवासी यः पाता विष्णुः स्वयं विभुः। तस्यांशश्च तथा यं यं धार्यतेऽप्यक्षरं परम् ॥९०॥
सुरासुरमुनीन्द्राश्च मनवो मानवा बुधाः। सेवन्ते न हि पश्यन्ति स्वप्नेऽपि चरणाम्बुजम् ॥९१॥
क्षिप्रं रोषं परित्यज्य भज पादाम्बुजं हरेः। भ्रूभङ्गलीलामात्रेण सृष्टिसंहर्तुरेव च ॥९२॥
निमेषमात्रादस्यैव ब्रह्मणः पतनं भवेत्। यस्यैकदिवसेऽप्यष्टाविंशतीन्द्राः पतन्त्यपि ॥९३॥
एवमष्टोत्तरशतमायुर्यस्य जगद्विधेः। त्वं वा काऽन्याश्च वा राधे मदीश्वरवशेऽखिलम् ॥९४॥
श्रीदाम्नो वचनं श्रुत्वा केवलं कटुमुज्ज्वलम्[1]। सद्यश्चुकोप सा ब्रह्मन्नुत्थाय समुवास ह ॥९५॥
रासेश्वरी बहिर्गत्वा तमुवाच ह निष्ठुरम्। स्फुरदोष्ठी मुक्तकेशी रक्ताम्भोरुहलोचना: ॥९६॥

## राधिकोवाच

रे रे जाल्म महामूढ शृणु लम्पटकिंकर। त्वं च जानासि सर्वार्थं न जानामि त्वदीश्वरम् ॥९७॥
त्वदीश्वरश्च श्रीकृष्णो न ह्यस्माकं व्रजाधम। जानामि जनकं स्तौषि सदा निन्दसि मातरम् ॥९८॥
यथाऽसुराश्च त्रिदशा नित्यं निन्दन्ति संततम्। तथा निन्दसि मां मूढ तस्मात्त्वमसुरो भव ॥९९॥

---

अविनाशी रूप को धारण किये हुए हैं, देव, असुर, मुनिवृन्द, मनुगण, विद्वान् मनुष्य जिसके चरण-कमल की निरन्तर सेवा करते हैं और स्वप्न में भी जिनको नहीं देख पाते हैं, उस हरि के चरण-कमल की सेवा क्रोध त्यागकर शीघ्र करो, वह अपने भ्रूभंग मात्र से सृष्टि का संहार करनेवाला है ॥८५-९२॥ उसी के एक निमेष मात्र समय बीतने से ब्रह्मा का पतन (अंत) हो जाता है और उसके एक दिन व्यतीत होने पर अट्ठाईस इन्द्र समाप्त हो जाते हैं। हे राधे ! इस प्रकार एक सौ आठ वर्ष की आयु जिसकी है उसी मेरे ईश्वर के अधीन तुम क्या अन्य सभी देवियाँ और समस्त ब्रह्माण्ड हैं ॥९३-९४॥ हे ब्रह्मन् ! श्रीदामा की इस प्रकार कटुपूर्ण स्वच्छ बातें सुनकर भगवान् की प्राणेश्वरी राधा तुरन्त क्रुद्ध हो गयीं। अनन्तर रासेश्वरी ने, जिनका उस समय ओंठ फड़क रहा था, केशपाश खुल गया था एवं नेत्र रक्तकमल की भाँति लाल हो गये थे, बाहर निकलकर उस निष्ठुरवादी से कहा ॥९५-९६॥

**राधिका बोलीं**—हे जाल्म (नीच) ! रे महामूढ, लम्पट-किंकर ! सुनो—तुम्हीं सब कुछ जानते हो, मैं तुम्हारे ईश्वर को नहीं जानती हूँ। रे अधम ! श्रीकृष्ण तुम्हारे ही ईश्वर हैं हम लोगों के नहीं, अतः भाग जाओ यहाँ से। मैं जानती हूँ, तुम सदा पिता की प्रशंसा करते हो और माता की निन्दा ॥९७-९८॥ हे मूढ ! जिस प्रकार असुरगण देवों की निरन्तर निन्दा किया करते हैं, उसी भाँति तुम मेरी निन्दा कर रहे हो इसलिए तुम असुर हो जाओ। हे गोप ! गोलोक से बाहर होकर आसुरी योनि में जन्म ग्रहण करो। मूढ ! मैंने तुम्हें

---

१. ०मुल्वणम्।

गोप व्रजाऽऽसुरीं योनिं गोलोकाच्च बहिर्भव । मयाऽद्य शप्तो मूढस्त्वं कस्त्वां रक्षितुमीश्वरः ॥१००॥
रासेश्वरी तमित्युक्त्वा सुष्वाप विरराम च । वयस्याः सेवयामासुश्चामरै रत्नमुष्टिभिः ॥१०१॥
श्रुत्वा च वचनं तस्याः कोपेन स्फुरिताधरः । शशाप तां च श्रीदामा व्रज योनिं च मानुषीम् ॥१०२॥

## श्रीदामोवाच

मानुष्या इव कोपस्ते तस्मात्त्वं मानुषी भुवि । भविष्यसि न संदेहो मया शप्ता त्वमम्बिके ॥१०३॥
छायया कलया वाऽपि परशक्त्या कलङ्किना । मूढा रायणपत्नीं त्वां वक्ष्यन्ति जगतीतले ॥१०४॥
रायणः श्रीहरेरंशो वैश्यो वृन्दावने वने । भविष्यति महायोगी राधाशापेन गर्भजः ।
गोकुले प्राप्य तं कृष्णं विहरिष्यसि कानने ॥१०५॥
भविता ते वर्षशतं विच्छेदो हरिणा सह । पुनः प्राप्य तमीशं च गोलोकमागमिष्यसि ॥१०६॥
तामित्युक्त्वा च नत्वा च स जगाम हरेः पुरः । गत्वा प्रणम्य श्रीकृष्णं शापाख्यानमुवाच ह ॥१०७॥
आनुपूर्व्यात्तु तत्सर्वं रुरोद च भृशं पुनः । उवाच तं रुदन्तं च गच्छ त्वं धरणीतलम् ॥१०८॥
न जेता ते त्रिभुवने ह्यसुरेन्द्रो भविष्यसि । काले शंकरशूलेन देहं त्यक्त्वा ममान्तिकम् ॥१०९॥

---

आज शाप दे दिया है, देखती हूँ, अब तुम्हें कौन बचाने में समर्थ है ॥९९-१००॥ रासेश्वरी राधा उससे कहकर चुप हो गयीं और उनके शयन करने पर सखियों ने रत्नों की मूठ लगे चामरों द्वारा उनकी सेवा आरम्भ कर दी ॥१०१॥ किन्तु राधा की बातें सुनकर श्रीदामा का भी होंठ फड़फड़ाने लगा । उसने भी शाप दिया कि—तुम भी मनुष्य योनि में जाओ ।

**श्रीदामा बोले**—हे अम्बिके ! तुम्हारा भी क्रोध मनुष्य के ही समान है अतः मेरे शाप के कारण तुम्हें भी भूतल में मनुष्य होना पड़ेगा, इसमें संदेह नहीं है । पराशक्ति की छाया या कला द्वारा वहाँ भूतल में प्रकट होने पर मूर्ख लोग तुम्हें रायण वैश्य की पत्नी कहेंगे, जो वृन्दावन में भगवान् श्रीकृष्ण के अंश से समुत्पन्न होगा ॥१०२-१०४॥ राधा के शापवश वह गर्भ में ही महायोगी होकर बाहर निकलेगा । अनन्तर गोकुल में भगवान् कृष्ण को प्राप्त होकर वनों में उनके साथ विहार करोगी ॥१०५॥ तदुपरांत भगवान् से तुम्हारा सौ वर्ष का वियोग होगा और उसके पश्चात् पुनः भगवान् से मिलकर उनके साथ गोलोक आओगी ॥१०६॥ उनसे ऐसा कह-कर और नमस्कार करके श्रीदामा भगवान् के पास चला आया । वहाँ उन्हें प्रणाम करने के उपरान्त उनसे शाप की सभी बातें क्रमशः बता दीं ॥१०७। वह बार-बार रोदन करने लगा । उसी समय भगवान् ने उससे कहा—तुम अब पृथिवी पर चले जाओ, तुम्हें जीतनेवाला तीनों लोकों में भी कोई राक्षस राजा नहीं होगा, तुम असुरों के राजा होगे और समयानुसार शंकर के शूल द्वारा निधन होने पर देहत्यागपूर्वक यहाँ चले आओगे । मैं आशीर्वाद दे रहा हूँ—'पचास युग के समय तक तुम वहाँ रहोगे ।' भगवान् श्रीकृष्ण की बातें सुनकर शोकाकुल होकर उसने पुनः उनसे कहा (आपकी आज्ञा शिरोधार्य है किन्तु) वहाँ मुझे अपनी भक्ति से रहित न करियेगा ।

आगमिष्यसि पञ्चाशद्युगान्ते[1] तु ममाऽऽशिषा । श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा तमुवाच शुचाऽन्वितः ॥११०॥
त्वद्भक्तिरहितं मां च कदाचिन्न करिष्यसि । इत्युक्त्वा श्रीहरिं नत्वा जगाम स्वाश्रमाद्बहिः ॥१११॥
पश्चाज्जगाम सा देवी रुरोद च पुनः पुनः । क्व यासि वत्सेत्युच्चार्य विललाप भृशं सती ॥११२॥
श्रीदामाऽपि च तां नत्वा रुरोद प्रेमविह्वलः । स एव शङ्खचूडश्च बभूव तुलसीपतिः ॥११३॥
गते श्रीदाम्नि सा देवी जगामेश्वरसंनिधिम् । सर्वं निवेदयामास हरिः प्रत्युत्तरं ददौ ॥११४॥
शोकातुरां च तां कृष्णो बोधयामास प्रेयसीम् । शङ्खचूडश्च कालेन संप्राप पुनरीश्वरम् ॥११५॥
राधा जगाम धरणीं वाराहे हरिणा सह । वृषभानुगृहे जन्म ललाभे गोकुले मुने ॥११६॥
इत्येवं कथितं सर्वं श्रीकृष्णाख्यानमङ्गलम् । सर्वेषां वाञ्छितं सारं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥११७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० सप्तसमुद्रजन्मराधाश्रीदामशापोद्भवो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

# अथ चतुर्थोऽध्यायः

## नारद उवाच

केन वा प्रार्थितः कृष्णो महीं च केन हेतुना । आजगाम जगन्नाथो वद वेदविदां वर ॥१॥

---

इतना कहकर भगवान् को नमस्कार करके वह आश्रम से बाहर हो गया ॥१०८-१११॥ राधा देवी भी पीछे-पीछे चलने लगीं और बार-बार रोदन करते हुए कहने लगीं—'हे वत्स ! कहाँ जा रहे हो ? ऐसा कहकर उस सती ने अत्यन्त विलाप किया । श्रीदामा ने भी उस समय उन्हें नमस्कार करके प्रेमाकुल होकर बहुत रोदन किया । वही तुलसी का पति शंखचूड़ हुआ ॥११२-११३॥ श्रीदामा के चले जाने पर राधा देवी ने भी भगवान् कृष्ण के समीप गमन किया, वहाँ जाकर उनसे सब वृत्तान्त कह सुनाया, भगवान् ने उसका उत्तर भी दिया ॥११४॥ राधा को शोक-सागर में निमग्न देखकर भगवान् ने उन अपनी प्रेयसी को बहुत समझाया । वह शंखचूड़ समयानुसार पुनः गोलोक आकर ईश्वर का पार्षद हुआ ॥११५॥ हे मुने ! इधर राधा ने भी वाराह कल्प में भगवान् के साथ भूतल पर जाकर गोकुल में वृषभानु के घर जन्म ग्रहण किया ॥११६॥ इस प्रकार मैंने भगवान् श्रीकृष्ण का मंगल आख्यान, जो सभी लोगों को तत्त्वरूप से अभीष्ट है, तुम्हें सुना दिया, अब और क्या सुनना चाहते हो ॥११७॥

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में सातों समुद्रों के जन्म और राधा श्रीदामा का शाप-वर्णन नामक तीसरा अध्याय समाप्त ॥३॥

# अध्याय ४

## गोलोक का विस्तृत वर्णन

**नारद बोले**—हे वेद-वेत्ताओं में श्रेष्ठ ! किसकी प्रार्थना से भगवान श्रीकृष्ण, जो समस्त विश्व के स्वामी हैं, इस पृथ्वी पर प्रकट हुए ? इसका क्या कारण है, बताने की कृपा करें ॥१॥

---

१ क. ०युगेऽतीते ।

## नारायण उवाच

पुरा वाराहकल्पे सा भाराक्रान्ता वसुंधरा। भृशं बभूव शोकार्ता ब्रह्माणं शरणं ययौ ।।२।।
सुरैश्चासुरसंतप्तैर्भृशमुद्विग्नमानसैः । सार्धं तैस्तां दुर्गमां च जगाम वेधसः सभाम् ।।३।।
ददर्श तस्यां देवेशं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा। ऋषीन्द्रैश्च मुनीन्द्रैश्च सिद्धेन्द्रैः सेवितं मुदा ।।४।।
अप्सरोगणनृत्यं च पश्यन्तं सस्मितं मुदा। गन्धर्वाणां च संगीतं श्रुतवन्तं मनोहरम् ।।५।।
जपन्तं परमं ब्रह्म कृष्ण इत्यक्षरद्वयम्। भक्त्याऽऽनन्दाश्रुपूर्णं तं पुलकाङ्कितविग्रहम् ।।६।।
भक्त्या सा त्रिदशैः सार्धं प्रणम्य चतुराननम्। सर्वं निवेदनं चक्रे दैत्यभारादिकं मुने ।।७।।
साश्रुपूर्णा सपुलका तुष्टाव च रुरोद च। तामुवाच जगद्धाता कथं स्तौषि च रोदिषि ।।८।।
कथमागमनं भद्रे वद भद्रं भविष्यति। सुस्थिरा भव कल्याणि भयं किं ते मयि स्थिते ।।९।।
आश्वास्य पृथिवीं ब्रह्मा देवान्पप्रच्छ सादरम्। कथमागमनं देवा युष्माकं मम संनिधिम् ।।१०।।
ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा देवा ऊचुः प्रजापतिम्। भाराक्रान्ता च वसुधा दस्युग्रस्ता वयं प्रभो ।।११।।
त्वमेव जगतां स्रष्टा शीघ्रं नो निष्कृतिं कुरु। गतिस्त्वमस्या भो ब्रह्मन्निर्वृतिं कर्तुमर्हसि ।।१२।।
पीडिता येन भारेण पृथिवीयं पितामह। वयं तेनैव दुःखार्तास्तद्भारहरणं कुरु ।।१३।।

---

**नारायण बोले**—पहले वाराह कल्प में यह पृथिवी (पापियों के) भार से आक्रान्त होने पर अतिशोकाकुल होकर ब्रह्मा के शरण गयी ।।२।। राक्षसों से अत्यन्त सन्तप्त होने के कारण पृथिवी देवगण के साथ ब्रह्मा की दुर्गम सभा में पहुँची ।।३।। वहाँ उसने देवाधीश्वर ब्रह्मा को देखा, जो ब्रह्मतेज से देदीप्यमान तथा उत्तम ऋषियों, मुनियों और सिद्धों द्वारा हर्ष से सेवित हो रहे थे ।।४।। वे मन्दहास करते हुए सहर्ष अप्सराओं के नृत्य देखते हुए और गन्धर्वों का मनोहर संगीत सुनते हुए परब्रह्म का 'कृष्ण' यह दो अक्षर का नाम जप रहे थे। भक्ति के कारण आनन्द के आँसुओं से युक्त उनका शरीर पुलकायमान हो रहा था ।।५-६।। हे मुने ! पृथ्वी ने देवों के साथ चतुरानन (ब्रह्मा) को भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और दैत्यों के भार आदि को कह सुनाया। अनन्तर पुलकित शरीर, आँखों में आँसू भरे और रोदन करती हुई वह ब्रह्मा की स्तुति करने लगी। उसे देखकर जगत् के धाता ब्रह्मा ने कहा—हे भद्रे ! क्यों रोदन कर रही हो और स्तुति क्यों करती हो ? तुम्हारा यहाँ आना कैसे हुआ ? शीघ्र कहो। अवश्य तुम्हारा कल्याण होगा। हे कल्याणि ! मेरे रहते तुम्हें भय क्या है, अतः भलीभाँति स्थिर रहो ।।७-९।। इस प्रकार पृथ्वी को आश्वासन देकर ब्रह्मा ने देवों से सादर पूछा—हे देवगण ! मेरे पास क्यों आये ? आने का कारण कहो। ब्रह्मा की बात सुनकर देवों ने प्रजापति से कहा—हे प्रभो ! यह पृथिवी (दैत्यों के) भार से दबी जा रही है और हम लोग दस्युगणों से पीड़ित हो रहे हैं। आप समस्त जगत् से स्रष्टा हैं। अतः शीघ्र इसका कोई उपाय करें। हे ब्रह्मन् ! हे पितामह ! इसके आप ही एकमात्र गति हैं, अतः इसे इससे मुक्त कराने की कृपा करें और जिसके भार से यह पृथिवी पीड़ित हो रही है, उसी के द्वारा हम लोग दुःखी हो रहे हैं। अतः भार का हरण करें ।।१०-१३।। करूँगा और तुम्हारा कल्याण अवश्य होगा। उनकी बातें

देवानां वचनं श्रुत्वा पप्रच्छ तां जगद्विधिः। दूरीकृत्य भयं वत्से सुखं तिष्ठ ममान्तिकम् ॥१४॥
केषां भारमशक्ता त्वं सोढुं पंकजलोचने। अपनेष्यामि तं भद्रे भद्रं ते भविता ध्रुवम् ॥१५॥
तस्य सा वचनं श्रुत्वा तमुवाच स्वपीडनम्। पीडिता येन येनैवं प्रसन्नवदनेक्षणा ॥१६॥

## क्षितिरुवाच

श्रृणु तात प्रवक्ष्यामि स्वकीयां मानसीं व्यथाम्। विना बन्धुं सविश्वासं नान्यं कथितुमर्हति ॥१७॥
स्त्रीजातिरबला शश्वद्रक्षणीया स्वबन्धुभिः। जनकस्वामिपुत्रैश्च गर्हिताऽन्यैश्च निश्चितम् ॥१८॥
त्वया पृष्टा जगत्तात न लज्जा कथितुं मम। येषां भारैः पीडिताऽहं श्रूयतां कथयामि ते ॥१९॥
कृष्णभक्तिविहीना ये ये च तद्भक्तनिन्दकाः। तेषां महापातकिनामशक्ता भारवाहने ॥२०॥
स्वधर्माचारहीना ये नित्यकृत्यविवर्जिताः। श्रद्धाहीनाश्च वेदेषु तेषां भारेण पीडिता ॥२१॥
पितृमातृगुरुस्त्रीणां पोषणं पुत्रपोष्ययोः। ये न कुर्वन्ति तेषां च न शक्ता भारवाहने ॥२२॥
ये मिथ्यावादिनस्तात दयासत्यविवर्जिताः। निन्दका गुरुदेवानां तेषां भारेण पीडिता ॥२३॥
मित्रद्रोही कृतघ्नश्च मिथ्यासाक्ष्यप्रदायकः। विश्वासघ्नो न्यासहर्ता तेषां भारेण पीडिता ॥२४॥
कल्याणसूक्तसामानि हरेर्नामैकमङ्गलम्। कुर्वन्ति विक्रयं ये वै तेषां भारेण पीडिता ॥२५॥

---

सुनकर उसने अपने मुख और नेत्रों से प्रसन्नता प्रकट करती हुई अपना उत्पीड़न—जिस-जिसके द्वारा जिस प्रकार हो रहा था—कहना आरम्भ किया ॥१४-१६॥

**पृथ्वी बोली**—हे तात ! बिना बंधु के किसी अन्य से विश्वासपूर्वक नहीं कहा जा सकता। अतः मैं अपने मन की पीड़ा आपसे कह रही हूँ, सुनने की कृपा करें। स्त्री जाति अबला होती है, इसीलिए पिता, पति और पुत्रों द्वारा उसके रक्षण का निरन्तर प्रयत्न होना चाहिए और अन्य लोगों से उनकी रक्षा निन्दित कही गयी है ॥१७-१८॥ आप जगत् के पिता हैं और पूछ रहे हैं, अतः जिन लोगों के भार से मैं पीड़ित हूँ वह कह रही हूँ, क्योंकि आपसे कहने में मुझे कोई लज्जा नहीं है, सुनिये ॥१९॥ भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति से जो हीन हैं और जो उनके भक्तों की निन्दा करते हैं, उन महापातकी लोगों के भार वहन करने में मैं सर्वथा असमर्थ हूँ ॥२०॥ जो अपना धर्माचरण नहीं करते, नित्य कर्म से शून्य हैं और वेदों में श्रद्धा नहीं है, उनके भार से मैं पीड़ित हो रही हूँ ॥२१॥ पिता, माता, गुरु, स्त्री, पुत्र और अन्य पोष्य वर्ग का जो पोषण नहीं करते हैं, उनका भार वहन करने में मैं सदा अशक्त हूँ ॥२२॥ हे तात ! जो मिथ्याभाषी (झूठे), दया-सत्य से हीन तथा गुरु और देवों की निन्दा करनेवाले हैं, उन लोगों के भार से मैं पीड़ित हूँ ॥२३॥ जो मित्रद्रोही, कृतघ्न, झूठी गवाही देनेवाला विश्वासघाती और न्यास (धरोहर) का अपहरण करनेवाला है, उसके भार से मैं दबी जा रही हूँ ॥२४॥ सामवेद के कल्याण सूक्त और भगवान् के मंगलमय नाम का विक्रय करनेवाले जो हैं उनके भार से मैं पीड़ित हूँ ॥२५॥ जीवहिंसक, गुरुद्रोही,

जीवघाती गुरुद्रोही ग्रामयाजी च लुब्धकः। शवदाही शूद्रभोजी तेषां भारेण पीडिता ॥२६॥
पूजायज्ञोपवासादिव्रतानि विविधानि[1] च। ये ये मूढा निहन्तारस्तेषां भारेण पीडिता ॥२७॥
सदा द्विषन्ति ये पापा गोविप्रसुरवैष्णवान्। हरिं हरिकथां भक्तिं तेषां भारेण पीडिता ॥२८॥
शङ्खादीनां च भारेण पीडिताऽहं यथा विधे। ततोऽधिकानां दैत्यानां भारेण परिपीडिता ॥२९॥
इत्येवं कथितं सर्वं मद्व्यथाया निवेदनम्। त्वया यदि सुपाल्याऽहं प्रतीकारं कुरु प्रभो ॥३०॥
इत्येवमुक्त्वा वसुधा रुरोद च मुहुर्मुहुः। ब्रह्मा तद्रोदनं दृष्ट्वा तामुवाच कृपानिधिः ॥३१॥
भारं तवापनेष्यामि दस्यूनामप्युपायतः। उपायतोऽपि कार्याणि सिद्ध्यन्त्येव वसुंधरे ॥३२॥
कालेन भारहरणं करिष्यति मदीश्वरः। मन्त्रं मङ्गलकुम्भं च शिवलिङ्गं च कुङ्कुमम् ॥३३॥
मधुकाष्ठं चन्दनं च कस्तूरीं तीर्थमृत्तिकाम्। खड्गगण्डकखण्डं च स्फाटिकं पद्मरागकम् ॥३४॥
इन्द्रनीलं सूर्यमणिं रुद्राक्षं कुशमूलकम्। शालग्रामशिलां शङ्खं तुलसीं प्रतिमां जलम् ॥३५॥
शङ्खं प्रदीपमालां च शिलामर्च्यां च घण्टिकाम्। निर्माल्यं चैव नैवेद्यं हरिद्वर्णमणिं तथा ॥३६॥
ग्रन्थियुक्तं यज्ञसूत्रं दर्पणं श्वेतचामरम्। गोरोचनं च मुक्तां च शुक्तिं माणिक्यमेव च ॥३७॥
पुराणसंहितां वह्निं कर्पूरं परशुं तथा। रजतं काञ्चनं चैव प्रवालं रत्नमेव च ॥३८॥

---

गाँव-गाँव यज्ञ करानेवाला, हिंसक, शूद्रों के शव का दाह और उनका अन्न भोजन करनेवाला जो है उन लोगों के भार से पीड़ित हो रही हूँ ॥२६॥ पूजा, यज्ञ, उपवास आदि अनेक भाँति के व्रतों का जो नाश करते हैं, उन मूढ़ों के भार से मैं पीड़ित हूँ ॥२७॥ गौ, ब्राह्मण, देवता और वैष्णवगण, भगवान् की कथा और भक्ति से जो द्वेष करते हैं, उनके भार से मैं पीड़ित हूँ ॥२८॥ हे विधे ! शंखचूड़ आदि के भार से मैं जितनी दुःखी हूँ, उससे कहीं अधिक दैत्यों के भार से मैं पीड़ित हो रही हूँ ॥२९॥ हे प्रभो ! इस प्रकार मैंने आपसे अपना दुःख निवेदन कर दिया; अब यदि आपकी मैं (भली-भाँति पालनीया) हूँ, तो इसका प्रतीकार करने की शीघ्र कृपा करें ॥३०॥ इतना कहकर पृथिवी उनके सामने बार-बार रोदन करने लगी। उसका रोदन देखकर कृपानिधान ब्रह्मा ने उससे कहा—हे वसुन्धरे ! तुम्हारे भार का मैं अपनयन करूँगा, साथ ही उपाय द्वारा दस्युगणों को भी दूर करूँगा; क्योंकि उपाय करने से ही कार्य सफल होते हैं ॥३१-३२॥ समय आने पर हमारे प्रभु तुम्हारा भार अवश्य दूर करेंगे। मंत्र, मंगलकलश, शिवलिंग, कुंकुम, जेठीमधु (मुरेठी), चन्दन, कस्तूरी, तीर्थ की मिट्टी, खड्ग गैंड़े के सींग का टुकड़ा, स्फटिकमणि, पद्मरागमणि, इन्द्रनीलमणि, सूर्यमणि, रुद्राक्ष, कुश का मूल भाग, शालग्रामशिला, शंख, तुलसी, देव-मूर्ति, जल, शंख प्रदीपमाला, पूजनीय शिला, घंटी, (शिव) निर्माल्य, नैवेद्य, हरे रंग की मणि, गाँठयुक्त यज्ञोपवीत, दर्पण, श्वेतचँवर, गोरोचन, शुक्ति (सुतुही), माणिक्य, पुराणसंहिता, अग्नि, कपूर, फरसा अस्त्र चाँदी, सुवर्ण, प्रवाल (मूँगा), रत्न, कुशबीज, तीर्थजल, गौ के दूध, दही, घी, गोबर, गोमूत्र, इन वस्तुओं को हे सुन्दरी ! जो तुम्हारे ऊपर रखेगा, वह मूर्ख दससहस्र वर्ष तक कालसूत्र नामक नरक

---

१ क. नियमानि।

कुशबीजं तीर्थतोयं गव्यं गोमूत्रगोमयम् । त्वयि ये स्थापयिष्यन्ति मूढाश्चैतानि सुन्दरि ॥३९॥
पच्यन्ते कालसूत्रे ते वर्षाणामयुतं ध्रुवम् । ॥४०॥
ब्रह्मा पृथ्वीं समाश्वास्य देवताभिस्तया सह । जगाम जगतां धाता कैलासं शंकरालयम् ॥४१॥
गत्वा तमाश्रमं रम्यं ददर्श शंकरं विधिः । वसन्तमक्षयवटमूले स्वः सरितस्तटे ॥४२॥
व्याघ्रचर्मपरीधानं दक्षकन्यास्थिभूषणम् । त्रिशूलपट्टिशधरं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम् ॥४३॥
नानासिद्धैः परिवृतं योगीन्द्रगणसेवितम् । परितोऽप्सरसां नृत्यं पश्यन्तं सस्मितं मुदा ॥४४॥
गन्धर्वाणां च संगीतं श्रुतवन्तं कुतूहलात् । पश्यन्तीं पार्वतीं प्रीत्या पश्यन्तं वक्रचक्षुषा ॥४५॥
जपन्तं पञ्चवक्त्रेण हरेर्नामैकमङ्गलम् । मन्दाकिनीपद्मबीजमालया पुलकाङ्कितम् ॥४६॥
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा तस्थावग्रे स धूर्जटेः । पृथिव्या सुरसंघैश्च सार्धं प्रणतकंधरैः ॥४७॥
उत्तस्थौ शंकरः शीघ्रं भक्त्या दृष्ट्वा जगद्गुरुम् । ननाम मूर्ध्ना संप्रीत्या लब्धवानाशिषं ततः ॥४८॥
प्रणेमुर्देवताः सर्वे शंकरं चन्द्रशेखरम् । प्रणनाम धरा भक्त्या चाऽऽशिषं युयुजे हरः ॥४९॥
वृत्तान्तं कथयामास पार्वतीशं प्रजापतिः । श्रुत्वा नतमुखस्तूर्णं शंकरो भक्तवत्सलः ॥५०॥
भक्तापायं समाकर्ण्य पार्वतीपरमेश्वरौ । बभूवतुस्तौ दुःखार्तौ बोधयामास तौ विधिः ॥५१॥
ततो ब्रह्मा महेशश्च सुरसंघान्वसुंधराम् । गृहं प्रस्थापयामास समाश्वास्य प्रयत्नतः ॥५२॥

---

में, निश्चित पकता रहेगा ॥३३-४०॥ इस प्रकार जगत् के धाता ब्रह्मा पृथिवी को समझा-बुझाकर देवों और उसे साथ लिये शंकर के घर—कैलास गये ॥४१॥ वहाँ पहुँचकर ब्रह्मा ने शिव को देखा, जो स्वर्ग गंगा के तट पर अक्षयवट के नीचे स्थित, बाघम्बर पहने, दक्ष कन्या (सती) की अस्थियाँ भूषणरूप में धारण किये, त्रिशूलधारी, पाँच मुखवाले, तीन नेत्रवाले, अनेक सिद्धों से आवृत, योगीन्द्रगण से सुशोभित, मन्दहास करते हुए हर्ष से अप्सराओं का नृत्य देख रहे थे, गन्धर्वों के संगीत कौतूहल से सुन रहे थे, पार्वती सप्रेम उन्हें देख रही थीं और वे भी अपनी आँखों की कोर से उन्हें देख रहे थे। वे पाँचों मुखों द्वारा भगवान् का एकमात्र मंगल रूप नाम जप रहे थे। मन्दाकिनी (गंगा) के कमलवीज की माला पहने पुलकित हो रहे थे ॥४२-४६॥ उसी बीच ब्रह्मा शिव के सामने कंधे झुकाकर प्रणाम करनेवाले देवताओं के साथ और पृथिवी समेत खड़े हो गये ॥४७॥ शिव जगद्गुरु ब्रह्मा को देखते ही भक्तिपूर्वक शीघ्र आसन से खड़े हो गये और सिर से उन्हें नमस्कार किया। अनन्तर सप्रेम उनका आशीर्वाद भी प्राप्त किया ॥४८॥ देवगण चन्द्रशेखर शिव को प्रणाम करने लगे और पृथ्वी ने भी भक्तिपूर्वक उन्हें प्रणाम किया, भगवान् हर ने सबको शुभाशिष प्रदान किया ॥४९॥ अनन्तर प्रजापति ब्रह्मा ने पार्वती-पति शिव से समस्त वृत्तान्त कह सुनाया, जिसे सुनकर भक्त-वत्सल शंकर ने नीचे मुख कर लिया ॥५०॥ पार्वती और शिव ने भक्तों के ऐसे कष्टों को सुनकर बहुत दुःख प्रकट किया, यह देखकर ब्रह्मा ने उन्हें समझाया ॥५१॥ तत्पश्चात् ब्रह्मा और महेश्वर ने वसुन्धरा तथा देवों को सप्रयत्न आश्वासन देकर उन्हें अपने-अपने घर भेज दिया ॥५२॥ देवेश ब्रह्मा और महेश्वर भी बड़ी शीघ्रता से धर्म के यहाँ जाकर उनसे विचार-

ततो देवेश्वरैस्तूर्णमागत्य धर्ममन्दिरम् । सह तेन समालोच्य प्रजग्मुर्भवनं हरेः ॥५३॥
वैकुण्ठं परमं धाम जरामृत्युहरं परम् । वायुना धार्यमाणं च ब्रह्माण्डादूर्ध्वमुत्तमम् ॥५४॥
कोटियोजनमूर्ध्वं च ब्रह्मलोकात्सनातनम् । वर्णनीयं न कविभिर्विचित्रं रत्ननिर्मितम् ॥५५॥
पद्मरागैरिन्द्रनीलै राजमार्गैर्विभूषितम् । ते मनोयायिनः सर्वे संप्रापुस्तं मनोहरम् ॥५६॥
हरेरन्तः पुरं गत्वा ददृशुः श्रीहरिं सुराः । रत्नसिंहासनस्थं च रत्नालंकारभूषितम् ॥५७॥
रत्नकेयूरवलयरत्ननूपुरशोभितम् । रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजितम् ॥५८॥
पीतवस्त्रपरीधानं वनमालाविभूषितम् । शान्तं सरस्वतीकान्तं लक्ष्मीधृतपदाम्बुजम् ॥५९॥
कोटिकन्दर्पलीलाभं स्मितवक्त्रं चतुर्भुजम् । सुनन्दनन्दकुमुदैः पार्षदैरुपसेवितम् ॥६०॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं सुरत्नमुकुटोज्ज्वलम् । परमानन्दरूपं च भक्तानुग्रहकारकम् ॥६१॥
तं प्रणेमुः सुरेन्द्राश्च भक्त्या ब्रह्मादयो मुने । तुष्टुवुः परया भक्त्या भक्तिनम्रात्मकंधराः ॥६२॥
परमानन्दभारार्ताः पुलकाञ्चितविग्रहाः ॥६३॥

### ब्रह्मोवाच

नमामि कमलाकान्तं शान्तं सर्वेशमच्युतम् । वयं यस्य कलाभेदा कलांशकलया सुराः ॥६४॥
मनवश्च मुनीन्द्राश्च मानुषाश्च चराचराः । कलाकलांशकलया भूतास्त्वत्तो निरञ्जन ॥६५॥

---

विमर्श किया और अन्त में सब लोगों ने हरिभवन वैकुण्ठ के लिए प्रस्थान किया, जो परमधाम, जरा-मृत्यु का परम विनाशक एवं ब्रह्माण्ड से ऊपर वायु द्वारा स्थित है। वह सनातन लोक ब्रह्माण्ड से एक करोड़ योजन ऊपर, चित्र-विचित्र, रत्ननिर्मित, कवि-वर्णनातीत, पद्मराग एवं इन्द्रनील खचित राजमार्गों (सड़कों) से सुशोभित है। मन की भाँति गमन करनेवाले देवगणों ने उस मनोहर लोक में पहुँचकर भगवान् के अंतःपुर में लक्ष्मी-नारायण को देखा, जो रत्नसिंहासन पर सुखासीन, रत्नों के अलंकारों से अलंकृत, रत्नों के केयूर, कंकण और नूपुरों से सुशोभित थे। रत्नों के युगल कुण्डल से उनका गण्डस्थल भूषित था, स्वयं पीताम्बर पहने, वनमाला-भूषित, शांत, सरस्वती के कान्त, लक्ष्मी द्वारा सेवित चरण-कमलवाले, करोड़ों कन्दर्प की शोभा की भाँति कान्तिवाले, हँसमुख, चतुर्भुज, सुनंद, नंद और कुमुद आदि पार्षदों द्वारा सेवित, चन्दन-चर्चित सर्वांगवाले, उत्तम रत्नमुकुट से समुज्ज्वल, परमानन्दस्वरूप और भक्तों पर कृपा करनेवाले उन विष्णु को ब्रह्मादिदेवों ने भक्ति-पूर्वक प्रणाम किया और हे मुने ! पराभक्ति से कन्धे झुकाये हुए वे उनकी स्तुति करने लगे। उस समय देवगण परमानन्द में मग्न थे एवं उनके शरीर में रोमाञ्च हो रहा था ॥५३-६३॥

**ब्रह्मा बोले**—कमलापति, शांत, सर्वाधीश्वर अच्युत को मैं नमस्कार कर रहा हूँ, हम लोग जिनकी कला और देवगण कलांश की कलाएँ हैं। हे निरञ्जन ! तुम्हारी ही कला की अंशकला से मनुगण, मुनीन्द्रवर्ग, मनुष्य एवं समस्त चर-अचर उत्पन्न हुए हैं ॥६४-६५॥

## शंकर उवाच

त्वामक्षयमक्षरं वा व्यक्तमव्यक्तमीश्वरम् । अनादिमादिमानन्दरूपिणं सर्वरूपिणम् ॥६६॥
अणिमादिकसिद्धीनां कारणं सर्वकारणम् । सिद्धिज्ञं सिद्धिदं सिद्धिरूपं कः स्तोतुमीश्वरः ॥६७॥

## धर्म उवाच

वेदे निरूपितं वस्तु वर्णनीयं विचक्षणैः । वेदे निर्वचनीयं यत्तन्निर्वक्तुं च कः क्षमः ॥६८॥
यस्य संभावनीयं यद्गुणरूपं निरञ्जनम् । तदतिरिक्तं स्तवनं किमहं स्तौमि निर्गुणम् ॥६९॥
ब्रह्मादीनामिदं स्तोत्रं षट्श्लोकोक्तं महामुने । पठित्वा मुच्यते दुर्गाद्वाञ्छितं च लभेन्नरः ॥७०॥
देवानां स्तवनं श्रुत्वा तानुवाच हरिः स्वयम् । गोलोकं यात यूयं च यामि पश्चाच्छ्रिया सह ॥७१॥
नरनारायणौ तौ द्वौ श्वेतद्वीपनिवासिनौ । एते यास्यन्ति गोलोकं तथा देवी सरस्वती ॥७२॥
[1]अनन्ता मम माया च कार्तिकेयो गणाधिपः । सावित्री वेदमाता च पश्चाद्यास्यन्ति निश्चितम् ॥७३॥
तत्राऽहं द्विभुजः कृष्णो गोपीभी राधया सह । अत्राहं कमलायुक्तः सुनन्दादिभिरावृतः ॥७४॥
नारायणश्च कृष्णोऽहं श्वेतद्वीपनिवासकृत् । ममैवैताः कलाः सर्वे देवा ब्रह्मादयः स्मृताः ॥७५॥

---

**शंकर बोले**—हे भगवन् ! तुम नाशरहित, क्षरित न होनेवाले, व्यक्त, अव्यक्त, ईश्वर, अनादि, आदि सहित, आनन्दस्वरूप, अखिल रूप, अणिमा आदि सिद्धियों के कारण, सबके कारण, सिद्धिज्ञाता, सिद्धिदायक और सिद्धिरूप हो, अतः तुम्हारी स्तुति करने में कौन समर्थ हो सकता है ? ॥६६-६७॥

**धर्म बोले**—वेद में कहे हुए का वर्णन बुद्धिमानों ने किया है, किन्तु जो वेद में भी अनिर्वचनीय (वाणी से परे) है, उसकी स्तुति कौन कर सकता है ? जिसके लिए जिस वस्तु की संभावना की जाती है, वह गुण रूप होती है । वही उसका स्तवन है, जो निरंजन (निर्मल) तथा गुणों से पृथक् निर्गुण है, उस परमात्मा की मैं क्या स्तुति करूँ ? हे महामुने ! ब्रह्मा आदि देवकृत इस छह श्लोकों के स्तोत्र का जो पाठ करता है, वह मनुष्य संकट-रहित होकर मनोरथ प्राप्त करता है । देवों की ऐसी स्तुति सुनकर विष्णु ने स्वयं उन लोगों से कहा—'तुम लोग गोलोक चलो, पीछे लक्ष्मी समेत मैं भी आ रहा हूँ । श्वेतद्वीपनिवासी नर-नारायण और सरस्वती देवी भी तुम लोगों के साथ गोलोक जायँगी । मेरी अनन्त माया, कार्तिकेय, गणेश एवं वेदजननी सावित्री भी पीछे निश्चित जायँगी ॥६८-७३॥ गोलोक में भी मैं दो भुजा से कृष्णरूप धारणकर राधा और गोपियों के साथ रहता हूँ और यहाँ कमला के साथ सुनंद आदि पार्षदों समेत रहता हूँ ॥७४॥ श्वेतद्वीपनिवासी नारायण और कृष्ण मैं ही हूँ, ब्रह्मा आदि समस्त देवगण हमारी कलाएँ हैं ॥७५॥ देव, असुर और मनुष्य आदि कला की कलांश-कलाएँ

---

१क. ०नन्तो म० ।

कलाकलांशकलया सुरासुरनरादयः। गोलोकं यात यूयं च कार्यसिद्धिर्भविष्यति ॥७६॥
वयं पश्चाद्गमिष्यामः सर्वेषामिष्टसिद्धये। इत्युक्त्वा वै सभामध्ये विरराम हरिः स्वयम् ॥७७॥
प्रणम्य देवताः सर्वा जग्मुर्गोलोकमद्भुतम्। विचित्रं परमं धाम जरामृत्युहरं परम् ॥७८॥
ऊर्ध्वं वैकुण्ठतोऽगम्यं पञ्चाशत्कोटियोजनम्। वायुना धार्यमाणं च निर्मितं स्वेच्छया विभोः ॥७९॥
तमनिर्वचनीयं च देवास्ते गमनोत्सुकाः[1]। ते मनोयायिनः सर्वे संप्रापुर्विरजातटम् ॥८०॥
दृष्ट्वा देवाः सरित्तीरं विस्मयं परमं ययुः। शुद्धस्फटिकसंकाशं सुविस्तीर्णं मनोहरम् ॥८१॥
मुक्तामाणिक्यपरममणिरत्नाकरान्वितम्। कृष्णशुभ्रहरिद्रक्तमणिराजिविराजितम् ॥८२॥
प्रवालाङ्कुरमुद्भूतं कुत्रचित्सुमनोहरम्। परमामूल्यसद्रत्नाकरराजिविभूषितम् ॥८३॥
विधेरदृश्यमाश्चर्यं निधिश्रेष्ठाकरान्वितम्। पद्मरागेन्द्रनीलानामाकरं कुत्रचिन्मुने ॥८४॥
कुत्रचिच्च मरकताकरश्रेणीसमन्वितम्। स्यमन्तकाकरं कुत्र कुत्रचिद्रुचकाकरम् ॥८५॥
अमूल्यपीतवर्णाभं मणिश्रेण्याकरान्वितम्। रत्नाकरं कुत्रचिच्च कुत्रचित्कौस्तुभाकरम् ॥८६॥
कुत्रानिर्वचनीयानां मणीनामाकरं परम्। कुत्रचित्कुत्रचिद्रम्यविहारस्थलमुत्तमम् ॥८७॥
दृष्ट्वा तु परमाश्चर्यं जग्मुस्तत्पारमीश्वराः। ददृशुः पर्वतश्रेष्ठं शतशृङ्गं मनोरमम् ॥८८॥

---

हैं। तुम लोग गोलोक जाओ, कार्य की सिद्धि अवश्य होगी ॥७६॥ सभी के मनोरथ की पूर्ति के लिए हम लोग पश्चात् जायेंगे। सभा में इतना कहकर भगवान् चुप हो गये ॥७७॥ अनन्तर सभी देवों ने उन्हें प्रणाम करके गोलोक को प्रस्थान किया, जो अद्भुत, चित्रविचित्र, जरा-मृत्यु-रहित एवं परमधाम है ॥७८॥ प्रभु का यह लोक वैकुण्ठ से पचास करोड़ योजन ऊपर वायु के आधार पर स्थित एवं विभु की स्वेच्छा से रचित है ॥७९॥ उसी अनिर्वचनीय लोक जाने के लिए देवगण ने बड़ी उत्सुकता से प्रस्थान किया और मन की भाँति वेगगामी वे देव लोग विरजा के तट पर पहुँच गये ॥८०॥ नदी का तट देखकर देवों को महान् आश्चर्य हुआ। वह शुद्ध स्फटिक की भाँति उज्ज्वल, अति विस्तृत, अति मनोहर, मुक्ता, माणिक्य, परमोत्तम मणि और रत्नों की खानों से युक्त, श्यामल, श्वेत, हरे एवं रक्तवर्ण की मणियों से सुशोभित था ॥८१-८२॥ प्रवाल के अंकुर निकलने के कारण कहीं-कहीं अति मनोहर, परम अमूल्य उत्तम रत्नों की खानों से शोभायमान था ॥८३॥ हे मुने! ब्रह्मा के लिए वह आश्चर्य अदृश्य था। वहाँ अनेक परमोत्तम खानें थीं, कहीं पद्मराग, इन्द्रनील और कहीं मरकत मणियों की खानें, कहीं स्यमंतक मणि की खान और कहीं सुवर्ण की निधियाँ थीं ॥८४-८५॥ कहीं अमूल्य पीतवर्ण की मणियों की निधि, कहीं रत्नों के निधान, कहीं कौस्तुभ निधान और कहीं अनिर्वचनीय मणियों की खान थी एवं कहीं विहार करने का सुरम्य स्थान था ॥८६-८७॥ उसे देखकर आश्चर्यचकित हो देवगण उसके पार पहुँचे। वहाँ उन्हें सौ शिखरवाला मनोहर पर्वत दिखायी पड़ा, जो पारिजात वृक्षों की वन-श्रेणियों से सुशोभित, कल्पवृक्षों

---

१ क. ०नोन्मुखाः।

पारिजाततरूणां च वनराजिविराजितम् । कल्पवृक्षैः परिवृतं वेष्टितं कामधेनुभिः ॥८९॥
कोटियोजनमूर्ध्वं च दैर्घ्यं दशगुणोत्तरम् । शैलप्रस्थपरिमितं पञ्चाशत्कोटियोजनम् ॥९०॥
प्राकाराकारमस्यैव शिखरे रासमण्डलम् । दशयोजनविस्तीर्णं वर्तुलाकारमुत्तमम् ॥९१॥
पुष्पोद्यानसहस्रेण पुष्पितेन सुगन्धिना । संकुलेन मधुघ्राणां समूहेन समन्वितम् ॥९२॥
सुरतद्रव्यसंयुक्तं राजितं रत्नमन्दिरैः । रत्नमण्डपकोटीनां सहस्रेण समन्वितम् ॥९३॥
रत्नसोपानयुक्तेन सद्रत्नकलशेन च । हरिन्मणीनां स्तम्भेन शोभितेन च शोभितम् ॥९४॥
सिंदूरवर्णमणिभिः परितः खचितेन च । इन्द्रनीलैर्मध्यगतैर्मण्डितेन मनोहरैः ॥९५॥
[1]रत्नप्राकारसंयुक्तमणिभेदैर्विराजितम् । द्वारैः कपाटसंयुक्तैश्चतुर्भिश्च विराजितम् ॥९६॥
रज्जुग्रन्थिसमायुक्तं[2] रसालपल्लवान्वितैः । परितः कदलीस्तम्भसमूहैश्च समन्वितम् ॥९७॥
[3]शुक्लधान्यपर्णजालफलदूर्वाङ्कुरान्वितम् । चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवचर्चितम् ॥९८॥
वेष्टितं गोपकन्यानां समूहैः कोटिशो मुने । रत्नालंकारसंयुक्तैं रत्नमालाविराजितैः ॥९९॥
रत्नकंकणकेयूररत्ननूपुरभूषितैः । रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजितैः ॥१००॥
रत्नाङ्गुलीयललितैर्हस्ताङ्गुलिविराजितैः । रत्नपाशकवृन्दैश्च[4] विराजितपदाङ्गुलैः ॥१०१॥
भूषितैं रत्नभूषाभिः सद्रत्नमुकुटोज्ज्वलैः । गजेन्द्रमुक्तालंकारैर्नासिकामध्यराजितैः ॥१०२॥

---

से घिरा और कामधेनुओं से आच्छन्न था ॥८८-८९॥ वह एक करोड़ योजन ऊँचा और उसका दसगुना चौड़ा था। उसके ऊपर की भूमि पचास करोड़ योजन विस्तृत थी। वह पर्वत चहारदीवारी की भाँति गोलोक के चारों ओर फैला हुआ था। उसी पर्वत के शिखर पर दस योजन विस्तीर्ण, गोलाकार परमोत्तम रासमण्डल स्थित है ॥९०-९१॥ वह सुगन्धित एवं फूली हुई सहस्रों पुष्प-वाटिकाओं और भौंरों के समूहों से युक्त था ॥९२॥ वह सुरतोपभोग की वस्तुओं से सजे रतिमन्दिरों से युक्त, सहस्र करोड़ रत्नमण्डलों तथा रत्नों की सीढ़ियों, उत्तम रत्नों के कलशों और हरे रंग की मणियों के खम्भों से अति सुशोभित था ॥९३-९४॥ चारों ओर सिन्दूरवर्ण की मणियों से खचित तथा मध्य में इन्द्रनील से भूषित होने के नाते अति मनोहर, रत्नों की चहारदीवारी में लगी विभिन्न रंग की मणियों तथा कपाट (किवाड़) लगे चार दरवाजों से सुभूषित था ॥९५-९६॥ रस्सियों में गाँठ देकर आम के पल्लवों से तथा चारों ओर केले के स्तम्भों से युक्त था ॥९७॥ हे मुने! शुक्ल धान्य (चावल) पत्तों के जाल, फल, दूर्वा के अंकुर, चन्दन, अगरु, कस्तूरी और कुंकुम आदि द्रव (पिसे) पदार्थों से शोभित एवं करोड़ों गोप-कन्याओं से आच्छन्न था, जो रत्नों के भूषणों एवं रत्नों की मालाओं से शोभित थीं। वे रत्नों के कंकण एवं नूपुरों को पहनती थीं और रत्नों के युगल कुण्डल से उनके गण्डस्थल सुशोभित थे ॥९८-१००॥ वे रत्नों की अँगूठियों से रम्य हाथ की अँगुलियों से विराजित, रत्नों के बिछुओं से भूषित चरण की अँगुलियोंवाली, रत्नों के भूषणों से भूषित, उत्तम रत्नों के मुकुटों से समुज्ज्वल, नासिका के मध्य गजेन्द्रमुक्तालंकार

---

१क. ०त्नप्रकाशसं० । २क. युक्तं र । ३क. र्णलाजाफ० । ४क. ०कपट्कैश्च ।

सिन्दूरबिन्दुना सार्धमलकाधः स्थलोज्ज्वलैः । चारुचम्पकवर्णाभैश्चन्दनद्रवचर्चितैः ॥१०३॥
पीतवस्त्रपरीधानैर्बिम्बाधरमनोहरैः । शरत्पार्वणचन्द्राणां प्रभाजुष्टमुखोज्ज्वलैः ॥१०४॥
शरत्प्रफुल्लपद्मानां शोभामोषणलोचनैः । कस्तूरीपत्रिकायुक्तैः रेखाक्तकज्जलोज्ज्वलैः ॥१०५॥
प्रफुल्लमालतीमालाजालैः कबरशोभितैः । मधुलुब्धमधुघ्राणां समूहैश्चापि संकुलैः ॥१०६॥
चारुणा गमनेनैव गजखञ्जनगञ्जनैः । ॥१०७॥
वक्रभ्रूभङ्गसंयोगश्लक्ष्णस्मितसमन्वितैः । पक्वदाडिमबीजाभदन्तपङ्क्तिविराजितैः ॥१०८॥
खगेन्द्रचञ्चुशोभाढ्यनासिकोन्नतभूषितैः । गजेन्द्रगण्डयुग्माभस्तनभारनतैरिव ॥१०९॥
नितम्बकठिनश्रोणीपीनभारभरानतैः । कन्दर्पशरचेष्टाभिर्जर्जरीभूतमानसैः ॥११०॥
दर्पणैः पूर्णचन्द्रास्यसौन्दर्यदर्शनोत्सुकैः । राधिकाचरणाम्भोजसेवासक्तमनोरथैः ॥१११॥
सुन्दरीणां समूहैश्च रक्षितं राधिकाज्ञया । क्रीडासरोवराणां च लक्षैश्च परिवेष्टितम् ॥११२॥
श्वेतरक्तैर्लोहितैश्च वेष्टितैः पद्मराजितैः । सुकूजद्भिर्मधुघ्राणां समूहैः संकुलैः सदा ॥११३॥
पुष्पोद्यानसहस्रेण पुष्पितेन समन्वितम् । कोटिकुञ्जकुटीरैश्च पुष्पशय्यासमन्वितैः ॥११४॥
भोगद्रव्यसकर्पूरताम्बूलवस्त्रसंयुतैः । रत्नप्रदीपैः परितः श्वेतचामरदर्पणैः ॥११५॥
विचित्रपुष्पमालाभिः शोभितैः शोभितं मुने । तं रासमण्डपं दृष्ट्वा जग्मुस्ते पर्वताद्बहिः ॥११६॥
ततो विचक्षणं रम्यं ददृशुः सुन्दरं वनम् । वनं वृन्दावनं नाम राधामाधवयोः प्रियम् ॥११७॥

---

से सुशोभित तथा सिन्दूर-बिन्दी के साथ बालों के नीचे उज्ज्वल स्थल से युक्त थीं, चारु चम्पा के समान कान्तिपूर्ण एवं चन्दन के द्रव से चर्चित थीं ॥१०१-१०३॥ पीतवस्त्र के पोशाक, मनोहर बिम्बा के समान अधरोष्ठ, शरच्चन्द्र की प्रभा को चुरानेवाले समुज्ज्वल मुख, शरत्कालीन विकसित कमलों की शोभा को चुरानेवाले नेत्र, कस्तूरी-पत्रिका, रेखाक्त काजल, फूली हुई मालती की मालाओं से शोभित केशपाश, मधु के लोभी भौंरों के समूहों और गजराज एवं खंजन की गति के समान सुन्दर चाल, भौंहों को टेढ़ी-सीधी करते समय मन्द मुसुकान, पके अनार के दाने के समान कान्तिपूर्ण दाँतों की पंक्ति और गरुड़ की चोंच के समान ऊँची सुन्दर नासिका से युक्त थीं। गजेन्द्र के युगल गण्डस्थल के समान कान्तिपूर्ण स्तनों के भार से दबी-सी, पीन नितम्ब एवं कठिन श्रोणी के भार से झुकीं-सी, कामबाणों से जर्जर मनवाली और दर्पण में पूर्णचन्द्र के समान सौंदर्यपूर्ण मुख देखने के लिए उत्सुक थीं। राधिका जी के चरण-कमल की सेवा में सदैव मन लगानेवाली उन सुन्दरियों के समूहों से वह (रासमण्डल) सुरक्षित था। उसमें लाखों क्रीड़ा-सरोवर थे, जो श्वेत, रक्त और अति रक्त वर्ण की कमल-पंक्तियों से भूषित थे, पक्षियों का कूजन और भौंरों का गुंजन उसमें सदैव होता रहता था ॥१०४-११३॥ फूले हुए सहस्रों उपवन, पुष्पशय्या-युक्त करोड़ों कुंजों एवं कुटीरों से (रासमंडल) पूर्ण था। भोग्य वस्तु, कपूर, ताम्बूल, वस्त्र, रत्नदीप, श्वेत चामर, दर्पण और विचित्र पुष्पों की मालाओं से सुशोभित था। हे मुने! ऐसे रासमण्डल को देखते हुए वे देवगण पर्वत से बाहर हो गये ॥११४-११६॥ वहाँ राधा-माधव का प्रिय वृन्दावन नामक वन देखा, जो रमणीक एवं अति सुन्दर था ॥११७॥

क्रीडास्थानं तयोरेव कल्पवृक्षचयान्वितम् । विरजातीरनीराक्तैः कम्पितं मन्दवायुभिः ॥११८॥
कस्तूरीयुक्तपत्राब्जैः पुष्पौघैः सुरभीकृतम् । नवपल्लवसंसक्तपरपुष्टरुतैर्युतम् ॥११९॥
कुत्र केलिकदम्बानां कदम्बैः कमनीयकम् । मन्दाराणां चम्पकानां चन्दनानां तथैव च ॥१२०॥
सुगन्धिकुसुमानां च गन्धेन सुरभीकृतम् । आम्राणां [1]नागरङ्गाणां पनसानां तथैव च ॥१२१॥
तालानां नारिकेलानां वन्दैर्वृन्दारकं वनम् । जम्बूनां बदरीणां च खर्जूराणां विशेषतः ॥१२२॥
गुवाकाम्रातकानां च जम्बीराणां च नारद । कदलीनां श्रीफलानां दाडिमानां मनोहरैः ॥१२३॥
सुपक्वफलसंयुक्तैः समूहैश्च विराजितम् । पिप्पलीनां च शालानामश्वत्थानां तथैव च ॥१२४॥
निम्बानां शाल्मलीनां च तित्तिडीनां च शोभनैः । अन्येषां तरुभेदानां संकुलैः संकुलं सदा ॥१२५॥
परितः कल्पवृक्षाणां वृन्दैर्वृन्दैर्विराजितम् । मल्लिकामालतीकुन्दकेतकीमाधवीलताः ॥१२६॥
एतासां च समूहैश्च यूथिकाभिः समन्वितम् । चारुकुञ्जकुटीरैरतैः पञ्चाशत्कोटिभिर्मुने ॥१२७॥
रत्नप्रदीपदीपैश्च धूपेन सुरभीकृतैः । शृङ्गारद्रव्ययुक्तैश्च वासितैर्गन्धवायुभिः ॥१२८॥
चन्दनाक्तैः पुष्पतल्पैर्मालाजालसमन्वितैः । मधुलुब्धमधुभ्राणां कलशब्दैश्च शब्दितम् ॥१२९॥
रत्नालंकारशोभाढ्यैर्गोपीवृन्दैश्च वेष्टितम् । पञ्चाशत्कोटिगोपीभी रक्षितं राधिकाज्ञया ॥१३०॥
द्वात्रिंशत्काननं तत्र रम्यं रम्यं मनोहरम् । वृन्दावनाभ्यन्तरितं निर्जनस्थानमुत्तमम् ॥१३१॥

---

उसमें उन दोनों—राधामाधव के क्रीड़ास्थान को भी देखा, जो कल्पवृक्षों से युक्त और विरजा के तीर पर जलसिक्त मंद वायु से कम्पित हो रहा था। कस्तूरी भरे कमलपत्ते के पुटों और पुष्प-समूहों से सुगन्धित, नवीन पल्लवों में बैठे कोकिल की कूक से युक्त, कहीं क्रीड़ा कदम्ब के समूहों से सुरम्य, मदार, चम्पा, चन्दन वृक्षों तथा सुगन्धित पुष्पों से सुगन्धिमय, आम्र, नारंगी, कटहल, ताड़, नारियल के समूहों से, विशेषकर जामुन, बेर और खजूर के वृक्षों से भूषित था ॥११८-१२२॥ हे नारद ! सुपारी, आभड़ा, नीबू, केला, बेल और अनार के पके एवं उत्तम फलों से युक्त पीपरि, साखू, पीपल, नीम, सेमर एवं इमली तथा अन्य अनेक भाँति के वृक्षों के समूहों से सदा सुशोभित था ॥१२३-१२५॥ वह चारों ओर कल्पवृक्षों के समूहों से सुशोभित, मल्लिका, मालती, कुंद, केतकी तथा माधवी-लताओं के वृन्दों से युक्त था। हे मुने ! उसमें पचास करोड़ कुंज-कुटीर बने थे, जो रत्नों के दीपकों और धूप, सुवासित शृंगार की वस्तुओं से तथा सुगन्धित वायु चन्दन-सिक्त पुष्पशय्या एवं मालाओं से युक्त भौंरों से गुंजित, और रत्नों के भूषणों से सुभूषित गोपियों से घिरे थे। इस प्रकार राधिका की आज्ञा से वह पचास करोड़ गोपियों से सुरक्षित था ॥१२६-१३०॥ उस वृन्दावन के भीतर बत्तीस वन और थे, जो अति रमणीय, मनोहर एवं उत्तम निर्जन स्थान थे ॥१३१॥ हे मुने ! उत्तम पके और स्वादिष्ट फलों से पूर्ण,

---

१ क. ०बङ्गरा० ।

सुपक्वमधुरस्वादुफलैर्वृन्दारकं मुने। गोष्ठानां च गवां चैव समूहैश्च समन्वितम् ॥१३२॥
पुष्पोद्यानसहस्रेण पुष्पितेन सुगन्धिना। मधुलुब्धमधुघ्राणां समूहेन समन्वितम् ॥१३३॥
पञ्चाशत्कोटिगोपानां विलासैश्च विराजितम्। श्रीकृष्णतुल्यरूपाणां सद्रत्नगुण्टितैर्वरैः ॥१३४॥
दृष्ट्वा वृन्दावनं रम्यं ययुर्गोलोकमीश्वराः। परितो वर्तुलाकारं कोटियोजनविस्तृतम् ॥१३५॥
रत्नप्राकारसंयुक्तं चतुर्द्वारान्वितं मुने। गोपानां च समूहैश्च द्वारपालैः समन्वितम् ॥१३६॥
आश्रमं रत्नखचितैर्नानाभोगसमन्वितैः। गोपानां कृष्णभृत्यानां पञ्चाशत्कोटिभिर्युतम् ॥१३७॥
भक्तानां गोपवृन्दानामाश्रमैः शतकोटिभिः। ततोऽधिकसुविस्तीर्णैः सद्रत्नग्रथितैर्युतम् ॥१३८॥
आश्रमैः पार्षदानां च ततोऽधिकविलक्षणैः। अमूल्यरत्नरचितैः संयुक्तं शतकोटिभिः ॥१३९॥
पार्षदप्रवराणां च श्रीकृष्णरूपधारिणाम्। आश्रमैः कोटिभिर्युक्तं सद्रत्नेन विनिर्मितैः ॥१४०॥
राधिकाशुद्धभक्तानां गोपीनामाश्रमैर्वरैः। सद्रत्नरचितैर्दिव्यैर्द्वात्रिंशत्कोटिभिर्युतम् ॥१४१॥
तासां च किङ्करीणां च भवनैः सुमनोहरैः। मणिरत्नादिरचितैः शोभितं दशकोटिभिः ॥१४२॥
शतजन्मतपःपूता भक्ता ये भारते भुवि। हरिभक्तिपरा ये च कर्मनिर्वाणकारकाः ॥१४३॥
स्वप्ने ज्ञाने हरेर्ध्याने निविष्टमानसा मुने। राधाकृष्णेति कृष्णेति प्रजपन्तो दिवानिशम् ॥१४४॥

---

गोशालाओं और गौओं के समूहों से सुशोभित, फूले हुए सुगन्धित पुष्पों से युक्त, सहस्र उपवनों से पूर्ण, मधुलोभी भौंरों के वृन्दों से युक्त और श्रीकृष्ण के तुल्य रूपवाले तथा उत्तम रत्नहार से विभूषित पचास करोड़ गोपों के विविध विलासों से विलसित रमणीय वृन्दावन को देखते हुए देवेश्वरगण गोलोक में पहुंच गये, जो चारों ओर गोलाकार तथा एक करोड़ योजनों में विस्तृत है ।।१३१-१३५।। हे मुने! वह रत्नों की चहारदीवारी से युक्त और चार द्वारों से भूषित है, जहाँ गोपों का समूह द्वारपाल रूप में विराजमान है ।।१३६।। वहाँ श्रीकृष्ण की सेवा में लगे रहनेवाले गोपों के आश्रम भी रत्नों से जटित तथा नाना प्रकार के भोगों से सम्पन्न हैं। उन आश्रमों की संख्या पचास करोड़ है। इनके अतिरिक्त भक्त गोप-समूहों के सौ करोड़ आश्रम हैं, जिनका निर्माण पूर्वोक्त आश्रमों से भी सुन्दर है। वे सब-के-सब उत्तम रत्नों से गठित हैं। उनसे भी अधिक विलक्षण तथा बहुमूल्य रत्नों द्वारा रचित आश्रम पार्षदों के हैं, जिनकी संख्या दस करोड़ है। पार्षदों में भी जो प्रमुख हैं, वे श्रीकृष्ण के समान रूप धारण करके रहते हैं। उनके लिए उत्तम रत्नों से निर्मित एक करोड़ आश्रम हैं ।।१३७-१४०।। राधिका में विशुद्ध भक्ति रखनेवाली गोपांगनाओं के बत्तीस करोड़ दिव्य एवं श्रेष्ठ आश्रम हैं, जिनकी रचना उत्तम श्रेणी के रत्नों द्वारा हुई है। उनकी जो किंकरियाँ हैं, उनके लिए भी मणिरत्न आदि के द्वारा बड़े सुन्दर भवन बनाये गये हैं, जिनकी संख्या दस करोड़ है ।।१४१-१४२।। हे मुने! भारत-भूतल पर रहनेवाले जो (भक्तजन) सैकड़ों जन्मों के तप से पूत, हरिभक्तिपरायण, कर्मबन्धन से मुक्त और सोते-जागते सब समय एकमात्र भगवान् के ध्यान में मन लगाये रात-दिन राधाकृष्ण, कृष्ण—यह जपते रहते हैं,

तेषां श्रीकृष्णभक्तानां निवासैः सुमनोहरैः । सद्रत्नमणिनिर्माणैर्नानाभोगसमन्वितैः ॥१४५॥
पुष्पशय्यापुष्पमालाश्वेतचामरशोभितैः । रत्नदर्पणशोभाढ्यैर्हरिन्मणिसमर्पितैः ॥१४६॥
अमूल्यरत्नकलशसमूहान्वितशेखरैः । सूक्ष्मवस्त्राभ्यन्तरितैः संयुक्तं शतकोटिभिः ॥१४७॥
देवास्तमद्भूतं दृष्ट्वा कियद्दूरं ययुर्मुदा । तत्राक्षयवटं रम्यं ददृशुर्जगदीश्वराः ॥१४८॥
पञ्चयोजनविस्तीर्णमूर्ध्वं तद्द्विगुणं मुने । सहस्रस्कन्धसंयुक्तशाखासंस्थासमन्वितम् ॥१४९॥
रक्तपक्वफलाकीर्णं शोभितं रत्नवेदिभिः । कृष्णस्वरूपांस्तन्मूले ददृशुर्वल्लभाञ्छिशून् ॥१५०॥
पीतवस्त्रपरीधानान्क्रीडासक्तमनोहरान् । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गान्रत्नभूषणभूषितान् ॥१५१॥
ददृशुस्तत्र देवेशाः पार्षदप्रवरान्हरेः । ततोऽविदूरे ददृशु राजमार्गं मनोहरम् ॥१५२॥
सिन्दूराकारमणिभिः परितो रचितं मुने । इन्द्रनीलैः पद्मरागैर्हीरकै रुचकैस्तथा ॥१५३॥
निर्मितैर्वेदिभिर्युक्तं परितो रत्नमण्डलम् । चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवचर्चितम् ॥१५४॥
दधिपूर्णलाजफलपुष्पदूर्वाङ्कुरान्वितम् । सूक्ष्मसूत्रग्रन्थियुक्तश्रीखण्डपल्लवान्वितम् ॥१५५॥
रम्भास्तम्भसमूहैश्च कुङ्कुमावर्तविराजितम् । सद्रत्नमण्डलघटैः फलशाखासमन्वितैः ॥१५६॥
सिन्दूरकुङ्कुमाक्तैश्च गन्धचन्दनचर्चितैः । भूषितैः पुष्पमालाभिः पादपैः परिभूषितम् ॥१५७॥

---

उन श्रीकृष्ण-भक्तों के लिए भी अतिमनोहर, उत्तम रत्नों एवं मणियों से सुरचित और नाना भोग-वस्तुओं से पूर्ण निवास-स्थान हैं, जहाँ पुष्पशय्या, पुष्पों की मालाएँ, श्वेत चामरसमूह, रत्नों के दर्पण, मरकतमणिसमूह तथा अमूल्य रत्नों के कलश-समूहों से भूषित शिखर हैं और सूक्ष्म वस्त्रों के आवरण पड़े हुए हैं। ऐसे भवनों की संख्या भी सौ करोड़ है ॥१४३-१४७॥ ब्रह्मा आदि जगदीश्वर एवं देवगण इस प्रकार सुप्रसन्न मन से देखते हुए कुछ ही दूर गये कि एक रमणीक अक्षयवट (वरगद) का वृक्ष उन्हें दिखायी पड़ा। उस वृक्ष का विस्तार पाँच योजन और ऊँचाई दस योजन है। उसमें सहस्रों तनें और असंख्य शाखाएँ शोभा पाती हैं ॥१४८-१४९॥ वह रक्तवर्ण के पके फल से आच्छन्न तथा रत्नों की वेदियों से सुशोभित है। उस वृक्ष के नीचे कृष्ण के समान स्वरूपवाले प्यारे बच्चे दिखायी पड़े, जो पीत वस्त्र पहने, क्रीड़ा में मग्न, सर्वांग में चन्दन-चर्चित और रत्नों के भूषणों से भूषित थे ॥१५०-१५१॥ देवेश्वरों ने वहाँ भगवान् के श्रेष्ठ पार्षदों को देखा। मुने ! वहाँ से थोड़ी दूर पर उन्हें एक राजमार्ग दिखायी दिया, जो सिन्दूर के समान लाल मणियों से सुरचित था, पद्मराग, हीरा और रुचक आदि से बनी वेदियाँ उस राजमार्ग के उभय पार्श्व को सुशोभित कर रही थीं। दोनों ओर रत्नमय विश्राम-मण्डप शोभा पाते थे। उस मार्ग पर चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुम के द्रव से मिश्रित जल का छिड़काव किया गया था। पल्लव, लावा, फल, पुष्प, दूर्वा तथा सूक्ष्म सूत्र में गुँथे हुए चन्दन-पल्लवों की वन्दनवार से युक्त सहस्रों कदली-स्तम्भों के समूह उस राजमार्ग के तटप्रान्त की शोभा बढ़ाते थे। उन सब पर कुंकुम-केसर छिड़के गये थे। जगह-जगह उत्तम रत्नों के बने हुए मंगल-घट स्थापित थे, उनमें फल और शाखाओं सहित पल्लव शोभा पाते थे। सिन्दूर, कुंकुम, गन्ध और चन्दन से वे चर्चित थे। पुष्पमालाओं से विभूषित वृक्ष राजमार्ग की शोभा बढ़ा रहे थे। क्रीड़ा-मग्न गोपिकाएँ इस मार्ग को घेरे खड़ी थीं। बहुमूल्य

---

क. •शुर्वल्लवाञ्छि० ।

गोपिकानां समूहैश्च क्रीडासक्तैश्च वेष्टितम् । बहुमूल्येन रत्नेन रत्नसोपाननिर्मितान् ॥१५८॥
वह्निशौचांशुकं रम्यैः श्वेतचामरदर्पणैः । रत्नतल्पविचित्रैश्च पुष्पमाल्यैर्विराजितान् ॥१५९॥
षोडशद्वारसंयुक्तान्द्वारपालैश्च रक्षितान् । परितः परिखायुक्तान्रत्नप्राकारवेष्टितान् ॥१६०॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवचर्चितान् । गृहान्मनोरमान्दृष्ट्वा ते देवा गमनोत्सुकाः ॥१६१॥
जग्मुः शीघ्रं कियद्दूरं ददृशुः सुन्दरं ततः । आश्रमं राधिकायाश्च रासेश्वर्याश्च नारद ॥१६२॥
देवाधिदेव्या गोपीनां वरायाश्चारुनिर्मितम् । प्राणाधिकायाः कृष्णस्य रम्यद्रव्यमनोहरम् ॥१६३॥
सर्वानिर्वचनीयं च पण्डितैर्न निरूपितम् । सुचारुवर्तुलाकारं षड्गव्यूतिप्रमाणकम् ॥१६४॥
शतमन्दिरसंयुक्तं ज्वलितं रत्नतेजसा । अमूल्यरत्नसाराणां चयैर्विरचितं वरम् ॥१६५॥
दुर्लङ्घ्याभिर्गभीराभिः परिखाभिः सुशोभितम् । कल्पवृक्षैः परिवृतं पुष्पोद्यानशतान्तरम् ॥१६६॥
सुमूल्यरत्नखचितप्राकारैः परिवेष्टितम् । सद्रत्नवेदिकायुक्तैर्युक्तं द्वारैश्च सप्तभिः ॥१६७॥
संयुक्तं रत्नचित्रैश्च विचित्रैर्वर्तुलं मुने । प्रधानसप्तद्वारेभ्यः क्रमशः क्रमशो मुने ॥१६८॥
सर्वतोऽपि ततस्तत्र षोडशद्वारसंयुतम् । देवा दृष्ट्वा च प्राकारं सहस्रधनुरुच्छ्रितम् ॥१६९॥
सद्रत्नक्षुद्रकलशसमूहैः सुमनोहरैः । प्रदीप्तं तेजसा रम्यं परमं विस्मयं ययुः ॥१७०॥

---

रत्नों से वहाँ मणिमय सोपानों का निर्माण किया गया था ॥१५२-१५८॥ वहाँ कुल मिलाकर सोलह द्वार थे, जो अग्निशुद्ध रमणीय चिन्मय वस्त्रों, श्वेत चामरों, दर्पणों, रत्नमयी शय्याओं तथा विचित्र पुष्पमालाओं से शोभायमान थे। बहुत-से द्वारपाल उन प्रदेशों की रक्षा करते थे। उनके चारों ओर खाइयाँ थीं और लाल रंग के परकोटों से वे घिरे हुए थे। इन मनोरम प्रदेशों का दर्शन करके देवता वहाँ से आगे बढ़ने को उद्यत हुए। वे शीघ्रता से कुछ दूर तक गये। वहाँ उन्हें रासेश्वरी राधा का आश्रम दिखायी पड़ा। नारद! देवताओं की आदि देवी गोपीशिरोमणि, श्रीकृष्णप्राणाधिका का वह निवासस्थान बड़ा ही सुन्दर बनाया गया था। रमणीय द्रव्यों के कारण उसकी मनोहरता बहुत बढ़ गयी थी। वहाँ का सब-कुछ सबके लिए अनिर्वचनीय था। बड़े-से-बड़े विद्वान् भी उस स्थान का सम्यक् वर्णन नहीं कर सके हैं। वह मनोहर आश्रम गोलाकार बना है तथा उसका विस्तार बारह कोस का है। उसमें सौ मन्दिर बने हुए हैं। वह अद्भुत आश्रम दिव्य रत्नों के तेज से जगमगाता रहता है। बहुमूल्य रत्नों के सारभाग से उसकी रचना हुई है। वह दुर्लंघ्य एवं गहरी खाइयों से सुशोभित है। कल्पवृक्ष उस आश्रम को सब ओर से घेरे हुए हैं। उसके भीतर सैकड़ों पुष्पोद्यान शोभा पाते हैं। बहुमूल्य रत्नों द्वारा निर्मित परकोटों से वह आश्रम-मण्डल घिरा हुआ है। उसमें सात दरवाजे हैं, जो सभी उत्तम रत्नों की बनी हुई वेदिकाओं से युक्त हैं ॥१५९-१६७॥ उन दरवाजों में विचित्र रत्न जड़े गये हैं और नाना प्रकार के चित्र बने हैं। क्रमशः बने हुए इन सातों द्वारों को पार करने पर वह आश्रम सोलह द्वारों से युक्त है। देवताओं ने देखा—उसकी चहारदीवारी सहस्र धनुष ऊँची है। उत्तम रत्नों के बने हुए अत्यन्त मनोहर छोटे-छोटे कलशों के समुदाय अपने तेज से उस परकोटे को उद्भासित कर रहे हैं। उसे देखकर देवगण बहुत विस्मित हुए ॥१६८-१७०॥

ततः प्रदक्षिणीकृत्य कियद्दूरं ययुर्मुदा । पुरतो गच्छतां तेषां पश्चाद्भूतस्तदाश्रमः ।।१७१।।
गोपानां गोपिकानां च ददृशुश्चाऽऽश्रमान्परान् । अमूल्यरत्नरचिताञ्छतकोटिमितान्मुने ।।१७२।।
दर्शं दर्शं च परितो गोपानां सर्वमाश्रमम् । गोपिकानां चापरं वा रम्यं रम्यं नवं नवम् ।।१७३।।
गोलोकं निखिलं दृष्ट्वा पुलकाङ्गं ययुः सुराः । तदेव वर्तुलाकारं रम्यं वृन्दावनं वनम् ।।१७४।।
ददृशुः शतशृङ्गं च तद्बहिर्विरजानदीम् । विरजां तां ययुर्देवा ददृशुः शून्यमेव च ।।१७५।।
वाय्वाधारं च गोलोकं सद्रत्नमयमद्भुतम् । ईश्वरेच्छाविनिर्माणं राधिकाज्ञानुबन्धनात् ।।१७६।।
युक्तं सहस्रैः सरसां केवलं मङ्गलालयम् । नृत्यं च ददृशुस्तत्र देवाश्च सुमनोहरम् ।।१७७।।
सुतानं चारुसंगीतं राधाकृष्णगुणान्वितम् । श्रुत्वैव गीतपीयूषं मूर्च्छामापुः सुरा मुने ।।१७८।।
क्षणेन चेतनां प्राप्य ते देवाः कृष्णमानसाः । ददृशुः परमाश्चर्यं स्थाने स्थाने मनोहरम् ।।१७९।।
ददृशुर्गोपिकाः सर्वा नानावेषविधायिकाः । काश्चिन्मृदङ्गहस्ताश्च काश्चिद्वीणाकरा वराः ।।१८०।।
काश्चिच्चामरहस्ताश्च करतालकराः पराः । काश्चिद्यन्त्रवाद्यहस्ता रत्ननूपुरशोभिताः[1] ।।१८१।।
सद्रत्नकिंकिणीजालशब्देन शब्दिता वराः । काश्चिन्मस्तककुम्भाश्च नृत्यभेदमनोरथाः ।।१८२।।
पुंवेषनायिका काश्चित्काश्चित्तासां च नायिकाः । कृष्णवेषधराः काश्चिद्राधावेषधराः पराः ।।१८३।।

वे उसकी परिक्रमा करते हुए बड़ी प्रसन्नता के साथ कुछ दूर और आगे गये । सामने चलते हुए वे इतने आगे बढ़ गये कि वह आश्रम उनसे पीछे हो गया । तदनन्तर उन्होंने गोपों और गोपिकाओं के आश्रम देखे, जिनमें बहुमूल्य रत्न जड़े हुए हैं । उनकी संख्या सौ करोड़ है । इस प्रकार सब ओर गोपों और गोपिकाओं के सम्पूर्ण आश्रम को तथा अन्य नये-नये रमणीय स्थलों को देखते-देखते उन देवेश्वरों ने समस्त गोलोक का निरीक्षण किया । वह सब देखकर उनके शरीर में रोमांच हो आया । फिर गोलाकार एवं रमणीक वृन्दावन, सौ शिखर-वाला पर्वत और उसके बाहर विरजा नदी दिखायी दी । विरजा के बाद देवताओं ने सब कुछ सूना ही देखा । वह अद्भुत गोलोक उत्तम रत्नों से निर्मित तथा वायु के आधार पर स्थित था । राधिका की आज्ञा का अनु-सरण करते हुए परमेश्वर श्रीकृष्ण की इच्छा से उसका निर्माण हुआ है । वह केवल मंगल का धाम है और सहस्रों सरोवरों से सुशोभित है । मुने ! देवों ने वहाँ अत्यन्त मनोहर नृत्य तथा सुन्दर ताल से युक्त रमणीय संगीत देखा, जहाँ राधा-कृष्ण का गुणानुवाद हो रहा था । उस अमृतोपम गीत को सुनते ही वे देवता मूर्च्छित हो गये ।।१७१-१७८।। फिर क्षणभर में सचेत हो मन-ही-मन श्रीकृष्ण का चिन्तन करते हुए उन्होंने स्थान-स्थान पर परम आश्चर्यमय मनोहर दृश्य देखे । नाना प्रकार के वेश धारण किये समस्त गोपिकाएँ उनके दृष्टि-पथ में आयीं । कोई अपने हाथों में मृदंग बजा रही थीं तो किन्हीं के हाथों से वीणा-वादन हो रहा था । किन्हीं के हाथ में चवँर थे तो किन्हीं के हाथों में करताल । किन्हीं के हाथों में यन्त्रवाद्य शोभा पा रहे थे । कितनी ही रत्नमय नूपुरों की झनकार फैला रही थीं । बहुतों की रत्नमयी काञ्ची बज रही थी, जिसमें क्षुद्र घंटिकाओं के शब्द गूँज रहे थे । किन्हीं के माथे पर जल से भरे घड़े थे, जो भाँति-भाँति के नृत्य के प्रदर्शन का मनोरथ लिये खड़ी थीं । कोई नायिका पुरुष-वेश में थीं तो कोई उनकी नायिका बनी थीं । कोई कृष्ण का वेश तो कोई राधा का वेश धारण किये हुई थीं । कोई संयोग से पृथक् हो रही थीं तो कोई आलिंगन में निरत थीं और कोई क्रीड़ा

१ क. शब्दिताः ।

काश्चित्संयोगविरताः काश्चिदालिङ्गनेरताः। क्रीडासक्ताश्च ता दृष्ट्वा सस्मिता जगदीश्वराः ॥१८४॥
प्रगच्छन्तः कियद्दूरं ददृशुश्चाऽऽश्रमान्बहून्। राधासखीनां गेहांश्च प्रधानानां च नारद ॥१८५॥
रूपेणैव गुणेनैव वेषेण यौवनेन च। सौभाग्येनैव वयसा सदृशीनां च तत्र वै ॥१८६॥
त्रयस्त्रिंशद्वयस्याश्च राधिकायाश्च गोपिकाः। वेषानिर्वचनीयाश्च तासां नामानि च शृणु ॥१८७॥
सुशीला च शशिकला यमुना माधवी रती। कदम्बमाला कुन्ती च जाह्नवी च स्वयंप्रभा ॥१८८॥
चन्द्रमुखी[1] च सावित्री गायत्री सुमुखी सुखा। पद्मालया पारिजाता गौरी च सर्वमङ्गला ॥१८९॥
कालिका कमला दुर्गा भारती च सरस्वती। गङ्गाऽम्बिका मधुमती चम्पापर्णा च सुन्दरी ॥१९०॥
कृष्णप्रिया सती चैव नन्दिनी नन्दनेति च। एताः समानाः सद्रत्नरचिता राधिकाप्रियाः ॥१९१॥
एतासां समरूपाणां रत्नधातुविचित्रतान्। नानाप्रकारचित्रेण चित्रितान्सुमनोहरान् ॥१९२॥
अमूल्यरत्नकलशसमूहैः शिखरोज्ज्वलान्। सद्रत्नरचिताञ्छुभ्रानाश्रमान्ददृशुस्तथा ॥१९३॥
ब्रह्माण्डाद्बहिरूर्ध्वं च नास्ति लोकस्तदूर्ध्वकः। ऊर्ध्वं शून्यमयं सर्वं तदन्ता सृष्टिरेव च ॥१९४॥
रसातलेभ्यः सप्तभ्यो नास्त्यधः सृष्टिरेव च। तदधश्च जलं ध्वान्तमगन्तव्यमदृश्यकम् ॥१९५॥
ब्रह्माण्डान्तं तद् बहिश्च सर्वं मत्तो निशामय ॥१९६॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० गोलोकवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

---

में तन्मय हो रही थीं। उन्हें देखकर जगदीश्वर मुसकराये ॥१७९-१८४॥ नारद ! कुछ दूर और आगे जाने पर उन्होंने वहुत-से आश्रम देखे, जो राधा की प्रधान सखियों के आवास-स्थान थे। वे रूप, गुण, वेश, यौवन, सौभाग्य और अवस्था में एक दूसरी के समान थीं। राधा की समवयस्क सखियाँ तैंतीस गोपियाँ हैं, जिनकी वेशभूषा अनिर्वचनीय है। उनके नाम सुनो ॥१८५-१८७॥ सुशीला, शशिकला, यमुना, माधवी, रती, कदम्ब-माला, कुन्ती, जाह्नवी, स्वयंप्रभा, चन्द्रमुखी, सावित्री, गायत्री, सुमुखी, सुखा, पद्मालया, पारिजाता, गौरी, सर्व-मंगला, कालिका, कमला, दुर्गा, भारती, सरस्वती, गंगा, अम्बिका, मधुमती, चम्पा, अपर्णा, सुन्दरी, कृष्णप्रिया, सती, नन्दिनी और नन्दना--ये सव-की-सब समान रूपवाली हैं। इनके शुभ आश्रम रत्नों और धातुओं से चित्रित हैं। नाना प्रकार के चित्रों से चित्रित होने के कारण वे अत्यन्त मनोहर प्रतीत होते हैं। उनके शिखर बहुमूल्य रत्नमय कलश-समूहों से जाज्वल्यमान हैं। उत्तम रत्नों द्वारा उनकी रचना हुई है ॥१८८-१९३॥ गोलोक ब्रह्माण्ड से वाहर और ऊपर है। उससे ऊपर दूसरा कोई लोक नहीं है। ऊपर सब कुछ शून्य ही है। वहीं तक सृष्टि की अन्तिम सीमा है। सात रसातलों से नीचे सृष्टि नहीं है। रसातलों से नीचे जल और अन्धकार है, जो अगम्य और अदृश्य है। ब्रह्माण्ड पर्यन्त और उससे वाहर भी सब कुछ मुझसे सुन लो ॥१९४-१९६॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्ण-जन्मखण्ड में नारद-नारायण के संवाद में
गोलोक वर्णन नामक चौथा अध्याय समाप्त ॥४॥

---

१. ०खी पद्ममुखा सावित्री सुमुखा सु०।

# अथ पञ्चमोऽध्यायः

## नारायण उवाच

गोलोकं निखिलं दृष्ट्वा देवास्ते हृष्टमानसाः । पुनराजग्मू राधायाः प्रधानद्वारमेव च ॥१॥
सद्रत्नमणिनिर्माणं वेदिकायुग्मसंयुतम् । हरिद्राकारमणिना वज्रसंमिश्रितेन च ॥२॥
अमूल्यरत्नरचितकपाटेन विभूषितम् । द्वारे नियुक्तं ददृशुर्वीरभानुमनुत्तमम् ॥३॥
रत्नसिंहासनस्थं च रत्नाभरणभूषितम् । पीतवस्त्रपरीधानं सद्रत्नमुकुटोज्ज्वलम् ॥४॥
द्वारं चित्रविचित्रेण विचित्रं परमाद्भुतम् । सर्वं निवेदनं चक्रुर्देवा दौवारिकं मुदा ॥५॥
तानुवाच द्वारपालो निःशंकं त्रिदशेश्वरान् । नाहं विनाऽऽज्ञया गन्तुं दातुं सांप्रतमीश्वरः ॥६॥
किंकरान्प्रेषयामास श्रीकृष्णस्थानमेव च । हरेरनुज्ञां संप्राप्य ददौ गन्तुं सुरान्मुने ॥७॥
तं संभाष्य ययुर्देवा द्वितीयं द्वारमुत्तमम् । ततोऽधिकं विचित्रं च सुन्दरं सुमनोहरम् ॥८॥
द्वारे नियुक्तं ददृशुश्चन्द्रभानुं च नारद । किशोरं श्यामलं चारुस्वर्णवेत्रधरं वरम् ॥९॥
रत्नसिंहासनस्थं च रत्नभूषणभूषितम् । गोपानां च समूहेन पञ्चलक्षेण शोभितम् ॥१०॥
तं संभाष्य ययुर्देवास्तृतीयं द्वारमुत्तमम् । ततोऽतिसुन्दरं चित्रं ज्वलन्तं मणितेजसा ॥११॥
द्वारे नियुक्तं ददृशुः सूर्यभानुं च नारद । द्विभुजं मुरलीहस्तं किशोरं श्यामसुन्दरम् ॥१२॥

---

# अध्याय ५

## श्रीकृष्ण का स्तोत्रराज

**नारायण बोले**—समस्त गोलोक को देखते हुए वे देव लोग अति प्रसन्न होकर पुनः राधा जी के प्रधान द्वार पर आये ॥१॥ वह उत्तम रत्नों और मणियों से सुरचित, युगल वेदी से संयुक्त, हरदी के समान रंगवाली मणि, हीरे एवं अमूल्य रत्नों के बने (किवाड़) से विभूषित था। वहाँ परमोत्तम वीरभानु नामक द्वारपाल को देखा, जो रत्नसिंहासन पर स्थित, रत्नों के भूषणों से भूषित, पीतवस्त्र पहने एवं उत्तम रत्न के बने मुकुट से समुज्ज्वल था ॥२-४॥ विचित्र चित्रों से विचित्र एवं परम अद्‌भुत दरवाजे पर बैठे हुए उस द्वारपाल से देवों ने प्रसन्न मन से सब अपना वृत्तान्त निवेदन किया, जिसे सुनकर द्वारपाल ने निःशंक होकर उन देवों से कहा कि—बिना आज्ञा के मैं भीतर जाने देने में असमर्थ हूँ ॥५-६॥ हे मुने ! उसने सेवकों को भेजकर भगवान् श्रीकृष्ण की आज्ञा प्राप्त की और देवों को भीतर जाने दिया ॥७॥ देव लोग उससे अनुज्ञा प्राप्त कर आगे बढ़े तो दूसरा दरवाजा देखा जो उससे भी अधिक विचित्र, सुन्दर एवं अति मनोहर था ॥८॥ हे नारद ! उस द्वार पर चन्द्रभानु नामक द्वारपाल स्थित था, जो किशोर, श्यामल, सुवर्ण का सुन्दर बेंत लिये, रत्नसिंहासन पर स्थित, रत्नभूषण-भूषित एवं पाँच लाख गोपों से सुशोभित हो रहा था ॥९-१०॥ उससे कहकर देवगण तीसरे दरवाजे पर पहुँचे, जो उससे भी अति सुन्दर, चित्रविचित्र और मणि के तेज से प्रदीप्त था ॥११॥ हे नारद ! उस दरवाजे पर नियुक्त सूर्यभानु नामक द्वारपाल को देखा, जो दो भुजाओंवाला, हाथ में मुरली लिये, किशोररूप, श्यामसुन्दर, मणि के युगल कुण्डल से

मणिकुण्डलयुग्मेन कपोलस्थलराजितम्। रत्नदण्डकरं श्रेष्ठं प्रेष्यं राधेशयोः परम् ॥१३॥
नवलक्षेण गोपानां वेष्टितं च नृपेन्द्रवत्। तं संभाष्य ययुर्देवाश्चतुर्थं द्वारमेव च ॥१४॥
तेभ्यो विलक्षणं रम्यं सुदीप्तं मणितेजसा। अत्यद्भुतं विचित्रेण भूषितं सुमनोहरम् ॥१५॥
द्वारे नियुक्तं ददृशुर्वसुभानुं व्रजेश्वरम्। किशोरं सुन्दरवरं मणिदण्डकरं परम् ॥१६॥
रत्नसिंहासनस्थं च रत्नभूषणभूषितम्। पक्वबिम्बाधरोष्ठं च सस्मितं सुमनोहरम् ॥१७॥
तं संभाष्य ययुर्देवाः पञ्चमं द्वारमेव च। वज्रभित्तिस्थितैश्चित्रविचित्रैर्ज्वलितं परम् ॥१८॥
द्वारपालं च ददृशुर्देवभानुं च तत्र वै। चारुसिंहासनस्थं च रत्नभूषणभूषितम् ॥१९॥
मयूरपिच्छचूडं च रत्नमालाविभूषितम्। कदम्बपुष्पसंसक्तसद्रत्नकुण्डलोज्ज्वलम् ॥२०॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवचर्चितम्। नृपेन्द्रवरतुल्यं च दशलक्षप्रजान्वितम् ॥२१॥
तं वेत्रपाणिं संभाष्य ययुर्देवा मुदाऽन्विताः। विलक्षणं द्वारषट्कं चित्रराजिविराजितम् ॥२२॥
वज्रभित्तियुग्मयुक्ते पुष्पमाल्यविभूषिते। द्वारे नियुक्तं ददृशुः शुक्रभानुं व्रजेश्वरम् ॥२३॥
नानालंकारशोभाढ्यं दशलक्षप्रजान्वितम्। श्रीखण्डपल्लवासक्तकपोलं कुण्डलोज्ज्वलम् ॥२४॥
तूर्णं सुरास्तं संभाष्य ययुर्द्वारं च सप्तमम्। नानाप्रकार चित्रं च षड्भ्यश्चातिविलक्षणम् ॥२५॥
द्वारे नियुक्तं ददृशू रत्नभानुं हरेः प्रियम्। चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं पुष्पमालाविभूषितम् ॥२६॥
भूषितं भूषणैं रम्यैर्मणिरत्नमनोहरैः ॥२७॥

---

सुशोभित कपोलवाला एवं हाथ में रत्नदण्ड लिये था। राधामाधव का वह सेवक नौ लाख गोपों से आवृत होकर महाराज की भाँति सुसज्जित था। उससे कहकर देव लोग चौथे द्वार पर पहुँचे, जो उससे भी रम्य एवं विलक्षण, मणि-तेज से देदीप्यमान्, महान् अद्भुत, विचित्र रत्न से भूषित और अति मनोहर था। वहाँ वसुभानु नामक द्वारपाल उन्हें दिखायी पड़ा, जो व्रजेश्वर, किशोर, सर्वसुन्दर एवं हाथ में परमसुन्दर मणिदण्ड लिये था ॥१२-१६॥ वह रत्नसिंहासन पर स्थित, रत्नों के भूषणों से भूषित, पके बिम्बाफल के समान अधरोष्ठवाला, मन्दहासयुक्त और अतिमनोहर था। उससे कहकर देव लोग आगे पाँचवें द्वार पर पहुँचे, जो हीरे की दीवालों पर बने चित्र-विचित्र चित्रों से अति समुज्ज्वल था ॥१७-१८॥ वहाँ देवभानु नामक द्वारपाल दिखायी पड़ा, जो चारु रत्नसिंहासन पर स्थित, रत्नभूषण से भूषित, मोरपंख का मुकुट तथा रत्नमाला पहने, कदम्बपुष्प लगे उत्तम रत्न के कुण्डल से समुज्ज्वल, चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, कुंकुम के द्रव से चर्चित तथा दस लाख गोपों समेत श्रेष्ठ महाराज के समान था ॥१९-२१॥ उससे आज्ञा प्राप्त कर देव लोग छठे दरवाजे पर पहुँचे, जो विलक्षण तथा चित्रपंक्तियों से सुशोभित था और उसके दोनों ओर हीरे की दीवालों पर पुष्पमालाएँ शोभा वृद्धि कर रही थीं। वहाँ व्रजाधीश्वर द्वारपाल शुक्रभानु उन्हें दिखायी पड़ा, जो अनेक भाँति के अलंकारों से भूषित, दस लाख गोपों के नायक तथा चन्दन-पल्लव-युक्त कुण्डल से समुज्ज्वल था। उससे शीघ्रता से कहकर देव लोग सातवें द्वार पर गये, जो विभिन्न प्रकार से चित्रित और छहों से अति विलक्षण था! वहाँ भगवान् का प्रिय रत्नभानु नामक द्वारपाल दिखायी पड़ा, जो सर्वांग में चन्दन-चर्चित, पुष्पों की माला से भूषित, मणियों और रत्नों के रमणीक एवं अति मनोहर भूषणों से भूषित था ॥२२-२७॥

गोपैर्द्वादशलक्षैश्च राजेन्द्रमिव राजितम् । रत्नसिंहासनस्थं च स्मेराननसरोरुहम् ॥२८॥
तं वेत्रहस्तं संभाष्य जग्मुर्देवेश्वरा मुदा । विचित्रमष्टमं द्वारं सप्तभ्योऽपि विलक्षणम् ॥२९॥
दौवारिकं ते ददृशुः सुपार्श्वं सुमनोहरम् । सस्मितं सुन्दरवरं श्रीखण्डतिलकोज्ज्वलम् ॥३०॥
बन्धुजीवाधरोष्ठं च रत्नकुण्डलमण्डितम् । सर्वालंकारशोभाढ्यं रत्नदण्डवरं वरम् ॥३१॥
गोपैर्द्वादशलक्षैश्च किशोरैश्च समन्वितम् । ततः शीघ्रं ययुर्देवा नवमं द्वारमीप्सितम् ॥३२॥
वज्रसद्रत्नरचितं चतुर्वेदिसमन्वितम् । अपूर्वचित्ररचितं मालाजालैर्विराजितम् ॥३३॥
द्वारपालं च ददृशुः सुबलं[1] ललिताकृतिम् । नानाभूषणशोभाढ्यं भूषणार्हं मनोहरम् ॥३४॥
व्रजैर्द्वादशलक्षैश्च संयुक्तं सुमनोहरम् । तं दण्डहस्तं संभाष्य सुरा द्वारान्तरं ययुः ॥३५॥
विशिष्टं दशमद्वारं दृष्ट्वा ते विस्मयं ययुः । सर्वानिर्वचनीयं चाप्यदृष्टमश्रुतं मुने ॥३६॥
ददृशुर्द्वारपालं च सुदामानं च सुन्दरम् । अनिर्वचनीयरूपं च कृष्णतुल्यं मनोहरम् ॥३७॥
गोपविंशतिलक्षाणां समूहैः परिवारितम् । तं दण्डहस्तं दृष्ट्वैव जग्मुर्द्वारान्तरं सुराः ॥३८॥
द्वारमेकादशाख्यं च सुचित्रं महदद्भुतम् । द्वारपालं च तत्रस्थं श्रीदामानं व्रजेश्वरम् ॥३९॥
राधिकापुत्रतुल्यं च पीतवस्त्रेण भूषितम् । अमूल्यरत्नरचितरम्यसिंहानस्थितम् ॥४०॥
अमूल्यरत्नभूषाभिर्भूषितं सुमनोहरम् । चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमेन विराजितम् ॥४१॥

---

वह बारह लाख गोपों से युक्त, राजेन्द्र की भाँति विराजमान, रत्नसिंहासन पर स्थित एवं विकसित मुखारविन्द से युक्त था। उस वेत्रपाणि (द्वारपाल) से कहकर देव लोग आगे आठवें द्वार पर गये, जो सातों से भी विलक्षण था ॥२८-२९॥ वहाँ सुपार्श्व नामक अतिमनोहर द्वारपाल दिखायी पड़ा, जो मन्दहास से युक्त, श्रेष्ठ, सुन्दर, श्रीखण्ड (चन्दन) की तिलक से समुज्ज्वल, बन्धुजीव (दुपहरिया) पुष्प के समान अधरोष्ठवाला, रत्नकुण्डल से सुभूषित, समस्त अलंकारों से सुशोभित, तथा श्रेष्ठ रत्नखण्ड लिये स्थित था ॥३०-३१॥ उसके साथ बारह लाख किशोर गोप थे। उससे कहकर देवगण आगे अभीष्ट नवें द्वार पर पहुँचे, जो हीरे आदि उत्तम रत्नों की बनी चार वेदियों से युक्त, अपूर्व एवं चित्र-विचित्र मालाओं के समूह से विराजमान था। वहाँ सुबल नामक ललित रूपवाला द्वारपाल दिखायी पड़ा, जो अनेक भाँति के भूषणों से भूषित, भूषणों के योग्य, मनोहर, बारह लाख गोपों से युक्त, अति मनोहर एवं दण्ड हाथ में लिये स्थित था। उसकी आज्ञा से देवगण आगे विशिष्ट दसवें द्वार पर पहुँचे। उसे देख देवों को महान् आश्चर्य हुआ। हे मुने! वह सबसे अनिर्वचनीय, अदृष्ट और अश्रुत है ॥३२-३६॥ वहाँ सुदामा नामक सुन्दर द्वारपाल उन्हें दिखायी पड़ा, जो अनिर्वचनीय रूपवाला, कृष्ण के समान मनोहर, बीस लाख गोपों से युक्त और दण्ड हाथ में लिये वर्तमान था, उसे देखकर देवगण आगे ग्यारहवें द्वार पर पहुँचे, जो अति विचित्र और महान् अद्भुत था। वहाँ श्रीदामा नामक व्रजेश द्वारपाल दिखायी पड़ा, जो राधिका जी के पुत्र के समान, पीताम्बर भूषित, अमूल्य रत्नों के बने उत्तम सिंहासन पर स्थित,

---

१ क. सुवर्णं ।

गण्डस्थलकपोलार्हसद्रत्नकुण्डलोज्ज्वलम् । सद्रत्नश्रेष्ठरचितविचित्रमुकुटोज्ज्वलम् ॥४२॥
प्रफुल्लमालतीमालाजालैः सर्वाङ्गभूषितम् । कोटिगोपैः परिवृतं राजेन्द्राधिकमुज्ज्वलम् ॥४३॥
तं संभाष्य ययुर्द्वारं द्वादशाख्यं सुरा मुदा । अमूल्यरत्नरचितवेदिकाभिः समन्वितम् ॥४४॥
सर्वेषां दुर्लभं चित्रमदृश्यमश्रुतं मुने । वज्रभित्तिस्थितं चित्रं सुन्दरं सुमनोहरम् ॥४५॥
द्वारे नियुक्ता ददृशुर्देवा गोपाङ्गना वराः । नवयौवनसंपन्ना रत्नाभरणभूषिताः ॥४६॥
पीतवस्त्रपरीधानाः कबरीभारभूषिताः । सुगन्धिमालतीमालाजालैः सर्वाङ्गभूषिताः ॥४७॥
रत्नकङ्कणकेयूररत्ननूपुरभूषिताः । रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजिताः ॥४८॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवचर्चिताः । पीनश्रोणीभरानम्रा नितम्बाभारपीडिताः ॥४९॥
गोपीनां शतकोटीनां श्रेष्ठाः प्रेष्ठा हरेरपि । गोपीश्च कोटिशो दृष्ट्वा सुरास्ते विस्मयं ययुः ॥५०॥
संभाष्य ता मुदा युक्ता ययुर्द्वारान्तरं मुने । ततश्च क्रमशो विप्र त्रिषु द्वारेषु तत्र वै ॥५१॥
गोपाङ्गनानां श्रेष्ठाश्च ददृशुः सुमनोहराः । वराणां च वरा रम्या धन्या मान्याश्च शोभनाः ॥५२॥
सर्वाः सौभाग्ययुक्ताश्च राधिकायाः प्रियाश्च ताः । भूषिता भूषणै रम्यैः प्रोद्भिन्ननवयौवनाः ॥५३॥
एवं द्वारत्रयं दृष्ट्वा स्वप्नज्ञानाद्भुताश्रुतम् । अदृश्यमतिरम्यं चाप्यनिरूप्यं विचक्षणैः ॥५४॥
तास्ताः संभाष्य देवास्ते विस्मिता ययुरीश्वराः । राधिकाभ्यन्तरं द्वारं षोडशाख्यं मनोहरम् ॥५५॥

---

अमूल्य रत्नों के भूषणों से भूषित, अति मनोहर, चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुम से शोभायमान, गण्डस्थल-कपोल पर योग्य एवं उत्तम रत्नकुण्डल से समुज्ज्वल, उत्तम रत्न के बने विचित्र मुकुट से उज्ज्वल, अत्यन्त विकसित मालती की मालाओं से सर्वाङ्ग-भूषित और करोड़ों गोपों से आवृत वह राजेन्द्र से भी अधिक कान्ति-पूर्ण था ॥३७-४३॥ देवगण सुप्रसन्नतापूर्वक उससे कहकर आगे बारहवें दरवाजे पर पहुँचे, जो अमूल्य रत्नों की बनी वेदियों से युक्त था ॥४४॥ हे मुने ! हीरे की दीवालों पर सुन्दर एवं अति मनोहर चित्र बने थे, जो सभी के लिए दुर्लभ, अदृश्य और अश्रुत थे ॥४५॥ देवों ने वहाँ पर नियुक्त श्रेष्ठ गोपांगनाओं को देखा, जो नवयौवन से पूर्ण, रत्नों के भूषणों से भूषित, पीताम्बर पहने, सुन्दर केशपाश से सुशोभित, सुगन्धित मालती पुष्पों के मालासमूह से सर्वांग-भूषित, रत्नों के कंकण, केयूर तथा नूपुर से अलंकृत, रत्नों के युगल कुण्डलों से सुशोभित गण्डस्थलवाली, चन्दन, अगुरु, कस्तूरी तथा कुंकुम द्रव से चर्चित, स्थूल श्रोणीभार से झुकी-सी तथा नितम्ब के भार से पीड़ित-सी सौ करोड़ गोपियों में श्रेष्ठ एवं कृष्ण की अति प्रिय करोड़ों गोपियों को देखकर देवों को महान् आश्चर्य हुआ ॥४६-५०॥ हे मुने ! सुप्रसन्न देवों ने उनसे आज्ञा पाकर अगले द्वार पर प्रस्थान किया। हे विप्र ! इस तरह क्रमशः तीन द्वारों पर उन्होंने श्रेष्ठ और अत्यन्त मनोहर गोपियों को देखा, जो उत्तमों में भी उत्तम, रमणीय, धन्य, मान्य और अनुपम शोभा-सम्पन्न थीं। सभी सकल सौभाग्य से पूर्ण एवं राधा की अति प्रिय थीं। रमणीय आभूषणों से भूषित उन सुन्दरियों में नवयौवन प्रकट हो रहा था ॥५१-५३॥ इस प्रकार वे तीनों द्वार स्वप्नकालिक अनुभव के समान अद्भुत, अश्रुत, अतिरम्य एवं विद्वानों के द्वारा अवर्णनीय थे। उन्हें देखकर तथा उन सुन्दरियों से संभाषण कर आश्चर्यचकित हुए वे देवेश्वर सोलहवें द्वार पर गये, जो राधिका के अन्तःपुर का द्वार था। वह सब द्वारों में प्रधान तथा केवल गोपांगनागणों द्वारा ही रक्षणीय था। राधा की जो तैंतीस

सर्वासां च प्रधानं च गोप्यं गोपाङ्गनागणैः । त्रयस्त्रिंशद्वयस्यानां निकरैर्वेष्टितं मुने ॥५६॥
तेषामनिर्वचनीयैर्नानागुणसमन्वितैः । रूपयौवनसंपन्नै रत्नालंकारभूषितैः ॥५७॥
रत्नकङ्कणकेयूररत्ननूपुरभूषितैः । सद्रत्नकिङ्किणीजालैर्मध्यदेशविभूषितैः ॥५८॥
रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजितैः । प्रफुल्लमालतीमालाजालैर्वक्षःस्थलोज्ज्वलैः ॥५९॥
शरत्पार्वणपद्मानां प्रभां मुष्णन्मुखेन्दुभिः । पारिजातप्रसूनानां मालाजालेन वेष्टितैः ॥६०॥
पक्वबिम्बाधरोष्ठैश्च स्मेराननसरोरुहैः । पक्वदाडिमबीजाभिः शोभितैर्दन्तपङ्क्तिभिः ॥६१॥
चारुचम्पकवर्णाभिर्मध्यस्थलकृशैर्मुने । गजमौक्तिकयुक्ताभिर्नासिकाभिर्विराजितैः ॥६२॥
खगेन्द्रचारुचञ्चूनां शोभामुष्णाभिरेव च । गजेन्द्रगण्डकठिनस्तनभारभरानतैः ॥६३॥
पीनश्रोणिभरार्तैश्च मुकुन्दपदमानसैः । निमेषरहिता देवा द्वारं च ददृशुश्च ताः ॥६४॥
सद्रत्नमणिरत्नैश्च वेदिकायुग्मशोभितम् । हरिन्मणीनां स्तम्भानां समूहैः संयुतं सदा ॥६५॥
सिन्दूराकारमणिभिर्मध्यस्थलविराजितैः । पारिजातप्रसूनानां मालाजालैर्विभूषितम् ॥६६॥
तत्संस्पर्शैर्गन्धवाहैः सर्वत्र सुरभीकृतम् । दृष्ट्वा तत्परमाश्चर्यं राधिकाभ्यन्तरं सुराः ॥६७॥
श्रीकृष्णचरणाम्भोजदर्शनैकमनोरथाः । ताः संभाष्य ययुः शीघ्रं पुलकाञ्चितविग्रहाः ॥६८॥

---

समवयस्क सखियाँ थीं, वे ही इस द्वार का संरक्षण करती थीं। उन सबकी वेशभूषा अवर्णनीय थी। वे नाना प्रकार के सद्गुणों से युक्त, रूपयौवन से सम्पन्न तथा रत्नमय अलंकारों से विभूषित थीं। रत्ननिर्मित कंकण, केयूर तथा नूपुर धारण किये हुए थीं। उनके कटिप्रदेश श्रेष्ठ रत्नों की बनी हुई क्षुद्र घण्टिकाओं से अलंकृत थे। रत्ननिर्मित युगल कुण्डलों से उनके गण्डस्थल शोभायमान थे। प्रफुल्ल मालती की मालाओं से उनके वक्षःस्थल का मध्यभाग उद्भासित हो रहा था। उनके मुखचन्द्र शरत्पूर्णिमा के चन्द्रों की प्रभा को छीन लेते थे। पारिजात के पुष्पों की मालाओं से उनके सुरम्य केशपाश आवेष्टित थे। वे भाँति-भाँति के सुन्दर आभूषणों से विभूषित थीं। पके बिम्बफल के समान उनके लाल-लाल ओंठ थे। मुखारविन्दों पर मन्द मुसकान की छटा छा रही थी। पके अनार के दानों की भाँति दन्तपंक्तियाँ उनकी शोभा बढ़ा रही थीं। मनोहर चम्पा के समान गौर वर्णवाली उन गोप-किशोरियों के कटिभाग अत्यन्त कृश थे। उनकी नासिकाओं में गजमुक्ता की बुलाकें शोभा दे रही थीं। वे नासिकाएँ पक्षिराज गरुड़ की सुन्दर चोंच के समान शोभायमान थीं। वे गजेन्द्र के गण्डस्थल की भाँति कठिन स्तनों के भार से झुकी हुई थीं। स्थूल श्रोणी-भार से दबी-सी उन गोपियों का चित्त मुकुन्द के चरणारविन्दों में लगा था। द्वार पर खड़े हुए निमेष-रहित देवताओं ने उन सबको देखा ॥५६-६४॥ वह द्वार श्रेष्ठ मणिरत्नों की वेदिकाओं से सुशोभित था। इन्द्रनील मणि के बहुत-से खम्भे उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। उनके बीच-बीच में सिन्दूरी रंग की लाल मणियाँ जड़ी थीं। उस द्वार को पारिजात पुष्पों की मालाओं से सजाया गया था। उन्हें छूकर बहनेवाला वायु वहाँ सर्वत्र सुगन्ध फैला रहा था। राधा के उस परम आश्चर्यमय अन्तःपुर के द्वार का अवलोकन करके देवताओं के मन में श्रीकृष्ण के चरणारविन्दों के दर्शन की

भक्त्युद्रेकादश्रुपूर्णाः किंचिन्नम्रात्मकंधराः । आरात्ते ददृशुर्देवा राधिकाभ्यन्तरं वरम् ॥६९॥
मन्दिराणां च मध्यस्थं चतुःशालं मनोहरम् । अमूल्यरत्नसाराणां सारेण रचितं परम् ॥७०॥
नानारत्नमणिस्तम्भैर्वज्रयुक्तैश्च भूषितम् । पारिजातप्रसूनानां मालाजालैर्विराजितम् ॥७१॥
मुक्तासमूहैर्माणिक्यैः श्वेतचामरदर्पणैः । अमूल्यरत्नसाराणां कलशैर्भूषितं मुने ॥७२॥
पट्टसूत्रग्रन्थियुक्तश्रीखण्डपल्लवान्वितैः । मणिस्तम्भसमूहैश्च रम्यप्राङ्गणभूषितम् ॥७३॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवसंयुतम् । शुक्लधान्यशुक्लपुष्पप्रवालफलतण्डुलैः ॥७४॥
पर्णदूर्वाक्षतैर्लाजैर्निर्मञ्छनविभूषितैः । फलयुक्तैं रत्नकुम्भैः सिन्दूरकुङ्कुमान्वितैः ॥७५॥
पारिजातप्रसूनानां मालायुक्तैर्विराजितम् । प्रसूनाक्तैर्गन्धवाहैः सर्वत्र सुरभीकृतम् ॥७६॥
सर्वानिर्वचनीयं च यद्द्रव्यमनिरूपिणम् । ब्रह्माण्डे दुर्लभं यद्यद्वस्तुभिस्तैर्विराजितम् ॥७७॥
पारिजातप्रसूनानां मालाजालैः सुशोभितम् । रत्नशय्यासु ललिताः सूक्ष्मवस्त्रपरिच्छदाः ॥७८॥
कोटिशो रत्नकुम्भाश्च रत्नपात्राणि नारद । अमूल्यानि च चारूणि तैस्तैरेव विभूषितम् ॥७९॥
नानाप्रकारवाद्यानां कलनादैर्निनादितम् । स्वरयन्त्रैश्च वीणाभिर्गोपीसंगीतसुश्रुतम् ॥८०॥
मोहितं वाद्यशब्दैश्च मृदङ्गानां च नारद । गोपानां कृष्णतुल्यानां समूहैः परिवारितम् ॥८१॥
राधासखीनां गोपीनां वृन्दैर्वृन्दैर्विराजितम् । राधाकृष्णगुणोद्रेकपदसंगीतसुश्रुतम् ॥८२॥

---

उत्कण्ठा जाग उठी। उन्होंने सखियों से पूछकर शीघ्र ही द्वार के भीतर प्रवेश किया। उनके शरीर में रोमांच हो आया था। भक्ति के उद्रेक से उनकी आँखें भर आयी थीं। उनके मुख और कंधे कुछ-कुछ झुक गये थे। तब उन्होंने राधा के उस श्रेष्ठ अन्तःपुर को अत्यन्त निकट से देखा ॥६५-६९॥ वहाँ मन्दिरों के मध्य में एक मनोहर चतुःशाला थी। वह भाँति-भाँति के अमूल्य रत्नों के सारभाग से परम सुन्दर रचित, अनेक भाँति के रत्नों और मणियों के खंभों तथा हीरों से भूषित एवं पारिजात पुष्पों के माला-जाल से शोभित थी ॥७० ७१॥ हे मुने! वह मोती, माणिक्य, श्वेत चामर, दर्पण, अमूल्य रत्नों के सारभागों से बने कलशों से सुशोभित, रेशमी सूत में गाँठ लगाकर बँधे चन्दन-पल्लवों और मणियों के स्तम्भों से सुन्दर प्रांगणों से भूषित था ॥७२-७३॥ चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, कुंकुम द्रव से युक्त, शुक्ल धान्य, श्वेत पुष्प, मूँगा, फल, अक्षत, दूर्वादल और लावा के निर्मञ्छन (निछावर) से विभूषित, सिन्दूर, कुंकुम, पारिजात पुष्पों की मालाओं से सुशोभित एवं पुष्पों से सुवासित वायु द्वारा सर्वत्र सुगन्धित हो रहा था ॥७४-७६॥ जो सर्वथा अनिवर्चनीय, अनिरूपित और ब्रह्माण्ड मात्र में दुर्लभ द्रव्य एवं वस्तुएँ थीं, उन्हीं से उस भव्य भवन को विभूपित किया गया था। वहाँ अत्यन्त सुन्दर रत्नमयी शय्या बिछी थी, जिस पर महीन एवं कोमल वस्त्रों का बिछावन था ॥७७-७८॥ नारद! वह भवन करोड़ों अमूल्य और सुन्दर रत्न-कलशों एवं रत्नपात्रों से विभूपित, अनेक प्रकार के वाद्यों की मधुर ध्वनि से मुखरित, स्वरयंत्र, वीणा और गोपियों के संगीत से युक्त तथा मृदंग की ध्वनि से मोहक लगता था। वहाँ राधा और कृष्ण के गुणगान सम्बन्धी पदों का संगीत सुनायी पड़ता था। ऐसे अन्तःपुर को देखकर वे देवता विस्मय से

एवमभ्यन्तरं दृष्ट्वा बभूवुर्विस्मिताः सुराः । शुश्रुवुर्मधुरं गीतं ददृशुर्नृत्यमुत्तमम् ॥८३॥
तत्र तस्थुः सुराः सर्वे ध्यानैकतानमानसाः । रत्नसिंहासनं रम्यं ददृशुस्त्रिदशेश्वराः ॥८४॥
धनुः शतप्रमाणं च परितो वर्तुलाकृतिम् । सद्रत्नक्षुद्रकलशसमूहैश्च समन्वितम् ॥८५॥
चित्रपुत्तलिकापुष्पचित्रकाननभूषितम् । तत्र तेजः समूहं च सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥८६॥
प्रभया ज्वलितं ब्रह्मन्नाश्चर्यमहदद्भुतम् । सप्ततालप्रमाणं तद्व्याप्तमूर्ध्वं समन्ततः ॥८७॥
तेजोमुषं च सर्वेषां [1]महाश्रमविवर्जितम् । सर्वव्यापि सर्वबीजं चक्षूरोधकरं परम् ॥८८॥
दृष्ट्वा तेजः स्वरूपं च ते देवा ध्यानतत्पराः । प्रणेमुः परया भक्त्या भक्तिनम्रात्मकंधराः ॥८९॥
परमानन्दसंयोगादश्रुपूर्णविलोचनाः । पुलकाङ्कितसर्वाङ्गा वाञ्छापूर्णमनोरथाः ॥९०॥
नत्वा तेजः स्वरूपं च तमीशं त्रिदशेश्वराः । तत्रोत्थाय ध्यानयुक्ताः प्रतस्थुस्तेजसः पुरः ॥९१॥
ध्यात्वैवं जगतां धाता बभूव संपुटाञ्जलिः । दक्षिणे शंकरं कृत्वा वामे धर्मं च नारद ॥९२॥
भक्त्युद्रेकात्प्रतुष्टाव ध्यानैकतानमानसः । परात्परं गुणातीतं परमात्मानमीश्वरम् ॥९३॥

**ब्रह्मोवाच**

**वरं वरेण्यं वरदं वरदानां च कारणम् । कारणं सर्वभूतानां तेजोरूपं नमाम्यहम् ॥९४॥**

---

विमुग्ध हो उठे । उन्होंने वहाँ मधुर गीत सुना और उत्तम नृत्य देखा । वे सब देवता वहाँ स्थिर भाव से खड़े हो गये । उन सबका चित्त ध्यान में एकतान हो रहा था । उन देवेश्वरों को वहाँ रमणीय रत्नसिंहासन दिखायी दिया, जो सौ धनुष के बराबर विस्तृत था । वह सब ओर से मण्डलाकार दिखायी देता था । श्रेष्ठ रत्नों के बने हुए छोटे-छोटे कलश समूह उसमें जड़े थे । विचित्र पुतलियों, फूलों तथा चित्रमय काननों से उसकी बड़ी शोभा हो रही थी । ब्रह्मन् ! वहाँ उनको एक अत्यन्त अद्‌भुत और आश्चर्यमय तेजः पुञ्ज दिखायी दिया, जो करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाशमान था । वह दिव्य ज्योति से जाज्वल्यमान हो रहा था । ऊपर चारों ओर सात ताड़ों की दूरी में उसका प्रकाश फैला हुआ था । सबके तेज को छीन लेनेवाला वह प्रकाशपुञ्ज सम्पूर्ण आश्रम को व्याप्त करके देदीप्यमान था । वह सर्वव्यापक, सबका बीज तथा सबके नेत्रों को अवरुद्ध कर देनेवाला था ॥७९-८८॥ उस परमानन्द के संयोग होने पर देवों के नेत्र अश्रुपूर्ण हो गये, सर्वांग में रोमांच हो गया और मनोरथ सिद्ध होने की झलक मिलने लगी । उस तेजःपुञ्ज स्वरूप को नमस्कार करने के अनन्तर देवलोग उठकर ध्यानपूर्वक उस तेज के सामने पहुँचे ॥८९-९१॥ हे नारद ! इस प्रकार ध्यान करते हुए जगत के धाता ब्रह्मा के दोनों हाथ जुड़ गये । उन्होंने अपने दाहिने ओर शंकर को और बायें ओर धर्म को कर लिया तथा ध्यानमग्न एवं भक्ति के अविरल प्रवाह से प्रवाहित होकर उस ईश्वर की स्तुति करना आरम्भ किया, जो परात्पर, गुण (सत्त्वादि) से परे और परमात्मा हैं ॥९२-९३॥

**ब्रह्मा बोले**—मैं उस तेजोरूप को नमस्कार कर रहा हूँ, जो श्रेष्ठ, श्रेष्ठ होने के योग्य, वरदायक, वरदायकों के कारण और समस्त जीवों के कारण हैं ॥९४॥ मंगलों के मंगल स्वरूप, मंगलप्रद और समस्त मंगलों

---

१ क. व्यासाश्रमविराजितम् ।

मङ्गलं मङ्गलानां च मङ्गलं मङ्गलप्रदम् । समस्तमङ्गलाधारं तेजोरूपं नमाम्यहम् ॥९५॥
स्थितं सर्वत्र निर्लिप्तमात्मरूपं परात्परम् । निरीहमवितर्क्यं च तेजोरूपं नमाम्यहम् ॥९६॥
सगुणं निर्गुणं ब्रह्म ज्योतीरूपं सनातनम् । साकारं च निराकारं तेजोरूपं नमाम्यहम् ॥९७॥
तमनिर्वचनीयं च व्यक्तमव्यक्तमेककम् । स्वेच्छामयं सर्वरूपं तेजोरूपं नमाम्यहम् ॥९८॥
गुणत्रयविभागाय रूपत्रयधरं परम् । कलया ते [1]कृताः सर्वे किं जानन्ति श्रुतेः परम् ॥९९॥
सर्वाधारं सर्वरूपं सर्वबीजमबीजकम् । सर्वान्तकमनन्तं तेजोरूपं नमाम्यहम् ॥१००॥
लक्ष्यं षड्गुणरूपं च वर्णनीयं विचक्षणैः । किं वर्णयामि लक्ष्यं च तेजोरूपं नमाम्यहम् ॥१०१॥
अशरीरं विग्रहवदिन्द्रियं यदतीन्द्रियम् । यदसाक्षि सर्वसाक्षि तेजोरूपं नमाम्यहम् ॥१०२॥
गमनार्हमपादं यदचक्षुः सर्वदर्शनम् । हस्तास्यहीनं यद्भोक्तृ तेजोरूपं नमाम्यहम् ॥१०३॥
वेदे निरूपितं वस्तु सन्तः शक्ताश्च वर्णितुम् । वेदेऽनिरूपितं यत्तत्तेजोरूपं नमाम्यहम् ॥१०४॥
सर्वेशं यदनीशं यत्सर्वादि यदनादि यत् । सर्वात्मकमनात्मं यत्तत्तेजोरूपं नमाम्यहम् ॥१०५॥
अहं विधाता जगतो वेदानां जनकः स्वयम् । पाता धर्मो हरो हर्ता स्तोतुं शक्ता न केऽपि यत् ॥१०६॥

---

के आधार स्वरूप तेजोरूप को नमस्कार करता हूँ ॥९५॥ सर्वत्र स्थित, निर्लिप्त, आत्मरूप, परे से भी परे, निरीह, एवं तर्कविषय से परे रहनेवाले तेजोरूप को नमस्कार करता हूँ ॥९६॥ सगुण, निर्गुण, ब्रह्म, ज्योति रूप, सनातन, साकार और निराकार होनेवाले तेजोरूप को नमस्कार करता हूँ। उस अनिर्वचनीय, व्यक्त (प्रकट), अव्यक्त (अप्रकट), एक, स्वेच्छामय, सर्वरूप तथा तेजोरूप को नमस्कार करता हूँ ॥९७-९८॥ तीनों गुणों के विभागार्थ आपने तीन रूप धारण किये हैं और सभी देवगण आपकी कला ही द्वारा उत्पन्न हैं फिर श्रुति से भी परे आपको जान सकते हैं क्या ? ॥९९॥ इसलिए सबके आधार, सबके रूप, सबके कारण, बीजरहित और सबका अंत करने-वाले, अनन्त और तेजोरूप को मैं नमस्कार करता हूँ ॥१००॥ जो सगुण रूप है, वही लक्ष्य होता है और विद्वान् पुरुष उसी का वर्णन कर सकते हैं, परन्तु अलक्ष्य आपका वर्णन मैं कैसे कर सकता हूँ ? तेजोरूप को मेरा नमस्कार है ॥१०१॥ शरीररहित, सशरीर, इन्द्रिययुक्त और इन्द्रिय से परे, साक्षी रहित और सबका साक्षी है, उस तेजोरूप को नमस्कार करता हूँ ॥१०२॥ जो विना चरण के सब स्थान में जानेवाले, विना नेत्र के सबको देखनेवाले और हाथ-मुंह के बिना भी भोजन करनेवाले हैं, उस तेजोरूप को नमस्कार है ॥१०३॥ वेद में कही गयी वस्तु का वर्णन करने में सन्त लोग समर्थ हैं, किन्तु वेदों में भी जो अवर्णनीय रहा है, उस तेजोरूप को मैं नमस्कार कर रहा हूँ ॥१०४॥ जो सबका ईश और अनीश, सबका आदि और अनादि, सबका आत्मा और अनात्मा भी है, उस तेजोरूप को नमस्कार है ॥१०५॥ मैं जगत् का विधाता और वेदों का स्वयं जनक हूँ, धर्म रक्षक हैं, शिव (सृष्टि) संहर्ता हैं, पर कोई भी आपकी स्तुति करने में समर्थ नहीं है ॥१०६॥

---

१ क. सुराः ।

सेवया तव धर्मोऽयं[1] पालने च निरूपितः । तवाऽऽज्ञया च संहर्ता त्वया काले निरूपिते ॥१०७॥
[2]निःशेषोत्पत्तिकर्ताऽहं त्वत्पदाम्भोजसेवया । कर्मिणां फलदाता च त्वं भक्तानां च नः प्रभुः ॥१०८॥
ब्रह्माण्डे बिम्बसदृशो भूत्वा[3] विषयिणो वयम् । एवं कतिविधाः सन्ति तेष्वनन्तेषु सेवकाः ॥१०९॥
यथा न संख्या रेणूनां तथा तेषामणीयसाम् । सर्वेषां जनकश्चेशो यस्तं स्तोतुं च के क्षमाः ॥११०॥
एकैकलोमविवरे ब्रह्माण्डमेकमेककम् । यस्यैव महतो विष्णोः षोडशांशस्तवैव सः ॥१११॥
ध्यायन्ते योगिनः सर्वे तवैतद्रूपमीप्सितम् । तवद्भक्तदास्यनिरताः सेवन्ते चरणाम्बुजम् ॥११२॥
किशोरं सुन्दरतरं यद्रूपं कमनीयकम् । मन्त्रध्यानानुरूपं च दर्शयास्माकमीश्वर ॥११३॥
नवीनजलदश्यामं पीताम्बरधरं वरम् । द्विभुजं मुरलीहस्तं सस्मितं सुमनोहरम् ॥११४॥
मयूरपिच्छचूडं च मालतीजालमण्डितम् । चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवचर्चितम् ॥११५॥
अमूल्यरत्नसाराणां सारभूषणभूषितम् । अमूल्यरत्नरचितकिरीटमुकुटोज्ज्वलम् ॥११६॥
शरत्प्रफुल्लपद्मानां प्रभामोष्यास्यचन्द्रकम् । पक्वबिम्बसमानेन ह्यधरोष्ठेन राजितम् ॥११७॥

---

आपकी सेवा करने के फलस्वरूप ही धर्म-पालन के लिए नियुक्त हुए हैं, आपके निर्धारित समय पर आपकी ही आज्ञा से शिव संहारक हुए हैं और आपके चरण-कमल की सेवावश मैं निखिल सृष्टि का स्रष्टा हुआ हूँ और कर्मों का फल प्रदान करता हूँ, इसलिए आप हम भक्तों के स्वामी हैं ॥१०७-१०८॥ बिम्ब सदृश इस ब्रह्माण्ड में हम विषयी हो रहे हैं और इसी भाँति उन अनन्त ब्रह्माण्डों में ऐसे कितने ही सेवक आपके हैं ॥१०९॥ जिस प्रकार धूलि और उनके परमाणुओं की संख्या नहीं हो सकती है, उसी भाँति उन (लघु) सेवकों की संख्या असंभव है किन्तु समस्त का जो जननकर्ता है, उस ईश की स्तुति करने में कौन समर्थ हो सकता है ? ॥११०॥ क्योंकि जिनके एक-एक लोमविवर में एक-एक ब्रह्माण्ड है, वे महाविष्णु भी आप ही के षोडशांश हैं ॥१११॥ आपके इस अभीष्ट रूप का समस्त योगीजन ध्यान करते हैं, और दास्य भाव से निमग्न रहनेवाले भक्तगण आपके चरणकमल की सेवा करते हैं ॥११२॥ अतः हे ईश्वर ! हमें आप अपने किशोर, अति सुन्दर एवं कमनीय रूप के दर्शन देने की कृपा करें, जो मंत्र और ध्यान के अनुरूप हो ॥११३॥ जो (रूप) नूतन मेघ के समान श्यामवर्ण, पीताम्बर-भूषित, श्रेष्ठ, दो भुजायुक्त, मुरली हाथ में लिये, मन्द मुसुकान से युक्त, अतिमनोहर, मोरपंख की चूडा धारण किये, मालती मालाओं से भूषित, सर्वाङ्ग में चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, कुंकुम द्रव से चर्चित, अमूल्य रत्न के सारभागों के सार से बने भूषणों से सुशोभित अमूल्य रत्नों के सुरचित किरीट-मुकुट से समुज्ज्वल (प्रकाशित), शरत्कालीन विकसित कमलों की कान्ति को चुरानेवाले मुखचन्द्र और पके बिम्बाफल के समान अधरोष्ठ से विराजमान हो ॥११४-११७॥

---

१ क. यं रक्षितारं च रक्षति । २ क. निषेकलिपिक० । ३ क. भूत्या ।

पक्वदाडिमबीजाभदन्तपङ्क्तिमनोहरम् । केलीकदम्बमूले च स्थितं रासरसोन्मुखम् ॥११८॥
गोपीवक्त्रस्मिततनुं राधावक्षःस्थलस्थितम् । एवं वाञ्छितरूपं ते द्रष्टुं को वा न चोत्सुकः ॥११९॥
इत्येवमुक्त्वा विश्वसृट् प्रणनाम पुनः पुनः । एवं स्तोत्रेण तुष्टाव धर्मोऽपि शंकरः स्वयम् ॥१२०॥
ननाम भूयो भूयश्च साश्रुपूर्णविलोचनः । तिष्ठन्तोऽपि पुनः स्तोत्रं प्रचक्रुस्त्रिदशेश्वराः ॥१२१॥
व्याप्तास्तत्राऽऽश्रमे सर्वे श्रीकृष्णतेजसा मुने । स्तवराजमिमं नित्यं ब्रह्मेशधर्मभिः कृतम् ॥१२२॥
पूजाकाले हरेरेवं भक्तियुक्तश्च यः पठेत् । सुदुर्लभां दृढां भक्तिं निश्चलां लभते हरेः ॥१२३॥
सुरासुरमुनीन्द्राणां दुर्लभं दास्यमेव च । अणिमादिकसिद्धिं च सालोक्यादिचतुष्टयम् ॥१२४॥
इहैव विष्णुतुल्यश्च विख्यातः पूजितो ध्रुवम् । वाक्सिद्धिर्मन्त्रसिद्धिश्च भवेत्तस्य सुनिश्चितम् ॥१२५॥
सर्वसौभाग्यमारोग्यं यशसा पूरितं जगत् । पुत्रश्च विद्या कविता निश्चला कमला तथा ॥१२६॥
पत्नी पतिव्रता साध्वी सुशीला सुस्थिराः प्रजाः । कीर्तिश्च चिरकालीनाऽन्ते कृष्णान्तिके गतिः ॥१२७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० गोलोकवर्णने श्रीकृष्ण-
स्तोत्रराजपठनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

---

जो पके अनार के दाने के समान दाँतों की पंक्तियों से मनोहर, क्रीडाकदम्ब के मूलभाग में स्थित, रासरस के लिए उत्सुक, गोपियों के द्वारा मुख-मुसुकान समेत दृष्ट और राधा जी के वक्षःस्थल पर स्थित हो, ऐसा आपका अभिलषित रूप देखने के लिए कौन नहीं लालायित होता है ? ॥११८-११९॥ इतना कहकर विश्वस्रष्टा ब्रह्मा उन्हें बार-बार प्रणाम करने लगे । इसी भाँति धर्म तथा शिव ने भी स्तोत्र द्वारा उनकी स्तुति की और सजल नयन से बार-बार प्रणाम किया । वहाँ रहते हुए देवों ने पुनः स्तोत्र द्वारा स्तुति की । हे मुने ! उस आश्रम में श्रीकृष्ण के तेज से देवगण आच्छन्न थे । ब्रह्मा, शिव और धर्म कृत इस स्तवराज का जो भगवान् की पूजा के अवसर पर भक्तिपूर्वक नित्य पाठ करता है, उसे भगवान् की अतिदुर्लभ, दृढ़ और निश्छल भक्ति प्राप्त होती है ॥१२०-१२३॥ सुर, असुर और मुनियों के लिए भी दुर्लभ उनका दास्य पद प्राप्त हो जाता है, और अणिमा आदि सिद्धियों एवं सालोक्य आदि चारों मुक्तियों से वह सम्पन्न होता है ॥१२४॥ इस लोक में भी विष्णु के समान विख्यात तथा पूजनीय होता है । उसे वाक्सिद्धि समेत मन्त्रसिद्धि सुनिश्चित प्राप्त होती है ॥१२५॥ वह समस्त सौभाग्य और आरोग्य से सम्पन्न होता है एवं उसके यश से समस्त जगत् आच्छन्न हो जाता है तथा पुत्र, विद्या, कविता और निश्चल कमला का उसके यहाँ निवास होता है, पत्नी पतिव्रता, सुशीला होती है, प्रजाएँ सुस्थिर होती हैं, कीर्ति चिरकाल तक (भूमण्डल में) व्याप्त रहती है और अन्त में भगवान् कृष्ण के समीप गति प्राप्त होती है ॥१२६-१२७॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारद-नारायण-संवाद के अन्तर्गत गोलोक-वर्णन में श्रीकृष्णस्तोत्रराजपठन नामक पाँचवाँ अध्याय समाप्त ॥५॥

---

१ क. ०सोत्सुकम् ।

# अथ षष्ठोऽध्यायः

## नारायण उवाच

ध्यात्वा स्तुत्वा च तिष्ठन्तो देवास्ते तेजसः पुरः । ददृशुस्तेजसो मध्ये शरीरं कमनीयकम् ॥१॥
सजलाम्भोदवर्णाभं सस्मितं सुमनोहरम् । परमाह्लादकं रूपं त्रैलोक्यचित्तमोहनम् ॥२॥
गण्डस्थलकपोलाभ्यां ज्वलन्मकरकुण्डलम् । सद्रत्ननूपुराभ्यां च चरणाम्भोजराजितम् ॥३॥
वह्निशुद्धहरिद्राभामूल्यवस्त्रविराजितम् । मणिरत्नेन्द्रसाराणां स्वेच्छाकौतुकनिर्मितैः ॥४॥
भूषितं भूषणै रम्यैस्तद्रूपेणैव भूषितैः । विनोदमुरलीयुक्तबिम्बाधरमनोहरम् ॥५॥
प्रसन्नेक्षणपश्यन्तं भक्तानुग्रहकारकम् । सद्रत्नगुटिकायुक्तकवचोरःस्थलोज्ज्वलम् ॥६॥
कौस्तुभासक्तसद्रत्नप्रदीप्ततेजसोज्ज्वलम् । तत्र तेजसि चार्वङ्गीं ददृशू राधिकाभिधाम् ॥७॥
पश्यन्तं सस्मितं कान्तं पश्यन्तीं वक्रचक्षुषा । मुक्तापङ्क्तिविनिन्द्यैकदन्तपङ्क्तिविराजिताम् ॥८॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां शरत्पङ्कजलोचनाम् । शरत्पार्वणचन्द्राभाविनिन्दास्यमनोहराम् ॥९॥
बन्धुजीवप्रभामुष्टाधरौष्ठरुचिराननाम् । रणन्मञ्जीरयुग्मेन पादाम्बुजविराजिताम् ॥१०॥

---

# अध्याय ६

## तेजःपुञ्ज में श्रीकृष्ण और राधा के दर्शन

**नारायण बोले**—तेज के सामने स्थित देवों ने ध्यान-स्तुति करने के अनन्तर उसी तेज के मध्य एक परम सुन्दर शरीर को देखा, जो सजल जलधर के समान कान्तियुक्त, मन्दहास समेत, अतिमनोहर, परम आह्लादकारक, तीनों लोकों को मोहित करनेवाला, गण्डस्थल पर प्रज्वलित मकराकार कुण्डल से सुशोभित, उत्तम रत्नों के नूपुरों से विभूषित चरण-कमलवाला, अग्नि के समान विशुद्ध और हर्दी के रंग के समान (पीत) वस्त्र से सुसज्जित, स्वेच्छा और कौतुक से सुरचित मणियों और उत्तम रत्नों के भूषणों से भूषित, मनोरंजन-सामग्री मुरली से युक्त एवं बिम्बसदृश अरुण अधरों के कारण मनोहर था ॥१-५॥ वह प्रसन्नतापूर्ण नेत्र से देख रहा था, जो भक्तों पर कृपा करने के लिए सतत उद्यत तथा उत्तम रत्नों की बनी गुटिका से युक्त किवाड़ जैसे विशाल वक्षःस्थल से प्रकाशित हो रहा था ॥६॥ वह कौस्तुभ में लगे उत्तम रत्न के प्रदीप्त तेज से देदीप्यमान था। उसी तेज में देवों ने चारु अंगोंवाली राधा का दर्शन किया था, जो अपनी तिरछी आँखों से मन्द मुसुकान समेत प्रियतम को देख रही थीं। वे मोतियों की पंक्तियों को तिरस्कृत करनेवाली दन्तावली से तथा मन्दहास समेत प्रसन्न मुख से सुशोभित थीं। उनके नेत्र शरत्काल के कमल के समान थे। वे शरत्काल की चन्द्रकान्ति को निन्दित करनेवाले मुख के कारण मनोहर लगती थीं ॥७-९॥ दुपहरिया के फूल की शोभा को चुरानेवाले अधरोष्ठ से उनका मुख शोभायमान था। ध्वनि करते हुए युगल नूपुरों से युक्त चरण-कमलों से वे विराजित थीं ॥१०॥

मणीन्द्राणां प्रभामोषनखराजिविराजिताम् । कुङ्कुमाभासमाच्छाद्यपदाधोरागभूषिताम् ॥११॥
अमूल्यरत्नसाराणां [1]रशनाश्रोणिभूषिताम् । हुताशनविशुद्धांशुकामूल्यज्वलितोज्ज्वलाम् ॥१२॥
महामणीन्द्रसाराणां किङ्किणीमध्यसंयुताम् । सद्रत्नहारकेयूरकरकङ्कणभूषिताम् ॥१३॥
रत्नेन्द्रसाररचितकपोलोज्ज्वलकुण्डलाम् । कर्णोपरि मणीन्द्राणां कर्णभूषणभूषिताम् ॥१४॥
खगेन्द्रचञ्चुनासाग्रगजेन्द्रमौक्तिकान्विताम् । मालतीमालया वक्रकबरीभारशोभिताम् ॥१५॥
मालया कौस्तुभेन्द्राणां वक्षःस्थलसुशोभिताम् । पारिजातप्रसूनानां मालाजालोज्ज्वलाम्बराम् ॥१६॥
रत्नाङ्गुलीयनिकरैः कराङ्गुलिविभूषिताम् । दिव्यशङ्खविकारैश्च चित्ररागविभूषितैः ॥१७॥
सूक्ष्मसूत्राकृतै रम्यैर्भूषितां शङ्खभूषणैः । सद्रत्नसारगुटिकाराजिसूत्रसुशोभिताम् ॥१८॥
प्रतप्तस्वर्णवर्णाभामाच्छाद्य चारुविग्रहाम् । नितम्बश्रोणिललितां पीनस्तननताम्बराम् ॥१९॥
भूषितां भूषणैः सर्वैः सौन्दर्येण विभूषितैः । विस्मितास्त्रिदशाः सर्वे दृष्ट्वा तामीश्वरीं वराम्
तुष्टुवुस्ते सुराः सर्वे परिपूर्णमनोरथाः ॥२०॥

---

उत्तम मणियों की छटा को चुरानेवाली नख-कान्ति से वे भूषित थीं। कुंकुम की कान्ति से आच्छादित चरणतल की प्रभा से सुशोभित थीं । अमूल्य रत्नों के सारभाग से बनी करधनी से युक्त उनका श्रोणीभाग था । अग्निशुद्ध अमूल्य वस्त्र से वे देदीप्यमान थीं । महामणियों के सारभाग से बनी किंकिणी से उनका मध्यभाग भूषित था । उत्तम रत्नों के हार, बाजूबंद और कंकण से वे विभूषित थीं । रत्नेन्द्र के सारभाग से सुरचित कुंडलों से उनके कपोल उद्दीप्त हो रहे थे । कानों में श्रेष्ठ मणियों के कर्णभूषणों से वे शोभायमान थीं ॥११-१४॥ गरुड़ की चोंच के समान नुकीली नासिका में गजमुक्ता से युक्त थीं । घुंघराले बालों की वेणी में वे मालती की माला लपेटे हुई थीं ॥१५॥ उनका वक्षःस्थल उत्तम कौस्तुभ-मणियों की माला से सुशोभित था । पारिजात के फूलों की माला से उनका वस्त्र अधिक उज्ज्वल जान पड़ता था ॥१६॥ उनके हाथ की उँगलियाँ रत्नों की अँगूठियों से विभूषित थीं । दिव्य शंख के बने हुए विचित्र रागविभूषित रमणीय भूषण उन्हें विभूषित कर रहे थे । वे शंखभूषण महीन रेशमी डोरे में गुंथे हुए थे । उत्तम रत्नों के सारतत्त्व की बनी हुई गुटिका को लाल डोरे में गूंथकर उसके द्वारा उन्होंने अपने आपको सज्जित किया था । तपाये हुए सुवर्ण के समान अंगकान्ति को सुन्दर वस्त्र से आच्छादित करके वे शोभायमान हो रही थीं। उनका शरीर अतिमनोहर था । नितम्ब और श्रोणी-भाग से वे ललित लगती थीं। स्थूल स्तनों से उनका वस्त्र मुड़ गया था ॥१७-१९॥ वे समस्त आभूषणों और सौन्दर्य से भूषित थीं । देवगण उस श्रेष्ठ ईश्वरी को देखकर आश्चर्यचकित तथा अपने सभी मनोरथों को सफल समझते हुए उनकी स्तुति करने लगे ॥२०॥

---

१ क. ०पाङ्गकश्रो० ।

**ब्रह्मोवाच**

तव चरणसरोजे मन्मनश्चञ्चरीको
भ्रमतु सततमीश प्रेमभक्त्या सरोजे।
भुवनविभवभोगात्तापशान्त्यौषधाय
सुदृढसुपरिपक्वां देहि भक्तिं च दास्यम् ॥२१॥

**शंकर उवाच**

भवजलधिनिमग्नश्चित्तमीनो मदीयो
भ्रमति सततमस्मिन्घोरसंसारकूपे।
विषयमतिविनिन्द्यं सृष्टिसंहाररूप-
मपनय तव भक्तिं देहि पादारविन्दे ॥२२॥

**धर्म उवाच**

तव निजजनसार्धं संगमो मे मदीश
भवतु विषयबन्धच्छेदने तीक्ष्णखड्गः।
तव चरणसरोजे स्थानदानैकहेतु-
र्जनुषि जनुषि भक्तिं देहि पादारविन्दे ॥२३॥

इत्येवं स्तवनं कृत्वा परिपूर्णकमानसाः। कामपूरस्य पुरतस्तिष्ठन्तो राधिकापतेः ॥२४॥
सुराणां स्तवनं श्रुत्वा तानुवाच कृपानिधिः। हितं तथ्यं च वचनं स्मेराननसरोरुहः ॥२५॥

---

**ब्रह्मा बोले**—हे ईश ! तुम्हारे चरण-कमल में मेरा मन रूपी भौंरा प्रेम भक्तिपूर्वक निरन्तर भ्रमण किया करे और भुवनों के विभव (ऐश्वर्य) भोगों से उत्पन्न ताप की शान्ति-रूपी ओषधि के लिए अति दृढ़ और परिपक्व भक्ति एवं दास्य (सेवा) प्रदान करें ॥२१॥

**शंकर बोले**—संसार-सागर में निमग्न होनेवाला मेरा चित्त रूपी मत्स्य इस घोर संसार-रूपी कूप में निरन्तर भ्रमण कर रहा है अतः सृष्टि और संहार रूप अति निन्दित विषय को (मुझसे) दूर करते हुए मुझे अपने चरण-कमल की भक्ति प्रदान करें ॥२२॥

**धर्म बोले**—मेरे स्वामी ! इस विषय-रूपी बन्धन को काटने के लिए तुम्हारे निजी जनों का साथ रूपी तीक्ष्ण खड्ग मुझे प्राप्त हो जो तुम्हारे चरण-कमल में स्थान दिलाने का एकमात्र हेतु है। अपने चरण-कमल की भक्ति मुझे प्रत्येक जन्म में दीजिये ॥२३॥ इस प्रकार स्तुति करके पूर्ण मनोरथ हुए तीनों देव राधिकापति के सामने खड़े हो गये ॥२४॥ देवों की ऐसी स्तुति सुनकर कृपानिधान एवं मुसकराते हुए मुखारविन्दवाले श्रीकृष्ण ने उनसे हितकर और सत्य वचन कहा ॥२५॥

## श्रीकृष्ण उवाच

तिष्ठताऽऽगच्छत सुरा मदीया नात्र संशयः। शिवाश्रयाणां कुशलं प्रष्टुं युक्तं न साम्प्रतम् ॥२६॥
निश्चिन्ता भवतात्रैव का चिन्ता वो मयि स्थिते। स्थितोऽहं सर्वजीवेषु प्रत्यक्षोऽहं स्तवेन वै ॥२७॥
युष्माकं यमभिप्रायं सर्वं जानामि निश्चितम्। शुभाशुभं च यत्कर्म काले खलु भविष्यति ॥२८॥
महत्क्षुद्रं च यत्कर्म सर्वं कालकृतं सुराः। स्वे स्वे काले च तरवः फलिताः पुष्पिणः सदा ॥२९॥
परिपक्वफलाः कालेऽकाले पक्वफलान्विताः। सुखं दुःखं विपत्संपच्छोकचिन्ताशुभाशुभम् ॥३०॥
स्वकर्मफलनिष्ठं च सर्वकालेऽप्युपस्थितम्। न हि कस्य प्रियः को वा विप्रियो वा जगत्त्रये ॥३१॥
काले कार्यवशात्सर्वे भवन्त्येवाप्रियाः प्रियाः। राजानो मनवः पृथ्व्यां दृष्टा युष्माभिरत्र वै ॥३२॥
स्वकर्मफलपाकेन सर्वे कालवशं गताः। युष्माकमधुना चैव गोलोके यत्क्षणं गतम् ॥३३॥
पृथिव्यां तत्क्षणेनैव सप्त मन्वन्तरं गतम्। इन्द्राः सप्त गतास्तत्र देवेन्द्रश्चाष्टमोऽधुना ॥३४॥
कालचक्रं भ्रमत्येव मदीयं च दिवानिशम्। इन्द्राश्च मानवा भूपाः सर्वे कालवशं गताः ॥३५॥
कीर्तिः पृथ्व्यां पुण्यमद्य कथामात्रावशेषितम्। अधुनाऽपि च राजानो दुष्टाश्च हरिनिन्दकाः ॥३६॥
बभूवुर्बहवो भूमौ महाबलपराक्रमाः। सर्वे यास्यन्ति राजानः कालान्तरवशं ध्रुवम् ॥३७॥
उपस्थितोऽपि कालोऽयं वातो वाति निरन्तरम्। वह्निर्दहति सूर्यश्च तपत्येव ममाऽऽज्ञया ॥३८॥

---

**श्रीकृष्ण बोले**—हे देवगण ! तुम लोग तो मेरे ही हो, इसमें संशय नहीं। अतः आओ, बैठो। शिव के आश्रित रहनेवालों से कुशल प्रश्न करना उपयुक्त नहीं है, इसलिए तुम लोग यहाँ निश्चिन्त हो जाओ। मेरे रहते तुम्हें चिन्ता किस बात की हो सकती है। मैं समस्त जीवों में स्थित रहता हूँ, किन्तु स्तुति से ही प्रत्यक्ष होता हूँ ॥२६-२७॥ मैं तुम लोगों का अभिप्राय निश्चित रूप से जानता हूँ। शुभ-अशुभ—जो भी कर्म हैं समय पर होगा ॥२८॥ देवगण ! बड़ा-छोटा सभी कर्म कालकृत ही होता है। अपने-अपने समय पर वृक्ष फूलते-फलते हैं ॥२९॥ समय पर उनके फल भलीभाँति पकते हैं और समय पर वे कच्चे फल से युक्त होते हैं। सुख, दुःख, विपत्, सम्पत्, शोक-चिन्ता, शुभ-अशुभ सभी अपने कर्म के फलस्वरूप समय पर उपस्थित होते हैं। तीनों लोकों में किसी का कोई प्रिय और अप्रिय नहीं है। समयानुसार कार्यवश अप्रिय भी प्रिय हो जाता है। भूतल पर तुम लोगों ने मनुओं और राजाओं को देखा ही है। अपने-अपने कर्मफल के उपस्थित होने पर सभी काल के अधीन हो गये। इस समय गोलोक में तुम लोगों का जो एक क्षण व्यतीत हुआ है—भूमण्डल पर उसी क्षण के भीतर सात मन्वन्तर समाप्त हो गये। सात इन्द्र व्यतीत हो गये—इस समय आठवाँ देवराज वहाँ स्थित है ॥३०-३४॥ मेरा कालचक्र दिन-रात घूमा करता है इसलिए इन्द्रगण, मनु और राजा लोग सभी कालवश होकर चले गये ॥३५॥ अब पृथ्वी पर उनकी कीर्ति और पुण्य की कथा मात्र शेष रह गयी है, इस समय भी बहुत-से राजा दुष्ट और हरि-निन्दक हैं ॥३६॥ पृथ्वी पर महाबली और पराक्रमी अनेक राजा हुए हैं किन्तु सभी राजा काल के वश में निश्चित हो जायँगे ॥३७॥ यह काल उपस्थित भी है। मेरी ही आज्ञा से वायु निरन्तर चल रहा है, अग्नि जल रहा है और सूर्य तप रहा है ॥३८॥ देवगण ! मेरी आज्ञा से शरीरों में व्याधियाँ उत्पन्न हो रही हैं, सभी

व्याधयः सन्ति देहेषु मृत्युश्चरति जन्तुषु । वर्षन्त्येते जलधराः सर्वे देवा ममाऽऽज्ञया ॥३९॥
ब्राह्मण्यनिष्ठा विप्राश्च तपोनिष्ठास्तपोधनाः । ब्रह्मर्षयो ब्रह्मनिष्ठा योगनिष्ठाश्च योगिनः ॥४०॥
ते सर्वे मद्भयाद्भीताः स्वकर्मधर्मतत्पराः । मद्भक्ताश्चैव निःशङ्काः कर्मनिर्मूलकारकाः ॥४१॥
देवाः कालस्य कालोऽहं विधाता धातुरेव च । संहारकर्तुः संहर्ता पातुः पाता परात्परः ॥४२॥
ममाऽऽज्ञयाऽयं संहर्ता नाम्ना तेन हरः स्मृतः । त्वं विश्वसृट् सृष्टिहेतोः पाता धर्मश्च रक्षणात् ॥४३॥
ब्रह्मादितृणपर्यन्तं सर्वेषामहमीश्वरः । स्वकर्मफलदाताऽहं कर्मनिर्मूलकारकः ॥४४॥
अहं यान्संहरिष्यापि कस्तेषामपि रक्षिता । यानहं पालयिष्यामि तेषां हन्ता न कोऽपि वा ॥४५॥
सर्वेषामपि संहर्ता स्रष्टा पाताऽहमेव च । नाहं शक्तश्च भक्तानां संहारे नित्यदेहिनाम् ॥४६॥
भक्ता ममानुगा नित्यमत्पादार्चनतत्पराः । अहं भक्तान्तिके शश्वत्तेषां रक्षणहेतवे ॥४७॥
सर्वे नश्यन्ति ब्रह्माण्डे प्रभवन्ति पुनः पुनः । न मे भक्ताः प्रणश्यन्ति निःशङ्काश्च निरापदः ॥४८॥
अतो विपश्चितः सर्वे दास्यं वाञ्छन्ति नो वरम् । ये मां दास्यं प्रयाचन्ते धन्यास्तेऽन्ये च वञ्चिताः ॥४९॥
जन्ममृत्युजराव्याधिभयं च यमयातना । अन्येषां कर्मिणामस्ति न भक्तानां च कर्हिचित् ॥५०॥
भक्ता न लिप्ताः पापेषु पुण्येषु सर्वकर्मिणः । अहं धुनोमि तेषां च कर्मभोगान्सुनिश्चितम् ॥५१॥

---

जीवों में मृत्यु विचरण कर रहा है और ये मेघ वर्षा कर रहे हैं ॥३९॥ ब्राह्मण ब्राह्मणत्व धर्म में लगे हैं, तपस्वी तप में लगे हैं, ब्रह्मर्षि ब्रह्म में लगे हैं और योगी योग साधन कर रहे हैं ॥४०॥ ये सब मेरे भय से भयभीत होकर अपने-अपने धर्म-कर्म में लगे हैं और कर्म का निर्मूलन (नाश) करनेवाले मेरे भक्त गण निःशंक हैं ॥४१॥ देवगण ! मैं काल का भी काल, विधाता का विधाता, संहार करनेवाले का संहर्ता और रक्षक का परात्पर रक्षक हूँ ॥४२॥ मेरी आज्ञा से ये संहर्ता हुए हैं अतः नाम से इन्हें 'हर' कहा जाता है । तुम सृष्टि के कारण विश्व के स्रष्टा हो और रक्षा करने के नाते धर्म रक्षक हैं ॥४३॥ मैं ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त सभी का ईश्वर हूँ, स्वकर्म का फल प्रदान करता हूँ और कर्मों का निर्मूलन-कर्ता हूँ ॥४४॥ मैं जिनका संहार करता हूँ, उनका रक्षक कौन हो सकता है ? और मैं जिनका पालन करता हूँ, उनका हनन करनेवाला कौन हो सकता है ? ॥४५॥ मैं सभी का संहर्ता, स्रष्टा और रक्षक हूँ, किन्तु नित्य देह प्राप्त भक्तों के संहार करने में मैं समर्थ नहीं हूँ ॥४६॥ भक्त लोग नित्य मेरे चरण की अर्चना में तत्पर रहने के कारण मेरे अनुगामी होते हैं और भक्तों के रक्षणार्थ मैं निरन्तर उनके समीप स्थित रहता हूँ ॥४७॥ ब्रह्माण्ड में सब बार-बार नष्ट होते हैं और बार-बार उत्पन्न होते हैं किन्तु मेरे भक्तगण कभी नष्ट नहीं होते हैं अपितु निरापद रहकर निःशंक विचरण करते हैं ॥४८॥ इसीलिए सभी विद्वान् दास्य पद की ही अभिलाषा करते हैं दूसरे किसी वर की नहीं । जो मुझसे दास्य की याचना करते हैं वे धन्य हैं और इतर लोग वंचित हैं ॥४९॥ इस प्रकार जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि भय और यम की यातना अन्य प्राणियों के लिए है, मेरे भक्तों के लिए कभी नहीं ॥५०॥ क्योंकि भक्त लोग पाप कर्म में कभी नहीं रहते, सदैव पुण्य ही किया करते हैं, मैं उनके कर्म-भोगों को निश्चित ही नष्ट कर देता हूँ ॥५१॥

अहं प्राणश्च भक्तानां भक्ताः प्राणा ममापि च। ध्यायन्ते ते च मां नित्यं तान्स्मरामिदिवानिशम् ॥५२॥
चक्रं सुदर्शनं नाम षोडशारं सुतीक्ष्णकम्। यत्तेजः षोडशांशोऽपि नास्ति सर्वेषु जीविषु ॥५३॥
भक्तान्तिके तु तच्चक्रं दत्त्वा रक्षार्थमीप्सितम्। न स्वास्थ्यं न च प्रीतिर्मे यामि तेषां च संनिधिम् ॥५४॥
न मे स्वास्थ्यं च वैकुण्ठे गोलोके राधिकान्तिके। यत्र तिष्ठन्ति भक्तास्ते तत्र तिष्ठाम्यहर्निशम् ॥५५॥
प्राणेभ्यः प्रेयसी राधा स्थितोरसि दिवानिशम्। यूयं प्राणाधिका लक्ष्मीर्न मे भक्तात्परा प्रिया ॥५६॥
भक्तदत्तं च यद्द्रव्यं भक्त्याऽश्नामि सुरेश्वराः। अभक्तदत्तं नाश्नामि ध्रुवं भुङ्क्ते बलिः स्वयम् ॥५७॥
स्त्रीपुत्रस्वजनांस्त्यक्त्वा ध्यायन्ते मामहर्निशम्। युष्मान्विहाय तान्नित्यं स्मराम्यहमहर्निशम् ॥५८॥
दुष्टा यदा मे भक्तानां ब्राह्मणानां गवामपि। क्रतूनां देवतानां च हिंसा कुर्वन्ति निश्चितम् ॥५९॥
तदाऽचिरं ते नश्यन्ति यथा वह्नौ तृणानि च। न कोऽपि रक्षिता तेषां मयि हन्तर्युपस्थिते ॥६०॥
यास्यामि पृथिवीं देवा यात यूयं स्वमालयम्। यूयं चैवांशरूपेण शीघ्रं गच्छत भूतलम् ॥६१॥
इत्युक्त्वा जगतां नाथो गोपानाहूय गोपिकाः। उवाच मधुरं वाक्यं सत्यं यत्समयोचितम् ॥६२॥
गोपा गोप्यश्च शृणुत यात नन्दव्रजं परम्। वृषभानुगृहे क्षिप्रं गच्छ त्वमपि राधिके ॥६३॥

---

मैं भक्तों का प्राण हूँ और भक्त मेरे प्राण हैं। वे नित्य मेरा ध्यान करते हैं और मैं दिन-रात उनका स्मरण करता हूँ ॥५२॥ सोलह अरे वाला यह सुदर्शन चक्र अति तीक्ष्ण है। उसके तेज का सोलहवाँ भाग भी समस्त जीवों में नहीं है। भक्तों के पास रक्षा के निमित्त उस अभीष्ट चक्र को देकर भी मुझे प्रतीति नहीं होती, इसीलिए मैं भी स्वयं उनके पास जाता हूँ ॥५३-५४॥ मुझे वैकुण्ठलोक और गोलोक में राधा के समीप भी स्थिरता प्राप्त नहीं होती है अतः जहाँ भक्त रहते हैं मैं भी रात-दिन वहीं रहता हूँ ॥५५॥ प्राणों से भी अति प्रेयसी होने के नाते राधा रात-दिन मेरे वक्षःस्थल पर स्थित रहती हैं। तुम सब लोग तथा प्राणों से अधिक प्रिय लक्ष्मी भी मुझे भक्तों से बढ़कर प्रिय नहीं है ॥५६॥ सुरेश्वर! भक्तों द्वारा भक्तिपूर्वक दिये हुए पदार्थ को मैं सप्रेम ग्रहण करता हूँ, किन्तु अभक्त के दिये हुए का कभी भक्षण नहीं करता हूँ। उसे बलि स्वयं खाता है ॥५७॥ भक्त लोग अपनी स्त्री, पुत्र आदि परिवार की चिन्ता न कर दिन-रात मेरा ही ध्यान करते हैं अतः मैं तुम लोगों को भी छोड़कर नित्य दिन-रात उन्हीं का स्मरण किया करता हूँ ॥५८॥ इसीलिए यदि दुष्ट लोग मेरे भक्तों, ब्राह्मणों, गौओं, यज्ञों और देवों की हिंसा करते हैं तो वे अग्नि में तृण की भाँति शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। और मुझ हन्ता के रहते उन दुष्टों की कोई भी रक्षा नहीं कर सकता है ॥५९-६०॥ अतः देवगण! मैं पृथ्वी पर चलूँगा किन्तु तुम लोग अपने-अपने घर जाओ और अपने अंश से पृथ्वी पर अवतार लो ॥६१॥ जगत् के स्वामी भगवान् ने इतना कहकर गोपों और गोपियों को बुलाकर उनसे मधुर, सत्य और सामयिक बातें कहीं ॥६२॥ गोपो और गोपियो! सुनो, नन्द के परमोत्तम ब्रज में जाओ और राधिके! तुम भी वृषभानु के घर शीघ्र जाओ ॥६३॥

---

१ क. अन्ये।

वृषभानुप्रिया साध्वी नन्दगोपकलावती । सुबलस्य सुता सा च कमलांशसमुद्भवा ॥६४॥
पितृणां मानसी कन्या धन्या मान्या च योषिताम् । पुरा दुर्वाससः शापाज्जन्म तस्या व्रजे गृहे ॥६५॥
तस्या गृहे जन्म लभ शीघ्रं नन्दव्रजं व्रज । त्वामहं बालरूपेण गृह्णामि कमलानने ॥६६॥
त्वं मे प्राणाधिका राधे तव प्राणाधिकोऽप्यहम् । न किंचिदावयोर्भिन्नमेकाङ्गं सर्वदैव हि ॥६७॥
श्रुत्वैवं राधिका तत्र रुरोद प्रेमविह्वला । पपौ चक्षुश्चकोराभ्यां मुखचन्द्रं हरेर्मुने ॥६८॥
जनुर्लभत गोपाश्च गोप्यश्च पृथिवीतले । गोपानामुत्तमानां च मन्दिरे मन्दिरे शुभे ॥६९॥
एतस्मिन्नन्तरे सर्वे ददृशू रथमुत्तमम् । मणिरत्नेन्द्रसारेण हीरकेण विभूषितम् ॥७०॥
श्वेतचामरलक्षेण शोभितं दर्पणायुतैः । सूक्ष्मकाषायवस्त्रेण वह्निशुद्धेन भूषितम् ॥७१॥
सद्रत्नकलशानां च सहस्रेण सुशोभितम् । पारिजातप्रसूनानां मालाजालैर्विराजितम् ॥७२॥
पार्षदप्रवरैर्युक्तं शातकुम्भमयं शुभम् । तेजः स्वरूपमतुलं शतसूर्यसमप्रभम् ॥७३॥
तत्रस्थं पुरुषं श्यामं सुन्दरं कमनीयकम् । शङ्खचक्रगदापद्मधरं पीताम्बरं वरम् ॥ ७४॥
किरीटिनं कुण्डलिनं वनमालाविभूषितम् । चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवचर्चितम् ॥७५॥
चतुर्भुजं स्मेरवक्त्रं भक्तानुग्रहकारकम् । मणिरत्नेन्द्रसाराणां सारभूषणभूषितम् ॥७६॥

---

वहाँ वृषभानु की प्रिय एवं पतिव्रता पत्नी कलावती है, जो सुबल की कन्या एवं कमला के अंश से उत्पन्न है । वह पितरों की मानसी कन्या है तथा स्त्रियों में सबसे धन्या-मान्या है, पूर्व काल में दुर्वासा के शाप से व्रज में उसका जन्म हुआ है ॥६४-६५॥ हे कमलानने ! उसी के घर जन्म धारण करो, अतः शीघ्र नन्द के व्रज में जाओ । मैं बाल रूप से ही वहाँ तुम्हें अपनाऊँगा ॥६६॥ राधे ! तुम मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय हो और तुम्हें मैं भी उसी भाँति प्रिय हूँ, हम दोनों में कभी भी भिन्नता नहीं है, हम सदा एक रूप हैं ॥६७॥ मुने ! यह सुनकर राधिका प्रेम-व्याकुल होकर रोदन करने लगीं और अपने नेत्र-चकोर द्वारा भगवान् के मुखचन्द्र का एकटक पान करने लगीं ॥६८॥ गोप-गोपियो ! भूतल पर तुम लोग उत्तम गोपों के शुभ घरों में उत्पन्न होओ ॥६९॥ उसी बीच सभी लोगों ने एक परमोत्तम रथ देखा, जो मणि-रत्नेन्द्र के सारभाग और हीरे से भूषित, एक लाख श्वेत चामर, दस सहस्र दर्पण, अग्नि-विशुद्ध सूक्ष्म काषाय वस्त्र से भूषित, उत्तम रत्नों के सहस्र कलशों से सुशोभित, पारिजात पुष्पों के माला-समूहों से अलंकृत, श्रेष्ठ पार्षदों से युक्त, सुवर्णमय, शुभ, तेजः स्वरूप, अनुपम और सैकड़ों सूर्यों के समान प्रभापूर्ण था ॥७०-७३॥ उसमें एक पुरुष सुखासीन था, जो श्याम, सुन्दर, मनोमोहक, शंख, चक्र, गदा एवं पद्म लिये, उत्तम पीताम्बर, किरीट, कुण्डल और वनमाला से भूषित, चन्दन, अगुरु कस्तूरी एवं कुंकुम द्रव से चर्चित, चार भुजाओं एवं मुस्कराते हुये मुख से युक्त, भक्तों के अनुग्रहार्थ लालायित और मणि-रत्नेन्द्र के सारभाग के बने भूषणों से भूषित था ॥७४-७६॥

---

१ क. ०स्या गर्भे ।

देवीं तद्वामतो रम्यां शुक्लवर्णां मनोहराम् । रत्नालंकारशोभाढ्यां शोभितां पीतवाससा ।।७७।।
शरत्पार्वणचन्द्रास्यां शरत्पङ्कजलोचनाम् । पक्वबिम्बाधरोष्ठीं च स्मेरयुक्तां मनोहराम् ।।७८।।
वेणुवीणाग्रन्थहस्तां भक्तानुग्रहकारिकाम् । विद्याधिष्ठातृदेवीं च ज्ञानरूपां सरस्वतीम् ।।७९।।
अपरां दक्षिणे रम्यां शतचन्द्रसमप्रभाम् । प्रतप्तस्वर्णवर्णाभां सस्मितां सुमनोहराम् ।।८०।।
सद्रत्नकुण्डलाभ्यां च सुकपोलविराजिताम् । अमूल्यरत्नखचितामूल्यवस्त्रेण भूषिताम् ।।८१।।
अमूल्यरत्नकेयूरकरकङ्कणशोभिताम् । सद्रत्नसारमञ्जीरकलशब्दसमन्विताम् ।।८२।।
मणीन्द्रकिङ्किणीयुक्तमध्यदेशसमन्विताम् । पारिजातप्रसूनानां मालावक्षःस्थलोज्ज्वलाम् ।।८३।।
प्रफुल्लमालतीमालासंयुक्तकबरीयुताम् । शरच्चन्द्रप्रभामुष्णन्मुखचारुविभूषिताम् ।।८४।।
कस्तूरीबिन्दुसंयुक्तसिन्दूरतिलकान्विताम् । सुचारुकज्जलासक्तशरत्पङ्कजलोचनाम् ।।८५।।
सहस्रदलसंसक्तलीलाकमलसंयुताम् । नारायणं च पश्यन्तं पश्यन्तीं वक्रचक्षुषा ।।८६।।
अवरुह्य रथात्तूर्णं सस्त्रीकः सहपार्षदः । जगाम च सभां रम्यां गोपगोपीसमन्विताम् ।।८७।।
देवा गोप्यश्च गोपाश्च तस्थुः प्राञ्जलयो मुदा । सामवेदोक्तस्तोत्रेण कृतेन च सुरर्षिभिः ।।८८।।
गत्वा नारायणो देवो विलीनः कृष्णविग्रहे । दृष्ट्वा च परमाश्चर्यं ते सर्वे विस्मयं ययुः ।।८९।।

---

उनके बायें भाग में शुक्ल वर्ण की अति मनोहर एक देवी स्थित थीं जो रत्नों के अलंकारों की शोभाओं से सुशोभित, पीताम्बर धारण किये, शारदीय पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान मुखवाली, शरत्कालीन कमल की भाँति नेत्रवाली, पके बिम्बाफल के समान अधरोष्ठवाली, मन्द हास करनेवाली और अति मनोहर थीं ।।७७-७८।। उनके हाथों में वेणु, वीणा और पुस्तकें थीं । वे भक्तों पर कृपा करने के लिए कातर तथा विद्या की अधिष्ठात्री देवी ज्ञानरूपा सरस्वती थीं ।।७९।। उनके दाहिने भाग में एक दूसरी देवी स्थित थीं, जो सैकड़ों चन्द्रमा के समान कान्तिपूर्ण, अत्यन्त तपाये सुवर्ण के समान रूप-रंगवाली, मुसुकराहट से युक्त तथा अत्यन्त मनोहर थीं ।।८०।। उनके सुन्दर कपोल उत्तम रत्नमय कुण्डलों से जगमगा रहे थे । वे बहुमूल्य रत्नों और महामूल्यवान् वस्त्रों से भूषित थीं ।।८१।। अमूल्य रत्नों द्वारा निर्मित बाजूबंद और कंगन उनकी भुजाओं की श्रीवृद्धि कर रहे थे । श्रेष्ठ रत्नों के सारतत्त्व से बने हुए मंजीर की मधुर झनकारों से वे युक्त थीं ।।८२।। उत्तम मणियों की किंकिणियों (से युक्त करधनी) से उनका कटिप्रदेश शोभित था । पारिजात के पुष्पों की माला से उनका वक्षःस्थल समुज्ज्वल था ।।८३।। उनकी वेणी खिली हुई मालती की मालाओं से युक्त थी । उनका सुन्दर मुख शरत्काल के चन्द्रमा की प्रभा को छीन लेता था ।।८४।। वे कस्तूरी-बिन्दु से युक्त सिन्दूर के तिलक से शोभित थीं । उनके शरत्काल के प्रफुल्ल कमलों के समान नेत्रों में मनोहर काजल लगा हुआ था ।।८५।। उनके हाथ में सहस्र पत्रों से युक्त लीलाकमल सुशोभित था । वे अपनी ओर देखनेवाले नारायण देव को तिरछी चितवन से निहार रही थीं ।।८६।। पत्नियों और पार्षदों समेत वे देव रथ से शीघ्र उतरकर गोपों और गोपियों से युक्त रमणीय सभा में पहुँच गये ।।८७।। वहाँ देवगण, गोपियों और गोपों ने हाथ जोड़कर सहर्ष उठकर स्वागत किया और देवर्षियों ने सामवेदोक्त स्तोत्र द्वारा उनकी स्तुति की ।।८८।। नारायण देव वहाँ पहुँचकर भगवान् श्रीकृष्ण के शरीर में विलीन हो गये । यह देखकर उन लोगों को परम आश्चर्य हुआ ।।८९।।

एतस्मिन्नन्तरे तत्र शातकुम्भमयाद्रथात् । अवरुह्य स्वयं विष्णुः पाता च जगतां पतिः ॥९०॥
आजगाम चतुर्बाहुर्वनमालाविभूषितः । पीताम्बरधरः श्रीमान्सस्मितः सुमनोहरम् ॥९१॥
सर्वालंकारशोभाढ्यः सूर्यकोटिसमप्रभः । उत्तस्थुस्ते च तं दृष्ट्वा तुष्टुवुः प्रणता मुने ॥९२॥
स चापि लीनस्तत्रैव राधिकेशस्य विग्रहे । ते दृष्ट्वा महदाश्चर्यं विस्मयं परमं ययुः ॥९३॥
संविलीने हरेरङ्गे श्वेतद्वीपनिवासिनि । एतस्मिन्नन्तरे तूर्णमाजगाम त्वरान्वितः ॥९४॥
शुद्धस्फटिकसंकाशो नाम्ना संकर्षणः स्मृतः । सहस्रशीर्षा पुरुषः शतसूर्यसमप्रभः ॥९५॥
आगतं तुष्टुवुः सर्वे दृष्ट्वा तं विष्णुविग्रहम् । सचाऽऽगत्य नतस्कन्धस्तुष्टाव राधिकेश्वरम् ॥९६॥
सहस्रमूर्धा भक्त्या च प्रणनाम च नारद । आवां च धर्मपुत्रौ द्वौ नरनारायणाभिधौ ॥९७॥
लीनोऽहं कृष्णपादाब्जे बभूव फाल्गुनो वरः । ब्रह्मेशशेषधर्माश्च तस्थुरेकत्र तत्र वै ॥९८॥
एतस्मिन्नन्तरे देवा ददृशू रथमुत्तमम् । स्वर्णसारविकारं च नानारत्नपरिच्छदम् ॥९९॥
मणीन्द्रसारसंयुक्तं वह्निशुद्धांशुकान्वितम् । श्वेतचामरसंयुक्तं भूषितं दर्पणायुतैः ॥१००॥
सद्रत्नसारकलशसमूहेन विराजितम् । पारिजातप्रसूनानां मालाजालैः सुशोभितम् ॥१०१॥
सहस्रचक्रसंयुक्तं मनोयायिमनोहरम् । ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डप्रभामोषकरं वरम् ॥१०२॥

---

उसी बीच सुवर्णमय रथ से उतरकर जगत् के स्वामी एवं रक्षक स्वयं विष्णु आये। उनके चार भुजाएँ थीं। वे वनमाला से भूषित, पीताम्बरधारी, शोभासम्पन्न तथा मन्द मुसुकान करते हुए अति मनोहर थे ॥९०-९१॥ वे समस्त अलंकारों की शोभाओं से सम्पन्न और सैकड़ों सूर्यों के समान प्रभापूर्ण थे। मुने! उन्हें देखकर सभी लोगों ने उठकर उनका स्वागत किया और विनीत होकर स्तुति की ॥९२॥ वे भी राधिकापति कृष्ण की देह में विलीन हो गये, यह देखकर उन सबको और भी महान् आश्चर्य हुआ ॥९३॥ श्वेतद्वीपनिवासी विष्णु के श्रीकृष्ण के अंग में विलीन हो जाने के अनन्तर बड़ी शीघ्रता से संकर्षण नामक पुरुष आये, जो शुद्ध स्फटिक के समान गौर वर्णवाले, एक सहस्र सिरवाले और सैकड़ों सूर्यों के समान देदीप्यमान थे ॥९४-९५॥ उन विष्णु देहवाले संकर्षण को आया देखकर सबने उनकी स्तुति की। और उन्होंने भी वहाँ पहुँचकर मस्तक झुकाकर राधिकाधीश श्रीकृष्ण की स्तुति की ॥९६॥ नारद! उन्होंने अपने सहस्र सिर से भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। तत्पश्चात् हम दोनों धर्म-पुत्र नर और नारायण वहाँ गये। मैं तो कृष्ण के चरण-कमल में लीन हो गया किन्तु नर अर्जुन के रूप में अवतीर्ण हुए। फिर ब्रह्मा, शिव, शेष और धर्म ये सब एक स्थान पर खड़े हो गये ॥९७-९८॥ उसी बीच देवों ने एक परमोत्तम रथ देखा, जो सुवर्ण के सारभाग से सुरचित और भाँति-भाँति के रत्नों के बने उपकरणों से अलंकृत था। श्रेष्ठ मणियों के सारभाग से युक्त, अग्नि विशुद्ध वस्त्र, श्वेत चामर और दर्पणों से भूषित, उत्तम रत्नों के सारभाग के कलशों से विराजमान, पारिजात पुष्पों की माला-समूहों से सुशोभित, एक सहस्र पहियों से युक्त, मन की भाँति वेगगामी और मनोहर था। ग्रीष्मकाल के मध्याह्नकालीन सूर्य की प्रभा को चुरानेवाला और मुक्ता, माणिक्य, हीरक के

मुक्तामाणिक्यवज्राणां समूहेन समुज्ज्वलम् । चित्रपुत्तलिकापुष्पसरः काननचित्रितम् ॥१०३॥
देवानां दानवानां च रथानां प्रवरं मुने । यत्नेन शंकरप्रीत्या निर्मितं विश्वकर्मणा ॥१०४॥
पञ्चाशद्योजनोर्ध्वं च चतुर्योजनविस्तृतम् । [1]रतितुल्यवधूयुक्तैः शोभितं रतिमन्दिरैः ॥१०५॥
तत्रस्थां ददृशुर्देवी रत्नालंकारभूषिताम् । प्रदग्धस्वर्णसाराणां प्रभामोषकरद्युतिम् ॥१०६॥
तेजः स्वरूपामतुलां मूलप्रकृतिमीश्वरीम् । सहस्रभुजसंयुक्तां नानायुधसमन्विताम् ॥१०७॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां भक्तानुग्रहकारकाम् । गण्डस्थलकपोलस्थसद्रत्नकुण्डलोज्ज्वलाम् ॥१०८॥
रत्नेन्द्रसाररचितक्वणन्मञ्जीररञ्जिताम् । मणीन्द्रमेखलायुक्तमध्यदेशसुशोभिताम् ॥१०९॥
सद्रत्नसारकेयूरक[2]रकङ्कणभूषिताम् । मन्दारपुष्पमालाभिरुरःस्थलसमुज्ज्वलाम् ॥११०॥
नितम्बकठिनश्रोणीं पीनोन्नतकुचानताम् । शरत्सुधाकराभासविनिन्दाम्यमनोहराम् ॥१११॥
कज्जलोज्ज्वलरेखाक्तशरत्पङ्कजलोचनाम् । चन्दनागुरुकस्तूरीचित्रपत्रविभूषिताम् ॥११२॥
नवीनबन्धुजीवाभामोष्ठाधरसुशोभिताम् । मुक्तापङ्क्तिप्रभामुष्टदन्तराजिविराजिताम् ॥
प्रफुल्लमालतीमालासंसक्तकबरीं वराम् ॥११३॥

---

समूहों से जाज्वल्यमान था । विचित्र पुतलियों, पुष्पों, सरोवरों और काननों से उसकी अद्भुत शोभा हो रही थी ॥९९-१००॥ मुने ! वह देवों एवं दानवों के रथों से बहुत बड़ा था । विश्वकर्मा ने शंकर के प्रसन्नार्थ उसे बड़े प्रयत्न से बनाया था ॥१०४॥ वह पचास योजन का ऊँचा, चार योजन का चौड़ा और रति के समान सुन्दरी स्त्रियों से युक्त रति-मन्दिरों से भूषित था ॥१०५॥ उसमें बैठी हुई मूल प्रकृति देवी को देवताओं ने देखा, जो रत्नों के अलंकारों से भूषित और अत्यन्त तपाये सुवर्ण के सारभाग की प्रभा को चुरानेवाली कान्ति से युक्त थी । उन तेजः स्वरूप अनुपम देवी के सहस्रों भुजाएँ थीं और उनमें भाँति-भाँति के आयुध शोभा पा रहे थे । उनके प्रसन्न मुख में मुसकराहट थी । वे भक्तों पर कृपा करनेवाली थीं । उनके गण्डस्थल और कपोल उत्तम रत्नों के कुण्डलों से समुज्ज्वल थे । रत्नों के सारभाग से सुरचित एवं ध्वनिपूर्ण नूपुरों से वे शोभायमान थीं । मणीन्द्र की करधनी से उनका मध्यभाग अलंकृत था । उनके हाथों में उत्तम रत्नों के सारभाग के बने हुए केयूर और कंकण शोभा दे रहे थे । उनका वक्षःस्थल मन्दार पुष्पों की माला से समुज्ज्वल था । उनका नितम्ब और श्रोणी भाग गठा हुआ था । स्तन उन्नत और स्थूल थे । मुख शारदीय चन्द्रमा के कान्ति को विनिन्दित करनेवाला था । काजल की रेखा से युक्त नेत्र शारदीय कमल के समान थे । चन्दन, अगुरु तथा कस्तूरी द्वारा रचित चित्र-पत्रक से वे विभूषित थीं । नवीन बन्धुजीव-पुष्प के समान आभावाले लाल-लाल ओंठ से वे अधिक शोभायमान थीं । उनकी दन्तावलि मोतियों की पंक्ति की प्रभा को लूट लेती थी । विकसित मालती की माला से अलंकृत वेणी धारण करनेवाली वे देवी मनोहर लग रही थीं ॥१०६-११३॥ गरुड़ की चोंच के समान नासिका के अग्रभाग में गजमुक्ता से वे समन्वित थीं । अग्नि-शुद्ध एवं अत्यन्त दीप्तिमान् वस्त्र से उद्भासित थीं । पुत्रों समेत सुप्रसन्न मन से सिंह की पीठ पर बैठी थीं । रथ से शीघ्र उतरकर उन्होंने

---

१ क. रतितल्पसमायुक्तं शो० । २ क. 'रभूषणभू' ।

पक्षीन्द्रचञ्चुनासाग्रगजेन्द्रमौक्तिकान्विताम् । वह्निशुद्धांशुकेनातिज्वलितेन समुज्ज्वलाम् ॥११४॥
सिंहपृष्ठसमारूढां सुताभ्यां सहितां मुदा । अवरुह्य रथात्तूर्णं श्रीकृष्णं प्रणनाम च ॥११५॥
सुताभ्यां 'सहिता देवी समुवास वरानना । गणेशः कार्तिकेयश्च नत्वा कृष्णं परात्परम् ॥११६॥
ननाम शंकरं धर्ममनन्तं कमलोद्भवम् । उत्तस्थुरारात्ते देवा दृष्ट्वा तौ त्रिदशेश्वरौ ॥११७॥
आशिषं च ददुर्देवा वासयामासुरन्तिके । ताभ्यां सह सदालापं चक्रुर्देवा मुदान्विताः ॥११८॥
तस्थुर्देवा सभामध्ये देवस्य पुरतो हरेः । गोपा गोप्यश्च बहुशो बभूवुर्विस्मयाकुलाः ॥११९॥
उवाच कमलां कृष्णः स्मेराननसरोरुहः । त्वं गच्छ भीष्मकगृहं नानारत्नसमन्वितम् ॥१२०॥
वैदर्भ्या उदरे जन्म लभ देवि सनातनि । तव पाणिं ग्रहीष्यामि गत्वाऽहं कुण्डिनं सति ॥१२१॥
ता देव्यः पार्वतीं दृष्ट्वा समुत्थाय त्वरान्विताः । रत्नसिंहासने रम्ये वासयामासुरीश्वरीम् ॥१२२॥
विप्रेन्द्र पार्वतीलक्ष्मीवागधिष्ठातृदेवताः । तस्थुरेकासने तत्र संभाष्य च यथोचितम् ॥१२३॥
ताश्च संभाषयामासुः संप्रीत्या गोपकन्यकाः । ऊचुर्गोपालिकाः काश्चिन्मुदा तासां च संनिधौ ॥१२४॥
श्रीकृष्णः पार्वतीं तत्र समुवाच जगत्पतिः । देवि त्वमंशरूपेण व्रज नन्दव्रजे शुभे ॥१२५॥
उदरे च यशोदायाः कल्याणी नन्दरेतसा । लभ जन्म महामाये सृष्टिसंहारकारिणि ॥१२६॥

---

श्रीकृष्ण को प्रणाम किया ॥११४-११५॥ अपने दोनों पुत्रों समेत सुमुखी देवी आसनासीन हुईं। गणेश तथा कार्तिकेय ने परात्पर श्रीकृष्ण को नमस्कार किया ॥११६॥ पश्चात् शंकर, धर्म, अनन्त और ब्रह्मा को भी प्रणाम किया। उन दोनों देवेश्वरों को देखकर सभी देव उठकर खड़े हो गये। देवों ने उन्हें शुभाशीर्वाद प्रदान कर अपने समीप बैठाया और सुसप्रन्न मन से वार्तालाप भी आरम्भ किया ॥११७-११८॥ सभा मध्य में भगवान् के सम्मुख देव लोग बैठ गये यह देखकर गोपों और गोपियों को बहुत आश्चर्य हुआ ॥११९॥ अनन्तर मुसकराते हुए श्रीकृष्ण ने लक्ष्मी से कहा—सनातनी देवी ! विविध रत्नों से परिपूर्ण राजा भीष्मक के भवन में जाओ। वहाँ वैदर्भी के उदर से जन्म ग्रहण करो। सती ! मैं कुण्डिन नगर में जाकर तुम्हारा पाणिग्रहण करूँगा ॥१२०-१२१॥ वे देवियाँ पार्वती को देखकर शीघ्र ही उठकर खड़ी हो गयीं। उन्होंने ईश्वरी को रमणीय रत्न सिंहासन पर बैठाया ॥१२२॥ विप्रेन्द्र ! एक सिंहासन पर पार्वती, लक्ष्मी और सरस्वती आपस में यथोचित कुशलवार्ता पूछती हुईं एक ही आसन पर विराजमान हुईं ॥१२३॥ गोप-कन्याओं ने बड़े प्रेम से उन लोगों के साथ बातचीत की और उनके समीप में बैठकर कुछ गोपियाँ भी हर्ष से बोलीं। जगत्पति श्रीकृष्ण ने पार्वती से कहा—देवी ! तुम अंश रूप से नन्द के शुभ व्रज में जाओ। सृष्टि का संहार करनेवाली महामाया ! तुम नन्द द्वारा यशोदा के गर्भ से कल्याणी मूर्ति होकर जन्म ग्रहण करो ॥१२४-१२६॥ भूतल पर गाँव-गाँव में तुम्हारी

---

१ क. सहसा।

ग्रामे ग्रामे च पूजां ते कारयिष्यामि भूतले । कृत्स्ने महीतले भक्त्या नगरेषु वनेषु च ।।१२७।।
तत्राधिष्ठातृदेवीं त्वां पूजयिष्यन्ति मानवाः । द्रव्यैर्नानाविधैर्दिव्यैर्बलिभिश्च मुदाऽन्विताः ।।१२८।।
त्वद्भूमिस्पर्शमात्रेण सूतिकामन्दिरे शिवे । पिता मां तत्र संस्थाप्य त्वामादाय गमिष्यति ।।१२९।।
कंसदर्शनमात्रेण गमिष्यसि शिवान्तिकम् । भारावतरणं कृत्वाऽऽगमिष्यामि स्वमाश्रमम् ।।१३०।।
इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तूर्णमुवाच च षडाननम् । अंशरूपेण वत्स त्वं गमिष्यसि महीतलम् ।।१३१।।
जाम्बवत्याश्च गर्भे च लभ जन्म सुरेश्वर । अंशेन देवताः सर्वा गच्छन्तु धरणीतलम् ।।१३२।।
भारहारं करिष्यामि वसुधायाश्च निश्चितम् । इत्युक्त्वा राधिकानाथस्तस्थौ सिंहासने वरे ।।१३३।।
तस्थुर्देवाश्च देव्यश्च गोपा गोप्यश्च नारद । एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा समुत्तस्थौ हरेः पुरः ।।
पुटाञ्जलिर्जगत्कान्तमुवाच विनयान्वितः ।।१३४।।

## ब्रह्मोवाच

अवधानं कुरु विभो किंकरस्य निवेदनम् । आज्ञां कुरु महाभाग कस्य कुत्र स्थलं भुवि ।।१३५।।
भर्ता पातोद्धारकर्ता सेवकानां प्रभुः सदा । स भृत्यः सर्वदा भक्त ईश्वराज्ञां करोति यः ।।१३६।।
के देवाः केन रूपेण देव्यश्च कलया कया । कुत्र कस्याभिधेयं च विषयं च महीतले ।।१३७।।

---

पूजा करवाऊँगा। समस्त भूतल पर नगरों एवं वनों में तुम्हें अधिष्ठात्री देवी के रूप में मनुष्य भक्तिपूर्वक तुम्हारी पूजा करेंगे। विविध भाँति के दिव्य पदार्थों और बलि को सप्रेम अर्पित करेंगे ।।१२७-१२८।। शिवे ! तुम ज्योंही भूमि का स्पर्श करोगी, त्यों ही मेरे पिता सूतिकागार में मुझे स्थापित कर देंगे और तुम्हें लेकर चले जायेंगे ।।१२९।। कंस को देखते ही तुम शिव के समीप चली जाओगी और मैं भी पृथ्वी का भार उतारकर अपने धाम में आ जाऊँगा ।।१३०।। इतना कहकर भगवान् ने शीघ्र ही कार्तिकेय से भी कहा---वत्स ! देवेश्वर ! तुम अपने अंश-रूप से पृथिवी पर जाओ और वहाँ जाम्बवती के गर्भ से जन्म ग्रहण करो। समस्त देवगण अपने-अपने अंश से भूतल पर जन्म ग्रहण करें। मैं निश्चित ही पृथिवी का भार उतारूँगा। ऐसा कहकर राधिकानाथ सिंहासन पर बैठे। फिर देवता, देवियाँ और गोपियाँ भी बैठ गयीं। इसी बीच ब्रह्मा ने भगवान् के सामने खड़े होकर हाथ जोड़े विनय-विनम्र भाव से जगत्पति से कहना आरम्भ किया ।।१३१-१३४ ।।

**ब्रह्मा बोले**---विभो ! इस सेवक का भी कुछ निवेदन सुनें। महाभाग ! आप आज्ञा प्रदान करें कि भूतल पर किसके लिए कहाँ स्थान होगा। स्वामी ही सदा सेवकों का पोषक, रक्षक और उद्धारकर्ता होता है। वही सेवक सदा भक्त कहलाता है, जो प्रभु की आज्ञा का पालन करता है। पृथिवी-तल पर कौन देवता किस रूप से और कौन देवी किस कला द्वारा, कहाँ, किसके यहाँ जन्म ग्रहण करें ? उनका निवास-स्थान कहाँ होगा ?

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा प्रत्युवाच जगत्पतिः। यत्र यस्यावकाशं च कथयामि विधानतः ॥१३८॥

### श्रीकृष्ण उवाच

कामदेवो रौक्मिणेयो रतिर्मायावती सती। शम्बरस्य गृहे यावच्छायारूपेण संस्थिता ॥१३९॥
त्वं तस्य पुत्रो भविता नाम्नाऽनिरुद्ध एव च। भारती शोणितपुरे बाणपुत्री भविष्यति ॥१४०॥
अनन्तो देवकीगर्भाद्रौहिणेयो जगत्पतिः। मायया गर्भसंकर्षान्नाम्ना संकर्षणः प्रभुः ॥१४१॥
कालिन्दी सूर्यतनया गङ्गांशेन महीतले। अर्धांशेनैव तुलसी लक्ष्मणा राजकन्यका ॥१४२॥
सावित्री वेदमाता च नाम्ना नाग्नजिती सती। वसुंधरा सत्यभामा शैव्या देवी सरस्वती ॥१४३॥
रोहिणी मित्रविन्दा च भविता राजकन्यका। सूर्यपत्नी रत्नमाला कलया च जगत्प्रभोः ॥१४४॥
स्वाहांशेन सुशीला च रुक्मिण्याद्याः स्त्रियो नव। दुर्गांशार्धाज्जाम्बवती महिषीणां दश स्मृताः ॥१४५॥
अर्धांशेन शैलपुत्री यातु जाम्बवतो गृहम्। कैलासे शंकराज्ञा च बभूव पार्वती पुरा ॥१४६॥
कैलासगामिनं विष्णुं श्वेतद्वीपनिवासिनम्। आलिङ्गनं देहि कान्ते नास्ति दोषो ममाऽऽज्ञया ॥१४७॥

---

और नाम क्या होगा ? ब्रह्मा की बात सुनकर जगत्पति ने उत्तर दिया—जिसके लिए जहाँ स्थान होगा, वह विधिवत् बता रहा हूँ ॥१३५-१३८॥

**श्रीकृष्ण बोले**—कामदेव, रुक्मिणी का पुत्र होकर जन्म ग्रहण करेगा तथा शम्बरासुर के घर में मायावती नाम से प्रसिद्ध जो सती रति छाया रूप से स्थित है, वह उसकी पत्नी होगी। तुम उसी के पुत्र होओगे और तुम्हारा नाम अनिरुद्ध होगा। भारती शोणितपुर में बाणासुर की पुत्री होगी। जगत्पति अनन्त देवकी के गर्भ से रोहिणी के गर्भ में जाकर उत्पन्न होंगे। माया द्वारा गर्भ का संकर्षण होने से उनका संकर्षण नाम होगा। भूतल पर गंगा के अंश से सूर्य-पुत्री कालिन्दी उत्पन्न होगी, अपने अर्द्धांश भाग से तुलसी राजकन्या लक्ष्मणा होकर जन्म ग्रहण करेगी। और वेद-माता सावित्री नग्नजित् की पुत्री सती सत्या के नाम से उत्पन्न होगी। सत्यभामा रूप से वसुंधरा और शैव्या रूप से सरस्वती देवी उत्पन्न होंगी। रोहिणी मित्रविन्दा नामक राजकन्या होंगी। सूर्य की पत्नी संज्ञा अपनी कला द्वारा जगत्स्वामी की रत्नमाला, स्वाहा के अंश से सुशीला और रुक्मिणी आदि नौ स्त्रियाँ होंगी। दुर्गा अपने आधे अंश से जाम्बवती होंगी। ये दस पटरानियाँ बतायी गयी हैं। शैलपुत्री (पार्वती) आधे अंश से जाम्बवान् के घर जायँ। पूर्वकाल में कैलास पर पार्वती के लिए शंकर की आज्ञा भी हुई थी कि हे कान्ते ! कैलास पर आये हुए श्वेतद्वीपनिवासी विष्णु को अपना आलिंगन प्रदान करो, मेरी आज्ञा से तुम्हें ऐसा करने से कोई दोष नहीं लगेगा ॥१३९-१४७॥

---

१ क. 'गद्गुरोः।

### ब्रह्मोवाच

कथं शिवाज्ञा तां देवीं बभूव राधिकापते। विष्णोः संभाषणे पूर्वं श्वेतद्वीपनिवासिनः ॥१४८॥

### श्रीभगवानुवाच

पुरा गणेशं द्रष्टुं च प्रजग्मुः सर्वदेवताः। श्वेतद्वीपात्स्वयं विष्णुर्जगाम शंकरालये ॥१४९॥
दृष्ट्वा गणेशं मुदितः समुवास सुखासने। सुखेन ददृशुः सर्वे त्रैलोक्यमोहनं वपुः ॥१५०॥
किरीटिनं कुण्डलिनं पीताम्बरधरं वरम्। सुन्दरं श्यामरूपं च नवयौवनसंयुतम् ॥१५१॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवसंयुतम्। रत्नालंकारशोभाढ्यं स्मेराननसरोरुहम् ॥१५२॥
रत्नसिंहासनस्थं च पार्षदैः परिवेष्टितम्। वन्दितं च सुरैः सर्वैः शिवेन पूजितं स्तुतम् ॥१५३॥
तं दृष्ट्वा पार्वती विष्णुं प्रसन्नवदनेक्षणा। मुखमाच्छादितं चक्रे वाससा व्रीडया सती ॥१५४॥
अतीव सुन्दरं रूपं दर्शं दर्शं पुनः पुनः। ददर्श मुखमाच्छाद्य निमेषरहिता सती ॥१५५॥
परमाद्भुतवेषं च सस्मिता चक्रचक्षुषा। सुखसागरसंमग्ना बभूव पुलकाञ्चिता ॥१५६॥
क्षणं ददर्श पञ्चास्यं शुभ्रवर्णं त्रिलोचनम्। [1]त्रिशूलपट्टिशधरं कन्दर्पकोटिसुन्दरम् ॥१५७॥

---

**ब्रह्मा बोले**—हे राधिकापते ! पूर्वकाल में श्वेतद्वीप निवासी विष्णु के संभाषण में पार्वती को शिव ने कैसे आज्ञा प्रदान की ? ॥१४८॥

**श्री भगवान् बोले**—पूर्व समय में गणेश को देखने के लिए शंकर के घर सभी देवता गये। श्वेतद्वीप से विष्णु भी गये ॥१४९॥ गणेश को देखकर ये बहुत प्रसन्न हुए और सुखपूर्वक आसन पर बैठ गये। उन समय वहाँ के सभी लोगों ने उन (विष्णु) का जगमोहन रूप देखा, जो किरीट, कुण्डल, पीताम्बर पहने, नवयौवन सम्पन्न, श्यामल, सुन्दर रूपवाले, चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुम द्रव से युक्त तथा रत्नों के आभूषणों से भूषित थे। उनका मुखकमल मुसकरा रहा था ॥१५०-१५२॥ वे रत्नों के सिंहासन पर विराजमान थे और पार्षदगण घेरे हुए थे। सभी देवताओं ने उनकी वन्दना की और शिव ने पूजा एवं स्तुति की ॥१५३॥ उन विष्णु को देखकर पार्वती का मुख और नेत्र प्रसन्नता से खिल उठे। तब सती ने लज्जावश वस्त्र से मुख को ढँक लिया। किन्तु अत्यन्त सुन्दर रूप को वे निर्निमेष दृष्टि से देख-देखकर बार-बार मुख ढँक लेती थीं, फिर परम अद्‌भुत स्वरूप को मुसकराती हुई वक्र दृष्टि से देखकर वे आनन्द-सागर में निमग्न हो गयीं और उन्हें रोमाञ्च हो आया ॥१५४-१५६॥ क्षण में उन्होंने शिव की ओर देखा, जो पाँच मुख, धवल वर्ण, तीन नेत्र, त्रिशूल, पट्टिश (पटा नामक शस्त्र) लिये, करोड़ों काम से सुन्दर थे और क्षण में पुनः विष्णु की ओर देखा जो श्यामल वर्ण,

---

१ ख. 'परिघ'।

क्षणं ददर्श श्यामं तमेकास्यं च द्विलोचनम् । चतुर्भुजं पीतवस्त्रं वनमालाविभूषितम् ॥१५८॥
एकं ब्रह्म मूर्तिभेदमभेदं वा निरूपितम् । दृष्ट्वा बभूव सा माया सकामा विष्णुमायया ॥१५९॥
मदंशाश्च त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । ताभ्यामौत्कर्षपाताच्च श्रेष्ठः सर्वगुणात्मकः ॥१६०॥
दृष्ट्वा तं पार्वती भक्त्या पुलकाञ्चितविग्रहा । मनसा पूजयामास परमात्मानमीश्वरम् ॥१६१॥
दुर्गान्तराभिप्रायं च बुबुधे शंकरः स्वयम् । सर्वान्तरात्मा भगवानन्तर्यामी जगत्पतिः ॥१६२॥
दुर्गां निर्जनमाहूय तामुवाच हरः स्वयम् । बोधयामास विविधं हितं तथ्यमखण्डितम् ॥१६३॥

## शंकर उवाच

निवेदनं मदीयं च निबोध शैलकन्यके । शृङ्गारं देहि भद्रं ते हरये परमात्मने ॥१६४॥
अहं ब्रह्मा च विष्णुश्च ब्रह्मैकं च सनातनम् । देवको भेदरहितो विषयो मूर्तिभेदकः ॥१६५॥
एका प्रकृतिः सर्वेषां माता त्वं सर्वरूपिणी । स्वयंभूरसि वाणी त्वं लक्ष्मीर्नारायणोरसि ॥१६६॥
मम वक्षसि दुर्गा त्वं निबोधाऽऽध्यात्मिकं सति । शिवस्य वचनं श्रुत्वा तमुवाच सुरेश्वरी ॥१६७॥

## पार्वत्युवाच

दीनबन्धो कृपासिन्धो तव मामकृपा कथम् । सुचिरं तपसा लब्धो नाथस्त्वं जगतां मया ॥१६८॥

---

एक मुख, दो नेत्र, चार भुजाएँ, पीताम्बर और वनमाला से विभूषित हो रहे थे । देखकर मन में सोचने लगीं— ब्रह्म तो एक ही हैं, पर, मूर्ति-भेद या अभेद का निरूपण किया गया है । इस प्रकार विष्णु-माया द्वारा माया (पार्वती) की काम भावना जाग उठी ॥१५७-१५९॥ यद्यपि मेरे ही अंश से ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर ये तीनों देव उत्पन्न हैं, तथापि उन दोनों से सत्त्व गुण प्रधान (विष्णु) हैं ॥१६०॥ पार्वती उन्हें देखकर पुलकित हो उठीं और भक्तिपूर्वक मन से परमात्मा ईश्वर की पूजा की ॥१६१॥ परन्तु दुर्गा के भीतरी भाव को सबके अन्तरतम अन्तर्यामी भगवान् और जगत् के पति शंकर जी स्वयं समझ गये ॥१६२॥ अनन्तर शिव ने दुर्गा को एकान्त स्थान में बुलाकर हितकर, तथ्य और अखण्डनीय बातें विविध प्रकार से समझायी ॥१६३॥

**शंकर बोले**—हे पर्वत पुत्रि ! मेरा कुछ निवेदन है, सुनो ! परमात्मा विष्णु को रतिदान प्रदान करो, क्योंकि मैं, ब्रह्मा और विष्णु ये तीनों एक सनातन ब्रह्म हैं । देवता भेद रहित होता है और विषय मूर्तियों का भेद करानेवाला होता है । सबकी प्रकृति एक होती है तुम सब रूपोंवाली माता हो । तुम ब्रह्मा के वक्षः स्थल पर सरस्वती, नारायण के उर पर लक्ष्मी और मेरे वक्ष पर दुर्गा हो । हे सती ! आध्यात्मिक बात सुनो । शिव की बात सुनकर सुरेश्वरी पार्वती ने कहा ॥१६४-१६७॥

**पार्वती बोलीं**—हे दीनबन्धो ! तुम कृपासागर हो, किन्तु मुझ पर यह अकृपा कैसी ? क्योंकि मैंने अतिचिरकाल तक तप करके तुम जगत्स्वामी को पति रूप में प्राप्त किया है । हे नाथ ! अतः मुझ दासी का त्याग

तादृशीं किंकरीं नाथ न परित्यक्तुमर्हसि। अयोग्यमीदृशं वाक्यं मा मा वद महेश्वर ॥१६९॥
तव वाक्यं महादेव करिष्याम्येव पालनम्। देहान्तरे जन्म लब्ध्वा भजिष्यामि हरिं हर ॥१७०॥
इत्येवं वचनं श्रुत्वा विरराम महेश्वरः। उच्चैर्जहासाभयदः पार्वत्यै चाभयं ददौ ॥१७१॥
तत्प्रतिज्ञापालनाय पार्वती जाम्बवद्गृहे। लभिष्यति जनुर्धात्तर्नाम्ना जाम्बवती सती ॥१७२॥

ब्रह्मोवाच

भूमौ कतिविधे भूपे संस्थिते पार्वती कथम्। ललाभ भारते जन्म निन्दिते भल्लुके गृहे ॥१७३॥

श्रीकृष्ण उवाच

रामावतारे त्रेतायां देवांशाश्च ययुर्महीम्। हिमालयांशो भल्लूको जाम्बवान्नाम किंकरः ॥१७४॥
रामस्य वरदानेन चिरंजीवी श्रिया युतः। कोटिसिंहबलाधानं विधत्ते च महाबलः ॥१७५॥
पितुरंशगृहे दुर्गा जगामांशेन भूतलम्। पूर्वं पूर्वस्य वृत्तान्तं कथितं शृणु मन्मुखात् ॥१७६॥
सर्वेषां च सुराणां वै वंशा गच्छन्तु भूतलम्। नृपपुत्रा मत्सहाया भविष्यन्ति रणे विधे ॥१७७॥
कमलाकलया सर्वा भवन्तु नृपकन्यकाः। मन्महिष्यो भविष्यन्ति सहस्राणां च षोडश ॥१७८॥

---

न करें। हे महेश्वर ! ऐसी अयोग्य बातें मुझसे कभी न कहें ॥१६८-१६९॥ हे महादेव ! हे हर ! आपकी आज्ञा का पालन मैं करूँगी, किन्तु दूसरे जन्म में जन्म धारण कर विष्णु की सेवा करूँगी ॥१७०॥ इतना सुनकर महेश्वर चुप हो गये। अनन्तर अभयप्रद शिव ने बड़े ऊँचे स्वर से हँसकर पार्वती को अभय दान दिया। हे ब्रह्मन् ! उसी प्रतिज्ञा का पालन करने के लिए पार्वती जाम्बवान् के घर सती जाम्बवती होकर उत्पन्न होंगी ॥१७१-१७२॥

**ब्रह्मा बोले**—भूतल पर अनेक भाँति के राजाओं के रहते हुए पार्वती ने भारत में निन्दित भालू के घर क्यों जन्म ग्रहण किया ? ॥१७३॥

**श्रीकृष्ण बोले**—त्रेतायुग में रामावतार के समय सभी देवों ने भूतल पर अपने-अपने अंश से जन्म ग्रहण किया था, उसी में हिमालय के अंश से जाम्बवान् नामक मेरा सेवक उत्पन्न हुआ था, जो राम के वरदान द्वारा चिरजीवी, श्रीसम्पन्न, महाबली एवं करोड़ों सिंह का बल धारक था ॥१७४-१७५॥ तब पार्वती पिता के आंशिक गृह में एक अंश से पृथ्वी पर गयीं। इस प्रकार अब मेरे मुख से कहे गये पूर्व का वृत्तान्त सुनो ॥१७६॥ समस्त देवों के अंश भूतल पर जायें। ब्रह्मन् ! वे राजकुमार होकर रण में मेरे सहायक बनेंगे ॥१७७॥ कमला की कला से समस्त राजकन्याएँ उत्पन्न होंगी, वे सब-की-सब मेरी सोलह हजार स्त्रियाँ होंगी ॥१७८॥ ये धर्मदेव

---

१ क. एवं पू।

धर्मोऽयमंशरूपेण पाण्डुपुत्रो युधिष्ठिरः। वायोरंशाद्भीमसेनः स वज्री ह्यर्जुनः स्वयम् ॥१७९॥
नकुलः सहदेवश्च स्ववैद्यांशसमुद्भवौ। सूर्यांशः कर्णवीरश्च विदुरः स यमः स्वयम् ॥१८०॥
दुर्योधनः कलेरंशः समुद्रांशश्च शंतनुः। अश्वत्थामा शंकरांशो द्रोणो वह्न्यंशसंभवतः ॥१८१॥
हुताशनांशो भगवान्धृष्टद्युम्नो महाबलः। चन्द्रांशोऽप्यभिमन्युश्च भीष्मश्चैव वसूद्भवः ॥१८२॥
वसुदेवः कश्यपांशोऽप्यदित्यंशा च देवकी। वस्वंशो नन्दगोपश्च यशोदा वसुकामिनी ॥१८३॥
द्रौपदी कमलांशा च यज्ञकुण्डसमुद्भवा। सुभद्रा शतरूपांशा देवकीगर्भसंभवः ॥१८४॥
देवा गच्छन्तु पृथिवीमंशेन भारहारकाः। कलया देवपत्न्यश्च गच्छन्तु पृथिवीतलम् ॥१८५॥
इत्येवमुक्त्वा भगवान्विरराम च नारद। सर्वं विवरणं श्रुत्वा तत्रोवास प्रजापतिः ॥१८६॥
कृष्णस्य वामे वाग्देवी दक्षिणे कमलालया। पुरतो देवताः सर्वाः पार्वती चापि नारद ॥१८७॥
गोप्यो गोपाश्च परितो राधा वक्षःस्थलस्थिता। एतस्मिन्नन्तरे सा च तमुवाच व्रजेश्वरी ॥१८८॥

राधिकोवाच

शृणु नाथ प्रवक्ष्यामि किंकरीवचनं प्रभो। प्राणा दहन्ति सततमान्दोलयति मे मनः ॥१८९॥
चक्षुर्निमीलनं कर्तुमशक्ता तव दर्शने। त्वया विना कथं नाथ यास्यामि धरणीतलम् ॥१९०॥

---

अपने अंश से पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर होंगे, वायु के अंश से भीमसेन, इन्द्र के अंश से अर्जुन, स्वर्ग के वैद्य अश्विनीकुमार के अंश से और नकुल-सहदेव का प्रादुर्भाव होगा। सूर्य के अंश से वीर, कर्ण और स्वयं यम विदुर होंगे ॥१७९-१८०॥ कलि के अंश से दुर्योधन, समुद्र के अंश से शन्तनु, शंकर के अंश से अश्वत्थामा और अग्नि के अंश से द्रोण की उत्पत्ति होगी। हुताशन के अंश से महाबली भगवान् धृष्टद्युम्न, चन्द्रमा के अंश से अभिमन्यु, वसु के अंश से भीष्म, कश्यप के अंश से वसुदेव, दिति के अंश से देवकी, वसु के अंश से नन्दगोप और वसु की स्त्री यशोदा होंगी ॥१८१-१८३॥ कमला के अंश से यज्ञकुण्ड द्वारा द्रौपदी, देवकी के गर्भ से और शतरूपा के अंश से सुभद्रा उत्पन्न होंगी ॥१८४॥ इस प्रकार पृथिवी का भार उतारने के लिए देव लोग और देवियाँ अपने-अपने अंश से पृथिवी पर अवतीर्ण हों ॥१५५॥ हे नारद! इतना कहकर भगवान् चुप हो गये। यह सब विवरण सुनकर प्रजापति ब्रह्मा वहाँ अपने स्थान पर जा बैठे ॥१८६॥ हे नारद! भगवान् श्रीकृष्ण के बायें भाग में सरस्वती थीं, दाहिने भाग में लक्ष्मी थीं, सामने सभी देवगण और पार्वती थीं ॥१८७॥ चारों ओर गोप-गोपियाँ एवं उनके वक्षःस्थल में राधिका विराजमान थीं। इसी बीच व्रजेश्वरी राधा ने भगवान् से कहा ॥१८८॥

**राधिका बोलीं**—हे नाथ! हे प्रभो! मुझ किंकरी की भी कुछ सुनने की कृपा करें—हे नाथ! मेरे प्राण निरन्तर जल रहे हैं, मन आकुल हो रहा है, आपके दर्शन करते समय मैं आँख बंद करने या पलक मारने में भी असमर्थ हो जाती हूँ। आपके बिना भूतल पर (अकेली) कैसे जाऊँगी? ॥१८९-१९०॥ प्राणेश्वर! सत्य बताइये

कियत्कालान्तरेणैव मेलनं मे त्वया सह। प्राणेश्वर ब्रूहि सत्यं भविष्यत्येव गोकुले ॥१९१॥
निमेषं च युगशतं भविता मे त्वया विना। कं द्रक्ष्यामि क्व यास्यामि को वा मां पालयिष्यति ॥१९२॥
मातरं पितरं बन्धुं भ्रातरं भगिनीं सुतम्। त्वया विनाऽहं प्राणेश चिन्तयामि न कंचन ॥१९३॥
करोषि मायया छन्नां मां चेन्मायेश भूतले। विस्मृतां विभवं दत्त्वा सत्यं मे शपथं कुरु ॥१९४॥
अनुक्षणं मम मनोमधुपो मधुसूदन। करोतु भ्रमणं नित्यं समाध्वीक पदाम्बुज ॥१९५॥
यत्र यत्र च यस्यां वा योनौ जन्म भवत्विदम्। त्वं स्वस्य स्मरणं दास्यं मह्यं दास्यसि वाञ्छितम् ॥१९६॥
कृष्णस्त्वं राधिकाऽहं च प्रेमसौभाग्यमावयोः। न विस्मरामि भूमौ च देहि मह्यं वरं परम् ॥१९७॥
यथा तन्वा सह प्राणाः शरीरं छायया सह। तथाऽऽवयोर्जन्म यातु देहि मह्यं वरं विभो ॥१९८॥
चक्षुर्निमेषविच्छेदो भविता नाऽऽवयोर्भुवि। तत्राऽऽगत्यापि कुत्रापि देहि मह्यं वर प्रभो ॥१९९॥
मम प्राणैस्तव तनुः केन वा करुणा हरे। आत्मना मुरलीपादौ मनसा वा विनिर्मितौ ॥२००॥
स्त्रियः कतिविधाः सन्ति पुरुषा वा पुरुष्टुतः। नास्तिकुत्रापिकान्ता वा कान्त्या शक्त्या च मादृशी ॥२०१॥
तव देहार्धभागेन केन वाऽहं विनिर्मिता। अयमेवाऽऽवयोर्भेदो नास्त्यतस्त्वयि मे मनः ॥२०२॥
ममाऽऽत्मा मानसं प्राणास्त्वयि संस्थापिता यथा। तवाऽऽत्ममानसप्राणा मयि वा संस्थितास्तथा ॥२०३॥

---

कि—गोकुल में कितने समय के उपरान्त हमारा-तुम्हारा मिलन होगा ॥१९१॥ तुम्हारे बिना एक पल भी मुझे सौ युग के समान प्रतीत होता है। वहाँ मैं किसे देखूंगी? कहाँ जाऊँगी? और मेरा कौन पालन करेगा? ॥१९२॥ प्राणेश! तुम्हारे बिना मैं माता, पिता, बन्धु, भ्राता भगिनी और पुत्र आदि किसी की भी चिंता नहीं करती हूँ ॥१९३॥ मायापते! यदि भूतल पर मुझे भेजकर (ऐश्वर्य) देकर माया से आच्छन्न करके भुलाना चाहते हो, तो मेरे समक्ष प्रतिज्ञा करो। मधुसूदन! मेरा मन रूपी भौंरा प्रतिक्षण तुम्हारे मधुपूर्ण चरण-कमल में नित्य भ्रमण करता रहे। जहाँ-जहाँ जिस-जिस योनि में मेरा जन्म हो, वहाँ-वहाँ तुम मुझे अपना स्मरण और अभीष्ट दास्यभाव प्रदान करोगे ॥१९४-१९६॥ तथा तुम कृष्ण हो और मैं राधिका हूँ एवं हम दोनों का प्रेम सौभाग्य पृथ्वी पर जाने पर भी मुझे विस्मृत न हो, इसके लिए भी मुझे वर प्रदान करो ॥१९७॥ विभो! जिस प्रकार शरीर के साथ प्राण और छाया के साथ शरीर रहता है उसी प्रकार हम दोनों का (साथ-साथ) जन्म हो यह वर मुझे प्रदान करो ॥१९८॥ प्रभो! भूतल पर पहुँचने पर कहीं भी हम दोनों का पलक मात्र भी वियोग न हो, यह भी वर मुझे प्रदान करो ॥१९९॥ हरे! मेरे प्राणों द्वारा तुम्हारा शरीर बना है मेरे शरीर से मुरली और मेरे मन से तुम्हारे चरणों का निर्माण हुआ है। (संसार में) कितने ही ऐसे स्त्री-पुरुष हैं, जो एक-दूसरे की स्तुति करते हैं, परन्तु कहीं भी कान्ति और शक्ति में मुझ जैसी प्रिया नहीं है ॥२००-२०१॥ तुम्हारी देह के आधे भाग से किसने मेरा निर्माण किया है? यही हम दोनों में भेद नहीं है। अतः मेरा मन तुममें लगा रहता है ॥२०२॥ मेरी आत्मा, मन और प्राण जिस प्रकार तुममें नित्य लगे रहते हैं उसी भाँति तुम्हारा भी मन, प्राण और आत्मा मुझमें लगे रहते हैं ॥२०३॥ इसीलिए एक पल के वियोग होने पर भी मेरा मन आकुल होने लगता है, वियोग सुनते ही

अतो निमेषविरहादात्मनोर्विक्लवं मनः। प्रदग्धं सततं प्राणा दहन्ति विरहश्रुतौ ॥२०४॥
इत्येवमुक्त्वा सा देवी तत्रैव सुरसंसदि। भूयो भूयो रुरोदोच्चैर्धृत्वा तच्चरणाम्बुजम् ॥२०५॥
क्रोडे कृत्वा तु तां कृष्णो मुखं संमृज्य वाससा। बोधयामास विविधं सत्यं तथ्यं हितं वचः ॥२०६॥
आध्यात्मिकं परं योगं शोकच्छेदन [1]कारकम्। शृणु देवि प्रवक्ष्यामि योगीन्द्राणां च दुर्लभम् ॥२०७॥
आधाराधेययोः सर्वं ब्रह्माण्डं पश्य सुन्दरि। आधारव्यतिरेकेण नास्त्याधेयस्य संभवः ॥२०८॥
फलाधारं च पुष्पं च पुष्पाधारं च पल्लवम्। स्कन्धश्च पल्लवाधारः स्कन्धाधारस्तरुः स्वयम् ॥२०९॥
वृक्षाधारोऽप्यङ्कुरश्च जीवशक्तिसमन्वितः। अष्टिरेकाऽङ्कुराधारश्चाष्टयाधारो वसुंधरा ॥२१०॥
शेषो वसुंधराधारः शेषाधारो हि कच्छपः। वायुश्च कच्छपाधारो वाय्वाधारोऽहमेव च ॥२११॥
ममाऽऽधारस्वरूपा त्वं त्वयि तिष्ठामि सांप्रतम्। त्वं च शक्तिसमूहा च मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥२१२॥
त्वं शरीरस्वरूपाऽसि त्रिगुणाधाररूपिणी। तवाऽऽत्माऽहं निरीहश्च चेष्टावांश्च त्वया सह ॥२१३॥
पुरुषाद्वीर्यमुत्पन्नं वीर्यात्संततिरेव च। तयोराधाररूपा च कामिनी प्रकृतेः कला ॥२१४॥
विना देहेन क्वाऽऽत्मा च क्व शरीरं विनाऽऽत्मना। प्राधान्यं च [2]तयोर्देवि विना त्वाद्यांकुतो भवः ॥२१५॥

---

प्राण सन्तप्त होने लगते हैं ॥२०४॥ उस देव-सभा में इतना कहकर राधिका देवी भगवान् का चरण-कमल पकड़कर ऊँचे स्वर से वार-वार रुदन करने लगीं ॥२०५॥ अनन्तर भगवान् कृष्ण ने उन्हें अपने अंक में बैठाकर वस्त्र से उनका मुख पोंछा और विविध भाँति की हित, सत्य और तथ्य बातें कहकर उन्हें समझाया ॥२०६॥

**श्रीकृष्ण बोले**—देवि ! मैं तुम्हें परम श्रेष्ठ आध्यात्मिक योग बता रहा हूँ, जो शोक का नाशक और योगीन्द्रों के लिए भी दुर्लभ है, सुनो ॥२०७॥ सुन्दरि ! समस्त ब्रह्माण्ड आधार-आधेय के रूप में विभक्त है। इनमें भी आधार से पृथक् आधेय का होना सम्भव नहीं है ॥२०८॥ जैसे फल का आधार पुष्प है, पुष्प का आधार पल्लव, पल्लव का आधार तना और उसका आधार स्वयं वृक्ष है ॥२०९॥ वृक्ष का आधार अंकुर है जो जीव-शक्ति-सम्पन्न रहता है। अंकुर का आधार वीज है, बीज का आधार पृथ्वी है, वसुन्धरा का आधार शेषनाग है, शेष का आधार कच्छप, कच्छप का आधार वायु और वायु का आधार मैं हूँ। मेरा आधार तुम हो, क्योंकि मैं सदा तुम्हीं में स्थित रहता हूँ। तुम शक्ति-समूह और मूल प्रकृति ईश्वरी हो। शरीररूपिणी तथा त्रिगुणाधार-स्वरूपिणी भी तुम्हीं हो। मैं तुम्हारा आत्मा निरीह हूँ और तुम्हारे सम्पर्क से चेष्टावान् होता हूँ ॥२१०-२१३॥ पुरुष से वीर्य उत्पन्न होता है, वीर्य से सन्तान उत्पन्न होती है और उन दोनों की आधाररूपिणी स्त्री प्रकृति की कला है ॥२१४॥ बिना देह के आत्मा और आत्मा के बिना शरीर कहाँ हो सकता है ? देवि ! यद्यपि उन दोनों

---

१ क. 'नकर्तनम्। २ क. द्वयो'।

न कुत्राप्यावयोर्भेदो राधे संसारबीजयोः । यत्राऽऽत्मा तत्र देहं च न भेदो विनयेन किम् ॥२१६॥
यथा क्षीरे च धावल्यं दाहिका च हुताशने । भूमौ गन्धो जले शैत्यं तथा त्वयि मयि स्थितिः ॥२१७॥
धावल्यदुग्धयोरैक्यं दाहिकानलयोर्यथा । भूगन्धजलशैत्यानां नास्ति भेदस्तथाऽऽवयोः ॥२१८॥
मया विना त्वं निर्जीवा चादृश्योऽहं त्वया विना । त्वया विना भवं कर्तुं नालं सुन्दरि निश्चितम् ॥२१९॥
विना मृदा घटं कर्तुं यथा नालं कुलालकः । विना स्वर्णं स्वर्णकारोऽलंकारं कर्तुमक्षमः ॥२२०॥
स्वयमात्मा यथा नित्यस्तथा त्वं प्रकृतिः स्वयम् । सर्वशक्तिसमायुक्ता सर्वाधारा सनातनी ॥२२१॥
मम प्राणसमा लक्ष्मीर्वाणी च सर्वमङ्गला । ब्रह्मेशानन्तधर्माश्च त्वं मे प्राणाधिका प्रिया ॥२२२॥
समीपस्था इमे सर्वे सुरा देव्यश्च राधिके । एभ्योऽप्यधिका नो चेत्कथं वक्षःस्थलस्थिता ॥२२३॥
त्यजाश्रुमोक्षणं राधे भ्रान्तिं च निष्फलां सति । विहाय शंकां निःशंकं वृषभानुगृहं व्रज ॥२२४॥
कलावत्याश्च जठरे मासानां नव सुन्दरि । वायुना पूरयित्वा च गर्भं रोधय मायया ॥२२५॥
दशमे समनुप्राप्ते त्वमाविर्भव भूतले । स्वात्मरूपं परित्यज्य शिशुरूपं विधाय च ॥२२६॥
वायुनिःसारणे काले कलावत्याः समीपतः । भूमौ विवसनीभूय पतित्वा रोदिषि ध्रुवम् ॥२२७॥

---

की प्रधानता है । तथापि विना दो के संसार कैसे चल सकता है ? ॥२१५॥ राधे ! संसार के बीजरूप हम दोनों में कहीं भेद नहीं है । जहाँ आत्मा है वहाँ देह है । वे दोनों एक-दूसरे से अलग नहीं हैं । जिस प्रकार दूध में धवलता, अग्नि में दाहिका शक्ति, भूमि में गन्ध और जल में शीतलता है, उसी भाँति हम तुममें हैं । जिस भाँति धवलता और दुग्ध में, दाहिका शक्ति और अग्नि में, पृथ्वी और गन्ध में तथा जल और शीतलता में ऐक्य (भेदाभाव) है उसी प्रकार हम दोनों में भेद नहीं है ॥२१६-२१८॥ सुन्दरि ! मेरे विना तुम निर्जीव-सी हो जाती हो और मैं तुम्हारे विना अदृश्य रहता हूँ तथा यह भी निश्चित है कि तुम्हारे बिना मैं कभी भी सृष्टि करने में समर्थ नहीं होता हूँ ॥२१९॥ जैसे कुम्हार विना मिट्टी के घड़ा बनाने में और सोनार सुवर्ण के बिना आभूषण बनाने में असमर्थ रहता है उसी प्रकार तुम्हारे विना मैं असमर्थ हूँ ॥२२०॥ जिस प्रकार आत्मा स्वयं नित्य है उसी भाँति तुम प्रकृति नित्य हो । तुम समस्त शक्तिसम्पन्न, सबकी आधारभूता एवं सनातनी हो ॥२२१॥ लक्ष्मी, सरस्वती, पार्वती, ब्रह्मा, शिव, शेषनाग और धर्म—ये सब मेरे प्राणों के समान हैं, परन्तु तुम मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय हो ॥२२२॥ राधिके ! ये सभी देव और देवियाँ मेरे समीप रहती हैं, किन्तु तुम इन सबसे अधिक प्रिय न होती तो मेरे वक्षःस्थल पर कैसे विराजमान हो सकती थीं ? ॥२२३॥ अतः राधे ! अश्रुपात करना बन्द करो और इस प्रकार का मिथ्या भ्रम भी छोड़ दो । निःशंक होकर वृषभानु के घर जाओ ॥२२४॥ सुन्दरि ! वहाँ पहुँचकर कलावती के उदर में नव मास तक गर्भ को वायु द्वारा पूर्ण कर उसे अपनी माया से रोके रहो ॥२२५॥ दसवें मास के आरम्भ में तुम वहाँ अपने रूप को त्यागकर शिशु का रूप धारण कर प्रकट हो जाओ ॥२२६॥ गर्भ से वायु के निकलने के समय तुम कलावती के समीप वस्त्ररहित होकर

अयोनिसंभवा त्वं च भविता गोकुले सति । अयोनिसंभवोऽहं च नाऽऽवयोर्गर्भसंस्थितिः ॥२२८॥
भूमिसंस्पृष्टमात्रं मां गोकुले प्रापयिष्यति । तव हेतोर्गमिष्यामि कृत्वा कंसभयं छलम् ॥२२९॥
यशोदामन्दिरे मां च सानन्दं नन्दनन्दनम् । नित्यं द्रक्ष्यसि कल्याणि ममाऽऽश्लेषणपूर्वकम् ॥२३०॥
स्मृतिस्ते भविता काले वरेण मम राधिके । स्वच्छन्दं विहरिष्यामि नित्यं वृन्दावने वने ॥२३१॥
त्रिःसप्तशतकोटीभिर्गोपीभिर्गोकुलं व्रज । त्रयस्त्रिंशद्वयस्याभिः सुशीलादिभिरेव च ॥२३२॥
संस्थाप्य संख्यारहिता गोपीर्गोकुल एव च । ता आश्वास्य प्रबोधैश्च मितया च सुधागिरा ॥२३३॥
अहं गोपालसुहृदः संस्थाप्यात्रैव राधिके । वसुदेवाश्रमं पश्चाद्यास्यामि मथुरां पुरीम् ॥२३४॥
व्रजं व्रजन्तु क्रीडार्थं मम सङ्गे प्रियात्प्रियाः । बल्लवानां गृहे जन्म लभन्तां गोपकोटयः ॥२३५॥
इत्येवमुक्त्वा श्रीकृष्णो विरराम च नारद । ऊषुर्देवाश्च देव्यश्च गोपा गोप्यश्च तत्र वै ॥२३६॥
ब्रह्मेशशेषधर्माश्च श्रीकृष्णं तं परात्परम् । शिवापद्मासरस्वत्यस्तुष्टुवुः परया मुदा ॥२३७॥
भक्त्या गोपाश्च गोप्यश्च विरहज्वरकातराः । तत्र संस्तूय श्रीकृष्णं प्रणेमुः प्रेमविह्वलाः ॥२३८॥
प्राणाधिकं प्रियं कान्तं राधापूर्णमनोरथम्[1] । परितुष्टोऽभवद्भक्त्या विरहज्वरकातराम् ॥२३९॥

---

शिशुरूप में गिरकर अवश्य रोना ॥२२७॥ सती ! तुम गोकुल में अयोनिजा रूप से प्रकट होओगी । मैं भी अयोनिज रूप से ही प्रकट होऊँगा । हम दोनों की गर्भ में स्थिति संभव नहीं है ॥२२८॥ भूमि पर अवतीर्ण होते ही पिता जी मुझे गोकुल पहुँचा देंगे । कंस-भय के व्याज से मै तुम्हारे लिए वहाँ (गोकुल) अवश्य जाऊँगा ॥२२९॥ कल्याणि ! वहाँ यशोदा के भवन में मुझे नन्द-नन्दन के रूप में नित्य सानन्द देखोगी और मिलती भी रहोगी ॥२३०॥ राधिके ! मेरे वरदान द्वारा तुम्हें समय पर मेरी स्मृति होगी और मैं तुम्हारे साथ वृन्दावन में नित्य स्वच्छन्द विहार करूँगा ॥२३१॥ अतः सुशीला आदि अपनी तैंतीस सखियों और इक्कीस सौ करोड़ गोपियों के साथ तुम गोकुल को पधारो । गोकुल में उन असंख्य गोपियों को रखकर अपनी मित और अमृतमय वाणी द्वारा उन्हें समझा-बुझाकर आश्वासन देते रहना ॥२३२-२३३॥ राधिके ! हम भी अपने मित्र गोपालों को यहीं (गोकुल में) रखकर पश्चात् मथुरापुरी में वसुदेव के घर चले जायेंगे ॥२३४॥ मेरे प्रिय-से-प्रिय गोप मेरे साथ क्रीड़ा के लिए व्रज में चलें और वहाँ गोपों के घर में करोड़ों गोप जन्म ग्रहण करें ॥२३५॥ नारद ! इतना कहकर भगवान् श्रीकृष्ण चुप हो गये और अनन्तर देव-देवियाँ, गोप और गोपियाँ भी वहीं ठहर गयीं ॥२३६॥ ब्रह्मा, शिव, शेष, धर्म, पार्वती, लक्ष्मी और सरस्वती ने अत्यन्त प्रसन्नता से परात्पर भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति की ॥२३७॥ वियोग-दुःख से दुःखी होकर गोपियाँ और गोप भक्तिपूर्वक भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति करके प्रेमविभोर होते हुए उन्हें प्रणाम करने लगे ॥२३८॥ प्राणाधिक प्रिय एवं पूर्ण मनोरथवाले पति श्रीकृष्ण का राधा ने भी

---

१ क. °रथाः । परितुष्टाव भक्त्या च वि° ।

साश्रुपूर्णातिदीनां च दृष्ट्वा राधां भयाकुलाम् । प्रबोधवचनं सत्यमुवाच तां हरिः स्वयम् ।।२४०।।

श्रीकृष्ण उवाच

प्राणाधिके महादेवि स्थिरा भव भयं त्यज । यथा त्वं च तथाऽहं च का चिन्ता ते मयि स्थिते ।।२४१।।
किं तु ते कथयिष्यामि किंचिदेवास्त्यमङ्गलम् । वर्षाणां शतकं पूर्णं त्वद्विच्छेदो मया सह ।।२४२।।
श्रीदामशापजन्येन कर्मभोगेन सुन्दरि । भविष्यत्येव मम च मथुरागमनं ततः ।।२४३।।
तत्र भारावतरणं पित्रोर्बन्धनमोचनम् । मालाकारतन्तुवायकुब्जिकानां च मोक्षणम् ।।२४४।।
घातयित्वा च यवनं मुचुकुन्दस्य मोक्षणम् । द्वारकायाश्च निर्माणं राजसूयस्य दर्शनम् ।।२४५।।
उद्वाहं राजकन्यानां सहस्राणां च षोडश । दशाधिकशतस्यापि शत्रूणां दमनं तथा ।।२४६।।
मित्रोपकरणं चैव वाराणस्याश्च दाहनम् । हरस्य जृम्भणं तत्र बाणस्य भुजकृन्तनम् ।।२४७।।
पारिजातस्य हरणं यद्यत्कर्माणि तानि च । गमनं तीर्थयात्राणां मुनिसंघप्रदर्शनम् ।।२४८।।
संभाषणं च बन्धूनां यज्ञसंपादनं पितुः । शुभक्षणे पुनस्तत्र त्वया सार्धं प्रदर्शनम् ।।२४९।।
करिष्यामि च तत्रैव गोपिकानां च दर्शनम् ।।
तुभ्यमाध्यात्मिकं दत्त्वा पुनः सत्यं त्वया सह । दिवानिशमविच्छेदो मया सार्धमतःपरम् ।।२५०।।
भविष्यति त्वया सार्धं पुनरागमनं व्रजे । कान्ते विच्छेदसमये वर्षाणां शतके सति ।।२५१।।

---

स्तवन किया । उससे सन्तुष्ट होकर स्वयं हरि ने विरहज्वर से कातर, आँसुओं से भरी हुई, अत्यन्त दीन और भय से व्याकुल राधा को सान्त्वना की सत्य बात कही ।।२३९-२४०।।

**श्रीकृष्ण बोले**—महादेवि ! तुम मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय हो, अतः स्वस्थ रहो, भय छोड़ दो । जिस प्रकार तुम हो, वैसा ही मैं भी हूँ, अतः मेरे रहते तुम्हें क्या चिन्ता है ? ।।२४१।। हाँ, एक बात तुमसे कह रहा हूँ, जो कुछ अशुभ अवश्य है—'सौ वर्ष तक हमारा-तुम्हारा वियोग रहेगा ।' सुन्दरि ! श्रीदामा के शापवश ऐसा होगा । तब मैं मथुरा चला जाऊँगा ।।२४२-२४३।। वहाँ रहकर पृथ्वी का भार उतारेंगे, पिता-माता को बन्धन से मुक्त करेंगे । एवं माली, दरजी तथा कुबड़ी का मोक्ष, यवन का वध कराकर मुचुकुन्द का मोक्ष और द्वारकापुरी का निर्माण करके (युधिष्ठिर का) राजसूय यज्ञ देखेंगे । सोलह हजार राजकुमारियों के साथ विवाह, एक सौ दस शत्रुओं का दमन, मित्र (सुदामा) का उपकार, वाराणसी नगरी का दहन, शंकर का स्तम्भन, बाणासुर की भुजाओं का छेदन, पारिजात का हरण तथा और अन्य कार्यों को सुसम्पन्न करते हुए तीर्थयात्रा करेंगे । उसमें मुनिवृन्दों के दर्शन, बन्धुओं से बातचीत और पिता के यज्ञ का सम्पादन करके पुनः शुभ मुहूर्त में तुम्हारे साथ मिलन तथा गोपियों के साक्षात्कार आदि कार्य मुझे करने हैं ।।२४४-२४९।। अनन्तर तुम्हें आध्यात्मिक सत्य ज्ञान प्रदान कर अपने साथ सदैव रखूँगा, तब रात-दिन मेरे साथ रहना कभी भी वियोग नहीं होगा ।।२५०।। पुनः तुम्हारे साथ मैं व्रज आऊँगा । प्रिये ! उस सौ वर्ष के वियोग-दिन में हमारा-तुम्हारा मिलन नित्य स्वप्न में हुआ करेगा । तुमसे बिछुड़कर द्वारका में जाने पर मेरे नारायणांश के द्वारा सौ वर्षों के बीच होनेवाले कार्य

---

१ ख. श्रुत्यं ।

नित्यं संमीलनं स्वप्ने भविष्यति त्वया सह। मम नारायणांशो यस्तस्य यानं च द्वारकाम् ॥२५२॥
शतवर्षान्तरे साध्यमेतदेव सुनिश्चितम्। भविष्यति पुनस्तत्र वने रासस्त्वया सह ॥२५३॥
पुनः पित्रोश्च गोपीनां शोकसंमार्जनं परम्। कृत्वा भारावतरणं पुनरागमनं मम ॥२५४॥
त्वया सहापि गोलोकं गोपैर्गोपीभिरेव च। मम नारायणांशस्य वाण्या च पद्मया सह ॥२५५॥
वैकुण्ठगमनं राधे नित्यस्य परमात्मनः। श्वेतद्वीपं धर्मगेहमंशानां च भविष्यति ॥२५६॥
देवानां चैव देवीनामंशा यास्यन्ति स्वक्षयम्। पुनः संस्थितिरत्रैव गोलोके मे त्वया सह ॥२५७॥
इत्येवं कथितं सर्वं भविष्यं च शुभाशुभम्। मया निरूपितं यत्तत्कान्ते केन निवार्यते ॥२५८॥
इत्येवमुक्त्वा श्रीकृष्णः कृत्वा राधां स्ववक्षसि। तस्थौ तस्थुः सुराः सर्वे सुरपत्न्यश्च विस्मिताः ॥२५९॥
उवाच श्रीहरिर्देवान्देवीं च समयोचितम्। देवा गच्छत कार्यार्थं स्वालयं विषयोचितम् ॥२६०॥
गच्छ पार्वति कैलासं सुताभ्यां स्वामिना सह। मया नियोजितं कर्म सर्वं काले भविष्यति ॥ २६१॥
भविता कलया जन्म सर्वेषां च व्रजेश्वरि। क्षुद्राणां चैव महतां देवं लम्बोदरं विना ॥२६२॥
प्रणम्य श्रीहरिं देवाः स्वालयं प्रययुर्मुदा। लक्ष्मीं सरस्वतीं भक्त्या प्रणम्य पुरुषोत्तमम् ॥२६३॥
हरिणा योजितं कर्म कर्तुं व्यग्रा महीं ययुः। भर्त्रा निरूपितं स्थानं देवानामपि दुर्लभम् ॥२६४॥
उवाच राधिकां कृष्णो वृषभानुगृहं व्रज। गोपगोपीसमूहश्च सह पूर्वनिरूपितैः ॥२६५॥

---

सम्पादित होंगे, यह निश्चित है। अनन्तर पुनः वृन्दावन में तुम्हारे साथ रासक्रीड़ा होगी ॥२५१-२५३॥ पश्चात् माता-पिता और गोपियों के शोक को दूरकर और पृथ्वी का भार उतारकर तुम्हें तथा गोप-गोपियों को साथ लेकर गोलोक में आगमन होगा। राधे ! मेरे अंशभूत जो नित्य परमात्मा नारायण हैं, वे लक्ष्मी और सरस्वती के साथ वैकुण्ठ को पधारेंगे। धर्म और मेरे अंशों का निवासस्थान श्वेतद्वीप में होगा ॥२५४-२५६॥ देवों और देवियों के अंश से उत्पन्न होनेवाले भी अपने निवास को चले जायँगे। तब पुनः हम तुम्हारे साथ इसी गोलोक में रहेंगे ॥२५७॥ कान्ते ! इस प्रकार मैंने भावी सभी शुभ-अशुभ बातें बता दीं और जो कुछ मैंने कहा है उसे अन्यथा कोई नहीं कर सकता है ॥२५८॥ ऐसा कहकर भगवान् श्रीकृष्ण ने राधा को अपने वक्षःस्थल से लगा लिया और देवता एवं देव-पत्नियाँ आश्चर्यचकित हो गयीं ॥२५९॥ अनन्तर श्रीहरि ने देवों और देवियों से कहा कि—तुम लोग भावी कार्य की सिद्धि के लिए अपने-अपने स्थान को जाओ। पार्वति ! तुम भी अपने दोनों पुत्रों और स्वामी के साथ कैलास को चली जाओ। मैंने जो कुछ कार्य नियोजित किया है, वह सब समय पर अवश्य होगा ॥२६०-२६१॥ व्रजेश्वरि ! गणेश के अतिरिक्त छोटे-बड़े सभी देवताओं और देवियों का कला द्वारा भूतल पर अवतरण होगा ॥२६२॥ अनन्तर सभी देवगण प्रसन्नतापूर्वक पुरुषोत्तम कृष्ण, लक्ष्मी और सरस्वती को भक्तिपूर्वक प्रणाम करके अपने-अपने स्थान को चले गये ॥२६३॥ भगवान् ने जिस कार्य का आयोजन किया था, उसे सफल बनाने के लिए वे व्यग्रतापूर्वक भूतल पर पधारे; क्योंकि स्वामी का बताया हुआ स्थान देवों के लिए भी दुर्लभ था ॥२६४॥ श्रीकृष्ण ने राधिका से कहा—पहले बताये हुए गोपों और गोपियों समेत

अहं यास्यामि मथुरां वसुदेवालयं प्रिये । पश्चात्कंसभयव्याजाद्गोकुलं तव संनिधिम् ॥२६६॥
राधा प्रणम्य श्रीकृष्णं रक्तपंकजलोचना । भृशं रुरोद पुरतः प्रेमविच्छेदकातरा ॥२६७॥
स्थायं स्थायं क्वचिद्यान्ती गत्वा गत्वा पुनः पुनः । पुनः पुनः समागत्य दर्शं दर्शं हरेर्मुखम् ॥२६८॥
पपौ चक्षुश्चकोराभ्यां निमेषरहिता सती । शरत्पार्वणचन्द्राभसुधापूर्णं प्रभोर्मुखम् ॥२६९॥
ततः प्रदक्षिणीकृत्य सप्तधा परमेश्वरी । प्रणम्य सप्तधा चैव पुनस्तस्थौ हरेः पुरः ॥२७०॥
आजग्मुर्गोपिकानां च त्रिःसप्तशतकोटयः । आजगाम च गोपानां समूहः कोटिसंख्यकः ॥२७१॥
गोपानां गोपिकानां च समूहैः सह राधिका । पुनः प्रणम्य तं राधा तत्र तस्थौ च नारद ॥२७२॥
त्रयस्त्रिंशद्वयस्याभिर्गोपीभिः सह सुन्दरी । गोपानां च समूहैश्च प्रणम्य प्रययौ महीम् ॥२७३॥
हरिणा योजितं स्थानं प्रजग्मुर्नन्दगोकुलम् । वृषभानुगृहं राधा गोपी गोपगृहं ययौ ॥२७४॥
मह्यं गतायां राधायां गोपीभिः सह गोपकैः । बभूव श्रीहरिः सद्यः पृथिवीं गमनोत्सुकः ॥२७५॥
संभाष्य गोपान्गोपीश्च नियोज्य स्वीयकर्मणि । मनोयायी जगन्नाथो जगाम मथुरां हरिः ॥२७६॥
पूर्वं यद्यदपत्यं च देवकीवसुदेवयोः । बभूव सद्यस्तत्कंसः पुत्रषट्कं जघान ह ॥२७७॥
शेषांशं सप्तमं गर्भं माययाऽऽकृष्य गोकुले । निधाय रोहिणीगर्भे जगाम चाऽऽज्ञया हरेः ॥२७८॥

इति श्रीब्रह्म० महा० नारदना० श्रीकृष्णजन्मख० षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

---

तुम वृषभानु के घर जाओ ॥२६५॥ प्रिये ! मैं भी मथुरा में वसुदेव के घर जा रहा हूँ, पश्चात् कंस भय के बहाने मैं तुम्हारे समीप गोकुल चला आऊँगा ॥२६६॥ अनन्तर लाल कमल की भाँति नेत्रवाली राधा प्रेमविच्छेद के भय से कातर होकर श्रीकृष्ण को प्रणाम करके उनके आगे फूट-फूटकर रोने लगीं ॥२६७॥ वे रुक-रुककर कभी कुछ दूर तक जातीं और जा-जाकर बार-बार लौट आतीं और भगवान् के मुख का दर्शन करने लगती थीं । निमेष रहित नेत्र रूपी चकोर से भगवान् के शारदीय पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान कान्ति-सुधा से पूर्ण मुख-सौन्दर्य का पान करती थीं ॥२६८-२६९॥ पश्चात् परमेश्वरी राधिका भगवान् की सात परिक्रमा करके सात बार प्रणाम कर अनन्तर उनके सामने खड़ी हो गयीं ॥२७०॥ उसी समय वहाँ तिहत्तर करोड़ गोपियाँ और एक करोड़ गोप आ गये ॥२७१॥ नारद ! गोपियों और गोपों के साथ राधा पुनः हरि को प्रणाम करके वहीं खड़ी रहीं ॥२७२॥ उन तैंतीस सहेलियों के आने पर सुन्दरी राधिका ने भगवान् को प्रणाम कर गोपों और गोपियों के साथ पृथ्वी के लिए प्रस्थान किया ॥२७३॥ भगवान् के बताये हुए स्थान—नन्द गोकुल में—राधा वृषभानु के घर में और गोपियाँ अन्यान्य गोपों के घर में गयीं ॥२७४॥ इस प्रकार गोपों और गोपियों समेत राधा के भूतल पर चले जाने पर भगवान् भी पृथ्वी पर आने के लिए तुरन्त तैयार हो गये ॥२७५॥ इस प्रकार गोप-गोपियों से कहकर एवं अपने-अपने कर्म में उन्हें नियुक्त करके मन की गति से चलनेवाले जगन्नाथ हरि मथुरा में जा पहुँचे ॥२७६॥ वसुदेव-देवकी के पहले जितने पुत्र हुए थे, कंस ने उन सबको अर्थात् छह पुत्रों को मार दिया था ॥२७७॥ भगवान् की आज्ञा से योगमाया सातवें शेषनागवाले गर्भ को देवकी के उदर से खींचकर गोकुल स्थित रोहिणी के गर्भ में डालकर चली गयी थीं ॥२७८॥

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड के नारायण-नारद संवाद में छठा अध्याय समाप्त ॥६॥

# अथ सप्तमोऽध्यायः

## नारद उवाच

व्यस्यातिरेकं कृष्णस्य महत्पुण्यकरं परम्। वद जन्म महाभाग जन्ममृत्युजरापहम् ॥१॥
वसुदेवः कस्य पुत्रः कस्य कन्या च देवकी। को वसुदेवकी का वा विवाहं चोभयोर्वद ॥२॥
कथं जघान कंसस्तत्पुत्रषट्कं च दारुणः। कस्मिन्दिने हरेर्जन्म श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥३॥

## नारायण उवाच

कश्यपो वसुदेवश्च देवमाता च देवकी। पूर्वपुण्यफलेनैव प्रापतुः श्रीहरिं सुतम् ॥४॥
देवमीढान्मारिषायां वसुदेवो महानभूत्। यस्योद्भवे देवसंघो वादयामास दुन्दुभिम् ॥५॥
आनकं च महाहृष्टाः श्रीहरेर्जनकं च तम्। सन्तः पुरातनास्तेन वदन्त्यानकदुन्दुभिम् ॥६॥
आहुकस्य सुतः श्रीमान्यदुवंशसमुद्भवः। देवको ज्ञानसिन्धुश्च तस्य कन्या च देवकी ॥७॥
गर्गो यदुकुलाचार्यः संबन्धं वसुना सह। देवक्याः कारयामास विधिवच्च यथोदितम् ॥८॥
महासंभृतसंभारो वसुदेवः शुभे क्षणे। उद्वाहे देवकीं तस्मै देवकः प्रददौ किल ॥९॥
अश्वानां च सहस्राणि गजानां च शतानि च। सालंकृतानां दासीनां शतानि सुन्दराणि च ॥१०॥

---

# अध्याय ७

## श्रीकृष्ण-जन्म का आख्यान

**नारद बोले**—महाभाग ! भगवान् श्रीकृष्ण का जन्म कहने की कृपा करें, जो महान् पुण्यकारक, श्रेष्ठ और जन्म-मृत्यु एवं जरा का नाशक है ॥१॥ वसुदेव किसके पुत्र थे, देवकी किसकी कन्या थीं ? देवकी और वसुदेव पूर्वजन्म में कौन थे ? एवं उन दोनों के विवाह बताने की कृपा करें ॥२॥ भयंकर कंस ने उनके छह पुत्रों का वध कैसे किया ? और किस दिन भगवान् का जन्म हुआ ? यह भली-भाँति सुनना चाहता हूँ ॥३॥

**नारायण बोले**—कश्यप वसुदेव हुए थे और देवों की माता अदिति देवकी हुई थीं। पूर्व पुण्य के फलस्वरूप इन्होंने भगवान् को पुत्र रूप में प्राप्त किया था ॥४॥ देवमीढ से मारिषा में महान् वसुदेव उत्पन्न हुए थे, जिनके जन्म समय देववृन्द ने अत्यन्त हर्षित होकर आनक (ढोल) और दुन्दुभि नामक बाजे बजाये थे। इसीलिए प्राचीन सन्त लोग श्री हरि भगवान् के पिता (वसुदेव) को आनकदुन्दुभि कहते हैं ॥५-६॥ यदुकुल में आनक के पुत्र श्रीमान् देव हुए थे जो ज्ञान के सागर कहे जाते हैं, उन्हीं की कन्या देवकी थीं ॥७॥ यदुकुल के आचार्य गर्ग ने देवकी का विवाह सम्बन्ध वसुदेव के साथ शास्त्रानुसार सविधि सम्पन्न कराया था ॥८॥ (विवाह के उस) शुभ क्षण में वसुदेव बहुत साज-सामान से युक्त हुए थे। देवक ने विवाह-काल में वसुदेव को देवकी समर्पित की ॥९॥ नारद ! देवक ने दहेज में वसुदेव को सहस्रों घोड़े, सैकड़ों हाथी, भूषणभूषित सैकड़ों सुन्दरी दासियाँ, विविध भाँति के द्रव्य,

नानाविधानि द्रव्याणि रत्नानि विविधानि च। मणिश्रेष्ठानि वज्राणि स्वर्णपात्राणि नारद ॥११॥
सद्रत्नभूषितां कन्यां शतचन्द्रसमप्रभाम्। त्रैलोक्यमोहिनीं धन्यां मान्यां श्रेष्ठां च योषिताम् ॥१२॥
रूपाधारां गुणाधारां सुस्मितां वक्रलोचनाम्। नवसंगमयोग्यां च प्रोद्भिन्ननवयौवनाम् ॥१३॥
तां गृहीत्वा रथे कृत्वा प्रस्थानसमये तदा। कंसो हृष्टः सहचरो भगिन्युद्वाहकर्मणि ॥१४॥
तस्या रथसमीपस्थे कंसे गच्छति तत्क्षणे। कंसं संबोध्य गगने वाग्बभूवाशरीरिणी ॥१५॥
कथं हृष्टोऽसि राजेन्द्र शृणु सत्यं वचो हितम्। देवक्या ह्यष्टमो गर्भो मृत्युहेतुस्तवैव हि ॥१६॥
श्रुत्वेदं देवकीं कंसः खड्गहस्तो महाबलः। देववाक्याद्भयात्क्रोधात्पापिष्ठो हन्तुमुद्यतः ॥१७॥
तां हन्तुमुद्यतं दृष्ट्वा वसुदेवः सुपण्डितः। बोधयामास नीतिज्ञो नीतिशास्त्रविशारदः ॥१८॥

## वसुदेव उवाच

राजनीतिं न जानासि शृणु मे वचनं हितम्। यशस्करं च दोषघ्नं शास्त्रोक्तं समयोचितम् ॥१९॥
अस्या एवाष्टमो गर्भो मृत्युश्चेत्तव भूमिप। इमां च हत्वा दुष्कीर्तिं करोषि त्वं नरः कथम् ॥२०॥
वधे च क्षुद्रजन्तूनां हिंसकानां च पण्डितः। कार्षापणं समुत्सृज्य मृत्युकाले प्रमुच्यते ॥२१॥

---

अनेक प्रकार के रत्न, श्रेष्ठ मणियाँ, हीरे और अनेक सुवर्ण के पात्र भी प्रदान किये ॥१०-११॥ उत्तम रत्नों से भूषित उस कन्या को, जो सैकड़ों चन्द्रमा के समान कान्तिपूर्ण, तीनों लोकों को मोहित करनेवाली एवं स्त्रियों में धन्या मान्या एवं श्रेष्ठा, रूप और गुण की निधि, मन्द मुसुकान एवं तिरछी चितवन से युक्त, नूतन संगम के योग्य और नवयौवन से सम्पन्न थी, ग्रहण करके रथ पर बैठाकर वसुदेव जब प्रस्थान करने लगे, तब भगिनी के विवाह-उत्सव में हर्ष से भरा कंस भी उसके साथ चला। देवकी के समीप होने पर तत्काल कंस को सम्बोधित करके आकाशवाणी हुई—राजेन्द्र! क्यों हर्ष से फूल उठे हो? सत्य और हितकर वचन सुनो—देवकी का आठवाँ गर्भ तुम्हारी मृत्यु का कारण होगा ॥१२-१६॥ इसे सुनते ही महाबली कंस ने हाथ में तलवार ले ली। आकाशवाणी पर विश्वास करके भयभीत और कुपित हो वह महापापी देवकी को मारने के लिए तैयार हो गया ॥१७॥ उसे मारने के लिए तैयार देखकर उत्तम पण्डित वसुदेव ने, जो नीतिवेत्ता एवं नीति-शास्त्र के कुशल विद्वान् थे, (कंस को) समझाना आरम्भ किया ॥१८॥

**वसुदेव बोले**—तुम राजनीति नहीं जानते हो, मेरी बातें सुनो, जो हितकर, यशोदायक, दोषनाशक, शास्त्रानुकूल और सामयिक है ॥१९॥ राजन्! यदि इसका आठवाँ गर्भ ही तुम्हारी मृत्यु का कारण है, तो इसकी हत्या करके तुम अपना अयश क्यों पैदा कर रहे हो? ॥२०॥ क्योंकि हिंसक क्षुद्र जन्तुओं का वध करने पर मृत्युकाल में बुद्धिमान् व्यक्ति एक कार्षापण (एक पुराना सिक्का) दान देकर छुटकारा पा लेता है ॥२१॥

अहिंसकानां क्षुद्राणां वधः शतगुणं ध्रुवम् । प्रायश्चित्तं मृत्युकाले कथितं पद्मयोनिना ।।२२।।
वधे विशिष्टजन्तूनां पश्वादीनां च कामतः । ततः शतगुणं पापं निश्चितं मनुरब्रवीत् ।।२३।।
नराणां म्लेच्छजातीनां वधे शतगुणं ततः । म्लेच्छानां च शतानां च यत्पापं लभते वधे ।।२४।।
सच्छूद्रकस्य च वधे तत्पापं लभते पुमान् ।।२५।।
सच्छूद्राणां शतानां च यत्पापं लभते वधे । तत्पापं लभते नूनं गोवधकेन निश्चितम् ।।२६।।
गवां दशगुणं पापं ब्राह्मणस्य वधे भवेत् । विप्रहत्यासमं पापं स्त्रीवधे लभते नरः ।।२७।।
विशेषतो हि भगिनी पोष्या च शरणागता । स्त्रीहत्याशतपापं च भवेदस्या वधे नृप ।।२८।।
तपो जपं च दानं च पूजनं तीर्थदर्शनम् । विप्राणां भोजनं होमं स्वर्गार्थं कुरुते बुधः ।।२९।।
जलबुद्बुदवत्सर्वं स्वप्नतुल्यं भ्रमं भवम् । पश्यन्ति सततं सन्तो धर्मं कुर्वन्ति यत्नतः ।।३०।।
भगिनीं त्यज धर्मिष्ठ स्ववंशपद्मभास्कर । बुधाः कतिविधाः सन्ति सभायां पृच्छ्यतां नृप ।।३१।।
अस्याश्चैवाष्टमो गर्भो यदपत्यं भविष्यति । बन्धो तुभ्यं प्रदास्यामि तेन मे किं प्रयोजनम् ।।३२।।
अथवा यान्यपत्यानि भवन्ति ज्ञानिनां वर । तानि सर्वाणि दास्यामि त्वत्तः को मे वरः प्रियः ।।३३।।
भगिनीं त्यज राजेन्द्र कन्यातुल्यां प्रियां तव । मिष्टान्नपानदानेन वर्धितामनुजां सदा ।।३४।।
वसुदेववचः श्रुत्वा तत्याज भगिनीं नृपः । वसुदेवः प्रियां नीत्वा जगाम निजमन्दिरे ।।३५।।

---

अहिंसक क्षुद्र जन्तुओं का वध करने पर उक्त से सौगुने अधिक प्रायश्चित्त करना पड़ता है, ऐसा ब्रह्मा ने कहा है ।।२२।। विशिष्ट जन्तुओं और पशु आदि की जान-बूझकर हत्या करने पर अवश्य ही उससे सौगुना अधिक पाप लगता है, ऐसा मनु ने कहा है ।।२३।। म्लेच्छ जाति के मनुष्य के वध करने पर उससे सौगुने और सौ म्लेच्छों के वध करने से जितना पाप होता है, उतना पाप एक सत् (स्पृश्य) शूद्र के वध करने से मनुष्य को प्राप्त होता है । तथा सौ सत् शूद्रों के वध करने से जितना पाप होता है उतना पाप एक गौ के वध करने पर निश्चित ही प्राप्त होता है । गौओं से दस गुना अधिक पाप ब्राह्मण-वध में लगता है । ब्राह्मण-हत्या के समान ही मनुष्य को स्त्री-हत्या का भी पाप लगता है, विशेषतया भगिनी या अपने पोषण योग्य अथवा शरणागत की हत्या का । राजन् ! इसलिए स्त्री-हत्या से सौगुना अधिक पाप इसके वध करने पर लगेगा । बुद्धिमान् व्यक्ति तप, जप, दान, पूजन, तीर्थदर्शन, ब्राह्मणभोजन और हवन स्वर्ग के लिए करता है । सन्त लोग समस्त संसार को जल के बुलबुले और स्वप्न के समान निस्सार एवं भ्रम मानकर सदैव यत्नपूर्वक धर्माचरण करते हैं । धर्मिष्ठ ! अपने वंश रूपी कमल के लिए सूर्य ! इस अपनी भगिनी को छोड़ दो । नृप ! तुम्हारी सभा में कई प्रकार के विद्वान् हैं, उनसे पूछो ।।२४-३१।। इसके आठवें गर्भ से जो संतान उत्पन्न होगी, मैं उसे लाकर तुम्हें सौंप दूंगा । उससे मेरा क्या प्रयोजन है ? अथवा ज्ञानियों में श्रेष्ठ ! इससे जितनी भी संतानें होंगी, उन सबको लाकर मैं तुम्हें दे दूंगा, क्योंकि तुमसे बढ़कर मुझे कौन प्रिय है ? राजेन्द्र, इस अपनी भगिनी को छोड़ दो, यह तुम्हें कन्या के समान प्रिय है । तुमने इस छोटी बहिन को मधुर अन्न-पान देकर पाल-पोसकर बड़ा किया है ।।३२-३४।। वसुदेव की

क्रमादपत्यषट्कं च यद्यद्भूतं च नारद। ददौ तस्मै वसुः सत्यात्स जघान क्रमेण तान् ॥३६॥
देवक्याः सप्तमे गर्भे कंसो रक्षां ददौ भिया। रोहिणीजठरे माया तमाकृष्य ररक्ष च ॥३७॥
रक्षकाः कथयामासुर्गर्भस्त्रावो बभूव ह। तस्माद्बभूव भगवानात्मा संकर्षणः प्रभुः ॥३८॥
तस्या एवाष्टमो गर्भो वायुपूर्णो बभूव ह। गते च नवमे मासि दशमे समुपस्थिते ॥३९॥
दृष्टिं ददौ च गर्भे च भगवान्सर्वदर्शनः। स्वयं रूपवती देवी सर्वासां योषितां वरा ॥४०॥
बभूव दर्शनात्सद्यः सुन्दरी सा चतुर्गुणा। ददर्श देवकीं कंसः प्रफुल्लवदनेक्षणाम् ॥४१॥
तेजसा प्रज्वलन्ती च मायामिव दिशो दश। ज्योतिषां संहतिं चैव यथा मूर्तिमतीमिव ॥४२॥
दृष्ट्वा तामसुरेन्द्रश्च विस्मयं परमं ययौ। अस्माद्गर्भादपत्यं च मृत्युबीजं ममैव च ॥४३॥
इत्येवमुक्त्वा कंसश्च ददौ रक्षां प्रयत्नतः। देवकीं वसुदेवं च सप्तद्वारं ररक्ष च ॥४४॥
पूर्णे च दशमे मासे गर्भः पूर्णो बभूव ह। बभूव सा चलस्पन्दा जडरूपा च नारद ॥४५॥
गर्भे च वायुना पूर्णे निर्लिप्तो भगवानजित्। हृत्पद्मकोशे देवक्या अधिष्ठानं चकार ह ॥४६॥
सा विश्वंभरगर्भा च मन्दिराभ्यन्तरे सती। उवास जडरूपा च क्लेशयुक्ता बभूव ह ॥४७॥
उवास च क्षणं देवी क्षणमुत्थाय तिष्ठति। क्षणं व्रजति पादैकं क्षणं स्वपिति तत्र वै ॥४८॥

---

बात सुनकर राजा ने देवकी को छोड़ दिया। तब वसुदेव अपनी प्रिया को लेकर अपने घर गये ॥३५॥ नारद ! वसुदेव के क्रमशः छह पुत्र उत्पन्न हुए, किन्तु वसुदेव सत्य के कारण उन्हें कंस को देते रहे और वह उनका वध क्रमशः करता रहा ॥३६॥ उपरान्त देवकी के सातवें गर्भ में कंस ने भय से रक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया, किन्तु योगमाया ने देवकी के गर्भ से उसे खींचकर रोहिणी के उदर में रख दिया ॥३७॥ रक्षकों ने कंस से कहा कि देवकी का गर्भ-स्राव (गर्भपात) हो गया। वहाँ रोहिणी के गर्भ से भगवान् 'संकर्षण' उत्पन्न हुए ॥३८॥ अनन्तर देवकी का आठवाँ गर्भ प्रकट हुआ, जो वायु से भरा हुआ था। नवाँ मास व्यतीत होने पर दसवाँ मास उपस्थित हुआ। तब सर्वदर्शी भगवान् ने उस गर्भ को देखा। देवकी स्वयं रूपवती और नारियों में श्रेष्ठ थीं, दर्शन मात्र से वह सुन्दरी पहले से चौगुनी सुन्दरी हो गयी। उस समय विकसित मुख और नेत्रवाली देवकी को कंस ने देखा। वह तेज से प्रज्वलित हो योगमाया के समान दसों दिशाओं को प्रकाशित कर रही थी। मूर्तिमान् ज्योतिः पुञ्ज-सी दिखायी देती थीं। अनन्तर उसे देख असुरराज (कंस) को परम आश्चर्य हुआ। उसने सोचा—इसी गर्भ से उत्पन्न सन्तान मेरी मृत्यु का कारण है ॥३९-४३॥ ऐसा कहकर कंस यत्नपूर्वक देवकी और वसुदेव की रखवाली करने लगा। उसने सात द्वारोंवाले भवन में उन्हें रख छोड़ा ॥४४॥ नारद ! दसवाँ मास पूरा होने पर गर्भ पूरा हो गया। तब वह मन्दगति एवं जड़रूप हो गयीं ॥४५॥ वायु से गर्भ के पूर्ण हो जाने पर अजेय एवं निर्लिप्त भगवान् ने देवकी के हृदयकमल-कोश में निवास किया ॥४६॥ भगवान् विश्वम्भर के गर्भ में आने पर वह सती देवकी उस घर के भीतर जड़रूप एवं क्लेशयुक्त हो गयीं ॥४७॥ क्षण में देवी बैठतीं, क्षण में उठकर खड़ी हो जातीं, क्षण में एक पग चलतीं, क्षण में वहीं सो जातीं ॥४८॥ उस समय महामना वसुदेव

दृष्ट्वा च देवकीं शीघ्रं वसुदेवो महामनाः । प्रसूतिसमयं ज्ञात्वा सस्मार हरिमीश्वरम् ॥४९॥
रत्नप्रदीपसंयुक्ते मन्दिरे सुमनोहरे । स्थापयामास खड्गं च लोहं तोयं हुताशनम् ॥५०॥
मन्त्रज्ञं च नरं चैव बन्धुपत्नीर्भयाकुलः । विद्वांसं ब्राह्मणं चैव त्रस्तो बन्धूंश्च सादरम् ॥५१॥
एतस्मिन्नन्तरे तस्या रात्रेर्द्वौ प्रहरौ गतौ । व्याप्तं च गगनं मेघैः क्षणद्युतिसमन्वितैः ॥५२॥
ववुश्च वायवश्चेष्टा ययुर्निद्रां च रक्षकाः । अचेष्टिताश्च शयने मृता इव विचेतनाः ॥५३॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र चाऽऽजग्मुस्त्रिदशेश्वराः । तुष्टुवुर्धर्मब्रह्मेशा गर्भस्थं परमेश्वरम् ॥५४॥

**देवा ऊचुः**

जगद्योनिरयोनिस्त्वमनन्तोऽव्यय एव च । ज्योतिः स्वरूपो ह्यनघः सगुणो निर्गुणो महान् ॥५५॥
भक्तानुरोधात्साकारो निराकारो निरङ्कुशः । निर्व्यूहो निखिलाधारो[1] निःशङ्को निरुपद्रवः ॥५६॥
निरुपाधिश्च निर्लिप्तो निरीहो निधनान्तकः । स्वात्मारामः पूर्णकामो निमिषो[2] नित्य एव च ॥५७॥
स्वेच्छामयः सर्वहेतुः सर्वः सर्वगुणाश्रयः । सुखदो दुःखदो दुर्गो दुर्जनान्तक एव च ॥५८॥
सुभगो दुर्भगो वाग्मी दुराराध्यो दुरत्ययः । वेदहेतुश्च वेदाश्च वेदाङ्गो वेदविद्विभुः ॥५९॥
इत्येवमुक्त्वा देवाश्च प्रणेमुश्च मुहुर्मुहुः । हर्षाश्रुलोचनाः सर्वे ववृषुः कुसुमानि च ॥६०॥
द्विचत्वारिंशन्नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत् । दृढां भक्तिं हरेर्दास्यं लभते वाञ्छितं फलम् ॥६१॥

---

देवकी को देखकर प्रसव का समय जानकर भगवान् जगदीश्वर का स्मरण करने लगे ॥४९॥ रत्न के प्रदीप से युक्त उस परम मनोहर भवन में उन्होंने शीघ्र खड्ग, लोहा, जल और अग्नि को लाकर रखा। भयभीत होकर उन्होंने मंत्रवेत्ता पुरुष, भाइयों की पत्नियों, विद्वान् ब्राह्मण और अपने बन्धुओं को बुला लिया ॥५०-५१॥ इसी बीच रात्रि के दो पहर बीत गये, विद्युत् समेत मेघ आकाश में घिर गये, सुखकर वायु चलने लगा तथा रक्षक लोग उसी भाँति निद्रामग्न हो गये, जिस प्रकार चेतनाहीन प्राणी निश्चेष्ट होकर बिस्तरे पर पड़े रहते हैं ॥५२-५३॥ इस बीच देवों के अधीश्वर ब्रह्मा, शिव और धर्म आकर गर्भस्थ परमेश्वर की स्तुति करने लगे ॥५४॥

**देवों ने कहा**—आप जगत् के उत्पत्ति-स्थान, स्वयं उत्पत्ति-स्थान-रहित, अनन्त, अनश्वर, प्रकाशस्वरूप, पापरहित, सगुण, निर्गुण एवं महान् हैं ॥५५॥ आप निराकार होते हुए भी भक्तों के अनुरोध से साकार हो जाते हैं। आप निरंकुश, स्वच्छन्द, समस्त के आधार, निःशंक, निरुपद्रव, उपाधिरहित, निर्लिप्त, निरीह, मृत्यु के काल, स्वात्मा में रमण करनेवाले, पूर्णकाम, निमेषरहित, नित्य, स्वेच्छामय, सब के कारण, सर्वरूप, समस्त गुणों के आश्रय, सुखदायक, दुःखद, दुर्गरूप, दुर्जननाशक, सुभग, दुर्भग, मितभाषी, दुराराध्य, दुर्लंघ्य, वेदकारण, वेदवेदांगस्वरूप और वेदवेत्ता एवं व्यापक हैं ॥५५-५९॥ इतना कहकर देवों ने बार-बार प्रणाम किया और आँखों में आँसू भरकर पुष्पों की वर्षा की ॥६०॥ इन बयालीस नामों का प्रातःकाल उठकर जो पाठ करता है, उसे हरि की दृढ़ भक्ति, दास्य भाव और वांछित फल की प्राप्ति होती है ॥६१॥

---

१ क. °लाकरो। २ क. निमेषो।

## नारायण उवाच

इत्येवं स्तवनं कृत्वा देवास्ते स्वालयं ययुः। बभूव जलवृष्टिश्च निश्चेष्टा मथुरापुरी ॥६२॥
घोरान्धकारनिबिडा बभूव यामिनी मुने। गते सप्तमुहूर्ते तु चाष्टमे समुपस्थिते ॥६३॥
वेदातिरिक्तदुर्ज्ञेये सर्वोत्कृष्टे शुभे क्षणे। शुभग्रहे दृष्टियुक्तेऽप्यदृष्टे चाशुभग्रहे ॥६४॥
अर्धरात्रे समुत्पन्ने रोहिण्यामष्टमीतिथौ। जयन्तीयोगसंयुक्ते चार्धचन्द्रोदये मुने ॥६५॥
दृष्ट्वा दृष्ट्वा क्षणं लग्नं भीताः सूर्यादयस्तदा। गगने क्रममुल्लङ्घ्य जग्मुर्मीनं शुभावहाः ॥६६॥
सुप्रसन्ना ग्रहाः सर्वे बभूवुस्तत्र संस्थिताः। एकादशास्ते प्रीत्या च मुहूर्तं धातुराज्ञया ॥६७॥
ववर्षुश्च जलधरा ववुर्वाताः सुशीतलाः। सुप्रसन्ना च पृथिवी प्रसन्नाश्च दिशो दश ॥६८॥
ऋषयो मनवश्चैव यक्षगन्धर्वकिन्नराः। देवा देव्यश्च मुदिता ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥६९॥
जगुर्गन्धर्वपतयो विद्याधर्यश्च नारद। सुखेन सुस्रुवुर्नद्यो जज्वलुश्चाग्नयो मुदा ॥७०॥
नेदुर्दुन्दुभयो नाके चाऽऽनकाश्च मनोहराः। पारिजातप्रसूनानां महावृष्टिर्बभूव ह ॥७१॥
जगाम सूतिकागेहं नारीरूपं विधाय भूः। जयशब्दः शङ्खशब्दो हरिशब्दो बभूव ह ॥७२॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र पपात देवकी सती। निःससार च वायुश्च देवकीजठरात्ततः ॥७३॥

---

**नारायण बोले**—इस प्रकार स्तुति कर देव लोग अपने-अपने लोक को चले गये। मुने! जलवृष्टि होने के कारण मथुरापुरी उसी समय निश्चेष्ट मालूम होती थी ॥६२॥ रात्रि घोर अन्धकार से आच्छन्न थी। मुने! सात मुहूर्त व्यतीत हो गये और आठवां उपस्थित हुआ, तब आधी रात के समय सर्वोत्कृष्ट शुभ लग्न आया। वह वेदों से अतिरिक्त तथा दूसरों के लिए दुर्ज्ञेय लग्न था। उस लग्न पर केवल शुभ ग्रहों की दृष्टि थी, अशुभ ग्रहों की नहीं थी। संयोग से जयन्ती नामक योग सम्पन्न हो गया था। मुने! जब अर्ध चन्द्रमा का उदय हुआ, उस समय लग्न की ओर देख-देखकर भयभीत हुए सूर्य आदि सभी ग्रह आकाश में अपनी गति के क्रम को लांघकर मीन लग्न में जा पहुँचे, सभी शुभ ग्रह सुप्रसन्न होकर वहां अवस्थित हुए। विधाता की आज्ञा से एक मुहूर्त के लिए वे सभी ग्रह ग्यारहवें स्थान में जाकर सानन्द स्थित हो गये। मेघ वृष्टि करने लगे। वायु अति शीतल होकर बहने लगा। पृथ्वी अत्यन्त प्रसन्न थी, दशों दिशाएँ भी प्रसन्न थीं, ऋषिगण, मनुवृन्द, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, देव, देवियां प्रसन्न थीं, अप्सराएं नृत्य करने लगीं, गन्धर्वों के स्वामी और विद्याधरियां गीत गाने लगीं। नारद! नदियां सुखपूर्वक बहने लगीं, अग्नि प्रसन्नता से प्रज्वलित हो उठे, स्वर्ग में दुन्दुभियां और मनोहर आनक वाद्य बजने लगे। पारिजात पुष्पों की महावृष्टि होने लगी। पृथ्वी स्त्री का रूप धारण करके सूतिका घर (सौरी) में पहुँची। जय-जयकार, शंख की ध्वनि और हरि-नाम का उच्चारण हो रहा था ॥६३-७२॥ उसी बीच

तत्रैव भगवान्कृष्णो दिव्यरूपं विधाय च। हृत्पद्मकोशाद्देवक्या हरिराविर्बभूव ह ॥७४॥
अतीव कमनीयं च शरीरं सुमनोहरम्। द्विभुजं मुरलीहस्तं स्फुरन्मुकुटकुण्डलम् ॥७५॥
ईषद्धास्यं प्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारकम्। ॥७६॥
मणिरत्नेन्द्रसाराणां भूषणैश्च विभूषितम्। नवीननीरदश्यामं शोभितं पीतवाससा ॥७७॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवचर्चितम्। शरत्पार्वणचन्द्रास्यं बिम्बाधरमनोहरम् ॥७८॥
मयूरपिच्छचूडं च सद्रत्नमुकुटोज्ज्वलम्। त्रिभङ्गवक्रमध्यं च वनमालाविभूषितम् ॥७९॥
श्रीवत्सवक्षसं चारुकौस्तुभेन विराजितम्। किशोरवयसं शान्तं कान्तं ब्रह्मेशयोः परम् ॥८०॥
ददर्श वसुदेवश्च देवकीपुरतो मुने। तुष्टाव परया भक्त्या विस्मयं परमं ययौ ॥८१॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा भक्तिनम्रात्मकंधरः। साश्रुपूर्णः सपुलको देवक्या च स्त्रिया सह ॥८२॥

## वसुदेव उवाच

त्वामतीन्द्रियमव्यक्तमक्षरं निर्गुणं विभुम्। ध्यानासाध्यं च सर्वेषां परमात्मानमीश्वरम् ॥८३॥
स्वेच्छामयं सर्वरूपं स्वेच्छारूपधरं परम्। निर्लिप्तं परमं ब्रह्म बीजरूपं सनातनम् ॥८४॥

---

सती देवकी (पृथ्वी पर) गिर पड़ीं और उनके गर्भ से वायु निकल पड़ा। भगवान् श्रीकृष्ण दिव्य रूप धारणकर देवकी के हृदय-कमल-कोश से बाहर प्रकट हो गये। उनका शरीर अत्यन्त कमनीय और परम मनोहर था। दो भुजाएँ थीं। हाथ में मुरली शोभा पा रही थी। कानों में मकराकृति कुण्डल झलमला रहे थे। मुख मन्द हास्य की छटा से प्रसन्न तथा भक्तों पर कृपा करनेवाला था। श्रेष्ठ मणिरत्नों के सार तत्त्व से निर्मित आभूषण उनके शरीर की शोभा बढ़ा रहे थे। पीताम्बर से सुशोभित श्रीविग्रह की कान्ति नूतन जलधर के समान श्याम थी। चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुम के द्रव से निर्मित अंगराग सब अंगों में लगा हुआ था। उनका मुखचन्द्र शरत्पूर्णिमा के चन्द्रमा की शुभ्र ज्योत्स्ना को तिरस्कृत कर रहा था। बिम्बफल के सदृश लाल अधर के कारण उसकी मनोहरता और बढ़ गयी थी। माथे पर मोरपंख के मुकुट तथा उत्तम रत्नमय किरीट से श्रीहरि की दिव्य ज्योति और भी जाज्वल्यमान हो रही थी। टेढ़ी कमर, त्रिभंगी झाँकी, वनमाला का शृंगार, वक्ष में श्रीवत्स की स्वर्णमयी रेखा और उस पर मनोहर कौस्तुभमणि की भव्य प्रभा अद्भुत शोभा दे रही थी। उनकी किशोर अवस्था थी। वे शान्तस्वरूप भगवान् श्रीहरि ब्रह्मा और शिव के भी परम प्रिय थे ॥७३-८०॥ मुने ! वसुदेव और देवकी ने उन्हें अपने समक्ष देखा। उन्हें बड़ा विस्मय हुआ। वसुदेव ने अपनी पत्नी देवकी के साथ अश्रुपूर्ण नयन, पुलकित शरीर तथा नतमस्तक हो हाथ जोड़कर भक्तिभाव से उनकी स्तुति करने लगे ॥८१-८२॥

**वसुदेव बोले**—आप इन्द्रिय-अगोचर, अप्रकट, अविनाशी, निर्गुण, व्यापक, सभी के लिए ध्यान से असाध्य, परमात्मा, ईश्वर, स्वेच्छामय, सर्वरूप, स्वेच्छा से रूप धारण करनेवाले, महान्, निर्लिप्त, परब्रह्म तथा

स्थूलात्स्थूलतरं व्यासमतिसूक्ष्ममदर्शनम् । स्थितं सर्वशरीरेषु साक्षिरूपमदृश्यकम् ॥८५॥
शरीरवन्तं सगुणमशरीरं गुणोत्करम् । प्रकृतेः प्रकृतीशं च प्राकृतं प्रकृतेः परम् ॥८६॥
सर्वेशं सर्वरूपं च सर्वान्तकरमव्ययम् । सर्वाधारं निराधारं निर्व्यूहं स्तौमि किं विभुम् ॥८७॥
अनन्तः स्तवनेऽशक्तोऽशक्ता देवी सरस्वती । यं वा स्तोतुमशक्तश्च पञ्चवक्त्रः षडाननः ॥८८॥
चतुर्मुखो वेदकर्ता यं स्तोतुमक्षमः सदा । गणेशो न समर्थश्च योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः ॥८९॥
ऋषयो देवताश्चैव मुनीन्द्रमनुमानवाः । स्वप्ने तेषामदृश्यं च त्वामेवं किं स्तुवन्ति ते ॥९०॥
श्रुतयः स्तवनेऽशक्ताः किं स्तुवन्ति विपश्चितः । विहायैवं शरीरं च बालो भवितुमर्हसि ॥९१॥
वसुदेवकृतं स्तोत्रं त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः । भक्ति दास्यमवाप्नोति श्रीकृष्णचरणाम्बुजे ॥९२॥
विशिष्टपुत्रं लभते हरिदासं गुणान्वितम् । संकटं निस्तरेत्तूर्णं शत्रुभीत्या प्रमुच्यते ॥९३॥

**नारायण उवाच**

वसुदेववचः श्रुत्वा तमुवाच हरिः स्वयम् । प्रसन्नवदनः श्रीमान्भक्तानुग्रहकारकः ॥९४॥

**श्रीकृष्ण उवाच**

तपसां च फलेनैव पुत्रोऽहं तव सांप्रतम् । वरं वृणोष्व भद्रं ते भविष्यति न संशयः ॥९५॥

---

सनातन बीजरूप हैं। आप स्थूल से भी अतिस्थूल, व्याप्त, अतिसूक्ष्म, न दिखायी देनेवाले, सभी के शरीर में साक्षीरूप से स्थित, अदृश्य, शरीर धारणकर सगुण रूप, शरीर-रहित, गुणों के निधान, प्रकृति और प्रकृति के अधीश्वर रूप, प्राकृत, प्रकृति से परे, सर्वेश, सर्वरूप, सबको अपने भीतर करनेवाले, अनश्वर, सर्वाधार, निराधार और निर्व्यूह रूप (तर्क के अविषय) हैं, ऐसे प्रभु की मैं क्या स्तुति कर सकता हूँ ॥८३-८७॥ आपकी स्तुति करने में अनन्त अशक्त हैं, देवी सरस्वती असमर्थ हैं और पाँच मुखवाले शिव एवं छह मुखवाले कार्तिकेय असमर्थ हैं। वेद के प्रणेता चार मुखवाले ब्रह्मा आपकी स्तुति करने में सदा अक्षम हैं और गणेश भी असमर्थ हैं। आप योगीन्द्रों के गुरु-के-गुरु हैं। ऋषिगण, देववृन्द, मुनीन्द्रवृन्द, मनु और मानवों को स्वप्न में भी आप दिखायी नहीं देते; फिर वे आपकी स्तुति कैसे कर सकते हैं? जब श्रुतियाँ स्तुति करने में असमर्थ हैं तो विद्वान् लोग क्या स्तुति करेंगे। अतः इस शरीर को हटाकर बाल रूप हो जाने की कृपा करें ॥८८-९१॥ वसुदेव कृत इस स्तोत्र का पाठ जो मनुष्य तीनों संध्याओं में करता है वह श्रीकृष्ण के चरण-कमल में दास्य भक्ति प्राप्त करता है। उसे विशिष्ट गुणी एवं हरिभक्त पुत्र की प्राप्ति होती है। उसका संकट अतिशीघ्र निकल जाता है और शत्रुभय से वह मुक्त हो जाता है ॥९२-९३॥

**नारायण बोले**—वसुदेव की बातें सुनकर प्रसन्नमुख, श्रीमान् और भक्तों पर कृपा करनेवाले स्वयं हरि ने उनसे कहा ॥९४॥

**श्रीकृष्ण बोले**—तपःफल के कारण ही मैं सम्प्रति तुम्हारा पुत्र हुआ हूँ, वर माँगो, तुम्हारा कल्याण होगा,

पुरा तपस्विनां श्रेष्ठः सुतपास्त्वं प्रजापतिः । पत्नी ते[1] पृश्निनाम्नी च तपसाऽराधितस्त्वया ॥९६॥
पुत्रो मत्सदृशस्तत्र दृष्ट्वा मां च वृतो बुधः । मया दत्तो वरस्तुभ्यं मत्समो भविता सुतः ॥९७॥
दत्त्वा तुभ्यं वरं तात मनसाऽऽलोच्य चिन्तितः । मत्समो नास्ति भुवने पुत्रोऽहं तेन हेतुना ॥९८॥
तपसां च प्रभावेण त्वमेव कश्यपः स्वयम् । सुतपा देवमातेयमदितिश्च पतिव्रता ॥९९॥
अधुना कश्यपांशस्त्वं वसुदेवः पिता मम । देवकी देवमातेयमदितेरंशसंभवा ॥१००॥
त्वत्तोऽदित्यां वामनोऽहं पुत्रस्तेऽशेन संभवः । अधुना परिपूर्णोऽहं पुत्रस्ते तपसां फलात् ॥१०१॥
मां वा त्वं पुत्रभावेन ब्रह्मभावेन वा पुनः । मां प्राप्तोऽसि महाप्राज्ञ जीवन्मुक्तो भविष्यसि ॥१०२॥
यशोदाभवनं शीघ्रं मां गृहीत्वा व्रजं व्रज । संस्थाप्य तत्र मां तात मायामादाय स्थापय ॥१०३॥
इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तत्र बालरूपो बभूव ह । नग्नं भूमौ शयानं च ददर्श श्यामलं सुतम् ॥१०४॥
दृष्ट्वा स बालकं तत्र मोहितो विष्णुमायया । किं वा कूटं च तन्द्रायामपूर्वं सूतिकागृहम् ॥१०५॥
इत्युक्त्वा वसुदेवश्च समालोच्य स्त्रिया सह । गृहीत्वा बालकं क्रोडे जगाम नन्दगोकुलम् ॥१०६॥
गत्वा नन्दव्रजं शीघ्रं विवेश सूतिकागृहम् । ददर्श शयनविष्टां यशोदां निद्रयाऽन्विताम् ॥१०७॥

---

इसमें संशय नहीं ॥९५॥ पूर्वकाल में तुम तपस्विश्रेष्ठ सुतपा नामक प्रजापति थे, और तुम्हारी पत्नी का नाम पृश्नि था। तुम दोनों ने तप करके मेरी आराधना की और मेरा दर्शन न होने पर यही वरदान माँगा था कि 'तुम्हारे समान मेरे पुत्र हो।' मैंने तुम्हें वर भी दिया था कि—'तुम्हारे मेरे समान ही पुत्र होगा' ॥९६-९७॥ तात! तुम्हें वर प्रदान करके मैंने मन में विचार करके तय किया कि संसार में मेरे समान पुत्र नहीं है, अतः मैं ही तुम्हारा पुत्र हुआ ॥९८॥ तप के प्रभाव से तुम्हीं स्वयं कश्यप हुए थे और यह पतिव्रता सुतपा देवों की माता अदिति हुई थी ॥९९॥ इस समय कश्यप के अंश से वसुदेव होकर तुम मेरे पिता हो और देवमाता अदिति के अंश से उत्पन्न होकर यह देवकी मेरी माता है ॥१००॥ तुम्हारे द्वारा अदिति से मैं अंशतः वामन नामक तुम्हारा पुत्र हुआ था और इस समय तपस्या-फल के कारण मैं परिपूर्ण रूप से तुम्हारा पुत्र हुआ हूँ ॥१०१॥ महाप्राज्ञ! तुम मुझे पुत्रभाव से या ब्रह्मभाव से प्राप्त कर चुकने के कारण जीवन्मुक्त हो जाओगे ॥१०२॥ तात! अब मुझे व्रज में यशोदा के भवन में शीघ्र पहुँचा दो और वहाँ मुझे रखकर वहाँ से योगमाया को लेकर यहाँ चले आओ ॥१०३॥ इतना कहकर भगवान् बालरूप हो गये। श्यामल पुत्र को पृथ्वी पर नग्नभाव से सोया देख विष्णु की माया से मोहित होकर वसुदेव उस बालक के बारे में बोले कि—यह कूट परब्रह्म ही है क्या? इससे इस सूतिकागृह की कैसी उत्तम शोभा हो रही है ॥१०४-१०५॥ यह कहकर उन्होंने पत्नी के साथ विचार करके बालक को गोद में उठा लिया और नन्द के गोकुल की ओर चल पड़े ॥१०६॥ नन्द के व्रज में जाकर शीघ्रता से सूती-गृह में चले गये और वहाँ यशोदा की शय्या पर गाढ़ निद्रा में

---

१ क. ते सूतोपेयं च।

निद्रान्वितं च नन्दं च सर्वं तत्र गृहे स्थितम् । ददर्श बालिकां नग्नां तप्तकाञ्चनसंनिभाम् ॥१०८॥
ईषद्धास्यां प्रसन्नास्यां पश्यन्तीं गृहशेखरम् । तां दृष्ट्वा वसुदेवश्च विस्मयं परमं ययौ ॥१०९॥
संस्थाप्य तत्र पुत्रं च कन्यामादाय सत्वरम् । जगाम मथुरां हृष्टः स्वकान्तासूतिकागृहम् ॥११०॥
स्थापयामास तत्रैव महामायां च बालिकाम् । रोरूयमाणां तामेव दृष्ट्वा हृष्टा च देवकी ॥१११॥
रोदनेनैव सा बाला बोधयामास रक्षकान् । उत्थाय रक्षकाः शीघ्रं च बालिकां जगृहुस्तदा ॥११२॥
गृहीत्वाबालिकां ते च प्रजग्मुः कंससंनिधिम् । जगाम देवकी पश्चाद्वसुदेवश्च शोकतः ॥११३॥
दृष्ट्वा च बालिकां कंसो नातिहृष्टो महामुने । रोरूयमाणां कल्याणीं तद्दया न बभूव ह ॥११४॥
तां गृहीत्वा च पाषाणे हन्तुं यान्तं सुदारुणम् । उवाच वसुदेवश्च देवकी परमादरम् ॥११५॥
भो भोः कंस नृपश्रेष्ठ नीतिशास्त्रविशारद । निबोध वाक्यं सत्यं च नीतियुक्तं मनोरमम् ॥११६॥
हत्वाऽवयोः पुत्रषट्कं दया ते नास्ति बान्धव । अधुना चाष्टमे गर्भे बालिकामबलां मम ॥११७॥
हत्वा तव किमैश्वर्यं भविष्यति महीतले । स्त्रीमेव हन्तुमबलां किं क्षमा रणमूर्धनि ॥११८॥
इत्येवमुक्त्वा तं वसुर्देवकी च सभातले । ररोद पुरतस्तत्र कंसस्य च दुरात्मनः ॥
कंसस्तयोर्वचः श्रुत्वा तामुवाच दुरात्मना । ॥११९॥

---

से युक्त देखा ॥१०७॥ नन्द को भी निद्रित और घर में सब को सोये हुए देखा । फिर उस बालिका को देखा, जो नग्न एवं तपाये हुए सुवर्ण की भाँति कान्तिपूर्ण, मन्द मुसुकाती, प्रसन्न मुख और घर की छत की ओर दृष्टिपात कर रही थी । उसे देखकर वसुदेव को महान् आश्चर्य हुआ ॥१०८-१०९॥ बालक को वहाँ रखकर शीघ्र कन्या लेकर मथुरा की ओर चल पड़े और हर्षित होकर अपनी प्रिया के सूती-घर में पहुँच गये ॥११०॥ उस महामाया बालिका को वहाँ रख दिया । वह जोर-जोर से रोने लगी । उसे देखकर देवकी अति हर्षित हुई ॥१११॥ उस कन्या ने अपने रोदन से ही रक्षको को जगा दिया, जिससे उन लोगों ने उठकर उस बालिका को शीघ्र ले लिया, और कंस के पास ले जाकर रख दिया । पीछे देवकी-वसुदेव भी शोकाकुल होते हुए वहाँ पहुँचे ॥११२-११३॥ महामुने ! उस बालिका को देखकर कंस बहुत प्रसन्न नहीं हुआ, किन्तु रोदन करती हुई उस कल्याणी पर उसे दया भी नहीं आयी ॥११४॥ उसे लेकर वह पत्थर पर मारने जा रहा था । उस समय अति भयंकर से देवकी और वसुदेव ने परम आदरपूर्वक कहा—नृपश्रेष्ठ, कंस ! तुम नीतिशास्त्र के कुशलवेत्ता हो । कुछ मेरी सत्य, नीतियुक्त एवं मनोरम बातें सुनने की कृपा करो ॥११५-११६॥ भाई ! हमारे छह पुत्रों को मारने पर भी तुम्हें दया नहीं आयी । अब इस समय आठवें गर्भ से मेरी यह अबला पुत्री उत्पन्न हुई है ॥११७॥ इसे मारकर तुम्हें भूतल में क्या ऐश्वर्य मिलेगा ? क्या एक अबला युद्ध के मुहाने पर तुम्हारी राज्यलक्ष्मी का हनन करने में समर्थ हो सकती है ? ॥११८॥ इतना कहकर उस सभा-स्थल में वसुदेव और देवकी दुष्ट कंस के सामने रोदन करने लगे । दुरात्मा कंस ने उन दोनों की बातें सुनकर उनसे कहा ॥११९॥

**कंस उवाच**

शृणु वाक्यं मदीयं च निबोध बोधयामि ते । तृणेन पर्वतं हन्तुं शक्तो धाता च दैवतः ॥१२०॥
कीटेन सिंहशार्दूलं मशकेन गजं तथा । शिशुना च महावीरं महान्तं क्षुद्रजन्तुभिः ॥१२१॥
मूषकेन च मार्जारं मण्डूकेन भुजंगमम् । एवं जन्येन जनकं भक्ष्येणैव च भक्षकम् ॥१२२॥
वह्निना च जलं नष्टुं वह्निं शुष्कतृणेन च । पीताः सप्त समुद्राश्च द्विजेनैकेन जह्नुना ॥१२३॥
धातुर्गतिर्विचित्रा तु दुर्ज्ञेया भुवनत्रये । दैवेन बालिका नष्टुं मां समर्था भविष्यति ॥१२४॥
बालिकां च वधिष्यामि नात्र कार्या विचारणा । इत्येवमुक्त्वा कंसश्च गृहीत्वा बालिकां तदा ॥१२५॥
हन्तुमारब्धवान्कंसस्तमुवाच वसुस्तदा । वृथा हिंसितवान्राजन्देहि बालां कृपानिधे ॥१२६॥
स तच्छ्रुत्वा विचारज्ञः कंसस्तुष्टो महामुने । संबोधयन्तं तत्रैव वाग्बभूवाशरीरिणी ॥१२७॥
हे कंस हंसि कां मूढ न विज्ञाय हरेर्गतिम् । कुत्रचित्त्वन्निहन्ताऽस्ति काले व्यक्तो भविष्यति ॥१२८॥
श्रुत्वैवं देववाणीं च तत्याज बालिकां नृपः । वसुदेवो देवकी च तामादाय मुदान्वितौ ॥१२९॥
जग्मतुः स्वगृहं तौ च कन्यां कृत्वा स्ववक्षसि । मृतामिव पुनः प्राप्य ब्राह्मणेभ्यो ददौ धनम् ॥१३०॥

---

**कंस बोला**—मेरी बातें सुनो ! मैं तुम्हें समझा रहा हूँ, उसे सुनकर ज्ञान करो । विधाता दैववश तृण द्वारा पर्वत को नष्ट कर सकता है । उसी भाँति कीड़े द्वारा सिंह और बाघ को, मच्छर के द्वारा गजराज को, बच्चे से महान् वीर को, क्षुद्र जन्तुओं द्वारा महान् (विशालकाय प्राणी) को, चूहे से बिलार को और मेढ़क से सर्प का हनन करने में समर्थ हो सकता है । संतान से पिता को, भक्ष्य द्वारा भक्षक को, अग्नि से जल को, सूखे तृण से अग्नि को नष्ट कर सकता है । एक ही ब्राह्मण जह्नु ने सातों समुद्रों का पान कर लिया था ॥१२०-१२३॥ इससे तीनों लोकों में विधाता की गति विचित्र एवं दुर्ज्ञेय है । दैववश यह बालिका भी मुझे मारने में समर्थ हो सकती है, अतः इस बालिका का वध मैं अवश्य करूँगा । इसमें कुछ विचार करने की आवश्यकता नहीं है । इतना कहकर कंस ने बालिका को पकड़कर मारना चाहा कि बीच में वसुदेव ने उससे कहा—'राजन् ! आपने अब तक व्यर्थ ही हिंसा की है । कृपानिधे ! अब इस बालिका को मुझे दे दो ।' महामुने ! यह सुनकर विचारशील कंस प्रसन्न हो गया । उसी समय कंस को सम्बोधित करती हुई आकाशवाणी हुई—'मूढ़ कंस ! भगवान् की गति को न समझकर तू किसे मार रहा है । तुम्हारा हनन करनेवाला कहीं उत्पन्न हो गया है, जो अवसर आने पर प्रकट हो जायगा' ॥१२४-१२८॥ इस प्रकार की देववाणी सुनते ही राजा ने बालिका को छोड़ दिया । वसुदेव और देवकी प्रसन्नतापूर्वक बालिका को गोद में लिये अपने घर चले आये । मृत की भाँति उसे पुनः प्राप्त करने पर, वसुदेव ने ब्राह्मणों को धन दिया ॥१२९-१३०॥ विप्र ! वह कन्या परमात्मा श्रीकृष्ण की बड़ी बहन हुई ।

सा परा भगिनी विप्र कृष्णस्य परमात्मनः। एकानंशेति विख्याता पार्वत्यंशसमुद्भवा ॥१३१॥
वसुस्तां द्वारकायां तु रुक्मिण्युद्वाहकर्मणि। ददौ दुर्वाससे भक्त्या शंकरांशाय भक्तितः ॥१३२॥
एवं निगदितं सर्वं कृष्णजन्मानुकीर्तनम्। जन्ममृत्युजरारिघ्नं सुखदं पुण्यदं मुने ॥१३३॥
इति श्रीब्रह्म० महा० कृष्णजन्मख० नारदना० सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

## अथ अष्टमोऽध्यायः

### नारद उवाच

जन्माष्टमीव्रतं ब्रूहि व्रतानां व्रतमुत्तमम्। फलं जयन्ती योगस्य सामान्येनैव सांप्रतम् ॥१॥
को वा दोषोऽप्यकरणे भोजने वा महामुने। उपवासफलं किं वा जयन्त्यां च सुसंमतम् ॥२॥
व्रतं पूजाविधानं च संयमस्य च सांप्रतम्। उपवासपारणयोः सुविचार्य वद प्रभो ॥३॥

### नारायण उवाच

कृत्वा हविष्यं सप्तम्यां संयतः पारणे तथा। अरुणोदयवेलायां समुत्थाय परेऽहनि ॥४॥

---

पार्वती के अंश से समुत्पन्न वह बालिका 'एकानंशा' नाम से विख्यात हुई। वसुदेव ने द्वारिका में रुक्मिणी-विवाह के समय शंकर के अंशावतार दुर्वासा के हाथ में भक्तिपूर्वक उसे दिया था। मुने ! इस प्रकार मैंने भगवान् श्रीकृष्ण की जन्म-कथा सुना दी, जो जन्म, मृत्यु और जरा का नाश करके सुख और पुण्य प्रदान करनेवाली है ॥१३१-१३३॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के कृष्ण-जन्मखण्ड में नारायण-नारद संवाद में सातवाँ अध्याय समाप्त ॥७॥

## अध्याय ८

### जन्माष्टमी व्रत सम्बन्धी फल-निरूपण

**नारद बोले**—व्रतों में जन्माष्टमी व्रत परमोत्तम व्रत है, उसके फल के साथ जयन्ती योग का भी सामान्यतया फल सम्प्रति बता दें ॥१॥ महामुने ! उस दिन व्रत न करने से या भोजन करने से क्या दोष होता है ? और जयन्ती में सर्वसम्मत उपवास का क्या फल है ? ॥२॥ प्रभो ! व्रत, पूजाविधान, संयम, उपवास और पारण के सम्बन्ध में भलीभाँति विचार कर कहिये ॥३॥

**नारायण बोन्ह्ले**—ब्र ! सप्तमी के दिन हविष्य भोजन करके संयमपूर्वक दूसरे दिन जन्माष्टमी तिथि

प्रातः कृत्यं संविधाय स्नात्वा संकल्पमाचरेत् । व्रतोपवासयोर्ब्रह्मञ्छ्रीकृष्णप्रीतिहेतुकम् ॥५॥
मन्वादिदिवसे प्राप्ते यत्फलं स्नानपूजनैः । फलं भाद्रपदेऽष्टम्यां भवेत्कोटिगुणं द्विज ॥६॥
तस्यां तिथौ वारिमात्रं पितृणां यः प्रयच्छति । गयाश्राद्धं कृतं तेन शताब्दं नात्र संशयः ॥७॥
स्नात्वा नित्यक्रियां कृत्वा निर्माय सूतिकागृहम् । लोहखण्डवह्निजालैर्युक्तं रक्षकसंघकैः ॥८॥
तत्र द्रव्यं बहुविधं नाभिच्छेदनकर्तनम् । धात्रीस्वरूपां नारीं च यत्नतः स्थापयेद्बुधः ॥९॥
पूजाद्रव्याणि चारूणि सोपचाराणि षोडश । फलान्यष्टौ च मिष्टानि द्रव्याण्येव हि नारद ॥१०॥
जातीफलं च कङ्कोलं दाडिमं श्रीफलं तथा ॥११॥
नारिकेरं च जम्बीरं कूष्माण्डं च सुवाससम् । आसनं वसनं पाद्यं मधुपर्कं तथैव च ॥१२॥
अर्घ्यमाचमनीयं च स्नानीयं शयनं तथा । गन्धं पुष्पं च नैवेद्यं ताम्बूलमनुलेपनम् ॥१३॥
धूपदीपौ भूषणं वै चोपचारांश्च षोडश । पादप्रक्षालनं कृत्वा धृत्वा धौते च वाससी ॥१४॥
आचम्य चाऽऽसने स्थित्वा स्वस्तिवाचनपूर्वकम् । घटस्याऽऽरोपणं कृत्वा संपूज्य पञ्च देवताः ॥१५॥
घटे ह्यावाहनं कृत्वा श्रीकृष्णं परमेश्वरम् । वसुदेवं देवकीं च यशोदां नन्दमेव च ॥१६॥
रोहिणीं बलदेवं च षष्ठीदेवीं वसुंधराम् । रोहिणीं ब्राह्मणीं चैव अष्टमीं स्थानदेवताम् ॥१७॥
अश्वत्थाम्ना सह बलिं हनूमन्तं विभीषणम् । कृपं परशुरामं च वेदव्यासं मृकण्डुजम् ॥१८॥

---

के अरुणोदय वेला में उठकर स्नान करके प्रातःकृत्य करे। अनन्तर व्रत और उपवास के लिए संकल्प करे— 'भगवान् श्रीकृष्ण की प्रीति हेतु मैं आज व्रत और उपवास करूँगा' ॥४-५॥ द्विज ! मन्वादि तिथि प्राप्त होने पर स्नान-पूजन करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, इस भाद्रपद श्रीकृष्णाष्टमी में वह फल कोटि गुना अधिक प्राप्त होता है ॥६॥ उस तिथि में जिसने पितरों को केवल जलमात्र ही प्रदान किया उसने मानो सौ वर्ष तक गयाश्राद्ध किया, इसमें संशय नहीं ॥७॥ स्नान-नित्य क्रिया करने के उपरान्त सूती-गृह का निर्माण करे और उसमें लोहखण्ड, अग्नि, रक्षकवृन्द (सेवकगण), अनेक भाँति के द्रव्य रखकर नाल काटने की कैंची और धात्रीस्वरूप एक स्त्री को उपस्थित करे। नारद ! षोडशोपचार पूजन के सुन्दर सामान, आठ फल, मिठाइयाँ और द्रव्य, जायफल, कंकोल, अनार, बेल, नारियल नीबू, कुम्हड़ा, उत्तम वस्त्र, आसन, वस्त्र, पाद्य (जल), मधुपर्क, अर्घ्य, आचमनीय (जल), स्नानार्थ जल, शय्या, गंध, पुष्प, नैवेद्य, ताम्बूल, उबटन, धूप, दीप, भूषण, यही षोडशोपचार पूजन की सामग्री है ॥८-१३॥ उपरान्त पैर धोकर दो धुले वस्त्र धारणकर आसन पर बैठ आचमन करे और स्वस्तिवाचनपूर्वक कलश-स्थापन करके पाँच देवों का पूजन करे ॥१४-१५॥ कलश पर भगवान् श्रीकृष्ण का आवाहन करके वसुदेव, देवकी, यशोदा, नंद रोहिणी, बलदेव, षष्ठी देवी, पृथ्वी, रोहिणी, ब्राह्मणी, अष्टमी, स्थान-देवता, अश्वत्थामा, बलि, हनुमान्, विभीषण, कृपाचार्य, परशुराम, वेदव्यास और

सर्वस्याऽऽवाहनं कृत्वा ध्यानं कुर्याद्धरेस्तदा। पुष्पकं मस्तके न्यस्य पुनर्ध्यायेद्विचक्षणः ॥१९॥
ध्यानं च सामवेदोक्तं शृणु वक्ष्यामि नारद। ब्रह्मणा कथितं पूर्वं कुमाराय महात्मने ॥२०॥

बालं नीलाम्बुजाभमतिशयरुचिरं स्मेरवक्त्राम्बुजं तं
ब्रह्मेशानन्तधर्मैः कतिकतिदिवसैः स्तूयमानं परं [1]यम्।
ध्यानासाध्यमृषीन्द्रैर्मुनिगणमनुजैः सिद्धसंघैरसाध्यं
योगीन्द्राणामचिन्त्यमतिशयमतुलं साक्षिरूपं भजेऽहम् ॥२१॥

ध्यात्वा पुष्पं च दत्त्वा च तत्सर्वं च निवेदयेत्। एवं व्रती व्रतं कुर्याच्छृणु मन्त्रक्रमं मुने ॥२२॥
आसनं सर्वशोभाढ्यं सद्रत्नमणिनिर्मितम्। विचित्रं च विचित्रेण गृह्यतां शोभनं हरे ॥२३॥
वसनं वह्निशौचं च निर्मितं विश्वकर्मणा। प्रतप्तस्वर्णखचितं चित्रितं गृह्यतां हरे ॥२४॥
पादप्रक्षालनार्थं च स्वर्णपात्रस्थितं जलम्। पवित्रं निर्मलं चारु पाद्यं च गृह्यतां हरे ॥२५॥
मधुसर्पिर्दधिक्षीरं शर्करासंयुतं परम्। स्वर्णपात्रस्थितं देयं स्नानार्थं गृह्यतां हरे ॥२६॥
दूर्वाक्षतं शुक्लपुष्पं स्वच्छतोयसमन्वितम्। चन्दनागुरुकस्तूरीसहितं गृह्यतां हरे ॥२७॥
सुस्वादु स्वच्छतोयं च वासितं गन्धवस्तुना। शुद्धमाचमनीयं च गृह्यतां परमेश्वर ॥२८॥
गन्धद्रव्यसमायुक्तं विष्णो तैलं सुवासितम्। आमलक्या द्रवं चैव स्नानीयं गृह्यतां हरे ॥२९॥

---

मार्कण्डेय इन सभी देवों के आवाहनपूर्वक भगवान् का ध्यान करे। मस्तक पर पुष्प रखकर बुद्धिमान् को पुनः ध्यान करना चाहिए ॥१६-१९॥ नारद ! मैं सामवेदोक्त ध्यान तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो। इसे ब्रह्मा ने पूर्वकाल में महात्मा कुमार को बताया था ॥२०॥ मैं नीलकमल के समान आभावाले बालमुकुन्द का भजन करता हूँ, जो अत्यन्त सुन्दर हैं तथा जिनके मुखारविन्द पर मन्द मुस्कान की छटा छा रही है। ब्रह्मा, शिव, शेषनाग और धर्म कई-कई दिनों तक उनकी स्तुति करते रहते हैं। वे ध्यान द्वारा साध्य नहीं होते। श्रेष्ठ ऋषियों, मुनिगणों, मनुष्यों तथा सिद्धों के लिए भी वे असाध्य हैं। योगीन्द्रों के चिन्तन में भी वे नहीं आते। वे अतिशय (सबसे बढ़कर), अनुपम एवं साक्षी रूप हैं ॥२१॥ मुने ! इस प्रकार ध्यान करके पुष्प प्रदान करे और समस्त वस्तुएँ अर्पित कर दे। इसी भाँति व्रती को व्रत करना चाहिए। अब मंत्र का क्रम बता रहा हूँ, सुनो। हरे ! समस्त शोभा से सम्पन्न, उत्तम रत्नों एवं मणियों द्वारा निर्मित, विचित्र बेलबूटों से चित्रित एवं सुन्दर यह आसन ग्रहण करें ॥२२-२३॥ हरे ! अग्नि की भाँति विशुद्ध, विश्वकर्मा द्वारा सुरचित, अत्यन्त तपाये हुए सुवर्ण से खचित इस चित्रित वस्त्र को ग्रहण करें। ॥२४॥ हरे ! सुवर्ण के पात्र में स्थित, पवित्र, निर्मल और सुन्दर यह जल चरण प्रक्षालन के लिए स्वीकार करें ॥२५॥ हरे ! सुवर्ण के पात्र में स्थित मधु, घृत, दही, दुग्ध और शक्कर (रूप मधुपर्क या पञ्चामृत) स्नानार्थ आप स्वीकार करें ॥२६॥ हरे ! दूर्वा, अक्षत, श्वेत पुष्प, चन्दन अगुरु, कस्तूरी-मिश्रित स्वच्छ जल (रूप अर्घ्य) ग्रहण करें ॥२७॥ परमेश्वर ! सुस्वादु और सुवासित, शुद्ध और स्वच्छ जल आचमन के लिए स्वीकार करें ॥२८॥ विष्णो ! गंध द्रव्य एवं सुवासित तेल समेत इस आँवले

---

१ ख. यत्।

सद्रत्नमणिसारेण रचितां सुमनोहराम् । छादितां सूक्ष्मवस्त्रेण शय्यां च गृह्यतां हरे ॥३०॥
चूर्णं च वृक्षभेदानां मूलानां द्रवसंयुतम् । कस्तूरीद्रवसंयुक्तं गन्धं च गृह्यतां हरे ॥३१॥
पुष्पं सुगन्धियुक्तं च संयुक्तं कुङ्कुमेन च । सुप्रियं सर्वदेवानां सांप्रतं गृह्यतां हरे ॥३२॥
गृह्यतां स्वस्तिकोक्तं च मिष्टद्रव्यसमन्वितम् । सुपक्वफलसंयुक्तं नैवेद्यं गृह्यतां हरे ॥३३॥
लड्डुकं मोदकं चैव सर्पिः क्षीरं गुडं मधु । नोवद्धृतं दधि तक्रं नैवेद्यं गृह्यतां हरे ॥३४॥
शीतलं शर्करायुक्तं क्षीरं स्वादु सुपक्वकम् । ताम्बूलं भोगसारं च कर्पूरादिसमन्वितम् ॥
भक्त्या निवेदितमिदं गृह्यतां परमेश्वर ॥३५॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवसंयुतम् । अबीरचूर्णं रुचिरं गृह्यतां परमेश्वर ॥३६॥
तरुभेदरसोत्कर्षो गन्धयुक्तोऽग्निना सह । सुप्रियः सर्वदेवानां धूपोऽयं गृह्यतां हरे ॥३७॥
घोरान्धकारनाशैकहेतुरेव शुभावहः । सुप्रदीपो दीप्तिकरो दीपोऽयं गृह्यतां हरे ।३८॥
पवित्रं निर्मलं तोयं कर्पूरादिसमायुतम् । जीवन सर्वजीवानां पानार्थं गृह्यतां हरे ॥३९॥
नानापुष्पसमायुक्तं ग्रथितं सूक्ष्मतन्तुना । शरीरभूषणवरं माल्यं च प्रतिगृह्यताम् ॥४०॥
दत्त्वा देयानि द्रव्याणि पूजोपयोगितानि च । व्रतस्थानस्थितं द्रव्यं हरये देयमेव च ॥४१॥
फलानि तरुबीजानि स्वादूनि सुन्दराणि च । वंशवृद्धिकराण्येव गृह्यतां परमेश्वर ॥४२॥

---

के रस को स्नानार्थ स्वीकार करें ॥२९॥ हरे ! उत्तम रत्नमणि के सारभाग से सुरचित, अति मनोहर एवं सूक्ष्म वस्त्र से आच्छादित इस शय्या को स्वीकार करें ॥३०॥ हरे ! विभिन्न वृक्षों के चूर्ण से युक्त, नाना प्रकार के वृक्षों की जड़ों के द्रव से पूर्ण तथा कस्तूरी से मिश्रित यह गन्ध ग्रहण करें ॥३१॥ हरे ! कुंकुम से युक्त और सुगन्धित पुष्प, जो सभी देवों को अत्यन्त प्रिय है, स्वीकार करें ॥३२॥ हरे ! स्वस्तिका (इमिरती) नामवाली मिठाई और सुन्दर पके फल से युक्त नैवेद्य ग्रहण करें ॥३३॥ हरे ! लड्डू, मोदक, घृत, दुग्ध, गुड़, मधु, ताजा दही और तक्र का नैवेद्य स्वीकार करें ॥३४॥ परमेश्वर ! शीतल, शक्कर मिलाया हुआ ठंडा और परिपक्व स्वादिष्ट दूध और कर्पूरादि से सुवासित यह भोगों का सारभूत ताम्बूल भक्तिपूर्वक निवेदित है, ग्रहण करें ॥३५॥ परमेश्वर ! चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुम के द्रव से संयुक्त, सुन्दर अबीर चूर्ण (अनुलेपन के रूप में) ग्रहण करें ॥३६॥ हरे ! विभिन्न वृक्षों के उत्कृष्ट गोंद तथा अन्य सुगन्धित पदार्थों के संयोग से बना हुआ तथा सभी देवों को अतिप्रिय यह धूप ग्रहण करें ॥३७॥ हरे ! घोर अंधकार के नाश का एकमात्र कारण, शुभप्रद, ज्योतिकारक एवं सुन्दर यह प्रदीप ग्रहण करें ॥३८॥ हरे ! पवित्र निर्मल, कर्पूरादि सुवासित और समस्त जीवों का जीवन रूप यह जल, पान करने के लिए ग्रहण करें ॥३९॥ अनेक भाँति के पुष्पों से मिश्रित, सूक्ष्म डोरे में गुंथा हुआ तथा शरीर के लिए भूषण रूप यह हार ग्रहण करें ॥४०॥ पूजा की अन्य देय सामग्रियाँ उन्हें अर्पित करके व्रत के स्थान में रखा हुआ द्रव्य भगवान् को समर्पित कर देना चाहिए ॥४१॥ परमेश्वर ! सुन्दर,

आवाहितांश्च देवांश्च प्रत्येकं पूजयेद्व्रती। तान्पूज्य भक्तिभावेन दद्यात्पुष्पाञ्जलित्रयम् ॥४३॥
सुनन्दनन्दकुमुदान्गोपान्गोपीश्च राधिकाम्। गणेशं कार्तिकेयं च ब्रह्माणं च शिवं शिवाम् ॥४४॥
लक्ष्मीं सरस्वतीं चैव दिक्पालांश्च ग्रहांस्तथा। शेषं सुदर्शनं चैव पार्षदप्रवरांस्तथा ॥४५॥
संपूज्य सर्वदेवांश्च प्रणम्य दण्डवद्भुवि। ब्राह्मणेभ्यश्च नैवेद्यं दत्त्वा दद्याच्च दक्षिणाम् ॥४६॥
कथां च जन्माध्यायोक्तां शृणुयाद्भक्तिभावतः। तदा कुशासने स्थित्वा कुर्याज्जागरणं व्रती ॥४७॥
प्रभाते चाऽऽह्निकं कृत्वा संपूज्य श्रीहरिं मुदा। ब्राह्मणान्भोजयित्वा च कारयेद्धरिकीर्तनम् ॥४८॥

**नारद उवाच**

व्रतकालव्यवस्थां च वेदोक्तां सर्वसंमताम्। वेदार्थं च समालोच्य संहितां च पुरातनीम् ॥४९॥
उपवासे जागरणे व्रते किं वा फलं मुने। किं वा पापं तत्र भुक्त्वा वद वेदविदां वर ॥५०॥

**नारायण उवाच**

अष्टमी कर्क्षसंयुक्ता[1] राज्यर्धे यदि दृश्यते। स एव मुख्यकालश्च तत्र जातः स्वयं हरिः ॥५१॥
जयं पुण्यं च कुरुते जयन्ती तेन संस्मृता। तत्रोपोष्य व्रतं कृत्वा कुर्याज्जागरणं बुधः ॥५२॥

---

स्वादपूर्ण, तरु के बीज रूप एवं वंशवृद्धिकारी इन फलों को ग्रहण करें ॥४२॥ इसी भाँति आवाहित प्रत्येक देवों की अर्चना व्रती को करनी चाहिए। भक्तिभाव से उन देवों की पूजा करने के उपरान्त तीन पुष्पाञ्जलि अर्पित करे ॥४३॥ अनन्तर सुनन्द, नन्द, कुमुद नामक गोप और गोपियों समेत राधिका, गणेश, कार्तिकेय, ब्रह्मा, शिव, पार्वती, लक्ष्मी, सरस्वती, दिक्पाल एवं ग्रहों और शेष, सुदर्शन तथा पार्षद प्रवरों और अन्य समस्त देवों की अर्चना करके भूमि में साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करे। तदनन्तर ब्राह्मणों को नैवेद्य और दक्षिणा प्रदान करे ॥४४-४६॥ पश्चात् जन्माध्याय में बतायी गयी कथा भक्तिपूर्वक सुनकर व्रती उस रात्रि कुशासन पर बैठकर जागरण करे ॥४७॥ पुनः प्रातःकाल नित्य कर्म के उपरान्त सुप्रसन्न मन से भगवान् की पूजा और ब्राह्मण भोजन कराकर हरि कीर्तन कराये ॥४८॥

**नारद बोले**—मुने! वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ! सर्वसम्मत एवं वेदोक्त व्रतकाल की व्यवस्था के निमित्त वेदार्थ और प्राचीन संहिता का विचार करके व्रतोपवास और तन्निमित्त जागरण करने से किस फल की प्राप्ति होती है तथा उस दिन भोजन करने पर कौन-सा पाप लगता है, बताने की कृपा करें ॥४९-५०॥

**नारायण बोले**—आधी रात के समय अष्टमी तिथि यदि रोहिणी नक्षत्र से संयुक्त हो तो वही मुख्य समय माना जायगा क्योंकि स्वयं भगवान् उसी में प्रकट हुए हैं ॥५१॥ (उसमें व्रत करने से) जय और पुण्य की प्राप्ति

---

१. कर्क्षेण ब्रह्मनक्षत्रेण रोहिणीनक्षत्रेण संयुक्तेत्यर्थः।

सर्वापवादः कालोऽयं प्रधानः सर्वसंमतः । इति वेदविदां वाणी चेत्युक्ता वेधसा पुरा ॥५३॥
तत्र जागरणं कृत्वा यश्चोपोष्य व्रतं चरेत् । कोटिजन्मार्जितात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥५४॥
वर्जनीया प्रयत्नेन सप्तमीसहिताऽष्टमी । सा सर्क्षाऽपि न कर्तव्या सप्तमीसहिताऽष्टमी ॥५५॥
अविद्धायां कऋक्षायां जातो देवकिनन्दनः । वेदवेदाङ्गगुप्तेति विशिष्टे मङ्गलक्षणे ॥५६॥
व्यतीते रोहिणीऋक्षे व्रती कुर्याच्च पारणाम् । तिथ्यन्ते च हरिं स्मृत्वा कृत्वा देवार्चनं व्रती ॥५७॥
पारणं पावनं पुंसां सर्वपापप्रणाशनम् । उपवासाङ्गभूतं च फलदं सिद्धिकारणम् ॥५८॥
सर्वेष्वेवोपवासेषु दिवा पारणमिष्यते । अन्यथा फलहानिः स्यात्कृते धारणपारणे ॥५९॥
न रात्रौ पारणं कुर्यादृते वै रोहिणीव्रतात् । निशायां पारणं कुर्याद्वर्जयित्वा महानिशाम् ॥६०॥
पूर्वाह्णे पारणं शस्तं कृत्वा विप्रसुरार्चनम् । सर्वेषां संमतं कुर्यादृते वै रोहिणीव्रतम् ॥६१॥
बुधसोमसमायुक्ता जयन्ती यदि लभ्यते । न कुर्याद्गर्भवासं च तत्र कृत्वा व्रतं व्रती ॥६२॥
उदये चाष्टमी किंचिन्नवमी सकला यदि । भवेद्बुधेन्दुसंयुक्ता प्राजापत्यर्क्षसंयुता ॥६३॥
अपि वर्षशतेनापि लभ्यते वा न लभ्यते । व्रतं तत्र व्रती कुर्यात्पुंसां कोटिं समुद्धरेत् ॥६४॥
नृणां विना व्रतेनापि भक्तानां हीनसंपदाम् । कृतेनैवोपवासेन प्रीतो भवति माधवः ॥६५॥

---

होती है अतः उसे जयन्ती भी कहते हैं। विद्वान् को चाहिए कि उसमें व्रतोपवास और जागरण करें। यह समय सबका अपवाद, प्रधान और सर्वसम्मत है, ऐसा वेदवेत्ताओं का कहना है। पूर्वकाल में ब्रह्मा ने ऐसा ही कहा था ॥५२-५३॥ उसमें जो व्रतोपवासपूर्वक जागरण करता है, वह करोड़ों जन्मों के सञ्चित पापों से मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं ॥५४॥ सप्तमी विद्धा अष्टमी में कभी भी व्रत नहीं करना चाहिए, चाहे उस समय (रोहिणी) नक्षत्र भी क्यों न आ जाये। क्योंकि अविद्ध रोहिणी नक्षत्र में भगवान् देवकीनन्दन प्रकट हुए थे ॥५५॥ यह विशिष्ट मंगलमय क्षण वेदों और वेदांगों के लिए भी गुप्त है। रोहिणी नक्षत्र के व्यतीत होने पर व्रती को पारण करना चाहिए। अष्टमी तिथि के अन्त में भगवान् के स्मरणपूर्वक देवों का पूजन करके व्रती को वह पावन पारण करना चाहिए, जो मनुष्यों के समस्त पापों का नाश करनेवाला है। वह उपवास का अंगभूत, फलप्रद एवं सिद्धि का कारण है ॥५६-५८॥ सभी प्रकार के उपवासों में दिन में ही पारण करना चाहिए। अन्य प्रकार से व्रत और पारण करने पर फल की हानि होती है ॥५९॥ रोहिणी व्रत को छोड़कर रात्रि में कभी भी पारण नहीं करना चाहिए। निशा में पारण करे, किन्तु महानिशा को छोड़कर ॥६०॥ ब्राह्मण एवं देवों की अर्चना के अनन्तर पूर्वाह्ण में पारण करना उत्तम है। सर्वसम्मत से निश्चय करके पारण करना चाहिए किन्तु रोहिणी व्रत को छोड़कर ॥६१॥ बुध अथवा सोमयुक्त जयन्ती प्राप्त होने पर उसमें व्रत करने से व्रती को कभी भी गर्भ में वास नहीं करना पड़ता है ॥६२॥ उदयकाल में कुछ अष्टमी हो और सम्पूर्ण समय नवमी तिथि हो और बुध या सोम दिन समेत रोहिणी नक्षत्र हो, ऐसा योग सैकड़ों वर्षों में भी मिले या न मिले, किन्तु उसमें व्रत करने से व्रती अपनी करोड़ों पीढ़ियों का उद्धार करता है ॥६३-६४॥ जो सम्पत्तिहीन भक्त मनुष्य हैं, उन पर व्रतोत्सव के बिना भी केवल उपवास मात्र कर लेने से ही

भक्त्या नानोपचारेण रात्रौ जागरणेन च। फलं ददाति दैत्यारिर्जयन्तीव्रतसंभवम् ॥६६॥
वित्तशाठ्यमकुर्वाणः सम्यक्फलमवाप्नुयात्। कुर्वाणो वित्तशाठ्यं च लभते सदृशं फलम् ॥६७॥
अष्टम्यामथ रोहिण्यां न कुर्यात्पारणं बुधः। हन्यात्पुराकृतं पुण्यं चोपवासार्जितं फलम् ॥६८॥
तिथिरष्टगुणं हन्ति नक्षत्रं च चतुर्गुणम्। तस्मात्प्रयत्नतः कुर्यात्तिथिभान्ते च पारणम् ॥६९॥
महानिशायां प्राप्तायां तिथिभान्तं यदा भवेत्। तृतीयेऽह्नि मुनिश्रेष्ठ पारणं कुरुते बुधः ॥७०॥
षण्मुहूर्ते व्यतीते तु रात्रावेव महानिशा। लभते ब्रह्महत्यां च तत्र भुक्त्वा च नारद ॥७१॥
गोमांसविण्मूत्रसमं ताम्बूलं च फलं जलम्। पुंसामभक्ष्यं शुद्धानामोदनस्य च का कथा ॥७२॥
त्रियामां रजनीं प्राहुस्त्यक्त्वाऽऽद्यं च चतुष्टयम्। नाडीनां तदुभे संध्ये दिवसाद्यन्तसंज्ञिते ॥७३॥
जन्माष्टम्यां च शुद्धायां कृत्वा जागरणं व्रतम्। शतजन्मकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥७४॥
जन्माष्टम्यां च शुद्धायामुपोष्य केवलं नरः। अश्वमेधफलं तस्य व्रतं जागरणं विना ॥७५॥
यद्बाल्ये यच्च कौमारे यौवने यच्च वार्धके। सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥७६॥
श्रीकृष्णजन्मदिवसे यश्च भुङ्क्ते नराधमः। स भवेन्मातृगामी च ब्रह्महत्याशतं लभेत् ॥७७॥

---

भगवान् माधव प्रसन्न हो जाते हैं ॥६५॥ भक्तिपूर्वक विविध उपचार से पूजन और रात्रि-जागरण करने पर दैत्यों के शत्रु भगवान् उसे जयन्तीव्रत का फल प्रदान करते हैं ॥६६॥ उस समय वित्तशाठ्य कृपणता न करनेवाले प्राणी को उत्तम फल प्राप्त होता है। जो कृपणता करता है, वह उसके अनुरूप ही फल पाता है ॥६७॥ विद्वान् यदि अष्टमी या रोहिणी में पारण नहीं करता है, तो पूर्वजन्म के उपवासादिजनित पुण्य-फल को नष्ट करता है ॥६८॥ तिथि आठ गुने फल को और नक्षत्र चौगुने फल को नष्ट करता है। इसलिए सप्रयत्न तिथि और नक्षत्र के अंत में पारण करे ॥६९॥ मुनिश्रेष्ठ ! यदि महानिशा के समय तिथि और नक्षत्र की समाप्ति होती हो, तो विद्वान् को तीसरे दिन पारण करना चाहिए ॥७०॥ नारद ! छह मुहूर्त व्यतीत होने पर रात्रि में महानिशा का समय हो जाता है, उसमें भोजन करने पर ब्रह्महत्या का दोषभागी होना पड़ता है ॥७१॥ गोमांस विष्ठा और मूत्र के समान उसमें ताम्बूल, फल और जल हो जाता है। उस समय पुरुषों को शुद्ध भक्ष्य भी अभक्ष्य हो जाता है, तो भात की बात ही क्या कही जाये ॥७२॥ आदि और अन्त के चार-चार दण्ड को छोड़कर बीच की तीन पहर-वाली रात्रि को त्रियामा रजनी कहते हैं। उस रजनी के आदि और अन्त में दो संध्याएँ होती हैं, जिनमें से एक को दिनादि या प्रातः सन्ध्या कहते हैं और दूसरी को दिनान्त या सायं सन्ध्या। शुद्धा जन्माष्टमी में व्रत एवं जागरण करके मनुष्य सौ जन्मों के पापों से मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं ॥७३-७४॥ शुद्ध जन्माष्टमी में केवल उपवास करने से ही मनुष्य अश्वमेध का फल प्राप्त करता है। बिना जागरण के केवल व्रत करने से ही बाल्यावस्था, कुमार, युवा और वृद्धावस्था के सात जन्मों के पापों से मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं ॥७५-७६॥ भगवान् कृष्ण के जन्म-दिन जो भोजन करता है, वह अधम मनुष्य मातृगामी

कोटिजन्मार्जितं पुण्यं तस्य नश्यति निश्चितम् । अनर्हश्चाशुचिः शश्वद्दैवे पित्र्ये च कर्मणि ।।७८।।
अन्ते वसेत्कालसूत्रे यावच्चन्द्रदिवाकरौ । कृमिभिः शूलतुल्यैश्च तीक्ष्णदंष्ट्रैश्च भक्षितः ।।७९।।
पापी ततः समुत्थाय भारते जन्म चेल्लभेत् । षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां च कृमिर्भवेत् ।।८०।।
गृध्रकोटिसहस्राणि शतजन्मानि सूकरः । श्वापदः शतजन्मानि सृगालः सप्त जन्म च ।।८१।।
सप्तजन्मसु सर्पश्च काकश्च सप्तजन्मसु । ततो भवेन्नरो मूको गलत्कुष्ठी सदाऽऽतुरः ।।८२।।
ततो भवेत्पशुघ्नश्च व्यालग्राही ततो भवेत् । तदन्ते च भवेद्दस्युर्धर्महीनश्च[1] गृध्रकः ।।८३।।
ततो भवेत्स रजकस्तैलकारस्ततो भवेत् । ततो भवेद्देवलको ब्राह्मणश्च सदाऽशुचिः ।।८४।।
उपवासासमर्थश्चेदेकं विप्रं च भोजयेत् । तावद्धनानि वा दद्याद्यद्भुक्तं द्विगुणं भवेत् ।।८५।।
सहस्रसंमितां देवीं जपेद्वा प्राणसंयमान् । कुर्याद्द्वादशसंख्याकान्यथार्थं तद्व्रते नरः ।।८६।।
इत्येवं कथितं वत्स श्रुतं यद्धर्मवक्त्रतः । व्रतोपवासपूजानां विधानमकृते च यत् ।।८७।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० कृष्णजन्माष्टमीव्रतपूजोपवासनिरूपणं नामाष्टमोऽध्यायः ।।८।।

---

होने का दोषभागी और सौ ब्रह्म हत्याओं का दोषभागी होता है और उसके करोड़ों जन्मों का पुण्य निश्चित नष्ट हो जाता है । देव एवं पितर के कार्य में निरन्तर अयोग्य और अपवित्र रहता है तथा अन्त में सूर्य-चन्द्रमा के वर्तमान काल तक कालसूत्र नामक नरक में पड़ता है । वहाँ शूल के समान तीक्ष्ण दाँतवाले कीड़े उसे नित्य काट-काटकर खाते हैं । पश्चात् वह पापी वहाँ से निकलने पर यदि भारत में जन्म ग्रहण करता है, तो साठ सहस्र करोड़ वर्षों तक गोप, सौ जन्म सूकर, सौ जन्म हिंसक जन्तु, सात जन्म गीदड़, सात जन्म सर्प, सात जन्म कौवा होकर पश्चात् मूक (गूंगा) और गलत्कुष्ठ का रोगी मनुष्य होता है, जो सदैव आतुर रहा करता है । अनन्तर पशु हिंसक, सँपेरा, धर्मरहित दस्यु (लुटेरा), गीध, रजक (धोबी), तेली होकर अंत में सदा अपवित्र पुजारी ब्राह्मण होता है ।।७७-८४।। उपवास न कर सके तो एक ब्राह्मण को भोजन कराये अथवा उतना धन दे दे, जितने से वह दो बार भोजन कर ले ।।८५।। प्राणायामपूर्वक एक सहस्र गायत्री देवी का जप करे । उस व्रत में मनुष्य बारह हजार मंत्रों का यथार्थ रूप से जप करे ।।८६।। मैंने धर्म के मुख से जो कुछ सुना था, वह सब तुम्हें सुना दिया और उसके न करने पर जो कुछ दोष होता है वह सब बता दिया गया ।।८७।।

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड के नारद और नारायण के संवाद में कृष्णजन्माष्टमीव्रत, पूजा और उपवास निरूपण नामक आठवाँ अध्याय समाप्त ।।८।।

---

[1] क. 'हीनो नरघ्नकः ।

# अथ नवमोऽध्यायः

## नारद उवाच

संस्थाप्य गोकुले कृष्णं यशोदामन्दिरे वसुः। जगाम स्वगृहं नन्दः किंचकार सुतोत्सवम् ॥१॥
किं चकार हरिस्तत्र कतिवर्षस्थितिः प्रभोः। बालक्रीडनकं तस्य वर्णय क्रमशो मुने ॥२॥
पुरा कृता या प्रतिज्ञा गोलोके राधया सह। तत्कृतं केन विधिना प्रतिज्ञापालनं हरेः ॥३॥
कीदृग्वृन्दावनं नाम मण्डलं किंविधं वद। रासक्रीडां जलक्रीडां संव्यस्य वर्णय प्रभो ॥४॥
नन्दस्तपः किं चकार यशोदा चाथ रोहिणी। हरेः पूर्वं च हलिनः कुत्र जन्म बभूव ह ॥५॥
पीयूषखण्डमाख्यानमपूर्वं श्रीहरेः स्मृतम्। विशेषतः कविमुखान्नव्यं नूनं पदे पदे ॥६॥
स्वरासमण्डलक्रीडां वर्णय स्वयमेव च। परोक्षवर्णनात्काव्यं प्रशस्तं नव्यवर्णनम् ॥७॥
श्रीकृष्णांशो भवान्साक्षाद्योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः। यो यस्यांशः स च जनस्तस्यैव सुखतः सुखी ॥८॥
त्वयैव वर्णितौ पादौ विलीनौ तु युवां हरेः। साक्षाद्गोलोकनाथांशस्त्वमेव तत्समो महान् ॥९॥

## नारायण उवाच

ब्रह्मेशशेषविघ्नेशाः कूर्मो धर्मोऽहमेव च। नरश्च कार्तिकेयश्च श्रीकृष्णांशा वयं नव ॥१०॥

---

# अध्याय ९

## नन्दपुत्रोत्सव-वर्णन

**नारद बोले**--वसुदेव ने भगवान् श्रीकृष्ण को यशोदा के महल में रख दिया और अपने घर चले गये। पश्चात् उन्होंने किस प्रकार पुत्रोत्सव मनाया? वहाँ उनकी स्थिति कितने वर्षों तक रही? उनकी बाल-लीला क्रमशः बताइये ॥१-२॥ गोलोक में पूर्वसमय भगवान् ने राधा से जो प्रतिज्ञा की थी, उन्होंने किस प्रकार उस प्रतिज्ञा का पालन किया? ॥३॥ प्रभो! वृन्दावन कैसा था? रास कैसा था? जलक्रीड़ा और रासक्रीड़ा का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये ॥४॥ नन्द, यशोदा और रोहिणी ने कौन-सा तप किया था? भगवान् के पूर्व बलभद्र का जन्म कहाँ हुआ था? ॥५॥ हरि का अपूर्व आख्यान अमृतखण्ड के समान माना गया है, विशेषतः कवि के मुख से हरिचरित्रमय काव्य पद-पद पर नूतन प्रतीत होता है, आप अपने रासमण्डल की क्रीड़ा का स्वयं ही वर्णन कीजिये। काव्य में परोक्ष वस्तु का वर्णन होता है। परन्तु जहाँ प्रत्यक्ष देखी हुई वस्तु का वर्णन हो, उसे उत्तम कहा गया ॥६-७॥ आप भगवान् श्रीकृष्ण के अंश होने से योगीन्द्रों के गुरु के गुरु हैं। जो जिसका अंश होता है वह उसी के सुख से सुखी होता है ॥८॥ भगवान् के चरण-कमलों का वर्णन आपने ही किया था, जिसमें आप दोनों नर-नारायण विलीन हो गये थे। इसलिए आप साक्षात् गोलोक-नाथ के अंश और उन्हीं के समान महान् हैं ॥९॥

**नारायण बोले**--ब्रह्मा, शिव, शेष, गणेश, कच्छप, धर्म, मैं, नर और कार्तिकेय, ये नव भगवान्

अहो गोलोकनाथस्य महिमा केन वर्ण्यते। यं स्वयं नो विजानीमो न वेदाः किं विपश्चितः ॥११॥
सूकरो वामनः कल्किर्बौद्धः कपिलमीनकौ। एते चांशाः कलाश्चान्ये सन्त्येव कतिधा मुने ॥१२॥
कूर्मो नृसिंहो रामश्च श्वेतद्वीपविराड्विभुः। परिपूर्णतमः कृष्णो वैकुण्ठे गोकुले स्वयम् ॥१३॥
वैकुण्ठे कमलाकान्तो रूपभेदाच्चतुर्भुजः। गोलोके गोकुले राधाकान्तोऽयं द्विभुजः स्वयम् ॥१४॥
अस्यैव तेजो नित्यं च चित्ते कुर्वन्ति योगिनः। भक्ताः पादाम्बुजं तेजः कुतस्तेजस्विनं विना ॥१५॥
शृणु विप्र वर्णयामि यशोदानन्दयोस्तपः। रोहिण्याश्च यतो हेतोर्ददृशुस्ते हरेर्मुखम् ॥१६॥
वसूनां प्रवरो नन्दो नाम्ना द्रोणस्तपोधनः। तस्य पत्नी धरा साध्वी यशोदा सा तपस्विनी ॥१७॥
रोहिणी सर्पमाता च कद्रूश्च सर्पकारिणी। एतेषां जन्मचरितं निबोध कथयामि ते ॥१८॥
एकदा च धराद्रोणौ पर्वते गन्धमादने। पुण्यदे भारते वर्षे गौतमाश्रमसंनिधौ ॥१९॥
चक्रतुश्च तपस्तत्र वर्षाणामयुतं मुने। श्रीकृष्णदर्शनार्थं च निर्जने सुप्रभातटे ॥२०॥
न ददर्श हरिं द्रोणो धरा चैव तपस्विनी। कृत्वाऽग्निकुण्डं वैराग्यात्प्रवेष्टुं समुपस्थितौ ॥२१॥
तौ मर्तुकामौ दृष्ट्वा च वाग्बभूवाशरीरिणी। द्रक्ष्यथः श्रीहरिं पृथ्व्यां गोकुले पुत्ररूपिणम् ॥२२॥

---

श्रीकृष्ण के अंश हैं ॥१०॥ अहो, गोलोकनाथ की महिमा का कौन वर्णन कर सकता है, जिसे मैं स्वयं नहीं जानता और न वेद जानते हैं। फिर दूसरे विद्वान् क्या जान सकते हैं? ॥११॥ मुने ! सूकर, वामन, कल्कि, बौद्ध, कपिल, मत्स्य, ये भी भगवान् के अंश हैं और अन्य कितने ही अवतार हैं, जो श्रीकृष्ण की कला मात्र हैं ॥१२॥ कूर्म, नृसिंह, राम और श्वेतद्वीप के विराट् स्वामी विष्णु पूर्ण अंश से सम्पन्न हैं। श्रीकृष्ण परिपूर्णतम परमात्मा हैं। वे स्वयं ही वैकुण्ठ और गोलोक में निवास करते हैं। वैकुण्ठ में वे कमलाकान्त कहे गये हैं और रूप-भेद से चतुर्भुज हैं। गोलोक और गोकुल में ये द्विभुज श्रीकृष्ण स्वयं ही राधाकान्त कहलाते हैं ॥१३-१४॥ योगी लोग नित्य इन्हीं के तेज का ध्यान करते हैं और भक्त लोग तेजोमय चरण-कमल का ध्यान करते हैं। बिना तेजस्वी के तेज कहाँ संभव हो सकता है? ॥१५॥ विप्र ! अब मैं यशोदा, नन्द और रोहिणी के तप का वर्णन कर रहा हूँ, जिसके कारण उन लोगों ने भगवान् का मुख दर्शन किया था, सुनो। नन्द वसुओं में श्रेष्ठ एवं द्रोण नामक वसु थे और उनकी सती एवं तपस्विनी धरा नामक पत्नी यशोदा हुई थीं ॥१६-१७॥ सर्पों को जन्म देनेवाली नागमाता ही रोहिणी हुई थी। अब उन लोगों के जन्म-चरित कह रहा हूँ, सुनो। मुने ! एक बार धरा और द्रोण ने गन्धमादन पर्वत पर पुण्यप्रद भारतवर्ष में गौतम-आश्रम के समीप दस सहस्र वर्षों तक तप किया। वहाँ सुप्रभा नदी के तट पर निर्जन प्रदेश में वे लोग भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शनार्थ तप कर रहे थे ॥१८-२०॥ अनन्तर द्रोण और तपस्विनी धरा भगवान् का दर्शन न पाने पर वैराग्यवश अग्निकुण्ड में प्रवेश करने के लिए तैयार हो गये ॥२१॥ उन्हें मरने के लिए तैयार देखकर आकाशवाणी हुई कि—वसुश्रेष्ठ ! जन्मान्तर में पृथ्वी पर गोकुल में पुत्ररूप में भगवान् का दर्शन तुम्हें प्राप्त होगा। योगियों को भी उन भगवान् का दर्शन होना

जन्मान्तरे वसुश्रेष्ठ दुर्दर्शं योगिनां विभुम्। ध्यानासाध्यं च विदुषां ब्रह्मादीनां च वन्दितम् ॥२३॥
श्रुत्वैवं तद्धराद्रोणौ जग्मतुः स्वालयं सुखात्। लब्ध्वा तु भारते जन्म दृष्टं ताभ्यां हरेर्मुखम् ॥२४॥
यशोदानन्दयोरेवं कथितं चरितं तव। सुगोप्यं त्रिदशानां च रोहिणीचरितं शृणु ॥२५॥
एकदा देवमाता च पुष्पोत्सवदिने सती। विज्ञापनं चरद्वारा चकार कश्यपं मुने ॥२६॥
सुस्नाता सुन्दरी देवी रत्नालंकारभूषिता। चकार वेषं विविधं ददर्श दर्पणे मुखम् ॥२७॥
कस्तूरीबिंदुना सार्धं सिन्दूरबिन्दुसंयुतम्। रत्नकुण्डलशोभाढ्यं पत्राभरणभूषितम् ॥२८॥
गजमौक्तिकसंयुक्तं नासाग्रं सुमनोहरम्। शरत्पार्वणचन्द्रास्यं शरत्पङ्कजलोचनम् ॥२९॥
वक्रभ्रूभङ्गिना युक्तं विचित्रकज्जलोज्ज्वलम्। पक्वदाडिमबीजाभदन्तपंक्तिविराजितम् ॥३०॥
पक्वबिम्बाधरोष्ठं च सस्मितं सुन्दरं सदा। अतीव कमनीयं च मुनीन्द्रचित्तमोहनम् ॥३१॥
एवंभूतं मुखं दृष्ट्वा सुन्दरी स्वगृहे स्थिता। पश्यन्ती पतिमार्गं च कामबाणप्रपीडिता ॥३२॥
शुश्राव वार्तामदितिः कश्यपं कद्रुसंयुतम्। रत्नसारसमारम्भे तस्या वक्षःस्थले स्थितम् ॥३३॥
श्रुत्वा चुकोप साध्वी सा हताशा रतिकातरा। न शशाप पतिं प्रेम्णा शशाप सर्पमातरम् ॥३४॥
न देवालययोग्या सा धर्मिष्ठा धर्मनाशिनी। दूरं गच्छतु स्वर्लोकादात्मयोनिं च मानवीम् ॥३५॥

---

कठिन है। वे विद्वानों के भी ध्यान में न आनेवाले हैं तथा ब्रह्मा आदि के भी वन्दनीय हैं ॥२२-२३॥ इसे सुनकर धरा और द्रोण सुखपूर्वक अपने घर चले गये। और दूसरे जन्म में भारत में उन दोनों ने भगवान् के मुख का दर्शन किया ॥२४॥ इस प्रकार यशोदा और नन्द का चरित तुम्हें सुना दिया, जो देवों के लिए भी अत्यन्त गोपनीय है। अव रोहिणी-चरित कह रहा हूँ, सुनो ॥२५॥ मुने ! एक बार पुष्पोत्सव (ऋतुधर्म) के समय सती देवमाता अदिति ने दूत द्वारा कश्यप को संदेश भिजवाया। भलीभाँति स्नानकर रत्नों के अलंकारों से भूषित होने पर भी उस सुन्दरी ने दर्पण में मुख देखती हुई विविध वेश बनाया ॥२६-२७॥ कस्तूरी बिन्दु समेत सिन्दूर की बिन्दी लगायी, रत्नों के कुण्डल पहने, पत्राभरण बनाये। अत्यन्त मनोहर नासिका के अग्रभाग में गजमुक्ता धारण की। शारदीय पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान उसका मुख था और शरद् ऋतु के कमल के समान नेत्र थे, जो टेढ़ी भौंहों से युक्त और विचित्र काजल से समुज्ज्वल (रतनार) थे। पके अनार दाने के समान दाँतों की पंक्तियों से मुख शोभायमान था। पके बिम्बाफल के समान अधरोष्ठ थे। इस प्रकार मन्द मुसुकान से सुन्दर तथा मुनीन्द्रों के चित्त को मोहित करनेवाला कमनीय मुख देखकर वह सुन्दरी अपने घर में विराजमान थी और कामबाणों से अत्यन्त पीड़ित होकर बार-बार पति का मार्ग देख रही थी ॥२८-३२॥ इसी बीच उसने दूत द्वारा सुना कि—कश्यप कद्रू के साथ रहकर उसके वक्षःस्थल पर स्थित हैं ॥३३॥ अनन्तर उस सती ने हताश और रतिकातर होते हुए भी प्रेमवश पति को तो शाप नहीं दिया, किन्तु सर्पमाता कद्रू को शाप दे दिया—वह धर्मिष्ठा देवालय के योग्य न होकर धर्मनाशिनी हुई है, अतः स्वर्गलोक से दूर जाकर मनुष्य-योनि में जन्म ग्रहण करे।

श्रुत्वैव सा चरद्वारा शशाप देवमातरम् । सा चैवं मानवीं योनिं यातु मर्त्ये जरायुताम् ॥३६॥
कश्यपो बोधयामास कद्रुं च सर्पमातरम् । काले यास्यसि मर्त्यं च मया सह शुचिस्मिते ॥३७॥
त्यज भीतिं लभ सुखं द्रक्ष्यसि श्रीहरेर्मुखम् । एवमुक्त्वा कश्यपश्च जगाम चादितेर्गृहम् ॥३८॥
वाञ्छां पूर्णां च तस्याश्च चकार भगवान्विभुः । ऋतौ तत्र महेन्द्रश्च बभूव च सुरर्षभः ॥३९॥
अदितिर्देवकी चैव सर्पमाता च रोहिणी । कश्यपो वसुदेवश्च श्रीकृष्णजनको महान् ॥४०॥
रहस्यं गोपनीयं च सर्वं निगदितं मुने । अधुना बलदेवस्य जन्माख्यानं मुने शृणु ॥४१॥
अनन्तस्याप्रमेयस्य सहस्रशिरसः प्रभोः । रोहिणी वसुदेवस्य भार्यारत्नं च प्रेयसी ॥४२॥
जगाम गोकुलं साध्वी वसुदेवाज्ञया मुने । संकर्षणस्य रक्षार्थं कंसभीता पलायिता ॥४३॥
देवक्याः सप्तमं गर्भं माया कृष्णाज्ञया तदा । रोहिण्या जठरे तत्र स्थापयामास गोकुले ॥४४॥
संस्थाप्य च तदा गर्भं कैलासं सा जगाम ह । दिनान्तरे कतिपये रोहिणी नन्दमन्दिरे ॥४५॥
सुषाव पुत्रं कृष्णांशं तप्तरौप्याभमीश्वरम् । ईषद्धास्यं प्रसन्नास्यं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ॥४६॥
तस्यैव जन्ममात्रेण देवा मुमुदिरे तदा । स्वर्गे दुन्दुभयो नेदुरानका मुरजादयः ॥४७॥
जयशब्दं शङ्खशब्दं चक्रुर्देवा मुदाऽन्विताः । नन्दो हृष्टो ब्राह्मणेभ्यो धनं बहुविधं ददौ ॥४८॥

---

इस बात को दूत-मुख से सुनकर कद्रू ने भी देवमाता अदिति को शाप दिया कि—वह भी मर्त्यलोक में जरा-ग्रस्त मानवीयोनि में उत्पन्न हो ॥३४-३६॥ अनन्तर कश्यप ने सर्पमाता कद्रू को समझाया कि—पवित्र मुसुकान-वाली ! समय आने पर मर्त्यलोक चलते समय हम भी साथ रहेंगे । इसलिए भय त्यागकर हर्ष प्रकट करो । क्योंकि वहाँ पुत्ररूप में भगवान् का मुख दर्शन करोगी । इतना कहकर कश्यप अदिति के घर चले गये ॥३७-३८॥ वहाँ पहुँचकर भगवान् कश्यप ने अदिति का मनोरथ पूरा किया, जिससे उस गर्भ से देवश्रेष्ठ महेन्द्र उत्पन्न हुए ॥३९॥ वही अदिति वहाँ देवकी हुई और सर्पमाता रोहिणी । एवं कश्यप भगवान् श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव हुए ॥४०॥ मुने ! सारा गोपनीय रहस्य बता दिया, अब बलदेव का जन्माख्यान कह रहा हूँ, सुनो ॥४१॥ वे अनन्त अप्रमेय एवं सहस्र सिर (फण) वाले प्रभु (के अवतार) थे । स्त्रीरूप रोहिणी वसुदेव की प्रियतमा थी ॥४२॥ मुने ! वसुदेव की आज्ञा से वह पतिव्रता संकर्षण के रक्षार्थ कंस से भयभीत होकर गोकुल चली गयी ॥४३॥ उसी समय भगवान् श्रीकृष्ण की आज्ञा से माया ने देवकी का सातवाँ गर्भ—उनके उदर से खींचकर गोकुलस्थित रोहिणी के उदर में स्थापित कर दिया ॥४४॥ उस गर्भ को वहाँ रखकर देवी स्वयं कैलास को चली गयीं । कुछ दिन व्यतीत होने पर रोहिणी ने नन्द के भवन में श्रीकृष्ण के अंशस्वरूप पुत्र उत्पन्न किया, जो तपायी हुई चाँदी के समान कान्तिपूर्ण, ईश्वर, मन्दमुसुकान समेत प्रसन्न मुख और ब्रह्मतेज से प्रज्वलित था ॥४५-४६॥ उसके जन्मग्रहण मात्र से देववृन्द अत्यन्त हर्षित हुए । स्वर्ग में नगाड़े, आनक और मुरज (मृदंग) आदि बाद्य बज उठे ॥४७॥ अत्यन्त प्रसन्न होकर देवों ने जय-जयकार समेत शंख की ध्वनि की । नंद ने प्रसन्न होकर

चिच्छेद नाडीं धात्री च स्नापयामास बालकम् । जयशब्दं जगुर्गोप्यः सर्वाभरणभूषिताः ॥४९॥
परपुत्रोत्सवं नन्दश्चकार परमादरात् । तदा यशोदा गोपीभ्यो ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥५०॥
धनानि नानावस्तूनि तैलं सिन्दूरमेव च । इत्येवं कथितं वत्स यशोदानन्दयोस्तपः ॥५१॥
जन्माख्यानं च हलिनो रोहिणीचरितं तथा । अधुना ते वाञ्छनीयं नन्दपुत्रोत्सवं शृणु ॥५२॥
सुखदं मोक्षदं सारं जन्ममृत्युजरापहम् । मङ्गलं कृष्णचरितं वैष्णवानां च जीवनम् ॥५३॥
सर्वाशुभविनाशं च भक्तिदास्यप्रदं हरेः । श्रीकृष्णं वसुदेवश्च संस्थाप्य नन्दमन्दिरे ॥५४॥
गृहीत्वा बालिकां हृष्टो जगाम निजमन्दिरम् । कथितं चरितं तस्याः श्रुतं सन्मुखतो मुने ॥५५॥
अधुना गोकुले कृष्णचरितं शृणु मङ्गलम् । वसुदेवे गृहं याते यशोदा नन्द एव च ॥५६॥
मङ्गले सूतिकागारे जयागारे जयान्विते । ददर्श पुत्रं भूमिष्ठं नवीननीरदप्रभम् ॥५७॥
अतीव सुन्दरं नग्नं पश्यन्तं गृहशेखरम् । शरत्पार्वणचन्द्रास्यं नीलेन्दीवरलोचनम् ॥५८॥
रुदन्तं च हसन्तं च वेणुसंसक्तविग्रहम् । हस्तद्वयं सुविन्यस्तं प्रेमवन्तं पदाम्बुजम् ॥५९॥
दृष्ट्वा नन्दः स्त्रिया सार्धं हरिं हृष्टो बभूव ह । धात्री तं स्नापयामास शीततोयेन बालकम् ॥६०॥
चिच्छेद नाडीं बालस्य हर्षाद्गोप्यो जयं ददुः । आजग्मुर्गोपिकाः सर्वा बृहच्छ्रोण्यश्चलत्कुचाः ॥६१॥

---

ब्राह्मणों को अनेक भाँति का बहुत-सा धन दान किया ॥४८॥ धाई ने नाल छेदनकर बालक को नहलाया । समस्त भूषणों से विभूषित गोपियाँ जय-जयकार करने लगीं ॥४९॥ नन्द ने परम आदर से दूसरे के पुत्र का उत्सव मनाया । अत्यन्त प्रसन्न होकर यशोदा ने गोपियों और ब्राह्मणों को धन, विविध वस्तुएँ, तेल, सिन्दूर प्रदान किये । वत्स ! इस प्रकार यशोदा और नन्द का तप मैंने तुम्हें बता दिया, जिसमें बलभद्र का जन्माख्यान और रोहिणी का चरित भी सम्मिलित है । अब तुम्हारा अभिलषित नन्द-पुत्रोत्सव कह रहा हूँ, सुनो ॥५०-५२॥ कृष्ण का चरित्र सुखदायक, मोक्षप्रद, तत्त्वरूप, जन्म-मृत्यु-जरा का अपहारी, वैष्णवों का जीवन, समस्त अशुभ का विनाशक और भगवान् की भक्ति एवं दास्य देनेवाला है । मुने ! वसुदेव श्रीकृष्ण को नन्द के भवन में रखकर और बालिका को लेकर सहर्ष अपने घर को लौटे । यह प्रसंग तथा उस कन्या का श्रवण-सुखद चरित्र पहले कहा जा चुका है ॥५३-५५॥ सम्प्रति गोकुल में भगवान् कृष्ण का मंगलमय चरित्र सुनो । वसुदेव के चले जाने पर नन्द-यशोदा ने मंगलमय उस सूती-गृह में, जो विजय का गृह तथा जया तिथि से युक्त था, नवीन मेघ के समान कान्तिपूर्ण बालक को भूमि पर पड़ा हुआ देखा ॥५६-५७॥ वह अत्यन्त सुन्दर एवं नग्न बालक गृह का ऊपरी कलश देख रहा था । उसका मुख शरत्काल की पूर्णिमा के चन्द्रमा को लज्जित कर रहा था । दोनों नेत्र नीलकमल के समान थे । वह कभी रोता था और कभी हँसने लगता था । उसके अंगों में धूलि के कण लगे हुए थे । उसके दोनों हाथ भूमि पर टिके हुए थे और युगल चरणारविन्द प्रेम के पुञ्ज-से जान पड़ते थे ॥५८-५९॥ भगवान् को देखकर पत्नी सहित नन्द को अत्यन्त हर्ष हुआ । अनन्तर धाय ने उस बालक को शीतल जल से स्नान कराया ॥६०॥ बालक की नाल काटी । हर्षमग्न गोपियाँ जय-जयकार करने लगीं । स्थूल नितम्ब और

बालिकाश्च वयस्याश्च विप्रपत्न्यश्च सूतिकाम् । आशिषं युयुजुः सर्वा ददृशुर्बालकं मुदा ।।६२।।
क्रोडे चक्रुः प्रशंसन्त्य ऊषुस्तत्र च काश्चन । नन्दः सचैलः स्नातश्च धृत्वा धौते च वाससी ।।६३।।
पारम्पर्यविधिं तत्र चकार हृष्टमानसः । ब्राह्मणान्भोजयामास कारयामास मङ्गलम् ।।६४।।
वाद्यानि वादयामास बन्दिभ्यश्च ददौ धनम् । ततो नन्दश्च सानन्दं ब्राह्मणेभ्यो ददौ धनम् ।।६५।।
सद्रत्नानि प्रवालानि हीरकाणि च सादरम् । तिलानां पर्वतान्सप्त सुवर्णशतकं मुने ।।६६।।
रौप्यं धान्याचलं वस्त्रं गोसहस्रं मनोहरम् । दधि दुग्धं शर्करां च नवनीतं घृतं मधु ।।६७।।
मिष्टान्नं सल्लड्डुकौघं स्वादूनि मोदकानि च । भूमिं च सर्वसस्याढ्यां वायुवेगांस्तुरंगमान् ।।६८।।
ताम्बूलानि च तैलानि दत्त्वा हृष्टो बभूव ह । रक्षितुं सूतिकागारं योजयामास ब्राह्मणान् ।।६९।।
तत्र मन्त्रज्ञमनुजान्स्थविरान्गोपिकागणान् । वेदांश्च पाठयामास हरेर्नामैकमङ्गलम् ।।७०।।
भक्त्या च ब्राह्मणद्वारा पूजयामास देवताः । गोपालिकाश्च वृद्धाश्च रत्नालंकारभूषिताः ।।७१।।
आनन्दाः सुमुखा गोपाः पुलकाञ्चितविग्रहाः । प्रहृष्टमानसा ब्रह्मन्नाजग्मुर्नन्दमन्दिरम् ।।७२।।
आशीर्वादं प्रयुञ्जाना ब्राह्मणा वेदपारगाः । शीघ्रगाः पुष्पहस्ताश्चाप्याजग्मुर्नन्द० ।।७३।।
नानाविधाश्च गणका ज्योतिःशास्त्रविशारदाः । वाक्सिद्धाः पुस्तककरा आजग्मुर्नन्द० ।।७४।।
सस्मिता विप्रपत्न्यश्च वयस्याः स्थविरा वराः । बालिका बालकयुता आजग्मुर्नन्द० ।।७५।।

---

चलायमान स्तनोंवाली सभी गोपियाँ वहाँ आयीं ।।६१।। बालिकाएँ, सखियाँ और ब्राह्मण की स्त्रियाँ सूती-गृह में जाकर बालक को देखने लगीं और हर्ष से उसे शुभ आशीर्वाद देने लगीं ।।६२।। कुछ स्त्रियाँ वहाँ बालक को अपनी गोद में रखकर उसकी प्रशंसा करने लगीं । उनमें से कितनी ही गोपियाँ वहीं रह गयीं । नन्द ने सचैल स्नान कर दो नूतन वस्त्र धारण किये तथा परम्पराप्राप्त विधान को सुप्रसन्न मन से सम्पन्न किया—ब्राह्मण भोजन कराया, मंगल पाठ करवाया, बाजे बजवाये और याचकों को धन प्रदान किया । पश्चात् आनन्दमग्न नन्द ने ब्राह्मणों को धन दान किया ।।६३-६५।। मुने ! उत्तम रत्न, मूँगे और हीरा भी आदरपूर्वक उन्हें दिये । तिलों के सात पर्वत, सुवर्ण के सौ ढर, चाँदी, धान्य के पर्वत, वस्त्र, एक सहस्र सुन्दर गौएँ, दही, दूध, शक्कर, मक्खन, घी, मधु, मिष्टान्न, उत्तम लड्डू, स्वादपूर्ण मोदक, सस्यसम्पन्न (फूली-फली) भूमि, वायु वेगवाले घोड़े, ताम्बूल और तेल प्रदान करके नन्द अत्यन्त हर्षित हुए । उन्होंने सूतिका-गृह की रक्षा के लिए ब्राह्मणों को वहाँ नियुक्त किया ।।६६-६९।। पुनः वहाँ मंत्र-निपुण मनुष्यों और वृद्ध गोपियों को रखकर वेदपाठ और एकमात्र मंगलमय हरिकीर्तन कराया ।।७०।। भक्तिपूर्वक ब्राह्मण द्वारा देवपूजन कराया । रत्नों के अलंकारों से भूषित गोपियाँ आयीं । आनन्द से रोमाञ्चित शरीरवाले आनन्दविभोर, सुमुख तथा प्रसन्नचित्त गोप नन्द के भवन में आये ।।७१-७२।। वेदपारंगत ब्राह्मण हाथ में पुष्प लिये आशीर्वाद देते हुए शीघ्रता से नन्द के घर पधारे ।।७३।। ज्योतिष शास्त्र के विशेषज्ञ विविध ज्योतिषी, जिनकी वाणी सिद्ध थी, हाथ में पुस्तकें लिये नन्द-भवन में आये ।।७४।। युवती तथा बड़ी-बूढ़ी ब्राह्मण-पत्नियाँ बालक-बालिकाओं को साथ ले मुसकराती हुई

तेभ्योऽपि प्रददौ रत्नं धनानि विविधानि च । वरवस्त्राणि रौप्याणि गोसहस्राणि सादरम् ॥७६॥
नन्दस्तेभ्यो नमस्कृत्य चकार विनयं मुदा । आशिषं युयुजुः सर्वे ददृशुर्बालकं परम् ॥७७॥
एवं सभृतसंभारो बभूव व्रजपुंगवः । गणकैः कारयामास यद्भविष्यं शुभाशुभम् ॥७८॥
एवं ववर्ध बालश्च शुक्लपक्षे यथा शशी । नन्दालये हली चैव भुङ्क्ते मातुः पयोधरम् ॥७९॥
तदा च रोहिणी हृष्टा तत्र पुत्रोत्सवे मुदा । तैलसिन्दूरताम्बूलं धनं ताभ्यो ददौ मुने ॥८०॥
दत्त्वाऽऽशिषश्च शिरसि ताश्च ते स्वालयं ययुः । यशोदारोहिणीनन्दास्तस्थुर्गेहे मुदाऽन्विताः ॥८१॥
इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० नन्दपुत्रोत्सवो नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥

# अथ दशमोऽध्यायः

## नारायण उवाच

अथ कंसः सभामध्ये स्वर्णसिंहासनस्थितः । शुश्राव वाचं गगने सूनृतामशरीरिणीम् ॥१॥
किं करोषि महामूढ चिन्तां स्वश्रेयसः कुरु । जातः कालो धरण्यां ते तिष्ठोपाये नराधिपः ॥२॥

---

नन्द-भवन में आयीं ॥७५॥ नन्द ने उन्हें भी नाना प्रकार के धन, रत्न, उत्तम वस्त्र तथा सहस्र गौएँ प्रदान कीं ॥७६॥ नन्द ने उन्हें नमस्कार करके हर्ष से विनय प्रकट किया। सबने आशीर्वाद दिये और उत्तम बालक को देखा ॥७७॥ इस प्रकार व्रजराज नन्द ने सामग्री एकत्रित करके पुत्रोत्सव मनाया और ज्योतिषियों द्वारा शुभाशुभ भविष्य का प्रकाशन कराया ॥७८॥ तदनन्तर वह बालक नन्द-भवन में शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की भाँति दिनोंदिन बढ़ने लगा। नन्द-भवन में बलभद्र भी माता (रोहिणी) का दुग्धपान कर रहे थे। मुने ! उस समय रोहिणी ने भी उस पुत्रोत्सव में आयी हुई स्त्रियों को सुप्रसन्न मन से तेल, सिन्दूर, ताम्बूल और धन प्रदान किये। वे सब बालक के सिर पर आशीर्वाद देकर अपने-अपने घर चली गयीं। केवल यशोदा, नन्द तथा रोहिणी घर में आनन्दपूर्वक रहीं ॥७९-८१॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड के नारायण-नारद-संवाद में नन्द-पुत्रोत्सव-वर्णन नामक नवाँ अध्याय समाप्त ॥९॥

# अध्याय १०

## पूतना-मोक्ष-वर्णन

**नारायण बोले**—अनन्तर राजसभा में स्वर्ण-सिंहासन पर बैठे हुए कंस ने आकाशवाणी सुनी—'ओ महामूढ़ ! तुम क्या कर रहे हो ? अपने कल्याण की चिन्ता करो। राजन् ! तुम्हारा काल पृथ्वी पर उत्पन्न

नन्दाय तनयं दत्त्वा वसुदेवस्तवान्तकम् । कन्यामादाय तुभ्यं च दत्त्वा संमायया स्थितः ।।३।।
मायांशा कन्यकेयं च वासुदेवः स्वयं हरिः । तव हन्ता गोकुले च वर्धते नन्दमन्दिरे ।।४।।
देवक्याः सप्तमो गर्भो वर्धते नन्दमन्दिरे । देवक्याः सप्तमो गर्भो न सुस्रावामृतं सुतम् ।।५।।
स्थापयामास माया तं रोहिणीजठरे किल । तत्र जातश्च शेषांशो बलदेवो महाबलः ।।६।।
गोकुले तौ च वर्धेते कालौ ते नन्दमन्दिरे । श्रुत्वेति वचनं राजा बभूवाऽनम्रकंधरः ।।७।।
चिन्तामवाप सहसा तत्याजाहारमुन्मनाः । पूतनां च समानीय प्राणेभ्यः प्रेयसीं सतीम् ।।८।।
उवाच भगिनीं राजा सभामध्ये च नीतिवित् ।

## कंस उवाच

पूतने गोकुलं गच्छ कार्यार्थं नन्दमन्दिरम् । ।।९।।
विषाक्तं च स्तनं कृत्वा शिशवे देहि सत्वरम् । त्वं मनोयायिनी वत्से मायाशास्त्रविशारदा ।।१०।।
मायामानुषरूपं च विधाय व्रज योगिनि । दुर्वाससो महामन्त्रं प्राप्य सर्वत्रगामिनी ।।११।।
सर्वरूपं विधातुं त्वं शक्ताऽसि सुप्रतिष्ठिते । इत्युक्त्वा तां महाराजस्तस्थौ संसदि नारद ।।१२।।
जगाम पूतना कंसं प्रणम्य कामचारिणी । तप्तकाञ्चनवर्णाभा नानालंकारभूषिता ।।१३।।

---

हो गया है, अपने कल्याण का उपाय सोचो । वसुदेव ने तुम्हारा विनाश करनेवाला अपना पुत्र नन्द के यहाँ रखकर छल से लायी हुई कन्या तुम्हें सौंप दी ।।१-३।। यह कन्या माया के अंश से उत्पन्न हुई है और स्वयं भगवान् वासुदेव (वसुदेव के पुत्र) होकर उत्पन्न हुए हैं । वे ही तुम्हारी हत्या करनेवाले होंगे, इस समय गोकुल में नन्द के भवन में बढ़ रहे हैं ।।४।। देवकी का सातवाँ गर्भ भी नन्द-भवन में बढ़ रहा है । देवकी का सातवाँ गर्भ स्खलित नहीं हुआ है, वह पुत्र जीवित है । योगमाया ने उसे रोहिणी के उदर में स्थापित कर दिया था । उस गर्भ से शेष के अंशभूत महाबली बलदेव प्रकट हुए हैं ।।५-६।। वे दोनों (श्रीकृष्ण और बलदेव) तुम्हारे काल हैं और इस समय गोकुल के नन्दभवन में पल रहे हैं ।' ऐसी वाणी सुनकर राजा कन्धा झुकाकर सहसा चिन्ता करने लगा । उसने अनमने होकर भोजन भी त्याग दिया और प्राणों से भी बढ़कर प्रिय बहन साध्वी पूतना को बुलाकर राजनीतिज्ञ भूप ने भरी सभा में इस प्रकार कहा ।।७-८-½।।

**कंस बोला**—पूतने ! तुम मेरे कार्य के लिए गोकुल में नन्द के भवन में जाओ और स्तनों में विष लगाकर शीघ्र ही नवजात शिशु के मुख में दे दो । वत्से ! तुम मन के समान चलनेवाली और मायाशास्त्र में निपुण हो ।।९-१०।। योगिनी ! तुम माया द्वारा मनुष्य रूप धारणकर जाओ । सुप्रतिष्ठिते ! तुम दुर्वासा से महामंत्र को प्राप्त करके सर्वत्र जानेवाली हो तथा सब प्रकार के रूप धारण करने में समर्थ हो । नारद ! इतना कहकर महाराज (कंस) सभा में चुप हो गया ।।११-१२।। अनन्तर कंस को प्रणामकर स्वेच्छाचारिणी

बिभ्रती कबरीभारं मालतीमाल्यसंयुतम् । कस्तूरीबिन्दुना युक्तं सिन्दूरं दधती मुदा ॥१४॥
मञ्जीररशनाभ्यां च कलशब्दं प्रकुर्वती । संप्राप्य गोष्ठं दुर्दर्शं नन्दालयमनोहरम् ॥१५॥
परिखाभिर्गभीराभिर्दुर्लङ्घ्याभिश्च वेष्टितम् । रचितं प्रस्तरैर्दिव्यैर्निर्मितं विश्वकर्मणा ॥१६॥
इन्द्रनीलैर्मरकतैः पद्मरागैश्च भूषितम् । सुवर्णकलशैर्दिव्यैश्चित्रितैः शेखरोज्ज्वलैः ॥१७॥
प्राकारैर्गगनस्पर्शैश्चतुर्द्वारसमन्वितैः । युक्तलोहकपाटैश्च द्वारपालसमन्वितैः ॥१८॥
वेष्टितं सुन्दरं रम्यं सुन्दरीगणवेष्टितम् । मुक्तामाणिक्यपरशैः पूर्णरत्नादिभिर्धनैः ॥१९॥
स्वर्णपात्रघटाकीर्णं गवां कोटिभिरन्वितम् । भरणीयैः किंकरैश्च गोपलक्षैः समन्वितम् ॥२०॥
दासीनां च सहस्रैश्च कर्मव्यग्रैः समन्वितम् । प्रविवेशाऽऽश्रमं साध्वी सस्मिता सुमनोहरा ॥२१॥
दृष्ट्वा तां प्रविशन्तीं च गोप्यो दृष्ट्वाऽनुमेनिरे । किं वा पद्मालया दुर्गा कृष्णं द्रष्टुं समागता ॥२२॥
प्रणेमुर्गोपिका गोपाः पप्रच्छुः कुशलं च ताम् । ददौ सिंहासनं पाद्यं वासयामास तत्र वै ॥२३॥
पप्रच्छ कुशलं सा च गोपानां बालकस्य च । उवास सस्मिता साध्वी पाद्यं जग्राह सादरम् ॥२४॥
तामूचुर्गोपिकाः सर्वाः का त्वमीश्वरि सांप्रतम् । वासस्ते कुत्र किं नाम किं वाऽत्र कर्म नो वद ॥२५॥

---

पूतना चल पड़ी । उसकी अंगकान्ति तपाये सुवर्ण की भाँति थी । वह विविध भूषणों से भूषित थी । मालती-माला से अलंकृत सुन्दर केशपाश धारण किये हुई थी । ललाट पर कस्तूरी की बिन्दी के साथ सिन्दूर लगाये हुई थी । पायल और करधनी की मधुरध्वनि करती हुई जा रही थी । व्रज में पहुँचकर उसने नन्द का सुन्दर भवन देखा । वह अन्य के लिए कठिनाई से देखने योग्य, दुर्लभदर्शन, गम्भीर और दुलंघ्य खाइयों से घिरा और विश्वकर्मा द्वारा दिव्य पत्थरों से सुरचित था ॥१३-१६॥ इन्द्रनील, मरकत मणि और पद्मराग मणियों से भूषित, दिव्य सुवर्ण-कलश एवं चित्रित शिखरों से समुज्ज्वल, गगनस्पर्शी परकोटों एवं चार द्वारों से युक्त था। उसमें लोहे के किवाड़ लगे हुए थे । द्वारों पर द्वारपाल पहरा दे रहे थे ॥१७-१८॥ वह सुन्दर भवन सुन्दरी स्त्रियों से घिरा-सा, मोती, माणिक्य, पारसमणि तथा रत्नादि धनों से परिपूर्ण था । वहाँ सुवर्ण के पात्र और घट भारी संख्या में थे । करोड़ों गौएँ थीं । लाखों ऐसे गोप-सेवक थे, जिनका वहाँ भरण-पोषण होता था । विभिन्न कार्यों में लगी हुई सहस्रों दासियाँ थीं । ऐसे भवन में वह सती अति मनोहर वेश बनाये मन्द मुसुकाती हुई प्रविष्ट हुई ॥१९-२१॥ उसे प्रवेश करते हुए देखकर गोपियों ने यह अनुमान किया कि—लक्ष्मी या दुर्गा कहीं कृष्ण को देखने के लिए तो नहीं आ गयीं । सभी गोप-गोपियों ने उससे प्रणामपूर्वक कुशल पूछा । उसे बैठने के लिए सिंहासन दिया और चरण-प्रक्षालन के लिए जल अर्पित किया । उस सती ने भी गोपों और बालक का कुशल पूछा । वह सुन्दरी वहाँ मुसकराती हुई बैठ गयी । उसने आदर के साथ गोपियों का दिया हुआ पाद्य-जल ग्रहण किया ॥२२-२४॥ अनन्तर उससे सभी गोपियों ने पूछा—स्वामिनी ! तुम कौन हो ? इस समय कहाँ रहती हो ? क्या नाम है ? और यहाँ अपने आगमन का प्रयोजन बताने की कृपा करो ॥२५॥

तासां च वचनं श्रुत्वा साऽप्युवाच मनोहरम् । मथुरावासिनी गोपी सांप्रतं विप्रकामिनी ॥२६॥
श्रुतं वाचिकवक्त्रेण तत्त्वं मङ्गलसूचकम् । बभूव स्थविरे काले नन्दपुत्रो महानिति ॥२७॥
श्रुत्वाऽऽगताऽहं तं द्रष्टुमाशिषं कर्तुमीप्सिताम् । पुत्रमानय तं दृष्ट्वा यामि कृत्वा तमाशिषम् ॥२८॥
ब्राह्मणीवचनं श्रुत्वा यशोदा हृष्टमानसा । प्रणमय्य सुतं क्रोडे ददौ ब्राह्मणयोषितः ॥२९॥
कृत्वा क्रोडे तु तं साध्वी चुचुम्ब च पुनः पुनः । स्तनं ददौ सुखासीना हरिं पुण्यवती सती ॥३०॥
अहोऽद्भुतोऽयं बालस्ते सुन्दरो गोपसुन्दरि । गुणैर्नारायणसमो बालोऽयमित्युवाच ह ॥३१॥
कृष्णो विषस्तनं पीत्वा जहास वक्षसि स्थितः । तस्याः प्राणैः सह पपौ विषक्षीरं सुधामिव ॥३२॥
तत्याज बालकं साध्वी प्राणांस्त्यक्त्वा पपात ह । विकृताकारवदना चोत्तानवदना मुने ॥३३॥
स्थूलदेहं परित्यज्य सूक्ष्मदेहं विवेश सा । आरुरोह रथं शीघ्रं रत्नसारविनिर्मितम् ॥३४॥
पार्षदप्रवरैर्दिव्यैर्वेष्टितं सुमनोहरैः । श्वेतचामरलक्षेण शोभितं लक्षदर्पणैः ॥३५॥
वह्निशौचेन वस्त्रेण सूक्ष्मेण भूषितं वरम् । नानाचित्रविचित्रैश्च सद्रत्नकलशैर्युतम् ॥३६॥
सुन्दरं शतचक्रं च ज्वलितं रत्नतेजसा । पार्षदास्तां रथे कृत्वा जग्मुर्गोलोकमुत्तमम् ॥३७॥
दृष्ट्वा तमद्भुतं लोका गोपिकाश्चातिविस्मिताः । कंसः श्रुत्वा च तत्सर्वं विस्मितश्च बभूव ह ॥३८॥

---

गोपियों की बातें सुनकर उसने भी अति मनोहर शब्दों में कहा कि—मैं मथुरा की रहनेवाली गोपी हूँ और सम्प्रति ब्राह्मण की स्त्री हूँ ॥२६॥ मैंने संदेशवाहक के द्वारा यह मंगल-सूचक संवाद सुना है कि वृद्धावस्था में नन्द के महान् पुत्र उत्पन्न हुआ है । ऐसा सुनकर उसे अभीष्ट आशीर्वाद देने आयी हूँ, पुत्र को ले आओ, मैं उसे देखकर आशिष देकर चली जाऊँगी ॥२७-२८॥ ब्राह्मणी की बातें सुनकर हर्ष-मग्न यशोदा ने प्रणामकर बच्चे को उस ब्राह्मण-पत्नी की गोद में रख दिया ॥२९॥ उस सती ने बच्चे को अपनी गोद में रखकर बार-बार चुम्बन किया, अनन्तर सुख से बैठी हुई उस पुण्यवती सती ने श्रीकृष्ण के मुख में अपना स्तन दे दिया ॥३०॥ उसने कहा—'गोप-सुन्दरी ! यह तुम्हारा बालक अद्भुत एवं सुन्दर है । यह गुणों में नारायण के समान है ।' भगवान् कृष्ण उसका विषाक्त स्तन पीकर उसके वक्षःस्थल पर बैठे हँसने लगे । उन्होंने उसके प्राणों समेत उसका विष मिश्रित दुग्ध अमृत की भाँति पान कर लिया ॥३१-३२॥ मुने ! उस सती ने अपने प्राणों के साथ ही बालक को त्याग दिया और पृथ्वी पर गिर पड़ी । उसका आकार और मुख विकराल दिखायी देने लगा । वह उत्तान मुँह होकर पड़ी थी । उसने स्थूल शरीर को त्यागकर सूक्ष्म शरीर में प्रवेश किया और शीघ्रता से रत्नों के उत्तम भाग से सुरचित रथ पर बैठ गयी । वह रथ दिव्य एवं श्रेष्ठ पार्षदों से घिरा हुआ, अति मनोहर, लाखों श्वेत चामरों तथा दर्पणों से सुशोभित, अग्निशुद्ध सूक्ष्म वस्त्र से भूषित, श्रेष्ठ, उत्तम रत्नों के बने चित्र-विचित्र कलशों और सौ पहियों से युक्त, सुन्दर और रत्नों के तेज से प्रज्वलित था । पार्षद-वृन्द उसे रथ पर बैठाकर उत्तम गोलोक ले गये ॥३३-३७॥ गोकुल के गोपों और गोपियों

यशोदा बालकं नीत्वा क्रोडे कृत्वा स्तनं ददौ । मङ्गलं कारयामास विप्रद्वारा शिशोर्मुने ॥३९॥
ददाह देहं तस्याश्च नन्दः सानन्दपूर्वकम् । चन्दनागुरुकस्तूरीसमं संप्राप्य सौरभम् ॥४०॥

### नारद उवाच

सा वा का राक्षसीरूपा[1] कथं पुण्यवती सती । केन पुण्येन तं दृष्ट्वा जगाम कृष्णमन्दिरम् ॥४१॥

### नारायण उवाच

बलियज्ञे वामनस्य दृष्ट्वा रूपं मनोहरम् । बलिकन्या रत्नमाला पुत्रस्नेहं चकार तम् ॥४२॥
मनसा मानसं चक्रे पुत्रस्य सदृशो मम । पिबेद्यदि स्तनं कृष्णः करोमि तं च वक्ष्यसि ॥४३॥
हरिस्तन्मानसं ज्ञात्वा पपौ जन्मान्तरे स्तनम् । ददौ मातृगतिं तस्यै कामपूरः कृपानिधिः ॥४४॥
दत्त्वा विषस्तनं कृष्णं पूतना राक्षसी मुने । भक्त्या मातृगतिं प्राप कं भजाम विना हरिम् ॥४५॥
इत्येवं कथितं विप्र श्रीकृष्णगुणकीर्तनम् । पदे पदे सुमधुरं प्रवरं कथयामि ते ॥४६॥
इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्म० नारदना० पूतनामोक्षो नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥

---

ने उसे देखकर अत्यन्त आश्चर्य प्रकट किया ॥३८॥ मुने ! यशोदा ने बच्चे को उठाकर अपनी गोद में रख लिया और स्तन-पान कराने लगीं । ब्राह्मण द्वारा पुत्र का मंगल कर्म भी कराया ॥३९॥ अनन्तर नन्द ने बड़े आनन्द से पूतना की देह का दाह-संस्कार किया, जिससे चन्दन, अगुरु और कस्तूरी के समान सुगन्ध निकल रही थी ॥४०॥

**नारद बोले**—राक्षसी का रूप धारण करनेवाली वह सती पुण्यवती कौन थी ? किस पुण्य से भगवान् का दर्शन कर वह कृष्ण-लोक को गयी ?

**नारायण बोले**—बलि के यज्ञ में वामन का मनोहर रूप देखकर बलि की कन्या रत्नमाला ने उनके प्रति पुत्र-स्नेह किया था । उसने अपने मन-ही-मन सोचा था कि—इन्हीं के समान पुत्र मेरा स्तनपान करता तो मैं उसके मुख में स्तन देकर वक्षःस्थल पर बिठाती ॥४२-४३॥ भगवान् ने उसका मनोभाव समझकर दूसरे जन्म में उसका स्तनपान किया । कामनाओं को परिपूर्ण करनेवाले कृपानिधान भगवान् ने उसे माता की गति प्रदान की ॥४४॥ मुने ! पूतना राक्षसी ने भक्तिपूर्वक भगवान् कृष्ण को अपना विषाक्त स्तन पिलाकर माता की गति प्राप्त की, तो मैं ऐसे भगवान् को छोड़कर किसका भजन करूँ ? ॥४५॥ विप्र ! इस प्रकार मैंने भगवान् श्रीकृष्ण के गुणों का वर्णन किया जो पद-पद पर अति मधुर है । अब इससे और श्रेष्ठ गुण बता रहा हूँ ॥३६॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड के नारद-नारायण-संवाद में पूतना मोक्ष-वर्णन नामक दसवाँ अध्याय समाप्त ॥१०॥

---

१ क. 'पा सु : पु० ।

# अथैकादशोऽध्यायः

## नारायण उवाच

एकदा गोकुले साध्वी यशोदा नन्दगेहिनी। गृहकर्मणि संसक्ता कृत्वा बालं स्ववक्षसि ॥१॥
वात्यारूपं तृणावर्तमागच्छन्तं च गोकुलम्। श्रीहरिर्मनसा ज्ञात्वा भारयुक्तो बभूव ह ॥२॥
भाराक्रान्ता यशोदा च तत्याज बालकं तदा। शयने कारयित्वा च जगाम यमुनां मुने ॥३॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र वात्यारूपधरोऽसुरः। आदाय तं भ्रामयित्वा गत्वा च शतयोजनम् ॥४॥
बभञ्ज वृक्षशाखाश्च ह्यन्धीभूत च गोकुलम्। चकार सद्यो मायावी पुनस्तत्र पपात ह ॥५॥
असुरोऽपि हरिस्पर्शाज्जगाम हरिमन्दिरम्। सुन्दरं रथमारुह्य कृत्वा कर्मक्षयं स्वकम् ॥६॥
पाण्ड्यदेशोद्भवो राजा शापाद्दुर्वाससोऽसुरः। श्रीकृष्णचरणस्पर्शाद्गोलोकं स जगाम ह ॥७॥
वात्यारूपे गते गोपा गोप्यश्च भयविह्वलाः। न दृष्ट्वा बालकं तत्र शयानं शयने मुने ॥८॥
सर्वे निजघ्नुः स्वं वक्षःस्थलं शोकाकुला भयात्। केचिन्मूर्च्छामवापुश्च रुरुदुश्चापि केचन ॥९॥
अन्वेषणं प्रकुर्वन्तो ददृशुर्बालकं व्रजे। धूलिधूसरसर्वाङ्गं पुष्पोद्यानान्तरस्थितम् ॥१०॥

---

# अध्याय ११

## तृणावर्त-वध-वर्णन

**नारायण बोले**––एक बार गोकुल में नन्द की पत्नी सती यशोदा बालक को गोद में लिये घर के कार्य में लगी हुई थीं ॥१॥ उसी समय तृणावर्त नामक राक्षस बवंडर का रूप धारणकर गोकुल में आया। मन से उसका आगमन समझकर भगवान् ने अपने शरीर का भार बढ़ा लिया ॥२॥ मुने ! उनका भार न सहने के कारण यशोदा बालक को शय्या पर शयन कराकर स्वयं यमुना जी चली गयीं ॥३॥ इसी बीच वह बवंडर रूपधारी राक्षस उन्हें लेकर घुमाता हुआ सौ योजन ऊपर ले गया ॥४॥ उसने वृक्षों की डालियाँ तोड़ दीं तथा इतनी धूल उड़ायी कि गोकुल में अँधेरा छा गया। उस मायावी ने तत्काल यह सब उत्पात किया। फिर वह (स्वयं भी श्रीकृष्ण के भार से आक्रान्त हो) वहीं पृथ्वी पर गिर पड़ा। हरि के स्पर्श से वह असुर भी वैकुण्ठ को चला गया। अप कर्मों का नाश करके सुन्दर रथ पर आरूढ़ हो गोलोक में जा पहुँचा। वह पाण्ड्यदेश का राजा था और दुर्वासा के शापवश असुर हो गया था। श्रीकृष्ण के चरण-स्पर्श होने से वह गोलोक पहुँच गया ॥५-७॥ मुने ! बवंडररूपधारी उस राक्षस के चले जाने पर गोप-गोपियाँ भय से व्याकुल हो गये। शय्या पर बालक को न देखकर शोकाकुल हो वे सब भय से छाती पीट लगे। कोई मूर्च्छित हो गये और कोई रोदन करने लगे ॥८-९॥ वन में खोजते हुए लोगों ने बालक को देखा, जो सर्वाङ्ग में धूलि लपेटे, पुष्प वाटिका के

बाह्यैकदेशे सरसस्तीरे नीरसमन्विते। पश्यन्तं गगनं शश्वद्ध (द्रु) दन्तं भयकातरम् ॥११॥
गृहीत्वा बालकं नन्दः कृत्वा वक्षसि सत्वरम्। दर्शं दर्शं मुखं तस्य रुरोद च शुचाऽन्वितः ॥१२॥
यशोदा रोहिणी शीघ्रं दृष्ट्वा बालं रुरोद च। कृत्वा वक्षसि तद्वक्त्रं चुचुम्ब च मुहुर्मुहुः ॥१३॥
मङ्गलं कारयामास स्नापयामास बालकम्। स्तनं ददौ यशोदा च प्रसन्नवदनेक्षणा ॥१४॥

नारद उवाच

कथं शशाप दुर्वासाः पाण्डयदेशोद्भवं नृपम्। सुविचार्य वद ब्रह्मन्नितिहासं पुरातनम् ॥१५॥

नारायण उवाच

पाण्डयदेशाधिपो राजा सहस्राक्षः प्रतापवान्। स्त्रीसहस्रं समादाय कामबाणप्रपीडितः ॥१६॥
मनोहरे निर्जने च पर्वते गन्धमादने। विजहार नदीतीरे पुष्पोद्याने मनोरमे ॥१७॥
नानाप्रकारशृङ्गारं विपरीतादिकं नृपः। नखदन्तक्षताङ्गं च कामिनीनां चकार सः ॥१८॥
कृत्वा मूर्तिसहस्रं च योगीन्द्रो नृपतीश्वरः। कृत्वा स्थलविहारं च जलक्रीडां चकार ह ॥१९॥
नार्यो विवसनाः सर्वा नग्नाश्च नृपयोषितः। विजह्रुश्च पुष्पभद्रानदीतीरे मनोहरे ॥२०॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र समायातो महामुनिः। शिष्यलक्षैः परिवृतो गच्छन्वै शंकरं प्रति ॥२१॥

---

भीतर स्थित था ॥१०॥ बाहर के एक प्रदेश में तालाब के किनारे—जल के समीप—भय से कातर होने का शब्द करते हुए आकाश की ओर देख रहा था ॥११॥ नंद ने शीघ्र बालक को उठाकर अपनी गोद में रख लिया और बच्चे का मुख बार-बार देखते हुए शोकाकुल होकर रोदन भी करने लगे ॥१२॥ पश्चात् यशोदा-रोहिणी भी बालक को देखते ही रोदन करने लगीं और अपनी गोद में रखकर बार-बार उसका मुख चूमने लगीं ॥१३॥ पुनः मंगल कराकर बालक को स्नान कराया। अनन्तर मुख और नेत्र से प्रसन्नता प्रकट करती हुई यशोदा ने उसे अपना स्तन-पान कराया ॥१४॥

**नारद बोले**—ब्रह्मन्! पाण्ड्यदेशोत्पन्न राजा को दुर्वासा ने क्यों शाप दिया था? भली-भाँति विचार-कर यह प्राचीन इतिहास बतायें ॥१५॥

**नारायण बोले**—पाण्ड्य देश का राजा सहस्राक्ष प्रतापी था। वह कामदेव के बाणों से अत्यन्त पीड़ित होकर अपनी सहस्र स्त्रियों के साथ मनोहर गन्धमादन पर्वत के निर्जन स्थान में—नदी तट पर स्थित मनोरम पुष्पवाटिका—में विहार करने लगा ॥१६-१७॥ राजा ने उन कामिनियों के साथ विपरीत रति-नख-क्षत और दन्तक्षत आदि विविध शृंगार किया ॥१८॥ उस योगीन्द्र राजा ने अपना सहस्र रूप बनाकर उन स्त्रियों के साथ स्थल-विहार पूर्वक जल विहार किया ॥१९॥ इस प्रकार पुष्पभद्रानदी के मनोहर तट पर राजा की सभी रानियाँ वस्त्ररहित होकर क्रीड़ा कर रही थीं। इसी बीच अपने लक्ष शिष्यों समेत महामुनि दुर्वासा

दृष्ट्वा मुनिं महामत्तो नोत्तस्थौ न ननाम ह। वाचा हस्तेन राजा च संभाषां न चकार ह ॥२२॥
दृष्ट्वा चुकोप नृपतिं शशाप स्फुरिताधरः। असुरो भव पापिष्ठ योगाद्भ्रष्टो भुवं व्रज ॥२३॥
भारते लक्षवर्षं च स्थातव्यं ते नराधम। ततो हरिपदस्पर्शाद्गोलोकं यास्यसि ध्रुवम् ॥२४॥
स्थाने स्थाने हे महिष्यो जनिं लभत भारते। राजेन्द्रगेहे राजेन्द्रा विष्यथ मनोहरा ॥२५॥
इत्युक्त्वा तु मुनीन्द्रस्तु जगाम शंकरालयम्। हाहाशब्दं विचक्रुश्च शिष्यसंघाः कृपालवः ॥२६॥
गते मुनीन्द्रे राजेन्द्रो रुरोद च सरित्तटे। रुरुदू रमणीयाश्च रमण्यो विरहातुराः ॥२७॥
हे नाथ रमणश्रेष्ठेत्युच्चार्य च पुनः पुनः। त्वां विना वा क्व यास्यामो वयं त्वं वा क्व यास्यसि ॥२८॥
वयं नो विहरिष्यामस्त्वया सार्धं सुनिर्जने। न करिष्यसि राज्यं त्वं न यास्यामो गृहं वयम् ॥२९॥
शरच्चन्द्रप्रभामुष्टं न द्रक्ष्यामो मुखं तव। प्रसारिताभ्यां बाहुभ्यां नाऽनयिष्याम इत्यतः ॥३०॥
इत्युक्त्वा रुरुदुः सर्वाः पुरस्कृत्य नराधिपम्। मूर्च्छामवापुश्चरणं धृत्वा राज्ञः सरित्तटे ॥३१॥
राजाऽग्निकुण्डमाधाय नारीभिः सह नारद। स्मृत्वा हरिपदाम्भोजं ज्वलदग्निं विवेश ह ॥३२॥
हाहाकारं सुराः सर्वे विचक्रुर्गगने स्थिताः। इत्यूचुर्मुनयश्चैवं दैवं च बलवत्तरम् ॥३३॥
स च राजा तृणावर्तो जगाम हरिमन्दिरम्। महिष्यो भारते वर्षे लेभिरे जन्म वाञ्छितम् ॥३४॥

---

शंकर के यहाँ जाते हुए वहाँ आ गये ॥२०-२१॥ मुनि को देखकर मतवाला राजा न तो उठकर खड़ा हुआ और न प्रणाम ही किया, न वाणी या हाथ के संकेत से ही कुछ कहा ॥२२॥ राजा को देखकर मुनि को क्रोध हुआ, उनके ओंठ फड़कने लगे। तब उन्होंने शाप दिया—पापिष्ठ! तू योग से भ्रष्ट होकर राक्षस हो जा, पृथ्वी पर जा। नराधम! तू भारत में लाख वर्षों तक रहने के उपरान्त भगवान् के चरण-स्पर्श होने पर निश्चित ही गोलोक को जायगा ॥२३-२४॥ रानियों! तुम लोग भी भारत में स्थान-स्थान पर राजाओं के यहाँ जन्म ग्रहण करोगी ॥२५॥ यह कहकर महामुनि शिव के निवास की ओर चल पड़े। उनके दयालु शिष्य-समुदाय हाहाकार कर उठे। ॥२६॥ मुनिराज के चले जाने पर वह राजा सरोवर के तट पर रोने लगा और उसकी रमणीय रमणियाँ विरह-व्याकुल होकर रोने लगीं ॥२७॥ नाथ! रमणश्रेष्ठ! तुम्हारे बिना हम लोग कहाँ जायेंगी और हमें छोड़कर तुम कहाँ जाओगे? हाय! अति निर्जन स्थानों में तुम्हारे साथ हम लोग अब विहार न कर सकेंगी। तुम राज्य नहीं करोगे तो हम लोग अब घर भी नहीं जायेंगी ॥२८-२९॥ शरत्कालीन चन्द्र-कान्ति को चुरानेवाले तुम्हारे मुख को अब न देख पायेंगी और फैली हुई इन बाहुओं के भीतर अब न आने पायेंगी ॥३०॥ उस नदी-तट पर राजा के चरण पकड़कर सभी रानियाँ रोते-रोते मूर्च्छित हो गयीं ॥३१॥ नारद! पश्चात् रानियों समेत राजा प्रज्वलित अग्निकुण्ड में भगवान् के चरण-कमल का स्मरण करता हुआ प्रविष्ट हो गया, जिसे देखकर आकाश-स्थित देवगण हाहाकार करने लगे। दैव बड़ा बलवान् होता है, ऐसा मुनियों ने कहा ॥३२-३३॥ इस प्रकार वह राजा तृणावर्त होने के पश्चात् वैकुण्ठ को चला गया। रानियों ने भारतवर्ष में अभीष्ट जन्म

इत्येवं कथितं सर्वं हरेर्माहात्म्यमुत्तमम् । मोक्षणं नृपतेश्चैव मुनीन्द्रशापहेतुकम् ॥३५॥
इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० तृणावर्तवधो नामैकादशोऽध्यायः ॥११॥

# अथ द्वादशोऽध्यायः

## नारायण उवाच

एकदा मन्दिरे नन्दपत्नी सानन्दपूर्वकम् । कृत्वा वक्षसि गोविन्दं क्षुधितं च स्तनं ददौ ॥१॥
एतस्मिन्नन्तरे गोप्य आजग्मुर्नन्दमन्दिरम् । स्थविराश्च वयस्याश्च बालिका बालकान्विताः ॥२॥
अतृप्तं बालकं शीघ्रं संन्यस्य शयने सती । प्रणनाम समुत्थाय कर्मण्यौत्थानिके मुदा ॥३॥
तैलसिन्दूरताम्बूलं ददौ ताभ्यो मुदाऽन्विता । मिष्टवस्तूनि वस्त्राणि भूषणानि च गोपिका ॥४॥
एतस्मिन्नन्तरे कृष्णो रुरोद क्षुधितस्तदा । प्रेरयित्वा स चरणं मायेशो मायया विभुः ॥५॥
पपात चरणं तस्य प्रवीणे शकटे मुने । विश्वंभरपदाघातात्तच्च चूर्णं बभूव ह ॥६॥

---

लाभ किया ॥३४॥ इस तरह हरि का सारा उत्तम माहात्म्य कह दिया; साथ ही मुनिवर के शाप से (असुरयोनि में पड़े हुए) राजा का उद्धार भी बताया ॥३५॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड के नारायण-नारद-संवाद में तृणावर्त वध नामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ॥११॥

# अध्याय १२

## शकटासुर-भञ्जन-वर्णन

**नारायण बोले**—एक बार महल में बैठी हुई नन्द-पत्नी यशोदा क्षुधित भगवान् को अपनी गोद में लेकर स्तनपान करा रही थीं ॥१॥ इसी बीच गोपियाँ वृद्धाएँ और सखियाँ—बालक-बालिकाओं समेत नन्द के भवन में आयीं ॥२॥ उस समय सती यशोदा अतृप्त बालक को शीघ्र शय्या पर रखकर उठ पड़ीं और प्रसन्नता-पूर्वक उन लोगों को प्रणाम करके औत्थानिक (वर्षगाँठ) उत्सव के उपलक्ष्य में (आयी हुई उन लोगों को) तैल, सिन्दूर, ताम्बूल, मिठाई, वस्त्र और आभूषण देने लगीं ॥३-४॥ इस बीच क्षुधा-पीड़ित कृष्ण रोदन करने लगे। फिर मायापति भगवान् ने माया से चरण को प्रेरित किया। मुने ! उनका चरण पास के दृढ़ शकट (गाड़ी) पर गिरा। विश्वम्भर के चरणाघात से वह चूर-चूर हो गया। शकट के टुकड़े-टुकड़े हो गये। उसके टूटे काष्ठ

बभञ्ज शकटं पेतुर्भग्नकाष्ठानि तत्र वै। पपात दधि दुग्धं च नवनीतं घृतं मधु ॥७॥
दृष्ट्वाऽऽश्चर्यं गोपिकाश्च [1]दुद्रुवुर्बालकं भयात्। ददृशुर्भग्नशकटमिन्धनाभ्यन्तरे शिशुम् ॥८॥
भग्नभाण्डसमूहं च पतितं बहुगोरसम्। प्रेरयित्वा तु काष्ठानि जग्राह बालकं भिया ॥९॥
मायारक्षितसर्वाङ्गं रुदितं क्षुधितं क्षुधा। स्तनं ददौ यशोदा तं रुरोद च भृशं शुचा ॥१०॥
[2]पप्रच्छुर्बालकान्गोपा बभञ्ज शकटं कथम्। किंचिद्धेतुं न पश्यामः सहसेति किमद्भुतम् ॥११॥
इत्यूचुर्बालकाः सर्वे गोपाः शृणुत मद्वचः। श्रीकृष्णस्य पदाघाताद्बभञ्ज शकटं ध्रुवम् ॥१२॥
श्रुत्वा तद्वचनं गोपा गोप्यश्च जहसुर्मुदा। न हि जग्मुः प्रतीतिं च मिथ्येत्यूचुर्व्रजे प्रजाः ॥१३॥
शिशोः स्वस्त्ययनं कार्यं चक्रुर्ब्राह्मणपुंगवाः। हस्तं दत्त्वा शिशोर्गात्रे पपाठ कवचं द्विजः ॥१४॥
वदामि तत्ते विप्रेन्द्र कवचं सर्वरक्षणम्। यद्दत्तं मायया पूर्वं ब्रह्मणे नाभिपङ्कजे ॥१५॥
निद्रिते जगतीनाथे जले च जलशायिनि। भीताय स्तुतिकर्त्रे च मधुकैटभयोर्भयात् ॥१६॥

## योगनिद्रोवाच

दूरीभूतं कुरु भयं भयं किं ते हरौ स्थिते। स्थितायां मयि च ब्रह्मन्सुखी तिष्ठ जगत्पते ॥१७॥

---

वहीं बिखर गये। उस पर लदा हुआ दही, दूध, मक्खन, घी और मधु गिरकर वह चला ॥५-७॥ इस आश्चर्य को देखकर व्याकुल हुई गोपिकाएँ बालक के पास दौड़ी हुई आयीं। उन्होंने देखा कि—गाड़ी टूटी पड़ी है और उसके काष्ठों के बीच बालक पड़ा हुआ है। मिट्टी के सभी पात्र टूट-फूट गये हैं, जिससे बहुत गोरस बह रहा है। काष्ठों को हटवाकर भयभीत होती हुई यशोदा ने किसी भाँति बालक को निकाला, जिसका सर्वांग माया द्वारा सुरक्षित था, केवल क्षुधा के कारण वह रोदन कर रहा था। शोक के कारण अत्यन्त रोदन करती हुई यशोदा बालक को स्तन पिलाने लगीं ॥८-१०॥ गोपों ने वहाँ खेलते हुए बालकों से पूछा—'यह गाड़ी कैसे टूट पड़ी? कोई कारण नहीं दीख रहा है। सहसा यह आश्चर्य कैसे हो गया?' यह सुनकर बालकों ने कहा—'गोपगण! हमारी बात सुनें—श्रीकृष्ण के चरण-प्रहार से यह गाड़ी टूट गयी है।' यह सुनकर गोप-गोपियाँ आनन्द-मग्न होकर हँस पड़ीं, उन्हें इनका विश्वास नहीं हुआ। व्रज की प्रजाओं ने कहा कि यह मिथ्या है ॥११-१३॥ अनन्तर ब्राह्मण के द्वारा बच्चे का स्वस्त्ययन कराया। एक ब्राह्मण ने बालक के सिर पर हाथ रखकर कवच का पाठ किया ॥१४॥ विप्रेन्द्र! मैं उस सर्वरक्षक कवच को बता रहा हूँ, जिसे पूर्वकाल में योगमाया ने ब्रह्मा को उस समय दिया था जब भगवान् जगन्नाथ के जल में सो जाने पर मधु-कैटभ के भय से वे योगनिद्रा की स्तुति कर रहे थे ॥१५-१६॥

**योगनिद्रा बोली**—जगत्पति, ब्रह्मन्! भय त्यागकर निर्भय हो जाओ, मेरे और भगवान् के रहते तुम्हें भय किस बात का है? अतः सुखी होकर रहो ॥१७॥ श्रीहरि तुम्हारे मुख की रक्षा करें, मधुसूदन तुम्हारे

---

१ क. 'दुर्बल्लभा भ'। २ क. 'प्रच्छ बालकान्गोपी व'।

श्रीहरिः पातु ते वक्त्रं मस्तकं मधुसूदनः । श्रीकृष्णश्चक्षुषी पातु नासिकां राधिकापतिः ॥१८॥
कर्णयुग्मं च कण्ठं च कपालं पातु माधवः । कपोलं पातु गोविन्दः केशांश्च केशवः स्वयम् ॥१९॥
अधरोष्ठं हृषीकेशो दन्तपङ्क्तिं गदाग्रजः । रासेश्वरश्च रसनां तालुकं वामनो विभुः ॥२०॥
वक्षः पातु मुकुन्दश्च जठरं पातु दैत्यहा । जनार्दनः पातु नाभिं पातु विष्णुश्च मेहनम् ॥२१॥
नितम्बयुग्मं गुह्यं च पातु ते पुरुषोत्तमः । जानुयुग्मं जानकीशः पातु ते सर्वदा विभुः ॥२२॥
हस्तयुग्मं नृसिंहश्च पातु सर्वत्र संकटे । पादयुग्मं वराहश्च पातु ते कमलोद्भवः ॥२३॥
ऊर्ध्वं नारायणः पातु ह्यधस्तात्कमलापतिः । पूर्वस्यां पातु गोपालः पातु वह्नौ दशास्यहा ॥२४॥
वनमाली पातु याम्यां वैकुण्ठः पातु नैर्ऋतौ । वारुण्यां वासुदेवश्च सतो रक्षाकरः स्वयम् ॥२५॥
पातु ते संततमजो वायव्यां विष्टरश्रवाः । उत्तरे च सदा पातु तेजसा जलजासनः ॥२६॥
ऐशान्यामीश्वरः पातु पातु सर्वत्र शत्रुजित् । जले स्थले चान्तरिक्षे निद्रायां पातु राघवः ॥२७॥
इत्येवं कथितं ब्रह्मन्कवचं परमाद्भुतम् । कृष्णेन कृपया दत्तं स्मृतेनैव पुरा मया ॥२८॥
शुम्भेन सह संग्रामे निर्लक्ष्ये घोरदारुणे । गगने स्थितया सद्यः प्राप्तिमात्रेण स जितः ॥२९॥
कवचस्य प्रभावेण धरण्यां पतितो मृतः । पूर्वं वर्षशतं खे च कृत्वा युद्धं भयावहम् ॥३०॥
मृते शुम्भे च गोविन्दः कृपालुर्गगनस्थितः । मालां च कवचं दत्त्वा गोलोकं स जगाम ह ॥३१॥

---

मस्तक की रक्षा करें, श्रीकृष्ण दोनों नेत्र की और राधिकापति नासिका की रक्षा करें ॥१८॥ दोनों कान, कण्ठ और कपाल की रक्षा माधव, कपोल की रक्षा गोविन्द एवं केशों की रक्षा स्वयं केशव करें ॥१९॥ अधरोष्ठ की रक्षा हृषीकेश, दाँतों की पंक्तियों की रक्षा गदाग्रज, जिह्वा की रक्षा रासेश्वर तथा तालु की रक्षा विभु वामन करें ॥२०॥ वक्षःस्थल की रक्षा मुकुन्द, उदर की दैत्यहा, नाभि की जनार्दन, लिङ्ग की विष्णु, दोनों नितम्बों और गुह्य की रक्षा पुरुषोत्तम करें । प्रभु जानकीश दोनों जानुओं (घुटनों) की रक्षा करें ॥२१-२२॥ सभी संकटों में दोनों हाथों की रक्षा नृसिंह करें । कमलोद्भव वराह युगल चरण की रक्षा करें ॥२३॥ ऊर्ध्वभाग की रक्षा नारायण, नीचे की रक्षा कमलापति, पूर्व दिशा में गोपाल, अग्निकोण में दसमुखहन्ता, दक्षिण में वन-माली, नैर्ऋतकोण में वैकुण्ठ और पश्चिम में सज्जन-रक्षक वासुदेव रक्षा करें ॥२४-२५॥ वायव्य में अजन्मा विष्टरश्रवा तुम्हारी निरन्तर रक्षा करें । उत्तर में कमलासन अपने तेज से सदा रक्षा करें ॥२६॥ ईशान कोण में ईश्वर, सर्वत्र शत्रुजित् और जल, स्थल अन्तरिक्ष एवं निद्रा में राघव रक्षा करें ॥२७॥ ब्रह्मन् ! यह परम अद्भुत कवच तुम्हें बता दिया है, जो पूर्वकाल में स्मरण मात्र करने पर भगवान् श्रीकृष्ण ने मुझे दिया था ॥२८॥ शुम्भ दैत्य के साथ घोर संग्राम करती हुई आकाश-स्थित दुर्गा ने इस कवच की प्राप्ति मात्र से उसे तुरन्त पराजित किया था ॥२९॥ इसी कवच के प्रभाव से वह मृत होकर पृथ्वी पर गिरा था । पूर्व समय में सौ वर्षों तक आकाश में भीषण युद्ध करने के उपरान्त शुम्भ के मर जाने पर भगवान् गोविन्द ने कृपया आकाश में स्थित होकर माला समेत यह कवच प्रदान किया था । अनन्तर वे गोलोक को चले गये थे ॥३०-३१॥

कल्पान्तरस्य वृत्तान्तं कृपया कथितं मुने। अभ्यन्तरभयं नास्ति कवचस्य प्रभावतः ॥३२॥
कोटिशः कोटिशो नष्टा मया दृष्टाश्च वेधसः। अहं च हरिणा सार्धं कल्पे कल्पे स्थिरा सदा ॥३३॥
इत्युक्त्वा कवचं दत्त्वा सान्तर्धानं चकार ह। निःशङ्को नाभिकमले तस्थौ स कमलोद्भवः ॥३४॥
सुवर्णगुटिकायां च कृत्वेदं कवचं परम्। कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ बध्नीयाद्यः सुधीः सदा ॥३५॥
विषाग्निजलशत्रुभ्यो भय तस्य न जायते। जले स्थले चान्तरिक्षे निद्रायां रक्षतीश्वरः ॥३६॥
संग्रामे वज्रपाते च विपत्तौ प्राणसंकटे। कवचस्मरणादेव सद्यो निःशङ्कतां व्रजेत् ॥३७॥
बद्ध्वेदं कवचं कण्ठे शंकरस्त्रिपुरं पुरः। जघान लीलामात्रेण दुरन्तमसुरेश्वरम् ॥३८॥
बद्ध्वेदं कवचं काली रक्तबीजं चखाद सा। सहस्रशीर्षा धृत्वेदं विश्वं धत्ते तिलं यथा ॥३९॥
आवां सनत्कुमारश्च धर्मसाक्षी च कर्मणाम्। कवचस्य प्रभावेण सर्वत्र जयिनो वयम् ॥४०॥
तस्य नन्दशिशोः कण्ठे चकार कवचं द्विजः। आत्मनः कवचं कण्ठे दधार च स्वयं हरिः ॥४१॥
प्रभावः कथितः सर्वः कवचस्य हरेस्तथा। अनन्तस्याच्युतस्यैव प्रभावमतुलं मुने ॥४२॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० शकटभञ्जनयोगनिद्रोक्तकवचन्यासो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

---

मुने ! यह कल्पान्तर का वृत्तान्त तुमसे बताया है, इस कवच के प्रभाव से कभी मन में भय नहीं होता है ॥३२॥ मैंने प्रत्येक कल्प में भगवान् के साथ रहकर करोड़ों ब्रह्माओं का पतन देखा है ॥३३॥ इतना कहकर कवच देकर वह देवी अन्तर्हित हो गयी और ब्रह्मा (भगवान् के) नाभि-कमल में निःशंक होकर रहने लगे ॥३४॥ सुवर्ण के यन्त्र में इस श्रेष्ठ कवच को रखकर जो बुद्धिमान् कण्ठ या दाहिनी बाँह में सदा इसे धारण किये रहता है, उसे विष, अग्नि, जल एवं शत्रु से कभी भी भय नहीं होता। जल, स्थल, अन्तरिक्ष और निद्रा के समय ईश्वर रक्षा करते हैं ॥३५-३६॥ युद्ध, वज्रपात, विपत्ति और संकट में कवच के स्मरण मात्र से वह तुरन्त निःशंक हो जाता है ॥३७॥ पहले समय में शिव ने यही कवच कण्ठ में बाँधकर तुरन्त ही त्रिपुरासुर को लीला की भाँति मार दिया था ॥३८॥ इसी कवच को बाँधकर काली रक्तबीज को खा गयी थी और सहस्र सिरवाले शेषनाग सम्पूर्ण विश्व को तिल की भाँति धारण करते हैं ॥३९॥ हम दोनों (नर-नारायण) सनत्कुमार कर्मों के साक्षी धर्म इसी कवच के प्रभाव से सर्वत्र विजयी होते हैं ॥४०॥ अनन्तर ब्राह्मण ने इस नन्द-कुमार के कण्ठ में वह कवच बाँध दिया। इस प्रकार साक्षात् हरि ने अपने ही कवच को अपने कण्ठ में धारण कर लिया ॥४१॥ मुने ! मैंने हरि के कवच का सम्पूर्ण प्रभाव कह दिया तथा अनन्त एवं अच्युत (भगवान्) का अनुपम प्रभाव भी बता दिया ॥४२॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड के नारायण-नारद-संवाद में शकट-भंजन तथा योगनिद्रा-कथित कवच-न्यास-वर्णन नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥१२॥

# अथ त्रयोदशोऽध्यायः

## नारायण उवाच

अपरं कृष्णमाहात्म्यं शृणु किंचिन्महामुने। विघ्ननिघ्नं पापहरं महापुण्यकरं परम् ॥१॥
एकदा नन्दपत्नी च कृत्वा कृष्णं स्ववक्षसि। स्वर्णसिंहासनस्था च क्षुधितं तं स्तनं ददौ ॥२॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र विप्रेन्द्रैकः समागतः। वृतः शिष्यसमूहैश्च प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा ॥३॥
प्रजपन्परमं ब्रह्म शुद्धस्फटिकमालया। दण्डी छत्री शुक्लदन्तः शोभितः शुक्लवाससा ॥४॥
ज्योतिर्ग्रन्थो मूर्तिमांश्च वेदवेदाङ्गपारगः। परिबिभ्रज्जटाजालं तप्तकाञ्चनसंनिभम् ॥५॥
शरत्पार्वणचन्द्रास्यो गौराङ्गः पद्मलोचनः। योगीन्द्रो धूर्जटेः शिष्यः शुद्धभक्तो गदाभृतः ॥६॥
व्याख्यामुद्राकरः श्रीमाञ्छिष्यानध्यापयन्मुदा। वेदव्याख्यां कतिविधां प्रकुर्वन्निव लीलया ॥७॥
एकीभूय चतुर्वेदस्तेजसा मूर्तिमानिव। साक्षात्सरस्वतीकण्ठः सिद्धान्तैकविशारदः ॥८॥
ध्यानैकनिष्ठः श्रीकृष्णपादाम्भोजे दिवानिशम्। जीवन्मुक्तो हि सिद्धेशः सर्वज्ञः सर्वदर्शनः ॥९॥

---

# अध्याय १३

## श्रीकृष्ण का अन्नप्राशन और नामकरण

**नारायण बोले**—महामुने ! भगवान् कृष्ण का दूसरा माहात्म्य सुनो जो विघ्नविनाशक, पापहारी, महापुण्यदायक और उत्तम है ॥१॥ एक बार सुवर्ण के सिंहासन पर बैठी हुई नन्दपत्नी यशोदा भूखे कृष्ण को गोद में लेकर स्तन पिला रही थीं ॥२॥ उस समय यहाँ एक विप्रेन्द्र आया, जो शिष्य समूहों से घिरा हुआ और ब्रह्म-तेज से देदीप्यमान था ॥३॥ वह शुद्ध स्फटिक की माला लेकर परब्रह्म का जप कर रहा था। दण्ड, छत्र और श्वेत वस्त्र धारण किये वह विप्रवर दाँतों की पंक्तियों से सुशोभित हो रहा था ॥४॥ वह ज्योतिः शास्त्र का मूर्तिमान् स्वरूप तथा वेद-वेदाङ्गों का पारगामी विद्वान् था। उसने अपने मस्तक पर तपाये हुए सुवर्ण के समान पिंगल जटा-भार धारण कर रखा था ॥५॥ उसका मुख शारदीय पूर्णिमा के चन्द्रमा की कान्ति को लज्जित कर रहा था। वह गौरांग था। उसके नेत्र कमल के समान थे। वह योगीन्द्र, शंकर का शिष्य तथा विष्णु का शुद्ध भक्त था ॥६॥ वह श्रीमान् महर्षि प्रसन्नतापूर्वक शिष्यों को पढ़ाता था। उसके एक हाथ में व्याख्या की मुद्रा सुस्पष्ट दिखायी देती थी। वह वेदों की अनेक प्रकार की व्याख्या लीलापूर्वक करता था। उसे देखकर ऐसा मालूम पड़ता था मानो चारों वेदों का तेज मूर्तिमान् हो गया था। उसके कण्ठ में साक्षात् सरस्वती का वास था। वह शास्त्रीय सिद्धान्त का एकमात्र विशेषज्ञ था और दिन-रात श्रीकृष्ण के चरणारविन्दों के ध्यान में निमग्न रहता था। वह जीवन्मुक्त, सिद्धों का स्वामी, सर्वज्ञ और सर्वदर्शी था ॥७-९॥ उन्हें देखते ही यशोदा ने उठ-

तं दृष्ट्वा सा समुत्तस्थौ यशोदा प्रणनाम च । पाद्यं गां मधुपर्कं च स्वर्णसिंहासनं ददौ ॥१०॥
बालकं वन्दयामास मुनीन्द्रं सस्मितं मुदा । मुनिश्च मनसा चक्रे प्रणामशतकं हरिम् ॥११॥
आशिषं प्रददौ प्रीत्या वेदमन्त्रोपयोगिकम् । प्रणनाम च शिष्यांश्च ते तां युयुजुराशिषम् ॥१२॥
शिष्यान्पाद्यादिकं भक्त्या प्रददौ च पृथक्पृथक् । सशिष्याङघ्री च प्रक्षाल्य समुवास सुखासने ॥१३॥
समुद्यता सा प्रष्टुं च पुटाञ्जलियुता सती । स्वक्रोडे बालकं कृत्वा भक्तिनम्रात्मकं धरा ॥१४॥
स्वात्मारामं मङ्गलं च प्रष्टुं यद्यपि न क्षमा । तथाऽपि भवतो नाम शिवं पृच्छामि सांप्रतम् ॥१५॥
अबलाबुद्धिहीनाया दोषं क्षन्तुं सदाऽर्हसि । मूढस्य सततं दोषं क्षमां कुर्वन्ति साधवः ॥१६॥
अङ्गिरा वाऽथ वाऽत्रिर्वा मरीचिर्गौतमोऽथवा । क्रतुः किं वा प्रचेता वा पुलस्त्यः पुलहोऽथवा ॥१७॥
दुर्वासाः कर्दमस्त्वं वा वशिष्ठो गर्ग एव वा । जैगीषव्यो देवलो वा कपिलो वा स्वयं विभुः ॥१८॥
सनत्कुमारः सनकः सनन्दो वा सनातनः । वोढुः पञ्चशिखो वा त्वमासुरिः सौभरिः किमु ॥१९॥
विश्वामित्रोऽथ वाल्मीको वामदेवोऽथ कश्यपः । संवर्तः किमुतथ्यो वा किं कचो वा बृहस्पतिः ॥२०॥
भृगुः शुक्रश्च च्यवनो नरनारायणोऽथवा । शक्तिः पराशरो व्यासः शुकदेवोऽथ जैमिनिः ॥२१॥
मार्कण्डेयो लोमशश्च कण्वः कात्यायनस्तथा । आस्तीको वा जरत्कारुर्ऋष्यशृङ्गो विभाण्डकः ॥२२॥
पौलस्त्यस्त्वमगस्त्यो वा शरद्वान्गिरिरेव च । शमीकोऽरिष्टनेमिश्च मण्डव्यः पैल एव च ॥२३॥
पाणिनिर्वा कणादो वा शाकल्यः शाकटायनः । अष्टावक्रो भागुरिर्वा सुमन्तुर्वत्स एव वा ॥२४॥

---

कर प्रणाम किया और अर्घ्य, गौ, मधुपर्क और सुवर्ण सिंहासन प्रदान किये ॥१०॥ अनन्तर हर्षपूर्वक अपने बालक से मुसकराते हुए मुनीन्द्र की वन्दना करवायी। मुनि ने भी मन-ही-मन भगवान् को सौ-बार प्रणाम किया ॥११॥ और वेद मंत्र द्वारा बड़े प्रेम से आशीर्वाद दिया। अनन्तर यशोदा ने उनके शिष्यों को भी प्रणाम किया और उन लोगों ने भी उन्हें आशिष प्रदान किया ॥१२॥ यशोदा ने शिष्यों को भी भक्तिपूर्वक पृथक्-पृथक् पाद्य आदि अर्पित किये। अनन्तर मुनि अपने शिष्यों के साथ पैर धोकर जब सिंहासन पर बैठे तब सती यशोदा बालक को अपनी गोद में लिये और भक्ति से कन्धे झुकाये हाथ जोड़कर मुनि से कुछ पूछने के लिए उद्यत हुई ॥१३-१४॥ उन्होंने कहा--यद्यपि स्वात्माराम (अपनी आत्मा में ही रमण करनेवाले) व्यक्ति से मंगल पूछने के लिए मैं समर्थ नहीं हूँ, तथापि इस समय मैं आपका कुशल-समाचार पूछ रही हूँ। मुझ बुद्धिहीन अबला का दोष आप क्षमा करेंगे, साधु पुरुष मूढ़ के दोष को सतत क्षमा करते हैं। अंगिरा, अत्रि, मरीचि गौतम, क्रतु, प्रचेता, पुलस्त्य, पुलह, दुर्वासा, कर्दम, वशिष्ठ, गर्ग, जैगीषव्य, देवल या स्वयं विभु, कपिल, सनत्कुमार सनक, सनन्द, सनातन, वोढु, पञ्चशिख, आसुरि, सौभरि, विश्वामित्र, वाल्मीकि, वामदेव, कश्यप, संवर्त, कच, बृहस्पति, भृगु, शुक्र, च्यवन, नर-नारायण, शक्ति, पराशर, व्यास, शुकदेव, जैमिनि, मार्कण्डेय, लोमश, कण्व कात्यायन, आस्तीक, जरत्कारु, ऋष्यशृङ्ग, विभाण्डक, पौलस्त्य, अगस्त्य, शरद्वान्, गिरि, शमीक, अरिष्टनेमि, मण्डव्य पैल, पाणिनि, कणाद, शाकल्य, शाकटायन, अष्टावक्र, भागुरि, सुमन्तु, वत्स, जाबाल याज्ञवल्क्य

जाबालो याज्ञवल्क्यश्च वैशंपायन एव च। यतिर्हंसी पिप्पलादो मैत्रेयः करुषस्तथा ॥२५॥
उपमन्युर्गौरमुखोऽरुणिरौर्वोऽथ कक्षिवान्। भरद्वाजो वेदशिराः शङ्कुकर्णोऽथ शौनकः ॥२६॥
एतेषां पुण्यश्लोकानां को भवान्वद मे प्रभो। प्रत्युत्तरार्हा नाहं चेत्तथाऽपि वक्तुमर्हसि ॥२७॥
किंकरः किंकरी वाऽपि समर्था प्रष्टुमीश्वरम्। यो यस्य सेवानिरतः स कं पृच्छति तं विना ॥२८॥
धन्याऽहं कृतकृत्याऽहं सफलं जीवितं मम। त्वत्पादाब्जरजःस्पर्शाज्जिन्मकोटयंहसां क्षयः ॥२९॥
त्वत्पादोदकसंस्पर्शात्सद्यः पूता वसुंधरा। तवाऽऽगमनमात्रेण तीर्थीभूतो ममाऽऽश्रमः ॥३०॥
ये ये श्रुताः श्रुतौ ब्रह्मञ्छ्रुतिसारा महाजनाः। तेषामेको मया दृष्टः पूर्वपुण्यफलोदयात् ॥३१॥
शिष्या वेदा मूर्तिमन्तो ग्रीष्ममध्याह्नभास्कराः। गोकुलं मत्कुलं सद्यः पुनन्ति पादरेणुना ॥३२॥
आशिषं कर्तुमर्हन्ति प्रसन्नमनसा शिशुम्। पूर्णस्वस्त्ययनं सद्यो विप्राशीर्वचनं ध्रुवम् ॥३३॥
इत्येवमुक्त्वा नन्दस्त्री भक्त्या तस्थौ मुनेः पुरः। नरं प्रस्थापयामास नन्दमानयितुं सती ॥३४॥
यशोदावचनं श्रुत्वा जहास मुनिपुंगवः। जहसुः शिष्यसंघाश्च भासयन्तो दिशो दश ॥३५॥
हितं तथ्यं नीतियुक्तं महत्पुण्यकरं[1] परम्। तामुवाच मुदा युक्तः शुद्धबुद्धिर्महामुनिः ॥३६॥

---

वैशम्पायन, यति, हंसी, पिप्पलाद, मैत्रेय, करुष, उपमन्यु, गौरमुख, अरुणि, और्व, भरद्वाज, वेदशिरा, शंकुकर्ण या शौनक इन पुण्य श्लोकों में आप कौन हैं ? प्रभो ! मैं प्रत्युत्तर के योग्य नहीं हूँ तथापि आप नाम बताने की कृपा अवश्य करें ॥१५-२७॥ किंकर या किंकरी ही प्रभु से पूछने में समर्थ होती है। जो जिसकी सेवा में निरत रहता है, वह उसे छोड़कर किससे पूछने जायगा ? ॥२८॥ मैं धन्य हूँ, कृतकृत्य हूँ, मेरा जीवन सफल हो गया; आपके चरण-कमल की धूलि के स्पर्श मात्र से करोड़ों जन्मों के पाप का नाश हो जाता है ॥२९॥ क्योंकि आपके चरणोदक के स्पर्श से पृथ्वी तत्क्षण पवित्र हो जाती है और आपके आगमन मात्र से मेरा आश्रम तीर्थ रूप हो गया है ॥३०॥ ब्रह्मन् ! वेदों में श्रुतिसार रूप जिन श्रेष्ठ पुरुषों को सुना गया है, उनमें एक का दर्शन मुझे जन्मान्तरीय पुण्य फल के उदय होने से प्राप्त हुआ है ॥३१॥ मूर्तिमान् वेद रूप आपके शिष्यगण ग्रीष्मकाल के मध्याह्नकालीन सूर्य जैसे हैं। ये अपनी चरण-धूलि से गोकुल तथा मेरे कुल को सद्यः पवित्र कर रहे हैं ॥३२॥ आप जैसे महात्मा पुरुष प्रसन्न मन से बच्चे को आशीर्वाद देने योग्य हैं। निश्चय ही ब्राह्मण का आशीर्वाद तत्काल पूर्ण मंगलकारी होता है ॥३३॥ इतना कहकर नन्द की पत्नी यशोदा मुनि के सामने भक्ति-पूर्वक खड़ी हो गयीं और नन्द को बुलाने के लिए एक दूत भेज दिया ॥३४॥ यशोदा की ऐसी बातें सुन-कर मुनिवर हँस पड़े और शिष्य-समूह भी दशों दिशाओं को प्रकाशित करते हुए हँसने लगे ॥३५॥ तब शुद्धबुद्धि महामुनि ने सुप्रसन्न होकर यशोदा से हितकर, सत्य, नीतियुक्त और महान् पुण्यकारक बात कही ॥३६॥

---

१ क. 'हृत्प्रीतिक'।

## गर्ग उवाच

सुधामयं ते वचनं लौकिकं च कुलोचितम् । यस्य यत्र कुले जन्म स एव तादृशो भवेत् ॥३७॥
सर्वेषां [1]गोपपद्मानां गिरिभानुश्च भास्करः । पत्नी पद्मासमा तस्य नाम्ना पद्मावती सती ॥३८॥
तस्याः कन्या यशोदा त्वं यशोवर्धनकारिणी । बल्लवानां च प्रवरो लब्धो नन्दश्च वल्लभः ॥३९॥
नन्दो यस्त्वं च या भद्रे बालो यो येन वाऽऽगतः । जानामि निर्जने सर्वं वक्ष्यामि नन्दसंनिधिम् ॥४०॥
गर्गोऽहं यदुवंशानां चिरकालं पुरोहितः । प्रस्थापितोऽहं वसुना नान्यसाध्ये च कर्मणि ॥४१॥
एतस्मिन्नन्तरे नन्दः श्रुतमात्रं जगाम ह । ननाम दण्डवद्भूमौ मूर्ध्ना तं मुनिपुंगवम् ॥४२॥
शिष्यान्ननाम मूर्ध्ना च ते तं युयुजुराशिषम् । समुत्थायाऽऽसनात्तूर्णं यशोदा नन्द एव च ॥
गृहीत्वाऽभ्यन्तरं रम्यं जगाम विदुषां वरः ॥४३॥
गर्गो नन्दो यशोदा च सपुत्रा सा मुदाऽन्विता । वाक्यं गर्गस्तदोवाच निगूढं निर्जने मुने ॥४४॥

## गर्ग उवाच

अयि नन्द प्रवक्ष्यामि वचनं ते सुखावहम् । प्रस्थापितोऽहं वसुना येन तच्छ्रूयतामिति ॥४५॥
वसुना सूतिकागारे शिशुः प्रत्यर्पणं कृतः । पुत्रोऽयं वसुदेवस्य ज्येष्ठश्च तस्य च ध्रुवम् ॥४६॥

---

**गर्ग बोले**—तुम्हारी अमृतमय वाणी लोक और कुल के अनुकूल ही है । जिसका जिस कुल में जन्म होता है, उसका स्वभाव भी वैसा ही होता है ॥३७॥ समस्त गोप-कुल-कमल के लिए गिरिभानु सूर्य के समान हैं, उनकी पत्नी सती पद्मावती लक्ष्मी के समान हैं ॥३८॥ तुम उन्हीं की कन्या हो और यशोवृद्धि करने के कारण तुम्हारा नाम यशोदा हुआ है । तुमने बल्लव-कुल-श्रेष्ठ नन्द को वल्लभ (पति) के रूप में प्राप्त किया है ॥३९॥ भद्रे ! नन्द और तुम जो हो तथा वह बालक जो है और जिस कारण आया है, वह सब जानता हूँ, किन्तु नन्द के सान्निध्य में किसी निर्जन स्थान में मैं यह सब बताऊंगा ॥४०॥ मैं यदुवंशियों का गर्ग नामक चिरकालीन पुरोहित हूँ । मुझे कुछ ऐसे कार्यवश वसुदेव ने भेजा है, जो अन्य द्वारा सिद्ध नहीं हो सकता ॥४१॥ इसी बीच नन्द सुनते ही आ गये और मुनिवर को सिर से भूमि पर दण्डवत् किया ॥४२॥ उनके शिष्यों को भी सिर से नमस्कार किया । उन लोगों ने भी नन्द को शुभाशिष प्रदान किया । अनन्तर यशोदा और नन्द आसन से शीघ्र उठकर विद्वज्जनश्रेष्ठ गर्ग को भी साथ लिये भीतरी रमणीक कमरे में चले गये । मुने ! उस एकान्त स्थान में गर्ग, नन्द और पुत्र समेत सुप्रसन्न यशोदा थीं, उस समय गर्ग ने उन लोगों से गूढ़ बात कही ॥४३-४४॥

**गर्ग बोले**—नन्द ! मैं तुमसे सुखकर बात कहूँगा । वसुदेव ने जिस प्रयोजन से मुझे यहाँ भेजा है, वह सुनो । कंस के भय से वसुदेव ने इस बच्चे को लाकर तुम्हारे सूतिकागृह में रख दिया था और तुम्हारी

---

१ क. ०पवल्लानां ।

कन्या ते तेन या नीता मथुरां कंसभीरुणा। अस्यान्नप्राशनायाहं नामानुकरणाय च॥
गूढेन प्रेषितस्तेन तस्योद्योगं कुरु द्विज ॥४७॥
पूर्णब्रह्मस्वरूपोऽयं शिशुस्ते मायया महीम्। आगत्य भारहरणं कर्ता धात्रा च सेवितः॥४८॥
गोलोकनाथो भगवाञ्छ्रीकृष्णो राधिकापतिः। नारायणो यो वैकुण्ठे कमलाकान्त एव च॥४९॥
श्वेतद्वीपनिवासी यः पाता विष्णुश्च सोऽप्यजः। कपिलोऽन्ये तदंशाश्च नरनारायणावृषी॥५०॥
सर्वेषां तेजसां राशिर्मूर्तिमानागतः किम्। तं वसुं दर्शयित्वा च शिशुरूपो बभूव ह॥५१॥
सांप्रतं सूतिकागारादाजगाम तवाऽऽलयम्। अयोनिसंभवश्चायमाविर्भूतो महीतले॥५२॥
वायुपूर्णं मातृगर्भं कृत्वा च मायया हरिः। आविर्भूय वसुं मूर्ति दर्शयित्वा जगाम ह॥५३॥
युगे युगे वर्णभेदो नामभेदोऽस्य बल्लव। शुक्लः पीतस्तथा रक्त इदानीं कृष्णतां गतः॥५४॥
शुक्लवर्णः सत्ययुगे सुतीव्रतेजसाऽऽवृतः। त्रेतायां रक्तवर्णोऽयं पीतोऽयं द्वापरे विभुः॥५५॥
कृष्णवर्णः कलौ श्रीमांस्तेजसां राशिरेव च। परिपूर्णतमं ब्रह्म तेन कृष्ण इति स्मृतः॥५६॥
ब्रह्मणो वाचकः कोऽयमृकारोऽनन्तवाचकः। शिवस्य वाचकः षश्च नकारो धर्मवाचकः॥५७॥
अकारो विष्णुवचनः श्वेतद्वीपनिवासिनः। नरनारायणार्थस्य विसर्गो वाचकः स्मृतः॥५८॥

---

कन्या को लेकर मथुरा चले गये थे। इसलिए यहाँ पुत्र वसुदेव का है और जो इससे ज्येष्ठ है, वह भी उन्हीं का है। इस बच्चे के अन्नप्राशन और नामकरण करने के लिए गुप्त रूप से उन्होंने मुझे भेजा है। अतः इसके लिए तैयारी करो॥४५-४७॥ यह तुम्हारा बच्चा पूर्ण ब्रह्मस्वरूप है, माया से इस पृथ्वी पर आकर इसका भार उतारनेवाला है। ब्रह्मा ने इसकी आराधना की थी, यही गोलोक का स्वामी एवं राधिकापति भगवान् श्रीकृष्ण हैं। यही वैकुण्ठ के निवासी कमलाकान्त नारायण हैं। श्वेतद्वीपनिवासी, अजन्मा एवं रक्षक विष्णु भी यही हैं। कपिल तथा इनके अन्यान्य अंश ऋषि नर-नारायण भी इनसे भिन्न नहीं हैं। मानो यह सबके तेजों की राशि के मूर्तिमान् रूप में आया है। वे (श्रीकृष्ण) वसुदेव को अपना रूप दिखाकर शिशुरूप हो गये॥४८-५१॥ इस समय सूतीगृह से आपके घर में आ गये हैं। यह बालक अयोनिज रूप में ही भूतल पर प्रकट हुए हैं। इन्होंने माया द्वारा माता के गर्भ को वायु से पूर्ण कर रखा था। फिर स्वयं प्रकट होकर वसुदेव को अपना स्वरूप दर्शन कराकर वे शिशुरूप में यहाँ आ गये॥५२-५३॥ वल्लव! प्रत्येक युग में इस बालक का वर्ण (रूप-रङ्ग) भेद और नामभेद होता रहता है। शुक्ल, पीत और रक्त वर्ण के होकर इस समय ये कृष्ण होकर प्रकट हुए हैं। सत्ययुग में अत्यन्त तीक्ष्ण तेज से आवृत होने के कारण ये श्वेत वर्ण के हो गये थे। त्रेता में इनका वर्ण लाल हुआ। ये द्वापर में पीतवर्ण के हो गये और कलियुग (के आदि में) कृष्ण वर्ण के हो गये थे। त्रेता में श्रीमान् तेजों की राशि हैं, परिपूर्णतम ब्रह्म हैं, इसी से कृष्ण कहे गये हैं॥५४-५६॥ 'कृष्णः' का ककार ब्रह्मा के अर्थ में, ऋकार अनन्त के अर्थ में, षकार शिव के अर्थ में और णकार धर्म के अर्थ में प्रयुक्त है॥५७॥ अन्त का अकार श्वेतद्वीपनिवासी

सर्वेषां तेजसां राशिः सर्वमूर्तिस्वरूपकः । सर्वाधारः सर्वबीजस्तेन कृष्ण इति स्मृतः ॥५९॥
कर्मनिर्मूलवचनः कृषिर्णो दास्यवाचकः । अकारो दातृवचनस्तेन कृष्ण इति स्मृतः ॥६०॥
कृर्षिनिश्चेष्टवचनो नकारो भक्तिवाचकः । अकारः प्राप्तिवचनस्तेन कृष्ण इति स्मृतः ॥६१॥
कृर्षिनिर्वाणवचनो नकारो मोक्षवाचकः । अकारो दातृवचनस्तेन कृष्ण इति स्मृतः ॥६२॥
नाम्ना भगवतो नन्द कोटीनां स्मरणेन यत् । तत्फलं लभते नूनं कृष्णेति स्मरणे नरः ॥६३॥
यद्विधं स्मरणात्पुण्यं वचनाच्छ्रवणात्तथा । कोटिजन्मांहसो नाशो भवेद्यत्स्मरणादिकात् ॥६४॥
विष्णोर्नाम्ना च सर्वेषां सारात्सारं परात्परम् । कृष्णेति सुन्दरं नाम मङ्गलं भक्तिदायकम् ॥६५॥
ककारोच्चारणाद्भक्तः कैवल्यं मृत्युजन्महम् । ऋकाराद्दास्यमतुलं षकाराद्भक्तिमीप्सिताम् ॥६६॥
नकारात्सहवासं च तत्समं कालमेव च । तत्सारूप्यं विसर्गाच्च लभते नात्र संशयः ॥६७॥
ककारोच्चारणादेव वेपन्ते यमकिंकराः । ऋकारोक्तेर्न तिष्ठन्ति षकारात्पातकानि च ॥६८॥
नकारोच्चारणाद्रोगा अकारान्मृत्युरेव च । ध्रुवं सर्वे पलायन्ते नामोच्चारणभीरवः ॥६९॥
स्मृत्युक्तिश्रवणोद्योगात्कृष्णनाम्नो व्रजेश्वर । रथं गृहीत्वा धावन्ति गोलोकात्कृष्णकिंकराः ॥७०॥

---

विष्णु के अर्थ में और विसर्ग नर-नारायण के अर्थ में प्रयुक्त है ॥५८॥ ये सभी देवों के तेजों की राशि, समस्त मूर्ति स्वरूप, सबके आधार और सबके बीज हैं, अतः कृष्ण कहे गये हैं ॥५९॥ कर्म-निर्मूल करने के अर्थ में 'कृष्' का; दास्य (भक्ति) अर्थ में 'णकार' का और दाता के अर्थ में 'अ' का प्रयोग होता है, इसलिए 'कृष्ण' कहे गये हैं ॥६०॥ 'कृष्' का अर्थ है निश्चेष्ट, 'ण' का अर्थ है भक्ति और अकार का अर्थ है प्राप्ति, इसलिए कृष्ण कहे गये हैं ॥६१॥ निर्वाण अर्थ में 'कृष्' का, मोक्ष के अर्थ में 'णकार' का और दाता के अर्थ में 'अ' का प्रयोग होता है, इससे 'कृष्ण' कहे गये हैं ॥६२॥ नन्द ! भगवान् के करोड़ों नामों के स्मरण से जिस फल की प्राप्ति होती है, वह फल कृष्ण नाम के स्मरण मात्र से मनुष्य को प्राप्त हो जाता है ॥६३॥ 'कृष्ण' नाम के स्मरण से जैसा पुण्य होता है, उसके कीर्तन और श्रवण से भी वैसा ही पुण्य होता है। कृष्ण के स्मरण आदि से करोड़ों जन्मों के पाप नष्ट होते हैं ॥६४॥ विष्णु के सभी नामों में 'कृष्ण' नाम ही सबकी अपेक्षा सारतम वस्तु और परात्पर तत्त्व है। 'कृष्ण' यह नाम सुन्दर, मंगलमय तथा भक्तिदायक है ॥६५॥ 'ककार' के उच्चारण मात्र से भक्तपुरुष जन्म-मृत्युनाशक मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। ऋकार से अतुलनीय दास्य 'षकार' के उच्चारण से अभीष्ट भक्ति, 'नकार' के उच्चारण से तत्काल ही भगवान् के साथ सहवास और 'विसर्ग' के उच्चारण से उनका सारूप्य मोक्ष प्राप्त करता है, इसमें संशय नहीं ॥६६-६७॥ 'ककार' के उच्चारण मात्र से यमराज के किंकर काँपने लगते है, 'ऋकार' के कहते ही वे ठहरते नहीं, 'षकार' के उच्चारण से पातक, 'नकार' के उच्चारण से रोग और 'अकार' के उच्चारण से मृत्यु ये सब निश्चित ही भाग खड़े होते हैं, क्योंकि नामोच्चारण से डरनेवाले वे निश्चित रूप से भाग जाते हैं ॥६८-६९॥ व्रजेश्वर ! भगवान् कृष्ण के नाम के स्मरण, कथन या श्रवण मात्र से ही उनके किंकर गोलोक से रथ लेकर दौड़ पड़ते हैं। पृथिवी

पृथिव्या रजसः संख्यां कर्तुं शक्ता विपश्चितः। नाम्नः प्रभावसंख्यानं सन्तो वक्तुं न च क्षमाः ॥७१॥
पुरा शंकरवक्त्रेण नाम्नोऽस्य महिमा श्रुतः। [1]गुणनामप्रभावं च किंचिज्जानाति मद्गुरुः ॥७२॥
ब्रह्माऽनन्तश्च धर्मश्च सुरर्षिमनुमानवाः। वेदाः सन्तो न जानन्ति महिम्नः षोडशीं कलाम् ॥७३॥
इत्येवं कथितो नन्द महिमा ते सुतस्य च। यथामति यथाज्ञानं गुरुवक्त्राद्यथा श्रुतम् ॥७४॥
कृष्णः पीताम्बरः कंसध्वंसी च विष्टरश्रवाः। देवकीनन्दनः श्रीशो यशोदानन्दनो हरिः ॥७५॥
सनातनोऽच्युतोऽनन्तः सर्वेशः सर्वरूपधृक्। सर्वाधारः सर्वगतिः सर्वकारणकारणम् ॥७६॥
राधाबन्धू राधिकात्मा राधिकाजीवनः स्वयम्। राधाप्राणो राधिकेशो राधिकारमणः स्वयम् ॥७७॥
राधिकासहचारी च राधामानसपूरणः। राधाधनो राधिकाङ्गो राधिकासक्तमानसः ॥७८॥
राधिकाचित्तचोरश्च राधाप्राणाधिकः प्रभुः। परिपूर्णतमं ब्रह्म गोविन्दो गरुडध्वजः ॥७९॥
नामान्येतानि कृष्णस्य श्रुतानि मन्मुखाद्धृदि। जन्ममृत्युहराण्येव रक्ष नन्द शुभेक्षण ॥८०॥
कृतं निरूपणं नाम्नां कनिष्ठस्य यथा श्रुतम्। ज्येष्ठस्य हलिनो नाम्नाः संकेतं शृणु मन्मुखात् ॥८१॥
गर्भसंकर्षणादेव नाम्ना संकर्षणः स्मृतः। नास्त्यन्तोऽस्यैव वेदेषु तेनानन्त इति स्मृतः ॥८२॥

---

की धूलि की संख्या विद्वान् किसी प्रकार कर सकते हैं किन्तु भगवान् के नाम के प्रभाव की गणना करने में सन्त पुरुष भी समर्थ नहीं हैं ॥७०-७१॥ पूर्व समय में शंकर के मुख से इस नाम की महिमा मैंने सुनी थी। उनके गुणों और नामों का प्रभाव मेरे गुरु कुछ-कुछ जानते हैं। ब्रह्मा, शेष, धर्म, देवता, ऋषि, मनु, मानव, वेद और सन्त पुरुष (नाम-) महिमा की सोलहवीं कला भी नहीं जानते हैं ॥७२-७३॥ नन्द! मैंने तुम्हारे पुत्र की महिमा का अपनी बुद्धि और ज्ञान के अनुसार वर्णन किया है, जैसा कि गुरु के मुख से मैंने सुना था ॥७४॥ कृष्ण, पीताम्बर, कंसध्वंसी, विष्टरश्रवाः देवकीनन्दन, श्रीश, यशोदा-नन्दन, हरि, सनातन, अच्युत, अनन्त, सर्वेश, सर्वरूपधारी, सर्वाधार, सर्वगति, सर्वकारण, कारण, राधाबन्धु, राधिकात्मा, राधिका-जीवन, राधाप्राण, राधिकेश, राधिकारमण, राधिका-सहचारी, राधामानसपूरण, राधाधन, राधिकांग, राधिकासक्तमानस, राधिकाचित्तचोर, राधाप्राणाधिक, प्रभु, परिपूर्णतम ब्रह्म, गोविन्द और गरुड़ध्वज ये कृष्ण के नाम, जो तुमने मेरे मुख से सुने हैं, हृदय में धारण करो। शुभेक्षण, नन्द! ये नाम जन्म तथा मृत्यु (के कष्ट) को हर लेने-वाले हैं ॥७५-८०॥ इस प्रकार तुम्हारे कनिष्ठ पुत्र के नामों का निरूपण जैसा मैंने सुना था, वैसा कर दिया है। अब ज्येष्ठ पुत्र हलधर के नामों का संकेत मेरे मुख से सुनो। गर्भ से संकर्षण होने के कारण वे 'संकर्षण' कहलाये। इनका अंत नहीं है, अतः वेदों में इनको 'अनन्त' कहा गया है। अत्यन्त बली होने के कारण 'बलदेव',

---

१ ख. गुणान्नाम°।

बलदेवो बलोद्रेकाद्धली हलधारणात् । शितिवासा नीलवासान्मुसली मुसलायुधात् ॥८३॥
रेवत्या सह संभोगाद्रेवतीरमणः स्वयम् । रोहिणीगर्भवासात्तु रौहिणेयो महामतिः ॥८४॥
इत्येवं ज्येष्ठपुत्रस्य श्रुतं नाम निवेदितम् । यास्याम्यहं गृहं नन्द सुखं तिष्ठ स्वमन्दिरे ॥८५॥
ब्राह्मणस्य वचः श्रुत्वा नन्दः स्तब्धो बभूव ह । निश्चेष्टा नन्दपत्नी च जहास बालकः स्वयम् ॥८६॥
प्रणम्योवाच नन्दस्तं वाक्यं विनयपूर्वकम् । पुटाञ्जलियुतो भूत्वा भक्तिनम्रात्मकंधरः ॥८७॥

## नन्द उवाच

गतश्चेत्त्वं तदा कर्म करिष्यत्येव को महान् । स्वयं शुभेक्षणं कृत्वा कुरु नाम्नाऽन्नप्राशनम् ॥८८॥
यन्नामौघश्च कथितो राधाप्राणादिको दश । तस्यापि का वा राधेति कन्यका कस्य च ध्रुवम् ॥८९॥
नन्दस्य वचनं श्रुत्वा जहास मुनिपुंगवः । निगूढं परमं तत्त्वं रहस्यं कथयामि ते ॥९०॥

## गर्ग उवाच

शृणु नन्द प्रवक्ष्यामि इतिहासं पुरातनम् ॥९१॥
पुरा गोलोकवृत्तान्तं श्रुतं शंकरवक्त्रतः । श्रीदाम्नो राधया सार्धं बभूव कलहो महान् ॥९२॥
श्रीदामशापाद्दैवेन गोपी राधा च गोकुले । वृषभानुसुता सा च माता तस्याः कलावती ॥९३॥

---

हल ग्रहण करने से 'हली', नीलवस्त्र पहनने से शितिवासा (नीलाम्बर), मूसल अस्त्र धारण करने से 'मुसली', रेवती के साथ सम्भोग करने से 'रेवतीरमण', रोहिणी के गर्भ में वास करने से इन महाबुद्धिमान् को 'रौहिणेय' कहा गया है। इस प्रकार ज्येष्ठ पुत्र का भी नामकरण मैंने कर दिया जैसा मैंने सुना था। नन्द ! अब मैं घर जाऊँगा, अपने भवन में तुम सुखपूर्वक रहो ॥८१-८५॥ ब्राह्मण की बात सुनकर नन्द अवाक् रह गये, उनकी पत्नी (यशोदा) भी निश्चेष्ट हो गयीं और वह बालक स्वयं हँसने लगा ॥८६॥ तब नन्द ने विनयपूर्वक उन्हें प्रणाम करके हाथ जोड़कर भक्ति से मस्तक झुकाकर कहा ॥८७॥

**नन्द बोले**—यदि आप चले जायँगे तो कौन महान् पुरुष इस कर्म को सम्पन्न करायेगा। अतः आप स्वयं ही शुभ मुहूर्त विचारकर नामतः अन्नप्राशन संस्कार करा दें ॥८८॥ राधाप्राण आदि जिन दस नामों को आपने बताया है, उनमें राधा कौन है ? और किसकी कन्या है ? नन्द की यह बात सुनकर मुनिश्रेष्ठ गर्ग हँस पड़े और बोले—मैं तुम्हें परम निगूढ़ तत्त्व एवं रहस्य की बात बता रहा हूँ, सुनो ॥८९-९०॥

**गर्ग बोले**—हे नन्द ! सुनो, तुम्हें प्राचीन इतिहास बता रहा हूँ। पूर्वकाल में गोलोक का वृत्तान्त शिव के मुख से मैंने सुना था। राधा के साथ श्रीदामा का महान् कलह हुआ। उसके कारण श्रीदामा के शाप से दैववश राधा गोकुल में गोपी हुई हैं। वे वृषभानु की पुत्री हैं, उनकी माता का नाम कलावती है

कृष्णस्यार्धाङ्गसंभूता नाथस्य सदृशी सती । गोलोकवासिनी सेयमत्र कृष्णाज्ञयाऽधुना ॥९४॥
अयोनिसंभवा देवी मूलप्रकृतिरीश्वरी । मातुर्गर्भं वायुपूर्णं कृत्वा च मायया सती ॥९५॥
वायुनिःसरणे काले धृत्वा च शिशुविग्रहम् । आविर्बभूव मायेयं पृथ्व्यां कृष्णोपदेशतः ॥९६॥
वर्धते सा व्रजे राधा शुक्ले चन्द्रकला यथा । श्रीकृष्णतेजसोऽर्धेन सा च मूर्तिमती सती ॥९७॥
एका मूर्तिर्द्विधाभूता भेदो वेदे निरूपितः । इयं स्त्री सा पुमान् किंवा सा वा कान्ता पुमानयम् ॥९८॥
द्वे रूपे तेजसा तुल्ये रूपेण च गुणेन च । पराक्रमेण बुद्ध्या वा ज्ञानेन संपदाऽपि च ॥९९॥
पुरतो गमनेनैव किं तु सा वयसाऽधिका । ध्यायते तामयं शश्वदिमं सा स्मरति प्रियम् ॥१००॥
रचिता साऽस्य प्राणैश्च तत्प्राणैर्मूर्तिमानयम् । अस्य राधानुसारेण गोकुलागमनं परम् ॥१०१॥
स्वीकारं सार्थकं कर्तुं गोलोके यत्कृतं पुरा । कंसभीतिच्छलेनैव गोकुलागमनं हरेः ॥१०२॥
प्रतिज्ञापालनार्थाय भयेशस्य भयं कुतः । राधाशब्दस्य व्युत्पत्तिः सामवेदे निरूपिता ॥१०३॥
नारायणस्तामुवाच ब्रह्माणं नाभिपङ्कजे । ब्रह्मा तां कथयामास ब्रह्मलोके च शंकरम् ॥१०४॥
पुरा कैलासशिखरे मामुवाच महेश्वरः । देवानां दुर्लभां नन्द निशामय वदामि ते ॥१०५॥
सुरासुरमुनीन्द्राणां वाञ्छितां मुक्तिदां पराम् । रेफो हि कोटिजन्माघं कर्मभोगं शुभाशुभम् ॥१०६॥

---

॥९१-९३॥ वे सती भगवान् श्रीकृष्ण की अर्द्धांगिनी तथा उन्हीं के समान हैं। वे कृष्ण की आज्ञा से गोलोक-वासिनी होती हुई भी इस समय यहाँ अयोनिसंभवा होकर प्रकट हुई हैं। वे ही मूलप्रकृति ईश्वरी हैं। उस सती ने वायु द्वारा अपनी माता का गर्भ पूरा किया था और वे वायु के निकलने पर भगवान् कृष्ण के उपदेश से माया द्वारा अपना शिशु रूप बनाकर प्रकट हो गयी थीं ॥९४-९६॥ वही राधा व्रज में बढ़ रही हैं, जैसे शुक्ल पक्ष में चन्द्रकला बढ़ती है। श्रीकृष्ण के तेज के अर्ध भाग से वे मूर्तिमती हुई हैं ॥९७॥ यह एक ही मूर्ति दो रूपों में प्रकट है, इसका भेद वेद में बताया गया है। ये स्त्री हैं, वे पुरुष हैं अथवा वे ही स्त्री हैं तथा ये पुरुष हैं ॥९८॥ ये दोनों रूप समान तेजवाले हैं और गुण रूप में समान हैं। उसी प्रकार पराक्रम, बुद्धि, ज्ञान और सम्पत्ति में भी समान हैं ॥९९॥ किन्तु वे पहले आने के कारण श्रीकृष्ण से आयु में बड़ी हैं। श्रीकृष्ण निरन्तर उनका ध्यान करते हैं और वे कृष्ण का सतत स्मरण करती रहती हैं ॥१००॥ राधा कृष्ण के प्राणों से रची गयी हैं और कृष्ण राधा के प्राणों से मूर्तिमान् हुए हैं। राधा का अनुसरण करने के लिए ही इनका गोकुल में आगमन हुआ है ॥१०१॥ पूर्वकाल में गोलोक में जो स्वीकार किया था उसी को पूरा करने के लिए कंस के भय के बहाने भगवान् गोकुल में आये हैं ॥१०२॥ प्रतिज्ञा के पालनार्थ ही इन्होंने ऐसा किया है नहीं तो भयेश को भय कहाँ ? राधा शब्द की व्युत्पत्ति सामवेद में बतायी गयी है ॥१०३॥ पहले नारायण ने नाभिकमलस्थित ब्रह्मा को वह व्युत्पत्ति बतायी थी और ब्रह्मा ने ब्रह्मलोक में शिव को उसका उपदेश दिया था ॥१०४॥ पूर्वकाल में कैलास शिखर पर महेश्वर ने मुझे बताया था। नन्द ! वह देवदुर्लभ व्युत्पत्ति बता रहा हूँ, सुनो। 'राधा' शब्द की व्युत्पत्ति देवों, असुरों एवं मुनीन्द्रों को अभीष्ट है तथा वह सबसे उत्कृष्ट एवं मोक्षदायिनी है। 'राधा' का रेफ करोड़ों जन्मों के पाप

आकारो गर्भवासं च मृत्युं च रोगमुत्सृजेत् । धकार आयुषो हानिमाकारो भवबन्धनम् ॥१०७॥
श्रवणस्मरणोक्तिभ्यः न प्रणश्यति संशयः । रेफो हि निश्चलां भक्तिं दास्यं कृष्णपदाम्बुजे ॥१०८॥
सर्वेप्सितं सदानन्दं सर्वसिद्धौघमीश्वरम् । धकारः सहवासं च तत्तुल्यकालमेव च ॥१०९॥
ददाति सार्ष्टिसारूप्यं तत्त्वज्ञानं हरेः 'समम् । आकारस्तेजसां राशिं दानशक्तिं हरौ यथा ॥११०॥
योगशक्तिं योगमतिं सर्वकालं हरिस्मृतिम् । श्रुत्युक्तिस्मरणाद्योगान्मोहजालं च किल्बिषम् ॥
रोगशोकमृत्युयमा वेपन्ते नात्र संशयः ॥१११॥
राधामाधवयोः किंचिद्व्याख्यानं च यतः श्रुतम् । तदुक्तं च यथाज्ञानं साकल्यं वक्तुमक्षमः ॥११२॥
आराद्वृन्दावने नन्द विवाहो भविताऽनयोः । पुरोहितो जगद्धाता कृत्वाऽग्निं साक्षिणं मुदा ॥११३॥
कुबेरपुत्रमोक्षं च गव्यस्याऽऽहृत्य भक्षणम् । हिंसनं धेनुकस्यैव कानने तालभोजनम् ॥११४॥
बककेशिप्रलम्बानां हिंसनं चाऽस्य लीलया । मोक्षणं द्विजपत्नीनां मिष्टान्नपानभोजनम् ॥११५॥
भञ्जनं शक्रयागस्य शक्राद्गोकुलरक्षणम् । गोपीनां वस्त्रहरणं व्रतसंपादनं तथा ॥११६॥
ताभ्यः पुनर्वस्त्रदानं वरदानं यथेप्सितम् । चेतसां हरणं तासामयं वश्याः करिष्यति ॥११७॥

---

तथा शुभाशुभ कर्मभोग से छुटकारा दिलाता है ॥१०५-१०६॥ (आकार) गर्भवास, मृत्यु एवं रोग का विनाश करता है। 'धकार' आयु की हानि से और 'आकार' संसार-बन्धन से मुक्ति दिलाता है ॥१०७॥ राधा के स्मरण, श्रवण और कीर्तन द्वारा सभी दोष नष्ट हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं। (राधा नाम का) 'रकार' भगवान् श्रीकृष्ण के चरण-कमल की निश्चित भक्ति और दास्य प्रदान करता है ॥१०८॥ 'आकार' सकल कामना, सदा आनन्द, समस्त-सिद्धि-समूह एवं ईश्वर की प्राप्ति करानेवाला है। 'धकार' हरि के साथ उन्हीं के समान काल तक सहवास, समान ऐश्वर्य, सारूप्य और तत्त्वज्ञान प्रदान करता है। 'अकार' भगवान् के समान तेजोराशि, दानशक्ति, योग-शक्ति, योगबुद्धि और सर्वदा हरि की स्मृति का स्मरण कराता है। राधा नाम के श्रवण, कथन और स्मरण के सुयोग से मोहजाल, पाप, रोग, शोक, मृत्यु और यम काँपने लगते हैं, इसमें संशय नहीं ॥१०९-१११॥ राधा-माधव के नाम की जो कुछ व्याख्या सुनी थी, वह अपने ज्ञान के अनुसार तुम्हें बता दी। सम्पूर्ण कहने की मुझमें शक्ति नहीं है ॥११२॥ नन्द ! यहाँ पास ही वृन्दावन में इन दोनों का विवाह होगा। जगत् के धाता ब्रह्मा पुरोहित हो अग्नि को साक्षी बनाकर प्रसन्नतापूर्वक विवाह करायेंगे ॥११३॥ (कृष्णलीला में ये बातें होंगी) कुबेर के पुत्र (यमलार्जुन) का मोक्ष, माखन चुराकर उसका भक्षण, वन में धेनुकासुर का वध और ताल-फल-भोजन, इन्द्र-याग-विध्वंसन, इन्द्र से गोकुल की रक्षा, गोपियों का चीरहरण, उनके व्रत का सम्पादन, पुनः उन्हें वस्त्र प्रदान एवं अभीष्ट वरदान देते हुए श्रीकृष्ण उनके चित्त का हरणकर उन्हें अपने अधीन कर लेंगे। तदनन्तर स्त्रियों

---

१ क. स्वयम्।

रासोत्सवं महारम्यं सर्वेषां हर्षवर्धनम् । पूर्णचन्द्रोदये नक्तं वसन्ते रासमण्डले ॥११८॥
गोपीनां नवसंभोगात्कृत्वा पूर्णं मनोरथम् । ताभिः सह जलक्रीडां करिष्यति कुतूहलात् ॥११९॥
विच्छेदोऽस्य वर्षशतं श्रीदामशापहेतुकम् । गोपालैर्गोपिकाभिश्च भविता राधया सह ॥१२०॥
मथुरागमनं तत्र गोपीनां शोकवर्धनम् । पुनः प्रबोधनं तासां दानमाध्यात्मिकस्य च ॥१२१॥
स्यन्दनाक्रूरयो रक्षां सद्यस्ताभ्यां करिष्यति । रथमारोहणं कृत्वा मथुरागमनं पुनः ॥१२२॥
पितृभ्रातृव्रजैः सार्धं विलङ्घ्य यमुनां व्रजे । अक्रूराय ज्ञानदानं दर्शयित्वा स्वकं जले ॥१२३॥
कौतुकेन च सायाह्ने नगरात्सर्वदर्शनम् । मालाकारतन्तुवायकुब्जानां बन्धमोक्षणम् ॥१२४॥
धनुर्भङ्गं शंकरस्य यागस्थानप्रदर्शनम् । हिंसनं गजमल्लानां दर्शनं नृपतेः 'पुरः ॥१२५॥
कंसस्य हिंसनं सद्यः पित्रोर्निगडमोक्षणम् । प्रबोधनं च युष्माकमुग्रसेनाभिषेचनम् ॥१२६॥
तस्य तस्य वधूनां च ज्ञानाच्छोकापनोदनम् । भ्रातुः स्वस्योपनयनं विद्यादानं गुरोर्मुखात् ॥१२७॥
गुरुपुत्रप्रदानं च पुनरागमनं गृहे । छलनं नृपसैन्यानां यवनस्य दुरात्मनः ॥१२८॥
निर्माणं द्वारकायाश्च मुचुकुन्दस्य मोक्षणम् । द्वारकागमनं चैव यादवैः सह कौतुकात् ॥१२९॥

---

के हर्ष वृद्ध्यर्थ उनके साथ रास-क्रीड़ा करेंगे। वसंत की रात में पूर्ण चन्द्र के उदय होने पर गोपियों के साथ नूतन संभोग से उनका मनोरथ पूर्ण करके कुतूहलवश उनके साथ जल-विहार करेंगे ॥११४-११९॥ पश्चात् श्रीदामा के शापवश गोप, गोपियों और राधिका से उनका सौ वर्ष का वियोग होगा ॥१२०॥ उस समय ये मथुरा चले जायँगे, जिससे गोपियों का शोक बढ़ जायेगा। पुनः ये आकर गोपियों को समझायेंगे और आध्यात्मिक ज्ञान देंगे ॥१२१॥ उस प्रबोधन तथा आध्यात्मिक ज्ञान के द्वारा ये रथ तथा अक्रूर की रक्षा करेंगे। पुनः रथ पर बैठकर पिता, भ्राता एवं व्रजवासियों के साथ व्रज में यमुना को लाँघकर मथुरा को जायेंगे। वहाँ यमुना-जल में अक्रूर को अपने स्वरूप का दर्शन कराकर उन्हें ज्ञान देंगे ॥१२२-१२३॥ फिर सायंकाल मथुरा पहुँचकर कौतूहलवश नगर में घूम-घूमकर सबको दर्शन देंगे। माली, दरजी और कुब्जा को भव-बन्धन से मुक्त करेंगे ॥१२४॥ शिव-धनुष का भंग करके यज्ञ-स्थान को देखेंगे। फिर कुवलयापीड हाथी और मल्लों का वध करके सामने राजा कंस का दर्शन करेंगे ॥१२५॥ वहाँ तत्काल कंस का वध करके माता-पिता को बंधन से मुक्त करेंगे। अनन्तर तुम लोगों को समझा-बुझाकर उग्रसेन का राजतिलक करेंगे ॥१२६॥ स्त्रियों के शोक का ज्ञान द्वारा नाश करके भ्राता समेत अपना उपनयन संस्कार कराकर गुरु के मुख से विद्याध्ययन करेंगे ॥१२७॥ अनन्तर गुरु को उनका मृत पुत्र लाकर देंगे और लौट आयेंगे। इसके बाद राजसैनिकों को चकमा देकर दुष्ट यवन का वध, द्वारकापुरी का निर्माण, मुचुकुंद का मोक्ष, कौतुकवश यादवों समेत द्वारकापुरी गमन

---

१ क. सभाम्।

स्त्रीसंघानां विहरणं ताभिः सार्धं च क्रीडनम् । सौभाग्यवर्धनं तासां पुत्रपौत्रादिकस्य च ॥१३०॥
मणिसंबन्धिनो मिथ्याकलङ्कस्य च मोक्षणम् । साहाय्यं पाण्डवानां च भारावतरणादिकम् ॥१३१॥
निष्पन्नं राजसूयस्य धर्मपुत्रस्य लीलया । पारिजातस्य हरणं शक्राहंकारमर्दनम् ॥१३२॥
व्रतपूर्णं च सत्याया बाणस्य भुजकृन्तनम् । मर्दनं शिवसैन्यानां हरस्य जृम्भणं परम् ॥१३३॥
हरणं बाणपुत्र्याश्चैवानिरुद्धस्य मोक्षणम् । वाराणस्याश्च दहनं विप्रदारिद्र्यभञ्जनम् ॥१३४॥
विप्रपुत्रप्रदानं च दुष्टानां दमनादिकम् । तीर्थयात्राप्रसङ्गेन युष्माभिः सह दर्शनम् ॥१३५॥
कृत्वा च राधया सार्धं व्रजमागमिता पुनः । प्रस्थापयित्वा द्वारां च परं नारायणांशकम् ॥१३६॥
सर्वं निष्पादनं कृत्वा गोलोकं राधया सह । गमिष्यत्येव गोलोकं नाथोऽयं जगतां पतिः ॥१३७॥
नारायणश्च वैकुण्ठं गमिता स्म त्वया सह । धर्मगेहमृषी द्वौ च विष्णुः क्षीरोदमेव च ॥१३८॥
इत्येवं कथितं नन्द भविष्यं वेदनिर्णयम् । श्रूयतां सांप्रतं कर्म यदर्थं गमनं मम ॥१३९॥
माघशुक्लचतुर्दश्यां कुरु कर्म शुभे क्षणे । गुरुवारे च रेवत्यां विशुद्धे चन्द्रतारके ॥१४०॥
चन्द्रस्थे मीनलग्ने च लग्नेशपूर्णदर्शने । वणिजे करणोत्कृष्टे शुभयोगे मनोहरे ॥१४१॥
सुदुर्लभे दिने तत्र सर्वोत्कृष्टोपयोगिके । आलोच्य पण्डितैः सार्धं कुरु कर्म मुदाऽन्वितः ॥१४२॥

---

और स्त्री-समूहों के साथ विहार और क्रीड़ा करेंगे। उनका और उनके पुत्र-पौत्र आदि के सौभाग्य की वृद्धि करेंगे ॥१२८-१३०॥ मणि सम्बन्धी मिथ्या कलंक का मार्जन, पाण्डवों की सहायता, भूभार-हरण, धर्मपुत्र युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ का लीलापूर्वक सम्पादन, पारिजात का अपहरण और इन्द्र के अहंकार का मर्दन करेंगे ॥१३१-१३२॥ फिर सत्यभामा के व्रत की पूर्ति, बाणासुर की भुजाओं का छेदन, शिव-सैनिकों का मर्दन और जृम्भण, बाण-पुत्री (उषा) का हरण एवं अनिरुद्ध की बन्धन से मुक्ति, वाराणसी नगरी का दहन, ब्राह्मण का दारिद्र्य-दूरीकरण, एक ब्राह्मण को मृतक पुत्र लाकर प्रदान, दुष्टों का दमन और तीर्थ-यात्रा के प्रसंग में तुम लोगों से मिलेंगे ॥१३३-१३५॥ तदनन्तर राधा के साथ पुनः व्रज में आयेंगे। फिर अपने परम नारायणांश को द्वारका भेजकर ये जगत्पति प्रभु सब कार्यों को सुसम्पन्न करके पुनः राधा के साथ गोलोक में पधारेंगे। नारायण भी तुम्हारे साथ वैकुण्ठ को चले जायेंगे। दोनों नर-नारायण ऋषि धर्म के घर और विष्णु क्षीर-सागर को चले जायेंगे ॥१३६-१३८॥ नन्द ! इस प्रकार वेद द्वारा निर्णीत भविष्य की बातें मैंने बता दीं। सम्प्रति जिस कर्म के लिए मैं आया हूँ, उस कार्य को अब सुनो। माघ-शुक्ल-चतुर्दशी के शुभ मुहूर्त में इन बालकों का संस्कार करो। उस दिन गुरुवार, रेवती नक्षत्र, चन्द्र और तारा विशुद्ध हैं ॥१३९-१४०॥ फिर मीन का चन्द्रमा है। उस पर लग्नेश की पूर्ण दृष्टि है। उत्तम वणिज नामक करण है और मनोहर शुभ योग है। वह दिन परम दुर्लभ है। उसमें सभी उत्कृष्ट एवं उपयोगी योगों का उदय हुआ है। अतः पण्डितों के साथ विचार-परामर्श करके प्रसन्न मन से इस कर्म को सुसम्पन्न करो

इत्युक्त्वा बहिरागत्य स उवास मुनीश्वरः। हृष्टो नन्दो यशोदा च कर्मोद्योगं चकार ह ॥१४३॥
एतस्मिन्नन्तरे द्रष्टुं गर्गं गोपाश्च गोपिकाः। बालका बालिकाश्चैव ह्याजग्मुर्नन्दमन्दिरम् ॥१४४॥
ददृशुस्ते मुनिश्रेष्ठं ग्रीष्ममध्याह्नभास्करम्। शिष्यसंघैः परिवृतं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ॥१४५॥
गूढयोगं प्रवोचन्तं सिद्धाय पृच्छते मुदा। पश्यन्तं सस्मितं नन्दभवनानां परिच्छदम् ॥१४६॥
स्वर्णसिंहासनस्थं च योगमुद्राधरं वरम्। भूतं भव्यं भविष्यं च पश्यन्तं ज्ञानचक्षुषा ॥१४७॥
हृदीश्वरं प्रपश्यन्तं सिद्धं मन्त्रप्रभावतः। बहिर्यशोदाक्रोडस्थं तादृशं सस्मितं शिशुम् ॥१४८॥
महेशदत्तध्यानेन यद्रूपं च निरूपितम्। तं दृष्ट्वा परमप्रीत्या पूर्णभूतमनोरथम् ॥१४९॥
साश्रुनेत्रं पुलकितं निमग्नं भक्तिसागरे। हृदि पूजां प्रणामं च कुर्वन्तं योगचर्यया ॥१५०॥
मूर्ध्ना प्रणेमुस्ते तं च स च तानाशिषं ददौ। आसनस्थो मुनिस्तस्थौ ते जग्मुः स्वालयं मुदा ॥१५१॥
नन्दः स्वानन्दयुक्तश्च बन्धून्मङ्गलपत्रिकाः। प्रस्थापयामास शीघ्रमाराद्दूरस्थितान्मुदा ॥१५२॥
दधिकुल्यां दुग्धकुल्यां घृतकुल्यां प्रपूरिताम्। गुडकुल्यां तैलकुल्यां मधुकुल्यां च विस्तृताम् ॥१५३॥
नवनीतकुल्यां पूर्णां च तक्रकुल्यां यदृच्छया। शर्करोदककुल्यां च परिपूर्णां च लीलया ॥१५४॥
तण्डुलानां च शालीनामुच्चैश्च शतपर्वतान्। पृथुकानां शैलशतं लवणानां च सप्त च ॥१५५॥

---

॥१४१-१४२॥ इतना कहकर वे मुनीश्वर बाहर आकर बैठ गये। तब नन्द और यशोदा हर्षित होकर उस कार्य के लिए उद्योग करने लगे ॥१४३॥ उसी बीच गर्ग को देखने के लिए गोप-गोपियां, बालक और बालिकाएँ नन्द के भवन में आये ॥१४४॥ उन लोगों ने उन्हें देखा कि गर्ग ग्रीष्मकाल के मध्याह्नकालीन सूर्य के समान चमक रहे हैं और वे शिष्य-समूहों से घिरे, ब्रह्मतेज से देदीप्यमान हैं। सिद्धों के पूछने पर उन्हें प्रसन्न मन से वे गूढ़ योग बता रहे हैं तथा नंद के भवन की एक-एक सामग्री को मुस्कराते हुए देख रहे हैं। वे योग मुद्रा धारण किये सुवर्ण-सिंहासन पर बैठे हैं। वे ज्ञानचक्षु से भूत, वर्तमान और भविष्य को भी देख रहे हैं तथा मंत्र के प्रभाववश परमात्मा के जिस सिद्ध स्वरूप को देखते हैं, उसी को मुस्कराते हुए बाहर यशोदा की गोद में देख रहे हैं। शिव के बताये ध्यान द्वारा जिस रूप का उन्हें साक्षात्कार हुआ था, उसी पूर्णकाम परमात्मस्वरूप का अत्यन्त प्रेम से दर्शन करके वे अश्रुपूरित नेत्र, रोमाञ्चित शरीर और भक्तिसागर में निमग्न हो गये। वे योगचर्या द्वारा हृदय में पूजा और प्रणाम कर रहे हैं ॥१४५-१५०॥ ऐसे आचार्य को सभी लोगों ने सिर से प्रणाम किया, उन्होंने भी उन सबको शुभ आशिष प्रदान किया। फिर मुनिवर्य गर्ग आसन पर अवस्थित रहे और वे लोग प्रसन्नता-पूर्वक अपने-अपने घर चले गये ॥१५१॥ आनन्दयुक्त नन्द ने अपने समीपस्थ तथा दूरवर्ती बन्धुओं के पास शीघ्र मंगल निमंत्रण भेज दिया ॥१५२॥ इसके पश्चात् उन्होंने दही, दूध, घी, गुड़, तेल, मधु, मक्खन, मट्ठा, चीनी और जल की नहरें लीलापूर्वक तैयार करायीं। फिर साठी चावल के ऊँचे सौ पर्वत, चिउरा के सौ पर्वत, नमक

सप्त शैलाञ्छर्करानां लड्डुकानां च सप्त च । परिपक्वफलानां च तत्र षोडश पर्वतान् ।।१५६।।
यवगोधूमचूर्णानां पक्वलड्डुकपिण्डकान् । मोदकानां च शैलं च स्वस्तिकानां च पर्वतान् ।।१५७।।
कपर्दकानामत्युच्चैः शैलान्सप्त च नारद । कर्पूरादिकयुक्तानां ताम्बूलानां च मन्दिरम् ।।१५८।।
विस्तृतं द्वारहीनं च वासितोदकसंयुतम् । चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमेन समन्वितम् ।।१५९।।
नानाविधानि रत्नानि स्वर्णानि विविधानि च । मुक्ताफलानि रम्याणि प्रवालानि मुदाऽन्वितः ।।१६०।।
नानाविधानि चारूणि वासांसि भूषणानि च । पुत्रान्नप्राशने नन्दः कारयामास कौतुकात् ।।१६१।।
संस्कारयुक्तं रुचिरं चन्दनद्रवचर्चितम् । प्राङ्गणं कदलीस्तम्भं रसालनवपल्लवैः ।।१६२।।
ग्रथितैः सूक्ष्मवस्त्रेण वेष्टयामास कौतुकात् । युक्तं मङ्गलकुम्भैश्च फलपल्लवसंयुतैः ।।१६३।।
चन्दनागुरुकस्तूरीपुष्पमालाविराजितैः । माल्यानां वरवस्त्राणां राशिभिश्च विराजितम् ।।१६४।।
गवां च मधुपर्काणामासनानां च नारद । फलानां जलकुम्भानां समूहैश्च समन्वितम् ।।१६५।।
नानाप्रकारैर्वाद्यैश्च दुर्लभैः सुमनोहरैः । ढक्कानां दुन्दुभीनां च पटहानां तथैव च ।।१६६।।
मृदङ्गमुरजादीनामानकानां समूहकैः । वंशीसंनहनीकांस्यशरयन्त्रैश्च शब्दितम् ।।१६७।।
विद्याधरीणां नृत्येन भृङ्गिमाभ्रमणेन च । गन्धर्वनायकानां च संगीतैर्मूर्च्छनायुतैः ।।१६८।।
स्वर्णसिंहासनानां च रथानां निःस्वनैर्युतम् । एतस्मिन्नन्तरे नन्दमुवाच वाचको मुदा ।।१६९।।

---

के सात पर्वत, शक्कर के सात, लड्डू के सात, परिपक्व फलों के सोलह पर्वत, जवा और गेहूँ के आटे के पके हुए लड्डुक, पिण्ड, मोदक तथा स्वस्तिक के अनेक पर्वत तैयार कराये ।।१५३-१५७।। नारद ! कपर्दकों (कौड़ियों ?) के भी अति ऊँचे सात पर्वत बनवाये । कपूर आदि से युक्त ताम्बूलों का घर बनवाया, जो विस्तृत और द्वारहीन था । वहाँ सुवासित जल का घर भी था, जिसमें चन्दन, अगुरु, कस्तूरी एवं कुंकुम मिलाये गये थे ।।१५८-१५९।। विविध प्रकार के रत्न समेत सुवर्ण, मोती, मूँगे, अनेक प्रकार के सुन्दर वस्त्र और आभूषणों को नन्द ने अपने पुत्र के अन्नप्राशन संस्कार के लिए कुतूहल से एकत्र किया ।।१६०-१६१।। आँगन को सफाई-रँगाई आदि द्वारा सुन्दर बनाया गया । उसमें चन्दन मिश्रित जल का छिड़काव किया गया । केले के खम्भों और आम के नवीन पल्लवों की वन्दनवारों से सुसज्जित कराकर सूक्ष्म वस्त्र से कौतुकवश घेर दिया गया । यथास्थान मंगल-कलश स्थापित किये गये । उन्हें फलों और पल्लवों से युक्त, चन्दन, अगुरु, कस्तूरी तथा पुष्पमाला से विभूषित किया गया । मालाओं और उच्च वस्त्रों की राशियों से आँगन को सुशोभित किया गया । नारद ! उसमें गौएँ, मधुपर्क, आसन, फल और जलकलशों के समूह रखे गये । वहाँ विविध भाँति के दुर्लभ एवं अति मनोहर वाद्यों, डमरू, नगाड़े, ढोल, मृदंग, मुरज, आनक आदि के समूहों तथा वंशी, सन्नहनी और झांझ के शब्द हो रहे थे ।।१६२-१६७।। विद्याधरियों के नृत्य, भावभंगी तथा भ्रमण से और गन्धर्व-नायकों के मूर्च्छनायुक्त संगीतों से तथा सुवर्ण-सिंहासनों एवं रथों के सम्मिलित शब्दों से नन्द-प्रांगण की अपूर्व शोभा हो रही थी । उसी बीच

आजग्मुर्बल्लवेन्द्राश्च बान्धवा बल्लवास्तथा । अश्वस्थाश्च गजस्थाश्च रथस्थाश्चेति सत्वरम् ॥१७०॥
आजग्मू राजपुत्राश्च रत्नालंकारभूषिताः । आगतो गिरिभानुश्च सस्त्रीकश्च सकिंकरः ॥१७१॥
रथानां च चतुर्लक्षं गजानां च तथैव च । तुरंगमाणां कोटिश्च शिबिकानां तथैव च ॥१७२॥
ऋषीन्द्राणां मुनीन्द्राणां विप्राणां च विपश्चिताम् । बन्दिनां भिक्षुकाणां च समूहश्च समीपतः ॥१७३॥
गोपानां गोपिकानां च संख्यां कर्तुं च कः क्षमः । पश्याऽगत्य बहिर्भूयेत्युवाच प्राङ्गणे स्थितः ॥१७४॥
श्रुत्वेवं तानुपव्रज्य समानीय व्रजेश्वरः । प्राङ्गणे वासयामास पूजयामास सत्वरम् ॥१७५॥
ऋष्यादिकसमूहं च प्रणम्य शिरसा भुवि । पाद्यादिकं च तेभ्यश्च प्रददौ सुसमाहितः ॥१७६॥
वस्तुभिर्बन्धुभिः पूर्णं बभूव नन्दगोकुलम् । न कोऽपि कस्य शब्दं च श्रोतुं शक्तश्च तत्र वै ॥१७७॥
त्रिमुहूर्तं कुबेरश्च श्रीकृष्णप्रीतये मुदा । चकार स्वर्णवृष्ट्या च परिपूर्णं च गोकुलम् ॥१७८॥
कौतुकापह नवं चक्रुर्बन्धुवर्गाश्च क्रीडया । आनम्रकंधराः सर्वे दृष्ट्वा नन्दस्य संपदम् ॥१७९॥
नन्दः कृताह्निकः पूतो धृत्वा धौते च वाससी । चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमेनैव भूषितः ॥१८०॥
उवास पादौ प्रक्षाल्य स्वर्णपीठे मनोहरे । गर्गस्य च मुनीन्द्राणां गृहीत्वाऽऽज्ञां व्रजेश्वरः ॥१८१॥
संस्मृत्य विष्णुमाचान्तः स्वस्तिवाचनपूर्वकम् । कृत्वा कर्म च वेदोक्तं भोजयामास बालकम् ॥१८२॥

---

प्रसन्न होकर संदेशवाहक से नन्द ने कहा ॥१६८-१६९॥ आपके भाई-बन्धु बल्लवराजगण तथा गोपगण पधारे हैं। उनमें से कुछ लोग घोड़ों पर, कुछ हाथियों पर और कुछ रथों पर चढ़कर शीघ्रतापूर्वक आये हैं। रत्नों के आभूषणों से विभूषित कितने राजपुत्रों का भी आगमन हुआ है ॥१७०-१७१॥ पत्नी और सेवक समेत गिरिभानु भी आ गये हैं। चार लाख रथ, चार लाख हाथी, एक करोड़ घोड़े, एक करोड़ पालकी तथा ऋषीन्द्रगण, मुनिगण, विद्वान् ब्राह्मण, वन्दीजन और भिक्षुकों के समूह भी निकट आ गये हैं। गोपों और गोपियों की संख्या बताने में कौन समर्थ हो सकता है? आप प्रांगण से बाहर चलकर स्वयं देख लें। ऐसी बात आँगन में खड़े हुए दूत ने कही ॥१७२-१७४॥ यह सुनकर व्रजेश्वर नन्द ने स्वयं उनके समीप जाकर उन्हें आँगन में लाकर बिठाया और तुरन्त उनकी पूजा की ॥१७५॥ ऋषि आदि के वृन्दों को सिर से भूमि में प्रणामकर सावधान मन से उन्हें पाद्य आदि समर्पित किये ॥१७६॥ उस समय नन्द का गोकुल वस्तुओं और बन्धुओं से इतना परिपूर्ण हो गया कि––वहाँ कोई किसी का शब्द नहीं सुन सकता था। कुबेर ने भी श्रीकृष्ण की प्रसन्नता के लिए तीन घड़ी तक सुवर्ण की वर्षा से समस्त गोकुल को भर दिया ॥१७७-१७८॥ अत्यन्त कौतुक प्रदर्शित किया। नन्द की सम्पत्ति को देखकर बन्धुवर्गों ने कन्धे झुका लिये और क्रीड़ा द्वारा कुतूहल को छिपा लिया ॥१७९॥ नन्द ने नित्य कर्म के उपरान्त पवित्र होकर दो धुले वस्त्र धारण किये। चन्दन, अगुरु, कस्तूरी एवं कुंकुम से भूषित होकर पैरों को धोकर सुन्दर सुवर्ण-पीठ पर गर्ग और मुनीन्द्रों की आज्ञा से बैठ गये ॥१८०-१८१॥ भगवान् विष्णु का स्मरण करके आचमन किया और स्वस्तिवाचनपूर्वक वेदोक्त कर्म सम्पन्न करके बालक को

गर्गवाक्यानुसारेण बालकस्य मुदाऽन्वितः । कृष्णेति मङ्गलं नाम ररक्ष च शुभे क्षणे ॥१८३॥
सघृतं भोजयित्वा च कृत्वा नाम जगत्पतेः । वाद्यानि वादयामास कारयामास मङ्गलम् ॥१८४॥
नानाविधानि स्वर्णानि धनानि विविधानि च । भक्ष्यद्रव्याणि वासांसि ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥१८५॥
बन्दिभ्यो भिक्षुकेभ्यश्च सुवर्णं विपुलं ददौ । भाराक्रान्ताश्च ते सर्वे न शक्ता गन्तुमेव च ॥१८६॥
ब्राह्मणान्बन्धुवर्गांश्च भिक्षुकांश्च विशेषतः । मिष्टान्नं भोजयामास परिपूर्णं मनोहरम् ॥१८७॥
दीयतां दीयतां चैव खाद्यतां खाद्यतामिति । बभूव शब्दोऽत्युच्चैश्च सततं नन्दगोकुले ॥१८८॥
रत्नानि परिपूर्णानि वासांसि भूषणानि च । प्रवालानि सुवर्णानि मणिसाराणि यानि च ॥१८९॥
चारूणि स्वर्णपात्राणि कृतानि विश्वकर्मणा । गत्वा गर्गाय विनयं चकार व्रजपुंगवः ॥१९०॥
शिष्येभ्यः स्वर्णभाराणि प्रददौ विनयान्वितः । द्विजेभ्योऽप्यवशिष्टेभ्यः परिपूर्णानि नारद ॥१९१॥

### नारायण उवाच

गृहीत्वा श्रीहरिं गर्गो जगाम निभृतं मुदा । तुष्टाव परया भक्त्या प्रणम्य च तमीश्वरम् ॥१९२॥
साश्रुनेत्रः सपुलको भक्तिनम्रात्मकंधरः । पुटाञ्जलियुतो भूत्वोवाच कृष्णपदाम्बुजे ॥१९३॥

### गर्ग उवाच

हे कृष्ण जगतां नाथ भक्तानां भयभञ्जन । प्रसन्नो भव मामीश देहि दास्यं पदाम्बुजे ॥१९४॥

---

भोजन कराया। गर्ग के कथनानुसार शुभमुहूर्त में सुप्रसन्न मन से बालक का 'कृष्ण' यह शुभ नाम रखा ॥१८२-१८३॥ जगत्पति भगवान् के नामकरण के बाद घृत सहित भोजन कराया, बाजे बजवाये और मङ्गल कृत्य करवाया ॥१८४॥ अनेक भाँति के धन, सुवर्ण, भक्ष्य वस्तु और वस्त्र ब्राह्मणों को सहर्ष समर्पित किये ॥१८५॥ बन्दियों और भिक्षुकों को इतना अधिक सुवर्ण प्रदान किया कि—वे लोग भार से दबकर उसे ले जाने में असमर्थ रहे ॥१८६॥ ब्राह्मणों, बन्धुओं और भिक्षुकों को मनोहर एवं परिपूर्ण मिष्टान्न भोजन कराया ॥१८७॥ उस समय नन्द के गोकुल में 'दो और दो' तथा 'खाओ खाओ' इस प्रकार बड़े जोर से शब्द हो रहा था ॥१८८॥ रत्नों की परिपूर्ण राशि, वस्त्र, भूषण, मूँगे, सुवर्ण, मणियों के सार-भाग की राशि तथा विश्वकर्मा के बनाये हुए सुवर्ण-पात्र व्रजराज नन्द ने गर्ग को विनयपूर्वक अर्पित किये ॥१८९-१९०॥ नारद ! विनय के साथ ही उन्होंने सुवर्ण के भार उनके शिष्यों को तथा शेष ब्राह्मणों को प्रचुरता से समर्पित किये ॥१९१॥

**नारायण बोले**—गर्ग श्रीहरि को लेकर प्रसन्नता से एकान्त में गये और बड़ी भक्ति से उन ईश्वर को प्रणाम करके स्तुति की। उस समय उनके नेत्रों से आँसू बह रहे थे, शरीर में रोमाञ्च हो आया था। मस्तक भक्ति-भाव से झुक गया था और श्रीकृष्ण के पादारविन्द में हाथ जोड़कर वे बोले ॥१९२-१९३॥

**गर्ग बोले**—हे कृष्ण ! हे जगत् के स्वामी ! हे भक्तों के भय-विनाशक ! हे ईश ! मुझे अपने चरण-

त्वत्पित्रा मे धनं दत्तं तेन मे किं प्रयोजनम् । देहि मे निश्चलां भक्तिं भक्तानामभयप्रद ॥१९५॥
अणिमादिकसिद्धिषु योगेषु मुक्तिषु प्रभो । ज्ञानतत्त्वेऽमरत्वे वा किंचिन्नास्ति स्पृहा मम ॥१९६॥
इन्द्रत्वे वा मनुत्वे वा स्वर्गलोकफले चिरम् । नास्ति मे मनसो वाञ्छा त्वत्पादसेवनं विना ॥१९७॥
सालोक्यं सार्ष्टिसारूप्ये सामीप्यैकत्वमीप्सितम् । नाहं गृह्णामि ते ब्रह्मंस्त्वत्पादसेवनं विना ॥१९८॥
गोलोके वाऽपि पाताले वासे नास्ति मनोरथः । किन्तु ते चरणाम्भोजे संततं स्मृतिरस्तु मे ॥१९९॥
त्वन्मन्त्रं शंकरात्प्राप्य कतिजन्मफलोदयात् । सर्वज्ञोऽहं सर्वदर्शी सर्वत्र गतिरस्तु मे ॥२००॥
कृपां कुरु कृपासिन्धो दीनबन्धो पदाम्बुजे । रक्ष मामभयं दत्त्वा मृत्युर्मे किं करिष्यति ॥२०१॥
सर्वेषामीश्वरः सर्वस्त्वत्पादाम्भोजसेवया । मत्युंजयोऽन्तकालश्च बभूव योगिनां गुरुः ॥२०२॥
ब्रह्मा विधाता जगतां त्वत्पादाम्भोजसेवया । यस्यैकदिवसे ब्रह्मन्पतन्तीन्द्राश्चतुर्दश ॥२०३॥
त्वत्पादसेवया धर्मः साक्षी च सर्वकर्मणाम् । पाता च फलदाता च जित्वा कालं सुदुर्जयम् ॥२०४॥
सहस्रवदनः शेषो यत्पादाम्बुजसेवया । धत्ते सिद्धार्थवद्विश्वं शिवः कण्ठे विषं यथा ॥२०५॥
सर्वसंपद्विधात्री या देवीनां च परात्परा । करोति सततं लक्ष्मीः केशैस्त्वत्पादमार्जनम् ॥२०६॥
प्रकृतिर्बीजरूपा सा सर्वेषां शक्तिरूपिणी । स्मारं स्मारं त्वत्पदाब्जं बभूव तत्परा वरा ॥२०७॥

---

कमल का दास्य प्रदान करो ॥१९४॥ हे भक्तों को अभय देनेवाले ! यद्यपि आपके पिता ने मुझे धन अर्पित किया है, किन्तु उससे मुझे कोई प्रयोजन नहीं है, आप मुझे अपनी निश्चल भक्ति प्रदान करें ॥१९५॥ हे प्रभो ! अणिमा आदि सिद्धियों, योगों, मुक्तियों तथा ज्ञानतत्त्व या अमरत्व की मुझे कुछ भी इच्छा नहीं है ॥१९६॥ तुम्हारे चरण की सेवा विना इन्द्रत्व, मनुत्व और स्वर्गलोक में चिर निवास की इच्छा भी मेरे मन में नहीं है ॥१९७॥ हे ब्रह्मन् ! तुम्हारे चरण की सेवा के बिना मैं सालोक्य, सार्ष्टि, सारूप्य, सामीप्य और एकत्व मुक्ति का ग्रहण भी नहीं कर सकता हूँ ॥१९८॥ गोलोक एवं पाताल में वास करने की मेरी इच्छा नहीं है, किन्तु तुम्हारे चरण-कमल का स्मरण मुझे निरन्तर होता रहे ॥१९९॥ कितने जन्मों के पुण्यफल का उदय होने पर मैंने शिवजी से तुम्हारा मंत्र प्राप्त किया है, जिससे मैं सर्वज्ञाता तथा सर्वदर्शी हो गया हूँ और सर्वत्र मेरी गति है ॥२००॥ कृपासिन्धो ! दीनबन्धो ! कृपा करो । मुझे अभय देकर अपने चरण-कमल में रख लो । फिर मृत्यु मेरा क्या करेगा ? ॥२०१॥ तुम्हारे चरण-कमल की सेवा द्वारा शिव सबके ईश्वर, मृत्युञ्जय, कालान्तक एवं योगियों के गुरु हो गये हैं ॥२०२॥ हे ब्रह्मन् ! तुम्हारे चरण-कमल की सेवा करके ब्रह्मा जगत् के विधाता हुए हैं जिनके एक दिन में चौदह इन्द्र समाप्त हो जाते हैं ॥२०३॥ तुम्हारे चरण की सेवावश धर्म समस्त कर्मों के साक्षी तथा अति दुर्जेयकाल को जीतकर सभी के रक्षक एवं फलदाता हुए हैं ॥२०४॥ आपके चरणकमल की सेवावश सहस्रमुख-वाले शेष राई के समान समस्त विश्व को उसी तरह धारण करते हैं जैसे शिव अपने कण्ठ में विष धारण करते हैं ॥२०५॥ जो लक्ष्मी सम्पूर्ण सम्पदाओं की सृष्टि करनेवाली तथा देवियों में सर्वश्रेष्ठ हैं, वे अपने केशों द्वारा आपके चरणों को पोंछती हैं ॥२०६॥ जो सभी की बीजरूपा हैं, वे शक्तिरूपिणी प्रकृति आपके चरण-कमलों का बार-बार

पार्वती सर्वरूपा सा सर्वेषां बुद्धिरूपिणी । त्वत्पादसेवया कान्तं ललाम शिवमीश्वरम् ॥२०८॥
विद्याधिष्ठात्री देवी या ज्ञानमाता सरस्वती । पूज्या बभूव सर्वेषां सम्पूज्य त्वत्पदाम्बुजम् ॥२०९॥
सावित्री वेदजननी पुनाति भुवनत्रयम् । ब्रह्मणो ब्राह्मणानां च गतिस्त्वत्पादसेवया ॥२१०॥
क्षमा जगद्बिभर्तुं च रत्नगर्भा वसुंधरा । प्रसूतिः सर्वसस्यानां त्वत्पादपद्मसेवया ॥२११॥
राधा ममांशसंभूता तव तुल्या च तेजसा । स्थित्वा वक्षसि ते पादं सेवतेऽन्यस्य का कथा ॥२१२॥
यथा शर्वादयो देवा देव्यः पद्मादयो यथा । सनाथं कुरु मामीश ईश्वरस्य समा कृपा ॥२१३॥
न यास्यामि गृहं नाथ न गृह्णामि धनं तव । कृत्वा मां रक्ष पादाब्जसेवायां सेवकं रतम् ॥२१४॥
इति स्तुत्वा साश्रुनेत्रः पपात चरणे हरेः । रुरोद च भृशं भक्त्या पुलकाञ्चितविग्रहः ॥२१५॥
गर्गस्य वचनं श्रुत्वा जहास भक्तवत्सलः । उवाच तं स्वयं कृष्णो मयि ते भक्तिरस्त्विति ॥२१६॥
इदं गर्गकृतं स्तोत्रं त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः । दृढां भक्तिं हरेर्दास्यं स्मृतिं च लभते ध्रुवम् ॥२१७॥
जन्ममृत्युजरारोगशोकमोहादिसंकटात् । तीर्णो भवति श्रीकृष्णदाससेवनतत्परः ॥२१८॥
कृष्णस्य सहकालं च कृष्णसार्धं च मोदते । कदाचिन्न भवेत्तस्य विच्छेदो हरिणा सह ॥२१९॥

---

स्मरण करके उन्हीं में तत्पर हो गयी हैं ॥२०७॥ सबकी बुद्धिस्वरूपा एवं सर्वरूपा पार्वती ने आपके चरणों की सेवा से ईश्वर शिव को पति रूप में प्राप्त किया है ॥२०८॥ विद्या की अधिष्ठात्री देवी एवं ज्ञानमाता सरस्वती आपके चरण-कमलों की अर्चना करके सबकी पूजनीया हुई हैं ॥२०९॥ ब्रह्मा और ब्राह्मणों की एकमात्र गति वेदजननी सावित्री आपके चरणों की सेवा से तीनों लोकों को पवित्र करती हैं ॥२१०॥ आपके चरण-कमल की सेवा करके वसुन्धरा, रत्नगर्भा, समस्त जगत् को धारण करने में समर्थ और समस्त धान्यों को उत्पन्न करनेवाली हुई हैं ॥२११॥ आपके अंश से उत्पन्न तथा तेज में आपके ही समान राधा आपके वक्षःस्थल पर स्थित होकर भी आपके चरणों की सेवा करती हैं, तो अन्य की बात ही क्या है ॥२१२॥ हे ईश ! जिस प्रकार शिव आदि देवों और लक्ष्मी आदि देवियों को आपने सनाथ किया है, उसी भाँति मुझे भी सनाथ करें, क्योंकि ईश्वर की कृपा सब पर समान होती है ॥२१३॥ हे नाथ ! न मैं घर जाऊँगा और न आपका धन ही ग्रहण करूँगा, मुझे अपने चरण-कमलों की सेवा में निरत सेवक बनाकर मेरी रक्षा करें ॥२१४॥ इस प्रकार स्तुति करके सजलनेत्र होकर गर्ग भगवान् के चरण पर गिर पड़े और बहुत रोये । उस समय उनका शरीर भक्ति से रोमाञ्चित हो गया ॥२१५॥ गर्ग की बात सुनकर भक्तवत्सल भगवान् हँस पड़े और स्वयं कृष्ण ने कहा—मुझ में तुम्हारी भक्ति हो ॥२१६॥ जो मनुष्य गर्ग के इस स्तोत्र का तीनों संध्याओं में पाठ करता है, उसे हरि की दृढ़ भक्ति, दास्य और स्मरण निश्चित ही प्राप्त होता है ॥२१७॥ श्रीकृष्ण के दास की सेवा करने से मनुष्य जन्म, मृत्यु, जरा, रोग, शोक एवं मोह आदि के संकट से पार हो जाता है । वह श्रीकृष्ण के साथ उनके समान काल तक आनन्द-मग्न रहता है, भगवान् से उसका कभी भी वियोग नहीं होता है ॥२१८-२१९॥

## नारायण उवाच

हरिं मुनिः स्तवं कृत्वा ददौ नन्दाय तं मुदा। उवाच तं गृहं यामि कुर्वाज्ञामिति बल्लव ॥२२०॥
अहो विचित्रः संसारो मोहजालेन वेष्टितः। संमीलनं च विरहो नराणां सिन्धुफेनवत् ॥२२१॥
गर्गस्य वचनं श्रुत्वा रुरोद नन्द एव च। सद्विच्छेदो हि साधूनां मरणादतिरिच्यते ॥२२२॥
सर्वशिष्यैः परिवृतं मुनीन्द्रं गन्तुमुद्यतम्। सर्वे नन्दादयो गोपा रुदन्तो गोपिकास्तदा ॥२२३॥
प्रणेमुः परमप्रीत्या चक्रुस्तं विनयं मुने। दत्त्वाऽऽशिषं मुनिश्रेष्ठो जगाम मथुरां मुदा ॥२२४॥
ऋषयो मुनयश्चैव बन्धुवर्गाश्च बल्लवाः। सर्वे जग्मुर्धनैः पूर्णाः स्वालयं हृष्टमानसाः ॥२२५॥
प्रजग्मुर्बन्दिनः सर्वे परिपूर्णमनोरथाः। मिष्टद्रव्यांशुकोत्कृष्टतुरगस्वर्णभूषणैः ॥२२६॥
आकण्ठपूर्णा भुक्त्या च भिक्षुका गन्तुमक्षमाः। स्वर्णवस्त्रभरोद्रेकपरिश्रान्ता मुदाऽन्विताः ॥२२७॥
सुमन्दगामिनः केचित्केचिद्भूमौ च शेरते। केचिद्वर्त्मनि तिष्ठन्तश्चोत्तिष्ठन्तश्च केचन ॥२२८॥
केचिदूषुः प्रमुदिता हसन्तस्तत्र केचन। कपर्दकानां वस्तूनां शेषांश्चोर्वरितान्बहून् ॥२२९॥
केचित्तानाददुः स्थित्वा दर्शयन्तश्च केचन। केचिन्नृत्यं प्रकुर्वन्तो गायन्तस्तत्र केचन ॥२३०॥

---

**नारायण बोले**—गर्ग मुनि ने भगवान् की स्तुति करने के उपरान्त उन्हें नन्द को दे दिया और कहा—हे गोप! आज्ञा दीजिये, मैं अब घर जाना चाहता हूँ ॥२२०॥ अहो! मोहजाल में फँसा हुआ यह संसार कितना विचित्र है—यहाँ मनुष्यों का मिलन और वियोग नदी और उसके फेन के समान है ॥२२१॥ गर्ग की बात सुनकर नन्द रोदन करने लगे, क्योंकि साधुओं के लिए सज्जनों का वियोग मरण से भी अधिक दुःखप्रद होता है ॥२२२॥ समस्त शिष्यों समेत मुनीन्द्र गर्ग को जाने के लिए तैयार देखकर रोते हुए नन्द आदि गोप और गोपियों ने विनीत भाव से उन्हें अत्यन्त प्रीतिपूर्वक प्रणाम किया। मुनिवर्य गर्ग उन लोगों को शुभाशिष देकर हर्षपूर्वक मथुरा चले गये ॥२२३-२२४॥ अन्य ऋषिगण, मुनिवर्ग, बन्धुवर्ग और बल्लवगण सभी लोग धनों से परिपूर्ण एवं प्रसन्नचित्त होकर अपने घर को गये ॥२२५॥ मिष्टान्न, द्रव्य, वस्त्र एवं उत्तम घोड़े और सुवर्ण के आभूषणों से परिपूर्ण मनोरथ होकर सभी बन्दीगण भी अपने घर को लौट गये ॥२२६॥ कण्ठ तक भोजन और सुवर्ण, वस्त्र के अधिक भार से परिक्लान्त भिक्षुकगण भी चलने में असमर्थ थे ॥२२७॥ कोई भिक्षुक हर्षान्वित हो अत्यन्त मन्दगति से चल रहे थे, कोई भूमि पर सो जाते कोई मार्ग में उठते-बैठते जाते थे ॥२२८॥ कोई आनन्दमग्न होकर वहीं ठहर गये थे। कोई हँस रहे थे। कोई कपर्दकों तथा अन्य वस्तुओं के जो बहुत-से शेष भाग बच गये थे, उन्हें ले रहे थे। कोई दिखा रहे थे। कोई नाच रहे थे। कोई गा रहे थे ॥२२९-२३०॥ कोई नाना प्रकार की प्राचीन गाथाएँ कहते थे—राजा मरुत्त, श्वेत, सगर, मांधाता, उत्तानपाद, नहुष और नल आदि राजाओं

केचिद्बहुविधा गाथाः कथयन्तः पुरातनाः। मरुत्तश्वेतसगरमांधातॄणां च भूभृताम् ॥२३१॥
उत्तानपादनहुषनलादीनां च याः कथाः। श्रीरामस्याश्वमेधस्य रन्तिदेवस्य कर्मणाम् ॥२३२॥
येषां येषां नृपाणां च श्रुता वृद्धमुखात्कथाः। कथयन्तश्च ताः केचिच्छ्रुतवन्तश्च केचन ॥२३३॥
स्थायं स्थायं गताः केचित्स्वापं स्वापं च केचन। एवं सर्वे प्रमुदिताः प्रजग्मुः स्वालयं व्रजात् ॥२३४॥
हृष्टो नन्दो यशोदा च बालं कृत्वा च वक्षसि। तस्थौ स्वमन्दिरे रम्ये कुबेरभवनोपमे ॥२३५॥
एवं प्रवर्धितौ बालौ शुक्लचन्द्रकलोपमौ। गवां पुच्छं च भित्तिं च धृत्वा चोत्तस्थतुर्मुदा ॥२३६॥
शब्दार्धं वा तदर्धं वा क्षमौ वक्तुं दिने दिने। पित्रोर्हर्षं च वर्धन्तौ गच्छन्तौ प्राङ्गणे मुने ॥२३७॥
बालो द्विपादं पादं वा गन्तुं शक्तो बभूव ह। गन्तुं शक्तो हि जानुभ्यां प्राङ्गणे वा गृहे हरः ॥२३८॥
वर्षाधिको हि वयसा कृष्णात्संकर्षणः स्वयम्। ततो मुदं वर्धयन्तौ वर्धितौ च दिने-दिने ॥२३९॥
व्रजन्तौ गोकुले बालौ प्रहृष्टौ गमने क्षमौ। उक्तवन्तौ स्फुटं वाक्यं मायाबालकविग्रहौ ॥२४०॥
गर्गो जगाम मथुरां वसुदेवाश्रमं मुने। स तं ननाम पप्रच्छ पुत्रयोः कुशलं तयोः ॥२४१॥
मुनिस्तं कथयामास कुशलं सुमहोत्सवम्। आनन्दाश्रुनिमग्नश्च श्रुतमात्राद्बभूव ह ॥२४२॥
देवकी परमप्रीत्या पप्रच्छ च पुनः पुनः। आनन्दाश्रुनिमग्ना स रुरोद च मुहुर्मुहुः ॥२४३॥

---

की कथाएँ कह रहे थे—और भगवान् श्रीरामचन्द्र के अश्वमेघ यज्ञ तथा राजा रन्तिदेव के कर्मों की चर्चा कर रहे थे ॥२३१-२३२॥ वृद्धों के मुख से जिन लोगों की कथाएँ सुन चुके थे, उन्हें कुछ लोग कह रहे थे और कुछ सुन रहे थे ॥२३३॥ कोई ठहर-ठहरकर और कोई सो-सोकर यात्रा करते थे। इस प्रकार सभी लोग आनन्दमग्न होकर व्रज से अपने-अपने घर गये ॥२३४॥ केवल नन्द-यशोदा हर्षित होकर बालक को गोद में लिये कुबेर-भवन के समान रमणीक अपने भवन में रह गये ॥२३५॥ इस भाँति वे दोनों बालक शुक्ल पक्ष की चन्द्रकला के समान बढ़ने लगे। वे गौओं की पूँछ और दीवाल पकड़कर हर्ष से खड़े होने लगे ॥२३६॥ प्रतिदिन आधा शब्द या चौथाई शब्द बोल पाते थे। मुने! आँगन में चलते हुए वे दोनों भाई माता-पिता का हर्ष बढ़ाने लगे ॥२३७॥ बालक (राम) दो पग या एक पग चलने लगे। श्रीकृष्ण घुटनों के बल आँगन में या घर में चलने में समर्थ हुए ॥२३८॥ संकर्षण भगवान् से एक वर्ष के बड़े थे। वे दोनों भाई (माता-पिता की) आनन्द-वृद्धि करते हुए दिन-दिन बढ़ने लगे ॥२३९॥ माया से बालक बने हुए दोनों गोकुल में प्रसन्नता से घूमने-फिरने लगे और अब वे स्पष्ट उच्चारण भी करने लगे ॥२४०॥ मुने! गर्ग मथुरा पहुँचकर वसुदेव के घर गये। उन्होंने उन्हें नमस्कार करके दोनों पुत्रों का कुशल पूछा ॥२४१॥ मुनि ने कुशल समेत उस महोत्सव को भी बताया जिसे सुनते ही वसुदेव आनन्द का आँसू बहाने लगे ॥२४२॥ देवकी परम प्रेम से उनसे बार-बार पूछने लगीं और आनन्द का आँसू बहाती हुई बार-बार रोदन करती जा रही थीं ॥२४३॥ अनन्तर सर्व

गर्गस्ताबाशिषं दत्त्वा जगाम स्वालयं मुदा। स्वगृहे तस्थतुस्तौ च कुबेरभवनोपमे ॥२४४॥

## नारायण उवाच

यत्र कल्पे कथा चेयं तत्र त्वमुपबर्हणः। पञ्चाशत्कामिनीनां च पतिर्गन्धर्वपुंगवः ॥२४५॥
तासां प्राणाधिकस्त्वं च शृङ्गारनिपुणो युवा। ततोऽभूद्ब्रह्मणः शापाद्दासीपुत्रो द्विजस्य च ॥२४६॥
ततोऽधुना ब्रह्मपुत्रो वैष्णवोच्छिष्टभोजनात्। सर्वदर्शी च सर्वज्ञः स्मारको हरिसेवया ॥२४७॥
कथितं कृष्णचरितं नामान्नप्राशनादिकम्। जन्ममृत्युजरातिघ्नमपरं कथयामि ते ॥२४८॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० कृष्णान्नप्राशननामकरणप्रस्तावो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

---

सुप्रसन्न मन से उन्हें आशीर्वाद देकर अपने घर चले गये और वे दोनों कुवेर-भवन के समान अपने घर में रहे ॥२४४॥

**नारायण बोले**—जिस कल्प की यह कथा है उस समय तुम पचास कामिनियों के पति उपबर्हण नामक गन्धर्वराज थे ॥२४५॥ तुम उनके प्राणों से भी अधिक प्रिय, शृङ्गारनिपुण और युवा थे। पश्चात् ब्रह्मा के शापवश एक ब्राह्मण की दासी के पुत्र हुए ॥२४६॥ और इस समय वैष्णवों के उच्छिष्ट भोजन करने के कारण ब्रह्मा के पुत्र हुए हो। भगवान् की सेवा से सर्वद्रष्टा, सर्वज्ञ और जातिस्मर हुए हो ॥२४७॥ मैंने भगवान् श्रीकृष्ण का चरित—उनके नामकरण और अन्न-प्राशन आदि वता दिये, जो जन्म, मृत्यु एवं जरा के विनाशक हैं। अव अन्य वृत्तान्त भी तुम्हें सुना रहा हूँ ॥२४८॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारायण-नारद के संवाद में कृष्ण का अन्नप्राशन-वर्णन नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त ॥१३॥

⊙

# अथ चतुर्दशोऽध्यायः

### नारायण उवाच

एकदा नन्दपत्नी च स्नानार्थं यमुनां ययौ । गव्यपूर्णं गृहं दृष्ट्वा जहास मधुसूदनः ॥१॥
दधिदुग्धाज्यतक्रं च नवनीतं मनोरमम् । गृहस्थितं च यत्किंचिच्चखाद मधुसूदनः ॥२॥
मधु हैयंगवीनं यत्स्वस्तिकं शकटस्थितम् । भुक्त्वा पीत्वांऽशुकैर्वक्त्रसंस्कारं कर्तुमुद्यतम् ॥३॥
ददर्श बालकं गोपी स्नात्वाऽऽगत्य स्वमन्दिरम् । गव्यशून्यं भग्नभाण्डं मध्वादिरिक्तभाजनम् ॥४॥
दृष्ट्वा पप्रच्छ बालांश्च अहो कर्मेदमद्भुतम् । यूयं वदत सत्यं च कृतं केन सुदारुणम् ॥५॥
यशोदावचनं श्रुत्वा सर्वमूचुश्च बालकाः । चखाद सत्यं बालस्ते नास्मभ्यं दत्तमेव च ॥६॥
बालानां वचनं श्रुत्वा चुकोप नन्दगेहिनी । वेत्रं गृहीत्वा दुद्राव रक्तपङ्कजलोचना ॥७॥
पलायमानं गोविन्दं प्रहीतुं न शशाक ह । ध्यानासाध्यं शिवादीनां दुरापमपि योगिनाम् ॥८॥
यशोदा भ्रमणं कृत्वा विश्रान्ता धर्मसंयुता । तस्थौ कोपपरीतात्मा शुष्ककण्ठौष्ठतालुका ॥९॥
विश्रान्तां मातरं दृष्ट्वा कृपालुः पुरुषोत्तमः । संतस्थौ पुरतो मातुः सस्मितो जगदीश्वरः ॥१०॥

---

# अध्याय १४

### अर्जुन वृक्ष का भञ्जन

**नारायण बोले**—एक बार नन्द-पत्नी यशोदा यमुना-स्नान के लिए चलीं; उस समय भगवान् मधुसूदन (कृष्ण) दूध, दही से भरा घट देखकर हँस पड़े और दही, दूध, घी, मट्ठा, मनोहर मक्खन आदि घर में जो कुछ स्थित था, सब खा गये ॥१-२॥ गाड़ी पर रखे हुए मधु, मक्खन, स्वस्तिक (जलेबी) आदि को भी खा-पीकर वस्त्र से मुख पोंछ रहे थे कि उसी समय यशोदा स्नान करके अपने घर आ गयीं; दूध, दही आदि से शून्य घर और मधु आदि सभी के टूटे-फूटे बर्तन देखकर उन्होंने वहाँ स्थित अन्य बालकों से पूछा—बच्चों ! सत्य-सत्य बताओ ! यह अद्भुत और भयंकर कर्म किसने किया है ? ॥३-५॥ यशोदा की बात सुनकर बालकों ने कहा—'हम लोग सत्य कह रहे हैं, यही तुम्हारा बालक सब खा गया है, हम लोगों को कुछ नहीं दिया है ॥६॥ बालकों की बात सुनकर नन्द-गृहिणी यशोदा क्रुद्ध होकर लाल कमल की भाँति आँखें किये हाथ में बेंत लेकर दौड़ीं। गोविन्द भाग गये। यशोदा उन्हें न पकड़ सकीं। जो शिव आदि के लिए भी ध्यानासाध्य एवं योगियों के लिए भी दुर्लभ हैं, उन्हें वे कैसे पकड़ पातीं ? ॥७-८॥ यशोदा इधर-उधर घूमकर धूप लगने से श्रान्त होकर खड़ी हो गयीं और क्रोध के नाते उनका कण्ठ, ओंठ एवं तालू सूख गये ॥९॥ माता को श्रान्त देखकर पुरुषोत्तम कृपालु जगदीश्वर हँसते हुए उनके सामने आकर खड़े हो गये ॥१०॥ अनन्तर देवी उनके दोनों हाथ

करे धृत्वा च तं देवी समानीय स्वमालयम् । बद्ध्वा वस्त्रेण वृक्षे च तताड मधुसूदनम् ॥११॥
बद्ध्वा कृष्णं यशोदा सा जगाम स्वालयं प्रति । हरिस्तस्थौ वृक्षमूले जगतां पतिरीश्वरः ॥१२॥
श्रीकृष्णस्पर्शमात्रेण सहसा तत्र नारद । पपात वृक्षः शैलाभः शब्दं कृत्वा भयानकम् ॥१३॥
सुवेषः पुरुषो दिव्यो वृक्षादाविर्बभूव ह । दिव्यस्यन्दनमारुह्य जगाम स्वालयं पुरः ॥१४॥
प्रणम्य जगतीनाथं शातकौम्भपरिच्छदम् । किशोरः सस्मितो गौरो रत्नालंकारभूषितः ॥१५॥
सा वृक्षपतनं दृष्ट्वा भिया त्रस्ता व्रजेश्वरी । क्रोडे चकार बालं तं रुदन्तं श्यामसुन्दरम् ॥१६॥
आजग्मुर्गोकुलस्थाश्च गोपा गोप्यश्च तद्गृहम् । यशोदां भर्त्सयामासुः शान्तिं चक्रुः शिशोर्मुदा ॥१७॥
अत्यन्तस्थविरे काले तनयोऽयं बभूव ह । धनं धान्यं च रत्नं वा तत्सर्वं पुत्रहेतुकम् ॥१८॥
सुमतिर्नास्ति ते सत्यं ज्ञातं नन्दव्रजेश्वरि । न भक्षितं यत्पुत्रेण तत्सर्वं निष्फलं भुवि ॥१९॥
पुत्रं बद्ध्वा गव्यहेतोर्वृक्षमूले च निष्ठुरे । गृहकर्मणि व्यग्रायां दैवाद्वृक्षः पपात ह ॥२०॥
वृक्षस्य पतनाद्गोपीभाग्याद्बालोऽपि जीवितः । प्रनष्टे बालके मूढे वस्तूनां किं प्रयोजनम् ॥२१॥
आशिषं युयुजुर्विप्रा बन्दिनश्च शुभावहाम् । द्विजेन कारयामासुर्नामसंकीर्तनं हरेः ॥२२॥
एवं कृत्वा जनाः सर्वे प्रययुर्निजमन्दिरम् । उवाच पत्नीं नन्दश्च रक्तपङ्कजलोचनः ॥२३॥

---

पकड़कर अपने घर ले आयीं और वस्त्र से वृक्ष में बाँधकर मधुसूदन को पीटने लगीं ॥११॥ फिर यशोदा कृष्ण को बाँधकर अपने घर चली गयीं और जगत्पति ईश्वर कृष्ण उसी वृक्ष के मूल में खड़े रहे ॥१२॥ नारद ! भगवान् श्रीकृष्ण के स्पर्श करते ही वह पर्वताकार वृक्ष एकाएक भयानक शब्द करते हुए गिर पड़ा ॥१३॥ उस वृक्ष से उत्तम वेशधारी एक दिव्य पुरुष प्रकट हुआ। वह रत्नों के अलंकारों से भूषित, गौरवर्ण तथा किशोर अवस्था का था। सुवर्णमय पोशाक से युक्त जगन्नाथ श्रीकृष्ण को प्रणाम करके वह दिव्य पुरुष मुस्कराता हुआ दिव्य रथ पर आरूढ़ हुआ और अपने घर को चला गया ॥१४-१५॥ वृक्ष का पतन देखकर वह व्रजेश्वरी भय से घबड़ा गयीं। उन्होंने रोदन करते श्यामसुन्दर को शीघ्रता से उठाकर गोद में ले लिया ॥१६॥ इतने में उनके घर गोकुल की गोप-गोपियाँ भी आ गयीं और यशोदा की भर्त्सना की तथा हर्ष से बच्चे की शान्ति की ॥१७॥ पश्चात् उन लोगों ने कहा—अत्यन्त वृद्धावस्था में तुम्हें वह पुत्र मिला है और धन, धान्य एवं रत्न आदि सभी कुछ पुत्र के ही लिए हैं ॥१८॥ हे नन्द-व्रज की अधीश्वरी ! हमें यह सत्य मालूम हुआ है कि तुम्हें सुमति नहीं है। जिस वस्तु का भक्षण पुत्र न करे वह सब भूतल पर निष्फल है ॥१९॥ दूध, दही के वास्ते तुमने पुत्र को वृक्ष के कठोर मूल में बाँध दिया और स्वयं घर के कार्य में लग गयीं। दैवसंयोग से वृक्ष गिर पड़ा ॥२०॥ किन्तु गोपियों के भाग्य से वृक्ष के गिरने पर भी बालक बच गया। अरी मूढ़े ! यदि बालक नष्ट हो जाता तो वस्तुओं की क्या आवश्यकता होती ? ॥२१॥ अनन्तर ब्राह्मणों और बन्दिजनों ने बालक को शुभाशिष प्रदान किया और ब्राह्मण द्वारा भगवान् का संकीर्तन करवाया ॥२२॥ ऐसा करके सभी लोग अपने-अपने घर चले गये। उसी समय नन्द ने भी लाल-लाल नेत्र किये अपनी स्त्री से कहा ॥२३॥

## नन्द उवाच

यास्यामि तीर्थमद्यैव कण्ठे कृत्वा तु बालकम् । अथवा त्वं गृहाद्गच्छ त्वया मे किं प्रयोजनम् ।।२४।।
शतकूपाधिका वापी शतवापीसमं सरः । सरःशताधिको यज्ञः पुत्रो यज्ञशताधिकः ।।२५।।
तपोदानोद्भवं पुण्यं जन्मान्तरसुखप्रदम् । सुखप्रदोऽपि सत्पुत्र 'इहैव च परत्र च ।।२६।।
पुत्रादपि परो बन्धुर्न भूतो न भविष्यति । एवमुक्त्वा स्वभार्यां च तस्थौ नन्दः स्वमन्दिरे ।।
यशोदा रोहिणी चैव नियुक्ता गृहकर्मणि ।।२७।।

## नारद उवाच

सुवेषः पुरुषः को वा वृक्षरूपी च गोकुले । भगवन्हेतुना केन वृक्षत्वं समवाप ह ।।२८।।

## नारायण उवाच

कुबेरतनयः श्रीमान्नाम्ना यो नलकूबरः । जगाम नन्दनवनं क्रीडार्थं सह रम्भया ।।२९।।
निर्जने सरसस्तीरे पुष्पोद्याने मनोहरे । वटवृक्षसमीपे च सौरभे पुष्पवायुना ।।३०।।
विधाय पुष्पशयनं रत्नदीपैश्च दीपितम् । चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवसंयुतम् ।।३१।।

---

**नन्द बोले**—मैं बालक को अपने गले में बाँधकर आज ही तीर्थ को चला जाऊँगा । अथवा तुम ही घर से अन्यत्र चली जाओ । तुमसे मुझे कोई प्रयोजन नहीं है । सौ कूप से अधिक बावली होती है, सौ बावलियों के समान तालाब, सौ तालाबों से अधिक यज्ञ होता है और सौ यज्ञों से अधिक पुत्र होता है ।।२४-२५।। तप और दान से उत्पन्न पुण्य जन्मान्तर में सुखप्रद होता है । और सत्पुत्र इहलोक तथा परलोक दोनों में सुखप्रद होता है ।।२६।। इसलिए पुत्र से बढ़कर कोई बन्धु न हुआ है और न होगा । अपनी पत्नी को इतना कहकर नन्द अपने भवन में चले गये और यशोदा एवं रोहिणी घर के कामों में लग गयीं ।।२७।।

**नारद बोले**—भगवन् ! वह उत्तम वेशधारी पुरुष कौन था, जो गोकुल में वृक्ष बना हुआ था ? और किस कारण उसे वृक्ष होना पड़ा ? ।।२८।।

**नारायण बोले**—एक बार कुबेर-पुत्र श्रीमान् नलकूबर रम्भा के साथ क्रीड़ा करने के लिए नन्दन वन में पहुँचा ।।२९।। वहाँ तालाब के किनारे मनोहर पुष्पवाटिका में वट वृक्ष के समीप पुष्पों के वायु से सुगन्धित स्थान में पुष्प-शय्या बनायी । उसको रत्न के दीपों से प्रकाशित किया तथा चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, कुंकुम आदि

---

१ क. प्राणेभ्योऽपि सुनिश्चितम् ।

परितः पुष्पमाल्यैश्च क्षौमवस्त्रैश्च वेष्टितम् । तत्र रम्भां समानीय विजहार यथेच्छया ॥३२॥
शृङ्गाराष्टप्रकारं च विपरीतादिकं सुखम् । चुम्बनं षट्प्रकारं च यथास्थानं निरूपितम् ॥३३॥
अङ्गप्रत्यङ्गसंयोगत्रिविधाश्लेषणं मुदा । नखदन्तकरक्रीडां चकार रसिकेश्वरः ॥३४॥
जलात्स्थले स्थलात्तोये कामशास्त्रविशारदः । रतिभोगं प्रकुर्वन्तं ददर्श देवलो मुनिः ॥३५॥
नग्नां रम्भां मुक्तकेशीं पीनश्रोणिपयोधराम् । नखदन्तक्षताङ्गीं च पुलकाञ्चितविग्रहाम् ॥३६॥
पश्यन्तीं प्राणनाथं च पश्यन्तं सस्मितं मुदा । वक्रभ्रूभङ्गसंयुक्तां कामुकीं च ददर्श ताम् ॥३७॥
रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजिताम् । विचित्ररत्नमाल्यैश्च पुष्पमाल्यैश्च भूषिताम् ॥३८॥
किङ्किणीजालसंयुक्तां सिन्दूरबिन्दुसंयुताम् । तया युक्तं पुलकितं नोत्तिष्ठन्तं [1]स्मरान्वितम् ॥३९॥
वृक्षत्वं याहि पापिष्ठेत्युवाच मुनिपुंगवः । शशाप रम्भां कामार्तां मानुषी त्वं भवेति च ॥४०॥
जन्मेजयस्य [2]सुभगा भविता कामिनीति च । त्वमेव गोकुलं गच्छ वृक्षरूपी भवेति च ॥४१॥
श्रीकृष्णस्पर्शमात्रेण पुनरायास्यसि गृहम् । रम्भे [3]त्वमिन्द्रसंयोगात्पुनरायास्यसि [4]ध्रुवम् ॥४२॥
इत्येवमुक्त्वा स मुनिर्जगाम निजमन्दिरम् । कुबेरतनयः श्रीमान्स जगाम निजालयम् ॥४३॥

---

द्रव पदार्थों से तरकर चारों ओर पुष्पों की माला और रेशमी वस्त्र से घेर दिया । उसी पर रम्भा को लाकर यथेच्छ विहार किया । विपरीत आदि आठ प्रकार के शृङ्गार-सुखों का उपभोग किया । छह प्रकार के चुम्बन लिये, अंग-प्रत्यंग को सटाते हुए तीन प्रकार से हर्षपूर्वक आलिंगन किया । उस रसिकेश्वर ने नखों, दाँतों और हाथों द्वारा क्रीड़ा की ॥३०-३४॥ उस काम-शास्त्र-विशारद ने जल से स्थल में और स्थल से जल में उसके साथ रतिभोग किया । उस समय देवल मुनि ने उसे और रम्भा को देख लिया । नग्न, केश खोले, स्थूल नितम्ब और कुचोंवाली, नखों और दाँतों द्वारा कटे अंगवाली तथा रोमांचित शरीरवाली रम्भा अपने प्राणनाथ नलकूबर को देख रही थी और वह हर्ष से उसे देख रहा था । टेढ़ी भौंहों से युक्त, रत्नों के युगल कुण्डलों से सुशोभित गण्डस्थलवाली, विचित्र रत्नों की मालाओं और पुष्पों की मालाओं से विभूषित, किंकिणियों के समूह से युक्त एवं सिन्दूर की बिन्दी से सुशोभित रम्भा को मुनि ने देख लिया । ऐसी कामिनी से युक्त, कामासक्त, पुलकित एवं मुनि को देखकर भी न उठते हुए नलकूबर को मुनिवर ने शाप दे दिया कि—'पापिष्ठ ! तू वृक्ष हो जा ।' फिर कामिनी रम्भा को भी शाप दिया कि—तू मनुष्य के यहाँ उत्पन्न होकर राजा जनमेजय की सौभाग्यशालिनी पत्नी बनेगी । और उस नलकूबर से कहा—तुम गोकुल में जाकर वृक्ष रूप धारण करो । श्रीकृष्ण के स्पर्श मात्र से पुनः अपने घर आओगे । रम्भे ! तुम इन्द्र के संयोग से पुनः निश्चित रूप से स्वर्ग आयेगी ॥३५-४२॥

---

१ क. 'रातुरम् । २ क. सौभाग्या । ३ क. 'संभोगात्पु' । ४ क. व्रजम् ।

इत्येवं कथितं विप्र रम्भाख्यानं वदामि ते । सुचन्द्रस्य गृहे रम्भा ललाभ जन्म भारते ॥४४॥
कन्या लक्ष्मीस्वरूपा च बभूव सुन्दरी वरा । तां च सालंकृतां कृत्वा सुचन्द्रो नृपतीश्वरः ॥४५॥
नानाकौतुकसंयुक्तां ददौ जन्मेजयाय च । जन्मेजयस्य सुभगा बभूव महिषी वरा ॥४६॥
स्थाने स्थाने निर्जने च राजा रेमे तया सह । एकदा नृपतिश्रेष्ठश्चाश्वमेधेन दीक्षितः ॥४७॥
अश्वसंगोपनं कृत्वा तस्थौ शक्रश्च मन्दिरे । यज्ञाश्वं रुचिरं मत्वा कौतुकेन च सुन्दरी ॥४८॥
द्रष्टुं जगाम सा साध्वी चाश्वमेकाकिनी मुदा । शक्रोऽश्वनिकटे भूत्वा धर्षयामास तां सतीम् ॥४९॥
तया निवार्यमाणश्च रेमे तत्र तया सह । मूर्च्छामवाप शक्रश्च बुबुधे न दिवानिशम् ॥५०॥
सा च संभोगमात्रेण देहं तत्याज योगतः । नृपस्य लज्जया भीत्या शक्रः स्वर्गं जगाम ह ॥५१॥
राजा श्रुत्वा मृतां दृष्ट्वा विललाप भृशं मुहुः । यज्ञं समाप्य विप्रेभ्यो ददौ पूर्णां च दक्षिणाम् ॥५२॥
रम्भा च मानवं देहं त्यक्त्वा स्वर्गं जगाम ह । इत्येवं कथितं सर्वं वृक्षार्जुनविभञ्जनम् ॥५३॥
नलकूबरमोक्षश्च रम्भायाश्च महामुने । पुण्यदं कृष्णचरितं जन्ममृत्युजरापहम् ॥
इत्येवं कथितं सर्वमपरं कथयामि ते ॥५४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० वृक्षार्जुनभञ्जनो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

---

ऐसा कहकर मुनि अपने घर चले गये और कुबेरपुत्र वह श्रीमान् नलकूबर अपने घर पहुँचा ॥४३॥ विप्र ! इतना तो मैंने बता दिया, अब रम्भा का आख्यान तुम्हें बता रहा हूँ । भारतवर्ष में राजा सुचन्द्र के घर रम्भा ने जन्म ग्रहण किया । वह कन्या लक्ष्मीस्वरूपा तथा अत्यन्त सुन्दरी थी । (योग्य होने पर) महाराज सुचन्द्र उसे अलंकृत करके अनेक प्रकार की दहेज की वस्तुओं के साथ जनमेजय को समर्पित कर दिया । वह राजा जनमेजय की सौभाग्यवती एवं श्रेष्ठ रानी हुई ॥४४-४६॥ राजा ने जगह-जगह निर्जन स्थान में उसके साथ रमण किया । एक बार राजा अश्वमेध यज्ञ में दीक्षित हुआ । उस समय इन्द्र उस अश्व को छिपाकर राजभवन में अवस्थित रहे । उस यज्ञिय अश्व को मनोहर जानकर वह सुन्दरी सती रानी कौतुकवश उसे देखने के लिए अकेले ही गयी । घोड़े के पास पहुँचने पर इन्द्र ने उस सती के साथ बलात्कार किया । उसके मना करने पर भी रमण कर लिया । (कामोपभोग से) इन्द्र मूर्च्छित हो गये, उन्हें दिन-रात का कुछ भी ज्ञान नहीं रहा । उस सुन्दरी ने संभोग मात्र से योग द्वारा (अपना) शरीर त्याग दिया । राजा के भय से इन्द्र स्वर्ग को चले गये ॥४७-५१॥ राजा ने उसे मृतक सुनकर बार-बार विलाप किया । यज्ञ समाप्त करके ब्राह्मणों को पूर्ण दक्षिणा प्रदान की ॥५२॥ रम्भा मानव-देह त्यागकर स्वर्ग चली गयी । इस प्रकार वृक्षार्जुन का भंग होना तुम्हें बता दिया । महामुने ! नलकूबर और रम्भा का मोक्ष और जन्म, मृत्यु एवं जरा का विनाशक एवं पुण्यप्रद कृष्णचरित सब तुम्हें बता दिया, अब दूसरा बता रहा हूँ ॥५३-५४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारायण-नारद-संवाद में वृक्षार्जुन-भञ्जन नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त ॥१४॥

# अथ पञ्चदशोऽध्यायः

## नारायण उवाच

एकदा कृष्णसहितो नन्दो वृन्दावनं ययौ। तत्रोपवनभाण्डीरे चारयामास गोधनम् ॥१॥
सरःसु स्वादु तोयं च पाययामास तत्पपौ। उवास वृक्षमूले च बालं कृत्वा स्ववक्षसि ॥२॥
एतस्मिन्नन्तरे कृष्णो मायामानुषविग्रहः। चकार माययाऽकस्मान्मेघाच्छन्नं नभो मुने ॥३॥
मेघावृतं नभो दृष्ट्वा श्यामलं काननान्तरम्। झञ्झावातं मेघशब्दं वज्रशब्दं च दारुणम् ॥४॥
वृष्टिधारामतिस्थूलां कम्पमानांश्च पादपान्। दृष्ट्वैवं पतितस्कन्धान्नन्दो भयमवाप ह ॥५॥
कथं यास्यामि गोवत्सान्विहाय स्वाश्रमं बत। गृहं यदि न यास्यामि भविता बालकस्य किम् ॥६॥
एवं नन्दे प्रवदति रुरोद श्रीहरिस्तदा। [1]पयोभिया हरिश्चैव पितुः कण्ठं दधार सः ॥७॥
एतस्मिन्नन्तरे राधा जगाम कृष्णसंनिधिम्। गमनं कुर्वती राजहंसखञ्जनगञ्जनम् ॥८॥
शरत्पार्वणचन्द्राभामुष्टवक्त्रमनोहरा। शरन्मध्याह्नपद्मानां शोभामोचनलोचना ॥९॥

---

# अध्याय १५

## राधा-कृष्ण-विवाह

**नारायण बोले**--एक बार कृष्ण को साथ लिये नन्द वृन्दावन में गये। वहाँ भाण्डीर नामक उपवन में उन्होंने गौओं को चराया ॥१॥ वहाँ सरोवर में स्वादिष्ट जल उन्हें पिलाया और स्वयं भी पिया। फिर बालक को अपनी छाती से चिपकाकर एक वृक्ष के मूल में बैठ गये ॥२॥ मुने! इसी बीच माया द्वारा मानव-शरीर धारण करनेवाले श्रीकृष्ण ने माया से एकाएक आकाश को मेघाच्छन्न कर दिया ॥३॥ आकाश मेघों से ढँक गया। वन का भीतरी भाग और भी श्यामल हो गया। वर्षा के साथ जोर-जोर से वायु चलने लगा। बादल गरजने लगा। वज्र का दारुण शब्द सुनायी देता था ॥४॥ मूसलधार वर्षा हो रही थी और वृक्ष काँप रहे थे। उनकी डालियाँ काँप रही थीं। ऐसा देखकर नन्द भयभीत हो गये ॥५॥ वे सोचने लगे कि--गौओं और बछड़ों को छोड़कर मैं कैसे अपने घर जाऊँगा और यदि घर न जाऊँ तो, यहाँ बालक का क्या होगा? ॥६॥ इस प्रकार नन्द के सोच-विचार करते समय भगवान् कृष्ण रोदन करने लगे और वर्षा के भय से पिता का कण्ठ पकड़ लिया ॥७॥ इसी बीच कृष्ण के समीप राधा आ गयीं। वे अपनी गति से राजहंस एवं खञ्जन के गर्व को चूर कर रही थीं ॥८॥ शारदीय पूर्णिमा के चन्द्रमा की कान्ति को चुरानेवाला उनका मनोहर मुख था। शरद्ऋतु के मध्याह्न में विकसित

---

[1] क. मायाभिया भयेभ्यश्च पि॰।

परितस्तारकापक्ष्मविचित्रकज्जलोज्ज्वला । [1]खगेन्द्रचञ्चुचारुश्रीशंसानाशकनासिका ॥१०॥
तन्मध्यस्थलशोभार्हस्थूलमुक्ताफलोज्ज्वला । कबरीवेषसंयुक्ता मालतीमाल्यवेष्टिता ॥११॥
ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डप्रभामुष्टककुण्डला । पक्वबिम्बफलानां च श्रीमुष्टाधरयुग्मका ॥१२॥
मुक्तापङ्क्तिप्रभातंकदन्तपङ्क्तिसमुज्ज्वला । ईषत्प्रफुल्लकुन्दानां सुप्रभानाशकस्मिता ॥१३॥
कस्तूरीबिन्दुसंयुक्तसिन्दूरबिन्दुभूषिता । कपालं मल्लिकायुक्तं बिभ्रती श्रीयुतं सती ॥१४॥
सुचारुवर्तुलाकारकपोलपुलकान्विता । मणिरत्नेन्द्रसाराणां हारोरःस्थलभूषिता ॥१५॥
सुचारुश्रीफलयुगकठिनस्तनसंगता । पत्रावलीश्रियायुक्ता दीप्ता सद्रत्नतेजसा ॥१६॥
सुचारुवर्तुलाकारमुदरं सुमनोहरम् । विचित्रत्रिवलीयुक्तं निम्ननाभि च बिभ्रती ॥१७॥
सद्रत्नसाररचितमेखलाजालभूषिता । कामास्त्रसारभ्रूभङ्ग्योगीन्द्रचित्तमोहिनी ॥१८॥
कठिनश्रोणियुगलं [2]धरणीधरनिन्दितम् । स्थलपद्मप्रभामुष्टचरणं दधती मुदा ॥१९॥
रत्नभूषणसंयुक्तं यावकद्रवसंयुतम् । मणीन्द्रशोभासंमुष्टसालक्तकपुनर्भवम् ॥२०॥

---

कमल की शोभा को चुरानेवाले नेत्र थे ॥९॥ दोनों आँखों में तारा, बरौनी तथा अञ्जन से विचित्र शोभा हो रही थी। उनकी नासिका गरुड़ की चोंच की सुन्दर श्री को लज्जित करनेवाली थी ॥१०॥ नासिका के मध्य में शोभनीय एवं स्थूल मोती से उज्ज्वल आभा छिटक रही थी। मालती की माला से बँधा हुआ सुन्दर केशपाश था ॥११॥ ग्रीष्मऋतु में मध्याह्नकालिक सूर्य की प्रभा को चुरानेवाले कुण्डल थे। पके बिम्बाफल की शोभा को चुरानेवाले दोनों ओंठ थे ॥१२॥ मोती की पंक्तियों के समान दाँतों की पंक्तियों से मुख उज्ज्वल था। मन्द मुसुकान कुन्द की अर्धविकसित कली की शोभा को तिरस्कृत करनेवाली थी ॥१३॥ कस्तूरी की बिन्दु के साथ मिली हुई सिन्दूर की बेंदी से भूषित सती राधा शोभाशाली कपाल पर मल्लिकापुष्प धारण किये हुई थी ॥१४॥ सुन्दर एवं गोलाकार कपोल पर रोमांच हो आया था। वक्षःस्थल मणिरत्नेन्द्र के सारभाग से बने हार से सुशोभित था ॥१५॥ अत्यन्त सुन्दर एवं बेल के आकार के दोनों कठोर स्तन मिले हुए थे। वे पत्ररचना की शोभा से सम्पन्न और उत्तम रत्नों के तेज से प्रदीप्त थीं ॥१६॥ उनका उदर सुन्दर, गोलाकार, अतिमनोहर एवं विचित्र त्रिवली से युक्त था। नाभि गहरी थी ॥१७॥ कटिप्रदेश उत्तम रत्नों के सारभाग की बनी करधनी की लरों से भूषित था। टेढ़ी भौंहें कामदेव के अस्त्र की सारभूत थीं, जिनसे वे योगीन्द्रों के मन को भी मोहित करने में समर्थ थीं ॥१८॥ दोनों कठोर नितम्ब पर्वत की विशालता को निन्दित करनेवाले थे। वे हर्ष से स्थलकमल की कान्ति को चुरानेवाले चरण धारण किये हुई थीं। वे चरण रत्नों के आभूषणों से विभूषित थे। उनमें महावर लगा हुआ था। उत्तम मणियों की शोभा चुराने

---

१क. 'श्रीसंधना'। २ क. करिणीकरनि'।

सद्रत्नसाररचितक्वणन्मञ्जीररञ्जितम् । रत्नकङ्कणकेयूरचारुशङ्खविभूषिता ॥२१॥
रत्नाङ्गुलीयनिकरवह्निशुद्धांशुकोज्ज्वला । चारुचम्पकपुष्पाणां प्रभामुष्टकलेवराः ॥२२॥
सहस्रदलसंयुक्तक्रीडाकमलमुज्ज्वलम् । श्रीमुखश्रीदर्शनार्थं बिभ्रती रत्नदर्पणम् ॥२३॥
दृष्ट्वा तां निर्जने नन्दो विस्मयं परमं ययौ । चन्द्रकोटिप्रभामुष्टां भासयन्ती दिशो दश ॥२४॥
ननाम[1] तां साश्रुनेत्रो भक्तिनम्रात्मकंधरः । जानामि त्वां गर्गमुखात्पद्माधिकप्रियां हरेः ॥२५॥
जानामीमं महाविष्णोः परं निर्गुणमच्युतम् । तथाऽपि मोहितोऽहं च मानवो विष्णुमायया ॥२६॥
गृहाण प्राणनाथं च गच्छ भद्रे यथासुखम् । पश्चाद्दास्यसि मत्पुत्रं कृत्वा पूर्णमनोरथम् ॥२७॥
इत्युक्त्वा प्रददौ तस्यै रुदन्तं बालकं भिया । जग्राह बालकं राधा जहास मधुरं सुखात् ॥२८॥
उवाच नन्दं सा यत्नान्न प्रकाश्यं रहस्यकम् । अहं दृष्टा त्वया नन्द कतिजन्मफलोदयात् ॥२९॥
प्राज्ञस्त्वं गर्गवचनात्सर्वं जानासि कारणम् । अकथ्यमावयोर्गोप्यं चरितं गोकुले व्रज ॥३०॥
वरं वृणु व्रजेश त्वं यत्ते मनसि वाञ्छितम् । ददामि लीलया तुभ्यं देवानामपि दुर्लभम् ॥३१॥

---

वाले लाक्षारागरञ्जित नखों से उन चरणों की अपूर्व शोभा हो रही थी। उत्तम रत्नों के सारभाग से सुरचित एवं ध्वनि करते हुए नूपुर से वे चरण अनुरञ्जित थे। उनकी भुजाएँ रत्नों के कंकण, केयूर तथा शंख की सुन्दर चूड़ियों से विभूषित थीं ॥१९-२१॥ रत्नों की अँगूठियों और अग्नि की भाँति विशुद्ध वस्त्र से वे उद्भासित हो रही थीं। सुन्दर चम्पा-पुष्पों की प्रभा को चुरानेवाली उनकी अंग-कान्ति थी ॥२२॥ उनके एक हाथ में सहस्र दलों से युक्त उज्ज्वल क्रीडाकमल सुशोभित था और वे अपने श्रीमुख की शोभा देखने के लिए हाथ में रत्नमय दर्पण लिये हुई थीं ॥२३॥ उस निर्जन स्थान में उन्हें देखकर नन्द को महान् आश्चर्य हुआ। क्योंकि वे करोड़ों चन्द्रमा की छवि को चुरानेवाली अपनी कान्ति से दशो दिशाओं को प्रकाशित कर रही थीं ॥२४॥ सजल नेत्र एवं भक्ति से कन्धे झुकाये उन्होंने राधा को नमस्कार किया और कहा कि—गर्ग के मुख से तुम्हारे बारे में सुन चुका हूँ तुम हरि की लक्ष्मी से भी अधिक प्रेयसी हो ॥२५॥ और इन्हें भी जानता हूँ, जो महाविष्णु से भी श्रेष्ठ, निर्गुण एवं अच्युत हैं, किन्तु मनुष्य होने के नाते विष्णु की माया से मैं मोहित हूँ ॥२६॥ भद्रे ! अपने इन प्राणनाथ को ग्रहण करो और सुखपूर्वक जाओ। मेरे पुत्र को पूर्णमनोरथ करके पश्चात् मुझे लौटा देना ॥२७॥ इतना कहकर भयवश उन्हें रोदन करते हुए बालक को सौंप दिया। बालक को लेकर राधा ने सुख से मधुर हास किया ॥२८॥ उन्होंने नन्द से कहा —नन्द ! अनेक जन्मों के (पुण्य) फल का उदय होने से तुमने मुझे देखा है। इस रहस्य को प्रयत्लपूर्वक गुप्त रखना, कहीं प्रकाशित न होने पाये ॥२९॥ गर्ग के कहने से तुम ज्ञाता हो गये हो, सारे कारणों को जानते हो। हम दोनों का गुप्त चरित कहीं कहना नहीं। अब तुम गोकुल में जाओ ॥३०॥ व्रजेश ! तुम्हारे मन में जो हो, वह वर माँग लो वह देव-दुर्लभ पर भी

---

१. क उवाच तां।

राधिकावचनं श्रुत्वा तामुवाच व्रजेश्वरः। युवयोश्चरणे भक्तिं देहि नान्यत्र मे स्पृहा ॥३२॥
युवयोः संनिधौ वासं दास्यसि त्वं सुदुर्लभम्। आवाभ्यां देहि जगतामम्बिके परमेश्वरि ॥३३॥
श्रुत्वा नन्दस्य वचनमुवाच परमेश्वरी। दास्यामि दास्यमतुलमिदानीं भक्तिरस्तु ते ॥३४॥
आवयोश्चरणाम्भोजे युवयोश्च दिवानिशम्। प्रफुल्लहृदये शश्वत्स्मृतिरस्तु सुदुर्लभा ॥३५॥
माया युवां च प्रच्छन्नौ न करिष्यति मद्वरात्। गोलोके यास्यथान्ते च विहाय मानवीं तनुम् ॥३६॥
एवमुक्त्वा तु सानन्दं कृत्वा कृष्णं स्ववक्षसि। दूरं निनाय श्रीकृष्णं बाहुभ्यां च यथेप्सितम् ॥३७॥
कृत्वा वक्षसि तं कामाच्छ्लेषं श्लेषं चुचुम्ब च। पुलकाङ्कितसर्वाङ्गी सस्मार रासमण्डलम् ॥३८॥
एतस्मिन्नन्तरे राधा मायासद्रत्नमण्डपम्। ददर्श रत्नकलशशतेन च समन्वितम् ॥३९॥
नानाविचित्रचित्राढ्यं चित्रकाननशोभितम्। सिन्दूराकारमणिभिः स्तम्भसंघैर्विराजितम् ॥४०॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवयुक्तया। संयुक्तं मालतीमालासमूहपुष्पशय्यया ॥४१॥
नानाभोगसमायुक्तं दिव्यदर्पणसंयुतम्। मणीन्द्रमुक्तामाणिक्यमालाजालैर्विभूषितम् ॥४२॥
मणीन्द्रसाररचितकपाटेन समन्वितम्। भूषितं भूषितैर्वस्त्रैः पताकानिकरैर्वरैः ॥४३॥

---

मैं अनायास तुम्हें दे दूंगी ॥३१॥ राधिका की बात सुनकर व्रजेश्वर ने कहा—तुम दोनों के चरणों में मेरी भक्ति हो, यही प्रदान करो। दूसरी मेरी इच्छा नहीं है। परमेश्वरि ! जगदम्बिके ! तुम दोनों के समीप (गोलोक में) अतिदुर्लभ निवास हम दोनों (पति-पत्नी) के लिए प्रदान करो ॥३२-३३॥ नन्द की बात सुनकर परमेश्वरी राधा ने कहा—वह अतुलनीय दास्य-पद तुम्हें प्रदान करूंगी। इस समय हम दोनों के चरण-कमल में तुम दोनों की रात-दिन भक्ति बनी रहे और प्रफुल्लित हृदय में हम दोनों का अतिदुर्लभ स्मरण निरन्तर हुआ करे ॥३४-३५॥ मेरे वर प्रदान के प्रभाव से माया तुम दोनों पर आवरण नहीं कर सकेगी और अन्त में मानव-देह को छोड़कर गोलोक चले जाओगे ॥३६॥ इतना कहकर वे कृष्ण को सानन्द अपने दोनों हाथों से गोद में लेकर अपनी रुचि के अनुसार दूर ले गयीं ॥३७॥ कामवश उन्हें अपने वक्षःस्थल से चिपका-चिपकाकर चुम्बन करने लगीं। उस समय उनका सर्वाङ्ग पुलकित हो उठा और उन्होंने रास-मण्डल का स्मरण किया ॥३८॥ इसी बीच राधा को माया द्वारा उत्तम रत्नों का बना मण्डप दिखायी पड़ा, जो सौ रत्नों के कलशों से युक्त, नाना प्रकार के विचित्र चित्रों से सम्पन्न, वन से भूषित, सिन्दूर के समान मणियों के खम्भों से सुशोभित, चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुम के द्रव से युक्त और मालती-मालाओं के समूहों से सुसज्जित पुष्प-शय्या से संयुक्त, विविध भाँति के भोग पदार्थ, दिव्यदर्पण, मणीन्द्र, मुक्ता और माणिक्य के मालाजाल से भूषित, मणीन्द्र के सारभाग से बने किवाड़ों से युक्त, बेल-बूटों से विभूषित वस्त्रों तथा पताका-समूहों से सुसज्जित और कुंकुमाकार मणियों की बनी सात सीढ़ियों से युक्त था और भौंरों से गुंजित एवं

कुङ्कुमत्कारमणिभिः सप्तसोपानसंयुतम् । युक्तं षट्पदसंयुक्तैः पुष्पोद्यानं च पुष्पितैः ॥४४॥
सा देवी मण्डपं दृष्ट्वा जगामाभ्यन्तरं मुदा । ददर्श तत्र ताम्बूलं [1]कर्पूरादिसमन्वितम् ॥४५॥
जलं च रत्नकुम्भस्थं स्वच्छं शीतं मनोहरम् । सुधामधुभ्यां पूर्णानि रत्नकुम्भानि नारद ॥४६॥
पुरुषं कमनीयं च किशोरं श्यामसुन्दरम् । कोटिकन्दर्पलीलाभं चन्दनेन विभूषितम् ॥४७॥
शयानं पुष्पशय्यायां सस्मितं सुमनोहरम् । पीतवस्त्रपधरीधानं प्रसन्नवदनेक्षणम् ॥४८॥
मणीन्द्रसारनिर्माणं क्वणन्मञ्जीररञ्जितम् । सद्रत्नसारनिर्माणकेयूरवलयान्वितम् ॥४९॥
मणीन्द्रकुण्डलाभ्यां च गण्डस्थलविराजितम् । कौस्तुभेन मणीन्द्रेण वक्षःस्थलसमुज्ज्वलम् ॥५०॥
शरत्पार्वणचन्द्रास्यप्रभामुष्टमुखोज्ज्वलम् । शरत्प्रफुल्लकमलप्रभामोचनलोचनम् ॥५१॥
मालतीमाल्यसंश्लिष्टशिखिपिच्छसुशोभितम् । त्रिवङ्कचूडां बिभ्रन्तं पश्यन्तं रत्नमन्दिरम् ॥५२॥
क्रोडं बालकशून्यं च दृष्ट्वा तं नवयौवनम् । सर्वस्मृतिस्वरूपा सा तथाऽपि विस्मयं ययौ ॥५३॥
रूपं रासेश्वरी दृष्ट्वा मुमोह सुमनोहरम् । कामाच्चक्षुश्चकोराभ्यां मुखचन्द्रं पपौ मुदा ॥५४॥
निमेषरहिता राधा नवसंगमलालसा । पुलकाङ्कितसर्वाङ्गी सस्मिता मदनातुरा ॥५५॥

---

खिले पुष्पों की वाटिका से सुशोभित था। उसे देखकर देवी प्रसन्नता से उसके भीतर चली गयीं ॥३६-४४॥ वहाँ कपूर आदि से सुवासित ताम्बूल और रत्न के कलश में स्वच्छ, शीतल एवं मनोहर जल रखा हुआ देखा ॥४५॥ नारद ! अमृत और मधु से पूर्ण रत्नों के कलश भी वहाँ थे। भवन के भीतर पुष्पशय्या पर एक किशोरावस्था का श्यामसुन्दर और कमनीय पुरुष सो रहा था, जो करोड़ों कामदेव के समान सुन्दर, चन्दन-चर्चित, अति मनोहर एवं मन्दहास कर रहा था। वह पीताम्बरधारी, प्रसन्नमुख एवं नेत्रोंवाला, मणीन्द्र के सारभाग के बने हुए नूपुर की झनकार से युक्त, उत्तमरत्नों के सारभाग से सुरचित केयूर और कंकण से संयुक्त, मणीन्द्र के बने युगल कुण्डलों से सुशोभित गण्डस्थलवाला, मणीन्द्र कौस्तुभ से समुज्ज्वल वक्षःस्थलवाला, शारदीय पूर्णिमा के चन्द्रमुख की प्रभा को चुरानेवाले मुख से समुद्भासित, शरत्कालीन अति विकसित कमल की शोभा को चुरानेवाले नेत्रों से युक्त, मालती पुष्पों की माला से संश्लिष्ट मोरपंख से सुशोभित और त्रिभंग चूड़ा (चोटी) धारण किये उस रत्न-मण्डप को निहार रहा था। अपनी गोद में बालक को न देखकर और उधर उस नवयुवक को देखकर सर्वस्मृतिस्वरूपा होने पर भी राधा को बड़ा आश्चर्य हुआ ॥४६-५३॥ रासेश्वरी उस अति मनोहर रूप को देखकर मुग्ध हो गयीं। वे हर्ष से कामवश अपने नयन-चकोर से उनके मुखचन्द्र का पान करने लगीं ॥५४॥ उनकी पलकें नहीं गिरती थीं। राधा नवसंगम की लालसा से युक्त हो गयीं। उनके सर्वाङ्ग में रोमांच हो गया और वे मन्दमुस्कान करती हुई कामातुर हो गयीं।

---

[1] क. °दिसुवासितम्।

तामुवाच हरिस्तत्र स्मेराननसरोरुहाम् । नवसंगमयोग्यां च पश्यन्तीं वक्रचक्षुषा ॥५६॥

श्रीकृष्ण उवाच

राधे स्मरसि गोलोकवृत्तान्तं सुरसंसदि । अद्य पूर्णं करिष्यामि स्वीकृतं यत्पुरा प्रिये ॥५७॥
त्वं मे प्राणाधिका राधे प्रेयसी च वरानने । यथा त्वं च तथाऽहं च भेदो हि नाऽऽवयोर्ध्रुवम् ॥५८॥
यथा क्षीरे च धावल्यं यथाऽग्नौ दाहिका सति । यथा पृथिव्यां गन्धश्च तथाऽहं त्वयि संततम् ॥५९॥
विना मृदा घटं कर्तुं विना स्वर्णेन कुण्डलम् । कुलालः स्वर्णकारश्च न हि शक्तः कदाचन ॥६०॥
तथा त्वया विना सृष्टिमहं कर्तुं न च क्षमः । सृष्टेराधारभूता त्वं बीजरूपोऽहमच्युतः ॥६१॥
आगच्छ शयने साध्वि कुरु वक्षःस्थले हि माम् । त्वं मे शोभास्वरूपाऽसि देहस्य भूषणं यथा ॥६२॥
कृष्णं वदन्ति मां लोकास्त्वयैव रहितं यदा । श्रीकृष्णं च तदा तेऽपि त्वयैव सहितं परम् ॥६३॥
त्वं च श्रीस्त्वं च संपत्तिस्त्वमाधारस्वरूपिणी । त्वं स्त्री पुमानहं राधे इति वेदेषु निर्णयः ॥६४॥
सर्वशक्तिस्वरूपाऽसि सर्वरूपोऽहमक्षरः ॥६५॥
यदा तेजः स्वरूपोऽहं तेजोरूपाऽसि त्वं तदा । न शरीरी यदाऽहं च तदा त्वमशरीरिणी ॥६६॥
सर्वबीजस्वरूपोऽहं सदा योगेन सुन्दरि । त्वं च शक्तिस्वरूपा च सर्वस्त्रीरूपधारिणी ॥६७॥

---

तब तिरछी चितवन से देखती हुई, नवीन संगम के योग्य तथा मुस्कराते हुए मुखकमलवाली उन (राधा) से श्रीकृष्ण ने कहा ॥५५-५६॥

**कृष्ण बोले–** प्रिये राधे ! गोलोक में देव-सभा के मध्य जो वृत्तान्त घटित हुआ था, उसका स्मरण करती हो ? पूर्वकाल में मैंने जो स्वीकार किया था, उसे आज पूरा करूँगा ॥५७॥ सुमुखी राधे ! तुम मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय हो । जैसी तुम हो, वैसा मैं हूँ, निश्चय ही हम दोनों में भेद नहीं है । जैसे दूध में धवलता, अग्नि में दाहिका शक्ति और पृथ्वी में गन्ध है, उसी भाँति मैं निरन्तर तुममें हूँ । जिस प्रकार कुम्हार बिना मिट्टी के घड़ा बनाने में समर्थ नहीं हो सकता और स्वर्णकार बिना सुवर्ण के कुण्डल बनाने में कदापि समर्थ नहीं हो सकता, उसी प्रकार मैं तुम्हारे बिना सृष्टि करने में समर्थ नहीं हूँ । तुम सृष्टि की आधारभूता हो और मैं अच्युत बीज रूप हूँ ॥५८-६१॥ प्रतिव्रते ! शय्या पर आओ और मुझे अपने वक्षःस्थल से लगा लो । जैसे आभूषण शरीर की शोभा का हेतु है, उसी प्रकार तुम मेरी शोभा हो ॥६२॥ जब मैं तुमसे अलग रहता हूँ, तब लोग मुझे 'कृष्ण' कहते हैं और जब तुम साथ हो जाती हो तो वे ही लोग मुझे श्रीकृष्ण की संज्ञा देते हैं । तुम्हीं श्री हो, तुम्हीं सम्पत्ति हो और तुम्हीं आधारस्वरूपिणी हो । तुम समस्त शक्तिस्वरूपा हो तथा मैं अविनाशी सर्वरूप हूँ ॥६३-६५॥ जब मैं तेजःस्वरूप रहता हूँ, तब तुम भी तेजःस्वरूपा रहती हो, जब मैं शरीररहित होता हूँ, तब तुम भी शरीररहित हो जाती हो । सुन्दरि ! मैं सदा तुम्हारे संयोग द्वारा समस्त बीज-स्वरूप होता हूँ । तुम शक्तिस्वरूपा तथा समस्त स्त्रियों का रूप धारण करनेवाली हो ॥६६-६७॥ मेरे अंगस्वरूप

ममार्द्धांशस्वरूपा त्वं मूलप्रकृतिरीश्वरी । शक्त्या बुद्ध्या च ज्ञानेन मया तुल्या वरानने ॥६८॥
आवयोर्भेदबुद्धिं च यः करोति नराधमः । तस्य वासः कालसूत्रे यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥६९॥
पूर्वान्सप्त परान्सप्त पुरुषान्पातयत्यधः । ॥७०-७१॥
राशब्दं कुर्वतस्त्रस्तो ददामि भक्तिमुत्तमाम् । धाशब्दं कुर्वतः पश्चाद्यामि श्रवणलोभतः ॥७२॥
ये सेवन्ते च दत्त्वा मामुपचारांश्च षोडश । यावज्जीवनपर्यन्तं या प्रीतिर्जायते मम ॥७३॥
सा प्रीतिर्मम जायेत राधाशब्दात्ततोऽधिका । प्रिया न मे तथा राधे राधावक्ता ततोऽधिकः ॥७४॥
ब्रह्माऽनन्तः शिवो धर्मो नरनारायणावृषी । कपिलश्च गणेशश्च कार्तिकेयश्च मत्प्रियः ॥७५॥
लक्ष्मीः सरस्वती दुर्गा सावित्री प्रकृतिस्तथा । मम प्रियाश्च देवाश्च तास्तथाऽपि न तत्समाः ॥७६॥
ते सर्वे प्राणतुल्या मे त्वं मे प्राणाधिका सती । भिन्नस्थानस्थितास्ते च त्वं च वक्षःस्थले स्थिता ॥७७॥
या मे चतुर्भुजा मूर्तिर्बिभर्ति वक्षसि प्रियाम् । सोऽहं कृष्णस्वरूपस्त्वां विवहामि स्वयं सदा[1] ॥७८॥
इत्येवमुक्त्वा श्रीकृष्णस्तस्थौ तल्पे मनोरमे । उवाच राधिका नाथं भक्तिनम्रात्मकंधरा ॥७९॥

---

तुम ईश्वरी मूल प्रकृति हो। वरानने ! शक्ति, बुद्धि और ज्ञान में तुम मेरे ही समान हो। जो नराधम हम दोनों में भेद-भावना करता है, वह कालसूत्र नामक नरक में चन्द्रमा और सूर्य के नियत काल तक वास करता है। वह अपने पहले और बाद की सात-सात पीढ़ियों को नरक में गिरा देता है। उसका करोड़ों जन्मों का पुण्य निश्चित ही नष्ट हो जाता है ॥६८-७०॥ जो नराधम अज्ञानवश हम दोनों की निन्दा करते हैं, वे घोर नरक में तब तक पकाये जाते हैं जब तक चन्द्रमा और सूर्य की सत्ता है ॥७१॥ 'रा' शब्द का उच्चारण करनेवाले को मैं त्रस्त होकर उत्तम भक्ति प्रदान करता हूँ और पश्चात् 'धा' शब्द का उच्चारण करनेवाले के पीछे इसलिए जाता हूँ कि 'राधा' शब्द सुनने का लोभ रहता है। जो जीवनपर्यंत षोडश उपचार अर्पित करते हुए मेरी सेवा करते हैं और उन पर जो मेरी प्रीति होती है, वही प्रीति राधा शब्द के उच्चारण से होती है। राधे ! मुझे तुम उतनी अधिक प्रिय नहीं हो जितना कि राधा शब्द कहनेवाला प्रिय है ॥७२-७४॥ ब्रह्मा, अनन्त, शिव, धर्म, नर-नारायण ऋषि, कपिल, गणेश और कार्तिकेय मेरे प्रिय हैं, तथा लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, सावित्री, प्रकृति और देवगण भी मेरे प्रिय हैं किन्तु ये राधा नाम का उच्चारण करनेवाले के समान प्रिय नहीं हैं ॥७५-७६॥ वे सब मेरे प्राण के समान हैं और सती राधे ! तुम मेरे प्राणों से भी अधिक हो। वे सब भिन्न-भिन्न स्थानों में रहते हैं और तुम मेरे वक्षःस्थल में विराजमान हो। मेरी चार भुजावाली मूर्ति अपनी प्रिया को वक्षःस्थल पर धारण करती है और मैं स्वयं कृष्णस्वरूप होकर सदा तुम्हारा भार वहन करता हूँ। इस प्रकार कहकर श्रीकृष्ण मनोरम शय्या पर विराजमान हुए, तब राधिका ने भक्ति से सिर झुकाकर स्वामी से कहा ॥७७-७९॥

---

१ क. मुदा।

## राधिकोवाच

स्मरामि सर्वं जानामि विस्मरामि कथं विभो। यत्त्वं वदसि सर्वाऽहं त्वत्पादाब्जप्रसादतः ॥८०॥
ईश्वरस्याप्रियाः केचित्प्रियाश्च कुत्र केचन। ये यथा मां न स्मरन्ति तथा तेषु तवाकृपा ॥८१॥
तृणं च पर्वतं कर्तुं समर्थः पर्वतं तृणम्। तथाऽपि योग्यायोग्ये च संपत्तौ च समा कृपा ॥८२॥
तिष्ठत्यहं शयानस्त्वं कथाभिर्यत्क्षणं गतम्। तत्क्षणं च युगसमं नाहं प्रापयितुं क्षमा ॥८३॥
वक्षःस्थले च शिरसि देहि ते चरणाम्बुजम्। दुनोति मन्मनः सद्यस्त्वदीयविरहानलात् ॥८४॥
पुरः पपात मे दृष्टिस्त्वदीयचरणाम्बुजे। नीता मया न हि क्लेशाद्द्रष्टुमन्यत्कलेवरम् ॥८५॥
प्रत्येकमङ्गं दृष्ट्वैव दत्ता शान्ते मुखाम्बुजे। दृष्ट्वा मुखारविन्दं च नान्यं गन्तुं च सा क्षमा ॥८६॥
राधिकावचनं श्रुत्वा जहास पुरुषोत्तमः। तामुवाच हितं तथ्यं श्रुतिस्मृतिनिरूपितम् ॥८७॥

## श्रीकृष्ण उवाच

न खण्डनीयं तत्तत्र मया पूर्वं निरूपितम्। तिष्ठ भद्रे क्षणं भद्रं करिष्यामि तव प्रिये ॥८८॥
त्वन्मनोरथपूर्णस्य स्वयं कालः समागतः ॥८९॥

---

**राधिका बोलीं**—विभो! मुझे स्मरण है, मैं सब जानती हूँ, भूलूंगी कैसे? आपके चरण-कमलों के प्रसाद से मैं सब कुछ हूँ, जो आप कह रहे हैं ॥८०॥ ईश्वर के कुछ लोग अप्रिय होते हैं और कहीं कुछ प्रिय भी होते हैं जैसे जो लोग मेरा स्मरण नहीं करते हैं, उन पर आपकी कृपा नहीं रहती ॥८१॥ तुम तृण को पर्वत और पर्वत को तृण करने में समर्थ हो, तथापि योग्य-अयोग्य में और सम्पत्ति तथा विपत्ति में भी समान कृपा होती है ॥८२॥ मैं खड़ी हूँ और तुम सोये हो, इस समय बातचीत में जो क्षण निकल गया, वह क्षण युग के समान था उसे मैं लौटा नहीं सकती ॥८३॥ अतः मेरे वक्षःस्थल और सिर पर अपना चरण-कमल रखने की कृपा करो। तुम्हारे विरहाग्नि से मेरा मन सद्यः जल रहा है ॥८४॥ सामने तुम्हारे चरण-कमल पर जब मेरी दृष्टि पड़ी तो मैंने अन्य अंग देखने के लिए क्लेश उठाकर भी उसे नहीं हटाया। फिर प्रत्येक अंग को देखकर ही मैंने उसे नहीं हटाया। फिर प्रत्येक अंग को देखकर ही मैंने उसे तुम्हारे शान्त मुख-कमल पर डाला। किन्तु मुख-कमल को देखकर मेरी दृष्टि अन्यत्र जाने में असमर्थ है ॥८५-८६॥

राधिका की बात सुनकर पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण हँस पड़े और उन्होंने राधा से हितकर, सत्य और श्रुति-स्मृति-प्रतिपादित वचन कहा ॥८७॥

**श्रीकृष्ण बोले**-भद्रे, प्रिये! पूर्वकाल में मैंने वहाँ जो कहा था उसका खंडन नहीं होना चाहिए। क्षणमात्र ठहरो, मैं तुम्हारा कल्याण करूँगा ॥८८॥ तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होने का समय स्वयं आ गया है। राधे! मैंने पहले

यस्य यल्लिखितं पूर्वं यत्र काले निरूपितम् । तदेव खण्डितुं राधे क्षमो नाहं च को विधिः ॥९०॥
विधातुश्च विधाताऽहं येषां यल्लेखनं कृतम् । ब्रह्मादीनां च क्षुद्राणां न तत्खण्ड्यं कदाचन ॥९१॥
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्माऽऽजगाम पुरतो हरेः । मालाकमण्डलुकर ईषत्स्मेरचतुर्मुखः ॥९२॥
गत्वा ननाम तं कृष्णं प्रतुष्टाव यथागमम् । साश्रुनेत्रः पुलकितो भक्तिनम्रात्मकंधरः ॥९३॥
स्तुत्वा नत्वा जगद्धाता जगाम हरिसंनिधिम् । पुनर्नत्वा प्रभुं भक्त्या जगाम राधिकान्तिकम् ॥९४॥
मूर्ध्ना ननाम भक्त्या च मातुस्तच्चरणाम्बुजे । चकार संभ्रमेणैव जटाजालेन वेष्टितम् ॥९५॥
कमण्डलुजलेनैव शीघ्रं प्रक्षालितं मुदा । यथागमं प्रतुष्टाव पुटाञ्जलियुतः पुनः ॥९६॥

## ब्रह्मोवाच

हे मातस्त्वत्पदाम्भोजं दृष्टं कृष्णप्रसादतः । सुदुर्लभं च सर्वेषां भारते च विशेषतः ॥९७॥
षष्टिवर्षसहस्राणि तपस्तप्तं पुरा मया । भास्करे पुष्करे तीर्थे कृष्णस्य परमात्मनः ॥९८॥
आजगाम वरं दातुं वरदाता हरिः स्वयम् । वरं वृणीष्वेत्युक्ते च स्वाभीष्टं च वृतं मुदा ॥९९॥
राधिकाचरणाम्भोजं सर्वेषामपि दुर्लभम् । हे गुणातीत मे शीघ्रमधुनैव प्रदर्शय ॥१००॥

---

जिसके लिए जो कुछ लिख दिया है, उसका खण्डन मैं स्वयं नहीं कर सकता, फिर विधाता की क्या बिसात है? मैं ब्रह्मा का भी ब्रह्मा हूँ, अतः जिसका जो कुछ लिख दिया है, उसका क्षुद्र ब्रह्मा आदि भी खंडन कभी नहीं कर सकते ॥८९-९१॥ इसी बीच भगवान् के सामने ब्रह्मा जी आ गये, उनके हाथ में माला-कमण्डलु थे। वे अपने चारों मुख से मन्द हास कर रहे थे। आकर उन्होंने कृष्ण को नमस्कार किया और आगम के अनुसार उनकी स्तुति की। जगत् के विधाता ब्रह्मा सजल नेत्र, पुलकायमान शरीर और भक्ति से कन्धे झुकाये स्तुति-नमस्कार करके हरि के समीप पहुँचे। भक्ति से पुनः भगवान् को नमस्कार करके राधिका के समीप चले गये ॥९२-९४॥ माता के चरण-कमल में भक्तिपूर्वक सिर से नमस्कार किया। जटा-जाल से आच्छन्न सिर से, चरणारविन्द को वेष्टित करके उन्होंने अपने कमण्डलु-जल से सहर्ष शीघ्रतापूर्वक उनका प्रक्षालन किया और हाथ जोड़कर वेदानुसार स्तुति की ॥९५-९६॥

**ब्रह्मा बोले**—हे मातः! श्रीकृष्ण की कृपा से तुम्हारे चरण-कमल का दर्शन किया है जो सभी के लिए अत्यन्त दुर्लभ है, विशेषकर भारतवर्ष में पूर्व समय में पुष्कर तीर्थ में मैंने सूर्य के प्रकाश में परमात्मा श्रीकृष्ण की प्रसन्नता के लिए साठ सहस्र वर्षों तक तप किया। अनन्तर वरदायक भगवान् वर देने के लिए स्वयं आये। 'वर माँगो' उनके ऐसा कहने पर मैंने अपना अभीष्ट वर माँगा कि राधिका के चरण-कमल का दर्शन करना चाहता हूँ, जो सबके लिए अति दुर्लभ है। हे गुणातीत! मुझे अभी शीघ्र दर्शन कराइये। मेरे कहने पर भगवान् ने मुझ तपस्वी से कहा—हे वत्स! अवसर आने पर दर्शन करा दूंगा, इस समय क्षमा करो ॥९७-१०१॥

मयेत्युक्तो हरिरयमुवाच मां तपस्विनम् । दर्शयिष्यामि काले च वत्सेदानीं क्षमेति च ॥१०१॥
नहीश्वराज्ञा विफला तेन दृष्टं पदाम्बुजम् । सर्वेषां वाञ्छितं मातर्गोलोके भारतेऽधुना ॥१०२॥
सर्वा देव्यः प्रकृत्यंशा जन्याः प्राकृतिका ध्रुवम् । त्वं कृष्णाङ्गार्धसंभूता तुल्या कृष्णेन सर्वतः ॥१०३॥
श्रीकृष्णस्त्वमयं राधा त्वं राधा वा हरिः स्वयम् । न हि वेदेषु मे दृष्ट इति केन निरूपितम् ॥१०४॥
ब्रह्माण्डाद्बहिरूर्ध्वं च गोलोकोऽस्ति यथाऽम्बिके । वैकुण्ठश्चाप्यजन्यश्च त्वमजन्या तथाऽम्बिके ॥१०५॥
यथा समस्तब्रह्माण्डे श्रीकृष्णांशांशजीविनः । तथा शक्तिस्वरूपा त्वं तेषु सर्वेषु संस्थिता ॥१०६॥
पुरुषाश्च हरेरंशास्त्वदंशा निखिलाः स्त्रियः । [1]आत्मना देहरूपा त्वमस्याऽऽधारस्त्वमेव हि ॥१०७॥
अस्यानुप्राणैस्त्वं मातस्त्वत्प्राणैरयमीश्वरः । किमहो निर्मितः केन हेतुना शिल्पकारिणा ॥१०८॥
नित्योऽयं च तथा कृष्णस्त्वं च नित्या तथाऽम्बिके । अन्यांशा त्वं त्वदंशोवाऽप्ययं केन निरूपितः ॥१०९॥
अहं विधाता जगतां वेदानां जनकः स्वयम् । तं पठित्वा गुरुमुखाद्भवन्त्येव बुधा जनाः ॥११०॥
गुणानां वास्तवानां ते शतांशं वक्तुमक्षमः । वेदो वा पण्डितो वाऽन्यः को वा त्वां स्तोतुमीश्वरः ॥१११॥
स्तवानां जनकं ज्ञानं बुद्धिर्ज्ञानाम्बिका सदा । त्वं बुद्धेर्जननी मातः को वा त्वां स्तोतुमीश्वरः ॥११२॥

---

भगवान् की आज्ञा विफल नहीं होती है, इसीलिए आज इस चरण-कमल का दर्शन हुआ है। हे मातः ! तुम गोलोक में तथा भारत में भी इस समय सबकी अभीष्ट हो ॥१०२॥

देवियाँ प्रकृति के अंश से उत्पन्न होने के कारण जन्य तथा प्राकृतिक हैं। किन्तु तुम भगवान् श्रीकृष्ण के अर्द्धाङ्ग से उत्पन्न होने के कारण सब प्रकार से उन्हीं के समान हो ॥१०३॥ तुम भगवान् श्रीकृष्ण हो और ये राधा हैं या तुम राधा हो और ये स्वयं भगवान् हैं, इसका निश्चय कहीं वेदों में भी मैंने नहीं देखा है। किसी ने भी इसका निरूपण नहीं किया है ॥१०४॥ हे अम्बिके ! जिस प्रकार गोलोक ब्रह्माण्ड से बाहर और ऊपर है उसी तरह वैकुण्ठ भी अजन्य है, और तुम भी अजन्य हो ॥१०५॥ जिस प्रकार उन समस्त ब्रह्माण्ड में श्रीकृष्ण के अंशांश जीवगण स्थित हैं, उसी प्रकार तुम जीवों में शक्तिस्वरूप होकर स्थित हो। समस्त पुरुष हरि के अंश हैं, और समस्त स्त्रियाँ तुम्हारे अंग से उत्पन्न हैं। तुम शरीर से देहरूपा हो, अतः तुम्हीं इनकी आधारभूता हो ॥१०६-१०७॥ माता ! इनके प्राणों से तुम प्राणवती हो और तुम्हारे प्राणों से ये ईश्वर प्राणवान् हैं। अहो ! क्या किसी हेतु से किसी शिल्पी ने इनका निर्माण किया है ? नहीं। अम्बिके ! ये कृष्ण नित्य हैं और तुम नित्या हो। तुम इनकी अंशस्वरूपा हो या ये ही तुम्हारे अंश हैं, यह कौन बता सकता है ? ॥१०८-१०९॥ मैं जगत् का विधाता और वेदों का स्वयं स्रष्टा हूँ। उन (वेदों) को गुरुमुख से पढ़कर लोग पण्डित हो जाते हैं किन्तु वे विद्वान् तुम्हारे वास्तविक गुणों का शतांश भी कहने में असमर्थ हैं ॥११०-१११॥ वेद, पण्डित या अन्य कौन तुम्हारी स्तुति करने में समर्थ हो सकता है ? क्योंकि स्तुति का जनक है ज्ञान और

---

१ क. आत्माङ्गं दे॰।

यद्वस्तु दृष्टं सर्वेषां तद्धि वक्तुं बुधः क्षमः। यददृष्टाश्रुतं वस्तु तन्निर्वक्तुं च कः क्षमः॥११३॥
अहं महेशोऽनन्तश्च स्तोतुं त्वां कोऽपि न क्षमः। सरस्वती च वेदाश्च क्षमः कः स्तोतुमीश्वरः॥११४॥
यथागमं यथोक्तं च न मां निन्दितुमर्हसि। ईश्वराणामीश्वरस्य योग्यायोग्ये समा कृपा॥११५॥
जनस्य प्रतिपाल्यस्य क्षणे दोषः क्षणे गुणः। जननी जनको यो वा सर्वं क्षमति स्नेहतः॥११६॥
इत्युक्त्वा जगतां धाता तस्थौ च पुरतस्तयोः। प्रणम्य चरणाम्भोजं सर्वेषां वन्द्यमीप्सितम्॥११७॥
ब्रह्मणा च कृतं स्तोत्रं त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः। राधामाधवयोः पादे भक्तिर्दास्यं लभेद्ध्रुवम्॥११८॥
कर्मनिर्मूलनं कृत्वा मृत्युं जित्वा सुदुर्जयम्। विलङ्घ्य सर्वलोकांश्च याति गोलोकमुत्तमम्॥११९॥

## नारायण उवाच

ब्रह्मणः स्तवनं श्रुत्वा तमुवाच ह राधिका। वरं वृणु विधातस्त्वं यत्ते मनसि वर्तते॥१२०॥
राधिकावचनं श्रुत्वा तामुवाच जगद्विधिः। वरं च युवयोः पादपद्मभक्तिं च देहि मे॥१२१॥
इत्युक्ते विधिना राधा तूर्णमोमित्युवाच ह। पुनर्ननाम तां भक्त्या विधाता जगतां पतिः॥१२२॥

---

ज्ञान की जननी है बुद्धि। और माता! तुम बुद्धि की भी जननी हो, इसलिए कौन तुम्हारी स्तुति करने में समर्थ हो सकता है? जिस वस्तु को सभी लोग देखते हैं, उसका वर्णन करने में विद्वान् समर्थ होता है और जो वस्तु सभी के लिए अदृष्ट और अश्रुत है उसका वर्णन करने में कौन समर्थ हो सकता है? मैं, महेश्वर और अनन्त इनमें कोई भी तुम्हारी स्तुति करने में समर्थ नहीं है। सरस्वती और वेद भी तुम्हारी स्तुति करने में असमर्थ हैं। फिर कौन तुम्हारी स्तुति कर सकता है? ॥११२-११४॥ मैंने आगमों का अनुसरण करके तुम्हारे विषय में जो कुछ कहा है, उसके लिए तुम मेरी निन्दा न करना जो ईश्वर के भी ईश्वर परमात्मा हैं, उनकी योग्य और अयोग्य पर भी समान कृपा होती है॥११५॥ जो पालन के योग्य संतान है, उसका क्षण-क्षण में दोष और गुण प्रकट होता रहता है, परन्तु माता-पिता उसके सारे दोषों को स्नेहवश क्षमा करते हैं॥११६॥ इतना कहकर जगत् के विधाता ब्रह्मा राधा और कृष्ण के सर्ववन्द्य और सर्ववाञ्छित चरण-कमलों को प्रणाम करके उनके आगे खड़े हो गये॥११७॥ ब्रह्मा द्वारा सुरक्षित इस स्तोत्र का जो तीनों संध्याओं में पाठ करता है, उसे राधामाधव के चरण-कमल की भक्ति एवं उनका दास्य निश्चित प्राप्त होता है। वह अपने समस्त कर्मों का उन्मूलन करके अति दुर्जेय मृत्यु को जीतकर और समस्त लोकों को पारकर परमोत्तम गोलोक में चला जाता है॥११८-११९॥

**नारायण बोले**—ब्रह्मा की स्तुति सुनकर राधिका ने उनसे कहा—'हे विधाता? अपना इच्छित वरदान मांगो।' राधिका की बात सुनकर जगत् के विधाता ने कहा—'अपने दोनों व्यक्तियों के चरण-कमल की भक्ति मुझे देने की कृपा करें।' ब्रह्मा के ऐसा कहने पर राधिका ने उसे शीघ्र स्वीकार किया। अनन्तर जगत्पति

तदा ब्रह्मा तयोर्मध्ये प्रज्वाल्य च हुताशनम् । हरिं संस्मृत्य हवनं चकार विधिना विधिः ॥१२३॥
उत्थाय शयनात्कृष्ण उवास वह्निसंनिधौ । ब्रह्मणोक्तेन विधिना चकार हवनं स्वयम् ॥१२४॥
प्रणमय्य पुनः कृष्णं राधां तां जनकः स्वयम् । कौतुकं कारयामास सप्तधा च प्रदक्षिणाम् ॥१२५॥
पुनः प्रदक्षिणां राधां कारयित्वा हुताशनम् । प्रणमय्य ततः कृष्णं वासयामास तं विधिः ॥१२६॥
तस्या हस्तं च श्रीकृष्णं ग्राहयामास तं विधिः । वेदोक्तसप्तमन्त्रांश्च पाठयामास माधवम् ॥१२७॥
संस्थाप्य राधिकाहस्तं हरेर्वक्षसि वेदवित् । श्रीकृष्णहस्तं राधायाः पृष्ठदेशे प्रजापतिः ॥१२८॥
स्थापयामास मन्त्रांस्त्रीन्पाठयामास राधिकाम् । पारिजातप्रसूनानां मालां जानुविलम्बिताम् ॥१२९॥
श्रीकृष्णस्य गले ब्रह्मा राधाद्वारा ददौ मुदा । प्रणमय्य पुनः कृष्णं राधां च कमलोद्भवः ॥१३०॥
राधागले हरिद्वारा ददौ मालां मनोहराम् । पुनश्च वासयामास श्रीकृष्णं कमलोद्भवः ॥१३१॥
तद्वामपार्श्वे राधां च सस्मितां कृष्णचेतसम् । पुटाञ्जलिं कारयित्वा माधवं राधिकां विधिः ॥१३२॥
पाठयामास वेदोक्तान्पञ्च मन्त्रांश्च नारद । प्रणमय्य पुनः कृष्णं समर्प्य राधिकां विधिः ॥१३३॥
कन्यकां च यथा तातो भक्त्या तस्थौ हरेः पुरः । एतस्मिन्नन्तरे देवाःसानन्दपुलकोद्‌गमाः ॥१३४॥
दुन्दुभिं वादयामासुश्चाऽऽनकं मुरजादिकम् ॥१३५॥

---

ब्रह्मा ने भक्ति से राधा को पुनः नमस्कार करके उन दोनों के बीच में अग्नि प्रज्वलित किया और भगवान् के स्मरणपूर्वक सविधान हवन सुसम्पन्न किया । उसी समय भगवान् कृष्ण स्वयं शय्या से उठकर अग्नि के समीप आये और ब्रह्मा के बताये विधान द्वारा हवन कार्य सुसम्पन्न किया । अनन्तर ब्रह्मा ने राधा द्वारा कृष्ण को प्रणाम कराया, फिर स्वयं पिता के कर्तव्य का पालन करते हुए उन दोनों से कौतुक (वैवाहिक मंगल कृत्य) कराया और सात बार अग्निदेव की परिक्रमा करायी । उसके बाद राधा से पुनः अग्नि की प्रदक्षिणा तथा प्रणाम करवाकर राधा को श्रीकृष्ण के पास बैठाया ॥१२०-१२६॥ फिर श्रीकृष्ण से राधा का हाथ ग्रहण कराया और हरि से सात वैदिक मन्त्र पढ़वाये । अनन्तर ब्रह्मा ने राधिका का हाथ भगवान् के हाथ पर और श्रीकृष्ण का हाथ राधा के पृष्ठ प्रदेश पर रखाकर तीन मन्त्र राधा से पढ़वाये । पश्चात् ब्रह्मा ने पारिजात पुष्पों की आजानुलम्बिनी माला भगवान् श्रीकृष्ण के गले में राधा से डलवायी और श्रीकृष्ण को प्रणाम करवाया ॥१२७-१३०॥ फिर भगवान् द्वारा अति मनोहर माला राधा के गले में पहनवायी । पश्चात् श्रीकृष्ण को बैठाकर उनके वामभाग में राधा को बैठाया, जो श्रीकृष्ण को चित्त में धारण किये मन्द-मन्द मुस्करा रही थीं। तब ब्रह्मा ने राधा-माधव को हाथ जोड़कर उनसे वेदों के पाँच मन्त्रों का पाठ कराया और प्रणाम करवाकर राधा को श्रीकृष्ण के हाथ में भक्तिपूर्वक उसी प्रकार सौंप दिया जैसे पिता अपनी पुत्री का दान करता है । फिर वे भगवान् के सामने खड़े हो गये । उसी समय आनन्दित एवं पुलकित देवों ने नगाड़े, आनक और मृदङ्ग

पारिजातप्रसूनानां पुष्पवृष्टिर्बभूव ह। जगुर्गन्धर्वप्रवरा ननृतुश्चाप्सरोगणाः॥१३६॥
तुष्टाव श्रीहरिं ब्रह्मा तमुवाच ह सस्मितः। युवयोश्चरणाम्भोजे भक्तिं मे देहि दक्षिणाम्॥१३७॥
ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा तमुवाच हरिः स्वयम्। मदीयचरणाम्भोजे सुदृढा भक्तिरस्तु ते॥१३८॥
स्वस्थानं गच्छ भद्रं ते भविता नात्र संशयः। मया नियोजितं कर्म कुरु वत्स ममाऽऽज्ञया॥१३९॥

## नारायण उवाच

श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा विधाता जगतां मुने। प्रणम्य राधां कृष्णं च जगाम स्वालयं मुदा॥१४०॥
गते ब्रह्मणि सा देवी सस्मिता वक्रचक्षुषा। सा ददर्श हरेर्वक्त्रं चच्छाद व्रीडया मुखम्॥१४१॥
पुलकाङ्कितसर्वाङ्गी कामबाणप्रपीडिता। प्रणम्य श्रीहरिं भक्त्या जगाम शयनं हरेः॥१४२॥
चन्दनागुरुपङ्कं च कस्तूरीकुङ्कुमान्वितम्। ललाटे तिलकं कृत्वा ददौ कृष्णस्य वक्षसि॥१४३॥
सुधापूर्णं रत्नपात्रं मधुपूर्णं मनोहरम्। प्रददौ हरये भक्त्या बुभुजे जगतीपतिः॥१४४॥
ताम्बूलं च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम्। ददौ कृष्णाय सा राधा सादरं बुभुजे हरिः॥१४५॥
चखाद सस्मिता राधा हरिदत्तं सुधारसम्। ताम्बूलं तेन दत्तं च बुभुजे पुरतो हरेः॥१४६॥
कृष्णश्चर्विततताम्बूलं राधिकायै मुदा ददौ। चखाद परया भक्त्या पपौ तन्मुखपंकजम्॥१४७॥

---

आदि बाजे बजाये, पुष्पों की वर्षा हुई, गन्धर्वश्रेष्ठ गान करने लगे, अप्सराएँ नृत्य करने लगीं॥१३१-१३६॥ ब्रह्मा ने राधा-माधव की स्तुति की और मन्दहास करते हुए उनसे कहा—'आप दोनों के चरण-कमल में मेरी भक्ति हो, यही दक्षिणा मुझे प्रदान करने की कृपा करें।' ब्रह्मा की बात सुनकर भगवान् ने स्वयं उनसे कहा—मेरे चरण-कमल में तुम्हारी अतिशय दृढ़ भक्ति हो, अब अपने स्थान को जाओ, तुम्हारा कल्याण अवश्य होगा। हे वत्स! मेरी आज्ञा से मेरे आयोजित कार्य को सम्पन्न करो॥१३७-१३९॥

**नारायण बोले**—मुने! भगवान् श्रीकृष्ण की बातें सुनकर जगत्-विधाता ब्रह्मा राधा-कृष्ण को सप्रेम प्रणाम करके अपने लोक को चले गये। ब्रह्मा के चले जाने पर देवी राधा ने भगवान् के मुख की ओर अपनी तिरछी चितवन डाली और लज्जा से अपना मुख ढक लिया॥१४०-१४१॥ उस समय उनका सर्वांग पुलकित हो उठा। वे काम के बाणों से अत्यन्त पीड़ित हो गयीं। अनन्तर भक्ति-पूर्वक भगवान् को प्रणामकर उनकी शय्या पर गयीं। उनके भाल में चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और केसर की तिलक लगायी और उनके वक्षःस्थल पर लेप किया॥१४२-१४३॥ पश्चात् सुधा और मधु से पूर्ण मनोहर रत्नपात्र उन्हें समर्पित किया। जगत्पति भगवान् ने उसका पान किया॥१४४॥ राधा ने भगवान् को कपूर आदि से सुवासित उत्तम ताम्बूल दिया, जिसे हरि ने आदर के साथ खाया॥१४५॥ भगवान् के दिये हुए अमृत रस को मन्द मुस्काती राधा ने भी पान किया और उनके दिये ताम्बूल को भी उन्होंने उनके सामने ही खाया॥१४६॥ कृष्ण ने अपना

राधार्चिततताम्बूलं ययाचे मधुसूदनः । जहास न ददौ राधा क्षमेत्युक्तं तया मुदा ॥१४८॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवमुत्तमम् । राधिकायाश्च सर्वाङ्गे प्रददौ माधवः स्वयम् ॥१४९॥
यः कामो ध्यायते नित्यं यस्यैकचरणाम्बुजम् । बभूव तस्य स वशो राधासंतोषकारणात् ॥१५०॥
यद्भृत्यभृत्यैर्मदनो जितः सर्वक्षणं मुने । स्वेच्छामयो हि भगवाञ्जितस्तेन कुतूहलात् ॥१५१॥
करे धृत्वा च तां कृष्णः स्थापयामास वक्षसि । चकार शिथिलं वस्त्रं चुम्बनं च चतुर्विधम् ॥१५२॥
बभूव रतियुद्धेन विच्छिन्ना क्षुद्रघण्टिका । चुम्बनेनौष्ठरागश्च ह्याश्लेषेण च पत्रकम् ॥१५३॥
शृङ्गारेणैव कबरी सिन्दूरतिलकं मुने । जगामालक्तकाङ्कश्च विपरीतादिकेन च ॥१५४॥
पुलकाङ्किकतसर्वाङ्गी बभूव नवसंगमात् । मूर्च्छामवाप सा राधा बुबुधे न दिवानिशम् ॥१५५॥
प्रत्यङ्गेनैव प्रत्यङ्गमङ्गेनाङ्गं समाश्लिषत् । [1]शृङ्गाराष्टविधं कृष्णश्चकार कामशास्त्रवित् ॥१५६॥
पुनस्तां च समाश्लिष्य सस्मितां वक्रलोचनाम् । क्षतविक्षतसर्वाङ्गीं नखदन्तैश्चकार ह ॥१५७॥
कङ्कणानां किङ्किणीनां मञ्जीराणां मनोहरः । बभूव शब्दस्तत्रैव शृङ्गारसमरोद्भवः ॥१५८॥

---

चबाया हुआ पान राधा को सहर्ष दिया जिसे राधा परा भक्ति से खाकर उनके मुख-कमल का पान करने लगीं ॥१४७॥ राधा के चबाये पान की मधुसूदन भगवान् ने भी याचना की किन्तु राधा ने हँसकर कहा— 'क्षमा कीजिये।' और उसे नहीं दिया ॥१४८॥ अनन्तर माधव ने स्वयं राधिका के सर्वांग में चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और केसर का द्रव लगाया ॥१४९॥ जो कामदेव जिनके चरण-कमल का ध्यान नित्य करता था, उसी के वश में वे राधा-सन्तोष के हेतु हो गये ॥१५०॥ मुने ! जिनके सेवक के सेवकों ने कामदेव को सदैव के लिए जीत लिया, वे स्वेच्छामय भगवान् आज कौतूहलवश उसी के अधीन हो गये ॥१५१॥ अनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण ने राधा का कर-कमल पकड़कर उन्हें अपने हृदय से लगा लिया और उनके वस्त्र को ढीला करके उनका चार प्रकार से चुम्बन लिया ॥१५२॥ रति-युद्ध होने से राधा की करधनी में लगे हुए घुंघरू टूट गये, चुम्बन से अधर की लालिमा और आलिंगन से (वक्षःस्थल की पत्र-रचना) बिगड़ गयी ॥१५३॥ हे मुने ! सम्भोग में केशपाश, सिन्दूर-तिलक और विपरीत आदि उपभोग में अलक्तक के चिह्न छूट गये ॥१५४॥ नव सङ्गम से राधा के सर्वांग में रोमाञ्च हो आया, वे मूर्च्छित हो गयीं, उन्हें दिन-रात का कुछ भी ज्ञान न रहा ॥१५५॥ कामशास्त्र के वेत्ता श्रीकृष्ण ने अपने प्रत्येक अंग से उनके प्रत्येक अंग का संयोग किया। इस भाँति उन्होंने आठ प्रकार का शृंगार (संभोग) किया। पश्चात् पुनः मन्द मुस्कान समेत कटाक्षों से देखती हुई राधा का आलिंगन करके नखों और दाँतों से उनके सभी अंगों को क्षत-विक्षत कर दिया ॥१५६-१५७॥ उस रति-समर में राधा के कंकण, करधनी एवं नूपुरों का मनोहर शब्द हो रहा था। अनन्तर उस निर्जन स्थान में कामशास्त्र-वेत्ता कृष्ण ने कौतुकवश राधा को पकड़कर शय्या पर बैठा लिया और उनका जूड़ा खोल दिया और निर्वस्त्र कर दिया, राधा ने भी कृष्ण की

---

१ क. °विधि ।

पुनस्तां च समाकृष्य शय्यायां च निवेश्य च। चकार रहितां राधां कबरीबन्धवाससा ॥१५९॥
निर्जने कौतुकात्कृष्णः कामशास्त्रविशारदः। चूडावेषांशुकैर्हीनं चकार तं च राधिका ॥१६०॥
न कस्य कस्माद्धानिश्च तौ द्वौ कार्यविशारदौ। जग्राह राधाहस्तात्तु माधवो रत्नदर्पणम् ॥१६१॥
मुरली माधवकराज्जग्राह राधिका बलात्। चित्तापहारं राधायाश्चकार माधवो बलात् ॥१६२॥
जहार राधिका रासान्माधवस्यापि मानसम्। निवृत्ते कामयुद्धे च सस्मिता वक्रलोचना ॥१६३॥
प्रददौ मुरलीं प्रीत्या श्रीकृष्णाय महात्मने। प्रददौ दर्पणं कृष्णः क्रीडाकमलमुज्ज्वलम् ॥१६४॥
चकार कबरीं रम्यां सिन्दूरतिलकं ददौ। विचित्रपत्रकं वेषं चकारैवंविधं हरिः ॥१६५॥
विश्वकर्मा न जानाति सखीनामपि का कथा। वेषं विधातुं कृष्णस्य यदा राधा समुद्यता ॥१६६॥
बभूव शिशुरूपं च कैशोरं च विहाय च। ददर्श बालरूपं तं रुदन्तं पीडितं क्षुधा ॥१६७॥
यादृशं प्रददौ नन्दो भीतं तादृशमच्युतम्। विनिःश्वस्य च सा राधा हृदयेन विदूयता ॥१६८॥
इतस्ततस्तं पश्यन्ती शोकार्ता विरहातुरा। उवाच कृष्णमुद्दिश्य काकूक्तिमिति कातरा ॥१६९॥
मायां करोषि मायेश किंकरी कथमीदृशीम्। इत्येवमुक्त्वा सा राधा पपात च रुरोद च ॥१७०॥
रुरोद कृष्णस्तत्रैव वाग्बभूवाशरीरिणी। कथं रोदिषि राधे त्वं स्मर कृष्णपदाम्बुजम् ॥१७१॥

---

चूड़ा खोलकर वस्त्र-रहित कर दिया ॥१५८-१६०॥ उसमें किसी के द्वारा किसी की कुछ हानि नहीं हो रही थी, क्योंकि वे दोनों कार्य-कुशल व्यक्ति थे। अनन्तर माधव ने राधा के हाथ से उनका रत्न-दर्पण ले लिया, राधिका ने भी बल-प्रयोग द्वारा माधव के हाथ से मुरली छीन ली। पश्चात् माधव ने राधा के मन का बलात् अपहरण किया। और राधा ने भी हठात् माधव का मन हरण कर लिया। काम-युद्ध समाप्त होने पर मन्द मुसकाती तथा तिरछी आँखों से देखती हुई राधा ने महात्मा कृष्ण को प्रेम से मुरली प्रदान की और भगवान् ने भी उनका दर्पण तथा समुज्ज्वल क्रीडा-कमल उन्हें लौटा दिया। उनके केशों की सुन्दर वेणी बाँध दी और भाल देश में सिन्दूर का तिलक लगाया, विचित्र पत्र-रचना से युक्त सुन्दर वेश सँवारा। उन्होंने जैसी वेश-रचना की, उसे विश्वकर्मा भी नहीं जानते, फिर सखियों की तो बात ही क्या है? ॥१६१-१६५½॥ जब राधा श्रीकृष्ण की वेश-रचना करने को उद्यत हुईं तब वे किशोरावस्था का रूप त्यागकर पुनः शिशुरूप हो गये। राधा ने देखा, बालरूप श्रीकृष्ण क्षुधा से पीड़ित हो रहे हैं। नन्द ने जैसे भयभीत अच्युत को दिया था, उसी रूप में वे इस समय दिखायी दिये। राधा व्यथित हृदय से लंबी साँस खींचकर इधर-उधर उस नव तरुण श्रीकृष्ण को देखने और ढूँढ़ने लगीं। वे शोक से पीड़ित और विरह से व्याकुल हो उठीं। उन्होंने कातर भाव से श्रीकृष्ण के उद्देश्य से यह दीनतापूर्ण बात कही—'हे मायेश! अपनी किंकर (दासी) के साथ ऐसी माया क्यों कर रहे हो?' इतना कहकर राधा गिर पड़ीं और रोदन करने लगीं। कृष्ण भी रोदन कर रहे थे; इसी बीच आकाशवाणी हुई—'हे राधे! भगवान् कृष्ण के चरण-कमल का स्मरण करो, रोदन क्यों कर रही हो? ॥१६६-१७१॥ अब से रास-मण्डल के समय तक नित्य रात्रि में भगवान्

आरासमण्डलं यावन्नक्तमत्राऽऽगमिष्यति । करिष्यसि रतिं नित्यं हरिणा सार्धमीप्सिताम् ॥१७२॥
छायां विधाय स्वगृहे स्वयमागत्य मा रुद । कृत्वा क्रोडे च प्राणेशं मायेशं बालरूपिणम् ॥१७३॥
त्यज शोकं गृहं गच्छ सुन्दरीत्थं प्रबोधिता । श्रुत्वैवं वचनं राधा कृत्वा क्रोडे च बालकम् ॥१७४॥
ददर्श पुष्पोद्यानं च वनं सद्रत्नमण्डपम् । तूर्णं वृन्दावनाद्राधा जगाम नन्दमन्दिरम् ॥१७५॥
सा मनोयायिनी देवी निमिषार्धेन नारद । संसिक्तस्निग्धमधुररसना रक्तलोचना ॥१७६॥
यशोदायै शिशुं दातुमुद्यता सेत्युवाच ह । गृहीत्वैवं शिशुं स्थूलं रुदन्तं च क्षुधातुरम् ॥१७७॥
गोष्ठे त्वत्स्वामिना दत्तं प्राप्नोमि यातनां पथि । संसिक्तं वसनं वत्से मेघाच्छन्नेऽतिदुर्दिने ॥१७८॥
पिच्छिले कर्दमोद्रेके यशोदे वोढुमक्षमा । गृहाण बालकं भद्रे स्तनं दत्त्वा प्रबोधय ॥१७९॥
गृहं चिरं परित्यक्तं यामि तिष्ठ सुखं सति । इत्युक्त्वा बालकं दत्त्वा जगाम स्वगृहं प्रति ॥१८०॥
यशोदा बालकं नीत्वा चुचुम्ब च स्तनं ददौ । बहिर्निविष्टा सा राधा स्वगृहे गृहकर्मणि ॥१८१॥
नित्यं नक्तं रतिं तत्र चकार हरिणा सह । इत्येवं कथितं वत्स श्रीकृष्णचरितं शुभम् ॥१८२॥
सुखदं मोक्षदं पुण्यमपरं कथयामि ते ॥१८३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० राधाकृष्णविवाहन-
वसंगमप्रस्तावो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

---

यहाँ आयेंगे और तुम अपने घर में अपनी छाया छोड़कर यहाँ आकर नित्य उनके साथ मनभावन रति करोगी, रोदन न करो। अपने प्राणनाथ को, जो मायेश एवं बालरूप हो गये हैं, गोद में लेकर घर जाओ।' इस प्रकार आकाशवाणी ने उस सुन्दरी को समझाया। ऐसी बात सुनकर राधा ने बालक को अपनी गोद में लेकर पुष्प-वाटिका, वन तथा उत्तम रत्नों के बने मण्डप की ओर देखा। फिर वृन्दावन से शीघ्र नन्द के भवन में आ पहुँचीं ॥१७२-१७५॥ हे नारद! मन की भाँति वेग से चलनेवाली देवी राधा आधे निमेष में वहाँ पहुँच गयीं। उनकी वाणी स्निग्ध एवं मधुर थी। आँखें लाल हो गयी थीं। वे यशोदा जी को बालक देने के लिए उद्यत होकर बोलीं—'व्रज में आपके स्वामी ने मुझे यह बालक घर पहुँचाने के लिए दिया था। किन्तु मोटे, भूखे और रोते हुए इस शिशु को लेकर मैं रास्ते भर यातना भोग रही हूँ। मेरा भीगा हुआ वस्त्र इस बच्चे के शरीर में सट गया है। आकाश बादलों से घिरा हुआ है। अत्यन्त दुर्दिन हो रहा है, मार्ग में फिसलन हो रही है। कीच बढ़ गयी है। यशोदे! मैं अब इसका बोझ ढोने में असमर्थ हो गयी हूँ। भद्रे! बालक को ले लो और स्तन देकर शान्त करो। मैंने बड़ी देर से घर छोड़ रखा है, अतः जाती हूँ। सती! तुम सुखी रहो।' ऐसा कहकर बालक देकर राधा अपने घर को चली गयीं ॥१७६-१८०॥ यशोदा ने बालक को लेकर चूमा और स्तन पिलाया। उधर राधा अपने घर में रहकर बाह्य रूप से गृह-कर्म में तत्पर दिखायी देती थीं, परन्तु रात्रि में नित्य वहाँ (वृन्दावन में) श्रीकृष्ण के साथ रति करती थीं। वत्स! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण का चरित, जो शुभ, सुखदायक, मोक्षप्रद एवं पुण्य-स्वरूप है, तुम्हें सुना दिया। अब दूसरा कह रहा हूँ ॥१८१-१८३॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारायण-नारद-संवाद में राधाकृष्ण के विवाह और नव-संगम-वर्णन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥१५॥

# अथ षोडशोऽध्यायः

नारायण उवाच

माधवो बालकैः सार्धमेकदा हलिना सह। भुक्त्वा पीत्वा च क्रीडार्थं जगाम श्रीवनं मुने ॥१॥
तत्र नानाविधां क्रीडां चकार मधुसूदनः। कृत्वा तां शिशुभिः सार्धं चालयामास गोधनम् ॥२॥
ययौ मधुवनं तस्माच्छ्रीकृष्णो गोधनैः सह। तत्र स्वादु जलं पीत्वा वने च स महाबलः ॥३॥
तत्रकर्वंत्यो बलवाञ्छ्वेतवर्णो भयंकरः। विकृताकारवदनो बकाकारश्च शैलवत् ॥४॥
दृष्ट्वा च गोकुलं गोष्ठे शिशुभिर्बलकेशवौ। यथा ह्यगस्त्यो वातापिं सर्वं जग्रास लीलया ॥५॥
बकग्रस्तं हरिं दृष्ट्वा सर्वे देवा भयान्विताः। चक्रुर्हाहेति संत्रस्ता धावन्तः शस्त्रपाणयः ॥६॥
शक्रश्चिक्षेप वज्रं च मुनेरस्थिविनिर्मितम्। न ममार बकस्तस्मात्पक्षमेकं ददाह च ॥७॥
नीहारास्त्रं शशधरः शीतार्तस्तेन दानवः। यमदण्डं सूर्यपुत्रस्तेन कुण्ठो बभूव ह ॥८॥
वायव्यास्त्रं च वायुश्च तेन स्थानान्तरं ययौ। वरुणश्च शिलावृष्टिं चकार तेन पीडितः ॥९॥
हुताशनश्च वाह्नेन पक्षांश्चैव ददाह सः। कुबेरस्यार्धचन्द्रेण च्छिन्नपादो बभूव ह ॥१०॥

---

# अध्याय १६

## बकासुर, प्रलम्बासुर तथा केशी का वध

**नारायण बोले**—एक बार कृष्ण गोप-बालकों और बलभद्र के साथ खा-पीकर खेलने के लिए श्रीवन में गये ॥१॥ वहाँ बालकों के साथ विविध खेल करके मधुसूदन ने उनके साथ गौवों को आगे बढ़ाया ॥२॥ बालकों समेत गौवों को साथ लिये भगवान् श्रीकृष्ण मधुवन में पहुँचे। महाबली भगवान् ने वहाँ उस वन में सुस्वादु जल का पान किया और एक बलवान्, श्वेतवर्ण तथा भयंकर दैत्य को देखा, जो विकृताकार मुख किये बगुले के आकार में पर्वत की भाँति खड़ा था ॥३-४॥ उसने गोष्ठ में गौवों एवं बालकों समेत कृष्ण-बलभद्र को देखकर सबको लीलापूर्वक उसी तरह लील लिया जैसे अगस्त्य ने वातापि को उदरस्थ कर लिया था ॥५॥ भगवान् को बकग्रस्त देखकर सभी देवगण भयभीत होकर 'हाय-हाय' करके चिल्लाने लगे और हाथ में शस्त्र लेकर दौड़ पड़े ॥६॥ इन्द्र ने उस पर वज्र चलाया, जो (दधीचि) मुनि की अस्थि से बना था। उससे बक तो न मरा किन्तु उसका एक पंख जल गया ॥७॥ चन्द्रमा ने अपना नीहार (हिम) अस्त्र चलाया, जिससे दानव शीत-पीड़ित होने लगा, सूर्य-पुत्र यम ने यमदण्ड चलाया, जिससे वह कुण्ठित होकर हिलने-डुलने में असमर्थ हो गया ॥८॥ वायु ने अपना वायव्य अस्त्र चलाया, जिससे वह दूसरे स्थान में चला गया। वरुण ने पत्थर बरसाये जिससे वह पीड़ित हुआ ॥९॥ अग्नि ने अपने आग्नेय अस्त्र से उसका पंख जला दिया। कुबेर के अर्द्धचन्द्र (बाण) से

ईशानस्य च शूलेन बभूव मूर्च्छितोऽसुरः । ऋषयो मुनयश्चैव कृष्णं चक्रुर्भियाऽऽशिषम् ॥११॥
एतस्मिन्नन्तरे कृष्णः प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा । ददाह दैत्यसर्वाङ्गं बाह्याभ्यन्तरमीश्वरः ॥१२॥
तत्सर्वं वमनं कृत्वा प्राणांस्तत्याज दानवः ॥१३॥
बकं निहत्य बलवाञ्छिशुभिर्गोधनैः सह । ययौ केलिकदम्बानां काननं सुमनोहरम् ॥१४॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र वृषरूपधरोऽसुरः । नाम्ना प्रलम्बो बलवान्महाधूर्तश्च शैलवत् ॥१५॥
शृङ्गाभ्यां च हरिं धृत्वा भ्रामयामास तत्र वै । दुद्रुवुर्बालकाः सर्वे रुरुदुश्च भयातुराः ॥१६॥
बलो जहास बलवाञ्ज्ञात्वा भ्रातरमीश्वरम् । बालकान्बोधयामास भयं किमित्युवाच ह ॥१७॥
तद्विषाणं गृहीत्वा च स्वयं श्रीमधुसूदनः । भ्रामयित्वा च गगने पातयामास भूतले ॥१८॥
प्राणांस्तत्याज दैत्येन्द्रो निपत्य च महीतलम् । जहसुर्बालकाः सर्वे ननृतुश्च जगुर्मुदा ॥१९॥
हत्वा प्रलम्बं श्रीकृष्णो बलेन सह सत्वरम् । गोधनं चारयामास ययौ भाण्डीरमीश्वरः ॥२०॥
गच्छन्तं माधवं दृष्ट्वा केशी दैत्येश्वरो बली । वेष्टयामास तं शीघ्रं खुरेण विलिखन्महीम् ॥२१॥
मूर्ध्नि कृत्वा हरिं तुष्टो गगनं शतयोजनम् । उत्पात्य भ्रामयामास पपात च महीतले ॥२२॥
जग्राह स हरिं पापी चर्वयामास कोपतः । स भग्नदन्तो दैत्यश्च वज्राङ्गचर्वणाद्दहो ॥२३॥

---

उसका चरण कट गया ॥१०॥ शिव के शूल से वह राक्षस मूर्च्छित हो गया । ऋषियों-मुनियों ने भयभीत होकर भगवान् कृष्ण को आशीर्वाद दिया ॥११॥ उसी बीच भगवान् कृष्ण ने अपने ब्रह्मतेज से प्रज्वलित होकर दैत्य का बाहर-भीतर सर्वांग जला दिया, जिससे उस दानव ने निगले हुए सभी लोगों का वमन कर निकाल दिया और अपने प्राणों को भी त्याग दिया ॥१२-१३॥ बली भगवान् बकासुर का हनन करके बालकों और गौवों को साथ लेकर केलि-कदम्बों के मनोहर वन में चले गये । उसी बीच वहाँ वृष (बैल) रूप धारण किये प्रलम्बासुर आ पहुँचा । वह बलवान्, महाधूर्त तथा पर्वताकार था । वह दोनों सींगों से कृष्ण को पकड़कर घुमाने लगा । सभी बालक भयभीत होकर रोदन करने लगे; किन्तु बली बलभद्र अपने भ्राता (कृष्ण) को ईश्वर जानकर हँस रहे थे और बालकों को समझा रहे थे कि तुम लोग डरते क्यों हो ? ॥१४-१६॥ इधर मधुसूदन ने स्वयं उसके सींग पकड़कर आकाश में उसे घुमाया और पृथ्वी पर पटक दिया, जिससे भूतल पर गिरते ही उस दैत्येन्द्र के प्राण निकल गये । उसे देखकर सभी बालक हँसने, नाचने और गाने लगे । श्रीकृष्ण प्रलम्बासुर को मारकर शीघ्रता से बलभद के साथ गौ चराते हुए भाण्डीर वन में जा पहुँचे । मार्ग में जाते हुए माधव को देखकर बली एवं दैत्येश्वर केशी ने उन्हें शीघ्र घेर लिया । पृथ्वी को खुर से खोदता हुआ वह प्रसन्नता से भगवान् को अपने सिर पर बैठाकर सौ योजन आकाश में उड़ गया । वहाँ चारों ओर उन्हें घुमाकर भूतल पर गिर पड़ा । उस पापी ने क्रोध से भगवान् को पकड़कर चबाना प्रारंभ किया । किन्तु भगवान् की उस वज्रांग देह को चबाने से उसके सभी दाँत टूट गये । अनन्तर श्रीकृष्ण के तेज से दग्ध होकर उसने प्राण छोड़ दिये । स्वर्ग में नगाड़े बजने लगे

श्रीकृष्णतेजसा वध्यः प्राणांस्तत्याज भूतले । स्वर्गे दुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिर्बभूव ह ॥२४॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र पार्षदा दिव्यरूपिणः । तत्राऽऽजग्मुः स्यन्दनस्था द्विभुजा पीतवाससः ॥२५॥
किरीटिनः कुण्डलिनो वनमालाविभूषिताः । विनोदमुरलीहस्ताः क्वणन्मञ्जीररञ्जिताः ॥२६॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गा गोपवेषधरा वराः । ईषद्धास्यप्रसन्नास्या भक्तानुग्रहकारकाः ॥२७॥
प्रदीप्तं रथमास्थाय रत्नसारविनिर्मितम् । भाण्डीरवनमाजग्मुर्यत्र संनिहितो हरिः ॥२८॥
दिव्यवस्त्रपरीधाना रत्नालंकारभूषिताः । प्रणमय्य हरिं स्तुत्वा जग्मुर्गोलोकमुत्तमम् ॥२९॥
मुक्त्वा देहं परित्यज्य वैष्णवाः पुरुषास्त्रयः । संप्राप्य दानवीं योनिं बभुवुः कृष्णपार्षदाः ॥३०॥

### नारद उवाच

के ते च दिव्यपुरुषा वैष्णवा दैत्यरूपिणः । कथयस्व महाभाग श्रुतं किं परमाद्भुतम् ॥३१॥

### नारायण उवाच

शृणु ब्रह्मन्प्रवक्ष्येऽहमितिहासं पुरातनम् । श्रुतं महेशवदनात्सूर्यपर्वणि पुष्करे ॥३२॥
हरेर्गुणप्रसङ्गेन कथयामास शंकरः । संपृष्टो मुनिसंघैश्च मया धर्मेण ब्रह्मणा ॥३३॥
ब्रह्मपुत्र महाभाग कथां भुवनपावनीम् । कथयामास विस्तार्य सावधानं निशामय ॥३४॥

---

और पुष्प वृष्टि आरम्भ हो गयी ॥१७-२४॥ उसी बीच दिव्यरूपधारी पार्षदगण रथ पर बैठकर वहाँ आये । उन सबके दो भुजाएँ थीं । वे पीताम्बरधारी, किरीट, कुण्डल और वनमाला से विभूषित, विनोदार्थ हाथ में मुरली रखे हुए, झंकार करते हुए, नूपुरों से सुशोभित, चन्दन-चर्चित सर्वांगवाले, उत्तम गोपवेश धारण करनेवाले, मन्दहास समेत प्रसन्नमुख और भक्तों पर अनुग्रह करनेवाले थे ॥२५-२७॥ वे रत्नों के सार भाग के बने हुए प्रदीप्त रथ पर बैठकर उस भाण्डीर वन में आये, जहाँ भगवान् विराजमान थे । दिव्य वस्त्र पहने और रत्नों के अलंकारों से भूषित वे पार्षदगण भगवान् की सप्रणाम स्तुति करके गोलोक चले गये । वे तीनों पहले के वैष्णव पुरुष थे, जो देह त्यागकर दानवी योनि को प्राप्त हुए थे । वे ही इस समय आकर श्रीकृष्ण के पार्षद हो गये ॥२८-३०॥

**नारद बोले**—महाभाग ! वे वैष्णव दिव्य पुरुष, जो दैत्यरूप हो गये थे, कौन थे ? इस बात को बताइये । यह कैसी अद्भुत बात सुनने को मिली है ? ॥३१॥

**नारायण बोले**—ब्रह्मन् ! मैं इस विषय में एक प्राचीन इतिहास कह रहा हूँ, जिसे सूर्यग्रहण के अवसर पर पुष्कर क्षेत्र में शंकर जी के मुख से सुना था, सुनो ! भगवान् के गुण-वर्णन-प्रसंग में शिव ने उस समय कहा था, जब मुनि-वृन्दों, धर्मराज, ब्रह्मा और मेरे द्वारा वे पूछे गये थे ॥३२-३३॥ ब्रह्मपुत्र ! महाभाग ! उन्होंने संसार को पवित्र करनेवाली कथा विस्तार से कही थी । तुम सावधान होकर सुनो ! गन्धमादन पर्वत

गन्धर्वेशो गन्धवाहः पर्वते गन्धमादने । महांस्तपस्विप्रवरो हरिसेवनतत्परः ॥३५॥
पुत्रा बभूवुश्चत्वारो गन्धर्वप्रवरा मुने । सस्मरुः कृष्णपादाब्जं स्वप्ने ज्ञाने दिवानिशम् ॥३६॥
ते च दुर्वाससः शिष्याः श्रीकृष्णार्चनतत्पराः । नित्यं दत्त्वा च कमलं संपूज्य तं पपुर्जलम् ॥३७॥
वसुदेवः सुहोत्रश्च सुदर्शनसुपार्श्वकौ । चत्वारो वैष्णवश्रेष्ठास्तेपुस्ते पुष्करे तपः ॥३८॥
चिरकालं तपस्तप्त्वा बभूवुः सिद्धमन्त्रिणः । ज्येष्ठो दुर्वाससो योगं संप्राप्य योगिनां वरः ॥३९॥
सिद्धश्चाकृतदारश्च प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा । सद्यो देहं परित्यज्य बभूव कृष्णपार्षदः ॥४०॥
एकदा भ्रातरस्ते च जग्मुश्चित्रसरोवरम् । पद्मानि कृष्णपूजार्थमाहर्तुमुदये रवेः ॥४१॥
पद्मानां चयनं कृत्वा गच्छतो वैष्णवान्मुने । दृष्ट्वा निबध्य संजग्मुः सर्वे शंकरकिंकराः ॥४२॥
बलिष्ठा दुर्बलान्धृत्वा जग्मुः शंकरसंनिधिम् । ते सर्वे शंकरं दृष्ट्वा प्रणेमुः शिरसा भुवि ॥४३॥
तानुवाच शिवः शीघ्रं प्रयुज्याऽऽशिषमुत्तमाम् । ईषद्धास्यप्रसन्नास्यो भक्तानुग्रहकारकः ॥४४॥

## शिव उवाच

के यूयं पद्महर्तारः पार्वत्याश्च सरोवरे । लक्षयक्षै रक्षणीयं पार्वतीव्रतहेतवे ॥४५॥
नित्यं सहस्रकमलं ददाति हरये सती । व्रते त्रैमासिके भक्त्या पतिसौभाग्यवर्धने ॥४६॥

---

पर गन्धर्वों के अधीश्वर 'गन्धवाह' रहते थे, जो महान् तपस्विश्रेष्ठ एवं भगवान् की सेवा में सदैव लगे रहते थे ॥३४-३५॥ मुने ! उनके चार गन्धर्वश्रेष्ठ पुत्र हुए, जो शयन करते या जागते समय रात-दिन श्रीकृष्ण के चरण-कमल का चिन्तन करते थे ॥३६॥ वे दुर्वासा मुनि के शिष्य होकर श्रीकृष्ण की अर्चना करने लगे । वे नित्य भगवान् को कमल पुष्प समर्पित करके पूजनोपरान्त जल पीते थे ॥३७॥ वसुदेव, सुहोत्र, सुदर्शन और सुपार्श्वक उनके नाम थे । ये चारों वैष्णवश्रेष्ठ पुष्कर क्षेत्र में तप करते थे ॥३८॥ वे चिरकाल तक तप करके मंत्रसिद्ध हो गये । ज्येष्ठ वसुदेव, जो योगियों में श्रेष्ठ था, दुर्वासा मुनि द्वारा योग प्राप्तकर सिद्ध हो गया था । उसने विवाह नहीं किया, ब्रह्म-तेज से प्रज्वलित वह सद्यः अपनी देह त्यागकर भगवान् कृष्ण का पार्षद हो गया ॥३९-४०॥ एक बार वे सब भ्रातृगण सूर्योदय होने पर भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा के निमित्त कमल लेने के लिए चित्र सरोवर को गये । मुने ! वहाँ कमलों का संचय करके जाते समय शिव के किंकरों ने उन्हें देखकर उन वैष्णवों को बाँध दिया ॥४१-४२॥ उन बलिष्ठ सेवकों ने उन दुर्बलों को पकड़कर शिव के पास पहुँचा दिया । उन लोगों ने शिव को देखकर उन्हें सिर से भूमि में प्रणाम किया । मन्दहास समेत प्रसन्नमुख और भक्तों पर कृपा करनेवाले शिव ने उन्हें शीघ्र उत्तम आशिष देकर उनसे कहा ॥४३-४४॥

**शिव बोले**—पार्वती के उस सरोवर में कमल का अपहरण करनेवाले तुम लोग कौन हो ? पार्वती के व्रत की पूर्ति के लिए एक लाख यक्ष उसकी रक्षा करते हैं । पति-सौभाग्य-वृद्धि के लिए अपने त्रैमासिक व्रत में

शिवस्य वचनं श्रुत्वा तमूचुर्वैष्णवा भिया। पुटाञ्जलियुताः सर्वे भक्तिनम्रात्मकंधराः ॥४७॥

गन्धर्वा ऊचुः

वयं गधर्वप्रवरा गन्धवाहसुता विभो। हरये कमलं दत्त्वा पिबामो जलमीश्वर ॥४८॥
वयं न विद्मो हे नाथ पार्वत्या रक्षितं सरः। गृहाण कमलं सर्वं युष्माकं च फलं कुरु ॥४९॥
न दास्यामोऽद्य कमलं पास्यामोऽद्य जलं हर। किंवा कथं न पास्यामस्तुभ्यं दत्तानि तानि च ॥५०॥
नित्यं ध्यात्वा यत्पदाब्जं पद्मेन पूजयामहे। साक्षात्तस्मै प्रदत्त्वा च पद्मं पूता वयं प्रभो ॥५१॥
एकं ब्रह्म ह्यद्वितीयं क्व देहः क्व च रूपवान्। भक्तानुग्रहतो देहो रूपभेदश्च मायया ॥५२॥
किं तु गृहाण पद्मानि त्वमेव मत्प्रभुः प्रभो। यतो नो मानसं पूर्णं तद्रूपं दर्शयाच्युत ॥५३॥
द्विभुजं कमनीयं च किशोरं श्यामसुन्दरम्। विनोदमुरलीहस्तं पीताम्बरधरं परम् ॥५४॥
एकवक्त्रं द्विनयनं चन्दनागुरुचर्चितम्। ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं रत्नालंकारभूषितम् ॥५५॥
कौस्तुभेन मणीन्द्रेण वक्षःस्थलसमुज्ज्वलम्। मयूरपिच्छचूडं च मालतीमाल्यभूषितम् ॥५६॥
पारिजातप्रसूनानां मालाराजिविभूषितम्। कोटिकन्दर्पलावण्यलीलाधाममनोहरम् ॥५७॥

---

सती पार्वती नित्य एक सहस्र कमल श्रीहरि को भक्तिभाव से समर्पित करती हैं ॥४५-४६॥ शिव की बात सुन-कर भयभीत वैष्णवों ने हाथ जोड़े और भक्ति से कन्धे झुकाकार कहा ॥४७॥

**गन्धर्व बोले**—विभो ! हम लोग गन्धर्वश्रेष्ठ एवं गन्धवाह के पुत्र हैं। ईश्वर ! हम लोग भगवान् को कमल पुष्प अर्पित करने के उपरान्त जल ग्रहण करते हैं। हे नाथ ! यह हमें नहीं मालूम था कि यह सरोवर पार्वती द्वारा सुरक्षित है। हे हर ! आप यह सभी कमल ग्रहण करें और अपने व्रत को सफल बनायें ॥४८-४९॥ आज हम लोग कमल अर्पित नहीं करेंगे, वैसे ही जल पी लेंगे। अथवा तुम्हें उन कमलों को तो अर्पित कर ही रहे हैं, इससे जलपान क्यों नहीं कर सकेंगे ? ॥५०॥ प्रभो ! जिसके चरण-कमल का नित्य ध्यानकर कमल द्वारा पूजन करते हैं, उसे साक्षात् कमल समर्पित करके हम लोग पवित्र हो गये हैं ॥५१॥ ब्रह्म तो एक और अद्वितीय है, अतः उसका शरीर और रूप कहाँ ? भक्तों पर कृपा करने के लिए वह देह धारण करता है और माया द्वारा उसका रूप-भेद होता है। अतः हे प्रभो ! इन कमलों को ग्रहण करें, क्योंकि तुम्हीं हमारे स्वामी हो। हे अच्युत ! जिससे हमारा मन परिपूर्ण हो उस रूप को दिखा दो, जो दो भुजाओं से युक्त, कमनीय, किशोर अवस्था का, साँवले रंग का, सुन्दर, विनोद के लिए हाथों में मुरली लिये हुए, पीताम्बरधारी, एक मुखवाला, दो नेत्रोंवाला, चन्दन, अगुरु के लेप से युक्त, हँसमुख, रत्नों के आभूषणों से युक्त, मणिराज कौस्तुभ की कान्ति से अत्यन्त उज्ज्वल वक्षःस्थलवाला, मोरपंख से युक्त चूड़ावाला, मालती की माला से विभूषित, पारिजात के पुष्पों की मालाओं से सुशोभित, करोड़ों कन्दर्पों के लावण्य का मनोहर लीलाधाम, मन्द मुस्कान और बाँकी चितवन द्वारा गोपियों के समूह से देखा जानेवाला, नवीन यौवन से सम्पन्न, राधा के वक्षःस्थल पर विराजमान,

गोपीसंघैर्वृश्यमानं सस्मितैर्वक्रलोचनैः । नवयौवनसंपन्नं राधावक्षःस्थलस्थितम् ॥५८॥
ब्रह्मादिभिः स्तूयमानं वन्द्यं ध्येयमभीप्सितम् । स्वात्मारामं पूर्णकामं भक्तानुग्रहकातरम् ॥५९॥
इत्युक्त्वा पुरतः शंभोस्तस्थुर्गन्धर्वपुंगवाः । श्रीकृष्णरूपश्रवणात्पुलकाङ्कितविग्रहः ॥६०॥
गन्धर्वाणां वचः श्रुत्वा शिवस्तानित्युवाच ह । श्रीकृष्णरूपश्रवणात्साश्रुपूर्णविलोचनः ॥६१॥
मयैव यूयं विज्ञाता वैष्णवप्रवरा महीम् । पूतां कर्तुं च भ्रमथ चरणाम्भोजरेणुना ॥६२॥
अहं वाञ्छा करोम्येव श्रीकृष्णभक्तदर्शने । समागमो हि साधूनां त्रिषु लोकेषु दुर्लभः ॥६३॥
पार्वत्याश्च सुराणां च सदा यूयं मम प्रियाः । आत्मनश्चाऽऽत्मभक्तेभ्यो वैष्णवाश्च प्रियाश्च नः ॥६४॥
किंतु मोघं च न भवेन्मया यत्स्वीकृतं पुरा । तच्छ्रूयतां महाभागाः पार्वतीव्रतकर्मणि ॥६५॥
सरसश्चैव पद्मानि यैर्हृतानि व्रतान्तरे । ते तूर्णमासुरीं योनिं गमिष्यन्ति न संशयः ॥६६॥
न हि श्रीकृष्णभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित् । संप्राप्य मानवीं योनिं गोलोकं यास्यथ ध्रुवम् ॥६७॥
यूयं श्रीकृष्णरूपं च प्रत्यक्ष द्रष्टुमुत्सुकाः । ध्रुवं द्रक्ष्यथ भो वत्सा वृन्दारण्ये च भारते ॥६८॥
दृष्ट्वा कृष्णं ततो मृत्युं संप्राप्य वैष्णवोत्तमाः । दिव्यं स्यन्दनमारुह्य गमिष्यथ हरेर्गृहम् ॥६९॥
अधुना वाञ्छनीयं च रूपं द्रष्टुमिहोत्सुकाः । तत्सर्वं पश्यतेत्युक्त्वा दर्शयामास तच्छिवः ॥७०॥
रूपं दृष्ट्वा साश्रुनेत्राः प्रणम्य सर्वरूपिणम् । आजग्मुर्दानवीं योनिमिति ते दानवेश्वराः ॥७१॥

---

ब्रह्मा आदि के द्वारा स्तुति किया जानेवाला, वन्दनीय, चिन्तनीय, वाञ्छनीय, स्वात्माराम, पूर्णकाम और भक्तों पर अनुग्रह के लिए कातर रहनेवाला है ॥५२-५९॥ ऐसा कहकर वे श्रेष्ठ गन्धर्व शंकर के सामने खड़े हो गये । श्रीकृष्ण के रूप का वर्णन सुनकर शिव के शरीर में रोमांच हो आया । उनके नेत्रों में आँसू भर आये । उन्होंने कहा—'मैंने यह जान लिया था कि तुम लोग श्रेष्ठ वैष्णव हो और अपने चरण-कमल की धूलि से पृथ्वी को पवित्र करने के लिए भ्रमण कर रहे हो ।' मैं भी भगवान् श्रीकृष्ण के भक्त को देखने के लिए लालायित रहता हूँ । साधु पुरुषों का समागम तीनों लोकों में दुर्लभ है ॥६०-६३॥ तुम लोग मुझे पार्वती और देवों से भी बढ़कर सदा प्रिय हो । यद्यपि मुझे वैष्णव लोग अपने और अपने भक्तों से अधिक प्रिय हैं, किन्तु मैंने पहले जो प्रतिज्ञा की है वह निष्फल नहीं हो सकेगी । महाभागो ! इसे सुनिये, मैंने कह रखा है कि पार्वती के इस व्रतानुष्ठान में इस सरोवर के कमल का जो अपहरण करेंगे, वे शीघ्र आसुरी योनि में चले जायेंगे, इसमें संशय नहीं । श्रीकृष्ण के भक्तों का कहीं भी अशुभ नहीं होता है, अतः मनुष्य-योनि प्राप्त करके तुम लोग निश्चित रूप से गोलोक चले जाओगे । तुम लोग भगवान् श्रीकृष्ण का प्रत्यक्ष दर्शन करना चाहते हो । वत्स ! भारत के वृन्दावन में उत्तम वैष्णव होने के नाते तुम लोग कृष्ण को देखकर मृत्यु प्राप्त करोगे और दिव्य रथ पर बैठकर भगवान् के घर चले जाओगे ॥६४-६९॥ सम्प्रति तुम लोग अपने जिस अभीष्ट रूप का दर्शन करना चाहते हो, वह सब देखो । इतना कहकर शिव ने उन्हें उस (कृष्ण) रूप का दर्शन कराया, जिसे देखकर गन्धर्वों के नेत्र में प्रेमाश्रु भर

वसुदेवः पुरा मुक्तः सुहोत्रश्च बकासुरः। सुदर्शनः प्रलम्बोऽयं स्वयं केशी सुपार्श्वकः ॥७२॥
हरस्य वरदानेन दृष्ट्वा रूपमनुत्तमम्। मृत्युं संप्राप्य श्रीकृष्णाज्जग्मुस्ते कृष्णमन्दिरम् ॥७३॥
इत्येवं कथितं विप्र हरेश्चरितमद्भुतम्। बककेशिप्रलम्बानां मोक्षणं मोक्षकारकम् ॥७४॥

## नारद उवाच

श्रुतं सर्वं महाभाग त्वत्प्रसादाद्यदद्भुतम्। अधुना श्रोतुमिच्छामि पार्वत्या किं कृतं व्रतम् ॥७५॥
को वाऽऽराध्यो व्रतस्यास्य किं फलं नियमश्च कः। कानि द्रव्याणि भगवन्व्रतोपयोगिकानि च ॥७६॥
कतिकालं व्रतं किं वा प्रतिष्ठायां निरूपणम्। सुविचार्यं वद विभो श्रोतुं कौतूहलं मम ॥७७॥

## नारायण उवाच

व्रतं त्रैमासिकं नाम पतिसौभाग्यवर्धनम्। आराध्यो भगवान्कृष्णो राधिकासहितो मुने ॥७८॥
विषुवे च समारम्भः समाप्तिर्दक्षिणायने। संयम्य पूर्वदिवसे कृत्वाऽवश्यं हविष्यकम् ॥७९॥
स्नात्वा वैशाखसंक्रान्त्यां संकल्प्य जाह्नवीतटे। घटे मणौ शालग्रामे जले वा पूजयेद्व्रती ॥८०॥

---

जाया। अनन्तर सर्वरूपी भगवान् को प्रणाम करके वे गन्धर्व दानवी योनि में चले गये और दानवों के अधीश्वर हुए। इस प्रकार वसुदेव पहले ही मुक्त हो गया था, सुहोत्र बकासुर था, सुदर्शन प्रलम्ब और स्वयं केशी सुपार्श्वक था। ये सभी शिव के वरदान द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण का परमोत्तम रूप देखकर उन्हीं के द्वारा मृत्यु को प्राप्त हुए और कृष्ण के लोक को चले गये। हे विप्र! इस प्रकार भगवान् का अद्भुत चरित, जिसमें बक, केशी और प्रलम्ब को मोक्ष मिला है तथा सबके लिए मोक्षप्रद है, कह दिया ॥७०-७४॥

**नारद बोले**—महाभाग! तुम्हारी कृपा से मैंने जो कुछ अद्भुत था सब सुन लिया, सम्प्रति मुझे यह सुनने की इच्छा है कि—पार्वती ने कौन-सा व्रत किया था। उस व्रत के आराध्य देव कौन हैं? उसका फल क्या है? और नियम क्या है? भगवन्! उस व्रत के लिए उपयोगी द्रव्य कौन-से हैं? व्रत का समय क्या है? तथा उसकी प्रतिष्ठा का निरूपण करें। विभो! भली-भाँति विचार करके बतायें, मुझे सुनने के लिए कुतूहल हो रहा है ॥७५-७७॥

**नारायण बोले**—मुने! यह त्रैमासिक नामक व्रत है, जो पतिविषयक सौभाग्य की वृद्धि करता है। इसके राधिका सहित भगवान् श्रीकृष्ण आराध्य देव हैं। उत्तरायण के विषुव काल में इसका आरम्भ होता है और दक्षिणायन सूर्य में इसकी समाप्ति होती है। (व्रतारम्भ के) पूर्व दिन संयमपूर्वक रहते हुए निश्चय ही हविष्य का भोजन करें और दूसरे दिन—वैशाख की संक्रान्ति में गंगा में स्नान करके गंगातट पर व्रतारम्भ का संकल्प

ध्यायेद्भक्त्या च राधेशं संपूज्य पञ्च देवताः । ध्यानं च सामवेदोक्तं निबोध कथयामि ते ॥८१॥
नवीननीरदश्यामं पीतकौशेयवाससम् । शरत्पार्वणचन्द्रास्यमीषद्धास्यसमन्वितम् ॥८२॥
शरत्प्रफुल्लपद्माक्षं मञ्जुलाञ्जनरञ्जितम् । मानसं गोपिकानां च मोहयन्तं मुहुर्मुहुः ॥८३॥
राधया दृश्यमानं च राधावक्षःस्थल स्थितम् । ब्रह्मानन्तेशधर्माद्यैः स्तूयमानमहं भजे ॥८४॥
ध्यात्वा कृष्णं च ध्यानेन तमावाह्य व्रती मुदा । ध्यायेत्तदा राधिकां च ध्यानं मध्यंदिनेर (रि) तम् ॥८५॥
राधां रासेश्वरीं रम्यां रासोल्लासरसोत्सुकाम् । रासमण्डलमध्यस्थां रासाधिष्ठातृदेवताम् ॥८६॥
रासेश्वरोरः स्थलस्थां रसिकां रसिकप्रियाम् । रसिकप्रवरां रम्यां रमां च रमणोत्सुकाम् ॥८७॥
शरद्राजीवराजीनां प्रभामोचनलोचनाम् । वक्रभ्रूभङ्गसंमु (यु) क्तां मञ्जीरेणेव रञ्जिताम् ॥८८॥
शरत्पार्वणचन्द्रास्यामीषद्धास्यमनोहराम् । चारुचम्पकवर्णाभां चन्दनेन विभूषिताम् ॥८९॥
कस्तूरीबिन्दुना सार्धं सिन्दूरबिन्दुना युताम् । चारुपत्रावलीयुक्तां वह्निशुद्धांशुकोज्ज्वलाम् ॥९०॥
सद्रत्नकुण्डलाभ्यां च सुकपोलस्थलोज्ज्वलाम् । रत्नेन्द्रसारहारेण वक्षःस्थलविराजिताम् ॥९१॥
रत्नकङ्कणकेयूरकिङ्किणीरत्नरञ्जिताम् । सद्रत्नसाररचितक्वमणन्मञ्जीररञ्जिताम् ॥९२॥
ब्रह्मादिभिश्च सेव्येन श्रीकृष्णेनैव सेविताम् । सर्वेशेन स्तूयमानां सर्वबीजां भजाम्यहम् ॥९३॥

---

करें । पुनः व्रती को चाहिए कि--कलश, मणि, शालग्राम या जल में पूजन करे । पाँचों देवों के पूजनोपरान्त गणेश भगवान् की भक्ति से ध्यान करे । उनका सामवेदोक्त ध्यान तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो ॥७८-८१॥ वे नूतन जलधर के समान श्याम हैं; पीताम्बरधारी हैं; उनका शरत्पूर्णिमा के चन्द्रमा की भाँति मन्दमुस्कान युक्त मुख है; शरत्कालीन विकसित कमल की भाँति नेत्र हैं; उनमें सुन्दर अंजन लगा है; वे गोपियों के मन को बार-बार मोहित करते हैं; राधा उनकी ओर देख रही हैं; वे राधा के वक्षःस्थल पर विराजमान हैं; ब्रह्मा, अनन्त, शिव और धर्म आदि देवता उनकी स्तुति करते हैं । मैं उनका ध्यान कर रहा हूँ ॥८२-८४॥ इस प्रकार व्रती ध्यान द्वारा कृष्ण का ध्यान करके प्रसन्नता से उनका आवाहन करे, अनन्तर राधिका का ध्यान करे । वह ध्यान यजुर्वेद की माध्यन्दिन शाखा में वर्णित है । राधा रासेश्वरी, रमणीय, रासोल्लास-रस के लिए उत्सुक, रासमण्डल के मध्य में अवस्थित, रास की अधिष्ठात्री देवी, रासेश्वर (कृष्ण) के हृदय पर स्थित, रसिक, रसिक की प्रिया, रसिकों में श्रेष्ठ, रम्य, रमा, और रमण (प्रियतम) के लिए उत्सुक हैं ॥८५-८७॥ उनके नेत्र शारदीय कमल-पंक्तियों की कान्ति को चुरानेवाले हैं । वे टेढ़ी भौंहों की भंगिमा से युक्त तथा नूपुरों से सुशोभित हैं । शरद् पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान उनका मुख मन्द मुस्कान के कारण मनोहर है । उनकी (शरीर) कान्ति मनोहर चम्पा के समान है । चन्दन, कस्तूरी की बेंदी तथा सिन्दूर-बिन्दु से उनका शृङ्गार किया गया है । (कपोलों पर) मनोहर पत्रावली की रचना से युक्त हैं । अग्निविशुद्ध वस्त्र से समुज्ज्वल हैं । उत्तम रत्नों के कुण्डलों से उनका कपोल प्रकाशित हो रहा है । रत्नेन्द्र के सार भाग से सुरचित हार से उनका वक्षःस्थल उद्भासित हो रहा है । रत्नों के बने कंकण, केयूर तथा किंकणी रत्न से उनके अंगों की शोभा हो रही है । उत्तम रत्नों के सारभाग से सुरचित एवं

इति ध्यात्वा च कृष्णेन सहितां तां च पूजयेत् । भक्त्या दत्त्वा प्रतिदिनमुपचारांश्च षोडश ।।९४।।
प्रत्येकं च पृथक्कृत्वा सर्वं दद्याद्व्रती मुदा । सहस्रकमलं दिव्यं शतमष्टोत्तरं मुने ।।९५।।
होमं कुर्याद्व्रती नित्यमष्टोत्तरशताहुतीः । दद्याद्भक्त्या च कृष्णाय स्वाहेत्युच्चार्य यत्नतः ।।९६।।
रसालस्य कदल्याश्च ह्यामं वा पक्वमेव च । नित्यमष्टोत्तरशतं दद्याद्भक्त्याऽक्षतैः फलम् ।।९७।।
नित्यं च भोजयेद्भक्त्या ब्राह्मणानां शतं मुने । होमं कुर्याद्व्रती नित्यमष्टोत्तरशताहुतीः ।।९८।।
दद्याद्भक्त्या च कृष्णाय राधिकासहिताय च । तिलेन हवनं कुर्यादाज्यमिश्रेण नारद ।।९९।।
वाद्यं च वादयेन्नित्यं कारयेद्धरिकीर्तनम् । एवं मासत्रयं कृत्वा प्रतिष्ठां तदनन्तरम् ।।१००।।
प्रतिष्ठादिवसे तत्र विधानं शृणु नारद । कमलानां च नवतिसहस्राण्यक्षतानि च ।।१०१।।
ब्राह्मणानां सहस्राणि नव विप्रेन्द्र यत्नतः । भोजयेत्परमान्नानि स्वादूनि मिष्टकानि च ।।१०२।।
फलं विंशाधिकं सप्तशतं नवसहस्रकम् । दद्यान्नानाविधं द्रव्यं नैवेद्यं सुमनोहरम् ।।१०३।।
संस्कृताग्निं च संस्थाप्य होमं कुर्याद्विचक्षणः । नवतिं च सहस्राणि हुत्वाऽऽज्येन तिलेन च ।।१०४।।
सवस्त्रं च सभोज्यं च यज्ञसूत्रफलान्वितम् । गन्धपुष्पार्चितान्भक्त्या दद्यान्नवतिलड्डुकान् ।।१०५।।
दद्यान्नवतिकुम्भांश्च शीततोयप्रपूरितान् । एवंविधं व्रतं कृत्वा दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् ।।१०६।।

---

झंकार करते हुए केयूरों से उनके चरण सुशोभित हैं । ब्रह्मा आदि देवों के सुसेव्य श्रीकृष्ण स्वयं ही उनकी सेवा करते हैं । सर्वेश्वर के द्वारा उनकी स्तुति की जाती है तथा वे सबकी कारणस्वरूपा हैं । ऐसी राधा का भजन करता हूँ ।।८८-९३।। इस प्रकार ध्यान करके श्रीकृष्ण के साथ उनकी अर्चना करे । प्रतिदिन भक्तिभाव से सोलह उपचार चढ़ाकर पूजा करे । व्रती पुरुष प्रत्येक उपचार को पृथक्-पृथक् करके सबको प्रसन्नतापूर्वक अर्पित करे । दिव्य सहस्र कमल लेकर उनकी एक सौ आठ आहुतियाँ दे । भक्तिभाव से 'कृष्णाय स्वाहा' कहकर यत्नपूर्वक आहुतियाँ देनी चाहिए ।।९४-९६।। आम और केले के कच्चे या पके फल को लेकर उसकी एक सौ आठ आहुतियाँ भक्तिभाव से दे । फल अखण्ड होने चाहिए ।।९७।। मुने ! एक सौ आठ ब्राह्मणों को नित्य भोजन कराना चाहिए । व्रती को नित्य एक सौ आठ आहुतियों का हवन करना चाहिए ।।९८।। वे आहुतियाँ राधा सहित कृष्ण को भक्तिपूर्वक देनी चाहिए । नारद ! घृत मिश्रित तिल से हवन करे ।।९९।। नित्य बाजे बजावे और हरिकीर्तन करावे । इस प्रकार तीन मास तक करने के पश्चात् व्रत की प्रतिष्ठा करे ।।१००।। नारद ! उसका विधान मैं बता रहा हूँ, सुनो । नब्बे सहस्र अखण्ड कमल-पुष्पों की आहुति दे और यत्नपूर्वक नौ हजार ब्राह्मणों को उत्तम स्वादिष्ट एवं मीठे अन्न का भोजन करावे ।।१०१-१०२।। नव सहस्र सात सौ बीस फल, अनेक भाँति के द्रव्य, अति मनोहर नैवेद्य प्रदान करे । संस्कार युक्त अग्नि के स्थापनपूर्वक हवन करे—घृत-तिल की नब्बे सहस्र आहुति डालकर ब्राह्मणों को भक्ति से वस्त्र, भोजन, फल समेत यज्ञोपवीत और गन्ध, पुष्प से शोभित नब्बे लड्डू और शीतल जल से पूर्ण नब्बे कलश समर्पित करे । इस विधान से व्रत समाप्त कर ब्राह्मण को दक्षिणा प्रदान करे । दक्षिणा का परिमाण वही

दक्षिणायाः परिमितं वेदेषु यन्निरूपितम् । वृषेन्द्राणां सहस्रं च स्वर्णशृङ्गसमन्वितम् ॥१०७॥
इत्येवं कथितं विप्र कृतं त्रैमासिकव्रतम् । विशिष्टसंततिकरं पतिसौभाग्यवर्धनम् ॥१०८॥
व्रतस्यास्य प्रभावेण सौभाग्यं शतजन्मनि । सत्पुत्रजननी सा च भवेज्जन्मशतं ध्रुवम् ॥१०९॥
कदाऽपि न भवेत्तस्या भेदश्च पतिपुत्रयोः । दासतुल्यो भवेत्पुत्रो भर्ता च स्ववचस्करः ॥११०॥
अनुक्षणं भवेद्राधाकृष्णभक्तियुता सती । भवेद्व्रतप्रभावेण प्राप्तज्ञानहरिस्मृतिः ॥१११॥
व्रतं च सामवेदोक्तं कृतं पूर्वमयाऽऽवयोः । सर्वेषां च व्रतानां च श्रेष्ठं शृणु वदामि ते ॥११२॥
स्वायंभुवस्य च मनोः शतरूपाभिधा सती । तया कृतं प्रथमतः कृत्वाऽगस्त्यं पुरोहितम् ॥११३॥
तदा कृतं देवहूत्या चाऽऽकूत्या च कृतं तदा । पुरोहितं पुलस्त्यं च कृत्वा श्रुत्युक्तया मुने ॥११४॥
चकार रोहिणी तत्तु क्रतुं कृत्वा पुरोहितम् । रतिश्चकार तद्भक्त्या गौतमस्तत्पुरोहितः ॥११५॥
अकारि तद्व्रतं भक्त्या तारया गुरुकान्तया । महासंभृतसंभारो वसिष्ठस्तत्पुरोहितः ॥११६॥
तद्दृष्ट्वा गुरुपत्न्याश्च शक्रशच्या कृतं व्रतम् । महासंभृतसंभारस्तत्पुरोधा बृहस्पतिः ॥११७॥
व्रतं चकार स्वाहा च सर्वतोऽपि विलक्षणम् । अतिसंभृतसंभारो मरीचिस्तत्पुरोहितः ॥११८॥
तद्दृष्ट्वा पार्वती ब्रह्मन्नुवाच शंकरं मुदा । पुटाञ्जलियुता देवी भक्तिनम्रात्मकंधरा ॥११९॥

---

है जो वेदों में बताया गया है । सुवर्णभूषित सींगवाले एक सहस्र वृष (बैल) देने चाहिए । विप्र ! इस भाँति मैंने त्रैमासिक व्रत तुम्हें बता दिया, जो योग्य सन्तान देनेवाला और पति-सौभाग्य की वृद्धि करनेवाला है ॥१०३-१०८॥ इस व्रत के प्रभाव से सौ जन्मों तक सौभाग्य प्राप्त होता है, सौ जन्मों तक वह उत्तम पुत्र उत्पन्न करती है और उसे कभी भी पति-पुत्र का वियोग नहीं होता है । पुत्र दास की भाँति आज्ञाकारी होता है, पति उसकी बातों का पालन करता है और स्वयं वह सती प्रतिक्षण राधा-कृष्ण की भक्ति में निमग्न रहती है । व्रत के प्रभाव से उसको ज्ञान तथा भगवान् का स्मरण होता रहता है ॥१०९-१११॥ पूर्व समय में सामवेदोक्त यह व्रत हम दोनों ने किया था । सभी व्रतों में श्रेष्ठ इस व्रत को जिन लोगों ने सम्पन्न किया उनके नाम तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो ॥११२॥ स्वायम्भुव मुनि की पत्नी शतरूपा ने अगस्त्य महर्षि को पुरोहित बनाकर सर्वप्रथम इस व्रत को सुसम्पन्न किया था । पश्चात् देवहूति और आकूति ने पुलस्त्य को पुरोहित बनाकर किया था । मुने ! रोहिणी ने भी क्रतु को पुरोहित बनाकर इसे सम्पन्न किया । रति ने भी गौतम मुनि को पुरोहित बनाकर इस व्रतानुष्ठान को भक्तिपूर्वक पूर्ण किया । गुरु बृहस्पति की पत्नी तारा ने भक्तिभाव से इसे पूरा किया, जिसके महान् आयोजन में वशिष्ठ जी पुरोहित थे । तारा के महान् आयोजन को देखकर इन्द्राणी ने भी बृहस्पति को पुरोहित रखकर बड़े धूमधाम से इसे सम्पन्न किया । स्वाहा ने इस विलक्षण व्रत को बहुत बड़ी सामग्री से युक्त मरीचि ऋषि को पुरोहित बनाकर सम्पन्न किया । ब्रह्मन् ! उसे देखकर पार्वती देवी शंकर के समक्ष दोनों हाथ जोड़कर भक्ति से कन्धे झुकाकर हर्ष से बोलीं ॥११३-११९॥

## पार्वत्युवाच

आज्ञां कुरु जगन्नाथ करोमि व्रतमुत्तमम् । आवयोरिष्टदेवस्य व्रतानां च परं व्रतम् ॥१२०॥
हरेराधनं नाथ सर्वमङ्गलकारणम् । इष्टं दत्तं श्रुतेः पाठं तीर्थं पृथ्व्याः प्रदक्षिणम् ॥१२१॥
हरेराराधनस्यापि कलां नार्हन्ति षोडशीम् । बहिरभ्यन्तरे यस्य हरिस्मृतिरनुक्षणम् ॥१२२॥
जीवन्मुक्तस्य तस्यैव मुक्तिर्भवति दर्शनात् । तस्य पादाब्जरजा सद्यः पूता वसुंधरा ॥१२३॥
तस्य दर्शनमात्रेण पुनाति भुवनत्रयम् । ब्रह्मा विष्णुश्च धर्मश्च शेषस्त्वं च गणेश्वरः ॥१२४॥
ध्यायं ध्यायं यत्पदाब्जं तेजसा तत्समो महान् । यश्च यं संततं ध्यायेत्स तमाप्नोति निश्चितम् ॥१२५॥
गुणेन तेजसा बुद्ध्या ज्ञानेन तत्समो भवेत् । कृष्णस्य स्मरणाद्ध्यानात्तपसा तस्य सेवया ॥१२६॥
मया प्राप्तो हि भगवान्स्वामी वा पुत्र एव च । प्रलब्धं लीलया सर्वं पूर्णं मन्मानसं तदा ॥१२७॥
स्वामी मे त्वादृशः पुत्रौ कार्तिकेयगणेश्वरो । पिता हिमाद्रिः कृष्णांशो मम किं दुर्लभं प्रभो ॥१२८॥
पार्वतीवचनं श्रुत्वा सुप्रीतः शंकरः स्वयम् । प्रहस्योवाच मधुरं पुलकाङ्कितविग्रहः ॥१२९॥

## महादेव उवाच

महालक्ष्मीस्वरूपाऽसि किमसाध्यं तवेश्वरि । सर्वसंपत्स्वरूपा त्वमनन्तशक्तिरूपिणी ॥१३०॥

---

**पार्वती बोलीं**—हे जगन्नाथ ! आप आज्ञा प्रदान करें, मैं भी परमोत्तम व्रत को सुसम्पन्न करना चाहती हूं, जो हम दोनों के इष्टदेव के सभी व्रतों में परमोत्तम है। हे नाथ ! भगवान् की आराधना समस्त मङ्गलों की कारणरूपा है। क्योंकि यज्ञ, दान, वेदपाठ, तीर्थ-सेवन और पृथिवी की प्रदक्षिणा ये सभी भगवान् की आराधना की सोलहवीं कला के भी समान नहीं हैं। जिसके बाहर-भीतर प्रतिक्षण भगवान् का स्मरण बना रहता है, उस जीवन्मुक्त पुरुष का दर्शन करने से ही मुक्ति प्राप्त हो जाती है। उसके चरण-कमल की धूलि से पृथिवी तुरन्त पवित्र हो जाती है ॥१२०-१२३॥ उसके दर्शन मात्र करने से तीनों लोक पवित्र हो जाते हैं। जिसके चरण-कमल का सतत ध्यान करने से ब्रह्मा, विष्णु, धर्म, शेष, तुम और गणेश तेज में उन्हीं के समान हो गये हैं। जो जिसका सतत ध्यान करता है वह उसे निश्चित ही प्राप्त करता है और गुण, तेज, बुद्धि एवं ज्ञान में उसी के समान हो जाता है। भगवान् श्रीकृष्ण के स्मरण, ध्यान, तप और उनकी सेवा करने के नाते ही मैंने भगवान् को स्वामी और पुत्र रूप में प्राप्त किया है। लीला की भाँति मुझे सब कुछ मिल गया है। तब मेरा मन परिपूर्ण है। प्रभो ! तुम्हारे समान स्वामी, गणेश और कार्तिकेय जैसे पुत्र तथा कृष्ण के अंशभूत हिमालय जैसे पिता मुझे प्राप्त हैं। अब मुझे दुर्लभ क्या है ? ॥१२४-१२८॥ पार्वती की बात सुनकर शिव जी बहुत प्रसन्न हुए, उनके शरीर में रोमाञ्च हो आया। अनन्तर उन्होंने स्वयं हंसते हुए उनसे कहा ॥१२९॥

**महादेव बोले**—हे ईश्वरि ! तुम महालक्ष्मी स्वरूप हो, तुम्हें असाध्य क्या हो सकता है ? तुम समस्त

त्वं च यस्य गृहे देवि स चैश्वर्यस्य भाजनम् । न लक्ष्मीर्यद्गृहे तस्य जीवनान्मरणं वरम् ॥१३१॥
अहं ब्रह्मा च विष्णुश्च त्वयि भक्त्या शुभप्रदे । संहारसृष्टिकाले च त्वत्प्रसादाद्वयं क्षमाः ॥१३२॥
को वा हिमालयः कोऽहं कौ कार्तिकगणेश्वरौ । त्वद्विहीना अशक्ताश्च त्वया च वयमीश्वराः ॥१३३॥
युक्ताः पतिव्रतायाश्च याः पुराऽऽज्ञाः श्रुतौ श्रुताः । गृहीत्वाऽऽज्ञामीश्वरस्य व्रतं कुरु पतिव्रते ॥१३४॥
व्रतमेतत्कृतं याभिस्ताभ्यः कुरु विलक्षणम् । सनत्कुमारो भगवान्व्रते तेऽस्तु पुरोहितः ॥१३५॥
कमलानां ब्राह्मणानां द्रव्याणां दायकोप्यहम् । कुबेरं द्रव्यकोशे च रक्षकं कुरु सुन्दरि ॥१३६॥
व्रते च दानाध्यक्षोऽहं धनदात्री च श्रीः स्वयम् । पाठको वह्निदेवश्च वरुणो जलदायकः ॥१३७॥
वस्तूनां वाहका यक्षास्तदध्यक्षः षडाननः । स्थानसंस्कारकर्त्ता च व्रतेऽत्र पवनः स्वयम् ॥१३८॥
परिवेष्टा स्वयं शक्रश्चन्द्रोऽधिष्ठापको व्रते । सूर्यश्च दाननिर्वक्ता योग्यायोग्यं यथोचितम् ॥१३९॥
व्रतोपयुक्तं यद्द्रव्यं दत्त्वा नियमितं प्रिये । ततोऽधिकं फलं पुष्पं हरये देहि सुन्दरि ॥१४०॥
व्रते नियमितान्विप्रान्भोजयित्वा ततोऽधिकान् । असंख्यान्ब्राह्मणान्देवि भक्त्या कुरु निमन्त्रणम् ॥१४१॥
समाप्तिदिवसे स्वर्णं रत्नं मुक्तां प्रवालकम् । व्रतोक्तां दक्षिणां दत्त्वा सर्वं देहि द्विजातये ॥१४२॥

---

सम्पत्तिस्वरूप एवं अनन्त शक्तिस्वरूपा हो । देवि ! तुम जिसके घर में स्थित रहो, वह ऐश्वर्य का पात्र हो जाता है । जिसके घर में लक्ष्मी नहीं है, उनका जीवित रहने से मरना ही उत्तम है ॥१३०-१३१॥ शुभप्रदे ! मैं, ब्रह्मा और विष्णु तुम्हारी ही भक्ति करते हैं और तुम्हारी कृपा से जगत् की सृष्टि, पालन एवं संहार में समर्थ हुए हैं ॥१३२-१३३॥ हिमालय, मैं और कार्तिकेय एवं गणेश्वर आदि क्या हैं ? तुम्हारे विना हम सभी व्यक्ति असमर्थ हैं और तुम्हारे सहयोग से हम सभी समर्थ हैं । अतः हे पतिव्रते ! जो पतिव्रता के योग्य है और जो प्राचीन काल से वेद में सुनी गयी है, वह आज्ञा परमेश्वर की आज्ञा है । इस ईश्वरीय आज्ञा को स्वीकार करके इस व्रत का पालन करो ॥१३४॥ अब तक जिन स्त्रियों ने इस व्रत का पालन किया है, उन सबकी अपेक्षा विलक्षण ढंग से तुम इसका अनुष्ठान करो । तुम्हारे इस व्रत में भगवान् सनत्कुमार पुरोहित रहेंगे, कमल, ब्राह्मण एवं द्रव्यों का प्रदाता मैं रहूँगा । हे सुन्दरि ! धन-कोष का रक्षक कुबेर होंगे । इस व्रत में मैं दानाध्यक्ष रहूँगा । स्वयं लक्ष्मी धन देने-वाली रहेंगी । अग्निदेव (वेद का) पाठ करेंगे । वरुण जलदाता होंगे, वस्तुओं को पहुँचाने का कार्य यक्षगण करेंगे । उनके अध्यक्ष षडानन होंगे । इस व्रत में स्थान का संस्कार (सफाई) स्वयं पवन करेंगे । इन्द्र रसोई परोसने का कार्य करेंगे । चन्द्र अधिष्ठाता होंगे । सूर्य दान का निर्वचन करेंगे; यथायोग्य की यथोचित व्याख्या करेंगे । प्रिये ! व्रत के लिए जो उपयोगी और नियमित द्रव्य हो, उसे देकर उससे भी अधिक फल-फूल तुम श्री हरि को समर्पित करो । व्रत में जितने ब्राह्मणों को भोजन कराने का नियम है, उतनों को भोजन कराकर तुम उससे भी अधिक असंख्य ब्राह्मणों को भक्तिभाव से भोजन के लिए निमन्त्रित करो ॥१३५-१४१॥ समाप्ति के दिन ब्राह्मण को सुवर्ण, रत्न, मुक्ता, मूंगा आदि जो कुछ व्रत-विधान में कहा गया है वह दक्षिणा में देकर सारा धन बांट देना ॥१४२॥ इतना

इत्युक्त्वा शंकरस्तां च कारयामास तद्व्रतम् । व्रतं चकार सा दुर्गा सर्वाभ्यश्च विलक्षणम् ॥१४३॥
इत्येवं कथितं विप्र पार्वत्या यद्व्रतं कृतम् । रत्नं वोढुमशक्ताश्च ब्राह्मणा पार्वतीव्रते ॥१४४॥
इतिहासः श्रुतः सर्वः प्रकृतं श्रृणु नारद । श्रीकृष्णबालचरितं नूत्नं नूत्नं पदे पदे ॥१४५॥
हत्वा तान्दानवेन्द्रांश्च शिशुभिः सह गोकुले । जगाम स्वगृहं कृष्णः कुबेरभवनोपमम् ॥१४६॥
सर्वेभ्यो वनवार्ता च प्रोक्ता च शिशुभिर्मुदा । श्रुत्वैवं विस्मिताः सर्वे नन्दो भयमवाप ह ॥१४७॥
आनीय वृद्धान्गोपांश्च गोपिकाः स्थविरास्तथा । युक्ति चकार तैः सार्धमालोच्य समयोचिताम् ॥१४८॥
कृत्वा युक्तिं च गोपेशस्तत्स्थानं त्यक्तुमुद्यतः । गन्तुं वृन्दावनं सर्वानुवाच तत्क्षणं मुने ॥१४९॥
नन्दाज्ञां च समाकर्ण्य ते सर्वे गन्तुमुद्यताः । गोपाश्च गोपिकाश्चैव बालका बालिकास्तथा ॥१५०॥
कृष्णेन हलिना सार्धं प्रययुर्बालका मुदा । संगीतं च प्रगायन्तो नानावेषसमन्विताः ॥१५१॥
वेणुप्रवादकाः केचित्केचिच्छृङ्गप्रवादकाः । करतालकराः केचिद्वीणाहस्ताश्च केचन ॥१५२॥
शरयन्त्रकराः केचिच्छृङ्गहस्ताश्च केचन । नवपल्लवकर्णाश्च केचिद्गोपालबालकाः ॥१५३॥
केचिन्मुकुलकर्णाश्च पुष्पकर्णाश्च केचन । नवमाल्यकराः केचित्केचिदाजानुमालिनः ॥१५४॥
केचित्पल्लवचूडाश्च पुष्पचूडाश्च केचन । गोपालबालकाः सर्वे विप्रेन्द्र नवकोटयः ॥१५५॥

---

कहकर शिव ने पार्वती से व्रत करवाया । और दुर्गा ने भी सबकी अपेक्षा विलक्षण रूप से व्रत सम्पन्न किया । विप्र ! इस प्रकार मैंने पार्वती के किये हुए व्रत को तुम्हें सुना दिया । नारद ! पार्वती के उस व्रत में ब्राह्मण लोग दक्षिणा द्रव्य का भार (अधिकता के नाते) वहन करने में असमर्थ हो गये थे, ऐसा इतिहास मैंने सुना है। अब प्रसंग की बातें सुनो ! भगवान् श्रीकृष्ण की बाल-लीला पद-पद में नवीन प्रतीत होगी ॥१४३-१४५॥ उन दानवेन्द्रों के वध करने के अनन्तर भगवान् बालकों के साथ गोकुल में कुबेर-भवन के समान अपने घर को गये । घर पहुँचने पर सभी बालकों ने वन की सभी बातें बड़ी प्रसन्नता से सबसे कह सुनायीं । इसे सुनकर सब लोगों को आश्चर्य हुआ और नन्द भयभीत हुए ॥१४६-१४७॥ उन्होंने वृद्ध गोपों और गोपियों को बुलवाकर उनके साथ सामयिक परामर्श किया । उपाय निश्चित करके गोपेश नन्द वह स्थान छोड़ने के लिए तैयार हो गये । मुने ! उस समय उन्होंने वृन्दावन में जाने के लिए सबसे कहा ॥१४८॥ नन्द की आज्ञा सुनकर वे सब जाने के लिए तैयार हो गये । गोप, गोपी और बालक-बालिकाएँ सभी प्रसन्नता से कृष्ण और बलभद्र के साथ वृन्दावन चले गये । वे लोग विविध वेश बनाकर संगीत गा रहे थे; कुछ वेणु बजा रहे थे; कुछ सींग बजा रहे थे; कोई हाथ में करताल लिये हुए थे; कोई हाथों में वीणा लिये थे; किन्हीं के हाथों में शरयंत्र थे, तो किन्हीं के सींगें । कुछ गोपाल बालकों ने अपने कानों में नवीन पल्लव पहन रखे थे ॥१४९-१५३॥ कितनों ने कानों में पुष्पों की कलियों को धारण कर लिया था और कुछ लोगों ने पुष्पों को रख लिया था । कुछ लोगों के हाथों में नवीन मालाएँ थीं । कुछ बालकों ने आजानुलम्बिनी वनमाला पहन रखी थी । कुछ बालकों ने पल्लवों तथा फूलों

जग्मुर्गोप्यो वयस्याश्च कोटिशः कोटिशो मुदा । वृद्धाश्च कोटिशस्तत्र बृहच्छ्रोण्यश्चलत्कुचाः ॥१५६॥
राधिकासहचारिण्यो बाला गोपालिका मुने । ताः सुशीलादयो भव्या नानालंकारभूषिताः ॥१५७॥
दिव्यवस्त्रपरीधानाः सस्मितास्ता ययुर्मुदा । काश्चिदारुह्य शिबिकां रथमारुह्य काश्चन ॥१५८॥
राधा स्यन्दनमारुह्य शातकौम्भपरिच्छदम् । ताभिर्युक्ता ययौ देवी रत्नालंकारभूषिता ॥१५९॥
यशोदा रोहिणी चैव रत्नालंकारभूषिता । ययौ स्यन्दनमारुह्य शातकौम्भपरिच्छदम् ॥१६०॥
नन्दः सुनन्दः श्रीदामा गिरिभानुर्विभाकरः । वीरभानुश्चन्द्रभानुर्गजस्थाः प्रययुर्मुदा ॥१६१॥
श्रीकृष्णबलदेवौ तौ रत्नालंकारभूषितौ । स्वर्णस्यन्दनमास्थाय जग्मतुः परया मुदा ॥१६२॥
कोटिशः कोटिशो गोपा वृद्धाश्च यौवनान्विताः । अश्वस्थाश्च गजस्थाश्च रथस्थाश्चैव केचन ॥१६३॥
गोपा ययुर्मुदा युक्ताश्चोद्धता नन्दकिंकराः । वृषस्था गर्दभस्थाश्च संगीततानतत्पराः ॥१६४॥
अपरा राधिकादास्यस्त्रिसप्तशतकोटयः । मुदाऽन्विताः सस्मिताश्च स्वर्णालंकारभूषिताः ॥१६५॥
काश्चित्सिन्दूरहस्ताश्च काश्चित्कज्जलवाहिकाः । काश्चित्कन्दुकहस्ताश्च काश्चित्पुत्तलि-
काकराः ॥१६६॥
भोगद्रव्यकराः काश्चित्क्रीडाद्रव्यकरा वराः । वेषद्रव्यकराः काश्चित्काश्चिन्मालाकरा वराः ॥१६७॥

---

से अपनी चोटियाँ सजा रखी थीं। विप्रेन्द्र ! नौ करोड़ गोपाल-बालक और विशाल नितम्बों तथा चंचल कुचोंवाली करोड़ों गोपियाँ, सखियाँ तथा वृद्धाएँ प्रसन्नता से जा रही थीं ॥१५४-१५६॥ मुने ! राधा की जो सुशीला आदि गोप-बालाएँ थीं, वे सुन्दरी, अनेक अलंकारों से भूषित और दिव्य वस्त्र धारण किये हुई थीं। वे मुसकराते हुए जा रही थीं। कुछ स्त्रियाँ पालकी पर बैठी हुई जा रही थीं और कुछ रथ पर बैठी हुई थीं ॥१५७-१५८॥ रत्नों के आभूषणों से सुभूषित राधा सुवर्णमय उपकरणों से युक्त रथ पर बैठकर उन सबों के साथ में जा रही थीं। यशोदा और रोहिणी भी रत्नों के अलंकारों से सुसज्जित होकर सुवर्ण-भूषित रथ पर बैठी हुई थीं। नन्द, सुनन्द, श्रीदामा, गिरिभानु, विभाकर, वीरभानु और चन्द्रभानु हाथी पर बैठे आनन्द से जा रहे थे ॥१५९-१६१॥ भगवान् श्रीकृष्ण और बलभद्र भी रत्नों के भूषणों से भूषित होकर सुवर्णमय रथ पर बैठे हुए बड़ी प्रसन्नता से जा रहे थे। करोड़ों वृद्ध एवं युवा गोपगण घोड़े, हाथी और रथ पर बैठे जा रहे थे ॥१६२-१६३॥ नन्द के उद्दण्ड भृत्यगण भी बैल एवं गधे पर बैठे गाते-बजाते जा रहे थे ॥१६४॥ राधा की अन्य २१ अरब दासियाँ भी बड़े हर्ष से जा रही थीं। वे मुसकराहट से युक्त तथा सुवर्ण के आभूषणों से विभूषित थीं। उनमें से कितनों के हाथ में सिन्दूर थे। कोई काजल लिये जा रही थीं। कोई हाथों में कन्दुक (गेंद) लिये हुई थीं तो किन्हीं के हाथों में पुतलियाँ थीं ॥१६५-१६६॥ कोई अपने हाथों में भोगद्रव्य और कोई क्रीडाद्रव्य लेकर चल रही थीं। किन्हीं के हाथों में वेश-रचना की सामग्री थी तो किन्हीं के हाथों में पुष्पमालाएँ। कोई हाथों में वस्त्र लेकर हर्ष से जा रही थीं। कोई अग्निशुद्ध वस्त्रों को पहनकर जा रही थीं। कुछ चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, कुंकुम और द्रव पदार्थ को लिये थीं।

काश्चिद्वाद्यकहस्ताश्च प्रययुर्गोपिका मुदा। वह्निशुद्धांशुकानां च वाहिकाश्चैव काश्चन ॥१६८॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रववाहिकाः । काश्चित्संगीतनिरताः काश्चिच्चित्रकथारताः ॥१६९॥
कोटिशः कोटिशो रम्याः प्रययुः शिबिकान्विताः। कोटिशः कोटिशश्चाश्वाः कोटिशः कोटिशो रथाः ॥१७०॥
कोटिशः कोटिशश्चैव शकटा द्रव्यपूरिताः। कोटिशः कोटिशश्चैव वृषेन्द्रा द्रव्यवाहकाः ॥१७१॥
कोटिशः कोटिशश्चैव दशलक्षाणि हस्तिनाम्। हस्तिपांकुशयुक्तानि ययुर्वृन्दावनं वनम् ॥१७२॥
सर्वे वृन्दावनं गत्वा दृष्ट्वा शून्यगृहं मुने। वृक्षमूले यथास्थानं तस्थुः सर्वे यथोचितम् ॥१७३॥
उवाच गोपाञ्छ्रीकृष्णो गृहांश्चेष्टतमान्व्रजाः। अद्य संतिष्ठतेत्येवं श्रुत्वा श्रीकृष्णभाषितम् ॥१७४॥
कुत्र सन्ति गृहाः कृष्णेत्येवमूचुस्तु गोपकाः। इति तेषां वचः श्रुत्वा श्रीकृष्णो वाक्यमब्रवीत् ॥१७५॥

## श्रीकृष्ण उवाच

अत्र स्थाने गृहाः सन्ति प्रसन्ना देवनिर्मिताः। देवप्रीतिं विना शक्ता न हि द्रष्टुं च केचन ॥१७६॥
अद्य तिष्ठत गोपालाः संपूज्य वनदेवताः। प्रातर्यूयं गृहान्रम्यान्द्रक्ष्यथाद्य ध्रुवं मुदा ॥१७७॥
धूपदीपादिनैवेद्यैर्बलिभिः पुष्पचन्दनैः। देवीं च वटमूलस्थां पूजां कुरुत चण्डिकाम् ॥१७८॥

---

कुछ संगीत में मग्न थीं। कुछ चित्र-विचित्र कथाओं में लीन थीं। इस प्रकार करोड़ों-करोड़ों सुन्दरी गोपियाँ पालकी द्वारा वहाँ गयीं। करोड़ों घोड़े, करोड़ों रथ और करोड़ों गाड़ियाँ द्रव्यों से भरी जा रही थीं। करोड़ों बैल द्रव्यों से लदे जा रहे थे, करोड़ों हाथी थे, जो महावतों और अंकुशों से युक्त थे। वे सब वृन्दावन को जा रहे थे। वृन्दावन में पहुँचकर सब लोग उसे गृह-शून्य देखकर वहीं वृक्षों के मूल में यथोचित रीति से यथास्थान ठहर गये। उस समय अत्यन्त अभीष्ट गृह तथा गौओं के ठहरने के स्थान बताते हुए श्रीकृष्ण ने गोपों से कहा—'आज अवस्थित हो हो जाओ'। श्रीकृष्ण की ऐसी बात सुनकर गोपों ने कहा—'कृष्ण! गृह कहाँ हैं?' उनकी बात सुनकर श्रीकृष्ण ने कहा ॥१६७-१७५॥

**श्रीकृष्ण बोले**—इस स्थान पर बहुत-से स्वच्छ गृह हैं, जिन्हें देवों ने बनाया है किन्तु देवों की प्रसन्नता के बिना उन्हें कोई देख नहीं सकते ॥१७६॥ अतः—हे गोपालगण! वनदेवता की पूजा करके आज यहीं निवास किया जाये। प्रातःकाल तुम लोग हर्ष से उन रमणीक घरों को देखोगे। धूप, दीप, नैवेद्य, भेंट, पुष्प एवं चन्दन के द्वारा इस वटवृक्ष के मूल में रहनेवाली चण्डिका देवी की सभी लोग अर्चना करो। कृष्ण की बात सुनकर

कृष्णस्य वचनं श्रुत्वा गोपाः संपूज्य देवताम् । भुक्त्वा भोगान्दिने रात्रौ तत्रैव सुषुपुर्मुदा ॥१७९॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० बकप्रलम्बककेशिवधपूर्वक-
वृन्दावनगमनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

# अथ सप्तदशोऽध्यायः

## नारायण उवाच

सुप्तेषु व्रजनन्देषु नक्तं वृन्दावने वने । सुनिद्रिते च निद्रेशे मातृवक्षःस्थलस्थिते ॥१॥
निद्रितासु च गोपीषु रम्यतल्पस्थितासु च । यूनां च सुखसंयोगानुषक्तमानसासु च ॥२॥
कासुचिच्छिशुयुक्तासु सखीयुक्तासु कासुचित् । कासुचिच्छकटस्थासु स्यन्दनस्थासु कासुचित् ॥३॥
पूर्णेन्दुकौमुदीयुक्ते स्वर्गादपि मनोहरे । नानाप्रकारकुसुमवायुना सुरभीकृते ॥४॥
सर्वप्राणिनि निश्चेष्टे मुहूर्ते पञ्चमे गते । तत्राऽऽजगाम भगवाञ्छिल्पिनां च गुरोर्गुरुः ॥५॥

---

गोपों ने दिन में देवी की पूजा करके भोजन आदि किये और रात्रि में हर्ष से वहीं शयन किया ॥१७७-१७९॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारायण-नारद के संवाद में बक, प्रलम्ब और केशी दैत्य के वधपूर्वक वृन्दावन गमन वर्णन नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥१६॥

# अध्याय १७

## वृन्दावन-वर्णन

**नारायण बोले**—वृन्दावन में रात्रि के समय व्रजवासी और नन्द के सो जाने पर माता की गोद में निद्रा के स्वामी श्रीकृष्ण के निद्रामग्न होने पर एवं रम्य शय्या पर युवा पुरुषों के सुख-संयोग में आसक्त मनवाली गोपियों के, जिनमें से कोई शिशुओं को गोद में लेकर, कोई सखियों के साथ सटकर, कोई छकड़ों पर और कोई रथों पर स्थित थीं, सो जाने पर और पूर्ण वृन्दावन के चन्द्रिका से युक्त, स्वर्ग से भी मनोहर, नाना प्रकार के पुष्पों से संस्पृष्ट वायु से सुगन्धित हो जाने पर, सभी प्राणियों के निश्चेष्ट हो जाने पर तथा (रात्रिकालिक) पञ्चम मुहूर्त के बीत जाने पर शिल्पियों के गुरु के भी गुरु भगवान् विश्वकर्मा वहाँ आये ॥१-५॥ उन्होंने दिव्य एवं सूक्ष्म

बिभ्रद्दिव्यांशुकं सूक्ष्मं रत्नमाल्यं मनोहरम् । रत्नालंकारमतुलं श्रीमन्मकरकुण्डलम् ॥६॥
ज्ञानेन वयसा वृद्धो दर्शनीयः किशोरवत् । अतीव सुन्दरः श्रीमान्कामदेवसमप्रभः ॥७॥
विशिष्टशिल्पनिपुणैः सार्धं शिल्पित्रिकोटिभिः । मणिरत्नैर्हेमरत्नैर्लोहास्त्रयुतहस्तकैः ॥८॥
आजग्मुर्यक्षनिकराः कुबेरवनकिंकराः । स्फाटिका रत्नवेषाश्च दीर्घस्कन्धाश्च केचन ॥९॥
पद्मरागकराः केचिदिन्द्रनीलकरा वराः । केचित्स्यमन्तककराश्चन्द्रकान्तिकरास्तथा ॥१०॥
सूर्यकान्तकराश्चान्ये प्रभाकरकरा वराः । केचित्परशुहस्ताश्च लोहसारकरा वराः ॥११॥
केचिच्च गन्धसाराणां मणीन्द्राणां च वाहकाः । केचिच्चामरहस्ताश्च केचिद्दर्पणवाहकाः ॥१२॥
स्वर्णपात्रघटादीनां वाहकाश्चैव केचन । विश्वकर्मा च सामग्रीं दृष्ट्वा तु सुमनोहराम् ॥१३॥
नगरं कर्तुमारेभे ध्यात्वा कृष्णं शुभेक्षणम् । पञ्चयोजनविस्तीर्णं भारते श्रेष्ठमुत्तमम् ॥१४॥
पुण्यक्षेत्रं तीर्थसारमतिप्रियतमं हरेः । तत्रस्थानां मुमुक्षूणां परं निर्वाणकारणम् ॥१५॥
गोलोकस्य च सोपानं सर्वेषां वाञ्छितप्रदम् । चतुष्कोटिचतुःशालं तत्रैवातिमनोहरम् ॥१६॥
कपाटस्तम्भसोपानसहितैः प्रस्तरैर्वरैः । चित्रपुत्तलिकापुष्पकलशोज्ज्वलशेखरम् ॥१७॥

---

वस्त्र पहन रखा था । वे रत्नों की माला धारण करने से अति मनोहर, रत्नों के आभूषणों से भूषित, अनुपम, श्रीसम्पन्न, मकराकारकुण्डलधारी, ज्ञान-वयोवृद्ध, किशोर के समान दर्शनीय, कामदेव के समान कान्तिवाले, श्रीमान् एवं अत्यन्त सुन्दर थे ॥६-७॥ उनके साथ शिल्प का विशेष ज्ञान रखनेवाले तीन करोड़ कारीगर थे । उन सबके हाथों में मणिरत्न, हेमरत्न तथा लौह-निर्मित अस्त्र थे । कुबेर-वन के किंकर यक्ष-समुदाय भी वहाँ आ पहुँचे । वे स्फटिकमणि तथा रत्नमय अलंकारों से विभूषित थे । किन्हीं-किन्हीं के कन्धे बहुत बड़े थे । किन्हीं के हाथों में पद्मरागमणि के ढेर थे, तो किन्हीं के हाथों में इन्द्रनीलमणि थे । कुछ यक्षों ने अपने हाथों में स्यमन्तक मणि ले रखी थी और कुछ यक्षों ने चन्द्रकान्तमणि । अन्य बहुत-से यक्षों के हाथों में सूर्यकान्तमणि और चन्द्रकान्त मणि के ढेर प्रकाशित हो रहे थे । किन्हीं के हाथों में फरसे थे तो किन्हीं के हाथों में लोहसार । कोई गन्ध-सार तथा श्रेष्ठमणि लेकर आये थे तो किन्हीं के हाथ में चँवर थे और कुछ लोग दर्पण, स्वर्णपात्र और स्वर्ण-कलश आदि के बोझ लेकर आये थे । विश्वकर्मा ने अत्यन्त मनोहर सामग्री को देखकर सुन्दर नेत्रोंवाले श्रीकृष्ण का ध्यान करके नगर-निर्माण का कार्य प्रारम्भ कर दिया । भारतवर्ष का वह सुन्दर और श्रेष्ठ नगर पाँच योजन विस्तृत था । तीर्थों का सारभूत वह पुण्य क्षेत्र श्री हरि को अत्यन्त प्रिय है । वहाँ मोक्षाभिलाषी होकर रहनेवालों को वह निर्वाण की प्राप्ति करनेवाला है ॥८-१५॥ वह गोलोक के लिए सोपानरूप तथा सभी लोगों को अभीष्ट प्रदान करनेवाला है । वहाँ चार-चार कमरेवाले चार करोड़ भवन बनाये गये थे, जिससे वह नगर अत्यन्त रमणीक प्रतीत होता था ॥१६॥ उत्तम पत्थरों से बनाया गया वह विशाल नगर किवाड़ों, खंभों और सोपानों से सुशोभित था । चित्रमयी पुत्तलिकाओं, पुष्पों और कलशों से वहाँ के भवनों के शिखर भाग अत्यन्त प्रकाशमान जान पड़ते थे ॥१७॥

शैलजाश्मविनिर्माणवेदिप्राङ्गणसंयुतम् । शिलाप्राकारसंयुक्तं प्रचकाराथ लीलया ॥१८॥
यथोचितबृहत्क्षुद्रद्वारद्वयसमन्वितम् । स्फाटिकाकारमणिभिर्मुदा युक्तो विनिर्ममे ॥१९॥
सोपानैर्गन्धसाराणां स्तम्भैः शङ्कुविनिर्मितैः । कपाटैर्लोहसाराणां राजतैः कलशोज्ज्वलैः ॥२०॥
वज्रसारनिर्माणप्राकारैः परिशोभितम् । कृत्वाऽऽश्रमं बल्लवानां यथास्थानं यथोचितम् ॥२१॥
वृषभान्वालयं रम्यं कर्तुमारब्धवान्पुनः । प्राकारपरिखायुक्तं चतुर्द्वारान्वितं परम् ॥२२॥
चारुविंशच्चतुःशालं महामणिविनिर्मितम् । रत्नसारविकारैश्च तूलिकानिकरैर्वरैः ॥२३॥
सुवर्णकारमणिभिरारोहैरतिसुन्दरैः । लोहसारकपाटैश्च शोभितं चित्रकृत्रिमैः ॥२४॥
मन्दिरे मन्दिरे रम्ये सुवर्णकलशोज्ज्वलम् । तदाश्रमैकदेशे च निर्जनेऽतिमनोहरे ॥२५॥
चारुचम्पकवृक्षाणामुद्यानाभ्यन्तरे मुने । संभोगार्थं कलावत्याः स्वामिना सह कौतुकात् ॥२६॥
विशिष्टेन मणीन्द्रेण चकाराट्टालिकालयम् । युक्तं नवभिरारोहैरिन्द्रनीलविनिर्मितैः ॥२७॥
स्थूणाकपाटनिकरैर्गन्धसारविकारजैः । अत्युच्छ्रितं मनोरम्यं सर्वतोऽपि विलक्षणम् ॥२८॥

### नारद उवाच

कलावती का भगवन्कस्य पत्नी मनोहरा । यत्नतो यद्गृहं रम्यं निर्ममे सुरकारुणा ॥२९॥

---

पर्वतीय प्रस्तर-खण्डों से निर्मित वेदिकाएँ और प्रांगण उस नगर के भवनों की शोभा बढ़ा रहे थे। प्रस्तर-खण्डों के परकोटों से सारा नगर घिरा हुआ था। विश्वकर्मा ने खेल-खेल में ही सारे नगर की रचना कर डाली॥१८॥ प्रत्येक गृह में यथायोग्य बड़े-छोटे दो दरवाजे थे। हर्ष से युक्त विश्वकर्मा ने स्फटिक जैसे मणियों से उस नगर के भवनों का निर्माण किया था॥१९॥ गन्धसार, (चन्दन) निर्मित सोपानों, शंकु-(कील) रचित खंभों लोहसार (फौलाद की जंजीर) से बने हुए किवाड़ों, चाँदी के समुज्ज्वल कलशों तथा वज्रसार-निर्मित चहारदीवारियों से उस नगर की अपूर्व शोभा हो रही थी। वहाँ गोपों के लिए यथास्थान और यथायोग्य निवास-स्थान का निर्माण करके विश्वकर्मा ने वृषभानु का सुरम्य गृह बनाना आरम्भ किया। उसके चारों ओर चहारदीवारियाँ और खाइयां बनी थीं। चारों दिशाओं में चार दरवाजे थे॥२०-२२॥ चार-चार कमरों से युक्त बीस भव्य भवन बनाये गये थे। उस सम्पूर्ण भवन का निर्माण महामूल्य मणियों से किया गया था। रत्नसार-रचित सुरम्य तूलिकाओं सुवर्णाकार मणियों द्वारा निर्मित अत्यन्त सुन्दर सोपानों, लोहसार के बने हुए किवाड़ों तथा कृत्रिम चित्रों से वृषभानु-भवन की बड़ी शोभा हो रही थी। वहाँ का प्रत्येक सुरम्य मन्दिर सोने के कलशों से देदीप्यमान था। उस आश्रम के एक अत्यन्त मनोहर निर्जन प्रदेश में, जो मनोहर चम्पा-वृक्षों के उद्यान के भीतर था पति सहित कलावती के उपभोग के लिए विश्वकर्मा ने कौतूहलवश एक ऐसी अट्टालिका बनायी थी, जिसका निर्माण विशिष्ट श्रेणी के श्रेष्ठ मणियों द्वारा हुआ था। उसमें इन्द्रनीलमणि के बने हुए नौ सोपान थे। गन्धसार निर्मित खम्भों और कपाटों से वह अत्यन्त ऊँचा मनोरम भवन सब ओर से विलक्षण था॥२३-२८॥

**नारद बोले**—भगवन्! यह मनोहारिणी कलावती कौन थी और किसकी धर्मपत्नी थी, जिसके लिए विश्वकर्मा ने यत्नपूर्वक सुन्दर भवन का निर्माण किया?॥२९॥

### नारायण उवाच

पितॄणां मानसी कन्या कमलांशा कलावती। सुन्दरी वृषभानस्य पतिव्रतपरायणा ॥३०॥
तस्याश्च तनया राधा कृष्णप्राणाधिका प्रिया। श्रीकृष्णार्धांशसंभूता तेन तुल्या च तेजसा ॥३१॥
तस्याश्च चरणाम्भोजरजःपूता वसुंधरा। यस्यां च सुदृढां भक्तिं सन्तो वाञ्छन्ति संततम् ॥३२॥

### नारद उवाच

पितॄणां मानसीं कन्यां व्रजे तिष्ठन्कथं मुने। मानवः केन पुण्येन कथमाप सुदुर्लभाम् ॥३३॥
वृषभानुर्व्रजपतिः पुराऽऽसीत्को महानहो। कस्य वा केन तपसा राधा कन्या बभूव ह ॥३४॥

### सूत उवाच

नारदस्य वचः श्रुत्वा महर्षिर्ज्ञानिनां वरः। प्रहस्योवाच प्रीत्या तमितिहासं पुरातनम् ॥३५॥

### नारायण उवाच

बभूवुः कन्यकास्तिस्रः पितॄणां मानसात्पुरा। कलावतीरत्नमालामेनकाश्चातिदुर्लभाः ॥३६॥

---

**नारायण बोले**—यह कलावती कमला के अंश से उत्पन्न एवं पितरों की मानसी (मन से उत्पन्न) कन्या है, जो पतिव्रत धर्म में लीन तथा वृषभानु की प्रिया है। उसी की पुत्री राधा है, जो कृष्ण को प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं। वे श्रीकृष्ण के आधे भाग से उत्पन्न हुई हैं और उन्हीं के समान तेजस्विनी हैं। उनके चरण-कमलों के रज से पृथ्वी पवित्र हो गयी है, और सन्त लोग उनकी सुदृढ़ भक्ति को निरन्तर चाहते हैं ॥३०-३२॥

**नारद बोले**—मुने ! व्रज में रहनेवाले मनुष्य ने उस अति दुर्लभ पितरों की मानसी कन्या को किस पुण्य द्वारा कैसे प्राप्त किया ? महान् व्रज-पति वृषभानु पूर्वजन्म में कौन थे ? किस तप से राधा उनकी कन्या हुई ? ॥३३-३४॥

**सूत बोले**—नारद की बात सुनकर ज्ञानिप्रवर महर्षि नारायण हँसे और बड़े प्रेम से उस प्राचीन इतिहास को कहने लगे ॥३५॥

**नारायण बोले**—पूर्व समय पितरों के मन द्वारा—कलावती, रत्नमाला और मेनका—नाम की तीन कन्याएँ उत्पन्न हुई थीं, जो अत्यन्त दुर्लभ थीं। उनमें से कामुकी रत्नमाला ने (पतिरूप में) राजा जनक का वरण

रत्नमाला च जनकं वरयामास कामुकी । शैलाधिपं हरेरंशं मेनका सा हिमालयम् ॥३७॥
दुहिता रत्नमालाया अयोनिसंभवा सती । श्रीरामपत्नी श्रीः साक्षात्सीता सत्यपरायणा ॥३८॥
कन्यका मेनकायाश्च पार्वती सा पुरा सती । अयोनिसंभवा सा च हरेर्माया सनातनी ॥३९॥
सा लेभे तपसा देवं हरं नारायणात्मकम् । कलावती सुचन्द्रं च मनुवंशसमुद्भवम् ॥४०॥
स च राजा हरेरंशस्तां संप्राप्य कलावतीम् । मेने गुणवतां श्रेष्ठमात्मानमतिसुन्दरम् ॥४१॥
अहो रूपमहो वेषमहो अस्या नवं वयः । सुकोमलाङ्गं ललितं शरच्चन्द्राधिकाननम् ॥४२॥
गमनं दुर्लभमहो गजखञ्जनगञ्जनम् । कटाक्षैर्मोहितुं शक्ता मुनीन्द्राणां च मानसम् ॥४३॥
श्रोणियुग्मं सुललितं रम्भास्तम्भविनिर्मितम् । स्तनद्वयं सुकठिनमतिपीनोन्नतं मुने ॥४४॥
नितम्बयुगलं चारु रथचक्रविनिर्मितम् । हस्तौ पदौ च रक्तौ च पक्वबिम्बफलाधरम् ॥४५॥
पक्वदाडिमबीजाभं दन्तपङ्क्तिमनोहरम् । शरन्मध्याह्न पद्मानां प्रभामोचनलोचनम् ॥४६॥
भूषणैर्भूषितं रूपं कृतं सद्रत्नभूषणम् । इतीव मत्वा दृष्ट्वा च कामबाणप्रपीडितः ॥४७॥
दिव्यं स्यन्दनमारुह्य कामुक्या सह कामुकः । क्रीडां चकार रहसि स्थाने स्थाने मनोहरे ॥४८॥
रम्यायां मलयद्रोण्यां चन्दनागुरुवायुना । चारुचम्पकपुष्पाणां तल्पे रतिसुखावहे ॥४९॥

---

किया और मेनका ने हरि के अंश से उत्पन्न शैलाधीश्वर हिमालय को पति स्वीकार किया। रत्नमाला की कन्या सत्यपरायणा सीता थीं, जो अयोनिजा, साक्षात् श्री एवं श्री रामचन्द्र की पत्नी थीं। मेनका की पुत्री सती पार्वती थीं। वह भी अयोनिजा तथा हरि की माया सनातनी थीं। उन्होंने तप करके नारायणस्वरूप भगवान् शिव को पति रूप में प्राप्त किया। कलावती ने मनुवंश में समुत्पन्न राजा सुनन्द को अपना पति बनाया। भगवान् के अंश से उत्पन्न उस राजा ने कलावती को प्राप्त करके अपने को श्रेष्ठ गुणी और अति सुन्दर माना। वे कलावती की प्रशंसा करते हुए मन-ही-मन कहते थे––इसका रूप अद्भुत है, वेश आश्चर्यजनक है, नयी अवस्था कैसी सुन्दर है। इसके अंग अति कोमल और सुन्दर हैं, शारदीय चन्द्रमा से अधिक सुन्दर इसका मुख है। इसकी दुर्लभ गति (चाल) गजराज और खञ्जन को भी लज्जित करनेवाली है। यह अपने कटाक्षों से मुनीन्द्रों के मन को भी मोहित करने में समर्थ है। अति सुन्दर युगल श्रोणीभाग जैसे कदली-स्तम्भों से बना हो। मुने! इसके दोनों स्तन अति कठोर, अति स्थूल और उन्नत हैं, रथ के चक्के की भाँति सुन्दर नितम्ब हैं, हाथ और चरण रक्तवर्ण हैं, ओष्ठ पके बिम्बाफल के समान हैं, दाँतों की पंक्तियाँ पके अनारदाने की भाँति अति मनोहर हैं। इसके नेत्र शरत्काल के मध्याह्न कमल की कान्ति को चुरानेवाले हैं। भूषणों से भूषित इसके रूप ने उत्तम रत्नों को भूषित किया है। ऐसा मानकर और देखकर राजा काम-बाणों से अत्यन्त पीड़ित हो गया ॥३६-४७॥ अनन्तर दिव्य रथ पर बैठकर उस कामुक राजा ने कामुक कलावती को साथ लिये प्रत्येक मनोहर स्थान में जाकर एकान्त में उसके साथ सम्भोग किया। रमणीक मलयाचल की तलहटी में, जहाँ चन्दन और अगुरु के सुगन्ध से भरा वायु बह रहा था, सुन्दर चम्पा-पुष्पों की रतिसुखदायिनी शय्या पर, मालती एवं मल्लिका

मालतीमल्लिकानां च पुष्पोद्यानेऽतिपुष्पिते। पुष्पभद्रानदीतीरे निर्जने केतकीवने ॥५०॥
पश्चिमाब्धितटान्तःस्थकानने जन्तुवर्जिते। नन्दने मन्दरद्रोण्यां कावेरीतीरजे वने ॥५१॥
शैले शैले सुरम्ये च नद्यां नद्यां नदे नदे। द्वीपे द्वीपे तु रहसि स रेमे वामया सह ॥५२॥
नवसंगमसंयोगाद्‌बुबुधे न दिवानिशम्। एवं वर्षसहस्रं तद्‌गतमेव मुहूर्तवत् ॥५३॥
कृत्वा विहारं सुचिरं स विरक्तो बभूव ह। जगाम तपसे विन्ध्यशैलं तीर्थं तया सह ॥५४॥
भारतेऽतिप्रशस्यं च पुलहाश्रममुत्तमम्। तपस्तेपे नृपस्तत्र दिव्यवर्षसहस्रकम् ॥५५॥
मोक्षाकाङ्क्षी निःस्पृहश्च निराहारः कृशोदरः। मूर्च्छामाप मुनिश्रेष्ठ ध्यात्वा कृष्णपदाम्बुजम् ॥५६॥
तद्‌गात्रव्याप्तवल्मीकं साध्वी दूरं चकार सा। निश्चेष्टितं पतिं दृष्ट्वा त्यक्तं प्राणैश्च पञ्चभिः ॥५७॥
मांसशोणितरिक्तं तमस्थिसंसक्तविग्रहम्। उच्चै रुरोद शोकार्ता निर्जने तु कलावती ॥५८॥
हे नाथ नाथेत्युच्चार्य कृत्वा वक्षसि मूर्च्छितम्। विललाप महादीना पतिव्रतपरायणा ॥५९॥
दृष्ट्वा नृपं निराहारं कृशं धमनिसंयुतम्। श्रुत्वा च रोदनं तस्याः कृपया च कृपानिधिः ॥६०॥
आविर्बभूव जगतां विधाता कमलोद्भवः। क्रोडे कृत्वा च तं तूर्णं रुरोद भगवान्विभुः ॥६१॥
ब्रह्मा कमण्डलुजलेनाऽऽसिच्य नृपविग्रहम्। जीवं संचारयामास ब्रह्मज्ञानेन ब्रह्मवित् ॥६२॥

---

के अतिविकसित वाटिका में, पुष्पभद्रा नदी के तट पर, केतकी के निर्जन वन में, पश्चिमसमुद्रतटवर्ती जीव-जन्तु-शून्य बंगाल में, मन्दराचल पर्वत की तलहटी में स्थित नन्दन वन में, कावेरी नदी के तट पर स्थित वन में, इस प्रकार प्रत्येक रमणीक पर्वत पर प्रत्येक नदी और प्रत्येक नद में तथा प्रत्येक द्वीप के एकान्त स्थान में सुन्दरी के साथ सुख-सम्भोग किया ॥४८-५२॥ उस नवीन समागम में उसे दिन-रात का कुछ भी ज्ञान न रहा। इस प्रकार सहस्र वर्ष मुहूर्त (घड़ी) की भाँति बीत गये ॥५३॥ अत्यन्त चिरकाल तक विहार करने के उपरान्त राजा रति-क्रीड़ा करने से विरक्त हो गया और भारत में अति प्रशस्त एवं पुलह ऋषि के परमोत्तम आश्रम से युक्त विन्ध्याचल तीर्थ में तप करने के लिए स्त्री सहित चला गया। वहाँ पहुँचकर राजा ने मोक्ष की अभिलाषा से इच्छारहित, निराहार तथा क्षीण शरीर होकर दिव्य सहस्र वर्ष तक तप किया। मुनिश्रेष्ठ! भगवान् कृष्ण के चरणकमल का ध्यान करते हुए उस राजा को मूर्च्छा आ गयी ॥५४-५६॥ उनके शरीर पर जो बाँबी छा गयी थी, उसे उनकी पतिव्रता पत्नी ने दूर किया, किन्तु पति को निश्चेष्ट पाँचों प्राणों से शून्य, मांस-रक्त से रहित तथा केवल अस्थि चर्मावशिष्टमात्र देखकर शोकाकुल कलावती उस निर्जन प्रदेश में ऊँचे स्वर से रोदन करने लगीं ॥५७-५८॥ उस मूर्च्छित राजा को अपनी गोद में रखकर—'हा नाथ! हा नाथ!' कहती हुई वह महादीना पतिव्रता विलाप करने लगी। राजा आहार छोड़ देने के कारण सूख गये हैं, उनके शरीर की नस-नाड़ियाँ दिखायी देती हैं—यह देख तथा कलावती का विलाप सुनकर कृपानिधान कमलजन्मा जगत्स्रष्टा ब्रह्मा कृपापूर्वक वहाँ प्रकट हो गये। वे राजा को शीघ्र गोद में उठाकर रोदन करने लगे; फिर ब्रह्मवेत्ता ब्रह्मा ने अपने कमण्डलु-जल से राजा के शरीर को सींचकर ब्रह्मज्ञान द्वारा उसमें जीव का संचार कर दिया। चेतना

नृपेन्द्रश्चेतनां प्राप्य पुरो दृष्ट्वा प्रजापतिम् । प्रणनाम च तं दृष्ट्वा तं च कामसमप्रभम् ॥६३॥
तमुवाचेति संतुष्टो वरं वृणु यथेप्सितम् । स विधेर्वचनं श्रुत्वा वव्रे निर्वाणमीप्सितम् ॥६४॥
दयानिधे त्वं ददया वरं दातुं समुद्यतः । प्रसन्नवदनः श्रीमान्स्मेराननसरोरुहः ॥६५॥
कृत्वाऽनुमानं मनसि शुष्ककण्ठोष्ठतालुका । तमुवाच सती त्रस्ता वरं दातुं समुद्यतम् ॥६६॥

कलावत्युवाच

यदि मुक्तिं नृपेन्द्राय ददासि कमलोद्भव । अतोऽबलाया हे ब्रह्मन्का गतिर्भविता वद ॥६७॥
विना कान्तं च कान्तानां का शोभा चतुरानन । व्रतं पतिव्रतायाश्च पतिरेव श्रुतौ श्रुतम् ॥६८॥
गुरुश्चाभीष्टदेवश्च तपोधर्ममयः पतिः । सर्वेषां च प्रियतरो न बन्धुः स्वामिनः परः ॥६९॥
सर्वधर्मात्परा ब्रह्मन्पतिसेवा सुदुर्लभा । स्वामिसेवाविहीनायाः सर्वं तन्निष्फलं भवेत् ॥७०॥
व्रतं दानं तपः पूजा जपहोमादिकं च यत् । स्नानं च सर्वतीर्थेषु पृथिव्याश्च प्रदक्षिणम् ॥७१॥
दीक्षा च सर्वयज्ञेषु महादानानि यानि च । पठनं सर्ववेदानां सर्वाणि च तपांसि च ॥७२॥
वेदज्ञानां ब्राह्मणानां भोजनं देवसेवनम् । एतानि स्वामिसेवायाः कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥७३॥
स्वामिसेवाविहीना या वदन्ति स्वामिने कटुम् । पतन्ति कालसूत्रे च यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥७४॥

---

प्राप्त होने पर राजा ने अपने सामने ब्रह्मा को देखकर उन्हें प्रणाम किया। प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने भी कामदेव के समान सुन्दर उस राजा से कहा—'यथेच्छ वर माँगो'। ब्रह्मा की बात सुनकर राजा ने कहा—'दयानिधे! आप श्रीमान् और विकसित कमल की भाँति प्रसन्नमुख होकर यदि दयावश मुझे वर प्रदान करने के लिए तैयार हैं, तो मुझे अभीष्ट निर्वाण पद (मोक्ष) प्रदान करने की कृपा करें।' इसका मन-ही-मन अनुमान करके रानी के कण्ठ ओंठ और तालु सूख गये। उस पतिव्रता ने भयभीत होकर वर प्रदान के लिए तैयार ब्रह्मा से कहा ॥५९-६६॥

**कलावती बोली**—हे कमलोद्भव! हे ब्रह्मन्! यदि आप राजा को मुक्त करते हैं तो आप बतायें कि मुझ अबला की क्या गति होगी? हे चतुरानन! बिना पति की स्त्रियों की क्या शोभा है? वेद में सुना गया है कि पतिव्रता स्त्रियों का पति ही व्रत है। तपोधर्ममय पति ही उनका गुरु और अभीष्ट देव है। सभी के लिए पति से बढ़कर कोई प्रिय बन्धु नहीं है वह सभी लोगों से अत्यन्त प्रिय होता है। ब्रह्मन्! अत्यन्त दुर्लभ पति-सेवा सभी धर्मों से बढ़कर है। पति की सेवा से रहित स्त्रियों का सारा कर्म निष्फल होता है ॥६७-७०॥ व्रत, दान, तप पूजा और जप, होमादि जो कुछ है वह तथा समस्त तीर्थों में स्नान, पृथिवी की प्रदक्षिणा समस्त यज्ञों की दीक्षा, बड़े-बड़े दान, सम्पूर्ण वेदों का पाठ, सभी भाँति के तप, वेद-निपुण ब्राह्मणों को भोजन-दान और देवताओं की सेवा—ये सभी पति-सेवा की सोलहवीं कला के भी समान नहीं हैं ॥७१-७३॥ जो स्त्री अपने पति की सेवा न करके, उल्टे उसे कटुवचन कहती है, वह चन्द्रमा और सूर्य के समय तक कालसूत्र नामक नरक में

सर्पप्रमाणाः कृमयो दंशन्ति च दिवानिशम् । संततं विपरीतं च कुर्वन्ति शब्दमुल्बणम् ।।७५।।
मूत्रश्लेष्मपुरीषाणां कुर्वन्ति भक्षणं मुदा । मुखे तासां ददत्येवमुल्कां च यमकिंकराः ।।७६।।
भुक्त्वा भोगं च नरके कृमियोनिं प्रयान्ति ताः । भक्षन्ति जन्मशतकं रक्तमांसपुरीषकम् ।।७७।।
श्रुत्वाऽहं विदुषां वक्त्राद्वेदवाक्येषु निश्चितम् । जानामि किंचिदबला त्वं वेदजनको विभुः ।।७८।।
गुरोर्गुरुश्च विदुषां योगिनां ज्ञानिनां तथा । सर्वज्ञमेत्रंभूतं त्वां बोधयामि किमुच्यते ।।७९।।
प्राणाधिकोऽयं कान्तोऽयं यदि मुक्तो बभूव ह । मम को रक्षिता ब्रह्मन्धर्मस्य यौवनस्य च ।।८०।।
कौमारे रक्षिता तातो दत्त्वा पात्राय सत्कृती । सर्वदा रक्षिता कान्तस्तदभावे च तत्सुतः ।।८१।।
त्रिष्ववस्थासु नारीणां त्रातारश्च त्रयः स्मृताः । याः स्वतन्त्राश्च ता नष्टाः सर्वधर्मबहिष्कृताः ।।८२।।
असत्कुलप्रसूतास्ता कुलटा दुष्टमानसाः । शतजन्मकृतं पुण्यं तासां नश्यति पद्मज ।।८३।।
पुत्रस्नेहो यथा बाल्ये तथा युनि च वार्धके । पतिव्रतानां कान्ते च सर्वकाले समा स्पृहा ।।८४।।
सुते स्तनंधये स्नेहो मातॄणां चातिशोभिते । पतिस्नेहस्य साध्वीनां कलां नार्हति षोडशीम् ।।८५।।
स्तनान्धे स्तनदानान्तं मिष्टान्ने भोजनावधि । कान्ते चित्तं सतीनां च स्वप्ने ज्ञाने च संततम् ।।८६।।

---

रहती हैं। वहाँ उसे सर्प के समान बड़े-बड़े कीड़े दिन-रात काटते हैं और निरन्तर विपरीत तथा भयंकर शब्द किया करते हैं। वहाँ स्त्रियों को मूत्र, कफ एवं विष्ठा का भोजन करना पड़ता है। यम के दूत उसके मुख में जलती लुआठी डालते हैं ।।७४-७६।। नरक में भोगों के अनुभव करके वे स्त्रियाँ कीड़े की योनि में उत्पन्न होती हैं। वहाँ सैकड़ों जन्मों तक रक्त, मांस और विष्ठा का भक्षण करती हैं ।।७७।। विद्वानों के मुख से मैंने वेद की ऐसी बात सुनी है। मैं अबला होने के नाते थोड़ी ही बातें जानती हूँ और आप तो वेद-जनक, विप्र, विद्वान्, योगी, ज्ञानी तथा गुरु के गुरु हैं। हे अच्युत ! आप ऐसे सर्वज्ञ को मैं क्या बता सकती हूँ ।।७८-७९।। ब्रह्मन् ! यदि मेरे पति, जो मुझे प्राणों से भी बढ़कर प्रिय हैं, मुक्त कर दिये जायेंगे, तो मेरे धर्म और इस यौवन की रक्षा कौन करेगा ? ।।८०।। (स्त्रियों के लिए) कौमार अवस्था में पिता रक्षक रहता है और युवावस्था में किसी सुपात्र को दान करने पर पति सदा रक्षक रहता है एवं उसके अभाव में पुत्र रक्षा करता है ।।८१।। इस प्रकार स्त्रियों की तीनों अवस्थाओं में तीन रक्षक बताये गये हैं। जो स्त्रियाँ स्वतन्त्र हैं, वे समस्त धर्मों से पृथक् होकर नष्ट-भ्रष्ट हो जाती हैं ।।८२।। ऐसी स्त्रियाँ नीच कुल में उत्पन्न 'कुलटा' (व्यभिचारिणी) और दूषित मन की होती हैं। ब्रह्मन् ! उनके सौ जन्मों का किया हुआ पुण्य नष्ट हो जाता है। पुत्र-स्नेह जिस प्रकार बाल्यावस्था में होता है उसी भाँति युवा और वृद्धावस्था में भी रहता है। उसी प्रकार पति में पतिव्रताओं का प्रेम भी सर्वदा समान रूप से रहता है ।।८३-८४।। दूध पीते बच्चे पर माताओं का अधिक स्नेह देखा जाता है, किन्तु वह स्नेह पतिव्रताओं के पति-स्नेह की सोलहवीं कला के भी समान नहीं होता ।।८५।। स्तन पीनेवाले बच्चे का स्नेह स्तन पीने तक रहता है, मिठाई के प्रति स्नेह उसके खाने तक रहता है, पर पतिव्रताओं का पति के प्रति स्नेह सोते-जागते सभी समय रहता है ।।८६।। बन्धु

दु:खान्तो बन्धुविच्छेद: पुत्राणां च ततोऽधिक: । सुदारुण: स्वामिनश्च दु:खं नात: परं स्त्रिया: ।।८७।।
अविदग्धा यथा दग्धा ज्वलदग्नौ विषादने । तथा विदग्धा दग्धा स्याद्विदग्धविरहानले ।।८८।।
नान्ने तृष्णा जले तृष्णा साध्वीनां स्वामिनं विना । विरहाग्नौ मनो दग्धं वह्नौ शुष्कतृणं यथा ।।८९।।
नहि कान्तात्परो बन्धुर्नहि कान्तात्पर: प्रिय: । नहि कान्तात्परो देवो नहि कान्तात्परो गुरु: ।।९०।।
नहि कान्तात्परो धर्मो नहि कान्तात्परं धनम् । नहि कान्तात्परा: प्राणा नहि कान्तात्पर: स्त्रिया: ।।९१।।
निमग्नं कृष्णपादाब्जे वैष्णवानां यथा मन: । यथैकपुत्रे मातुश्च यथा स्त्रीषु च कामिनाम् ।।९२।।
धनेषु कृपणानां च चिरकालार्जितेषु च । यथा भयेषु भीतानां शास्त्रेषु विदुषां यथा ।।९३।।
स्तनादाने शिशूनां च शिल्पेषु शिल्पिनां यथा । यथा जारे पुंश्चलीनां साध्वीनां च तथा प्रिये ।।९४।।
तं विना जीवितुं ब्रह्मन्क्षणमेकं न च क्षमम् । मरणं जीवनं तासां जीवनं मरणाधिकम् ।।९५।।
सद्भर्तृरहितानां च शोकेन हतचेतसाम् । अन्यशोकनिमग्नानां कालेन पानभोजनात् ।।९६।।
विपरीत: कान्तशोको वर्धते भक्षणादहो । कर्मच्छाया सतीनां च संगिनीनां सती वरा ।।९७।।
इतरे भोगदेहान्ते साध्वी जन्मनि जन्मनि । करोषि चेज्जगद्धातरिमं मुक्तं मया विना ।।९८।।

---

का वियोग दु:खदायी होता है और पुत्र का वियोग उससे भी अधिक दु:खप्रद होता है किन्तु पति का वियोग अत्यन्त दारुण होता है । स्त्रियों के लिए इससे बढ़कर कोई दु:ख ही नहीं है ।।८७।। जिस प्रकार मूर्ख स्त्री प्रज्वलित अग्नि में या विष खाने पर जल जाती है उसी भाँति चतुर नायिका चतुर पति के विरहाग्नि में जलती रहती है ।।८८।। पति के बिना सती स्त्रियों को अन्न-जल की भी इच्छा नहीं होती है । उसका मन तो प्रज्वलित अग्नि में सूखे तृण की भाँति विरहाग्नि में जल जाता है ।।८९।। स्त्रियों के पति से बढ़कर कोई बन्धु, देवता, गुरु, धर्म, धन, प्राण तथा अन्य कुछ भी नहीं होता है ।।९०-९१।। जिस प्रकार वैष्णव के मन भगवान् श्रीकृष्ण के चरण-कमल में निमग्न रहते हैं, एक पुत्रवाली माता का उस पुत्र में, कामीजनों का स्त्रियों में, कृपणों का चिर काल से अर्जित धनों में, भीतजनों का भय में, विद्वानों का शास्त्रों में, बच्चों का स्तन-पान में, कारीगरों का शिल्पों में और व्यभिचारिणी स्त्रियों का जार (उपपति) में लीन रहता है, उसी भाँति पतिव्रताओं का मन अपने प्रियतम में सदा निमग्न रहता है। ब्रह्मन् ! उसके बिना वे एक क्षण भी जीवित रहने में असमर्थ रहती हैं। क्योंकि उत्तम पति के वियोग होते पर तज्जनित शोक से आहत होनेवाली स्त्रियों का मरण होना उनका जीवन है और जीवित रहना तो मरण से भी अधिक दु:खप्रद होता है ।।९२-९५ १/२।। अन्य किसी का शोक होने पर कुछ समय में पान-भोजन द्वारा वह नष्ट हो जाता है किन्तु पति का शोक उससे विपरीत होता है। खान-पान से वह और बढ़ता ही है। सती स्त्रियों का कर्म छाया की भांत पति का अनुगमन करता है । पत्नियों में सती श्रेष्ठ होती है । अन्य स्त्रियाँ भोग-शरीर तक साथ रहती हैं और पतिव्रता जन्म-जन्मान्तर में भी साथ

त्वां शप्त्वाऽहं त्वयि विभो पश्य दास्यामि स्त्रीवधम् ॥९९॥
श्रुत्वा कलावतीवाक्यमुवाच विस्मितो विधिः। हितं पीयूषसदृशं भयसंविग्नमानसः ॥१००॥

## ब्रह्मोवाच

वत्से मुक्तिं न दास्यामि स्वामिनं च त्वया विना। मुक्तं कर्तुं त्वया सार्धं सांप्रतं नाहमीश्वरः ॥१०१॥
मातर्मुक्तिर्विना भोगाद्दुर्लभा सर्वसंमता। निर्वाणतां समाप्नोति भोगी भोगविकृन्तने ॥१०२॥
कतिवर्षं स्वर्गभोगं कुरुष्व स्वामिना सह। ततस्तु युवयोर्जन्म भविता भारते सति ॥१०३॥
यदा भविष्यति सती कन्या ते राधिका स्वयम्। जीवन्मुक्तौ तया सार्धं गोलोकं च गमिष्यथः ॥१०४॥
कतिकालं नृपश्रेष्ठ भुङ्क्ष्व भोगं स्त्रिया सह। साध्वी वै सत्त्वयुक्ता च मा मां शप्तुं त्वमर्हसि ॥१०५॥
जीवन्मुक्ताः समाः सन्तः कृष्णपादाब्जमानसाः। वाञ्छन्ति हरिदास्यं च दुर्लभं न च निर्वृतिम् ॥१०६॥
इत्युक्त्वा तौ वरौ दत्त्वा संतस्थौ पुरतस्तयोः। ययतुस्तौ तं प्रणम्य जगाम स्वालयं विधिः ॥१०७॥
आजग्मतुस्तौ कालेन भुक्त्वा भोगं च भारतम्। परं पुण्यप्रदं दिव्यं ब्रह्मादीनां च वाञ्छितम् ॥१०८॥

---

रहती है। अतः हे धातः ! हे विभो ! यदि मेरे बिना इन्हें तुम मुक्त करते हो तो मैं तुम्हें शाप देकर स्त्री-हत्या का पाप चढ़ा दूंगी। ॥९६-९९॥ कलावती की बात सुनकर ब्रह्मा को आश्चर्य हुआ। उन्होंने भयभीतचित्त होकर अमृत के समान हितकर वचन कहा ॥१००॥

**ब्रह्मा बोले**—वत्स ! तुम्हारे बिना पति को मैं मुक्ति नहीं दूंगा और सम्प्रति तुम्हारे साथ उसे मुक्त करने के लिए मैं समर्थ नहीं हूँ ॥१०१॥ माता ! बिना कर्म-भोगों का उपभोग किये मुक्ति प्राप्त होना अति दुर्लभ है, यह सर्वसम्मत है। भोगों के नष्ट होने पर प्राणी निर्वाण पद प्राप्त करता है ॥१०२॥ इसलिए हे सती ! पति के साथ रहकर कुछ वर्षों तक तुम स्वर्ग के भोगों का उपभोग करो। पश्चात् भारत में तुम दोनों का जन्म होगा। ॥१०३॥ जब सती राधा स्वयं तुम्हारी कन्या होकर प्रकट होंगी, तब तुम दोनों जीवन्मुक्त हो जाओगे और राधा के साथ ही गोलोक में पधारोगे ॥१०४॥ नृपश्रेष्ठ ! कुछ दिनों तक स्त्री के साथ भोगों का उपभोग करो। सत्त्व वृत्तिवाली यह तुम्हारी पतिव्रता पत्नी मुझे शाप देने योग्य नहीं है ॥१०५॥ भगवान् श्रीकृष्ण के चरण-कमल में निरन्तर तन्मय रहनेवाले सन्त लोग भगवान् का दुर्लभ दास्य ही चाहते हैं, निर्वाण नहीं ॥१०६॥ इतना कहकर उन दोनों को वर देने के उपरान्त ब्रह्मा राजा और रानी के समक्ष स्थित रहे। ब्रह्मा को प्रणाम करके राजा और रानी स्वर्ग को चले गये। फिर ब्रह्मा भी अपने धाम को गये ॥१०७॥ स्वर्ग में चिरकाल तक सुख भोगने के उपरान्त वे दोनों पति-पत्नी समय पाकर भारतवर्ष में आये, जो अत्यन्त पुण्यदायक,

सुचन्द्रो वृषभानुश्च ललाभ जन्म गोकुले । पद्मावत्याश्च जठरे सुरभानस्य रेतसा ।।१०९।।
जातिस्मरो हरेरंशः शुक्लपक्षे यथा शशी । ववर्धानुदिनं तत्र व्रजगेहे व्रजाधिपः ।।११०।।
सर्वज्ञश्च महायोगी हरिपादाब्जमानसः । नन्दबन्धुर्वदान्यश्च रूपवान्गुणवान्सुधीः ।।१११।।
कलावती कन्याकुब्जे बभूवायोनिसंभवा । जातिस्मरा महासाध्वी सुन्दरी कमलाकला ।।११२।।
कान्यकुब्जे नृपश्रेष्ठो भनन्दन उरुक्रमः । स तां संप्राप्य यागान्ते यज्ञकुण्डसमुत्थितम् ।।११३।।
नग्नां हसन्तीं रूपाढ्यां स्तनान्धामिव बालिकाम् । तेजसा प्रज्वलन्तीं च प्रतप्तकनकप्रभाम् ।।११४।।
कृत्वा वक्षसि राजेन्द्रः स्वकान्तायै ददौ मुदा । मालावती स्तनं दत्त्वा तां पुपोष प्रहर्षिता ।।११५।।
तदन्नप्राशनदिने तथां मध्ये शुभे क्षणे । नामरक्षणकाले च वाग्बभूवाशरीरिणी ।।११६।।
कलावतीति कन्याया नाम रक्ष नृपेति च ।।११७।।
इत्येवं वचनं श्रुत्वा तच्चकार महीपतिः । विप्रेभ्यो भिक्षुकेभ्यश्च वन्दिभ्यश्च धनं ददौ ।।११८।।
सर्वेभ्यो भोजयामास चकार सुमहोत्सवम् । कालेन सा रूपवती यौवनस्था बभूव ह ।।११९।।
अतीव सुन्दरी श्यामा मुनिमानमोहिनी । चारुचम्पकवर्णाभा शरच्चन्द्रनिभानना ।।१२०।।

---

दिव्य एवं ब्रह्मा आदि देवों को भी अभीष्ट है ।।१०८।। सुचन्द्र ने गोकुल में जन्म लिया और वहाँ उनका नाम वृषभानु हुआ। वे सुरभानु के वीर्य और पद्मावती के गर्भ से उत्पन्न हुए ।।१०९।। उन्हें पूर्वजन्म की बातों का स्मरण था। वे हरि के अंश थे और जैसे शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा बढ़ते हैं, उसी प्रकार वहाँ व्रजधाम में वे व्रजपति दिनानुदिन बढ़ने लगे ।।११०।। वे सर्वज्ञ, महायोगी और भगवान् के चरण-कमल में निमग्नचित्त थे। नन्दबन्धु उदार, रूपवान्, गुणवान् तथा विद्वान् थे ।।१११।। कलावती भी कान्यकुब्ज देश में उत्पन्न हुई। वह भी अयोनिजा, पूर्वजन्म की बातों का स्मरण रखनेवाली, महापतिव्रता, सुन्दरी तथा लक्ष्मी की कला थी। कान्यकुब्ज देश में भनन्दन नामक महाबली राजा था। उसने यज्ञ के अन्त में यज्ञकुण्ड से प्रकट हुई दूधपीती नंगी बालिका के रूप में उसे पाया था। वह सुन्दरी बालिका उस कुंड से हँसती हुई निकली थी। उसकी अंग-कान्ति तपाये हुए सुवर्ण के समान थी। वह तेज से देदीप्यमान थी। राजेन्द्र (भनन्दन) ने उसे गोद में लेकर अपनी रानी को हर्ष से दे दिया। कलावती अत्यन्त हर्षित होकर अपना स्तन पान कराकर उसका पालन-पोषण करने लगी ।।११२-११५।। उसके अन्न-प्राशन और नामकरण के दिन शुभ वेला में, जब राजा सज्जनों के बीच बैठे हुए थे, आकाशवाणी हुई—'हे नृप ! इस कन्या का 'कलावती' नामकरण करो ।।११६-११७।। यह सुनकर राजा ने पुत्री का वही नामकरण किया और उसके उपलक्ष्य में ब्राह्मणों, भिक्षुकों एवं बन्दीजनों को धन देते हुए, सभी लोगों को भोजन कराया। इस भाँति वह उत्तम महोत्सव सम्पन्न हुआ। समयानुसार वह रूपवती कन्या यौवनपूर्ण हुई। वह अत्यन्त सुन्दरी श्यामा, मुनियों के भी चित्त को मोहित करनेवाली, सुन्दर चम्पा पुष्प के समान अंगवाली, शारदीय चन्द्रमा के समान मुखवाली, मन्द मुसकान समेत प्रसन्न मुख से युक्त, विकसित कमल की भाँति नेत्रवाली,

ईषद्धास्यप्रसन्नास्या प्रफुल्लपद्मलोचना । नितम्बश्रोणिभारार्ता स्तनभारनता सती ॥१२१॥
गच्छन्ती राजमार्गेण गजेन्द्रमन्दगामिनी । ददर्श नन्दः पथि तां गच्छन्तीं च मुदाऽन्वितः ॥१२२॥
जितेन्द्रियश्च ज्ञानी च मूर्च्छामाप तथाऽपि च । त्रस्तो लोकान्पथि गतांस्तूर्णं पप्रच्छ सादरम् ॥१२३॥
गच्छन्ती कस्य कन्येयमिति होवाच तं जनः । भनन्दनस्य नृपतेः कन्या नाम्ना कलावती ॥१२४॥
कमलाकलया कन्या संभूता नृपमन्दिरे । कौतुकेन च गच्छन्ती क्रीडार्थं सखिमन्दिरम् ॥१२५॥
व्रजं व्रज व्रजश्रेष्ठेत्युक्त्वा लोको जगाम ह । प्रहृष्टमानसो नन्दो जगाम राजमन्दिरम् ॥१२६॥
अवरुह्य रथात्तूर्णं विवेश नृपतेः सभाम् । उत्थाय राजा संभाष्य स्वर्णसिंहासनं ददौ ॥१२७॥
इष्टालापं बहुतरं चकार च परस्परम् । विनयावनतो नन्दः संबन्धोचितं चकार ह ॥१२८॥

## नन्द उवाच

शृणु राजेन्द्र वक्ष्यामि विशेषवचनं शुभम् । संबन्धं कुरु कन्याया विशिष्टेन च सांप्रतम् ॥१२९॥
सुरभानुसुतः श्रीमान्वृषभानुर्व्रजाधिपः । नारायणांशो गुणवान्सुन्दरश्च सुपण्डितः ॥१३०॥
स्थिरयौवनयुक्तश्च योगी जातिस्मरो युवा । कन्या तेऽयोनिसंभूता यज्ञकुण्डसमुद्भवा ॥१३१॥

---

नितम्ब और श्रोणी के भार से श्रान्त एवं स्तन के भार से कुछ झुकी थी ॥११८-१२१॥ गजेन्द्र की भाँति मन्द-मन्द गमन करती हुई उस सुन्दरी को एक बार नन्द ने राजमार्ग पर देख लिया । वे इतने हर्षविभोर हो गये कि जितेन्द्रिय एवं ज्ञानी होते हुए भी उन्हें मूर्च्छा आ गयी । तब डरते-डरते उन्होंने मार्ग में जानेवाले लोगों से सादर पूछा कि 'जाती हुई यह कन्या किसकी है ?' लोगों ने उनसे कहा—'राजा भनन्दन की कलावती नामक यह कन्या है ॥१२२-१२४॥ यह कमला (लक्ष्मी) की कला से राजमहल में उत्पन्न हुई है । सखी के साथ खेलने के लिए कौतुकवश उसके भवन में जा रही है । हे व्रजश्रेष्ठ ! (इसके लिए) आप व्रज चले जायं ।' इतना कहकर लोग चले गये । अत्यन्त हर्षित नन्द (भनन्दन के) राजभवन को गये ॥१२५-१२६॥ रथ से उतरकर उन्होंने शीघ्रता से राजा की सभा में प्रवेश किया । राजा उठकर खड़े हो गये और बातचीत करके उन्हें सुवर्ण के सिंहासन पर बैठाया ॥१२७॥ आपस में बहुत-सी अभीष्ट बातें करने के अनन्तर विनम्र नन्द ने उनसे (विवाह-) सम्बन्ध की बात चलायी ॥१२८॥

**नन्द बोले**—हे राजेन्द्र ! सुनिये, मैं एक विशेष शुभ की बात कह रहा हूँ । सम्प्रति अपनी कन्या का सम्बन्ध आप एक विशिष्ट पुरुष के साथ स्थापित करें ॥१२९॥ सुरभानु के पुत्र एवं व्रजाधीश्वर श्रीमान् वृषभानु इसके लिए बहुत उपयुक्त हैं, जो नारायण के अंश से उत्पन्न, गुणवान्, सुन्दर, महान् पण्डित, स्थिर-यौवन-पूर्ण, योगी, पूर्वजन्म की बातों का स्मरण करनेवाले एक युवा हैं । तुम्हारी कन्या कलावती भी अयोनिजा, यज्ञकुण्ड से प्रकट, तीनों लोकों को मोहित करनेवाली, शान्त स्वभाववाली और लक्ष्मी के अंश से उत्पन्न हुई है । वह

त्रैलोक्यमोहिनी शान्ता कमलांशा कलावती। स च योग्यस्त्वद्दुहितुस्तद्योग्या ते च कन्यका ॥१३२॥
विदग्धाया विदग्धेन संबन्धो गुणवान्नृप। इत्येवमुक्त्वा नन्दस्तु विरराम च संसदि॥
उवाच तं नृपश्रेष्ठो विनयावनतो मुने ॥१३३॥

## भनन्दन उवाच

संबन्धो हि विधिवशो न मे साध्यो व्रजाधिप। प्रजापितिर्योगकर्ता जन्मदाताऽहमेव च ॥१३४॥
का कस्य पत्नी कन्या वा वरः को वा ससाधनः। कर्मानुरूपफलदः सर्वेषां कारणं विधिः ॥१३५॥
भवितव्यं कृतं कर्म तदमोघं श्रुतौ श्रुतम्। अन्यथा निष्फलं सर्वमनीशस्योद्यमो यथा ॥१३६॥
वृषभानुप्रिया धात्रा लिखिता चेत्सुता मम। पुरा भूतैव को वाऽहं केनान्येन निवार्यते ॥१३७॥
इत्येवमुक्त्वा राजेन्द्रो विनयानतकंधरः। मिष्टान्नं भोजयामास सादरेण च नारद ॥१३८॥
नृपानुज्ञामुपादाय व्रजराजो व्रजं गतः। गत्वा स कथयामास सुरभानस्य संसदि ॥१३९॥
सुरभानुश्च यत्नेन नन्दनेन च सादरम्। संबन्धं योजयामास गर्गद्वारा च सत्वरम् ॥१४०॥
विवाहकाले राजेन्द्रो विपुलं यौतुकं ददौ। गजरत्नमश्वरत्नं रत्नानि मणिभूषणम् ॥१४१॥
वृषभानुर्मुदा युक्तः प्राप्य तां च कलावतीम्। रेमे सुनिर्जने रम्ये बुबुधे न दिवानिशम् ॥१४२॥

---

(वृषभानु) आपकी पुत्री के योग्य हैं तथा आपकी पुत्री भी उन्हीं के योग्य हैं ॥१३०-१३२॥ राजन्! चतुर पुरुष के साथ चतुर कन्या का सम्बन्ध अत्यन्त गुणकारी होता है। इतना कहकर नन्द सभा में चुप हो गये। मुने! राजा ने विनय-विनम्र होकर उनसे कहा ॥१३३॥

**भनन्दन बोले**—हे व्रजाधिप! सम्बन्ध होना दैव के अधीन रहता है, वह मेरे वश की बात नहीं है, क्योंकि सम्बन्ध के कर्ता प्रजापति ब्रह्मा हैं और मैं तो केवल जन्म का दाता हूँ। इसलिए कौन किसकी पत्नी या कन्या है, तथा कौन किसका साधन-सम्पन्न पति है? क्योंकि कर्मों के अनुरूप फल देनेवाले विधाता ही सबके कारण हैं। वेद में सुना है कि किया हुआ कर्म अमोघ (व्यर्थ नहीं) होता है अन्यथा अनधिकारी के उद्यम की भाँति सारा कर्म निष्फल हो जाता है। १३४-१३६॥ यदि मेरी कन्या को वृषभानु की प्रिया होना ब्रह्मा ने लिख दिया है, तो वह (कार्य) पहले ही हो चुका है, अब मैं कौन हूँ, और उसे कौन रोक सकता है? हे नारद! इतना कहकर राजेन्द्र ने विनय से कंधा झुकाकर नन्द को सादर मिष्टान्न भोजन कराया ॥१३७-१३८॥ अनन्तर व्रजराज नन्द राजा से आज्ञा लेकर व्रज को चले गये। सुरभानु की सभा में पहुँचकर उन्होंने समस्त वृत्तान्त कह सुनाया ॥१३९॥ सुरभानु ने नन्द और गर्ग के सहयोग से सादर इस सम्बन्ध को जोड़ा ॥१४०॥ विवाह काल में राजेन्द्र ने प्रचुर दहेज दिया। गजरत्न, अश्वरत्न, अन्यान्य रत्न और मणियों के भूषण दिये ॥१४१॥ कलावती को पाकर वृषभानु ने अति निर्जन प्रदेशों में उसके साथ रमण किया। उन्हें उस समय दिन-रात्रि का

चक्षुर्निमेषविरहाद्व्याकुलं स्वामिना विना । व्याकुलो वृषभानश्च क्षणेन च तया विना ॥१४३॥
जातिस्मरा च सा कन्या मायामानुषरूपिणी । जातिस्मरो हरेरंशो वृषभानो मुदाऽन्वितः ॥१४४॥
ववर्ध च तयोः प्रेम नित्यं नित्यं नवं नवम् । सदा सकामा सा प्रौढा स च कामसमो युवा ॥१४५॥
तयोः कन्या च कालेन राधिका सा बभूव ह । दैवात्सुदामशापेन श्रीकृष्णस्याऽऽज्ञया पुरा ॥१४६॥
अयोनिसंभवा सा च कृष्णप्राणाधिका सती । यस्या दर्शनमात्रेण तौ विमुक्तौ बभूवतुः ॥१४७॥
इतिहासश्च कथितः प्रकृतं शृणु सांप्रतम् । पापेन्धनानां दाहे च ज्वलदग्निशिखोपमः ॥१४८॥
वृषभानाश्रमं गत्वा शिल्पिनां प्रवरो मुदा । स्थानान्तरं विश्वकर्मा जगाम स्वगणैः सह ॥१४९॥
क्रोशमात्रं स्थलं चारु मनसाऽऽलोच्य तत्त्ववित् । आश्रमं कर्तुमारेभे नन्दस्य सुमहात्मनः ॥१५०॥
कृत्वाऽनुमानं बुद्ध्या च सर्वतोऽपि विलक्षणम् । परिखाभिर्गभीराभिश्चतुर्भिः संयुतं वरम् ॥१५१॥
दुर्लङ्घ्याभिर्वैरिभिश्च खनिताभिश्च प्रस्तरैः । पुष्पोद्यानैः पुष्पिताभिः पारावारेषु पुष्पितैः ॥१५२॥
चारुचम्पकवृक्षैश्च पुष्पितैः सुमनोहरैः । परितो वासिताभिश्च सुगन्धिवायुना मुने ॥१५३॥
आम्रैर्गुडालैः पनसैः खर्जूरैर्नारिकेलकैः । दाडिमैः श्रीफलैर्भृङ्गैर्जम्बीरैर्नागरङ्गकैः ॥१५४॥
तुङ्गैराम्रातकैर्जम्बुसमूहैश्च फलान्वितैः । कदलीनां केतकीनां कदम्बानां कदम्बकैः ॥१५५॥

---

ज्ञान नहीं रहा ॥१४२॥ पलक भाँजने मात्र समय तक भी पति का वियोग होने पर कलावती व्याकुल हो जाती थीं और वृषभानु भी उसके विना क्षणमात्र में आकुल हो जाते थे ॥१४३॥ माया से मनुष्य रूप धारण करनेवाली वह कलावती कन्या पूर्व जन्म का सदा स्मरण रखती थी । उसी भाँति हरि के अंश से समुत्पन्न वृषभानु भी जन्मान्तरीय स्मरण रखनेवाले तथा हर्षयुक्त थे ॥१४४॥ उन दोनों—पति-पत्नी का प्रेम नित्य नवीन-नवीन होकर बढ़ रहा था । वह प्रौढ़ा कन्या सदा कामुकी बनी रहती थी और वह युवा भी काम के समान था ॥१४५॥ समय बीतने पर उन्हीं दोनों की पुत्री राधिका हुई । दैवयोग से सुदामा पार्षद के शापवश भगवान् श्रीकृष्ण की आज्ञा से कृष्णप्राणाधिका सती राधा अयोनिजा के रूप में प्रकट हुई । उनके दर्शनमात्र से उन दोनों दम्पति को मुक्ति प्राप्त हो गयी ॥१४६-१४७॥ इस प्रकार इतिहास कहा गया, अब प्रसंग की बात सुनो । उक्त इतिहास पाप रूपी ईंधन को जलाने के लिए प्रज्वलित अग्नि की शिखा की भाँति है ॥१४८॥ शिल्प-श्रेष्ठ विश्वकर्मा वृषभानु के आश्रम पर जाकर वहाँ से अपने गणों समेत दूसरे स्थान पर गये ॥१४९॥ वहाँ तत्त्ववेत्ता विश्वकर्मा ने मन-ही-मन एक कोस लम्बे-चौड़े एक सुन्दर स्थान का विचार करके महात्मा नन्द का भवन बनाना आरम्भ किया ॥१५०॥ अपनी बुद्धि से अनुमान करके उन्होंने नन्द का भवन सबसे विलक्षण बनाया । उसके चारों ओर गहरी खाइयाँ थीं, जो शत्रुओं से दुर्लङ्घ्य तथा पत्थरों से संयुक्त थीं । दोनों तटों पर पुष्पों के उद्यान थे, जिनके कारण वे पुष्पित लगती थीं और सुन्दर चम्पा के वृक्ष तटों पर खिले हुए थे । उन्हें छूकर बहनेवाला वायु उन परिखाओं को सब ओर से सुवासित कर रहा था । तटवर्ती आम, सुपारी, कटहल, खजूर, नारियल, अनार, श्रीफल (वेल), भृङ्ग (इलायची), नीबू, नारङ्गी, ऊँचे आम्रातक (आमड़ा), जामुन, केले, केवड़े और कदम्ब-समूह आदि फूले-फले वृक्षों से वे

सर्वतः शोभिताभिश्च फलैस्तैः पुष्पितैरहो। क्रीडार्हाभिर्निगूढाभिर्वाञ्छिताभिश्च सर्वदा ॥१५६॥
परिखानां रहःस्थाने चकार मार्गमुत्तमम्। दुर्गमं परवर्गाणां स्वानां च सुगमं सदा ॥१५७॥
संकेतेन मणिस्तम्भैश्छादितैः स्वल्पपाथसा। स्तम्भसीमाकृतमहो न संकीर्णं न विस्तृतम् ॥१५८॥
परिखोपरिभागे च प्राकारं सुमनोहरम्। धनुःशतप्रमाणं च चकारातिसमुच्छ्रितम् ॥१५९॥
प्रस्तरस्य प्रमाणं च पञ्चविंशतिहस्तकम्। सिन्दूराकारमणिभिर्निमितं चातिसुन्दरम् ॥१६०॥
बाह्ये द्वाभ्यां च संयुक्तमन्तरे सप्तभिस्तथा। द्वार्भिश्च संनिरुद्धाभिर्मणिसारकपाटकैः ॥१६१॥
हरिन्मणीनां कलशैश्चित्रयुक्तैर्विराजितम्। मणिसारविकारैश्च कपाटैश्च सुशोभितम् ॥१६२॥
स्वर्णसारविनिर्माणकलशोज्ज्वलशेखरम्। नन्दालयं विनिर्माय बभ्राम नगरं पुनः ॥१६३॥
राजमार्गांश्च विविधान्स च चारूंश्चकार ह। रक्तभानुविकारैश्च वेदिभिश्च सुपत्तनैः ॥१६४॥
पारावारं च परितो निबद्धांश्च मनोहरान्। वाणिज्यार्हैश्च वणिजां परितो मणिमण्डपैः ॥१६५॥
सर्वतो दक्षिणे वामे ज्वलद्भिश्च विराजितान्। ततो वृन्दावनं गत्वा निर्ममे रासमण्डलम् ॥१६६॥
सुन्दरं मण्डलाकारं मणिप्राकारसंयुतम्। परितो योजनायामं मणिवेदिभिरन्वितम् ॥१६७॥

---

खाइयाँ चारों ओर सुशोभित थीं। वे सदा वृक्षों से ढँकी होने के कारण जल-क्रीडा के योग्य थीं, अतएव वाञ्छनीय थीं ॥१५१-१५६॥ उन खाइयों के एकान्त प्रदेश में उत्तम मार्ग बनाया, जो शत्रुओं के लिए सदा दुर्गम एवं अपने लोगों के लिए सुलभ था ॥१५७॥ संकेत द्वारा मणियों के स्तम्भों से आच्छादित, स्वल्प जल से सुशोभित एवं स्तम्भों से उस (मार्ग) की सीमा बनी थी, जो न संकुचित और न विस्तृत ही थी ॥१५८॥ परिखा के ऊपरी भाग में अत्यन्त सुन्दर चहारदीवारी बनी थी, जो सौ धनुष प्रमाण ऊंची थी। उसमें लगा हुआ एक-एक पत्थर पचीस-पचीस हाथ लम्बा था। सिन्दूराकार मणियों द्वारा निर्मित वह प्राकार अति सुन्दर दिखायी देता था ॥१५९-१६०॥ उसके बाहर दो दरवाजे थे और भीतर सात दरवाजे थे। उनमें मणि के सारभाग के बने किवाड़ लगे थे। नन्द के भवन में हरे रंग की मणियों के चित्र-भूपित कलश लगे थे। दरवाजे मणि के सारभाग के बने किवाड़ों से भूपित थे ॥१६१-१६२॥ नन्द-भवन का शिखर भाग सुवर्ण के सारभाग से बने कलशों से समुज्ज्वल (चमक रहा) था। ऐसे भवन का निर्माण करके विश्वकर्मा नगर में घूमने लगे ॥१६३॥ उन्होंने नाना प्रकार के मनोहर राजमार्ग बनाये। रक्तभानु मणि की बनी हुई वेदियों तथा सुन्दर पत्तनों से वे मार्ग सुशोभित रहते थे ॥१६४॥ उन्हें आर-पार दोनों ओर से बाँधकर पक्का बनाया गया था, जिससे वे बड़े मनोहर लगते थे। राजमार्ग के दोनों ओर मणिमय मण्डप बने हुए थे, जो वैश्यों के वाणिज्य-व्यवसाय के उपयोग में आने योग्य थे ॥१६५॥ वे मण्डप दायें-बायें सब ओर से प्रकाशित हो उन राजमार्गों को भी प्रकाश पहुँचाते थे। अनन्तर वृन्दावन में विश्वकर्मा ने सुन्दर, गोलाकार और मणिमय परकोटों से युक्त रासमण्डल का निर्माण किया, जो सब ओर से एक-एक योजन विस्तृत था। उसमें स्थान-स्थान पर मणिमय वेदिकाएँ बनी हुई थीं ॥१६६-१६७॥ मणिसार-रचित नौ करोड़ मण्डल उस रास-मण्डल की शोभा

मणिसारविकारैश्च मण्डपैर्नवकोटिभिः। शृङ्गारार्हैश्च चित्राढ्यै रतितल्पसमन्वितैः ॥१६८॥
नानाजातिप्रसूनानां वायूनां सुरभीकृतैः। रत्नप्रदीपसंयुक्तैः सुवर्णकलशोज्ज्वलैः ॥१६९॥
पुष्पोद्यानैः पुष्पितैश्च सरोभिश्च सुशोभितम्। रासस्थलं विनिर्माय जगामान्यत्स्थलं पुरः ॥१७०॥
दृष्ट्वा वृन्दावनं रम्यं परितुष्टो बभूव ह। वृन्दावनाभ्यन्तरे च स्थाने स्थाने सुनिर्जने ॥१७१॥
कृत्वा परिमितं बुद्धया मानसाऽऽलोच्य यत्नतः। विलक्षणानि रम्याणि तत्र त्रिंशद्वनानि च ॥१७२॥
राधामाधवयोरेव क्रीडार्थं च विनिर्ममे। ततो मधुवनाभ्याशे निर्जनेऽतिमनोहरे ॥१७३॥
वटमूलसमीपे च सरसः पश्चिमे तटे। चम्पकोद्यानपूर्वायां केतकीवनमध्यतः ॥१७४॥
पुनस्तयोश्च क्रीडार्थं चकार रत्नमण्डपम्। चतुर्भिर्वेदिकाभिश्च परीतमतिसुन्दरम् ॥१७५॥
सद्रत्नसाररचितं राजितं तूलिकाशतैः। अमूल्यरत्नरचितैर्नानाचित्रेण चित्रितैः ॥१७६॥
कपाटैर्नवभिर्युक्तं नवद्वारैर्मनोहरैः। रत्नेन्द्रचित्रकलशैः कृत्रिमैश्च त्रिकोटिभिः ॥१७७॥
परितः परितो भित्त्यामूर्ध्वं च परिशोभितम्। महामणीन्द्रविकृतैरारोहैर्नवभिर्वृतम् ॥१७८॥
सद्रत्नसाररचितकलशोज्ज्वलशेखरम्। पताकातोरणैर्युक्तं शोभितं श्वेतचामरैः ॥१७९॥
सर्वतः पुरतो दीप्तममूल्यरत्नदर्पणैः। धनुःप्रमाणशतकमूर्ध्वमग्निशिखोपमम् ॥१८०॥

---

बढ़ाते थे। वे शृंगार के योग्य, चित्रों से सुसज्जित और रति-शय्याओं से सम्पन्न थे ॥१६८॥ नाना जाति के पुष्पों की सुगन्ध लेकर बहता हुआ वायु उन मण्डपों को सुवासित करता था। उनमें रत्नमय प्रदीप जलते थे। सुवर्णमय कलश उनकी उज्ज्वलता बढ़ा रहे थे ॥१६९॥ पुष्पों से भरे हुए उद्यानों तथा सरोवरों से शोभित रास-स्थल का निर्माण करके विश्वकर्मा दूसरे स्थान को गये ॥१७०॥ रमणीय वृन्दावन को देखकर वे बहुत सन्तुष्ट हुए। वृन्दावन के भीतर जगह-जगह एकान्त स्थान में मन-बुद्धि से विचार और निश्चय करके उन्होंने वहाँ तीस रमणीय एवं विलक्षण वनों का निर्माण किया ॥१७१-१७२॥ वे केवल राधा-माधव की ही क्रीड़ा के लिए बनाये गये थे। पश्चात् मधुवन के भीतर अति मनोहर निर्जन स्थान में वटवृक्ष के मूलभाग के समीप सरोवर के पश्चिम तट पर चम्पापुष्पवाटिका के पूर्व एवं केतकीवन के मध्य भाग में उन दोनों के क्रीड़ार्थ पुनः एक रत्न-मण्डप बना, जो चार वेदियों से घिरा हुआ और अत्यन्त सुन्दर था ॥१७३-१७५॥ उत्तम रत्नों के सारभाग से सुरचित सैकड़ों तूलिकाओं से विराजित, अमूल्य रत्नों द्वारा रचित अनेक चित्रों से चित्रित नौ जोड़े कपाटों और नौ मनोहर दरवाजों से वह रत्न-मण्डप युक्त था। उसकी दीवारों के दोनों बगल में और ऊपर भी श्रेष्ठ रत्नों द्वारा रचित कृत्रिम चित्रमय तीन करोड़ कलश उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। वह मणीन्द्रों के नौ सोपानों से सुसज्जित था। उत्तम रत्नों के सारभाग से बने कलशों से मण्डप का शिखर भाग जगमगा रहा था। पताका, तोरण और श्वेत चामरों से वह भूषित था। उसमें सब ओर अमूल्य रत्नमय दर्पण लगे थे, जिनके कारण सबको अपने सामने की ओर से ही वह मण्डप दीप्तिमान् दिखायी देता था। वह सौ धनुष ऊपर तक अग्निशिखा के समान प्रकाश-

शतहस्तप्रमाणं च प्रस्तारं वर्तुलाकृतिम् । शोभितं रत्नतल्पैश्च तदभ्यन्तरमुत्तमम् ॥१८१॥
वह्निशुद्धांशुकैर्वस्त्रैर्मालाजालविचित्रितैः । पारिजातप्रसूनानां माल्योपधानसंयुतैः ॥१८२॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमैः सुरभीकृतम् । नवशृङ्गारयोग्यैश्च कामवर्धनकारिभिः ॥१८३॥
मालतीचम्पकानां च पुष्पराजिभिरन्वितम् । सकर्पूरैश्च ताम्बूलैः सद्रत्नपात्रसंस्थितैः ॥१८४॥
वज्रसारेण खचितैर्मुक्ताजालविलम्बिभिः । रत्नसारघटाकीर्णं [1]रत्नपीठैः सुसंयुतम् ॥१८५॥
रत्नसिंहासनैर्युक्तं रत्नचित्रेण चित्रितैः । क्षरितैश्चन्द्रकान्तैश्च सुसिक्तं जलबिन्दुभिः ॥१८६॥
शीतवासिततोयेन संयुक्तं भोगवस्तुभिः । कृत्वा रतिगृहं रम्यं नगरं च पुनर्ययौ ॥१८७॥
यानि येषां मन्दिराणि तन्नामानि लिलेख सः । मुदा युक्तो विश्वकर्मा शिष्यैर्यक्षगणैः सह ॥१८८॥
निद्रेशं निद्रितं नत्वा प्रययौ स्वालयं मुने । सर्वत्रैवं सुकृतिनां समस्तं भगवत्कृपा ॥१८९॥
नेहाऽऽश्चर्यं च नगरं बभूवेशेच्छया भुवि । इत्येवं कथितं सर्वं हरेश्चरितमङ्गलम् ॥
सुखदं पातकहरं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥१९०॥

---

पुञ्ज फैला रहा था। वह सौ हाथ विस्तृत तथा गोलाकार बना था। उसका उत्तम भीतरी भाग रत्नों के पलँगों से शोभित था ॥१७६-१८१॥ उन पलँगों पर अग्नि-विशुद्ध वस्त्र बिछे थे। मालाओं के समूह से सुसज्जित होकर वे विचित्र शोभा धारण करते थे। पारिजात के पुष्पों की मालाओं के बने तकिये उन पर रखे गये थे ॥१८२॥ चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुम से वह भवन सुगन्धित था। उसमें मालती और चम्पा के पुष्पों की मालाएँ रखी थीं। नूतन शृंगार के योग्य तथा पारस्परिक प्रेम की वृद्धि करनेवाले कपूरयुक्त ताम्बूल उत्तम रत्नों के पात्र में रखे गये थे ॥१८३-१८४॥ वहाँ रत्नों की बनी हुई बहुत-सी चौकियाँ थीं जिनमें हीरे जड़े थे और मोतियों की झालर लटक रही थीं। रत्नसार निर्मित घटों से भी वह भरा था ॥१८५॥ वह रत्नों के चित्रों से चित्रित रत्न-सिंहासनों से युक्त चन्द्रकान्त मणियों के द्रवीभूत जलबिन्दुओं से सुसिक्त, शीतल-सुगन्धित जल और भोग की वस्तुओं से परिपूर्ण था। इस प्रकार रमणीय रतिगृह का निर्माण करके विश्वकर्मा पुनः नगर में गये ॥१८६-१८७॥ जिन लोगों के जो-जो भवन थे, उनमें उनके नाम उन्होंने लिख दिये। इस कार्य में उनके शिष्य तथा यक्षगण उनकी सहायता करते थे ॥१८८॥ मुने! उस समय निद्राधीश्वर भगवान् श्रीकृष्ण को निद्रित अवस्था में ही नमस्कार करके विश्वकर्मा अपने घर चले गये। पुण्यात्माओं के लिए इसी भाँति सर्वत्र सुखोपभोग प्रस्तुत रहता है। यह सब भगवत्कृपा है। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि भगवान् की इच्छा से ही भूतल पर ऐसे नगर का निर्माण हुआ। इस प्रकार मैंने भगवान् का समस्त मङ्गल चरित जो सुखप्रद एवं पातकों का विनाशक है, सुना दिया। अब और क्या सुनना चाहते हो? ॥१८९-१९०॥

---

१. क. रत्नाङ्घ्रिपीठ सं०।

### नारद उवाच

कथं वृन्दावनं नाम काननस्यास्य भारते। व्युत्पत्तिरस्य संज्ञा वा तत्त्वं वद सुतत्त्ववित् ॥१९१॥

### सूत उवाच

नारदस्य वचः श्रुत्वा ऋषिर्नारायणो मुदा। प्रहस्योवाच निखिलं तत्त्वमेव पुरातनम् ॥१९२॥

### नारायण उवाच

पुरा केदारनृपतिः सप्तद्वीपपतिः स्वयम्। आसीत्सत्ययुगे ब्रह्मन्सत्यधर्मरतः सदा ॥१९३॥
स रेमे सह नारीभिः पुत्रपौत्रगणैः सह। पुत्रानिव प्रजाः सर्वाः पालयामास धार्मिकः ॥१९४॥
कृत्वा क्रतुशतं राजा लेभे नेन्द्रत्वमीप्सितम्। कृत्वा नानाविधं पुण्यं फलकाङक्षी न च स्वयम् ॥१९५॥
नित्यं नैमित्तिकं सर्वं श्रीकृष्णप्रीतिपूर्वकम्। केदारतुल्यो राजेन्द्रो न भूतो भविता पुनः ॥१९६॥
पुत्रेषु राज्यं संन्यस्य प्रियां त्रैलोक्यमोहिनीम्। जैगीषव्योपदेशेन जगाम तपसे वनम् ॥१९७॥
हरेरैकान्तिको भक्तो ध्यायते संततं हरिम्। शश्वत्सुदर्शनं चक्रमस्ति यत्संनिधौ मुने ॥१९८॥
चिरं तप्त्वा मुनिश्रेष्ठो गोलोकं च जगाम सः। केदारं नाम तीर्थं च तन्नाम्ना च बभूव ह ॥१९९॥

---

**नारद बोले**—हे सुतत्त्वों के वेत्ता ! आप मुझे यह बताने की कृपा करें कि—भारत के इस वन का नाम 'वृन्दावन' क्यों हुआ ? इसकी व्युत्पत्ति एवं संज्ञा क्या है ? ॥१९१॥

**सूत बोले**—नारद की बात सुनकर नारायण ऋषि ने हर्ष से हँसकर निखिल प्राचीन तत्त्व को बताना आरम्भ किया ॥१९२॥

**नारायण बोले**–ब्रह्मन् ! पहले सत्य युग में केदार नामक एक राजा था, जो स्वयं सातों द्वीपों का अधीश्वर और सदा सत्य धर्म में निमग्न रहता था। स्त्रियों और पुत्र-पौत्र गण समेत वह अपना सुखी जीवन व्यतीत कर रहा था। धार्मिक राजा पुत्रों के समान प्रजाओं का पालन-पोषण करता था ॥१९३-१९४॥ राजा ने सौ यज्ञों को सम्पन्न करके भी वाञ्छनीय इन्द्र पद को स्वीकार नहीं किया। यद्यपि वह अनेक भाँति का पुण्योपार्जन करता था, किन्तु स्वयं फल की इच्छा नहीं रखता था ॥१९५॥ श्रीकृष्ण को प्रसन्न करने के लिए ही उसका सारा नित्य-नैमित्तिक कार्य होता था। राजा केदार के समान कोई भूप न हुआ और न पुनः होगा ॥१९६॥ मुनि जैगीषव्य के उपदेश से वह राजा राज्य और तीनों लोकों को मोहित करनेवाली पत्नी (का भार) पुत्रों को सौंपकर वन में तप करने के लिए चला गया ॥१९७॥ भगवान् का अनन्य भक्त राजा निरन्तर भगवान् का ही ध्यान करता रहता था। मुने ! सुदर्शन चक्र निरन्तर उसके पास ही रहता था। वह मुनिवर चिरकाल तक तप करके गोलोक चला गया। उसके नाम पर केदार नामक तीर्थ बन गया, जहाँ आज भी मरे हुए प्राणी को तुरन्त और निश्चित ही मोक्ष मिलता है। उसकी वृन्दा नाम की कन्या लक्ष्मी के अंश से उत्पन्न एवं तपस्विनी थी। योगशास्त्र में निपुण होने के नाते उस कन्या ने

तत्राद्यापि मृतः प्राणी सद्यो मुक्तो भवेद्ध्रुवम् । कमलांशा तस्य कन्या नाम्ना वृन्दा तपस्विनी ॥२००॥
न वव्रे सा वरं कंचिद्योगशास्त्रविशारदा । दत्तो दुर्वाससा तस्यै हरेर्मन्त्रः सुदुर्लभः ॥२०१॥
सा विरक्ता गृहं त्यक्त्वा जगाम तपसे वनम् । षष्टिवर्षसहस्राणि तपस्तेपे सुनिर्जने ॥२०२॥
आविर्बभूव श्रीकृष्णस्तत्पुरो भक्तवत्सलः । प्रसन्नवदनः श्रीमान्वरं वृण्वित्युवाच सः ॥२०३॥
दृष्ट्वा सा राधिकाकान्तं शान्तं सुन्दरविग्रहम् । मूर्च्छां संप्राप सा सद्यः कामबाणप्रपीडिता ॥२०४॥
सा च शीघ्रं वरं वव्रे पतिस्त्वं मे भवेति च । ओमित्युक्त्वा च रहसि चिरं रेमे तया सह ॥२०५॥
सा जगाम च गोलोकं कृष्णेन सह कौतुकात् । राधासमा सा सौभाग्याद्गोपीश्रेष्ठा बभूव ह ॥२०६॥
वृन्दा यत्र तपस्तेपे तत्तु वृन्दावनं स्मृतम् । वृन्दयाऽत्र कृता क्रीडा तेन वा मुनिपुंगव ॥२०७॥
अथान्यं चेतिहासं च शृणुष्व वत्स पुण्यदम् । येन वृन्दावनं नाम निबोध कथयामि ते ॥२०८॥
कुशध्वजस्य कन्ये द्वे धर्मशास्त्रविशारदे । तुलसीवेदवत्यौ च विरक्ते भवकर्मणि ॥२०९॥
तपस्तप्त्वा वेदवती प्राप नारायणं परम् । सीता जनककन्या सा सर्वत्र परिकीर्तिता ॥२१०॥
तुलसी च तपस्तप्त्वा वाञ्छां कृत्वा हरिं प्रति । दैवाद्दुर्वाससः शापात्प्राप्य शङ्खासुरं पतिम् ॥२११॥

---

किसी भी पुरुष का पति रूप में वरण नहीं किया था । दुर्वासा ने उसे भगवान् का अति दुर्लभ मन्त्र प्रदान किया, जिससे वह विरक्त होकर—गृह आकर वन में तप करने के लिए चली गयी । उस निर्जन प्रदेश में उसने साठ सहस्र वर्ष तक तप किया ॥१९८-२०२॥ अनन्तर भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण उसके सामने प्रकट हो गये । प्रसन्नमुख श्रीमान् भगवान् ने कहा—'वरदान माँगो ।' किन्तु सुन्दर शरीरवाले शान्त राधिकाकान्त को देखते ही वह काम के बाणों से अति पीड़ित होकर तुरन्त मूर्च्छित हो गयी ॥२०३-२०४॥ पश्चात् चेतना प्राप्त होने पर उसने शीघ्रता से कहा 'तुम मेरे पति हो जाओ ।' भगवान् ने इसे स्वीकार कर उसके साथ एकान्त में चिर-काल तक रमण किया । उपरान्त कौतुकवश वह भगवान् श्रीकृष्ण के साथ गोलोक चली गयी और राधा के समान श्रेष्ठ सौभाग्यशालिनी गोपी हुई ॥२०५-२०६॥ उसी वृन्दा ने जहाँ तप किया था, वही वृन्दावन कहा जाता है । अथवा मुनिवर ! वृन्दा ने यहाँ क्रीडा की थी, इसलिए इसका 'वृन्दावन' नाम पड़ा है ॥२०७॥ हे वत्स ! इसका एक अन्य भी पुण्यप्रद इतिहास तुम्हें सुना रहा हूँ, जिससे इसका वृन्दावन नाम पड़ा है, सुनो ॥२०८॥ कुशध्वज के तुलसी और वेदमती नामक दो कन्याएँ थीं, जो धर्मशास्त्र में निपुण एवं संसार से विरक्त थीं । उसमें वेदवती ने तप करके नारायण को पति रूप में प्राप्त किया । वह जनक-कन्या सीता के नाम से सर्वत्र विख्यात हैं ॥२०९॥ तुलसी ने भी भगवान् के लिए इच्छुक होकर घोर तप किया, किन्तु दुर्वासा के शापवश उसे शङ्खासुर को पति रूप में वरण करना पड़ा ॥२०९-२११॥ पश्चात् मनोहर कमलाकान्त भगवान् को पति रूप में

पश्चात्संप्राप्य कमलाकान्तं कान्तं मनोहरम् । सा चैव हरिशापेन वृक्षरूपा सुरेश्वरी ॥२१२॥
तस्याः शापेन च हरिः शालग्रामो बभूव ह । तथा तस्थौ च सततं शिलावक्षसि सुन्दरी ॥२१३॥
विस्तीर्णं कथितं सर्वं तुलसीचरितं च ते । तथाऽपि च प्रसङ्गेन किंचिदुक्तं मुने पुनः ॥२१४॥
तस्याश्च तपसः स्थानं तदिदं च तपोधन । तेन वृन्दावनं नाम प्रवदन्ति मनीषिणः ॥२१५॥
अथवा ते प्रवक्ष्यामि परं हेत्वन्तरं शृणु । येन वृन्दावनं नाम पुण्यक्षेत्रस्य भारते ॥२१६॥
राधाषोडशनाम्नां च वृन्दानाम श्रुतौ श्रुतम् । तस्याः क्रीडावनं रम्यं तेन वृन्दावनं स्मृतम् ॥२१७॥
गोलोके प्रीतये तस्याः कृष्णेन निर्मितं पुरा । क्रीडार्थं भुवि तन्नाम्ना वनं वृन्दावनं स्मृतम् ॥२१८॥

## नारद उवाच

कानि षोडश नामानि राधिकाया जगद्गुरो । तानि मे वद शिष्याय श्रोतुं कौतूहलं मम ॥२१९॥
श्रुतं नाम्नां सहस्रं च सामवेदे निरूपितम् । तथाऽपि श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो नामानि षोडश ॥२२०॥
अभ्यन्तराणि तेषां वा तदन्यान्येव मे विभो । अहो पुण्यस्वरूपाणि भक्तानां वाञ्छितानि च ॥२२१॥
नामानि तेषां व्युत्पत्तिं सर्वेषां दुर्लभानि च । पावनानि जगन्मातुर्जगतामपि कारणम् ॥२२२॥

---

प्राप्त किया । वह सुरेश्वरी भगवान् के शाप से वृक्ष रूप हो गयी थी और उसके शाप से भगवान् ने शालग्राम का रूप धारण किया । किन्तु वह सुन्दरी शालग्राम भगवान् के वक्षःस्थल पर तुलसी के रूप में निरन्तर रहने लगी ॥२१०-२१३॥ मुने ! तुलसी का विस्तृत चरित्र तुम्हें बता दिया था यहाँ भी प्रसंगवश कुछ चर्चा कर दी ॥२१४॥ तपोधन ! उसके तप करने का भी यही स्थान है, इससे भी मनीषी लोग इसे 'वृन्दावन' कहते हैं ॥२१५॥ अथवा तुम्हें इसका एक और अन्य कारण बता रहा हूँ, जिससे भारत में इस पुण्य क्षेत्र का वृन्दावन नाम पड़ा है, सुनो ॥२१६॥ राधिका जी के सोलह नामों में से उनका एक नाम वृन्दा भी है, ऐसा वेद में सुना गया है । उन्हीं का यह रमणीक क्रीडा-वन है, इससे यह वृन्दावन कहा जाता है ॥२१७॥ पूर्वकाल में भगवान् श्रीकृष्ण ने गोलोक में राधा के प्रसन्नार्थ उसे बनाया था और यहाँ भूतल में भी उनके क्रीडार्थ उसी नाम से वृन्दावन बनाया है, इसलिए भी इसे 'वृन्दावन' कहा जाता है ॥२१८॥

**नारद बोले**—जगद्गुरो ! राधिका के वे सोलह नाम कौन हैं ? उसके सुनने का मुझे कौतूहल हो रहा है, अतः मुझ शिष्य को बताने की कृपा करें ॥२१९॥ यद्यपि सामवेद में उनके सहस्र नाम सुने हैं तथापि आप से उनके सोलह नाम मैं सुनना चाहता हूँ ॥२२०॥ विभो ! चाहे ये नाम उन नामों के ही अन्तर्गत हों या उनसे भिन्न हों, मुझे अवश्य बतायें, क्योंकि ये नाम पुण्यस्वरूप एवं भक्तों को अति अभीष्ट हैं ॥२२१॥ जगन्माता राधिका के सर्वदुर्लभ उन नामों की व्युत्पत्ति भी बताइये, क्योंकि ये नाम पावन एवं जगत् के कारण हैं ॥२२२॥

## नारायण उवाच

राधा रासेश्वरी रासवासिनी रसिकेश्वरी। कृष्णप्राणाधिका कृष्णप्रिया च कृष्णरूपिणी ॥२२३॥
कृष्णवामाङ्गसंभूता परमानन्दरूपिणी। कृष्णा वृन्दावनी वृन्दा वृन्दावनविनोदिनी ॥२२४॥
चन्द्रावती चन्द्रकान्ता शतचन्द्रनिभानना। नामान्येतानि साराणि तेषामभ्यन्तराणि च ॥२२५॥
राधेत्येवं च संसिद्धा राकारो दानवाचकः। स्वयं निर्वाणदात्री या सा राधा परिकीर्तिता ॥२२६॥
रा च रासे च भवनाद्धा एव धारणावहो। हरेरालिङ्गनादारात्तेन राधा प्रकीर्तिता ॥२२७॥
रासेश्वरस्य पत्नीयं तेन रासेश्वरी स्मृता। रासे च वासो यस्याश्च तेन सा रासवासिनी ॥२२८॥
सर्वासां रसिकानां च देवीनामीश्वरी परा। प्रवदन्ति पुरा सन्तस्तेन तां रसिकेश्वरीम् ॥२२९॥
प्राणाधिका प्रेयसी सा कृष्णस्य परमात्मनः। कृष्णप्राणाधिका सा च कृष्णेन परिकीर्तिता ॥२३०॥
कृष्णस्यातिप्रिया कान्ता कृष्णो वाऽस्याः प्रियः सदा। सर्वैर्देवगणैरुक्ता तेन कृष्णप्रिया स्मृता ॥२३१॥
कृष्णरूपं संविधातुं[1] या शक्ता चावलीलया। सर्वांशैः कृष्णसदृशी तेन कृष्णस्वरूपिणी ॥२३२॥
वामाङ्गार्धेन कृष्णस्य या संभूता परा सती। कृष्णवामाङ्गसंभूता तेन कृष्णेन कीर्तिता ॥२३३॥

---

**नारायण बोले**–राधा, रासेश्वरी, रासवासिनी, रसिकेश्वरी, कृष्णप्राणाधिका, कृष्णप्रिया, कृष्णस्वरूपिणी, कृष्णवामाङ्गसंभूता, परमानन्दरूपिणी, कृष्णा, वृन्दावनी, वृन्दा, वृन्दावनविनोदिनी, चन्द्रावती, चन्द्रकान्ता और शतचन्द्रनिभानना—ये सारभूत सोलह नाम सहस्र नामों के ही अन्तर्गत हैं ॥२२३-२२५॥ 'राधा' नाम में धा का अर्थ है संसिद्धि (निर्वाण) तथा 'रा' दानवाचक है। जो स्वयं निर्वाण (मोक्ष) प्रदान करनेवाली हैं, वे 'राधा' कही गयी हैं ॥२२६॥ 'रा' रासवाची है, 'धा' धारणवाची है और दूर या समीप से हरि का आलिंगन करने से वे राधा कहलायीं ॥२२७॥ रासेश्वर की पत्नी होने के कारण उन्हें 'रासेश्वरी' कहा गया है। रास में निवास करने के कारण उन्हें 'रासवासिनी' कहते हैं ॥२२८॥ समस्त रसिक देवियों की श्रेष्ठ अधीश्वरी होने के कारण उन्हें पुरातन सन्त 'रसिकेश्वरी' कहते हैं ॥२२९॥ परमात्मा श्रीकृष्ण के लिए वे प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं, अतः कृष्ण ने स्वयं उन्हें 'कृष्णप्राणाधिका' कहा है ॥२३०॥ वे कृष्ण की अति प्रिय कान्ता हैं और उनके कृष्ण सदा प्रिय हैं इसलिए समस्त देवों ने उन्हें 'कृष्णप्रिया' कहा है ॥२३१॥ लीलापूर्वक कृष्णरूप धारण कर लेने और सभी अंशों में कृष्ण के समान होने के कारण उन्हें 'कृष्णस्वरूपिणी' कहा जाता है ॥२३२॥ सर्वश्रेष्ठ पतिव्रता राधा श्रीकृष्ण के बायें अर्द्धाङ्ग से उत्पन्न हुई हैं, इसीलिए कृष्ण ने स्वयं उन्हें

---

1. ख० संनिधा०।

परमानन्दराशिश्च स्वयं मूर्तिमती सती । श्रुतिभिः कीर्तिता तेन परमानन्दरूपिणी ।।२३४।।
कृषिर्मोक्षार्थवचनो न एवोत्कृष्टवाचकः । आकारो दातृवचनस्तेन कृष्णा प्रकीर्तिता ।।२३५।।
अस्ति वृन्दावनं यस्यास्तेन वृन्दावनी स्मृता । वृन्दावनस्याधिदेवी तेन वाऽथ प्रकीर्तिता ।।२३६।।
संघः सखीनां वृन्दः स्यादकारोऽप्यतिवाचकः । सखिवृन्दोऽस्ति यस्याश्च स वृन्दा परिकीर्तिता ।।२३७।।
वृन्दावने विनोदश्च सोऽस्या ह्यस्ति च तत्र वै । वेदा वदन्ति तां तेन वृन्दावनविनोदिनीम् ।।२३८।।
नखचन्द्रावलीवक्त्रचन्द्रोऽस्ति यत्र संततम् । तेन चन्द्रावली सा च कृष्णेन परिकीर्तिता ।।२३९।।
कान्तिरस्ति चन्द्रतुल्या सदा यस्या दिवानिशम् । सा चन्द्रकान्ता हर्षेण हरिणा परिकीर्तिता ।।२४०।।
शरच्चन्द्रप्रभा यस्याश्चाऽऽननेऽस्ति दिवानिशम् । मुनिना कीर्तिता तेन शरच्चन्द्रप्रभानना ।।२४१।।
इदं षोडशनामोक्तमर्थव्याख्यानसंयुतम् । नारायणेन यद्दत्तं ब्रह्मणे नाभिपङ्कजे ।।२४२।।
ब्रह्मणा च पुरा दत्तं धर्माय जनकाय मे । धर्मेण कृपया दत्तं मह्यमादित्यपर्वणि ।।२४३।।
पुष्करे च महातीर्थे पुण्याहे देवसंसदि । राधाप्रभावप्रस्तावे सुप्रसन्नेन चेतसा ।।२४४।।
इदं स्तोत्रं महापुण्यं तुभ्यं दत्तं मया मुने । निन्दकायावैष्णवाय न दातव्यं महामुने ।।२४५।।

---

'कृष्णवामांगसम्भूता' कहा है ।।२३३।। सती राधा स्वयं परमानन्द की मूर्तिमती राशि हैं, इसीलिए वेदों ने उन्हें 'परमानन्दरूपिणी' कहा है ।।२३४।। मोक्ष के अर्थ में 'कृष्' शब्द प्रयुक्त है, 'ण' शब्द उत्कृष्टार्थक है और आकार का अर्थ दाता है, अतः उन्हें 'कृष्णा' कहा गया है ।।२३५।। वृन्दावन उन्हीं का है अतः उन्हें 'वृन्दावनी' कहा गया है । अथवा वृन्दावन की अधीश्वरी देवी होने के कारण वे 'वृन्दावनी' कही जाती हैं ।।२३६।। सखियों का समुदाय वृन्द कहलाता है और अकार का अर्थ है सत्ता । उनके समूह-की-समूह सखियाँ हैं, अतः 'वृन्दा' कहा जाता है ।।२३७।। वृन्दावन में उन्हें अधिक विनोद प्राप्त होता है इसलिए वेद उन्हें 'वृन्दावन-विनोदिनी' कहते हैं ।।२३८।। वे सदा मुखचन्द्र तथा नखचन्द्र की अवली (पंक्ति) से युक्त हैं, इस कारण श्रीकृष्ण ने उन्हें 'चन्द्रावली' कहा है ।।२३९।। उनकी कान्ति चन्द्रमा के समान दिन-रात बनी रहती है, अतः हर्षित होकर भगवान् ने उन्हें 'चन्द्रकान्ता' कहा है ।।२४०।। शारदीय चन्द्रमा के समान कान्ति मुखमण्डल पर दिन-रात बनी रहती है, इसी से मुनि ने उन्हें 'शरच्चन्द्रप्रभानना' कहा है ।।२४१।। इस प्रकार उनके सोलहों नामों की व्याख्या समेत अर्थ कह दिया, जिसे नारायण ने नील कमल पर स्थित ब्रह्मा को बताया था, ब्रह्मा ने पूर्वसमय मेरे पिता धर्म को बताया था और धर्म ने सूर्यग्रहण के समय महातीर्थ पुष्कर क्षेत्र में पुण्य पर्व पर देवसभा में राधा जी के प्रभाव की प्रस्तावना होने पर अत्यन्त प्रसन्न होकर कृपा करके मुझे दिया था ।।२४२-२४४।। अब यह महापुण्य स्तोत्र मैंने तुम्हें दिया है, जिसे कभी भी किसी निन्दक या अवैष्णव को न देना ।

यावज्जीवमिदं स्तोत्रं त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः। राधामाधवयोः पादपद्मे भक्तिर्भवेदिह ॥२४६॥
अन्ते लभेत्तयोर्दास्यं शश्वत्सहचरो भवेत्। अणिमादिकसिद्धिं च संप्राप्य नित्यविग्रहम् ॥२४७॥
व्रतदानोपवासैश्च सर्वैर्नियमपूर्वकैः। चतुर्णां चैव वेदानां पाठैः सर्वार्थसंयुतैः ॥२४८॥
सर्वेषां यज्ञतीर्थानां करणैर्विधिबोधितैः। प्रदक्षिणेन भूमेश्च कृत्स्नाया एव सप्तधा ॥२४९॥
शरणागतरक्षायामज्ञानां ज्ञानदानतः। देवानां वैष्णवानां च दर्शनेनापि यत्फलम् ॥२५०॥
तदेव स्तोत्रपाठस्य कलां नार्हति षोडशीम्। स्तोत्रस्यास्य प्रभावेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥२५१॥

## नारद उवाच

संप्राप्तं परमाश्चर्यं स्तोत्रं सर्वसुदुर्लभम्। कवचं चापि देव्याश्च संसारविजयं प्रभो ॥२५२॥
कृतं स्तोत्रं सुयज्ञेन प्राप्तं तदपि दुर्लभम्। श्रुत्वा कृष्णकथां चित्रां त्वत्पादाब्जप्रसादतः ॥२५३॥
अधुना श्रोतुमिच्छामि यद्रहस्यं च तद्वद। प्रातश्च नगरं दृष्ट्वा किमूचुर्वल्लवा मुने ॥२५४॥

## नारायण उवाच

गतायां तत्र यामिन्यां गते च विश्वकर्मणि। अरुणोदयवेलायां जनाः सर्वे जजागरुः ॥२५५॥
उत्थाय दृष्ट्वा नगरं सर्वेभ्योऽपि विलक्षणम्। किमाश्चर्यं किमाश्चर्यमित्यूचुर्व्रजवासिनः ॥२५६॥

---

महामुने ! इस स्तोत्र का जो आजीवन तीनों संध्याओं में पाठ करता है, उसे इसी जन्म में राधामाधव के चरण-कमल की भक्ति शीघ्र प्राप्त हो जाती है और अन्त समय में दास्य पद प्राप्त करके वह उन दोनों का निरन्तर सहचारी बन जाता है। अणिमा आदि सिद्धियों समेत उसे नित्य शरीर प्राप्त हो जाता है ॥२४५-२४७॥ सम्पूर्ण नियमों समेत व्रत, दान, उपवास, अर्थ समेत चारों वेदों के पाठ, सविधान समस्त यज्ञों के सुसम्पादन, निखिल पृथ्वी की सात बार परिक्रमा, शरणागत की रक्षा, अज्ञानी को ज्ञान-दान और देवों एवं वैष्णवों के दर्शन करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, वह इस स्तोत्र पाठ की सोलहवीं कला के भी समान नहीं है। इस स्तोत्र के प्रभाव से मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है ॥२४८-२५१॥

**नारद बोले**—प्रभो ! यह सर्वदुर्लभ परमाश्चर्यमय स्तोत्र मुझे मिल गया, और राधा देवी का संसार विजय नामक कवच भी मैंने प्राप्त कर लिया। सुयज्ञकृत वह परम दुर्लभ स्तोत्र भी मुझे प्राप्त हो गया है। तुम्हारे चरणकमल की कृपा से भगवान् कृष्ण की चित्र-विचित्र कथाएँ भी सुन ली हैं, अब मुझे वह रहस्य बताने की कृपा करें कि—प्रातःकाल नगर को देखकर गोपों ने क्या कहा ? ॥२५२-२५४॥

**नारायण बोले**—जब रात बीत गयी, विश्वकर्मा चले गये और अरुणोदय हुआ तब सब लोग जाग उठे ॥२५५॥ उठते ही सबसे विलक्षण नगर-रचना देखकर सभी व्रजवासी कहने लगे कि—यह क्या आश्चर्य

ताश्चिद्‌गोपान्केचिदूचुः कुत एतदभूदिदम् । न जाने केन रूपेण को भूमौ प्रभवेदिति ॥२५७॥
बुबुधे मनसा नन्दो गर्गवाक्यमनुस्मरन् । श्रीहरेरिच्छया सर्वं जगदेतच्चराचरम् ॥२५८॥
ब्रह्मादितृणपर्यन्तं यस्य भ्रूभङ्गलीलया । आविर्भूतं तिरोभूतं तस्यासाध्यं च किं कुतः ॥२५९॥
विवरेष्वेव यल्लोम्नां ब्रह्माण्डान्यखिलानि च । ईशस्य तन्महाविष्णोः किमसाध्यं हरेरहो ॥२६०॥
ब्रह्मानन्तेशधर्माश्च ध्यायन्ते यत्पदाम्बुजम् । किमसाध्यं तदीशस्य मायामानुषरूपिणः ॥२६१॥
भ्रामं भ्रामं तन्नगरं दर्शं दर्शं गृहं गृहम् । पाठं पाठं च नामानि सर्वेभ्यो निलयं ददौ ॥२६२॥
कृत्वा शुभक्षणं नन्दो वृषभानश्च कौतुकी । चकार स गणैः सार्धं मुदाऽऽश्रमनिवेशनम् ॥२६३॥
सर्वे वृन्दावनस्थाश्च प्रसन्नवदनेक्षणाः । मुदा प्रवेशनं चक्रुः स्वं स्वमाश्रममुत्तमम् ॥२६४॥
सर्वे मुमुदिरे गोपाः स्वे स्वे स्थाने मनोहरे । बालका बालिकाश्चैव चिक्रीडुश्च प्रहर्षिताः ॥२६५॥
श्रीकृष्णो बलदेवश्च शिशुभिः सह कौतुकात् । क्रीडां चकार तत्रैव स्थाने स्थाने मनोहरे ॥२६६॥
इत्येवं कथितं सर्वं निर्माणं नगरस्य च । अबलानां वने रासमण्डलस्य च नारदः ॥२६७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारद० वृन्दावननगरवर्णनं नाम
सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

---

है—यह क्या आश्चर्य है ॥२५६॥ कुछ लोगों ने कुछ गोपों से यह कहा कि—यह कैसे हुआ ? न जाने भूतल पर किस रूप से कौन प्रकट हो सकता है ? ॥२५७॥ नन्द गर्ग की बातों का स्मरण करते हुए मन में यह समझ गये कि—'यह भगवान् की इच्छा है ।' क्योंकि उनकी इच्छा से यह समस्त चर-अचर जगत् उत्पन्न होता है और उनके भ्रू-भंग की लीला मात्र से ब्रह्मा से लेकर तृणपर्यन्त बनता और बिगड़ता है, उनके लिए क्या और कैसे असाध्य हो सकता है ? ॥२५८-२५९॥ अहो ! जिस भगवान् के लोम-विवरों में अखिल ब्रह्माण्ड भरे पड़े हैं, उस महाविष्णु ईश के लिए क्या असम्भव हो सकता है ? ॥२६०॥ ब्रह्मा, अनन्त, शिव और धर्म जिनके चरण-कमल का सतत ध्यान करते रहते हैं, उन माया-मानव-रूपधारी ईश के लिए क्या असाध्य है ? ॥२६१॥ नन्द ने उस नगर के प्रत्येक स्थान में घूम-घूमकर और उसमें लिखित नामों को पढ़कर सबके लिए घरों का वितरण कर दिया ॥२६२॥ नन्द और वृषभानु ने भी कौतुकवश बड़ी प्रसन्नता से शुभ मुहूर्त में गणों समेत अपने-अपने गृह में प्रवेश किया ॥२६३॥ वृन्दावन में रहकर उन सबके मुख और नेत्र प्रसन्नता से खिल उठे । उन सब गोपों ने अपने-अपने उत्तम आश्रम में आनन्द के साथ पदार्पण किया । अपने-अपने मनोहर स्थान में वे सब बड़े प्रसन्न हुए । बालक और बालिकाएँ हर्षपूर्वक खेलने-कूदने लगीं ॥२६४-२६५॥ श्रीकृष्ण और बलदेव भी कौतुकवश बालकों के साथ वहाँ प्रत्येक मनोहर स्थान पर क्रीड़ा करने लगे ॥२६६॥ नारद ! इस प्रकार मैंने नगर का निर्माण और वन में गोपियों के रासमण्डल की रचना तुम्हें बता दी ॥२६७॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारायण-नारदसंवाद में वृन्दावन-नगर-वर्णन नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥१७॥

काश्चिद्गोपान्केचिदूचुः कुत एतदभूदिदम् । न जाने केन रूपेण को भूमौ प्रभवेदिति ।।२५७।।
बुबुधे मनसा नन्दो गर्गवाक्यमनुस्मरन् । श्रीहरेरिच्छया सर्वं जगदेतच्चराचरम् ।।२५८।।
ब्रह्मादितृणपर्यन्तं यस्य भ्रूभङ्गलीलया । आविर्भूतं तिरोभूतं तस्यासाध्यं च किं कुतः ।।२५९।।
विवरेष्वेव यल्लोम्नां ब्रह्माण्डान्यखिलानि च । ईशस्य तन्महाविष्णोः किमसाध्यं हरेरहो ।।२६०।।
ब्रह्मानन्तेशधर्माश्च ध्यायन्ते यत्पदाम्बुजम् । किमसाध्यं तदीशस्य मायामानुषरूपिणः ।।२६१।।
भ्रामं भ्रामं तन्नगरं दर्शं दर्शं गृहं गृहम् । पाठं पाठं च नामानि सर्वेभ्यो निलयं ददौ ।।२६२।।
कृत्वा शुभक्षणं नन्दो वृषभानश्च कौतुकी । चकार स गणैः सार्धं मुदाऽऽश्रमनिवेशनम् ।।२६३।।
सर्वे वृन्दावनस्थाश्च प्रसन्नवदनेक्षणाः । मुदा प्रवेशनं चक्रुः स्वं स्वमाश्रममुत्तमम् ।।२६४।।
सर्वे मुमुदिरे गोपाः स्वे स्वे स्थाने मनोहरे । बालका बालिकाश्चैव चिक्रीडुश्च प्रहर्षिताः ।।२६५।।
श्रीकृष्णो बलदेवश्च शिशुभिः सह कौतुकात् । क्रीडां चकार तत्रैव स्थाने स्थाने मनोहरे ।।२६६।।
इत्येवं कथितं सर्वं निर्माणं नगरस्य च । अबलानां वने रासमण्डलस्य च नारदः ।।२६७।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारद० वृन्दावननगरवर्णनं नाम
सप्तदशोऽध्यायः ।।१७।।

---

है—यह क्या आश्चर्य है ।।२५६।। कुछ लोगों ने कुछ गोपों से यह कहा कि—यह कैसे हुआ ? न जाने भूतल पर किस रूप से कौन प्रकट हो सकता है ? ।।२५७।। नन्द गर्ग की बातों का स्मरण करते हुए मन में यह समझ गये कि—'यह भगवान् की इच्छा है ।' क्योंकि उनकी इच्छा से यह समस्त चर-अचर जगत् उत्पन्न होता है और उनके भ्रू-भंग की लीला मात्र से ब्रह्मा से लेकर तृणपर्यन्त बनता और बिगड़ता है, उनके लिए क्या और कैसे असाध्य हो सकता है ? ।।२५८-२५९।। अहो ! जिस भगवान् के लोम-विवरों में अखिल ब्रह्माण्ड भरे पड़े हैं, उस महाविष्णु ईश के लिए क्या असम्भव हो सकता है ? ।।२६०।। ब्रह्मा, अनन्त, शिव और धर्म जिनके चरण-कमल का सतत ध्यान करते रहते हैं, उन माया-मानव-रूपधारी ईश के लिए क्या असाध्य है ? ।।२६१।। नन्द ने उस नगर के प्रत्येक स्थान में घूम-घूमकर और उसमें लिखित नामों को पढ़कर सबके लिए घरों का वितरण कर दिया ।।२६२।। नन्द और वृषभानु ने भी कौतुकवश बड़ी प्रसन्नता से शुभ मुहूर्त में गणों समेत अपने-अपने गृह में प्रवेश किया ।।२६३।। वृन्दावन में रहकर उन सबके मुख और नेत्र प्रसन्नता से खिल उठे । उन सब गोपों ने अपने-अपने उत्तम आश्रम में आनन्द के साथ पदार्पण किया । अपने-अपने मनोहर स्थान में वे सब बड़े प्रसन्न हुए । बालक और बालिकाएँ हर्षपूर्वक खेलने-कूदने लगीं ।।२६४-२६५।। श्रीकृष्ण और बलदेव भी कौतुकवश बालकों के साथ वहाँ प्रत्येक मनोहर स्थान पर क्रीड़ा करने लगे ।।२६६।। नारद ! इस प्रकार मैंने नगर का निर्माण और वन में गोपियों के रासमण्डल की रचना तुम्हें बता दी ।।२६७।।

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारायण-नारदसंवाद में वृन्दावन-नगर-वर्णन नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ।।१७।।

# अथाष्टादशोऽध्यायः

### शौनक उवाच

अहो किमद्भुतं सूत रहस्यं सुमनोहरम् । श्रुतं कृष्णस्य चरितं सुखदं मोक्षदं परम् ।।१।।

### सूत उवाच

श्रुत्वा नगरनिर्माणं नारदो मुनिसत्तमः । पप्रच्छ कृष्णचरितमपरं सुमनोहरम् ।।२।।

### नारद उवाच

श्रीकृष्णाख्यानचरितं पीयूषमृषित्तम । ज्ञानसिन्धो निगद मां शिष्यं च शरणागतम् ।।३।।
नारदस्य वचः श्रुत्वा मुदा नारायणः स्वयम् । उवाच परमीशस्य चरितं परमाद्भुतम् ।।४।।

### नारायण उवाच

एकदा बालकैः सार्धं बलेन सह माधवः । जगाम श्रीमधुवनं यमुनातीरनीरजम् ।।५।।
विचेरुर्गोसहस्रैश्च चिक्रीडुर्बालकास्तदा । विश्रान्तास्तृट्परीताश्च क्षुधाऽतिपरिपीडिताः ।।६।।

---

# अध्याय १८

## ब्राह्मण-पत्नी का मोक्ष-प्रस्ताव

**शौनक बोले**—सूत ! अहो ! यह अति मनोहर एवं आश्चर्यमय भगवान् कृष्ण का कैसा रहस्यमय चरित मैंने सुना, जो परम सुखदायक और मोक्षप्रद है ।।१।।

**सूत बोले**—नगर-निर्माण सुनकर मुनिश्रेष्ठ नारद ने भगवान् कृष्ण का दूसरा अति मनोहर चरित पूछा ।।२।।

**नारद बोले**—ऋषिश्रेष्ठ ! ज्ञानसिंधो ! मैं आपकी शरण में आया हूँ और आपका शिष्य हूँ, अतः श्रीकृष्ण के चरित का अमृतमय आख्यान मुझे बतायें ।।३।। नारद की बात सुनकर नारायण ने स्वयं हर्ष से भगवान् का परमाश्चर्यमय चरित कहना प्रारम्भ किया ।।४।।

**नारायण बोले**—एक बार माधव ने बलदेव और अन्य बालकों के साथ श्रीमधुवन की यात्रा की, जो यमुना के किनारे जल द्वारा उत्पन्न हुआ था ।।५।। उस समय सब बालक सहस्रों गौओं के साथ वहाँ विचरने और

तमूचुर्गोपशिशवः श्रीकृष्णं परमेश्वरम् । क्षुदस्मान्बाधते कृष्ण किं कुर्मो ब्रूहि किंकरान् ॥७॥
शिशूनां वचनं श्रुत्वा तानुवाच दयानिधिः । हितं तथ्यं च वचनं प्रसन्नवदनेक्षणः ॥८॥

### श्रीकृष्ण उवाच

बाला गच्छत विप्राणां यज्ञस्थानं सुखावहम् । अन्नं याचत ताञ्छीघ्रं ब्राह्मणांश्च क्रतून्मुखान् ॥९॥
विप्रा आङ्गिरसाः सर्वे स्वाश्रमे श्रीवनान्तिके । यज्ञं कुर्वन्ति विप्राश्च श्रुतिस्मृतिविशारदाः ॥१०॥
निःस्पृहा वैष्णवाः सर्वे मां यजन्ति मुमुक्षवः । मायया मां न जानन्ति मायामानुषरूपिणम् ॥११॥
न वेद्दति युष्मभ्यमन्नं विप्राः क्रतून्मुखाः । तत्कान्ता याचत क्षिप्रं दयायुक्ताः शिशून्प्रति ॥१२॥
श्रीकृष्णवचनं श्रुत्वा ययुर्बालकपुंगवाः । पुरतो ब्राह्मणानां च तस्थुरानम्रकंधराः ॥१३॥
इत्यूचुर्बालकाः शीघ्रमन्नं दत्त द्विजोत्तमाः । न शुश्रुवुर्द्विजाः केचित्केचिच्छ्रुत्वा स्थिराः स्थिताः ॥१४॥
ते ययू रन्धनागारं ब्राह्मण्यो यत्र पाचिकाः । नत्वा बाला विप्रभार्याः प्रणेमुर्नतकंधराः ॥१५॥
नत्वोचुर्बालकाः सर्वे विप्रभार्याः पतिव्रताः । अन्नं दत्त मातरोऽस्मान्क्षुधार्तान्बालकानपि ॥१६॥

---

खेलने लगे ॥६॥ थक जाने तथा भूख और प्यास से अतिपीड़ित हो जाने पर उन बालकों ने भगवान् श्रीकृष्ण से कहा--हे कृष्ण ! हमें भूख बहुत कष्ट दे रही है, हम आपके सेवक हैं, बताइये, क्या करें ? ॥७॥ बच्चों की बात सुनकर प्रसन्न मुख और नेत्रवाले दयानिधान कृष्ण ने सत्य वचन कहा ॥८॥

**श्रीकृष्ण बोले**—बालको ! तुम सब ब्राह्मणों के सुखदायक यज्ञस्थान में जाओ, और यज्ञ-तत्पर उन ब्राह्मणों से शीघ्र अन्न की याचना करो ॥९॥ श्रुति एवं स्मृति आदि में अत्यन्त निपुण वे अंगिरा गोत्रवाले सभी ब्राह्मण यज्ञ कर रहे हैं ॥१०॥ वे सभी वैष्णव हैं और मोक्षार्थ मेरे लिए यज्ञ कर रहे हैं, किन्तु माया के कारण वे माया से मानवरूपधारी मुझे नहीं जान पा रहे हैं ॥११॥ यदि वे यज्ञ करने में तत्पर ब्राह्मणगण तुम्हें अन्न न दे सकें तो तुम लोग उनकी स्त्रियों से शीघ्र याचना करना, क्योंकि वे बच्चों के प्रति अत्यन्त दयालु होती हैं ॥१२॥ भगवान् श्रीकृष्ण की बात सुनकर वे बालकश्रेष्ठ वहाँ पहुँचे और उन ब्राह्मणों के सामने कन्धे झुकाकर खड़े हो गये ॥१३॥ बालकों ने कहा—हे उत्तम ब्राह्मणो ! हमें शीघ्र भोजन दे दीजिये । किन्तु उनमें से कुछ ब्राह्मणों ने उनकी बात सुनी ही नहीं और कुछ लोग सुनकर भी ज्यों-के-त्यों खड़े रह गये ॥१४॥ अनन्तर बालकों ने पाकशाला में, जहाँ ब्राह्मणियाँ भोजन बना रही थीं, जाकर कन्धे झुकाकर उन्हें प्रणाम किया ॥१५॥ उन पतिव्रता ब्राह्मण-पत्नियों को नमस्कार करके सभी बालकों ने उनसे कहा—माताओ ! हम सभी को क्षुधा

बालानां वचनं श्रुत्वा दृष्ट्वा तांश्च मनोहरान् । पप्रच्छुः सादरं साध्व्यः स्मेराननसरोरुहाः ॥१७॥

विप्रपत्न्य ऊचुः

के यूयं प्रेषिताः केन कानि नामानि कोविदाः । दास्यामोऽन्नं बहुविधं व्यञ्जनैः सहितं वरम् ॥१८॥
ब्राह्मणीनां वचः श्रुत्वा ता ऊचुस्ते मुदाऽन्विताः । स्निग्धा हसन्तः स्फीताश्च सर्वे गोपालबालकाः ॥१९॥

बाला ऊचुः

प्रेषिता रामकृष्णाभ्यां वयं क्षुत्पीडिता भृशम् । दत्तान्नं मातरोऽस्मभ्यं क्षिप्रं यामस्तदन्तिकम् ॥२०॥
इतो विदूरे भाण्डीरे वनाभ्यन्तरमेव च । वटमूले मधुवने वसन्तौ रामकेशवौ ॥२१॥
विश्रान्तौ क्षुधितौ तौ च याचेतेऽन्नं च मातरः । किमु देयमदेयं वा शीघ्रं वदत नोऽधुना ॥२२॥
गोपानां वचनं श्रुत्वा हृष्टानन्दाश्रुलोचनाः । पुलकाङ्कितसर्वाङ्गास्तत्पादाब्जमनोरथाः ॥२३॥
नानाव्यञ्जनसंयुक्तं शाल्यन्नं सुमनोहरम् । पायसं पिष्टकं स्वादु दधि क्षीरं घृतं मधु ॥२४॥
रौप्ये कांस्ये राजते च पात्रे कृत्वा मुदाऽन्विताः । ताः सर्वा विप्रपत्न्यश्च प्रययुः कृष्णसंनिधिम् ॥२५॥

---

पीड़ित कर रही है, अतः हमें भोजन प्रदान करो ॥१६॥ बालकों की बात सुनकर और उन्हें मनोहर देखकर मुसकराहट से युक्त मुखकमलवाली उन पतिव्रताओं ने आदरपूर्वक उनसे पूछा ॥१७॥

**ब्राह्मणपत्नियाँ बोलीं**—समझदार बालको ! तुम लोग कौन हो ! तुम्हें किसने भेजा है ? तुम्हारे क्या नाम हैं ? हम तुम्हें व्यञ्जन सहित नाना प्रकार का श्रेष्ठ भोजन देंगी । ब्राह्मणियों की बात सुनकर वे सभी स्निग्ध एवं हृष्ट-पुष्ट गोप-बालक हर्ष से हँसते हुए बोले ॥१८-१९॥

**बालकगण बोले**—माताओ ! राम और कृष्ण ने हमें भेजा है । हम लोग क्षुधा से अत्यन्त पीड़ित हैं। हमें भोजन दे दो । हम शीघ्र उनके पास चले जायेंगे ॥२०॥ यहाँ से थोड़ी दूर पर भाण्डीर वन के भीतर मधुवन में वटवृक्ष के नीचे बलदेव और कृष्ण बैठे हैं ॥२१॥ माताओ ! वे शान्त और भूखे-प्यासे हैं, भोजन माँग रहे हैं, तुम्हें देना है या नहीं यह हमें शीघ्र बता दो ॥२२॥ उन गोपों की बात सुनकर अति हर्ष के कारण उन स्त्रियों के नेत्र में आँसू आ गये, सर्वाङ्ग में रोमाञ्च हो आया, क्योंकि वे (भगवान् के) चरण-कमल को बहुत दिनों से चाह रही थीं ॥२३॥ सोने, चाँदी तथा फूल की थालियों में प्रसन्नतापूर्वक भाँति-भाँति के व्यञ्जनों से युक्त अत्यन्त मनोहर अगहनी चावल का भात, खीर, स्वादिष्ट पीठा, दही, दूध, घी और मधु रखकर श्रीकृष्ण के

नानामनोरथं कृत्वा मनसा गमनोत्सुकाः। पतिव्रतारता धन्याश्च श्रीकृष्णदर्शनोत्सुकाः ॥२६॥
श्रीकृष्णं ददृशुर्गत्वा रामं च सहबालकम्। वटमूले वसन्तं तमुडुमध्ये यथोडुपम् ॥२७॥
श्यामं किशोरवयसं पीतकौशेयवाससम्। सुन्दरं सस्मितं शान्तं राधाकान्तं मनोहरम् ॥२८॥
शरत्पार्वणचन्द्रास्यं रत्नालंकारभूषितम्। रत्नकुण्डलयुग्माभ्यां गण्डस्थलविराजितम् ॥२९॥
रत्नकेयूरवलयरत्ननूपुरभूषितम्। आजानुलम्बितां शुभ्रां बिभ्रतं रत्नमालिकाम् ॥३०॥
मालतीमालया कण्ठवक्षःस्थलविराजितम्। चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमाञ्चितविग्रहम् ॥३१॥
सुनसं[1] सुकपोलं च पक्वबिम्बाधरं वरम्। पक्वदाडिमबीजाभं बिभ्रतं दन्तमुत्तमम् ॥३२॥
शिखिपिच्छसमायुक्तं बद्धचूडं परात्परम्। कदम्बपुष्पयुग्माभ्यां कर्णमूले विराजितम् ॥३३॥
ध्यानासाध्यं योगिनां च भक्तानुग्रहकारकम्। ब्रह्मेशधर्मशेषेन्द्रैः स्तूयमानं मुनीश्वरैः ॥३४॥
दृष्ट्वेममीश्वरं भक्त्या प्रणेमुर्द्विजयोषितः। स्वानां ज्ञानानुरूपं च तुष्टुवुर्मधुसूदनम् ॥३५॥

### विप्रपत्न्य ऊचुः

त्वं ब्रह्म परमं धाम निरीहो निरहंकृतिः। निर्गुणश्च निराकारः साकारः सगुणः स्वयम् ॥३६॥

---

समीप गयीं ॥२४-२५॥ वे पतिव्रताएँ धन्य हैं, जो श्रीकृष्ण के दर्शन के लिए अत्यन्त उत्सुक होकर मन में अनेक भाँति की इच्छाएँ करती हुई उनके पास चली जा रही थीं ॥२६॥ वहाँ पहुँचकर उन्होंने बालकों समेत बलराम और श्रीकृष्ण को देखा। वे वट वृक्ष के नीचे बैठे थे, जो तारों के मध्य चन्द्रमा की भाँति सुशोभित हो रहे थे। वे श्यामवर्ण, किशोरावस्था से युक्त, पीत रेशमी वस्त्र पहने सुन्दर, मुसकराते हुए, शान्त, राधा के कान्त एवं मनोहर थे ॥२७-२८॥ शारदीय पूर्णिमा के चन्द्रमा की भाँति उनका मुख था। वे रत्नों के आभूषणों से भूषित थे। उनके गण्डस्थल पर रत्नों के युगल कुण्डल विराजमान थे ॥२९॥ रत्नों के बहूँटा, कङ्कण और रत्नों के नूपुर से वे सुशोभित थे। उन्होंने गले में आजानुलम्बिनी शुभ्र रत्न-माला धारण कर रखी थी। मालती की माला से उनके कण्ठ और वक्षःस्थल दोनों सुशोभित थे। चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुम से उनके श्री अंग चर्चित थे। उनकी नासिका और कपोल सुन्दर थे। ओष्ठ पके बिम्बाफल के समान थे। उनकी उत्तम दन्त-पंक्ति परिपक्व अनार के दानों की भाँति थी ॥३०-३२॥ सिर पर मोर पंख का मुकुट शोभा दे रहा था। कानों के मूलभाग में दो कदम्ब-पुष्प विराजमान थे। परात्पर परमात्मा श्रीकृष्ण योगियों के भी ध्यान में नहीं आनेवाले हैं। तो भी भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए व्याकुल रहते हैं। ब्रह्मा, शिव, धर्म, शेष, इन्द्र तथा मुनीश्वर उनकी स्तुति करते हैं। ऐसे ईश्वर को देखकर ब्राह्मण-पत्नियों ने उन्हें प्रणाम किया और अपने ज्ञान के अनुरूप मधुसूदन की स्तुति की ॥३३-३५॥

**विप्रपत्नियाँ बोलीं**—भगवन्! आप ब्रह्म, परमधाम, इच्छारहित, अहंकारशून्य, गुणरहित, निराकार, साकार, सगुण, साक्षी रूप, निर्लिप्त, परमात्मा, आकाररहित, प्रकृतिपुरुष हैं तथा उन दोनों के परम

---

१. क० सुनखं।

साक्षिरूपश्च निर्लिप्तः परमात्मा निराकृतिः । प्रकृतिः पुरुषस्त्वं च कारणं च तयोः परम् ॥३७॥
सृष्टिस्थित्यन्तविषये ये च देवास्त्रयः स्मृताः । ते त्वदंशाः सर्वबीजा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥३८॥
यस्य लोम्नां च विवरे चाखिलं विश्वमीश्वर । महाविराण्महाविष्णुस्त्वं तस्य जनको विभो ॥३९॥
तेजस्त्वं चापि तेजस्वी ज्ञानं ज्ञानी च तत्परः । वेदेऽनिर्वचनीयस्त्वं कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः ॥४०॥
महदादिसृष्टिसूत्रं पञ्चतन्मात्रमेव च । बीजं त्वं सर्वशक्तीनां सर्वशक्तिस्वरूपकः ॥४१॥
सर्वशक्तीश्वरः सर्वः सर्वशक्त्याश्रयः सदा । त्वमनीहः स्वयंज्योतिः सर्वानन्दः सनातनः ॥४२॥
अहोऽप्याकारहीनस्त्वं सर्वविग्रहवानपि । सर्वेन्द्रियाणां विषयं जानासि नेन्द्रियी भवान् ॥४३॥
सरस्वती जडीभूता यत्स्तोत्रे यन्निरूपणे । जडीभूतो महेशश्च शेषो धर्मो विधिः स्वयम् ॥४४॥
पार्वती कमला राधा सावित्री वेदसूरपि । वेदश्च जडतां याति के वा शक्ता विपश्चितः ॥४५॥
वयं किं स्तवनं कुर्मः स्त्रियः प्राणेश्वरेश्वरः । प्रसन्नो भव नो देव दीनबन्धो कृपां कुरु ॥४६॥
इति पेतुश्च ता विप्रपत्न्यस्तच्चरणाम्बुजे । अभयं प्रददौ ताभ्यः प्रसन्नवदनेक्षणः ॥४७॥
विप्रपत्नीकृतं स्तोत्रं पूजाकाले च यः पठेत् । स गतिं विप्रपत्नीनां लभते नात्र संशयः ॥४८॥

---

कारण भी हैं ॥३६-३७॥ सृष्टि, पालन और संहार कार्य में नियुक्त जो ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर कहे गये हैं, वे भी आपके ही सर्वबीजमय अंश हैं ॥३८॥ ईश्वर ! जिसके लोम-विवरों में समस्त विश्व स्थित है उस महा-विराट्स्वरूप महाविष्णु के आप जनक हैं ॥३९॥ आप तेज, तेजस्वी, ज्ञान और ज्ञानी स्वरूप हैं। इसीलिए आपको वेद में अनिर्वचनीय कहा गया है। भला आपकी स्तुति करने में कौन समर्थ हो सकता है ? ॥४०॥ आप महत् आदि सृष्टि के सूत्रस्वरूप, पञ्चतन्मात्रा, समस्त शक्तियों के बीज, समस्त शक्तिस्वरूप, समस्त शक्तियों के अधीश्वर, सर्वरूप और सदा समस्त शक्तियों के आश्रय हैं। आप इच्छारहित, स्वयं ज्योति, समस्त आनन्द रूप तथा सनातन हैं। अहो ! शरीररहित होने पर भी समस्त शरीरधारी हैं। आप सकल इन्द्रियों के विषय को जानते हुए भी इन्द्रियवान् नहीं हैं॥४१-४३॥ जिनकी स्तुति करने तथा जिनके तत्त्व का निरूपण करने में सरस्वती भी जड़ हो जाती हैं; शिव, शेष, धर्म और स्वयं ब्रह्मा भी जड़ बन जाते हैं; पार्वती, लक्ष्मी, राधा, वेदजननी सावित्री और वेद जड़ता को प्राप्त कर लेते हैं; फिर दूसरे कौन बुद्धिमान् आपकी स्तुति कर सकते हैं ? ॥४४-४५॥ प्राणेश्वरेश्वर ! हम लोग तो स्त्रियाँ हैं, आपकी क्या स्तुति करेंगी ? दीनबन्धो ! देव ! आप हम पर प्रसन्न हो जायँ, कृपा करें ॥४६॥ इतना कहकर वे स्त्रियाँ उनके चरण-कमल पर गिर पड़ीं। अनन्तर प्रसन्न मुख और नेत्रवाले भगवान् ने उन्हें अभय प्रदान किया ॥४७॥ ब्राह्मण-पत्नियों के इस स्तोत्र का पाठ जो पूजा के समय करता है, वह उनकी गति अवश्य प्राप्त करता है, इसमें संशय नहीं ॥४८॥

## नारायण उवाच

ताः पदाम्भोजपतिता दृष्ट्वा श्रीमधुसूदनः । वरं वृणुत कल्याणं भविता चेत्युवाच ह ।।४९।।
श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा विप्रपत्न्यो मुदाऽन्विताः । तमूचुर्वचनं भक्त्या भक्तिनम्रात्मकंधराः ।।५०।।

## द्विजपत्न्य ऊचुः

वरं कृष्ण न गृह्णीमो नः स्पृहा त्वत्पदाम्बुजे । देहि त्वं दास्यमस्मभ्यं दृढां भक्तिं सुदुर्लभाम् ।।५१।।
पश्यामोऽनुक्षणं वक्त्रसरोजं तव केशव । अनुग्रहं कुरु विभो न यास्यामो गृहं पुनः ।।५२।।
द्विजपत्नीवचः श्रुत्वा श्रीकृष्णः करुणानिधिः । ओमित्युक्त्वा त्रिलोकेशस्तस्थौ बालकसंसदि ।।५३।।
प्रदत्तं विप्रपत्नीभिर्मिष्टमन्नं सुधोपमम् । बालकान्भोजयित्वा तु स्वयं च बुभुजे विभुः ।।५४।।
एतस्मिन्नन्तरे तत्र शातकुम्भं रथं परम् । ददृशुर्विप्रपत्न्यश्च पतन्तं गगनादहो ।।५५।।
रत्नदर्पणसंयुक्तं रत्नसारपरिच्छदम् । रत्नस्तम्भैर्निबद्धं च सद्रत्नकलशोज्ज्वलम् ।।५६।।
श्वेतचामरसंयुक्तं वह्निशुद्धांशुकान्वितम् । पारिजातप्रसूनानां मालाजालैर्विराजितम् ।।५७।।
शतचक्रसमायुक्तं मनोयायि मनोहरम् । वेष्टितं पार्षदैर्दिव्यैर्वनमालाविभूषितैः ।।५८।।

---

**नारायण बोले**—उन पत्नियों को अपने चरण-कमल पर गिरी हुई देखकर श्रीमधुसूदन ने उनसे कहा—तुम लोग वरदान माँगो, तुम्हारा कल्याण होगा ।।४९।। श्रीकृष्ण की बात सुनकर उन ब्राह्मण-पत्नियों ने हर्षित होकर भक्ति से कन्धे झुकाये भक्तिपूर्वक उनसे कहा ।।५०।।

**द्विजपत्नियाँ बोलीं**—हे कृष्ण ! हमें वरदान न चाहिए, हम लोग आपके चरण-कमल की अनुरागिणी हैं, अतः अपना दास्यपद और अति दुर्लभ दृढ़ भक्ति हमें प्रदान करें ।।५१।। हे केशव ! हम आपके मुख-कमल को प्रतिक्षण देखा करें । विभो ! हम पर कृपा करें हम लोग पुनः लौटकर घर नहीं जायेंगी ।।५२।। तीनों लोकों के अधीश्वर करुणानिधान श्रीकृष्ण ने द्विज-पत्नियों की बात सुनकर कहा—'अच्छा' और वे बालकों की मंडली में बैठ गये ।।५३।। अनन्तर ब्राह्मण-पत्नियों द्वारा समर्पित वह अमृतोपम मीठा भोजन बालकों को भोजन कराकर प्रभु ने स्वयं भी भोजन किया ।।५४।। इसी बीच वहाँ ब्राह्मण स्त्रियों ने बड़े आश्चर्य से देखा, कि आकाश से एक सुवर्ण का परमोत्तम रथ उतर रहा है । वह रत्नों के दर्पण एवं रत्नों के सारभाग से बने हुए उपकरणों से युक्त, रत्नों के स्तम्भों से बँधा, उत्तम रत्नों के कलशों से समुज्ज्वल, श्वेत चामर, अग्निविशुद्ध वस्त्र और पारिजात के पुष्पों की मालाओं से सुशोभित था ।।५५-५७।। सौ चक्कों से संयुक्त, मन की भाँति गमन करनेवाला एवं मनोहर वह रथ वनमालाभूषित दिव्य पार्षदों से घिरा हुआ था । वे पार्षद पीताम्बर पहने, रत्नों के अलंकारों से भूषित, नूतन यौवन से सम्पन्न, श्यामल, श्याम कान्तिवाले, अति

पीतवस्त्रपरीधानै रत्नालंकारभूषितैः । नवयौवनसंपन्नैः श्यामलैः सुमनोहरैः ॥५९॥
द्विभुजैर्मुरलीहस्तैर्गोपवेषधरैर्वरैः । शिखिपिच्छगुञ्जमालाबद्धवक्रिमचूडकैः ॥६०॥
अवरुह्य रथात्तूर्णं ते प्रणम्य हरेः पदम् । रथमारोहणं कर्तुमूचुर्ब्राह्मणकामिनीः ॥६१॥
विप्रभार्या हरिं नत्वा जग्मुर्गोलोकमभीप्सितम् । बभूवुर्गोपिकाः सद्यस्त्यक्त्वा मानुषविग्रहान् ॥६२॥
हरिच्छायां विनिर्माय तासां च विष्णुमायया । प्रस्थापयामास गृहान्ब्राह्मणानां स्वयं विभुः ॥६३॥
विप्राश्च भार्या उद्दिश्य परमोद्विग्नमानसाः । अन्वेषणं प्रकुर्वन्तो ददृशुः पथि कामिनीः ॥६४॥
दृष्ट्वोचुर्ब्राह्मणाः सर्वे तास्ते च विनयान्विताः । पुलकाङ्कितसर्वाङ्गाः प्रसन्नवदनेक्षणाः ॥६५॥

## ब्राह्मणा ऊचुः

अहोऽतिधन्या यूयं च दृष्टो युष्माभिरीश्वरः । अस्माकं जीवनं व्यर्थं वेदपाठोऽप्यनर्थकः ॥६६॥
वेदे पुराणे सर्वत्र विद्वद्भिः परिकीर्तिताः । हरेर्विभूतयः सर्वाः सर्वेषां जनको हरिः ॥६७॥
तपो जपो व्रतं ज्ञानं वेदाध्ययनमर्चनम् । तीर्थस्नानमनशनं सर्वेषां फलदो हरिः ॥६८॥
श्रीकृष्णः सेवितो येन किं तस्य तपसां फलैः । प्राप्तः कल्पतरुर्येन किं तस्यान्येन शाखिना ॥६९॥
श्रीकृष्णो हृदये यस्य तस्य किं कर्मभिः कृतैः । किं पीतसागरस्यैव पौरुषं कूपलङ्घने ॥७०॥

---

मनोहर, दो भुजाओं से युक्त, हाथ में मुरली लिये तथा उत्तम गोपवेश और मोरपंख समेत गुञ्जा की माला से बँधी टेढ़ी चूड़ा धारण किये हुए थे ॥५८-६०॥ उन पार्षदों ने रथ से शीघ्र उतरकर भगवान् के चरण में प्रणाम किया और उन ब्राह्मण-पत्नियों से उस रथ पर सुखासीन होने के लिए निर्देश किया ॥६१॥ विप्र-पत्नियाँ भगवान् को नमस्कार करके अभीष्ट गोलोक को चली गयीं और वहाँ मनुष्य-शरीर त्यागकर तुरन्त गोपिका के रूप में परिणत हो गयीं ॥६२॥ अनन्त भगवान् ने स्वयं माया द्वारा उनकी छाया का निर्माण करके उन्हें उन ब्राह्मणों के घर में भेज दिया ॥६३॥ वहाँ ब्राह्मण लोग अत्यन्त खिन्न होकर उन्हें ढूंढ़ रहे थे। मार्ग में स्त्रियों से भेंट हो गयी ॥६४॥ उन्हें देखकर ब्राह्मणों के सर्वांग पुलकित हो गये, मुख और नेत्र खिल उठे। उन्होंने विनम्र होकर स्त्रियों से कहा ॥६५॥

**ब्राह्मण लोग बोले**—अहो ! तुम लोग अत्यन्त धन्य हो, क्योंकि तुमने भगवान् का दर्शन प्राप्त किया है। हम लोगों का जीवन व्यर्थ है, और वेदपाठ भी निरर्थक है। वेद और पुराण में विद्वानों ने कहा है कि—सभी भगवान् की विभूतियाँ हैं और सबके जनक भगवान् ही हैं ॥६६-६७॥ तप, जप, व्रत, ज्ञान, वेदाध्ययन, पूजा, तीर्थस्नान और उपवास आदि सभी के फल भगवान् ही प्रदान करते हैं ॥६८॥ जिसने श्रीकृष्ण की सेवा की है, उसे तपस्याओं के फलों की क्या आवश्यकता है ? जिसे कल्पवृक्ष प्राप्त हो गया उसे अन्य वृक्ष से क्या प्रयोजन ? ॥६९॥ श्रीकृष्ण जिसके हृदय में विराजमान हैं, उसे कर्मों के अनुष्ठान की क्या आवश्यकता है ? जिसने समुद्र को पी लिया, उसके लिए कुआँ लांघने में क्या पुरुषार्थ है ? ॥७०॥ इतना कहकर उन ब्राह्मणों

इत्येवमुक्त्वा विप्राश्च गृहीत्वा कामिनीर्वराः । आजग्मुः स्वगृहं हृष्टास्ताभिः सार्धं च रेमिरे ॥७१॥
तासां ततोऽधिकं प्रेम क्रीडासु सर्वकर्मसु । दाक्षिण्यं मायया शक्त्या ब्राह्मणानामतर्कितम् ॥७२॥
अथ नारायणः सोऽयं बलेन शिशुभिः सह । जगाम स्वालयं तूर्णं पूर्णब्रह्म सनातनः ॥७३॥
इत्येवं कथितं सर्वं हरेर्माहात्म्यमुत्तमम् । पुरा श्रुतं धर्मवक्त्रात्किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥७४॥

## नारद उवाच

ऋषीन्द्र केन पुण्येन बभूव विप्रयोषिताम् । मुनीन्द्रयोगसिद्धानां दुर्लभा गतिरीश्वरी ॥७५॥
इमाः का वा पुण्यवत्यः पुरा तस्थुर्महीतलम् । आजग्मुः केन दोषेण वद संदेहभञ्जनम् ॥७६॥

## नारायण उवाच

सप्तर्षीणां रमण्यश्च रूपेणाप्रतिमाः पराः । गुणवत्यः सुशीलाश्च धर्मिष्ठाश्च पतिव्रताः ॥७७॥
नवीनयौवनाः सर्वाः पीनश्रोणिपयोधराः । दिव्यवस्त्रपरीधाना रत्नालंकारभूषिताः ॥७८॥
तप्तकाञ्चनवर्णाभा स्मेराननसरोरुहाः । मुनीनां मोहितुं शक्ता मानसं वक्रचक्षुषा ॥७९॥
दृष्ट्वा तासां स्तनश्रोणिमुखानि सुन्दराणि च । अनलश्चक्रमे ताश्च मदनानलपीडितः ॥८०॥

---

ने उन श्रेष्ठ कामिनियो को साथ लेकर बड़ी प्रसन्नता से अपने घर को लौटे और उनके साथ रमण किया ॥७१॥ उनके साथ क्रीड़ा तथा सभी कार्यों के करने में उन ब्राह्मण लोगों का पहले की अपेक्षा अधिक प्रेम तथा उदार-भाव प्रकट होता था, परन्तु माया-शक्ति से प्रभावित होने के कारण ब्राह्मणों को उसका अनुमान नहीं होता था ॥७२॥ अनन्तर सनातन पूर्णब्रह्म श्रीकृष्ण बलभद्र और बालकों समेत अपने घर गये ॥७३॥ इस प्रकार मैंने भगवान् का परमोत्तम माहात्म्य, जिसे मैंने पूर्वकाल में धर्म के मुख से सुना था, तुम्हें बता दिया, और क्या सुनना चाहते हो ? ॥७४॥

**नारद बोले**—ऋषिवर ! किस पुण्य के प्रभाव से उन ब्राह्मण-पत्नियों को ऐसी गति प्राप्त हुई, जो मुनियों, योगियों और सिद्धों के लिए भी दुर्लभ है ॥७५॥ ये पुण्यवती स्त्रियाँ पूर्वजन्म में कौन थीं और किस अपराध के कारण इस भूतल पर आयी थीं ? मेरा सन्देह निवारण करें ॥७६॥

**नारायण बोले**—ये सप्तर्षियों की रमणियाँ थीं, जो अनुपम सौन्दर्य से युक्त, श्रेष्ठ, गुणवती, सुशीला, धार्मिक और पतिव्रता थीं ॥७७॥ सभी नव-यौवन-सम्पन्न, स्थूल स्तन और श्रोणी भागवाली, दिव्य वस्त्र पहने हुई, रत्नों के अलंकारों से भूषित, तपाये सुवर्ण की भाँति कान्तिवाली और विकसित कमल के समान मुखवाली और तिरछी चितवन से मुनियों के भी मन को मोहित करने में समर्थ थीं ॥७८-७९॥ उनके सुन्दर स्तन, नितम्ब और मुख देखकर अग्निदेव ने कामाग्नि से पीड़ित होकर उन्हें चाहा ॥८०॥ तब ज्वाला द्वारा

अग्निस्थानस्थितानां च शिखया सुरतोन्मुखः । स्पृष्ट्वा चाङ्गानि तासां च बभूव हतचेतनः ॥८१॥
पतिव्रता न जानन्ति पतिपादाब्जमानसाः । अग्निरङ्गानि तासां च दर्शं दर्शं मुमोह च ॥८२॥
वह्नेश्च मानसं ज्ञात्वा भगवानङ्गिरा मुनिः । शशाप तं चेत्युवाच सर्वभक्षो भवेति ह ॥८३॥
वह्निः सचेतनो भूत्वा तुष्टाव मुनिपुंगवम् । व्रीडया नम्रवदनश्चकम्पे ब्रह्मतेजसा ॥८४॥
क्रुद्धो मुनिवरः स्पृष्टाः कामिन्यश्च शशाप ह । यात यूयं पापयुक्ता मानुषीं योनिमेव च ॥८५॥
भारते ब्राह्मणानां च गृहे लभत जन्म वै । करिष्यन्ति विवाहं च युष्माकं कुलजा द्विजाः ॥८६॥
श्रुत्वा वाक्यं मुनेस्ताश्च रुरुदुः प्रेमविह्वलाः । पुटाञ्जलियुताः सर्वा ऊचुस्तं विदुषां वरम् ॥८७॥

## मुनिपत्न्य ऊचुः

न त्यजास्मान्मुनिश्रेष्ठ निष्पापाश्च पतिव्रताः । अजानन्त्यः परस्पृष्टा न च नस्त्यक्तुमर्हसि ॥८८॥
भक्तानां किंकरीणां च न दण्डं कर्तुमर्हसि । युष्माकं चरणाम्भोजं कदा द्रक्ष्यामहे वयम् ॥८९॥
खड्गच्छेदाद्वज्रपातात्सर्वप्रहरणान्मुने । दारुणः कान्तविच्छेदः साध्वीनां दुःसहः सदा ॥९०॥
ब्रह्मिष्ठानां गुणवतां परान्कान्तान्महामुनीन् । एवंभूतान्कथं त्यक्त्वा यास्यामः पृथिवीतलम् ॥९१॥
यास्यामो यदि विप्रेश कदाऽत्राऽऽगमनं वद । अज्ञानस्पर्शदोषश्च न स्यान्नो विधिबोधितः ॥९२॥

---

रति करने में प्रवृत्त अग्नि अपने स्थल पर अवस्थित उन रमणियों के अंगों का स्पर्श करके मूर्च्छित हो गये ॥८१॥ पति के चरणारविन्द में चित्त लगायी हुई उन स्त्रियों ने यह नहीं जाना। इधर अग्नि उनके अंगों को देख-देखकर मोहित हो रहे थे ॥८२॥ अग्नि के मनोविकार को जानकर अङ्गिरा मुनि ने अग्नि को शाप दे दिया कि तुम सर्वभक्षी हो जाओ ॥८३॥ चेतना प्राप्त होने पर अग्नि ने उन मुनिश्रेष्ठ की बड़ी स्तुति की और लज्जित होकर नीचे मुख किये उनके ब्रह्मतेज के भय से काँपने लगे ॥८४॥ क्रुद्ध मुनिवर ने छुई गयी स्त्रियों को भी शाप दिया कि पापयुक्त तुम सभी मनुष्य-योनि में जाओ। भारत में ब्राह्मणों के घर में जन्म धारण करो। कुलीन ब्राह्मण तुम लोगों से विवाह करेंगे ॥८५-८६॥ मुनि की बात सुनकर वे स्त्रियाँ प्रेमाकुल होकर रोदन करने लगीं और दोनों हाथ जोड़कर उस श्रेष्ठ विद्वान् से कहने भी लगीं ॥८७॥

**मुनिपत्नियाँ बोलीं**—मुनिश्रेष्ठ! आप हमारा त्याग न करें, हम निष्पाप और पतिव्रता हैं। बिना जाने दूसरे का स्पर्श हो गया है, अतः हमारा त्याग न करें ॥८८॥ भक्त दासियों को दण्ड देना आपके लिए उचित नहीं है। आप लोगों के चरणकमलों का दर्शन हमें कब होगा? ॥८९॥ मुने! पतिव्रताओं के लिए स्वामी का वियोग तलवार के खण्ड-खण्ड कर देने, वज्र गिरने एवं सभी प्रकार के प्रहार करने से भी कहीं अधिक दुःसह होता है ॥९०॥ ब्रह्मनिष्ठ, गुणवान् एवं श्रेष्ठ पति के रूप में प्राप्त महामुनियों को त्यागकर हम पृथ्वी पर कैसे जायेंगी ॥९१॥ विप्रेश! यदि हम भूतल पर चली जायेंगी तो यहाँ पुनः कब आयेंगी? अज्ञानजन्य स्पर्श का दोष हमें नहीं लगेगा, यह विधिसम्मत है ॥९२॥ अहल्या ने इन्द्र से उपभुक्त होने पर भी पुनः स्वामी

अहल्यया पुनः प्राप्तः स्वामीन्द्रस्य प्रधर्षणात् । सा संभोगात्पुनः शुद्धा स्पर्शनाद्वर्जिता वयम् ॥९३॥
विचारं कुरु धर्मिष्ठ वेदवेदाङ्गपारग । विश्वकर्तुश्च[1] पुत्रस्त्वं सर्ववेदविदां वर ॥९४॥
अन्येषां च भयात्कान्ता व्रजन्ति शरणं पतिम् । स्वकान्तभयसंविग्नाः शरणं कं व्रजन्ति ताः ॥९५॥
अभयं देहि धर्मिष्ठ भययुक्ताभ्य एव च । पुत्रे शिष्ये कलत्रे च को दण्डं रक्षितुं क्षमाः ॥९६॥
दुर्बलः सबलो वाऽपि स्ववस्तूनामपीश्वरः । स्वद्रव्यविक्रयं कर्तुं न चान्यो रक्षितुं क्षमः ॥९७॥
कामिनीनां वचः श्रुत्वा दयालुर्मुनिपुंगवः । प्रेम्णा रुरोद तासां च निरीक्ष्य मुखपङ्कजम् ॥९८॥
वेदवेदाङ्गपारज्ञो ज्ञानिनां योगिनां वरः । पत्नीविच्छेदविषये मूर्छां प्राप तथाऽपि सः ॥९९॥
सर्वे बभूवुः शोकार्ता विरहोद्विग्नमानसाः । निरीक्ष्य तासां वक्त्राणि तस्थुः पुत्तलिका यथा ॥१००॥
कृत्वा विलापं सुचिरं सर्ववेदविदां वरः । भ्रातृभिश्च सहाऽऽलोच्यता उवाच शुचाऽऽतुरः ॥१०१॥

## अङ्गिरा उवाच

यूयं शृणुत वक्ष्यामि वचनं सत्यमेव च । स्वकर्मभोगिनां भोगमाकर्माच्च श्रुतौ श्रुतम् ॥१०२॥

---

(गौतम) को प्राप्त किया था। वह संभोग के बाद भी पुनः शुद्ध हो गयी और हम स्पर्श मात्र से त्यागी गयी हैं॥९३॥ धर्मिष्ठ! वेद-वेदांग में पारंगत! आप विचार करें। हे निखिल वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ! आप संसार के रचयिता के पुत्र हैं॥९४॥ अन्य लोगों से भय उत्पन्न होने पर स्त्रियाँ पति की शरण में जाती हैं और जब अपने पति से ही भय प्राप्त हो तो वे किसकी शरण में जायें?॥९५॥ हे धर्मिष्ठ! भयभीतों को अभय दीजिये। पुत्र, शिष्य और स्त्री को दण्ड देने में कौन असमर्थ है?॥९६॥ अपनी वस्तुओं का स्वामी चाहे दुर्बल हो या सबल, वह अपनी वस्तु का विक्रय कर सकता है, उसे अन्य कोई रक्षित रखने में समर्थ नहीं होता॥९७॥ कामिनियों की बात सुनकर मुनिश्रेष्ठ ने उनके मुखकमल को देखा और प्रेमवश रोदन करने लगे॥९८॥ वेद-वेदांग के पारगामी विद्वान् तथा ज्ञानियों और योगियों में श्रेष्ठ होते हुए भी वे पत्नी-वियोग के सम्बन्ध में मूर्च्छित हो गये॥९९॥ सभी लोग विरह से खिन्नमन होकर शोकाकुल हो गये। वे उनके मुख देखकर पुत्तलिका की भाँति (जड़) हो गये॥१००॥ समस्त वेद-वेत्ताओं में श्रेष्ठ अंगिरा ने विलाप करने के पश्चात् सभी भ्राताओं से विचार-विनिमय करके शोकातुर होकर उन (स्त्रियों) से कहा॥१०१॥

**अङ्गिरा बोले**--तुम लोगों को मैं सत्य बात बता रहा हूँ, सुनो। वेद में मैंने सुना है कि—अपने कर्मों के भोग को भोगनेवाले प्राणियों को कर्मक्षय पर्यन्त भोग भोगना पड़ता है॥१०२॥ अब हम लोगों के

---

१. क० वेदक०।

गतो भोगश्च युष्माकमस्माभिः सह निश्चितम् । गते भोगे पुनर्भोगो न हि वेदे निरूपितः ॥१०३॥
शुभाशुभं च यत्कर्म भारते कृतिभिः सह । नाभुक्तं क्षीयते कर्म जन्मकोटिशतैरपि ॥१०४॥
परभुक्तां च कान्तां च यो भुङ्क्ते स नराधमः । स पच्यते कालसूत्रे यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥१०५॥
न सा दैवे न सा पैत्र्ये पाकार्हा पापसंयुता । तस्या आलिङ्गने भर्ता भ्रष्टश्रीस्तेजसा हतः ॥१०६॥
देवताः पितरस्तस्य हव्यदाने च तर्पणे । सुखिनो न भवन्त्येवमित्याह कमलोद्भवः ॥१०७॥
तस्माद्यत्नेन भार्याया रक्षणं कुरुते सुधीः । अन्यथा पापभाग्भर्ता निश्चितं नरकं व्रजेत् ॥१०८॥
पदे पदे सावधानः कान्तां रक्षति पण्डितः । न व्रती न स्थली योषा दोषाणां च करण्डिका ॥१०९॥
कलत्रं पाकपात्रं च सदा रक्षितुमर्हसि । परस्पर्शादशुद्धां च शुद्धां स्वस्पर्शने सदा ॥११०॥
स्वकान्तं च परित्यज्य परं गच्छति याऽधमा । कुम्भीपाकं सा प्रयाति यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥१११॥
तामेव यमदूताश्च संस्थाप्य नरकान्तरे । उत्तिष्ठति विदूराच्चेत्कुर्वन्ति दण्डताडनाम् ॥११२॥
सर्पप्रमाणाः कीटाश्च तीक्ष्णदंष्ट्राः सुदारुणाः । दशन्ति पुंश्चलीं तत्र सततं च दिवानिशम् ॥११३॥
विकृताकारशब्दं च करोति शाश्वतं भिया । न ममार प्रहारेण सूक्ष्मदेहविधारिणी ॥११४॥

---

साथ तुम लोगों का भोग समाप्त हो चुका है, यह निश्चित है । भोग समाप्त होने पर पुनः भोग नहीं करना पड़ता है, ऐसा वेद में कहा गया है ॥१०३॥ भारत में क्रियाओं द्वारा जो शुभाशुभ कर्म होते हैं वे बिना भोग किये नष्ट नहीं होते हैं, चाहे सैंकड़ों जन्म क्यों न बीत जायँ ॥१०४॥ दूसरे पुरुष द्वारा उपभोग की हुई स्त्री का जो उपभोग करता है, वह नराधम है । वह चन्द्रमा-सूर्य के समय तक 'काल सूत्र' नामक नरक में पकाया जाता रहता है ॥१०५॥ वह पापिनी न देव-कार्य और न पितृ-कार्य में भोजन बनाने योग्य रहती है । उसका आलिंगन करने पर उसका पति श्री से भ्रष्ट होकर निस्तेज हो जाता है ॥१०६॥ उसके हव्य-कव्य प्रदान करने और तर्पण करने पर देवता एवं पितर सुखी नहीं होते हैं, ऐसा ब्रह्मा ने कहा ॥१०७॥ इसलिए विद्वान् प्रयत्नपूर्वक अपनी भार्या की रक्षा करता है, अन्यथा पति को पापभागी होकर निश्चित ही नरक में जाना पड़ता है ॥१०८॥ बुद्धिमान् व्यक्ति सावधान होकर पग-पग पर अपनी पत्नी की रक्षा करता है, क्योंकि स्त्री दोषों की पिटारी है जो न कोई व्रत जाने और न कोई स्थल ॥१०९॥ अतः स्त्री और भोजन बनाने के पात्र की सदा रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि वह दूसरे के स्पर्श करने पर अशुद्ध और अपने स्पर्श करने पर सदा शुद्ध रहती है ॥११०॥ जो अधम स्त्री अपने पति का त्यागकर दूसरे पुरुष के पास जाती है वह चन्द्रमा-सूर्य के समय तक कुम्भीपाक नरक में पड़ी रहती है ॥१११॥ यमदूत-गण उसी को दूसरे नरक में डाल देते हैं । यदि वह उसमें से निकलने का प्रयत्न करती है, तो वे उसे दण्ड से ताड़ना देते हैं ॥११२॥ साँप के बराबर तीक्ष्ण दंष्ट्रा (दाढ़) वाले और अत्यन्त भयंकर कीड़े रात-दिन उस पुंश्चली स्त्री को निरंतर काटते रहते हैं ॥११३॥ वह स्त्री भय से निरन्तर विकृताकार शब्द करती है, किन्तु सूक्ष्म देह धारण करने के कारण प्रहार करने पर भी वह मरती नहीं है ॥११४॥ घड़ी भर के सुख के लिए वह लोक में अपने यश को नष्ट करके

मुहूर्तार्धं सुखं भुक्त्वा लोकेऽत्र यशसा हता। पतिता परलोके च गतिमेतादृशीं लभेत् ॥११५॥
परस्पृष्टा च वै नारी या स्पृहां कुरुते परम्। साऽपि दुष्टा परित्याज्या चेत्याह कमलोद्भवः ॥११६॥
तस्मान्नारी परैर्यत्नाददृष्टा कृतिभिः कृता। असूर्यंपश्या या दाराः शुद्धास्ताश्च पतिव्रताः ॥११७॥
स्वच्छन्दगामिनी या च स्वतन्त्रा सूकरीसमा। अन्तर्दुष्टा सदा सैव निश्चितं परगामिनी ॥११८॥
स्वामिसाध्या च या नारी कुलधर्मभिया स्थिता। कान्तेन सार्धं सा कान्ता वैकुण्ठं याति निश्चितम् ॥११९॥
यात यूयं च पृथिवीं मानुषीं योनिमीप्सिताम्। कृष्णदर्शनमात्रेण गोलोकं यास्यथ ध्रुवम् ॥१२०॥
हरिणा निर्मिताश्छाया युष्माकं योगमायया। ता विप्रमन्दिरे स्थित्वा चाऽऽगमिष्यन्ति नो ध्रुवम् ॥१२१॥
पुनरंशेन नः पत्न्यो भविष्यथ न संशयः। युष्माकं मम शापश्च बभूव च वराधिकः ॥१२२॥
इत्येवमुक्त्वा स मुनिर्विरराम शुचाऽन्वितः। ता आगत्य महीं शापाद्बभूवुर्विप्रयोषितः ॥१२३॥
दत्त्वाऽन्नं हरये भक्त्या प्रजग्मुर्हरिमन्दिरम्। बभूव निश्चितं तासां शापश्च संपदोऽधिकः ॥१२४॥
निन्द्या नीचाच्च संपत्तिर्विपत्तिर्महतो वरा। अहो सद्यः सतां कोपश्चोपकाराय कल्पते ॥१२५॥

---

पतित होकर परलोक में ऐसी दशा को प्राप्त होती है ॥११५॥ दूसरे पुरुष से स्पर्श की गयी जो नारी अन्य पुरुष की इच्छा करती है, उस दुष्टा का भी त्याग कर देना चाहिए, ऐसा ब्रह्मा ने कहा है ॥११६॥ इसीलिए विद्वानों ने स्त्रियों को प्रयत्नपूर्वक दूसरे से अदृष्ट रखने को बताया है। जो सूर्य को भी परदे के कारण न देख सकें, वही स्त्री शुद्ध एवं पतिव्रता होती हैं ॥११७॥ जो स्वतन्त्र होकर स्वच्छन्द गमन करती है, वह सूकरी के समान है। परपुरुषगामिनी स्त्री निश्चित ही सदा भीतर से दुष्ट होती है ॥११८॥ जो अपने कुलधर्म के भय से स्वामी के वश में रहती है, वह अपने पति के साथ निश्चित रूप से वैकुण्ठ जाती है ॥११९॥ तुम लोग पृथ्वी पर मनुष्य योनि में जन्म ग्रहण करो और भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन मात्र से तुम्हें निश्चित ही गोलोक की प्राप्ति होगी ॥१२०॥ भगवान् योगमाया द्वारा तुम लोगों की छाया का निर्माण करके निश्चित रूप से ब्राह्मणों के घर भेज देंगे, वे निश्चय ही वहाँ रहने के बाद हमारे पास चली आयेंगी ॥१२१॥ पुनः अंश मात्र से हम लोगों की पत्नी हो जाओगी, इसमें संशय नहीं। हमारा शाप तुम लोगों के लिए वरदान से भी अधिक लाभप्रद सिद्ध होगा ॥१२२॥ इतना कहकर वे मुनि शोकमग्न होकर मौन हो गये और वे स्त्रियाँ भूतल पर आकर शापवश ब्राह्मणों की पत्नियाँ हुईं ॥१२३॥ भगवान् को भोजन समर्पित करके उनके लोक पहुँच गयीं, इसीलिए उनका शाप वरदान से भी अधिक लाभप्रद हुआ है ॥१२४॥ नीच व्यक्ति से सम्पत्ति मिलना भी निन्दनीय है और महान् से विपत्ति मिलना भी श्रेष्ठ है। अहा! सज्जन का क्रोध भी तुरन्त उपकार का साधन बन जाता है ॥१२५॥ भूतल पर बिना विपत्ति का अनुभव किये किसे बड़ाई प्राप्त हुई है? पति द्वारा त्याग

विना विपत्तेर्महिमा कुतः कस्य भवेद्भुवि। भूताः कान्तपरित्यागान्मुक्ता ब्राह्मणयोषितः ॥१२६॥
इत्येवं कथितं सर्वं हरेश्चरितमुत्तमम्। अहो पुण्यवतीनां च मोक्षाख्यानं मनोहरम् ॥१२७॥
श्रीकृष्णाख्यानं विप्रेन्द्र नूत्नं नूत्नं पदे पदे। नहि तृप्तिः श्रुतवतां केन श्रेयसि तृप्यते ॥१२८॥
यावद्रम्यं तत्कथितं यच्छ्रुतं गुरुवक्त्रतः। वद मां वाञ्छितं यत्ते किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥१२९॥

## नारद उवाच

यद्यच्छ्रुतं त्वया पूर्वं गुरुवक्त्रात्कृपानिधे। मंगलं कृष्णचरितं तन्मे ब्रूहि जगद्गुरो ॥१३०॥

## सूत उवाच

श्रुत्वा देवर्षिवचनमृषिर्नारायणः स्वयम्। अपरं कृष्णमाहात्म्यं प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥१३१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० विप्रपत्नीमोक्षणप्रस्तावो नामाष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

---

करने पर ब्राह्मण-पत्नियाँ मुक्त हो गयीं ॥१२६॥ मैंने भगवान् का परमोत्तम चरित, जिसमें पुण्यवती स्त्रियों का मोक्ष सम्बन्धी मनोहर आख्यान सम्मिलित है, बता दिया ॥१२७॥ विप्रेन्द्र श्रीकृष्ण का आख्यान पद-पद पर नवीन प्रतीत होता है, जिससे सुननेवालों को तृप्ति नहीं होती है। भला कल्याण में कौन तृप्त होता है? ॥१२८॥ मैंने गुरु के मुख से जितना सुना था, उतना रमणीक आख्यान बता दिया। अब पुनः तुम क्या सुनना चाहते हो, अपना अभीष्ट कह दो ॥१२९॥

**नारद बोले**—कृपानिधे, जगद्गुरो! पहले आपने गुरु के मुख से जो श्रीकृष्ण का मङ्गल चरित सुना था उसे मुझे बता दें ॥१३०॥

**सूत बोले**—देवर्षि नारद की बात सुनकर नारायण ऋषि ने स्वयं कृष्ण का अन्य माहात्म्य कहना आरम्भ किया ॥१३१॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में विप्र-पत्नी-मोक्ष-वर्णन नामक अठारहवाँ अध्याय समाप्त ॥१८॥

# एकोनविंशोऽध्यायः

## नारायण उवाच

एकदा बालकैः सार्धं बलदेवं विना हरिः । जगाम यमुनातीरं यत्र कालियमन्दिरम् ॥१॥
परिपक्वफलं भुक्त्वा यमुनातीरजे वने । स्वेच्छामयस्तृट्परीतः पपौ च निर्मलं जलम् ॥२॥
गोकुलं चारयामास शिशुभिः सह कानने । विजहार च तैः सार्धं स्थापयामास गोकुलम् ॥३॥
क्रीडानिमग्नचित्तोऽयं बालकाश्च मुदाऽन्विताः । भुक्त्वा नवतृणं गावो विषतोयं पपुर्मुने ॥४॥
विषाक्तं च जलं पीत्वा दारुणान्तकचेष्टया[1] । ज्वालाभिः कालकूटानां सद्यः प्राणांश्च तत्यजुः ॥५॥
दृष्ट्वा मृतं गोसमूहं गोपाश्चिन्ताकुला भिया । विषण्णवदनाः सर्वे तमूचुर्मधुसूदनम् ॥६॥
ज्ञात्वा सर्वं जगन्नाथो जीवयामास गोकुलम् । उत्तस्थुस्तत्क्षणं गावो ददृशुः श्रीहरेर्मुखम् ॥७॥
कृष्णः कदम्बमारुह्य यमुनातीरनीरजम् । पपात सर्पभवने नागमध्ये नराकृतिः ॥८॥

---

# अध्याय १९

## कालिय-दमन और दावाग्नि-मोक्षण

**नारायाण बोले**—एक बार कृष्ण बिना बलदेव के बालकों के साथ यमुना के किनारे गये, जहाँ कालिय नाग रहता था ॥१॥ वहाँ यमुना-तीरवाले वन में पके फल खाकर स्वेच्छामय भगवान् ने प्यास के कारण निर्मल जल का पान किया ॥२॥ उस वन में बालकों के साथ भगवान् ने गौओं को चराया। पुनः उन्हें एकत्र रखकर खेलने लगे। भगवान् खेल में निमग्न थे, बालक लोग भी बड़ी प्रसन्नता से उसी में लगे थे। मुने ! गौओं ने नयी घास चरकर यमुना के विषव्याप्त जल का पान किया ॥३-४॥ भीषण काल की प्रेरणा से गौओं ने उस विषमय जल का पान किया जिससे उस कालकूट की भीषण ज्वाला से सन्तप्त होकर अपने प्राणों का परित्याग कर दिया ॥५॥ गोप-बालकों ने गौओं के समूहों को मृतक देखकर भय और चिन्ता से व्याकुल एवं खिन्नमुख होकर मधुसूदन से कहा ॥६॥ जगन्नाथ ने समस्त वृत्तान्त जानकर समस्त गौओं को जीवित कर दिया, गौएँ उसी समय उठ गयीं और हरि के मुख को देखने लगीं ॥७॥ इधर मनुष्याकृति श्रीकृष्ण यमुना-तटवर्ती जल के निकट उत्पन्न हुए कदम्ब पर चढ़कर उस सर्प के भवन में नागों के बीच कूद पड़े ॥८॥ नारद ! उस समय यमुना का

---

१ क. 'न्तरचे' ।

शतहस्तप्रमाणं च जलोत्थानं बभूव ह। बाला हर्षं विषादं च मेनिरे तत्र नारद ॥९॥
सर्पो नराकृतिं दृष्ट्वा कालीयः क्रोधविह्वलः। जग्राह श्रीहरिं तूर्णं तप्तलोहं यथा नरः ॥१०॥
दग्धकण्ठोदरो नागश्चोद्विग्नो ब्रह्मतेजसा। प्राणा यान्त्येवमुक्त्वा च चकारोद्वमनं पुनः ॥११॥
भग्नदन्तो रक्तमुखः कृष्णवज्राङ्गचर्वणात्। रक्तवक्त्रस्य भगवानुत्तस्थौ मस्तकोपरि ॥१२॥
नागो विश्वंभराक्रान्तः स प्राणांस्त्यक्तुमुद्यतः। चकार रक्तोद्वमनं पपात मूर्च्छितो मुने ॥१३॥
दृष्ट्वा तं मूर्च्छितं नागा रुरुदुः प्रेमविह्वलाः। केचित्पलायिता भीताः केचित्प्रविविशुर्बिलम् ॥१४॥
मरणाभिमुखं कान्तं दृष्ट्वा सा सुरसा सती। नागिनीभिः सह प्रेम्णा रुरोद पुरतो हरेः ॥१५॥
पुटाञ्जलियुता तूर्णं प्रणम्य श्रीहरिं भिया। धृत्वा पादारविन्दे च तमुवाच भियाऽऽकुला ॥१६॥

## सुरसोवाच

हे जगत्कान्त कान्तं मे देहि मानं च मानद। पतिः प्राणाधिकः स्त्रीणां नास्ति बन्धुश्च तत्परः ॥१७॥
सकलभुवननाथ प्राणनाथं मदीयं न कुरु वधमनन्त प्रेमसिन्धो सुबन्धो।
अखिलभुवनबन्धो राधिकाप्रेमसिन्धो पतिमिह कुरु दानं मे विधातुर्विधातः ॥१८॥

---

जल सौ हाथ ऊपर उठ आया था। यह देखकर बालकों को हर्ष और विषाद दोनों उत्पन्न हुए ॥९॥ मनुष्य-रूप देखकर कालिय नाग अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और अति संतप्त लोहे को निगलनेवाले मनुष्य की भाँति श्रीकृष्ण को बड़ी शीघ्रता से उसने निगल लिया ॥१०॥ किन्तु भगवान् के ब्रह्मतेज से उस नाग का कण्ठ और उदर जलने लगा। उसने खिन्न मन से कहा, अब मेरे प्राण निकल रहे हैं। यह कहकर उसने पुनः उन्हें उगल दिया ॥११॥ श्रीकृष्ण के वज्राङ्ग देह को चबाने से उसके दाँत टूट गये और मुँह लहूलुहान हो गया। भगवान् उस रक्त मुख-वाले नाग के मस्तक पर खड़े हो गये ॥१२॥ मुने! विश्वम्भर भगवान् के भार से दबकर वह नाग प्राणत्याग करने लगा—रक्त का वमन करते हुए—मूर्च्छित होकर गिर पड़ा ॥१३॥ उसे मूर्च्छित देखकर अन्य नाग प्रेमाकुल होकर रोदन करने लगे। कुछ भयभीत होकर पलायन कर गये, कुछ बिल में घुस गये। सती सुरसा अपने कान्त को मरणोन्मुख देखकर भगवान् के सामने नागिनियों के साथ रोदन करने लगी। उसने दोनों हाथ जोड़कर भगवान् को प्रणाम किया और उनके दोनों चरण-कमल पकड़कर उसने कहा ॥१४-१६॥

**सुरसा बोली**—हे जगत्कान्त! आप मानप्रद हैं, अतः मुझे मान दें और मेरे पति को मुझे लौटा दें, स्त्रियों को पति प्राणों से भी अधिक प्रिय होता है, अतः उनके लिए पति से बढ़कर कोई अन्य बन्धु नहीं है ॥१७॥ अनन्त! प्रेमसिन्धो सुबन्धो! आप सम्पूर्ण भुवन के स्वामी हैं, अतः मेरे प्राणनाथ का वध न करें। हे समस्त भुवन के बन्धु! आप राधिका जी के लिए प्रेम के सागर हैं और ब्रह्मा के भी ब्रह्मा हैं अतः मुझे पति दान

त्रिनयनविधिशेषाः षण्मुखश्चाऽस्यसंघैः स्तवनविषयजाड्यात्स्तोतुमीशा न वाणी।
न खलु निखिलवेदाः स्तोतुमन्येऽपि देवाः स्तवनविषयशक्ताः सन्ति सन्तस्तवैव ॥१९॥
कुमतिरहमधिज्ञा योषितां क्वाधमा वा क्व भुवनगतिरीशश्चक्षुषो गोचरो मे।
विधिहरिहरशेषैः स्तूयमानश्च यस्त्वमतनुमनुजमीशं स्तोतुमिच्छामि तं त्वाम् ॥२०॥
स्तवनविषयभीता पार्वती यस्य पद्मा श्रुतिगणजनयित्री स्तोतुमीशा न यं त्वाम्।
कलिकलुषनिमग्ना वेदवेदाङ्गशास्त्रश्रवणविषयमूढा स्तोतुमिच्छामि किं त्वाम् ॥२१॥
शयानो रत्नपर्यङ्के रत्नभूषणभूषितः। रत्नभूषणभूषाङ्गी राधावक्षसि संस्थितः ॥२२॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गः स्मेराननसरोरुहः। प्रोद्यत्प्रेमरसाम्भोधौ निमग्नः सततं सुखात् ॥२३॥
मल्लिकामालमतीमालाजालैः शोभितशेखरः। पारिजातप्रसूनानां गन्धामोदितमानसः ॥२४॥
पुंस्कोकिलकलध्वानैर्भ्रमरध्वनिसंयुतैः। कुसुमेषुविकारेण पुलकाङ्कितविग्रहः ॥२५॥
प्रियाप्रदत्तताम्बूलं भुक्तवान्यः सदा मुदा। वेदा अशक्ता यं स्तोतुं जडीभूता विचक्षणाः ॥२६॥
तमनिर्वचनीयं च किं स्तौमि नागवल्लभा। वन्देऽहं त्वत्पदाम्भोजं ब्रह्मेशशेषसेवितम् ॥२७॥
लक्ष्मीसरस्वतीदुर्गाजाह्नवीवेदमातृभिः। सेवितं सिद्धसंघैश्च मुनीन्द्रैर्मनुभिः सदा ॥२८॥

---

करें ॥१८॥ शिव, ब्रह्मा, शेष, षडानन (कार्तिकेय) आपकी स्तुति करने में जड़ की भाँति मौन रह जाते हैं, सरस्वती भी आपकी स्तुति करने में समर्थ नहीं हैं। समस्त वेद और अन्य देवगण भी आपकी स्तुति नहीं कर सकते हैं, केवल आपके भक्त लोग ही स्तुति करने में समर्थ हैं ॥१९॥ कहाँ तो मैं कुबुद्धि, अज्ञ एवं नारियों में अधम सर्पिणी और कहाँ सम्पूर्ण भुवनों के परम आश्रय तथा किसी के भी दृष्टिपथ में न आनेवाले परमेश्वर! ब्रह्मा, विष्णु, शिव और शेषनाग जिनकी सतत स्तुति करते हैं, ऐसे शरीररहित एवं मनुष्यरूपधारी आप परमेश्वर की स्तुति मैं करना चाहती हूँ, यह कैसी विडम्बना है? ॥२०॥ पार्वती, लक्ष्मी और वेदजननी सावित्री जिनकी स्तुति से डरती हैं और स्तुति करने में समर्थ नहीं हो पातीं, उन्हीं आप परमेश्वर का स्तवन कलिकलुष में निमग्न तथा वेद-वेदाङ्ग एवं शास्त्रों के श्रवण में मूढ स्त्री मैं क्यों करना चाहती हूँ, यह समझ में नहीं आता ॥२१॥ आप रत्नों के पलंग पर रत्नों के भूषणों से भूषित होकर शयन करते हैं। रत्नालंकारों से अलंकृत अंगवाली राधा के वक्षःस्थल पर विराजमान रहते हैं ॥२२॥ आपका सर्वाङ्ग चन्दन से चर्चित है, मुखारविन्द पर मन्द मुसकान की प्रभा फैली हुई है, और आप उमड़ते हुए प्रेम-रस के सागर में सतत सुख से निमग्न रहते हैं ॥२३॥ आपका मस्तक मल्लिका और मालती की मालाओं से सुशोभित है। आपका मन पारिजात के पुष्पों की सुगन्ध से आमोदित रहता है। कोकिल की मधुर ध्वनि और भौंरों के गुञ्जार से उत्पन्न काम-विकार से आपका शरीर पुलकायमान रहता है। आप प्रिया द्वारा दिये गये ताम्बूल को सदा हर्ष से खाते हैं। वेद भी जिनकी स्तुति करने में असमर्थ हैं और बड़े-बड़े विद्वान् जिनके स्तवन में जड़वत् हो जाते हैं, उन

---

१ क० °श्चान्यसं°।

निष्कारणायाखिलकारणाय सर्वेश्वरायापि परात्पराय ।
स्वयंप्रकाशाय परावराय परावराणामधिपाय ते नमः ॥२९॥
हे कृष्ण हे कृष्ण सुरासुरेश ब्रह्मेश शेषेश प्रजापतीश ।
मुनीश मन्वीश चराचरेश सिद्धीश सिद्धेश [1]गणेश पाहि ॥३०॥
धर्मेश धर्मीश शुभाशुभेश वेदेश वेदेष्वनिरूपितश्च ।
सर्वेश सर्वात्मक सर्वबन्धो जीवीश जीवेश्वर पाहि मत्प्रभुम् ॥३१॥

इत्येवं स्तवनं कृत्वा भक्तिनम्रात्मकंधरा । विधृत्य चरणाम्भोजं तस्थौ नागेशवल्लभा ॥३२॥
नागपत्नीकृतं स्तोत्रं त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः । सर्वपापात्प्रमुक्तस्तु यात्यन्ते श्रीहरेः पदम् ॥३३॥
इह लोके हरेर्भक्तिमन्ते दास्यं लभेद्ध्रुवम् । लभते पार्षदो भूत्वा सालोक्यादिचतुष्टयम् ॥३४॥

## नारद उवाच

नागपत्नीवचः श्रुत्वा भगवान्सर्वनन्दनः । प्रहृष्टोत्फुल्लनयनः किमुवाच हरिः स्वयम्
कथयस्व महाभाग रहस्यं परमाद्भुतम् ॥३५॥

---

अनिर्वचनीय की स्तुति मैं नागवल्लभा क्या कर सकती हूँ ? मैं तो आपके चरण-कमल की केवल वन्दना कर रही हूँ, जिसका सेवन ब्रह्मा, शिव, शेष, लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, गंगा, सावित्री, सिद्धों के समूह, मुनीन्द्र और मनु करते हैं ॥२४-२८॥ कारणरहित, समस्त के कारण, सबके ईश्वर, परात्पर, स्वयंप्रकाश, श्रेष्ठ और श्रेष्ठों के अधीश्वर आपको मैं नमस्कार कर रही हूँ ॥२९॥ हे कृष्ण ! हे सुर-असुर के अधीश्वर ! हे ब्रह्मा के ईश ! हे शेष के स्वामी ! हे प्रजापति के ईश ! तथा हे मुनि, मनु, चराचर, सिद्धि, सिद्ध और गणों के ईश ! आप हमारी रक्षा करें ॥३०॥ आप धर्म-धर्मी, शुभ-अशुभ और वेद के अधीश्वर हैं । वेदों में आपका अच्छी तरह निरूपण नहीं हो सका है । हे सर्वेश ! आप सबके आत्मा, सबके बन्धु, देहधारियों तथा जीवों के ईश हैं, अतः मेरे स्वामी की रक्षा कीजिये ॥३१॥ इस भाँति स्तुति करके भक्ति से कन्धे झुकाये वह नागपत्नी भगवान् का चरण-कमल पकड़कर बैठ गयी ॥३२॥ नाग-पत्नी कृत इस स्तोत्र का जो तीनों संध्याओं में पाठ करता है, वह समस्त पापों से मुक्त होकर अन्त में भगवान् के लोक में चला जाता है ॥३३॥ इस लोक में भगवान् की भक्ति, अन्त में दुर्लभ दास्यपद और पार्षद होकर सालोक्य आदि चारों मुक्तियों को प्राप्त कर लेता है ॥३४॥

**नारद बोले**—नाग-पत्नी की बात सुनकर हर्ष से विकसित नेत्रोंवाले सर्वनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं उससे क्या कहा ? महाभाग ! यह परम अद्भुत रहस्य बताइये ॥३५॥

---

१. क. गुणे॰ ।

सूत उवाच

नारदस्य वचः श्रुत्वा भगवान्सर्वदर्शनः[1]। उवाच परमात्मानं मधुवृन्दं पदे पदे ॥३६॥

नारायण उवाच

नागपत्नीवचः श्रुत्वा श्रीकृष्णस्तामुवाच ह। पुटाञ्जलियुतां पादे पतितां भयविह्वलाम् ॥३७॥

श्रीकृष्ण उवाच

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ नागेशे वरं वृणु भयं त्यज। गृहाण कान्तं हे मातर्मद्वरादजरामरम् ॥३८॥
कालिन्दीह्रदमुत्सृज्य स्वकीयं भवनं व्रज। भर्त्रा स्वगोष्ठ्या सार्धं च गच्छ वत्से[2] सुखी भव ॥३९॥
अद्य प्रभृति नागेशि भूता कन्या च त्वं मम। त्वत्प्राणाधिक एवायं जामाता च न संशयः ॥४०॥
मत्पादपद्मचिह्नेन गरुडस्त्वत्पतिं शुभे। कृत्वा च स्तवनं भक्त्या प्रणमिष्यति मत्पदम् ॥४१॥
त्यज त्वं गरुडाद्भीतिं शीघ्रं रमणकं व्रज। ह्रदान्निर्गच्छ वत्से त्वं वरं वृणु यथेप्सितम् ॥४२॥
श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा प्रसन्नवदनेक्षणा। उवाच साश्रुनेत्रा सा भक्तिनम्रात्मकंधरा ॥४३॥

सुरसोवाच

वरं दास्यसि चेदानीं वरदेश्वर मेऽपि च। त्वत्पादाब्जे दृढां भक्तिं निश्चलां दातुमर्हसि ॥४४॥

---

**सूत बोले**—नारद की बात सुनकर सर्वद्रष्टा भगवान् नारायण पद-पद में मधुराशि परमात्मा के बारे में कहने लगे ॥३६॥

**नारायण बोले**—नाग-पत्नी की बात सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण ने उससे कहा, जो हाथ जोड़े और भयाकुल होकर उनके चरण-कमल पर पड़ी थी ॥३७॥

**श्रीकृष्ण बोले**—हे नागेश्वरी ! उठो, उठो, भय त्यागो, वर माँगो। हे मातः ! मेरे वरदान द्वारा अपने अजर-अमर पति को ग्रहण करो ॥३८॥ यमुना का ह्रद (कुण्ड) छोड़कर अपने घर को चली जाओ। वत्से ! अपने पति एवं परिवार को साथ लिये तुम जाओ और सुख से रहो ॥३९॥ हे नागेशि ! आज से तुम मेरी कन्या हुई और तुम्हारा प्राणाधिक प्रिय यह नाग मेरा जामाता हुआ, इसमें संशय नहीं ॥४०॥ शुभे ! मेरे चरण-कमल के चिह्न के कारण गरुड़ तुम्हारे पति से वैर न कर, भक्तिपूर्वक स्तुति करके मेरे चरण को प्रणाम करेंगे, अतः तुम गरुड़ से भय न करो, रमणक द्वीप को चली जाओ। हे वत्से ! इस कुण्ड से निकलकर तुम मनइच्छित वरदान माँगो। श्रीकृष्ण की बात सुनकर प्रसन्नता से उसके मुख और नेत्र विकसित हो गये-- उसने सजलनयन होकर और भक्ति से कन्धे झुकाकर कहा ॥४१-४३॥

**सुरसा बोली**—हे ईश्वर ! यदि मुझे आप वरदान देना चाहते हैं तो अपने चरण-कमल की निश्चल दृढ़ भक्ति प्रदान करें ॥४४॥ मेरा मन भौंरे की भाँति आपके ही चरण-कमल में निरन्तर भ्रमण किया करे, आपका

---

१. क. °वंनन्दनः। २. क. °से त्वभीप्सितम्।

मन्मनस्त्वत्पदाम्भोजे भ्रमतु भ्रमरो यथा । तव स्मृतेर्विस्मृतिर्मे कदाऽपि न भविष्यति ॥४५॥
स्वकान्ते मम सौभाग्यं कान्तोऽयं ज्ञानिनां वरः । इत्येवं प्रार्थनीयं च परिपूर्णं कुरु प्रभो ॥४६॥
इत्येवमुक्त्वा सर्पस्त्री प्रतस्थौ पुरतो हरेः । शरत्पार्वणचन्द्रास्यं ददर्श श्रीहरेर्मुखम् ॥४७॥
लोचनाभ्यां पपौ वक्त्रं निमेषरहितं सती । सर्वाङ्गपुलकोद्भिन्ना सानन्दाश्रुपरिप्लुता ॥४८॥
सुन्दरं बालकं दृष्ट्वा पुत्रस्नेहं प्रकुर्वती । उवाच पुनरेवेदं भक्त्युद्रेकपरिप्लुता ॥४९॥
न यास्यामि रमणकं तत्र नास्ति प्रयोजनम् । सर्पः करोतु संसारं कुरु मां निजकिंकरीम् ॥५०॥
न वाञ्छा मम हे कृष्ण सालोक्यादिचतुष्टये । त्वत्पदाम्भोजसेवायाः कलां नार्हति षोडशीम् ॥५१॥
विना त्वत्पादसेवां च यो वाञ्छति वरान्तरम् । भारते दुर्लभं जन्म लब्ध्वाऽसौ वञ्चितः स्वयम् ॥५२॥
नागपत्न्या वचः श्रुत्वा स्मेराननसरोरुहः । प्रसन्नमानसः श्रीमानोमित्येवमुवाच ह ॥५३॥
एतस्मिन्नन्तरे दिव्यः सद्रत्नसारनिर्मितः । आजगाम रथस्तूर्णमुद्दीप्तस्तेजसा मुने ॥५४॥
पार्षदप्रवरैर्युक्तो वस्त्रमालापरिच्छदः । शतचक्रो वायुवेगी मनोयायी मनोहरः ॥५५॥
अवरुह्य रथात्तूर्णं श्यामलाः श्यामकिंकराः । प्रणम्य कृष्णं तां नीत्वा जग्मुर्गोलोकमुत्तमम् ॥५६॥

---

स्मरण सदैव बना रहे, उसकी कभी भी विस्मृति न हो ॥४५॥ अपने पति में मेरा यह सौभाग्य हो कि ये ज्ञानिप्रवर हो जायँ । प्रभो ! यही मेरी प्रार्थना है, इसे पूर्ण करें ॥४६॥ इस प्रकार कहकर नागपत्नी भगवान् के सामने खड़ी हो गयी । उसने शरत्पूर्णिमा के चन्द्रमा को लज्जित करनेवाले श्रीकृष्ण के मुख का दर्शन किया ॥४७॥ उस सती ने अपने दोनों नेत्रों से निमेषरहित होकर हरि के मुख-सौन्दर्य का पान किया । उसका सर्वाङ्ग पुलकित हो गया, आनन्द के आँसू बहने लगे ॥४८॥ भगवान् को सुन्दर बालक के रूप में देखकर उनमें पुत्रोचित स्नेह करने लगी और भक्ति के उद्रेक से आप्लावित होकर पुनः इस प्रकार बोली ॥४९॥ मैं रमणक को नहीं जाऊँगी । वहाँ मेरा कोई प्रयोजन नहीं है । मेरे पति सर्प संसार चलावे । मुझे आप अपनी दासी बना लें ॥५०॥ हे कृष्ण ! मुझे सालोक्य आदि चारों प्रकार की मुक्तियों की कामना नहीं है, क्योंकि यह आपके चरण-कमल की सेवा की सोलहवीं कला के भी समान नहीं है ॥५१॥ भारतवर्ष में जन्म पाकर जो आपके चरण-कमल की सेवा की याचना न कर अन्य वरदान की इच्छा करता है वह वञ्चित ही रह जाता है ॥५२॥ नागपत्नी की बात सुनकर श्रीकृष्ण के मुखकमल पर मुसकराहट फैल गयी । उनका मन प्रसन्न हो गया और श्रीमान् हरि ने 'एवमस्तु' कहकर अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी ॥५३॥ मुने ! इसी बीच एक दिव्य रथ वहाँ आया, जो उत्तम रत्न के सार भाग से सुरचित और तेज से देदीप्यमान् था । वह पार्षद-प्रवरों से युक्त तथा वस्त्र और मालाओं से सुसज्जित था । उसमें सौ पहिये लगे थे । वह वायु की भाँति वेगवान्, मन की भाँति चलनेवाला तथा मनोहर था ॥५४-५५॥ उस पर से श्यामसुन्दर के श्याम कान्तिवाले सेवक शीघ्र उतर पड़े, और भगवान् को प्रणाम करके उस (नागपत्नी) को लेकर उत्तम गोलोक को चले गये ॥५६॥ भगवान् ने तेज द्वारा उसकी छाया का निर्माण करके

हरिश्छायां विनिर्माय ददौ सर्पाय तेजसा। स च किंचिन्न बुबुधे मोहितो विष्णुमायया ॥५७॥
अवरुह्य सर्पमूर्ध्नः श्रीकृष्णः करुणानिधिः। ददौ हस्तं च कृपया शीघ्रं कालियमस्तके ॥५८॥
संप्राप्य चेतनां सद्यो ददर्श पुरतो हरिम्। पुटाञ्जलियुतां साश्रुपूर्णां च सुरसां सतीम् ॥५९॥
प्रणनाम हरिं सद्यो रुरोद प्रेमविह्वलः। भक्त्युद्रेकात्साश्रुनेत्रां पुलकाङ्कितविग्रहाम् ॥६०॥
तूष्णीभूतां च तां दृष्ट्वा समुवाच कृपानिधिः। यदीश्वरस्य सततं योग्यायोग्ये समा कृपा ॥६१॥

## श्रीकृष्ण उवाच

वरं वृणु त्वं कालिय यस्ते मनसि वर्तते। त्वं मे प्राणाधिको वत्स सुखं तिष्ठ भयं त्यज ॥६२॥
तस्याहमनुगृह्णामि योऽतिभक्तो ममांशजः। किंचित्तद्दमनं कृत्वा तत्प्रसादं करोम्यहम् ॥६३॥
त्वद्वंशजातान्सर्पांश्च हन्ति यो मानवाधमः। ब्रह्महत्यासमं पापं भविता तस्य निश्चितम् ॥६४॥
मत्पादपद्मचिह्ने यः करोति दण्डताडनम्। द्विगुणं ब्रह्महत्याया भविता तस्य किल्बिषम् ॥६५॥
लक्ष्मीर्यास्यति तद्गेहाच्छापं दत्त्वा सुदारुणम्। वंशायुर्यशसां हानिर्भविता तस्य निश्चितम् ॥६६॥
ध्रुवं वर्षशतं कालसूत्रे यास्यति मद्गिरा। त्वत्प्रमाणा कीटसंघा दंशिष्यन्ति च संततम् ॥६७॥

---

सर्प (कालिय) को दे दिया। विष्णु की माया से मोहित होने के कारण वह (सर्प) कुछ समझ न सका ॥५७॥ करुणानिधान श्रीकृष्ण कालिय के सिर पर से उतर पड़े और कृपा करके मस्तक पर शीघ्र अपना हाथ रख दिया ॥५८॥ हाथ रखते ही उसके शरीर में चेतना लौट आयी। उसने अपने सामने भगवान् को और हाथ जोड़े तथा आँखों में आँसू भरे पतिव्रता सुरसा को भी देखा ॥५९॥ उसने तुरन्त भगवान् को प्रणाम किया और प्रेमविभोर होकर रोदन करने लगा। भक्ति के उद्रेक से अश्रुपूर्ण नेत्रवाली तथा रोमाञ्चित शरीरवाली सुरसा को चुप देखकर दयानिधि श्रीकृष्ण स्वयं बोले। क्योंकि योग्य-अयोग्य प्राणी पर भी भगवान् की कृपा सदा समान रूप से ही रहती है ॥६०-६१॥

**श्रीकृष्ण बोले**—हे कालिय! अपना मन इच्छित वरदान माँगो। वत्स! तुम मुझे प्राण से भी अधिक प्रिय हो, अतः भय छोड़कर सुख से रहो ॥६२॥ क्योंकि जो मेरे अंश से समुत्पन्न एवं अतिभक्त होता है उस पर मैं विशेष कृपा करता हूँ। उसका कुछ दमन करके मैं उस पर पुनः अनुग्रह करता हूँ ॥६३॥ जो नराधम तुम्हारे वंशज सर्पों का हनन करेगा, उसे निश्चित रूप से ब्रह्महत्या के समान पाप का भागी होना पड़ेगा ॥६४॥ मेरे चरण-कमल के चिह्न पर जो दण्डाघात करेगा, वह ब्रह्महत्या के दुगुने पाप का भागी होगा ॥६५॥ उसके घर से लक्ष्मी अतिदारुण शाप देकर चली जायगी और उसके वंश, आयु और यश की निश्चित ही हानि होगी ॥६६॥ मेरे वचनानुसार वह कालसूत्र नरक में सौ वर्षों तक निश्चित पड़ा रहेगा। तुम्हारे प्रमाण के कीड़े उसे निरन्तर डँसा करेंगे ॥६७॥ वहाँ भोग करने के उपरान्त भूतल पर जन्म होने पर उसके

भोगान्ते जन्म लब्ध्वा च तन्मृत्युस्तस्य दंशनात् । तस्य वंशोद्भवानां च त्वद्वंशाद्भविता भयम् ॥६८॥
ये च त्वद्वंशजान्दृष्ट्वा सुपदाङ्कं मदीयकम् । प्रणमिष्यन्ति भक्त्या ते मुच्यन्ते सर्वपातकात् ॥६९॥
गच्छ शीघ्रं रमणकं त्यज भीतिं खगाधिपात् । मत्पदाङ्कं मूर्ध्नि दृष्ट्वा त्वां भक्त्या प्रण-
मिष्यति ॥७०॥
तव त्वद्वंशजानां च गरुडान्न भयं क्वचित् । सर्वेषां ज्ञातिसर्पाणां वरोऽद्य भव मद्वरात् ॥७१॥
वरं किमपरं वत्स वाञ्छितं वरयाधुना । भयं त्यक्त्वा कथय मां त्वदीयं दुःखभञ्जनम् ॥७२॥
श्रीकृष्णवचनं श्रुत्वा कालियः कम्पितो भिया । पुटाञ्जलियुतो भूत्वा तमुवाच भुजंगमः ॥७३॥

## कालिय उवाच

वरेऽन्यस्मिन्मम विभो वाञ्छा नास्ति वरप्रद । भक्ति स्मृतिं त्वत्पदाब्जे देहि जन्मनि जन्मनि ॥७४॥
जन्म ब्रह्मकुले वाऽपि तिर्यग्योनिषु वा समम् । तद्भवेत्सफलं यत्र स्मृतिस्त्वच्चरणाम्बुजे ॥७५॥
तन्निष्फलः स्वर्गवासो नास्ति चेत्त्वत्पदस्मृतिः । त्वत्पादध्यानयुक्तस्य यत्तत्स्थानं च तत्परम् ॥७६॥
क्षणं वा कोटिकल्पं वा पुरुषायुः क्षयोऽस्तु वा । यदि त्वत्सेवया याति सफलो निष्फलोऽथवा ॥७७॥

---

काटने से ही उसकी मृत्यु होगी ॥६८॥ उसके वंशजों को तुम्हारे वंशवालों से सदा भय बना रहेगा। तुम्हारे वंशजों को देखकर, जो मेरे सुन्दर चरण-चिह्नों को भक्तिपूर्वक प्रणाम करेंगे, वे समस्त पातकों से मुक्त हो जायेंगे। इसलिए तुम शीघ्र रमणक चले जाओ और खगाधीश्वर गरुड़ से भय त्याग दो। वह तुम्हारे सिर पर मेरे चरण-चिह्न को देखकर भक्तिपूर्वक प्रणाम करेगा। अतः तुम्हें और तुम्हारे वंशजों को गरुड़ से भय कहीं नहीं है। आज से मेरा वर पाकर अपनी जाति के सर्पों में तुम सर्वश्रेष्ठ हो जाओ। वत्स ! तुम इस समय और क्या वरदान चाहते हो, कहो। तुम मुझे अपना दुःख-भञ्जन समझकर निर्भय होकर मुझसे कहो। श्रीकृष्ण की बात सुनकर कालिय सर्प डर से कम्पित होकर हाथ जोड़कर बोला ॥६९-७३॥

**कालिय ने कहा**--वरदाता प्रभो ! मुझे किसी अन्य वर की इच्छा नहीं है, यदि आप देना ही चाहते हैं तो अपने चरण-कमल की भक्ति और उसका स्मरण प्रत्येक जन्म में होता रहे, यही वरदान दें। क्योंकि ब्राह्मण-कुल में जन्म हो या पशु-पक्षी आदि योनि में, दोनों समान हैं। सफल वही है, जिसमें आपके चरण-कमल का निरन्तर स्मरण होता रहे। यदि आपके चरण-कमल का स्मरण न हुआ, तो स्वर्ग का निवास भी व्यर्थ है। आपके चरण के ध्यान में निमग्न रहनेवाले का जो स्थान होता है, वही परमोत्तम स्थान है, चाहे क्षणमात्र के लिए हो या करोड़ों कल्पों के लिए। उसकी आयु का क्षय ही क्यों न हो जाय, यदि वह आपकी सेवा में बीत

तेषां चाऽऽयुर्व्ययो नास्ति ये त्वत्पादाब्जसेवकाः । न सन्ति जन्ममरणरोगशोकार्तिभीतयः ॥७८॥
इन्द्रत्वे वाऽमरत्वे वा ब्रह्मत्वे चातिदुर्लभे । वाञ्छा नास्त्येव भक्तानां त्वत्पादसेवनं विना ॥७९॥
सुजीर्णपटखण्डस्य समं नूतनमेव च । पश्यन्ति भक्ता किं चान्यत्सालोक्यादिचतुष्टयम् ॥८०॥
संप्राप्तस्त्वन्मनुर्ब्रह्मन्ननन्ताद्यावदेव हि । तावत्त्वद्भावनेनैव त्वद्वर्णोऽहमनुग्रहात् ॥८१॥
मां च भक्तमपक्वं वा विज्ञाय गरुडः स्वयम् । देशाद्दूरं च न्यक्कारं चकार दृढभक्तिमान् ॥८२॥
भवता च दृढां भक्तिं दत्त्वा मे वरदेश्वर । स च उक्तश्च भक्तोऽहं न मां त्यक्तुं क्षमोऽधुना ॥८३॥
त्वत्पादपद्मचिह्नाक्तं दृष्ट्वा श्रीमस्तकं मम । सदोषं गुणयुक्तं मां सोऽधुना त्यक्तुमक्षमः ॥८४॥
ममाऽऽराध्याश्च नागेन्द्रा न तद्बाध्योऽहमीश्वर । भयं न केभ्यः सर्वत्र तमनन्तं गुरुं विना ॥८५॥
यं देवेन्द्राश्च देवाश्च मुनयो मनवो नराः । स्वप्ने ध्यानं न पश्यन्ति चक्षुषोर्गोचरः स मे ॥८६॥
भक्तानुरोधात्साकारः कुतस्ते विग्रहो विभो । सगुणस्त्वं च साकारो निराकारश्च निर्गुणः ॥८७॥
स्वेच्छामयः सर्वधाम सर्वबीजं सनातनम् । सर्वेषामीश्वरः साक्षी सर्वात्मा सर्वरूपधृक् ॥८८॥
ब्रह्मेशशेषधर्मेन्द्रवेदवेदाङ्गपारगाः । स्तोतुं यमीशं ते जाड्याः सर्पः स्तोष्यति तं विभुम् ॥८९॥

---

रही है तो सफल है, अन्यथा उसका कोई फल नहीं है, वह व्यर्थ है । आपके चरण-कमल की सेवा करनेवालों की आयु का कभी व्यय नहीं होता है । उन्हें जन्म, मरण, रोग, शोक, दुःख और भय कभी नहीं होते हैं ॥७४-७८॥ आपके चरणों की सेवा किये विना भक्तों को कभी इन्द्रत्व, अमरत्व एवं दुर्लभ ब्रह्मत्व के पद के लिए भी इच्छा नहीं होती है । और क्या ? भक्त लोग जीर्ण-शीर्ण (फटे-पुराने) वस्त्र के टुकड़े के समान ही नूतन सालोक्य आदि चारों मोक्षों को भी देखते हैं ॥७९-८०॥ ब्रह्मन् ! अनन्त देव से आपका मन्त्र प्राप्तकर मैं आपकी भावना में निमग्न रहा । इसी कारण अनुग्रहवश आपका वर्ण भी मुझे प्राप्त हो गया है । गरुड़ ने उस समय मुझे अपरिपक्व भक्त समझकर धिक्कारते हुए देश से दूर निकाल दिया था, किन्तु हे वरदेश्वर ! आपने मुझे सुदृढ़ भक्ति प्रदानकर उन (गरुड़) से कह दिया कि मैं भी (आपका) भक्त हूँ, अतः इस समय मेरा त्याग आपके लिए उचित नहीं है ॥८१-८३॥ आपके चरणारविन्दों के चिह्न से भूषित मेरे श्रीयुत् मस्तक को देखकर गरुड़ मुझे सदोष होने पर भी गुणवान् मानेंगे, अतः इस समय मेरा त्याग नहीं कर सकेंगे ॥८४॥ अब तो वे यह मानकर कि नागेन्द्रगण हमारे आराध्य हैं, मुझे कष्ट नहीं देंगे । हे ईश्वर ! अब मैं उनका वध्य नहीं रहा । उन गुरुदेव अनन्त के बिना मुझे कहीं किसी से भी भय नहीं है ॥८५॥ देवेन्द्रगण, देवगण, मुनिवृन्द, मनु और मानव-समूह स्वप्न और ध्यान में जिन्हें नहीं देख पाते हैं, वे मेरे नेत्रों के सामने स्थित हैं ॥८६॥ विभो ! आपके शरीर कहां ? आप तो भक्तों के अनुरोध से साकार होते हैं । आप सगुण-साकार तथा निर्गुण-निराकार, स्वेच्छामय, समस्त के धाम, सर्वबीज, सनातन, सभी के ईश्वर, साक्षी, सबके आत्मा और समस्त रूपधारी हैं ॥८७-८८॥ ब्रह्मा, शिव, शेष, धर्म और इन्द्र तथा वेद-वेदाङ्ग के पारगामी विद्वान् जिन प्रभु की स्तुति करने में जड़ की भाँति मूक रह जाते हैं, उन विभु की स्तुति एक (तुच्छ) सर्प क्या कर सकता है ? हे नाथ ! हे करुणासिंधो !

हे नाथ करुणासिन्धो दीनबन्धो [1]क्षमाधमम् । खलस्वभावादज्ञानात्कृष्ण त्वं चर्वितो मया ॥९०॥
नास्त्रलक्ष्यो यथाऽऽकाशो न दृश्यान्तो न लङ्घ्यकः । न स्पृश्यो हि न चाऽऽवर्यस्तथा तेजस्त्वमेव च ॥९१॥
इत्येवमुक्त्वा नागेन्द्रः पपात चरणाम्बुजे । ओमित्युक्त्वा हरिस्तुष्टः सर्वं तस्मै वरं ददौ ॥९२॥
नागराजकृतं स्तोत्रं प्रातरुत्थाय यः पठेत् । तद्वंश्यानां च तस्यैव नागेभ्यो न भयं भवेत् ॥९३॥
स नागशय्यां कृत्वैव स्वप्तुं शक्तः सदा भुवि । विषपीयूषयोर्भेदो नास्त्येव तस्य भक्षणे ॥९४॥
नागग्रस्ते नागघाते प्राणान्ते विषभोजनात् । स्तोत्रस्मरणमात्रेण सुस्थो भवति मानवः ॥९५॥
भूर्जे कृत्वा स्तोत्रमिदं कण्ठे वा दक्षिणे करे । बिभर्ति यो भक्तियुक्तो नागेभ्योऽपि न तद्भयम् ॥९६॥
यत्र गेहे स्तोत्रमिदं नागस्तत्र न तिष्ठति । विषाग्निवज्रभीतिश्च न भवेत्तत्र निश्चितम् ॥९७॥
इह लोके हरेर्भक्तिं स्मृतिं च सततं लभेत् । अन्ते च स्वकुलं पूत्वा दास्यं च लभते ध्रुवम् ॥९८॥

## नारायण उवाच

नागेन्द्राय वरं दत्त्वा पुनस्तं जगदीश्वरः । उवाच मधुरं वाक्यं परिणामसुखावहम् ॥९९॥

---

हे दीनबन्धो ! मुझ अधम को क्षमा करें । हे कृष्ण ! मैंने दुष्ट स्वभाव और अज्ञानवश आपको चबा डाला; किन्तु जैसे आकाश अस्त्र का लक्ष्य नहीं हो सकता है, न उसका अंत दिखायी देता है और न (किसी भाँति) उसे लाँघा जा सकता है, न उसका स्पर्श किया जा सकता और न उस पर आवरण डाला जा सकता है, उसी प्रकार आप हैं, आप ही प्रकाश हैं ॥८९-९१॥ इस प्रकार कहकर वह नागेन्द्र भगवान् के चरण-कमल पर गिर पड़ा। भगवान् उस पर सन्तुष्ट हो गये । उन्होंने 'एवमस्तु' कहकर उसे सम्पूर्ण वर प्रदान कर दिया ॥९२॥ नागराज कृत इस स्तोत्र का जो प्रातःकाल उठकर पाठ करेगा, उसे और उसके वंशजों को कभी नागों से भय नहीं होगा। वह भूतल पर नाग की शय्या बनाकर शयन कर सकता है । उसके विष और अमृत भक्षण करने में कोई भेद नहीं रह जायगा ॥९३-९४॥ नाग द्वारा ग्रस्त होने पर, उसके द्वारा आघात किये जाने पर तथा विष-भोजन से प्राणान्त उपस्थित होने पर इस स्तोत्र के स्मरण मात्र से मनुष्य स्वस्थ हो जाता है ॥९५॥ इस स्तोत्र को भोजपत्र पर लिखकर कण्ठ या दाहिने बाहु में जो भक्तिपूर्वक धारण करता है, उसे नागों से कभी भी भय नहीं होता और जिसके घर में यह स्तोत्र रहता है वहाँ सर्प नहीं ठहर सकता है । वहाँ विष, अग्नि और वज्र से निश्चित ही कभी भय नहीं प्राप्त होता है । उसे इस लोक में भगवान् की भक्ति और स्मरण निरन्तर बना रहता है और अन्त समय अपने कुल को पवित्र करते हुए वह निश्चय ही भगवान् का दास्य भाव प्राप्त कर लेता है ॥९६-९८॥

**नारायण बोले**—जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्ण ने नागेन्द्र को वर प्रदान करके पुनः उससे मधुर वचन कहा, जो भविष्य में सुखप्रद था ॥९९॥

---

१ क. 'माक्षमम् ।

### श्रीकृष्ण उवाच

गच्छ त्वं च रमणकं यथेन्द्रनगरं परम्। सार्धं स्वगोष्ठचा नागेन्द्र यमुनाजलवर्त्मना ॥१००॥
श्रुत्वा नागो हरेराज्ञां रुरोद प्रेमविह्वलः। कदा द्रक्ष्यामि त्वत्पादपद्मं नाथेत्युवाच ह ॥१०१॥
प्रणम्य शतकृत्वश्च स्त्रिया गोष्ठचा सहेश्वरम्। जगाम जलमार्गेण नागेन्द्रो विरहातुरः ॥१०२॥
यमुनाह्रदतोयं च बभूवामृतकल्पकम्। प्रसन्ना जन्तवः सर्वे बभूवुस्तेन नारद ॥१०३॥
गत्वा ददर्श भवनं यथेन्द्रनगरं परम्। आज्ञया च कृपासिन्धोर्निर्मितं विश्वकर्मणा ॥१०४॥
तत्र तस्थौ च नागेन्द्रः स्त्रिया पुत्रगणैः सह। निःशङ्को हर्षयुक्तश्च हरिभावनतत्परः ॥१०५॥
इत्येवं कथितं सर्वं हरेश्चरितमद्भुतम्। सुखदं मोक्षदं सारं परं किं श्रोतुमिच्छसि ॥१०६॥

### सूत उवाच

महर्षेर्वचनं श्रुत्वा नारदो हर्षविह्वलः। ऋषिं पप्रच्छ संदेहं सर्वसंदेहभञ्जनम् ॥१०७॥

### नारद उवाच

कथं विहाय कालीयः स्वपूर्वभवनं परम्। जगाम यमुनातीरं तन्मे ब्रूहि जगद्गुरो ॥१०८॥

---

**श्रीकृष्ण बोले**--हे नागेन्द्र ! तुम इसी यमुना-जल के मार्ग से स्त्री और समस्त परिवार लेकर इन्द्र-नगर के समान उत्तम रमणक द्वीप को चले जाओ। भगवान् की ऐसी आज्ञा सुनकर नाग प्रेमाकुल होकर रोदन करने लगा--हे नाथ ! आपके चरण-कमल का दर्शन अब कब प्राप्त होगा ॥१००-१०१॥ विरह से व्याकुल वह नागेन्द्र भगवान् को सैंकड़ों बार प्रणाम करके स्त्री-परिवार के साथ यमुना-जलमार्ग से चला गया ॥१०२॥ उस यमुना-कुण्ड का जल अमृत के समान मधुर हो गया। इससे सभी जीव-जन्तुओं को प्रसन्नता हुई ॥१०३॥ रमणक पहुँचकर उसने इन्द्र-भवन के समान अपने भवन को देखा। कृष्णसिन्धु भगवान् की आज्ञा से विश्वकर्मा ने उसका निर्माण किया था ॥१०४॥ अपने स्त्री-पुत्र आदि परिवार समेत वह भगवान् के प्रेम में निर्भय होकर वहाँ निःशंक और सहर्ष रहने लगा ॥१०५॥ इस प्रकार मैंने भगवान् का अद्भुत चरित कह दिया, जो सुखप्रद, मोक्षदायक और सारभूत है। अब और क्या सुनना चाहते हो ? ॥१०६॥

**सूत बोले**--महर्षि की बात सुनकर नारद प्रेममग्न हो गये और समस्त सन्देह भञ्जन करनेवाले ऋषि से उन्होंने अपना सन्देह पूछा ॥१०७॥

**नारद बोले**--जगद्गुरो ! कालिय नाग अपने पहले के भवन को छोड़कर यमुना-कुण्ड में क्यों चला गया था ? वह मुझे बतायें ॥१०८॥

## नारायण उवाच

शृणु नारद वक्ष्येऽहमितिहासं पुरातनम् । यच्छ्रुतं धर्मवक्त्रान्मे मलये सूर्यपर्वणि ॥१०९॥
कृष्णाख्यानप्रसङ्गेन सुप्रभापश्चिमे तटे । पप्रच्छ धर्मं पुलहः कथितं मुनिसंसदि ॥११०॥
इदमाख्यानमाश्चर्यमुवाच तं कृपानिधिः । तत्र श्रुतं मया विप्र निबोध कथयामि ते ॥१११॥
शेषाज्ञया नागगणाः प्रतिसंवत्सरं भिया । कार्तिकीपूर्णिमायां तु कुर्वन्ति गरुडार्चनम् ॥११२॥
पुष्पैर्धूपैश्च दीपैश्च नैवेद्यैर्बलिभिर्मुदा । पुष्करे च महातीर्थे सुस्नातो भक्तिसंयुतः ॥११३॥
तस्य पूजां च कालीयो न चकारात्यहंकृतः । नागपूजोपकरणं बलाद्भक्षितुमुद्यतः ॥११४॥
चक्रुर्निवारणं नागा नीतिमूचुर्मदोद्धतम् । न शक्ता वारणे ते चेत्याविर्भूतः खगेश्वरः ॥११५॥
दृष्ट्वा खगेश्वरं नागा कालीयप्राणरक्षया । प्राणशक्त्या च युयुधुर्यावत्सूर्योदयं मुने ॥११६॥
पक्षीन्द्रतेजसा सर्वे समुद्विग्नाः पलायिताः । अनन्तं शरणं जग्मुः सर्वेषामभयप्रदम् ॥११७॥
पलायनपरान्दृष्ट्वा नागांश्च करुणानिधिः । तत्र तस्थौ च निःशङ्कः कालीयस्तं ददर्श ह ॥११८॥
स्मृत्वा हरिपदाम्भोजं कालीयो युयुधे मुने । मुहूर्तं च तयोर्युद्धं बभूवातीव दारुणम् ॥११९॥
पराजितश्च नागेन्द्रस्तेजसा गरुडस्य च । भिया पलायनं कृत्वा जगाम यमुनाह्रदम् ॥१२०॥

---

**नारायण बोले**—नारद ! मैं एक प्राचीन इतिहास कह रहा हूँ, जो सूर्यग्रहण के समय मलयपर्वत पर सुप्रभा के पश्चिम किनारे श्रीकृष्ण की कथा के प्रसङ्ग में धर्म ने बताया था, सुनो । वहाँ महर्षियों की सभा में पुलह ऋषि ने धर्म से पूछा, तो कृपानिधान धर्म ने उनसे यही आश्चर्यमय आख्यान कहा था । वहीं मैंने सुना था, विप्र ! वह मैं तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो ॥१०९-१११॥ भगवान् शेष की आज्ञा से नागगण भयभीत होकर प्रतिवर्ष कार्तिक में पूर्णिमा के दिन पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य और विविध उपहार-सामग्री अर्पित करके प्रसन्नतापूर्वक गरुड़ की अर्चना करते थे । (एक बार) महातीर्थ पुष्कर में भक्तिपूर्वक भली-भाँति स्नान करके कालिय ने अहंकार-वश उक्त तिथि को गरुड़ की पूजा नहीं की, प्रत्युत नाग-पूजा की सामग्री बलात् खाने के लिए तैयार हो गया ॥११२-११४॥ नागों ने उसे मना किया और उस मदमत्त से कहा—'हम लोग तुम्हें रोकने में असमर्थ हैं ।' उसी समय वहाँ पक्षिराज गरुड़ आ गये ॥११५॥ उन्हें देखकर नागों ने कालिय के प्राण रक्षार्थ अपने प्राणों की बाजी लगाकर सूर्योदय तक गरुड़ से युद्ध किया । अन्त में पक्षिराज गरुड़ के तेज से आहत होकर सब व्याकुल होकर भाग निकले । सब लोग अनन्त की शरण में जा पहुँचे, जो सबके लिए अभयदाता हैं ॥११६-११७॥ सभी नागों को भागने में तत्पर देखकर करुणानिधि कालिय निर्भय होकर वहाँ खड़ा हो गया और गरुड़ की ओर ताकने लगा ॥११८॥ मुने ! वह श्रीकृष्ण के चरण-कमल का स्मरण करके युद्ध करने लगा । एक मुहूर्त (दो घड़ी) तक दोनों में अति भयंकर युद्ध हुआ ॥११९॥ उपरान्त गरुड़ के तेज से नागेन्द्र कालिय पराजित हो गया और भयभीत होकर यमुनाकुण्ड में भाग गया ॥१२०॥ वहाँ सौभरि महर्षि के शापवश गरुड़ नहीं जाते थे।

न तं सौभरिशापेन खगेन्द्रो गन्तुमीश्वरः। तत्र तस्थौ भिया नागो जग्मुः पश्चाच्च तद्‌गणाः ॥१२१॥

### नारद उवाच

कथं तु सौभरेः शापो बभूव गरुडाय वै। कथं न शक्तो गन्तुं तं ह्रदमीश्वरवाहनः ॥१२२॥

### नारायण उवाच

दिव्यं वर्षसहस्रं च वर्षाणां तत्र सौभरिः। तपस्तप्त्वा महासिद्धो दध्यौ कृष्णपदाम्बुजम् ॥१२३॥
समीपे ध्यायमानस्य कूले च यमुनाजले। गणेन सार्धं निःशङ्कः करोति भ्रमणं मुदा ॥१२४॥
पुच्छमुत्फाल्य बहुधा प्रेरितः परमेच्छया। मुनिं प्रदक्षिणीकृत्य यात्यायाति मुदाऽन्वितः ॥१२५॥
सुकुलं सुमहात्मानं दर्शं दर्शं खगाधिपः। जग्राह चञ्चुना मीनं मुनीन्द्रस्य समीपतः ॥१२६॥
गच्छन्तं तं मीनमुखं ददर्श कोपचक्षुषा। प्रकम्पितो मुनेर्दृष्ट्या मीनस्तोये पपात ह ॥१२७॥
तमुवाच मुनीन्द्रश्च पुनरादातुमुद्यतम्। मीनश्च गरुडत्रासात्तस्थौ मुनिसमीपतः ॥१२८॥

### सौभरिरुवाच

गच्छ दूरं गच्छ दूरं खगेन्द्र मत्समीपतः। का योग्यता मत्पुरस्ते ग्रहीतुं जीवमुल्बणम् ॥१२९॥
श्रीकृष्णवाहनं ज्ञात्वा चाऽऽत्मानं बहु मन्यसे। त्वद्विधान्कोटिशः कृष्णः स्रष्टुं शक्तश्च वाहकान् ॥१३०॥

---

नाग वहाँ भय से रहने लगा और उसके पीछे उसके गण भी वहाँ पहुँच गये ॥१२१॥

**नारद बोले**—गरुड़ को सौभरि ऋषि का शाप कैसे हो गया और ईश्वर-वाहन (गरुड़) वहाँ जाने मे समर्थ क्यों नहीं हुए? ॥१२२॥

**नारायण बोले**—सौभरि ऋषि वहाँ एक सहस्र दिव्य वर्षों तक कठिन तप करके महासिद्ध हो श्रीकृष्ण के चरण-कमल का ध्यान करते थे। उन ध्यानपरायण मुनि के समीप पक्षिराज गरुड़ यमुना के जल में तथा तट पर भी अपने गण के साथ प्रसन्नतापूर्वक निःशंक विचरा करते थे। वे अपनी उत्कृष्ट इच्छा से प्रेरित होकर बहुधा पूंछ (अथवा पंख) ऊपर को उठाकर मुनि की सानन्द परिक्रमा करते हुए आते-जाते थे ॥१२३-१२६॥ कुलीन एवं उत्तम महात्मा को देखकर पक्षिराज ने मुनीन्द्र के निकट से ही एक मछली को चोंच से पकड़ लिया ॥१२६॥ मछली को मुंह से दबाये जाते हुए गरुड़ को मुनि ने रोषभरी दृष्टि से देखा। मुनि की उस दृष्टि से गरुड़ कांप उठे और वह मछली जल में गिर पड़ी ॥१२७॥ गरुड़ ने उसे पुनः पकड़ना चाहा कि वह मछली गरुड़ के भय से मुनि के समीप चली गयी, यह देखकर मुनि ने उनसे कहा ॥१२८॥

**सौभरि बोले**—पक्षिराज! मेरे पास से दूर हटो, दूर हटो। मेरे सामने से विशाल जीवों को पकड़ने की तुममें क्या योग्यता है? ॥१२९॥ क्या श्रीकृष्ण का वाहन समझकर अपने को बहुत लगाते हो? श्रीकृष्ण

करोमि भस्मसात्तूर्णं त्वां च भ्रूभङ्गलीलया । वाहनं च त्वमीशस्य न वयं तव किंकराः ॥१३१॥
अद्यप्रभृति पक्षीन्द्र यद्यागच्छसि मे ह्रदम् । मदीयशापात्तूर्णं च भस्मसाद्भविता ध्रुवम् ॥१३२॥
मुनीन्द्रस्य वचः श्रुत्वा प्रचचाल खगेश्वरः । स्मारं स्मारं कृष्णपादं तं प्रणम्य जगाम ह ॥१३३॥
अद्यप्रभृति विप्रेन्द्र पतगेन्द्रस्य संततम् । ह्रदस्य श्रुतिमात्रेण कम्पो भवति निश्चितम् ॥१३४॥
इतिहासश्च कथितो यः श्रुतो धर्मवक्त्रतः । सरहस्यं श्रुतिसुखं प्रकृतं शृणु मङ्गलम् ॥१३५॥
विज्ञाय सुचिरं बाला नोत्तस्थौ तज्जलाद्धरिः । चक्रुर्विषादं मोहाच्च रुरुदुर्यमुनातटे ॥१३६॥
स्ववक्षोघातनं चक्रुः केचिद्बालाः शुचाऽऽकुलाः । केचिन्निपत्य भूमौ च मूर्च्छां प्रापुर्हरिं विना ॥१३७॥
ह्रदं प्रवेष्टुं केचिच्च विरहेण समन्विताः । केचिद्गोपालबालाश्च चक्रुश्च तन्निवारणम् ॥१३८॥
कृत्वा विलापं केचिच्च प्राणांस्त्यक्तुं समुद्यताः । तेषां केचिज्ज्ञानवन्तो रक्षां चक्रुः प्रयत्नतः ॥१३९॥
केचिद्रुचुश्च हाहेति कृष्ण कृष्णेति केचन । केचिद्वक्तुं प्रवृत्तिं च प्रययुर्नन्दसंनिधिम् ॥१४०॥
केचित्संमीलितास्तत्र शोकमोहभयातुराः । इत्यूचुः किं करिष्यामः कुतोऽस्माकं गतो हरिः ॥१४१॥
हे नन्दसूनो हे कृष्ण प्राणेभ्योऽप्यधिकप्रिय । हे बन्धो दर्शनं देहीत्यूचुः प्राणाः प्रयान्ति हि[1] ॥१४२॥

---

तुम्हारे ऐसे करोड़ों वाहनों को बनाने में समर्थ हैं ॥१३०॥ मैं तुम्हें भौंह टेढ़ी करने मात्र से भस्म कर सकता हूँ। तुम ईश्वर के वाहन हो तो हम तुम्हारे नौकर नहीं हैं ॥१३१॥ पक्षीन्द्र ! यदि आज से मेरे कुण्ड में तुम पुनः कभी आओगे तो, मेरे शाप से निश्चित भस्म हो जाओगे ॥१३२॥ मुनीन्द्र की बात सुनकर खगेश्वर गरुड़ विचलित हो गये । कृष्ण के चरण-कमल का स्मरण करते-करते मुनि को प्रणाम करके चले गये ॥१३३॥ विप्रेन्द्र ! आज भी उस कुण्ड का नाम सुनने पर निश्चित ही गरुड़ की देह निरन्तर कांपने लगती है ॥१३४॥ वह इतिहास कह दिया, जिसे मैंने धर्म के मुख से सुना था । अब श्रवण-सुखद, मंगलमय (भगवच्चरित) रहस्य के साथ सुनो ॥१३५॥ यमुना तट पर खड़े हुए बालकों ने जाना कि समय अधिक बीत गया है, भगवान् जल से बाहर नहीं निकले । अतः मोहवश उन्हें बहुत विषाद हुआ । वे रोने लगे । कुछ बालक शोक के कारण अपनी छाती पीटने लगे । कुछ लोग भगवान् के वियोग में मूर्च्छित होकर पृथिवी पर गिर पड़े । कोई उनके वियोग में उसी कुण्ड में कूदने जा रहा था, जिन्हें कुछ बालकों ने किसी भाँति वहाँ से हटा दिया । कुछ विलाप करते हुए प्राण देने को तैयार हो गये, जिन्हें कुछ ज्ञानियों ने बड़े प्रयत्न से सुरक्षित रखा ॥१३६-१३९॥ कुछ लोग हाहाकार कर रहे थे और कुछ हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! की रट लगा रहे थे । कोई यह समाचार बताने के लिए नन्द के यहाँ चले गये ॥१४०॥ कोई शोक, मोह एवं भय से व्याकुल होकर यह कहने लगे कि--अब हम लोग क्या करें, हमारे हरि कहाँ चले गये ॥१४१॥ हे नन्द-सुनो ! हे प्राणों से अधिक प्रिय कृष्ण ! हे बन्धो ! हमें शीघ्र दर्शन प्रदान करो, नहीं तो ये प्राण अब जा रहे हैं ॥१४२॥ इसी बीच कुछ बालक नन्द के पास पहुँच गये, जो अति चञ्चल तथा

---

१. क. नः ।

एतस्मिन्नन्तरे केचिद्बालका नन्दसंनिधिम् । संप्रापुरतिलोलाश्च रुदन्तः शोकविह्वलाः ॥१४३॥
प्रवृत्तिमूचुस्तं शीघ्रं यशोदां मूलतो बलम् । गोपान्गोपालिकाश्चैव रक्तपङ्कजलोचनाः ॥१४४॥
श्रुत्वा वार्तां च ते सर्वे शीघ्रं जग्मुः शुचाऽन्विताः । कलिन्दनन्दिनीतीरं रुरुदुर्बालकैर्युताः ॥१४५॥
गत्वा संमीलिताः सर्वे रुरुदुः शोकमूर्च्छिताः । ह्रदं विशन्तीमम्बां तां केचिच्चक्रुर्निवारणम् ॥१४६॥
गोपा गोपालिकाश्चैव जघ्नुरङ्गानि शोकतः । केचिद्विललपुस्तत्र मूर्च्छां पापुश्च केचन ॥१४७॥
ह्रदं विशन्तीं तां राधां वारयामास काचन । मूर्च्छां च प्राप सा शोकान्मृतेव च सरित्तटे ॥१४८॥
विलप्यातिभृशं नन्दो मूर्च्छां प्राप पुनः पुनः । भूयोऽपि रोदनं कृत्वा भूयो मूर्च्छामवाप ह ॥१४९॥
विलपन्तं भृशं नन्दं यशोदां शोककर्शिताम् । गोपाश्च गोपिकाश्चैव राधिकामतिमूर्च्छिताम् ॥१५०॥
रुदतो बालकान्सर्वान्बालिकाश्च शुचाऽन्विताः । सर्वांश्च बोधयामास बलश्च ज्ञानिनां वरः ॥१५१॥

## बलदेव उवाच

गोपा गोपालिका बालाः सर्वे शृणुत मद्वचः । हे नन्द ज्ञानिनां श्रेष्ठ गर्गवाक्यस्मृतिं कुरु ॥१५२॥
जगद्बिभर्तुः शेषस्य संहर्तुः शंकरस्य च । विधातुः संविधातुश्च भुवि कस्मात्पराजयः ॥१५३॥
परमाणुः परो व्यूहः स्थुलात्स्थूलः परात्परः । विद्यमानोऽप्यदृश्यश्च संयोगो योगिनामपि ॥१५४॥

---

शोकाकुल होकर रोदन कर रहे थे। ॥१४३॥ उन्होंने शीघ्र ही समस्त वृत्तान्त यशोदा को और उनके पास बैठे हुए बलभद्र को तथा अन्यान्य गोपों और लाल कमल के समान नेत्रोंवाली गोपांगनाओं को यह समाचार बताया। समाचार सुनकर वे सब-के-सब शोक में व्याकुल हो शीघ्रता से यमुना-तट पर जा पहुँचे और बालकों के साथ रोने लगे। ॥१४४-१४५॥ सभी लोग एकत्र हो रोते-रोते शोक से मूर्च्छित हो गये। माता यशोदा उस कुण्ड में कूदने लगीं जिन्हें कुछ लोगों ने रोक दिया ॥१४६॥ कुछ गोप-गोपियाँ शोक से अपने अंगों को पीटने लगीं, कोई विलाप कर रहे थे तो कोई मूर्च्छित हो गये ॥१४७॥ राधा को उस कुण्ड में प्रवेश करते हुए कुछ गोपियों ने रोक दिया, किन्तु नदी-तट पर राधा शोक के कारण मृतक की भाँति मूर्च्छित हो गयीं ॥१४८॥ उधर नन्द को भी अति विलाप के कारण बार-बार मूर्च्छा आ रही थी। वे रोदन करके पुनः मूर्च्छित हो गये ॥१४९॥ विलाप करते हुए नन्द, शोककातर यशोदा, गोपों और गोपियों, अतिमूर्च्छित राधिका, रोदन करते हुए बालकों, शोकान्वित बालिकाओं तथा सभी को ज्ञानिप्रवर बलराम ने समझाना आरम्भ किया ॥१५०-१५१॥

**बलदेव बोले**--हे गोपो, गोपियो और बालको ! सभी लोग मेरी बात सुनो ! हे ज्ञानियों में श्रेष्ठ नन्द ! आप गर्गाचार्य की बात का स्मरण करें--जो जगत् को धारण करनेवाले शेष के भी आधारभूत हैं, संहार करनेवाले शिव के भी संहारक हैं और विधाता के भी विधाता हैं, उनका भूतल पर किससे पराजय हो सकता है ? वे अणु से भी अणु तथा परम महान् हैं। वे स्थूल से भी स्थूल और परात्पर हैं। वे विद्यमान रहते हुए भी अदृश्य हैं और योगियों के भी सम्यक् योग हैं ॥१५२-१५४॥ दिशाओं का एकीकरण नहीं होता है,

दिशां नास्ति समाहारः स्पृश्यो नाऽऽकाश एव च । अपि 'सर्वेश्वरो बाध्य इत्यूचुः श्रुतयः स्फुटम् ॥१५५॥
नाऽऽत्मा दृश्यो नास्त्रलक्ष्यो न वध्यो न हि दृश्यकः । नाग्निग्रस्तो न हिंस्यश्चापीदमाध्यात्मिका विदुः ॥१५६॥
विग्रहोऽस्यैव कृष्णस्य भक्तध्यानार्थमेव च । ज्योतिः स्वरूपस्य विभोर्नाऽऽद्यन्तमध्यमात्मनः ॥१५७॥
जलप्लुते च ब्रह्माण्डे जलशायी जनार्दनः । यन्नाभिपद्मजो ब्रह्मा तस्येशस्य ह्रदे विपत् ॥१५८॥
मशकश्चेत्क्षमो ग्रस्तुं ब्रह्माण्डमखिलं पितः । न तथाऽपि तदीशं तं ग्रस्तुं सर्पः क्षमो भवेत् ॥१५९॥
इत्येवं कथितं सर्वमाध्यात्मिकमनुत्तमम् । निगूढं योगिनां सारं संशयच्छेदकारणम् ॥१६०॥
बलदेववचः श्रुत्वा गर्गवाक्यमनुस्मरन् । तत्याज शोकं नन्दश्च व्रजश्च व्रजयोषितः ॥१६१॥
प्रबोधं मेनिरे सर्वे न यशोदा न राधिका । बन्धुविच्छेदविषये प्रबोधे न स्थितं मनः ॥१६२॥
एतस्मिन्नन्तरे कृष्णमुत्पतन्तं जलान्मुने । ददृशुस्तं सुप्रसन्ना व्रजाश्च व्रजयोषितः ॥१६३॥
शरत्पार्वणचन्द्रास्यं सस्मितं सुमनोहरम् । अस्निग्धवस्त्रमस्निग्धमलुप्तचन्दनाञ्जनम् ॥१६४॥

---

आकाश का स्पर्श नहीं होता है, उसी भाँति सर्वेश्वर किसी से बाध्य नहीं है, इस प्रकार श्रुतियाँ स्पष्ट कहती हैं ॥१५५॥ आत्मा दृश्य नहीं है, न अस्त्रों का ही लक्ष्य है, वह न तो वध के योग्य है और न दृश्य ही है। उसे अग्नि जला नहीं सकता है। वह हिंसा करने योग्य भी नहीं है, ऐसा अध्यात्मवादियों का कहना है ॥१५६॥ कृष्ण की देह जो दिखायी पड़ती है, वह केवल भक्तों के ध्यानार्थ है। ज्योतिःस्वरूप एवं व्यापक परमात्मा का आदि, मध्य और अन्त नहीं है ॥१५७॥ जिस समय निखिल ब्रह्माण्ड जल में विलीन हो जाता है, उस समय भगवान् जनार्दन जल में शयन करते हैं जिसके नाभि-कमल से ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं, उस ईश्वर को एक साधारण कुण्ड में क्या विपत्ति घेर सकती है ? ॥१५८॥ हे पिता ! इतना ही नहीं, यदि एक मच्छर समस्त ब्रह्माण्ड को निगल जाने में समर्थ हो जाय तो भी उस प्रभु को ग्रसने के लिए सर्प समर्थ नहीं हो सकता ॥१५९॥ यह मैंने परमोत्तम आध्यात्मिक ज्ञान की बात कही है, जो योगियों के लिए भी अति गूढ़, तत्त्वस्वरूप एवं संशयनाशक है ॥१६०॥ बलदेव की बात सुनकर और गर्गाचार्य की बात का स्मरण करके नन्द, व्रज और व्रज की स्त्रियों ने शोक को त्याग दिया ॥१६१॥ सबने इस प्रबोधन को मान लिया, किन्तु यशोदा और राधिका को उससे सन्तोष नहीं हुआ। प्रियजन के वियोग के विषय में मन किसी प्रकार के प्रबोधन को नहीं मानता ॥१६२॥ मुने ! उसी बीच जल से ऊपर आते हुए भगवान् कृष्ण को बड़ी प्रसन्नता से व्रज और व्रज की स्त्रियों ने देखा ॥१६३॥ उनका शरत्काल की पूर्णिमा के चन्द्र की भाँति परम मनोहर मुख मुसकराहट से युक्त था। उनका वस्त्र भीगा

---

१. क. बोधेश्वरो बा° ।

सर्वाभरणसंयुक्तं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा। मयूरपिच्छचूडं च वंशीवदनमच्युतम् ॥१६५॥
यशोदा बालकं दृष्ट्वा कृत्वा वक्षसि सस्मिता। चुचुम्ब वदनाम्भोजं प्रसन्नवदनेक्षणा ॥१६६॥
क्रोडे चकार नन्दश्च बलश्च रोहिणी मुदा। निमेषरहिताः सर्वे ददृशुः श्रीमुखं हरेः ॥१६७॥
प्रेमान्धा बालकाः सर्वे चक्रुरालिङ्गनं हरेः। पपुश्चक्षुश्चकोरैश्च मुखचन्द्रं च गोपिकाः ॥१६८॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र सहसा काननान्तरम्। दावाग्निर्वेष्टयामास तैः सर्वैः सह गोकुलम् ॥१६९॥
दृष्ट्वा शैलप्रमाणाग्निं परितः काननान्तरे। प्रणाशं मेनिरे सर्वे भयमापुश्च संकटे ॥१७०॥
श्रीकृष्णं तुष्टुवुः सर्वे संपुटाञ्जलयो व्रजाः। बाला गोप्यश्च संत्रस्ता भक्तिनम्रात्मकंधराः ॥१७१॥

**बाला ऊचुः**

यथा संरक्षितं ब्रह्मन्सर्वापत्स्वेव नः कुलम्। तथा रक्षां कुरु पुनर्दावाग्नेर्मधुसूदन ॥१७२॥
त्वमिष्टदेवताऽस्माकं त्वमेव कुलदेवता। स्रष्टा पाता च संहर्ता जगतां च जगत्पते ॥१७३॥
वह्निर्वा वरुणो वाऽपि चन्द्रो वा सूर्य एव च। यमः कुबेरः पवन ईशानाद्याश्च देवताः ॥१७४॥
ब्रह्मेशशेषधर्मेन्द्रा मुनीन्द्रा मनवः स्मृताः। मानवाश्च तथा दैत्या यक्षराक्षसकिंनराः ॥१७५॥
ये ये चराचराश्चैव सर्वे तव विभूतयः। आविर्भावस्तिरोभावः सर्वेषां च तवेच्छया ॥१७६॥

---

रहीं था, शरीर भी भीगा नहीं था। भाल का चन्दन और आँखों का अञ्जन लुप्त नहीं हुआ था ॥१६४॥ समस्त आभूषणों से भूषित, ब्रह्मतेज से देदीप्यमान, मोरपंख की चूड़ा धारण किये, मुख में वंशी लगाये, अच्युत बालक को देखकर यशोदा छाती से लगाकर मुसकरा उठीं, मुख और नेत्र से प्रसन्नता प्रकट करती हुई वे हरि के मुख-कमल का चुम्बन करने लगीं ॥१६५-१६६॥ नन्द, बलराम और रोहिणी ने भी हर्ष से उन्हें गोद में ले लिया, सभी लोग अपलक (एकटक) नेत्र से हरि के श्रीमुख का दर्शन करने लगे ॥१६७॥ सभी बालकों ने भी प्रेममग्न होकर भगवान् का आलिङ्गन किया। गोपियाँ अपने नयन-चकोर से भगवान् के मुखचन्द्र का पान करने लगीं ॥१६८॥ उसी समय वहाँ सहसा वन के भीतरी भाग को तथा उन सबके साथ गोकुल को दावाग्नि ने घेर लिया ॥१६९॥ लोगों ने देखा—उसकी ज्वाला पर्वत के समान ऊँची उठ रही थी। उस संकट से सब भयभीत हो उठे तथा अपना विनाश मान बैठे ॥१७०॥ तब समस्त व्रजवासी, गोपीजन और ग्वाल-बाल संत्रस्त हो भक्ति से हाथ जोड़े, भक्ति से कन्धे झुकाये श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगे ॥१७१॥

**बालक बोले**—ब्रह्मन्! मधुसूदन! आपने जिस प्रकार सभी संकटों में हमारे कुल-परिवार की रक्षा की है, उसी भाँति इस दावाग्नि से पुनः हमारी रक्षा कीजिये ॥१७२॥ आप ही हमारे इष्टदेव और कुल-देवता हैं। जगत्पते! आप ही जगत् के सृजन, पालन और संहार करनेवाले हैं। अग्नि, वरुण, चन्द्र, सूर्य, यम, कुबेर, पवन एवं ईशान आदि देवता तथा ब्रह्मा, शिव, शेष, धर्म, मुनीन्द्र, मनु, मानव, दैत्य, यक्ष राक्षस और किन्नर आदि जो-जो चर-अचर हैं, वे सब आपकी विभूतियाँ हैं। उन सबके आविर्भाव और नाश आपकी इच्छा से ही

अभयं देहि गोविन्द वह्निसंहरणं कुरु। वयं त्वां शरणं यामो रक्ष नः शरणागतान् ॥१७७॥
इत्येवमुक्त्वा ते सर्वे तस्थुर्ध्यात्वा पदाम्बुजम्। दूरीभूतस्तु दावाग्निः श्रीकृष्णामृतदृष्टितः ॥१७८॥
दूरीभूते च दावाग्नौ ननृतुस्ते मुदाऽन्विताः। सर्वापदः प्रणश्यन्ति हरिस्मरणमात्रतः ॥१७९॥
इदं स्तोत्रं महापुण्यं प्रातरुत्थाय यः पठेत्। वह्नितो न भवेत्तस्य भयं जन्मनि जन्मनि ॥१८०॥
शत्रुग्रस्ते च दावाग्नौ विपत्तौ प्राणसंकटे। स्तोत्रमेतत्पठित्वा तु मुच्यते नात्र संशयः ॥१८१॥
शत्रुसैन्यं क्षयं याति सर्वत्र विजयी भवेत्। इह लोके हरेर्भक्तिमन्ते दास्यं लभेद्ध्रुवम् ॥१८२॥

**नारायण उवाच**

दावाग्निमोक्षणं कृत्वा तैः सार्धं शृणु नारद। जगाम श्रीहरिर्गेहं कुबेरभवनोपमम् ॥१८३॥
ब्राह्मणेभ्यो धनं नन्दः परिपूर्णं ददौ मुदा। भोजनं कारयामास ज्ञातिवर्गांश्च बान्धवान् ॥१८४॥
नानाविधं मङ्गलं च हरेर्नामानुकीर्तनम्। वेदांश्च पाठयामास विप्रद्वारा मुदाऽन्वितः ॥१८५॥
एवं मुमुदिरे सर्वे वृन्दारण्ये गृहे गृहे। श्रीकृष्णचरणाम्भोजध्यानैकतानमानसाः ॥१८६॥
इत्येवं कथितं सर्वं हरेश्चरितमङ्गलम्। कलिकिल्बिषकाष्ठानां दाहने दहनोपमम् ॥१८७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० कालीयदमनदावाग्निमोक्षणं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

---

होते हैं। हे गोविन्द ! हमें अभय दीजिये और अग्नि का संहरण कीजिये। हम लोग आपकी शरण में आये हैं, आप हम शरणागतों की रक्षा करें ॥१७३-१७७॥ यह कहकर सब लोग भगवान् के चरण-कमल का ध्यान करने लगे। श्रीकृष्ण की अमृतमयी दृष्टि पड़ते ही दावाग्नि दूर हो गया ॥१७८॥ दावानल के दूर हो जाने पर वे हर्षित होकर नाचने लगे। भगवान् के स्मरण-मात्र से सभी आपत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं ॥१७९॥ जो प्रातःकाल उठकर इस परमपुण्यमय स्तोत्र का पाठ करता है, उसे जन्म-जन्मान्तर में कभी भी अग्नि का भय नहीं होता है ॥१८०॥ शत्रुओं से घिर जाने पर, दावाग्नि में आ जाने पर और विपत्ति या प्राण-संकट उपस्थित होने पर इस स्तोत्र का पाठ करके वह निःसन्देह मुक्त हो जाता है ॥१८१॥ (इसके पाठ से) शत्रु सेना नष्ट हो जाती है और वह सर्वत्र विजयी होता है। इस लोक में श्रीकृष्ण की भक्ति और अन्त में दास्यपद को अवश्य पा जाता है ॥१८२॥

**नारायण बोले**—नारद ! श्रीकृष्ण दावाग्नि से (उन लोगों को) बचाकर उन सबके साथ अपने घर गये, जो कुबेर-भवन के समान था ॥१८३॥ नन्द ने ब्राह्मणों को हर्ष से धन का प्रचुर दान दिया और बन्धु-वर्ग के लोगों को तथा बन्धुओं को भोजन कराया ॥१८४॥ उन्होंने नाना भाँति का मङ्गल, भगवान् के नामों का संकीर्तन और वेद-पाठ ब्राह्मणों द्वारा सम्पन्न कराया ॥१८५॥ इस प्रकार वृन्दावन के घर-घर में सभी लोग श्रीकृष्ण के चरण-कमल के ध्यान में एकाग्र होकर रहने लगे ॥१८६॥ इस प्रकार भगवान् का मङ्गल-चरित मैंने तुम्हें सुना दिया जो कलि-कल्मष रूपी काठ के जलाने में अग्नि के समान है ॥१८७॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्ण-जन्मखण्ड में नारायण-नारद संवाद में कालिय-दमन और दावाग्नि-मोक्ष-वर्णन नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१९॥

# अथ विंशोऽध्यायः

### नारायण उवाच

एकदा बालकैः सार्धं बलेन सह माधवः । भुक्त्वा पीत्वाऽनुलिप्तश्च वृन्दारण्यं जगाम ह ।।१।।
क्रीडां चकार भगवान्कौतुकेन च तैः सह । क्रीडानिमग्नचित्तानां दूरं तद्गोकुलं ययौ ।।२।।
तस्य प्रभावं विज्ञातुं विधाता जगतां पतिः । चकार निह्नुतिं गाश्च वत्सांश्च बालकानपि ।।३।।
विज्ञाय तदभिप्रायं सर्वज्ञः सर्वकारकः । पुनश्चकार तत्सर्वं योगीन्द्रो योगमायया ।।४।।
जगाम श्रीहरिर्गेहं कालयित्वा च गोकुलम् । बलेन बालकैः सार्धं क्रीडाकौतुकमानसः ।।५।।
एवं चकार भगवान्वर्षमेकं च प्रत्यहम् । यमुनागमनं गोभिर्बलेन सह बालकैः ।।६।।
ब्रह्मा प्रभावं विज्ञाय लज्जनम्रात्मकंधरः । आजगाम हरेः स्थानं भाण्डीरवटमूलके ।।७।।
ददर्श कृष्णं तत्रैव गोपालगणवेष्टितम् । यथा पार्वणचन्द्रं च विभान्तं स्वगणैः सह ।।८।।
रत्नसिंहासनस्थं च हसन्तं सस्मितं मुदा । पीतवस्त्रपरीधानं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ।।९।।
रत्नकेयूरवलयरत्नमञ्जीररञ्जितम् । रत्नकुण्डलयुग्माभ्यां स्वकपोलस्थलोज्ज्वलम् ।।१०।।

---

# अध्याय २०

### गौओं के वछड़ों और वालकों का अपहरण

**नारायण बोले**––एक वार माधव वालकों और वलभद्र समेत खा-पीकर एवं चन्दनलिप्त होकर वृन्दावन में गये ।।१।। भगवान् ने कौतुकवश उन लोगों के साथ वहुत खेल किया । खेल में निमग्न चित्तवाले वालकों की गोएँ वहुत दूर निकल गयीं ।।२।। उस समय जगत् के विधाता (ब्रह्मा) ने भगवान् का प्रभाव जानने की इच्छा से गौओं, बछड़ों और उन्हें चरानेवाले वालकों को छिपा दिया ।।३।। उनका अभिप्राय जानकर सर्वज्ञाता एवं सर्वस्रष्टा योगीन्द्र हरि ने योगमाया द्वारा उन सवकी पुनः सृष्टि कर ली ।।४।। क्रीडाकौतुक में मन लगानेवाले श्रीकृष्ण गौओं को चराकर वलभद्र और बालकों समेत घर गये ।।५।। इस प्रकार भगवान् ने एक वर्ष तक यह किया । प्रत्येक दिन वे वलभद्र और गौओं के साथ यमुना जाते और पुनः सायं समय घर लौट आते ।।६।। भगवान् के इस प्रभाव को समझकर ब्रह्मा लज्जा से कंधे झुकाकर भाण्डीर-वट के मूल में श्रीकृष्ण के स्थान में आये ।।७।। वहाँ उन्होंने गोपाल वालकों से घिरे श्रीकृष्ण को देखा, मानो नक्षत्रों के साथ पूर्णिमा के चन्द्र प्रकाशित हो रहे हों ।।८।। वे (श्रीकृष्ण) रत्न-सिंहासन पर सुखासीन होकर प्रसन्नता से मन्द मुसुकान समेत हँस रहे थे तथा पीताम्बर पहने, ब्रह्म तेज से प्रज्वलित, रत्नों के केयूर, कंगन और मंजीर से सुशोभित थे । रत्नों के युगल कुण्डलों से उनका गण्डस्थल समुद्भासित था । श्यामसुन्दर का श्रीविग्रह करोड़ों कन्दर्पों के समान

कोटिकन्दर्पलावण्यं लीलाधाममनोहरम् । चन्दनागुरुकस्तूरीकुङकुमार्चितविग्रहम् ॥११॥
पारिजातप्रसूनानां मालाजालैर्विभूषितम् । नवीननीरदश्यामं प्रोद्भिन्ननवयौवनम् ॥१२॥
मालतीमाल्यसंयुक्तं मयूरपिच्छचूडकम् । स्वाङ्गसौंदर्यदीप्त्या च कृतभूषणभूषितम् ॥१३॥
शरत्पार्वणचन्द्रस्य प्रभामुष्टास्यसुन्दरम् । पक्वबिम्बाधरौष्ठं च खगेन्द्रचञ्चुनासिकम् ॥१४॥
शरन्मध्याह्नपद्मानां प्रभामोचनलोचनम् । मुक्तापङक्तिविनिन्द्यैकदन्तपङक्तिमनोहरम् ॥१५॥
कौस्तुभेन मणीन्द्रेण वक्षःस्थलसमुज्ज्वलम् । शान्तं च राधिकाकान्तं परिपूर्णतमं परम् ॥१६॥
एवंभूतं प्रभुं दृष्ट्वा प्रणनामातिविस्मितः । दर्शं दर्शमीश्वरं तं प्रणनाम पुनः पुनः ॥१७॥
यद्दृष्टं हृदयाम्भोजे तद्रूपं बहिरेव च । या मूर्तिः पुरतो दृष्टा सा पश्चात्परितस्ततः ॥१८॥
तत्र वृन्दावने सर्वं दृष्ट्वा कृष्णसमं मुने । ध्यायं ध्यायं च तद्रूपं तत्र तस्थौ जगद्गुरुः ॥१९॥
गावो वत्साश्च बालाश्च लता गुल्माश्च वीरुधः । सर्वं वृन्दावनं ब्रह्मा श्यामरूपं ददर्श ह ॥२०॥
दृष्ट्वैवं परमाश्चर्यं पुनर्ध्यानं चकार ह । ददर्श त्रिजगद्ब्रह्मा नान्यत्कृष्णं विना मुने ॥२१॥

---

लावण्ययुक्त था। वे लीला के धाम तथा मन को हरनेवाले थे। उनके अंगों में चन्दन, अगुरु, कस्तूरी तथा कुंकुम का लेप लगा हुआ था ॥९-११॥ वे पारिजात के पुष्पों की माला से विभूषित थे। उनका शरीर नवीन मेघ के समान श्याम था, जिसमें नवयौवन अंकुरित हो रहा था ॥१२॥ मस्तक पर मोरपंख का मुकुट और उसमें मालती मालाओं का संयोग बड़ा सुन्दर लग रहा था। अपने अङ्गों की प्रभा से आभूषणों को भी भूषित कर रहे थे ॥१३॥ शरदृतु के चन्द्रमा की कान्ति को चुरानेवाले मुख से वे और सुन्दर लग रहे थे। उनके अधरोष्ठ पके बिम्बाफल के समान थे और नासिका गरुड़ की चोंच को विनिन्दित करनेवाली थी ॥१४॥ उनके नेत्र शरत्काल के मध्याह्न-कालिक कमल की कान्ति को छीन लेनेवाले थे। मोतियों की पंक्तियों की शोभा को निन्दित करने वाली दन्त-पंक्ति से वे मनोहर लगते थे। मणिराज-कौस्तुभ की दिव्य दीप्ति से वक्षःस्थल उद्भासित हो रहा था। उन परिपूर्णतम शान्तस्वरूप परमेश्वर राधाकान्त को देखकर ब्रह्मा ने अत्यन्त विस्मित होकर प्रणाम किया। वे बार-बार उन्हें देखने और प्रणाम करने लगे ॥१५-१७॥ उन्होंने अपने हृदय-कमल में जिस रूप को देखा था, वही उन्हें बाहर भी दिखायी दिया। जो मूर्ति सामने थी, वही पीछे और अगल-बगल में भी दृष्टिगोचर हुई ॥१८॥ वहाँ वृन्दावन में सब-कुछ श्रीकृष्ण के ही तुल्य देखकर जगद्गुरु ब्रह्मा उसी रूप का ध्यान करते हुए वहाँ बैठ गये ॥१९॥ गौएँ, बछड़े, बालक, लताएँ, वृक्ष आदि समेत समस्त वृन्दावन उन्हें श्यामरूप दिखायी देने लगा ॥२०॥ इस प्रकार परम आश्चर्य देखकर ब्रह्मा ने पुनः उनका ध्यान किया। हे मुने ! उस समय ब्रह्मा को तीनों लोक में कृष्ण के अतिरिक्त और कुछ नहीं दिखायी दिया ॥२१॥ अब वृक्ष कहाँ ? पर्वत कहाँ ? पृथिवी

क्व च वृक्षः क्व वा शैलः क्व मही क्व च सागरः । क्व देवाः क्व च गन्धर्वा मुनीन्द्राः क्व च मानवाः ॥२२॥
क्व चाऽऽत्मा क्व जगद्बीजं क्व स्वर्गः क्वायमेव च । सर्वं च स्वदृशा ब्रह्मा ददर्श मायया हरेः ॥२३॥
क्व कृष्णो जगतां नाथः क्व वा मायाविभूतयः । सर्वं कृष्णमयं दृष्ट्वा किंचिन्निर्वक्तुमक्षमः ॥२४॥
कं स्तौमि किं करोमीति मनसैवं प्रगृह्य च । तत्र स्थित्वा जगद्धाता जपं कर्तुं समुद्यतः ॥२५॥
सुखं योगासनं कृत्वा बभूव संपुटाञ्जलिः । पुलकाङ्कितसर्वाङ्गः साश्रुनेत्रोऽतिदीनवत् ॥२६॥
इडां सुषुम्नां मध्यां च पिङ्गलां नलिनीं धुराम् । नाडीषट्कं च योगेन निबध्य च प्रयत्नतः ॥२७॥
मूलाधारं स्वाधिष्ठानं मणिपूरं मनोहरम् । विशुद्धं परमाज्ञाख्यं षट्चक्रं च निबध्य च ॥२८॥
लङ्घनं कारयित्वा च तत्षट्चक्रं क्रमाद्विधिः । ब्रह्मरन्ध्रं समानीय वायुबन्धं चकार ह ॥२९॥
निबध्य वायुं मध्यां तामानीय हृदयाम्बुजम् । तं वायुं भ्रामयित्वा च योजयामास मध्यया ॥३०॥
एवं कृत्वा तु निष्पन्दो यो दत्तो हरिणा पुरा । जजाप परमं मन्त्रं तस्यैव च दशाक्षरम् ॥३१॥
मुहूर्तं च जपं कृत्वा ध्यायं ध्यायं पदाम्बुजम् । ददर्श हृदयाम्भोजे सर्वतेजोमयं मुने ॥३२॥
तत्तेजसोऽन्तरे रूपमतीव सुमनोहरम् । द्विभुजं मुरलीहस्तं भूषितं पीतवाससा ॥३३॥
श्रुतिमूलस्थलन्यस्तज्वलन्मकरकुण्डलम् । ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारकम् ॥३४॥

---

वृक्ष कहाँ? सागर कहाँ ? देव कहाँ ? गन्धर्व कहाँ ? मुनीन्द्र कहाँ ? मानव कहाँ ? आत्मा कहाँ ? जगत् का बीज कहाँ ? स्वर्ग कहाँ ? और वही कहाँ ? भगवान् की माया के कारण उन्हें सब-कुछ अपने ही समान दिखायी देने लगा ॥२२-२३॥ इतना ही नहीं, जगत् के स्वामी भगवान् कृष्ण कहाँ ? उनकी माया-विभूतियाँ कहाँ ? अब तो सब कृष्णमय हैं। ऐसा देखकर ब्रह्मा अवाक् रह गये--(कुछ बोलने की शक्ति नहीं रही) ॥२४॥ अपने मन में ऐसा सोचने लगे कि--अब मैं किसकी स्तुति करूँ ? क्या करूँ ? फिर वहीं रहकर जगत् के विधाता का जप करने को उद्यत हो गये ॥२५॥ सुख से योगासन लगाकर दोनों हाथ जोड़े, रोमाञ्चितसर्वांग, अश्रुपूरित नेत्र एवं अत्यन्त दीन के समान वे हो गये ॥२६॥ उन्होंने इडा, सुषुम्ना, मध्या, पिंगला, नलिनी और धुरा नामक नाड़ियों को योग द्वारा बड़े प्रयत्न से निबद्ध किया ॥२७॥ तत्पश्चात् मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, मनोहर, विशुद्ध और परमाज्ञा नामक चक्र को भी बाँधकर ब्रह्मा ने क्रमशः इन षट्चक्रों का उल्लंघन किया और वायु को ब्रह्मरंध्र में लाकर बाँध दिया। वायु निबद्ध करके पुनः उसे क्रमशः हृदयकमल में मध्या नाड़ी के पास ले आये। उस वायु को घुमाकर विधाता ने मध्या नाड़ी के साथ संयुक्त कर दिया। ऐसा करके वे निष्पन्द (निश्चल) हो गये और पूर्वकाल में श्रीहरि ने जिसका उपदेश दिया था, उस परम उत्तम दशाक्षर मंत्र का जप करने लगे ॥२८-३१॥ मुने! भगवान् कृष्ण के चरण-कमल को ध्यानपूर्वक एक मुहूर्त तक जप करने पर उन्हें हृदय-कमल में सर्वतेजोमय स्वरूप दिखायी पड़ा। उस तेज के भीतर अत्यन्त मनोहर रूप--दो भुजाएँ, हाथ में मुरली, पीताम्बर भूषित श्रीअङ्ग और मकराकार कुण्डल से समुज्ज्वल कान का मूलभाग था। वे (हरि) मन्द मुसुकान समेत प्रसन्नमुख

यद्दृष्टं ब्रह्मरन्ध्रे च हृदि तद्बहिरेव च। दृष्ट्वा च परमाश्चर्यं तुष्टाव परमेश्वरम् ॥३५॥
यत्स्तोत्रं च पुरा दत्तं हरिणैकार्णवे मुने। तमीशं तेन विधिना भक्तिनम्रात्मकंधरः ॥३६॥

## ब्रह्मोवाच

सर्वस्वरूपं सर्वेशं सर्वकारणकारणम्। सर्वानिर्वचनीयं तं नमामि शिवरूपिणम् ॥३७॥
नवीनजलदाकारं श्यामसुन्दरविग्रहम्। स्थितं जन्तुषु सर्वेषु निर्लिप्तं साक्षिरूपिणम् ॥३८॥
स्वात्मारामं पूर्णकामं जगद्व्यापि जगत्परम्। सर्वस्वरूपं सर्वेषां बीजरूपं सनातनम् ॥३९॥
सर्वाधारं सर्ववरं सर्वशक्तिसमन्वितम्। सर्वाराध्यं सर्वगुरुं सर्वमङ्गलकारणम् ॥४०॥
सर्वमन्त्रस्वरूपं च सर्वसंपत्करं वरम्। शक्तियुक्तमयक्तं च स्तौमि स्वेच्छामयं विभुम् ॥४१॥
शक्तीशं शक्तिबीजं च शक्तिरूपधरं [1]वरम्। संसारसागरे घोरे शक्तिनौकासमन्वितम् ॥४२॥
कृपालुं कर्णधारं च नमामि भक्तवत्सलम्। आत्मस्वरूपमेकान्तं लिप्तं निर्लिप्तमेव च ॥४३॥
सगुणं निर्गुणं ब्रह्म स्तौमि स्वेच्छास्वरूपिणम्। सर्वेन्द्रियादिदेवं तमिन्द्रियालयमेव च ॥४४॥
सर्वेन्द्रियस्वरूपं च विराड्रूपं नमाम्यहम्। वेदं च वेदजनकं सर्ववेदाङ्गरूपिणम् ॥४५॥

---

तथा भक्तों पर कृपा करने के लिए कातर जान पड़ते थे ॥३२-३४॥ जो रूप उन्हें ब्रह्मरन्ध्र में दिखायी पड़ता था, वही रूप हृदय और बाहर में भी दिखायी देने लगा। ऐसे परमाश्चर्य को देखकर उस परमेश्वर की स्तुति की। मुने! पूर्वकाल में एकार्णव में हरि ने जिस स्तोत्र का उपदेश दिया था, उसी के द्वारा विधाता ने भक्तिभाव से कंधे झुकाकर प्रभु की स्तुति की ॥३५-३६॥

**ब्रह्मा बोले**—मैं उस सर्वस्वरूप, सब के ईश, समस्त कारणों के कारण, सबके लिए अनिर्वचनीय एवं कल्याण रूपी (श्रीकृष्ण) को नमस्कार करता हूँ। जो नये मेघ के समान श्यामल, श्याम-सुन्दर शरीर, सभी जीवों में स्थित रहने पर भी निर्लिप्त, साक्षीरूप, अपने आत्मा में रमण करनेवाले, पूर्णकाम, जगत् में व्याप्त और जगत् से परे रहनेवाले, सबके स्वरूप, सबके बीज रूप, सनातन, सर्वाधार, सर्वश्रेष्ठ, समस्त शक्तिसम्पन्न, सबके आराध्यदेव, सबके गुरु, समस्त मङ्गलों के कारण, सम्पूर्ण मंत्र स्वरूप, समस्त सम्पत्तिकारी, शक्ति समेत और रहित भी हैं, उन स्वेच्छामय एवं व्यापक भगवान् की मैं स्तुति करता हूँ ॥३७-४१॥ शक्ति के ईश, शक्ति के बीज, शक्ति रूपधारी, श्रेष्ठ, घोर संसार-सागर में शक्ति रूपी नौका से युक्त, कृपालु, भक्तवत्सल और कर्णधार की मैं स्तुति कर रहा हूँ। आत्मस्वरूप, एकान्त, लिप्त, निर्लिप्त, सगुण एवं निर्गुण ब्रह्म तथा स्वेच्छामय की मैं स्तुति करता हूँ। समस्त इन्द्रियों के आदि देव, इन्द्रियों के आलय, सर्वेन्द्रियस्वरूप तथा विराट् रूप (परमात्मा) को नमस्कार करता हूँ। वेदरूप, वेदजनक, समस्त वेदाङ्गरूप तथा मन्त्रस्वरूप परमेश्वर को नमस्कार करता हूँ ॥४२-४५॥

---

१. क. परम्।

सर्वमन्त्रस्वरूपं च नमामि परमेश्वरम् । सारात्सारतरं द्रव्यमपूर्वमनिरूपिणम् ।।४६।।
स्वतन्त्रमस्वतन्त्रं च यशोदानन्दनं भजे । सन्तं सर्वशरीरेषु तमदृष्टमनूहकम् ।।४७।।
ध्यानासाध्यं विद्यमानं योगीन्द्राणां गुरुं भजे । रासमण्डलमध्यस्थं रासोल्लाससमुत्सुकम् ।।४८।।
गोपीभिः सेव्यमानं च तं धरेशं नमाम्यहम् । सतां सदैव सन्तं तमसन्तमसतामपि ।।४९।।
योगीशं योगसाध्यं च नमामि शिवसेवितम् । मन्त्रबीजं मन्त्रराजं मन्त्रदं फलदं फलम् ।।५०।।
मन्त्रसिद्धस्वरूपं तं नमामि च परात्परम् । सुखं दुःखं च सुखदं दुःखदं पुण्यमेव च ।।५१।।
पुण्यप्रदं च शुभदं शुभबीजं नमाम्यहम् । इत्येवं स्तवनं कृत्वा दत्त्वा गाश्च स बालकान् ।।५२।।
निपत्य दण्डवद्भूमौ रुरोद प्रणनाम च । ददर्श चक्षुरुन्मील्य विधाता जगतां मुने ।।५३।।
ब्रह्मणा च कृतं स्तोत्रं नित्यं भक्त्या च यः पठेत् । इह लोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते श्रीहरेः पदम् ।।५४।।
लभते दास्यमतुलं स्थानमीश्वरसंनिधौ । लब्ध्वा च कृष्णसांनिध्यं पार्षदप्रवरो भवेत् ।।५५।।

## नारायण उवाच

गते जगत्कारणे च ब्रह्मलोके च ब्रह्मणि । श्रीकृष्णो बालकैः सार्धं जगाम स्वालयं विभुः ।।५६।।
गावो वत्साश्च बालाश्च जग्मुर्वर्षान्तिरे गृहम् । श्रीकृष्णमायया सर्वे मेनिरे ते दिनान्तरम् ।।५७।।

---

सार से भी सारतर द्रव्य रूप, अपूर्व, अनिवर्चनीय, स्वतन्त्र और अस्वतन्त्र यशोदानन्दन का मैं भजन कर रहा हूँ। समस्त शरीरों में रहनेवाले, अदृष्ट, तर्क-वितर्क से परे, ध्यान से असाध्य, विद्यमान और योगीन्द्रों के गुरु का मैं भजन करता हूँ। रासमण्डल के मध्य में स्थित, रासोल्लास के लिए समुत्सुक, गोपियों से सेवित होनेवाले तथा धरा के पति को मैं नमस्कार करता हूँ। साधु पुरुषों की दृष्टि में सदैव सत् और असाधु पुरुषों के मत में सदैव असत्, योगियों के ईश, योगसाध्य तथा शिव से सेवित को नमस्कार करता हूँ ।।४६-४९½।। मंत्रबीज, मंत्रराज, मंत्रप्रद, फलदायक, फलस्वरूप, मंत्रसिद्धिस्वरूप और परात्पर को मैं नमस्कार करता हूँ। सुखस्वरूप, दुःखस्वरूप, सुख-दुःखप्रदायक, पुण्यस्वरूप, पुण्यप्रद, शुभदायक और शुभबीज को मैं नमस्कार करता हूँ। इस भाँति जगद्-विधाता ने (श्रीकृष्ण की) स्तुति करके और बालकों को लौटाकर भूमि पर दण्डवत् गिरकर प्रणाम और रोदन किया। फिर हे मुने ! उन्होंने आँखें खोलकर श्रीकृष्ण का दर्शन किया ।।५०-५३।। ब्रह्मा के बनाये इस स्तोत्र का जो भक्तिपूर्वक नित्य पाठ करता है, वह इस लोक में सुखोपभोग करके अन्त में हरि के धाम को चला जाता है ।।५४।। वहाँ भगवान् के समीप अतुल दास्यपद प्राप्त कर लेता है, फिर श्रीकृष्ण का सान्निध्य प्राप्त करके पार्षदप्रवर हो जाता है ।।५५।।

**नारायण बोले**—जगत् के स्रष्टा ब्रह्मा के ब्रह्मलोक चले जाने पर प्रभु श्रीकृष्ण भी बालकों के साथ अपने घर चले गये ।।५६।। यद्यपि गौएँ, बछड़े और बालक एक वर्ष बाद अपने घर गये, किन्तु श्रीकृष्ण की माया से

गोपा गोपालिकाः किंचित्तत्कर्तुं न क्षमास्तदा । योगिनः कृत्रिमं सर्वं किं नूतनं वा पुरातनम् ॥५८॥
इत्येवं कथितं सर्वं श्रीकृष्णचरितं शुभम् । सुखदं मोक्षदं पुण्यं सर्वकालसुखावहम् ॥५९॥
इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० गोवत्सबालक-
हरणप्रस्तावो नाम विंशोऽध्यायः ॥२०॥

# अथैकविंशोऽध्यायः

## नारायण उवाच

एकदाऽऽनन्दयुक्तश्च नन्दो गोपव्रजे मुने । दुन्दुभिं वादयामास शक्रयागकृतोद्यमः ॥१॥
दधि क्षीरं घृतं तक्रं नवनीतं गुडं मधु । एतान्यादाय शक्रस्य पूजां कुर्वन्त्विति ब्रुवन् ॥२॥
ये ये सन्त्यत्र नगरे गोपा गोप्यश्च बालकाः । बालिकाश्च द्विजा भूयो वैश्याः शूद्राश्च भक्तितः ॥३॥
इत्येवं श्रावयामास स्वयमेव मुदाऽन्वितः । यष्टिमारोपयामास रम्यस्थाने सुविस्तृते ॥४॥
ददौ तत्र क्षौमवस्त्रं मालाजालं मनोहरम् । चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवमेव च ॥५॥

---

उन सबों ने केवल दिन मात्र का ही अन्तर समझा ॥५७॥ उस समय गोप और गोपियाँ कुछ भी अनुमान न लगा सकीं । योगी के लिए सब कुछ कृत्रिम ही रहता है, नया या पुराना कुछ नहीं ॥५८॥ इस प्रकार श्रीकृष्ण का शुभचरित्र, जो सुखद, मोक्षप्रद, पवित्र एवं सभी समय सुखदायक होता है, मैंने तुम्हें बता दिया ॥५९॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारायण-नारद-संवाद में गौओं, वत्सों और बालकों के अपहरण वर्णन नामक बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२०॥

# अध्याय २१

## नन्द द्वारा इन्द्रयाग की तैयारी

**नारायण बोले**—मुने ! एक बार नन्द ने हर्षमग्न होकर इन्द्रयाग के उपलक्ष्य में गोपव्रज के भीतर ढिंढोरा पिटवाया कि—'इस नगर में जो गोप, गोपी, बालक, बालिका, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र निवास करते हैं, वे भक्तिपूर्वक दही, दूध, घृत, मट्ठा, मक्खन, गुड़ और मधु आदि सामग्री लेकर इन्द्र की पूजा करें ॥१-३॥ इस प्रकार घोषणा कराकर सुविस्तृत एवं रम्य स्थान में प्रसन्नतापूर्वक स्वयं ध्वज-दण्ड का आरोपण किया । उसमें रेशमी वस्त्र और मनोहर माला लगवायी । चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुम के द्रव से चर्चित किया ॥४-५॥

स्नातः कृताह्निको भक्त्या धृत्वा धौते च वाससी । उवास स्वर्णपीठे च प्रक्षालितपदाम्बुजः ॥६॥
नानाप्रकारपात्रैश्च ब्राह्मणैश्च पुरोहितैः । गोपालैर्गोपिकाभिश्च बालाभिः सह बालकैः ॥७॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्राऽऽजग्मुर्नगरवासिनः । महासंभृतसंभारा नानोपायनसंयुताः ॥८॥
आजग्मुर्मुनयः सर्वे ज्वलन्तो ब्रह्मतेजसा । सान्ताः शिष्यगणैः सार्धं वेदवेदाङ्गपारगाः ॥९॥
गर्गश्च गालवश्चैव शाकल्यः शाकटायनः । गौतमः करुषः कण्वो वात्स्यः कात्यायनस्तथा ॥१०॥
सौभरिर्वामदेवश्च याज्ञवल्क्यश्च पाणिनिः । ऋष्यशृङ्गो गौरमुखो भरद्वाजश्च वामनः ॥११॥
कृष्णद्वैपायनः शृङ्गी सुमन्तुर्जैमिनिः कचः । पराशरश्च मैत्रेयो वैशम्पायन एव च ॥१२॥
ब्राह्मणाश्च कतिविधा भिक्षुका बन्दिनस्तथा । भूपा वैश्याश्च शूद्राश्च समाजग्मुर्महोत्सवे ॥१३॥
दृष्ट्वा मुनीन्द्रान्नन्दश्च ब्राह्मणान्भूमिपांस्तथा । स्वर्णपीठात्समुत्तस्थौ व्रजाश्चोत्तस्थुरेव च ॥१४॥
प्रणम्य वासयामास मुनीन्द्रान्विप्रभूमिपान् । तेषामनुमतिं प्राप्य तत्रोवास पुनर्मुदा ॥१५॥
पाकं च यष्टिनिकटे कर्तुमाज्ञां चकार ह । पाकप्राज्ञं ब्राह्मणानां शतमानीय सादरम् ॥१६॥
तत्र रत्नप्रदीपाश्च जज्वलुः परितस्तथा । अन्धीभूतं च धूपेन स्थानं तत्सुरभीकृतम् ॥१७॥
नानाविधानि पुष्पाणि माल्यानि विविधानि च । नैवेद्यं च बहुविधमपूर्वं सुमनोहरम् ॥१८॥
तिललड्डुकपूर्णं च मण्डकानां सहस्रकम् । स्वस्तिकैः परिपूर्णं च यष्टिस्थानं च नारद ॥१९॥
कलशानां सहस्रं च पूर्णं शर्करया मुने । यवगोधूमचूर्णानां लड्डुकैर्मधुरैर्वरैः ॥२०॥

---

स्नान और नित्यकर्म करने के उपरान्त नन्द नूतन दो वस्त्र धारणकर चरणकमल-प्रक्षालनपूर्वक सुवर्णपीठ पर सुखासीन हुए । उस समय नाना प्रकार के पात्रों के साथ ब्राह्मण, पुरोहित, गोप, गोपियाँ, बालिकाएँ तथा बालक उपस्थित हुए ॥६-७॥ उसी बीच नगर-निवासी लोग बहुत सामान एकत्र करके अनेक भाँति के उपहार लिये वहाँ आ पहुँचे ।८॥ ब्रह्मतेज से जाज्वल्यमान, वेद-वेदाङ्ग के पारगामी मुनिगण भी अपने शिष्यों समेत वहाँ आये ॥९॥ गर्ग, गालव, शाकल्य, शाकटायन, गौतम, करुष, कण्व, वात्स्य, कात्यायन, सौभरि, वामदेव, याज्ञवल्क्य, पाणिनि, ऋष्यशृङ्ग, गौरमुख, भरद्वाज, वामन, कृष्ण-द्वैपायन, शृङ्गी, सुमन्तु, जैमिनि, कच, पराशर, मैत्रेय, वैशम्पायन, अनेक भाँति के ब्राह्मण, भिक्षुक, वन्दी, भूप, वैश्य और शूद्रगण उस महोत्सव में आये ॥१०-१३॥ मुनीन्द्रों, ब्राह्मणों और भूमिपालों को देखकर नन्द स्वर्णपीठ से उठ गये और समस्त व्रजवासी भी उठकर खड़े हो गये॥१४॥ प्रणाम करके मुनीन्द्रों, ब्राह्मणों और राजाओं को बैठाया और उन लोगों की अनुमति प्राप्तकर स्वयं भी हर्ष से वहाँ बैठ गये ॥१५॥ पाक करनेवाले निपुण सौ ब्राह्मणों को आदेश प्रदान किया कि—'ध्वजदण्ड के समीप आप लोग पाक बनाना आरम्भ करें ।' वहाँ चारों ओर रत्नों के प्रदीप जल रहे थे । धूप के कारण वह स्थान अन्धकारमय और अति सुगन्धित हो गया था ॥१६-१७॥ नारद ! अनेक भाँति के पुष्प तथा मालाएँ और अनेक प्रकार के अपूर्व एवं अति मनोहर नैवेद्य, तिल के लड्डुओं से परिपूर्ण सहस्र मण्डक नामक मिष्टान्न और स्वस्तिकाओं से ध्वजस्थान को भर दिया ॥१८-१९॥ मुने ! वहाँ शक्कर भरे सहस्रों कलश थे । यव, गेहूँ के आटे के बने

घृतपक्वैर्वाप्रकृतैः पूर्णानि कलशानि च । वृक्षपक्वानि रम्याणि चारुरम्भाफलानि च ॥२१॥
फलानि परिपक्वानि कालदेशोद्भवानि च । क्षीराणां कुम्भलक्षाणि दध्नां तावन्ति नारद ॥२२॥
मधूनां कुम्भशतकं सर्पिः कुम्भसहस्रकम् । कलशानां त्रिलक्षाणि तक्रपूर्णानि निश्चितम् ॥२३॥
घटानां पञ्चलक्षाणि गुडपूर्णानि निश्चितम् । तिलतैलेन पूर्णं च कलशानां सहस्रकम् ॥२४॥
वृषेन्द्राश्च बहुविधा भोगार्हद्रव्यवाहकाः । नानाविधानि पात्राणि सौवर्णराजतानि च ॥२५॥
स्वर्णपीठानि च ब्रह्मन्नाजग्मुर्यष्टिसंनिधिम् । वस्त्राणि वरणार्हाणि चारूणि भूषणानि च ॥२६॥
नानाविधानि वाद्यानि चारूणि मधुराणि च । वादकाः स्वरयन्त्राणि वादयामासुरुत्सवे ॥२७॥
छागलानां सहस्राणि महिषाणां शतानि च । मेषकाणां च लक्षाणि ह्यानयामास तत्र वै ॥२८॥
शतान्येव गण्डकानामाजग्मुर्यष्टिसंनिधिम् । प्रेक्षितानि च सर्वाणि रक्षितानि च रक्षकैः ॥२९॥
बालकानां बालिकानां वृक्षाणां वृक्षयोषिताम् । यूनां च युवतीनां च संख्यां कर्तुं च कः क्षमः ॥३०॥
गायकानां च संगीतं नर्तकानां च नर्तनम् । श्रुत्वा दृष्ट्वा जनाः सर्वे मुमुहुः सुमहोत्सवे ॥३१॥
रम्भोर्वशी मेनका च घृताची मोहिनी रतिः । प्रभावती भानुमती विप्रचित्तिस्तिलोत्तमा ॥३२॥
चन्द्रप्रभा सुप्रभा च रत्नमाला मदालसा । रेणुका रमणी ब्रह्मन्नेता आजग्मुरुत्सवे ॥३३॥
तासां नृत्येन गीतेन स्तनास्यश्रोणिदर्शनात् । रूपेण वक्रदृष्ट्या च मूर्च्छां प्रापुश्च मानवाः ॥३४॥

---

मधुर एवं उत्तम लड्डू, जो ब्राह्मणों द्वारा घी में बनाये गये थे, कलशों में भरे पड़े थे । हे नारद ! पेड़ के पके सुन्दर केले और देश-कालानुसार पके फलों की राशि, दूधों के एक लाख घड़े और उतने ही दही के घड़े भरे पड़े थे ॥२०-२२॥ मधु के सौ घड़े, घी के हजार घड़े तथा मट्ठे से भरे तीन लाख घड़े वहाँ सुनिश्चित रखे थे ॥२३॥ पाँच लाख गुड़ भरे कलश और तिल के तेल से भरे एक सहस्र घड़े सुरक्षित थे ॥२४॥ उपभोग की वस्तुओं के वाहक अनेक भाँति के वृषेन्द्र (बड़े-बड़े बैल) और विविध प्रकार के सुवर्ण-चाँदी के पात्र रखे थे ॥२५॥ ब्रह्मन् ! उस ध्वजदण्ड (देवस्थान) के समीप सुवर्ण के पीठासन, वरण करने योग्य उत्तम वस्त्र एवं सुन्दर आभूषण सुरक्षित थे ॥२६॥ उस उत्सव में बाजा बजानेवाले विविध भाँति के सुन्दर एवं मधुर ध्वनिवाले बाजों और स्वरयन्त्रों को बजा रहे थे ॥२७॥ एक सहस्र बकरे, सौ भैंसे और एक लाख भेंड़े वहाँ लाये गये थे ॥२८॥ ध्वज के समीप सैकड़ों गैंड़े आये । रक्षकों से सुरक्षित दर्शनीय समस्त वस्तुएँ वहाँ लायी गयीं ॥२९॥ बालकों, बालिकाओं, वृक्षों, लताओं और युवक-युवतियों की वहाँ संख्या कौन कर सकता था ? ॥३०॥ उस सुन्दर महोत्सव में गायकों के संगीत और नर्तकों के नृत्य देख-सुनकर सभी लोग मुग्ध हो जाते थे ॥३१॥ ब्रह्मन् ! उस उत्सव में राधा, उर्वशी, मेनका, घृताची, मोहिनी, रति, प्रभावती, भानुमती, विप्रचित्ति, तिलोत्तमा, चन्द्रप्रभा, सुप्रभा, रत्नमाला, मदालसा और सुन्दरी रेणुका--ये आयी हुई थीं ॥३२-३३॥ उनके नृत्य, गीत, स्तन, मुख और नितम्ब देखने से तथा रूप-सौन्दर्य एवं तिरछी चितवन से मनुष्य मूर्च्छित हो जाते थे ॥३४॥ उसी बीच गोपाल-बालकों

एतस्मिन्नन्तरे शीघ्रमाजगाम हरिः स्वयम् । गोपालबालकैः सार्धं बलेन बलशालिना ॥३५॥
दृष्ट्वा तं च जनाः सर्वे संभ्रान्ता हर्षविह्वलाः । उत्तस्थुराराद्भीताश्च पुलकाङ्कितविग्रहाः ॥३६॥
क्रीडास्थानात्समायान्तं शान्तं सुन्दरविग्रहम् । विनोदमुरलीवेणुशृङ्गशब्दसमन्वितम् ॥३७॥
सद्रत्नसारभूषाभिर्भूषितं कौस्तुभेन च । चन्दनागुरुपङ्केन चर्चितं श्यामविग्रहम् ॥३८॥
शरन्मध्याह्नपद्मास्यं पश्यन्तं रत्नदर्पणे । चारुचन्दनचन्द्रेण कस्तूरीबिन्दुना सह ॥३९॥
शशाङ्केन यथाऽऽकाशं भालमध्यविराजितम् । मालतीमालया श्यामकण्ठवक्षःस्थलोज्ज्वलम् ॥४०॥
बकपङ्क्त्या यथाऽऽकाशं शारदीयं सुनिर्मलम् । चारुणा पीतवस्त्रेण शोभितं श्यामविग्रहम् ॥४१॥
विभान्तं विद्युता शश्वन्नवीनं नीरदं यथा । कुन्दप्रसूनैर्गुञ्जाभिर्बद्धवक्रिमचूडकम् ॥४२॥
यथेन्द्रधनुषा भाति विभातं भगणैर्नभः । रत्नकुण्डलदीप्त्या च स्मितवक्त्रसुशोभितम् ॥४३॥
शरत्प्रफुल्लपद्मं च द्युमणेः किरणैर्यथा । विप्रक्षत्रियवैश्याश्च मुनयो बल्लवा मुने ॥४४॥
प्रणम्य वासयामास रत्नसिंहासने शुभे । उवास रत्नपीठे स तेषां मध्ये जगत्पतिः ॥४५॥

---

और बलशाली बलभद्र को साथ लिये भगवान् स्वयं वहाँ आ गये । उन्हें देखते हीं सभी लोग सहसा हर्षविभोर हो उठकर खड़े हो गये, शरीर में रोमाञ्च हो आया और दूर से भयभीत भी हुए ॥३५-३६॥ श्रीकृष्ण क्रीड़ा-स्थान से आ रहे थे । उनका शान्त सुन्दर विग्रह बड़ा मनोहर था। विनोद की साधनभूत मुरली, वेणु और शृङ्ग नामक वाद्यों की ध्वनि उनके साथ सुनायी देती थी । रत्नों के सारतत्त्व से निर्मित आभूषणों तथा कौस्तुभमणि से वे विभूषित थे । उनका श्याम शरीर चन्दन और अगुरु से चर्चित था ॥३७-३८॥ वे रत्नमय दर्पण में शरद् ऋतु के मध्याह्नकालिक कमल के समान अपने मुख को देख रहे थे । भालदेश में कस्तूरी की बेंदी के साथ पूर्णिमा के चन्द्रमा की भाँति मनोहर चन्दन लगा था ॥३९॥ इससे उनका ललाट चन्द्रमा से अलंकृत आकाश के समान शोभा पा रहा था, श्याम कण्ठ और वक्षःस्थल मालती की माला से उज्ज्वल कान्ति धारण कर रहा था, मानो अत्यन्त निर्मल शरत्कालिक आकाश बगुलों की पंक्ति से अलंकृत हुआ हो । मनोहर पीताम्बर से उनके श्याम शरीर की अपूर्व शोभा हो रही थी, मानो नवीन मेघ विद्युत् की कान्ति से निरन्तर उद्भासित हो रहा हो । मस्तक पर एक ओर झुका हुआ टेढ़ा मोरमुकुट कुन्द के फूलों और गुञ्जाओं की माला से आबद्ध था, मानो आकाश नक्षत्रों तथा इन्द्रधनुष से सुशोभित हो रहा हो । उनका मुसकराता हुआ मुख रत्नमय कुण्डलों की दीप्ति से ऐसा दमक रहा था, मानो शरद् ऋतु का खिला हुआ कमल सूर्य की किरणों से उद्दीप्त हो रहा हो ॥४०-४३½॥ मुने ! इस प्रकार उन्हें देखकर ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों एवं गोपों ने प्रणाम किया और सुन्दर रत्न-सिंहासन पर उन्हें सुखासीन कराया । उस रत्न-सिंहासन पर बैठने से जगत्पति भगवान् की उन लोगों के बीच ऐसी शोभा हो रही थी जैसे आकाश में शारदीय चन्द्रमा तारागणों के बीच विभूषित हो रहा हो । अनन्तर देख-सुनकर सभी लोगों ने

यथा बभौ शरच्चन्द्रो ज्योतिषामन्तरे च खे। श्रुत्वा तमूचुस्ते सर्वे जगतामीश्वरं परम् ॥४६॥
स्वेच्छामयं गुणातीतं ज्योतीरूपं सनातनम्। दृष्ट्वा महोत्सवं शीघ्रमुवाच पितरं हरिः॥
सर्वेषां[1] दुर्लभां नीतिं नीतिशास्त्रविशारदः ॥४७॥

## श्रीकृष्ण उवाच

भो भो वल्लवराजेन्द्र किं करोषीह सुव्रत। आराध्यः कश्च का पूजा किंफलं पूजने भवेत् ॥४८॥
फलेन साधनं किं वा कः साध्यः साधनेन च। देवे रुष्टे भवेत्किं वा पूजायाः प्रतिबन्धके ॥४९॥
तुष्टो देवः किं ददाति फलमत्र परत्रकम्। काचिद्ददात्यत्र फलं परत्रेह न काचन ॥५०॥
काचिच्च नोभयत्रापि चोभयत्रापि काचन। अवेदविहिता पूजा सर्वहानिकरण्डिका ॥५१॥
पूजेयमधुना वा ते किमु वा पुरुषक्रमात्। दृष्टो देवस्त्वया कस्मिन्पूजेयं चानुसारिणी ॥५२॥
साक्षात्खादति देवस्ते साक्षात्किं वा न खादति। साक्षाद्भुङ्क्ते च यो देवः सुप्रशस्तं तदर्चनम् ॥५३॥
पृथिव्यां ब्राह्मणा देवा इति वेदे निरूपितम्। सर्वेषां[1] पूजनात्तात सुप्रशस्तं द्विजार्चनम् ॥५४॥

---

कहा कि—'ये जगत् के महान् ईश्वर, स्वेच्छामय, (तीनों) गुणों से रहित, ज्योतिरूप और सनातन हैं।' उस महोत्सव को देखकर नीतिशास्त्र-कुशल श्रीकृष्ण ने अपने पिता से तत्काल ऐसी नीतिपूर्ण बात कही, जो सबके लिए दुर्लभ थी ॥४४-४७॥

**श्रीकृष्ण बोले**—हे वल्लवों के महाराज ! एवं उत्तम व्रती ! आप यहाँ क्या कर रहे हैं ? आपके आराध्य देव कौन हैं ? इस पूजा का स्वरूप क्या है ? पूजन करने पर कौन-सा फल प्राप्त होगा ? उस फल से कौन साधन सुलभ होगा ? और उस साधन से कौन-सा मनोरथ सिद्ध होगा ? इस पूजा के रोक देने पर देवता के रुष्ट होने से क्या अनिष्ट होता है ? और प्रसन्न होने पर वह देव लोक-परलोक का कौन-सा फल दे देता है ? ॥४८-५०॥ कोई पूजा इसी लोक का फल प्रदान करती है, परलोक का नहीं और कोई पूजा दोनों (लोक-परलोक) का कोई फल नहीं प्रदान करती और कोई दोनों लोकों का फल प्रदान करती है ॥५१॥ वेद-विरुद्ध पूजा समस्त हानियों की पिटारी है। क्या यह पूजा आधुनिक है अथवा पुरुषानुक्रम से आ रही है? ॥५२॥ आपने उस देव को कहाँ देखा है, जिसके अनुसार पूजा करनी है ? क्या आपका देवता प्रत्यक्ष रूप से खाते हैं या अत्यक्ष रूप से ? जो देवता साक्षात् खाते हैं, उनकी पूजा अत्यन्त प्रशस्त है ॥५३॥ पृथिवी पर ब्राह्मन देवता हैं, यह वेद में बताया गया है। पिता जी ! सभी (देवों) के पूजन से ब्राह्मण का पूजन अधिक प्रशस्त

---

१ क. विदुषां।

साक्षात्खादति नैवेद्यं विप्ररूपी जनार्दनः । ब्राह्मणे परितुष्टे च संतुष्टाः सर्वदेवताः ।।५५।।
किं तस्य देवपूजायां यो नियुक्तो द्विजार्चने । पूजिता ब्राह्मणा येन पूजिताः सर्वदेवताः ।।५६।।
देवाय दत्त्वा नैवेद्यं द्विजाय न प्रयच्छति । भस्मीभूतं च नैवेद्यं पूजनं निष्फलं भवेत् ।।५७।।
विप्राय देवनैवेद्यदानाद्ध्रुवमनन्तकम् । तुष्टो देवो वरं दत्त्वा प्रयाति च स्वमन्दिरम् ।।५८।।
दत्त्वा देवाय नैवेद्यं मूढो भुङ्क्ते स्वयं यदि । दत्तापहारी देवस्वयं भुक्त्वा च नरकं व्रजेत् ।।
देवदत्तं न भोक्तव्यं नैवेद्यं च विना हरेः । प्रशस्तं सर्वदेवेषु विष्णुनैवेद्यभोजनम् ।।५९।।
अन्नं विष्ठा जलं मूत्रं यद्विष्णोरनिवेदितम् । सर्वेषां च क्रममिदं ब्राह्मणानां विशेषतः ।।६०।।
न दत्त्वा वस्तु देवाय दत्तं विप्राय चेत्सुधीः । भुक्त्वा विप्रमुखे देवास्तुष्टाः स्वर्गं प्रयान्ति च ।।६१।।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन विप्राणामर्चनं कुरु । प्रशस्तफलदातॄणामिह लोके परत्र च ।।६२।।
जपस्तपश्च पूजा वा यज्ञो दानं महोत्सवः । सर्वेषां कर्मणां सारा[1] विप्रतुष्टिश्च दक्षिणा ।।६३।।
ब्राह्मणानां शरीरेषु तिष्ठन्ति सर्वदेवताः । पादेषु सर्वतीर्थानि पुण्यानि पादधूलिषु ।।६४।।

---

है ।।५४।। ब्राह्मणरूपधारी जनार्दन नैवेद्य को साक्षात् खाते हैं । ब्राह्मण के सन्तुष्ट होने पर सभी देव तुष्ट हो जाते हैं ।।५५।। जो ब्राह्मण-पूजन में तत्पर रहता है, उसे देव-पूजन से क्या करना है ? जिसने ब्राह्मणों की पूजा की है, उसने समस्त देवों की पूजा कर ली ।।५६।। देव को नैवेद्य देकर यदि ब्राह्मण को नहीं दिया जाता है, तो वह नैवेद्य भस्मीभूत हो जाता है और वह पूजन निष्फल होता है ।।५७।। वह देव-नैवेद्य ब्राह्मण को प्रदान करने पर अनन्त फल की प्राप्ति होती है और देवता प्रसन्न होकर उसे वर देकर अपने धाम को जाते हैं ।।५८।। यदि कोई मूर्ख देव को नैवेद्य अर्पित करके (ब्राह्मण को बिना दिये) स्वयं खा लेता है, तो उस देवस्व (देवधन) का वह अपहरणकर्त्ता कहलाता है और खाने के अनन्तर नरक में जाता है । (इसलिए) भगवान् के नैवेद्य को छोड़कर अन्य किसी भी देव का अर्पित नैवेद्य नहीं खाना चाहिए । विष्णु के नैवेद्य का भोजन सभी देवों (के नैवेद्य-भोजन) से प्रशस्त बताया गया है ।।५९।। जो विष्णु को निवेदन नहीं किया रहता है वह अन्न विष्ठा और जल मूत्र के समान है । यह क्रम सभी लोगों के लिए है किन्तु ब्राह्मणों के लिए विशेष रूप से है ।।६०।। यदि विद्वान् देव को नैवेद्य न समर्पित कर वह ब्राह्मण को दे देता है, तो उस ब्राह्मण-मुख द्वारा देवता भक्षण करके अति प्रसन्न होकर स्वर्ग को चले जाते हैं ।।६१।। इसलिए सभी प्रयत्नों से ब्राह्मणों की अर्चना कीजिये, क्योंकि वे इहलोक और परलोक में भी उत्तम फल के दाता हैं ।।६२।। जप, तप, पूजा, यज्ञ, दान, महोत्सव आदि सभी कार्यों का साररूप ब्राह्मणों की सन्तुष्टि एवं दक्षिणा है ।।६३।। ब्राह्मणों के शरीरों में सभी देवता रहते हैं, उनके चरणों में समस्त तीर्थ और चरण की धूलियों में समस्त पुण्य रहते

---

१ ख. सारं ।

पादोदके च विप्राणां तीर्थतोयानि सन्ति च । तत्स्पर्शात्सर्वतीर्थेषु स्नानजन्यफलं लभेत् ॥६५॥
नश्यन्ति भक्षणाद्रोगा भक्तिभावेन बल्लव । सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यन्ते नात्र संशयः ॥६६॥
पापं पञ्चविधं कृत्वा यो विप्रं प्रणमेद्बुधः । स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वपापात्प्रमुच्यते ॥६७॥
ब्राह्मणस्पर्शमात्रेण मुक्तो भवति पातकी । दर्शनान्मुच्यते पापादिति वेदे निरूपितम् ॥६८॥
अप्राज्ञो वाऽथ प्राज्ञो वा ब्राह्मणो विष्णुविग्रहः । प्रियाः प्राणाधिका विष्णोर्ये विप्रा हरि-सेविनः ॥६९॥
द्विजानां हरिभक्तानां प्रभावो दुर्लभः श्रुतौ । येषां पादाब्जरजसा सद्यः पूता वसुंधरा ॥७०॥
तेषां च पादचिह्नं यत्तीर्थं तत्परिकीर्तितम् । तेषां च स्पर्शमात्रेण तीर्थपापं प्रणश्यति ॥७१॥
आलिङ्गनात्सदालापात्तेषामुच्छिष्टभोजनात् । दर्शनात्स्पर्शनाच्चैव सर्वपापात्प्रमुच्यते ॥७२॥
भ्रमणे सर्वतीर्थानां यत्पुण्यं स्नानतो भवेत् । हरिदासस्य विप्रस्य तत्पुण्यं दर्शनाल्लभेत् ॥७३॥
ये विप्रा हरये दत्त्वा नित्यमन्नं च भुञ्जते । उच्छिष्टभोजनात्तेषां हरेर्दास्यं लभेन्नरः ॥७४॥
न दत्त्वा हरये भक्त्या भुञ्जते चेद्भ्रमादपि । पुरीषसदृशं वस्तु जलं मूत्रसमं भवेत् ॥७५॥
शूद्रश्चेद्धरिभक्तश्च नैवेद्यभोजनोत्सुकः । आमान्नं हरये दत्त्वा पाकं कृत्वा च खादति ॥७६॥
विप्रक्षत्रियवैश्यानां शालग्रामशिलार्चने । अधिकारो न शूद्राणां हरेरप्यर्चने तथा ॥७७॥

---

हैं ॥६४॥ विप्र के चरणोदक में तीर्थों के जल रहते हैं। उसके स्पर्श से सभी तीर्थों में स्नान करने का फल प्राप्त होता है ॥६५॥ हे बल्लव ! भक्तिभाव से विप्रोदक का पान करने पर रोग नष्ट होते हैं और सात जन्मों के पापों से वे मुक्त हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं ॥६६॥ पाँच प्रकार के पापों को करके जो विद्वान् ब्राह्मण को प्रणाम करता है, मानो वह समस्त तीर्थों में स्नान करके समस्त पातकों से मुक्त हो जाता है ॥६७॥ ब्राह्मण के स्पर्श करने मात्र से पातकी मुक्त हो जाता है और दर्शन करने से पाप से मुक्त होता है, ऐसा वेदों में कहा गया है ॥६८॥ मूर्ख और विद्वान् सभी भाँति के ब्राह्मण विष्णु के शरीर हैं। जो ब्राह्मण भगवान् की सेवा करते हैं, वे विष्णु को प्राणों से भी अधिक प्रिय होते हैं ॥६९॥ भगवद्भक्त ब्राह्मणों का प्रभाव वेद में दुर्लभ बताया गया है। जिनके चरण-कमल की धूलि से यह पृथिवी तुरन्त पवित्र हो जाती है ॥७०॥ उनके चरण-चिह्न को तीर्थ कहा गया है। उनके स्पर्श मात्र से तीर्थों का किया हुआ पाप नष्ट होता है ॥७१॥ उनके आलिङ्गन, सत्वार्तालाप, उच्छिष्ट-भोजन, दर्शन एवं स्पर्श करने से प्राणी समस्त पापों से मुक्त हो जाता है ॥७२॥ समस्त तीर्थों में भ्रमण करते हुए उसमें स्नान करने से जिस पुण्य की प्राप्ति होती है, वह हरिभक्त ब्राह्मण के दर्शन मात्र से प्राप्त हो जाती है ॥७३॥ जो ब्राह्मण भगवान् को नित्य-प्रति समर्पित करके भोजन करते हैं, उनके उच्छिष्ट भोजन करने से मनुष्य को भगवान् का दास्यपद प्राप्त होता है ॥७४॥ यदि भ्रमवश भक्ति-पूर्वक भगवान् को समर्पित न करके भोजन कर लेते हैं तो वह वस्तु विष्ठा के समान और जल मूत्र के समान हो जाता है ॥७५॥ यदि शूद्र हरिभक्त है और भगवान् का नैवेद्य भोजन करने के लिए उत्सुक रहता है तो वह कच्चा अन्न भगवान् को अर्पित करके पकाकर खाता है ॥७६॥ शालग्राम भगवान् की पूजा करने में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों को अधिकार है न कि शूद्रों को। उसी प्रकार हरिपूजन में भी शूद्रों का अधिकार नहीं है ॥७७॥

द्रव्याण्येतानि गोपेन्द्र विप्रेभ्यश्चेन्न दास्यति । भस्मीभूतानि सर्वाणि भविष्यन्ति न संशयः ॥७८॥
अन्नं च सर्वजीवेभ्यः पुण्यार्थं दातुमर्हति । दत्त्वा विशिष्टजीवेभ्यो विशिष्टं फलमाप्नुयात् ॥७९॥
अतो दत्त्वा मानुषेभ्यो लभतेऽष्टगुणं फलम् । ततो विशिष्टशूद्रेभ्यो दत्त्वा तद्द्विगुणं फलम् ॥८०॥
दत्त्वाऽन्नं वैश्यजातिभ्यस्ततश्चाष्टगुणं फलम् । शूद्राणां द्विगुणं पुण्यं वैश्येभ्योऽन्नं प्रदाय च ॥८१॥
दत्त्वाऽन्नं क्षत्रियेभ्योऽपि वैश्यानां द्विगुणं भवेत् । क्षत्रियाणां शतगुणं विप्रेभ्योऽन्नं प्रदाय च ॥८२॥
विप्राणां च शतगुणं शास्त्रज्ञे ब्राह्मणे फलम् । शास्त्रज्ञानां शतगुणं भवते विप्रे लभेद्ध्रुवम् ॥
स चान्नं हरये दत्त्वा भुङ्क्ते भक्त्या च सादरम् ॥८३॥
विष्णवे विप्रभक्ताय दत्त्वा दातुश्च यत्फलम् । तत्फलं लभते नूनं भक्तब्राह्मणभोजने ॥८४॥
भक्ते तुष्टे हरिस्तुष्टो हरौ तुष्टे च देवताः । भवन्ति सिक्ताः शाखाश्च यथा मूलनिषेचनात् ॥८५॥
द्रव्याण्येतानि देवाय यद्येकस्मै प्रयच्छति । सर्वे देवाश्च रुष्टाश्चेद्देवैः कः किं करिष्यति ॥८६॥
अथवाऽर्धं च वस्तूनां देहि गोवर्धनाय च । गा वर्धयति नित्यं यस्तेन गोवर्धनः स्मृतः ॥८७॥
गोवर्धनसमस्तात पुण्यवान्न महीतले । नित्यं ददाति गोभ्यो यो नवीनानि तृणानि च ॥८८॥
तीर्थस्थानेषु यत्पुण्यं यत्पुण्यं विप्रभोजने । सर्वव्रतोपवासेषु सर्वेष्वेव तपःसु च ॥८९॥

---

॥७७॥ हे गोपेन्द्र ! यदि ये सभी पदार्थ ब्राह्मणों को नहीं दिये जाते हैं तो सब भस्मीभूत हो जायँगे. इसमें संशय नहीं ॥७८॥ अन्न तो सभी जीवों को पुण्यार्थ दिया जा सकता है, किन्तु विशिष्ट जीवों को समर्पित करने से विशिष्ट फल की प्राप्ति होती है ॥७९॥ इसलिए मनुष्यों को अन्न प्रदान करने से आठ गुने फल की प्राप्ति होती है। विशिष्ट शूद्रों को समर्पित करने से उससे दूना फल मिलता है ॥८०॥ वैश्य जाति के लोगों को अन्न प्रदान करने से उससे अठगुना फल मिलता है । शूद्रों की अपेक्षा वैश्यों को अन्न देने से दुगुना फल मिलता है ॥८१॥ वैश्यों की अपेक्षा क्षत्रियों को अन्न देने से दूना फल मिलता है । क्षत्रियों की अपेक्षा ब्राह्मणों को अन्न देने से सौगुना फल मिलता है ॥८२॥ ब्राह्मणों की अपेक्षा शास्त्रज्ञाता ब्राह्मण को देने से सौगुना फल प्राप्त होता है । शास्त्रज्ञों की अपेक्षा भक्त ब्राह्मण को देने से सौगुना फल निश्चित रूप से मिलता है । हरि को भक्तिपूर्वक अन्न समर्पित करके आदर के साथ खाना चाहिए ॥८३॥ ब्राह्मण के भक्त विष्णु को वस्तु दान करने से दाता को जो फल मिलता है वह भक्त ब्राह्मण को भोजन कराने से निश्चय ही प्राप्त होता है ॥८४॥ भक्त के सन्तुष्ट होने पर हरि प्रसन्न होते हैं और हरि के प्रसन्न होने पर समस्त देवता उसी तरह प्रसन्न होते हैं जैसे वृक्ष की जड़ सींचने से उसकी शाखाएँ भी पुष्ट होती हैं ॥८५॥ यदि यह समस्त भक्ष्य भोज्य पदार्थ किसी एक ही देव को अर्पित किया जाये, तो अन्य समस्त देवता रुष्ट हो जायँगे, और उन देवों का अकेला कोई (देवता) क्या कर सकेगा? ॥८६॥ अथवा प्रस्तुत वस्तुओं का आधा भाग गोवर्धन को दे दीजिये । गौओं की नित्य अभिवृद्धि करने के कारण इन्हें गोवर्धन कहा जाता है ॥८७॥ पिताजी ! भूतल पर गोवर्धन के समान कोई अन्य पुण्यवान् नहीं है । क्योंकि वह गौओं को नित्य नवीन तृण (हरी घास) प्रदान करते हैं ॥८८॥ तीर्थस्थान, ब्राह्मण-भोजन, समस्त व्रतों के उपवास,

यत्पुण्यं च महादाने यत्पुण्यं हरिसेवने। भुवः पर्यटने यत्तु सत्यवाक्येषु यद्भवेत् ।।९०।।
यत्पुण्यं सर्वयज्ञेषु दीक्षायां च लभेन्नरः। तत्पुण्यं लभते प्राज्ञो गोभ्यो दत्त्वा तृणानि च ।।९१।।
भुक्तवन्तीं तृणं यश्च गां वारयति कामतः। ब्रह्महत्या भवेत्तस्य प्रायश्चित्ताद्विशुध्यति ।।९२।।
सर्वे देवा गवामङ्गे तीर्थानि तत्पदेषु च। तद्गुह्येषु स्वयं लक्ष्मीस्तिष्ठत्येव सदा पितः ।।९३।।
गोष्पदाक्तमृदा यो हि तिलकं कुरुते नरः। तीर्थस्नातो भवेत्सद्यो जयस्तस्य पदे पदे ।।९४।।
गावस्तिष्ठन्ति यत्रैव तत्तीर्थं परिकीर्तितम्। प्राणांस्त्यक्त्वा नरस्तत्र सद्यो मुक्तो भवेद्ध्रुवम् ।।९५।।
ब्राह्मणानां गवामङ्गं यो हन्ति मानवाधमः। ब्रह्महत्यासमं पापं भवेत्तस्य न संशयः ।।९६।।
नारायणांशान्विप्रांश्च गाश्च ये घ्नन्ति मानवाः। कालसूत्रं च ते यान्ति यावच्चन्द्रदिवाकरौ ।।९७।।
इत्येवमुक्त्वा श्रीकृष्णो विरराम च नारद। आनन्दयुक्तो नन्दश्च तमुवाच स्मिताननः ।।९८।।

### नन्द उवाच

पौर्वापरीयं पूजेति महेन्द्रस्य महात्मनः। सुवृष्टिसाधनी साध्यं सर्वसस्यं मनोहरम् ।।९९।।
सस्यानि प्राणिनां प्राणाः सस्याज्जीवन्ति जीविनः। पूजयन्ति व्रजस्थाश्च महेन्द्रं पुरुषक्रमात् ।।
महोत्सवं वत्सरान्ते निर्विघ्नाय शिवाय च ।।१००।।

---

समस्त तप, महादान, भगवत्सेवा, पृथ्वी की परिक्रमा, सत्य वाक्य और समस्त यज्ञों की दीक्षा में मनुष्यों को जिस पुण्य की प्राप्ति होती है, वह पुण्य केवल गौओं को हरी घास प्रदान करने से प्राप्त होता है ।।८९-९१।। जो किसी कामनावश घास खाती हुई गौ को रोक देता है, उसे ब्रह्महत्या के पाप का भागी होना पड़ता है। प्रायश्चित करने पर ही वह शुद्ध होता है ।।९२।। पिताजी ! गौओं के अंगों में समस्त देवता निवास करते हैं, उनके चरणों में समस्त तीर्थ और उनके गुह्य स्थानों में स्वयं लक्ष्मी निवास करती है ।।९३।। गौओं के खुर की धूल का जो मस्तक में तिलक लगाता है, वह तुरन्त समस्त तीर्थों में स्नान करने का फल पाता है और पग-पग पर उसकी जय होती है ।।९४।। गौएँ जहाँ रखी जाती हैं वह भूमि तीर्थस्वरूप होती है। वहाँ प्राणत्याग करके मनुष्य तत्काल मुक्त हो जाता है ।।९५।। ब्राह्मणों और गौओं के अंग पर जो नराधम आघात करता है, उसे ब्रह्महत्या के समान पाप लगता है, इसमें संशय नहीं ।।९६।। क्योंकि नारायण के अंश स्वरूप ब्राह्मणों और गौओं का जो मानव वध करते हैं, उन्हें चन्द्रमा और सूर्य के समय तक कालसूत्र नामक नरक में रहना पड़ता है ।।९७।। नारद ! भगवान् श्रीकृष्ण इतना कहकर चुप हो गये। तब आनन्दमग्न नन्द ने मन्द हास करते हुए उनसे कहा ।।९८।।

**नन्द बोले**--महात्मा इन्द्र की यह पूजा है, जो परम्परा से होती चली आ रही है। यह सुवृष्टि का साधन है और इससे सब प्रकार के मनोहर शस्यों की उत्पत्ति ही साध्य है ।।९९।। धान्य ही प्राणियों के प्राण हैं धान्य से ही जीवधारी जीवित रहते हैं। व्रजवासी लोग पूर्वजों की परम्परा से महेन्द्र की पूजा करते चले आ रहे हैं।

इत्येवं वचनं श्रुत्वा बलेन सह माधवः। उच्चैर्जहास स पुनरुवाच पितरं मुदा ॥१०१॥

**श्रीकृष्ण उवाच**

अहो श्रुतं विचित्रं ते वचनं परमाद्भुतम्। उपहास्यं लोकशास्त्रवेदेष्वेव विगर्हितम् ॥१०२॥
निरूपणं नास्ति कुत्र शक्राद्वृष्टिः प्रजायते। अपूर्वं नीतिवचनं श्रुतमद्य मुखात्तव ॥१०३॥
शृणु नीतिं श्रुतिमतां हे तात नानयं वदेः। वचनं सामवेदोक्तं सन्तो जानन्ति सर्वतः ॥१०४॥
प्रश्नं कुरुष्व मन्त्रांश्च बिबुधानपि[1] संसदि। ब्रुवन्तु परमार्थं च किमिन्द्राद्‌वृष्टिरेव च ॥१०५॥
सूर्याद्धि जायते तोयं तोयात्सस्यानि शाखिनः। तेभ्योऽन्नानि फलान्येवतेभ्यो जीवन्ति जीविनः ॥१०६॥
सूर्यग्रस्तं च नीरं च काले तस्मात्समुद्भवः। सूर्यो मेघादयः सर्वे विधात्रा ते निरूपिताः ॥१०७॥
यत्राब्दे यो जलधरो गजश्च सागरो मतः। सस्याधियो नृपो मन्त्री विधात्रा ते निरूपिताः ॥१०८॥
जलादिकानां सस्यानां तृणानां च निरूपितम्। अब्देऽब्देऽस्त्येव तत्सर्वं कल्पे कल्पे युगे युगे ॥१०९॥
हस्ती समुद्रादादाय करेण जलमीप्सितम्। दद्याद्घनाय तद्द्‌याद्वातेन प्रेरितो घनः ॥११०॥

---

यह महोत्सव वर्ष के अन्त में विघ्न दूर करने और कल्याण प्राप्त करने के लिए किया जाता है ॥१००॥ यह बात सुनकर बलभद्र समेत भगवान् श्रीकृष्ण उच्चस्वर (बड़े) से हँस पड़े, और पिता से हर्षपूर्वक बोले ॥१०१॥

**श्रीकृष्ण बोले**—अहो ! आपकी परम अद्भुत एवं विचित्र बात सुनी। यह लोक, शास्त्र एवं वेदों में निन्दित एवं उपहास के योग्य है ॥१०२॥ यह कहीं नहीं बताया गया है कि—'इन्द्र से वर्षा होती है।' केवल आज आपके ही मुख से यह अपूर्व नीति-वचन सुना है ॥१०३॥ तात ! ऐसी अनीति मत कहिये, विद्वानों की नीति (विषयक बात) सुनिये। सामवेद का वचन सभी सन्त लोग जानते हैं ॥१०४॥ आप सभा में विद्वानों से भी मन्त्रणा और प्रश्न करें कि आप लोग सत्य बतायें कि क्या इन्द्र से वृष्टि होती है ? ॥१०५॥ सूर्य से जल उत्पन्न होता है, जल से धान्य तथा वृक्ष आदि उत्पन्न होते हैं। उनसे अन्न एवं फल उत्पन्न होते हैं और उनसे प्राणी जीवन निर्वाह करते हैं ॥१०६॥ सूर्य अपनी किरणों द्वारा जो जल सोख लेते हैं, वर्षाकाल में उसी जल का उनसे प्रादुर्भाव होता है। सूर्य और मेघ आदि सबका विधाता द्वारा निरूपण होता है ॥१०७॥ जिस वर्ष में जो मेघ गज और सागर माने गये हैं, जो सस्याधिपति राजा और मन्त्री निश्चित किये गये हैं, उन सबका विधाता द्वारा ही निरूपण हुआ है ॥१०८॥ प्रत्येक वर्ष में जल, सस्य तथा तृणों की आढ़क संख्या निश्चित की जाती है उस निश्चय के अनुसार वर्ष-वर्ष में, युग-युग में और कल्प-कल्प में वे सारी बातें घटित होती हैं ॥१०९॥ सूर्य किरणों के द्वारा समुद्र से यथेष्ट जल लेकर मेघ को देते हैं और मेघ वायु से प्रेरित होकर

---

१ ख. 'विविधा'।

स्थाने स्थाने पृथिव्यां च काले काले यथोचितम् । ईशेच्छयाऽऽविर्भूतं च न भवेत्प्रति बन्धकम् ॥१११॥
भूतं भव्यं भविष्यच्च महत्क्षुद्रं च मध्यमम् । धात्रा निरूपितं कर्म केन तात निवार्यते ॥११२॥
जगच्चराचरं सर्वं कृतं तेनेश्वराज्ञया । आदौ विनिर्मितं भक्ष्यं पश्चाज्जीव इति स्मृतः ॥११३॥
अभ्यासात्स्वभावो हि स्वभावात्कर्म एव च । जायते कर्मणा भोगो जीविनां सुखदुःखयोः ॥११४॥
यातनाजन्ममरणरोगशोकभयानि च । समुत्पत्तिर्विपद्विद्या कविता वा यशोऽयशः ॥११५॥
पुण्यं च स्वर्गवासश्च पापं नरकसंस्थितिः । भुक्तिर्मुक्तिर्हरेर्दास्यं कर्मणा घटते नृणाम् ॥११६॥
सर्वेषां जनको ह्रीशश्चाभ्यासः शीलकर्मणाम् । धातुश्च फलदाता च सर्वं तस्येच्छया भवेत् ॥११७॥
विनिर्मितो विराड्येन तत्त्वानि प्रकृतिर्जगत् । कूर्मश्च शेषधरणी चाऽऽब्रह्मस्तम्ब एव च ॥११८॥
यस्याऽऽज्ञया मरुत्कूर्मं धत्ते शेषं बिभर्ति सः । शेषो वसुंधरां मूर्ध्ना सा च सर्वं चराचरम् ॥११९॥
यस्याऽऽज्ञया सदा याति जगत्प्राणो जगत्त्रये । तपति भ्रमणं कृत्वा भूगोलं सुप्रभाकरः ॥१२०॥
दहत्यग्निः संचरते मृत्युश्च सवजन्तुषु । उत्पत्तिः[1] शाखिनां काले पुष्पाणि च फलानि च ॥१२१॥

---

समय पर पृथ्वी के स्थान-स्थान में यथोचित रूप से बरसता है । ईश्वर की इच्छा से ही जल आदि का आविर्भाव होता है । उसमें कोई बाधा नहीं पड़ती ॥११०-१११॥ हे तात ! भूत, वर्तमान, भविष्य, महान्, नीच और मध्यम कर्मों का विधाता ने निरूपण किया है, उसका कौन निवारण कर सकता है ? ॥११२॥ भगवान् की आज्ञा से ही उन्होंने इस चर-अचरमय समस्त जगत् का निर्माण किया है । पहले भोजन की व्यवस्था होती है, उसके बाद जीव प्रकट होता है । बार-बार ऐसा होने से ही इस नियत व्यवस्था को स्वभाव कहते हैं । स्वभाव से कर्म होता है और कर्म के अनुसार जीवधारियों को सुख-दुःख का भोग प्राप्त होता है ॥११३-११४॥ यातना, जन्म-मरण, रोग, शोक, भय, सम्पत्ति, विपत्ति, विद्या, कविता, यश, अपयश, पुण्य, स्वर्ग में निवास, पाप, नरकवास, भक्ति, मुक्ति तथा भगवान् का दास्यपद—ये सब मनुष्यों के कर्म के अनुसार उपलब्ध होते हैं ॥११५-११६॥ ईश्वर सभी के जनक हैं । शील और कर्मों का अभ्यास विधाता के लिए भी फलदाता होता है । सब कुछ ईश्वर की इच्छा से ही संभव होता है ॥११७॥ जिन्होंने विराट्, समस्त तत्त्व, प्रकृति, जगत्, कच्छप, शेष, पृथ्वी तथा ब्रह्मा से लेकर तृणपर्यन्त का निर्माण किया है ॥११८॥ जिनकी आज्ञा से वायु कच्छप को, कच्छप शेष को, शेष अपने मस्तक पर पृथ्वी को और पृथ्वी समस्त चराचर जगत् को धारण करती है ॥११९॥ जिनकी आज्ञा से जगत् का प्राणस्वरूप वायु तीनों लोकों में बहता है । अति तीक्ष्ण प्रभावाले सूर्य भूगोल का भ्रमण करते हुए तपते हैं ॥१२०॥ अग्नि जलाता है, सभी प्राणियों में मृत्यु का सञ्चार होता है, वृक्षों की उत्पत्ति होती है और समय पर उसमें फूल-फल लगते हैं ॥१२१॥ जिनकी आज्ञा से समुद्र अपने-अपने

---

१ क. विपत्तिः ।

स्वे स्वे स्थाने समुद्राश्च तूर्णं मज्जन्त्यधोऽधुना। तमीशं भज भक्त्या च शक्रः किं कर्तुमीश्वरः ॥१२२॥
ब्रह्माण्डं च कतिविधमाविर्भूतं तिरोहितम्। विधयश्च[1] कतिविधा यस्य भ्रूभङ्गलीलया ॥१२३॥
मृत्योर्मृत्युः कालकालो विधातुर्विधिरेव सः। भज तं शरणं तात स ते रक्षां करिष्यति ॥१२४॥
अहोऽष्टाविंशदिन्द्राणां पतने यदहर्निशम्। विधातुरेव जगतामष्टोत्तरशताधिकः[2] ॥१२५॥
निमेषाद्यस्य पतनं निर्गुणस्याऽऽत्मनः प्रभोः। एवंभूते तिष्ठतीशे शक्रपूजा विडम्बनम् ॥१२६॥
इत्येवमुक्त्वा श्रीकृष्णो विरराम च नारद। प्रशंसुश्च मुनयो भगवन्तं सभासदः ॥१२७॥
नन्दः सपुलको हृष्टः सभायां साश्रुलोचनः। आनन्दयुक्ता मनुजा यदि पुत्रैः पराजिताः ॥१२८॥
श्रीकृष्णाज्ञां समाज्ञाय चकार स्वस्तिवाचनम्। क्रमेण वरणं तत्र सर्वेषां च चकार ह ॥१२९॥
पर्वतस्य मुनीन्द्राणां चकार पूजनं मुदा। बुधानां ब्राह्मणानां च गवां वह्नेश्च सादरम् ॥१३०॥
तत्र पूजासमाप्तौ च क्रतौ च सुमुहोत्सवे। नानाप्रकारवाद्यानां बभूव शब्द उल्वणः ॥१३१॥
जयशब्दः शङ्खशब्दो हरिशब्दो बभूव ह। वेदमङ्गलकाण्डं च पपाठ मुनिपुंगवः ॥१३२॥
बन्दिनां प्रवरो डिण्डी कंसस्य सचिवः प्रियः। उच्चैः पपाठ पुरतो मङ्गलं मङ्गलाष्टकम् ॥१३३॥

---

स्थान पर विद्यमान रहते और शीघ्र नीचे निमग्न हो जाते हैं। अतः उन्हीं ईश्वर का इस समय भक्तिपूर्वक भजन कीजिये। इन्द्र क्या कर सकता है? ॥१२२॥ जिनके भौंह टेढ़ी करते ही कितने ही ब्रह्माण्ड लीला की भाँति उत्पन्न हुए एवं विलीन हो गये तथा कितने ब्रह्मा उत्पन्न होकर नष्ट हो गये ॥१२३॥ वे मृत्यु के भी मृत्यु, काल के भी काल एवं ब्रह्मा के भी ब्रह्मा हैं। तात! उन्हीं की शरण लीजिये। वे ही आपकी रक्षा करेंगे ॥१२४॥ अहो! अट्ठाईस इन्द्रों के पतन होने पर जिनका एक रात-दिन होता है और उस एक सौ आठ जगन्निर्माता ब्रह्मा के पतन होने पर जिस निर्गुण परमात्मा प्रभु का एक निमेष होता है, उस ईश के रहते इन्द्र की पूजा करना एक विडम्बना मात्र है ॥१२५-१२६॥ नारद! इतना कहकर श्रीकृष्ण चुप हो गये। मुनियों एवं अन्य सभासदों ने यह सुनकर भगवान् की बड़ी प्रशंसा की ॥१२७॥ नन्द तो हर्षमग्न हो गये, उनके शरीर में रोमाञ्च एवं आँखों में जल भर आया। मनुष्य यदि (अपने) पुत्रों से पराजित होते हैं, तो वे अतिआनन्दमग्न होते हैं ॥१२८॥ नन्द ने भगवान् श्रीकृष्ण की आज्ञा मानकर स्वस्तिवाचन किया और वहाँ सबका क्रमशः वरण किया ॥१२९॥ पर्वत और मुनीन्द्रों की पूजा करके विद्वान् ब्राह्मणों, गौओं और अग्नि का सादर समर्थन किया ॥१३०॥ यज्ञ के उस महोत्सव में पूजा की समाप्ति होने पर विविध वाद्यों का तुमुलनाद होने लगा ॥१३१॥ जय-जयकार की ध्वनि, शंख की ध्वनि एवं हरिनामकीर्तन होने लगे। मुनिपुंगव (गर्ग) ने वेदों के मंगल काण्ड का पाठ किया ॥१३२॥ वन्दिजनों में श्रेष्ठ डिण्डी, जो कंस का प्रिय सचिव (मंत्री) था, वहीं सभी के समक्ष उच्च स्वर से मंगलाष्टक का मंगल पाठ करने

---

१ क विधेयाश्च। २ क. °तायुषः।

कृष्णः शैलान्तिकं गत्वा भिन्नां मूर्ति विधाय च। वस्तु खादामि शैलोऽस्मि वरं वृण्वित्युवाच ह ॥१३४॥
उवाच नन्दं श्रीकृष्णः पश्य शैलं पितः पुरः। वरं प्रार्थय भद्रं ते भविता चेत्युवाच ह ॥१३५॥
हरेर्दास्यं हरेर्भक्तिं वरं वव्रे स बल्लवः। द्रव्यं भुक्त्वा वरं दत्त्वा सोऽन्तर्धानं चकार ह ॥१३६॥
मुनीन्द्रान्ब्राह्मणांश्चैव भोजयित्वा च गोपपाः। बन्दिभ्यो ब्राह्मणेभ्यश्च मुनिभ्यश्च धनं ददौ ॥१३७॥
मुनिभ्यो ब्राह्मणेभ्योऽपि दत्त्वा नन्दो मुदाऽन्वितः। रामकृष्णौ पुरस्कृत्य सगणः स्वालयं ययौ ॥१३८॥
रौप्यं वस्त्रं सुवर्णं च वरमश्वं मणिं तथा। भक्ष्यं द्रव्यं बहुविधं वन्दिने डिण्डिने ददौ ॥१३९॥
स्तुत्वा नत्वा रामकृष्णौ मुनयो ब्राह्मणा ययुः। ययुरप्सरसः सर्वा गन्धर्वाः किंनरास्तथा ॥१४०॥
राजानो बल्लवाः सर्वे चाऽऽगता ये महोत्सवे। सर्वे प्रणम्य श्रीकृष्णं ययुः सादरपूर्वकम् ॥१४१॥
एतस्मिन्नन्तरे शक्रः कोपप्रस्फुरिताधरः। मखभङ्गे[1] बहुविधां निन्दां श्रुत्वा सुरेश्वरः ॥१४२॥
मरुद्भिर्वारिदैः सार्धं रथमारुह्य सत्वरम्। जगाम नन्दनगरं वृन्दारण्यं मनोहरम् ॥१४३॥
सर्वे देवा ययुः पश्चाद्युद्धशास्त्रविशारदाः। शस्त्रास्त्रपाणयः कोपाद्रथमारुह्य नारद ॥१४४॥

---

लगा ॥१३३॥ श्रीकृष्ण ने (गोवर्धन) पर्वत के समीप जाकर दूसरी मूर्ति धारण करके कहा—मैं (गोवर्धन) पर्वत हूँ, (अर्पित) वस्तुओं को खा रहा हूँ, तुम मुझसे माँगो ॥१३४॥ उस समय श्रीकृष्ण ने नन्द से कहा—पिताजी ! सामने पर्वत को देखिये और उससे वरदान की प्रार्थना कीजिये, जिससे आपका कल्याण होगा ॥१३५॥ वल्लवराज नन्द ने उससे प्रार्थना की कि—हमें भगवान् का दास्यपद और उनकी भक्ति प्राप्त हो, भक्ष्यपदार्थ खाकर और वर देकर वह रूप अन्तर्हित हो गया ॥१३६॥ गोपरक्षक नन्द ने मुनीन्द्रों एवं ब्राह्मणों को भोजन कराकर वन्दियों, ब्राह्मणों एवं मुनियों को धन प्रदान किया ॥१३७॥ मुनियों और ब्राह्मणों को भी धन प्रदान करके नन्द अति प्रसन्न हुए और बलराम एवं कृष्ण को आगे करके गण समेत अपने घर गये ॥१३८॥ उस वन्दी को भी उन्होंने चाँदी, वस्त्र, सुवर्ण, सुन्दर अश्व तथा अनेक प्रकार के भक्ष्यपदार्थ प्रदान किये ॥१३९॥ राम-कृष्ण को नमस्कार करके मुनिगण और ब्राह्मण लोग भी चले गये। सभी अप्सराएँ, गन्धर्व, किन्नर एवं वल्लवराजगण, जो उस महोत्सव में आये थे, भगवान् श्रीकृष्ण को सादर प्रणाम करके अपने घर चले गये ॥१४०-१४१॥ इसी बीच इन्द्र यज्ञ भंग होने से अपनी अनेक भाँति की निन्दा सुनकर अत्यन्त क्रुद्ध हो गये। उनके ओंठ फड़कने लगे। वे वायुगण और मेघों को साथ लिये रथ पर बैठकर नन्दनगर—मनोहर वृन्दावन में गये ॥१४२-१४३॥ नारद ! पश्चात् युद्धशास्त्र निपुण देवों ने भी क्रुद्ध होकर हाथ में शस्त्रास्त्र लिये रथ पर बैठे वहाँ के लिए प्रस्थान किया ॥१४४॥ वायु के शब्द, मेघों की गर्जना और सैनिकों के

---

१ क. 'भङ्गं च'।

वाद्यशब्दैर्मेघशब्दैः सैन्यशब्दैर्भयानकैः। चकम्पे नगरं सर्वे नन्दो भयमवाप ह ॥१४५॥
भार्यां संबोध्य स्वगणमुवाच शोककातरः। रहःस्थलं समानीय नीतिशास्त्रविशारदः ॥१४६॥

नन्द उवाच

हे यशोदे समागच्छ वचनं शृणु रोहिणि। रामकृष्णौ समादाय व्रज दूरं व्रजात्प्रिये ॥१४७॥
बालका बालिका नार्यो यान्तु दूरं भयाकुलाः। बलवन्तश्च गोपालास्तिष्ठन्तु मत्समीपतः ॥१४८॥
पश्चाच्च निर्गमिष्यामो वयं च प्राणसंकटात्। इत्युक्त्वा बल्लवश्रेष्ठःसस्मार श्रीहरिं भिया ॥१४९॥
पुटाञ्जलियुतो भूत्वा भक्तिनम्रात्मकंधरः। काण्वशाखोक्तस्तोत्रेण तुष्टाव ह शचीपतिम् ॥१५०॥

नन्द उवाच

इन्द्रः सुरपतिः शक्रो दितिजः पवनाग्रजः ॥१५१॥
सहस्राक्षो भगाङ्गश्च कश्यपाङ्गज एव च। बिडौजाश्च सुनासीरो मरुत्वान्पाकशासनः ॥१५२॥
जयन्तजनकः श्रीमाञ्छचीशो दैत्यसूदनः। वज्रहस्तः कामसखो गौतमीव्रतनाशनः ॥१५३॥
वृत्रहा वासवश्चैव दधीचिदेहभिक्षुकः। जिष्णुश्च वामनभ्राता पुरुहूतः पुरंदरः ॥१५४॥
दिवस्पतिः शतमखः सुत्रामा गोत्रभिद्विभुः। लेखर्षभो बलारातिर्जम्भभेदी सुराश्रयः ॥१५५॥
संक्रन्दनो दुश्च्यवनस्तुराषाण्मेघवाहनः। आखण्डलो हरिहयो नमुचिप्राणनाशनः ॥१५६॥

---

भयानक शब्दों से समस्त नगर काँप उठा तथा नन्द अत्यन्त भयभीत हुए ॥१४५॥ नीतिशास्त्र में अतिकुशल नन्द ने अपनी पत्नी एवं गणों को एकान्त में बुलाकर शोक से कातर होकर कहा ॥१४६॥

**नन्द बोले**—हे यशोदे ! हे रोहिणी ! यहाँ आओ और मेरी बात सुनो ! प्रिये ! राम-कृष्ण को लेकर तुम लोग व्रज से दूर जाओ ॥१४७॥ भयभीत बालक-बालिकाएँ एवं स्त्रियाँ भी दूर चली जायें केवल बलवान् गोप लोग मेरे समीप रहें ॥१४८॥ जब प्राणों का संकट उपस्थित होगा, तभी हम लोग यहाँ से निकलेंगे। इतना कहकर बल्लवश्रेष्ठ नन्द भय के कारण भगवान् श्रीहरि का स्मरण करने लगे ॥१४९॥ हाथ जोड़े, भक्ति से कन्धे झुकाये काण्वशाखोक्त स्तोत्र द्वारा वे इन्द्र की स्तुति करने लगे ॥१५०॥

**नन्द बोले**—इन्द्र, सुरपति, शक्र, दितिज, पवनाग्रज, सहस्राक्ष, भगाङ्ग, कश्यपाङ्गज, बिडौजा, सुनासीर, मरुत्वान्, पाकशासन, जयन्त-जनक, श्रीमान्, शचीश, दैत्यसूदन, वज्रहस्त, कामसखा, गौतमी-व्रत-नाशक, वृत्रहा, वासव, दधीचि-देह-याचक, जिष्णु, वामन-भ्राता, पुरुहूत, पुरन्दर, दिवस्पति, शतमख, सुत्रामा, गोत्रभिद्, विभु, लेखर्षभ, बलाराति, जम्भभेदी, सुराश्रय, संक्रन्दन, दुश्च्यवन, तुराषाट्, मेघवाहन, आखण्डल, हरिहय नमुचि-

वृद्धश्रवा वृषश्चैव दैत्यदर्पनिषूदनः । षट्चत्वारिंशन्नामानि पापघ्नानि विनिश्चितम् ॥१५७॥
स्तोत्रमेतत्कौथुमोक्तं नित्यं यदि पठेन्नरः । महाविपत्तौ शक्रस्तं वज्रहस्तश्च रक्षति ॥१५८॥
अतिवृष्टिशिलावृष्टिवज्रपाताच्च दारुणात् । कदाचिन्न भयं तस्य रक्षिता वासवः स्वयम् ॥१५९॥
यत्र गेहे स्तोत्रमिदं यश्च जानाति पुण्यवान् । न तत्र वज्रपतनं शिलावृष्टिश्च नारद ॥१६०॥

## नारायण उवाच

स्तोत्रं नन्दमुखाच्छ्रुत्वा चुकोप मधुसूदनः । उवाच पितरं नीतिं प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा ॥१६१॥
कं स्तौषि भीरो को वेन्द्रस्त्यज भीतिं ममान्तिके । क्षणार्धे भस्मसात्कर्तुं क्षमोऽहमवलीलया ॥१६२॥
गाश्च वत्सांश्च बालांश्च योषितो हि भयातुराः । गोवर्धनस्य कुहरे संस्थाप्य तिष्ठ निर्भयम् ॥१६३॥
बालस्य वचनं श्रुत्वा तच्चकार मुदाऽन्वितः । हरिर्दधार शैलं तं वामहस्तेन दण्डवत् ॥१६४॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र दीप्तोऽपि रत्नतेजसा । अन्धीभूतश्च सहसा बभूव रजसाऽऽवृतः ॥१६५॥
सवातो मेघनिकरश्चच्छाद गगनं मुने । वृन्दावने बभूवातिवृष्टिरेव निरन्तरम् ॥१६६॥
शिलावृष्टिर्वज्रवृष्टिरुल्कापातः सुदारुणः । समस्तं पर्वतस्पर्शात्पतितं दूरतस्ततः ॥१६७॥
विफलस्तत्समारम्भो यथाऽनीशोद्यमो मुने । दृष्ट्वा मोघं च तत्सर्वं सद्यः शक्रश्चुकोप ह ॥१६८॥

---

प्राण-नाशन, वृद्धश्रवा, वृष और दैत्यदर्पहन्ता ये (इन्द्र के) छियालीस नाम निश्चित ही पापनाशक हैं ॥१५१-१५७॥ कौथुमशाखीय इस स्तोत्र का जो मनुष्य नित्य पाठ करता है, उसकी महाविपत्ति में भी इन्द्र हाथ में वज्र लिये रक्षा करते हैं ॥१५८॥ वासव के स्वयं रक्षक होने के कारण अतिवृष्टि, शिलावृष्टि और भीषण वज्रपात से उसे कभी भी भय नहीं होता है ॥१५९॥ नारद ! जिस घर में पुण्यवान् व्यक्ति इस स्तोत्र को जानता है, वहाँ वज्रपात और शिलावृष्टि नही होती है ॥१६०॥

**नारायण बोले**--नन्द के मुख से इस स्तोत्र की बात सुनकर मधुसूदन कुपित हो उठे । ब्रह्मतेज से प्रज्वलित होते हुए उन्होंने अपने पिता से नीति की बात कही-- हे भीरु ! यह किसकी स्तुति कर रहे हैं ? वह इन्द्र कौन है ? मेरे समीप भय त्याग दीजिये, मैं आधे ही क्षण में उसे लीला की भाँति भस्म कर सकता हूँ ॥१६१-१६२॥ गौओं, बछड़ों, बालाओं एवं भयभीत स्त्रियों को गोवर्धन की कन्दरा में रखकर निर्भय हो जाइये ॥१६३॥ बालक की बात सुनकर उन्होंने सहर्ष वैसा ही किया । भगवान् ने उस पर्वत को बायें हाथ में दण्डे की भाँति ऊपर उठा लिया ॥१६४॥ मुने ! इस बीच रत्नों के प्रकाश से प्रकाशित होते हुए भी वह स्थान धूलि से सहसा घनान्धकारमय हो गया, वायु समेत मेघों के समूह ने आकाश को घेर लिया और वृन्दावन में अतिवृष्टि निरन्तर होने लगी ॥१६५-१६६॥ शिलावृष्टि, वज्रवृष्टि, अतिदारुण उल्कापात--ये सब-के-सब गोवर्धन पर्वत का स्पर्श होते ही दूर जा पड़ते थे ॥१६७॥ मुने ! (इन्द्र का) वह समस्त प्रयत्न उसी प्रकार विफल होने लगा, जैसे साधारण व्यक्ति का उद्यम । अपने सभी प्रयत्नों को निष्फल होते देखकर इन्द्र तुरन्त

जग्राहामोघकुलिशं दधीच्यस्थिविनिर्मितम् । दृष्ट्वा तं वज्रहस्तं च जहास मधुसूदनः ॥१६९॥
सहस्तं स्तम्भयामास वज्रमेवातिदारुणम् । सहामरगणं मेघं चकार स्तम्भनं विभुः ॥१७०॥
सर्वे तस्थुर्निश्चलास्ते भित्तौ पुत्तलिका यथा । हरिणा जृम्भितः शक्रः सद्यस्तन्द्रामवाप ह ॥१७१॥
ददर्श सर्वं तन्द्रायां तत्र कृष्णमयं जगत् । द्विभुजं मुरलीहस्तं रत्नालंकारभूषितम् ॥१७२॥
पीतवस्त्रपरीधानं रत्नसिंहासनस्थितम् । ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारकम् ॥१७३॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गमेतत्सर्वं चराचरम् । दृष्ट्वाऽद्भुततमं तत्र सद्यो मूर्च्छामवाप ह ॥१७४॥
जजाप मन्त्रं तत्रैव प्रदत्तं गुरुणा पुरा । सहस्रदलपद्मस्थं ददर्श ज्योतिरुल्बणम् ॥१७५॥
तत्रान्तरे दिव्यरूपमतीव सुमनोहरम् । नवीनजलदोत्कर्षं श्यामसुन्दरविग्रहम् ॥१७६॥
सद्रत्नसारनिर्माणज्वलन्मकरकुण्डलम् । ज्वलन्मणीन्द्रमकरकिरीटोज्ज्वलशेखरम् ॥१७७॥
ज्वलता कौस्तुभेन्द्रेणकण्ठवक्षःस्थलोज्ज्वलम् । मणिकेयूरवलयमणिमञ्जीररञ्जितम् ॥
अन्तर्बहिः समं दृष्ट्वा तुष्टाव परमेश्वरम् ॥१७८॥

## इन्द्र उवाच

अक्षरं परमं ब्रह्म ज्योतीरूपं सनातनम् । गुणातीतं निराकारं स्वेच्छामयमनन्तकम् ॥१७९॥

---

क्रुद्ध हो गये ॥१६८॥ दधीचि की अस्थि से बना हुआ अमोघ वज्र हाथ में उठा लिया । इन्द्र को हाथ में वज्र लिये देखकर मधुसूदन हँसने लगे ॥१६९॥ उन्होंने इन्द्र के हाथ समेत अति भीषण वज्र को ही स्तम्भित कर दिया । इतना ही नहीं, प्रभु ने देवों सहित मेघ का भी स्तम्भन कर दिया, जिससे वे सब दीवाल में चित्रित पुतलियों की भाँति एकदम निश्चल खड़े हो गये । भगवान् के द्वारा स्तम्भित होने पर इन्द्र को तुरन्त तन्द्रा आ गयी ॥१७०-१७१॥ उन्होंने तन्द्रा में समस्त जगत् को श्रीकृष्णमय देखा । सब-के-सब भुजाओंवाले, हाथ में मुरली लिये, रत्नों के अलंकारों से भूषित, पीताम्बर पहने, रत्नसिंहासन पर स्थित, मन्दहास समेत प्रसन्नमुख, भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए कातर और चन्दन-चर्चित सर्वांग थे । समस्त चराचर जगत् को इस परम अद्भुतरूप में देखकर इन्द्र को उसी समय मूर्च्छा आ गयी ॥१७२-१७४॥ वे पूर्वकाल में गुरु द्वारा प्रदत्त मंत्र का वहीं जप करने लगे । उस समय उन्होंने सहस्र दलवाले कमल पर विराजमान उग्र ज्योतिःपुञ्ज देखा ॥१७५॥ उसके बीच में अति मनोहर एवं अति दिव्यरूपधारी, नवीन मेघ के समान उत्कृष्ट श्याम सुन्दर शरीरवाले, उत्तम रत्नों के सारभाग के बने मकराकृति कुण्डलों से अलंकृत, प्रदीप्त मणीन्द्र के मकराकृति मुकुट से उद्भासित शिरोभागवाले, जाज्वल्यमान उत्तम कौस्तुभमणि से समुज्ज्वल कण्ठ और वक्षःस्थलवाले, मणि के केयूर, कङ्कण और नूपुर से सुशोभित और बाहर-भीतर समान रूपवाले परमेश्वर को देखकर उन्होंने स्तुति की ॥१७६-१७८॥

**इन्द्र बोले**—आप अविनाशी, परं ब्रह्म, ज्योतिःस्वरूप, सनातन, गुणों से रहित, निराकार, स्वेच्छामय,

---

१. क० मणीन्द्रसारनिकरकिं ।

भक्तध्यानाय सेवायै नानारूपधरं वरम्। शुक्लरक्तपीतश्यामं युगानुक्रमणेन च ॥१८०॥
शुक्लतेजःस्वरूपं च सत्ये सत्यस्वरूपिणम्। त्रेतायां कुङ्कुमाकारं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ॥१८१॥
द्वापरे पीतवर्णं च शोभितं पीतवाससा। कृष्णवर्णं कलौ कृष्णं परिपूर्णतमं प्रभुम् ॥१८२॥
नवधाराधरोत्कृष्टश्यामसुन्दरविग्रहम्। नन्दैकनन्दनं वन्दे यशोदानन्दनं प्रभुम् ॥१८३॥
गोपिकाचेतनहरं राधाप्राणाधिकं परम्। विनोदमुरलीशब्दं कुर्वन्तं कौतुकेन च ॥१८४॥
रूपेणाप्रतिमेनैव रत्नभूषणभूषितम्। कन्दर्पकोटिसौन्दर्यं बिभ्रतं शान्तमीश्वरम् ॥१८५॥
क्रीडन्तं राधया सार्धं वृन्दारण्ये च कुत्रचित्। कुत्रचिन्निर्जनेऽरण्ये राधावक्षःस्थलस्थितम् ॥१८६॥
जलक्रीडां प्रकुर्वन्तं राधया सह कुत्रचित्। राधिकाकबरीभारं कुर्वन्तं कुत्रचिद्वने ॥१८७॥
कुत्रचिद्राधिकापादे दत्तवन्तमलक्तकम्। राधाचर्विततताम्बूलं गृह्णन्तं कुत्रचिन्मुदा ॥१८८॥
पश्यन्तं कुत्रचिद्राधां पश्यन्तीं वक्रचक्षुषा। दत्तवन्तं च राधायै कृत्वा मालां च कुत्रचित् ॥१८९॥
कुत्रचिद्राधया सार्धं गच्छन्तं रासमण्डलम्। राधादत्तां गले मालां धृतवन्तं च कुत्रचित् ॥१९०॥
सार्धं गोपालिकाभिश्च विहरन्तं च कुत्रचित्। राधां गृहीत्वा गच्छन्तं विहाय तां च कुत्रचित् ॥१९१॥
विप्रपत्नीदत्तमन्नं भुक्तवन्तं च कुत्रचित्। भुक्तवन्तं तालफलं बालकैः सह कुत्रचित् ॥१९२॥

---

अनन्त, भक्तों के ध्यान और सेवा के लिए अनेक रूप धारण करनेवाले तथा युग के अनुक्रम से शुक्ल, रक्त, पीत और श्यामवर्णवाले हैं ॥१७९-१८०॥ सत्ययुग में शुक्ल तेजःस्वरूप और सत्यस्वरूप, त्रेता में ब्रह्मतेज से प्रज्वलित कुंकुम के समान, द्वापर में पीतवर्ण और पीताम्बर से सुशोभित तथा कलियुग में कृष्णवर्ण होकर कृष्ण नाम धारण करते हैं। इन सब रूपों में आप एक ही परिपूर्णतम परमात्मा हैं ॥१८१-१८२॥ आपका श्रीविग्रह नूतन जलधर के समान अत्यन्त श्याम एवं सुन्दर है। नन्दनन्दन यशोदाकुमार प्रभु की मैं वन्दना करता हूँ ॥१८३॥ आप गोपियों का चित्त चुरानेवाले हैं, तथा राधा के लिए प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं। आप कौतूहलवश विनोद के लिए मुरली की ध्वनि का विस्तार करते रहते हैं ॥१८४॥ आपका रूप अप्रतिम है। आप रत्नों के भूषणों से भूषित, करोड़ों काम से (अधिक) सुन्दर, शान्त, ईश्वर, वृन्दावन से कहीं राधा के साथ क्रीड़ा करनेवाले, कहीं निर्जन वन में राधा के वक्षःस्थल पर स्थित रहनेवाले, कहीं राधा के साथ जलक्रीड़ा करनेवाले, कहीं वन में राधिका का केशपाश सँवारनेवाले, कहीं वन में राधिका के चरणों में अलक्तक (महावर) लगानेवाले, और कहीं राधा के चबाये हुए पान को प्रसन्नता से ग्रहण करनेवाले हैं ॥१८५-१८८॥ कहीं कटाक्षों से देखनेवाली राधा को देख रहे हैं, कहीं अपने हाथों से माला बनाकर राधा को दे रहे हैं ॥१८९॥ कहीं राधा के साथ रास-मण्डल में जाते हैं, कहीं राधाप्रदत्त माला को पहन रहे हैं ॥१९०॥ कहीं गोपियों के साथ विहार करते हैं, कहीं राधा को साथ लेकर चल देते हैं और कहीं उन्हें छोड़कर अकेले चल पड़ते हैं ॥१९१॥ कहीं ब्राह्मण-पत्नियों द्वारा दिये गये अन्न को खाते हैं, कहीं बालकों के साथ ताड़-फल खाते हैं ॥१९२॥ कहीं हर्ष से गोपियों

वस्त्रं गोपालिकानां च हरन्तं कुत्रचिन्मुदा। गवां गणं व्याहरन्तं कुत्रचिद्बालकैः सह ॥१९३॥
कालीयमूर्ध्नि पादाब्जं दत्तवन्तं च कुत्रचित्। विनोदमुरलीशब्दं कुर्वन्तं कुत्रचिन्मुदा ॥१९४॥
गायन्तं रम्यसंगीतं कुत्रचिद्बालकैः सह। स्तुत्वा शक्रः स्तवेन्द्रेण प्रणनाम हरिं भिया ॥१९५॥
पुरा दत्तेन गुरुणा रणे वृत्रासुरेण च। कृष्णेन दत्तं कृपया ब्रह्मणे च तपस्यते ॥१९६॥
एकादशाक्षरो मन्त्रः कवचं सर्वलक्षणम्। दत्तमेतत्कुमाराय पुष्करे ब्रह्मणा पुरा ॥१९७॥
कुमारोऽङ्गिरसे दत्तं गुरवेऽङ्गिरसा मुने ॥१९८॥
इदमिन्द्रकृतं स्तोत्रं नित्यं भक्त्या च यः पठेत्। स हि प्राप्य दृढां भक्तिमन्ते दास्यं लभेद्ध्रुवम् ॥१९९॥
जन्ममृत्युजराव्याधिशोकेभ्यो मुच्यते नरः। न हि पश्यति स्वप्नेऽपि यमदूतं यमालयम् ॥२००॥

## नारायण उवाच

इन्द्रस्य वचनं श्रुत्वा प्रसन्नः श्रीनिकेतनः। प्रीत्या तस्मै वरं दत्त्वा स्थापयामास पर्वतम् ॥२०१॥
प्रणम्य च हरिं शक्रः प्रययौ स्वगणैः सह। गह्वरस्था जनाः सर्वे प्रजग्मुर्गह्वराद्गृहम् ॥२०२॥
ते सर्वे मेनिरे कृष्णं परिपूर्णतमं विभुम्। पुरस्कृत्य व्रजस्थांश्च प्रययौ स्वालयं हरिः ॥२०३॥
तुष्टाव नन्दः पुत्रं तं पूर्णब्रह्म सनातनम्। पुलकाञ्चितसर्वाङ्गो भक्तिपूर्णाश्रुलोचनः ॥२०४॥

---

के वस्त्रों को चुरा लेते हैं, कहीं बालकों के साथ गौओं को बुलाते हैं ॥१९३॥ कहीं कालिय नाग के सिर पर चरण-कमल रखते हैं, कहीं प्रसन्नता से विनोद भरी मुरली बजाते हैं और कहीं बालकों के साथ सुन्दर गीत गाते हैं। इस प्रकार उत्तम स्तोत्र द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति करके भय से प्रणाम किया ॥१९४-१९५॥ पूर्वकाल में वृत्रासुर के साथ युद्ध के समय बृहस्पति ने इन्द्र को यह स्तोत्र दिया था। सबसे पहले श्रीकृष्ण ने तपस्या करते हुए ब्रह्मा को कृपापूर्वक एकादशाक्षर मन्त्र, सब लक्षणों से युक्त कवच और यह स्तोत्र दिया था। फिर ब्रह्मा ने पुष्कर में कुमार को, कुमार ने अंगिरा को और अंगिरा ने बृहस्पति को इसका उपदेश दिया था ॥१९६-१९८॥ अतः इस इन्द्र कृत स्तोत्र का जो भक्तिपूर्वक नित्य पाठ करता है, उसे दृढ़ भक्ति एवं अन्त में भगवान् का दास्यपद अवश्य प्राप्त होता है। वह मनुष्य जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि एवं शोक से मुक्त हो जाता है। वह स्वप्न में भी कभी यमदूत और यमपुरी का दर्शन नहीं करता है ॥१९९-२००॥

**नारायण बोले**—इन्द्र का वचन सुनकर भगवान् लक्ष्मीनिवास प्रसन्न हो गये। उन्होंने प्रेम से इन्द्र को वर देकर पर्वत को स्थापित कर दिया ॥२०१॥ श्रीकृष्ण को प्रणाम करके इन्द्र अपने गणों के साथ चले गये। तत्पश्चात् पर्वत के कन्दरे से निकलकर सभी लोग अपने घर को गये ॥२०२॥ सबने कृष्ण को परिपूर्णतम परमात्मा समझा। भगवान् भी व्रजनिवासियों को आगे करके अपने घर गये। नन्द के सर्वाङ्ग में रोमांच और भक्ति से आँखों में जल भर आया। उन्होंने हर्ष-विभोर होकर पूर्ण ब्रह्म एवं सनातन रूप अपने पुत्र की स्तुति की ॥२०३-२०४॥

**नन्द उवाच**

नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च । जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः ॥२०५॥
नमो ब्रह्मण्यदेवाय ब्रह्मणे परमात्मने । अनन्तकोटिब्रह्माण्डधामधाम्ने नमोऽस्तु ते ॥२०६॥
नमो वत्सादिरूपाणां जीवरूपाय साक्षिणे । निर्लिप्ताय निर्गुणाय निराकाराय ते नमः ॥२०७॥
अतिसूक्ष्मस्वरूपाय स्थूलात्स्थूलतमाय च । सर्वेश्वराय सर्वाय तेजोरूप नमोऽस्तु ते ॥२०८॥
अतिप्रत्यक्षरूपाय ध्यानासाध्याय योगिनाम् । ब्रह्मविष्णुमहेशानां वन्द्याय नित्यरूपिणे ॥२०९॥
धाम्ने चतुर्णां वर्णानां युगेष्वेव चतुर्षु च । शुक्लरक्तपीतश्यामाभिधानगुणशालिने ॥२१०॥
योगिने योगरूपाय गुरवे योगिनामपि । सिद्धेश्वराय सिद्धाय सिद्धानां गुरवे नमः ॥२११॥
यं स्तोतुमक्षमो ब्रह्मा विष्णुर्यं स्तोतुमक्षमः । यं स्तोतुमक्षमो रुद्रः शेषो यं स्तोतुमक्षमः ॥२१२॥
यं स्तोतुमक्षमो धर्मो यं स्तोतुमक्षमो रविः । यं स्तोतुमक्षमो लम्बोदरश्चापि षडाननः ॥२१३॥
यं स्तोतुमक्षमाः सर्वे[1] मुनयः सनकादयः । कपिलो न क्षमः स्तोतुं सिद्धेन्द्राणां गुरोर्गुरुः ॥२१४॥
न शक्तौ स्तवनं कर्तुं नरनारायणावृषी । अन्ये जडधियः के वा स्तोतुं शक्ताः परात्परम् ॥२१५॥
वेदा न शक्ता नो वाणी न च लक्ष्मीः सरस्वती । न राधा स्तवने शक्ता किं स्तुवन्ति विपश्चितः ॥२१६॥

---

**नन्द बोले**—ब्राह्मणों के हितकारी, गौ और ब्राह्मण के हितैषी तथा संसार का भला चाहनेवाले कृष्ण गोविन्द को बार-बार नमस्कार है ॥२०५॥ ब्राह्मणों का प्रिय करनेवाले, ब्रह्मस्वरूप, परमात्मा तथा अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड धामों के भी धाम रूप आपको नमस्कार है ॥२०६॥ वत्स आदि रूपों के जीवरूप, साक्षी, निर्लिप्त, निर्गुण और निराकार रूप आपको नमस्कार है ॥२०७॥ अतिसूक्ष्मस्वरूप स्थूल से भी अत्यन्त स्थूल, सर्वाधीश्वर, समस्त रूप एवं तेजोरूप आपको नमस्कार है ॥२०८॥ अतिप्रत्यक्षरूप, योगियों के ध्यान में भी असाध्य, ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर के वन्द्य, नित्यरूप, चारों युगों में वर्णों के धामस्वरूप, शुक्ल, रक्त, पीत, श्याम नामक गुण से शोभित, योगीरूप, योगस्वरूप, योगियों के भी गुरु, सिद्धेश्वर, सिद्धरूप और सिद्धों के गुरु आपको नमस्कार है ॥२०९-२११॥ जिनकी स्तुति करने में ब्रह्मा और विष्णु भी समर्थ नहीं हैं, जिनकी स्तुति करने में रुद्र, शेष, धर्म, सूर्य, गणेश, कार्तिकेय और समस्त सनकादि मुनिगण असमर्थ रहते हैं जिनकी स्तुति करने में सिद्धेन्द्रों के गुरु के गुरु कपिल समर्थ नहीं हैं और नर-नारायण ऋषि भी जिनकी स्तुति करने में समर्थ नहीं हैं, उन परात्पर की स्तुति करने में दूसरे जड़बुद्धि कौन समर्थ हो सकते है ? ॥२१२-२१५॥ जिनकी स्तुति करने में वेद, वाणी, लक्ष्मी, सरस्वती एवं स्वयं राधा भी असमर्थ हैं, उनकी स्तुति विद्वान् लोग क्या करेंगे ? ॥२१६॥

---

१ क. ब्रह्मऋषयः ।

क्षमस्व निखिलं ब्रह्मन्नपराधं क्षणे क्षणे । रक्ष मां करुणासिन्धो दीनबन्धो भवार्णवे ॥२१७॥
पुरा तीर्थे तपस्तप्त्वा पुत्रः प्राप्तः सनातनः । स्वकीयचरणाम्भोजे भक्तिं दास्यं च देहि मे ॥२१८॥
ब्रह्मत्वममरत्वं वा सालोक्यादिकमेव वा । त्वत्पदाम्भोजदास्यस्य कलां नार्हति षोडशीम् ॥२१९॥
इन्द्रत्वं वा सुरत्वं वा संप्राप्तिं सिद्धिस्वर्गयोः । राजत्वं चिरजीवित्वं सुधियो गणयन्ति किम् ॥२२०॥
एतद्यत्कथितं सर्वं ब्रह्मत्वादिकमीश्वरः । भक्तसङ्गक्षणार्धस्य नोपमा ते किमर्हति ॥२२१॥
त्वद्भक्तो यस्त्वत्सदृशः कस्त्वां तर्कितुमीश्वरः । क्षणार्धलापमात्रेण पारं कर्तुं स चेश्वरः ॥२२२॥
भक्तसङ्गाद्भवत्येव भक्तिं कर्तुमनेकधा । त्वद्भक्तजलदालापजलसेकेन वर्धते ॥२२३॥
अभक्तालापतापात्तु शुष्कतां याति तत्क्षणम् । त्वद्गुणस्मृतिसेकाच्च वर्धते तत्क्षणे स्फुटम् ॥२२४॥
त्वद्भक्त्यङ्कुरमुद्भूतं स्फीतं मानसजं परम् । न नश्यं वर्धनीयं च नित्यं नित्यं क्षणे क्षणे ॥२२५॥
ततः संप्राप्य ब्रह्मत्वं[1] भक्तस्य जीवनाय च । ददात्येव फलं तस्मै हरिदास्यमनुत्तमम् ॥२२६॥
संप्राप्य दुर्लभं दास्यं यदि दासो बभूव ह । सुनिश्चयेन तेनैव जितं सर्वं भयादिकम् ॥२२७॥

---

हे ब्रह्मन् ! मुझसे क्षण-क्षण में जो अपराध बन रहा है, उसको आप क्षमा करें। करुणासिन्धो ! दीनबन्धो ! संसार-सागर में मेरी रक्षा करें। पूर्वकाल में मैंने तीर्थ में तप करके आप सनातन को पुत्ररूप में प्राप्त किया है। मुझे अपने चरण-कमल की भक्ति और दास्य प्रदान करें ॥२१७-२१९॥ ब्रह्मत्व, अमरत्व एवं सालोक्य आदि मुक्ति भी आपके चरण-कमल के दास्यपद की सोलहवीं कला के भी समान नहीं है। फिर इन्द्रत्व, देवत्व या सिद्धि तथा स्वर्ग की प्राप्ति एवं राजत्व और चिरजीवित्व की गणना विद्वान् लोग क्या करें ? ॥२२०॥ यह ब्रह्मत्वादिक आदि जो कुछ मैंने कहा है, वह सब (आपके) भक्त के साथ सत्संग होने के क्षणार्ध मात्र के भी समान नहीं है ॥२२१॥ क्योंकि जो आपका भक्त है, वह भी आपके समान हो जाता है। फिर आपके महत्त्व का अनुमान कौन लगा सकता है ? आपके भक्त के साथ क्षण के आधे समय तक भी वार्तालाप करना मनुष्य को भवसागर से पार कर देता है ॥२२२॥ आपके भक्तों के संग से भक्ति का विविध अंकुर अवश्य उत्पन्न होता है। आपके हरिभक्त रूप मेघों के द्वारा की गयी वार्तालाप रूपी जल की वर्षा से सींचा जाकर भक्ति का वह अंकुर बढ़ता है ॥२२३॥ जो भगवान् के भक्त नहीं हैं, उनके आलापरूपी ताप से वह अंकुर तत्काल सूख जाता है और भक्त एवं भगवान् के गुणों की स्मृतिरूपी जल से सींचने पर वह उसी क्षण स्पष्ट रूप से बढ़ने लगता है ॥२२४॥ मन में उत्पन्न आपकी भक्ति का अंकुर जब प्रकट होकर भली-भाँति बढ़ जाता है, तब वह नष्ट नहीं होता। उसे प्रतिदिन और प्रतिक्षण बढ़ाते रहना चाहिए ॥२२५॥ तदनन्तर उस भक्त को ब्रह्मपद की प्राप्ति कराकर भी उसके जीवन के लिए भगवान् उसे अवश्य ही परम उत्तम दास्यरूप फल प्रदान करते हैं ॥२२६॥ यदि कोई दुर्लभ दास्यभाव को पाकर भगवान् का दास हो

---

१ क. वृक्षत्वं ।

इत्येवमुक्त्वा भक्त्या च नन्दस्तस्थौ हरेः पुरः । प्रसन्नवदनः कृष्णो ददौ तस्मै तदीप्सितम् ॥२२८॥
एवं नन्दकृतं स्तोत्रं नित्यं भक्त्या च यः पठेत् । सुदृढां भक्तिमाप्नोति सद्यो दास्यं लभेद्धरेः ॥२२९॥
तपस्तप्त्वा यदा द्रोणस्तीर्थे च धरया सह । स्तोत्रं तस्मै पुरा दत्तं ब्रह्मणा तत्सुदुर्लभम् ॥२३०॥
हरेः षडक्षरो मन्त्रः कवचं सर्वरक्षणम् । इह सौभरिणा दत्तं तस्मै तुष्टेन पुष्करे ॥२३१॥
तदेव कवचं स्तोत्रं स च मन्त्रः सुदुर्लभः । ब्रह्मणोंऽशेन मुनिना नन्दाय च तपस्यते ॥२३२॥
मन्त्रः स्तोत्रं च कवचमिष्टदेवो गुरुस्तथा । या यस्य विद्या प्राचीना न तां त्यजति निश्चितम् ॥२३३॥
इत्येवं कथितं स्तोत्रं श्रीकृष्णाख्यानमद्भुतम् । सुखदं मोक्षदं सारं भवबन्धविमोचनम् ॥२३४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० इन्द्रयागभञ्जननन्द-
स्तोत्रप्रस्तावैकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

## अथ द्वाविंशोऽध्यायः

**नारायण उवाच**

एकदा राधिकानाथो बलेन सह बालकैः । जगाम तत्तालवनं परिपक्वफलान्वितम् ॥१॥

---

गया तो निश्चय ही उसी ने समस्त भय आदि को जीता है ॥२२७॥ भक्तिपूर्वक इतना कहकर नन्द भगवान् के सामने भक्तिभाव से खड़े हो गये। तब प्रसन्नमुख श्रीकृष्ण ने उन्हें उनका अभीष्ट वर प्रदान किया ॥२२८॥ इस प्रकार नन्द द्वारा किये गये स्तोत्र का जो भक्तिपूर्वक नित्य पाठ करता है, वह दृढ़ भक्ति समेत भगवान् का दास्यपद शीघ्र प्राप्त कर लेता है ॥२२९॥ पूर्वकाल में (पुष्कर) तीर्थ में धरा के साथ द्रोण तप कर रहे थे, उसी समय ब्रह्मा ने उन्हें यह अति दुर्लभ स्तोत्र प्रदान किया था। इस लोक में सौभरि ऋषि ने अति प्रसन्न होकर ब्रह्मा को हरि का षडक्षर मंत्र तथा सर्वरक्षण कवच प्रदान किया था। वही कवच, वही स्तोत्र और वही अत्यन्त दुर्लभ मंत्र ब्रह्मा के अंशभूत गर्ग मुनि ने तपस्या में लगे हुए नन्द को दिया था। पूर्वकाल में जिसके लिए जो मंत्र, स्तोत्र, कवच, इष्टदेव, गुरु और विद्या प्राप्त होती है, वह पुरुष उस मंत्र आदि तथा विद्या को निश्चय ही नहीं छोड़ता है। इस प्रकार श्रीकृष्ण का अद्भुत आख्यान और स्तोत्र कहा गया, जो सुखद, मोक्षदायक, सार-भूत और संसार-बन्धन से मुक्ति दिलानेवाला है ॥२३०-२३४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में इन्द्रयागभञ्जन नामक इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२१॥

## अध्याय २२

### धेनुकवधवर्णन

**नारायण बोले**—एक बार राधिकानाथ श्रीकृष्ण बलभद्र और बालकों को साथ लिये उस तालवन

वृक्षाणां रक्षिता दैत्यः खररूपी च धेनुकः । कोटिसिंहसमबलो देवानां दर्पनाशनः ॥२॥
शरीरं पर्वतसमं कूपतुल्ये च लोचने । ईषापङ्क्तिसमा दन्तास्तुण्डं पर्वतगह्वरम् ॥३॥
शतहस्तपरिमिता जिह्वा लोला भयानका । कासारसदृशी नाभिः शब्दस्तस्य भयानकः ॥४॥
दृष्ट्वा तालवनं बाला हर्षमापुरनिन्दिताः । कौतुकात्कृष्णमूचुस्ते स्मेराननसरोरुहाः ॥५॥

बाला ऊचुः

हे कृष्ण करुणासिन्धो दीनबन्धो जगत्पते । महाबल बलभ्रातः समस्तबलिनां वर ॥६॥
अवधानं कुरु विभो क्षणार्धं नो निवेदने । क्षुधितानां शिशूनां च भक्तानां भक्तवत्सल ॥७॥
स्वादूनि सुन्दराण्येव पश्य तालफलानि च । भङ्क्तुं चालयितुं वृक्षान्पातितुं च फलानि च ॥८॥
नानावर्णानि पुष्पाणि पक्वानि दुर्लभानि च । आज्ञां करोषि चेत्कृष्ण चेष्टां कर्तुं वयं क्षमाः ॥९॥
किं त्वत्र दैत्यो बलवान्खररूपी च धेनुकः । अजितस्त्रिदशैः सर्वैर्महाबलपराक्रमः ॥१०॥
दुर्निवार्यश्च सर्वेषां कंसस्य सचिवो महान् । हिंसकः सर्वजन्तूनां वनानामस्ति रक्षिता ॥११॥
सुविचार्य जगत्कान्त वद नो वदतां वर । युक्तं कार्यमयुक्तं वा कर्तव्यमथवा न वा ॥१२॥
बालकानां वचः श्रुत्वा भगवान्मधुसूदनः । उवाच मधुरं बालान्वचनं तत्सुखावहम् ॥१३॥

---

गये, जो पके फलों से भरा पड़ा था ॥१॥ वहाँ उन वृक्षों की रक्षा के लिए गधे के रूप में धेनुकासुर रहता था, जो करोड़ों सिंहों के समान बली एवं देवों का दर्प दलन करनेवाला था ॥२॥ उसका शरीर पर्वत के समान और दोनों नेत्र कूप के समान थे । उसके दाँत हरिस की पाँत के समान और मुख पर्वत की कन्दरा के सदृश था । उसकी चंचल एवं भयानक जिह्वा सौ हाथ लम्बी थी । नाभि तालाब की भाँति जान पड़ती थी । उसका शब्द भयानक होता था ॥३-४॥ उन तालवन को देखकर बालकों को बड़ा हर्ष हुआ । उनके मुखारविन्द पर मुस्कराहट छा गयी । वे कौतुकवश श्रीकृष्ण से बोले ॥५॥

**बालकों ने कहा**——हे कृष्ण ! करुणासिन्धो ! दीनबन्धो ! जगत्पते ! महाबली ! बलभद्र के भ्राता ! एवं समस्त बलवानों में श्रेष्ठ ! विभो ! आधे क्षण के लिए हमारे निवेदन पर ध्यान दें । भक्तवत्सल ! आपके भक्त शिशुगण क्षुधा से पीड़ित हो रहे हैं ॥६-७॥ (सामने इन) स्वादिष्ट एवं सुन्दर तालफलों को देखिये । हम इन फलों को तोड़ने के लिए वृक्षों को हिलाना और नाना रंगों के फूलों तथा दुर्लभ पके फलों को गिराना चाहते हैं । श्रीकृष्ण ! यदि आज्ञा दें तो हम ऐसी चेष्टा कर सकते हैं ॥८-९॥ किन्तु महाबली धेनुक दैत्य गधा बनकर इसके रक्षार्थ रह रहा है जो समस्त देवों से भी अजेय, महाबलपराक्रमी, सभी के लिए दुर्निवार (न रोकने योग्य) कंस का महामंत्री एवं समस्त जन्तुओं का हिंसक है ॥१०-११॥ हे जगत्पते ! वक्ताओं में श्रेष्ठ ! आप भलीभाँति विचारकर हमसे कहिये । यह कार्य उचित है या अनुचित ? (हमें) करना चाहिए अथवा नहीं करना चाहिए ? ॥१२॥ बालकों की बात सुनकर भगवान् मधुसूदन ने बालकों से मधुर एवं सुखद वचन कहा ॥१३॥

### श्रीकृष्ण उवाच

किं वो दैत्याद्भयं बाला यूयं मत्सहचारिणः। वृक्षान्भङ्क्त्वा चालयित्वा फलानि खादताभयम् ॥१४॥
श्रीकृष्णाज्ञां समादाय बालका बलशालिनः। उत्पेतुर्वृक्षशिखरं क्षुधितांश्च फलार्थिनः ॥१५॥
नानाप्रकारवर्णानि स्वादूनि सुन्दराणि च। फलानि पातयामासुः परिपक्वानि नारद ॥१६॥
केचिद्बभञ्जुर्वृक्षांश्च चालयामासुरेव च। केचित्कोलाहलं चक्रुर्ननृतुस्तत्र केचन ॥१७॥
अवरुह्य तरुभ्यश्च बालका बलशालिनः। फलान्यादाय गच्छन्तो ददृशुर्दैत्यपुंगवम् ॥१८॥
महाबलं महाकायं घोरं गर्दभरूपिणम्। आगच्छन्तं महावेगात्कुर्वन्तं शब्दमुल्वणम् ॥१९॥
तं दृष्ट्वा रुरुदुः सर्वे फलानि तत्यजुर्भिया। कृष्ण कृष्णेति शब्दं च प्रचक्रुर्बहुधा भृशम् ॥२०॥
अस्मान्रक्ष समागच्छ हे कृष्ण करुणानिधे। हे संकर्षण नो रक्ष प्राणा नो यान्ति दानवात् ॥२१॥

हे कृष्ण हे कृष्ण हरे मुरारे गोविन्द दामोदर दीनबन्धो।
गोपीश गोपेश भवार्णवेऽस्माननन्त नारायण रक्ष रक्ष ॥२२॥
भयेऽभये वाऽथ शुभेऽशुभे वा सुखेषु दुःखेषु च दीननाथ।
त्वया विनाऽन्यं शरणं भवार्णवे न नोऽस्ति हे माधव रक्ष रक्ष ॥२३॥

---

**श्रीकृष्ण बोले**—बालको ! तुम लोग हमारे साथ के रहनेवाले हो, तुम्हें दैत्य से क्या भय है ? जाओ, वृक्षों को हिलाकर, तोड़-ताड़कर बेखटके फल खाओ ॥१४॥ श्रीकृष्ण की आज्ञा पाकर वे बलशाली बालक क्षुधित होने के कारण फलों के लिए वृक्षों के ऊपरी भाग पर चढ़ गये ॥१५॥ नारद ! अनेक प्रकार के स्वादु, सुन्दर और पके फलों को तोड़कर गिराने लगे ॥१६॥ कुछ बालकों ने वृक्षों को तोड़ दिया, कितनों ने उन्हें खूब झकझोरा, कोई कोलाहल (शोर) करने लगे और कोई नाचने लगे ॥१७॥ जब बलशाली बालक वृक्षों से उतर-कर फलों को लेकर चलने लगे तब उन्होंने गर्दभरूपधारी, महाबली, महाकाय एवं भयानक शब्द करते हुए दैत्यराज को बड़े वेग से आते हुए देखा ॥१८-१९॥ उसे देखते ही सभी बालक रोदन करने लगे, भय के कारण फलों को छोड़ दिया और बार-बार कृष्ण ! कृष्ण ! कहकर चिल्लाने लगे ॥२०॥ हे कृष्ण ! हे करुणानिधे ! शीघ्र आओ, हमें बचाओ। हे सङ्कर्षण ! हमारी रक्षा करो, अन्यथा दानव द्वारा हमारे प्राण जा रहे हैं ॥२१॥ हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हरे, मुरारे, गोविन्द, दामोदर, दीनबन्धो, गोपीश, गोपेश, अनन्त, नारायण ! इस संसार-सागर में हमारी रक्षा करो, रक्षा करो ॥२२॥ हे दीननाथ ! हे माधव ! भय-अभय में अथवा शुभ-अशुभ में अथवा सुख-दुःख में तुम्हारे सिवा दूसरा कोई हमें शरण देनेवाला नहीं है, अतः इस संसार-सागर में हमें बचाओ, बचाओ

जय जय गुणसिन्धो कृष्ण भक्तैकबन्धो बहुतरभययुक्तान्बालकान्रक्ष रक्ष
जहि दनुजकुलानामीशमस्माकमन्तं सुरकुलबलदर्पं वर्धयेमं निहत्य ॥२४॥
बालानां विक्लवं दृष्ट्वा बलेन सह माधवः। आजगाम शिशुस्थानं भयहा भक्तवत्सलः ॥२५॥
भयं नास्ति भयं नास्तीत्युक्त्वा दुद्राव सत्वरम्। ईषद्धास्यप्रसन्नास्यो निर्भयं दत्तवाञ्छिशून् ॥२६॥
दृष्ट्वा कृष्णं बलं बाला ननृतुर्विजहुर्भयम्। हरिस्मृतिश्चाभयदा सर्वमङ्गलदायिका ॥२७॥
श्रीकृष्णो दानवं दृष्ट्वा ग्रसन्तं पुरतः शिशून्। बलं संबोध्य बलिनमुवाच मधुसूदनः ॥२८॥

### श्रीकृष्ण उवाच

दानवो बलिपुत्रोऽयं नाम्ना साहसिको बली। गर्दभो ब्रह्मशापेन शप्तो दुर्वाससा पुरा ॥२९॥
पापिष्ठो मम वध्योऽयं महाबलपराक्रमः। अहमेनं वधिष्यामि त्वं रक्ष बालकान्बल ॥३०॥
आदाय बालकान्सर्वान्दूरं गच्छेत्युवाच ह। तान्गृहीत्वा बलः शीघ्रं जगाम त्वरयाऽऽज्ञया ॥३१॥
दृष्ट्वा कृष्णं दानवेन्द्रो महाबलपराक्रमः। जग्रास लीलया कोपाज्ज्वलदग्निशिखोपमम् ॥३२॥
बभूवातिदाहयुक्तो मर्तुकामोऽतितेजसा। उज्जग्रास[1] पुनर्दैत्यो विभुं तेजस्विनं भिया ॥३३॥

---

॥२३॥ हे गुणसिन्धो ! हे कृष्ण ! आपकी जय हो, आप भक्तों के एकमात्र बन्धु हैं, अतः अत्यन्त भयभीत हम बालकों की रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। यह दानवकुल का स्वामी हमारा काल है। इसको मारकर आप देवताओं का बलाभिमान बढ़ाइये ॥२४॥ बालकों को व्याकुल देखकर भयहारी एवं भक्तवत्सल कृष्ण बलभद्र को साथ लिये बच्चों के समीप आ पहुँचे ॥२५॥ मन्दहास करते हुए शीघ्रतापूर्वक उनके पास दौड़े आये, और मन्द मुसकान से युक्त प्रसन्न मुख द्वारा उन्होंने उन बालकों को अभयदान दिया ॥२६॥ कृष्ण और बलभद्र को देखकर बालकों ने भय त्याग दिया। वे नृत्य करने लगे। क्योंकि भगवान् का स्मरण करना, अभयप्रद एवं सम्पूर्ण मङ्गलदायक होता है ॥२७॥ श्रीकृष्ण ने सामने बच्चों को ग्रसते हुए दैत्य को देखकर बली बलभद्र को सम्बोधित करके कहा ॥२८॥

**श्रीकृष्ण बोले**--यह साहसिक नामक बली दैत्य बलि का पुत्र है। पूर्वकाल में दुर्वासा ने इसे शाप दिया था। उस ब्रह्मशाप से यह गधा हुआ है ॥२९॥ हे बल ! यह बड़ा पापी महाबलपराक्रमी है। अतः मेरे द्वारा वध करने योग्य है। मैं इसका वध करूँगा। तुम इन बालकों की रक्षा करो ॥३०॥ सब बालकों को लेकर दूर चले जाओ। अनन्तर बलभद्र बालकों को लेकर श्रीकृष्ण की आज्ञा से शीघ्र ही दूर चले गये ॥३१॥ महाबल-पराक्रमी उस दानवेन्द्र ने कृष्ण को देखकर क्रोध से प्रज्वलित अग्नि की शिखा की भाँति उन्हें निगल लिया ॥३२॥ किन्तु उसके भीतर दाह होने लगा--अत्यन्त तेज के कारण जब वह मरने लगा, तो भयवश उन तेजस्वी एवं व्यापक भगवान् को दैत्य ने पुनः बाहर निकाल दिया ॥३३॥ भगवान् को निकालते हुए उसने उन्हें देखा, जो

---

१ क. °ग्राह। २ क. °ग्राह।

उज्झितं सन्तमीशं च दृष्ट्वा दैत्यो मुमोच ह। अतीव सुन्दरं शान्तं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ॥३४॥
कृष्णदर्शनमात्रेण बभूवास्य पुरास्मृतिः। आत्मानं बुबुधे कृष्णं जगतां कारणं परम् ॥३५॥
तेजःस्वरूपमीशं तं दृष्ट्वा तुष्टाव दानवः। यथागमं यथाजन्म गुणातीतं श्रुतेः परम् ॥३६॥

## दानव उवाच

वामनोऽसि त्वमंशेन मत्पितुर्यज्ञभिक्षुकः। राज्यहर्ता च श्रीहर्ता सुतलस्थलदायकः ॥३७॥
बलिभक्तिवशो वीरः सर्वेशो भक्तवत्सलः। शीघ्रं त्वं हिन्धि मां पापं शापाद्गर्दभरूपिणम् ॥३८॥
मुनेर्दुर्वाससः शापादीदृशं जन्म कुत्सितम्। मृत्युरुक्तश्च मुनिना त्वत्तो मम जगत्पते ॥३९॥
षोडशारेण चक्रेण सुतीक्ष्णेनातितेजसा। जहि मां जगतां नाथ सद्भक्ति[1] कुरु मोक्षद ॥४०॥
त्वमंशेन वराहश्च समुद्धर्तुं वसुंधराम्। वेदानां रक्षिता नाथ हिरण्याक्षनिषूदनः ॥४१॥
त्वं नृसिंहः स्वयं पूर्णो हिरण्यकशिपोर्वधे। प्रह्लादानुग्रहार्थाय[2] देवानां रक्षणाय च ॥४२॥
त्वं च वेदोद्धारकर्ता मीनांशेन दयानिधे। नृपस्य ज्ञानदानाय रक्षार्थं सुरविप्रयोः ॥४३॥
शेषाधारश्च कूर्मस्त्वमंशेन सृष्टिहेतवे। विश्वाधारश्च विश्वस्त्वमंशेनापि सहस्रधृत् ॥४४॥

---

अत्यन्त सुन्दर, शान्त और ब्रह्मतेज से प्रज्वलित थे। श्रीकृष्ण को देखते ही उसे पूर्वजन्म की स्मृति हो आयी। उसने अपने-आपको तथा जगत् के परम कारण श्रीकृष्ण को भी पहचान लिया। उस तेजःस्वरूप ईश्वर को देखकर शास्त्र के अनुसार श्रुति से परे गुणातीत प्रभु की जन्मानुसार स्तुति की ॥३४-३६॥

**दानव बोला**—आप अंश से वामनरूपधारी हैं, जो हमारे पिता के यज्ञ में भिक्षुक बने थे। उनके राज्य के अपहारी एवं श्री के हर्ता आपने उन्हें सुतल लोक प्रदान किया था ॥३७॥ आप बलि की भक्ति के अधीन, धीर, सर्वाधीश्वर और भक्तवत्सल हैं, अतः मुझ पापी के शापवश प्राप्त इस गधे के रूप को शीघ्र दूर करने की कृपा करें ॥३८॥ जगत्पते! दुर्वासा मुनि के शाप से मुझे इस प्रकार निन्दित जन्म प्राप्त हुआ है तथा उन्होंने मृत्यु भी आपही के हाथों बताया है ॥३९॥ हे जगत् के नाथ! हे मोक्षप्रद! आप अत्यन्त तीखे और अतिशय तेजस्वी षोडशार चक्र से मेरा हनन करके मुझे सद्भक्ति प्रदान करें ॥४०॥ हे नाथ! आपही ने अंशतः वराहावतार धारण करके इस पृथ्वी का उद्धार किया, वेदों की रक्षा की और हिरण्याक्ष का वध किया था ॥४१॥ आप पूर्ण परमात्मा स्वयं ही हिरण्यकशिपु के वध, प्रह्लाद पर कृपा और देवों की रक्षा के निमित्त नृसिंह रूप हुए थे ॥४२॥ हे दयानिधि! अपने अंश से मछली का रूप धारणकर आप ही ने वेदों का उद्धार किया था और राजा को ज्ञान देकर देवता एवं ब्राह्मणों की रक्षा की थी ॥४३॥ आप ही अपने अंश से सृष्टि के लिए शेष के आधारभूत कच्छप हुए थे। आप ही अंशतः शेष के रूप में प्रकट हुए हैं और सम्पूर्ण विश्व का भार वहन करते हैं ॥४४॥ जानकी के उद्धारार्थ आप

---

१ क. सद्‌गति। २ क. प्रहलादा॰।

रामो दाशरथिस्त्वं च जानक्युद्धारहेतवे। दशकंधरहन्ता च सिन्धौ सेतुविधायकः ॥४५॥
कलया परशुरामश्च जमदग्निसुतो महान्। त्रिःसप्तकृत्वो भूपानां निहन्ता जगतीपते ॥४६॥
अंशेन कपिलस्त्वं च सिद्धानां च गुरोर्गुरुः। मातृज्ञानप्रदाता च योगशास्त्रविधायकः ॥४७॥
अंशेन ज्ञानिनां श्रेष्ठौ नरनारायणावृषी। त्वं च धर्मसुतो भूत्वा लोकविस्तारकारकः ॥४८॥
अधुना कृष्णरूपस्त्वं परिपूर्णतमः स्वयम्। सर्वेषामवताराणां बीजरूपः सनातनः ॥४९॥
यशोदाजीवनो नित्यो नन्दैकानन्दवर्धनः। प्राणाधिदेवो गोपीनां राधाप्राणाधिकप्रियः ॥५०॥
वसुदेवसुतः शान्तो देवकीदुःखभञ्जनः। अयोनिसंभवः श्रीमान्पृथिवीभारहारकः ॥५१॥
पूतनायै मातृगतिं प्रदाता च कृपानिधिः। बककेशिप्रलम्बानां ममापि मोक्षकारकः ॥५२॥
स्वेच्छामय गुणातीत भक्तानां भयभञ्जन। प्रसीद राधिकानाथ प्रसीद कुरु मोक्षणम् ॥५३॥
हे नाथ गार्दभीयोनेः समुद्धर भवार्णवात्। मूर्खस्त्वद्भक्तपुत्रोऽहं मामुद्धर्तुं त्वमर्हसि ॥५४॥
वेदा ब्रह्मादयो यं च मुनीन्द्राः स्तोतुमक्षमाः। किं स्तौमि तं गुणातीतं पुरा दैत्योऽधुना खरः ॥५५॥
एवं कुरु कृपासिन्धो येन मे न भवेज्जनुः। दृष्ट्वा पादारविन्दं ते कः पुनर्भवनं व्रजेत् ॥५६॥
ब्रह्मा स्तोता खरः स्तोता नोपहासितुमर्हसि। सदीश्वरस्य विज्ञस्य योग्यायोग्ये समा कृपा ॥५७॥
इत्येवमुक्त्वा दैत्येन्द्रस्तस्थौ च पुरतो हरेः। प्रसन्नवदनः श्रीमानतितुष्टो बभूव ह ॥५८॥

---

हीं दशरथ पुत्र राम हुए थे। सागर में सेतु बांधकर दशमुख रावण का वध आप ही ने किया ॥४५॥ हे जगत्पते! आप ही अपनी कला से जमदग्नि पुत्र परशुराम हुए थे, जिन्होंने इक्कीस बार राजाओं का हनन किया था ॥४६॥ आप ही अंश से कपिल हुए, जो सिद्धों के गुरु के गुरु, माता को ज्ञान देनेवाले एवं योगशास्त्र के रचयिता थे ॥४७॥ ज्ञानिश्रेष्ठ नर-नारायण ऋषि भी अंशतः आप ही हुए थे। आपने धर्मपुत्र होकर लोकों का विस्तार किया है ॥४८॥ इस समय आप स्वयं परिपूर्णतम परमात्मा ही श्रीकृष्ण के रूप में प्रकट हुए हैं और सभी अवतारों के सनातन बीजरूप हैं ॥४९॥ आप यशोदा के जीवन, नित्य, नन्द के एकमात्र आनन्दवर्द्धक, गोपियों के प्राणाधीश्वर और राधा के प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं ॥५०॥ आप वसुदेव-पुत्र, शान्त, देवकी दुःखहन्ता, अयोनिज, श्रीसम्पन्न, पृथ्वी के भारहारी, पूतना को माता के समान गति देनेवाले, कृपालु एवं बक, केशी, प्रलम्ब और मुझे भी मोक्ष देनेवाले हैं ॥५१-५२॥ स्वेच्छामय! गुणों से परे! भक्तों के भयहारी! राधिकानाथ! प्रसन्न होइये, प्रसन्न होइये और मुझे मुक्त कीजिये ॥५३॥ हे नाथ! संसार-सागर और गार्दभी योनि से मेरा उद्धार कीजिये। मैं आपके भक्त का मूर्ख पुत्र हूँ, मेरा उद्धार कीजिये ॥५४॥ वेद, ब्रह्मादि देवता और मुनीन्द्र लोग जिनकी स्तुति करने में असमर्थ रहते हैं उन गुणातीत की स्तुति मुझ-जैसा पुरुष क्या करेगा? जो पहले दैत्य था और अब गधा है ॥५५॥ कृपासिन्धो! अब ऐसा करें, जिससे मुझे जन्म न लेना पड़े। आपके चरण-कमल का दर्शन करने पर कौन पुनः घर को लौटे? ॥५६॥ ब्रह्मा जिनकी स्तुति करते हैं, उनकी स्तुति एक गधा कर रहा है, यह उपहास की बात नहीं है, क्योंकि सदीश्वर एवं परमेश्वर की योग्यायोग्य पर समान कृपा होती है ॥५७॥ इतना कहकर वह दैत्यराज भगवान् के सामने खड़ा हो गया। उसके मुख पर प्रसन्नता छा रही थी, वह श्री-सम्पन्न एवं अत्यन्त सन्तुष्ट जान पड़ता था ॥५८॥

इदं दैत्यकृतं स्तोत्रं नित्यं भक्त्या च यः पठेत् । सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यं लीलया लभते हरेः ॥५९॥
इह लोके हरेर्भक्तिमन्ते दास्यं सुदुर्लभम् । विद्यां श्रियं सुकवितां पुत्रपौत्रान्यशो लभेत् ॥६०॥

## नारायण उवाच

श्रुत्वाऽनुमेने दैत्येन्द्रस्तवनं करुणानिधिः । कथं करोमि संहारमीदृशं भक्तमित्यहो ॥६१॥
अनुमन्य स्मृतिं तस्य संजहार हरिः स्वयम् । न हि युक्तो वधः स्तोतुर्दुर्वक्तुर्विधिरीश्वरात् ॥६२॥
दानवो मायया विष्णोर्विसस्मार पुनः स्वकम् । दुरुक्तिस्तत्कण्ठदेशे ह्यधिष्ठानं चकार ह ॥६३॥
उवाच श्रीहरिं दैत्यः कोपात्प्रस्फुरिताधरः । मुने सद्यो मर्तुकामो दैवग्रस्तो विचेतनः ॥६४॥

## दैत्य उवाच

ध्रुवं त्वं मर्तुकामोऽसि दुर्बुद्धे मानवार्भक । अद्य प्रस्थापयिष्यामि त्वामहं यममन्दिरम् ॥६५॥
आयासि जीवनाकाङ्क्षी मम तालवनं शिशो । न यास्यसि पुनर्गेहं बान्धवं न हि द्रक्ष्यसि ॥६६॥
न कंसो न जरासंधो नरको न समो मम । देवाः कम्पन्ति मे नित्यं के चान्ये मत्समा भुवि ॥६७॥
न हि संहारकर्त्ता च मां संहर्तुं क्षमः शिवः । न च ब्रह्मा न विष्णुश्च न मृत्युः काल एव च ॥६८॥
मम तालतरून्भङ्क्त्वा पातयित्वा फलानि च । अहंकरोषि सहसा किमहो कस्य तेजसा ॥६९॥

---

दैत्य-कृत इस स्तोत्र का जो नित्य पाठ करता है वह अनायास ही हरि का लोक, ऐश्वर्य और सामीप्य प्राप्त कर लेता है ॥५९॥ इस लोक में उसे भगवान् की भक्ति और अन्त में हरि का दुर्लभ दास्यपद तथा विद्या, श्री, उत्तम कविता, पुत्र-पौत्र और यश की प्राप्ति होती है ।।६०।।

**नारायण बोले**—करुणानिधान भगवान् दैत्यराज की स्तुति सुनकर अपने मन में सोचने लगे कि—ऐसे भक्त का संहार मैं कैसे करूँ ?।।६१।। ऐसा सोचकर भगवान् ने स्वयं उसकी स्मृति का हरण कर लिया, क्योंकि स्तुति करनेवाले का वध नहीं किया जाता है, कटुभाषी को ही स्वामी मारता है, ऐसा विधान है ॥६२॥ वह दानव विष्णु की मायावश पुनः अपने को भूल गया और कटूक्तियाँ उसके कण्ठ में बस गयीं ।।६३।। मुने ! जिससे शीघ्र मृत्यु चाहनेवाला दैवग्रस्त एवं चेतनाहीन वह दैत्य क्रोध से अधरोष्ठ फड़काते हुए, हरि से कहने लगा ॥६४॥

**दैत्य बोला**—मनुष्य के बच्चे ! दुर्बुद्धे ! तू निश्चय ही मरना चाहता है । आज मैं तुम्हें यमपुरी भेज दूंगा ।।६५।। बच्चे ! तू मेरे इस ताड़वन में आकर पुनः जीवन की अभिलाषा करता है, अब तू न घर जा सकेगा और न बन्धु को देखेगा ।।६६।। कंस, जरासन्ध एवं नरक आदि कोई भी मेरे समान नहीं हैं, देवलोग नित्य मुझसे काँपते हैं । भूतल पर मेरे समान कौन है ? ।।६७।। संहारकर्त्ता शिव भी मेरा संहार नहीं कर सकते तथा ब्रह्मा, विष्णु एवं काल भी समर्थ नहीं है ।।६८।। मेरे ताड़ वृक्षों को तोड़कर और फलों को गिराकर तू किसके बल

कस्त्वं वद बटो सत्यं कमनीयोऽतिसुन्दरः । दुर्लभं जीवनं दातुं मह्यं कथमिहागतः ॥७०॥
इत्युक्त्वा मस्तके कृत्वा प्रेरयित्वा तु तं बली । दूरतः पातयामास श्रीकृष्णं मरणोन्मुखः ॥७१॥
पातयित्वा च तं भूमौ विषाणाभ्यां जघान सः । कृष्णाङ्गस्पर्शमात्रेण तद्विषाणे बभञ्जतुः ॥७२॥
दैत्यो भग्नविषाणश्च तमीशं कोपयन्मुने । जग्रास[1] चर्वणं कर्तुं भग्नदन्तो बभूव ह ॥७३॥
तेजसा दग्धवक्त्रश्च तमुज्जग्राह तत्क्षणे । जज्वाल व्यथितः कोपाद्ददार खुरतो महीम् ॥७४॥
घूर्णयित्वा तु लाङ्गूलं शब्दं कृत्वा भयानकम् । स जगाम शिशुस्थानं दुद्रुवुर्बालका भिया ॥७५॥
बलं च प्रेरयामास मस्तकेन महाबली । बलो मुष्टिं ददौ तस्मै मूर्च्छामाप ततोऽसुरः ॥७६॥
क्षणेन चेतनां प्राप्य जगाम हरिसंनिधिम् । बलमुष्ट्या[2] च व्यथितः पुनर्मूर्च्छामवाप सः ॥७७॥
पुनश्च चेतनां प्राप्य समुत्तस्थौ व्यथाकुलः । उत्ससर्ज बृहल्लेण्डं मूत्रं च भयमाप ह ॥७८॥
क्षणात्संधिक्षणं प्राप्य महाबलपराक्रमः । कृत्वा शिरसि गोविन्दं घूर्णयामास दानवः ॥७९॥
पातयामास भूमौ तं घूर्णयित्वा पुनः पुनः । उत्पाट्य तालवृक्षं तं ताडयामास माधवः ॥८०॥
यथा[3] केशप्रहारेण दानवस्य भवेद्व्यथा । तथा बभूव दैत्यस्य तालवृक्षस्य ताडनात् ॥८१॥

---

से कहता ऐसा अभिमान कर रहा है ॥६९॥ बेटे ! सत्य कहो, तुम कौन हो ? तुम अति मनोरम एवं सुन्दर हो । मुझे (अपना) दुर्लभ जीवन देने के लिए यहाँ क्यों आये हो ? ॥७०॥ इतना कहकर उस बली एवं मरणोन्मुख दैत्य ने कृष्ण को अपने मस्तक पर उठाकर दूर फेंक दिया ॥७१॥ उन्हें पृथ्वी पर गिराकर अपने सींगों से मारा । किन्तु श्रीकृष्ण के अंग-स्पर्श मात्र से उसके सींग टूट गये ॥७२॥ मुने ! सींग टूटे दैत्य ने उन भगवान् को कुपित करते हुए उन्हें चबाने के लिए पकड़ लिया, किन्तु उसके दाँत टूट गये ॥७३॥ (श्रीकृष्ण के) तेज से उसका मुख जल गया । उसी क्षण उनको उगल दिया । वह क्रोध से जलने लगा । वह खुरों से पृथ्वी को खोदने लगा ॥७४॥ पूँछ को घुमाकर एवं भयानक शब्द करके वह बालकों के स्थान पर गया । बालक भय से भागने लगे ॥७५॥ उस महाबली ने अपने मस्तक से बलभद्र को धक्का दिया । बलभद्र ने उसी समय उस पर मुष्टि प्रहार किया, जिससे वह राक्षस मूर्च्छित हो गया ॥७६॥ क्षण भर में चेतना प्राप्त करके वह भगवान् के समीप गया और बल की मुष्टिका के आघात से वह पुनः मूर्च्छित हो गया ॥७७॥ पुनः चेतना प्राप्त होने पर वह व्यथा से व्याकुल होते हुए उठा और भयभीत होने के कारण मूत्र और लेंड़ करने लगा ॥७८॥ क्षणमात्र विश्राम करने के उपरान्त महाबली पराक्रमी दानव गोविन्द को अपने सिर पर उठाकर घुमाने लगा ॥७९॥ बार-बार घुमाकर भूमि पर पटक दिया । तब माधव ने ताड़वृक्ष को उखाड़कर उसी से उस पर प्रहार किया ॥८०॥ केश के प्रहार से दानव को जितनी पीड़ा होती, उतनी ही पीड़ा ताड़वृक्ष के आघात से उसे हुई ॥८१॥ भगवान् ने गोवर्धन

---

१ क. ग्राह॰ । २ क. च्य॰ । ३ क. खड्गप्र॰ ।

गोवर्धनं समुत्पाट्य घातयामास तं विभुः। पपात वेगाच्छैलेन्द्रस्तस्योपरि महामुने ॥८२॥
पर्वतस्य प्रहारेण मूर्च्छामाप महाबलः। बभूव जर्जराङ्गश्च रुधिरं च समुद्वमन् ॥८३॥
क्षणेन चेतनां प्राप्य समुत्तस्थौ रुषासुरः। गृहीत्वा पर्वतश्रेष्ठं प्रेरयामास माधवम् ॥८४॥
दृष्ट्वा शैलमुत्पतन्तं वेगेन मधुसूदनः। जग्राह दक्षिणकरे यथेक्षुदण्डवत्प्रभुः ॥८५॥
पूर्वस्थाने पर्वतं तं स्थापयामास कौतुकात्। गृहीत्वा दैत्यकर्णाग्रं पातयामास दूरतः ॥८६॥
उत्पत्य च महावेगाच्चकार वेष्टनं हरेः। पृथिवीं घर्षयामास तीक्ष्णाग्रेण खुरेण च ॥८७॥
प्रगृह्य श्रीहरिं वेगात्कृत्वा मूर्ध्नि महासुरः। उत्पपात मनोयायी लीलया लक्षयोजनम् ॥८८॥
प्रहरं च तयोर्युद्धं निर्लक्षे च बभूव ह। ततो गृहीत्वा श्रीकृष्णं पपात धरणीतले ॥८९॥
पुनर्मुहूर्तं युद्धं च बभूव भूतले तयोः। मुदा हरिः प्रशशंस प्रहस्य दानवेश्वरम् ॥९०॥
मद्भक्तस्य बलेः पुत्रं धन्यं तज्जीवनं परम्। स्वस्त्यस्तु ते दानवेन्द्र वत्स निर्वाणतां व्रज ॥९१॥
मद्दर्शनं स्वस्तिबीजं परं निर्वाणकारणम्। सर्वाधिकं सर्वपरं लभ स्थानं मनोहरम् ॥९२॥
इत्येवमुक्त्वा श्रीकृष्णः सस्मार चक्रमुत्तमम्। सूर्यकोटिसमं दीप्त्या जग्राह तत्सुदर्शनम् ॥९३॥
चिक्षेप भ्रामयित्वा च षोडशारमनुत्तमम्। चिच्छेद लीलयाऽवध्यं ब्रह्मविष्णुमहेश्वरैः ॥९४॥

---

पर्वत को उखाड़कर उस पर आघात किया, महामुने ! वह शैलराज उस पर बड़े वेग से गिरा ॥८२॥ पर्वत के प्रहार से उस महाबली को मूर्च्छा आ गयी। उसके अंग जर्जर हो गये और वह रुधिर वमन करने लगा ॥८३॥ क्षण में चैतन्य होने पर वह असुर क्रोध से उठ पड़ा और उसने पर्वतश्रेष्ठ को उठाकर माधव पर चला दिया ॥८४॥ मधुसूदन वेग से आते हुए उस पर्वत को देखकर ईख के डंडे की भाँति दाहिने हाथ से पकड़ लिया ॥८५॥ फिर कौतुक से पर्वत को यथास्थान रख दिया और दैत्य के कान का अग्रभाग पकड़कर दूर फेंक दिया ॥८६॥ उस दैत्य ने बड़े वेग से उछलकर भगवान् को घेर लिया और वह तीक्ष्ण अग्रभागवाले खुर से भूमि को खोदने लगा ॥८७॥ उस महासुर ने वेग से भगवान् को पकड़कर अपने सिर पर रख लिया और मन के समान जाने-वाला वह लीलापूर्वक एक लाख योजन ऊपर उछल गया ॥८८॥ उस निर्लक्ष स्थान में उन दोनों का एक प्रहर तक युद्ध हुआ। पश्चात् श्रीकृष्ण को पकड़कर वह भूतल पर आ गया ॥८९॥ फिर पृथ्वी पर उन दोनों का एक मुहूर्त तक युद्ध हुआ। अन्त में भगवान् ने प्रसन्नता से हँसकर उस दानवेश्वर की प्रशंसा की ॥९०॥ उन्होंने कहा—"हे दानवेन्द्र ! वत्स ! तुम मेरे भक्त बलि के पुत्र हो, तुम्हारा जीवन धन्य एवं श्रेष्ठ है। अतः तुम्हारा कल्याण हो, तुम मोक्ष प्राप्त करो ॥९१॥ मेरा दर्शन कल्याण का बीज और निर्वाण का परम कारण है। तुम सबसे अधिक और सबसे परे उत्तम स्थान को प्राप्त करो" ॥९२॥ इस प्रकार कहकर श्रीकृष्ण ने उत्तम चक्र का स्मरण किया, जो करोड़ों सूर्य के समान दीप्तिमान् था। उस सुदर्शन (चक्र) को पकड़ लिया। उसमें सोलह अरे थे। उस परमोत्तम अस्त्र को घुमाकर श्रीकृष्ण ने उसकी ओर फेंका तथा जिसे ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी नहीं मार सकते थे, उसे लीला से ही काट डाला ॥९३-९४॥ उस महात्मा दानव का मस्तक पृथ्वी पर गिर

पपात मस्तकं भूमौ दानवस्य महात्मनः। तेजःसमूह उत्तस्थौ शतसूर्यसमप्रभः ॥९५॥
विलोक्य हरिलोकं संश्लिष्टं कृष्णपदाम्बुजे। संप्राप्य (प) परमं मोक्षमहो दानवपुंगवः ॥९६॥
गगनस्थाः सुराः सर्वे मुनयश्च भृशं मुदा। पारिजातप्रसूनानां चक्रुस्ते तत्र वर्षणम् ॥९७॥
नेदुर्दुन्दुभयः स्वर्गे ननृतुश्चाप्सरोगणाः। जगुर्गन्धर्वनिकरास्तुष्टुवुर्मुनयो मुदा ॥९८॥
स्तुत्वा जग्मुः सुराः सर्वे मुनयो हर्षविह्वलाः। धेनुकस्य वधं दृष्ट्वा तत्राऽऽजग्मुश्च बालकः ॥९९॥
बलश्च बलिनां श्रेष्ठस्तुष्टाव पुरुषोत्तमम्। तुष्टुवुर्बालकाः सर्वे ननृतुश्च मुदाऽन्विताः ॥१००॥
दत्त्वा कृष्णबलाभ्यां च प्रपक्वानि फलानि च। सर्वाणि भक्षयामासुर्बालाः प्रहृष्टमानसाः ॥१०१॥
भुक्त्वा पीत्वा हरिः शीघ्रं बलेन बालकैः सह। जगाम स्वालयं ब्रह्मन्निहत्य दानवेश्वरम् ॥१०२॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० धेनुकवधो नाम
द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

---

पड़ा जिसमें से सैकड़ों सूर्य के समान तेजःपुञ्ज निकला ॥९५॥ श्रीकृष्ण के चरण-कमल में हरि-लोक देखकर वह तेज उसी में विलीन हो गया। अहो! उस दानवश्रेष्ठ ने परममोक्ष प्राप्त कर लिया ॥९६॥ उस समय आकाश स्थित देवता और मुनियों ने सुप्रसन्न होकर वहाँ पारिजात पुष्पों की बहुत वर्षा की ॥९७॥ स्वर्ग में दुन्दुभियाँ बजने लगीं, अप्सराएँ नृत्य करने लगीं, गन्धर्व-गण गान करने लगे और मुनियों ने हर्ष से स्तुति की ॥९८॥ हर्षविभोर देवलोग और मुनिगण स्तुति करके चले गये। धेनुक का वध देखकर वहाँ सभी बालक आ गये ॥९९॥ बलवानों में श्रेष्ठ बलराम पुरुषोत्तम की स्तुति करने लगे। सभी बालकों ने भी स्तुति की और वे प्रसन्नता से नाचने लगे ॥१००॥ अत्यन्त प्रमुदित हुए बालकगण बलराम और कृष्ण को सुन्दर पके फल देकर स्वयं भी भक्षण करने लगे ॥१०१॥ ब्रह्मन्! दानवराज को मारकर श्रीकृष्ण खा-पीकर बलराम एवं बालकों के साथ अपने घर चले गये ॥१०२॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड के नारद-नारायण-संवाद में धेनुकवधवर्णन नामक बाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२२॥

# अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

**नारद उवाच**

केन पापेन वलिजो गर्दभत्वमवाप ह। दुर्वासाः केन दोषेण शशाप दानवेश्वरम् ॥१॥
केन पुण्येन वा नाथ वलिजः[1] श्रीहरेः पदम्। सहसैकत्वमुक्तिं च संप्राप दानवाधिपः ॥२॥
मुने सर्वं सुविस्तार्य वद संदेहभञ्जन। अहो कविमुखे काव्यं नूत्नं नूत्नं पदे पदे ॥३॥

**नारायण उवाच**

शृणु वत्स प्रवक्ष्येऽहमितिहासं पुरातनम्। पुरा श्रुतं धर्मवक्त्रात्पर्वते गन्धमादने ॥४॥
पाद्मकल्पं च वृत्तान्तं विचित्रं सुमनोहरम्। नारायणकथोपेतं कर्णपीयूषमुत्तमम् ॥५॥
यत्र कल्पे कथा चेयं तत्र त्वमुपबर्हणः। आकल्पजीवी सश्रीकः सुन्दरः स्थिरयौवनः ॥६॥
पञ्चाशत्कामिनीनां च पतिः शृङ्गारतत्परः। वरेण ब्रह्मणस्त्वं च सुकण्ठो स्थिरयौवनः ॥७॥

---

# अध्याय २३

## तिलोत्तमा और वलिपुत्र को ब्रह्मशाप

**नारद बोले**—किसी पाप के कारण वलि के पुत्र को गर्दभ (गधा) होना पड़ा और दुर्वासा ने उस दानवेश्वर को किस दोष के कारण शाप दिया ? ॥१॥ हे नाथ ! उस वलिपुत्र दानवाधीश्वर ने किस पुण्य द्वारा श्रीकृष्ण का पद—ऐक्यमोक्ष सहसा प्राप्त कर लिया ॥२॥ मुने ! संदेहनाशक ! इन सब बातों का बहुत विस्तार करके मुझे बताने की कृपा करें। अहा ! कवि के मुख में काव्य, पद-पद पर नवीन प्रतीत होता है ॥३॥

**नारायण बोले**—वत्स ! सुनो, इस विषय में मैं तुम्हें एक पुरातन इतिहास कहूँगा, जिसे पूर्व समय में गंधमादन पर्वत पर धर्म के मुख से मैंने सुना था ॥४॥ यह विचित्र एवं अति मनोहर वृत्तान्त पाद्मकल्प का है, जो नारायण की कथा से युक्त एवं कानों के लिए उत्तम अमृत है ॥५॥ जिस कल्प की यह कथा है, उसमें तुम उपबर्हण नामक गन्धर्व थे। तुम्हारी आयु एक कल्प की थी। तुम श्री-सम्पन्न, सुन्दर और स्थिरयौवनयुक्त थे ॥६॥ पचास सुन्दरी स्त्रियों के पति होकर सर्वदा श्रृंगार में तत्पर रहते थे। ब्रह्मा के वरदान से सुकण्ठ (उत्तम गला) मिला था और तुम गायकों के राजा थे ॥७॥ कामवाण से अतिपीड़ित सभी कामिनियाँ तुम्हारे

---

१ क. संलीय ।

अनुक्षणं पपुस्तास्ते सुन्दरं मुखपङ्कजम् । निमेषरहिताः सर्वाः कामबाणप्रपीडिताः ॥८॥
तासां प्राणैश्च घटितो विधिना त्वमिव श्रुतम् । दिवानिशं सहचरा न जीवन्ति त्वया विना ॥९॥
पुष्पोद्याने च रहसि स्थाने स्थाने मनोरमे । गह्वरेषु च शैलानां कन्दरेषु नदीषु च ॥१०॥
काननेषु च रम्येषु श्मशाने जन्तुवर्जिते । यथामनोरथं ताश्च क्रीडां चक्रुस्त्वया सह ॥११॥
तदा दैवाद्विधेः शापाद्भूत्वा दासीसुतो भवान् । अधुना ब्रह्मणः पुत्रो वैष्णवोच्छिष्टभोजनात् ॥१२॥
असंख्यकल्पजीवी च वैष्णवप्रवरो महान् । ज्ञानदृष्टया सर्वदर्शी प्रियशिष्यश्च धूर्जटेः ॥१३॥
तस्य कल्पश्च वृत्तान्तं मुने मत्तो निशामय । विस्तार्य दैत्यवृत्तान्तं कथयामि सुधोपमम् ॥१४॥
एकदैव बलेः पुत्रो नाम्ना साहसिको बली । स्वतेजसा सुराञ्जित्वा प्रतस्थे गन्धमादनम् ॥१५॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गो रत्नभूषणभूषितः । रत्नसिंहासनस्थश्च बहुसैन्यसमन्वितः ॥१६॥
एतस्मिन्नन्तरे तेन यथा याति तिलोत्तमा । रूपेणाप्सरसां श्रेष्ठा नानावेषविधायिनी ॥१७॥
चारुचम्पकवर्णाभा रत्नाभरणभूषिता । नवयौवनसंपन्ना कामबाणप्रपीडिता ॥१८॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्या दिव्यवस्त्रं सुबिभ्रती । वक्रभ्रूभङ्गयुवता सा गजेन्द्रमन्दगामिनी ॥१९॥
स्तनमूरुं मुखेन्दुं च दृष्ट्वा साहसिको युवा । वायुना मुक्तवस्त्रायास्तस्या मूर्च्छामवाप ह ॥२०॥

---

सुन्दर मुखकमल का प्रतिक्षण एकटक पान करती थीं ॥८॥ दैव ने उनके प्राणों से तुम्हें इस प्रकार अभिन्न बनाया था, जिसका उदाहरण तुम्हीं हो अन्य नहीं। दिन-रात साथ रहनेवाली वे तुम्हारे बिना जीवित नहीं रह सकती थीं ॥९॥ एकान्त पुष्पवाटिकाओं, मनोरम स्थानों, पर्वत की गुफाओं, कन्दराओं, नदियों, सुन्दर जंगलों और जन्तुहीन श्मशान में वे तुम्हारे साथ यथेष्ठ क्रीड़ा करती थीं ॥१०-११॥ उन्हीं दिनों दैववश ब्रह्मा के शाप से तुम्हें दासीपुत्र होना पड़ा और वैष्णवों के उच्छिष्ट भोजन करने के कारण इस समय ब्रह्मा के पुत्र हो ॥१२॥ अब तो तुम असंख्य कल्पों तक जीवित रहनेवाले महान् वैष्णवश्रेष्ठ, ज्ञानदृष्टि से सर्वद्रष्टा और शिव के प्रिय शिष्य हो ॥१३॥ मुने! उस कल्प का वृत्तान्त मुझसे सुनो। मैं अमृतोपम दैत्यवृत्तान्त विस्तार करके बता रहा हूँ ॥१४॥ एक बार साहसिक नामक बलवान् बलिपुत्र ने अपने तेज से देवों को जीतकर गन्धमादन पर्वत की यात्रा की ॥१५॥ उसके सम्पूर्ण अंग चन्दन से चर्चित थे। वह रत्नों के भूषणों से भूषित होकर रत्नसिंहासन पर सुखासीन था। उसके साथ बहुत बड़ी सेना थी ॥१६॥ इसी बीच उसी मार्ग से तिलोत्तमा जा रही थी, जो अतिरूपवती, अप्सराओं में श्रेष्ठ, अनेक भाँति के वेष धारण करनेवाली, चारु चम्पा के समान रूपरंगवाली, रत्नों के भूषणों से भूषित, नवीन यौवन से युक्त एवं कामबाण से अति पीड़ित थी ॥१७-१८॥ वह मन्दहास समेत प्रसन्नमुख, दिव्य वस्त्र धारण किये, बलखाये भौंह को टेढ़ी किये, मतवाले गजेन्द्र की भाँति मन्द-मन्द जा रही थी ॥१९॥ उस समय वह युवा साहसिक वायु के कारण उसके वस्त्र हट जाने से उसके स्तन, जङ्घा और मुखचन्द्र देखते

सा ददर्श बलेः पुत्रमतीव सुमनोहरम् । प्रफुल्लमालतीमालां बिभ्रतं नवयौवनम् ॥२१॥
शरत्पार्वणचन्द्रास्यं सुस्मितं सुमनोहरम् । दृष्ट्वा तं विस्मिता कामात्कटाक्षं च चकार सा ॥२२॥
क्रीडार्थं चन्द्रलोकं च गच्छन्ती चन्द्रकामुकी । तस्थौ केन च्छलेनैव मत्ता शृङ्गारलालसा ॥२३॥
दर्शं दर्शं च तस्यास्यं प्रहस्य वक्रचक्षुषा । मुखस्याऽऽच्छादनं चक्रे वाससा सा पुनः पुनः ॥२४॥
पुलकाङ्कितसर्वाङ्गं धर्मकर्मसमन्वितम् । बभूव काममत्ताया योनौ कण्डूयनं जलम् ॥२५॥
विसस्मार शशधरं बलिपुत्रमनोरथा । अहो को वेद भुवने दुर्ज्ञेयं पुंश्चलीमनः ॥२६॥
पुंश्चल्यां यो हि विश्वस्तो विधिना स विडम्बितः । बहिष्कृतश्च यशसा धर्मेण स्वकुलेन च ॥२७॥
वाञ्छितं नूतनं प्राप्य विनश्यति पुरातनम् । तदा[1] स्वकर्मसाध्या सा को वा तस्याः प्रियोऽप्रियः ॥२८॥
दैवे कर्मणि पैत्र्ये च पुत्रे बन्धौ न भर्तरि । दारुणं पुंश्चलीचित्तं सदा शृङ्गारकर्मणि ॥२९॥
प्राणाधिकं रतिज्ञं साऽमृतदृष्ट्या च पुंश्चली । रत्नप्रदं रत्नविज्ञं विषदृष्ट्या हि पश्यति ॥३०॥
सर्वेषां स्थलमस्त्येव पुंश्चलीनां न कुत्रचित् । दारुणा पुंश्चली जातिर्नरघातिभ्य एव च ॥३१॥

---

ही मूर्च्छित हो गया ॥२०॥ उस सुन्दरी ने उस युवा बलिपुत्र को देखा, जो अत्यन्त सुन्दर, प्रफुल्ल मालती पुष्पों की माला पहने, नवीन यौवन से सम्पन्न, शारदीय पूर्णिमा के समान मुखवाला, मन्दहासयुक्त एवं अति मनोहर था। उसे देखकर वह कामिनी आश्चर्यचकित होकर कामवश कटाक्षों से देखने लगी ॥२१-२२॥ वह चन्द्रमा की कामुकी होकर उनके साथ क्रीडा करने के लिए उनके लोक को जा रही थी, किन्तु वह मतवाली संभोग की लालसावश किसी बहाने कनखी से उस (साहसिक) का मुख देख-देखकर हँसकर बार-बार वस्त्र से (अपना) मुँह ढँक लेती थी ॥२३-२४॥ धर्म-कर्म से युक्त उस (साहसिक) के सम्पूर्ण शरीर में रोमाञ्च हो आया और काम से मतवाली (उस अप्सरा) की योनि में खुजलाहट होने लगी और जल भी आ गया ॥२५॥ बलिपुत्र की चाह होने के कारण अब चन्द्रमा उसे भूल गये। अहो ! संसार में पुंश्चली स्त्री के दुर्ज्ञेय मन को कौन जानता है ? ॥२६॥ जिसने पुंश्चली पर विश्वास किया, उसे विधि द्वारा वञ्चित समझना चाहिए। वह यश, धर्म एवं अपने कुल से बहिष्कृत हो जाता है ॥२७॥ मनचाहे नूतन पुरुष को पाकर वह प्राचीन प्रेमी को भूल जाती है। तब वह अपने कर्म से साध्य होती है। उसका कौन प्रिय या अप्रिय होता है ? (अर्थात् कोई नहीं) ॥२८॥ पुंश्चली स्त्री का चित्त देव-कर्म, पितृ-कर्म, पुत्र, बन्धु एवं पति में नहीं लगता है। वह बड़ा कठोर होता है, सदा शृंगार-कर्म में ही लगा रहता है ॥२९॥ वह पुंश्चली रतिविशेषज्ञ को प्राणों से भी अधिक मानकर अमृतदृष्टि से देखती है और रत्न देनेवाले रत्नविशेषज्ञ को विष की दृष्टि से देखती है ॥३०॥ सभी लोगों का कुछ-न-कुछ स्थान होता है (जहाँ वे अपने पाप से हिचकते हैं)। किन्तु पुंश्चली स्त्रियों का कहीं भी स्थान नहीं होता है। पुंश्चली नरघातियों

---

१ क. सदा ।

निष्कृतिः 'सर्वभोगान्ते सर्वेषामस्ति निश्चितम् । न पुंश्चलीनां विप्रेन्द्र यावच्चन्द्रदिवाकरौ ।।३२।।
अन्यासां कामिनीनां च कीटं हन्तुं च या दया । सा नास्ति पुंश्चलीनां तु कान्तं हन्तुं पुरातनम् ।।३३।।
कान्तं दृष्ट्वा हिनस्त्येव सोपायेनावलीलया । रतिज्ञं नूतनं प्राप्य विषतुल्यं पुरातनम् ।।३४।।
पृथिव्यां यानि पापानि पुंश्चलीष्वेव भारते । तिष्ठन्ति ताभ्यो न पराः पापिष्ठाः सन्ति केचन ।।३५।।
पुंश्चलीपरिपक्वान्नं सर्वपातकमिश्रितम् । दैवे कर्मणि पैत्र्ये च न देयं च तथा जलम् ।।३६।।
अन्नं विष्ठा जलं मूत्रं पुंश्चलीनां च निश्चितम् । दत्त्वा पितृभ्यो देवेभ्यो भुक्त्वा च नरकं व्रजेत् ।।३७।।
शतवर्षं कालसूत्रे पचत्येव सुदारुणे । घोरान्धकारे कृमयस्तं दशन्ति दिवानिशम् ।।३८।।
पुंश्चल्यन्नं च यो भुङ्क्ते दैवाद्यदि नराधमः । सप्तजन्मकृतं पुण्यं तस्य नश्यति निश्चितम् ।।३९।।
आयुः श्रीयशसां हानिरिह लोके परत्र च । तस्माद्यत्नाद्रक्षणीयं पाकपात्रं कलत्रकम् ।।४०।।
पुंश्चलीदर्शने पुण्यं यात्रासिद्धिर्भवेद्ध्रुवम् । स्पर्शने च महापापं तीर्थस्नानाद्विशुध्यति ।।४१।।
स्नानं दानं व्रतं चैव जपश्च देवपूजनम् । निष्फलं पुंश्चलीनां च भारते जीवनं वृथा ।।४२।।
कथितं कुलटाख्यानं दुर्ज्ञेयं च यथागमम् । संवादं च तयोस्तत्र प्रकृतं शृणु नारद ।।४३।।

---

से भी दारुण होती है ।।३१।। विप्रेन्द्र ! सब प्रकार के भोगों के अन्त में सबका उद्धार निश्चित होता है, किन्तु पुंश्चलियों का उद्धार तब तक नहीं होता है जब तक सूर्य और चन्द्रमा रहते हैं ।।३२।। अन्य स्त्रियों को कीड़े मारने के समय जो कुछ दया हो जाती है, उतनी भी दया पुंश्चली स्त्रियों को अपने पुराने प्रेमी की हत्या के समय नहीं होती है ।।३३।। वह रतिदक्ष नूतन प्रेमी पाकर पुराने को विष तुल्य समझती है और उपाय करके बात-बात में उसे मार डालती है ।।३४।। पृथिवी पर जो पाप हैं, वे भारत में पुंश्चलियों में ही निवास करते हैं । उनसे बढ़कर कोई भी बड़े पापी नहीं हैं ।।३५।। पुंश्चली का बनाया हुआ भोजन समस्त पातकों से मिश्रित रहता है। इसलिए देव-पितर-कर्मों में वह देने योग्य नहीं है तथा उसका जल भी देय नहीं होता है ।।३६।। पुंश्चली स्त्रियों का अन्न विष्ठा और जल मूत्र के समान होता है । उसे देव-पितर को देने और भक्षण करने से नरक जाना पड़ता है ।।३७।। वहाँ भीषण कालसूत्र नामक नरक में सौ वर्ष तक पकना पड़ता है । घोर अन्धकार में वहाँ रात-दिन उसे कीड़े काट-काटकर खाते हैं ।।३८।। इसलिए दैवसंयोग से जो नराधम पुंश्चली का अन्न खाता है, उसके सात जन्मों का पुण्य निश्चित रूप से नष्ट हो जाता है ।।३९।। आयु, यश की भी हानि, लोक-परलोक दोनों में होती है । अतः प्रयत्नपूर्वक पाक-पात्र और स्त्री को बचाकर रखना चाहिए ।।४०।। यात्रा के समय पुंश्चली स्त्री का दर्शन पुण्यप्रद होता है और यात्रा निश्चित सफल होती है । किन्तु स्पर्श करने से महापाप होता है, जो तीर्थ स्नान से ही शुद्ध हो सकता है ।।४१।। पुंश्चली स्त्री का स्नान, दान व्रत, जप, देव-पूजन और भारत में उनका जीवन भी व्यर्थ होता है ।।४२।। नारद ! इस प्रकार मैंने कुलटा स्त्री का दुर्ज्ञेय आख्यान शास्त्रानुसार

---

१ क. कर्म° ।

स पुनश्चेतनां प्राप्य तां दृष्ट्वैव बलेः सुतः । कामातुरः प्रमत्तश्च जगाम कुलटान्तिकम् ॥४४॥
उवाच कुटिलापाङ्गीं पीनश्रोणिपयोधराम् । व्रीडया वाससा वक्त्रमाच्छन्नं कुर्वतीं मुदा ॥४५॥

## साहसिक उवाच

काऽसि त्वं कस्य कन्याऽसि कस्य कान्ताऽसि कामिनि । स्वयं क्व यासि कं सुभ्रूः पुण्यवन्तं मनोहरम् ॥४६॥
कल्पान्ते तपसा पूतं भोक्तुं त्वामेव सुन्दरि । यं तं यासि याहि सा त्वं भृत्यं मां कर्तुमर्हसि ॥४७॥
क्रीणीहि रतिपुण्येन मां भृत्यं रतिलोलुपम् । शृङ्गारलोलुपा त्वं च शृङ्गारं देहि कामुकि ॥४८॥
त्वया सह ममाऽऽश्लेषो विधिना च विनिर्मितः । निरूपितं यत्तेनैव वार्यते केन तत्प्रिये ॥४९॥
वाक्यं पीयूषसदृशं सस्मितं वद सुन्दरि । शीघ्रं भुजलतापाशैर्बन्धनं कुरु निर्जने ॥५०॥
आसनं देहि कल्याणि स्वोरुं कनकसंनिभम् । स्तनमण्डलकुम्भं च [1]पात्रयोग्यं प्रदर्शय ॥५१॥
तीक्ष्णास्त्रेण कटाक्षेण जर्जरं कुरु भामिनि । कामसर्पक्षतं पादस्पर्शनेनारुजं कुरु ॥५२॥
अधरोष्ठामृतं स्वादु देहि मे क्षुधिताय च । पक्वदाडिमबीजाभं दन्तं दर्शय सुन्दरम् ॥५३॥
गम्भीरनाभि त्रिवलीं द्रष्टुमिच्छामि सुन्दरि । नीवीप्रमोक्षणं कर्तुमिच्छा मे वर्तते सदा ॥५४॥

---

कह दिया, अब प्रकृत में उन दोनों का संवाद सुनो ॥४३॥ वह बलिपुत्र पुनः चेतना प्राप्त होने पर उसे देखते ही कामातुर और प्रमत्त होकर उस कुलटा के समीप गया ॥४४॥ तिरछी चितवनवाली, स्थूल नितम्ब और कुचों-वाली तथा लज्जावश वस्त्र से हर्षपूर्वक मुख को ढँकती हुई उस कुलटा से उसने कहा ॥४५॥

**साहसिक बोला**—कामिनि ! तुम कौन हो ? किसकी कन्या और किसकी प्रिया हो ? सुन्दर भौंह-वाली किस पुण्यवान् सुन्दर (पुरुष) के पास तुम स्वयं जा रही हो ? ॥४६॥ कल्पान्त में तपस्या से पवित्र हुए जिस किसी से भोग करने के लिए तुम जा रही हो, जाओ, पर मुझे अपना सेवक बना सकती हो ॥४७॥ रति पुण्य द्वारा मुझ रतिलोलुप को खरीद लो । कामुकि ! तुम शृंगार (उपभोग) की लोभी हो, मुझे अपना उपभोग प्रदान करो ॥४८॥ प्रिये ! तुम्हारे साथ हमारा मिलन ब्रह्मा ने पहले ही लिख दिया है, अतः अब उसे कौन रोक सकता है ? ॥४९॥ हे सुन्दरी ! अब मन्दहास समेत अमृततुल्य वाणी सुनाओ । इस निर्जन प्रदेश में अपने भुजलता-पाश से मुझे बाँध लो ॥५०॥ कल्याणि ! सुवर्ण के समान अपनी जङ्घा-रूप आसन मुझे प्रदान करो और घट सदृश अपना कुचमण्डल पात्र के योग्य प्रदर्शित करो ॥५१॥ भामिनि ! अपने कटाक्ष-रूपी तीक्ष्ण अस्त्र से मुझे जर्जर करो और कामरूपी सर्प द्वारा किये गये घाव को अपने चरण-स्पर्श से नीरोग करो ॥५२॥ मुझ भूखे को अपने अधरामृत का आस्वादन कराओ तथा पके अनारदाने के समान अपने सुन्दर दाँतों को दिखाओ ॥५३॥ सुन्दरि ! मैं तुम्हारी गम्भीर नाभि और त्रिवली देखना चाहता हूँ, तुम्हारी नीवी खोलने की

---

१ क. यात्रायो° ।

श्रोणीं पश्यामि ललितं मुनिमानसमोहिनीम् । शरन्मध्याह्नपद्मानां प्रभामोचनलोचनाम् ।।५५।।
शरत्पार्वणचन्द्रास्यं प्रसन्नं च प्रदर्शय । सा च तद्वचनं श्रुत्वा तमुवाच स्मरातुरा ।।
दृष्ट्वाऽऽर्तं कामबाणेन मानसंक्षयकामिनी ।।५६।।

## तिलोत्तमोवाच

पतिस्त्वत्सदृशो नाथ कामिनीनां मनीषितः । बलिपुत्रोऽसि धर्मिष्ठो रूपवान्गुणवान्युवा ।।५७।।
शृङ्गारनिपुणः कान्तः[1] कामशास्त्रविशारदः । सदा मनोज्ञः स्त्रीणां त्वं सुवेषश्च स्वभावतः ।।५८।।
सुवेशं सुन्दरं शान्तं कान्तं दान्तमरोगिणम् । शृङ्गारज्ञं गुणज्ञं त्वां युवानं रसिकं शुचिम् ।।५९।।
स्त्रीमनोज्ञं दयालुं च बलिष्ठं सन्तमीश्वरम् । दातारमनुरक्तं च कान्तमिच्छति कामिनी ।।६०।।
एते सर्वे गुणाः कान्त सन्ति कान्ते त्वयि ध्रुवम् । त्वां न वाञ्छन्ति याः कान्तास्ता अविज्ञाश्च वञ्चिताः ।।६१।।
संतोषं ते करिष्यामि समागम्य विधोर्गृहात् । वेषं कृत्वा तु चन्द्रार्थं यात्राऽद्य तस्य कामिनी ।।६२।।
अन्याश्लेषणमात्रेण भविता धर्मलङ्घना । याश्च धर्मान्न रक्षन्ति तासां च जीवनं वृथा ।।६३।।
चन्द्राश्लेषं न जानन्ति यास्ता मूढाः प्रकीर्तिताः । ता एव मातृगर्भस्था न प्राज्ञाः पौरुषे रसैः ।।६४।।

---

सदा मेरी इच्छा रहती है ।।५४।। मुनियों के भी मन को मोहित करनेवाले तुम्हारे सुन्दर नितम्ब को तथा शरत्काल के मध्याह्नकालिक कमल की कान्ति को चुरानेवाले नेत्रों को मैं देख रहा हूँ ।।५५।। तुम शरत्पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान अपने प्रसन्न मुख को दिखाओ। मान को नष्ट करनेवाली उस कामपीड़ित कामिनी ने उसकी बात सुनकर तथा उसे कामवाण से पीड़ित देखकर उससे कहा ।।५६।।

**तिलोत्तमा बोली**—नाथ ! तुम्हारे ही समान पति कामिनियों को प्रिय होता है । तुम बलि-पुत्र, धर्मात्मा, रूपवान्, गुणी, युवा, शृंगार-निपुण, सुन्दर और कामशास्त्र में चतुर हो। तुम स्त्रियों के लिए सदा सुन्दर और स्वभावतः उत्तम वेशधारी हो ।।५७-५८।। कामिनी ऐसा ही पति चाहती है, जो उत्तम वेशधारी, सुन्दर, शान्त, कान्त, दान्त, नीरोग, शृंगारज्ञाता, गुणज्ञ, युवा, रसिक, पवित्र, स्त्रियों के लिए मनोज्ञ, दयालु, वलिष्ठ, अधीश्वर, दाता और अनुरागी हो ।।५९-६०।। हे कान्त ! तुम्हारे ऐसे पति में ये समस्त गुण विद्यमान हैं । जो स्त्रियाँ तुम्हें नहीं चाहती हैं, वे अनभिज्ञ और वञ्चित हैं ।।६१।। चन्द्रमा के घर से लौटने पर मैं तुम्हें सन्तुष्ट करूँगी, आज यह वेश मैंने चन्द्रमा के लिए बनाया है और उन्हीं के यहाँ जा रही हूँ ।।६२।। आज अन्य के साथ आलिङ्गन करने से धर्मच्युत होने का भय है । क्योंकि जो स्त्रियाँ धर्म की रक्षा नहीं करती हैं उनका जीवन व्यर्थ है ।।६३।। जो चन्द्रमा का आलिङ्गन-रस नहीं जानती हैं, वे मूढ़ कही गयी हैं । वे मानो माता के गर्भ में ही स्थित

---

१ क. शान्तः।

स्वर्वैद्यौ मदनश्चन्द्रो मरुत्वान्नलकूबरः। एभिर्नाऽऽलिङ्गिता यास्ता वञ्चिता रतिकर्मभिः ॥६५॥
दिवानिशं मानसं मे तेषां क्रीडां च चिन्तयेत्। विशेषतः कामदेवो निपुणो रतिकर्मणि ॥६६॥
चन्द्रशृङ्गारमाश्लेषमालापममृताधिकम् । अद्य तस्य रतिदिनं तेन तच्चिन्तयेन्मनः ॥
तिलोत्तमावचः श्रुत्वा जहास बलिनन्दनः। सकामश्च सपुलकस्तामुवाच रहःस्थले ॥६७॥

## साहसिक उवाच

ब्रह्मणा निर्मिता त्वं च कौतुकेन तिलोत्तमे। [1]अतो वरा चाप्सरसां विदग्धरसिकेश्वरी ॥६८॥
सुन्दोपसुन्दयोर्नाशनिमित्तेन प्रयत्नतः। सर्वरूपगुणाधारा विधिना च कृता पुरा ॥६९॥
सर्वं जानासि सर्वज्ञे विज्ञे सुरतकर्मणि। हर्षेण श्रोतुमिच्छामि वद वो मानसं वचः ॥७०॥
अतिप्रियश्च को वा च कः स्वभावो वरानने। अकथ्यं गोपनीयं च श्रोतुमिच्छामि सुन्दरि ॥७१॥
गन्धर्वाणां सुराणां च राज्ञां पुण्यवतामपि। सर्वेषां प्राणतुल्या त्वमेषु ते कः परः प्रियः ॥७२॥
असुरस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य सा तिलोत्तमा। मुखमाच्छादनं चक्रे विलोक्य वक्रचक्षुषा ॥७३॥
सत्यं सारमन्तरस्थमव्यक्तमतिगोपनम्। उवाच मानसं वाक्यमज्ञातं विदुषामपि ॥७४॥

---

हैं, पुरुषत्व-रस से परिचित नहीं हैं ॥६४॥ अश्विनीकुमार, कामदेव, चन्द्रमा, वायु और नलकूबर का आलिङ्गन जिन स्त्रियों ने नहीं किया, वे रति-कर्म से वञ्चित ही रहीं ॥६५॥ मेरा मन उन लोगों की काम-क्रीड़ा का रात-दिन स्मरण करता रहता है, विशेषकर कामदेव रति में निपुण हैं। चन्द्रमा का आलिङ्गन, शृङ्गार और वार्तालाप अमृत से भी मधुर होता है, आज उन्हीं के साथ रति करने का दिन है, अतः मेरा मन उसी चिन्तन में निमग्न है ॥६६॥ तिलोत्तमा की बात सुनकर बलिपुत्र हँस पड़ा। काम और रोमाञ्च से युक्त उस (बलिपुत्र) ने एकान्त में उससे कहा ॥६७॥

**साहसिक बोला**—तिलोत्तमे ! ब्रह्मा ने तुम्हें कौतुक से बनाया है, इसलिए तुम अप्सराओं में श्रेष्ठ, चतुर एवं रसिकेश्वरी हो ॥६८॥ पूर्व समय में सुन्द और उपसुन्द के नाश के निमित्त ब्रह्मा ने बड़े प्रयत्न से समस्त गुणों की आधार तुम्हें बनाया था ॥६९॥ सर्वज्ञे ! तुम सब कुछ जानती हो और सुखकर्म में अति चतुर हो, तुम अपने लोगों के मन की बात कहो, मैं हर्ष से सुनना चाहता हूँ ॥७०॥ वरानने ! तुम्हें अति प्रिय कौन है ? रुचि क्या है ? सुन्दरि ! मैं अकथनीय एवं गोपनीय बात सुनना चाहता हूँ ॥७१॥ गन्धर्व, देव और पुण्यवान् राजा—सबकी तुम प्राण के समान हो। इनमें कौन तुम्हारा अत्यन्त प्रिय है ? ॥७२॥ असुर की ऐसी बात सुनकर उस तिलोत्तमा ने हँसकर तिरछी चितवन से उसे देखा और वस्त्र से मुख ढाँप लिया। उसने अपने मन की बात कहना आरम्भ किया, जो सत्य, साररूप, अन्तःस्थित, अप्रकट, अति गुप्त और विद्वानों को भी अज्ञात था ॥७३-७४॥

---

१ क. त्वत्तो मह्या नाप्सरसो वि°।

## तिलोत्तमोवाच

कथनीयं साहसिक पुंश्चलीनां मनोवचः। स्त्रीजातीनां च सर्वासामुपहासकरं परम् ॥७५॥
सर्वेषामपि दुर्ज्ञेयं चरितं योषितामपि। विशेषतोऽपि दुर्ज्ञेयं पुंश्चलीनां मनोवचः ॥७६॥
वेदवेदाङ्गशास्त्रान्तं सर्वं जानाति पण्डितः। कान्त नान्तं विजानाति दिशामाकाशयोषितम् ॥७७॥
विषादप्यप्रियो वृद्धो रत्नदोऽपि च योषिताम्। युवा सर्वस्वहर्ता चेत्प्राणेभ्योऽपि परः प्रियः ॥७८॥
युवानं सुन्दरं दृष्ट्वा ह्यार्ता भवति पुंश्चली। विशेषतः सुवेषं च दृष्ट्वैव हतचेतना ॥७९॥
निमेषरहिता तस्य लोचनाभ्यां पिबेन्मुखम्। योनौ जलं क्षरेत्तस्याः सद्यः कण्डूयनं भवेत् ॥८०॥
मनोऽतिलोलमस्थैर्यं सर्वाङ्गानि चकम्पिरे। जडीभूतं शरीरं च प्रदग्धं मदनानलात् ॥८१॥
संप्राप्य तं चेद्रहसि[1] साऽऽलापं कुरुते स्फुटम्। सकटाक्षं स्मेरवक्त्रं दर्शयित्वा पुनः पुनः ॥८२॥
तथा यदि वशं कर्तुं न शशाक जितेन्द्रियम्। स्वमङ्गं दर्शयित्वा तमन्तर्वाक्यं स्फुटं वदेत् ॥८३॥
दुःसाध्ये नायके दुःखं भवेदाजन्मजन्मनि। तत्तुल्यं तत्परं प्राप्य तं विस्मरति पुंश्चली ॥८४॥
पुंश्चलीनामप्रियः कः कः प्रियो वा महीतले। योऽतिशृङ्गारनिपुणः स च प्राणाधिकः प्रियः ॥८५॥

---

**तिलोत्तमा बोली**—साहसिक ! पुंश्चली स्त्रियों के मन की बात कहना, स्त्री जाति का महान् उपहास करना है ॥७५॥ क्योंकि सभी का चरित्र दुर्ज्ञेय होता है, स्त्रियों का तो और भी अधिक होता है, फिर पुंश्चली स्त्रियों के मन की बात तो विशेष रूप से दुर्ज्ञेय होती है ॥७६॥ हे कान्त ! पण्डित लोग वेद-वेदाङ्ग-शास्त्र के अन्त को तो जानते हैं, किन्तु दिशा, आकाश और स्त्रियों के अन्त को नहीं जान पाते ॥७७॥ स्त्रियों को रत्न देनेवाला भी वृद्ध पुरुष विष से भी अधिक अप्रिय होता है, और युवा यदि सर्वस्व का अपहरण करनेवाला भी हो तो भी वह प्राणों से भी उन्हें अधिक प्रिय होता है ॥७८॥ युवा और सुन्दर पुरुष को देखकर पुंश्चली स्त्री आर्त हो जाती है और विशेषकर उत्तम वेशवाले को देखकर तो वह चेतना खो बैठती है ॥७९॥ अपने नेत्रों से वह उसके मुख को एक निमेष काल भी देखती है तो उसकी योनि में जल आ जाता है और तुरन्त खुजलाहट पैदा होती है ॥८०॥ उसका मन अति चंचल हो जाता है, उसमें स्थिरता नहीं रहती, सर्वाङ्ग कांपने लगते हैं और जड़ीभूत शरीर कामाग्नि से जलने लगता है ॥८१॥ यदि एकान्त में वह उसे प्राप्त कर लेती है तो कटाक्षों से देखती हुई बार-बार अपने मुसकराते हुए मुख को दिखाकर उससे खुलकर वार्तालाप करती है ॥८२॥ यदि इतने पर भी वह उस जितेन्द्रिय को अपने अधीन न कर सकी, तो अपने अङ्गों को दिखाकर भीतरी बात स्पष्ट कह देती है ॥८३॥ और किसी भी तरह वश में न आनेवाले नायक के मिलने पर उसे जन्म-जन्मान्तर का दुःख होता है, फिर उसी के समान किसी दूसरे को पाकर वह उसे (पहले को) भूल जाती है ॥८४॥ पृथिवी पर पुंश्चली स्त्रियों को कौन प्रिय है और कौन अप्रिय, यह कहना कठिन है। किन्तु जो श्रृङ्गार में अति निपुण होता है वह उन्हें प्राणों से भी अधिक

---

१ क. संला°।

पूर्वजारं पतिं पुत्रं भ्रातरं पितरं प्रसूम् । विशिष्टं नूतनं प्राप्य सर्वं त्यजति लीलया ॥८६॥
न दानेन न मानेन सत्येन स्तवनेन वा । नोपकारेण प्रीत्या वा सा साध्या सुरतिं विना ॥८७॥
शयने भोजने चापि स्वप्ने ज्ञाने दिवानिशम् । नित्यं सत्पुरुषाश्लेषं स्मरन्ति कुलटाः स्त्रियाः ॥८८॥
शृङ्गारनिपुणानां च ध्यानसाध्या चिरं परम् । दारुणा पुंश्चलीजातिः प्रार्थयन्ती नवं नवम् ॥८९॥
सर्वासां कुलटानां च चरितं कथितं मया । अकथ्यं गोपनीयं च मम हृद्वचनं शृणु ॥९०॥
मम सन्ति प्रियतरा गन्धर्वेषु सुरेषु च । युवानो रतिशूराश्च कामशास्त्रविशारदाः ॥९१॥
विशेषतः शशधरे स्नेहो मे विद्यते परः । ततोऽतिरिक्तः सर्वस्मादपि कामः प्रियो मम ॥९२॥
प्रियो मे कामसदृशो न भूतो न भविष्यति । स्मरस्य स्मरणात्तूर्णं सुस्निग्धं मानसं मम ॥९३॥
इत्येवं कथितं सर्वमात्मनो योषितामपि । आज्ञां कुरु महाराज यास्यामि चन्द्रसंनिधिम् ॥९४॥
चन्द्रस्थानात्तव स्थानं समागत्य सुनिश्चितम् । संतोषं तव दैत्येन्द्र करिष्यामि न संशयः ॥९५॥
श्रुत्वैवं बलिपुत्रश्च जहासोच्चैः पुनः पुनः । सा वक्रचक्षुषाऽऽलोक्य तं जहास स्मरातुरा ॥९६॥
छलेन दर्शयामास कठिनं स्तनयोर्युगम् । चारुचम्पकवर्णाभं वर्तुलं पीनमुच्छ्रितम् ॥९७॥

---

प्रिय होता है । ॥८५॥ नये विशिष्ट जार को पाकर वह पहले के जार, पति, भ्राता, पिता और माता को भी अनायास छोड़ देती है ॥८६॥ बिना सुरति के वह दान, मान, सत्य, स्तुति, उपकार और प्रेम करने से भी वश में नहीं आती है ॥८७॥ कुलटा स्त्रियाँ शयन, भोजन, स्वप्न और जागरण में रात-दिन सत्पुरुषों के आलिङ्गन का नित्य स्मरण करती रहती हैं ॥८८॥ ध्यान मात्र से वे चिरकाल के लिए शृङ्गार निपुण पुरुषों के वश में हो जाती हैं । नये-नये पुरुष को चाहती हुई पुंश्चली की जाति दारुण होती है ॥८९॥ मैंने समस्त कुलटा स्त्रियों का चरित तुम्हें बता दिया, अब अकथनीय और गोपनीय मेरे हृदय की बात सुनो ॥९०॥ मुझे गन्धर्वों और देवों में वे ही अत्यन्त प्रिय हैं, जो युवा, रतिशूर और कामशास्त्र में निपुण हैं ॥९१॥ किन्तु चन्द्रमा में मेरा विशेष स्नेह रहता है और उनके बाद कामदेव मुझे सबसे अधिक प्रिय हैं ॥९२॥ काम के समान प्रिय मुझे न कोई हुआ और न होगा । काम का स्मरण होते ही मेरा मन अत्यन्त स्निग्ध हो जाता है ॥९३॥ इस प्रकार मैंने अपना और समस्त स्त्रियों का मर्म तुम्हें बता दिया । हे महाराज ! अब आप आज्ञा प्रदान करें, मैं चन्द्रमा के पास जाऊँगी ॥९४॥ हे दैत्येन्द्र ! चन्द्रमा के यहाँ से लौटकर तुम्हारे पास अवश्य आऊँगी और तब तुम्हें सन्तुष्ट करूँगी, इसमें संशय नहीं ॥९५॥ यह सुनकर वह बलिपुत्र बार-बार ठठाकर हँसने लगा और वह कामिनी भी कामातुर होकर तिरछी आँखों से उसे देख-देखकर हँसने लगी ॥९६॥ फिर व्याज से अपने दोनों कठोर स्तन दिखलाये, जो सुन्दर चम्पापुष्प के समान कान्तिवाले, गोल और स्थूल एवं उन्नत थे । तथा अत्यन्त कठोर एवं रमणीक अपना श्रोणी भाग दिखाया, जो कदलीस्तम्भ को

---

१ क. मान° ।

श्रोणी सुकठिनां रम्यां रम्भास्तम्भविनिन्दिनीम् । सकटाक्षं स्मेरमुखं कपोलं पुलकाञ्चितम् ॥९८॥
रहःस्थानं समासाद्य कामेन हतचेतना । पुलकाञ्चितसर्वाङ्गी लोचनाभ्यां पपौ मुखम् ॥९९॥
तस्य रूपं च वेषं च दर्शं दर्शं पुनः पुनः । मुखस्याऽऽच्छादनं भावात्कुर्वती सूक्ष्मवाससा ॥१००॥
अतिकामातुरां दृष्ट्वा सुप्राज्ञो बलिनन्दनः । पप्रच्छ कामिनां कामी भावं विज्ञातुमुत्सुकः ॥१०१॥

## साहसिक उवाच

किं करिष्यसि मां सत्यं वद पङ्कजलोचने । कार्यान्तरं करिष्यामि सुचिरं स्थातुमक्षमः ॥१०२॥
कामिनीषु बलात्कारो न धर्मो धर्मिणां प्रिये । विशेषतोऽतिविदुषां नास्माकं स्वकुलोचितः ॥१०३॥
शृङ्गारं देहि वा गच्छ रतिं कर्तुं सुरान्तिके । कः क्षमो वा वशीकर्तुं पुंश्चलीं बहुगामिनीम् ॥१०४॥
दानवस्य वचः श्रुत्वा शुष्ककण्ठोष्ठतालुका । आत्मानमधमंमन्या भिद्यमाना स्मरास्त्रतः ॥१०५॥

## तिलोत्तमोवाच

कथमेवं ब्रूहि (षि) त्वं मे कान्तः प्राणाधिकः प्रियः । कथं वा कोपयुक्तोऽसि कुरु कार्यं मनीषितम् ॥१०६॥
त्वामेव विमुखं कृत्वा यामि चन्द्रान्तिकं यदि । तवाभिशापात्तत्रैव सद्यो विघ्नो भविष्यति ॥१०७॥

---

विनिन्दित करनेवाला था । फिर सकटाक्ष मुसकराता हुआ मुख एवं रोमाञ्चित कपोल दिखलाया ॥९७-९८॥ तब एकान्त स्थान पाकर काम से नष्ट चेतनावाली वह कामिनी, जिसके सर्वाङ्ग में रोमाञ्च हो आया था, अपने नेत्रों से मुख (सौन्दर्य) को पीने लगी ॥९९॥ उसके रूप एवं वेश को बार-बार देखती हुई उसने कामभाव से अपने मुख को सूक्ष्म वस्त्र से ढँक लिया ॥१००॥ उसे अति कामातुर देखकर अति बुद्धिमान् एवं कामियों का भाव जानने को उत्सुक बलिपुत्र ने उससे पूछा ॥१०१॥

**साहसिक बोला**– हे कमलनयने ! तुम क्या करोगी ? यह मुझसे सत्य बताओ । दूसरा कार्य करूँगा । बहुत देर तक ठहरने में असमर्थ हूँ ॥१०२॥ प्रिये ! कामिनियों के साथ बलप्रयोग करना धर्मात्माओं का धर्म नहीं है । विशेषकर हम जैसे अति विद्वानों के अपने कुल के योग्य नहीं है ॥१०३॥ या तो मेरे साथ उपभोग करो या रति करने के लिए देव (चन्द्रमा) के पास जाओ, क्योंकि बहुतों के पास आने-जानेवाली पुंश्चली को कौन अपने वश में कर सकता है ? ॥१०४॥ दानव की बात सुनकर उसके कण्ठ और तालु सूख गये । काम के बाणों से आहत होती हुई वह अपने को अधम समझने लगी ॥१०५॥

**तिलोत्तमा बोली**—तुम ऐसा क्यों कह रहे हो ? तुम तो प्राणों से भी अधिक मुझे प्रिय हो । क्यों क्रोध कर रहे हो ? मनचाहा कार्य करो ॥१०६॥ यदि मैं तुम्हें इस प्रकार विमुख करके चन्द्रमा के पास जाती हूँ, तो तुम्हारे शाप से वहाँ तुरन्त विघ्न हो जायेगा ॥१०७॥ तुम रमण करो, भगवान् स्वयं तुम्हारा कल्याण

विहारं कुरु भद्रं ते करिष्यति हरिः स्वयम् । पदे पदे शुभं तस्य यः स्त्रीमानं च रक्षति ॥१०८॥
अवमन्य स्त्रियं मूढो यो याति पुरुषाधमः । पदे पदे तदशुभं करोति पार्वती सती ॥१०९॥
तिलोत्तमावचः श्रुत्वा जहास बलिनन्दनः । कामशास्त्रेषु निष्णातस्तद्भावं बुबुधे सुधीः ॥११०॥
भावं विज्ञाय भावज्ञः कामशास्त्रविशारदः । करे धृत्वा समाश्लिष्य चुचुम्ब मुखपङ्कजम् ॥१११॥
जगाम च तया सार्धं गन्धमादनगह्वरम् । ददर्श तत्र गत्वा च स्थानं जन्तुविवर्जितम् ॥११२॥
संस्थाप्य रत्नदीपांश्च धूपं च सुमनोहरम् । शय्यां रतिकरीं कृत्वा सुष्वाप च तया सह ॥११३॥
नानाप्रकारश्रृङ्गारं चकार काममोहितः । तिलोत्तमा तं बुबुधे सुरादपि विचक्षणम् ॥११४॥
विपरीतरतौ तुष्टा बभूव रसिकेश्वरी । दिवानिशं न बुबुधे नवसंगममूर्च्छिता ॥११५॥
तिलोत्तमा कामभावाद्बलिपुत्रमुवाच ह । कृत्वा वक्षसि प्राणेशं स्तनयोरन्तरे मुदा ॥११६॥

## तिलोत्तमोवाच

कदा द्रक्ष्याम्यहं कान्त मुखचन्द्रं मनोहरम् । एवंभूतं शुभदिनं कदा मे भविता पुनः ॥११७॥
अयि किं रूपमाश्चर्यं गुणो वा तव दानव । ध्रुवं शृङ्गारनिपुणस्त्वत्परो नास्ति कश्चन ॥११८॥
मां विस्मरसि कालेन पुरुषः षट्पदो यथा । स्त्रीणां सत्पुरुषाश्लेष आजीवं मनसि स्थितः ॥११९॥

---

करेंगे । जो स्त्री के मान की रक्षा करता है, उसका पग-पग पर शुभ होता है ॥१०८॥ जो नराधम स्त्री की अवमानना करके जाता है, सती पार्वती पग-पग पर उसका अशुभ करती हैं ॥१०९॥ तिलोत्तमा की बात सुनकर कामशास्त्र में निष्णात बलिपुत्र हँस पड़ा । उस विद्वान् ने उसका भाव ताड़ लिया ॥११०॥ भावों के ज्ञाता एवं कामशास्त्र के पण्डित उस दैत्य ने तिलोत्तमा का हाथ पकड़कर आलिंगन करके उसके मुख-कमल का चुम्बन लिया । फिर उसे साथ लेकर गन्धमादन पर्वत की जन्तुशून्य गुफा में चला गया, वहाँ रत्नों का दीपक, अतिमनोहर धूप तथा रति करने के उपयुक्त उत्तम शय्या स्थापित करके उसके साथ शयन किया ॥१११-११३॥ काममोहित होकर उस दैत्य ने उसके साथ अनेक प्रकार का शृङ्गार (कामोपभोग) किया । तिलोत्तमा उसे देवता से भी अधिक बुद्धिमान् समझने लगी ॥११४॥ वह रसिकेश्वरी उसके साथ विपरीत रति करने में सन्तुष्ट हो गयी । उस नव समागम में मूर्च्छित होने के कारण उसे दिन-रात का कुछ भी ज्ञान नहीं रहा ॥११५॥ अनन्तर तिलोत्तमा ने कामवश प्राणेश्वर (बलिपुत्र) को हर्ष से अपने स्तनों के बीच में करके उससे कहा ॥११६॥

**तिलोत्तमा बोली**—हे कान्त ! तुम्हारा मुखचन्द्र मैं अब पुनः कब देखूँगी ? ऐसा मेरा शुभ दिन पुनः कब आयेगा ॥११७॥ हे दानव ! आश्चर्यचकित करनेवाला यह तुम्हारा कैसा रूप एवं गुण है ? तुम कामोपभोग में निपुण हो, तुमसे बढ़कर निश्चय ही कोई नहीं है ॥११८॥ भौंरों की भाँति तुम समय बीतने पर मुझे भूल जाओगे । किन्तु सत्पुरुष का समागम स्त्रियों के मन में आजीवन स्थित रहता है ॥११९॥ शुभ दिन में

सत्संगमः शुभविने पुण्यात्पुण्यवतां भवेत् । सद्विच्छेदो दुःखहेतुर्मरणादतिरिच्यते ॥१२०॥
पीयूषभोजनात्स्वर्गवासादपि च दुर्लभः । सत्संगमः सुखमयोऽप्यसत्संगो विषाधिकः ॥१२१॥
क्षणं तिष्ठ महाराज पुनरालिङ्गनं कुरु । त्वया सार्धं मम प्राणा यास्यन्ति चेतसा सह ॥१२२॥
इत्येवमुक्त्वा कुलटा कृत्वा वक्षसि सादरम् । पुमङ्गसङ्गोत्पुलका मूर्च्छामाप सुखेन च ॥१२३॥
कुलटालिङ्गनालापात्सोऽतिकामी बभूव ह । यथा दीप्तः कृष्णवर्त्मा वर्धते हविषाऽधिकम् ॥१२४॥
पुनश्चकार श्रृङ्गारमसुरोऽष्टविधं मुने । चुम्बनं च नवविधं यथास्थाने यथोचितम् ॥१२५॥
नखदन्तकरैः क्रीडां चकार विविधां पुनः । किङ्किणीनां कङ्कणानां बभूव शब्द उल्बणः ॥१२६॥
मुनेर्दुर्वाससस्तेन ध्यानभङ्गो बभूव ह । अदृष्टस्य तयोस्तत्र वल्मीकाच्छादितस्य च ॥१२७॥
योगासनं कुर्वतश्च गन्धमादनगह्वरे । ध्यायतश्चरणाम्भोजं कृष्णस्य परमात्मनः ॥१२८॥
न पपात तयोर्दृष्टिः समीपस्थे महामुनौ । कामात्मनोर्न हि ज्ञानं कामेन हतचेतसोः ॥१२९॥
सहसा चेतना प्राप्य प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा । ददर्श पुरतस्तौ तु मुनिरुन्मील्य लोचने ॥१३०॥
दिवानिशं न जानन्तौ संयुक्तौ काममोहितौ । दृष्ट्वा चुकोप तेजस्वी रुद्रांशो भगवान्विभुः ॥१३१॥
उवाच तौ विहारान्ते रक्तपङ्कजलोचनः । ध्यानप्राप्तपदाम्भोजविच्छेदोद्विग्निमानसः ॥१३२॥

---

सत्पुरुषों का संग पुण्यवानों को पुण्य से प्राप्त होता है। सज्जन का वियोग दुःख का कारण है और मृत्यु से भी बढ़कर होता है ॥१२०॥ सत्संग अमृत-भोजन एवं स्वर्ग-निवास से भी दुर्लभ तथा सुखमय होता है, और असज्जन का साथ विष से भी अधिक होता है ॥१२१॥ महाराज ! क्षण भर रुको और पुनः मेरा आलिङ्गन करो— तुम्हारे साथ मेरे प्राण चित्त समेत चले जायेंगे ॥१२२॥ इतना कहकर उस कुलटा ने उन्हें फिर अपने हृदय से लगा लिया। उस पुरुष के अंग-संयोग से पुलकित होनेवाली वह कामिनी सुख से मूर्च्छित हो गयी ॥१२३॥ कुलटा के आलिङ्गन एवं वार्तालाप से वह उसी प्रकार अतिकामी हो गया जिस प्रकार हवि डालने पर अग्नि अधिक प्रदीप्त हो जाता है ॥१२४॥ मुने ! उस दैत्य ने पुनः उसके साथ आठ प्रकार का संभोग और नौ प्रकार का चुम्बन यथोचित स्थान में यथोचित रीति से किया ॥१२५॥ नखों, दाँतों और हाथों से विविध प्रकार की क्रीड़ा की। उस समय किंकिणियों और कंकणों का तीव्र शब्द हुआ ॥१२६॥ उससे मुनि दुर्वासा का ध्यान-भंग हो गया। उन दोनों ने मुनि को नहीं देखा, क्योंकि वे वल्मीक (बाँबी) से ढँके हुए थे ॥१२७॥ वे गन्धमादन पर्वत की गुफा में योगासन से विराजमान होकर परमात्मा कृष्ण के चरण-कमल के ध्यान में निमग्न थे॥१२८॥ समीप में रहते हुए भी उन महामुनि को उन दोनों ने नहीं देखा, कारण कि कामी प्राणी काम के द्वारा नष्टचित्त होने पर ज्ञान नहीं रखता है ॥१२९॥ सहसा ध्यान भंग होने पर ब्रह्मतेज से प्रज्वलित मुनि ने आँखें खोलीं तो उन दोनों को सामने देखा ॥१३०॥ काम से मोहित होकर जुड़े हुए वे दोनों दिन-रात को नहीं जानते थे। उन्हें देखकर रुद्र के अंश से उत्पन्न तेजस्वी भगवान् दुर्वासा कुपित हो गये। ध्यान में प्राप्त श्रीकृष्ण के चरण-कमल के वियोग से उद्विग्न चित्तवाले तथा रक्त कमल के समान नेत्रवाले मुनि ने विहार करने के अन्त में उन दोनों से कहा ॥१३१-१३२॥

## दुर्वासा उवाच

उत्तिष्ठ गर्दभाकार निर्लज्ज पुरुषाधम। भक्तप्रधानस्य बलेः पुत्रः पशुसमप्रभः ॥१३३॥
देवो वा मानवो वाऽपि दैत्यगन्धर्वराक्षसाः। लज्जां कुर्वन्ति सततं स्वजातौ च पशून्विना ॥१३४॥
ज्ञानलज्जाविहीना च खरजातिर्विशेषतः। तस्मात्त्वं दानवश्रेष्ठ खरयोनिं व्रजाधुना ॥१३५॥
तिलोत्तमे त्वमुत्तिष्ठ लज्जाहीना च पुंश्चली। एतादृशी स्पृहा दैत्ये व्रज योनिं च दानवीम् ॥१३६॥
इत्येवमुक्त्वा स मुनिस्तस्थौ तत्र रुषा ज्वलन्। तौ च तुष्टुवतुर्भीतावुत्थाय व्रीडितौ मुनिम् ॥१३७॥

## साहसिक उवाच

त्वं ब्रह्मा त्वं च विष्णुश्च त्वं च साक्षान्महेश्वरः। हुताशनस्त्वं सूर्यश्च सृष्टिस्थित्यन्तकारकः ॥१३८॥
क्षमापराधं भगवन्कृपां कुरु कृपानिधे। मूढापराधं सततं यः क्षमेत्स सदीश्वरः ॥१३९॥
इत्येवमुक्त्वा दैत्येन्द्रो रुरोदोच्चैः पुरो मुनेः। कृत्वा तृणानि दशने पपात चरणाम्बुजे ॥१४०॥

## तिलोत्तमोवाच

हे नाथ करुणासिन्धो दीनबन्धो कृपां कुरु। विधिसृष्टौ च सर्वेषां मूढा स्त्रीजातिरेव च ॥१४१॥
ततोऽतिमत्ता कुलटा सदा कामातुरा परा। लज्जा भीतिश्चेतना च न सन्ति कामुके विभो ॥१४२॥

---

**दुर्वासा बोले**—ओ गधे के समान आकारवाले निर्लज्ज नराधम! उठ। भक्तों में प्रधान बलि का पुत्र होकर भी तू पशु के समान आचरण कर रहा है ॥१३३॥ पशुओं को छोड़कर देव, मानव, दैत्य, गन्धर्व और राक्षस लोग भी अपनी-अपनी जाति में निरन्तर लज्जा करते हैं ॥१३४॥ विशेषतः गधे की जाति ज्ञान और लज्जा से हीन होती है। पुनः दानवश्रेष्ठ! तू इस समय गधे की योनि में जा ॥१३५॥ तिलोत्तमे! तू भी उठ, तू निर्लज्जा पुंश्चली है। दैत्य में तेरी ऐसी इच्छा है तो तू दानवी योनि में जन्म ग्रहण कर। क्रोध से प्रज्वलित मुनि इतना कहकर चुप हो गये और वे दोनों लज्जित होते हुए उठकर मुनि की स्तुति करने लगे ॥१३६-१३७॥

**साहसिक बोला**—आप ब्रह्मा, विष्णु और साक्षात् महेश्वर हैं। आप अग्नि, सूर्य और सृष्टि के पालक एवं विनाशक भी हैं ॥१३८॥ भगवन्! मेरा अपराध क्षमा करें। दयालो! दया करें। मूढ़ के अपराध को जो निरन्तर क्षमा करता रहता है, वह सच्चा ईश्वर है ॥१३९॥ इस प्रकार कहकर वह दैत्येन्द्र मुनि के सामने ऊँचे स्वर से रोदन करने लगा और दाँतों के नीचे तृण रखकर उनके चरण-कमल पर गिर पड़ा ॥१४०॥

**तिलोत्तमा बोली**—नाथ! करुणासिन्धो! दीनबन्धो! कृपा करो। ब्रह्मा की सृष्टि में सबसे मूढ़ स्त्री जाति ही होती है ॥१४१॥ विभो! उसमें भी पुंश्चली स्त्री अत्यन्त मतवाली और सदा अत्यधिक कामातुर रहनेवाली होती है। कामुक जन में लज्जा, भय एवं चेतना नहीं रहती है ॥१४२॥ यह कहकर रोदन करने

इत्युक्त्वा रोदनं कृत्वा जगाम शरणं मुनेः। विना विपत्तौ केषांचिज्ज्ञानं भवति भूतले ॥
तयोर्दृष्ट्वा च वैकल्यं बभूव करुणा मुनेः ॥१४३॥

## दुर्वासा उवाच

अतिशापः प्रसादो वा भवेद्दैवेन दानव। सत्कीर्तिरपकीर्तिर्वा प्राक्तनप्रभवा ध्रुवम् ॥१४४॥
विष्णुभक्तबलेः पुत्रः सद्वंशप्रभवो जनः। जनकाद्विष्णुभक्तोऽसि जानामि त्वां सुनिश्चितम् ॥१४५॥
जनकस्य स्वभावो हि जन्ये तिष्ठति निश्चितम्। यथा श्रीकृष्णपादाङ्कः कालीयवंशमस्तके ॥१४६॥
संप्राप्य गार्दभीं योनिं वत्स निर्माणतां व्रज। पूर्वं कृष्णार्चनफलं न हि लुप्तं सतां चिरात् ॥१४७॥
वृन्दारण्यं तालवनं व्रज शीघ्रं व्रजान्तिकम्। प्राणांस्त्यक्त्वा हरेश्चक्रान्मुक्तिं प्राप्स्यसि निश्चितम् ॥१४८॥
तिलोत्तमे भारते त्वं बाणपुत्री भविष्यसि। श्रीकृष्णपौत्राश्लेषेण पुनः पूता भविष्यसि ॥१४९॥
इत्येवमुक्त्वा स मुनिर्विरराम महामुने। तौ जग्मतुर्यथास्थानं प्रणम्य मुनिपुंगवम् ॥१५०॥
इत्युक्तं सर्ववृत्तान्तं दैत्यस्य खरजन्मनः। तिलोत्तमा बाणपुत्री ह्यु षाऽनिरुद्धकामिनी ॥१५१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० तिलोत्तमाबलिपुत्रयो-
र्ब्रह्मशापप्रस्तावो नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

---

वह मुनि की शरण में गयी। पृथ्वी पर बिना विपत्ति के किसे ज्ञान प्राप्त होता है? उन दोनों की विकलता देखकर मुनि को करुणा आ गयी ॥१४३॥

**दुर्वासा बोले**—दानव! महान् शाप या अनुग्रह दैव संयोग से होता है। और उत्तम यश या अपयश निश्चित ही पुराने कर्मों के अनुसार होते हैं ॥१४४॥ तुम विष्णु के भक्त बलि के पुत्र हो, उत्तम वंश में जन्म है, पिता के संबंध से विष्णुभक्त हो, मैं तुम्हें भलीभाँति जानता हूँ ॥१४५॥ पिता का स्वभाव पुत्र में अवश्य आता है, जैसे श्रीकृष्ण के चरण-चिह्न कालिय नाग के वंशजों के मस्तक पर अङ्कित रहता है ॥१४६॥ वत्स! गधे की योनि में उत्पन्न होकर निर्वाण पद प्राप्त करो! सज्जनों का पूर्वजन्मार्जित कृष्णोपासना का फल चिर काल होने पर भी लुप्त नहीं होता ॥१४७॥ व्रज के समीप वृन्दावन के तालवन में जाओ। श्रीकृष्ण के चक्र द्वारा प्राण परित्याग करके निश्चित रूप से मुक्ति प्राप्त करोगे ॥१४८॥ तिलोत्तमे! तू भारत में बाणासुर की पुत्री (उषा) होकर जन्म ग्रहण करेगी और वहाँ श्रीकृष्ण के पौत्र (अनिरुद्ध) के संयोग से पुनः पवित्र हो जायगी ॥१४९॥ महामुने! इस प्रकार कहकर मुनि चुप हो गये और वे दोनों मुनिश्रेष्ठ को प्रणाम करके यथास्थान चले गये ॥१५०॥ इस प्रकार दैत्य का गर्दभ-योनि में जन्म लेने का समस्त वृत्तान्त मैंने तुमसे कह दिया, जिसमें तिलोत्तमा बाण-पुत्री उषा होकर अनिरुद्ध की पत्नी हुई ॥१५१॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्ण-जन्म-खण्ड में नारद-नारायण-संवाद में तिलोत्तमा और बलिपुत्र के ब्रह्मशापवर्णन नामक तेईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२३॥

# अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

### नारायण उवाच

निगूढं शृणु वृत्तान्तं मुनेर्दुर्वाससो मुने। अहोऽस्य दारसंयोगः कथं तदूर्ध्वरेतसः ॥१॥
दृष्ट्वा तयोश्च शृङ्गारं मुनिः कामी बभूव ह। जितेन्द्रियोऽसत्संसर्गाद्दोषः सांसर्गिको भवेत् ॥२॥
सहसा तस्य हृदये बभूव सुरते स्पृहा। तपस्तप्त्वा तत्र दध्यौ कामिनी मदनातुरः ॥३॥
एतस्मिन्नन्तरे येन पथा याति मुनीश्वरः। प्रार्थयन्त्या पतिं सन्तमौर्वश्च सुतया सह ॥४॥
ऊरूद्भवो ब्रह्मणश्च पुरा कल्पे तपस्यतः। ऊर्ध्वरेताश्च योगीन्द्र औवंस्तेन इति स्मृतः ॥५॥
तस्य जानूद्भवा कन्या कन्दली नाम विश्रुता। दुर्वाससं प्रार्थयन्ती नान्यं मनसि रोचते ॥६॥
ससुतो हि मुनिश्रेष्ठो मुनेर्दुर्वाससः पुरः। तस्थौ महाप्रसन्नश्च ज्वलदग्निशिखोपमः ॥७॥
मुनीन्द्रोऽपि मुनीन्द्रं तं पुरो दृष्ट्वा ससंभ्रमः। प्रजवेन समुत्तस्थौ ननाम च मुदाऽन्वितः ॥८॥
औवों दुर्वाससं तत्र समाश्लिष्य मुदाऽन्वितः। उवाच मुनये सर्वं कन्यकाया मनोरथम् ॥९॥

---

# अध्याय २४

## तालफल भक्षण के प्रसंग में बलिपुत्र का मोक्ष

**नारायण बोले**—मुने ! दुर्वासा मुनि का निगूढ़ वृत्तान्त सुनो। आश्चर्य की बात है कि उन ऊर्ध्वरेता को स्त्री का संयोग कैसे प्राप्त हुआ ॥१॥ उन दोनों का शृङ्गार (रति-क्रीड़ा) देखकर जितेन्द्रिय मुनि भी काम-युक्त हो गये क्योंकि असत् पुरुष के संसर्ग से सांसर्गिक दोष अपने में आ जाता है ॥२॥ सहसा उनके हृदय में सुरति करने की अभिलाषा उत्पन्न हो गयी, तप करके मुनि ने वहाँ कामातुर होकर कामिनी का ध्यान किया ॥३॥ इसी बीच मुनीश्वर और्व उसी मार्ग से जा रहे थे। उनके साथ उनकी पुत्री भी थी, जो पति का वरण करना चाहती थी ॥४॥ पूर्व कल्प में तप करते हुए ब्रह्मा के ऊरु प्रदेश से उत्पन्न होने के कारण उन्हें 'और्व' कहा गया है, जो ऊर्ध्वरेता एवं योगीन्द्र थे ॥५॥ उनके ऊरु प्रदेश से उत्पन्न होनेवाली उस कन्या का नाम कन्दला था, जो दुर्वासा को ही चाहती थी दूसरे को पसन्द नहीं करती थी ॥६॥ मुनिश्रेष्ठ और्व जो महाप्रसन्न एवं प्रज्वलित अग्निशिखा की भाँति प्रदीप्त थे, अपनी पुत्री समेत दुर्वासा मुनि के सामने आकर उपस्थित हो गये ॥७॥ मुनीन्द्र दुर्वासा उन मुनिश्रेष्ठ को सामने देखकर घबड़ा गये और वेग से प्रसन्नतापूर्वक उठकर खड़े हो गये और नमस्कार करने लगे। और्व ने दुर्वासा का आलिंगन करके हर्षान्वित होकर अपनी कन्या की अभिलाषा उनसे कह दी ॥८-९॥

## और्व उवाच

विख्याता कन्दली नाम मम कन्या मनोहरा। प्रौढा त्वामेव ध्यायन्ती श्रुत्वा वाचिकवक्त्रतः ॥१०॥
अयोनिसंभवा कन्या त्रैलोक्यं मोहितुं क्षमा। सर्वरूपगुणाधारा दोषेणैकेन संयुता ॥११॥
अतीव कलहाविष्टा कोपेन कटुभाषिणी। नानागुणयुतं द्रव्यं न त्यजेदेकदोषतः ॥१२॥
और्वस्य वचनं श्रुत्वा हर्षशोकान्वितो मुनिः। ददर्श कन्यां पुरतो गुणरूपसमन्विताम् ॥१३॥
शरत्पार्वणचन्द्रास्यां शरत्पङ्कजलोचनाम्। ईषद्धासप्रसन्नास्यां पीनश्रोणिपयोधराम् ॥१४॥
नवयौवनसंयुक्तां पश्यन्तीं वक्रचक्षुषा। रत्नालंकारशोभाढ्यां वह्निशुद्धांशुकान्विताम् ॥१५॥
मुनिर्मुमोह तां दृष्ट्वा कामबाणप्रपीडितः। उवाच तं मुनिश्रेष्ठं हृदयेन विदूयता ॥१६॥

## दुर्वासा उवाच

नारीरूपं त्रिभुवने मुक्तिमार्गनिरोधकम्। व्यवधानं तपस्यायाः सततं मोहकारणम् ॥१७॥
कारागारे च संसारे दुर्वहं निगडं परम्। अच्छेद्यं ज्ञानखड्गैश्च महद्भिः शंकरादिभिः ॥१८॥
सङ्गिच्छायातिरिक्तं च कर्मभोगात्परात्परम्। इन्द्रियादिन्द्रियाधाराद्विद्यायाश्च मतेरपि ॥१९॥

---

**और्व बोले**—कन्दली नाम से विख्यात मेरी सुन्दरी तथा प्रौढ़ कन्या संदेशवाहकों के मुख से सुनकर नित्य तुम्हारा ही ध्यान करती रहती है ॥१०॥ यह कन्या अयोनिजा है और तीनों लोकों को मोहित करने में समर्थ है। वैसे तो यह सकल गुणों की आधार है, किन्तु इसमें एक दोष भी है ॥११॥ वह अत्यन्त झगड़ालू तथा कोप से कटु भाषण करनेवाली है। पर, अनेक गुण युक्त वस्तु का एक दोष के कारण त्याग नहीं किया जाता ॥१२॥ और्व मुनि की बात सुनकर दुर्वासा को हर्ष और शोक दोनों उत्पन्न हुए। उन्होंने गुण-रूपयुक्त कन्या को सामने देखा। उसका मुख शारदीय पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान था, नेत्र शरद् ऋतु के कमल के सदृश थे, मुख मुस्कराहट से युक्त था, नितम्ब और कुच स्थूल थे। वह नवयौवन से सम्पन्न थी तथा तिरछी चितवन डाल रही थी। वह रत्नों के आभूषण तथा श्री से सम्पन्न और अग्निशुद्ध वस्त्र धारण किये हुई थी ॥१३-१५॥ दुर्वासा मुनि उसे देखते ही मुग्ध होकर कामबाणों से अति पीड़ित होने लगे। हार्दिक वेदना का अनुभव करते हुए उन्होंने और्व ऋषि से कहा ॥१६॥

**दुर्वासा बोले**—तीनों लोकों में स्त्रीरूप मुक्ति-मार्ग का अवरोधक है, तपस्या में व्यवधान डालनेवाला है और निरन्तर मोह का कारण है ॥१७॥ इस संसार रूपी कारागार (जेल) में बड़ी भारी बेड़ी है, जिसका वहन करना कठिन है और जिसे शंकर आदि महापुरुष भी ज्ञानरूपी खड्ग से काट नहीं सकते ॥१८॥ नारी सदा साथ देनेवाली छाया से भी अधिक सहगामिनी है। वह कर्मभोग, इन्द्रियाधार, विद्या और बुद्धि से भी अधिक

आदेहं सङ्गिनी छाया भोगान्तं भोग एव च । देहेन्द्रियाणि जीवान्तं विद्या चैवावशीलिनम् ॥२०॥
मतिश्चैवावशीलान्ता सुस्त्री जन्मनि जन्मनि । यावज्जीवी च सुस्त्रीको न तावज्जन्मखण्डनम् ॥२१॥
यावच्च जीविकाजन्म तावदभोगः सुखावहः । परं मुनीन्द्र सर्वस्माद्धरिपादाब्जसेवनम् ॥२२॥
ध्यायतः कृष्णपादाब्जं मम विघ्नो बभूव ह । न जाने कर्मदोषेण केन वा पूर्वजन्मनः ॥२३॥
पुंश्चल्या सह शृङ्गारं दृष्ट्वा दैत्यस्य मन्मनः । बभूव कामसंयुक्तं दत्तं धात्रा च तत्फलम् ॥२४॥
किं त्वहं तव कन्यायाः कटूक्तिशतकं मुने । ध्रुवं क्षमां करिष्यामि दास्यामि च ततः फलम् ॥२५॥
सर्वतोऽपि परा निन्दा स्त्रीकटूक्तिसहिष्णुता । अतीव निन्दितः सत्सु स्त्रीजितो भुवनत्रये ॥२६॥
तवाऽऽज्ञां मस्तके कृत्वा ग्रहीष्यामि सुतां तव । उपेतां कामिनीं त्यक्त्वा कालसूत्रं व्रजेन्नरः ॥२७॥
रहस्युपस्थितां कामात्पुंश्चलीं चेज्जितेन्द्रियः । परित्यजेद्धर्मभयादधर्मान्नरकं व्रजेत् ॥२८॥
इत्येवमुक्त्वा दुर्वासा विरराम मुनेः पुरः । मुनिर्वेदोक्तविधिना ददौ तस्मै सुतां मुने ॥२९॥
स्वस्तीत्युवाच दुर्वासा मुनिश्च यौतुकं ददौ । कन्यासमर्पणं कृत्वा मोहाच्चैव रुरोद ह ॥३०॥
मूर्च्छामवाप स मुनिः स्वकन्याविरहातुरः । अपत्यभेदशोकौघः स्वात्मारामं न मुञ्चति ॥३१॥

---

बाँधनेवाली है ॥१९॥ छाया शरीर के रहने तक ही साथ देती है; भोग तभी तक साथ रहते हैं जब तक उनकी समाप्ति न हो जाय; देह और इन्द्रियाँ जीवनपर्यन्त ही साथ रहती हैं; विद्या जब तक उसका अनुशीलन होता है तभी तक साथ देती है ॥२०॥ यही दशा बुद्धि की भी है; परन्तु उत्तम स्त्री जन्म-जन्म में मनुष्य को बन्धन में डाले रहती है। उत्तम स्त्रीवाला पुरुष जब तक जीता है तब तक जन्म-मरण का निवारण नहीं कर सकता ॥२१॥ जब तक प्राणी का जन्म होता रहता है तब तक भोग उसे सुखदायक जान पड़ता है। परन्तु मुनीन्द्र ! सबसे अधिक सुखदायिनी है श्रीहरि के चरण-कमलों की सेवा ॥२२॥ मैं श्रीकृष्ण के चरण-कमल का ध्यान कर रहा था, यह विघ्न उपस्थित हो गया। न जाने पूर्वजन्म के किस कर्मदोष से यह आया है। पुंश्चली के साथ दैत्य का रति-विलास देखकर मेरा मन कामयुक्त हो गया, ब्रह्मा ने उसका फल मुझे दे दिया ॥२३-२४॥ किन्तु मुने ! तुम्हारी कन्या की सौ कटूक्तियों (कड़वी बातों) को मैं अवश्य क्षमा करूँगा, पश्चात् (कटूक्ति कहने पर) उसका फल दूँगा ॥२५॥ स्त्री की कड़वी बातों का सहन करते रहना (पुरुष के लिए) सबसे बड़ी निन्दा की बात है और तीनों लोकों में सज्जनों के बीच स्त्रीजित पुरुष अत्यन्त निन्दित होता है ॥२६॥ आपकी आज्ञा शिरोधार्य करके मैं आपकी कन्या का ग्रहण करूँगा क्योंकि प्राप्त कामिनी का त्याग करने से मनुष्य कालसूत्र नामक नरक में जाता है ॥२७॥ कामवश पुंश्चली के भी एकान्त में उपस्थित होने पर यदि जितेन्द्रिय भी धर्मभय से उसका त्याग करता है, तो उस अधर्म से उसे नरक में जाना पड़ता है ॥२८॥ मुनि के सामने इतना कहकर दुर्वासा चुप हो गये। मुने ! तब और्व ने वेदोक्त विधि से उन्हें अपनी कन्या दे दी ॥२९॥ दुर्वासा ने 'स्वस्ति' कहकर स्वीकार किया ! मुनि ने दहेज दिया। कन्या समर्पण करने के उपरान्त मुनि मोहवश रोदन करने लगे। अपनी कन्या के वियोग में उन्हें मूर्च्छा आ गयी। क्योंकि सन्तान-वियोग-जनित

क्षणेन चेतनां प्राप्य बोधयामास कन्यकाम् । मूर्च्छितां तातविच्छेदाद्रुदन्तीं शोकसंयुताम् ॥३२॥

औंर्व उवाच

शृणु वत्से प्रवक्ष्यामि नीतिसारं सुदुर्लभम् । हितं सत्यं च वेदोक्तं परिणामसुखावहम् ॥३३॥
स्वकान्तश्च परो बन्धुरिह लोके परत्र च । न हि कान्तात्परः प्रेयान् कुलस्त्रीणां पुरो गुरुः ॥३४॥
देवपूजा व्रतं दानं तपश्चानशनं जपः । स्नानं च सर्वतीर्थेषु दीक्षा सर्वमखेषु च ॥३५॥
प्रादक्षिण्यं पृथिव्याश्च ब्राह्मणातिथिसेवनम् । सर्वाणि पतिसेवायाः कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥३६॥
किमेतैः पतिभक्तताया अभक्तायाश्च भारते । यदा दुःखी सुखारम्भे साकाङ्क्षः प्रथमो भवेत् ॥
पतिसेवापरोः धर्मः सर्वशास्त्रेषु पठ्यते । स्वप्रज्ञानेन सततं कान्तं नारायणाधिकम् ॥३७॥
दृष्ट्वा तच्चरणाम्भोजसेवां नित्यं करिष्यति । परिहासेन कोपेन भ्रमेणावज्ञया सुते ॥३८॥
कटूक्ति स्वामिनः साक्षात्परोक्षान्न करिष्यति । स्त्रिया वाग्योनिदुष्टायाः कामतो भारते भुवि ॥३९॥
प्रायश्चित्तं श्रुतौ नास्ति नरकं ब्रह्मणः शतम् । सर्वधर्मपरीता या कटूक्ति कुरुते पतिम् ॥४०॥
शतजन्मकृतं पुण्यं तस्या नश्यति निश्चितम् । दत्त्वा कन्यां बोधयित्वा जगाम मुनिपुंगवः ॥४१॥

---

शोक स्वात्माराम को भी नहीं छोड़ता है ॥३०-३१॥ क्षण में चेतना प्राप्त होने पर उन्होंने कन्या को समझाना प्रारम्भ किया, जो पिता से अलग होने के कारण रोती हुई शोकान्वित हो रही थी ॥३२॥

**और्व बोले**—वत्से ! मैं तुम्हें अतिदुर्लभ नीति-तत्त्व बता रहा हूँ जो हितकारक, सत्य, वेदोक्त और परिणाम में सुखप्रद होगा ॥३३॥ नारी के लिए अपना पति ही इहलोक और परलोक में सबसे बड़ा बन्धु है । कुलाङ्गनाओं के लिए कान्त से बढ़कर कोई प्रिय नहीं है, पति ही उनका श्रेष्ठ गुरु है ॥३४॥ देव-पूजा, व्रत, दान, उपवास, जप, सभी तीर्थों में स्नान, समस्त यज्ञों में दीक्षा, पृथ्वी की प्रदक्षिणा, ब्राह्मण अतिथि की सेवा ये सभी पति-सेवा की सोलहवीं कला के समान भी नहीं हैं ॥३५-३६॥ भारत में पतिभक्ता या अभक्ता सभी को इन सबसे प्रयोजन ही क्या है, जब सुखारम्भ में पहले-पहल साकांक्ष होने पर पति दुःखी हो जाय ? सभी शास्त्रों में बताया गया है कि पति-सेवा महान् धर्म है । अपनी बुद्धि से सदैव पति को नारायण से भी अधिक समझना चाहिए ॥३७॥ उसके चरण-कमल की नित्य सेवा करनी चाहिए । हे मुने ! परिहास (मजाक), कोप या भ्रमवश अथवा अवहेलना से भी अपने स्वामी के लिए उसके सामने या परोक्ष में भी कभी कटु वचन नहीं बोलना चाहिए । भारतवर्ष की भूमि पर जो स्त्री स्वेच्छानुसार कटु वचन बोलती अथवा दुराचार में प्रवृत्त होती है, उसकी शुद्धि के लिए वेद में कोई प्रायश्चित्त ही नहीं है । उसे सौ ब्रह्मा के समय तक नरक में रहना पड़ता है । जो स्त्री समस्त धर्मों से सम्पन्न होने पर भी पति के प्रति कटु वचन बोलती है, उसका सौ जन्मों का किया हुआ पुण्य निश्चित ही नष्ट हो जाता है । इस प्रकार मुनि-पुङ्गव और्व अपनी कन्या को उद्बोधन देकर चले गये

स्वात्मारामः स्वाश्रमे च तस्थौ स्त्रीसहितो मुदा । संभोगेच्छावृते चित्ते कामी संप्राप कामिनीम् ॥४२॥
अहो सुकृतिनां कामो वाञ्छामात्रेण सिध्यति । शय्यां रतिकरीं कृत्वा मुनिश्रेष्ठो महामुने ॥४३॥
शुभे क्षणे गृहीत्वा तां सुष्वाप निर्जने प्रियाम् । नारीरसानभिज्ञः स्यादाजन्म मुनिपुंगवः ॥४४॥
तथाऽपि सुरतौ विज्ञः कामशास्त्रविशारदः । नानाप्रकारं शृङ्गारं चकार विधिपूर्वकम् ॥४५॥
नवसंगममात्रेण मूर्च्छां संप्राप कन्दली । मूर्च्छां प्राप मुनिश्रेष्ठो बुबुधे न दिवानिशम् ॥४६॥
एवं प्रतिदिनं तत्र चकार सुरतिं मुने । विदग्धाया विदग्धेन बभूव संगमः समः ॥४७॥
संबभूव गृहासक्तस्तपस्त्यक्त्वा मुनीश्वरः । करोति कलहं नित्यं कन्दली स्वामिना सह ॥४८॥
मुनीन्द्रो बोधयामास नीतिवाक्येन कामिनीम् । सा तन्न बुबुधे किंचित्करोति कलहे स्पृहाम् ॥४९॥
तातप्रदत्तज्ञानेन सा न शान्ता बभूव ह । न हीयते प्रबोधेन स्वभावो दुरतिक्रमः ॥५०॥
नित्यं कटूक्तिं कान्तं सा करोति हेतुना विना । जगत्प्रकम्पितं येन तया कोपात्स कम्पितः ॥५१॥
तया कृतां कटूक्तिं च क्षमासंस्थां चकार ह । बोधयामास तां नित्यं सद्यो मोहाद्दयानिधिः ॥५२॥
कटूक्तिशतकं पूर्णं तत्कालेन बभूव ह । क्षमां चकार कृपया कटूक्तिं च शताधिकाम् ॥५३॥
पत्नीकटूक्त्या नियतं प्रदग्धं मानसं मुने । तस्याः कटूक्तिकारिण्याः कर्म पूर्णं बभूव ह ॥५४॥

---

और स्वात्माराम दुर्वासा स्त्री के साथ प्रसन्नतापूर्वक अपने आश्रम में रहने लगे। मन में सम्भोग की इच्छा होते ही कामी मुनि को कामिनी मिल गयी ॥३८-४२॥ अहो ! पुण्यात्माओं का काम इच्छामात्र से सिद्ध हो जाता है। हे महामुने ! अनन्तर मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा ने शुभ मुहूर्त्त में रति के उपयुक्त शय्या बनाकर उस निर्जन प्रदेश में अपनी प्रिया के साथ शयन किया। यद्यपि मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा नारी-रस से आजीवन अनभिज्ञ रहे, तथापि कामशास्त्र में निपुण और सुरति करने में विलक्षण थे। उन्होंने विधिपूर्वक अनेक प्रकार का शृङ्गार किया ॥४३-४५॥ नवसंगम मात्र से कन्दली को मूर्च्छा आ गयी। और मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा को भी मूर्च्छित रहने के कारण उस समय दिन-रात का कुछ ज्ञान नहीं रहा ॥४६॥ मुने ! इस प्रकार वे प्रतिदिन सुरति करने लगे। चतुर पुरुष का चतुरा स्त्री के साथ योग्य समागम हुआ ॥४७॥ अब मुनीश्वर दुर्वासा तपस्या त्यागकर घर-गृहस्थी में आसक्त हो गये। कन्दली पति से नित्य कलह (झगड़ा) करने लगी, किन्तु मुनीन्द्र दुर्वासा उस कामिनी को नीति की बातों से समझाते थे। (किन्तु) वह उनकी बातों को कुछ भी नहीं समझती थी--नित्य कलह (झगड़ा) ही करती थी और पिता के दिये ज्ञान से भी वह शान्त न हो सकी। (क्योंकि) स्वभाव दुर्लङ्घ्य होता है, वह समझाने से कम नहीं होता है ॥४८-५०॥ वह अकारण पति को नित्य कड़वी बातें सुनाती थी, जिससे सारा जगत् कम्पित होता था, वही पत्नी के कोप से कम्पित हो गये ॥५१॥ दयानिधान मुनि उसकी कटूक्तियों को चुपचाप सह लेते थे और मोहवश उसे तुरन्त समझाने लगते थे ॥५२॥ (इस प्रकार) उसकी सौ कटूक्तियाँ तत्काल पूरी हो गयी, किन्तु महर्षि ने कृपया सौ से अधिक कटूक्तियों को सहन किया ॥५३॥ उसकी कटूक्तियों से मुनि का मन दग्ध होता रहता था और उस कटूक्तिकारिणी के अपराध पूरे हो गये ॥५४॥

स्वात्मारामो दयालुश्च कोपं त्यक्तुं न स क्षमः । शशाप कामिनीं मोहाद्भस्मराशिर्भवेति च ।।५५।।
मुनेरिङ्गितमात्रेण भस्मसात्सा बभूव ह । एवमत्युच्छ्रितानां च न कल्याणं जगत्त्रये ।।५६।।
शरीरे भस्मसाद्भूते प्रतिबिम्बः स चाऽऽत्मनः । जीवस्तत्रान्तरिक्षस्थो ह्युवाच विनयात्प्रभुम् ।।५७।।

जीव उवाच

हे नाथ सर्वदर्शी त्वं सततं ज्ञानचक्षुषा । सर्वं जानासि सर्वज्ञः किमहं बोधयामि ते ।।५८।।
सदुक्तिर्वा कटूक्तिर्वा कोपः संताप एव च । लोभो मोहश्च कामश्च क्षुत्पिपासादिकं च यत् ।।५९।।
स्थौल्यं कार्श्यं च नाशश्च दृश्यादृश्यं समुद्भवम् । सर्वं शरीरधर्मं च न जीवस्य न चाऽऽत्मनः ।।६०।।
सत्त्वं रजस्तम इति शरीरं त्रिगुणात्मकम् । तच्च नानाप्रकारं च निबोध कथयामि ते ।।६१।।
किंचित्सत्त्वातिरिक्तं च किंचिदेव रजोधिकम् । तमोऽतिरिक्तं किंचिच्च न समं कुत्रचिन्मुने ।।६२।।
सत्त्वोदयाच्च मुक्तीच्छा कर्मेच्छा च रजोगुणात् । तमोगुणाज्जीवहिंसा कोपोऽहंकार एव च ।।६३।।
कोपात्कटूक्तिर्नियतं कटूक्त्या शत्रुता भवेत् । तया चाप्रियता सद्यः शत्रुः कः कस्य भूतले ।।६४।।
को वा प्रियोऽप्रियः को वा किं मित्रं को'रिपुर्भवेत् । इन्द्रियाणि च बीजानि सर्वत्र शत्रुमित्रयोः ।।६५।।

---

स्वात्माराम एवं दयालु होते हुए भी मुनि अपने कोप का त्याग न कर सके थे । उन्होंने मोहवश पत्नी को शाप दे दिया—"तू राख का ढेर हो जा ।" मुनि के संकेत मात्र से वह भस्मसात् हो गयी । ऐसी उच्छृंखल स्त्रियों का तीनों (लोक) में कल्याण नहीं होता है ।।५४-५६।। शरीर के जल जाने पर आत्मा का प्रतिबिम्ब रूप जीव अन्तरिक्ष में स्थित होकर मुनि से सविनय बोला ।।५७।।

**जीव ने कहा**—हे नाथ ! तुम अपने ज्ञाननेत्र से निरन्तर सब-कुछ देखते हो और सर्वज्ञ होने के नाते सब-कुछ जानते हो, मैं तुम्हें क्या समझाऊँ । उत्तम वचन, कटु वचन, कोप, सन्ताप, लोभ, मोह, काम, क्षुधा, पिपासा आदि और स्थूलता, दुर्बलता, नाश, दृश्य, अदृश्य और उत्पन्न होना—ये सब शरीर के धर्म हैं, न जीव के और न आत्मा के ।।५८-६०।। सत्त्व, रज और तम से निर्मित होने के कारण यह शरीर त्रिगुणात्मक है । वह भी अनेक प्रकार का है, सुनो मैं कह रहा हूँ ।।६१।। मुने ! किसी शरीर में सत्त्वगुण अधिक होता है, किसी में रज और किसी में तम की अधिकता होती है । कहीं भी शरीर सम गुणोंवाला नहीं है ।।६२।। शरीर में सत्त्व के उद्रेक होने से जीव को मुक्ति की इच्छा होती है, रजोगुण के उदय होने पर (सांसारिक) कर्म करने की इच्छा होती है और तमोगुण से जीवों की हिंसा, क्रोध और अहंकार उत्पन्न होते हैं ।।६३।। कोप से कटूक्ति निश्चय ही बोली जाती है, कटूक्ति से शत्रुता होती है और शत्रुता से तुरन्त अप्रियता आ जाती है—नहीं तो पृथिवी पर कौन किसका शत्रु है ? कौन प्रिय है और कौन अप्रिय ? कौन मित्र है और कौन शत्रु ? सर्वत्र शत्रु-मित्र होने में

---

१ क. °पुर्भुवि ।

प्राणाधिकः प्रियः स्त्रीणां भर्तुः प्राणाधिका प्रिया । बभूव शत्रुता सद्यो दुरुक्त्या च क्षणाद्द्वयोः ॥६६॥
यद्गतं तद्गतं सर्वं कामदोषेण वै प्रभो । क्षमापराधं निखिलं किं कर्त्तव्यं वदाधुना ॥६७॥
किं करोमि क्व यामीति भविता कुत्र जन्म मे । तव नान्यस्य जायाऽहं भविष्यामि जगत्त्रये ॥६८॥
इत्येवमुक्त्वा जीवश्च मौनीभूतो बभूव ह । मूर्च्छामवाप स मुनिः शोकेन हतचेतनः ॥६९॥
स्वात्मारामो महाज्ञानी जहार चेतनामहो । स्त्रीविच्छेदो विदग्धानां सर्वशोकात्परात्परः ॥७०॥
क्षणेन चेतनां प्राप्य प्राणांस्त्यक्तुं समुद्यतः । तत्र योगासनं कृत्वा चकार वायुधारणम् ॥७१॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र जगाम ब्राह्मणोऽर्भकः । दण्डी छत्री रक्तवासा बिभ्रत्तिलकमुत्तमम् ॥७२॥
सस्मितः श्यामवर्णश्च प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा । वयसाऽतिशिशुः शान्तो ज्ञानी वेदविदां वरः ॥७३॥
दृष्ट्वा तं संभ्रमेणैव दुर्वासाः प्रणनाम ह । वासयामास तत्रैव पूजयामास भक्तितः ॥७४॥
उवाच ब्राह्मणवटुर्दत्त्वा तस्मै सदाशिवम् । तद्दर्शनादाशिषा च सर्वं दुःखं गतं मुनेः ॥७५॥
शिशुरूपं क्षणं स्थित्वा तमुवाच विचक्षणः । पीयूषतुल्यं नीत्योर्थं[1] नीतिशास्त्रविशारदः ॥७६॥

---

इन्द्रियाँ ही कारण होती हैं ॥६४-६५॥ स्त्रियों को पति प्राण से भी अधिक प्रिय होता है और पति को पत्नी प्राण से अधिक प्रिय होती है, फिर भी दुर्वचन के कारण एक क्षण में हम दोनों के बीच तुरन्त शत्रुता पैदा हो गयी ॥६६॥ प्रभो ! कामदोषवश जो कुछ हुआ—सो हुआ, अब मेरे समस्त अपराधों को क्षमा कर दें और क्या करना चाहिए, वह बतायें ॥६७॥ मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? कहाँ मेरा जन्म होगा ? मैं तीनों लोकों में आपके सिवा किसी दूसरे की भार्या नहीं होऊँगी ॥६८॥ इतना कहकर वह जीव चुप हो गया और मुनि शोक से चेतनाहीन होकर मूर्च्छित हो गये ॥६९॥ आश्चर्य है कि स्वात्माराम और महाज्ञानी होते हुए भी मुनि चेतना खो बैठे। चतुर पुरुष के लिए स्त्री-वियोग समस्त शोकों से बढ़कर होता है ॥७०॥ एक ही क्षण में चेतना प्राप्त होने पर वे प्राण-त्याग करने के लिए तैयार हो गये। वहाँ योगासन लगाकर वायु-धारणा आरम्भ की ॥७१॥ इसी बीच एक ब्राह्मण-बालक वहाँ आ गया, जो दण्ड और छत्र लिये, रक्त वस्त्र पहने, उत्तम तिलक से भूषित, मुस्कराहट से युक्त, श्याम वर्ण, ब्रह्मतेज से प्रज्वलित, अवस्था से अतिशिशु, शान्त, ज्ञानी और वेद-वेत्ताओं में श्रेष्ठ था ॥७२-७३॥ उसे देखते ही दुर्वासा ने सहसा प्रणाम किया और आसन पर बैठाकर भक्तिपूर्वक उसकी पूजा की ॥७४॥ उस ब्राह्मण-वटु ने उन्हें शुभाशीर्वाद प्रदान करके वार्तालाप आरम्भ किया। उसके दर्शन और आशीर्वाद से मुनि का समस्त दुःख नष्ट हो गया ॥७५॥ शिशु रूप में क्षण भर रहकर वह नीति-शास्त्रकुशल एवं बुद्धिमान् बालक अमृततुल्य नीतिपूर्ण वचन बोला ॥७६॥

---

१ ख. नित्योघं ।

## शिशुरुवाच

सर्वं जानासि सर्वज्ञ गुरोर्मन्त्रप्रसादतः। किं तत्त्वं त्वामहं विप्र पृच्छामि शोककातरम् ॥७७॥
ब्राह्मणानां तपो धर्मस्तपः साध्यं जगत्त्रयम्। स्वधर्मं वै परित्यज्य किमिदानीं करोषि भोः ॥७८॥
का कस्य पत्नी कः कान्तः कस्या वा भुवनत्रये। मूर्खाणां वञ्चनां कर्तुं करोति मायया हरिः ॥७९॥
मिथ्या पत्नी तवेयं च क्षणात्तेन गताऽधुना। न हि सत्यमदृश्यं च मिथ्या यत्राचिरस्थितिः ॥८०॥
एकाऽनंशा च भगिनी वसुदेवसुता हरेः। पार्वत्यंशसमुद्भूता सुशीला चिरजीविनी ॥८१॥
कल्पे कल्पे सुन्दरी सा तव पत्नी भविष्यति। मनो देहि तपस्यायां मुदा कतिपयं दिनम् ॥८२॥
कन्दली कदलीजातिर्भविष्यति महीतले। शुभदा फलदा कान्ता सकृत्सूता सुदुर्लभा ॥८३॥
कल्पान्तरे शान्तरूपा तव पत्नी भविष्यति। अत्युच्छ्रितस्य दमनमुचितं च श्रुतौ श्रुतम् ॥८४॥
इत्येवमुक्त्वा शीघ्रं च विप्ररूपी जनार्दनः। दत्त्वा ज्ञानं च विप्राय सोऽन्तर्धानं चकार ह ॥८५॥
मुनिः सर्वं भ्रमं त्यक्त्वा तपस्यायां मनो दधे। कन्दली कदलीजातिर्बभूव धरणीतले ॥८६॥
दैत्यस्तालवनं गत्वा बभूव गर्दभाकृतिः। तिलोत्तमा बाणपुत्री बभूव समये मुने ॥८७॥
दैत्येन्द्रो विष्णुचक्रेण प्राणांस्त्यक्त्वा सुवाञ्छितम्। संप्राप्य चरणाम्भोजं मुनेरपि सुदुर्लभम् ॥८८॥

---

शिशु ने कहा—हे सर्वज्ञ विप्र ! गुरुमन्त्र के प्रसाद से तुम सब-कुछ जानते हो, फिर भी शोक से कातर हो रहे हो, अतः मैं पूछता हूँ, इसका यथार्थ रहस्य क्या है ? ब्राह्मणों का धर्म तप है। तप से तीनों लोकों को वश में किया जा सकता है। इस समय तुम अपने धर्म को छोड़कर क्या कर रहे हो ? ॥७७-७८॥ तीनों लोकों में कौन किसकी पत्नी है और कौन किसका पति है ? केवल मूर्खों को बहलाने के लिए भगवान् हरि माया द्वारा यह सब करते हैं ॥७९॥ यह (कन्दली) तुम्हारी मिथ्या पत्नी थी। इसीलिए अभी क्षणमात्र में चली गयी। जो सत्य है, वह कभी तिरोहित नहीं होता। मिथ्या वही है, जिसकी चिरकाल तक स्थिति न रहे ॥८०॥ वसुदेव की पुत्री एकानंशा, जो श्रीकृष्ण की बहन है, पार्वती के अंश से उत्पन्न हुई है। वह सुशीला और चिरजीविनी है ॥८१॥ वह सुन्दरी प्रत्येक कल्प में तुम्हारी पत्नी होगी; इसलिए तुम कुछ दिन प्रसन्नता से तपस्या में मन लगाओ ॥८२॥ कन्दली भूतल पर कदली जाति होकर उत्पन्न होगी। वह कल्पान्तर में शुभदा, फलदायिनी, मनोहर, संतान देने-वाली, परम दुर्लभा तथा शान्तरूपा स्त्री होकर तुम्हारी पत्नी होगी। जो अत्यन्त उच्छृंखल हो उसका दमन करना उचित है, ऐसा वेद में सुना गया है ॥८३-८४॥ इतना कहकर एवं ब्राह्मण को ज्ञान प्रदान करके ब्राह्मणरूपधारी हरि तुरन्त अन्तर्हित हो गये ॥८५॥ मुनि ने समस्त भ्रमों को त्यागकर तपस्या में मन को लगाया और कन्दली पृथिवी पर कदली जाति होकर उत्पन्न हुई ॥८६॥ मुने ! वह दैत्य तालवन जाकर गर्दभ के रूप में परिणत हो गया और तिलोत्तमा समय पाकर बाणासुर की पुत्री (उषा) हुई ॥८७॥ उस दैत्य ने भगवान् विष्णु के चक्र द्वारा प्राणों को छोड़कर अपना अभीष्ट भगवान् का चरण-कमल प्राप्त किया, जो मुनियों को भी अति दुर्लभ है ॥८८॥

काले तिलोत्तमा भूत्वा जगाम स्वालयं पुनः । कृष्णपौत्रालिङ्गनेन परिपूर्णमनोरथा ॥८९॥
इत्येवं कथितं 'श्रुत्वा श्रीकृष्णाख्यानमुत्तमम् । पदे पदे सुन्दरं च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥९०॥
इति ब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० तालफलभक्षणप्रसङ्गे
बलिपुत्रमोक्षो नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

## अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

### नारद उवाच

श्रुतं किमद्भुतं ब्रह्मन् हरेश्चरितमङ्गलम् । विशेषतस्तव मुखे ह्यतीव सुमनोहरम् ॥१॥
मृतायां मुनिकन्यायां शापाद्दुर्वाससो मुनेः । किं चकार समागत्य तन्मे ब्रूहि तपोधन ॥२॥

---

समय पर वह भी श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध के आलिङ्गन से परिपूर्ण मनोरथ होकर पुनः तिलोत्तमा होकर अपने निवास-स्थान स्वर्ग को चली गयी ॥८९॥ इस प्रकार श्रीकृष्ण के उत्तम आख्यान को सुनकर तुमसे कह दिया। यह पद-पद पर सुन्दर है। अब और क्या सुनना चाहते हो ? ॥९०॥

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारायण-नारद-संवाद में तालफलभक्षण के प्रसङ्ग में बलिपुत्र-मोक्ष-वर्णन नामक चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२४॥

## अध्याय २५

### दुर्वासा का सुदर्शनचक्र से छुटकारा

**नारद बोले** –ब्रह्मन् ! भगवान् का कितना अद्भुत एवं मंगलमय चरित मैंने सुना है; विशेषकर आपके मुख से (वह चरित) अत्यन्त मनोहर लग रहा था ॥१॥ तपोधन ! दुर्वासा मुनि के शापवश मुनि-कन्या के मृतक हो जाने पर—उसके पिता और्व ऋषि ने आकर क्या किया, यह बता दें ॥२॥

---

१ क. ब्रह्मन् ।

## नारायण उवाच

सरस्वतीनदीतीरे तपस्यां कुर्वतो मुनेः। पपात धौतमूर्ध्वाच्च धार्यमाणं च वायुना ॥३॥
पृथिव्यां पतिते वस्त्रे तपस्त्यक्त्वा मुनीश्वरः। ध्यानेन बुबुधे सर्वं कन्यासंबन्धिसंकटम् ॥४॥
जगाम शोकाविष्टोऽपि तूर्णं जामातुराश्रमम्। सिषेच पृथिवीरेणूञ्छश्वन्नयनबिन्दुना ॥५॥
गत्वाऽऽलयसमीपं च विप्रः कातरमानसः। हे वत्से कन्दलीत्येवमुवाच च पुनः पुनः ॥६॥
श्वशुरस्य स्वरं ज्ञात्वा दुर्वासा भयविह्वलः। बहिर्बभूव शीघ्रं च पपात चरणाम्बुजे ॥७॥
प्रणम्य श्वशुरं शोकाद्विललाप भृशं पुनः। प्रवृत्तिं कथयामास मूलतो मुनिसत्तमम् ॥८॥
श्रुत्वा वार्तां शुचाऽऽविष्टः पपात धरणीतले। मूर्च्छामाप महाज्ञानी निश्चेष्टो हि यथा मृतः ॥९॥
मृतं दृष्ट्वा स दुर्वासा मेने मनसि संकटम्। चेतनां कारयामास प्रयत्नेन महामुनेः ॥१०॥
संप्राप्य चेतनां शीघ्रमुवाच तं पुरःस्थितम्। जामातरं शोकयुतं भीतं प्रणतकंधरम् ॥११॥
महाशोकादश्रुपूर्णं रक्तपङ्कजलोचनम्। कोपात्कम्पितवाञ्छश्वत्संत्रस्तः स्फुरिताधरः ॥१२॥

## और्व उवाच

अये ब्रह्मन्नत्रिवंश पौत्रस्त्वं जगतीपतेः। स्वल्पदोषे बहुतरः कृतो दण्डस्त्वया कथम् ॥१३॥

---

**नारायण बोले**—उस समय और्व ऋषि सरस्वती नदी के किनारे तप कर रहे थे, कन्या का धौतवस्त्र (धोती) वायु द्वारा उड़ते हुए ऊपर से वहीं आकर गिरा ॥३॥ पृथिवी पर वस्त्र के गिरने पर मुनि ने तप छोड़कर ध्यान द्वारा कन्या सम्बन्धी सारी विपत्ति को जान लिया ॥४॥ तब वे शोकाकुल होकर शीघ्र जामाता दुर्वासा के आश्रम में गये और अपनी आँखों के आंसुओं की बूंदों से पृथिवी के धूलकणों को सींचने लगे ॥५॥ अत्यन्त कातर होकर और्व ब्राह्मण उनकी कुटी के समीप पहुँचे और 'हे वत्से कन्दली।' इस प्रकार बार-बार कहने लगे ॥६॥ अपने श्वसुर का स्वर पहचानकर दुर्वासा भय से आकुल हो गये और बाहर निकलकर उनके चरण-कमल पर शीघ्रता से गिर पड़े ॥७॥ श्वसुर को प्रणाम करके शोक से बारम्बार विलाप करने लगे। उस मुनिश्रेष्ठ से आदि से अन्त तक का—समस्त वृत्तान्त कहकर सुना दिया। उसे सुनकर और्व ऋषि शोक के कारण पृथिवी पर गिर पड़े। महाज्ञानी होते हुए भी वे निश्चेष्ट मृतक की भाँति मूर्च्छित पड़े रहे ॥८-९॥ उन्हें मृतक देखकर दुर्वासा के मन में सङ्कट उत्पन्न हुआ। वे प्रयत्न से महामुनि को चेतना में लाये ॥१०॥ चेतना प्राप्त होने पर उन्होंने सामने स्थित, शोकग्रस्त, भीत एवं कन्धे को झुकाये तथा महाशोक के कारण आंसू भरे रक्त कमल के समान नेत्रवाले जामाता से कहा। उस समय और्व ऋषि क्रोध से काँप रहे थे, निरन्तर संत्रस्त हो रहे थे और ओंठ फड़फड़ा रहे थे ॥११-१२॥

**और्व बोले**—ब्रह्मन्! तुम अत्रिवंश में उत्पन्न हो और जगत्पति (ब्रह्मा) के पौत्र हो। तुमने स्वल्प दोष पर बहुत बड़ा दण्ड कैसे दे दिया? ॥१३॥ शिव के अंश से तुम्हारा जन्म हुआ है और उन्हीं जगद्गुरु

त्वज्जन्म शंकरांशेन शिष्यस्तस्य जगद्गुरोः । वेदवेदाङ्गविज्ञश्च सर्वज्ञो गुणवान्स्वयम् ॥१४॥
अनसूया महासाध्वी कमलांशा तव प्रसूः । न जाने केन दोषेण तव चैतादृशी मतिः ॥१५॥
गुणवाञ्जनको यस्य माता गुणवती सती । तयोः पुत्रो दयाहीनो गतिः सूक्ष्मा श्रुतेरहो ॥१६॥
मम प्राणाधिका कन्या मुदा त्वयि समर्पिता । महागुणान्विता स्वल्पदोषेण परिमिश्रिता ॥१७॥
वाग्दुष्टायाश्च दण्डो हि परित्यागः श्रुतौ श्रुतः । त्वया क्रोधाद्यदि त्यक्ता पिता यत्नेन पालिता ॥१८॥
मदपत्यं स्वल्पदोषे यतो भस्मीकृतं त्वया । पराभवस्तव महान्भविष्यति न संशयः ॥१९॥
महतां क्षुद्रजन्तूनां सर्वेषां जीविनां सदा । स्रष्टा पाता च शास्ता च भगवान्करुणानिधिः ॥२०॥
इत्युक्त्वा च मुनिश्रेष्ठो विलप्य च पुनः पुनः । हेऽम्ब वत्से ह्ययीत्युक्त्वा जगाम स्वालयं रुषा ॥२१॥
गते मुनीन्द्रे दुर्वासा विललाप भृशं पुनः । ज्ञानेन विस्मृतः शोको बभूव द्विगुणः पुनः ॥२२॥
शोकानलो हि कालेन विच्छिन्नो ज्ञानभस्मना । बन्धुदर्शनशुष्केन्धदानेन वर्धते पुनः ॥२३॥
स्मारं स्मारं प्रियां तत्र विलप्य च पुनः पुनः । बोधयित्वा स्वमात्मानं तपस्यायां मनो दधौ ॥२४॥
इत्येवं कथितं सर्वं मुनेः शापस्य कारणम् । बभूव तस्य कालेन दुःसहश्च पराभवः ॥२५॥

---

(शिव) के शिष्य भी हो। स्वयं वेद-वेदाङ्ग के वेत्ता, सर्वज्ञ और गुणवान् हो ॥१४॥ कमला (लक्ष्मी) की अंशभूता एवं महासाध्वी अनसूया तुम्हारी जननी है। मैं नहीं जानता कि किस दोष से तुम्हारी ऐसी बुद्धि है ॥१५॥ जिसका पिता गुणवान् हो और माता महासती एवं गुणवती हो, उसका पुत्र निर्दयी हो, यह वेद की कैसी सूक्ष्म गति है? ॥१६॥ मैंने अपनी प्राणप्यारी पुत्री को तुम्हें बड़े प्रेम से समर्पित किया था, जो महागुणवती एवं स्वल्प-दोष-युक्त थी ॥१७॥ वेद में भी वाग्दुष्टा (कटुवादिनी) स्त्री का परित्याग करना ही दण्ड बताया गया है। यदि तुम क्रोधवश उसे त्याग देते तो पिता उसका पालन-पोषण करता ॥१८॥ जिसलिए स्वल्प-दोष होने पर भी तुमने मेरी सन्तान को भस्म कर दिया, इसलिए तुम्हारा महान् पराभव (अपमान) होगा, इसमें संशय नहीं ॥१९॥ बड़े-छोटे सभी जीवों का सदा सर्जन, पालन और शासन करुणानिधान भगवान् ही करते हैं ॥२०॥ इतना कहकर वे मुनिश्रेष्ठ बार-बार विलाप करने लगे और हे अम्ब! अयि वत्से! ऐसा कहकर क्रोध-मुद्रा में अपने घर चले गये ॥२१॥ मुनीन्द्र और्व के चले जाने पर दुर्वासा ने बार-बार विलाप किया। ज्ञान से भूला हुआ उनका शोक पुनः दुगुना हो गया ॥२२॥ शोकरूपी अग्नि समय पाकर ज्ञानरूपी भस्म से विच्छिन्न हो जाता है, किन्तु बन्धुदर्शनरूपी सूखे ईंधन के देने से वह पुनः बढ़ जाता है ॥२३॥ अपनी प्रिया का बार-बार स्मरण करके उन्होंने बार-बार विलाप किया। फिर अपने आपको समझा-बुझाकर तपस्या में मन को लगा दिया ॥२४॥ इस प्रकार मुनि के शाप का कारण मैंने तुम्हें भली-भाँति बता दिया। समय आने पर उनका दुःसह अपमान हुआ था ॥२५॥

## नारद उवाच

दुर्वासाः शंकरस्यांशः शिवतुल्यश्च तेजसा। तेजस्वी को महानेव चकार तत्पराभवम् ॥२६॥

## नारायण उवाच

अम्बरीषो हि राजेन्द्रः सूर्यवंशसमुद्भवः। श्रीकृष्णचरणाम्भोजे तन्मनाः संततं मुने ॥२७॥
न राज्येषु न भार्यासु न पुत्रेषु प्रजासु च। न संपत्सु क्षणं चित्तं पुण्यकर्मार्जितासु च ॥२८॥
ध्यायतेऽहर्निशं धर्मो स्वप्ने ज्ञाने हरिं मुदा। महाजितेन्द्रियः शान्तो विष्णुव्रतपरायणः ॥२९॥
एकादशीव्रतरतः कृष्णपूजासु तत्परः। सर्वकर्मस्वलिप्तश्च कर्ता कृष्णार्पितेषु च ॥३०॥
सुतीक्ष्णं षोडशारं च हरेश्चक्रं सुदर्शनम्। तेजसा हरितुल्यं च सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥३१॥
ब्रह्मादिभिः स्तूयमानं पूजितं च सुरासुरैः। प्रभुणा रक्षितं शश्वद्रक्षार्थं नृपसंनिधौ ॥३२॥
एकादशीव्रतं कृत्वा द्वादशीदिवसे सति। स्नात्वा विधाय पूजां च कालेन विधिपूर्वकम् ॥३३॥
दत्त्वा दानं ब्राह्मणेभ्यः सुवर्णरजतादिकम्। ब्राह्मणान्भोजयित्वा च भोजनार्थमुवास ह ॥३४॥
एतस्मिन्नन्तरे विप्रस्तपस्वी क्षुधितो मुने। दण्डी छत्री शुक्लवासा बिभ्रत्तिलकमुत्तमम् ॥३५॥
जटिलोऽतिकृशस्त्रस्तः शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः। तत्राऽऽजगाम भगवान्दुर्वासा नृपतेः पुरः ॥३६॥
स च दृष्ट्वा मुनीन्द्रं तमुत्थाय च प्रणम्य च। दत्त्वा पाद्यं च संप्रीत्या स्वर्णसिंहासनं ददौ ॥३७॥

---

**नारद बोले**—दुर्वासा तो शङ्कर के अंश एवं शिव के समान तेजस्वी थे। फिर किस महातेजस्वी ने उनका भी पराभव कर दिया ? ॥२६॥

**नारायण बोले**—मुने ! सूर्यवंश में महाराज अम्बरीष उत्पन्न हुए थे। वे श्रीकृष्ण के चरण-कमल में अपने मन को निरन्तर लगाये रहते थे ॥२७॥ वस्तुओं—राज्य स्त्री, पुत्र, प्रजाओं और पुण्य कर्मों से प्राप्त होनेवाली सम्पत्तियों में भी उनका चित्त क्षणमात्र भी नहीं लगता था ॥२८॥ वे दिन-रात—सोते-जागते भगवान् का सहर्ष स्मरण किया करते थे और महाजितेन्द्रिय, शान्त एवं भगवान् विष्णु सम्बन्धी व्रतों के पालन में तत्पर रहते थे ॥२९॥ वे एकादशी व्रत में निमग्न, श्रीकृष्ण की पूजा में तत्पर तथा कृष्णार्पण किये हुए सभी कर्मों में अलिप्त थे ॥३०॥ श्रीकृष्ण का सुदर्शन चक्र सोलह अरों से युक्त, हरि के समान तेजस्वी, करोड़ों सूर्यों के समान चमकनेवाला, ब्रह्मा आदि से स्तुत और सुरों एवं असुरों से पूजित है। भगवान् ने निरन्तर रक्षा के लिए उस चक्र को राजा के पास ही रख दिया था ॥३१-३२॥ एक बार एकादशी व्रत करके द्वादशी के दिन स्नान, समय पर सविधि पूजा, ब्राह्मणों को सुवर्ण-चाँदी के दान और भोजन कराकर स्वयं भोजन के लिए बैठे। इसी बीच राजा के सामने तपस्वी ब्राह्मण भगवान् दुर्वासा आ गये, जो क्षुधित, दण्ड-छत्रधारी, शुक्ल वस्त्र पहने, उत्तम तिलक लगाये, जटा-युक्त अत्यन्त क्षीण और त्रस्त थे। उनके कण्ठ, ओंठ और तालु सूख गये थे ॥३३-३६॥ मुने ! राजा ने उस मुनीन्द्र को देखकर उठकर प्रणाम किया और अति प्रेम से पैर धोने के लिए जल प्रस्तुत करके उन्हें सुवर्ण

तस्मै दत्त्वाऽऽशिषं विप्रः समुवास सुखासने । प्रपच्छ राजा तं प्रीतः काऽऽज्ञा ते वद कामितम् ॥३८॥
नृपेन्द्रवचनं श्रुत्वा तमुवाच महामुनिः । बुभुक्षितस्य मे राजन्देह्यन्नं विधिपूर्वकम् ॥३९॥
किं त्वघमर्षणमन्त्रं जप्त्वाऽऽयाम्यचिरेण वै । क्षणं प्रतीक्षतां राजन्नित्युक्त्वा च गतो मुनिः ॥४०॥
गते विप्रे तु राजर्षिश्चिन्तां प्राप दुरत्ययाम् । विलोक्य विगतप्रायां द्वादशीं भयसंयुतः ॥४१॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र समायान्तं गुरुं मुदा । नत्वा निवेद्य सर्वं तु नृपतिः समुवाच ह ॥४२॥
नाऽऽयाति मुनिशार्दूलः प्रयाति द्वादशी तिथिः । संकटेऽस्मिन्विधेयं च विविच्य विधिपूर्वकम् ॥
शीघ्रं वद मुनिश्रेष्ठ भद्राभद्रं च मामिति ॥४३॥
श्रुत्वा नृपोक्ति त्वरितमुवाच मुनिपुंगवः । हितं तथ्यं च वेदोक्तं परिणामसुखावहम् ॥४४॥

## वसिष्ठ उवाच

द्वादश्यां समतीतायां त्रयोदश्यां तु पारणम् । उपवासफलं हत्वा व्रतिनं हन्ति निश्चितम् ॥४५॥
ब्रह्महत्यासमं पापं भवेत्तस्य श्रुतौ श्रुतम् । भक्ष्यद्रव्यं सुरातुल्यमित्याह कमलोद्भवः ॥४६॥
न भोजयित्वा मूढश्चेदतिथिं समुपस्थितम् । स त्रस्तः क्षुधितो भुङ्क्ते कुम्भीपाके व्रजेद्ध्रुवम् ॥४७॥
शतवर्षं तत्र तिष्ठन्नरश्चाण्डालतां व्रजेत् । व्याधियुक्तो दरिद्रश्च भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥४८॥

---

का सिंहासन दिया ॥३७॥ ब्राह्मण दुर्वासा भी उन्हें आशिष प्रदान करके उस सिंहासन पर आसीन हुए । तब राजा ने सप्रेम पूछा—आपकी क्या आज्ञा है ? अपनी इच्छा बतायें ॥३८॥ बात सुनकर महामुनि ने कहा—राजन् ! मैं क्षुधा-पीड़ित हूँ, मुझे विधिपूर्वक भोजन प्रदान करें ॥३९॥ परन्तु मैं अघमर्षण मन्त्र का जप करके अभी आ रहा हूँ, अतः क्षणभर मेरी प्रतीक्षा करें । इतना कहकर मुनि चले गये । ब्राह्मण के चले जाने पर राजर्षि को बड़ी भारी चिन्ता हुई । द्वादशी तिथि प्रायः बीत चली है, यह देख वे डर गये । इसी बीच उनके गुरु आ गये । राजा ने नमस्कार करके सारी बातें बतायीं और पूछा—हे मुनिश्रेष्ठ ! मुनिवर दुर्वासा अभी तक नहीं आये हैं, द्वादशी तिथि व्यतीत हो रही है—ऐसे सङ्कट के समय क्या करना चाहिए, इसका विवेचन करके जो कुछ शुभाशुभ हो, मुझे शीघ्र बता दें ॥४०-४३॥ राजा को बात सुनकर मुनिश्रेष्ठ ने शीघ्र हितकर, तथ्य, वेदानुसार और परिणाम में सुखदायक बात कही ॥४४॥

**वशिष्ठ बोले—** द्वादशी व्यतीत हो जाने पर त्रयोदशी में पारण करने से उपवास का फल नष्ट हो जाता है और व्रती का भी निश्चित रूप से नाश होता है ॥४५॥ उसे ब्रह्महत्या के समान पाप लगता है, ऐसा वेद में सुना गया है । खाद्य-पदार्थ मदिरा के समान हो जाता है, ऐसा ब्रह्मा ने कहा है ॥४६॥ और यदि उपस्थित अतिथि को बिना भोजन कराये वह डर एवं क्षुधावश भोजन कर लेता है, तो उस मूढ़ को कुम्भीपाक नरक में निश्चित रूप से जाना पड़ता है । वहाँ सौ वर्ष रहकर वह मनुष्य चाण्डाल के यहाँ उत्पन्न होता है, फिर प्रत्येक जन्म में रोगी एवं दरिद्र होकर जीवन व्यतीत करता है ॥४७-४८॥ अतः इस परम संकट के समय तुम्हें

अतोऽतिसूक्ष्मं किं ब्रूमोऽधुना परमसंकटे। रक्षां कुरु द्वयोर्धर्मं समालोक्य वदामि ते ॥४९॥
उपवासफलं रक्ष कृष्णस्य चरणोदकम्। भुक्त्वा शीघ्रमपो राजंस्तद्भक्षणमभक्षणम् ॥५०॥
इत्युक्त्वा ब्रह्मणः पुत्रो विरराम महामुने। बुभुजे तज्जलं किंचित्कृष्णपादाम्बुजं स्मरन् ॥५१॥
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मन्नाजगाम मुनीश्वरः। चिच्छेद कोपात्सर्वज्ञः स्वजटां नृपतेः पुरः ॥५२॥
ततः समुत्थितः शीघ्रं पुरुषोऽग्निशिखोपमः। खड्गहस्तो महाभीमो राजेन्द्रं हन्तुमुद्यतः ॥५३॥
हरेश्चक्रं च तं दृष्ट्वा सूर्यकोटिसमप्रभम्। चिच्छेद कृत्यापुरुषं ब्राह्मणं छेत्तुमुद्यतम् ॥५४॥
दृष्ट्वा सुदर्शनं विप्रो दुद्राव भयविह्वलः। द्विजः पश्चात्तं ददर्श ज्वलदग्निशिखोपमम् ॥५५॥
ब्रह्माण्डक्रमणं कृत्वा निर्विण्णोऽतिभयाकुलः। तं च मत्वा जगन्नाथं ब्रह्माणं शरणं ययौ ॥५६॥
पाहि पाहीत्येवमुक्त्वा विवेश ब्रह्मणः सभाम्। उत्थाय ब्रह्मा विप्रेन्द्रं पप्रच्छ कुशलं मुने ॥५७॥
सर्वं स कथयामास वृत्तान्तं मूलतो विधिम्। श्रुत्वा ब्रह्मा निशश्वास तमुवाच भयाकुलः ॥५८॥

### ब्रह्मोवाच

हरिदासं वत्स शप्तुं गतोऽसि कस्य तेजसा। रक्षिता यस्य भगवांस्तं को हन्ता जगत्त्रये ॥५९॥
क्षुद्राणां महतां चैव भक्तानां रक्षणाय च। ररक्ष सततं चक्रं श्रीहरिर्भक्तवत्सलः ॥६०॥

---

अति सूक्ष्म बात क्या बताऊँ ? दोनों के धर्म की रक्षा करो। यही देखकर मैं तुमसे कहता हूँ ॥४९॥ श्रीकृष्ण के चरणोदक का पान करके उपवास के फल की रक्षा करो। राजन् ! शीघ्र जल का भक्षण (पान) करो। उस (चरणोदक) का भक्षण भक्षण नहीं माना जाता है ॥५०॥ महामुने ! इतना कहकर ब्रह्मपुत्र वशिष्ठ चुप हो गये और राजा ने श्रीकृष्ण के चरण-कमल का स्मरण करते हुए उनका स्वल्प चरणोदक पान कर लिया ॥५१॥ ब्रह्मन् ! इतने में मुनीश्वर दुर्वासा आ गये। उन सर्वज्ञ ने क्रोध से राजा के सामने अपनी जटा तोड़ डाली। उससे शीघ्र ही अग्निशिखा के समान (तेजस्वी) एक पुरुष प्रकट हुआ। वह महाभयंकर तथा खड्गहस्त पुरुष महाराज को मारने के लिए तैयार हो गया ॥५२-५३॥ उसे देखकर करोड़ों सूर्य के समान प्रभापूर्ण हरि के चक्र ने कृत्या-पुरुष को काट डाला और ब्राह्मण दुर्वासा को मारने के लिए तैयार हो गया ॥५४॥ उस सुदर्शन को देखते ही ब्राह्मण (दुर्वासा) भयाकुल होकर भाग निकले। उन्होंने अपने पीछे-पीछे प्रज्वलित अग्नि-शिखा के समान तेजस्वी चक्र को आते देखा ॥५५॥ वे अत्यन्त व्याकुल हो सारे ब्रह्माण्ड का चक्कर लगाते-लगाते थक गये और ब्रह्मा को जगत् का स्वामी मानकर उनकी शरण में गये ॥५६॥ मुने ! 'बचाइये, बचाइये'--ऐसा कहते हुए उन्होंने ब्रह्मा की सभा में प्रवेश किया। ब्रह्मा ने उठकर विप्रेन्द्र (दुर्वासा) से कुशल-मंगल पूछा ॥५७॥ उन्होंने आदि से अन्त तक का समस्त वृत्तान्त ब्रह्मा से कह दिया। सुनकर ब्रह्मा ने लम्बी साँस ली और भय से व्याकुल होकर उनसे कहा ॥५८॥

**ब्रह्मा बोले**—वत्स ! किसके बल पर तुम हरि के भक्त को शाप देने गये थे ? जिसके रक्षक भगवान् हैं, उसे तीनों लोकों में कौन मार सकता है ? ॥५९॥ भक्तवत्सल श्री हरि ने छोटे-बड़े सभी भक्तों की रक्षा के

यो मूढो वैष्णवं द्वेष्टि विष्णुप्राणसमं द्विज। तस्य संहारकर्तारं संहर्तुमीश्वरो हरिः ॥६१॥
शीघ्रं स्थानान्तरं गच्छ वत्स त्राणं न वाऽधुना। अन्यथा त्वां मया सार्धं हनिष्यति सुदर्शनम् ॥६२॥
किं ब्रह्मलोकं ब्रह्माण्डं दग्धुं शक्तं क्षणेन यत्। तेजसा विष्णुतुल्यं यत्केनान्येन निवार्यते ॥६३॥
ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा ततो दुद्राव ब्राह्मणः। त्रस्तो जगाम कैलासं शंकरं शरणं भिया ॥६४॥
कृपानिधान मां रक्षेत्युवाच शंकरं भिया। न हि पप्रच्छ कुशलं सर्वज्ञो ब्राह्मणं शिवः ॥६५॥
उवाच दीनदीनेशः संहर्ता जगतां क्षणात्। स्थिरो भव द्विजश्रेष्ठ मदीयं वचनं शृणु ॥६६॥

## शंकर उवाच

पौत्रस्त्वं जगतां धातुरत्रेश्च तनयो मुने। वेदज्ञाताऽसि सर्वज्ञ मूर्खतुल्यं तु कर्म ते ॥६७॥
वेदेषु च पुराणेषु सेतिहासेषु सर्वतः। निरूपितो यः सर्वेशस्तं न जानासि मूढवत् ॥६८॥
अहं ब्रह्मा च इन्द्रश्च आदित्या वसवस्तथा। धर्मेन्द्रो च सुराः सर्वे मुनीन्द्रा मनवस्तथा ॥६९॥
आविर्भूतास्तिरोभूता यस्य भ्रूभङ्गलीलया। तस्य प्राणाधिकं भक्तं हेसि त्वं कस्य तेजसाः ॥७०॥
अहं ब्रह्मा च कमला दुर्गा वाणी च राधिका। न हि भक्तात्पराः प्रेम्णा भक्ताश्च सर्वतः प्रियाः ॥७१॥

---

लिए ही चक्र को निरन्तर नियुक्त कर रखा है ॥६०॥ द्विज ! जो मूढ़ विष्णु के प्राणों के समान प्रिय वैष्णवों से द्वेष करता है, उसके संहारकर्ता (बचानेवाले) का भी संहार करने में हरि समर्थ हैं ॥६१॥ वत्स ! इसलिए तुम यहाँ से शीघ्र किसी दूसरे स्थान में जाओ। अब यहाँ तुम्हारी रक्षा नहीं हो सकती। अन्यथा (नहीं जाओगे तो) सुदर्शन चक्र मेरे साथ तुम्हें मार डालेगा ॥६२॥ जो ब्रह्मलोक क्या, ब्रह्माण्ड को क्षण भर में भस्म कर सकता है और जो विष्णु के समान तेजस्वी है, उसे दूसरा कौन रोक सकता है ? ॥६३॥ ब्रह्मा की बात सुनकर ब्राह्मण (मुनि) वहाँ से भागे और त्रस्त होकर भय से कैलास पर शंकर की शरण में गये। 'हे कृपानिधान ! मेरी रक्षा कीजिये'—ऐसा भयपूर्वक शंकर से कहा। सर्वज्ञ शिव ने दुर्वासा से कुशल समाचार नहीं पूछा ॥६४-६५॥ दीन-दुःखियों के स्वामी और क्षणभर में लोकों का संहार करनेवाले महादेव ने कहा—द्विजवर ! स्थिर हो, मेरी बात सुनो ॥६६॥

**शंकर बोले**—मुने ! तुम ब्रह्मा के पौत्र और अत्रि मुनि के पुत्र हो। सर्वज्ञ ! तुम वेदों के ज्ञाता हो, पर तुम्हारा कर्म मूर्खों के समान है ॥६७॥ वेदों, पुराणों और इतिहासों में जो सब प्रकार से सर्वाधीश्वर निरूपित किये गये हैं, उन्हें तुम मूर्खों की भाँति नहीं जानते हो ॥६८॥ जिनके भ्रूभंग की लीलामात्र से मैं, ब्रह्मा, इन्द्र, आदित्यगण, वसुगण, धर्मेन्द्र, समस्त देवता, मुनीन्द्र और मनुगण उत्पन्न और लीन होते रहते हैं, उनके प्राणों से भी बढ़कर प्रिय भक्त को तुम किसके तेज से मार रहे थे ? ॥६९-७०॥ मैं, ब्रह्मा, लक्ष्मी, दुर्गा, सरस्वती और स्वयं राधिका भी भक्तों से बढ़कर उनके प्रेमपात्र नहीं हैं। भक्त सबसे (अधिक) प्रिय हैं ॥७१॥ इसीलिए

---

१ क. रुद्राञ्च।

क्षुद्रांश्च महतो भक्तांञ्छश्वद्रक्षति यत्नतः । सर्वान्तरात्मा भगवांश्चक्रेण दुःसहेन च ॥७२॥
नियुज्य चक्रं दुर्वार्यं स्वात्मतुल्यं च तेजसा । तथाऽपि न प्रतीतिश्च स्वयं गच्छति रक्षितुम् ॥७३॥
स्वकीयगुणनाम्नां च श्रवणादतिसंभ्रमः । भक्तसङ्गे भ्रमत्येव च्छायेव संततं हरिः ॥७४॥
कान्ता प्राणाधिका शश्वन्न हि कोऽपि ततोऽधिकः । भक्तान्द्वेष्टि स्वयं सा चेत्तूर्णं त्यजति तां प्रभुः ॥७५॥
सर्वेषां च प्रिया विप्राः स्वशरीरादपि द्विज । ब्राह्मणेभ्यः प्रिया भक्ता प्राणेभ्यश्च हरेरपि ॥७६॥
ईश्वरस्य प्रियः को वाऽप्रियः को वा जगत्त्रये । यः शिष्टस्तं भजेच्छश्वद्ध्यायते सततं सदा ॥७७॥
महति प्रलये ब्रह्मन्ब्रह्माण्डौघे जलप्लुते । न तत्र नाशो भक्तानां सर्वेषां च भविष्यति ॥७८॥
भज ब्राह्मण गोविन्दं स्मर तस्य पदाम्बुजम् । सर्वापदो विनश्यन्ति श्रीहरेः स्मरणादपि ॥७९॥
व्रज शीघ्रं च वैकुण्ठे वैकुण्ठेः शरणं तव । दास्यत्येवाभयं तुभ्यं करुणासागरो विभुः ॥८०॥
एतस्मिन्नन्तरे व्याप्तं कैलासं चक्रतेजसा । यथा च सूर्यकिरणैः सुप्रदीप्तं महीतलम् ॥८१॥
दग्धा ज्वालाकरालैश्च सर्वे कैलासवासिनः । त्राहि त्राहीत्येवमुक्त्वा शंकरं शरणं ययुः ॥८२॥
दृष्ट्वा चक्रं दुर्विषहं शंकरः करुणानिधिः । पार्वत्या सह संप्रीत्या ब्राह्मणायाऽऽशिषं ददौ ॥८३॥
तेजः सत्यं तपः सत्यं यदि चेच्चिरसंचितम् । कृतापराधो भीतश्च द्विजो भवतु विज्वरः ॥८४॥

---

सबके अन्तरात्मा भगवान् अपने दुःसह चक्र द्वारा छोटे-बड़े भक्तों की निरन्तर यत्नपूर्वक रक्षा करते रहते हैं । (रक्षा के लिए) अपने समान तेजस्वी एवं दुर्निवार चक्र को नियुक्त करके भी वे उस पर भरोसा नहीं करते हैं । उनकी रक्षा के लिए स्वयं जाते हैं ॥७२-७३॥ अपने गुणों और नामों के सुनने से शीघ्रतायुक्त भगवान् भक्त के साथ छाया की भाँति निरन्तर भ्रमण किया करते हैं ॥७४॥ उनकी प्रिया प्राणों से भी बढ़कर हैं, उनसे अधिक कोई नहीं है । किन्तु वह भी भक्तों से द्वेष करती हैं, तो प्रभु सहसा उनका भी त्याग कर देते हैं ॥७५॥ द्विज ! प्रभु को सबसे और अपने देह से भी प्रिय ब्राह्मण हैं, ब्राह्मणों से प्रिय भक्त हैं, जो भगवान् को प्राणों से भी बढ़कर हैं ॥७६॥ तीनों लोकों में भगवान् को कौन प्रिय है और कौन अप्रिय । किन्तु जो शिष्ट व्यक्ति है, उसका वे निरन्तर भजन-ध्यान करते हैं ॥७७॥ ब्रह्मन् ! महाप्रलय के समय ब्रह्माण्ड-समूह के जल-प्लावित हो जाने पर उसमें भी सभी भक्तों का नाश नहीं होता है ॥७८॥ ब्राह्मण ! गोविन्द का भजन करो और उनके चरण-कमल का स्मरण करो । भगवान् का स्मरण करने से सभी आपदाएँ नष्ट हो जाती हैं ॥७९॥ तुम शीघ्र वैकुण्ठ जाओ । वैकुण्ठ ही तुम्हारे लिए शरण है, करुणासागर भगवान् तुम्हें अभय प्रदान करेंगे ॥८०॥ इस बीच सूर्य की किरणों द्वारा अत्यन्त प्रकाशित भूतल की भाँति कैलास सुदर्शन-चक्र के तेज से व्याप्त हो गया ॥८१॥ सभी कैलाशवासी भयंकर ज्वाला से दग्ध होने लगे और 'त्राहि-त्राहि' कहकर शंकर की शरण में पहुँचे ॥८२॥ उस दुःसह-चक्र को देखकर पार्वती सहित करुणानिधान शंकर ने बहुत प्रेम से ब्राह्मण को आशीर्वाद दिया—"यदि तेज सत्य है और चिरकाल से संचित तप सत्य है, तो यह अपराध करके डरा हुआ ब्राह्मण ताप से मुक्त हो जाये" ॥८३-८४॥

## पार्वत्युवाच

यत्प्रभोमम पुण्येषु ब्राह्मणः शरणागतः। ममाऽऽशिषा महाभीत्या शीघ्रं भवतु विज्वरः ॥८५॥
इत्येवमुक्त्वा कृपया विरराम शिवा शिवः। मुनिः प्रणम्य देवेशं वैकुण्ठं शरणं ययौ ॥८६॥
गत्वा वैकुण्ठभवनं मनोयायी मुनीश्वरः। दृष्ट्वा सुदर्शनं पश्चाद्विवेशान्तः पुरं हरेः ॥८७॥
ददर्श श्रीहरिं विप्रो रत्नसिंहासनस्थितम्। शङ्खचक्रगदापद्मधरं पीताम्बरं परम् ॥८८॥
श्यामं चतुर्भुजं शान्तं लक्ष्मीकान्तं मनोहरम्। रत्नालंकारशोभाढ्यं रत्नमालाविभूषितम् ॥८९॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारकम्। सद्रत्नसाररचितकिरीटोज्ज्वलशेखरम् ॥९०॥
पार्षदप्रवरेन्द्रैश्च सेवितं श्वेतचामरैः। पद्मासेवितपादाब्जं सरस्वत्या स्तुतं पुरः ॥९१॥
सुनन्दनन्दकुमुदप्रचण्डादिभिरावृतम्। गुणानुवादं गायन्तं तन्त्रैः[1] पश्यन्तमीप्सितम् ॥९२॥
एवंभूतं प्रभुं दृष्ट्वा दण्डवत्प्रणमाम च। तुष्टाव सामवेदोक्तस्तोत्रेण परमेश्वरम् ॥९३॥

## दुर्वासा उवाच

त्राहि मां कमलाकान्त त्राहि मां करुणानिधे। दीनबन्धोऽतिदीनेश करुणासागर प्रभो ॥९४॥

---

**पार्वती बोलीं**—जिसलिए यह ब्राह्मण मेरे स्वामी के पुण्य कर्मों के अवसर पर शरण में आया है, इसलिए मेरे आशिष द्वारा यह महान् भय से मुक्त होकर संताप से रहित हो जाय ॥८५॥ कृपापूर्वक ऐसा कहकर पार्वती और शिव चुप हो गये और मुनि देवाधीश्वर शिव को प्रणाम करके वैकुण्ठ की शरण में गये ॥८६॥ मन की भांति वेग से चलनेवाले मुनीश्वर दुर्वासा वैकुण्ठ पहुँचकर सुदर्शन को अपने पीछे आते देख भगवान् के अन्तःपुर में प्रवेश कर गये ॥८७॥ ब्राह्मण ने वहाँ भगवान् श्री हरि को रत्न के सिंहासन पर विराजमान देखा, जो शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म लिये, पीताम्बर पहने, श्यामलवर्ण, चतुर्भुज, शान्त, लक्ष्मीकान्त मनोहर, रत्नों के आभूषणों से भूषित, रत्नमाला से सुशोभित, मन्दहास समेत प्रसन्न मुख, भक्तों पर अनुग्रह करनेवाले उत्तम रत्नों के सारभाग से सुरचित किरीट से समुज्ज्वल शिरोभागवाले और श्वेत चामरों से श्रेष्ठ पार्षदों द्वारा सुसेवित थे। लक्ष्मी उनके चरण-कमल की सेवा कर रही थीं, सरस्वती सामने उनकी स्तुति कर रही थीं एवं सुनन्द, नन्द, कुमुद और प्रचण्ड आदि गण उनको घेरकर खड़े थे। गुणानुवाद गाते हुए अभीष्ट भक्त को भगवान् तन्त्रों से देख रहे थे ॥८८-९२॥ ऐसे प्रभु को देखकर दुर्वासा ने दण्डवत् प्रणाम किया और सामवेदीय स्तोत्र द्वारा परमेश्वर की स्तुति करना आरम्भ किया ॥९३॥

**दुर्वासा बोले**—हे कमलाकान्त ! मुझे बचाइये। हे करुणानिधे ! मेरी रक्षा कीजिये। आप दीनबन्धु, अतिदीनों के ईश, करुणासागर एवं प्रभु हैं। आप वेद-वेदाङ्ग की सृष्टि करनेवाले विधाता के भी विधाता हैं,

---

१ क. यन्त्रैः। २ क. तम्।

वेदवेदाङ्गसंस्रष्टुर्विधातुश्च स्वयं विधिः। मृत्योर्मृत्युः कालकाल त्राहि मां संकटार्णवे ॥९५॥
संहारकर्तुः संहारः सर्वेशः सर्वकारणः। महाविष्णुतरोर्बीज रक्ष मां भवसागरे ॥९६॥
शरणागतशोकार्तभयत्राणपरायण। भगवन्नव मां भीतं नारायण नमोऽस्तु ते ॥९७॥
वेदेष्वाद्यं च यद्वस्तु वेदाः स्तोतुं न च क्षमाः। सरस्वती जडीभूता किं स्तुवन्ति विपश्चितः ॥९८॥
शेषः सहस्रवक्त्रेण यं स्तोतुं जडतां व्रजेत्। पञ्चवक्त्रो जडीभूतो जडीभूतश्चतुर्मुखः ॥९९॥
श्रुतयः स्मृतिकर्तारो वाणी चेत्स्तोतुमक्षमा। कोऽहं विप्रश्च वेदज्ञः शिष्यः किं स्तौमि मानद ॥१००॥
मनूनां च महेन्द्राणामष्टाविंशतिमे गते। दिवानिशं यस्य विधेरष्टोत्तरशतायुषः ॥१०१॥
तस्य पातो भवेद्यस्य चक्षुरुन्मीलनेन च। तमनिर्वचनीयं च किं स्तौमि पाहि मां प्रभो ॥१०२॥
इत्येवं स्तवनं कृत्वा पपात चरणाम्बुजे। नयनाम्बुजनीरेण सिषेच भयविह्वलः ॥१०३॥
दुर्वाससा कृतं स्तोत्रं हरेश्च परमात्मनः। पुण्यदं सामवेदोक्तं जगन्मङ्गलनामकम् ॥१०४॥
यः पठेत्संकटग्रस्तो भक्तियुक्तश्च संयतः। नारायणस्तं कृपया शीघ्रमागत्य रक्षति ॥१०५॥
राजद्वारे श्मशाने च कारागारे भयाकुले। शत्रुग्रस्ते दस्युभीतो हिंस्रजन्तुसमन्विते ॥१०६॥

---

मृत्यु के भी मृत्यु हैं और काल के भी काल हैं। इस संकट-सागर से मेरी रक्षा करें ॥९४-९५॥ आप संहारकर्त्ता के भी संहारक, सबके अधीश्वर और सबके कारण हैं। महाविष्णु रूपी वृक्ष के बीज हैं, इस भवसागर से मेरी रक्षा कीजिये ॥९६॥ हे भगवान्! आप शरणागत शोक-पीड़ित को भय से बचाने में तत्पर रहते हैं, मुझ भीत की रक्षा करें। नारायण! आपको बार-बार नमस्कार है ॥९७॥ वेदों में जिन्हें आदिसत्ता कहा गया है, जिनकी स्तुति करने में वेद भी समर्थ नहीं हैं, सरस्वती जड़ की भाँति मूक रह जाती हैं, उनकी स्तुति विद्वान् क्या कर सकते हैं ॥९८॥ शेष अपने सहस्र मुखों द्वारा जिनकी स्तुति करने में जड़ता को प्राप्त कर लेते हैं, पाँच मुखवाले शिव जड़ीभूत हो जाते हैं, चतुर्मुख ब्रह्मा मौन हो जाते हैं, श्रुतियाँ, स्मृतियों के रचयिता तथा वाणी (सरस्वती) भी जिनकी स्तुति में असमर्थ हैं, उनका स्तवन मुझ जैसा ब्राह्मण कैसे कर सकता है? मानद! मैं वेदों का ज्ञाता क्या हूँ, वेदज्ञों का शिष्य हूँ। मुझमें आपकी स्तुति करने की क्या योग्यता है? ॥९९-१००॥ अट्ठाईसवें मनु और महेन्द्र के समाप्त हो जाने पर जिनका एक दिन-रात का समय पूरा होता है, वे विधाता अपने वर्ष से एक सौ आठ वर्ष तक जीवित रहते हैं; परन्तु जब उनका भी पतन होता है, तब आपके नेत्रों की एक पलक गिरती है— ऐसे अनिर्वचनीय प्रभु की मैं क्या स्तुति करूँ? प्रभो! मेरी रक्षा कीजिये ॥१०१-१०२॥ इस प्रकार स्तुति करके दुर्वासा भगवान् के चरण-कमल पर गिर पड़े और भयविह्वल होकर आंसू से उसे भिगोने लगे ॥१०३॥ दुर्वासा द्वारा रचित परमात्मा विष्णु का यह स्तोत्र पुण्यप्रद, सामवेदोक्त एवं जगन्मङ्गल नामक है ॥१०४॥ सङ्कटग्रस्त होने पर जो भक्तिपूर्वक और सुसंयत भाव से इसका पाठ करता है, नारायण कृपया शीघ्र आकर उसकी रक्षा करते हैं ॥१०५॥ राजद्वार में, श्मशान में, कारागार (जेल) में, भयाकुल होने पर, शत्रुग्रस्त होने पर, हिंसक जीवों

वेष्टिते राजसैन्येन मग्ने पोते महार्णवे । स्तोत्रस्मरणमात्रेण मुच्यते नात्र संशयः ॥१०७॥

### नारायण उवाच

मुनेश्च स्तवनं श्रुत्वा भगवान्भक्तवत्सलः । प्रहस्योवाच मधुरं पीयूषवृष्टिवन्मुदा ॥१०८॥

### श्रीभगवानुवाच

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते भविष्यति वरेण मे । किं तु मे वचनं नित्यं शृणु सत्यं सुखावहम् ॥१०९॥
अन्येषां च भवेज्ज्ञानं श्रुत्वा शास्त्रं सतां मुखात् । स्वमूर्तिमन्ति शास्त्राणि भवे सन्तश्चरन्ति हि ॥११०॥
कर्म वेदविरुद्धं च सर्वेषामतिगर्हितम् । करोति विद्वांश्चेज्ज्ञात्वा स च जीवन्मृताधिकः ॥१११॥
पुराणेषु च वेदेषु चेतिहासेषु ब्राह्मण । वैष्णवानां च महिमा श्रुतः सर्वैश्च सर्वतः ॥११२॥
अहं प्राणा वैष्णवानां मम प्राणाश्च वैष्णवाः । तानेव द्वेष्टि यो मूढो ममासूनां च हिंसकः ॥११३॥
पुत्रान्पौत्रान्कलत्रांश्च राज्यं लक्ष्मीं विहाय च । ध्यायन्ते सततं ये मां को मे तेभ्यः परः प्रियः ॥११४॥
परा भक्तान्न मे प्राणा न च लक्ष्मप्रीर्न शंकरः । न भारती न च ब्रह्मा न दुर्गा न गणेश्वरः ॥११५॥
न ब्राह्मणा न वेदाश्च न वेदजननी परा । न गोपी न च गोपाला न राधा प्राणतः प्रिया ॥११६॥
इत्येवं कथितं सर्वं सत्यं सारं च वास्तवम् । न प्रशंसापरं तेषां ते च प्राणाधिकाः प्रियाः ॥११७॥

---

के सामने, राज-सेनाओं से घिर जाने पर और महासागर में जहाज के डूबते समय इस स्तोत्र के स्मरण मात्र से मनुष्य मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं ॥१०६-१०७॥

**नारायण बोले**—मुनि की स्तुति सुनकर भक्तवत्सल भगवान् ने हँसकर अमृत-वर्षा के समान मधुर वाणी में कहा ॥१०८॥

**भगवान् बोले**—उठो, उठो ! मेरे वरदान से तुम्हारा कल्याण होगा; किन्तु मेरा सत्य और सुखप्रद वचन सुनो ॥१०९॥ सज्जनों के मुख से शास्त्रों को सुनने पर अन्य लोगों को भी ज्ञान हो जाता है । शास्त्र सन्त के रूप में मूर्तिमान् होकर विचरण किया करते हैं ॥११०॥ यदि विद्वान् ज्ञान रखते हुए वेद-विरुद्ध अतिनिन्दित कर्म करता है तो वह जीवित रहते हुए भी मृतक से बढ़कर है ॥१११॥ ब्राह्मण ! पुराणों, वेदों और इतिहासों में वैष्णवों की महिमा कही गयी है, उसे सभी ने सब प्रकार से सुना है ॥११२॥ मैं वैष्णवों का प्राण हूँ और वैष्णव मेरे प्राण हैं, अतः जो उनसे द्वेष करता है, वह मूढ़ मेरे प्राणों की हिंसा करता है ॥११३॥ पुत्रों, पौत्रों, स्त्रियों, राज्य और लक्ष्मी का त्यागकर जो निरन्तर मेरा ध्यान करता है, उससे बढ़कर प्रिय मुझे और कौन हो सकता है ? भक्त से बढ़कर मेरे प्राण नहीं हैं और लक्ष्मी, शंकर, सरस्वती, ब्रह्मा, दुर्गा, गणेश्वर, ब्राह्मण, वेद, वेदमाता सावित्री, गोपी, गोपाल एवं प्राण से अधिक प्रिय राधा भी नहीं हैं ॥११४-११६॥ इस प्रकार मैंने सब सच्ची बात कही है । यह वास्तविक सारतत्त्व है । मैंने भक्तों की प्रशंसा के लिए कोई बात बढ़ा-चढ़ाकर

मां द्विषन्ति च ये मूढा ज्ञानहीनाश्च वञ्चिताः। आत्मानं ये न जानन्ति ते यान्ति निरयं चिरम् ॥११८॥
ये द्विषन्ति च मद्भक्तान्प्राणानामधिकं प्रियान्। तेषां शास्ता त्वहं तूर्णं परत्र निरयं चिरम् ॥११९॥
प्रभावोऽहं च सर्वेषामीश्वरः परिपालकः। तथाऽपि[1] न स्वतन्त्रोऽहं भक्ताधीनो दिवानिशम् ॥१२०॥
गोलोके वाऽय वैकुण्ठे द्विभुजं च चतुर्भुजम्। रूपमात्रमिदं शश्वत्प्राणा मे भक्तसंनिधौ ॥१२१॥
यदुक्तं भक्तदत्तं च भक्षणीयं च तन्मम। अभक्ष्यं द्रव्यमन्येन दत्तं चेदमृतोपमम् ॥१२२॥
अम्बरीषं नृपश्रेष्ठं निरीहं तमहिंसकम्। कथं हंसि दयाशीलं सर्वप्राणिहिते रतम् ॥१२३॥
दयां कुर्वन्ति ये सन्तः सततं सर्वजन्तुषु। तान्द्विषन्ति च ये मूढास्तेषां हन्ताऽहमेव च ॥१२४॥
भक्तानां हिंसकं शत्रुमहं रक्षितुमक्षमः। अम्बरीषालयं गच्छ स त्वां रक्षितुमीश्वरः ॥१२५॥

## नारायण उवाच

इदं वाक्यं च तच्छ्रुत्वा ब्राह्मणो भयविह्वलः। विषण्णमानसस्तस्थौ स्मरन्कृष्ण पदाम्बुजम् ॥१२६॥
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा भवान्या सह शंकरः। धर्मश्चन्द्रादयो देवा आजग्मुर्मुनिपुंगवाः ॥१२७॥

---

रहो रहा है। वे मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं ॥११७॥ जो मूर्ख, ज्ञानहीन एवं वञ्चित लोग मुझसे द्वेष करते हैं और जो अपने को नहीं जानते हैं, वे चिरकाल तक नरक में पडे रहते हैं। जो मेरे प्राणों से भी अधिक प्रिय भक्तों से द्वेष करते हैं, उन्हें मैं अति शीघ्र दण्ड देता हूँ और परलोक में भी उन्हें चिरकाल तक नरक में रहना पड़ता है ॥११८-११९॥ मैं सभी का कारण ईश्वर और परिपालक हूँ, तो भी मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ। मैं दिन-रात भक्तों के अधीन रहता हूँ ॥१२०॥ गोलोक में मेरा द्विभुज रूप है और वैकुण्ठ में चतुर्भुज। यह (मेरा) रूपमात्र ही उन लोकों में रहता है, किन्तु मेरे प्राण निरन्तर भक्तों के समीप ही रहते हैं ॥१२१॥ भक्त जो कुछ मुझे समर्पित करते हैं वही मेरा भक्ष्य होता है और अभक्त द्वारा दिया गया अमृत भी मेरे लिये अभक्ष्य है ॥१२२॥ नृपश्रेष्ठ राजा अम्बरीष निरीह अहिंसक दयाशील और सभी प्राणियों के प्रेमी हैं। ऐसे पुरुष को तुम क्यों मार रहे हो? जो सन्त जीवों पर दया करते हैं, उनसे जो मूर्ख द्वेष रखते हैं, उनका नाशक मैं ही होता हूँ ॥१२३-१२४॥ भक्तों की हिंसा करनेवाले शत्रु की रक्षा करने में मैं सर्वदा असमर्थ रहता हूँ, अतः तुम अम्बरीष के घर जाओ, वही तुम्हारी रक्षा कर सकेंगे ॥१२५॥

**नारायण बोले**—भगवान् का यह वचन सुनकर ब्राह्मण भयाकुल हो गये और खिन्नचित्त होकर भगवान् श्रीकृष्ण के चरण-कमल का स्मरण करते हुए वहीं खड़े रहे ॥१२६॥ इसी बीच ब्रह्मा, पार्वती समेत शिव, धर्म,

---

१ ख. न च व्यापी।

प्रणम्य तुष्टुवुः सर्वे परमात्मानमीश्वरम् । पुलकाञ्चितसर्वाङ्गा भक्तिनम्रात्मकंधरा ॥१२८॥

ब्रह्मोवाच

स्वात्मस्वरूप निर्लिप्त भक्तानुग्रहकारक । भक्तापराधजनकं रक्ष ब्राह्मणपुंगवम् ॥१२९॥

महादेव उवाच

दीनबन्धो जगन्नाथ नायं विप्रो जगद्‌बहिः । कृतापराधं दीनं च पाहीमं शरणागतम् ॥१३०॥

पार्वत्युवाच

भक्त एवाम्बरीषस्ते न द्विजा न सुरा वयम् । सर्वेषामीश्वरस्त्वं च रक्ष विप्रं कृतागसम् ॥१३१॥

धर्म उवाच

सर्वेषां जनकस्त्वं च पाता दण्डकृदीश्वरः । शिशुहेतोः शिशुं हन्ति पितेत्येवं कुतः प्रभो ॥१३२॥

इन्द्र उवाच

कृपया समता शश्वत्सर्वेषु जीविषु प्रभो । अपराधफलं भूतमधुनां पातुमर्हसि ॥१३३॥

रुद्र उवाच

शान्तिं कर्तुं समुचितमुचितं सांप्रतं कुरु । कृतकुण्ठस्य मूढस्य पालनं कर्तुमर्हसि ॥१३४॥

---

चन्द्रादि देव और मुनिश्रेष्ठ लोग वहाँ आ गये ॥१२७॥ समस्त अंगों में पुलकायमान और भक्ति से कन्धे झुकाये सब लोग परमात्मा ईश्वर को प्रणाम करके स्तुति करने लगे ॥१२८॥

**ब्रह्मा बोले**—हे स्वात्मस्वरूप ! आप निर्लिप्त हैं और भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए कातर रहा करते हैं । अतः आप भक्त का अपराध करनेवाले इस ब्राह्मण-श्रेष्ठ की रक्षा करें ॥१२९॥

**महादेव बोले**—हे दीनबन्धो ! आप जगत् के स्वामी हैं और यह ब्राह्मण संसार के बाहर नहीं है, अतः आप इस अपराधी, दीन एवं शरणागत की रक्षा करें ॥१३०॥

**पार्वती बोलीं**—अम्बरीष ही आपके भक्त हैं, ब्राह्मण, देवता और हम लोग (भक्त) नहीं हैं । आप सबके ईश्वर हैं, इस अपराधी ब्राह्मण की रक्षा करें ॥१३१॥

**धर्म बोले**—प्रभो ! आप सभी के पिता हैं तथा पालक, दण्ड देनेवाले और ईश्वर हैं, किन्तु पिता एक शिशु के कारण दूसरे शिशु की हत्या करे, यह कहाँ का न्याय है ? ॥१३२॥

**इन्द्र बोले**—प्रभो ! आप कृपया सभी जीवों पर निरन्तर समता का व्यवहार करते हैं । इसे अपराध का फल मिल चुका, अब इसकी रक्षा करें ॥१३३॥

**रुद्र बोले**—इसको शान्ति प्रदान करने के निमित्त आप इस समय जो कुछ करेंगे वह समुचित ही होगा। अवकुण्ठित किये गये इस मूर्ख का पालन करें ॥१३४॥

दिक्पाल उवाच

कृतापराधं विप्रं च च्छेत्तुमर्हसि न श्रुतौ। अपराधशमं[1] कृत्वा सदा पाति सदीश्वरः ॥१३५॥

ग्रहा ऊचुः

यो द्वेष्टि वैष्णवं मूढस्तं रुष्टाः सर्वदेवताः। पीडां कुर्मो वयं शश्वत्पश्चात्त्वं पातुमर्हसि ॥१३६॥

मुनय ऊचुः

नाथ विप्रे पराभूते सर्वे जीवन्मृता वयम्। दण्डं विधातुमेकस्य भवेल्लज्जा स्वजातिषु ॥१३७॥

अत्रिरुवाच

त्वयैव दत्तः पुत्रो मे क्रोधी त्वत्सेवकः सदा। न कं बिभेति त्रैलोक्ये तेजस्वी तेजसा तव ॥१३८॥

लक्ष्मीरुवाच

क्षमापराधं भगवन् ब्राह्मणं शरणागतम्। स्तुवन्ति देवविप्राश्च न विप्रं हन्तुमर्हसि ॥१३९॥

सरस्वत्युवाच

बोधयिष्यामि देवानां जनकं कामदं श्रुतिम्। भगवन्स्वामी सर्वेषां सर्वांश्च पातुमर्हसि ॥१४०॥

---

**दिक्पाल बोले**––अपराध करनेवाले ब्राह्मण को आप काट डालें, यह भी वेद में कहीं नहीं सुना गया है, और ईश्वर अपराध को शान्त करके सदा पालन ही करते हैं ॥१३५॥

**ग्रहगण बोले**––जो वैष्णवों से द्वेष करता है उस मूढ़ पर सभी देव रुष्ट हो जाते हैं, हम लोग उसे निरन्तर पीड़ित करते रहते हैं, पश्चात् आप उसकी रक्षा करते हैं ॥१३६॥

**मुनिगण बोले**––हे नाथ! इस ब्राह्मण के अपमानित होने पर हम लोग जीवित रहते हुए भी मृतक के समान हैं। एक को दण्डित होते देख जातिवालों को लज्जित होना पड़ता है ॥१३७॥

**अत्रि बोले**––आपने ही मुझे ऐसा पुत्र दिया है, जो क्रोधी है और आपका सदा सेवक है। यह आपके तेज से तेजस्वी होने के नाते त्रैलोक्य में किसी से भी नहीं डरता है ॥१३८॥

**लक्ष्मी बोलीं**––हे भगवन्! शरणागत ब्राह्मण का अपराध क्षमा करें। देवता और ब्राह्मण लोग आपकी स्तुति कर रहे हैं आप विप्र-हनन न करें ॥१३९॥

**सरस्वती बोलीं**––भगवन्! देवों के जनक एवं कामपूरक आपको मैं श्रुति बताऊँगी कि आप सबके स्वामी हैं, अतः सभी की रक्षा करें ॥१४०॥

---

१ क. ॰फलं।

**पार्षदा ऊचुः**

भवतः स्मृतिमात्रेण सर्वेषां सर्वमङ्गलम् । भवत्सर्वापदो यान्ति पाहीमं शरणागतम् ॥१४१॥

**नर्तका ऊचुः**

दारिद्र्यभञ्जन वयं भिक्षुकास्तव संततम् । भिक्षां नः सांप्रतं देहि परित्राणं द्विजस्य च ॥१४२॥
एतेषां स्तवनं श्रुत्वा प्रभुः शरणवत्सलः । प्रहस्योवाच वचनं सर्वसंतोषकारणम् ॥१४३॥

**श्रीभगवानुवाच**

सर्वे शृणुत मद्वाक्यं नीतियुक्तं सुखावहम् । विप्ररक्षां करिष्यामि युष्माकमाज्ञया ध्रुवम् ॥१४४॥
किन्त्वयं यातु वैकुण्ठादम्बरीषालयं पुनः । करोति पारणं तत्र राज्ञः सुप्रीतये मुनिः ॥१४५॥
विप्रस्तस्यातिथिर्भूत्वा निर्दोषं सप्तुमुद्यतः । सुदर्शनं तु तं रक्ष्यं ब्राह्मणं हन्तुमुद्यतम् ॥१४६॥
पूर्णं वर्षभयं भीतो भ्रमत्येव भुवं मुदा । उपवासी स राजेन्द्रः सस्त्रीकश्च शुचाऽन्वितः ॥१४७॥
ततोऽहमुपवासी च भक्तोपवासकारणात् । स्तनान्धं बालकं दृष्ट्वा न भुङ्क्ते जननी यथा ॥१४८॥
ममाऽऽशिषा मुनिश्रेष्ठः सद्यो भवतु विज्वरः । पथि तत्रास्य हिंसां च मच्चक्रं न करिष्यति ॥१४९॥
अहमेवाद्य निश्चिन्तः सुखं भोक्ष्यामि निश्चितम् । भक्तदत्तं च यद्वस्तु प्रीत्या कृत्वा सुधोपमम् ॥१५०॥

---

**पार्षद बोले**—आपके स्मरण मात्र से सभी का सर्वमङ्गल होता है, समस्त आपत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं, अतः आप इस शरणागत की रक्षा करें ॥१४१॥

**नर्तक बोले**—हे दारिद्र्य का नाश करनेवाले ! हम लोग आपके सदैव भिक्षुक रहे हैं, अतः इस ब्राह्मण की रक्षा रूप भिक्षा हमें इस समय प्रदान करें ॥१४२॥ इन सबकी स्तुति सुनकर शरणवत्सल प्रभु ने हँसकर सबके लिए सन्तोषजनक वचन कहा ॥१४३॥

**भगवान् बोले**—सभी लोग मेरी नीतियुक्त एवं सुखप्रद वचन सुनें । तुम लोगों की आज्ञा से मैं अब ब्राह्मण की रक्षा करूँगा ॥१४४॥ किन्तु ये मुनि पुनः वैकुण्ठ से अम्बरीष के घर जायँ और राजा की प्रसन्नता के लिए उनके यहाँ पारण करें ॥१४५॥ वह ब्राह्मण उनका अतिथि होकर उन्हें बिना अपराध के ही शाप देने को प्रस्तुत हो गया था, इसीलिए सुदर्शन इस रक्षणीय ब्राह्मण को मारने के लिए तैयार हुआ ॥१४६॥ भयभीत ब्राह्मण को पृथ्वी पर भ्रमण करते हुए आज पूरा एक वर्ष हो रहा है और तभी से शोकयुक्त महाराज अम्बरीष पत्नी समेत उपवास कर रहे हैं ॥१४७॥ भक्त के उपवास करने के कारण मैं भी उपवासी हो गया हूँ । जैसे माता दूध-पीते बच्चे को उपवास करते देख स्वयं भी भोजन नहीं करती, वही दशा मेरी है ॥१४८॥ मेरे आशीर्वाद से मुनि-श्रेष्ठ शीघ्र ही सन्ताप से मुक्त हो जायेंगे । मार्ग में मेरा चक्र इनकी हिंसा नहीं करेगा ॥१४९॥ भक्त की दी हुई जो वस्तु है, उसे अमृतोपम बनाकर मैं भी आज ही निश्चिन्त होकर सुख से भोजन करूँगा ॥१५०॥

लक्ष्मीदत्तं च यद्द्रव्यं न चाहं भोक्तुमीश्वरः। विना भक्तप्रदानेन न च सा दातुमीश्वरी ॥१५१॥
हे मुनीन्द्र महाप्राज्ञ गच्छ वत्स नृपालयम्। सर्वे देवाश्च देव्यश्च गच्छन्तु मुनयो गृहम् ॥१५२॥
इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तूर्णं ययौ स्वान्तःपुरं मुदा। ययुः सर्वे मुदा युक्ताः प्रणम्य जगदीश्वरम् ॥१५३॥
ब्राह्मणश्च मनोयायी जगाम नृपमन्दिरम्। सुदर्शनं च तच्चक्रं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥१५४॥
उपोष्य वत्सरं राजा शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः। सिंहासनस्थो ददर्श पुरतो मुनिपुंगवम् ॥१५५॥
उत्थाय संभ्रमात्सद्यः प्रणम्य सादरं मुदा। भोजयित्वा तु मिष्टान्नं ब्राह्मणं बुभुजे स्वयम् ॥१५६॥
भुक्त्वा तुष्टो द्विजश्रेष्ठो युयुजे परमाशिषम्। जगाम स्वालयं तूर्णं प्रशशंस पुनः पुनः ॥१५७॥
उवाच पथि विप्रेन्द्रो मनसा विस्मयाकुलः। माहात्म्यं दुर्लभमहो वैष्णवानामिति द्विजः ॥१५८॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० मुनिमोक्षणप्रस्तावो नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥

---

(विना भक्त के दिये) लक्ष्मी प्रदत्त वस्तु को भी मैं खाने में समर्थ नहीं हूँ और लक्ष्मी भी विना भक्त की दी हुई वस्तु को देने में समर्थ नहीं है ॥१५१॥ मुनीन्द्र! महापण्डित! वत्स! राजभवन में जाओ और सभी देव, देवियाँ एवं मुनिगण अपने-अपने घर को पधारें ॥१५२॥ इतना कहकर श्रीहरि प्रसन्नता से शीघ्र अपने पुर में चले गये और सभी लोग जगदीश्वर को प्रणामकर हर्ष से अपने-अपने घर को गये ॥१५३॥ मन की भाँति वेग से चलनेवाला वह ब्राह्मण राजा के घर पहुँचा और करोड़ों सूर्य के समान प्रभापूर्ण वह चक्र भी वहाँ गया ॥१५४॥ एक वर्ष तक उपवास करने के कारण राजा का कण्ठ, ओठ और तालु सूख गये थे, सिंहासन पर बैठे हुए उन्होंने सामने मुनिश्रेष्ठ को देखा ॥१५५॥ सहसा उठकर हर्ष से सद्यः ब्राह्मण को प्रणाम करके मधुर भोजन कराकर स्वयं भी भोजन किया ॥१५६॥ भोजन करके सन्तुष्ट हुए द्विजवर ने उन्हें उत्तम आशीर्वाद दिया और उनकी बार-बार प्रशंसा की, फिर शीघ्र अपने आश्रम को चले गये। विप्रवर आश्चर्यचकित होकर मन-ही-मन कहने लगे अहो! वैष्णवों का माहात्म्य दुर्लभ है ॥१५७-१५८॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारायण-नारद-संवाद में मुनि-मोक्षण-वर्णन नामक पचीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२५॥

# अथ षड्विंशोऽध्यायः

## नारद उवाच

द्वादशीलङ्घने दोषः श्रुतस्त्वन्मुखतो मुने। पराभवो मुनेश्चैव नृपत्राणं हरेरहो ॥१॥
अधुना श्रोतुमिच्छामि सर्वेषामीप्सितं च मे। एकादशीव्रतस्यास्य विधानं वद निश्चितम् ॥२॥
अहो श्रुतौ श्रुतं किंचिन्मतभेदान्न निश्चितम्। श्रुतीनां कारणमुखाच्छ्रोतुं कौतूहलं मम ॥३॥

## नारायण उवाच

एकादशीव्रतमिदं देवानामपि[1] दुर्लभम्। श्रीकृष्णप्रीतिजनकं तपःश्रेष्ठं तपस्विनाम् ॥४॥
देवानां च यथा कृष्णो देवीनां प्रकृतिर्यथा। आश्रमाणां यथा विप्रो वैष्णवानां यथा शिवः ॥५॥
यथा गणेशः पूज्यानां यथा वाणी विपश्चिताम्। शास्त्राणां च यथा वेदास्तीर्थानां जाह्नवी यथा ॥६॥
तैजसानां यथा स्वर्णं प्राणिनां वैष्णवो यथा। धनानां च यथा विद्या सङ्गिनां च यथा प्रिया ॥७॥
प्रमथानां यथा रुद्रः श्रेयसां च यथा मतिः। आत्मा यथेन्द्रियाणां च चञ्चलानां यथा मनः ॥८॥
गुरूणां च यथा माता बन्धूनां च यथा पतिः। बलिष्ठानां यथा दैवं कालः कलयतां यथा ॥९॥
सुशीलं चैव मित्राणां शत्रूणां रुग्यथा मुने। यथा कीर्तिः कीर्तिमतां गृहिणां च यथा गृहम् ॥१०॥

---

# अध्याय २६

## एकादशी व्रत का निरूपण

**नारद बोले**—हे मुने ! आपके मुख से मैंने द्वादशी-लङ्घन करने का दोष सुन लिया है, जिसमें मुनि का पराजय और राजा त्राण निहित है। इस समय मैं सभी लोगों का अभीष्ट सुनना चाहता हूँ। मुझे एकादशी व्रत का निश्चित विधान बता दें ॥१-२॥ अहो ! वेद में सुना हुआ कुछ मतभेद के कारण निश्चित नहीं हो पाता है। अतः श्रुतियों के कारण-मुख से मुझे सुनने का कौतूहल हो रहा है ॥३॥

**नारायण बोले**—एकादशी व्रत देवों के लिए भी दुर्लभ है, वह श्रीकृष्ण-प्रीति का जनक तथा तपस्वियों का श्रेष्ठ तप है ॥४॥ जिस प्रकार देवों में श्रीकृष्ण, देवियों में प्रकृति, वर्णों में ब्राह्मण, वैष्णवों में शिव, पूज्यों में गणेश, विद्वानों में वाणी, शास्त्रों में वेद, तीर्थों में गंगा, तैजस पदार्थों में सुवर्ण, प्राणियों में वैष्णव, धनों में विद्या, साथियों में पत्नी, प्रमथगण में रुद्र, कल्याणों में बुद्धि इन्द्रियों में आत्मा, चपलों में मन, गुरुजनों में माता, बन्धुओं में पति, बलवानों में दैव और कलना करनेवालों में काल है ॥५-९॥ हे मुने ! (जैसे) मित्रों में सुन्दर स्वभाव, शत्रुओं में रोग, कीर्तिमानों में कीर्ति, गृहस्थों में गृह, हिंसकों में खल, दुष्टों में पुंश्चली,

---

१ क. व्रतानां दुर्लभं परम्।

यथा खलो हिंसकानां दुष्टानां चैव पुंश्चली । तेजस्विनां ग्रहेशश्च सहिष्णुनां यथा क्षितिः ॥११॥
यथाऽमृतं भक्षणानां दाहकानां यथाऽनलः । यथा श्रीर्धनदातॄणां सतीनां च यथा सती ॥१२॥
प्रजेशानां यथा ब्रह्मा सरितां सागरो यथा । यथा साम श्रुतीनां च गायत्री छन्दसां यथा ॥१३॥
वृक्षाणां च यथाऽश्वत्थः पुष्पाणां तुलसी यथा । यथा मार्गो हि मासानामृतूनां च यथा मधु ॥१४॥
आदित्यानां यथा सूर्यो रुद्राणां शंकरो यथा । यथा भीष्मो वसूनां च वर्षाणां भारतं यथा ॥१५॥
देवर्षीणां यथा त्वं च ब्रह्मर्षीणां यथा भृगुः । नृपाणां च यथा रामः सिद्धानां कपिलो यथा ॥१६॥
यथा सनत्कुमारश्च योगिनां ज्ञानिनां वरः । ऐरावतो गजेन्द्राणां पशूनां शरभो यथा ॥१७॥
यथा हिमाद्रिः शैलानां मणिनां कौस्तुभो यथा । सरस्वती नदीनां च यथा पुण्यस्वरूपिणी ॥१८॥
गन्धर्वाणां चित्ररथो यथा श्रेष्ठश्च नारद । यथा कुबेरो यक्षाणां सुमाली रक्षसां यथा ॥१९॥
यथा श्रेष्ठा च नारीणां शतरूपा वरा परा । मनूनां च यथा श्रेष्ठः स्वयं स्वायंभुवो मनुः ॥२०॥
सुन्दरीणां यथा रम्भा यथा माया च मायिनाम् । एकदशीव्रतमिदं व्रतानां च वरं तथा ॥२१॥
कर्तव्यं च चतुर्णां च वर्णानां नित्यमेव च । यतीनां वैष्णवानां च ब्राह्मणानां विशेषतः ॥२२॥
सत्यं सर्वाणि पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च । सन्त्येवौदनमाश्रित्य श्रीकृष्णव्रतवासरे ॥२३॥
भुक्त्वैतानि च पापानि यो भुङ्क्ते तत्र मन्दधीः । इहातिपातकी सोऽपि यात्यन्ते नरकं ध्रुवम् ॥२४॥
एकादशीप्रमाणानि युगसंख्याकृतानि च । कुम्भीपाके महाघोरे स्थित्वा चाण्डालतां व्रजेत् ॥२५॥

---

तेजस्वियों में सूर्य, सहिष्णुओं में पृथ्वी, भक्ष्य पदार्थों में अमृत, दाहकों में अग्नि, धन-दाताओं में लक्ष्मी, सतियों में पार्वती, प्रजापतियों में ब्रह्मा, सरिताओं में सागर, वेदों में सामवेद, छन्दों में गायत्री, वृक्षों में पीपल, पुष्पों में तुलसी, मासों में मार्गशीर्ष (अगहन), ऋतुओं में वसन्त, आदित्यों में सूर्य, रुद्रों में शंकर, वसुओं में भीष्म, (नव) वर्षों में भारतवर्ष, देवर्षियों में तुम, ब्रह्मर्षियों में भृगु राजाओं में रामचन्द्र, सिद्धों में कपिल, योगियों-ज्ञानियों में सनत्कुमार, गजेन्द्रों में ऐरावत, पशुओं में शरभ (सिंह से भी बलवान् आठ पैरोंवाला जन्तुविशेष), पर्वतों में हिमालय, मणियों में कौस्तुभ, नदियों में पुण्यरूपिणी सरस्वती हैं ॥१०-१८॥ हे नारद ! (जैसे) गन्धर्वों में चित्ररथ श्रेष्ठ है, यक्षों में कुबेर, राक्षसों में सुमाली, स्त्रियों में सुन्दरी शतरूपा, मनुओं में स्वयं स्वायंभुव, सुन्दरियों में रम्भा और मायावियों में माया (भगवती) श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार व्रतों में एकादशी व्रत श्रेष्ठ है ॥१९-२१॥ यह व्रत चारों वर्णों को सदा करना चाहिए, यतियों, वैष्णवों और विशेषकर ब्राह्मणों को अवश्य करना चाहिए ॥२२॥ एकादशी को ब्रह्महत्या आदि सभी भाँति के पाप (चावल के) भात में निवास करते हैं ॥२३॥ इसलिए जो मूर्ख उस दिन भात खाता है, वह सभी पापों का भागी होता है—इस लोक में महान् पापी होकर अन्त में निश्चित रूप से नरक में जाता है ॥२४॥ एकादशी प्रमाण युग की संख्याओं तक (अर्थात् ११ युगों तक) वह महाघोर कुम्भीपाक नरक में रहकर अन्त में चाण्डाल होता है ॥२५॥ सात जन्मों तक गलित कुष्ठ का

गलितव्याधियुक्तश्च ततः सप्तसु जन्मसु । पश्चान्मुक्तो भवेत्पापावित्याह कमलोद्भवः ॥२६॥
इत्येवं कथितं ब्रह्मन्यो दोषस्तत्र भोजने । द्वादशीलङ्घने दोषो मयोक्तश्च श्रुतः पुरा ॥२७॥
दशमीलङ्घने दोषं निबोध कथयामि ते । पुरा श्रुतो धर्मवक्त्राद्वेदसारोद्धृतोऽपि च ॥२८॥
दशमीं यः कलामात्रां मूढोऽज्ञानेन लङ्घयेत् । याति श्रीस्तद्गृहात्तूर्णं शापं दत्त्वा तु दारुणम् ॥२९॥
इह तद्वंशहानिश्च यशोहानिर्भवेद्ध्रुवम् । अन्ते मन्वन्तरशतमन्धकूपे वसेद् द्विज ॥३०॥
दशम्येकादशी वाऽपि द्वादशी यत्र वासरे । तत्र भुक्त्वा परदिने उपोष्य व्रतमाचरेत् ॥३१॥
द्वादश्यां च व्रतं कृत्वा त्रयोदश्यां च पारणम् । द्वादशीलङ्घने दोषो व्रतिनां तत्र[1] विद्यते ॥३२॥
संपूर्णैकादशी यत्र प्रभाते किंचिदेव सा । तत्रोपोष्या द्वितीया च परा चेद्यदि वर्धते ॥३३॥
षष्टिदण्डात्मिका यत्र प्रभाते च तिथित्रयम् । कुर्वन्ति गृहिणः पूर्वं नैव यत्यादयस्तथा ॥३४॥
परत्रानशनं कृत्वा नित्यकृत्यं समाचरेत् । व्रते जागरणं सर्वं पूर्वत्रैवाऽऽचरेद्बुधः ॥३५॥
तत्पूर्वदिवसे[2] नित्यं व्रतं कृत्वा परेऽहनि । एकादश्यां व्यतीतायां पारणं तु समाचरेत् ॥३६॥
वैष्णवानां यतीनां च विधवानां तथैव च । सर्वाः समा उपोष्यास्ता भिक्षूणां ब्रह्मचारिणाम् ॥३७॥
शुक्लामेव तु कुर्वन्ति गृहिणो वैष्णवेतराः । न कृष्णलङ्घने दोषस्तेषां वेदेषु नारद ॥३८॥

---

रोगी होकर पश्चात् पापों से मुक्त होता है, ऐसा कमलभू ब्रह्मा ने कहा है ॥२६॥ ब्रह्मन् ! एकादशी के दिन भोजन करने पर जो दोष होता है, वह तुम्हें सुना दिया और द्वादशी-लङ्घन करने का दोष पहले ही कह चुका हूँ, जिसे तुम सुन चुके हो ॥२७॥ अब दशमी-लङ्घन करने का दोष तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो । पूर्वकाल में धर्म के मुख से मैंने इसका श्रवण किया था, जिसे उन्होंने वेद का निचोड़ बताया था ॥२८॥ जो मूर्ख अज्ञानवश कलामात्र भी दशमी का लंघन करता है, उसे घोर शाप देकर लक्ष्मी तुरन्त उसके घर से चली जाती हैं ॥२९॥ द्विज ! इस लोक में उसके वंश की हानि तथा यश की हानि भी निश्चित होती है । अन्त में सौ मन्वन्तर समय तक वह अन्धकूप नरक में वास करता है ॥३०॥ जिस दिन दशमी, एकादशी तथा द्वादशी भी हो, उस दिन भोजन करके दूसरे दिन व्रत करे ॥३१॥ द्वादशी में व्रत रहकर त्रयोदशी में पारण करना चाहिए। उस दशा में द्वादशी-लंघन करने का दोष व्रतियों को नहीं होता है ॥३२॥ सम्पूर्ण एकादशी के रहते हुए भी दूसरे दिन प्रातःकाल यदि थोड़ी भी द्वादशी है, तो दूसरे दिन व्रत रहना चाहिए । यदि परा तिथि बढ़कर साठ दण्ड की हो गयी हो और प्रातःकाल तीन तिथियों का स्पर्श हो तो गृहस्थ पूर्व दिन में ही व्रत करते हैं, यति आदि नहीं ॥३३-३४॥ दूसरे दिन उपवास करके नित्य कर्म करना चाहिए । दो दिन एकादशी हो तो भी व्रत में सारा जागरण सम्बन्धी कार्य पहली ही रात में करे । पहले दिन में व्रत करके दूसरे दिन एकादशी बीतने पर पारण करे ॥३५-३६॥ वैष्णवों, यतियों, विधवाओं, भिक्षुओं और ब्रह्मचारियों को सभी एकादशियों में उपवास करना चाहिए ॥३७॥ नारद ! वैष्णव से इतर लोग शुक्ल पक्ष की एकादशी को ही उपवास-व्रत करते हैं । उन्हें कृष्ण-

---

[1] क. तत्र । [2] क. गृही तत्पूर्वदिवसे व्र° ।

शयनीबोधिनीमध्ये या कृष्णैकादशी भवेत् । सैवोपोष्या गृहस्थेन नान्या कृष्णा कदाचन ॥३९॥
इत्येवं कथितो ब्रह्मन्निर्णयोऽयं श्रुतौ श्रुतः । व्रतस्यास्य विधानं च निबोध कथयामि ते ॥४०॥
कृत्वा हविष्यं पूर्वाह्णे न च भुङ्क्ते पुनर्जलम् । एकाकी कुशशय्यायां नक्तं शयनमाचरेत् ॥४१॥
ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय प्रातः कृत्यं विधाय च । नित्यकृत्यं विधायाथ ततः स्नानं समाचरेत् ॥४२॥
व्रतोपवासं संकल्प्य श्रीकृष्णप्रीतिपूर्वकम् । कृत्वा संध्यां तर्पणं च विधायाऽऽह्निकमाचरेत् ॥४३॥
नित्यपूजां दिने कृत्वा व्रतद्रव्यं समाहरेत् । कृत्वा षोडशोपचारं प्रदृष्टं विधिबोधितम् ॥४४॥
आसनं वसनं पाद्यमर्घ्यं पुष्पानुलेपनम् । धूपं दीपं च नैवेद्यं यज्ञसूत्रं च भूषणम् ॥४५॥
गन्धं स्नानीयताम्बूले मधुपर्कं पुनर्जलम् । एतान्याहृत्य दिवसे व्रतं नक्तं समाचरेत् ॥४६॥
उपविश्याऽऽसने पूतो धृत्वा धौते च वाससी । आचम्य श्रीहरिं नत्वा[1] स्वस्तिवाचनमाचरेत् ॥४७॥
आरोप्य मङ्गलघटं धान्याधारे शुभे क्षणे । फलशाखाचन्दनाक्तं वेदोक्तं मुनिभिर्मुदा ॥४८॥
देवषट्कं समावाह्य पृथग्ध्यानैः समाचरेत् । पूजां पञ्चोपचारैश्च प्रकृष्टैश्च विचक्षणः ॥४९॥
गणेश्वरं दिनकरं वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम् । संपूज्यैतान्प्रणम्याथ व्रतं कुर्याद्धरिं स्मरन् ॥५०॥

---

पक्ष की एकादशी के लंघन करने का दोष वेदों में नहीं बताया गया है ॥३८॥ हरिशयनी और हरिबोधिनी नामक एकादशियों के मध्य में जो कृष्ण एकादशी आती है, उसी में गृहस्थों को उपवास करना चाहिए अन्य कृष्णा एकादशी में नहीं ॥३९॥ ब्रह्मन् ! इस भाँति एकादशी व्रत का निर्णय मैंने तुम्हें बता दिया, जो वेद में प्रसिद्ध है। अब इस व्रत का विधान बता रहा हूँ, सुनो ॥४०॥ दशमी के दिन पूर्वाह्ण में हविष्य भोजन करके पुनः दूसरी बार जल भी न ले, रात में कुश की चटाई पर अकेला शयन करे ॥४१॥ फिर ब्राह्ममुहूर्त में उठकर शरीर शुद्धिपूर्वक नित्यकर्म--स्नान आदि करे और व्रत-उपवास के निमित्त 'भगवान् श्रीकृष्ण के प्रीत्यर्थ' ऐसा संकल्प करे। पश्चात् सन्ध्या-तर्पण आदि दैनिक कर्म समाप्त करके दिन की नैत्यिक पूजन आदि करे। दिन में नैत्यिक पूजन करके व्रत सम्बन्धी आवश्यक सामग्री का संग्रह करे। षोडशोपचार-सामग्री का संग्रह करके शास्त्रोक्त कार्य करे ॥४२-४४॥ (१६ उपचार ये हैं--) आसन, वस्त्र, पाद्य, अर्घ्य, पुष्प, अनुलेप (उबटन), धूप, दीप, नैवेद्य, यज्ञोपवीत, आभूषण, गन्ध, स्नान-जल, ताम्बूल, मधुपर्क, पुनः आचमनीय जल, इन्हें दिन में संचित करके रात्रि में व्रत सम्बन्धी कार्य करे ॥४५-४६॥ आसनासीन होकर पवित्र हो, दो नवीन वस्त्र धारण करके आचमन करे और श्रीहरि को नमस्कार करके स्वस्तिवाचन करे ॥४७॥ शुभमुहूर्त में धान्य के ऊपर मङ्गल कलश स्थापित करके उसके ऊपर फल एवं आम्रपल्लव रखे। कलश में चन्दन का अनुलेप करे और मुनियों द्वारा वेदों में कथित पूजन-विधि का सम्पादन करे ॥४८॥ फिर अलग-अलग (धान्य-पुञ्ज पर) छह देवताओं का आवाहन करके विद्वान् पुरुष उत्कृष्ट पञ्चोपचार-सामग्री द्वारा उनका पूजन करे ॥४९॥ (६ देवता ये हैं) गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव और पार्वती। इन सबकी अर्चना और प्रणाम करके हरि का स्मरण करते

---

१ क. स्मृत्वा।

नाऽऽराध्य देवषट्कं च यदि कर्म समाचरेत् । नित्यं नैमित्तिकं चापि तत्सर्वं निष्फलं भवेत् ॥५१॥
इत्येवं कथितं सर्वं व्रताङ्गभूतमेव च । कण्वशाखोक्तमिष्टं च व्रतं शृणु महामुने ॥५२॥
सामवेदोक्तध्यानेन ध्यात्वा कृष्णं परात्परम् । पुष्पं च शिरसि न्यस्य पुनर्ध्यानं समाचरेत् ॥५३॥
ध्यानं शृणु निगूढं च सर्वेषामपि वाञ्छितम् । न प्रकाश्यमभक्ताय भक्तप्राणाधिकं परम् ॥५४॥
नवीननीरदो[1] यद्वच्छ्यामसुन्दरविग्रहम् । शरत्पार्वणचन्द्राभाविनिन्द्यास्यमनुत्तमम् ॥५५॥
शरत्सूर्योदयाब्जानां प्रभामोचनलोचनम् । स्वाङ्गसौन्दर्यशोभाभी रत्नभूषणभूषितम् ॥५६॥
गोपीलोचनकोणैश्च प्रसन्नं रतिसूचकैः । शश्वन्निरीक्ष्यमाणं तत्प्राणैरिव विनिर्मितम् ॥५७॥
रासमण्डलमध्यस्थं रासोल्लाससमुत्सुकम् । राधावक्त्रशरच्चन्द्रसुधापानचकोरकम् ॥५८॥
कौस्तुभेन मणीन्द्रेण वक्षःस्थलसमुज्ज्वलम् । पारिजातप्रसूनानां मालाजालैर्विराजितम् ॥५९॥
सद्रत्नसारनिर्माणं किरीटोज्ज्वलशेखरम् । विनोदमुरलीन्यस्तहस्तं पूज्यं सुरासुरैः ॥६०॥
ध्यानासाध्यं दुराराध्यं ब्रह्मादीनां च वन्दितम् । कारणं कारणानां यस्तमीश्वरमहं भजे ॥६१॥

---

हुए व्रत आरम्भ करे ॥५०॥ यदि इन छह देवों की अर्चना किये विना कोई नित्य और नैमित्तिक कर्म का अनुष्ठान करता है, तो उसका वह सारा कर्म निष्फल हो जाता है ॥५१॥ महामुने ! इस प्रकार मैंने व्रत का अङ्गभूत विधान बता दिया । इसका कण्वशाखा में वर्णन है । अब तुम अभीष्ट व्रत के विषय में सुनो ॥५२॥ साम-वेदोक्त ध्यान द्वारा परात्पर श्रीकृष्ण का ध्यान करके मस्तक पर पुष्प रखे और पुनः ध्यान करे । अत्यन्त गूढ़ ध्यान के बारे में सुनो, जो सबके लिए वांछनीय है । उसे अभक्त के सामने प्रकाशित नहीं करना चाहिए । वह भक्तों को प्राणों से भी अधिक प्रिय है ॥५३-५४॥ श्रीकृष्ण का शरीर नूतन मेघ के समान श्यामल और सुन्दर है; उनका मुख शारदीय पूर्णिमा के चन्द्रमा की प्रभा को निन्दित करनेवाला है । वे सर्वश्रेष्ठ हैं ॥५५॥ उनके नेत्र शरद्ऋतु में सूर्योदय के समय खिलनेवाले कमलों की प्रभा को छीन लेते हैं । विभिन्न अंगों में धारित रत्नमय आभूषण उनके अपने ही अंगों की सौन्दर्य-शोभा से विभूषित होते हैं ॥५६॥ गोपियों के प्रसन्न एवं अनुरागसूचक नेत्रकोण उन्हें सतत निहारते रहते हैं, मानो भगवान् का शरीर उनके प्राणों से ही निर्मित हुआ है ॥५७॥ वे रासमण्डल के मध्यभाग में विराजमान तथा रासोल्लास के लिए अत्यन्त उत्सुक हैं तथा राधा के मुख रूपी शरच्चन्द्र की सुधा का पान करने के लिए चकोर रूप हो रहे हैं ॥५८॥ उनका वक्षःस्थल मणिराज कौस्तुभ से समुज्ज्वल है और पारिजात पुष्पों की मालाओं से वे सुशोभित हैं । उनका मस्तक उत्तम रत्नों के सारभाग के बने किरीट से जगमगा रहा है । उन्होंने विनोदार्थ मुरली को हाथ में ले रखा है । वे देवों और राक्षसों के पूज्य हैं। वे ध्यान से असाध्य तथा दुराराध्य हैं । ब्रह्मा आदि देव भी उनकी वन्दना करते हैं । वे समस्त कारणों के भी

---

१ क. 'दोद्रिक्तश्याम' ।

ध्यात्वाऽनेन तमावाह्य चोपचाराणि षोडश । दत्त्वा संपूज्येद्भक्त्या मन्त्रैरेभिश्च नारद ॥६२॥
आसनं स्वर्णनिर्माणं रत्नसारपरिच्छदम् । नानाचित्रविचित्राढ्यं गृह्यतां परमेश्वर ॥६३॥
वह्निप्रक्षालितं वस्त्रं निर्मितं विश्वकर्मणा । मूल्यानिर्वचनीयं च गृह्यतां राधिकापते ॥६४॥
पादप्रक्षालनार्हं च सुवर्णपात्रसंस्थितं । सुवासितं शीतलं च गृह्यतां करुणानिधे ॥६५॥
इदमर्घ्यं पवित्रं च शङ्खतोयसमन्वितम् । पुष्पदूर्वाचन्दनाक्तं गृह्यतां भक्तवत्सल ॥६६॥
सुवासितं शुक्लपुष्पं चन्दनागुरुसंयुतम् । सद्यस्ते प्रीतिजनकं गृह्यतां सर्वकारण ॥६७॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमोशीरमुत्तमम् । सर्वेप्सितमिदं कृष्ण गृह्यतामनुलेपनम् ॥६८॥
रसो वृक्षविशेषस्य नानाद्रव्यसमन्वितः । सुगन्धियुक्तः सुखदो धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥६९॥
दिवानिशं सुप्रदीप्तो रत्नसारविनिर्मितः । पुनर्ध्वान्तनाशबीजं दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥७०॥
नानाविधानि द्रव्याणि स्वादूनि सुरभीणि च । चोष्यादीनि पवित्राणि स्वात्माराम प्रगृह्यताम् ॥७१॥
सावित्रीग्रन्थिसंयुक्तं स्वर्णतन्तुविनिर्मितम् । गृह्यतां देवदेवेश रचितं चारुकारुणा ॥७२॥
अमूल्यरत्नरचितं सर्वावयवभूषणम् । त्विषा जाज्वल्यमानं च गृह्यतां नन्दनन्दन ॥७३॥
प्रधानो वर्णनीयश्च सर्वमङ्गलकर्मणि । प्रगृह्यतां दीनबन्धो गन्धोऽयं मङ्गलप्रदः ॥७४॥
धात्रीश्रीफलपत्रोत्थं विष्णुतैलं मनोहरम् । वाञ्छितं सर्वलोकानां भगवन्प्रतिगृह्यताम् ॥७५॥

---

कारण हैं उन ईश्वर का मैं भजन करता हूँ ॥५६-६१॥ नारद ! इस प्रकार ध्यान समेत उनका आवाहन तथा निम्नांकित मन्त्रों द्वारा भक्तिपूर्वक षोडशोपचार पूजन करे ॥६२॥ परमेश्वर ! सुवर्णरचित, रत्नों के सारभाग से जटित और भाँति-भाँति के विचित्र चित्रों से अलंकृत आसन ग्रहण करें ॥६३॥ राधिकापते ! अग्नि की भाँति विशुद्ध, विश्वकर्मा द्वारा सुरचित एवं अमूल्य यह वस्त्र ग्रहण करें ॥६४॥ करुणानिधे ! आपके चरणों को पखारने के लिए सुवर्णमय पात्र में स्थित, सुवासित और शीतल जल स्वीकार करें ॥६५॥ भक्तवत्सल ! शंखपात्र में रखे हुए पुष्प, दूर्वा और चन्दन समेत यह पवित्र अर्घ्य ग्रहण करें ॥६६॥ सर्वकारण ! चन्दन और अगुरु से युक्त तथा सद्यः आपको प्रसन्न करनेवाला यह श्वेत पुष्प ग्रहण करें ॥६७॥ कृष्ण ! चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, कुंकुम और खस से बनाया गया यह सर्ववाञ्छनीय अनुलेपन ग्रहण करें ॥६८॥ यह धूप, जो वृक्ष-विशेष का रस, विविध द्रव्यों से मिश्रित, सुगन्धित और सुखदायक है, ग्रहण करें ॥६९॥ दिन-रात अत्यन्त प्रदीप्त रहनेवाला, रत्न के सारभाग से सुरचित, अन्धकार के विनाश का कारण यह दीपक ग्रहण करें ॥७०॥ स्वात्मा-राम ! ये अनेक प्रकार के स्वादिष्ट, सुगन्धित और पवित्र चोष्य आदि नैवेद्य पदार्थ आप ग्रहण करें ॥७१॥ देव-देवेश ! गायत्रीमंत्र से दी गयी ग्रन्थि से युक्त तथा सुवर्णमय तन्तुओं से निर्मित यह चतुर शिल्पी द्वारा रचित यज्ञोपवीत ग्रहण करें ॥७२॥ नन्दनन्दन ! बहुमूल्यक रत्नों से रचित तथा कान्ति से प्रकाशमान इन समस्त अवयवों के आभूषणों को स्वीकार करें ॥७३॥ दीनबन्धो ! समस्त मङ्गल-कर्मों में प्रधान, वर्णनीय और मङ्गलदायक इस गन्ध को ग्रहण करें ॥७४॥ भगवान् ! आँवले और वेलपत्र द्वारा तैयार किया गया यह मनोहर

वाञ्छनीयं च सर्वेषां कर्पूरादिसुवासितम् । मया निवेदितं नाथ ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ॥७६॥
सर्वेषां प्रीतिजनकं सुमिष्टं मधुरं मधु । सद्रत्नसारपात्रस्थं गोपीकान्त प्रगृह्यताम् ॥७७॥
निर्मलं जाह्नवीतोयं सुपवित्रं सुवासितम् । पुनराचमनीयं च गृह्यतां मधुसूदन ॥७८॥
इति षोडशोपचारान्दत्त्वा भक्तो मुदाऽन्वितः । मन्त्रेणानेन पुष्पाणि[1] माल्यं दत्त्वा प्रयत्नतः ॥७९॥
नानाप्रकारपुष्पैश्च ग्रथितं शुक्लतन्तुना । प्रवरं भूषणानां च माल्यं च गृह्यतां प्रभो ॥८०॥
इति पुष्पाञ्जलिं दद्यान्मूलमन्त्रेण च व्रती । कुर्यात्ततस्तवनं भक्त्या पुटाञ्जलियुतः सुधीः ॥८१॥

## भक्त उवाच

हे कृष्ण राधिकानाथ करुणासागर प्रभो । संसारसागरे घोरे मामुद्धर भयानके ॥८२॥
शतजन्मकृतायासादुद्विग्नस्य मम प्रभो । स्वकर्मपाशनिगडैर्बद्धस्य मोक्षणं कुरु ॥८३॥
प्रणतं पादपद्मे ते पश्य मां शरणागतम् । भवपाशभयाद्भीतं पाहि त्वं शरणागतम् ॥८४॥
भक्तिहीनं क्रियाहीनं विधिहीनं च वेदतः । वस्तुमन्त्रविहीनं यत्तत्संपूर्णं कुरु प्रभो ॥८५॥
वेदोक्तविहिताज्ञानात्स्वाङ्गहीने च कर्मणि । त्वन्नामोच्चारणेनैव सर्वं पूर्णं भवेद्धरे ॥८६॥

---

विष्णुतेल, जो सभी लोगों को अभीष्ट है, ग्रहण करें ॥७५॥ नाथ ! कर्पूर आदि से सुवासित ताम्बूल जो सभी को प्रिय है, मैंने अर्पित किया है, ग्रहण करें ॥७६॥ गोपीकान्त ! सभी के लिए प्रीतिजनक, अत्यन्त मीठा, और उत्तम रत्नों के पात्र में रखा हुआ मधु ग्रहण करें ॥७७॥ मधुसूदन ! अतिपवित्र और सुवासित निर्मल गङ्गाजल आचमन के लिए स्वीकार करें ॥७८॥ इस प्रकार भक्त पुष्प सप्रेम षोडशोपचार समर्पित करके निम्नांकित मंत्र द्वारा पुष्प और माला अर्पित करे ॥७९॥ श्वेत डोरे में अनेक भाँति के पुष्पों से गूँथा हुआ यह पुष्पहार, जो भूषणों में श्रेष्ठ है, ग्रहण करें ॥८०॥ इस प्रकार विद्वान् व्रती मंत्र द्वारा पुष्पाञ्जलि समर्पित कर पुनः हाथ जोड़कर भक्तिपूर्वक स्तुति करें ॥८१॥

**भक्त ने कहा**—हे कृष्ण ! राधिकानाथ ! प्रभो ! आप करुणासागर हो अतः इस भयानक संसार-सागर से मेरा उद्धार करो ॥८२॥ प्रभो ! मैं सैकड़ों जन्मों से कष्ट भोगने के कारण उद्विग्न हूँ तथा अपने कर्म रूपी पाश-बन्धनों से बद्ध हूँ, मेरा उद्धार करें ॥८३॥ मैं आपके चरण-कमल पर पड़ा हुआ हूँ, मुझ शरणागत को देखिये, मैं संसार रूपी बन्धनों से जकड़ा हुआ हूँ और आपकी शरण में आया हूँ, मेरी रक्षा करें ॥८४॥ प्रभो ! भक्तिहीन, क्रियारहित, वेदानुसार विधिहीन, वस्तुहीन एवं मंत्रहीन कर्म को परिपूर्ण कर दें ॥८५॥ हरे ! वेदोक्त विधि को न जानने के कारण अंगहीन हुए कर्म में आपके नामोच्चारण से सब न्यूनताओं की पूर्ति हो जाती

---

१ क. °ष्पाणां मा° ।

# अथ सप्तविंशोऽध्यायः

## नारायण उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि श्रीकृष्णचरितं पुनः। गोपीनां वस्त्रहरणं वरदानं मनीषितम्॥१॥
हेमन्ते प्रथमे मासि गोपिकाः काममोहिताः। कृत्वा हविष्यं भक्त्या च यावन्मासं सुसंयुताः॥२॥
स्नात्वा सूर्यसुतातीरे पार्वतीं बालुकामयीम्। कृत्वाऽऽवाह्य च मन्त्रेण पूजां कुर्वन्ति नित्यशः॥३॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमैश्च मनोहरैः। नानाप्रकारपुष्पैश्च माल्यैर्बहुविधैरपि॥४॥
धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैर्वस्त्रैर्नानाफलैर्मुने। मणिमुक्ताप्रवालैश्च वाद्यैर्नानाविधैरपि॥५॥
हे देवि जगतां मातः सृष्टिस्थित्यन्तकारिणि। नन्दगोपसुतं कान्तमस्मभ्यं देहि सुव्रते॥६॥
मन्त्रेणानेन देवेशीं परिहारं विधाय च। ततः कृत्वा तु संकल्पमपूजन्मूलमन्त्रतः॥७॥
मन्त्रस्तु सामवेदोक्तोऽयातयामः सबीजकः। ॐ श्रीदुर्गायै सर्वविघ्नविनाशिन्यै नमः इति॥८॥
पुष्पं माल्यं च नैवेद्यं धूपं दीपं तथा शुभम्। मन्त्रेणानेन तद्भक्त्या ददुः सर्वा मुदाऽन्विताः॥९॥
प्रवालमालया भक्त्या चेमं मन्त्रं सहस्रधा। जपं कृत्वा च स्तुत्वा च प्रणेमुः शिरसा भुवि॥१०॥

---

# अध्याय २७

## गोपियों का वस्त्रहरण

**नारायण बोले**—नारद ! सुनो, मैं पुनः श्रीकृष्ण का चरित कहूँगा, जिसमें गोपियों के चीर का हरण किया गया था और उन्हें मनोवांछित वर दिया गया था॥१॥ हेमन्त ऋतु के पहले मास अगहन में काम-मोहित गोपियाँ प्रतिदिन केवल एक बार हविष्यान्न ग्रहण करके पूर्णतः संयतशील होकर पूरे मास तक भक्ति-भाव से व्रत करती रहीं। वे यमुना में स्नान करके उसी के तट पर बालुका की पार्वती की मूर्ति बनाकर मंत्र द्वारा आवाहन और पूजन नित्य किया करती थीं॥२-३॥ मुने ! वे चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, कुंकुम, अनेक भाँति के मनोहर पुष्प, विविध प्रकार की मालाएँ, धूप, दीप, नैवेद्य, वस्त्र, अनेक प्रकार के फल, मणि, मोती और मूँगे चढ़ाकर तथा अनेक प्रकार के बाजे बजाकर कहती थीं—उत्तम व्रत का पालन करनेवाली हे देवि ! तुम जगत् की माता हो, सर्जन, पालन और प्रलय करनेवाली हो, अतः हमें नन्द गोप के पुत्र (कृष्ण) को कान्त रूप में प्रदान करने की कृपा करो। इस मन्त्र से देवाधीश्वरी की मूर्ति बनाकर संकल्प करके मूलमंत्र से उनका पूजन करे। सामवेदोक्त मूलमन्त्र इस प्रकार है—'ॐ श्रीदुर्गायै सर्वविघ्नविनाशिन्यै नमः' इसी मंत्र द्वारा गोपियाँ पुष्प-मालाएँ, नैवेद्य, धूप, दीप आदि सभी सामग्री भक्तिभाव से चढ़ाती थीं॥४-९॥ अनन्तर मूँगे की माला से इस मंत्र का भक्तिपूर्वक एक सहस्र जप और स्तुति करके वे पृथ्वी पर माथा टेककर देवी को प्रणाम करती थीं

सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये सर्वकामप्रदे शिवे। देहि मे वाञ्छितं देवि नमस्ते शंकरप्रिये ॥११॥
इत्युक्त्वा च नमस्कारं कृत्वा दत्त्वा च दक्षिणाम्। नैवेद्यानि च सर्वाणि ब्राह्मणेभ्यो ययुर्गृहम् ॥१२॥

## नारायण उवाच

स्तवराजं शृणु मुने तुष्टुवुर्येन पार्वतीम्। भक्त्या गोपाङ्गनाः सर्वाः सर्वाभीष्टफलप्रदाम् ॥१३॥
जगत्येकार्णवे घोरे चन्द्रसूर्यविवर्जिते। अञ्जनाकारतोयेन संप्लुते च चराचरे ॥१४॥
दत्तं पुरा ब्रह्मणे च हरिणा जलशायिना। तस्मै दत्त्वा सर्वमिदं निद्रां भेजे जगत्पतिः ॥१५॥
नाभिपद्मे जगत्स्रष्टा मधुना कैटभेन च। पीडितः परितुष्टाव मूलप्रकृतिमीश्वरीम् ॥१६॥

## ब्रह्मोवाच

दुर्गे शिवेऽभये माये नारायणि सनातनि। जये मे मङ्गलं देहि नमस्ते सर्वमङ्गले ॥१७॥
दैत्यनाशार्थवचनो दकारः परिकीर्तितः। उकारो विघ्ननाशार्थवाचको वेदसंमतः ॥१८॥
रेफो रोगघ्नवचनो गश्च पापघ्नवाचकः। भयशत्रुघ्नवचनश्चाऽऽकारः परिकीर्तितः ॥१९॥
स्मृत्युक्तिस्मरणाद्यस्या एते नश्यन्ति निश्चितम्। अतो दुर्गा हरेः शक्तिर्हरिणा परिकीर्तिता ॥२०॥
विपत्तिवाचको दुर्गश्चाऽऽकारो नाशवाचकः। दुर्गं नश्यति या नित्यं सा दुर्गा परिकीर्तिता ॥२१॥

---

और कहती थीं—हे शंकरप्रिये ! हे शिवे ! तुम समस्त मङ्गलों का भी मंगल करनेवाली हो और सकल कामनाओं को देनेवाली हो। देवि ! तुम्हें नमस्कार है। हमारा मनोरथ सफल करो ॥१०-११॥ इस प्रकार कहकर नमस्कार करके और ब्राह्मणों को वह सब नैवेद्य एवं दक्षिणा प्रदान करके घर चली जाती थीं ॥१२॥

**नारायण बोले**—मुने ! अब वह स्तवराज सुनो, जिसके द्वारा सभी गोपियाँ समस्त अभीष्टफल प्रदान करनेवाली पार्वती की स्तुति करती थीं ॥१३॥ सम्पूर्ण जगत् के एक सागर रूप में जलमग्न हो जाने पर पूर्वकाल में जब चन्द्रमा और सूर्य का भी कहीं पता नहीं था और कज्जल के समान जलराशि ने समस्त चराचर विश्व को आत्मसात् कर लिया था, तब जलशायी विष्णु ने ब्रह्मा को इस स्तोत्र का उपदेश दिया। उपदेश देकर उन जगदीश्वर ने योगनिद्रा का आश्रय लिया ॥१४-१५॥ तदुपरान्त उनके नाभि-कमल में स्थित जगत्स्रष्टा ब्रह्मा ने मधु-कैटभ नामक राक्षसों से पीड़ित होने पर इसी स्तोत्र द्वारा ईश्वरी मूल प्रकृति की स्तुति की ॥१६॥

**ब्रह्मा बोले**—दुर्गे ! शिवे, भयरहिते, माये, नारायणि, सनातनि, जये ! मुझे मंगल प्रदान करो। सर्व-मङ्गले ! तुम्हें मेरा नमस्कार है ॥१७॥ दुर्गा का 'दकार' दैत्यनाशरूपी अर्थ का वाचक कहा गया है। 'उकार' विघ्ननाशरूपी अर्थ का बोधक है। उसका यह अर्थ वेदसम्मत है। रेफ रोगनाशक अर्थ को प्रकट करता है। गकार पापनाशक अर्थ का वाचक है और आकार भय तथा शत्रु के नाश का प्रतिपादक कहा गया है ॥१८-१९॥ जिनके स्मरण एवं कथन मात्र से ये (दैत्य आदि) सभी निश्चित ही विनष्ट हो जाते हैं, इसलिए वह दुर्गा, भगवान् की शक्ति हैं, यह स्वयं हरि ने कहा है ॥२०॥ विपत्ति अर्थ में 'दुर्ग' शब्द और नाश अर्थ में 'आकार' प्रयुक्त है।

दुर्गो दैत्येन्द्रवचनोऽप्याकारो नाशवाचकः। तं ननाश पुरा तेन बुधैर्दुर्गा प्रकीर्तिता ॥२२॥
शश्च कल्याणवचन इकारोत्कृष्टवाचकः। समूहवाचकश्चैव वाकारो दातृवाचकः ॥२३॥
श्रेयःसंघोत्कृष्टदात्री शिवा तेन प्रकीर्तिता। शिवराशिर्मूर्तिमती शिवा तेन प्रकीर्तिता ॥२४॥
शिवो हि मोक्षवचनश्चाऽऽकारो दातृवाचकः। स्वयं निर्वाणदात्री या सा शिवा परिकीर्तिता ॥२५॥
अभयो भयनाशोक्तश्चाऽऽकारो दातृवाचकः। प्रददात्यभयं सद्यः साऽभया परिकीर्तिता ॥२६॥
राज्यश्रीवचनो माश्च याश्च प्रापणवाचकः। तां प्रापयति या नित्यं सा माया परिकीर्तिता ॥२७॥
माश्च मोक्षार्थवचनो याश्च प्रापणवाचकः। तं प्रापयति या सद्यः सा माया परिकीर्तिता ॥२८॥
नारायणार्धाङ्गभूता तेन तुल्या च तेजसा। सदा तस्य शरीरस्था तेन नारायणी स्मृता ॥२९॥
निर्गुणस्य च नित्यस्य वाचकश्च सनातनः। सदा नित्या निर्गुणा या कीर्तिता सा सनातनी ॥३०॥
जयः कल्याणवचनो याकारो दातृवाचकः। जयं ददाति या नित्यं सा जया परिकीर्तिता ॥३१॥
सर्वमङ्गलशब्दश्च संपूर्णैश्वर्यवाचकः। आकारो दातृवचनस्तद्दात्री सर्वमङ्गला ॥३२॥
नामाष्टकमिदं सारं नामार्थसहसंयुतम्। नारायणेन यद्दत्तं ब्रह्मणे नाभिपङ्कजे ॥३३॥

---

जो नित्य दुर्ग (विपत्ति) का नाश करती हैं, उन्हें 'दुर्गा' कहते है ॥२१॥ दैत्येन्द्र अर्थ में 'दुर्ग' शब्द एवं 'आकार' नाश अर्थ में प्रयुक्त हैं। पूर्वकाल में देवी ने राक्षसों का नाश किया था, इसीलिए विद्वानों ने उन्हें 'दुर्गा' कहा है ॥२२॥ कल्याण अर्थ में 'शकार', उत्कृष्ट अर्थ में 'इकार' तथा समूह और दाता अर्थ में 'वाकार' का प्रयोग हुआ है। वे कल्याण समूह तथा उत्कर्ष देनेवाली हैं, अतः शिवा कही गयी हैं। वे शिव अर्थात् कल्याण की मूर्तिमती राशि हैं, इसलिए भी उन्हें 'शिवा' कहा गया है ॥२३-२४॥ मोक्ष अर्थ में शिव शब्द और दाता अर्थ में आकार का प्रयोग हुआ है। वे देवी स्वयं निर्वाणदायिनी हैं, अतः 'शिवा' कहलाती हैं ॥२५॥ भयनाश अर्थ में अभय शब्द और दाता अर्थ में 'आकार' प्रयुक्त हैं। अतः शीघ्र अभयदान देने के कारण उन्हें 'अभया' कहा गया है ॥२६॥ राज्यलक्ष्मी अर्थ में 'मा' शब्द और प्राप्त कराने अर्थ में 'या' शब्द प्रयुक्त हैं, इसलिए राज्यलक्ष्मी को तुरन्त प्राप्त कराने के कारण उन्हें 'माया' कहा गया है ॥२७॥ अथवा मोक्ष अर्थ में 'मा' शब्द तथा प्राप्त कराने के अर्थ में 'या' शब्द का प्रयोग होता है। उस मोक्ष को वे नित्य प्राप्त कराती हैं, अतः वे 'माया' कही गयी हैं ॥२८॥ नारायण का अर्धाङ्ग, तेज में उन्हीं के समान और नित्य उनके शरीर में स्थित रहने के कारण उन्हें 'नारायणी' कहा गया है। निर्गुण और नित्य अर्थ में 'सनातन' शब्द प्रयुक्त है अतः सदा नित्या एवं निर्गुणा रहने के कारण उन्हें 'सनातनी' कहा गया है ॥२९-३०॥ कल्याण अर्थ में 'जय' शब्द एवं दाता अर्थ में 'आकार' प्रयुक्त है इसीलिए नित्य जय प्रदान करने के कारण उन्हें 'जय' कहा गया है ॥३१॥ सर्वमङ्गल शब्द सम्पूर्ण ऐश्वर्यवाचक है और आकार दाता का वाचक है, अतः समस्त ऐश्वर्य देने के कारण उन्हें 'सर्वमङ्गला' कहा जाता है ॥३२॥ ये देवी के आठ नाम सारभूत हैं और यह स्तोत्र उन नामों के अर्थ से युक्त है। नारायण ने नाभिकमल पर बैठे हुए

तस्मै दत्त्वा निद्रितश्च बभूव जगतां पतिः। मधुकैटभौ दुर्दान्तौ ब्रह्माणं हन्तुमुद्यतौ ॥३४॥
स्तोत्रेणानेन स ब्रह्मा स्तुतिं नत्वा चकार ह। साक्षात्स्तुता तदा दुर्गा ब्रह्मणे कवचं ददौ ॥३५॥
श्रीकृष्णकवचं दिव्यं सर्वरक्षणनामकम्। दत्त्वा तस्मै महामाया साऽन्तर्धानं चकार ह ॥३६॥
स्तोत्रं कुर्वन्ति निद्रां च संरक्ष्य कवचेन वै। निद्रानुग्रहतः सद्यः स्तोत्रस्यैव प्रभावतः ॥३७॥
तत्राऽऽजगाम भगवान्वृषरूपी जनार्दनः। शक्त्या च दुर्गया सार्धं शंकरस्य जयाय च ॥३८॥
सरथं शंकरं मूर्ध्नि कृत्वा च निर्भयं ददौ। अत्यूर्ध्वं प्रापयामास जया तस्मै जयं ददौ ॥३९॥
स्तोत्रस्यैव प्रभावेण संप्राप्य कवचं विधिः। वरं च कवचं प्राप्य निर्भयं प्राप निश्चितम् ॥४०॥
ब्रह्मा ददौ महेशाय स्तोत्रं च कवचं वरम्। त्रिपुरस्य च संग्रामे सरथे पतिते हरौ ॥४१॥
ब्रह्मास्त्रं च गृहीत्वा स सनिद्रं श्रीहरिं स्मरन्। स्तोत्रं च कवचं प्राप्य जघान त्रिपुरं हरः ॥४२॥
स्तोत्रेणानेन तां दुर्गां कृत्वा गोपालिकाः स्तुतिम्। लेभिरे श्रीहरिं कान्तं स्तोत्रस्यास्य प्रभावतः ॥४३॥
गोपकन्याकृतं स्तोत्रं सर्वमङ्गलनामकम्। वाञ्छितार्थप्रदं सद्यः सर्वविघ्नविनाशनम् ॥४४॥
त्रिसंध्यं यः पठेन्नित्यं भक्तियुक्तश्च मानवः। शैवो वा वैष्णवो वाऽपि शाक्तो दुर्गात्प्रमुच्यते ॥४५॥
राजद्वारे श्मशाने च दावाग्नौ प्राणसंकटे। हिंस्रजन्तुभयग्रस्तो मग्नः पोते महार्णवे ॥४६॥

---

ब्रह्मा को इसका उपदेश दिया था। उपदेश देने के उपरान्त स्वयं जगन्नाथ निद्रित हो गये। पश्चात् मधु और कैटभ नामक राक्षसों ने ब्रह्मा का हनन करना चाहा ॥३३-३४॥ तब ब्रह्मा ने इसी स्तोत्र द्वारा दुर्गा की स्तुति एवं नमस्कार किया। स्तुति की जाने पर साक्षात् दुर्गा ने ब्रह्मा को कवच प्रदान किया ॥३५॥ श्रीकृष्ण का सर्व-रक्षण नामक दिव्य कवच उन्हें देकर महामाया अन्तर्हित हो गयीं ॥३६॥ कवच के द्वारा निद्रा की रक्षा करके ब्रह्मा स्तुति करने लगे। स्तोत्र के ही प्रभाव से तुरन्त निद्रा देवी की कृपा से वहाँ वृष रूप धारण करके दुर्गा देवी के साथ भगवान् जनार्दन आ गये। शंकर की विजय के लिए भगवान् ने रथ समेत शंकर को अपने सिर से उठाकर उन्हें निर्भय किया और अत्यन्त ऊपर पहुँचा दिया। जया ने उन्हें जय प्रदान किया ॥३७-३९॥ इसी स्तोत्र के प्रभाव से ब्रह्मा ने कवच प्राप्त किया और कवच समेत वरदान प्राप्त करके वे निर्भय हो गये ॥४०॥ त्रिपुरासुर के संग्राम में रथ समेत शिव के गिर जाने पर ब्रह्मा ने यही स्तोत्र और कवच महेश्वर को दिया था ॥४१॥ स्तोत्र एवं कवच प्राप्त होने पर ब्रह्मास्त्र ग्रहण करके निद्रा समेत श्रीहरि का स्मरण करते हुए शिव ने त्रिपुरासुर का वध कर दिया ॥४२॥ गोपियों ने इस स्तोत्र द्वारा दुर्गा की स्तुति करके इसके प्रभाव से श्रीहरि को पति रूप में प्राप्त किया ॥४३॥ इस प्रकार गोपकन्याओं द्वारा रचित सर्वमङ्गल नामक स्तोत्र का, जो अभीष्टप्रद एवं सद्यः समस्त विघ्नों का नाशक है, भक्तिपूर्वक तीनों संध्याओं में पाठ करने से शैव, वैष्णव एवं शाक्त कोई भी क्यों न हो, तुरन्त संकटों से मुक्त हो जाता है ॥४४-४५॥ राजदरबार, श्मशान, दावाग्नि तथा प्राण-संकट में, हिंसक जन्तु से भयग्रस्त होने पर, महासागर में जहाज डूबते समय, युद्ध में शत्रुओं से घिर जाने पर,

शत्रुग्रस्ते च संग्रामे कारागारे विपद्गते । गुरुशापे ब्रह्मशापे बन्धुभेदे च दुस्तरे ॥४७॥
स्थानभ्रष्टे धनभ्रष्टे जातिभ्रष्टे शुचाऽन्विते । पतिभेदे पुत्रभेदे खलसर्पविषान्विते ॥४८॥
स्तोत्रस्मरणमात्रेण सद्यो मुच्येत निर्भयः । वाञ्छितं लभते सद्यः सर्वैश्वर्यमनुत्तमम् ॥४९॥
इह लोके हरेर्भक्ति दृढां च सततं स्मृतिम् । अन्ते दास्यं च लभते पार्वत्याश्च प्रसादतः ॥५०॥
अनेन स्तवराजेन तुष्टुवुर्नित्यमीश्वरीम् । प्रणेमुः परया भक्त्या यावन्मासं व्रजाङ्गनाः ॥५१॥
एवं पूर्णे च मासे च समाप्तिदिवसे तथा । स्नातुं प्रजग्मुर्गोप्यश्च वस्त्राण्याधाय तत्तटे ॥५२॥
नानाविधानि द्रव्याणि रत्नमूल्यानि नारद । पीतलोहितशुक्लानि चारूणि मिश्रितानि च ॥५३॥
तीरावृतान्यसंख्यानि तैश्च तीरं सुशोभनम् । चन्दनागुरुकस्तूरीवायुना सुरभीकृतम् ॥५४॥
नैवेद्यैश्च बहुविधैः कालदेशोद्भवैः फलैः । धूपैः प्रदीपैः सिन्दूरैः कुङ्कुमैश्च विराजितम् ॥५५॥
जले क्रीडोन्मुखा गोप्यो बभुवुः कौतुकेन च । नग्नाः क्रीडाभिरासक्ताः श्रीकृष्णार्पितमानसाः ॥५६॥
दृष्ट्वा कृष्णश्च वस्त्राणि द्रव्याणि विविधानि च । वासांस्यादाय वस्तूनि चखाद शिशुभिः सह ॥५७॥
गत्वा दूरं च गोपालास्तस्थुः सर्वे मुदाऽन्विताः । वस्त्राणि पुंजीकृत्याऽऽदावूचुः स्कन्धेऽतिलोलुपाः ॥५८॥
श्रीदामा च सुदामा च वसुदामा तथैव च । सुबलश्च सुपार्श्वश्च शुभाङ्गः सुन्दरस्तथा ॥५९॥

---

कारागार में, विपत्ति के समय, गुरुशाप, ब्रह्मशाप, दुस्तर बन्धु वियोग में, स्थान से भ्रष्ट, धनहीन, जातिच्युत शोकमग्न होने पर, पति-पुत्र वियोग में, दुष्ट और सर्प के विष से पीड़ित होने पर मनुष्य इस स्तोत्र के स्मरण-मात्र से मुक्त एवं निर्भय हो जाता है और मन-इच्छित परमोत्तम ऐश्वर्य तुरन्त प्राप्त कर लेता है ॥४६-४९॥ पार्वती के प्रसाद से वह इस लोक में भगवान् की दृढ़ भक्ति, निरन्तर स्मरण और अन्त में उनका दास्यपद प्राप्त करता है ॥५०॥ व्रज की गोपियाँ इसी स्तवराज से ईश्वरी दुर्गा की पराभक्तिपूर्वक नित्य स्तुति और प्रणाम एक मास तक नित्य करती रहीं ॥५१॥ मास समाप्त होते उसके अन्तिम दिन गोपियाँ नित्य की भाँति यमुना तट पर अपने वस्त्र रखकर स्नान के लिए जल में प्रविष्ट हुईं ॥५२॥ नारद ! रत्नों के मोल पर मिलनेवाले नाना प्रकार के द्रव्य, लाल, नीले, सफेद और मिश्रित रंगवाले मनोहर वस्त्र यमुना के तट पर छा रहे थे। उनकी गणना नहीं की जा सकती थी । उन सबके द्वारा यमुना के उस तट की बड़ी शोभा हो रही थी । चन्दन, अगुरु और कस्तूरी के वायु से सारा तट प्रान्त सुरभित था । भाँति-भाँति के नैवेद्य, देश-काल के अनुसार प्राप्त होनेवाले फल, धूप, सिन्दूर और कुंकुम यमुना के उस तट को सुशोभित कर रहे थे । जल में उतरने पर गोपियाँ कौतूहल-वश क्रीड़ा के लिए उन्मुख हुईं । उनका मन श्रीकृष्ण को समर्पित था । वे अपने नग्न शरीर से जलक्रीड़ा में आसक्त हो गयीं । श्रीकृष्ण ने तट पर रखे भाँति-भाँति के द्रव्यों और वस्त्रों को देखा । देखकर वे ग्वाल-बालों के साथ वहाँ गये और सारे वस्त्र लेकर वहाँ रखी हुई खाद्य वस्तुओं को सखाओं के साथ खाने लगे । सभी गोप-बालक प्रमुदित होकर दूर चले गये ॥५३-५७॥ वहाँ अति चंचल बालक वस्त्रों का गट्ठर बाँधकर कंधे पर रखकर बातचीत करने लगे ॥५८॥ श्रीदामा, सुदामा, वसुदामा, सुबल, सुपार्श्व, शुभाङ्ग, सुन्दर, चन्द्रभान

चन्द्रभानो वीरभानुः सूर्यभांस्तथैव च । वसुभानो रत्नभानो गोपाला द्वादश स्मृताः ॥६०॥
श्रीकृष्णो बलदेवश्च प्रधानाश्च चतुर्दश । गोपाहरेर्वयस्याश्च कोटिशः कोटिशो मुने ॥६१॥
वस्त्राण्यादाय ते सर्वे तस्थुरेकत्र दूरतः । शतशः पुञ्जिकास्तत्र स्थापयामासुरुन्मुखाः ॥६२॥
किंचिद्वस्त्रं समादाय कृत्वा न पुञ्जिकां मुदा । समारुह्य कदम्बाग्रमुवाच गोपिका हरिः ॥६३॥

## श्रीकृष्ण उवाच

भो भो गोपालिकाः सर्वा विनष्टा व्रतकर्मणि । कृत्वा विधानं मद्वाक्यं श्रुत्वा क्रीडत मन्मथात् ॥६४॥
संकल्पिते व्रतार्हे च मासे मङ्गलकर्मणि । यूयं नग्नाः कथं तोये व्रताङ्गहानिकारिकाः ॥६५॥
परिधेयानि वासांसि पुष्पमाल्यानि यानि च । व्रतार्हाणि च वस्तूनि केन नीतानि वोऽधुना ॥६६॥
व्रते तु नग्ना या स्नाति तां रुष्टो वरुणः स्वयम् । वरुणानुचराश्चक्रुर्वासोवस्तूपनिह्नुतिम् ॥६७॥
कथं यास्यथ नग्नाश्च व्रतस्य किं भविष्यति । व्रताराध्या कथं सा वो वस्तूनि किं न रक्षति ॥६८॥
चिन्तां कुरुत तां पूज्यां तुष्टां[1] बलिभिरीश्वरीम् । युष्माकमीदृशी देवी न शक्ता वस्तुरक्षणे ॥६९॥
कथं व्रतफलं सा वो दातुं शक्ता सुरेश्वरी । फलं प्रदातुं[2] या शक्ता सा शक्ता सर्वकर्मणि ॥७०॥

---

वीरभान, सूर्यभान, वसुभान और रत्नभान ये बारह गोपाल कहे गये हैं ॥५९-६०॥ श्रीकृष्ण और बलभद्र मिलाकर चौदह प्रधान गोपाल थे। मुने! वैसे हरि के सखा गोप करोड़ों थे ॥६१॥ वे सभी गोपियों के वस्त्र लेकर कुछ दूर पर जाकर समवेत खड़े हुए और उनके वस्त्रों की सैकड़ों गठरियाँ बाँधीं। उपरान्त भगवान् सप्रेम कुछ गठरियाँ लेकर कदम्ब वृक्ष के अग्रभाग पर चढ़ गये और गोपियों से बोले ॥६२-६३॥

**श्रीकृष्ण बोले**--गोपियो! तुम सब-की-सब इस व्रतकर्म में असफल हो गयीं। पहले मेरी बात सुनकर विधि-विधान का पालन करो। इसके बाद मन्मथ से क्रीड़ा करना ॥६४॥ जो मास व्रत करने के योग्य है; जिसमें मंगलकर्म के अनुष्ठान का संकल्प किया गया है; उसी मास में तुम लोग जल के भीतर घुसकर नंगी नहा रही हो; ऐसा क्यों किया? इस कर्म के द्वारा तुम अपने व्रत को अंगहीन करके उसमें हानि पहुँचा रही हो ॥६५॥ तुम्हारे पहनने के वस्त्र, पुष्पमालाएँ एवं व्रतोपयोगी वस्तुएँ कौन उठा ले गया? जो स्त्री व्रत के समय नग्न-स्नान करती है उस पर स्वयं वरुण क्रुद्ध हो जाते हैं। वरुण के अनुचर तुम्हारे वस्त्र उठा ले गये ॥६६-६७॥ अब तुम लोग नंगी होकर कैसे जाओगी और तुम्हारे व्रत का क्या होगा? क्या तुम्हारी व्रत की आराध्य देवी तुम्हारी वस्तुओं की रक्षा न कर सकी? अपनी उस पूज्या अधीश्वरी देवी का तुम लोग स्मरण करो। उसकी स्तुति करके उसे प्रसन्न करो। क्या तुम्हारी यह देवी वस्तु-संरक्षण में समर्थ नहीं है? यदि ऐसा है तो वह सुरेश्वरी तुम्हें व्रत-फल कैसे प्रदान कर सकेगी? जो फल-प्रदान में समर्थ होती है वह सभी कर्मों में समर्थ होती

---

१ ख. 'तुष्टाव बलिरी' । २ क. 'तुं मा शक्ता साऽशक्ता स' ।

श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा चिन्तामापुर्व्रजस्त्रियः। ददृशुर्यमुनातीरं वस्त्रवस्तुविहीनकम् ॥७१॥
चक्रुर्विषादं तोये च नग्नास्ता रुरुदुर्भृशम्। क्व गतानि च वस्त्राणि वस्तूनीत्यूचुरत्र नः ॥७२॥
कृत्वा विषादं तत्रैव तमूचुर्गोपकन्यकाः। पुटाञ्जलियुताः सर्वा भक्त्या विनयपूर्वकम् ॥७३॥

## गोपालिका ऊचुः

परिधेयानि वस्त्राणि किंकरीणां सदीश्वर। निबोधयाऽस्मानमेव स्पर्शं कर्तुं त्वमर्हसि ॥७४॥
व्रतार्हाणि च वस्तूनि देवस्वानि च सांप्रतम्। अदत्तानि नोचितानि ग्रहीतुं वेदविद्वर ॥७५॥
देहि धौतानि धृत्वा च करिष्यामो व्रतं वयम्। वस्तुनाऽन्येन गोविन्द वस्तूनां भक्षणं कुरु ॥७६॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र श्रीदामा वस्त्रपुञ्जिकाम्। दर्शयित्वा च ताः सर्वा दूरं दुद्राव तत्पुरः ॥७७॥
दृष्ट्वा सवस्त्रं गोपालं सर्वासामीश्वरी परा। सर्वा वयस्याश्चोवाच कोपयुक्ता जलप्लुता ॥७८॥

## राधिकोवाच

हे सुशीले शशिकले हे चन्द्रमुखि माधवि। कदम्बपाले हे कुन्ति यमुने सर्वमङ्गले ॥७९॥
हे पद्ममुखि सावित्रि पारिजाते च जाह्नवि। सुधामुखि शुभे पद्मे हे गौरि हे स्वयंप्रभे ॥८०॥
कालिके कमले दुर्गे हे सरस्वति भारति। अपूर्णे रति हे गङ्गे चाम्बिके सति सुन्दरि ॥८१॥

---

है ॥६८-७०॥ श्रीकृष्ण की बात सुनकर सभी व्रज-गोपियाँ चिन्तित हुईं। उन्होंने देखा कि यमुना के तट पर न तो उनके वस्त्र थे और न वस्तुएँ ॥७१॥ वे जल में नंगी खड़ी हो शोक करने लगीं और बहुत रोयीं, फिर बोलीं कि यहाँ से हमारे वस्त्र और अन्य वस्तुएँ कहाँ चली गयीं ॥७२॥ विषाद करके वे गोपकन्याएँ हाथ जोड़कर भक्तिपूर्वक विनम्र होकर वहीं कृष्ण से बोलीं ॥७३॥

**गोपियों ने कहा**—परमेश्वर ! तुम्हीं हम दासियों के श्रेष्ठ स्वामी हो, अतः हमारे पहनने योग्य वस्त्रों को तुम अपनी ही वस्तु समझो। उन्हें स्पर्श करने का तुम्हें पूरा अधिकार है; परन्तु व्रत के उपयोग में आनेवाली जो दूसरी वस्तुएँ हैं, वे इस समय आराध्य देवता की सम्पत्ति हैं। उन्हें समर्पित किये बिना उन वस्तुओं को ले लेना उचित नहीं है। वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ ! हमारी धोतियाँ दे दो, पहनकर हम व्रत करेंगी। गोविन्द ! इनके अतिरिक्त अन्य वस्तुओं को ही अपना आहार बनाओ ॥७४-७६॥ इसी बीच श्रीदामा वहाँ वस्त्रों की गठरी उन सबको दिखाकर उन्हीं के सामने दूर भाग गया ॥७७॥ उस गोपाल को वस्त्र लिये जाते देखकर सबकी अधीश्वरी राधिका ने जल के मध्य ही क्रुद्ध होकर अपनी सभी सखियों से कहा ॥७८॥

**राधिका बोलीं**—हे सुशीले, शशिकले, हे चन्द्रमुखि, हे माधवि, हे कदम्बमाले, हे कुन्ति, हे यमुने, हे सर्वमंगले, हे पद्ममुखि, हे सावित्रि, हे पारिजाते, हे जाह्नवि, हे सुधामुखि, हे शुभे, हे पद्मे ! हे गौरि, हे स्वयंप्रभे ! हे कालिके, हे कमले, हे दुर्गे, हे सरस्वति, हे भारति, हे अपूर्वे, हे रति, हे गंगे,

कृष्णप्रिये मधुमति चम्पे चन्दननन्दिनि । यूयं सर्वाः समुत्थाय बध्वाऽऽनयत बल्लवम् ॥८२॥
सर्वा राधाज्ञया तूर्णं समुत्थाय जलात्क्रुधा । प्रजग्मुर्गोपिका नग्ना योनिमाच्छाद्य पाणिना ॥८३॥
एतासां सहचारिण्यो गोप्यस्तूर्णं सहस्रशः । प्रजग्मुस्तेन रूपेण कोपादारक्तलोचनाः ॥८४॥
वेगेन दुद्रुवुः सर्वाः श्रीदामानं च बालिकाः । वेगेन च प्रधावन्तं बिभ्रतं वस्त्रपुञ्जिकाम् ॥८५॥
जगाम शीघ्रं श्रीदामा यत्र गोपाः सहांशुकाः । जवेन दुद्रुवुर्गोप्यस्तत्पश्चाद्बलसंयुताः ॥८६॥
वस्त्रचोरांश्च गोपांश्च वेष्टयामासुराशु ताः । भिया प्रदुद्रुवुर्बाला यत्र कृष्णः सहांशुकः ॥८७॥
श्रीकृष्णसहितान्बालान्वरयामासुराशु च । गोपिकानां भिया गोपा ददुर्वस्त्राणि माधवम् ॥८८॥
माधवः स्थापयामास स्कन्धे स्कन्धे तरोस्तथा । कदम्बवृक्षः शुशुभे वस्त्रैर्नानाविधैरपि ॥८९॥
वस्त्राणां पुञ्जिकाः सर्वाः स्कन्धेषु विनिधाय च । उवाच गोपिकाः कृष्णः परिहासपरं वचः ॥९०॥

## श्रीकृष्ण उवाच

भो भो गोपालिका नग्ना इदानीं किं करिष्यथ । वस्त्रयाच्ञां प्रकर्तुं च कुरुताऽऽशु पुटाञ्जलिम् ॥९१॥
गत्वा वदत युष्माकमीश्वरीमथ राधिकाम् । करोतु शीघ्रं वस्त्राणां याच्ञां कृत्वा पुटाञ्जलिम् ॥९२॥
अन्यथाऽहं न दास्यामि युष्मभ्यमंशुकानि च । युष्माकमीश्वरी राधा किं करिष्यति मेऽधुना ॥९३॥

---

हे अम्बिके, हे सुन्दरि, हे कृष्णप्रिये, हे मधुमति, हे चम्पे और हे चन्दननन्दिनि ! तुम सब उठकर गोप को बाँधकर ले आओ । राधिका की आज्ञा से सभी गोपियाँ क्रुद्ध होकर शीघ्र जल से निकलीं और हाथ से अपनी योनि को ढँककर नंगी ही दौड़ पड़ीं ॥७९-८३॥ उनके पीछे सहस्रों उनकी सहचारिणी गोपियाँ भी शीघ्रता से निकलकर कोप से लाल-लाल आँख किये उन्हीं की भाँति दौड़ने लगीं ॥८४॥ वे सभी बालिकाएँ श्रीदामा के पीछे वेग से दौड़ने लगीं । वह भी वस्त्रों की पोटली लिये वेग से भाग रहा था ॥८५॥ श्रीदामा शीघ्र वहाँ पहुँच गया जहाँ गोप-बालक वस्त्र के साथ थे । गोपियाँ भी बड़े वेग से बलपूर्वक दौड़ती हुई वहाँ पहुँच गयीं और वस्त्र चुराने-वाले उन बालकों को घेर लिया, किन्तु वे सभी बालक भयभीत होकर कृष्ण के पास पहुँच गये, जहाँ वे साड़ियों को लिये बैठे थे ॥८६-८७॥ गोपियों ने भी शीघ्रता से वहाँ पहुँचकर श्रीकृष्ण समेत उन बालकों को घेर लिया । गोपियों के भय से बालकों ने सभी वस्त्र माधव को दे दिये और माधव ने वस्त्रों को लेकर वृक्ष के तने पर रख दिया । अनेक भाँति के उन वस्त्रों से कदम्ब वृक्ष शोभायमान हो गया ॥८८-८९॥ इस प्रकार वस्त्रों की गठरियों को वृक्षों के तनों पर रखकर श्रीकृष्ण परिहास से दिल्लगी की बात करने लगे ॥९०॥

**श्रीकृष्ण बोले**—गोपकन्याओ ! अब तुम लोग नग्न होकर क्या करोगी ? वस्त्रों की याचना करने के लिए शीघ्र दोनों हाथ जोड़ो और जाकर अपनी स्वामिनी राधिका से कहो कि शीघ्र हाथ जोड़कर वस्त्रों की याचना करे ॥९१-९२॥ अन्यथा मैं तुम लोगों को नहीं दूँगा । तुम्हारी स्वामिनी राधा इस समय मेरा क्या कर

व्रताराध्या च या देवी सा वा मे किं करिष्यति । इत्येवं कथितं सर्वं ब्रूत यूयं च राधिकाम् ॥९४॥
श्रीकृष्णवचनं श्रुत्वा ताः सर्वा गोपकन्यकाः । वीक्ष्य लोचनकोणेन प्रजग्मू राधिकान्तिकम् ॥९५॥
चक्रुर्निवेदनं गत्वा यदुवाच हरिः स्वयम् । श्रुत्वा जहास सा राधा बभूव कामपीडिता ॥९६॥
श्रुत्वा तासां च वचनं पुलकाञ्चितविग्रहा । न जगाम हरेः स्थानं व्रीडया सस्मिता सती ॥९७॥
जले योगासनं कृत्वा दध्यौ कृष्णपदाम्बुजम् । ब्रह्मेशानन्तधर्माणां वन्द्यमीप्सितदं परम् ॥९८॥
स्मारं स्मारं पदाम्भोजं साश्रुसंपूर्णलोचना । भावातिरेकात्प्राणेशं तुष्टाव निर्गुणं परम्[1] ॥९९॥

## राधिकोवाच

गोलोकनाथ गोपीश मदीश प्राणवल्लभ । हे दीनबन्धो दीनेश सर्वेश्वर नमोऽस्तु ते ॥१००॥
गोपेश गोसमूहेश यशोदानन्दवर्धन । नन्दात्मज सदानन्द नित्यानन्द नमोऽस्तु ते ॥१०१॥
शतमन्योर्मन्युभग्न ब्रह्मदर्पविनाशक । कालीयदमन प्राणनाथ कृष्ण नमोऽस्तु ते ॥१०२॥
शिवानन्तेश ब्रह्मेश ब्राह्मणेश परात्पर । ब्रह्मस्वरूप ब्रह्मज्ञ ब्रह्मबीज नमोऽस्तु ते ॥१०३॥

---

लेगी ? अथवा तुम्हारे व्रत की जो आराध्या देवी है, वही मेरा क्या कर लेगी ? तुम लोग जाकर यह सब राधिका से कहो ॥९३-९४॥ श्रीकृष्ण की बात सुनकर वे सभी गोपकन्याएँ उन पर तिरछी चितवन डालती हुई अपनी स्वामिनी राधिका के पास चली गयीं ॥९५॥ वहाँ पहुँचकर भगवान् ने जो कुछ कहा था, सब निवेदन कर दिया। सुनकर राधिका हँसने लगी और कामपीड़ित हो गयीं ॥९६॥ गोपियों की बात सुनकर उनके शरीर में रोमाञ्च हो आया, वे मुसकराती रहीं, पर लज्जा के कारण भगवान् के समीप न जा सकीं ॥९७॥ अनन्तर जल में ही योगासन द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण के चरण-कमल का, जो ब्रह्मा, महेश, अनन्त और धर्म का वन्दनीय एवं परम अभीष्टप्रद हैं, ध्यान करने लगीं ॥९८॥ आँखों में आँसू भरे उनके चरण-कमल का बार-बार स्मरण करती रहीं, फिर भाव-विभोर होकर परमनिर्गुण प्राणेश्वर की स्तुति करने लगीं ॥९९॥

**राधिका बोलीं**--गोलोकनाथ ! गोपियों के अधीश्वर, मेरे स्वामी एवं प्राणवल्लभ ! हे दीनबन्धो, दीनों के ईश और सर्वाधीश्वर ! आपको नमस्कार है ॥१००॥ गोपेश ! गौओं के समूह के ईश ! यशोदा के आनन्द बढ़ानेवाले ! नन्दपुत्र ! सदानन्द ! नित्यानन्द ! आपको नमस्कार है ॥१०१॥ इन्द्र के क्रोध को व्यर्थ करनेवाले ! ब्रह्मा के अभिमान को चूर्ण करनेवाले ! कालिय का दमन करनेवाले ! प्राणनाथ ! कृष्ण ! आपको नमस्कार है ॥१०२॥ शिव और अनन्त के भी ईश, ब्रह्मेश, ब्राह्मणेश ! परात्पर ! ब्रह्मस्वरूप, ब्रह्मज्ञ और ब्रह्मबीज ! आपको नमस्कार है ॥१०३॥ चर-अचर रूप वृक्ष के बीज ! गुणों से परे, गुणात्मक, गुणों के

---

1 क. विभुम् ।

चराचरतरोर्बीज गुणातीत गुणात्मक । गुणबीज गुणाधार गुणेश्वर नमोऽस्तु ते ॥१०४॥
अणिमादिकसिद्धीश सिद्धे सिद्धिस्वरूपक । तपस्तपस्विंस्तपसां बीजरूप नमोऽस्तु ते ॥१०५॥
यदनिर्वचनीयं च वस्तु निर्वचनीयकम् । तत्स्वरूप तयोर्बीज सर्वबीज नमोऽस्तु ते ॥१०६॥
अहं सरस्वती लक्ष्मीर्दुर्गा गङ्गा श्रुतप्रसूः । यस्य पादार्चनान्नित्यम् पूज्यास्तस्मै नमो नमः ॥१०७॥
स्पर्शने यस्य भृत्यानां ध्यानेन च दिवानिशम् । पवित्राणि च तीर्थानि तस्मै भगवते नमः ॥१०८॥
इत्येवमुक्त्वा सा देवी जले संन्यस्य विग्रहम् । मनः प्राणांश्च श्रीकृष्णे तस्थौ स्थाणुसमा सती ॥१०९॥
राधाकृतं हरेः स्तोत्रं त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः । हरिर्भक्ति च दास्यं च लभेद्राधागतिं ध्रुवम् ॥११०॥
विपत्तौ यः पठेद्भक्त्या सद्यः संपत्तिमाप्नुयात् । चिरकालगतं द्रव्यं हृतं नष्टं च लभ्यते ॥१११॥
बन्धुवृद्धिर्भवेत्तस्य प्रसन्नं मानसं परम् । चिन्ताग्रस्तः पठेद्भक्त्या परां निर्वृतिमाप्नुयात् ॥११२॥
पतिभेदे पुत्रभेदे मित्रभेदे च संकटे । मासं भक्त्या यदि पठेत्सद्यः संदर्शनं लभेत् ॥११३॥
भक्त्या कुमारी स्तोत्रं च शृणुयाद्वत्सरं यदि । श्रीकृष्णसदृशं कान्तं गुणवन्तं लभेद् ध्रुवम् ॥११४॥
जलस्था राधिका ध्यात्वा श्रीकृष्णचरणाम्बुजम् । स्तुत्वैवं चक्षुरुन्मील्य दृष्ट्वा कृष्णमयं जगत् ॥११५॥
ददर्श यमुनातीरं वस्त्रद्रव्यमयं मुने । दृष्ट्वा तन्द्राऽथवा स्वप्नमिति मेने च राधिका ॥११६॥

---

बीज ! गुणों के आधार ! गुणों के ईश्वर ! आपको नमस्कार है ॥१०४॥ अणिमा आदि सिद्धियों के ईश, सिद्धि के भी सिद्धिस्वरूप तमोरूप ! तपस्विन् ! तप के बीजरूप आपको नमस्कार है ॥१०५॥ अनिर्वचनीय एवं निर्वचनीय वस्तु के स्वरूप ! उन दोनों के बीज ! सर्वबीज ! आपको नमस्कार है ॥१०६॥ मैं, सरस्वती, लक्ष्मी, दुर्गा, गङ्गा एवं सावित्री जिनके चरणों की अर्चना करने से नित्यपूज्या हुई हैं उन्हें बार-बार नमस्कार है ॥१०७॥ जिनके सेवकों के स्पर्श और अहर्निश ध्यान करने से समस्त तीर्थ पवित्र हुए हैं उन भगवान् को नमस्कार है ॥१०८॥ इतना कहकर वह देवी अपने शरीर को जल में और मन-प्राणों को श्रीकृष्ण में लगाकर स्थाणु (ठूंठे काठ) की भाँति अविचलभाव से स्थित हो गयीं ॥१०९॥ राधाकृत भगवान् के इस स्तोत्र का जो तीनों संध्याओं में पाठ करता है, उसे भगवान् की भक्ति और दास्य भाव प्राप्त होते हैं तथा वह निश्चय ही राधा की गति प्राप्त कर लेता है ॥११०॥ विपत्ति के समय जो भक्तिपूर्वक इसका पाठ करता है, उसे तुरन्त सम्पत्ति प्राप्त होती है, चिरकाल से खोया हुआ, अपहृत या नष्ट धन प्राप्त हो जाता है ॥१११॥ उसकी बन्धु-वृद्धि होती है, मन अत्यन्त प्रसन्न रहता है। चिन्ताग्रस्त मनुष्य पाठ करने से शान्ति प्राप्त करता है ॥११२॥ पतिवियोग, पुत्रवियोग, मित्र से वियोग और संकट में एक मास तक भक्तिपूर्वक पाठ करने से तुरन्त उसका संदर्शन होता है। कुमारी यदि भक्तिपूर्वक इस स्तोत्र का एक वर्ष तक अनवरत पाठ करे, तो उसे श्रीकृष्ण के समान गुणवान् पति निश्चित रूप से प्राप्त हो जाय ॥११३-११४॥ जल में राधिका ने श्रीकृष्ण के चरण-कमल का इस प्रकार ध्यान और स्तुति करके आँखें खोलीं तो उन्हें समस्त जगत् कृष्णमय दिखायी पड़ा। मुने ! यमुना का तट उन्हें द्रव्य एवं वस्त्रमय दिखायी दिया। उसे देखकर राधिका अपनी तन्द्रा

यत्र स्थाने यदाधारे यद्द्रव्यं संस्थितं पुरा। वस्त्रैश्च सहितं सर्वं तत्प्रापुर्गोपकन्यकाः ॥११७॥
जलादुत्थाय ताः सर्वा व्रतं कृत्वा मनीषितम्। संप्राप्य च वरं देव्यास्ताः सर्वाः स्वालयं ययुः ॥११८॥

## नारद उवाच

व्रतस्य किं विधानं च किं नाम किं फलं प्रभो। कानि द्रव्याणि देयानि का देया तत्र दक्षिणा ॥११९॥
व्रतान्ते किं रहस्यं च बभूव सुमनोहरम्। व्यासं कृत्वा महाभाग वद नारायणीं कथाम् ॥१२०॥

## सूत उवाच

नारदस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य मुनिपुंगवः। कथां कथितुमारेभे कवीन्द्राणां गुरोर्गुरुः ॥१२१॥

## नारायण उवाच

सर्वं व्रतविधानं च मत्तो वत्स निशामय। ख्यातं गौरीव्रतं नाम मार्गे मासि कृतं स्त्रिया ॥१२२॥
पुंसां च धर्मकामार्थमोक्षदं कृष्णभक्तिदम्। देशभेदे प्रसिद्धं च व्रतं पौर्वापरं स्मृतम् ॥१२३॥
कामदं कामुकानां च फलं कान्तनिमित्तकम्। उपोष्य पूर्वदिवसे वस्त्रं प्रक्षाल्य संयता ॥१२४॥
प्रातश्च मार्गसंक्रान्त्यां भक्त्या गत्वा सरित्तटम्। धृत्वा धौते च स्नात्वा च नानाद्रव्येण कन्यका ॥१२५॥

---

अथवा स्वप्न देखने का अनुमान करने लगीं। जिस स्थान में जिसके ऊपर जो वस्तु पहले रखी गयी थी, वह सब वस्त्रों समेत गोपकन्याएँ पा गयीं ॥११५-११७॥ अनन्तर जल से निकलकर वे सभी गोपियाँ अपना अभीष्ट व्रत सुसम्पन्न कर और देवी द्वारा वरदान प्राप्त करके अपने घर को चली गयीं ॥११८॥

**नारद बोले**—प्रभो! उस व्रत का क्या विधान है? क्या नाम है एवं क्या फल है? उसमें कौन-सी वस्तुएँ और क्या दक्षिणा देनी चाहिए ॥११९॥ महाभाग! व्रत के अन्त में कौन-सा मनोहर रहस्य प्रकट हुआ? नारायण की कथा को विस्तार से बताइये ॥१२०॥

**सूत बोले**—नारद की बातें सुनकर मुनिश्रेष्ठ नारायण ने, जो कवीन्द्रों के गुरु के गुरु हैं, हँसकर कथा कहना आरम्भ किया ॥१२१॥

**नारायण बोले**—वत्स! समस्त व्रत-विधान मुझसे सुनो। उसका नाम गौरीव्रत है। अगहन मास में स्त्रियों ने इसे किया ॥१२२॥ यह पुरुषों को भी धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष एवं कृष्ण की भक्ति प्रदान करनेवाला है। भिन्न-भिन्न देशों में इसकी प्रसिद्धि है। यह पूर्व-परम्परा से चला आ रहा है ॥१२३॥ यह कामुकों के लिए कामप्रद है और इससे पतिनिमित्तिक फल की प्राप्ति होती है। कुमारी कन्या को चाहिए कि व्रत के पूर्व दिन संयमपूर्वक रहते हुए वस्त्र प्रक्षालन करे और दूसरे दिन प्रातःकाल अगहन की संक्रान्ति में भक्तिपूर्वक नदी के तट पर जाकर

देवषट्कं च संपूज्य कृत्वा चाऽऽवाहनं घटे । गणेशं च दिनेशं च वह्निं नारायणं शिवम् ॥१२६॥
दुर्गां पञ्चोपचारैश्च संपूज्य व्रतमारभेत् । घटाधः पिण्डिकां कृत्वा चतुरस्रां सुविस्तृताम् ॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमैश्च सुसंस्कृताम् ॥१२७॥
निर्माय बालुकानां च दुर्गां दशभुजां पराम् । धृत्वा कपाले सिन्दूरं तदधश्चन्दनेन्दुकम् ॥१२८॥
तां ध्यात्वाऽऽवाहयेद्देवीं ततो भूत्वा पुटाञ्जलिः । इमं मन्त्रं पठित्वाऽऽदौ ततः पूजां समारभेत् ॥१२९॥
हे गौरि शंकरार्धाङ्गि यथा त्वं शंकरप्रिया । तथा मां कुरु कल्याणि कान्तकान्तां सुदुर्लभाम् ॥१३०॥
इमं मन्त्रं पठित्वा तु ध्यायेद्देवीं जगत्प्रसूम् । ध्यानं तत्सामवेदोक्तं निगूढं सर्वकामदम् ॥१३१॥
शृणु नारदवक्ष्यामि मुनीन्द्राणां च दुर्लभम् । ध्यायन्त्यनेन सिद्धाश्च दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम् ॥१३२॥
शिवां शिवप्रियां शैवां शिववक्षःस्थलस्थिताम् । ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां सुप्रतिष्ठां सुलोचनाम् ॥१३३॥
नवयौवनसपन्नां रत्नाभरणभूषिताम् । रत्नकङ्कणकेयूररत्ननूपुरभूषिताम् ॥१३४॥
रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजिताम् । मालतीमाल्यसंसक्तकबरीभ्रमरान्विताम् ॥१३५॥
सिन्दूरतिलकं चारुकस्तूरीबिन्दुना सह । वह्निशुद्धांशुकां रत्नकिरीटां सुमनोहराम् ॥१३६॥
मणीन्द्रसारसंसक्तरत्नमालासमुज्ज्वलाम् । पारिजातप्रसूनानां मालाजालानुलम्बिताम् ॥१३७॥

---

भली-भाँति स्नान करके दो वस्त्र धारण करे ॥१२४-१२५॥ तत्पश्चात् कलश में छह देवों—गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव और दुर्गा का आवाहन करके पञ्चोपचार पूजन करे। फिर व्रत आरम्भ करे। कलश के नीचे चौकोर और विस्तृत वेदी बनाकर उसे चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, कुंकुम से संस्कारपूर्ण बनाये ॥१२६-१२७॥ इसके बाद बालुका की दसभुजावाली दुर्गा-मूर्ति बनाकर ललाट में सिन्दूर लगावे और उसके नीचे चन्दन तथा कर्पूर अर्पित करे ॥१२८॥ अनन्तर ध्यानपूर्वक देवी का आवाहन करके हाथ जोड़कर यह मंत्र पढ़कर उनकी अर्चना आरम्भ करे—'हे गौरि . . . सुदुर्लभाम्' हे शंकर की अर्धाङ्गिनी गौरी ! हे कल्याणि ! जिस प्रकार तुम शंकर की प्रिया हो, उसी प्रकार मुझे भी प्रियतम की अति दुर्लभ प्रेयसी बनाओ ॥१२९-१३०॥ इस मंत्र का उच्चारण करके जगज्जननी देवी का ध्यान करे। हे नारद ! वह सर्वकामनादायक गूढ़ ध्यान सामवेद में वर्णित है ॥१३१॥ नारद ! मुनीन्द्रों के लिए भी दुर्लभ वह ध्यान मै बताऊँगा। सुनो, इसी ध्यान से सिद्ध लोग भी दुर्गतिनाशिनी दुर्गा का ध्यान करते हैं ॥१३२॥ (भगवती दुर्गा) शिवा (कल्याण रूपा), शिव की प्रिया, शैवा, शिव जी के वक्षःस्थल पर स्थित, मन्द मुसुकान समेत प्रसन्नमुख, सुप्रतिष्ठिता, सुन्दर नेत्रोंवाली, नूतन-युवावस्था-सम्पन्न, रत्नों के भूषणों से भूषित, रत्नों के कङ्कण, केयूर और नूपुरों से सुशोभित, रत्नों के युगल कुण्डलों से विभूषित गण्डस्थलवाली, भौंरों से गुञ्जायमान मालती-माला से आवृत जूड़ेवाली, मालतीं की मालाओं से सुन्दर कस्तूरी की बेंदी के साथ सिन्दूर का तिलक लगाये हुई, अग्नि विशुद्ध वस्त्र तथा रत्नों के अति मनोहर किरीट धारण करनेवाली, मणीन्द्रों के सारभाग से जटित रत्नों की मालाओं से उद्भासित पारिजात पुष्पों की लम्बी मालाओं से विराजित, अत्यन्त स्थूल एवं कठोर श्रोणी भाग से भूपित, स्तनों के भार से दबी-सी, नवयौवन के भारसमूह से

सुपीनकठिनश्रोणीं बिभ्रतीं च स्तनानताम् । नवयौवनभारौघावीषन्नम्रां मनोहराम् ॥१३८॥
ब्रह्मादिभिः स्तूयमानां सूर्यकोटिसमप्रभाम् । पक्वबिम्बाधरोष्ठीं च चारुचम्पकसंनिभाम् ॥१३९॥
मुक्तापङ्क्तिविनिन्द्यैकदन्तराजिविराजिताम् । मुक्तिकामप्रदां देवीं शरच्चन्द्रमुखीं भजे ॥१४०॥
ध्यात्वैवं मस्तके पुष्पं विन्यस्य च व्रती मुदा । पुष्पं गृहीत्वा भक्त्या च पुनर्ध्यात्वा च पूजयेत् ॥१४१॥
दत्त्वा षोडशोपचारान्प्रहृष्टं तत्र नित्यशः । पूर्वोक्तेनैव मन्त्रेण मुदा भक्त्या व्रते व्रती ॥१४२॥
पूर्वोक्तेनैव स्तोत्रेण स्तुत्वा च प्रणमेत्तदा । कृत्वा प्रणामं भक्त्या च संयतः शृणुयात्कथाम् ॥१४३॥

## नारद उवाच

व्रतं व्रतविधानं च फलं च स्तोत्रमद्भुतम् । अधुना श्रोतुमिच्छामि गौरीव्रतकथां शुभाम् ॥१४४॥
व्रतं केन कृतं पूर्वं भूमौ केन प्रकाशितम् । एतत्सर्वं सुविस्तार्य वद संदेहभञ्जन ॥१४५॥

## नारायण उवाच

कुशध्वजस्य हि सुता नाम्ना वेदवती सती । तया कृतं व्रतमिदं महातीर्थे च पुष्करे ॥१४६॥
समाप्तिदिवसे साक्षाद्बभूव जगदम्बिका । योगिनीलक्षसंयुक्ता सूर्यकोटिसमप्रभा ॥१४७॥
शातकुम्भविनिर्माणरथस्था परमेश्वरी । ईषद्धास्यप्रसन्नास्या तामुवाच सुसंयताम् ॥१४८॥

---

कुछ झुकी-सी एवं मनोहर, ब्रह्मादि देवों से स्तुति की जाती हुई, करोड़ों सूर्य के समान कान्तिपूर्ण, पके बिम्बाफल के समान अधरोष्ठवाली, चारु चम्पा के समान वर्णवाली, मोती की पंक्तियों को अति निन्दित करनेवाली दन्तपंक्ति से सुशोभित, मुक्ति एवं मनःकामना देनेवाली एवं शारदीय चन्द्रमा के समान मुखवाली देवीका मैं भजन करता हूँ ॥१३३-१४०॥ इस प्रकार ध्यानपूर्वक व्रती मस्तक पर पुष्प रखकर पुष्प लेकर भक्तिपूर्वक पुनः ध्यान करके पूजन करे ॥१४१॥ व्रत में पूर्वोक्त मंत्र से ही व्रती प्रतिदिन हर्षपूर्वक भक्ति के साथ षोडशोपचार चढ़ावे ॥१४२॥ पश्चात् पूर्वोक्त स्तोत्र द्वारा स्तुति करके उन्हें प्रणाम करे और मन को एकाग्र करके भक्तिपूर्वक गौरी-व्रत की कथा श्रवण करे ॥१४३॥

**नारद बोले**—व्रत, व्रत का विधान, फल और अद्भुत स्तोत्र मैं सुन चुका; अब मैं गौरीव्रत की शुभ कथा सुनना चाहता हूँ। हे संदेहनाशक ! सर्वप्रथम इस व्रत को किसने किया और भूतल पर किसने इसे प्रकाशित किया, यह सब विस्तारपूर्वक मुझे बता दें ॥१४४-१४५॥

**नारायण बोले**—कुशध्वज की वेदवती नामक कन्या ने इस व्रत को महातीर्थ पुष्कर में सम्पन्न किया था, जिसकी समाप्ति के दिन करोड़ों सूर्य के समान प्रभाववाली जगदम्बिका ने एक लाख योगिनियों के साथ उसे साक्षात् दर्शन दिया ॥१४६-१४७॥ सुवर्ण के बने रथ पर स्थित परमेश्वरी ने, जिनके प्रसन्न-मुख पर मुसकराहट फैल रही थी, संयमशीला वेदवती से कहा ॥१४८॥

**पार्वत्युवाच**

हे वेदवति भद्रं ते वरं वृणु यथेप्सितम् । तव व्रतेन तुष्टाऽहं तुभ्यं दास्यामि वाञ्छितम् ॥१४९॥
पार्वतीवचनं श्रुत्वा दृष्ट्वा तां हृष्टमानसाम् । पुटाञ्जलियुता साध्वी प्रणम्योवाच नारद ॥१५०॥

**वेदवत्युवाच**

देवि नारायणं कान्तं मह्यं देहि मनोषितम् । वरेऽन्यस्मिन्स्पृहा नास्ति दृढां भक्तिं च तत्पदे ॥१५१॥
श्रुत्वा वेदवतीवाक्यं प्रहस्य जगदम्बिका । अवरुह्य रथात्तूर्णं तामुवाच हरिप्रियाम् ॥१५२॥

**पार्वत्युवाच**

ज्ञातं सर्वं जगन्मातस्त्वं च लक्ष्मीः स्वयं सती । भारतं पादरजसा पूतं कर्तुं समागता ॥१५३॥
त्वत्पादरजसा साध्वि सद्यः पूता वसुंधरा । निखिलानि च तीर्थानि पूतानि परमेश्वरि ॥१५४॥
व्रतं ते लोकशिक्षार्थं तपश्चर तपस्विनि । नारायणस्य कान्ता त्वं प्रिया जन्मनि जन्मनि ॥१५५॥
भारावतरणे विष्णुर्वसुधामागमिष्यति । रामो दाशरथिः पूर्णः कर्तुं दस्युविनिग्रहम् ॥१५६॥
ब्रह्मशापाच्च च्युतयोर्मोक्षणाय च भक्तयोः । अयोध्यायां च त्रेतायामाविर्भावो हरेरपि ॥१५७॥

---

**पार्वती बोलीं**––वेदवति ! तुम्हारा कल्याण हो, यथेच्छ वर की याचना करो । मैं तुम्हारे व्रत से प्रसन्न हूं, अतः तुम्हें अभीष्ट प्रदान करूंगी ॥१४९॥ नारद ! पार्वती की बात सुनकर और उन्हें प्रसन्नचित्त देखकर सती वेदवती ने हाथ जोड़कर उन्हे प्रणाम करके कहा ॥१५०॥

**वेदवती बोली**––देवि ! मुझे अभीष्ट पति नारायण को प्रदान करें । अन्य वर की मुझे इच्छा नहीं है । उनके चरण में मुझे दृढ़ भक्ति भी दें ॥१५१॥ वेदवती की बात सुनकर जगदम्बिका हँसकर रथ से शीघ्र उतर गयीं और उस हरिप्रिया से बोलीं ॥१५२॥

**पार्वती ने कहा**––जगन्माता ! मैंने सब कुछ जान लिया । तुम साक्षात् सती लक्ष्मी हो, अपने चरण-रज से भारत प्रदेश को पवित्र करने आयीं हो । साध्वी ! तुम्हारे चरण-कमल से पृथ्वी तुरन्त पवित्र हो गयी है । हे परमेश्वरी ! समस्त तीर्थ भी पवित्र हो गये हैं । तुम्हारा यह व्रत लोक-शिक्षार्थ है । तपस्विनि ! तुम तप करो । प्रत्येक जन्म में तुम साक्षात् नारायण की वल्लभा हो, उनकी प्रिय पत्नी रहोगी ॥१५३-१५५॥ पृथ्वी का भार उतारने के लिए विष्णु पृथ्वी पर आयेंगे । दस्युभूत राक्षसों को नियन्त्रित करने के लिए पूर्ण परमात्मा दशरथ-पुत्र राम होंगे । उनके दो भक्त जय और विजय ब्राह्मणों के शाप के कारण वैकुण्ठधाम से नीचे गिर गये हैं । उनका उद्धार करने के लिए त्रेतायुग में अयोध्या में हरि प्रकट होंगे ॥१५६-१५७॥ तुम्हीं शिशु-शरीर धारण

त्वमेव मिथिलां गच्छ विधाय शिशुविग्रहम् । त्वामिमां प्राप्य जनकोऽप्ययोनिसंभवां सुताम् ॥१५८॥
पालयिष्यति यत्नेन सीता त्वं च भविष्यसि । गत्वा रामोऽपि मिथिलां त्वद्विवाहं करिष्यति ॥१५९॥
नारायणस्य कान्ता त्वं कल्पे कल्पे भविष्यसि[1] । इत्युक्त्वा तां समालिङ्ग्य पार्वती स्वालयं ययौ ॥१६०॥
गत्वा सा मिथिलां साध्वी शिशुरूपं विधाय च । लाङ्गलस्य च रेखायां सुप्त्वा तस्थौ च[2] मायया ॥१६१॥
विलोक्य जनकस्तां च नग्नां मुद्रितलोचनाम् । तप्तकाञ्चनवर्णां च रुदन्तीं तेजसाऽन्विताम् ॥१६२॥
दृष्ट्वा तां च गृहीत्वा च कृत्वा वक्षसि नारद । गच्छन्तं प्रति तत्रैव वाग्बभूवाशरीरिणी ॥१६३॥
अयोनिसंभवां कन्यां कमलां ग्रहणं कुरु । नारायणस्ते जामाता भवितेत्येव मे वचः ॥१६४॥
श्रुत्वा तदा देववाणीं गृहीत्वा कन्यकामृषिः । गत्वा ददौ स्वकान्तायै पालनाय मुदाऽन्वितः ॥१६५॥
सा लब्धयौवना प्राप रामं दशरथिं सती । व्रतस्यास्य प्रभावेण कान्तं त्रिजगतां पतिम् ॥१६६॥
प्रकाशितं वसिष्ठेन पृथिव्यां भक्तिभावतः । राधा कृत्वा व्रतमिदं श्रीकृष्णं प्राप वल्लभम् ॥१६७॥
गोपाङ्गनाश्च तं प्रापुर्व्रतस्यास्य प्रभावतः । इत्येवं कथिता विप्र कथा गौरीव्रतस्य च ॥१६८॥

---

करके मिथिला जाओ । वहाँ राजा जनक तुम्हें अयोनिजा कन्या के रूप में प्राप्त करके बड़े यत्न से पालन करेंगे। सीता तुम्हारा नाम होगा । राम भी मिथिला जाकर तुम्हारे साथ विवाह करेंगे ॥१५८-१५९॥ तुम प्रत्येक कल्प में भगवान् की प्रिय पत्नी होओगी । इतना कहकर पार्वती उनका आलिङ्गन करके अपने घर चली गयीं । वह साध्वी वेदवती भी अपना शिशुरूप बनाकर मिथिला में जाकर माया से हल द्वारा भूमि पर की गयी रेखा (हराई) में सुखपूर्वक स्थित हो गयीं । राजा जनक ने देखा कि एक नग्न बालिका आँख बंद किये भूमि पर पड़ी है । उसकी अङ्ग-कांति तपाये सुवर्ण के समान है तथा वह तेजस्विनी बालिका रो रही है । उसे देखकर जनक ने उठाकर गोद में चिपका लिया । जब वे जाने लगे तब वहीं आकाशवाणी हुई—"यह अयोनिजा कन्या साक्षात् लक्ष्मी है, इसको ग्रहण करो । नारायण तुम्हारे जामाता होंगे, यही मेरा कथन है" ॥१६०-१६४॥ तब राजा जनक बड़ी प्रसन्नता से उस कन्या को ले जाकर पालन-पोषण के लिए अपनी पत्नी को दे दिया । अनन्तर युवती होने पर उस सती सीता ने इसी व्रत के प्रभाव से तीनों लोक के पति दशरथ-पुत्र राम को पति रूप में प्राप्त कर लिया ॥१६५-१६६॥ महर्षि वसिष्ठ ने बड़े भक्ति-भाव से इस व्रत को भूतल पर प्रकाशित किया । राधिका ने इस व्रत को सम्पन्न करके श्रीकृष्ण को प्राण-वल्लभ रूप में प्राप्त किया और गोपियों ने भी इसी व्रत के द्वारा उन्हें प्राप्त किया । हे विप्र ! इस प्रकार गौरी-व्रत की कथा तुम्हें बता दी ॥१६७-१६८॥ भारत में जो कुमारी

---

१ क. हरिप्रिये । २ ख. सुखात्त[2] ।

भारते च व्रतमिदं या करोति कुमारिका। स्वामिनं कृष्णतुल्यं च सा प्राप्नोति न संशयः ॥१६९॥

## नारायण उवाच

एवं व्रतं च चक्रुस्ता यावन्मासं च गोपिकाः। पूर्वस्तोत्रेण तां देवीं तुष्टुवुश्च दिने दिने ॥१७०॥
समाप्तिदिवसे गोप्यो व्रतं कृत्वा मुदाऽन्विताः। कण्वशाखोक्तस्तोत्रेण तुष्टुवः परमेश्वरीम् ॥१७१॥
येन स्तोत्रेण तां स्तुत्वा सीता सत्यपरायणा। सद्यः संप्राप कान्तं च रामं राजीवलोचनम् ॥१७२॥

## जानक्युवाच

शक्तिस्वरूपे सर्वेषां सर्वाधारे गुणाश्रये। सदा शंकरयुक्ते च पतिं देहि नमोऽस्तु ते ॥१७३॥
सृष्टिस्थित्यन्तरूपेण सृष्टिस्थित्यन्तकारिणि। सृष्टिस्थित्यन्तबीजानां बीजरूपे नमोऽस्तु ते ॥१७४॥
हे गौरि पतिमर्मज्ञे पतिव्रतपरायणे। पतिव्रते पतिरते पतिं देहि नमोऽस्तु ते ॥१७५॥
सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये सर्वमङ्गलसंयुते। सर्वमङ्गलबीजे च नमस्ते सर्वमङ्गले ॥१७६॥
सर्वप्रिये सर्वबीजे सर्वाशुभविनाशिनि। सर्वेशे सर्वजनके नमस्ते शंकरप्रिये ॥१७७॥
परमात्मस्वरूपे च नित्यरूपे सनातनि। साकारे च निराकारे सर्वरूपे नमोऽस्तु ते ॥१७८॥

---

वह व्रत करती है, वह श्रीकृष्ण के समान पति प्राप्त करती है, इसमें संशय नहीं ॥१६९॥

**नारायण बोले**—इस प्रकार उन गोपियों ने एक मास तक व्रत किया। वे पूर्वोक्त स्तोत्र द्वारा प्रति-दिन देवी की स्तुति करती थीं ॥१७०॥ समाप्ति के दिन गोपियों ने बड़ी प्रसन्नता से व्रत करके कण्व शाखा स्तोत्र द्वारा परमेश्वरी की स्तुति की, जिसके द्वारा स्तवन करके सत्यपरायण सीता ने कमलनयन राम को सद्यः पति रूप में प्राप्त किया था ॥१७१-१७२॥ (वह स्तोत्र इस प्रकार है—)

**जानकी बोलीं**—हे सभी लोगों की शक्तिस्वरूपे शिवे! आप सबकी आधारभूता हैं। समस्त गुणों की निधि हैं तथा सदा शंकर के संयोग-सुख का अनुभव करनेवाली हैं। आपको नमस्कार है। आप मुझे पति दें ॥१७३॥ सृष्टि, पालन और संहार रूप से आप सृष्टि, पालन और संहार करनेवाली हैं। सृष्टि, पालन और संहार के जो बीज हैं, उनकी भी बीज रूप आप हैं, आपको नमस्कार है ॥१७४॥ पति के मर्म को जाननेवाली! पतिव्रतपरायणे! पतिव्रते! पतिरते! मुझे पति दें। आपको नमस्कार है ॥१७५॥ आप समस्त मङ्गलों के भी मंगलकारिणी हैं, समस्त मंगलों से युक्त हैं, सब प्रकार के मंगलों की बीजरूपा हैं, सर्वमंगले! आपको नमस्कार है ॥१७६॥ हे शंकरप्रिये! आप सर्वप्रिय, सबकी बीजरूपिणी समस्त अशुभों की विनाशिनी, सब की स्वामिनी और सब की जननी हैं, आपको नमस्कार है ॥१७७॥ परमात्मस्वरूपे! नित्यरूपे सनातनि! आप साकार, निराकार और सर्वरूपा हैं, आपको नमस्कार है ॥१७८॥ क्षुधा, तृष्णा, इच्छा, दया श्रद्धा,

क्षुत्तृष्णेच्छा दया श्रद्धा निद्रा तन्द्रा स्मृतिः क्षमा । एतास्तव कलाः सर्वा नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१७९॥
लज्जा मेधा तुष्टिपुष्टी शान्तिसंपत्तिवृद्धयः । एतास्तव कलाः सर्वाः सर्वरूपे नमोऽस्तु ते ॥१८०॥
दृष्टादृष्टास्वरूपे च तयोर्बीजे फलप्रदे । सर्वानिर्वचनीये च महामाये नमोऽस्तु ते ॥१८१॥
शिवे शंकरसौभाग्ययुक्ते सौभाग्यदायिनि । हरिं कान्तं च सौभाग्यं देहि देवि नमोऽस्तु ते ॥१८२॥
स्तोत्रेणानेन याः स्तुत्वा समाप्तिदिवसे शिवाम् । नमन्ति परया भक्त्या ता लभन्ते हरिं पतिम् ॥१८३॥
इह कान्तसुखं भुक्त्वा पतिं प्राप्य परात्परम् । दिव्यं स्यन्दनमारुह्य यान्त्यन्ते कृष्णसंनिधिम् ॥१८४॥
समाप्तिदिवसे राधा गोपीभिः सह संयुता । देवीं प्रणम्य स्तुत्वा च व्रतं पूर्णं चकार ह ॥१८५॥
गोसहस्रं ब्राह्मणेभ्यः सुवर्णशतकं मुदा । विप्राय दक्षिणां दत्त्वा स्वगृहं गन्तुमुद्यता ॥१८६॥
ब्राह्मणानां सहस्रं च भोजयामास सादरम् । वाद्यानि वादयामास भिक्षुकाय धनं ददौ ॥१८७॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र दुर्गा दुर्गतिनाशिनि । आविर्बभूव गगनाज्ज्वलन्ती ब्रह्मतेजसा ॥१८८॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्या योगिनीशतसंयुता[1] । सिंहस्था च दशभुजा रत्नालंकारभूषिता ॥१८९॥

---

निद्रा, तन्द्रा, स्मृति और क्षमा—ये आपकी कलाएँ हैं । नारायणि ! आपको नमस्कार है ॥१७९॥ लज्जा, मेधा, तुष्टि, पुष्टि, शान्ति, सम्पत्ति, बुद्धि—ये आपकी कलाएँ हैं, सर्वरूपे ! आपको नमस्कार है ॥१८०॥ दृष्ट और अदृष्ट दोनों आपके ही स्वरूप हैं, आप उन्हें बीज और फल प्रदान करती हैं, कोई भी आपका निर्वचन नहीं कर सकता है, महामाये ! आपको नमस्कार है ॥१८१॥ शिवे ! आप शंकर संबंधी सौभाग्य से युक्त हैं तथा सौभाग्य देनेवाली हैं । देवि ! श्रीकृष्ण को पति के रूप में मुझे प्रदान करें । आपको नमस्कार है ॥१८२॥ समाप्ति के दिन जो इस स्तोत्र से स्तुति करके परम भक्ति से पार्वती को नमस्कार करती हैं, वे हरि को पति के रूप में प्राप्त करती हैं ॥१८३॥ परात्पर पति प्राप्त होने पर इस लोक में पति का सुख भोगकर अन्त में दिव्य रथ पर बैठकर भगवान् श्रीकृष्ण के समीप पहुँच जाती हैं ॥१८४॥ समाप्ति के दिन राधिका ने भी गोपियों को साथ करके देवी की स्तुति और प्रणाम करके व्रत को पूर्ण किया था ॥१८५॥ ब्राह्मणों को एक सहस्र गौएँ और सौ सुवर्ण-मुद्राएँ दीं, फिर ब्राह्मण को दक्षिणा प्रदान कर अपने गृह जाने को उद्यत हुईं । उन्होंने एक सहस्र ब्राह्मणों को सादर भोजन कराया, विविध वाद्य बजवाये और भिक्षुकों को धन दिया । इसी बीच दुर्गतिनाशिनी दुर्गा ब्रह्मतेज से प्रकाशित होकर आकाश से प्रकट हुईं ॥१८६-१८८॥ वे मन्दहास समेत प्रसन्न-मुख एवं सौ योगिनियों के साथ थीं । वे सिंह पर विराजमान, दस भुजाओं से युक्त तथा रत्नों के आभूषणों से

---

१ क. °शिव० ।

शातकुम्भमयाद्दिव्याद्रत्नसारपरिच्छदात् । अवरुह्य रथात्तूर्णमालिङ्ग्योरसि राधिकाम् ॥१९०॥
दृष्ट्वा गोपाङ्गना देवीं प्रणेमुश्च मुदाऽन्विताः । आशिषं युयुजे दुर्गा वाञ्छासिद्धिर्भविष्यति ॥१९१॥
गोपिकाभ्यो वरं दत्त्वा ताः संभाष्य च सादरम् । उवाच राधिकां दुर्गा स्मेराननसरोरुहा ॥१९२॥

## पार्वत्युवाच

राधे सर्वेश्वरप्राणादधिके जगदम्बिके । व्रतं ते लोकशिक्षार्थं मायामानुषरूपिणि ॥१९३॥
गोलोकनाथं गोलोकं श्रीशैलं विरजातटम् । श्रीरासमण्डलं दिव्यं[1] वृन्दावनमनोहरम् ॥१९४॥
चरितं रतिचोरस्य स्त्रीणां मानसहारकम् । विदुषः कामशास्त्राणां किंस्वित्स्मरसि सुन्दरि ॥१९५॥
श्रीकृष्णार्धाङ्गसंभूता कृष्ण तुल्या च तेजसा । तवांशकलया देव्यः कथं त्वं मानुषी सती ॥१९६॥
भवती च हरेः प्राणा भवत्याश्च हरिः स्वयम् । वेदे नास्ति द्वयोर्भेदः कथं त्वं मानुषी सती ॥१९७॥
षष्टिवर्षसहस्राणि ब्रह्मा तप्त्वा तपः पुरा । न ते ददर्श पादाब्जं कथं त्वं मानुषी सती ॥१९८॥
कृष्णाज्ञया च त्वं देवि गोपीरूपं विधाय च । आगतासि महीं शान्ते कथं त्वं मानुषी सती ॥१९९॥
सुयज्ञो हि नृपश्रेष्ठो मनुवंशसमुद्भवः । त्वत्तो जगाम गोलोकं कथं त्वं मानुषी सती ॥२००॥

---

भूषित थीं ॥१८९॥ उन्होंने रत्नसारमय उपकरणों से युक्त सुवर्णनिर्मित दिव्य रथ से उतरकर तुरन्त ही राधिका को अपने हृदय से लगा लिया ॥१९०॥ गोपियों ने देवी को देखकर हर्षान्वित होकर प्रणाम किया और दुर्गा ने उन्हें आशिष प्रदान किया कि—"तुम सबकी इच्छा पूर्ण होगी" ॥१९१॥ गोपियों को वरदान देकर और उनसे आदरपूर्वक वातचीत करके मुसकराते हुए मुखकमलवाली दुर्गा ने राधिका से कहा ॥१९२॥

**पार्वती बोलीं**—राधे ! तुम सर्वेश्वर देव को प्राणों से भी अधिक प्रिय हो। तुम्हारा यह व्रत लोक-शिक्षा के लिए है। तुम माया से मनुष्य रूप में प्रकट हुई हो। सुन्दरि ! क्या तुम गोलोकनाथ, गोलोक, श्रीशैल, विरजा के तटप्रान्त, श्री रासमण्डल और दिव्य मनोहर वृन्दावन और कामशास्त्र के विद्वान्, स्त्रियों के चित्त को अपहरण करनेवाले एवं रतिचोर श्रीकृष्ण के चरित्र का स्मरण करती हो ? ॥१९३-१९५॥ तुम श्रीकृष्ण के अर्द्धाङ्ग से उत्पन्न और तेज में उन्हीं के समान हो। समस्त देवियाँ तुम्हारी अंशकला से प्रकट हुई हैं। फिर तुम मानुषी सती कैसे हो ? ॥१९६॥ तुम भगवान् के प्राण हो और स्वयं हरि तुम्हारे प्राण हैं, वेद में तुम दोनों में कोई भेद नहीं बताया गया है। फिर तुम मानुषी कैसे हो ? ॥१९७॥ पूर्वकाल में ब्रह्मा साठ सहस्र वर्षों तक तप करके भी तुम्हारे चरण-कमल का दर्शन न पा सके, फिर तुम मानुषी कैसे हो ? ॥१९८॥ देवि ! शान्ते ! श्रीकृष्ण की आज्ञा से गोपीरूप धारण करके तुम इस भूतल पर आयी हो, अतः तुम मानुषी कैसे हो ? ॥१९९॥ मनु वंश में उत्पन्न नृपश्रेष्ठ सुयश ने तुम्हारी ही कृपा से गोलोक में गये। फिर तुम मानुषी कैसे हो ? ॥२००॥

---

१ क. रम्यं।

त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां चकार पृथिवीं भृगुः । तव मन्त्रेण कवचात्कथं त्वं मानुषी सती ॥२०१॥
शंकरात्प्राप्य त्वन्मन्त्रं सिद्धं कृत्वा च पुष्करे । जघान कार्तवीर्यं च कथं त्वं मानुषी सती ॥२०२॥
बभञ्ज दर्पाद्दन्तं च गणेशस्य महात्मनः । त्वत्तो नाम भयं चक्रे कथं त्वं मानुषी सती ॥२०३॥
मय्युद्धतायां कोपेन भस्मसात्कर्तुमीश्वरि । ररक्षाऽऽगत्य मत्प्रीत्या कथं त्वं मानुषी सती ॥२०४॥
कल्पे कल्पे तव पतिः कृष्णो जन्मनि जन्मनि । व्रतं लोकहितार्थाय जगन्मातस्त्वया कृतम् ॥२०५॥
अहो श्रीदामशापेन भारावतरणाय च । भूमौ तवाधिष्ठानं च कथं त्वं मानुषी सती ॥२०६॥
अयोनिसंभवा त्वं च जन्ममृत्युजरापहा । कलावतीसुता पुण्या कथं त्वं मानुषी सती ॥२०७॥
त्रिषु मासेष्वतीतेषु मधुमासे मनोहरे । निर्जने निर्मले रात्रौ सुयोग्ये रासमण्डले ॥२०८॥
सर्वाभिर्गोपिकाभिश्च सार्धं वृन्दावने वने । हर्षेण हरिणा सार्धं क्रीडा ते भविता सति ॥२०९॥
विधात्रा लिखिता क्रीडा कल्पे कल्पे महीतले । तव श्रीहरिणा सार्धं केन राधे निवार्यते ॥२१०॥
यथा सौभाग्ययुक्ताऽहं हरस्य श्रीहरिप्रिये । तथा सौभाग्ययुक्ता त्वं भव कृष्णस्य सुन्दरि ॥२११॥
यथा क्षीरेषु धावल्यं यथा वह्नौ च दाहिका । भुवि गन्धो जले शैत्यं तथा कृष्णे स्थितिस्तव ॥२१२॥
देवी वा मानुषी वाऽपि गान्धर्वी राक्षसी तथा । त्वत्तः परा च सौभाग्या न भूता न भविष्यति ॥२१३॥

---

परशुराम ने तुम्हारे ही मंत्र और कवच के प्रभाव से पृथिवी को इक्कीस बार निःक्षत्रिय किया था, अतः तुम मानुषी कैसे हो ? ॥२०१॥ उन्होंने शंकर से तुम्हारा मंत्र प्राप्तकर पुष्कर-क्षेत्र में उसे सिद्ध करके कार्तवीर्य का वध किया था, फिर तुम मानुषी कैसे हो ? ॥२०२॥ उन्होंने अभिमानपूर्वक महात्मा गणेश का दाँत तोड़ दिया था, वे केवल तुमसे ही भय मानते थे, फिर तुम मानुषी कैसे हो ? ॥२०३॥ क्रोध से उसे भस्म करने के लिए मेरे उद्धत हो जाने पर, हे ईश्वरि ! मेरे प्रेम से आकर तुमने ही रक्षा की थी, फिर तुम मानुषी कैसे हो ? ॥२०४॥ श्रीकृष्ण प्रत्येक कल्प में तथा जन्म-जन्म में तुम्हारे पति रहें, जगन्माता ! यह व्रत तो केवल लोककल्याण के लिए तुमने किया है ॥२०५॥ अहो ! श्रीदामा के शाप से पृथ्वी का भार उतारने के निमित्त तुम यहाँ भूतल पर आयी हो, फिर तुम मानुषी कैसे हो ? ॥२०६॥ तुम कलावती की अयोनिजा पुत्री तथा पुण्यस्वरूपा और जन्म-मृत्यु एवं जरा का अपहरण करनेवाली हो, फिर तुम मानुषी कैसे हो ? ॥२०७॥ तीन मास के उपरान्त मनोहर चैत्रमास की रात्रि में जनशून्य, निर्मल एवं अतिशोभन रासमण्डल में वृन्दावन के भीतर श्रीहरि के साथ समस्त गोपिकाओं समेत तुम्हारी रासक्रीड़ा सानन्द सम्पन्न होगी ॥२०८-२०९॥ राधे ! प्रति कल्प में भूतल पर श्रीहरि के साथ तुम्हारी क्रीड़ा ब्रह्मा ने लिख दी है, उसे कौन रोक सकता है ? ॥२१०॥ श्रीहरि की प्रिया ! सुन्दरी ! जैसे मैं शंकर की सौभाग्यशालिनी (पत्नी) हूँ, वैसे तुम श्रीकृष्ण की सौभाग्ययुक्ता वल्लभा हो ॥२११॥ जिस भाँति दूध में धवलता, अग्नि में दाहिका शक्ति, पृथिवी में गन्ध एवं जल में शीतलता है, उसी भाँति कृष्ण में तुम्हारी स्थिति है ॥२१२। देवी, मानुषी, गान्धर्वी तथा राक्षसी आदि कोई भी तुमसे बढ़-

परात्परो गुणातीतो ब्रह्मादीनां च वन्दितः । स्वयं कृष्णस्तवाधीनो मद्वरेण भविष्यति ।।२१४।।
ब्रह्मानन्तशिवाराध्यो भविता त्वद्वशः सति । ध्यानासाध्यो दुराराध्यः सर्वेषामपि योगिनाम् ।।२१५।।
त्वं च भाग्यवती राधे स्त्रीजातिषु न ते परा । कृष्णेन सार्धं पश्चात्त्वं गोलोकं च गमिष्यसि ।।२१६।।
इत्युक्त्वा पार्वती सद्यस्तत्रैवान्तर्दधे मुने । सार्धं गोपालिकाभिश्च राधिका गन्तुमुद्यता ।।२१७।।
एतस्मिन्नन्तरे कृष्णो जगाम राधिकापुरः । राधा ददर्श श्रीकृष्णं किशोरं श्यामसुन्दरम् ।।२१८।।
पीतवस्त्रपरीधानं रत्नालंकारभूषितम् । आजानुमालतीमालावनमालाविभूषितम् ।।२१९।।
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारकम् । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं शरत्पङ्कजलोचनम् ।।२२०।।
शरत्पार्वणचन्द्रास्यं सद्रत्नमुकुटोज्ज्वलम् । पक्वदाडिमबीजाभदशनं सुमनोहरम् ।।२२१।।
विनोदमुरलीहस्तन्यस्तलीलासरोरुहम् । कोटिकन्दर्पलावण्यं लीलाधाम मनोहरम् ।।२२२।।
गुणातीतं स्तूयमानं ब्रह्मानन्तशिवादिभिः । ब्रह्मस्वरूपं ब्रह्मण्यं श्रुतिभिश्चानिरूपितम् ।।२२३।।
अव्यक्तमक्षरं व्यक्तं ज्योतीरूपं सनातनम् । माङ्गल्यं मङ्गलाधारं मङ्गलं मङ्गलप्रदम् ।।२२४।।
दृष्ट्वा तदद्भुतं रूपं संभ्रमात्प्रणनाम तम् । तं दृष्ट्वा मूर्च्छिता राधा कामबाणप्रपीडिता ।।२२५।।
दर्शं दर्शं मुखाम्भोजं सस्मिता वक्रलोचना । मुखस्याऽऽच्छादनं चक्रे व्रीडया च पुनः पुनः ।।२२६।।

---

कर सौभाग्यवती न हुई है और न होगी ।।२१३।। मेरे वरदान द्वारा परात्पर, गुणों से परे तथा ब्रह्मा आदि देवों से वन्दित श्रीकृष्ण स्वयं तुम्हारे अधीन रहेंगे ।।२१४।। ब्रह्मा, अनन्त एवं शिव के आराध्य देव कृष्ण तुम्हारे वशीभूत रहेंगे, जो सभी योगियों के भी ध्यान में न आने योग्य हैं तथा जिनकी आराधना दुःसाध्य है । अतः हे राधे ! सभी जाति में तुमसे बढ़कर सौभाग्यवती कोई नहीं है । पश्चात् भगवान् कृष्ण के साथ तुम गोलोक चली जाओगी ।।२१५-२१६।। मुने ! इतना कहकर पार्वती तुरन्त अन्तर्हित हो गयीं । तब गोपियों के साथ राधिका भी जाने को उद्यत हुईं ।।२१७।। इतने में श्रीकृष्ण राधिका के सामने उपस्थित हो गये । राधिका ने श्रीकृष्ण को देखा, जो किशोर, श्यामसुन्दर, पीताम्बर पहने, अनेक भाँति के अलङ्कारों से भूषित, जानु (घुटने) पर्यन्त मालती माला और वनमाला से विभूषित, मन्दहास समेत प्रसन्न मुख, भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए कातर, चन्दन-चर्चित सर्वाङ्गवाले, शारदीय कमल की भाँति नेत्रवाले, शरत्पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान मुखवाले, उत्तम रत्न के मुकुट से प्रकाशित, पके अनारदाने के समान दाँतवाले, अत्यन्त मनोहर, विनोद के लिए हाथ में मुरली और लीला कमल लिये हुए, करोड़ों काम के समान सुन्दर, लीलाधाम, मनोहर, गुणों से परे, ब्रह्मा, अनन्त एवं शिव आदि देवों से स्तुति किये जाते हुए, ब्रह्मस्वरूप, ब्राह्मण-हितैषी, श्रुतियों से अनिरूपित, अव्यक्त, अविनाशी, व्यक्त, ज्योतिःस्वरूप, सनातन, मङ्गलकारी, मङ्गल के आधार, मङ्गलमय और मङ्गलदायक हैं ।।२१८-२२४।। ऐसे अद्भुत रूप को देखकर राधा ने संभ्रमपूर्वक प्रणाम किया । उन्हें देखकर राधिका कामबाण से अत्यन्त पीड़ित होने के कारण मूर्च्छित हो गयीं ।।२२५।। वे प्रियतम के मुखारविन्द को बाँकी चितवन से देख-देखकर मुसकराने लगीं । और लज्जावश पुनः-पुनः अपना मुख ढँक लेती थीं ।।२२६।। प्रसन्नमुख और नेत्रवाले हरि तब राधा

दृष्ट्वा हरिस्तामुवाच प्रसन्नवदनेक्षणः । गोपालिकासमूहानां सर्वेषां पुरतः स्थितः ॥२२७॥

### श्रीकृष्ण उवाच

प्राणाधिके राधिके त्वं वरं वृणु मनीषितम् । भो भो गोपालिकाः सर्वा वरं वृणुत वाञ्छितम् ॥२२८॥
कृष्णस्य वचनं श्रुत्वा वरं वव्रे च राधिका । गोपालिकाः प्रहृष्टाश्च सर्वसंकल्पपादपात् ॥२२९॥

### राधिकोवाच

त्वत्पादाब्जे मन्मनोलिः सततं भ्रमतु प्रभो । पातुं भक्तिरसं पद्मे मधुपश्च यथा मधु ॥२३०॥
मदीयप्राणनाथस्त्वं भव जन्मनि जन्मनि । त्वदीयचरणाम्भोजे देहि भक्तिं सुदुर्लभाम् ॥२३१॥
तव स्मृतौ गुणे चित्तं स्वप्ने ज्ञाने दिवानिशम् । भवेन्निमग्नं सततमेतन्मम मनीषितम् ॥२३२॥

### गोपालिका ऊचुः

यथा राधा तथा नश्च प्राणबन्धो दिवानिशम् । भविष्यसि प्राणनाथः पास्यसि प्रतिजन्मनि ॥२३३॥
आसां च वचनं श्रुत्वा तथास्त्वेवमुवाच ह । प्रसन्नवदनः श्रीमान्यशोदानन्दवर्धनः ॥२३४॥
क्रीडापद्मं राधिकायै सहस्रदलसंयुतम् । ललितां मालतीमालां ददौ प्रीत्या जगत्पतिः ॥२३५॥

---

को देखकर सभी गोपियों के समूह के सामने खड़े होकर राधा से बोले ॥२२७॥

**श्रीकृष्ण ने कहा**—हे प्राणाधिके, राधे ! मन इच्छित वर मांगो और गोपियो ! तुम भी अपना अभीष्ट वर कहो ॥२२८॥ कृष्ण की बात सुनकर राधिका तथा गोप-कन्याओं ने अत्यन्त हर्षित होकर समस्तकामना-कल्पवृक्ष (प्रभु) से वर मांगा ॥२२९॥

**राधिका बोलीं**—प्रभो ! भक्तिरस का पान करने के लिए मेरा मनरूपी भ्रमर आपके चरण-कमल में निरन्तर भ्रमण किया करे, जैसे मधु पीने के लिए भौंरा कमल पर मंडराता रहता है ॥२३०॥ प्रत्येक जन्म में आप मेरे प्राणनाथ हों, आप अपने चरणकमल की अति दुर्लभ भक्ति प्रदान करें ॥२३१॥ मेरा चित्त, सोते-जागते रात-दिन सभी समय तुम्हारे स्मरण और गुणों के वर्णन में सतत लगा रहे, यही मेरा अभीष्ट है ॥२३२॥

**गोपियाँ बोलीं**—हे प्राणबन्धो ! प्रत्येक जन्म में जैसे राधा के आप अहर्निश प्राणनाथ और रक्षक हैं, वैसे हमारे भी हों ॥२३३॥ उनकी बात सुनकर प्रसन्नमुख श्रीमान् यशोदानन्दन ने 'तथास्तु' कहकर स्वीकार किया ॥२३४॥ अनन्तर जगत्पति भगवान् ने बड़े प्रेम से राधिका को सहस्रदलवाला क्रीड़ाकमल और ललिता

मालासमूहं पुष्पाणि गोपीभ्यो गोपिकापतिः। प्रहस्य परमप्रीत्या प्रददावित्युवाच ह ॥२३६॥

**श्रीकृष्ण उवाच**

त्रिषु मासेष्वतीतेषु यूयं क्रीडा मया सह। रासमण्डलरम्ये च वृन्दारण्ये करिष्यथ ॥२३७॥
[1]यथाऽहं च तथा यूयं नाहं (यं) भेदः श्रुतौ श्रुतः। प्राणोऽहं चैव युष्माकं यूयं प्राणा मम प्रभोः ॥२३८॥
व्रतं वो लोकरक्षार्थं न हि स्वार्थमिदं प्रियाः। सहाऽऽगताश्च गोलोकादगमनं च मया सह ॥२३९॥
गच्छत स्वालयं शीघ्रं वोऽहं जन्मनि जन्मनि। प्राणेभ्योऽपि गरीयस्यो यूयं मे नात्र संशयः ॥२४०॥
इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तत्र तस्थौ सूर्यसुतातटे। तस्थुर्गोपालिकाः सर्वा वीक्ष्य कृष्णं पुनः पुनः ॥२४१॥
सर्वाः प्रहृष्टवदनाः सस्मिता वक्रलोचनाः। प्रीत्या चक्षुश्चकोराभ्यां मुखचन्द्रं पपुर्हरेः ॥२४२॥
ताः शीघ्रं प्रययुर्गेहं जयं दत्त्वा पुनः पुनः। हरिश्च शिशुभिः सार्धं प्रसन्नः स्वालयं ययौ ॥२४३॥
इत्येवं कथितं सर्वं हरेश्चरितमङ्गलम्। गोपीनां वस्त्रहरणं सर्वलोकसुखावहम् ॥२४४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० गोपिकावस्त्रहरणप्रस्तावो नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

---

को मालती माला प्रदान की ॥२३५॥ फिर गोपिकापति कृष्ण ने हँसकर अन्य गोपियों को पुष्प तथा मालाओं का समूह परमप्रीतिपूर्वक भेंट किया और कहा ॥२३६॥

**श्रीकृष्ण बोले**—तीन मास बीत जाने पर वृन्दावन के रमणीक रासमण्डल में तुम लोग मेरे साथ क्रीड़ा करोगी ॥२३७॥ जैसा मैं हूँ, वैसी ही तुम हो। हममें-तुममें कोई भेद वेद में नहीं सुना गया है। मैं तुम लोगों का प्राण हूँ और तुम लोग मुझ प्रभु के प्राण हो ॥२३८॥ प्रियागण ! यह तुम्हारा व्रत स्वार्थ के लिए नहीं, अपितु लोकरक्षार्थ हुआ है—गोलोक से तुम लोग मेरे साथ आये हो। और फिर मेरे साथ ही तुम्हें वहाँ जाना है ॥२३९॥ अब शीघ्र अपने घर जाओ। मैं जन्म-जन्म में तुम्हारा ही हूँ। तुम मेरे लिए प्राणों से बढ़कर हो, इसमें सन्देह नहीं है ॥२४०॥ इतना कहकर श्रीकृष्ण वहीं यमुना-तट पर बैठ गये और गोपियाँ भी भगवान् को बार-बार देखकर बैठ गयीं ॥२४१॥ सभी गोपियाँ प्रसन्नमुख, मुसकराती हुई और तिरछी चितवन डालती हुई अपने नेत्र चकोरों द्वारा भगवान् के मुखचन्द्र को प्रेम से पीने लगीं ॥२४२॥ अनन्तर भगवान् की बार-बार जय बोलकर वे गोपियाँ शीघ्र अपने-अपने घर चली गयीं और भगवान् भी बालकों के साथ प्रसन्न होकर अपने घर लौटे ॥२४३॥ इस प्रकार मैंने भगवान् का सम्पूर्ण मंगल चरित कह दिया। गोपियों का वस्त्रहरण-प्रसंग सभी लोगों के लिए सुखदायक है ॥२४४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारायण-नारद संवाद में गोपियों के वस्त्रहरण प्रस्ताव नामक सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२७॥

---

१. एकोऽहं।

# अष्टाविंशोऽध्यायः

### नारद उवाच

त्रिषु मासेष्वतीतेषु तासधं च हरिणा सह। वद केन प्रकारेण बभूव [1]तनुसंगमः ॥१॥
वृन्दावनं किंप्रकारं किंविधं रासमण्डलम्। हरिरेकस्ताश्च बह्वः केन क्रीडा बभूव ह ॥२॥
कुतूहलं भवति मे इदं श्रोतुं नवं नवम्। कथयस्व महाभाग पुण्यश्रवणकीर्तन ॥३॥
कथा पुराणसाराणां रासयात्रा हरेरहो। हरिलीलाः पृथिव्यां तु सर्वाः श्रुतिमनोहराः ॥४॥

### सूत उवाच

नारदस्य वचः श्रुत्वा ऋषिर्नारायणः स्वयम्। प्रहस्य सुप्रसन्नास्यः प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥५॥

### नारायण उवाच

एकदा श्रीहरिर्नक्तं वनं वृन्दावनं ययौ। शुभे शुक्लत्रयोदश्यां पूर्णे चन्द्रोदये मुने ॥६॥
यूथिकामालतीकुन्दमाधवीपुष्पवायुना। वासितं कलनादेन मधुभ्राणां मनोहरम् ॥७॥

---

# अध्याय २८

## रासलीला-प्रस्ताव

**नारद बोले**—तीन मास व्यतीत होने पर उन गोपियों का समागम श्रीकृष्ण के साथ किस प्रकार हुआ वह बता दें ॥१॥ वह वृन्दावन किस प्रकार का है और रासमण्डल का क्या स्वरूप है? श्रीकृष्ण तो एक थे और गोपियाँ अनेक। फिर रासक्रीड़ा कैसे संभव हुई ॥२॥ महाभाग! आपके नाम का श्रवण और कीर्तन पवित्र है। यह नया-नया विषय सुनने के लिए मुझे कुतूहल हो रहा है, कहिये ॥३॥ अहो! हरि की रासलीला पुराणों के तत्त्वों की कथा है। पृथिवी पर (की गयीं) हरि की सभी लीलाएँ सुनने में मनोहर हैं ॥४॥

**सूत बोले**—नारद की बात सुनकर स्वयं नारायण ऋषि प्रसन्नमुख हो हँसकर कहने लगे ॥५॥

**नारायण बोले**—मुने! एक दिन श्रीकृष्ण चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी तिथि को पूर्णचन्द्रोदय होने के पश्चात् वृन्दावन गये ॥६॥ उस समय वन जूही, मालती, कुन्द और माधवी लता के पुष्पों से सम्पृक्त

---

[1] क. नव°।

नवपल्लवसंयुक्तं पुंस्कोकिलरुतश्रुतम् । नवलक्षरासवाससंयुक्तं सुमनोहरम् ॥८॥
चन्दनागुरुकस्तुरीकुङ्कुमेन सुवासितम् । कर्पूरान्विततताम्बूलभोगद्रव्यसमन्वितम् ॥९॥
प्रसूनैश्चम्पकानां च कस्तूरीचन्दनान्वितैः । रतियोग्यैर्विरचितैर्नानातल्पैः सुशोभितम् ॥१०॥
दीप्तं रत्नप्रदीपैश्च धूपेन सुरभीकृतम् । नानापुष्पैश्च रचितं मालाजालैर्विराजितम् ॥११॥
परितो वर्तुलाकारं तत्रैव रासमण्डलम् । चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमेन सुसंस्कृतम् ॥१२॥
पुष्पोद्यानैः पुष्पितैश्च युक्तं क्रीडासरोवरैः । हंसकारण्डवाकीर्णैर्जलकुक्कुटकूजितैः ॥१३॥
क्रीडनीयैः सुन्दरैश्च सुरतश्रमहारिभिः । शुद्धस्फटिकसंकाशतोयपूर्णैः सुनिर्मलैः ॥१४॥
दधिपूर्णशुक्लधान्यलाजैर्निर्मञ्छनीकृतम्[1] । रम्भास्तम्भसमूहेन सुन्दरेण सुशोभितम् ॥१५॥
आम्रपल्लवयुक्तेन सूत्रबन्धेन चारुणा । भूषितं मङ्गलघटैः सिन्दूरचन्दनान्वितैः ॥१६॥
मालतीमाल्यसंयुक्तैर्नारिकेलफलान्वितैः । स रासमण्डलं दृष्ट्वा जहास मधुसूदनः ॥१७॥
चकार तत्र कुतुकाद्विनोदमुरलीरवम् । गोपीनां कामुकीनां च कामवर्धनकारणम् ॥१८॥
तच्छ्रुत्वा राधिका सद्यो मुमोह मदनातुरा । बभूव स्थाणुवद्देहा ध्यानैकतानमानसा ॥१९॥

---

वायु से सुवासित और भौंरों के मधुर गुन्जार से अति मनोहर था ॥७॥ नवीन पल्लवों से संयुक्त, कोकिलों की ध्वनि से मुखरित तथा नौ लाख रास-गृहों से युक्त होने के कारण वृन्दावन और भी मनोहर लग रहा था ॥८॥ वह चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुम से सुवासित, कपूर युक्त ताम्बूल तथा भोग द्रव्य से समन्वित था ॥९॥ कस्तूरी एवं चन्दन से चर्चित तथा चम्पा के फूलों से युक्त, रति करने के योग्य सुन्दर शय्याओं से सुशोभित था ॥१०॥ रत्नों के दीपकों से अत्यन्त प्रकाशित, धूपों से सुगन्धित, अनेक भाँति के पुष्पों से रचित तथा विविध मालाओं से विराजित था ॥११॥ वहीं सब ओर से गोलाकार रासमण्डल बनाया गया था। चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुम से वहाँ संस्कार किया गया था ॥१२॥ वहाँ पुष्पित पुष्पोद्यान तथा क्रीडासरोवर थे, जिनमें हंस, बत्तख भरे पड़े थे, जलमुर्गियाँ कूज रही थीं ॥१३॥ शुद्ध स्फटिक की भाँति अति निर्मल जल उसमें लहरा रहा था। वे क्रीड़ा करने योग्य, सुन्दर और सुरत श्रम को हरण करनेवाले थे ॥१४॥ उस रासमण्डल में दही, अक्षत और लावे छिड़के गये थे। सुन्दर कदली-स्तम्भों के समूह से वह सुशोभित था ॥१५॥ सूत में बंधे हुए आम के पल्लवों की मनोहर वन्दनवारों तथा सिन्दूर, चन्दनयुक्त मंगल-कलशों से उसको सजाया गया था। मंगल-कलशों के साथ मालती की मालाएँ और नारियल के फल भी थे। रासमण्डल को देखकर वे मधुसूदन हँस पड़े ॥१६-१७॥ उन्होंने कौतुकवश विनोद की साधनभूता मुरली को वहाँ बजाया, जो कामुक गोपियों के काम को बढ़ाने का कारण बना ॥१८॥ वह सुनकर राधिका तुरन्त कामातुर होकर सुध-बुध खो बैठीं। उनका शरीर ठूंठे काठ की तरह निश्चल तथा चित्त ध्यान में एकतान हो गया ॥१९॥ क्षण में चेतना

---

१ ख. 'जलै'।

क्षणेन चेतनां प्राप्य पुनः शुश्राव सा ध्वनिम् । उवास सा समुत्तस्थौ समुद्विग्ना पुनः पुनः ॥२०॥
त्यक्त्वा चाऽऽवश्यकं कर्म निःससार द्रुतं गृहात् । ययौ तदनुसारेण प्रसमीक्ष्य चतुर्दिशम् ॥२१॥
ध्यायन्ती चरणाम्भोजं श्रीकृष्णस्य महात्मनः । तेजसा च द्योतयन्ती सद्रत्नसारभूषणैः ॥२२॥
बहिर्बभूवुस्तास्त्रस्ता रवेण हृतचेतनाः । कुलधर्मं परित्यज्य निःशङ्काः काममोहिताः ॥२३॥
त्रयस्त्रिंशद्वयस्याश्च ताः सुशीलादयः स्मृताः । राधिकायाः प्रियतमा गोपीनां प्रवरा ययुः ॥२४॥
तासां पश्चाद्ययुर्गोप्यस्तासां संख्यां निबोध मे । समा वेषेण वयसा रूपेण च गुणेन च ॥२५॥
ययुः सुशीलासङ्गेन सहस्राणि च षोडश । ययुश्चन्द्रमुखीपश्चात्सहस्राणि च [1]षोडश ॥२६॥
एकादश सहस्राणि माधव्यालयश्च निर्ययुः । जग्मुः कदम्बमालालयः सहस्राणि त्रयोदश ॥२७॥
ययुः कुन्तीवयस्याश्च सहस्राणि दश स्मृताः । चतुर्दश सहस्राणि ययुस्ता यमुनानुगाः ॥२८॥
जाह्नवीसहचारिण्यः सहस्राणि ययुर्नव । ययुर्नव सहस्राणि पद्ममुख्यालय एव च ॥२९॥
सावित्र्यालयः पञ्चदश सहस्राणि ययुर्व्रजात् । पारिजातावयस्याश्च सहस्राणि ययुर्दश ॥३०॥
स्वयंप्रभानुगाः सप्त सहस्राणि ययुर्व्रजात् । ययुः सुधामुखी गोप्यः सहस्राणि चतुर्दश ॥३१॥
शुभानुगा ययुर्गोप्यः सहस्राणि चतुर्दश । पद्मानुगा ययुर्गोप्यः सहस्राणि चतुर्दश ॥३२॥

---

प्राप्त होने पर उन्हें पुनः वहीं ध्वनि सुनायी पड़ी। वे उठकर खड़ी हो गयीं। अब उन्हें बार-बार उद्वेग होने लगा, वे आवश्यक कर्म छोड़कर शीघ्र घर से निकल पड़ीं। चारों ओर देखकर वंशीध्वनि का अनुसरण करती हुई आगे बढ़ीं ॥२०-२१॥ वे महात्मा श्रीकृष्ण के चरणारविन्द का ध्यान करती हुई जा रही थीं। वे अपने तेज तथा उत्तम रत्नों के सारभाग से बने आभूषणों के तेज से प्रकाश फैला रही थीं ॥२२॥ उनकी सखियाँ भी मुरली की ध्वनि से डरकर सुध-बुध खो बैठीं। काममोहित गोपियों ने निःशंक होकर कुलधर्म का परित्याग कर दिया ॥२३॥ राधा की परम प्रिय तथा गोपियों में श्रेष्ठ तैंतीस सखियाँ सुशीला आदि नामों से प्रसिद्ध थीं, जो उनके साथ जा रही थीं ॥२४॥ उनके पीछे जो गोपियाँ गयीं, उनकी संख्या मुझसे सुनो। वे सब वेश, अवस्था, रूप और गुण में एक जैसी थीं ॥२५॥ सुशीला के साथ सोलह सहस्र गोपियाँ जा रही थीं। फिर चन्द्रमुखी के पीछे सोलह सहस्र गोपियाँ जा रही थीं ॥२६॥ माधवी के साथ ग्यारह सहस्र सखियाँ निकल पड़ीं। कदम्बमाला के साथ तेरह सहस्र सखियाँ चल पड़ीं ॥२७॥ कुन्ती के दस सहस्र सखियाँ थीं। यमुना के पीछे चौदह सहस्र सखियाँ जा रही थीं ॥२८॥ जाह्नवी के साथ नव सहस्र तथा चन्द्रमुखी के साथ भी नव सहस्र सखियाँ चल रही थीं ॥२९॥ सावित्री के साथ पन्द्रह सहस्र सखियाँ व्रज से गयीं। पारिजाता के साथ दस सहस्र जा रही थीं ॥३०॥ स्वयंप्रभा के पीछे सात सहस्र सखियाँ व्रज से चल पड़ीं। सुधामुखी के साथ चौदह सहस्र थीं ॥३१॥ शुभा के साथ भी चौदह सहस्र गोपियाँ गयीं। पद्मा के पीछे चौदह सहस्र गोपियाँ थीं ॥३२॥ गौरीपद्मा के साथ चौदह सहस्र और

---

१ क. त्रयोदश।

गौरीपश्चा ययुर्गोप्यः सहस्राणि चतुर्दश[1]। ययुः सर्वमङ्गलाल्यः सहस्राणि च षोडश ॥३३॥
कालिकाल्यो ययुर्गोप्यः सहस्राणि च[2] षोडश। निर्ययुः कमलाल्यश्च सहस्राणि त्रयोदश ॥३४॥
दुर्गानुगा ययुर्गोप्यः सहस्राणि च षोडश। ययुः सरस्वतीपश्चात्सहस्राणि त्रयोदश ॥३५॥
प्रजग्मुर्भारतीपश्चात्सहस्राणि दश व्रजात्। अपर्णासहचारिण्यः सहस्राणि चतुर्दश ॥३६॥
रतिपश्चाद्वयस्याश्च सहस्राणि [3]ययुर्दश। गङ्गावयस्याः प्रययुः सहस्राणि चतुर्दश ॥३७॥
प्रजग्मुरम्बिकापश्चात्सहस्राणि च षोडश। सतीपश्चाद्ययुर्गोप्यः सहस्राणि त्रयोदश ॥३८॥
नन्दिनीसहचारिण्यः सहस्राणि ययुर्दश। प्रययुः सुन्दरीपश्चात्सहस्राणि त्रयोदश ॥३९॥
ययुः कृष्णप्रियापश्चात्सहस्राणि च षोडश। ययुर्मधुमतीपश्चात्सहस्राणि च[4] षोडश ॥४०॥
ययुश्चम्पानुगा गोप्यः सहस्राणि त्रयोदश। चन्दनाल्यो ययुः पश्चात्सहस्राणि च[5] षोडश ॥४१॥
सर्वा बभूवुरेकत्र तत्र तस्थुः पलं मुदा। तत्राऽऽययुर्गोपिकाश्च मालाहस्ताश्च काश्चन ॥४२॥
चारुचन्दनहस्ताश्च काश्चित्तत्राऽऽययुर्व्रजात्। श्वेतचामरहस्ताश्च काश्चित्तत्राऽऽययुर्मुदा ॥४३॥
तत्राऽऽययुर्गोपकन्याः काश्चित्कस्तूरिकाकराः। तत्राऽऽययुर्गोपकन्याः काश्चित्कुङ्कुमवाहिकाः ॥४४॥
काश्चित्तत्राऽऽययुर्गोप्यस्ताम्बूलपात्रवाहिकाः। यावत्काञ्चनवस्त्राणां वाहिका गोपकन्यकाः ॥४५॥

---

सर्वमङ्गला की सोलह सखियाँ थीं ॥३३॥ कालिका की सोलह सहस्र तथा कमला की तेरह सहस्र सखियाँ थी ॥३४॥ दुर्गा के पीछे सोलह सहस्र सखियाँ गयीं और सरस्वती के पीछे तेरह सहस्र ॥३५॥ भारती के पीछे दस सहस्र गोपियाँ व्रज से गयीं। अपर्णा के साथ जानेवाली चौदह सहस्र गोपियाँ थीं ॥३६॥ रति के पीछे दस सहस्र गयीं और गङ्गा के साथ चौदह सहस्र ॥३७॥ अम्बिका के पीछे सोलह सहस्र गयीं और सती के पीछे तेरह सहस्र गोपियाँ थीं ॥३८॥ नन्दिनी के साथ चलनेवाली दस सहस्र गोपियाँ थीं और सुन्दरी के पीछे तेरह सहस्र जा रही थीं ॥३९॥ कृष्णप्रिया के पीछे सोलह सहस्र और मधुमती के पीछे भी सोलह सहस्र हो गयीं ॥४०॥ चम्पा का अनुगमन करनेवाली तेरह हजार गोपियाँ थीं और चन्दना की सखियाँ सोलह हजार ॥४१॥ वे सब एकत्र होकर कुछ देर तक प्रसन्नतापूर्वक खड़ी रहीं। वहाँ कुछ गोपियाँ अपने हाथों में माला लिये आयी थीं ॥४२॥ कुछ गोपांगनाएँ व्रज से मनोहर चन्दन हाथ में लेकर पहुँची थीं। कई तो हाथों में श्वेत चँवर लेकर हर्ष से वहाँ आयी थीं ॥४३॥ कुछ गोपियाँ हाथ में कस्तूरी लेकर वहाँ आयी थीं। कुछ गोप-कन्याएँ केसर लेकर आयी थीं ॥४४॥ कुछ गोपियाँ ताम्बूल-पात्र तथा काञ्चन, वस्त्र लिये आयी थीं ॥४५॥ कुछ शीघ्रता-

---

१ क. चतुर्दश। २ क. चतुर्दश। ३ क. चतुर्दश। ४ क. चतुर्दश। ५ क. चतुर्दश।

काश्चित्तत्राऽऽययुः शीघ्रं यत्र चन्द्रावली मुदा। सर्वाश्चैकत्र संभूय सस्मिताश्च मुदाऽन्विता ॥४६॥
विधाय राधिकावेषं स्थानाश्च प्रययुर्मुदा। चक्रुः पुनः पुनस्ताश्च हरिशब्दजपं पथि ॥४७॥
प्रापुर्वृन्दावनं रम्यं ददृशू रासमण्डलम्। स्वर्गेभ्यः सुन्दरं दृश्यं राकापतिकरान्वितम् ॥४८॥
सुनिर्जनं कुसुमितं वासितं पुष्पवायुना। नारीणां कामजननं मुनिमोहनकारणम् ॥४९॥
शुश्रुवुस्तत्र ताः सर्वाः पुंस्कोकिलकलध्वनिम्। अतिसूक्ष्मकलं चापि भ्रमराणां मनोहरम् ॥५०॥
प्रसूनमधुमत्तानां भ्रमरीसङ्गसङ्गिनाम्। शुभे क्षणे प्रविवेश राधिका रासमण्डलम् ॥५१॥
सर्वाभिरालिभिः सार्धं ध्यात्वा कृष्णपदाम्बुजम्। राधामारात्तु संवीक्ष्य कृष्णस्तत्र मुदाऽन्वितः ॥५२॥
जगामानुव्रजन्प्रीत्या सस्मितो मदनातुरः। मध्यस्थां सखिसंघानां रत्नालंकारभूषिताम् ॥५३॥
दिव्यवस्त्रपरीधानां सस्मितां वक्रलोचनाम्। गजेन्द्रगामिनीं रम्यां मुनिमानसमोहिनीम् ॥५४॥
नवीनवेषवयसा रूपेणातिमनोहराम्। तल (स्तन) श्रोणिनितम्बानां भारशेषान्वितां पराम् ॥
चारुचम्पकवर्णाभां शरच्चन्द्रनिभाननाम्। बिभ्रतीं कबरीभारं मालतीमाल्यसंयुतम् ॥५५॥
राधा ददर्श श्रीकृष्णं किशोरं श्यामसुन्दरम्। नवयौवनसंपन्नं रत्नाभरणभूषितम् ॥५६॥

---

पूर्वक उस स्थान पर आयीं; जहाँ चन्द्रावली (राधा) सानन्द खड़ी थीं। वे सब एकत्र हो, प्रसन्नतापूर्वक मुसकराती हुई वहाँ राधा की वेश-भूषा सँवारकर बड़े हर्ष के साथ आगे बढ़ीं। मार्ग में बार-बार हरि नाम का जप करती हुई वे वृन्दावन पहुँचीं और वहाँ रमणीक रासमण्डल देखा जहाँ का दृश्य चन्द्र-किरणों से युक्त होकर स्वर्ग से भी सुन्दर था ॥४६-४८॥ वह अत्यन्त निर्जन, पुष्पित, विकसित पुष्प-वायु से सुवासित, नारियों के काम को जगानेवाला, मुनियों को भी मोहित करनेवाला था ॥४९॥ वहाँ उन सबों को कोकिल की मधुर ध्वनि सुनायी पड़ी। भौंरों का अतिसूक्ष्म और मधुर गुञ्जार भी मनोहर जान पड़ता था ॥५०॥ वे भ्रमर भ्रमरियों के साथ रहकर पुष्पों का मकरन्द-पान करके मतवाले हो गये थे। शुभ मुहूर्त में राधिका ने समस्त सखियों के साथ श्रीकृष्ण के चरण-कमल का ध्यान करके रासमण्डल में प्रवेश किया। वे राधा को अपने सन्निकट देखकर बड़े प्रसन्न हुए ॥५१-५२॥ वे कामातुर होकर मुसकराते हुए बड़े प्रेम से उनके पीछे-पीछे चलने लगे। राधा सखियों के मध्य में रत्नों के अलङ्कारों से भूषित तथा दिव्यवस्त्र पहने हुई थीं। वे मुसकराती हुई बाँकी चितवन से प्रियतम को देखती हुई गजराज की भाँति मन्दगति से चल रही थीं। रमणीय राधा मुनियों के चित्त को भी मोहित करनेवाली थीं ॥५३-५४॥ वे नूतन वेश, नवीन अवस्था तथा रूप से अति मनोहर जान पड़ती थीं। स्तन, श्रोणी तथा नितम्बों के भार से अलसायी हुई सुन्दर चम्पा के समान अंग-कान्तिवाली, शारदीय चन्द्रमा के समान मुखवाली और मालती माला से युक्त वेणी का भार वहन करनेवाली राधा ने किशोरावस्था से युक्त श्यामसुन्दर कृष्ण को देखा। वे नवीन यौवन से सम्पन्न, रत्नों के भूषणों से भूषित तथा करोड़ों कामदेवों

कन्दर्पकोटिलावण्यलीलाधाम मनोहरम् । प्राणाधिकां तां पश्यन्तं पश्यन्तीं वक्रचक्षुषा ।।५७।।
परमाद्भुतरूपं च सर्वत्रानुपमं परम् । विचित्रवेषं चूडां च बिभ्रतं सस्मितं मुदा ।।५८।।
पक्ष्मलोचनकोणेन दर्शं दर्शं पुनः पुनः । मुखमाच्छादयाञ्चक्रे व्रीडया सस्मिता सती ।।५९।।
मूर्च्छामवाप सा सद्यः कामबाणप्रपीडिता । पुलकाञ्चितसर्वाङ्गी बभूव हृतचेतना ।।६०।।
कटाक्षकामबाणैश्च विद्धः क्रीडारसोन्मुखः । मूर्च्छां प्राप्य न पपात तस्थौ स्थाणुसमो हरिः ।।६१।।
पपात मुरली तस्य क्रीडाकमलमुज्ज्वलम् । द्वितीयं पीतवस्त्रं च शिखिपिच्छं शरीरतः ।।६२।।
क्षणेन चेतनां प्राप्य ययौ राधान्तिकं मुदा । कृत्वा वक्षसि तां प्रीत्या समाश्लिष्य चुचुम्ब सः ।।६३।।
श्रीकृष्णस्पर्शमात्रेण संप्राप्य चेतनां सती । प्राणाधिकं प्राणनाथं समाश्लिष्य चुचुम्ब ह ।।६४।।
मनो जहार राधायाः कृष्णस्तस्य च सा मुने । जगाम राधया सार्धं रसिको रतिमन्दिरम् ।।६५।।
रत्नप्रदीपसंयुक्तं रत्नदर्पणसंयुतम् । चारुचम्पकशय्याभिश्चन्दनाक्ताभी राजितम् ।।६६।।
कर्पूरान्विततांबूलैर्भोगद्रव्यैः समन्वितम् । उवास राधया सार्धं कृष्णस्तत्र मुदाऽन्वितः ।।६७।।
राधया दत्ततांबूलं चखाद मधुसूदनः । रासेश्वरी कृष्णदत्तं ताम्बूलं बुभुजे मुदा ।।६८।।

---

की लावण्यलीला के मनोहर लीलाधाम थे । वे बाँके नयनों से उनकी ओर निहारती हुई उन प्राणाधिका राधिका को देख रहे थे ।।५५-५७।। उनके परम अद्भुत रूप की कहीं उपमा नहीं थी । वे विचित्र वेश तथा मुकुट धारण किये सानन्द मुसकरा रहे थे ।।५८।। बाँके नेत्रों के कोण से बार-बार प्रियतम की ओर देख-देखकर सती राधा ने लज्जा-वश मुख को आँचल से ढँक लिया ।।५९।। वे तुरन्त कामबाण से अत्यन्त पीड़ित होने के कारण मूर्च्छित हो गयीं । उनके सारे अंग पुलकित हो उठे, वे सुध-बुध खो बैठीं । ६० । क्रीड़ा रस के लिए तैयार हरि कटाक्षों और कामबाणों से आहत होने से मूर्च्छा प्राप्त करके भी गिरे नहीं, बल्कि ठूँठ काठ के समान स्थित रहे ।।६१।। उनके हाथ से मुरली गिर गयी, उज्ज्वल क्रीड़ा कमल भी गिर पड़ा और उनके शरीर से द्वितीय पीताम्बर एवं मोरपंख खिसक गये ।।६२।। क्षण में चेतना पाकर वे प्रेम से राधिका के समीप गये और उन्हें अपने हृदय से लगा-कर प्रेम से आलिङ्गन करके चुम्बन लिया । ६३ । श्रीकृष्ण के स्पर्श मात्र से चेतना प्राप्त करके सती राधा ने भी प्राणाधिक प्रियतम का गाढालिंगन करके चुम्बन लिया ।।६४।। कृष्ण ने राधा के मन को चुरा लिया और राधा ने कृष्ण के मन को । अनन्तर रसिक हरि राधा के साथ रति-मन्दिर में गये ।।६५।। वहाँ रत्न के दीपक जल रहे थे और दर्पण रखे थे । रति-मन्दिर चन्दन-चर्चित सुन्दर चम्पा पुष्पों की शय्याओं से विराजमान था ।।६६।। वह कर्पूरयुक्त ताम्बूल एवं भोगपदार्थों से समन्वित था । वहाँ श्रीकृष्ण राधा के साथ बैठ गये ।।६७।। राधा के दिये हुए पान को मधुसूदन ने खाया और कृष्ण के दिये हुए पान को रासेश्वरी ने हर्ष से खाया ।।६८।।

दत्तं चर्विततताम्बूलं राधायै प्रभुणा मुदा। चखाद भक्त्या सा तूर्णं प्रहस्य मदनातुरा ॥६९॥
राधाचर्विततताम्बूलं ययाचे माधवो मुदा। न ददौ राधिका भीता पपात चरणाम्बुजे ॥७०॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र सकामः सुरतोन्मुखः। सुष्वाप राधया सार्धं रतितल्पे मनोहरे ॥७१॥
शृंगाराष्टप्रकारं च विपरीतादिकं विभुः। नखदन्तकराणां च प्रहारं च यथोचितम् ॥७२॥
कामशास्त्रेषु यद्गोप्यं चुम्बनाष्टविधं परम्। कामिनीनां मनोहारि चकार रसिकेश्वरः ॥७३॥
अङ्गैरङ्गानि प्रत्यङ्गैः प्रत्यङ्गानि स्मरातुरः। चकाराऽऽश्लेषणं तत्र कामुकीनां सुखावहम् ॥७४॥
शृङ्गारकुशलौ तौ तु कामशास्त्रसुपण्डितौ। रतियुद्धविरामश्च न बभूव द्वयोरपि ॥७५॥
एवं गृहे गृहे रम्ये नानामूर्ति विधाय च। रेमे गोपाङ्गनाभिश्च सुरम्ये रासमण्डले ॥७६॥
अभ्यन्तरे रतिं कृत्वा बहिः क्रीडां चकार ह। गोपीगोपसमाश्लिष्टः सर्वत्र रासमण्डले ॥७७॥
गोपीनां नव लक्षाणि गोपानां च तथैव च। लक्षाण्यष्टादश मुने युक्तानि रासमण्डले ॥७८॥
मुक्तकेशानि नग्नानि विच्छिन्नभूषणानि च। वेषोच्छिन्नानि मत्तानि मूर्च्छितानि स्मरेण च ॥७९॥
कङ्कणानां किङ्किणीनां वलयानां च नारद। सद्रत्ननूपुराणां च शब्दयुक्तानि संततम् ॥८०॥
एवं कृत्वा स्थलक्रीडां ययुस्तानि जलं मुदा। कृत्वा तत्र चिरं क्रीडां परिश्रान्तानि सांप्रतम् ॥८१॥
तूर्णं जलात्समुत्थाय वासांसि परिधाय च। ददृशुर्मुखपद्मानि सद्रत्नदर्पणेषु च ॥८२॥

---

भगवान् ने आनन्दवश अपना चबाया हुआ पान राधा को दिया, जिसे मदनातुरा रासेश्वरी ने हँसकर भक्तिपूर्वक शीघ्र खा लिया ॥६९॥ फिर राधा के चबाये हुए पान को माधव ने हर्ष से माँगा किन्तु राधा ने नहीं दिया, अपितु वे भयभीत होकर उनके चरण-कमल पर गिर पड़ीं ॥७०॥ इस बीच रति करने के लिए उद्यत सकाम कृष्ण राधा के मनोहर रति-शय्या पर लेट गये ॥७१॥ भगवान् ने विपरीत आदि आठ प्रकार के शृङ्गारों का उपभोग किया—नखों, दाँतों और हाथों से यथोचित प्रहार किया ॥७२॥ कामशास्त्रों में कामिनियों के मन को हरण करनेवाले जो गोपनीय आठ प्रकार के चुम्बन बताये गये हैं, उन सबको रसिकेश्वर ने किया ॥७३॥ कामातुर हरि ने राधिका के अङ्ग-प्रत्यङ्गों से अपने अंग-प्रत्यंगों को सटाकर कामुकी स्त्रियों के लिए सुखप्रद आलिंगन किया ॥७४॥ वे दोनों शृङ्गार-निपुण और काम-शास्त्र के उत्तम पण्डित थे, अतएव दोनों का रतियुद्ध विराम नहीं ले रहा था ॥७५॥ इसी प्रकार प्रत्येक रमणीय गृह में अनेक शरीर बनाकर हरि ने अत्यन्त रमणीय रासमण्डल में गोपियों के साथ रमण किया ॥७६॥ भीतर (गृह में) रति करके हरि ने बाहर क्रीड़ा की। वे रासमण्डल में सर्वत्र गोपियों से आलिंगनबद्ध रहे ॥७७॥ मुने! उस रासमण्डल में नौ लाख गोपियों और नौ लाख गोपों को मिलाकर अठारह लाख व्यक्ति थे ॥७८॥ वे लोग खुले केश, नग्न, टूटे आभूषण, उच्छिन्न वेश, मतवाले तथा काम से मूर्च्छित हो गये थे ॥७९॥ नारद! उनके कङ्कणों, किंकिणियों, चूड़ियों तथा उत्तम रत्नों के बने नूपुरों की सतत ध्वनि हो रही थी ॥८०॥ इस प्रकार स्थल-क्रीड़ा करके वे लोग जल में गये। वहाँ चिरकाल तक क्रीड़ा करके थक गये ॥८१॥ तब शीघ्र जल से निकलकर, वस्त्र पहनकर उत्तम

चन्दनागुरुकस्तूरीद्रव्याणि पुष्पमालिकाः । मुदा परिदधुस्तानि संप्रापुश्चेतनानि च ॥८३॥
सकर्पूरं च ताम्बूलं भुक्त्वा सर्वाणि कौतुकात् । ददृशुर्मुखपद्मानि[1] सद्रत्ने दर्पणेऽमले ॥८४॥
काचित्कामातुरा कृष्णं बलादाकृष्य कौतुकात् । हस्ताद्वंशीं निजग्राह वसनं च चकर्ष ह ॥८५॥
काचित्कामप्रमत्ता च नग्नं कृत्वा तु माधवम् । निजग्राह पीतवस्त्रं परिहस्य पुनर्ददौ ॥८६॥
युक्तिं शृण्वित्येवमुक्त्वा काचित्संगृह्य स्वामिनम् । चुचुम्ब गण्डे बिम्बोष्ठे समाश्लिष्य पुनः पुनः ॥८७॥
सस्मितं सकटाक्षं च मुखचन्द्रं स्तनोन्नतम् । काचिच्छ्रोणीं सुललितां दर्शयामास कामतः ॥८८॥
काचित्कान्तं करे कृत्वा संप्राप्य श्रोणिदेशतः । चकार चूडानिर्माणं मालतीमाल्यसंयुतम् ॥८९॥
काचिच्चूडां समाकृष्य मयूरपिच्छकं ददौ । गुञ्जामाल्यं च चूडायां वेष्टयामास काचन ॥९०॥
प्रददौ स्वामिने कामात्प्रेमवर्धनहेतवे । काचित्कांचित्समाकृष्य नग्नां कृत्वा तु कामतः ॥९१॥
प्रेषयामास कृष्णस्य क्रोडे चन्दनचर्चिते । ननृतुश्च जगुः काश्चित्कान्तं कृत्वा तु कामतः ॥९२॥
नर्तनं कारयामास तं च काचिद्बलेन च । कृष्णश्च वस्त्रं कस्याश्च विचकर्ष कुतूहलात् ॥९३॥
कांचित्कृत्वा तु नग्नां च कस्यैचिदंशुकं ददौ । कृष्णो राधां समाकृष्य वासयामास वक्षसि ॥९४॥
तस्याश्च कबरीं रम्यां सुनिर्माणं चकार ह । सिन्दूरं च ददौ भाले कस्तूरीं बिन्दुभिः सह ॥९५॥

---

रत्नों के दर्पणों में अपने-अपने मुखकमल को देखने लगे ॥८२॥ उपरान्त चन्दन, अगुरु तथा कस्तूरी द्रव्य और पुष्पमालाएँ धारणकर चेतना प्राप्त की ॥८३॥ अनन्तर सभी गोपियाँ कौतुकवश कर्पूर सहित ताम्बूल खाकर उत्तम रत्नों के बने निर्मल दर्पण में मुखकमलों को देखने लगीं ॥८४॥ कोई कामातुर गोपी कौतुकवश कृष्ण को बलपूर्वक खींचकर हाथ से वंशी छीनकर वस्त्र खींचने लगी ॥८५॥ काम में मतवाली किसी गोपी ने माधव को नग्न करके उनका पीताम्बर ले लिया और परिहास करके उनका वस्त्र पुनः लौटा दिया ॥८६॥ 'एक युक्ति सुनो'—ऐसा कहकर किसी गोपी ने स्वामी को पकड़कर उनके गाल को तथा बिम्बफल के समान (लाल) ओष्ठ को चूम लिया तथा बार-बार आलिंगन किया ॥८७॥ कोई मुसकान तथा कटाक्ष के साथ (अपना) उन्नत उरोज तथा सुललित नितम्ब दिखाने लगीं ॥८८॥ कोई स्वामी को हाथ से पकड़कर अपनी श्रोणी पर बैठाकर मालती माला द्वारा उनकी चूड़ा बनाने लगी ॥८९॥ किसी ने उनकी चूड़ा खींचकर उसमें मोरपंख लगा दिया। किसी ने उनकी चूड़ा में गुञ्जा की माला लपेट दी ॥९०॥ किसी ने प्रेम बढ़ाने के लिए कामवश स्वामी को दिया। किसी ने किसी (गोपी) को खींचकर कामवश नग्न करके कृष्ण के चन्दन-चर्चित गोद में भेज दिया। कोई कामवश कान्त को आगे करके नाचने और गाने लगी ॥९१-९२॥ कोई कृष्ण को भी बलपूर्वक नचाने लगी। कुतूहलवश कृष्ण ने भी किसी गोपी का वस्त्र खींच लिया और किसी को नग्न करके उसका वस्त्र किसी दूसरी को दे दिया। फिर कृष्ण ने राधा को खींचकर छाती पर बैठा लिया ॥९३-९४॥ उनके केश-पाश को सँवारकर

---

१ क. °चन्द्रांश्च

अतिसूक्ष्मं चन्दनेन्दुं कौतुकात्तदधो ददौ । पत्रावलीं सुललितां सुकपोले चकार ह ॥९६॥
वह्निशुद्धांशुकं चारु परिधार्य प्रयत्नतः । पदोः सद्रत्नमञ्जीरे गृहीत्वा चरणाम्बुजे ॥९७॥
नखनिर्माजनं कृत्वा सुन्दरं यावकं ददौ । भूषणैर्भूषितां कृत्वा संप्रलिप्यानुलेपनैः ॥९८॥
दत्त्वा च मालतीमालां चुचुम्ब च पुनः पुनः । चारुलोचनपद्मे च चकाराञ्जनसंयुते ॥९९॥
प्रददौ नासिकामध्ये दुर्लभं गजमौक्तिकम् । श्रोणिदेशे च स्तनयोर्नखच्छिद्रं चकार ह ॥१००॥
चकार दन्तदलनं पक्वबिम्बाधरे वरे । सरसश्च तटे रम्ये पुष्पोद्याने सुनिर्जने ॥१०१॥
कृत्वा क्रीडां पुनरपि जगाम रासमण्डलम् । रासेश्वरः पूर्णरासं चकार रासमण्डले ॥१०२॥
बहिश्चन्द्रोदये रम्ये पुष्पचन्दन चर्चिते । अगुरुचन्दनावतेन वायुना सुरभीकृते ॥१०३॥
भ्रमरध्वनिसंयुक्ते पुंस्कोकिलरुतश्रुते । बहुमूर्तीः संविधाय योगिनां परमो गुरुः ॥१०४॥
पुनश्चकार शृङ्गारं गोपीनां चित्तहारकः । किङ्किणां कङ्कणानां नूपुराणां च नारद ॥१०५॥
शृङ्गारोद्रेकतस्तत्र बभूव सुन्दरो रवः । मूर्च्छामवापुस्ताः सर्वा नवसंगममात्रतः ॥१०६॥
बभूवुरचलास्पन्दाः पुलकाञ्चितविग्रहाः । शृङ्गारविरते भूते संप्रापुश्चेतनां पुनः ॥१०७॥
नखदन्तप्रहारं च प्रचकार परस्परम् । कृष्णः कररुहाघातं ददौ तासां कुचोपरि ॥१०८॥
श्रोणिदेशे सुकठिने नखचिह्नं चकार ह । नीवी विस्रंसिता तासां कवरी क्षुद्रघण्टिकाः ॥१०९॥

---

चन्दन का अत्यन्त सूक्ष्म चन्द्रमा बना दिया, सुन्दर कपोल पर सुललित पत्र की रचना की ॥९६॥ अग्नि की भांति विशुद्ध वस्त्र प्रयत्नपूर्वक पहनाकर उनके चरणकमलों में उत्तम रत्नों के नूपुर पहनाये ॥९७॥ नखों को शुद्ध करके सुन्दर महावर लगाया । फिर भूषणों से भूषित करके चन्दन का लेप तथा मालती की माला देकर बार-बार चुम्बन किया । सुन्दर नेत्रकमल में अंजन लगाया ॥९८-९९॥ नासिका के मध्य में गजमुक्ता पहना दी । नितम्ब-प्रदेश और स्तनों पर नखच्छेदन किया ॥१००॥ उत्तम एवं पके बिम्ब के समान (लाल) अधर पर दाँत काटा। सरोवर के रमणीय तट पर अत्यन्त निर्जन पुष्पोद्यान में क्रीड़ा करके पुनः रासेश्वर (कृष्ण) रासमण्डल में गये और उन्होंने पूर्ण रास किया ॥१०१-१०२॥ रमणीय रासमण्डल के, जिसके बाहर चन्द्रोदय हो चुका था, पुष्प-चन्दन से चर्चित अगुरु और चन्दन से सम्पृक्त वायु से सुगन्धित भौंरों के गुंजार तथा कोयलों की कूक से युक्त होने पर योगियों के परम गुरु तथा गोपियों के चितचोर (कृष्ण) ने अनेक शरीर धारण करके पुनः शृङ्गार किया । नारद शृङ्गार के उद्रेक से घुंघरुओं, कंकणों तथा नूपुरों की सुन्दर ध्वनि होने लगी और सभी गोपियाँ नवीन संगम मात्र से मूच्छित हो गयीं ॥१०३-१०६॥ वे स्पन्दनरहित अचल हो गयीं, शरीर में रोमाञ्च हो आया । शृङ्गार से विरत होने पर पुनः उनमें चेतना आयी ॥१०७॥ कृष्ण ने परस्पर नखों और दाँतों का प्रहार किया तथा उनके कुचों पर नाखूनों से आघात किया ॥१०८॥ कठोर नितम्ब पर नखचिह्न किया। उन गोपियों की नीवी तड़ा जूड़े की छोटी घंटियाँ ढीली पड़ गयीं ॥१०९॥ सुन्दर वस्त्र तथा अत्यन्त मनोहर वेश अस्त-व्यस्त

दूरीभूतं सुवसनं सुवेषं सुमनोहरम् । आलिङ्गनं नवविधं चुम्बनाष्टविधं मुदा ॥११०॥
शृङ्गारं षोडशविधं चकार रसिकेश्वरः । अङ्गैरङ्गानि प्रत्यङ्गैः प्रत्यङ्गानि च योषिताम् ॥१११॥
चकाराऽऽलिङ्गनं प्रीत्या कामुकीनां च कामुकः । नारीणां षोडश कलाः शृङ्गारस्तत्प्रमाणकः ॥११२॥
कलाभेदेन तद्भेदं कामशास्त्रविदो विदुः । प्राकृतं द्वादशविधं चकार रसिकेश्वरः ॥११३॥
निरूपितं कामशास्त्रे चकारेशस्ततोऽधिकम् । क्रीडारम्भे च मध्ये च विरतौ कर्म योषिताम् ॥११४॥
प्रीत्यर्थमपि कर्तव्यं चकारेशस्ततोऽधिकम् । गोपीकंकणरेखाभिः पादालक्तकचिह्नितः ॥११५॥
शुशुभे कृष्णदेहश्च यथाऽद्रिर्गैरिकेण च । एवंभूते पूर्णरासे संभूते रासमण्डले ॥११६॥
समाजग्मुः सुराः सर्वे सकलत्राश्च सानुगाः । सुवर्णस्यन्दनस्थाश्च कौतुकात्स्वगणावृताः ॥११७॥
पुलकाञ्चितसर्वाङ्गाः कामबाणप्रपीडिताः । ऋषयो मुनयश्चैव सिद्धाश्च पितरस्तथा ॥११८॥
विद्याधराश्च गन्धर्वा यक्षराक्षसकिन्नराः । सस्त्रीकाश्च समाजग्मुर्ददृशुश्च मुदाऽन्विताः ॥११९॥
दिव्यस्यन्दनमारुह्य शातकौम्भविनिर्मितम् । सुशोभितं च मणिना रत्नसारपरिच्छदम् ॥१२०॥
वह्निशुद्धांशुकेनैव वेष्टितं सुमनोहरम् । श्वेतचामरसंयुक्तं सद्रत्नचरणाम्बुजम्[1] ॥१२१॥
शतचक्रं चित्रयुक्तं मनोयायि मनोहरम् । सद्रत्नसारनिर्माणकलशोज्ज्वलशेखरम् ॥१२२॥

---

हो गया । रसिकेश्वर (कृष्ण) ने हर्ष से उनका नौ प्रकार का आलिंगन, आठ प्रकार का चुम्बन तथा सोलह प्रकार का शृङ्गार किया । स्त्रियों के अंगों से अपने अंगों को और प्रत्यंगों से अपने प्रत्यंगों को सटाकर कामुक ने कामुकियों का प्रेमपूर्वक आलिंगन किया । नारियों की सोलह कलाएँ होती हैं और उसी प्रकार से शृंगार भी होता है ॥११०-११२॥ कलाभेद से उसके भेद को कामशास्त्र-वेत्ता जानते हैं । रसिकेश्वर ने बारह प्रकार का प्राकृत शृङ्गार किया ॥११३॥ कामशास्त्र में जो निरूपण किया गया है, उससे अधिक प्रभु ने किया । क्रीड़ा के आरम्भ, मध्य और अन्त में स्त्रियों के प्रीत्यर्थ जितना (शृङ्गार) करना चाहिए, उससे भी अधिक प्रभु ने किया । गोपी के कंकण की रेखाओं और पैर के महावर से चिह्नित कृष्ण का शरीर उसी प्रकार सुशोभित हुआ जैसे गैरिक से पर्वत की शोभा होती है । इस प्रकार पूर्ण रास के होने पर रासमण्डल में अनुचरों और परिवारों के साथ सभी देवगण कौतुकवश पहुँचे । वे सोने के रथों पर आसीन तथा अपने गणों से घिरे थे ॥११४-११७॥ वे काम के बाणों से अत्यन्त पीड़ित तथा सर्वाङ्ग में रोमांचित हो गये थे । ऋषिगण, मुनिवृन्द, सिद्ध, पितर, विद्याधर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और किन्नर लोग भी हर्षान्वित होकर वहाँ आये और देखने लगे ॥११८-११९॥ सुवर्णरचित रथ पर बैठकर पार्वती के साथ भगवान् शंकर भी वहाँ आये । वह रथ मणियों से भूषित, रत्नों के सारभाग के उपकरणों से युक्त, अग्नि विशुद्ध वस्त्रों से परिवेष्टित अत्यंत मनोहर, श्वेत चामर से संयुक्त तथा उत्तम रत्नों के बने चरणकमल से युक्त था । उसमें सौ चक्के लगे थे तथा अनेक चित्र थे । वह मन के समान चलनेवाला था । उसका शिखर भाग उत्तम रत्नों के सारभाग के बने कलशों से समुज्ज्वल था । शंकर के वाम भाग में

---

१ क. °णान्वितम् ।

समाजगाम भगवान्पार्वत्या सह शंकरः । वामपार्श्वे महाकालो दक्षिणे नन्दिकेश्वरः ।।१२३।।
पुरतः कार्तिकेयश्च स्वयं देवो गणेश्वरः । पिङ्गलाक्षादयः सर्वे पार्षदाः परितस्तयोः ।।१२४।।
क्षेत्रपालादयः सर्वे तथाऽष्टौ भैरवेश्वराः । वक्षःस्थलस्थिता दुर्गा सस्मिता वक्रलोचना ।।१२५।।
भारत्या सह ब्रह्मा च शातकौम्भरथस्थितः । वामे सप्तर्षयस्तस्य दक्षिणे सनकादयः ।।१२६।।
सुवर्णस्यन्दनस्थश्च धर्मः साक्षी च कर्मणाम् । वक्षःस्थलस्थिता तस्य मूर्तिः स्मेरानना सती ।।१२७।।
पश्यन्ती पूर्णरासं च सकामा वक्रलोचना । परितः पार्षदाः सर्वे ज्वलन्तो ब्रह्मतेजसा ।।१२८।।
शच्या सह महेन्द्रश्च रोहिण्या च कलानिधिः । स्वाहासार्धं स्वयं वह्निः सूर्यश्च संज्ञया सह ।।१२९।।
समाजगाम कामश्च रतिं कृत्वा च वक्षसि । सर्वे ग्रहाश्च दिक्पाला आजग्मुः सकलत्रकाः ।।१३०।।
आकाशस्थाश्च ददृशुः सरासं रासमण्डलम् । केचिच्च मुमुहुस्तत्र मूर्च्छामापुश्च केचन ।।१३१।।
मुहूर्तं च सुराः सर्वे सस्मिताश्च मुदाऽन्विताः । चन्दनद्रववृष्टिं च पुष्पवृष्टिं च चिक्षिपुः ।।१३२।।
कस्तूरीयुक्तमाल्यानां वृष्टिं चक्रुर्मुनीश्वराः । रासं दृष्ट्वा देवपत्न्यः कामबाणप्रपीडिताः ।।१३३।।
स्थले रतिरसं कृत्वा जगाम यमुनाजलम् । राधया सह कृष्णश्च पूर्णब्रह्म सनातनः ।।१३४।।
गोपीभिः सह जग्मुश्च मायाः श्रीकृष्णरूपिकाः । प्रपीडिताः कामबाणैः क्रीडां चक्रुर्जले मुदा ।।१३५।।
जलं ददौ राधिकायै सकामो माधवः स्वयम् । ददौ सा च माधवाय कामार्तायाञ्जलित्रयम् ।।१३६।।

---

महाकाल थे और दक्षिण में नन्दिकेश्वर ।।१२०-१२३।। सामने कार्तिकेय और स्वयं गणेश देव थे । उन दोनों के चारों तरफ सभी पिंगलाक्ष आदि पार्षदगण थे ।।१२४।। सभी क्षेत्रपाल आदि और आठों भैरवेश्वर भी थे। मुसकराती हुई तिरछी चितवनवाली दुर्गा, शंकर के वक्षःस्थल पर स्थित थीं ।।१२५।। भारती के साथ ब्रह्मा भी सुवर्ण के रथ पर अवस्थित थे । उनके बायें भाग में सप्तर्षिगण और दाहिने भाग में सनकादि विराजमान थे ।।१२६।। सुवर्ण के रथ पर कर्मों के साक्षी धर्म स्थित थे । उनके वक्षःस्थल पर मुसकराती हुई सती मूर्ति विराजमान थी ।।१२७।। वे कामातुर होकर पूर्णरास को देखती हुई तिरछी चितवन डाल रही थीं । धर्म के चारों ओर ब्रह्म तेज से प्रज्वलित पार्षदगण बैठे थे ।।१२८।। (उसी प्रकार) इन्द्राणी के साथ इन्द्र, रोहिणी के साथ चन्द्रमा, स्वाहा के साथ अग्नि और संज्ञा के साथ सूर्य विराजमान थे ।।१२९।। रति को वक्षःस्थल पर लिये कामदेव तथा सभी ग्रह एवं दिक्पाल लोग भी अपनी-अपनी पत्नी समेत आये ।।१३०।। आकाश में स्थित होकर ये सभी लोग रासक्रीड़ा समेत रासमण्डल को देख रहे थे । वहाँ कुछ तो मोहित हो गये और कुछ को मूर्च्छा आ गयी ।।१३१।। दो घड़ी तक हर्षान्वित होकर समस्त देवगण मुसकराते रहे और चन्दनद्रव तथा पुष्पों की वृष्टि भी करते रहे ।।१३२।। मुनीश्वरों ने कस्तूरी युक्त मालाओं की वर्षा की । रास को देखकर देवों की पत्नियाँ कामबाण से अत्यन्त पीड़ित हो गयीं ।।१३३।। इधर पूर्ण ब्रह्म एवं सनातन कृष्ण ने स्थल पर रतिरस का आस्वादन कर लेने के बाद राधा के साथ यमुना-जल में प्रवेश किया ।।१३४।। श्रीकृष्णरूपधारिणी माया गोपियों के साथ गयीं । वे कामबाण से पीड़ित होने के कारण जल में सहर्ष क्रीड़ा करने लगीं ।।१३५।। सकाम माधव ने स्वयं राधिका को जल दिया और राधिका ने काम-पीड़ित माधव को तीन अंजलि जल दिया ।।१३६।।

वस्त्रं जग्राह तस्याश्च सा च नग्ना बभूव ह । मालां चिच्छेद कबरीं चकार शिथिलां हरिः ।।१३७।।
सिन्दूरपत्रकं लुप्तं वेषं च जलताडनैः । भ्रूविचित्रमोष्ठरागं लुप्तं कज्जललोचनम् ।।१३८।।
तां च नग्नां समाश्लिष्य निममज्ज जले हरिः । प्रकृत्याभ्यन्तरे क्रीडां सुतस्थौ च तया सह ।।१३९।।
तां च नग्नां दर्शयित्वा गोपिकां क्रीडया[1] नताम् । सस्मितां प्रेरयामास दूरतो यमुनाजले ।।१४०।।
सा वेगेन समुत्थाय बलाज्जग्राह माधवम् । गृहीत्वा मुरलीं कोपात्प्रेरयामास दूरतः ।।१४१।।
गृहीत्वा पीतवसनं चकार तं दिगम्बरम् । वनमालां च चिच्छेद ददौ तोयं पुनः पुनः ।।१४२।।
हरिं पुनः समाकृष्य प्रेरयामास पायसि । गभीरे स्रोतसि मुने निममज्ज जगत्पतिः ।।१४३।।
उत्थाय माधवः शीघ्रं तां गृहीत्वा प्रहस्य च । कृत्वा वक्षसि नग्नां च चुचुम्ब च पुनः पुनः ।।१४४।।
एवं ता मूर्तयः सर्वा गोपीभिः सह कौतुकात् । क्रीडां विचक्रुर्यमुनातीरनीरे मनोहरे ।।१४५।।
तीरं गत्वा तया सार्धं हरिर्नग्नश्च नग्नया । सा तं ययाचे वसनं स च तां सस्मितां सतीम् ।।१४६।।
राधिकायै ददौ वस्त्रं रम्यां मालां च माधवः । प्रददौ हरये वस्त्रं वंशीं रासेश्वरी मुदा[2] ।।१४७।।
चन्दनागुरुकस्तूरीं सर्वाङ्गे कुङ्कुमान्विताम् । कृष्णस्य परया भक्त्या ददौ श्रोणिस्थितस्य च ।।१४८।।
निर्माय चूडां ललितां कामिनीं चित्तमोहिनीम् । शोभनैर्मालतीमाल्यैश्चकार वेष्टनं पुनः ।।१४९।।

---

अनन्तर भगवान् ने राधिका का वस्त्र लेकर उन्हें नग्न कर दिया, माला तोड़ दी और केशपाश का बन्धन खोल दिया ।।१३७।। उनके ऊपर इतना जल उछाला कि उनकी सिन्दूर-रचना और वेश लुप्त हो गया । भौंहें विचित्र हो गयीं, ओंठ का राग (रंग) एवं आंखों का काजल लुप्त हो गये ।।१३८।। भगवान् नग्न राधिका का समालिङ्गन करके जल के नीचे चले गये । भीतर क्रीड़ा करके राधिका के साथ वहीं अवस्थित हो गये ।।१३९।। क्रीड़ा से झुकी हुई तथा मुसकराती हुई नग्न गोपी (राधिका) को (जल में उनका स्वरूप) दिखाकर दूर यमुना-जल में ले गये ।।१४०।। राधिका ने भी बड़े वेग से उठकर कृष्ण को बलपूर्वक पकड़ लिया और उनकी मुरली छीनकर क्रोध से दूर तक खींच ले गयीं ।।१४१।। उनका पीताम्बर छीनकर उन्हें नग्न कर दिया, उनकी वनमाला तोड़ दी और बार-बार उन पर जल उछालने लगीं ।।१४२।। पुनः हरि को खींचकर (अधिक) जल में ले गयीं । मुने ! तब जगत्पति (कृष्ण) अथाह जल में डूब गये ।।१४३।। फिर माधव ने शीघ्र उठकर राधा को पकड़ लिया और हँसकर नग्न राधिका को छाती से लगाकर बार-बार चुम्बन किया ।।१४४।। इस प्रकार (कृष्ण की) उन सभी मूर्तियों ने गोपियों के साथ कौतुकवश मनोहर यमुना-तीर के नीर में क्रीड़ा की ।।१४५।। अनन्तर नग्न कृष्ण नग्न राधिका के साथ तट पर गये । वहाँ राधा उनसे वस्त्र माँगने लगीं और वे मुसकराती हुई सती (राधा) से वस्त्र माँगने लगे ।।१४६।। तब माधव ने राधिका को वस्त्र तथा रमणीय माला दी और रासेश्वरी ने हर्ष से वस्त्र और वंशी हरि को दी ।।१४७।। और चन्दन, अगुरु तथा केसर युक्त कस्तूरी श्रोणिभाग पर बैठे श्रीकृष्ण के सर्वाङ्ग शरीर में लगाया ।।१४८।। फिर कामिनियों के चित्त को मोहित

---

१ क. क्रीडयाऽन्विताम् । २ ख. तथा ।

श्रीकृष्णो राधिकायाश्च कबरीं सुमनोहराम्। कृत्वा कुण्डलसंस्कारं निर्ममे पत्रकावलीम् ॥१५०॥
ददौ ललाटे सिन्दूरं कस्तूरीबिन्दुभिः सह। तदधश्चन्दनेन्दुं च सुसूक्ष्मं सुमनोहरम् ॥१५१॥
नखाङ्कं स्तनयोरूर्वोरुरस्येव घनं मुदा। दत्त्वा तां वासयामास वह्निशुद्धांशुकेन वै ॥१५२॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमानां द्रवेण सः। कृत्वा वक्षसि संलिप्य चुचुम्ब च मुहुर्मुहुः ॥१५३॥
पुनराश्लेषणं कृत्वा ददौ मालां गले पुनः। भूषणैर्भूषितां कृत्वा मञ्जीरं चरणे ददौ ॥१५४॥
अलक्तकं चरणयोर्नखेषु च ददौ पुनः। एवं गोपश्च गोपीनां विदधौ च पृथक्पृथक् ॥१५५॥
पुनः प्रजग्मुस्ता मत्ताः सुन्दरं रासमण्डलम्। पूर्णेन्दुचन्द्रिकायुक्तं रतियोग्यं सुनिर्जनम् ॥१५६॥
माधवीकेतकीकुन्दमालतीनां मनोहरैः। चम्पायूथीमल्लिकानां पुष्पैश्च सुरभीकृतम् ॥१५७॥
दृष्ट्वा च स्फुटितं पुष्पं चयनं कर्तुमीश्वरी। गोपीर्नियोजयामास कौतुकेन च राधिका ॥१५८॥
काश्चिन्नियोजयामास मालानिर्माणकर्मणि। काश्चित्ताम्बूलसज्जेषु काश्चिच्चन्दनघर्षणे ॥१५९॥
मालाचन्दनताम्बूलं गोपीदत्तं च सुन्दरी। ददौ कृष्णाय संप्रीत्या सस्मिता वक्रलोचना ॥१६०॥
काश्चिन्नियोजनं चक्रे कृष्णसंगीतकर्मणि। मृदङ्गमुरजादीनां वादनेषु च काश्चन ॥१६१॥

---

करनेवाली सुन्दर चूड़ा बनाकर उसे सुन्दर मालती-माला से वेष्टित कर दिया ॥१४९॥ तदुपरांत श्रीकृष्ण ने भी राधिका का अति मनोहर जूड़ा बनाकर कुण्डलों के संस्कारपूर्वक उनके कपोल पर पत्रावली (कामकला) की रचना की ॥१५०॥ उनके भाल में कस्तूरी की बिन्दी समेत सिन्दूर लगाया और उसके नीचे अति सूक्ष्म और अत्यन्त मनोहर चन्दन-चन्द्रमा का निर्माण किया ॥१५१॥ उनके स्तनों, जंघाओं और छाती पर हर्ष से सघन नख-चिह्न बनाकर उन्हें अग्नि विशुद्ध वस्त्र पहनाया ॥१५२॥ चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुम के द्रव से लेप लगाकर अपने वक्षःस्थल पर लेकर बार-बार चुम्बन किया ॥१५३॥ पुनः आलिङ्गन करके गले में माला पहना दी; फिर आभूषणों से भूषित करके चरणों में नूपुर दे दिया ॥१५४॥ उनके चरणों और नखों में पुनः आलता लगाया। इस प्रकार (भगवान् के रूपान्तर) गोपों ने सभी गोपियों को पृथक्-पृथक् सजाया ॥१५५॥ पुनः वे मतवाली गोपियाँ सुन्दर रास-मण्डल में पहुँचीं, जो (रासमण्डल) पूर्ण चाँदनी से युक्त रतिक्रीड़ा के योग्य और अत्यन्त निर्जन था ॥१५६॥ माधवी, केतकी, कुन्द, मालती, चम्पा, जूही एवं मल्लिका के मनोहर पुष्पों से वह (रास-मण्डल) सुगन्धित था ॥१५७॥ वहाँ विकसित पुष्पों को देखकर स्वामिनी राधिका ने उसका संचयन करने के लिए गोपियों को नियुक्त किया ॥१५८॥ कुछ को माला गूँथने में, कुछ को ताम्बूल लगाने में तथा कुछ को चन्दन घिसने में नियुक्त किया ॥१५९॥ तिरछी चितवनवाली तथा मुसकरानेवाली सुन्दरी (राधिका) ने गोपी प्रदत्त माला, चन्दन और ताम्बूल कृष्ण को बड़े प्रेम से प्रदान किये ॥१६०॥ कुछ गोपियों को कृष्ण के साथ सङ्गीत में लगाया और कुछ को मृदङ्ग आदि वाद्यों को बजाने में ॥१६१॥ इस प्रकार रास-

एवं रासे रतिं कृत्वा लीलया हरिणा सह। विजहार च सर्वत्र निर्जनेषु मनोहरम् ॥१६२॥
पुष्पोद्यानेषु रम्येषु सरसां च तटेषु च। कन्दरे कन्दरे रम्ये नदेषु च नदीषु च ॥१६३॥
अतीव निर्जनस्थाने श्मशाने गिरिगह्वरे। वाञ्छितेषु च नारीणां त्रयस्त्रिंशद्वनेषु च ॥१६४॥
भाण्डीरे श्रीवने रम्ये कदम्बकानने तथा। तुलसीकानने कुन्दवने चम्पककानने ॥१६५॥
निम्बारण्ये मधुवने जम्बीरकानने तथा। नालिकेरवने पूगवने च कदलीवने ॥१६६॥
बदरीकानने बिल्ववने नारङ्गीकानने। अश्वत्थकानने वंशवने दाडिमकानने ॥१६७॥
मन्दारकानने तालवने चूतवने तथा। केतकीकाननेऽशोकवने खर्जूरकानने ॥१६८॥
आम्रातकवने जम्बूगहने शालकानने। कण्टके कानने पद्मवने जातिवने मुने ॥१६९॥
न्यग्रोधगहने घोरे श्रीखण्डकानने तथा। प्रहृष्टकेसरवने सर्वतोऽपि विलक्षणे ॥१७०॥
एवं रेमे कौतुकेन कामात्त्रिंशद्दिवानिशम्। तथाऽपि मानसं पूर्णं न च किंचिद्बभूव ह ॥१७१॥
न कामिनीनां कामश्च शृङ्गारेण निवर्तते। अधिकं वर्धते शश्वद्यथाऽग्निर्घृतधारया ॥१७२॥
जग्मुर्देवाः स्वगेहं च देव्यश्च मुनयस्तथा। ते सर्वे प्रशशंसुश्च विस्मयं च ययुर्मुदा ॥१७३॥
गेहे गेहे नृपेन्द्राणां लेभिरे जन्म भारते। दग्धाः कामाग्नि अंशेन देव्यः शृङ्गारलालसाः ॥१७४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० रासक्रीडाप्रस्तावो नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

---

मण्डल में श्रीकृष्ण के साथ लीलापूर्वक रतिक्रीड़ा करके निर्जन स्थानों में सर्वत्र मनोहर विहार करने लगीं ॥१६२॥ (जैसे—) रमणीक पुष्प वाटिकाओं, सरोवरों के तटों, कन्दराओं, रमणीय नदों, नदियों, अत्यन्त निर्जन स्थान, श्मशान, पहाड़ की गुफाओं एवं नारियों के अभीष्ट तैंतीस वनों—भाण्डीर वन, श्रीवन, रम्य कदम्ब वन, तुलसी वन, कुन्द वन, चम्पक कानन, निम्बारण्य मधुवन, जम्बीर कानन, नारिकेल वन, पूग वन, कदली वन, बदरी वन, बिल्ववन, नारङ्गी वन, अश्वत्थ वन, वंश वन, अनार वन, मन्दार वन, ताल वन, आम्र वन, केतकी वन, अशोक वन, खजूर वन, आम्रातक वन, जम्बू वन, साखू वन, कंटक वन, कमल वन, चमेली वन, सघन वन, श्रीखण्ड वन और सबसे विलक्षण एवं अति विकसित केसर वन में भ्रमण कर तीस दिनों तक दिन-रात कौतुक से रमण किया, तो भी मन नहीं भरा ॥१६३-१७१॥ कामिनियों का कामभाव शृंगार से नहीं अघाता, बल्कि निरन्तर बढ़ता ही रहता है जैसे घृत की धारा से अग्नि ॥१७२॥ (रास देखकर) सभी देवगण, देवियाँ एवं मुनि वृन्द आश्चर्य-चकित होकर रास की प्रशंसा करते हुए अपने-अपने घर चले गये ॥१७३॥ कामाग्नि के अंश से दग्ध बहुत-सी देवांगनाओं ने (हरि के साथ) शृंगार की लालसा लेकर भारत में महाराजाओं के घर-घर में जन्म ग्रहण किया ॥१७४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्म-खण्ड में नारायण-नारद-संवाद में रासक्रीड़ा वर्णन नामक अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२८॥

# अथैकोनविंशोऽध्यायः

## नारायण उवाच

अथ गोपाङ्गनाः सर्वाः काममत्ततया मुने। अतिप्रौढाश्च मानिन्यो नेश्वरं मेनिरे पतिम् ॥१॥
काश्चिदूचुरहो कृष्णे सस्मिता वक्रलोचनाः। मालतीपुष्पमुत्तोल्य देहि मे मालिकामिति ॥२॥
काश्चिदूचुरये कृष्ण स्वक्रोडेऽस्मांश्च कुर्विति। गृहीत्वा श्रीहरेः स्कन्धमारुरोह च काचन ॥३॥
उवाच काचिद्दर्पेण प्रमत्ता प्राणवल्लभम्। स्वकीयपीतवसनं परिधापय मामिति ॥४॥
उवाच काचिदीशं तं सिन्दूरं देहि मामिति। उवाच काचित्प्राणेशं शीघ्रमागत्य सांप्रतम् ॥५॥
कृत्वा कुन्तलसंस्कारं कुरु मे कबरीमिति। काश्चित्संप्रेरयामासुः श्रीखण्डं वल्लवाय च ॥६॥
स्वाङ्गवेषविधायिन्यो भूषार्थं श्रुतिमूलयोः। उवाच काचित्कामेन परं संकेतपूर्वकम् ॥७॥
पश्यन्ती तन्मुखाम्भोजं सस्मिता मैथुनाय च। काचिज्जग्राह मुरलीं बलादाकृष्य माधवम् ॥८॥
जहार पीतवसनं कृत्वा नग्नं च कामिनी। कामिन्यः काश्चिदित्यूचुर्मानिन्यो मधुसूदनम् ॥९॥
अलक्तकद्रवं देहि पादयोर्नखरेषु च। उवाच काचित्प्रेम्णा तं गण्डयोः स्तनयोर्मम ॥१०॥

---

# अध्याय २६

## अष्टावक्र मुनि का मोक्ष

**नारायण बोले**—मुने! काम में मतवाली होने के नाते उन सभी गोपियों ने, जो अत्यन्त प्रौढ़ा एवं मानिनी थीं, पति (श्रीकृष्ण) को ईश्वर नहीं माना ॥१॥ कुछ तिरछी चितवनवाली गोपियों ने मुसकराकर कृष्ण से कहा—'मालती के फूलों को गूँथकर माला मुझे दो' ॥२॥ कुछ ने कहा—'अये कृष्ण! हमें गोद में ले लो।' कोई कृष्ण का कन्धा पकड़कर (उस पर) चढ़ गयी ॥३॥ किसी मतवाली (गोपी) ने प्राणवल्लभ कृष्ण से कहा—'अपना पीताम्बर मुझे पहना दो' ॥४॥ किसी ने प्रभु से कहा—'मुझे सिन्दूर लगाओ।' कोई शीघ्रता से प्राणनाथ के समीप आकर बोली—'अब मेरे बालों को सँवारकर जूड़ा बना दो।' अपने अंगवेष की रचना करानेवाली कुछ ने अपने दोनों कानों के भूषणार्थ बल्लव कृष्ण के पास चन्दन भिजवाया। कोई गोपी मन्दहास करती हुई कामवश कृष्ण से सम्भोग के लिए उनके मुखकमल की ओर देखती हुई संकेतपूर्वक बोली। किसी कामिनी ने माधव को बलपूर्वक खींचकर मुरली छीन ली। किसी कामिनी ने उन्हें नग्न करके पीताम्बर हरण कर लिया। कुछ मानिनी कामिनियों ने मधुसूदन से कहा—'मेरे चरणों और नखों में महावर लगाओ।' कोई उनसे प्रेमपूर्वक बोली—'मेरे स्तनों और कपोलों पर विचित्र चित्रों से सम्पन्न पत्रावली (कामकला) की

नानाचित्रविचित्राढ्यां कुरु पत्रावलीमिति । कृत्वाऽनुमानं मनसा दृष्ट्वा तासां प्रमत्तताम् ॥११॥
माधवो राधया सार्धमन्तर्धानं चकार ह । अतीवनिर्जने स्थाने मुदा स्वेच्छामयो विभुः ॥१२॥
कलामानप्रकारं च शृङ्गारं च चकार ह । पर्वते पर्वते रम्ये द्वीपे द्वीपे सुनिर्जने ॥१३॥
तटे तटे नदीनां च सर्वजन्तुविवर्जिते । श्रीगोष्ठे रत्नशैले च वेलागङ्गातटेऽपि च ॥१४॥
कालिन्दे च पुलिन्दे च मन्दिरे गन्धमादने । मनोहरे कुन्दवने कावेरीतीरनीरजे ॥१५॥
पुष्पभद्रापुलिनजे पुष्पोद्याने सुपुष्पिते । सर्वत्र रमणं कृत्वा राधावेशं विधाय च ॥१६॥
जगाम मलयद्रोणीं रम्यां चन्दनवायुना । शय्यां पुष्पमयीं कृत्वा तत्र रेमे तया सह ॥१७॥
अतीव सुखसंभोगान्मूर्छां संप्राप्य राधिका । कृत्वा वक्षसि गोविन्दं पुलकाञ्चितविग्रहा ॥१८॥
दृष्ट्वा तां मूर्छितां कृष्णो घनश्रोणिपयोधराम् । विलुप्तवेषां कामार्तां नग्नां शिथिलकुन्तलाम् ॥१९॥
चेतनां कारयामास कृत्वा वक्षसि तन्द्रिताम् । वासयामास वसनं राधया मेखलाम्बरम् ॥२०॥
कबरीं रचयामास किंचिद्वामेन वक्रताम् । मालतीमाल्यसंयुक्तां कुन्दपुष्पैश्च वेष्टिताम् ॥२१॥
तस्याः कपाले सिन्दूरतिलकं सुन्दरं ददौ । गण्डयोः स्तनयोश्चित्रां चकार पत्रिकां मुदा ॥२२॥
सालक्तकांश्च नखरांश्चित्रितान्पादपद्मयोः । नखैः कृत्रिमपद्मानि निर्ममे श्रोणिवक्षसोः ॥२३॥
उत्थायाथ तया सार्धं जगाम ह सरोवरम् । नानाप्रकारपद्मानां राजिभिश्च विराजितम् ॥२४॥

---

रचना करो।' माधव उन लोगों की प्रमत्तता का मन से अनुमान करके राधा के साथ अन्तर्धान हो गये ॥५-११½॥ स्वेच्छामय भगवान् अत्यन्त निर्जन स्थान में कला के मान के अनुसार राधा के साथ संभोग किया। पर्वतों, रमणीक निर्जन द्वीपों, नदियों के अनुकूल तटों, श्रीगोष्ठ, रत्नशैल, गंगातीर, यमुना के किनारे, मन्दिर, गन्धमादन, मनोहर कुन्दवन, कावेरीतीरवर्ती कमल वन और पुष्पभद्रा के तट पर विकसित पुष्पवाटिका में सर्वत्र रमण करके राधा का वेश बनाया और चन्दन-वायु से रमणीय मलयाचल की घाटी में पहुँचकर पुष्पमयी शय्या बनाकर उनके साथ रमण किया ॥१२-१७॥ गोविन्द को छाती पर लेकर रोमाञ्चित शरीरवाली राधिका अत्यन्त सुख-संभोग से मूर्च्छित हो गयीं ॥१८॥ सघन श्रोणी तथा कुचोंवाली, लुप्त वेशवाली, काम से पीड़ित, नग्न और शिथिल सुन्दर बालोंवाली राधा को देखकर श्रीकृष्ण ने उन्हें चेतना प्राप्त करायी और तन्द्रावस्था में ही उन्हें छाती पर लेकर वस्त्र तथा करधनी पहनायी ॥१९-२०॥ कुछ बाम भाग की ओर टेढ़ी चोटी निकाली, मालती मालाओं और कुन्द के पुष्पों से उसे आवेष्टित किया ॥२१॥ उनके भाल में सुन्दर सिन्दूर तिलक लगाया, कपोलों और स्तनों पर आनन्द से चित्रमयी पत्रावली की रचना की ॥२२॥ चरणकमलों एवं उनके नाखूनों को आलता-महावर से चित्रित किया। श्रोणी एवं वक्षःस्थल पर अपने नखों से कृत्रिम कमल बनाया ॥२३॥ अनन्तर उठकर उनके साथ सरोवर में प्रवेश किया, जो अनेक भाँति के कमल-पंक्तियों से सुशोभित था ॥२४॥ वह

निर्मलस्फटिकाकारजलपूर्णं मनोहरम् । हंसकारण्डवाकीर्णं जलकुक्कुटकूजितम् ॥२५॥
मधुलुब्धमधुभ्राणां पद्मस्थानं सुपद्मजम् । चारुणा कलशब्देन शब्दितं शश्वदेव हि ॥२६॥
तत्र स्नात्वा जलक्रीडां चकार ह तया सह । जलं ददौ राधिकायै मुदा सा माधवाय च ॥२७॥
सहस्रदलपद्मे च गृहीत्वा माधवः स्वयम् । एकं ददौ राधिकायै ररक्ष स्वार्थमेककम् ॥२८॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवमीप्सितम् । स्वाङ्गे दत्त्वा राधिकायै लिलेप राधिकेश्वरः ॥२९॥
ततो गच्छंस्तया सार्धं ददर्श पुरतो वटम् । अतीवोत्तुङ्गशाखाग्रमतिविस्तृतमेव च ॥३०॥
मूले योजनपर्यन्तं छायया परिवेष्टितम् । उवास तत्र गोविन्दः केतकीवनसंनिधौ ॥३१॥
पुष्पाक्तेन सुशीतेन वायुना सुरभीकृते । चित्रं रहस्यं सुचिरं पुराणं च पुरातनम् ॥३२॥
प्रहर्षितश्च श्रीकृष्णः कथयामास राधिकाम् । एतस्मिन्नन्तरे तत्र ददर्श मुनिपुंगवम् ॥३३॥
आगच्छन्तं च तं दृष्ट्वा प्रसन्नवदनेक्षणम्[1] । न दृष्ट्वा हृदये रूपमीशस्य परमात्मनः ॥३४॥
ध्यानाद्विरतमग्रे च पश्यन्तं बहिरेव तत् । सर्वावयववक्रं च कृष्णं खर्वं दिगम्बरम् ॥३५॥
नाम्नाऽष्टवक्रं जटिलं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा । मुखतोऽग्निमुद्गिरन्तंतपोराशिमिवोत्थितम् ॥३६॥

---

(सरोवर) स्फटिक की भाँति निर्मल जल से पूर्ण मनोहर हंसों और बत्तखों से परिपूर्ण और जल कुक्कुटों से शब्दायमान था ॥२५॥ वहाँ मधु के लोभी भौंरे सुन्दर कमलों पर अपनी सुन्दर ध्वनि से निरन्तर गुंजार कर रहे थे ॥२६॥ उसमें स्नानकर राधिका के साथ जल-क्रीड़ा की । माधव ने राधिका पर जल उछाला और राधिका ने उन पर ॥२७॥ अनन्तर माधव ने सहस्र दलवाले दो कमल पुष्प लेकर एक राधिका को दिया और दूसरा अपने लिये सुरक्षित रखा ॥२८॥ फिर राधिकेश्वर ने चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुम का लेप अपने अंगों में लगाकर राधिका को लेप लगाया ॥२९॥ तदनन्तर राधिका को साथ लिये वहाँ से चले, तो उन्हें सामने वह वटवृक्ष दिखायी पड़ा, जो अत्यन्त ऊँचा, अति विस्तृत और मूल भाग में एक योजन की छाया से चारों ओर आवेष्टित था । वहाँ केतकी वन के समीप गोविन्द बैठ गये । वह स्थान पुष्प सम्पृक्त सुशीतल वायु से सुगन्धित था । हर्ष से भरे हुए श्रीकृष्ण ने वहाँ राधा से चिरकाल तक पुरातन एवं विचित्र रहस्य को बतानेवाली कथाएँ कहीं । उसी समय उन्हें सामने मुनिश्रेष्ठ (अष्टावक्र) दिखायी पड़े ॥३०-३३॥ वे (मुनि) उसी ओर आ रहे थे । उनके मुख, नेत्र सुप्रसन्न थे । परमात्मा को हृदय में न देखकर वे ध्यान से विरत हो गये । अब वे अपने सामने बाहर ही उस रूप का प्रत्यक्ष दर्शन करने लगे थे । उनका शरीर काला था, सारे अवयव टेढ़े-मेढ़े थे और वे नाटे तथा दिगम्बर थे । उनका नाम था अष्टावक्र । वे ब्रह्मतेज से जाज्वल्यमान थे, जटाधारी थे, मुख से अग्नि उगल रहे थे, मानो मुखद्वार से उनकी तपस्याजनित तेजोराशि ही प्रकट हो रही हो ॥३४-३६॥ अथवा

---

१ क. ०क्षणः ।

अहो किं वा ब्रह्मतेजो मूर्तिमन्तमिह स्वयम् । नखश्मश्रुसुदीर्घं च शान्तं तेजस्विनं परम् ॥३७॥
पुटाञ्जलियुतं भक्त्या भीतं प्रणतकंधरम् । दृष्ट्वा हसन्तीं राधां तां वारयामास माधवः ॥३८॥
प्रभावं कथयामास मुनीन्द्रस्य महात्मनः । अथ प्रणम्य गोविन्दं तुष्टाव मुनिपुंगवः ॥
यत्स्तोत्रं च पुरा दत्तं शंकरेण महात्मा ॥३९॥

## अष्टावक्र उवाच

गुणातीत गुणाधार गुणबीज गुणात्मक । गुणीश गुणिनां बीज गुणायन नमोऽस्तु ते ॥४०॥
सिद्धिस्वरूप सिद्धचंश सिद्धबीज परात्पर । सिद्धिसिद्ध गुणाधीश सिद्धानां गुरवे नमः ॥४१॥
हे वेदबीज वेदज्ञ वेदिन्वेदविदां वर । वेदज्ञाताऽऽद्यरूपेश वेदज्ञेश नमोऽस्तु ते ॥४२॥
ब्रह्मानन्तेश शेषेन्द्रधर्मादीनामधीश्वर । सर्व सर्वेश शर्वेश बीजरूप नमोऽस्तु ते ॥४३॥
प्रकृते प्राकृत प्रज्ञ प्रकृतीश परात्पर । संसारवृक्ष तद्बीज फलरूप नमोऽस्तु ते ॥४४॥
सृष्टिस्थित्यन्तबीजेश सृष्टिस्थित्यन्तकारण । महाविराट्तरोर्बीज राधिकेश नमोऽस्तु ते ॥४५॥
अहो यस्य त्रयः स्कन्धा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । शाखाप्रशाखा वेदाद्यास्तपांसि कुसुमानि च ॥४६॥

---

वे ऐसे लगते थे, मानो उनके रूप में स्वयं ब्रह्मतेज ही मूर्तिमान्-सा हो गया हो। उनके नख और मूंछ-दाढ़ी के बाल बढ़े हुए थे। वे तेजस्वी और परम शान्त थे ॥३७॥ वे भयभीत हो भक्ति-भाव से दोनों हाथ जोड़कर मस्तक झुकाये हुए थे। उन्हें देख राधा हँसने लगीं, परन्तु हरि ने रोक दिया और महात्मा मुनीन्द्र के प्रभाव का वर्णन किया। मुनिवर ने गोविन्द को प्रणाम करके स्तुति की। पूर्वकाल में महात्मा शंकर ने उन्हें जो स्तोत्र दिया था, उसी को उन्होंने सुनाया ॥३८-३९॥

**अष्टावक्र बोले**—भगवन् ! आप गुणों (सत्त्वादिकों) से परे, गुणों के आधार, गुणों के कारण, गुण-स्वरूप, गुणों के ईश, गुणियों के बीज और गुणों के घर हैं, अतः आपको नमस्कार है ॥४०॥ सिद्धिस्वरूप, सिद्धि के अंश, सिद्धि के कारण, परात्पर, सिद्धियों से सिद्ध, गुणों के स्वामी एवं सिद्धों के गुरु को नमस्कार है ॥४१॥ हे वेदों के बीज ! वेदों के ज्ञाता, वेदवान्, वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ, वेदों से अज्ञात, आद्यरूप ईश, वेदज्ञों के प्रभु, आपको नमस्कार है ॥४२॥ ब्रह्मा और अनन्त के ईश, शेष, इन्द्र तथा धर्म आदि के अधीश्वर, सर्वरूप, सब के ईश, शर्व (महादेव) के ईश और बीजरूप आपको नमस्कार है ॥४३॥ प्रकृति स्वरूप, प्राकृत रूप, प्रकृष्ट ज्ञानी, प्रकृति के ईश, परात्पर, संसार-वृक्ष, उसके बीज और फल रूप आपको नमस्कार है ॥४४॥ सर्जन, पालन और प्रलय के बीज, स्वामी, सृष्टि, स्थिति और संहार के कारण, महाविराट् रूपी वृक्ष के बीज और राधिका जी के प्रभु ! आपको नमस्कार है ॥४५॥ अहो ! ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर जिस (महाविराट्रूपी वृक्ष) की तीन शाखाएँ हैं, वेद आदि शाखा-प्रशाखाएँ हैं, तप पुष्प हैं, संसार ही विशिष्ट फलरूप है और प्रकृति अंकुर

---

१ क. °द्धचयं ।

संसारा[1] विफला एव प्रकृत्यङ्कुरमेत्य[2] च । तदाधार निराधार सर्वाधार नमोऽस्तु ते ।।४७।।
तेजोरूप निराकार प्रत्यक्षानूहमेव च । सर्वाकारातिप्रत्यक्ष स्वेच्छामय नमोऽस्तु ते ।।४८।।
इत्युक्त्वा स मुनिश्रेष्ठो निपत्य चरणाम्बुजे । प्राणांस्तत्याज योगेन तयोः प्रत्यक्ष एव च ।।४९।।
पपात तत्र तद्देहः पादपद्मसमीपतः । तत्तेजश्च समुत्तस्थौ ज्वलदग्निशिखोपमम् ।।५०।।
सप्ततालप्रमाणं तु चोत्थाय च पपात ह । भ्रामं भ्रामं च परितो लीनं चाभूत्पदाम्बुजे ।।५१।।
अष्टावक्रकृतं स्तोत्रं प्रातरुत्थाय यः पठेत् । परं निर्वाणमोक्षं च समाप्नोति न संशयः ।।५२।।
प्राणाधिको मुमुक्षूणां स्तोत्रराजश्च नारद । हरिणाऽहो पुरा दत्तो वैकुण्ठे शंकराय च ।।५३।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० मुनिमोक्षणप्रस्ताव
एकोनविंशोऽध्यायः ।।२९।।

---

है, उस (वृक्ष) के आधार आप ही हैं और आप (स्वयं) निराधार तथा सर्वाधार हैं । आपको नमस्कार है ।।४६-४७।। तेजोरूप, निराकार, प्रत्यक्ष प्रमाण से परे, समस्ताकार (विराट्रूप), अति प्रत्यक्ष एवं स्वेच्छामय ! आपको नमस्कार है ।।४८।। इतना कहकर वे मुनिश्रेष्ठ भगवान् के चरण-कमल पर गिर पड़े, और उन दोनों (राधा-माधव) के सामने ही योग द्वारा अपने प्राणों का परित्याग कर दिया ।।४९।। भगवान् के चरणकमल के समीप उनकी देह गिर गयी और शरीर से प्रज्वलित अग्नि-शिखा की भाँति उनका तेज निकला और सात ताड़ वृक्षों के समान ऊँचे उठकर पुनः गिर पड़ा, पुनः चारों ओर भ्रमण करके भगवान् के चरणकमल में लीन हो गया ।।५०-५१।। अष्टावक्र-कृत स्तोत्र का जो प्रातःकाल उठकर पाठ करेगा, उसे निर्वाण-मोक्ष की प्राप्ति होगी, इसमें संशय नहीं ।।५२।। नारद ! यह स्तोत्रराज मुमुक्षुजनों को प्राणों से भी अधिक (प्रिय) है । अहो ! पूर्वकाल में वैकुण्ठ धाम में श्रीहरि ने शिव को यह प्रदान किया था ।।५३।।

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्ण-जन्मखण्ड में नारायण-नारद-संवाद में मुनि का मोक्ष वर्णन नामक उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त ।।२९।।

---

१ ख. 'सारवि' । २ ख. 'मेव च ।

# अथ त्रिंशोऽध्यायः

**नारद उवाच**

महामुने रहस्यं च श्रुतं ब्रह्मन्किमद्भुतम् । मृते मुनौ किं चकार श्रीकृष्णो भक्तवत्सलः ।।१।।

**नारायण उवाच**

दृष्ट्वा मृतं मुनिं कृष्णः संस्कारं कर्तुमुद्यतः । कृत्वा वक्षसि तद्देहं रुरोदोच्चैर्यथा नरः ।।२।।
बाहुभ्यां च समाश्लिष्य पिपेषोद्रिक्तमोहतः । निर्गतं भस्मनिकरं शवाद्वज्राङ्गघर्षणात् ।।३।।
रक्तमांसास्थिहीनं तच्छरीरं च महात्मनः । षष्टिवर्षसहस्राणि निराहारकृतो मुनेः ।।४।।
दग्धं लोहितमांसास्थि ज्वलता जठराग्निना । बाह्यज्ञानविहीनस्य हरिपादाब्जचेतसः ।।५।।
चितां चन्दनकाष्ठेन निर्माय मधुसूदनः । कृत्वाऽग्निकार्यं तत्रैव स्थापयामास शोकतः ।।६।।
ददौ चितायामग्निं च काष्ठं दत्त्वा शवोपरि । ज्वलितायां चितायां च मूर्च्छामाप क्षणं विभुः ।।७।।
तद्देहे भस्मसाद्भूते नेदुर्दुन्दुभयो दिवि । बभूव पुष्पवृष्टिश्च तत्क्षणाद्गगनाद्वहो ।।८।।

---

# अध्याय ३०

## अष्टावक्र को रम्भा का शाप

**नारद बोले**—ब्रह्मन् ! उन महामुनि का कौन-सा अद्भुत रहस्य सुना गया ? मुनि के मर जाने पर भक्त-वत्सल श्रीकृष्ण ने क्या किया ? ।।१।।

**नारायण बोले**—मुनि को मृतक देखकर श्रीकृष्ण उनका दाह-संस्कार करने के लिए उद्यत हो गये । उनके शरीर को अपने वक्षःस्थल पर रखकर (साधारण) मनुष्य की तरह उच्च स्वर से रोदन करने लगे ।।२।। अति मोह के कारण अपनी बाहुओं से उस शव को कसकर पकड़ लिया, जिससे उनके वज्राङ्ग घर्षण से उस शव से भस्म-समूह निकला ।।३।। उन महात्मा का शरीर रक्त, मांस एवं अस्थियों से भी रहित था । महामुने ! साठ सहस्र वर्ष तक निराहार रहकर उन्होंने तप किया था, जिसके कारण जठराग्नि द्वारा उनकी देह का रक्त, मांस और अस्थियां जल गयी थीं । वे सदैव बाह्यज्ञान से रहित होकर केवल भगवान् के चरण-कमल में चित्त को लगाये रहते थे ।।४-५।। उपरांत मधुसूदन ने चन्दन काष्ठ की चिता बनाकर उसमें अग्नि कार्य (संस्कार) किया और शोक-लीला करते हुए अश्रुपूर्ण नेत्रों से मुनि के शव को उस चिता पर स्थापित कर दिया । तदनन्तर शव के ऊपर भी काष्ठ रखकर चिता में अग्नि लगा दिया । चिता के जल उठने पर क्षण भर के लिए भगवान् को मूर्च्छा आ गयी ।।६-७।। मुनि के शरीर के जल जाने पर आकाश में दुन्दुभियाँ (नगाड़े) बजने लगीं और उसी

एतस्मिन्नन्तरे तत्र रत्नसारविनिर्मितम् । स्यन्दनं च मनोयायि वस्त्रमाल्यपरिच्छदम् ॥९॥
पार्षदप्रवरैर्युक्तं श्रीकृष्णसदृशैर्वरैः । आविर्बभूव गोलोकात्सुन्दरं पुरतो हरेः ॥१०॥
अवरुह्य रथात्तूर्णं पार्षदप्रवरा हरेः । सर्वे समानरूपास्ते प्रणम्य राधिकेश्वरौ ॥११॥
धृतवन्तं सूक्ष्मदेहं प्रणमय्य मुनीश्वरम् । रथे कृत्वा तु तं देहं जग्मुर्गोलोकमुत्तमम् ॥१२॥
गते मुनीन्द्रे गोलोकं वृन्दावनविनोदिनी । बभूव विस्मिता साध्वी पप्रच्छ जगदीश्वरम् ॥१३॥

## राधिकोवाच

कोऽयं नाथ मुनिश्रेष्ठः सर्वावयववक्रिमः । अतिखर्वंजनाकारस्तेजीयानतिकुत्सितः ॥१४॥
कथं वा निर्गतं भस्म देहादस्य किमद्भुतम् । साक्षाद्विलीनं यत्तेजस्त्वत्पादाब्जेऽनलोपमम् ॥१५॥
रथस्थः पुण्यवान्सद्यो गोलोकं च जगाम ह । स्वात्मारामस्य यद्धेतो रोदनं ते बभूव ह ॥१६॥
त्वया कृतं च सत्कारमश्रुपूर्णेन चक्षुषा । सर्वं विवरणं तूर्णं संव्यस्य कथय प्रभो ॥१७॥
राधिकावचनं श्रुत्वा प्रहस्य मधुसूदनः । कथां कथितुमारेभे युगान्तरगतामपि ॥१८॥

## श्रीकृष्ण उवाच

रहस्यमष्टावक्रीयं विख्यातं सर्वतः प्रिये । पश्चाच्छ्रोष्यसि कालेन प्रसङ्गे विदुषां मुखात् ॥१९॥

---

समय आकाश से पुष्पों की वृष्टि होने लगी ॥८॥ इसी बीच भगवान् के सामने ही गोलोक से एक परम सुन्दर रथ आया, जो रत्नों के सारभाग से सुरचित, मन की भाँति चलनेवाला, वस्त्रों और मालाओं से सुसज्जित एवं भगवान् श्रीकृष्ण के समान उत्तम पार्षदों से युक्त था ॥९-१०॥ भगवान् के वे पार्षद-प्रवर रथ से शीघ्र उतर गये। उन सबके आकार श्रीकृष्ण से मिलते-जुलते थे। उन्होंने राधिका और श्रीकृष्ण को प्रणाम किया तथा सूक्ष्म देहधारी उन मुनीश्वर को भी मस्तक झुकाया। अनन्तर उस रथ पर उन्हें बैठाकर उत्तम गोलोक को चले गये ॥११-१२॥ मुनीन्द्र (अष्टावक्र) के गोलोक चले जाने पर वृन्दावनविनोदिनी एवं सती राधिका ने चकित हो जगदीश्वर श्रीकृष्ण से पूछा ॥१३॥

**राधिका बोलीं**—नाथ! ये मुनिश्रेष्ठ कौन थे, जिनके सकल अंग टेढ़े-मेढ़े थे? ये बहुत ही नाटे थे। इनके शरीर का रंग काला था और ये देखने में अत्यन्त कुत्सित होने पर भी बड़े तेजस्वी थे ॥१४॥ इनकी देह से यह अद्‌भुत भस्म कैसे निकला? इनका जो अग्नि के समान तेज था, वह साक्षात् आपके चरण-कमल में विलीन हो गया और वे पुण्यात्मा रथ पर बैठकर सद्यः गोलोक को चले गये और उनके कारण स्वात्माराम आपको रोना पड़ा। प्रभो! आपने अश्रुपूर्ण नेत्र से उनका सत्कार किया था, अतः समस्त विवरण शीघ्र विस्तार से बतायें ॥१५-१७॥ राधिका की बात सुनकर मधुसूदन ने हँसकर युगान्तर की बीती हुई उनकी कथा को कहना आरम्भ किया ॥१८॥

**श्रीकृष्ण बोले**—प्रिये! अष्टावक्र का रहस्य सब ओर विख्यात है। बाद में समय पाकर किसी प्रसंग

अष्टावक्रो मुनीन्द्रोऽपि विख्यातो भुवनत्रये। परिपूर्णं यद्यशसा जगन्मातर्जगत्त्रयम् ॥२०॥
कृष्णस्य वचनं श्रुत्वा विमनस्का हरिप्रिया। उवाच मधुरं यत्नाच्छुष्कण्ठोष्ठतालुका ॥२१॥

## राधिकोवाच

यत्तृषालोर्मनः पूर्णं न बभूव सुधाम्बुधौ। स वितृप्तो भवति किं गोष्पदोदकपानतः ॥२२॥
वेदानां वेदवक्तॄणां विधातुर्जनकस्य च। महाविष्णोरीश्वरस्त्वं कोऽन्यो वक्ताऽस्ति त्वत्परः ॥२३॥
राधिकावचनं श्रुत्वा तुष्टः कृष्णो बभूव ह। उवाच गोपनीयं च रहस्यं परमाद्भुतम् ॥२४॥

## श्रीकृष्ण उवाच

शृणु कान्ते प्रवक्ष्येऽहमितिहासं पुरातनम्। श्रवणात्कथनाद्यस्य सर्वं पापं प्रणश्यति ॥२५॥
महाविष्णोर्नाभिपद्माद्बभूव जगतां विधिः। यमांशश्च मत्कलया जलाकीर्णे जगत्त्रये ॥२६॥
पुत्रा बभूवश्चत्वारो ब्रह्मणो मानसात्पुरा। नारायणपराः सर्वे ज्वलतो ब्रह्मतेजसा ॥२७॥
शिशवः पञ्चवर्षीया नग्ना अज्ञानिनो यथा। बाह्यज्ञानविहीनाश्च ब्रह्मतत्त्वविशारदाः ॥२८॥
सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः। सनत्कुमारो भगवानेते चत्वार एव च ॥२९॥
तानुवाच जगद्धाता सृष्टिं कुरुत पुत्रकाः। ते न तस्थुः पितुर्वाक्ये प्रययुस्तपसे मम ॥३०॥

---

में विद्वानों के मुख से सुन लोगी ॥१९॥ मुनीन्द्र अष्टावक्र भी तीनों लोकों में विख्यात थे। जगन्माता ! उनके यश से तीनों लोक परिपूर्ण थे ॥२०॥ श्रीकृष्ण की बात सुनकर उनकी प्रेयसी राधिका का मुख उदास हो गया, कण्ठ, ओंठ और तालू सूख गये। अनन्तर बड़े प्रयत्न से उन्होंने मधुर वचन कहा ॥२१॥

**राधिका बोलीं**—जिस प्यासे (मनुष्य) का मन अमृत के समुद्र में नहीं भरा, वह क्या गौ के खुर के प्रमाण जल पीने से परितृप्त हो सकता है? आप वेदों और वेदवेत्ताओं के जनक, ब्रह्मा तथा महाविष्णु के भी आप ईश्वर हैं, अतः आपसे बढ़कर वक्ता दूसरा कौन हो सकता है? ॥२२-२३॥ राधिका की बात सुनकर कृष्ण प्रसन्न हो गये और गोपनीय एवं परम अद्भुत रहस्य को कहना आरम्भ किया ॥२४॥

**श्रीकृष्ण बोले**—प्रिये ! सुनो, मैं तुम्हें बहुत प्राचीन इतिहास बता रहा हूँ, जिसके सुनने और कहने से समस्त पाप विनष्ट हो जाता है ॥२५॥ तीनों लोकों के जलमग्न होने पर महाविष्णु के नाभि-कमल से मेरे वंशभूत ब्रह्मा मेरी कला द्वारा उत्पन्न हुए ॥२६॥ पूर्वकाल में उनके मन द्वारा चार पुत्र उत्पन्न हुए, जो नारायण-परायण तथा ब्रह्मतेज से प्रकाशमान थे ॥२७॥ वे अज्ञानी पाँच वर्ष के बालक के समान नग्न, बाह्यज्ञान-शून्य तथा ब्रह्म-तत्त्व में निपुण थे ॥२८॥ सनक, सनन्द, तृतीय सनातन और भगवान् सनत्कुमार—ये ही (क्रमशः) उन चारों के नाम हैं ॥२९॥ ब्रह्मा ने उनसे कहा—पुत्रो ! तुम लोग सृष्टि करो ! किन्तु वे सब पिता की बात न

विधाता विमनस्कश्च तनयेषु गतेषु च । पितुर्दुःखाय प्रभवेत्पुत्रश्चेदवचस्करः ॥३१॥
ज्ञानेन निर्ममे पुत्रान्स्वाङ्गेषु च तपोधनान् । वेदवेदाङ्गविज्ञांश्च ज्वलतो ब्रह्मतेजसा ॥३२॥
अत्रिः पुलस्त्यः पुलहो मरीचिर्भृगुरङ्गिराः । क्रतुर्वसिष्ठो वोढुश्च कपिलाश्चासुरिः कविः ॥३३॥
शङ्कुः शङ्खः पञ्चशिखः प्रचेतास्ते तपोधनाः । बहुकालं तपस्तप्त्वा चक्रुः सृष्टिं तदाज्ञया ॥३४॥
कलत्रवन्तस्ते सर्वे संसारं कर्तुमुन्मुखाः । बभूवुः पुत्रपौत्राश्च सर्वेषां च तपस्विनाम् ॥३५॥
तदस्तु च तथा बह्वी मुनिवंशानुकीर्तनी । चार्वी पुण्यस्वरूपा च प्रकृतं शृणु सुन्दरि ॥३६॥
प्रचेतसः सुतः श्रीमानसितो मुनिपुंगवः । सकलत्रस्तपस्तेपे दिव्यं वर्षसहस्रकम् ॥३७॥
न बभूव सुतस्तस्य प्राणांस्त्यक्तुं समुद्यतः । तं संबोद्धुं बभूवाथ सत्या वागशरीरिणी ॥३८॥
कथं त्यजसि प्राणांस्त्वं गच्छ शंकरसंनिधिम् । सिद्धं कुरु गृहीत्वा च मन्त्रं शंकरवक्त्रतः ॥३९॥
मन्त्राधिष्ठातृदेवी ते सद्यः साक्षाद्भविष्यति । वरेणाभीष्टदेव्याश्च पुत्रस्ते भविता ध्रुवम् ॥४०॥
श्रुत्वेतच्चरितं विप्रो जगाम शिवसंनिधिम् । योगिनामप्यगम्यं च शिवलोकं निरामयम् ॥४१॥
सकलत्रो यथा योगी तुष्टाव योगिनां गुरुम् । पुटाञ्जलियुतो भूत्वा भक्तिनम्रात्मकंधरः ॥४२॥

---

मानकर मेरा तप करने चले गये ॥३०॥ पुत्रों के चले जाने पर ब्रह्मा उदास हो गये, क्योंकि पुत्र यदि आज्ञाकारी न हुआ, तो वह पिता के लिए दुःखप्रद होता है ॥३१॥ अनन्तर उन्होंने ज्ञान द्वारा अपने विभिन्न अङ्गों से पुत्रों को उत्पन्न किया । जो तपस्या के धनी, वेद-वेदाङ्ग के विशेषज्ञ और ब्रह्मतेज से जाज्वल्यमान थे ॥३२॥ अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, मरीचि, भृगु, अंगिरा, क्रतु, वसिष्ठ, वोढु, कपिल, आसुरि, कवि, शङ्कु, शङ्ख, पञ्चशिख और प्रचेता ये उन तपस्वियों के नाम हैं । उन लोगों ने बहुत काल तक तप करने के उपरान्त ब्रह्मा की आज्ञा से सृष्टि करना आरम्भ किया ॥३३-३४॥ वे सब-के-सब पत्नी समेत रहकर संसार-वृद्धि करने के लिए उद्यत हुए । सभी तपस्वियों के अनेकों पुत्र-पौत्र हुए ॥३५॥ मुनि वंश की परम्परा का कीर्तन करनेवाली वह मनोहर एवं पुण्यस्वरूपा कथा बहुत बड़ी है; अतः उसे रहने दो, अब प्रकृत प्रसंग की बात सुनो ॥३६॥ प्रचेता के श्रीमान् एवं मुनिश्रेष्ठ असित नामक पुत्र हुए । असित ने पत्नी समेत दिव्य सहस्र वर्ष तप किया ॥३७॥ तथापि उनके पुत्र न हुआ, तो प्राण-परित्याग करने के लिए तैयार हो गये । उनको समझाने के लिए आकाशवाणी हुई कि—'मुने ! प्राण-परित्याग क्यों कर रहे हो ? शिव के पास जाओ और उनके मुख से मन्त्र ग्रहण करके उसे सिद्ध करो ॥३८-३९॥ उससे मन्त्र की अधिष्ठात्री देवी तुम्हें साक्षात् दर्शन देगी और उसी अभीष्ट देवी के वरदान द्वारा तुम्हें निश्चित रूप से पुत्र-प्राप्ति होगी' ॥४०॥ यह सुनकर वह ब्राह्मण शिव के समीप गया, जो योगियों के लिए भी अगम्य हैं । उस निरामय शिवलोक में पहुँचकर पत्नी सहित ब्राह्मण ने योगी की भाँति हाथ जोड़े एवं भक्ति से कन्धे झुकाये, योगियों के गुरु की स्तुति की ॥४१-४२॥

## असित उवाच

जगद्गुरो नमस्तुभ्यं शिवाय शिवदाय च। योगीन्द्राणां च योगीन्द्र गुरूणां गुरवे नमः ॥४३॥
मृत्योर्मृत्युस्वरूपेण मृत्युसंसारखण्डन। मृत्योरीश मृत्युबीज मृत्युंजय नमोऽस्तु ते ॥४४॥
कालरूपं कलयतां कालकालेश कारण। कालादतीत कालस्थ कालकाल नमोऽस्तु ते ॥४५॥
गुणातीत गुणाधार गुणबीज गुणात्मक। गुणीश गुणिनां बीज गुणिनां गुरवे नमः ॥४६॥
ब्रह्मस्वरूप ब्रह्मज्ञ ब्रह्मभावे च तत्पर। ब्रह्मबीजस्वरूपेण ब्रह्मबीज नमोऽस्तु ते ॥४७॥
इति स्तुत्वा शिवं नत्वा पुरस्तस्थौ मुनीश्वरः। दीनवत्साश्रुनेत्रश्च पुलकाञ्चितविग्रहः ॥४८॥
असितेन कृतं स्तोत्रं भक्तियुक्तश्च यः पठेत्। वर्षमेकं हविष्याशी शंकरस्य महात्मनः ॥४९॥
स लभेद्वैष्णवं पुत्रं ज्ञानिनं चिरजीविनम्। भवेद्धनाढ्यो दुःखी च मूको भवति पण्डितः ॥५०॥
अभार्यो लभते भार्यां सुशीलां च पतिव्रताम्। इह लोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते शिवसंनिधिम् ॥५१॥
इदं स्तोत्रं पुरा दत्तं ब्रह्मणा च प्रचेतसा। प्रचेतसा स्वपुत्रायासिताय दत्तमुत्तमम् ॥५२॥

## श्रीकृष्ण उवाच

समाकर्ण्य मुनेः स्तोत्रं भगवाञ्छंकरः स्वयम्। उवाच ब्रह्मणः पुत्रं स्वभक्तं भक्तवत्सलः ॥५३॥

---

**असित बोले**—जगद्गुरो! आपको नमस्कार है, आप शिव (कल्याण) रूप और कल्याण के दाता हैं। आप योगीन्द्रों के भी योगीन्द्र तथा गुरुओं के गुरु हैं, आपको नमस्कार है ॥४३॥ आप मृत्यु के भी मृत्यु रूप होकर इस मृत्यु संसार का संहार करते हैं। हे मृत्यु के ईश, मृत्यु के कारण एवं मृत्यु के विजेता! आपको नमस्कार है ॥४४॥ कालगणना करनेवालों के लक्ष्यभूत कालरूप परमेश्वर! आप काल के भी काल, ईश्वर और कारण हैं तथा काल के लिए भी कालातीत हैं। कालकाल! आपको नमस्कार है ॥४५॥ गुणों से परे, गुणों के आधार, गुणों के कारण, गुणरूप, गुणवानों के ईश, गुणियों के बीज! आप गुणवानों के गुरु हैं। आपको नमस्कार है ॥४६॥ ब्रह्मस्वरूप, ब्रह्मज्ञाता, ब्रह्म-चिन्तन-परायण! आप ब्रह्मबीजस्वरूप से वेदों के बीजरूप हैं, आपको नमस्कार है ॥४७॥ स्तुति करके शिव को प्रणाम करने के पश्चात् मुनीश्वर उन शिव के सामने इस प्रकार खड़े हो गये और दीन की भाँति नेत्रों से आँसू बहाने लगे। उनके सम्पूर्ण शरीर में रोमांच हो आया ॥४८॥ असित द्वारा किये गये महात्मा शंकर के स्तोत्र का जो एक वर्ष तक हविष्य भोजन करके भक्तिपूर्वक पाठ करता है, उसे वैष्णव, ज्ञानी एवं चिरंजीवी पुत्र प्राप्त होता है ॥४९॥ दुःखी धनाढ्य होता है मूक (गूंगा) पण्डित होता है और स्त्री-हीन पुरुष को सुशीला एवं पतिव्रता पत्नी प्राप्त होती है तथा इस लोक में सुखोपभोग करके अन्त में वह भगवान् शिव के समीप चला जाता है ॥५०-५१॥ पूर्व समय यही स्तोत्र ब्रह्मा ने प्रचेता को दिया था और प्रचेता ने अपने पुत्र असित को दिया ॥५२॥

**श्रीकृष्ण बोले**—मुनि के स्तोत्र को सुनकर भक्तवत्सल भगवान् शिव ने अपने भक्त ब्रह्म-पुत्र से कहा ॥५३॥

## शंकर उवाच

स्थिरो भव मुनिश्रेष्ठ जानामि तव वाञ्छितम् । पुत्रस्ते भविता सत्यं मदंशेन च मत्समः ।।५४।।
दास्यामि मन्त्रमतुलं सर्वेषां च सुदुर्लभम् । इत्युक्त्वा च ददौ मन्त्रं तवैव षोडशाक्षरम् ।।५५।।
स्तोत्रं पूजाविधानं च कवचं परमाद्भुतम् । संसारविजयं नाम पुरश्चरणपूर्वकम् ।।५६।।
वरं दातुमिष्टदेवी प्रत्यक्षा भवितेति च । इत्युक्त्वा विरतो रुद्रः स तं नत्वा जगाम ह ।।५७।।
जजाप परमं मन्त्रं सोऽसितः शतवत्सरम् । शाक्षाद्भूत्वा वरस्तस्मै त्वया दत्तः पुरा सति ।।५८।।
पुत्रस्ते भविता सत्यं महाज्ञानी सुतेति च । वरं दत्त्वा त्वमगमो गोलोकं मम संनिधिम् ।।५९।।
कालेन च सुतस्तस्य शिवांशेन बभूव ह । ब्रह्मिष्ठो देवलो नाम्ना कन्दर्पसमसुन्दरः ।।६०।।
सुयज्ञनृपतेः कन्यां रत्नमालावतीं मुदा । तां सुन्दरीं विवाहेन जगृहे सर्वमोहिनीम् ।।६१।।
स्थाने स्थाने च रहसि शतवर्षं तया सह । स रेमे निपुणः श्रेष्ठः स्त्रीणां रमणकर्मणि ।।६२।।
कालान्तरे स विरतो बभूव मुनिपुंगवः । सुखं सर्वं परित्यज्य धर्मिष्ठः श्रीहरिं स्मरन् ।।६३।।
उत्थाय रात्रौ शयनाद्विरक्तश्च तपोधनः । स ययौ तपसे कान्ते गन्धमादनगह्वरम् ।।६४।।
निद्रां त्यक्त्वा च तत्कान्ता न दृष्ट्वा स्वामिनं सती । विललाप भृशं शोकात्प्रदग्धा विरहाग्निना ।।६५।।

---

**शंकर बोले**—मुनिश्रेष्ठ ! धैर्य धारण करो, मैं तुम्हारा मनोरथ जानता हूँ—मेरे अंश से मेरे समान ही तुम्हारे पुत्र होगा, यह सत्य है ।।५४।। मैं तुम्हें अनुपम मंत्र दूंगा जो सभी लोगों के लिए अति दुर्लभ है। इतना कहकर उन्होंने तुम्हारा ही षोडशाक्षर मंत्र, स्तोत्र, पूजाविधान और पुरश्चरणपूर्वक संसारविजय नामक परम अद्भुत कवच उस ब्राह्मण को प्रदान किया और कहा कि 'वर प्रदान करने के लिए इष्ट देवी तुम्हारे सामने प्रत्यक्ष होंगी ।' यह कहकर रुद्र चुप हो गये और वह ब्राह्मण भी उन्हें नमस्कार करके चला गया ।।५५-५७।। अनन्तर असित मुनि सौ वर्षों तक उस परम मन्त्र का जप किया, जिससे तुमने साक्षात् होकर पूर्वकाल में ही उन्हें वर दिया कि–'तुम्हें महाज्ञानी पुत्र की प्राप्ति होगी, इसे सत्य जानो।' वर देकर तुम मेरे समीप गोलोक चली आयी ।।५८-५९।। समय पाकर शिव के अंश से उनके देवल नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो ब्रह्मनिष्ठ एवं काम के समान सुन्दर था ।।६०।। राजा सुयज्ञ की रत्नमालावती नामक सुन्दरी एवं मोहिनी कन्या से उसका पाणिग्रहण संस्कार हुआ ।।६१।। स्त्रियों के साथ रमण करने में श्रेष्ठ एवं निपुण देवल ने रत्नमालावती के साथ सौ वर्षों तक जगह-जगह एकान्त में रमण किया ।।६२।। कालान्तर में मुनिवर एवं विरक्त तपस्वी को वैराग्य हो गया । तब वे धर्मात्मा सब सुख को त्यागकर श्रीहरि का स्मरण करते हुए रात्रि में शय्या से उठकर तपस्या करने के लिए गन्धमादन पर्वत की गुफा में चले गये ।।६३-६४।। नींद टूटने पर उनकी सती पत्नी ने अपने स्वामी को न देखकर विरहाग्नि से दग्ध होकर शोक से

उत्तिष्ठन्ती निर्विशन्ती रुरोदोच्चैर्मुहुर्मुहुः। तप्तपात्रे यथा धान्यं बभूव तन्मनस्तदा ॥६६॥
आहारं च परित्यज्य प्राणांस्तत्याज सुन्दरी। चकार तत्सुतस्तस्याः कर्म निर्हरणादिकम् ॥६७॥
तपश्चकार स मुनिर्गन्धमादनगह्वरे। दिव्यं वर्षसहस्रं च मम भक्तो जितेन्द्रियः ॥६८॥
तं ददर्श ह दैवेन रम्भा शृङ्गारलोलुपा। अतीव सुन्दरं शान्तं कन्दर्पमिव सुन्दरम् ॥६९॥
सा च तं कथयामास निर्जने समुपस्थिता। विधाय वेषं यत्नेन त्रैलोक्यचित्तमोहिनी ॥७०॥

रम्भोवाच

निबोध साधो मद्वाक्यं कामिनीनां मनोहरम्। त्यक्त्वा कठोरं रहसि भज मां सुखदायिकाम् ॥७१॥
त्वं वरेषु वरः पृथ्व्यां वरारोहा स्वयंवरा। विदग्धाया विदग्धस्य दुर्लभो नवसंगमः ॥७२॥
यज्ञं कुर्वन्ति भूपाला भारते स्वर्गहेतुकम्। स्वर्गभोगनिमित्तं च भोगसारा वयं मुने ॥७३॥
स्तनयोर्युग्ममूर्वोर्मे सुन्दरं मुखपङ्कजम्। हास्यभ्रूभङ्गसहितं दृष्ट्वा को न लभेत्सुखम्[1] ॥७४॥
स्त्रीरसः सुखसारश्च मुनीनामभिवाञ्छितः। रसिकासुखसंभोगो निर्जने चातिदुर्लभः ॥७५॥

---

अत्यन्त विलाप किया ॥६५॥ वह उठकर कभी खड़ी होती और कभी पछाड़ खाकर गिरती थी। रत्नमालावती बार-बार उच्च स्वर से रोने लगी। तपे हुए पात्र में पड़े हुए धान्य की जो दशा होती है, वही दशा उस समय उसके मन की थी ॥६६॥ उस सुन्दरी ने आहार त्यागकर अपने प्राणों का भी त्याग कर दिया। उसके पुत्र ने उसका दाह-संस्कार आदि पारलौकिक कृत्य किया ॥६७॥ जितेन्द्रिय एवं मेरे भक्त उस मुनि ने गन्धमादन पर्वत की गुफा में एक सहस्र दिव्य वर्षों तक तप किया। दैवसंयोग से उसी बीच शृङ्गारलोलुपा रम्भा ने उन्हें देखा, जो अति सुन्दर, शान्त एवं काम के समान सुन्दर थे ॥६८-६९॥ त्रैलोक्य के चित्त को मोहित करनेवाली रम्भा ने यत्न से वेश बनाकर निर्जन प्रदेश में उपस्थित होकर उनसे कहा ॥७०॥

**रम्भा बोली**—साधो! कामिनियों की मनोहर मेरी बात सुनो—इस कठोर कर्म का त्यागकर एकान्त स्थल में मुझ सुखदायिनी के साथ विहार करो ॥७१॥ क्योंकि तुम श्रेष्ठों में श्रेष्ठ हो और मैं सुन्दरी अप्सरा हूँ। चतुर स्त्री का चतुर पुरुष के साथ नव समागम दुर्लभ भी होता है ॥७२॥ हे मुने! भारत में राजा लोग स्वर्ग-प्राप्ति के निमित्त यज्ञ करते हैं। स्वर्ग-भोग की निमित्तभूत तथा भोग की सारभूत हम ही लोग हैं ॥७३॥ हमारे दोनों स्तनों, जाँघों, सुन्दर मुख-कमल, हँसी तथा भौंह मटकाना देखकर कौन सुख नहीं पायेगा? ॥७४॥ क्योंकि समस्त सुखों का सारभूत स्त्री रस मुनियों को भी अभीष्ट होता है। निर्जन स्थान में रसिक स्त्री के साथ सुख-संभोग अत्यन्त दुर्लभ है ॥७५॥ देव, मानव, गन्धर्व अथवा राक्षस रम्भा की रति से वंचित होने पर

---

१ क. ०रसुधी:

देवो वा मानवो वाऽपि गन्धर्वो वाऽथ राक्षसः। स्त्रीसुखेष्वप्यविज्ञेयो रम्भाया रतिवञ्चितः ॥७६॥
रहस्युपस्थितां कान्तां न भजेद्यो जितेन्द्रियः। गात्रलोमप्रमाणाब्दं कुम्भीपाके वसेद्ध्रुवम् ॥७७॥
सत्यं तस्याश्च वधभाक्तच्छापेन प्रणश्यति। विधाता मोहिनीशापादपूज्यो भुवनत्रये ॥७८॥
येन त्यक्तोपस्थिता तं यथा पश्यति पुंश्चली। स्वामिपुत्रस्वबन्धूनां न तथा घातकं रुषा ॥७९॥
परं प्रियं च सर्वेषां जारं जानाति पुंश्चली। यदि तेन परित्यक्ता तं हन्तुं सा तु दक्षिणा ॥८०॥
पुंश्चली हिंस्रजन्तुभ्यो नवघातिभ्य एव च। दुष्टा शश्वद्दयाहीना दुरन्ता प्रतिजन्मनि ॥८१॥
त्यज ध्यानं मुनिश्रेष्ठ भुङ्क्ष्वेदं तपसः फलम्। रहस्युपस्थितां मां च गृहीत्वा सुचिरं सुखम् ॥८२॥
स रम्भावचनं श्रुत्वा तामुवाच भयाकुलः। हितं तथ्यं नीतिसारं परिणामसुखावहम् ॥८३॥

## देवल उवाच

शृणु रम्भे प्रवक्ष्यामि वेदसारं परं वचः। कुलधर्मोचितं सत्यं ब्राह्मणानां तपस्विनाम् ॥८४॥
धर्मोऽयं युक्तकाले च स्वयोषिति रतो द्विजः। सर्वत्र पूजितः शश्वदिह लोके परत्र च ॥८५॥
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यो यो रतः परयोषिति। याति तस्यापूजितस्य रुष्टा लक्ष्मीर्गृहादपि ॥८६॥
इहातिनिन्द्यः सर्वत्र नाधिकारी स्वकर्मसु। परत्रैवान्धकूपे च यावद्वर्षशतं वसेत् ॥८७॥

---

स्त्री-सुख से ही अनभिज्ञ समझा जाना चाहिए ॥७६॥ जो जितेन्द्रिय पुरुष एकान्त में उपस्थित रमणी का सेवन नहीं करता है, उसे कुम्भीपाक नरक में शरीर के लोमप्रमाण वर्षों तक निश्चित रूप से रहना पड़ता है ॥७७॥ सचमुच वह उस (रमणी) के वध का भागी होता है और उसी के शाप से नष्ट भी हो जाता है। विधाता (ब्रह्मा) मोहिनी के शाप से तीनों लोकों में अपूज्य हो गये हैं ॥७८॥ जो पुंश्चली स्त्री का त्याग करता है, उसे वे जिस प्रकार देखती हैं, उस प्रकार अपने पति, पुत्र तथा बन्धुओं के घातक को भी क्रोध से नहीं देखती हैं ॥७९॥ पुंश्चली स्त्री पुरुष को सबसे अधिक प्रिय समझती है। अतः यदि वह पुंश्चली का त्याग करता है, तो वह उसकी हत्या करने पर उतारू हो जाती है ॥८०॥ पुंश्चली नये घात करनेवाले हिंसक जन्तुओं से भी अत्यन्त दुष्ट, निरन्तर दयाहीन एवं प्रत्येक जन्म में दुःखप्रद परिणामवाली होती है ॥८१॥ मुनिश्रेष्ठ ! ध्यान त्याग दो और एकान्त में उपस्थित मुझे लेकर यह चिरकाल तक सुखोपभोग रूप तपस्या का फल भोगो ॥८२॥ रम्भा की बात सुनकर भयभीत मुनि ने उससे हितकर, सत्य, नीतिसार एवं परिणाम में सुखकर वचन कहा ॥८३॥

**देवल बोले**—रम्भे ! सुनो, मैं तुम्हें वेदों का निष्कर्ष (निचोड़) बताऊँगा, जो सत्य एवं तपस्वी ब्राह्मणों के कुल धर्म के अनुकूल है ॥८४॥ यह धर्म है कि ब्राह्मण उपयुक्त समय पर अपनी पत्नी में निरत रहे। ऐसा ब्राह्मण इस लोक में तथा परलोक में भी सर्वत्र पूजित होता है ॥८५॥ और जो ब्राह्मण या क्षत्रिय या वैश्य परस्त्री में रत रहता है, उस अपूजनीय व्यक्ति के घर से लक्ष्मी रुष्ट होकर चली जाती हैं ॥८६॥ वह इस लोक में महानिन्दित होकर अपने (जातिगत) कर्म का अधिकारी नहीं रह जाता है, और मरने पर अन्धकूप नामक नरक

ग्राह्या चोपस्थिता स्त्री च गृहिणा न तपस्विना । त्यागे दोषः कामिनीनां शापभावपाप भाग्गृही ॥८८॥
ब्रह्मा जगद्विधाताऽपि न विरक्तः कलत्रवान् । त्यागे दोषस्तत्कदाचिन्नास्माकं त्यक्तयोषिताम् ॥८९॥
स्वभार्यां च परित्यज्य यो गृह्णाति परस्त्रियम् । यशोधनायुषां हानिर्भवेज्जीवन्मृतस्य च ॥९०॥
भुवि नास्ति यशो यस्य जीवनं तस्य निष्फलम् । सुसंपदा किं राज्येन सुखेन च तपस्विनः[1] ॥९१॥
निष्कामेन[2] च वृद्धेन मया किं ते प्रयोजनम् । सुवेशं सुन्दरं मातर्युवानं पश्य सुन्दरि ॥९२॥
इत्येवं वचनं श्रुत्वा चुकोपाप्सरसां वरा । उवाच भूयो वाक्यं तं त्रस्ता प्रस्फुरिताधरा ॥९३॥

### रम्भोवाच

चारुचम्पकवर्णाभः कन्दर्पसमसुन्दरः । तपः प्रभावात्सश्रीकः सुवेषः संमतः स्त्रियाः ॥९४॥
त्वया विनाऽन्यं कं यामि को वाऽस्ति त्वत्परः पुमान् । पुंश्चली त्वां परित्यज्य का जीवति स्मरातुरा ॥९५॥
शीघ्रं मां भज विप्रेन्द्र दग्धां कामाग्निना सदा । कामो नश्यति मां त्वत्तो यथा रम्भां मतंगजः ॥९६॥

---

में सौ वर्षों तक वास करता है ॥८७॥ इसलिए उपस्थित होनेवाली स्त्री का ग्रहण करना गृहस्थ के लिए उचित है, तपस्वी के लिए नहीं । कामिनियों के त्याग में गृहस्थ को दोष लगता है । वही शाप और पाप का भागी होता है ॥८८॥ जगत् के विधाता ब्रह्मा भी पत्नीवान् हैं, विरक्त नहीं । इसलिए हम स्त्री-त्यागियों को पुंश्चली के त्याग करने में कदाचित् दोष नहीं लगेगा ॥८९॥ अपनी स्त्री को त्याग करके जो पर-स्त्री को ग्रहण करता है, वह जीवित रहते हुए भी मृतक के समान है और उसके यश, धन एवं आयु का नाश हो जाता है ॥९०॥ भूतल पर जिसे यश न मिला, उसका जीवन व्यर्थ है । तपस्वी को उत्तम सम्पत्ति, राज्य एवं सुखोपभोग से क्या प्रयोजन है ? ॥९१॥ माता ! मुझ निष्काम एवं वृद्ध से तुम्हारा क्या प्रयोजन सिद्ध होगा ? सुन्दरी ! किसी उत्तम वेशवाले सुन्दर युवक को देखो ॥९२॥ ऐसी बात सुनकर वह श्रेष्ठ अप्सरा क्रुद्ध हो गयी । फिर ओंठ फड़काते हुए त्रस्त अप्सरा ने उन (देवल) से कहा ॥९३॥

**रम्भा बोली**--चारु चम्पा पुष्प के समान तुम्हारा रूप-रङ्ग है, कामदेव के समान तुम सुन्दर हो, तप के प्रभाव से तुम्हारी उत्तम शोभा हो गयी है एवं तुम्हारा वेश रमणी को प्रिय है ॥९४॥ तुम्हें छोड़कर मैं दूसरे किसके पास जाऊँ ? तुमसे बढ़कर कौन पुरुष है ? कौन कामपीड़ित पुंश्चली तुम्हारा त्याग करके जीवित रह सकती है ॥९५॥ अतः हे विप्रेन्द्र ! मैं कामाग्नि से अत्यन्त दग्ध हो रही हूँ, मेरे साथ शीघ्र सम्भोग करो । मतवाले

---

१ क. धनेन च । २ क. तपस्विना ।

न चेच्छापं प्रदायामि वद वेदविदां वर। मां वा दारुणशापं वा सत्वरं ग्रहणं कुरु ॥९७॥
दग्धाः प्राणा मनो दग्धं स्वात्मा वा इति संततम्। नवशृङ्गारपीयूषपाननिर्वाणतां व्रजेत् ॥९८॥
स्वान्तर्दुःखेन दुःखार्तो यो यं शपति निश्चितम्। तं शापं खण्डितुं शक्तो न विधाता जगत्पतिः ॥९९॥
द्विजो रम्भावचः श्रुत्वा बभूव ध्यानतत्परः। नोवाच किंचिन्मौनस्थः सा तं कोपाच्छशाप ह ॥१००॥
हे वक्रचित्त ते विप्र सर्वावयववक्रिमम्। शरीरमञ्जनाकारं रूपयौवनवर्जितम् ॥१०१॥
अतीव विकृताकारं त्रिषु लोकेषु गर्हितम्। पुरातनं तपो नष्टं सद्यो भवति निश्चितम् ॥१०२॥
इत्युक्त्वा पुंश्चली कामात्कामलोकं जगाम ह। अचिरेण मुनीन्द्रश्च न ददर्श हरेः पदम् ॥१०३॥
पादारविन्दविरहात्समुद्विग्नो बभूव ह। त्वाङ्गं च दृष्ट्वा विकृतं पूर्वपुण्यविवर्जितम् ॥१०४॥
कृत्वाऽग्निकुण्डं शोकेन प्राणांस्त्यक्तुं समुद्यतः। मया दृष्टो वरो दत्तो दिव्यज्ञानेन बोधितः ॥१०५॥
आश्वासश्च कृतः प्रीत्या ततः शान्तो बभूव ह। अङ्गान्यष्टौ च वक्राणि दृष्ट्वा तूर्णं महामुनेः ॥१०६॥
अष्टावक्रेति तन्नाम कौतुकेन मया कृतम्। मद्वाक्यान्मलयद्रोणीमयमागम्य सत्वरः ॥१०७॥
षष्टिवर्षसहस्राणि चकार परमं तपः। तपोऽवसाने मद्भक्तो मया मुक्तः कृतः प्रिये ॥१०८॥
सर्वस्मिन्प्रलये नष्टे न मद्भक्तः प्रणश्यति। सुचिरेणैव तपसा ज्वलता जठराग्निना ॥१०९॥

---

हाथी द्वारा कदली स्तम्भ के नष्ट हो जाने की भाँति मैं भी तुमसे उत्पन्न काम द्वारा विनष्ट हो रही हूँ ॥९६॥ हे वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ ! मेरी बात न मानोगे, तो मैं शाप प्रदान करूँगी। अब मुझे या दारुण शाप को शीघ्र ग्रहण करो ॥९७॥ मेरे प्राण, मन और आत्मा निरन्तर दग्ध हो रहे हैं। वे नवीन शृङ्गार रूपी अमृत का पान करने से ही शान्त होंगे ॥९८॥ अन्तरात्मा के दुःख से दुःखी होकर जो जिसको शाप देता है, उसके शाप का खण्डन जगत्पति विधाता भी नहीं कर सकते हैं ॥९९॥ रम्भा की ऐसी बात सुनकर ब्राह्मण ध्यान करने लगा। मौन होने पर कुछ भी नहीं बोला। यह देखकर उसने कुपित भाव से शाप दिया—'हे कुटिल चित्तवाले विप्र ! तुम्हारी यह देह समस्त अंगों समेत टेढ़ी, अंजन के समान काला और रूप एवं यौवन से रहित हो जाय। तुम्हारा आकार अत्यन्त विकृत तथा तीनों लोकों में अतिनिन्दित हो जाय और तुम्हारा किया हुआ तप निश्चित ही तुरन्त नष्ट हो जाय ॥१००-१०२॥ यह कहकर पुंश्चली कामवश कामदेव के लोक में चली गयी। अनन्तर मुनि को भगवान् के चरण-कमलों का दर्शन नहीं हुआ ॥१०३॥ चरण-कमल के विरह से मुनि उद्विग्न हो गये। अपने अंगों को विकृत (टेढ़े-मेढ़े) और पूर्व के पुण्यों का नाश देखकर शोक के कारण वे अग्निकुण्ड में गिरकर प्राण त्याग देने को तैयार हो गये, मैंने देखा, मुनि को वर दिया तथा दिव्यज्ञान से प्रबोधित किया ॥१०४-१०५॥ प्रेमपूर्वक आश्वासन देने पर मुनि शान्त हो गये। महामुनि के आठ अंगों को टेढ़े-मेढ़े देखकर मैंने कौतुक से उनका 'अष्टावक्र' नामकरण कर दिया। पश्चात् मेरे कहने से वे मलयाचल की घाटी में चले आये और साठ सहस्र वर्षों तक उन्होंने महा तप किया। प्रिये ! तप के अन्त में मैंने अपने भक्त को मुक्त कर दिया ॥१०६-१०८॥ प्रलयकाल में सबके नष्ट हो जाने पर भी मेरे भक्त का नाश नहीं होता है। अति दीर्घकाल तक निराहार तप करते रहने से उनके प्रज्वलित

त्यक्ताहारस्यान्तरं च भस्मपूर्णं ततो मुने। आगतं मलयद्रोण्यां मुनिहेतोर्मया प्रिये ॥११०॥
अष्टावक्राच्च मद्भक्तो न भूतो न भविष्यति। एवं भूतस्तपोनिष्ठः प्रपौत्रो ब्रह्मणो मुनिः ॥१११॥
निष्कलः पुंश्चलीशापाद् ब्रह्माऽपूज्यो यथा पुरा। इत्येवं कथितं सर्वं रहस्यं च महात्मनः॥
सुखदं पुण्यदं गूढं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥११२॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० राधाप्रश्नेऽष्टावक्रं प्रति रम्भाशापो नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

# अथैकत्रिंशोऽध्यायः

## राधिकोवाच

किमाश्चर्यं श्रुतं नाथ चरितं सुमनोहरम्। अधुना श्रोतुमिच्छामि ब्रह्मणः शापकारणम् ॥१॥
यो विधाता त्रिजगतां तपसां फलदायकः। स कथं कुलटाशापादपूज्यश्च बभूव ह ॥२॥

---

जठराग्नि ने आहार त्यागे हुए मुनि के शरीर को भीतरी वस्तु को जलाकर भस्म कर दिया था। प्रिये! मैं मुनि के निमित्त मलय की घाटी में आया था, अष्टावक्र से बढ़कर मेरा भक्त कोई न हुआ और न होगा। ब्रह्मा के प्रपौत्र ये मुनि ऐसे तपोनिष्ठ थे; परन्तु उस पुंश्चली के शाप से उसी तरह हीन अवस्था को पहुँच गये जैसे पूर्व-काल में ब्रह्मा अपूजनीय हो गये थे। इस प्रकार महात्मा का सारा गूढ़ रहस्य मैंने बता दिया, जो सुखद और पुण्यदायक है, अब पुनः तुम क्या सुनना चाहती हो? ॥१०९-११२॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्ण जन्मखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में राधा के प्रश्न में अष्टावक्र के प्रति रम्भा का शापवर्णन नामक तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३०॥

# अध्याय ३१

## मोहिनी-स्तोत्र-वर्णन

**राधिका बोलीं**—नाथ! क्या ही अद्भुत एवं अत्यन्त मनोहर चरित्र मैंने सुना। अब ब्रह्मा के शाप का कारण सुनना चाहती हूँ ॥१॥ जो तीनों लोकों के विधाता तथा तप के फलदाता हैं, वे एक कुलटा स्त्री के शाप से अपूज्य कैसे हो गये? ॥२॥

श्रीकृष्ण उवाच

मन्वन्तरे रैवतस्य सुचन्द्रो नृपपुंगवः। तपस्वी वैष्णवः श्रेष्ठो ज्ञानी परमधार्मिकः ॥३॥
स च पूर्वं तपः कुर्वन्नाजगाम मम प्रिये। इमां च मलयद्रोणीं भारतेषु मनोहराम् ॥४॥
तपश्चकार राजेन्द्रो वर्षाणां च सहस्रकम्। जीर्णं तस्य शरीरं च कठोरेण तपस्विनः ॥५॥
वल्मीकाच्छादितं देहं दृष्ट्वा धाता कृपानिधिः। आजगाम वरं दातुं तपःस्थानं सुनिर्जनम् ॥६॥
कमण्डलुजलेनैव मम देहोद्भवेन च। सिषेच तं च मन्त्रेण मया दत्तेन योगवित् ॥७॥
कमण्डलुजलस्पर्शादुत्थाय नृपतिः स्वयम्। ननाम भक्त्या जगतां स्रष्टारं च पुरःस्थितम् ॥८॥
स तं नमन्तं राजानमुवाच कमलोद्भवः। वरं वृणिवति राजेन्द्र यत्ते मनसि वाञ्छितम् ॥९॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा वरं वव्रे परात्परम्। ममैव चरणे भक्ति मदीयं दास्यमेव च ॥१०॥
कृपया च वरं ब्रह्मा दत्तवानभिवाञ्छितम्। स च तत्पुरतस्तस्थौ कामदेवसमप्रभः ॥११॥
एतस्मिन्नन्तरे राजा ददर्श रथमुत्तमम्। आकाशान्निपतन्तं वै शतसूर्यसमप्रभम् ॥१२॥
तेजसाऽऽच्छादितं सर्वं सुप्रदीप्तं दिशो दश। रत्नेन्द्रसारनिर्माणं शतचक्रसमन्वितम् ॥१३॥
अमूल्यरत्नरचितं विचित्रकलशोज्ज्वलम्। मुक्तामाणिक्यहीराणां मालाजालैश्च राजितम् ॥१४॥
सद्रत्नदर्पणैर्दीप्तैरतीव सुमनोहरम्। भूषितं दिव्यवस्त्रैश्च श्वेतचामरकोटिभिः ॥१५॥

---

**श्रीकृष्ण बोले**—प्रिये ! रैवत मन्वन्तर में नृपश्रेष्ठ सुचन्द्र तपस्वी, वैष्णव, श्रेष्ठ ज्ञानी एवं परमधार्मिक थे। वे मेरी तपस्या करते हुए भारत में मनोहर इस मलयाचल की घाटी में आये। राजेन्द्र ने यहाँ एक सहस्र वर्षों तक तप किया। कठोर तपस्या से उनकी देह जीर्ण-शीर्ण हो गयी और वल्मीक (बांबी) से आच्छादित देह को देखकर कृपानिधान ब्रह्मा उन्हें वर देने के लिए उस अति निर्जन तपःस्थान में आये ॥३-६॥ योगवेत्ता ब्रह्मा ने कमण्डलु के जल से, जो मेरी देह से उत्पन्न हुआ था, मेरे दिये हुए मंत्र के उच्चारणपूर्वक तपस्वी का सेचन किया ॥७॥ कमण्डलु-जल के स्पर्श से राजा स्वयं उठकर जगत्-रचयिता ब्रह्मा के सामने खड़े हो गये और भक्तिपूर्वक उन्हें नमस्कार करने लगे ॥८॥ कमल-भू ब्रह्मा ने नमस्कार करते हुए उनसे कहा—"राजेन्द्र ! जैसी तुम्हारी इच्छा हो—वर माँगो" ॥९॥ उनकी बात सुनकर राजा ने सर्वश्रेष्ठ वरदान माँगा कि—"भगवान् के चरणों में मेरी भक्ति हो और मुझे उनका दास्य-पद प्राप्त हो" ॥१०॥ ब्रह्मा ने कृपा करके उन्हें अभिलषित वरदान प्रदान किया और कामदेव के समान कान्तिमान् राजा उनके सामने खड़े हो गये ॥११॥ उसी बीच राजा ने देखा कि—एक उत्तम रथ आकाश से नीचे उतर रहा है, जो सैकड़ों सूर्य के समान प्रभापूर्ण था ॥१२॥ उसके तेज से दशों दिशाएँ अत्यन्त प्रदीप्त हो उठी थीं। वह रथ रत्नों के सारभाग से निर्मित सौ चक्कों से युक्त, अमूल्य रत्नों से रचित, विचित्र कलशों से समुज्ज्वल, मुक्ता, माणिक्य और हीरों की मालाओं से सुशोभित, उत्तम रत्नों के अति दीप्त दर्पणों से अति मनोहर, दिव्य वस्त्रों एवं करोड़ों श्वेत चामरों से सुशोभित, पारिजात के पुष्पों की

पारिजातप्रसूनानां मालाजालैः सुशोभितम् । मनोयायि महाश्चर्यं नानाचित्रेण चित्रितम् ॥१६॥
वेष्टितं पार्षदैर्दिव्यै रत्नभूषणभूषितैः । चतुर्भुजैः श्यामलैश्च ज्वलद्भिः स्थिरयौवनैः ॥१७॥
पीतवस्त्रपरीधानैश्चन्दनागुरुचर्चितैः । दृष्ट्वा रथस्थान्देवांश्च ननाम नृपतिर्मुदा ॥१८॥
सहसा तस्य शिरसि पुष्पवृष्टिर्बभूव ह । नेदुर्दुन्दुभयः स्वर्गे चाऽऽनकाश्च मनोहराः ॥१९॥
ऋषयो मुनयः सिद्धाः प्रकुर्वन्तो मुदाऽऽशिषम् । प्रशशंसुः सुराः सर्वे राजानं हर्षनिर्भराः ॥२०॥
राजा च पार्षदान्ध्यात्वा तद्रूपश्च बभूव ह । पार्षदास्तं रथे कृत्वा नीत्वा जग्मुर्ममालयम् ॥२१॥
मदीयः पार्षदो भूत्वा स च तस्थौ ममान्तिके । ततः स्वमन्दिरं यान्तं ददर्श मोहिनी विधिम् ॥२२॥
पुष्पोद्याने च रम्ये च पुष्पचन्दनवायुना । सद्यो मुमोह तं दृष्ट्वा प्रदग्धा मदनानलैः ॥२३॥
विलोक्य वक्रनयना जुगोप सस्मितं मुखम् । सिन्दूरबिन्दुं दधती कस्तूरीबिन्दुना सह ॥२४॥
चारुचम्पकवर्णाभा सततं स्थिरयौवना । बृहन्नितम्बयुगला पीनश्रोणिपयोधरा ॥२५॥
शरत्पार्वणशुभ्रांशुप्रभामुष्टकरानना । सूक्ष्मवस्त्रपरीधाना रत्नालंकारभूषिता ॥२६॥
त्रैलोक्यं मोहितुं शक्ता कटाक्षैरेव लीलया । अतीव कामिनी शश्वद्गजेन्द्रमन्दगामिनी ॥२७॥
पुलकाञ्चितसर्वाङ्गी मूर्च्छां संप्राप वर्त्मनि । संनिरीक्ष्य च तां ब्रह्मा जगाम श्रीहरिं स्मरन् ॥२८॥

---

मालाओं से सुसज्जित, मन की भाँति चलनेवाला, अनेक भाँति के चित्रों से चित्रित और महान् अद्‌भुत था ॥१३-१६॥ वह रत्न के आभूषणों से भूषित दिव्य पार्षदों से घिरा था। वे पार्षद चतुर्भुज, श्यामल, तेजस्वी, स्थिर यौवनवाले, पीताम्बर पहने और चन्दन, अगुरु से चर्चित थे। रथ पर विराजमान देवों को देखकर राजा ने उन्हें सहर्ष प्रणाम किया ॥१७-१८॥ एकाएक उनके सिर पर पुष्पवृष्टि होने लगी, स्वर्ग में दुन्दुभियाँ (नगाड़े) और मनोहर आनक (ढोल) बजने लगे ॥१९॥ ऋषि, मुनि एवं सिद्धगणों ने बड़ी प्रसन्नता से राजा को आशीर्वाद दिया। देवों ने विभोर होकर उनकी प्रशंसा की ॥२०॥ राजा ने उन पार्षदों का ध्यान करते हुए उन्हीं के समान रूप धारण कर लिया। पार्षदों ने उन्हें रथ पर बैठाकर मेरे लोक में पहुँचा दिया ॥२१॥ वह मेरा पार्षद बनकर मेरे समीप रहने लगा। तदनन्तर अपने मन्दिर को जाते हुए ब्रह्मा को मोहिनी ने देख लिया। पुष्पों के रमणीय उद्यान में पुष्प-चन्दन-सम्पृक्त वायु के स्पर्श से, ब्रह्मा को देखकर वह कामाग्नि से जलने लगी। तिरछी चितवन डालकर उसने मुसकराहट सहित मुख को छिपा लिया, जिसमें कस्तूरी के बिन्दु के साथ सिन्दूर का बिन्दु लगा हुआ था ॥२२-२४॥ मोहिनी के शरीर की कान्ति सुन्दर चम्पापुष्प के समान थी, यौवन सतत स्थिर था, दोनों नितम्ब विशाल थे। श्रोणिभाग तथा स्तन मोटे थे। उसके मुख की शोभा शरत्पूर्णिमा के चन्द्रमा की उज्ज्वल प्रभा को चुरानेवाली थी। वह सूक्ष्म वस्त्रों को पहने हुई तथा रत्नों के आभूषणों से विभूषित थी ॥२५-२६॥ वह कटाक्षों से ही अनायास तीनों लोकों को मोहित करने में समर्थ थी। वह निरन्तर कामभाव में रहनेवाली तथा गजराज के समान मन्द-मन्द चलनेवाली थी ॥२७॥ उसके सर्वाङ्ग में रोमाञ्च हो आया। वह मार्ग में ही मूर्च्छित हो गयी। उसे देखकर ब्रह्मा श्रीहरि का स्मरण करते हुए चले गये ॥२८॥ आत्माराम (आत्मा में रमण

स विकारं न हि प्राप ह्यात्मारामो जितेन्द्रियः। ब्रह्मलोकं च संप्राप ब्रह्मा च जगतां पतिः ॥२९॥
सकामा सा च कुलटा बभूव हतचेतना। दिवानिशं चिन्तयन्ती स्वप्ने ज्ञाने चतुर्मुखम् ॥३०॥
सर्वं जारं विसस्मार तत्याज हरिमीश्वरी। उत्तिष्ठन्ती निवसती शयनं कुर्वती क्षणम् ॥३१॥
तप्तपात्रे यथा सस्यं भ्रमत्येव तथा पथि। एतस्मिन्नन्तरे रम्भा विदग्धाऽप्सरसां वरा ॥३२॥
गच्छन्ती कामलोकं सा सकामा तेन वर्त्मना। दृष्ट्वा सहचरीं तत्र शुष्ककण्ठोष्ठतालुकाम् ॥३३॥
अभिप्रायेण बुबुधे पप्रच्छ सस्मिता तदा। ॥३४॥

## रम्भोवाच

कथमेवंविधा त्वं हि त्रैलोक्यचित्तमोहिनि।
वद शीघ्रं महाभागे रम्भाऽहं चेतनां कुरु। कमुद्दिश्य सकामा त्वं गच्छ त्वं कान्तमीप्सितम् ॥३५॥
कुलटा सर्वसौभाग्या[1] न वयं कुलपालिकाः। सर्वे व्यग्रा इन्द्रियाणां सुखाय भुवनत्रये ॥३६॥
यान्ति प्राणा यतः काले[2] का लज्जा तत्र जीविनाम्। न चाऽऽत्मनः परः कश्चित्प्रियोऽस्ति भुवनत्रये ॥३७॥
कान्तेऽपत्ये स्वबन्धौ च स्नेहो यः स्वात्महेतुकः। संबन्धः स्वात्मनो यावत्तावत्स्नेहोऽस्ति तत्र वै ॥३८॥

---

करनेवाले) तथा जितेन्द्रिय ब्रह्मा को कुछ भी विकार नहीं उत्पन्न हुआ। जगत्पति ब्रह्मा ब्रह्मलोक में पहुँच गये ॥२९॥ कामातुर होने के नाते वह कुलटा चेतनाहीन हो गयी। दिन-रात सोते-जागते वह एकमात्र ब्रह्मा का ही चिन्तन करती थी ॥३०॥ उसने सभी जारों (उपपतियों) को विस्मृत कर दिया, इन्द्र को भी भुला दिया—उठते-बैठते और शयन करते समय (ब्रह्मा के अतिरिक्त किसी का भी स्मरण नहीं करती थी) ॥३१॥ तप्त पात्र में पड़े धान्य की भाँति वह मार्ग में घूमने लगी। उसी बीच अप्सराओं में श्रेष्ठ एवं अति चतुर रम्भा आ गयी, जो कामवश उसी मार्ग से कामदेव के यहाँ जा रही थी। उसने अपनी सहचरी (सखी-साथी) को देखा कि—उसके कण्ठ, ओंठ और तालू सूख गये हैं। उसके अभिप्राय से वह समझ गयी, तब मुसकराती हुई उसने पूछा ॥३२-३४॥

**रम्भा बोली**—हे त्रैलोक्य के चित्त को मोहित करनेवाली ! तुम्हारी ऐसी अवस्था क्यों है ? हे महाभागे ! शीघ्र बताओ, मैं रम्भा हूँ, होश में आओ। किसको उद्देश्य करके तुम सकाम हुई हो ? अभीष्ट प्रियतम के पास जाओ ॥३५॥ कुलटा सबसे सौभाग्य प्राप्त करनेवाली या सबकी भोग्या होती है, हम लोग कुल-मर्यादा का पालन करनेवाली नहीं हैं। तीनों लोक में सभी लोग इन्द्रियों के सुखार्थ व्यग्र रहते हैं ॥३६॥ जहाँ प्राण-संकट उपस्थित हो, वहाँ जीवों को लज्जा किस बात की ? तीनों लोकों में अपने आत्मा से बढ़कर कोई भी प्रिय नहीं होता है ॥३७॥ पति, पुत्र और बन्धुओं में जो अपना स्नेह होता है, वह अपने ही कारण होता है और जब

---

१ क. °र्वसंयोग्या। २ क. कान्ते।

येषु यन्मानसं शश्वत्तेषां प्राणास्त एव हि । गच्छन्तीं कामलोकं च सकामां पश्य मां प्रिये ॥३९॥
सह सख्या समालोच्य मनसा गच्छ तं प्रियम् । निबध्य नीवीं केशांश्च कृत्वा वेषमभीप्सितम् ॥४०॥
मुनिमोहनबीजं च तं मोहं कुरु मोहिनि । कथयस्व महाभागे वचनं हृदयंगमम् ॥४१॥
रक्षाऽऽत्मानं प्रभावं च स्त्रीजातीनां जगत्त्रये । स्वाभिप्रायश्च सुरतौ न प्रकाश्यः कदाचन ॥४२॥
स्वान्तं कान्तं स्वानुरक्तमृज्वीं सहचरीं विना । तस्माद्यत्नेन हृद्वाक्यं प्रकाश्यं च प्रिये प्रिये ॥४३॥
अन्यथा चोपहासाय मरणायैव कल्पते । तस्याश्च वचनं श्रुत्वा सस्मित सा सुलज्जिता
हृद्यं च कथयामास यद्धेतोस्ता दृशी गतिः ॥४४॥

## मोहिन्युवाच

यावद्दृष्टो मया रम्भे निर्जने चतुराननः ॥४५॥
तावन्मनो मेऽतिदग्धं शश्वन्मनसिजानलैः । न दत्तमात्मने भक्ष्यमन्तरे न हि रोचते ॥४६॥
जानामि नाहमुदयं यामिनीशदिनेशयोः । अधुना न हि भेदो मे सततं स्वप्नज्ञानयोः ॥४७॥
मम प्राणाः प्रतीक्षन्ते तस्याऽऽलिङ्गनमेव च । क्षणं विज्ञाय न चिरं यास्यन्ति नान्यथा प्रिये ॥४८॥
कामज्वालाकलापैश्च स्वर्णाकारं कलेवरम् । अनाहारेण चेदानीं बभूव दग्धशैलवत् ॥४९॥

---

तक उसमें अपने आत्मा का सम्बन्ध रहता है, तभी तक उसमें अपना स्नेह रहता है ॥३८॥ जिनमें जिनका निरन्तर चित्त लगा रहता है, उनके प्राण भी उन्हीं में टिके रहते हैं। प्रिये ! मेरी ओर भी देखो, मैं कामवश कामलोक को जा रही हूँ । तुम सखी के साथ विचार करके मन से उस प्रियतम के पास जाओ । नीवी और बालों को बाँधकर तथा मुनियों को मोहित करने के कारण रूप अभीष्ट वेश बनाकर, हे मोहिनि ! उसे मोहित करो । महाभागे ! हृदय को छूनेवाली बात बोलो ॥३९-४०॥ अपनी रक्षा करती हुई, तीनों लोकों में स्त्री जाति के प्रभाव को नष्ट न होने दो । सुरति में अपना अभिप्राय कभी भी प्रकट नहीं करना चाहिए । जब तक कि अनुरक्त एवं आत्मीय कान्त न मिले और निश्छल सखी साथ न रहे । हे प्रिये ! अनुरक्त प्रिय के मिलने पर ही उससे अपना हार्दिक भाव प्रकट करना चाहिए, अन्यथा उपहास होने का भय रहता है और मृत्यु का कारण बनता है। उसकी बात सुनकर वह मन्द मुसकान करती हुई अति लज्जित हुई तथा अपनी हार्दिक बात कहने लगी, जिसके कारण उसकी ऐसी अवस्था हो गयी थी ॥४१-४४॥

**मोहिनी बोली**—रम्भे ! मैंने जबसे निर्जन प्रदेश में ब्रह्मा को देखा है, तभी से मेरा मन कामाग्नि से निरन्तर जल रहा है । (तबसे) अपने को भोजन नहीं दिया, क्योंकि भीतर रुचता नहीं है ॥४५-४६॥ मैं चन्द्रमा और सूर्य का उदय नहीं जानती । इस समय मुझे निरन्तर स्वप्न और जागरण में भेद नहीं मालूम हो रहा है ॥४७॥ प्रिये ! मेरे प्राण उन्हीं के आलिङ्गन की प्रतीक्षा कर रहे हैं । क्षण भर में जानकर (यदि नहीं मिले तो) मेरे प्राण शीघ्र चले जायेंगे, यह अन्यथा नहीं होगा ॥४८॥ सुवर्ण के समान मेरी यह देह काम की ज्वालाओं के

गन्तुं स्थातुं न शक्ताऽहं शयनं कर्तुमुद्यता । धिगस्तु पुंश्चलीजातिं मामेव च विशेषतः ॥५०॥
कमुपायं करिष्यामि वद रम्भेऽत्र सांप्रतम् । लज्जां वाऽपि शरीरं वा विसृजामि च किं द्वयोः ॥५१॥
मोहिनीवचनं श्रुत्वा प्रहस्याप्सरसां वरा । तामुवाच हितं नीतमुपायं शुभकारणम् ॥५२॥

## रम्भोवाच

एवमेतदहो भद्रे भद्रस्य कारणं तव । सर्वं त्वपनयिष्यामि शृणूपायं भयं त्यज ॥५३॥
कृत्वा वेषमपूर्वं च पूर्वमाराध्य मन्मथम् । तेन सार्धं स्वयं गत्वा त्वं मोहं कुरु भामिनि ॥५४॥
जितेन्द्रियाणां प्रवरं साक्षान्नारायणात्मकम् । विना कामसहायेन का शक्ता जेतुमीश्वरम् ॥५५॥
भज कामं तपः कृत्वा पुष्करे व्रज मोहिनि । सद्यः साक्षात्स भविता दयालुर्योषितां प्रभुः ॥५६॥
इत्युक्त्वा तामप्सरसां प्रवरा काममन्तिकम् । जगामेन्द्रियशान्त्यर्थं सा जगाम च पुष्करम् ॥५७॥
पुष्करे च तपः कृत्वा कामं संप्राप्य मोहिनी । जगाम तेन सार्धं च ब्रह्मलोकमनामयम् ॥५८॥
ददर्श निर्जनस्थं च मोहिनी कमलोद्भवम् । तमेव मोहनं कर्तुं समारेभे पुरःस्थिता ॥५९॥
क्षणं ननर्त सुचिरं सुगानेन क्षणं जगौ । संगीतं मम संबन्धि भक्तानां चित्तमोहनम् ॥६०॥
विधाता जगतां तस्याः श्रुत्वा संगीतमीप्सितम् । पुलकाञ्चितसर्वाङ्गो मुमोह साश्रुलोचनः ॥६१॥

---

समूह और अनाहार से इस समय जले पहाड़ के समान हो गयी है ॥४९॥ मैं चल-फिर नहीं सकती, न बैठ सकती हूँ, केवल (शय्या पर) पड़ी रहती हूँ । इस पुंश्चली जाति को धिक्कार है और विशेषतया मुझे ॥५०॥ रम्भे ! इस समय कौन-सा उपाय करूँ, बताओ । लज्जा और शरीर इन दोनों में किसका त्याग करूँ ? ॥५१॥ मोहिनी की बात सुनकर अप्सरा-श्रेष्ठ ने हँसकर उससे हितकर, नीतियुक्त और शुभकारक उपाय बताया ॥५२॥

**रम्भा बोली**—भद्रे ! यदि ऐसा ही है, तो निर्भय होकर सुनो ! मैं तुम्हारे कल्याण का उपाय कह रही हूँ । मैं तुम्हारा सभी दुःख हटा दूँगी ॥५३॥ सुन्दरी ! तुम पहले अपना उत्तम वेश बनाकर काम की उपासना करो और तब उन्हें साथ लेकर ब्रह्मा के पास जाकर उन्हें मोहित करो ॥५४॥ वे जितेन्द्रियों में सर्वश्रेष्ठ तथा साक्षात् नारायण स्वरूप हैं, बिना काम की सहायता के उन ईश्वर को कौन शक्ति जीत सकती है ॥५५॥ मोहिनि ! पुष्कर क्षेत्र में तपस्या करके काम की सेवा करो, वे दयालु एवं स्त्रियों के स्वामी हैं, तुरन्त तुम्हें दर्शन देंगे ॥५६॥ उससे इतना कहकर वह अप्सरा-श्रेष्ठ रम्भा अपनी इन्द्रिय-शान्ति के लिए काम के यहाँ चली गयी और वह मोहिनी पुष्कर क्षेत्र को गयी ॥५७॥ मोहिनी ने पुष्कर में तप करके काम को प्राप्त किया और उसी के साथ वह रोगरहित ब्रह्मलोक को चली गयी ॥५८॥ वहाँ निर्जन स्थान में ब्रह्मा को देखकर मोहिनी ने उन्हें मोहित करने के लिए उनके सामने अपना कार्य आरम्भ किया ॥५९॥ वह क्षण में देर तक नृत्य करती, तो क्षण में उत्तम गाना गाती, मुझसे सम्बन्धित संगीत उसने प्रारम्भ किया, जो भक्तों के चित्त को मुग्ध करनेवाला था ॥६०॥ जगद्विधाता (ब्रह्मा) उसका अभीष्ट संगीत सुनकर मुग्ध हो गये, उनके सर्वांग में रोमाञ्च हो आया और

दृष्ट्वा मुग्धं चतुर्वक्त्रं मोहिनी हृष्टमानसा। कलाप्रमाणं भावं च चकार तत्र लीलया ॥६२॥
स्वाङ्गं संदर्शयामास स्मेरभ्रूभङ्गपूर्वकम्। का लज्जा तस्य संसारे यः कामहतचेतनः ॥६३॥
विज्ञाय ब्रह्मा तद्भावं नतवक्त्रो बभूव ह। प्रदाय तस्यै दानं च विरतः श्रीहरिं स्मरन् ॥६४॥
विज्ञाय ब्रह्मणो भावं शुष्ककण्ठोष्ठतालुका। हतोद्यमा सा तुष्टाव कामं कामप्रदं वरम् ॥६५॥

## मोहिन्युवाच

सर्वेन्द्रियाणां प्रवरं विष्णोरंशं च मानसम्। तदेव[1] कर्मणां बीजं तदुद्भव नमोऽस्तु ते ॥६६॥
स्वयमात्मा हि भगवाञ्ज्ञानरूपो महेश्वरः। नमो ब्रह्मञ्जगत्स्रष्टस्तदुद्भव नमोऽस्तु ते ॥६७॥
स्थितः[2] सर्वशरीरेषु दृष्टिश्च योगिनामपि। जगत्साध्य दुराराध्य दुर्निवार नमोऽस्तु ते ॥६८॥
सर्वाजित जगज्जेतर्जीवजीवमनोहर। रतिबीज रतिस्वामिन्रतिप्रिय नमोऽस्तु ते ॥६९॥
शश्वद्योषिदधिष्ठान योषित्प्राणाधिकप्रिय। योषिद्वाहन योषास्त्र योषिद्बन्धो नमोऽस्तु ते ॥७०॥
पतिसाध्यकराशेषरूपाधार गुणाश्रय। सुगन्धिवातसचिव मधुमित्र नमोऽस्तु ते ॥७१॥
शश्वद्योनिकृताधार स्त्रीसंदर्शनवर्धन। विदग्धानां विरहिणां प्राणान्तक नमोऽस्तु ते ॥७२॥

---

नेत्र सजल हो गये ॥६१॥ ब्रह्मा को मुग्ध देखकर मोहिनी बहुत प्रसन्न हुई। उसने वहाँ कला प्रमाण भाव को लीलापूर्वक व्यक्त किया ॥६२॥ मुसकराहट एवं भ्रूभंगिमापूर्वक अपने अंग को प्रदर्शित किया। जिसकी चेतना काम से नष्ट हो गयी है, उसे संसार में लज्जा ही क्या ? ॥६३॥ ब्रह्मा ने उसके भाव को जानकर अपना मुख नीचे कर लिया। उसे उसका पुरस्कार (दान) देकर भगवान् का स्मरण करने लगे और उससे विरत हो गये (मन हटा लिया) ॥६४॥ ब्रह्मा के भाव को समझकर मोहिनी के कण्ठ, ओंठ और तालू सूख गये। अपना प्रयत्न निष्फल समझकर उसने कामनाओं की पूर्ति करनेवाले एवं सर्वश्रेष्ठ कामदेव की स्तुति करना आरम्भ किया ॥६५॥

**मोहिनी बोली**—आप सभी इन्द्रियों में श्रेष्ठ तथा विष्णु के मानस अंश हैं। आप ही कर्मों के बीज तथा उनसे उत्पन्न होनेवाले हैं। आपको नमस्कार है ॥६६॥ भगवान् स्वयं आत्मा हैं और शिव ज्ञान रूप हैं। ब्रह्मन् ! जगत् के स्रष्टा और उससे उत्पन्न आपको नमस्कार है ॥६७॥ आप समस्त शरीरों में स्थित हैं और योगियों की भी दृष्टि हैं। हे संसार के साध्य, दुराराध्य, दुर्निवार ! आपको नमस्कार है ॥६८॥ सबसे अजेय ! जगत् के विजेता ! प्रत्येक जीव से मनोहर ! रति के बीज ! रति के स्वामी और रति प्रिय ! आपको नमस्कार है ॥६९॥ निरन्तर स्त्रियों के अधिष्ठान स्वरूप ! स्त्रियों के प्राणों से भी अधिक प्रिय ! स्त्रीवाहन ! स्त्री-अस्त्रन एवं स्त्री-बन्धु ! आपको नमस्कार है ॥७०॥ पति को साध्य करनेवाले ! निखिल रूपों के आधार ! गुणों के आश्रय ! सुगन्धित वायु के सचिव ! वसन्त के मित्र ! आपको नमस्कार है ॥७१॥ निरन्तर योनि कृत आधार ! स्त्रियों के सम्यक् दर्शन में वृद्धि करनेवाले, चतुर विरही जनों के प्राणान्त करनेवाले ! आपको

---

१क. तद्देव। २ क. सृष्टि।

अकृपा येषु तेऽनर्थस्तेषां ज्ञानविनाशनम् । अनूहरूप भक्तेषु कृपासिन्धो नमोऽस्तु ते ॥७३॥
तपस्विनां च तपसां विघ्नबीजावलीलया । मनः सकामं मुक्तानां कर्तुं शक्त नमोऽस्तु ते ॥७४॥
तपःसाध्याश्चाऽऽराध्याश्च सदैवं पाञ्चभौतिकाः । पञ्चेन्द्रियकृताधार पञ्चबाण नमोऽस्तु ते ॥७५॥
मोहिनीत्येवमुक्त्वा तु मनसा सा विधेः पुरः । विररामाऽऽनम्रवक्त्रा बभूव ध्यानतत्परा ॥७६॥
उक्तं माध्यन्दिने कान्ते स्तोत्रमेतन्मनोहरम् । पुरा दुर्वाससा दत्तं मोहिन्यै गन्धमादने ॥७७॥
स्तोत्रमेतन्महापुण्यं कामी भक्त्या यदा पठेत् । अभीष्टं लभते नूनं निष्कलङ्को भवेद्ध्रुवम् ॥७८॥
चेष्टां न कुरुते कामः कदाचिदपि तं प्रियम् । भवेदरोगी श्रीयुक्तः कामदेवसमप्रभः
वनितां लभते साध्वीं पत्नीं त्रैलोक्यमोहिनीम् ॥७९॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० मोहिनीस्तोत्रवर्णनं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥

---

नमस्कार है ॥७२॥ जिन लोगों पर आपकी कृपा नहीं होती है, उनके जीवन व्यर्थ होते हैं, उनके ज्ञान का नाश हो जाता है । भक्तों में आपका रूप अवितर्क्य है । हे दयासागर ! आपको नमस्कार है ॥७३॥ तपस्वियों के तप में विघ्न डालने में बीज रूप ! मुक्तजनों के मन को लीलापूर्वक सकाम करने में समर्थ ! आपको नमस्कार है ॥७४॥ पाञ्चभौतिक जीव सदा इसी प्रकार तपस्या से साध्य एवं आराध्य होते हैं । हे पाँच इन्द्रियों के आधार और पांच बाणवाले (या कामरूप) ! आपको नमस्कार है ॥७५॥ इस प्रकार कहकर मोहिनी विरत हो गयी और ब्रह्मा के सामने मुंह नीचे करके ध्यान-निरत हो गयी ॥७६॥ हे कान्ते ! उसने माध्यन्दिन शाखा के अन्तर्गत उक्त मनोहर स्तोत्र को कहा, जिसे पूर्वकाल में गन्धमादन पर्वत पर दुर्वासा ने मोहिनी को दिया था ॥७७॥ इस महापुण्य स्तोत्र का पाठ जो कामी भक्तिपूर्वक करता है, उसकी अभीष्ट-सिद्धि निश्चय होती है और वह निश्चित निष्कलङ्क होता है ॥७८॥ अपने उस प्रिय को काम कभी भी पीड़ित नहीं करता है । वह नीरोग, श्रीसम्पन्न एवं काम के समान कान्तिपूर्ण बना रहता है और उसे तीनों लोकों को मोहित करनेवाली पत्नी प्राप्त होती है ॥७९॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारायण-नारद-संवाद में मोहिनीस्तोत्र-वर्णन नामक इकतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३१॥

# अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

## श्रीकृष्ण उवाच

मोहिनीस्तवनेनैव कामस्तुष्टो बभूव ह। चकार शरसंधानमन्तरिक्षे स्थितः स्वयम् ॥१॥
मन्त्रपूतं महास्त्रं च चिक्षेप पितरं मुदा। बभूव चञ्चलो ब्रह्मा कामास्त्रेण च कामुकः ॥२॥
क्षणं निरीक्षणं चक्रे मोहिन्यास्ये पुनः पुनः। ज्ञानं प्राप्य तदा धाता विरराम हरिं स्मरन् ॥३॥
बुबुधे मनसा सर्वं चरितं मन्मथस्य च। शशाप तं सुतमपि विधाता क्रोधविह्वलः ॥४॥
हे काम यौवनोन्मत्त मूढैश्वर्येण गर्वित। भविता दर्पभङ्गस्ते गुरोर्मे हेलनादिति ॥५॥
हतोद्यमो जगामाऽऽशु मन्मथो मधुना सह। ब्रह्मणः शापभीतश्च शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः ॥६॥
इत्युवाच जगद्धाता मोहिनीं मदनातुराम्। चतुर्वक्त्रं च पश्यन्तीं सस्मितं वक्रचक्षुषा ॥७॥

## ब्रह्मोवाच

मातर्मोहिनि गच्छ त्वं निष्फलं कर्म चात्र ते। ज्ञातस्तवाभिप्रायश्च न योग्योऽस्य कर्मणः ॥८॥

---

# अध्याय ३२

## श्रीकृष्ण-स्तोत्र

**श्रीकृष्ण बोले**—मोहिनी की स्तुति से कामदेव प्रसन्न हो गये। उसने स्वयं आकाश में स्थित होकर धनुप पर वाण चढ़ाया और उस महास्त्र को मन्त्रपूत करके पिता (ब्रह्मा) के ऊपर छोड़ दिया। काम के अस्त्र से ब्रह्मा चञ्चल और कामुक हो गये ॥१-२॥ क्षण भर उन्होंने मोहिनी के मुख को बार-बार देखा। तब ब्रह्मा ज्ञान प्राप्त करके हरि का स्मरण करते हुए विरत हो गये ॥३॥ उन्होंने मन से काम के सारे चरित को जान लिया। फिर क्रोध से विह्वल होकर विधाता ने उस पुत्र (काम) को भी शाप दे दिया कि हे काम! यौवन से उन्मत्त! मूढ़! ऐश्वर्य गर्वित! मुझ गुरु का तिरस्कार करने के कारण तुम्हारा दर्पभंग होगा ॥४-५॥ प्रयत्न में निष्फल हो जाने पर कामदेव वसन्त के साथ शीघ्र चला गया। ब्रह्मा के शाप से भयभीत होने के कारण उसके ओंठ, कण्ठ और तालु सूख गये थे ॥६॥ तब जगत् के विधाता ने काम-पीड़ित मोहिनी से भी कहा जो मन्द मुसकान करती हुई वक्र दृष्टि से उन्हें देख रही थी ॥७॥

**ब्रह्मा बोले**—माता मोहिनी! यहाँ तुम्हारा कार्य सफल नहीं होगा, इसलिए चली जाओ। मैंने तुम्हारा अभिप्राय समझ लिया है, मैं इस कर्म के योग्य नहीं हूँ ॥८॥ मैं स्वयं वेद-कर्ता और संसार में व्यवस्था

वेदे जुगुप्सितं कर्म तदेव कर्तुमक्षमः। वेदकर्ता स्वयमहं व्यवस्थाकारको भवे॥९॥
अकीर्तिर्वेदवक्तुश्च निन्द्यं च किमतः परम्। उपस्थिता च या योषिदत्याज्या रागिणामपि॥१०॥
श्रुतौ श्रुतमिति त्याज्या सर्वदैव तपस्विनाम्। अहो सर्वैः परित्याज्या पुंश्चली च विशेषतः॥११॥
धनायुः प्राणयशसां नाशिनी दुःखदायिनी। स्वकार्यतत्परा शश्वत्परकार्यविनाशिनी॥१२॥
निष्ठुरा नवघातिभ्यः सर्वापद्बीजरूपिणी। विद्युद्दीप्तिर्जले रेखा लोभान्मैत्री यथा भवेत्॥१३॥
परद्रोहाद्यथा संपत्कुलटाप्रेम तत्समम्। सर्वेभ्यो हिंस्रजन्तुभ्यो विपद्बीजा सदैव हि॥१४॥
यो विश्वसेत्तां संमूढो विपत्तस्य पदे पदे। त्वं च रूपवती धन्या वञ्चिता कामुकैः सदा॥१५॥
यूनां संपत्स्वरूपा च विषतुल्या तपस्विनाम्। त्वमेवाप्सरसां श्रेष्ठा सर्वदा स्थिरयौवना॥१६॥
तवैव कर्म योग्यं च युवानं पश्य सुन्दरि। त्वं विदग्धा च योषित्सु विदग्धान्वेषणं कुरु॥१७॥
विदग्धाया विदग्धेन संगमो गुणवान्भवेत्। जरातुरोऽहं वृद्धश्च तपस्वी वैष्णवो द्विजः॥१८॥
अस्वतन्त्रः पराधीनः का रतिः पुंश्चलीषु मे। अये वत्से गच्छ शीघ्रं विहाय पितरं च माम्॥१९॥
नाम्नाऽहं च जगत्स्रष्टा तस्मात्तव पिता सदा। मन्मथं चन्द्रमित्रं च जयन्तं नलकूबरम्॥२०॥
स्वर्वैद्यौ चन्द्रतनयं दितिपुत्रांश्च सुन्दरान्। कामशास्त्रेषु निष्णातान्रतिकर्मविशारदान्॥२१॥

---

करनेवाला हूँ, अतः वेद में मैं जो निन्दित कर्म है, उसे करने में मैं असमर्थ हूँ॥९॥ वेद-वक्ता को इससे बढ़कर अयश और निन्द्य कर्म क्या हो सकता है? कामभावना से उपस्थित होनेवाली स्त्री अनुरागी पुरुषों के लिए भी त्याग करने योग्य है और तपस्वियों को तो सर्वदा ही उसका त्याग कर देना चाहिए, ऐसा वेद में सुना है। अहो! विशेषकर पुंश्चली स्त्री सभी के लिए त्याज्य है॥१०-११॥ पुंश्चली स्त्री धन, आयु, प्राण और यश का नाश करनेवाली, दुःखदायिनी, अपने ही कार्य में निरन्तर तत्पर रहनेवाली एवं दूसरे के कार्य को नष्ट करनेवाली है॥१२॥ वह नये घातक प्राणियों से भी बढ़कर निष्ठुर तथा समस्त आपत्तियों की बीजरूपा है। कुलटा का प्रेम बिजली की कौंध, जल की रेखा, लोभवश मैत्री तथा परद्रोहवश सम्पत्ति के समान (क्षणिक) होता है। कुलटा स्त्री समस्त हिंसक जन्तुओं से बढ़कर विपत्ति का कारण होती है॥१३-१४॥ जो मूर्ख उसका विश्वास करता है, उसे पग-पग पर विपत्ति प्राप्त होती है। तुम रूपवती एवं धन्य हो, कामुक जनों से सदा वञ्चित रहती हो॥१५॥ युवा पुरुषों की सम्पत्ति स्वरूप और तपस्वियों के लिए विष के समान हो। तुम्हीं अप्सराओं में श्रेष्ठ और सदा स्थिर यौवनवाली हो॥१६॥ हे सुन्दरि! तुम्हारे ही कर्म के योग्य किसी युवा पुरुष को ढूँढ़ो। तुम स्त्रियों में चतुर हो, इसलिए किसी चतुर पुरुष की खोज करो॥१७॥ चतुर स्त्री का चतुर पुरुष के साथ संगम गुणवान् होता है। मैं तो वृद्धावस्था से आतुर, वृद्ध, तपस्वी, वैष्णव ब्राह्मण, अस्वतन्त्र और पराधीन हूँ। पुंश्चलियों में मेरा क्या अनुराग होगा? वत्से! मुझ पिता को छोड़कर तुम शीघ्र चली जाओ॥१८-१९॥ मैं नाम से जगत्स्रष्टा हूँ, इसलिए तुम्हारा सदा पिता हूँ, तुम चन्द्रमित्र, कामदेव, जयन्त, नलकूबर, अश्विनीकुमार, बुध और सुन्दर दिति-पुत्रों के पास जाओ। वे कामशास्त्र में निपुण एवं रति-कर्म में

या मां यासि हि तांस्त्यक्त्वा सा विदग्धा च कामुकी। सदा संभोगविषये स्त्रियं प्रार्थयते पुमान् ॥२२॥
स्त्री चेत्प्रयाति पुरुषं विपरीतं विडम्बनम्। सर्वेषां चैव रत्नानां स्त्रीरत्नं दुर्लभं परम् ॥२३॥
स्वयं प्रार्थयते स्वामी न तु स्वामिनमेव च। योषिज्जातिषु धिक् ताश्च स्वयं याः समुपस्थिताः ॥२४॥
भवेद्दूरं स्वल्पमूल्यं रत्नं स्वयमुपस्थितम्। नित्यं पुमान्स्त्रियं याति स्त्री वा याति च न प्रियम् ॥२५॥
लोकाचारेषु वेदेषु न स्त्री याति परप्रियम्। स्ववस्तु भुङ्क्ते यः काले शास्त्रोक्तविधिपूर्वकम् ॥२६॥
स पूज्यो न भवेत्पूज्यो यद्रतिः परवस्तुषु। कः कस्य शत्रुरबले निशामय जगत्त्रये ॥२७॥
स्वेन्द्रियाः शत्रवः सर्वे शत्रुता यन्निमित्ततः। वेदोक्ताचरणे सर्वं मित्रं च जगतां जगत् ॥२८॥
कृते वेदविरुद्धे च मित्रं शत्रुर्भवेद्ध्रुवम्। वेदोक्तं कृतवन्तं च हरिस्तुष्टो दिवानिशम् ॥२९॥
हरौ तुष्टे जगत्तुष्टं तस्मिन्रुष्टे भवो रिपुः। कुत्रास्ति कुलटाजातिः साध्वीजातिश्च कुत्र वा ॥३०॥
स्वकीयाचरणात्सर्वं भवे भवति कर्मणः। स्त्रीजातिः प्रकृतेरंशा नारायण विनिर्मिता ॥३१॥
दुःशीला पुंश्चली निन्द्या सुशीला च पतिव्रता। पतिव्रतास्तु त्रिविधाः पुंश्चलीषु च योषितः ॥३२॥

---

दक्ष हैं ॥२०-२१॥ जो तुम उन्हें त्यागकर मेरे पास आयी हो सो तुम निपुण कामुकी कैसे हो ? संभोग के विषय में सदा पुरुष ही स्त्री की प्रार्थना करता है, यदि स्त्री पुरुष के पास जाती है तो यह एक विपरीत विडम्बना है। सभी रत्नों में स्त्री-रत्न परम दुर्लभ होता है ॥२२-२३॥ स्वामी स्वयं स्त्री की प्रार्थना करता है, न कि स्त्री ही स्वामी की प्रार्थना करती है। स्त्री जातियों में उन स्त्रियों को धिक्कार है, जो स्वयं (पुरुषों के पास) उपस्थित होती हैं ॥२४॥ रत्न के स्वयं उपस्थित होने पर उसका मूल्य बहुत कम हो जाता है। नित्य पुरुष ही स्त्री के पास जाता है, स्त्री प्रिय के पास नहीं जाती है ॥२५॥ लोकाचारों और वेदों में ऐसा नहीं देखा गया है कि स्त्री परपुरुष के पास जाती है। जो समय पर अपनी ही वस्तु का शास्त्र विधान द्वारा उपभोग करता है, वही पूज्य है, दूसरे की वस्तु से प्रेम करनेवाला पूज्य नहीं है। हे अबले ! तीनों लोकों में कौन किसका शत्रु है ? ॥२६-२७॥ अपनी ही सब इन्द्रियाँ शत्रु हैं, जिनके निमित्त शत्रुता उत्पन्न होती है। वेदानुसार आचरण करने पर सारा जगत् मित्र हो जाता है ॥२८॥ वेद-विरुद्ध आचरण करने पर मित्र भी शत्रु हो जाता है और वेदानुसार चलनेवाले पर भगवान् दिन-रात प्रसन्न रहते हैं ॥२९॥ भगवान् के तुष्ट रहने पर संसार तुष्ट रहता है और उनके रुष्ट होने पर संसार शत्रु हो जाता है। कहाँ है कुलटा जाति ? अथवा पतिव्रता जाति ही कहाँ है ? ॥३०॥ संसार में अपने ही आचरण द्वारा किये गये कर्म से सब-कुछ होता है। स्त्री जाति प्रकृति के अंश से उत्पन्न हुई है जिसका निर्माण नारायण ने स्वयं किया है ॥३१॥ दुःशील स्त्री पुंश्चली और निन्दनीय होती है और सुशील स्त्री पतिव्रता होती है। पतिव्रताएँ तीन प्रकार की होती हैं। पुंश्चली स्त्रियों का ऐसा कोई भेद नहीं

तासामेवंविधा नास्ति स्वयं याति परप्रियम् । स्त्रीजातीनां च मध्ये च काऽस्त्येवं कुलकज्जला ॥३३॥
भवे रत्यै स्वयं दृष्ट्वा वेषं कृत्वा प्रयाति तम् । क्षोभिता यदि पश्यन्ती भक्ष्यद्रव्यमसाध्यकम् ॥३४॥
वैकुल्यान्नहि तत्साध्यं सामान्यमेव केवलम् । इत्येवमुक्त्वा जगतां विधाता विरराम च ॥
वक्तुं समुद्यता सा च कोपप्रस्फुरिताधरा ॥३५॥

## मोहिन्युवाच

ज्ञातं सर्वं जगद्धातश्चरितं तव सांप्रतम् ॥३६॥
त्वया निबोधिता नीतिर्मनो मे न स्थिरं भवेत् । भूतं त्वयि विशिष्टं[1] च यावद्दृष्टः क्षणे भवान् ॥३७॥
त्वद्वक्त्रदृष्टिमात्रेण सर्वे जाराश्च विस्मृताः । देहं कामाग्निना दग्धं यदा त्यक्तुं समुद्यता ॥३८॥
निषिषेध च मां रम्भा प्रददौ मन्त्रमीदृशम् । तदा कामसहायेन त्वत्समीपं समागता ॥३९॥
समधुस्तव शापेन स जगाम हतोद्यमः । अहो गन्तुमशक्ताऽहं त्वया यद्यपि भर्त्सिता ॥४०॥
सर्वाङ्गेष्वेव मे जाड्यं बभूव सांप्रतं विभो । कृपां कुरु कृपासिन्धो न मां हन्तुं त्वमर्हसि ॥४१॥
तवाऽऽश्लेषणमात्रेण विज्वराऽहं सुनिश्चितम् । त्वमेव जगतां धाता कुलटाऽहं च कर्मणा ॥४२॥

---

है । जो स्त्री स्वयं परपुरुष के पास जाती है, वह स्त्री-जातियों के बीच कुल की काजल है ॥३२-३३॥ ऐसी स्त्री संसार में रति के लिए स्वयं वेश बनाकर परपुरुष के पास जाती है । यदि भक्ष्य द्रव्य को देखती हुई वह क्षुब्ध कर दी जाती है तो अकुलीन होने के कारण उसे साध्य नहीं किया जा सकता, वह केवल सामान्य ही है । इतना कहकर जगद्विधाता (ब्रह्मा) चुप हो गये और क्रोध से फड़कते हुए ओंठवाली वह (अप्सरा) बोलने के लिए उद्यत हो गयी ॥३४-३५॥

**मोहिनी बोली**--हे जगत् के धाता ! मुझे इस समय तुम्हारा सब चरित मालूम हो गया है ॥३६॥ तुमने जो नीति सुनायी है, इससे मेरा मन स्थिर नहीं होगा । जिस क्षण आपको देखा तभी से आप में मेरा मन लग गया है । तुम्हारे मुख देखने मात्र से सभी जार विस्मृत हो गये । यह हमारी देह काम की अग्नि से दग्ध होने लगी । जब मैं इसका त्याग करने को तैयार हुई तो रम्भा ने मुझे मना किया और इस प्रकार की मंत्रणा दी । तब मैं काम को सहायक बनाकर तुम्हारे समीप आयी ॥३७ ३९॥ तुम्हारे शाप के कारण वह असफल होकर वसन्त को साथ लिये चला गया । यद्यपि तुमने मेरी भी भर्त्सना की किन्तु मैं जाने में असमर्थ हूँ ॥४०॥ विभो ! इस समय मेरे सभी अंगों में जड़ता आ गयी है । कृपासिन्धो ! मुझ पर कृपा करो, मेरी हत्या करना तुम्हें उचित नहीं है ॥४१॥ यह सुनिश्चित है कि--'तुम्हारे आलिङ्गन मात्र से मैं सन्ताप से मुक्त हो जाऊँगी । कर्मवश तुम्हीं जगत् के विधाता हुए हो और मैं कुलटा हुई हूँ ॥४२॥ सज्जन लोग गर्व नहीं करते हैं ।

---

१ क॰ निविष्टं ।

सन्तो गर्वं न कुर्वन्ति कर्मसाध्याश्च जीविनः। कश्चित्प्रयाति यानेन वहन्ति तं च केचन ॥४३॥
करं गृह्णाति नृपतिः कर्मणा ददति प्रजाः। कश्चिर्त्सिंहासनस्थश्च नृपमात्रश्च[1] कश्चन ॥४४॥
केचिद्भूता बहुविधास्तत्र तस्य स्वकर्मणा। यान्ति केचिदश्वपृष्ठैर्गजपृष्ठैश्च केचन ॥४५॥
कर्मणा वाहकाः केचित्केचिद्वाहनपालकाः। सूकरीजठरं कश्चित्संप्रयाति स्वकर्मणा ॥४६॥
कश्चिच्छच्याश्च जठरं तव पुत्राश्च केचन। केचित्कृत्वा हरेर्भक्तिं कर्मणा तस्य पार्षदाः ॥४७॥
केचिद्भवन्ति कृमयो विष्ठायां दैवदोषतः। स्वर्गं प्रयान्ति राजेन्द्राः केचिच्च स्वस्वकर्मणा ॥४८॥
केचित्प्रयान्ति नरकं विण्मूत्रे तत्र पच्यते। कर्मणा कश्चिदिन्द्रेन्द्रः सुराणां प्रवरः स्वयम् ॥४९॥
केचित्सुरा नराः केचित्केचिच्च क्षुद्रजन्तवः। केचिच्च कर्मणा विप्रा वर्णश्रेष्ठा महीतले ॥५०॥
केचिद्भूपा वैश्यशूद्राः केचिच्च म्लेच्छजातयः। केचित्स्वकर्मणा प्राज्ञा ज्ञानेन सर्वदर्शिनः ॥५१॥
केचिन्मूर्खाः केचिदन्धा स्वाङ्गहीनाश्च केचन। केचिच्छास्त्रं बोधयन्ति शिष्यवर्गान्स्वकर्मणा ॥५२॥
केचित्पठन्ति सर्वार्थं जानन्ति गुरुवक्त्रतः। भवन्ति कर्मणा केचिद्देहे स्थावरजङ्गमे ॥५३॥
तपस्वी नवघाती च त्वं च ब्रह्मा च कर्मणा। काचित्स्वकर्मणा साध्वी पूज्येह च परत्र च ॥५४॥

---

प्राणी कर्मसाध्य होते हैं। अतएव कोई सवारी से चलता है और कुछ लोग उसको ढोते हैं ॥४३॥ (कर्म से) राजा कर ग्रहण करता है और प्रजाएँ उसे देती हैं। कोई सिंहासन पर बैठता है और कोई नाममात्र का ही राजा है ॥४४॥ अपने कर्म से कोई अनेक प्रकार के हो गये हैं। (कर्म से ही) कोई अश्व की पीठ पर और कोई हाथी की पीठ पर बैठकर चलते हैं ॥४५॥ कर्म से कोई वाहक होते हैं और (कर्म से ही) वाहन-पालक होते हैं। अपने कर्म से कोई सूकरी के गर्भ में जाता है ॥४६॥ कोई इन्द्राणी के गर्भ में जाता है, कोई आपके पुत्र होते हैं। कोई हरि की दास्य-भक्ति करके उनके पार्षद होते हैं ॥४७॥ कोई भाग्य के दोष से विष्ठा के कीड़े होते हैं। कोई राजेन्द्र अपने कर्म के प्रभाव से स्वर्ग को जाते हैं ॥४८॥ कोई नरक में जाते हैं और वहाँ विष्ठा एवं मूत्र में पकते हैं। कोई कर्म से देवप्रवर इन्द्र के भी इन्द्र होते हैं ॥४९॥ कोई देवता, कोई मनुष्य और कोई क्षुद्र जन्तु होते हैं। कोई कर्म के प्रभाव से भूतल पर वर्णश्रेष्ठ ब्राह्मण होते हैं ॥५०॥ कोई भूप, कोई वैश्य, कोई शूद्र और कोई म्लेच्छ होते हैं। कोई अपने कर्म से विद्वान् और कोई ज्ञान से सर्वदर्शी होते हैं ॥५१॥ कोई मूर्ख, कोई अन्धे, कोई अङ्गहीन होते हैं। कोई अपने कर्म से शिष्यों को शास्त्र का बोध कराते हैं ॥५२॥ कोई पढ़ते हैं और गुरु के मुख से सभी पदार्थ को जान लेते हैं। कोई स्थावर और कोई जंगम की देह धारण करते हैं ॥५३॥ कोई तपस्वी और कोई नवीन घात करनेवाला होता है। तुम कर्म से ब्रह्मा हुए हो। कोई स्त्री अपने कर्म से पतिव्रता एवं दूसरे लोक में पूज्य होती है ॥५४॥ कोई वेश्या

---

१ क. 'पपात्र'।

काचिद्वेश्या तदाहारं भुङ्क्ते कृत्वाऽङ्गविक्रयम् । स्वर्वेश्याऽहं सुरपुरे सुरभोग्या सुपूजिता ॥५५॥
तेषामालिङ्गनेनैव कर्मणां खण्डनं भवेत् । मनः स्वभावबीजं च स्वभावः कर्मबीजकः ॥५६॥
तत्कर्मफलबीजं च सर्वेषां जनको हरिः । फलं ददाति नियतं कर्मद्वारा विभुः स्वयम् ॥५७॥
सर्वेभ्यो बलवान्नित्यं कर्मरूपी जनार्दनः । कुतो हेतोर्निन्दिताऽहं त्वयैव भर्त्सिता कथम् ॥५८॥
जगत्स्रष्टुरीश्वरस्य पादाब्जं द्रष्टुमागता । स्वप्ने यस्य पदद्वन्द्वं न हि पश्यन्ति योगिनः ॥५९॥
तमीश्वरं पतिं कर्तुमिच्छया स्वयमागता । गत्वा हि कस्यचित्स्थानमस्पृश्येह परत्र च ॥६०॥
कस्यचित्पादरजसा यशसा भान्ति योषितः । इत्युक्त्वा मोहिनी शीघ्रं गत्वोवास विधेः पुरः ॥६१॥
स्वयं विधाता जगतां चकम्पे कुलटाभयात् । सस्मिता वक्रनयना कामभावं चकार ह ॥६२॥
स्वाङ्गं च दर्शयामास कामबाणप्रपीडिता । एतस्मिन्नन्तरे कामः सर्वज्ञः सर्वयोगवित् ॥६३॥
आविर्भूय पञ्चबाणान्निचिक्षेप च ब्रह्मणि । सम्मोहनं समुद्वेगं बीजस्तम्भितकारणम् ॥६४॥
उन्मत्तबीजं ज्वलदं शश्वच्चेतनहारकम् । एतान्प्रक्षिप्य मदनोऽप्यन्तरिक्षस्थितः स्वयम् ॥६५॥
किंकरान्प्रेषयामास संमोहाय पितुर्मुदा । वसन्तं कोकिलालीश्च गन्धवातं मनोहरम् ॥६६॥
नियुज्याभ्यन्तरं गत्वा तद्विकारं चकार ह । पुंस्कोकिलः कलं रावमुवाच तत्समीपतः ॥६७॥
षट्पदः सुन्दरं सूक्ष्मं जुगुञ्जे पुरतः स्थितः । शश्वद्ववौ गन्धवहो मन्दोऽतिशीतलः प्रिये ॥६८॥

---

होती है, जो अपने अंगों का विक्रय करके जीविका चलाती है। मैं स्वर्ग की वेश्या हूँ, सुरपुरी में देवताओं की भोग्या तथा सम्मानित हूँ ॥५५॥ उन (देवताओं) के आलिङ्गन मात्र से कर्मों का खंडन हो जाता है। मन का बीज है स्वभाव और स्वभाव का बीज कर्म है ॥५६॥ उस कर्म और फल के बीज हैं सर्वोत्पादक हरि। स्वयं परमात्मा ही कर्म के द्वारा नियत फल देते हैं ॥५७॥ कर्मरूपी जनार्दन सबसे बलवान् होते हैं। किस कारण मैं निन्दित हूँ? और तुमने ही मेरी भर्त्सना क्यों की? ॥५८॥ मैं तो जगत् स्रष्टा ईश्वर के चरणों का दर्शन करने आयी हूँ, जिसके चरणयुगल का दर्शन योगी स्वप्न में भी नहीं कर पाते हैं ॥५९॥ उसी ईश्वर को पति बनाने की इच्छा से मैं स्वयं आयी हूँ। किसी दूसरे के स्थान में जाकर (जाने से) मैं इस लोक तथा परलोक में भी अस्पृश्य हो जाऊँगी। क्योंकि स्त्रियाँ किसी एक की चरणधूलि से यशस्विनी होती हैं। यह कहकर मोहिनी शीघ्र ब्रह्मा के आगे जाकर बैठ गयी ॥६०-६१॥ जगत् के विधाता (ब्रह्मा) कुलटा के भय से काँपने लगे। मोहिनी मुसकराकर तिरछी चितवन से कामभाव प्रकट करने लगी ॥६२॥ काम के बाणों से अति पीड़ित होने के कारण उसने अपने अङ्गों को दिखाया। इसी बीच सर्वज्ञ एवं समस्त योगों के वेत्ता काम ने प्रकट होकर ब्रह्मा के ऊपर पाँचों बाणों को चला दिया—सम्मोहन, समुद्वेग, बीजस्तम्भितकारण, ज्वलद उन्मत्तबीज तथा निरन्तर चेतनाहारक—इनको चलाकर कामदेव स्वयं आकाश में स्थित हो गया ॥६३-६५॥ उसने हर्ष से पिता को मोहित करने के लिए अपने सेवकों को भेजा। उसके सेवक में ये—वसन्त ऋतु, कोयल, भ्रमर तथा मनोहर सुगन्धित वायु ॥६६॥ काम स्वयं भी ब्रह्मा के भीतर प्रविष्ट होकर विकार उत्पन्न करने लगा। उनके समीप नर कोकिल मधुर शब्द करने लगा। सामने स्थित होकर भौंरा गुञ्जार करने लगा।

सततं मुदितस्तत्र बभ्राम च मधुः स्वयम् । पुलकाञ्चित सर्वाङ्गो बभूव जगतां विधिः ॥६९॥
ददर्श मोहिनीभावं प्रहस्य च पुनः पुनः । अतीव वक्रनयना कामास्त्रहतचेतना ॥७०॥
विधाता बुबुधे सर्वं सर्वधर्मनिबन्धनम्[1] । नियन्तुं न मनः शक्तः सस्मार श्रीहरिं भिया ॥७१॥
तुष्टाव मनसा कृष्णं शान्तं हृत्पङ्कजस्थितम् । द्विभुजं मुरलीहस्तं हरिं पीताम्बरं परम् ॥७२॥
अतीव कमनीयं च किशोरं स्थिरयौवनम् । रत्नालंकारभूषाढ्यं सस्मितं श्यामसुन्दरम् ॥७३॥

## ब्रह्मोवाच

रक्ष रक्ष हरे मां च निमग्नं कामसागरे । दुष्कीर्तिजलपूर्णे च दुष्पारे बहुसंकटे ॥७४॥
भक्तिविस्मृतिबीजे च विपत्सोपानदुस्तरे । अतीव निर्मलज्ञानचक्षुःप्रच्छन्नकारणे ॥७५॥
जन्मोर्मिसंघसहिते योषिन्नक्रौघसंकुले । रतिस्रोतःसमायुक्ते गम्भीरे घोर एव च ॥७६॥
प्रथमामृतरूपे च परिणामविषालये । यमालयप्रवेशाय मुक्तिद्वारातिविस्तृते ॥७७॥
बुद्धया तरण्या विज्ञानैरुद्धरास्मानतः स्वयं । स्वयं च त्वं कर्णधारः प्रसीद मधुसूदन ॥७८॥
मद्विधाः कतिचिन्नाथ नियोज्या भवकर्मणि । सन्ति विश्वेश[2] विधयो हे विश्वेश्वर माधव ॥७९॥

---

शीतल, मन्द, सुगन्ध, वायु बहने लगा । प्रिये ! वहाँ स्वयं वसन्त मुदित होकर भ्रमण करने लगा । तब जगत् के विधाता ब्रह्मा सर्वाङ्ग से पुलकित हो उठे ॥६७-६९॥ उन्होंने बार-बार हँसकर मोहिनी का भाव देखा । वह तिरछी चितनवाली काम के अस्त्रों से चेतना खो बैठी ॥७०॥ विधाता ने समस्त धर्मों के निबन्धन को जान लिया, किन्तु अपने मन को नियन्त्रित न कर सके । तब भय से श्रीहरि का स्मरण करने लगे । वे मन से, शान्त, हृदय-कमल पर विराजमान, दो भुजाओंवाले, हाथ में मुरली लिये हुए, पीताम्बरधारी, श्रेष्ठ, अत्यन्त कमनीय, किशोर, स्थिर यौवनवाले, रत्नों के आभूषणों से सम्पन्न, मन्द मुसकान से युक्त, श्याम सुन्दर कृष्ण की स्तुति करने लगे ॥७१-७३॥

**ब्रह्मा बोले**—हे हरे ! मेरी रक्षा करो, मैं कामसागर में डूब रहा हूँ, जो दुष्कीर्तिरूपी जल से पूर्ण, अति कठिनाई से पार किया जानेवाला एवं अतिसंकटमय है ॥७४॥ वह भक्ति के विस्मरण का बीज (मूलकारण), विपत्तिरूपी सोपान (सीढ़ियों) के कारण दुस्तर, निर्मल ज्ञानरूपी नेत्र को अत्यन्त प्रच्छन्न करनेवाला, जन्मरूपी तरङ्गसमुदाय से युक्त, स्त्रीरूपी मगर समूह से व्याप्त, रतिरूपी नदियों से युक्त तथा भयंकर है ॥७५-७६॥ वह आरम्भ में अमृत रूप तथा परिणाम में विष का घर है और यमपुरी में प्रवेश के लिए अति विस्तृत खुला दरवाजा है ॥७७॥ इसलिए हे मधुसूदन ! अपनी बुद्धिरूपी नौका से विज्ञान के द्वारा स्वयं पार करो। तुम स्वयं कर्णधार (पतवार चलानेवाले) हो, प्रसन्न हो जाओ ॥७८॥ हे नाथ ! हे विश्वेश, हे विश्वेश्वर, हे माधव ! इस संसार-सृष्टि के कार्य में मेरे समान अनेकों ब्रह्मा नियुक्त हैं। यद्यपि यह अभीष्ट ब्रह्मलोक है, कर्मक्षेत्र

---

१ ख. °र्वबन्धनि° । २ क. °श्वेषु वि° ।

न कर्मक्षेत्रमेवेदं ब्रह्मलोकोऽयमीप्सितः। तथाऽपि[1] न स्पृहा कामे त्वद्भक्तिव्यवधायके ॥८०॥
हे नाथ करुणासिन्धो दीनबन्धो कृपां कुरु। त्वं महेश महाज्ञाता दुःस्वप्नं मां न दर्शय ॥८१॥
इत्युक्त्वा जगतां धाता विरराम सनातनः। ध्यायं ध्यायं मत्पदाब्जं शश्वत्सस्मार मामिति ॥८२॥
ब्रह्मणा च कृतं स्तोत्रं भक्तियुक्तश्च यः पठेत्। स चैवाऽऽकर्ण्य विषये न निमग्नो भवेद्ध्रुवम् ॥८३॥
मम मायां विनिर्जित्य संज्ञानं लभते ध्रुवम्। इह लोके भक्तियुक्तो मद्भक्तप्रवरो भवेत् ॥८४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० राधाप्रश्ने ब्रह्ममोहिनीसं० श्रीकृष्णस्तोत्रं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥

---

नहीं, तथापि तुम्हारी भक्ति में व्यवधान डालनेवाले काम की इच्छा नहीं है ॥७९-८०॥ हे नाथ ! करुणासिन्धो! हे दीनबन्धो ! मेरे ऊपर कृपा करो। हे महेश ! तुम महान् ज्ञाता हो, मुझे दुःस्वप्न न दिखाओ ॥८१॥ इतना कहकर जगत् के विधाता एवं सनातन ब्रह्मा चुप हो गये और बार-बार मेरे चरण-कमलों में ध्यानपूर्वक निरन्तर मेरा स्मरण करने लगे ॥८२॥ इस प्रकार ब्रह्मा-कृत स्तोत्र का जो भक्तिपूर्वक पाठ या श्रवण करेगा, वह विषय में नहीं फँसेगा, यह निश्चित है ॥८३॥ वह मेरी माया को जीतकर निश्चित रूप से सम्यक् ज्ञान प्राप्त करेगा तथा मेरा श्रेष्ठ भक्त होगा ॥८४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारायण-नारद-संवाद में राधा के प्रश्न के प्रसंग में ब्रह्मा और मोहिनी के संवाद में बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३२॥

---

१ ख. 'पि नः स्पृ'।

# अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

### श्रीकृष्ण उवाच

कृत्वा ब्रह्मा हरेः स्तोत्रं तस्थौ तस्याः समीपतः । मनो मत्तगजेन्द्रं च कामासक्तं निवारयन् ॥१॥
दिव्यज्ञानाङ्कुशेनैव मया दत्तेन राधिके । उवाच मोहिनी तं च परिहासपरं वचः ॥२॥

### मोहिन्युवाच

इङ्गितेनैव नारीणां सद्यो मत्तं भवेन्मनः । करोत्याकृष्य संभोगं यः स एवोत्तमो विभो ॥३॥
ज्ञात्वा स्फुटमभिप्रायं नार्या संप्रेषितो हि यः । पश्चात्करोति शृङ्गारं पुरुषः स च मध्यमः ॥४॥
पुनः पुनः प्रेषितश्च स्त्रिया कामार्तया च यः । तया न लिप्तो रहसि स क्लीवो न पुमानहो ॥५॥
गृही तपस्वी कामी वा त्यजेत्स्त्रियमुपस्थिताम् । व्रजेत्परत्र नरकमपूज्यश्च भवेदिह ॥६॥
नष्टश्रीर्भ्रष्टरूपश्च भ्रष्टबुद्धिर्भवेद्ध्रुवम् । स सद्यः क्लीवतां याति ब्रह्मञ्छापेन योषितः ॥७॥
उत्तिष्ठ जगतीनाथ पारं कुरु स्मरार्णवे । निमग्नां दुस्तरे घोरे कर्णधार भयानके ॥८॥

---

# अध्याय ३३

## मोहिनी का शाप और ब्रह्मा का दर्पभंग

**श्रीकृष्ण बोले**--हे राधिके ! मेरे दिये हुए दिव्यज्ञानरूपी अंकुश द्वारा मतवाले गजेन्द्र के समान कामासक्त मन को रोकते हुए ब्रह्मा हरि की स्तुति करके मोहिनी के समीप स्थित हुए। तब मोहिनी उनसे परिहास (मजाक) की बात कहने लगी ॥१-२॥

**मोहिनी बोली**--विभो ! स्त्रियों के संकेत मात्र से जिसका मन तुरन्त मतवाला हो जाये और स्त्री को खींचकर सम्भोग कर ले, वही उत्तम पुरुष है ॥३॥ जो स्त्री के स्पष्ट अभिप्राय को जानकर उसके द्वारा प्रेरित होने के पश्चात् सम्भोग करता है, वह मध्यम पुरुष है ॥४॥ और जो कामपीड़ित स्त्री द्वारा बार-बार प्रेरित होने पर भी एकान्त स्थल में उसके साथ सम्भोग नहीं करता, वह नपुंसक है, पुरुष नहीं ॥५॥ गृहस्थ, तपस्वी या कामी (इनमें से जो कोई स्वयं) उपस्थित स्त्री का त्याग करता है, वह मरने पर नरक में जाता है और इस लोक में अपूज्य (असम्मानित) होता है ॥६॥ उसकी श्री नष्ट हो जाती है, रूप (सौन्दर्य) बिगड़ जाता है, बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और हे ब्रह्मन् ! वह स्त्री के शाप से तुरन्त नपुंसक हो जाता है ॥७॥ अतः जगत् के नाथ, कर्णधार ! दुस्तर, घोर एवं भयानक काम के सागर में डूबती हुई मुझे पार लगाने के लिए

अतीव निर्जनस्थाने सर्वजन्तुविवर्जिते। सुगन्धिवायुना रम्ये पुंस्कोकिलरुतश्रुते ॥९॥
सततं त्वन्मनस्कां मां दासीं जन्मनि जन्मनि। क्रीणीहि रतिपण्येनामूल्यरत्नेन सत्वरम् ॥१०॥
इत्युक्त्वा मोहिनी सद्यो जगत्स्रष्टुश्च ब्रह्मणः। विचकर्ष वरं[1] वस्त्रं सस्मिता कामविह्वला ॥११॥
विज्ञाय समयं धाता तामुवाच भयातुरः। पीयूषतुल्यं वचनं वरं विनयपूर्वकम् ॥१२॥

## ब्रह्मोवाच

शृणु मोहिनि मद्वाक्यं सत्यसारं हितं स्फुटम्। न कुरु त्वं च त्रैलोक्ये स्त्रीजातीनामपत्रपाम् ॥१३॥
त्यज मामम्बिके पुत्रं वृद्धं निष्काममेव च। त्वत्कर्म योग्यरसिकं युवानं पश्य सुस्मिते ॥१४॥
निषेकाल्लभते पत्नी गुरु भर्तुः शुभाशुभम्। मन्त्रशिल्पमपत्यं च सर्वमेतन्न यत्नतः ॥१५॥
त्वया सह मम रतेर्निर्बन्धो नास्ति सुव्रते। क्षुद्रं महद्वा यत्कर्म सर्वं दैवनिबन्धकम् ॥१६॥
इत्युक्तवन्तं ब्रह्माणं स्मरन्तं मत्पदाम्बुजम्। विचकर्ष पुनर्वेश्या कामेन हतचेतना ॥१७॥
एतस्मिन्नन्तरे शीघ्रं स्थानं तत्सुमनोहरम्। आजग्मुर्मुनयः सर्वे ज्वलन्तो ब्रह्मतेजसा ॥१८॥
अत्रिः पुलस्त्यः पुलहो वसिष्ठः क्रतुरङ्गिराः। भृगुर्मरीचिः कपिलो वोढुः पञ्चशिखो रुचिः ॥१९॥
आसुरिश्च प्रचेताश्च स्वयं शुक्रो बृहस्पतिः। उतथ्यः करकः कण्वः कश्यपो गौतमस्तथा ॥२०॥

---

शीघ्र उठो ॥८॥ सभी जीव-जन्तुओं से शून्य, सुगन्धित वायु से रमणीय और पुरुष-कोकिल की कूक से शब्दित अत्यन्त निर्जन स्थान में जन्म-जन्मान्तर की मुझ दासी को, जो निरन्तर तुम्हीं में मन लगाये रहती है, रतिक्रीड़ा रूपी अमूल्य रत्न द्वारा खरीद लो ॥९-१०॥ इतना कहकर मुसकराती हुई कामविह्वल मोहिनी तुरन्त ब्रह्मा का उत्तम वस्त्र खींचने लगी ॥११॥ समय को जानकर भय से व्याकुल ब्रह्मा ने उससे विनयपूर्वक अमृततुल्य श्रेष्ठ वचन कहा ॥१२॥

**ब्रह्मा बोले**—हे मोहिनि ! सत्य का निचोड़, हितकर और स्पष्ट मेरा वाक्य सुनो। तुम तीनों लोक में स्त्री-जाति को लज्जित मत करो ॥१३॥ माता ! मुझ वृद्ध एवं निष्काम पुत्र को छोड़ दो। हे सुन्दर मुसकान-वाली ! तुम्हारे कर्म के योग्य किसी रसिक तरुण को देखो ॥१४॥ पत्नी गर्भाधान के द्वारा गुरु पति से शुभ, अशुभ मन्त्र, शिल्प और सन्तान को प्राप्त करती है, यह सब प्रयत्न करने से नहीं होते हैं ॥१५॥ हे सुव्रते ! तुम्हारे साथ मेरी रति का कोई निर्बन्ध (शर्त) नहीं है। छोटे-बड़े सभी कर्मों के होने में दैव ही मुख्य कारण हैं ॥१६॥ इतना कहकर ब्रह्मा मेरे चरण-कमल का स्मरण करने लगे और उस वेश्या ने काम से आहत होने के कारण पुनः उनका वस्त्र खींचने लगी ॥१७॥ इसी बीच ब्रह्मतेज से चमकते हुए सभी मुनिगण उस मनोहर स्थान में शीघ्र ही आ पहुँचे ॥१८॥ (यथा) अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, वसिष्ठ, क्रतु, अंगिरा, भृगु, मरीचि, कपिल, वोढु, पञ्चशिख, रुचि, आसुरि, प्रचेता, शुक्र, बृहस्पति, उतथ्य, करक, कण्व, कश्यप, गौतम, सनक, सनन्द, कर्दम,

---

१ क. करं।

सनकश्च सनन्दश्च कर्दमश्च सनातनः । सनत्कुमारो भगवान्योगिनां परमो गुरुः ॥२१॥
शातातपः पिप्पलश्च शङ्कुः शुक्रः पराशरः । मार्कण्डेयो लोमशश्च मृकण्डुश्च्यवनस्तथा ॥२२॥
दुर्वासाश्च जरत्कारुरास्तीकश्च विभाण्डकः । ऋष्यशृङ्गो भरद्वाजो वामदेवश्च कौशिकः ॥२३॥
दृष्ट्वैतांश्च तपोनिष्ठानागतांश्च मुनीश्वरान् । तत्याज मोहिनी शीघ्रं व्रीडया कमलोद्भवम् ॥२४॥
तत्रोवास जगद्धाता तद्वामपार्श्वतश्च सा । प्रणेमुर्मुनयस्तं च भक्तिनम्रात्मकंधराः ॥२५॥
आशिषं युयुजे ब्रह्मा वासयामास तान्विभुः । तेषु मध्ये प्रजज्वाल यथा तारासु चन्द्रमाः ॥२६॥
पप्रच्छुर्मुनयो देवं कथमेषा तवान्तिके । स्ववेंश्यानां च प्रवरा मोहिनीत्येवमेव च ॥२७॥
श्रुत्वा मुनीनां वचनमुवाच तान्प्रजापतिः । स्त्रीजातीनां च वचनं लज्जाच्छादनमेव च ॥२८॥

## ब्रह्मोवाच

अपूर्वं नृत्यगीतं च चिरं कृत्वा शुभावहा । उवासेयं परिश्रान्ता यथा कन्या पितुः पुरः ॥२९॥
इत्युक्त्वा जगतां धाता जहास मुनिसंसदि । जहसुर्मुनयः सर्वे सर्वज्ञास्तत्र राधिके ॥३०॥
सर्वं रहस्यं विज्ञाय जगत्स्रष्टुश्च मानसम् । सद्यश्चुकोप कुलटा हास्यव्याजेन संसदि ॥३१॥
सर्वाङ्गकम्पमाना सा कुलटा कुटिलानना । रक्तपङ्कजनेत्रा च कोपप्रस्फुरिताधरा ॥३२॥
उत्थाय च सभामध्ये तेषां च पुरतः स्थिता । संबोध्योवाच ब्रह्माणं मृत्युकन्या यथा रुषा ॥३३॥

---

सनातन और योगियों के महान् गुरु भगवान् सनत्कुमार, शातातप, पिप्पल, शंकु, शुक्र, पराशर, मार्कण्डेय, लोमश, मृकण्डु, च्यवन, दुर्वासा, जरत्कारु, आस्तीक, विभाण्डक, ऋष्यशृङ्ग, भरद्वाज, वामदेव और कौशिक थे ॥१९-२३॥ इन तपोनिष्ठ महर्षियों को आये देखकर मोहिनी ने लज्जावश ब्रह्मा को तुरन्त छोड़ दिया ॥२४॥ जगत् के विधाता (ब्रह्मा) वहीं बैठ गये और उनके वाम भाग में वह (मोहिनी) बैठ गयी । भक्ति से कन्धे झुकाये महर्षियों ने ब्रह्मा को प्रणाम किया और उन्होंने उन लोगों को आशीर्वाद दिया तथा बैठाया । उनके मध्य में ब्रह्मा उसी तरह चमकने लगे जैसे ताराओं के बीच चन्द्रमा ॥२५-२६॥ तदुपरान्त मुनियों ने उनसे पूछा कि स्वर्ग की वेश्याओं में श्रेष्ठ यह मोहिनी आपके समीप कैसे बैठी है ? ॥२७॥ मुनियों की बात सुनकर ब्रह्मा ने उनसे कहा कि स्त्री-जाति का वचन (अर्थात् स्त्रियों से बोलना) लज्जा से ढँक जाना ही है ॥२८॥

**ब्रह्मा बोले**—यह शुभ मूर्ति चिरकाल तक अपूर्व नृत्य-गान करके श्रान्त हो गयी है अतः पिता के सामने कन्या की भाँति यहाँ बैठी है ॥२९॥ यह कहकर जगत् के विधाता ब्रह्मा उस मुनिसभा में हँस पड़े । राधिके ! सर्वज्ञ सभी मुनि भी हँसने लगे ॥३०॥ सब रहस्य तथा जगत्-स्रष्टा की मानसिक स्थिति समझकर वह कुलटा सभा में हास्य के बहाने सद्यः कुपित हो उठी । और उसके सर्वाङ्ग में कम्पन होने लगा, मुख विकृत हो गया, आँखें रक्तकमल की भाँति लाल हो गयीं और क्रोध से अधरोष्ठ फड़कने लगे ॥३१-३२॥ सभा के बीच उठकर वह उन लोगों के सामने खड़ी हो गयी और ब्रह्मा को सम्बोधित करके क्रुद्ध मृत्युकन्या की भाँति बोली ॥३३॥

## मोहिन्युवाच

अये ब्रह्मञ्जगन्नाथ वेदकर्ता त्वमेव च ॥३४॥
किंवा वेदप्रणिहितं कर्म किं तद्विपर्ययम् । विचारं मनसा स्वेन कुरु वेदविदां गुरो ॥३५॥
स्वकन्यायां यत्स्पृहा स कथं हससि नर्तकीम् । निर्मिताऽहमीश्वरेण स्वर्वेश्या सर्वगामिनी ॥३६॥
सतां कर्म विरुद्धं यत्तदत्यन्तविडम्बनम् । दासीतुल्यां विनीतां च दैवेन शरणागताम् ॥३७॥
यतो हससि गर्वेण ततोऽपूज्यो भवाचिरम् । अचिराद्दर्पभङ्गं ते करिष्यति हरिः स्वयम् ॥३८॥
निबोध वचनं ब्रह्मन्वेश्यायाश्च तु सांप्रतम् । तवैव वचनं स्तोत्रं गृह्णाति यो नरः सदा ॥३९॥
भविता तस्य विघ्नश्च स यास्यत्युपहास्यताम् । भविता वार्षिकी पूजा देवतानां युगे युगे ॥४०॥
तव माध्यां च संक्रान्त्यां न भविष्यति सा पुनः । कल्पान्तरेऽत्र कल्पे वा देहे देहान्तरेऽत्र वा ॥४१॥
पुनः पूजा न भविता या गता सा गतैव च । इत्युक्त्वा मोहिनी शीघ्रं जगाम मदनालयम् ॥४२॥
तेन सार्धं रतिं कृत्वा बभूव विज्वरा पुनः । पश्चात्सा चेतनां प्राप्य विललाप भृशं पुनः ॥४३॥
अयं कथं मया शप्तो जगद्विधिरतिप्रियः । स्वर्वेश्यायां गतायां च मुनयो दुःखिता भृशम् ॥४४॥
स्वयं विधाता जगतां चकम्पे नतकंधरः । उपायं मुनयस्तस्मै ददुः कल्याणकारिणः ॥४५॥
शरणं व्रज वैकुण्ठमित्युक्त्वा ते गृहान्ययुः । ब्रह्मा जगाम शरणं मम मूर्त्यन्तरं परम् ॥४६॥

---

**मोहिनी ने कहा**—अरे ब्रह्मन् ! तुम जगत् के स्वामी और वेदों के कर्त्ता भी हो ॥३४॥ वेदवेत्ताओं के गुरु ! यह बात अपने मन से विचार करो कि—कौन कर्म वेदविहित है और कौन उसके प्रतिकूल ? जो अपनी कन्या के प्रति स्पृहा करता है, वह नर्तकी को क्या हँसेगा ? ईश्वर ने मुझे सबके पास जानेवाली स्वर्ग की वेश्या बनाया है ॥३५-३६॥ सज्जनों का जो कर्म (शास्त्र या लोक से) विरुद्ध होता है, वह अत्यन्त विडम्बना है। दैववश शरण में आयी हुई दासीतुल्य मुझ विनीता को किसलिए गर्व से तुम हँस रहे हो, इसलिए शीघ्र अपूज्य हो जाओ और शीघ्र ही साक्षात् हरि तुम्हारा गर्व चूर्ण करेंगे ॥३७-३८॥ ब्रह्मन् ! इस समय तुम वेश्या की बात सुनो ! तुम्हारे ही वचन-स्तोत्र का जो मनुष्य सदा ग्रहण करेगा, उसे (कार्य में) विघ्न हो जायगा और वह उपहास को प्राप्त करेगा। प्रत्येक युग में देवताओं की वार्षिक पूजा होगी किन्तु तुम्हारी पूजा माघ की संक्रान्ति में नहीं होगी। इस कल्प में या कल्पान्तर में, इस देह में अथवा देहान्तर में फिर तुम्हारी पूजा नहीं होगी। अब तक जो हो गयी सो हो गयी। इतना कहकर वह मोहिनी शीघ्र ही कामदेव के यहाँ चली गयी ॥३९-४२॥ वहाँ उसके साथ रति करके वह सन्ताप-रहित हो गयी। पश्चात् सचेत होने पर वह अत्यन्त विलाप करने लगी ॥४३॥ उसने कहा—'मैंने जगत् के विधाता एवं अत्यन्त प्रिय ब्रह्मा को कैसे शाप दिया ?' स्वर्ग-वेश्या मोहिनी के चले जाने पर मुनियों को महान् दुःख हुआ और जगत् के विधाता ब्रह्मा काँप उठे। उनका मस्तक झुक गया। तब कल्याणकारी महर्षियों ने उन्हें उपाय बताया कि—आप वैकुण्ठनाथ की शरण में जाइये। इतना कहकर वे सब अपने घर चले गये और ब्रह्मा भी मेरी दूसरी मूर्ति परम शान्त, कमलाकान्त और

शान्तं तं कमलाकान्तं श्यामं नारायणाभिधम्। गत्वा विषण्णवदनः प्रणम्य च चतुर्भुजम् ॥४७॥
तत्रोवास जगत्कर्ता नातिदूरे समीपतः। रहस्यं कथयामास शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः ॥४८॥
दीनबन्धुं दयासिन्धुं विपत्तारणकारणम्। श्रुत्वा रहस्यं तत्सर्वं प्रहस्योवाच तं विभुः ॥
सत्यं सारं हितं वाक्यं जगतां च सुखावहम् ॥४

## नारायण उवाच

स्वयं त्वं वेदविदसि विदुषां च गुरोर्गुरुः ॥५०॥
त्वया कृतं च यत्कर्म इह[1] केन न तत्कृतम्। स्त्रीजातिः प्रकृतेरंशा जगतां बीजरूपिणी ॥५१॥
स्त्रीणां विडम्बनेनैव प्रकृतेश्च विडम्बनम्। न तद्भारतवर्षं च पुण्यक्षेत्रमनुत्तमम् ॥५२॥
क्रीडाक्षेत्रे ब्रह्मलोके कस्तवेन्द्रियनिग्रहः। यदि तद्भारते दैवात्कामिनी समुपस्थिता ॥५३॥
स्वयं रहसि कामार्ता न सा त्याज्या जितेन्द्रियैः। त्यक्त्वा परत्र नरकं व्रजेदतिविडम्बितः[2] ॥५४॥
भवेदेव हि दुःखार्ता शापं दद्याच्च तं ध्रुवम्। विहाय स्वकलत्रं च यो गृह्णाति परस्त्रियम् ॥५५॥
लोभात्कामसुखाद्वाऽपि सोऽधमो नात्र संशयः। पातयित्वा स च पतेद्दशपूर्वान्दशापरान् ॥५६॥

---

श्यामवर्ण नारायण की शरण में गये। वहाँ पहुँचकर म्लानमुख ब्रह्मा ने उन चार भुजावाले विष्णु को प्रणाम किया और उन्हीं के समीप वे जगत्कर्ता ब्रह्मा बैठ गये। उस समय उनका कण्ठ, ओंठ और तालू सूख गये। उन्होंने दीनबन्धु, दयासागर, विपत्ति से उबारनेवाले भगवान् से अपने आगमन का रहस्य बताया। वह सारा रहस्य सुनकर विभु (नारायण) ने हँसकर सत्य, सार, हितकर एवं सारे जगत् के लिए सुखावह वचन कहा ॥४४-४९॥

**नारायण बोले**—तुम स्वयं वेदवेत्ता हो और विद्वानों के गुरु के गुरु हो, किन्तु तुमने जैसा कर्म किया है, वैसा इस लोक में किसी ने नहीं किया है। स्त्री जाति प्रकृति का अंश है और जगत् का बीजरूप है। स्त्रियों के अपमान से प्रकृति का अपमान होता है। वह भारतवर्ष नहीं है, परमोत्तम पुण्यक्षेत्र है। उस क्रीड़ा-क्षेत्र ब्रह्मलोक में तुम्हें इन्द्रियनिग्रह करने की क्या आवश्यकता थी? यदि भारतवर्ष में भी संयोगवश एकान्त में कोई कामिनी कामपीड़ित होकर पहुँच जाये, तो जितेन्द्रिय लोगों को भी उसका त्याग नहीं करना चाहिए। क्योंकि उसके त्याग करने से वह अत्यन्त दीन होकर परलोक में नरक प्राप्त करता है ॥५०-५४॥ (त्याग करने से कामिनी) अवश्य ही दुःख से व्याकुल होगी और उस (पुरुष) को निश्चित ही शाप देगी। जो अपनी स्त्री को छोड़कर दूसरे की स्त्री को लोभ से या काम-सुख से अपनाता है, वह अधम है, इसमें संशय नहीं। वे अपने पहले और पीछे

---

१ क. हालिके॰। २ क. ॰जेदिह वि॰।

त्यक्त्वा स्वस्वामिनं या च परं गच्छति कामतः। न पुमान्न च वेश्या च कुलस्त्री तत्र दुष्यति ॥५७॥
उपायेन च या साध्यं करोति परपूरुषम्। तिष्ठत्येवान्धकूपे सा यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥५८॥
स्ववेश्या च दिवं याति सततं कुलधर्मतः। ध्रुवं भवेत्सोऽपराधी तस्या अप्यवमानतः ॥५९॥
तमुपायं करिष्यामि शप्तो यत्र विशुद्ध्यति। क्षणं तिष्ठ जगन्नाथ पापिनश्च भवार्णवे ॥६०॥
एतस्मिन्नन्तरे कश्चिदाजगाम हरेः पुरः। द्वारपालः शीघ्रगामीत्युवाच नतकंधरः ॥६१॥

## द्वारपाल उवाच

अन्यब्रह्माण्डाधिपतिर्ब्रह्मा दशमुखः स्वयम्। द्वारे तिष्ठन्महाभक्तस्त्वां द्रष्टुं स्वयमागतः ॥६२॥
द्वारपालवचः श्रुत्वा स चैवानुमतिं ददौ। द्वारपालाज्ञया ब्रह्मा तुष्टावाऽऽगत्य भक्तितः ॥६३॥
स्तोत्रैरतिविचित्रैश्च चतुर्वक्त्राश्रुतैरहो। स्तुत्वोवासाऽऽज्ञया विष्णोः कृत्वा पश्चाच्चतुर्मुखम् ॥६४॥
नारायणो द्वारपालानित्युवाच चतुर्भुजान्। आगन्तुकं जनमपि प्रवेशयत सादरम् ॥६५॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र वृन्दावनविनोदिनी। आजगामातिप्रणतो ब्रह्मा शतमुखः स्वयम् ॥६६॥
दिव्यैः स्तोत्रैश्च तुष्टाव निगूढमतिसुन्दरैः। स्तुत्वोवास वरैः स्तोत्रैः सर्वेषामश्रुतैरहो ॥६७॥

---

की दस-दस पीढ़ियों को नरक में गिराता है ॥५५-५६॥ इसी प्रकार जो स्त्री अपने पति को छोड़कर कामवश पर-पुरुष का साथ करती है, वह भी पूर्व-पर की दस-दस पीढ़ियों को नरक में गिराती है किन्तु वेश्या और उसे समागम करनेवाला पुरुष दूषित नहीं होता है, कुलीन स्त्री दूषित होती है ॥५७॥ जो कुल-स्त्री किसी उपाय द्वारा पर-पुरुष को साध्य (वश में) कर लेती है, वह निश्चित ही चन्द्रमा और सूर्य के समय तक अन्धकूप नामक नरक में पड़ी रहती है ॥५८॥ स्वर्ग की वेश्या तो अपने कुलधर्मानुसार स्वर्ग को जाती है और उसका अपमान करनेवाला निरन्तर अपराधी ही बना रहता है ॥५९॥ अब मैं वह उपाय करूँगा, जिससे शापप्राप्त व्यक्ति की शुद्धि हो जाती है । हे जगन्नाथ ! तुम क्षण भर पापी के भवसागर में रहो ॥६०॥ इसी बीच भगवान् के सामने कोई द्वारपाल बड़ी शीघ्रता से आया और कन्धे झुकाये कहने लगा ॥६१॥

**द्वारपाल बोला**—अन्य ब्रह्माण्ड के अधीश्वर, दसमुखवाले ब्रह्मा स्वयं द्वार पर आकर ठहरे हैं, वे आपके महाभक्त हैं और आपका दर्शन करने के लिए आये हैं ॥६२॥ द्वारपाल की बात सुनकर उन्होंने अनुमति प्रदान की । तब द्वारपाल की आज्ञा से ब्रह्मा आये और बड़ी भक्ति से भगवान् की स्तुति करने लगे ॥६३॥ उन्होंने अति विचित्र स्तोत्रों द्वारा स्तुति की जिन्हें चार मुखवाले ब्रह्मा ने नहीं सुना था । स्तुति के अनन्तर दस मुखवाले ब्रह्मा विष्णु की आज्ञा से चार मुखवाले ब्रह्मा को पीछे करके बैठ गये ॥६४॥ तब चार भुजाओंवाले द्वारपालों से नारायण ने कहा कि—द्वार पर आये हुए आगन्तुक जनों को भी सादर यहाँ लिवा लाओ ॥६५॥ इतने में हे वृन्दावन में विनोद करनेवाली ! सौ मुखवाले ब्रह्मा भी स्वयं आ गये जो अत्यन्त विनय-विनम्र थे ॥६६॥ उन्होंने वहाँ पहुँचकर दिव्य एवं अतिसुन्दर स्तोत्रों द्वारा गूढ़भाव से भगवान् की स्तुति की । फिर

तदनन्तरं तयोरग्रे भक्त्या शतमुखः स्वयम् । जगद्विधौ सभायां च तत्र तिष्ठति तत्क्षणे ।।
आजगामान्यब्रह्माण्डाधिपो ब्रह्मा हरेः पुरः । सहस्रवदनः श्रीमान्भक्त्या नम्रात्मकंधरः ।।
स्तुत्वोवास वरैः स्तोत्रैः सर्वेषामश्रुतैरहो । तं च पप्रच्छ सर्वेषां ब्रह्माण्डानां च ब्रह्मणाम् ।।७०
वार्ता विषयिणां चैव सुराणां च क्रमेण च । चतुर्मुखस्य तान्दृष्ट्वा दर्पभङ्गो बभूव ह ।।७१।
आत्मानं विष्णुसदृशं मन्यमानस्य दर्पतः । अन्यान्यान् दर्शयामास ब्रह्माण्डस्थान्विधीन्हरिः ।।७२।।
दृष्ट्वा च कृपया तत्र मृततुल्यं चतुर्मुखम् । यावन्ति गात्रलोमानि सन्ति नारायणस्य मे ।।७३।।
तत्प्रमाणाश्च ब्रह्माण्डा ब्रह्माणः सन्ति संततम् । नारायणं प्रणम्याऽऽशु जग्मुस्ते स्वालयं प्रति ।।७४।।
स मेने विधिरात्मानमत्यल्पविषयाधिपम् । पप्रच्छ प्रणतं विष्णुर्लज्जानम्रचतुर्मुखम् ।।७५।।
वद तत्किमिदं दृष्टं स्वप्नवद्भुवताऽधुना । नारायणवचः श्रुत्वा विधिरित्युक्तवांस्तदा ।।७६।।
भूतं भव्यं भविष्यं च तव मायासमुद्भवम् । इत्येवमुक्त्वा स विधिस्तस्थौ संसदि लज्जया
सर्वान्तर्यामी भगवांस्तस्योपायं विनिर्ममे ।।७७।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० मोहिनीशापब्रह्मदर्पभङ्गो नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ।।३३।।

---

सबके लिए अश्रुत एवं श्रेष्ठ स्तोत्रों द्वारा स्तुति करके वे बैठ गये ।।६७।। तदनन्तर पहले के आये हुए दोनों ब्रह्माओं के आगे स्वयं शतमुख ब्रह्मा के बैठ जाने पर उसी समय उस सभा में एक अन्य ब्रह्माण्ड अधीश्वर सहस्रमुख ब्रह्मा विष्णु के आगे आये । उन्होंने भी भक्तिभाव से मस्तक झुकाकर किसी के द्वारा भी अब तक न सुने गये उत्तम स्तोत्रों से भगवान् की स्तुति की और उनके भी बैठ जाने पर हरि ने समस्त ब्रह्माण्डों के ब्रह्माओं का और उनके राज्य में रहनेवाले देवताओं का क्रमशः कुशल-समाचार पूछा । उन सब ब्रह्माओं को देखकर अपने को विष्णुतुल्य माननेवाले चतुर्मुख ब्रह्मा का दर्पभंग हो गया । भगवान् ने अन्यान्य ब्रह्माण्डों के ब्रह्माओं को दिखाया ।।६८-७२।। उन्हें देखकर चतुर्मुख ब्रह्मा मृतक तुल्य हो गये । भगवान् ने कृपा करके उन्हें यह बोध कराया कि—मेरे शरीर में जितने लोम हैं, उतने ही ब्रह्माण्ड और उतने ही उनके अधीश्वर ब्रह्मा निरन्तर विद्यमान रहते हैं । वे सभी ब्रह्मा नारायण को प्रणाम करके अपने स्थान को चले गये ।।७३-७४।। तब चार मुख-वाले ब्रह्मा ने अपने को अति अल्प राज्य का अधिपति माना । लज्जा से उनका मुख नीचे हो गया । यह देख-कर विष्णु ने उनसे पूछा—कहो, स्वप्न की भाँति इस समय क्या देखा है ? नारायण की बात सुनकर ब्रह्मा ने कहा—'आपकी माया से उत्पन्न होनेवाले भूत, भविष्य और वर्तमान को देखा है ।' इतना कहकर ब्रह्मा उस सभा में लज्जित हो गये और सबके अन्तःकरण की बात जाननेवाले भगवान् ने उनके (शाप-निवारण) का उपाय किया ।।७५-७७।।

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्ण-जन्मखण्ड में नारायण-नारद के संवाद में मोहिनी शाप तथा ब्रह्म-दर्प-भंग-वर्णन नामक तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ।।३३।।

# अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

श्रीकृष्ण उवाच

एतस्मिन्नन्तरे तत्र शंकरः समुपस्थितः। सस्मितो वृषभेन्द्रस्थो विभूतिभूषणः स्वयम् ॥१॥
व्याघ्रचर्माम्बरधरो नागयज्ञोपवीतकः। स्वर्णाकारजटाभारमर्धचन्द्रं च संवहत् ॥२॥
त्रिशूलपट्टिशकरो बिभ्रत्खट्वाङ्गमुत्तमम्। सद्रत्नसाररचितस्वरयन्त्रकरो मुदा ॥३॥
वाहनादवरुह्याऽऽशु भक्तिनम्रात्मकंधरः। प्रणम्य कमलाकान्तं वामे चोवास[1] भक्तितः ॥४॥
आजग्मुर्मुनयः सर्वे सुराः शक्रादयस्तथा। आदित्या वसवो रुद्रा मनवः सिद्धचारणाः ॥५॥
पुलकाञ्चितसर्वाङ्गास्तुष्टुवुः पुरुषोत्तमम्। प्रणम्य तं शिवं सर्वे सुराश्चाऽऽनम्रकंधराः ॥६॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र संगीतं शंकरो जगौ। कृत्वाऽतीव सुतालं च स्वरयन्त्रसमन्वितः ॥७॥
आवयोश्च गुणाख्यानं राससंबन्धि सुन्दरम्। समयोचितरागेण मनोमोहनकारिणा ॥८॥
यन्त्रकण्ठैकतानेन चंकमानेन चारुणा। पदभेदविरामेण गुरुणा लघुना क्रमात् ॥९॥

---

# अध्याय ३४

## जाह्नवी-जन्म-प्रस्ताव

**श्रीकृष्ण बोले**—इसी बीच वहाँ शङ्कर जी आ गये। वे मुसकरा रहे थे, बैल पर सवार थे, विभूति रमाये हुए थे, व्याघ्रचर्म का वस्त्र, सर्पमय यज्ञोपवीत, सिर पर सुनहरे रंग की जटा का भार, ललाट में अर्धचन्द्र, हाथों में त्रिशूल, पट्टिश तथा उत्तम खट्वाङ्ग धारण किये, श्रेष्ठ रत्नों के सारतत्त्व से निर्मित स्वरयन्त्र लिये शिव हर्ष से शीघ्र ही वाहन से उतरे और भक्तिभाव से मस्तक झुकाकर कमलाकान्त को प्रणाम करके उन्हीं के वाम भाग में बैठ गये ॥१-४॥ फिर इन्द्र आदि समस्त देवता, मुनि, आदित्य, वसु, रुद्र, मनु, सिद्ध और चारण वहाँ आये ॥५॥ वे सर्वाङ्ग में पुलकायमान थे। उन्होंने पुरुषोत्तम की स्तुति की। फिर समस्त देवों ने सिर झुकाकर शिव को प्रणाम किया ॥६॥ अनन्तर स्वरयन्त्र लिये शंकर ने सुमधुर तालस्वर के साथ संगीत आरम्भ किया ॥७॥ उसमें हम दोनों के गुणों तथा रास सम्बन्धी सुन्दर पदों का गान होने लगा। मन को मोह लेनेवाले सामयिक राग, कण्ठ की एकतानता, एक मनोहर मान, गुरु-लघु के क्रम से सुन्दर वर्णन करना आरम्भ किया था, जिसमें एक समान कण्ठ-कलाप, सुन्दर पद-भेद-विराम, अतिदीर्घ गमक तथा मधुर आनन्द

---

१ क. हर्षितः ।

गमकेनातिदीर्घेण भवे (न्द्रे) न मधुरेण च। भवेति दुर्लभं सृष्टं प्रीत्या स्वेन विनिर्मितम् ॥१०॥
पुलकाञ्चितसर्वाङ्गः साश्रुनेत्र पुनः पुनः। तदेव श्रुतिमात्रेण मूर्च्छां प्रापुर्विचेतनाः ॥११॥
बभूवू रुद्ररूपाश्च मुनयः पुरतः प्रिये। रुद्ररूपाः सुराःसर्वे विधातृहरिपार्षदाः ॥१२॥
नारायणश्च लक्ष्मीश्च गायकश्च शिवः स्वयम्। जलपूर्णं च वैकुण्ठं दृष्ट्वा त्रस्तोऽहमीश्वरि ॥१३॥
गत्वा मूर्तीर्विनिर्माय सर्वाश्च तावृशीरिति। तत्स्वरूपास्तदस्त्राश्च तत्स्ववाहनभूषणाः ॥१४॥
तत्स्वभावास्तन्मनस्कास्तत्तद्विषयमानसाः। स्थानं निर्माय परितो वैकुण्ठस्य चतुर्दिशि ॥१५॥
तदधिष्ठातृदेवी च आजगाम स्वमालयम्। शरीरजा सुराणां सा बभूव सुरनिम्नगा ॥१६॥
मुक्तिदा च मुमुक्षूणां भक्तानां हरिभक्तिदा। कोटिजन्मार्जितं पापं विविधं पापिनामहो ॥१७॥
यस्याश्च स्पर्शवायोश्च संपर्केण विनश्यति। किंवा न जाने प्राणेशि स्पर्शदर्शनयोः फलम् ॥१८॥
किमुत स्नानजन्यं च कथयामि निरूपणम्। सर्वतीर्थात्परं पृथ्व्यां पुष्करं परिकीर्तितम् ॥१९॥
वेदोक्तं च तदेवास्याः कलां नार्हति षोडशीम्। भगीरथेन चाऽऽनीता तेन भागीरथी स्मृता ॥२०॥
गामागता स्रोतसोंऽशाद्गङ्गा तेन प्रकीर्तिता। जानुद्वारा पुरा दत्ता जह्नुनाऽऽपीय कोपतः ॥२१॥

---

के साथ उन्होंने प्रेमपूर्वक स्वयं निर्मित ऐसा संगीत छेड़ा, जो संसार में अत्यन्त दुर्लभ है ॥८-१०॥ उनका सर्वाङ्ग पुलकित हो गया और आँखों में बार-बार आंसू भर आता था। उसके सुनने मात्र से वहाँ के सब लोग मूच्छित हो गये (सुधि-बुधि खो बैठे) ॥११॥ प्रिये! सामने बैठे हुए मुनिवृन्द, समस्त ब्रह्मा, विष्णु, पार्षदगण, लक्ष्मी और गायक स्वयं शिव भी रुद्र रूप हो गये। वैकुण्ठ में जल भर गया। हे ईश्वरि! यह देखकर मैं भी त्रस्त हो गया ॥१२-१३॥ अनन्तर वहाँ जाकर मैंने उन सब देवता आदि की मूर्तियों (शरीरों) का पूर्ववत् निर्माण किया। उनके स्वरूप, अस्त्र, वाहन और भूषण पहले के समान थे ॥१४॥ उनके स्वभाव, मन एवं विषय-वासनाएँ भी पूर्ववत् थीं। उस जल-राशि के लिए वैकुण्ठ के चारों ओर स्थान बनाया ॥१५॥ फिर उसकी अधिष्ठात्री देवी (गंगा) स्वयं अपने वासस्थान में आयी। देवों के शरीर से उत्पन्न होने के कारण (वह दिव्य जल-राशि) देवनदी (गङ्गा) हुई ॥१६॥ वह मोक्ष चाहनेवाले को मोक्ष और भक्तों को भगवान् की भक्ति प्रदान करती है। हे प्राणेश्वरी! उसके स्पर्श करने और दर्शन करने का फल क्या होगा—यह मैं नहीं जानता? ॥१७-१८॥ फिर उसमें स्नान करने से प्राप्त होनेवाले पुण्य के विषय में क्या कहूँ? पृथ्वी पर समस्त तीर्थों से बढ़कर पुष्कर तीर्थ माना गया है। वेद में प्रतिपादित वही तीर्थ इस (गंगा) की सोलहवीं कला के समान भी नहीं है। इसे यहाँ भगीरथ लाये थे, इसी से इसका नाम भागीरथी पड़ा ॥१९-२०॥ यह अपने स्रोत के अंश से पृथ्वी पर आयी थी, इसलिए 'गङ्गा' कहलायी। पूर्वकाल में क्रुद्ध होकर जह्नु ने इसे पी लिया था और अन्त में जानु (घुटने) द्वारा इसे निकाल दिया था। उनकी कन्यास्वरूपा होने से यह 'जाह्नवी' कहलायी।

तस्य कन्यास्वरूपा सा जाह्नवी तेन कीर्तिता । भीष्मः स्वयं वसुर्जातस्तस्यांशात्तेन भीष्मसूः ॥२२॥
धाराभिस्तिसृभिः स्वर्गं पृथिवीमतलं तथा । ममाऽऽज्ञया च गच्छन्ती तेन त्रिपथगामिनी ॥२३॥
प्रधानधारया स्वर्गे सा च मन्दाकिनी स्मृता । योजनायुतविस्तीर्णा प्रस्थे च योजना स्मृता ॥२४॥
क्षीरतुल्यजला शश्वदत्युत्तुङ्गतरङ्गिणी । वैकुण्ठाद्ब्रह्मलोकं च ततः स्वर्गं समागता ॥२५॥
स्वर्गाद्धिमाद्रिमार्गेण पृथिवीमागता मुदा । सा धाराऽलकनन्दाख्या लवणोदेन मिश्रिता ॥२६॥
शुद्धस्फटिकसंकाशा बहुवेगवती सती । पापिनां पापशुष्केन्धं दग्धुं पावकरूपिणी ॥२७॥
अहो सागरवंशेभ्यो निर्वाणमुक्तिदायिनी । वैकुण्ठगामिनी सा च सोपानरूपिणी वरा ॥२८॥
अतोऽपि मृत्युसमये सतां पुण्यस्वरूपिणाम् । आदौ पादौ च संन्यस्य मुखे तोयं प्रदीयते ॥२९॥
गङ्गासोपानमारुह्य सन्तो यान्ति निरामयम् । आब्रह्मलोकं संलङ्घ्य रथस्थाश्च निरापदः ॥३०॥
दैवात्पुरा प्राक्तनेन मग्नं चेत्कृतपातकैः । लोमप्रमाणवर्षं च मोदन्ते हरिमन्दिरे ॥३१॥
ततो भोगो भवेत्तेषां निश्चितं पापपुण्ययोः । अतिस्वल्पेन कालेन कालव्यूहं च बिभ्रताम् ॥३२॥
ततः पुण्यवतां गेहे लब्ध्वा जन्म च भारते । सम्प्राप्य निश्चलां भक्तिं भवन्ति हरिरूपिणः[1] ॥३३॥

---

वसु के अंश से भीष्म स्वयं इसके गर्भ से उत्पन्न हुए थे, इस कारण यह 'भीष्मजननी' कही जाती है ॥२१-२२॥ गङ्गा मेरी आज्ञा से तीन धारा बनाकर स्वर्ग, पृथिवी और पाताल में गयी है, इससे 'त्रिपथगामिनी' कही जाती है ॥२३॥ इसकी प्रधान धारा स्वर्ग में है, जो मन्दाकिनी नाम से प्रख्यात, दस सहस्र योजन विस्तीर्ण, लम्बी और एक योजन चौड़ी है ॥२४॥ इसका क्षीर के समान जल एवं अत्यन्त ऊँची तरंगें हैं । वैकुण्ठ से ब्रह्मलोक होती हुई यह स्वर्ग में आयी है ॥२५॥ स्वर्ग से हिमालय मार्ग द्वारा जो धारा हर्ष से पृथिवी पर आयी और लवण समुद्र से मिल गयी, उसे अलकनन्दा कहते हैं ॥२६॥ वह शुद्ध स्फटिक के समान धवल, अति वेगवाली और पापियों के पापरूपी सूखे काठ को जलाने के लिए पावक (अग्नि) रूप है ॥२७॥ अहो ! सगर के वंशजों (पुत्रों) को उसी ने निर्वाण-मोक्ष प्रदान किया । वह वैकुण्ठ जाने के लिए श्रेष्ठ सोपान रूप है ॥२८॥ इसलिए भी मृत्युकाल में पहले पुण्यस्वरूपवाले सज्जनों के चरणों को रखकर (मुमूर्षु के) मुख में गंगाजल डाला जाता है ॥२९॥ गङ्गा रूपी सोपान (सीढ़ियों) पर चढ़कर सन्त लोग निरामय (वैकुण्ठधाम) को प्राप्त होते हैं । वे ब्रह्मलोक तक को लाँघकर विमान पर बैठे हुए निर्बाध गति से जाते हैं । यदि दैववश पूर्वकर्म के प्रभाव से पापी पुरुष गंगा में डूब जायँ तो वे भगवान् के लोक में जाकर लोम प्रमाण वर्षों तक (अर्थात् शरीर में जितने रोएँ हैं उतने वर्षों तक) सुखी जीवन व्यतीत करते हैं ॥३०-३१॥ इसके पश्चात् उन्हें अपने पाप-पुण्य का भोग प्राप्त होता है और वे अत्यन्त स्वल्प काल में ही काल-समूह को पूरा कर लेते हैं ॥३२॥ तदनन्तर भारत में पुण्यवानों के गृह में जन्म-ग्रहण करके वे भगवान् की निश्चल भक्ति पाकर भगवत्स्वरूप हो जाते हैं ॥३३॥ यदि दैववश मरे हुए द्विजों के

---

१ क. मम पार्षदाः ।

मृतद्विजानां देहांश्च दैवाच्छूद्रा वहन्ति चेत् । पदप्रमाणवर्षं च तेषां च नरके स्थितिः ॥३४॥
ततस्तेषां च साहाय्यं करोति हरिरूपिणी । ददाति मुक्तिं तेभ्योऽपि क्रमेण च कृपामयी ॥३५॥
जन्म पुण्यवतां गेहे कारयित्वा च भारते । स्थलं ददाति वैकुण्ठे निश्चितं जन्मभिस्त्रिभिः ॥३६॥
यात्रां कृत्वा तु यः शुद्धो स्नातुं याति सुरेश्वरीम् । पदप्रमाणवर्षं च वैकुण्ठे मोदते ध्रुवम् ॥३७॥
गङ्गां प्राप्यानुषङ्गेण स्नाति चेत्समलो नरः । मुच्यते सर्वपापेभ्यः पुनर्यदि न लिप्यते ॥३८॥
कलौ पञ्चसहस्राब्दं स्थितिस्तस्याश्च भारते । तस्यां च विद्यमानायां कः प्रभावः कलेरहो ॥३९॥
कलौ दशसहस्राणि वर्षाणि प्रतिमा मम । तिष्ठन्ति च पुराणानि प्रभावस्तत्र कः कलेः ॥४०॥
अतलं याति या धारा सा च भोगवती स्मृता । पयःफेननिभा शश्वदतिवेगवती सदा ॥४१॥
आकाराऽमूल्यरत्नानां मणीन्द्राणां च संततम् । नागकन्याश्च यत्तीरे क्रीडन्ति स्थिरयौवनाः ॥४२॥
स्वयं देवी च वैकुण्ठं वेष्टयित्वा च संततम् । सहस्रयोजना प्रस्थे दैर्घ्ये च लक्षयोजना ॥४३॥
अस्या विनाशः प्रलये नास्त्येव दुहितुर्मम । नानारत्नाकरं दिव्यं तत्तीरं सुमनोहरम् ॥४४॥

---

शवों को शूद्र ढोते हैं तो उन्हें उतने वर्षों तक नरक में रहना पड़ता है जितने पग वे चलते हैं। किन्तु नारायण-स्वरूपिणी अति कृपामयी यह गंगा उन लोगों की भी सहायता करती है और क्रमशः उन्हें मुक्ति प्रदान करती है ॥३४-३५॥ भारत में पुण्यवानों के घर जन्म ग्रहण कराकर तीन जन्मों के उपरान्त वैकुण्ठ में निश्चित स्थान दिलाती है ॥३६॥ जो शुद्धि के लिए यात्रा करके गंगा में स्नान करने के लिए जाता है, वह जितने पग चलता है, उतने वर्षों तक वैकुण्ठ में निश्चित रूप से आनन्द प्राप्त करता है ॥३७॥ आनुषङ्गिक रूप से भी गङ्गा में पहुँचकर यदि पापी मनुष्य स्नान करता है तो वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है यदि वह पुनः पाप में लिप्त न हो ॥३८॥ कलियुग के पाँच सहस्र वर्षों तक गंगा भारत में स्थित रहेंगी, उनके रहते हुए कलि का क्या प्रभाव पड़ेगा ? ॥३९॥ कलि में दस सहस्र वर्षों तक मेरी प्रतिमाएँ रहेंगी और उतने समय तक पुराण भी रहेंगे उनके होते हुए कलि का क्या प्रभाव हो सकता है ? ॥४०॥ (गंगा की) जो धारा पाताललोक को जाती है, उसे 'भोगवती' कहते हैं। वह सदा दूध के फेन के समान स्वच्छ और निरन्तर अति वेग से मुक्त रहती है ॥४१॥ अमूल्य रत्नों तथा मणीन्द्रों की वह निरन्तर खान बनी रहती है और स्थायी यौवनवाली नागकन्याएँ उसके तट पर क्रीड़ा करती हैं ॥४२॥ स्वयं गंगा देवी वैकुण्ठ को चारों ओर से घेरकर स्थित है, जो सहस्र योजन चौड़ी और लक्ष योजन लम्बी है ॥४३॥ मेरी इस पुत्री का प्रलय में भी विनाश नहीं होता है। उसका तट अत्यन्त मनोहर, दिव्य एवं विविध रत्नों की खान है

---

१ क. चेन्मौसलं न°।

इत्येवं कथितं सर्वं जाह्नवीजन्म पुण्यदम् । ब्रह्मणश्च प्रतीकारो मोहिनीशापतः शृणु ॥४५॥
इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० जाह्नवीजन्मप्रस्तावो
नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३४॥

# अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

### श्रीकृष्ण उवाच

नारायणश्च ब्रह्माणमुवाच कृपया पुनः । दृष्ट्वा गङ्गां च सर्वे तां मम मायां च मेनिरे ॥१॥

### नारायण उवाच

उत्तिष्ठ गच्छ भद्रं ते भविष्यति चतुर्मुख । अत्र स्नात्वाऽभिशप्तस्त्वं पूतो भव ममाऽऽज्ञया ॥२॥
त्वं चेत्सत्यं स्वयं पूतः स्पर्शं वाञ्छन्ति तानि ते । वैष्णवेशस्य तीर्थानि सर्वाणि सततं मुने ॥३॥
तथाऽपि शापमुक्तस्त्वमत्र प्रकृतिहेलनात् । अहंकारश्च सर्वेषां पापबीजममङ्गलम् ॥४॥

---

॥४४॥ इस प्रकार मैंने गङ्गा के जन्म का सारा पुण्यप्रद प्रसंग बता दिया । अब ब्रह्मा का मोहिनी के शाप से कैसे उद्धार हुआ, यह सुनो ॥४५॥

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्ण-जन्मखण्ड में नारायण-नारद के संवाद में जाह्नवी-जन्म-वर्णन नामक चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३४॥

# अध्याय ३५

## ब्रह्मा का प्रसंग

**श्रीकृष्ण बोले**—नारायण ने कृपया पुनः ब्रह्मा से कहना आरम्भ किया और वहाँ के सभी लोगों ने गंगा को देखकर उसे मेरी माया स्वीकार किया ॥१॥

**नारायण बोले**—हे चतुर्मुख ! उठो, जाओ, तुम्हारा कल्याण होगा । इस (गंगा) में स्नान करके शाप-ग्रस्त तुम मेरी आज्ञा से पवित्र हो जाओ ॥२॥ मुने ! तुम यदि सत्य हो तो स्वयं पवित्र हो और वे समस्त तीर्थ तुम वैष्णवपति का निरन्तर स्पर्श चाहते हैं, तो भी यहाँ प्रकृति की अवहेलना करने (हँसी उड़ाने) से तुम्हें शाप मिला है, उससे यहाँ मुक्त हो जाओगे । अहंकार ही सभी के लिए पापों का बीज एवं अमंगल रूप है ॥३-४॥

शीघ्रं त्वं गच्छ गोलोकं ममाऽऽलयं परात्परम्। प्रकृत्यंशां मङ्गलदां तत्र प्राप्स्यसि भारतीम् ॥५॥
प्रकृतिं भज कल्याण सृष्टिबीजस्वरूपिणीम्। अहो कल्पान्तपर्यन्तं तपस्तप्तं त्वयाऽधुना ॥६॥
तव मन्त्रं न गृह्णन्ति केऽपि वेश्याभिशापतः। यदन्यदेवपूजायां तव पूजा भविष्यति ॥७॥
त्वमेव जगतां धाता स्वात्मारामश्च योषितः। सर्वरूपी च पूजा च सर्वदेहेषु सर्वतः ॥८॥
तदा ममाऽऽज्ञया ब्रह्मा स्नात्वा च जाह्नवीजले। शीघ्रं जगाम गोलोकं मां प्रणम्य जगद्गुरुः ॥९॥
ते देवा मुनयः सर्वे प्रजग्मुः स्वालयं मुदा। सुनिर्मलं मम यशो गायन्तश्च पुनः पुनः ॥१०॥
विधिरागत्य गोलोकं संप्राप्य भारतीं सतीम्। सर्वविद्याधिदेवीं तां मद्वक्त्राच्च[1] विनिर्गताम् ॥११॥
वागीश्वरीं च संप्राप्य ब्रह्मा प्रमुदितः स्वयम्। कामास्त्राणां च व्यापारमनुमेने स्वयं विभुः ॥१२॥
तत आगत्य मां नत्वा प्राप्य त्रैलोक्यमोहिनीम्। क्रीडां चकार भगवान्स्थाने स्थानेऽतिनिर्जने ॥१३॥
रतिं चिरतरं कृत्वा विरराम स्वयं विधिः। वागीश्वरीमुवाचेदं त्वं वै ब्रह्मा च कर्मणा ॥१४॥
कावित्स्वकर्मणा साध्वी पूज्या च स्थिरयौवना। तवैव कर्मयोगं च युवानं पश्य सुन्दरि ॥१५॥
विदग्धाया विदग्धेन संगमो गुणवान्भवेत्। जरातुरोऽहं वृद्धश्च तपस्वी वैष्णवो द्विजः ॥१६॥
अस्वतन्त्रः पराधीनः का रतिः पुंश्चलीषु मे। आजगाम ब्रह्मलोकं पुनरेव निजालयम् ॥१७॥

---

तुम शीघ्र मेरे परात्पर धाम गोलोक को जाओ। वहाँ प्रकृति की अंशरूपा मंगलदायिनी सरस्वती को प्राप्त करोगे ॥५॥ हे भद्र ! सृष्टि की बीजरूपिणी प्रकृति को अपनाओ। अहो ! तुमने एक कल्प पर्यन्त तप किया है ॥६॥ उस वेश्या के अभिशाप से कोई भी तुम्हारे मंत्र को ग्रहण नहीं करेगा, किन्तु अन्य देवों की पूजा के साथ तुम्हारी भी पूजा हो जायगी ॥७॥ क्योंकि तुम जगत् के विधाता, स्वात्मा में रमण करनेवाले, स्त्री के सर्वरूपी और सब ओर से समस्त देहों में पूजास्वरूप हो ॥८॥ तब जगद्गुरु ब्रह्मा मेरी आज्ञावश जाह्नवी-जल में स्नान करके और मुझे प्रणाम करके शीघ्र गोलोक को चले गये ॥९॥ फिर सभी देव एवं मुनिगण भी मेरे निर्मल यश को बार-बार गान करते हुए अपने-अपने घर चले गये ॥१०॥ ब्रह्मा ने गोलोक आकर सती भारती को प्राप्त किया, जो समस्त विषयों की अधिष्ठात्री देवी एवं मेरे मुख-कमल से निकली है ॥११॥ सरस्वती को प्राप्त करके ब्रह्मा बहुत प्रसन्न हुए और स्वयं विभु (ब्रह्मा) ने कामदेव के अस्त्रों को चलाने की अनुमति दे दी ॥१२॥ पश्चात् आकर उन्होंने मुझे नमस्कार किया और उस त्रैलोक्यमोहिनी को अपनाकर अत्यन्त निर्जन स्थान-स्थान में क्रीड़ा की ॥१३॥ अत्यन्त चिरकाल तक रति करने के उपरान्त ब्रह्मा स्वयं विरत हो गये और सरस्वती से यह बोले—"तुम कर्म द्वारा ब्रह्मा हो, कोई स्त्री अपने कर्मवश सती, पूज्या और स्थिर यौवनवाली हो जाती है। हे सुन्दरि ! तुम अपने ही कर्म के लिए किसी योग्य एवं युवा पुरुष को देखो ॥१४-१५॥ क्योंकि समर्थ स्त्री का समर्थ पुरुष के साथ समागम गुणवान् (विशेष आनन्ददायक) होता है। मैं तो वृद्धावस्था के कारण विकल, वृद्ध, तपस्वी, वैष्णव ब्राह्मण, अस्वतन्त्र एवं पराधीन हूँ। पुंश्चलियों में मेरा क्या अनुराग होगा ?

---

१ ख. °वक्त्राब्जविनिर्मिताम्।

ददृशुर्ब्रह्मलोकस्थास्तां देवीं कौतुकान्विताः । अतीव सुन्दरीं रम्यां शुभ्रवर्णां च सस्मिताम् ॥१८॥
शरच्छीतांशुवदनां शरत्पङ्कजलोचनाम् । पक्वबिम्बप्रभामुष्टदीप्तौष्ठाधरपल्लवाम् ॥१९॥
मुक्तापङ्क्तिविनिन्द्यैकदन्तपङ्क्तिमनोहराम् । रत्नकेयूरवलयरत्ननूपुरशोभिताम् ॥२०॥
रत्नकुण्डलयुग्मेन कर्णमूलविराजिताम् । रत्नेन्द्रसारहारेण वक्षःस्थलसमुज्ज्वलाम् ॥२१॥
वह्निशुद्धांशुकं सूक्ष्मं बिभ्रतीं नवयौवनाम् । अतीव कमनीयां च पीनश्रोणिपयोधराम् ॥२२॥
वीणापुस्तकहस्तां च व्याख्यामुद्राकरां वराम् । ते च निर्मञ्छनं कृत्वा चक्रुः परममङ्गलम् ॥२३॥
पुरीं प्रवेशयामासुर्ब्रह्माणं भारतीं मुदा । ब्रह्मा तया सह क्रीडां चकार स दिवानिशम् ॥२४॥
अतीव सुखसंभोगे निमग्नः सततं मुदा । गूढं सर्वपुराणेषु किं पुनः श्रोतुमिच्छसि ॥२५॥

## नारायण उवाच

प्राणेशवचनं श्रुत्वा प्रहस्य परमेश्वरी । भूयोऽपि परिपप्रच्छ कौतुकान्मानसं पुरा ॥२६॥

## राधिकोवाच

ब्रह्मा कथं न जग्राह वेश्यां स्वयमुपस्थिताम् । न कर्मक्षेत्रे रहसि फलदाता च कर्मणाम् ॥२७॥

---

मैं पुनः अपने घर ब्रह्मलोक में आ गया हूँ ॥१६-१७॥ वहाँ ब्रह्मलोक के निवासियों ने बड़े कौतुक से उस देवी को देखा जो अत्यन्त सुन्दरी, रमणीय, शुक्ल तथा मन्द मुस्कान से युक्त थी ॥१८॥ उनका मुख शारदीय चन्द्रमा के समान था, नेत्र शरद् ऋतु के कमल की भाँति थे, दीप्तिमान् ओष्ठ और अधरपल्लव पके बिम्बफल की प्रभा को चुरानेवाले थे, दाँतों की पंक्तियाँ मोतियों की पंक्तियों को विनिन्दित करनेवाली थीं और वे (देवी) रत्नों के केयूर, कंकण और नूपुर से सुशोभित थीं ॥१९-२०॥ उनके कानों के नीचे का भाग रत्नों के युगल कुण्डलों से विभूषित था । रत्नेन्द्र के सारभाग के बने हार से उनका वक्षःस्थल प्रकाशमान था ॥२१॥ वे अग्निविशुद्ध एवं सूक्ष्म वस्त्र धारण करके नवीन यौवन से सम्पन्न एवं अतिकमनीय दृष्टिगोचर होती थीं। उनके नितम्ब और स्तन स्थूल थे ॥२२॥ उनके दोनों हाथों में वीणा और पुस्तक तथा अन्य हाथों में व्याख्या की मुद्रा थी । ब्रह्मलोक-निवासियों ने उन पर प्रिय वस्तुएँ निछावर करके परम मङ्गल उत्सव मनाया और ब्रह्मा तथा भारती को पुरी में प्रविष्ट कराया । ब्रह्मा उनके साथ दिन-रात क्रीड़ा करने में रत हो गये । बड़ी प्रसन्नता से अपने अत्यन्त सुख-सम्भोग में सतत निमग्न रहने लगे । यह समस्त पुराणों में गूढ़ विषय है । पुनः क्या सुनना चाहती हो? ॥२३-२५॥

**नारायण बोले**—प्राणेश्वर की बात सुनकर परमेश्वरी राधा ने कौतुकवश पुनः मन की बात पूछी ॥२६॥

**राधिका बोलीं**—कर्मों के फलदाता ब्रह्मा ने एकान्त में उस वेश्या के स्वयं उपस्थित होने पर उसका

उपस्थितायास्त्यागे च महान्दोषो हि योषितः । ज्ञात्वा[1] देवो विधाता स कथं तत्याज मोहिनीम् ॥२८॥

नारायण उवाच

राधिकावचनं श्रुत्वा प्रहस्य मधुसूदनः : पाद्मकल्पस्य वृत्तान्तमुवाच परमेश्वरीम् ॥२९॥

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु कान्ते प्रवक्ष्यामि पुरावृत्तान्तमीप्सितम् । अकथ्यं गोपनीयं च महतामभिनिन्दितम् ॥३०॥
एकदा च प्रजाः स्रष्टुं विधाता प्रेरितो मया । ससर्ज मनसा पुत्राञ्ज्वलतो ब्रह्मतेजसा ॥३१॥
सनकं च सनन्दं च सनातनमनुत्तमम् । सनत्कुमारं बोढुं च कविं पञ्चशिखं विभुम् ॥३२॥
असितं कपिलं सिद्धं सिद्धान्मम कलोद्भवान् । तान्नग्नान्पञ्चवर्षीयान्पिता स्रष्टुं जगाद ह ॥३३॥
प्रजाः स्रष्टुं प्रेरकं च जनकं तेऽवमन्य च । प्रजग्मुस्तपसे तूर्णं ममार्चनपरायणाः ॥३४॥
तदा रुष्टो जगद्धाता पुनः पुत्रान्विनिर्ममे । रुद्रानेकादश वरान्रुदतो भीमविग्रहान् ॥३५॥
तस्मिन्प्रयुज्य तरसा पुनः पुत्रान्विनिर्ममे । योग योगेन मां ध्यात्वा स्वात्मारामः स्वविग्रहे ॥३६॥

---

ग्रहण क्यों नहीं किया, वह कर्मक्षेत्र (भारत) तो था नहीं। स्वयं उपस्थित स्त्री के त्याग करने में महादोष होता है, यह जानते हुए भी उस विधाता ने मोहिनी का त्याग कैसे कर दिया ? ॥२७-२८॥

**नारायण बोले**—राधिका की बात सुनकर मधुसूदन ने हँसकर परमेश्वरी (राधा) से पाद्मकल्प का वृत्तान्त बताया ॥२९॥

**श्रीकृष्ण बोले**—प्रिये ! सुनो, मैं अकथनीय, गोपनीय, महान् लोगों से अभिनन्दित एवं अभीष्ट प्राचीन वृत्तान्त बताऊँगा ॥३०॥ एक बार प्रजाओं की सृष्टि करने के लिए ब्रह्मा को मैंने प्रेरित किया। उन्होंने ब्रह्मतेज से जाज्वल्यमान पुत्रों की मानसिक सृष्टि की ॥३१॥ वे थे—सनक, सनन्द, परमोत्तम सनातन, सनत्कुमार, वोढु, कवि, पञ्चशिख, असित, कपिल और सिद्ध। मेरी कला से उत्पन्न उन पाँच वर्षवाले नंगे सिद्धों को, पिता ने सृष्टि करने के लिए कहा ॥३२-३३॥ मेरी अर्चना में सदैव तन्मय रहनेवाले उन पुत्रों ने प्रजाओं की सृष्टि के लिए प्रेरक पिता की अवमानना करके शीघ्रता से तप के लिए चले गये ॥३४॥ तब रुष्ट हुए जगत् के विधाता ने पुनः पुत्रों को उत्पन्न किया। वे पुत्र थे—भयंकर शरीरवाले एवं रोते हुए ग्यारह रुद्र ॥३५॥ इन पुत्रों को उस (सृष्टि) कार्य में नियुक्त करके योगी एवं स्वात्माराम ब्रह्मा ने अपने शरीर में योगद्वारा

---

१ क. 'त्वा वेदधि'।

वसिष्ठं पुलहं चैव क्रतुमङ्गिरसं तथा। भृगुमत्रिं पुलस्त्यं च दक्षं कर्दममेव च ॥३७॥
मरीचिं च विनिर्माय प्रजाः स्रष्टुं नियुज्य च। प्रहृष्टमानसः पुत्रं कन्यैकां च ससर्ज ह ॥३८॥
कृष्णस्य कामिनः पुत्रः कामदेवो बभूव ह। कन्या षोडशवर्षीया रत्नभूषणभूषिता ॥३९॥
उवाच पुत्रं स विधिः सुदीप्तं पुरतः स्थितम्। दुर्निवार्यं मत्कलांशं स्वात्मारामं मनोहरम् ॥४०॥

### ब्रह्मोवाच

स्त्रीपुंसोः क्रीडनार्थाय मुदा त्वं च विनिर्मितः। हृदि योगेन सर्वेषामधिष्ठानं करिष्यसि ॥४१॥
संमोहनं समुद्वेगं बीजस्तम्भितकारणम्। उन्मत्तबीजं ज्वलदं शश्वच्चेतनहारकम् ॥४२॥
प्रगृह्यैतान्मया दत्तान्सर्वान्संमोहनं कुरु। दुर्निवार्यो मम वराद्भव वत्स भवेषु च ॥४३॥
बाणान्दत्त्वैवमुक्त्वा च प्रहृष्टश्च जगद्विधिः। दृष्ट्वोवाच दुहितरं वरं दातुं समुद्यतः ॥४४॥
एतस्मिन्नन्तरे कामो मनसाऽऽलोच्य मन्त्रणाम्। कर्तुं शस्त्रपरीक्षां च बाणांश्चिक्षेप ब्रह्मणि ॥४५॥
मन्त्रपूतैश्च बाणैश्च दुर्वार्यैः स्मरणेन च। अतिविद्धो महायोगी मूर्च्छितो हतचेतनः ॥४६॥
क्षणेन चेतनां प्राप्य ददर्शाग्रे च कन्यकाम्। तां संभोक्तुं मनश्चक्रे सा दुद्राव भिया सती ॥४७॥
दृष्ट्वा पश्चाच्च पितरं धावन्तं हतचेतनम्। जगाम शरणं शीघ्रं भ्रातॄणां च तपस्विनाम् ॥४८॥

---

मेरा ध्यान करके वसिष्ठ, पुलह, क्रतु, अङ्गिरा, भृगु, अत्रि, पुलस्त्य, दक्ष, कर्दम और मरीचि को उत्पन्न किया तथा इन्हें प्रजाओं की सृष्टि करने में लगा दिया। तत्पश्चात् प्रसन्नचित्त होकर ब्रह्मा ने एक पुत्र और एक कन्या की सृष्टि की ॥३६-३८॥ कामयुक्त श्रीकृष्ण के पुत्र कामदेव हुए। रत्नों के आभूषणों से भूषित एक षोडशवर्षीया कन्या हुई ॥३९॥ सामने स्थित, सबके लिए दुर्निवार, मेरी कला के अंश, स्वात्माराम और मनोहर उस तेजस्वी पुत्र से ब्रह्मा ने कहा ॥४०॥

**ब्रह्मा बोले**—स्त्री-पुरुषों की क्रीड़ा के निमित्त ही हर्ष से तुम्हारी सृष्टि की गयी। योग के द्वारा तुम सबके हृदय में निवास करो ॥४१॥ सम्मोहन, समुद्वेग, बीजस्तम्भन का कारण, उन्मत्त करने का बीज, जलन उत्पन्न करनेवाला, चेतना का अपहरण करनेवाला मेरे दिये हुए इन (बाणों) को ग्रहण करके तुम सबका सम्मोहन करो। वत्स! मेरे वरदान द्वारा तुम संसार में दुर्निवार होगे (कोई रोक नहीं सकेगा)। ४२-४३॥ जगत् के विधाता बाणों को देकर और इस प्रकार कहकर अत्यन्त हर्षित हुए। फिर पुत्री को देखकर उसे वर देने के लिए उद्यत हुए ॥४४॥ उसी बीच काम ने मन में विचार करके उन शस्त्रों की परीक्षा करने के लिए ब्रह्मा के ऊपर बाणों को चला दिया ॥४५॥ मंत्रपूत उन दुर्निवार बाणों के आघात और स्मरण से आहत होकर महायोगी ब्रह्मा चेतनाहीन होकर मूर्च्छित हो गये ॥४६॥ क्षण में चेतना प्राप्त होने पर उन्होंने अपने सामने उस कन्या को देखा। उसके साथ सम्भोग करना चाहा। वह सती भयभीत होकर वहाँ से भाग चली। नष्ट चेतनावाले पिता को भी पीछे दौड़ते हुए देखकर वह शीघ्रता से अपने तपस्वी भाइयों की शरण में पहुँच गयी ॥४७-४८॥

त तां समीपे संस्थाप्य तमूचे पितरं क्रुधा। हितं तथ्यं च वेदोक्तं नीतिसारं परं वचः ॥४९॥

**ऋषय ऊचुः**

अहो किमेतज्जनक कर्म तेऽतिविगर्हितम्। नीचानां[1] चरितं यत्तत्करोषि त्वं जगद्विधे ॥५०॥
पश्यन्ति सततं सन्तः प्रसूमिव परस्त्रियम्। ये ते सर्वत्र पूज्याश्च परत्रेह जितेन्द्रियाः ॥५१॥
त्वं स्वयं वेदकर्ता च कन्यां संभोक्तुमिच्छसि। कन्या च मातृवर्गेषु प्रविष्टा च श्रुतौ श्रुता ॥५२॥
गुरोः पत्नी राजपत्नी विप्रपत्नी च या सती। पत्नी च भ्रातृसुतयोर्मित्रपत्नी च तत्प्रसूः ॥५३॥
प्रसूः पित्रोस्तथा भ्रातुः पत्नी श्वश्रूः स्वकन्यकाः। जननी तत्सपत्नी च भगिनी सुरभी तथा ॥५४॥
स्वाभीष्टसुरपत्नी च धात्रिकाऽन्नप्रदायिका। गर्भधात्री स्वनाम्ना च भयात्त्रातुश्च कामिनी ॥५५॥
एता वेदप्रणीताश्च सर्वेषां मातरः स्मृताः। एतास्वपि च सर्वासु न्यूनता नास्ति कासु च ॥५६॥
कन्यादाताऽन्नदाता च ज्ञानदाताऽभयप्रदः। जन्मदो मन्त्रदो ज्येष्ठ भ्राता च पितरः स्मृताः ॥५७॥
एता वहन्ति ये मूढा ये एताञ्जनकानपि। पच्यन्ते नरके ते च यावद्वै ब्राह्मणो वयः ॥५८॥
तानन्धकूपे संस्थाप्य दूरतो यमकिंकराः। कुर्वन्ति ताडनं शश्वत्पुरीषं पाययन्ति च ॥५९॥

---

उन लोगों ने उस कन्या को अपने समीप रखकर पिता से क्रोधपूर्वक हितकर, तथ्य, वेदोक्त और नीति के सार-रूप श्रेष्ठ वचन कहा ॥४९॥

**ऋषिगण बोले**—हे पिता ! कष्ट की बात है। क्यों यह अत्यन्त निन्दित कर्म करने पर आप उतारू हो गये हैं ? जगद्विधाता ! नीचों का जो चरित्र है, वह आप कर रहे हैं ॥५०॥ सन्त लोग परस्त्री को निरन्तर माता के समान देखते हैं और जो जितेन्द्रिय होते हैं, वे ही यहाँ-वहाँ सर्वत्र पूज्य होते हैं ॥५१॥ तुम स्वयं वेदों के रचयिता होकर कन्या के साथ सम्भोग करना चाहते हो। कन्या मातृवर्गों में है, ऐसा वेदों में सुना गया है ॥५२॥ गुरुपत्नी, राजा की पत्नी, सती ब्राह्मण-पत्नी, भ्राता और पुत्र की पत्नी, मित्रपत्नी और उनकी माताएँ, माता-पिता की माता, सास, अपनी कन्या, माता, उसकी सौत, भगिनी, गाय, अपने इष्टदेव की पत्नी, धाय, अन्नदात्री, गर्भ-धात्री (गर्भकाल से ही धाय बनी हुई), भय दूर करनेवाले की पत्नी—ये सभी लोगों की माताएँ हैं, ऐसा वेदों में कहा गया है। इन सबों में से किसी में भी न्यूनता नहीं है ॥५३-५६॥ (इसी तरह) कन्यादाता, अन्नदाता, ज्ञान-दाता, अभयदाता, जन्मदाता, मंत्रदाता और ज्येष्ठ भ्राता—ये पिता माने गये हैं ॥५७॥ जो मूढ़ इन माताओं और पिताओं के साथ दुर्व्यवहार करते हैं, वे ब्रह्मा की अवस्था तक नरक में पकाये जाते हैं ॥५८॥ उन्हें यमराज के दूत दूर से ही, अन्धकूप नरक में डालकर सतत मारते-पीटते रहते हैं और मलपान कराते हैं ॥५९॥

---

१ क. नीचैर्नाऽऽच[1]।

त्वमेव विश्वकर्ता च शास्ता वै शमनस्य च । स्वयं विधाता जगतां तेन गृह्णासि कन्यकाम् ॥६०॥
अस्माकं पुरतो दूरं गच्छ कामार्तमानस । न कुर्मो भस्मसात्कर्तुं शक्ताश्च जनकं वयम् ॥६१॥
गुरोर्दोषसहस्राणि क्षन्तुमर्हन्ति पण्डिताः । सर्वघ्नं तं विनिघ्नन्ति नीतिज्ञाः स्वगुरुं विना ॥६२॥
गृह्णन्तं यदि सर्वस्वं शपन्तं निष्ठुरं गुरुम् । साधवस्तं न निन्दन्ति प्रणमन्ति स्वभक्तितः ॥६३॥
ये द्विषन्ति च निन्दन्ति गुरुमिष्टं सुरात्परम् । पच्यन्ते तेऽन्धकूपे च यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥६४॥
पुरीषं भुञ्जते नित्यं क्षुभिता यमताडनैः । [1]सर्पप्रमाणकीटैश्च दंशिताश्च दिवानिशम् ॥६५॥
इत्येवमुक्त्वा मुनयः प्रणेमुस्तत्पदाम्बुजम् । सर्वं भवति दैवेन प्रशान्तमनसा ध्रुवम् ॥६६॥
उन्मुखा मुनयः सर्वे बभूवुश्च स्वकर्मणि । ब्रह्मा शरीरं संत्यक्तुं व्रीडया च समुद्यतः ॥६७॥
योगेन भित्त्वा षट्चक्रं सर्वान्प्राणान्निरुध्य च । ब्रह्मरन्ध्रं समानीय तत्याज स्वेन वर्त्मना ॥६८॥
मनसा श्रीहरिं स्मृत्वा नमस्कारं चकार ह । न मे मनः परद्रव्ये भविता [2]लोलमीश्वर ॥६९॥
प्राणत्यागात्परं दुःखमयशश्च यशस्विनाम् । बभूव हृदि कृत्वैकं ब्रह्मा लीनश्च ब्रह्मणि ॥७०॥
कन्या तातं मृतं दृष्ट्वा विलप्य च भृशं मुहुः । योगेन देहं तत्याज सा प्रलीना च ब्रह्मणि ॥७१॥

---

तुम्हीं विश्व के रचयिता, यमराज के भी शासक और स्वयं तीनों लोकों के विधाता हो । क्या इसी से कन्या को पकड़ रहे हो ? ॥६०॥ हे कामपीड़ित चित्तवाले ! तुम हम लोगों के सामने से दूर हट जाओ, हम तुम्हें भस्म करने के लिए समर्थ होते हुए भी, पिता मानकर भस्म नहीं करना चाहते ॥६१॥ क्योंकि पण्डित लोग गुरु के सहस्र दोषों को क्षमा कर देते हैं । नीति के ज्ञाता लोग सबके हन्ता को मार डालते हैं, अपने गुरु को छोड़कर ॥६२॥ गुरु यदि सर्वस्व का अपहरण और शाप प्रदान करता है, तो ऐसे निष्ठुर गुरु की भी साधु लोग निन्दा नहीं करते, अपितु अपनी भक्ति से उनको प्रणाम करते हैं ॥६३॥ देवता से भी श्रेष्ठ अभीष्ट गुरु से जो द्वेष रखते हैं और उसकी निन्दा करते हैं, वे चन्द्रमा-सूर्य के समय तक अन्धकूप नामक नरक में पचते रहते हैं ॥६४॥ यमराज के दूतों द्वारा ताड़ित होकर नित्य विष्ठा (मल) खाते हैं और साँप सरीखे कीड़े उन्हें दिन-रात काटते रहते हैं ॥६५॥ इतना कहकर उन मुनियों ने उन (ब्रह्मा) के चरण-कमल को प्रणाम किया । अत्यन्त शान्त मनवाले दैव के कारण निश्चित ही सब संभव है ॥६६॥ मुनिवृन्द ऊपर मुख करके अपने-अपने कार्य में लग गये और ब्रह्मा लज्जावश अपना शरीर छोड़ने को उद्यत हो गये ॥६७॥ समस्त प्राणवायु को रोककर योग द्वारा षट्चक्र का भेदन करके ब्रह्मरन्ध्र में लाकर अपने मार्ग का परित्याग कर दिया ॥६८॥ उस समय उन्होंने मन से श्रीहरि का स्मरण करके नमस्कार किया और कहा—हे ईश्वर ! मेरा मन परधन की ओर रंचमात्र भी न झुके । यशस्वी लोगों के लिए अपयश प्राणत्याग से भी बढ़कर दुःखदायी है । ब्रह्मा हृदय में एकतान करके ब्रह्म में लीन हो गये ॥६९-७०॥ अपने पिता को मृतक देखकर उस कन्या ने भी अत्यन्त विलाप किया और योग द्वारा देह का परित्याग करके वह ब्रह्म में विलीन हो गयी ॥७१॥ मुनिश्रेष्ठ ने भी अपने पिता और भगिनी को

---

१ क. सालप्र° । २ ख. स्तोकमी° ।

मृतं तातं च भगिनीं दृष्ट्वा च मुनिपुंगवाः । सस्मरुः श्रीहरिं कोपात्स्वात्मारामं विलप्य च ॥७२॥
नारायणो मदंशश्च कृपयाऽऽगत्य सत्वरम् । ब्रह्माणं जीवयामास ब्रह्मज्ञानात्सुतां च ताम् ॥७३॥
ब्रह्मा पुरो हरिं दृष्ट्वा वरं वव्रे स्म वाञ्छितम् । भक्तिं त्वच्चरणे शश्वन्निश्चलामनपायिनीम् ॥७४॥
ब्रह्माणं विरसं दृष्ट्वा तमुवाच कृपानिधिः । प्रबोधवचनं सत्यं नीतिसारं मनोहरम् ॥७५॥

## नारायण उवाच

शृणु ब्रह्मन्प्रवक्ष्येऽहं मुखमुत्तोल्य सांप्रतम् । त्यज लज्जां जगन्नाथ हृदयज्वररूपिणीम् ॥७६॥
सत्कीर्तिरपकीर्तिर्वा सुप्रतिष्ठाऽप्युपद्रवः । क्षुद्राणां चैव महतां भवत्येव स्वकर्मणा ॥७७॥
सर्वेषामपि सर्वेभ्यः स्वकर्म बलवत्तरम् । तस्मात्सन्तः प्रकुर्वन्ति नित्यं सत्कर्म संततम् ॥७८॥
केचित्कुर्वन्ति निर्मूलं सर्वेषामपि कर्मणाम् । कृतं कर्म परं भुक्त्वा हरिपादाब्जचेतसः ॥७९॥
कुकर्मणश्चापकीर्तिस्ततो लज्जा भवेद्ध्रुवम् । सुकर्मणः सुप्रतिष्ठा सर्वत्र निर्मलं यशः ॥८०॥
कालेन जरसा देहो बलं रूपं शुभाशुभम् । कीर्तिर्या त्रिगुणा चैव मोहश्चापयशो विधे ॥८१॥
ऋणव्रणापवादाश्च जन्तूनां यान्ति कालतः । महतां तौ च पूर्वोक्तौ नेतरश्च कदाचन ॥८२॥
सदाऽपकीर्तिर्वसति परस्त्रीषु च वस्तुषु । तस्मात्ते नैव गृह्णन्ति सन्तः स्वक्लेशकारणे ॥८३॥

---

मृतक देखकर क्रोध से विलाप करके आत्माराम श्रीहरि का स्मरण किया ॥७२॥ तब मेरे अंशभूत नारायण ने कृपया शीघ्र आकर ब्रह्मज्ञान द्वारा ब्रह्मा और उस कन्या को जीवित कर दिया ॥७३॥ ब्रह्मा ने सामने हरि को देखकर उनसे अभीष्ट वर की याचना की कि 'तुम्हारे चरणों में मेरी निश्चल और अविनश्वर भक्ति निरन्तर बनी रहे' ॥७४॥ ब्रह्मा को विरस देखकर कृपानिधान भगवान् ने उन्हें उद्बोधन दिया, जो सत्य-स्वरूप, नीतियुक्त एवं मनोहर था ॥७५॥

**नारायण बोले**—ब्रह्मन् ! जगन्नाथ ! अब हृदय-ज्वर-रूप लज्जा को छोड़ दो और मुंह उठाकर सुनो, मैं बता रहा हूँ ॥७६॥ सुयश या अपयश और उत्तम प्रतिष्ठा या उपद्रव छोटे-बड़े सभी को कर्मानुसार प्राप्त होते हैं ॥७७॥ सभी लोगों का अपना कर्म सबसे बलवान् होता है, इसलिए सन्त लोग नित्य निरन्तर सत्कर्म ही करते हैं ॥७८॥ कोई तो भगवान् के चरण-कमल में मन लगाकर किये हुए कर्म का भोग करके समस्त कर्मों का निर्मूलन कर डालते हैं ॥७९॥ कुकर्म से अपयश मिलता है और उससे निश्चित ही लज्जा होती है । सुकर्म से प्रतिष्ठा और निर्मल यश की प्राप्ति होती है ॥८०॥ ब्रह्मन् ! कालवश वृद्धावस्था से युक्त देह, बल, रूप, शुभ, अशुभ तथा त्रिगुणात्मिका कीर्ति, मोह, अयश, ऋण, व्रण (घाव) और कलंक जन्तुओं को मिलते हैं । किन्तु महात्माओं को पूर्वोक्त वे दोनों तथा अन्य भी नहीं होते हैं ॥८१-८२॥ परायी वस्तुओं और परस्त्रियों में सदा अपकीर्ति निवास करती है, इसलिए अपने लिए क्लेशकारक उन दोनों को सन्त लोग ग्रहण नहीं करते हैं ॥८३॥ अतः

स्मर मामन्तरे ब्राह्मे मदीयं विषयं कुरु। अतस्ते न मनो लोलं भविता परवस्तुषु ॥८४॥
योषिद्रूपा च मे माया सर्वेषां मोहकारिणी। लीलया कुरुते मोहं स्वात्मारामस्य संततम् ॥८५॥
ननामुद्राश्रये देशे रागिणां संततं रतिः। स्तनाभिधे मांसपिण्डेऽधरे लालालयेऽशुचौ ॥८६॥
श्रोणिवक्त्रस्तनं तासां कामदेवालयं सदा। तस्मात्ते[1] न हि पश्यन्ति सन्तो हि धर्मभीरवः ॥८७॥
को धर्मः किं यशस्तेषां का प्रतिष्ठा च किं तपः। किं बुद्धिर्विद्या दानं च परस्त्रीषु च यन्मनः ॥८८॥
इहाप्ययशो दुःखं नरकेषु परत्र च। वासः प्रहारस्तेषां च ताडनैः कृमिभक्षणैः ॥८९॥
दुःखबीजं सुखं मत्वा मूढाश्च दैवदोषतः। परस्त्रीसेवनं प्रीत्या कुर्वन्ति संततं मुदा ॥९०॥
उत्तमा मत्पदाम्भोजं सत्कर्म मध्यमा सदा। स्मरन्ति शश्वदधमाः परस्त्रीसेवनं मुदा ॥९१॥
विपत्तिः संततं तस्य परवस्तुषु यन्मनः। विशेषतः परस्त्रीषु सुवर्णेषु च भूमिषु ॥९२॥
दैवात्परस्त्रियं दृष्ट्वा विरमेद्यो हरिं स्मरन्। दृष्ट्वा परसुवर्णं च हस्तप्रक्षालनाच्छुचिः ॥९३॥
सततं नैव संसक्ताः सन्तः स्वस्त्रीषु कामतः। यक्ष्मव्याधिज्ञानहानिलोकनिन्दाभयेन च ॥९४॥
तपस्विनस्तपस्यायां शास्त्रचिन्तासु पण्डिताः। योगिनो योगचिन्तासु वेदार्थेषु च वैदिकाः ॥९५॥

---

अन्तःकरण में मेरा स्मरण करो और मुझे ही ध्यान का लक्ष्य बनाओ। इससे तुम्हारा मन दूसरे की वस्तुओं के प्रति चंचल नहीं होगा ॥८४॥ स्त्रीरूपिणी मेरी माया सभी को मोहित करनेवाली है। वह स्वात्माराम (व्यक्ति) को भी निरन्तर लीलापूर्वक मोहित करती रहती है ॥८५॥ उसके अनेक प्रकार की मुद्राओं के आश्रय-भूत अंगों में रागी जनों की सतत रति बनी रहती है। जैसे—उसके स्तन नामक मांस-पिण्ड और अपवित्र एवं लार के घर अधर में रति बनी रहती है। इसलिए धर्मभीरु सन्त लोग स्त्रियों के नितम्ब, मुख, स्तन एवं काम-निवास (भग) को नहीं देखते हैं ॥८६-८७॥ जिसका मन स्त्रियों में लग जाता है, उसका धर्म, यश, प्रतिष्ठा, तप, बुद्धि, विद्या और दान निरर्थक हो जाता है ॥८८॥ इस लोक में भी अयश और दुःख भोगना पड़ता है तथा परलोक में नरकवास करना पड़ता है, जहाँ यमदूत प्रहार करते हैं और कीटभक्षण कराते हैं ॥८९॥ मूर्ख लोग दैववश दुःख के बीज को सुख मानकर प्रसन्नता से पर-स्त्री-सहवास नित्य करते हैं ॥९०॥ उत्तम पुरुष एकमात्र मेरे चरण-कमल का, मध्यम पुरुष सत्कर्म (यागादि पुण्य कर्म) का और अधम पुरुष निरन्तर हर्ष से पर-स्त्री-सेवन का स्मरण करते रहते हैं ॥९१॥ परायी वस्तुओं में—विशेषतया परस्त्रियों, दूसरे के सुवर्णों और भूमियों में—जिसका मन लग जाता है, उसे निरन्तर विपत्ति बनी रहती है ॥९२॥ दैववश परस्त्री को देखकर जो हरि का स्मरण करते हुए रुक जाता है और पराया धन देखकर हाथ प्रक्षालन कर (धो) लेता है, वह पवित्र हो जाता है ॥९३॥ यक्ष्मा-व्याधि, ज्ञानहानि, लोकनिन्दा के भय से सन्त लोग कामवश अपनी स्त्री में भी निरन्तर आसक्त नहीं होते हैं ॥९४॥ तपस्वीगण तपस्या में, पण्डित लोग शास्त्रों के चिन्तन में, योगी लोग योगसाधन में, वैदिकगण वेदार्थों के चिन्तन में, पतिव्रताएँ पतिसेवा में, गृहकार्य में, विषयी लोग

---

१ क. °स्मात्ता न।

साध्व्यश्च पतिसेवासु गृहस्था गृहकर्मसु। विषयेषु विषयिणो मद्भक्ता मम सेवने ॥९६॥
एते नियुक्ता एतेषु सभासु च प्रशंसिताः। वेदोक्ताचरणेनैव तद्विरुद्धेन निन्दिताः ॥९७॥
सर्वे नित्यं प्रशंसन्ति शश्वत्सन्मार्गगामिनम्। हालिका अपि निन्दन्ति कुवर्त्मगामिनं विधे ॥९८॥
भविता न परस्त्रीषु परवस्तुषु ते मनः। अद्यप्रभृति जीवान्तं निविष्टं मद्वरेण च ॥९९॥
मदीयविषये बाह्ये मया दत्तं कुरु प्रियम्। अन्तरा मत्पदाम्भोजचिन्तां विघ्नविनाशिनीम् ॥१००॥
कन्या भवतु ते[1] ब्रह्मन्कामदेवस्य कामिनी। रतिर्नाम परित्याज्या रत्यधिष्ठातृदेवता ॥१०१॥
इत्येवमुक्त्वा ब्रह्माणमाश्वास्य कमलापतिः। जगाम नित्यं वैकुण्ठं वृन्दावनविनोदनः ॥१०२॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० राधाकृष्णसं०
ब्रह्मणः प्रसंगो नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥३५॥

---

विषयों में और मेरे भक्त मेरी सेवा में निरन्तर लगे रहते हैं ॥९५-९६॥ इन कार्यों में नियुक्त ये लोग वेदोक्त आचरण करने से ही सभाओं में प्रशंसित होते हैं और वेद-विरुद्ध आचरण करने से निन्दित होते हैं ॥९७॥ ब्रह्मन्! उत्तम मार्ग पर चलनेवाले की सभी लोग नित्य प्रशंसा करते हैं और कुमार्गगामी की हलवाहे भी निन्दा करते हैं ॥९८॥ मेरे वरदान द्वारा आज से जीवनपर्यन्त तुम्हारा मन पर-स्त्रियों और परायी वस्तुओं में नहीं लगेगा ॥९९॥ बाहर अपने संबंध में मेरे दिये हुए उपदेश को करो और भीतर विघ्नविनाशी मेरे चरण-कमल का चिन्तन करो ॥१००॥ ब्रह्मन्! तुम्हारी कन्या कामदेव की पत्नी बने। इसका नाम 'रति' होगा। यह रति की अधिष्ठात्री देवी होगी, तुम इसका त्याग कर दो ॥१०१॥ इस प्रकार कहकर और ब्रह्मा को आश्वस्त करके वृन्दावनविनोदी एवं कमला-पति भगवान् नित्य वैकुण्ठधाम को चले गये ॥१०२॥

श्रीब्रह्मवैवर्तपुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारायण-नारद-संवाद में राधाकृष्ण-संवाद के क्रम में ब्रह्मा का प्रसंग नामक पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३५॥

---

१ ख. मे।

# अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः

## राधिकोवाच

एतेन नियमेनैव ब्रह्मा तत्याज मोहिनीम्। कथं स कुलटाशापादपूज्यः संबभूव ह ॥१॥
कथं तस्य दर्पभङ्गं चकार कमलापतिः। कथयस्व सर्वबीजं सर्वेषामीश्वरः स्वयम् ॥२॥

## नारायण उवाच

रासेश्वरीवचः श्रुत्वा प्रहस्य रसिकेश्वरः। निगूढमितिहासं च तां वक्तुमुपचक्रमे ॥३॥

## श्रीकृष्ण उवाच

ब्रह्मा चिरं तपस्तप्त्वा मत्तो लब्ध्वा वरं वरम्। सृष्टिं नानाविधां कृत्वा विधाता स बभूव ह ॥४॥
तपसां फलदाता च सर्वेषां शास्तिकृत्प्रभुः। आत्मानमीश्वरं ज्ञात्वा महागर्वो बभूव ह ॥५॥
ब्रह्माण्डेषु च सर्वेषु गर्वपर्यन्तमुन्नतिः। इति मत्वा ब्रह्मणश्च दर्पभङ्गः कृतो मया ॥६॥
येषां येषां भवेद्दर्पो ब्रह्माण्डेषु परात्परः। विज्ञाय सर्वं सर्वात्मा तेषां शास्ताऽहमेव च ॥७॥
प्रथमे ब्रह्मणो गर्वो मया चूर्णीकृतः श्रुतः। शंकरस्य च पार्वत्याश्चन्द्रस्य च रवेस्तथा ॥८॥

---

# अध्याय ३६

## श्रीकृष्ण द्वारा शंकर की प्रशंसा

**राधिका बोलीं**—इसी नियम से ब्रह्मा ने मोहिनी का त्याग कर दिया (यह ठीक है, किन्तु) उस कुलटा के शाप से वे अपूज्य कैसे हो गये ? ॥१॥ सबके कारण और सबके स्वयं ईश्वर कमलापति विष्णु ने उनके दर्प का भंग कैसे किया, यह बताइये ॥२॥

**नारायण बोले**-—रासेश्वरी (राधिका) की बात सुनकर रसिकेश्वर (श्रीकृष्ण ने) हँसकर वह निगूढ़ इतिहास उन्हें बताना आरम्भ किया ॥३॥

**श्रीकृष्ण बोले**—ब्रह्मा ने चिरकाल तक तप करने के उपरान्त मुझसे उत्तम वरदान प्राप्त करके अनेक प्रकार की सृष्टि की और वे विधाता हुए ॥४॥ सभी की तपस्याओं के फलदाता और शासनकर्ता प्रभु (ब्रह्मा) अपने को ईश्वर मानकर महान् गर्वी हो गये ॥५॥ सभी ब्रह्माण्डों में गर्व पर्यन्त ही उन्नति होती है, यह मानकर मैंने ब्रह्मा का अभिमान चूर्ण कर दिया ॥६॥ ब्रह्माण्डों में जिन-जिन लोगों को अधिकाधिक अभिमान हो जाता है, उनका सब (भाव) जानकर मैं सर्वात्मा ही उनको शासित करता हूँ ॥७॥ प्रिये ! सर्वप्रथम मैंने ब्रह्मा का अभिमान चूर्ण किया है, यह तो तुमने सुन ही लिया है। अब शङ्कर, पार्वती, चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, दुर्वासा,

वह्नेर्दुर्वाससश्चैव तथा धन्वन्तरेः प्रिये। क्रमेण दर्पभङ्गं च कथयामि निशामय
क्षुद्राणां महतां चैव येषां गर्वो भवेत्प्रिये। एवंविधमहं तेषां चूर्णीभूतं करोमि च॥

### नारायण उवाच

श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा शुष्ककण्ठोष्ठतालुका। प्रपच्छ राधा यत्नेन संत्रस्ता भयविह्वला॥११॥

### राधिकोवाच

कस्य केन प्रभावेण महादर्पो बभूव ह। त्वया केन प्रभावेण तस्य भङ्गः कृतः पुरा॥१२॥
कथयस्व प्राणनाथ सर्वेषां दर्पभञ्जन। दर्पदाभयद प्राणदानैककारणेश्वर॥१३॥

### श्रीकृष्ण उवाच

येन भूतं गर्वचूर्णं श्रुतं त्रिजगतां विधेः। अन्येषां श्रूयतां राधे व्यासेन कथयामि ते॥१४॥
स्वयं शिवो मदंशश्च संहर्ता जगतां च यः। तेजसा मत्समः पूर्णो ज्ञानेन च गुणेन च॥१५॥
ध्यायन्ति योगिनो यं स योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः। ज्ञानानन्दस्वरूपोऽयं तस्याख्यानं शृणु प्रिये॥१६॥
युगषष्टिसहस्राणि तपस्तप्त्वा दिवानिशम्। भूत्वा च मत्कलापूर्णो बभूव मत्समो विभुः॥१७॥
तपसा तेजसा शश्वत्तेजोराशिर्बभूव ह। सूर्यकोटिप्रभावश्च भक्तानां कल्पपादपः॥१८॥

---

और धन्वन्तरि का अभिमान चूर्ण होना क्रमशः कह रहा हूँ॥८-९॥ प्रिये! छोटे-बड़े जिन लोगों को गर्व हो जाता है, मैं इसी भाँति उनके गर्व को चूर्ण कर देता हूँ॥१०॥

**नारायण बोले**—श्रीकृष्ण की बात सुनकर राधिका के ओंठ, कण्ठ और तालु सूख गये। भय से व्याकुल एवं सन्त्रस्त होकर उन्होंने पूछा॥११॥

**राधिका बोलीं**—किसको, किसके प्रभाव से महान् दर्प हुआ? तुमने किस प्रभाव से उसका भंग किया॥१२॥ हे प्राणनाथ! सबके दर्प को चूर्ण करनेवाले! दर्प देनेवाले! अभय देनेवाले! प्राणदान के एकमात्र कारण! ईश्वर! बताओ॥१३॥

**श्रीकृष्ण बोले**— राधे! जिस कारण तीनों लोक के विधाता (ब्रह्मा) का अभिमान चूर्ण हुआ, वह तुम सुन चुकी हो, अब अन्य लोगों का दर्प-भङ्ग संक्षेप में बता रहा हूँ, सुनो॥१४॥ स्वयं शिव मेरे अंशभूत हैं। तीनों लोकों का संहार करनेवाले, तेज में मेरे समान और ज्ञान एवं गुण से परिपूर्ण हैं। योगी लोग उनका ध्यान करते हैं। वे योगीन्द्रों के गुरु के गुरु तथा ज्ञानानन्द स्वरूप हैं। प्रिये! उनका आख्यान सुनो॥१५-१६॥ साठ हजार युगों तक रात-दिन तप करके वे मेरी कलाओं से पूर्ण होकर मेरे समान व्यापक हो गये॥१७॥ निरन्तर तप और तेज के कारण वे तेज की राशि हो गये। करोड़ों सूर्य के समान उनका प्रभाव है। भक्तों के

ध्यायं ध्यायं च योगीन्द्रास्तत्तेजो बहुकालतः । तदन्तरे च पश्यन्ति स्वरूपमतिसुन्दरम् ॥१९॥
शुद्धस्फटिकसंकाशं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम् । त्रिशूलपट्टिशकरं व्याघ्रचर्माम्बरं वरम् ॥२०॥
जपन्तं स्वात्मनाऽऽत्मानं श्वेताब्जबीजमालया । ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं चन्द्रचूडं परात्परम् ॥२१॥
स्वर्णाकारं जटाभारं दधतं शिरसा मुदा । शान्तं कान्तं त्रिजगतां भक्तानुग्रहकारकम् ॥२२॥
अथ स्वमीश्वरं मत्वा प्रदाता सर्वसंपदाम् । ददाति सर्वं सर्वेभ्यो वाञ्छितं कल्पपादपः ॥२३॥
यो यं वाञ्छति तं तस्मै वरं दत्त्वा वरेश्वरः । बभूव गर्वसंयुक्तः स्वात्मारामः स्वलीलया ॥२४॥
एकदा च वृको दैत्यस्तपस्तेपे शिवस्य च । केदारे च कठोरेण वर्षमेकं दिवानिशम् ॥२५॥
नित्यं याति तत्समीपं कृपया च कृपानिधिः । वरं दातुं यथाभीष्टं न जग्राहासुरो वरम् ॥२६॥
वर्षान्ते शंकरः शश्वत्तस्थौ तत्पुरतः स्वयम् । वरदो भक्तिपाशेन क्षणं गन्तुं न स क्षमः ॥२७॥
सर्वैश्वर्यं सर्वसिद्धिं भुक्तिं मुक्तिं हरेः पदम् । दैत्यः किंचिन्न गृह्णाति प्रेरितः शूलपाणिना ॥२८॥
ध्यायमानं तत्पदाब्जं दृष्ट्वा त्रस्तो महेश्वरः । अयाचितारं निश्चेष्टं रुरोद प्रेमविह्वलः ॥२९॥
अतीव रोदनात्तस्य ध्यानभङ्गो बभूव ह । ददर्श पुरतः साक्षाद्दातारं सर्वसंपदाम् ॥३०॥

---

लिए वे कल्पवृक्ष हैं ॥१८॥ योगीन्द्रगण बहुत काल तक उनके तेज का बार-बार ध्यान करके उसके भीतर अति सुन्दर स्वरूप का दर्शन करते हैं ॥१९॥ शुद्ध स्फटिक के समान उनका वर्ण है, पाँच मुख हैं, तीन नेत्र हैं। उनके हाथों में त्रिशूल एवं पट्टिश अस्त्र हैं । वे बाघम्बर धारण किये हुए हैं और श्वेत कमल के बीज की माला से स्वयं ही अपने आपका—अपने मन्त्रों का जप करते हैं । उनके प्रसन्नमुख पर मन्द हास्य की छटा छायी रहती है। वे परात्पर शिव मस्तक पर अर्धचन्द्र का मुकुट तथा सुनहरे रंग की जटाओं का भार धारण करते हैं । उनका स्वरूप शान्त है। वे तीनों लोकों के स्वामी और भक्तों पर अनुग्रह करनेवाले हैं ॥२०-२२॥ फिर वे अपने आपको परमेश्वर मानकर समस्त सम्पदाओं के दाता होकर कल्पवृक्ष के समान सबको सारी मनोवांछित वस्तुएँ देते हैं ॥२३॥ जो जिस वस्तु की इच्छा करता है, उसे वही वर देकर वे वरों के ईश्वर हो गये हैं । इस प्रकार अपने आत्मा में रमण करनेवाले शिव अपनी लीला से गर्वयुक्त हो गये ॥२४॥ एक बार वृक नामक दैत्य ने शिव के केदार क्षेत्र में एक वर्ष तक दिन-रात कठोर तप किया ॥२५॥ कृपानिधि शिव कृपया उसे यथेच्छ वर प्रदान करने के लिए उसके समीप नित्य जाया करते थे, किन्तु उस असुर ने किसी वरदान को ग्रहण नहीं किया ॥२६॥ वर्ष के अन्त में शिव उसके सामने निरन्तर उपस्थित रहने लगे। वरदायक शिव भक्तिरूपी पाश से बँधकर क्षण भर के लिए भी वहाँ से जाने में समर्थ न हो सके ॥२७॥ शिव उसे ऐश्वर्य, सब प्रकार की सिद्धियाँ, भक्ति, मुक्ति, भगवान् का पद—यह सब कुछ देना चाहते थे; किन्तु उसने कुछ भी ग्रहण नहीं किया ॥२८॥ वह केवल उनके चरण-कमलों का ध्यान ही करता रहा। उस अयाचक एवं निश्चेष्ट असुर को देखकर शिव भयभीत एवं प्रेम-विह्वल होकर रोने लगे ॥२९॥ उनके बहुत रोने से असुर का ध्यान भंग हो गया । उसने अपने सामने समस्त सम्पत्ति के प्रदाता शिव को साक्षात् उपस्थित देखा ॥३०॥ उनकी माया से दैत्येन्द्र ने भक्तिपूर्वक वरदान की याचना की कि—

यन्मायया वरं वव्रे दैत्येन्द्रो भक्तिपूर्वकम् । हस्तं दधे च यन्मूर्ध्नि स भस्म भवितेति च ।।३१।।
ओमित्युक्त्वा प्रयान्तं तं दुद्राव दैत्यपुंगवः । मृत्युंजयो मृत्युभयाद्दुद्राव त्रासविह्वलः ।।३२।।
पपात डमरुस्तस्य व्याघ्रचर्म मनोहरम् । दिगम्बरो दश दिशो भेजे दानवभीतये ।।३३।।
न हन्ति तं च कृपया भक्तं च भक्तवत्सलः । दुष्टानुसारं साधुश्च न करोति कदाचन ।।३४।।
साधवो घ्नन्ति घ्नन्तं च भृत्यं पुत्रं प्रियां विना । प्रबोधितुं न शक्तश्च स्वात्मानं कृपया समम् ।।३५।।
शिवः स्वमृत्युं मत्वा च भीतश्च निरहंकृतः । स्मारं स्मारं च मां भद्रे मामेव शरणं ययौ ।।३६।।
दृष्ट्वा स्वाश्रममायान्तं शुष्ककण्ठोष्ठतालुकम् । हे हरे रक्ष रक्षेति जपन्तं भयविह्वलम् ।।३७।।
संस्थाप्य तत्समीपे च स दैत्यो बोधितो मया । पृष्टश्च सर्ववृत्तान्तमुवाच मां क्रमेण च ।।३८।।
तदा ममाऽऽज्ञया तूर्णं वञ्चितो माययाऽसुरः । दत्त्वा स्वमूर्ध्नि हस्तं च सद्यो भस्म बभूव ह ।।३९।।
तदा सिद्धाः सुरेन्द्राश्च मुनीन्द्रा मनवो मुदा । तुष्टुवुर्मां सुभक्त्या च लज्जया लज्जितः शिवः ।।४०।।
बभूव चूर्णस्तद्गर्वो जगाम बोधितो मया । वरं ददाति वरदस्ततो बोध्यो[1] ह्यहं शिव ।।४१।।
अथ गर्वान्वितो रुद्रो हन्तुं त्रिपुरमुल्बणम् । मत्वा मनसि संहर्ता सर्वेषां जगतामिति ।।४२।।

---

मैं जिसके सिर पर हाथ रख दूं वह भस्म हो जाये ।।३१।। वरदान देकर जाते समय दैत्यराज ने शंकर का पीछा कर लिया और मृत्युञ्जय शिव मृत्युभय के त्रास से दुःखी होकर भागने लगे ।।३२।। उनके डमरू और मनोहर बाघम्बर गिर पड़े । वे दिगम्बर (नग्न) होकर दानव के डर से दशों दिशाओं में भागने लगे ।।३३।। इतने पर भी भक्तवत्सल शिव कृपावश उसे मारना नहीं चाहते थे, क्योंकि साधु व्यक्ति दुष्ट के अनुसार व्यवहार कभी भी नहीं करता है ।।३४।। यद्यपि साधु लोग मारनेवाले को मारते हैं, किन्तु सेवक, पुत्र और प्रिया को नहीं (मारते) । शंकर उस (दैत्य) को समझा भी न सके, क्योंकि वे उसे कृपया अपना स्वरूप समझते थे ।।३५।। शिव अपनी मृत्यु को मानकर भयभीत तथा अभिमानशून्य हो गये । प्रिये ! वे बार-बार मेरा स्मरण करके मेरी ही शरण में गये ।।३६।। मैंने अपने आश्रम में आते हुए उन्हें देखा । उनके कण्ठ, ओंठ और तालू सूख गये थे । वे 'हे हरे ! बचाइये, बचाइये' इस प्रकार जप करते हुए भयाकुल हो रहे थे ।।३७।। मैंने उन्हीं के समीप उस दैत्य को स्थापित करके उसे प्रबोधित किया और पूछने पर उसने मुझे समस्त वृत्तान्त क्रमशः बता दिया ।।३८।। तब मेरी आज्ञा से माया ने उस असुर को शीघ्र वंचित कर दिया और वह असुर अपने मस्तक पर हाथ रखकर सद्यः भस्म हो गया ।।३९।। उस समय सिद्ध, सुरेन्द्र, मुनीन्द्र, मनुगण एवं लज्जित होकर शिव भी अति भक्ति से मेरी स्तुति करने लगे ।।४०।। जब उनका अभिमान चूर्ण हो गया, तब मैंने उन्हें प्रबोधित किया और वे चले गये । हे शिव ! वर देनेवाला वर देता है, उसके पश्चात् मुझे जानना चाहिए (अर्थात् वरदान को मैं ही पूर्ण करता हूँ) ।।४१।। इसी भाँति गर्वान्वित होकर शंकर भयंकर त्रिपुरासुर को मारने के लिए गये । वे मन में यह

---

१ क. वध्यो ह्य० ।

कोऽयं पतङ्गवद्दैत्य इति मत्वा ययौ रणम् । विहाय शूलं मद्दत्तं मदीयकवचं परम् ॥४३॥
चिरं बभूव समरं वर्षमेकं दिवानिशम् । न कोऽपि जेतुं कं शक्तो द्वौ समौ समरे तदा ॥४४॥
पृथिव्यां च रणं कृत्वा दैत्येन्द्रो मायया प्रिये । अत्यूर्ध्वं च समुत्तस्थौ पञ्चाशत्कोटियोजनम् ॥४५॥
उत्तस्थौ शंकरस्तूर्णं हन्तुं दैत्यं जगत्प्रभुः । बभूव तत्र युद्धं च मासमेकं निराश्रये ॥४६॥
अस्त्राणि चापं चिच्छेद शंकरस्यासुरो बली । रथं बभञ्ज दैत्येन्द्रश्चापमस्त्राणि शंकरात् ॥४७॥
जघान मुष्टिना रुद्रो दानवेन्द्रं प्रकोपतः । वज्रमुष्टिप्रहारेण सद्यो मूर्च्छामवाप सः ॥४८॥
क्षणेन चेतनां प्राप्य कोपाद्दानवपुंगवः । शिवं शयानमुत्तोल्य पातयामास भूतले ॥४९॥
सरथे पातिते रुद्रे देवा देवर्षयो भिया । तुष्टुवुर्मां परित्राहि कृष्णेत्युक्त्वा पुनः पुनः ॥५०॥
हरः सस्मार मामेव निर्भयो भयकारणम् । तुष्टाव भक्त्या स्तोत्रेण मया दत्तेन संकटे ॥५१॥
तदाऽहं कलया शीघ्रं वृषरूपं विधाय च । शयानं शंकरं धृत्वा विषाणाभ्यामुरुक्रमम् ॥५२॥
ददौ तस्मै स्वकवचं स्वशूलमरिमर्दनम् । प्राप्य तद्दानवस्थानमत्यूर्ध्वं च निराश्रयम् ॥५३॥
मया दत्तेन शूलेन जघान त्रिपुरं हरः । मामेव दर्पहन्तारं तुष्टाव व्रीडितः पुनः ॥५४॥
सद्यः पपात दैत्येन्द्रश्चूर्णीभूतश्च भूतले । देवता मुनयः सर्वे तुष्टुवुः शंकरं मुदा ॥५५॥

---

समझकर कि 'मैं तीनों लोकों का संहार करनेवाला हूँ, फिर मेरे सामने इस पतिंगे के समान दैत्य की क्या बिसात है ?' युद्धक्षेत्र में गये। उस समय वे मेरे दिये हुए त्रिशूल और श्रेष्ठ कवच को छोड़कर युद्ध में गये थे ॥४२-४३॥ उनका त्रिपुर के साथ एक वर्ष तक दिन-रात युद्ध होता रहा; किन्तु कोई भी किसी पर, विजय नहीं पा सका। समरांगण में दोनों समान सिद्ध हुए ॥४४॥ वह दैत्य पृथिवी पर युद्ध करके माया द्वारा पचास करोड़ योजन ऊपर उठ गया ॥४५॥ जगत्स्वामी शंकर भी उस दैत्य का वध करने के लिए तत्काल ऊपर को उठे। उस निराधार स्थान में दोनों का युद्ध एक मास तक चलता रहा ॥४६॥ बली असुर ने शंकर के अस्त्रों और धनुष को काट दिया, रथ तोड़ डाला, अन्य अस्त्रों को नष्ट कर दिया ॥४७॥ रुद्र ने क्रुद्ध होकर उस दैत्येन्द्र पर मुष्टिका प्रहार किया। उस वज्र के समान मुष्टिप्रहार से वह दैत्य सद्यः मूर्च्छित हो गया ॥४८॥ क्षण में चेतना प्राप्त होने पर क्रोध से उस दानवराज ने शयन करते हुए शिव को उठा भूतल पर दे मारा ॥४९॥ रथ समेत शिव के धराशायी हो जाने पर देव और देवर्षि गण अति भयभीत हुए और 'हे कृष्ण ! मेरी रक्षा करो' ऐसा बार-बार कहते हुए मेरी स्तुति करने लगे ॥५०॥ भय का कारण उपस्थित हुआ जानकर शिव ने निर्भयतापूर्वक मेरा ही स्मरण किया। उन्होंने संकटकाल में मेरे ही दिये हुए स्तोत्र से भक्तिपूर्वक मेरी स्तुति की ॥५१॥ तब मैंने अपनी कला से शीघ्र ही वृषभ रूप धारण करके सोते शंकर को सींगों से उठाया और उन्हें अपना कवच तथा शत्रुनाशक अपना शूल प्रदान किया। उसे पाकर उन्होंने दानव के उस अत्यन्त ऊँचे स्थान त्रिपुर को जो आकाश में निराधार टिका हुआ था, मेरे दिये हुए शूल से नष्ट कर दिया। इसके बाद शिव ने लज्जित होकर मुझ दर्पहन्ता की बार-बार स्तुति की ॥५२-५४॥ चूर्णीभूत होकर वह दैत्य तुरन्त पृथिवी पर गिर पड़ा, यह देखकर देवता और मुनिवृन्द शंकर

तत्याज शंकरो दर्पं विघ्नबीजं ततो विभुः । ज्ञानानन्दस्वरूपश्च निर्लिप्तः सर्वकर्मसु ।।५६।।
ततोऽहं वृषरूपेण वहामि तेन तं प्रियम् । मम प्रियतमो नास्ति त्रैलोक्येषु शिवात्परः ।।५७।।
मनःस्वरूपो ब्रह्मा मे ज्ञानरूपो महेश्वरः । बुद्धिर्भगवती दुर्गा मूलप्रकृतिरीश्वरी ।।५८।।
निद्रादयः शक्तयो यास्ताः सर्वाः प्रकृतेः कलाः । वागधिष्ठातृदेवी या सा स्वयं च सरस्वती ।।५९।।
मम कल्याणाधिदेवो हर्षरूपो गणेश्वरः । परमार्थः स्वयं धर्मो मम भक्तो हुताशनः ।।६०।।
सर्वैश्वर्याधिदेवो मे सर्वगोलोकवासिनः । प्राणाधिष्ठातृदेवी त्वं सदा प्राणाधिका मम ।।६१।।
गोपाङ्गनास्तव कला अत एव मम प्रियाः । मल्लोमकूपजा गोपाः सर्वे गोलोकवासिनः ।।६२।।
तेजःस्वरूपः सूर्यश्च प्राणा मे वायवः स्मृताः । जलाधिदेवो वरुणः पृथिवी मे मलोद्भवा ।।६३।।
मम शून्यो महाकाशो मदनो मानसोद्भवः । इन्द्रादयः सुराः सर्वे मत्कलांशांशसंभवाः ।।६४।।
एतानि सृष्टिबीजानि महदादीनि चैव हि । सर्वेषां बीजरूपोऽहं स्वमात्मा निराश्रयः ।।६५।।
जीवो मे प्रतिबिम्बश्च कर्मभोगाधिकारकः । अहं साक्षी निरीहश्च न भोगी सर्वकर्मसु ।।६६।।
भक्तध्यानार्थदेहोऽयं मम स्वेच्छामयस्य च । प्रकृतिः पुरुषोऽहं च एक एव परात्परः ।।६७।।
इत्येवं कथितं राधे शिवदर्पविमोचनम् । सृष्टिबीजं च शृणु मे पार्वतीदर्पमोचनम् ।।६८।।

---

की स्तुति करने लगे ।।५५।। उपरान्त प्रभु शिव ने अभिमान को विघ्न का बीज समझकर त्याग दिया । वे ज्ञानानन्दस्वरूप से स्थित हो, सब कर्मों में निर्लिप्त भाव से संलग्न रहने लगे ।।५६।। तब से मैं अपने प्रिय भक्त शंकर को वृषरूप से पीठ पर वहन करने लगा । क्योंकि तीनों लोकों में शिव से बढ़कर प्रियतम मेरे लिए कोई नहीं है ।।५७।। ब्रह्मा मेरे मनःस्वरूप, महेश्वर ज्ञानरूप और मूल प्रकृति ईश्वरी भगवती दुर्गा बुद्धिरूप हैं ।।५८।। निद्रा आदि जितनी शक्तियाँ हैं वे सब प्रकृति की कलारूप हैं एवं साक्षात् सरस्वती मेरी वाणी की अधिष्ठात्री देवी हैं ।।५९।। कल्याण के अधिदेवता गणेश्वर देव मेरे हर्ष रूप हैं, स्वयं धर्म, परमार्थ और अग्नि मेरे भक्त हैं ।।६०।। समस्त गोलोकवासी मेरे सम्पूर्ण ऐश्वर्य के अधिदेवता हैं, तुम सदा मेरे प्राणों की अधिष्ठात्री देवी एवं प्राणों से भी अधिक प्रिय हो ।।६१।। गोपियाँ तुम्हारी कलाएँ हैं, अतः मुझे अधिक प्रिय हैं । गोलोकवासी सभी गोप मेरे लोम कूपों से उत्पन्न है ।।६२।। इसी प्रकार सूर्य मेरे तेजो रूप, वायु प्राणस्वरूप, वरुण जलाधीश्वर एवं पृथ्वी मेरे मल से प्रकट हुई है ।।६३।। महाकाश मेरा शून्य स्थान है, कामदेव मेरे मन से उत्पन्न हैं और इन्द्र आदि सभी देवता मेरी कलाओं के अंशांश से उत्पन्न हुए हैं ।।६४।। सृष्टि के बीजरूप जो महती आदि तत्त्व हैं, उन सबका बीजरूप आश्रयहीन आत्मा मैं स्वयं ही हूँ ।।६५।। जीव मेरा प्रतिबिम्ब है, जो कर्मभोगों का अधिकारी है । मैं निरीह एवं साक्षी हूँ । किसी कर्म का भोक्ता नहीं हूँ ।।६६।। मुझ स्वेच्छामय का यह शरीर भक्तों के ध्यान के लिए है । मैं ही प्रकृति, पुरुष एवं एकमात्र परात्पर (परमेश्वर) हूँ ।।६७।। राधे ! इस प्रकार मैंने शिव का अभिमान-भङ्ग होना बता दिया, अब सृष्टि के बीजरूप पार्वती का भी दर्पभङ्ग मुझसे सुनो ।।६८।।

### नारायण उवाच

इत्युक्तवन्तं श्रीकृष्णं परमात्मनमीश्वरम् । पप्रच्छ राधिका देवी निगूढमभिवाञ्छितम् ॥६९॥

### राधिकोवाच

भगवन्सर्वतत्त्वज्ञ सर्वबीज सनातन । वद मे वाञ्छितं प्रश्नं सर्वसंदेहभञ्जनम् ॥७०॥
सर्वज्ञानाधिदेवश्च शंकरः सर्वतत्त्ववित् । मृत्युंजयः कालकालो भगवांस्त्वत्समो महान् ॥७१॥
कथं विभूतिगात्रश्च पञ्चवक्त्रस्त्रिलोचनः । दिगम्बरो जटाधारी नागसंघातभूषणः ॥७२॥
वृषेणाटति देवेन्द्रो विहाय वरवाहनम् । न बिभर्ति कथं रत्नं सारनिर्माणभूषणम् ॥७३॥
वह्निशुद्धांशुकं त्यक्त्वा धत्ते शार्दूलचर्मकम् । धत्ते धत्तूरकुसुमं पारिजातं विहाय च ॥७४॥
नास्ति रत्नकिरीटेच्छा जटायां प्रीतिरुत्तमा । दिव्यलोकं परित्यज्य स्मशानेषु स्पृहा विभोः ॥७५॥
चन्दनागुरुकस्तूरीसुगन्धिकुसुमानि च । त्यक्त्वा स्पृहा बिल्वपत्रे बिल्वकाष्ठानुलेपने ॥७६॥
एतद्वेतितुमिच्छामि व्यासेन कथय प्रभो । श्रोतुं कौतूहलं नाथ वर्धते मे मनःस्पृहा ॥७७॥
राधिकावचनं श्रुत्वा प्रहस्य मधुसूदनः । कथां कथितुमारेभे कृत्वा राधां स्ववक्षसि ॥७८॥

---

**नारायण बोले**—इतना कह चुकनेवाले परमात्मा ईश्वर श्रीकृष्ण से राधिका देवी ने गुप्त एवं अभीष्ट (प्रश्न) पूछा ॥६९॥

**राधिका बोलीं**—भगवन् ! समस्त तत्त्वों के ज्ञाता, सबके बीज ! सनातन ! समस्त सन्देहों का निवारण करनेवाले ! मेरे अभीष्ट प्रश्न का समाधान कीजिये ॥७०॥ भगवान् शङ्कर समस्त ज्ञानों के अधीश्वर, समस्त तत्त्वों के वेत्ता, मृत्युविजेता, कालों के काल एवं तुम्हारे समान महान् हैं ॥७१॥ किन्तु शरीर में विभूति (भस्म) क्यों लगाते हैं ? पाँच मुख, तीन नेत्र, दिगम्बर (नग्न), जटा धारण किये तथा नाग समूहों को भूषण की भाँति धारण किये वे देवेन्द्र अन्य उत्तम वाहन को त्यागकर क्यों वृष (बैल) पर ही चलते हैं ? रत्नों के सारभाग के बने भूषणों को क्यों नहीं धारण करते ? ॥७२-७३॥ वे अग्नि विशुद्ध वस्त्र का त्यागकर बाघम्बर क्यों पहनते हैं ? पारिजात को छोड़कर धतूरे का पुष्प क्यों ग्रहण करते हैं ? ॥७४॥ रत्न किरीट की इच्छा न कर जटा पर क्यों परम प्रेम रखते हैं ? विभु (शङ्कर) दिव्यलोक को छोड़कर श्मशानों में ही रहने की इच्छा क्यों करते हैं ॥७५॥ चन्दन, अगुरु, कस्तूरी एवं सुगन्धित पुष्प का त्यागकर वे बिल्वपत्र और बिल्व काष्ठ के अनुलेपन की स्पृहा क्यों रखते हैं ? ॥७६॥ प्रभो ! इन सब बातों को मैं संक्षेप में सुनना चाहती हूँ, बता दें । नाथ ! इसे सुनने के लिए मेरे मन में कौतूहल बढ़ रहा है, इच्छा जाग उठी है ॥७७॥ राधिका की बात सुनकर मधुसूदन हँसकर उन्हें अपने अंक से लगाकर कथा कहना आरम्भ किया ॥७८॥

### श्रीकृष्ण उवाच

युगषष्टिसहस्राणि तपः कृत्वा महेश्वरः । विरराम पूर्णतमो ध्यात्वा मां मनसा मुदा ॥७९॥
एतस्मिन्नन्तरे मां च ददर्श पुरतः स्थितम् । अतीव कमनीयाङ्गं किशोरं श्यामसुन्दरम् ॥८०॥
अहोऽनिर्वचनीयं च दृष्ट्वा रूपमनुत्तमम् । न बभूव वितृष्णश्च लोचनाभ्यां त्रिलोचनः ॥८१॥
पश्यन्निमेषरहित इति मत्वा स्वमानसे । भक्त्युद्रेकान्महाभक्तो रुरोद प्रेमविह्वलः ॥८२॥
सहस्रवदनोऽनन्तो भाग्यवांश्च चतुर्मुखः । बहुभिर्लोचनैर्दृष्ट्वा तुष्टाव बहुभिर्मुखैः ॥८३॥
पश्यामि किंवा किं स्तौमि संप्राप्य नाथमीदृशम् । आस्यैकेन लोचनाभ्यां चतुर्धा स पुनः पुनः ॥८४॥
स्वमानसे कुर्वतीदं शंकरे च तपस्विनि । तद्बभूव चतुर्वक्त्रं पूर्वेण सह पञ्चमम् ॥८५॥
एकैकवक्त्रं शुशुभे लोचनैश्च त्रिभिस्त्रिभिः । बभूव तेन तन्नाम पञ्चवक्त्रस्त्रिलोचनः ॥८६॥
स्तवनादधिकप्रीतिः शिवस्य दर्शने मम । तेनाधिकानि तस्यैवं बभूवुर्लोचनानि च ॥८७॥
चक्षूंषि गुणरूपाणि तस्य ब्रह्मस्वरूपिणः । सत्त्वं रजस्तम इति तस्य हेतुं निशामय ॥८८॥
सत्त्वांशेन दृशा शंभुः पश्यन्पाति च सात्त्विकान् । राजसेन राजसिकांस्तामसेन च तामसान् ॥८९॥
चक्षुषस्तामसात्पश्चाल्ललाटस्थाद्धरस्य च । संहारकाले संहर्तुरग्निराविर्भवेत्क्रुधा ॥९०॥

---

**श्रीकृष्ण बोले**—पूर्णतम महेश्वर साठ सहस्र युगों तक तप करके सानन्द मन से मेरा ध्यान करके विरत हो गये ॥७९॥ इसी बीच उन्होंने सामने मुझे स्थित देखा । अत्यन्त सुन्दर अंग, किशोरावस्था एवं परमोत्तम श्यामसुन्दर रूप—सब कुछ अनिर्वचनीय था । मेरे उस रूप को देखकर त्रिलोचन शिव की आँखें तृप्त नहीं हुईं ॥८०-८१॥ वे (एकटक) नेत्रों से देखते रहे तथा भक्ति के उद्रेक से प्रेम-विह्वल हो महाभक्त शिव रोने लगे ॥८२॥ उन्होंने सोचा कि सहस्र मुखवाले अनन्त एवं चार मुखवाले ब्रह्मा अधिक भाग्यवान् हैं, जिन्होंने बहुत नेत्रों से (भगवान् रूप का) दर्शन करके अनेक मुखों से उनकी स्तुति की है ॥८३॥ मैं अपने ऐसे स्वामी को पाकर क्या उनका दर्शन करूँ और क्या स्तुति । क्योंकि मेरे एक ही मुख और दो नेत्र हैं, ऐसा उन्होंने चार बार कहा ॥८४॥ तपस्वी शंकर के मन-ही-मन इस प्रकार संकल्प करने पर उनके चार मुख और प्रकट हो गये तथा पहले के मुख को लेकर पञ्चम संख्या की पूर्ति हो गयी ॥८५॥ उनका एक-एक मुख तीन-तीन नेत्रों से सुशोभित होने लगा । इसलिए वे पञ्चमुख और त्रिलोचन नाम से प्रसिद्ध हुए ॥८६॥ शंकर को स्तुति की अपेक्षा मेरे रूप के दर्शन में ही अधिक प्रेम है, इसलिए उनके नेत्र ही अधिक प्रकट हुए ॥८७॥ ब्रह्मस्वरूप उस शिव के नेत्रों सत्त्व, रज और तम रूप गुणों के अनुसार हैं, उसका कारण मैं बता रहा हूँ, सुनो ॥८८॥ शिव अपने सात्त्विक अंश के नेत्रों से सात्त्विकों को, राजस नेत्रों से राजसी व्यक्तियों को और तामस नेत्रों से तामसी प्राणियों को देखते हुए उनकी रक्षा करते हैं ॥८९॥ संहारकर्ता हर के ललाटवर्ती तामस नेत्र से पीछे चलकर संहार-काल में क्रोध-पूर्वक संवर्तक अग्नि का आविर्भाव होता

कोटितालप्रमाणश्च सूर्यकोटिसमप्रभः। लेलिहानो दीर्घशिखस्त्रैलोक्यं दग्धुमीश्वरः ॥९१॥
विभूतिगात्रः स विभुः सतीसंस्कारभस्मना। धत्ते तस्या अस्थिमालां प्रेमभावेन भस्म च ॥९२॥
स्वात्मारामो यद्यपीशस्तथाऽपि पूर्णमब्दकम्। सतीशवं गृहीत्वा च भ्रामं भ्रामं रुरोद ह ॥९३॥
प्रत्यङ्गं चापि तस्याश्च पपात यत्र यत्र ह। सिद्धपीठस्तत्र तत्र बभूव मन्त्रसिद्धिकृत् ॥९४॥
त (य) दा शवावशेषं च कृत्वा वक्षसि शंकरः। पपात मूर्च्छितो भूत्वा सिद्धिक्षेत्रे च राधिके ॥९५॥
तदा गत्वा महेशं तं कृत्वा क्रोडे प्रबोध्य च। अददां दिव्यतत्त्वं च तस्मै शोकहरं परम् ॥९६॥
तदा शिवश्च संतुष्टः स्वं लोकं च जगाम ह। मूर्त्यन्तरेण कालेन तां संप्राप प्रियां सतीम् ॥९७॥
दिव्यस्त्रग्धारियोगेन[1] नेच्छा नित्ये परे[2] विभो। जटां तपस्याकालीनां धत्तेऽद्यापि विवेकतः ॥९८॥
न चेच्छा केसशंकारे स्वाङ्गे[3] वेषे च योगिनः। समता चन्दने पङ्के लोष्टे रत्ने मणीश्वरे ॥९९॥
गरुडद्वेषिणो नागाः शंकरं शरणं ययुः। बिभर्ति कृपया स्वाङ्गे तानेव शरणागतान् ॥१००॥
वाहनं वृषरूपोऽहमन्यस्तं वोढुमक्षमः। त्रिपुरस्य वधे पूर्वं मत्कलांशसमुद्भवः ॥१०१॥

---

है ॥९०॥ वह अग्नि करोड़ों तालों के समान ऊँचा, करोड़ों सूर्यों के समान प्रभापूर्ण और विशाल लपटों से युक्त हो अपनी जीभ लपलपाते हुए तीनों लोकों को दग्ध कर देने में समर्थ है ॥९१॥ सती के दाह-भस्म को वे अपनी देह में लगाये रहते हैं। इसलिए 'विभूतिधारी' कहे जाते हैं। सती के प्रति प्रेम भाव के कारण ही वे उनकी अस्थियों की माला पहनते हैं और भस्म भी धारण करते हैं ॥९२॥ यद्यपि शिव स्वात्माराम हैं तथापि उन्होंने पूरे वर्ष तक सती का शव लिये चारों ओर घूमते हुए रोदन किया था ॥९३॥ सती का एक-एक अंग जहाँ-जहाँ गिरा, वहाँ-वहाँ सिद्धपीठ हो गया, जो मन्त्रों की सिद्धि करनेवाला है ॥९४॥ राधिके ! अनन्तर शव के अवशिष्ट अंश को छाती से लगाकर वे सिद्धि क्षेत्र में मूर्च्छित होकर गिर पड़े ॥९५॥ उस समय मैंने वहाँ जाकर शिव को अपनी गोद में रखकर प्रबोधित किया और शोकनाशक परम दिव्यतत्त्व उन्हें प्रदान किया ॥९६॥ अनन्तर सन्तुष्ट होकर शिव अपने लोक को चले गये और अपनी ही दूसरी मूर्ति काल के द्वारा उन्होंने अपनी प्रिया सती को प्राप्त कर लिया ॥९७॥ वे योगस्थ होने के कारण दिगम्बर हैं। उन नित्य परमेश्वर में इच्छा का सर्वथा अभाव है। उनके सिर पर जो जटाएँ हैं, वे तपस्याकाल की हैं, जिन्हें वे आज भी विवेकपूर्वक धारण करते हैं ॥९८॥ योगी को केशों का संस्कार करने तथा शरीर को वेशभूषा से विभूषित करने की इच्छा नहीं होती। योगी का चन्दन और कीचड़ में तथा मिट्टी के ढेले और मणीन्द्र रत्न में समभाव होता है ॥९९॥ गरुड़ के द्वेषी नागगण शंकर की शरण में गये। उन्हीं शरणागतों को वे कृपया अपने अंगों में लपेटे रहते हैं ॥१००॥ वृष (बैल) रूप होकर मैं ही उनका वहन करता हूँ क्योंकि अन्य कोई भी उनको वहन करने में समर्थ नहीं है। पूर्वकाल में त्रिपुरासुर के वध करने के समय मेरे कलांश से उस वृषभ की उत्पत्ति हुई थी ॥१०१॥ पारिजात आदि पुष्प तथा चन्दन आदि सुगन्धित वस्तु वे

---

१ क. दिग्वस्त्रधारी यो॰। २ क. पदे। ३ ख. स्वाङ्गवेषेण यो॰।

पारिजातादिकं पुष्पं सुगन्धिचन्दनादिकम् । मयि संन्यस्य तेष्वेवं प्रीतिर्नास्ति कदाचन ॥१०२॥
धत्तूरे तत्सदा प्रीतिर्बिल्वपत्रानुलेपने । गन्धहीने सुगन्धे च योगीष्टे[1] व्याघ्रचर्मणि ॥१०३॥
दिव्यलोके दिव्यतल्पे जनतायां न तन्मनः । श्मशानेऽतीव रहसि ध्यायते मामहर्निशम् ॥१०४॥
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं समं च मन्यते शिवः । ममानिर्वचनीयेऽत्र रूपे तन्मग्नमानसम् ॥१०५॥
ब्रह्मणः पतनेनापि शूलपाणेः क्षणो भवेत् । तस्याऽऽयुषः प्रमाणं च नाहं जानामि का श्रुतिः ॥१०६॥
ज्ञानं मृत्युंजयः शूलं धत्ते मत्तेजसा[2] समम् । विना मया न कश्चित्तं शंकरं जेतुमीश्वरः ॥१०७॥
शंकरः परमात्मा मे प्राणेभ्योऽपि परः शिवः । त्र्यम्बके मन्मनः शश्वन्न प्रियो मे भवात्परः ॥१०८॥
ब्रह्माण्डनिकरं छन्नं मया मन्मायया सदा । सा[3] कम्पति हरं शश्वन्न च तं मोहितुं क्षमा[4] ॥१०९॥
न संवसामि गोलोकं वैकुण्ठे तव वक्षसि । सदा शिवस्य हृदये निबद्धः प्रेमपाशतः ॥११०॥
स्वरसिद्धं सुतानेन पञ्चवक्त्रेण शंकरः । शश्वद्गायति मद्गाथां तेनाहं तत्समीपतः ॥१११॥
स्रष्टुं शक्तो हि नष्टुं च भ्रूभङ्गलीलयाऽपि यः । ब्रह्माण्डनिकरं योगान्न योगी शंकरात्परः ॥११२॥
दिव्यज्ञानेन यः स्रष्टुं नष्टुं भ्रूभङ्गलीलया । मृत्युं कालादिकं शक्तो न ज्ञानी शंकरात्परः ॥११३॥

---

मुझे अर्पित कर चुके हैं, इसलिए उनमें उनकी कभी प्रीति नहीं होती ॥१०२॥ धतूर के पुष्प, बिल्व पत्र और बेल का चन्दन, गन्धहीन पुष्प तथा व्याघ्रचर्म योगियों को अभीष्ट हैं। इसलिए उनमें उनकी सदा प्रीति रहती है ॥१०३॥ दिव्यलोक, दिव्यशय्या और जनसमुदाय में उनका मन नहीं लगता है। वे अत्यन्त एकान्त स्थान श्मशान में दिन-रात मेरा ध्यान करते रहते हैं ॥१०४॥ शिव ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त सबको समान जानते हैं। केवल अनिर्वचनीय मेरे इस रूप में उनका चित्त निमग्न रहता है ॥१०५॥ ब्रह्मा का पतन होने पर शिव का एक क्षण होता है। उनकी आयु का प्रमाण मैं भी नहीं जानता हूँ, फिर श्रुति क्या जानेगी ? ॥१०६॥ मृत्युञ्जय (शिव) मेरे तेज के समान शूल और ज्ञान धारण करते हैं। मेरे बिना शिव को जीतने में कोई समर्थ नहीं है ॥१०७॥ शंकर परमात्मा हैं, शिव मेरे प्राणों से भी बढ़कर हैं। त्र्यम्बक शिव में मेरा मन निरन्तर लगा रहता है। शिव से बढ़कर मेरा प्रिय कोई नहीं है ॥१०८॥ मेरे द्वारा मेरी माया समस्त ब्रह्माण्ड समूह को सदा आच्छन्न किये रहती है, किन्तु वह शिव से निरन्तर काँपती रहती है, उन्हें मोहित करने में समर्थ नहीं होती है ॥१०९॥ मैं गोलोक, वैकुण्ठ अथवा तुम्हारे वक्ष में भी वास नहीं करता हूँ। मैं तो शिव के प्रेम-पाश में बँधकर उन्हीं के हृदय में सदा निवास करता हूँ ॥११०॥ शिव अपने पाँचों मुखों से उत्तम तान द्वारा सिद्ध स्वर में निरन्तर मेरी गाथा का गान करते रहते हैं, अतः मैं उनके समीप रहता हूँ ॥१११॥ जो योग द्वारा भ्रूभङ्ग की लीला मात्र से ब्रह्माण्ड-समूहों की सृष्टि और विनाश करने में समर्थ हैं, उन शंकर से बढ़कर कोई योगी नहीं है ॥११२॥ जो अपने दिव्य ज्ञान से भ्रूभङ्ग लीला द्वारा नष्ट हुए मृत्यु और काल आदि की पुनः सृष्टि करने में समर्थ हैं, उन शंकर से बढ़कर कोई ज्ञानी

---

१ क. योगेष्टे। २ क. जसां मलम्। ३ ख. स। ४ क. क्षमः।

मम भक्तिं च दास्यं च मुक्तिं च सर्वसंपदः । सर्वसिद्धिं दातुमीशो न दाता शंकरात्परः ॥११४॥
पञ्चवक्त्रेण मन्नाम यो हि गायत्यहर्निशम् । मद्रूपं ध्यायते शश्वन्न भक्तः शंकरात्परः ॥११५॥
अहं सुदर्शनं शंभुस्तेजसा च वयं समाः । ब्रह्मा स्रष्टा च योगेन नास्माभिस्तेजसा समः ॥११६॥
इत्येवं कथितं सर्वं शंकरस्य यशोऽमलम् । तथाऽप्यस्य दर्पभङ्गं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥११७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० श्रीकृष्णकृतशंकर-
प्रशंसा नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥३६॥

# अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः

## राधिकोवाच

एवंभूतस्य च विभोः सर्वेशस्य महात्मनः । न शस्तं कथमुच्छिष्टं ब्रूहि संदेहभञ्जन ॥१॥

---

नहीं है ॥११३॥ शिव मेरी भक्ति, दास्य पद, मुक्ति, समस्त सम्पत्ति और समस्त सिद्धियाँ देने में समर्थ हैं, अतः उनसे बढ़कर कोई दानी नहीं है ॥११४॥ अपने पाँचों मुखों द्वारा दिन-रात जो मेरे नाम का गायन किया करता है और मेरे रूप का निरन्तर ध्यान करता है, उससे बढ़कर कोई भक्त नहीं है ॥११५॥ मैं, सुदर्शन चक्र और शिव तेज में समान हैं । सृष्टिकर्ता ब्रह्मा भी योग और तेज में हम लोगों की समानता नहीं करते हैं ॥११६॥ इस प्रकार मैंने शिव का समस्त निर्मल यश और दर्पभङ्ग तुम्हें सुना दिया, अब और क्या सुनना चाहती हो ? ॥११७॥

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारायण-नारद-संवाद में श्रीकृष्णकृत शिव-प्रशंसा वर्णन नामक छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३६॥

# अध्याय ३७

## शंकर के निर्माल्य को शाप

**राधिका बोलीं**—हे सन्देह निवारक ! ऐसे महात्मा विभु एवं सर्वेश्वर शिव का उच्छिष्ट क्यों नहीं प्रशस्त माना जाता, बतावें ॥१॥

### श्रीकृष्ण उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्येऽहमितिहासं पुरातनम् । पापेन्धनानां दहने ज्वलदग्निशिखोपमम् ॥२॥
सनत्कुमारो वैकुण्ठमेकदा च जगाम ह । ददर्श भुक्तवन्तं च नाथं नारायणं द्विजः ॥३॥
तुष्टाव गूढैः स्तोत्रैश्च प्रणम्य भक्तितो मुदा । अवशेषं ददौ तस्मै संतुष्टो भक्तवत्सलः ॥४॥
प्राप्तमात्रेण तत्रैव भुक्तं तेनैव किंचन । किंचिद्ररक्ष बन्धूनां भक्षणाय च दुर्लभम् ॥५॥
सिद्धाश्रमे च यद्दत्तं गुरवे शूलपाणिने । भक्त्युद्रेकाच्च तत्सर्वं भुक्तं च प्राप्तिमात्रतः ॥६॥
भुक्त्वा सुदुर्लभं वस्तु ननर्त प्रेमविह्वलः । पुलकाङ्कितसर्वाङ्गः साश्रुनेत्रो मुदाऽन्वितः ॥७॥
गायन्मम गुणान्भक्त्या सुकण्ठः पञ्चवक्त्रतः । रागभेदैकतानेन तालमानेन सुन्दरम् ॥८॥
पपात डमरुर्हस्ताच्छृङ्गं च व्याघ्रचर्म च । स्वयं निपत्य पश्चाच्च रुदन्मूर्च्छामवाप ह ॥९॥
अतीव कमनीयं तद्रूपं[1] ध्यात्वैकमानसः । सहस्रदलमध्यस्थं मां पश्यन्हृत्सरोरुहे ॥१०॥
एतस्मिन्नन्तरे देवी दुर्गा दुर्गतिनाशिनी । मुदाऽऽजगाम शीघ्रं तत्प्रसन्नवदनेक्षणा ॥११॥
रुदन्तं मूर्च्छितं दृष्ट्वा निपतन्तं च भक्तितः । प्रहस्य वार्तां पप्रच्छ कुमारं शूलपाणिनः ॥१२॥
सर्वं तां कथयामास कुमारः संपुटाञ्जलिः । श्रुत्वा चुकोप सा देवी शिवं प्रस्फुरिताधरा ॥१३॥

---

**श्रीकृष्ण बोले**—देवि ! सुनो, (इस विषय में) मैं एक प्राचीन इतिहास बताऊँगा, जो पापरूपी ईंधनों के जलाने में प्रज्वलित अग्निशिखा के समान है ॥२॥ एक बार सनत्कुमार वैकुण्ठ में पहुँचे, वहाँ भोजन कर चुके हुए स्वामी नारायण को ब्राह्मण ने देखा ॥३॥ उन्हें हर्ष से भक्तिपूर्वक प्रणाम करके गूढ़ स्तोत्रों द्वारा स्तुति की। भक्तवत्सल भगवान् ने सन्तुष्ट होकर उन्हें अपना उच्छिष्ट प्रदान किया ॥४॥ ब्राह्मण ने दुर्लभ अवशेष पाते ही कुछ तो खा लिया और कुछ बन्धुओं के खाने के लिए रख लिया ॥५॥ पश्चात् सिद्धाश्रम में पहुँचने पर उन्होंने वह अवशेष अपने गुरु शिव को दे दिया। उसे पाते ही वे भक्ति के उद्रेक से सम्पूर्ण अवशेष को खा गये ॥६॥ उस अति दुर्लभ वस्तु का भक्षण करके वे प्रेम-विह्वल होकर नाचने लगे। उनके सर्वांग में रोमाञ्च हो आया, नेत्र सजल हो गये और वे हर्ष से विभोर हो उठे ॥७॥ वे अपने पाँचों मुखों द्वारा विविध राग, ताल के अनुसार तान और मधुर स्वर से मेरे गुणों का बड़ा सुन्दर गायन करने लगे ॥८॥ (तन्मय) होने के कारण उनके हाथ से डमरू, शंख और बाघम्बर भी गिर पड़ा। पश्चात् वे स्वयं गिरकर रोदन करते हुए मूर्च्छित हो गये ॥९॥ वे अपने हृदय कमल में सहस्र दल के मध्य मेरे अति कमनीय रूप का अति स्थिर चित्त से ध्यान कर रहे थे ॥१०॥ इसी बीच प्रसन्न मुख और नेत्रवाली दुर्गतिनाशिनी दुर्गा देवी वहाँ हर्ष से शीघ्र पहुँच गयीं ॥११॥ भक्ति से उन्हें रोदन करते, मूर्च्छित होते और गिरते-पड़ते देखकर दुर्गा ने हँसकर सनत्कुमार से शंकर का समाचार पूछा ॥१२॥ सनत्कुमार ने हाथ जोड़कर उनसे समस्त वृत्तान्त कह दिया, सुनकर देवी कुपित हो गयीं, उनका अधरोष्ठ फड़कने लगा ॥१३॥

---

१ क. 'भ्रूपध्यानकै' ।

तां शप्तुमुद्यतां देवीमुत्थाय च त्रिलोचनः । बोधयामास विविधं तुष्टाव संपुटाञ्जलिः ॥१४॥
श्रुत्वा मनोहरं स्तोत्रं न शशाप शिवं शिवा । दुष्टं चक्रे तदुच्छिष्टमभक्ष्यं विदुषामपि ॥१५॥
न लोकानां प्रभावश्च तपः सौभाग्यतेजसाम् । ब्रह्माण्डे सर्वसंहर्ता चकम्पे पार्वतीमये ॥१६॥
उवाच तं जगन्माता नीतिसारं परं वचः । गणप्रसूः सकोपा च रक्तपङ्कजलोचना ॥१७॥
अहो तपः प्रभावश्च तेजसश्च न जीविनाम् । स ब्रह्माण्डस्य संहर्ता चकम्पे शैलकन्यका ॥१८॥

## पार्वत्युवाच

त्वं पोष्टा जगतां पाता ममैव च विशेषतः । वक्ता चतुर्णां वेदानां जनकश्च स्वयं विभुः ॥१९॥
मुक्तिप्रदाता भक्तानां दाता च सर्वसंपदाम् । त्वं चेत्करोषि दुर्नीतिं को वा धर्मं च पाति वै ॥२०॥
सदा ते परिपाल्याऽहं पोष्या भक्त्या च किंकरी । वञ्चिता कर्मदोषेण हरनिर्माल्यभक्षणे ॥२१॥
किंचिच्छुद्धं हिरण्येन किंचिद्वस्तु च वायुना । किंचित्प्रक्षालनेनैव सर्वं विष्णोर्निवेदनात् ॥२२॥
विष्णोर्निवेदितान्नेन यष्टव्या सर्वदेवता । पितरोऽतिथयश्चैवमिति वेदेषु निश्चितम् ॥२३॥
अनिवेद्यमभक्ष्यं च नैवेद्यमुदरे हरौ । त्यक्त्वा करोति यो भक्त्या पार्षदप्रवरो भवेत् ॥२४॥

---

फिर शाप देने के लिए उद्यत देवी को देखकर त्रिनेत्र शिव ने उठकर उन्हें विविध भाँति से समझाया और हाथ जोड़कर स्तुति की ॥१४॥ मनोहर स्तोत्र सुनकर पार्वती ने शिव को शाप नहीं दिया, किन्तु उनके उच्छिष्ट को दूषित कर दिया, जो विद्वानों के लिए भी अभक्ष्य हो गया ॥१५॥ तप के सौभाग्य से तेजस्वी लोगों पर इसका प्रभाव नहीं पड़ेगा । ब्रह्माण्ड में सबका संहार करनेवाले शिव भी पार्वती के भय से काँप उठे ॥१६॥ तब गणों की जननी जगन्माता पार्वती, जिनके नेत्र लाल कमल के समान हो गये थे, कुपित होकर नीति के सार रूप उत्तम वचन कहने लगीं ॥१७॥ अहो ! यह तप का प्रभाव है, न कि जीवों के तेज का । क्योंकि जो समस्त ब्रह्माण्ड का संहार करता है, उसे पर्वतराज पुत्री (पार्वती) कम्पित कर रही हैं ॥१८॥

**पार्वती बोलीं**—तुम समस्त जगत् के पोषक एवं रक्षक हो, विशेषतया मेरे ही हो । फिर चारों वेदों के वक्ता, जनक और स्वयं विभु (व्यापक) हो ॥१९॥ तुम भक्तों के लिए मुक्तिदाता एवं समस्त सम्पदाओं के प्रदाता भी हो । यदि तुम्हीं अनीति करते हो, तो धर्म की रक्षा कौन करेगा ? ॥२०॥ मैं तुम्हारी सदैव की परिपालनीय, पोषणीय और भक्ति से दासी भी हूँ । अपने ही कर्मदोष से मैं शिव-निर्माल्य भक्षण से वंचित हो गयी हूँ ॥२१॥ कोई वस्तु सुवर्ण द्वारा शुद्ध होती है, कुछ वायु के द्वारा, कुछ प्रक्षालन करने से और विष्णु को निवेदित कर देने से सब-कुछ शुद्ध हो जाती है ॥२२॥ विष्णु को निवेदित किये अन्न से समस्त देवों का यजन करना चाहिए, और पितरों एवं अतिथियों को तृप्त करना चाहिए, ऐसा वेदों में निश्चित किया गया है ॥२३॥ न निवेदन करने योग्य अभक्ष्य वस्तु को त्यागकर जो भक्ति से विष्णु के नैवेद्य को उदर में डालता है, वह श्रेष्ठ पार्षद

अमृतं सर्ववस्तूनामिष्टं सारं सुदुर्लभम् । विष्णोर्निवेदितान्नस्य कलां नार्हति षोडशीम् ॥२५॥
हन्त्यकालिकमृत्युं तदमृतं मूढरञ्जनम् । नैवेद्यं च हरेरेव हरितुल्यं करोत्यहो ॥२६॥
यदृच्छया तन्नैवेद्यं यो भुङ्क्ते साधुसङ्गतः । षष्टिवर्षसहस्राणां प्राप्नोति तपसः फलम् ॥२७॥
यो निवेद्य हरिं भुङ्क्ते भक्त्या भक्तश्च नित्यशः । किंवा तपस्यां कर्ता च स हरेस्तेजसा समः ॥२८॥
श्रुतं पुरा त्वन्मुखतः पुष्करे मुनिसंसदि । अहं वेदविधाता न किमहं वक्तुमीश्वरी ॥२९॥
सुचिरं च तपस्तप्त्वा मया लब्धस्त्वमीश्वरः । त्वया विष्णोः प्रसादेन वञ्चिताऽहं कथं प्रभो ॥३०॥
यतो न दत्तं नैवेद्यं विष्णोर्मह्यं त्वयाऽधुना । अतो मत्तो गृहाणैतत्फलमेव महेश्वरः ॥३१॥
अद्यप्रभृति ये लोका नैवेद्यं भुञ्जते तव । ते जन्मैकं सारमेया भविष्यन्त्येव भारते ॥३२॥
इत्युक्त्वा पार्वतीमाता रुरोद पुरतो विभोः । दृष्टिः पपात तत्कण्ठे नीलकण्ठो बभूव ह ॥३३॥
तदा शिवः शिवां भक्त्या कृत्वा वक्षसि सादरम् । तन्मानभङ्गं स्तोत्रेण विनयेन चकार ह ॥३४॥
करेण चक्षुषोर्नीरं मंसृज्य च पुनः पुनः । बोधयामास विविधैर्नीतिवाक्यैर्मनोहरैः ॥३५॥
परितुष्टा च सा देवी भर्तारं समुवाच ह । कलेवरं च त्यक्ष्यामि नैवद्येन विना हरेः ॥३६॥
बिभर्ति (र्मि) देहं सततं तव सौभाग्यवर्धनम् । कथं वहामि सौभाग्यरहितं च कलेवरम् ॥३७॥

---

होता है ॥२४॥ भगवान् विष्णु को निवेदित किये हुए अन्न की सोलहवीं कला के समान भी अमृत नहीं है, जो समस्त वस्तुओं का इष्ट एवं अत्यन्त दुर्लभ सारभाग है ॥२५॥ वह अमृत अकाल-मृत्यु का विनाशक तथा मूर्खों का प्रसादक है, किन्तु विष्णु का नैवेद्य तो उनके समान ही बना देता है, यह आश्चर्य है ॥२६॥ साधुओं की संगति में जो स्वेच्छा से विष्णु का नैवेद्य भक्षण करता है वह साठ सहस्र वर्षों की तपस्या के फल प्राप्त करता है ॥२७॥ जो भक्त नित्य भक्तिपूर्वक भगवान् को निवेदन करके नैवेद्य भक्षण करता है, वह तपस्याओं का कर्ता होते हुए तेज में भगवान् के समान हो जाता है ॥२८॥ पूर्वकाल में पुष्कर क्षेत्र में मुनियों की सभा के मध्य तुम्हारे ही मुख से मैंने यह सब सुना था। मैं वेद की स्रष्ट्री नहीं हूँ, कैसे कहने में समर्थ हो सकती हूँ ? ॥२९॥ प्रभो ! मैंने अति चिरकाल तक तप करके तुम ईश्वर को पतिरूप में प्राप्त किया है। तब विष्णु के प्रसाद भक्षण से मैं क्यों वञ्चित की गयी ? ॥३०॥ महेश्वर ! इस समय तुमने जो मुझे विष्णु का नैवेद्य नहीं दिया है, इसलिए मुझसे यह फल ग्रहण करो ॥३१॥ आज से जो लोग तुम्हारा नैवेद्य भक्षण करेंगे, वे भारत में एक जन्म कुत्ते भी होंगे ॥३२॥ यह कहकर माता पार्वती प्रभु (शिव) के सामने रोदन करने लगीं। उस समय उनकी दृष्टि उनके कण्ठ पर पड़ गयी, जिससे वे नीलकण्ठ हो गये ॥३३॥ तब शिव पार्वती को आदरपूर्वक छाती से लगाकर विनय और स्तोत्र से उनका मान दूर कर दिया ॥३४॥ हाथ से उनके दोनों नेत्रों के आँसुओं को बार-बार पोंछकर अनेक मनोहर नीति वाक्यों से उन्हें समझाया ॥३५॥ सन्तुष्ट होकर देवी ने स्वामी से कहा कि मैं विष्णु के नैवेद्य के बिना देह को छोड़ दूंगी ॥३६॥ तुम्हारे सौभाग्य को बढ़ानेवाली देह को मैं धारण करती हूँ, अब सौभाग्यरहित शरीर को मैं

अपूर्वं तव नैवेद्यं[1] जन्ममृत्युजराहरम् । कृतं दुष्टं च यत्तस्मात्पश्य देहं त्यजामि च ॥३८॥
लिङ्गोपरि च यद्दत्तं तदेवाग्राह्यमीश्वर । सुपवित्रं भवेत्तस्य[2] विष्णोर्नैवेद्यमिश्रितम् ॥३९॥
इत्येवमुक्त्वा सा देवी देहं त्यक्तुं समुद्यता । त्रस्तो हरस्तत्पुरतः स्तुत्वा च स्वीचकार ह ॥४०॥

## शंकर उवाच

स्थिरा भव महादेवि चण्डिके जगदम्बिके । ममापराधमखिलं क्षन्तुमर्हसि सुन्दरि ॥४१॥
मां भृत्यं तपसा क्रीतं कृपां कुरु ममोपरि । ब्रह्मविष्णुमहेशानां बीजभूते सनातनि ॥४२॥
अहो गोलोकनाथस्य गुणातीतस्य निर्गुणे । सर्वशक्तिस्वरूपे च सदैव सहचारिणि ॥४३॥
साकारे च निराकारे नित्ये स्वेच्छामये प्रिये । कृपया तद्विभोरेव मम वक्षसि सांप्रतम् ॥४४॥
सर्वबीजस्वरूपे च महामाये मनोहरे । सर्वसिद्धिप्रदे देवि मुक्तिदे कृष्णभक्तिदे ॥४५॥
इच्छैवं श्रीहरेः साक्षान्नाहं दातुमपि क्षमः । तदा देहं परित्यज्य निर्गुणं व्रज निर्गुणे ॥४६॥
इत्येवमुक्त्वा पुरतस्तस्थौ च चन्द्रशेखरः । बभूव सुप्रसन्ना सा प्रणनाम हरं परम् ॥४७॥

---

कैसे धारण करूँ ? ॥३७॥ जन्म, मृत्यु एवं बुढ़ापे का अपहरण करनेवाला तुम्हारा नैवेद्य अपूर्व था, किन्तु तुमने जो उसे दूषित कर दिया, अतः तुम्हारे देखते ही मैं देह त्याग रही हूँ ॥३८॥ हे ईश्वर ! केवल शिवलिंग के ऊपर जो नैवेद्य अर्पित किया जायगा वही आग्राह्य होगा और भगवान् विष्णु के नैवेद्य से मिश्रित तुम्हारा नैवेद्य अतिपवित्र होगा ॥३९॥ इस प्रकार कहकर वह देवी देह त्यागने के लिए उद्यत हो गयीं । तब भयभीत शंकर ने उनके आगे स्तुति करके स्वीकार कर लिया ॥४०॥

**शंकर बोले**—हे महादेवि ! हे चण्डिके ! हे जगन्माता ! स्थिर हो जाओ । हे सुन्दरि ! तुम मेरे सम्पूर्ण अपराध को क्षमा करो ॥४१॥ तुमने अपनी तपस्या द्वारा मुझ भृत्य को खरीदा है, अतः मेरे ऊपर कृपा करो । तुम ब्रह्मा, विष्णु और महेश की बीजभूत एवं सनातनी हो ॥४२॥ अहो ! तुम गुणातीत गोलोकनाथ की निर्गुण शक्ति हो, सभी शक्तियों के स्वरूप हो, सदैव (मेरी) सहचरी हो ॥४३॥ प्रिये ! तुम साकार, निराकार, नित्य एवं स्वेच्छामय हो । उन्हीं विभु (श्रीकृष्ण) की कृपा से इस समय मेरे वक्षःस्थल पर विराज रही हो ॥४४॥ तुम समस्त बीजस्वरूप, महामाया, मनोहर, समस्त सिद्धियों को देनेवाली और मुक्ति एवं कृष्ण की भक्ति प्रदान करनेवाली हो ॥४५॥ भगवान् श्रीहरि की साक्षात् इच्छा ही ऐसी थी, जिससे मैं तुम्हें देने में असमर्थ रहा । हे निर्गुणे ! इस कारण को भलीभाँति जान लो और तभी देह त्यागकर इस निर्गुण में लीन हो जाओ ॥४६॥ इतना कहकर भगवान् चन्द्रशेखर उनके सामने स्थित रहे । अनन्तर देवी ने अति प्रसन्न होकर परमेश्वर शिव को

---

१क. हविर्भुङ्क्ते । २क. तत्र ।

इत्येवं पार्वतीस्तोत्रं शंकरेण कृतं पुरा। यः पठेद्विपदाग्रस्तः स भयादेव मुच्यते ॥४८॥
मित्रभेदो भवेद्दूरं तस्संप्रीतिर्भवेत्पुरा। पार्वती परितुष्टा च न त्यजेत्तस्य मन्दिरम् ॥४९॥

श्रीकृष्ण उवाच

श्रुत्वा प्रतिज्ञां नाथस्य परितुष्टा बभूव सा। जगाम स्वर्णदीं तूर्णं स्नानार्थं शंकराज्ञया ॥५०॥
स्नात्वा संपूज्य भक्त्या च सुरमिष्टं च निर्गुणम्। चकार प्रस्तुतं शीघ्रं मिष्टान्नं व्यञ्जनानि च ॥५१॥
शिवः स्नात्वा च संपूज्य ब्रह्मज्योतिः सनातनम्। तुष्टाव परया भक्त्या मामेव हृदयस्थितम् ॥५२॥
गत्वा सर्वमहं भुक्त्वा तस्मै दत्त्वाऽभिवाञ्छितम्। नैवेद्यं पार्वती लेभे तव मूलं समागता ॥५३॥
भुक्त्वाऽवशेषं सा देवी सह भर्त्रा मुदान्विता। तुष्टाव शंकरं भक्त्या प्रणनाम मुहुर्मुहुः ॥५४॥
इत्येवं कथितं सर्वं त्वया पृष्टं सुरेश्वरि। अभिशप्तं शंकरस्य निर्माल्यं येन हेतुना ॥५५॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० हरिनिर्माल्यशाप-
प्रसङ्गो नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥३७॥

---

प्रणाम किया ॥४७॥ इस प्रकार पूर्वकाल में शंकर ने इस पार्वती-स्तोत्र की रचना की थी। जो विपद्ग्रस्त प्राणी इसका पाठ करेगा वह भय से मुक्त हो जायेगा ॥४८॥ उसका मित्र से मनमुटाव दूर होकर पूर्व की भाँति परस्पर सम्प्रीति हो जायगी और पार्वती प्रसन्न होकर उसके गृह का त्याग कभी नहीं करेंगी ॥४९॥

**श्रीकृष्ण बोले**—स्वामी की ऐसी प्रतिज्ञा सुनकर पार्वती सन्तुष्ट हो गयीं। फिर शिव की आज्ञा से गंगा में स्नान करने के लिए चली गयीं ॥५०॥ स्नान करके भक्तिपूर्वक निर्गुण इष्टदेव की अर्चना करने के उपरान्त शीघ्र ही मिष्टान्न तथा व्यञ्जन तैयार किये ॥५१॥ उधर शिव भी स्नान करके सनातन ब्रह्मज्योति की पूजा करने के उपरान्त पराभक्ति से हृदयस्थित मेरी ही स्तुति करने लगे ॥५२॥ तब मैंने वहाँ जाकर सब खाकर उन्हें अभीष्ट फल दिया, फिर तुम्हारे चरण-शरण में आकर पार्वती ने नैवेद्य प्राप्त किया ॥५३॥ पश्चात् पति के साथ अवशेष भोजन करके पार्वती हर्षित हुईं और शंकर की भक्तिपूर्वक स्तुति करके बार-बार प्रणाम करने लगीं ॥५४॥ हे सुरेश्वरि! इस प्रकार तुम्हारा पूछा हुआ सब मैंने बता दिया, जिस कारण शंकर का निर्माल्य अभिशप्त हुआ ॥५५॥

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारायण-नारद संवाद में हर-निर्माल्य-शाप-प्रसंग-वर्णन नामक सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३७॥

# अथाष्टात्रिंशोऽध्यायः

श्रीकृष्ण उवाच

दर्पभङ्गः श्रुतो देवि शंकरस्य जगद्गुरोः। अधुना श्रूयतां मत्तो दुर्गादर्पविमोचनम् ॥१॥
तेजसा सर्वदेवानामाविर्भूय जगत्प्रसूः। दधार कामिनीरूपं कमनीयं मनोहरम् ॥२॥
निहत्य दानवेन्द्रांश्च ररक्ष देवताकुलम्। लेभे जन्म ततो देवी जठरे दक्षयोषितः ॥३॥
पिनाकपाणिं जग्राह सा देवी सुरसाधनम्। शश्वत्परमभक्त्या च सिषेवे स्वामिनं सती ॥४॥
दक्षेण सार्धं दैवेन बभूव शिवशत्रुता। निरर्थकं दैवयोगात्पुरा वै सुरसंसदि ॥५॥
दक्षश्चकार यज्ञं च तत आगत्य कोपतः। सर्वान्विज्ञापयामास तत्रैव शंकरं विना ॥६॥
सस्त्रीका देवताः सर्वा आजग्मुर्दक्षमन्दिरम्। सगणः शंकरः कोपान्नाऽऽजगामाभिमानतः ॥७॥
सती पतिं च मोहेन बोधयामास यत्नतः। न तं चालयितुं शक्ता बभूव चञ्चला स्वयम् ॥८॥
आजगाम पितुर्गेहं दर्पात्तस्य विनाऽऽज्ञया। तस्य शापेन तस्याश्च दर्पभङ्गो बभूव ह ॥९॥
न हि संभाषणं चक्रे वाङमात्रेण पिता च ताम्। श्रुत्वा च निन्दां भर्तुश्च देहं तत्याज मानतः ॥१०॥

---

# अध्याय ३८

## पार्वती के गर्वभंग का प्रस्ताव

**श्रीकृष्ण बोले**—हे देवि! जगद्गुरु शिव का दर्पभंग तो तुमने सुन लिया, अब दुर्गा का दर्पमोचन मुझसे सुनो ॥१॥ समस्त देवों के तेज द्वारा प्रकट होकर जगज्जननी ने अति मनोहर कामिनी का रूप धारण किया ॥२॥ देवी ने दानवेन्द्रों का संहार करके देवों की रक्षा की। पश्चात् उन्होंने दक्षपत्नी के उदर से जन्म ग्रहण किया ॥३॥ देवों के कार्यसाधक पिनाकपाणि को अपना पति वरण किया। सती (पार्वती) परम भक्ति से अपने स्वामी की निरन्तर सेवा करने लगीं ॥४॥ दैवयोग से देवताओं की सभा में दक्ष के साथ शिव की निरर्थक शत्रुता हो गयी ॥५॥ दक्ष ने वहाँ से आकर क्रोध से एक यज्ञानुष्ठान आरम्भ किया, जिसमें शंकर को छोड़कर उन्होंने सबको निमंत्रित किया ॥६॥ पत्नी समेत सभी देवगण दक्ष के घर आये, किन्तु क्रोध और अभिमानवश गण सहित शिव वहाँ नहीं आये ॥७॥ सती ने मोहवश अपने पति को प्रयत्नपूर्वक (वहाँ जाने के लिए) समझाया, किन्तु उन्हें अपने निश्चय से डिगा न सकीं। तब स्वयं चञ्चल हो उठीं ॥८॥ बिना उनकी आज्ञा के ही स्वयं अभिमानवश पिता के घर आ गयीं। उनके शाप से सती का अभिमान चूर्ण हुआ ॥९॥ घर पहुँचने पर पिता ने उनसे बात तक नहीं की। वाणी मात्र से भी सत्कार नहीं किया। तब पति की निन्दा सुनकर अभिमानवश उन्होंने देह का त्याग कर दिया ॥१०॥ प्रिये! इस

एवं प्रिये निगदितं सतीदर्पविमोचनम् । तस्या जन्मान्तरं नित्यं दर्पभङ्गश्च श्रूयताम् ॥११॥
लेभे जन्म सती शीघ्रं जठरे शैलयोषितः । शिवस्तस्याश्चिताभस्म चास्थि जग्राह भक्तितः ॥१२॥
चकार मालामस्थ्नां च भस्मना तनुलेपनम् । स्मारं स्मारं सतीं प्रेम्णा भ्रामं भ्रामं पुनः पुनः ॥१३॥
सुषाव मेना तां देवीमतीव सुमनोहराम् । सृष्टौ विधातुस्तस्याश्च ह्युपमा नास्ति कुत्र च ॥१४॥
गुणप्रसूर्गुणान्सर्वान्सर्वरूपान्बिभर्ति सा । सर्वाश्च देवपत्न्यस्तत्कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥१५॥
बभूव वर्धमाना सा शुक्ले चन्द्रकला यथा । अतीव यौवनस्था च शैलगेहे दिने दिने ॥१६॥
बभूवाऽऽकाशवाणी च तां संबोध्य जगत्प्रसूम् । शिवे शिवं च तपसा कठोरेण लभेति च ॥१७॥
विनेश्वरं न तपसा प्राप्ता हि गर्भसंभवम् । प्रहस्य तस्थौ श्रुत्वेति सा च यौवनगर्विता ॥१८॥
मम जन्मान्तरीयं च भस्मास्थि च बिभर्ति यः । स मां प्रौढां कथं दृष्ट्वा न गृह्णात्यत्र जन्मनि ॥१९॥
यो विदग्धश्च ब्रह्माण्डं बभ्राम मम शोकतः । स कथं मां न गृह्णाति दृष्ट्वा परमसुन्दरीम् ॥२०॥
दक्षयज्ञं यो बभञ्ज मम हेतोः कृपानिधिः । स कथं मां न गृह्णाति पत्नीं जन्मनि जन्मनि ॥२१॥
या यस्य पत्नी यो यस्या भर्ता प्राक्तनतः पुरा । कुतो विश्वे तयोर्भेदो निषेको नान्यथा भवेत् ॥२२॥

---

प्रकार सती का दर्पभंग मैंने कह दिया । अब उनका जन्मान्तर में भी जो अभिमान चूर्ण हुआ है, उसको कह रहा हूँ, सुनो ! ॥११॥ (देह त्याग के उपरान्त) सती ने हिमवान् की पत्नी (मेना) के उदर से जन्म ग्रहण किया । शिव ने प्रेमवश सती की चिता का भस्म और उनकी अस्थियाँ ग्रहण कीं ॥१२॥ अस्थियों की माला बनायी और भस्म से अंगराग का काम लिया । वे सती का बार-बार स्मरण करते हुए चारों ओर भ्रमण करने लगे ॥१३॥ उधर मेना ने उस अति मनोहर देवी को उत्पन्न किया, जिसकी उपमा विधाता की सृष्टि में कहीं कोई नहीं थी ॥१४॥ वे गुणों की जननी हैं, अतः सभी और सब प्रकार के सद्गुणों को धारण करती हैं । समस्त देवपत्नियाँ उनकी सोलहवीं कला के भी समान नहीं थीं ॥१५॥ जैसे शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा की कला बढ़ती है, उसी तरह हिमालय के घर में वे देवी दिनों-दिन बढ़ने लगीं । जब वे युवावस्था को प्राप्त हुईं तब उन जगदम्बा को सम्बोधित करके आकाशवाणी ने कहा—"हे शिवे ! कठोर तपस्या द्वारा शिव को प्राप्त करो । क्योंकि तपस्या के बिना ईश्वर को पाना अथवा उनके अंश से गर्भ धारण करना असंभव है ।" यह आकाशवाणी सुनकर यौवन के गर्व से भरी हुई पार्वती हँसकर चुप रहीं । वे मन-ही-मन सोचने लगीं कि जो मेरे पूर्वजन्म की अस्थियाँ और भस्म धारण करते हैं, वह इस जन्म में मुझे इस प्रौढ़ारूप में देखकर क्यों नहीं ग्रहण करेंगे ? ॥१६-१९॥ जो चतुर होकर भी मेरे शोक के कारण समस्त ब्रह्माण्ड में भटकते फिरे; वे ही मुझ परम सुन्दरी को देखकर क्यों नहीं अपनायेंगे ? ॥२०॥ जिन कृपानिधान ने मेरे ही कारण दक्ष-यज्ञ का विध्वंस किया था, वे जन्म-जन्मान्तर की मुझ पत्नी को क्यों नहीं ग्रहण करेंगे ? ॥२१॥ पूर्वजन्म में जो जिसकी पत्नी है और जो जिसका पति है, संसार में उन दोनों में भेद कैसे हो सकता है ? प्रारब्ध को कोई पलट नहीं सकता ॥२२॥ अत्यन्त अभिमान के कारण अपने को समस्त सौन्दर्य और

सर्वरूपगुणाधारं मत्वा स्वमतिमानतः । न चकार तपः साध्वी न विज्ञाय तमीश्वरम् ॥२३॥
सुन्दरीषु च सर्वासु मत्तो नास्त्येव सुन्दरी । हृदीति मत्वा गर्वेण न चकार तपः शिवा ॥२४॥
रूपयौवनवेषाणां पुमान्ग्राही स्वयोषिताम् । शिवो मच्छ्रुतिमात्रेण मां गृह्णाति विना तपः ॥२५॥
हृदीति मत्वा गिरिजा तस्थौ हिमगिरेर्गृहे । शश्वत्सहचरीमध्ये क्रीडोन्मत्ता दिवानिशम् ॥२६॥
एतस्मिन्नन्तरे तूर्णं दूतः शैलेन्द्रसंसदि । उवाचाऽऽगत्य मधुरं तत्पुरः संपुटाञ्जलिः ॥२७॥

## दूत उवाच

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ शैलेन्द्र गच्छाक्षयवटान्तिकम् । आजगाम महादेवः सगणो वृषवाहनः ॥२८॥
मधुपर्कादिकं दत्त्वा भक्तिनम्रात्मकंधरः । पूजनं कुरु शैलेन्द्र देवेन्द्रं तमतीन्द्रियम् ॥२९॥
सिद्धिस्वरूपं सिद्धेशं योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुम् । मृत्युञ्जयं कालकालं ब्रह्मज्योतिः सनातनम् ॥३०॥
परमात्मस्वरूपम् च सगुणं निर्गुणं विभुम् । भक्तध्यानार्थममलं दधानं देहमीश्वरम् ॥३१॥
शैलो दूतवचः श्रुत्वा समुत्तस्थौ मुदाऽन्वितम् । मधुपर्कादिकं नीत्वा जगाम शंकरान्तिकम् ॥३२॥
देवी दूतवचः श्रुत्वा प्रसन्नवदनेक्षणा । हृदीति मेने मद्धेतोराजगाम महेश्वरः ॥३३॥
चकार वेषमतुलं दधार वस्त्रमुत्तमम् । रत्नेन्द्रसारालंकारान्रत्नमालां मनोहराम् ॥३४॥
पारिजातप्रसूनानां मालां चन्दनसंयुताम् । चकार शंकरार्थं च मत्वा मालां मनोहराम् ॥३५॥

---

गुणों का आधार मानकर पार्वती ने तप नहीं किया और शिव को ईश्वर नहीं समझा ॥२३॥ समस्त सुन्दरियों में कोई स्त्री मेरे समान सुन्दरी नहीं है; अपने हृदय में गर्व करके पार्वती ने तप नहीं किया ॥२४॥ रूप, यौवन और उत्तम वेशवाली अपनी पत्नी को पुरुष अपनाता ही है, अतः मुझे सुनते ही शिव बिना तप किये मुझे स्वीकार करेंगे, ऐसा अपने हृदय में निश्चय करके गिरिजा हिमवान् के घर ही रहकर सखियों के बीच दिन-रात निरन्तर खेल में ही मस्त रहने लगीं (तप के लिए नहीं गयीं) ॥२५-२६॥ इसी बीच गिरिराज की सभा में बड़ी शीघ्रता से दूत आकर हाथ जोड़कर मधुर वाणी में कहने लगा ॥२७॥

**दूत बोले**—शैलराज ! उठिये । अक्षयवट के समीप जाइये । वहाँ वृषवाहन महादेव अपने गणों के साथ पधारे हैं ॥२८॥ मधुपर्क आदि देकर भक्ति से कंधे झुकाकर, हे शैलेन्द्र ! उन इन्द्रियातीत देवेन्द्र का पूजन कीजिये । वे सिद्धिस्वरूप, सिद्धेश, योगिराजों के गुरु के गुरु, मृत्युजेता, काल के काल, ब्रह्मज्योति, सनातन, परमात्म स्वरूप, सगुण, निर्गुण, व्यापक और भक्तों के ध्यानार्थ निर्मल महेश्वर रूप धारण किये हुए हैं ॥२९-३१॥ दूत की बात सुनकर पर्वतराज प्रसन्नता से उठे और मधुपर्क आदि लेकर शङ्कर के पास पहुँचे ॥३२॥ दूत की बात सुनकर देवी पार्वती के नेत्र प्रसन्नता से खिल उठे । उन्होंने हृदय में मान लिया कि महेश्वर मेरे ही लिए यहाँ आये हैं ॥३३॥ उन्होंने अपना अनुपम वेश बनाया, उत्तम वस्त्र, रत्नेन्द्रों के सारभाग के बने आभूषणों और मनोहर रत्नमाला धारण की ॥३३॥ फिर शिव के निमित्त चन्दनयुक्त पारिजात पुष्पों की माला बनायी । उसको मनोहर मानकर रत्न-

रत्नसिंहासनस्था सा ददर्श दर्पणे मुखम् । कस्तूरीबिन्दुना सार्धं सिन्दूरबिन्दुभूषितम् ।।३६।।
आरक्तनेत्रयुगलं निर्मलाञ्जनसंयुतम् । शरन्मध्याह्नकमलं यथाऽलिपङ्क्तिवेष्टितम् ।।३७।।
सुकोमलौष्ठयुगलं ताम्बूलरागसंयुतम् । अतीव सुन्दरं रम्यपक्वबिम्बफलं यथा ।।३८।।
रत्नकुण्डलदीप्त्या च गण्डस्थलविराजितम् । सूर्योदयेन ज्वलितं सुमेरुशिखरं यथा ।।३९।।
अत्यनिर्वचनीयं च दन्तपङ्क्तिमनोहरम् । यथा मुक्तासमूहं च सजलं जलदागमे ।।४०।।
गजमुक्तासमायुक्तं सुचारुनासिकोत्तमम् । सुशोभितं यथा मेरुं स्वर्णदीजलधारया ।।४१।।
मालतीमाल्यसंयुक्तकबरीभारसंयुतम् । बकपङ्क्तिसुशोभाढ्यं नवीनं जलदं यथा ।।४२।।
तप्तकाञ्चनवर्णाभं चारुवक्षःस्थलोज्ज्वलम् । रत्नेन्द्रसारहारावतं कस्तूरीकुङ्कुमान्वितम् ।।४३।।
चारुचम्पकवर्णाभं स्तनयुग्मं मनोहरम् । बदरीफलतुल्यं च चारुपत्रकशोभिताम् ।।४४।।
मध्यं मनोहरं क्षीणं निम्ननाभिस्थलोज्ज्वलम् । अतीव सुन्दरं रम्यमुदरं वर्तुलाकृति ।।४५।।
रम्भास्तम्भविनिन्द्यैकमुरुयुग्मं मनोहरम् । कामालयं सुकठिनं निगूढमंशुकेन च ।।४६।।
स्थलपद्मप्रभामुष्टपदयुग्मं मनोहरम् । रत्नपाशकसंयुक्तं सिद्धालक्तकभूषितम् ।।४७।।
दधतं रत्नमञ्जीरं राजहंसानुकारि च । रत्नेन्द्रसाराभरणं निर्मितं विश्वकर्मणा ।।४८।।

---

सिंहासन पर बैठकर उन्होंने दर्पण में अपना मुख देखा, जो कस्तूरी की बिन्दी के साथ सिन्दूर की बिन्दी से भूषित था। शिवा के दोनों नेत्र कुछ लालिमायुक्त एवं निर्मल अञ्जन से पूर्ण थे और वे शरद् ऋतु की दोपहरी में भ्रमरों की पंक्तियों से घिरे निर्मल कमल की भाँति मालूम होते थे ।।३५-३७।। उनके दोनों ओंठ अति कोमल और ताम्बूल की-सी लालिमा से युक्त, रम्य एवं पके बिम्बाफल के समान अति सुन्दर थे ।।३८।। जिस प्रकार सूर्योदय होने पर सुमेरु पर्वत का शिखर चमकने लगता है, उसी भाँति रत्न के बने कुण्डलों की किरणों द्वारा (शिवा का) गण्डस्थल सुशोभित हो रहा था ।।३९।। उनके दाँतों की मनोहर पंक्ति अत्यन्त अनिर्वचनीय थी, मानो वर्षाकाल में सजल मोतियों का समूह हो ।।४०।। गङ्गा की जलधारा से सुशोभित मेरु की भाँति उनकी अति सुन्दर नासिका गजमुक्ता से विभूषित थी ।।४१।। जिस भाँति नवीन (श्यामल) मेघ बक-पंक्तियों से अत्यन्त सुशोभित होता है, उसी भाँति उनका केशपाश मालती की माला से अति मनोहर था ।।४२।। रत्नेन्द्रों के सारभाग के बने हार और कस्तूरी कुंकुम से युक्त उनका वक्षःस्थल तपाये सुवर्ण की भाँति अत्यन्त प्रकाशमान था ।।४३।। उत्तम पत्र-रचना से अलंकृत बेर के बराबर दोनों स्तन अति मनोहर थे ।।४४।। (शरीर का) मध्यभाग मनोहर और क्षीण था। गहरी नाभि का प्रदेश प्रकाशमान था। उदर गोलाकार, रम्य एवं अत्यन्त सुन्दर था ।।४५।। जाँघें कदली स्तम्भ को तिरस्कृत करनेवाली एवं मनोहर थीं। कामालय (भग) अति कठोर एवं वस्त्र से सुगुप्त था ।।४६।। स्थल कमल की प्रभा को चुरानेवाले मनोहर चरण युगल रत्नों के पाशक (पायल ! आभूषण) से युक्त और सिद्ध अलक्तक (आलता) से विभूषित थे ।।४७।। उन्होंने राजहंस के (शब्दों) का अनुकरण करनेवाले रत्नों के नूपुरों को धारण कर रखा था। विश्वकर्मा ने उनके लिए रत्नेन्द्रों के सार भाग से आभूषणों को बनाया था ।।४८।।

करं सुकोमलतरं सुन्दरं कनकप्रभम् । रत्नकङ्कणकेयूरशङ्खभूषणभूषितम् ॥४९॥
बिभ्रत्सद्रत्नमुकुरं[1] लीलाकमलमुज्ज्वलम् । रत्नाङगुलीयमतुलं दधनं सुमनोहरम् ॥५०॥
दृष्ट्वा स्वरूपमतुलं दध्यौ शंकरमीश्वरम् । विशिष्य मनसा शश्वद्भर्तुश्चरणपङ्कजम् ॥५१॥
पितरं मातरं बन्धुं साध्वीवर्गं सहोदरम् । अन्तरे सा न सस्मार किंचिदेव शिवं विना ॥५२॥
अथ शैलेश्वरस्तत्र ददर्श चन्द्रशेखरम् । स्वर्णदीपुलिनाद्रम्यादुत्पतन्तं च सस्मितम् ॥५३॥
दधतं संस्कृतां मालां जपन्तं मम नामकम् । तप्तस्वर्णप्रभाजुष्टजटाराशिविराजितम् ॥५४॥
वृषभस्थं शूलपाणिं सर्वभूषणराजितम् । नागयज्ञोपवीतं च सर्वभूषणभूषितम् ॥५५॥
शुद्धस्फटिकसंकाशं व्याघ्रचर्मधरं परम् । विभूतिभूषिताङ्गं तमस्थिमालं दिगम्बरम् ॥५६॥
पञ्चवक्त्रं त्रिनयनं सूर्यकोटिसमप्रभम् । ददर्श रुद्रान्परितो ज्वलतो ब्रह्मतेजसा ॥५७॥
शिववामे महाकालं दक्षिणे नन्दिकेश्वरम् । भूतप्रेतपिशाचांश्च कूष्माण्डान्ब्रह्मराक्षसान् ॥५८॥
वेतालान्क्षेत्रपालांश्च भैरवान्भीमविक्रमान् । सनकं च सनन्दं च कुमारं च सनातनम् ॥५९॥
जैगीषव्यं देवलं च काणादं गौतमं तथा । पिप्लादं कणखनं वोढुं पञ्चशिखं कठम्[2] ॥६०॥
जार्जलि[3] करखं[4] कर्णं लोमशं सूर्यवर्चसम् । कात्यायनं पार्णिनि च शङ्खं दुर्वाससं ततः ॥६१॥

---

उनके सुवर्ण की-सी प्रभावाले सुन्दर हाथ अत्यन्त कोमल थे। उनमें रत्नों के कंकण, केयूर एवं शंख के आभूषण शोभायमान थे ॥४९॥ उनके हाथों में उत्तम रत्न का दर्पण, उज्ज्वल लीला कमल एवं रत्नों की अनुपम सुन्दर अंगूठी शोभित थी ॥५०॥ अपने ऐसे अनुपम स्वरूप को देखकर उन्होंने ईश्वर शिव का ध्यान किया, विशेष करके मन से पति के चरण-कमल का निरन्तर ध्यान किया ॥५१॥ उस बीच शिव के अतिरिक्त पिता, माता, बन्धु, साध्वीवर्ग या सखी वर्ग या सहोदर किसी का स्मरण नहीं किया ॥५२॥ गिरिराज ने वहाँ पहुँचकर चन्द्रशेखर शिव को देखा। वे मुस्कराते हुए गङ्गा के रमणीक तट से ऊपर को आ रहे थे ॥५३॥ वे संस्कारयुक्त माला को पहने मेरे नाम का जप कर रहे थे; तपे सुवर्ण की प्रभा से युक्त जटा से सुशोभित थे; वृषभ पर विराजमान होकर हाथ में त्रिशूल लिये समस्त आभूषणों से भूषित थे; नाग का यज्ञोपवीत पहने सर्पमय भूषणों से सुशोभित थे; उनकी अंगकान्ति शुद्ध स्फटिक के समान उज्ज्वल थी; व्याघ्रचर्म धारण किये, हड्डियों की माला पहने तथा अंगों में विभूति रमाये वे बड़ी शोभा पा रहे थे; दिगम्बर वेश, पाँच मुख और प्रत्येक मुख में तीन-तीन नेत्र थे; उनके श्री-अंगों से करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाश फैल रहा था; हिमवान् ने उनके चारों ओर एकादश रुद्रों को देखा, जो ब्रह्मतेज से प्रकाशमान थे ॥५४-५७॥ शिव के वामभाग में महाकाल और दाहिने भाग में नन्दिकेश्वर खड़े थे, भूत, प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड, ब्रह्मराक्षस, वेताल, क्षेत्रपाल, भीमपराक्रमी भैरव, सनक, सनन्द, सनत्कुमार, सनातन, जैगीषव्य, देवल, काणाद, गौतम, पिप्पलाद, कणखन, वोढु, पञ्चशिख, कठ, जार्जलि, कण्व,

---

१ ख. मुकुटम् । २ ख. कचम् । ३ ख. जाबालिम् । ४ ख. कण्वं कण्वम् ।

शातातपं पारिभद्रमष्टावक्रं मरुद्भवम् । एतान्पुरोगमान्नत्वा प्रणनाम शिवं गिरिः ॥६२॥
मूर्ध्ना निपत्य भूमौ स दण्डवत्संपुटाञ्जलिः । अथो अनल्पया भक्त्या धृत्वा तच्चरणाम्बुजम्
ननाम चाश्रुनेत्रः स पुलकाञ्चितविग्रहः ॥६३॥
धर्मदत्तेन स्तोत्रेण तुष्टाव परमेश्वरम् । तुष्टे ब्राह्मे दिनेऽतीते पुष्करे सूर्यपर्वणि ॥६४॥

## हिमालय उवाच

त्वं ब्रह्मा सृष्टिकर्ता च त्वं विष्णुः परिपालकः । त्वं शिवः शिवदोऽनन्तः सर्वसंहारकारकः ॥६५॥
त्वमीश्वरो गुणातीतो ज्योतीरूपः सनातनः । प्रकृतः प्रकृतीशश्च प्राकृतः प्रकृतेः परः ॥६६॥
नानारूपविधाता त्वं भक्तानां ध्यानहेतवे । येषु रूपेषु यत्प्रीतिस्तत्तद्रूपं बिभर्षि च ॥६७॥
सूर्यस्त्वं सृष्टिजनक आधारः सर्वतेजसाम् । सोमस्त्वं सस्यपाता च सततं शीतरश्मिना ॥६८॥
वायुस्त्वं वरुणस्त्वं च त्वमग्निः सर्वदाहकः । इन्द्रस्त्वं देवराजश्च कालो मृत्युर्यमस्तथा ॥६९॥
मृत्युंजयो मृत्युमृत्युः कालकालो यमान्तकः । वेदस्त्वं वेदकर्ता च वेदवेदाङ्गपारगः ॥७०॥
विदुषां जनकस्त्वं च विद्वांश्च विदुषां गुरुः । मन्त्रस्त्वं हि जपस्त्वं हि तपस्त्वं तत्फलप्रदः ॥७१॥
वाक् त्वं वागधिदेवी त्वं तत्कर्ता तद्गुरुः स्वयम् । अहो सरस्वतीबीजं कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः ॥७२॥

---

कर्ण, तोमश, सूर्यवर्चा, कात्यायन, पाणिनि, दुर्वासा, शातातप, पारिभद्र, अष्टावक्र और मरुद्भव उनके सामने खड़े थे। हिमालय ने उन्हें नमस्कार करके शिव को प्रणाम किया ॥५८-६२॥ पृथ्वी पर माथा टेककर दण्ड की भाँति पड़कर दोनों हाथ जोड़ लिये। अनन्तर बड़ी भक्ति से उनका चरणकमल पकड़कर सजल नेत्र से उन्हें पुनः नमस्कार किया। उस समय उनके शरीर में रोमाञ्च हो गया और नेत्रों से आंसू बहने लगे। तब धर्म के दिये हुए स्तोत्र द्वारा शिव की स्तुति आरम्भ की। वह स्तोत्र ब्राह्म दिन बीत जाने पर पुष्कर क्षेत्र में सूर्य-पर्व के अवसर पर धर्म ने दिया था ॥६३-६४॥

**हिमालय बोले**—आप सृष्टि करनेवाले ब्रह्मा, भली-भाँति पालन करनेवाले विष्णु, कल्याणप्रद शिव तथा सबका संहार करनेवाले अनन्त हैं ॥६५॥ आप ईश्वर, गुणों से परे, ज्योतिरूप, सनातन, प्रकृत, प्रकृति के ईश, प्राकृत और प्रकृति से परे हैं ॥६६॥ भक्तों के ध्यान करने के लिए आप अनेक रूप धारण करते हैं। जिन रूपों में जिसकी प्रीति है, उसके लिए आप वही रूप धारण करते हैं ॥६७॥ आप सृष्टिजनक सूर्य हैं। समस्त तेजों के आधार हैं तथा शीतल किरण द्वारा सदा कृषि की रक्षा करनेवाले चन्द्रमा हैं ॥६८॥ आप वायु, वरुण, सर्वदाहक अग्नि, देवराज इन्द्र, काल, मृत्यु, यम, मृत्युञ्जय, मृत्यु के मृत्यु, काल के काल, यम के यम, वेद, वेदकर्ता, वेद-वेदाङ्ग के पारगामी विद्वान्, विद्वानों के जनक, विद्वान्, विद्वानों के गुरु, मन्त्र, जप, तप, उसके फलदाता, वाणी, वाणी की अधिष्ठात्री देवी, उसके कर्ता और स्वयं उसके गुरु हैं। अहो ! सरस्वती का बीज अद्भुत है।

इत्येवमुक्त्वा शैलेन्द्रस्तस्थौ धृत्वा पदाम्बुजम् । तत्रोवास तमाबोध्य चावरुह्य वृषाच्छिवः ॥७३॥
स्तोत्रमेतन्महापुण्यं त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः । मुच्यते सर्वपापेभ्यो भयेभ्यश्च भवार्णवे ॥७४॥
अपुत्रो लभते पुत्रं मासमेकं पठेद्यदि । भार्याहीनो लभेद्भार्यां सुशीलां सुमनोहराम् ॥७५॥
चिरकालगतं वस्तु लभते सहसा ध्रुवम् । राज्यभ्रष्टो लभेद्राज्यं शंकरस्य प्रसादतः ॥७६॥
कारागारे श्मशाने च शत्रुग्रस्तेऽतिसंकटे । गभीरेऽतिजलाकीर्णे भग्नपोतेः विषादने ॥७७॥
रणमध्ये महाभीते हिंस्रजन्तुसमन्विते । सर्वतो मुच्यते स्तुत्वा शंकरस्य प्रसादतः ॥७८॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० पार्वतीगर्वभङ्गप्रस्तावेऽष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥३८॥

---

यहाँ कौन आपकी स्तुति कर सकता है ? ॥६९-७२॥ इस प्रकार कहकर पर्वतराज उनका चरण-कमल पकड़कर वहीं खड़े रहे। तब शिव वृषभ पर से उतरकर हिमवान् को उद्बोधन देकर वहीं बैठ गये ॥७३॥ जो तीनों संध्याओं में इस महापुण्य स्तोत्र का पाठ करता है वह भवसागर के समस्त पापों और भयों से मुक्त हो जाता है ॥७४॥ एक मास पाठ करने से पुत्रहीन को पुत्र, स्त्रीहीन को सुशील और अति मनोहर पत्नी एवं चिरकाल की खोयी वस्तु सहसा निश्चित रूप से प्राप्त होती है। शिव के प्रसाद से राज्यभ्रष्ट को पुनः राज्य की प्राप्ति होती है। कारागार, श्मशान और शत्रु-संकट में पड़ने पर तथा अति अगाध जल में नौका के टूट जाने पर तथा हिंसक जन्तुओं से घिर जाने पर इस स्तुति का पाठ करके मनुष्य शंकर की कृपा से समस्त भयों से मुक्त हो जाता है ॥७५-७८॥

श्री ब्रह्मवैवर्तपुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारायण-नारद-संवाद में पार्वती-गर्व-भङ्ग के प्रस्ताव में अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३८॥

# अथैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

## श्रीकृष्ण उवाच

इति स्तुत्वा हिमगिरिर्वसतः शंकरस्य च। उवास पुरतो दूरे लब्धाज्ञः सर्वसंमतः ॥१॥
मधुपर्कादिकं तस्मै प्रददौ भक्तिपूर्वकम्। मुनीन्संपूजयामास ततः शंकरपार्षदान् ॥२॥
तदा तत्र समागत्य मेनका स्त्रीगणैः सह। ददर्श वटमूलस्थं शंकरं चन्द्रशेखरम् ॥३॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं वसन्तं व्याघ्रचर्मणि। मध्ये मुनिगणानां च ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ॥४॥
यथाऽऽकाशे तारकाणां द्विजराजं विराजितम्। परमाह्लादकं रूपं कन्दर्पकोटिसंनिभम् ॥५॥
विहाय वार्द्धकावस्थां दधतं नवयौवनम्। अतीव सुन्दरं रम्यं चित्तचोरं च योषिताम् ॥६॥
कामं कामातुराणां च सतीनां च सुतं यथा। वैष्णवानां महाविष्णुं शैवानां च सदाशिवम् ॥७॥
शक्तिस्वरूपं शाक्तानां सौराणां सूर्यरूपिणम्। कालस्वरूपं दुष्टानां शिष्टानां परिपालकम् ॥८॥
कालकालसमं मृत्योर्मृत्युमृत्युं भयानकम्। व्याघ्रचर्मचारुवस्त्रं बभूव भस्मचन्दनम् ॥९॥
सर्पाः सुन्दरमाल्यानि कस्तूरी या विषप्रभा। जटा सुललिता चूडा चन्द्रस्त्वलिकचन्दनम् ॥१०॥

---

# अध्याय ३९

## पार्वती का दर्प-भंग

**श्रीकृष्ण बोले**—वहां ठहरे हुए शिव की स्तुति करके हिमवान् शिव की आज्ञा और सर्वसम्मति प्राप्त करके उन्हीं के सामने दूर बैठ गये ॥१॥ वहीं से शिव को भक्तिपूर्वक मधुपर्क आदि समर्पित करके उन्होंने मुनियों और शिव के पार्षदों की अर्चना की ॥२॥ तदनन्तर स्त्रीसमूहों को साथ लिये मेना वहाँ आयीं और वट-वृक्ष के मूल में अवस्थित चन्द्रशेखर शिव को उसने देखा, जो मन्दहास करते हुए प्रसन्नमुख, बाघम्बर पर बैठे, मुनियों के मध्य ब्रह्मतेज से प्रज्वलित होते हुए इस भाँति दिखायी दे रहे थे, जैसे आकाश में तारों के बीच चन्द्रमा सुशोभित हो। करोड़ों काम के समान उनका रूप परम आनन्दप्रद था ॥३-५॥ उस समय शिव वृद्धावस्था को त्यागकर नवयौवन धारण किये हुए थे। वे अत्यन्त सुन्दर, रमणीक एवं स्त्रियों के चितचोर थे ॥६॥ वे कामातुर स्त्रियों को काम, पतिव्रताओं को पुत्र, वैष्णवों को महाविष्णु, शैवों को सदाशिव, शाक्तों को शक्तिस्वरूप, सौरों को सूर्यरूप, दुष्टों को कालरूप, शिष्टों को परिपालक, काल को काल और मृत्यु को भयानक मृत्यु जान पड़ते थे। उनका व्याघ्रचर्म मनोहर वस्त्र बन गया, भस्म चन्दन हो गया, सर्प सुन्दर मालाओं के रूप में परिणत हो गये। कालकूटविष की प्रभा कस्तूरी के समान प्रतीत हुई और जटा सुन्दर शिखा बन गयी। चन्द्रमा भाल देश में चन्दन जान पड़े। मस्तक पर गङ्गा की मनोहर धारा अतिसुन्दर मालती माला बन गयी। अस्थियों की माला

सुचार्वी मालतीमाला गङ्गाधारा मनोहरा। अस्थिमाला रत्नमाला धत्तूरं चारुचम्पकम् ॥११॥
एकीभूतं पञ्चवक्त्रं नेत्रयुग्माब्जशोभितम्। शरत्पार्वणचन्द्राभां प्रच्छाद्य दीप्तमुत्तमम् ॥१२॥
बन्धुजीवविनिन्द्यैकमोष्ठाधरमनोहरम्। श्वेतश्चन्द्रो वृषेन्द्रश्च भूताद्या नर्तका इव ॥१३॥
सद्यो व्यतिक्रमं सर्वं महेशस्य महेश्वरि। दृष्ट्वैवं शिवरूपं च मेना तुष्टा बभूव ह ॥१४॥
काश्चिन्निमेषरहिताः कामेन पुलकाञ्चिताः। अतिकामातुराः सत्यः प्रापुर्मूर्च्छां च काश्चन ॥१५॥
काश्चिद्विनिन्द्य कान्तांश्च प्रशशंसुर्महेश्वरम्। मनोरथेन मनसा समाश्लिष्यन्ति काश्चन ॥१६॥
काचिन्मानसिकं कामात्कुर्वन्ती चुम्बनं मुदा। ध्रुवं कामं करिष्यामो वयं च कामसागरे ॥१७॥
अस्माकमेवं भर्ता चेत्परत्र[1] च यतो भवेत्। इहैवं[2] किं करिष्यामो वयं कान्तं रतंरलम् ॥१८॥
दृष्ट्वा तमेवं सुचिरमिति जल्पन्ति काश्चन ॥१९॥
काश्चिद्दृष्ट्वा शिवं किंचिन्मुख माच्छाद्य वाससा। सस्मिता वक्रनयनाः पश्यन्त्येवं पुनः पुनः ॥२०॥
वयं गृहं न यास्यामो यास्यामः शिवसंनिधिम्। शरत्सुधांशुवदनं द्रक्ष्यामोऽहर्निशं मुदा ॥२१॥
संसारं न करिष्यामः प्रविशामो हुताशनम्। भविता नः शिवः स्वामीत्येवं जल्पन्ति काश्चन ॥२२॥

---

रत्नमाला हो गयी और धतूर मनोहर चम्पा के रूप में बदल गया ॥७-११॥ पाँच मुख के स्थान में उन्हें एक ही मुख दिखायी देने लगा, जो दो नेत्रकमलों से शोभित था। मुख शारदीय पूर्णिमा के चन्द्रमा की आभा को आच्छादित करके देदीप्यमान हो रहा था। बन्धुजीव (दुपहरिया) की लालिमा को तिरस्कृत करनेवाले उनके ओष्ठ और अधर से मुख की मनोहरता बढ़ गयी थी। श्वेत चन्द्रमा ही मानो वृषभराज नन्दी और भूत आदि नर्तक की भाँति दिखायी देते थे ॥१२-१३॥ हे महेश्वरि! शंकर का सब कुछ सद्यः बदल गया। उनका ऐसा रूप देखकर मेना सन्तुष्ट हुई ॥१४॥ कुछ स्त्रियाँ काम से रोमाञ्चित हो शिव को टकटकी बाँधकर देखने लगीं। कुछ अति कामातुर होकर मूर्च्छित हो गयीं ॥१५॥ कुछ अपने पतियों की निन्दा करके महेश्वर की प्रशंसा करने लगीं, कुछ अपने मनोरथानुसार उनका मानसिक आलिंगन करने लगीं ॥१६॥ कुछ स्त्रियाँ कामवश उनका मानसिक चुम्बन करती हुई मन में कह रही थीं कि हम कामसागर में निश्चित ही (इनसे) कामोपभोग करेंगी ॥१७॥ मरने पर भी हमारे ऐसे स्वामी होते, क्योंकि यहाँ इस प्रकार हम क्या करेंगी? अनुरक्त पतियों से भी क्या करना है? ॥१८॥ शिव को बहुत काल तक इस प्रकार देखकर कुछ स्त्रियाँ (इस प्रकार) विचार प्रकट कर रही थीं ॥१९॥ कुछ तो शिव को देखकर वस्त्र से थोड़ा मुख ढककर मन्दमुस्कान करती हुई बार-बार उन पर तिरछी चितवन डाल रही थीं ॥२०॥ कुछ कह रही थीं कि—हम घर नहीं जायेंगी, शिव के पास चलेंगी। उनके शारदीय चन्द्रमा के समान मुख को रात-दिन देखेंगी ॥२१॥ अब हम संसार में नहीं फँसेंगी, अग्नि में प्रवेश करेंगी, हमारे

---

१ ख. रत्रैव यशो भ॰। २ क. इहैवंकं करिष्यामो वयं कान्तं रतो रतम्।

अहो पुण्यवती दुर्गा श्लाघ्यते[1] जन्म भारते। यस्या अयं शिवः स्वामीत्येवं जल्पन्ति काश्चन ॥२३॥
मुदा मेना शिवं दृष्ट्वा गृहं ताभिर्जगाम ह। शिवं संपूज्य शैलेन्द्रः प्रणम्य स्वगृहं ययौ ॥२४॥
कृत्वाऽनुमानं रहसि गिरीशो मेनया सह। दुर्गां प्रस्थापयामास शिवाय शिवसंनिधिम् ॥२५॥
पार्वती सखिभिः सार्धं वेषं कृत्वा मनोहरम्। भावानुरक्ता हर्षेण जगाम शिवसंनिधिम् ॥२६॥
दृष्ट्वा शिवा शिवं शान्तं प्रसन्नवदनेक्षणम्। सप्तप्रदक्षिणं कृत्वा सस्मिता प्रणनाम सा ॥२७॥
अनन्यभावं गुणिनममरं ज्ञानिनां वरम्। सुन्दरं लभ भर्तारं सुन्दरीत्याशिषं ददौ ॥२८॥
भविता तव सौभाग्यं शुभे स्वामिनि संततम्। पुत्रस्ते भविता साध्वि नारायणसमो गुणैः ॥२९॥
भविता ते परा पूजा त्रैलोक्ये जगदम्बिके। ब्रह्माण्डेषु च सर्वेषु सर्वेषां च परा भव ॥३०॥
सप्त प्रदक्षिणाः कृत्वा यतो भक्त्या त्वया नतम्। सप्तजन्मनि तुष्टोऽहं तत्फलं लभ सुन्दरि ॥३१॥
तीर्थे कान्तेऽभीष्टदेवे गुरौ मन्त्रे तथौषधे। आस्था च यादृशी यासां सिद्धिस्तासां च तादृशी ॥३२॥
इत्युक्त्वा शंकरस्तूर्णं ब्रह्मज्योतिः परं च माम्। दध्यौ योगासनं कृत्वा योगीशो व्याघ्रचर्मणि ॥३३॥
प्रक्षाल्य चरणौ देवी पपौ तच्चरणोदकम्। चकार मार्जनं भक्त्या वह्निशौचेन वाससा ॥३४॥
रत्नसिंहासनं रम्यं विश्वकर्मादिनिर्मितम्। अपूर्वं कांस्यपात्रस्थं नैवेद्यं प्रददौ किल ॥३५॥

---

स्वामी शिव होंगे—इस प्रकार कुछ स्त्रियाँ कह रही थीं ॥२२॥ अहो दुर्गा बड़ी पुण्यवती है। भारतवर्ष में इसका जन्म स्पृहणीय है, क्योंकि ये शिव इसके स्वामी होनेवाले हैं—इस प्रकार कुछ ललनाएँ आपस में कह रही थीं ॥२३॥ मेना शिव का दर्शन करके हर्ष से उन स्त्रियों के साथ घर गयीं। हिमालय भी शिव का पूजन और प्रणामकर अपने घर गये ॥२४॥ पर्वतराज ने मेना के साथ एकान्त में परामर्श करके कल्याण के लिए पार्वती को शिव के समीप भेज दिया ॥२५॥ पार्वती सखियों के साथ मनोहर वेश बनाकर हर्ष से भावानुरक्त होकर शिव के समीप पहुँची ॥२६॥ वहाँ प्रसन्नमुख और नेत्रवाले शान्त शिव को देखकर शिवा ने सात बार परिक्रमा की और मुसकराकर उन्हें प्रणाम किया ॥२७॥ उस समय शंकर ने आशीर्वाद देते हुए कहा—सुन्दरि! तुम्हें अनन्य प्रेमी, गुणवान्, अमर, ज्ञानिश्रेष्ठ और सुन्दर पति प्राप्त हो। शुभे! तुम्हारा पतिविषयक सौभाग्य सतत बना रहे। साध्वि! तुम्हारा पुत्र नारायण के समान गुणवान् होगा। जगदम्बिके! तीनों लोकों में तुम्हारी उत्कृष्ट पूजा होगी। तुम समस्त ब्रह्माण्डों में सबसे श्रेष्ठ होओ। सुन्दरी! तुमने सात प्रदक्षिणा करके भक्तिपूर्वक नमस्कार किया है, अतः मैं सात जन्मों के लिए सन्तुष्ट हो गया। तुम उसका फल पाओ। तीर्थ, पति, इष्टदेव, गुरु, मंत्र और औषध में जिन स्त्रियों की जैसी भावना रहती है उन्हें वैसी ही सिद्धि भी प्राप्त होती है। इतना कहकर योगीश्वर शिव ने बाघम्बर पर योगासन लगाकर मुझ ब्रह्मज्योति का ध्यान करना आरम्भ कर दिया ॥२८-३३॥ तब देवी ने उनका चरण धोकर उस चरणामृत का पान किया, भक्तिवश अग्निविशुद्ध वस्त्र से पोंछा ॥३४॥ विश्वकर्मा आदि द्वारा सुरचित रम्य रत्न-सिंहासन अर्पित किया। फिर काँसे के पात्र में अपूर्व नैवेद्य प्रदान किया ॥३५॥ उनके चरणों में गंगाजल से युक्त अर्घ्य

---

१ क. श्लाघ्यं ते जं।

अर्घ्यं मन्दाकिनीतोयसंयुक्तं चरणे ददौ। सुगन्धिचन्दनं चारुकस्तूरीकुङ्कुमान्वितम्
प्रददौ मालतीमालां गले गरलसुन्दरे ॥३६॥
भक्त्या पूजां चकाराथ पुष्पवृष्टिं च तुष्टये। पीयूषं स्वर्णपात्रस्थं प्रददौ मधुरं मधु ॥३७॥
रत्नप्रदीपशतकं समन्ताद्धूपमुत्तमम्। त्रैलोक्यदुर्लभं वस्त्रं स्वर्णयज्ञोपवीतकम् ॥३८॥
सुगन्धिशीततोयं च पानार्थं पार्वती ददौ। अतीव सुन्दरं रम्यं रत्नसारेन्द्रभूषणम् ॥३९॥
दुर्लभां कामधेनुं च स्वर्णशृङ्गसमन्विताम्। स्नानीयं तीर्थतोयं च ताम्बूलं च मनोहरम् ॥४०॥
दत्त्वा षोडशोपचारं प्रणनाम पुनः पुनः। संपूज्य शूलिनं भक्त्या ययौ नित्यं पितुर्गृहम् ॥४१॥
शुश्रावाप्सरसां वक्त्राद्देवीमिन्द्रो महेश्वरः। श्रुत्वा वार्तां शुनासीरो ननर्त हर्षसंयुतः ॥४२॥
दूतद्वारा कामदेवमानिनाय त्वरान्वितः। इन्द्राज्ञया कामदेवः प्रजगामामरावतीम् ॥४३॥
तूर्णं प्रस्थापयामास तं च यत्र शिवः शिवा। पञ्चसायकसंयुक्तो जगाम पञ्चसायकः ॥४४॥
प्रसन्नवदनः श्रीमान्यत्र शक्तियुतः शिवः। गत्वा ददर्श मदनः शिवायुक्तं शिवं विभुम् ॥४५॥
शान्तं त्रैलोक्यकान्तं च प्रसन्नवदनेक्षणम्। कामः स्थितोऽन्तरिक्षे च धृत्वा च सशरं धनुः ॥४६॥
चिक्षेपास्त्रं दुर्निवार्यममोघं शंकरे मुदा। बभूवामोघमस्त्रं च मोघं तत्परमात्मनि ॥४७॥

---

दिया, मनोहर सुगन्धयुक्त चन्दन तथा कस्तूरी और कुंकुम भी प्रस्तुत किये। फिर विष से सुन्दर प्रतीत होनेवाले गले में मालती की माला पहनायी ॥३६॥ भक्ति से पूजन किया और उनकी प्रसन्नता के लिए पुष्पों की वर्षा की। सुवर्ण के पात्र में अमृत तथा मधुर मधु प्रदान किया ॥३७॥ सैकड़ों दीपक जलाये और चारों ओर उत्तम धूप की सुगन्ध फैलायी। तीनों लोक में दुर्लभ वस्त्र, सोने का यज्ञोपवीत तथा सुगन्धित शीतल जल पीने के लिए पार्वती ने प्रस्तुत किये। रत्नेन्द्र के सारभाग से बना अत्यन्त सुन्दर एवं रमणीय आभूषण, सुवर्णमढ़े सींगवाली दुर्लभ कामधेनु, स्नानोपयोगी द्रव्य, तीर्थजल तथा मनोहर ताम्बूल भी समर्पित किये ॥३८-४०॥ इस प्रकार भक्तिपूर्वक शिव का षोडशोपचार पूजन करके उन्हें बार-बार प्रणाम किया। यह उनका नित्य का नियम बन गया। प्रतिदिन भक्ति से शिव का पूजन करके पिता के घर लौट जाया करती थी ॥४१॥ अप्सराओं के मुख से देवराज यह समाचार सुनकर कि महेश्वर पार्वती के प्रति अनुरक्त हैं—वे हर्ष-मग्न होकर नाचने लगे। इन्द्र ने बड़ी शीघ्रता से दूत भेजकर काम को बुलवाया। कामदेव भी इन्द्र की आज्ञा से अमरावती में उपस्थित हुआ ॥४२-४३॥ उन्होंने इस समय काम को शीघ्र ही वहाँ भेज दिया, जहाँ पार्वती-शंकर थे। कामदेव अपने पाँचों बाणों समेत वहाँ पहुँच गया जहाँ प्रसन्नमुख श्रीमान् शिव शिवा से युक्त थे। कामदेव ने वहाँ पहुँचकर प्रभु शिव को पार्वती के साथ स्थित देखा, जो शान्त, तीनों लोकों के कान्त और प्रसन्न मुख एवं नेत्रोंवाले थे। कामदेव ने अन्तरिक्ष में स्थित होकर बाण समेत धनुष को धारण करके शङ्कर के ऊपर अपने दुर्निवार एवं अमोघ अस्त्र को हर्ष से चला दिया। किन्तु उन परमात्मा शिव के प्रति उसका अमोघ (अव्यर्थ) अस्त्र भी मोघ (व्यर्थ) हो गया जैसे आकाश

आकाश इव निर्लिप्ते निर्लिप्ते परमात्मनि । मोघीभूते च शस्त्रे च भयमाप च मन्मथः ॥४८॥
चकम्प पुरतः स्थित्वा दृष्ट्वा मृत्युंजयं विभुम् । सस्मार त्रिदशान्कामः शक्रादीन्भयविह्वलः ॥४९॥
आययुर्देवताः सर्वाः शंभुकोपेन वेपिताः । चक्रुः स्तुतिं च स्तोत्रेण शंकरं त्रिदशेश्वरम् ॥५०॥
कोपाग्निमुद्गिरन्तं तं कपाललोचनाद्वहो । स्तुतिं कुर्वत्सु देवेषु स वह्निः शंभुसंभवः ॥५१॥
उज्ज्वालोर्ध्वशिखो दीप्तः प्रलयाग्निशिखोपमः । उत्पत्य गगने घूर्णन्निपत्य धरणीतले ॥५२॥
भ्रामं भ्रामं च परितः पपात मदनोपरि । वभूव भस्मसात्कामः क्षणेन हरकोपतः ॥५३॥
विषण्णा देवताः सर्वा नतवक्त्रा च पार्वती । विललाप बहुतरं हरस्य पुरतो रतिः ॥५४॥
तुष्टुवुर्देवताः सर्वाः कम्पिताश्चन्द्रशेखरम् । रतिमूचुः सुराः सर्वे रुरुदुश्च मुहुर्मुहुः ॥५५॥
किंचिद्भस्म गृहीत्वा च रक्ष मातर्भयं त्यज । वयं तं जीवयिष्यामो लभिष्यसि प्रियं पुनः ॥५६॥
हरकोपापनयने सुप्रसन्ने दिने तथा । दृष्ट्वा रतेर्विलापं च मूर्च्छां संप्राप पार्वती ॥५७॥
अतीन्द्रियं गुणातीतं तुष्टाव चन्द्रशेखरम् । रुदन्तीं पार्वतीं त्यक्त्वा स्वस्थानं प्रययौ शिवः ॥५८॥
सद्यो बभूव तत्रैव पार्वतीदर्पमोक्षणम् । रूपयौवनयोर्गर्वं तत्याज शैलकन्यका ॥५९॥
मुखं दर्शयितुं लज्जा तद्बभूव सखीगणे । सुराश्च रतिमाश्वास्य सर्वे जग्मुः स्वमन्दिरम् ॥६०॥

---

निर्लेप होता है, उसी तरह निर्लिप्त परमात्मा शिव पर जब वह शस्त्र विफल हो गया तब कामदेव को बड़ा भय हुआ ॥४४-४८॥ सामने विभु मृत्युञ्जय को देखकर काम काँप उठा और भयाकुल होकर इन्द्र आदि देवों का स्मरण करने लगा ॥४९॥ शिव के कोप से कम्पित होकर सभी देवगण वहाँ आये और स्तोत्र द्वारा देवाधीश्वर शिव की स्तुति करने लगे ॥५०॥ देवों के स्तुति करते समय ही क्रुद्ध शिव के भाल नेत्र से अग्नि प्रकट हो गया, शम्भु से उत्पन्न वह अग्नि ऊँचो-ऊँची लपटें उठाता हुआ प्रज्वलित हो उठा। वह प्रलयकालिक अग्नि की ज्वाला के समान जान पड़ता था। आकाश में ऊपर उठकर चक्कर काटता हुआ वह अग्नि पृथ्वी पर उतर आया और चारों ओर चक्कर देकर कामदेव पर टूट पड़ा। रुद्र के कोप से कामदेव एक ही क्षण में भस्म हो गया ॥५१-५३॥ यह देखकर देवों का मन विषाद से भर गया और पार्वती ने मुख नीचा कर लिया। रति (कामदेव की पत्नी) शिव के सम्मुख अत्यन्त विलाप करने लगी ॥५४॥ भयकम्पित देवों ने चन्द्रशेखर शिव की स्तुति की। इसके बाद वे बार-बार रोते हुए रति से बोले—हे माता! (पति के शरीर का) थोड़ा भस्म लेकर सुरक्षित रखो और भय छोड़ दो। हम काम को जीवित कर देंगे और तुम पुनः प्रिय को पा जाओगी। किन्तु जब शंकर का क्रोध शान्त हो जायेगा और उनकी प्रसन्नता का समय होगा, तभी यह कार्य संभव हो सकेगा। उस समय रति का विलाप देखकर पार्वती मूर्च्छित हो गयीं ॥५५-५७॥ फिर अतीन्द्रिय गुणातीत शंकर की स्तुति करने लगीं। रोती हुई पार्वती को छोड़कर शिव अपने स्थान पर चले गये ॥५८॥ वहीं पार्वती का अभिमान तुरन्त चूर्ण हो गया। शैलकुमारी ने अपने रूप और यौवन का गर्व छोड़ दिया ॥५९॥ अब उन्हें सखियों को अपना मुख दिखाने में भी लज्जा का अनुभव होने लगा। सब देवता, रति को आश्वासन देकर रुद्र को दण्डवत् प्रणाम करके शोक से उद्विग्नचित्त

प्रणम्य दण्डवद्रुद्रं शोकादुद्विग्न मानसाः। स्तुत्वा रुदित्वा शोकेन भयेन कामकामिनी ॥६१॥
कोपरक्तेक्षणं रुद्रं राधिके स्वालयं ययौ। न जगाम पितुर्गेहं पार्वती सा तु लज्जया ॥६२॥
स्वालिभिर्वार्यमाणाऽपि जगाम तपसे वनम्। प्रजग्मुः सहचारिण्यस्तत्पश्चाच्छोकविह्वलाः ॥६३॥
मातृभिर्वार्यमाणा सा स्वर्णदीतीरजं वनम्। सुचिरं च तपस्तप्त्वा सा संप्राप त्रिलोचनम् ॥६४॥
रतिः संप्राप मदनं शंकरस्य वरेण च। इत्येवं कथितं सर्वं पार्वतीदर्पमोक्षणम् ॥
निगूढचरितं राधे किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥६५॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० राधाकृष्णसं०
पार्वतीदर्पभङ्गो नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३९॥

⊙

---

हो अपने स्थान को चले गये। हे राधिके ! काम की पत्नी रति ने भी शोक और भय से रोदन करके क्रोध से रक्त नेत्र शिव की स्तुति की और अपने घर चली गयी। किन्तु वह पार्वती लज्जा के कारण पिता के घर नहीं गयीं, बल्कि सखियों के मना करने पर भी तप करने के लिए वन में चली गयीं, उनके पीछे उनकी सहेलियाँ भी शोकाकुल होकर चली गयीं ॥६०-६३॥ माताओं के रोकने पर भी पार्वती गङ्गातटवर्ती वन की ओर चली गयीं और वहाँ अति चिरकाल तक तप करके उन्होंने त्रिनेत्र शिव को (पति रूप में) प्राप्त किया ॥६४॥ रति ने भी शिव के वर से कामदेव को प्राप्त किया। हे राधे ! इस प्रकार मैंने पार्वती का दर्पभंग बता दिया, पार्वती का यह चरित्र गूढ़ है। अब और क्या सुनना चाहती हो ? ॥६५॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारायण-नारद-संवाद में
उन्तालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३९॥

⊙

# अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

## राधिकोवाच

अहो विचित्रं चरितमपूर्वं किं श्रुतं विभो । सुन्दरं श्रुतिपीयूषं निगूढं ज्ञानकारणम् ।।१।।
न विशेषं समासं च श्रुतं न व्याससमीप्सितम् । अधुना श्रोतुमिच्छामि विस्तीर्णं कथय प्रभो ।।२।।
किं किं तपः कठोरं च चकार पार्वती स्वयम् । कं कं वरं वा संप्राप्य कथमाप महेश्वरम् ।।३।।
रतिः केन प्रकारेण जीवयामास मन्मथम् । पार्वतीशिवयोः कृष्ण विवाहं वर्णय प्रभो ।।४।।
तयो रहसि संभोगं पापिनां[1] पापमोचनम् । कथ्यतां करुणासिन्धो दुःखिनां दुःखमोचनम् ।।५।।
दम्पतीविरहोक्तिश्च कर्णज्वाला च योषितः । श्रोतुं कौतूहलं कृष्ण पुनः संमेलनं तयोः ।।६।।
अग्निज्वाला विषज्वाला क्षमा सोढुं च योषितः । दम्पतीविरहज्वाला न श्रोतुं च क्षणं क्षमा ।।७।।
राधिकावचनं श्रुत्वा विस्मितश्चकिताननः । विस्तीर्णं वक्तुमारेभे हृदयेन विदूयता ।।८।।
दम्पतीविरहोक्तिं च या राधा श्रोतुमक्षमा । विच्छेदे शतवर्षीये किमस्या भविता मम ।।९।।

---

# अध्याय ४०

## पार्वती की तपश्चर्या

**राधिका बोलीं**—विभो ! यह बहुत ही विचित्र और अपूर्व चरित्र सुनने को मिला है, जो कानों के लिए अमृत, गूढ़ और ज्ञान का कारण है । प्रभो ! यह न तो अधिक संक्षेप से सुना गया है और न विस्तार से ही । परन्तु अब विस्तारपूर्वक सुनना चाहती हूँ, कहिये ।।१-२।। स्वयं पार्वती ने कौन-कौन-सा कठोर तप किया और किस-किस वर को पाकर किस प्रकार महेश्वर को प्राप्त किया ? रति ने किस प्रकार कामदेव को जीवित कराया ? प्रभो ! कृष्ण ! हर-गौरी के विवाह का वर्णन करें ।।३-४।। दयासागर ! एकान्त में उन दोनों का सम्भोग भी कहें, जो पापियों के पाप का नाशक एवं दुःखियों के दुःख का विनाशक भी है ।।५।। हे कृष्ण ! दम्पतियों का विरहकालिक कथन महिला के कानों के लिए ज्वाला के समान है । उन (हर-गौरी) के पुनर्मिलन सुनने का कुतूहल हो रहा है ।।६।। स्त्रियाँ अग्निज्वाला और विष की ज्वाला को सहन करने में समर्थ हो सकती हैं, किन्तु दम्पती के विरह की ज्वाला को क्षणभर नहीं सुन सकतीं ।।७।। राधिका की बात सुनकर श्रीकृष्ण को विस्मय हुआ और मुखाकृति चकित हो गयी । तब उन्होंने परितप्त चित्त से विस्तारपूर्वक कहना आरम्भ किया ।।८।। जो राधा दम्पती के विरह की बात भी सुनने में असमर्थ है, उसको मेरे सौवर्षीय वियोग में क्या दशा होगी ? ऐसा

---

१ क पार्वतीपा॰ ।

इत्येवं मानसे कृत्वा मायेशो माययाऽन्वितः। कृपासिन्धुश्च कृपया कथां कथितुमुद्यतः ॥१०॥

### श्रीकृष्ण उवाच

प्राणाधिके राधिके त्वं श्रूयतां प्राणवल्लभे। प्राणाधिदेवि प्राणेशि प्राणाधारे मनोहरे ॥११॥
वटमूलाद्गते रुद्रे पार्वती तपसे ययौ। पुनः पुनः स्वमात्रा च पित्रा च विनिवारिता ॥१२॥
गत्वा सा स्वर्णदीतीरं स्नात्वा त्रिषवणं मुदा। संदेशे च मया दत्तं जजाप तं मनुं मुदा ॥१३॥
वर्षमेकं च संपूर्णमनाहारा स्वभक्तितः। तप्त्वा तपः कठोरं च चकार जगदम्बिका ॥१४॥
ग्रीष्मे च परितो वह्निं प्रज्वलन्तं दिवानिशम्। कृत्वा प्रतस्थौ तन्मध्ये संततं जपती मनुम् ॥१५॥
शश्वत्श्मशाने वर्षासु कृत्वा योगासनं शिवा। शिलां दृष्ट्वा च संसिक्तां बभूव जलधारया ॥१६॥
शीते जलान्तरे शश्वत्प्रतस्थौ भक्तिपूर्वकम्। अनाहारा शरद्रौद्रनीहारासु निशासु[1] च ॥१७॥
एवं कृत्वा परं वर्षमप्राप्य शंकरं सती। शुचा कृत्वाऽग्निकुण्डं च प्रवेष्टुं सा समुद्यता ॥१८॥
तामग्निकुण्डं विशतीं तपसाऽतिकृशां सतीम्। दृष्ट्वा शिवः कृपासिन्धुः कृपया तां जगाम ह ॥१९॥
अतीव वामनो बालो विप्ररूपी स्वतेजसा। प्रज्वलन्मनसा हृष्टो दण्डी छत्री जटाधरः ॥२०॥

---

मन में विचार करके मायायुक्त मायापति एवं कृपासिन्धु भगवान् कृपया कथा कहने लगे ॥९-१०॥

**श्रीकृष्ण बोले**—प्राणाधिके ! राधिके ! प्राणवल्लभे ! सुनो। प्राणेश्वरी ! तुम प्राणों की अधिष्ठात्री देवी हो। प्राणाधारे ! मनोहरे ! जब रुद्रदेव वटवृक्ष के मूल से चले गये तब पार्वती माता-पिता के द्वारा बार-बार रोकी जाने पर भी तप करने के लिए चली गयीं ॥११-१२॥ गङ्गा के तट पर पहुँचकर उन्होंने हर्ष से तीनों काल स्नान और संदेश रूप में दिये हुए मेरे मंत्र का जप करना आरम्भ किया ॥१३॥ अपनी भक्ति के अनुसार जगदम्बिका ने अनाहार रहकर पूरे एक वर्ष तक कठोर तप किया—ग्रीष्मकाल में अपने चारों ओर अग्नि प्रज्वलित करके दिन-रात उसके मध्य में निरन्तर मंत्र-जप करती थीं, वर्षाकाल में श्मशान में योगासन लगाकर शिवा सतत शिला की ओर देखती हुई जलधारा से भीगती रहती थीं ॥१४-१६॥ शीतकाल में वे सदा जल के भीतर प्रवेश कर जातीं तथा शरद् की भयंकर बर्फवाली रातों में भी निराहार रहकर भक्तिपूर्वक तपस्या करती थीं। इस प्रकार पूरे वर्ष तक कठोर तप करने पर भी शिव से न मिलने पर सती पार्वती शोक से अग्नि-कुण्ड में प्रवेश करने के लिए उद्यत हो गयीं ॥१७-१८॥ तप करने से अति दुर्बल पार्वती को अग्नि-कुण्ड में प्रवेश करते देखकर कृपासागर शिव कृपया उनके पास पहुँच गये। अत्यन्त नाटे कद के बालक ब्राह्मण का रूप धारण करके शिव मन-ही-मन बड़े हर्ष का अनुभव कर रहे थे। उसके सिर पर जटा थी। उन्होंने दण्ड और

---

१ ख. 'दिशा'।

शुक्लयज्ञोपवीती च शुक्लवासाश्च सस्मितः। श्वेताब्जबीजमालां च बिभ्रत्तिलकमुज्ज्वलम् ॥२१॥
निर्जने बालकं दृष्ट्वा स्निग्धा साऽपि जगाद ह। तत्तेजसाऽति प्रच्छन्ना[1] तत्याज च तपः स्वयम् ॥२२॥
को भवानिति पप्रच्छ तं शिशुं पुरतः स्थितम्। मनसाऽऽलिङ्गनं कर्तुमिच्छन्ती परमादरम् ॥२३॥
श्रुत्वा शैलसुताप्रश्नं प्रहस्य परमेश्वरः। उवाचातीव मधुरं कर्णपीयूषमीश्वरम् ॥२४॥

## शंकर उवाच

इच्छागामी बटुरहं तपस्वी विप्रबालकः। का त्वं कान्ताऽतिकान्तारे तपश्चरसि सुन्दरि ॥२५॥
वद कस्य कुले जाता कस्य कन्या च काऽभिधा। तपसः फलदात्री त्वं कस्माद्धेतोस्तपस्तव ॥२६॥
अहो वा तपसां राशिः स्वयं मूर्तिमती सती। तपो वा लोकशिक्षार्थं करोषि कमलेक्षणे ॥२७॥
स्वयं तेजःस्वरूपा वा मूलप्रकृतिरीश्वरी। विधाय भक्तध्यानार्थं विग्रहं भारते जनुः ॥२८॥
किंवा त्रिलोके लक्ष्मीस्त्वं संपद्रूपा सनातनी। रक्षां विधातुं जगतामागता धातुरन्तिके ॥२९॥
किंवाऽम्बिका त्वं देवानां स्वयं मूर्तिमती सती। सावित्री भारते जन्म स्वेच्छया लब्धुमागता ॥३०॥
रागाधिष्ठातृदेवी वा स्वयं साक्षात्सरस्वती। सर्वविद्याः प्रकटितुं स्वेच्छया जन्म भारते ॥३१॥

---

छत्र भी ले रखे थे। श्वेत वस्त्र, श्वेत यज्ञोपवीत, श्वेत कमल के बीजों की माला एवं श्वेत तिलक धारण किये वे मन्द-मन्द मुसकरा रहे थे ॥१९-२१॥ निर्जन प्रदेश में बालक को देखकर पार्वती का मन स्नेहपूर्ण हो गया। उसके तेज से अत्यन्त आच्छादित हो उन्होंने स्वयं तप त्यागकर उस बालक से पूछा—'आप कौन हैं?' शिवा बड़े आदर के साथ उसे हृदय से लगा लेना चाहती थीं ॥२२-२३॥ पर्वत-राजपुत्री का प्रश्न सुनकर परमेश्वर शिव हँसकर शिवा के कानों में अमृत उँड़ेलते हुए-से मधुर वचन बोले ॥२४॥

**शंकर बोले**—मैं ब्राह्मण-बालक, तपस्वी एवं इच्छानुसार विचरण करनेवाला बटु हूँ। हे सुन्दरि! तुम कौन हो, जो कान्तिमती होकर भी इस घोर वन में तप कर रही हो? ॥२५॥ किसके कुल में तुम्हारा जन्म हुआ है? तुम किसकी कन्या हो? तुम्हारा क्या नाम है? तुम तप का फल प्रदान करनेवाली होकर किस कारण तप कर रही हो? ॥२६॥ हे कमललोचने! तुम तपस्या की मूर्तिमती राशि हो। अवश्य ही तुम्हारा यह तप लोक-शिक्षा के लिए है ॥२७॥ तुम स्वयं तेजःपुञ्जरूप, मूल प्रकृति ईश्वरी हो। भक्तों के ध्यान करने के लिए शरीर धारण करके भारत में उत्पन्न हुई हो ॥२८॥ अथवा तीनों लोक में सम्पत्तिरूप सनातन लक्ष्मी हो। तुम तीनों जगत् की रक्षा के लिए ब्रह्मा के समीप आयी हो ॥२९॥ या देवमाता हो या स्वयं मूर्तिमती सती हो या सावित्री हो जो भारत में स्वेच्छा से जन्म ग्रहण करने के हेतु आयी हो। अथवा रागों की अधिष्ठात्री देवी साक्षात् सरस्वती हो, जो समस्त विद्याओं को प्रकट करने के लिए भारत में स्वेच्छा से उत्पन्न हुई हो ॥३०-३१॥

---

१ क. प्रसन्ना।

एतासु मध्ये का वा त्वं नाहं तर्कितुमीश्वरः । या सा भवति कल्याणि परितुष्टा च मां भव ॥३२॥
सति त्वयि प्रसन्नायां प्रसन्नः परमेश्वरः । पतिव्रतायां तुष्टायां तुष्टो नारायणः स्वयम् ॥३३॥
तुष्टे नारायणे देवे शश्वत्तुष्टं जगत्त्रयम् । तरुमूलेषु सिक्तेषु शाखाः सिक्ता यथा प्रिये ॥३४॥
शिशोस्तद्वचनं श्रुत्वा प्रहस्य परमेश्वरी । उवाच वचनं चारु कर्णपीयूषमीश्वरी ॥३५॥

## पार्वत्युवाच

नाहं वेदप्रसूर्लक्ष्मीर्वागधिष्ठातृदेवता । जन्म मे भारते वर्षे सांप्रतं शैलकन्यका ॥३६॥
पूर्वं जन्म दक्षगेहे सती शंकरकामिनी । योगेन त्यक्तदेहाऽहं तातभर्तृविनिन्दया ॥३७॥
अत्र जन्मनि पुण्येन संप्राप्ते शंकरे द्विज । मां त्यक्त्वा भस्मसात्कृत्वा मन्मथं स जगाम ह ॥३८॥
प्रयाते शंकरे तापाद्व्रीडयाऽहं पितुर्गृहात् । आगमत्तपसे चित्तं ममेदं स्वर्णदीतटे ॥३९॥
तपः कृत्वा कठोरं च सुचिरं प्राणवल्लभम् । अप्राप्याग्निं प्रवेष्टुं च त्वां च दृष्ट्वा क्षणं स्थिता ॥४०॥
गच्छ त्वं प्रविशाम्यग्नौ प्रलयाग्निशिखोपमे । कृत्वा स्वकामनां विप्र हरप्राप्तिमनीषिताम् ॥४१॥
यत्र यत्र जनुर्लब्ध्वा लभिष्यामि शिवं परम् । प्राणाधिकं प्रियं कान्तं विभुं जन्मनि जन्मनि ॥४२॥
सर्वा हि स्वप्रियं लब्धुं लभन्ति जन्म वाञ्छितम् । तज्जन्म पतिलाभार्थं सर्वासां च श्रुतौ श्रुतम् ॥४३॥

---

इन देवियों में से तुम कौन हो, इसका अनुमान करने में मैं असमर्थ हूँ। कल्याणि ! तुम जो भी हो, मुझ पर प्रसन्न हो जाओ ॥३२॥ हे सती ! तुम्हारे प्रसन्न रहने पर परमेश्वर प्रसन्न होते हैं और पतिव्रता के सन्तुष्ट होने पर स्वयं नारायण सन्तुष्ट होते हैं। प्रिये ! नारायण भगवान् के प्रसन्न होने पर, तीनों लोक उसी भाँति निरन्तर प्रसन्न होते हैं जिस प्रकार वृक्षों के मूल भाग को सींच देने पर उसकी शाखाएँ स्वयं सिंच जाती हैं ॥३३-३४॥ बालक की वह बात सुनकर परमेश्वरी हँसकर कानों में अमृत की वर्षा करती हुई मनोहर वाणी बोलीं ॥३५॥

**पार्वती बोलीं**—न तो मैं वेदजननी (सावित्री) हूँ, न लक्ष्मी हूँ और न वाणी की अधीश्वरी सरस्वती ही हूँ। सम्प्रति मेरा जन्म भारतवर्ष में हुआ है और मैं पर्वतराज की कन्या हूँ ॥३६॥ पूर्वजन्म में मेरा जन्म दक्ष के घर में हुआ था और मैं शिव की सती नामक पत्नी थी। वहाँ पिता द्वारा पति की निन्दा होने पर मैंने योग द्वारा देह त्याग कर दिया था ॥३७॥ हे द्विज ! इस जन्म में भी पुण्यवश शिव जी प्राप्त हुए थे, किन्तु कामदेव को भस्म करके मुझे त्यागकर चले गये हैं ॥३८॥ शिव के चले जाने पर मैं मानसिक संताप और लज्जा से विवश हो पिता के घर से तपस्या के हेतु इस गंगा तट पर चली आयी हूँ ॥३९॥ अति चिरकाल तक यहाँ कठोर तप करने के उपरान्त भी प्राणवल्लभ शिव को न पाकर मैं अब अग्नि-कुण्ड में प्रवेश करने जा रही थी, किन्तु तुम्हें देखकर क्षणभर के लिए रुक गयी ॥४०॥ विप्र ! अब तुम जाओ, मैं प्रलयकाल की अग्निशिखा की भाँति इस प्रज्वलित अग्नि में अपनी शिव प्राप्ति की कामना लिये प्रवेश कर रही हूँ ॥४१॥ प्रत्येक जन्म में मेरा जहाँ-जहाँ जन्म होगा, वहाँ-वहाँ शिव को ही प्राप्त करूँगी, जो प्राणों से अधिक प्रिय, प्रभु एवं कान्त हैं ॥४२॥ सभी स्त्रियाँ अपने प्रिय को प्राप्त करने के लिए अभीष्ट जन्म ग्रहण करती हैं। उन सबका वह जन्म अपने

प्राक्तनीयो हि यो भर्ता स तासां प्रतिजन्मनि । या स्त्री येषां सुनियता सा तेषां जन्मजन्मनि ।।४४।।
तद्देहमिह न प्राप्य कृत्वा घोरतरं तपः । कृत्वाऽग्निकुण्डे काम्यं च लभिष्यामि परत्र तम् ।।४५।।
इत्युक्त्वा पार्वती तत्र तत्पुरः प्रविवेश ह । निषिध्यमाना पुरतो ब्राह्मणेन पुनः पुनः ।।४६।।
वह्निप्रवेशं कुर्वन्त्याः पार्वत्याः परमेश्वरि । बभूव तपसा सद्यो वह्निश्चन्दनवद्ध्रुवम् ।।४७।।
क्षणं तदन्तरे स्थित्वा चोत्पतन्तीं शिवां शिवः । पुनः पप्रच्छ सहसा वृन्दावनविनोदिनि ।।४८।।

## महादेव उवाच

अहो तपस्ते किं भद्रे न बुद्धं किंचिदेव हि । न दग्धो वह्निना देहो न च प्राप्तो मनीषितः ।।४९।।
शिवं कल्याणरूपं च भर्तारं कर्तुमिच्छसि । अविग्रहं पतिं कृत्वा किं वा ते वाञ्छितं भवेत् ।।५०।।
संहर्तारं च भर्तारं यदीच्छसि शुचिस्मिते । कान्तमिच्छति का वा स्त्री सर्वसंहारकारणम् ।।५१।।
मोक्षं वाञ्छसि चेद्देवि कृत्वा कान्तं स्वरूपिणम् । सर्वमुक्तिप्रदा त्वं च तपस्या विफला तव ।।५२।।
शिवश्च मङ्गले मोक्षे संहर्ता न च दृश्यते । शिवशब्दस्य चान्योऽर्थो न हि वेदे निरूपितः ।।५३।।
तं च संहारकर्तारं यदि वाञ्छसि सुन्दरि । लभिष्यसे रतं रुद्रं सर्वलोकभयंकरम् ।।५४।।

---

अभीष्ट पति की उपलब्धि के लिए ही होता है, ऐसा वेद में सुना गया है ।।४३।। पूर्वजन्म का जो भर्ता रहता है, वही स्त्रियों को प्रतिजन्म में प्राप्त होता है । जो स्त्री जिनकी सुनियत है, वह उन्हें प्रत्येक जन्म में मिलती है ।।४४।। अतः इस जन्म में घोर तप करने पर भी पति को न पाकर इस शरीर को अग्निकुण्ड में होम दूंगी । यह काम्य कर्म (पति की कामना को लेकर) होगा, इसलिए परलोक में उन्हें अवश्य प्राप्त करूँगी ।।४५।। इतना कहकर पार्वती वहाँ ब्राह्मण के बार-बार मना करने पर भी उसके सामने ही अग्निकुण्ड में प्रविष्ट हो गयीं ।।४६।। हे परमेश्वरि ! पार्वती के अग्नि-प्रवेश करते ही उनके तप के कारण अग्नि चन्दन की भाँति तुरन्त ही शीतल हो गया ।।४७।। हे वृन्दावन में विनोद करनेवाली ! क्षणमात्र उसके भीतर रहकर वहाँ से ऊपर निकलती हुई शिवा से शिव ने सहसा पूछा ।।४८।।

**महादेव बोले**--भद्रे ! तुम्हारा तप क्या है ? मैं कुछ समझ नहीं पाया । न तो अग्नि में तुम्हारी देह जली और न अभीष्ट पति ही मिला ।।४९।। तुम कल्याणमूर्ति शिव को अपना पति बनाना चाहती हो, परन्तु वे तो निराकार हैं । निराकार को पति बनाने से तुम्हारा कौन-सा मनोरथ सिद्ध होगा ? ।।५०।। हे पवित्र मुस्कानवाली ! यदि उस संहारकारी को भर्ता बनाना चाहती हो, तो यह बताओ कि सर्वसंहारकारी को कौन स्त्री अपना पति बनाना चाहेगी ? ।।५१।। देवि ! यदि उन्हें अपना पति बनाकर मोक्ष प्राप्त करना चाहती हो, तो इसके लिए तुम्हारी तपस्या निरर्थक है क्योंकि सबको मुक्ति प्रदान करनेवाली तुम स्वयं ही हो ।।५२।। शिव का अर्थ है मंगल (कल्याण) मोक्ष और संहारकर्ता । शिव शब्द का दूसरा अर्थ नहीं देखा जाता है । वेद में इसका अन्य अर्थ निरूपित नहीं है ।।५३।। सुन्दरी ! यदि उस संहारकर्ता को चाहती हो तो सब लोगों के लिए भयंकर रुद्र को (अपने प्रति) अनुरक्त पाओगी ।।५४।। न तो तुम्हारा मोक्ष होगा और न अपने अभीष्ट देव की

न भविष्यति मोक्षस्ते स्वाभीष्टं देवसेवनम् । हरिस्मृतिरमोघा च सर्वमङ्गलदा सदा ॥५५॥
शीघ्रं पितृगृहं गच्छ तत्र द्रक्ष्यसि शंकरम् । ममाऽऽशिषा स्वतपसां फलेन च सुदुर्लभम् ॥५६॥
इत्युक्त्वा पार्वतीं विप्रस्तत्रैवान्तरधीयत । दुर्गा ययौ पितुर्गेहं महादेवेति वादिनी ॥५७॥
पार्वत्यागमनं श्रुत्वा मेनका च हिमालयः । दिव्यं यानं पुरस्कृत्य प्रययौ हर्षविह्वलः ॥५८॥
संस्थाप्य मङ्गलघटान्राजवर्त्मनि राधिके । चन्दनागुरुकस्तूरीफलशाखासमन्वितान् ॥५९॥
पट्टसूत्रसंनिबद्धरसालपल्लवान्वितैः । परितः परितो रम्भास्तम्भवृन्दसमन्विते ॥६०॥
पतिपुत्रवतीयोषित्समूहैर्दीपहस्तकैः । पूर्णैर्लाजाधान्यदूर्वाफलपुष्पसमन्वितैः ॥६१॥
सुपुण्यैर्ब्राह्मणैश्चापि मुनिभिर्ब्रह्मचारिभिः । नटीभिर्नर्तकीभिश्च गजेन्द्रैः परिशोभिते ॥६२॥
पुरोहितैश्च संयुक्तैः कुर्वद्भिर्मङ्गलध्वनिम् । सुचारुमालतीमालाहस्तैः शस्तैः प्रशंसितैः ॥६३॥
नानाप्रकारवाद्यैश्च शङ्खध्वनिसुनादितैः । सिन्दूररेणुभिश्चारुचन्दनद्रवपङ्किलम् ॥६४॥
प्रविश्य नगरं दुर्गा ददर्श पितरौ पुरः । सुप्रसन्नौ प्रधावन्तौ हर्षाश्रुपुलकान्वितौ ॥६५॥
प्रसन्नवदना देवी चाऽऽलिभिः प्रणनाम तौ । संयुज्याथाऽऽशिषं तौ च चक्रतुस्तां च वक्षसि ॥६६॥
हे वत्से वत्सेत्युच्चार्य रुदन्तौ प्रेमविह्वलौ । तदा तां च रथे कृत्वा जग्मतुर्निजमन्दिरम् ॥६७॥
स्त्रियो निर्मञ्छनं चक्रुर्विप्रा युयुजुराशिषम् । ब्राह्मणेभ्यश्च बन्दिभ्यः पर्वतेन्द्रो धनं ददौ ॥६८॥

---

सेवा ही उपलब्ध होगी । श्रीहरि का स्मरण अमोघ है । वे सदा सब प्रकार से सम्पूर्ण मंगल के दाता हैं ॥५५॥ अब तुम शीघ्र अपने पिता के घर चली जाओ, मेरे आशीर्वाद से और अपने तप के फल से उन अति दुर्लभ शिव का दर्शन तुम्हें वहाँ प्राप्त होगा ॥५६॥ इतना कहकर ब्राह्मण वहीं अन्तर्हित हो गया और पार्वती 'महादेव, महादेव' का उच्चारण करती हुई पिता के घर गयीं ॥५७॥ पार्वती का आगमन सुनकर मेना और हिमालय हर्ष-विभोर होकर उनके लिए दिव्य यान (सवारी) लेकर चले ॥५८॥ हे राधिके ! राजमार्ग पर चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, फल और शाखायुक्त मंगल कलशों को स्थापित कराया, जो पट्टसूत्रों से आबद्ध एवं आम के पल्लवों से संयुक्त थे । उनके चारों ओर कदली-स्तम्भों के समूह लगाये गये थे ॥५९-६०॥ पति-पुत्रवती सुन्दरियाँ हाथों में दीपक, लाजा (धान का लावा), धान्य, दूर्वा, फल और पुष्प लिये आगे चल रही थीं ॥६१॥ फिर अति पुण्यात्मा ब्राह्मणों, मुनियों, ब्रह्मचारियों, नटियों, नर्तकियों और गजराजों से वह मार्ग शोभायमान था ॥६२॥ पुरोहित लोग हाथों में सुन्दर मालती-मालाएँ लेकर संयुक्त रूप से मंगलध्वनि करते हुए जा रहे थे ॥६३॥ उस समय विभिन्न प्रकार के बाजे बज रहे थे, शंखध्वनि हो रही थी । सड़कों पर सिन्दूर तथा चन्दन के जल से कीच मच गयी ॥६४॥ उस नगर में प्रविष्ट होकर दुर्गा ने सामने माता-पिता को देखा जो अत्यन्त प्रसन्न और हर्ष के आँसुओं से रोमांचित होकर दौड़ रहे हैं ॥६५॥ प्रसन्नमुख देवी ने सखियों समेत उन्हें प्रणाम किया । उन लोगों ने संयुक्त आशीर्वाद देकर दुर्गा को हृदय से लगा लिया ॥६६॥ हे वत्से, हे वत्से ! ऐसा कहते हुए प्रेमाकुल होकर रोदन करने लगे । फिर दुर्गा को रथ पर बैठाकर अपने घर ले गये ॥६७॥ स्त्रियों ने दुर्गा का निर्मञ्छन किया और ब्राह्मणों ने आशीर्वाद

मङ्गलं कारयामास पाठयामास छान्दसम्। एवं स्वकन्यया सार्धं तस्थतुस्तौ स्वमन्दिरे ॥६९॥
सुखेन वसतौ तौ हि हर्षनिर्भरमानसौ। एकदा च तपः कर्तुं जगाम स्वर्णदीं गिरिः ॥७०॥
मेनका कन्यया सार्धमुवास प्राङ्गणे मुदा। एतस्मिन्नन्तरे भिक्षुर्नर्तकश्च सुगायनः ॥७१॥
सहसैव आजगाम मेनकासंनिधिं मुदा। शृङ्गवाद्यं वामहस्ते डमरुं दक्षिणे तथा ॥७२॥
कृत्वा विभूतिगात्रोऽतिवृद्धोऽतीव जरातुरः। पृष्ठकन्थो रक्तवासाः सुकण्ठोऽतिमनोहरः ॥७३॥
जगौ मम गुणाख्यानं कृत्वा नृत्यं मनोहरम्। वादयामास शृङ्गं च क्षणं डमरुकं तथा ॥७४॥
आजग्मुर्नागरा बाला बालिका हर्षविह्वलाः। वृद्धा युवानो युवतीसमूहो वृद्धयोषितः ॥७५॥
श्रुत्वा तु सुन्दरं गीतं सुतानस्वरसंयुतम्। सहसा मुमुहुः सर्वे ते मूर्च्छामवाप्नुवन् ॥७६॥
मूर्च्छां संप्राप सा दुर्गा ददर्श हृदि शंकरम्। त्रिशूलपट्टिशकरं व्याघ्रचर्मधरं परम् ॥७७॥
विभूतिभूषणं रम्यमस्थिमालं सुनिर्मलम्। ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं सुप्रसन्नं त्रिलोचनम् ॥७८॥
मालाहस्तं पञ्चवक्त्रं नागयज्ञोपवीतकम्। वरं वृण्वित्युक्तवन्तं सुन्दरं चन्द्रशेखरम् ॥७९॥
हृदयस्थं हरं दृष्ट्वा मनसा तं ननाम सा। वरं वव्रे मानसे सा त्वं पतिर्मे भवेति च ॥८०॥

---

आशीर्वाद दिया। पर्वतराज ने ब्राह्मणों एवं वन्दीजनों को धन प्रदान किया ॥६८॥ मंगल कराया और वेदों के पाठ हुए। इस प्रकार अपनी कन्या के साथ वे भवन में रहने लगे ॥६९॥ हर्ष-विभोर होकर सुखपूर्वक रहते हुए पर्वतराज एक बार तप करने के हेतु गङ्गातट पर गये और मेना पुत्री पार्वती को साथ लिये घर के आँगन में बैठी थीं। इसी बीच एक भिक्षुक आया जो नाचनेवाला तथा सुन्दर गायन करनेवाला था ॥७०-७१॥ वह सहसा मेना के पास हर्ष से आया। उसके बायें हाथ में सींग का बाजा और दाहिने हाथ में डमरू था ॥७२॥ वह शरीर में भस्म लगाये, अतिवृद्ध, अत्यन्त जरा अवस्था से आकुल, पीठ पर गुदड़ी लिये तथा रक्तवस्त्र पहने था। उसका कण्ठ सुन्दर एवं वह अति मनोहर था ॥७३॥ उसने मनोहर नृत्य करके मेरा गुणगान करना आरम्भ किया—कभी शृंग बजाता और कभी डमरू ॥७४॥ उसे सुनकर नगर के बालक-बालिकाएँ, वृद्ध, युवा पुरुष और युवती एवं वृद्धा स्त्रियाँ हर्ष-विह्वल होकर वहाँ आ गयीं ॥७५॥ उसके सुन्दर गीत को सुनकर, जो उत्तम तान और स्वर से युक्त था, सभी लोग सहसा मोहित हो गये और उससे उन्हें मूर्च्छा आ गयी ॥७६॥ दुर्गा भी मूर्च्छित होकर हृदय में शिव का दर्शन करने लगीं, जो हाथों में त्रिशूल और पट्टिश लिये एवं परमोत्तम बाघम्बर धारण किये हुए थे ॥७७॥ वे सम्पूर्ण अंगों में विभूति से विभूषित थे। बड़ा ही रम्य रूप था। अत्यन्त निर्मल अस्थि माला धारण किये मन्दहास समेत प्रसन्नमुख था। उनकी आकृति से आन्तरिक उल्लास सूचित होता था। पांच मुख और प्रत्येक मुख में तीन-तीन नेत्र शोभा पाते थे। हाथ में माला, कंधे पर नागों का यज्ञोपवीत और मस्तक पर चन्द्राकार मुकुट—बड़ी सुन्दर झांकी थी। उन्होंने पार्वती से कहा कि वर मांगो। हृदय स्थित हर को देखकर पार्वती ने मन-ही-मन उन्हें प्रणाम किया और वर मांगा—'आप हमारे पति हों

एवं दत्त्वा शिवस्तस्यै चान्तर्धानं चकार सः । न दृष्ट्वा हृदि तं दुर्गा संप्राप्य चेतनां पुनः ॥८१॥
ददर्श चक्षुरुन्मील्य भिक्षुकं गायकं पुरः । नृत्यसंगीततः सा तु भिक्षुकस्य च मेनका ॥८२॥
दातुं ययौ सा रत्नानि स्वर्णपात्रस्थितानि च । भिक्षां ययाचे भिक्षुस्तां दुर्गां नान्यां गृहीतवान् ॥८३॥
पुनश्च नर्तनं कर्तुमुद्यतः कौतुकेन च । मेना तद्वचनं श्रुत्वा चुकोप विस्मयं ययौ ॥८४॥
भिक्षुकं भर्त्सयामास बहिः कर्तुमुवाच तम् । पत्नी त्रिलोकनाथस्य शिवस्य परमात्मनः ॥८५॥
याञ्चामिमां प्रकुर्वन्तं दूरं कुरु कुभाषिणम् । एतस्मिन्नन्तरे तप्त्वा गिरिः स्वालयमाययौ ॥८६॥
ददर्श पुरतो भिक्षुं प्राङ्गणस्थं मनोहरम् । कृत्वा नारायणार्चां च गङ्गातीरे मनोहरे ॥८७॥
तन्मूर्तिध्यानविश्लेषशोकादुद्विग्नमानसः । श्रुत्वा मेनामुखाद्वार्तां जहास च चुकोप सः ॥८८॥
आज्ञां चकार स्वचरं बहिः कर्तुं च भिक्षुकम् । आकाशमिव दुःस्पर्शं प्रज्वलन्तं स्वतेजसा ॥८९॥
न शशाक बहिः कर्तुं समीपं गन्तुमक्षमः । ददर्श भिक्षुकं शैलः क्षणं चारुचतुर्भुजम् ॥९०॥
किरीटिनं कुण्डलिनं पीताम्बरधरं परम् । सुवेषं सुन्दरं श्याममीषद्धास्यं मनोहरम् ॥९१॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं भक्तानुग्रहकारकम् । यद्यत्पुष्पं प्रदत्तं च पूजाकाले गदाभृते ॥९२॥

---

जाइये ।' 'एवमस्तु' कहकर शिव अन्तर्धान हो गये । हृदय में शिव को न देखकर दुर्गा की मूर्च्छा भंग हुई। उन्होंने आँखें खोलीं तो गायन करनेवाले भिक्षुक को देखा । मेना ने भिक्षुक के नृत्यसंगीत से संतुष्ट हो सुवर्ण के पात्र में रत्न-समूह लेकर उसे देने के लिए गयीं । किन्तु भिक्षुक केवल दुर्गा को ग्रहण करने की ही भिक्षा की याचना की, अन्य वस्तु की नहीं ॥७८-८३॥ जब वह पुनः कौतुकवश नृत्य करने के लिए उद्यत हुआ तो मेना उसकी बात सुनकर कुपित हो गयीं और उन्हें आश्चर्य भी हुआ ॥८४॥ उन्होंने भिक्षुक की भर्त्सना की और उसे बाहर करने के लिए कहा—(यह दुर्गा) तीनों लोक के स्वामी परमात्मा शिव की पत्नी है, इसकी याचना करते हुए इस कुत्सितभाषी (भिक्षुक) को बाहर निकाल दो ।' ॥८५-८६॥ उसी समय पर्वतराज हिमालय तप करके अपने घर आये, वहाँ प्राङ्गण में सामने अवस्थित मनोहर भिक्षुक को देखा । गङ्गा के मनोहर तट पर नारायण की अर्चना करके वे उनका ध्यान कर रहे थे, किन्तु (ध्यान में) मूर्तिवियोग (ध्यानभंग) हो जाने के कारण उनका मन शोक से खिन्न हो गया था । मेना के मुख से समाचार सुनकर वे हँसे और कुपित भी हुए ॥८७-८८॥ तब भिक्षुक को बाहर करने के लिए अपने दूत को आज्ञा दी । किन्तु आकाश की भाँति उस (भिक्षुक) का स्पर्श करना भी कठिन था । वह अपने तेज से प्रज्वलित हो रहा था ॥८९॥ उसे कोई बाहर नहीं कर सका । उसके निकट जाने की भी किसी में क्षमता नहीं थी । हिमवान् ने एक ही क्षण में देखा—उस भिक्षुक के सुन्दर चार भुजाएँ हैं; मस्तक पर किरीट, कानों में कुण्डल तथा शरीर पर पीताम्बर शोभा पाता है; श्याम-सुन्दर का रुचिर वेश मन को मोह लेता है; मुख पर मन्द मुस्कान की प्रभा फैल रही है । सम्पूर्ण अंग चन्दन से

गात्रे शिरसि तत्सर्वं भिक्षुकस्य ददर्श ह। धूपः प्रदीपो यो दत्तो नैवेद्यं वा मनोहरम् ॥९३॥
ददर्श शैलस्तत्सर्वं भिक्षुकस्य पुरः स्थितम्। क्षणं ददर्श द्विभुजं विनोदमुरलीकरम् ॥९४॥
गोपवेषं किशोरं च सस्मितं श्यामसुन्दरम्। मयूरपिच्छचूडं च रत्नालंकारभूषितम् ॥९५॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं वनमालाविभूषितम्। क्षणं ददर्श स्वच्छं च शंकरं चन्द्रशेखरम् ॥९६॥
त्रिशूलपट्टिशकरं व्याघ्रचर्माम्बरं परम्। विभूतिगात्रममलमस्थिमालाविभूषितम् ॥९७॥
नागयज्ञोपवीतं च तप्तस्वर्णजटाधरम्। डमरुशृङ्गहस्तं च सुप्रशस्तं मनोहरम् ॥९८॥
प्रजपन्तं हरेर्नाम श्वेताब्जबीजमालया। ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारकम् ॥९९॥
स्वतेजसा प्रज्वलन्तं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम्। क्षणं ददर्श जगतां स्रष्टारं च चतुर्मुखम् ॥१००॥
जपन्तं श्रीहरेर्नाम स्वच्छस्फटिकमालया। क्षणं सूर्यस्वरूपं च ददर्श त्रिगुणात्मकम् ॥१०१॥
ददर्श तमतीवं तु ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा। क्षणमग्निस्वरूपं च ज्वलन्तमतितेजसा ॥१०२॥
क्षणमाह्लादजनकं चन्द्ररूपं ददर्श ह। क्षणं तेजःस्वरूपं च निराकारं निरञ्जनम् ॥१०३॥
निर्लिप्तं च निरीहं च परमात्मस्वरूपिणम्। एवं स्वेच्छामयं दृष्ट्वा नानारूपधरं परम् ॥१०४॥
हर्षाश्रुपुलकः शैलो दण्डवत्प्रणनाम तम्। भक्त्या प्रदक्षिणीकृत्य प्रणम्य च पुनः पुनः ॥१०५॥

---

चर्चित हैं तथा वे भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए कातर हैं। हिमवान् ने पूजाकाल में (भगवान्) गदाधर को जो-जो पुष्प सर्मपित किये थे, वे सब उस भिक्षुक के अंग और सिर पर दिखायी पड़े। धूप, दीप एवं मनोहर नैवेद्य भी, जो पर्वतराज ने वहाँ सर्मपित किया था, वह सब भिक्षुक के सामने रखा देखा। दूसरे ही क्षण में वही भिक्षुक पुनः द्विभुज रूप में दिखायी दिया, जिसके हाथ में विनोद-मुरली थी। गोपवेश, किशोरवय, मन्दहास, मोर-पंख की चूडा, रत्नों के आभूपणों से भूपित, चन्दनचर्चित सर्वाङ्ग और वनमाला से सुशोभित—मानो साक्षात् श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण हों। पुनः क्षणमात्र में उसे शुभ्रवर्ण शिव रूप में देखा। उसके हाथों में त्रिशूल और पट्टिश थे। वह बाघम्बर, भस्म और अस्थिमाला से विभूषित था। वह अस्थिमाला एवं यज्ञोपवीत पहने हुए था। उसकी जटा तप्त सुवर्ण के समान चमक रही थी। हाथों में डमरू और शृंग थे, अत्यन्त प्रशस्त एवं मनोहर रूप था ॥९०-९८॥ वह श्वेत कमल की माला से हरि के नाम का जप कर रहा था तथा मन्दहास समेत प्रसन्नमुख, भक्तों पर अनुग्रहार्थ कातर, अपने तेज से प्रज्वलित एवं पाँच मुख और तीन नेत्रों से युक्त था। फिर दूसरे ही क्षण में उन्होंने भिक्षुक को जगत्-स्रष्टा चतुर्मुख ब्रह्मा के रूप में देखा, जो स्वच्छ स्फटिक की माला से हरि के नाम का जप कर रहा था। क्षण भर में पुनः त्रिगुणात्मक सूर्य-रूप में देखा, जो ब्रह्मतेज से अति प्रज्वलित था। क्षण में पुनः उसे अति तेज से प्रदीप्त अग्नि के रूप में देखा ॥९९-१०२॥ क्षण में हर्षजनक चन्द्ररूप में देखा। क्षण में तेजःस्वरूप, निराकार, निरञ्जन, निर्लिप्त, निरीह और परमात्मस्वरूप में देखा। इस भाँति अनेक रूपधारी उन स्वेच्छामय को देखकर हिमालय के नेत्र प्रेमवश सजल हो गये, शरीर में रोमाञ्च हो आया। उन्होंने दण्डवत् प्रणाम किया और भक्तिपूर्वक प्रदक्षिणा करके उन्हें बार-बार प्रणाम करने लगे ॥१०३-१०५॥ फिर हर्ष से उछलकर पर्वतराज ने पुनः उन्हें देखा तो वही भिक्षुक सामने था। वास्तव में वह भिक्षुक ही

समुत्पत्य हर्षयुक्तो ददर्श पुनरेव तम् । वास्तवं भिक्षुकं दृष्ट्वा शैलेन्द्रो विष्णुमायया ॥१०६॥
विसस्मार च तत्सर्वं नानारूपधरं[1] परम् । भिक्षां ययाचे भिक्षुस्तं भिक्षास्थालीस्वपात्रकः[2] ॥१०७॥
रक्ताम्बरः शृङ्गवाद्यविचित्रडमरुः करे । आदातुमुत्सुको दुर्गां नान्यां भिक्षुः कदाचन ॥१०८॥
न स्वीचकार शैलेन्द्रो मोहितो विष्णुमायया । भिक्षः किंचिन्न जग्राह तत्रैवान्तरधीयत ॥१०९॥
तदा बभूव ज्ञानं च मेनकाशैलयोः प्रिये । अहो दृष्टो जगन्नाथ आवाभ्यां स्वप्नवद्दिने ॥११०॥
आवां शिवो वञ्चयित्वा स्वस्थानं गतवान्विभुः । तयोर्भक्तिं शिवे दृष्ट्वा सर्वे देवाश्च चिन्तिताः ॥१११॥
चक्रुः शक्रादयो युक्तिं सुमेरो रक्षणे भरात् । एकान्तभक्त्या शैलश्चेत्कन्यां तस्मै प्रदास्यति ॥११२॥
ध्रुवं निर्वाणतां सद्यः संप्राप्नोत्येव भारते । अनन्तरत्नधारश्चेत्पृथ्वीं त्यक्त्वा प्रयास्यति ॥११३॥
रत्नगर्भाभिधा भूमेर्मिथ्यैव भविता ध्रुवम् । स्थावरत्वं परित्यज्य दिव्यरूपं विधाय सः ॥११४॥
कन्यां शूलभृते दत्त्वा विष्णुलोकं गमिष्यति । नारायणस्य सारूप्यं भविष्यत्येव लीलया ॥११५॥
सम्प्राप्य पार्षदत्वं च हरिदासो भविष्यति । दशवापीसमा कन्या दीयते ब्राह्मणाय ताम् ॥११६॥

---

है—ऐसा उन्हें दिखायी दिया । विष्णु की माया से शैलराज उसके नाना रूप धारण सम्बन्धी सब बातों को भूल गये । भिक्षुक उनसे भीख माँगने लगा। उसके पास भिक्षा का पात्र था । उसने रक्त वस्त्र धारण कर रखा था । हाथों में शृंग और विचित्र डमरू के बाजे थे । वह भिक्षा में केवल दुर्गा को ग्रहण करने के लिए उत्सुक था, दूसरी किसी वस्तु को नहीं ॥१०६-१०८॥ किन्तु विष्णु की माया से मोहित शैलराज ने इसे स्वीकार नहीं किया । भिक्षु भी अन्य कुछ न लेकर वहीं अन्तर्हित हो गया ॥१०९॥ प्रिये ! भिक्षुक के चले जाने पर उन दोनों मेना-हिमवान् को ज्ञान हुआ कि—अहो ! हम दोनों को जगन्नाथ शिव दिन में स्वप्न की भाँति दिखायी पड़े, भगवान् शिव हमें वञ्चित करके अपने स्थान को चले गये । शिव में उन दोनों की ऐसी भक्ति देखकर देवगण अति चिन्तित हुए ॥११०-१११॥ भार से सुमेरु की रक्षा के लिए युक्ति करने लगे । वे आपस में कहने लगे कि यदि हिमालय भारत में अनन्य भक्ति से शिव को कन्या प्रदान करेंगे तो वे अवश्यमेव निर्वाणमोक्ष प्राप्त कर लेंगे । अनन्तरत्नधारी हिमालय यदि पृथिवी त्यागकर भारत से चले जायेंगे, तो पृथ्वी का 'रत्नगर्भा' (वसुन्धरा) नाम निश्चित ही मिथ्या हो जायगा । क्योंकि शूलपाणि शिव को कन्या देकर अपने स्थावरत्व को त्यागकर दिव्यरूप धारण करके हिमालय विष्णुलोक को चले जायेंगे । वहाँ नारायण का सारूप्य मोक्ष उन्हें अनायास प्राप्त हो जायगा ॥११२-११५॥ फिर पार्षद-पद प्राप्त करके वे हरिदास हो जायेंगे । ब्राह्मण को कन्यादान करने पर दस वापी (बावली) बनवाने का पुण्य प्राप्त होता है ॥११६॥ जो वेद का ज्ञाता,

---

१ क. °पप्रदर्शनम् । २ ख. °कम् ।

वेदज्ञाय पवित्राय चाप्रतिग्रहशालिने । संध्यायज्ञ वेदपाठकारिणे सत्यवादिने ॥११७॥
अस्मै प्रदत्ता कन्या च दशवापीफलप्रदा । त्रिसंध्यं कारिणे सत्यवादिने गृहशालिने ॥११८॥
वेदज्ञाय सुविप्राय दत्त्वा सुफलदायिनी । प्रतिग्रहगृहीताय संध्याहीनाय नित्यशः ॥११९॥
मूर्खाय दत्ता कन्या सा त्वर्धांशफलदायिनी । परदारगृहीताय याजकाय द्विजातये ॥१२०॥
शठाय संध्याहीनाय वाप्यैकफलदा सुता । सर्वसंध्यास्वगायत्रीविहीनाय शठाय च ॥१२१॥
वैश्योद्भवाय[1] दत्ता या वाप्यर्धफलदा स्मृता । पापिने शूद्रजाताय विप्रक्षत्त्रोद्भवाय च ॥१२२॥
दत्त्वा चाण्डालतुल्याय कन्या सा नरकप्रदा । विष्णुभक्ताय विदुषे विप्राय सत्यवादिने ॥१२३॥
जितेन्द्रियाय दत्ता या विंशद्वापीफलप्रदा । षष्टिवर्षसहस्राणि दिव्यरूपं विधाय च ॥१२४॥
एवंभूताय दत्ता चेन्मोदते विष्णुमन्दिरे । दत्त्वा कन्यां सुशीलां च हराय हरयेऽथवा ॥१२५॥
नारायणस्वरूपं च भवेदेव श्रुतौ श्रुतम् । विष्णुभक्तो यदा कन्यां ददाति विष्णुप्रीतये ॥१२६॥
स लभेद्धरिदास्यं च ध्रुवं विप्रोद्भवाय च । इत्यालोच्य सुराः सर्वे कृत्वा च मन्त्रणां प्रिये ॥१२७॥
गुरुं प्रस्थापितुं जग्मुर्हिमालयगृहं प्रति । गत्वा प्रणम्य च गुरुं सर्वे चक्रुर्निवेदनम् ॥१२८॥
हिमालयगृहं गत्वा कुरु निन्दां च शूलिनः । पिनाकिनं विना दुर्गा वरं नान्यं वरिष्यति ॥१२९॥

---

पवित्राचरण, प्रतिग्रह (दान) न लेनेवाला, संध्या, यज्ञ एवं वेद पाठ करनेवाला तथा सत्यवक्ता हो, उसको कन्या देने से दस वापी खुदवाने का फल प्राप्त होता है, तीनों काल की संध्या करनेवाले, सत्यवादी, गृहस्थ, वेद-ज्ञाता एवं उत्तम ब्राह्मण को कन्यादान करने से सुफल होता है। प्रतिग्रह ग्रहण करनेवाले, नित्य संध्या से रहित और मूर्ख को दी गयी कन्या आधा फल देती है। दूसरे की स्त्री ग्रहण करनेवाले, यज्ञ करानेवाले, शठ और संध्याहीन ब्राह्मण को दी गयी कन्या एक वापी का फल प्रदान करती है। तीनों काल की संध्या अपनी गायत्री से रहित, शठ तथा वैश्य से उत्पन्न व्यक्ति को कन्यादान करने से आधी वापी का फल प्राप्त होता है। पापी तथा शूद्र द्वारा उत्पन्न या ब्राह्मण या क्षत्रिय से उत्पन्न चाण्डाल तुल्य व्यक्ति को कन्या प्रदान करने से नरक प्राप्त होता है ॥११७-१२२½॥ विष्णुभक्त, विद्वान्, सत्यवक्ता और जितेन्द्रिय ब्राह्मण को कन्यादान करने पर बीस वापी का फल प्राप्त होता है। फिर साठ हजार वर्षों तक दिव्य-रूप धारण करके वह (दाता) विष्णु-मन्दिर में आनन्द प्राप्त करता है। शिव या विष्णु को सुशीला कन्या प्रदान करने से वह नारायण स्वरूप हो जाता है, ऐसा वेद में सुना गया है। जब विष्णु का भक्त विष्णु के प्रीत्यर्थ ब्राह्मण को कन्यादान करता है तो वह निश्चित हरिदास्य पद प्राप्त करता है ॥१२३-१२६½॥ हे प्रिये ! यह सब सोचकर सभी देवता मन्त्रणा (सलाह) करके हिमालय के घर बृहस्पति को भेजने के लिए गये। जाकर गुरु को प्रणाम करके उनसे निवेदन करने लगे कि ॥१२७-१२८॥ आप हिमवान् के घर जाकर शूलधारी शिव की निन्दा कीजिये, क्योंकि पिनाकी शिव के

---

१ क. विप्रोद्भ॰ ।

अनिच्छया सुतां दत्वा फलं पूर्णं न लभ्यते। कालेन यातु शैलेन्द्रश्चेदानीं भुवि तिष्ठतु ॥१३०॥
अनन्तरत्नाधारं च त्वमेव रक्ष भारते। देवानां वचनं श्रुत्वा प्रददौ कर्णयोः करौ ॥१३१॥
न स्वीचकार स्वगुरुः स्मरन्नारायणेति च। उवाच देववर्गांश्च संभर्त्स्यं च पुनः पुनः
वेदवेदाङ्गविज्ञाता[1] महाभक्तो हरौ हरे ॥१३२॥

## बृहस्पतिरुवाच

श्रूयतां मद्वचः सत्यं हे देवाः स्वार्थसाधकाः
नीतिसारं च वेदोक्तं परिणामसुखावहम्। हरकेशवयोर्भक्तं ये च निन्दन्ति पापिनः ॥१३३॥
भूदेवान्ब्राह्मणांश्चैव स्वगुरुं च पतिव्रताः। पतिभिक्षुब्रह्मचारिसृष्टिबीजान्सुरांस्तथा ॥१३४॥
पच्यन्ते कालसूत्रे ते यावच्चन्द्रदिवाकरौ। श्लेष्ममूत्रपूरीषेषु शेरते ते दिवानिशम् ॥१३५॥
भक्षिताः कीटनिकरैः शब्दं कुर्वन्ति कातराः। ये निन्दन्ति च ब्रह्माणं स्रष्टारं जगतां गुरुम् ॥१३६॥
शिवं सुराणां प्रवरं दुर्गां लक्ष्मीं सरस्वतीम्। गीतां च तुलसीं गङ्गां वेदांश्च वेदमातरम् ॥१३७॥
व्रतं तपस्यां पूजां च मन्त्रं मन्त्रप्रदं गुरुम्। ते पच्यन्तेऽन्धकूपे वै चाऽऽयुषोऽर्धं विधेरहो ॥१३८॥

---

अतिरिक्त किसी दूसरे का वरण दुर्गा कभी नहीं करेंगी ॥१२९॥ उस दशा में हिमवान् अनिच्छा से ही अपनी पुत्री शिव को देंगे। ऐसा करने से कन्यादान का पूरा फल नहीं मिलेगा। कालान्तर में गिरिराज भले ही मुक्त हो जायँ; परन्तु इस समय तो इन्हें पृथ्वी पर रहना ही चाहिए। आप ही अनन्त रत्नों के आधारभूत हिमालय को भारतवर्ष में रखिये। देवताओं की बात सुनकर बृहस्पति ने दोनों हाथ कानों में लगा लिये और नारायण का स्मरण करते हुए उसे अस्वीकार कर दिया। वेदान्त के विशिष्ट ज्ञाता और विष्णु एवं शिव के महाभक्त बृहस्पति ने देवों की बार-बार भर्त्सना करते हुए कहा ॥१३०-१३२॥

**बृहस्पति बोले**—हे स्वार्थ-साधक देवगण ! तुम लोग मेरा सत्य वचन सुनो, जो नीति का सारभाग, वेदोक्त और परिणाम में सुख देनेवाला है। जो पापी शिव तथा विष्णु के भक्त की, भूदेव ब्राह्मणों की, अपने गुरु, पतिव्रता स्त्रियों, पति, भिक्षु, ब्रह्मचारी और सृष्टि के बीजभूत देवों की निन्दा करते हैं, वे सूर्य-चन्द्रमा के समय तक कालसूत्र नामक नरक में पकाये जाते हैं तथा कफ, मूत्र और मल में दिन-रात पड़े रहते हैं एवं कीड़ों के समूह उन्हें खाया करते हैं, जिससे वे सदैव कातर होकर चिल्लाया करते हैं। जो जगत् के स्रष्टा एवं गुरु ब्रह्मा, देव-प्रवर शिव, दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, गीता, तुलसी, गंगा, वेद, वेदमाता (सावित्री), व्रत, तप, पूजा, मन्त्र और मन्त्रदाता गुरु की निन्दा करते हैं, वे ब्रह्मा की आधी आयु तक अन्धकूप नामक नरक

---

[1] ख. 'दान्तवि'।

भक्षिताः सर्पसंघैश्च शब्दं कुर्वन्ति संततम् । ये निन्दन्ति हृषीकेशं देवसाम्यं विधाय च ॥१३९॥
विष्णुभक्तिप्रदं चैव पुराणं च श्रुतेः परम् । राधां तदङ्गजा गोपीर्ब्राह्मणांश्च सदार्चितान् ॥१४०॥
ते पच्यन्तेऽवटे देवा विधातुरायुषा समम् । अधोमुखा ऊर्ध्वजङ्घाः सर्पसंघैश्च वेष्टिताः ॥१४१॥
भक्षिता विकृताकारैः कीटैः सर्पसमाकृतैः । अतीव कातरा भीताः शब्दं कुर्वन्ति संततम् ॥१४२॥
श्लेष्ममूत्रपुरीषाणि ध्रुवं भक्षन्ति क्षोभिताः । उल्कां ददति रुष्टाश्च तन्मुखे यमकिंकराः ॥१४३॥
त्रिसंध्यं तर्जनं कृत्वा कुर्वन्ति दण्डताडनम् । कुर्वन्ति मूत्रपानं च प्रहारैस्तृषितान्भिया ॥१४४॥
तदा कल्पान्तरे स्रष्टुं सृष्टिं च प्रथमे पुनः । तेषां भवेत्प्रतीकार इत्याह कमलोद्भवः ॥१४५॥
कृत्वा हि शिवनिन्दां च यास्यन्ति नरकं सुराः । इममेवोपकारं च कर्तुमिच्छथ पुत्रकाः ॥१४६॥
ब्रह्मणा प्रेरितो दक्षो दत्त्वा शूलभृते सुताम् । न पापं परमैश्वर्यं संप्राप हरनिन्दकः ॥१४७॥
अनिच्छया सुतां दत्त्वा तुर्यपुण्यं ललाभ सः । अहो विहाय सारूप्यं तुच्छं स्वर्गं ललाभ सः ॥१४८॥
कश्चिन्मध्ये च युष्माकं गत्वा शैलगृहं सुराः । संपादयत्वभिमतं शैलेन्द्रस्य प्रयत्नतः ॥१४९॥

---

में पकते रहते हैं ॥१३३-१३८॥ सर्प-समूह उन्हें खाया करते हैं, जिससे वे निरन्तर चिल्लाते रहते हैं। जो भगवान् मधुसूदन की देवता से तुलना करके उनकी निन्दा करते हैं, विष्णुभक्ति प्रदान करनेवाले पुराण में, जो वेद से भी उत्कृष्ट है, दोष निकालते हैं, राधा तथा उनकी कायव्यूहरूपा गोपियों की और सदा पूजित होनेवाले ब्राह्मणों की भी निन्दा करते हैं, वे देवता ही क्यों न हों, ब्रह्मा की आयु पर्यन्त नरक के गड्ढे में पकाये जाते हैं। उनके मुंह नीचे लटकाये जाते हैं और उनकी जांघें ऊपर की ओर होती हैं। विकृताकार सर्पसमूह तथा सर्प की-सी आकृतिवाले कीट उनके सारे अंगों में लिपटकर काटते रहते हैं और वे अत्यन्त कातर तथा भयभीत हो सदा आर्तनाद किया करते हैं ॥१३९-१४२॥ निश्चय ही वहाँ वे क्षोभपूर्वक कफ, मूत्र और मल भक्षण करते हैं तथा रुष्ट यमदूत उनके मुख में जलती हुई लुआठी डाल देते हैं ॥१४३॥ तीनों संध्याओं में उनकी तर्जना करते हुए उन पर डंडों का प्रहार करते हैं। डंडों के प्रहारों से प्यास लगने पर वे उन यमदूतों के भय से मूत्र-पान करते हैं ॥१४४॥ पुनः दूसरे कल्प में सृष्टि के समय सर्वप्रथम उनका प्रतीकार (पापों का निवारण) किया जाता है, ऐसा ब्रह्मा ने कहा है ॥१४५॥ शिव की निन्दा करके देवतागण नरक में जायेंगे। हे पुत्रो ! क्या यही उपकार करना चाहते हो ॥१४६॥ ब्रह्मा से प्रेरित होकर दक्ष ने शिव को अपनी कन्या का दान किया था, इसीलिए उनकी निन्दा करने पर भी उन्हें पापभागी नहीं होना पड़ा, अपितु उन्होंने परम ऐश्वर्य की प्राप्ति की ॥१४७॥ हाँ, यह अवश्य हुआ कि अनिच्छापूर्वक कन्यादान करने से उन्हें चौथाई पुण्य की ही प्राप्ति हुई। अतएव वे सारूप्य मोक्ष को न पाकर केवल तुच्छ स्वर्ग की ही प्राप्ति कर सके ॥१४८॥ देवताओ ! तुम्हीं लोगों में से कोई पर्वतराज के घर जाकर उनसे प्रयत्नपूर्वक अपने मत के अनुसार कार्य करे। अनिच्छापूर्वक कन्या का दान

अनिच्छया सुतां दत्त्वा सुखं तिष्ठतु भारते । तस्मै भक्त्या सुतां दत्त्वा मोक्षं प्राप्स्यति निश्चितम् ॥१५०॥
पश्चात्सप्तर्षयः सर्वे गृहीत्वा तामरुन्धतीम् । ध्रुवं तस्य गृहं गत्वा बोधयिष्यन्ति पर्वतम् ॥१५१॥
बिना पिनाकिनं दुर्गा वरं नान्यं वरिष्यति । अनिच्छया सुतां तस्मै प्रदास्यति सुताज्ञया ॥१५२॥
इत्येवं कथितं सर्वं देवा गच्छन्तु मन्दिरम् । इत्युक्त्वा वाक्पतिः शीघ्रं तपसे स्वर्णदीं गतः ॥१५३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४०॥

# अथैकचत्वारिंशोऽध्यायः

### श्रीकृष्ण उवाच

तदा देवाः समालोच्य जग्मुस्ते ब्रह्मणोऽन्तिकम् । सर्वं निवेदनं चक्रुर्ब्रह्माणं जगतां पतिम् ॥१॥

---

करके हिमालय भारत में सुखपूर्वक रहें। भक्तिपूर्वक कन्यादान करने पर तो वे अवश्य ही मोक्ष प्राप्त कर लेंगे ॥१४९-१५०॥ पश्चात् (अश्रद्धा उत्पन्न हो जाने के बाद) अरुन्धती को साथ लेकर सब सप्तर्षि अवश्य ही पर्वतराज के घर जाकर उन्हें समझायेंगे। दुर्गा पिनाकी शिव के अतिरिक्त किसी अन्य का वरण नहीं करेंगी। उस दशा में पुत्री के आग्रह से वे शिव को कन्या देंगे। इस प्रकार मैंने सब कह दिया। अन्य देवता लोग अपने-अपने घर को जायें—इतना कहकर बृहस्पति तप करने के लिए गङ्गा जी चले गये ॥१५१-१५३॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्ण-जन्म-खण्ड में नारद-नारायण-संवाद में चालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४०॥

## अध्याय ४१

### राजा अनरण्य का वृत्तान्त

**श्रीकृष्ण बोले**—तब देवगण भली-भाँति विचार करके ब्रह्मा के पास पहुँचे। वहाँ सभी ने जगत्पति ब्रह्मा से निवेदन किया ॥१॥

## देवा ऊचुः

तव सृष्टो जगत्स्रष्टा रत्नाधारो हिमालयः । स चेत्प्राप्स्यति मोक्षं च रत्नगर्भा कुतो मही ॥२॥
सुतां शूलभृते दत्त्वा भक्त्या शैलेश्वरः स्वयम् । नारायणस्य सारूप्यं संप्राप्स्यति न संशयः ॥३॥
त्वं तस्य निन्दनं कृत्वा विमतिं प्रतिपादय । त्वया विना क्षमो नान्यो गच्छ शैलगृहे प्रभो ॥४॥
देवानां वचनं श्रुत्वा तानुवाच विधिः स्वयम् । वचनं नीतिसारं च कर्णपीयूषमुत्तमम् ॥५॥

## ब्रह्मोवाच

नाहं कर्तुं क्षमो वत्साः शिवनिन्दां सुदुष्कराम् । संपद्विनाशरूपां च विपदो बीजरूपिणीम् ॥६॥
भूतेशं प्रस्थापयत स्वात्मनिन्दां करोतु सः । परनिन्दा विनाशाय स्वनिन्दा यशसे परम् ॥७॥
ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा तं प्रणम्य सुराः प्रिये । शीघ्रं ययुस्ते कैलासं गत्वा च तुष्टुवुः शिवम् ॥८॥
सर्वं निवेदनं चक्रुः शंकरं करुणालयम् । स ययौ शैलमूलं च तानाश्वास्य प्रहस्य च ॥९॥
देवा मुमुदिरे सर्वे शीघ्रं गत्वा स्वमन्दिरम् । इष्टासिद्धिर्मुदे शश्वदसिद्धिर्दुःखर्वधिनी ॥१०॥
अथ शैलः सभामध्ये समुवास मुदाऽन्वितः । बन्धुवर्गैः परिवृतः पार्वतीसहितः स्वयम् ॥११॥

---

**देववृन्द बोले**—हे संसार की सृष्टि करनेवाले ! तुम्हारी सृष्टि में हिमालय रत्नों का आधार है । यदि उसे मोक्ष मिल जायगा, तो यह पृथ्वी 'रत्नगर्भा' कैसे कहलायेगी ? पर्वतराज हिमालय शूलधारी शिव को भक्तिपूर्वक कन्या प्रदान करके नारायण का सारूप्य मोक्ष प्राप्त करेंगे, इसमें संशय नहीं ॥ २-३॥ प्रभो ! इसलिए आप हिमालय के घर जायँ और शिव की निन्दा करके पर्वतराज के मन में अश्रद्धा उत्पन्न कर दें । आपके सिवा दूसरा यह कार्य करने में समर्थ नहीं है ॥४॥ देवों की बात सुनकर स्वयं ब्रह्मा ने उनसे नीति का सार-भाग एवं कानों को अमृत के समान लगनेवाला उत्तम वचन कहा ॥५॥

**ब्रह्मा बोले**—बच्चो ! मैं शिव की निन्दा करने में असमर्थ हूँ, जो अत्यन्त कठिन, सम्पत्ति का नाश करनेवाली और विपदाओं का बीज रूप है ॥६॥ तुम लोग उन्हीं भूतनाथ को ही भेजो । वे ही अपनी निन्दा करें । परायी निन्दा करने से विनाश होता है और अपनी निन्दा करने से महान् यश प्राप्त होता है ॥७॥ प्रिये ! ब्रह्मा की बात सुनकर देव लोग उन्हें प्रणाम करके शीघ्र ही कैलास को गये और वहाँ पहुँचकर शिव की स्तुति करने लगे ॥८॥ अनन्तर करुणालय शिव से देवों ने निवेदन किया, जिसे सुनकर वे बहुत हँसे और देवों को आश्वासन देकर स्वयं हिमालय के यहाँ पहुँचे । यह देखकर देवों को अपार हर्ष हुआ, वे सब शीघ्रता से घर पहुँचकर आनन्द मनाने लगे । क्यों न हो, इष्टसिद्धि आनन्द देनेवाली और अभीष्ट वस्तु की असिद्धि सदा दुःख बढ़ानेवाली होती है ॥९-१०॥ पर्वतराज हिमालय बन्धुवर्गों से आवृत होकर स्वयं पार्वती समेत

एतस्मिन्नन्तरे तत्र विप्ररूपी शिवः स्वयम् । समाजगाम सहसा प्रसन्नवदनेक्षणः ॥१२॥
दण्डी छत्री दीर्घवासा बिभ्रत्तिलकमुत्तमम् । करे स्फटिकमाला च शालग्रामं गले दधत् ॥१३॥
तं च दृष्ट्वा समुत्तस्थौ सगणश्च हिमालयः । ननाम दण्डवद्भूमौ भक्त्याऽतिथिमपूर्वकम् ॥१४॥
ननाम पार्वती भक्त्या प्राणेशं विप्ररूपिणम् । आशिषं युयुजे विप्रः सर्वेषां प्रीतिपूर्वकम् ॥१५॥
शैलदत्तासने शीघ्रमुवास ब्राह्मणः स्वयम् । मधुपर्कादिकं सर्वं जग्राह प्रीतिपूर्वकम् ॥१६॥
पप्रच्छ कुशलं शैलो ब्राह्मणं को भवानिति । उवाच सर्वं विप्रेन्द्रो गिरीन्द्रं सादरेण च ॥१७॥

## ब्राह्मण उवाच

वाटिकां वृत्तिमाश्रित्य भ्रमामि धरणीतले । मनोयायी सर्वगामी सर्वज्ञोऽहं गुरोर्वरात् ॥१८॥
मया ज्ञातं शंकराय सुतां दातुं त्वमिच्छसि । इमां पद्मासमां दिव्यामज्ञातकुलशीलिने ॥१९॥
निराश्रयायासङ्गायारूपाय निर्गुणाय च । श्मशानगामिने सर्वभूतनाथाय योगिने ॥२०॥
दिग्वाससेऽहिगात्राय विभूतिभूषणाय च । व्यालग्राहिस्वरूपाय कालव्यापादनाय च ॥२१॥
अज्ञातमृत्यवेऽज्ञायानाथायाबन्धवे भवे । तप्तस्वर्णजटाभारधारिणे निर्धनाय च ॥२२॥

---

सभा में बैठे हुए थे ॥११॥ उसी बीच ब्राह्मण वेश में शिव स्वयं वहां सहसा पधारे। उनके मुख और नेत्रों से प्रसन्नता प्रकट हो रही थी। उनके हाथ में दण्ड और छत्र था। उनका वस्त्र लम्बा था। उन्होंने ललाट में उत्तम तिलक लगा रखा था। वे एक हाथ में स्फटिक की माला और गले में शालग्राम की मूर्ति धारण किये हुए थे ॥१२-१३॥ उनको देखकर हिमालय अपने गण समेत उठकर बड़ी भक्ति से उस अपूर्व अतिथि को नमस्कार किया और खड़े हो गये। फिर भूमि पर दण्ड की भांति पड़कर अपने प्राणेश्वर को ब्राह्मण रूप में देखकर पार्वती ने भी अति भक्ति से नमस्कार किया। ब्राह्मण ने सबको प्रीतिपूर्वक आशीर्वाद प्रदान किया तथा पर्वतराज के द्वारा प्रदत्त आसन पर सुखासीन होकर उनके मधुपर्क आदि सभी स्वागत को भी प्रीतिपूर्वक स्वीकार किया ॥१४-१६॥ हिमवान् ने ब्राह्मण से कुशल-समाचार पूछा—'आप कृपया अपना परिचय बतायें।' यह सुनकर विप्रवर ने गिरिराज को सादर सब कुछ बता दिया ॥१७॥

**ब्राह्मण बोले–** मैं घटक-वृत्ति (वर-कन्या के विवाह सम्बन्ध कराने का कार्य) का आश्रय लेकर भूमण्डल में घूमता रहता हूँ। मेरी मन के समान तीव्र गति है। गुरुदेव के वरदान से मैं सर्वत्र पहुँचने में समर्थ एवं सर्वज्ञ हूँ ॥१८॥ मुझे ज्ञात हुआ है कि तुम लक्ष्मी के समान अपनी यह कन्या शिव को देना चाहते हो, जिसके कुल और शील का कुछ पता ही नहीं है ॥१९॥ वे आश्रयहीन, संग और रूप से रहित, निर्गुण, श्मशान में रहनेवाले, समस्त भूतगणों के स्वामी, योगी, दिगम्बर (नङ्गे), शरीर में सांप लपेटे, विभूति (राख) लगाये, सँपेरे के समान स्वरूपवाले, कालनाशक, अज्ञातमृत्यु, अज्ञ (मूढ़), अनाथ, संसार में बन्धुरहित, तपाये सुवर्ण के समान जटा का भार धारण किये, निर्धन, अज्ञात अवस्था (आयु) वाले, अतिवृद्ध, विकारशून्य, सबका आश्रय, घुमक्कड़,

अज्ञातवयसेऽतीव वृद्धाय चाविकारिणे। सर्वाश्रयाय भ्रमिणे नागहाराय भिक्षवे ॥२३॥
निबोध ज्ञानिनां श्रेष्ठं नारायणं कुलोद्भवम्। स ते पात्रानुरूपश्च पार्वतीदातृकर्मणि[1] ॥२४॥
महाजनः स्मेरमुखः श्रुतिमात्राद्भविष्यति। लक्षशैलाधिपस्त्वं च न तस्यैकोऽस्ति बान्धवः ॥२५॥
बान्धवान्मेनकां प्रश्नं कुरु शीघ्रं प्रयत्नतः। सर्वान्पृच्छ प्रयत्नेन हे बन्धो पार्वतीं विना ॥२६॥
रोगिणे नौषधं शश्वत्कुपथ्यं रोचते सदा। इत्युक्त्वा ब्राह्मणः शीघ्रं स्नात्वा भुक्त्वा मुदाऽन्वितः ॥२७॥
जगाम स्वालयं शान्तो वृन्दावनविनोदिनि। ब्राह्मणस्य वचः श्रुत्वा मेनोवाच हिमालयम्
शोकेन साश्रुनयना हृदयेन विदूयता ॥२८॥

## मेनकोवाच

शृणु शैलेन्द्र मद्वाक्यं परिणामसुखावहम्। पृच्छ शैलवरानस्मै न दास्यामि सुतामहम् ॥२९॥
त्यक्ष्यामि सर्वान्विषयान्भक्ष्यामि विषमेव च। गले बद्ध्वाऽम्बिकां पश्य यास्यामि घोरकाननम् ॥३०॥
गृहीत्वा पार्वतीं मेना गत्वा कोपालयं रुषा। त्यक्त्वाऽऽहारं रुदन्ती च चकार शयनं भुवि ॥३१॥

---

सर्पों का हार धारण करनेवाले तथा भिखमंगे हैं ॥२०-२३॥ (यही उनका परिचय है जिन्हें तुम अपनी पुत्री देने जा रहे हो)। नारायण ज्ञानियों में श्रेष्ठ तथा कुलीन हैं। तुम उनके महत्त्व को समझो। पार्वती के दानकर्म में वे ही तुम्हारे लिए योग्य पात्र हैं ॥२४॥ पार्वती का विवाह शंकर से हो रहा है, यह सुनते ही बड़े-बड़े लोगों के मुख पर (उपहाससूचक) मुसकराहट दौड़ जायेगी। तुम लाखों पर्वतों के अधीश्वर हो और शिव के एक भी कोई बान्धव नहीं है ॥२५॥ अतः तुम अपने बान्धवों और पत्नी मेना से भलीभाँति पूछकर इसका निर्णय लो। हे बन्धो! मैं इतना ही कहूँगा कि इस विषय में सबसे प्रयत्नपूर्वक पूछो किन्तु पार्वती से कभी मत पूछना ॥२६॥ क्योंकि रोगी को औषध कभी प्रिय नहीं होता है, वह निरन्तर कुपथ्य ही चाहता है। इतना कहकर वह ब्राह्मण शीघ्र हर्ष से स्नान-भोजन करके शान्त भाव से अपने घर चला गया। हे वृन्दावन में विनोद करने-वाली! ब्राह्मण का वचन सुनकर मेना का हृदय अति संतप्त हुआ, शोक से आँखों में आँसू भरकर उन्होंने हिमालय से कहा ॥२७-२८॥

**मेनका बोलीं**—हे शैलराज! मेरी बात सुनो! जो परिणाम में सुख देनेवाली है। तुम सभी श्रेष्ठ पर्वतों से पूछो, मैं अपनी पुत्री शिव को नहीं दूंगी ॥२९॥ देखो, मैं सभी विषयों को त्याग दूंगी, विष भक्षण कर लूंगी और पार्वती को अपने गले में बांधकर घोर जंगल में चली जाऊंगी ॥३०॥ (ऐसा कह) मेना क्रोध से पार्वती का हाथ पकड़कर कोपभवन में चली गयीं। वहाँ आहार त्यागकर रोदन करती हुई वे भूमि पर ही सो गयीं ॥३१॥

---

१ क. 'दानक'।

एतस्मिन्नन्तरे तत्र वसिष्ठो भ्रातृभिः सह। आजगाम पुनस्तैश्च युक्ता पश्चादरुन्धती ॥३२॥
प्रणम्य शैलस्तान्सर्वान्स्वर्णसिंहासनं ददौ। दत्त्वा षोडशोपचारान्पूजयामास भक्तितः ॥३३॥
ऋषयश्च सभामध्ये सुखमूषुः सुखासने। जगामारुन्धती तूर्णं यत्र मेना च पार्वती ॥३४॥
गत्वा ददर्श मेनां च शयानां शोकमूर्च्छिताम्। उवाच मधुरं साध्वी सावधाना हितं वचः ॥३५॥

### अरुन्धत्युवाच

उत्तिष्ठ मेनके साध्वि त्वद्गृहेऽहमरुन्धती। पितॄणां मानसी कन्या मां जानीहि विधेर्वधूम् ॥३६॥
अरुन्धत्याः स्वरं श्रुत्वा शीघ्रमुत्थाय मेनका। उवाच शिरसा नत्वा तां पद्मामिव तेजसा ॥३७॥

### मेनकोवाच

अहोऽद्य किमिदं पुण्यमस्माकं पुण्यजन्मनाम्। वधूर्जगद्विधेः पत्नी वसिष्ठस्य ममाऽऽलये ॥३८॥
संभ्रमेणेदमेवोक्तं गृहं तेऽहं च किंकरी। ईश्वरीं जगतां द्रष्टुमागतां बहुपुण्यतः ॥३९॥
पाद्यं दत्त्वा स्वर्णपीठे वासयामास तां सतीम्। भोजयामास मिष्टान्नं बुभुजे कन्यया सह ॥४०॥
शिवस्य हेतोर्नीतिं च बोधयामास मेनकाम्। अरुन्धती प्रसङ्गेन संबन्धयोजनानि च ॥४१॥

---

इसी बीच भ्राताओं समेत वसिष्ठ अरुन्धती को साथ लिये वहाँ आये ॥३२॥ हिमवान् ने उन सबको प्रणाम करके सोने का सिंहासन दिया और सोलह उपचार अर्पित करके भक्तिभाव से उनका पूजन किया ॥३३॥ ऋषिगण सभा के बीच सुखासीन हुए और अरुन्धती शीघ्र वहाँ पहुँची, जहाँ पार्वती समेत मेना स्थित थीं ॥३४॥ वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा कि मेना शोक से अधीर होकर भूमि पर पड़ी हैं। सती (अरुन्धती) ने सावधान मेना से मधुर वाणी में हितकर वचन कहा ॥३५॥

**अरुन्धती बोलीं**—हे पतिव्रता मेना उठो, मैं अरुन्धती तुम्हारे घर आयी हूँ, मैं पितरों की मानसी कन्या हूँ। मुझे ब्रह्मा की पुत्रवधू समझो ॥३६॥ अरुन्धती की वाणी सुनते ही मेना शीघ्रता से उठीं। उन्होंने लक्ष्मी के समान तेजस्विनी अरुन्धती को सिर से प्रणाम करके बोलीं ॥३७॥

**मेनका बोलीं**—अहा! हम लोगों का यह कौन-सा पुण्य आज फलित हुआ है, जिससे हमारे पर जगविधाता (ब्रह्मा) की पुत्रवधू और वसिष्ठ की पत्नी ने पदार्पण किया है ॥३८॥ देवि! मैं आपकी दासी हूँ। यह घर आपका घर है। हमारे बहुत पुण्य से आयी हुई जगत् की ईश्वरी को देखने का सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ है—शीघ्रता से इतना ही कहा। अनन्तर उस पतिव्रता को पाद्य (चरणप्रक्षालनार्थ) जल देकर मेना ने सुवर्ण के आसन पर उन्हें बिठाया और मिष्टान्न भोजन कराया। फिर स्वयं भी पुत्री के साथ भोजन किया ॥३९-४०॥ तत्पश्चात् अरुन्धती ने मेना को शिव के लिए नीति की बातें समझायीं और प्रसंगवश उनके साथ सम्बन्ध जोड़नेवाले वचन भी कहे ॥४१॥

अथ शैलमृषीन्द्राश्च नीतिसारं परं वचः। बोधयामासुः संबन्धयोजनानि[1] प्रसङ्गतः ॥४२॥

### ऋषय ऊचुः

शैलेन्द्र श्रूयतां वाक्यमस्माकं शुभकारकम्। शिवाय पार्वतीं देहि संहर्तुः श्वशुरो भव ॥४३॥
अयाचितारं देवेशं बोधयाऽऽशु प्रयत्नतः। तव शङ्काविनाशाय ब्रह्मसंबन्धकर्मणि ॥४४॥
नेच्छको दारसंयोगे शंकरो योगिनां वरः। विधेः प्रार्थनया देवस्तव कन्यां ग्रहीष्यति ॥४५॥
दुहितुस्ते तपस्यान्ते प्रतिज्ञानं चकार सः। हेतुद्वयेन योगीन्द्रो विवाहं च करिष्यति ॥४६॥
ऋषीणां वचनं श्रुत्वा प्रहस्य च हिमालयः। उवाच किंचिद्भीतश्च परं विनयपूर्वकम् ॥४७॥

### हिमालय उवाच

शिवस्य राजसामग्रीं[2] न हि पश्यामि कांचन। किंचिदाश्रममैश्वर्यं किंवा स्वजनबान्धवम् ॥४८॥
न कन्यामतिनिर्लिप्तयोगिने दातुमर्हति। यूयं विधातुः पुत्राश्च सत्यं वदत निश्चितम् ॥४९॥
नानुरूपाय पात्राय पिता कन्यां ददाति चेत्। कामाल्लोभाद्भयान्मोहाच्छताब्दं[3] नरकं व्रजेत् ॥५०॥
न हि दास्याम्यहं कन्यामिच्छया शूलपाणिने। यद्विधानं भवेद्योग्यमृषयस्तद्विधीयताम् ॥५१॥

---

इधर ऋषिवरों ने भी हिमवान् को उत्तम वाणी में नीति का सारतत्त्व समझाया और शिव-पार्वती के सम्बन्ध को जोड़नेवाली बातें भी कहीं ॥४२॥

**ऋषिगण बोले**—हे पर्वतराज ! हम लोगों का कल्याणकारक वचन सुनिये। भगवान् शिव को (अपनी पुत्री) पार्वती दे दो और उस संहारकारक के श्वशुर बनो ॥४३॥ अयाचक देवेश्वर शिव को तुम यत्नपूर्वक शीघ्र समझाओ—विवाह के लिए तैयार करो। इससे ब्रह्म-सम्बन्ध-कर्म (ब्राह्म-विवाह) के प्रति तुम्हारी शंका का निवारण हो जायगा ॥४४॥ योगिराज शंकर कभी विवाह के लिए इच्छुक नहीं है। ब्रह्मा जी की प्रार्थना से ही वे तुम्हारी पुत्री को ग्रहण करेंगे ॥४५॥ तुम्हारी कन्या के तप की समाप्ति पर उन्होंने ऐसी ही प्रतिज्ञा की है। इन कारणों से योगीन्द्र (शिव) विवाह स्वीकार कर लेंगे ॥४६॥ ऋषियों की बात सुनकर हिमालय हँसे और भयभीत होकर उन्होंने विनयपूर्वक कहा ॥४७॥

**हिमालय बोले**—शिव के पास राजा की भाँति न तो कुछ सामग्री (सुखसाधन) ही देखता हूँ, न घर है, न ऐश्वर्य है और न स्वजन-बान्धव ही हैं ॥४८॥ अतिनिर्लिप्त (निखट्टू उदासीन) योगी को कन्यादान करना भी नहीं चाहिए। आप लोग ब्रह्मा के पुत्र हैं अतः आप ही सत्य एवं निश्चित कहने की कृपा करें ॥४९॥ यदि काम, लोभ, भय या मोहवश पिता कन्या के अनुरूप पात्र के साथ उसका विवाह नहीं करता है तो उसे सौ वर्षों तक नरक में रहना पड़ता है ॥५०॥ इसलिए शूलपाणि शिव को मैं अपनी इच्छा से कन्या नहीं दूंगा। ऋषियों!

---

१ क. °नाय। २ क. राज्यसा°। ३ ख. काला°।

हिमालयवचः श्रुत्वा वसिष्ठो विधिनन्दनः । वेदवेदाङ्गविज्ञाता वेदोक्तं वक्तुमुद्यतः ॥५२॥

## वसिष्ठ उवाच

वचनं त्रिविधं[1] शैल लौकिके वैदिके तथा । सर्वं जानाति शास्त्रज्ञो निर्मलज्ञानचक्षुषा ॥५३॥
असत्यमहितं पश्चात्सांप्रतं श्रुतिसुन्दरम् । सुबुद्धं शत्रुर्वदति न हितं च कदाचन ॥५४॥
आपातप्रीतिजनकं परिणामसुखावहम् । दयालुर्धर्मशीलश्च बोधयत्येव बान्धवम् ॥५५॥
श्रुतिमात्रात्सुधातुल्यं सर्वकाले सुखावहम् । सत्यसारं हितकरं वचसां श्रेष्ठमीप्सितम् ॥५६॥
एवं च विविधं शैल नीतिशास्त्रनिरूपितम् । कथ्यतां त्रिषु मध्ये किं वदामि वाक्यमीप्सितम् ॥५७॥
बाह्यसंपद्विहीनश्च शंकरस्त्रिदशेश्वरः । तत्त्वज्ञानसमुद्रेषु संनिमग्नैकमानसः ॥५८॥
आपातभ्रमसंपत्तिर्विद्युच्छ्रीरिव नाशिनी । सदानन्दस्येश्वरस्य स्वात्मारामस्य का स्पृहा ॥५९॥
गृही ददाति स्वसुतां राज्यसंपत्तिशालिने । कन्यां विद्वेषिणे दत्त्वा कन्याघाती भवेत्पिता ॥६०॥
को वदेच्छंकरो दुःखी कुबेरो यस्य किंकरः । भ्रूभङ्गलीलया सृष्टिं स्रष्टुं नष्टुं क्षमो हि यः ॥६१॥

---

अतः इसके लिए जो समुचित विधान हो, वह आप करें ॥५१॥ हिमवान् की बात सुनकर वेद-वेदाङ्ग के विशेष ज्ञाता ब्रह्म-पुत्र वसिष्ठ, वेदानुसार कहने के लिए उद्यत हुए ॥५२॥

**वसिष्ठ बोले**—शैलराज ! लोक और वेद में तीन प्रकार के वचन कहे गये हैं । शास्त्रज्ञ पुरुष अपनी निर्मल ज्ञान-दृष्टि से उन सबको जानता है ॥५३॥ पहला वचन वह है, जो सम्प्रति कानों को सुन्दर लगे और जल्दी समझ में आ जाय; किन्तु पीछे असत्य और अहितकर सिद्ध हो । ऐसी बात केवल शत्रु ही कहता है । उसमें कदापि हित नहीं होता ॥५४॥ दूसरे प्रकार का वचन वह है, जो आरम्भ में सहसा दुःखजनक जान पड़े, परन्तु परिणाम में सुख देनेवाला हो । ऐसा वचन दयालु और धर्मशील पुरुष ही अपने भाई-बन्धुओं को समझाने के लिए कहता है ॥५५॥ तीसरा वचन वह है जो कानों में पड़ते ही अमृत के समान मधुर प्रतीत हो तथा सब काल में सुखदायक हो । ऐसा वचन सत्यसार, हितकर, सर्वश्रेष्ठ एवं अभीष्ट है ॥५६॥ शैलराज ! इस प्रकार नीति-शास्त्र में तीन प्रकार के वचनों का निरूपण है । इनमें कौन वचन आपको अभीष्ट है ? मैं वही कहना चाहता हूं ॥५७॥ देवेश्वर शिव बाह्यसम्पत्ति (दिखावटी आडम्बर) से रहित हैं, क्योंकि उनका मन एकमात्र तत्त्वज्ञान-समुद्र में निमग्न रहता है ॥५८॥ धन-सम्पत्ति तो स्वभावतः भ्रमात्मक एवं विद्युत् की भाँति नश्वर है, अतः सदा आनन्दरूप रहनेवाले एवं स्वात्माराम शिव को उसके लिए क्या इच्छा होगी ? ॥५९॥ गृहस्थ अपनी पुत्री का दान किसी राज्यसम्पत्तिवाले को करता है । स्त्री से द्वेष करनेवाले पुरुष को कन्या देनेवाला पिता कन्याघाती कहलाता है ॥६०॥ कौन कहता है कि शंकर दुःखी हैं ? जिनके कुबेर जैसे सेवक हैं और जो स्वयं भ्रूभंग की लीला मात्र से समस्त सृष्टि का सर्जन एवं विनाश कर सकते हैं ॥६१॥ वे निर्गुण, परमात्मा, ईश,

---

[1] ख. विवि°।

निर्गुणः परमात्मा च यः[1] ईशः प्रकृते परः। सर्वेशः स च निर्लिप्तो लिप्तश्च सर्वजन्तुषु ॥६२॥
स एकः सृष्टिसंहारे स सर्वः सृष्टिकर्मणि। निराकारश्च साकारो विभुः स्वेच्छामयः स्वयम् ॥६३॥
य ईशस्त्रिविधां मूर्ति विधत्ते सृष्टिकर्मणि। सृष्टिस्थित्यन्तजननीं ब्रह्मविष्णुशिवाभिधाम् ॥६४॥
ब्रह्मा च ब्रह्मलोकस्थो विष्णुः क्षीरोदवासकृत्। शिवः कैलासवासी च सर्वाः कृष्णविभूतयः ॥६५॥
श्रीकृष्णश्च द्विधाभूतो द्विभुजश्च चतुर्भुजः। चतुर्भुजश्च वैकुण्ठे गोलोके द्विभुजः स्वयम् ॥६६॥
तस्य देवस्य तेऽंशाश्च ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। केचिद्देवाः कलास्तस्य कलांशाश्चैव केचन ॥६७॥
कृष्णः सृष्ट्युन्मुखश्चापि प्रकृतिं तत्र निर्ममे। निर्माय तां च तद्योनौ वीर्याधानं चकार ह ॥६८॥
ततो डिम्भः समुद्भूतस्तन्मध्ये च महाविराट्। महाविष्णुः स विज्ञेयो श्रीकृष्णषोडशांशकः ॥६९॥
नाभिपद्मोद्भवो ब्रह्मा तस्यैव जलशायिनः। भालोद्भवस्तस्य स्रष्टुः शंकरश्चन्द्रशेखरः ॥७०॥
महाविष्णु (ष्णो) र्वामपार्श्वात्संभूतो विष्णुरेव च। सर्वे प्राकृतिकाः शैलब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥७१॥
धत्ते चतुर्विधां मूर्ति प्रकृतिः कृष्णसंभवा। अंशेन लीलया सृष्ट्यै कलया बहुधा तथा ॥७२॥
कृष्णवामाङ्गसंभूता राधा रासेश्वरी स्वयम्। मुखोद्भवा स्वयं वाणी रागाधिष्ठातृदेवता ॥७३॥

---

प्रकृति से परे, सर्वेश्वर और निर्लिप्त हैं तथा समस्त जीवों में लिप्त भी रहते हैं ॥६२॥ वे अकेले ही सृष्टि के संहार-कर्म और सृष्टि-कर्म में भी समर्थ हैं एवं सर्वरूप हैं। वे निराकार, साकार, व्यापक एवं स्वेच्छामय हैं, ॥६३॥ वे ईश सृष्टि-कर्म में ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव नामक अपनी तीन मूर्तियाँ धारण करके सृष्टि, पालन और प्रलय कार्य सम्पन्न करते हैं। ब्रह्मा ब्रह्मलोक में रहते हैं, विष्णु क्षीरसागर में निवास करते हैं और शिव कैलासवासी हैं, ये सभी श्रीकृष्ण की विभूतियाँ हैं ॥६४-६५॥ श्रीकृष्ण के दो रूप हैं—द्विभुज और चतुर्भुज। चतुर्भुज रूप से तो वे वैकुण्ठ में निवास करते हैं और स्वयं द्विभुज रूप से गोलोक में विराजमान हैं ॥६६॥ ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर उसी देव के अंश रूप हैं। कोई देवता उनकी कला हैं और कोई कलांश ॥६७॥ श्रीकृष्ण ने सृष्टि करने की इच्छा से प्रकृति का निर्माण किया और निर्माण करके उसकी योनि में वीर्याधान किया ॥६८॥ उस गर्भ से एक डिम्भ उत्पन्न हुआ, जिसके भीतर से महाविराट् (नारायण) प्रकट हुए। उन्हीं को महाविष्णु जानना चाहिए, जो श्रीकृष्ण के सोलहवें अंश हैं ॥६९॥ उन्हीं जलशायी महाविष्णु के नाभिकमल से ब्रह्मा उत्पन्न हुए। ब्रह्मा के भाल से चन्द्रशेखर शिव प्रकट हुए ॥७०॥ महाविष्णु के वामभाग से विष्णु ही प्रकट हुए। शैलराज ! (प्रकृति से उत्पन्न होने के कारण) ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव आदि सभी प्राकृतिक कहे गये हैं ॥७१॥ श्रीकृष्ण से उत्पन्न प्रकृति ने अपनी चार प्रकार की मूर्ति धारण की। इसके सिवा सृष्टि कार्य के लिए लीला की भाँति अपने अंश और कला द्वारा उन्होंने और भी बहुत-से रूप धारण किये ॥७२॥ श्रीकृष्ण के वाम अंग से स्वयं रासेश्वरी राधा प्रकट

---

१ क. यज्ञेशः।

वक्षःस्थलोद्भवा लक्ष्मी सर्वसंपत्स्वरूपिणी । शिवा तेजःसु देवानामाविर्भावं चकार सा ॥७४॥
निहत्य दानवान्सर्वान्देवेभ्यश्च श्रियं ददौ । प्राप्य कल्पान्तरे जन्म जठरे दक्षयोषितः ॥७५॥
नाम्ना सती शिवं प्राप दक्षस्तस्मै ददौ च ताम् । योगेन देहं तत्याज श्रुत्वा सा भर्तृनिन्दनम् ॥७६॥
पितॄणां मानसी कन्या मेनका तव गेहिनी । ललाभ तस्या जठरे जन्म सा जगदम्बिका ॥७७॥
शिवा शिवस्य पत्नीयं शैल जन्मनि जन्मनि । कल्पे कल्पे बुद्धिरूपा ज्ञानिनां जननी परा ॥७८॥
जातिस्मरा च सर्वज्ञा सिद्धिदा सिद्धिरूपिणी । अस्या अस्थि चिताभस्म भक्त्या धत्ते शिवः स्वयम् ॥७९॥
ददासि स्वेच्छया कन्यां देहि भद्र शिवाय च । अथवा सा स्वयं कान्तस्थानं यास्यति द्रक्ष्यसि ॥८०॥
प्राक्तनाद्यस्य या कान्ता सा तं प्राप्नोति वल्लभम् । प्रजापतेर्निबन्धं च न कोऽपि खण्डितुं क्षमः ॥८१॥
विवाहे नोत्सुकः शंभुः स्वात्मारामश्च तत्त्ववित् । तष्टुवुस्तं सुरा सर्वे तारकाख्येन पीडिताः ॥८२॥
देवानां पीडनं दृष्ट्वा ब्रह्मणा प्रार्थितो विभुः । कृपया स्वीचकाराऽऽशु कृपालुर्देवसंसदि ॥८३॥
कृत्वा प्रतिज्ञां योगीन्द्रो दृष्ट्वा क्लेशमसंख्यकम् । दुहितुस्ते तपःस्थानमाजगाम द्विजात्मकः ॥८४॥
तामाश्वस्य वरं दत्त्वा जगाम निजमन्दिरम् । तच्छ्रुत्वैवाऽऽययुः सर्वे सुराः शक्रादयो मुदाः ॥८५॥

---

हुईं । उनके मुख से रागों की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती और उनके वक्षःस्थल से समस्त सम्पत्तिस्वरूपा लक्ष्मी उत्पन्न हुईं । सम्पूर्ण देवताओं के तेज में उन्होंने अपने आपको शिवारूप से अभिव्यक्त किया और समस्त दानवों का वध करके उन्होंने देवताओं को राज्यलक्ष्मी प्रदान की । कल्पान्तर में दक्षपत्नी के उदर से जन्मग्रहण करके वे ही सती नाम से प्रख्यात हुईं और शिव की पत्नी बनीं । दक्ष ने उन्हें स्वयं प्रदान किया था । परन्तु पति की निन्दा सुनने के कारण सती ने योग द्वारा शरीर त्याग कर दिया ॥७३-७६॥ तुम्हारी धर्मपत्नी मेना पितरों की मानसी कन्या हैं उन्हीं के गर्भ से जगदम्बिका ने जन्म ग्रहण किया है ॥७७॥ शैलराज ! शिवा प्रत्येक जन्म में और प्रत्येक कल्प में शिव की पत्नी रही है—यह श्रेष्ठ जननी ज्ञानियों की बुद्धि रूपा है ॥७८॥ यह सिद्धिदायिनी, सर्वज्ञा और सिद्धि-स्वरूपा है, इसे जन्म-जन्मान्तरों का स्मरण सदा बना रहता है । इसी की अस्थिमाला एवं चिताभस्म को शिव भक्तिपूर्वक स्वयं धारण करते हैं ॥७९॥ कल्याणस्वरूप ! तुम स्वेच्छा से अपनी कन्या शिव को दे रहे हो तो दे दो, अन्यथा वह स्वयं अपने कान्त के निवास-स्थान को चली जायेगी और तुम देखते रह जाओगे ॥८०॥ पूर्वजन्म से जिसकी जो पत्नी है, वह उस पति को अवश्य प्राप्त करती है ब्रह्मा के इस नियम को कोई भी खण्डित नहीं कर सकता ॥८१॥ स्वात्माराम और तत्त्ववेत्ता शिव विवाह के लिए उत्सुक नहीं हैं । तारकासुर से पीड़ित समस्त देवों ने उनकी स्तुति की, देवों की पीड़ा को देखकर ब्रह्मा ने भी विभु (शिव) की प्रार्थना की । कृपालु शिव ने देव-सभा में कृपया उसे स्वीकार कर लिया ॥८२-८३॥ विवाह की प्रतिज्ञा करके योगिराज शिव तुम्हारी पुत्री का असंख्य क्लेश देखकर तपस्या के स्थान में स्वयं ब्राह्मण का रूप धारण करके आये और उसे आश्वासन तथा वर देकर अपने स्थान को लौट गये । उस (समाचार) को सुनकर ही इन्द्र आदि सभी देवता हर्ष से आये ॥८४-८५॥

नारायणश्च भगवान्ब्रह्मा धर्मश्च सांप्रतम् । ऋषयो मुनयः सर्वे गन्धर्वा यक्षराक्षसाः ॥८६॥
तत्र सर्वे मुदा युक्तैः समालोचनकर्तृभिः । प्रस्थापिता वयं शीघ्रमनृणा सा अरुन्धती ॥८७॥
तव प्रबोधने प्रीतिर्वर्धते महती सदा । संप्राप्तं शुभकार्यं च सर्वकालसुखावहम् ॥८८॥
शिवां शिवाय शैलेन्द्र स्वेच्छया चेन्न दास्यसि । भविता वा विवाहश्च भवितव्यबलेन च ॥८९॥
आगमिष्यति देवो यो नारायणसहायवान् । रत्नसाररथे कृत्वा देवानां प्रवरं वरम् ॥९०॥
योगीन्द्राणां वरेण्यं तं ज्ञानिनां च गुरोर्गुरुम् । आदिमध्यान्तरहितमविकारमजं परम् ॥९१॥
वरं ददौ शिवायै स शिवश्च तपसः स्थले । न हीश्वरप्रतिज्ञातं दुर्लभं विफलं भवेत् ॥९२॥
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं सर्वं नश्वरमस्थिरम् । अहो प्रतिज्ञा दुर्लङ्घ्या साधूनामविनाशिनी ॥९३॥
एको महेन्द्रः शैलानां पक्षांश्चिच्छेद लीलया । पवनो लीलया मेरोः शृङ्गभङ्गं चकार ह ॥९४॥
के वा शैलेषु योद्धारः सुरैः सह हिमालय । पतिष्यन्ति समुद्रेषु पवनैः प्रेरिताः क्षणात् ॥९५॥
एकार्थे यदि शैलेन्द्र सर्वसंपद्विनश्यति । सर्वान्रक्षति तद्दत्त्वा विना च शरणागतम् ॥९६॥
शरणागतरक्षार्थं प्राणांश्च दातुमर्हति । पुत्रदारधनं सर्वानिति नीतिविदो विदुः ॥९७॥
दत्त्वा विप्राय स्वसुतामनरण्यो नृपेश्वरः । ब्रह्मशापाद्विमुक्तश्च ररक्ष सर्वसंपदम् ॥९८॥

---

भगवान् नारायण, ब्रह्मा, धर्म, सभी ऋषि-मुनि और गन्धर्व, यक्ष और राक्षस सब एक स्थान पर मिले और इस विषय पर सबने अच्छी तरह विचार किया। उन्हीं लोगों ने हमें शीघ्र यहाँ भेजा है। देवी अरुन्धती अपने कर्तव्य का पालन करके उऋण हो चुकी हैं ॥८६-८७॥ तुम्हें प्रबोधित करने में हमें अत्यन्त हर्ष होता है। तुम्हारे सामने सभी काल में सुखदायक (शिव के विवाह का) शुभ कार्य प्राप्त है ॥८८॥ हे शैलेन्द्र ! यदि तुम स्वेच्छा से शिव को पार्वती नहीं दोगे तो भवितव्यता (होनहार) के बल विवाह तो होकर ही रहेगा ॥८९॥ जो भगवान् (शिव) रत्नसारनिर्मित रथ पर योगीन्द्रों में श्रेष्ठ, ज्ञानियों के गुरु के गुरु, आदि, मध्य एवं अन्त से रहित विकार-शून्य, अजन्मा एवं देवप्रवर नारायण को साथ लेकर यहाँ आयेंगे, वही शिव तपस्या के स्थान में शिवा को वर दे चुके हैं। ईश्वर की दुर्लभ प्रतिज्ञा कभी विफल नहीं हो सकती ॥९०-९२॥ ब्रह्मा से लेकर तृणपर्यन्त सभी कुछ नश्वर एवं अस्थिर है; किन्तु साधुजनों की अविनाशिनी प्रतिज्ञा दुर्लंघ्य होती है ॥९३॥ एक ही इन्द्र ने पर्वतों के पंखों को लीलापूर्वक काट दिया। पवन ने खेल-खेल में ही मेरु के शिखर को भंग कर दिया ॥९४॥ अतः हे हिमालय ! तुम्हारे पर्वतों में कौन ऐसे हैं जो देवों से युद्ध कर सकें। पवन द्वारा प्रेरित होकर समस्त पर्वत एक ही क्षण में समुद्रों में गिर जायेंगे ॥९५॥ शैलराज ! एक के कारण यदि समस्त सम्पत्ति का विनाश उपस्थित हो, तो उसे देकर सबकी सुरक्षा करनी चाहिए, परन्तु यह नियम शरणागत के लिए लागू नहीं है ॥९६॥ शरणागत की रक्षा के लिए तो प्राणों को दे देना भी उचित है, फिर पुत्र, स्त्री एवं धन आदि वस्तुओं की तो बात ही क्या है? ऐसा नीति-वेत्ताओं ने कहा है ॥९७॥ महाराज अनरण्य ब्राह्मण को अपनी कन्या प्रदान कर ब्रह्मशाप से मुक्त हुए और समस्त सम्पदाओं की सुरक्षा कर सके ॥९८॥ ब्राह्मणों के हितकारी किन्तु उन्हीं के शाप में

तमाशु बोधयामासुर्नीतिशास्त्रविदो जनाः। ब्रह्मशापनिमग्नं च ब्रह्मण्यमतिकातरम् ॥९९॥
त्वमेवं शैलराजेन्द्र सुतां दत्त्वा शिवाय च। रक्ष सर्वान्बन्धुवर्गान्वशे कुरु सुरानपि ॥१००॥
वसिष्ठस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य पर्वतेश्वरः। पप्रच्छ नृपवृत्तान्तं हृदयेन विदूयता ॥१०१॥

## हिमालय उवाच

कस्य वंशोद्भवो ब्रह्मन्ननरण्यो नृपेश्वरः। सुतां दत्त्वा स च कथमरक्षत्सर्वसंपदम् ॥१०२॥

## वसिष्ठ उवाच

मनुवंशोद्भवो राजा सोऽनरण्यो नृपेश्वरः। चिरंजीवी धर्मशीलो वैष्णवो विजितेन्द्रियः ॥१०३॥
स्वायंभुवो मनुः पूर्वं ब्रह्मपुत्रोऽतिधार्मिकः। राज्यं चकार धर्मेण युगानामेकसप्ततिम् ॥१०४॥
ततो जगाम वैकुण्ठं सहितः शतरूपया। संप्राप्य दास्यं सांनिध्यं हरेर्दासो बभूव ह ॥१०५॥
मनुर्बभूव तत्पश्चात्स्वयं स्वारोचिषो महान्। स्वारोचिषे गते शैल बभूव मनुरुत्तमः ॥१०६॥
उत्तमे निर्गते धर्मो तामसो मनुरेव च। ततो मनुर्बभूवात्र रैवतो ज्ञानिनां वरः ॥१०७॥
चक्षुषश्च ततो ज्ञेयः श्राद्धदेवश्च सप्तमः। सावर्णिरष्टमो ज्ञेयः श्रीसूर्यतनयो महान् ॥१०८॥
चैत्रवंशोद्भवो राजा पुराऽऽसीत्सुरथो भुवि। नवमो दक्षसावर्णिर्ब्रह्मसावर्णिको दश ॥१०९॥

---

डूबकर अत्यन्त कातर अनरण्य को नीतिशास्त्र के वेत्ताओं ने शीघ्र कर्त्तव्य का बोध कराया और उसका पालन करके वे संकट से मुक्त हुए ॥९९॥ शैलराजाधिराज ! उसी प्रकार तुम भी शिव को अपनी कन्या सौंपकर समस्त बन्धु-वर्गों की रक्षा करो और देवों को अपने अधीन बना लो ॥१००॥ वसिष्ठ की ऐसी बात सुनकर पर्वतराज हिमालय बहुत हँसे और व्यथित हृदय से राजा (अनरण्य) का वृत्तान्त पूछा ॥१०१॥

**हिमालय बोले**—ब्रह्मन् ! महाराज अनरण्य किस वंश में उत्पन्न हुए थे और किस भाँति अपनी कन्या देकर समस्त सम्पत्ति की उन्होंने रक्षा की थी ? ॥१०२॥

**वसिष्ठ बोले**—महाराज अनरण्य का जन्म मनु-वंश में हुआ था। वे चिरजीवी, धार्मिक स्वभाववाले वैष्णव एवं जितेन्द्रिय थे ॥१०३॥ पहले मनु का नाम स्वायम्भुव है जो ब्रह्मा के पुत्र तथा अति धार्मिक राजा थे। उन्होंने एकहत्तर युग पर्यन्त धर्ममय राज्य किया था ॥१०४॥ अनन्तर अपनी शतरूपा पत्नी के साथ वैकुण्ठ चले गये, वहाँ हरि का दास्य एवं सामीप्य पाकर उनके सेवक हो गये ॥१०५॥ शैलराज ! तत्पश्चात् महान् स्वारोचिष मनु हुए, उनके चले जाने पर उत्तम नामक मनु हुए ॥१०६॥ उसके उपरान्त धर्ममूर्ति तामस मनु हुए और उनके अनन्तर ज्ञानिश्रेष्ठ रैवत मनु हुए ॥१०७॥ तत्पश्चात् छठे चाक्षुष, सातवें श्राद्धदेव और आठवें सूर्यपुत्र महान् सावर्णि मनु हुए जो पूर्व समय में भूतल पर चैत्रवंश में उत्पन्न राजा सुरथ हुए थे। नवम दक्ष-सावर्णि, दसम ब्रह्मसावर्णि, ग्यारहवें श्रेष्ठ मनु धर्मसावर्णि और बारहवें रुद्रसावर्णि मनु हुए, जो भगवान् विष्णु के

एकादशो मनुश्रेष्ठो धर्मसावर्णिरुच्यते । ततश्च रुद्रसावर्णिर्विष्णुभक्तो जितेन्द्रियः ॥११०॥
तत्परो देवसावर्णिरिन्द्रसावर्णिकस्ततः । इत्येवं कथिता बन्धो मनवश्च चतुर्दश ॥१११॥
एतेषु समतीतेषु बभूव ब्रह्मणो दिनम् । इन्द्रसावर्णिवृत्तान्तं सर्वं मत्तो निशामय ॥११२॥
मनूनां प्रवरो धर्मी शुद्धभक्तो गदाभृतः । चकार राज्यं धर्मेण युगानामेकसप्ततिम् ॥११३॥
राज्यं दत्त्वा सुरेन्द्राय[1] जगाम तपसे वनम् । सुरेन्द्रस्य[2] सुतः श्रीमाञ्छ्रीनिकेतुर्महाबलः ॥११४॥
तस्य पुत्रो महायोगी पुरीषतरुरेव च । तस्य पुत्रोऽतितेजस्वी गोकामुख इति स्मृतः ॥११५॥
वृद्धश्रवाः सुतस्तस्य तत्पुत्रो भानुरेव च । पुण्डरीकः सुतस्तस्य तत्पुत्रो जिह्वलस्तथा ॥११६॥
जिह्वलस्य सुतः शृङ्गी तत्पुत्रो भीम एव च । तत्पुत्रोऽपि यशश्चन्द्रो यशसा च शशी जितः ॥११७॥
तत्कीर्तिं निर्मलां सन्तो गायन्ति संततं सुराः । तस्य पुत्रो वरेण्यश्च पुरारण्यश्च तत्सुतः ॥११८॥
तत्पुत्रो धार्मिकः श्रीमान्धरारण्यश्च[3] एव च । तत्पुत्रो मङ्गलारण्यस्तपस्वी ज्ञानिनां वरः ॥११९॥
अपुत्रको नृपश्रेष्ठस्तपसे पुष्करं गतः । सुचिरं च तपस्तप्त्वा वरं लब्ध्वा महेश्वरात् ॥१२०॥
संप्राप्य वैष्णवं पुत्रमनरण्यं जितेन्द्रियम् । दत्त्वा तस्मै च राज्यं च जगाम तपसे वनम् ॥१२१॥
अनरण्यो नृपश्रेष्ठः सप्तद्वीपमहीपतिः । चकार यज्ञशतकं भृगुणा च पुरोधसा ॥१२२॥

---

भक्त एवं इन्द्रियसंयमी थे ॥१०८-११०॥ उनके अनन्तर देवसावर्णि और चौदहवें इन्द्रसावर्णि मनु हुए। बंधो ! इस प्रकार मैंने तुम्हें चौदहों मनु को बता दिया, जिनकी समाप्ति होने पर ब्रह्मा का एक दिन होता है। अब इन्द्रसावर्णि का समस्त वृत्तान्त मुझसे सुनो ॥१११-११२॥ इन्द्रसावर्णि मनुओं में श्रेष्ठ, धर्मात्मा एवं गदाधारी (विष्णु) के शुद्ध भक्त थे, जिन्होंने इकहत्तर युग के समय तक धर्म से राज्य किया था ॥११३॥ अनन्तर अपने पुत्र सुरेन्द्र को राज्य सौंपकर स्वयं तप करने के लिए जंगल में चले गये। सुरेन्द्र के महाबली एवं श्रीमान् श्रीनिकेतु पुत्र हुए, उनके पुत्र महायोगी पुरीषतरु और पुरीषतरु के अतितेजस्वी पुत्र गोकामुख हुए ॥११४-११५॥ उनके वृद्धश्रवा, वृद्धश्रवा के भानु, भानु के पुण्डरीक, पुण्डरीक के जिह्वल, जिह्वल के भृंगी, भृंगी के भीम और भीम के यशश्चन्द्र पुत्र हुए, जिन्होंने अपने यश द्वारा शशी चन्द्रमा को जीत लिया था ॥११६-११७॥ उनकी निर्मल कीर्ति का गान सन्त एवं देवगण निरन्तर किया करते हैं। उनके पुत्र वरेण्य, वरेण्य के पुत्र पुरारण्य और उनके धरारण्य नामक श्रीमान् एवं धार्मिक पुत्र हुए, उनके मङ्गलारण्य पुत्र हुए जो तपस्वी एवं ज्ञानिश्रेष्ठ थे ॥११८-११९॥ नृपश्रेष्ठ मङ्गलारण्य पुत्रहीन होने के कारण पुष्कर में तप करने के लिए गये। वहाँ अति चिरकाल तक तप करके शिव से वरदान प्राप्त किया, जिसके फलस्वरूप उन्हें वैष्णव एवं जितेन्द्रिय अनरण्य नामक पुत्र की प्राप्ति हुई। वे अनरण्य को राज्य सौंपकर वन में तप करने के लिए चले गये ॥१२०-१२१॥ नृपश्रेष्ठ अनरण्य सातों द्वीपों के राजा हुए, जिन्होंने भृगु महर्षि को पुरोहित बनाकर उनके द्वारा

---

१ क. सुचन्द्रा°। २ क. सुचन्द्र। ३ क. धरा°।

तुच्छं मत्वाऽऽशु शक्रत्वं न लेभे नश्वरं सुधीः । लीलया च जितः शक्रो लीलया च जितो बलिः ॥१२३॥
जिताश्च दानवेन्द्रा वै ज्वलता स्वेन तेजसा । बभूवुः शतपुत्राश्च राज्ञस्तस्य हिमालय ॥१२४॥
कन्यैका सुन्दरी रम्या पद्मा पद्मालयासमा । सा कन्या यौवनस्था च बभूव पितृमन्दिरे ॥१२५॥
चारं प्रस्थापयामास वराय नृपतीश्वरः । एकदा पिप्पलादश्च गन्तुं स्वाश्रममुत्सुकः ॥१२६॥
तपःस्थाने निर्जने च गन्धर्वं स ददर्श ह । स्त्रीषु निमग्नचित्तं च शृङ्गाररससागरे ॥१२७॥
कामादतीव मत्तं च न जानन्तं दिवानिशम् । दृष्ट्वा तं मुनिशार्दूलः सकामश्च बभूव ह ॥१२८॥
ततः[1] सुभग्नचित्तः संश्चिन्तयन्दारसंग्रहम् । एकदा पुष्पभद्रायां स्नातुं गच्छन्मुनीश्वरः ॥१२९॥
ददर्श पद्मां युवतीं पद्मामिव मनोरमाम् । केयं कस्येति पप्रच्छ समीपस्थाञ्जनान्मुनिः ॥१३०॥
जना निवेदनं चक्रुः पद्माऽनरण्यकन्यका । मुनिः स्नात्वाऽभीष्टदेवं संपूज्य राधिकेश्वरम् ॥१३१॥
जगाम कामी भिक्षार्थमनरण्यसभाजिरे । राजा शीघ्रं मुनिं दृष्ट्वा प्रणनाम भयाकुलः ॥१३२॥
मधुपर्कादिकं दत्त्वा पूजयामास भक्तितः । कामात्सर्वं गृहीत्वा च ययाचे कन्यकां मुनिः ॥१३३॥
मौनी बभूव नृपतिः किंचिन्निर्वक्तुमक्षमः । मुनिः पुनर्ययाचे तं कन्यां देहीति मे नृपः ॥१३४॥

---

सौ यज्ञों का अनुष्ठान सुसम्पन्न किया था ॥१२२॥ उस विद्वान् ने नाशवान् इन्द्रपद को तुच्छ समझकर उसको प्राप्त नहीं किया। उसने इन्द्र एवं बलि, दोनों को लीलापूर्वक जीत लिया ॥१२३॥ उसके जाज्वल्यमान तेज से दानवराज पराजित हो गये। हिमालय ! उस राजा के सौ पुत्र और पद्मा नामक एक सुन्दरी कन्या हुई, जो लक्ष्मी के समान थी। पिता के घर में रहकर वह कन्या जब युवावस्था को प्राप्त हुई, तो महाराज ने उसके वर के लिए चारों ओर दूतों को भेजा। एक बार महर्षि पिप्पलाद अपने आश्रम में जाने को उत्सुक थे। उस निर्जन तपःस्थान में उन्होंने एक गन्धर्व को देखा, जो स्त्रियों के मध्य रहकर शृङ्गार रस के सागर में निमग्न हो रहा था ॥१२४-१२७॥ काम से अत्यन्त मतवाला होने के कारण उसे दिन-रात का कुछ भी ज्ञान नहीं था। उसे देखकर मुनिश्रेष्ठ के मन में काम उत्पन्न हो गया, और उसी दिन से वे भग्नचित्त (खिन्न) रहकर स्त्री-प्राप्ति (विवाह) की चिन्ता में रहने लगे। एक बार मुनीश्वर (पिप्पलाद) पुष्पभद्रा नदी में स्नान करने के लिए जा रहे थे, (मार्ग में) उन्होंने राजकुमारी पद्मा को देखा जो युवावस्था सम्पन्न एवं कमला के समान ही सुन्दरी थी। उन्होंने समीप के लोगों से पूछा कि--यह कौन है और किसकी कन्या है ॥१२८-१३०॥ लोगों ने बताया कि— यह राजा अनरण्य की पद्मा नामक पुत्री है। अनन्तर स्नान और अभीष्ट देव राधिकेश्वर की अर्चना करके कामी मुनि भिक्षा के निमित्त अनरण्य के सभा-भवन में गये। मुनि को देखकर राजा ने भयभीत होकर शीघ्रता से उन्हें प्रणाम किया और मधुपर्क आदि सादर उन्हें निवेदन करके भक्ति से उनकी पूजा की। मुनि ने बड़े चाव से उनकी सभी सेवा स्वीकार करके उनसे कन्या की याचना की ॥१३१-१३३॥ राजा मौन हो गये, कुछ भी बोलने में असमर्थ

---

१ क. तपःसु भग्नचित्तस्य चि° ।

अथवा भस्मसात्सर्वं करिष्यामि क्षणेन च । सर्वे बभूवुराच्छन्ना गणाश्च तेजसा मुनेः ।।१३५।।
रुरोद राजा सगणो दृष्ट्वा वृद्धं जरातुरम् । महिष्यो रुरुदुः सर्वा इतिकर्तव्यमक्षमाः ।।१३६।।
मूर्च्छां प्राप महाराज्ञी कन्या माता शुचाऽऽकुला । पण्डितो नीतिशास्त्रज्ञो बोधयामास भूमिपम् ।।१३७।।
महीषीं च नृपसुतान्कन्यकानीतिमुत्तमाम् । अद्य वाऽपि दिनान्ते वा दातव्या कन्यका नृप ।।१३८।।
पराय विप्रादन्यस्मै कस्मै वा दातुमर्हसि । सत्पात्रं ब्राह्मणादन्यं न पश्यामि जगत्त्रये ।।१३९।।
सुतां दत्त्वा च मुनये रक्षस्व सर्वसंपदम् । राजन्कन्यानिमित्तेन सर्वसंपत्प्रणश्यति ।।१४०।।
सर्वं रक्षति तत्त्यक्त्वा विना तं शरणागतम् । राजा प्राज्ञवचः श्रुत्वा विलप्य च मुहुर्मुहुः ।।१४१।।
कन्यां सालंकृतां कृत्वा मुनीन्द्राय ददौ किल । कान्तां गृहीत्वा स मुनिर्मुदितः स्वालयं ययौ ।।१४२।।
राजा सर्वान्परित्यज्य जगाम तपसे शुचा । भर्तुश्च दुहितुः शोकात्प्राणांस्तत्याज सुन्दरी ।।१४३।।
पुत्राः पौत्राश्च भृत्याश्च मूर्च्छां प्रापुर्नृपं विना । अनरण्यस्तपस्तप्त्वा चिन्तयन्राधिकेश्वरम् ।।१४४।।

---

रहे। मुनि ने पुनः उनसे याचना की—"राजन् ! मुझे अपनी कन्या प्रदान करो, नहीं तो क्षणमात्र में तुम्हारा सब-कुछ भस्म कर दूंगा।" उस समय मुनि के तेज से राजा के सभी सेवक आदि आच्छन्न हो गये थे। उस मुनि को वृद्ध एवं जरातुर देखकर गण समेत राजा रोदन करने लगे। सभी रानियां भी रोदन करने लगीं। इस समय क्या करना चाहिए, इसका निर्णय करने की शक्ति किसी में नहीं रह गयी ।।१३४-१३६।। महारानी जो कन्या की माता थी, उस शोक से व्याकुल होकर मूर्च्छित हो गयी। नीतिशास्त्र के ज्ञाता पण्डित ने राजा, रानी और राजकुमारों और कन्या को उत्तम नीति का उपदेश देते हुए कहा—"हे नृप ! आज या किसी दूसरे दिन कन्या का दान तो दिया ही जायगा। इस ब्राह्मण को छोड़कर और किसको आप कन्या देना उचित समझते हैं। मैं तो तीनों लोकों में इस ब्राह्मण के सिवा दूसरे किसी को कन्यादान का उत्तम पात्र नहीं देखता हूं। आप मुनि को कन्यादान करके समस्त सम्पत्ति की रक्षा कीजिये। अन्यथा राजकुमारी के कारण समस्त सम्पदा नष्ट हो जायेगी ।।१३७-१४०।। शरणागत के सिवा दूसरे किसी भी एक मनुष्य का त्याग करके सर्वस्व की रक्षा कीजिये। राजा ने विद्वान् की बात सुनकर बार-बार विलाप करके अलंकारों से समन्वित कन्या को मुनीन्द्र के हाथ में दे दिया। मुनि भी कान्ता को लेकर हर्ष से आश्रम को लौट गये ।।१४१-१४२।। राजा भी शोक के कारण सबको छोड़कर तप करने के लिए चले गये और उनकी सुन्दरी पत्नी ने भी पति और पुत्री के शोक से अपने प्राणों का त्याग कर दिया ।।१४३।। राजा के विना (उनके) पुत्रों, पौत्रों और सेवकों को मूर्च्छा आ गयी। राजा अनरण्य राधिकेश्वर श्रीकृष्ण का चिन्तन करते हुए तप करके गोलोक को चले गये। तब राजा का ज्येष्ठ

गोलोकनाथं संसेव्य गोलोकं च जगाम ह। बभूव कीर्तिमान्राजा[1] ज्येष्ठपुत्रो नृपस्य च।।
पुत्रवत्पालयामास प्रजाः सर्वा महीतले ।।१४५।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० राधाकृष्णसं०
एकचत्वारिंशोऽध्यायः ।।४१।।

# अथ द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

## वसिष्ठ उवाच

अथानरण्यस्य कन्या सिषेवे भक्तितो मुनिम्। कर्मणा मनसा वाचा लक्ष्मीर्नारायणं यथा।।१।।
एकदा स्वर्णदीं स्नातुं गच्छन्तीं सस्मितां सतीम्। ददर्श पथि धर्मश्च मायया नृपलिङ्गकः।।२।।
चारुरत्नरथस्थश्च रत्नालंकारभूषितः। नवीनयौवनश्रीमान्कामदेवसमप्रभः।।३।।
दृष्ट्वा तां सुन्दरीं रम्यामुवाच मायया विभुः। विज्ञातुमन्तस्तत्त्वं च तस्याश्च मुनियोषितः।।४।।

---

पुत्र कीर्तिमान् राजा हुआ। वह भूतल पर के सभी प्रजाओं का पुत्र की भाँति पालन करने लगा।।१४४-१४५।।

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्ण-जन्म-खण्ड में नारायण-नारद-संवाद में राधाकृष्ण-संवाद के प्रकरण में इकतालीसवाँ अध्याय समाप्त।।४१।।

# अध्याय ४२

## सती का शरीर-त्याग

**वसिष्ठ बोले**--राजा अनरण्य की उस कन्या ने मनसा, वाचा, कर्मणा मुनि की उसी तरह सेवा की जैसे लक्ष्मी ने नारायण की सेवा की थी। एक बार गंगा को जाती हुई उस मुसकराती हुई कन्या को देखकर राजा का वेश धारण किये हुए साक्षात् धर्म ने उसके मन के भावों को जानने के लिए पवित्र भावना से ही कामी पुरुष की भाँति कुछ बातें कहीं, जो सुन्दर रत्नरथ पर अवस्थित, रत्नालंकारों से विभूषित और नवीन यौवन की श्री से कामदेव के समान कांतिमान् थे। उस रमणीय एवं सुन्दरी मुनि-पत्नी का अभ्यन्तर भाव जानने के लिए धर्म ने कहा।।१-४।।

---

१ क. राज्ये ज्ये॰।

### धर्म उवाच

अयि सुन्दरि लक्ष्मीव राजयोग्ये मनोहरे। अतीव यौवनस्थे च कामिनि स्थिरयौवने ॥५॥
जरातुरस्य वृद्धस्य समीपे त्वं न राजसे। चन्दनागुरुसंलिप्ता राजसे राजवक्षसि ॥६॥
विप्रं तपःसु निरतं सत्यज्ञं मरणोन्मुखम्। विहाय पश्य राजेन्द्रं रतिशूरं स्मरातुरम् ॥७॥
प्राप्नोति सुन्दरी पुण्यात्सौन्दर्यं पूर्वजन्मनः। सफलं तद्भवेत्सर्वं रसिकालिङ्गनेन च ॥८॥
सहस्रसुन्दरीकान्तं कामशास्त्रविशारदम्। किंकरं कुरु मां कान्ते परित्यक्ष्यामि ता अपि ॥९॥
निर्जले निर्जने रम्ये शैले शैले नदे नदे। पुष्पोद्याने पुष्पिते च सुगन्धिपुष्पवायुना ॥१०॥
मलये चन्दनारण्ये चारुचन्दनवायुना। विहरिष्यामि कामेन कामिन्या च त्वया सह ॥११॥
कामज्वरेण दग्धायाः शान्तिं कर्तुमहं क्षमः। विहरस्व मया सार्धं जन्मेदं सफलं कुरु ॥१२॥
इत्येवमुक्तवन्तं तं स्वरथादवरुह्य च। ग्रहीतुमुत्सुकं हस्ते तमुवाच पतिव्रता ॥१३॥

### पद्मोवाच

दूरं गच्छ गच्छ दूरं पापिष्ठ भूमिपाधम। मां चेत्पश्यसि कामेन सद्यो भस्म भविष्यसि ॥१४॥
पिप्पलादं मुनिश्रेष्ठं तपसा पूतविग्रहम्। विहाय त्वां भजिष्यामि स्त्रीजितं रतिलम्पटम् ॥१५॥

---

**धर्म बोले**—हे सुन्दरि ! तुम लक्ष्मी की भाँति अति मनोहारिणी हो । हे कामिनि ! तुम्हारी यह यौवनावस्था और स्थिर यौवन राजा के योग्य है । इस कारण उस जरातुर एवं वृद्ध के साथ रहने में तुम्हारी शोभा नहीं होती है । चन्दन, अगुरु का अनुलेपन करके तुम्हें राजा के अंक में सुशोभित होना चाहिए ॥५-६॥ अब उस मरणोन्मुख ब्राह्मण का, जो सत्य-प्रतिज्ञ और तप करने में सतत लीन रहता है, त्याग करके मुझ राजेन्द्र की ओर देखो। मैं रति करने में शूर हूँ और इस समय कामातुर हो गया हूँ ॥७॥ पूर्वजन्म के पुण्यवश सुन्दरी सौन्दर्य प्राप्त करती है और उसकी रसिक वर के आलिंगन से सब कामनाएँ पूरी होती हैं ॥८॥ हे प्रिये ! मुझ कामशास्त्र-विशारद के पास सहस्रों सुन्दरियाँ हैं । मैं उन सबका त्याग कर दूँगा । कान्ते ! मुझे दास बना लो ॥९-१०॥ निर्जल, निर्जन, रमणीक स्थान में, पर्वतों पर, नदियों, नदों और पुष्प-विकसित वाटिकाओं में, जहाँ पुष्पों की सुगन्ध भरे वायु के झोंके आते हों और मलय पर्वत के चारु चन्दन के वायु से पूरित चन्दन वन में तुम कामिनी के साथ मैं चाव से विहार करूँगा । काम-ज्वर से दग्ध हो रही तुम्हारी ज्वाला को शान्ति प्रदान करने में मैं समर्थ हूँ । तुम मेरे साथ विहार करो और अपने इस जन्म को सफल करो ॥११-१२॥ इतना कहकर वे रथ से उतर पड़े और उस राजकुमारी का हाथ पकड़ना चाहा । इस पर वह पतिव्रता उन्हें फटकारती हुई बोली ॥१३॥

**पद्मा बोली**—अधम राजा ! तू महान् पापी है, अतः दूर हट । अब यदि कामवश मेरी ओर देखेगा, तो तुरन्त भस्म हो जायेगा ॥१४॥ तपस्या के कारण पवित्र देहवाले मुनिश्रेष्ठ पिप्पलाद को छोड़कर क्या मैं

स्त्रीजितस्पर्शमात्रेण सर्वं पुण्यं प्रणश्यति । न भूमौ पातकी पापात्पापिनां स्त्रीजितात्परः ॥१६॥
मां मातरं च स्त्रीभावं कृत्वा येन ब्रवीषि च । भविष्यति क्षयस्तेन कालेन मम शापतः ॥१७॥
श्रुत्वा धर्मः सतीशापं नृपमूर्तिं विहाय च । धृत्वा स्वमूर्तिं देवेशः कम्पमान उवाच ताम् ॥१८॥

## धर्म उवाच

मातर्जानीहि मां धर्मं धर्मज्ञानां गुरोर्गुरुम् । परस्त्रीमातृबुद्धिं च कुर्वन्तं सन्ततं सति ॥१९॥
अहं तवान्तर्विज्ञातुमागतस्तव संनिधिम् । युष्माकं च मनो जाने तथाऽपि दैवबोधितः[1] ॥२०॥
कृतं मे दमनं साध्वि न विरुद्धं यथोचितम् । शास्तिः समुत्पथस्थानामीश्वरेण विनिर्मिता ॥२१॥
धर्मं स्वधर्मं विज्ञातुं कालं कलयितुं क्षमः । विधातारं संविधातुं तस्मै कृष्णाय ते नमः ॥२२॥
संहर्तुं यः क्षमः काले संहर्तारं भवं विभुः । स्रष्टारं लीलया स्रष्टुं तस्मै कृष्णाय ते नमः ॥२३॥
शत्रुं विधातुं मित्रं च सुप्रीतिं कलहं क्षमः । स्रष्टुं नष्टुं तदेवं च तस्मै कृष्णाय ते नमः ॥२४॥
शापं प्रदातुं सर्वांश्च सुखःदुखवरान्क्षमः । संपदं विपदं यो हि तस्मै कृष्णाय ते नमः ॥२५॥
प्रकृतिर्निर्मिता येन महाविष्णुश्च निर्मितः । ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यास्तस्मै कृष्णाय ते नमः ॥२६॥

---

रति-लम्पट के साथ विहार करूँ ? जो स्त्रियों द्वारा सदा पराजित है ॥१५॥ तुझे यह मालूम होना चाहिए कि—स्त्रीजित पुरुष के स्पर्श मात्र से ही समस्त पुण्य नष्ट हो जाता है । भूमि पर समस्त पापियों में स्त्रीजित से बढ़कर कोई पातकी नहीं ॥१६॥ जिस लिए तू मुझ माता में स्त्रीभाव करके मुझसे बोल रहा है, अतः मेरे शाप से समय पर तेरा क्षय हो जायगा ॥१७॥ पतिव्रता का शाप सुनकर ही धर्म ने राजा का स्वरूप त्याग-कर अपना स्वरूप धारण किया और काँपते हुए उस देवेश्वर ने (पद्मा) से कहा ॥१८॥

**धर्म बोले**—माता ! मुझे धर्मज्ञों के गुरु का गुरु धर्म जानो ! सती ! मैं परायी स्त्री में निरन्तर मातृ-बुद्धि रखता हूँ ॥१९॥ मैं तुम्हारे मन की बात जानने के लिए तुम्हारे पास आया था । यद्यपि आप जैसी सतियों का मन कैसा होता है, यह मैं जानता था, तथापि दैव से प्रेरित होकर परीक्षा लेने के लिए चला आया । साध्वी ! तुमने मेरा दमन करके उचित ही किया है, विरुद्ध नहीं । अनीति मार्ग अपनानेवाले पर शासन करना ईश्वर का विधान है ॥२०-२१॥ जो धर्म को अपना धर्म मनाने, काल की भी कलना (गणना) तथा स्रष्टा की भी सृष्टि करने में समर्थ हैं, उन कृष्ण को नमस्कार है ॥२२॥ जो समय पर संहर्ता का संहार तथा स्रष्टा का सर्जन लीला की भाँति करने में समर्थ हैं, उन कृष्ण को नमस्कार है ॥२३॥ जो शत्रु को मित्र बना सकते हैं और गाढ़ी प्रीति को कलह रूप में परिणित कर सकते हैं तथा जो सृष्टि एवं विनाश करने में समर्थ हैं, उन कृष्ण को नमस्कार है ॥२४॥ जो सभी को शाप, सुख-दुःख, वरदान एवं सम्पदा और विपदा देने में समर्थ हैं, उन कृष्ण को नमस्कार है ॥२५॥ जिन्होंने प्रकृति, महाविष्णु एवं ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि का सर्जन किया है, उन कृष्ण को

---

१ क. बबाधि' ।

येन शुक्लीकृतं क्षीरं जलं शीतं कृतं पुरा। दाहीकृतो हुताशश्च तस्मै कृष्णाय ते नमः ॥२७॥
अतितेजः समुत्थाय तेजोरूपाय मूर्तये। गुणश्रेष्ठनिर्गुणाय तस्मै कृष्णाय ते नमः ॥२८॥
सर्वस्मै सर्वबीजाय सर्वेषामन्तरात्मने। सर्वबन्धुस्वरूपाय तस्मै कृष्णाय ते नमः ॥२९॥
इत्युक्त्वा पुरतस्तस्यास्तस्थौ धर्मो जगद्गुरुः। सा साध्वी तं च विज्ञाय सहसोवाच पर्वत ॥३०॥

पद्मोवाच

त्वमेव धर्म सर्वेषां साक्षी च सर्वकर्मणाम्। सर्वान्तरेषु सर्वात्मा सर्वज्ञः सर्वतत्त्ववित् ॥३१॥
कथं मनो मे विज्ञातुं विडम्बयसि किंकरीम्। यत्कृतं त्वत्कृते ब्रह्मन्नपराधो बभूव मे ॥३२॥
त्वं च शप्तो मयाऽज्ञानात्स्त्रीस्वभावात्क्रुधा विभो। का व्यवस्था भवेत्तस्य चिन्तयामीति सांप्रतम् ॥३३॥
आकाशोऽसौ दिशः सर्वा यदि नश्यन्ति वायवः। तथाऽपि साध्वीशापस्तु न नश्यति कदाचन ॥३४॥
त्वं च नष्टो भवसि चेत्सृष्टिनाशो भवेत्तदा। इतिकर्तव्यतामूढा तथाऽपि त्वां वदाम्यहम् ॥३५॥
सत्ये पूर्णश्चतुष्पादः पौर्णमास्यां यथा शशी। विराजसे देवराज सर्वकालं दिवानिशम् ॥३६॥
पादक्षयश्च त्रेतायां भगवन्भविता तव। पादौ परौ द्वापरे च तृतीयश्च कलौ विभो ॥३७॥

---

नमस्कार है ॥२६॥ जिन्होंने पूर्वकाल में क्षीर को शुक्ल, जल को शीतल और अग्नि को जलाने की शक्ति से सम्पन्न किया. उन कृष्ण को नमस्कार है ॥२७॥ जो अत्यन्त तेजस्वी रूप में उठकर तेज का मूर्तिमान् रूप दिखायी देते हैं, उन गुणश्रेष्ठ एवं निर्गुण कृष्ण को नमस्कार है ॥२८॥ जो सर्वरूप, सर्वबीजस्वरूप, सबके अन्तरात्मा और सबके बन्धु हैं उन कृष्ण को नमस्कार है ॥२९॥ हे पर्वत ! इतना कहकर जगद्गुरु धर्म उस राजकुमारी के सामने खड़े हो गये और वह पतिव्रता भी उन्हें पहचानकर सहसा बोल उठी ॥३०॥

**पद्मा बोली**—तुम्हीं सबके धर्म, समस्त कर्मों के साक्षी, सबके भीतरी अन्तरात्मा, सर्वज्ञ एवं समस्त तत्त्वों के वेत्ता हो तो फिर मुझ दासी के मन को जानने के लिए ऐसी विडम्बना क्यों की ? ब्रह्मन् ! मैंने तुम्हें जो कहा है, वह मेरा अपराध हुआ। विभो ! मैंने क्रोध, अज्ञान और स्त्री स्वभाव के कारण ही तुम्हें शाप दिया है। इसलिए अब सोच रही हूँ कि—इस (शाप) की क्या व्यवस्था होगी ? ॥३१-३३॥ यह आकाश, समस्त दिशाएँ और वायु-समूह नष्ट हो सकते हैं, किन्तु पतिव्रता का शाप कभी भी नष्ट नहीं हो सकता। और तुम्हारे नष्ट होने से सृष्टि का नाश निश्चित है—यह सोचकर मैं किंकर्तव्यविमूढ़ हो रही हूँ तथापि आपसे कहती हूँ कि हे देवराज ! सत्ययुग में पूर्णिमा के चन्द्रमा की भाँति आप चारों चरणों से सभी समय दिन-रात सुशोभित रहोगे, पर हे भगवन् ! त्रेतायुग में तुम्हारा एक चरण क्षीण हो जायगा। हे विभो ! द्वापर युग में दो चरण और

कलिशेषे शेषपादस्तवाऽऽच्छन्नो भविष्यति । पुनः सत्ये समायाते परिपूर्णो भविष्यसि ॥३८॥
सत्ये सर्वव्यापकस्त्वं तदन्येषु च कुत्रचित् । यत्र स्थानं तवाऽऽधारो वदामि श्रूयतां विभो ॥३९॥
वैष्णवेषु च सर्वेषु यतिषु ब्रह्मचारिषु । पतिव्रतासु प्राज्ञेषु वानप्रस्थेषु भिक्षुषु ॥४०॥
नृपेषु धर्मशीलेषु सत्सु सद्वैश्यजातिषु । द्विजसेविषु शूद्रेषु सत्संसर्गस्थितेषु च ॥४१॥
एषु त्वं सततं पूर्णो धर्मराज विराजसे । युगे युगे तवाऽऽधारा यत्र पुण्यतमा जनाः ॥४२॥
अश्वत्थवटबिल्वेषु तुलसीचन्दनेषु च । दीक्षापरीक्षाशपथगोष्ठगोष्पदभूमिषु ॥४३॥
देवार्हेषु[1] च पुष्पेषु विद्यमानोऽसि शाखिषु । देवालयेषु तीर्थेषु सतां शश्वद्गृहेषु च ॥४४॥
वेदवेदाङ्गश्रवणे जलेषु च सभासु च । श्रीकृष्णगुणनामोक्तश्रुतिगीतस्थलेषु च ॥४५॥
व्रतपूजातपोन्याययज्ञसाक्ष्यस्थलेषु च । गवां गृहेषु गोष्वेव विद्यमानो हि पश्यसि ॥४६॥
कृशता ते न भविता धर्म तेषु स्थलेषु च । एतदन्येषु कृशता यदगम्यं च तच्छृणु ॥४७॥
पुंश्चलीषु च सर्वासु गृहेषु नरघातिनाम् । नरघातिषु नीचेषु मूर्खेषु च खलेषु च ॥४८॥
देवतागुरुविप्रेष्टपाल्यानां धनहारिषु । असन्नरेषु धूर्तेषु चौरेषु रतिभूमिषु ॥४९॥
दुरोदरसुरापानकलहानां स्थलेषु च । शालग्रामसाधुतीर्थपुराणरहितेषु च ॥५०॥

---

कलियुग में तीन चरण नष्ट रहेंगे। कलि के शेष समय में तुम्हारा शेष (एक) चरण आच्छादित रहेगा जो सत्ययुग के अवसर पर पुनः परिपूर्ण हो जायगा ॥३४-३८॥ हे विभो ! सत्ययुग में तुम सर्वव्यापक रहोगे और अन्य युगों में कहीं-कहीं। अब तुम्हारा रहने का स्थान बता रही हूँ, सुनो ! सभी प्रकार के वैष्णवों, संन्यासियों, ब्रह्मचारियों, पतिव्रताओं, प्राज्ञों, वानप्रस्थों, योगियों, धर्मशील राजाओं, सज्जनों, सज्जन वैश्यों, द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य) की सेवा करनेवाले शूद्रों और सत्संसर्ग में रहनेवालों में तुम पूर्णरूप से विराजमान रहोगे। युग-युग में जहाँ पुण्यात्मा लोग रहेंगे, वे आपके आधारस्थान बने रहेंगे ॥३९-४२॥ पीपल, बरगद, बिल्ववृक्ष, तुलसी, चन्दन इन वृक्षों पर, दीक्षा, परीक्षा, शपथ, गोशाला और गोपद-भूमियों में देवों के योग्य पुष्पों और वृक्षों में विद्यमान रहोगे। देवालयों, तीर्थों, सज्जनों के घरों में निरन्तर तुम्हारा निवास होगा ॥४३-४४॥ वेद-वेदाङ्गों के श्रवणकाल में, जल में, सभाओं में, श्रीकृष्ण के नाम तथा गुणों के कीर्तन, श्रवण तथा गान के स्थानों में, व्रत, पूजा, तप, न्याय, यज्ञ एवं साक्षी के स्थानों में और गौओं के गृहों (तथा गौओं) में सदैव विद्यमान रहोगे। हे धर्म ! इन स्थलों में तुममें कृशता नहीं आयेगी और इनसे भिन्न स्थानों में तुम्हारी कृशता देखी जायेगी। अब जो स्थान तुम्हारे लिए अगम्य है उसे भी सुन लो ॥४५-४७॥ सभी पुंश्चली स्त्रियों, नरघाती मनुष्यों के घरों में, नरघातियों में, नीचों, मूर्खों, दुष्टों तथा देवता, गुरु, ब्राह्मण, इष्टदेव एवं पालनीय मनुष्यों के धन चुरानेवालों में, आचरणभ्रष्ट मनुष्यों, धूर्तों, चोरों, रति-स्थानों में, जुआ, मदिरापान और कलह के स्थानों में, शालग्राम, साधु, तीर्थ एवं पुराणरहित स्थानों में, लुटेरों के स्नेह में, विवादों

---

१ ख॰ विवाहेषु।

वस्युस्नेहेषु वादेषु तालच्छायासु गर्विषु। असीजीविमषीजीविदेवलग्रामयाजिषु ॥५१॥
वृषवाहस्वर्णकारजीवहिंसोपजीविषु। भर्तृनिन्दितनारीषु स्त्रीजितेषु च पुंसु च ॥५२॥
दीक्षासंध्याविष्णुभक्तिविहीनेषु द्विजेषु च। स्वाङ्गकन्याविक्रयिषु स्वयोषिद्विक्रयेष्वथ ॥५३॥
शालग्रामसुरग्रन्थभूमिविक्रयिषु प्रभो। मित्रद्रोहिकृतघ्नेषु सत्यविश्वासघातिषु ॥५४॥
शरणागतहीनेषु[1] चाश्रितघ्नेषु नृष्वपि। शश्वन्मिथ्योक्तिशीलेषु तथा सीमापहारिषु ॥५५॥
कामात्क्रोधात्तथा लोभान्मिथ्यासाक्ष्यप्रवादिषु। पुण्यकर्मविहीनेषु पुण्यकर्मविरोधिषु ॥५६॥
स्थातुमेतेषु निन्द्येषु नाधिकारस्तव प्रभो। ममापि वचनं सत्यं बभूव च क्षणं तव ॥५७॥
यास्यामि पतिसेवार्थं गच्छ तात स्वमन्दिरम्। इत्येवं वादिनीं साध्वीमुवाच विधिनन्दनः ॥
प्रसन्नवदनः श्रीमानतीव विनयं वचः ॥५८॥

## धर्म उवाच

धन्याऽसि पतिभक्ताऽसि स्वस्ति तेऽस्तु च संततम् ॥५९॥
वरं गृहाण दास्यामि मत्परित्राणकारिणि। युवा भवतु भर्ता ते रतिशूरश्च कन्यके ॥६०॥

---

में, ताड़ की छाया में, अभिमानी प्राणियों में, तलवार द्वारा जीविका-निर्वाह करनेवाले तथा स्याही से जीवन-निर्वाह करनेवाले लोगों में, मन्दिरों-मठों के पुजारियों में, गाँव-गाँव यज्ञ करानेवालों में तथा बैल जोतनेवालों में, सुनारों में, जीवों की हिंसा द्वारा जीविका चलानेवालों में, पति की निन्दा करनेवाली स्त्रियों में और स्त्रीजित पुरुषों में दीक्षा, संध्या और भगवान् विष्णु की भक्ति से हीन द्विजों में, अपनी कन्या का विक्रय करनेवाले, अपनी पत्नी बेचनेवाले तथा शालग्राम, देवप्रतिमा, ग्रंथ एवं भूमि बेचनेवाले लोगों में, मित्रद्रोहियों, कृतघ्नों, सत्य एवं विश्वासघात करनेवालों में, शरणागतों, दीनों और उनके आश्रितों की हत्या करनेवालों में, निरन्तर असत्यवादी मनुष्यों में, सीमाभंग करनेवालों तथा काम, क्रोध एवं लोभवश झूठी गवाही देनेवालों में, पुण्यकर्म रहित मनुष्यों और पुण्य कर्म के विरोधियों में तुम्हें रहने का अधिकार नहीं है। हे प्रभो ! ऐसी व्यवस्था होने से मेरी बात भी सच्ची हो जायगी ॥४८-५७॥ तात ! मैं अब अपने पति की सेवा में जा रही हूँ, तुम भी अपने घर जाओ। इस प्रकार कहनेवाली उस पतिव्रता से प्रसन्नमुख धर्म अत्यन्त विनयपूर्वक बोले ॥५८॥

**धर्म ने कहा**--तुम धन्य हो, पतिभक्ता हो, तुम्हारा निरन्तर कल्याण हो। हे मेरी रक्षा करने-वाली मैं तुम्हें वर प्रदान करूंगा। ग्रहण करो। कन्यके ! तुम्हारा भर्ता युवा, रतिशूर, रूपवान्, गुणवान्

---

१ ख. 'दीने'।

रूपवान्गुणवान्साध्वि[1] संततं स्थिरयौवनः । परमैश्वर्यसंयुक्ता त्वं भव स्थिरयौवना ॥६१॥
चिरजीवी भवतु स मार्कण्डेयात्परः सुते । कुबेराद्धनवांश्चैव शक्रादैश्वर्यवानपि ॥६२॥
विष्णुभक्तः शिवसमः सिद्धस्तु कपिलात्परः । स्वामिसौभाग्यसंयुक्ता भव त्वं जीवनावधि ॥६३॥
गृहा भवन्तु ते साध्वि कुबेरभवनाधिकाः । माता त्वं दशपुत्राणां गुणिनां चिरजीविनाम् ॥६४॥
स्वभर्तुरधिकानां च भविष्यसि न संशयः । इत्येवमुक्त्वा संतस्थौ धर्मराजश्च पर्वत ॥६५॥
सा तं प्रदक्षिणीकृत्य प्रणम्य स्वगृहं ययौ । धर्मस्तामाशिषं युक्त्वा जगाम निजमन्दिरम् ॥६६॥
पतिव्रतां प्रशशंस प्रतिसंसदि संसदि । सा रेमे स्वामिना सार्धं यूना रहसि संततम् ॥६७॥
पश्चाद्बभूवुः सत्पुत्रा तद्भर्तुरधिका गुणैः । शैलेन्द्र कथितं सर्वमितिहासं पुरातनम् ॥६८॥
दत्त्वाऽनरण्यः स्वसुतां ररक्ष सर्वसंपदम् । त्वमेव कन्यकां दत्त्वा सर्वेषामीश्वराय च ॥६९॥
रक्ष सर्वबन्धुवर्गानात्मनः सर्वसंपदम् । सप्ताहे समतीते च दुर्लभेऽतिशुभे क्षणे ॥७०॥
लग्नाधिपे च लग्नस्थे चन्द्रे स्वतनयान्विते । मोदते रोहिणीयुक्ते विशुद्धे चन्द्रतारके ॥७१॥
मार्गशीर्षे चन्द्रवारे सर्वदोषविवर्जिते । सर्वसद्ग्रहसंदृष्टे ह्यसद्ग्रहविवर्जिते ॥७२॥
सदपत्यप्रदेऽतीव पतिसौभाग्यदायिनि । अवैधव्यप्रदे सौख्यप्रदे जन्मनि जन्मनि ॥७३॥

---

और निरन्तर स्थायी यौवन सम्पन्न हो । साध्वि ! तुम्हें परमैश्वर्य समेत स्थायी यौवन प्राप्त हो । सुते ! तुम्हारा पति मार्कण्डेय से भी बढ़कर दीर्घजीवी, कुबेर से बढ़कर धनवान्, इन्द्र से बढ़कर ऐश्वर्यवान्, शिव के समान विष्णु-भक्त और कपिल से बढ़कर सिद्ध हो । जीवनपर्यन्त तुम्हें स्वामी का सौभाग्य प्राप्त रहे । साध्वि ! कुबेर के भवनों से अधिक तुम्हारे भवन हों, तुम अपने पति से भी अधिक गुणी एवं चिरंजीवी दस पुत्रों की माता बनो—इसमें संशय नहीं । हे पर्वत ! इतना कहकर धर्मराज चुप हो गये ॥५९-६५॥ पद्मा उनकी प्रदक्षिणा और प्रणाम करके अपने घर गयी । धर्मराज भी उसे शुभाशिष प्रदान कर अपने घर चले गये ॥६६॥ धर्मराज ने प्रत्येक सभा में उस पतिव्रता की प्रशंसा की । पद्मा अपने युवक पति के साथ एकान्त में निरन्तर आनन्दोपभोग करने लगी ॥६७॥ पश्चात् उसके सदाचारी पुत्र उत्पन्न हुए, जो उसके पति से भी अधिक गुणशाली थे । शैलराज ! मैंने तुम्हें सम्पूर्ण प्राचीन इतिहास बता दिया ॥६८॥ राजा अनरण्य ने अपनी कन्या देकर समस्त सम्पत्ति की रक्षा की । तुम भी सबके ईश्वर शिव को अपनी कन्या देकर समस्त बन्धुवर्गों समेत अपनी सम्पत्ति की रक्षा करो ॥६८½॥ पर्वत एक सप्ताह व्यतीत होने पर अत्यन्त दुर्लभ शुभ क्षण में जब चन्द्रमा लग्नेश होकर लग्न में अपने पुत्र बुध के साथ विराजमान होंगे; चन्द्र और तारा सर्वथा शुद्ध होंगे; मार्गशीर्ष मास का सोमवार होगा, लग्न सब प्रकार के दोषों से रहित, समस्त शुभग्रहों की दृष्टि से लक्षित और असत् ग्रहों से शून्य होगा; उत्तम सन्तानप्रद, पतिसौभाग्यदायक, वैधव्यनिवारक, जन्म-जन्म में सुख प्रदान करनेवाला तथा प्रेम का कभी

---

१ क. 'वान्वाग्मी सं० ।

अत्यन्तप्रेमाविच्छेदप्रदायिनि परात्परे। कन्यां प्रदाय देवाय त्वं कृती भव पर्वत ॥७४॥
जगदम्बां जगत्पित्रे मूलप्रकृतिमीश्वरीम्। तेजःस्वरूपां सर्वेषां देवानां देवपूजिताम् ॥७५॥
आविर्भूता पुरा कल्पे देवानां रक्षणाय च। तेजोराशिः सुरौघाणां प्रज्वलन्ती दिशो दश ॥७६॥
अस्याः स्वतेजसा दैत्याः केचिद्दग्धाः पलायिताः। केचिद् बभूवुः शैलेन्द्र भस्मीभूताश्च भूतले ॥७७॥
बिलं प्रविविशुः केचिन्मूर्च्छां प्रापुश्च केचन। केचिद्दन्ते तृणं कृत्वा जग्मुः शरणमीश्वरीम् ॥७८॥
केचिच्चिक्षिपुरस्त्राणि स्तम्भिता अपि केचन। केचिच्चिरं रणं कृत्वा ययुः स्वर्गमनामयम् ॥७९॥
निःशत्रवो बभूवुस्ते सुरा अस्याः प्रसादतः। कृष्णाज्ञया सा कल्पान्ते दक्षकन्या बभूव ह ॥८०॥
दक्षश्च विधिवद्देवीं प्रददौ शूलपाणये। देवेन मत्पितुर्यज्ञे सहसा सुरसंसदि ॥८१॥
बभूव कलहः शैल तेन शूलभृता महान्। ब्रह्माणं च नमस्कृत्य ययौ रुष्टस्त्रिलोचनः ॥८२॥
दक्षश्च सगणो रुष्टः प्रययौ स्वालयं तदा। कोपात्संभृतसंभारो दक्षो यज्ञं चकार ह ॥८३॥
न ददौ यज्ञभागं च मात्सर्याच्छूलपाणये। दृष्ट्वा सती प्रकुपिता जनकं रक्तलोचना ॥८४॥
निर्भर्त्स्य च बहुतरं हृदयेन विदूयता। यज्ञस्थानात्समुत्थाय जगाम मातुरन्तिकम् ॥८५॥
भविष्यं कथयामास त्रिकालज्ञा परात्परा। यज्ञभङ्गादिकं सर्वं स्वपितुश्च पराभवम् ॥८६॥

---

विच्छेद न होने देनेवाला अत्यन्त श्रेष्ठतम योग उपस्थित होगा; उस समय तुम अपनी पुत्री मूल प्रकृति, ईश्वरी, सभी देवों के तेजःस्वरूप तथा देवपूजित जगदम्बा को जगत्पिता महादेव के हाथ में देकर कृतकृत्य हो जाओ ॥७०-७५॥ पूर्वकल्प में देवों के रक्षणार्थ मूलप्रकृति देव-समूह की तेजोराशि के रूप में दसों दिशाओं को प्रज्वलित करती हुई प्रकट हुईं ॥७६॥ शैलराज ! उनके अपने तेज से कुछ दैत्य दग्ध होकर पलायन कर गये, कुछ पृथिवी पर भस्म हो गये, कुछ बिल (पाताल) में प्रविष्ट हो गये, कुछ मूर्च्छित हो गये, कुछ दाँतों के नीचे तृण रखकर ईश्वरी के शरण में चले गये ॥७७-७८॥ कुछ ने अस्त्रों को फेंक दिया, कुछ स्तम्भित हो गये और कुछ ने चिरकाल तक युद्ध करके नीरोग स्वर्ग की प्राप्ति की ॥७९॥ उनकी कृपा से देवलोक शत्रुरहित हो गये। वही जगदम्बा कल्पान्त में भगवान् कृष्ण की आज्ञा से दक्षकन्या हुईं ॥८०॥ दक्ष ने उस देवी को विधि-विधान के साथ शूलपाणि शिव को प्रदान किया। हे शैल ! अनन्तर मेरे पिता के यज्ञ में, जहाँ देवताओं की सभा लगी हुई थी, दक्ष का शूलधारी शिव के साथ सहसा महान् कलह हो गया, जिससे क्रुद्ध होकर त्रिनेत्र शिव ब्रह्मा को नमस्कार करके वहाँ से चले गये ॥८१-८२॥ दक्ष भी रुष्ट होकर गणों समेत अपने घर चले गये। उपरान्त दक्ष ने रोषपूर्वक ही यज्ञ सामग्री एकत्र की और उसके द्वारा महान् यज्ञ का आयोजन किया। उस यज्ञ में उन्होंने द्वेषवश शूलपाणि को भाग नहीं दिया। यह देख सती के मन में पिता के प्रति बड़ा क्रोध हुआ। उनकी आँखें लाल हो गयीं। वह व्यथित हृदय से पिता के उस यज्ञस्थान से उठकर अपनी माता के पास चली गयीं ॥८३-८५॥ अनन्तर उस त्रिकालज्ञा एवं परात्परा देवी ने अपनी माता से सब भविष्य की बातें कह डालीं, जिसमें यज्ञ के भङ्ग होने, अपने पिता का अपमान, यज्ञस्थल से देवों का हिमालय को भाग जाना, मुनियों,

पलायनं च देवानां यज्ञस्थानाद्गिरीश्वरम् । मुनीनामृत्विजां चैव पर्वतानां तथैव च ॥८७॥
जय शंकरसैन्यानां स्वात्मनो मृत्युमेव च । शोकात्पर्यटनं भर्तुर्विरहातुरचेतसा ॥८८॥
निर्माणं नेत्रसरसः प्रबोधं च जनार्दनात् । मूर्तिभेदात्पुनः प्राप्ति विहारं तस्य तत्समम् ॥८९॥
अपरं भवितव्यं च सर्वमुक्त्वा जगाम सा । स्वमात्रा भगिनीभिश्च प्रतिषिद्धा च दुःखिता ॥९०॥
बभूवादर्शना योगात्सर्वासां सिद्धियोगिनी । गत्वा सा जाह्नवीतीरं स्मृत्वा संपूज्य शंकरम् ॥९१॥
स्मृत्वा तच्चरणाम्भोजं देहं तत्याज सुन्दरी । गन्धमादनद्रोणीस्थं शरीरं प्रविवेश ह ॥९२॥
संजहार पुरा येन दैत्यानामखिलं कुलम् । हाहाकारं प्रचक्रुश्च सुराः सर्वेऽतिविस्मिताः ॥९३॥
जग्मुः शंकरसेनाश्च दक्षयज्ञं विनश्य च । पराभवं च सर्वेषां कृत्वा शोकातुराः पराः ॥९४॥
सत्वरं सर्ववृत्तान्तं कथयामासुरीश्वरम् । श्रुत्वा प्रवृत्तिं संहर्ता सर्वसद्गुणैर्वृतः ॥९५॥
मूर्च्छां संप्राप शोकेन ज्ञानानन्दः परात्परः । क्षणेन चेतनां प्राप्य समुत्थाय त्रिलोचनः ॥९६॥
जगाम स्वर्णदीतीरं यत्र देवीकलेवरम् ॥९७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० सतीदेहत्यागो नाम
द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४२॥

---

ऋत्विजों एवं पर्वतों के पलायन, शंकर के सैनिकों की विजय, अपनी मृत्यु, तथा शोक के कारण पति (शिव) का विरहातुर होकर चारों ओर पर्यटन करना, उनके नेत्रों के जल से सरोवर का निर्माण, भगवान् जनार्दन के समझाने से उनका धैर्य धारण करना, दूसरे शरीर से पुनः शिव की प्राप्ति तथा उनके साथ विहार की चर्चा थी। इस प्रकार भावी सब वृत्तान्त बताकर सती, माता और बहनों के मना करने पर भी दुःखी होकर चली गयीं ॥८६-९०॥

वह सिद्धयोगिनी थीं, अतः योगबल से सबकी दृष्टि से ओझल हो गयीं। वे गङ्गातट पर जाकर शंकर के ध्यान और पूजन के पश्चात् उनके चरणारविन्दों का चिन्तन करती हुई उस सुन्दरी सती ने देह का त्याग कर दिया और गन्धमादन पर्वत की गुफा में विद्यमान उस दिव्य विग्रह में प्रवेश किया, जिसके द्वारा उन्होंने पूर्वकाल में दैत्यकुलों का संहार किया था। यह देखकर सब देवता अत्यन्त विस्मित हो 'हाहाकार' कर उठे ॥९१-९३॥ शंकर की सेनाओं ने वहाँ जाकर दक्ष-यज्ञ का विनाश तथा सबका पराभव करके शोकाकुल होकर वहाँ का समस्त वृत्तान्त बड़ी शीघ्रता से जाकर शिव को कह सुनाया। यह समाचार सुनकर समस्त सद्गुणों से घिरे हुए संहारकारी शिव गंगा के उस तट पर गये, जहाँ सती का शरीर पड़ा था ॥९४-९७॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारायण-नारद-संवाद में सती-देहत्यागवर्णन नामक बयालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४२॥

# अथ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

## नारायण उवाच

अथ दुर्गां महादेवः सतीमूर्ति मनोहराम् । अम्लानपद्मवक्त्रां तां शयानां जाह्नवीतटे ।।१।।
दधतीमक्षमालां च प्रतप्तकाञ्चनप्रभाम् । तेजसा प्रज्वलन्तीं च दधानां शुक्लवाससम् ।।२।।
दृष्ट्वा सतीशरीरं च प्रदग्धो विरहाग्निना । तत्त्वराशिर्मूर्तिमांश्च मूर्च्छां प्राप तथाऽपि च ।।३।।
कलत्रशोको बलवान्स्वात्मारामं परात्परम् । बाधते वेदबीजं तं योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुम् ।।४।।
क्षणेन चेतनां प्राप्य तामुवाच त्रिलोचनः । निरीक्ष्य वदनाम्भोजं स्थाणुः स्थाणुरिवापरः ।।५।।
साश्रुनेत्रोऽतिदीनश्च दीनानां शरणप्रदः । दीनदैन्यापहारी च विललाप परं वचः ।।६।।

## शंकर उवाच

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ सुभगे सति प्राणेश्वरि प्रिये । शंकरोऽहं तव स्वामी पश्य मां निकटागतम् ।।७।।

---

# अध्याय ४३

## शिव के शोक का दूरीकरण

**नारायण बोले**—महादेव गंगा के तट पर सोयी हुई सती दुर्गा की उस मनोहर मूर्ति को जिसके मुखारविन्द की कान्ति अभी मलिन नहीं हुई थी, जो श्वेत वस्त्र धारण किये और हाथ में अक्षमाला लिये दिव्य तेज से प्रकाशित हो रही थी और जिससे तपाये हुए स्वर्ण की-सी कमनीय कान्ति फैल रही थी, देखकर विरहाग्नि से दग्ध होने लगे । वे मूर्तिमान् तत्त्वराशि होते हुए भी मूर्च्छित हो गये ।।१-३।। बलवान् पत्नी-शोक शिव जी को भी अत्यन्त कष्टप्रद हुआ । अपने आत्मा में रमण करनेवाले, श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ, वेदों के बीज तथा योगीन्द्रों के गुरु के गुरु को भी सताने लगा ।।४।। क्षण में चेतना प्राप्त होने पर स्थाणु शिव, जो अपर स्थाणु (ठूंठ) की भांति दिखायी देते थे, सती के मुखकमल को देखकर उनसे बोले ।।५।। उस समय उनकी आंखों में आंसू भरा था । यद्यपि वे दीनों के शरणप्रद एवं दीनों की दीनता को दूर करनेवाले हैं, फिर भी अतिदीन होकर उन्होंने विलाप करना आरम्भ किया ।।६।।

**शंकर बोले**—हे सुभगे सति ! प्राणेश्वरि प्रिये ! उठो, उठो । मैं तुम्हारा स्वामी शंकर हूं । अपने निकट

शिवं शिवप्रदं सर्वसंपद्रूपं च सिद्धिदम् । सर्वात्मानं च सर्वेशं शवतुल्यं त्वया विना ॥८॥
शक्तोऽहं च त्वया सार्धं सर्वशक्तिस्वरूपया । शक्तिहीनः शवसमो निश्चेष्टः सर्वकर्मसु ॥९॥
यश्च शक्ति न जानाति ज्ञानहीनश्च निन्दति । तं त्यक्तुमुचितं विज्ञे कथं मां त्यजसि प्रिये ॥१०॥
स्वयं ब्रह्मा स्वयं विष्णुः साध्यभूता वयं तव । सस्मितं सकटाक्षं च वद किंचित्सुधोपमम् ॥११॥
मधुराभासदृष्ट्या च मां दग्धं सेचनं कुरु । मां दृष्ट्वा दूरतः शीघ्रं स्निग्धं वदसि सस्मितम् ॥१२॥
कथमद्यापि रुष्टेव विलपन्तं न भाषसे । प्राणाधिके समुत्तिष्ठ रुदन्तं मां न पश्यसि ॥१३॥
परित्यज्य च नः प्राणान्गन्तुं नार्हसि सुन्दरि । जगदम्बे समुत्तिष्ठ प्राणाधारे परात्परे ॥१४॥
पतिव्रते समुत्तिष्ठ कथं मां नाद्य सेवसे । कथं करोषि विज्ञाय व्रतभङ्गं श्रुतिप्रसूः ॥१५॥
इत्युक्त्वा मृतदेहं च प्रियाया विरहातुरः । निधायोरसि संश्लिष्य चुचुम्ब च पुनः पुनः ॥१६॥
अधरे चाधरं दत्त्वा वक्षो वक्षसि शंकरः । पुनः पुनः समाश्लिष्य पुनर्मूर्च्छामवाप सः ॥१७॥
पुनः स चेतनां प्राप्य वेगादुत्थाय शोकतः । दुद्राव च यथोन्मत्तो ज्ञानिनां च गुरोर्गुरुः ॥१८॥
सप्तद्वीपं सप्तसिन्धुं लोकालोकं च काञ्चनम् । बभ्राम भ्रान्तवज्ज्ञानी सतीं कृत्वा स्ववक्षसि ॥१९॥

---

आये हुए मुझे देखो ॥७॥ यद्यपि मैं शिव (कल्याण) रूप, कल्याणप्रद, समस्त सम्पदारूप, सिद्धिप्रद, सबका आत्मा एवं सबका ईश्वर हूँ, तथापि तुम्हारे बिना मैं शव तुल्य हूँ ॥८॥ तुम समस्त शक्तिस्वरूपा हो, तुम्हारे साथ रहने पर ही मैं समर्थ रहता हूँ और (तुम्हारी) शक्ति से हीन होने पर सभी कामों में शव के समान निश्चेष्ट हो जाता हूँ ॥९॥ प्रिये ! हे विशेष ज्ञान रखनेवाली ! जो शक्ति को न जानता हो और ज्ञानहीन होने के नाते निन्दा करता हो उसका त्याग करना तुम्हें उचित है, किन्तु मेरा त्याग क्यों कर रही हो ॥१०॥ स्वयं ब्रह्मा, स्वयं विष्णु और हम सभी तुम्हारे साध्य हैं। (अब) तुम मुसकराहट एवं कटाक्ष के साथ कुछ अमृतोपम वचन कहो ॥११॥ अपनी मधुर आभासवाली दृष्टि से मुझ दग्ध का सेचन करो। तुम सदैव मुझे दूर से ही देखकर शीघ्र मन्दमुसकान समेत स्नेहिल बातें कहती थी फिर क्यों आज रुष्ट-सी होकर विलाप करते हुए मुझसे नहीं बोल रही हो ? हे प्राणाधिके ! उठो, रोते हुए मुझे क्यों नहीं देखती ? ॥१२-१३॥ सुन्दरि ! मेरे प्राणों का त्यागकर तुम्हें जाना उचित नहीं। प्राणाधारे, परात्परे, जगदम्बे ! उठो । पतिव्रते ! आज मेरी सेवा क्यों नहीं करती ? तुम वेदों की जननी हो, व्रतभङ्ग जानती हुई भी यह क्या कर रही हो ? ॥१४-१५॥ इतना कहकर विरहातुर शिव ने अपनी प्रिया की उस मृत देह को उठाकर अपने हृदय से लगा लिया और बार-बार उसका चुम्बन किया। उनके अधर पर अपना अधर और वक्षःस्थल से अपना वक्षःस्थल संयुक्त करके शंकर उनका बार-बार आलिङ्गन करके पुनः मूर्च्छित हो गये ॥१६-१७॥ पुनः चेतना प्राप्त करके शोक से वेगपूर्वक उठकर ज्ञानियों के गुरु के गुरु होते हुए भी वे प्रमत्त की भाँति दौड़ने लगे। सती को वक्ष पर धारण करके वे सातों द्वीप, सातों समुद्र, लोकालोक एवं सुमेरु पर्वत पर ज्ञानी भ्रान्त की भाँति भ्रमण करने लगे ॥१८-१९॥ (भ्रमण करते हुए) वे भारत में शतशृंग-

शतशृङ्गगिरेः पार्श्वे जम्बुद्वीपे च भारते। सुनिर्जनेऽक्षयवटे गङ्गातीरे सरित्तटे ॥२०॥
रुरोदोच्चैः स्वयं कृत्वा सति साध्वीत्युदीर्य च। त्रिनेत्रनेत्रनीरेण संबभूव सरोवरम् ॥२१॥
तन्नेत्रं च सरो नाम मुनीनां तपसः स्थलम्। योजनद्वयविस्तीर्णं पुण्यतीर्थं मनोहरम् ॥२२॥
यत्र स्नात्वा पुनर्जन्म नराणां न भवेद्गिरे। शतजन्मकृतं पापं स्नानमात्रेण नश्यति ॥२३॥
त्यक्त्वा तां मानवीं मूर्ति नरा यान्ति हरेः पदम्। तत्र स रोदनं त्यक्त्वा पुनर्बभ्राम मेदिनीम् ॥२४॥
पूर्णमब्दं महायोगी विरहातुरमानसः। सतीगलितप्रत्यङ्गैरङ्गैश्च पर्वतेश्वर ॥२५॥
बभूव सिद्धपीठानां समूहो वाञ्छितप्रदः। शेषाङ्गानां महादेवः संस्कारं वै विधाय च ॥२६॥
अस्थिमालां विनिर्माय चकार कण्ठभूषणम्। नित्यं तद्भस्म भक्त्या च चकार गात्रलेपनम् ॥२७॥
सति प्राणेश्वरीत्युक्त्वा पुनर्मूर्च्छामिवाप सः। विसस्मार ब्रह्म परमात्मानमात्मसंभवः ॥२८॥
स्वात्मारामः पूर्णकामो निश्चेष्टो विरहज्वरात्। तं शयानं गिरिवरस्याभ्याशे वटमूलके ॥२९॥
दृष्ट्वा देवाः समाजग्मुर्विस्मिताः शिवसंनिधिम्। नारायणश्च भगवानीश्वरः सह पार्षदे ॥३०॥
रत्नयानेनाऽऽजगाम पद्मार्चितपदाम्बुजः। रत्नालंकारशोभाढ्यः पीतवासाश्चतुर्भुजः ॥३१॥

---

गिरि के पास जम्बूद्वीप में निर्जन प्रदेशस्थ अक्षयवट के नीचे गङ्गा तट पर पहुँचे ॥२०॥ सति ! साध्वि ! ऐसा कहकर वहाँ अति उच्च स्वर से रोदन करने लगे। उस समय त्रिनेत्र शिव के नेत्र से निकले आँसू का एक सरोवर बन गया, जिसका 'नेत्रसर' नाम हुआ और वह मुनियों का तपःस्थल हुआ। उस मनोहर पुण्यतीर्थ का दो योजन विस्तार है। पर्वत ! उसमें स्नान करने से मनुष्यों का पुनर्जन्म नहीं होता। उसमें स्नान मात्र से सौ जन्मों का पाप विनष्ट हो जाता है ॥२१-२३॥ मनुष्य-शरीर को छोड़कर मनुष्य विष्णु-पद को प्राप्त कर लेते हैं। वहाँ रोदन बन्द करके वह पुनः पृथ्वी पर भ्रमण करने लगे ॥२४॥ महायोगी शंकर विरहाकुलचित्त होकर पूरे एक वर्ष तक परिभ्रमण करते रहे। पर्वतराज ! सती देवी के उस मृत शरीर के अंग-प्रत्यंग जिस-जिस स्थान पर गिरे, वे स्थान कामनाप्रद सिद्धपीठ हो गये। अनन्तर महादेव सती के शेष अंगों का संस्कार करके अस्थियों की माला गूँथकर उसे अपना कण्ठभूषण और प्रतिदिन (सती के शरीर का) भस्म भक्ति से अपने शरीर पर लेपने लगे ॥२५-२७॥ सति ! प्राणेश्वरि ! कहते हुए शिव पुनः मूर्च्छित हो गये। उन आत्मसम्भव ने परमात्मा ब्रह्म को भी विस्मृत कर दिया और स्वात्माराम तथा पूर्णकाम होकर भी विरह-संताप के कारण निश्चेष्ट हो गये। गिरिराज के भीतर वटवृक्ष के नीचे उन्हें शयन किये मूर्च्छित देखकर देवों को महान् विस्मय हुआ—वे सब शिव जी के समीप गये। भगवान् नारायण भी पार्षदों समेत रत्नयान द्वारा वहाँ आये, जो कमला-अर्चित चरणकमल, रत्नों के आभूषणों से भूषित, पीताम्बर, चतुर्भुज, मन्दमुसुकान समेत प्रसन्नमुख एवं वनमाला से सुशोभित थे। अनन्तर ब्रह्मा, शेष,

ईषद्धास्यप्रसन्नास्यो वनमालाविभूषितः। ब्रह्मा शेषश्च धर्मश्च सुराः सर्वे महर्षयः ॥३२॥
समूषुरीशसदसि लक्ष्मीकान्तं प्रणम्य ते। श्रीहरिः शंकरमहो कृत्वा वक्षसि मूर्छितम् ॥
रुदन्तं बोधयामास ज्ञानीशो ज्ञानिनां गुरुम् ॥३३॥

## श्रीभगवानुवाच

स्वात्माराम निबोधेदं मदीयं वचनं शृणु। हितमध्यात्मसारं च दुःखशोकनिकृन्तनम् ॥३४॥
सर्वाध्यात्मविद्यामानबीजं ज्ञाननिधिं विधिम्। तथाऽपि बोधयामि त्वां सर्वज्ञं वेधसां विधिम् ॥३५॥
बुधं बोधयितुं शक्तोऽबुधोऽपि प्राणसंकटे। व्यवहारोऽस्ति लोकेषु सर्वः सर्वपरस्परम् ॥३६॥
मायाश्रिता गुणाः सर्वे हेतवः सुखदुःखयोः। विष्णुमाया बलवती गुणयुक्तं प्रबाधते ॥३७॥
दुःखं शोकं भयं शंभो दुर्दिने भवतीश्वर। तत्रातीते कुतस्तानि सुदिने च समागते ॥३८॥
हर्ष ऐश्वर्यदर्पश्च संततं तत्र वर्धते। सर्वाण्येतानि गण्यन्ते स्वप्नानीव विपश्चितः ॥३९॥
ज्ञानं लभ महादेव ज्ञानबीज सनातन। चेतनां कुरु भद्रं ते सतीं प्राप्स्यसि निश्चितम् ॥४०॥
न तोयं शीतता नित्यं नाग्निं मुञ्चति दाहिका। तेजः सूर्यं महीं गन्धो तथा त्वां च सती शिव ॥४१॥
शैलेत्येवं समाकर्ण्य हरिं किंचिदुवाच ह। नेत्राण्युन्मीलनं कृत्वा त्रिनेत्रः श्रूयतामिति ॥४२॥

---

धर्म, देवगण एवं महर्षियों ने वहाँ आकर लक्ष्मीकांत भगवान् को प्रणाम किया और सभा-स्थल में बैठ गये। तब ज्ञानियों के अधीश्वर भगवान् श्रीहरि रोदन करते हुए शिव को अपनी गोद में रखकर समझाने लगे ॥२८-३३॥

**श्री भगवान् बोले**—हे स्वात्माराम! मेरी बात सुनो, जो हितकर, अध्यात्म का सारभाग एवं दुःख-शोक का नाशक है ॥३४॥ यद्यपि तुम समस्त अध्यात्म के विद्यमान बीज, ज्ञाननिधान, विधि, सर्वज्ञ तथा स्रष्टाओं के भी स्रष्टा हो, तथापि मैं तुम्हें ज्ञान का उपदेश दे रहा हूँ। प्राणसंकट के समय अविद्वान् भी विद्वान् को समझाने में समर्थ होता है। लोकों में यह व्यवहार है कि सब लोग सबको परस्पर समझाते-बुझाते हैं। सभी गुण माया के ही अधीन हैं, जो प्राणियों के सुख-दुःख में कारण होते हैं, इसलिए विष्णु की बलवती माया गुणयुक्त प्राणी को दुःख प्रदान करती है ॥३५-३७॥ शम्भो! ईश्वर! दुर्दिन में दुःख, शोक एवं भय की प्राप्ति होती है। जब दुर्दिन बीत जाता है और सुदिन आ जाता है, तब उनकी प्राप्ति कैसे हो सकती है। उस समय तो हर्ष एवं ऐश्वर्याभिमान निरन्तर बढ़ता रहता है, इसलिए बुद्धिमान् लोग इसे स्वप्न की भाँति मानते हैं ॥३८-३९॥ हे महादेव! ज्ञान प्राप्त करो, तुम ज्ञानबीज और सनातन हो, चेतना प्राप्त करो, तुम्हारा कल्याण होगा—सती तुम्हें निश्चित मिलेंगी ॥४०॥ हे शिव! जिस प्रकार शीतलता जल को और दाहिका शक्ति अग्नि को, तेज सूर्य को और गन्ध पृथ्वी को नहीं छोड़ती, उसी भाँति सती तुमसे पृथक् नहीं रहेंगी। हे शैल! यह सुनकर त्रिनेत्र शिव ने अपना नेत्रोन्मीलन करके हरि से कुछ कहा, वह सुनो ॥४१-४२॥

## त्रिनेत्र उवाच

कस्त्वं तेजःस्वरूपोऽसि क इमे तव संनिधौ । किन्नाम भक्तश्चैषां कानि नामानि का सती ॥४३॥
कोऽहं को मे भवान्ब्रूते किंकराः कुत आगताः । क्व यास्यसि क्व यास्यामि क्व गच्छन्त इमे वद ॥४४॥
हरिरित्येवमाकर्ण्य रुरोद सगणो गिरे । नेत्रनीरैस्त्रिनेत्रं तं रुदन्तं प्रसिषेच सः ॥४५॥
हरित्रिनेत्रयोर्नेत्रनीरपातेन तत्र वै । बभूव सरसां श्रेष्ठं तीर्थं भुवनपावनम् ॥४६॥
भारतेऽस्तगिरेः पश्चात्तत्राक्षयवटान्तिके । स्थलं बभूव तपसां मुक्तिबीजं तपस्विनाम् ॥४७॥
अथोवाच पुनः शीघ्रमाध्यात्मं च हरं हरिः । शृण्वतां सर्वदेवानां मुनीनामूर्ध्वरेतसाम् ॥४८॥

## श्रीभगवानुवाच

शृणु शंकर वक्ष्यामि ज्ञानानन्द सनातन ॥४९॥
ज्ञानं ज्ञाननिधे शोकाद्विस्मृतोऽसि परात्पर । सुदिनं दुर्दिनं शश्वद्भवत्येव भवे भव ॥५०॥
सर्वेषां प्राकृतानां च ते बीजे सुखदुःखयोः । सुखाद्भवति हर्षश्च दर्पः शौर्यं प्रमत्तता ॥५१॥
राग ऐश्वर्यकामश्च विद्वेषश्च निरन्तरम् । दुःखाच्छोकात्समुद्वेगाद्भयं नित्यं प्रवर्तते ॥५२॥
हतान्येतानि सर्वाणि हते बीजे महेश्वर । सुदिनं दुर्दिनं चैव सर्वं कर्मोद्भवं भव[1] ॥५३॥

---

**शिव बोले**—तेजःस्वरूप तुम कौन हो? तुम्हारे समीप ये सब कौन हैं? आपका तथा इनका क्या नाम है? सती कौन है? मैं कौन हूँ? मुझसे कहनेवाले आप कौन हैं? ये किंकर लोग और ये सब कहाँ जा रहे हैं? मुझे बताओ ॥४३-४४॥ शैल! यह सुनकर हरि अपने गणों समेत रोदन करने लगे। अपने नयनजल से उन्होंने रोदन करते हुए शिव को नहला दिया। नारायण और शिव के नयनजल से वहाँ एक श्रेष्ठ सरोवर बन गया जो भुवनपावन तीर्थ है। भारत में अस्ताचल पर्वत के पीछे—अक्षयवट के समीप वह स्थल है, जो तप करने की भूमि एवं तपस्वियों की मुक्ति का कारण है। अनन्तर हरि समस्त देवों तथा ऊर्ध्वरेता मुनियों के सुनते शिव से पुनः अध्यात्म की बात कहने लगे ॥४५-४८॥

**श्रीभगवान् बोले**—हे शङ्कर! तुम ज्ञानानन्द और सनातन हो, मैं जो कह रहा हूँ उसे सुनो! हे ज्ञाननिधे! हे परात्पर? शोक के कारण तुम ज्ञान को भूल गये हो। यह सुदिन और दुर्दिन जन्म-जन्म में निरन्तर होते रहते हैं, जो सभी प्राकृत प्राणियों के सुख-दुःख के कारण स्वरूप हैं। सुख से हर्ष, दर्प, शौर्य, प्रमत्तता, अनुराग, ऐश्वर्य की इच्छा और विद्वेष निरन्तर प्रकट होते रहते हैं। दुःख, शोक और उद्वेग से सदा भय की प्राप्ति होती है ॥४९-५२॥ महेश्वर! बीज के नष्ट होने पर ये सभी स्वतः नष्ट हो जाते हैं। शिव! सुदिन और

---

१ क. भवे ।

तत्कर्म तपसां साध्यं कर्मणां च शुभाशुभम् । तपः स्वभावसाध्यं च स्वभावोऽभ्यासतो भवेत् ॥५४॥
संसर्गसाध्योऽभ्यासश्च संसर्गः पुण्यतो भवेत् । पुण्यबीजं मनश्चैव पापबीजं च चञ्चलम् ॥५५॥
मनः शंभो ममांशश्च सर्वेन्द्रियपुरःसरम् । सर्वेषां जनकोऽहं च चित्त्वं ब्रह्मा पतिस्त्वयम् ॥५६॥
ब्रह्मैकं मूर्तिभेदस्तु गुणभेदेन संततम् । तद्ब्रह्म विविधं वस्तु सगुणं निर्गुणं शिव[1] ॥५७॥
मायाश्रितो यः सगुणो मायातीतश्च निर्गुणः । स्वेच्छामयश्च भगवानिच्छया विकरोति च ॥५८॥
इच्छाशक्तिश्च प्रकृतिर्नित्या सर्वप्रसूः सदा । केचिदेकं वदन्त्येव ब्रह्मज्योतिः सनातनम् ॥५९॥
केचिद्वदन्ति द्विविधं ब्रह्म प्रकृतिपूर्वकम् । शृणु ये च वदन्त्येकं मायापुरुषयोः परम् ॥६०॥
तस्माद्भवति तौ द्वौ च तद्ब्रह्म सर्वकारणम् । अथ चैकं परं ब्रह्म द्विविधं भवतीच्छया ॥६१॥
इच्छाशक्तिश्च प्रकृतिः सर्वशक्तिप्रसूः सदा । तत्राऽऽसक्तश्च सगुणः शरीरी प्राकृतस्तथा ॥६२॥
निर्गुणस्तत्र निर्लिप्तोऽशरीरी च निरङ्कुशः । सर्वात्मा भगवान्नित्यः सर्वाधारः सनातनः ॥६३॥
सर्वेश्वरः सर्वसाक्षी सर्वत्रास्ति फलप्रदः । शरीरं द्विविधं शंभो नित्यं प्राकृतमेव च ॥६४॥

---

दुर्दिन सब कर्म से उत्पन्न होते हैं ॥५३॥ वह कर्म तपःसाध्य है । कर्मों के शुभ और अशुभ फल मिलते हैं। तप स्वभाव-साध्य है एवं स्वभाव अभ्यास से बनता है ॥५४॥ अभ्यास, संसर्ग से साध्य होता है और संसर्ग पुण्य द्वारा प्राप्त होता है । चंचल मन ही पुण्य और पाप का बीज है । शम्भो ! सम्पूर्ण इन्द्रियों समेत मन मेरा अंश है । सबका जनक जो अहंकार है, उसके अधिष्ठाता चेतन तुम हो और ये ब्रह्मा बुद्धि के अधिष्ठाता हैं । परब्रह्म परमात्मा एक हैं । गुणभेद से ही सदा उसके भिन्न-भिन्न रूप होते हैं । वह ब्रह्मतत्त्व एक होने पर भी अनेक प्रकार का है । शिव ! वह सगुण भी है और निर्गुण भी ॥५५-५७॥ जो मायारूप उपाधि का आश्रय लेता है, वह सगुण और जो मायातीत है, वह निर्गुण कहलाता है । भगवान् स्वेच्छामय हैं । वे अपनी इच्छा से ही विविध रूपों में प्रकट होते हैं ॥५८॥ उनकी इच्छाशक्ति का ही नाम प्रकृति है । वह नित्य-स्वरूपा और सदा सबकी जननी है । कुछ लोग ज्योतिःस्वरूप सनातन ब्रह्म को एक ही बताते हैं तथा कुछ दूसरे विद्वान् उसे प्रकृति से युक्त होने के कारण द्विविध कहते हैं । जो एक बताते हैं, उनका मत सुनो । ब्रह्म, माया तथा जीवात्मा दोनों से परे हैं । उस ब्रह्म से ही वे दोनों (माया और जीवात्मा) प्रकट होते हैं, अतः ब्रह्म ही सबका कारण है । वह परब्रह्म एक होकर भी स्वेच्छा से दो हो जाता है । उनकी इच्छाशक्ति ही प्रकृति है, जो सदा सम्पूर्ण शक्तियों की जननी होती है । उससे संयुक्त होने के कारण वे परमात्मा 'सगुण' कहे जाते हैं । वे ही सबके आधार, सनातन, सर्वेश्वर, सर्वसाक्षी तथा सर्वत्र फलदाता होते हैं । शम्भो ! शरीर भी दो प्रकार का होता है—एक नित्य और

---

१ क. शिवम् ।

नित्यं विनाशरहितं नश्वरं प्राकृतं सदा। अहं त्वं चापि भगवान्नाऽऽवयोर्नित्यविग्रहः ॥६५॥
आवयोरंशभूता ये प्राकृता नष्टविग्रहाः। रुद्रादयस्त्वदंशाश्च मदंशा विष्णुरूपिणः ॥६६॥
ममाप्येवं द्विधा रूपं द्विभुजं च चतुर्भुजम्। चतुर्भुजोऽहं वैकुण्ठे पद्मया पार्षदैः सह ॥६७॥
गोलोके द्विभुजोऽहं च गोपीभिः सह राधया। द्विविधं ये वदन्त्येव द्वौ प्रधानौ तु तन्मते ॥६८॥
पुरुषश्च सदा नित्यो नित्या प्रकृतिरीश्वरी। सदा तौ द्वौ च संश्लिष्टौ सर्वेषां पितरौ शिव ॥६९॥
सशरीरौ निःशरीरौ स्वेच्छया सर्वरूपिणौ। प्राधान्यं च यथा पुंसः प्रकृतेश्च सदा तथा ॥७०॥
सतीमिच्छसि चेच्छंभो प्रकृतेः स्तवनं कुरु। यत्स्तोत्रं च त्वया दत्तं पुरा दुर्वाससे मुदा ॥७१॥
तद्दिव्यं कण्वशाखोक्तं भज तेन जगत्प्रसूम्। शोकनाशो भवतु ते शिवं शिव ममाऽऽशिषा ॥७२॥
दूरं विप्लवहेतुश्च यातु स्त्रीविरहज्वरः। इत्येवमुक्त्वा लक्ष्मीशो विरराम गिरीश्वर ॥७३॥
स्तवनं कर्तुमारेभे प्रकृतेश्च महेश्वरः। स्नात्वा नत्वा च श्रीकृष्णं ब्रह्माणं भक्तिसंयुतः ॥
पुटाञ्जलियुतो भूत्वा पुलकाञ्चितविग्रहः ॥७४॥

---

दूसरा प्राकृत ॥५९-६४॥ नित्य शरीर का विनाश नहीं होता; परन्तु प्राकृत शरीर सदा नश्वर होता है। भगवन्! हम दोनों के शरीर नित्य हैं। हमारे अंशभूत जो अन्य जीव हैं, उनके शरीर त्रिगुणात्मिका प्रकृति से उत्पन्न होने के कारण प्राकृत कहलाते हैं। प्राकृत शरीर सदा ही विनाशशील है। रुद्र आदि तुम्हारे अंश हैं और विष्णु-रूपधारी मेरे अंश ॥६५-६६॥ मेरे भी दो रूप हैं—द्विभुज और चतुर्भुज। चतुर्भुज मैं हूँ और वैकुण्ठधाम में लक्ष्मी तथा पार्षदों के साथ रहता हूँ। द्विभुज रूप से मैं श्रीकृष्ण कहलाता हूँ और गोलोक में गोपियों तथा राधा के साथ निवास करता हूँ। जो ब्रह्म को द्विविध बताते हैं उनके मत में दो प्रधान तत्त्व हैं—नित्य पुरुष तथा नित्या प्रकृति ईश्वरी। शिव! वे दोनों सदा परस्पर संयुक्त रहते हैं। वे ही सबके माता-पिता हैं ॥६७-६९॥ वे दोनों अपनी इच्छा के अनुसार सशरीर और निःशरीर होते रहते हैं। दोनों ही सर्वस्वरूप हैं। जैसे पुरुष की नित्य प्रधानता है, उसी तरह प्रकृति की भी है। शम्भो! यदि तुम सती को पाना चाहते हो तो प्रकृति का स्तवन करो। तुमने पूर्वकाल में दुर्वासा को प्रसन्नतापूर्वक जिस स्तोत्र का उपदेश दिया था, वह दिव्य है और उसका कण्वशाखा में वर्णन किया गया है। तुम उसी के द्वारा जगदम्बा की आराधना करो। शिव! मेरे आशीर्वाद से तुम्हारे शोक का नाश हो ॥७०-७२॥ तुम्हें कल्याण की प्राप्ति हो और तुम्हारे लिए विप्लव का कारण बना हुआ पत्नी के वियोग का यह रोग दूर हो जाय। पर्वतराज! ऐसा कहकर लक्ष्मीपति (विष्णु) चुप हो गये और महेश्वर ने प्रकृति की स्तुति करना आरम्भ किया। स्नान करके उन्होंने भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर पुलकित शरीर होकर श्रीकृष्ण और ब्रह्मा को नमस्कार किया ॥७३-७४॥

**महेश्वर उवाच**—ॐ नमः प्रकृत्यै । मन्त्रः ।

ब्राह्मि ब्रह्मस्वरूपे त्वं मां प्रसीद सनातनि । परमात्मस्वरूपे च परमानन्दरूपिणि ॥
भद्रे भद्रप्रदे दुर्गे दुर्गघ्ने दुर्गनाशिनि । पोतस्वरूपे जीर्णे त्वं मां प्रसीद भवार्णवे ॥७५॥
सर्वस्वरूपे सर्वेशि सर्वबीजस्वरूपिणि । सर्वाधारे सर्वविद्ये मां प्रसीद जयप्रदे ॥७६॥
सर्वमङ्गलरूपे च सर्वमङ्गलदायिनि । समस्तमङ्गलाधारे प्रसीद सर्वमङ्गले ॥७७॥
निद्रे तन्द्रे क्षमे श्रद्धे तुष्टिपुष्टिस्वरूपिणी । लज्जे मेधे बुद्धिरूपे प्रसीद भक्तवत्सले ॥७८॥
वेदस्वरूपे वेदानां कारणे वेददायिनि । सर्ववेदाङ्गरूपे च वेदमातः प्रसीद मे ॥७९॥
दये जये महामाये प्रसीद जगदम्बिके । क्षान्ते शान्ते च सर्वान्ते क्षुत्पिपासास्वरूपिणि ॥८०॥
लक्ष्मि नारायणक्रोडे स्रष्टुर्वक्षसि भारति । मम क्रोडे महामाये विष्णुमाये प्रसीद मे ॥८१॥
कलाकाष्ठास्वरूपे च दिवारात्रिस्वरूपिणि । परिणामप्रदे देवि प्रसीद दीनवत्सले ॥८२॥
कारणे सर्वशक्तीनां कृष्णस्योरसि राधिके । कृष्णप्राणाधिके भद्रे प्रसीद कृष्णपूजिते ॥८३॥
यशःस्वरूपे यशसां कारणे च यशःप्रदे । सर्वदेवीस्वरूपे च नारीरूपविधायिनि ॥८४॥
समस्तकामिनीरूपे कलांशेन प्रसीद मे । सर्वसंपत्स्वरूपे च सर्वसंपत्प्रदे शुभे ॥८५॥

---

**महेश्वर बोले**—ॐ नमः प्रकृत्यै (प्रकृति को नमस्कार है) । हे ब्राह्मि ! तुम ब्रह्मस्वरूप एवं सनातनी हो, मुझ पर प्रसन्न हो जाओ । तुम परमात्मस्वरूप एवं परमानन्दरूप हो । दुर्गे ! तुम भद्र (कल्याण) रूप, भद्रप्रद, दुर्गासुर की नाशिनी एवं संकटविनाशिनी हो, भवसागर को पार करने के लिए तुम नौका हो, मुझ पर प्रसन्न हो जाओ ॥७५॥ सर्वस्वरूपे ! सर्वेश्वरि ! सर्वबीजस्वरूपिणि ! सर्वाधारे ! सर्वविद्ये ! विजयप्रदे ! मुझ पर प्रसन्न हो जाओ ॥७६॥ सर्वमङ्गले ! तुम समस्त मङ्गलरूप, समस्त मङ्गलदायिनी और समस्त मङ्गलों का आधार रूप हो, प्रसन्न हो जाओ ॥७७॥ भक्तवत्सले ! तुम निद्रा, तन्द्रा, क्षमा, श्रद्धा, तुष्टि पुष्टि, लज्जा, मेधा और बुद्धि रूप हो, प्रसन्न हो जाओ ॥७८॥ वेदजननि ! तुम वेदस्वरूप, वेदों की कारण, वेददायिनी और सर्ववेदाङ्गरूप हो, मुझ पर प्रसन्न हो जाओ ॥७९॥ जगदम्बिके ! तुम दया, जया, महामाया, क्षान्ता, शान्ता एवं सबका अन्त करनेवाली और क्षुधा-पिपासा स्वरूप हो, प्रसन्न हो जाओ ॥८०॥ विष्णुमाये ! तुम नारायण के अङ्क में लक्ष्मी, ब्रह्मा के साथ भारती और मेरे अङ्क में महामाया हो, मुझ पर प्रसन्न हो जाओ ॥८१॥ दीनवत्सले ! तुम कला, दिशा, दिन तथा रात्रि स्वरूपा हो एवं (कर्मों के) परिणाम (फल) देनेवाली हो, प्रसन्न हो जाओ ॥८२॥ तुम समस्त शक्तियों की कारण, श्रीकृष्ण के वक्षःस्थल पर राधारूप, श्रीकृष्ण की प्राणों से भी अधिक प्रिय और श्रीकृष्ण से पूजित हो । भद्रे ! प्रसन्न हो जाओ ॥८३॥ तुम यशःस्वरूप, यशों की कारणभूता, यश देनेवाली, समस्त देवीस्वरूप, नारी-रूप बनानेवाली और कलांश द्वारा समस्त कामिनीरूप हो, प्रसन्न हो जाओ । तुम समस्त सम्पत्स्वरूपा, समस्त सम्पदा देनेवाली, शुभरूपा, परमानन्दरूप समस्त सम्पत्तियों की कारणभूता,

प्रसीद परमानन्दे कारणे सर्वसंपदाम् । यशस्विनां पूजिते च प्रसीद यशसां निधे ॥८६॥
आधारे सर्वजगतां रत्नाधारे वसुंधरे । चराचरस्वरूपे च प्रसीद मम मा चिरम् ॥८७॥
योगस्वरूपे योगीशे योगदे योगकारणे । योगाधिष्ठात्रि[1] देवीशे प्रसीद सिद्धयोगिनि ॥८८॥
सर्वसिद्धिस्वरूपे च सर्वसिद्धिप्रदायिनि । कारणे सर्वसिद्धीनां सिद्धेश्वरि प्रसीद मे ॥८९॥
व्याख्यानं सर्वशास्त्राणां मतभेदे महेश्वरि । ज्ञाने[2] यदुक्तं तत्सर्वं क्षमस्व परमेश्वरि ॥९०॥
केचिद्वदन्ति प्रकृतेः प्राधान्यं पुरुषस्य च । केचित्तत्र मतद्वैधे व्याख्याभेदं विदुर्बुधाः ॥९१॥
महाविष्णोर्नाभिदेशे स्थितं तं कमलोद्भवम् । मधुकैटभौ महादैत्यौ लीलया हन्तुमुद्यतौ ॥९२॥
दृष्ट्वा स्तुतिं प्रकुर्वन्तं ब्राह्मणं रक्षितं पुरा । बोधयामास गोविन्दं विनाशहेतवे तयोः ॥९३॥
नारायण त्वया शक्त्या जघान तौ महासुरौ । सर्वेश्वरस्त्वया सार्धमनीशोऽयं त्वया विना ॥९४॥
पुरा त्रिपुरसंग्रामे गगनात्पतिते मयि । त्वया च विष्णुना सार्धं रक्षितोऽहं सुरेश्वरि ॥९५॥
अधुना रक्ष मामीशे प्रदग्धं विरहाग्निना । स्वात्मदर्शनपण्येन[3] क्रीणीहि परमेश्वरि ॥९६॥

---

यशस्वियों द्वारा पूजित और यशों की निधि हो, प्रसन्न हो जाओ ॥८४-८६॥ तुम समस्त जगत् एवं रत्नों की आधारभूता वसुन्धरा हो, चर-अचरस्वरूपा हो, मुझ पर अविलम्ब प्रसन्न होओ ॥८७॥ सिद्धियोगिनि ! तुम योगस्वरूपा, योग की ईश्वरी, योगदायिनी, योग की कारणभूता एवं योग की अधिष्ठात्री देवी और देवियों की अधीश्वरी हो, प्रसन्न हो जाओ ॥८८॥ सिद्धेश्वरि ! तुम समस्त सिद्धिस्वरूपा, समस्त सिद्धि देनेवाली, समस्त सिद्धियों की कारणभूता हो, प्रसन्न होओ ॥८९॥ महेश्वरि ! तुम समस्त शास्त्रों की व्याख्या रूप हो । ज्ञान-स्वरूपे परमेश्वरि ! मैंने जो कुछ अनुचित कहा हो, वह सब तुम क्षमा करो ॥९०॥ कुछ लोग प्रकृति को प्रधान बतलाते हैं और कुछ पुरुष को, कुछ विद्वान् इन दो प्रकार के मतों में व्याख्याभेद को ही कारण मानते हैं ॥९१॥ पूर्वकाल में महाविष्णु के नाभिप्रदेश में स्थित कमल पर बैठे हुए ब्रह्मा को महादैत्य मधु-कैटभ मारने के लिए तैयार हो गये । यह देखकर तुम्हारी स्तुति करते हुए ब्रह्मा की रक्षा हेतु उन दोनों (दैत्यों) को मारने के लिए तुमने गोविन्द को जगा दिया ॥९२-९३॥

तब नारायण ने तुम्हारी शक्ति की सहायता से उन दोनों महासुरों का हनन किया । तुम्हारे सहयोग के कारण वे सर्वेश्वर कहलाते हैं और तुम्हारे बिना असमर्थ रहते हैं ॥९४॥ हे सुरेश्वरि ! जब त्रिपुरासुर से मेरा संग्राम हुआ था, उस समय आकाश से मेरे गिरने पर विष्णु के साथ रहकर तुमने ही मेरी रक्षा की थी । ॥९५॥ ईश्वरि ! इस समय मैं तुम्हारी वियोगाग्नि में दग्ध हो रहा हूँ, मेरी रक्षा करो । परमेश्वरि ! अपने दर्शन का मूल्य देकर मुझे खरीद लो ॥९६॥ यह कहकर शिव चुप हो गये । तब उन्होंने

---

१ क. 'ष्ठातृदे' । २ क. 'ने ज्ञाने यदुक्तं तत्क्ष' । ३ ख. 'पुण्ये' ।

इत्युक्त्वा विरतः शंभुर्ददर्श गगनस्थिताम् । रत्नसाररथस्थां तां देवीं शतभुजां मुदा ॥९७॥
तप्तकाञ्चनवर्णाभां रत्नाभरणभूषिताम् । ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां जगतां मातरं सतीम् ॥९८॥
दृष्ट्वा तां विरहासक्तं पुनस्तुष्टाव सत्वरम् । दुःखं निवेदयामास प्ररुदन्विरहोद्भवम् ॥९९॥
दर्शयामासास्थिमालां स्वाङ्गस्थं भस्मभूषणम् । कृत्वा बहु परीहारं तोषयामास सुन्दरीम् ॥१००॥
नारायणश्च ब्रह्मा च धर्मः शेषः सुरर्षयः । शिवं रक्षेश्वरीत्युक्त्वा तुष्टुवुस्ते सनातनीम् ॥१०१॥
बभूव परितुष्टा सा तेषां स्तोत्रेण तत्क्षणम् । उवाच कृपया शंभुं प्राणेशं प्राणवल्लभा ॥१०२॥

## प्रकृतिरुवाच

स्थिरो भव महादेव मम प्राणाधिके प्रभो । भवानात्मा च योगीशः स्वामी जन्मनि जन्मनि ॥१०३॥
अहं शैलेन्द्रकामिन्यां लब्ध्वा जन्म महेश्वर । तव पत्नी भविष्यामि मुञ्च त्वं विरहज्वरम् ॥१०४॥
इत्युक्त्वा शिवमाश्वास्य चान्तर्धानं चकार सा । सुराजग्मुस्तमाश्वास्यलज्जानम्रात्मकंधरम् ॥१०५॥
हर्षान्तरात्मा गिरीशः कैलासं तु जगाम ह । ननर्त सगणस्तूर्णं संत्यज्य विरहज्वरम् ॥१०६॥
इदं शिवकृतं स्तोत्रं प्रकृत्या यः पठेन्नरः । न भवेत्कामिनीभेदस्तस्य जन्मनि जन्मनि ॥१०७॥

---

आकाश में विराजमान उस देवी प्रकृति को प्रसन्नतापूर्वक देखा, जो रत्नों के रथ पर स्थित, सौ भुजाओं से युक्त, प्रसन्नचित्त, तपाये सुवर्ण की भाँति देदीप्यमान, रत्नों के आभूषणों से भूषित, मन्द मुसकान समेत प्रसन्नमुख, जगत् की माता एवं सती थी । विरहव्याकुल शिव ने उन्हें देखकर शीघ्रता से पुनः स्तुति की और रोदन करते हुए अपनी विरह व्यथा बतायी ॥९७-९९॥ अस्थियों की माला और अपने अंगों में लगे भूषणरूप भस्म को भी उन्हें दिखाया तथा अनेक प्रकार से मनुहार करके उन्होंने सुन्दरी सती को सन्तुष्ट किया ॥१००॥ उस समय नारायण, ब्रह्मा, धर्म, शेष, देवता और ऋषियों ने 'हे ईश्वरि ! शिव की रक्षा करो, ऐसा कहते हुए उस देवी की स्तुति की ॥१०१॥ उन लोगों के स्तोत्र से वह देवी उसी क्षण प्रसन्न हो गयीं और अपने प्राणेश्वर शिव से वह प्राणवल्लभा बोलीं ॥१०२॥

**प्रकृति ने कहा**—महादेव ! आप धैर्य धारण करें । प्रभो ! आप मेरे प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं । योगीश्वर ! आप ही आत्मा तथा जन्म-जन्म में मेरे स्वामी हैं । महेश्वर ! मैं पर्वतराज हिमालय की पत्नी मेना से जन्म लेकर आपकी पत्नी बनूंगी । अतः आप वियोगसंताप को त्याग दें ॥१०३-१०४॥ यह कहकर शिव को आश्वासन देकर वह देवी अन्तर्हित हो गयीं । पश्चात् देवों ने भी लज्जा से कन्धे झुकाये शिव को आश्वासन दिया और अपने घर चले गये ॥१०५॥ गिरीश कैलास पर्वत पर चले गये और शीघ्र ही विरह-ज्वाला को त्यागकर गणों समेत नृत्य करने लगे ॥१०६॥ इस शिवकृत-प्रकृति स्तोत्र का जो पाठ करता है, उसे किसी भी जन्म में पत्नीवियोग

इह लोके सुखं भुक्त्वा स याति शिवमन्दिरम् । धर्मार्थकाममोक्षांश्च लभते नात्र संशयः ॥१०८॥
इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० शंकरशोका-
पनोदनं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४३॥

# अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

**श्रीकृष्ण उवाच**

वसिष्ठस्य वचः श्रुत्वा सगणोऽपि हिमालयः । विस्मितो भार्यया सार्धं जहास पार्वती स्वयम् ॥१॥
अरुन्धती च तां मेनां बोधयामास कातराम् । निराहारां च रुदतीं जहौ शोकं मुदा च सा ॥२॥
अरुन्धतीं भोजयित्वा बुभुजे भोगमुत्तमम् । सर्वं प्रहृष्टमनसा मङ्गलं च चकार ह ॥३॥
शैलः संभृतसंभारो वसिष्ठस्याऽऽज्ञया प्रिये । पत्रं प्रस्थापयामास नानास्थानं त्वरान्वितः ॥४॥
ततः प्रस्थापयामास शिवं मङ्गलपत्रिकाम् । नानाप्रकारद्रव्याणि वाह्यानि च चकार ह ॥५॥

---

नहीं होता है ॥१०७॥ इस लोक में आजीवन सुखोपभोग करके अन्त में शिव-लोक में चला जाता है और धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष को प्राप्त कर लेता है, इसमें संशय नहीं ॥१०८॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्ण-जन्मखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में शङ्कर-शोकनाशवर्णन नामक तैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४३॥

## अध्याय ४४

### पार्वती का दान

**श्रीकृष्ण बोले**—वसिष्ठ की बात सुनकर पत्नी और गण समेत हिमालय को आश्चर्य हुआ, किन्तु स्वयं पार्वती हँस रही थीं ॥१॥ अरुन्धती ने भी कातर एवं निराहार होकर रोदन करती हुई मेना को समझाया। तब उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक शोक का त्याग कर दिया तथा अरुन्धती को उत्तम भोजन कराकर स्वयं भी भोजन किया। अनन्तर वे अत्यन्त प्रसन्नचित्त से मङ्गल कार्यों का सम्पादन करने लगीं ॥२-३॥ प्रिये! तदुपरान्त वसिष्ठ की आज्ञा से हिमवान् ने वैवाहिक सामग्री एकत्रित की और बड़ी शीघ्रता से विभिन्न स्थानों में निमन्त्रण-पत्र भिजवाया ॥४॥ इसके बाद शिव के पास मङ्गल-पत्रिका भिजवायी, अनेक प्रकार के द्रव्य और वाहन एकत्रित

तन्दुलानां च शैलान्वै पृथुकानां च सुन्दरि । तैलानां च घृतानां च दध्नां वापीश्चकार ह ॥६॥
गुडानामासवानां च क्षीराणां च तथैव च । अथो हैयङ्गवीनानां लवणानां परं मुदा[1] ॥७॥
लड्डुकानां शर्कराणां स्वस्तिकानां तथैव च । यवचूर्णादिपिष्टानां घृतपक्वानि तानि च ॥८॥
नानाप्रकारवस्त्राणि वह्निशौचानि यानि च । महारत्नप्रवालानि सुवर्णरजतानि च ॥९॥
द्रव्याण्येतानि शैलेन्द्रः कृत्वा तु विधिपूर्वकम् । मङ्गलं कर्तुमारेभे तत्रैव मङ्गले दिने ॥१०॥
संस्कारं कारयामासुः पार्वतीं पर्वतस्त्रियः । स्नापयित्वा वस्त्रयुगं धारयामासुराशु ताः ॥११॥
कारयित्वा सुवेषां च रत्नभूषणभूषिताम् । दर्पणं धारयामासुर्दूर्वाक्षतसमन्वितम् ॥१२॥
ददुश्चालक्तकं चारु पादाङ्गुलिषु पादयोः । गण्डे पत्रावलीं रम्यां नेत्रे कज्जलमुज्ज्वलम् ॥१३॥
कबरीं कारयामासुर्मालतीमाल्यवेष्टिताम् । पट्टसूत्रपिनद्धां तां वामवक्त्रां मनोहराम् ॥१४॥
एतस्मिन्नन्तरे राधे समाजग्मुः सुरेश्वराः । नीत्वा त्रिनेत्रं तत्रैव रत्नयानस्थमीश्वरम् ॥१५॥
शैलः संभृतसंभारान्संभाषयितुमीश्वरान् । शैलान्प्रस्थापयामास ब्राह्मणानपि पूजितान् ॥१६॥
प्राङ्गणं कारयामास रम्भास्तम्भैः समन्वितम् । पट्टसूत्रसंनिबद्धरसालपल्लवान्वितैः ॥१७॥
फलपल्लवसंयुक्तैः कलशैर्जलसंयुतैः । चन्दनागुरुकस्तूरीसुचारुकुसुमान्वितैः ॥१८॥

---

किये गये ॥५॥ हे सुन्दरि ! चावलों और चिउरों के पहाड़ बना दिये गये । तेल, घी और दही की बावलियाँ बना दी गयीं ॥६॥ गुड़, आसव, दूध, मक्खन, नमक, लड्डू, शक्कर, स्वस्तिक (विशेष प्रकार की मिठाई), घी में पकायी गयी यव के आटे की पीठी, अनेक प्रकार के अग्निविशुद्ध वस्त्र, श्रेष्ठ रत्न, मूँगे, सोने, चाँदी—इन द्रव्यों को पर्वतराज ने विधिपूर्वक एकत्रित करके वहीं शुभ दिन में मांगलिक कर्म आरम्भ किया ॥७-१०॥ पर्वत की स्त्रियों ने पार्वती का संस्कार कराया । पार्वती को स्नान करवाकर शीघ्र दो वस्त्र धारण कराये ॥११॥ सुन्दर वेश बनवाकर रत्नों के आभूषणों से विभूषित किया । फिर दूब और अक्षत के साथ दर्पण धारण कराया ॥१२॥ दोनों पैरों की अँगुलियों में महावर लगवाया । कपोल पर रमणीय पत्रावली तथा नेत्रों में काजल लगवाया ॥१३॥ मालती की माला से आवेष्टित चोटी बनवायी । उस मनोहर सुमुखी को रेशम का धागा बाँध दिया ॥१४॥ इतने में देवेश्वरगण विविध वाहनों पर सवार हो, रत्नमय रथ पर आरूढ़ हुए शंकर को साथ लिये वहीं पहुँच गये ॥१५॥

हिमालय ने बातचीत करने में समर्थ पर्वतों तथा पूजित ब्राह्मणों को उन लोगों के स्वागत के लिए सामग्रियों के साथ भेजा ॥१६॥ आँगन को कदली-स्तम्भों से सुसज्जित कराया । उनमें रेशमी धागे से आम के पल्लव बाँधे गये ॥१७॥ फल, पल्लव एवं जल से पूर्ण कलशों, चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, सुन्दर पुष्प और

---

१ ख. मुने ।

मालतीमाल्यसंयुक्तैः संयुक्तं सुमनोहरम् । देवेश्वरान्पुरो दृष्ट्वा प्रणनाम हिमालयः ॥१९॥
रत्नसिंहासनं दातुं प्रेरयामास किंकरान् । नारायणो हि भगवानुवास पार्षदैः सह ॥२०॥
विनतानन्दनात्तूर्णमवरुह्य चतुर्भुजः । चतुर्भुजैः पार्षदैश्च रत्नभूषणभूषितैः ॥२१॥
रत्नमुष्टिनिबद्धैश्च सेवितः श्वेतचामरैः । ऋषिश्रेष्ठैः सुरश्रेष्ठैः स्तूयमानश्च संसदि ॥२२॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यो भक्तानुग्रहकारकः । उवास च तदभ्याशे ब्रह्मा देवगणैः सह ॥२३॥
ऋषयो मुनयश्चैव समूषुर्मङ्गले स्थले । एतस्मिन्नन्तरे शंभुरवरुह्य रथादहो ॥२४॥
रत्नासने समुत्तिष्ठन्ददर्श पर्वतालयम् । समाजग्मुः शिवं द्रष्टुं शैलेन्द्रनगरस्त्रियः ॥२५॥
वृद्धा बाला युवत्यश्च वस्त्राभरणभूषिताः । काश्चित्कज्जलहस्ताश्च वस्त्रहस्ताश्च काश्चन ॥२६॥
काश्चित्सिन्दूरहस्ताश्च काश्चित्कङ्कतिकाकराः । वेषार्धभूषिताः काश्चित्काश्चिन्नैवार्धभूषिताः ॥२७॥
काश्चिन्निर्भूषिताः काश्चित्सर्वाभरणभूषिताः । सर्वा आगत्य संतस्थुः सस्मिताः पर्वतालये ॥२८॥
ऋषिकन्या देवकन्या नागकन्या मनोहराः । गन्धर्वशैलकन्याश्च राजकन्याः समागताः ॥२९॥
सर्वा अप्सरसो दिव्या रम्भाद्याः समुपस्थिताः । मेना कन्यागणैः सार्धं ददर्श शंकरं वरम् ॥३०॥
चारुचम्पकवर्णाभमेकवक्त्रं त्रिलोचनम् । ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं रत्नाभरणभूषितम् ॥३१॥
चन्दनागुरुकस्तूरीचारुकुङ्कुमभूषितम् । मालतीमाल्यसंयुक्तं सद्रत्नमुकुटोज्ज्वलम् ॥३२॥

---

मालती मालाओं से आंगन को सुशोभित किया गया । देवेश्वरों को सामने देखकर हिमालय ने उन्हें प्रणाम किया और सेवकों को आज्ञा दी कि इन्हें रत्न-सिंहासन प्रस्तुत किये जायँ । भगवान् नारायण अपने पार्षदों समेत आये ॥१८-२०॥ विनतानन्दन गरुड़ की पीठ से तत्काल उतरकर चारभुजाधारी नारायण रत्न-सिंहासन पर अवस्थित हुए । रत्नमय आभूषणों से विभूषित चारभुजावाले पार्षद रत्नमयी मुट्ठी में बँधे हुए श्वेत चामरों से उनकी सेवा कर रहे थे । उस समाज में श्रेष्ठतम ऋषि और बड़े-बड़े देवता उनकी स्तुति कर रहे थे । भगवान् का प्रसन्नमुख मन्द मुस्कान से सुशोभित था और वे भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए कातर जान पड़ते थे । उनके पास ही देवताओं के साथ ब्रह्मा जी भी बैठे ॥२१-२३॥ ऋषि और मुनि भी मंगलमय स्थान पर विराजमान हुए । इसी बीच शिव ने रथ से उतरकर रत्नसिंहासन पर बैठते हुए, पर्वतराज की ओर देखा । तत्पश्चात् शिव को देखने के लिए शैलेन्द्रनगर की स्त्रियाँ आयीं ॥२४-२५॥ उनमें वृद्धा, बालिकाएँ, युवतियाँ सभी वस्त्रों एवं आभूषणों से भूषित थीं । कुछ हाथों में काजल लिये, कुछ वस्त्र लिये, कुछ सिन्दूर लिये, कुछ हाथों में कंघी लिये; कुछ आधे वेश बनाये, कुछ आधे वेश भी न बनाये, कुछ अपने को बिना सजाये समस्त आभूषणों से सुशोभित होकर आयी थीं । वे सभी पर्वतभवन में मुसकराती हुई अवस्थित हुईं ॥२६-२८॥ ऋषियों, देवों, नागों, गन्धर्वों, पर्वतों और राजाओं की भी मनोहर कन्याएँ वहाँ आ पहुँचीं ॥२९॥ रम्भा आदि समस्त दिव्य अप्सराएँ भी उपस्थित हुईं । कन्यासमूहों के साथ मेना ने भी दूलह शिव को देखा, जो चारु चम्पा पुष्प के समान रूपरङ्गवाले, एकमुख, तीन नेत्रवाले, मन्दहास समेत प्रसन्नमुख, रत्नों के आभूषणों से सुभूषित, चन्दन, अगुरु, कस्तूरी एवं चारु कुंकुम

वह्निशौचेनातुलेन चातिसूक्ष्मेण चारुणा। अमूल्यवस्त्रयुग्मेन विचित्रणातिभूषितम् ॥३३॥
रत्नदर्पणहस्तं च कज्जलोज्ज्वललोचनम्। सर्वया प्रभयाऽऽच्छन्नमतीव सुमनोहरम् ॥३४॥
अतीव तरुणं रम्यैर्भूषिताङ्गैश्च भूषितम्। बिभ्रतं रूपमतुलं परं नारायणाज्ञया ॥३५॥
योगस्वरूपं योगेशं योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुम्। स्वेच्छामयं गुणातीतं ब्रह्मज्योतिः सनातनम् ॥३६॥
गुणभेदाद्रूपभेदं धत्तेऽनन्तमरूपकम्। तारणं तं भवस्थानां सृष्टिस्थित्यन्तकारणम् ॥३७॥
सर्वाधारं सर्वबीजं सर्वेशं सर्वजीवनम्। साक्षिरूपं निरीहं च परमानन्दमक्षरम् ॥३८॥
आद्यन्तमध्यरहितं सर्वाद्यं सर्वरूपकम्। दृष्ट्वा जामातरं मेना जहौ शोकं मुदाऽन्विता ॥३९॥
प्रशशंसुर्युवत्यश्च धन्या धन्या सतीति ताः। दुर्गा भाग्यवतीत्येवमूचुः काश्चन कन्यकाः ॥४०॥
कामेन काश्चित्कामिन्यो मौनीभूताश्च स्तम्भिताः। न दृष्टो वर इत्येवमस्माभिर्ज्ञानगोचरे ॥४१॥
काश्चिन्निमेषरहिता मूर्च्छामापुश्च काश्चन। निनिन्दुः स्वपतिं काश्चित्स्वेच्छां चक्रुश्च काश्चन ॥४२॥
काश्चिद्भावेन रुरुदुः पुलकाञ्चितविग्रहाः। जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥४३॥
दृष्ट्वा शंकररूपं च प्रहृष्टाः सर्वदेवताः। नानाप्रकारवाद्यानि चारूणि मधुराणि च ॥४४॥
वादका वादयामासुर्नानाशिल्पेन तत्र वै। एतस्मिन्नन्तरे दुर्गा शैलान्तःपुरचारिका ॥४५॥

---

से अलंकृत, मालती की माला, उत्तम रत्नों के समुज्ज्वल मुकुट से प्रकाशित और अग्निविशुद्ध, अनुपम, अतिसूक्ष्म, सुन्दर, विचित्र एवं अमूल्य युगल वस्त्रों से सुशोभित थे ॥३०-३३॥ उन्होंने हाथ में रत्न दर्पण ले रखा था। काजल से नेत्रों की शोभा बढ़ गयी थी। पूर्ण प्रभा से आच्छादित होने के कारण वे अत्यन्त मनोहर दिखायी देते थे ॥३४॥ उनकी अवस्था अत्यन्त तरुण थी। वे भूषणभूषित रमणीय अंगों से बड़ी शोभा पा रहे थे। उस समय उन्होंने नारायण की आज्ञा से परम सुन्दर अनुपम रूप धारण कर रखा था। शंकर योगस्वरूप, योगेश्वर, योगीन्द्रों के गुरु के भी गुरु, स्वतन्त्र, गुणातीत तथा सनातन ब्रह्मज्योति हैं ॥३५-३६॥ वे गुणों के भेद से अनन्त भिन्न-भिन्न रूप धारण करते हैं तथापि रूपरहित हैं। संसार-सागर में डूबे हुए प्राणियों का उद्धार करनेवाले हैं तथा जगत् की सृष्टि, पालन एवं संहार के कारण हैं ॥३७॥ सबके आधार, सबके बीज, सबके ईश, सबके जीवन, साक्षिरूप, निरीह, परमानन्द अविनाशी, आदि, अन्त और मध्य से रहित सबके आदिकारण तथा सर्वरूप हैं। ऐसे जामाता को देखकर हर्षित मेना ने शोक को त्याग दिया ॥३८-३९॥

वे युवतियाँ 'पार्वती धन्य हैं, धन्य हैं'—कहकर प्रशंसा करने लगीं। कुछ कन्याओं ने 'दुर्गा भाग्यवती हैं' ऐसा कहा ॥४०॥ कुछ कामिनियाँ कामभाव से युक्त हो मौन एवं स्तब्ध रह गयीं और कितनी ही बोल उठीं—'हमने अपने जीवन में ऐसा वर नहीं देखा था' ॥४१॥ कुछ अपलक (एकटक) नेत्रों से देखने लगीं और कुछ मूर्च्छित हो गयीं। कुछ अपने पतियों की निन्दा करने लगीं कुछ उनके लिए इच्छुक हो रही थीं ॥४२॥ कुछ भावावेश में रोमाञ्चित होकर रोदन कर रही थीं। गन्धर्वराज गायन कर रहे थे और अप्सराएँ नाच रही थीं ॥४३॥ शिव के रूप-सौन्दर्य को देखकर सभी देवगण बहुत प्रसन्न थे। बाजे बजानेवाले ने भाँति-भाँति की कलाएँ दिखाते हुए वहाँ सुन्दर और मधुर वाद्य बजा रहे थे। इसी समय हिमालय के अन्तःपुर की दासियाँ दुर्गा

बहिश्चकार सद्रत्नासनस्थां[1] वस्त्रवेष्टिताम् । कस्तूरीबिन्दुभिः सान्द्रसिन्दूरबिन्दुभूषिताम् ।।४६।।
चारुचन्दनचन्द्राभां नम्रभालस्थलोज्ज्वलाम् । रत्नेन्द्रसारहारेण वक्षःस्थलविभूषिताम् ।।४७।।
त्रिनेत्रदत्तनेत्रां तामन्यवारितलोचनाम् । अतीषद्धास्ययुक्तास्यां सकटाक्षां मनोहराम् ।।४८।।
रत्नकेयूरवलयरत्नकङ्कणमण्डिताम् । रत्नपाशकसंसक्तां क्वणन्मञ्जीररञ्जिताम् ।।४९।।
अमूल्यातुल्यचित्राढ्यवस्त्रयुग्मसुशोभिताम् । सद्रत्नकुण्डलाभ्यां च चारुगण्डस्थलोज्ज्वलाम् ।।५०।।
मणिसारप्रभामुष्टदन्तराजिविराजिताम् । रत्नदर्पणहस्तां च क्रीडापद्मं विघूर्णतीम् ।।५१।।
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमेनाङ्गचर्चिताम् । मुदिता ददृशुः सर्वे जगदाद्यां जगत्प्रसूम् ।।५२।।
त्रिनेत्रो नेत्रकोणेन तां ददर्श मुदाऽन्वितः । सर्वां सत्याकृतिं दृष्ट्वा विजहौ विरहज्वरम् ।।५३।।
शिवः सर्वं विसस्मार दुर्गासंन्यस्तमानसः । पुलकाञ्चितसर्वाङ्गो हर्षाश्रुयुक्तलोचनः ।।५४।।
एतस्मिन्नन्तरे शैलः प्रहृष्टः सपुरोहितः । तं वरं वरयामास वस्त्रचन्दनभूषणैः ।।५५।।

---

को बाहर ले आयीं। वे वस्त्रवेष्टित होकर रत्नसिंहासन पर बैठी थीं। उनके मुखमण्डल का कस्तूरी तथा स्निग्ध सिन्दूर के बिन्दुओं से शृंगार किया गया था। चारु चन्दन से चर्चित चन्द्र सदृश आभावाले आनम्र भालदेश से उनकी बड़ी शोभा हो रही थी। श्रेष्ठ रत्नों के सार से निर्मित हार उनके वक्षःस्थल की शोभा बढ़ा रहा था। वे त्रिलोचन शिव की ओर कनखियों से देख रही थीं। शिव के सिवा और कहीं उनकी दृष्टि नहीं जा रही थीं। उनके मुख पर अत्यन्त मन्द मुसकान की आभा बिखरी हुई थी। वे कटाक्ष करती हुई मनोहर जान पड़ती थीं। वे रत्नों के बने केयूर, कड़े तथा कंगन से विभूषित थीं। वे रत्नों की बनी हुई करधनी एवं झनकारते हुए मंजीर पहने हुई थीं ।।४४-४९।। वे बहुमूल्य, तुलनारहित एवं चित्र-युक्त दो वस्त्रों से सुशोभित थीं। उनके सुन्दर कपोल उत्तम रत्ननिर्मित कुण्डलों से जगमगा रहे थे ।।५०।। वे मणि के सारभाग की प्रभा को छीन लेनेवाली दन्तपंक्ति से विराजित थीं। वे एक हाथ में रत्नमय दर्पण लिये हुई थीं और दूसरे में क्रीड़ाकमल लेकर घुमा रही थीं ।।५१।। उनके अंग चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुम से चर्चित थे। ऐसी अलौकिक रूपवाली जगत् की आदिकारणभूता जगदम्बा को सब लोगों ने प्रसन्नता के साथ देखा ।।५२।। हर्षान्वित शंकर ने भी नेत्र के कोने से उन्हें देखा। शिवा की सम्पूर्ण आकृति सती से सर्वथा मिलती-जुलती थी। उन्हें देखकर शिव ने विरहज्वर का परित्याग कर दिया ।।५३।।

दुर्गा में उनका मन इस भाँति आसक्त हो गया कि वे सब कुछ भूल गये, उनके शरीर में रोमाञ्च हो आया और आँखों में हर्ष के आँसू छलक आये ।।५४।। इसी बीच पुरोहित समेत अत्यन्त हर्षित हिमालय ने वस्त्र, चन्दन एवं आभूषणों से वर का वरण किया ।।५५।। भक्तिपूर्वक पाद्य आदि उपचार अर्पित किये तथा दिव्य

---

१ ख. रत्नवेदिका°।

भक्त्या पाद्यादिभिर्माल्यैर्दिव्यगन्धमनोहरैः। ततः शीघ्रं वेदमन्त्रैः संप्रदानं चकार ताम् ॥५६॥
यौतुकानि ददौ तस्मै रत्नानि विविधानि च। चारुरत्नविकाराणि पात्राणि सुन्दराणि च ॥५७॥
गवां लक्षं गजेन्द्राणां सहस्राणि च राधिके। रत्नकम्बलयुक्तानि साङ्कुशानि मुदाऽन्वितः ॥५८॥
त्रिशल्लक्षं हयानां च सज्जितानामकातरः। दासीनामनुरक्तानां लक्षं सद्रत्नभूषितम् ॥५९॥
शतं द्विजबटूनां च पार्वतीभ्रातृतुल्यकम्। रथानां च शतं रम्यं रत्नेन्द्रसारनिर्मितम् ॥६०॥
पार्वतीं वस्तुसहितां स्वस्तीत्युच्चार्य शंकरः। जग्राहाऽऽनन्दमनसा यत्नाच्छैलसमर्पिताम् ॥६१॥
हिमालयः सुतां दत्त्वा परिहारं चकार तम्। माध्यंदिनोक्तस्तोत्रेण तुष्टाव संपुटाञ्जलिः ॥६२॥

## हिमालय उवाच

प्रसीद दक्षयज्ञघ्न नरकार्णवतारक। सर्वात्मरूप सर्वेश परमानन्दविग्रह ॥६३॥
गुणार्णव गुणातीत गुणयुक्त[1] गुणेश्वर। गुणबीज महाभाग प्रसीद गुणिनां वर ॥६४॥
योगाधार योगरूप योगज्ञ योगकारण। योगीश योगिनां बीज प्रसीद योगिनां गुरो ॥६५॥

---

गन्धवाली मालाओं से वर को अलंकृत किया। तदनन्तर शीघ्र ही वेदमंत्रों के उच्चारणपूर्वक उनके हाथ में अपनी कन्या का दान कर दिया ॥५६॥ और राधिके ! हर्ष से भरे हुए हिमालय ने उदारतापूर्वक दहेज में उन्हें अनेक प्रकार के रत्न, सुन्दर रत्नों के बने हुए मनोहर पात्र, एक लाख गौ, रत्नजटित तथा अंकुश से युक्त एक सहस्र गजराज, सजे-सजाये तीन लाख घोड़े, श्रेष्ठ रत्नों से अलंकृत लाखों अनुरक्त दासियाँ, पार्वती के लिए छोटे भाई के समान प्रिय एक सौ ब्राह्मण बटु और श्रेष्ठ रत्नों के सारतत्त्व से निर्मित सौ रमणीय रथ दिये। पूर्वोक्त वस्तुओं के साथ शैलराज द्वारा यत्नपूर्वक दी हुई पार्वती को शंकर ने प्रसन्न मन से 'स्वस्ति' कहकर ग्रहण किया।

हिमालय ने कन्यादान करके शंकर की परिहार नामक स्तुति की। उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर माध्यन्दिन शाखा में वर्णित स्तोत्र को पढ़ते हुए उनकी स्तुति की ॥५७-६२॥

**हिमालय बोले**—हे दक्षयज्ञ के नाशक ! नरक के समुद्र से तारनेवाले ! आप सबके आत्मस्वरूप, सर्वाधीश्वर और परमानन्दमय शरीरवाले हैं। मुझ पर प्रसन्न हों ॥६३॥ आप गुणों के सागर, गुणों से परे, गुणयुक्त, गुणों के स्वामी, गुणों के कारण और गुणियों में श्रेष्ठ हैं। महाभाग ! मुझ पर प्रसन्न हों ॥६४॥ योग के आधार, योगरूप, योग के ज्ञाता, योग के कारण, योगियों के ईश, योगियों के आदिकारण एवं योगियों के गुरु हैं। आप मुझ पर प्रसन्न हों ॥६५॥ आप प्रलयरूप, प्रलय के एकमात्र आदि तथा उसके कारण हैं। फिर प्रलय

---

१ ख. गणे'।

प्रलय प्रलयाद्येक भवप्रलयकारण। प्रलयान्ते सृष्टिबीज प्रसीद परिपालक ॥६६॥
संहारकाले घोरे च सृष्टिसंहारकारण। दुर्निवार्य दुराराध्य चाऽऽशुतोष प्रसीद मे ॥६७॥
कालस्वरूप कालेश काले च फलदायक। कालबीजैक कालघ्न प्रसीद कालपालक ॥६८॥
शिवस्वरूप शिवद शिवबीज शिवाश्रय। शिवभूत शिवप्राण प्रसीद परमाश्रय ॥६९॥
इत्येवं स्तवनं कृत्वा विरराम हिमालयः। प्रशशंसुः सुराः सर्वे मुनयश्च गिरीश्वरम् ॥७०॥
हिमालयकृतं स्तोत्रं संयतो यः पठेन्नरः। प्रददाति शिवस्तस्मै वाञ्छितं राधिके ध्रुवम् ॥७१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० पार्वतीसंप्रदाने चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४४॥

# अथ पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

**श्रीकृष्ण उवाच**

अथ वेदविधानेन संस्थाप्य वह्निमीश्वरः। यज्ञं चकार तत्रैव वामे संस्थाप्य पार्वतीम् ॥१॥
निवृत्ते विधिवद्यज्ञे विप्रेभ्यो दक्षिणां ददौ। शिवः शतसुवर्णानि वृन्दावनविनोदिनि ॥२॥

---

के अन्त में सृष्टि के बीजरूप हैं और उस सृष्टि का पूर्णतः परिपालन करनेवाले हैं। मुझ पर प्रसन्न हों ॥६६॥ आप घोर संहार समय में सृष्टि संहार के कारण, दुर्निवार, दुराराध्य एवं आशुतोष (शीघ्र प्रसन्न होनेवाले) हैं। मुझ पर प्रसन्न हों ॥६७॥ आप कालस्वरूप, कालेश, समय पर फलदायक, काल के एकमात्र कारण, कालनाशक एवं कालपोषक हैं। मुझ पर प्रसन्न हों ॥६८॥ आप कल्याणरूप, कल्याणदायक, कल्याण के बीज, कल्याण के आश्रय, कल्याणमय कल्याणस्वरूप प्राण और परम आश्रय हैं; प्रसन्न हों ॥६९॥ इस भाँति स्तुति करके हिमालय चुप हो गये। समस्त देवगण और मुनियों ने भी गिरीश शिव की प्रशंसा की ॥७०॥ राधिके! जो मनुष्य संयत भाव से हिमालय कृत स्तोत्र का पाठ करता है, उसके लिए शिव निश्चित ही मनोवांछित वस्तु प्रदान करते हैं ॥७१॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में पार्वती-प्रदान नामक चौवालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४४॥

# अध्याय ४५

## शंकर का विवाह

**श्रीकृष्ण बोले**—अनन्तर वैदिक विधि से अग्नि-संस्थापनपूर्वक पार्वती को वामभाग में बैठाकर शिव ने यज्ञ (हवन कार्य) सम्पन्न किया। वृन्दावन विनोदिनि! यज्ञ-समाप्ति के उपरान्त शिव ब्राह्मण को सौ सुवर्ण

अथ प्रदीपमानीय शैलेन्द्रनगरस्त्रियः। निर्वर्त्य मङ्गलं कर्म गृहं संप्राप्य दम्पती ॥३॥
कृत्वा जयध्वनिं प्रीत्या शुभनिर्मञ्छनादिकम्। सस्मिताः सकटाक्षाश्च पुलकाञ्चितविग्रहाः ॥४॥
वासगेहं संप्रविश्य ददृशुः कामिनीगणाः। शंकरं रूपवेषाढ्यं रत्नभूषणभूषितम् ॥५॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमाञ्चितविग्रहम्। ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं सकटाक्षं मनोहरम् ॥६॥
अपूर्वसूक्ष्मवेषाढ्यं सिन्दूरबिन्दुभूषितम्। चारुचम्पकवर्णाभं सर्वावयवसुन्दरम् ॥७॥
नवीनयौवनस्थं च मुनीन्द्रचित्तमोहनम्। सरस्वतीं च लक्ष्मीं च सावित्रीं जाह्नवीं रतिम् ॥८॥
अदितिं च शचीं चैव लोपामुद्रामरुन्धतीम्। अहल्यां तुलसीं स्वाहां रोहिणीं च वसुंधराम् ॥९॥
शतरूपां च संज्ञां च सतीस्त्रीणां च षोडश। देवकन्या नागकन्या मुनिकन्या मनोहराः ॥१०॥
या याः स्थितास्तत्र तासां संख्यां कर्तुं च कः क्षमः। ताभी रत्नासने दत्ते तत्रोवास शिवो मुदा
तमुचूः क्रमशो देव्यो मधुरोक्ति सुधामिव ॥११॥

## सरस्वत्युवाच

प्राप्ता सती महादेवाधुना प्राणाधिका मुदा। दृष्ट्वा प्रियास्यं चन्द्राभं संतापं त्यज कामुक ॥१२॥
कालं गमय कालेश सदा संश्लेषपूर्वकम्। विश्लेषस्ते न भविता सर्वकालं ममाऽऽशिषा ॥१३॥

---

(सोने के सिक्के) दक्षिणा में समर्पित किये ॥१-२॥ तत्पश्चात् शैलेन्द्रनगर की स्त्रियों ने मांगलिक कृत्य का सम्पादन किया। फिर वे उन दम्पति (शिव-पार्वती) को घर ले गयीं ॥३॥ उन लोगों ने जय-जयकार की ध्वनि एवं शुभ निर्मञ्छन आदि करके मुसकराहट के साथ कटाक्षपूर्वक शिव की ओर देखा। उस समय वे पुलकायमान हो गयी थीं। वासगृह में प्रवेश करके कामिनियाँ शिव के रत्नाभूषणभूषित रूप-वेश की सुन्दरता देखने लगीं, जो चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुम शरीर में लगाये, मन्दहास समेत प्रसन्नमुख और कटाक्ष सहित मनोहर थे ॥४-६॥ उनकी वेश-भूषा अपूर्व एवं सूक्ष्म थी। वे सिन्दूर-बिन्दुओं से विभूषित थे। उनकी गौर कान्ति मनोहर चम्पा की आभा को तिरस्कृत कर रही थी। वे सर्वाङ्ग-सुन्दर नवीन यौवन से सम्पन्न एवं मुनीन्द्रों के भी चित्त को मोहित करनेवाले थे। वहाँ सरस्वती, लक्ष्मी, सावित्री, गङ्गा, रति, अदिति, इन्द्राणी, लोपामुद्रा, अरुन्धती, अहल्या, तुलसी, स्वाहा, रोहिणी, वसुंधरा शतरूपा और संज्ञा—ये सोलह पतिव्रताएँ उपस्थित थीं। इनके सिवा मनोहर देवकन्याएँ, नागकन्याएँ और मुनिकन्याएँ भी आयी थीं। उस समय जो महिलाएँ वहाँ विद्यमान थीं उन सबकी संख्या बताने में कौन समर्थ है ? उनके दिये हुए रत्नसिंहासन पर शिव बड़ी प्रसन्नता से बैठ गये। उस समय सभी देवियों ने क्रमशः अमृत के समान मधुर वचन कहे ॥७-११॥

**सरस्वती बोलीं**—हे महादेव ! इस समय आपकी प्राणप्रिया सती आपको हर्ष से मिल गयी हैं, अतः हे कामुक ! चन्द्रमा के समान कान्तिवाले प्रिया के मुख को देखकर सन्ताप दूर कर दें ॥१२॥ हे काल के स्वामी ! सदा संयोगपूर्वक समय व्यतीत कीजिये और मेरे आशीर्वाद से आपको किसी काल में भी वियोग नहीं होगा ॥१३॥

लक्ष्मीरुवाच

लज्जां विहाय देवेश सतीं कृत्वा स्ववक्षसि । तिष्ठ संप्रति का लज्जा प्राणा यान्ति यया विना ॥१४॥

सावित्र्युवाच

भोजयित्वा सतीं शंभो शीघ्रं भोजय मा खिदः । तदाचम्य सकर्पूरं ताम्बूलं देहि भक्तितः ॥१५॥

जाह्नव्युवाच

स्वर्णकङ्कतिकां धृत्वा केशान्मार्जय योषितः । कामिन्याः स्वामिसौभाग्यं सुखं नातः परं भवेत् ॥१६॥

रतिरुवाच

गृहीत्वा पार्वतीं देव सुभगामतिदुर्लभाम् । कथं मम प्राणनाथो निःस्वार्थं भस्मसात्कृतः ॥१७॥
जीवयित्वा विभो कामं कामव्यापारमात्मनि । कुरु दूरं च संतापं मम विश्लेषहेतुकम् ॥१८॥
दम्पतीविरहक्लेशं सर्वं ज्ञात्वा दयानिधे । तथाऽपि मम कान्तश्च कोपेन भस्मसात्कृतः ॥१९॥
इत्युक्त्वा कामभस्माथ ददौ सा ग्रन्थिबन्धितम् । रुरोद पुरतः शंभोर्नाथ नाथेत्युदीर्य च ॥२०॥
हरिस्तद्रोदनं श्रुत्वा करुणामयसागरः । ब्रह्मा धर्मादिदेवाश्च ययुर्वासगृहं शिवम् ॥२१॥

---

**लक्ष्मी बोलीं**—हे देवेश ! अब लज्जा छोड़कर सती को अपने वक्ष से लगाकर रहिये । जिसके बिना प्राण जाते हों, उसके प्राप्त होने पर लज्जा किस बात की ? ॥१४॥

**सावित्री बोलीं**—हे शम्भो ! सती को भोजन कराकर शीघ्र भोजन कीजिये, खेद मत करो । इसलिए आचमन करके कपूर समेत ताम्बूल उन्हें भक्तिपूर्वक प्रदान करें ॥१५॥

**जाह्नवी बोलीं**—सुवर्ण की कंघी से सती के केशों को सँवारिये, सती को स्वामि-सौभाग्यसुख से बढ़कर कोई दूसरा सुख नहीं है ॥१६॥

**रति बोलीं**—हे देव ! अतिदुर्लभ एवं सुन्दरी पार्वती को पाकर मेरे प्राणनाथ (काम) को बिना स्वार्थ के क्यों जला दिया ? विभो ! अपने काम व्यापार के हेतु कामदेव को जीवित करके मेरे वियोग सन्ताप को दूर कर दें ॥१७-१८॥ हे दयानिधे ! दम्पती का विरहदुःख जानते हुए भी आपने क्रोधवश मेरे कान्त को भस्म कर दिया ॥१९॥ इतना कहकर वह काम के भस्म (राख) को, जो पोटली में बँधा हुआ था, उन्हें दे दिया और वहीं शिव के सामने 'हे नाथ !' कहकर रोदन करने लगी ॥२०॥ उसका रोदन सुनकर करुणासागर विष्णु, ब्रह्मा एवं धर्म आदि देवगण वहाँ वासगृह में शिव के समीप पहुँच गये ॥२१॥ शिव ने नारायण, धर्म, ब्रह्मा

दृष्ट्वा नारायणं धर्मं ब्रह्माणं च सुरानपि । जवेन पीठादुत्थाय स्वाज्ञां कुर्वित्युवाच ह ॥२२॥
शंकरस्य वचः श्रुत्वा तमुवाच हरिः स्वयम् । कामं जीवय हे रुद्रेत्युक्त्वा शीघ्रं जगाम सः ॥२३॥
ऊचुर्देव्यो बहुतरं वाक्यं विनयपूर्वकम् । सुधादृष्ट्या शूलभृतो भस्मतो निर्गतः स्मरः ॥२४॥
दृष्ट्वा कामं रतिस्तं च प्रणनाम महेश्वरम् । तद्रूपं च तदाकारं सस्मितं सधनुःशरम् ॥२५॥
प्रणम्य शंकरं कामः स्तुतिं कृत्वा यथागमम् । बहिर्गत्वा हरिं देवान्प्रणम्य समुवास ह ॥२६॥
कामं संभाष्य देवाश्च युयुजुश्च तमाशिषम् । काले रक्षा विनाशश्च निषेध (कः) केन वार्यते ॥२७॥
अथ शैलः सुरान्सर्वान्नारायणपुरोगमान् । भोजयामास भक्त्या च शाययामास यत्नतः ॥२८॥
अथ शंभुर्वासगृहे वामे संस्थाप्य पार्वतीम् । मिष्टान्नं भोजयामास तया सह मुदाऽन्वितः ॥२९॥
भुक्तवन्तं शिवं तत्र देवमाताऽदितिः स्वयम् । उवाच सस्मितं राधे संप्रीत्या सरसं वचः ॥३०॥

## अदितिरुवाच

भोजनान्ते शचि शंभोः शौचार्थं जलमर्पय । देहि शीघ्रं मम प्रीत्या दम्पत्योः प्रीतिपूर्वकम् ॥३१॥

---

और अन्य देवगणों को देखकर आसन से वेगपूर्वक उठकर 'आज्ञा कीजिये' ऐसा कहा ॥२२॥ शंकर की बात सुनकर स्वयं हरि ने उनसे कहा—"हे रुद्र! काम को जीवित कर दो।' इतना कहकर वे वहाँ से चले गये ॥२३॥ वहाँ की देवियों ने भी विनय-विनम्र होकर शिव से बहुत कहा। तब अमृतमयी दृष्टि से शिव के ताकने पर कामदेव उस भस्म से निकला ॥२४॥ काम को देखकर रति ने उसको तथा महेश्वर को प्रणाम किया। उस समय कामदेव का पूर्व की भाँति ही रूप, आकार एवं मन्दहास था और वैसे ही धनुष-बाण भी थे ॥२५॥ काम ने शास्त्रानुसार स्तुति करके शंकर को प्रणाम किया। फिर बाहर आकर नारायण एवं देवों को भी प्रणाम करके बैठ गया ॥२६॥ देवों ने उससे संभाषण करके उसे आशीर्वाद दिया। समय पर होनेवाली रक्षा एवं विनाश को कौन रोक सकता है ॥२७॥ अनन्तर हिमालय ने नारायण आदि देवों को भक्तिपूर्वक भोजन कराकर प्रयत्न से शयन कराया ॥२८॥ इधर वास-गृह (रङ्गमहल) में शिव ने पार्वती को अपने वाम भाग में बैठाकर उनके साथ सहर्ष मिष्टान्न का भोजन किया ॥२९॥ राधे! उस समय स्वयं देवमाता अदिति भोजन कर चुके हुए शिव से मुसकराहट के साथ बड़े प्रेम से सरस बातें करने लगीं ॥३०॥

**अदिति बोलीं**—हे इन्द्राणी! भोजन के अन्त में हाथ-मुँह धोने के लिए शिव को जल दो। मेरी प्रीति के कारण दम्पती (युगल जोड़ी) को प्रीतिपूर्वक शीघ्र (जल) दो ॥३१॥

---

१ क. काम र°।

**शच्युवाच**

कृत्वा विलापं यद्धेतोः शवं कृत्वा स्ववक्षसि । यो बभ्राम भुवं मोहात्कालेन प्राप तां सतीम् ॥३२॥

**अरुन्धत्युवाच**

मया दत्ता सती तुभ्यं मेना दातुमनीप्सिता । विविधं बोधयित्वेमां रतिं च कर्तुमर्हसि ॥३३॥

**अहल्योवाच**

वृद्धावस्थां परित्यज्य ह्यतीव तरुणोऽधुना । तेन मेना तु मेने त्वां सुतामर्पितुमीश्वर ॥३४॥

**तुलस्युवाच**

सती त्वया परित्यक्ता कामो दग्धः पुरा कृतः । कथं तदा वसिष्ठश्च प्रभो प्रस्थापितोऽधुना ॥३५॥

**स्वाहोवाच**

स्थिरो भव महादेव स्त्रीणां वचसि सांप्रतम् । विवाहे व्यवहारोऽस्ति पुरंध्रीणां[1] प्रगल्भता ॥३६॥

**रोहिण्युवाच**

कामं पूरय पार्वत्याः कामशास्त्रविशारद । कुरु पारं स्वयं कामी कामिनीकामसागरम्[2] ॥३७॥

---

**शची बोलीं**—जिसके कारण शव को अपनी छाती पर रखकर विलाप किया था और मोहवश भूमण्डल का चक्कर लगाया था, उस सती को समय से आप पा गये ॥३२॥

**अरुन्धती बोलीं**—मेना देने को इच्छुक नहीं थी । मैंने विविध भाँति से उसे समझाकर आपको सती दिलायी है । आपके लिए रति करना उचित है ॥३३॥

**अहल्या बोलीं**—हे ईश्वर ! वृद्धावस्था को त्यागकर आप इस समय अत्यन्त तरुण रूप हो गये हैं, इसीलिए मेना ने आपको अपनी पुत्री देना पसन्द किया ॥३४॥

**तुलसी बोलीं**—प्रभो ! आपने पहले सती का त्याग किया और काम को दग्ध कर दिया, फिर अब वसिष्ठ को क्यों भेजा ? ॥३५॥

**स्वाहा बोलीं**—महादेव ! इस समय स्त्रियाँ जो कुछ कह रही हैं, उसे स्थिर होकर सुनिये । विवाह के अवसर पर महिलाओं की प्रगल्भता (धृष्टतापूर्ण बात करने) का व्यवहार है ॥३६॥

**रोहिणी बोलीं**—हे कामशास्त्र में पारंगत ! पार्वती की कामना पूरी कीजिये—स्वयं कामी बनकर कामिनी रूपी कामसमुद्र को पार कीजिये ॥३७॥

---

१ ख. पुरस्त्रीणां । २ ख. 'मिनां का' ।

### वसुंधरोवाच

भोगद्रव्यं विना भोगी न हि तुष्टः क्षुधातुरः । येन तुष्टिर्भवेच्छंभो तत्कर्तुमुचितं स्त्रियाः ॥३८॥

### संज्ञोवाच

जानासि भावं सर्वज्ञ कामार्तानां च योषिताम् । न च स्वं स्वामिनं शंभो सती जानाति संगतम् ॥३९॥

### शतरूपोवाच

तूर्णं प्रस्थापय प्रीत्या पार्वत्या सह शंकरम् । रत्नप्रदीपं ताम्बूलं तल्पं निर्माय निर्जने ॥४०॥

### श्रीकृष्ण उवाच

स्त्रीणां तद्वचनं श्रुत्वा ता उवाच शिवः स्वयम् । निर्विकारी च भगवान्योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः ॥४१॥

### शंकर उवाच

देव्यो मा वदतोक्तिं च ह्येवंभूतां ममान्तिके । जगतां मातरः साध्व्यः पुत्रे चपलता कथम् ॥४२॥
शंकरस्य वचः श्रुत्वा लज्जिताः सुरयोषितः । बभूवुः संभ्रमात्तूर्ष्णीं चित्रपुत्तलिका यथा ॥४३॥
भुक्त्वा मिष्टानि भगवानाचम्य च मुदाऽन्वितः । सकर्पूरं च ताम्बूलं बुभुजे भार्यया सह ॥४४॥
रत्नसिंहासने शंभुर्मेनादत्ते मनोहरे । संनिधाय मुदा युक्तो ददर्श वासमन्दिरम् ॥४५॥

---

**वसुन्धरा बोलीं**—हे शम्भो ! भूख से पीड़ित भोगी प्राणी, विना भोगपदार्थ (की प्राप्ति) के सन्तुष्ट नहीं हो सकता है । स्त्री को जिससे सन्तोष हो, वही करना उचित है ॥३८॥

**संज्ञा बोलीं**—हे सर्वज्ञ शम्भो ! कामपीड़ित स्त्रियों का भाव तो आप जानते ही हैं । सती अपने स्वामी से संगम करना जानती है ॥३९॥

**शतरूपा बोलीं**—एकान्त भवन में रत्नप्रदीप, तांम्बूल और पलंग स्थापित करके (वहां) पार्वती के साथ शिव को प्रेमपूर्वक शीघ्र पहुँचाओ ॥४०॥

**श्रीकृष्ण बोले**—उन स्त्रियों की ऐसी (हास्यपूर्ण) बातें सुनकर निर्विकार एवं योगीन्द्रों के गुरु के गुरु शिव ने स्वयं उनसे कहा ॥४१॥

**शंकर बोले**—हे देवियो ! आपको मुझसे ऐसी बातें नहीं करनी चाहिए, क्योंकि आप लोग साध्वी और जगत् की माताएँ हैं, तो फिर पुत्र के प्रति चपलता क्यों ? ॥४२॥ शिव की बात सुनकर वे देवस्त्रियाँ लज्जित हो गयीं और सम्भ्रमपूर्वक चित्रलिखी-सी चुप रहीं ॥४३॥ अनन्तर भगवान् शिव ने हर्षपूर्वक मिठाई खाकर आचमन किया (हाथ-मुंह धोये) और पत्नी के साथ कपूर सहित ताम्बूल खाया ॥४४॥ उपरान्त मेना के दिये हुए

रत्नप्रदीपशतकैर्ज्वलद्भिर्ज्वलितं श्रिया। रत्नपात्रघटाकीर्णं मुक्तामाणिक्यभूषितम् ।।४६।।
रत्नदर्पणशोभाढ्यं मण्डितं श्वेतचामरैः। चन्दनागुरुसंयुक्तं पुष्पशय्यासमन्वितम् ।।४७।।
नानाचित्रविचित्राढ्यं निर्मितं विश्वकर्मणा। रत्नसारेण खचितं रचितं हीरकैर्वरैः ।।४८।।
कुत्रचित्सुरनिर्माणवैकुण्ठसुमनोहरम्। वृन्दावनं कुञ्जवनं कुत्रचिद्रासमण्डलम् ।।४९।।
कैलासं च कुत्रचन कुत्रचिदिन्द्रमन्दिरम्। दृष्ट्वाऽऽश्चर्यं महादेवः परितुष्टो बभूव ह ।।५०।।
अथ प्रभातकालश्च बभूव प्राणवल्लभे। नानाप्रकारवाद्यानि वादयांश्चक्रिरे जनाः ।।५१।।
सर्वे सुराः समुत्तस्थुः सज्जीभूताः ससंभ्रमाः। स्ववाहनान्समारुह्य कैलासं गन्तुमुद्यताः ।।५२।।
वासगेहं समागत्य धर्मो नारायणाज्ञया। उवाच शंकरं योगी योगीशं समयोचितम् ।।५३।।

## धर्म उवाच

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते भवतु प्रमथाधिप। पार्वत्या सह माहेन्द्रे यात्रां कुरु हरिं स्मरन् ।।५४।।
इत्थं धर्मवचः श्रुत्वा पार्वत्या सह शंकरः। यात्रां चकार माहेन्द्रे वृन्दावनविनोदिनि ।।५५।।
यात्रां कुर्वति देवेश पार्वत्या सह शंकरे। उच्चैरुदित्वा सा मेना तमुवाच कृपानिधिम् ।।५६।।

---

मनोहर रत्नसिंहासन पर आसीन होकर शिव हर्ष से निवास-गृह की ओर देखने लगे, जो रत्नों के सैकड़ों प्रज्वलित दीपों से प्रकाशमय, रत्नों के पात्र एवं कलशों से परिपूर्ण, मुक्ता-माणिक्य से सुभूषित, रत्नों के दर्पणों की शोभा से सम्पन्न, श्वेत चामरों से अलंकृत, चन्दन और अगुरु से युक्त एवं पुष्पों की शय्या से समन्वित था ।।४५-४७।। उस गृह का निर्माण विश्वकर्मा ने किया था। उसमें नाना प्रकार के अपूर्व चित्र बने हुए थे। वह उत्तम हीरों से बनाया गया था। उसमें रत्नों के सारभाग जड़े हुए थे ।।४८।। उसमें कहीं देव-निर्माण, अत्यन्त मनोहर वैकुण्ठ, वृन्दावन, कुंजवन और कहीं रासमण्डल बना हुआ था ।।४९।। कहीं कैलास और कहीं इन्द्रभवन का आश्चर्यजनक दृश्य देखकर महादेव अत्यन्त सन्तुष्ट हुए ।।५०।। प्राणवल्लभे! जब प्रातःकाल हुआ, तब लोग विभिन्न प्रकार के वाद्य बजाने लगे ।।५१।। फिर तो सब देवता वेगपूर्वक उठे और वेश-भूषा से सज्जित हो अपने-अपने वाहनों पर सवार होकर कैलास जाने के लिए उद्यत हो गये ।।५२।। उस समय नारायण की आज्ञा से योगी धर्म उस वास-भवन में गये और योगीश्वर शिव से समयोचित वचन बोले ।।५३।।

**धर्म ने कहा**—हे प्रमथों के अधीश्वर! आपका कल्याण हो, उठिये, उठिये और हरि का स्मरण करते हुए माहेन्द्र-योग में पार्वती के साथ यात्रा कीजिये ।।५४।। वृन्दावनविनोदिनि! धर्म की बात सुनकर शिव ने पार्वती के साथ माहेन्द्र योग में यात्रा प्रारंभ की ।।५५।। पार्वती के साथ देवाधीश्वर शिव के यात्रा करते समय मेना ऊँचे स्वर से रोकर उन कृपानिधान से बोलीं ।।५६।।

## मेनोवाच

कृपानिधे कृपां कृत्वा मद्वत्सां पालयिष्यसि । सहस्रदोषान्भगवानाशुतोषः क्षमिष्यसि ॥५७॥
त्वत्पदाम्बुजभक्तैषा मद्वत्सा जन्मजन्मनि । स्वप्ने ज्ञाने स्मृतिर्नास्ति महादेवप्रभुं विना ॥५८॥
त्वद्भक्तिश्रुतिमात्रेण हर्षाश्रुपुलकान्विता । त्वन्निन्दया भवेन्मौना मृत्युंजय मृता इव ॥५९॥
इत्युक्त्वा मेनका शीघ्रं तत्राऽऽगत्य हिमालयः । उच्चै रुरोद च तदा वत्सां कृत्वा स्ववक्षसि ॥६०॥
क्व यासि वत्सेत्युच्चार्य शून्यं कृत्वा हिमालयम् । स्मारं स्मारं तद्गुणौघं विदार्य मन्मनः स्फुटम् ॥६१॥
इत्येवमुक्त्वा शैलेन्द्रः समर्प्य च शिवां शिवे । सशैलः सहपुत्रश्च रुरोदोच्चैर्मुहुर्मुहुः ॥६२॥
नारायणश्च भगवानध्यात्मविद्यया स्वयम् । सर्वान्प्रबोधयामास कृपया स कृपानिधिः ॥६३॥
ननाम पार्वती भक्त्या मातरं पितरं गुरून् । मायया च महामाया रुरोदोच्चैर्मुहुर्मुहुः ॥६४॥
पार्वतीरोदनेनैव रुरुदुः सर्वयोषितः । मुनयश्च सुराः सर्वे सस्त्रीकाः सगणा ध्रुवम् ॥६५॥
शीघ्रं ययुस्ते कैलासं देवा मानसयायिनः[1] । मुहूर्तार्धेन मुदिताः संप्रापुः शंकरालयम् ॥६६॥
दृष्ट्वाऽऽगतं देवपत्न्यो मुनिपत्न्यश्च सत्वरम् । आययुर्दीपमानीय मुदा मङ्गलकर्मणि ॥६७॥

---

**मेना ने कहा**—हे कृपानिधे ! कृपा करके मेरी पुत्री का पालन कीजियेगा, आप भगवान् आशुतोष हैं, अतः इसके दोषों को क्षमा करेंगे। मेरी यह पुत्री जन्म-जन्मांतर से आपके चरण-कमल की भक्त है। एक महादेव स्वामी के बिना इसे स्वप्न एवं जागरण में किसी का स्मरण नहीं होता है ॥५७-५८॥ आपकी भक्ति को सुनते ही यह पुलकित हो उठती है और नेत्रों से आनन्द के आँसू बहने लगते हैं। मृत्युञ्जय ! आपकी निन्दा से ऐसी मौन हो जाती है मानो मर गयी हो ॥५९॥ मेना के इतना कहते ही वहाँ शीघ्र हिमालय भी आ गये और पुत्री को अपने हृदय से लगाकर ऊँचे स्वर से रोदन करने लगे—हे 'वत्से ! हिमालय को शून्य करके तुम कहाँ जा रही हो ? तुम्हारे गुणसमूहों का जब मुझे बार-बार स्मरण होता है, तो उस समय हृदय विदीर्ण होने लगता है— इतना कहकर पर्वतराज हिमालय ने शिवा (पार्वती) शिव को सौंप दी और पुत्र समेत बार-बार ऊँचे स्वर से वे रोने लगे। उस समय कृपानिधान साक्षात् भगवान् नारायण ने कृपा करके अध्यात्म-विद्या द्वारा सबको समझाया। पार्वती ने भक्तिपूर्वक माता-पिता तथा गुरुजनों को प्रणाम किया। वे महामायारूपिणी हैं, अतः माया का आश्रय लेकर ऊँचे स्वर से बारंबार रोदन करने लगीं। पार्वती के रोदन से ही (वहाँ की) सभी स्त्रियाँ रोने लगीं। पत्नियों एवं गणों सहित सभी देवता और मुनि भी रो पड़े। फिर वे मन के समान चलनेवाले देवगण शीघ्र कैलास के लिए चल पड़े तथा दो ही घड़ी में शिव के निवास-स्थान पर सानन्द जा पहुँचे ॥६०-६६॥ आगमन देखकर देवों की स्त्रियाँ एवं मुनिपत्नियाँ मंगल-कृत्य का सम्पादन करने के लिए हर्ष से दीपक लिये

---

१ ख. शायि°।

वायुपत्नी कुबेरस्य कामिनी शुक्रकामिनी। तारा सुरगुरोः पत्नी पत्नी दुर्वाससस्तथा ॥६८॥
अत्रिभार्याऽनसूया च चन्द्रपत्न्यस्तथैव च। देवकन्या नागकन्या मुनिकन्याः सहस्रशः ॥६९॥
असंख्यकामिनीसंघः संख्यां कर्तुं च कः क्षमः। ताश्च प्रवेशयामासुर्दम्पती वासमन्दिरम् ॥७०॥
रत्नसिंहासने रम्ये वासयामासुरीश्वरीम्। सतीं तां दर्शयामास शिवः पूर्वालयं मुदा ॥७१॥
सति स्मरस्यतो गेहाद्यद्गता तातमन्दिरम्। अधुना शैलकन्या त्वं तत्र दक्षसुता पुरा ॥७२॥
जातिस्मरां स्मारयामि नित्यं स्मरसि चेद्वद। शंकरस्य वचः श्रुत्वा सस्मितोवाच सा सती ॥७३॥
सर्वं स्मरामि प्राणेश मौनीभूतो भवेति तम्। शिवः संभृतसंभारो नानावस्तुमनोहरम् ॥७४॥
भोजयामास देवांश्च नारायणपुरोगमान्। भुक्त्वा देवा प्रजग्मुस्ते नानारत्नविभूषिताः ॥७५॥
सस्त्रीकाः सगणाः सर्वे प्रणम्य चन्द्रशेखरम्। नारायणं च ब्रह्माणं ननाम शंकरः स्वयम् ॥७६॥
तौ च तं च समाश्लिष्याऽऽशिषं कृत्वा प्रजग्मतुः। अथ शैलश्च मेना च मैनाकमाजुहाव ह ॥७७॥
शीघ्रमानय भद्रं ते पार्वतीं शंकरं सुत। तयोः स वचनं श्रुत्वा शीघ्रं गत्वा शिवालयम् ॥७८॥
आजगाम समानीय पार्वतीपरमेश्वरौ। पार्वत्यागमनं श्रुत्वा बालाश्च बालिकास्तथा ॥७९॥

---

शीघ्र आ गयीं ॥६७॥ वायु की पत्नी, कुबेर की पत्नी, शुक्र-प्रिया, देवगुरु बृहस्पति की पत्नी तारा, दुर्वासा की पत्नी, अत्रिपत्नी अनसूया और चन्द्रमा की स्त्रियों समेत सहस्रों देवकन्याएँ, नागकन्याएँ एवं मुनिकन्याएँ वहाँ उपस्थित हुईं ॥६८-६९॥ वहाँ की कामिनियों के समूहों की संख्या करने में कौन समर्थ हो सकता है ? उन स्त्रियों ने दम्पती को वासभवन (रङ्गमहल) में प्रवेश कराया ॥७०॥

वहाँ रत्न के सिंहासन पर पार्वती को बैठाया। शिव ने सती को पूर्व का गृह दिखाया और हर्ष से पूछा--'हे सति ? क्या तुम्हें स्मरण हो रहा है, जो इसी घर से तुम अपने पिता के घर गयी थीं ? उस समय तुम दक्ष की कन्या थीं और अब शैलराज की पुत्री हुई हो। तुम पूर्व की बातों का स्मरण रखनेवाली हो। यदि तुम्हें स्मरण है तो कहो।' शंकर की बात सुनकर मन्द मुसकान करती हुई पार्वती ने उनसे कहा—'प्राणेश ! मुझे सब बातों का स्मरण है, किन्तु इस समय आप चुप रहें (उन बीती बातों की चर्चा न करें)। तदुपरान्त शिव ने वस्तुओं को एकत्र करके नारायण आदि देवों को भोजन कराया। भोजन के पश्चात् नाना रत्नों से विभूषित होकर वे देवगण अपने-अपने गणों एवं पत्नियों समेत चन्द्रशेखर को नमस्कार करके घर चले गये। नारायण और ब्रह्मा को शिव ने स्वयं नमस्कार किया ॥७१-७६॥ उन दोनों ने भी उनका आलिंगन करके आशीर्वाद प्रदान किया और अपने घर चले गये।

अनन्तर हिमालय और मेना ने पुत्र मैनाक को बुलाकर कहा—'हे पुत्र ! तुम्हारा कल्याण हो ! तुम पार्वती और शिव को वहाँ से शीघ्र लिवा लाओ। उन दोनों की बात सुनकर वे कैलास चले गये और वहाँ से पार्वती और परमेश्वर (शिव) को शीघ्र लिवा लाये। पार्वती का आगमन सुनकर बालक, बालिकाएँ,

वृद्धा युवत्यो या याश्च शैलाश्च दुद्रुवुर्मुदा। मेना सुताभ्यां वध्वा च सह दुद्राव सस्मिता ॥८०॥
हिमालयश्च मुदितो दुद्रावानुव्रजन्सुताम्। अवरुह्य रथाद्देवी मातरं पितरं गुरून् ॥८१॥
प्रणनाम प्रमुदिता निमग्नाऽऽनन्दसागरे। पार्वतीं च समाश्लिष्य मेनका हर्षविह्वला ॥८२॥
हिमालयश्च मुदितो गताः प्राणा इवाऽऽगताः। सुतां निधाय गेहे स्वे रत्नसिंहासनं ददौ ॥८३॥
शूलभृते गणेभ्यश्च मधुपर्कादिकं मुदा। तस्थौ श्वशुरगेहे च सगणश्चन्द्रशेखरः ॥८४॥
नित्यं षोडशोपचारैः पूजितः सह भार्यया। इत्येवं कथितं राधे शंकरोद्वाहमङ्गलम् ॥
शोकघ्नं हर्षजनकं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥८५॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० राधाकृष्णसं० शंकरविवाहो
नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४५॥

•

---

वृद्धाएँ, युवतियाँ एवं पर्वतगण भी देखने के लिए दौड़ आये। मेना अपने पुत्रों और बहू के साथ मुसकराती हुई दौड़ीं ॥७७-८०॥ हिमालय भी प्रसन्नता से पुत्री की अगवानी के लिए दौड़े आये। देवी पार्वती ने रथ से उतरकर अपनी माता, पिता एवं गुरुजनों को प्रणाम किया। उस समय वे आनन्द सागर में निमग्न हो रही थीं। हर्षविभोर मेना ने पार्वती का आलिंगन किया। हिमालय भी इतने मोदमग्न हुए मानो गये हुए प्राण वापस आ गये हों। कन्या को अपने भवन में रखकर रत्नसिंहासन दिया ॥८१-८३॥ गणों समेत शिव को प्रसन्नता से मधुपर्क आदि देकर स्वागत किया। पार्षदों समेत चन्द्रशेखर शिव ससुर के घर में निवास करने लगे। वहाँ भार्या सहित शंकर की सोलह उपचारों से पूजा होने लगी। राधे ! इस प्रकार मैंने शिव का विवाहमंगल, जो शोकनाशक एवं हर्षप्रद है, तुम्हें सुना दिया, अब पुनः क्या सुनना चाहती हो ? ॥८४-८५॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारायण-नारद-संवाद में
शङ्करविवाह नामक पैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४५॥

•

# अथ षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

## राधिकोवाच

सुचिरं च मृतं कामं शंकरेण च जीवितम् । रतिः पुनः प्रियं प्राप्य किं चकार मुदाऽन्विता ॥१॥
स्त्रीणां स्वस्वामिविच्छेदो मरणादतिदुष्करः । पुनः संमेलनं भर्तुः सुखं परमदुर्लभम् ॥२॥
शिवः सती तां संप्राप्य सङ्गे मङ्गलकर्मणि । चिरं प्रनष्टविरहः किं चकार मुदाऽन्वितः ॥३॥
कलत्रविरहः पुंसां सर्वशोकात्सुदुष्करः । पुनः संमीलनं तस्याः प्राणदानाधिकं सुखम् ॥४॥
रतिः पुंसो विरहिणी शिवः स्त्रीविरही चिरम् । द्वयोर्द्वयोश्च संप्राप्तौ किं बभूव द्वयोः सुखम् ॥५॥
तदेवं श्रोतुमिच्छामि परं कौतूहलं मम । कृपया विदुषां श्रेष्ठ सव्यासं कथय प्रभो ॥६॥
मेलनं शक्तिशिवयो रतिमन्मथयोस्ततः । शोकापहं श्रुतवतां सर्वमङ्गलकारणम् ॥७॥

## नारायण उवाच

इत्युक्त्वा राधिका देवी सस्मिता विरराम ह । कृष्णस्तद्वचनं श्रुत्वा सस्मितस्तामुवाच ह ॥८॥

---

# अध्याय ४६

## पार्वती और शंकर का विलास

**राधिका बोलीं**—प्रभो ! अतिचिरकाल से मृतक तथा शिव के द्वारा जीवित किये गये अपने प्रियतम (काम) को पुनः पाकर हर्षान्वित रति ने क्या किया ? ॥१॥ स्त्रियों को अपने पति से विच्छेद होना मरण से भी अत्यन्त दुःखदायी होता है और पुनः पति का मिलाप हो जाना परम दुर्लभ सुख देता है ॥२॥ शिव ने संगात्मक मङ्गल कर्म में सती को पुनः प्राप्त करके चिरकाल के विरह से रहित तथा हर्ष से युक्त होकर क्या किया ? ॥३॥ पुरुषों के लिए स्त्री-वियोग महान् दुःखप्रद होता है और उसका पुनः मिल जाना प्राणदान से भी अधिक सुखदायी है ॥४॥ रति चिरकाल से पुरुष वियोगिनी थी और शिव को स्त्री-वियोग था, उन दोनों को अपने-अपने अभीष्ट की प्राप्ति हो गयी । तब दोनों ने कौन सुखानुभव किया, इसे सुनने का मुझे महान् कौतूहल हो रहा है । आप विद्वानों में श्रेष्ठ हैं, इसलिए प्रभो ! विस्तारपूर्वक कहने की कृपा करें ॥५-६॥ (क्योंकि) पार्वती और शिव का तथा रति और कामदेव का पुनः मिलन सुननेवालों के लिए शोकनाशक एवं समस्त मङ्गलों का कारण है ॥७॥

**नारायण बोले**—इतना कहकर मुसकराती हुई राधिका देवी चुप हो गयीं । उनकी बात सुनकर मुसकराहट के साथ श्रीकृष्ण ने उनसे कहा ॥८॥

**श्रीकृष्ण उवाच**

मृतं कामं पुनः प्राप्य कामार्ता कामकामिनी । स्वालयं तं समानीय हरोद्वाहगृहाद्वहो ॥९॥
भर्तुः सुवेषं विविधं स्वात्मनः स्वालिभिर्मुदा । कारयामास यत्नेन सा रती रमणोत्सुका ॥१०॥
ज्ञात्वा कामस्तु तद्भावं कामशास्त्रविधायकः । रत्नयानं समारुह्य जगाम स्वालयाद्वनम् ॥११॥
शैले शैलेऽतिरम्ये च नद्यां नद्यां नदे नदे । द्वीपे द्वीपे सिन्धुतटे पुष्पोद्याने मनोहरे ॥१२॥
काञ्चने भूमिनिकरे[1] वटमूलेऽतिनिर्जने । नदीपुलिनभूम्यां च पुष्पिते पुष्पकानने ॥१३॥
भ्रमरध्वनिसंयुक्ते पुंस्कोकिलरुतश्रुते । सुगन्धिवायुनाऽऽकीर्णे वधति जलसीकरम् ॥१४॥
चित्तेषु चेतनानां च हरणं योषितामहो । कलामानप्रकारेण शृङ्गारं च चकार सा ॥१५॥
पूर्णमब्दशतं दिव्यं स रेमे वामया सह । दिवानिशं च न बुबुधे संसक्तः सततं मुदा ॥१६॥
तस्थतुस्तौ च तत्रैव संसक्तो सततं मुदा । सुरतौ च न विरतौ रतिशास्त्रविशारदौ ॥१७॥
पतिविच्छेदसंतापं विजहौ सा रतिर्मुदा । प्राप्य रत्नमपहृतं कः क्षणं त्यक्तुमुत्सहेत् ॥१८॥
इत्येवं कथितं सर्वं रतिसंतापकारणम् । शृङ्गारं शक्तिशिवयोरतुलं शृणु राधिके ॥१९॥
शृण्वतां कर्णपीयूषं परमाश्चर्यमीप्सितम् । सर्वसंतापहरणं सुखदं पुण्यदं शुभम् ॥२०॥

---

**श्रीकृष्ण बोले**—कामपीड़ित रति ने अपने मृतक पति काम को पुनः पाकर शिव के विवाह-गृह से अपने घर ले आयी ॥९॥ घर पहुँचकर रमण के लिए उत्सुक उस रति ने अपनी सखियों के द्वारा यत्नपूर्वक पति का सुन्दर वेश बनवाया ॥१०॥ कामशास्त्र के रचयिता काम ने उसका भाव समझकर उसके (साथ रत्न के) रथ पर चढ़कर अपने घर से वन में चला गया, प्रत्येक अतिरमणीय पर्वत, नदी, नद, द्वीप, समुद्र-तट, मनोहर पुष्पोद्यान, स्वर्णिम भूमि (सोने की खान), अत्यन्त निर्जन वटवृक्ष के मूल, नदी-तट की रेतीली भूमि और खिले हुए फूलों के वन में, जहाँ भौंरों की गुंजार और कोयलों की कूक सुनायी पड़ती थी एवं ऐसे स्थान में जहाँ जल की फुहार को सुगन्धित वायु बिखेरता था, रति ने विविध कलाओं से संभोग किया, जिसे देखकर सचेतन स्त्रियों का चित्त हरण हो गया, वे आश्चर्यचकित हो गयीं ॥११-१५॥ दिव्य सौ वर्षों तक काम ने रति के साथ रमण किया । उसमें उसे दिन-रात का कुछ भी ज्ञान नहीं था । दोनों रति-शास्त्र के विशेषज्ञ थे । इससे दोनों आनन्दमग्न होकर सुरत-व्यापार में ही निरन्तर लगे रहे. उन्हें रति-विराग कभी हुआ ही नहीं ॥१६-१७॥ उस रति ने अपना पति-वियोग-संताप त्याग दिया । अपहृत (खोये हुए) रत्न को पाकर कौन उसे क्षणमात्र भी त्याग सकता है ? ॥१८॥ राधिके ! इस प्रकार मैंने रति का सन्ताप-कारण तुम्हें सुना दिया । अब हर-गौरी का अनुपम शृंगार-सम्भोग सुनो, जो सुननेवालों के कानों के लिए अमृत के समान, परम आश्चर्यमय, अभीष्ट, समस्त

---

१ क. 'कटे व' ।

वसञ्छ्वशुरगेहे स पार्वत्या सह शंकरः । तदनुज्ञां समादाय क्रीडार्थं प्रययौ वनम् ॥२१॥
रत्नस्यन्दनमारुह्य रत्नसारपरिच्छदम् । रत्नसारेण खचितं रचितं विश्वकर्मणा ॥२२॥
शतशृङ्गे सुवसने मलये गन्धमादने । नन्दने पुष्पभद्रे च पारिभद्रे च भद्रके ॥२३॥
पुलिन्दे च कलिन्दे च पुण्ड्रे पिण्डारकेऽन्धके । वने वनेऽतिरम्ये च सागराणां तटे तटे ॥२४॥
निकटेऽस्तगिरेः पार्श्ववटमूले मनोहरे । चकार करुणां यत्र परित्यज्य सती शिवम् ॥२५॥
नानास्थानेषु रहसि पशुपक्षिविवर्जिते । यथामनोरथंगामी स रेमे वामया सह ॥२६॥
यत्र यत्र शवं नीत्वा बभ्राम धरणीतलम् । तत्सर्वं दर्शयामास सती शंभुर्मुदाऽन्वितः ॥२७॥
कृत्वा विहारं सुचिरं न पूर्णं मानसं तयोः । महाशृङ्गारमारेभे सहस्राब्दं जगत्पिता ॥२८॥
मायातीतोऽतिमायेशो मायासक्तः स्वमायया । न कालं बुबुधे योगी सुखेन कालकारकः ॥२९॥
शक्तिशक्तिमतोस्तत्र न बभूव परिश्रमः । जहतोः सर्वसंतापमन्योन्यविरहोद्भवम्[1] ॥३०॥
सुखसंसक्तमनसोः पुलकाञ्चितगात्रयोः । कामबाणमूर्च्छितयोः पुष्पशय्याशयानयोः ॥३१॥
नग्नयोः सुखसंभोगाद्रतिशास्त्रविधिज्ञयोः । नखदन्तप्रहारैश्च क्षतविक्षतदेहयोः ॥३२॥

---

संतापहारी, सुखदायक, पुण्य-प्रदायक एवं शुभ है ॥१६-२०॥ ससुर के घर में पार्वती समेत निवास करते हुए शिव ने उनकी आज्ञा प्राप्त करके क्रीड़ा करने के लिए रत्नों के सारभाग के उपकरणों से युक्त, उत्तम रत्नों से जटित एवं विश्वकर्मा द्वारा रचित रत्नों के रथ पर चढ़कर वन को प्रस्थान किया ॥२१-२२॥ शतशृङ्ग (सौ शिखरवाले) पर्वत एवं सुवसन, मलय, गन्धमादन, नन्दन, पुष्पभद्र, पारिभद्र, भद्रक, पुलिन्द, कलिन्द, पुंड्र, पिण्डारक और अंधक नामक प्रदेशों तथा अत्यन्त रमणीय वनों में और सागर-तटों पर, अस्ताचल के निकट, वृक्ष के मनोहर मूल भाग में जहाँ सती को त्यागकर उन्होंने करुणालाप किया था, विभिन्न स्थानों में और पशु-पक्षी से रहित एकान्त स्थान में मनोरथानुसार यात्रा करके उन्होंने शिवा के साथ रमण किया ॥२३-२६॥ पुनः शिव ने प्रसन्न होकर सती को उन सब स्थानों को दिखाया, जहाँ-जहाँ वे उनका पूर्वकालीन शव लिये भ्रमण कर चुके थे ॥२७॥ अति चिरकाल तक विहार करने पर जब भी उन दोनों के मन नहीं भरे तब जगत्पिता ने एक सहस्र वर्षों तक महासम्भोग किया ॥२८॥ माया से परे तथा मायाधीश अपनी माया से माया में आसक्त हो गये। सुख से काल के बनानेवाले योगी को काल का ज्ञान नहीं हुआ ॥२९॥ वहाँ परस्पर विरह से उत्पन्न सम्पूर्ण संताप को त्यागते हुए शक्ति और शक्तिमान् को कुछ परिश्रम भी नहीं हुआ ॥३०॥ उन दोनों का मन सुख में आसक्त था; शरीर में रोमाञ्च हो आया था; वे फूलों की शय्या पर लेटे हुए काम-वाण से मूर्च्छित हो रहे थे; सुख-सम्भोग से नग्न हो गये थे, रतिशास्त्र की विधि को जाननेवाले वे दोनों नखों और दाँतों के प्रहार से क्षत-

---

१ क. 'मसह्यवि' ।

चन्दनागुरुकस्तूरीसिन्दूरबिन्दुलिप्तयोः । निबद्धकेशकबरीश्लथयोश्छिन्नमाल्ययोः ॥३३॥
वसनानां नूपुराणां कङ्कणानां च सुन्दरि । वलयानां कुण्डलानां शब्दैः क्रीडां प्रकुर्वतोः ॥३४॥
पुष्पतल्पं दलितयोर्वाष्पोत्कर्षं च बिभ्रतोः । तेजसा समयोः शश्वत्क्रीडया कौतुकेन च ॥३५॥
भारेण विश्वंभरयोर्भाराक्रान्ता वसुंधरा । सा विदीर्णा चकम्पे च सशैलवनसागरा ॥३६॥
तयोर्भरभराक्रान्तधरायाश्च भरेण च । भाराक्रान्तो हि शेषश्च तद्भूरार्तोऽपि कच्छपः ॥३७॥
कच्छपस्य भरेणैव सर्वाधाराः समीरणाः । महाविक्लवयुक्ताश्च सर्वप्राणाश्च स्तम्भिताः ॥३८॥
स्तम्भितेषु समीरेषु त्रिलोका भयविह्वलाः । ब्रह्मादयः सुराः सर्वे वैकुण्ठं शरणं ययुः ॥३९॥
सर्वं निवेदनं चक्रुर्नारायणपदाम्बुजे । नारायणश्च भगवानुवाच कमलोद्भवम् ॥४०॥

## नारायण उवाच

शृङ्गारभङ्गसमयो भविता नाधुना विधे । कालप्रयुक्तं कार्यं च सिद्धं तत्समयोचितम् ॥४१॥
पूर्णे वर्षसहस्रे च स्वेच्छया विरमिष्यति । शंभोः संभोगमिष्टं च को भेदं कर्तुमीश्वरः ॥४२॥
स्त्रीपुंसो रतिविच्छेदमुपायेन करोति यः । तस्य स्त्रीपुंसयोर्भेदो भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥४३॥
यात्यन्ते कालसूत्रे च वर्षलक्षं स पातकी । भ्रष्टज्ञानो नष्टकीर्तिरलक्ष्मीको भवेदिह ॥४४॥
रम्भायुक्तं शक्रमिमं चकार विरतं रतौ । महामुनीन्द्रो दुर्वासास्तत्स्त्रीभेदो बभूव ह ॥४५॥

---

विक्षत शरीर हो गये थे; चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और सिन्दूर के बिन्दु पुत गये थे; बालों का जूड़ा खुल गया था और माला टूट गयी थी। हे सुन्दरि ! वस्त्रों, नूपुरों, कंगनों, कड़ों और कुण्डलों के शब्दों से क्रीड़ा करते हुए, पुष्पशय्या को कुचलते हुए, अत्यन्त हाँफते हुए, तेज, क्रीड़ा और कौतुक में समान होते हुए तथा विश्व का भरण करनेवाले दोनों के भार से पृथ्वी दब गयी। वह विदीर्ण होकर पर्वत, वन तथा समुद्र समेत काँपने लगी ॥३१-३६॥ उन दोनों के अतिशय भार से आक्रान्त पृथ्वी के भार से शेषनाग भाराक्रान्त हो गया। उसके भार से कच्छप पीड़ित हो उठा। कच्छप के भार से ही सबके आधार वायु अत्यन्त विकल हो गये, जिससे सबके प्राण स्तम्भित हो गये। प्राणों के स्तम्भित हो जाने पर सब भय से व्याकुल हो गये। ब्रह्मा आदि सभी देवता विष्णु की शरण में पहुँचे। नारायण के चरण-कमल में समस्त वृत्तान्त निवेदन किया। तब भगवान् नारायण ने ब्रह्मा से कहा ॥३७-४०॥

**नारायण बोले**——ब्रह्मन् ! उनके सम्भोग भङ्ग करने का समय अभी नहीं प्राप्त हैं। कालप्रयुक्त कार्य उचित समय पर ही सिद्ध होता है ॥४१॥ पूरे एक सहस्र वर्ष के उपरान्त वे स्वेच्छा से विरत हो जायेंगे। अभी शिव को संभोग ही प्रिय है। इससे कोई भी उन्हें अलग करने में समर्थ नहीं हो सकता है ॥४२॥ जो उपाय द्वारा स्त्री-पुरुष का रति भङ्ग करता है, उसे प्रत्येक जन्म में पति-पत्नी-वियोग प्राप्त होता है। अनन्तर वह पातकी एक लाख वर्षों तक कालसूत्र नामक नरक में पड़ा रहता है और इस लोक में आजीवन ज्ञानभ्रष्ट, नष्टकीर्ति होकर दरिद्र होता है ॥४३-४४॥ रम्भा-इन्द्र की रति को महामुनि दुर्वासा ने भङ्ग किया था, जिससे

पुनरन्यां स संप्राप्य निषेव्य शूलपाणिनम् । दिव्यवर्षसहस्रं च विजहौ विरहज्वरम् ॥४६॥
[1]रोहिणीसहितं चन्द्रं चकार विरतं रतौ । महर्षिगौतमस्तस्य स्त्रीविच्छेदो बभूव ह ॥४७॥
पुनः शिवं समाराध्य प्राप्याहल्यां च पुष्करे । दिव्यवर्षसहस्रं च विजहौ विरहज्वरम् ॥४८॥
मुनिः स्वभार्यासंसक्ते दिवसे निर्जने वने । ब्रह्माण्डकसुतं नीत्वा चकार विरतं रुषा ॥४९॥
बभूव पुत्रविच्छेदस्तस्य कल्पान्तरे पुनः । शिवं निषेव्य संप्राप्य पुत्रं तत्याज विक्लवम् ॥५०॥
हरिश्चन्द्रो हालिकं च वृषल्या सह संयुतम् । वारयामास निश्चेष्टं निर्जने तत्फलं शृणु ॥५१॥
भ्रष्टं श्रीराज्यवित्तेभ्यस्तं चकारावलीलया । विश्वामित्रो महर्षिश्च ताडयामास तं पुरा ॥५२॥
ततः शिवं समाराध्य दातारं सर्वसंपदाम् । सद्यो जगाम वैकुण्ठं सगणो मम मन्दिरम् ॥५३॥
अजामिलं द्विजश्रेष्ठं वृषल्या सह संयुतम् । न भिया वारयामासुः सुरास्तं चापि केचन ॥५४॥
निष्पन्ने कर्मभोगे च स मद्भक्तो मुमोच ह । मन्नामस्मृतिमात्रेण चाऽऽजगाम ममाऽऽलयम् ॥५५॥
सर्वं निषेकसाध्यं च निषेको बलवान्विधे । निषेकफलदाताऽहं निषेकः केन वार्यते ॥५६॥
दिव्यं वर्षसहस्रं च शंभोः संभोगकर्म तत् । निषेकफलदातुस्तु निषेकफलसंचयम् ॥५७॥

---

उन्हें स्त्री-विरह प्राप्त हुआ था ॥४५॥ पुनः उन्होंने दिव्य सहस्र वर्षों तक शूलपाणि शिव की आराधना करके अन्य स्त्री को पाकर अपना वियोग-सन्ताप दूर किया ॥४६॥ महर्षि गौतम ने रोहिणी-चन्द्रमा के सम्भोग को भङ्ग किया, जिससे उन्हें स्त्री-विच्छेद प्राप्त हुआ और पुनः पुष्कर क्षेत्र में दिव्य सहस्र वर्षों तक शिव की आराधना करने पर उन्हें अहल्या की प्राप्ति हुई, जिससे उनका सन्ताप दूर हुआ ॥४७-४८॥ एक बार मुनि ने निर्जन वन में दिन में अपनी पत्नी से संभोग करते हुए ब्रह्माण्डक नामक पुत्र को क्रोध से विरत कर दिया। इससे कल्पान्तर में उन्हें पुत्र-वियोग प्राप्त हुआ। तब पुनः दूसरे कल्प में शिव की आराधना से पुत्र प्राप्त करके विकलता का त्याग किया ॥४९-५०॥ शूद्रा के साथ निर्जन स्थान में उपभोग करते हुए निश्चेष्ट हलवाहे को रोक दिया, उसका फल जो उन्हें भोगना पड़ा, उसे सुनो ॥५१॥ इसी के परिणामस्वरूप महर्षि विश्वामित्र ने उन्हें श्री, राज्य एवं धन से वञ्चित कर उनकी बड़ी कदर्थना की ॥५२॥ पश्चात् उन्होंने समस्त सम्पत्ति के दाता शिव की आराधना की, जिससे गण, परिवार समेत वे मेरे मन्दिर वैकुण्ठ में चले गये ॥५३॥ इसीलिए वृषली के साथ सम्भोग करते हुए द्विजश्रेष्ठ अजामिल को कोई भी देवता डर से नहीं रोक सके ॥५४॥ कर्मभोग समाप्त होने पर वह मेरा भक्त स्वयं उसे छोड़कर मेरे नाम के स्मरण मात्र से मेरे यहाँ चला आया ॥५५॥ इसलिए हे विधे ! कर्म बलवान् होता है। उसी से सब-कुछ साध्य है। उस कर्म का फल मैं प्रदान करता हूँ। उसका निवारण कौन कर सकता है ? ॥५६॥ कर्मफलदाता शिव का कर्मफलसंचय रूप संभोग-कर्म दिव्य हजार वर्षों तक चलनेवाला है। सहस्र वर्ष पूर्ण हो जाने पर वहाँ जाकर शंकर

---

१ क. घृताच्या सह संश्लिष्टं कामं वारितवान्गुरुः । षण्मासाभ्यन्तरे च° ।

पूर्णे वर्षसहस्रे च गत्वा तत्र महेश्वर:[1]। येन वीर्यं पतेद्भूमौ तत्करिष्यति निश्चितम् ॥५८॥
तत्र वीर्ये च भविता स्कन्दको भक्ततारक:। सदा भद्रस्वरूपोऽहं भयं किं वो मयि स्थिते ॥५९॥
अधुना त्वं गृहं गच्छ भगवन्स्वगणै: सह। करोतु शंभु: संभोगं पार्वत्या सह निर्जने ॥६०॥
इत्युक्त्वा कमलाकान्त: शीघ्रं स्वान्त:पुरं ययौ। स्वालयं प्रययुर्देवा: शिव: स्वस्थो रतौ रत: ॥६१॥

## नारायण उवाच

इत्युक्त्वा राधिकां कृष्ण: सकटाक्षां च सस्मिताम्। जगाम चन्दनवनं निर्जने च तया सह ॥६२॥
अतीव निर्जनं रम्यं वायुना सुरभीकृतम्। पुष्पोद्यानै: समाकीर्णं तत्र क्रीडां चकार ह ॥६३॥
पुष्पतल्पसमाकीर्णे परपुष्टरुतश्रुते। भ्रमरध्वनिसंयुक्ते कामिनीनां मनोहरे ॥६४॥
कृष्णसंभोगमात्रेण सुखसंमूर्च्छिता च सा। अतीव मूर्च्छित: कृष्णो राधाङ्गस्पर्शमात्रत: ॥६५॥
तस्थतुस्तत्र संयुक्तौ राधारासेश्वरौ मुने। अतीव रतिनिश्चेष्टौ किं भूय: श्रोतुमिच्छसि ॥६६॥
इत्येवं मङ्गलं कर्म य: शृणोति समाहित:। कदाचिद्बन्धुविच्छेदो न भवेत्तस्य नारद ॥६७॥
महाशोकार्णवे मग्नो भेदे पुत्रकलत्रयो:। मद्भृत्यानां च बन्धूनां मासं श्रुत्वा लभेद्ध्रुवम् ॥६८॥

---

स्वयं ऐसा उपाय करेंगे, जिससे उनका वीर्य निश्चित रूप से पृथ्वी पर गिरेगा और उससे स्कन्द की उत्पत्ति होगी जो भक्तों का उद्धार करेगा। मैं सदा भद्र (कल्याण) स्वरूप हूँ, अत: मेरे रहते तुम लोगों को क्या भय है? ॥५७-५९॥ भगवन्! इस समय आप लोग गणों समेत घर जाइये और निर्जन स्थान में शिव को पार्वती के साथ संभोग करने दीजिये ॥६०॥ इतना कहकर नारायण शीघ्र अपने अन्त:पुर चले गये और देव लोग अपने-अपने घर गये एवं शिव स्वस्थतापूर्वक रति-क्रिया में रत रहे ॥६१॥

**नारायण बोले**—मन्द मुसुकान समेत कटाक्ष करनेवाली राधिका से इतना कहकर श्रीकृष्ण उनके साथ चन्दन वन के एकान्त स्थान में चले गये ॥६२॥ वह निर्जन स्थान अत्यन्त रमणीक, वायु द्वारा सुगन्धित एवं पुष्प वाटिकाओं से व्याप्त था, वहाँ उन्होंने क्रीड़ा की। वहाँ फूलों की शय्याएँ बिछी थीं, कोयलों की कूक सुनायी पड़ती थी, वह भ्रमरों की गुञ्जार से युक्त तथा कामिनियों के लिए मनोहर था ॥६३-६४॥ राधिका कृष्ण के संभोगमात्र से आनन्द-मूर्च्छित हो गयीं। कृष्ण भी राधिका के अंगस्पर्शमात्र से अतीव मूर्च्छित हो गये ॥६५॥ राधा और रासेश्वर कृष्ण वहाँ सहवास करते हुए अत्यन्त निश्चेष्ट हो गये। अब क्या सुनना चाहते हो? ॥६६॥ नारद! इस प्रकार मङ्गल कर्म को जो सावधान होकर सुनता है उसे कभी भी बन्धु-विच्छेद नहीं होता है और महाशोक-सागर में निमग्न होने, पुत्र, स्त्री, भृत्य एवं बन्धुओं से मतभेद होने पर इसका एक मास श्रवण करने से निश्चित ही अभीष्ट प्राप्त होता है ॥६७-६८॥

---

१ क. 'सुरेश्वर'।

सूत उवाच

इत्युक्त्वा धर्मपुत्रश्च विरराम महामुनिः । पुनः संप्रष्टुमारेभे देवर्षिः कौतुकान्वितः ॥६९॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० मङ्गलवर्णनं
नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४६॥

⊙

# अथ सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

नारद उवाच

अथ क्रीडान्तरे राधा किं पप्रच्छ हरिं विभुम् । कां कथां कथयामास कथ्यतां करुणानिधे ॥१॥

नारायण उवाच

उत्थाय सुखसंभोगाद्राधां कृत्वा पुरो हरिः । उवास मलयद्रोण्यां वटमूले मनोहरे ॥२॥
राधा तं परिपप्रच्छ सस्मितं सुमनोहरम् । दर्पभङ्गं वज्रभृतो निगूढं श्रुतिसुन्दरम् ॥३॥

---

**सूत बोले**—महामुनि धर्मपुत्र (नारायण) इतना कहकर चुप हो गये, पश्चात् देवर्षि नारद ने कौतुक-वश पुनः उसे पूछना प्रारम्भ किया ॥६९॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में मङ्गलवर्णन
नामक छियालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४६॥

⊙

# अध्याय ४७

## इन्द्र का दर्प-भंग

**नारद बोले**—करुणानिधे ! क्रीड़ा करने के अनन्तर विभु श्रीकृष्ण से राधिका ने क्या पूछा और उन्होंने कौन कथा सुनायी ? कहें ॥१॥

**नारायण बोले**—सुख-सम्भोग से निवृत्त होकर हरि राधा को आगे करके मलयाचल की घाटी में पहुँचकर वटवृक्ष के मनोहर मूल में बैठ गये ॥२॥ वहाँ राधिका ने मन्दहास करते हुए अत्यन्त सुन्दर कृष्ण से वज्रधारी इन्द्र का दर्प-भङ्ग पूछा, जो अतिगुप्त एवं सुनने में प्रिय था ॥३॥

### राधिकोवाच

श्रुतं यशः शूलभृतो दर्पभङ्गश्च दैवतः। पार्वत्या दर्पभङ्गश्च विवाहश्च तयोरहो ॥४॥
अधुना श्रोतुमिच्छामि दर्पभङ्गं हरेर्हरे। शेषाणां च क्रमेणैव वद व्यस्य जगद्गुरो ॥५॥

### श्रीकृष्ण उवाच

दर्पभङ्गं सुरपतेस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्। कर्णपीयूषमतुलं सुन्दरं शृणु सुन्दरि ॥६॥
पुरा शतमखो दर्पात्कृत्वा शतमखान्मुदा। बभूव सर्वदेवानामध्यक्षः संपदा युतः ॥७॥
दिने दिने तदैश्वर्यं वर्धते तपसां फलात्। दीक्षां तं कारयामास सिद्धमन्त्रं बृहस्पतिः ॥८॥
स जजाप महामन्त्रं पुष्करे शतवत्सरम्। बभूव मन्त्रसिद्धश्च परिपूर्णमनोरथः ॥९॥
ब्रह्मस्वरूपां प्रकृतिं संपन्मूढो न मन्यते। सा तं शशाप स्वगुरोः शापं लेभेऽतिकोपतः ॥१०॥
एकदा प्रकृतेः शापाद्धतबुद्धिः स्वसंसदि। गुरुं दृष्ट्वा समुत्थाय न ननाम मदान्वितः ॥११॥
बृहस्पतिस्ततः कोपान्नोवास गृहमाययौ। न तस्थौ तारकाभ्याशे तपसे काननं ययौ ॥१२॥
उवाच मनसा दीनो यातु संपद्धरेरिति। अथ शक्रो मतिं प्राप्य क्व गतोऽतो मदीश्वरः ॥१३॥
इत्युक्त्वा वेगतः पीठाज्जगाम तारकान्तिकम्। प्रणम्य मातरं भक्त्या नतस्कन्धः पुटाञ्जलिः ॥१४॥

---

**राधिका बोलीं**—हरे ! जगद्गुरो ! मैंने शूलपाणि शिव का यश तथा दैववश दर्पभङ्ग की बात सुनी, पार्वती का गर्वभंजन और शिव-पार्वती के विवाह का भी वर्णन सुना। अब इन्द्र के तथा अन्य लोगों के भी अभिमान के चूर्ण होने के प्रसंगों को क्रमशः सुनना चाहती हूँ। विस्तार से बतावें ॥४-५॥

**श्रीकृष्ण बोले**—पति इन्द्र का दर्प मोचन तीनों लोकों में प्रख्यात है। वह प्रसंग सुन्दर, अनुपम तथा कानों के लिए अमृत के समान है, सुनो ॥६॥ पूर्व समय में शतमख इन्द्र ने दर्प से सौ यज्ञों को सम्पन्न करके समस्त देवों का श्री सम्पन्न अध्यक्षपद ग्रहण किया ॥७॥ तपस्या के फलस्वरूप दिन-दिन उनका ऐश्वर्य बढ़ने लगा, बृहस्पति ने सिद्धमन्त्र की उन्हें दीक्षा प्रदान की। उन्होंने पुष्कर क्षेत्र में सौ वर्षों तक इस महामन्त्र का जप किया। जप से मन्त्र सिद्ध हो गया और उनका मनोरथ पूरा हुआ ॥८-९॥ सम्पत्ति से प्रमत्त होनेवाला मूर्ख ब्रह्मस्वरूप प्रकृति का आदर नहीं करता है, अतः प्रकृति ने इन्द्र को शाप दिया। इसीलिए उन्हें अपने गुरु की ओर से भी शाप मिला ॥१०॥ एक बार प्रकृति के शाप से नष्टबुद्धि इन्द्र ने अपनी सभा में गुरु बृहस्पति को देखकर दर्पवश न तो आसन छोड़ा और न नमस्कार ही किया ॥११॥ यह देखकर बृहस्पति रुष्ट हुए और वहाँ न बैठकर अपने घर चले आये। यहाँ भी तारा के पास न ठहरकर वे तप हेतु वन में चले गये ॥१२॥ उन्होंने मन-ही-मन दुःखी होकर कहा—इन्द्र की सम्पत्ति चली जाये। तदनन्तर इन्द्र को सुबुद्धि प्राप्त हुई और वे बोले कि मेरे स्वामी यहाँ से कहाँ चले गये। यों कहकर वेगपूर्वक सिंहासन से उठे और तारा के पास पहुँचे। वहाँ भक्ति से कन्धे झुकाये और हाथ जोड़े उन्होंने माता को प्रणाम किया। फिर समस्त बातों का निवेदन करके वे ऊँचे

सर्वं निवेदनं कृत्वा रुरोदोच्चैर्मुहुर्मुहुः । पुत्रस्य रोदनं दृष्ट्वा रुरोद तारका भृशम् ॥१५॥
वत्स गच्छ गृहं नैव गुरुं द्रक्ष्यसि सांप्रतम् । दुर्दिनान्ते गुरुं प्राप्य पुनर्लक्ष्मीमवाप्स्यसि ॥१६॥
अधुना कर्मणां भोगं भुङ्क्ष्व मूढ दुराशय । दुर्दिने स्वगुरो[1] रोषः सुदिने परितोषणम् ॥१७॥
सुदिनं दुर्दिनं शक्र कारणं सुखदुःखयोः । इत्युक्त्वा तारका देवी विरराम पतिव्रता ॥१८॥
जगाम शक्रः स्नानार्थं स्वर्णद्यां सुमनोहराम् । ददर्श तत्र रुचिरां मार्जन्तीं च नितम्बिनीम् ॥१९॥
सस्मितां सकटाक्षां तामहल्यां गौतमप्रियाम् । दृष्ट्वा च विपुलश्रोणीं स्तनयुग्मं मनोहरम् ॥२०॥
स तस्याः शक्रः संपश्यन्मुमोह काममोहितः । पुनः स चेतनां प्राप्य विहाय स्नानमीश्वरि ॥२१॥
मूर्तिं विधाय तद्भर्तुस्तत्समीपं जगाम ह । गत्वा तु स्निग्धवस्त्रां तां समाकृष्य स्मरातुरः ॥२२॥
चकार विविधं तत्र शृङ्गारं सुमनोहरम् । मूर्च्छां संप्राप कामेन तन्द्रां च मुनिकामिनी ॥२३॥
निश्चेष्टा सुखसंभोगान्निश्चेष्टस्त्रिदशाधिपः । एतस्मिन्नन्तरे तप्त्वा समागत्य मुनीश्वरः ॥२४॥
ददर्श गेहे मिथुनं मैथुने च रतं प्रिये । दृष्ट्वा चुकोप स मुनिर्ज्वलन्निव हुताशनः ॥२५॥
विज्ञानेनातिरोषेण बभञ्ज सुरतिक्षणम् । शक्रः स चेतनां प्राप्य दृष्ट्वा च मुनिपुंगवम् ॥२६॥

---

स्वर से बार-बार रोदन करने लगे। उनको रोते देखकर तारा भी अत्यन्त रोदन करने लगीं ॥१३-१५॥ वह बोली—हे वत्स, घर लौट जाओ, इस समय तुम्हें गुरु का दर्शन नहीं होगा। इस दुर्दिन (बुरे दिन) के समाप्त होने पर ही तुम्हें गुरु मिलेंगे और तभी लक्ष्मी भी पुनः प्राप्त होगी ॥१६॥ हे मूढ़ ! दुष्टचित्त ! अब अपने कर्मों का फल भोग। दुर्दिन में अपने गुरु का क्रोध मिला और सुदिन में सन्तुष्टि मिलेगी ॥१७॥ इन्द्र ! सुदिन और दुर्दिन ही सुख और दुःख के कारण हैं। इतना कहकर पतिव्रता तारा देवी चुप हो गयीं ॥१८॥ तत्पश्चात् इन्द्र स्नान करने के लिए अत्यन्त मनोहर मन्दाकिनी में गये। वहाँ उन्होंने स्नान करती हुई सुन्दरी गौतम-पत्नी को देखा, जो कटाक्षों से देखती हुई मन्द मुस्कान कर रही थी। उसकी विशाल श्रोणी और मनोहर युगल स्तनों को देखकर इन्द्र काममोहित होकर मूर्च्छित हो गये। चेतना आने पर उन्होंने स्नान करना छोड़कर उसके पति (गौतम) का स्वरूप बनाकर उसके पास पहुँच गये। कामातुर इन्द्र ने भीगी धोतीवाली अहल्या को खींचकर विविध प्रकार का श्रृङ्गार सम्भोग किया। उस समय वह मुनिपत्नी भी कामवश अलसायी हुई मूर्च्छित हो गयी ॥१९-२३॥ मुनिपत्नी तथा इन्द्र दोनों सुखसंभोग के कारण चेष्टाहीन हो गये। इसी बीच मुनीश्वर गौतम तप करके आ गये ॥२४॥

प्रिये ! मुनि ने घर में जोड़े को मैथुन में रत देखा। देखकर मुनि प्रज्वलित अग्नि की भाँति क्रुद्ध हो उठे ॥२५॥ तब विशेष ज्ञान से जानकर अत्यन्त क्रोध से उन्होंने सुरति को भंग कर दिया। चेतना

---

१ ख. गुरौ दोषः।

कालस्वरूपं त्रासेन दधार चरणाम्बुजम्। कोपरक्तास्यनयनो देवं पादानतं भिया॥
उवाच नीतिवचनं गौतमः शरणागतम् ॥२७॥

## गौतम उवाच

धिक् त्वामिन्द्र सुरश्रेष्ठ कश्यपात्मज पण्डित ॥२८॥
प्रपौत्र जगतां स्रष्टुर्बुद्धिस्ते कथमीदृशी। मातामहः स्वयं दक्षोऽदितिर्माता पतिव्रता॥२९॥
कर्मसाध्यः स्वभावश्च कुलधर्मं प्रबाधते। वेदं विज्ञाय ज्ञानी त्वं योनिलुब्धोऽसि कर्मणा॥३०॥
योनीनां च सहस्रं च तव गात्रे भवत्विह। पूर्णवर्षं च सततं योनिगन्धं त्वमाप्नुहि॥३१॥
ततः सूर्यं समाराध्य योनिश्चक्षुर्भविष्यति। मम प्राणेश्वरी दुष्टा येन मूढ त्वया कृता॥३२॥
मच्छापेन गुरोः कोपाद्भ्रष्टश्रीर्भव सांप्रतम्। गुरोरपेक्षया मूढ प्राणा नापहृतास्तव॥३३॥
तेजस्विनोऽतिबन्धोर्मे बन्धुभेदभिया सुर। उत्तिष्ठोत्तिष्ठ देवेन्द्र गच्छ वत्स स्वमन्दिरम्॥३४॥
शुभाशुभं च यत्किंचित्सर्वं कर्मोद्भवं भवेत्। महामुनीन्द्रवचनाद्गतः शक्रश्च पुष्करम्॥३५॥
चकाराऽऽराधनं भक्त्या नैष्कृत्यं[1] च चकार ह। पादानता महल्यां तामुवाच मुनिपुंगवः॥३६॥

---

प्राप्त होने पर इन्द्र ने उन मुनि को कालरूप में देखा और भयभीत होकर उनका चरण-कमल पकड़ लिया। क्रोध से लाल मुख और नेत्रवाले गौतम ने भय से चरण पर पड़े हुए शरणागत इन्द्र से नीति की बात कही॥२६-२७॥

**गौतम बोले**—इन्द्र! तुम्हें धिक्कार है। तुम देवश्रेष्ठ, कश्यप के पुत्र, पण्डित और जगत्स्रष्टा ब्रह्मा के प्रपौत्र हो, तो भी तुम्हारी ऐसी (नीच) बुद्धि कैसे हो गयी? तुम्हें धिक्कार है। जिसके नाना साक्षात् प्रजापति दक्ष हैं और माता पतिव्रता अदिति हैं, उसका इतना पतन आश्चर्य की बात है। तुम वेद का ज्ञान प्राप्त करके ज्ञानी कहलाते हो, किन्तु कर्म से योनि के लोभी हो। इसलिए तुम्हारे शरीर में सहस्र भग हो जायँ और पूरे वर्ष तक तुम्हें निरन्तर योनि की गन्ध मिलती रहे। पश्चात् सूर्य की आराधना करने पर योनि नेत्ररूप में परिणत हो जायगी। हे मूढ़! जिस कारण तुमने मेरी प्राणेश्वरी को दूषित किया है, इसलिए मेरे शाप से और गुरु के क्रोध से इस समय तुम राज्य-लक्ष्मी से भ्रष्ट हो जाओ। हे मूढ़! गुरु की अपेक्षा के कारण ही मैंने तुम्हारे प्राणों का अपहरण नहीं किया। क्योंकि वे तेजस्वी और मेरे परम बन्धु हैं। हम दोनों में फूट न पड़ जाय, इस भय से मैं छोड़ रहा हूँ। अतः वत्स देवेन्द्र! उठो और अपने घर जाओ। शुभ-अशुभ जो भी कुछ होता है, वह सब कर्म से ही उत्पन्न होता है। महामुनिराज के कहने से इन्द्र पुष्कर क्षेत्र को चले गये॥२८-३५॥ वहाँ जाकर भक्तिपूर्वक आराधना द्वारा इन्द्र ने इसका प्रायश्चित्त किया। उस समय चरण पर पड़ी हुई अहल्या से भी

---

१ क. नैरुज्यं च।

वनं गत्वा चिरं तिष्ठ विधाय मूर्तिमश्मनः। अकामां चकमे शक्रः सर्वं जानाम्यहं प्रिये ॥३७॥
तथा च (ऽपि) परभोग्या मे न च भोग्या व्रजाधमे। परवीर्यं यदुदरे कामतोऽकामतोऽपि वा ॥३८॥
अहल्ये याति दैवेन तदुपायं निशामय। अकामतो न दुष्टा सा प्रायश्चित्तेन शुध्यति ॥३९॥
कामभोगेन त्याज्या सा कर्मभोगेन शुध्यति। पितृपाके देवपाके पूजायां नाधिकारिणी ॥४०॥
षष्टिवर्षसहस्राणि कालसूत्रं प्रयाति सा। षष्टिवर्षसहस्राणि क्षयं कृत्वा स्वकर्मणः ॥४१॥
स्वामिनो वचनात्सा तु प्रणम्य स्वामिनं भिया। नाथ नाथेति कुर्वन्ती रुदन्ती वनमाप सा ॥४२॥
षष्टिवर्षसहस्राणि भुक्त्वा भोगं मुनिप्रिया। श्रीरामचरणस्पर्शात्सद्यः शुद्धा बभूव ह ॥४३॥
त्रैलोक्यमोहनं रूपं विधाय मुनिकामिनी। जगाम गौतमाभ्याशं मुनिः संप्राप्य (प) सुन्दरीम् ॥४४॥
अथ शक्रस्य वृत्तान्तं परमं शृणु सुन्दरि। पापघ्नं पुण्यबीजं तत्संव्यस्य कथयामि ते ॥४५॥
एकदा च गुरोः कोपात्प्रकृतेरवहेलनात्। ब्रह्महत्या वज्रभृतो बभूव हृतचेतसः ॥४६॥
शक्रस्त्यक्तगुरुर्दैवग्रस्तो दैत्यनिपीडितः। जगाम शरणं भीतो ब्रह्माणं जगतां गुरुम् ॥४७॥
तदाज्ञया विश्वरूपं चकार च पुरोहितम्। बभूव तत्र विश्वस्तो दैवाद्बुद्धिहतो हरिः ॥४८॥

---

मुनिवर (गौतम) ने कहा—प्रिये ! तुम्हारी इच्छा के बिना ही इन्द्र ने तुम्हारा उपभोग किया है। तुम वन में जाकर अपनी पत्थर मूर्ति बनाकर वहाँ रहो। मैं सब जानता हूँ। तो भी दूसरे से उपभोग कराने के नाते तू अधम हो गयी है, मेरे उपभोग के योग्य नहीं रही। अहल्ये ! स्त्री की इच्छा रहे या न रहे—दैवयोग से चाहे जिस प्रकार दूसरे पुरुष का वीर्य उसके गर्भस्थल में यदि चला जाता है तो उसका शुद्धि-उपाय बता रहा हूँ, सुनो। अनिच्छया उपभोग कराने से वह स्त्री दूषित नहीं होती, अपितु प्रायश्चित्त द्वारा शुद्ध हो जाती है ॥३६-३८॥ सकाम उपभोग कराने से वह त्याज्य है और उसकी शुद्धि, कर्म के भोगकर लेने पर ही होती है। देवयज्ञ, पितृयज्ञ और पूजा में वह अधिकारिणी नहीं रह जाती ॥३९-४०॥ वह साठ सहस्र वर्षों तक कालसूत्र नामक नरक में पड़ी रहती है। फिर उतने दिनों में अपने किये कर्म का क्षय करके वह शुद्ध होती है ॥४१॥ स्वामी (गौतम) के वचन से भयभीत होकर उसने मुनि को प्रणाम किया और 'हा नाथ, हा नाथ' कहकर रोती हुई वह वन में चली गयी ॥४२॥ साठ हजार वर्षों तक वह मुनिपत्नी कर्म-भोग भोग लेने के उपरांत श्रीरामचन्द्र के चरणस्पर्श से तुरन्त शुद्ध हो गयी ॥४३॥ तब अपना त्रैलोक्यमोहन रूप प्राप्त करके वह मुनि-पत्नी पुनः गौतम के यहाँ आयी तथा उन्होंने उस सुन्दरी को सहर्ष अपनाया ॥४४॥ सुन्दरि ! अब मैं तुमसे इन्द्र का परमोत्तम वृतान्त कहूँगा जो पापनाशक एवं पुण्य का बीज है ॥४५॥

एक बार गुरु के कोप और प्रकृति की अवहेलना से वज्रधारी इन्द्र की विवेक-शक्ति नष्ट हो गयी थी, अतः उनसे ब्रह्महत्या का पाप बन गया ॥४६॥ गुरु द्वारा व्यक्त, दुर्दैव (दुर्भाग्य) से ग्रस्त और दैत्यों से अति-पीड़ित इन्द्र भयभीत होकर जगद्गुरु ब्रह्मा की शरण में गये ॥४७॥ ब्रह्मा की आज्ञा से उन्होंने विश्वरूप को पुरोहित बनाया और यज्ञारम्भ किया। दुर्दैववश बुद्धि के नष्ट हो जाने के कारण इन्द्र ने विश्वरूप पर भी

दैत्यदौहित्रस्य भावं विज्ञाय च विचक्षणः । प्रचिच्छेद शिरस्तस्य तीक्ष्णबाणेन लीलया ॥४९॥
विश्वरूपपिता त्वष्टा श्रुत्वा सद्यश्चुकोप ह । इन्द्रशत्रो[1] विवर्धस्वेत्युक्त्वा यज्ञं चकार ह ॥५०॥
यज्ञकुण्डात्समुत्तस्थौ वृत्रो नाम महासुरः । चकार निग्रहं कोपाद्देवानामवलीलया ॥५१॥
शक्रो महामुनेरस्थ्नां वज्रं कृत्वा सुदारुणम् । जघान वृत्रं देवानां कण्टकं दैत्यमर्दनः ॥५२॥
ब्रह्महत्या शुनासीरं दुद्राव हतचेतनम् । रक्तवस्त्रपरीधाना [2]वृद्धस्त्रीवेषधारिणी ॥५३॥
सप्ततालप्रमाणा सा शुष्ककण्ठोष्ठतालुका । ईषाप्रमाणदशना महाभीतं चकार तम् ॥५४॥
धावन्तं परि (मनु) धावन्ती बलिष्ठा हतचेतनम् । खड्गहस्ता दयाहीना वेगेन परिधावति ॥५५॥
इन्द्रो दृष्ट्वा च तां घोरां स्मारं स्मारं गुरोः पदम् । विवेश मानससरो मृणालसूक्ष्मसूत्रतः ॥५६॥
तत्र गन्तुं न शक्ता सा ब्रह्मणः शापकारणात् । सा तस्थौ वटशाखायां सरसस्तटसंनिधौ ॥५७॥
अथात्र नहुषो भूपस्त्रिलोकेशो बभूव ह । स ययाचे शचीं देवान्बलिष्ठो दुर्बलानपि ॥५८॥
शची श्रुत्वा महाभीता तारकां शरणं ययौ । तारा निर्भर्त्स्य स्वपतिं भृत्यपत्नीं ररक्ष च ॥५९॥

---

पूरा-पूरा विश्वास कर लिया ॥४८॥ पश्चात् दैत्य के नाती (विश्वरूप) का (दुष्ट) भाव समझकर विद्वान् इन्द्र ने उसके सिर को तीक्ष्ण बाण से लीलापूर्वक काट लिया, जिसे सुनकर उसका पिता त्वष्टा तुरन्त क्रुद्ध हो गया और बोला--'हे इन्द्रशत्रो ! (इन्द्र के शत्रु) वृद्धि को प्राप्त करो' ऐसा कहकर यज्ञ सम्पन्न किया ॥४९-५०॥ उस यज्ञकुण्ड से वृत्र नामक एक महान् असुर प्रकट हुआ। उसने समस्त देवों पर लीलापूर्वक अपना अधिकार जमा लिया ॥५१॥ तब दैत्यमर्दक इन्द्र ने महामुनि (दधीचि) की अस्थियों का अतिभीषण वज्र बनाकर उससे देवकण्टक वृत्र को मार दिया ॥५२॥ किन्तु चेतनाहीन इन्द्र के पीछे ब्रह्महत्या लग गयी । वह (ब्रह्महत्या) रक्तवस्त्र पहने हुई थी । उसका वेश बूढ़ी स्त्री का था । उसके शरीर की ऊँचाई सात ताड़ों के बराबर थी तथा कंठ, ओठ एवं तालू सूखे हुए थे । उसके दांत हरिस के समान लंबे थे । उसने इन्द्र को बहुत डरा दिया ॥५३-५४॥ इन्द्र जब दौड़ते थे तो उनके पीछे-पीछे वह भी दौड़ती थी । ब्रह्महत्या बलिष्ठ थी और इन्द्र अपनी चेतना तक खो बैठे थे । उसका स्वभाव निर्दय था और वह हाथ में तलवार लेकर बड़े वेग से दौड़ रही थी । उस घोर ब्रह्महत्या को देखकर गुरु के चरणों का स्मरण करते हुए वे कमलनाल के सूक्ष्मसूत्र के सहारे मानसरोवर में प्रविष्ट हो गये ॥५५-५६॥ ब्रह्महत्या, ब्रह्मा के शापके कारण वहाँ नहीं जा सकती थी, इसलिए सरोवर के तटवर्ती वटवृक्ष की एक शाखा पर वह जा बैठी ॥५७॥ उन दिनों राजा नहुष तीनों लोकों के अधीश्वर बनाये गये । नहुष बलिष्ठ थे और देवता दुर्बल । अतः इन्द्रपद पर प्रतिष्ठित हुए नहुष ने देवताओं से यह माँग की कि इन्द्राणी शची मुझ इन्द्र की सेवा के लिए उपस्थित हो ॥५८॥ शची यह सुनकर भयभीत हुई और तारा देवी की शरण में गयी । तारा ने अपने पति को डाँट-फटकारकर उनके द्वारा भृत्यपत्नी (शची) की रक्षा करायी

---

१ क. 'शत्रुर्वर्धतामित्यु' । २ ख. स्त्री' ।

शचीमाश्वास्य स गुरुर्जगाम तत्सरो मुदा । आजुहाव शुनासीरं कातरं हतचेतनम् ॥६०॥

### बृहस्पतिरुवाच

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ हे वत्स भयं किं ते मयि स्थिते । त्वदीश्वरं स्वरेणैव निशामयभयं त्यज ॥६१॥
स्वरं बृहस्पतेर्ज्ञात्वा सर्वसिद्धीश्वरो हरिः । सूक्ष्मरूपं परित्यज्य स्वरूपं च दधार सः ॥६२॥
उत्थाय सद्यः संभ्रान्तो गुरुं तं सूर्यवर्चसम् । दृष्ट्वा ननाम संप्रीत्या संप्रीतं त्यक्तकोपकम् ॥६३॥
पादाम्बुजे निपतितं रुदन्तं भयविह्वलम् । निधाय वक्षसि प्रेम्णा रुरोद प्रेमविह्वलः ॥६४॥
रुदन्तं वाक्पतिं तुष्टं तुष्टाव त्रिदशेश्वरः । पुटाञ्जलिः पुलकितो भक्तिनम्रात्मकंधरः ॥६५॥

### इन्द्र उवाच

क्षमस्व भगवन्दोषं कृपां कुरु कृपानिधे । भृत्यापराधं सततं न गृह्णाति सदीश्वरः ॥६६॥
स्वभार्यासु स्वशिष्येषु स्वभृत्येषु सुतेषु च । दुर्बलः सबलो वाऽपि को दण्डं कर्तुमक्षमः ॥६७॥
त्रिषु कोटिषु देवेषु देवकोऽहमपण्डितः । त्वत्प्रसादात्सुरश्रेष्ठ कृपया वर्धितस्त्वया ॥६८॥
संहर्तुमीशस्त्वं सर्वमहं को वाऽपि कीटवत् । स्वयं विधातुः पौत्रश्च पुनः स्रष्टुं स्वयं क्षमः ॥६९॥

---

॥५९॥ गुरु ने शची को आश्वासन देकर प्रसन्नता से मानसरोवर गये और चेतनाहीन एवं कातर इन्द्र को बुलाने लगे ॥६०॥

**बृहस्पति बोले**——वत्स ! उठो-उठो ! मेरे रहते तुम्हें भय क्या है ? स्वर (आवाज) से ही पहचान लो मैं तुम्हारा गुरु हूँ, निर्भय होकर चले आओ ॥६१॥ बृहस्पति के स्वर को पहचानकर समस्त सिद्धियों के अधीश्वर इन्द्र ने सूक्ष्मरूप के त्यागपूर्वक अपना रूप धारण किया और सहसा उठकर सूर्य के समान तेजस्वी गुरु का दर्शन किया, जो कोप त्यागकर अति प्रसन्न थे । अत्यन्त प्रेम से उन्हें प्रणाम करके उनके चरण-कमल पर गिरकर रोदन करने लगे । प्रेमविभोर होकर गुरु भी भयाकुल इन्द्र को प्रेम से उठाकर हृदय से लगा लिया और स्वयं भी रोदन करने लगे । बृहस्पति को सन्तुष्ट तथा रोते हुए देखकर देवेश्वर इन्द्र का अंग-अंग पुलकित हो उठा । भक्तिभाव से उनका मस्तक झुक गया और वे हाथ जोड़कर उनकी स्तुति करने लगे ॥६२-६५॥

**इन्द्र बोले**——भगवन् ! कृपानिधे ! मेरा अपराध क्षमा करें, मुझ पर कृपा करें । सज्जन स्वामी सेवक के अपराध पर ध्यान नहीं देते ॥६६॥ अपनी पत्नी, अपने शिष्य, अपने सेवक और पुत्रों को दण्ड देने में दुर्बल या सबल कौन मनुष्य असमर्थ होता है ? ॥६७॥ तीन करोड़ देवों में मैं ही एक अपण्डित (मूढ़) देव हूँ, किन्तु हे सुरश्रेष्ठ ! अपनी प्रसन्नता से आपने कृपा करके मेरा संवर्द्धन किया है । आप सबका संहार करने के लिए समर्थ हैं । कीड़े की भाँति मैं कौन हूँ (अर्थात् मेरी क्या गणना है) ? आप स्वयं विधाता ब्रह्मा के पौत्र हैं

इति तस्य स्तवं श्रुत्वा परितुष्टो गुरुः स्वयम् । उवाच वचनं प्रीत्या प्रसन्नवदनेक्षणः ॥७०॥

गुरुरुवाच

स्थिरो भव महाभाग निश्चलां कमलां लभ । संप्राप्य परमैश्वर्यं पूर्वस्माच्च चतुर्गुणम् ॥७१॥
गच्छामरावतीं वत्स राज्यं कुरु पुरंदर । हतशत्रुर्मत्प्रसादाद्गत्वा पश्य शचीं सतीम् ॥७२॥
इत्येवमुक्त्वा स गुरुः सशिष्यो गन्तुमुद्यतः । ददर्श पुरतो घोरां ब्रह्महत्यां सुदुःसहाम् ॥७३॥
दृष्ट्वा शक्रो महाभीतस्तं गुरुं शरणं ययौ । बृहस्पतिर्महाभीतः सस्मार मधुसूदनम् ॥७४॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र वाग्बभूवाशरीरिणी । स्वल्पाक्षरा च बह्वर्था तां शुश्राव बृहस्पतिः ॥७५॥
संसारविजयं नाम सर्वाशुभविनाशनम् । राधिकाकवचं दत्त्वा शिष्यं रक्षाधुनेति च ॥७६॥
तदा त्वत्कवचं दत्त्वा शिष्याय शिष्यवत्सलः । चकार भस्मसात्तां च हुंकारेणैव लीलया ॥७७॥
तदा शिष्यं गृहीत्वा च गत्वा साममरावतीम् । ददर्श च्छिन्नभग्नां च शत्रुणा वचनाद्गुरोः ॥७८॥
भर्तुरागमनं श्रुत्वा शची संहृष्टमानसा । प्रणम्य च गुरुं भक्त्या स्वकान्तं प्रणनाम सा ॥७९॥
श्रुत्वाऽऽगमनमिन्द्रस्य समाजग्मुः सुराः प्रिये । ऋषयो मुनयश्चैव हर्षगद्गदमानसाः ॥८०॥
योजयामास सत्कारुं निर्मातुममरावतीम् । पूर्णमब्दशतं शिल्पी निर्ममे रुचिरां पुरीम् ॥८१॥

---

और इस (जगत्) की सृष्टि करने में स्वयं समर्थ हैं। इस प्रकार उनकी स्तुति सुनकर गुरु बृहस्पति अति सन्तुष्ट हुए और मुख-नेत्र से प्रसन्नता प्रकट करते हुए प्रेम से बोले ॥६८-७०॥

**गुरु ने कहा**—महाभाग ! सुस्थिर होओ और निश्चल लक्ष्मी को प्राप्त करो। वत्स पुरन्दर ! पहले से चौगुना अधिक महान् ऐश्वर्य प्राप्तकर अमरावती जाओ और राज्य करो मेरे प्रसाद से तुम्हारे शत्रु नष्ट हो जायेंगे। तुम जाकर पतिव्रता शची से मिलो ॥७१-७२॥ इस प्रकार कहकर गुरु शिष्य समेत ज्यों चलने को तैयार हुए कि सामने भीषण एवं सुदुःसह ब्रह्महत्या दिखायी पड़ी। उसे देखकर इन्द्र महाभयभीत हुए और गुरु की शरण में गये। उस समय बृहस्पति ने अतिभयभीत होकर भगवान् मधुसूदन का स्मरण किया, इतने में वहाँ आकाशवाणी हुई, जो परिमित अक्षरों में बहुत अर्थों से परिपूर्ण थी, उसे बृहस्पति ने सुना ॥७३-७५॥ (उसने कहा) सभी प्रकार के अमंगलों का नाश करनेवाला संसारविजय नामक राधाकवच (अपने) शिष्य को देकर इस समय बचाओ ॥७६॥ तब शिष्यवत्सल गुरु ने शिष्य इन्द्र को वह तुम्हारा कवच प्रदान किया और उस (ब्रह्महत्या) को हुंकार से ही भस्म कर दिया ॥७७॥ उसके बाद शिष्य को लेकर गुरु ने अमरावती (इन्द्रपुरी) जाकर देखा कि वह शत्रु के द्वारा छिन्न-भिन्न कर दी गयी है ॥७८॥ पति का आगमन सुनकर शची अत्यन्त हर्षित हुई। उसने भक्तिभाव से गुरु को प्रणाम करके अपने पति को प्रणाम किया ॥७९॥ अनन्तर इन्द्र का आगमन सुनकर देवगण, ऋषिवृन्द और मुनि लोग हर्ष से गद्गद होकर वहाँ आये ॥८०॥ अमरावती का निर्माण करने के लिए श्रेष्ठ शिल्पी (विश्वकर्मा) को नियुक्त किया गया। शिल्पी

नानारत्नविचित्राढ्यां मणिरत्नेन्द्रनिर्मिताम् । मनोहरां निरुपमां न हि तुष्टो यया हरिः ॥८२॥
विश्वकर्मा गृहं गन्तुं न शशाक विनाऽऽज्ञया । परमोद्विग्नचित्तश्च ब्रह्माणं शरणं ययौ ॥८३॥
विज्ञाय तदभिप्रायं तमुवाच विधिः स्वयम् । तव कर्मक्षयादेव तावच्छ्वो भवितेति च ॥८४॥
श्रुत्वा तद्वचनं कारुः शीघ्रं प्रापामरावतीम् । ब्रह्मा जगाम वैकुण्ठं प्रणम्योवाच मातरम् ॥८५॥
हरिर्ब्रह्माणमाश्वास्य प्रस्थाप्य स्वगृहं च तम् । विप्ररूपं समास्थाय चाऽऽजगामामरावतीम् ॥८६॥
दण्डी छत्री शुक्लवासा बिभ्रत्तिलकमुज्ज्वलम् । अतिखर्वः शुक्लदन्तः सस्मितः सुमनोहरः ॥८७॥
वयसाऽतिशिशुर्बुद्धया ज्ञानवृद्धाद्विचक्षणः । स्वयं विधातुर्धाता च दाता च सर्वसंपदाम् ॥८८॥
इन्द्रद्वारे समुत्तिष्ठन्द्वारपालमुवाच ह । ब्रूहीदं ब्राह्मणो द्वारे शीघ्रं त्वां द्रष्टुमागतः ॥८९॥
इत्येवं वचनं श्रुत्वा द्वारि ज्ञानं चकार तम् । स च शीघ्रं समागम्य ददर्श ब्राह्मणार्भकम् ॥९०॥
बालकानां बालिकानां समूहैः परिवेष्टितम् । हसद्भिश्च महोत्साहात्सस्मितं तेजसाऽन्वितम् ॥९१॥
प्रणनाम हरिर्भक्त्या तं हरिं शिशुरूपिणम् । आशिषं युयुजे प्रीत्या तं हरिर्भक्तवत्सलः ॥९२॥
मधुपर्कादिकं दत्त्वा शक्रः पूजां चकार तम् । पप्रच्छाऽऽगमनं कस्माद्वदेति विप्रबालकम् ॥९३॥
इन्द्रस्य वचनं श्रुत्वा तमुवाच द्विजार्भकः । मेघगम्भीरया वाचा बृहस्पतिगुरोर्गुरुः ॥९४॥

---

पूरे सौ वर्षों में मनोहरपुरी की रचना की ॥८१॥ वह अनेक भाँति के रत्नों से अति विचित्र, मणि और रत्नेन्द्रों से सुरचित, मनोहर एवं अनुपम थी, किन्तु उससे इन्द्र को सन्तोष नहीं हुआ ॥८२॥ इधर बिना उनकी आज्ञा के विश्वकर्मा घर नहीं जा सकते थे, इससे वे अत्यन्त खिन्नमन होकर ब्रह्मा की शरण में गये ॥८३॥ उनका अभिप्राय समझकर ब्रह्मा ने स्वयं उनसे कहा—तुम्हारे (प्रतिरोधक) कर्म के क्षीण होने पर ही कल तुम्हें छुटकारा मिलेगा। उनकी बात सुनकर विश्वकर्मा पुनः अमरावती लौट आये और ब्रह्मा जी वैकुण्ठ चले गये। वहाँ माता (पिता श्रीहरि) को प्रणाम करके उनसे (विश्वकर्मा-सम्बन्धी) बात कही ॥८४-८५॥ भगवान् ने ब्रह्मा को आश्वासन देकर उन्हें उनके घर भेज दिया और स्वयं ब्राह्मण-वेश बनाकर अमरावती पहुँचे। वे दण्ड, छत्र से युक्त, शुक्ल वस्त्र एवं समुज्ज्वल तिलक धारण किये, अतिवामनरूप एवं शुक्ल दाँतवाले तथा मन्दहास करते हुए अतिमनोहर थे। वे अवस्था में अतिबालक थे किन्तु बुद्धि में ज्ञानवृद्ध से भी अधिक विलक्षण थे, वे स्वयं ब्रह्मा के ब्रह्मा तथा समस्त सम्पत्ति के प्रदाता थे ॥८६-८८॥ उन्होंने इन्द्र के दरवाजे पर पहुँचकर द्वारपाल से कहा—'तुम (इन्द्र से) कहो, तुम्हारे दर्शनार्थ दरवाजे पर कोई ब्राह्मण आया है' ॥८९॥ द्वारपाल ने उनकी बात सुनकर इन्द्र को सूचना दी और इन्द्र शीघ्र आकर ब्राह्मणकुमार से मिले ॥९०॥ हँसते हुए बालक-बालिकाओं के समूह उन्हें घेरकर खड़े थे। वे बड़े उत्साह से मुसकरा रहे थे और उनका स्वरूप अत्यन्त तेजस्वी जान पड़ता था ॥९१॥ इन्द्र ने बालकरूपी हरि को भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और भक्तवत्सल भगवान् ने भी बड़े प्रेम से उन्हें शुभाशिष प्रदान किया ॥९२॥ इन्द्र ने मधुपर्क आदि देकर उसकी पूजा की और विप्र बालक से पूछा—'आपका आगमन कैसे हुआ ?' ॥९३॥ इन्द्र की बात सुनकर उस ब्राह्मण-बालक ने, जो बृहस्पति के गुरु के भी गुरु थे, मेघ की भाँति गम्भीर वाणी में कहा ॥९४॥

### ब्राह्मण उवाच

समागतोऽहं त्वां द्रष्टुं प्रष्टुं वचनमीप्सितम् । चित्रं नगरनिर्माणं समाकर्ण्याद्‌भुतं हरे ॥९५॥
कतिवर्षं च निर्माणे भवान्संकल्पितो यथा । कतिचित्तां विश्वकर्मा निर्माणं वा करिष्यति ॥९६॥
एवंभूतं च निर्माणं न केनेन्द्रेण निर्मितम् । नैवंविधसुनिर्माणे विश्वकर्मा परः क्षमः ॥९७॥
बालकस्य वचः श्रुत्वा जहास स सुरेश्वरः । संपन्मदातिमत्तश्च पुनः पप्रच्छ बालकम् ॥९८॥
कतीन्द्राणां समूहैश्च त्वया दृष्टः श्रुतोऽथवा । विश्वकर्मा कतिविधस्तं मे ब्रूहि शिशोऽधुना ॥९९॥
शक्रस्य वचनं श्रुत्वा प्रहस्य विप्रबालकः । तमुवाच श्रुतिसुखं पीयूषसदृशं वचः ॥१००॥

### ब्राह्मण उवाच

जानामि कश्यपं तात तव तातं प्रजापतिम् । मुनिं मरीचिनामानं तत्तातं च तपोनिधिम् ॥१०१॥
नाभिपद्मोद्भवं विष्णोः स्तुत्वा तं विधिमीश्वरम् । रक्षितारं च तं विष्णुं परं सत्त्वगुणान्वितम् ॥१०२॥
एकार्णवं च प्रलयं सत्त्वशून्यं भयानकम् । सृष्टिं कतिविधां शक्र कल्पं कतिविधं ध्रुवम् ॥१०३॥
ब्रह्माण्डं च कतिविधं ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् । ब्रह्माण्डेषु कतिविधानिन्द्रान्को गन्तुमीश्वरः ॥१०४॥

---

**ब्राह्मण बोला**—हे हरे ! मैं तुम्हारे दर्शन के लिए और इस अद्‌भुत नगर का निर्माण सुनकर इसके विषय में कुछ अभीष्ट बातें पूछने के लिए भी आया हूँ ॥९५॥ इस नगर-निर्माण की योजना में आपने कितने वर्ष लगाने का संकल्प किया है ? अथवा विश्वकर्मा कितने वर्षों में इसका निर्माण पूर्ण करेंगे ? ॥९६॥ इस प्रकार का निर्माण किसी भी इन्द्र ने नहीं किया। इस प्रकार के सुन्दर निर्माण में दूसरा विश्वकर्मा समर्थ भी नहीं है ? ॥९७॥ बालक की बात सुनकर सम्पत्ति के मद में अति प्रमत्त होनेवाले सुरराज इन्द्र हँस पड़े और पुनः उस बालक से पूछने लगे ॥९८॥ शिशो ! तुमने कितने इन्द्रों के समूहों को देखा या सुना है ? अथवा कितने प्रकार के विश्वकर्मा आपके देखने-सुनने में आये हैं ? यह मुझे इस समय बताइये ॥९९॥ इन्द्र की बात सुनकर उस ब्राह्मण-बालक ने हँसकर इन्द्र से अमृत के समान मधुर एवं श्रवणसुखद वचन कहा ॥१००॥

**ब्राह्मण बोला**—मैं तुम्हारे पिता प्रजापति कश्यप को जानता हूँ। उनके पिता तपोनिधि एवं मरीचिमुनि से भी परिचित हूँ ॥१०१॥ विष्णु के नाभि-कमल से उत्पन्न मरीचि के पिता देवेश्वर ब्रह्मा को भी जानता हूँ और उनके रक्षक सत्त्वगुणशाली महाविष्णु का भी परिचय रखता हूँ ॥१०२॥ मुझे एकार्णव प्रलय का भी ज्ञान है, जो जीवशून्य एवं भयानक दिखायी देता है। इन्द्र निश्चय ही सृष्टि कई प्रकार की है। कल्प भी अनेक हैं तथा ब्रह्माण्ड भी कितने ही प्रकार के हैं। उन ब्रह्माण्डों में ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर और इन्द्र जितने हो चुके हैं उनकी गणना कौन कर सकता है ? (किन्तु मैं सब कुछ जानता हूँ) ॥१०३-१०४॥ हे

यदि संख्याऽस्ति रेणूनां धरायां च सुराधिप। तथाऽपि संख्या शक्राणां नास्त्येवेति विदुर्बुधाः ॥१०५॥
शक्रस्याऽऽयुश्चाधिकारो युगानामेकसप्ततिः। अष्टाविंशतिशक्राणां पतनेऽहर्निशं विधेः ॥१०६॥
विधेरष्टोत्तरशतमायुरेव[1] प्रमाणतः। सुरेन्द्राणां च का संख्या नास्ति संख्या विधेरपि ॥१०७॥
ब्रह्माण्डसंख्या यत्र क्व ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। महाविष्णोर्लोमकूपोद्भवे तोये सुनिर्मले ॥१०८॥
ब्रह्माण्डेऽस्ति यथा नौका भवतोये च कृत्रिमा। एवं लोम्नः प्रमाणेन ब्रह्माण्डाः सन्त्यसंख्यकाः ॥१०९॥
ब्रह्माण्डे च कतिविधाः सुराः सन्त्येव त्वत्समाः। एतस्मिन्नन्तरे तत्र ददर्श पुरुषोत्तमः ॥११०॥
पिपीलिकासमूहं च व्यायतं धनुषां शतम्। क्रमशस्तान्संनिरीक्ष्य जहासोच्चैर्द्विजार्भकः ॥१११॥
नोवाच किंचिन्मौनी च गम्भीरः सागरो यथा। दृष्ट्वा हास्यं विप्रबटोर्गाथां श्रुत्वाऽतिविस्मितः
पप्रच्छ च पुनर्विप्रं शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः ॥११२॥

## इन्द्र उवाच

कथं हससि विप्रेन्द्र मां शीघ्रं कारणं वद। त्वं वा को माययाच्छन्नः शिशुरूपी गुणार्णवः ॥११३॥

---

हे सुरश्रेष्ठ ! भूतल के धूलिकणों की गणना नहीं कर ली जाय तो भी इन्द्रों की गणना नहीं हो सकती है, ऐसा विद्वानों का मत है ॥१०५॥ इन्द्र की आयु और अधिकार इकहत्तर चतुर्युग तक है। अट्ठाईस इन्द्रों का पतन हो जाने पर विधाता का एक दिन-रात पूरा होता है ॥१०६॥ इस प्रकार एक सौ आठ वर्षों तक ब्रह्मा की सम्पूर्ण आयु है जहाँ विधाता की भी संख्या नहीं है, वहाँ देवेन्द्रों की गणना क्या हो सकती है ? ॥१०७॥ जहाँ ब्रह्माण्डों की संख्या ज्ञात नहीं होती वहाँ ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश की क्या गणना हो सकती है ? महाविष्णु के लोमकूपजनित उस निर्मल जल में ब्रह्माण्ड की स्थिति उसी तरह है जैसे सांसारिक नदी-नद आदि के जल में कृत्रिम नौका की हुआ करती है। इस प्रकार महाविष्णु के शरीर में जितने रोएँ हैं उतने ब्रह्माण्ड हैं, अतएव ब्रह्माण्ड असंख्य कहे गये हैं ॥१०८-१०९॥ एक-एक ब्रह्माण्ड में तुम्हारे जैसे कितने ही देवता निवास करते हैं। इसी बीच पुरुषोत्तम (हरि) ने चींटियों के समूह को देखा जो सौ धनुष की दूरी तक फैला हुआ था। क्रमशः उन सबको देखकर ब्राह्मण-बालक ऊँचे स्वर से (ठठाकर) हँस पड़ा; किन्तु कुछ बोला नहीं। मौन होकर सागर के समान गम्भीर बना रहा। ब्राह्मण-वटुक का हास्य देखकर और उसकी गाथा सुनकर इन्द्र को महान् आश्चर्य हुआ। उनके कंठ, ओंठ और तालू सूख गये। फिर उन्होंने ब्राह्मण से पूछा ॥११०-११२॥

इन्द्र बोले--विप्रवर ! तुम क्यों हँस रहे हो ? इसका कारण मुझे शीघ्र बताओ। अथवा माया से आच्छन्न एवं गुणों के सागर तुम शिशु रूप में कौन हो ? ॥११३॥ इन्द्र की बात सुनकर ब्राह्मण-बालक

---

१ क. °रेवं प्र०।

इन्द्रस्य वचनं श्रुत्वा तमुवाच द्विजार्भकः। आध्यात्मिकं नीतिसारं ज्ञानबीजं परं वचः ॥११४॥

### ब्राह्मण उवाच

दृष्टः पिपीलिकासंघो हेतुरस्य निगूढकः। मा मां पृच्छ शोकबीजं तव चाज्ञानकारणम् ॥११५॥
सांसारिकाणां संसारवृक्षमूलनिकृन्तनम्। अज्ञानतमसि च्छन्नं ज्ञानदीपमनुत्तमम् ॥११६॥
निगूढं सर्ववेदेषु सिद्धानामपि दुर्लभम्। योगिनां प्राणतुल्यं च मूढाहंकारभञ्जनम् ॥११७॥
इत्युक्त्वा तत्र संतस्थौ सस्मितो द्विजपुंगवः। पुनः पप्रच्छ शक्रस्तं शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः ॥११८॥

### शक्र उवाच

ब्रूहि विप्रवटो शीघ्रं ज्ञानदीपं पुरातनम्। न जानामि शिशुः कस्त्वं ज्ञानराशिः स्वमूर्तिमान् ॥११९॥
इन्द्रस्य वचनं श्रुत्वा विप्ररूपी जनार्दनः। ज्ञानं भाषितुमारेभे योगीन्द्राणां सुदुर्लभम् ॥१२०॥

### ब्राह्मण उवाच

सृष्टः पिपीलिकासंघ एकैकः[1] क्रमशो मया। सर्वे स्वकर्मणा शक्र शक्रीभूताः सुरालये ॥१२१॥
अधुना कर्मणा सर्वे क्रमशो भूतजन्मनाम्। अतीतकाले संप्राप्ता भूतजातिं पिपीलिकाम् ॥१२२॥

---

ने उनसे आध्यात्मिक, नीति का सारभाग एवं ज्ञान का बीजरूप उत्तम वचन कहा ॥११४॥

**ब्राह्मण बोला**—मैं इन चींटियों के समूहों को देख रहा था। इसका कारण अत्यन्त गूढ़ है। तुम अपने अज्ञान का कारण तथा शोक का बीज मुझसे मत पूछो ॥११५॥ यह संसारी जीवों के लिए उनके संसाररूपी वृक्ष के मूल का नाशक, अज्ञानरूपी अंधकार में ढका हुआ, परमोत्तम ज्ञानदीप, समस्त वेदों में निगूढ़, सिद्धों के लिए भी दुर्लभ, योगियों के प्राणतुल्य और मूढ़ों के अहंकार का विनाशक है ॥११६-११७॥ इतना कहकर वह ब्राह्मण वहाँ मुसकराता हुआ चुप हो गया। सूखे कंठ, ओंठ एवं तालुवाले इन्द्र ने पुनः उनसे पूछा ॥११८॥

**शक्र बोले**—ब्राह्मण-बालक मुझे यह प्राचीन ज्ञानदीप शीघ्र बताओ। ज्ञान-राशि एवं स्वमूर्तिमान् तुम शिशुरूप में कौन हो, यह मैं नहीं जान पा रहा हूँ। इन्द्र की बात सुनकर ब्राह्मणरूपी जनार्दन ने योगिराजों के लिए भी दुर्लभ ज्ञान के विषय में भाषण देना आरंभ किया ॥११९-१२०॥

**ब्राह्मण बोला**—हे शक्र! मैंने क्रमशः एक-एक करके चींटियों के समुदाय की सृष्टि की। ये सभी चींटे अपने कर्म से देवलोक में इन्द्र के पद पर प्रतिष्ठित हो चुके थे, किन्तु इस समय वे सब क्रमशः भिन्न-भिन्न जीवयोनियों में जन्म लेते हुए चींटों की जाति में उत्पन्न हुए हैं ॥१२१-१२२॥ कर्म

---

१ क. कैकं क्र०।

कर्मणा जीविनो यान्ति वैकुण्ठं च निरामयम् । कर्मणा ब्रह्मलोकं च शिवलोकं च कर्मणा ॥१२३॥
स्वर्गं स्वर्गसमास्थानं पातालं च स्वकर्मणा । कर्मणा नरकं घोरं स्वात्मदुःखैककारणम् ॥१२४॥
कर्मणा सूकरीगर्भं कर्मणा क्षुद्रजीवनम् । कर्मणा पशुपत्नीनां कर्मणा पक्षियोषिताम्[1] ॥१२५॥
कर्मणा कीटयोनिं च वृक्षत्वं च स्वकर्मणा । स्वकर्मणा सुखी दुःखी सेव्यः सेवक एव च ॥१२६॥
कर्मणा ब्राह्मणत्वं च देवं चापि स्वकर्मणा । स्वकर्मणा च प्रेतत्वं ब्रह्मत्वं च स्वकर्मणा ॥१२७॥
कर्मणा शिबिकारोहो राजेन्द्रश्च स्वकर्मणा । कर्मणा व्याधियुक्तश्च कर्मणैवातिसुन्दरः ॥१२८॥
कर्मणा स्वाङ्गहीनश्च स्वाङ्गवृद्धश्च कर्मणा । विधाता कर्मसूत्रेण फलदाता च जीविनाम् ॥१२९॥
कर्म स्वभावसाध्यं च स्वभावोऽभ्यासजीवकः । इत्येवं कथितं सर्वमाध्यात्मिकपरं वचः ॥१३०॥
सुखदं पुण्यदं सारं नरकार्णवतारकम् । संसारं[2] स्वप्नवत्सर्वं देवेन्द्र सचराचरम् ॥१३१॥
मृत्युश्च मस्तकस्थायी सर्वेषां काल्योगतः । जलबुद्बुदवत्सर्वं जीविनां च शुभाशुभम् ॥१३२॥
शक्र शश्वद्भ्रमत्येव नाऽऽविष्टस्तत्र पण्डितः । इत्येवमुक्त्वा विप्रश्च तत्र तस्थौ च सस्मितः ॥१३३॥

---

से ही जीव निरामय वैकुण्ठधाम में जाते हैं, कर्म से ब्रह्मलोक में और कर्म से ही शिवलोक में पहुँचते हैं ॥१२३॥ अपने कर्म से ही वे स्वर्ग में तथा स्वर्गतुल्य स्थान पाताल में भी प्रवेश करते हैं। कर्म से ही अपने किये दुःख के एकमात्र कारण घोर नरक में गिरते हैं ॥१२४॥ कर्म से ही जीव सूकरी के गर्भ में जाता है और कर्म से क्षुद्र जीवन पाता है। कर्म से पशुपत्नियों के गर्भ में जाता है। कर्म से चिड़ियों के गर्भ में, कर्म से कीड़े-मकोड़ों की योनि में और अपने ही कर्म से वृक्ष होता है। अपने ही कर्म से सुखी, दुःखी, स्वामी और सेवक होता है ॥१२५-१२६॥ कर्म से ही ब्राह्मण और देव होता है। अपने कर्म से प्रेतत्व और अपने ही कर्म से ब्रह्मत्व को प्राप्त करता है ॥१२७॥ कर्म से पालकी की सवारी पाता है और कर्म से राजाधिराज होता है। कर्म से रोगी और कर्म से ही अत्यन्त सुन्दर होता है ॥१२८॥ कर्म से अंगहीन और कर्म से अङ्गवृद्धियुक्त होता है। कर्मसूत्र से ही विधाता जीवधारियों को फल देते हैं ॥१२९॥ कर्म स्वभावसाध्य है और अभ्यासजन्य। इस प्रकार मैंने आध्यात्मिक सम्बन्धी सब बातों को तुम्हें बता दिया जो सुखप्रद, पुण्यदायक-तत्त्वरूप और नरकसागर से तारनेवाली हैं। देवेन्द्र! चराचर प्राणियों समेत समस्त संसार स्वप्न के समान है ॥१३०-१३१॥

यहाँ कालयोग से सबका मृत्यु सदा सिर पर सवार रहता है। जीवधारियों के शुभ और अशुभ सब-कुछ जल के बुलबुले के समान हैं। इन्द्र! विद्वान् पुरुष इसमें सदा विचरता है; परन्तु कहीं भी आसक्त नहीं होता। यों कहकर ब्राह्मण वहाँ मुसकराता हुआ बैठा रहा ॥१३२-१३३॥ इसे सुनकर इन्द्र को महान् आश्चर्य हुआ।

---

१ क. °षिताः । २ ख. ०सारः स्व° ।

विस्मितस्त्रिदशाध्यक्षो नाऽऽत्मानं बहु मन्यते । एतस्मिन्नन्तरे शीघ्रमाजगाम मुनीश्वरः ।।१३४।।
अतिवृद्धो महायोगी ज्ञानेन वयसा महान् । कृष्णाजिनी जटाधारी बिभ्रत्तिलकमुज्ज्वलम् ।।१३५।।
वक्षःस्थले रोमचक्रं बिभर्ति मस्तके कटम् । स्थितं सर्वं मध्यदेशे किंचिदुत्पाटितं स्फुटम् ।।१३६।।
समागत्य द्वयोर्मध्ये तस्थौ स्थाणुवदेव सः । महेन्द्रो ब्राह्मणं दृष्ट्वा प्रणनाम मुदाऽन्वितः ।।१३७।।
मधुपर्कादिकं दत्त्वा पूजयामास भक्तितः । पप्रच्छ कुशलं विप्रं चकार विनयं परम् ।।१३८।।
तुष्टावातिथिभावेन मुदा सादरपूर्वकम् । विप्रार्भकस्तेन सार्धं संभाषां च चकार सः ।।
स्ववाञ्छितं परं प्राह सर्वं विनयपूर्वकम् । ।।१३९।।

## बालक उवाच

कुतस्त्वमागतो विप्र किन्नाम भवतो वद । को वाऽत्राऽऽगमने हेतुर्निवासः कुत्र तेऽधुना ।।१४०।।
कटं कथं मस्तके तं लोमचक्रं च वक्षसि । अत्युन्नतं मध्यदेशे किंचिदुत्पाटितं मुने ।।१४१।।
मां चेत्कृपाऽस्तिते विप्र सर्वं संव्यस्य कथ्यताम् । अत्यद्भुतमिदं सर्वं श्रोतुं कौतूहलं मम ।।१४२।।
स शिशोर्वचनं श्रुत्वा तमुवाच महामुनिः । सर्वं स्वकीयवृत्तान्तं शक्रस्य पुरतो मुदा ।।१४३।।

---

उनका अपने आपको अधिक लगाना छूट गया। इसी बीच वहाँ एक मुनीश्वर का आगमन हुआ जो अतिवृद्ध, महायोगी, ज्ञान और वय से भी अत्यन्त महान्, कृष्णमृगचर्म पहने, जटाधारी, उज्ज्वल तिलक लगाये एवं हृदय में रोमचक्र तथा सिर पर चटाई धारण किये हुए थे। उनका सारा रोममण्डल विद्यमान था; केवल बीच में कुछ रोम उखाड़े गये थे। वे मुनि ब्राह्मण-बालक तथा इन्द्र के बीच में आकर ठूँठे काठ की भाँति खड़े हो गये। महेन्द्र ने ब्राह्मण को देखकर सहर्ष प्रणाम किया और भक्तिपूर्वक मधुपर्क आदि समर्पित करके उनकी पूजा की। पुनः विनय-विनम्र होकर उस ब्राह्मण से उन्होंने कुशल-मंगल पूछा और सादर एवं सानन्द आतिथ्य करके उन्हें सन्तुष्ट किया। अनन्तर ब्राह्मण-बालक ने उनके साथ बातचीत की और विनयपूर्वक अपना सारा मनोभाव प्रकट किया ।।१३४-१३९।।

**बालक बोला**—हे विप्र ! आप कहाँ से आये हैं ? आपका नाम क्या है ? यहाँ किस प्रयोजन से आये हैं ? निवास-स्थान कहाँ है ।।१४०।। आपने मस्तक पर चटाई किसलिए धारण कर रखी है ? मुने ! आपके वक्षः-स्थल पर रोमचक्र कैसा है ? यह बहुत बढ़ा हुआ है किन्तु बीच में कुछ रोम क्यों उखाड़ लिये गये हैं ? ब्रह्मन् ! यदि आपकी मुझ पर कृपा हो तो सब विस्तारपूर्वक कहिये। यह सब अद्भुत बात सुनने के लिए मुझे कुतूहल हो रहा है ।।१४१-१४२।। शिशु की बात सुनकर वे महामुनि इन्द्र के सामने प्रसन्नतापूर्वक अपना समस्त वृत्तान्त कहने लगे ।।१४३।।

## मुनिरुवाच

अल्पायुषा मया विप्र कुत्रापि न कृता गृहाः । न विवाहश्चोपजीव्यं भिक्षोपजीविनाऽधुना ॥१४४॥
लोमशेति च मन्नाम हेतुर्विप्रस्य दर्शनम् । वर्षणातपशान्त्यर्थं मस्तकस्थं कटं मम ॥१४५॥
वक्षःस्थलस्थितं रोमचक्रं तत्कारणं शृणु । सांसारिकाणां भयदं विवेकजननं परम् ॥१४६॥
आयुः संख्याप्रमाणं मे लोमचक्रं च वक्षसि । शक्रैकपतने विप्र लोमैकोत्पाटनं मम । १४७॥
उत्पाटितानि लोमानि तेन मध्ये स्थितानि च । ब्रह्मणो द्विपरार्धे च मम मृत्युर्निरूपितः ॥१४८॥
असंख्यविधयो ब्रह्मन्मरिष्यन्ति मृता अपि । कलत्रेण च पुत्रेण गृहेण किं प्रयोजनम् ॥१४९॥
ब्रह्मणः पतने चक्षुर्निमेषश्च हरेर्भवेत् । तत्पादपद्ममतुलं चिन्तयामि निरन्तरम् ॥१५०॥
दुर्लभं श्रीहरेर्दास्यं भक्तिर्मुक्तेर्गरीयसी । स्वप्नवत्सर्वमैश्वर्यं तद्भक्तिव्यवधायकम् ॥१५१॥
इदं मद्गुरुणा दत्तं शंभुना ज्ञानमुत्तमम् । विना भक्तिं न गृह्णामि सालोक्यादिचतुष्टयम् ॥१५२॥
इत्येवमुक्त्वा स मुनिर्जगाम शिवसंनिधिम् । शिशुरूपी हरिस्तत्रैवान्तर्धानं चकार ह ॥१५३॥
इन्द्रस्तु स्वप्नवद्दृष्ट्वा बभूव तत्र विस्मितः । तृष्णामात्रं च संपत्तौ नास्त्येव परमेश्वरे ॥१५४॥

---

**मुनि बोले**—विप्र ! हमारी आयु अल्प है, इसलिए हमने कहीं गृह नहीं बनाया है, न विवाह किया और न जीविका का कुछ साधन ही जुटाया है । आजकल केवल भिक्षामात्र से जीविकानिर्वाह करता हूँ ॥१४४॥ मेरा नाम लोमश है, ब्राह्मण-दर्शन के हेतु आया हूँ । वर्षा-धूप से बचाव के लिए मस्तक पर यह चटाई है ॥१४५॥ मेरे वक्षःस्थल में जो रोमचक्र है, उसका भी कारण सुनिये, जो सांसारिक जीवों को भय देने-वाला और उत्तम विवेक को उत्पन्न करनेवाला है ॥१४६॥ मेरे वक्षःस्थल का यह रोममण्डल ही मेरी आयु की संख्या का प्रमाण है । ब्रह्मन् ! जब एक इन्द्र का पतन हो जाता है, तब मेरे इस रोमचक्र का एक रोम उखाड़ दिया जाता है ॥१४७॥ इसी कारण बीच के बहुत-से रोएँ उखाड़ दिये गये हैं । तथापि अभी बहुत-से विद्यमान हैं । ब्रह्मा का दूसरा परार्ध पूर्ण होने पर मेरी मृत्यु बतायी गयी है ॥१४८॥ असंख्य ब्रह्मा मर चुके हैं और मरेंगे, मुझे स्त्री-पुत्र और गृह से प्रयोजन ही क्या है ? ॥१४९॥ ब्रह्मा का पतन होने पर भगवान् विष्णु की एक पलक गिरती है । इसलिए मैं उनके अनुपम चरणकमल का ही सतत ध्यान करता रहता हूँ ॥१५०॥ भगवान् श्री हरि का दास्य पद दुर्लभ है और भक्ति-मुक्ति से भी श्रेष्ठ है । सारा ऐश्वर्य स्वप्न के समान है और भगवान् की भक्ति में बाधक है ॥१५१॥ यह परमोत्तम ज्ञान मेरे गुरु शिव ने प्रदान किया है, जिस कारण मैं बिना भक्ति के सालोक्य आदि चारों प्रकार की मुक्ति भी ग्रहण करने को तैयार नहीं हूँ ॥१५२॥ इतना कहकर वे मुनि शिव के यहाँ चले गये और शिव रूपी विष्णु भी वहीं अन्तर्हित हो गये ॥१५३॥ इन्द्र स्वप्न के समान इसे देखकर आश्चर्यचकित हो गये । अब उन परमेश्वर के मन में सम्पत्ति के लिए तृष्णा नहीं रह

विश्वकर्माणमानीय प्रियमुक्त्वा शतक्रतुः। दत्त्वा रत्नानि संपूज्य तं प्रस्थापितवान्गृहम् ॥१५५॥
सर्वं विन्यस्य पुत्रे च शरणं गन्तुमुद्यतः। शचीं राज्यश्रियं त्यक्त्वा विवेकी क्षयकामुकः ॥१५६॥
दृष्ट्वा विवेकिनं कान्तं हृदयेन विदूयता। शची जगाम शोकार्ता संत्रस्ता शरणं गुरोः ॥१५७॥
सर्वं निवेदनं कृत्वा समानीय बृहस्पतिम्। बोधयामास शक्रं तं नीतिसारेण कामिनी ॥१५८॥
गुरुः शास्त्रविशेषं च दम्पतीरससंयुतम्। विधाय च स्वयं प्रीत्या पाठयामास तं मुदा ॥१५९॥
नीतिशास्त्रं बहुविधं बोधयामास वाक्पतिः। स चकार तदा राज्यं वृन्दावनविनोदिनि ॥१६०॥
इत्येवं कथितं सर्वं शक्रदर्पविमोचनम्। साक्षाद्दृष्टो दर्पभङ्गो नन्दयज्ञे सुरेश्वरि ॥१६१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० श्रीकृष्णराधासं०
शक्रदर्पभङ्गो नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४७॥

---

गयी। उन्होंने तुरन्त विश्वकर्मा को बुलाया और स्नेहपूर्ण बातें करके रत्नों के उपहार से उन्हें सुसम्मानित करके घर भेज दिया ॥१५४-१५५॥

फिर सब-कुछ पुत्र को सौंपकर वे भगवान् की शरण में जाने को उद्यत हो गये। उनका विवेक जाग उठा था; अतः वे शची तथा राजलक्ष्मी को त्यागकर प्रारब्ध-क्षय की कामना करने लगे ॥१५६॥ उधर इन्द्राणी ने देखा कि पतिदेव ने हार्दिक वेदना प्रकट करते हुए विवेक का आश्रय ले लिया है। वह शोक से व्याकुल हो उठी, भयभीत होकर गुरु की शरण पहुँची ॥१५७॥ वहाँ उनसे सब-कुछ निवेदन कर उन्हें अपने घर लिवा आयी, उस कामिनी ने गुरु द्वारा इन्द्र को नीतिसार का बोध कराया ॥१५८॥ गुरु बृहस्पति ने दाम्पत्य-प्रेम से युक्त शास्त्र-विशेष की रचना करके स्वयं प्रेमपूर्वक उन्हें पढ़ाया ॥१५९॥ बृहस्पति ने उस शास्त्र-विशेष का भाव इन्द्र को भलीभाँति समझा दिया। वृन्दावनविनोदिनि ! तब इन्द्र पूर्ववत् राज्य करने लगे ॥१६०॥ सुरेश्वरि ! इस भाँति शक्र का दर्पभङ्ग तुम्हें बता दिया। नन्द के यज्ञ में जो इन्द्र का दर्प-दलन हुआ था, उसे तो तुमने स्वयं देखा ही था ॥१६१॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में श्रीकृष्णराधासंवाद-प्रसंग में इन्द्रदर्पभङ्ग नामक सैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४७॥

⊙

# अथाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

## राधिकोवाच

कथितो भवता मह्यं दर्पभङ्गः श्रुतो हरेः। दर्पभङ्गं रवेश्चापि श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥१॥

## श्रीकृष्ण उवाच

एकदैवोदयं कृत्वा रविरस्तं जगाम ह। माली सुमाली दैत्येन्द्रौ दीप्ति कर्तुं समुद्यतौ ॥२॥
महासंपन्मदोन्मत्तौ शंकरस्य वरेण च। तयोश्च प्रभया रात्रिर्न भवेदिति सुन्दरि ॥३॥
रुष्टः सूर्यः स्वशूलेन तौ जघानावलीलया। पतितौ सूर्यशूलेन मूर्च्छितौ धरणीतले ॥४॥
भक्तापायं च विज्ञाय शंकरो भक्तवत्सलः। आगत्य जीवयामास महाज्ञानेन तौ विभुः ॥५॥
तौ च नत्वा शिवं भक्त्या जग्मतुर्निजमन्दिरम्। दुद्राव च महादेवः सूर्यं हन्तुं रुषा ज्वलन् ॥६॥
दृष्ट्वा संहारकर्तारं जिघांसन्तं हरं रविः। भिया पलायमानश्च ब्रह्माणं शरणं ययौ ॥७॥
दुद्राव च महादेवो ब्रह्मणो निलयं रुषा। शूलमत्यर्थमुद्यम्य कालकालो विधेर्विधिः ॥८॥

---

# अध्याय ४८

## सूर्य का दर्प-भंग

**राधिका बोलीं**—भगवन् ! आपने इन्द्र का दर्प-मोचन तो मुझे सुना दिया, किन्तु मैं अब सूर्य का दर्प-भङ्ग, रहस्य समेत सुनना चाहती हूँ ॥१॥

**श्रीकृष्ण बोले**—एक समय सूर्य उदय होकर अस्त हो गये, किन्तु माली और सुमाली नामक दो दैत्य-राज वैसा ही प्रकाश करने के लिए उद्यत हो गये ॥२॥ शिव के वरदान से वे दोनों दैत्य महासम्पत्तिशाली होकर मदोन्मत्त हो गये थे। उनके प्रकाश के कारण रात्रि होती ही नहीं थी ॥३॥ यह देखकर सूर्य बहुत रुष्ट हुए और शूल से उन्हें सहज ही में मार डाला। सूर्य के शूल से आहत वे दोनों पृथिवी पर मूर्च्छित होकर गिर पड़े ॥४॥ भक्तवत्सल शिव, भक्तों का विनाश जानकर वहाँ आये और प्रभु ने अपने महान् ज्ञान द्वारा उन दोनों को जीवित कर दिया ॥५॥ वे दोनों भी भक्तिपूर्वक शिव को नमस्कार करके अपने घर चले गये। इधर महादेव महाक्रुद्ध होकर मारने के लिए सूर्य का पीछा करने लगे। सूर्य ने देखा कि—संहार करने-वाले स्वयं शिव मुझे मार देना चाहते हैं, वे भयभीत होकर भागते हुए ब्रह्मा की शरण में पहुँचे ॥६-७॥ तब महादेव ने रोष से शूल उठाकर ब्रह्मा के भवन पर धावा किया। भगवान् काल के भी काल और विधाता

दृष्ट्वा ब्रह्मा हरं रुष्टं तुष्टाव परमेश्वरम् । चतुर्वक्त्रेण वेदोक्तस्तोत्रेण जगतां पतिः ॥९॥

ब्रह्मोवाच

प्रसीद दक्षयज्ञघ्न सूर्यं मच्छरणागतम् । त्वयैव सृष्टः सृष्टेश्च समारम्भे जगद्गुरो ॥१०॥
आशुतोष महाभाग प्रसीद भक्तवत्सल । कृपया च कृपासिन्धो रक्ष रक्ष दिवाकरम् ॥११॥
ब्रह्मस्वरूप भगवन्सृष्टिस्थित्यन्तकारण । स्वयं रविं विनिर्माय स्वयं संहर्तुमिच्छसि ॥१२॥
स्वयं ब्रह्मा स्वयं शेषो धर्मः सूर्यो हुताशनः । इन्द्रचन्द्रादयो देवास्त्वत्तो भीताः परात्पर ॥१३॥
ऋषयो मुनयश्चैव त्वां निषेव्य तपोधनाः । तपसां फलदाता त्वं तपस्त्वं तपसां[1] फलम् ॥१४॥
इत्येवमुक्त्वा ब्रह्मा तं सूर्यमानीय भक्तितः । प्रीत्या समर्पयामास शंकरे दीनवत्सले ॥१५॥
शंभुस्तमाशिषं कृत्वा विधिं नत्वा जगद्विधिः । प्रसन्नवदनः श्रीमानालयं प्रययौ मुदा ॥१६॥
इति धातृकृतं स्तोत्रं संकटे यः पठेन्नरः । भयात्प्रमुच्यते भीतो बद्धो मुच्येत बन्धनात् ॥१७॥
राजद्वारे श्मशाने च भग्नपोते महार्णवे । स्तोत्रस्मरणमात्रेण मुच्यते नात्र संशयः ॥१८॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० श्रीकृष्णराधासं० सूर्यदर्पभङ्गो नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४८॥

⊙

---

के भी विधाता हैं ॥८॥ ब्रह्मा परमेश्वर शिव को रुष्ट देखकर अपने चारों मुखों से वेदोक्त-स्तोत्र द्वारा उनकी स्तुति करने लगे ॥९॥

**ब्रह्मा बोले**--जगद्गुरो ! आप दक्षयज्ञ-नाशक हैं, समस्त सृष्टि के स्रष्टा हैं, अतः मेरी शरण में आये सूर्य पर प्रसन्न हो जाइये ॥१०॥ भक्त-वत्सल ! महाभाग ! आप आशुतोष एवं कृपासिन्धु हैं, प्रसन्न हो जाइये और सूर्य की रक्षा कीजिये ॥११॥ भगवन् ! आप ब्रह्मस्वरूप हैं और सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय करनेवाले हैं। आपने ही सूर्य का निर्माण किया है और अब आप ही उनका संहार करना चाहते हैं ? ॥१२॥ आप स्वयं ब्रह्मा, स्वयं शेष, धर्म, सूर्य और अग्नि हैं । परात्पर ! चन्द्र आदि समस्त देवगण आपसे भयभीत रहते हैं ॥१३॥ ऋषि-मुनि लोग आप ही की सेवा करके तपोधन कहलाते हैं । आप ही तप के फलदाता, तपःस्वरूप एवं तप के फल-स्वरूप भी हैं । इतना कहकर ब्रह्मा ने सूर्य को लाकर दीनवत्सल शिव को भक्तिपूर्वक सप्रेम सौंप दिया ॥१४-१५॥ संसार के विधाता शिव ने सूर्य को शुभाशिष प्रदान किया और प्रसन्न वदन से ब्रह्मा को नमस्कार कर अपने धाम को प्रस्थान किया ॥१६॥ जो संकटकाल में ब्रह्माकृत इस स्तोत्र का पाठ करता है, वह भयभीत हो तो भय से मुक्त और बँधा हो तो बन्धन मुक्त हो जाता है ॥१७॥ राजद्वार पर, श्मशान में और महासागर में जहाज टूट जाने पर इस स्तोत्र के स्मरणमात्र से (प्राणी संकट) मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं ॥१८॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में श्रीकृष्णराधा-संवाद के प्रसंग में सूर्यदर्प-भंग नामक अड़तालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४८॥

⊙

---

१ क. ॰पसः परः ।

# अथैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

## श्रीकृष्ण उवाच

सूर्यः प्रणम्य ब्रह्माणं मुदा युक्तस्तदाज्ञया । चकार विनयं प्रीत्या तेजस्वी त्रिगुणात्मकः ॥१॥
अथ वह्नेरुपाख्यानं सावधानं निशामय । गोपनीयं पुराणेषु कर्णपीयूषमुत्तमम् ॥२॥
त्रैलोक्यं भस्मसात्कर्तुमेकदाग्निः समुद्यतः । शततालप्रमाणां तां शिखां कृत्वा भयानकाम् ॥३॥
क्षुभितः कुपितश्चैव भृगोः शापस्य कारणात् । स्वं च तेजस्विनं मत्वा तुच्छं मत्वाऽन्यमात्मनः ॥४॥
एतस्मिन्नन्तरे विष्णुराजगामावलीलया । वह्नेस्तां दाहिकीं शक्तिं तां जहार पुरः स्थितः ॥५॥
मायया शिशुरूपी च तमुवाच जनार्दनः । सस्मितो विनयं कृत्वा भक्तिनम्रात्मकंधरः ॥६॥

## शिशुरुवाच

कथं रुष्टोऽसि भगवन्भवान्मां कारणं वद । त्रैलोक्यं भस्मसात्कर्तुमुद्यतोऽसि निरर्थकम् ॥७॥
त्वमेव भृगुणा शप्तो भृगोश्च दमनं कुरु । एकापराधात्त्रैलोक्यं भस्मीकर्तुं न चार्हसि ॥८॥
विश्वं च ब्रह्मणा सृष्टं तस्य पाता स्वयं हरिः । संहर्ता भगवान्रुद्र एवमेव क्रमो भवेत् ॥९॥

---

# अध्याय ४९

## अग्नि का दर्प-भंग

**श्रीकृष्ण बोले**--त्रिगुणात्मक एवं तेजस्वी सूर्य ने प्रसन्न होकर ब्रह्मा को प्रणाम किया और उनकी आज्ञा से वे अभिमान छोड़कर प्रेमपूर्वक विनयपूर्ण बर्ताव करने लगे ॥१॥ अब अग्नि का उपाख्यान सावधानी से सुनो । यह उपाख्यान पुराणों में गोपनीय एवं कानों को अमृत के समान उत्तम प्रतीत होता है ॥२॥

एक बार अग्नि तीनों लोकों को भस्म करने के लिए तैयार हो गये—उस समय उनकी सौ ताड़वृक्ष के समान ऊँची एवं भयानक शिखा (लपटें) हो गयीं ॥३॥ भृगु के शापवश वे क्षुब्ध होकर कुपित हो उठे थे; इसीलिए अपने ही को तेजस्वी मानते हुए, अन्य को तुच्छ समझ रखा था ॥४॥ इसी बीच वहाँ विष्णु आ गये और उन्हीं के सामने स्थित होकर उन्होंने उनकी दाह (जलाने) वाली शक्ति का अपहरण कर लिया ॥५॥ तत्पश्चात् माया द्वारा बालकरूपी हरि ने मन्द-मन्द मुसकराते हुए भक्ति से कन्धे झुकाकर विनयपूर्वक कहा ॥६॥

**शिशु बोला**—भगवन् ! आप रुष्ट क्यों हैं ? इसका कारण मुझे बताइये । व्यर्थ ही आप तीनों लोकों को भस्म करने के लिए क्यों उद्यत हुए हैं ? ॥७॥ भृगु ने आपको शाप दिया है, अतः आप भृगु का ही दमन करें। एक के अपराध से तीनों लोकों को भस्म कर डालना आपके लिए उचित नहीं है ॥८॥ ब्रह्मा ने इस जगत् की सृष्टि की है और इसके रक्षक स्वयं विष्णु हैं और संहारक भगवान् रुद्र हैं, ऐसा ही क्रम

तत्कथं भस्मसात्कर्तुमीश्वरे शंकरे स्थिते। रक्षितारं हरिं जित्वा संहारं कुरु सत्वरम् ॥१०॥
इत्युक्त्वा ब्राह्मणबटुः शरपत्रं पुरः स्थितम्। अतिशुष्कं करे धृत्वा दग्धं कर्तुं ददौ मुदा ॥११॥
दृष्ट्वा शुष्केन्धनं वह्निर्लेलिहानो भयानकः। स वव्रे शिखया विप्रं मेघेन शशिनं यथा ॥१२॥
न च दग्धं शुष्कपत्रं लोमैकं च शिशोस्तथा। दृष्ट्वा व्रीडायुतो वह्निर्निस्तब्धो हि शिशोः पुरः ॥१३॥
कृत्वा वह्नेर्दर्पभङ्गमन्तर्धानं चकार सः। वह्निः स्वमूर्ति संहृत्य स्वस्थानं भीतवद्ययौ ॥१४॥
उक्तो वह्नेर्दर्पभङ्गः परं वै श्रोतुमिच्छसि। नित्यनूतनमाख्यानं देवानां दर्पमोचनम् ॥१५॥

### राधिकोवाच

शेषाणां दर्पभङ्गं च क्रमेण कथय प्रभो। कथापीयूषधारां ते श्रुत्वा तृप्येत को भुवि ॥१६॥

### नारायण उवाच

राधिकावचनं श्रुत्वा सस्मितो भगवान्प्रभुः। कथां कथितुमारेभे श्रुत्वा रम्यां पुरातनीम् ॥१७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० अग्निदर्पमोचनं नामै-
कोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥४९॥

⊙

---

है ॥९॥ इसलिए संहारकर्ता शिव के रहते आप भस्म करने के लिए क्यों उद्यत हुए हैं? यदि ऐसा ही करना है, तो रक्षा करनेवाले विष्णु को जीत लीजिये, तब शीघ्रतापूर्वक संहार कीजिये ॥१०॥ इतना कहकर उस ब्राह्मण-बटु ने सामने पड़े हुए अत्यन्त सूखे एक सरपत के पत्ते को हाथ से उठा लिया और प्रसन्न मन से उन्हें उसे दग्ध करने (जलाने) के लिए दे दिया ॥११॥ उस सूखे पत्ते को देखकर अग्नि भयानक रूप से जीभ लपलपाने लगे। उन्होंने अपनी लपटों से ब्राह्मण (बटु) को उसी तरह लपेट लिया, जैसे मेघों की घटा से चन्द्रमा छिप जाता है ॥१२॥

किन्तु वे न तो उस सूखे पत्ते को दग्ध कर सके और न उस बालक के एक लोम को भी जलाने में समर्थ हो सके। यह देखकर अग्नि लज्जित होकर शिशु के सामने एकदम अवाक् हो गये ॥१३॥ बालक रूपी भगवान् अग्नि का अभिमान चूर करके अन्तर्हित हो गये और अग्नि भी अपना भीषण रूप त्यागकर डरे हुए की तरह अपने स्थान को चले गये ॥१४॥ मैंने अग्नि का दर्पनाश बता दिया, और अब क्या सुनना चाहती हो? देवों का दर्पभंग नित्य नूतन आख्यान है ॥१५॥

**राधिका बोलीं**—प्रभो! अब शेष देवों का दर्पभंग बताइये। आपसे कथारूपी अमृत की धारा को सुनकर पृथ्वी पर कौन तृप्त हो सकता है? ॥१६॥

**नारायण बोले**—राधिका की बात सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र मुसकराये और प्राचीन रमणीय कथा कहने लगे ॥१७॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में अग्निदर्पमोचन
नामक उनचासवाँ अध्याय समाप्त ॥४९॥

⊙

# अथ पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

### श्रीकृष्ण उवाच

दुर्वाससो दर्पभङ्गं कथयामि शृणु प्रिये। महामुनेर्योगिनश्च रुद्रांशस्यातितेजसः ॥१॥
एकदा चाम्बरीषश्च कृत्वा च द्वादशीव्रतम्। पारणं कर्तुमारेभे भोजयित्वा द्विजान्बहून् ॥२॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र चाऽऽजगाम मुनिः स्वयम्। क्षुधार्तश्च तृषार्तश्च विष्णुव्रतपरायणः ॥३॥
मां भोजय महाभागेत्येवं स नृपमुक्तवान्। राजा भक्त्या ददौ तस्मै परमान्नं सुधोपमम् ॥४॥
सकेशं पायसं दृष्ट्वा राजानं शप्तुमुद्यतः। जटां निकृत्य शिरसः स्थापयामास भूतले ॥५॥
जटामध्यात्समुद्भूतो ज्वलदग्निशिखोपमः। सप्ततालप्रमाणश्च पुरुषः प्रलयान्तकः ॥६॥
नृपश्रेष्ठं सराजानं कोपेन हन्तुमुद्यतः। भयेन कम्पिताः सर्वे शुष्ककण्ठोष्ठतालकाः ॥७॥
सस्मार च महाभीतो राजा मम पदाम्बुजम्। सर्वविघ्नस्योपशमः स्मृतिमात्राद्बभूव ह ॥८॥
एतस्मिन्नन्तरे चक्रं दुर्निवार्यं सुदर्शनम्। तेजसा मम तुल्यं च कोटिसूर्यप्रभोपमम् ॥९॥
आविर्बभूव सहसा सभामध्ये च घूर्णितम्। निकृत्य कृत्यापुरुषं दुद्राव मुनिपुंगवम् ॥१०॥

---

# अध्याय ५०

## दुर्वासा का दर्प-भंग

**श्रीकृष्ण बोले**—प्रिये! योगी, रुद्र के अंश से उत्पन्न, अत्यन्त तेजस्वी और महान् मुनि दुर्वासा का दर्पभङ्ग सुनो ॥१॥ एक बार राजा अम्बरीष ने द्वादशी व्रत करके अनेक ब्राह्मणों को भोजन कराने के पश्चात् स्वयं पारण करने के लिए बैठे कि उसी बीच वहाँ मुनि दुर्वासा आ गये, जो क्षुधापीडित, तृषा (प्यास) से आकुल एवं विष्णुव्रत में निरत थे ॥२-३॥ उन्होंने राजा से कहा—हे महाभाग! मुझे भोजन कराइये! राजा ने तुरन्त भक्तिपूर्वक उन्हें अमृत के समान खीर समर्पित किया ॥४॥ किन्तु (खीर) में केश (बाल) निकलने से वे राजा को शाप देने के लिए तैयार हो गये। सिर से जटा तोड़कर भूमि पर पटक दिया ॥५॥ जटा के मध्य से प्रज्वलित अग्निशिखा की भाँति एक पुरुष निकल पड़ा, जो सात ताड़ वृक्षों के समान ऊँचा एवं प्रलयकारी था ॥६॥ वह क्रोध से नृपश्रेष्ठ राजा को मारने के लिए तैयार हो गया। उसके भय से (वहाँ के) सभी लोग काँप उठे। उनके कण्ठ, ओठ और तालू सूख गये ॥७॥ महाभयभीत होकर राजा मेरे चरणकमल का स्मरण करने लगा। स्मरण करते ही उसके समस्त विघ्नों का शमन हो गया ॥८॥ किन्तु उसी बीच सहसा चक्रसुदर्शन प्रकट हो गया, जो दुर्निवार, मेरे समान तेजस्वी और करोड़ों सूर्य के समान प्रभापूर्ण था। वह सभा में इधर-उधर घूमता हुआ (जटा से उत्पन्न) उस कृत्या पुरुष को काटकर मुनि दुर्वासा को दौड़ाने लगा ॥९-१०॥ समस्त पर्वत,

सशैलसागरां पृथ्वीं काञ्चनीं भूमिमुत्तमाम् । भ्रामयित्वा महीं सर्वां पुनर्दुद्राव तं मुनिम् ॥११॥
धावन्तं मुक्तकेशं तं भीतं कातरमातुरम् । तेजसाऽऽच्छाद्य सूर्यं तं दीप्तिं कुर्वन्तमुत्तमाम् ॥१२॥
कैलासं सप्तस्वर्गं च ब्रह्मलोकमनामयम् । विप्रेन्द्रो भ्रमणं कृत्वा वैकुण्ठं शरणं ययौ ॥१३॥
पादपद्मे पतन्तं च ददर्श विप्रपुंगवम् । कृपया च कृपासिन्धुर्ददौ विप्राय निर्भयम् ॥१४॥
नारायणवरेणैव बभूव विज्वरो द्विजः । पुनर्ययौ हरिं स्तुत्वा नृपगेहं तदाज्ञया ॥१५॥
राजा मुनीन्द्रं संप्राप्य भोजयामास पायसम् । स्वयं च पारणां चक्रे सस्त्रीकः सहबान्धवः ॥१६॥
राजानमाशिषं कृत्वा भुक्त्वा विप्रो गृहं ययौ । मया नियोजितं चक्रं भक्तानां रक्षणाय च ॥१७॥
नश्यन्ति सर्वे प्रलये न मे भक्तः प्रणश्यति । सर्वे देवा मम प्राणा भक्ताः प्राणाधिका मम ॥१८॥
त्वं च लक्ष्मीर्महामाया सावित्री वा सरस्वती । ब्रह्मा शंभुरनन्तश्च धर्मश्च ब्राह्मणास्तथा ॥१९॥
गोपाङ्गनाश्च गोपाश्च सर्वे प्रियतमा मम । तेभ्यः प्रियाः परा भक्ताः प्रियो भक्तान्न कश्चन ॥२०॥
दत्त्वा सुदर्शनं चक्रं भक्तानां रक्षणाय च । तथाऽपि न प्रतीतिर्मे स्वयं द्रष्टुं प्रयामि तान् ॥२१॥
दुर्वाससो दर्पभङ्गः श्रुतो मत्तः सुरेश्वरि । आज्ञापय महाभागे किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥२२॥

---

सातों सागर और परमोत्तम काञ्चन भूमि (सुमेरु पर्वत) समेत भूमण्डल में उनका पीछा करता रहा ॥११॥

दौड़ते हुए ऋषि के केश खुल गये थे और वे अति भयभीत, कातर एवं आतुर होकर भाग रहे थे। विप्रेन्द्र दुर्वासा अपने तेज से सूर्य की प्रभा को भी आच्छादित करके उत्तम प्रकाश फैलाते हुए दौड़ रहे थे। कैलास, सात स्वर्ग तथा स्वस्थ ब्रह्मलोक का भ्रमण करते हुए विष्णु की शरण में पहुँचे ॥१२-१३॥ वहाँ कृपासागर विष्णु ने अपने चरणकमल पर गिरे हुए ब्राह्मण-श्रेष्ठ दुर्वासा को देखकर कृपया उन्हें अभय प्रदान किया ॥१४॥ अनन्तर नारायण के वरदान द्वारा ही वह ब्राह्मण सन्तापरहित होकर सुखी हुआ। नारायण की स्तुति करके उनकी आज्ञा से पुनः राजा के घर गया ॥१५॥ राजा उन मुनिश्रेष्ठ को पाकर बहुत प्रसन्न हुए। मुनि को तुरन्त पायस भोजन कराया, फिर स्वयं भी स्त्री-बान्धवों समेत भोजन किया ॥१६॥ भोजन करके ब्राह्मण राजा को शुभाशिष प्रदान कर अपने घर चला गया। मैंने भक्तों की रक्षा के कार्य में उस चक्र को लगा दिया। प्रलय में सबका नाश हो जाता है, किन्तु मेरे भक्त का नाश नहीं होता। समस्त देव मेरे प्राणस्वरूप हैं किन्तु भक्त लोग मुझे प्राण से भी अधिक प्रिय हैं ॥१७-१८॥ तुम, लक्ष्मी, महामाया, सावित्री, सरस्वती, ब्रह्मा, शिव, अनन्त, धर्म, ब्राह्मण, गोपियाँ और गोपगण सभी मुझे अति प्रिय हैं, परन्तु उनसे भी बढ़कर भक्त प्रिय हैं, भक्त से बढ़कर प्रिय मुझे कोई नहीं है ॥१९-२०॥ भक्तों के रक्षणार्थ सुदर्शन को नियुक्त करने पर भी मुझे पूरा विश्वास नहीं होता है, अतः मैं स्वयं उन्हें देखने के लिए जाता हूँ ॥२१॥ सुरेश्वरि ! महाभागे ! दुर्वासा का दर्पभङ्ग तो मुझसे सुन लिया, अब और क्या सुनना चाहती हो ? आज्ञा प्रदान करो ॥२२॥

### राधिकोवाच

धन्वन्तरेर्दर्पभङ्गं कथयस्व जगद्गुरो। पुराणे गोपनीयं च श्रोतुं कौतूहलं मम ॥२३॥

### नारायण उवाच

राधिकावचनं श्रुत्वा जहास मधुसूदनः। कथां कथितुमारेभे श्रुतिरम्यां पुरातनीम् ॥२४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० दुर्वाससो दर्पभङ्गो नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५०॥

⊙

## अथैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

### श्रीकृष्ण उवाच

नारायणांशो भगवान्स्वयं धन्वन्तरिर्महान्। पुरा समुद्रमथने समुत्तस्थौ महोदधेः ॥१॥
सर्ववेदेषु निष्णातो मन्त्रतन्त्रविशारदः। शिष्यो हि वैनतेयस्य शंकरस्योपशिष्यकः ॥२॥
शिष्याणां च सहस्रेण गतः कैलासमीश्वरि। ददर्श तक्षकं मार्गे लेलिहानं भयानकम् ॥३॥

---

**राधिका बोलीं**—जगद्गुरो! मुझे पुराणों में गोपनीय धन्वन्तरि का दर्पभङ्ग सुनने का कौतूहल हो रहा है, कहने की कृपा करें ॥२३॥

**नारायण बोले**—राधिका की बात सुनकर मधुसूदन हँस पड़े और उन्होंने सुनने में अतिरमणीक प्राचीन कथा कहना आरम्भ किया ॥२४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में दुर्वासा का दर्प-भङ्ग-वर्णन नामक पचासवाँ अध्याय समाप्त ॥५०॥

⊙

## अध्याय ५१

### धन्वन्तरि का दर्प-भंग

**श्रीकृष्ण बोले**—भगवान् धन्वन्तरि स्वयं महापुरुष हैं और साक्षात् नारायण के अंशस्वरूप हैं। पूर्व काल में समुद्र-मन्थन के समय वे उसी महासागर से आविर्भूत हुए। वे सम्पूर्ण वेदों में निष्णात एवं मन्त्र-तन्त्र-विशारद हैं, गरुड़ के शिष्य और शिव के उपशिष्य हैं ॥१-२॥ हे ईश्वरि! एक बार वे अपने सहस्रों शिष्यों समेत कैलास को गये। मार्ग में उन्हें भीषण तक्षक नाग दिखायी पड़ा जो जीभ लपलपा रहा था ॥३॥ भयानक विष से भरा

लक्षनागैः परिवृतं शैलतुल्यं विषोल्बणम् । भोक्तुं कोपात्समायान्तमेवं दृष्ट्वा जहास च ॥४॥
दम्भी धन्वन्तरेः शिष्यो धृत्वा तक्षकमुल्बणम् । मन्त्रेण जृम्भितं कृत्वा निर्विषं तं चकार ह ॥५॥
अमूल्यं मणिरत्नं च जहार मस्तकस्थिरम् । करेण भ्रामयित्वा च प्रेरयामास दूरतः ॥६॥
निश्चेष्टस्तक्षकस्तस्थौ तत्र मार्गे यथा मृतः । गणा निवेदनं चक्रुर्गत्वा वासुकिसंनिधिम् ॥७॥
वासुकिस्तत्समाकर्ण्य प्रज्वलन्नतिकोपतः । सर्पान्प्रस्थापयामासासंख्यांश्चैव विषोल्बणान् ॥८॥
सर्पसेनाग्रणीनां च मुख्यान्पञ्च विशारदान् । द्रोणकालीयकर्कोटपुण्डरीकधनंजयान् ॥९॥
सर्वे नागाः समाजग्मुर्यत्र धन्वन्तरिः स्वयम् । भयमापुः शिष्यगणा दृष्ट्वा नागानसंख्यकान् ॥१०॥
नागनिःश्वासवातेन सर्वे शिष्या मृता इव । निश्चेष्टा ज्ञानरहिताः शेरते धरणीतले ॥११॥
धन्वन्तरिश्च भगवान्पीयूषवर्षणेन च । जीवयामास शिष्यांश्च मन्त्रेण च गुरुं स्मरन् ॥१२॥
चेतनां कारयित्वा च शिष्याणां च जगद्गुरुः । चकार जृम्भितं मन्त्रैः सर्पसंघं विषोल्बणम् ॥१३॥
सर्वे बभूवुर्निश्चेष्टा जृम्भितास्ते मृता इव । कोऽपि नालं ततो देवि वार्तां दातुं गणेषु च ॥१४॥
वासुकिर्बुबुधे सर्वं सर्वज्ञः सर्वसंकटम् । आजुहाव जगद्गौरीं भगिनीं ज्ञानरूपिणीम् ॥१५॥

## वासुकिरुवाच

मनसे त्वं समागच्छ नागान्रक्षातिसंकटात् । जगत्त्रये महाभागे पूजा तव भविष्यति ॥१६॥

---

हुआ वह पर्वताकार नाग लाखों नागों से घिरा हुआ था और धन्वन्तरि को क्रोधपूर्वक काट खाने के लिए आगे बढ़ रहा था। यह देख धन्वन्तरि का शिष्य दम्भी हँसने लगा। उसने भयानक तक्षक को मन्त्र से जृम्भित करके विषहीन बना दिया और उसके मस्तक में विद्यमान मणिरत्न को हर लिया और हाथ से घुमाकर उसे दूर फेंक दिया ॥४-६॥ उस मार्ग में तक्षक मृतक की भाँति निश्चेष्ट पड़ा रहा। उसके गणों ने वासुकि नाग के पास जाकर उनसे समस्त वृत्तान्त निवेदन किया ॥७॥ यह सुनकर नागवासुकि अत्यन्त क्रोध से जल उठे। उन्होंने तीक्ष्ण विषवाले असंख्य सर्पों को वहाँ भेजा। समस्त सेनापतियों में पाँच मुख्य थे—द्रोण, कालीय, कर्कोटक, पुण्डरीक एवं धनञ्जय ॥८-९॥ ये सब नाग वहाँ आये जहाँ स्वयं धन्वन्तरि थे। असंख्य नागों को देखकर धन्वन्तरि के शिष्यगण भयभीत हुए ॥१०॥ नागों के केवल निःश्वास वायु से उनके शिष्यगण मृतक की भाँति चेष्टाहीन एवं ज्ञानशून्य होकर धराशायी हो गये ॥११॥

तब भगवान् धन्वन्तरि ने गुरु का स्मरण करते हुए अमृतवर्षा तथा मन्त्र द्वारा समस्त शिष्यों को जीवित कर दिया ॥१२॥ जगद्गुरु धन्वन्तरि ने अपने शिष्यों को चेतना प्रदान करते हुए तीक्ष्णविषवाले उन सर्पगणों को मन्त्र द्वारा जृम्भित कर दिया ॥१३॥ जृम्भित सभी सर्प मृतक की भाँति निश्चेष्ट हो गये। देवि! वहाँ का समाचार बताने के लिए कोई भी सर्प समर्थ नहीं रहा ॥१४॥ परन्तु सर्वज्ञ होने से वासुकि ने स्वयं वहाँ का समस्त संकट जान लिया और अपनी ज्ञानरूपिणी बहन जगद्गौरी को बुलाया ॥१५॥

**वासुकि बोले**—मनसे! तुम आओ, नागों को अति संकट से मुक्त करो, महाभागे! ऐसा करने पर

वासुकेर्वचनं श्रुत्वा प्रहस्योवाच कन्यका। वाक्यं पीयूषतुल्यं च विनयावनतस्थिता ॥१७॥

### मनसोवाच

नागेन्द्र शृणु मद्वाक्यं यास्यामि समरं प्रति। भद्राभद्रं दैवसाध्यं करिष्यामि यथोचितम् ॥१८॥
तं शत्रुं संहरिष्यामि लीलया समरस्थले। अहं यं निहनिष्यामि तं को रक्षितुमीश्वरः ॥१९॥
यदि ब्रह्मादयो देवाः समायान्ति रणस्थले। तथाऽपि तव शत्रुं च प्रजेष्यामि न संशयः ॥२०॥
गुरुर्मे भगवाञ्शेषः सिद्धमन्त्रं च दत्तवान्। नारायणस्य जगतामीशस्य परमाद्भुतम् ॥२१॥
बिभर्मि कवचं कण्ठे परं त्रैलोक्यमङ्गलम्। संसारं भस्मसात्कृत्वा पुनः स्रष्टुमहं क्षमा ॥२२॥
शिष्याऽहं मन्त्रशास्त्रेषु शंभोर्भगवतः पुरा। महाज्ञानं दत्तवान्स मह्यं च कृपया विभुः ॥२३॥
शंभोश्च शिष्यो गरुडो गणयामि न तं ध्रुवम्। धन्वन्तरिस्तच्छिष्याणामेकः किं गणयामि तम् ॥२४॥
इत्युक्त्वा सा जगामैका त्यक्त्वा नागगणान्रुषा। प्रणम्य श्रीहरिं शंभुं शेषं च हृष्टमानसा ॥२५॥
यत्र धन्वन्तरिर्देवः प्रसन्नवदनेक्षणः। तत्राऽऽजगाम सा देवी कोपरक्तेक्षणा रुषा ॥२६॥
दृष्टिमात्रेण सर्पांश्च जीवयामास सुन्दरी। विषदृष्ट्या शत्रुशिष्यान्निश्चेष्टांश्च चकार ह ॥२७॥
धन्वन्तरिस्तु भगवान्मन्त्रशास्त्रविशारदः। मन्त्रेण यत्नं कृतवान्नोत्थापयितुमीश्वरः ॥२८॥

---

तुम्हारी तीनों लोकों में पूजा होगी ॥१६॥ वासुकि की बात सुनकर उस कन्या ने हँसकर विनीत भाव से खड़ी हो अमृत के समान मधुर वचन कहा ॥१७॥

**मनसा बोली**—नागेन्द्र ! आप मेरी बात सुनिये। मैं उस समराङ्गण में जाऊँगी। शुभ और अशुभ (जीत और हार) तो दैव के हाथ में है, पर मैं यथोचित कर्त्तव्य का पालन करूँगी ॥१८॥ मैं युद्धस्थल में उस शत्रु का सहज ही में संहार कर दूँगी। मैं जिसका संहार करूँगी, उसकी रक्षा कौन कर सकता है ? ॥१९॥ यदि रणभूमि में ब्रह्मा आदि देवगण भी आयेंगे तो भी तुम्हारे शत्रु को मैं जीत लूँगी, इसमें संचय नहीं ॥२०॥ मेरे गुरु भगवान् शेष हैं; जिन्होंने मुझे सिद्ध मन्त्र प्रदान किया और जगत् के अधीश्वर भगवान् विष्णु का परम अद्भुत त्रैलोक्यमंगल नामक कवच मैं कण्ठ में धारण करती हूँ, उसके द्वारा मैं समस्त संसार को भस्म करके पुनः बनाने में समर्थ हूँ ॥२१-२२॥ मन्त्र-शास्त्रों में मैं भगवान् शिव की शिष्या हूँ, पूर्वकाल में प्रभु ने कृपा करके मुझे महाज्ञान प्रदान किया था ॥२३॥ गरुड़ भी शिव के शिष्य हैं, किन्तु जब मैं गरुड़ को ही नहीं कुछ समझती तो उनके शिष्यों में एक धन्वन्तरि की क्या गणना करूँगी ? ॥२४॥ इतना कहकर उसने प्रसन्नचित्त होकर श्री हरि, शिव एवं शेष को प्रणाम किया और नागों को छोड़कर स्वयं अकेली क्रोधपूर्वक प्रस्थान कर दिया ॥२५॥ जहाँ प्रसन्न मुख और नेत्रवाले धन्वन्तरि देव विराजमान थे, वहीं वह देवी क्रोध से आँखें लाल किये आ पहुँची ॥२६॥ उस सुन्दरी ने देखने मात्र से समस्त सर्पों को जीवित कर दिया और विष-दृष्टि से समस्त शत्रु-शिष्यों को चेष्टाहीन कर दिया ॥२७॥ अनन्तर मन्त्रशास्त्रनिपुण भगवान् धन्वन्तरि ने मन्त्र के द्वारा शिष्यों को सचेत करने का प्रयत्न किया, किन्तु वे सफल न हो सके ॥२८॥ हे सुरेश्वरि ! तब देवी ने हँसकर

दृष्ट्वा धन्वन्तरिं देवी प्रहस्योवाच सत्वरम् । [1]बहूक्तिमर्थयुक्तां च साहंकारां सुरेश्वरि ॥२९॥

**मनसोवाच**

मन्त्रार्थं मन्त्रशिल्पं च मन्त्रभेदं महौषधम् । वद जानासि किं सिद्ध शिष्योऽसि गरुडस्य च ॥३०॥
अहं च वैनतेयश्च शिष्यौ शंभोश्च विश्रुतौ । सुकल्पकालं सुचिरमहं धन्वन्तरे शृणु ॥३१॥
इत्युक्त्वा सरसः पद्मं समानीय जगत्प्रसूः । मन्त्रसंवलितं कृत्वा प्रेरयामास कोपतः ॥३२॥
दृष्ट्वाऽऽगतं पद्मपुष्पं ज्वलदग्निशिखोपमम् । धन्वन्तरिश्च निःश्वासैर्भस्मसात्तच्चकार ह ॥३३॥
तच्च धन्वन्तरिं दृष्ट्वा समन्त्ररेणुमुष्टिना । चकार निष्फलं भस्म तां प्रहस्यावलीलया ॥३४॥
देवी जग्राह शक्तिं च ग्रीष्मसूर्यसमप्रभाम् । मन्त्रसंवलितां कृत्वा प्रेरयामास तं रिपुम् ॥३५॥
दृष्ट्वा जाज्वल्यमानां तां शक्तिं धन्वन्तरिः स्वयम् । विष्णुदत्तेन शूलेन समुच्चिच्छेद लीलया ॥३६॥
तां च शक्तिं वृथा दृष्ट्वा प्रजज्वालेश्वरी रुषा । जग्राह नागपाशं च घोरमव्यर्थमुल्बणम् ॥३७॥
नागलक्षसमायुक्तं सिद्धमन्त्रेण मन्त्रितम् । प्रेरयामास कोपेन कालान्तकसमप्रभम् ॥३८॥
धन्वन्तरिर्नागपाशं दृष्ट्वा च सस्मितो मुदा । सस्मार गरुडं तूर्णमाजगाम खगेश्वरः ॥३९॥
सर्पास्त्रमागतं दृष्ट्वा गरुडो हरिवाहनः । [2]निधाय चञ्चुना शीघ्रं बुभुजे क्षुधितश्चिरम् ॥४०॥

---

धन्वन्तरि से शीघ्र ही बहुत अर्थों से युक्त अहंकार भरी बात कही ॥२९॥

**मनसा बोलीं**—सिद्ध ! बताओ तो सही क्या तुम मन्त्र का अर्थ, मन्त्र शिल्प, मन्त्र-भेद और महान् औषध का ज्ञान रखते हो ? गरुड़ के शिष्य हो न ? धन्वन्तरे ! सुनो, मैं और गरुड़ दोनों शिव के विख्यात शिष्य हैं, जो अत्यन्त दीर्घकाल-एक कल्प-तक (गुरु से शिक्षा लेते) रहे हैं ॥३०-३१॥ इतना कहकर उस जगज्जननी ने सरोवर से कमल-पुष्प लेकर मन्त्र से अभिमन्त्रित किया और क्रोधपूर्वक धन्वन्तरि के ऊपर फेंक दिया ॥३२॥ प्रज्वलित अग्निशिखा की भाँति उस कमल-पुष्प को आते देखकर धन्वन्तरि ने निःश्वास वायु द्वारा उसे भस्म कर दिया ॥३३॥ अनन्तर मन्त्र से अभिमन्त्रित एक मुट्ठी धूल लेकर उसके द्वारा उन्होंने उस भस्म को भी निष्फल कर दिया। फिर वे अवहेलनापूर्वक हँसने लगे ॥३४॥ तब देवी ने शत्रु पर अभिमंत्रित शक्ति का प्रयोग किया, जो ग्रीष्म-कालीन सूर्य के समान प्रभापूर्ण थी ॥३५॥ उस जाज्वल्यमान शक्ति को देखकर धन्वन्तरि ने विष्णुप्रदत्त शूल द्वारा उसे नष्ट कर दिया ॥३६॥ उस शक्ति को व्यर्थ होते देखकर वह देवी कोप से जल उठी । अब उसने कभी व्यर्थ न जानेवाले दुःसह एवं भयंकर नागपाश को हाथ में ले लिया, जो एक लाख नागों से युक्त, सिद्ध मंत्र से अभिमन्त्रित तथा काल और अन्तक के समान तेजस्वी था । उसे क्रोधपूर्वक चला दिया ॥३७-३८॥ धन्वन्तरि नागपाश को देखकर हँस पड़े और गरुड़ का स्मरण करने लगे । स्मरण करते ही पक्षिराज गरुड़ आ गये ॥३९॥ सर्पास्त्र को आया देख दीर्घकाल के भूखे हुए हरिवाहन गरुड़ ने चोंच से मार-मारकर सब नागों को अपना आहार बना

---

१ क. कटूक्तिम । २ ख. विधा० ।

नागास्त्रं निष्फलं दृष्ट्वा कोपरक्तेक्षणा भृशम् । जग्राह भस्ममुष्टिं च शिवदत्तां पुरा प्रिये ॥४१॥
भस्ममुष्टिं मन्त्रपूतां दृष्ट्वा च प्रेरितां यथा । पक्षवातेन चिक्षेप शिष्यं पश्चान्निधाय च ॥४२॥
निरस्तां भस्ममुष्टिं च दृष्ट्वा देवी चुकोप ह । जग्राह शूलमव्यर्थं हन्तुं धन्वन्तरिं स्वयम् ॥४३॥
शिवदत्तं च शूलं च शतसूर्यसमप्रभम् । अव्यर्थशूलं लोकेषु प्रलयाग्निसमप्रभम् ॥४४॥
अथ ब्रह्मा तथा शंभुराजगाम रणाजिरम् । धन्वन्तरेश्च रक्षार्थं शमनार्थं खगस्य च ॥४५॥
दृष्ट्वा शंभुं जगद्गौरी विधिं च जगतां पतिम् । भक्त्या ननाम तावेव निःशङ्का शूलधारिणी ॥४६॥
धन्वन्तरिश्च गरुडः प्रणनाम सुरेश्वरौ । तुष्टाव परया भक्त्या तौ च चक्रतुराशिषम् ॥४७॥
उवाच ब्रह्मा मधुरं हितं धन्वन्तरिं मुदा । पूजार्थं मनसायाश्च लोकानां हितकाम्यया ॥४८॥

## ब्रह्मोवाच

धन्वन्तरे महाभाग सर्वशास्त्रविशारद । रणं ते मनसा सार्धं न हि साम्यं च मे मतम् ॥४९॥
शिवदत्तेन शूलेन दुर्निवार्येण सर्वतः । त्रैलोक्यं भस्मसात्कर्तुं क्षमेयं त्रिदशेश्वरी ॥५०॥
ध्यानं कौथुमशाखोक्तं कृत्वा भक्त्या समाहितः । दत्त्वा षोडशोपचारं देव्याश्च कुरु पूजनम् ॥५१॥
आस्तीकोक्तेन स्तोत्रेण स्तवनं कर्तुमर्हसि । परितुष्टा च मनसा वरं तुभ्यं प्रदास्यति ॥५२॥

---

लिया ॥४०॥ प्रिये ! नागास्त्र को विफल देख मनसा की आँखें क्रोध से लाल हो गयीं । उन्होंने एक मुट्ठी भस्म उठाया, जिसे पूर्वकाल में शिव ने दिया था । मन्त्र से पवित्र किये गये उस मुट्ठी भर भस्म को चलाया गया देख गरुड़ ने शिष्य धन्वन्तरि को पीछे करके अपने पंख के वायु से वह सारा भस्म बिखेर दिया । यह देख मनसा देवी को बड़ा क्रोध हुआ । उन्होंने धन्वन्तरि का वध करने के लिए स्वयं अमोघ शूल, जिसे शिव ने उन्हें दिया था, हाथ में ले लिया । वह अमोघ शूल सैकड़ों सूर्यों के समान चमक रहा था तथा प्रलयकालिक अग्नि के समान प्रकाशित था ॥४१-४४॥ अनन्तर धन्वन्तरि के रक्षार्थ और गरुड़ को शान्त करने के लिए ब्रह्मा एवं शिव भी उस रणाङ्गण में आ गये ॥४५॥ शूल लिये निःशङ्क खड़ी जगद्गौरी ने शिव एवं जगत्पति ब्रह्मा को देखकर भक्तिपूर्वक उन दोनों को नमस्कार किया ॥४६॥ धन्वन्तरि समेत गरुड़ ने भी उन देवश्रेष्ठ को प्रणाम करके पराभक्ति से स्तुति की । उन दोनों ने उन्हें आशिष प्रदान किया ॥४७॥ लोगों के हित की कामना से उस मनसा देवी की पूजा के लिए ब्रह्मा ने धन्वन्तरि से मधुर एवं हितकर वचन कहा ॥४८॥

**ब्रह्मा बोले**—महाभाग ! सभी शास्त्रों में निष्णात धन्वन्तरि ! हमारे मत से मनसा देवी के साथ तुम्हारा युद्ध असदृश है (उचित नहीं है) ॥४९॥ यह देवाधीश्वरी शिवप्रदत्त शूल द्वारा तीनों लोकों को भस्म कर सकती है ॥५०॥ सावधान होकर कौथुम शाखा में वर्णित ध्यान करके भक्तिपूर्वक सोलहों उपचारों से इस देवी की अर्चना करो ॥५१॥ आस्तीक द्वारा किये गये स्तोत्र से तुम्हें स्तुति करनी चाहिए । प्रसन्न होने पर यह मनसा देवी तुम्हें वर प्रदान करेगी ॥५१-५२॥ ब्रह्मा की बात सुनकर शिव ने उसका अनुमोदन किया । गरुड़

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा चकारानुमतिं शिवः। वैनतेयश्च संप्रीत्या बोधयामास यत्नतः ॥५३॥
एषां च वचनं श्रुत्वा स्नात्वा शुचिरलंकृतः। विधिं पुरोहितं कृत्वा पूजां कर्तुं समुद्यतः ॥५४॥

### धन्वन्तरिरुवाच

इहाऽऽगच्छ जगद्गौरि गृहाण मम पूजनम्। पूज्या त्वं त्रिषु लोकेषु पुरा कश्यपकन्यके ॥५५॥
त्वया जितं जगत्सर्वं देवि विष्णुस्वरूपया। तेन तेऽस्त्रप्रयोगश्च न कृतो रणभूमिषु ॥५६॥
इत्युक्त्वा संयतो भूत्वा भक्तिनम्रात्मकंधरः। गृहीत्वा शुक्लकुसुमं ध्यानं कर्तुं समुद्यतः ॥५७॥
चारुचम्पकवर्णाभां सर्वाङ्गसुमनोहराम्। ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां शोभितां सूक्ष्मवाससा ॥५८॥
सुचारुकबरीशोभां रत्नाभरणभूषिताम्। सर्वाभयप्रदां देवीं भक्तानुग्रहकारकाम् ॥५९॥
सर्वविद्याप्रदां शान्तां सर्वविद्याविशारदाम्। नागेन्द्रवाहिनीं देवीं भजे नागेश्वरीं पराम् ॥६०॥
ध्यात्वैवं कुसुमं दत्त्वा नानाद्रव्यसमन्वितम्। दत्त्वा षोडशोपचारं पूजयामास तां प्रिये ॥६१॥
स्तोत्रं चकार यत्नाच्च पुलकाञ्चितविग्रहः। पुटाञ्जलियुतो भूत्वा भक्तिनम्रात्मकंधरः ॥६२॥

### धन्वन्तरिरुवाच

नमः सिद्धिस्वरूपायै सिद्धिदायै नमो नमः। नमः कश्यपकन्यायै वरदायै नमो नमः ॥६३॥

---

ने भी प्रेमपूर्वक प्रयत्न से उन्हें समझाया ॥५३॥ उन सबकी बात सुनकर धन्वन्तरि स्नान करके पवित्र होकर सुसज्जित हुए ब्रह्मा को पुरोहित बनाकर देवी की पूजा करने के लिए तैयार हो गये ॥५४॥

**धन्वन्तरि बोले**—जगद्गौरि ! यहाँ आओ और मेरी पूजा ग्रहण करो । हे कश्यपपुत्रि ! पहले से ही तीनों लोकों में तुम्हारी पूजा होती आयी है ॥५५॥ देवि ! विष्णुस्वरूप से तुमने समस्त संसार को जीत लिया है, इसीलिए रणस्थल में तुमने अस्त्र का प्रयोग नहीं किया है ॥५६॥ इतना कहकर संयत भाव से भक्तिपूर्वक कन्धे झुकाये वे श्वेत पुष्प लेकर ध्यान करने को उद्यत हुए ॥५७॥ सुन्दर चम्पापुष्प के समान अंगों की कान्तिवाली, सर्वावियवसुन्दरी, मुसकराहट से प्रसन्नमुखवाली, सूक्ष्म वस्त्र से शोभित, सुन्दर केशों की वेणी की शोभा से युक्त, रत्नों के आभूषणों से भूषित, सबको अभयदान देनेवाली, दिव्यरूपा, भक्तों पर अनुग्रह करनेवाली, सम्पूर्ण विद्याओं को देनेवाली, शान्तस्वरूपा, सर्वविद्याविशारदा, नागेन्द्रवाहिनी और नागों की स्वामिनी परा देवी मनसा का मैं भजन करता हूँ ॥५८-६०॥ प्रिये ! इस भाँति ध्यान करके पुष्प देकर अनेक प्रकार के द्रव्यों से युक्त षोडशोपचार चढ़ाकर धन्वन्तरि ने उनका पूजन किया ॥६१॥ तत्पश्चात् पुलकितशरीर हो भक्ति से मस्तक झुका दोनों हाथ जोड़कर उन्होंने यत्नपूर्वक मनसा देवी की स्तुति की ॥६२॥

**धन्वन्तरि बोले**—सिद्धिस्वरूपवाली मनसा देवी को नमस्कार है। सिद्धि प्रदान करनेवाली देवी को बार-बार नमस्कार है। कश्यपकन्या को नमस्कार है, वर प्रदान करनेवाली को बार-बार नमस्कार है ॥६३॥

नमः शंकरकन्यायै शंकरायै नमो नमः । नमस्ते नागवाहिन्यै नागेश्वय नमो नमः ॥६४॥
नमः आस्तीकजनन्यै जनन्यै जगतां मम । नमो जगत्कारणायै जरत्कारुस्त्रियै नमो नमः ॥६५॥
नमो नागभगिन्यै च योगिन्यै च नमो नमः । नमश्चिरं तपस्विन्यै सुखदायै नमो नमः ॥६६॥
नमस्तपस्यारूपायै फलदायै नमो नमः । सुशीलायै च साध्व्यै च शान्तायै च नमो नमः ॥६७॥
इत्येवमुक्त्वा भक्त्या च प्रणनाम प्रयत्नतः । तुष्टा देवी वरं दत्त्वा सत्वरं स्वालयं ययौ ॥६८॥
ब्रह्मरुद्रवैनतेयाः समाजग्मुर्निजालयम् । धन्वन्तरिश्च भगवाञ्जगाम निजमन्दिरम् ॥६९॥
जग्मुर्नागाः प्रहृष्टाश्च फणाराजिविराजितः । इत्येवं कथितं सर्वं स्तवराजं मया तव ॥७०॥
विधिना मातरं भक्तिमास्तीकश्च चकार ह । तदा तुष्टा जगद्गौरी पुत्रं तं मुनिपुंगवम् ॥७१॥
इदं स्तोत्रं महापुण्यं भक्तियुक्तश्च यः पठेत् । वंशजानां नागभयं नास्ति तस्य न संशयः ॥७२॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मखं० नारदना० राधाकृष्णसं० धन्वन्तरिदर्प-
भङ्गमनसाविजयो नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५१॥

⊙

---

शङ्कर-कन्या को नमस्कार है, शङ्करस्वरूपा को बार-बार नमस्कार है । नागवाहिनी को नमस्कार है और नागेश्वरी को बार-बार नमस्कार है ॥६४॥ आस्तीक-जननी को नमस्कार है। जगत् की जननी को नमस्कार है । जगत् की कारणभूता को नमस्कार है । जरत्कारु की पत्नी को नमस्कार है ॥६५॥ नागों की भगिनी को नमस्कार है । योगिनी को बार-बार नमस्कार है । चिरकाल तक तपस्या करनेवाली को नमस्कार है । सुख देनेवाली को बार-बार नमस्कार है ॥६६॥ तपस्यास्वरूपवाली को नमस्कार है । फल प्रदान करनेवाली को बार-बार नमस्कार है । सुशीला, पतिव्रता एवं शान्त स्वरूपवाली को बार-बार नमस्कार है ॥६७॥ इतना कहकर भक्ति से प्रयत्नपूर्वक प्रणाम किया और देवी भी प्रसन्न होकर उन्हें वरदान देकर शीघ्र अपने घर चली गयी ॥६८॥ ब्रह्मा, शिव एवं गरुड़ अपने-अपने निवास को गये । भगवान् धन्वन्तरि भी अपने भवन को गये ॥६९॥ फणों से भूषित नागगण भी अतिहर्षित होकर चले गये । इस प्रकार मैंने सम्पूर्ण स्तवराज तुमसे कह दिया ॥७०॥ आस्तीक मुनि ने अपनी माता की सविधि भक्ति की। तब जगद्गौरी अपने पुत्र मुनिश्रेष्ठ पर प्रसन्न हुईं ॥७१॥ जो भक्तिपूर्वक इस महापुण्य स्तोत्र का पाठ करता है, उसके वंशजों को नागों से भय नहीं होता है, इसमें संशय नहीं ॥७२॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में धन्वन्तरि-दर्पभंग
और मनसाविजय नामक इक्यावनवाँ अध्याय समाप्त ॥५१॥

⊙

# अथ द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

**श्रीकृष्ण उवाच**

सर्वेषां दर्पभङ्गश्च कथितश्च श्रुतस्त्वया । क्षुद्राणां महतां चैव कृत एव न संशयः ॥१॥
अधुना च समुत्तिष्ठ गच्छ वृन्दावनं वनम् । गोपिका विरहार्ताश्च शीघ्रं पश्यामि सुन्दरि ॥२॥

**नारायण उवाच**

इत्येवं वचनं श्रुत्वा मानिनी रसिकेश्वरी । उवाच कृष्णं नय मां न शक्ता गन्तुमीश्वर ॥३॥
राधिकावचनं श्रुत्वा प्रहस्य मधुसूदनः । मामारुहेत्येवमुक्त्वा सोऽन्तर्धानं चकार ह ॥४॥
सा मनोयायिनी राधा कृत्वा च रोदनं क्षणम् । इतस्ततस्तमन्वेष्य वृन्दारण्यं जगाम सा ॥५॥
विवेश चन्दनवनं रुदती शोककातरा । ददर्श गोपिकास्तत्र शोकार्ता भयविह्वलाः ॥६॥
ताम्रास्या घूर्णनयना भ्रमन्तीः सर्वकाननम् । नाथ नाथेति कुर्वन्तो निराहारा रुषाऽन्विताः ॥७॥
तां दृष्ट्वा राधिका सा च प्रेमविच्छेदकातरा । कथयामास वृत्तान्तं मलयभ्रमणादिकम् ॥८॥
ताभिः सार्धं च सा राधा रुरोद विरहातुरा । हा नाथ नाथेत्युच्चार्य विलप्य च मुहुर्मुहुः ॥९॥

---

# अध्याय ५२

## राधा और माधव का रास-वर्णन

**श्रीकृष्ण बोले**—हे सुन्दरी ! छोटे-बड़े सभी लोगों का गर्वनाश मैंने कह दिया और तुमने सुन भी लिया, इसमें संशय नहीं । अब उठो, वृन्दावन जाओ और मैं विरह-पीड़ित गोपिकाओं को शीघ्र देखता हूँ ॥१-२॥

**नारायण बोले**—भगवान् कृष्ण की ऐसी बात सुनकर मानिनी एवं रसिकेश्वरी राधा ने उनसे कहा—हे ईश्वर ! मैं चलने में असमर्थ हूँ, अतः मुझे तुम ले चलो ॥३॥ राधिका जी की बात सुनकर भगवान् मधुसूदन ने हँसकर कहा—'मुझ पर चढ़ जाओ ।' इस प्रकार कहकर वे अन्तर्हित हो गये । यह देखकर मन के समान चलनेवाली राधा ने क्षण भर विलाप किया । अनन्तर इधर-उधर भगवान् कृष्ण को खोजकर वे वृन्दावन चली गयीं । वहाँ चन्दन-वन में प्रवेशकर रोती एवं शोक-कातर होती हुई उन्होंने गोपियों को देखा जो शोक से पीड़ित, भय से व्याकुल, लाल मुख, चंचल नेत्र, समस्त काननों में घूमती हुई 'हा नाथ ! हा नाथ !' कहती हुई निराहार तथा कुपित थीं ॥४-७॥ प्रेम-वियोग से कातर हुई राधिका ने उन (गोपियों) को देखकर मलय पर्वत पर भ्रमण करने आदि का वृत्तान्त कह डाला ॥८॥ फिर विरह-व्याकुल वह राधिका भी उन लोगों के साथ रोने लगी और 'हा नाथ ! हा नाथ !' कहकर बार-बार विलाप करके कृष्ण की निन्दा करती

विनिन्द्य कृष्णं कोपेन तर्जयामास च क्षणम् । क्षणं शरीरमुत्स्रष्टुं कोपात्सर्वाः समुद्यताः ॥१०॥
एतस्मिन्नन्तरे कृष्णस्तत्र चन्दनकानने । स्वात्मानं दर्शयामास राधिकां गोपिकागणम् ॥११॥
राधा गोपाङ्गनाभिश्च दृष्ट्वा प्राणेश्वरं मुदा । सस्मिता च प्रदुद्राव पुलकाञ्चितविग्रहा ॥१२॥
तूर्णं कृष्णं समाश्लिष्य जहार मुरलीं रुषा । मालां च पीतवसनं नग्नं[1] कृत्वा च मानिनी ॥१३॥
पुनः संधारयामास वस्त्रं मालां मनोहराम् । विनोद मुरलीं तुष्टा वृन्दावनविनोदिनी ॥१४॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमावतं च कातरम् । मुहुर्मुहुर्मुखं वीक्ष्य चुचुम्ब परमादरम् ॥१५॥
क्षणं संतर्जयामास क्षणं स्तोत्रं चकार ह । सकर्पूरं ज ताम्बूलं क्षणं तस्मै ददौ मुदा ॥१६॥
अथ गोपाङ्गनाः सर्वा रुरुदुः प्रेमविह्वलाः । सर्वं निवेदनं चक्रुः स्वदुःखं विरहोद्भवम् ॥१७॥
देहत्यागं च स्नानं च स्वाहारस्य विसर्जनम् । वने वनेऽहर्निशं च शश्वद्भ्रमणमेव च ॥१८॥
क्षणं तं भर्त्सयामासुः स्तोत्रं चक्रुःक्षणं मुदा । क्षणं ददुर्भूषणं च क्षणं तस्मै च चन्दनम् ॥१९॥
काश्चिदूचुः प्राणचोरं पश्य रक्षेति सन्ततम् । एवं पुनर्न कर्तव्यमनेनेति च काश्चन ॥२०॥
काश्चिदूचुरिमं मध्ये यूयं कुरुत सत्वरम् । निबद्धप्रेमपाशेन हृदये चेति काश्चन ॥२१॥

---

हुई क्रोध से क्षण भर (शरीर) पीटने लगीं तथा कोप के कारण क्षण में शरीर त्याग करने के लिए सभी तैयार हो गयीं ॥९-१०॥ इसी बीच उस चन्दनवन में राधिका एवं समस्त गोपियों को भगवान् कृष्ण ने अपना दर्शन दिया ॥११॥ गोपियों समेत राधा ने अपने प्राणेश्वर को देखकर अति प्रसन्नता प्रकट की। उनके शरीर में रोमाञ्च हो आया। मन्द मुसकान करती हुई वे शीघ्रता से उनके पास पहुँच गयीं ॥१२॥ और शीघ्र कृष्ण का आलिंगन करके क्रोध से उनकी मुरली, माला और पीताम्बर छीनकर नग्न करके पुनः सन्तुष्ट होने पर वृन्दावन में विनोद करनेवाली मानिनी राधा ने वस्त्र एवं मनोहर माला पहनाकर विनोद की मुरली भी उन्हें लौटा दी ॥१३-१४॥ उनके अंगों में चन्दन, अगुरु, कस्तूरी एवं कुंकुम का लेप लगाकर बार-बार उनका मुख देखकर परम आदर से चुम्बन करने लगीं ॥१५॥ क्षण में उनकी तर्जना करती हुई क्षण में स्तुति भी करने लगीं और क्षण में कपूर आदि सुवासित ताम्बूल प्रसन्नतापूर्वक उन्हें देने लगीं ॥१६॥ तदुपरान्त प्रेमाकुल होकर रोती हुई गोपियों ने विरह-जनित अपना समस्त दुःख उनसे निवेदन किया। देहत्याग की तैयारी, स्नान, भोजन-त्याग, वन-वन में रात-दिन निरन्तर घूमते रहना आदि सब कुछ बताया। अनन्तर वे गोपियाँ क्षण में उनकी भर्त्सना करने लगीं और क्षण में प्रसन्न होकर स्तुति करने लगीं; क्षण में उन्हें भूषणों से सजाने लगीं और क्षण में सबने उन्हें चन्दन-चर्चित किया ॥१७-१९॥ उनमें से कोई कह रही थीं कि—देखो, ये प्राणचोर हैं, इनकी निरन्तर रक्षा करो, अब ये पुनः ऐसा काम नहीं करेंगे ॥२०॥ कोई कह रही थीं—इन्हें शीघ्रता से सब लोग अपने मध्य में कर लो; कोई कह रही थीं—प्रेमपाश में बाँधकर इन्हें अपने हृदय में रख लो ॥२१॥ कोई

---

१ ख. भग्नं ।

काश्चिदूचुरयं नास्ति प्रतीतिर्नं कदाचन। यत्नाच्चेतनचोरं च पश्य पश्येति काश्चन ॥२२॥
काश्चिदूचुर्निष्ठुरोऽयं नरघातीति कोपतः। न पुनर्वदते मां च काश्चनेति च नारद ॥२३॥
निर्जनानि च रम्याणि यानि यानि वनानि च। भ्रमेयुर्गोपिकास्तानि कृष्णेन सह कौतुकात् ॥२४॥
एवं तं गोपिकाः सर्वा मध्ये कृत्वा सदीश्वरम्। ययुर्वनान्तरं यत्र सुरम्यं रासमण्डलम् ॥२५॥
रासं गत्वा स्वर्णपीठे तस्थौ स रसिकेश्वरः। निशि भाति यथाऽऽकाशे चन्द्रस्तारागणैः सह ॥२६॥
नानामूर्तिविधायात्र सह ताभिर्जनार्दनः। चकार च पुनः क्रीडां कामुकीनां मनोहराम् ॥२७॥
स्वयं राधां करे धृत्वा पूर्वोक्तं रतिमन्दिरम्। विश्वकर्मविनिर्माणमारुरोह स्मरातुरः ॥२८॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमाक्तं सुवासितम्। तत्र चम्पकतल्पे स सुष्वाप च तया सह ॥२९॥
नानाप्रकारशृङ्गारं कामशास्त्रविशारदः। चकार कामी क्रीडां च कामिन्या सह कौतुकी ॥३०॥
बभूव सुरतिस्तत्र सुचिरं च तयोर्मुने। रतिनिष्ठा तयो रम्या निरतिर्नास्ति तत्क्षणम् ॥३१॥
एवं तौ तस्थतुस्तत्र राधाकृष्णौ रसोत्सुकौ। तस्थुस्ता गोपिकाभिश्च सुरतौ कृष्णमूर्तयः ॥३२॥

## नारद उवाच

आदौ राधां समुच्चार्य पश्चात्कृष्णं विदुर्बुधाः। निमित्तमस्य मां भक्तं वद भक्तजनप्रिय ॥३३॥

---

कह रही थीं—न, इनका कभी भी विश्वास न करना, कोई कह रही थीं—इस चितचोर को प्रयत्न करके बार-बार देखो ॥२२॥ कोई कुपित होकर कह रही थीं कि—ये बड़े निष्ठुर तथा मनुष्यघाती हैं। फिर कोई कह रही थीं कि यह मुझसे नहीं बोल रहे हैं ॥२३॥ जितने निर्जन और रमणीय वन हैं, उनमें गोपिकाएँ कृष्ण के साथ कौतुक से भ्रमण करें ॥२४॥ ऐसा विचारकर सभी गोपियों ने ईश्वर श्रीकृष्ण को मध्य में करके जहाँ अतिरमणीक रासमण्डल था, उस वन को प्रस्थान किया ॥२५॥ वहाँ पहुँचकर रसिकेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण सुवर्ण-सिंहासन पर स्थित हुए। वे वहाँ उसी तरह शोभित होने लगे जैसे आकाश में तारागणों के साथ चन्द्रमा ॥२६॥ पश्चात् जनार्दन श्रीकृष्ण ने अपने अनेक रूप बनाकर उन गोपियों के साथ पुनः वही क्रीडाएँ कीं, जो कामुकियों को मनोहर लगती थीं ॥२७॥ फिर कामातुर कृष्ण राधा का हाथ पकड़कर पूर्व वर्णित रति-महल में पहुँच गये, जिसे विश्वकर्मा ने बनाया था, जो चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुम से आर्द्र एवं सुवासित था। वहाँ चम्पक-पुष्पों की शय्या पर राधा के साथ शयन किया ॥२८-२९॥ कामशास्त्रनिपुण एवं कामी कृष्ण ने कामिनी राधा के साथ कौतुकवश विभिन्न प्रकार की शृंगारी क्रीड़ा की ॥३०॥ हे मुने! इस प्रकार वे दोनों अति चिरकाल तक सुरति-क्रिया में लगे रहे। उस समय उन दोनों की रमणीय रति-निष्ठा किसी प्रकार कम नहीं होती थी ॥३१॥ इस प्रकार रसकेलि के लिए राधाकृष्ण समुत्सुक रहे और कृष्ण के अनेक रूप उन गोपियों के साथ सुरति करते रहे ॥३२॥

**नारद बोले**—हे भक्तजनों के प्रिय! विद्वान् लोग प्रथम राधा का नाम कहकर पीछे कृष्ण 'राधाकृष्ण' का नाम लेते हैं, इसका क्या कारण है, मुझ भक्त को बताने की कृपा करें ॥३३॥

## नारायण उवाच

निमित्तमस्य त्रिविधं कथयामि निशामय। जगन्माता च प्रकृतिः पुरुषश्च जगत्पिता ॥३४॥
गरीयसी त्रिजगतां माता शतगुणैः पितुः। राधाकृष्णेति गौरीशेत्येवं शब्दः श्रुतौ श्रुतः ॥३५॥
कृष्णराधेशगौरीति लोके न च कदा श्रुतः। प्रसीद रोहिणीचन्द्र गृहाणार्घ्यमिदं मम ॥३६॥
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं संज्ञया सह भास्कर। प्रसीद कमलाकान्त गृहाण मम पूजनम् ॥३७॥
इति दृष्टं सामवेदे कौथुमे मुनिसत्तम। राशब्दोच्चारणादेव स्फीतो भवति माधवः ॥३८॥
धाशब्दोच्चारतः पश्चाद्धावत्येव ससंभ्रमः। आदौ पुरुषमुच्चार्य पश्चात्प्रकृतिमुच्चरेत् ॥३९॥
स भवेन्मातृघाती च वेदातिक्रमणे मुने। त्रैलोक्ये भारतं धन्यं कर्मक्षेत्रं च पुण्यदम् ॥४०॥
ततो वृन्दावनं पुण्यं राधापादाब्जरेणुना। षष्टिवर्षसहस्राणि तपस्तप्तं च वेधसा ॥
राधिकाचरणाम्भोजपादरेणूपलब्धये ॥४१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० राधामाधवयो
रासवर्णनं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५२॥

⊙

---

**श्रीकृष्ण बोले**--मैं इसमें तीन कारण बता रहा हूँ, सुनो! प्रकृति जगत् की माता है और पुरुष जगत् का पिता। तीनों लोकों में माता का गौरव पिता से सौ गुना अधिक है। इसीलिए वेद में 'राधाकृष्ण और गौरीश' ऐसा कहा गया है ॥३४-३५॥ लोक में भी 'कृष्ण राधा, ईशगौरी' ऐसा कहते कभी नहीं सुना गया। अन्य के लिए भी 'हे रोहिणीचन्द्र! हे संज्ञासहित सूर्य! मेरे इस अर्घ्य को स्वीकार करो और प्रसन्न हो जाओ और हे कमलाकान्त! मेरे इस पूजन को स्वीकार कर आप प्रसन्न हों' इस भाँति कहा गया है। हे मुनिसत्तम! सामवेद की कौथुमी शाखा में इसी प्रकार देखा गया है। 'रा' शब्द के उच्चारण करते ही माधव उठकर तैयार हो जाते हैं और 'धा' शब्द कहते ही पीछे-पीछे घबड़ाकर दौड़ने लगते हैं। हे मुने! आदि में पुरुष का नाम लेकर पश्चात् प्रकृति का नाम (कृष्ण-राधा) जो कहता है वह वेद का अतिक्रमण (उल्लंघन) करने के नाते मातृघाती (माता का हत्यारा) कहा जाता है। इस प्रकार यह कर्मक्षेत्र भारत तीनों लोकों में धन्य और पुण्यप्रद है। उसमें वृन्दावन अधिक पुण्य प्रदेश है, क्योंकि वह राधा जी के चरण-कमल की धूलि से पवित्र हुआ है। राधा जी के चरण-कमल की उसी रेणु को प्राप्त करने के लिए ब्रह्मा ने साठ सहस्र वर्ष तप किया था ॥३६-४१॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में राधा-माधव
का रासवर्णन नामक बावनवाँ अध्याय समाप्त ॥५२॥

⊙

# अथ त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

### नारद उवाच

समतीते पूर्णरासे किं चकार जगत्पतिः। रहस्यं किं बभूवाथ तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥१॥

### नारायण उवाच

रासं निवर्त्य रासे च रासेश्वर्या समन्वितः। स्वयं रासेश्वरस्तस्माद्यमुनापुलिनं ययौ ॥२॥
तत्र स्नात्वा जलं पीत्वा निर्मलं निर्मले जले। सार्धं गोपाङ्गनाभिश्च जलक्रीडां चकार सः ॥३॥
ततो जगाम भगवान्भाण्डीरं राधया सह। गोपाङ्गनाश्च स्वगृहान्प्रययुर्विरहातुराः ॥४॥
क्रीडां चकार रहसि भाण्डीरे मालतीवने। मालतीपुष्पशय्यायां रम्यायां रमणोत्सुकः ॥५॥
कृत्वा क्रीडां च तत्रैव वासन्तीकाननं ययौ। रेमे तत्रैव रासेशो वसन्ते सुमनोहरे ॥६॥
तत्रैव रमणं कृत्वा ययौ चन्दनकाननम्। चन्दनोक्षितसर्वाङ्गो गृहीत्वा चन्दनोक्षिताम् ॥७॥
रम्ये चन्दनतल्पे च स्निग्धे चन्दनपल्लवे। पूर्णचन्द्रे समुदिते विजहार तया सह ॥८॥
कृत्वा विहारं तत्रैव ययौ चम्पककाननम्। रम्ये चम्पकतल्पे च चकार रतिमीश्वरः ॥९॥

---

# अध्याय ५३

## श्रीकृष्ण की रास-क्रीड़ा का वर्णन

**नारद बोले**—रासक्रीड़ा को पूरा करके जगत्पति भगवान् ने पुनः और कौन रहस्यमय चरित किया, मुझे आप बताने की कृपा करें ॥१॥

**नारायण बोले**—रास-मण्डल में रास-क्रीड़ा करने के उपरान्त रासेश्वरी राधा को साथ लिये रासेश्वर भगवान् कृष्ण यमुना-तट की ओर चले गये ॥२॥ वहाँ निर्मल जल में स्नान करके, जल पीकर राधा और गोपियों के साथ जल-क्रीड़ा की ॥३॥ तदनन्तर राधा को साथ लिये भगवान् भाण्डीर वन में गये और गोपियाँ विरह-व्याकुल होती हुई अपने-अपने घर गयीं ॥४॥ भाण्डीर के मालती वन में मालती-पुष्पों की रमणीक शय्या पर रमणोत्सुक भगवान् क्रीडा करके वहीं वासन्ती वन में चले गये। वहाँ अतिमनोहर वसन्त में रासेश भगवान् ने रमण किया ॥५-६॥ चन्दनर्चाचित राधा को साथ लिये चन्दनर्चाचित कृष्ण चन्दन वन चले गये। वहाँ चन्दन एवं चन्दन-पल्लवों की रम्य एवं स्निग्ध शय्या पर पूर्ण चन्द्र की निर्मल चाँदनी में राधा के साथ विहार किया ॥७-८॥ वहाँ विहार करने के अनन्तर वे राधा के साथ चम्पा वन चले गये। वहाँ चम्पा-पुष्पों

रतिं निर्वृत्य तत्रैव ययौ पद्मवनं प्रभुः। पद्मपत्रसमाकीर्णे तल्पेऽतिसुमनोहरे ॥१०॥
सार्धं तत्र पद्ममुख्या शीतेन पद्मवायुना। चकार सुखसंभोगं ययौ निद्रां तया सह ॥११॥
विहाय निद्रां निद्रेशो ददर्श निद्रितां प्रियाम्। शयानां पद्मतल्पे च सुखसंभोगमात्रतः ॥१२॥
दृष्ट्वा मुखं च घर्माक्तं शरच्चन्द्रविनिन्दितम्। अतिसंलुप्तसिन्दूरं लुप्तं कज्जलमुल्बणम् ॥१३॥
संलुप्ताधररागं च संलुप्तगण्डपत्रकम्। विस्रस्तकबरीभारं नेत्रोत्पलविमुद्रितम् ॥१४॥
रत्नकुण्डलयुग्मेनामूल्येन परिशोभितम्। राजितं मौक्तिकेनैव गजराजोद्भवेन च ॥१५॥
प्रेम्णा स्वसूक्ष्मवस्त्रेण वह्निशुद्धेन माधवः। चकार मार्जनं भक्त्या तद्वक्त्रं भक्तवत्सलः ॥१६॥
केशसंमार्जनं कृत्वा निर्माय कबरीं हरिः। माधवीमालतीमालाजालेन परिशोभिताम् ॥१७॥
रत्नपट्टसूत्रबद्धां वामवक्त्रां मनोहराम्। अतीव वर्तुलाकारां कुन्दपुष्पसुशोभिताम् ॥१८॥
ददौ सिन्दूरतिलकमधश्चन्दनमुज्ज्वलम्। कस्तूरीबिन्दुना सार्धं परितः परिशोभिताम् ॥१९॥
चकार पत्रकं गण्डयुग्मे चित्रविचित्रितम्। प्रददौ कज्जलं भक्त्या नेत्रोत्पलसमुज्ज्वलम् ॥२०॥
चकाराधररागं च राधायाश्चानुरागतः। कर्णभूषणयुग्मं च चकारातीव निर्मलम् ॥२१॥
अमूल्यरत्नहारं च स्तनभारयुगोज्ज्वलम्। ददौ कण्ठे च वैकुण्ठो मणिराजिविराजितम् ॥२२॥

---

की मनोरम शय्या पर भगवान् ने रति की और रतिक्रीड़ा से निवृत्त होने के अनन्तर वे कमलवन में गये। वहाँ कमलपत्र से सुसज्जित एवं अति मनोहर शय्या पर कमल-सुगन्धित तथा शीतल वायु के झोंके में कमलमुखी राधा के साथ सुख-सम्भोग किया और उन्हीं के साथ निद्रामग्न भी हो गये ॥९-११॥ उपरान्त निद्राधीश्वर भगवान् कृष्ण नींद से जागकर उठे और अपनी प्रेयसी राधा की ओर देखने लगे, जो कमल की शय्या पर उनके सुख-सम्भोग मात्र से गम्भीर निद्रा में मग्न पड़ी थीं ॥१२॥ उन्होंने शारदीय चन्द्रमा को तिरस्कृत करनेवाला राधा का मुख देखा, जो स्वेद-बिन्दुओं से आर्द्र (तर) हो गया था, जिसमें सिन्दूर की बिन्दी अति लुप्त हो (खो) गयी थी। इसी भाँति आँखों के काजल, ओंठों के राग (लालिमा) एवं कपोलों पर बनायी हुई कामकला की सुरचना अत्यन्त लुप्त हो गयी थी, केशों का जूड़ा खुल गया था, नीलकमल के समान नेत्र मुँदे हुए थे, उनका मुखमंडल रत्नों के अमूल्य युगल कुण्डलों से अति सुशोभित एवं गजमुक्ता से विभूषित था ॥१३-१५॥ पश्चात् भक्तवत्सल माधव ने प्रेमभक्तिपूर्वक अपने अग्नि-विशुद्ध एवं सूक्ष्म वस्त्र से उनका मुख पोंछ दिया ॥१६॥ भगवान् ने उनके केशों को कंघी से झाड़कर माधवी और मालती पुष्पों की मालाओं से सुशोभित सुन्दर जूड़ा बनाया, उसे रत्नों के सूत्रों से आबद्ध किया, जो वामभाग की ओर मुख किये अति मनोहर, अत्यन्त गोलाकार एवं कुन्द के पुष्पों से सुभूषित थी ॥१७-१८॥ उनके भाल में सिन्दूर का तिलक लगाया, उसके नीचे कस्तूरी-बिन्दी के साथ उज्ज्वल चन्दन-बिन्दी लगाकर चारों ओर से सुशोभित किया ॥१९॥ उनके युगल कपोलों पर अति चित्र-विचित्र पत्र (काम-कला) की रचना की, भक्तिपूर्वक नील कमल के समान नेत्रों में काजल लगाया और अति अनुराग से राधा के अधरों को लाल किया एवं दोनों कानों में अति निर्मल दो कर्ण-भूषण पहनाये ॥२०-२१॥ अमूल्य रत्नों के हार पहनाकर उनके युगल स्तनों को सुप्रकाशित किया, कण्ठ में अनेक मणियों की बनी

वह्निशुद्धांशुकं दिव्यममूल्यं विश्वरत्नतः । वासयामास वसनं कस्तूरीकुङ्कुमाक्तकम् ॥२३॥
प्रददौ पादयुगले रत्नमञ्जीररञ्जितम् । चकारालक्तकं भक्त्या पादाङ्गुलिनखेषु च ॥२४॥
चकार सेवां सेव्यायाः सेव्यस्त्रिजगतां सताम् । अहो सेवकसंभक्त्या श्वेतेन चामरेण च ॥२५॥
सर्वभावविदां श्रेष्ठो बोधज्ञः कामशास्त्रवित् । कामिनीं बोधयामास वासयामास वक्षसि ॥२६॥
प्रेम्णा च प्रददौ तस्यै सद्रत्नदर्पणं शुभम् । सुवेषदर्शनार्थं च मुखचन्द्रं च मार्जितुम् ॥२७॥
नानापुष्पैर्विरचितामम्लानां चन्दनोक्षिताम् । गण्डे सौभाग्ययुक्तायाः सौभाग्येन ददौ हरिः ॥२८॥
कस्तूरीकुङ्कुमाक्तं च सुगन्धि चन्दनं ततः । ददौ प्रियायाः सर्वाङ्गे प्रियः प्रेमभरेण च ॥२९॥
पारिजातस्य कुसुमं दत्तं रहसि ब्रह्मणा । प्रददौ तत्कबर्यां च ललितायाश्च नारद ॥३०॥
कमलं निर्मलं दिव्यं सहस्रदलमुज्ज्वलम् । शिवेन दत्तं रहसि ददौ तद्दक्षिणे करे ॥३१॥
अतिसारं मणीन्द्राणां मणिरत्नं च कौस्तुभम् । दत्तं रहसि धर्मेण तस्यै सुप्रीतये ददौ ॥३२॥
आसवं रत्नपात्रस्थं दस्रदत्तं च निर्जने । पानार्थं प्रददौ तस्यै कामोन्मादकरं परम् ॥३३॥
मालतीमाधवीकुन्दमन्दारचम्पकादिकम् । पुष्पं सद्रत्नपात्रस्थं तस्यै सुप्रीतये ददौ ॥३४॥

---

उत्तम माला पहनायी और उनके अग्निविशुद्ध दिव्य एवं विश्व के रत्नों से भी अमूल्य वस्त्र को कस्तूरी-कुंकुम से सिक्तकर सुवासित किया ॥२२-२३॥ उनके युगल चरण-कमल को रत्नों के नूपुरों से सुभूषित करके पैर की अँगुलियों के नखों पर भक्तिपूर्वक अलक्तक (महावर) लगाया ॥२४॥

इस प्रकार तीनों लोकों के सज्जनों के सेव्य भगवान् श्रीकृष्ण ने सेव्या श्री राधिका की सेवक की भाँति अति भक्ति-भाव से श्वेत चामरों द्वारा सेवा की ॥२५॥ अनन्तर कामशास्त्रवेत्ता भगवान् श्रीकृष्ण ने, जो समस्त भावों के वेत्ताओं में श्रेष्ठ एवं ज्ञानी हैं, अपनी प्रिय कामिनी को जगाकर अपने हृदय से लगा लिया और अपना उत्तम वेश एवं मुखचन्द्र देखने के लिए उन्होंने प्रेमपूर्वक उत्तम रत्न का एक शुभदर्पण प्रदान किया ॥२६-२७॥ अनन्तर परिपूर्ण सौभाग्यवाली उस देवी के गले में भगवान् कृष्ण ने सौभाग्यवश अनेक पुष्पों द्वारा सुरचित चन्दन-सिक्त एवं कभी म्लान न होनेवाली माला पहनायी और प्रेमविभोर होकर प्रियतम ने अपनी प्रियतमा के सर्वाङ्ग में कस्तूरी-कुंकुम मिश्रित सुगन्धित चन्दन का लेपन किया ॥२८-२९॥ हे नारद ! एकान्त में ब्रह्मा के दिये हुए पारिजात पुष्प को उनके सुन्दर जूड़े में लगा दिया; सहस्रदलवाला, निर्मल, दिव्य एवं सुप्रकाशित कमल को, जिसे एकान्त में शिव ने प्रदान किया था, प्रिया के दाहिने हाथ में दे दिया ॥३०-३१॥ मणिरत्न एवं मणीन्द्रों के उत्तम सारभाग द्वारा सुरचित कौस्तुभ मणि जिसे एकान्त में धर्म ने दिया था, भगवान् ने अति प्रेम के कारण राधा को पहना दिया ॥३२॥ रत्न पात्र में स्थित उस परम कामोन्मादी आसव को, जिसे उन्हें निर्जन प्रदेश में वैद्य अश्विनीकुमार ने दिया था, पान करने के लिए प्रेयसी को प्रदान किया ॥३३॥ उत्तम रत्नों के पात्रों में मालती, माधवी, कुन्द, मन्दार एवं चम्पा आदि के पुष्पों को रखकर उन्हें अति प्रसन्नतार्थ

सुदुर्लभं च ताम्बूलं कर्पूरादिसुसंस्कृतम् । भक्षणं कारयामास समयज्ञश्च तां प्रियाम् ।।३५।।
सुदुर्लभम् च विश्वेषु वाक्पतेः परिनिर्मितम् । अनुत्तमममूल्यं च वरुणेन रहःस्थले ।।३६।।
अतिसूक्ष्ममनुपमं दत्तं भक्त्या विराजितम् । वासयामास वसनं कृत्वा नग्नां च कौतुकात् ।।३७।।
देवराजेन दत्तं च गजराजेन्द्रमौक्तिकम् । नासिकाभूषणं चारु तस्यै सुप्रीतये ददौ ।।३८।।
एतस्मिन्नन्तरे तत्र सुशीलाद्याश्च गोपिकाः । षष्टिः तत्सहचर्यश्च राधायाः सुप्रतिष्ठिताः ।।३९।।
षष्टितत्कोटिगोपीभिः सार्धं संहृष्टमानसाः । आययुः पादचिह्नेन प्रियस्य वहतः प्रियाम् ।।४०।।
काश्चिच्चन्दनहस्ताश्च काश्चिच्चामरवाहिकाः । काश्चित्कस्तूरिहस्ताश्च मालाहस्ताश्च काश्चन ।।४१।।
काश्चित्सिन्दूरहस्ताश्च काश्चित्कङ्कतिकाकराः । काश्चिदलक्तककरा वस्त्रहस्ताश्च काश्चन ।।४२।।
काश्चिद्दर्पणहस्ताश्च पुष्पपात्रधरा वराः । काश्चित्क्रीडापद्महस्ता मालाहस्ताश्च काश्चन ।।४३।।
काश्चिदासवहस्ताश्च काश्चिद्भूषणवाहिकाः । करतालकराः काश्चिन्मृगं (मृदङ्गं) वाहिकाः पराः ।।४४।।
स्वरयन्त्रकराः काश्चिद्वीणाहस्ताश्च काश्चन । षट्त्रिंशद्रागरागिण्यो गोपिकारूपधारिकाः ।।४५।।
गोलोकादागता याश्च भारतं राधया सह । काश्चिज्जगुश्च ननृतुस्तत्राऽऽगत्य च काश्चन ।।४६।।
काश्चिच्चक्रुश्च सेवां च राधायाः श्वेतचामरैः । काश्चिच्चक्रुश्च देव्याश्च पादसंवाहनं मुदा ।।४७।।

---

प्रदान किया ।।३४।। पश्चात् समयज्ञाता भगवान् कृष्ण ने अपनी प्रिया राधा को कर्पूरादि से सुवासित एवं अति दुर्लभ ताम्बूल भक्षण कराया और अति कौतुकवश राधा को नग्न करके वह उत्तम वस्त्र पहनाया जो समस्त विश्व में दुर्लभ, बृहस्पति द्वारा निर्मित, परमोत्तम, अमूल्य एवं अनुपम था और जिसे वरुण ने एकान्त में भक्तिपूर्वक प्रदान किया था। देवराज इन्द्र द्वारा प्रदत्त गजेन्द्रमुक्ता नासिकाभूषण के रूप में उन्हें प्रीत्यर्थ प्रदान की ।।३५-३८।। इसी बीच राधा की सुशीला आदि साठ प्रिय सहचरी गोपियाँ, जो अति प्रतिष्ठित, साठ करोड़ उत्तम गोपियों को साथ लिये अत्यन्त प्रसन्न थीं, प्रेयसी राधा को लेकर घूमनेवाले प्रियतम भगवान् कृष्ण के चरण-चिह्नों द्वारा ढूँढ़ती हुई वहाँ आ पहुँचीं, जिनमें कुछ के हाथ में चन्दन, कुछ चामर लिये, कुछ गोपियाँ कस्तूरी लिये और कुछ माला हाथ में लिये थीं ।। ३९-४१।। कुछ के हाथ में सिन्दूर, कुछ के कर-कमलों में कंघी, कुछ अलक्तक (महावर) एवं कुछ वस्त्र लिये थीं ।।४२।। कुछ के हाथ में दर्पण, कुछ के हाथ में उत्तम पुष्प-पात्र, कुछ क्रीडाकमल लिये और कुछ हाथों में माला लिये थीं। कुछ आसव लिये, कुछ भूषण लिये चल रही थीं। इसी भाँति कुछ के हाथों में करताल, कुछ के मृदङ्ग, कुछ हाथों में स्वर-यंत्र और कुछ अपने हाथों में वीणा लिये थीं। इस प्रकार के छत्तीस राग-रागिनियाँ वहाँ गोपी रूप में (सेवार्थ) आ पहुँचीं, जो गोलोक से राधा के साथ भारत में आयी हुई थीं। राधा के सामने वहाँ पहुँचने पर उनमें से कुछ गान करने लगीं, कुछ नृत्य करने लगीं, कुछ श्वेत चामरों द्वारा राधा की सेवा और कुछ बड़ी

काचिद्ददौ च ताम्बूलं भक्षणार्थं महामुने । एवं कौतुकयुक्तश्च पुण्ये वृन्दावने वने ।।४८।।
प्रतस्थौ गोपिकासार्धं राधावक्षःस्थलस्थितः । क्षणं पपौ च माध्वीकं प्रियया सह माधवः ।।४९।।
क्षणं चखाद ताम्बूलं क्षणं निद्रां ययौ मुदा । क्षणं चकार शृङ्गारं रत्ननिर्मितमन्दिरे ।।५०।।
क्षणं जलविहारं च चकार यमुनाजले । इत्येवं कथिता वत्स रासक्रीडा हरेरहो ।।५१।।
स्वेच्छामयस्याऽऽत्मनश्च परिपूर्णतमस्य च । निर्गुणस्य स्वतन्त्रस्य परस्य प्रकृतेः प्रभोः ।।५२।।
ब्रह्मविष्णुशिवादीनामीश्वरस्य परस्य च । कृष्णजन्मरहस्यं च बालक्रीडनमीप्सितम् ।।५३।।
उक्तं किशोरचरितं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ।।५४।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० श्रीकृष्णरास-
क्रीडावर्णनं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।।५३।।

⊙

---

प्रसन्नता से देवी का चरण दबाने लगीं ।।४३-४७।। हे महामुने, कुछ उन्हें भक्षण के लिए ताम्बूल दे रही थीं। इस प्रकार उस पुण्य वृन्दावन में भगवान् गोपियों समेत राधा के वक्षःस्थल पर स्थित होकर क्षण में प्रिया के साथ आसव-पान कर रहे थे; क्षण में ताम्बूल खाने लगते थे और क्षण में प्रसन्नता से निद्रामग्न हो जाते थे; क्षण में उस रत्नों के सुन्दर महल में राधा के साथ शृंगार-मग्न होते थे और क्षण में यमुना-जल में जल-विहार करने लगते थे। हे वत्स ! इस प्रकार मैंने भगवान् की रास-क्रीड़ा बता दी और स्वेच्छामय, परिपूर्णतम, निर्गुण-स्वतन्त्र, प्रकृति से परे, ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव से परे, ईश्वर श्रीकृष्ण का जन्म-रहस्य, प्रिय बाल-केलि और किशोरावस्था का चरित्र वर्णन कर दिया, अब और क्या सुनना चाहते हो ? ।।४८-५४।।

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में श्रीकृष्ण की
रासक्रीड़ा-वर्णन नामक तिरपनवाँ अध्याय समाप्त ।।५३।।

⊙

# अथ चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

## नारद उवाच

अतः परं किं रहस्यं बभूव मुनिसत्तम। कथं जगाम भगवान्मथुरां नन्दमन्दिरात् ॥१॥
नन्दो दधार प्राणांश्च विच्छेदेन हरेः कथम्। गोपाङ्गना यशोदा वा कृष्णैकतानमानसाः ॥२॥
चक्षुर्निमेषविच्छेदाद्या राधा न हि जीवति। कथं दधार सा देवी प्राणान्प्राणेश्वरं विना ॥३॥
ये ये तत्सङ्गिनो गोपाः शयनासनभोगतः। कथं विसस्मरुस्ते च तादृशं बान्धवं व्रजे ॥४॥
श्रीकृष्णो मथुरां गत्वा किं किं कर्म चकार सः। स्वर्गारोहणपर्यन्तं तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥५॥

## नारायण उवाच

'कंसश्चकार यज्ञं च समाहूतो धनुर्मखम्। जगाम तत्र भगवान् तेन राज्ञा निमन्त्रितः ॥६॥
राजा प्रस्थापयामास' चाक्रूरं भगवत्प्रियम्। अक्रूरः प्रेरितो राज्ञा गत्वा च नन्दमन्दिरम् ॥७॥
श्रीकृष्णं च गृहीत्वा स सगणं मथुरां गतः। कृष्णश्च मथुरां गत्वा जघान नृपतिं मुने ॥८॥

---

# अध्याय ५४

## श्रीकृष्ण और राधा का संवाद

**नारद बोले**—हे मुनिश्रेष्ठ ! इसके उपरान्त भगवान् कृष्ण ने कौन चरित किया ? नन्द के यहाँ से मथुरा क्यों चल गये ? और भगवान् के वियोग में नन्द, गोपियाँ एवं यशोदा, जो कृष्ण में निरन्तर चित्त लगाये रहतीं, अपने प्राणों को कैसे धारण कर सकीं ? ॥१-२॥ फिर देवी राधिका जी, जो नेत्रों के निमेष (पलक भाँजने) मात्र तक के वियोग होने पर जीवित नहीं रह सकती थीं, अपने प्राणेश्वर के चले जाने पर प्राण-धारण कैसे कर सकीं ? ॥३॥ उनके साथी गोप लोग, जो शयन-भोजन आदि सभी समय उनके साथ रहकर अनेक प्रकार के सुखोपभोग करते थे, व्रज में वैसे बन्धु को कैसे भूल गये ? ॥४॥ और मथुरा जाकर भगवान् श्रीकृष्ण ने कौन-कौन-से कार्य किये ? उनके स्वर्ग जाने तक के सभी चरित आप मुझे बताने की कृपा करें ॥५॥

**नारायण बोले**—(मथुरा में) राजा कंस ने धनुष-यज्ञ किया, जिसमें उन्हें बुलवाया। उस राजा के निमन्त्रण पर भगवान् वहाँ गये ॥६॥ उन्हें बुलाने के लिए राजा ने भगवान् के प्रिय भक्त अक्रूर को (व्रज) भेजा। राजा से प्रेरित होकर अक्रूर नन्द के घर (नन्दगाँव) गये और वहाँ गणों समेत भगवान् श्रीकृष्ण को साथ लेकर वे पुनः मथुरा पहुँचे। हे मुने ! मथुरापुरी में पहुँचकर भगवान् कृष्ण ने राजा का हनन किया।

---

१ क. 'शंकरयज्ञं च समारेभे ध' । २ क. 'स तमक्रूरं च गोकुलम्।

जघान रजकं चैव चाणूरं मुष्टिकं गजम् । चकार पित्रोरुद्धारं बान्धवानां च बान्धवः ॥९॥
कुब्जया सह शृङ्गारं कृत्वा च कौतुकेन च । तां च प्रस्थापयामास गोलोकं गोपिकापतिः ॥१०॥
चकार कृपया कृष्णो मालाकारस्य मोक्षणम् । कृपया चोद्धवद्वारा बोधयामास गोपिकाः ॥११॥
तदोपनीतो भगवानवन्तीनगरं ययौ । चकार विद्याग्रहणं मुनेः सान्दीपनेर्गुरोः ॥१२॥
ततो जित्वा जरासंधं निहत्य यवनेश्वरम् । उग्रसेनं च नृपतिं चकार विधिपूर्वकम् ॥१३॥
गत्वा समुद्रनिकटे निर्माय द्वारकां पुरीम् । जहार रुक्मिणीं देवीं जित्वा नृपतिसंघकम् ॥१४॥
कालिन्दीं लक्ष्मणां शैब्यां सत्यां जाम्बवतीं सतीम् । मित्रविन्दां नाग्नजितीं समुद्वाहं चकार सः ॥१५॥
निहत्य नरकं भूपं रणेन दारुणेन च । पत्नीः षोडशसाहस्रं विहारं च चकार सः ॥१६॥
जहार पारिजातं च जित्वा शक्रं च लीलया । चिच्छेद बाणहस्तांश्च जित्वा च चन्द्रशेखरम् ॥१७॥
पौत्रस्य मोक्षणं कृत्वा पुनरागत्य द्वारकाम् । आत्मानं दर्शयामास लोकांश्च प्रतिमन्दिरम् ॥१८॥
यागे च वसुदेवस्य तीर्थयात्राप्रसङ्गतः । प्राणाधिष्ठातृदेवीं च ददर्श तत्र राधिकाम् ॥१९॥
पूर्णे च शतवर्षे च सुदाम्नः शापमोक्षणे । पुनर्ययौ तया सार्धं पुण्यं वृन्दावनं वनम् ॥२०॥
पुनश्चतुर्दशाब्दं च तया सार्धं जगत्पतिः । चकार रासं रासे च पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥२१॥

---

रजक (धोबी), चाणूर, मुष्टिक, गजराज कुवलयापीड़ को मारकर उन्होंने अपने माता-पिता एवं बन्धुओं का उद्धार किया ॥७-९॥ गोपीपति भगवान् ने कौतुकपूर्ण कुब्जा के साथ शृङ्गारोपभोग करके उसे गोलोक भेज दिया ॥१०॥ भगवान् कृष्ण ने कृपा करके माली को मुक्त किया और उद्धव द्वारा गोपियों को प्रबोधन दिया ॥११॥ उपरान्त उनका उपनयन संस्कार हुआ और वे गुरु सांदीपनि मुनि से विद्याध्ययन करने के लिए अवन्ती नगर चले गये ॥१२॥ वहाँ से आने पर उन्होंने जरासन्ध को जीतकर और यवनेश्वर कालयवन को मारकर उग्रसेन को पुनः विधिपूर्वक राजा बनाया ॥१३॥ पश्चात् समुद्र के भीतर द्वारकापुरी की रचना करके उन्होंने राजसमूहों पर विजय प्राप्त करके रुक्मिणी देवी का अपहरण करके विवाह किया ॥१४॥ उसी भाँति कालिन्दी, लक्ष्मणा, शैब्या, सत्या, सतीं जाम्बवती, मित्रविन्दा और नाग्नजिती के साथ विवाह किया। फिर भगवान् ने घोर युद्ध में नरकासुर का हनन किया और उसके यहाँ राजबन्दी के रूप में अपहृत सोलह सहस्र कन्याओं से विवाह करके उनके साथ विहार किया ॥१५-१६॥ अनन्तर इन्द्र को सहज ही में जीतकर पारिजात ले आये और चन्द्रशेखर को जीतकर बाणासुर के हाथों को काट दिया ॥१७॥ अपने पौत्र (अनिरुद्ध) को वहाँ से मुक्त कराकर पुनः वे द्वारका आये और वहाँ प्रत्येक भवन में लोगों को अपना दर्शन दिया ॥१८॥ पुनः वासुदेव के यज्ञ में तीर्थयात्रा के प्रसङ्ग से आयी हुई अपनी प्राणाधिष्ठात्री देवी राधिका को देखा ॥१९॥ और पूरे सौ वर्ष में सुदामा के शाप से मुक्त होने पर राधा के साथ पुण्य वृन्दावन की पुनः यात्रा की ॥२०॥ वहाँ पुण्य-क्षेत्र भारत में वृन्दावन के रास-मण्डल में जगत्पति भगवान् कृष्ण ने राधिका के साथ चौदह वर्ष तक पुनः रासक्रीड़ा की ॥२१॥ पूरे ग्यारह वर्षों तक नन्द के घर रहे। इस प्रकार

पूर्णमेकादशाब्दं च निवृत्य नन्दमन्दिरे । मथुरायां द्वारकायां पूर्णमब्दशतं विभुः ॥२२॥
चकार भारहरणं पृथिव्यां पृथुविक्रमः । पञ्चविंशतिवर्षे च शतवर्षाधिकं मुने ॥२३॥
तिष्ठञ्जगाम गोलोकं पृथिव्यां च पुरातनः । यशोदायै च नन्दाय वृषभानाय धीमते ॥२४॥
राधामात्रे कलावत्यै ददौ सामीप्यमोक्षणम् । कृष्णेन सार्धं गोपी च राधिका च कुतूहलात् ॥२५॥
निबध्य धर्मसेतुं च वेदोक्तं च युगे युगे । इत्येवं कथितं सर्वं समासेन महामुने ॥२६॥
श्रीकृष्णचरितं रम्यं चतुर्वर्गफलप्रदम् । ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं सर्वं नश्वरमेव च ॥२७॥
भज तं परमानन्दं सानन्दनन्दनम् । स्वेच्छामयं परं ब्रह्म परमात्मानमीश्वरम् ॥२८॥
[1]परमव्ययमव्यक्तं भक्तानुग्रहविग्रहम् । सत्यं नित्यं स्वतन्त्रं च सर्वेशं प्रकृतेः परम् ॥२९॥
निर्गुणं च निरीहं च निराकारं निरञ्जनम् ॥३०॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदनारा० श्रीकृष्णराधिकासंवादो नाम चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५४॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु

⊙

---

भगवान् मथुरापुरी और द्वारकापुरी में मिलाकर पूरे सौ वर्षों तक रहे । उस अवधि में महापराक्रमी भगवान् ने पृथ्वी का भार दूर कर दिया । हे मुने ! इस भांति पुरातन भगवान् पृथ्वी पर एक सौ पच्चीस वर्ष रहकर गोलोक चले गये । यशोदा, नन्द, धीमान्, वृषभानु और राधा की माता कलावती को सामीप्य मुक्ति प्रदान की । हे महामुने ! भगवान् श्रीकृष्ण के साथ गोपी राधिका जी प्रत्येक युग के लिए वेदोक्त धर्म-सेतु बनाकर गोलोक पहुँच गयीं । इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण का अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष प्रदान करनेवाला रमणीक चरित तुम्हें संक्षेप में सुना दिया । ब्रह्मा से लेकर कीटपर्यन्त सबको नश्वर समझकर परमानन्द एवं आनन्दमूर्ति नन्दनन्दन का भजन करो, जो स्वेच्छामय, पारब्रह्म, परमात्मा, ईश्वर, परम अव्यय, अव्यक्त, भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए देह धारण करनेवाले, सत्य, नित्य, स्वतन्त्र, सर्वेश, प्रकृति से परे, निर्गुण, निरीह, निराकार एवं निरंजन हैं ॥२२-३०॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में श्रीकृष्णराधिकासंवाद-वर्णन नामक चौवनवाँ श्रीकृष्णजन्मखण्ड का पूर्वार्ध अध्याय समाप्त ॥५४॥

⊙

---

१ क. 'मक्षरम' ।

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः।

श्रीमद्द्वैपायनमुनिप्रणीतं-

# ब्रह्मवैवर्तपुराणम्।

अथ श्रीकृष्णजन्मखण्डस्योत्तरार्धः।

## अथ पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

**नारायण उवाच**

**स एव भगवान्कृष्णः सर्वात्मा पुरुषः[1] परः। दुराराध्योऽतिसाध्यश्च सर्वाराध्यः सुखप्रदः ॥१॥**
**निजभक्तातिसाध्यश्चाभक्तस्यासाध्य एव च। शश्वद्दृश्यः स्वभक्तस्याभक्तस्यादृश्य एव च ॥२॥**
**दुर्ज्ञेयं तस्य चरितं कार्यं हृदयमेव च। बद्धास्तन्मायया सर्वे मोहिताश्च दुरन्तया ॥३॥**

---

# श्रीकृष्णजन्मखण्ड का उत्तरार्द्ध

## अध्याय ५५

### श्रीकृष्ण का प्रभाव वर्णन

**नारायण बोले**—वही भगवान् श्रीकृष्ण सबके आत्मा हैं, पुरुषों में श्रेष्ठ हैं, कठिनाई से आराधना करने योग्य, अत्यन्त साध्य, सभी के आराध्य, सुखदायक, अपने भक्तों के लिए अत्यन्त साध्य, अभक्त के लिए बिलकुल असाध्य, अपने भक्त को निरन्तर दिखायी देनेवाले और अभक्त को कभी न दिखायी देनेवाले हैं ॥१-२॥ उनका चरित, कार्य और हृदय दुर्ज्ञेय (समझ में न आने योग्य) है। उनकी अपार शक्तिवाली माया से समस्त प्राणी बँधे और मोहित हैं ॥३॥ उन्हीं के भय से यह वायु बहता है तथा बिना आधार के कूर्म (महाकच्छप) को धारण करता है। उन्हीं के भय से कूर्म (शेष) को निरन्तर धारण किये रहता है।

---

१ क. 'रुषात्प'।

यद्भयाद्वाति वातोऽयं कूर्मं धत्ते निराश्रयः। कूर्मोऽनन्तं विधत्ते च यद्भयेन निरन्तरम् ॥४॥
बिर्भात शेषो विश्वं च यद्भयेन च नारद। सहस्रशीर्षा पुरुषः शिरसश्चैकदेशतः ॥५॥
सप्तसागरसंयुक्ता सप्तद्वीपा वसुंधरा। शैलकाननसंयुक्ता पातालाः सप्त एव च ॥६॥
सप्त स्वर्गाश्च विविधा ब्रह्मलोकसमन्विताः। एवं विश्वं त्रिभुवनं कृत्रिमं परिकीर्तितम् ॥७॥
यद्भयेन विधात्रा च प्रतिसृष्टौ च निर्मितम्। एवं विश्वान्यसंख्यानि लोमकूपेमहान्विराट् ॥८॥
यद्भयेन विधत्ते च यदन्नो ध्यायते हि यम्। विष्णुः पाति च संसारं यद्भयेन कृपानिधिः ॥९॥
कालाग्निरुद्रो यद्भीतः कालः संहरते प्रजाः। मृत्युंजयो महादेवो यद्भयाद्ध्यायते च यम् ॥१०॥
षड्गुणैरनुरागैश्च विरागी विरतः सदा। यद्भयेन दहत्यग्निः सूर्यस्तपति यद्भयात् ॥११॥
यद्भयाद्वर्षतीन्द्रश्च मृत्युश्चरति जन्तुषु। यद्भयेन यमः शास्ता पापिनां धर्म एव च ॥१२॥
धत्ते च धरणी लोकान्यद्भयेन चराचरान्। सूयते प्रकृतिः सृष्टौ यद्भयान्महदादिकम् ॥१३॥
दुर्ज्ञेयं तदभिप्रायं को वा जानाति पुत्रक। यत्प्रभावं न जानन्ति ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥१४॥
कथं जानामि तच्चेष्टामहं वत्स सुमन्दधीः। कथं जगाम मथुरां त्यक्त्वा वृन्दावनं वनम् ॥१५॥
कथं तत्याज गोपीश्च राधां प्राणाधिकां प्रियाम्। यशोदां बान्धवांश्च नन्दं वा नन्दनन्दनः ॥१६॥
दर्पहा दर्पदः सोऽपि सर्वेषां सर्वदः सदा। बभञ्ज राधादर्पं च सुदाम्नः शापकारणात् ॥१७॥

---

हे नारद ! उन्हीं के भय से सहस्र सिरवाला शेष अपने सिर के एक भाग पर समस्त विश्व को धारण किये हुए है ॥४-५॥ सातों सागरों से युक्त एवं सातों द्वीपोंवाली पृथिवी जिसमें असंख्य पर्वत और जंगल भरे पड़े हैं, पाताल आदि सात लोक और ब्रह्मलोक युक्त सातों स्वर्गादि लोक मिलकर विश्व कहलाता है। उन्हीं के भय से विधाता (ब्रह्मा) प्रत्येक सृष्टिकाल में तीनों भुवन की रचना करते हैं, जो अनित्य हैं। ऐसे असंख्य विश्व को उन्हीं के भय से महाविराट् अपने लोम कूपों में धारण करते हैं, जो उनके अंश हैं तथा उनका सतत ध्यान करते हैं। उन्हीं के भय से कृपानिधान विष्णु संसार की रक्षा करते हैं ॥६-९॥ उन्हीं के भय से कालाग्नि रुद्र कालरूप से सृष्टि का संहार करते हैं। उन्हीं के भय से मृत्यु को जीतनेवाले महादेव छह गुणों एवं अनुरागों से विरक्त होकर निरन्तर उनका ध्यान करते हैं। उन्हीं के भय से अग्नि जलाता है। उन्हीं के भय से सूर्य तपता है, उन्हीं के भय से इन्द्र (मेघ) वर्षा करते हैं, उन्हीं के भय से मृत्यु प्राणियों में विचरण करता है। उन्हीं के भय से धर्मराज पापियों पर शासन करते हैं। उन्हीं के भय से पृथिवी चराचरमय लोकों को धारण करती है। उन्हीं के भय से प्रकृति सृष्टि-काल में महदादि को उत्पन्न करती है ॥१०-१३॥ हे पुत्र ! उनके दुर्ज्ञेय अभिप्राय को कौन जान सकता है ! हे वत्स ! जिनके प्रभाव को ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर भी नहीं जानते हैं, उनकी चेष्टाओं को अतिमन्द बुद्धि मैं भला कैसे जान सकता हूँ। नन्दनन्दन भगवान् कृष्ण वृन्दावन नामक वन त्यागकर मथुरा क्यों चले गये, उन्होंने गोपियों, प्राणों से बढ़कर प्रियतमा राधा, यशोदा, नन्द एवं बन्धुओं का क्यों त्याग कर दिया ॥१४-१६॥ भगवान् सदा गर्व का नाश करनेवाले, गर्व देनेवाले और सबको सब कुछ

अन्येषां भावनाहेतोर्ब्रह्मप्राप्तिस्तथा भवेत् । एवं किंचिद्वितर्कं च कुरुते कमलोद्भवः ॥१८॥
चकार दर्पभङ्गं च महाविष्णुः पुरा विभुः । ब्रह्मणश्च तथा विष्णोः शेषस्य च शिवस्य च ॥१९॥
धर्मस्य च यमस्यापि साम्बस्य चन्द्रसूर्ययोः । गरुडस्य च वह्नेश्च गुरोर्दुर्वाससस्तथा ॥२०॥
दौवारिकस्य भक्तस्य जयस्य विजयस्य च । सुराणामसुराणां च भवतः कामशक्रयोः ॥२१॥
लक्ष्मणस्यार्जुनस्यापि बाणस्य च भृगोस्तथा । सुमेरोश्च समुद्राणां वायोश्च वरुणस्य च ॥२२॥
सरस्वत्याश्च दुर्गायाः पद्मायाश्च भुवस्तथा । सावित्र्याश्चैव गङ्गाया मनसायास्तथैव च ॥२३॥
प्राणाधिष्ठातृदेव्याश्च प्रियायाः प्राणतोऽपि च । प्राणाधिकाया राधाया अन्येषामपि का कथा ॥२४॥
हृत्वा दर्पं च सर्वेषां प्रसादं च चकार सः । कर्ता हर्ता पालयिता स्रष्टा स्रष्टुश्च सर्वतः ॥२५॥
यं स्तोतुमीशो नालं च पञ्चवक्त्रैस्तु[1] शंकरः । स्तोतुं नालं चतुर्वक्त्रो विधाता जगतामपि ॥२६॥
स्तोतुं नालमनन्तश्च सहस्रवदनैरहो । स्वयं विष्णुर्विश्वव्यापी नालं स्तोतुं जनार्दनः ॥२७॥
महाविराण्न शक्तोऽपि यं स्तोतुं परमेश्वरम् । कम्पिता यस्य पुरतः प्रकृतिः परमात्मनः ॥२८॥
सरस्वती जडीभूता यं स्तोतुं परमेश्वरम् । महिमानं न जानन्ति वेदा[2] यस्य च नारद ॥२९॥

---

देनेवाले हैं। सुदामा के शाप के कारण उन्होंने राधा का गर्व चूर किया और अन्य लोगों को भावना के कारण ब्रह्म की प्राप्ति हुई। इस प्रकार ब्रह्मा ने भी कुछ तर्क किया ॥१७-१८॥ अनन्तर व्यापक महाविष्णु ने उन (ब्रह्मा) का दर्प दलन कर दिया; उसी प्रकार विष्णु, शेष, शिव, धर्म, यम, साम्ब, चन्द्र-सूर्य, गरुड़, अग्नि, बृहस्पति, दुर्वासा, द्वारपाल एवं भक्त जय-विजय, देवों-राक्षसों, आपका, कामदेव, इन्द्र, लक्ष्मण, अर्जुन, बाणासुर, भृगु, सुमेरु पर्वत, समुद्र, वायु, वरुण, सरस्वती, दुर्गा, कमला, पृथ्वी, सावित्री, गङ्गा, मनसा एवं प्राणों की अधिष्ठात्री देवी राधिका का उन्होंने दर्पभंजन किया, जो प्राणों से भी अधिक उन्हें प्रिय है; फिर तो अन्य लोगों की बात ही क्या है ॥१९-२४॥

किन्तु उन्होंने सबका दर्प चूर करके अनुग्रह किया; क्योंकि वे (समस्त विश्व के) कर्त्ता, संहार करनेवाले, पालन करनेवाले एवं सृष्टि करनेवाले के भी वे स्रष्टा हैं ॥२५॥ शङ्कर भी अपने पाँचों मुखों से उनकी स्तुति करने में समर्थ नहीं हैं, जगत् के विधाता ब्रह्मा भी अपने चारों मुखों से उनकी स्तुति नहीं कर सकते हैं और आश्चर्य तो यह है कि अनन्त भी अपने सहस्र मुखों से भी उनकी स्तुति करने में समर्थ नहीं हो पाते; एवं विश्वव्यापी स्वयं विष्णु भगवान्, जो जनार्दन कहलाते हैं, उनकी स्तुति करने में असमर्थ हैं ॥२६-२७॥ महाविराट् भी उन परमेश्वर की स्तुति करने में समर्थ नहीं हैं। उस परमात्मा के सामने प्रकृति भी कम्पित हो जाती है ॥२८॥ हे नारद! उस परमात्मा की स्तुति करने में सरस्वती भी जड़वत् हो जाती हैं

---

१ क. 'वक्त्रेण शं'। २ क. देवा।

इत्येवं कथितो ब्रह्मन्प्रभावः परमात्मनः। निर्गुणस्य च कृष्णस्य किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥३०॥
इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्तरार्धे नारदना० श्रीकृष्णप्रभाव-
वर्णनं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५५॥

⊙

# अथ षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

नारद उवाच

किमपूर्वं श्रुतं ब्रह्मन्रहस्यं परमाद्भुतम्। अनन्तचरितं धन्यमनन्तस्याच्युतस्य च ॥१॥
कथं कृष्णो महाविष्णोर्दर्पभङ्गं चकार सः। अन्येषां वा कथमहो तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥२॥
स्वतः श्रीकृष्णचरितमतीव मधुर श्रुतौ। अतीव मधुरं रम्यं काव्यं कविमुखात्ततः ॥३॥

नारायण उवाच

महाविष्णोरहंकारो बभूव सहसेति च। सर्वं मल्लोमकूपेषु विश्वान्येवाऽहमीश्वरः ॥४॥

---

और वेद भी उनकी महिमा को नहीं जानते हैं ॥२९॥ हे ब्रह्मन् ! ऐसे उस निर्गुण परमात्मा श्रीकृष्ण का प्रभाव तुम्हें बता दिया। अब और क्या सुनना चाहते हो ? ॥३०॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद-नारायण-संवाद में भगवान्
श्रीकृष्ण का प्रभाव-वर्णन नामक पचपनवाँ अध्याय समाप्त ॥५५॥

⊙

# अध्याय ५६

## लक्ष्मीस्तोत्रकथन

**नारद बोले**—ब्रह्मन् ! मैं अनन्त एवं अच्युत (कृष्ण) का अपूर्व, रहस्यमय, परम अद्भुत एवं धन्य अनन्त चरित्र सुन चुका ॥१॥ (अब मैं यह सुनना चाहता हूँ कि) भगवान् श्रीकृष्ण ने महाविष्णु (महाविराट्) एवं अन्य लोगों के दर्प को किस प्रकार चूर-चूर किया, आप उसे कहने की कृपा करें ॥२॥ भगवान् श्रीकृष्ण का चरित तो स्वतः सुनने में अतिमधुर है ही, किन्तु रमणीक काव्य को किसी कवि के मुख से सुनने में (उसमें) अत्यन्त मधुरता आ जाती है। (इसी प्रकार आपके मुख से मधुर कृष्णचरित सुनने में उसमें और भी मधुरता आ जायगी) ॥३॥

**नारायण बोले**—एक बार महाविष्णु को सहसा अभिमान उत्पन्न हो गया कि समस्त विश्व मेरे

संहारभैरवो भूत्वा तं स जग्रास लीलया। स्थिते मूर्धावशेषे च प्रसादं तं चकार सः ॥५॥
सर्वात्मना ध्यायमानः स्तुतो भीतं कृपानिधिः। तच्छरीरं सुसंपन्नं पुनरेव चकार सः ॥६॥
ब्रह्मणः सहसा ब्रह्मन्निति दर्पो बभूव ह। अहं त्रिजगतां धाता कर्ताऽहमीश्वरः स्वयम् ॥७॥
मत्परः पूजितो नास्ति मत्परश्च जितेन्द्रियः। इत्येवं मनसा कृत्वा बहुदर्पो बभूव ह ॥८॥
तं ब्रह्मणां समूहं च दर्शयामास तत्क्षणम्। गोलोके स्वसमीपे च वसन्तं पुरतो विभोः ॥
चतुर्वक्त्रं पञ्चवक्त्रं [1]षड्वक्त्रं च ततोऽधिकम् ॥९॥
शतवक्त्रं च प्रत्येकं ब्रह्माण्डौघं च लीलया। त्यक्तुकामं स्वदेहं च व्रीडया नतकंधरम् ॥१०॥
पुनः प्रसादं कृपया तं चकार कृपानिधिः। कालेन मोहिनीद्वारा तमपूज्यं चकार सः ॥११॥
स्वकन्यां दर्शयित्वा तं सकामं च चकार ह। पुनस्तद्दर्पभङ्गं च शिवद्वारा चकार सः ॥१२॥
तत्याज लज्जया देहं पुनर्देहं दधार सः। पुनश्चकार तं पूज्यं ब्रह्माणं [2]ब्रह्मणः प्रभुः ॥१३॥
ज्ञानं ददौ महाज्ञानी ज्ञानानन्दः सनातनः। विष्णोर्बभूव गर्वश्च जगत्पाताऽहमीश्वरः ॥१४॥
तमात्मविस्मृतं कृष्णश्चकार रामजन्मनि। अहं विश्वं बिभर्मीति शेषो दर्पी बभूव ह ॥१५॥

---

लोमकूपों में स्थित हैं, अतः मैं ही ईश्वर हूँ ॥४॥ अनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण अपना संहार-भैरवरूप धारण करके उन्हें लीलापूर्वक निगलने लगे, केवल सिर अवशेष रहने पर महाविष्णु तन्मयता से उनका ध्यान एवं स्तुति करने लगे। भयभीत देखकर कृपानिधान भगवान् ने उनका शरीर पुनः पूर्व की भाँति सुसम्पन्न कर दिया ॥५-६॥ हे ब्रह्मन्! इसी भाँति ब्रह्मा को भी एक बार सहसा अभिमान हो गया था––कि मैं ही तीनों लोकों का धाता (धारण करनेवाला), कर्त्ता एवं साक्षात् ईश्वर हूँ, मुझसे बढ़कर कोई पूजित नहीं है और न मुझसे बढ़कर कोई जितेन्द्रिय है। मन में ऐसा निश्चय करने पर उन्हें अत्यन्त अभिमान हो गया ॥७-८॥ अनन्तर गोलोक में अपने समीप बैठे हुए ब्रह्मा को व्यापक भगवान् श्रीकृष्ण ने ब्रह्मसमूह का तत्काल दर्शन कराया, जिनमें पाँच मुखवाले, चार-मुखवाले, छह मुखवाले एवं उससे अधिक सौ मुखवाले ब्रह्मा थे। प्रत्येक ब्रह्मा के साथ ब्रह्माण्ड समुदाय को भी लीलापूर्वक दिखा दिया, जिससे ब्रह्मा लज्जित होकर नीचे सिर झुकाकर अपनी देह त्याग करने के लिए तैयार हो गये। अनन्तर कृपानिधान भगवान ने उन पर पुनः कृपा की और समय आने पर मोहिनी द्वारा उन्हें अपूज्य भी बनाया, उनकी अपनी कन्या को दिखाकर उन्हें कामाकुल किया और पुनः शिव द्वारा उनके अभिमान को चूर-चूर कर दिया, जिससे लज्जित होकर उन्होंने अपनी उस देह का त्यागकर अन्य शरीर धारण किया। अनन्तर महाज्ञानी, ज्ञानानन्दस्वरूप एवं सनातन भगवान् ने ब्राह्मणरूप में प्रकट होकर ब्रह्मा को पुनः पूज्य बना दिया और उन्हें ज्ञान भी प्रदान किया। इसी प्रकार भगवान् विष्णु को एक बार गर्व हो गया था कि––'मैं ही समस्त जगत् का पालन-पोषणकर्ता एवं ईश्वर हूँ' ॥९-१४॥ पश्चात् रामावतार होनें पर भगवान् कृष्ण ने उन्हें आत्मविस्मृत (अपने को भूल जाना) करके उनका गर्व दूर किया। शेष को भी अभिमान

---

१ क. 'दशवक्त्रं त'। २ ख. ब्राह्म'।

तद्दर्पं गरुडद्वारा चूर्णीभूतं चकार सः। एकदा पूजितो नागैर्गरुडः कृष्णवाहनः ॥१६॥
न पूजितश्च शेषेण स्वदर्पेण पुरा मुने। गरुडेन जितं क्रोधात्तमनन्तं मनस्विनम् ॥१७॥
चकार मोक्षणं तस्य श्रीकृष्णश्च कृपानिधिः। स्वयं शिवः स्वदर्पाच्च विवाहं न चकार सः ॥१८॥
तं कृत्वा मायया मोहं कारयामास स्त्रीयुतम्। पुनर्जहार तत्पत्नीं दक्षकन्यां महासतीम् ॥१९॥
वर्षं शुशोच तद्देहं क्रोडे कृत्वा च शंकरः। नानास्थानं च बभ्राम रुदञ्छोकान्मुहुर्मुहुः ॥२०॥
जन्मान्तरे पुनः प्राप्य तां सतीं पार्वतीं मुदा। विसस्मार च स्वज्ञानं दक्षशप्तः पुनः शिवः ॥२१॥
पुनश्चाऽऽङ्गीरसद्वारा स्मारयामास सत्वरम्। एकदा सरथः शम्भुः प्रेरितस्त्रिपुरे पुरा ॥२२॥
हत्वा दैत्यं शिवद्वारा त्रिपुरारिं चकार तम्। सर्वं वरं च सर्वस्मै दातुं शंभुः कृपानिधिः ॥२३॥
स्वयं कल्पतरुर्भूत्वा प्रतिज्ञां च चकार सः। वृकासुरोऽनुष्ठानं च कृत्वा वव्रे वरं विभुम् ॥२४॥
दास्यामि हस्तं यन्मूर्ध्नि भस्मसाद्भवतु क्षणात्। जगाद जगतां नाथ ईप्सितं ते भविष्यति ॥२५॥
इति लब्ध्वा वरं रुद्राद्गच्छन्तं शंकरं विभुम्। हस्तं दातुं च तं मूर्ध्नि प्राधावत्सत्वरं पुरा ॥२६॥
अतीव भीतः शंभुश्च जगाम शरणं हरिम्। भगवांश्च शिवस्यार्थे दैत्यं भस्मीचकार सः ॥२७॥

---

हो गया था कि—मैं समस्त विश्व को धारण करता हूँ, अतः मेरे समान कौन है। यह देखकर भगवान् ने उनके गर्व को गरुड़ द्वारा चूर-चूर कर दिया। हे मुने ! एक वार भगवान् कृष्ण के वाहन गरुड़ की समस्त नागों ने पूजा की किन्तु अपने अभिमान के कारण शेष ने उनकी अर्चना नहीं की।

इस पर क्रुद्ध होकर गरुड़ ने उस मनस्वी अनन्त को जीत लिया। तब कृपानिधान श्रीकृष्ण ने उसको (गरुड़ से) छुड़ा दिया। स्वयं शिव भी अपने अभिमान के कारण विवाह करने के लिए तैयार नहीं हो रहे थे ॥१५-१८॥ भगवान् ने माया द्वारा मोहित करके उन्हें पत्नीयुत किया और पुनः उनकी पत्नी—महासती दक्ष-पुत्री का हरण कर लिया। (अर्थात् दक्षयज्ञ में सती ने आत्मदाह कर लिया)। पश्चात् शिव उनके शव को गोद में लिये वर्षों शोकपीड़ित रहे, शोक के कारण बार-बार रोदन करते हुए अनेकों स्थानों में घूमते रहे ॥१९-२०॥ पुनः जन्मान्तर में उस सती पार्वती को प्राप्त कर शिव अति प्रसन्न हुए, किन्तु दक्ष-शाप के कारण उन्हें अपना ज्ञान विस्मृत हो गया, फिर अङ्गिरापुत्र दुर्वासा ने उन्हें शीघ्र स्मरण कराया। इसी प्रकार पूर्वकाल में भगवान् ने एक बार शिव को रथ पर बैठाकर त्रिपुरासुर के यहाँ भेजा ॥२१-२२॥ और वहाँ शिव द्वारा उस दैत्य की हत्या कराकर उन्हें 'त्रिपुरारि' नाम से विख्यात किया। कृपानिधान शिव ने सबके लिए सब प्रकार के वरदान देने में समर्थ होते हुए भी स्वयं कल्पवृक्ष होकर प्रतिज्ञा की। अनन्तर वृकासुर ने भगवान् शिव की आराधना करके उनसे वरदान प्राप्त किया कि—मैं जिसके सिर पर हाथ रख दूँ, वह उसी समय भस्म हो जाये, यह सुन-कर जगत् के स्वामी शिव ने कहा—'तुम्हारा मनोरथ पूरा होगा।' इस भाँति रुद्र से वरदान प्राप्त करके वह दैत्य वहाँ से जाते हुए शिव के ही सिर पर हाथ रखने के लिए शीघ्रता से दौड़ पड़ा ॥२३-२६॥ यह देखकर शिव अति भयभीत हुए और भगवान् की शरण में गये। अनन्तर भगवान् ने शिव के निमित्त उस दैत्य को

शिवं युद्धं च कुर्वन्तं बाणयुद्धे पुरा विभुः। लीलया जृम्भणास्त्रेण जडीभूतं चकार सः ॥२८॥
समागतं दक्षयज्ञे शंभुं दम्भेन लीलया। वारयामास भगवान्हस्तं दत्त्वा च तद्गले ॥२९॥
केदारकन्यकाद्वारा शप्तो धर्मोऽतिदैवतः। बभूवातिकृशो भीतः कुहूमेव यथा शशी ॥३०॥
तदा तस्याश्च शापान्ते सत्ये पूर्णो बभूव ह। त्रिपाद्बभूव त्रेतायां द्वापरं च द्विपादिति ॥३१॥
एकपाच्च कलौ सोऽपि कलेरन्ते पुनः क्षयः। षोडशांशोऽतिविलष्टश्च सस्मार चरणं विभोः ॥३२॥
तदा सत्ययुगारम्भे परिपूर्णोऽभवत्पुनः। पुनर्युगानुरोधेन क्रमेण च पुनः क्षयः ॥३३॥
यमो माण्डवशापेन शूद्रयोनिमवाप ह। तदा पुनः शताब्दान्ते पुनः शुद्धो बभूव ह ॥३४॥
साम्बो विमातृशापेन गलत्कुष्ठी बभूव सः। तदा सूर्यव्रतं कृत्वा पुनः शुद्धो बभूव सः ॥३५॥
चन्द्रो दर्पमदेनैव जहार च गुरोः प्रियाम्। बभूव दर्पभङ्गोऽस्य यक्ष्मग्रस्तो बभूव सः ॥३६॥
सूर्यो दर्पात्तेजसश्च हन्तुं शंकरकिंकरम्। सुमालीत्यभिधं दैत्यं जगामाऽऽशु गिरिं प्रति ॥३७॥
अहर्निशं दीप्तिकरं कुर्वन्तं विषयं रवेः। सूर्येण भीतो दैत्यश्च शंकरं शरणं ययौ ॥३८॥
सूर्यं दृष्ट्वा शंकरश्च जग्राह शूलमेव च। भीतो दुद्राव सूर्यश्च दृष्ट्वा तं शूलिनं मुने ॥३९॥
जघान काश्यां शूलेन शूली काशीश्वरो रविम्। मूर्च्छां संप्राप्य शूलेन दर्पभङ्गो बभूव ह ॥४०॥

---

(युक्ति से) भस्म किया ॥२७॥ पूर्वकाल में बाणासुर के साथ युद्ध करते हुए शिव को भगवान् ने अपने जृम्भण करनेवाले अस्त्र से लीलापूर्वक जड़ बना दिया ॥२८॥ पुनः दक्ष-यज्ञ में दम्भपूर्वक आये हुए शिव को भगवान् ने उनके गले में हाथ लगाकर वहाँ से हटा दिया ॥२९॥ इसी भाँति केदार-कन्या द्वारा महान् धर्म को शाप पड़ा, जिससे भयभीत होकर धर्म अमावस्या के चन्द्रमा की भाँति अति दुर्बल (क्षीण) हो गये ॥३०॥ तब शाप का अन्त हो जाने पर——सत्ययुग में वे पुनः पूर्णरूप से स्वस्थ हो गये। त्रेता में उनके तीन चरण, द्वापर में दो चरण और कलि में एक चरण रह जाता है तथा कलि के अन्त में वे पुनः क्षीण हो जाते हैं।

इस प्रकार सोलहवें भाग में अवस्थित तथा अत्यन्त दुःखी धर्म भगवान् के चरणों का स्मरण करने लगे। तब सत्ययुग में पुनः परिपूर्ण हो गये। इस भाँति युगों के अनुसार वे क्रमशः घटते-बढ़ते रहते हैं ॥३१-३३॥ माण्डव ऋषि के शाप से यमराज को भी शूद्र के घर उत्पन्न होना पड़ा और सौ वर्ष के उपरान्त वे पुनः शुद्ध हुए ॥३४॥ विमाता के शाप से साम्ब को गलत्कुष्ठ का रोग हो गया। तब वे सूर्य का व्रत करके पुनः शुद्ध हुए ॥३५॥ अभिमान के मद में चूर होकर चन्द्रमा ने बृहस्पति की पत्नी (तारा) का अपहरण कर लिया, किन्तु यक्ष्मा रोग से ग्रस्त होने पर उनका भी दर्प भंग हो गया ॥३६॥ अपने तेज के अभिमान में सूर्य शङ्कर के सेवक—सुमाली दैत्य को मारने के लिए पर्वत पर जा पहुँचे, जो सूर्य की ही भाँति प्रकाश करने का कार्य रात-दिन कर रहा था। अनन्तर सूर्य से भयभीत होकर वह दैत्य शिव की शरण में चला गया ॥३७-३८॥ हे मुने ! सूर्य को देखकर शिव ने उन्हें मारने के लिए अपना शूल उठाया। यह देखकर सूर्य बहुत भयभीत हुए और भागते हुए काशी पहुँचे। वहाँ काशी के अधीश्वर शिव ने शूल द्वारा सूर्य का हनन किया, जिससे वे मूर्च्छित होकर गिर पड़े और उनका दर्प-

सान्द्रान्धकारः सहसा जग्राह पृथिवीतलम् । आशुतोषो महादेवो जीवयामास तत्क्षणम् ॥४१॥
तुष्टाव शंकर सूर्यो लज्जितोऽपि भयेन च । कृत्वा तमाशिषं तुष्टो ययौ गेहं कृपानिधिः ॥४२॥
विभुर्गरुत्मतो दर्पं बभञ्ज लीलया पुरा । निःश्वासैः प्रेरितस्यापि शिवस्य वृषभस्य च ॥४३॥
आगच्छन्तं च वैकुण्ठं पृष्ठे कृत्वा शिवं पुरा । द्रष्टुं समागतं भक्त्या देवं नारायणं परम् ॥४४॥
वह्निर्दर्पी भृगोः शापात्सर्वभक्षी बभूव ह । गुरोः स्वभार्याहरणाद्दर्पश्चूर्णो बभूव ह ॥४५॥
दुर्वाससो दर्पभङ्गो बभूव ह्यम्बरीषतः । सुदर्शनेन चक्रेण विष्णोर्दुर्विषहेण च ॥४६॥
जयस्य विजयस्यापि दर्पभङ्गं चकार सः । वैकुण्ठात्पतितस्यापि ब्रह्मशापच्छलेन च ॥४७॥
नृसिंहेण हतः सोऽपि हिरण्यकशिपुर्यथा । सूकरेण हिरण्याक्षो लीलया च रसातले ॥४८॥
रावणः कुम्भकर्णश्च निहतो रामबाणतः । जन्मान्तरे च लङ्कायां ब्रह्मणा प्रार्थितस्य च ॥४९॥
शिशुपालो हि निहतः [1]कृष्णबाणेन लीलया । दन्तवक्रश्च सहसा परिपूर्णेऽत्र जन्मनि ॥५०॥
सुराणां दर्पभङ्गं च दैत्यद्वारा चकार ह । असुराणां सुरद्वारा विरोधेन परस्परम् ॥५१॥

---

भङ्ग हो गया ॥३९-४०॥ पश्चात् समस्त भूमण्डल घोर अंधकार से सहसा आच्छन्न हो गया, यह देखकर आशुतोष महादेव ने उसी क्षण उन्हें जीवित कर दिया ॥४१॥ उपरान्त लज्जित एवं भयभीत होकर सूर्य ने शिव जी की स्तुति की और कृपानिधान शिव प्रसन्नतापूर्वक उन्हें आशिष देकर घर चले गये ॥४२॥ पूर्वकाल में भगवान् ने सहज ही में गरुड़ का दर्प-भंजन कर दिया; क्योंकि वह शिव और उनके वृषभ (नन्दी) के निःश्वास-वायु से उस समय उड़ा दिया गया जब श्रेष्ठ देव नारायण से मिलने के लिए शिव नन्दी की पीठ पर जा रहे थे ॥४३-४४॥ इसी प्रकार भृगुमहर्षि के शाप से अग्नि का अभिमान चूर हो गया—वे सर्वभक्षी हो गये। बृहस्पति की पत्नी तारा का अपहरण हो जाने से उनका भी दर्प भङ्ग हो गया ॥४५॥ अम्बरीष के कारण भगवान् विष्णु के उस दुःसह सुदर्शन चक्र ने दुर्वासा का अभिमान चूर कर दिया ॥४६॥ भगवान् ने ब्राह्मण (सनत्कुमारादि) के शाप के छल से वैकुण्ठ से नीचे गिराकर अपने द्वारपाल जय-विजय का दर्प भञ्जन किया ॥४७॥ वे दोनों (जय-विजय) हिरण्यकशिपु-हिरण्याक्ष नामक दैत्य हुए। वह हिरण्यकशिपु भी भगवान् नृसिंह द्वारा मारा गया। उसी भाँति रसातल में भगवान् के वराहावतार द्वारा हिरण्याक्ष भी सहज ही में मारा गया ॥४८॥ पुनः वे दोनों रावण-कुम्भकर्ण हुए। वहाँ लङ्का में भगवान् राम के बाणों द्वारा वे दोनों मारे गये, जिनके हनन के लिए ब्रह्मा ने पहले ही प्रार्थना की थी। पुनः तीसरे जन्म में वे दोनों शिशुपाल-दन्तवक्र हुए जो भगवान् श्रीकृष्ण के बाण द्वारा आहत होकर पुनः स्वर्ग चले गये। इस प्रकार भगवान् ने दैत्यों द्वारा देवों का और देवों द्वारा दैत्यों का परस्पर विरोध कराकर (दोनों) का दर्प भंग किया ॥४९-५१॥ और भगवान् ने ब्रह्मा द्वारा आपका भी

---

१. °ष्णचक्रेण ।

विधिद्वारा दर्पभङ्गं भवतश्च चकार सः। भवानासीन्नारदश्च पुरा पुत्रः प्रजापतेः ॥५२॥
गन्धर्वश्च पितुः शापाच्छूद्रीपुत्रस्ततः क्रमात्। ततः पुनर्नारदश्च प्रसादादधुना विभोः ॥५३॥
मम साध्यं विश्वमिति कामदर्पो बभूव ह। तं प्रमत्तं हरद्वारा भस्मसाच्च चकार सः ॥५४॥
पुनः कृत्वा प्रसादं तं जीवयामास लीलया। ऐकान्तिकं च तद्भक्तं स च नास्त्रं करोति हि ॥५५॥
चकार दर्पभङ्गं च दर्पिणो लक्ष्मणस्य च। रणे शंकरशूलेन रावणप्रेरितेन च ॥५६॥
पुनस्तं जीवयामास रामस्य स्तवनेन च। स्वयं विस्मृतविष्णोश्च ब्रह्मशापेन नारद ॥५७॥
चकार दर्पभङ्गं च कार्तवीर्यार्जुनस्य च। जामदग्न्यस्य शस्त्रेणामोघेन पर्शुना पुरा ॥५८॥
विप्रपुत्रस्य मरणे हरणे कृष्णयोषिताम्। कर्णेन सार्धं समरे पार्थदर्पं बभञ्ज सः ॥५९॥
बाणस्य चोषाहरणे चिच्छेद च भुजान्विभुः। भृगोश्च दक्षयज्ञे च दर्पभङ्गं चकार सः ॥६०॥
पर्शुरामस्य रामस्य विवाहो पथि गच्छतः। बभञ्ज दर्पं समरे रामद्वारा पुरा विभुः ॥६१॥
सुमेरोः शृङ्गभृङ्गं च वायुद्वारा चकार सः। समुद्राणां दर्पभङ्गं चकारागस्त्यभक्षणात् ॥६२॥
अकाले सृष्टिहरणे तत्पुत्रमरणे पुरा। कोपयुक्तस्य वायोश्च दर्पभङ्गं चकार सः ॥६३॥
उषाहरणयात्रायां द्वारकागमने हरेः। बाणस्य च गवां हेतोर्वरुणं च शशाप सः ॥६४॥

---

अभिमान चूर कर दिया है, क्योंकि पूर्वकाल में आप प्रजापति के नारद नामक पुत्र थे। पिता के शाप से गन्धर्व, शूद्री-पुत्र आदि क्रमशः हुए और इस समय भगवान् की कृपा से पुनः नारद रूप में दिखायी देते हो ॥५२-५३॥ एक बार कामदेव को भी अभिमान हो गया कि—समस्त विश्व मेरे ही अधीन है। तब भगवान् ने उस मदान्ध कामदेव को शिव द्वारा भस्म करा दिया और प्रसन्न होकर पुनः सहज ही में जीवित भी कर दिया। इसलिए भगवान् के भक्तों पर वह उसी दिन से अपने अस्त्रों का प्रयोग नहीं करता है ॥५४-५५॥ (भगवान् ने) अभिमानी लक्ष्मण का भी युद्ध में रावण-प्रेरित शिव-शूल के द्वारा दर्प-मोचन किया ॥५६॥ हे नारद! राम द्वारा स्तुति करने पर जो ब्रह्मशाप के कारण स्वयं विष्णु होकर भी अपने को विस्मृत हो गये थे, पुनः उन्हें जीवित किया ॥५७॥ पूर्वकाल में (भगवान् ने) कार्तवीर्यार्जुन का भी परशुराम के अमोघ परशु (फरसा) अस्त्र द्वारा दर्प-भङ्ग किया था। इसी प्रकार ब्राह्मण-पुत्र के मरण, कृष्ण की स्त्रियों के अपहरण और समर में कर्ण के साथ युद्ध में अर्जुन का भी अभिमान चूर किया ॥५८-५९॥ उषा के हरण में भगवान् ने स्वयं बाण की भुजाओं को छिन्न-भिन्न करके उसका दर्प-भङ्ग किया और दक्ष के यज्ञ में भृगु का दर्प-मोचन किया ॥६०॥ भगवान् ने राम के विवाह में—मार्ग में जाते हुए परशुराम का राम द्वारा अभिमान चूर किया ॥६१॥ वायु द्वारा सुमेरु पर्वत का शिखर भङ्ग कराकर उसका अभिमान चूर किया और अगस्त्य द्वारा—जलपान कराकर—समुद्र का अभिमान नष्ट किया ॥६२॥ प्राचीन काल में असमय में सृष्टि-विनाश करने पर तुले हुए कुपित वायु का भगवान् ने उनके पुत्र की मृत्यु के द्वारा अभिमान भङ्ग किया ॥६३॥ उषाहरण की यात्रा में भगवान् के द्वारकापुरी से चले जाने पर उन्होंने बाणासुर की गौओं के कारण वरुण को शाप दिया ॥६४॥ नारायण (विष्णु) के

कलहे गङ्गया सार्धं वाण्या नारायणाग्रतः । सरस्वतीं च तत्याज तस्या दर्पं बभञ्ज सः ॥६५॥
दर्पयुक्तां च दुर्गां च त्यक्त्वा शंभुर्हिमालये । कामं च भस्मसात्कृत्वा तपसे च ययौ विभुः ॥६६॥
लज्जामवाप सा देवी तस्या दर्पं बभञ्ज सः । सा ययौ तपसे विष्णोः प्राप्तिहेतोः शिवस्य च ॥६७॥
भारते सुचिरं तप्त्वा देवी विष्णोर्वरेण च । चकार स्वामिनं शंभुं भगवन्तं सनातनम् ॥६८॥
महासौभाग्ययुक्ता सा बभूव शंकरप्रिया । विश्वेषु सर्वदेवीषु पूज्या वन्द्या स्तुता सुरैः ॥६९॥
दर्पयुक्ता महालक्ष्मीर्बभूव सा महामुने । पराभूता पुरा[1] देवी जयेन विजयेन च ॥७०॥
प्रविशन्तीं विभोर्द्वारं दत्त्वा भक्ताय वाञ्छितम् । निवारिता सा द्वाराच्च तेन दौवारिकेण वै ॥७१॥
[2]यदात्मनस्तिरस्कारं साभिमाना महासती । स्मृत्वा[3] हरेः पादपद्मं देहं त्यक्तुं समुद्यता ॥७२॥
तदा ब्रह्मा महेशश्च विष्णुर्धर्मश्च भास्करः । चन्द्रश्च कामदेवश्च वैश्वानरो धनेश्वरः ॥७३॥
ऋषयो मुनयश्चैव मनवो विघ्ननाशकाः । महेन्द्रो वरुणश्चैव जगत्प्राणो हुताशनः ॥७४॥
समाययूरुदन्तस्ते पद्मायाः पुरतः पुरा । तुष्टुवुश्च महालक्ष्मीं मूलप्रकृतिमीश्वरीम् ॥७५॥

---

सामने गंगा के साथ सरस्वती का कलह होने पर सरस्वती का त्याग कर उनका दर्पभंग किया ॥६५॥ शिव ने हिमालय में रहकर अभिमानिनी दुर्गा का त्याग कर दिया और काम को भस्म कर वे स्वयं तप के लिए चले गये । अनन्तर अभिमान चूर हो जाने से देवी बहुत लज्जित हुईं और शिव की प्राप्ति के लिए भगवान् विष्णु की आराधना करने के हेतु जंगल में चली गयीं ॥६६-६७॥ भारत में अति चिरकाल तक तप करके देवी ने भगवान् विष्णु के वरदान से सनातन भगवान् शिव को अपना स्वामी बनाया ॥६८॥ वह देवी महासौभाग्य से युक्त, शंकर की प्रिया, विश्व की सभी देवियों में पूज्या, वन्दनीया तथा देवताओं से स्तुत हुईं ॥६९॥

हे महामुने ! पूर्वकाल में महालक्ष्मी को भी अभिमान हो गया था । तब जय-विजय के द्वारा देवी का अपमान कराकर उनका भी अभिमान चूर किया । भक्त को अभीष्ट वर प्रदान करने के उपरान्त वे द्वार में प्रवेश कर रही थीं कि द्वारपाल ने उस द्वार पर उन्हें रोक दिया ॥७०-७१॥ अभिमानिनी एवं महासती महालक्ष्मी इसे अपना अपमान समझकर भगवान् के चरण-कमलों का स्मरण करके देह-त्याग करने के लिए तैयार हो गयीं ॥७२॥ यह देखकर ब्रह्मा, महेश, विष्णु, धर्म, सूर्य, चन्द्र, कामदेव, वैश्वानर, कुबेर, ऋषिवृन्द; मुनिगण, विघ्ननाशक, (विनायकगण), मनुवृन्द, महेन्द्र, वरुण, वायु और अग्नि रोते हुए, लक्ष्मी के पास पहुँचे तथा मूल प्रकृति एवं ईश्वरी महालक्ष्मी की स्तुति करने लगे ॥७३-७५॥

---

१ क. परा । २ क. महात्मनस्ति° । ३ क. दृष्ट्वा ।

## देवा ऊचुः

क्षमस्व भगवत्यम्ब क्षमाशीले परात्परे। शुद्धसत्त्वस्वरूपे च कोपादिपरिर्वाजते ॥७६॥
उपमे सर्वसाध्वीनां देवीनां देवपूजिते। त्वया विना जगत्सर्वं मृततुल्यं च निष्फलम् ॥७७॥
सर्वसंपत्स्वरूपा त्वं सर्वेषां सर्वरूपिणी। रासेश्वर्यधिदेवी त्वं त्वत्कलाः सर्वयोषितः ॥७८॥
कैलासे पार्वती त्वं च क्षीरोदे सिन्धुकन्यका। स्वर्गे च स्वर्गलक्ष्मीस्त्वं मर्त्यलक्ष्मीश्च भूतले ॥७९॥
वैकुण्ठे च महालक्ष्मीर्देवदेवी सरस्वती। गङ्गा च तुलसी त्वं च सावित्री ब्रह्मलोकतः ॥८०॥
कृष्णप्राणाधिदेवी त्वं गोलोके राधिका स्वयम्। रासे रासेश्वरी त्वं च वृन्दा वृन्दावने वने ॥८१॥
कृष्णप्रिया त्वं भाण्डीरे चन्द्रा चन्दनकानने। विरजा चम्पकवने शतशृङ्गे च सुन्दरी ॥८२॥
पद्मावती पद्मवने मालती मालतीवने। कुन्ददन्ती कुन्दवने सुशीला केतकीवने ॥८३॥
कदम्बमाला त्वं देवी कदम्बकाननेऽपि च। राजलक्ष्मी राजगेहे गृहलक्ष्मीर्गृहे गृहे ॥८४॥
इत्युक्त्वा देवताः सर्वे मुनयो मनवस्तथा। रुरुदुर्नम्रवदनाः शुष्ककण्ठोष्ठतालुकाः ॥८५॥
इति लक्ष्मीस्तवं पुण्यं सर्वदेवैः कृतं शुभम्। यः पठेत्प्रातरुत्थाय स वै सर्वं लभेद्ध्रुवम् ॥८६॥
अभार्यो लभते भार्यां विनीतां च सुतां सतीम्। सुशीलां सुन्दरीं रम्यामतिसुप्रियवादिनीम् ॥८७॥
पुत्रपौत्रवतीं शुद्धां कुलजां कोमलां वराम्। अपुत्रो लभते पुत्रं वैष्णवं चिरजीविनम् ॥८८॥

---

**देववृन्द बोले**--हे क्षमाशीले ! अम्ब ! भगवति ! हे परात्परे ! शुद्धसत्त्वस्वरूपवाली ! क्रोध आदि से शून्य ! क्षमा करो ॥७६॥ हे समस्त पतिव्रता देवियों की उपमा स्वरूप ! हे देवपूजिते ! तुम्हारे बिना यह समस्त जगत् मृततुल्य एवं निष्फल है ॥७७॥ तुम समस्त सम्पत्स्वरूपा हो, सभी प्राणियों के सर्वरूप हो, तुम्हीं रासेश्वरी और अधिष्ठात्री देवी हो और (संसार की) समस्त स्त्रियाँ तुम्हारी कला हैं ॥७८॥ तुम कैलास में पार्वती, क्षीरसागर में सिन्धुपुत्री (महालक्ष्मी), स्वर्ग में स्वर्गलक्ष्मी एवं भूतल पर मर्त्य-लक्ष्मी हो ॥७९॥ उसी भाँति वैकुण्ठ में महालक्ष्मी, देवदेवी, सरस्वती, गंगा, तुलसी और ब्रह्मलोक की सावित्री देवी हो ॥८०॥ तुम गोलोक में भगवान् कृष्ण के प्राणों की अधीश्वरी राधा हो, रास में स्वयं रासेश्वरी और वृन्दावन की वृन्दा हो ॥८१॥ तुम भाण्डीरवन में कृष्णप्रिया, चन्दनवन में चन्द्रा, चम्पकवन में विरजा और शतशृङ्ग (सौ शिखर-वाले पर्वत) की सुन्दरी हो ॥८२॥ तुम पद्मवन की पद्मावती, मालती वन की मालती, कुन्दवन की कुन्ददन्ती (कुन्द पुष्प के समान दाँतोंवाली) एवं केतकी-वन की सुशीला हो ॥८३॥ कदम्बवन की तुम कदम्बमाला देवी हो, राजघर की राजलक्ष्मी और घर-घर की गृहलक्ष्मी स्वरूप हो ॥८४॥ इतना कहकर सभी देववृन्द, मुनिगण और मनु लोग नीचे मुख करके रोदन करने लगे, जिनके कण्ठ, ओंठ और तालु सूखे हुए थे ॥८५॥ इस प्रकार समस्त देवकृत इस पुण्य एवं शुभ लक्ष्मी-स्तोत्र को जो प्रातःकाल उठकर पढ़ता है, उसे निश्चित ही सब कुछ प्राप्त होता है ॥८६॥ स्त्री-रहित को विनीता, पतिव्रता, सुशीला, सुन्दरी, रम्या, अतिमधुर बोलनेवाली, पुत्र-पौत्रःसम्पन्ना, शुद्धकुलीना एवं अति कोमलाङ्गी स्त्री की प्राप्ति होती है । पुत्रहीन को वैष्णव, चिरजीवी परम ऐश्वर्य सम्पन्न,

परमैश्वर्ययुक्तं च विद्यावन्तं यशस्विनम् । भ्रष्टराज्यो लभेद्राज्यं भ्रष्टश्रीर्लभते श्रियम् ॥८९॥
हतबन्धुर्लभेद्बन्धुं धनभ्रष्टो धनं लभेत् । कीर्तिहीनो लभेत्कीर्ति प्रतिष्ठां च लभेद्ध्रुवम् ॥९०॥
सर्वमङ्गलदं स्तोत्रं शोकसंतापनाशनम् । हर्षानन्दकरं शश्वद्धर्ममोक्षसुहृत्प्रदम् ॥९१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० भगवद्गुणवर्णने
लक्ष्मीस्तोत्रकथनं नाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५६॥

•

## अथ सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

### नारायण उवाच

देवानां स्तवनं श्रुत्वा त्यक्त्वा च रोदनं सती । उवाच सुप्रसन्ना तांस्तेषां स्तोत्रेण नारद ॥१॥

### महालक्ष्मीरुवाच

त्यजामि देहं न क्रोधान्न वैराग्येण सांप्रतम् । इदं हृदि समालोच्य देवास्तच्छ्रूयतामिति ॥२॥

---

विद्यावान् एवं यशस्वी पुत्र प्राप्त होता है । राज्यच्युत को पुनः राज्यप्राप्ति, भ्रष्टश्री को श्री की प्राप्ति, नष्ट बन्धु को बन्धु की प्राप्ति, धनहीन को धन और कीर्ति-रहित को कीर्ति समेत प्रतिष्ठा की निश्चित प्राप्ति होती है ॥८७-९०॥ इस प्रकार यह स्तोत्र सम्पूर्ण मङ्गलदायक, शोकसंतापकनाशक, हर्षआनन्दकारी और निरन्तर धर्म, मोक्ष एवं मित्र प्रदान करनेवाला है ॥९१॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद-नारायण-संवाद में भगवद्गुण-वर्णन के प्रसंग में लक्ष्मीस्तोत्रकथन नामक छप्पनवाँ अध्याय समाप्त ॥५६॥

•

## अध्याय ५७

### लक्ष्मी का वैराग्य-त्याग

**नारायण बोले**—हे नारद ! देवों की स्तुति सुनकर सती लक्ष्मी ने रोना बन्द कर दिया और उनकी स्तुति से अति प्रसन्न होकर कहा ॥१॥

**महालक्ष्मी बोलीं** - हे देववृन्द ! मैं इस समय क्रोध या वैराग्य के आवेश में आकर शरीर-त्याग नहीं कर रही हूँ । इसके लिए मैंने अपने हृदय में जो कुछ निश्चित किया है, उसे कह रही हूँ, सुनो ! ॥२॥ जो

यस्मिन्सर्वेशे महति सर्वसाम्ये च निर्गुणे। सर्वात्मनि सदानन्दे समता तृणशैलयोः ॥३॥
भ्रूभङ्गलीलया लक्ष्मीर्लक्षं स्रष्टुमलं च यः। भृत्ये स्त्रियां यत्समता किं कार्यं तस्य सेवया ॥४॥
तत्पत्नीनां प्रधानाऽहं निरस्ता द्वारिणाऽधुना। तद्भृत्यभृत्यभृत्येन परिपूर्णेन नेप्सिता ॥५॥
त्यक्ष्यामि जीवनमहमसौभाग्या च स्वामिनि। वह्नौ च कामनां कृत्वा यथा भद्रं भवेत्पुरा[1] ॥६॥
या स्त्री भर्तुरसौभाग्या साऽसौभाग्या च सर्वतः। शयनेऽभोजने तस्या न सुखं जीवनं वृथा ॥७॥
यस्या नास्ति प्रियप्रेम तस्या जन्म निरर्थकम्। तत्किं पुत्रे धने रूपे संपत्तौ यौवनेऽथवा ॥८॥
यद्भक्तिर्नास्ति कान्ते च सर्वप्रियतमे परे। साऽशुचिर्धर्महीना च सर्वकर्मविवर्जिता ॥९॥
पतिर्बन्धुर्गतिर्भर्ता दैवतं गुरुरेव च। सर्वस्माच्च परः स्वामी न गुरुः स्वामिनः परः ॥१०॥
पिता माता सुतो भ्राता विलष्टो दातुमिदं धनम्। सर्वस्वदाता स्वामी च मूढानां योषितां सुराः ॥११॥
काचिदेव हि जानाति महासाध्वी च स्वामिनम्। अतिसद्वंशजाता च सुशीला कुलपालिका ॥१२॥
आसद्वंशप्रसूता या दुःशीला धर्मवर्जिता। मुखदुष्टा योनिदुष्टा पतिं निन्दति कोपतः ॥१३॥
या स्त्री सर्वपरं द्वेष्टि पतिं विष्णुसमं गुरुम्। कुम्भीपाके पचति सा यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥१४॥

---

परमेश्वर महान्, सबके लिए समान, निर्गुण, सर्वात्मा और सदा आनन्द स्वरूप हैं, उनके लिए तृण और पर्वत समान हैं ॥३॥ फिर जो अपनी भौंहों को टेढ़ी करने मात्र से लाखों लक्ष्मी बना सकने में समर्थ हैं, पर-पत्नी और भृत्य को समान भाव से देखते हैं, उनकी सेवा करने से क्या लाभ ? ॥४॥ मैं उनकी पत्नियों में प्रधान हूँ, फिर भी द्वारपाल ने मुझे इस समय रोक दिया है, जो उनके भृत्य के भृत्य का भृत्य है। परिपूर्ण कृष्ण को मैं अभीष्ट भी नहीं रही ॥५॥ पति-सौभाग्य से हीन होने के कारण मैं अग्नि में कामना करके अपना जीवन त्यागना चाहती हूँ, जिससे पूर्वकाल की तरह कल्याण हो ॥६॥ जो स्त्री पति-सौभाग्य-हीन है, वह सब ओर से सौभाग्य-हीन है। शयन-भोजन में उसे कोई सुख नहीं है, उसका जीवन व्यर्थ है ॥७॥ जिसे अपने प्रियतम का प्रेम नहीं प्राप्त है, उसका जन्म निरर्थक है, अतः उसे अपने पुत्र, धन, अपने सौन्दर्य, सम्पत्ति अथवा यौवन से ही क्या प्रयोजन ?॥८॥ जिसे सबसे बढ़कर परम प्रेमास्पद अपने स्वामी में भक्ति नहीं है, वह अपवित्र, धर्म-हीन और समस्त कार्यों में वर्जित है ॥९॥ क्योंकि पति ही बन्धु, गति, भर्ता, देव और गुरु है, अतः सबसे बढ़कर स्वामी होता है, पति से बढ़कर कोई गुरु नहीं है ॥१०॥ हे देवगण ! पिता, माता, पुत्र और भ्राता बड़ी कठिनाई से धन दे सकते हैं, किन्तु मूढ़ स्त्रियों को भी पति सर्वस्व प्रदान करता है ॥११॥ इसीलिए पति के महत्त्व को कोई महापतिव्रता ही जानती है जो अति उत्तम कुल में उत्पन्न, सुशीला एवं कुल का पालन करनेवाली होती है ॥१२॥ और जो असत्कुल में उत्पन्न, उग्र स्वभाववाली, धर्मरहित, कटुवादिनी एवं व्यभिचारिणी होती है, वह क्रोध से पति की निन्दा करती है ॥१३॥ जो स्त्री सर्वश्रेष्ठ एवं विष्णु के समान गुरु अपने पति से द्वेष करती है वह चौदहों इन्द्रों के काल तक

---

१ क. 'परः ।

व्रतं चानशनं दानं सत्यं पुण्यं तपश्चिरम्। पतिभक्तिविहीनाया भस्मीभूतं निरर्थकम् ॥१५॥
अतः किंचिन्न वक्ष्यामि निष्ठुरं पतिमीश्वरम्। भृत्यापराधैर्देवस्य[1] प्राणांस्त्यक्ष्यामि निश्चितम् ॥१६॥
पतिदोषे महासाध्वी पतिं न निष्ठुरं वदेत्। यदि सोढुमशक्ता च प्राणांस्त्यजति धर्मतः ॥१७॥
पतिसेवा व्रतं स्त्रीणां पतिसेवा परं तपः। पतिसेवा परो धर्मः पतिसेवा सुरार्चनम् ॥१८॥
पतिसेवा परं सत्यं दानतीर्थानुकीर्तनम्। सर्वदेवमयः स्वामी सर्वदेवमयः शुचिः ॥१९॥
सर्वपुण्यस्वरूपश्च पतिरूपी जनार्दनः। या सती भर्तुरुच्छिष्टं भुङ्क्ते पादोदकं सदा ॥२०॥
तस्या दर्शनमुपस्पर्शं नित्यं वाञ्छन्ति देवताः। ततः सर्वाणि तीर्थानि पुनन्ति पापिनो ह्यघात् ॥२१॥
इत्युक्त्वा च महासाध्वी रुरोद च मुहुर्मुहुः। उवाच ब्रह्मा भीतश्च भक्तिनम्रात्मकंधरः ॥२२॥

## ब्रह्मोवाच

भविष्यति न भद्रं च जयस्य विजयस्य च। त्वया न शप्तौ तौ मूढौ प्रियापराधभीतया ॥२३॥
सापराधं च धर्मिष्ठः क्षमया न शपेद्यदि। सर्वनाशो भवेत्तस्य निश्चितं मा चिरं सति ॥२४॥
यदि शप्तुं न शक्तश्च न दण्डं कर्तुमीश्वरः। सापराधे च पुरुषे धर्मो दण्डं करोति च ॥२५॥

---

कुम्भीपाक नरक में पचती रहती है ॥१४॥ पति-भक्ति-हीन स्त्री का व्रत, अनशन (उपवास), दान, पुण्य और चिरकाल का तप भस्मीभूत होकर व्यर्थ हो जाता है ॥१५॥ इसलिए मैं अपने निष्ठुर ईश्वर पति को कुछ भी नहीं कहूँगी; केवल पतिदेव के भृत्यापराधवश मैं निश्चित ही प्राणत्याग कर दूंगी ॥१६॥ क्योंकि महासती स्त्री पति से अपराध होने पर भी उसे निष्ठुर बात नहीं कहती है और यदि सहन करने में असमर्थ होती है तो धर्मतः अपने प्राणों का त्याग कर देती है ॥१७॥ इसलिए स्त्रियों का पति-सेवा ही व्रत है, पति-सेवा परम तप है, पति-सेवा महान् धर्म है, पति-सेवा देव-पूजा है, पति-सेवा परम सत्य एवं दान और तीर्थ-सेवन स्वरूप है। अतः स्त्रियों का पति समस्त देव रूप होता है और सर्वदेवमय वह पवित्र मूर्ति है ॥१८-१९॥ वह समस्त पुण्य स्वरूप और पतिरूप में जनार्दन भगवान् है, अतः जो पतिव्रता पति का उच्छिष्ट (जूठा) भोजन और उसके चरणोदक का सदा सेवन करती है, उसके दर्शन और सान्निध्य के लिए देवता लोग नित्य इच्छुक रहते हैं, उन्हीं स्त्रियों के दर्शन एवं स्पर्श करने से समस्त तीर्थ पापियों को पापों से मुक्त कर पवित्र करते हैं ॥२०-२१॥ यह कहकर महासती लक्ष्मी बार-बार रोने लगीं। यह देखकर भयभीत ब्रह्मा भक्ति से कन्धे झुकाकर कहने लगे ॥२२॥

**ब्रह्मा बोले**—हे पतिव्रते! तुमने अपने प्रियतम के अपराधभय से जय-विजय को शाप नहीं दिया, इसलिए उन मूर्खों का कल्याण नहीं होगा। धर्मात्मा प्राणी अपने क्षमाशील (स्वभाव) के कारण यदि अपराधी को शाप नहीं देता है, तो उसका निश्चित एवं अविलम्ब सर्वनाश हो जाता है ॥२३-२५॥ यदि वह न शाप दे सकता

---

१ क. दैवेन।

सर्वं क्षमस्व हे मातर्गच्छ गच्छ प्रियान्तिकम् । मां च त्वत्स्वामिनो भक्तं नियोज्य सृष्टिकर्मणि ॥२६॥
इत्युक्त्वा तां पुरस्कृत्वा सार्धं देवैर्मुनीन्द्रकैः । शीघ्रं जगाम वैकुण्ठं वैकुण्ठं स्तोतुमीश्वरः ॥२७॥
तत्र गत्वा जगन्नाथं तुष्टाव कमलासनः । चतुर्वक्त्रैश्चतुर्वक्त्रश्चतुर्वेदविदां गुरुम् ॥२८॥
ब्रह्मणः स्तवनं श्रुत्वा दृष्ट्वा लक्ष्मीं पुरःसराम् । रुदतीं नम्रवदनामुवाच कमलापतिः ॥२९॥

**श्रीभगवानुवाच**

सर्वं जानामि सर्वज्ञः सर्वात्मा सर्वपालकः । सर्वशास्ता च सर्वादिकारणं कमलोद्भव ॥३०॥
भक्ते कलत्रे बन्धौ च सर्वत्र समता मम । विशेषतोऽतिमद्भक्तः कलत्रात्पर एव च ॥३१॥
मद्भक्तौ तव पुत्रौ च द्वारपालौ दुरन्तकौ । क्षम मामपराधं च तयोश्च भक्तिपूर्णयोः ॥३२॥
मद्भक्तिपूर्णो बलवान्दैत्येभ्यो न बिभेति च । रक्षितो मम चक्रेण भक्तिमाध्वीकदुर्मदः ॥३३॥
इत्युक्त्वा जगतां नाथो लक्ष्मीं कृत्वा स्ववक्षसि । समानीय द्वारपालं तमुवाचेदमेव च ॥३४॥
मा भैर्वत्स सुखं तिष्ठ भयं किं ते मयि स्थिते । मद्भक्तानां च कः शास्ता गच्छ वत्साऽऽत्मनः पदम् ॥३५॥

---

है और न दण्ड विधान करने में ही समर्थ होता है, तो उस अपराधी पुरुष को धर्म स्वयं दण्ड देता है ॥२५॥ अतः हे माता ! (जो कुछ हो गया) वह सब क्षमा करो और अपने स्वामी के भक्त मुझको सृष्टिकार्य में नियुक्त करके अपने प्रियतम के समीप चलो ॥२६॥ इतना कहकर ब्रह्मा ने देवों और मुनियों समेत लक्ष्मी को आगे करके भगवान् के स्तुत्यर्थ शीघ्र वैकुण्ठ को प्रस्थान कर दिया ॥२७॥ वहाँ पहुँचने पर कमलासन एवं चतुर्मुख ब्रह्मा ने अपने चारों मुखों द्वारा चारों वेदवेत्ताओं के गुरु जगन्नाथ भगवान् की स्तुति करना आरम्भ किया ॥२८॥ कमलापति भगवान् ने ब्रह्मा की स्तुति सुनकर और सामने नीचे मुख किये रोती हुई लक्ष्मी को देखकर कहा ॥२९॥

**श्रीभगवान् बोले**—हे कमलोद्भव ! मैं सर्वज्ञ, सबका आत्मा, सबका पालक, सब पर शासन करनेवाला एवं सबका आदि कारण हूँ, अतः सब-कुछ जानता हूँ ॥३०॥ भक्त, पत्नी एवं बन्धुओं आदि में सर्वत्र समता का ही भाव मैं रखता हूँ, और विशेषता यह है कि—जो मेरा अतिभक्त है वह पत्नी से भी बढ़कर (प्रिय) है । इसलिए इन दुर्जेय द्वारपालों का जो मेरे भक्तिपूर्ण भक्त हैं और तुम्हारे पुत्र हैं उनका तथा साथ ही मेरा भी अपराध क्षमा करो ॥३१-३२॥ मेरी भक्ति से परिपूर्ण बलवान् जन दैत्यों से भी कभी भयभीत नहीं होता । भक्तिरूपी मदिरा पीकर उसके मद से मतवाले उन भक्तों की रक्षा मेरा सुदर्शन-चक्र करता है । इतना कहकर जगत् के अधीश्वर भगवान् ने लक्ष्मी को अपने हृदय से लगा लिया । अनन्तर द्वारपाल को बुलाकर उससे कहने लगे–हे वत्स ! भय मत करो । सुखपूर्वक रहो । मेरे रहते तुम्हें कोई भय नहीं है और मेरे भक्तों पर अन्य कौन शासन कर सकता है ? अतः हे वत्स ! अब पुनः अपने पद पर सुस्थिर हो जाओ ॥३३-३५॥ हे महामुने ! यह

इत्युक्त्वा भगवांस्तत्र विरराम महामुने। ययुर्देवाश्च स्वस्थानं प्रणम्य जगदीश्वरम् ॥३६॥
नारायणवचः श्रुत्वा द्वारपाल उवाच तम्। पुलकाञ्चितसर्वाङ्गो भक्तिनम्रात्मकंधरः ॥३७॥

जय उवाच

नाहं बिभेमि देवांश्च लक्ष्मीं मुनिगणांस्तथा। त्वदीयचरणाम्भोजध्यानैकतानमानसः ॥३८॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० उत्त० लक्ष्मी-
वैराग्यमोचनं नाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५७॥

•

# अथाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

नारायण उवाच

बभूव दर्पः पृथ्व्याश्च सर्वाधाराऽहमेव च। पृथुद्वारा च तद्दर्पं जघान चैव तत्प्रभुः ॥१॥
बभूव दर्पः सावित्र्या वेदमाताऽहमेव च। काले चकार तस्याश्च सपुत्रायाः अदर्शनम् ॥२॥

---

कहकर भगवान् चुप हो गये। पश्चात् देवगण भी जगदीश्वर भगवान् को प्रणाम करके अपने-अपने स्थान को चले गये ॥३६॥ नारायण की बात सुनकर द्वारपाल ने सम्पूर्ण शरीर से रोमाञ्चित होकर भक्ति से कन्धे झुकाये कहना आरम्भ किया ॥३७॥

जय बोला—हे भगवन् ! आपके चरणकमल का एकाग्र मन से ध्यान करनेवाला मैं लक्ष्मी, देवों तथा मुनिगणों से भी नहीं डरता हूँ ॥३८॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण में श्रीकृष्णजन्मखण्ड के नारद-नारायण-संवादविषयक उत्तरार्द्ध में
लक्ष्मीवैराग्य-मोचन नामक सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त ॥५७॥

•

# अध्याय ५८

## पृथ्वी, सावित्री, गंगा, मनसा और राधा के दर्प का हरण

**नारायण बोले**—एक बार पृथ्वी को भी अभिमान हो गया कि—'सबका आधार मैं ही हूँ।' तब भगवान् ने राजा पृथु द्वारा उसके अभिमान को चूर कर दिया ॥१॥ फिर सावित्री को वेदमाता होने का गर्व हुआ। भगवान् ने समय पर उसे पुत्रों समेत अदृश्य कर दिया ॥२॥ अनन्तर गङ्गा को अभिमान हो गया कि-

बभूव दर्पं गङ्गाया अहं निर्वाणदेति च। जह्नुद्वारा च तद्दर्पं जहार जगतां पतिः ॥३॥
जहार मनसादर्पं दुर्गाद्वारा पुरा मुने। विरजोपगतं कृष्णं भर्त्संयामास कोपतः ॥४॥
प्रविशन्तं रासगृहं गोपीभिर्विनिवारितम्। दौवारिकाभिर्वेत्रैश्च ताडितं तं च दर्पतः ॥५॥
सुदाम्ना निजभक्तेन राधा शप्ता बभूव ह। दैवेन सहसा ध्वस्ता गोलोकादागता धराम् ॥६॥
वृषभानुस्त्रियां जाता कलावत्यां च नारद। कृष्णस्तदनुरोधेन कंसभीतिच्छलेन च ॥७॥
समागतो नन्दगेहं तेनाहं नन्दनन्दनः। सुदाम्नः शापविच्छेदपालनार्थं जगत्पतिः ॥८॥
पुनर्जगाम मथुरामित्याह कमलोद्भवः। अस्यापरमभिप्रायं को वा जानाति नारद ॥९॥
कथं जातः समायातो मथुरायाश्च गोकुलम्। इत्येवं कथितं सर्वमपरं श्रूयतामिति ॥१०॥
यथा जगाम मथुरां नन्दान्स नन्दनन्दनः। शोकं नन्दो यशोदा च यथा संप्राप दैवतः ॥११॥
यथा गोपाश्च गोप्यश्च गावो वृन्दावने वने। वने वने वा वन्यास्ते वन्या जानन्ति किंचन ॥१२॥
वनं रम्यं वन्यपदमपि त्यक्त्वा वने वने। श्मशाने वाऽश्मशाने वा बभ्राम भामिनी मुने ॥१३॥
ग्रामं त्यक्त्वा च बभ्राम चेतनाऽचेतना क्षणम्। क्षणेन वर्जिता सा च प्रार्थयन्ती प्रतिक्षणम् ॥१४॥

---

'मैं ही निर्वाण पद प्रदान करनेवाली हूँ।' जगत्पति भगवान् ने राजा जह्नु द्वारा उसके भी अभिमान को चूर कर दिया ॥३॥ हे मुने ! पूर्वकाल में भगवान् ने मनसा के गर्व को दुर्गा के द्वारा नष्ट किया। एक बार विरजा गोपी के साथ बैठे कृष्ण को देखकर राधा ने अत्यन्त कोप से उनकी भर्त्सना की और मारे गर्व के रास-भवन में प्रवेश करते समय उन्हें अपने द्वारपाल गोपियों द्वारा बेंतों से पिटवाया ॥४-५॥ तब हे नारद ! अपने निजी भक्त सुदामा द्वारा राधा को शाप दिलवाया, दैववश सहसा ध्वस्त हो जाने पर राधा, गोलोक से पृथिवी पर आयीं और वृषभानु की पत्नी कलावती के उदर से जन्म ग्रहण किया। भगवान् कृष्ण भी उनके अनुरोध से तथा कंस-भय के बहाने से नन्द के घर आ गये थे; इसीलिए मैं नन्द-नन्दन कहलाता हूँ। सुदामा का वियोग रूप शाप पालन करने के हेतु भगवान् जगत्पति पुनः मथुरापुरी गये, ऐसा कमलोद्भव ब्रह्मा ने बताया था। हे नारद ! प्रकट होते ही मथुरा से गोकुल क्यों चले आये, उनके दूसरे अभिप्राय को कौन जान सकता है ! इस प्रकार मैंने यह सब कह दिया; अब और आगे की बात सुनो। जैसे नन्दनन्दन भगवान् कृष्ण नन्द के यहाँ से मथुरा गये, जैसे दैव संयोग से यशोदा-नन्द को दुःख हुआ, जैसे वृन्दावन की गोप-गोपियाँ एवं गौयें विरह-व्याकुल होकर वृन्दावन में इधर-उधर घूमने लगीं। वन-वन भटकने के कारण वे जंगली हो गये। जंगली लोग ही उनके बारे में कुछ जान पाते थे ॥६-१२॥ हे मुने ! उत्तम वन तथा उसके रमणीक स्थानों को त्यागकर वन-वन में श्मशान अथवा श्मशान से भिन्न जगहों पर वह भामिनी (यशोदा) भटक रही थीं ॥१३॥ गाँव छोड़कर इधर-उधर घूमती हुई वह क्षण में चेतनाहीन हो जातीं तो क्षण में पुनः चेतनायुक्त हो जातीं। क्षण में सबसे अलग हो जातीं तो क्षण में प्रार्थना करने लगतीं। क्षण में दीर्घनिःश्वास (लम्बी साँस) लेतीं तो क्षण में ध्यान-मग्न हो जातीं,

क्षणं क्षणं सा श्वसिति चिन्तनं कुर्वतो क्षणम् । क्षणं विशन्ती तल्पे च क्षणमुत्थाय तिष्ठति ॥१५॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० अष्ट-
पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५८॥

•

# अथैकोनषष्टितमोऽध्यायः

नारायण उवाच

इत्येवं कथितं सर्वं सर्वेषां दर्पभञ्जनम् । इन्द्रस्य दर्पभङ्गं च विस्तरेण निशामय ॥१॥
इन्द्रो दर्पात्सभायां च [1]रत्नसिंहासनाद्वरात् । नोत्तस्थौ स्वगुरुं दृष्ट्वा ब्रह्मिष्ठं च बृहस्पतिम् ॥२॥
गुरुर्जगामातिरुष्टः स्वापमाने समत्सरः । तथापि कृपया धर्मी स्नेहाच्च न शशाप तम् ॥३॥
विना शापेन तद्दर्पश्चूर्णीभूतो बभूव ह । अन्यश्चेन्न शपेद्धर्मात्प्रेम्णा वा [2]चातिकिल्बिषम् ॥४॥
तथाऽपि तं च फलति धर्मस्तं हन्ति नारद । यो यं हिंस्रं सापराधं शपेत्कोपेन धार्मिकः ॥५॥

---

क्षण में शय्या पर लेट जातीं और क्षण में पुनः उस पर से उठकर खड़ी हो जातीं ॥१४-१५॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण में श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्ध में नारद-नारायण-संवाद में
अट्ठावनवाँ अध्याय समाप्त ॥५८॥

•

## अध्याय ५९

### इन्द्र का दर्प-भंग होने पर इन्द्राणी द्वारा गुरु की स्तुति

**नारायण बोले**—मैंने सभी लोगों का अभिमान चूर होना तुमसे कह दिया है। अब इन्द्र के अभिमान-भंग को विस्तारपूर्वक सुनो। अपने गुरु ब्रह्मनिष्ठ बृहस्पति को सभा में आते हुए देखकर इन्द्र अभिमान के कारण सभा में उत्तम रत्न-सिंहासन से नहीं उठे ॥१-२॥ अपने अपमान के कारण बृहस्पति अति रुष्ट होकर वहाँ से चले गये। यद्यपि उस समय धर्मी गुरु को मत्सर (द्वेष) भी उत्पन्न हुआ, तथापि स्नेहवश कृपा करके उन्होंने इन्द्र को शाप नहीं दिया ॥३॥ किन्तु बिना उनके शाप दिये ही इन्द्र का अभिमान चूर-चूर हो गया। हे नारद! यदि अति पापी को अन्य व्यक्ति धर्म या प्रेम के कारण शाप नहीं देता है, तो भी इससे उसको (इस दुष्कर्म का)

---

१ क. 'सने वसन्। २ क. जातकि'।

विनाशः सापराधस्य धर्मो नष्टश्च धर्मिणः। तेनाधर्मेण शक्रस्य ब्रह्महत्या बभूव ह ॥६॥
भीतस्त्यक्त्वा स्वराज्यं च प्रययौ स सरोवरम्। सरसः पद्मसूत्रे च निवासं च चकार सः ॥७॥
गन्तुं न शक्ता हत्या च पुण्यं विष्णुसरोवरम्। श्रेष्ठं भरतवर्षे च तपःस्थानं तपस्विनाम् ॥८॥
तदेव पुष्करं तीर्थं प्रवदन्ति पुराविदः। राज्यभ्रष्टं हरिं दृष्ट्वा हरिभक्तो नराधिपः ॥९॥
बलाज्जहार तद्राज्यं नहुषो नाम धार्मिकः। दृष्ट्वा शचीं वरारोहामनपत्यां च सुन्दरीम् ॥१०॥
स्वर्गगङ्गां च गच्छन्तीं हृदयेन विदूयता। नवयौवनसंपन्नां रत्नालंकारभूषिताम् ॥११॥
सुकोमलां तां सुदतीं वदन्तीं च महासतीम्। मूर्च्छां संप्राप राजेन्द्रः कामेन यौवनेन च ॥
उवाच तत्पुरः स्थित्वा सुविनीतश्च दासवत् ॥१२॥

## नहुष उवाच

धातुर्गतिर्विचित्राऽहो न बोध्या च सतामपि ॥१३॥
ईदृशी स्त्री भगाङ्गस्य लुब्धस्य परयोषिति। ईदृशी सुन्दरी यस्य परभार्यासु तन्मनः ॥१४॥
अस्या अग्रे च का रम्भा कोर्वशी का तिलोत्तमा। का वा मेना घृताची वा रत्नमाला कलावती ॥१५॥

---

फल मिलता है और धर्म उसका नाश कर देता है। धार्मिक जिस हिंसक अपराधी को क्रुद्ध होकर शाप देता है, इससे अपराधी का विनाश होता है और (उस) धर्मात्मा का धर्म नष्ट हो जाता है। उस अधर्म के कारण इन्द्र को ब्रह्महत्या लग गयी जिससे भयभीत होकर वे अपना राज्य त्यागकर एक सरोवर में चले गये और वहाँ सरोवर के भीतर कमल-सूत्र में निवास करने लगे ॥४-७॥ उस पवित्र विष्णु सरोवर में ब्रह्महत्या नहीं जा सकी। वह सरोवर भारतवर्ष में तपस्वियों का श्रेष्ठ तपःस्थान है ॥८॥ प्राचीन विद्वान् लोग उसे ही 'पुष्कर तीर्थ' कहते हैं। अनन्तर इन्द्र को राज्यच्युत देखकर धार्मिक एवं हरिभक्त राजा नहुष ने उनके राज्य को बलपूर्वक अपने अधिकार में कर लिया। एक बार उन्होंने शची (इन्द्राणी) को देखा। वह मनोहर अंगवाली, जिसके कोई संतान न थी, सुन्दरी, नवयौवना, रत्नों के अलंकारों से भूषित, अति कोमल एवं सुन्दर दाँतोंवाली थी। वह दुःखितहृदया अपनी सखियों से बातचीत करती हुई आकाश-गंगा को जा रही थी। उस महासती को देखकर राजेन्द्र नहुष कामवासना और युवावस्था के कारण मूर्च्छित हो गया। उपरान्त चेतना आने पर उसके सामने खड़ा हो गया और दास की भाँति अति विनीत भाव से उससे कहने लगा ॥९-१२॥

**नहुष बोले**—अहो! ब्रह्मा की गति बड़ी विचित्र है, इसे सज्जन भी नहीं जान पाते हैं। जिसकी पत्नी ऐसी सुन्दरी हो, उसका मन परस्त्रियों में लगे, वह परस्त्री का लोभी हो जाय और उसके कारण अंगों में भग हो गये हों ॥१३-१४॥ शची के सामने रम्भा, उर्वशी, तिलोत्तमा, मेना, घृताची, रत्नमाला, कलावती,

कालिका सुन्दरी भद्रावती चम्पावती तथा। एताश्चाप्सरसश्चान्याः कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥१६॥
इमां विहाय मूढोऽन्यां कथं गच्छति मन्दधीः। अस्माकं योषितोऽस्याश्च चेटितुल्याश्च निश्चितम् ॥१७॥
मां भजस्व वरारोहे सुप्रीता भव किंकरम्। यथा राधा च गोलोके कृष्णवक्षसि राजते ॥१८॥
वैकुण्ठोरसि वैकुण्ठे यथा लक्ष्मीः सरस्वती। ब्रह्मलोके च ब्रह्माणी यथैव ब्रह्मवक्षसि ॥१९॥
यथा मूर्तिर्महासाध्वी धर्मवक्षःस्थलस्थिता। पातालतललक्ष्मीर्वा यथैवाऽनन्तवक्षसि ॥२०॥
यथा पुष्टिर्गणेशे च देवसेना च कार्तिके। वरुणे वरुणानी च यथा स्वाहा हुताशने ॥२१॥
यथा रतिः कामदेवे यथा संज्ञा दिनेश्वरे। वायोः पत्नी यथा वायौ यथा चन्द्रे च रोहिणी ॥२२॥
यथाऽदितिर्देवमाता तव श्वश्रूश्च कश्यपे। यथा हिमालये मेना पितृकन्या च मानसी ॥२३॥
लोपामुद्रा यथाऽगस्त्ये यथा तारा बृहस्पतौ। कर्दमे देवहूतिश्च वसिष्ठेऽरुन्धती यथा ॥२४॥
मनौ च शतरूपेव दमयन्ती नले यथा। तथा भव त्वं सौभाग्या मम वक्षसि सुन्दरि ॥२५॥
लीलया च सहस्रेन्द्राञ्छेत्तुं शक्तोऽहमीश्वरः। नारी वाञ्छति जारं च स्वामिनो बलवत्तरम् ॥२६॥
सुमेरुगिरिकूटे च दुर्गमेति रहःस्थले। अथवा मलये रम्ये रम्ये चन्दनवायुना ॥२७॥

---

कालिका, सुन्दरी, भद्रावती और चम्पावती ये सभी अप्सराएँ इसकी सोलहवीं कला के भी समान नहीं हैं ॥१५-१६॥ वह मन्दबुद्धिवाला मूर्ख इन्द्र न जाने किस प्रकार इसका त्यागकर अन्य स्त्री की इच्छा करता है। हमारी जितनी स्त्रियाँ हैं, निश्चित ही वे इसकी चेरी (नौकरानी) के ही समान हैं ॥१७॥ अपने मन में ऐसा विचारकर नहुष ने शची से कहा कि "हे वरारोहे! मुझ दास के ऊपर सुप्रसन्न हो जाओ, मुझे चाहो। गोलोक में जिस प्रकार कृष्ण के वक्षःस्थल पर राधा सुशोभित होती हैं, वैकुण्ठ में विष्णु के अंक में लक्ष्मी और सरस्वती विराजती हैं, ब्रह्मलोक में ब्रह्मा के वक्षःस्थल पर ब्रह्माणी सुशोभित होती हैं तथा धर्म के अंक में महासती मूर्ति स्थित हैं, अनन्त के वक्षःस्थल पर पाताल तल की लक्ष्मी स्थित हैं, जैसे गणेश के अंक में पुष्टि कार्तिकेय के अंक में देवसेना, वरुण के अंक में वरुणानी, अग्नि के अंक में स्वाहा, कामदेव के अंक में रति, सूर्य के अंक में संज्ञा, वायु के अंक में वायु की पत्नी, चन्द्रमा के अंक में रोहिणी, कश्यप अंक में तुम्हारी सास देवमाता अदिति, हिमालय के अंक में पितरों की मानसी कन्या मेना, अगस्त्य के अंक में लोपामुद्रा, बृहस्पति के अंक में तारा, कर्दम के अंक में देवहूती, वसिष्ठ के अंक में अरुन्धती, मनु के अंक में शतरूपा और नल के अंक में दमयन्ती सुशोभित होती हैं, हे सुन्दरी! उसी भाँति मेरे अंक में सौभाग्यशालिनी तुम विराजमान हो जाओ ॥१८-२५॥

मैं सहस्रों इन्द्रों को लीलापूर्वक छिन्न-भिन्न करने में समर्थ हूँ और स्त्री तो वैसे ही पति से अधिक बलवान् जार पुरुष को चाहती है ॥२६॥ तुम्हारे साथ सुमेरु पर्वत के शिखर पर विहार करेंगे जो दुर्गम एवं अति एकान्त स्थान है अथवा चन्दन वायु से सुरम्य तथा रमणीक मलयाचल पर चलेंगे, जो विश्वस्त एवं

विश्रम्भके सुरसने किंवा नन्दनकानने। निकटे शतशृङ्गस्य पुष्पभद्रानदीतटे ॥२८॥
गोदावरीतीरनीरे समीपे शीतवायुना। चम्पावतीनदीतीरे रम्ये चम्पककानने ॥२९॥
श्मशानेऽतिश्मशाने च रम्येऽतिनिर्जने वने। शैले शैलेऽतिरहसि कंदरे कंदरे वने ॥३०॥
द्वीपे द्वीपे दुर्गदुर्गे नद्यां नद्यां नदे नदे। समुद्रपुलिने रम्ये सर्वजन्तुविवर्जिते ॥३१॥
विदग्धाया विदग्धेन संगमो निर्जने सुखः। पुष्पचन्दनशय्यायां पुष्पचन्दनचर्चिते ॥३२॥
मां गृहीत्वा कुरु रतिं पुष्पचन्दनचर्चितम्। ब्रह्मणश्च वरैर्देवि जरामृत्युविवर्जितम् ॥३३॥
मां कुरुष्व पतिं भद्रे नित्यं सुस्थिरयौवनम्। सुवेषं सुन्दरं धीरं कामशास्त्रविशारदम् ॥३४॥
शरत्पार्वणचन्द्रास्यं चन्द्रवंशसमुद्भवम्। आगतामुर्वशीं मह्यां त्यक्तवन्तं च याचतीम् ॥३५॥
न मे स्पृहा परस्त्रीषु त्वां दृष्ट्वा लोलुपं मनः। त्यक्ता मया स्वभार्याश्च रत्नभूषणभूषिताः ॥३६॥
अथवा रक्षिताः सर्वा दासीः कृत्वा वरानने। रत्नेन्द्रसारां मालां ते दास्यामि वरुणस्य च ॥३७॥
निर्जित्य वरुणं युद्धे ब्रह्मास्त्रेणातितेजसा। वह्निशुद्धं वस्त्रयुगं जित्वा वह्निं सुदुर्बलम् ॥३८॥
दास्याम्यद्यैव ते देवि नियोज्य मां नियोजय। मणीन्द्रसारनिर्माणमकाराकारकुण्डले ॥३९॥
दास्यामि देवान्निर्जित्य देवमातुश्च सुन्दरि। करभूषणयुग्मं चात्यमूल्यरत्ननिर्मितम् ॥४०॥

---

उत्तम रसास्वादन करने का स्थान है। उसी प्रकार नन्दन वन, पुष्पभद्रा नदी के तट पर, शतशृङ्ग नामक पर्वत के समीप, शीतल वायु से मनमोहक गोदावरी के जल के किनारे, चम्पावती नदी के तट पर, रमणीक चम्पकवन, श्मशान, अतिश्मशान, रमणीक अति निर्जन वन, प्रत्येक पर्वत की शून्य प्रत्येक गुफाओं, वनों, द्वीप-द्वीपान्तरों, प्रत्येक दुर्ग स्थानों, नदियों, नदों और समस्त जन्तुओं से शून्य एवं रमणीक समुद्र-तटों पर चलेंगे, क्योंकि ऐसे निर्जन प्रदेशों में निपुण पुरुष के साथ निपुण स्त्री का समागम सुखदायक होता है। पुष्प चन्दन-चर्चित उस प्रदेश में पुष्प-चन्दन की शय्या पर पुष्प-चन्दन चर्चित मेरे साथ सुख-सम्भोग करो। हे देवि! ब्रह्मा के वरदान द्वारा मैं जरा और मृत्यु से रहित हो गया हूँ ॥२७-३३॥

हे भद्रे! मेरा यौवन नित्य और सुस्थिर है, अतः मुझे पति बनाओ, क्योंकि मेरा उत्तम वेश है। मैं सुन्दर, धीर, कामशास्त्र में निपुण, शरत्पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान मुखवाला और चन्द्रवंश में उत्पन्न हूँ। पृथ्वी पर जब मैं था, तो सुरति याचना करने के लिए उर्वशी स्वयं मेरे निकट आयी थी, किन्तु मैंने उसका त्याग कर दिया ॥३४-३५॥ परायी स्त्रियों के प्रति मेरी कभी भी इच्छा नहीं होती, किन्तु आज तुम्हें देखकर मेरा मन चञ्चल हो गया है। इसीलिए मैं रत्नों के भूषणों से भूषित अपनी समस्त स्त्रियों को त्याग करने के लिए तैयार हो गया हूँ अथवा तुम्हारी दासी बनाकर उन्हें भी रख लूंगा। हे वरानने! युद्ध में अपने अति तेजस्वी ब्रह्मास्त्र द्वारा वरुण को पराजित करके उनकी रत्नेन्द्रसार की माला तुम्हें प्रदान करूँगा। अति दुर्बल अग्नि को जीतकर उनका विशुद्ध वस्त्र आज ही तुम्हें ला दूंगा। अतः हे देवि! मुझ सेवक को सेवा का अवसर दो। सुन्दरि! देवताओं को जीतकर देवमाता अदिति का यह मकराकार कुण्डल, जो मणीन्द्र के सारभाग

दास्याम्यद्यैव रोहिण्याश्चन्द्रं जित्वाऽतिदुर्लभम्[1] । यक्ष्मग्रस्तमतिकृशं ममैव पूर्वपूरुषम् ॥४१॥
विना युद्धेन भीतो मां कृपया वा प्रदास्यति । अमूल्यरत्ननिर्माणं क्वणन्मञ्जीरयुग्मकम् ॥४२॥
दास्याम्यद्यैव पार्वत्या भिक्षां कृत्वा महेश्वरम् । आशुतोषं स्तुतिवशं भक्तेशं च कृपामयम् ॥४३॥
सर्वसंपत्तिदातारं[2] परं कल्पतरुं शुभे । अमूल्यरत्ननिर्माणकेयूरयुगुलं प्रिये ॥४४॥
दास्यामि तेऽद्य गङ्गाया युद्धं कृत्वा सुदुर्लभम् । बहुलीयुगुलं चारु सूर्यपत्न्या मनोहरम् ॥४५॥
सद्रत्नसारनिर्माणं दास्याम्यद्य सुशोभने । अमूल्यरत्ननिर्माणं दर्पणं चातिनिर्मलम् ॥४६॥
दास्यामि ते कामपत्न्याः कामं जित्वा च लीलया । क्रीडाकमलमम्लानं कमलायाश्च सुन्दरि ॥४७॥
भिक्षां कृत्वा च दास्यामि स्तुत्वा च कमलापतिम् । अङ्गुलीयकरत्नानि विश्वेषु दुर्लभानि च ॥४८॥
सावित्र्याश्च प्रदास्यामि कृत्वा च ब्रह्मणस्तपः । स्वयं गीतं प्रगायन्तीं मूर्च्छनाश्रुतिसंयुताम् ॥४९॥
वाणीवीणां प्रदास्यामि कृत्वा नारायणव्रतम् । रत्नपाशकसंघं च विश्वकर्मविनिर्मितम् ॥५०॥
कुबेरपत्न्या दास्यामि पादाङ्गुलिविभूषणम् । इत्येवमुक्त्वा नहुषः पपात तत्पदाम्बुजे ॥५१॥
उवाच तं शची त्रस्ता राजमार्गगतं नृपम् । उत्थाप्य तं करे धृत्वा शुष्ककण्ठोष्ठतालुका ॥
स्मारं स्मारं पदाम्भोजं महासाध्वी हरेर्गुरोः ॥५२॥

---

का बना हुआ है, तुम्हें प्रदान करूँगा। चन्द्रमा को जीतकर रोहिणी का अति दुर्लभ युगल कङ्कण आज ही तुम्हें प्रदान करूँगा। अथवा यक्ष्मा रोग से पीड़ित होने के कारण अति दुर्बल एवं मेरे पूर्वज चन्द्रमा भयभीत होकर या कृपापूर्वक बिना युद्ध के ही मुझे दे देंगे। हे शुभे! आशुतोष महेश्वर से, जो स्तुति के वश में रहते हैं तथा भक्तों के स्वामी, कृपामय और समस्त सम्पत्ति प्रदान करने के लिए परमोत्तम कल्पतरु हैं, भिक्षा-याचना करके अमूल्यरत्न का बना हुआ एवं बजता हुआ पार्वती का नूपुर तुम्हें आज ही दूँगा। हे प्रिये! गङ्गा का युगल केयूर (बहूँटा) जो अमूल्य रत्नों का बना है, और अति दुर्लभ है, आज ही युद्ध करके ला दूँगा। सुशोभने! सूर्य-पत्नी संज्ञा का मनोहर बहुली युगल, जो उत्तम रत्नों के सारभाग से सुरचित है, तुम्हें आज ही प्रदान करूँगा। कामदेव को लीला की भाँति जीतकर उसकी पत्नी रति का अति निर्मल दर्पण तुम्हें ला दूँगा। हे सुन्दरि! कमलापति (विष्णु) की स्तुति करके कमला का अम्लान क्रीड़ाकमल भी तुम्हें माँगकर प्रदान करूँगा। इसी प्रकार ब्रह्मा का तप करके सावित्री का विश्व-दुर्लभ रत्नों के अङ्गुलीयक (अँगूठियाँ) तथा सरस्वती की वीणा तुम्हें प्रदान करूँगा, जो मूर्च्छना एवं श्रुतियुक्त रहकर स्वयं गीत गाया करती है। नारायण का व्रत करके विश्वकर्मा के बनाये हुए रत्नपाशकों के समूह और कुबेर की पत्नी का चरणाङ्गुलि-भूषण तुम्हें प्रदान करूँगा।" इतना कहकर नहुष इन्द्राणी के चरण-कमल पर गिर पड़ा ॥३६-५१॥

अनन्तर त्रस्त होकर शची ने राजा का हाथ पकड़कर उठाया, जो राजमार्ग पर उसके चरणों में लेट गया था। उस समय इन्द्राणी के कण्ठ, ओंठ और तालू सूख गये थे। उसके बाद गुरु बृहस्पति और इन्द्र के चरण-कमलों का बार-बार स्मरण करती हुई उस महापतिव्रता ने उनसे कहा ॥५२॥

---

१ क. 'दुर्बल'। २ क. स्वप्राणानां च दा'।

**शच्युवाच**

शृणु वत्स महाराज हे तात भयभञ्जन ॥५३॥
भय त्राता च राजा च सर्वेषां पालकः पिता। भ्रष्टश्रीश्च महेन्द्रोऽद्य त्वं च स्वर्गे नृपोऽधुना ॥५४॥
यो राजा स पिता पाता प्रजानामेव निश्चितम्। गुरुपत्नी राजपत्नी देवपत्नी तथा वधूः ॥५५॥
पित्रोः स्वसा शिष्यपत्नी भृत्यपत्नी च मातुली। पितृपत्नी भ्रातृपत्नी श्वश्रूश्च भगिनी सुता ॥५६॥
गर्भधात्रीष्टदेवी च पुंसः षोडश मातरः। त्वं नरो देवभार्याऽहं माता ते देवसंमता ॥५७॥
गच्छ वत्सादितिं रन्तुं यदि चेच्छसि मातरम्। सर्वेषां निष्कृतिश्चास्ति न वत्स मातृगामिनाम् ॥५८॥
कुम्भीपाके ते पचन्ति यावद्वै ब्रह्मणो वयः। ततो भवन्ति कृमयः कल्पाः सप्त भवन्ति ते ॥५९॥
ततश्च कुष्ठिनो म्लेच्छा भवन्ति सप्तजन्मसु। नास्त्येव निष्कृतिस्तेषामित्याह कमलोद्भवः ॥६०॥
एवं विट्क्षत्त्रशूद्राणां ब्राह्मणीगमने नृप। वेदेषु निष्कृतिर्नास्ति चेत्याङ्गिरसभाषितम् ॥६१॥
स्वर्गसंपत्तिभोगश्च सुखं संसारिणां ध्रुवम्। मुमुक्षूणां च मोक्षश्च तपश्चैव तपस्विनाम् ॥६२॥
ब्राह्मणानां च ब्राह्मण्यं मुनीनां मौनमेव च। वेदाभ्यासो वैदिकानां कवीनां काव्यवर्णनम् ॥६३॥
विष्णुदास्यं वैष्णवानां विष्णुभक्तिरसं परम्। विष्णुभक्ति विना नैव मुक्ति वाञ्छन्ति वैष्णवाः ॥६४॥

---

**शची बोलीं**--हे वत्स महाराज ! हे भयहारी तात ! मैं जो कह रही हूँ, सुनो ! राजा सभी को भय से बचाता है और पालक होने के नाते वह सबका पिता होता है। इस समय महेन्द्र राज्य से च्युत भी हो गये हैं। तुम्हीं स्वर्ग के राजा हो। जो राजा होता है वही प्रजाओं का पिता, रक्षक आदि निश्चित ही सब कुछ होता है। और गुरु-पत्नी, राजा की पत्नी, देवपत्नी, वधू (पुत्रवधू), माता की बहिन (मौसी), पिता की बहिन (बुआ), शिष्य-पत्नी, भृत्य-पत्नी, मातुली (मामी), पितृपत्नी (विमाता), भ्रातृ-पत्नी, सास, भगिनी, कन्या और गर्भ धारण करनेवाली इष्टदेवी--ये पुरुष की सोलह माताएँ होती हैं। तुम मनुष्य हो, मैं देवपत्नी हूँ। इसलिए भी मैं तुम्हारी देव-सम्मत माता हूँ ॥५३-५७॥ हे वत्स ! यदि माता से सम्भोग करना चाहते हो, तो जाकर अदिति से रति करो। क्योंकि हे वत्स ! सभी के लिए प्रायश्चित्त का विधान है, परन्तु मातृगामी पुरुषों के लिए कोई प्रायश्चित्त नहीं है। वे लोग ब्रह्मा की आयु तक कुम्भीपाक नरक में पचते हैं, पश्चात् सात कल्पों तक कीड़े होते हैं। अनन्तर सात जन्मों तक कोढ़ी और म्लेच्छ होते हैं। अतः उन लोगों की कोई निष्कृति नहीं है, ऐसा ब्रह्मा ने स्वयं कहा है ॥५८-६०॥ हे नृप ! इसी प्रकार वैश्य, क्षत्रिय एवं शूद्रों को ब्राह्मणी के साथ सम्भोग करने पर वेदों में कोई निष्कृति (शुद्ध होने का उपाय) नहीं बताया गया है, ऐसा बृहस्पति ने कहा है ॥६१॥ स्वर्ग की सम्पत्ति का उपभोग करना ही संसारी प्राणियों का निश्चित सुख है। उसी भाँति मुमुक्षुओं (मोक्षेच्छुकों) का सुख मोक्ष और तपस्वी जनों का सुख तप है। ब्राह्मणों का (ब्राह्मणत्व) की प्राप्ति, मुनियों का मौन साधन, वैदिकों का वेदाभ्यास, कविजनों का काव्य-वर्णन और वैष्णवों का भगवान् विष्णु का दास्यपद एवं श्रेष्ठ विष्णुभक्तिरस सुख होता है। वैष्णव लोग भगवान् विष्णु की भक्ति के बिना मुक्ति भी नहीं चाहते हैं ॥६२-६४॥

मलाढ्येषु च क्लेदेषु दुर्गन्धिनिलयेषु च । साधूनां किं सुखं साधो स्त्रीणां योनिषु मां वद ।।६५।।
कुलप्रदीप राजेन्द्र राज्ञां मण्डलवर्तिनाम् । लब्धं च भारते जन्म पुण्येन बहुजन्मनाम् ।।६६।।
पद्मानां चन्द्रवंश्यानां नृपाणां दीप्तिहेतवे । त्वमाविरासीस्तेजस्वी ग्रीष्ममध्याह्नभास्करः ।।६७।।
सर्वेषामाश्रमाणां च स्वधर्मश्च यशः परम् । स्वधर्महीना नरके पतन्ति मूढचेतसः ।।६८।।
ब्राह्मणस्य स्वधर्मश्च त्रिसंध्यमर्चनं हरेः । तत्पादोदकनैवेद्यभक्षणं च सुधाधिकम् ।।६९।।
अन्नं विष्ठा जलं मूत्रमनिवेद्य हरेर्नृप । भवन्ति सूकराः सर्वे ब्राह्मणा यदि भुञ्जते ।।७०।।
आजीवं भुञ्जते विप्रा एकादश्यां न भुञ्जते । कृष्णजन्मदिने चैव शिवरात्रौ सुनिश्चितम् ।।७१।।
तथा रामनवम्यां च यत्नतः पुण्यवासरे । ब्राह्मणानां स्वधर्मश्च कथितो ब्रह्मणा नृप ।।७२।।
व्रतं पतिव्रतानां च पतिसेवा परं तपः । यथा पुत्रः परपतिरेष धर्मश्च योषिताम् ।।७३।।
पालयन्ति यथा भूपाः प्रजाः पुत्रानिवौरसान् । प्रजास्त्रियं च पश्यन्ति राजानो मातरं यथा ।।७४।।
यज्ञं कुर्वन्ति विष्णोश्च सेवनं देवविप्रयोः । निवारणं च दुष्टानां शिष्टानां प्रतिपालनम् ।।७५।।
इति धर्मः क्षत्रियाणां कथितो ब्रह्मणा पुरा । वाणिज्यं चैव वैश्यानां स्वधर्मो धर्मसंचयः ।।७६।।

---

हे साधो ! अतः अब मुझे यह बताइये कि मल से परिपूर्ण, जल से भीगी एवं दुर्गन्ध का स्थान स्त्रियों की योनि में साधुजनों को कौन सुख प्राप्त होता है ।।६५।। हे राजेन्द्र, कुल के प्रदीप ! बहुत जन्मों के पुण्य से भारत में चक्रवर्ती राजाओं के कुल में तुमने जन्म ग्रहण किया है ।।६६।। कमलरूपी चन्द्रवंशी राजाओं के प्रकाशनार्थ तुम ग्रीष्म-काल के मध्याह्न-सूर्य की भाँति तेजस्वी होकर उत्पन्न हुए हो ।।६७।। इसीलिए सभी आश्रमवालों का अपना-अपना धर्म ही उनका महान् यश है । अपने धर्म से च्युत होने पर मूढ़ प्राणी नरक में गिरते हैं ।।६८।। तीनों काल भगवान् की अर्चना करना ब्राह्मण का स्वधर्म है और उनके पादोदक (चरणामृत) एवं नैवेद्य (प्रसाद) भक्षण करना अमृत से भी बढ़कर है ।।६९।। हे नृप ! यदि ब्राह्मण भगवान् को बिना निवेदन किये हुए अन्न-जल ग्रहण करते हैं तो वह अन्न विष्ठा के समान और जल मूत्र के समान होता है और वे ब्राह्मण स्वयं सूकर-योनि में उत्पन्न होते हैं ।।७०।। ब्राह्मण लोग जीवन भर भले भोजन करें किन्तु एकादशी के दिन भोजन नहीं करते हैं । भगवान् श्रीकृष्ण के जन्म-दिन तथा शिवरात्रि को वे निश्चित ही भोजन नहीं करते ।।७१।। इसी तरह रामनवमी को तथा पुण्य दिन में वे प्रयत्नपूर्वक भोजन नहीं करते हैं । हे नृप ! ब्रह्मा ने यह ब्राह्मणों का स्वधर्म बताया है ।।७२।। इसी भाँति पतिव्रताओं का पति की सेवा करना ही व्रत एवं तप है । पुत्र की भाँति पर पुरुष को देखना, यह स्त्रियों का धर्म है ।।७३।। राजा लोग अपने औरस (विवाहित पत्नी से उत्पन्न) पुत्रों की भाँति प्रजाओं का पालन करते हैं, और प्रजा की स्त्रियों को माता के समान देखते हैं ।।७४।। यज्ञ करते हैं, भगवान् विष्णु, देवता और ब्राह्मण की सेवा करते हैं, एवं दुष्टों को अनुशासित करते हैं तथा शिष्ट (सदाचारी) जनों का प्रतिपालन करते हैं । यह ब्रह्मा ने पूर्वकाल में क्षत्रियों का धर्म बताया था । वाणिज्य (व्यापार) करना वैश्यों का स्वधर्म है और वही उनका धर्म-सचय है ।।७५-७६।। ब्राह्मण-सेवा ही शूद्रों का श्रेष्ठ धर्म है । हे भूप ! भगवान्

शूद्राणां विप्रसेवा च परो धर्मो विधीयते । सर्वन्यासो हरौ भूप धर्मः संन्यासिनां ध्रुवम् ॥७७॥
रक्तैकवासा दण्डी च बिभर्ति मृत्कमण्डलुम् । सर्वत्र समदर्शी च स्मरेन्नारायणं सदा ॥७८॥
करोति भ्रमणं नित्यं गेहे गेहे न तिष्ठति । विद्यामन्त्रं च कस्मैचिन्न ददाति च लोभतः ॥७९॥
करोति नाऽऽश्रमं भिक्षुः करोति नान्यवासनाम् । करोति नान्यसङ्गं च निर्मोहः सङ्गवर्जितः ॥८०॥
न स्वादु भुङ्क्ते लोभाच्च स्त्रीमुखं न हि पश्यति । न वाञ्छितं भक्ष्यवस्तु याचते गृहिणं व्रती ॥८१॥
इति संन्यासिनां धर्म इत्याह कमलोद्भवः । इति ते कथितं पुत्र गच्छ वत्स यथासुखम् ॥८२॥
इत्युक्त्वा च महेन्द्राणी विरराम च वर्त्मनि । उवाच नहुषो राजा शचीं वक्रकंधरः ॥८३॥

## नहुष उवाच

त्वया यत्कथितं देवी सर्वं तत्तु विपर्ययम् । यथार्थधर्मं वेदोक्तं निबोध कथयामि ते ॥८४॥
कर्मणां फलभोगश्च सर्वेषां सुरसुन्दरि । नैव स्वर्गे न पाताले नान्यद्वीपे श्रुतौ श्रुतम् ॥८५॥
कृत्वा शुभाशुभं कर्म पुण्यक्षेत्रे च भारते । अन्यत्र तत्फलं भुङ्क्ते कर्मी कर्मनिबन्धनात् ॥८६॥
हिमालयादासमुद्रं पुण्यक्षेत्रं च भारतम् । श्रेष्ठं सर्वस्थलानां च मुनीनां च तपःस्थलम् ॥८७॥
तत्र लब्ध्वा जन्म जीवी वञ्चितो विष्णुमायया । शश्वत्करोति विषयं विहाय सेवनं हरेः ॥८८॥

---

में सब कुछ त्याग करना संन्यासियों का निश्चित धर्म है, जो रक्तवर्ण का एक वस्त्र पहने दण्ड एवं मिट्टी का कमण्डलु लिये रहते हैं, सर्वत्र समता का भाव रखते हैं, सदा नारायण का स्मरण करते हुए नित्य विचरण करते हैं, किसी के घर नहीं ठहरते और लोभवश किसी को विद्या-मन्त्र प्रदान नहीं करते हैं ॥७७-७९॥

भिक्षु संन्यासी कहीं रहने का घर नहीं बनाते हैं, न कोई अन्य वासना रखते हैं, और न किसी का साथ करते हैं। वे निर्मोही की भाँति सदा सङ्ग से दूर रहते हैं ॥८०॥ लोभवश स्वादयुक्त भोजन नहीं करते हैं, स्त्रियों के मुख का दर्शन नहीं करते हैं, कभी भी किसी गृहस्थ के यहाँ जाकर अभिलषित भक्ष्य वस्तु की याचना नहीं करते हैं और सदा व्रती की भाँति रहते हैं ॥८१॥ यही संन्यासियों का धर्म ब्रह्मा ने बताया है। हे पुत्र ! इस प्रकार मैंने सभी बातें तुम्हें बता दीं। अब सुखपूर्वक चले जाओ। वहाँ मार्ग में महेन्द्राणी इतना कहकर चुप हो गयीं। अनन्तर गर्दन को घुमाकर राजा नहुष ने शची से कहा ॥८२-८३॥

**नहुष बोले**—हे देवि ! तुमने जो कुछ कहा है, वह सब उल्टा है। अतः वेदोक्त यथार्थ धर्म मैं तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो ॥८४॥ हे सुर-सुन्दरि ! सभी लोगों को अपने-अपने कर्मफलों का उपभोग न स्वर्ग में करना पड़ता है न पाताल में और न अन्य द्वीपों में ही करना पड़ता है, ऐसा वेद में सुना गया है। केवल पुण्यक्षेत्र भारत में ही किये हुए अपने शुभ-अशुभ कर्मों के फल को मनुष्य अन्य लोकों में भोगता है, क्योंकि कर्मकर्त्ता के ऊपर कर्मों का बन्धन रहता है (जो बिना भोग के नहीं छूटता) ॥८५-८६॥ हिमालय से लेकर समुद्र पर्यन्त बीच का प्रदेश पुण्यक्षेत्र भारतवर्ष कहा जाता है, जो सम्पूर्ण प्रदेशों से श्रेष्ठ एवं मुनियों की तपोभूमि है ॥८७॥ वहाँ जन्म ग्रहण करने के उपरान्त जीव भगवान् विष्णु की माया द्वारा वञ्चित रहकर भगवान् की सेवा न करके

कृत्वा तत्र महत्पुण्यं स्वर्गं गच्छति पुण्यवान् । गृहीत्वा सर्वकन्याश्च चिरं स्वर्गे प्रमोदते ॥८९॥
स्वर्गमागच्छति नरो विहाय मानवीं तनुम् । स्वशरीरेणाऽऽगतोऽहं मत्पुण्यं पश्य सुन्दरि ॥९०॥
अनेकजन्मपुण्येन चाऽऽगतः स्वर्गमीप्सितम् । ततः किं केन पुण्येन दर्शनं मे त्वया सह ॥९१॥
न हि कर्मस्थलमिदं स्वभोगस्थलमेव च । सारं च सर्वभोगानां वरस्त्रीभोगमेव च ॥९२॥
भोगस्थले भोगवस्तु न हि त्यक्तुं प्रशस्यते । भावानुरक्ता रसिका भोग्या त्वं भोगिनामिह ॥९३॥
द्रव्यमस्वामिकं भोग्यं सुखं त्यजति मन्दधीः । अविरोधसुखत्यागी पशुरेव न संशयः ॥९४॥
गच्छ कान्ते गृहं गत्वा कुरु तल्पं मनोहरम् । रमणीयं च रहसि वरं रतिकरं परम् ॥९५॥
त्यज द्वैधं च मनसो निश्चितं वरवर्णिनि । वरानने मया सार्धं मोदस्व वरमन्दिरे ॥९६॥
अमूल्यरत्नमालां च मणिराजविराजिताम् । भिक्षां कृत्वा च दास्यामि लक्ष्मीवक्षसि शोभिताम् ॥९७॥
मणिं चानन्तशिरसः सर्वेषामतिदुर्लभम् । दुष्प्राप्यं त्रिषु लोकेषु तुभ्यं दास्यामि सुन्दरि ॥९८॥
मणिरत्नं कौस्तुभं च यो नारायणवक्षसि । भिक्षां कृत्वा तु दास्यामि कृत्वा नारायणव्रतम् ॥९९॥
चन्द्रशेखरमौलेश्च यदर्धं चन्द्रभूषणम् । जरामृत्युव्याधिहरं [1]शश्वतं क्रीडाकरं वरम् ॥१००॥

---

निरन्तर विषय-वासना में लीन रहता है ॥८८॥ किन्तु वहाँ पुण्यात्मा प्राणी महत्पुण्योपार्जन करके स्वर्ग प्राप्त करता है और समस्त कन्याओं के साथ चिरकाल तक भोग-विलास करता है ॥८९॥ हे सुन्दरि ! मनुष्य मानवीय शरीर का त्याग करके ही स्वर्ग में आता है, किन्तु मेरा पुण्य देखो ! मैं अपने शरीर सहित यहाँ आया हूँ ॥९०॥ अनेक जन्मों के पुण्य से अभीष्ट स्वर्ग की प्राप्ति होती है और उससे भी बढ़कर न जाने किस पुण्य से आज तुम्हारा दर्शन हुआ एवं तुम्हारे साथ वार्तालाप हो रहा है ॥९१॥ यह स्वर्ग कर्म-भूमि नहीं है, यह भोग करने का स्थल है । भोग की सब वस्तुओं में सुन्दर स्त्री का भोग उत्तम है ॥९२॥ भोग के स्थान में भोग-वस्तु का त्याग करना अच्छा नहीं है । तुम भाव में अनुरक्त रहनेवाली, रसिक और भोगियों के भोग योग्य हो ॥९३॥ बिना स्वामी के भोग योग्य द्रव्य को मंदबुद्धि ही त्यागता है । निर्विरोध सुख का त्याग करनेवाला तो पशु ही है, इसमें संशय नहीं ॥९४॥ अतः हे कान्ते ! घर जाओ और वहाँ पहुँचकर मनोहर शय्या सुसज्जित करो, जो रमणीक, एकान्त में स्थित एवं परम सुरतोपयोगी हो ॥९५॥ हे वरवर्णिनि ! मन से इसका निश्चय करके द्विविधा को दूर कर दो । हे वरानने ! श्रेष्ठ भवन में मेरे साथ आनन्द करो ॥९६॥ मैं लक्ष्मी के हृदय पर सुशोभित होनेवाली वह माला, जो अमूल्य रत्नों की बनी एवं श्रेष्ठ मणि से सुभूषित है, माँगकर तुम्हें ला दूँगा ॥९७॥ हे सुन्दरि ! अनन्त भगवान् के सिर पर सुशोभित होनेवाली वह मणि, जो सभी लोगों के लिए अति दुर्लभ और तीनों लोकों में दुष्प्राप्य है, तुम्हें लाकर दूँगा । नारायण के हृदय पर विराजमान मणिरत्न कौस्तुभ, उनका व्रत करके माँगकर तुम्हें प्रदान करूँगा । चन्द्रशेखर (शिव) के शिर में जो जरा, मृत्यु एवं रोगों का नाशक, समर्थ, परम क्रीडाकारक, विश्व में अत्यन्त दुर्लभ, जगद्वन्द्य एवं सुन्दर अर्ध-

---

१ क. शस्तं ।

अतीव विश्वदुष्प्राप्यं विश्ववन्द्यं च सुन्दरम् । विश्वनाथव्रतं कृत्वा तुभ्यं दास्यामि निश्चितम् ॥१०१॥
दास्यामि ते श्रीसूर्यस्य मणिश्रेष्ठं स्यमन्तकम् । भक्त्या सूर्यव्रतं कृत्वा त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥१०२॥
अष्टौ भारान्सुवर्णं च यच्च नित्यं प्रसूयते । जरामृत्युहरं चैव परं क्रीडाकरं प्रिये ॥१०३॥
अमूल्यरत्ननिर्माणं पात्ररत्नं मनोहरम् । संततं मधुपूर्णं च दास्यामि मदनस्य च ॥१०४॥
अमूल्यरत्ननिर्माणं सूर्यतुल्यं च तेजसा । नानाचित्रविचित्राढ्यं निर्माणमीश्वरेच्छया ॥१०५॥
निर्मलं मण्डलाकारं मणिराजविराजितम् । हस्तलक्षपरिमितं चतुरस्रं च सुन्दरि[1] ॥१०६॥
पद्मापद्मासनं श्रेष्ठं प्रेष्ठं तस्या सुदुर्लभम् । ध्रुवं तुभ्यं प्रदास्यामि कृत्वा पद्मालयाव्रतम् ॥१०७॥
इत्येवमुक्त्वा नहुषः कृत्वा वर्त्मनिरोधनम् । पुनः पपात चरणे महेन्द्राण्या मुहुर्मुहुः ॥१०८॥
नृपस्य वचनं श्रुत्वा शुष्ककण्ठोष्ठतालुका । तमुवाच महेन्द्राणी स्मारं स्मारं गुरुं हरिम् ॥१०९॥

## शच्युवाच

अचेतनस्य मूढस्य कार्याकार्यमजानतः । श्रोष्याम्यद्य कतिविधां कथां कामातुरस्य च ॥११०॥
मधुमत्तः सुरामत्तः काममत्तो विचेतनः । मृत्युं न गणयेत्कामी कामेन हृतमानसः ॥१११॥

---

चन्द्रभूषण है, उसे विश्वनाथ के व्रत द्वारा निश्चित रूप से तुम्हें ला दूंगा । हे प्रिये ! भक्तिपूर्वक भी सूर्य का व्रत सुसम्पन्न करके उनकी मणिश्रेष्ठ स्यमन्तकमणि तुम्हें लाकर समर्पित करूँगा, जो तीनों लोकों में दुर्लभ एवं नित्य आठ भार सुवर्ण प्रदान करनेवाला तथा जरा, मृत्यु का विनाशक और परम क्रीडोपयोगी है ॥९८-१०३॥ निरन्तर मधु से परिपूर्ण रहनेवाला कामदेव का वह पात्ररत्न, जो अमूल्य रत्नों से सुरचित एवं मनोहर है, लाकर तुम्हें अवश्य प्रदान करूँगा ॥१०४॥ हे सुन्दरि ! कमलालया लक्ष्मी का व्रत करके उनका यह कमलासन, जो अमूल्यरत्ननिर्मित, सूर्य की भाँति तेजस्वी, अनेक भाँति की चित्र-विचित्र कलाओं से सुशोभित, ईश्वर की इच्छा द्वारा निर्मित, निर्मल, मण्डलाकार, मणिपंक्तियों से विराजमान, एक लाख हाथ-विस्तृत, चौकोर, सर्वश्रेष्ठ, लक्ष्मी को अतिप्रिय एवं अन्य के लिए अतिदुर्लभ है, तुम्हें अवश्य प्रदान करूँगा ॥१०५-१०७॥ इतना कहकर नहुष महेन्द्राणी का मार्ग रोककर बार-बार उनके चरणों पर गिरने लगा ॥१०८॥ राजा की बात सुनकर महेन्द्राणी के कण्ठ, ओंठ और तालू सूख गये, किन्तु गुरु और भगवान् का स्मरण करके उसने राजा से कहा ॥१०९॥

**शची बोलीं**—आज मुझे इस मूढ़ की, जो कामातुर होने के कारण अचेतन एवं कर्त्तव्याकर्त्तव्य-ज्ञान से शून्य हो गया है, कितने प्रकार की बातें सुननी पड़ेंगी ॥११०॥ मधु से मत्त, मद्य से मत्त, काम से मत्त, चेतना-शून्य और कामवासना द्वारा अपहृत चित्तवाला कामी पुरुष मृत्यु की गणना (परवाह) नहीं करता है ॥१११॥

---

१ क. °दरम् ।

त्यज मामध हे मत्त मातृतुल्यां रजस्वलाम् । ऋतोः प्रथमो दिवसो ह्यद्य हे नृप मे ध्रुवम् ॥११२॥
प्रथमे दिवसे स्त्री च चाण्डाली सा रजस्वला । द्वितीये दिवसे म्लेच्छा तृतीये रजकी तथा ॥११३॥
शुद्धा भर्तुश्चतुर्थेऽह्नि न शुद्धा दैवपै[1] ययोः । असच्छूद्रासमा सा च तद्दिने च परं प्रति ॥११४॥
प्रथमे दिवसे कान्तां यो हि गच्छेद्रजस्वलाम् । ब्रह्महत्याचतुर्थांशं लभते नात्र संशयः ॥११५॥
स पुमान्न हि कर्मार्हो दैवे पित्र्ये च कर्मणि । अधमः स च सर्वेषां निन्दितश्च यशस्करः ॥११६॥
द्वितीये दिवसे नारीं यो व्रजेच्च रजस्वलाम् । कामतः परिपूर्णाञ्च[2] गोहत्यां लभते ध्रुवम् ॥११७॥
आजीवनं नाधिकारी पितृविप्रसुरार्चने । अमनुष्योऽयशस्यः स्यादित्याङ्गिरसभाषितम् ॥११८॥
तृतीये दिवसे जायां यो हि गच्छेद्रजस्वलाम् । स मूढो भ्रूणहत्यां च लभते नात्र संशयः ॥११९॥
पूर्ववत्पतितः सोऽपि न चार्हः सर्वकर्मसु । असच्छूद्रा चतुर्थेऽह्नि न गच्छेत्तां विचक्षणः ॥
यदि मां मातरं मूढ प्रहीष्यसि बलेन च ॥१२०॥
ऋतावतीते दिवसे गमनं च करिष्यसि । शच्याश्च वचनं श्रुत्वा प्रहस्य नहुषस्तथा ॥१२१॥
उवाच मधुरं शान्तः शक्रकान्तां च सुव्रताम् । देवपत्नी सदा शुद्धा तन्न्यूनं मानवं प्रति ॥१२२॥
शयने भोजने देवी नाशुद्धा मानवं प्रति । रजस्वलायाः संभोगे कर्मक्षेत्रे च भारते ॥१२३॥

---

(मन-ही-मन इतना कहकर शची ने प्रकट रूप से कहा)—हे मतवाले ! मैं तुम्हारी माता के समान हूँ और रजस्वला भी हूँ । अतः आज मुझे छोड़ दो । हे नृप ! ऋतुमती होने का आज मेरा निश्चित प्रथम दिवस है और प्रथम रजस्वला स्त्री चाण्डाली के समान होती है । दूसरे दिन म्लेच्छा, तीसरे दिन रजकी (धोबिन) और चौथे दिन केवल पति के लिए शुद्ध होती है, न कि देव-पितृ कार्य के लिए । किन्तु उस दिन भी वह दूसरों के लिए असत्शूद्रा के समान रहती है ॥११२-११४॥ इसलिए प्रथम दिन रजस्वला स्त्री के साथ जो पुरुष समागम करता है, उसे ब्रह्महत्या का चतुर्थांश पाप प्राप्त होता है, इसमें सन्देह नहीं ॥११५॥ वह पुरुष देव-पितर कार्यों के लिए अयोग्य भी हो जाता है एवं सबसे अधम निन्दा का पात्र तथा अयश का भागी होता है । दूसरे दिन रजस्वला स्त्री के साथ कामवश सम्भोग करने पर पुरुष पूरी गोहत्या का निश्चित भागी होता है और पितर, ब्राह्मण एवं देवों के पूजन का आजीवन अधिकारी नहीं होता है । वह अमानव और अयश का भागी होता है, ऐसा बृहस्पति ने कहा है ॥११६-११८॥ तीसरे दिन रजस्वला स्त्री से सम्भोग करनेवाला मूढ़ भ्रूणहत्या का भागी होता है, इसमें संशय नहीं ॥११९॥ वह पूर्व की भाँति पतित होने के नाते सभी कर्मों के अयोग्य होता है और चौथे दिन, अस्पृश्य (अछूत) शूद्रा के समान होने से उसके साथ बुद्धिमान् पुरुष समागम नहीं करे । हे मूढ़ ! यदि तुम मुझ माता के साथ बलपूर्वक सम्भोग करना चाहते हो तो ऋतुधर्म समाप्त होने पर समागम करना । शची की बात सुनकर नहुष ने हँसकर शांत भाव से उस पतिव्रता से मधुर वाणी में कहा—देवता की स्त्री सदा शुद्ध होती है । किन्तु मनुष्य के लिए कुछ कम शुद्ध होती है ॥१२०-१२२॥ और शयन-भोजन में मनुष्य के लिए भी

---

१ क. °त्रयोः । २ ख. पूर्णश्च ।

त्वयोक्तं च भवेत्पापं नाव दु (स्व) र्गे च सुन्दरि । कर्मक्षेत्रेऽपि तत्कर्म यद्वेदोक्तं शुभाशुभम् ॥१२४॥
न भवेद्वैष्णवानां च ज्वलतां ब्रह्मतेजसा । यथा प्रदीप्ते वह्नौ च शुष्काणि च तृणानि च ॥१२५॥
भवन्ति भस्मीभूतानि तथा पापानि वैष्णवे । वह्निसूर्यब्राह्मणेभ्यस्तेजीयान्वैष्णवः सदा ॥१२६॥
रक्षितो विष्णुचक्रेण स्वतन्त्रो मत्तकुंजरः । न विचारो न भोगश्च वैष्णवानां स्वकर्मणाम् ॥१२७॥
लिखितं साम्नि कौथुम्यां कुरु प्रश्नं बृहस्पतिम् । अस्मांश्च सर्वे जानन्ति चन्द्रवंश्यांश्च वैष्णवान् ॥१२८॥
देवमन्यं न सेवन्ते चन्द्रवंश्या हरिं विना । सद्वंशप्रभवो यो हि ब्राह्मणः क्षत्रियोऽथवा ॥१२९॥
विष्णुमन्त्रं न गृह्णाति वञ्चितो देवमायया[1] । को वा मन्त्रश्च के देवा न हि शास्ता यमो मम ॥१३०॥
सर्वाञ्छास्तुं समर्थोऽहं ब्रह्मविष्णुशिवान्विना । शय्यां कुरु गृहं गत्वा शीघ्रं यास्यामि ते गृहम् ॥१३१॥
ऋतुपापं मयि भवेत्तव किं गच्छ शोभने । इत्युक्त्वा नहुषो राजा प्रफुल्लवदनेक्षणः ॥१३२॥
रत्नयानं समारुह्य ययौ नन्दनकाननम् । न ययौ सा शची गेहं प्रजगाम गुरोर्गृहम् ॥१३३॥

---

देव-स्त्री अशुद्ध नहीं होती है। हे सुन्दरि ! रजस्वला के साथ सम्भोग करने में तुम्हारा बताया हुआ पाप, कर्मक्षेत्र भारत में ही होता है, यहाँ स्वर्ग में नहीं। कर्मक्षेत्र भारत में बताये गये वेदोक्त शुभाशुभ कर्मों के फल, ब्रह्म-तेज से प्रज्वलित होने के नाते वैष्णवों को नहीं प्राप्त होते हैं। क्योंकि प्रदीप्त अग्नि में सूखे तृण के भस्म हो जाने की भाँति सभी प्रकार के पाप वैष्णव में भस्म हो जाते हैं और अग्नि, सूर्य एवं ब्राह्मणों से भी वैष्णव सदा अधिक तेजस्वी होते हैं ॥१२३-१२६॥ भगवान् विष्णु के सुदर्शन चक्र से सुरक्षित होने के कारण वे मत्त गजेन्द्र की भाँति स्वतन्त्र होते हैं, इसीलिए वैष्णवों को अपने कर्मों का न उपभोग करना पड़ता है और न किसी प्रकार का विचार ही ॥१२७॥ ये सभी बातें सामवेद की कौथुमी शाखा में उल्लिखित हैं। तुम बृहस्पति जी से पूछ लेना। हम चन्द्रवंशी वैष्णवों को सभी लोग जानते हैं ॥१२८॥ चन्द्रवंशी क्षत्रिय एक भगवान् को छोड़कर किसी अन्य देवता की उपासना नहीं करते हैं। उत्तम कुल में उत्पन्न होने पर भी ब्राह्मण-क्षत्रिय लोग विष्णुमाया से वञ्चित होने के कारण विष्णुमन्त्र का ग्रहण नहीं करते; किन्तु मेरे लिए न कोई मंत्र है, न कोई देव हैं और न यमराज मेरे ऊपर शासन करनेवाला है ॥१२९-१३०॥ अपितु मैं ही ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव को छोड़कर अन्य सब पर शासन करने में समर्थ हूँ। इसलिए तुम घर चलकर शय्या को सुसज्जित करो, मैं तुम्हारे यहाँ शीघ्र ही आऊँगा ॥१३१॥ हे शोभने ! ऋतुसम्भोगजनित पाप तो मुझे होगा, तुम्हारा क्या बिगड़ता है ? अतः घर जाओ। इतना कहकर प्रफुल्लित मुख नेत्रवाला राजा नहुष रत्न की सवारी पर बैठकर नन्दनवन चला गया और वह शची अपने घर न जाकर गुरु बृहस्पति के घर चली गयीं ॥१३२-१३३॥

---

१ क. विष्णुमा॰ ।

गत्वा कुशासनस्थं च ददर्श च बृहस्पतिम् । तारासेवितपादाब्जं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ॥१३४॥
जपमालाकरं शश्वज्जपन्तं कृष्णमीप्सितम् । परमं परमानन्दं परमात्मानमीश्वरम् ॥१३५॥
निर्गुणं च निरीहं च स्वतन्त्रं प्रकृतेः परम् । स्वेच्छामयं परंब्रह्म भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥१३६॥
तमानन्दाश्रुनेत्रं च ननाम शिरसा भुवि । रुदती साश्रुनेत्रा सा मज्जन्ती भक्तिसागरे ॥१३७॥
शोकार्णवे निमज्जन्ती हृदयेन विदूयता । तुष्टाव भीता स्वगुरुं ब्रह्मिष्ठं च कृपानिधिम् ॥१३८॥

## शच्युवाच

रक्ष रक्ष महाभाग मां भीतां शरणागताम् । [1]त्वमीश्वरः स्वदासीं च निमग्नां शोकसागरे ॥१३९॥
अनीश्वरश्चेश्वरो वा बलवान्वा सुदुर्बलः । स्वशिष्यभार्यां पुत्रांश्च शासितुं च सदा क्षमः ॥१४०॥
दूरीभूतः स्वराज्याच्च स्वशिष्यश्च कृतस्त्वया । शान्तिर्बभूव दोषस्य चाधुनाऽनुग्रहं कुरु ॥१४१॥
अनाथां सर्वशून्यां मां शून्यांताममरावतीम् । संपच्छून्यमाश्रमं मे पश्य रक्ष कृपानिधे ॥१४२॥
दस्युग्रस्तां च मां रक्ष देशं किंकरमानय । दत्त्वा चरणरेणूंस्तं शुभाशीर्वचनं कुरु ॥१४३॥
सर्वेषां च गुरूणां च जन्मदाता परो गुरुः । पितुः शतगुणा माता पूज्या वन्द्या गरीयसी ॥१४४॥

---

वहाँ पहुँचकर उन्होंने कुशासन पर बैठे गुरु बृहस्पति को देखा, जिनके चरण-कमल की सेवा तारा कर रही थी, जो ब्रह्मतेज से देदीप्यमान थे तथा तारा जपमाला हाथ में लिये परम, परमानन्द, परमात्मा, ईश्वर, निर्गुण, निरीह, स्वतंत्र, प्रकृति से परे, स्वेच्छामय, परब्रह्म तथा भक्तों पर अनुग्रहार्थ शरीर धारण करनेवाले (अपने) इष्टदेव भगवान् श्रीकृष्ण को जप रहे थे ॥१३४-१३६॥ अनन्तर आनन्द के आँसुओं से पूरित नयनवाले उन गुरु को सजल नयन, रोती हुई एवं भक्तिसागर में डूबती हुई शची ने भूतल पर सिर से नमस्कार किया। पश्चात् शोकसागर में डूबती हुई एवं हार्दिक वेदना का अनुभव करती हुई इन्द्राणी ने भयभीत होकर अपने ब्रह्मनिष्ठ तथा कृपानिधान गुरु की स्तुति करना प्रारम्भ किया ॥१३७-१३८॥

**शची बोलीं**--हे महाभाग ! भयभीत, शरणागत तथा शोकसागर में निमग्न अपनी मुझ दासी को बचाइये, बचाइये । आप सर्वसमर्थ हैं ॥१३९॥ आप ईश्वर या अनीश्वर, बलवान् या अति दुर्बल चाहे जैसे हो, किन्तु अपने शिष्य की पत्नी और पुत्रों को अनुशासित करने के लिए समर्थ हैं ॥१४०॥ अपने शिष्य (इन्द्र) को अपने राज्य से जो दूर कर दिया है, इससे दोष (अपराध) की शान्ति हो गयी है, अतः अब अनुग्रह कीजिये ॥१४१॥ हे कृपानिधे ! अनाथ एवं सबसे शून्य मुझे तथा शून्य अमरावती पुरी और सम्पत्ति-शून्य मेरे आश्रम को आप देखें तथा रक्षा करें ॥१४२॥ मैं इस समय दस्युजनों (लुटेरों) से पीड़ित हो रही हूँ मेरी रक्षा करें और अपने किंकर (सेवक इन्द्र) को ले आवें तथा उन्हें अपनी चरण-धूलि प्रदान कर पुनः शुभ-आशिष दें ॥१४३॥ सभी गुरुजनों में जन्मदाता (पिता) महान् गुरु हैं और पिता से सौगुने अधिक माता पूज्या,

---

१ क. त्वदीश्वरस्य दा॰ ।

विद्यादाता मन्त्रदाता ज्ञानदो हरिभक्तिदः। पूज्यो वन्द्यश्च सेव्यश्च मातुः शतगुणो गुरुः ॥१४५॥
मन्त्राद्युद्गिरणेनैव गुरुरित्युच्यते बुधैः। अन्यो वन्द्यो गुरुरयमन्यश्चारोपितो गुरुः ॥१४६॥
अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया। चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥१४७॥
अदीक्षितस्य मूर्खस्य निष्कृतिर्नास्ति निश्चितम्। सर्वकर्मस्वनर्हस्य नरके तत्पशोः स्थितिः ॥१४८॥
जन्मदाताऽन्नदाता च माताऽन्ये गुरवस्तथा। पारं कर्तुं न शक्तास्ते घोरसंसारसागरे ॥१४९॥
विद्यामन्त्रज्ञानदाता निपुणः पारकर्मणि। स शक्तः शिष्यमुद्धर्तुमीश्वरश्चेश्वरात्परः ॥१५०॥
गुरुर्विष्णुर्गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्देवो महेश्वरः। गुरुर्धर्मो गुरुः शेषः सर्वात्मा निर्गुणो गुरुः ॥१५१॥
सर्वतीर्थाश्रयश्चैव सर्वदेवाश्रयो गुरुः। सर्ववेदस्वरूपश्च गुरुरूपी हरिः स्वयम् ॥१५२॥
अभीष्टदेवे रुष्टे च गुरुः शक्तो हि रक्षितुम्। गुरौ रुष्टेऽभीष्टदेवो न हि शक्तश्च रक्षितुम् ॥१५३॥
सर्वे ग्रहाश्च यं रुष्टा यं रुष्टा देवब्राह्मणाः। त्वमेव रुष्टो भवसि गुरुरेव हि देवताः ॥१५४॥
न गुरोश्च प्रियश्चाऽऽत्मा न गुरोश्च प्रियः सुतः। धनं प्रियं च न गुरोर्न च भार्या प्रिया तथा ॥१५५॥
न गुरोश्च प्रियो धर्मो न गुरोश्च प्रियं तपः। न गुरोश्च प्रियं सत्यं न पुण्यं न गुरोः परम् ॥१५६॥

---

वन्दनीया एवं गौरवशालिनी है तथा माता से सौगुने अधिक विद्यादाता, मन्त्रदाता, ज्ञानदाता एवं भगवान् की भक्ति देनेवाले गुरु पूज्य, वन्दनीय और सुसेव्य हैं। बुध लोग मन्त्र आदि को अपने मुख से निकालकर शिष्य के हृदय में प्रविष्ट कराने के कारण ही उसे 'गुरु' कहते हैं। अन्य गुरु भी वन्दनीय हैं और कुछ अन्य गुरु कल्पित होते हैं ॥१४४-१४६॥ अज्ञानरूपी अन्धकार से अन्धे हुए प्राणी की आँखों को जिसने अपनी ज्ञान रूपी अंजन की सलाई से खोल दिया है, उसकी गुरुता को नमस्कार है। जिसने दीक्षा नहीं ग्रहण की है, उस मूर्ख का निश्चित उद्धार नहीं है और वह समस्त कर्मों में अयोग्य है। ऐसे पशु की नरक में ही सदैव स्थिति रहती है ॥१४७-१४८॥

जन्मदाता (पिता) अन्नदाता तथा अन्य प्रकार के गुरु लोग इस घोर संसार से पार कराने में समर्थ नही होते हैं! केवल विद्या, मन्त्र एवं ज्ञानदाता गुरु ही, जो पार करने के कर्म में निपुण होता है, शिष्य का उद्धार करने में समर्थ है। वही ईश्वर एवं ईश्वर से भी बढ़कर है ॥१४९-१५०॥ इसी प्रकार गुरु विष्णु, गुरु ब्रह्मा, गुरु महेश्वर देव, गुरु धर्म, गुरु शेष और गुरु ही सबका आत्मा एवं निर्गुण स्वरूप है। समस्त तीर्थों के आश्रय, समस्त देवताओं के आश्रय एवं समस्त वेदस्वरूप होने के कारण वह स्वयं गुरु रूप में साक्षात् भगवान् है ॥१५१-१५२॥ अभीष्ट देव के रुष्ट होने पर उससे बचाने में गुरु समर्थ होता है और गुरु के रुष्ट होने पर अभीष्ट देव उससे रक्षा करने में असमर्थ होता है। सभी ग्रह, देवता एवं ब्राह्मण जिस पर रुष्ट होते हैं, उस पर आप भी रुष्ट हो जाते हैं, क्योंकि गुरु देवता ही है ॥१५३-१५४॥ गुरु से बढ़कर न तो आत्मा प्रिय है, न पुत्र प्रिय है, न धन प्रिय है और न स्त्री ही प्रिय है ॥१५५॥ गुरु से बढ़कर न धर्म प्रिय है, न तप प्रिय है, न सत्य प्रिय है और न गुरु से बढ़कर कोई पुण्य ही है ॥१५६॥

गुरोः परो न शास्ता च न हि बन्धुर्गुरोः परः। देवो राजा च शास्ता च शिष्याणां च सदा गुरुः ॥१५७॥
यावच्छक्तो दातुमन्नं तावच्छास्ता [1]तदन्नदः। गुरुः शास्ता च शिष्याणां प्रतिजन्मनि जन्मनि ॥१५८॥
मन्त्रो विद्या गुरुर्देवः पूर्वलब्धो यथा पतिः। प्रतिजन्मनि बन्धेन सर्वेषामुपरि स्थितः ॥१५९॥
पिता गुरुश्च वन्द्यश्च यत्र जन्मनि जन्मदः। गुरवोऽन्ये तथा माता गुरुश्च प्रतिजन्मनि ॥१६०॥
विप्राणां त्वं वरिष्ठश्च गरिष्ठश्च तपस्विनाम्। ब्रह्मिष्ठो ब्रह्मविद्ब्रह्मन् धर्मिष्ठः सर्वधर्मिणाम् ॥१६१॥
तुष्टो भव मुनिश्रेष्ठ मां च शक्रं च सांप्रतम्। त्वयि तुष्टे सदा तुष्टा भवन्ति ग्रहदेवताः ॥१६२॥
इत्युक्त्वा सा शची ब्रह्मन्पुनरुच्चै रुरोद ह। दृष्ट्वा तद्रोदनं तारा रुरोदोच्चैर्मुहुर्मुहुः ॥१६३॥
पपात चरणे तारा रुरोद च पुनः पुनः। अपराधं क्षमेत्युक्त्वा गुरुस्तुष्टोऽप्युवाच ताम् ॥१६४॥

## गुरुरुवाच

उत्तिष्ठ तारे शच्याश्च सर्वं भद्रं भविष्यति। सद्यः प्राप्स्यति भर्तारं महेन्द्रं च मदाशिषा ॥१६५॥

---

गुरु से बढ़कर कोई शासक नहीं और गुरु से बढ़कर कोई बन्धु (हितैषी) भी नहीं है। शिष्यों के लिए गुरु सदा देवता, राजा और शासक है॥१५७॥ अन्नदाता जब तक अन्न देने में समर्थ है, तभी तक वह शासक रहता है और गुरु शिष्यों के जन्म-जन्मान्तर का शासक होता है॥१५८॥ पति की भाँति मन्त्र, विद्या, गुरु और देवता भी पूर्व जन्म के ही प्राप्त होते हैं और कर्मबन्धन से आबद्ध होने के कारण वे प्रत्येक जन्म में सर्वोपरि होते हैं॥१५९॥ पिता जिस जन्म में जन्म देता है उसी जन्म में वह गुरु तथा वन्द्य होता है। इसी प्रकार अन्य गुरुओं और माता को भी समझना चाहिए, किन्तु गुरु प्रत्येक जन्म में वन्द्य होता है॥१६०॥ हे ब्रह्मन्! आप ब्राह्मणों में श्रेष्ठ, तपस्वियों में गौरवशाली, ब्रह्मनिष्ठ, ब्रह्मवेत्ता और समस्त धर्मिष्ठजनों में परम धर्मात्मा हैं॥१६१॥ अतः हे मुनिश्रेष्ठ! सम्प्रति मुझ पर और इन्द्र पर प्रसन्न होइये क्योंकि आपके प्रसन्न होने पर सभी ग्रह देवता प्रसन्न होते हैं॥१६२॥ हे ब्रह्मन्! इतना कहकर शची पुनः मुक्तकण्ठ से रोदन करने लगीं और उनका रोदन देखकर तारा भी ऊँचे स्वर से बार-बार रोदन करने लगीं॥१६३॥ अनन्तर तारा ने गुरु के चरणों पर गिरकर बार-बार रोदन किया और कहा—'आप अपराध क्षमा कर दें।' पश्चात् गुरु ने प्रसन्न होकर उनसे कहा॥१६४॥

**गुरु बोले**—हे तारे! उठो, शची का सब कल्याण ही होगा। मेरे आशीर्वाद से वह अपने पति महेन्द्र

---

१ ख. तमन्न°।

इत्युक्त्वा स गुरुस्तत्र विरराम च नारद। पपात चरणे तारा पुनरेव रुरोद च ॥१६६॥
गृहीत्वा च शचीं तारा संस्थाप्य च स्ववक्षसि। बोधयामास विविधमाध्यात्मिकमनुत्तमम् ॥१६७॥
शचीकृतं गुरुस्तोत्रं पूजाकाले च यः पठेत्। गुरुश्चाभीष्टदेवश्च संतुष्टः प्रतिजन्मनि ॥१६८॥
ग्रहदेवद्विजास्तं च परितुष्टाश्च संततम्। राजानो बान्धवाश्चैव संतुष्टाः सर्वतः सदा ॥१६९॥
गुरुभक्ति विष्णुभक्ति वाञ्छितं लभते ध्रुवम्। सदा हर्षो भवेत्तस्य न च शोकः कदाचन ॥१७०॥
पुत्रार्थी लभते पुत्रं भार्यार्थी लभते प्रियाम्। सुस्वरूपां गुणवतीं सतीं पुत्रवतीं ध्रुवम् ॥१७१॥
रोगार्तो मुच्यते रोगाद्बद्धो मुच्येत बन्धनात्। अस्पष्टकीर्तिः सुयशा [1]मूर्खो भवति पण्डितः ॥१७२॥
कदाचिद्बन्धुविच्छेदो न भवेत्तस्य निश्चितम्। नित्यं तद्वर्धते धर्मो विपुलं निर्मलं यशः ॥१७३॥
लभते परमैश्वर्यं पुत्रपौत्रधनान्वितम्। इह सर्वसुखं भुक्त्वा प्राप्यते श्रीहरेः पदम् ॥१७४॥
न भवेत्तत्पुनर्जन्म हरिदास्यं लभेद्ध्रुवम्। विष्णुभक्तिरसाब्धौ च निमग्नश्च भवेद्ध्रुवम् ॥१७५॥
शश्वत्पिबति शान्तिश्च विष्णुभक्तिरसामृतम्। जन्ममृत्युजराव्याधिशोकसंतापनाशनम् ॥१७६॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० महेन्द्रदर्पभङ्गप्रकरणे
शचीशोकापनोदने शचीकृतगुरुस्तोत्रकथनं नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥५९॥

---

को शीघ्र प्राप्त करेंगी ॥१६५॥ हे नारद ! इतना कहकर गुरु चुप हो गये और तारा पुनः उनके चरण पर गिरकर रोदन करने लगीं। अनन्तर शची को अपने हृदय से लगाकर तारा ने विविध भाँति से उन्हें आध्यात्मिक उपदेशों से प्रबोधित किया ॥१६६-६७॥ शचीकृत गुरु-स्तोत्र का, पूजा के समय जो पाठ करता है, उसके प्रत्येक जन्म में गुरु और अभीष्ट देव प्रसन्न होते हैं ॥१६८॥ ग्रह, देव और ब्राह्मण लोग उस पर निरन्तर सन्तुष्ट रहते हैं एवं राजा और बान्धवगण सदा प्रसन्न रहते हैं। वह निश्चित ही गुरुभक्ति एवं विष्णुभक्ति समेत मनोरथ को प्राप्त करता है। उसको सदा हर्ष ही होता है, शोक कभी नहीं होता ॥१६९-१७०॥ पुत्रार्थी को पुत्र की प्राप्ति होती है, भार्या की कामनावाले को सुन्दरी, गुणसम्पन्ना, सती और पुत्रवती पत्नी की प्राप्ति होती है। रोगपीड़ित रोग से मुक्त हो जाता है, बद्ध प्राणी बन्धन-मुक्त होता है, अल्पकीर्तिवाले को महान् यश प्राप्त होता है और मूर्ख पण्डित हो जाता है ॥१७१-१७२॥ उसे बन्धु-वियोग कभी नहीं प्राप्त होता है, यह निश्चित है। उसके धर्म की नित्य वृद्धि होती है और विपुल निर्मल यश मिलता है। पुत्र-पौत्र एवं धन समेत परम ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है, इस लोक में समस्त सुखों को भोगकर अन्त में वह भगवान् के लोक को प्राप्त करता है ॥१७३-१७४॥ वहाँ हरि का दास्य-पद प्राप्त करने के कारण उसका पुनर्जन्म निश्चित नहीं होता है और भगवान् विष्णु के भक्ति-रस के सागर में निरन्तर निमग्न रहता है एवं शान्तभाव से जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, शोक और संताप के नाशक विष्णु के भक्तिरस रूपी अमृत का निरन्तर पान करता है ॥१७५-१७६॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण में श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्ध में नारायण-नारद-संवाद-विषयक महेन्द्र-दर्पभङ्ग-प्रकरण में शचीशोकापनोदनपूर्वक शचीकृत-गुरु-स्तोत्रकथन नामक उनसठवाँ अध्याय समाप्त ॥५९॥

---

१ क. मूढो भ॰।

# अथ षष्टितमोऽध्यायः

### नारायण उवाच

शचीस्तोत्रं समाकर्ण्य परितुष्टो बृहस्पतिः । उवाच मधुरं शान्तः कान्तामिन्द्रस्य नारद ॥१॥

### बृहस्पतिरुवाच

त्यज वत्से भयं सर्वं भयं किं ते मयि स्थिते । यथा कचस्य पत्नी मे तथा त्वमपि शोभने ॥२॥
यथा पुत्रस्तथा शिष्यो न भेदः पुत्रशिष्ययोः । तर्पणे [1]पितृदाने च पालने परितोषणे ॥३॥
यथाऽग्निदाता पुत्रश्च तथा शिष्यश्च निश्चितम् । इतीदं कण्वशाखायामुवाच कमलोद्भवः ॥४॥
पिता माता गुरुर्भार्या शिशुश्चानाथबान्धवाः । एते पुंसां [2]नित्यपोष्या इत्याह कमलोद्भवः ॥५॥
यश्चैतांश्च न पुष्णाति भस्मान्तं तस्य सूतकम् । दैवे पित्र्ये न कर्मार्हः सोऽपीत्याह महेश्वरः ॥६॥
कुरुते नरबुद्धिं च मातरं पितरं गुरुम् । अयशस्तस्य सर्वत्र विघ्न एव पदे पदे ॥७॥
संपन्मत्तो यः करोति स्वगुरोश्च पराभवम् । अचिरात्सर्वनाशश्च भवेत्तस्य सुनिश्चितम् ॥८॥

---

# अध्याय ६०

## इन्द्र का बन्धन-मोक्ष

**नारायण बोले**—हे नारद ! शची की स्तुति सुनकर बृहस्पति अति प्रसन्न हुए । अनन्तर शान्त भाव से उन्होंने इन्द्रपत्नी (शची) से मधुर वचन में कहा ॥१॥

**बृहस्पति बोले**—हे वत्से ! निर्भय रहो । मेरे रहते तुम्हें किसी प्रकार का भय नहीं है । हे शोभने ! जिस प्रकार मेरी कच की पत्नी (पुत्र-वधू) है, वैसी ही तुम भी हो ॥२॥ (क्योंकि) भोजन, पिण्डदान, पालन और भलीभाँति सन्तुष्ट रखने में जैसे पुत्र होता है, वैसे ही शिष्य भी । अतः शिष्य और पुत्र में कोई भेद नहीं होता है ॥३॥ जिस भाँति पुत्र दाह-संस्कार करता है वैसे ही शिष्य भी कर सकता है, यह निश्चित है और इसे कण्व-शाखा में ब्रह्मा ने कहा है ॥४॥ पिता, माता, गुरु, पत्नी, बच्चे और अनाथ बंधु ये मनुष्यों के द्वारा नित्य पोषण करने योग्य हैं, ऐसा ब्रह्मा ने कहा है ॥५॥ जो इनका पालन-पोषण नहीं करता है उसे जीवित समय से लेकर चिता पर जलते समय तक सूतक लगा रहता है और उसमें देव-पितरों के कर्म करने की अर्हता नहीं रहती है, ऐसा शंकर ने बताया है ॥६॥ जो माता-पिता और गुरु को मनुष्य कोटि में मानता है, उसे चारों ओर अयश और पग-पग पर विघ्न प्राप्त होता है ॥७॥ सम्पत्ति से प्रमत्त होकर जो अपने गुरु का अनादर करता है, उसका शीघ्र ही सर्वनाश हो जाता है, यह निश्चित है ॥८॥ सभा-मध्य मुझे देखकर इन्द्र सिंहासन से उठे नहीं,

---

१ क. 'पिण्डदा' । २ क. 'पुण्या ।

मां च दृष्ट्वा सभामध्ये नोत्तस्थौ पाकशासनः। तत्फलं भुज्यते साक्षात्सद्यः पश्य च सांप्रतम् ॥९॥
अहं करोमि मोक्षं च तव रक्षां सुनिश्चितम्। शासितुं रक्षितुं शक्तः स एव गुरुरुच्यते ॥१०॥
न पश्यति सतीत्वं च हृच्छुद्धायाश्च योषितः। यन्मानसे विकल्पश्च तस्य धर्मश्च नश्यति ॥११॥
भविष्यति प्रभावस्ते दुर्गायाश्च समः सति। लक्ष्मीसमा प्रतिष्ठा च यशस्तद्यशसा समम् ॥१२॥
सौभाग्यं राधिकातुल्यं तत्समं प्रेमभर्तरि। तत्तुल्यं गौरवं मान्यं प्रीतिः प्राधान्यमीश्वरे ॥१३॥
रोहिण्याश्च समापेक्षा पूज्या च भारतीसमा। शुद्धा निरुपमा शश्वत्सावित्रीसदृशी सदा ॥१४॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र आगतो नहुषाच्चरः। उवाच वचनं भीतो वाक्पतेर्गोचरे ततः ॥१५॥

## दूत उवाच

उत्तिष्ठ देवि शीघ्रं त्वं गच्छस्व नहुषं प्रति। क्रीडां कर्तुं च रहसि रम्ये नन्दनकानने ॥१६॥
दूतस्य वचनं श्रुत्वा तमुवाच बृहस्पतिः। कम्पितावयवः कोपाद्रक्तपङ्कजलोचनः ॥१७॥

## गुरुरुवाच

नहुषं वद गत्वा त्वं शचीं चेद्भोक्तुमिच्छसि। अपूर्वं यानमारुह्य निशायामागमिष्यसि ॥१८॥
सप्तर्षीणां च स्कन्धे च दत्त्वा स्वशिबिकां शुभाम्। तामारुह्य सुवेषश्च गमनं कर्तुमर्हसि ॥१९॥

---

तुम देखो, सम्प्रति उसी का साक्षात् फल वे भोग रहे हैं ॥९॥ मैं तुम्हारी रक्षा और इन्द्र की मुक्ति अवश्य करूँगा, क्योंकि जो शासन और रक्षा ये दोनों कार्य करने में समर्थ होता है वही 'गुरु' कहा जाता है ॥१०॥ जो पुरुष शुद्ध हृदयवाली स्त्री के सतीत्व पर ध्यान न देकर केवल अपना स्वार्थ ही चाहता है और उसके मन में इसीलिए विविध कल्पनाएँ होती रहती हैं, उसका धर्म नष्ट हो जाता है ॥११॥ हे सति (पतिव्रते)! तुम्हारा प्रभाव दुर्गा के समान होगा। लक्ष्मी के समान प्रतिष्ठा एवं यश की प्राप्ति होगी ॥१२॥ राधिका के तुल्य सौभाग्य और उन्हीं के समान पतिप्रेम, गौरव, मान्यता, प्रीति एवं प्रधानता भी ईश्वर (इन्द्र) में होगी ॥१३॥ तुम्हारी अपेक्षा (चाह) रोहिणी के समान होगी। सरस्वती के समान तुम पूज्य होगी तथा सावित्री के समान निरन्तर अनुपम शुद्ध रहोगी ॥१४॥ उसी बीच नहुष के यहाँ से वहाँ एक दूत आया और भयभीत होकर बृहस्पति के सामने कहने लगा ॥१५॥

**दूत बोला**—हे देवि ! उठो। नन्दनवन के एकान्त रमणीक स्थान में क्रीड़ा करने के लिए नहुष के पास शीघ्र चलो ॥१६॥ दूत की ऐसी बातें सुनकर बृहस्पति ने क्रोध से कम्पित शरीर तथा रक्त नेत्र होकर कहा ॥१७॥

**गुरु बोले**—तुम जाकर नहुष से कहो कि—यदि तुम शची के साथ सम्भोग करना चाहते हो, तो एक अपूर्व यान पर बैठकर रात्रि में आओ, अर्थात् अपनी पालकी सप्तर्षियों के कन्धों पर देकर उस पर बैठकर सुन्दर

वाक्पतेर्वचनं श्रुत्वा गत्वोवाच नृपं तदा। दूतस्य वचनं श्रुत्वा प्रहस्योवाच किंकरम् ॥२०॥
गच्छ गच्छ त्वरन् गच्छ सप्तर्षीञ्छीघ्रमानय। उपायं च करिष्यामि तैः सार्धं सांप्रतं चर ॥२१॥
नृपस्य वचनं श्रुत्वा गत्वा दूतस्तदन्तिकम्। उवाच सर्वांस्तत्रैव यथोक्तं नहुषेण च ॥२२॥
दूतस्य वचनं श्रुत्वा ययुः सप्तर्षयो मुदा। राजा दृष्ट्वा च तान्सर्वान्ननामोवाच सादरम् ॥२३॥

## नहुष उवाच

यूयं च ब्रह्मणः पुत्रा ज्वलन्तो ब्रह्मतेजसा। ब्रह्मणः सदृशः सर्वे सततं भक्तवत्सलाः ॥२४॥
नारायणपराः शश्वच्छुद्धसत्त्वस्वरूपिणः। मोहमात्सर्यहीनाश्च दर्पाहंकारवर्जिताः ॥२५॥
नारायणसमाः सर्वे तेजसा यशसा सदा। गुणेन कृपया प्रेम्णा वरदानेन निश्चितम् ॥२६॥
इत्युक्त्वा प्रणतो राजा तुष्टाव च रुरोद च। दृष्ट्वा ते कातरं भूपमूचुः परहितैषिणः ॥२७॥

## ऋषय ऊचुः

पुरं वृणीष्व हे वत्स यत्ते मनसि वाञ्छितम्। सर्वं दातुं वयं शक्ता नासाध्यं नश्च किंचन ॥२८॥
इन्द्रत्वं वा मनुत्वं वा चिरायुर्वा ततः परम्। सप्तद्वीपेश्वरत्वं चाप्यतीव सुचिरं सुखम् ॥२९॥
अथापि सर्वसिद्धित्वं सर्वैश्वर्यं सुदुर्लभम्। मुक्तिं वा हरिभक्तिं वा तपसा या सुदुर्लभा ॥३०॥
किमीप्सितं ते हे वत्स ब्रूहि नः सांप्रतं मुदा। सर्वं तुभ्यं प्रदायैव यास्यामस्तपसे मुदा ॥३१॥

---

वेश में गमन करो ॥१८-१९॥ बृहस्पति की बात सुनकर दूत ने लौटकर राजा से कह दी। दूत की बात सुनकर उसने हँसकर सेवक से कहा ॥२०॥ हे दूत! तुम शीघ्र जाओ, सप्तर्षियों को शीघ्र ले आओ। उनके साथ उचित उपाय करूँगा ॥२१॥ राजा की बात सुनकर दूत उन लोगों के समीप गया और उसने नहुष की कही हुई सभी बातें उनसे बता दीं ॥२२॥ दूत की बात सुनकर सप्तर्षिगण बड़ी प्रसन्नता से वहाँ गये और राजा ने उन्हें देखकर सादर नमस्कार किया ॥२३॥

**नहुष बोला**—आप लोग ब्रह्मपुत्र, ब्रह्म-तेज से प्रज्वलित और ब्रह्मा के समान ही निरन्तर भक्तवत्सल हैं ॥२४॥ नारायण-परायण होने के कारण शुद्धसत्त्वस्वरूप, मोह और मत्सर से हीन, दर्प, अहंकार से रहित और यश तथा तेज में सदा नारायण के तुल्य हैं। गुण, कृपा, प्रेम और वरदान देने में भी निश्चित रूप से उन्हीं के समान हैं ॥२५-२६॥ इतना कहकर राजा ने विनम्र होकर उनकी स्तुति की और रोदन किया। राजा को दुःखी देखकर वे दूसरे के हितैषी ऋषिगण बोले ॥२७॥

**ऋषियों ने कहा**—हे वत्स! वर माँगो, जो तुम्हारे मन में कामना हो, वह सब देने में हम लोग समर्थ हैं। हमारे लिए कुछ भी असाध्य नहीं है ॥२८॥ इन्द्रत्व, मनुत्व, चिरायु, सातों द्वीपों का अधिपतित्व, चिरकालीन अत्यन्त सुख, समस्त सिद्धि तथा अति दुर्लभ समस्त ऐश्वर्य अथवा मुक्ति या हरि भक्ति अथवा तपस्या से जो अत्यन्त दुर्लभ वस्तु हो (वही माँगो) ॥२९-३०॥ हे वत्स! इनमें से तुम्हें क्या प्रिय है, सम्प्रति

युगलक्षसमं यच्च क्षणं कृष्णार्चनं विना। तद्दिनं दुर्दिनं यत्तद्ध्यानसेवनवर्जितम् ॥३२॥
विना तत्सेवनं यो हि विषयान्यं च वाञ्छति। विषमत्ति प्रणाशाय विहायामृतमीप्सितम् ॥३३॥
ब्रह्मा शिवश्च धर्मश्च विष्णुश्चापि महान्विराट्। गणेशश्च दिनेशश्च शेषश्च सनकादयः ॥३४॥
एते यच्चरणाम्भोजं ध्यायन्तेऽहर्निशं मुदा। जन्ममृत्युजराव्याधिहरं तन्निरता वयम् ॥३५॥
तेषां च वचनं श्रुत्वा तानुवाच नृपेश्वरः। स लज्जितो नम्रवक्त्र मायामोहितमानसः ॥३६॥

## नहुष उवाच

सर्वं दातुं समर्थाश्च यूयं च भक्तवत्सलाः। अधुना देहि (दत्त) मे तूर्णं शचीदानमभीप्सितम् ॥३७॥
सप्तर्षिवाहनं कान्तं शचीच्छति महासती। एतदेव मम वरं निष्पन्नं कुरुताचिरम् ॥३८॥
नहुषस्य वचः श्रुत्वा मुनयश्च परस्परम्। अत्युच्चैर्जहसुः सर्वे कौतुकेन च नारद ॥३९॥
राजानं मोहितं मत्वा वेष्टितं विष्णुमायया। चक्रुः प्रतिज्ञां तं वोढुं कृपया दीनवत्सलाः ॥४०॥
चक्रुः स्कन्धे तच्छिबिकां मुक्तामाणिक्यभूषिताम्। राजा ययौ सुवेषश्च रत्नभूषणभूषितः ॥४१॥
दृष्ट्वा चातिविलम्बं च भर्त्सयामास तान्नृपः। क्रुधा शशाप दुर्वासाश्चाग्रगामी च वर्त्मनि ॥४२॥
महानजगरो भूत्वा पत वै मूढमानस। दर्शनाद्धर्मपुत्रस्य तव मोक्षो भविष्यति ॥४३॥

---

प्रसन्नतापूर्वक हम लोगों से कहो, हम वह सब-कुछ तुम्हें प्रसन्नतापूर्वक देकर ही तप के लिए जायेंगे ॥३१॥ भगवान् श्रीकृष्ण के अर्चन के बिना जो क्षण व्यतीत होता है, वह लाखों युगों के समान होता है। जो दिन उनके ध्यान-सेवन से रहित होता है, वही दिन दुर्दिन है ॥३२॥ उनकी सेवा के बिना जो अन्य विषय की कामना करता है, वह मानो अभीष्ट अमृत का त्यागकर सर्वनाश के लिए विष-भक्षण करता है ॥३३॥ ब्रह्मा, शिव, धर्म, विष्णु, महाविराट्, गणेश, सूर्य, शेष और सनकादि ऋषिगण ये सब दिन-रात जिनके चरण-कमल का प्रसन्नतापूर्वक ध्यान किया करते हैं और जो चरण जन्म, मृत्यु, जरा एवं व्याधि का नाशक है, उसके ध्यान में हम निरत रहते हैं। उन लोगों की ऐसी बातें सुनकर लज्जित, नीचे मुख किये एवं माया से मोहित मतवाले राजा (नहुष) ने उनसे कहा ॥३४-३६॥

**नहुष बोले**—आप लोग सभी कुछ देने में समर्थ एवं भक्त-वत्सल हैं। अतः मुझे इस समय अभीष्ट शचीदान करने की शीघ्र कृपा करें। वह महासती शची चाहती है कि—मेरा प्रियतम सप्तर्षि रूप वाहन पर स्थित होकर आवें। मैं इतना ही वरदान चाहता हूँ, इसे शीघ्र सम्पन्न करने की कृपा करें ॥३७-३८॥ हे नारद ! नहुष की ऐसी बात सुनकर वे मुनिगण आपस में कौतुकवश अति ऊँचे स्वर से हँस पड़े। राजा को विष्णु की माया से आच्छन्न एवं मोहित मानकर दीनवत्सल ऋषियों ने कृपापूर्वक राजा की पालकी ढोने के लिए प्रतिज्ञा की ॥३९-४०॥ अनन्तर मुक्ता-माणिक्य-भूषित राजा की उस पालकी को उन लोगों ने कंधे पर रखा, जिसमें रत्नभूषणभूषित एवं उत्तम वेश बनाये राजा नहुष बैठा हुआ था। (मुनियों की चाल में) अति विलम्ब देखकर राजा ने उन लोगों की भर्त्सना की। (जिससे) मार्ग में आगे चलनेवाले दुर्वासा ने क्रोध से शाप दे दिया 'हे मूढ़चित्त ! तू महान् अजगर होकर गिरजा और धर्मपुत्र (युधिष्ठिर) के दर्शन से तेरी मुक्ति होगी।'

रत्नयानेन वैकुण्ठं गत्वा वैकुण्ठसेवनम्। करिष्यसि महाराज न कर्म निष्फलं भवेत् ॥४४॥
इत्युक्त्वा प्रययुः सर्वे प्रहस्य मुनिसत्तमाः। राजा पपात तच्छापात्सर्पो भूत्वा महामुने ॥४५॥
शची जगाम तच्छ्रुत्वा गुरुं नत्वाऽमरावतीम्। ययौ बृहस्पतिः शीघ्रं यत्रेन्द्रः पद्मतन्तुषु ॥४६॥
गत्वा सरोवराभ्याशमाजुहाव सुरेश्वरम्। अतिप्रसन्नवदनः कृपया च कृपानिधिः ॥४७॥

बृहस्पतिरुवाच

अयि वत्स त्वमागच्छ भयं किं ते मयि स्थिते। त्यज भीतिमिहागच्छ गुरुस्तेहं बृहस्पतिः ॥४८॥
स्वगुरोश्च स्वरं श्रुत्वा महेन्द्रो हृष्टमानसः। रूपं विहाय सूक्ष्मं च स्वरूपेण समाययौ ॥४९॥
पपात दण्डवन्मूर्ध्ना भक्त्या चरणयोर्गुरोः। तं रुदन्तं महाभीतं मुदोरसि चकार सः ॥५०॥
कारयित्वा सोमयागं प्रायश्चित्तार्थमेव च। रत्नसिंहासने रम्ये वासयामास तं गुरुः ॥५१॥
प्रददौ परमैश्वर्यं पूर्वस्माच्च चतुर्गुणम्। आगत्य सर्वदेवाश्च चक्रुः सेवां मुदाऽन्विताः ॥५२॥
शची संप्राप भर्तारं महेन्द्रं त्रिदशेश्वरम्। मन्दिरे पुष्पतल्पे च मुमुदे सा मुदाऽन्विता ॥५३॥
इत्येवं कथितं वत्स महेन्द्रदर्पभञ्जनम्। शचीसतीत्वरक्षा च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥५४॥

---

हे महाराज ! अनन्तर तुम रत्नयान द्वारा वैकुण्ठ जाकर वहाँ का सुखोपभोग करोगे, क्योंकि कर्म कभी निष्फल नहीं होता है ॥४१-४४॥ हे महामुने ! इतना कहकर वे श्रेष्ठ मुनिगण हँसते हुए वहाँ से चले गये और उनके शाप से राजा सर्प होकर गिर पड़ा। शची ने यह सुनकर गुरु को नमस्कार करके अमरावती पुरी चली गयी और बृहस्पति भी शीघ्र वहाँ पहुँच गये जहाँ इन्द्र कमल-नाल के भीतर बैठे हुए थे ॥४५-४६॥ अतिप्रसन्नमुख एवं कृपानिधान बृहस्पति सरोवर के समीप जाकर देवराज (इन्द्र) को कृपापूर्वक बुलाने लगे ॥४७॥

**बृहस्पति बोले**—हे वत्स ! तुम यहाँ मेरे समीप आ जाओ; क्योंकि मेरे रहते तुम्हें क्या भय है ? निर्भय होकर मेरे समीप आओ, मैं तुम्हारा गुरु बृहस्पति हूँ ॥४८॥ अपने गुरु का स्वर पहचानकर महेन्द्र अत्यन्त हर्षित हुए और सूक्ष्म रूप का त्याग करके अपने स्वरूप में आ गये। पहुँचते ही उन्होंने भक्तिपूर्वक गुरु के चरणों पर पड़कर सिर से दण्डवत् प्रणाम किया और बृहस्पति ने भी महा भयभीत एवं रोदन करते हुए इन्द्र को उठाकर अतिप्रसन्नतापूर्वक हृदय से लगा लिया ॥४९-५०॥ पश्चात् उनके प्रायश्चित्तार्थ सोम-यज्ञ कराकर गुरु ने पुनः रमणीक रत्न-सिंहासन पर बैठाया ॥५१॥ पहले से चौगुना परमैश्वर्य उन्हें प्रदान किया और सभी देवता आकर आनन्द से उनकी सेवा करने लगे ॥५२॥ शची देवों के अधीश्वर स्वामी महेन्द्र को प्राप्तकर भवन में पुष्प की शय्या पर हर्षान्वित होकर आमोद-प्रमोद करने लगी ॥५३॥ हे वत्स ! इस प्रकार मैंने महेन्द्र का दर्प-भंग और शची के सतीत्व की रक्षा का वर्णन कर दिया। अब पुनः क्या सुनना चाहते हो ? ॥५४॥

नारद उवाच

सोमयागविधानं च ब्रूहि मां मुनिसत्तम। कथं तं कारयामास गुरुश्च किं फलं परम् ॥५५॥

नारायण उवाच

ब्रह्महत्याप्रशमनं सोमयागफलं मुने। वर्षं सोमलतापानं यजमानः करोति च ॥५६॥
वर्षमेकं फलं भुङ्क्ते वर्षमेकं जलं मुदा। त्रैवार्षिकं व्रतमिदं सर्वपापप्रणाशनम् ॥५७॥
यस्य त्रैवार्षिकं धान्यं निहितं [1]भूतवृद्धये। अधिकं वाऽपि विद्येत स सोमं पातुमर्हति ॥५८॥
महाराजश्च देवो वा यागं कर्तुमलं मुने। न सर्वसाध्यो यज्ञोऽयं बह्वन्नो बहुदक्षिणः ॥५९॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० शक्रदर्पभङ्गप्रकरणे शक्रमोक्षकथनं नाम षष्टितमोऽध्यायः ॥६०॥

•

---

**नारद बोले**—हे मुनिश्रेष्ठ ! सोमयाग का विधान मुझे बताने की कृपा करें। गुरु ने किस प्रकार यह याग सुसम्पन्न कराया और उसका महान् फल क्या है ॥५५॥

**नारायण बोले**—हे मुने ! ब्रह्महत्या का शमन करना सोमयाग का विशिष्ट फल है। उसके विधान के अनुसार यजमान एक वर्ष तक सोमलता का पान करता है। एक वर्ष फल भोजन करता है और एक वर्ष प्रसन्नता से जल पीकर रहता है। समस्त पापों का विनाशक यह व्रत तीन वर्षों में सम्पन्न किया जाता है। जो प्राणियों की सुखसमृद्धि के निमित्त तीन वर्ष या उससे भी अधिक समय के लिए अन्न का संग्रह करके रखता है, वही सोमपान करने का अधिकारी है ॥५६-५८॥ हे मुने ! महाराज या देवता इस यज्ञ को करने में समर्थ हो सकते हैं, अन्य नहीं; क्योंकि बहुत अन्न और बहुत दक्षिणावाला यह यज्ञ सबके करने योग्य नहीं है ॥५९॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद-नारायण-संवाद के अन्तर्गत शक्रदर्पभङ्गप्रकरण में शक्रमोक्षकथन नामक साठवाँ अध्याय समाप्त ॥६०॥

•

---

१ क. भूतिवृ॰।

# अथैकषष्टितमोऽध्यायः

## नारायण उवाच

इति ते कथितं किंचिदिन्द्रस्य दर्पभञ्जनम् । अपरं श्रूयतां ब्रह्मन्सावधानं निगूढकम् ॥१॥
समुद्रमथनं कृत्वा पीत्वाऽमृतरसं पुरा । निर्जित्य दैत्यसंघांश्च बहुदर्पो बभूव ह ॥२॥
तदा कृष्णो बलिद्वारा शक्रदर्पं बभञ्ज ह । भ्रष्टश्रियो बभूवुस्ते देवा इन्द्रपुरोगमाः ॥३॥
तदा बृहस्पतेः स्तोत्राददितेश्च व्रतेन ते । जातश्च स्वांशकलयाऽप्यदित्यां वामनो विभुः ॥४॥
याच्ञां कृत्वा बलिं राज्यं कृपया च कृपानिधिः । तस्मै ददौ महेन्द्राय देवेभ्यश्चापि संपदम् ॥५॥
बभूव शक्रदर्पश्च पुनः कल्पान्तरे पुरा । विभुर्दुर्वाससो द्वारा जहार तच्छ्रियं मुने ॥६॥
पुनर्ददौ च कृपया कृपालुर्भक्तवत्सलः । पुनः श्रीदुर्मदः सोऽपि जहार गौतमप्रियाम् ॥७॥
तदा गौतमशापेन भगाङ्गश्च बभूव सः । संप्राप यातनामिन्द्रः स्वाङ्गवेदनया पुरा ॥८॥
उच्चैस्तं जहसुर्दृष्ट्वा ऋषयो मनवस्तदा । देवाश्च लज्जिताः सर्वे मृततुल्यो बृहस्पतिः ॥९॥

---

# अध्याय ६१

## बलि द्वारा इन्द्र का गर्व चूर करना

**नारायण बोले**—हे ब्रह्मन् ! इन्द्र के दर्प-भंग के सम्बन्ध में थोड़ा-सा कह दिया, अब दूसरा रहस्यमय वृत्तान्त सावधानी से सुनो ॥१॥ पूर्वकाल में इन्द्र ने समुद्र-मन्थन करके अमृत का पान किया और दैत्य-समूहों को पराजित किया। इससे उन्हें अत्यधिक अभिमान हो गया ॥२॥ तब भगवान् कृष्ण ने बलि द्वारा इन्द्र का अभिमान चूर किया। इन्द्र आदि देवगण हतश्रीक हो गये। अनन्तर बृहस्पति के स्तोत्र और अदिति के व्रतानुष्ठान द्वारा प्रसन्न होकर व्यापक भगवान् ने अदिति में अपने आंशिक कला से वामन अवतार लिया ॥३-४॥ पश्चात् कृपानिधान भगवान् ने कृपया बलि से राज्य की याचना करके महेन्द्र को पुनः रत्न-सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया और देवों को सम्पत्ति प्रदान की ॥५॥ हे मुने ! इसी प्रकार पहले कल्पान्तर में भी इन्द्र को पुनः अभिमान हो गया था, जिसे दुर्वासा द्वारा नष्ट कराकर भगवान् ने उन्हें श्री-विहीन कर दिया था, किन्तु भक्तवत्सल एवं कृपालु भगवान् ने कृपया पुनः उन्हें श्रीसम्पन्न किया। फिर श्रीसम्पन्नता के मद से मदान्ध होने के कारण इन्द्र ने पुनः गौतमप्रिया अहल्या का अपहरण किया, जिसके कारण गौतम के शापवश इन्द्र को भगाङ्ग (सहस्र भगयुक्त) होना पड़ा। पुनः अपने अंगों की वेदना द्वारा इन्द्र ने असह्य पीड़ा प्राप्त की ॥६-८॥ उन्हें देखकर ऋषि और मनुवृन्द ठहाका मारकर हँसने लगे। सभी देवता लज्जित हुए और बृहस्पति तो मृतक के

तदा सहस्रवर्षं च तपस्तप्त्वा रवेः पुरा। रवेर्वरेण शक्रः स सहस्राक्षो बभूव ह ॥१०॥
कलङ्करूपमिन्द्रस्य तच्चक्षुर्निकरं परम्। यथा चन्द्रे कलङ्कश्च तारकाहरणादभूत् ॥११॥

नारद उवाच

ब्रह्मन् केन प्रकारेण जहार गौतमप्रियाम्। महासतीमहल्यां च पूज्यां भुवनपावनीम् ॥१२॥
शुद्धाशयां महाभागां निर्मलां कमलाकलाम्। एतद्वेदितुमिच्छामि वद वेदविदां वर ॥१३॥

नारायण उवाच

पुष्करे तीर्थयात्रायां सूर्यपर्वणि नारद। तत्राऽऽगतामहल्यां च ददर्श पाकशासनः ॥१४॥
सुस्मितां सुदतीं शान्तां पीनश्रोणिपयोधराम्। मूर्च्छामवाप चेन्द्रश्च दृष्टिमात्रेण तत्क्षणात् ॥१५॥
अथापरदिने तां च दृष्ट्वा मन्दाकिनी तटे। एकाकिनीं सुस्मितां च स्नातीं नग्नां सलज्जिताम् ॥१६॥
दृष्ट्वा श्रोणिं स्तनयुगमतीव विपुलं हरिः। मूर्च्छामवाप कामार्तो जहार चेतनां पुनः ॥१७॥
क्षणेन चेतनां प्राप्य गत्वा कामी तदन्तिकम्। उवाच श्लक्ष्णया वाचा विनयेन पतिव्रताम् ॥१८॥

महेन्द्र उवाच

अहो गुणमहो रूपमहो किं वा नवं वयः। अहो किं वा मुखश्रीस्ते शरच्चन्द्रं विनिन्दती ॥१९॥

---

समान हो गये। पश्चात् सहस्र वर्ष तक सूर्य का तप करके इन्द्र ने उन्हें प्रसन्न किया। सूर्य के वरदान से वे सहस्राक्ष हो गये। जिस प्रकार तारा के अपहरण करने से चन्द्रमा में कलङ्क हो गया था, वैसा ही इन्द्र का वह महान् नेत्र-समूह कलंकरूप हो गया ॥९-११॥

**नारद बोले**—हे ब्रह्मन्! हे वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ! गौतम-प्रिया अहल्या का, जो महासती, पूज्या, लोक-पावन करनेवाली शुद्धहृदया, महापुण्या, निर्मला एवं कमला की कलारूप है, इन्द्र ने किस प्रकार अपहरण किया? इसे जानने की इच्छा हो रही है बताने की कृपा करें ॥१२-१३॥

**नारायण बोले**—हे नारद! सूर्यग्रहण के समय पुष्करतीर्थ की यात्रा में आयी हुई अहल्या को इन्द्र ने देखा था ॥१४॥ वह सुन्दर मुसकरानेवाली, सुन्दर दाँतोंवाली, शान्त एवं स्थूल नितम्ब और स्तनोंवाली थी। उसे देखते ही इन्द्र तत्काल मूर्च्छित हो गये। अनन्तर दूसरे दिन मन्दाकिनी के तट पर इन्द्र ने उसे देखा। वह अकेली, मुसकराती हुई तथा नग्न होकर लज्जापूर्वक स्नान कर रही थी ॥१५-१६॥ उसके विशाल नितम्ब एवं दोनों स्तनों को देखकर इन्द्र की चेतना पुनः लुप्त हो गयी। क्षण भर के बाद चेतना प्राप्त होने पर कामी इन्द्र उसके समीप जाकर विनय के साथ चिकनी-चुपड़ी बात उस पतिव्रता से कहने लगा ॥१७-१८॥

**महेन्द्र ने कहा**—अहो, यह गुण! यह रूप! और क्या ही नवीन यौवन है। तुम्हारी मुख-शोभा तो शारदीय चन्द्रमा को भी तिरस्कृत कर रही है। अहो! तुम्हारी तिरछी चितवन पुरुषों के मन को (बलात्)

अहो कटाक्षं कुटिलं पुंसां चित्तविकर्षणम् । किमहो लोचनं पद्मप्रभामोचनमीप्सितम् ॥२०॥
गमनं रमणीयं च गजखञ्जनभञ्जनम् । अहो वाक्यं सुमधुरं पीयूषादपि दुर्लभम् ॥२१॥
किमहो विपुलश्रोणी कामाधारा मनोहरा । कामदा कामुकायैव मुनिमानसमोहिनी ॥२२॥
अतीव कठिना पीना रम्भास्तम्भविडम्बिता । अहो नितम्बयुगुलं वर्तुलं चन्द्रबिम्बवत् ॥२३॥
श्रीयुक्तं श्रीफलयुगतुल्यं ते स्तनयुग्मकम् । अत्युन्नतं सुकठिनं त्रैलोक्यचित्तमोहनम् ॥२४॥
अहो किं वा तपस्तेपे गौतमश्च तपोधनः । संप्राप यत्फलेनैव सुदतीं सुन्दरीं वराम् ॥२५॥
निषेव्य प्रकृतिं दुर्गां विष्णुमायां सनातनीम् । लक्ष्मीं च लक्ष्मीसदृशीमीदृशीं[1] प्राप पद्मिनीम् ॥२६॥
सुकोमलां सुवदनां ललनां नलिनाननाम् । शुद्धां च सुदतीं श्यामां न्यग्रोधदलमध्यमाम् ॥२७॥
त्वत्पालनं च जानामि कामशास्त्रविचक्षणः । कामो वा कामुकश्चन्द्रः किं त्वा जानाति गौतमः ॥२८॥
मां प्रशंसन्ति नित्यं ते कामशास्त्रविचक्षणाः । उर्वश्याद्याश्चाप्सरसो मां प्रशंसन्ति संततम् ॥२९॥
दासीं कृत्वा च दास्यामि शचीं तुभ्यं वरानने । त्रैलोक्यलक्ष्मीं विपुलां गृहाण त्यज गौतमम् ॥३०॥
अनभिज्ञं कामशास्त्रे दुर्बलं च तपस्विनम् । अव्यवहार्यं निष्कामं नारायणपरायणम् ॥३१॥

---

आकर्षित करती है और कमल की कान्ति को चुरानेवाले ये नयन कितने सुन्दर हैं ॥१९-२०॥ गजराज और खंजन पक्षी को अपमानित करनेवाली कैसी सुन्दर चाल है तथा वाणी तो अमृत से भी मधुर एवं दुर्लभ है। अहो, विशाल श्रोणीभाग काम का आधार, मनोहर, कामुक पुरुष को काम प्रदान करनेवाला एवं मुनियों के मन को मोहित करनेवाला है ॥२१-२२॥ जांघें कदली-स्तम्भ को तिरस्कृत करनेवाली, अत्यन्त कठोर एवं स्थूल हैं। दोनों नितम्ब चन्द्रबिम्ब के समान गोलाकार हैं। तुम्हारे दोनों कुच श्रीसम्पन्न एवं बिल्वफल के समान अत्युन्नत, अत्यन्त कठोर और तीनों लोकों के चित्त को मुग्ध करनेवाले हैं ॥२३-२४॥ अहो! तपस्वी गौतम ने क्या इसीलिए तप किया था, जो उसके फलस्वरूप ऐसी सुन्दर दाँतोंवाली श्रेष्ठ सुन्दरी उन्हें प्राप्त हुई है! क्या भगवान् विष्णु की माया एवं सनातनी प्रकृति दुर्गा जी की सेवा करके ऐसी पद्मिनी नारी को, जो लक्ष्मी या लक्ष्मी सदृश अत्यन्त कोमल, सुन्दर मुखवाली, ललना, कमलमुखी, शुद्ध, सुन्दर दाँतोंवाली, श्यामा (सोलह वर्ष-वाली) और कठिन स्तनों, भारी नितम्ब तथा पतली कमरवाली है, प्राप्त किया? कामशास्त्र में निपुण होने के कारण मैं तुम्हारा पालन करना (दुलराना) जानता हूँ। अथवा कामदेव या कामुक चन्द्रमा जान सकते हैं। गौतम तुम्हें क्या जानेंगे? ॥२५-२८॥ कामशास्त्र के वे विद्वान् मेरी नित्य प्रशंसा करते हैं और उर्वशी आदि अप्सराएँ भी निरन्तर मेरी प्रशंसा करती रहती हैं। हे वरानने! मैं शची को दासी बनाकर तुम्हें सौंप दूंगा और (मेरे साथ रहकर) तीनों लोकों की विपुललक्ष्मी को ग्रहण करो और गौतम को त्याग दो, जो कामशास्त्र से अनभिज्ञ, दुर्बल, तपस्वी, अव्यावहारिक, निष्काम तथा नारायण-परायण हैं ॥२९-३१॥ मूर्ख विधाता ने अनुचित

---

१. ख. दृशीं तपसा प्राप्य प॰ ।

अविदग्धो विधाता च योजयामास योऽक्षमम्। ईदृशीं कामुकीं रम्यां ददाति च तपस्विने ॥३२॥
इत्युक्त्वा कामुकः शक्रः पपात चरणे मुदा। तमुवाच महासाध्वी वेदोक्तं च यथोचितम् ॥३३॥

## अहल्योवाच

अभाग्याद्ब्रह्मणश्चापि मरीचेश्च तपस्विनः। अभाग्यात्कश्यपस्यापि त्वं पुत्रः पापमानसः ॥३४॥
किं तज्जपेन तपसा मौनेन च व्रतेन च। सुरार्चनेन तीर्थेन स्त्रीभिर्यस्य मनोहृतम् ॥३५॥
स्त्रीरूपं निर्मितं सृष्टौ मोहाय कामिनां मनः। अन्यथा न भवेत्सृष्टिः स्रष्टा[1] तेने पुराऽऽज्ञया ॥३६॥
सर्वं मायाकरण्डश्च धर्ममार्गार्गलं नृणाम्। व्यवधानं च तपसां दोषाणामाश्रयं परम् ॥३७॥
कर्मबन्धनिबद्धानां निगडं कठिनं स्मृतम्। प्रदीपरूपं कीटानां मीनानां बडिशं यथा ॥३८॥
विषकुम्भं दुग्धमुखमारम्भे मधुरोपमम्। परिणामे दुःखबीजं सोपानं नरकस्य च ॥३९॥
ऋषयः सनकाद्याश्च नोद्वाहं चक्रुरीप्सितम्। परस्त्रीषु मनो येषां तेषां सर्वं च निष्फलम् ॥४०॥
परस्त्रीसेवनं शक्र इहैवात्ययशस्करम्। परत्र नरकं घोरं ददाति कामुकाय च ॥४१॥

---

जोड़ी बनायी जो एक तपस्वी को ऐसी कामुकी, सुन्दरी सौंप दी ॥३२॥ इतना कहकर कामी इन्द्र आनन्द से अहल्या के चरण पर गिर पड़े। तब उस महासती ने उनसे वेदोक्त और यथोचित वचन कहना आरम्भ किया ॥३३॥

**अहल्या बोली**—ब्रह्मा के अभाग्य से तथा तपस्वी मरीचि और कश्यप जी के भी अभाग्यवश तुम उनके पापी पुत्र उत्पन्न हुए ॥३४॥ जिस पुरुष का मन स्त्रियों द्वारा अपहृत हो चुका है (अर्थात् स्त्रियों में ही निरन्तर लगा रहता है) उसके जप, तप, मन, व्रत, देव-पूजन और तीर्थ-सेवन करने से क्या लाभ है? कामियों के मन को मोहित करने के लिए सृष्टि में स्त्रीरूप का निर्माण हुआ है, अन्यथा सृष्टि होती ही नहीं। इसीलिए पूर्वकाल में भगवान् की आज्ञा से ब्रह्मा ने सृष्टि का विस्तार किया था ॥३५-३६॥ स्त्री माया की पिटारी है, तथा मनुष्यों के धर्म मार्ग (में बढ़ने देने) की अर्गला (बेड़ा) है, तप (को रोकने) का व्यवधान (विघ्न) और समस्त दोषों का महान् आश्रय है। यह कर्मरूपी बन्धन से आबद्ध पुरुषों की कठिन बेड़ी है। यह पुरुषरूपी मछलियों को फँसाने-वाली बंशी (लोहे की कटिया) की भाँति है तथा कीट (पतिंगे) रूपी पुरुषों के लिए अतिप्रज्वलित दीपक है ॥३७-३८॥ दूध जिसके मुँह में है ऐसे विष से भरे घड़े की भाँति आरम्भ में अतिमधुर है किन्तु परिणाम में दुःखों का बीज और नरक की सीढ़ी है। इसी हेतु सनकादि ऋषियों ने विवाह नहीं किया है। परस्त्रियों में जिनका मन आसक्त है, उनके सभी कर्म निष्फल हैं ॥३९-४०॥ हे शक्र! परायी स्त्री का सेवन करना इस लोक में अत्यन्त अपयश देनेवाला है और परलोक में कामुक को घोर नरक देता है। इतना कहकर गौतम की वह

---

[1] ख. स्रष्टा तेन पु॰।

इत्युक्त्वा च महासाध्वी विहाय तं च कामुकम् । प्रययौ स्वगृहं तूर्णं[1] गृहिणी गौतमस्य च ॥४२॥
तत्सर्वं कथयामास गौतमाय तपस्विने । तस्थौ प्रहस्य स मुनिर्महेन्द्रं च विनिन्द्य च ॥४३॥
एकदा गौतमः शीघ्रं जगाम शंकरालयम् । शक्रो गौतमरूपेण तां संभोगं चकार सः ॥४४॥
सर्वं ज्ञात्वा च सर्वज्ञः[2] मन्दिरद्वारमाययौ । निर्गच्छन्तं महेन्द्रं च ददर्श मुनिपुंगवः ॥४५॥
नग्नामहल्यां रहसि पीनश्रोणिपयोधराम् । मुनिः शशाप शक्रं च भगाङ्गश्च भवेति च ॥४६॥
कोपाच्छशाप पत्नीं च रुदतीं भयविह्वलाम् । त्वं च पाषाणरूपा च महारण्ये भवेति च ॥४७॥
ययौ च स्वगृहं शक्रो लज्जैकतानमानसः । उवाच मधुरं भीता स्वामिनं शोककर्शिता ॥४८॥

## अहल्योवाच

मां च दासीं च निर्दोषां कथं त्यजसि धार्मिक । त्वं च वेदविदां श्रेष्ठो विचारं कुरु धर्मतः ॥४९॥

## गौतम उवाच

त्वां जानामि मनः शुद्धां सुव्रतां च पतिव्रताम् । त्यक्ष्यामि च तथाऽपि त्वां परवीर्यं च बिभ्रतीम् ॥५०॥
परभोग्या च या कान्ता साऽशुद्धा सर्वकर्मसु । तां यो गच्छेन्महामूढो नरकं तस्य कल्पकम् ॥५१॥

---

महापतिव्रता पत्नी कामुक इन्द्र को छोड़कर बड़ी शीघ्रता से अपने घर चली गयी ॥४१-४२॥ और वहाँ पहुँचकर तपस्वी गौतम से उसने वह समस्त वृत्तान्त कहा, जिसे सुनकर मुनि ने हँसते हुए महेन्द्र की बड़ी निन्दा की ॥४३॥ शीघ्र ही एक बार गौतम शङ्कर के यहाँ गये । इसी बीच इन्द्र ने गौतम का स्वरूप धारणकर अहल्या के साथ सम्भोग कर लिया ॥४४॥ सर्वज्ञ मुनि सब कुछ जानकर अपने घर आये । मुनिश्रेष्ठ (गौतम) ने बाहर निकलते हुए इन्द्र को देखा और स्थूलश्रोणी एवं स्तनोंवाली अहल्या को एकान्त में नग्न पड़ी हुई देखा । मुनि ने इन्द्र को शाप दिया—'तुम्हारे अंगों में भग हो जायँ ।' और क्रुद्ध होकर भयाकुल एवं रोदन करती हुई पत्नी को भी शाप दिया—'तू महावन में पाषाण रूप (पत्थर) हो जा ।' अत्यन्त लज्जित होते हुए इन्द्र तो अपने घर चले गये, पर भयभीत एवं शोक से क्षीण अहल्या ने पति से मधुर वचन कहा ॥४५-४८॥

**अहल्या बोली**—हे धार्मिक ! मुझ निर्दोष दासी को क्यों छोड़ रहे हो ? तुम वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ हो, अतः धर्मानुसार विचार करो ॥४९॥

**गौतम बोले**—मैं तुम्हें जानता हूँ कि तुम शुद्धहृदया दृढ़ नियमानुष्ठानवाली पतिव्रता हो, किन्तु तुम दूसरे का वीर्य धारण किये हुए हो । इसीलिए तुम्हारा परित्याग कर रहा हूँ ॥५०॥ पर-पुरुष द्वारा उपभोग की हुई स्त्री सभी कर्मों में अशुद्ध मानी जाती है । इसलिए जो पुरुष उस अपनी पत्नी के साथ पुनः सम्भोग करता

---

१ क. रन्तुं । २ ख. 'ज्ञः स्वयं मन्दिरमा' ।

अन्नं विष्ठा जलं मूत्रं परभोग्याश्च (या) निश्चितम् । उपस्पृशेन्न तस्याश्च हन्ति पुण्यं पुराकृतम् ।।५२।।
अनिच्छया च शृङ्गारे स्त्री जारेण न दुष्यति । दुष्टा स्त्री निश्चितं साध्वी स्वेच्छाशृङ्गारकर्मणि ।।५३।।
त्वं शक्रं स्वामिनं मत्वा सुखं भुक्त्वा रतिं गृहे । पश्चाद्बभूव ते ज्ञानं मां दृष्ट्वा च निशामय ।।५४।।
गच्छ गच्छ महारण्यं भव पाषाणरूपिणी । रामपादाङ्गुलिस्पर्शात्सद्यः पूता भविष्यसि ।।५५।।
मां संप्राप्स्यसि तत्पुण्यात्पुनरेवाऽऽगमिष्यसि । गच्छ कान्ते महारण्यमित्युक्त्वा तपसे ययौ ।।५६।।
इत्येवं कथितं सर्वं महेन्द्रदर्पभञ्जनम् । पुनः संप्राप लक्ष्मीं च विभोश्च कृपया मुने ।।५७।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना०
एकषष्टितमोऽध्यायः ।।६१।।

---

है उस महामूढ़ को कल्प पर्यन्त नरक में रहना पड़ता है । पर-पुरुष द्वारा उपभुक्त स्त्री द्वारा छुआ हुआ अन्न विष्ठा के समान और जल मूत्र के समान होता है, यह निश्चित है । उसका स्पर्श नहीं करना चाहिए, ऐसा करने से पूर्वजन्म का पुण्य नष्ट हो जाता है ।।५१-५२।। पर-पुरुष के साथ अनिच्छा से शृङ्गार (सम्भोग) करनेवाली स्त्री दूषित नहीं होती है जो स्वेच्छा से शृंगार करती है वही स्त्री दूषित होती है । तुमने इन्द्र को पति मानकर घर में सुखपूर्वक उनके साथ संभोग किया और मुझे देखने के पश्चात् ही तुम्हें ज्ञान हुआ है ।।५३-५४।। अतः तुम महावन में जाओ और वहाँ पाषाण रूप होकर पड़ी रहो । अनन्तर भगवान् राम का चरणस्पर्श होने पर पुनः पवित्र हो जाओगी । उसी पुण्य द्वारा यहाँ आकर मुझे पुनः प्राप्त करोगी । अतः हे कान्ते ! महारण्य में जाओ । इतना कहकर (गौतम) तप करने के लिए चले गये ।।५५-५६।। हे मुने ! इस प्रकार इन्द्र का दर्प-भंग मैंने बता दिया । किन्तु इन्द्र ने भगवान् की कृपा से पुनः लक्ष्मी प्राप्त की ।।५७।।

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण में श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्ध में नारद-नारायण-संवाद-विषयक
इकसठवाँ अध्याय समाप्त ।।६१।।

# अथ द्विषष्टितमोऽध्यायः

## नारद उवाच

ब्रह्मन् केन प्रकारेण रामो दाशरथिः स्वयम् । चकार मोक्षणं कुत्र युगे[1] गौतमयोषितः ॥१॥
रामावतारं सुखदं समासेन मनोहरम् । कथयस्व महाभाग श्रोतुं कौतूहलं मम ॥२॥

## नारायण उवाच

ब्रह्मणा प्रार्थितो विष्णुर्जातो[2] दशरथात्स्वयम् । कौसल्यायां च भगवांस्त्रेतायां च मुदाऽन्वितः ॥३॥
कैकेय्यां भरतश्चैव रामतुल्यो गुणेन च । लक्ष्मणश्चापि शत्रुघ्नः सुमित्रायां गुणार्णवः ॥४॥
विश्वामित्रप्रेषितश्च श्रीरामश्च सलक्ष्मणः । प्रययौ मिथिलां रम्यां सीताग्रहणहेतवे ॥५॥
दृष्ट्वा पाषाणरूपां च रामो वर्त्मनि कामिनीम् । विश्वामित्रं च पप्रच्छ कारणं जगदीश्वरः ॥६॥
रामस्य वचनं श्रुत्वा विश्वामित्रो महातपाः । उवाच तत्र धर्मिष्ठो रहस्यं सर्वमेव च ॥७॥
कारणं तन्मुखाच्छ्रुत्वा रामो भुवनपावनः । स्पर्शं पादाङ्गुलिना सा बभूव च पद्मिनी ॥८॥

---

# अध्याय ६२

## श्रीराम का चरित्र

**नारद बोले**—हे ब्रह्मन् ! दशरथ-पुत्र स्वयं भगवान् राम ने किस युग में, किस प्रकार और कहाँ गौतम-पत्नी अहल्या का उद्धार किया ? ॥१॥ हे महाभाग ! मुझे मनोहर एवं सुखप्रद रामावतार (की कथा) सुनने का अति कुतूहल हो रहा है । अतः संक्षेप में कहने की कृपा करें ॥२॥

**नारायण बोले**—ब्रह्मा के प्रार्थना करने पर भगवान् विष्णु त्रेता युग में दशरथ से कौशल्या में स्वयं प्रकट हुए । उसी प्रकार राम के समान गुणयुक्त भरत कैकेयी से और गुणसागर लक्ष्मण और शत्रुघ्न सुमित्रा से उत्पन्न हुए ॥३-४॥ अनन्तर विश्वामित्र से प्रेरित होकर भगवान् श्रीरामचन्द्र जानकी के पाणिग्रहणार्थ लक्ष्मण समेत रम्य मिथिला नगर में पहुँचे । मार्ग में जाते हुए जगदीश्वर राम ने पाषाण के रूप में कामिनी को देखकर विश्वामित्र से उसका कारण पूछा ॥५-६॥ उपरान्त धर्मिष्ठ एवं महातपस्वी विश्वामित्र ने राम की बात सुनकर उसके पाषाण होने का सम्पूर्ण रहस्य उन्हें बताया । लोकपावन भगवान् राम ने उनके मुख से वह कारण जानकर अपनी चरणांगुलि से उसका स्पर्श किया, जिससे वह उसी क्षण अपने पद्मिनीरूप में परिणत हो गयी ॥७-८॥

---

१ क. पुरे । २ क. दाशरथिर्गृहे ।

सा राममाशिषं कृत्वा प्रययौ भर्तृमन्दिरम् । शुभाशिषं ददौ तस्मै भार्यां संप्राप्य गौतमः ॥९॥
रामश्च मिथिलां गत्वा धनुर्भङ्गं शिवस्य च । चकार पाणिग्रहणं सीतायाश्चैव नारद ॥१०॥
कृत्वा विवाहं राजेन्द्रो भृगुदर्पं निहत्य च । अयोध्यां प्रययौ रम्यां क्रीडाकौतुकमङ्गलैः ॥११॥
राजा पुत्रं नृपं कर्तुमिषेष कृतसादरम् । सप्ततीर्थोदकं तूर्णमानीय मुनिपुंगवान् ॥१२॥
कृताधिवासं श्रीरामं सर्वं मङ्गलसंयुतम् । दृष्ट्वा भरतमाता च कैकेयी शोकविह्वला ॥१३॥
वरयामास राजानं पूर्वमङ्गीकृतं वरम् । रामस्य वनवासं च राजत्वं भरतस्य च ॥१४॥
वरं दातुं महाराजो नेयेष प्रेममोहितः । धर्मसत्यभयेनैवोवाच रामो नृपं सुधीः ॥१५॥

**श्रीराम उवाच**

तडागशतदानेन यत्पुण्यं लभते नरः । ततोऽधिकं च लभते वापीदानेन निश्चितम् ॥१६॥
दशवापीप्रदानेन यत्पुण्यं लभते नरः । ततोऽधिकं च लभते पुण्यं कन्याप्रदानतः ॥१७॥
दशकन्याप्रदानेन यत्पुण्यं लभते नरः । ततोऽधिकं च लभते यज्ञैकेन नराधिप ॥१८॥
शतयज्ञेन यत्पुण्यं लभते पुण्यकृज्जनः । ततोऽधिकं च लभते पुत्रास्यदर्शनेन च ॥१९॥

---

अनन्तर उसने राम को शुभाशिष देकर अपने पति-गृह के लिए प्रस्थान किया । गौतम ने भी पत्नी को प्राप्तकर भगवान् श्रीरामचन्द्र को शुभाशिष प्रदान किया ॥९॥ हे नारद ! तदुपरान्त राम ने मिथिलानगर पहुँचकर शिव का धनुष तोड़ा और सीता का पाणिग्रहण किया ॥१०॥ राजेन्द्र ! भगवान् रामचन्द्र ने विवाहोपरान्त परशुराम का अभिमान नष्ट करके कौतुकवश माङ्गलिक क्रीड़ा करते हुए, सुरमणीक अयोध्या नगर को प्रस्थान किया ॥११॥ राजा दशरथ ने आदरपूर्वक अपने पुत्र राम का राज्याभिषेक करने की इच्छा प्रकट की । सातों तीर्थों से जल मँगवाया और मुनिश्रेष्ठों को सादर निमंत्रित किया ॥११ १२॥ समस्त मङ्गलों से युक्त और अधिवास (रात्रि में संयमपूर्वक कुशासन पर शयन) किये हुए श्रीराम को देखकर भरत जी की माता कैकेयी शोक से विह्वल हो गयीं ॥१३॥ उसने राजा (दशरथ) से (अपने) पूर्वस्वीकृत (दो) वरदान की याचना की—एक वरदान था राम को वनवास देने का और दूसरा था भरत को राजा बनाने का ॥१४॥ (राम के) प्रेम से मोहित महाराज ने वरदान न देना चाहा । शास्त्रज्ञ राम ने धर्म और सत्य के भयवश राजा से कहना आरम्भ किया ॥१५॥

**श्रीराम बोले**—सौ सरोवर को दान करने से मनुष्य को पुण्य की प्राप्ति होती है, उससे अधिक पुण्य बावली दान करने से प्राप्त होता है ॥१६॥ दस बावली दान करने से मनुष्य को जितना पुण्य मिलता है, उससे अधिक पुण्य उसे कन्यादान करने से प्राप्त होता है ॥१७॥ हे नराधिप ! दस कन्या दान करने से मनुष्य को जितना पुण्य प्राप्त होता है, उससे अधिक पुण्य एक यज्ञ करने से होता है ॥१८॥ सौ यज्ञ करने से पुण्यात्मा पुरुष को जितना पुण्य मिलता है, उससे अधिक पुण्य उसे पुत्र का मुख देखने से प्राप्त होता है ॥१९॥ सौ पुत्रों

दर्शने शतपुत्राणां यत्पुण्यं लभते नरः । तत्पुण्यं लभते नूनं पुण्यवान्सत्यपालनात् ॥२०॥
न हि सत्यात्परो धर्मो नानृतात्पातकं परम् । न हि गङ्गासमं तीर्थं न देवः केशवात्परः ॥२१॥
नास्ति धर्मात्परो बन्धुर्नास्ति धर्मात्परं धनम् । धर्मात्प्रियः परः को वा स्वधर्मं रक्ष यत्नतः ॥२२॥
स्वधर्मे रक्षिते तात शश्वत्सर्वत्र मङ्गलम् । यशस्यं सुप्रतिष्ठा च प्रतापः पूजनं परम् ॥२३॥
चतुर्दशाब्दं धर्मेण त्यक्त्वा गृहसुखं भ्रमन् । वनवासं करिष्यामि सत्यस्य पालनाय ते ॥२४॥
कृत्वा सत्यं च शपथमिच्छयाऽनिच्छयाऽथवा । न कुर्यात्पालनं यो हि भस्मान्तं तस्य सूतकम् ॥२५॥
कुम्भीपाके स पचति यावच्चन्द्रदिवाकरौ । ततो मूको भवेत्कुष्ठी मानवः सप्तजन्मसु ॥२६॥
इत्येवमुक्त्वा श्रीरामो विधाय वल्कलं जटाम् । प्रययौ च महारण्ये सीतया लक्ष्मणेन च ॥२७॥
पुत्रशोकान्महाराजस्तत्याज स्वतनुं मुने । पालनाय पितुः सत्यं रामो बभ्राम कानन ॥२८॥
कालान्तरे महारण्ये भगिनी रावणस्य च । भ्रमन्ती कानने घोरे भर्त्रा सार्धं सुकौतुकात् ॥२९॥
ददर्श रामं कुलटा कामार्ता राक्षसी तदा । पुलकाञ्चितसर्वाङ्गी मूर्च्छामाप स्मरेण च ॥३०॥
श्रीरामनिकटं गत्वा सस्मितोवाच कामुकी । शश्वद्यौवनसंयुक्ताऽतिप्रौढा कामदुर्मदा ॥३१॥

---

के देखने से मनुष्य जितना पुण्य प्राप्त करता है, उससे अधिक पुण्य उस पुण्यवान् को सत्य का पालन करने से निश्चित प्राप्त होता है ॥२०॥ (क्योंकि) सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं है और असत्य से बढ़कर कोई पातक नहीं है । गङ्गा के समान कोई तीर्थ नहीं है और भगवान् केशव से बढ़कर कोई देवता नहीं है ॥२१॥ धर्म से बढ़कर कोई बन्धु नहीं है, धर्म से बढ़कर कोई धन नहीं है और धर्म से बढ़कर कोई प्रिय नहीं है। अतः यत्नपूर्वक अपने धर्म की रक्षा कीजिये ॥२२॥ हे तात ! अपने धर्म की रक्षा करने पर चारों ओर निरन्तर मङ्गल, यश, उत्तम प्रतिष्ठा, प्रताप और परम सम्मान की प्राप्ति होती है ॥२३॥ इसलिए आपके सत्य (वचन) की रक्षा के लिए मैं धर्मपूर्वक गृहसुख का त्यागकर (इधर-उधर) भ्रमण करते हुए चौदह वर्ष तक वन में निवास करूँगा ॥२४॥ इच्छा या अनिच्छा से सत्य-प्रतिज्ञा करके जो उसका पालन नहीं करता है, उसे भस्मान्त (चिता पर जलने) तक सूतक (अशौच) लगा रहता है। चन्द्रमा और सूर्य के समय तक वह कुम्भीपाक नरक में पकता रहता है। अनन्तर वह व्यक्ति सात जन्मों तक मूक (गूंगा) और कुष्ठ रोग का रोगी होता है ॥२५-२६॥ इस प्रकार कहकर श्रीराम वल्कल और जटा धारणकर सीता और लक्ष्मण के साथ महावन में चले गये । हे मुने ! पुत्रशोकवश महाराज (दशरथ) ने अपना शरीर छोड़ दिया और राम ने पिता के सत्य की रक्षा के लिए जङ्गलों में भ्रमण करना आरम्भ किया ॥२७-२८॥ कुछ समय के उपरान्त महारण्य में रावण की भगिनी (शूर्पणखा) अत्यन्त कुतूहल से पति के साथ घोर जंगल में घूम रही थी। वह कुलटा राक्षसी, राम को देखते ही कामवासना से पीड़ित हो गयी तथा उसके सर्वाङ्ग में रोमाञ्च हो आया और कामवश वह मूर्च्छित हो गयी ॥२९-३०॥ अनन्तर निरन्तर यौवन से युक्त, अति प्रौढ़ा और काम से अत्यन्त मतवाली वह कामुकी मन्द मुसुकान करती हुई श्रीराम के समीप जाकर कहने लगी ॥३१॥

## शूर्पणखोवाच

हे राम हे घनश्याम रूपधाम गुणान्वित। मायानुरक्तां वनितां मां गृहाण सुनिर्जने ॥३२॥
श्रुत्वा शूर्पणखावाक्यं धर्मं संस्मृत्य धार्मिकः। उवाच मधुरं वाक्यं शापभीतश्च नारद ॥३३॥

## श्रीराम उवाच

अम्ब मातः सभार्योऽहमभार्यं गच्छ मेऽनुजम्। दुःखं प्रियोऽन्यां प्रभजेदितरं च सुखालयम् ॥३४॥
रामस्य वचनं श्रुत्वा प्रययौ लक्ष्मणं मुदा। ददर्श लक्ष्मणं शान्तं कान्तं च लक्षणान्वितम् ॥३५॥
मां भजस्व महाभागेत्युवाच च पुनः पुनः। लक्ष्मणस्तद्वचः श्रुत्वा तामुवाच कुतूहलात् ॥३६॥

## लक्ष्मण उवाच

विहाय रामं सर्वेशं हे मूढे दासमिच्छसि। सीतावासी च मत्पत्नी सीतादासोऽहमेव च ॥३७॥
भव सीतासपत्नी त्वं गच्छ रामं मदीश्वरम्। तव पुत्रो भविष्यामि सीतायाश्च यथा सति ॥३८॥
लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा कामेन हृतमानसा। उवाच लक्ष्मणं मूढा शुष्ककण्ठोष्ठतालुका ॥३९॥

## शूर्पणखोवाच

यदि त्यजसि मां मूढ कामात्स्वयमुपस्थिताम्। युवयोश्च विपत्तिश्च भविष्यति न संशयः ॥४०॥

---

**शूर्पणखा बोली**—हे राम ! हे घन की भाँति श्याम, रूप के धाम, गुणों से परिपूर्ण राम ! इस अत्यन्त निर्जन स्थान में मुझ प्रेमानुरागिणी वनिता को अपनाने की कृपा करो ॥३२॥ हे नारद ! धार्मिक श्रीराम ने शूर्पणखा की बात सुनकर शापभय के कारण धर्म का स्मरण करके मधुर वचन कहा ॥३३॥

**श्रीराम बोले**—हे अम्ब ! हे माता ! मैं तो सपत्नीक हूँ। इसलिए तुम पत्नी-रहित मेरे छोटे भाई के पास जाओ। पति दूसरी स्त्री का सेवन करे तो दुःखद (पत्नी के लिए) बात है। (अतएव तुम) सुख के घर इतर पुरुष (लक्ष्मण) के पास जाओ ॥३४॥ राम की बात सुनकर वह सहर्ष लक्ष्मण के पास गयी और शान्त, सुन्दर एवं शुभ लक्षणों से युक्त लक्ष्मण को देखा ॥३५॥ उसने उनसे बार-बार कहा—हे महाभाग ! मेरा सेवन करो। लक्ष्मण ने भी बड़े कौतूहल से उसकी बात सुनकर उससे कहा ॥३६॥

**लक्ष्मण बोले**—हे मूढ़े ! तुम सर्वाधीश्वर भगवान् राम को छोड़कर मुझ दास के साथ रहना चाहती हो। मैं सीता जी का दास हूँ। मेरी पत्नी भी सीता जी की दासी है। इसलिए मेरे स्वामी राम के पास तुम जाओ और सीता जी की (सौत) बनो। हे सती ! मैं जिस प्रकार सीता जी का पुत्र हूँ, उसी प्रकार तुम्हारा भी पुत्र होकर रहूँगा ॥३७-३८॥ लक्ष्मण की बात सुनकर काम के द्वारा अपहृत चित्तवाली, (अतएव) सूखे कण्ठ, ओंठ एवं तालूवाली मूर्खा (राक्षसी) ने लक्ष्मण से कहा ॥३९॥

**शूर्पणखा बोली**—हे मूढ़ ! मैं स्वेच्छा से तुम्हारे पास आयी हूँ। अब यदि मेरा त्याग कर रहे हो, तो तुम दोनों पर विपत्ति आयेगी, इसमें संशय नहीं ॥४०॥ ब्रह्मा मोहिनी का त्याग करने के कारण विश्व

ब्रह्मा च मोहिनीं त्यक्त्वा विश्वेऽपूज्यो बभूव सः । रम्भाशापेन दक्षश्च छागमस्तो बभूव सः ॥४१॥
स्ववैद्यश्चोर्वशीशापाद्यज्ञभागविवर्जितः । रूपहीनः कुबेरश्च मेनाशापेन लक्ष्मण ॥४२॥
कामो घृताचीशापेन बभूव भस्मसाच्छिवात् । बलिर्मदालसाशापाद्भ्रष्टराज्यो बभूव ह ॥४३॥
शापेन मिश्रकेश्याश्च हृतभार्यो बृहस्पतिः । मम शापात्तथा रामो हृतभार्यो भविष्यति ॥४४॥
कामातुरां यौवनस्थां भार्यां स्वयमुपस्थिताम् । न त्यजेद्धर्मभीतश्च श्रुतं माध्यंदिने पुरा ॥४५॥
इह त्यक्त्वा विपद्ग्रस्तः परत्र नरकं व्रजेत् । श्रुत्वा शूर्पणखावाक्यमर्धचन्द्रेण लक्ष्मणः ॥४६॥
चिच्छेद नासिकां तस्याः क्षुरधारेण लीलया । तस्या भ्राता च युयुधे बलवान्खरदूषणः ॥४७॥
ससैन्यो लक्ष्मणास्त्रेण स जगाम यमालयम् । चतुर्दशसहस्रं च राक्षसान्खरदूषणम् ॥४८॥
मृतान्दृष्ट्वा शूर्पणखा भर्त्संयामास रावणम् । सर्वं निवेदनं कृत्वा जगाम पुष्करं तदा ॥४९॥
ब्रह्मणश्च वरं प्राप कृत्वा च दुष्करं तपः । उवाच तादृशीं दृष्ट्वा निराहारां तपस्विनीम् ॥५०॥
सर्वज्ञस्तन्मनो मत्वा कृपासिन्धुश्च नारद ॥५१॥

**ब्रह्मोवाच**

अप्राप्य रामं दुष्प्रापं करोषि दुष्करं तपः । जितेन्द्रियाणां प्रवरं लक्ष्मणं धर्मलक्षणम् ॥५२॥

---

में अपूज्य हो गये । रम्भा के शाप से दक्ष का मुख बकरे का हो गया । उर्वशी के शाप से अश्विनीकुमार यज्ञ-भाग से वञ्चित रह गये । हे लक्ष्मण ! मेना के शाप से कुबेर रूपहीन हो गये ॥४१-४२॥ घृताची के शाप से कामदेव शिव द्वारा भस्म कर दिये गये । मदालसा के शाप से बलि राज्यच्युत हुए ॥४३॥ मिश्रकेशी के शाप से बृहस्पति की स्त्री (तारा) का अपहरण हुआ । उसी प्रकार मेरे शाप से राम की स्त्री का भी अपहरण होगा ॥४४॥ क्योंकि पूर्व समय में वेद की माध्यन्दिनी शाखा में यह बात सुनी गयी है कि कामातुर और युवती पत्नी स्वयं उपस्थित हो तो धर्मभीरु व्यक्ति उसका त्याग न करे ॥४५॥ ऐसा करने से इस लोक में विपत्ति और परलोक में नरक की प्राप्ति होती है । शूर्पणखा की ऐसी बात सुनकर लक्ष्मण ने छूरे (स्तुरे) की धार के समान अर्द्धचन्द्राकार बाण से सहज ही में उसकी नासिका काट ली । अनन्तर उसके बलवान् भाई खर-दूषण ने वहाँ आकर युद्ध किया, किन्तु उसको लक्ष्मण के अस्त्र ने सेना समेत यमपुर पहुँचा दिया । चौदह सहस्र राक्षसों समेत खर-दूषण को मृतक देखकर शूर्पणखा ने लङ्का जाकर रावण की भर्त्सना की । फिर समस्त वृत्तान्त निवेदन करके वह पुष्कर क्षेत्र को चली गयी । वहाँ ब्रह्मा की कठोर तपस्या करके उनसे वरदान प्राप्त किया । हे नारद ! उस निराहार तपस्विनी को देखकर दयासागर एवं सर्वज्ञ ब्रह्मा ने उसका मनोभाव समझकर कहा ॥४६-५१॥

**ब्रह्मा बोले**—ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव आदि स्वामी, प्रकृति से परे तथा अति कठिनाई से प्राप्त होने-वाले राम को और जितेन्द्रियों में श्रेष्ठ एवं धर्मलक्षण युक्त लक्ष्मण को, (पति के रूप में) न पाकर तुम कठोर

ब्रह्मविष्णुशिवादीनामीश्वरं प्रकृतेः परम् । जन्मान्तरे च भर्तारं प्राप्स्यसि त्वं वरानने ।।५३।।
इत्येवमुक्त्वा ब्रह्मा च जगाम स्वालयं मुदा । वेहं तत्याज सा वह्नौ सा च कुब्जा बभूव ह ।।५४।।
अथ शूर्पणखा वाक्यात्कोपात्कम्पितविग्रहः । जहार मायया सीतां मायावी राक्षसेश्वरः ।।५५।।
सीतां न दृष्ट्वा रामश्च मूर्च्छां प्राप चिरं मुने । चेतनां कारयामास भ्राता चाऽऽध्यात्मिकेन च ।।५६।।
ततो बभ्राम गहनं शैलं च कंदरं नदम् । अहर्निशं च शोकार्तो मुनीनामाश्रमं मुने ।।५७।।
चिरमन्वेषणं कृत्वा न दृष्ट्वा जानकीं विभुः । चकार मित्रतां रामः सुग्रीवेण स्वयं प्रभुः ।।५८।।
निहत्य वालिनं बाणैर्ददौ राज्यं च लीलया । सुग्रीवाय च मित्राय स्वीकारपालनाय वै ।।५९।।
दूतान्प्रस्थापयामास सर्वत्र वानरेश्वरः । तस्थौ सुग्रीवभवने श्रीरामश्च सलक्ष्मणः ।।६०।।
हनूमते वरं दत्त्वा रम्यं रत्नाङ्गुलीयकम् । सीतायै शुभसंदेशं प्राणधारणकारणम् ।।६१।।
तं च प्रस्थापयामास दक्षिणां दिशमुत्तमाम् । सुप्रीत्याऽऽलिङ्गनं दत्त्वा पादरेणून्सुदुर्लभान् ।।६२।।
हनुमान्प्रययौ लङ्कां सीतान्वेषणहेतवे । रामादधीतसंदेशो ययौ रुद्रकलोद्भवः ।।६३।।
अशोककानने सीतां ददर्श शोककर्शिताम् । निराहारामतिकृशां कुह्वां चन्द्रकलामिव ।।६४।।
सततं राम रामेति जपन्तीं भक्तिपूर्वकम् । बिभ्रन्तीं च जटाभारं तप्तकाञ्चनसंनिभाम् ।।६५।।

---

तप कर रही हो। (अतएव) हे वरानने ! अगले जन्म में तुम उन्हें पति के रूप में प्राप्त कर लोगी ।।५२-५३।। इस प्रकार कहकर ब्रह्मा सहर्ष अपने लोक को चले गये। उस राक्षसी ने अग्नि में अपना शरीर छोड़ दिया और जन्मान्तर में वही कुब्जा होकर उत्पन्न हुई ।।५४।।

उपरान्त शूर्पणखा की बात सुनकर उस मायावी राक्षसेश्वर रावण का शरीर क्रोध के कारण कांप उठा। उसने (छल करके) सीता का अपहरण कर लिया ।।५५।। हे मुने ! सीता को न देखकर राम बहुत काल तक मूर्च्छित रहे। (उनके) भाई लक्ष्मण ने आध्यात्मिक उपायों द्वारा उन्हें चैतन्य किया ।।५६।। हे मुने ! (पश्चात्) घोर जङ्गल, पर्वत, गुफा और नद आदि स्थानों में तथा मुनियों के आश्रमों में शोकविह्वल प्रभु राम ने चिरकाल तक दिन-रात ढूंढ़ते रहने पर भी सीता को न देखकर सुग्रीव से स्वयं मित्रता की ।।५७-५८।। प्रतिज्ञापालनार्थ श्रीराम ने वाणों द्वारा बालि को मारकर (उसका) राज्य (अपने) मित्र सुग्रीव को प्रदान किया ।।५९।। पश्चात् वानराधीश्वर सुग्रीव ने भी अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार (सीता को खोजने के लिए) सब जगह दूतों को भेजा और लक्ष्मण समेत श्रीराम सुग्रीव के यहाँ रहने लगे। हनुमान् को वरदान देते हुए उन्होंने अपनी रत्न की सुन्दर अंगूठी दी और सीता के लिए शुभ-सन्देश भी दिया, जो उनके प्राणधारण करने का कारण हो सके। फिर बड़े प्रेम से हनुमान् को अपने हृदय से लगाया और अति दुर्लभ चरणरेणु देकर दक्षिण दिशा में भेजा ।।६०-६२।। रुद्र की कला से उत्पन्न हनुमान् ने भगवान् राम से संदेश पाकर सीता जी को ढूंढ़ने के लिए लङ्का की यात्रा की ।।६३।। (लंका में पहुंचने पर) अशोकवाटिका में जानकी जी को देखा, जो शोक से दुर्बल, निराहार, अमावस्या की चन्द्रकला के समान अत्यन्त क्षीण, भक्तिपूर्वक निरन्तर राम-राम का जप करती हुई, जटाभार को धारण किये हुई, तपाये सुवर्ण के समान वर्णवाली, भगवान् श्रीराम के चरण-

ध्यायमानां पदाब्जं च श्रीरामस्य दिवानिशम् । [1]शुद्धाशयां सुशीलां च सुव्रतां च पतिव्रताम् ॥६६॥
महालक्ष्मीलक्ष्मयुक्तां प्रज्वलन्तीं स्वतेजसा । पुण्यदां सर्वतीर्थानां दृष्ट्वा भुवनपावनीम् ॥६७॥
प्रणम्य मातरं दृष्ट्वा रुदतीं वायुनन्दनः । रत्नाङ्गुलीयं रामस्य ददौ तस्यै मुदाऽन्वितः ॥६८॥
ररोद धर्मो तां दृष्ट्वा धृत्वा तच्चरणाम्बुजम् । उवाच रामसंदेशं सीताजीवनरक्षणम् ॥६९॥

## हनुमानुवाच

पारेसमुद्रं श्रीरामः संनद्धश्च सलक्ष्मणः । बभूव राममित्रं च सुग्रीवो बलवान्कपिः ॥७०॥
रामश्च वालिनं हत्वा राज्यं निष्कण्टकं ददौ । सुग्रीवाय च मित्राय तद्भार्यां वालिना हृताम् ॥७१॥
सुग्रीवश्च तवोद्धारं स्वीचकार च धर्मतः । वानराश्च ययुः सर्वे तवान्वेषणकारणात् ॥७२॥
प्राप्य मङ्गलवार्तां च मत्तो राजीवलोचनः । गम्भीरं सागरं बद्ध्वा सोऽचिरेणाऽऽगमिष्यति ॥७३॥
निहत्य रावणं पापं सपुत्रं च सबान्धवम् । करिष्यत्यचिरेणैव हे मातस्तव मोक्षणम् ॥७४॥
अद्य रत्नमयीं लङ्कां निःशङ्कस्त्वत्प्रसादतः । भस्मीभूतां करिष्यामि मातः पश्य च सस्मितम् ॥७५॥
मर्कटीडिम्भतुल्यां च लङ्कां पश्यामि सुव्रते । मूत्रतुल्यं समुद्रं च शरावमिव भूतलम् ॥७६॥

---

कमल का दिन-रात ध्यान करनेवाली, शुद्धहृदया, सुशील, उत्तम व्रत करनेवाली, पतिव्रता, महालक्ष्मी के लक्षणों से युक्त, अपने तेज से प्रज्वलित, समस्त तीर्थों को पुण्य देनेवाली एवं लोक को पवित्र करनेवाली थीं ॥६४-६७॥

माता को प्रणाम करके वायुनन्दन हनुमान् ने उन्हें रोते हुए देखकर भगवान् श्रीराम की अँगूठी सहर्ष समर्पित की और उनके चरणकमल को पकड़कर धर्मात्मा हनुमान् रोने लगे। अनन्तर सीता के जीवन की रक्षा करनेवाला राम का संदेश उनसे कहा ॥६८-६९॥

**हनुमान् बोले**—समुद्र पार भगवान् श्रीराम और लक्ष्मण तैयार बैठे हैं। बलवान् वानर सुग्रीव राम के मित्र हुए हैं। भगवान् राम ने वालि को मारकर निष्कण्टक राज्य (अपने) मित्र सुग्रीव को दे दिया और वालि द्वारा अपहृत (सुग्रीव की) पत्नी भी दी। सुग्रीव ने धर्मतः तुम्हारे उद्धार के लिए प्रतिज्ञा की है। तुम्हें खोजने के लिए सभी वानर (सब ओर) गये हैं ॥७०-७२॥ हे माता! मुझसे शुभ समाचार पाकर कमल-नयन भगवान् राम गम्भीर सागर को बाँधकर अतिशीघ्र यहाँ आयेंगे और बन्धु-पुत्र समेत पापी रावण का वध करके अतिशीघ्र तुम्हें (इस संकट से) मुक्त करेंगे ॥७३-७४॥ मैं तुम्हारे प्रसाद से रत्नमयी लंका को आज भस्म कर दूंगा। तुम मुस्कराहट के साथ देखोगी ॥७५। हे सुव्रते! मैं लंका को वानरी के बच्चे की भाँति देखता हूँ। इसी प्रकार समुद्र को मूत्र तुल्य, समस्त पृथ्वी को कसोरे के समान और सेना समेत रावण

---

१ ख. शुद्धशय्यां।

पिपीलिकासंघमिव ससैन्यं रावणं तथा। संहर्तुं च समर्थोऽहं मुहूर्तार्धेन लीलया ॥७७॥
रामप्रतिज्ञारक्षार्थं न हनिष्यामि सांप्रतम्। स्वस्था भव महाभागे त्यज भीतिं मदीश्वरि ॥७८॥
वानरस्य वचः श्रुत्वा रुरोदोच्चैर्मुहुर्मुहुः। उवाच वचनं भीता सीता रामपतिव्रता ॥७९॥

## सीतोवाच

अये जीवति मे रामो मच्छोकार्णवदारुणात् ॥८०॥
अपि मे कुशली नाथः कौसल्यानन्दनः प्रभुः। कीदृशश्च कृशाङ्गश्च जानकीजीवनोऽधुना ॥८१॥
किमाहारश्च किं भुङ्क्ते मम प्राणाधिकः प्रियः। अपि पारे समुद्रस्य सत्यं सीतापतिः स्वयम् ॥८२॥
अपि सत्यं स संनद्धो न शोकेन हतः प्रभुः। अपि स्मरति मां पापां स्वामिनो दुःखरूपिणीम् ॥८३॥
मदर्थे कति दुःखं वा संप्राप स मदीश्वरः। हारो नाऽऽरोपितः कण्ठे पुरा व्यवहितो रतौ ॥८४॥
अधुनैवाऽऽवयोर्मध्ये समुद्रः शतयोजनः। अपि द्रक्ष्यामि तं रामं करुणासागरं प्रभुम् ॥८५॥
कान्तं शान्तं नितान्तं च धर्मिष्ठं धर्मकर्मणि। अपि सेवां करिष्यामि पादपद्मे पुनः प्रभोः ॥८६॥
पतिसेवाविहीनाया मूढाया जीवनं वृथा। अपि मे धर्मपुत्रश्च सत्यं जीवति लक्ष्मणः ॥८७॥

---

को चींटियों के झुंड की भाँति समझता हूँ। आधे ही मुहूर्त में मैं इसका लीलापूर्वक संहार कर सकता हूँ ॥७६-७७॥ केवल भगवान् राम की प्रतिज्ञा के रक्षार्थ इसका वध इस समय नहीं करूँगा। हे महाभागे! मेरी स्वामिनी! अब भय त्यागकर स्वस्थ हो जाओ ॥७८॥

वानर की बात सुनकर जानकी बार-बार रोने लगीं और डरी हुई राम की पतिव्रता (पत्नी) सीता यह वचन बोलीं ॥७९॥

**सीता ने कहा**—ऐ! मेरे भीषण शोकसागर से राम जीवित हैं? ॥८०॥ क्या मेरे नाथ, प्रभु, कौशल्यानन्दन कुशल से हैं? जानकी के जीवन (राम) इस समय कैसे होंगे? क्षीण अंगोंवाले होंगे ॥८१॥ मेरे प्राणों से भी अधिक प्रिय (राम) क्या आहार करते हैं? क्या खाते हैं? क्या सचमुच स्वयं सीतापति समुद्र के पार में अवस्थित हैं ॥८२॥ क्या यह सत्य है कि मेरे प्रभु यहाँ आने के लिए कटिबद्ध हैं? प्रभु शोक से निहत नहीं हुए? स्वामी के लिए दुःखस्वरूपा मुझ पापिनी का क्या वे स्मरण करते हैं? ॥८३॥ मेरे स्वामी को मेरे लिए कितना दुःख भोगना पड़ा। पहले व्यवधान के भय से हम रति-क्रीड़ा में गले में हार नहीं पहनते थे, सो इस समय हम दोनों के बीच में (व्यवधानस्वरूप) सौ योजन का समुद्र स्थित है। क्या मैं करुणासागर, सुन्दर, शान्त और धर्मिष्ठ कार्यों में नितान्त धार्मिक प्रभु राम का दर्शन करूँगी ॥८४-८५॥ क्या मैं प्रभु के चरण-कमल की सेवा पुनः कर पाऊँगी? ॥८६॥ पतिसेवा से रहित मूढ़ स्त्री का जीवन व्यर्थ है। क्या मेरे धर्मपुत्र लक्ष्मण सचमुच जीवित हैं। जो मेरे शोकसागर में सदैव मग्न रहते हैं और मेरे बिना जिनका दर्प नष्ट हो गया है, मेरे देवर वीरों में श्रेष्ठ, धर्मात्मा एवं देवतुल्य हैं। क्या वे मेरे स्वामी के छोटे भाई वास्तव

मच्छोकसागरे मग्नो भग्नदर्पो मया विना। वीराणां प्रवरो धर्मी देवकल्पश्च देवरः ॥८८॥
अपि सत्यं ससंनद्धो मत्प्रभोरनुजः सदा। अपि द्रक्ष्यामि सत्यं तं लक्ष्मणं धर्मलक्षणम् ॥
प्राणानामधिकं प्रेम्णा धन्यं पुण्यस्वरूपिणम् ॥८९॥
इत्येवं वचनं श्रुत्वा दत्त्वा प्रत्युत्तरं शुभम्। भस्मीभूतां च तां लङ्कां चकार लीलया मुने ॥९०॥
पुनः प्रबोधं तस्यै च दत्त्वा वायुसुतः कपिः। प्रययौ लीलया वेगाद्यत्र राजीवलोचनः ॥९१॥
सर्वं तत्कथयामास वृत्तान्तं मातुरेव च। सीतामङ्गलवृत्तान्तं श्रुत्वा रामो रुरोद च ॥९२॥
रुरोदोच्चैर्लक्ष्मणश्च सुग्रीवश्चापि नारद। वानरा रुरुदुः सर्वे महाबलपराक्रमाः ॥९३॥
निबध्य सेतुं लङ्कां च प्रययौ रघुनन्दनः। ससैन्यः सानुजः शीघ्रं संनद्धश्चापि नारद ॥९४॥
निहत्य रावणं रामो रणं कृत्वा सबान्धवम्। चकार मोक्षणं ब्रह्मन् सीतायाश्च शुभे क्षणे ॥९५॥
कृत्वा पुष्पकयानेन सीतां सत्यपरायणाम्। अयोध्यां प्रययौ शीघ्रं क्रीडाकौतुकमङ्गलैः ॥९६॥
क्रीडां चकार भगवान् सीतां कृत्वा च वक्षसि। विजहौ विरहज्वालां सीता रामश्च तत्क्षणम् ॥९७॥
सप्तद्वीपेश्वरो रामो बभूव पृथिवीतले। बभूव निखिला पृथ्वी आधिव्याधिविवर्जिता ॥९८॥
बभूवतू रामपुत्रौ धार्मिकौ च कुशीलवौ। तयोश्च पुत्रैः पौत्रैश्च सूर्यवंशोद्भवा नृपाः ॥९९॥

---

में कटिबद्ध हैं ? क्या प्रेम के कारण प्राणों से अधिक प्रिय, धन्य, पुण्यस्वरूप तथा धर्म के लक्षणभूत लक्ष्मण को मैं देखूंगा ? ॥८७-८९॥

हे मुने ! जानकी की इन बातों को सुनकर हनुमान् ने उन्हें मंगलमय उत्तर प्रदान किया और लंका को सहज ही में भस्म कर दिया ॥९०॥ अनन्तर वायुपुत्र हनुमान् जानकी को पुनः सान्त्वना देकर वेग से लीलापूर्वक कमलनयन भगवान् के पास चले गये ॥९१॥ वहाँ पहुँचकर माता का समस्त वृत्तान्त कह सुनाया। सीता जी का मांगलिक समाचार सुनकर राम रोदन करने लगे ॥९२॥ हे नारद ! लक्ष्मण और सुग्रीव भी उच्चस्वर से रोदन करने लगे। फिर तो महाबली एवं पराक्रमी समस्त वानरगण भी रोने लगे ॥९३॥ हे नारद ! तत्पश्चात् सेना और छोटे भाई के साथ तैयार होकर रघुनन्दन ने पुल बाँधकर लंका के लिए प्रयाण कर दिया ॥९४॥ हे ब्रह्मन् ! राम ने युद्ध ठानकर बन्धुसमेत रावण का वध किया और शुभ-क्षण में जानकी को संकट-मुक्त किया ॥९५॥ अनन्तर सत्यपरायण सीता को पुष्पक विमान में बैठाकर राम क्रीडा, कौतुक तथा मंगलों के साथ अतिशीघ्र अयोध्या पहुँच गये ॥९६॥ वहाँ भगवान् राम ने सीता को हृदय से लगाकर क्रीडा की, जिससे उन दोनों की वियोग-व्यथा उसी क्षण नष्ट हो गयी ॥९७॥ भगवान् राम इस भूतल पर सातों द्वीपों के अधीश्वर हुए और समस्त पृथ्वी आधि (मानसिक रोग), व्याधि (शारीरिक रोग) से रहित हो गयी ॥९८॥ भगवान् राम के लव-कुश नामक धार्मिक दो पुत्र हुए। उनके पुत्रों और पौत्रों से सूर्यवंशी राजा लोग उत्पन्न हुए ॥९९॥ हे वत्स ! इस प्रकार मैंने श्रीराम जी का शुभचरित तुम्हें बता दिया, जो

इति ते कथितं वत्स श्रीरामचरितं शुभम् । सुखदं मोक्षदं सारं पारपोतं भवार्णवे ॥१००॥
इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० श्रीरामचरितं
नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥६२॥

•

# अथ त्रिषष्टितमोऽध्यायः

### नारायण उवाच

अथ कंसो विचिन्त्यैवं दृष्ट्वा दुःस्वप्नमेव च । समुद्विग्नो महाभीतो निराहारो निरुत्सुकः ॥१॥
पुत्रं मित्रं बन्धुगणं बान्धवं च पुरोहितम् । समानीय सभामध्ये तानुवाच सुदुःखितः ॥२॥

### कंस उवाच

मया दृष्टो निशीथे[1] यो दुःस्वप्नो हि भयप्रदः । निबोधत बुधाः सर्वे बान्धवाश्च पुरोहिताः ॥३॥
बिभ्रती रक्तपुष्पाणां मालां सा रक्तचन्दनम् । रक्ताम्बरं खड्गतीक्ष्णं खर्परं च भयंकरम् ॥४॥

---

सुखप्रद, मोक्षदायक, तत्त्वरूप एवं भवसागर पार करने का पोत (जहाज) रूप है ॥१००॥
श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण में श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्ध में नारद-नारायण-संवाद में
श्रीरामचरित वर्णन नामक बासठवाँ अध्याय समाप्त ॥६२॥

•

# अध्याय ६३

## कंस का दुःस्वप्न-कथन

**नारायण बोले**——अनन्तर कंस ऐसा देखकर (उसे) दुःस्वप्न ही विचारकर अत्यन्त उद्विग्न, महान् भयभीत और भोजन एवं उत्सुकता से रहित हो गया ॥१॥ अत्यन्त दुःखी होकर वह अपने पुत्र, मित्र, बन्धुगण, बान्धव और पुरोहित को सभा में बुलाकर उनसे अपना दुःस्वप्न कहने लगा ॥२॥

**कंस बोला**——मैंने अर्धरात्रि में जो अत्यन्त भयदायक दुःस्वप्न देखा उसे आप सब बुधगण, बन्धुगण और पुरोहितगण सुनें ॥३॥ मेरे नगर में एक अत्यन्त वृद्धा और काले शरीरवाली स्त्री नाच रही है । वह

---

१ क. निशाशेषे ।

प्रकृत्याट्टाट्टहासं च लोलजिह्वा भयंकरी । अतीव वृद्धा कृष्णाङ्गी नगरे मम नृत्यति ॥५॥
मुक्तकेशी छिन्ननासा कृष्णा कृष्णाम्बरप्रिया । विधवा सा महाशूद्री मामालिङ्गितुमिच्छति ॥६॥
मलिनं चैलखण्डं च बिभ्रती रूक्षमूर्धजान् । दधती चूर्णतिलकं कपोलं[2] मम वक्षसि ॥७॥
कृष्णवर्णानि पक्वानि च्छिन्नभिन्नानि सत्यक । पतन्ति कृत्वा शब्दांश्च शश्वत्तालफलानि च ॥८॥
कुचैलो विकृताकारो म्लेच्छो हि रूक्षमूर्धजः । ददाति मह्यं भूषायां छिन्नभिन्नकपर्दकान् ॥९॥
महारुष्टा च दिव्या स्त्री पतिपुत्रवती सती । बभञ्ज पूर्णकुम्भं च साऽभिशप्य पुनः पुनः ॥१०॥
अम्लानामोंड्रमालां च रक्तचन्दनचर्चिताम् । ददाति मह्यं विप्रश्च महारुष्टोऽतिशप्य च ॥११॥
क्षणमङ्गारवृष्टिश्च भस्मवृष्टिः क्षणं क्षणम् । क्षणं क्षणं रक्तवृष्टिर्भवेच्च नगरे मम ॥१२॥
वानरं वायसं श्वानं भल्लूकं सूकरं खरम् । पश्यामि विकटाकारं शब्दं कुर्वन्तमुल्बणम् ॥१३॥
पश्यामि शुष्ककाष्ठानां राशिमम्लानकज्जलम् । अरुणोदयवेलायां कपींश्छिन्ननखानि च ॥१४॥
पीतवस्त्रपरिधाना शुक्लचन्दनचर्चिता । बिभ्रती मालतीमालां रत्नभूषणभूषिता ॥१५॥
क्रीडाकमलहस्ता सा सिन्दूरबिन्दुशोभिता । कृत्वाऽभिशापं मां रुष्टा याति मन्मन्दिरात्सती ॥१६॥

---

लाल फूलों की माला पहने, लाल चन्दन लगाये तथा लाल वस्त्र धारण किये स्वभावतः अट्टहास कर रही है। उसके एक हाथ में तीखी तलवार है और दूसरे में भयानक खप्पर। वह जीभ लपलपाती हुई भयंकर लग रही थी ॥४-५॥ इसी तरह एक दूसरी काली स्त्री है, जो काले कपड़े पहने हुए है, देखने में महाशूद्री विधवा जान पड़ती है, उसके केश खुले हैं और नाक कटी हुई है। वह मेरा आलिंगन करना चाहती है ॥६॥ उसने मलिन वस्त्र-खण्ड, रूखे केश तथा चूर्णतिलक धारण कर रखे हैं। हे सत्यक जी! मैंने देखा कि मेरे कपोल और छाती पर ताड़ के पके हुए काले रंग के छिन्न-भिन्न फल शब्द के साथ निरन्तर गिर रहे हैं ॥७-८॥ एक मैला-कुचैला, विकृत आकार तथा रूखे केशवाला म्लेच्छ मुझे आभूषण बनाने के लिए टूटी-फूटी कौड़ियाँ दे रहा है। एक पति-पुत्रवाली दिव्य सती स्त्री ने अत्यन्त रोष से भरकर बार-बार अभिशाप देकर पूर्ण कलश को तोड़-फोड़ डाला है ॥९-१०॥ वह भी देखा कि महान् क्रोध से भरा एक ब्राह्मण अत्यन्त शाप देकर मुझे अपनी पहनी हुई माला, जो कुम्हलायी नहीं थी और रक्तचन्दन से चर्चित थी, दे रहा है ॥११॥ यह भी देखने में आया कि मेरे नगर में एक-एक क्षण अंगार, भस्म तथा रक्त की वर्षा हो रही है ॥१२॥ मुझे दिखायी पड़ा कि भीषण आकारवाले बन्दर, कौए, कुत्ते, भालू, सूअर और गदहे विकट शब्द कर रहे हैं ॥१३॥ सूखे हुए काष्ठों की राशि जमा है, जिसकी कालिमा मिटी नहीं है ॥१४॥ अरुणोदय के समय मुझे बन्दर और कटे हुए नख दृष्टिगोचर हुए। मेरे महल से एक सती स्त्री निकली, जो पीताम्बर धारण किये श्वेत चन्दन का अंगराग लगाये, मालती की माला धारण किये तथा रत्नमय आभूषणों से विभूषित थी। उसके हाथ में क्रीडाकमल शोभा पा रहा था और भालदेश सिन्दूर-बिन्दु से सुशोभित था। वह सती रुष्ट हो मुझे शाप देकर मेरे घर से

---

२ क. कपाले।

पाशहस्तांश्च पुरुषान्मुक्तकेशान्भयंकरान् । अतिरूक्षांश्च पश्यामि विशतो नगरं मम ॥१७॥
नग्ननारी मुक्तकेशी नृत्यन्ती च गृहे गृहे । अतीव विकृताकारां पश्यामि सस्मितां सदा ॥१८॥
छिन्ननासा च विधवा महाशूद्री दिगम्बरा । सा तैलाभ्यङ्गितं मां च करोत्यतिभयंकरी ॥१९॥
निर्वाणाङ्गारयुक्ताश्च भस्मपूर्णा दिगम्बरा । अतिप्रभातसमये चित्राः पश्यामि सस्मिताः ॥२०॥
पश्यामि च विवाहं च नृत्यगीतमनोहरम्[1] । रक्तवस्त्रपरीधानान्पुरुषान्रक्तमूर्धजान् ॥२१॥
रक्तं वमन्तं पुरुषं नृत्यन्तं नग्नमुल्बणम् । धावन्तं च शयानं च पश्यामि सस्मितं सदा ॥२२॥
राहुग्रस्तं च गगने मण्डलं चन्द्रसूर्ययोः । एककाले च पश्यामि सर्वग्रासं च बान्धवाः ॥२३॥
उल्कापातं धूमकेतुं भूकम्पं राष्ट्रविप्लवम् । झञ्झावातं महोत्पातं पश्यामि च पुरोहित ॥२४॥
वायुना घूर्णमानांश्च च्छिन्नस्कन्धान्महीरुहान् । पतितान्पर्वतांश्चैव पश्यामि पृथिवीतले ॥२५॥
पुरुषं छिन्नशिरसं नृत्यन्तं नग्नमुच्छ्रितम् । मुण्डमालाकरं घोरं पश्यामि च गृहे गृहे ॥२६॥
दग्धं सर्वाश्रमं भस्मपूर्णमङ्गारसंकुलम् । हाहाकारं च कुर्वन्तं सर्वं पश्यामि सर्वतः ॥२७॥
इत्येवमुक्त्वा राजा स विरराम सभातले । दृष्ट्वा (श्रुत्वा) स्वप्नं बान्धवाश्च न तमुक्त्वा-
निशश्वसुः ॥२८॥

---

चली गयी ॥१५-१६॥ मुझे अपने नगर में कुछ ऐसे पुरुष प्रवेश करते दिखायी दिये, जिनके हाथों में फंदा था। उनके केश खुले हुए थे। वे अत्यन्त रूखे और भयंकर जान पड़ते थे ॥१७॥ घर-घर से एक नंगी स्त्री मन्द मुसकान के साथ नाचती दिखायी देती है जिसके केश खुले हैं और आकार बड़ा विकट है ॥१८॥ एक नंगी विधवा महाशूद्री जिसकी नाक कटी हुई और जो अत्यन्त भयंकर है, मेरे अंगों में तेल लगा रही है ॥१९॥ अति प्रातः ऐसी विचित्र स्त्रियाँ देखीं, जो बुझे हुए अंगार लिये हुए थीं। उनके शरीर पर कोई वस्त्र नहीं था। तथा वह सम्पूर्ण अंगों में भस्म लगाये हुए मुस्करा रही थीं ॥२०॥ सपने में मुझे नृत्य-गीत से मनोहर लगने-वाला विवाहोत्सव दिखायी दिया। कुछ ऐसे पुरुष भी दृष्टिगोचर हुए, जिनके वस्त्र और केश भी लाल थे ॥२१॥ एक नंगा पुरुष दीखा, जो देखने में भयंकर था, जो कभी रक्त वमन करता, कभी नाचता, कभी दौड़ता, कभी सो जाता और सदा मुस्कराता रहता था ॥२२॥ बन्धुओ ! एक ही समय आकाश में चन्द्रमा और सूर्य दोनों के मंडल पर सर्वग्रास ग्रहण लगा दृष्टिगोचर हुआ है। पुरोहित जी ! मैंने स्वप्न में उल्कापात, धूमकेतु, भूकम्प, राष्ट्रविप्लव, झंझावात और महान् उत्पात देखा है ॥२३-२४॥ वायु के वेग के वृक्ष झोंके खा रहे थे। उनकी डालियाँ टूट-टूटकर गिर रही थीं। पर्वत भी भूमि पर ढहे दिखायी देते थे ॥२५॥ घर-घर में ऊँचे कद का एक नंगा पुरुष नाच रहा था, जिसका सिर कटा हुआ था। उस भयानक पुरुष के हाथ में नरमुण्डों की माला दिखायी देती थी ॥२६॥ सारा आश्रम जलकर अंगार के भस्म से भर गया था और सब लोग चारों ओर हाहाकार करते दिखायी देते थे ॥२७॥ नारद ! यों कहकर राजा कंस सभा में चुप हो गया। वह स्वप्न सुनकर सब भाई-बन्धु

---

१ क. महोत्सवम् ।

जहार चेतनां सद्यः सत्यकश्च पुरोहितः। मत्वा विनाशं कंसस्य यजमानस्य नारद ॥२९॥
रुरोद नारीवर्गश्च पिता माता च शोकतः। मेने विनाशकालं च सद्यः स्वयमुपस्थितम् ॥३०॥
इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० कंसदुःस्वप्न-
कथनं नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥६३॥

●

# अथ चतुःषष्टितमोऽध्यायः

नारायण उवाच

सर्वं कृत्वा परामर्शं सत्यकश्च पुरोहितः। बुद्धिमाञ्छुक्रशिष्यश्च तमुवाच हितं मुने ॥१॥

सत्यक उवाच

भयं त्यज महाभाग भयं किं ते मयि स्थिते। कुरु यागं महेशस्य सर्वारिष्टविनाशनम् ॥२॥
यागो धनुमखो[1] नाम बह्वन्नो बहुदक्षिणः। दुःस्वप्नानां नाशकरः शत्रुभीतिविनाशकः ॥३॥

---

सिर नीचा किये लंबी साँस खींचने लगे ॥२८॥ अपने यजमान कंस के शीघ्र होनेवाले विनाश को जानकर पुरोहित सत्यक तत्काल अचेत-से हो गये। (कंस की) सभी स्त्रियाँ और माता-पिता शोक से रोने लगे। उन्होंने मान लिया कि विनाशकाल शीघ्र ही स्वयं उपस्थित होनेवाला है ॥२९-३०॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण में श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद-नारायण-संवाद-विषयक
कंस-दुःस्वप्न-कथन नामक तिरसठवाँ अध्याय समाप्त ॥६३॥

●

## अध्याय ६४

### कंस का यज्ञ-वर्णन

**नारायण बोले**—हे मुने! बुद्धिमान् एवं शुक्राचार्य के शिष्य पुरोहित सत्यक ने सभी बातों का विचार-विमर्श करके कंस से हितकर वचन कहा ॥१॥

**सत्यक ने कहा**—हे महाभाग! भय त्याग दीजिये। मेरे रहते आपको क्या भय है? सभी अमंगलों का नाशक शिव का याग कीजिये ॥२॥ धनुर्मख नाम का याग बहुत अन्न और बहुत दक्षिणावाला होता है। वह दुःस्वप्नों का नाशक और शत्रुभय को मिटानेवाला है ॥३॥ इस याग से आध्यात्मिक,

---

१ क. °नुर्मयो।

आध्यात्मिकमाधिदैवमाधिभौतिकमुत्कटम् । एषां त्रिविधोत्पातानां खण्डनो भूतिवर्धनः ।।४।।
यागे समाप्ते शंभुश्च जरामृत्युहरं वरम् । ददाति साक्षाद्भवति दाता च सर्वसंपदाम् ।।५।।
चकारेमं च यागं च पुरा बाणो महाबलः । नन्दी परशुरामश्च भल्लश्च बलिनां वरः ।।६।।
पुरा ददौ धनुरिदं शिवो नन्दीश्वराय च । यागेन भूत्वा सिद्धः स ददौ बाणाय धार्मिकः ।।७।।
कृत्वा यागं महासिद्धो ददौ रामाय पुष्करे । तुभ्यं ददौ परशुरामः कृपया च कृपानिधिः ।।८।।
सहस्रहस्तपरिमितं दैर्घ्येऽतिकठिनं नृप । दशहस्तप्रशस्तं च शंकरेच्छाविनिर्मितम् ।।९।।
पशुपतेः पाशुपतं युषतयानेन दुर्वहम् । सर्वे भङ्क्तुं न शक्ताश्च देवं नारायणं विना ।।१०।।
यागे च धनुषः पूजां शंकरस्य तु शंकरे । कुरु शीघ्रं शुभार्थं च सर्वान्कुरु निमन्त्रणम् ।।११।।
अस्मिन्यागे धनुर्भङ्गो भवेद्यदि नराधिप । विनाशो यजमानस्य भविष्यति न संशयः ।।१२।।
भग्ने धनुषि यागश्च भग्नो भवति निश्चितम् । फलं ददाति को वाऽत्र चानिष्पन्ने च कर्मणि ।।१३।।
ब्रह्मा च धनुषो मूले मध्ये नारायणः स्वयम् । अग्रे चोग्रप्रतापश्च महादेवो महामते ।।१४।।
धनुर्हि त्रिविकारं च सद्रत्नखचितं वरम् । ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डप्रभाप्रच्छन्नकारणम् ।।१५।।

---

आधिदैविक तथा उत्कट आधिभौतिक इन तीन प्रकार के उत्पातों का विनाश और ऐश्वर्य की वृद्धि होती है ।।४।। यज्ञ के समाप्त होने पर भगवान् शिव साक्षात् दर्शन देकर जरा और मृत्यु का अपहरण करनेवाला वरदान देते हैं और वह यज्ञकर्त्ता समस्त सम्पत्ति का दाता हो जाता है ।।५।। पूर्वकाल में महाबली बाणासुर, नंदी, परशुराम और बलवानों में श्रेष्ठ भल्ल ने भी इस यज्ञ को सम्पन्न किया था ।।६।। पूर्व समय में शिव ने नन्दीश्वर को यह धनुष प्रदान किया था । वे याग के द्वारा सिद्ध हो गये । उस धार्मिक (नन्दीश्वर) ने (वह धनुष) बाणासुर को दिया और याग द्वारा महासिद्ध होकर बाण ने पुष्कर-क्षेत्र में वह धनुष परशुराम को दिया एवं उन कृपानिधान ने कृपया वह धनुष तुम्हें दिया है ।।७-८।। हे नृप ! वह धनुष सहस्र हाथ लम्बा, अति कठोर, दस हाथ चौड़ा और शिव की इच्छा से सुरचित है ।।९।। पशुपति (शिव) का यह पाशुपत-अस्त्र जुती सवारी के द्वारा भी (कठिनता से ढोने योग्य) है । भगवान् नारायण के बिना सभी लोग इसे तोड़ नहीं सकते हैं ।।१०।।

शंकर के कल्याणकारक यज्ञ में धनुष-अर्चना शीघ्र करो तथा शुभ के लिए निमन्त्रण सबके पास भेजो ।।११।। हे नराधिप ! इस याग में यदि धनुष टूट जाय, तो यजमान का अवश्य विनाश होता है, इसमें संशय नहीं ।।१२।। और धनुष टूटने पर निश्चित ही यज्ञ भी भंग हो जाता है । जब यज्ञ-कर्म सम्पन्न ही नहीं होगा तो उसका फल कौन देगा ?।।१३।। हे महामते ! धनुष के मूल भाग में ब्रह्मा, मध्य में स्वयं नारायण और अग्रभाग में उग्र प्रतापवाले महादेव प्रतिष्ठित हैं ।।१४।। यह धनुष तीन विकार से युक्त, उत्तम रत्न से खचित, श्रेष्ठ और ग्रीष्म ऋतु में मध्याह्न सूर्य की प्रभा को आच्छन्न करनेवाला है ।।१५।। हे भूमिप ! महाबली

अशक्तश्च नमयितुमनन्तश्च महाबलः । सूर्यश्च कार्तिकेयश्च का कथाऽन्यस्य भूमिप ॥१६॥
त्रिपुरारिः पुराऽनेन जघान त्रिपुरं मुदा । निर्भयं कुरु स्वच्छन्दं मङ्गलाहं महोत्सवम्[1] ॥१७॥
सत्यकस्य वचः श्रुत्वा चन्द्रवंशविवर्धनः । उवाच कंसः सर्वार्थे सततं च हितैषिणम् ॥१८॥

## कंस उवाच

वसुदेवगृहे जज्ञे मद्वधो कुलनाशनः । स्वच्छन्दं नन्दगेहे च वर्धते नन्दनन्दनः ॥१९॥
मद्बन्धुवर्गाञ्छूरांश्च मन्त्रिणः सुविशारदान् । भगिनीं पूतनां पूतां जघान बालको बली ॥२०॥
गोवर्धनं दधारैककरेण बलवर्धनः । महेन्द्रस्य च शूरस्य चकार च पराभवम् ॥२१॥
ब्रह्माणं दर्शयामास ब्रह्मरूपं चराचरम् । निवहं बालवत्सानां चकार कृत्रिमं मुदा ॥२२॥
तमेव बलिनं हन्तुं मन्त्रणां कुरु सत्यक । मम शत्रुर्विना तेन नास्तीह धरणीतले ॥२३॥
नहि स्वर्गे न पाताले त्रिषु लोकेषु निश्चितम् । सन्ति सन्तश्च राजानः सर्वत्र मम बान्धवाः ॥२४॥
महातपस्वी ब्रह्मा च तपस्वी शंकरः स्वयम् । विष्णुः सर्वत्र सर्वात्मा समदर्शी सनातनः ॥२५॥
नन्दपुत्रं निहत्याहं त्रिषु लोकेषु पूजितः । सार्वभौमो भविष्यामि सप्तद्वीपेश्वरो महान् ॥२६॥

---

अनन्त, सूर्य और कार्तिकेय भी इसे झुका नहीं सकते तो अन्य की बात ही क्या है ? पूर्व समय में त्रिपुरारी शिव ने इसी के द्वारा सहर्ष त्रिपुरासुर का वध किया था । इस महोत्सव में निर्भय और स्वच्छन्द होकर मंगल कर्म करो ॥१६-१७॥ सत्यक की बात सुनकर चन्द्रवंश के अभिवर्द्धक कंस ने सभी लोगों के लिए सतत हितैषी (पुरोहित) से कहा ॥१८॥

**कंस बोला**—मेरा निहन्ता एवं कुलनाशक वह नन्दनन्दन (कृष्ण) वसुदेव के घर में उत्पन्न हुआ है और इस समय नन्द के गृह में स्वच्छन्दतापूर्वक बढ़ रहा है ॥१९॥ उस बलवान् बालक ने मेरे शूर-वीर बन्धुओं, अति निपुण मन्त्रियों और पवित्र पूतना बहिन को मार डाला है ॥२०॥ (इच्छानुसार अपने) बल को बढ़ाने-वाले उसने एक हाथ पर ही गोवर्द्धन पर्वत को धारण कर लिया था और अति शूर महेन्द्र को पराजित किया था ॥२१॥ उसने ब्रह्मा को अपना चराचर ब्रह्म रूप दिखाया था और गोप-बालकों एवं बछड़ों के कृत्रिम समूहों की सहर्ष रचना भी की थी ॥२२॥ इसलिए हे सत्यक ! उसी बलवान् के वध के लिए मन्त्रणा करो, क्योंकि इस भूतल पर उसको छोड़कर मेरा कोई शत्रु नहीं है ॥२३॥ स्वर्ग पाताल आदि तीनों लोकों में भी मेरा कोई शत्रु नहीं है, यह निश्चित है । सर्वत्र जो श्रेष्ठ राजा हैं, वे मेरे बन्धु हैं । ब्रह्मा महातपस्वी हैं और शंकर भी स्वयं तपस्वी हैं, विष्णु सर्वत्र समदर्शी एवं सनातन हैं । अतः केवल नन्द-पुत्र कृष्ण का वध करने से मैं तीनों लोकों में पूजित, सार्वभौम राजा, सातों द्वीपों का अधीश्वर एवं महान् हो जाऊँगा ॥२४-२६॥ स्वर्ग

---

१ ख. °त्सवे ।

स्वर्गं निहत्य शक्रं च दुर्बलं दैत्यनिर्जितम् । भविष्यामि महेन्द्रश्च तत्र निर्जित्य भास्करम् ॥२७॥
यक्ष्मग्रस्तं च चन्द्रं च ममैव पूर्वपूरुषम् । वायुं कुबेरं वरुणं यमं जेष्यामि निश्चितम् ॥२८॥
गच्छ नन्दव्रजं शीघ्रं नन्दं च नन्दनन्दनम् । तद्भ्रातरं च बलिनं बलमानय सांप्रतम् ॥२९॥
कंसस्य वचनं श्रुत्वा तमुवाच स सत्यकः । हितं सत्यं नीतिसारं परं सामयिकं तथा ॥३०॥

## सत्यक उवाच

अक्रूरमुद्धवं वाऽपि वसुदेवमथापि वा । प्रस्थापय महाभाग नन्दव्रजमभीप्सितम् ॥३१॥
सत्यकस्य वचः श्रुत्वा वसन्तं तत्र संसदि । स्वर्णसिंहासनस्थं च वसुदेवमुवाच सः ॥३२॥

## कंस उवाच

तत्त्वज्ञो नीतिशास्त्राणां त्वमुपायविशारदः । व्रज नन्दव्रजं बन्धो वसुदेव सुतालयम् ॥३३॥
वृषभानं च नन्दं च बलं च नन्दनन्दनम् । शीघ्रमानय यज्ञेऽत्र सर्वं गोकुलवासिनम् ॥३४॥
गृहीत्वा पत्रिकां दूता गच्छन्तु च चतुर्दिशम् । नृपान्मुनिगणान्सर्वान्कर्तुं विज्ञापनं मुदा ॥३५॥
नृपस्य वचनं श्रुत्वा शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः । उवाच वचनं ब्रह्मन् हृदयेन विदूयता ॥३६॥

## वसुदेव उवाच

नियुक्तमत्र राजेन्द्र गमनं मम सांप्रतम् । विज्ञापितुं नन्दव्रजं नन्दं वा नन्दनन्दनम् ॥३७॥

---

में दैत्यों से पराजित होने के कारण दुर्बल इन्द्र का वध करके और भास्कर को जीतकर मैं महेन्द्र हो जाऊँगा ॥२७॥ यक्ष्मारोग से ग्रस्त अपने ही पूर्वज तथा वायु, कुबेर, वरुण एवं यम को निश्चित ही मैं जीत लूंगा ॥२८॥ अतः तुम नन्द के व्रज में जाकर नन्द, नन्दनन्दन और उनके भ्राता बलदेव को यहाँ शीघ्र लाओ ॥२९॥ कंस की बात सुनकर सत्यक ने हितकर, सत्य, नीति का साररूप एवं सामयिक वचन कहा ॥३०॥

**सत्यक बोले**—हे महाभाग ! अभीष्ट नन्द के व्रज में अक्रूर, उद्धव अथवा वसुदेव को भेजिये ॥३१॥ सत्यक की बात सुनकर उसी सभा में सुवर्ण के सिंहासन पर अवस्थित वसुदेव से कंस ने कहा ॥३२॥

**कंस बोला**—हे बन्धो ! वसुदेव ! तुम नीतिशास्त्र के ममंज्ञ एवं उपाय जानने में निपुण हो । अतः अपने पुत्र के निवास-स्थान नन्दव्रज तुम्हीं चले जाओ ॥३३॥ वहाँ यज्ञ-महोत्सव बताकर वृषभान, नन्द, बलभद्र और नन्दनन्दन (कृष्ण) समेत समस्त गोकुलनिवासियों को शीघ्र यहाँ लाओ ॥३४॥ दूत लोग निमन्त्रण-पत्र लेकर राजाओं और मुनिगणों को सूचना देने के लिए चारों दिशाओं में चले जायें ॥३५॥ हे ब्रह्मन् ! राजा की ऐसी बात सुनकर वसुदेव का कण्ठ, ओंठ एवं तालू सूख गये और वे व्यथित हृदय से बोले ॥३६॥

**वसुदेव ने कहा**—हे राजेन्द्र ! इस समय मेरा जाना तथा नन्द और उनके पुत्र को बुलाना आपने

यद्यायातो नन्दपुत्रो यागे ते च महोत्सवे । अवश्यं तद्विरोधश्च भविष्यति त्वया सह ॥३८॥
तमहं च समानीय कारयिष्यामि संयुतम् । इति मे न हि भद्रं च विघ्नस्तस्य तवापि च ॥३९॥
पित्राऽऽनीतो मृतः कृष्ण इति सर्वो वदिष्यति । वसुदेवः सुतद्वारा जघान नृपमेव च ॥४०॥
द्वयोरेकतरस्यापि सद्यो मृत्युर्भविष्यति । पतिष्यन्ति च शूराश्च नास्ति युद्धं निरामिषम् ॥४१॥
वसुदेववचः श्रुत्वा रक्तपङ्कजलोचनः । खड्गं गृहीत्वा तं हन्तुं प्रययौ नृपतीश्वरः ॥४२॥
हाहेति कृत्वा पुत्रं च वारयामास तत्क्षणम् । उग्रसेनो महाराजमतीव बलवान्मुने ॥४३॥
स्वपीठाद्वसुदेवश्च कोपाविष्टो गृहं ययौ । अक्रूरं प्रेरयामास गन्तुं नन्दव्रजं नृपः ॥४४॥
दूतान्प्रस्थापयामास शीघ्रं प्रतिदिशं तथा । आययुर्मुनयः सर्वे नृपाश्च सपरिच्छदा ॥४५॥
दिक्पालाश्च सुराः सर्वे ब्राह्मणाश्च तपस्विनः । सनकश्च सनन्दश्च वोढुः पञ्चशिखस्तथा ॥४६॥
सनत्कुमारो भगवान्प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा । कपिलश्चासुरिः पैलः सुमन्तुश्च सनातनः ॥४७॥
पुलहश्च पुलस्त्यश्च भृगुश्च क्रतुरङ्गिराः । मरीचिः कश्यपश्चैव दक्षोऽत्रिश्च्यवनस्तथा ॥४८॥
भरद्वाजश्च व्यासश्च गौतमश्च पराशरः । प्रचेताश्च वसिष्ठश्च संवर्तश्च बृहस्पतिः ॥४९॥
कात्यायनो याज्ञवल्क्योऽप्युत्तङ्कः सौभरिस्तथा । पर्वतो देवलश्चैव जैगीषव्यश्च जैमिनिः ॥५०॥
विश्वामित्रश्च सुतपाः पिप्पलः शाकटायनः । जाबालिर्जाङ्गलिश्चैव[1] पिशलिश्च शिलालिकः ॥५१॥

---

निर्धारित किया है । किन्तु यदि तुम्हारे यज्ञ-महोत्सव में नन्दपुत्र का आगमन हुआ तो तुम्हारे साथ उसका विरोध अवश्य होगा ॥३७-३८॥ तो क्या मैं उसे यहाँ लाकर युद्ध कराऊँगा ? इसमें मेरा कल्याण नहीं होगा और तुम दोनों के लिए भी विघ्न होगा । लोग यही कहेंगे कि पिता ही द्वारा कृष्ण यहाँ लाकर मारे गये अथवा वसुदेव ने ही पुत्र द्वारा राजा की हत्या की ॥३९-४०॥ दोनों में से एक की तत्काल मृत्यु होगी और कितने शूरवीर भी मारे जायँगे क्योंकि युद्ध कभी निरापद नहीं होता ॥४१॥ वसुदेव की बात सुनकर राजेश्वर कंस की आँखें रक्त कमल की भाँति लाल हो गयीं । वह खड्ग लेकर वसुदेव को मारने दौड़ा ॥४२॥ हे मुने, यह देखकर बली उग्रसेन ने 'हाहा' करते हुए अपने पुत्र महाराज कंस को रोक दिया । वसुदेव भी क्रोधावेश में अपने आसन से उठकर घर चले गये । तब राजा कंस ने उन लोगों को लाने के लिए अक्रूर को नन्द के व्रज में भेजा ॥४३-४४॥ प्रत्येक दिशा में दूतों को शीघ्र भेज दिया, और मुनिगण एवं राजा लोग अपने अनुयायियों समेत आ गये ॥४५॥ दिक्पाल, समस्त देवगण, तपस्वी ब्राह्मण सनक, सनन्दन, वोढु, पञ्चशिख तथा ब्रह्मतेज से प्रज्वलित भगवान् सनत्कुमार, कपिल, आसुरि, पैल, सुमन्त, सनातन, पुलह, पुलस्त्य, भृगु, क्रतु, अङ्गिरा, मरीचि, कश्यप, दक्ष, अत्रि, च्यवन, भरद्वाज, व्यास, गौतम, पराशर, प्रचेता, वसिष्ठ, संवर्त, बृहस्पति, कात्यायन, याज्ञवल्क्य, उत्तङ्क, सौभरि, पर्वत, देवल, जैगीषव्य, जैमिनि, विश्वामित्र, सुतपा, पिप्पल, शाकटायन, जाबालि, जाङ्गलि, आपिशलि,

---

१ क. 'लाङ्ग' ।

आस्तीकश्च जगत्कारुस्तथा कल्याणमित्रकः। दुर्वासा वामदेवश्च ऋष्यशृङ्गो विभाण्डकः ॥५२॥
पथिः कविः कणादश्च कौशिकः पाणिनिस्तथा। कौत्सोऽघमर्षणश्चैव वाल्मीकिर्लोमहर्षणः ॥५३॥
मार्कण्डेयो मृकण्डुश्च पर्शुरामश्च सांकृतिः। अगस्त्यश्च तथा वान्तस्तथाऽन्ये मुनयो मुने ॥५४॥
सशिष्याश्च सपुत्राश्च ब्राह्मणाश्च तपस्विनः। जरासंधो दन्तवक्रो दाम्भिको द्रविडाधिपः ॥५५॥
शिशुपालो भीष्मकश्च भगदत्तश्च मुद्गलः। धार्तराष्ट्रो धूमकेशो धूम्रकेतुश्च शम्बरः ॥५६॥
शल्यः सत्राजितः शङ्कुर्नृपाश्चान्ये महाबलाः। भीष्मो द्रोणः कृपाचार्यो ह्यश्वत्थामा महाबलाः ॥५७॥
भूरिश्रवाश्च शाल्वश्च कैकेयः कौशलस्तथा। सर्वान्संभाषयामास महाराजो यथोचितम्
सत्यको यज्ञदिवसे चकार च शुभक्षणम् ॥५८॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० कंसयज्ञ-
कथनं नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥६४॥

---

शिलालिक, आस्तीक, जरत्कारु, कल्याणमित्र, दुर्वासा, वामदेव, शृङ्गी ऋषि, विभाण्डक, पथि, कवि, कणाद, कौशिक, पाणिनि, कौत्स अघमर्पण, वाल्मीकि, लोमहर्षण, मार्कण्डेय, मृकण्डु, पर्शुराम, सांकृति, अगस्त्य, वान्त तथा अन्य मुनिवृन्द भी आये ॥४६-५४॥ हे मुने ! शिष्यों और पुत्रों समेत तपस्वी ब्राह्मण, जरासन्ध, दन्तवक्त्र, दाम्भिक, द्रविडेश्वर, शिशुपाल, भीष्मक, भगदत्त, मुद्गल, धार्तराष्ट्र (दुर्योधन), धूमकेश, धूम्रकेतु, शम्बर, शल्य, सत्राजित, शङ्कु और अन्य महाबली नृपगण आये, भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, महाबली अश्वत्थामा, भूरिश्रवा, शाल्व, कैकेय और कौशल भी पधारे। महाराज कंस ने सबसे यथोचित बात-चीत की और सत्यक ने यज्ञ के दिन शुभकृत्य का सम्पादन किया ॥५५-५८॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण में श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद-नारायण-संवाद-विषयक
कंसयज्ञकथन नामक चौसठवाँ अध्याय समाप्त ॥६४॥

# अथ पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

## नारायण उवाच

कंसस्य वचनं श्रुत्वा सोऽक्रूरो धर्मिणां वरः। उवाच चोद्धवं शान्तं शान्तः प्रहृष्टमानसः ॥१॥

## अक्रूर उवाच

सुप्रभाताऽद्य रजनी बभूव मे शुभं दिनम्। तुष्टाश्च गुरवो विप्रा देवा मामिति निश्चितम् ॥२॥
कोटिजन्मार्जितं पुण्यं मम स्वयमुपस्थितम्। बभूव मे समुत्पन्नं यद्यत्कर्म शुभाशुभम् ॥३॥
चिच्छेद बन्धनिगडं मम बद्धस्य कर्मणा। कारागाराश्च संसारान्मुक्तो यामि हरेःपदम् ॥४॥
सुहृदर्थो कृतोऽहं च कंसेन विदुषा रुषा। वरेण तुल्यो देवस्य क्रोधो मम बभूव ह ॥५॥
व्रजराजं समाहर्तुं[1] व्रजं यास्यामि सांप्रतम्। द्रक्ष्यामि परमं पूज्यं भुक्तिमुक्तिप्रदायिनम् ॥६॥
नवीनजलदश्यामं नीलेन्दीवरलोचनम्। पीतवस्त्रसमायुक्तकटिदेशविराजितम् ॥७॥
धूलिधूसरिताङ्गं च किंवा चन्दनर्चचितम्। अथवा नवनीताक्तमङ्गं द्रक्ष्यामि सस्मितम् ॥८॥

---

# अध्याय ६५

## अक्रूर का हर्षोत्कर्ष

**नारायण बोले**—कंस की बात सुनकर धर्मात्माओं में श्रेष्ठ, शान्त और अत्यन्तहर्षितचित्त अक्रूर ने शान्त उद्धव से कहा ॥१॥

**अक्रूर बोले**—आज हमारी रात सुप्रभात हुई, दिवस शुभ है तथा गुरु, ब्राह्मण और देवता निश्चित ही मुझ पर प्रसन्न हैं ॥२॥ मेरा करोड़ों जन्म का अर्जित पुण्य स्वयं उपस्थित हुआ है। मेरा जो-जो शुभाशुभ कर्म था, वह सब उत्पन्न हो गया। कर्म से बँधे हुए मुझ अक्रूर का बंधन आज कर्म ने ही काट दिया। मैं संसार रूपी कारागार से मुक्त होकर हरि के धाम को जा रहा हूँ ॥३-४॥ विद्वान् कंस ने रोषवश मुझे मित्रार्थी बना दिया। इसलिए महाराज का क्रोध मेरे लिए वरदान के समान हो गया है ॥५॥ मैं इस समय व्रजराज श्रीकृष्णचन्द्र को लाने के लिए व्रज में जाऊँगा और वहाँ भोग-मोक्ष के दाता परम पूज्य (श्रीकृष्ण) का दर्शन करूँगा ॥६॥ नवीन मेघ के समान श्यामल, नील कमल के समान नेत्रवाले और कटि प्रदेश में पीताम्बर से भूषित वे भगवान् या तो धूलि से धूसरित होंगे या चन्दन से चर्चित होंगे। अथवा उनके अंगों में मक्खन लगा होगा और वे मुस्करा रहे होंगे। इस रूप में उन्हें देखूंगा ॥७-८॥ अथवा विनोद के लिए

---

[1] क. समुद्धर्तुं।

किंवा विनोदमुरलीं वादयन्तं मनोहरम् । किंवा गवां समूहं च चारयन्तमितस्ततः ॥९॥
किंवा वसन्तं गच्छन्तं शयानं वा सुनिश्चितम् । निद्रेशं कीदृशं चाद्य सुदृष्ट्वा च शुभे क्षणे ॥१०॥
यत्पादपद्मं ध्यायन्ते ब्रह्मविष्णुशिवादयः । न हि जानाति यस्यान्तमनन्तोऽनन्तविग्रहः ॥११॥
यत्प्रभावं न जानन्ति देवाः सन्तश्च संततम् । यस्य स्तोत्रे जडीभूता भीता देवी सरस्वती ॥१२॥
दासीनियुक्ता यद्दास्ये महालक्ष्मीश्च लक्षिता । गङ्गा यस्य पदाम्भोजान्निःसृता सत्त्वरूपिणी ॥१३॥
जन्ममृत्युजराव्याधिहरा त्रिभुवनात्परा । दर्शनस्पर्शनाभ्यां च नृणां पातकनाशिनी ॥१४॥
ध्यायते यत्पदाम्भोजं दुर्गा दुर्गविनाशिनी[1] । त्रैलोक्यजननी देवी मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥१५॥
लोम्नां कूपेषु विश्वानि महाविष्णोश्च यस्य च । असंख्यानि विचित्राणि स्थूलात्स्थूलतरस्य च ॥१६॥
स च यत्षोडशांशश्च यस्य सर्वेश्वरस्य च । तं द्रष्टुं यामि हे बन्धो मायामानुषरूपिणम् ॥१७॥
सर्वं सर्वान्तरात्मानं सर्वज्ञं प्रकृतेः परम् । ब्रह्मज्योतिःस्वरूपं च भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥१८॥
निर्गुणं च निरीहं च निरानन्दं निराश्रयम् । परमं परमानन्दं सानन्दं नन्दनन्दनम् ॥१९॥
स्वेच्छामयं सर्वपरं सर्वबीजं सनातनम् । वदन्ति योगिनः शश्वद्ध्यायन्तेऽहर्निशं शिशुम् ॥२०॥

---

मनोहर मुरली बजाते हुए या गौओं के समूह को इधर-उधर चराते हुए उन्हें देखूंगा ॥९॥ अथवा बैठे हुए या चलते-फिरते हुए अथवा सोते हुए निद्रापति भगवान् को निश्चित रूप से देखूंगा । शुभ क्षण में उन्हें देखकर कैसा आनन्द प्राप्त करूँगा ॥१०॥

ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव आदि देवगण जिसके चरण-कमल का ध्यान करते हैं और अनन्त शरीरधारी अनन्तदेव भी जिसका अन्त नहीं जानते हैं ॥११॥ जिसके प्रभाव को देवगण और महात्मा लोग भी सतत नहीं जानते हैं, जिसकी स्तुति करने में सरस्वती देवी भीत एवं जड़वत् दिखायी देती हैं ॥१२॥ जिसकी सेवा करने के लिए महालक्ष्मी दासी रूप में नियुक्त हैं और जिसके चरण-कमल से सत्त्वस्वरूपा गंगा निकली हैं, जो कि जन्म, मृत्यु, जरा एवं व्याधि का अपहरण करनेवाली, तीनों लोकों में सर्वश्रेष्ठ और दर्शन-स्पर्शन करने से मनुष्यों के पातक का नाश करनेवाली हैं ॥१३-१४॥ जिसके चरण-कमल का ध्यान दुर्गा जी करती हैं, जो कठोर दुःखनाशिनी, तीनों लोकों की जननी, देवी एवं ईश्वरी मूल प्रकृति हैं ॥१५॥ जिस महाविष्णु के लोम-कूपों में असंख्य एवं विचित्र ब्रह्माण्ड निहित हैं एवं जो स्थूल से स्थूलतर है, वह जिस सर्वेश्वर का षोडशांश (सोलहवाँ अंश) है, हे बन्धो ! मैं उसी का दर्शन करने जा रहा हूँ । वह मायामनुष्य रूप, सबका अन्तरात्मा, सर्वज्ञाता, प्रकृति से परे, ब्रह्मज्योतिरूप, भक्त के अनुग्रहार्थ शरीरधारी, निर्गुण, निरीह, आनन्दरहित, आश्रय-रहित, परम, परमानन्दस्वरूप, आनन्दकन्द, नन्दनन्दन, स्वेच्छामय, सबसे परे, सबका कारण और सनातन कहा जाता है । उसके बालरूप का योगी लोग दिन-रात निरन्तर ध्यान करते रहते हैं ॥१६-२०॥

---

१ ख. दुर्गार्तिना° ।

मन्वन्तरसहस्रं च निराहारः कृशोदरः। पद्मे पाद्मस्तपस्तेपे पुरा पाद्मं तु यत्कृते ॥२१॥
पुनः कुरु तपस्यां च तदा द्रक्ष्यसि मामिति। सकृच्छब्दं च शुश्राव न ददर्श तथाऽपि तम् ॥२२॥
तावत्कालं पुनस्तप्त्वा वरं प्राप ददर्श तम्। ईदृशं परमेशं च द्रक्ष्याम्यद्य तमुद्धव ॥२३॥
पुरा शंभुस्तपस्तेपे यावद्वै ब्रह्मणो वयः। ज्योतिर्मण्डलमध्ये च गोलोके तं ददर्श सः ॥२४॥
सर्वतत्त्वं सर्वसिद्धं[1] ममतत्त्वं परं वरम्। संप्राप तत्पदाम्भोजे भक्ति च निर्मलां पराम् ॥२५॥
चकाराऽऽत्मसमं तं च यो भक्तो(क्तं)भक्तवत्सलः। ईदृशं परमेशं च द्रक्ष्याम्यद्य तमुद्धव ॥२६॥
सहस्रशक्रपातान्तं निराहारः कृशोदरः। यस्यानन्तस्तपस्तेपे भक्त्या च परमात्मनः ॥२७॥
तदा चाऽऽत्मसमं ज्ञानं ददौ तस्मै य ईश्वरः। ईदृशं परमेशं च द्रक्ष्याम्यद्य तमुद्धव ॥२८॥
सहस्रशक्रपातान्तं धर्मस्तेपे च यत्तपः। तदा बभूव साक्षी स धर्मिणां सर्वकर्मिणाम् ॥२९॥
शास्ता च फलदाता च यत्प्रसादान्नृणामिह। सर्वेशमीदृशमहो द्रक्ष्याम्यद्य तमुद्धव ॥३०॥
अष्टाविंशतिरिन्द्राणां पतने यद्दिवानिशम्। एवं क्रमेण मासाब्दैः शताब्दं ब्रह्मणो वयः ॥३१॥

---

पहले पाद्मकल्प में कमलजन्मा, ब्रह्मा ने कमल पर बैठकर एक सहस्र मन्वन्तरों तक श्रीकृष्णदर्शन के लिए तप किया था, जिसमें निराहार रहने से उनका पेट पीठ में सट गया था। तब उन्हें एक बार यह शब्द मात्र सुनायी दिया कि 'फिर तपस्या करो, तब मुझे देखोगे।' (किन्तु इतनी बड़ी तपस्या करने पर भी) वे भगवान् का दर्शन न पा सके ॥२१-२२॥ हे उद्धव ! उतने ही समय तक उन्होंने पुनः तप किया, तब कहीं वरदान समेत उन्हें दर्शन प्राप्त हुआ। ऐसे परमेश्वर का मैं आज दर्शन करूँगा ॥२३॥ प्राचीन समय में ब्रह्मा की आयु के समान काल तक शिव ने तप किया, तब गोलोक में ज्योतिर्मण्डल के मध्य उनका रूप उन्हें दिखायी पड़ा ॥२४॥ समस्त तत्त्व और सम्पूर्ण सिद्धि समेत श्रेष्ठ तत्त्व और उनके चरण-कमल की निर्मल एवं श्रेष्ठ भक्ति उन्हें प्राप्त हुई। भक्तवत्सल भगवान् ने उन्हें अपने समान कर दिया। हे उद्धव ! ऐसे ही परमेश्वर का मैं आज दर्शन करूँगा ॥२५-२६॥ हे उद्धव ! सहस्र इन्द्रों के समान काल तक अनन्त ने जिस परमात्मा का भक्तिपूर्वक निराहार एवं क्षीणोदर रहकर तप किया और तब जिस ईश्वर ने उन्हें अपने समान ज्ञान प्रदान किया, ऐसे परमात्मा का आज मैं दर्शन करूँगा ॥२७-२८॥ सहस्र इन्द्रों की आयु के समान काल तक धर्म ने जिसका तप किया और तब वे समस्त धर्मात्माओं के कर्मों के साक्षी बनाये गये एवं जिसकी कृपा से वे मनुष्यों पर शासन करनेवाले एवं उनके कर्म के फलदाता हुए, हे उद्धव ! ऐसे सर्वाधीश्वर का आज मैं दर्शन करूँगा ॥२९-३०॥ अट्ठाईस इन्द्रों के विनष्ट होने पर जिसका एक दिन और एक रात होती है, इस क्रम से मास, वर्ष व्यतीत होने पर सौ वर्ष की आयु ब्रह्मा की होती है और ब्रह्मा की समस्त आयु व्यतीत होने पर जिसका एक

---

१ क. 'सिद्धममरत्वं।

अहो यस्य निमेषेण ब्रह्मणः पतनं भवेत्। ईदृशं परमात्मानं द्रक्ष्याम्यद्य तमुद्धव ॥३२॥
नास्ति भूरजसा संख्या यथैव ब्रह्मणां तथा। तथैव बन्धो विश्वानां तदाधारो महाविराट् ॥३३॥
विश्वे विश्वे च प्रत्येकं ब्रह्मविष्णुशिवादयः। मुनयो मनवः सिद्धा मानवाद्याश्चराचराः ॥३४॥
यत्षोडशांशः स विराट् सृष्टो नष्टश्च लीलया। ईदृशं सर्वशास्तारं द्रक्ष्याम्यद्य तमुद्धव ॥३५॥
इत्येवमुक्त्वाऽक्रूरश्च पुलकाञ्चितविग्रहः। मूर्च्छां प्राप साश्रुनेत्रो दध्यौ तच्चरणाम्बुजम् ॥३६॥
बभूव भक्तिपूर्णश्च स्मारं स्मारं पदाम्बुजम्। कृत्वा प्रदक्षिणं वाऽपि कृष्णस्य परमात्मनः ॥३७॥
उद्धवश्च तमाश्लिष्य प्रशशंस पुनः पुनः। स च शीघ्रं ययौ गेहमक्रूरोऽपि स्वमन्दिरम् ॥३८॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० अक्रूरहर्षोत्कर्षकथनं
नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥६५॥

●

---

निमेष (पल भांजना) होता है, ऐसे परमात्मा का आज मैं दर्शन करूँगा ॥३१-३२॥ हे बन्धो ! जिस प्रकार पृथिवी के रज की संख्या नहीं है, उसी भाँति ब्रह्मा की संख्या नहीं है और उसी प्रकार ब्रह्माण्ड की संख्या नहीं है जिसके आधार महाविराट् हैं। प्रत्येक विश्व में पृथक्-पृथक् ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव आदि देवगण हैं और मुनिगण, मनुवृन्द, सिद्ध एवं मानव आदि चर-अचर हैं, वह विराट् जिसका षोडशांश (सोलहवाँ भाग) है और जिसके द्वारा वह लीला की भाँति उत्पन्न एवं नष्ट होता रहता है, ऐसे सर्वशासनकर्त्ता परमेश्वर को आज मैं देखूंगा ॥३३-३५॥ इतना कहने पर अक्रूर के शरीर में रोमाञ्च हो आया, नेत्रों में आनन्द के आंसू भर आये। उन्हें मूर्च्छा-सी आ गयी। अनन्तर वे भगवान् के चरण-कमल का ध्यान करने लगे ॥३६॥ परमात्मा कृष्ण के चरण-कमल का बार-बार स्मरण करके वे भक्तिपूर्ण हो गये। उन्होंने परमात्मा कृष्ण की प्रदक्षिणा भी की। अनन्तर उद्धव ने अक्रूर का आलिंगन करके बार-बार उनकी प्रशंसा की। इसके बाद वे शीघ्र अपने घर चले गये और अक्रूर भी घर गये ॥३७-३८॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण में श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद-नारायण-संवाद में
अक्रूर के अतिशय हर्षकथन नामक पैंसठवाँ अध्याय समाप्त ॥६५॥

●

# अथ षट्षष्टितमोऽध्यायः

### नारायण उवाच

अथ रासेश्वरीयुक्तो रासे रासेश्वरः स्वयम् । स च रेमे तया सार्धमतीव रमणोत्सुकः ॥१॥
सुखसंभोगमात्रेण ययौ निद्रां च राधिका । दृष्ट्वा स्वप्नं समुत्थाय दीनोवाच प्रियं दिने ॥२॥

### राधिकोवाच

अहो स्वामिन्निहाऽऽगच्छ त्वां करोमि स्ववक्षसि । परिणामे विधाता मे न जाने किं करिष्यति ॥३॥
इत्युक्त्वा सा महाभागा प्रियं कृत्वा स्ववक्षसि । दुःस्वप्नं कथयामास हृदयेन विदूयता ॥४॥

### राधिकोवाच

रत्नसिंहासनेऽहं च रत्नच्छत्रं च बिभ्रती । तदातपत्रं जग्राह रुष्टो विप्रश्च मे प्रभो ॥५॥
सागरे कज्जलाकारे महाघोरे च दुस्तरे । गभीरे प्रेरयामास मामेव दुर्बलां स च ॥६॥
तत्र स्रोतसि शोकार्ता भ्रमामि च मुहुर्मुहुः । महोर्मीणां च वेगेन व्याकुला नक्रसंकुले ॥७॥

---

# अध्याय ६६

## राधा का शोक-निवारण

**नारायण बोले**—रासेश्वर भगवान् कृष्ण ने रमणोत्सुक होकर रासमण्डल में रामेश्वरी राधा के साथ विहार किया ॥१॥ उनसे सुख-सम्भोग करने मात्र से राधिका को नींद आ गयी। उन्होंने स्वप्न देखा, जिससे उठकर बैठ गयीं और दीनभाव से प्रियतम भगवान् कृष्ण से दिन में कहने लगीं ॥२॥

**राधिका बोलीं**—हे स्वामिन् ! आओ, यहाँ आओ, तुम्हें अपने हृदय से लगा लूं, क्योंकि विधाता परिणाम में न जाने क्या करेंगे ॥३॥ इतना कहकर वह महाभाग्यशालिनी (राधा) प्रियतम को अपनी छाती से लगाकर दुःखित हृदय से दुःस्वप्न कहने लगीं ॥४॥

**राधिका बोलीं**—हे प्रभो ! रत्नसिंहासन पर बैठी हुई मैं रत्नछत्र धारण किये हुए थी। उस समय एक ब्राह्मण ने रुष्ट होकर मेरे हाथ से वह छत्र ले लिया ॥५॥ उसने मुझ दुर्बला को महाघोर, दुस्तर एवं अथाह कज्जलाकार सागर में ढकेल दिया ॥६॥ मैं शोकपीड़ित होकर उस सागर में बार-बार चक्कर काटने लगी। मगरों से व्याप्त उस सागर में बड़ी-बड़ी लहरों के वेग से मैं अति व्याकुल हो गयी। 'हे नाथ ! मेरी रक्षा

त्राहि त्राहीति हे नाथ त्वां वदामि पुनः पुनः । त्वां न दृष्ट्वा महाभीता करोमि प्रार्थनां सुरम् ॥८॥
कृष्ण तत्र निमज्जन्ती पश्यामि चन्द्रमण्डलम् । निपतन्तं च गगनाच्छतखण्डं च भूतले ॥९॥
क्षणान्तरे च पश्यामि गगनात्सूर्यमण्डलम् । बभूव च चतुःखण्डं निपत्य धरणीतले ॥१०॥
एककाले च गगने मण्डलं चन्द्रसूर्ययोः । अतीव कज्जलाकारं सर्वं ग्रस्तं च राहुणा ॥११॥
क्षणान्तरे च पश्यामि ब्राह्मणो दीप्तिमानिति । मत्क्रोडस्थं सुधाकुम्भं बभञ्ज च रुषेति च ॥१२॥
क्षणान्तरे च पश्यामि महारुष्टं च ब्राह्मणम् । गृहीत्वा च व्रजन्तं च चक्षुषोः[1] पुरुषं मम ॥१३॥
क्रीडाकमलदण्डं च हस्ताद्ध्वस्तं मम प्रभो । सहसा खण्डखण्डं च बभूव सह हेतुना ॥१४॥
हस्ताद्ध्वस्तश्च सहसा सद्रत्नसारदर्पणः । निर्मलः कज्जलाकारः खण्डखण्डो बभूव ह ॥१५॥
हारो मे रत्नसाराणां छिन्नो भूत्वा च वक्षसः । अतीव मलिनं पद्मं पपात धरणीतले ॥१६॥
सौधपुत्तलिकाः सर्वा नृत्यन्ति च हसन्ति च । आस्फोटयन्ति गायन्ति रुदन्ति च क्षणं क्षणम् ॥१७॥
कृष्णवर्णं बृहच्चक्रं खे भ्रमन्तं मुहुर्मुहुः । निपतन्तं चोत्पतन्तं पश्यामि च भयंकरम् ॥१८॥
प्राणाधिदेवः पुरुषो निःसृत्याभ्यन्तरान्मम । राधे विदायं[2] देहीति ततो यामीत्युवाच ह ॥१९॥

---

करो, मेरी रक्षा करो' मैं यही बार-बार कहने लगी । तुम्हें न देखकर मैं बहुत भयभीत हुई और देवता की प्रार्थना करने लगी ॥७-८॥ हे कृष्ण ! समुद्र में डूबती हुई मैंने देखा कि चन्द्रमण्डल के सैकड़ों टुकड़े हो गये हैं, और वह आकाश से पृथ्वी पर गिर रहा है ॥९॥ दूसरे ही क्षण में सूर्यमण्डल को भी देखा, जो आकाश से भूतल पर गिरा और उसके चार टुकड़े हो गये ॥१०॥ फिर एक ही काल में आकाश में चन्द्र और सूर्य के मण्डलों को मैंने पूर्णतः राहु से ग्रस्त और अत्यन्त काला देखा ॥११॥ पुनः क्षण भर बाद मैंने देखा कि—एक तेजस्वी ब्राह्मण ने मेरे अङ्क से सुधाकलश छीनकर क्रोधावेश में फोड़ दिया ॥१२॥ पुनः देखा कि—वह महारुष्ट ब्राह्मण मेरे नेत्रगत पुरुष को पकड़कर ले जा रहा है ॥१३॥ हे प्रभो ! मेरे हाथ से वह क्रीड़ा-कमल-दण्ड सहसा गिर पड़ा और उसके खण्ड-खण्ड हो गये । उत्तम रत्नसागर का निर्मल दर्पण सहसा हाथ से गिरकर टूक-टूक हो गया तथा जो पहले निर्मल था वह कज्जलाकार हो गया ॥१४-१५॥ रत्नसार का मेरा हार वक्षःस्थल से खिसककर छिन्न-भिन्न हो गया और कमल अत्यन्त मलिन होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥१६॥

मेरी अट्टालिका की सभी पुतलियाँ नृत्य कर रहीं थीं, हँस रही थीं । क्षण में ताल ठोंक रही थीं और क्षण में गाती और रोदन करती थीं ॥१७॥ काले वर्ण का बहुत बड़ा चक्र आकाश में बार-बार घूम रहा था । वह भयंकर चक्र नीचे गिरता और ऊपर उठता था ॥१८॥ मेरे प्राणों का अधिष्ठाता देवता पुरुष रूप में भीतर से निकलकर कह रहा था—हे राधे ! मुझे विदा करो, मैं जा रहा हूँ ॥१९॥ काले रङ्ग की प्रतिमा, काले

---

१ क. °क्षुपा । २ ख. °दार्य !

कृष्णवर्णा च प्रतिमा मामाश्लिष्यति चुम्बति । कृष्णवस्त्रपरीधाना चेति पश्यामि सांप्रतम् ॥२०॥
इतीदं विपरीतं च दृष्ट्वा च प्राणवल्लभ । नृत्यन्ति दक्षिणाङ्गानि प्राणा आन्दोलयन्ति मे ॥२१॥
रुदन्ति शोकात्कर्षन्ति समुद्विग्नं च मानसम् । किमिदं किमिदं नाथ वद वेदविदां वर ॥२२॥
इत्युक्त्वा राधिका देवी शुष्ककण्ठोष्ठतालुका । पपात तत्पदाम्भोजे भीता सा शोकविह्वला ॥२३॥
श्रुत्वा स्वप्नं जगन्नाथो देवीं कृत्वा स्ववक्षसि । आध्यात्मिकेन योगेन बोधयामास तत्क्षणम् ॥२४॥
तत्याज शोकं सा देवी ज्ञानं संप्राप्य निर्मलम् । शान्तं च भगवन्तं च कृत्वा कान्तं स्ववक्षसि ॥२५॥

इति० श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० राधाशोका-
पनोदने षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥६६॥

⊙

## अथ सप्तषष्टितमोऽध्यायः

**नारायण उवाच**

विरहव्याकुलां दृष्ट्वा कामिनीं काममोहनः । कृत्वा वक्षसि तां कृष्णो ययौ क्रीडासरोवरम् ॥१॥

---

रङ्ग का वस्त्र पहने मेरा आलिङ्गन-चुम्बन करती है ऐसा मैंने देखा ॥२०॥ हे प्राणवल्लभ ! इस प्रकार विपरीत स्वप्न देखकर मेरे दाहिने अंग फड़क रहे हैं, प्राण आकुल हो रहे हैं और शोक की अधिकता से रोदन कर रहे हैं एवं मन अत्यन्त उद्विग्न हो रहा है । हे नाथ ! हे वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ ! मुझे शीघ्र बताओ, यह क्या है ॥२१-२२॥ इतना कहकर राधिका देवी, जिनके कण्ठ, ओंठ और तालू सूख गये थे, शोकाकुल और भयभीत होकर उनके चरण-कमल पर गिर पड़ीं ॥२३॥ अनन्तर जगत् के नाथ भगवान् कृष्ण ने स्वप्न सुनकर उन्हें अपने हृदय से लगा लिया और आध्यात्मिक योग द्वारा उसी क्षण प्रबोधित किया ॥२४॥ इस प्रकार निर्मल ज्ञान प्राप्त होने पर देवी का शोक नष्ट हो गया और उन्होंने शान्त एवं कान्त भगवान् को छाती से लगा लिया ॥३५॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण में श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्ध में नारद-नारायण-संवाद-विषयक
राधाशोक-निवारण नामक छाछठवाँ अध्याय समाप्त ॥६६॥

⊙

## अध्याय ६७

### आध्यात्मिक योग-कथन

**नारायण बोले**—काम-मोहन भगवान् कृष्ण ने अपनी प्रियतमा कामिनी को विरह से आकुल देखकर उन्हें अपने हृदय से लगाया और क्रीड़ा-सरोवर की ओर चल पड़े ॥१॥ हे मुने ! उस समय भगवान् कृष्ण के

राजराजेश्वरी राधा कृष्णवक्षसि राजते। सौदामिनीव जलदे नवीने गगने मुने ॥२॥
रेमे स रमया सार्धं कृपया च कृपानिधिः। द्वयोर्द्वयोर्यथा स्वर्णमण्योर्मारकतो मणिः ॥३॥
रत्ननिर्माणपर्यङ्के रत्नेन्द्रसारनिर्मिते। रत्नप्रदीपे ज्वलति रत्नभूषणभूषितः ॥४॥
रत्नभूषणभूषितया रासरत्नश्च[1] कौतुकात्। रसरत्नाकरे रम्ये निमग्नो रसिकेश्वरः ॥५॥
रासे रासेश्वरी राधा रासेश्वरमुवाच सा। सुरतौ विरतौ सत्यां विरते न मनोरथे ॥६॥

## राधिकोवाच

प्रफुल्लाऽहं त्वया नाथ मृता म्लाना च त्वां विना। यथा महोषधिगणः प्रभाते भाति भास्करे ॥७॥
नक्तं दीपशिखेवाहं त्वया सार्धं त्वया विना। दिने दिने यथा क्षीणा कृष्णपक्षे विधोः कला ॥८॥
तव वक्षसि मे दीप्तिः पूर्णचन्द्रप्रभासमा। सद्यो मृता त्वया त्यक्ता कुह्वां चन्द्रकला यथा ॥९॥
ज्वलदग्निशिखेवाहं घृताहुत्या त्वया सह। त्वया विनाऽहं निर्वाणा शिशिरे पद्मिनी यथा ॥१०॥
चिन्ताज्वरजराग्रस्ता मत्तस्त्वयि गतेऽप्यहम्। अस्तंगते रवौ चन्द्रे ध्वान्तग्रस्ता धरा यथा ॥११॥
भ्रष्टो वेषस्त्वां विना मे रूपयौवनचेतनम्। तारावली परिभ्रष्टा सूर्यसूतोदये यथा ॥१२॥

---

अंक में राजराजेश्वरी राधा उसी भाँति शोभित होने लगीं जैसे आकाशस्थ नये मेघ में बिजली ॥२॥ कृपानिधान कृष्ण ने कृपा करके रमणी (राधा) के साथ रमण किया। उन दोनों में श्रीकृष्ण उसी तरह सुशोभित हुए जैसे दो स्वर्णमणियों में मरकतमणि ॥३॥ रत्न के बने पलँग पर जो रत्नेन्द्र के सारभाग से निर्मित था, और जहाँ रत्न का प्रदीप जल रहा था, रत्नों के भूषणों से भूषित रासरत्न और रसिकेश्वर भगवान् कृष्ण, रत्नों के भूषणों से भूषित रासेश्वरी (राधा) के साथ रमणीक रस-सागर में निमग्न हो गये ॥४-५॥ रास में सुरतोपभोग से विरत होने पर किन्तु मनोरथ के अपूर्ण रहने पर रासेश्वरी राधा ने रासेश्वर कृष्ण से कहा ॥६॥

**राधिका बोलीं**—हे नाथ ! तुम्हारे साथ मैं प्रफुल्लित रहती हूँ और तुम्हारे बिना उसी प्रकार मृत एवं म्लान हो जाती हूँ जिस प्रकार महोषधियों का समूह प्रातःकाल प्रफुल्लित रहता है और सूर्य के चमकने पर म्लान हो जाता है ॥७॥ रात्रि में दीपक की लौ की भाँति मैं तुम्हारे साथ चमकती हूँ और तुम्हारे बिना कृष्णपक्ष में चन्द्रकला की भाँति प्रतिदिन क्षीण होती रहती हूँ ॥८॥ तुम्हारे वक्षःस्थल पर मैं पूर्ण चन्द्र के समान प्रकाशमान रहती हूँ और तुमसे रहित होने पर उसी तरह सद्यः नष्ट हो जाती हूँ जैसे अमावस्या में चन्द्रकला ॥९॥ तुम्हारे साथ मैं घृत की आहुति द्वारा प्रज्वलित अग्निशिखा की भाँति रहती हूँ और तुम्हारे बिना शिशिर काल में पद्मिनी की भाँति शीर्ण हो जाती हूँ ॥१०॥ मेरे पास से जब तुम चले जाते हो, तो मैं चिन्तारूपी ज्वर और जरा से ग्रस्त हो जाती हूँ, जैसे सूर्य-चन्द्रमा के अस्त होने पर पृथ्वी अन्धकार से ग्रस्त हो जाती है ॥११॥ तुम्हारे बिना यह मेरा वेश, रूप, यौवन और चेतना उसी प्रकार नष्ट हो जाती है, जिस प्रकार अरुणोदय होने पर तारों की पंक्ति ॥१२॥ तुम सभी के

---

१ क. रासो रत्नेन कौ°।

त्वमेवाऽऽत्मा च सर्वेषां मम नाथो विशेषतः । तनुर्यथाऽऽत्मना त्यक्ता तथाऽहं च त्वया विना ॥१३॥
पञ्चप्राणात्मकस्त्वं मे मृताऽहं च त्वया विना । दृष्टेश्च गोलकौ यद्वद्दृष्टिः पुत्तलिकां विना ॥१४॥
स्थलं यथा चित्रयुक्तं त्वया सार्धमहं तथा । असंस्कृता त्वया हीना तृणाच्छन्ना यथा मही ॥१५॥
त्वया सार्धमहं कृष्ण चित्रयुक्तेव मृन्मयी । त्वां विना जलधौताऽहं विरूपा मृन्मयीव च ॥१६॥
गोपाङ्गनानां शोभा च त्वया रासेश्वरेण च । हारे स्वर्णविकारे च श्वेतेन मणिना सह ॥१७॥
व्रजराज त्वया सार्धं राजन्ते राजराजयः । यथा चन्द्रेण नभसि ताराराजिर्विराजते ॥१८॥
त्वया शोभा यशोदाया नन्दस्य नन्दनन्दन । यथा शाखाफलस्कन्धैस्तरुराजिर्विराजते ॥१९॥
त्वया सार्धं गोकुलेश शोभा गोकुलवासिनाम् । यथा सर्वा लोकाराजी राजेन्द्रेण विराजते ॥२०॥
रासस्यापि च रासेश त्वया शोभा मनोहरा । राजते देवराजेन यथा स्वर्गेऽमरावती ॥२१॥
वृन्दावनस्य वृक्षाणां त्वं च शोभा पतिर्गतिः । अन्येषां च वनानां च बलवान्केसरी यथा ॥२२॥
त्वया विना यशोदा च निमग्ना शोकसागरे । अप्राप्य वत्सं सुरभिः क्रोशन्ती व्याकुला यथा ॥२३॥

---

आत्मा हो, किन्तु मेरे विशेष रूप से नाथ भी हो । तुम्हारे विना मैं आत्मारहित शरीर की भाँति रहती हूँ ॥१३॥ तुम हमारे पाँचों प्राण हो, इसीलिए तुम्हारे विना मैं मृतक हो जाती हूँ । जिस प्रकार पुतली बिना दोनों नेत्रगोलक व्यर्थ हो जाते हैं ॥१४॥ तुम्हारे साथ मैं चित्रयुक्त स्थल की भाँति शोभित हूँ और तुम्हारे विना असंस्कृत (सफाई से रहित) एवं तृणों से आच्छन्न पृथ्वी की भाँति रहती हूँ ॥१५॥ हे कृष्ण ! तुम्हारे साथ मैं चित्रकारीपूर्ण मिट्टी की मूर्ति की भाँति रहती हूँ और तुम्हारे विना जल से धुली मिट्टी की मूर्ति के समान विरूप रहती हूँ ॥१६॥ तुम रासेश्वर हो, अतः तुम्हारे साथ गोपियों की वैसी ही शोभा होती है, जिस प्रकार सुवर्ण के हार में श्वेतमणि के संयोग से शोभा होती है ॥१७॥ हे व्रजराज ! तुम्हारे साथ नृपसमूह उसी प्रकार सुशोभित होते हैं, जिस प्रकार आकाश में चन्द्रमा के साथ नक्षत्र-वृन्द ॥१८॥ हे नन्दनन्दन ! जिस प्रकार शाखाओं, फलों और स्कन्धों से वृक्षों की पंक्तियाँ सुशोभित होती हैं उसी भाँति तुमसे यशोदा और नन्द की शोभा होती है ॥१९॥ हे गोकुलेश ! तुम्हारे साथ गोकुलवासियों की वैसी ही शोभा होती है, जिस प्रकार राजेन्द्र के साथ लोगों के समूह की शोभा होती है ॥२०॥ हे रासेश ! तुम्हारे साथ रास की भी उसी भाँति मनोहर शोभा होती है, जिस प्रकार स्वर्ग में देवराज इन्द्र से अमरावती शोभायमान होती है ॥२१॥ तुम्हीं वृन्दावन के वृक्षों की शोभा, पति और गति हो, जिस प्रकार सिंह वनों और अन्यों (पशुओं) की शोभा आदि है ॥२२॥

तुम्हारे बिना यशोदा उसी भाँति शोकसागर में निमग्न रहती हैं जिस प्रकार बछड़े के बिना करुण क्रन्दन करती हुई गाय व्याकुल होती है ॥२३॥ तुम्हारे बिना नन्द के प्राण व्याकुल होने लगते हैं और मन उसी भाँति

आन्दोलयन्ति नन्दस्य प्राणा दग्धं च मानसम् । त्वया विना तप्तपात्रे यथा धान्यसमूहकः ॥२४॥
इत्युक्त्वा परमप्रेम्णा सा पतन्ती हरेः पदे । पुनराध्यात्मिकेनैव बोधयामास तां विभुः ॥२५॥
आध्यात्मिको महायोगो मोहसंछेदकारणम् । यथा पर्शुश्च वृक्षाणां तीक्ष्णधारश्च नारद ॥२६॥

## नारद उवाच

आध्यात्मिकं महायोगं वद वेदविदां वर । शोकच्छेदं च लोकानां श्रोतुं कौतूहलं मम ॥२७॥

## नारायण उवाच

आध्यात्मिको महायोगो न ज्ञातो योगिनामपि । स च नानाप्रकारश्च सर्वं वेत्ति हरिः स्वयम् ॥२८॥
किंचिदाध्यात्मिकं चैव गोलोके राधिकेश्वरः । सुप्रीतः कथयामास त्रिपुरारिं यथा मुने ॥२९॥
सहस्रेन्द्रनिपातान्तं तपः कुर्वन्तमीश्वरम् । श्रेष्ठं ज्येष्ठं वैष्णवानां वरिष्ठं च तपस्विनाम् ॥३०॥
पुष्करे दुष्करं तप्त्वा पाद्मे पाद्मं च पद्मजः । दृष्ट्वा तं सादरं कृष्ण उवाच किंचिदेव तम् ॥३१॥
शतेन्द्रपातपर्यन्तं कठोरेण कृशोदरम् । निश्चेष्टमस्थिसारं च कृपया च कृपानिधिः ॥३२॥
सिंहक्षेत्रे पुरा धर्मं मत्तातं धर्मिणां वरम् । चतुर्दशेन्द्रावच्छिन्नं तपस्तप्त्वा कृशोदरम् ॥३३॥

---

दग्ध हो उठता है, जिस प्रकार तप्त पात्र में धान्य-समूह जलता है ॥२४॥ इतना कहकर राधिका अत्यन्त प्रेम के कारण भगवान् के चरण पर गिर पड़ीं । फिर प्रभु कृष्ण ने आध्यात्मिक उपदेशों द्वारा उन्हें पुनः प्रबोधित किया ॥२५॥ हे नारद ! वह आध्यात्मिक महायोग मोह को उसी भाँति काट देता है, जिस प्रकार तेज धारवाला फरसा वृक्षों को काट डालता है ॥२६॥

**नारद बोले**—हे वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ ! आध्यात्मिक महायोग को बतलाइये, जो लोगों के शोक को नष्ट करता है । उसे सुनने के लिए मुझे कुतूहल हो रहा है ॥२७॥

**नारायण बोले**—आध्यात्मिक महायोग को योगी लोग भी नहीं जानते हैं । वह अनेक प्रकार का होता है और उसे साक्षात् हरि ही सम्पूर्णतया जानते हैं ॥२८॥ हे मुने ! गोलोक में एक बार अति प्रसन्न होकर राधिकेश्वर श्रीकृष्ण ने आध्यात्मिक महायोग का कुछ अंश शिव को बताया ॥२९॥ जो (शिव) एक सहस्र इन्द्र के पतन-काल तक तप करनेवाले, वैष्णवों में ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ और तपस्वियों में वरिष्ठ हैं ॥३०॥ पाद्मकल्प में ब्रह्मा ने पुष्कर-क्षेत्र में कमल पर कठोर तप किया । उन्हें देखकर कृष्ण ने आदर के साथ थोड़ा ही बताया । सौ इन्द्रों के पतन-काल तक कठोर तप करने के कारण ब्रह्मा अत्यन्त कृश, निश्चेष्ट एवं अस्थिमात्रावशेष हो गये । तब कृपानिधान भगवान् ने कृपा करके उनसे कहा ॥३१-३२॥ पूर्व समय में सिंह-क्षेत्र में धर्मश्रेष्ठ मेरे पिता चौदह इन्द्रों के काल तक निरन्तर तप करके अति दुर्बल हो गये । तब कृपानिधान

पपाठाऽऽध्यात्मिकं किंचित्कृपया च कृपानिधिः । किंचिच्छतेन्द्रावच्छिन्नं[1] मां तपन्तमुवाच सः ॥३४॥
किंचित्सनत्कुमारं च तपन्तं सुचिरं परम् । सुतपन्तमनन्तं च किंचिच्चोवाच नारद ॥३५॥
चिरं तपन्तं कपिलं हिमशैले तपस्विनम् । पुष्करे भास्करे किंचित्तपन्तं दुष्करं तपः ॥३६॥
उवाच किंचित्प्रह्लादं किंचिद्दुर्वाससं भृगुम् । एवं निगूढं भक्तं च कृपया भक्तवत्सलः ॥३७॥
क्रीडासरोवरे रम्ये यदुवाच कृपानिधिः । शोकार्तां राधिकां तच्च कथयामि निशामय ॥३८॥
विरसां रसिकां दृष्ट्वा वासयित्वा च वक्षसि । उवाचाऽऽध्यात्मिकं किंचिद्योगिनीं योगिनां गुरुः ॥३९॥

**श्रीकृष्ण उवाच**

जातिस्मरे स्मराऽऽत्मानं कथं विस्मरसि प्रिये । सर्वं गोलोकवृत्तान्तं सुदाम्नः शापमेव च ॥४०॥
शापात्किंचिद्दिनं दीने त्वद्विच्छेदो मया सह । भविष्यति महाभागे मेलनं पुनरावयोः ॥४१॥
पुनरेव गमिष्यामि गोलोकं तं निजालयम् । गत्वा गोपाङ्गनाभिश्च गोपैर्गोलोकवासिभिः ॥४२॥
अधुनाऽऽध्यात्मिकं किंचित्त्वां वदामि निशामय । शोकघ्नं हर्षदं सारं सुखदं मानसस्य च ॥४३॥
अहं सर्वान्तरात्मा च निर्लिप्तः सर्वकर्मसु । विद्यमानश्च सर्वेषु सर्वत्रादृष्ट एव च ॥४४॥

---

भगवान् ने कृपया कुछ आध्यात्मिक (पाठ) उन्हें पढ़ाया, फिर सौ इन्द्रों के काल तक मेरे लिए सतत कठोर तप करनेवाले सनत्कुमार को, उन्होंने कुछ बताया। पश्चात् हे नारद ! अत्यन्त दीर्घ काल तक घोर तप करते हुए अनन्त को उन्होंने कुछ बताया ॥३३-३५॥ फिर हिमालय पर्वत पर चिरकाल तक तप करते हुए कपिल को और पुष्कर-क्षेत्र में कठोर तप करते हुए भास्कर को तथा प्रह्लाद, दुर्वासा, भृगु और निगूढ़ भक्त को भक्त-वत्सल भगवान् ने कुछ बताया ॥३६-३७॥ अनन्तर रमणीक क्रीड़ा सरोवर में कृपानिधि भगवान् ने शोक-पीड़ित राधिका से जो कहा था, उसे बता रहा हूँ, सुनो ॥३८॥ रसिक प्रियतमा को उदास देखकर योगियों के गुरु भगवान् ने उन्हें हृदय से लगाया और कुछ आध्यात्मिक योग योगिनी (राधिका) से कहना आरम्भ किया ॥३९॥

**श्रीकृष्ण बोले**—हे प्रिये ! पहले जन्म का स्मरण करनेवाली ! अपने आपका स्मरण करो। क्यों भूलती हो ? गोलोक के समस्त वृत्तान्त—सुदामा के शाप आदि का स्मरण करो ॥४०॥ हे दीनता से युक्त ! शाप के कारण कुछ दिन हमारा-तुम्हारा वियोग रहेगा और हे महाभागे ! पुनः हम दोनों का मिलन होगा ॥४१॥ पुनः हम दोनों गोलोकवासी गोपों और गोपियों के साथ अपने धाम गोलोक को चलेंगे ॥४२॥ सुनो, इस समय तुम्हें मैं कुछ आध्यात्मिक योग बता रहा हूँ, जो शोकनाशक, हर्षप्रद, तत्त्व रूप एवं मन को सुख देनेवाला है ॥४३॥ मैं सबका अन्तरात्मा, सभी कर्मों से निर्लिप्त, सब में विद्यमान और सर्वत्र अदृष्ट

---

१ ख. 'च्छिन्नमातपन्तमु'।

वायुश्चरति सर्वत्र यथैव सर्ववस्तुषु । न च लिप्तस्तथैवाहं साक्षी च सर्वकर्मणाम् ॥४५॥
जीवो मत्प्रतिबिम्बश्च सर्वत्र सर्वजीविषु । भोक्ता शुभाशुभानां च कर्ता च कर्मणां सदा ॥४६॥
यथा जलघटेष्वेव मण्डलं चन्द्रसूर्ययोः । भग्नेषु तेषु संश्लिष्टस्तयोरेव तथा मयि ॥४७॥
जीवः श्लिष्टस्तथा काले मृतेषु जीविषु प्रिये । आवां च विद्यमानो च सततं सर्वजन्तुषु ॥४८॥
आधारश्चाहमाधेयं कार्यं च कारणं विना । अये सर्वाणि द्रव्याणि नश्वराणि च सुन्दरि ॥४९॥
आविर्भावाधिकाः कुत्र कुत्रचिन्न्यूनमेव च । ममांशाः केऽपि देवाश्च केचिद्देवाः कलास्तथा ॥५०॥
केचित्कलाः कलांशांशास्तदंशांशाश्च केचन । मदंशा प्रकृतिः सूक्ष्मा सा च मूर्त्या च पञ्चधा ॥५१॥
सरस्वती च कमला दुर्गा त्वं चापि वेदसूः । सर्वे देवाः प्राकृतिका यावन्तो मूर्तिधारिणः ॥५२॥
अहमात्मा नित्यदेही भक्तध्यानानुरोधतः[1] । ये ये प्राकृतिका राधे ते नष्टाः प्राकृते लये ॥५३॥
अहमेवाऽऽसमेवाग्रे पश्चादप्यहमेव च । यथाऽहं च तथा त्वं च यथा धावल्यदुग्धयोः ॥५४॥
भेदः कदाऽपि न भवेन्निश्चितं च तथाऽऽवयोः । अहं महान्विराट् सृष्टौ विश्वानि यस्य लोमसु ॥५५॥

---

भी रहता हूँ ॥४४॥ जिस प्रकार वायु सर्वत्र सभी वस्तुओं में गमन करता है, पर लिप्त नहीं होता उसी प्रकार मैं भी हूँ और समस्त कर्मों का साक्षी भी हूँ ॥४५॥ समस्त शरीरों में वर्तमान जीव मेरा प्रतिविम्ब है। वह शुभ-अशुभ (पुण्य-पाप) का भोक्ता और सदा कर्मों का कर्ता है ॥४६॥ जिस प्रकार जलवाले घड़े में चन्द्र-सूर्य का मण्डल प्रतिबिम्बित होता है और उस (घड़े) के फूट जाने पर प्रतिविम्ब उन्हीं दोनों (चन्द्र-सूर्य) में विलीन हो जाता है, उसी प्रकार जीव मुझमें विलीन हो जाता है जब वह समय आने पर शरीर छोड़ देता है। हम दोनों सभी जन्तुओं में निरन्तर विद्यमान रहते हैं ॥४७-४८॥ हे सुन्दरि ! मैं आधार हूँ और जगत् आधेय है। आधार के विना आधेय उसी प्रकार नहीं रह सकता जैसे कारण के बिना कार्य नहीं हो सकता। अयि प्रिये ! समस्त वस्तुएँ नश्वर हैं। कुछ कहीं अधिक संख्या में और कहीं अल्प संख्या में उत्पन्न हैं। कुछ देवता मेरे अंश हैं, कुछ देवता कला रूप हैं, कुछ कलांश के अंश और कुछ उसके अंश हैं। प्रकृति भी मेरा ही अंश है, जो सूक्ष्म और पांच प्रकार का स्वरूप धारण करती है। सरस्वती, लक्ष्मी, दुर्गा, तुम और वेदजननी (सावित्री)—यही प्रकृति के पांचों स्वरूप हैं। सभी देवता और जितने स्वरूपधारी हैं, सब प्राकृतिक (प्रकृति-जन्य) हैं ॥४९-५२॥

मैं (सबका) आत्मा और भक्तों के ध्यान के अनुरोध से नित्य (अमर) देह धारण करनेवाला हूँ। हे राधे ! जितने प्राकृतिक (प्रकृति-उत्पन्न) हैं, वे प्राकृत के लय होने पर नष्ट हो जाते हैं। केवल मैं ही सृष्टि के पहले और पश्चात् भी रहता हूँ। जिस प्रकार दूध और उसकी धवलता पृथक् नहीं रहती है, उसी भांति हम और तुम हैं ॥५३-५४॥ हम दोनों में कभी भी भेद नहीं होता है. यह निश्चित है। सृष्टि में मैं महाविराट् हूँ, जिसके लोमकूपों में निखिल विश्व निहित है। तब तुम अपने अंश से उसकी पत्नी 'महती' होकर रहती हो। मैं

---

१ क. 'नुबोध'।

अंशस्त्वं तत्र महती स्वांशेन तस्य कामिनी । अहं क्षुद्रविराट् सृष्टौ विश्वं यन्नाभिपद्मतः ॥५६॥
अयं[1] विष्णोर्लोमकूपे वासो मे चांशतः सति । तस्य स्त्री त्वं च बृहती स्वांशेन सुभगा तथा[2] ॥५७॥
तस्य विश्वे च प्रत्येकं ब्रह्मविष्णुशिवादयः । ब्रह्मविष्णुशिवा अंशाश्चान्ये चापि च मत्कलाः ॥५८॥
मत्कलांशांशकलया सर्वे देवि चराचराः । वैकुण्ठे त्वं महालक्ष्मीरहं तत्र चतुर्भुजः ॥५९॥
स च विश्वाद्बहिश्चोर्ध्वं यथा गोलोक एव च । सरस्वती त्वं सत्ये च सावित्री ब्रह्मणः प्रिया: ॥६०॥
शिवलोके शिवा त्वं च मूलप्रकृतिरीश्वरी । विनाश्य दुर्गं दुर्गा च सर्वदुर्गतिनाशिनी ॥६१॥
सा एव दक्षकन्या च सा एव शैलकन्यका । कैलासे पार्वती तेन सौभाग्या शिववक्षसि ॥६२॥
स्वांशेन त्वं सिन्धुकन्या क्षीरोदे विष्णुवक्षसि । अहं स्वांशेन सृष्टौ च ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥६३॥
त्वं च लक्ष्मी शिवा धात्री सावित्री च पृथक्पृथक् । गोलोके च स्वयं राधा रासे रासेश्वरी सदा ॥६४॥
वृन्दा वृन्दावने रम्ये विरजा विरजातटे । सा त्वं सुदामशापेन भारतं पुण्यमागता ॥६५॥
पूतं कर्तुं भारतं च वृन्दारण्यं च सुन्दरि । त्वत्कलांशांशकलया विश्वेषु सर्वयोषितः ॥६६॥
या योषित्सा च भवती यः पुमान्सोऽहमेव च । अहं च कलया वह्निस्त्वं स्वाहा दाहिका प्रिया ॥६७॥

---

सृष्टि में क्षुद्र विराट् होता हूँ, जिसके नाभि कमल से विश्व उत्पन्न होता है। हे सती ! विष्णु के लोमकूप में यह मेरा ही अंशतः निवास होता है उस समय तुम अपने अंश से विष्णु की 'बृहती' नामक सुभगा पत्नी होती हो। प्रत्येक ब्रह्माण्ड में ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव आदि देवगण होते हैं। ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव मेरे अंश हैं और अन्य मेरी कलाएँ हैं ॥५५-५८॥ हे देवि ! यह समस्त चराचर मेरे कलांश का अंश है। वैकुण्ठ में तुम महालक्ष्मी होकर रहती हो और मैं चार भुजाओं को धारणकर विष्णु रूप से रहता हूँ। वह गोलोक की भाँति ब्रह्माण्ड से बाहर और उसके ऊपर स्थित है। तुम्हीं सरस्वती हो। सत्य लोक में तुम ब्रह्मा की प्रिया सावित्री हो ॥५९-६०॥ शिवलोक में तुम शिवा हो। तुम्हीं ईश्वरी मूल प्रकृति हो। दुर्ग राक्षस का हनन करनेवाली और समस्त दुर्गति-नाशिनी दुर्गा तुम्हीं हो। वही (दुर्गा) दक्षकन्या सती और शैलपुत्री पार्वती हैं। इसीलिए सौभाग्यशालिनी पार्वती कैलाशस्थ शिव के वक्षःस्थल पर विराजती हैं ॥६१-६२॥ क्षीरसागर में विष्णु के वक्षःस्थल पर तुम अपने अंश से सिन्धु-कन्या (लक्ष्मी) होकर स्थित रहती हो। सृष्टिकाल में मैं ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर रूप से स्थित रहता हूँ और तुम भी लक्ष्मी, पार्वती, सरस्वती-सावित्री रूप से पृथक्-पृथक् होकर रहती हो। गोलोक में स्वयं राधा हो एवं रास में सदा रासेश्वरी हो ॥६३-६४॥ तुम रमणीक वृन्दावन में वृन्दा और (विरजा) नदी के तट पर विरजा (गोपी) हो। वही तुम सुदामा के शाप से पुण्य भारत प्रदेश में आयी हो। हे सुन्दरि ! भारत और वृन्दावन को पवित्र करने के लिए तुम्हारी यहाँ स्थिति है और सम्पूर्ण विश्व में समस्त स्त्रियाँ तुम्हारे कलांशांश की कला हैं ॥६५-६६॥ विश्व में समस्त स्त्रीरूप तुम हो और समस्त पुरुष

---

१ क. अहं । २ क. सदा ।

त्वया सह समर्थोऽहं नालं दग्धुं च त्वां विना । अहं दीप्तिमतां सूर्यः कलया त्वं प्रभाकरी ॥६८॥
संज्ञा त्वं च त्वया भामि त्वां विनाऽहं न दीप्तिमान् । अहं च कलया चन्द्रस्त्वं च शोभा च रोहिणी ॥६९॥
मनोहरस्त्वया सार्धं त्वां विना न च सुन्दरः । अहमिन्द्रश्च कलया स्वर्गलक्ष्मीश्च त्वं शची ॥७०॥
त्वया सार्धं देवराजो हतश्रीश्च त्वया विना । अहं धर्मश्च कलया त्वं च मूर्तिश्च धर्मिणी ॥७१॥
नाहं शक्तो धर्मकृत्यो त्वां च धर्मक्रियां विना । अहं यज्ञश्च कलया त्वं च स्वांशेन दक्षिणा ॥७२॥
त्वया सार्धं च फलदोऽप्यसमर्थस्त्वया विना । कलया पितृलोकोऽहं स्वांशेन त्वं स्वधा सती ॥७३॥
त्वयाऽलं कव्यदाने च सदा नालं त्वया विना । अहं पुमांस्त्वं प्रकृतिर्न स्रष्टाऽहं त्वया विना ॥७४॥
त्वं च संपत्स्वरूपाऽहमीश्वरश्च त्वया सह । लक्ष्मीयुक्तस्त्वया लक्ष्म्या निःश्रीकश्च त्वया विना ॥७५॥
यथा नालं कुलालश्च घटं कर्तुं मृदा विना । अहं शेषश्च कलया स्वांशेन त्वं वसुंधरा ॥७६॥
त्वां सस्यरत्नाधारां च बिभर्मि मूर्ध्नि सुन्दरि । त्वं च कान्तिश्च शान्तिश्च भूतिर्मूर्तिमती सती ॥७७॥

---

रूप मैं हूँ । मैं अपनी कला से अग्नि हूँ और तुम (अग्नि की) दाहिकारूप प्रिया स्वाहा हो । तुम्हारे साथ रहने से ही मैं दग्ध करने में समर्थ रहता हूँ और तुम्हारे बिना असमर्थ हो जाता हूँ । कला द्वारा मैं दीप्तिमानों में सूर्य हूँ और तुम प्रभाकरी (प्रभा उत्पन्न करनेवाली प्रिया) हो ॥६७-६८॥ तुम्हीं (सूर्यप्रिया) संज्ञा हो, तुम्हारे साथ रहने से ही मैं चमकता हूँ और तुम्हारे बिना मैं दीप्तिमान् नहीं हो सकता । मैं कला द्वारा चन्द्रमा हूँ और तुम शोभा तथा रोहिणी हो । तुम्हारे ही साथ रहने से मैं मनोहर हूँ और तुम्हारे बिना असुन्दर नहीं हो सकता । मैं कला द्वारा इन्द्र हूँ और तुम स्वर्ग की लक्ष्मी शची हो । तुम्हारे ही साथ से मैं देवराज हूँ और तुम्हारे बिना मैं श्रीविहीन हूँ । मैं कला द्वारा धर्म हूँ और तुम धर्मिणी मूर्ति हो । धर्म-क्रिया रूप तुम्हारे बिना मैं धर्म कार्य करने में समर्थ नहीं हूँ । मैं कला द्वारा यज्ञ रूप हूँ और तुम अपने अंश से (यज्ञ की पत्नी) दक्षिणा हो ॥६९-७२॥ तुम्हारे ही साथ मैं फल प्रदान करता हूँ और तुम्हारे बिना (फल देने में) असमर्थ हूँ । मैं कला द्वारा पितृलोक हूँ और तुम अपने अंश से सती स्वधा हो । तुम्हारे साथ ही कव्य (पिण्ड) दान लेने में समर्थ हूँ और तुम्हारे बिना असमर्थ हूँ । मैं पुरुष हूँ और तुम प्रकृति हो, अतः तुम्हारे बिना मैं सृष्टि करने में असमर्थ हूँ ॥७३-७४॥ तुम सम्पत्ति स्वरूपा हो, अतः तुम्हारे साथ रहने से मैं ईश्वर हूँ । तुझ लक्ष्मी के साथ रहने से मैं लक्ष्मीयुक्त हूँ और तुम्हारे बिना श्रीविहीन । जिस प्रकार कुम्हार बिना मिट्टी के घड़ा बनाने में असमर्थ रहता है उसी भाँति मैं तुम्हारे बिना सृष्टि करने में असमर्थ रहता हूँ । मैं कला द्वारा शेष हूँ; और तुम अपने अंश से पृथ्वी हो ॥७५-७६॥ हे सुन्दरि ! धान्यों और रत्नों की आधार तुमको मैं सदा मस्तक पर धारण करता हूँ । तुम कान्ति, शान्ति, भूति (ऐश्वर्य), मूर्तिमती सती, तुष्टि, पुष्टि, क्षमा, लज्जा,

---

१ ख. त्वं स्वाहांशे ।

तुष्टिः पुष्टिः क्षमा लज्जा क्षुधा तृष्णा परा दया। निद्रा श्रद्धा च तन्द्रा च मूर्च्छा च संनतिः क्रिया ॥७८॥
मूर्तिरूपा भक्तिरूपा देहिनां देहरूपिणी। ममाऽऽधारा सदा त्वं च तवाऽऽत्माऽहं परस्परम् ॥७९॥
यथा त्वं च तथाऽहं च समौ प्रकृतिपूरुषौ। न हि सृष्टिर्भवेद्देवि द्वयोरेकतरं विना ॥८०॥
इत्युक्त्वा परमात्मा च राधां प्राणाधिकां प्रियाम्। कृत्वा वक्षसि सुप्रीतो बोधयामास नारद ॥८१॥
स च क्रीडानियुक्तश्च बभूव रत्नमन्दिरे। तथा च राधया सार्धं कामुक्या सह कामुकः ॥८२॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० आध्यात्मिक-
योगकथनं नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥६७॥

⊙

# अथाष्टषष्टितमोऽध्यायः

## नारायण उवाच

कृत्वा क्रीडां समुत्थाय पुष्पतल्पात्पुरातनः। निद्रितां प्राणसदृशीं बोधयामास तत्क्षणम् ॥१॥
वस्त्राञ्चलेन संस्कृत्य कृत्वा तन्निर्मलं मुखम्। उवाच मधुरं शान्तं शान्तां च मधुसूदनः ॥२॥

---

क्षुधा, तृष्णा, परमदया, निद्रा, श्रद्धा, तन्द्रा, मूर्च्छा, नमस्कार-क्रिया, मूर्तिरूपा, भक्तिरूपा एवं देहधारियों की देहस्वरूप हो। तुम सदा मेरी आधार हो और मैं तुम्हारा आत्मा हूँ। अतः जैसे तुम हो, वैसे ही मैं हूँ। प्रकृति-पुरुष दोनों समान रूप हैं। हे देवि! इन दोनों में एक के बिना सृष्टि नहीं हो सकती है ॥७७-८०॥ हे नारद! इतना कहकर परमात्मा श्रीकृष्ण ने अपनी प्राणाधिका प्रिया राधा को हृदय से लगाकर अति प्रसन्नता से उन्हें प्रबोधित किया और फिर कामुक होकर भगवान् ने कामुकी हुई राधा के साथ रत्नमन्दिर में क्रीडारत हो गये ॥८१-८२॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण में श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद-नारायण-संवाद-विषयक
आध्यात्मिक योगवर्णन नामक सरसठवाँ अध्याय समाप्त ॥६७॥

⊙

# अध्याय ६८

## कृष्ण से विरहातुर राधा का निवेदन और कृष्ण द्वारा उपदेश

**नारायण बोले**—क्रीडा करने के उपरान्त पुरातनपुरुष भगवान् श्रीकृष्ण ने पुष्पशय्या से उठकर प्राण प्रिया को भी उसी क्षण जगाया ॥१॥ वस्त्र के अञ्चल से उनका मुख पोंछकर निर्मल किया। पश्चात् मधुसूदन ने शान्त राधा से मधुर एवं शान्त वचन कहा ॥२॥

## श्रीकृष्ण उवाच

अयि तिष्ठ क्षणं राधे रासेश्वरि शुचिस्मिते। व्रज वृन्दावनं वाऽपि व्रजं व्रज व्रजेश्वरि ॥३॥
रासाधिष्ठातृदेवि त्वं रासं रासे कुरु क्षणम्। ग्रामे ग्रामे यथा सन्ति सर्वत्र ग्रामदेवताः ॥४॥
प्रियालिनिवहैः सार्धं क्षणं चन्दनकाननम्। क्षणं वा चम्पकवनं गच्छ वा तिष्ठ सुन्दरि ॥५॥
क्षणं गृहं च यास्यामि विशिष्टं कार्यमस्ति मे। विदायं देहि मे प्रीत्या क्षणं मां प्राणवल्लभे ॥६॥
प्राणाधिष्ठातृदेवी त्वं प्राणाश्च त्वयि सन्ति मे। प्राणी विहाय प्राणांश्च कुत्र स्थातुं क्षमः प्रिये ॥७॥
त्वयि मे मानसं शश्वत्त्वं मे संसारवासना। त्वत्तो मम प्रिया नास्ति त्वमेव शंकरात्प्रिया ॥८॥
प्राणा मे शंकरः सत्यं त्वं च प्राणाधिका सति। इत्युक्त्वा तां समाश्लिष्य भगवान् गन्तुमुद्यतः ॥९॥
अक्रूरागमनं ज्ञात्वा सर्वज्ञः सर्वसाधनः। आत्मा पाता च सर्वेषां सर्वोपकारकारकः ॥१०॥
दृष्ट्वा तमेव गच्छन्तमुत्सुकं भिन्नमानसम्। उवाच राधिका देवी हृदयेन विदूयता ॥११॥

## राधिकोवाच

हे नाथ रमणप्रेष्ठ श्रेष्ठश्च प्रेयसां मम। हे कृष्ण हे रमानाथ व्रजेश मा व्रज व्रजम् ॥१२॥
अधुना त्वां प्राणनाथ पश्यामि भिन्नमानसम्। गते त्वयि मम प्रेम गतं सौभाग्यमेव च ॥१३॥
क्व यासि मां विनिक्षिप्य गम्भीरे शोकसागरे। विरहव्याकुलां दीनां त्वय्येव शरणागताम् ॥१४॥

---

**श्रीकृष्ण बोले**—हे रासेश्वरी ! पवित्र हास करनेवाली रासेश्वरी ! क्षणभर रास में ठहरो, फिर वृन्दावन या व्रज में चली जाओ ॥३॥ तुम रास की अधिष्ठात्री देवी हो। अतः रासमण्डल में चलकर क्षणमात्र रासक्रीडा करो। जिस प्रकार प्रत्येक गाँव में सर्वत्र ग्रामदेवता रहते हैं, उसी भाँति प्रिय सखियों के साथ क्षणभर चन्दनवन में चलो या क्षणभर चम्पावन में जाओ या ठहरो। हे सुन्दरी ! क्षणमात्र के लिए मैं घर जाऊँगा, क्योंकि मुझे एक विशेष कार्य है। अतः हे प्राणवल्लभे ! एक क्षण के लिए मुझे सहर्ष विदा करो ॥४-६॥ क्योंकि तुम प्राणों की अधिष्ठात्री देवी हो, मेरे प्राण सतत तुम्हीं में रहते हैं। हे प्रिये ! प्राणी प्राणों को छोड़कर कहाँ रह सकता है ॥७॥ तुम्हीं में हमारा चित्त निरन्तर लगा रहता है। तुम्हीं हमारी संसार-वासना हो। तुमसे बढ़कर हमारा कोई प्रिय नहीं है। तुम्हीं शिव से बढ़कर मुझे प्रिय हो ॥८॥ सती ! यह सत्य है कि—शिव मेरे प्राण हैं, किन्तु तुम प्राणों से भी अधिक मुझे प्रिय हो। इतना कहकर भगवान् राधिका का आलिङ्गन करके सर्वज्ञ, सर्वसाधन, सबके आत्मा, रक्षक और सबके उपकारी भगवान् जाने को उद्यत हो गये ॥९-१०॥ भगवान् को जाने के लिए उत्सुक एवं अन्यमनस्क देखकर राधिका देवी ने सन्तप्त हृदय से कहा ॥११॥

**राधिका बोलीं**—हे नाथ, हे अतिशय प्रिय पति ! हे मेरे प्रियों में श्रेष्ठ ! हे कृष्ण ! हे रमानाथ ! हे व्रजेश ! तुम व्रज न जाओ ॥१२॥ हे प्राणनाथ ! इस समय मैं तुम्हें अन्यमनस्क देख रही हूँ, अतः तुम्हारे चले जाने पर मेरा प्रेम और सौभाग्य भी चला जायेगा ॥१३॥ इसलिए अगाध शोकसागर में मुझे डालकर तुम कहाँ जा रहे हो ? मैं विरहाकुल, दीन एवं तुम्हारी ही शरणागत हूँ ॥१४॥ (यदि तुम चले जाओगे तो)

न यास्यामि पुनर्गेहं यास्यामि काननान्तरम् । कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति गायं गायं दिवानिशम् ॥१५॥
न यास्याम्यथवाऽरण्यं यास्यामि कामसागरे । तत्र त्वत्कामनां कृत्वा त्यक्ष्यामि च कलेवरम् ॥१६॥
यथाऽऽकाशो यथाऽऽत्मा च यथा चन्द्रो यथा रविः । तथा त्वं यासि मत्पार्श्वे निबद्धो वसनाञ्चले ॥१७॥
अधुना यासि नैराश्यं कृत्वा मे दीनवत्सल । न युक्तं हि परित्यक्तुं दीनां मां शरणागताम् ॥१८॥
यत्पादपद्मं ध्यायन्ते ब्रह्मविष्णुशिवादयः । त्वां मायया गोपवेषं कथं जानामि मत्सरी ॥१९॥
कृतं यद्देव दुर्नीतमपराधसहस्रकम् । यदुक्तं पतिभावेन चाभिमानेन तत्क्षम ॥२०॥
चूर्णीभूतश्च मद्गर्वो दूरीभूतो मनोरथः । विज्ञातुमात्मसौभाग्यं किमन्यत्कथयामि ते ॥२१॥
ज्ञात्वा गर्गमुखाच्छ्रुत्वा मोहिता तव मायया । त्वां च वक्तुं न शक्नोमि प्रेम्णा वा भक्तिपाशतः ॥२२॥
यासि चेन्मां परित्यज्य सकलङ्को भविष्यसि । त्वत्पुत्रपौत्रा नश्यन्ति ब्रह्मकोपानलेन च ॥२३॥
क्षणं युगशतं मन्ये त्वां विना प्राणवल्लभम् । कथं शताब्दं त्वां त्यक्त्वा बिभर्मि जीवनं प्रभो ॥२४॥
इत्युक्त्वा राधिका कोपात्पपात धरणीतले । मूर्च्छां संप्राप सहसा जहार चेतनां मुने ॥२५॥

---

मैं पुनः घर नहीं जाऊँगी । किसी वन में जाऊँगी और दिन-रात 'कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण' गान करती रहूँगी ॥१५॥ अथवा जंगल न जाकर प्रेम के समुद्र में चली जाऊँगी और वहाँ तुम्हारी ही कामना करके शरीर परित्याग कर दूँगी ॥१६॥ जिस प्रकार आकाश, आत्मा, चन्द्रमा और सूर्य साथ-साथ रहते हैं उसी प्रकार मेरे साथ तुम मेरे वस्त्र के अञ्चल से बँधे हो कैसे जा सकते हो ॥१७॥ हे दीनवत्सल ! यदि मुझे निराश करके इस समय तुम जा रहे हो, तो मुझ दीन और शरणागत का त्याग करना तुम्हें उचित नहीं है ॥१८॥ ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव आदि (देवगण) जिसके चरण-कमल का निरन्तर ध्यान करते हैं, वह माया से गोपवेश धारण किये हुए हैं, ऐसे तुमको मत्सर (द्वेष) करनेवाली मैं कैसे जान सकती हूँ ॥१९॥ हे देव ! मैंने जो नीतिविरुद्ध सहस्रों अपराध किये और पतिभाव के कारण जो कुछ अभिमानवश कहा, उसे क्षमा करो ॥२०॥ मेरा अभिमान नष्ट हो गया है, मनोरथ दूर निकल गया है, अपना सौभाग्य जानने के लिए तुम्हें और क्या कह सकती हूँ ॥२१॥ गर्ग के मुख से सुनकर और जानकर भी मैं तुम्हारी माया से मोहित हूँ, अतः प्रेम या भक्तिरूपी पाश (रस्सी) से आबद्ध होने के कारण तुम्हें कुछ नहीं कह सकती हूँ ॥२२॥ किन्तु मुझे छोड़कर यदि जा रहे हो, तो तुम्हें कलङ्क लगेगा और तुम्हारे पुत्र-पौत्र ब्रह्म कोप के अग्नि में जलकर नष्ट हो जायँगे ॥२३॥ तुम प्राणवल्लभ के विना मेरा एक क्षण भी सौ युगों के समान व्यतीत होता है, तो प्रभो ! सौ वर्ष तुमसे पृथक् रहकर कैसे जीवन धारण कर सकती हूँ ॥२४॥ हे मुने ! इतना कहकर राधिका कोपवश पृथिवी पर गिर पड़ीं और सहसा

कृष्णस्तां मूर्च्छितां दृष्ट्वा कृपया च कृपानिधिः । चेतनां कारयित्वा च वासयामास वक्षसि ॥२६॥
बोधयामास विविधं योगैः शोकविखण्डनैः । तथाऽपि शोकं त्यक्तुं च न शशाक शुचिस्मिता ॥२७॥
सामान्यवस्तुविश्लेषो नृणां शोकाय केवलम् । देहात्मनोश्च विच्छेदः क्व सुखाय प्रकल्पते ॥२८॥
न ययौ तत्र दिवसे व्रजराजो व्रजं पति । क्रीडासरोवराभ्याशं प्रययौ राधया सह ॥२९॥
तत्र गत्वा पुनः क्रीडां चकार च तया सह । विजहौ विरहज्वालां रासे रासेश्वरी मुदा ॥३०॥
राधा सा स्वामिना सार्धं पुष्पचन्दनर्चिता । पुष्पचन्दनतल्पे च तस्थौ रहसि नारद ॥३१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० नारदना० राधाशोक-
विमोचनं नामाष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥६८॥

⊙

# अथैकोनसप्ततितमोऽध्यायः

**नारद उवाच**

अतः परं किं रहस्यं राधाकेशवयोर्वद । निगूढतत्त्वमस्पष्टं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥१॥

---

मूर्च्छित हो गयीं तथा चेतना खो बैठीं ॥२५॥ अनन्तर कृपानिधान कृष्ण ने उन्हें मूर्च्छित देखकर कृपया चैतन्य किया और अपने हृदय से लगाया ॥२६॥ यद्यपि उन्होंने शोकनाशन विविध योगों द्वारा उन्हें प्रबोधित किया, तथापि पवित्र मुसकानवाली राधिका का शोक दूर न हो सका ॥२७॥ सामान्य वस्तु का वियोग जब मनुष्यों को केवल शोक देता है, तो देह और आत्मा का वियोग सुख का कारण कैसे हो सकता है ? ॥२८॥ उस दिन व्रजराज व्रज न जा सके । वे राधिका को साथ लेकर क्रीडा सरोवर के पास आये ॥२९॥ वहाँ पहुँचकर उन्होंने राधिका के साथ पुनः क्रीडा की और हर्षवश रास में रासेश्वरी (राधिका) की विरहज्वाला शान्त हो गयी ॥३०॥ हे नारद ! पुष्पचन्दन से चर्चित होकर राधा पति के साथ एकान्त में पुष्प-चन्दन की शय्या पर विराजमान हुईं ॥३१॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण में श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद-नारायण-संवाद-विषयक
राधा-शोक-विमोचन नामक अड़सठवाँ अध्याय समाप्त ॥६८॥

⊙

# अध्याय ६९

## राधा और कृष्ण की क्रीडा का वर्णन

**नारद बोले**––इसके उपरान्त राधा और कृष्ण का अत्यन्त गुप्त तत्त्वभूत और अस्पष्ट कौन रहस्य (चरित) हुआ है, वह मुझे बताने की कृपा करें ॥१॥

## नारायण उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि रहस्यं परमाद्भुतम्। गोपनीयं च वेदेषु पुराणेषु पुराविदाम् ॥२॥
पुनः सकामो भगवान्कृष्णः स्वेच्छामयो विभुः। रेमे स रमया सार्धं विदग्धश्च विदग्धया ॥३॥
चतुःषष्टिकलाशक्त्या यथा कान्ता कलावती। कामशास्त्रेषु निपुणा विदग्धा रसिकेश्वरी ॥४॥
शृङ्गारलीलानिपुणा शश्वत्कामा च कामुकी। सुन्दरी सुन्दरीष्वेव शश्वत्सुस्थिरयौवना ॥५॥
पितृणां मानसी कन्या धन्या मान्या च मानिनी। शंभोः शिष्या ज्ञानयुता शतकल्पान्तजीविनी ॥६॥
वेदवेदाङ्गनिपुणा योगनीतिविशारदा। नानारूपधरा साध्वी प्रसिद्धा सिद्धयोगिनी ॥७॥
तत्कन्या राधिका देवी मातृतुल्या च कामुकी। चकार नानाभावं सा सुशीला स्वामिनं प्रति ॥८॥
चतुःषष्टिकलामानं शृङ्गारं च चकार सः। तया विशिष्टया सार्कं रासे रासरसोत्सुकः ॥९॥
तां नखाग्रक्षतश्रोणीं नखक्षतपयोधराम्। लुप्तचन्दनसिंदूरां कवरीशिथिलां सतीम् ॥१०॥
सुखसंभोगमग्नां च नग्नां च शोकमूर्च्छिताम्। पुलकाञ्चितसर्वाङ्गीं निद्रादेवी समाययौ ॥११॥
दृष्ट्वा तां निद्रितां कृष्णः कृपया च कृपानिधिः। रुरोद मायया मायी मायेशो लोकशिक्षया ॥१२॥
कृत्वा वक्षसि राधां च चुचुम्ब च पुनः पुनः। स्नातां च नेत्रसलिलैः प्राणाधिष्ठातृदेवताम् ॥१३॥

---

**नारायण बोले**—हे नारद ! मैं परम अद्भुत रहस्य बताऊँगा, जिसे पुरावेत्ताओं ने वेदों और पुराणों में गोपनीय कहा है। सुनो ! पुनः कामयुक्त, स्वेच्छामय, व्यापक एवं निपुण भगवान् कृष्ण ने निपुण एवं सुन्दरी (राधा) के साथ रमण किया ॥२-३॥ (राधा विदग्धता में (अपनी माता) कलावती जैसी थीं)। कलावती चौंसठ कलाओं की शक्ति से युक्त, कमनीय, काम शास्त्रों में निपुण, अतिचतुर, रसिकेश्वरी, शृंगार लीला करने में निपुण, निरन्तर कामवासना से युक्त, कामुकी, सुन्दरियों में अति सुन्दरी, नित्य सुस्थिर यौवनः वाली, पितरों की मानसी (मन से उत्पन्न) कन्या, धन्या, मान्या, मानिनी, शंकर की शिष्या, ज्ञानसम्पन्न, सौ कल्पों तक जीवित रहनेवाली, वेद-वेदाङ्ग में निपुण, योग और नीति में विशारद, विभिन्न प्रकार के रूप धारण करने-वाली, पतिव्रता और प्रख्यात सिद्धयोगिनी थीं ॥४-७॥ उनकी कन्या राधिका देवी माता के समान ही कामुकी थीं। उस सुशीला राधिका ने अपने प्रियतम कृष्ण के साथ अनेक प्रकार के भाव प्रदर्शित किये ॥८॥ रास में रासरस के लिए उत्सुक भगवान् कृष्ण उस विशिष्ट प्रेयसी के साथ चौंसठों कलाओं द्वारा सुरत किया, जिसमें नखों के अग्रभाग से उस सती की श्रोणी तथा युगल स्तन क्षत-विक्षत हो गये, चन्दन-सिन्दूर मिट गये, केश पाश (जूड़ा) शिथिल हो गया और वे स्वयं सुख-सम्भोग में निमग्न, नग्न तथा शोक से मूर्च्छित हो गयीं। उनके सर्वाङ्ग में रोमाञ्च हो आया तथा उन्हें नींद आ गयी ॥९-११॥ अनन्तर उन्हें निद्रित देखकर मायावी एवं मायाधीश्वर कृपानिधि श्रीकृष्ण ने कृपया लोकशिक्षार्थ मायावश रोदन किया ॥१२॥ प्राणों की अधिष्ठात्री देवी राधा को अपने हृदय से लगाकर उन्होंने बार-बार चुम्बन किया और अपने

प्राणाधिकां प्रियतमां धारयामास वाससी। वह्निशुद्धेऽतिसूक्ष्मे चामूल्ये विश्वसुदुर्लभे ॥१४॥
कबरीं रचयामास ददौ कुङ्कुमचन्दनम्। तदगात्रे च गले हारममूल्यं रत्ननिर्मितम् ॥१५॥
सिन्दूरं च ददौ तस्याः सीमन्ताधःस्थलेऽमले[1]। दाडिमीकुसुमाकारं युक्तं चन्दनबिन्दुभिः ॥१६॥
चकार पत्रकं गण्डे नानाचित्रविचित्रकम्। ददौ तत्पादपद्मे च रत्नमञ्जीररञ्जितम् ॥१७॥
पादाङ्गुलिनखाग्रे च सुन्दरालक्तकं ददौ। नानासुवेषोज्ज्वलितां तां निद्राकुलितां विभुः ॥१८॥
पुनश्चकार मोहेन गाढालिङ्गनमीप्सितम्। पुनश्च चुम्बनं कृत्वा निवेश्य च स्ववक्षसि ॥१९॥
सुष्वाप जगतां स्वामी[2] कान्ताविरहकातरः। एतस्मिन्नन्तरे काले ब्रह्मा लोकपितामहः ॥२०॥
शिवशेषादिभिर्देवैर्मुनीन्द्रैः सार्धमाययौ। आगत्य नत्वा सिरसा तुष्टाव संपुटाञ्जलिः ॥२१॥
सामवेदोक्तस्तोत्रेण परिपूर्णतमं विभुम् ॥२२॥

## ब्रह्मोवाच

जय जय जगदीश वन्दितचरण निर्गुण निराकार स्वेच्छामय भक्तानुग्रह नित्यविग्रह ॥२३॥

---

नयनजल से स्नान कराया ॥१३॥ फिर प्राणों से भी अधिक प्रियतमा को अग्निविशुद्ध दो वस्त्र पहिनाये, जो अति सूक्ष्म, अमूल्य एवं समस्त विश्व में अति दुर्लभ थे ॥१४॥ उनके केशों का जूड़ा बनाया, सर्वाङ्ग में कुंकुम-चन्दन लगाया, गले में अमूल्य रत्नों के हार पहिनाये और निर्मल (मांग) में सिन्दूर लगाया। उनके गण्डस्थल पर चन्दनबिन्दुओं से युक्त, अनार के फूल के आकार में अनेक प्रकार के चित्र-विचित्र पद्मक चिह्न की रचना की। उनके चरण-कमलों में रत्नों के नूपुर पहनाये। पैरों और अँगुलियों के नखों में सुन्दर महावर लगाया। इस प्रकार प्रभु ने निद्रामग्न प्रेयसी को विभिन्न प्रकार के सुन्दर वेशों से सजा दिया ॥१५-१८॥ फिर मोहवश यथेच्छ गाढ़ालिंगन किया और बार-बार चुम्बन लेकर अपने वक्षःस्थल पर सुला लिया और कान्ता के वियोग से कातर जगत्स्वामी (कृष्ण) स्वयं भी सो गये। इसी बीच लोक के पितामह ब्रह्मा शिव, शेष आदि देवों और मुनीन्द्रों समेत वहां आये। आकर सिर से नमस्कार करके अञ्जलि बांधे सामवेदोक्त स्तोत्र द्वारा परिपूर्णतम विभु की स्तुति करने लगे ॥१९-२२॥

**ब्रह्मा बोले**—हे जगदीश ! आपकी जय-जयकार हो। आपके चरण की वन्दना सभी करते हैं। आप गुण (सत्त्व, रज, तम) से रहित, आकारशून्य, स्वेच्छामय, भक्तों पर कृपा करनेवाले, नित्य देहधारी, माया से

---

१क. °स्थलोज्ज्वले। २ ख. कामी।

गोपवेष मायया मायेश सुवेष सुशील शान्त सर्वकान्त दान्त नितान्तज्ञानानन्द परात्परतर प्रकृतेः पर सर्वान्तरात्मरूप निर्लिप्त साक्षिस्वरूप व्यक्ताव्यक्त निरञ्जन भारावतारण करुणार्णव शोकसंतापप्रसन जरामृत्युभयादिहरण शरणपञ्जर भक्तानुग्रहकारक भक्तवत्सल भक्तसंचितधन ॐ नमोऽस्तु ते ॥२४॥
सर्वाधिष्ठातृदेवायेत्युक्त्वा वै प्रीणनाय च। पुनःपुनरुवाचेदं मूर्च्छितश्च बभूव ह ॥२५॥
इति ब्रह्मकृतं स्तोत्रं यः शृणोति समाहितः। तत्सर्वाभीष्टसिद्धिश्च भवत्येव न संशयः ॥२६॥
अपुत्रो लभते पुत्रं प्रियाहीनो लभेत्प्रियाम्। निर्धनो लभते सत्यं परिपूर्णतमं धनम् ॥२७॥
इह लोके सुखं भुक्त्वा चान्ते दास्यं लभेद्धरेः। अचलां भक्तिमाप्नोति मुक्तेरपि सुदुर्लभाम् ॥२८॥
स्तुत्वा च जगतां धाता प्रणम्य च पुनः पुनः। शनैः शनैः समुत्थाय भक्त्या पुनरुवाच ह ॥२९॥

### ब्रह्मोवाच

उत्तिष्ठ देवदेवेश परमानन्दकारण। नन्दनन्दन सानन्द नित्यानन्द नमोऽस्तु ते ॥३०॥
व्रज नन्दालयं नाथ त्यज वृन्दावनं वनम्[1]। स्मर सुदामशापं च शतवर्षनिबन्धनम् ॥३१॥

---

गोप वेश बनानेवाले, मायाधीश्वर, उत्तम वेशवाले, उत्तम स्वभाववाले, शान्त, सबको प्रिय, दमनशील, अत्यन्त ज्ञान और आनन्दस्वरूप, परे से भी अत्यन्त परे, प्रकृति से परे, सबके अन्तरात्मरूप, निर्लिप्त, सभी प्राणियों के कर्मों के साक्षी, व्यक्त (प्रकट), अव्यक्त (अप्रकट), निर्लेप, (पृथिवी का) भार उतारनेवाले, करुणासागर, शोक-संताप को नष्ट करनेवाले, जरा, मृत्यु एवं भय आदि का अपहरण करनेवाले शरणरूपी पिंजरेवाले, भक्तों पर अनुग्रह करनेवाले, भक्तवत्सल एवं भक्तों के सञ्चित धन हैं। आपको नमस्कार है। सबके अधिष्ठातृदेव को नमस्कार है। भगवान् की प्रीति के लिए ब्रह्मा ने बार-बार यह कहा और स्वयं मूर्च्छित भी हो गये ॥२३-२५॥ ब्रह्मा द्वारा सुरचित इस स्तोत्र को जो एकचित्त होकर सुनता है, उसके सभी मनोरथ सिद्ध होते हैं इसमें संशय नहीं ॥२६॥ तथा पुत्रहीन को पुत्र, स्त्री-रहित को स्त्री और निर्धन को सचमुच परिपूर्णतम धन मिलता है ॥२७॥

वह इस लोक में सुख भोगकर अन्त में भगवान् का दास्य-पद और मुक्ति से भी अति दुर्लभ अचल भक्ति प्राप्त करता है ॥२८॥ इस भाँति जगत् के धाता (ब्रह्मा) ने उनकी स्तुति करके बार-बार प्रणाम किया और धीरे-धीरे उठकर भक्तिपूर्वक पुनः कहा ॥२९॥

**ब्रह्मा बोले**—हे देव-देवों के स्वामी, परमानन्द के (एकमात्र) कारण! नन्दनन्दन! सानन्द! नित्यानन्द! तुम्हें नमस्कार है। हे नाथ! अब वृन्दावन त्यागकर नन्द के भवन चलो। सुदामा के उस शाप का स्मरण करो, जिसमें सौ वर्ष का वियोग रूपी बन्धन है ॥३०-३१॥ भक्त के शाप के अनुरोधवश सौ वर्षों तक प्रियतमा

---

१ क. वरम्।

गोपवेष मायया मायेश सुवेष सुशील शान्त सर्वकान्त दान्त नितान्तज्ञानानन्द परा-
त्परतर प्रकृतेः पर सर्वान्तरात्मरूप निर्लिप्त साक्षिस्वरूप व्यक्ताव्यक्त निरञ्जन भारा-
वतारण करुणार्णव शोकसंतापप्रसन जरामृत्युभयाविहरण शरणपञ्जर भक्तानुग्रहकारक
भक्तवत्सल भक्तसंचितधन ॐ नमोऽस्तु ते ॥२४॥
सर्वाधिष्ठातृदेवायेत्युक्त्वा वै प्रीणनाय च । पुनःपुनरुवाचेदं मूर्च्छितश्च बभूव ह ॥२५॥
इति ब्रह्मकृतं स्तोत्रं यः शृणोति समाहितः । तत्सर्वाभीष्टसिद्धिश्च भवत्येव न संशयः ॥२६॥
अपुत्रो लभते पुत्रं प्रियाहीनो लभेत्प्रियाम् । निर्धनो लभते सत्यं परिपूर्णतमं धनम् ॥२७॥
इह लोके सुखं भुक्त्वा चान्ते दास्यं लभेद्धरेः । अचलां भक्तिमाप्नोति मुक्तेरपि सुदुर्लभाम् ॥२८॥
स्तुत्वा च जगतां धाता प्रणम्य च पुनः पुनः । शनैः शनैः समुत्थाय भक्त्या पुनरुवाच ह ॥२९॥

## ब्रह्मोवाच

उत्तिष्ठ देवदेवेश परमानन्दकारण । नन्दनन्दन सानन्द नित्यानन्द नमोऽस्तु ते ॥३०॥
व्रज नन्दालयं नाथ त्यज वृन्दावनं वनम्[1] । स्मर सुदामशापं च शतवर्षनिबन्धनम् ॥३१॥

---

गोप वेश बनानेवाले, मायाधीश्वर, उत्तम वेशवाले, उत्तम स्वभाववाले, शान्त, सबको प्रिय, दमनशील, अत्यन्त ज्ञान और आनन्दस्वरूप, परे से भी अत्यन्त परे, प्रकृति से परे, सबके अन्तरात्मरूप, निर्लिप्त, सभी प्राणियों के कर्मों के साक्षी, व्यक्त (प्रकट), अव्यक्त (अप्रकट), निर्लेप, (पृथिवी का) भार उतारनेवाले, करुणासागर, शोक-संताप को नष्ट करनेवाले, जरा, मृत्यु एवं भय आदि का अपहरण करनेवाले शरणरूपी पिंजरेवाले, भक्तों पर अनुग्रह करनेवाले, भक्तवत्सल एवं भक्तों के सञ्चित धन हैं। आपको नमस्कार है। सबके अधिष्ठातृदेव को नमस्कार है। भगवान् की प्रीति के लिए ब्रह्मा ने बार-बार यह कहा और स्वयं मूर्च्छित भी हो गये ॥२३-२५॥ ब्रह्मा द्वारा सुरचित इस स्तोत्र को जो एकचित्त होकर सुनता है, उसके सभी मनोरथ सिद्ध होते हैं इसमें संशय नहीं ॥२६॥ तथा पुत्रहीन को पुत्र, स्त्री-रहित को स्त्री और निर्धन को सचमुच परिपूर्णतम धन मिलता है ॥२७॥

वह इस लोक में सुख भोगकर अन्त में भगवान् का दास्य-पद और मुक्ति से भी अति दुर्लभ अचल भक्ति प्राप्त करता है ॥२८॥ इस भाँति जगत् के धाता (ब्रह्मा) ने उनकी स्तुति करके बार-बार प्रणाम किया और धीरे-धीरे उठकर भक्तिपूर्वक पुनः कहा ॥२९॥

**ब्रह्मा बोले**—हे देव-देवों के स्वामी, परमानन्द के (एकमात्र) कारण ! नन्दनन्दन ! सानन्द ! नित्यानन्द ! तुम्हें नमस्कार है। हे नाथ ! अब वृन्दावन त्यागकर नन्द के भवन चलो। सुदामा के उस शाप का स्मरण करो, जिसमें सौ वर्ष का वियोग रूपी बन्धन है ॥३०-३१॥ भक्त के शाप के अनुरोधवश सौ वर्षों तक प्रियतमा

---

१ क. वरम्।

भक्तशापानुरोधेन शतवर्षं पियां त्यज। पुनरेनां च संप्राप्य गोलोकं च गमिष्यसि ॥३२॥
गत्वा पितृगृहं देव पश्याक्रूरं समागतम्। पितृव्यमतिथिं मान्यं धन्यं वैष्णवमीश्वर ॥३३॥
तेन सार्धं मधुपुरीं भगवन् गच्छ सांप्रतम्। कुरु शंभोर्धनुर्भङ्गं भग्नं वैरिगणं हरे ॥३४॥
हन कंसं दुरात्मानं तातं बोधय मातरम्। निर्माणं द्वारकायाश्च भारावतरणं भुवः ॥३५॥
दह वाराणसीं शंभोः शक्रस्य सदनं विभो। शिवस्य जृम्भणं युद्धे बाणस्य भुजकृन्तनम् ॥३६॥
रुक्मिणीहरणं नाथ घातनं नरकस्य च। षोडशानां सहस्रं च स्त्रीणां पाणिग्रहं कुरु ॥३७॥
त्यज प्रियां प्राणसमां व्रजेश्वर व्रजं व्रज। उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते यावद्राधा न जाग्रति ॥३८॥
इत्येवमुक्त्वा ब्रह्मा च सेन्द्रैर्देवगणैः सह। जगाम ब्रह्मलोकं च शेषश्च शंकरस्तथा ॥३९॥
पुष्पचन्दनवृष्टिं च कृष्णस्योपरि देवताः। चक्रुः प्रीत्या च भक्त्या च वागभूवाशरीरिणी ॥४०॥
वध कंसं वधार्हं च स्वपित्रोर्मोक्षणं कुरु। क्षयं कुरु भुवो भारं नारदेत्येवमेव च ॥४१॥
इत्येवं तद्वचः श्रुत्वा भगवान् भूतभावनः। राधा भगवतीं त्यक्त्वा समुत्तस्थौ शनैः शनैः ॥४२॥
ययौ हरिः कियद्दूरं निरीक्ष्य च पुनः पुनः। क्षणं तस्थौ चन्दनानां वने वाससमीपतः ॥४३॥
विहाय राधा निन्द्रां सा समुत्तस्थौ स्वतल्पतः। न निरीक्ष्य हरिं शान्तं कान्तं च प्राणवल्लभम् ॥४४॥

---

का त्याग करो। अनन्तर पुनः उन्हें प्राप्त करके आप गोलोक जायँगे। किन्तु हे देव ! इस समय पिता के घर चलकर आप अक्रूर से मिलें जो आपके चाचा, अभ्यागत, मान्य, धन्य एवं वैष्णव हैं ॥३२-३३॥ हे भगवन् ! उनके साथ मधुपुरी (मथुरा) जायँ। हे हरे ! वहाँ पहुँचकर शिव का धनुर्भङ्ग करके शत्रु-गण का नाश करें ॥३४॥ दुष्ट कंस का वध करके माता-पिता को प्रबोधित करें। तदुपरान्त द्वारिकापुरी की रचना करके पृथिवी का भार उतारें ॥३५॥ हे विभो ! शिव की काशीपुरी को दग्ध करके इन्द्र का गृह भी नष्ट करें। युद्ध में शिव को जृम्भण (जमुहाई) से ग्रस्त करके बाणासुर की भुजाओं को छिन्न-भिन्न करें ॥३६॥ हे नाथ ! रुक्मिणी का अपहरण करके नरकासुर का वध करें और वहाँ सोलह सहस्र कन्याओं का पाणिग्रहण करें ॥३७॥

हे व्रजेश्वर ! इस समय अपनी प्राणतुल्य प्रिया को छोड़कर व्रज चलें। जब तक राधा जाग नहीं जाती हैं, तब तक आप शीघ्र उठ जायँ, कल्याण होगा ॥३८॥ इस प्रकार कहकर ब्रह्मा इन्द्रादि देवगणों समेत ब्रह्मलोक को चले गये तथा शेष और शिव भी अपने-अपने लोक में चले गये ॥३९॥ तब देवों ने भक्ति और प्रेमवश भगवान् कृष्ण के ऊपर पुष्प-चन्दन की वृष्टि की और आकाशवाणी भी हुई—"वध योग्य कंस का वध करके अपने माता-पिता को मुक्त करें और पृथिवी का भार उतारें" ॥४०-४१॥ इतनी बातें सुनकर प्राणियों का कल्याण करनेवाले भगवान् कृष्ण भगवती राधा को छोड़कर धीरे-धीरे उठ गये ॥४२॥ राधा की ओर बार-बार देखकर भगवान् कुछ दूर चले गये और चन्दन-वन में निवास-स्थान के समीप क्षणभर ठहर गये ॥४३॥ राधा निद्रा त्यागकर अपनी शय्या से उठ पड़ीं और शान्त, सुन्दर एवं प्राण प्रिय भगवान् को न देखकर कहने

हा नाथ रमण प्रेष्ठ प्राणेश प्राणवल्लभ । प्राणचोर प्रियतम क्व गतोऽसीत्युवाच ह ॥४५॥
क्षणमन्वेषणं कृत्वा बभ्राम मालतीवनम् । उवास क्षणमुत्तस्थौ क्षणं सुष्वाप भूतले ॥४६॥
रुरोद क्षणमत्युच्चैर्विललाप मुहुर्मुहुः । आगच्छाऽऽगच्छ हे नाथेत्येवमुक्त्वा पुनः पुनः ॥४७॥
मूर्च्छां संप्राप संतापात्संतप्ता विरहानलैः । भूतले च तृणाच्छन्ने पपात च यथा मृता ॥४८॥
आययुस्तत्र गोप्यश्च ब्रह्मञ्छतसहस्रशः । काश्चिच्चामरहस्ताश्च गृहीत्वा चन्दनद्रवम् ॥४९॥
तासां मध्ये प्रिया लीला[1] कृत्वा राधां स्ववक्षसि । मृतामिव प्रियां दृष्ट्वा रुरोद प्रेमविह्वला ॥५०॥
सजलं पङ्कजदलं पङ्कोपरि निधाय च । स्थापयामास तां राधां निश्चेष्टां च मृतामिव ॥५१॥
गोपीभिः सेवितां तत्र रुचिरैः श्वेतचामरैः । चन्दनद्रवयुक्तां च स्निग्धवस्त्रान्वितां सतीम् ॥५२॥
ददर्श कृष्णस्तत्रैत्य तामेव प्राणवल्लभाम् । निवारितश्च गोपीभिर्बलिष्ठाभिश्च नारद ॥५३॥
यथा नीतः सापराधो दण्ड्यो राजभटादिभिः । चकार राधां क्रोडे च समागत्य कृपानिधिः ॥५४॥
चेतनां कारयामास बोधयामास बोधनैः । संप्राप्य चेतनां देवी ददर्श प्राणवल्लभाम् ॥५५॥
बभूव सुस्थिरा देवी तत्याज विरहज्वरम् । चकार कान्तं सा कान्ता गात्रालिङ्गनमीप्सितम् ॥५६॥

---

लगीं––हा नाथ ! रमण, अत्यन्त प्रिय, प्राणेश, प्राणवल्लभ, प्राणचोर और प्रियतम, कहाँ चले गये हो ॥४४-४५॥ क्षणभर ढूंढ़कर वे मालती-वन में भ्रमण करने लगीं। वहाँ क्षणभर बैठकर फिर उठ पड़ीं और क्षणभर में पृथ्वी पर सो गयीं, क्षण में रोदन करने लगीं। अनन्तर हे नाथ ! आओ ! ऐसा बार-बार कहकर उच्च स्वर से विलाप करने लगीं ॥४६-४७॥

वियोगाग्नि के संताप से संतप्त होकर मूर्च्छित हो गयीं और घास-फूस से ढँकी भूमि पर मृतक के समान गिर पड़ीं ॥४८॥ हे ब्रह्मन् ! उसी समय वहाँ उनकी सेवा करनेवाली एक लाख गोपियाँ आ गयीं, जिनमें कुछ हाथों में चामर लिये और कुछ चन्दन लेप लिये थीं ॥४९॥ उन गोपियों के मध्य में जो उनकी प्रिय सखी लीला थी, उसने राधा को उठाकर अपनी छाती से लगा लिया और मृतक की भाँति अपनी प्रिय सखी को देखकर वह प्रेम-व्याकुल होकर रोदन करने लगी ॥५०॥ उसने पङ्क के ऊपर कमलदल रखकर उसी पर मृतक की भाँति निश्चेष्ट राधा को शयन कराया ॥५१॥ वहाँ गोपियाँ सुन्दर श्वेत चामरों द्वारा उनकी सेवा करने लगीं, चन्दन घिसकर लगाने लगीं और उस सती को स्निग्ध वस्त्र पहनाया। इसी बीच भगवान् कृष्ण ने भी वहाँ आकर अपनी प्राणवल्लभा को देखा। हे नारद ! उस समय वहाँ भगवान् को राजा के सिपाहियों द्वारा रोके जानेवाले दण्डनीय अपराधी की भाँति बलिष्ठ गोपियाँ जाने से रोक रही थीं, किन्तु कृपानिधान भगवान् ने वहाँ पहुँचकर राधा को अपने अङ्क में ले लिया और विविध भाँति के ज्ञानों द्वारा उन्हें प्रबोधित किया। चेतना आने पर देवी ने अपने प्राणवल्लभ को देखा और सुस्थिर होकर विरह-व्यथा का त्याग

---

[1] ख. 'ली तां कृ'।

नानाप्रकारशृङ्गारं चकार मधुसूदनः। उवास रत्नतल्पे च राधां कृत्वा स्ववक्षसि ॥५७॥
राधासखी रत्नमाला विदग्धा[1] सर्वपूजिता। उवाच कृष्णं मधुरं नीतिसारमनुत्तमम् ॥५८॥

रत्नमालोवाच

शृणु कृष्ण प्रवक्ष्यामि परिणामसुखावहम्। हितं तथ्यं नीतिसारं दंपत्योः प्रीतिकारणम् ॥५९॥
संमतं कामशास्त्रेषु नीतौ वेदपुराणयोः। लौकिकव्यवहारेषु प्रशस्यं सुयशस्करम् ॥६०॥
नारीणां च प्रिया माता प्रियो भ्राता च बन्धुषु। ततः प्रियश्च पुत्रश्च पुत्रादेव प्रियः पतिः ॥६१॥
शतपुत्रात्प्रियः स्वामी साध्वीनां साधुसंमतः। रसिकानां विदग्धानां न हि भर्तुः परः प्रियः ॥६२॥
यदि भर्ता विदग्धश्च विदग्धानां सुखावहः। अन्यथा विषतुल्यश्च विषमश्चेत्खलः खलु ॥६३॥
संसारे चानृते वत्स दंपत्योः प्रीतिरेव च। परस्परं च समता प्रियसौभाग्यमीप्सितम् ॥६४॥
दंपत्योः समता नास्ति यत्र-यत्र हि मन्दिरे। अलक्ष्मीस्तत्र तत्रैव विफलं जीवनं तयोः ॥६५॥
सुस्वामिनां विभेदश्च परं दुःखं च योषिताम्। शोकसंतापबीजं च जीवितं मरणाधिकम् ॥६६॥

---

किया। अनन्तर सुन्दरी राधा ने अपने प्रियतम का यथेच्छ गात्रालिङ्गन किया और मधुसूदन ने रत्न की शय्या पर राधा को अपने हृदय से लगाकर विविध भाँति का शृंगार किया ॥५२-५७॥ अनन्तर राधा की अति चतुर एवं सर्वसम्मानित प्रिय सखी रत्नमाला ने, भगवान् कृष्ण से मधुर एवं सर्वोत्तम नीतिसार कहना आरम्भ किया ॥५८॥

**रत्नमाला बोली**—हे कृष्ण ! सुनिये, मैं वह बात कहने जा रही हूँ, जो परिणाम में सुखप्रद, हितकर, तथ्य, नीति का तत्त्व और दम्पति की प्रीति का कारण है, कामशास्त्र के अनुकूल है, नीति, वेद, पुराण एवं लोकव्यवहार में प्रशस्त है और उत्तम यश का दायक है ॥५९-६०॥ स्त्रियां में माता प्रिय होती है, बन्धुओं में भ्राता प्रिय होता है। उससे अधिक प्रिय पुत्र होता है और पुत्र से भी बढ़कर प्रिय पति होता है ॥६१॥ पतिव्रताओं को सौ पुत्रों से भी बढ़कर पति प्रिय होता है, यह साधु-सम्मत है। रसिक और कामकला में निपुण स्त्रियों को पति से बढ़कर अन्य कोई प्रिय है ही नहीं ॥६२॥ यदि पति भी (कामकला) निपुण है, तब तो चतुर स्त्रियों को वह सुखप्रद होता है अन्यथा विषम (मूर्ख-रसहीन) या दुष्ट हुआ, तो विष तुल्य (दुःखप्रद) होता है ॥६३॥ हे वत्स ! इस असार संसार में दम्पति (स्त्री-पुरुष) की प्रीति ही सार वस्तु है। (दम्पति की) परस्पर समता ही प्रिय सौभाग्य और अभीष्ट है ॥६४॥ जिस घर में दम्पति की समता नहीं है, वहाँ दरिद्रता निवास करती है और उन दोनों का जीवन निष्फल रहता है ॥६५॥ उत्तम पतियों का वियोग होना स्त्रियों के लिए परम दुःखकारक है, शोक-संताप का बीज है और जीवन-मरण से भी अधिक (दुःखप्रद)

---

१ क. 'ग्धासु च पू'।

स्वप्ने जागरणे चापि पतिः प्राणाश्च योषितः । पतिरेव गुरुः स्त्रीणामिह लोके परत्र च ॥६७॥
अस्मात्त्वयि गते नाथे मूर्च्छां संप्राप राधिका । पपात सहसा भूमौ तृणाच्छन्ने च भूतले ॥६८॥
मया दत्तं मुखेऽस्याश्च शीतलं जलमुत्तमम् । तदा श्वासो बभूवास्याश्चेतनं बाल्यमेव च ॥६९॥
क्षणं वदति हे नाथ हे कृष्णेति क्षणं सखी । क्षणं रोदिति संतप्ता मूर्च्छां प्राप्नोति तत्क्षणम् ॥७०॥
राधिकायाः शरीरं च संतप्तं विरहानलैः । दग्धलोहयष्टिसममस्पृश्यमनलोपमम् ॥७१॥
स्वप्ने जागरणे रात्रौ दिवसे च गृहे वने । जले स्थले चान्तरिक्षेऽभ्युदये चन्द्रसूर्ययोः ॥७२॥
नास्ति भेदश्च राधाया मृततुल्या जडाकृतिः । शश्वत्पश्यति स्थानस्था सर्वं विष्णुमयं जगत् ॥७३॥
स्निग्धपङ्के पङ्कजानां सजलानि दलानि च । निपत्य तत्कृते तल्पे सुष्वाप विरहातुरा ॥७४॥
सेविता सा प्रियालीभिः संततं श्वेतचामरैः । चन्दनद्रवसंसिक्ता स्निग्धवस्त्रसमन्विता ॥७५॥
राधाङ्गस्पर्शमात्रेण पङ्कः संप्राप शुष्कताम् । स्निग्धानि पद्मपत्राणि बभूवुर्भस्मसात्क्षणम् ॥७६॥
चन्दनं शुष्कतां प्राप वर्णश्चम्पकसंनिभः । बभूव कज्जलाकारः केशस्य वर्णतो हरे ॥७७॥
सिन्दूरबिन्दू रुचिरः श्यामतां प्राप तत्क्षणम् । वेषो विलासो लीला च क्रीडा त्यक्ता बभूव ह ॥७८॥
रत्नमाला तु तां दृष्ट्वा गत्वा कृष्णान्तिकं तदा । उवाच मधुरं वाक्यं राधाहितकरं परम् ॥७९॥

---

है ॥६६॥ सोते-जागते सभी समय स्त्रियों का प्राण पति ही होता है और लोक-परलोक में स्त्रियों का गुरु भी पति ही है ॥६७॥ इसी कारण तुम्हारे जाने पर राधिका को मूर्च्छा आ गयी और घास से ढँकी भूमि पर सहसा गिर पड़ीं ॥६८॥

मैंने उनके मुख में उत्तम एवं शीतल जल डाला, तब उन्हें चेतना आयी, श्वास-संचार होने लगा और बालापन आया ॥६९॥ अनन्तर सखी क्षण भर में कहती—हे नाथ ! हे कृष्ण ! तथा क्षण भर रोने लगती। फिर उसी क्षण संतप्त होकर मूर्च्छित हो जाती ॥७०॥ जिस प्रकार लोहे की छड़ दग्ध होने पर अग्नि के समान अस्पृश्य होती है, उसी भाँति विरहाग्नि द्वारा राधा का शरीर संतप्त था ॥७१॥ सोते, जागते, रात्रि, दिन, गृह, वन, जल, स्थल और आकाश में सूर्य-चन्द्रमा में, मृतकतुल्य एवं जड़ाकार राधा को कुछ भेद मालूम नहीं पड़ता था। एक जगह पड़ी हुई वह समस्त संसार को निरन्तर विष्णुमय देखती रहीं ॥७२-७३॥ उसके लिए गीले कीचड़ पर कमलों के अभिनव पत्रों की शय्या बनायी गयी। उस पर गिरकर विरहाकुल राधा सो गयीं। चन्दनों का द्रव उनके स्निग्ध वस्त्र पर लेप दिया गया और प्रिय सखियाँ श्वेत चामरों से निरन्तर सेवा करने लगीं। किन्तु राधा के अङ्गस्पर्श-मात्र से वह पङ्क सूख गया और कमल के वे सजल पत्ते उसी क्षण भस्म हो गये। हे हरे ! चन्दन सूख गया और चम्पा के समान शरीर का रङ्ग केश के रङ्ग से भी अधिक काला हो गया ॥७४-७७॥ सिन्दूर की बिन्दी उस क्षण काली हो गयी। वेष, विलास, लीला और क्रीडा का परित्याग कर दिया ॥७८॥ रत्नमाला ने राधा की ऐसी अवस्था देखकर कृष्ण के पास जाकर मधुर वचन कहा, जो राधा के लिए परम हितकर था ॥७९॥

### रत्नमालोवाच

हे कृष्ण कमलाकान्त त्वद्वियोगेन मत्सखी। प्राणांस्त्यक्ष्यति शीघ्रं सा यदि नाऽऽयास्यसि ध्रुवम् ॥८०॥
विचार्य मनसा कृष्ण यत्तत्समुचितं कुरु। न भवेत्कामिनीहत्या येन नीतिविशारद ॥८१॥
रत्नमालावचः श्रुत्वा प्रहस्योवाच माधवः। हितं सत्यं नीतिसारं परिणामसुखावहम् ॥८२॥

### श्रीभगवानुवाच

ईशो यद्यपि शक्तोऽहं निषेकं खण्डितुं प्रिये। तथाऽपि[1] न क्षमो रत्ने नियतेर्न करोम्यहम् ॥८३॥
ब्रह्माण्डेषु च सर्वेषु मर्यादा स्थापिता मया। तया कर्म प्रकुर्वन्ति मुनयश्च सुरा नराः ॥८४॥
सुदामशापाद्विच्छेदः शतवर्षमनीप्सितः। भविष्यत्येव दंपत्योरावयोरेव सुन्दरि ॥८५॥
भेदो जागरणेऽस्याश्च मया सह सुमध्यमे। संश्लेषः संततं स्वप्ने मद्वरेण भविष्यति ॥८६॥
आध्यात्मिकी मया दत्ता शोकच्छेदो भविष्यति। राधां बोधय भद्रं ते यास्यामि नन्दमन्दिरम् ॥८७॥
इत्युक्त्वा जगतां नाथो ययौ नन्दालयं प्रति। राधिकां बोधयामासुरालिसंघाश्च नारद ॥८८॥
गत्वा गृहं च पितरं ननाम मातरं तथा। चकार माता क्रोडे च नवनीतं च नूतनम् ॥८९॥

---

**रत्नमाला बोली**—हे कृष्ण! हे कमलाकान्त! तुम्हारे वियोग में हमारी सखी निश्चित रूप से शीघ्र प्राण त्याग देगी, यदि आप नहीं आयेंगे ॥८०॥ हे कृष्ण! हे नीतिविशारद! मन से सोच-विचारकर जो उचित हो, वही कीजिये जिससे कामिनी की हत्या न हो ॥८१॥ रत्नमाला की बात सुनकर भगवान् ने हँसकर उससे हितकर, सत्य, नीति का सारभाग एवं परिणाम में सुखप्रद वचन कहा ॥८२॥

**श्रीभगवान् बोले**—हे रत्नमाला! यद्यपि ईश होने के नाते मैं इसके मूल कारण का खण्डन करने में समर्थ हूँ, तथापि नियति (भाग्य) का खण्डन करने में मैं समर्थ नहीं हूँ ॥८३॥ सभी ब्रह्माण्डों में मैंने मर्यादा स्थापित की है, जिसके द्वारा मुनिवृन्द, देवगण और मनुष्य कर्म करते हैं ॥८४॥ हे सुन्दरि! हम दोनों दम्पति का सुदामा के शाप के कारण सौ वर्ष तक अवांछित वियोग होगा ही ॥८५॥ किन्तु हे सुन्दर मध्य-वाली! मेरे वरदान के कारण केवल जागृत अवस्था में मेरा वियोग होगा और निद्रा अवस्था में मेरा सतत संयोग रहेगा ॥८६॥ मैंने आध्यात्मिकी शक्ति भी प्रदान की है, जिससे शोक नष्ट हो जायगा। अतः राधा को जागृत करो। तुम्हारा कल्याण होगा। मैं अब नन्द के घर जाऊँगा ॥८७॥ हे नारद! इतना कहकर जगन्नाथ भगवान् नन्द के घर चले गये और सखियों के समूहों ने राधा को जगा दिया ॥८८॥ घर पहुँचकर भगवान् ने माता-पिता को नमस्कार किया। अनन्तर माता ने उन्हें अपनी गोद में बैठाकर नवीन मक्खन

---

१ क. °पि लक्षणा र°।

मातृदत्तं च ताम्बूलं चखाद शीतलं जलम् । उवास तत्र जगतां नाथो मातृसमीपतः ॥९०॥
सर्वैर्गोपसमूहैश्च सेवितः श्वेतचामरैः । माल्यचन्दनताम्बूलं ते च तस्मै ददुर्मुदा ॥९१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० श्रीकृष्णागमनं
नामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥६९॥

•

# अथ सप्ततितमोऽध्यायः

## नारायण उवाच

अथाक्रूरः स्वशरणं गत्वा कंसेन प्रेषितः । चकार शयनं तल्पे भुक्त्वा मिष्टान्नमुत्तमम् ॥१॥
सकर्पूरं च ताम्बूलं चखाद वासितं जलम् । जगाम निद्रां सुखतः सुखसंभोगमात्रतः ॥२॥
ततो ददर्श सुस्वप्नं पुराणश्रुतिसंमतम् । निशावशेषसमये बाधादिपरिवर्जितः ॥३॥
अरोगी बद्धकेशश्च वस्त्रयुग्मसमन्वितः । सुतल्पशायी सुस्निग्धश्चिन्ताशोकविवर्जितः ॥४॥

---

खिलाया ॥८९॥ माता के दिये हुए शीतल जल और ताम्बूल खाकर जगत् के नाथ भगवान् श्रीकृष्ण ने माता के समीप निवास किया ॥९०॥ समस्त गोप-समूह ने हर्ष से उन्हें माला, चन्दन और ताम्बूल प्रदान किये तथा श्वेत चामरों से सेवा की ॥९१॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद-नारायण-संवाद के
प्रकरण में श्रीकृष्ण गमन नामक उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥६९॥

•

# अध्याय ७०

## गोपियों द्वारा अक्रूर की दुर्दशा और श्रीकृष्ण का व्रज के लिए प्रस्थान

**नारायण बोले**––अनन्तर कंस के द्वारा भेजे गये अक्रूर ने अपने यहाँ जाकर उत्तम मिष्टान्न भोजन किया और कपूर समेत ताम्बूल, सुवासित जल आदि ग्रहण करके पलँग पर सुख-संभोग मात्र से आनन्दपूर्वक शयन किया। पश्चात् उन्होंने रात्रि के अन्तिम प्रहर में वेद-पुराण-सम्मत एक उत्तम स्वप्न देखा कि–– एक ब्राह्मण-बालक उपद्रव आदि से रहित, नीरोग, केश बांधे, दो वस्त्रों से युक्त एवं उत्तम शय्या पर सोया हुआ, स्निग्ध वर्णवाला, चिन्ता-शोक से रहित, किशोरावस्था से युक्त, श्यामवर्ण,

किशोरवयसं श्यामं द्विभुजं मुरलीधरम्। पीतवस्त्रपरीधानं वनमालाविभूषितम् ॥५॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं मालतीमाल्यशोभितम्। भूषितं भूषणार्हं च सद्रत्नमणिभूषणैः ॥६॥
मयूरपिच्छचूडं च सस्मितं पद्मलोचनम्। एवंभूतं द्विजशिशुं ददर्श प्रथमं मुने ॥७॥
ततो ददर्श रुचिरां पतिपुत्रवतीं सतीम्। पीतवस्त्रपरीधानां रत्नभूषणभूषिताम् ॥८॥
ज्वलत्प्रदीपहस्तां च शुक्लधान्यकरां वराम्। शरच्चन्द्रनिभास्यां च सस्मितां वरदां शुभाम् ॥९॥
ततो ददर्श विप्रं च प्रकुर्वन्तं शुभाशिषम्। श्वेतपद्मगतं हंसं तुरगं च सरोवरम् ॥१०॥
ददर्श चित्रितं चारु फलितं पुष्पितं शुभम्। आम्रनिम्बनारिकेलगुर्वर्ककदलीतरुम्[1] ॥११॥
दशन्तं श्वेतसर्पं च स्वात्मानं पर्वतस्थितम्। वृक्षस्थं च गजस्थं च तरिस्थं तुरगस्थितम् ॥१२॥
वीणां वादितवन्तं च भुक्तवन्तं च पायसम्। दधिक्षीरयुतान्नं च पद्मपत्रस्थमीप्सितम् ॥१३॥
कृमिविट्सहिताङ्गं च रुदन्तं मोहितं तदा। शुक्लधान्यपुष्पकरं क्षणं चन्दनचर्चितम् ॥१४॥
प्रासादस्थं समुद्रस्थमात्मानं च सलोहितम्। छिन्नभिन्नं क्षताङ्गं च मेदपूयसमन्वितम् ॥१५॥
ततो ददर्श रजतं मणिं शुभ्रं च काञ्चनम्। मुक्तामाणिक्यरत्नं च पूर्णकुम्भजलं शुभम् ॥१६॥
सुरभिं च सवत्सां च वृषभेन्द्रं मयूरकम्। शुकं च सारसं हंसं[2] चिल्लं खञ्जनमेव च ॥१७॥

---

द्विभुज, मुरली धारण किये, पीताम्बर पहने, वनमाला से सुशोभित, चन्दन-चर्चित सर्वाङ्गवाला, मालती की माला से शोभित, उत्तम रत्नों के आभूषणों से भूषित, भूषण योग्य मोरपंख की चूड़ा बनाये, मन्द मुसुकान करने-वाला एवं कमल के समान नेत्रवाला था। हे मुने! ऐसे ब्राह्मण-बालक को उन्होंने स्वप्न में सर्वप्रथम देखा ॥१-७॥ पश्चात् पति-पुत्रवती एक पतिव्रता स्त्री को देखा, जो पीतवस्त्र पहने, रत्नों के भूषणों से भूषित, एक हाथ में प्रज्वलित दीपक तथा दूसरे हाथ में श्वेतधान्य लिये, उत्तमाङ्गी, शारदीय चन्द्रमा के समान मुख-वाली, मन्दहास करती हुई, वर देनेवाली और शुभ मूर्ति थी ॥८-९॥ तदुपरान्त शुभाशिष देते हुए ब्राह्मण को देखा और श्वेत कमल पर हंस, अश्व एवं सरोवर भी (देखा) ॥१०॥ उन्होंने फूले, फले, चित्रविचित्र, सुन्दर और शुभ, आम, नीम, नारियल, भारी थर्कवृक्ष और कदलीवृक्ष भी देखा ॥११॥ अपने को श्वेत सर्प से डँसते हुए तथा पर्वत पर बैठे, वृक्ष पर बैठे, गज पर बैठे, नाव पर बैठे और घोड़े पर बैठे हुए देखा ॥१२॥ पश्चात् अपने को वीणा बजाते, खीर एवं दही-दूध संयुक्त अभीष्ट अन्न कमल पत्र पर खाते हुए देखा। कीड़े सहित मल लगा अपना अंग देखा, पुनः मोहित होकर रोदन करते (अपने को) देखा। फिर पुष्प और श्वेत धान्य हाथ में लिये, क्षण में चन्दनचर्चित, कोठे पर बैठे, समुद्र में स्थित, रक्तयुक्त, छिन्न-भिन्न एवं क्षतअङ्ग तथा चर्बी और पीव से युक्त (अपने को) देखा ॥१३-१५॥ अनन्तर, चाँदी, शुभमणि, सुवर्ण, मुदा, माणिक्य, रत्न, जलपूर्ण शुभकलश, वत्स (बछड़े) समेत गाय, बड़ा बैल (साँड़), मोर, तोता, सारस, हंस, चीलह, खंजन, ताम्बूल, पुष्पमाला,

---

१ क.° गुवाकक°। २ क. शङ्खचि°।

ताम्बूलं पुष्पमाल्यं च ज्वलदग्निं सुरार्चनम् । पार्वतीप्रतिमां कृष्णप्रतिमां शिवलिङ्गकम् ॥१८॥
विप्रबालां च बालं च सुपक्वफलितां कृषिम् । देवस्थलीं च राजेन्द्रं सिंहं व्याघ्रं गुरुं सुरम् ॥१९॥
दृष्ट्वा स्वप्नं समुत्तस्थौ चकाराऽऽह्निकमीप्सितम् । उद्धवं कथयामास सर्वं वृत्तान्तमेव च ॥२०॥
उद्धवाज्ञां समादाय कृत्वा गुरुसुरार्चनम् । यात्रां चकार श्रीकृष्णं ध्यात्वा मनसि नारद ॥२१॥
ददर्श वर्त्मन्येवं च मङ्गलाहं शुभप्रदम् । वाञ्छाफलप्रदं रम्यं पुरो मङ्गलसूचकम् ॥२२॥
वामे शवं शिवां पूर्णकुम्भं नकुलचाषकम् । पतिपुत्रवतीं साध्वीं दिव्याभरणभूषिताम् ॥२३॥
शुक्लपुष्पं च माल्यं च धान्यं च खञ्जनं शुभम् । दक्षिणे ज्वलदग्निं च विप्रं च वृषभं गजम् ॥२४॥
वत्सप्रयुक्तां धेनुं च श्वेताश्वं राजहंसकम् । वेश्यां च पुष्पमालां च पताकां दधि पायसम् ॥२५॥
मणिं सुवर्णं रजतं मुक्तामाणिक्यमीप्सितम् । मद्यं मांसं चन्दनं च माध्वीकं घृतमुत्तमम् ॥२६॥
कृष्णसारं फलं लाजाः सिद्धान्नं दर्पणं तथा । विचित्रितं विमानं च सुदीप्तां प्रतिमां तथा ॥२७॥
शुक्लोत्पलं पद्मवनं शङ्खचिल्लं च कीरकम् । मार्जारं पर्वतं मेघं मयूरं शुकसारसम् ॥२८॥
शङ्खकोकिलवाद्यानां ध्वनिं शुश्राव मङ्गलम् । विचित्रकृष्णसंगीतं हरिशब्दं जयध्वनिम् ॥२९॥
एवंभूतं शुभं दृष्ट्वा श्रुत्वा प्रहृष्टमानसः । प्रविवेश हरिं स्मृत्वा पुण्यं वृन्दावनं वनम् ॥३०॥

---

प्रज्वलित अग्नि, देवार्चन, पार्वती की मूर्ति, कृष्ण की मूर्ति, शिवलिंग, ब्राह्मण-कन्या बालक, पकी हुई उत्तम कृषि (खेती) देवस्थान, महाराज, सिंह, व्याघ्र, गुरु और देवता को देखा ॥१६-१९॥ इस भाँति स्वप्न देखकर उठे और नित्य-कर्म सुसम्पन्न किया। अनन्तर उद्धव से समस्त वृत्तान्त कह सुनाया ॥२०॥ हे नारद! उद्धव की आज्ञा प्राप्त कर गुरु एवं देव की अर्चना के उपरान्त उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान मन में करके यात्रा की। यात्रा के समय मार्ग में मङ्गलपूर्ण और शुभप्रद, अभीष्टफलदायक, रम्य और आगे मङ्गल-सूचक शुभ शकुन देखा—'बाम भाग में शिव-शिवा (शृगाल-शृगाली), पूर्ण कलश, नेवला, नीलकण्ठ, दिव्य आभूषणों से भूषित एवं पति पुत्रवती पतिव्रता स्त्री, श्वेतपुष्प, माला, धान्य, शुभ खञ्जन पक्षी, दक्षिण ओर प्रज्वलित अग्नि, ब्राह्मण, बैल, हाथी, बछड़े समेत गौ, श्वेत अश्व, राजहंस, वेश्या, पुष्पमाला, पताका, दही, खीर, मणि, सुवर्ण, चाँदी, मुक्ता, माणिक्य, मद्य, मांस, चन्दन, माध्वीक (महुवे की शराब), उत्तम घृत, कृष्णमृग, फल, लावा, सिद्धान्न, दर्पण, चित्रविचित्र विमान, अतिप्रदीप्त प्रतिमा, श्वेत कमल, कमलवन, शङ्ख, चील्ह, कली, बिल्ली, पर्वत, मेघ, मोर, तोता और सारस देखा ॥२१-२८॥ अनन्तर शङ्ख, कोकिल और वाद्यों की मङ्गल ध्वनि, विचित्र कृष्ण संगीत, हरि शब्द और जयध्वनि सुनी। इस प्रकार शुभ देखकर और सुनकर प्रसन्नचित्त से उन्होंने भगवान् का स्मरणपूर्वक पुण्य वृन्दावन में प्रवेश किया ॥२९-३०॥ वहाँ उन्होंने सामने रमणीय एवं

---

१ ख. शिवं। २ क. सद्योमां।

ददर्श पुरतो रम्यं रासमण्डलमीप्सितम् । चन्दनागुरुकस्तूरीपुष्पचन्दनवायुना ॥३१॥
वासितं मङ्गलघटै रम्भास्तम्भैर्विराजितम् । आम्रपल्लवसंघैश्च पट्टसूत्रविचित्रितैः ॥३२॥
शोभितैः परितः शश्वत्पद्मरागविनिर्मितम् । शोभितं शोभनार्हं च त्रिकोटिरत्नमन्दिरैः ॥३३॥
रम्यैः कुञ्जकुटीरैश्च राजितं शतकोटिभिः । रासं वृन्दावनं दृष्ट्वा कियद्दूरं ययौ च सः ॥३४॥
ददर्श पुरतो रम्यं नन्दव्रजमनुत्तमम् । परं वैकुण्ठसंकाशं वैकुण्ठ निलयं शुभम् ॥३५॥
रत्नसोपानसंयुक्तं रत्नस्तम्भैर्विराजितम् । नानाचित्रविचित्राढ्यं सद्रत्नवलयान्वितम् ॥३६॥
खचितं मणिसारेण रचितं विश्वकर्मणा । द्वारि दृष्टेन मार्गेण राजद्वारं विवेश सः ॥३७॥
पताकारत्नजालाढ्यं मुक्तामाणिक्यभूषितम् । रत्नदर्पणशोभाढ्यं रत्नचित्रविचित्रितम् ॥३८॥
रत्नवीथीविरचितं मङ्गलं मङ्गलैर्घटैः । अक्रूरागमनं श्रुत्वा साह्लादो नन्द एव च ॥३९॥
सहितो रामकृष्णाभ्यां जगामानुव्रजाय वै । वृषभान्वादिभिर्युक्तः कृत्वा वेश्यां पुरःसरम् ॥४०॥
पूर्णकुम्भं गजेन्द्रं च कृत्वाऽग्रे शुक्लधान्यकम् । कृष्णां गां मधुपर्कं च पाद्यं रत्नासनादिकम् ॥४१॥
गृहीत्वा सादरः शान्तः सस्मितो विनतस्तथा । आनन्दयुक्तो नन्दश्च सगणः सहबालकः ॥४२॥
दृष्ट्वाऽक्रूरं महाभागं तूर्णमालिङ्गनं ददौ । प्रणेमुः शिरसा सर्वे गोपा जगृहुराशिषम् ॥४३॥

---

अभीष्ट रासमण्डल का दर्शन किया, जो चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, पुष्प और चन्दनवायु से सुवासित, मङ्गल कलश एवं कदली स्तम्भ से सुशोभित, आम के पल्लवों और चित्र-विचित्र सूत्रों से चारों ओर से अलंकृत, पद्मराग मणि से सुरचित तथा तीन करोड़ सुन्दर रत्न के मन्दिरों और सौ करोड़ रमणीय कुंज-कुटीरों से सुशोभित था। रास को देखते हुए वे वृन्दावन में कुछ दूर तक चले गये ॥३१-३४॥ पश्चात् उन्हें सामने परम रमणीक नन्द का व्रज दिखायी पड़ा, जो वैकुण्ठ के समान परमोत्तम, उसके समान शुभगृहों से युक्त, शुभ दल की सीढ़ियों तथा स्तम्भों से शोभित अनेक भाँति से अति चित्र-विचित्र, उत्तम रत्न वलय से युक्त, मणि के सारभाग से खचित और विश्वकर्मा द्वारा सुरचित था। द्वार पर दिखायी पड़नेवाले मार्ग से उन्होंने राजद्वार में प्रवेश किया, जो पताका और रत्न-समूह से सम्पन्न, मुक्ता और माणिक्य से भूषित, रत्न-दर्पणों की शोभा से परिपूर्ण, रत्नों से चित्र-विचित्र, रत्नों की मणियों से सुनिर्मित और मङ्गल कलशों से सुमङ्गलमय था ॥३५-३८½॥ अक्रूर का आगमन सुनकर नन्द को अपार हर्ष हुआ, वे बलराम और कृष्ण को साथ लेकर उनके स्वागत के लिए चले। साथ में वृषभानु आदि गोप भी थे, आगे-आगे नर्तकी चल रही थी। इस प्रकार पूर्णकलश और गजराज को आगे करके श्वेत धान्य, कृष्ण गौ, मधुपर्क, पाद्य और रत्नों के आसन आदि लेकर शान्त, प्रसन्नमुख, विनयनम्र, आनन्दयुक्त और बालकों एवं गणों से समन्वित नन्द ने महाभाग अक्रूर को देखा। तुरन्त उनका आलिंगन किया, साथ के सभी गोपों ने उन्हें सिर से प्रणाम किया और आशीर्वाद प्राप्त किया ॥३९-४२॥ हे मुने! इस प्रकार उन लोगों का परस्पर मिलन गुणवान् हुआ। अक्रूर ने कृष्ण और बलराम को क्रमशः गोद में उठाकर

परस्परं च संयोगो बभूव गुणवान्मुने। क्रोडे चकाराक्रूरश्च कृष्णं रामं क्रमेण च ॥४४॥
चुचुम्ब गण्डयुगुले पुलकाञ्चितविग्रहः। साश्रुनेत्रोऽतिसाह्लादः कृतार्थः सिद्धवाञ्छितः ॥४५॥
ददर्श कृष्णं द्विभुजं क्षणं श्यामलसुन्दरम्। पीतवस्त्रपरीधानं मालतीमाल्यभूषितम् ॥४६॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं परं वंशीधरं वरम्। स्तुतं ब्रह्मेशशेषाद्यैर्मुनीन्द्रैः सनकादिभिः ॥४७॥
वीक्षितं गोपकन्याभिः परिपूर्णतमं विभुम्। क्षणं ददर्श क्रोडस्थं सस्मितं च चतुर्भुजम् ॥४८॥
लक्ष्मीसरस्वतीयुक्तं वनमालाविभूषितम्। सुनन्दनन्दकुमुदैः पार्षदैः परिसेवितम् ॥४९॥
सेवितं सिद्धसंघैश्च भक्तिनम्रैः परात्परम्। क्षणं ददर्श देवं तं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम् ॥५०॥
शुद्धस्फटिकसंकाशं नागराजैर्विराजितम्। दिगम्बरं परं ब्रह्म भस्माङ्गं च जटायुतम् ॥५१॥
जपमालाकरं ध्याननिष्ठं श्रेष्ठं च योगिनम्। क्षणं चतुर्मुखं ध्याननिष्ठं श्रेष्ठं मनीषिणाम् ॥५२॥
क्षणं धर्मस्वरूपं च शेषरूपं क्षणं क्षणम्। क्षणं भास्कररूपं च ज्योतीरूपं सनातनम् ॥५३॥
क्षणं परमशोभाढ्यं कोटिकन्दर्पनिन्दितम्। कामिनीकमनीयं च कामुकं कामसंयुतम् ॥५४॥
एवंभूतं शिशुं दृष्ट्वा स्थापयामास वक्षसि। रत्नसिंहासने रम्ये नन्ददत्ते च नारद ॥५५॥
कृत्वा प्रदक्षिणं भक्त्या पुलकाञ्चितविग्रहः। प्रणम्य शिरसा भूमौ तुष्टाव पुरुषोत्तमम् ॥५६॥

---

रोमांचितशरीर, आह्लादयुक्त सजलनयन, कृतार्थ और सफलमनोरथ होकर उनके युगल कपोलों का चुम्बन किया ॥४३-४५॥ उन्होंने उस क्षण दो भुजाधारी श्यामसुन्दर को देखा, जो पीत वस्त्र पहने, मालतीमाला से विभूषित, चन्दन से लिप्त सम्पूर्ण अंगोंवाले, परम श्रेष्ठ एवं वंशीधर थे। ब्रह्मा, शिव, शेष आदि और सनकादि मुनीन्द्रगण उनकी स्तुति कर रहे थे, गोप-कन्याएं अपलक (एकटक) नेत्रों से उन्हें देख रही थीं ॥४६-४७½॥ दूसरे क्षण उन्होंने गोद में स्थित भगवान् को चार भुजाओं से युक्त तथा मन्द मुसकान करते देखा, जो लक्ष्मी-सरस्वती से युक्त, वनमाला से विभूषित, सुनन्द, नन्द और कुमुद पार्षदों से सुसेवित, तथा भक्ति-विनम्र सिद्धसमूहों से सेवित तथा पर से भी परे थे ॥४८-४९½॥ दूसरे क्षण पुनः उन्होंने उन सर्वश्रेष्ठ को पञ्चमुख, त्रिनेत्र, शुद्ध स्फटिक के समान शुभ्र, नागराज से शोभित, दिगम्बर (नग्न), परम ब्रह्म, अङ्गों में भस्म रमाये, जटायुक्त, हाथ में जपमाला धारण किये, योगी के रूप में देखा ॥५०-५१½॥ पुनः क्षण में ध्यानमग्न एवं श्रेष्ठ मनीषी ब्रह्मा के रूप में देखा ॥५२॥ क्षण में धर्मस्वरूप, क्षण में शेषरूप और क्षण में सनातन ज्योतिःस्वरूप तथा सूर्य रूप में देखा ॥५३॥ पुनः क्षण में उनका परमशोभापूर्ण रूप देखा, जो करोड़ों काम के सौन्दर्य को तिरस्कृत करनेवाला, कामिनियों का अतिप्रिय, कामुक एवं कामसंयुत था। ऐसे शिशु को देखकर उन्होंने अपने हृदय से लगा लिया ॥५४½॥ हे नारद! पुनः नन्द द्वारा प्रदत्त रमणीक रत्नसिंहासन पर शिशु को रखकर उन्होंने पुलकित होकर भक्ति से पुरुषोत्तम भगवान् की प्रदक्षिणा, भूमि में सिर से प्रणाम और उनकी स्तुति की ॥५५-५६॥

## अक्रूर उवाच

नमः कारणरूपाय परमात्मस्वरूपिणे
सर्वेषामपि विश्वानामीश्वराय नमो नमः। पराय प्रकृतेरीश परात्परतराय च ॥५७॥
निर्गुणाय निरीहाय नीरूपाय स्वरूपिणे। सर्वदेवस्वरूपाय सर्वदेवेश्वराय च ॥५८॥
सर्वदेवाधिदेवाय विश्वादिभूतरूपिणे। असंख्येषु च विश्वेषु ब्रह्मविष्णुशिवात्मक ॥५९॥
स्वरूपायाऽऽदिबीजाय तदीशविश्वरूपिणे। नमो गोपाङ्गनेशाय गणेशेश्वररूपिणे ॥६०॥
नमः सुरगणेशाय राधेशाय नमो नमः। राधारमणरूपाय राधारूपधराय च ॥६१॥
राधाराध्याय राधायाः प्राणाधिकतराय च। राधासाध्याय राधाधिदेवप्रियतमाय च ॥६२॥
राधाप्राणाधिदेवाय विश्वरूपाय ते नमः। वेदस्तुतात्मवेदज्ञरूपिणे सर्ववेदिने ॥६३॥
वेदाधिष्ठातृदेवाय वेदबीजाय ते नमः। यस्य लोमसु विश्वानि चासंख्यानि च नित्यशः ॥६४॥
महद्विष्णोरीश्वराय विश्वेशाय नमो नमः। स्वयं प्रकृतिरूपाय प्राकृताय नमो नमः ॥६५॥
प्रकृतीश्वररूपाय प्रधानपुरुषाय च। इत्येवं स्तवनं कृत्वा मूर्च्छामाप सभातले ॥६६॥
पपात सहसा भूमौ पुनरीशं ददर्श सः। बहिःस्थं हृदयस्थं च परमात्मानमीश्वरम् ॥६७॥
परितः श्यामरूपं च विश्वस्थं विश्वमेव च। अक्रूरं मूर्च्छितं दृष्ट्वा नन्दः सादरपूर्वकम् ॥६८॥
रत्नसिंहासने रम्ये वासयामास नारद। पप्रच्छ सर्ववृत्तान्तं किंस्विद्दृष्टमिति त्वया ॥६९॥

---

**अक्रूर बोले**--कारणरूप एवं परमात्मस्वरूप आपको नमस्कार है। समस्त विश्वों के अधीश्वर को बार-बार नमस्कार है, जो प्रकृति से परे, एवं ईश से भी अति परे, निर्गुण, निरीह, रूपरहित, स्वरूपधारी, समस्त देवस्वरूप, सकल देवों के अधीश्वर, निखिल देवों के अधिष्ठाता देव, विश्व के आदिभूत, असंख्य विश्वों में ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव रूप, स्वरूप, आदि बीज, उसके ईश विश्वरूप, गोपियों के अधीश्वर एवं गणेश्वररूपी को नमस्कार है ॥५७-६०॥ देवगणों के ईश को नमस्कार है। राधा के प्रभु को नमस्कार है। राधा के पतिरूप को नमस्कार है। राधारूपधारी को नमस्कार है। राधा के आराध्यदेव, राधा के प्राणों से भी अधिक प्रिय, राधा द्वारा साध्य, राधा के अधिदेवरूप प्रियतम, राधा के प्राणों के अधिष्ठातृ देव और विश्वरूप आपको नमस्कार है। वेदों के द्वारा स्तुत, आत्मा और वेद के ज्ञातृस्वरूप, जानने-वाले, वेदों के अधिष्ठातृदेव और वेदों के बीजरूप को नमस्कार है। जिनके लोम में नित्य असंख्य विश्व निहित रहते हैं, उनको नमस्कार है ॥६१-६४॥ महाविष्णु, ईश्वर तथा विश्वेश को बार-बार नमस्कार है। स्वयं प्रकृतिरूप, प्राकृतरूप, प्रकृति एवं ईश्वररूप और प्रधान पुरुष रूप को बार-बार नमस्कार है। इस प्रकार स्तुति करके वे सभा के बीच मूर्च्छित हो गये ॥६५-६६॥ वे सहसा पृथ्वी पर गिर पड़े। अनन्तर उन्हें भगवान् पुनः दिखायी पड़े, जो बाहर स्थित, हृदय में स्थित, परमात्मा, ईश्वर, चारों ओर श्यामलरूप, विश्व में स्थित और विश्व रूप हैं। हे नारद ! अक्रूर को मूर्च्छित देखकर नन्द ने सादर उन्हें रमणीय रत्नसिंहासन पर बैठाया। समस्त वृत्तान्त पूछा और यह भी कहा कि--क्या कुछ दिखायी पड़ा है ? पश्चात् मिष्टान्न भोजन कराकर बार-बार

मिष्टान्नं भोजयामास कुशलं च पुनः पुनः । अक्रूरः कथयामास कंसवृत्तान्तमीप्सितम् ॥७०॥
स्वपित्रोर्मोक्षणार्थं च गमनं रामकृष्णयोः । इत्यक्रूरकृतं स्तोत्रं यः पठेत्सुसमाहितः ॥७१॥
अपुत्रो लभते पुत्रमभार्यो लभते प्रियाम् । अधनो धनमाप्नोति निर्भूमिरुर्वरां महीम् ॥७२॥
हतप्रजः प्रजालाभं प्रतिष्ठां चाप्रतिष्ठितः । यशः प्राप्नोति विपुलमयशस्वी च लीलया ॥७३॥
अथ सुष्वाप समये परं संहृष्टमानसः । रम्ये चम्पकतल्पे च कृष्णं कृत्वा स्ववक्षसि ॥७४॥
प्रातरुत्थाय सहसा कृत्वाऽऽह्निकमनुत्तमम् । स्वरथे स्थापयामास रामं कृष्णं जगत्पतिम् ॥७५॥
गव्यं पञ्चप्रकारं च नानाद्रव्यं सुदुर्लभम् । वृषभानं च नन्दं च सुनन्दं चन्द्रभानकम् ॥७६॥
नानाप्रकारं वाद्यं च मृदङ्गमुरजादिकम् । पटहं पणवं चैव ढक्कां दुंदुभिमानकम् ॥७७॥
सज्जां संनहनीं कास्यपट्टमर्दलमण्डवीम् । वादयामास सानन्दं नन्दगोपो व्रजेश्वरः ॥७८॥
श्रुत्वा वाद्यं च गोप्यश्च गमनं रामकृष्णयोः । दृष्ट्वा कृष्णं रथस्थं तमाययुः कोपपीडिताः ॥७९॥
कृष्णेन वारिताः सर्वाः प्रेरिता राधया द्विज । बभञ्जुरीश्वररथं पादाघातेन लीलया ॥८०॥
तत्र सर्वेषु गोपेश हाहाकारं कृतेषु च । प्रययुर्बलवत्यश्च कृष्णं कृत्वा स्ववक्षसि ॥८१॥
काचित्क्रूरं तमक्रूरं भर्त्सयामास कोपतः । काश्चिद्बद्ध्वा च वस्त्रेण चाक्रूरं प्रययुस्ततः ॥८२॥
काचित्तं ताडयामास कङ्कणेन करेण च । तद्वस्त्रं हारयामास कृत्वा विवसनं मुने ॥८३॥

---

कुशल पूछा और अक्रूर ने अभिलषित कंस का वृत्तान्त भी बताया ॥६७-७०॥ और अपने पिता-माता को कष्ट-मुक्त करने के लिए बलराम-कृष्ण का वहाँ जाना भी बताया। इस प्रकार अक्रूर कृत स्तोत्र का सावधान मन से पाठ करने से पुत्रहीन को पुत्र, भार्याहीन को भार्या, निर्धन को धन, भूमिहीन को उर्वरा भूमि, नष्ट सन्तानवाले को सन्तान, अप्रतिष्ठित को प्रतिष्ठा और यशहीन को अनायास विपुल यश प्राप्त होता है। उपरान्त अत्यन्त प्रसन्न होकर भगवान् कृष्ण को अपने वक्ष पर लेकर रमणीय चम्पा की शय्या पर सो गये ॥७१-७४॥ पुनः प्रातः समय उठकर उन्होंने नित्य का आह्निक (दैनिक) करके जगत्पति राम-कृष्ण को अपने रथ पर बैठाया ॥७५॥ साथ में पाँचों प्रकार के गव्य (दूध, दही, घी, मक्खन और छाछ), विभिन्न प्रकार के अति दुर्लभ पदार्थ लिये वृषभान नन्द, सुनन्द एवं चन्द्रभान के साथ यात्रा की तैयारी की। व्रजाधीश्वर नन्द ने अनेक प्रकार के वाद्य मृदङ्ग, ढोल, पणव, डमरू, नगाड़े, सज्जा, संनहनी, मजीरा, पट्ट, मर्दल एवं मण्डवी को सानन्द बजाया। ॥७६-७८॥ वाद्यों की ध्वनियों को सुनकर रामकृष्ण के मथुरा गमन को जानकर कुपित गोपियाँ वहाँ आयीं और कृष्ण को रथ पर बैठा देखा। हे द्विज! उपरान्त राधा द्वारा प्रेरित गोपियों ने क्रुद्ध होकर भगवान् कृष्ण के निषेध (मना) करने पर भी उस राजरथ को चरणों के प्रहार से (खिलवाड़ में ही) तोड़-फोड़ दिया ॥७९-८०॥ सभी गोपगण 'हाहाकार' करते ही रहे, किन्तु वे बलवती गोपियाँ कृष्ण को छाती से लगाये चली ही गयीं। उनमें किसी गोपी ने अक्रूर को कोपवश क्रूर कहकर फटकार भी बतायी, कुछ ने अक्रूर को वस्त्रों से बाँध दिया ॥८१-८२॥ हे मुने! किसी गोपी ने अक्रूर के वस्त्र का अपहरण करके और निर्वसन करके

क्षतविक्षतसर्वाङ्गं दृष्ट्वाऽक्रूरं च माधवः। जगाम राधानिकटं बोधयामास तां पुनः ॥८४॥
आध्यात्मिकेन योगेन[1] विनयेन च सादरम्। अक्रूरं बोधयामास बोधयामास तां पुनः ॥८५॥
आकाशात्पतितं दिव्यं मन्त्रप्रस्थापितं रथम्। विचित्रवस्त्रसंयुक्तं ददर्श पुरतो हरिः ॥८६॥
खचितं मणिराजेन रचितं विश्वकर्मणा। तं दृष्ट्वा मातृभवनमाजगाम जगत्पतिः ॥८७॥
भुक्त्वा पीत्वा सुखं सुप्त्वा[2] भगवान्सहबान्धवः। तस्थौ मुनीन्द्रदेवेन्द्रब्रह्मेशशेषवन्दितः ॥८८॥
सुषुपुर्गोपिकाः सर्वाः परं संहृष्टमानसाः। पुष्पतल्पे च रम्ये च राधया सह नारद ॥८९॥
सर्वे चाऽऽनन्दयुक्ताश्च जना गोकुलवासिनः। केचिद्गोपाश्च ननृतुः केचित्संगीततत्पराः ॥९०॥

इति श्रीब्रह्म० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० गोपीविषयो नाम सप्ततितमोऽध्यायः ॥७०॥

•

---

कङ्कण और हाथ से ताड़ना की। पश्चात् माधव ने इस प्रकार अक्रूर को क्षत-विक्षत देखकर राधा के निकट जाकर उन्हें समझाया ॥८३-८४॥ भगवान् ने सादर विनम्र होकर आध्यात्मिक योग द्वारा अक्रूर को भी समझाया। पुनः प्रबोधित करने के हेतु वे राधा के पास चले। उसी बीच आकाश से आते हुए एक दिव्य रथ को देखा, जो मन्त्र द्वारा प्रस्थापित और विचित्र वस्त्रों से सुशोभित तथा मणियों से खचित एवं विश्वकर्मा का बनाया था। उसे देखते ही जगत्पति भगवान् अपनी माता के भवन चले आये। वहाँ बान्धवों के साथ खा-पीकर सुख से शयन करके मुनीन्द्र, देवेन्द्र, ब्रह्मा, शिव और शेष द्वारा नित्य वन्दित होनेवाले श्रीकृष्ण विराजमान हुए। हे नारद! सभी गोपियों ने भी राधा के साथ रमणीक पुष्प शय्या पर अति प्रसन्नता से शयन किया। गोकुलनिवासी जन आनन्दमग्न हुए—उसमें कुछ नृत्य करने लगे और कुछ संगीत में तत्पर हुए ॥८५-९०॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण में श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद-नारायण-संवाद में गोपी-विषय नामक सत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥७०॥

•

---

१ क. नीतेन। २ क. गमने।

# अथैकसप्ततितमोऽध्यायः

### नारायण उवाच

राधिकायां च सुप्तायां सुप्तासु गोपिकासु च। पुष्पचन्दनतल्पे च वायुना सुरभीकृते ॥१॥
तृतीयप्रहरेऽतीते निशायां च शुभे क्षणे। शुभचन्द्रर्क्षयोगे चामृतयोगसमन्विते ॥२॥
सौम्यस्वामियुते लग्ने सौम्यग्रहविलोकिते। पापग्रहसमासक्तदुष्टदोषादिवर्जिते[1] ॥३॥
यशोदां बोधयामास कारयामास मङ्गलम्। बन्धूनाश्वासयामास समुत्थाय हरिः स्वयम् ॥४॥
वाद्यं निषेधयामास राधिकाभयभीतवत्। स्वतन्त्रो विश्वकर्ता च पाता भर्ता स्वतन्त्रवत् ॥५॥
प्रक्षाल्य पादयुगलं धृत्वा धौते च वाससी। उवास संस्कृते स्थाने विलिप्ते चन्दनादिना ॥६॥
फलपल्लवसंयुक्तं संस्कृतं चन्दनादिभिः। वामे कृत्वा पूर्णकुम्भं वह्निं विप्रं स्वदक्षिणे ॥७॥
पतिपुत्रवतीं दीपं दर्पणं पुरतस्तथा। दूर्वाकाण्डं च सुस्निग्धं पुष्पं धान्यं सितं शुभम् ॥८॥
गुरुदत्तं गृहीत्वा च प्रदधौ मस्तकोपरि। घृतं ददर्श माध्वीकं रजतं काञ्चनं दधि ॥९॥

---

# अध्याय ७१

### श्रीकृष्ण की यात्रा में मंगल

**नारायण बोले**—वायु द्वारा सुगन्धित उस पुष्पचन्दन की शय्या पर राधिका एवं गोपियों के सो जाने पर रात के तीन पहर व्यतीत होने के उपरान्त शुभ क्षण, शुभ चन्द्रमा, नक्षत्र और अमृत योग से युक्त, लग्न में सौम्य लग्नेशयुत, सौम्यग्रह से दृष्ट, (त्रिकोणादि में) पापग्रहयुत, दुष्ट दोषादि शून्य काल में, भगवान् ने यशोदा को जगाकर मङ्गल कराया। हरि ने स्वयं उठकर बन्धुओं को आश्वासन दिया। राधिका के भय से वाद्य बजने के लिए उन्होंने मना कर दिया, जो स्वतन्त्र, विश्वकर्ता, रक्षक और स्वतन्त्र जैसे पालन-पोषण करनेवाले हैं ॥१-५॥ चरण-प्रक्षालन (धो) करके दो वस्त्र धारण किये। अनन्तर संस्कृत (शुद्ध) और चन्दन आदि से सुलिप्त स्थान में बैठे। इनके वाम भाग में पूर्ण कलश रखाया, जो फल-पल्लव से युक्त, चन्दन आदि से सुसंस्कृत था। अग्नि एवं ब्राह्मण को दक्षिण ओर स्थित कराया। सामने पतिपुत्रवती स्त्री, दीपक और दर्पण थे। गुरुप्रदत्त दूर्वा-काण्ड, अतिस्निग्ध पुष्प, शुभ-श्वेत धान्य मस्तक पर धारण किया। घी, आसव, रजत, सुवर्ण और दही का दर्शन किया। चन्दन का लेप लगाकर गले में पुष्पमाला धारण की। गुरुवर्ग और

---

१ क. 'युक्तदृष्ट'।

चन्दनं लेपनं कृत्वा पुष्पमालां गले ददौ । गुरुवर्गं ब्राह्मणं च वन्दयामास भक्तितः ॥१०॥
शङ्खध्वनिं वेदपाठं संगीतं मङ्गलाष्टकम् । विप्राशीर्वचनं रम्यं शुश्राव परमादरम् ॥११॥
ध्यात्वा मङ्गलरूपं च सर्वत्र मङ्गलप्रदम् । चिक्षेप दक्षिणं पादं सुन्दरं स्वात्मविग्रहम् ॥१२॥
विधृत्य नासिकावामभागं मध्यमया विभुः । विसृज्य वायुं[1] संपूर्णं नासादक्षिणरन्ध्रतः ॥१३॥
ततो ययौ नन्दनन्दो नन्दस्य प्राङ्गणं वरम् । सानन्दः परमानन्दो नित्यानन्दः सनातनः ॥१४॥
नित्योऽनित्यो नित्यबीजस्वरूपो नित्यविग्रहः । नित्याङ्गभूतो नित्येशो नित्यकृत्यविशारदः ॥१५॥
नित्यनूतनरूपश्च नित्यनूतनयौवनः । नित्यनूतनवेषश्च वयसा नित्यनूतनः ॥१६॥
नित्यनूतनसंभाषो यत्प्रेम नित्यनूतनम् । नित्यनूतनसंप्राप्तिः सौभाग्यं नित्यनूतनम् ॥१७॥
सुधारसपरं मिष्टं यद्वाक्यं नित्यनूतनम् । नित्यनूतनभक्तं च यत्पदं नित्यनूतनम् ॥१८॥
स्थायं स्थायं प्राङ्गणेऽस्मिन्मायेशो मायया युतः । अतीव रम्ये सुस्निग्धो बभूव गमनोन्मुखः ॥१९॥
रम्भास्तम्भसमूहैश्च रसालपल्लवान्वितैः । पट्टसूत्रनिबद्धैश्च सुन्दरैश्च सुसंस्कृतैः ॥२०॥
पद्मरागेण खचिते रचिते विश्वकर्मणा । कस्तूरीकुङ्कुमावक्तैश्च चन्दनैश्च सुसंस्कृते ॥२१॥
तत्र तस्थौ स्वयं कृष्णः सहाक्रूरः सबान्धवः । यशोदया समाश्लिष्टो वामपार्श्वेन मायया ॥२२॥

---

ब्राह्मण की भक्तिपूर्वक वन्दना की ॥६-१०॥ अनन्तर शंखध्वनि, वेदपाठ, संगीत, मंगलाष्टक समेत परम आदर से ब्राह्मणों के रमणीक शुभाशिष सुना। मङ्गलरूप का ध्यान किया, जो सर्वत्र मङ्गल प्रदान करता है। तदुपरान्त अपने शरीर का सुन्दर दाहिना चरण (गगन में सर्वप्रथम) उठाकर रखा ॥११-१२॥ भगवान् ने मध्यमा अंगुलि द्वारा नासिका का बायाँ छिद्र रोककर नासिका के दाहिने छिद्र से समस्त वायु निकाल दिया। पश्चात् नन्दनन्दन नन्द के उत्तम प्राङ्गण (आँगन) में गये। वे भगवान् सानन्द, परमानन्द, नित्यानन्द, सनातन, नित्य-अनित्य रूप, नित्य बीजरूप, नित्यशरीरधारी, नित्य के अंगरूप, नित्य के ईश, नित्यकर्म में निपुण, नित्य नूतन रूप तथा नित्य नवीन यौवन, नित्य नूतन वेश, नित्य नूतन वय तथा नित्य नवीन भाषण से युक्त हैं। उनका प्रेम नित्य नूतन है और सौभाग्य नित्य नूतन तथा प्राप्ति नित्य नूतन है। उनका वचन अमृत रस से भी बढ़कर मधुर एवं नित्य नवीन है, उनका चरण नित्य नवीन और नित्य नवीन भक्तवाला है ॥१३-१८॥ इस प्रकार मायाधीश्वर भगवान् ने जो माया संयुक्त रहा करते हैं, उस अत्यन्त स्निग्ध एवं रम्य प्रांगण में स्थित रहकर पश्चात् गमन करने की तैयारी की। नन्द के उस प्रांगण में, जो कदली स्तम्भों, आम के पल्लवों और सुन्दर रेशमी सूत्रों से सुसज्जित पद्मराग मणि से खचित, विश्वकर्मा द्वारा सुरचित, एवं कस्तूरी, कुंकुम और चन्दन से संसिक्त और सुसंस्कृत था, भगवान् कृष्ण से अक्रूर और बन्धुओं समेत वहाँ रहकर जब प्रस्थान करने (चलने)

---

१ क. ०युमिष्टं च ना॰ ।

नन्देनाऽऽनन्दयुक्तेनाऽऽश्लिष्टो दक्षिणपार्श्वतः । संभाषितो बान्धवैश्च पित्रा मात्रा च चुम्बितः ॥२३॥
इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० यात्रामङ्गलं
नामैकसप्ततितमोऽध्यायः ॥७१॥

•

# अथ द्विसप्ततितमोऽध्यायः

नारायण उवाच

अथ कृष्णो गुरुं नत्वा निर्गम्य शिबिरान्मुने । आरुह्य स्वर्गयानं च शुभां मधुपुरीं ययौ ॥१॥
विवेश मथुरां रम्यां सहाक्रूरगणैः समम् । निर्जित्य शक्रनगरीं शोभायुक्तां मनोहराम् ॥२॥
रत्नश्रेष्ठेन खचितां रचितां विश्वकर्मणा । अमूल्यरत्नकलशो राजितैश्च विराजताम् ॥३॥
राजमार्गशतैरिष्टैर्वेष्टितां रुचिरैर्वरैः । चन्द्राकारैश्चन्द्रसारैर्मणिभिः परिसंस्कृतैः ॥४॥
विचित्रैर्मणिसारैश्च वीथीशतविनिर्मितैः । शोभितैर्वणिजैः श्रेष्ठैः पुण्यवस्तुसमन्वितैः ॥५॥
सरोवरसहस्रैश्च परितः परिशोभितम् । शुद्धस्फटिकसंकाशैः पद्मरागविराजितैः ॥६॥

---

की तैयारी की, उस समय बायीं ओर से यशोदा और दाहिनी ओर से नन्द ने भगवान् का प्रेमालिंगन और चुम्बन किया तथा बान्धवों ने संभाषण द्वारा प्रेम प्रदर्शन किया ॥१९-२३॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण में श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद-नारायण-संवाद में
यात्रा-मंगल-वर्णन नामक इकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥७१॥

•

# अध्याय ७२

## कंस का वध और वसुदेव तथा देवकी का बन्धन-मोक्ष

**नारायण बोले**—हे मुने ! भगवान् कृष्ण गुरु को नमस्कार करके शिविर से निकले और स्वर्ग से आये हुए रथ पर बैठकर शुभ मथुरापुरी की ओर चले ॥१॥ वहाँ अक्रूर-गणों के साथ उन्होंने उस सुन्दर मथुरापुरी में प्रवेश किया, जो इन्द्र नगरी अमरावती को भी विजित कर अति शोभा-पूर्ण, मनोहर, उत्तम रत्नों से खचित, विश्वकर्मा द्वारा सुरचित, अमूल्य एवं अतिसुन्दर रत्नकलशों से सुशोभित सैकड़ों सुन्दर राजमार्गों से आवेष्टित, चन्द्र के सारभाग की बनी चन्द्राकार मणियों से चारों ओर सुसंस्कृत, विचित्र मणिसार की बनी सैकड़ों गलियों से युक्त, पुण्यवस्तुओं से युक्त, श्रेष्ठ वैश्यों से सुशोभित, सहस्रों सरोवरों से चारों ओर परिशोभित, शुद्ध स्फटिक के समान पद्मरागमणियों और

रत्नालंकारभूषाढ्यैः शोभितां पद्मिनीगणैः । स्थिरयौवनसंयुक्तैर्निमेषरहितैः परैः ॥७॥
साक्षतैरूर्ध्ववदनैः कृष्णदर्शनलालसैः । भ्रूभङ्गलीलालोलैश्च शश्वच्चञ्चललोचनैः ॥८॥
शश्वत्कामसमायुक्तैः पीनश्रोणिपयोधरैः । कोमलाङ्गैर्मध्यकूपै रतिरासविशारदैः ॥९॥
रत्ननिर्माणयानानां कोटिभिः परिशोभिताम् । भूषणैर्भूषिताभिश्च चित्रिताभिश्च चित्रकैः ॥१०॥
नानाप्रकारश्रीयुक्तां पुष्पोद्यानत्रिकोटिभिः । नानापुष्पैः पुष्पिताभिर्युक्ताभिर्मधुसूदनैः[1] ॥११॥
माधुर्यमधुसंयुक्तैर्मधुलुब्धैर्मुदाऽन्वितैः । माध्वीकमधुमत्तैश्च युक्तैर्मधुकरीचयैः ॥१२॥
नानाप्रकारदुर्गैश्च दुर्गम्यां वैरिणां गणैः । रणितां रणकैः शश्वद्रक्षाशास्त्रविशारदैः ॥१३॥
त्रिकोटचाट्टालिकाभिश्च संयुक्तां सुमनोहराम् । रचितां किल सद्रत्नैर्विचित्रैर्विश्वकर्मणा ॥१४॥
एवंभूतां च मथुरां दृष्ट्वा कमललोचनः । ददर्श पथि कुब्जां तां वृद्धामतिजरातुराम् ॥१५॥
यान्तीं दण्डसहायेन चातिनम्रां नमद्वलीम् । रूक्षितां विकृताकारां बिभ्रतीं चन्दनद्रवम् ॥१६॥
कस्तूरीकुङ्कुमाक्तं च [2]स्पर्शमात्रेण नारद । सुगन्धिमकरन्देन गन्धाढ्यं सुमनोहरम् ॥१७॥
सा दृष्ट्वा सस्मिता वृद्धा श्रीकान्तं शान्तमीश्वरम् । श्रीयुक्तं श्रीनिवासं तं श्रीबीजं श्रीनिकेतनम् ॥१८॥

---

रत्नों के अलंकारों से विभूषित और पद्मिनी कामिनियों से सुशोभित थी । वे सुन्दरियां स्थायी यौवन से युक्त, निमेष रहित, अक्षत लिये भगवान् कृष्ण के दर्शन की लालसा से ऊपर मुख किये अपने चञ्चल नयनों से निरन्तर देख रही थीं । उनकी भौंह की भङ्गिमा सुन्दर चपलतायुक्त थी । निरन्तर कामलालसा युक्त, स्थूल श्रोणीभाग और स्तनवाली, कोमल अंग, सुन्दर मध्यकूपयुक्त एवं रतिक्रीड़ा निपुण थीं । २-९॥ मधुपुरी रत्नों के करोड़ों यानों (सवारियों-रथों आदि) से विराजित, भूषण-भूषित एवं चित्र-विचित्र चित्रों से सुशोभित, विभिन्न प्रकार की श्री (शोभा) सम्पन्नवाले तीन करोड़ पुष्पोद्यानों (वाटिकाओं) से युक्त, विभिन्न प्रकार के पुष्पों से सुपुष्पित, माधुर्य मधुयुक्त, मधुलोभी, प्रसन्नचित्त, माध्वीक (महुवे आदि के) मधु से प्रमत्त रहनेवाली भ्रमरी समूहों से युक्त, अनेक प्रकार के दुर्गों से सुभूषित, वैरियों के लिए अति दुर्गम, रक्षा-शास्त्र में अति निपुण रक्षकों (सिपाहियों) तथा तीन करोड़ अट्टालिकाओं से संयुक्त, अति मनोहर तथा विश्वकर्मा द्वारा उत्तम एवं विचित्र रत्नों से सुरचित थी ॥१०-१४॥ ऐसी मथुरापुरी को देखते हुए कमलनयन भगवान् आगे-आगे जा रहे थे कि मार्ग में कुब्जा दिखायी पड़ी, जो वृद्धा, अत्यन्त जराग्रस्त, दण्ड की सहायता से चलने-वाली तथा अत्यन्त झुकी हुई थी । वह रूखी विकृत आकार की थी और कस्तूरी, कुंकुमयुक्त घिसा हुआ चन्दन लिये हुए थी । हे नारद ! उसके स्पर्श करने मात्र से वह चन्दन सुगन्धित पराग से गंधपूर्ण एवं अतिमनोहारी था । १५-१७॥ उस वृद्धा ने भी प्रसन्नचित्त श्रीकान्त भगवान् कृष्ण को देखा, जो

---

१ ख. °दनः । २ ख. स्पृष्टमा° ।

प्रणम्य सहसा मूर्ध्ना भक्तिनम्रा पुटाञ्जलिः। प्रददौ चन्दनं तस्य गात्रे श्यामलसुन्दरे ॥१९॥
गात्रेषु तद्गणानां च स्वर्णपात्रकरा वरा। कृत्वा प्रदक्षिणं कृष्णं प्रणनाम पुनः पुनः ॥२०॥
श्रीकृष्णदृष्टिमात्रेण श्रीयुक्ता सा बभूव ह। सहसा श्रीसमा रम्या रूपेण यौवनेन च ॥२१॥
वह्निशुद्धांशुवसना रत्नभूषणभूषिता। यथा द्वादशवर्षीया कन्या धन्या मनोहरा ॥२२॥
बिम्बोष्ठी सस्मिता श्यामा तप्तकाञ्चनसंनिभा। सुश्रोणी सुदती बिल्वफलतुल्यपयोधरा ॥२३॥
अमूल्यरत्ननिर्माणहारसारविराजिता। गजेन्द्रराजगमना रत्नमञ्जीररञ्जिता ॥२४॥
बिभ्रती कबरीभारं मालतीमाल्यवेष्टितम्। रक्षितं वामभागेन रुचिरं वर्तुलाकृतिम् ॥२५॥
सिन्दूरबिन्दुं दधती दाडिमीकुसुमाकृतिम्। कस्तूरीबिन्दुमुपरि सार्धं चन्दनबिन्दुभिः ॥२६॥
रत्नदर्पणहस्ता च प्रशस्ता रतिकर्मसु। श्रीकृष्णं वरयामास लोललोचनकोणतः ॥२७॥
श्रीवासस्तां समाश्वस्य ययौ स्थानान्तरं परम्। कृतार्थरूपा सा प्रीत्या ययौ पद्मा यथाऽऽलयम् ॥२८॥
सा ददर्श स्वभवनं यथा पद्मालयालयम्। रत्नशय्याविरचितं सद्रत्नसारनिर्मितम् ॥२९॥

---

शान्त, ईश्वर, श्रीयुक्त, श्रीनिवास, श्रीबीज और श्री निकेतन हैं। उस कुब्जा ने सहसा हाथ जोड़े, भक्ति से झुककर, सिर से प्रणाम करके, श्यामसुन्दर के शरीर में चन्दन लगाया और उनके साथवाले गणों के शरीर में भी लगाया तथा सुवर्ण का चन्दनपात्र लिये हुए उस वृद्धा ने भगवान् श्रीकृष्ण की प्रदक्षिणा करके उन्हें बार-बार प्रणाम किया ॥१८-२०॥ पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण के देखने मात्र से वृद्धा भी अत्यन्त शोभासंपन्न हो गयी। रूप, सौन्दर्य और यौवन से वह सहसा लक्ष्मी की भाँति सुरमणीया हो गयी, जिसकी अग्नि की भाँति विशुद्ध एवं सुन्दर साड़ी थी एवं वह स्वयं रत्नों के भूषणों से भूषित तथा बारह वर्ष की कन्या की भाँति धन्या, मनोहरा, बिम्बाफल के समान ओंठ तथा मन्दहास से युक्त, श्यामा, तपाये सुवर्ण की भाँति रूप-रंग, उत्तम श्रोणी, सुन्दर दांत, बेल के समान कठोर युगल स्तन तथा अमूल्य रत्न के सारभाग द्वारा सुरचित हार से सुशोभित, गजराज की भाँति मन्दगमना, रत्नों के नूपुरों से सुरंजित तथा सुन्दर केशों की कबरी (जूड़ा) बनाये थी। जूड़ा मालती पुष्पों की माला से बँधा था एवं बायें भाग में सुन्दर गोलाकार बँधा सुरक्षित था। कुब्जा कस्तूरी बिन्दी के ऊपर चन्दन बिन्दी के साथ अनार पुष्प के समान सिन्दूर की बिन्दी लगाये थी। वह हाथ में रत्न का दर्पण लिये थी। वह रतिक्रिया में अतिनिपुण थी। उसने अपने चपल नेत्रों के कोने से संकेत द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण को वरण कर अपना स्वामी बनाया। श्रीवास भगवान् भी उसे भलीभाँति आश्वासन (आने का वचन) देकर दूसरे स्थान को चले गये। कृतार्थ होकर वह भी अतिप्रीतिपूर्वक लक्ष्मी की भाँति अपने घर लौट आयी। उसने अपने महल को देखा, जो लक्ष्मीगृह के समान, रत्नों की शय्या से भूषित, उत्तम रत्नों के सारभाग से सुरचित,

रत्नप्रदीपराजीभी राजिताभिश्च राजितम् । रत्नदर्पणराजेश्च राजितं परितस्ततः ॥३०॥
सिन्दूरवस्त्रताम्बूलं श्वेतचामरमाल्यकम् । बिभ्रतीभिश्च दासीभिर्वेष्टितं वाससंघकैः ॥३१॥
तत्र गत्वा च भुक्त्वा च मिष्टान्नं परमं मुदा । सुष्वाप रत्नपर्यङ्के सा दासीभिश्च सेविता ॥३२॥
सकर्पूरं च ताम्बूलं कस्तूरीकुङ्कुमान्वितम् । चन्दनं स्थापयामास स्वतल्पे हरये सती ॥३३॥
मालतीमाल्ययुगलं कर्पूरादिसुवासितम् । शीतलं सलिलं स्वादु मिष्टान्नं स्वसमीपतः ॥३४॥
कर्मणा मनसा वाचा चिन्तयन्ती हरेः पदम् । हरेरागमनं चापि मुखचन्द्रं मनोहरम् ॥३५॥
जगत्कृष्णमयं शश्वत्पश्यन्ती कामुकी मुने । कोटिकन्दर्पलीलाभं कामसक्तं च कामुकम् ॥३६॥
ततो ददर्श श्रीकृष्णो मालाकारं मनोहरम् । मालासमूहं बिभ्रन्तं गच्छन्तं राजमन्दिरम् ॥३७॥
सोऽपि दृष्ट्वा च श्रीकान्तं प्रणम्य शिरसा भुवि । ददौ माल्यसमूहं च कृष्णाय परमात्मने ॥३८॥
कृष्णस्तस्मै वरं दत्त्वा स्वदास्यमतिदुर्लभम् । माल्यं गृहीत्वा प्रययौ राजमार्गे वरं वरः ॥३९॥
ततो ददर्श रजकं बिभ्रतं वस्त्रपुञ्जकम् । अहंकृतिर्बलिष्ठं च सततं यौवनोद्धतम् ॥४०॥
वस्त्रं ययाचे तं कृष्णो विनयेन महामुने । स तस्मै न ददौ वस्त्रं तमुवाच च निष्ठुरम् ॥४१॥

---

रत्नों के प्रदीपों की सुन्दर पंक्तियों से विराजित, रत्नों के परमोत्तम दर्पणों से चारों ओर सुशोभित तथा सिन्दूर, वस्त्र, ताम्बूल, श्वेत चामर और मालाएँ लिये दासियों एवं सेवक वर्गों से सुपूर्ण था। वहाँ पहुँचकर उसने परम प्रसन्नता से मिष्टान्न खाया और रत्नों के पलँग पर दासी गणों से सुसेवित होती हुई शयन किया ॥२१-३२॥ उपरान्त उस सती ने अपनी शय्या पर भगवान् के निमित्त कपूर समेत ताम्बूल, कस्तूरी, कुंकुम मिश्रित चन्दन रखा और अपने समीपवाले स्थान में मालती पुष्पों की युगल माला, कर्पूरादिसुवासित शीतल जल, स्वादपूर्ण मिष्टान्न रखकर मन, वाणी और कर्म से भगवान् के चरणों का स्मरण करने लगी। हे मुने! भगवान् का आगमन और उनके मनोहर मुखचन्द्र का ध्यान करती हुई उस कामुकी ने समस्त संसार को निरन्तर कृष्णमय देखा, जो करोड़ों काम की लीला के समान प्रभापूर्ण, कामासक्त और कामुक थे ॥३३-३६॥

अनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण ने उस माली को देखा, जो मनोहर मालाएँ लिये राजमहल जा रहा था। उसने भी भगवान् श्रीकान्त को देखकर भूमि पर सिर से उन्हें प्रणाम किया और वह मालासमूह परमात्मा श्रीकृष्ण को अर्पित कर दिया ॥३७-३८॥ भगवान् कृष्ण ने भी अपना अति दुर्लभ दास्य-पद देकर माला ग्रहण कर राजमार्ग (सड़क) के आगे बढ़ गये। वहाँ वस्त्रों की राशि लिये एक रजक (धोबी) को देखा, जो बली, अभिमानी, यौवन (जवानी) के मद में निरन्तर उद्धत था ॥३९-४०॥ हे महामुने! भगवान् कृष्ण ने विनयपूर्वक उससे वस्त्र की याचना की, किन्तु उसने वस्त्र तो दिया नहीं, ऊपर से निष्ठुरतापूर्ण बातें कहीं ॥४१॥

### रजक उवाच

गोरक्षकाणां त्वद्योग्यं वस्त्रमेतत्सुदुर्लभम् । राजयोग्यं च हे मूढ हे गोपजनवल्लभ ॥४२॥
गृहीत्वा गोपकन्याश्च कन्यालोलुप लम्पट । यद्विहारः कृतस्तत्र वृन्दारण्येऽप्यराजके ॥४३॥
न चात्र तादृशं कर्म राज्ञः कंसस्य वर्त्मनि । विद्यमानोऽत्र राजेन्द्रः शास्ता दुष्टस्य तत्क्षणम् ॥४४॥
रजकस्य वचः श्रुत्वा जहास मधुसूदनः । जहास बलदेवश्च साक्रूरो गोपवर्गकः ॥४५॥
तं निहत्य चपेटेन जग्राह वस्त्रपुञ्जकम् । वस्त्रं संधारयामास श्रीकृष्णः सगणस्तथा ॥४६॥
रत्नयानेन गोलोकं पार्षदैर्वेष्टितेन च । ययौ रजकराजश्च धृत्वा दिव्यकलेवरम् ॥४७॥
शश्वद्यौवनयुक्तं च जरामृत्युहरं वरम् । पीतवस्त्रसमायुक्तं सस्मितं श्यामसुन्दरम् ॥४८॥
बभूव सोऽपि गोलोके पार्षदेषु च पार्षदः । कृष्णस्याऽऽगमनं तत्र सस्मार सततं वशी ॥४९॥
अस्तं गतो दिनकरोऽप्यक्रूरः स्वगृहं ययौ । कृष्णस्यानुमतिं प्राप्य कृष्णोऽपि कस्यचिद्गृहम् ॥५०॥
वैष्णवस्य कुविन्दस्य तस्मिन्नस्तधनस्य च । सानन्दो नन्दसहितो बलदेवादिभिर्युतः ॥५१॥
स भक्तः पूजयामास प्रणम्य श्रीनिकेतनम् । तस्मै ददौ स्वदास्यं च वरं ब्रह्मादिदुर्लभम् ॥५२॥
पर्यङ्के सुषुपुः सर्वे भुक्त्वा मिष्टान्नमुत्तमम् । निद्रां च लेभे सा कुब्जा निद्रेशोऽपि ययौ मुदा ॥५३॥

---

**रजक बोला**—हे मूढ़ ! हे गोपजनवल्लभ ! तुम्हारे जैसे गोरक्षकों (चरवाहों) के लिए ये वस्त्र अति दुर्लभ हैं, क्योंकि ये राजा के पहनने योग्य हैं ॥४२॥ हे कन्यालोलुप (लोभी) ! तुम बड़े लम्पट हो, तुमने गोप-कन्याओं के साथ राजशून्य वृन्दावन में जिस प्रकार विहार किया है, राजा कंस के मार्ग में यहाँ वैसा नहीं कर सकते हो, क्योंकि उसी क्षण दुष्टों के शासन करनेवाले महाराज यहाँ विद्यमान हैं ।४३-४४॥ रजक की ऐसी बात सुनकर मधुसूदन हँस पड़े, बलदेव भी हँसे और अक्रूर समेत सभी गोप भी हँस पड़े। अनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण ने उसे चपेटा मारकर सभी वस्त्रों को ले लिया और गणों समेत उन्हें पहन भी लिया ॥४५-४६॥ वह रजकराज भी रत्नयान (विमान) द्वारा पार्षदों से आवेष्टित होकर दिव्य शरीर धारण किये गोलोक चला गया, जो स्थायी यौवनपूर्ण, जरा-मृत्युरहित, श्रेष्ठ, पीतवस्त्र पहने, मन्दहास करते हुए श्यामसुन्दर के समान लग रहा था ॥४७-४८॥ वह जितेन्द्रिय गोलोक में पहुँचकर पार्षदों में एक पार्षद हो गया और भगवान् कृष्ण के वहाँ आने की सतत प्रतीक्षा करने लगा ॥४९॥

सूर्यास्त होते समय अक्रूर भी भगवान् कृष्ण की अनुमति से अपने घर गये और नन्द, बलदेवादि समेत भगवान् कृष्ण किसी वैष्णव कुविन्द (कपड़ा बीननेवाले) के घर गये, जो परम निर्धन था। उस भक्त ने भगवान् श्रीनिकेतन को प्रणाम करके उनकी अर्चना की और भगवान् ने प्रसन्न होकर उसे अपना दास्यपद प्रदान किया, जो ब्रह्मा आदि देवों को भी दुर्लभ है ॥५०-५२॥ परमोत्तम मिष्टान्न खा-पीकर सब लोगों ने पलँग पर शयन किया, उस समय भगवान् कृष्ण भी कुब्जा के यहाँ चले गये, जो शय्या पर निद्रित हो रही थी। भगवान्

गत्वा ददर्श कुब्जां तां रत्नतल्पे च निद्रिताम्। दासीगणैः परिवृतां सुन्दरीं कमलामिव ॥५४॥
बोधयामास तां कृष्णो न दासीस्वपि निद्रिताः। तामुवाच जगन्नाथो जगन्नाथप्रियां सतीम् ॥५५॥

## श्रीभगवानुवाच

त्यज निद्रां महाभागे शृङ्गारं देहि सुन्दरि। पुरा शूर्पणखा त्वं च भगिनी रावणस्य च ॥५६॥
रामजन्मनि मद्धेतोस्त्वया कान्ते तपः कृतम्। तपःप्रभावान्मां कान्तं भज श्रीकृष्ण जन्मनि ॥५७॥
अधुना सुखसंयोगं कृत्वा गच्छ ममाऽऽलयम्। सुदुर्लभं च गोलोकं जरामृत्युहरं परम् ॥५८॥
इत्युक्त्वा श्रीनिवासश्च कृत्वा तामेव वक्षसि। नग्नां चकार शृङ्गारं चुम्बनं चापि कामुकीम् ॥५९॥
सा सस्मिता च श्रीकृष्णं नवसंगमलज्जिता। चुचुम्ब गण्डे क्रोडे तं चकार कमला यथा ॥६०॥
सुरतेर्विरतिर्नास्ति दंपती रतिपण्डितौ। नानाप्रकारसुरतं बभूव तत्र नारद ॥६१॥
स्तनश्रोणियुगं तस्या विक्षतं च चकार ह। भगवान्नखरैस्तीक्ष्णैर्दशनैरधरं वरम् ॥६२॥
निशावसानसमये वीर्याधानं चकार सः। सुखसंभोगभोगेन मूर्च्छामाप च सुन्दरी ॥६३॥
तत्राऽऽजगाम तां तन्द्रा कृष्णवक्षःस्थलस्थिताम्। बुबुधे न दिवारात्रं स्वर्गं मर्त्यं जलं स्थलम् ॥६४॥

---

ने वहाँ पहुँचकर कुब्जा को देखा, जो रत्न की शय्या पर सुन्दरी कमला (लक्ष्मी) की भाँति दासीगणों द्वारा चारों ओर से सुसेवित होकर निद्रामग्न हो रही थी ॥५३-५४॥ जगन्नाथ भगवान् कृष्ण ने निद्रामग्न दासियों को न जगाकर केवल अपनी दासी कुब्जा को ही जगाया और उस सती से कहा ॥५५॥

**श्रीभगवान् बोले**--हे महाभागे ! हे सुन्दरि ! जागो और शृंगार (रति) प्रदान करो क्योंकि तुम पूर्व-जन्म में रावण की भगिनी शूर्पणखा थीं। हे कान्ते ! रामजन्म में तुमने मेरे लिये तप किया था। उसी तप के प्रभाव से इस श्रीकृष्ण जन्म में मैं तुम्हें कान्त रूप में मिला हूँ। अतः मेरी सेवा करो। इस समय मेरे साथ सुख सम्भोग करके तुम मेरे लोक-गोलोक चली जाओ, जो अति दुर्लभ एवं जन्म-मृत्यु का परम विनाशक है। ॥५६-५८॥ इतना कहकर भगवान् श्रीनिवास ने उसे अपने हृदय से लगाकर नग्न कर दिया और उस कामुकी का शृंगार और चुम्बन करने लगे। मन्द मुसुकान करती हुई उस कामुकी ने भी, जो नव समागम में लज्जित होती थी, भगवान् श्रीकृष्ण का चुम्बन किया और भगवान् ने लक्ष्मी की भाँति उसे अपने अङ्क में रख लिया ॥५९-६०॥ हे नारद ! रतिक्रीड़ा के कुशल पण्डित होने के कारण उन दम्पति (दोनों स्त्री-पुरुष) का सुरत क्रिया से विराम ही नहीं होता था, अतः उन्होंने अनेक भाँति की रति-क्रीड़ा की। भगवान् ने उसके युगलस्तन और श्रोणीभाग देखकर अपने तीक्ष्ण नखों और दाँतों से उसका उपभोग करते हुए उसके अधर बिम्ब का अत्यन्त पान किया ॥६१-६२॥ रात्रि के अन्तिम प्रहर में भगवान् ने (उसमें) वीर्याधान किया और उस सुखभोग के भोग करने से वह सुन्दरी मूर्च्छित हो गयी। भगवान् कृष्ण के अङ्क में रहते ही उसे इस प्रकार का आलस्य आया कि उसे दिन-रात्रि, स्वर्ग-मर्त्य, जल-स्थल का कुछ भी ज्ञान नहीं रहा ॥६३-६४॥ इस भाँति

सुप्रभाता च रजनी बभूव रजनीपतिः । पत्युर्व्यतिक्रमेणैव लज्जयेव मलीमसः ॥६५॥
अथाजगाम गोलोकाद्रथो रत्नविनिर्मितः । जगाम तेन तं लोकं धृत्वा दिव्यकलेवरम् ॥६६॥
वह्निशुद्धांशुकाधानं रत्नभूषणभूषितम् । प्रतप्तकाञ्चनाभासं नित्यं जन्मादिवर्जितम् ॥६७॥
सा बभूव च तत्रैव गोपी चन्द्रमुखी मुने । गोप्यः कतिविधास्तस्या बभूवुः परिचारिकाः ॥६८॥
भगवानपि तत्रैव क्षणं स्थित्वा स्वमन्दिरम् । जगाम यत्र नन्दश्च सानन्दो नन्दनन्दनः ॥६९॥
अथ कंसो निशायां च निद्रायां भयविह्वलः । ददर्श दुःखदुःस्वप्नमात्मनो मृत्युसूचकम् ॥७०॥
ददर्श सूर्यं भूमिस्थं चतुःखण्डं नभश्च्युतम् । दशखण्डं चन्द्रबिम्बं भूमिस्थं खाच्च्युतं मुने ॥७१॥
पुरुषान्विकृताकारान्रज्जुहस्तान्दिगम्बरान् । विधवां शूद्रपत्नीं च नग्नां च च्छिन्ननासिकाम् ॥७२॥
हसन्तीं चूर्णतिलकां श्वेतकृष्णोच्चमूर्धजाम् । खड्गखर्परहस्तां च लोलजिह्वां च बिभ्रतीम् ॥७३॥
रुण्डमालासमायुक्तां गर्दभं महिषं वृषम् । भल्लूकं सूकरं काकं गृध्रं कङ्कं च वानरम् ॥७४॥
विरजं कुक्कुरं नक्रं शृगालं भस्मपुञ्जकम् । अस्थिराशिं तालफलं केशं कार्पासमुल्बणम् ॥७५॥
निर्वाणाङ्गारमुल्कां च शवं मर्त्यं चिताश्रितम् । कुलालतैलकाराणां चक्रं वक्रं कपर्दकम् ॥७६॥
श्मशानं दग्धकाष्ठं च शुष्ककाष्ठं कुशं तृणम् । गच्छन्तं च कबन्धं च नदन्तं मृतमस्तकम् ॥७७॥

---

उसकी रात्रि सुप्रभात हुई और पति के व्यतिक्रम से चन्द्रमा मानो लज्जा से मलिन (अस्त) हो गया । अनन्तर गोलोक से रत्नरचित विमान आया । वह दिव्य देह धारण करके उस विमान द्वारा गोलोक चली गयी । उसका शरीर अग्नि विशुद्ध वस्त्र पहने, रत्नभूषणभूषित, अत्यन्त तपाये सुवर्ण की भाँति कान्तियुक्त, नित्य तथा जन्म-मृत्यु आदि से रहित हो गया । हे मुने ! वह वहाँ पर चन्द्रमुखी नामक गोपी हुई, अनेक प्रकार की गोपियाँ उसकी दासी हुईं ॥६५-६८॥ भगवान् भी वहाँ क्षणमात्र रहकर पुनः अपने महल में चले गये जहाँ आनन्दपूर्वक नन्द ठहरे हुए थे ।

कंस रात की गाढ़ (गहरी) निद्रा में मग्न था, उस समय वह भयाकुल होकर अपना मरणसूचक एवं दुःखप्रद दुःस्वप्न देखने लगा । हे मुने ! उसने देखा कि—सूर्य आकाश से गिरकर चार टुकड़ों में पृथ्वी पर पड़ा हुआ है और चन्द्रमा भी आकाश से च्युत होकर दस खण्डों में भूतल पर स्थित है । हाथ में रस्सी लिये दिगम्बर (नग्न) एवं भीषणाकार पुरुषों को देखा और विधवा शूद्रपत्नी को देखा, जो नग्न एवं कटी नाकवाली थी ॥६९-७२॥ वह हँसती थी । उसने चूने का तिलक लगा रखा था और उसके सफेद एवं काले बाल ऊपर की ओर उठे थे । वह हाथ में तलवार और खप्पर लिये हुई थी । उसकी जीभ लपलपा रही थी तथा वह मुण्डमाला पहने थी । इसी प्रकार गधा, भैंसा, शूकर, भालू, कौआ, गीध, कङ्क, वानर, सफेद कुत्ता, मगर, शृगाल, राख की ढेर, हड्डियों की राशि, ताड़ का फल, केश, कपास, कोयला, जलती हुई लकड़ी, चिता पर स्थित शव, कुम्हार का चाक, तेली का कोल्हू, टेढ़ी कौड़ी, श्मशान, जला काठ, सूखा काठ, कुश, तृण, चलता-फिरता हुआ धड़, मुर्दे का चिल्लाता हुआ मस्तक, राखपूर्ण एवं जलहीन सरोवर, जली मछली, लोहा, जलकर बुझा हुआ वन,

दग्धस्थानं भस्मयुतं तडागं जलवर्जितम्। दग्धमत्स्यं च लोहं च निर्वाणदग्धकाननम् ॥७८॥
गलत्कुष्ठं च वृषलं नग्नं च मुक्तमूर्धजम्। अतीव रुष्टं विप्रं च शपन्तं गुरुमीदृशम् ॥७९॥
अतीवरुष्टं भिक्षुं च योगिनं वैष्णवं नरम्। एवं दृष्ट्वा समुत्थाय कथयामास मातरम् ॥८०॥
पितरं भ्रातरं पत्नीं रुदतीं प्रेमविह्वलाम्। मञ्चकान्कारयामास स्थापयामास हस्तिनम् ॥८१॥
मल्लसैन्यं च योद्धारं कारयामास मङ्गलम्। सभां च कारयामास पुण्यं स्वस्त्ययनं शिवम् ॥८२॥
यत्नेन योजयामास योगे युक्तं पुरोहितम्। उवास मञ्चके रम्ये धृत्वा खड्गं विलक्षणम् ॥८३॥
रणे नियोजयामास योद्धारं युद्धकोविदम्। वासयामास राजेन्द्रान्ब्राह्मणांश्च मुनीश्वरान् ॥८४॥
ब्राह्मणांश्च सुहृद्वर्गान्धर्मिष्ठान्रणकोविदान्। अथाऽऽजगाम गोविन्दो रामेण सह नारद ॥८५॥
महेशस्य धनुर्मध्यं बभञ्ज तत्र लीलया। शब्देन तस्य मथुरा बधिरा च बभूव ह ॥८६॥
विषादं प्राप कंसश्च मुदं च देवकीसुतः। उपस्थितः सभामध्ये गजं मल्लं निहत्य च ॥
योगी ददर्श तं देवं परमात्मानमीश्वरम् ॥८७॥
यथा हृत्पद्ममध्यस्थं तादृशं बहिरेव च। राजेन्द्ररूपं राजानः शास्तारं दण्डधारिणाम् ॥८८॥
पिता माता दुग्धमुखं स्तनान्धं बालकं यथा। कामिन्यः कोटिकन्दर्पलीलालावण्यधारिणम् ॥८९॥

---

गलत्कुष्ठ का रोगी शूद्र, नग्न एवं केश खोले अत्यन्त रुष्ट तथा शाप देते हुए ब्राह्मण एवं गुरु, अधिक कुपित हुए संन्यासी, योगी एवं वैष्णव को देखा। इस प्रकार दुःस्वप्न देखकर वह उठ गया और अपनी माता, पिता, भ्राता, और प्रेमाकुल होकर रोदन करती हुई पत्नी से कहने लगा। अनन्तर उसने मञ्च बनवाये। हाथी (द्वार पर) खड़ा कर दिया। पहलवान और जुझारू सेना भी स्थापित कर दी। मंगल-कृत्य आरंभ किया। सभा बनवायी और पुण्य एवं कल्याणप्रद स्वस्त्ययन का पाठ कराते हुए पुरोहित को यत्नपूर्वक सतर्क रहने का आदेश दिया ॥७३-८२॥ विलक्षण खड्ग लेकर वह स्वयं एक रमणीक मञ्च पर बैठ गया और युद्ध के लिए युद्धकुशल योद्धाओं को नियुक्त किया। अपने समीप मञ्चों पर राजाओं, ब्राह्मणों, मुनीश्वरों, सुहृद्वर्ग, धर्मात्मा और रणचतुर लोगों को बैठाया ॥८३-८४॥ हे नारद ! तदुपरान्त भगवान् गोविन्द बलराम को साथ लिये वहाँ आये और लीला की भाँति शिव का धनुष तोड़ डाला। उसके टूटने के घोर शब्द से सारी मथुरापुरी बधिर-सी हो गयी। यह देखकर कंस को महान् विषाद हुआ और देवकीपुत्र भगवान् प्रसन्न हुए ॥८५-८६½॥ वे पहलवान और हाथी को मारकर सभा के मध्य में उपस्थित हो गये। उस समय योगीजन उन ईश्वर और परमात्मदेव को हृदयकमल में स्थित होने की भाँति बाहर भी देख रहे थे। राजा लोग उन्हें महाराजरूप में देखते थे, जो दण्डधारियों के शासक थे ॥८७-८८॥ माता और पिता स्तनपान करनेवाले दुधमुँहे बालक की भाँति तथा कामिनियाँ उनको करोड़ों काम के समान सौन्दर्यपूर्ण देख रही थीं एवं कंस अपने काल पुरुष के रूप

कंसश्च कालपुरुषं वैरिणं तस्य बान्धवाः। मल्ला मृत्युप्रदं चैव प्राणतुल्यं च यादवाः ॥९०॥
नमस्कृत्य मुनीन्विप्रान्पितरं मातरं गुरुम्। जगाम मञ्चकाभ्याशं हस्ते कृत्वा सुदर्शनम् ॥९१॥
दृष्ट्वा भक्तं भक्तबन्धुः कृपया च कृपानिधिः। आकृष्य मञ्चकात्कंसं जघान लीलया मुने ॥९२॥
राजा ददर्श विश्वं च सर्वं कृष्णमयं परम्। पुरतो रत्नयानं च हीरकाहारभूषितम् ॥९३॥
ययौ विष्णुपदं स्फीतो दिव्यरूपं विधाय च। तेजो विवेश परमं कृष्णपादाम्बुजे मुने ॥९४॥
निवृत्य तस्य सत्कारं ब्राह्मणेभ्यो धनं ददौ। ददौ राज्यं राजछत्रमुग्रसेनाय धीमते ॥९५॥
स बभूव नृपेन्द्रश्च चन्द्रवंशसमुद्भवः। विललाप कंसमाता पत्नीवर्गश्च तत्पिता ॥९६॥
बान्धवा मातृवर्गश्च भगिनी भ्रातृकामिनी। दर्शनं देहि राजेन्द्र समुत्तिष्ठ नृपासने ॥९७॥
राज्यं रक्ष धनं रक्ष बान्धवं बलमेव च। क्व यासि बान्धवान्हित्वा त्वमनाथान्महाबल ॥९८॥
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तमसंख्यं विश्वमेव च। सर्वं चराचराधारं यः सृजत्येव लीलया ॥९९॥
ब्रह्मेशशेषधर्माश्च दिनेशश्च गणेश्वरः। मुनीन्द्रवर्गो देवेन्द्रो ध्यायते यमहर्निशम् ॥१००॥
वेदाः स्तुवन्ति यं कृष्णं स्तौति भीता सरस्वती। स्तौति यं प्रकृतिर्हृष्टा प्राकृतं प्रकृतेः परम् ॥१०१॥

---

में, बन्धुगण वैरी रूप में, मल्ल लोग मृत्युदायक रूप में और यादवगण उन्हें अपने प्राण-समान लग रहे थे ॥८९-९०॥ अनन्तर भगवान् कृष्ण मुनियों, ब्राह्मणों तथा माता-पिता और गुरु को नमस्कार करके हाथ में सुदर्शन-चक्र लिये कंस के मञ्च के समीप पहुँच गये। हे मुने! भक्तबन्धु एवं कृपानिधान भगवान् ने भक्त को कृपया देखकर मञ्च से कंस को घसीट लिया और सहज ही में उसका वध कर दिया ॥९१-९२॥ मरते समय राजा कंस ने समस्त विश्व को कृष्णमय देखा और सामने हीरों के हार से भूषित रत्न का विमान भी देखा। हे मुने! उसी पर दिव्य रूप से बैठकर वह विष्णुलोक चला गया और उसका परम तेज भगवान् कृष्ण के चरण-कमल में विलीन हो गया ॥९३-९४॥ इस प्रकार कंस को निहत करके उन्होंने ब्राह्मणों को धन दान दिया और बुद्धिमान् उग्रसेन को राज्य समेत छत्र आदि से विभूषित किया। चन्द्रवंश में उत्पन्न उग्रसेन महाराज हुए। उधर कंस की माता, उसकी पत्नियाँ, पिता, बन्धुगण, मातृवर्ग, भगिनी और भ्राताओं की स्त्रियाँ विलाप करने लगीं। हे राजेन्द्र! हम लोगों को दर्शन प्रदान करो, उठकर राजसिंहासन पर बैठो और राज्य, धन, बान्धववर्ग एवं सेना की रक्षा करो। हे महाबल! तुम हम अनाथ बन्धुओं को छोड़कर कहाँ जा रहे हो ॥९५-९८॥ ब्रह्मा से लेकर तृणपर्यन्त ऐसे असंख्य विश्वों की जो लीला की भाँति सृष्टि एवं रक्षा करता है, तथा ब्रह्मा, शेष, शिव, धर्म, सूर्य, गणेश, मुनीन्द्रवृन्द और देवराज जिसका रात-दिन सतत ध्यान करते हैं। वेदगण जिस कृष्ण की स्तुति करते हैं, सरस्वती भयभीत होकर और प्रकृति अति हर्षित होकर प्रकृति से परे एवं प्राकृतरूप (जिस कृष्ण) की स्तुति करती है, जो स्वेच्छामय, निरीह, निर्गुण

स्वेच्छामयं निरीहं च निर्गुणं च निरञ्जनम् । परात्परतरं ब्रह्म परमात्मानमीश्वरम् ॥१०२॥
नित्यं ज्योतिःस्वरूपं च भक्तानुग्रहविग्रहम् । नित्यानन्दं च नित्यं च नित्यमक्षरविग्रहम् ॥१०३॥
सोऽवतीर्णो हि भगवान्भारावतरणाय च । गोपालबालवेषश्च मायेशो मायया प्रभुः ॥१०४॥
स यं हन्ति च सर्वेशो रक्षिता तस्य कः पुमान् । स यं रक्षति सर्वात्मा तस्य हन्ता न कोऽपि च ॥१०५॥
इत्येवमुक्त्वा सर्वश्च विरराम महामुने । ब्राह्मणान्भोजयामास तेभ्यः सर्वं धनं ददौ ॥१०६॥
भगवानपि सर्वात्मा जगाम पितुरन्तिकम् । छित्त्वा च लोहनिगडं तयोर्मोक्षं चकार सः ॥१०७॥
ननाम दण्डवद्भूमौ मातरं पितरं तथा । तुष्टाव भक्त्या देवेशो भक्तिनम्रात्मकंधरः ॥१०८॥

## श्रीभगवानुवाच

पितरं मातरं विद्यामन्त्रदं गुरुमेव च । यो न पुष्णाति पुरुषो[1] यावज्जीवं च सोऽशुचिः ॥१०९॥
सर्वेषामपि पूज्यानां पिता वन्द्यो महान् गुरुः । पितुः शतगुणैर्माता गर्भधारणपोषणात् ॥११०॥

---

निरञ्जन, परात्पर, ब्रह्म, परमात्मा, ईश्वर, नित्य ज्योतिःस्वरूप, भक्तों के अनुग्रहार्थ शरीरधारी, नित्यानन्द स्वरूप, नित्यस्वरूप और नित्य अविनाशी शरीरवाले हैं, वही भगवान् माया द्वारा पृथ्वी का भार उतारने के लिए गोपाल-बाल के वेश में अवतरित हुए हैं, वे प्रभु और मायाधीश्वर हैं । वह सर्वाधीश्वर जिसका हनन करता है, उसे कौन पुरुष रक्षित कर सकता है और वह सर्वात्मा जिसकी रक्षा करता है, उसको मारनेवाला कोई नहीं है ॥९९-१०५॥

हे महामुने ! इस भाँति सब लोग आपस में कहकर चुप हो गये । अनन्तर उन लोगों ने ब्राह्मणों को भोजन कराकर उन सभी को धन प्रदान किया ॥१०६॥ उधर सर्वात्मा भगवान् भी अपने माता-पिता के पास गये और उनकी लोहे की बेड़ी काटकर उन्हें मुक्त किया एवं भूमि पर पड़कर माता-पिता को दण्डवत् नमस्कार किया और भक्ति से कन्धे झुकाकर देवाधीश्वर ने उनकी स्तुति की ॥१०७-१०८॥

**श्रीभगवान् बोले**—जो पिता, माता, विद्यादाता और मन्त्रदाता गुरु का पालन-पोषण नहीं करता है, वह पुरुष आजीवन अशुद्ध रहता है क्योंकि सभी पूज्यों में पिता वन्दनीय एवं महान् गुरु है और गर्भधारण तथा पोषण करने के नाते माता पिता से सौगुने अधिक सम्मान्या होती है ॥१०९-११०॥ सबकी हितैषी होने के

---

१ क. मूढश्च ।

माता च पृथिवीरूपा सर्वेभ्यश्च हितैषिणी । नास्ति मातुः परो बन्धुः सर्वेषां जगतीतले ॥१११॥
विद्यामन्त्रप्रदः सत्यं मातुः परतरो गुरुः । न हि तस्मात्परः कोऽपि वन्द्यः पूज्यश्च वेदतः ॥११२॥
इत्येवमुक्त्वा श्रीकृष्णो बलभद्रो ननाम च । माता चकार तौ क्रोडे पिता च सादरं मुने ॥११३॥
मिष्टान्नं परमं तौ च भोजयामास सादरम् । नन्दश्च भोजयामास गोपालान्परमादरम् ॥११४॥
मङ्गलं कारयामास भोजयामास ब्राह्मणान् । वसुर्वसुसमूहं च ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥११५॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० कंसवधवसुदेव-
देवकीमोक्षणं नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥७२॥

•

# अथ त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

नारायण उवाच

अथ कृष्णश्च सानन्दं नन्दं तं पितरं बलः । बोधयामास शोकार्तं दिव्यैराध्यात्मिकादिभिः ॥१॥
उच्चै रुदन्तं निश्चेष्टं पुत्रविच्छेदकातरम् । दत्त्वा तस्मै मणिश्रेष्ठमित्युवाच जगत्पतिः ॥२॥

---

कारण माता पृथ्वीरूपा होती है इसीलिए संसार में सबके लिए माता से बढ़कर कोई अन्य बन्धु नहीं होता है। किन्तु विद्या-मन्त्र प्रदान करनेवाला गुरु सत्यतः माता से अधिक सम्मान्य होता है क्योंकि वेदानुसार उससे बढ़कर कोई भी पूज्य-वन्दनीय नहीं है। हे मुने ! इतना कहकर भगवान् श्रीकृष्ण और बलभद्र ने उन्हें नमस्कार किया। अनन्तर उनके माता-पिता ने भी उन्हें अपने हृदय से लगाया, उन्हें सादर मिष्टान्न भोजन कराया। वसुदेव ने प्रसन्न होकर मंगल कराया और ब्राह्मण-भोजन कराकर उन्हें धनसमूह प्रदान किया ॥१११-११५॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण में श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद-नारायण-संवाद में
कंसवध-वसुदेव-देवकी-मोक्ष-वर्णन नामक बहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥७२॥

•

# अध्याय ७३

## नन्द आदि का दुःख दूरीकरण

**नारायण बोले**—भगवान् कृष्ण ने शोक-पीड़ित नन्द को दिव्य आध्यात्मिक ज्ञान द्वारा प्रबोधित किया, जो पुत्र-वियोग के दुःख से कातर होकर उच्च स्वर से रोदन कर रहे थे एवं चेतनाहीन भी हो जाते थे। उपरान्त जगत्पति भगवान् ने उन्हें मणिश्रेष्ठ समर्पित करते हुए कहना आरम्भ किया ॥१-२॥

## श्रीभगवानुवाच

निबोध नन्द सानन्दं त्यज शोकं मुदं लभ। ज्ञानं गृहाण मद्दत्तं यद्दत्तं ब्रह्मणे पुरा ॥३॥
यद्दत्तं च शेषाय गणेशायेश्वराय च। दिनेशाय मुनीशाय योगीशाय च पुष्करे ॥४॥
कः कस्य पुत्रः कस्तातः का माता कस्यचित्कुतः। आयान्ति यान्ति संसारं परं स्वकृतकर्मणा ॥५॥
कर्मानुसाराज्जन्तुश्च जायते स्थानभेदतः। कर्मणा कोऽपि जन्तुश्च योगीन्द्राणां नृपस्त्रियाम् ॥६॥
द्विजपत्न्यां क्षत्रियाणां वैश्यानां शूद्रयोनिषु। तिर्यग्योनिषु कश्चिच्च कश्चित्पश्वादियोनिषु ॥७॥
ममैव मायया सर्वे सानन्दा विषयेषु च। देहत्यागे विषण्णाश्च विच्छेदे बान्धवस्य च ॥८॥
प्रजाभूमिधनादीनां विच्छेदो मरणाधिकः। नित्यं भवति मूढश्च न च विद्वाञ्छुचा युतः ॥९॥
मद्भक्तो भक्तियुक्तश्च मद्याजी विजितेन्द्रियः। मन्मन्त्रोपासकश्चैव मत्सेवानिरतः शुचिः ॥१०॥
मद्भयाद्वाति वातोऽयं रविर्भाति च नित्यशः। भाति चन्द्रो महेन्द्रश्च कालभेदे च वर्षति ॥११॥
वह्निर्दहति मृत्युश्च चरत्येव हि जन्तुषु। बिभर्ति वृक्षः कालेन पुष्पाणि च फलानि च ॥१२॥
निराधारश्च वायुश्च वाय्वाधारश्च कच्छपः। शेषश्च कच्छपाधारः शेषाधारश्च पर्वतः ॥१३॥

---

**श्रीभगवान् बोले**—हे नन्द ! शोक त्यागकर हर्षलाभ करो और आनन्दपूर्वक मेरी बात सुनो। मैं तुम्हें जो ज्ञान बता रहा हूँ, उसे ग्रहण करो। उस ज्ञान को पूर्व समय पुष्कर क्षेत्र में मैंने ब्रह्मा, शेष, गणेश, शिव, सूर्य, मुनीश एवं योगीश्वर को बताया था ॥३-४॥ इस संसार में अपने किये हुए कर्मफलवश लोग आया-जाया करते हैं, अतः कौन किसका पुत्र है, कौन किसका पिता है और कौन किसकी माता है ॥५॥ कर्मानुसार जीव प्रत्येक स्थान में जन्म ग्रहण करता है—कोई जीव कर्मवश योगीन्द्रों के घर जन्म ग्रहण करता है, कोई राजरानी के यहाँ, कोई ब्राह्मणी के यहाँ, कोई क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रस्त्रियों में जन्म ग्रहण करता है। इसी प्रकार कोई पक्षियों में और कोई पशु आदि योनियों में उत्पन्न होता है ॥६-७॥ मेरी माया से मोहित होकर सब लोग विषयों में आनन्दमग्न रहते हैं और बन्धुओं के देहत्याग-वियोग में दीन-मलीन होते रहते हैं ॥८॥ उन्हीं के लिए प्रजा (सन्तान), भूमि और धन आदि का विनाश मरण से भी अधिक दुःखप्रद होता है। इसी कारण मूढ़ नित्य शोकपीड़ित होता है और विद्वान् कभी नहीं ॥९॥ मेरा भक्त, भक्ति से युक्त, मेरा पूजक, जितेन्द्रिय, मन्त्र द्वारा मेरी उपासना करनेवाला और सतत मेरा सेवक होने के कारण सदैव शुद्ध रहता है ॥१०॥ मेरे ही भय से वायु चलता है, सूर्य नित्य प्रकाश देते हैं, चन्द्रमा प्रकाश से पूर्ण होकर सुशोभित होता है और समयानुसार इन्द्र वर्षा करते हैं, अग्नि दाह करता है, मृत्यु जीवों में विचरण करता है। वृक्ष यथासमय पुष्प और फल धारण करते हैं ॥११-१२॥ वायु निराधार है, किन्तु वह कच्छप (कछुवे) को धारण किये हैं, एवं कच्छप शेष को तथा शेष पर्वतों को धारण किये हुए हैं। पंक्तिबद्ध विद्यमान सात पाताल पर्वतों के सहारे स्थित हैं। पातालों से जल सुस्थिर है और जल के ऊपर पृथ्वी टिकी हुई है।

तदाधाराश्च पातालाः सप्त एव हि पङ्क्तितः। निश्चलं च जलं तस्माज्जलस्था च वसुंधरा ॥१४॥
सप्तस्वर्गं धराधारं ज्योतिश्चक्रं ग्रहाश्रयम्। निराधारश्च वैकुण्ठो ब्रह्माण्डेभ्यः परो वरः ॥१५॥
तत्परश्चापि गोलोकः पञ्चाशत्कोटियोजनात्। ऊर्ध्वं निराश्रयश्चापि रत्नसारविनिर्मितः ॥१६॥
सप्तद्वारः सप्तसारः परिखासप्तसंयुतः। लक्षप्राकारयुक्तश्च नद्या विरजया युतः ॥१७॥
वेष्टितो रत्नशैलेन शतशृङ्गेण चारुणा। योजनायुतमानं च यस्यैकं शृङ्गमुज्ज्वलम् ॥१८॥
शतकोटियोजनश्च शैल उच्छ्रित एव च। दैर्घ्यं तस्य शतगुणं प्रस्थं च लक्षयोजनम् ॥१९॥
योजनायुतविस्तीर्णस्तत्रैव रासमण्डलः। अमूल्यरत्ननिर्माणो वर्तुलश्चन्द्रबिम्बवत् ॥२०॥
पारिजातवनेनैव पुष्पितेन च वेष्टितः। कल्पवृक्षसहस्रेण पुष्पोद्यानशतेन च ॥२१॥
नानाविधैः पुष्पवृक्षैः पुष्पितेन च चारुणा। त्रिकोटिरत्नभवनो गोपीलक्षैश्च रक्षितः ॥२२॥
रत्नप्रदीपयुक्तश्च रत्नतल्पसमन्वितः। नानाभोगसमायुक्तो मधुवापीशतैर्वृतः[1] ॥२३॥
पीयूषवापीयुक्तश्च कामभोगसमन्वितः। गोलोकगृहसंख्यानवर्णने वा विशारदः ॥२४॥
न कोऽपि वेद विद्वान्वा वेदविद्वान्व्रजेश्वरः। अमूल्यरत्ननिर्माणभवनानां त्रिकोटिभिः ॥२५॥
शोभितं सुन्दरं रम्यं राधाशिविरमुत्तमम्। अमूल्यरत्नकलशैरुज्ज्वलं रत्नदर्पणैः ॥२६॥

---

॥१३-१४॥ पृथ्वी के आधार पर स्वर्ग आदि सात लोक स्थित हैं। ज्योतिश्चक्र अथवा नक्षत्र-मण्डल ग्रहों के आधार पर स्थित हैं परन्तु वैकुण्ठ निराधार है, जो ब्रह्माण्ड से परे एवं श्रेष्ठ है। उससे भी परे पचास करोड़ योजन की दूरी पर ऊपर गोलोक स्थित है, जो निराधार, रत्नों के सार भाग से सुरचित, सात दरवाजे (फाटक), सात सार एवं सात परिखाओं (खाइयों) एवं लाखों चहारदीवारियों से युक्त है। वहाँ विरजा नामक नदी बहती है। वह लोक सुन्दर सौ शिखरवाले रत्न पर्वत से आवेष्टित है, जिसका एक शिखर दस सहस्र योजन में प्रकाशपूर्ण स्थित है ॥१५-१८॥ वह पर्वत सौ करोड़ योजन में समुन्नत है तथा उससे सौ गुना लम्बा एवं लाख योजन चौड़ा है। उसी पर दस सहस्र योजन का विस्तीर्ण रासमण्डल स्थित है जो अमूल्य रत्नों से सुरचित तथा चन्द्रबिम्ब के समान गोलाकार है ॥१९-२०॥ वह विकसित पारिजात वन, सहस्र कल्प वृक्ष तथा सौ पुष्पवाटिकाओं से घिरा है, जिसमें अनेक प्रकार के विकसित पुष्प वृक्ष सुशोभित हैं। वहाँ तीन करोड़ रत्न-भवन, एक लाख गोपियों से सुरक्षित, रत्नों के प्रदीपों, रत्नों की शय्या और अनेक भाँति के भोज्य पदार्थों से भरे पड़े हैं। वह मधु की-सी बावलियों से युक्त है। उसी भाँति अमृत की बावली और कामोपभोग की वस्तुओं से परिपूर्ण है। हे व्रजेश्वर ! इस प्रकार गोलोक-गृह की संख्या वर्णन करने या जानने में कोई भी विद्वान् निपुण नहीं है, जो अमूल्य रत्नों के बने तीन करोड़ महलों से विभूपित, सुन्दर एवं रमणीक राधा भवन से सुशोभित है। जो राधा भवन अमूल्य रत्नकलशों और रत्न दर्पणों से परम प्रकाशित

---

१ क. °यंतः।

अमूल्यरत्नस्तम्भानां राजिभिश्च विराजितम् । नानाचित्रविचित्रैश्च चित्रितं श्वेतचामरैः ॥२७॥
माणिक्यमुक्तासंसक्तं हीराहारसमन्वितम् । रत्नप्रदीपसंसक्तं रत्नसोपानसुन्दरम् ॥२८॥
अमूल्यरत्नपात्रैश्च तल्पराजिविराजितम् । अमूल्यरत्नचित्रैश्च त्रिभिश्चित्रविचित्रितैः ॥२९॥
तिसृभिः परिखाभिश्च त्रिभिर्द्वारैश्च दुर्गमैः । युक्तं षोडशकक्षाभिः प्रतिद्वारेषु चाऽन्तरम् ॥३०॥
गोपीषोडशलक्षैश्च संनियुक्तैरितस्ततः । वह्निशुद्धांशुकाधानैः रत्नभूषणभूषितैः ॥३१॥
तप्तकाञ्चनवर्णाभैः शतचन्द्रसमन्वितैः । राधिकाकिंकरीवर्गैर्युक्तमभ्यन्तरं वरम् ॥३२॥
अमूल्यरत्ननिर्माणप्राङ्गणं सुमनोहरम् । अमूल्यरत्नस्तम्भानां समूहैश्च सुशोभितम् ॥३३॥
रत्नमङ्गलकुम्भैश्च फलपल्लवसंयुतैः । संयुतं रत्नवेदीभिर्मुक्ता युक्ताभिरीप्सितम् ॥३४॥
अमूल्यरत्नमुकुरैः शोभितं सुन्दरैरहो । अमूल्यरत्ननिर्माणं भवनानां वरं गृहम् ॥३५॥
रत्नसिंहासनस्था च गोपीलक्षैश्च सेविता । कोटिपूर्णेन्दुशोभाढ्या श्वेतचम्पकसंनिभा ॥३६॥
अमूल्यरत्ननिर्माणभूषणैश्च विभूषिता । अमूल्यरत्नवसना बिभ्रती रत्नदर्पणम् ॥३७॥
रत्नपद्मं च रुचिरं सव्यदक्षिणहस्ततः । दाडिम्बकुसुमाकारं सिन्दूरं सुमनोहरम् ॥३८॥
सुशोभितं मृगमदैरिष्टैश्चन्दनबिन्दुभिः । दधती कबरीभारं मालतीमाल्यमण्डितम् ॥३९॥

---

शित, अमूल्य रत्न-स्तम्भों की पंक्तियों से विभूषित, अनेक भाँति के चित्र-विचित्र श्वेत चामरों से चित्रित, माणिक्य-मुक्ता से शोभित, असंख्य हीरों के हारों से अलंकृत, रत्नप्रदीप से पूर्ण प्रकाशित, सुन्दर रत्न-सोपान से सज्जित, अमूल्य रत्नों के पात्रों, अमूल्य शय्या की पंक्तियों से विराजित और अमूल्य रत्नों के तीन प्रकार के चित्रों से चित्र-विचित्र, तीन खाइयों, तीन दुर्गम द्वारों (फाटकों) और सोलह कक्षाओं से युक्त है। उन कक्षाओं के द्वार पर सोलह लाख गोपियाँ नियुक्त हैं, जो अग्निविशुद्ध वस्त्र पहने एवं रत्नों के भूषणों से भूषित हैं। तपाये सुवर्ण के समान उनके रूप-रङ्ग हैं, जो सौ चन्द्रमा के समान पूर्ण प्रकाशित हैं। राधिका जी के दासी-वर्गों से उसका भीतरी भाग सुशोभित है ॥२१-३२॥

उस भवन का आँगन बहुमूल्य रत्नों का बना हुआ था। वह अमूल्य रत्नों के स्तम्भ समूहों से विभूषित, फलपल्लवयुक्त रत्न के मङ्गल कलशों से सुशोभित और रत्नों की मुक्तायुक्त वेदियों से अलंकृत है एवं अमूल्य रत्नों के सुन्दर दर्पणों से चारों ओर सुशोभित है। इस प्रकार उनका भवन अमूल्य रत्नों से सुरचित और समस्त भवनों से परम उत्तम है। उस भवन में रत्नसिंहासन पर स्थित राधिका लाख गोपियों से सुसेवित हैं। वे करोड़ों पूर्ण चन्द्रमा की भाँति अति सुशोभित, श्वेतचम्पापुष्प के समान कान्तिवाली, अमूल्य रत्नों के भूषणों से सुभूषित, अमूल्यरत्नजटित वस्त्र धारण किये हाथों में रत्नदर्पण एवं सुन्दर रत्नकमल लिये, अनार के पुष्प के आकार का अति मनोहर सिन्दूर लगाये, कस्तूरीयुक्त चन्दनबिन्दी लगाये और मालती मालाओं से सुभूषित केशपाश (जूड़ा) बाँधे हुई हैं। वाम भाग में रचित वह जूड़ा मुनीन्द्रों के मन को भी हरण करनेवाला है। इस भाँति

रचितं वामभागेन मुनीन्द्राणां मनोहरम् । एवंभूतं (ता) तत्र राधा गोपीभिः परिसेविता ।४०॥
श्वेतचामरहस्ताभिस्तत्तुल्याभिश्च सर्वतः । अमूल्यरत्ननिर्माणैर्भूषिताभिश्च भूषणैः ॥४१॥
मत्प्राणाधिष्ठातृदेवी देवीनां प्रवरा वरा । सुदाम्नः सा च शापेन वृषभानसुताऽधुना ॥४२॥
शताब्दिको हि विच्छेदो भविष्यति मया सह । तेन भारावतरणं करिष्यसि भुवः पितः ॥४३॥
तदा यास्यामि गोलोकं तया सार्धं सुनिश्चितम् । त्वया यशोदया चाऽपि गोपैर्गोपीभिरेव च ॥४४॥
वृषभानेन तत्पत्न्या कलावत्या च बान्धवैः । एवं च नन्दं सानन्दं यशोदां कथयिष्यसि ॥४५॥
त्यज शोकं महाभाग व्रजैः सार्धं व्रजं व्रज । अहमात्मा च साक्षी च निर्लिप्तः सर्वजीविषु ॥४६॥
जीवो मत्प्रतिबिम्बश्च इत्येवं सर्वसंमतम् । प्रकृतिर्मद्विकारा च साऽप्यहं प्रकृतिः स्वयम् ॥४७॥
यथा दुग्धे च धावल्यं न तयोर्भेद एव च । यथा जले तथा शैत्यं यथा वह्नौ च दाहिका ॥४८॥
यथाऽऽकाशे तथा शब्दो भूमौ गन्धो यथा नृप । यथा शोभा च चन्द्रे च यथा दिनकरे प्रभा ॥४९॥
यथा जीवस्तथाऽऽत्माहं तथैव राधया सह । त्यज त्वं गोपिकाबुद्धिं राधायां मयि पुत्रताम् ॥५०॥
अहं सर्वस्य प्रभवः सा च प्रकृतिरीश्वरी । श्रूयतां नन्द सानन्दं मद्विभूतिं सुखावहाम् ॥५१॥
पुरा या कथिता तात ब्रह्मणे व्यक्तजन्मने । कृष्णोऽहं देवतानां च गोलोके द्विभुजः स्वयम् ॥५२॥

---

राधा वहाँ गोपियों द्वारा चारों ओर से सुसेवित हैं। वहाँ सभी गोपियाँ हाथों में श्वेत चामर लिये एवं अमूल्य रत्नों के बने भूषणों से सुभूषित हैं। वही राधा मेरे प्राणों की अधिष्ठात्री देवियों में सर्वश्रेष्ठ हैं। सुदामा के शापवश इस समय वृषभानु की पुत्री हुई हैं ॥३३-४२॥ हे पिता ! मेरे साथ उसका सौ वर्ष का वियोग होगा जिसमें हम पृथ्वी का भार उतारेंगे। अनन्तर उसके साथ गोलोक चले जायेंगे—यह अति निश्चित है। और तुम, यशोदा, समस्त गोप तथा गोपियाँ, वृषभानु, उनकी पत्नी कलावती एवं समस्त बांधवगण भी मेरे साथ जायँगे । हे नन्द ! इसी प्रकार यह सब आप यशोदा से भी कहियेगा । अतः हे महाभाग ! अब शोक त्यागकर गोपों के साथ व्रज जाओ । मैं तो सबका आत्मा, साक्षी और समस्त जीवों में निर्लिप्त हूँ ॥४३-४६॥ जीव मेरा प्रतिबिम्ब है, यह सर्वसम्मत है । प्रकृति मेरा विकार रूप है और वह प्रकृतिरूप भी मैं ही हूँ। हे नृप जिस प्रकार दुग्ध और उसकी धवलता में कोई भेद नहीं है, जिस प्रकार जल में शीतलता, अग्नि में दाहकता, आकाश में शब्द, भूमि में गन्ध, चन्द्रमा में शोभा, सूर्य में प्रभा (किरण) एवं जीवात्मा और परमात्मा में कोई भेद नहीं है, उसी भाँति राधा और मुझमें अभेद है । इसलिए तुम राधा में गोपीभाव और मुझमें पुत्रभाव त्याग दो ॥४७-५०॥ हे नन्द ! मैं और वह ईश्वरी प्रकृति राधा सबके कारण हैं। अतः मैं तुम्हें अपनी सुखप्रद विभूति बता रहा हूँ, सानन्द सुनो। हे तात ! पूर्व काल में प्रकट होने पर ब्रह्मा को वही विभूति मैंने बतायी थी । मैं देवों में कृष्ण हूँ, जो गोलोक में दो भुजा धारण करके स्वयं विराजमान रहता है ॥५१-५२॥ उसी प्रकार वैकुण्ठ में चतुर्भुजधारी विष्णु, शिवलोक में स्वयं

चतुर्भुजोऽहं वैकुण्ठे शिवलोके शिवः स्वयम् । ब्रह्मलोके च ब्रह्माऽहं सूर्यस्तेजस्विनामहम् ॥५३॥
पवित्राणामहं वह्निर्जलमेव द्रवेषु च । इन्द्रियाणां मनश्चास्मि समीरः शीघ्रगामिनाम् ॥५४॥
यमोऽहं दण्डकर्तॄणां कालः कलयतामहम् । अक्षराणामकारोऽस्मि साम्नां च साम एव च ॥५५॥
इन्द्रश्चतुर्दशेन्द्रेषु कुबेरो धनिनामहम् । ईशानोऽहं दिगीशानां व्यापकानां नभस्तथा ॥५६॥
सर्वान्तरात्मा जीवेषु ब्राह्मणश्चाऽऽश्रमेषु च । धनानां च रत्नमहममूल्यं सर्वदुर्लभम् ॥५७॥
तैजसानां सुवर्णोऽहं मणीनां कौस्तुभः स्वयम् । वैष्णवानां कुमारोऽहं योगीन्द्राणां गणेश्वरः ॥५८॥
पुष्पाणां पारिजातोऽहं तीर्थानां पुष्करः स्वयम् । शालग्रामस्तथाऽर्च्यानां पत्राणां तुलसीति च ॥५९॥
सेनापतीनां स्कन्दोऽहं लक्ष्मणोऽहं धनुष्मताम् । राजेन्द्राणां च रामोऽहं नक्षत्राणामहं शशी ॥६०॥
मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनामस्मि माधवः । वारेष्वादित्यवारोऽहं तिथिष्वेकादशीति च ॥६१॥
सहिष्णूनां च पृथिवी माताऽहं बान्धवेषु च । अमृतं भक्ष्यवस्तूनां गव्येष्वाज्यमहं तथा ॥६२॥
कल्पवृक्षश्च वृक्षाणां सुरभिः कामधेनुषु । गङ्गाऽहं सरितां मध्ये कृतपापविनाशिनी ॥६३॥
वाणीति पण्डितानां च मन्त्राणां प्रणवस्तथा । विद्यासु बीजरूपोऽहं सस्यानां धान्यमेव च ॥६४॥
अश्वत्थः फलिनामेव गुरूणां मन्त्रदः स्वयम् । कश्यपश्च प्रजेशानां गरुडः पक्षिणां तथा ॥६५॥
अनन्तोऽहं च नागानां नराणां च नराधिपः । ब्रह्मर्षीणां भृगुरहं देवर्षीणां च नारदः ॥६६॥
राजर्षीणां च जनको महर्षीणां शुकस्तथा । गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः ॥६७॥

---

शिव, ब्रह्मलोक में ब्रह्मा, तेजस्वियों में सूर्य, समस्त पवित्रों में अग्नि, द्रव पदार्थों में जल, इन्द्रियों में मन, शीघ्रगामियों में वायु, दण्ड करनेवालों में यम, संख्या न करनेवालों में काल, अक्षरों में अकार, वेदों में सामवेद, चौदहों इन्द्रों में इन्द्र, धनिकों में कुबेर, दिक्पालों में ईशान, व्यापक रहनेवालों में आकाश, जीवों में सबका अन्तरात्मा, वर्णों में ब्राह्मण, धनों में अमूल्य एवं सर्वदुर्लभ रत्न, तैजस पदार्थों में सुवर्ण, मणियों में स्वयं कौस्तुभ मणि हूँ। वैष्णवों में सनत्कुमार, योगीन्द्रों में गणपति, पुष्पों में पारिजात, तीर्थों में स्वयं पुष्कर एवं अर्चित होनेवालों में शालग्राम, पत्रों में तुलसी, सेनापतियों में स्कन्द, धनुर्धारियों में लक्ष्मण, महाराजाओं में रामचन्द्र और नक्षत्रों में चन्द्रमा हूँ ॥५३-६०॥

मासों में मार्गशीर्ष (अगहन), ऋतुओं में वसन्त, वारों में रविवार, तिथियों में एकादशी, सहनशीलों में पृथ्वी, बान्धवों (हितैषियों) में माता, भक्ष्यवस्तुओं में अमृत, गव्य (गौ के दूध आदि) में घृत, वृक्षों में कल्पवृक्ष, कामधेनुओं में सुरभी, नदियों में गङ्गा हूँ, जो किये हुए पापों को नष्ट करती है। पण्डितों की वाणी, मन्त्रों में प्रणव (ॐ), विद्याओं में बीजरूप, सस्यों (फसलों) में धान्य, वृक्षों में पीपल, गुरुओं में मन्त्रदाता, प्रजापतियों में कश्यप, पक्षियों में गरुड़, नागों में अनन्त, मनुष्यों में राजा, ब्रह्मर्षियों में भृगु, देवर्षियों में नारद, राजर्षियों में जनक, महर्षियों में शुक, गन्धर्वों में चित्ररथ, सिद्धों में

बृहस्पतिर्बुद्धिमतां कवीनां शुक्र एव च। ग्रहाणां च शनिरहं विश्वकर्मा च शिल्पिनाम् ॥६८॥
मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं वृषाणां शिववाहनम्। ऐरावतो गजेन्द्राणां गायत्री छन्दसामहम् ॥६९॥
वेदाश्च सर्वशास्त्राणां वरुणो यादसामहम्। उर्वश्यप्सरसामेव समुद्राणां जलार्णवः ॥७०॥
सुमेरुः पर्वतानां च रत्नवत्सु हिमालयः। दुर्गा च प्रकृतीनां च देवीनां कमलालया ॥७१॥
शतरूपा च नारीणां मत्प्रियाणां च राधिका। साध्वीनामपि सावित्री वेदमाता च निश्चितम् ॥७२॥
प्रह्लादश्चापि दैत्यानां बलिष्ठानां बलिः स्वयम्। नारायणर्षिर्भगवाञ्ज्ञानिनां मध्य एव च ॥७३॥
हनूमान्वानराणां च पाण्डवानां धनंजयः। मनसा नागकन्यानां वसूनां द्रोण एव च ॥७४॥
द्रोणो जलधराणां च वर्षाणां भारतं तथा। कामिनां कामदेवोऽहं रम्भा च कामुकीषु च ॥७५॥
गोलोकश्चास्मि लोकानामुत्तमः सर्वतः परः। मातृकासु शान्तिरहं रतिश्च सुन्दरीषु च ॥७६॥
धर्मोऽहं साक्षिणां मध्ये संध्या च वासरेषु च। देवेष्वहं च माहेन्द्रो राक्षसेषु विभीषणः ॥७७॥
कालाग्निरुद्रो रुद्राणां संहारो भैरवेषु च। शङ्खेषु पाञ्चजन्योऽहमङ्गेष्वपि च मस्तकः ॥७८॥
परं पुराणसूत्रेषु चाहं भागवतं वरम्। भारतं चेतिहासेषु पञ्चरात्रेषु कापिलम् ॥७९॥
स्वयंभुवो मनूनां च मुनीनां व्यासदेवकः। स्वधाऽहं पितृपत्नीषु स्वाहा वह्निप्रियासु च ॥८०॥
यज्ञानां राजसूयोऽहं यज्ञपत्नीषु दक्षिणा। शस्त्रास्त्रज्ञेषु रामोऽहं जमदग्निसुतो महान् ॥८१॥
पौराणिकेषु सूतोऽहं नीतिमत्स्वङ्गिरा मुनिः। विष्णुव्रतं व्रतानां च बलानां दैवमेव च ॥८२॥

---

कपिल मुनि, बुद्धिमानों में वृहस्पति, कवियों में शुक्र, ग्रहों में शनि, शिल्पियों में विश्वकर्मा, जंगली पशुओं में सिंह, वृषों में नन्दीश्वर, गजेन्द्रों में ऐरावत, छन्दों में गायत्री, समस्त शास्त्रों में वेद, जलचरों में वरुण, अप्सराओं में उर्वशी, समुद्रों में जलसागर हूँ ॥६१-७०॥ पर्वतों में सुमेरु, रत्नवानों में हिमालय, प्रकृतियों में दुर्गा, देवियों में कमला (लक्ष्मी), स्त्रियों में शतरूपा, मेरी प्रियाओं में राधिका, पतिव्रताओं में वेदमाता सावित्री, दैत्यों में प्रह्लाद, बलिष्ठों में वलि, ज्ञानियों के मध्य नारायण ऋषि, वानरों में हनुमान्, पाण्डवों में धनञ्जय (अर्जुन), नागकन्याओं में मनसा, वसुओं में द्रोण, वर्षों में भारत, कामियों में कामदेव, कामुकी स्त्रियों में रम्भा, लोकों में गोलोक हूँ, जो सबसे परमोत्तम है। उसी प्रकार मातृकाओं में शान्ति, सुन्दरियों में रति, साक्षियों में धर्म, वासरों में संध्या, देवों में महेन्द्र, राक्षसों में विभीषण, रुद्रों में कालाग्निरुद्र, भैरवों में संहार, शङ्खों में पाञ्चजन्य, अंगों में मस्तक, पुराणों में सर्वश्रेष्ठ भागवत, इतिहासों में महाभारत, पञ्चरात्रों में कापिल, मनुओं में स्वायम्भुव, मुनियों में व्यासदेव, पितृपत्नियों में स्वधा तथा अग्निप्रियाओं में स्वाहा हूँ ॥७१-८०॥ यज्ञों में राजसूय, यज्ञ-पत्नियों में दक्षिणा और शस्त्रास्त्र-ज्ञाताओं में परशुराम हूँ, जो जमदग्नि के महान् पुत्र हुए हैं। पौराणिकों (पुराणवेत्ताओं) में सूत, नीति-वेत्ताओं में अंगिरामुनि, व्रतों में विष्णुव्रत, बलों में दैवबल,

ओषधीनामहं दूर्वा तृणानां कुशमेव च। धर्मकर्मसु सत्यं च स्नेहपात्रेषु पुत्रकः ॥८३॥
अहं व्याधिश्च शत्रूणां ज्वरो व्याधिष्वहं तथा। मद्भक्तिष्वपि मद्दास्यं वरेषु च वरः स्मृतः ॥८४॥
आश्रमाणां गृहस्थोऽहं संन्यासी च विवेकिनाम्। सुदर्शनं च शस्त्राणां कुशलं च शुभाशिषाम् ॥८५॥
ऐश्वर्याणां महाज्ञानं वैराग्यं च सुखेष्वहम्। मि (इ) ष्टवाक्यं प्रीतिदेषु दानेषु चाऽऽत्मदानकम् ॥८६॥
संचयेषु धर्मकर्म कर्मणां च मदर्चनम्। कठोरेषु तपश्चाहं फलेषु मोक्ष एव च ॥८७॥
अष्टसिद्धिषु प्राकाम्यमहं काशीपुरीषु च। नगरेषु तथा काञ्ची स देशो यत्र वैष्णवः ॥८८॥
सर्वाधारेषु स्थूलेषु अहमेव महान्विराट्। परमाणुरहं विश्वे महासूक्ष्मेषु नित्यशः ॥८९॥
वैद्यानामश्विनीपुत्रौ चौषधीषु रसायनम्। धन्वन्तरिर्मन्त्रविदां विषादः क्षयकारिणाम् ॥९०॥
रागाणां मेघमल्लारः कामोदस्तत्प्रियासु च। मत्पार्षदेषु श्रीदामा मद्बन्धुष्वहमुद्धवः ॥९१॥
पशुजन्तुषु गौश्चाहं चन्दनं काननेषु च। तीर्थपूतश्च पूतेषु निःशङ्केषु च वैष्णवः ॥९२॥
न वैष्णवात्परः प्राणी मन्मन्त्रोपासकश्च यः। वृक्षेष्वङ्कुररूपोऽहमाकारः सर्ववस्तुषु ॥९३॥
अहं च सर्वभूतेषु मयि सर्वे च संततम्। यथा वृक्षे फलान्येव फलेषु चाङ्कुरस्तरोः ॥९४॥
सर्वकारणरूपोऽहं न च मत्कारणं परम्। सर्वेशोऽहं न मेऽपीशो ह्यहं कारणकारणम् ॥९५॥
सर्वेषां सर्वबीजानां प्रवदन्ति मनीषिणः। मन्मायामोहितजना मां न जानन्ति पापिनः ॥९६॥

---

ओषधों में दूर्वा, तृणों में कुश, धर्म-कर्म में सत्य, स्नेहपात्रों में पुत्र, शत्रुओं में व्याधि, रोगों में ज्वर, मेरी भक्तिस्वरूपों में दास्यरूप हूँ जो सर्वश्रेष्ठ है और आश्रमों में गृहस्थ, विवेकियों में संन्यासी, शस्त्रों में सुदर्शन, शुभाशिषों में कुशल-मंगल, ऐश्वर्यों में महाज्ञान, सुखों में वैराग्य, प्रीतिदायकों में मधुरवाक्य, दानों में आत्मज्ञान, संचय होनेवालों में धर्म-कर्म, कर्मों में मेरी अर्चा, कठोरों में तप, फलों में मोक्ष, आठों सिद्धियों में प्राकाम्य, पुरियों में काशी, नगरों में काञ्ची प्रदेश हूँ जहाँ वैष्णव होते हैं। समस्त स्थूल आधारों में मैं ही महाविराट् हूँ। विश्व के महासूक्ष्मों में मैं नित्य परमाणु हूँ एवं वैद्यों में अश्विनीकुमार, ओषधियों में रसायन, मन्त्रवेत्ताओं में धन्वन्तरि, क्षय करनेवालों में विषाद, रागों में मेघमल्लार और उसकी प्रियाओं में कामोद, अपने पार्षदों में श्रीदामा, अपने बन्धुओं में उद्धव, पशुओं में गौ, जंगलों में चन्दन, पवित्रों में तीर्थ और निःशङ्कों में वैष्णव हूँ। जो मेरे मन्त्र की उपासना करता है, उस वैष्णव से बढ़कर कोई प्राणी नहीं है। उसी भाँति वृक्षों में अङ्कुर, समस्त वस्तुओं में आकार रूप हूँ। मैं समस्त प्राणियों में रहता हूँ और सब जीव मुझमें निरन्तर रहते हैं। जिस प्रकार वृक्ष में फल रहता है और फलों में वृक्षों के अङ्कुर, उसी प्रकार समस्त का कारणस्वरूप मैं हूँ, मुझ कारण से बढ़कर कोई कारण नहीं है। एवं मैं सर्वाधीश्वर हूँ, मेरा प्रभु कोई नहीं है। मैं ही सब एवं समस्त बीजों के कारणों का कारण हूँ, ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं। मेरी माया से मोहित होनेवाले पापी जन मुझे नहीं जानते हैं, क्योंकि वे पापग्रस्त, दुर्बुद्धि तथा दैववञ्चित रहते हैं। मैं समस्त

पापग्रस्तेन दुर्बुद्धया विधिना वञ्चितेन च। स्वात्माऽहं सर्वजन्तूनां स्वाम्यहं नावृतः स्वयम् ॥९७॥
यत्राहं शक्तयस्तत्र क्षुत्पिपासादयस्तथा। गते मयि तथा यान्ति नरदेहे (वे) यथाऽनुगाः ॥९८॥
हे व्रजेश नन्द तात ज्ञानं ज्ञात्वा व्रजं व्रज। कथयस्व च तां राधां यशोदां ज्ञानमेव च ॥९९॥
ज्ञात्वा ज्ञानं व्रजेशश्च जगाम स्वानुगैः सह। गत्वा च कथयामास ते द्वे च योषितां वरे ॥१००॥
ते च सर्वे जहुः शोकं महाज्ञानेन नारद। कृष्णो यद्यपि निर्लिप्तो मायेशो मायया रतः ॥१०१॥
यशोदया प्रेरितश्च पुनरागत्य माधवम्। तुष्टाव परमानन्दं नन्दश्च नन्दनन्दनम् ॥१०२॥
सामवेदोक्तस्तोत्रेण कृतेन ब्रह्मणा पुरा। पुत्रस्य पुरतः स्थित्वा रुरोद च पुनः पुनः ॥१०३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० नन्दादि-
शोकप्रमोचनं नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥७३॥

•

---

जन्तुओं का आत्मा हूँ और स्वामी भी। मैं जहाँ रहता हूँ, वहाँ क्षुधा, पिपासा आदि समस्त शक्तियाँ रहती हैं और वहाँ से मेरे चले जाने पर राजा के पीछे सेवक की भाँति वे सभी चली आती हैं। अतः हे व्रजेश, हे नन्द, हे तात ! यह ज्ञान जानकर व्रज जाओ और वहाँ राधा-यशोदा से भी इसे कहना। अनन्तर व्रजेश नन्द अनुचरों समेत व्रज चले गये और वहाँ पहुँचकर नारी-श्रेष्ठ उन दोनों से भी इसे कह सुनाया ॥८१-१००॥

हे नारद ! उस महाज्ञान के द्वारा उन दोनों ने भी शोक का परित्याग किया। तत्पश्चात् यद्यपि भगवान् कृष्ण (जीवों में) निर्लिप्त एवं मायाधीश्वर हैं, माया द्वारा फिर भी (किसी से) अनुराग करते हैं—यशोदा ने पुनः वहाँ जाने के लिए नन्द को प्रेरित किया। उन्होंने वहाँ पहुँचकर परमानन्द माधव की पूर्वकाल में ब्रह्मा कृत सामवेदोक्त स्तोत्र द्वारा स्तुति की और पुत्र के सामने खड़े होकर बार-बार रोदन करने लगे ॥१०१-१०३॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण में श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्ध में नारद-नारायण-संवाद में
नन्दादि-शोक-प्रमोचन नामक तिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥७३॥

•

# अथ चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

## नारायण उवाच

श्रीकृष्णः परमानन्दः परिपूर्णतमः प्रभुः । परमात्मा च परमो भक्तानुग्रहकारकः ॥१॥
भुवो भारावतरणो निर्गुणः प्रकृतेः परः । परात्परस्तु भगवान्ब्रह्मेशशेषवन्दितः ॥२॥
तुष्टो नन्दस्तवं श्रुत्वा तमुवाच जगत्पतिः । आगच्छन्तं गोकुलाच्च विरहज्वरकातरम् ॥३॥

## श्रीभगवानुवाच

गच्छ नन्दव्रजं नन्द त्यज शोकं भ्रमं भुवि । शृणु सत्यं परं ज्ञानं शोकग्रन्थिनिकृन्तनम् ॥४॥
वायुश्च भूमिराकाशो जलं तेजश्च पञ्चमम् । उक्तः श्रुतिगणैरेतैः पञ्चभूतैश्च नित्यशः ॥५॥
सर्वेषां देहिनां तात देहश्च पाञ्चभौतिकः । मिथ्याभ्रमः कृत्रिमश्च स्वप्नवन्मायायाऽन्वितः ॥६॥
देहं गृह्णन्ति सर्वेषां पञ्चभूतानि नित्यशः । मायासंकेतरूपं तदभिज्ञानं भ्रमात्मकम् ॥७॥
को वा कस्य सुतस्तात का स्त्री कस्य पतिस्तु वा । कर्मणा भ्रमणं शश्वत्सर्वेषां भूरिजन्मनि ॥८॥

---

# अध्याय ७४

## भगवान् और नन्द का संवाद आरम्भ

**नारायण बोले**––भगवान् श्रीकृष्ण, जो परमानन्द, परिपूर्णतम, प्रभु, परमात्मा, परम भक्तानुग्रहकारी, पृथ्वी का भार उतारने के लिए प्रकट, निर्गुण, प्रकृति से परे, परात्पर और ब्रह्मा, शिव एवं शेष द्वारा वन्दित तथा जगत्पति हैं, नन्द की स्तुति से प्रसन्न होकर उनसे बोले, जो वियोग-संताप से कातर होकर गोकुल से आये हुए थे ॥१-३॥

**श्रीभगवान् बोले**––व्रज जाओ और इस भूतल पर शोक-भ्रम का त्याग करो । मैं सत्य और परमोत्तम ज्ञान बता रहा हूँ, जो शोक की ग्रन्थि (गाँठ) को तोड़-फोड़ देता है । सावधान होकर सुनो––वायु, भूमि, आकाश, जल और पाँचवां तेज यही पाँचों महाभूत हैं । हे तात ! श्रुतियों ने बताया है कि इन्हीं पाँचों भूतों द्वारा समस्त शरीरधारियों की देह बनी है । इसीलिए यह पाञ्चभौतिक कही जाती है । मिथ्या भ्रम, कृत्रिम और स्वप्न की भाँति मायायुक्त है ॥४-६॥ (मरने पर) यही पञ्चभूत सबकी देह को अपने में विलीन कर लेते हैं । माया द्वारा संकेत रूप और उसका अभिज्ञान (पहचान) भी भ्रमात्मक होता है ॥७॥ अतः हे तात ! कौन किसका पुत्र, कौन किसकी स्त्री और कौन किसका पति है ? जीव केवल कर्म द्वारा अनेक जन्मों तक निरन्तर भ्रमण करता रहता है ॥८॥ क्योंकि कर्म द्वारा ही जीव जन्म-ग्रहण करता है

कर्मणा जायन्ते जन्तुः कर्मणैव प्रलीयते। सुखं दुःखं भयं शोकं कर्मणा च प्रपद्यते ॥९॥
केषां वा जन्म स्वर्गेषु केषां वा ब्रह्मणो गृहे। केषां विप्रेषु क्षत्रेषु केषां वा वैश्यशूद्रयोः ॥१०॥
अतिनीचेषु केषां वा केषां कृमिषु विट्सु च। पशुपक्षिषु केषां वा केषां वा क्षुद्रजन्तुषु ॥११॥
पुनः पुनर्भ्रमन्त्येव सर्वे तात स्वकर्मणा। करोति कर्म निर्मूलं मद्भक्तो मत्प्रियः सदा ॥१२॥
सत्यं त्रेता द्वापरश्च कलिश्चेति चतुर्युगम्। पञ्चविंशत्सहस्राणां युगान्ते निधनं मनोः ॥१३॥
मनोः समं महेन्द्रस्य परमायुर्विनिर्मितम्। चतुर्दशेन्द्रविच्छित्तौ ब्रह्मणो दिनमुच्यते ॥१४॥
एवं परिमिता रात्रिः कालविद्भिर्विनिर्मिता। एवं परिमिता मासा वर्षं च परिनिश्चितम् ॥१५॥
ब्रह्मणश्च वर्षशतं परमायुर्विनिर्मितम्। निमेषमात्रं कालोऽयं ब्रह्मणो निधने मम ॥१६॥
ब्रह्मादितृणपर्यन्तं सर्वं विश्वे विनिर्मितम्। सत्योऽहं परमात्मा च भक्तानुग्रहविग्रहः ॥१७॥
मन्मन्त्रोपासकः सत्यो देहं त्यक्त्वा धरासु च। यास्यत्येव हि गोलोकं छित्वा कर्म पुरातनम् ॥१८॥
असंख्यब्रह्मणां पाते न भवेत्तस्य पातनम्। गृह्णाति नित्यं स्वं देहं जन्ममृत्युजरापहम् ॥१९॥
न नन्द मम भक्तानामशुभं विद्यते क्वचित्। नित्यं सुदर्शनं तं च परिरक्षति सर्वतः ॥२०॥

---

और कर्म द्वारा ही उसका विलयन होता है तथा सुख, दुःख, भय और शोक कर्मवश ही उसे प्राप्त होते हैं। कर्मवश किसी का जन्म स्वर्ग में, किसी का ब्रह्मा के घर, किसी का ब्राह्मणों और क्षत्रियों के घर एवं किसी का वैश्य के घर तो, किसी का शूद्र के यहाँ जन्म होता है ॥९-१०॥ इसी प्रकार किसी का अति नीच के यहाँ, किसी का कीड़ों में, किसी का मल के भीतर, किसी का पशु-पक्षियों में और किसी का जन्म क्षुद्र जन्तुओं में होता है। अतः हे तात ! अपने कर्मवश सब लोग बार-बार विभिन्न योनियों में भ्रमण किया करते हैं। मेरा प्रिय भक्त सदा कर्म का निर्मूलन करने में लगा रहता है ॥११-१२॥

सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि नामक ये चार युग होते हैं। इस प्रकार पचीस सहस्र युग व्यतीत होने पर मनु का निधन (मरण) होता है और मनु के समान ही महेन्द्र की परमायु कही गयी है। ऐसे चौदह इन्द्र के अन्त होने पर ब्रह्मा का एक दिन होता है ॥१३-१४॥ उनकी इतनी ही बड़ी रात्रि भी होती है, ऐसा काल-वेत्ताओं ने बताया है। इस प्रकार का उनका मास और वर्ष होता है। ब्रह्मा की परमायु उनके वर्ष में सौ वर्ष की है और ब्रह्मा के निधन होने पर मेरा एक निमेष (क्षण) मात्र होता है ॥१५-१६॥ इस भाँति समस्त विश्व में ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त सभी वस्तु नश्वर है, केवल मैं ही सत्य हूँ जो परमात्मा और भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए शरीर धारण करता हूँ। मेरे मन्त्र द्वारा मेरी उपासना करनेवाला भक्त इस पृथिवी पर अपनी देह त्यागकर और पूर्वजन्म के कर्मों को नष्ट करके मेरे गोलोक में चला जाता है ॥१७-१८॥

असंख्य ब्रह्मा के पतन होने पर भी उसका वहाँ से पतन नहीं होता है। वह अपनी नित्य एवं जरा मृत्युरहित देह धारण करता है। हे नन्द ! मेरे भक्तों का कभी और कहीं भी अशुभ नहीं होता है। सब ओर से सुदर्शन चक्र उसकी नित्य रक्षा करता है ॥१९-२०॥ इस प्रकार मुझसे भी बली भक्त होता है,

मत्तो हि बलवान्भवतश्चिन्तितोऽहं न चिन्तितः । अहं स्वामी च तस्यैव न मे स्वामी पिता प्रसूः ॥२१॥
पुत्रबुद्धिं परित्यज्य भज मां ब्रह्मरूपिणम् । छित्त्वा च ब्रह्मनिगडं गोलोकं तद्व्रज स्वयम् ॥२२॥
कथयस्व यशोदां च गोपीं गोपगणं व्रज । तैश्च सर्वैर्जनैः शोकं त्यज स्वमन्दिरं व्रज ॥२३॥
इत्येवमुक्त्वा भगवान्विरराम च संसदि । पप्रच्छ पुनरेवं तं नन्दश्चाऽऽनन्दसंप्लुतः ॥२४॥

## नन्द उवाच

वद सांसारिकं ज्ञानं येन यास्यामि त्वत्पदम् । मूढोऽहं परमानन्द श्रुतीनां जनको भवान् ॥२५॥
नन्दस्य वचनं श्रुत्वा सर्वज्ञो भगवान्स्वयम् । आह्निकं कथयामास श्रुतिभिर्न श्रुतं हि यत् ॥२६॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० भगवन्नन्दसंवादे
चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥७४॥

⊙

---

किन्तु फिर भी मैं उसकी चिन्ता करता हूँ, क्योंकि मैं उसका स्वामी हूँ। मेरा स्वामी, पिता और माता कोई नहीं है। अतः मुझमें पुत्र की भावना न करके ब्रह्मरूप की भावना करो, जिससे कर्म-बन्धन काटकर स्वयं गोलोक चले जाओ। हे व्रज ! गोपी, यशोदा और गोप-समूह से यह बात बता दो और उन सबके साथ शोक त्यागकर अपने घर चले जाओ। उस सभा में इतना कहकर भगवान् चुप हो गये। अनन्तर आनन्द-विभोर नन्द ने उनसे पूछा ॥२१-२४॥

**नन्द बोले**--हे परमानन्द ! मुझे सांसारिक ज्ञान बताने की कृपा कीजिये, जिससे मैं आपके लोक की प्राप्ति कर सकूँ क्योंकि मैं मूढ़ हूँ और आप वेदों के उत्पन्न करनेवाले हैं। नन्द की बात सुनकर स्वयं सर्वज्ञ भगवान् ने दैनिक कर्म उन्हें बताया, जो वेदों में भी अश्रुत है ॥२५-२६॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण में श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद-नारायण-संवाद में भगवान् और नन्द के संवाद वर्णन नामक चौहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥७४॥

⊙

# अथ पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

## श्रीभगवानुवाच

शृणु नन्द प्रवक्ष्यामि ज्ञानं च परमाद्भुतम् । सुगोपनीयं वेदेषु पुराणेषु च दुर्लभम् ॥१॥
न विश्वासो हि नारीषु संततं कुलटासु च । मोक्षमार्गार्गलास्वेव भ्रममायास्वमूषु[1] च ॥२॥
हरिभक्तेरसाध्वीनां विरुद्धासु युतासु च । बीजरूपासु नाशानां प्रमदासु व्रजेश्वर ॥३॥
नित्यं च प्रातरुत्थाय रात्रिवासो विहाय च । अभीष्टदेवं हृत्पद्मे ब्रह्मरन्ध्रे गुरुं परम् ॥४॥
विचिन्त्य मनसा प्रातःकृत्यं कृत्वा सुनिश्चितम् । स्नानं करोति सुप्राज्ञो निर्मलेषु जलेषु च ॥५॥
न संकल्पं च कुरुते भक्तः कर्मनिकृन्तनः । स्नात्वा हरिं स्मरेत्संध्यां कृत्वा याति गृहं प्रति ॥६॥
प्रक्षाल्य पादौ प्रविशेन्निधाय धौतवाससी । पूजयेत्परमात्मानं मामेव मुक्तिकारणम् ॥७॥
शालग्रामे मणौ यन्त्रे प्रतिमायां जलेऽपि च । तथा च विप्रे गवि च गुरुष्वेवं विशेषतः ॥८॥

---

# अध्याय ७५

## नन्द को सांसारिक ज्ञान का उपदेश

**श्रीभगवान् बोले**--हे नन्द ! मैं तुम्हें परम अद्भुत ज्ञान बता रहा हूँ, जो वेदों और पुराणों में अति गोपनीय एवं दुर्लभ है, सावधान होकर सुनो ॥१॥ कुलटा स्त्रियों का विश्वास नहीं करना चाहिए क्योंकि ये मोक्षमार्ग की अर्गला (किवाड़ बन्द करने का बेड़ा) हैं तथा भ्रम और माया हैं ॥२॥ हे व्रजेश्वर ! चरित्रहीन होने के कारण ये भगवान् के भक्तों के विरुद्ध ही रहती हैं, और ये विनाश के बीज रूप हैं। मनुष्य को चाहिए कि नित्य प्रातःकाल उठकर रात के वस्त्र बदल डाले और अपने हृदय-कमल में अभीष्ट देव तथा ब्रह्मरन्ध्र में परम गुरु का मन से चिन्तन करके प्रातःकाल का कृत्य करे। उस बुद्धिमान् को चाहिए कि निर्मल जल में स्नान करते समय संकल्प न करे, क्योंकि भक्त लोग कर्म का नाश करते हैं (उसका उपभोग नहीं चाहते हैं)। स्नान के अनन्तर भगवान् का स्मरण और संध्या करके घर जाये ॥३-६॥ वहाँ पहुँचने पर चरण धोकर प्रवेश करे और वस्त्रों को धारणकर मुक्ति के कारणस्वरूप मुझ परमात्मा की पूजा करे। शालग्राम, मणि, यन्त्र, प्रतिमा, जल, ब्राह्मण और गाय और विशेषतया गुरुओं में, कलश, अष्टदलवाले कमल या चन्दन

---

१ ख॰ °यासु भूमिषु ।

घटेऽष्टदलपद्मे च पात्रे चन्दननिर्मिते। आवाहनं च सर्वत्र शालग्रामे जलेन च॥९॥
मन्त्रानुरूपध्यानेन ध्यात्वा मां पूजयेद्व्रती। षोडशोपचारद्रव्याणि दद्यान्मूलेन भक्तितः॥१०॥
श्रीदामानं सुदामानं वसुदामानमेव च। वीरभानुं शूरभानुं गोपान्पञ्च प्रपूजयेत्॥११॥
सुनन्दनन्दकुमुदं पार्षदं मे सुदर्शनम्। लक्ष्मीं सरस्वतीं दुर्गां राधां गङ्गां वसुंधराम्॥१२॥
गुरुं च तुलसीं शंभुं कार्तिकेयं विनायकम्। नवग्रहांश्च दिक्पालान्परितः पूजयेत्सुधीः॥१३॥
देवषट्कं च संपूज्य सर्वादौ विघ्नविघ्नतः। गणेशं च दिनेशं च वह्निं विष्णुं शिवं शिवम्॥१४॥
श्रुतौ विनिर्मितान्देवान्मोक्षदान्कर्मकृन्तनान्। गणेशं विघ्ननाशाय सूर्यं व्याधिविनाशिने॥१५॥
वह्निं प्राप्तिनिमित्तेन शान्तौ शुद्धौ भवेद्ध्रुवम्। विष्णुं मोक्षनिमित्तेन ज्ञानदानाय शंकरम्॥१६॥
बुद्धिमुक्तिनिमित्तेन पार्वतीं पूजयेत्सुधीः। पुष्पाञ्जलित्रयं दत्त्वा स्वस्तोत्रं कवचं पठेत्॥१७॥
गुरुं प्रणम्य संपूज्य तत्पश्चात्प्रणमेत्सुरम्। कृत्वाऽऽह्निकं च संपूज्य यथासुखमुदीरितम्॥१८॥
समाचरेत्स्वकर्मैतद्वेदोक्तं स्वात्मशुद्धये। विष्ठां न पश्येत्प्राज्ञश्च व्याधिबीजस्वरूपिणीम्॥१९॥
मूत्रं च व्याधिबीजं च परं नरककारणम्। लिङ्गं योनिं पापदुःखव्याधिदारिद्र्यदायिनीम्॥२०॥
उरुं मुखं स्तनं स्त्रीणां कटाक्षं हास्यमेव च। विनाशबीजं रूपं च विपदां कारणं सदा॥२१॥

---

के पात्र में अर्चना करे, किन्तु शालग्राम शिला और जल में ही मेरा आवाहन करे। यह व्रती भक्त मंत्र के अनुरूप ध्यान द्वारा ध्यान करते हुए मेरा पूजन करे तथा भक्तिपूर्वक मूलमंत्र के उच्चारण द्वारा षोडशोपचार समर्पित करे॥७-१०॥

श्रीदामा, सुदामा, वसुदामा, वीरभानु, शूरभानु इन पांच गोपों की पूजा करते हुए मेरे सुनन्द, नन्द, कुमुद और सुदर्शन पार्षदों का तथा लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, राधा, गङ्गा, वसुन्धरा, गुरु, तुलसी, शिव, कार्तिकेय, विनायक (गणेश), नवग्रह, दिक्‌पाल की सविधि पूजा करनी चाहिए। विद्वान् को उचित है कि विघ्ननिवारणार्थ सर्वप्रथम गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव और पार्वती की अर्चना करे॥११-१४॥ वेद में इन देवों को मोक्षप्रद और कर्मनाशक कहा गया है। विघ्न नाश के लिए गणेश, रोग-शमनार्थ सूर्य, प्राप्ति के निमित्त और शान्ति-शुद्धि के लिए अग्नि, मोक्ष के लिए विष्णु, ज्ञानदान के लिए शिव और बुद्धि-मुक्ति के लिए पार्वती की अर्चना करनी चाहिए। इस प्रकार पूजनोपरान्त तीन पुष्पांजलि अर्पित कर अपने स्तोत्र-कवच का पाठ करे। गुरु को प्रणाम और पूजन करके पश्चात् देवों को प्रणाम एवं पूजन करना चाहिए। इस भांति दैनिक कृत्य के उपरान्त यथासुख देवादि की अर्चना करे। आत्म-शुद्धि के लिए इन वेदोक्त अपने कर्मों को अवश्य सुसम्पन्न करना चाहिए। इसी प्रकार निषेध वाक्यों पर भी ध्यान देकर बुद्धिमान् को विष्ठा न देखना चाहिए, उससे रोग उत्पन्न होते हैं, मूत्र भी देखने से रोग उत्पन्न होता है और नरकगामी होना पड़ता है। लिङ्ग एवं योनि देखने से पाप, दुःख, व्याधि और दारिद्र्य प्राप्त होता है॥१५-२०॥

परायी स्त्री की जांघ, हृदय, मुख, स्तन, कटाक्ष और हास्य देखने से विनाश होता है तथा इनका रूप

दिवाभोगं च स्वस्त्रीणां स्वालापं परिवर्जयेत् । रोगाणां कारणं चैव चक्षुषोः कर्णयोस्तथा ॥२२॥
एकतारं च गगनं न पश्येत्तु रुजां भयात् । दैवाद्दृष्ट्वा हरिं स्मृत्वा सप्तधा नारदं जपेत् ॥२३॥
अस्तकाले रविं चन्द्रं न पश्येद् व्याधिकारणम् । खण्डं समुदितं चन्द्रं न पश्येद् व्याधिकारणम् ॥२४॥
जलस्थं च रविं चन्द्रं दृष्ट्वा शोकं लभेन्नरः । बन्धुविच्छेदहेतुं च पश्येत्परमैथुनम् ॥२५॥
एकत्र शयनं स्थानं भोजनं च गतिं तथा । न कुर्यात्पापिना सार्धं सर्वं नाशस्य लक्षणम् ॥२६॥
आलापाद्गात्रसंस्पर्शाच्छयनाश्रयभोजनात् । संचरन्ति ध्रुवं पापास्तैलविन्दुरिवाम्भसा ॥२७॥
हिंस्रजन्तुसमीपं च न गच्छेद्दुःखकारणम् । खलेन सार्धं मिलनं न कुर्याच्छोककारणम् ॥२८॥
ब्राह्मणानां गवां चैव वैष्णवानां विशेषतः । न कुर्याद्धिंसनं हानिं सर्वनाशस्य कारणम् ॥२९॥
देवदेवलविप्राणां वैष्णवानां तथैव च । वित्तं धनं च न हरेत्सर्वनाशस्य कारणम् ॥३०॥
स्वदत्तं परदत्तं वा ब्रह्मवित्तं हरेत्तु यः । षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः ॥३१॥
गृध्रः कोटिसहस्राणि शतजन्मानि सूकरः । श्वापदः शतजन्मानि गण्डकः सप्तजन्मनि ॥३२॥
धोटकः सप्तजन्मानि कुम्भीरः पञ्चजन्मसु । पुंश्चलीनां योनिकीटं शतजन्मसु निश्चितम् ॥३३॥
व्रणकीटं च तेषां च शतजन्मसु नारद । गोधिका सप्तजन्मानि गर्दभः सप्तजन्मसु ॥३४॥

---

सदा विपत्ति का कारण है। अपनी स्त्री के साथ भी दिन में सम्भोग नहीं करना चाहिए। यह हानिकर है, इससे आँख और कान में रोग उत्पन्न होते हैं। इसी भाँति एक तारावाला आकाश रोग-भय के कारण न देखना चाहिए। संयोग से देख लेने पर हरि स्मरण के उपरान्त सात बार नारद नाम का उच्चारण करना चाहिए। अस्त समय सूर्य-चन्द्रमा को रोगभय के कारण न देखना चाहिए और उदय समय खण्ड चन्द्रमा के देखने से भी रोग उत्पन्न होता है ॥२१-२४॥ इसी प्रकार जल में सूर्य-चन्द्रमा को देखने से मनुष्य को शोक प्राप्त होता है। पर-सम्भोग देखने से बन्धु-विच्छेद होता है। पापी प्राणी के साथ एक स्थान पर शयन, भोजन और यात्रा न करनी चाहिए। उससे सर्वनाश हो जाता है। उसके साथ बात-चीत, शरीर स्पर्श, शयन एवं भोजन करने से जल में तेलविन्दु की भाँति उसके पाप निश्चित ही साथी पर आ जाते हैं। दुःख होने के भय से हिंसक जन्तु के समीप भी न जाना चाहिए। शोक उत्पन्न होने के भय से खल (दुष्ट) के साथ नहीं मिलना चाहिए ॥२५-२८॥

ब्राह्मण, गौ, विशेषतया वैष्णव की हिंसा या उनकी हानि नहीं करनी चाहिए, उससे सर्वनाश हो जाता है। देव, देवल, ब्राह्मण और वैष्णवों के वित्त और धन का अपहरण न करे। इससे सर्वनाश होने का भय रहता है। अपनी ओर से दी गयी या दूसरे की दी हुई ब्राह्मण की जीविका का जो अपहरण करता है उसे साठ सहस्र वर्ष विष्ठा का कीड़ा होना पड़ता है। पश्चात् सौ करोड़ जन्मों तक गीध, सौ जन्मों तक सूकर, सौ जन्मों तक हिंसक जन्तु, सात जन्मों तक गैंडा, सात जन्मों तक अश्व, पाँच जन्मों तक वक्र, सौ जन्मों तक निश्चित रूप से कुलटाओं की योनि का कीड़ा और सौ जन्मों तक उन्हीं के व्रण का कीड़ा होना पड़ता है। हे नारद ! सात जन्मों तक गोह, सात जन्मों तक गधा, सात जन्मों तक बिल्ली, तीन जन्मों तक नेवला, सौ

सप्तजन्मानि मार्जारो नकुलस्त्रिषु जन्मसु । उच्चैःश्रवा जन्मशतं खरश्चापि तथैव च ॥३५॥
क्रूरसर्पश्च शार्दूलो महिषः सप्तजन्मसु[1] । भेकश्च शतजन्मानि च्छागलः सप्तजन्मसु ॥३६॥
भल्लूकः शतजन्मानि शृगालो लक्षजन्मसु । ततो जलौका भवति ब्रह्मस्वहरणाद्ध्रुवम् ॥३७॥
कुम्भीपाके च पच्यन्ते पापिनो ब्रह्मणः शतम् । दक्षिणां विप्रमुद्दिश्य तत्कालं चेन्न दीयते ॥३८॥
एकरात्रे व्यतीते तु तद्दानं द्विगुणं भवेत् । मासे शतगुणं प्रोक्तं द्विमासे तु सहस्रकम् ॥३९॥
संवत्सरे व्यतीते तु स दाता नरकं व्रजेत् । दात्रा न दीयते मूर्खो ग्रहीता च न याचते ॥४०॥
उभौ तौ नरकं यातो दाता व्याधियुतो भवेत् । विप्राणां हिंसनं कृत्वा वंशहानि लभेद्ध्रुवम् ॥४१॥
धनं लक्ष्मीं परित्यज्य भिक्षुकश्च भवेद्व्रजन् । देवं च ब्राह्मणं दृष्ट्वा न नमेद्यो लभेच्छुचम् ॥४२॥
न कुर्याद्गुरुभक्ति यो लभते रौरवं शुचम् । या स्त्री मूढा दुराचारा स्वपतिं हरिरूपिणम् ॥४३॥
न पश्येत्तर्जनं कृत्वा कुम्भीपाके व्रजेद्ध्रुवम् । वाक्तर्जनाद्भवेत्काको हिंसनात्सूकरो भवेत् ॥४४॥
सर्पो भवति कोपेन दर्पेण गर्दभो भवेत् । कुक्कुरी च कुवाक्येनाप्यन्धश्च विषदर्शनात् ॥४५॥
पतिव्रता च वैकुण्ठं पत्या सह व्रजेद्ध्रुवम् । शिवं दुर्गां गणपतिं सूर्यं विप्रं च वैष्णवम् ॥४६॥

---

जन्मों तक उच्चैःश्रवा और सात जन्मों तक क्रूर सर्प, बाघ, भैंसा, सौ जन्मों तक मेढक, सात जन्मों तक बकरा, सौ जन्मों तक भालू, लाख जन्मों तक सियार और अनन्तर उस ब्रह्म-धन के अपहरण के कारण जोंक होता है। सौ ब्रह्मा के समय तक कुम्भीपाक नरक में पापी लोग पकाये जाते हैं। ब्राह्मण को दक्षिणा कहकर तत्काल न देने पर वह दान एक रात्रि व्यतीत होने पर दुगुना हो जाता है, मास व्यतीत होने पर सौगुने अधिक, दो मास में सहस्रगुण अधिक और वर्ष व्यतीत होने पर उस दाता को अवश्य ही नरकगामी होना पड़ता है। दाता दे न सके और मूर्ख ग्रहीता याचना न कर सके तो वे दोनों नरकगामी होते हैं और दाता रोगी होता है। ब्राह्मणों की हिंसा करने पर निश्चित ही वंश-हानि होती है तथा धन और लक्ष्मी को त्यागकर वह भिक्षुक हो जाता है। देवता और ब्राह्मण को देखकर जो उन्हें नमस्कार नहीं करता, उसे शोक प्राप्त होता है ॥२९-४२॥

जो गुरु की भक्ति नहीं करता है, उसे रौरव नामक नरक में जाना पड़ता है। जो दुराचारिणी, मूढ़ स्त्री, हरिरूपी अपने पति का दर्शन नहीं करती अपितु उन्हें डाँट-फटकार बताती है, उसे कुम्भीपाक नरक में वास करना पड़ता है। केवल वाणी से ताड़ना करने पर कौआ होना पड़ता है एवं हिंसा करने से शूकर, क्रोध करने से सर्प, अभिमान करने से गधा, कुवाक्य कहने से कुतिया और विष देने से अंधा बनना पड़ता है। पतिव्रता स्त्री पति के साथ निश्चित ही वैकुण्ठ को जाती है। जो मूढ़, शिव, दुर्गा, गणेश, सूर्य, विप्र, वैष्णव

---

१ क. शत॰।

विष्णुं निन्दति यो मूढः स महारौरवं व्रजेत् । पितरं मातरं पुत्रं सतीं भार्यां गुरुं तथा ॥४७॥
अनाथां भगिनीं कन्यां विनिन्द्य नरकं व्रजेत् । विप्रभक्तिविहीनाश्च क्षत्रविट्शूद्रयोनिजाः ॥४८॥
हरिभक्तिविहीनाश्च पच्यन्ते नरके ध्रुवम् । पतिभक्तिविहीनाश्च युवत्यश्च नराधमाः ॥४९॥
शालग्रामजलं विष्णुप्रसादं ये च भुञ्जते । तीर्थं पुनन्ति ते विप्राः शतं पुंसां वसुंधराम् ॥५०॥
पितृन्देवान्समभ्यर्च्य खादन्मांसं[1] द्विजः शुचिः । यो भक्षति वृथा मांसं स महारौरवं व्रजेत् ॥५१॥
मत्स्यांश्च कामतो जग्ध्वा चोपवासं वसेद्द्विजः । प्रायश्चित्तं ततः कुर्याद्व्रतं चान्द्रायणं चरेत् ॥५२॥
कामतो ब्राह्मणो मत्स्यं भुङ्क्ते यो ज्ञानदुर्बलः । सोऽशुचिः सततं नन्द हन्ति पुण्यं पुराकृतम् ॥५३॥
विष्णोरुच्छिष्टभोजी यो मत्स्यं मांसं न खादति । पदे पदेऽश्वमेधस्य लभते निश्चितं फलम् ॥५४॥
एकादशीं ये कुर्वन्ति कृष्णजन्माष्टमीव्रतम् । शतजन्मकृतात्पापान्मुच्यन्ते नात्र संशयः ॥५५॥
यद्बाल्ये यच्च कौमारे वार्धके यच्च यौवने । भस्मीभूतानि कुर्वन्ति पातकानि कृतानि च ॥५६॥
एकादशीदिने भुङ्क्ते कृष्णजन्माष्टमीव्रते । त्रैलोक्यजनितं पापं सोऽपि भुङ्क्ते न संशयः ॥५७॥
आतुरे नियमो न स्यादपि वृद्धे च बालके । भक्तस्य द्विगुणं दत्त्वा ब्राह्मणाय शुचिर्भवेत् ॥५८॥

---

और विष्णु की निन्दा करता है, उसे महारौरव नरक में जाना पड़ता है। इसी प्रकार पिता-माता, पुत्र, पतिव्रता पत्नी, गुरु, अनाथ भगिनी तथा कन्या की निन्दा करने पर नरक प्राप्त होता है। ब्राह्मणभक्ति और हरिभक्ति से रहित क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र नरक में निश्चित पकाये जाते हैं और पति भक्ति से रहित युवतियाँ अधम होती हैं। शालग्राम का जल और भगवान् विष्णु का प्रसाद भक्षण करनेवाले ब्राह्मण तीर्थों को पवित्र करते हैं तथा अपनी सौ पीढ़ी एवं पृथ्वी को भी पवित्र करते हैं ॥४३-५०॥ पितरों और देवों की अर्चना करके द्विज मांसभोजी होने पर भी शुद्ध रहता है और जो व्यर्थ मांस भक्षण करता है, वह महारौरव नरक में जाता है। स्वार्थवश मछलियों के जलाने (भूनने) पर द्विज को उपवास करना चाहिए और पश्चात् प्रायश्चित्त करके चान्द्रायण व्रत करे। हे नन्द! ज्ञान की दुर्बलता (कमी) के कारण जो ब्राह्मण मत्स्य भोजन करता है, वह भी सदैव अशुद्ध रहकर पुण्यों को नष्ट कर देता है। जो ब्राह्मण भगवान् विष्णु का उच्छिष्ट (प्रसाद) भोजन करता है और मत्स्य (मछली) मांस कभी भक्षण नहीं करता, उसके एक-एक पग में अश्वमेध का निश्चित फल प्राप्त होता है ॥५१-५४॥

जो एकादशी और भगवान् कृष्ण की जन्माष्टमी का व्रत करते हैं, वे सौ जन्मों के पापों से मुक्त होते हैं, इसमें संशय नहीं। उनके बाल्य (बचपन), कुमारावस्था, वृद्धावस्था और यौवन (जवानी) समय के किये हुए पाप नष्ट हो जाते हैं। एकादशी के दिन एवं भगवान् कृष्ण की जन्माष्टमी के दिन जो (अन्न) भोजन करता है, वह तीनों लोकों के पाप खाता है, इसमें संशय नहीं। किन्तु आतुर, वृद्ध और बालक के लिए यह नियम नहीं है। वह अपने भोजन का दुगुना ब्राह्मण को समर्पित कर देने मात्र से पवित्र हो जाता है ॥५५-५८॥

---

१ क. स्वाद'।

यो भुङ्क्ते शिवरात्रौ च श्रीरामनवमीदिने । उपवासे समर्थश्च स महारौरवं व्रजेत् ॥५९॥
कुहूपूर्णेन्दुसंक्रान्तिचतुर्दश्यष्टमीषु च । नरश्चाण्डालयोनिः स्यात्स्त्रीतैलमांससेवनात् ॥६०॥
मत्स्यं मांसं मसूरं च कांस्यपात्रे च भोजनम् । आर्द्रकं रक्तशाकं च रवौ च परिवर्जयेत् ॥६१॥
अन्यथा नरकं याति कुम्भीपाकं न संशयः । रजस्वलान्नं वेश्यान्नं मदिरान्नं व्रजेश्वर ॥६२॥
यो भुङ्क्ते ब्राह्मणो दैवाद्विड्भोजी स भवेद्ध्रुवम् । यदह्ना कुरुते कर्म न तस्य फलभाग्भवेत् ॥६३॥
स भवेदशुचिर्नित्यं भस्मान्तं तस्य सूतकम् । नारी वेश्या प्रतिज्ञेया चतुष्पुरुषगामिनी ॥६४॥
पाके च पितृदेवानामधिकारो न तद्भवेत् । यद्ग्रामयाजिनामन्नं शूद्रश्राद्धान्नभोजनम् ॥६५॥
भुक्त्वा च नरकं याति यावच्चन्द्रदिवाकरौ । शूद्राणां श्राद्धदिवसे तदन्नं भुञ्जते द्विजाः ॥६६॥
कुम्भीपाके च पच्यन्ते यावद्वै ब्रह्मणः शतम् । यः शूद्रेणाभ्यनुज्ञातो भुङ्क्ते श्राद्धदिनेऽन्यतः ॥६७॥
सुरापीति स विज्ञेयः सर्वधर्मबहिष्कृतः । असिजीवी मषीजीवी देवलो वृषवाहकः ॥६८॥
शूद्राणां शवदाही च यो हि शूद्रापतिद्विजः । स शूद्रवद्बहिष्कार्यस्तदन्नं विट्समं सताम् ॥६९॥
नोपतिष्ठति यः पूर्वां नोपास्ते यस्तु पश्चिमाम् । स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः ॥७०॥

---

उपवास करने से समर्थ होने पर भी जो शिवरात्रि और रामनवमी के दिन भोजन करता है, वह महारौरव नरक में जाता है। अमावस्या, पूर्णिमा, संक्रान्ति, चतुर्दशी और अष्टमी के दिन स्त्री-सहवास, तेल और मांस सेवन करने पर मनुष्य चाण्डाल हो जाता है। मत्स्य, मांस, मसूर, काँसे के पात्र में भोजन, अदरक और रक्त शाक का रविवार के दिन त्याग करना चाहिए अन्यथा उसे कुम्भीपाक नरक में जाना पड़ता है, इसमें संशय नहीं। हे व्रजेश्वर ! रजस्वला स्त्री का अन्न, वेश्या का अन्न एवं मदिरा मिश्रित अन्न दैववश जो ब्राह्मण भोजन करता है, वह निश्चित मलभोजी हो जाता है। वह दिन में जो कर्म करता है उसका फलभागी नहीं होता है, वह नित्य अपवित्र ही रहता है। यहाँ तक कि चिता पर जल जाने के अनन्तर ही उसका सूतक मिटता है। चार पुरुषों से भोग करनेवाली स्त्री को वेश्या समझना चाहिए। पितरों और देवों के उद्देश्य से बननेवाले पाक में उसका अधिकार नहीं रह जाता है। ग्रामयाजी (गाँव-गाँव यज्ञ करानेवाले) और शूद्रों के श्राद्ध में भोजन करनेवाले का अन्न खानेवाला चन्द्र-सूर्य के समय तक नरक में रहता है। शूद्रों के श्राद्ध-दिन उनके अन्न भोजन करनेवाले ब्राह्मण सौ ब्रह्मा के समान काल तक कुम्भीपाक नरक में पचते रहते हैं। जो श्राद्ध-दिन शूद्र की आज्ञा से अन्य के यहाँ भोजन करता है, उसे सुरापी 'शराबी' जानना चाहिए, उसे समस्त धर्म-कार्यों से वहिष्कृत किया जाना चाहिए। इस प्रकार असिजीवी (सिपाही), मषीजीवी (लेखक), देवल (मन्दिर के पुजारी), वृषवाहक (बैलों द्वारा जीविका करनेवाले), शूद्रों का शव-दाह करनेवाले और शूद्रा के पति द्विज का शूद्र की भाँति ही (सभी कार्यों में) वहिष्कार कर देना चाहिए क्योंकि सज्जनों के लिए उसका अन्न विष्ठा के समान होता है। इसी भाँति जो प्रातः और सायंकाल की संध्या नहीं करता है, उसे शूद्र की भाँति सभी द्विज कर्म से पृथक् कर देना चाहिए ॥५९-७०॥

संध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु । यदह्नाकुरुते कर्म न तस्य फलभाग्भवेत् ।।७१।।
वाममन्त्रोपासकश्च ब्राह्मणो नरकं व्रजेत् । नदीगर्भे च गर्ते च वृक्षमूले जलान्तिके ।।७२।।
देवान्तिके सस्यभूमौ पुरीषं नोत्सृजेद्बुधः । वल्मीकमूषकोत्खातां मृदमन्तर्जलां तथा ।।७३।।
शौचावशिष्टां गेहाच्च नाऽऽदद्याल्लेपसंभवाम् । अन्तःप्राणिपिपील्यां च हलोत्खातां व्रजेश्वर ।।७४।।
आलवालोत्थितां चैव सस्यक्षेत्रोत्थितां तथा । वृक्षमूलोत्थितां नन्द नदीगर्भोत्थितां तथा ।।७५।।
परित्यजेन्मृदस्त्वेताः सकलाः शौचसाधने । कूष्माण्डघातिका या स्त्री दीपनिर्वाणकः पुमान् ।।७६।।
सप्तजन्म भवेद्रोगी दरिद्रो जन्मजन्मनि । प्रदीपं शिवलिङ्गं च शालग्रामं मणिं तथा ।।७७।।
प्रतिमां यज्ञसूत्रं च सुवर्णं शङ्खमेव च । हीरकं च तथा मुक्तां गोमूत्रं गोमयं घृतम् ।।७८।।
शालग्रामशिलातोयं भूमौ त्यक्त्वा व्रजेदधः । दरिद्रः कृपणः कुष्ठी वंशहीनोऽप्यभार्यकः ।।७९।।
भूमिहीनः प्रजाहीनो बन्धुहीनश्च कुत्सितः । अन्धः पङ्गुर्वा खर्वश्च खञ्जश्चैवाङ्गहीनकः ।।८०।।
भवेत्क्रमेण पापी स ह्येतान्भूमौ त्यजेत्तु यः । दिवसे संध्ययोर्निद्रां स्त्रीसंभोगं करोति यः ।।८१।।
सप्तजन्म भवेद्रोगी दरिद्रः सप्तजन्मसु । उदिते जगतीनाथे यः कुर्याद्दन्तधावनम् ।।८२।।

---

संध्या वन्दन न करनेवाला द्विज सदैव अशुद्ध रहता है और सभी कर्मों में अयोग्य माना जाता है। इसीलिए वह जो कर्म करता है, उसका फल उसे प्राप्त नहीं होता। वाममार्गी ब्राह्मण नरक जाकर निश्चित दुःखानुभव करता है। विद्वानों को चाहिए कि नदी के गर्भस्थान, गड्ढा, वृक्ष के मूलभाग, जल के समीप, देवता के निकट और हरी खेती में कभी भी मलोत्सर्ग न करे। हे व्रजेश्वर ! वल्मीक (बिमोट), मूष (चूहा) द्वारा खोदी हुई, जल के भीतर की, हाथ शुद्ध करके उससे बची हुई, घर की और लेप की हुई, भीतर और चींटीवाली एवं हल द्वारा जोती (खेत की) मिट्टी से (हाथ) शुद्धि नहीं करनी चाहिए ।।७१-७४।। हे नन्द ! इसी प्रकार आलवाल (वृक्षों आदि का थाला), हरी खेती की, वृक्ष के मूल भाग की खोदी हुई एवं नदी के गर्भ से निकली हुई ये समस्त मिट्टियाँ, शौच (पवित्रता) के लिए अयोग्य होती हैं। इसी भाँति कूष्माण्ड (कुम्हड़ा) काटनेवाली स्त्री और दीपक बुझानेवाला पुरुष सात जन्मों तक रोगी और प्रत्येक जन्म में दरिद्र होता है। दीपक, शिवलिंग, शालग्राम मणि, (देवों की) प्रतिमा, यज्ञोपवीत का सूत्र, सुवर्ण, शङ्ख, हीरा, मोती, गोमूत्र, गोबर, घी और शालग्राम शिला का जल, भूमि में डालने पर नरकगामी होना पड़ता है। अन्त में क्रमशः दरिद्र, कृपण, कुष्ठ का रोगी, वंशहीन, स्त्रीहीन, भूमिहीन, प्रजाहीन, बन्धुहीन, निन्दित, अन्धा, कूबड़ा, लँगड़ा, चरणहीन एवं अंगहीन होता है। दिन में तथा दोनों संध्या समय शयन और स्त्री-सम्भोग करनेवाला सात जन्मों तक रोगी तथा सात जन्मों तक दरिद्र होता है। जगत् के अधीश्वर सूर्य के उदय होने पर जो दन्तधावन

स पापिष्ठः कथं ब्रूते पूजयामि जनार्दनम् । मृद्भस्मगोसकृत्पिण्डैस्तथा वालुकयाऽपि वा ॥८३॥
कृत्वा लिङ्गं सकृत्पूज्य वसेत्कल्पशतं दिवि । सहस्रपूजनात्सोऽपि लभते वाञ्छितं फलम् ॥८४॥
लक्षं च पूजयेद्यस्तु शिवत्वं लभते ध्रुवम् । जीवन्मुक्तो भवेद्विप्रो लिङ्गमभ्यर्चयेत्तु यः ॥८५॥
शिवपूजाविहीनश्च ब्राह्मणो नरकं व्रजेत् । मत्पूजितं प्रियतमं शिवं निन्दन्ति ये नराः ॥८६॥
पच्यन्ते निरये तावद्यावद्ब्रह्मणः शतम् । पूजिते शिवलिङ्गे च यदि स्यात्केशवालुका ॥८७॥
स महान्धो वालुकया केशेन यवनो भवेत् । क्षुद्रो दरिद्रः कृपणो व्याधिः स्यात्कुत्सिते यथा ॥८८॥
सर्वेभ्यो मानहानिः स्याज्जायते नीचयोनिषु । सर्वेषु प्रियपात्रेषु[1] ब्राह्मणश्च मम प्रियः ॥८९॥
ब्राह्मणाच्च प्रिया लक्ष्मीः सततं वक्षसि स्थिता । ततोऽधिका प्रिया राधा प्रिया भक्तास्ततोऽधिकाः ॥९०॥
ततोऽधिकः शंकरो मे नास्ति मे शंकरात्प्रियः । महादेव महादेव महादेवेति वादिनः ॥९१॥
पश्चाद्यामि च संतृप्तो नामश्रवणलोभतः । मनो मे भक्तमूले च प्राणा राधात्मका ध्रुवम् ॥९२॥
आत्मा मे शंकरस्थानं शिवः प्राणाधिकश्च यः । आद्या नारायणी शक्तिः सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी ॥९३॥

---

(दातून) करता है, वह पापी यह कैसे कह सकता है कि 'मैं जनार्दन भगवान् की पूजा करता हूँ ।' मिट्टी, भस्म (राख), गोबर और बालू द्वारा शिवलिङ्ग बनाकर एक बार भी पूजन करने से सौ कल्पों तक स्वर्ग का निवास प्राप्त होता है एवं सहस्र लिङ्ग पूजन करने से मनोरथ सिद्ध होता है ॥७५-८४॥

एक लाख शिवलिङ्ग का पूजन करने से निश्चित रूप से शिवत्व प्राप्त होता है । इस प्रकार शिवलिङ्ग का पूजन करनेवाला ब्राह्मण जीवन्मुक्त होता है । शिवपूजा रहित ब्राह्मण नरक का अधिकारी होता है । मेरे द्वारा पूजित प्रियतम शिव की जो लोग निन्दा करते हैं वे सौ ब्रह्मा के समान काल तक नरक में रहकर पचते रहते हैं । पूजा किये गये शिवलिङ्ग में यदि बालू रहती है, तो पूजनेवाला महान्ध होता है, केश रहने पर वह यवन जाति में उत्पन्न होता है और क्षुद्र, दरिद्र, कृपण तथा कुत्सित रोगी होता है । उसे सबसे मानहानि प्राप्त होती है और पुनः नीच योनियों में जन्म ग्रहण करता है । (मेरे) जितने प्रिय पात्र हैं उनमें ब्राह्मण मुझे अधिक प्रिय हैं । ब्राह्मण से लक्ष्मी प्रिय हैं जो निरन्तर मेरे वक्षःस्थल पर स्थित रहती हैं । उनसे अधिक राधा प्रिय हैं और राधा से अधिक भक्तजन प्रिय हैं एवं उनसे भी अधिक मुझे शिव प्रिय हैं । किन्तु शङ्कर से अधिक मुझे कोई प्रिय नहीं है । क्योंकि जो कोई 'महादेव, महादेव, महादेव' कहते हुए चलता है उस व्यक्ति के पीछे मैं संतृप्त होकर वह नाम सुनने के लोभवश पीछे चलता हूँ । मेरा मन भक्तों में रहता है, प्राण राधिका में और आत्मा शिव में निरन्तर बना रहता है, जो मेरे प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं । मैंने आद्याशक्ति नारायणी को, जो सृष्टि, पालन

---

१ क. 'पात्रे' ।

करोमि च यथा सृष्टिं यया ब्रह्मादिदेवताः । यया जयति विश्वं च यया सृष्टिः प्रजायते ॥९४॥
यया विना जगन्नास्ति मया दत्ता शिवाय सा । दया निद्रा च क्षुत्तृप्तिस्तृष्णा श्रद्धा क्षमा धृतिः ॥९५॥
तुष्टिः पुष्टिस्तथा शान्तिर्लज्जाधिदेवता हि सा । वैकुण्ठे सा महालक्ष्मीर्गोलोके राधिका सती ॥९६॥
मर्त्ये लक्ष्मीश्च क्षीरोदे दक्षकन्या सती च सा । सा दुर्गा मेनकाकन्या दैन्यदुर्गतिनाशिनी ॥९७॥
स्वर्गलक्ष्मीश्च दुर्गा सा शक्रादीनां गृहे गृहे । सा वाणी सा च सावित्री विद्याधिष्ठातृदेवता ॥९८॥
वह्नौ सा दाहिकाशक्तिः प्रभाशक्तिश्च भास्करे । शोभाशक्तिः पूर्णचन्द्रे जले शक्तिश्च शीतता ॥९९॥
सस्यप्रसूता शक्तिश्च धारणा च धरासु सा । ब्राह्मण्यशक्तिर्विप्रेषु देवशक्तिः सुरेषु सा ॥१००॥
तपस्विनां तपस्या सा गृहिणां गृहदेवता । मुक्तिशक्तिश्च मुक्तानामाशा सांसारिकस्य सा ॥१०१॥
मद्भक्तानां भक्तिशक्तिर्मयि भक्तिप्रदा सदा । नृपाणां राज्यलक्ष्मीश्च वणिजां लभ्यरूपिणी ॥१०२॥
परि संसारसिन्धूनां त्रयीतत्त्वा तु तारिणी । सत्सु सद्बुद्धिरूपा सा मेधाशक्तिस्वरूपिणी ॥१०३॥
व्याख्याशक्तिः श्रुतौ शास्त्रे दातृशक्तिश्च दातृषु । क्षत्रादीनां विप्रभक्तिः पतिभक्तिः सतीसु च ॥१०४॥

---

और लय करनेवाली है एवं जिससे सृष्टि करता हूँ, जिसके द्वारा ब्रह्मा आदि देवगण उत्पन्न होते हैं, जिससे विश्व-विजय होता है, सृष्टि होती है और जिसके बिना जगत् ही नहीं रह सकता है—शिव को दे दिया है, जो दया, निद्रा, क्षुधा, तृप्ति, तृष्णा, श्रद्धा, क्षमा, धृति, तुष्टि, पुष्टि, शान्ति एवं लज्जा की अधिकारी देवता है। वही वैकुण्ठ में महालक्ष्मी, गोलोक में सती राधिका, मर्त्य लोक में क्षीरसागर की लक्ष्मी और दक्षकन्या सती है। वही दुर्गा, जो दीनता एवं दुर्गति का विनाश करती है, मेनका की पुत्री पार्वती है। वही दुर्गा स्वर्ग में इन्द्रादि देवों के घर-घर में स्वर्गलक्ष्मी, सरस्वती, सावित्री और विद्याओं की अधिष्ठात्री देवी है ॥८५-९८॥

वही अग्नि की दाहशक्ति, सूर्य की प्रभाशक्ति, पूर्णचन्द्र में शोभाशक्ति, जल में शीतशक्ति, सस्य (हरी फसल) की प्रसूता (उत्पन्न करनेवाली) शक्ति और देवों में देवशक्ति है ॥९९-१००॥ वही तपस्या करनेवालों की तपस्या, गृहस्थों की गृहदेवता, मुक्त होनेवालों की मुक्तिशक्ति, संसारी प्राणियों की आशा, मेरे भक्तों की भक्तिशक्ति और मुझमें भक्तिप्रदा होकर सदा स्थित रहती है। वही राजाओं की राज्यलक्ष्मी, वणिजों (वैश्यों) की प्राप्त होनेवाली (आय) शक्ति, संसार-सागर को पार करनेवाली तीन तत्त्ववाली तारिणी शक्ति है, सज्जनों की सुबुद्धिरूपा और मेधाशक्ति है। वेदों और शास्त्रों की व्याख्या शक्ति, दाताओं की दातृ शक्ति, क्षत्रिय आदि की ब्राह्मण भक्ति और पतिव्रताओं की पतिभक्ति रूपा शक्ति है। इस प्रकार की

एवं रूपा च या शक्तिर्मया दत्ता शिवाय सा। एवं ते कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥
प्रश्नं करोषि यद्यन्मां तत्सर्वं कथयामि ते ॥१०५॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० भगवन्नन्दसं०
पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥७५॥

•

## अथ षट्सप्ततितमोऽध्यायः

**नन्द उवाच**

येषां च दर्शने पुण्यं पापं यस्य च दर्शने। तत्सर्वं वद सर्वेश श्रोतुं कौतूहलं मम॥१॥

**श्रीभगवानुवाच**

सुब्राह्मणानां तीर्थानां वैष्णवानां च दर्शने। देवताप्रतिमादर्शी तीर्थस्नायी भवेन्नरः॥२॥
सूर्यस्य दर्शने भक्त्या सतीनां दर्शने तथा। संन्यासिनां यतीनां च तथैव ब्रह्मचारिणाम्॥३॥

---

उस नारायणी शक्ति को मैंने शिव को प्रदान किया है। इस भाँति मैंने सब कुछ तुम्हें बता दिया है अब और क्या सुनना चाहते हो, क्योंकि जो कुछ मुझसे प्रश्न करोगे, मैं वह सब कुछ तुम्हें बताऊँगा॥१०१-१०५॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण में श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद-नारायण के संवाद में
श्रीकृष्ण और नन्द के संवाद वर्णन नामक पचहत्तरवाँ अध्याय समाप्त॥७५॥

•

## अध्याय ७६

### दर्शनीय वस्तु का निरूपण

**नन्द बोले**—हे सर्वेश! जिनके दर्शन करने से पुण्य और जिनके दर्शन से पाप होता है, उन्हें बताने की कृपा कीजिये, मुझे यह सुनने का कौतूहल हो रहा है॥१॥

**श्रीभगवान् बोले**—उत्तम ब्राह्मण, तीर्थ, वैष्णव और देव प्रतिमा (मूर्ति) के दर्शन करने से मनुष्य तीर्थ-स्नान का फल प्राप्त करता है॥२॥ उसी प्रकार भक्तिपूर्वक सूर्य-दर्शन, पतिव्रता स्त्री का दर्शन, संन्यासी, योगी,

भक्त्या गवां च वह्नीनां गुरूणां च विशेषतः । गजेन्द्राणां च सिंहानां श्वेताश्वानां तथैव च ॥४॥
शुकानां च पिकानां च खञ्जनानां तथैव च । हंसानां च मयूराणां चाषाणां शङ्खपक्षिणाम् ॥५॥
वत्सप्रयुक्तधेनूनामश्वत्थानां तथैव च । पतिपुत्रवतीनां च नराणां तीर्थयायिनाम् ॥६॥
प्रदीपानां सुवर्णानां मणीनां च विशेषतः । मुक्तानां हीरकाणां च माणिक्यानां महाशय ॥७॥
तुलसीशुक्लपुष्पाणां दर्शनं पापनाशनम् । फलानि शुक्लधान्यानि घृतं दधि मधूनि च ॥८॥
पूर्णकुम्भं च लाजांश्च राजेन्द्र दर्पणं जलम् । मालां च शुक्लपुष्पाणां दृष्ट्वा पुण्यं लभेन्नरः ॥९॥
गोरोचनं च कर्पूरं रजतं च सरोवरम् । पुष्पोद्यानं पुष्पितं च दृष्ट्वा पुण्यं लभेन्नरः ॥१०॥
शुक्लपक्षस्य चन्द्रं च पीयूषं चन्दनं तथा । कस्तूरीं कुङ्कुमं दृष्ट्वा नन्द पुण्यं लभेन्नरः ॥११॥
पताकामक्षयवटं तरुं देवोत्थितं शुभम् । देवालयं देवखातं दृष्ट्वा पुण्यं लभेन्नरः ॥१२॥
देवाश्रितं देवघटं सुगन्धिपवनं तथा । शङ्खं च दुंदुभिं दृष्ट्वा सद्यः पुण्यं लभेन्नरः ॥१३॥
शुक्तिं प्रवालं रजतं स्फटिकं कुशमूलकम् । गङ्गामृदं कुशं ताम्रं दृष्ट्वा पुण्यं लभेन्नरः ॥१४॥
पुराणपुस्तकं शुद्धं सबीजं विष्णुयन्त्रकम् । स्निग्धदूर्वाक्षते रत्नं दृष्ट्वा पुण्यं लभेन्नरः ॥१५॥
तपस्विनां सिद्धमन्त्रं समुद्रं कृष्णसारकम् । यज्ञं महोत्सवं दृष्ट्वा स पुण्यं लभते नरः ॥१६॥
गोमूत्रं गोमयं दुग्धं गोधूलिं गोष्ठगोष्पदम् । पक्वसस्यान्वितं क्षेत्रं दृष्ट्वा पुण्यं लभेद् ध्रुवम् ॥१७॥
रुचिरां पद्मिनीं श्यामां न्यग्रोधपरिमण्डलाम् । सुवेषकां सुवसनां दिव्यभूषणभूषिताम् ॥१८॥

---

ब्रह्मचारी, भक्ति समेत गौ, अग्नि, विशेषतया गुरु, गजेन्द्र, सिंह, श्वेत अश्व, शुक (तोता), पिक (कोकिल), खञ्जन, हंस, मयूर, नीलकण्ठ, शङ्ख पक्षी, बछड़ा समेत गौ, पीपल, पतिपुत्रवती स्त्री, तीर्थयात्री, प्रदीप, सुवर्ण, विशेषकर मणि, मोती, हीरा, माणिक्य, तुलसी और श्वेत पुष्प का दर्शन करने से पाप विनाश होता है। हे राजेन्द्र ! फल, शुक्ल धान्य, घी, दही, मधु, पूर्ण कलश, लावा (धान का), दर्पण, जल, माला और श्वेत पुष्पों का दर्शन करने से मनुष्य को पुण्य प्राप्त होता है। गोरोचन, कपूर, रजत, सरोवर और विकसित पुष्प वाटिका देखने से मनुष्य को पुण्य लाभ होता है ॥३-१०॥ हे नन्द ! शुक्ल पक्ष का चन्द्रमा, अमृत चन्दन, कस्तूरी एवं कुंकुम देखने से मनुष्य को पुण्य प्राप्त होता है। पताका, अक्षयवट वृक्ष (बरगद), शुभ देवोत्थान, देव-मन्दिर एवं गुफा देखने से पुण्य प्राप्त होता है ॥११-१२॥ देवाश्रित देवकलश, सुगन्धित वायु, शङ्ख और दुन्दुभि (नगाड़े) देखने से शीघ्र पुण्य लाभ होता है। शुक्ति (सुतुही), प्रवाल, रजत (चाँदी), स्फटिक, कुशमूल, गङ्गा की मिट्टी, कुश और ताँबा देखने से मनुष्य को पुण्य प्राप्त होता है ॥१३-१४॥

शुद्ध पुराण पुस्तक, बीज समेत भगवान् विष्णु का यन्त्र, स्निग्ध दूर्वा, अक्षत एवं रत्न देखने से पुण्य प्राप्त होता है। तपस्वियों का सिद्धमन्त्र, समुद्र, कृष्णसार (कृष्णमृग) तथा यज्ञ महोत्सव देखकर मनुष्य पुण्य प्राप्त करता है ॥१५-१६॥ गोमूत्र, गोबर, दूध, गोधूलि, गोशाला, गोखुर-स्थान और पकी फसल समेत खेत देखने से निश्चित पुण्य लाभ होता है। सुन्दरी पद्मिनी, श्यामा स्त्री, सुन्दर वेश, वस्त्र एवं दिव्य आभूषणों से विभूषित सौभाग्यवती रमणी

वेश्यां क्षेमकरीं गन्धं सुदूर्वाक्षततण्डुलम् । सिद्धान्नं परमान्नं च दृष्ट्वा पुण्यं लभेन्नरः ॥१९॥
कार्तिक्यां पूर्णिमायां च राधिकाप्रतिमां शुभाम् । संपूज्य दृष्ट्वा नत्वा च करोति जन्मखण्डनम् ॥२०॥
हिङ्गुलायां तथाऽष्टम्यामिषे मासि सिते शुभे । श्रीदुर्गाप्रतिमां दृष्ट्वा करोति जन्मखण्डनम् ॥२१॥
शिवरात्रौ च काश्यां च विश्वनाथस्य दर्शनम् । कृत्वोपवासं पूजां च करोति जन्मखण्डनम् ॥२२॥
जन्माष्टमीदिने भक्तो दृष्ट्वा मां बिन्दुमाधवम् । प्रणम्य पूजां कृत्वा च करोति जन्मखण्डनम् ॥२३॥
पौषे मासि शुक्लरात्रौ यत्र यत्र स्थले नरः । पद्मायाः प्रतिमां दृष्ट्वा करोति जन्मखण्डनम् ॥२४॥
सप्तजन्म भवेत्तस्य पुत्रः पौत्रो धनेश्वरः । उपोष्यैकादशीं स्नात्वा प्रभाते द्वादशीदिने ॥२५॥
दृष्ट्वा काश्यामन्नपूर्णां करोति जन्मखण्डनम् । चैत्रे मासि चतुर्दश्यां कामरूपेषु पुण्यदे ॥२६॥
दृष्ट्वा नत्वा भद्रकालीं करोति जन्मखण्डनम् । अयोध्यायां च रामं च श्रीरामनवमीदिने ॥२७॥
संपूज्य नत्वा दृष्ट्वा च करोति जन्मखण्डनम् । उपोष्य पुष्करे स्नात्वा किंवा बदरिकाश्रमे ॥२८॥
संपूज्य दृष्ट्वा मामेकं करोति जन्मखण्डनम् । दत्त्वा विष्णुपदे पिण्डं विष्णुं यश्च प्रपूजयेत् ॥२९॥

---

कल्याण मूर्ति वेश्या, गन्ध, उत्तम दूर्वा, अक्षत, सिद्धान्न तथा खीर के दर्शन से पुण्य लाभ होता है। कार्तिकी पूर्णिमा के दिन राधा की शुभ प्रतिमा का पूजन, दर्शन और नमस्कार करने से मनुष्य जन्म-मरण से रहित हो जाता है ॥१७-२०॥ आश्विन मास के शुक्लपक्ष की अष्टमी को हिंगुला में श्री दुर्गा की प्रतिमा को देखकर मनुष्य जन्म-मरण से मुक्त हो जाता है। शिवरात्रि के दिन काशी में विश्वनाथ जी का दर्शन और उपवास रहकर पूजन करने से मनुष्य जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त हो जाता है ॥२१-२२॥

जन्माष्टमी के दिन मुझ बिन्दुमाधव को देखकर और प्रणाम-पूजन करके भक्त जन्मादि से मुक्त हो जाता है। पौष मास में शुक्ल पक्ष की रात्रि में किसी स्थल में लक्ष्मी की मूर्ति देखकर तुरन्त जन्मादि से मुक्त हो जाता है ॥२३-२४॥ वह सात जन्मों तक पुत्र-पौत्र से युक्त होकर कुबेर की भाँति धनवान् होता है। जो एकादशी में उपवास रहकर द्वादशी के दिन प्रातःकाल स्नानोपरान्त काशी-अन्नपूर्णा का दर्शन करता है, वह जन्म-मरण से मुक्त होता है। चैत्र मास की चतुर्दशी के दिन कामरूप के पुण्यप्रद स्थान में भद्रकाली का दर्शन और नमस्कार करने से मनुष्य जन्म-मरण से मुक्त हो जाता है ॥२५-२६½॥ अयोध्या में श्रीरामनवमी के दिन भगवान् राम का पूजन, दर्शन और नमस्कार करने से मनुष्य जन्मादि से मुक्त हो जाता है। पुष्कर क्षेत्र या बदरिकाश्रम में उपवास रहकर स्नानोपरान्त मेरा पूजन और दर्शन करने से जन्मादि से मुक्त होता है ॥२७-२८॥ जो विष्णु पद में पिण्डदान और भगवान् विष्णु का पूजन करता है वह पितरों समेत अपने जन्मादि से मुक्त हो

पितॄणां स्वात्मनश्चैव करोति जन्मखण्डनम्। प्रयागे मुण्डनं कृत्वा दानं[1] च कुरुते यदि ॥३०॥
उपोष्य नैमिषारण्ये करोति जन्मखण्डनम्। सिद्धिं कृत्वा च बदरीं भुङ्क्ते बदरिकाश्रमे ॥३१॥
दृष्ट्वा मत्प्रतिमां नन्द करोति जन्मखण्डनम्। दोलायमानं गोविन्दं पुण्ये वृन्दावने च माम् ॥३२॥
दृष्ट्वा संपूज्य नत्वा च करोति जन्मखण्डनम्। भाद्रे दृष्ट्वा च मञ्चस्थं मामेव मधुसूदनम् ॥३३॥
संपूज्य नत्वा भक्तश्च करोति जन्मखण्डनम्। रथस्थं च जगन्नाथं यो द्रक्ष्यति कलौ नरः ॥
संपूज्य नत्वा भक्त्या च करोति जन्मखण्डनम् ॥३४॥
उत्तरायणसंक्रान्त्यां प्रयागे स्नानमाचरेत्। संपूज्य नत्वा मामेव करोति जन्मखण्डनम् ॥३५॥
कार्तिक्यां पूर्णिमायां च दृष्ट्वा मत्प्रतिमां शुभाम्। उपोष्य पूजनं कृत्वा करोति जन्मखण्डनम् ॥३६॥
चन्द्रभागासमीपे च माघ्यां च मां नमेत्सुधीः। राधया सह मां दृष्ट्वा करोति जन्मनः क्षयम् ॥३७॥
रामेश्वरं सेतुबन्ध अषाढीपूर्णिमादिने। उपोष्य दृष्ट्वा संपूज्य करोति जन्मखण्डनम् ॥३८॥
स्वर्गे विद्याधरा रात्रौ नृत्यन्ति च मुहुर्मुहुः। प्रणामं कर्तुमीशं तं समायाति विभीषणः ॥३९॥
गायन्ति किंनरा रात्रौ गन्धर्वाश्च मनोहरम्। प्रणामं कर्तुमीशं तं समायाति च माधवः ॥४०॥

---

जाता है। प्रयाग में मुण्डन और दान तथा नैमिषारण्य में उपवास करने से मनुष्य जन्म-मरण से मुक्त होता है ॥२९-३०॥ हे नन्द ! सिद्धि प्राप्त करने के अनन्तर बदरिकाश्रम में बेर का फल खाने और मेरी प्रतिमा का दर्शन करने से मनुष्य जन्म-मरण से छुटकारा पा जाता है। पुण्य वृन्दावन में झूलना पर बैठे हुए मुझ गोविंद का दर्शन, पूजन और नमस्कार करने से जन्मादि से मुक्त हो जाता है ॥३१-३२॥ कल्याणप्रद मञ्च पर मधुसूदन का पूजन और नमस्कार करने से भक्त जन्म-मरण से रहित हो जाता है। कलियुग में रथ पर बैठे जगन्नाथ को देखनेवाला व्यक्ति भक्तिपूर्वक उनका पूजन-नमस्कार करके जन्म-मरण से मुक्त हो जाता है ॥३३-३४॥ उत्तरायण सूर्य की संक्रान्ति में प्रयाग में स्नान और मेरा पूजन-नमस्कार करने से मनुष्य जन्मादि से मुक्त होता है। कार्तिक पूर्णिमा के दिन मेरी शुभ प्रतिमा का उपवास रहकर पूजन करने से जन्मादि से मुक्त होता है ॥३५-३६॥ चन्द्रभागा नदी के तट पर माघ पूर्णिमा के दिन राधा समेत मेरा पूजन, नमस्कार और दर्शन करने से जन्म-मरण से रहित होता है। आषाढ़ की पूर्णिमा के दिन सेतुबन्ध में रामेश्वर का उपवास रहकर पूजन-दर्शन करने से जन्मादि रहित होता है ॥३७-३८॥

स्वर्ग में विद्याधर लोग रात्रि में बार-बार नृत्य करते हैं और उसी समय वहाँ शिव को प्रणाम करने के लिए विभीषण आते हैं। रात्रि में किन्नर-गन्धर्वगण उनके लिए मनोहर गान करते हैं और उसी समय वहाँ ईश्वर (शिव) को प्रणाम करने के लिए माधव जी आते हैं ॥३९-४०॥ वहाँ सर्वाधीश्वर चन्द्रशेखर को साक्षात्

---

१ क. यः पितॄन्तर्पयेत्सुधीः।

दृष्ट्वा साक्षाद्वसन्तं च सर्वेशं चन्द्रशेखरम् । जीवन्मुक्तो भवेदन्ते प्रयाति हरिमन्दिरम् ॥४१॥
दीननाथं दिनकरं कोणार्के चोत्तरायणे । उपोष्य दृष्ट्वा संपूज्य करोति जन्मखण्डनम् ॥४२॥
कृषिकोष्ठे सुवसने कर्लाविके वसुंधरे । विस्पन्दके राजकोष्ठे नन्दके पुष्पभद्रके ॥४३॥
पार्वतीप्रतिमां दृष्ट्वा कार्तिकेयं गणेश्वरम् । नन्दिनं शंकरं दृष्ट्वा करोति जन्मनः क्षयम्[1] ॥४४॥
उपोष्य प्रातः[2] संपूज्य दृष्ट्वा स्तुत्वा स्तुतो[3] नतः । पारणं च दधि प्राश्य करोति जन्मखण्डनम् ॥४५॥
त्रिकूटे मणिभद्रे च पश्चिमोदधिसंनिधौ । समुपोष्य दधि प्राश्य मां दृष्ट्वा मुक्तिमाप्नुयात् ॥४६॥
प्रतिमासु मदीयासु पार्वतीप्रतिमासु च । जीव संन्यस्य संपूज्य करोति जन्मखण्डनम् ॥४७॥
शिवदुर्गालयं कृत्वा मदीयं च विशेषतः । शिवसंस्थापनं कृत्वा करोति जन्मखण्डनम् ॥४८॥
पुष्पोद्यानं च शंकुं च सेतुं खातं सरोवरम् । विप्रसंस्थापनं कृत्वा करोति जन्मखण्डनम् ॥४९॥
न च वेदाः पुराणानि ब्रह्मसंस्थापनं फलम् । जानन्ति सन्तो मुनयः सुरा विप्रादयः पितः ॥५०॥
गण्यन्ते पांसवो भूमेर्गण्यन्ते वृष्टिबिन्दवः । न गण्यते विधात्राऽपि विप्रसंस्थापने फलम् ॥५१॥
कृत्वोपजीव्यं विप्रस्य जीवन्मुक्तो भवेन्नरः । अचलां श्रियमाप्नोति परे मुक्तिचतुष्टयम् ॥५२॥

---

निवास करते हुए देखकर वह मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है और अन्त में भगवान् के धाम में पहुँच जाता है। उत्तरायण में कोणार्क में दीनों के स्वामी दिनकर (सूर्य) का उपवासपूर्वक पूजन-दर्शन करने से जन्म-मरण से मुक्त हो जाता है ॥४१-४२॥ कृपिकोष्ठ, सुवसन, कलविङ्क, वसुन्धर, विस्पन्दक, राजकोष्ठ, नन्दक तथा पुष्पभद्रक तीर्थ में पार्वती जी की मूर्ति, कार्तिकेय, गणेश, नन्दी और शिव के दर्शन से मनुष्य के जन्म का क्षय हो जाता है ॥४३-४४॥ वहाँ उपवास रहकर उक्त देवों की अर्चना, दर्शन, स्तुति, नमस्कार और दही खाकर पारण करने से जन्म सफल होता है। पश्चिम सागर के समीप चित्रकूट पर्वत के मणिभद्र स्थान में उपवासपूर्वक दही-भोजन एवं मेरा दर्शन करने से मनुष्य मुक्ति लाभ करता है ॥४५-४६॥

मेरी प्रतिमा और पार्वती की प्रतिमा का प्राण-प्रतिष्ठापूर्वक पूजन करने से जन्म-मरण से रहित होता है। शिव, दुर्गा और विशेषतया मेरे मन्दिर का निर्माण एवं शिव-स्थापन करने से संसार से मुक्त हो जाता है ॥४७-४८॥ पुष्पवाटिका, शङ्कु (लम्बा लट्ठा), पुल, खात (कुआँ आदि) और सरोवर निर्माण तथा ब्राह्मण को प्रतिष्ठापूर्वक निवास प्रदान करने से जन्म सफल होता है। हे पिता! वेद-पुराण, संत-मुनि, देव और ब्राह्मण आदि कोई भी ब्राह्मण को निवास प्रदान करने का फल नहीं जान सकते हैं। क्योंकि पृथिवी के रजकण की गणना हो सकती है और वर्षा की बूँदें गिनी जा सकती हैं किन्तु ब्राह्मण को निवास प्रदान करने का फल विधाता भी नहीं गिन सकते हैं। ब्राह्मण को जीविका दान करने से मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है, उसे अटल लक्ष्मी प्राप्त होती है और अन्त में चारों प्रकार की मुक्ति समेत मेरा दास्य-पद एवं भक्ति प्राप्त करके वह वैकुण्ठ में चिर निवास करता है और मुझ परमात्मा की

---

१ ख. फलम् । २ ख. प्रति० । ३ च. तो ।

मद्दास्यभक्ति स लभेद्वैकुण्ठे मोदके चिरम् । न हि पातो भवेत्तस्य यथा मे परमात्मनः ॥५३॥
कुमारीमष्टवर्षीयां सुविप्राय ददाति यः । संपूज्य सर्वाभरणां दुर्गादानफलं लभेत् ॥५४॥
सर्वं स्वर्ग्यं[1] समालोक्य ब्रह्मलोकेषु पूजितः । लभते मम दास्यं च वैकुण्ठे मोदते चिरम् ॥५५॥
विवाहदर्शने कोटिस्वर्णदानफलं लभेत् । अन्ते स्वर्गं प्रयात्येवमिहैव निश्चलां श्रियम् ॥५६॥
यः सुविप्रमनाथं च दरिद्रं च सुपण्डितम् । दृष्ट्वा कुर्यात्तद्विवाहं स मोक्षं लभते ध्रुवम् ॥५७॥
यच्छत्रपादुकादानं शालग्रामस्य योषितः । करोति भक्त्या पुण्याहे पृथ्वीदानफलं लभेत् ॥५८॥
गजदाने च तल्लोममानवर्षं श्रुतौ श्रुतम् । चतुर्गुणं गजेन्द्रे च मोदते मम मन्दिरे ॥५९॥
गजार्धं श्वेततुरगे तदर्धं चेतरे पितः । गजतुल्यं कृष्णगवां दाने च तत्फलं लभेत् ॥६०॥
तत्तुल्यं धेनुदाने च ह्यर्धं सामान्यगोस्तथा । लभेद्वत्सप्रसूतानां दाने दाने फलं भुवः[2] ॥६१॥
भूमिदाने रेणुमानवर्षं स्थानं च मत्पदे । ज्ञानदाने महत्पुण्यं वैकुण्ठे मोदते चिरम् ॥६२॥
श्रियं लभेत्स्वर्णदाने राजत्वं रजतेन च । अन्नदाने फलं नाहं कथं जानामि वै श्रुतम् ॥६३॥

---

भाँति वहाँ से कभी पतन नहीं होता है । जो समस्त आभूषणों से सुभूषित आठ वर्ष की अवस्थावाली कुमारी को पूजनोपरान्त उत्तम ब्राह्मण को समर्पित करता है, उसे दुर्गादान का फल प्राप्त होता है ॥४९-५४॥ वह समस्त स्वर्गीय पदार्थों का अवलोकन करते हुए ब्रह्मलोक में पूजित होता है तथा मेरा दास्यपद प्राप्तकर वैकुण्ठ में चिर सुखानुभव करता है । उसके विवाह-दर्शन में करोड़ों सुवर्णदान का फल प्राप्त होता है, अन्त में स्वर्ग की प्राप्ति होती है और इस लोक में सदैव निश्चल लक्ष्मी प्राप्त होती है ॥५५-५६॥

जो अनाथ, दरिद्र और उच्चकोटि के पण्डित को देखकर विवाह कर देता है उसको निश्चित मोक्ष लाभ होता है । किसी पुण्य दिवस में शालग्राम भगवान् की प्रेयसी तुलसी के निमित्त जो भक्तिपूर्वक छत्र-पादुका दान करता है, उसे पृथ्वी-दान करने का फल प्राप्त होता है ॥५७-५८॥ गज-दान करने पर उसके लोमसंख्या प्रमाण वर्षों तक और गजेन्द्र-दान करने से उससे चौगुने समय तक वह मेरे भवन में आनन्दानुभव करता है, ऐसा वेद में कहा गया है । इसी भाँति श्वेत अश्व के दान करने से गज-दान का आधा और अन्य अश्वों के दान में उसका चौथाई फल प्राप्त होता है । हे पिता ! कृष्णा गौ का दान करने से गजदान के समान ही फल प्राप्त होता है ॥५९-६०॥ धेनु-दान करने पर भी उसके समान ही फल प्राप्त होता है और साधारण गौ के दान में उसका आधा फल प्राप्त होता है । हे विभो ! बछड़ा समेत नयी ब्यायी हुई गौ के दान करने पर भूमिदान का फल प्राप्त होता है एवं भूमि दान करने पर उसकी रेणु प्रमाण वर्षों तक वह मेरे लोक में निवास करता है । ज्ञान-दान करने से महान् पुण्य लाभ एवं वैकुण्ठ में चिरसुखानुभव प्राप्त होता है ॥६१-६२॥ इसी भाँति सुवर्ण-दान करने से लक्ष्मी और रजत (चाँदी) दान करने से राज्य लाभ होता है । अन्नदान के

---

१ क. स्वर्गं । २ ख. विभो ।

लभते सर्वदानस्य फलं ब्राह्मणभोजने। अन्नदानात्परं दानं न भूतं न भविष्यति ॥६४॥
नात्र पात्रपरीक्षाऽस्ति न कालनियमः क्वचित्। अन्नदाने शुभं पुण्यं दातुः पात्रं त्वपातकी ॥६५॥
अन्नदानं च धन्यं स्याद्भूमौ वैकुण्ठहेतुकम्। वस्त्रं ददाति विप्राय दरिद्राय कुटुम्बिने ॥६६॥
वस्त्रसूत्रमानवर्षं वैकुण्ठे मोदते चिरम्। सुरम्ये चन्द्रलोके च वारुणे च तथैव च ॥६७॥
कृत्वा लोहप्रदीपं च स्वर्णवर्तिसमन्वितम्। दत्त्वा घृतप्रदीपं च हरये परमात्मने ॥६८॥
अन्धकारं च न गृहं यमदूतं यमं तथा। न हि पश्यति दाता च प्रयाति मम मन्दिरम् ॥६९॥
ब्राह्मणाय च दत्त्वैव न याति यमयातनाम्। दिव्यवर्षसहस्रं च मोदते शक्रमन्दिरे ॥७०॥
आसनं लभते स्वर्गे वस्तुमात्रानुरूपतः[1]। उत्तमे लक्षवर्षं च तदर्धं चेतरे व्रजेत् ॥७१॥
ताम्बूलेन लभेद्भोगं स्वर्गे वर्षशतं व्रजेत्। माल्यदाने प्रियं स्वर्गं वस्तुमात्रानुरूपतः[2] ॥७२॥
फलदानफलं स्वर्गं लभते नात्र संशयः। सामान्यशय्यादानेन स्वर्गं वर्षशतं व्रजेत् ॥७३॥
चतुर्गुणं प्रकृष्टायां गुणलक्षं विलक्षणे। अनाथाय सुविप्राय यदि गेहं प्रदीयते ॥७४॥

---

फल का वर्णन करने में मैं भी असमर्थ हूँ। ब्राह्मण भोजन कराने में सम्पूर्ण दान के फल प्राप्त होते हैं। इसलिए अन्नदान से बढ़कर कोई अन्य दान न हुआ और न होगा ॥६३-६४॥

अन्नदान में पात्र (दान लेनेवाले) की परीक्षा नहीं की जाती है और न किसी समय का ही नियम रहता है। इस प्रकार अन्नदान में दाता को पुण्य प्राप्त होता है और पात्र (ग्रहण करनेवाला) भी पातकी नहीं कहलाता है। इसीलिए भूतल पर अन्नदान धन्य कहा गया है, जो वैकुण्ठ-प्राप्ति का मुख्य हेतु है। किसी परिवारवाले दरिद्र ब्राह्मण को वस्त्रदान करने पर उसके सूत्र प्रमाण वर्ष तक वह वैकुण्ठ में चिरकाल तक आनन्दानुभव करता है। अनन्तर अति रमणीक चन्द्रलोक और वरुणलोक में भी सुखपूर्वक निवास करता है। लोहे के दीपक में घृतपूर्ण सुवर्ण की बत्ती करके उसे परमात्मा विष्णु को समर्पित करने पर दाता को अपने घर में यमराज और अन्धकार कभी भी नहीं दिखायी देते हैं तथा अन्त में वह मेरे धाम चला जाता है। वैसा दीपक ब्राह्मण को दान करने पर दाता को यम-यातनाओं का अनुभव नहीं करता पड़ता है तथा अन्त में वह इन्द्र के यहाँ दिव्य सहस्र वर्षों तक सुखानुभव करता है ॥६५-७०॥

इस प्रकार वस्तुओं के मात्रानुसार ही स्वर्ग में आसन प्राप्त होता है। उत्तम दान में लाख वर्ष और इतर दान में उसके आधे समय तक वहाँ निवास प्राप्त होता है। ताम्बूल (पान) दान करने से स्वर्ग में उत्तम भोग समेत सौ वर्ष का निवास प्राप्त होता है और माला दान करने पर अभीष्ट फल प्राप्त होता है। इस भाँति वस्तु और पात्र के अनुसार स्वर्ग में दान का फल प्राप्त होता है, इसमें संशय नहीं। साधारण शय्या दान करने से स्वर्ग में सौ वर्ष का निवास प्राप्त होता है। उत्तम शय्या दान करने से उससे चौगुने वर्ष तक और विलक्षण शय्या दान करने से तीन लाख वर्ष तक दाता स्वर्ग में निवास करता है। इसी भाँति किसी अनाथ एवं

---

१ ख. 'मानानु'। २ ख. 'पात्रा'।

अत्रैव मानवर्षं च शक्रलोके महीयते। दृष्ट्वा बुभुक्षितं विप्रमन्नं तस्मै प्रदीयते ॥७५॥
अचलां श्रियमाप्नोति पुत्रपौत्रविवर्धिनीम्। व्रजनाथ व्रजं गत्वा व्रजभूमौ व्रजाधुना ॥७६॥
व्रज भोजय विप्रांश्च व्रज सर्वं[1] व्रजे व्रजे। गोकुले गोकुले वत्स वत्स वत्स निराकुले ॥७७॥
व्याकुलानां गोकुलानां संकुले च व्रजे व्रजे। एतत्ते कथितं नन्द सानन्दं पुण्यवर्धनम् ॥
सुस्वप्नदर्शनं पुण्यं यदि नीचं न वक्ति च ॥७८॥
काश्यपं दुर्भगं नीचं शत्रुमज्ञानिनं स्त्रियम्। त्यक्त्वा रात्रिं च दिवसे वक्ति विप्रं सुपण्डितम् ॥७९॥
देवालये च देवं वाऽप्यश्वत्थतुलसीवटम्। उक्त्वा तद्द्विगुणं पुण्यमप्रकाश्य चतुर्गुणम् ॥८०॥
सुस्वप्नदर्शने प्राज्ञो गंगास्नानफलं लभेत्। अर्थं वित्तं च भार्यां च भूमिं पुत्रं लभेत्प्रजाम् ॥८१॥
मोक्षं च परमैश्वर्यं लभते सर्ववाञ्छितम्। इत्येवं कथितं तात किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥८२॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदाना० भगवन्नन्दसं०
षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥७६॥

•

---

उत्तम ब्राह्मण को गृह दान करने पर भी इतने ही समय तक स्वर्ग में इन्द्र के यहाँ वह निवास करता है। बुभुक्षित (भूखे) ब्राह्मण को देखकर उसे अन्न प्रदान करने पर अचल सम्पत्ति प्राप्त होती है, जिससे निरन्तर पुत्र-पौत्र की वृद्धि होती है। अतः हे व्रजनाथ ! तुम इस समय व्रज जाओ और वहाँ पहुँचकर व्रज के ब्राह्मणों को भोजन कराओ तथा प्रत्येक व्रजनिवासी को ऐसा करने का आदेश प्रदान करो। हे वत्स ! उस गोकुल में जाकर, जिसमें गौओं के समूह और प्रत्येक व्रजनिवासी (मेरे वियोग में) व्याकुल हो रहे हैं, सबको निश्चिन्त करो और सबके साथ सुखपूर्वक रहो। हे नन्द ! यह मैंने तुम्हें पुण्यवर्धक दान का सानन्द परिचय दिया है। नीच पुरुषों के प्रति इसका वर्णन नहीं करना चाहिए। तभी सुस्वप्न-दर्शन का फल मिलता है ॥७१-७८॥ काश्यप गोत्र भाग्यहीन, नीच, शत्रु, अज्ञानी एवं स्त्री से न कहकर दिन में किसी उत्तम विद्वान् ब्राह्मण से कहना चाहिए। देवमन्दिर में देवता से अथवा पीपल वृक्ष, तुलसी वृक्ष तथा वटवृक्ष से कहने पर उससे दुगुना पुण्य प्राप्त होता है तथा किसी से भी प्रकाशित न करने पर चौगुना फल होता है ॥७९-८०॥ सुस्वप्न देखने से बुद्धिमान् को गङ्गा स्नान का फल प्राप्त होता है और धन, वित्त, स्त्री, भूमि, पुत्र और प्रजा प्राप्ति समेत मोक्ष, परमैश्वर्य एवं सभी प्रकार का अभीष्ट प्राप्त होता है। हे तात ! इस प्रकार इसे सुना दिया अब पुनः और क्या सुनना चाहते हो ॥८१-८२॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण में श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्ध में नारद-नारायण-संवाद में भगवान् और नन्द के संवाद वर्णन नामक छिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥७६॥

•

---

१ क. स्वर्णं।

# अथ सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

**नन्द उवाच**

केन स्वप्नेन किं पुण्यं केन मोक्षो भवेत्सुखम् । कोऽपि कोऽपि च सुस्वप्नस्तत्सर्वं कथय प्रभो ॥१॥

**श्रीभगवानुवाच**

वेदेषु सामवेदश्च प्रशस्तः सर्वकर्मसु । तथैव कण्वशाखायां पुण्यकाण्डे मनोहरे ॥२॥
स व्यक्तो यश्च दुःस्वप्नः शश्वत्पुण्यफलप्रदः । तत्सर्वं निखिलं तात कथयामि निशामय ॥३॥
स्वप्नाध्यायं प्रवक्ष्यामि बहुपुण्यफलप्रदम् । स्वप्नाध्यायं नरः श्रुत्वा गङ्गास्नानफलं लभेत् ॥४॥
स्वप्नस्तु प्रथमे यामे संवत्सरफलप्रदः । द्वितीये चाष्टभिर्मासैस्त्रिभिर्मासैस्तृतीयके ॥५॥
चतुर्थे चार्धमासेन स्वप्नः स्वात्मफलप्रदः । दशाहे फलदः स्वप्नोऽप्यरुणोदयदर्शने ॥६॥
प्रातःस्वप्नश्च फलदस्तत्क्षणं यदि बोधितः । दिने मनसि यद्दृष्टं तत्सर्वं च लभेद्ध्रुवम् ॥७॥
चिन्ताव्याधिसमायुक्तो नरः स्वप्नं च पश्यति । तत्सर्वं निष्फलं तात प्रयात्येव न संशयः ॥८॥

---

## अध्याय ७७

### सुस्वप्न-कथन

**नन्द बोले**—हे प्रभो ! किस स्वप्न द्वारा कौन पुण्य प्राप्त होता है एवं किसके द्वारा मोक्ष तथा किस स्वप्न से सुख प्राप्त होता है और कौन-कौन सुस्वप्न कहे जाते हैं, बताने की कृपा करें ॥१॥

**श्रीभगवान् बोले**—वेदों में सामवेद समस्त कर्मों के लिए श्रेष्ठ बताया गया है, उस भाँति कण्वशाखा के मनोहर पुण्यकाण्ड में जो दुःस्वप्न है और जो सदा पुण्यफल देनेवाला सुस्वप्न है, वह सब वर्णित है। तात ! उन समस्त को मैं कह रहा हूँ, सावधान होकर सुनो । मैं बहुपुण्यदायक स्वप्नाध्याय का वर्णन कर रहा हूँ । उस स्वप्नाध्याय के सुनने से मनुष्य को गङ्गास्नान का फल प्राप्त होता है ॥२-४॥ रात्रि के पहले प्रहर में देखा हुआ स्वप्न वर्ष के अन्त तक फल प्रदान करता है, दूसरे प्रहर में देखा हुआ आठ मास में, तीसरे प्रहरवाला तीन मास में और चौथे प्रहर का स्वप्न आधे मास (१५ दिन) से अपना फल प्रदान करता है । अरुणोदय वेला (सूर्य की लालिमा निकलने के समय) में देखा गया स्वप्न दस दिन में फलदायक होता है और प्रातःकाल का स्वप्न यदि स्मरण बना रहा, तो उसी क्षण फल देता है। दिन को मन में जो कुछ देखा और समझा गया है, वह सब निश्चित ही सपने में लक्षित होता है। तात ! चिन्ता और रोग से पीड़ित मनुष्य यदि स्वप्न देखता है, तो वह सब निष्फल हो जाता है, इसमें संशय नहीं ॥५-८॥ जो जड़तुल्य है,

जडो मूत्रपुरीषेण पीडितश्च भयाकुलः। दिगम्बरो मुक्तकेशो न लभेत्स्वप्नजं फलम् ॥९॥
दृष्ट्वा स्वप्नं च निद्रालुर्यदि निद्रां प्रयाति च। विमूढो वक्ति चेद्रात्रौ न लभेत्स्वप्नजं फलम् ॥१०॥
उक्त्वा काश्यपगोत्रे च विपत्ति लभते ध्रुवम्। दुर्गते दुर्गति याति नीचे व्याधिप्रयाति च ॥११॥
शत्रौ भयं च लभते मूर्खे च कलहं लभेत्। कामिन्यां धनहानिः स्याद्रात्रौ चोरभयं भवेत् ॥१२॥
निद्रायां लभते शोकं पण्डिते वाञ्छितं फलम्। न प्रकाश्यश्च सुस्वप्नः पण्डितैः काश्यपे व्रज ॥१३॥
गवां च कुञ्जराणां च हयानां च व्रजेश्वर। प्रासादानां च शैलानां वृक्षाणां च तथैव च ॥१४॥
आरोहणं च धनदं भोजनं रोदनं तथा। प्रतिगृह्य तथा वीणां सस्याढ्यां भूमिमालभेत् ॥१५॥
शस्त्रास्त्रेण यदा विद्धो व्रणेन कृमिणा तथा। विष्ठया रुधिरेणैव संयुक्तोऽप्यर्थवान्भवेत् ॥१६॥
स्वप्नेऽप्यगम्यागमतो भार्यालाभं करोति यः। मूत्रसिक्तः पिबेच्छुक्रं नरकं च विशत्यपि ॥१७॥
नगरं प्रविशेद्रक्तं समुद्रं वा सुधां पिबेत्। शुभवार्तामवाप्नोति विपुलं चार्थमालभेत् ॥१८॥
गजं नृपं सुवर्णं च वृषभं धेनुमेव च। दीपमन्नं फलं पुष्पं कन्यां छत्रं रथं ध्वजम् ॥१९॥
कुटुम्बं लभते दृष्ट्वा कीर्ति च विपुलां श्रियम्। पूर्णकुम्भंद्विजं वह्निं पुष्पताम्बूलमन्दिरम् ॥२०॥

---

मलमूत्र के वेग से पीड़ित है, भय से व्याकुल है, नग्न है और बाल खोले हुए है, उसे अपने देखे हुए स्वप्न का कोई फल नहीं मिलता है। निद्रित प्राणी स्वप्न देखकर यदि पुनः निद्रामग्न हो जाता है अथवा रात्रि में ही उसे (किसी से) कह देता है, तो उस मूढ़ को स्वप्न का फल प्राप्त नहीं होता है ॥९-१०॥ काश्यप गोत्रवाले व्यक्ति से स्वप्न कहने पर निश्चित ही विपत्ति आ जाती है। दुर्गति (अभागे) से कहने पर दुर्गति, नीच से कहने पर रोग, शत्रु से कहने पर भय, मूर्ख से कहने पर कलह, कामिनी से कहने पर धन-हानि और रात्रि में कहने पर चोर का भय होता है ॥११-१२॥ स्वप्न देखकर पुनः निद्रित होने से शोक प्राप्त होता है और पण्डित से कहने पर अभीष्ट-सिद्धि होती है। अतः हे व्रज ! पण्डितों को चाहिए कि काश्यप गोत्रवालों से स्वप्न की चर्चा कभी न करें ॥१३॥

हे व्रजेश्वर ! (स्वप्न में) गौ, हाथी, अश्व, प्रासाद (कोठे), पर्वतों और वृक्षों पर आरोहण करने (चढ़ने) से धन, भोजन और रोदन प्राप्त होता है। वीणा ग्रहण करने पर धान्यपूरित भूमि प्राप्त होती है। शस्त्र-अस्त्र द्वारा अंग कटने पर, घाव होने से, कीड़े के काटने पर, विष्ठा (मल) लगने से और रुधिर (रक्त) निकलने से धन प्राप्त होता है ॥१४-१६॥ स्वप्न में जो अगम्या स्त्री से संभोग करता है, उसे स्त्री-लाभ होता है। मूत्र से सिक्त होने पर, शुक्र (वीर्य) पान करने पर, नरक में तथा किसी नगर में प्रवेश करने पर, रक्त, समुद्र (जल) या (अमृत) पीने पर शुभ समाचार तथा विपुल धन प्राप्त होता है ॥१७-१८॥ गज, राजा, सुवर्ण, बैल, धेनु, दीपक, अन्न, फल, पुष्प, कन्या, छत्र और ध्वज देखने से कुटुम्ब-लाभ, कीर्ति और विपुल धन मिलता है। पूर्णकलश, द्विज, अग्नि, पुष्प, ताम्बूल, मन्दिर, श्वेत धान्य, नट और वेश्या को देखने से लक्ष्मी

शुक्लधान्यं नटं वेश्यां दृष्ट्वा श्रियमवाप्नुयात् । गोक्षीरं च घृतं दृष्ट्वा चार्थं पुण्यधनं लभेत् ॥२१॥
पायसं पद्मपत्रे च दधि दुग्धं घृतं मधु । मिष्टान्नं स्वस्तिकं भुक्त्वा ध्रुवं राजा भविष्यति ॥२२॥
पक्षिणां मानुषाणां च भुङ्क्ते मांसं नरो यदि । बह्वर्थं शुभवार्तां च लभते वाञ्छितं फलम् ॥२३॥
छत्रं वा पादुकां वाऽपि लब्ध्वा धान्यं च गच्छति । असिं च निर्मलं तीक्ष्णं तत्तथैव भविष्यति ॥२४॥
हेलया संतरेद्यो हि स प्रधानो भविष्यति । दृष्ट्वा च फलितं वृक्षं धनमाप्नोति निश्चितम् ॥२५॥
सर्पेण भक्षितो यो हि अर्थलाभश्च तद्भवेत् । स्वप्ने सूर्यं विधुं दृष्ट्वा मुच्यते व्याधिबन्धनात् ॥२६॥
वडवां कुक्कुटीं दृष्ट्वा क्रौञ्चीं भार्यां लभेद्ध्रुवम् । स्वप्ने यो निगडैर्बद्धः प्रतिष्ठां पुत्रमालभेत् ॥२७॥
दध्यन्नं पायसं भुङ्क्ते पद्मपत्रे नदीतटे । विशीर्णपद्मपत्रे च सोऽपि राजा भविष्यति ॥२८॥
जलौकसं वृश्चिकं च सर्पं च यदि पश्यति । धनं पुत्रं च विजयं प्रतिष्ठां वा लभेदिति ॥२९॥
शृङ्गिभिर्दंष्ट्रिभिः कोलैर्वानरैः पीडितो यदि । निश्चितं च भवेद्राजा धनं च विपुलं लभेत् ॥३०॥
मत्स्यं मांसं मौक्तिकं च शङ्खं चन्दनहीरकम् । यस्तु पश्यति स्वप्नान्ते विपुलं धनमालभेत् ॥३१॥
सुरां च रुधिरं स्वर्णं भुक्त्वा विष्ठां धनं लभेत् । प्रतिमां शिवलिङ्गं च लभेद्दृष्ट्वा जयं धनम् ॥३२॥
फलितं पुष्पितं बिल्वमाम्रं दृष्ट्वा लभेद्धनम् । दृष्ट्वा च ज्वलदग्निं च धनं बुद्धिं श्रियं लभेत् ॥३३॥

---

प्राप्त होती है। गौ का दुग्ध और घृत देखने पर धन समेत पुण्य प्राप्त होता है ॥१९-२१॥ कमल पत्र पर खीर, दही, दुग्ध, घृत, मधु, स्वस्तिक नामक मिष्टान्न भोजन करने से व्यक्ति निश्चित ही भविष्य में राजा होता है ॥२२॥ स्वप्न में पक्षियों और मनुष्यों के मांस-भोजन करनेवाला अधिक धन, शुभ समाचार और अभीष्ट फल प्राप्त करता है। छत्र या पादुका प्राप्त होने पर धान्य लाभ होता है और निर्मल एवं तीक्ष्ण तलवार के प्राप्त होने पर वही उपर्युक्त फल मिलेगा ॥२३-२४॥ खेल-खेल ही में जल के ऊपर तैरनेवाला मनुष्य प्रधान (मन्त्री) होता है। फल लगे हुए वृक्ष को देखने से निश्चित धन प्राप्त होता है। जिसे सर्प डस लेता है, उसे धन-लाभ होता है। स्वप्न में सूर्य और चन्द्रमा को देखने से व्याधियों से मुक्ति मिलती है ॥२५-२६॥ घोड़ी, मुर्गी और क्रौञ्ची (मादा क्रौञ्चपक्षी) को देखने से स्त्री-लाभ होता है। स्वप्न में बेड़ी से आबद्ध होने से प्रतिष्ठा एवं पुत्र का लाभ होता है। नदी के किनारे कमल के पत्ते पर, चाहे वह फटा ही क्यों न हो, दही-भात या खीर खाने से राजा होता है ॥२७-२८॥ जोंक, बिच्छू और सर्प देखने पर धन, पुत्र, विजय और प्रतिष्ठा की प्राप्ति होती है। सींग और बड़ी-बड़ी दाढ़वाले पशुओं-सूकरों और वानरों से पीड़ित होने पर निश्चित ही राजा होता है और उसे अत्यन्त धन की प्राप्ति होती है ॥२९-३०॥ मत्स्य, मांस, मोती के आभूषण, शङ्ख, चन्दन और हीरा स्वप्न के अन्त में देखने से विपुल धन की प्राप्ति होती है। सुरा, रुधिर और सुवर्ण के देखने से तथा विष्ठा भोजन करने से धन प्राप्त होता है। प्रतिमा और शिवलिंग देखने से जय और धन की प्राप्ति होती है ॥३१-३२॥ फले-फूले बेल और आम देखने से धन और प्रज्वलित अग्नि देखने से धन, बुद्धि और श्री प्राप्त होती है। आँवले का फल, आमड़ा एवं कमल देखने से धन लाभ होता है। देवता, द्विज,

आमलकं धात्रीफलमुत्पलं च धनागमम् । देवताश्च द्विजा गावः पितरो लिङ्गिनस्तथा ॥३४॥
यद्ददाति मियः स्वप्ने तत्तथैव भविष्यति । शुक्लाम्बरधरा नार्यः शुक्लमाल्यानुलेपना ॥
समाश्लिष्यन्ति यं स्वप्ने तस्य श्रीः सर्वतः सुखम् ॥३५॥
पीताम्बरधरां नारीं पीतमाल्यानुलेपनाम् । अवगूहति यः स्वप्ने कल्याणं तस्य जायते ॥३६॥
सर्वाणि शुक्लानि प्रशंसितानि भस्मास्थिकार्पासविवर्जितानि ।
सर्वाणि कृष्णान्यतिनिन्दितानि गोहस्तिवाजिद्विजदेववर्ज्यम् ॥३७॥
दिव्या स्त्री सस्मिता विप्रा रत्नभूषणभूषिता । यस्य मन्दिरमायाति स प्रियं लभते ध्रुवम् ॥३८॥
स्वप्ने च ब्राह्मणो देवो ब्राह्मणी देवकन्यका । ब्राह्मणो ब्राह्मणी वाऽपि संतुष्टा सस्मिता सती ॥३९॥
फलं ददाति यस्मै च तस्य पुत्रो भविष्यति । यं स्वप्ने ब्राह्मणा नन्द कुर्वन्ति च शुभाशिषम् ॥४०॥
यद्वदन्ति भवेत्तस्य तस्यैश्वर्यं भवेद्ध्रुवम् । परितुष्टो द्विजश्रेष्ठश्चाऽऽयाति यस्य मन्दिरम् ॥४१॥
नारायणः शिवो ब्रह्मा प्रविशेत्तु तदाश्रमम् । संपत्तिस्तस्य भवति यशश्च विपुलं शुभम् ॥४२॥
पदे पदे सुखं तस्य समानं गौरवं लभेत्[1] । अकस्मादपि स्वप्ने तु लभते सुरभिं यदि ॥४३॥
भूमिलाभो भवेत्तस्य भार्या चापि पतिव्रता । करेण कृत्वा हस्ती यं मस्तके स्थापयेद्यदि ॥४४॥

---

गो, पितर और ब्रह्मचारी जो कुछ स्वप्न में प्रदान करते हैं, वह सत्य प्राप्त होता है । शुक्ल वस्त्र पहने और श्वेत चन्दन चर्चित एवं श्वेत माला धारण करके स्त्रियाँ जिस पुरुष का आलिंगन करती हैं उसे चारों ओर से सुख प्राप्त होता है । पीत वस्त्र, पीत माला और चन्दन धारण किये हुई नारी का जो आलिंगन करता है उसका कल्याण होता है ॥३३-३६॥ स्वप्न में भस्म, अस्थि और कपास को छोड़कर अन्य सभी उजली वस्तुएँ प्रशस्त कही गयी हैं । इसी प्रकार गौ, हाथी, अश्व, ब्राह्मण और देवों को छोड़कर सभी काली वस्तुएँ अति निन्दित हैं । मन्दहास करती हुई दिव्य स्त्री, जो रत्नों के भूषणों से सुभूषित हो और ब्राह्मण जातीय हो, जिसके घर में आते हैं, वह अवश्य प्रिय पदार्थ लाभ करता है ॥३७-३८॥ स्वप्न में ब्राह्मण, देव, ब्राह्मणी, देवकन्या अथवा ब्राह्मण-ब्राह्मणी सन्तुष्ट और प्रसन्न चित्त होकर जिसे फल प्रदान करते हैं, उसे पुत्र-लाभ होता है । हे नन्द ! स्वप्न में जिसे ब्राह्मण लोग शुभाशिष प्रदान करते हैं और जो कुछ कहते हैं, वह सत्य होता है तथा उसे ऐश्वर्य अवश्य प्राप्त होता है ॥३९-४०½॥ अत्यन्त सन्तुष्ट होकर ब्राह्मण-श्रेष्ठ जिसके घर आता है, वहाँ नारायण शिव और ब्रह्मा स्वयं प्रवेश करते हैं--जिसके परिणामस्वरूप उसे सम्पत्ति, महान् सुयश और पग-पग पर सुख समेत गौरवपूर्ण मान प्राप्त होता है ॥४१-४२½॥ स्वप्न में यदि अकस्मात् गौ प्राप्त होती है, तो उसे भूमि लाभ और पतिव्रता पत्नी प्राप्त होती है । जिसे हाथी सूँड़ से उठाकर अपने मस्तक पर बैठा लेता है, उसे निश्चित राज्य लाभ होता है, ऐसा वेद में कहा गया है ॥४३-४४½॥ हे व्रज ! स्वप्न में ब्राह्मण

---

१ क. भवेत् ।

राज्यलाभो भवेत्तस्य निश्चितं च श्रुतौ मतम्[1] । स्वप्ने तु ब्राह्मणस्तुष्टः समाश्लिष्यति यं व्रज ॥४५॥
तीर्थस्नायी भवेत्सोऽपि निश्चितं च श्रियाऽन्वितः । स्वप्ने ददाति पुष्पं च यस्मै पुण्यवते द्विजः ॥४६॥
जययुक्तो भवेत्सोऽपि यशस्वी च धनी सुखी । स्वप्ने दृष्ट्वा च तीर्थानि सौधरत्नगृहाणि च ॥४७॥
यजयुक्तश्च धनवांस्तीर्थस्नायी भवेन्नरः । स्वप्ने तु पूर्णकलशं कश्चित्कस्मै ददाति च ॥४८॥
पुत्रलाभो भवेत्तस्य संपत्ति वा समालभेत् । हस्ते कृत्वा तु कुडवमाढकं वारसुन्दरी[2] ॥४९॥
यस्य मन्दिरमायाति स लक्ष्मीं लभते ध्रुवम् । दिव्या स्त्री यद्गृहं गत्वा पुरीषं विसृजेद्द्विज ॥५०॥
अर्थलाभो भवेत्तस्य दारिद्र्यं च प्रयाति च । यस्य गेहं समायाति ब्राह्मणो भार्यया सह ॥५१॥
पार्वत्या सह शंभुर्वा लक्ष्म्या नारायणोऽथवा । ब्राह्मणो ब्राह्मणी वाऽपि स्वप्ने तस्मै प्रदीयते ॥५२॥
धान्यं पुष्पाञ्जलिं वाऽपि तस्य श्रीः सर्वतोमुखी । मुक्ताहारं पुष्पमाल्यं चन्दनं च लभेद्व्रज ॥५३॥
स्वप्ने ददाति विप्रश्च तस्य श्रीः सर्वतोमुखी । गोरोचनं पताकां वा हरिद्रामिक्षुदण्डकम् ॥५४॥
सिद्धान्नं च लभेत्स्वप्ने तस्य श्रीः सर्वतोमुखी । ब्राह्मणो ब्राह्मणी वाऽपि ददाति यस्य मस्तके ॥५५॥
छत्रं वा शुक्लधान्यं वा स च राजा भविष्यति । स्वप्ने रथस्थः पुरुषः शुक्लमाल्यानुलेपनः ॥५६॥
तत्रस्थो दधि भुङ्क्ते च पायसं वा नृपो भवेत् । स्वप्ने ददाति विप्रश्च ब्राह्मणी च सुधां दधि ॥५७॥

---

प्रसन्न होकर जिसका आलिंगन करता है, वह निश्चित ही तीर्थ में स्नान और लक्ष्मी प्राप्त करता है। स्वप्न में ब्राह्मण जिस पुण्यात्मा को पुष्प प्रदान करता है, उसे जय समेत पशु, धन एवं सुख प्राप्त होता है ॥४५-४६½॥ स्वप्न में तीर्थ, प्रासाद, रत्न और गृह देखने से जय समेत धन प्राप्त होता है और वह मनुष्य तीर्थ में स्नान करता है। स्वप्न में किसी को कोई पूर्णकलश प्रदान करता है, तो उसे पुत्र-लाभ या सम्पत्ति प्राप्त होती है ॥४७-४८½॥ वेश्या हाथ में पौवा या अढ़ैया लेकर जिसके घर आती है, उसे अवश्य लक्ष्मी प्राप्त होती है। हे द्विज ! दिव्य स्त्री (देवी) जिसके घर आकर मलोत्सर्ग करती है, उसे धन लाभ होता है और उसकी निर्धनता भाग जाती है ॥४९-५०½॥ जिसके घर पत्नी समेत ब्राह्मण आता है, उसके यहाँ पार्वती समेत शिव अथवा लक्ष्मी के साथ नारायण आते हैं। ब्राह्मण और ब्राह्मणी स्वप्न में जिसे धान्य या पुष्पाञ्जलि प्रदान करते हैं, उसे सर्वतोमुख श्री प्राप्त होती है ॥५१-५२½॥ हे व्रज ! स्वप्न में जिसे ब्राह्मण मोती का हार, पुष्प-माला या चन्दन प्रदान करता है, उसको सर्वतोमुखी श्री प्राप्त होती है। स्वप्न में गोरोचन, पताका, हरिद्रा, ईख दण्ड और सिद्धान्न लाभ होने से उसे सर्वतोमुखी श्री की प्राप्ति होती है ॥५३-५४½॥ ब्राह्मण या ब्राह्मणी जिसके मस्तक पर छत्र अथवा शुक्ल धान्य रखती है, वह राजा होता है। स्वप्न में श्वेत माला पहने, शरीर में लेप लगाये एवं रथ पर बैठा हुआ पुरुष दही या खीर भोजन करता है, तो वह राजा होता है ॥५५-५६½॥ स्वप्न में ब्राह्मण या ब्राह्मणी किसी उत्तम पात्र में अमृत या दही रखकर जिसे प्रदान करती है, वह भी निश्चित राजा होता है।

---

१ क. श्रुतम्। २ क. वाऽरिसु°।

प्रशस्तपात्रं यस्मै वा सोऽपि राजा भवेद्ध्रुवम् । कुमारी चाष्टवर्षीया रत्नभूषणभूषिता ॥५८॥
यस्य तुष्टा भवेत्स्वप्ने स भवेत्कविपण्डितः । ददाति पुस्तकं स्वप्ने यस्मै पुण्यवते च सा ॥५९॥
स भवेद्विश्वविख्यातः कवीन्द्रः पण्डितेश्वरः । यं पाठयति स्वप्ने वा मातेव च सुतं यथा ॥६०॥
सरस्वतीसुतः सोऽपि तत्परो नास्ति पण्डितः । ब्राह्मणः पाठयेद्यं च पितेव यत्नपूर्वकम् ॥६१॥
ददाति पुस्तकं प्रीत्या स च तत्सदृशो भवेत् । प्राप्नोति पुस्तकं स्वप्ने पथि वा यत्र तत्र वा ॥६२॥
स पण्डितो यशस्वी च विख्यातश्च महीतले । स्वप्ने यस्मै महामन्त्रं विप्रो विप्रे ददाति चेत् ॥६३॥
स भवेत्पुरुषः प्राज्ञो धनवान्गुणवान्सुधीः । स्वप्ने ददाति मन्त्रं वा प्रतिमां वा शिलामयीम् ॥६४॥
यस्मै ददाति विप्रश्च मन्त्र सिद्धिश्च तद्भवेत् । विप्रं विप्रसमूहं च दृष्ट्वा नत्वाऽऽशिषं लभेत् ॥६५॥
राजेन्द्रः स भवेद्वाऽपि किंवा च कविपण्डितः । शुक्लधान्ययुतां भूमिं यस्मै विप्रः समुत्सृजेत् ॥६६॥
स्वप्नेऽपि परितुष्टश्च स भवेत्पृथिवीपतिः । स्वप्ने विप्रो रथे कृत्वा नानास्वर्गं प्रदर्शयेत् ॥६७॥
चिरंजीवी भवेदायुर्धनवृद्धिर्भवेद्ध्रुवम् । विप्राय विप्रः संतुष्टो यस्मै कन्यां ददाति च ॥६८॥
स्वप्ने च स भवेन्नित्यं धनाढ्यो भूपतिः स्वयम् । स्वप्ने सरोवरं दृष्ट्वा समुद्रं वा नदीं नदम् ॥६९॥
शुक्लाहिं शुक्लशैलं च दृष्ट्वा श्रियमवाप्नुयात् । यं पश्यन्ति मृतं स्वप्ने स भवेच्चिरजीविनः ॥७०॥

---

आठ वर्ष की कुमारी जो रत्नों से आभूषणों के सुशोभित होती हो, स्वप्न में जिस पर प्रसन्न होती है, वह कवि और पण्डित होता है ॥५७-५८½ । फिर वह स्वप्न में जिस पुण्यात्मा को पुस्तक प्रदान करती है, वह विश्वविख्यात कवीन्द्र और पण्डितराज होता है । स्वप्न में पुत्र को माता की भाँति जिसे पढ़ाती है वह सरस्वती-पुत्र होता है, उससे बढ़कर कोई पण्डित नहीं होता है ॥५९-६०½॥ स्वप्न में जिसे ब्राह्मण पिता के समान यत्नपूर्वक पढ़ाता है या अत्यन्त प्रेम से पुस्तक प्रदान करता है, वह भी वैसा ही विद्वान् होता है । स्वप्न में जाते हुए कहीं मार्ग में या जहाँ-कहीं जिसे पुस्तक प्राप्त हो जाती है, वह भी भूतल पर यशस्वी एवं प्रख्यात पण्डित होता है, ॥६१-६२½॥ स्वप्न में यदि कोई ब्राह्मण किसी ब्राह्मण को महामन्त्र प्रदान करता है, तो वह पुरुष महान् विद्वान्, धनी, गुणवान् और पण्डित होता है । स्वप्न में यदि कोई ब्राह्मण किसी ब्राह्मण को मंत्र या पत्थर की मूर्ति प्रदान करता है, तो उसकी मन्त्रसिद्धि होती है ॥६३-६४½॥ युगल ब्राह्मण या ब्राह्मण-वृन्द को देखकर नमस्कार करके उनसे आशिष प्राप्त करनेवाला व्यक्ति राजेन्द्र या कवि-पण्डित होता है । स्वप्न में अत्यन्त प्रसन्न होकर ब्राह्मण जिसे पृथ्वी प्रदान करता है, वह पृथिवीपति होता है ॥६५-६६½॥ स्वप्न में ब्राह्मण जिसे रथ पर बैठाकर अनेक प्रकार के स्वर्गों को दिखाता है उसको दीर्घायु और धनवृद्धि निश्चित प्राप्त होती है । स्वप्न में ब्राह्मण अति सन्तुष्ट होकर जिस ब्राह्मण को कन्या प्रदान करता है, वह नित्य धनाढ्य और राजा होता है ॥६७-६८½॥ स्वप्न में सरोवर, समुद्र, नदी या नद, शुक्ल सर्प और शुक्ल पर्वत देखने से लक्ष्मी प्राप्त होती है । स्वप्न में जिसे मृतक देखा जाता है, वह चिरजीवी होता है । अरोगी व्यक्ति रोगी को देखकर दुःखी और सुखी को देखकर सुखी होता

अरोगी रोगिणं दुःखी सुखिनं च सुखं भवेत् । दिव्या स्त्री यं प्रवदति मम स्वामी भवानिति[1] ॥७१॥
स्वप्ने दृष्ट्वा च जागर्ति स च राजा भवेद्ध्रुवम् । स्वप्ने वा कालिकां[2] दृष्ट्वा लब्ध्वा स्फटिकमालिकाम् ॥७२॥
इन्द्रचापं शक्रवज्रं स प्रतिष्ठां लभेद्ध्रुवम् । स्वप्ने वदति यं विप्रो मम दासो भवेति च ॥७३॥
हरिदास्यं च मद्भक्ति स लब्ध्वा वैष्णवो भवेत् । स्वप्ने विप्रो हरिः शंभुर्ब्राह्मणी कमला शिवा ॥७४॥
शुक्ला स्त्री देवमाता वा जाह्नवी वा सरस्वती । गोपालिकावेषधरी बालिका राधिका मम ॥७५॥
बालश्च बालगोपालः स्वप्नविद्भिः प्रकाशितः । एष ते कथितो नन्द सुस्वप्नः पुण्यहेतुकः ॥
श्रोतुमिच्छसि किं वा त्वं किं भूयः कथयामि ते ॥७६॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० सुस्वप्नकथनं नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥७७॥

•

---

है ॥६९-७०½॥ स्वप्न में दिव्य स्त्री (देवी) आकर जिसे कहती है कि—"आप हमारे स्वामी हैं," और वह उसी समय जाग जाता है तो निश्चित राजा होता है। स्वप्न में कालिका देवी का दर्शन, स्फटिक माला की प्राप्ति (तथा) इन्द्रधनुष या इन्द्र का वज्र देखकर मनुष्य निश्चित ही प्रतिष्ठा प्राप्त करता है ॥७१-७२½॥ स्वप्न में ब्राह्मण जिसे कहता है कि—"तुम हमारे दास हो जाओ" वह हरिभक्ति और मेरा दास्य पद प्राप्त कर वैष्णव होता है। स्वप्न में ब्राह्मण विष्णु तथा शिव का रूप है। ब्राह्मणी लक्ष्मी एवं पार्वती का प्रतीक है। श्वेतवर्णा स्त्री देवमाता, गङ्गा या सरस्वती का रूप है। गोपालिका वेश धारण करनेवाली बालिका मेरी राधिका का रूप है और बालक बालगोपाल का स्वरूप है, ऐसा स्वप्नवेत्ताओं ने कहा है। हे नन्द ! यह मैंने पुण्यदायक उत्तम स्वप्नों का वर्णन किया है। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं ? और मैं क्या कहूँ ॥७३-७६॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद-नारायण-संवाद में सुस्वप्नकथन नामक सतहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥७७॥

•

---

१ क. 'वान्भव । २ क. बालि'।

# अथाष्टसप्ततितमोऽध्यायः

नन्द उवाच

श्रीकृष्ण जगतां नाथ सुस्वप्नश्च श्रुतो मया। वेदसारो नीतिसारो लौकिको वैदिकस्तथा ॥१॥
अधुना श्रोतुमिच्छामि पापं येषां च दर्शने। यस्मिन्कर्मणि वा वत्स तन्मां कथितुमर्हसि ॥२॥
वचनं वेदशास्त्रोक्तं तथा वेदानुयायिनः। श्रोतुमिच्छन्ति संतप्ता लोकास्त्वन्मुखतस्तथा ॥३॥
वेदानां जनकस्त्वं च वैदिकानां सतामपि। ब्रह्मादीनां सुराणां च मुनीनां जगतामपि ॥४॥
श्रुतं यत्त्वन्मुखाम्भोजात्प्रमाणं वचनामृतम्। तेन देहोऽभिषिक्तो मे वत्सविच्छेददाहनः ॥५॥
स्वप्ने यच्चरणाम्भोजं सर्वकामफलप्रदम्। ब्रह्मादयो न पश्यन्ति तदद्य दृष्टिगोचरम् ॥६॥
अतः परं त्वत्पदाब्जं क्व पश्यामि च पातकी। विण्मूत्रधारी देहो मे निबद्धश्च स्वकर्मणा ॥७॥
ईदृशं च दिनं वत्स कदा मम भविष्यति। त्वया ब्रह्मादिनाथेन संवादो मम पापिनः ॥८॥
कृपां कुरु कृपानाथ मम दोषं क्षमस्व च। वत्सबुद्ध्या च दुर्नीतं यत्कृतं च महेश्वर ॥९॥

---

# अध्याय ७८

## नन्द को आध्यात्मिक ज्ञान का उपदेश

**नन्द बोले**—हे श्रीकृष्ण ! हे जगत् के नाथ ! मैंने सुस्वप्न आपके द्वारा भलीभाँति सुन लिया है, जो वेद का सार भाग तथा लौकिक एवं वैदिक नीति का सार भाग है ॥१॥ हे वत्स ! जिन (स्वप्नों) के देखने से और जिस कर्म के करने से पाप होता है, इस समय मैं वही सुनना चाहता हूँ, मुझे बताने की कृपा करें ॥२॥ जिस प्रकार वेदों के अनुयायिवर्ग (आस्तिक लोग) वेद-शास्त्रों की बात सप्रेम सुनते हैं उसी भाँति (संसारानल से) संतप्त प्राणी तुम्हारे मुख से अमृत वचन सुनने के लिए लालायित रहते हैं क्योंकि तुम, वेदों, वैदिकों सज्जनों, ब्रह्मा आदि देवों, मुनियों एवं समस्त जगत् के (उत्पन्न-पालनादि करनेवाले) पिता हो ॥३-४॥ हे वत्स ! इसीलिए तुम्हारे मुखकमल से प्रमाणभूत वचनामृत सुनने को मिला है, उससे मेरा शरीर, जो तुम्हारे वियोगाग्नि से जल रहा था, अभिषिक्त (शीतल) हो गया है ॥५॥ तुम्हारा चरणकमल जो समस्त कामनाओं का फल प्रदान करनेवाला है तथा ब्रह्मा आदि देव स्वप्न में भी जिसका दर्शन नहीं कर पाते हैं, उसे मैं अपनी आँखों से देख रहा हूँ ॥६॥ इसके पश्चात् तुम्हारे चरण का दर्शन मैं पातकी पुनः कहाँ पा सकता हूँ क्योंकि मेरी यह देह विष्ठा और मूत्र से भरी हुई है तथा अपने कर्म-बन्धनों से आबद्ध है। हे वत्स ! अब ऐसा मेरा दिन कब होगा, जब कि तुझ ब्रह्मा आदि के स्वामी से मुझ पापी का संवाद होगा ? ॥७-८॥ अतः हे कृपानाथ ! हे महेश्वर ! मेरे अपराधों को, जो मैंने पुत्र मानकर आपके प्रति कटु व्यवहार किया है, उसे क्षमा करने की कृपा करो। ब्रह्मा, शिव, शेष और मुनिगण तुम्हारे चरणकमल का नित्य ध्यान करते हैं, तथा

ब्रह्मेशशेषमुनयो ध्यायन्ते त्वत्पदाम्बुजम् । सरस्वती श्रुतिर्यस्य स्तवने जडतां व्रजेत् ॥१०॥
इत्येवमुक्त्वा नन्दश्च निरानन्दः शुचाऽऽकुलः । मूर्च्छामाप रुदित्वा च पुत्रविच्छेदविह्वलः ॥११॥
संत्रस्तो भगवान्कृष्णो बोधयामास यत्नतः । परमाध्यात्मिकं ज्ञानं ददौ तस्मै जगत्पतिः ॥१२॥

## श्रीभगवानुवाच

हे नन्द जनकश्रेष्ठ सर्वश्रेष्ठ व्रजेश्वर । चेतनं कुरु कल्याण ज्ञानं च परमं शृणु ॥१३॥
परमाध्यात्मिकं ज्ञानं ज्ञानिनां च सुदुर्लभम् । वेदशास्त्रे गोपनीयं तुभ्यमेव ददाम्यहम् ॥१४॥
निबोध श्रूयतां नन्द सानन्दः सुसमाहितः । जन्ममृत्युजराव्याधिर्यदभ्यासान्न जायते ॥१५॥
स्थिरो भव महाराज व्रजनाथ व्रजं व्रज । ज्ञानं लब्ध्वा सदानन्दः शोकमोहविवर्जितः ॥१६॥
जलबुद्बुदवत्सर्वं संसारं सचराचरम् । प्रभाते स्वप्नवन्मिथ्या मोहकारणमेव च ॥१७॥
मिथ्याकृत्रिमनिर्माणहेतुश्च पाञ्चभौतिकः । मायया सत्यबुद्ध्या च प्रतीति जायते नरः ॥१८॥
कामक्रोधलोभमोहैर्वेष्टितः सर्वकर्मसु । मायया मोहितः शश्वज्ज्ञानहीनश्च दुर्बलः ॥१९॥
निद्रातन्द्राक्षुत्पिपासाक्षमाश्रद्धादयादिभिः । लज्जा शान्तिर्धृतिः पुष्टिस्तुष्टिश्चाऽऽभिश्च वेष्टितः ॥२०॥

---

सरस्वती और श्रुति भी उसकी स्तुति करने में जड़ की भाँति मूक रह जाती है ॥९-१० ॥ इतना कहकर नन्द जो आनन्दरहित, शोकग्रस्त एवं पुत्र-वियोग से व्याकुल थे, रोदन करते हुए मूर्च्छित हो गये । उन्हें देखकर भगवान् कृष्ण संत्रस्त हो उन्हें यत्नपूर्वक समझाने-बुझाने लगे, और जगत्पति ने उन्हें परम आध्यात्मिक ज्ञान प्रदान किया ॥११-१२॥

**श्रीभगवान् बोले**—हे नन्द ! हे जनकश्रेष्ठ ! हे सर्वश्रेष्ठ व्रजेश्वर ! चैतन्य हो जाओ और परम कल्याणप्रद यह ज्ञान सुनो । यह परम आध्यात्मिक ज्ञान, जो ज्ञानियों को भी अति दुर्लभ और वेद-शास्त्र में गोपनीय है, तुम्हें दे रहा हूँ ॥१३-१४॥ हे नन्द ! अत्यन्त सावधान होकर इस ज्ञान को आनन्दपूर्वक सुनो और इसे निश्चय रूप से अपनाओ, क्योंकि इसके बार-बार अभ्यास (मनन) करने पर जन्म, मरण, जरा (बुढ़ापा) और व्याधियाँ उत्पन्न नहीं होती हैं । अतः हे व्रजनाथ महाराज ! सुस्थिर हो जाओ और ज्ञान प्राप्त करके शोक-मोह-रहित एवं सदा आनन्दस्वरूप होकर व्रज जाओ ॥१५-१६॥

यह चर-अचरमय सारा संसार जल के बुलबुले की भाँति (क्षणिक) है । प्रातः काल के स्वप्न के समान मिथ्या एवं केवल मोह का कारण है । पाञ्चभौतिक शरीर एवं संसार के निर्माण का हेतु भी मिथ्या एवं अनित्य है । माया से ही मनुष्य इसे सत्य मान रहा है । वह समस्त कर्मों में काम, क्रोध, लोभ और मोह से वेष्टित है तथा माया से सदा मोहित, ज्ञानहीन एवं दुर्बल है ॥१७-१९॥ कर्मों में काम, क्रोध, लोभ और मोह से वह निद्रा, तन्द्रा, क्षुधा-पिपासा, क्षमा, श्रद्धा, दया, लज्जा, शान्ति, धारणा, पुष्टि और तुष्टि आदि

मनोबुद्धिचेतनाभिः प्राणज्ञानात्मभिः सह । संसक्तः सर्वदेवैश्च यथा वृक्षश्च वायसैः ॥२१॥
अहमात्मा च सर्वेशः सर्वज्ञानात्मकः स्मृतः । मनो ब्रह्मा च प्रकृतिर्बुद्धिरूपा सनातनी ॥२२॥
प्राणा विष्णुश्चेतना सा पद्मा तु चाधिदेवता । मयि स्थिते स्थिताः सर्वे गतास्तेऽपि गते मयि ॥२३॥
अस्माभिश्च विना देहः सद्यः पतति निश्चितम् । पाञ्चभूतो विलीनश्च पञ्चभूतेषु तत्क्षणम् ॥२४॥
नामसंकेतरूपं च निष्फलं मोहकारणम् । शोकश्चाज्ञानिनां तात ज्ञानिनां नास्ति किंचन ॥२५॥
निद्रादयः शक्तयश्च ताः सर्वाः प्रकृतेः कलाः । लोभादयो ह्यधर्मांशास्तथाऽहंकारपञ्चमः ॥२६॥
ते ब्रह्मविष्णुरुद्रांशा गुणाः सत्त्वादयस्त्रयः । ज्ञानात्मकः शिवो ज्योतिरहमात्मा च निर्गुणः ॥२७॥
यदा विशामि प्रकृतौ तदाऽहं सगुणः स्मृतः । सगुणा विषया विष्णुब्रह्मरुद्रादयस्तथा ॥२८॥
धर्मो मदंशो विषयी शेषः सूर्यः कलानिधिः । एवं सर्वे मत्कलांशा मुनिमन्वादयः सुराः ॥२९॥
सर्वदेहे प्रविष्टोऽहं न लिप्तः सर्वकर्मसु । जीवन्मुक्तश्च मद्भक्तो जन्ममृत्युजराहरः ॥३०॥
सर्वसिद्धेश्वरः श्रीमान्कीर्तिमान्पण्डितः कविः । चतुस्त्रिंशद्विधः सिद्धः सर्वकर्मोपहारकः[1] ॥३१॥
तमुपैमि स्वयं सिद्धं भक्तस्त्वन्यन्न वाञ्छति । द्वाविंशतिविधं सिद्धं सिद्धिसाधनकारणम् ॥३२॥

---

से भी आवृत है ॥२०॥ वह मन, बुद्धि, चेतना, प्राण, ज्ञान, आत्मा और समस्त देवों से उसी प्रकार संसक्त रहता है जैसे कौओं (पक्षियों) से वृक्ष । मैं आत्मा, सर्वाधीश्वर एवं सर्वज्ञानात्मक हूँ । ब्रह्मा मन है, सनातनी प्रकृति बुद्धि है, प्राण विष्णु हैं तथा चेतना और उसकी अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी है । शरीर में मेरे रहने से ही सबकी स्थिति है । मेरे चले जाने पर वे भी सब-के-सब चले जाते हैं । हम लोगों के बिना वह देह तुरन्त गिर जाती है और उसके पाँचों भूत (पृथ्वी-जल आदि) उसी क्षण पाँचों महाभूतों में विलीन हो जाते हैं ॥२१-२४॥ हे तात ! इसलिए संसार का नाम और संकेत रूप व्यवहार निष्फल एवं एकमात्र मोह का ही कारण है, इसमें अज्ञानी जन शोक करते हैं, ज्ञानी कभी नहीं । निद्रा आदि सम्पूर्ण शक्तियाँ प्रकृति की कलाएँ हैं और काम, क्रोध, लोभ, मोह एवं पाँचवाँ अहंकार अधर्म के अंश हैं ॥२५-२६॥ ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र अंशवाले सत्त्व, रज, तम ये तीनों गुण, ज्ञानात्मक शिव और ज्योतिर्निर्गुण आत्मारूप मैं जब प्रकृति में प्रविष्ट होता हूँ, तब सगुण कहलाता हूँ, ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र आदि सगुण विषय हैं । अर्थात् इन रूपों में मैं प्रकट होकर निर्माण आदि कार्य करता हूँ । मेरे अंशभूत धर्म, शेष, सूर्य और कलानिधान चन्द्रमा विषयी कहे गये हैं । इसी प्रकार मुनिगण, मनुवृन्द और देव लोग मेरे कलांश हैं । मैं समस्त देहों में व्याप्त हूँ, किन्तु समस्त कर्मों में भी मैं लिप्त नहीं होता । मेरा भक्त भी जीवन्मुक्त और जन्म, मरण एवं जरा का अपहर्ता होता है ॥२७-३०॥ वह सर्वसिद्धेश्वर, श्रीमान्, कीर्तिमान्, पण्डित, कवि, चौंतीस प्रकार का सिद्ध और समस्त कर्मों का निराकरण करनेवाला होता है । उस भक्त के समीप मैं स्वयं उपस्थित रहता हूँ । भक्त दूसरी वस्तु चाहता ही नहीं । सिद्धियों का साधन करनेवाला सिद्ध उन सिद्धियों के ही भेद से बाईस प्रकार का होता है

---

१ क. 'प्कार' ।

मन्मुखाच्छ्रूयतां नन्द सिद्धमन्त्रं गृहाण च। अणिमा लघिमा प्राप्तिः प्राकाम्यं महिमा तथा ॥३३॥
ईशित्वं च वशित्वं च तथा कामावसायिता। दूरश्रवणमेवेति परकायप्रवेशनम् ॥३४॥
मनोयायित्वमेवेति सर्वज्ञत्वमभीप्सितम्। वह्निस्तम्भं जलस्तम्भं चिरंजीवित्वमेव च ॥३५॥
वायुस्तम्भं क्षुत्पिपासानिद्रास्तम्भनमेव च। कायव्यूहं च वाक्सिद्धिं मृतानयनमीप्सितम् ॥३६॥
सृष्टीनां करणं चैव प्राणाकर्षणमेव च। ॐ सर्वेश्वरेश्वराय[1] सर्वविघ्नविनाशिने
मधुसूदनाय स्वाहेति ॥३७॥
अयं मन्त्रो महागूढः सर्वेषां कल्पपादपः। सामवेदे च कथितः सिद्धानां सर्वसिद्धिदः ॥३८॥
अनेन योगिनः सिद्धा मुनीन्द्राश्च सुरास्तथा। शतलक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिर्भवेत्सताम् ॥३९॥
यदि नारायणक्षेत्रे हविष्यान्नरतो जपेत्। गत्वा कुरु जपं तात काशिकां मणिकर्णिकाम् ॥४०॥
शृणु नारायणक्षेत्रं जलाधस्तच्चतुष्टयम्। अत्र नारायणः स्वामी नान्यः स्वामी कदाचन ॥४१॥
ज्ञानं चात्र मृते लोके मुक्तिर्भवति तस्य वै। व्रतं[2] विनाऽपि मन्त्रेण जीवन्मुक्तो न संशयः ॥४२॥
व्रजं कुरु पवित्रं च व्रजनाथ व्रजं व्रज। पापं यद्दर्शने तात कथयामि निशामय ॥४३॥

---

॥३१-३२॥ हे नन्द ! मेरे मुख से उनका परिचय सुनो और सिद्धमन्त्र ग्रहण करो। अणिमा (सूक्ष्मरूप), लघिमा (लघुरूप), प्राप्ति, प्राकाम्य (इच्छा का अनवघात), महिमा (महत्ता), ईशित्व (प्रभुत्व), वशित्व (अधीनत्व), कामावसायिता (समस्त कामनाओं का विलयन), दूर श्रवण, परकाय प्रवेश (दूसरे की देह में प्रविष्ट होना), मनोयायित्व (मन के समान वेगगामी), सर्वज्ञत्व, अग्नि स्तम्भन, जलस्तम्भन, चिरंजीवित्व (दीर्घायु), वायुस्तम्भ, भूख-प्यास तथा नींद का स्तम्भन, कायव्यूह (देहरचना), वाक्सिद्धि, मृतक का आनयन, सृष्टि करना और प्राणों का आकर्षण (खींचना) सिद्धमन्त्र इस प्रकार है—ॐ सर्वेश्वरेश्वराय सर्वविघ्नविनाशिने मधुसूदनाय स्वाहा ॥३३-३७॥ यह मन्त्र अत्यन्त गूढ़ है और कल्पवृक्ष के समान है। यह सामवेद में कथित है और सिद्धों के लिए समस्त सिद्धिप्रद है ॥३८॥ इसके द्वारा योगी, मुनीन्द्र और देवगण सिद्ध होते हैं। नारायण क्षेत्र में हविष्य भोजन करते हुए इसके सौ लाख जप करने से सज्जनों की मंत्र सिद्धि हो जाती है। हे तात ! आप काशी के मणिकर्णिका तीर्थ में जाकर इसका जप कीजिये ॥३९-४०॥ मैं नारायण क्षेत्र बता रहा हूँ, सुनो ! (नदी के) जलप्रवाह से चार हाथ तक की भूमि को नारायणक्षेत्र कहा जाता है। इस स्थान के स्वामी नारायण होते हैं अन्य कोई नहीं ॥४१॥ वहाँ मनुष्य की मृत्यु होने पर उसे ज्ञान एवं मुक्ति की प्राप्ति होती है। वहाँ व्रत के बिना भी जप करने से मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं ॥४२॥ व्रजनाथ !

---

१ क. 'श्वरा'। २ क. व्रजानेना'।

दुःस्वप्नं पापबीजं च केवलं विघ्नकारणम् । गोघ्नं च ब्राह्मणघ्नं वा कृतघ्नं कुटिलं तथा ॥४४॥
देवघ्नं पितृमातृघ्नं पापं विश्वासघातिनम् । मिथ्यासाक्षिप्रवक्तारं यं चाऽऽतिथ्यविवञ्चनम् ॥४५॥
ग्रामयाजिनमेवेति देवविप्रस्वहारिणम् । अश्वत्थघातिनं दुष्टं शिवविष्णुविनिन्दकम् ॥४६॥
अदीक्षितमनाचारं संध्याहीनं द्विजं तथा । देवलं वृषवाहं च शूद्राणां सूपकारकम् ॥४७॥
शवदाहं च शूद्राणां शूद्रश्राद्धान्नभोजिनम् । अवीरां छिन्ननासां च देवब्राह्मणनिन्दकाम् ॥४८॥
पतिभक्तिविहीनां च विष्णुभक्तिविहीनकाम् । शूद्राणां विधवां चैव चाण्डालीं व्यभिचारिणीम् ॥४९॥
शश्वत्कोपयुतं दुष्टमृणग्रस्तं च जारजम् । चौरं मिथ्यावादिनं च शरणागतयायिनम्[1] ॥५०॥
मांसापहारिणं चैव ब्राह्मणं वृषलीपतिम् । ब्राह्मणीगामिनं शूद्रं द्विजं वार्धुषिकं तथा ॥५१॥
अगम्यागामिनं दुष्टं चतुर्वर्णं नराधमम् । माता सपत्नीमाता च श्वश्रूश्च भगिनी सुता ॥५२॥
गुरुपत्नी पुत्रपत्नी सोदरस्य प्रिया सती । मातृष्वसा पितृष्वसा भागिनेयप्रिया तथा ॥५३॥
मातुलानी नवोढा च पितृव्यस्त्री रजस्वला । पितृमातृप्रसूश्चैव चागम्याष्टादश स्मृताः ॥५४॥
कीर्तिताः सामवेदे च परिपाल्याः सतां व्रज । एता दृष्ट्वा च स्पृष्ट्वा च ब्रह्महत्यां लभेन्नरः ॥५५॥

---

तुम व्रज में जाकर व्रज को पवित्र करो। तात ! अब जिनके दर्शन से पाप होता है, उन्हें कह रहा हूँ, सुनो। दुःस्वप्न पाप का बीज एवं केवल विघ्नों का कारण होता है। गोहन्ता, ब्राह्मणहन्ता, कृतघ्न, कुटिल, देवनाशक, माता-पिता का घात करनेवाले, पापी, विश्वासघाती, मिथ्या साक्ष्य (झूठी गवाही) देने-वाले, अभ्यागतों की प्रवञ्चना करनेवाले, गाँव-गाँव यज्ञ करानेवाले, देवों और ब्राह्मणों की वृत्ति के अपहारी, पीपल काटनेवाले, शिव-विष्णु की निन्दा करनेवाले दुष्ट, दीक्षारहित, अनाचार करनेवाले एवं संध्याकर्म रहित ब्राह्मण, देवल (पुजारी), वृषवाहक, शूद्रों के भण्डारी, शूद्रों के शव दाह करनेवाले और उनके श्राद्धान्नों के भोजन करनेवाले विप्रगण, पतिपुत्रहीना स्त्री, कटी नाकवाली, देवों और ब्राह्मणों की निन्दा करने-वाली, पति भक्ति से रहित तथा भगवान् विष्णु की भक्ति से शून्य स्त्री, शूद्रों की विधवा स्त्री, चाण्डाली, व्यभिचारिणी स्त्री और निरन्तर क्रुद्ध रहनेवाले, दुष्ट, ऋणग्रस्त (कर्जदार), जारज (वर्णसंकर), चोर, मिथ्यावादी, शरणागत को प्राप्त होनेवाले, मांस-चोर, शूद्रा-पति ब्राह्मण, ब्राह्मणी के साथ सम्भोग करनेवाले शूद्र, सूदखोर ब्राह्मण, अगम्या स्त्री के साथ गमन करनेवाले दुष्ट और चारों वर्णों के नराधम व्यक्ति को देखने से पाप लगता है ॥४३-५१½॥ माता, सौतेली माता, सास, भगिनी, गुरुपत्नी, पुत्र की पत्नी, भाई की पत्नी, माता की भगिनी (मौसी), पिता की भगिनी (बूआ), भानजे की पत्नी, भाभी, परायी नवोढा, चाची, रजस्वला, पिता की माता और माता की माता ये अठारह अगम्या स्त्री कही गयी हैं। हे व्रज ! इनकी गणना सामवेद में की गयी है, जो सज्जनों द्वारा भलीभाँति परिपोष्या होती हैं। कामभाव से इन्हें देखने और स्पर्श करने से मनुष्य को ब्रह्महत्या का पाप

---

१ क. 'तदायि'।

तस्माद्दैवेन ता दृष्ट्वा[1] सूर्यं दृष्ट्वा हरिं स्मरेत् । कामतो यदि पश्यन्ति विनिन्द्यास्ते भवन्ति वै ॥५६॥
तस्मात्सन्तो न पश्यन्ति शापभीता व्रजेश्वर । राहुग्रस्तं रविं सोमं न पश्यन्ति विपश्चितः ॥५७॥
जन्माष्टसप्तरिःफाङ्कवशमस्थे दिवाकरे । जन्मर्क्षे निधने चापि चतुर्थेऽपि कलानिधौ ॥५८॥
सर्वेरंशैर्न पश्यन्ति कम्पितं चन्द्रभास्करम् । नष्टचन्द्रो न दृश्यश्च भाद्रे मासि सितासिते ॥५९॥
चतुर्थ्यामुदितश्चन्द्रः परित्यक्तो मनीषिभिः । चन्द्रस्तारापहरणं कलङ्कमतिदुष्करम् ॥६०॥
तस्मै ददाति हे नन्द कामतो यदि पश्यति । अकामतो नरो दृष्ट्वा मन्त्रपूतं जलं पिबेत् ॥६१॥
तदा शुद्धो भवेत्सद्यो निष्कलङ्की महीतले । सिंहः प्रसेनमवधीत्सिंहो जाम्बवता हतः ॥६२॥
सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः । इति मन्त्रेण पूतं च जलं साधुः पिबेद्ध्रुवम् ॥
इति ते कथितं सर्वमपरं कथयामि ते ॥६३॥

इति॰ श्रीब्रह्म॰ महा॰ श्रीकृष्णजन्मखण्ड॰ उत्त॰ नारदना॰ भगवन्नन्दसं॰
अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥७८॥

●

---

लगता है ॥५२-५५॥ अतः दैवसंयोगवश कहीं इनकी ओर (कु) दृष्टि चली जाय तो सूर्य का दर्शन और हरि नाम स्मरण करना चाहिए। जो कामवश उन्हें देखते हैं वे अवश्य निन्दा के पात्र होते हैं ॥५६॥ हे व्रजेश्वर ! इसलिए शापभय के कारण सज्जन लोग उन पर कुदृष्टि कभी नहीं डालते एवं विद्वान् लोग राहुग्रस्त सूर्य और चन्द्रमा का दर्शन नहीं करते ॥५७-५८॥ जन्म, अष्टम, सप्तम, द्वादश, नवम और दशम स्थान में सूर्य हों तो सूर्य का तथा जन्म नक्षत्र और चौथे एवं आठवें स्थान में चन्द्रमा हो तो चन्द्र का दर्शन नहीं करना चाहिए। भादों मास के कृष्ण और शुक्ल पक्ष में उदित चन्द्र को नष्टचन्द्र कहते हैं। उनका दर्शन विद्वानों ने त्याग दिया है ॥५९½॥ हे नन्द ! यदि कोई उस दिन जान-बूझकर चन्द्रमा को देखता है तो वह उसे तारा के अपहरण के समान अत्यन्त दुष्कर कलंक देता है। अनिच्छा से दर्शन हो जाने पर मन्त्रपूत जल पीना चाहिए ॥६०-६१॥ ऐसा करने से मनुष्य तुरन्त पृथ्वी पर शुद्ध एवं निष्कलंकी हो जाता है। जल को पवित्र करनेवाला मन्त्र यह है 'सिंहः प्रसेनमवधीत् सिंहो जाम्बवता हतः। सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः ॥' हे सुकुमार ! रोदन मत करो, लो यह तुम्हारी स्यमन्तक मणि है, जिसके कारण सिंह ने प्रसेन को मारा है और उस सिंह को जाम्बवान् ने निहत किया है। इस मंत्र द्वारा पवित्र किये हुए जल को अवश्य पीना चाहिए। ये सारी बातें तुम्हें कह दीं। अब और क्या कहूँ ? ॥६२-६३॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद-नारायण-संवाद में
भगवान् और नन्द के संवाद वर्णन नामक अठहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥७८॥

●

---

१ क. स्पृष्ट्वा ।

# अथैकोनाशीतितमोऽध्यायः

**नन्द उवाच**

राहुग्रस्तः कथं सूर्यश्चन्द्रो वाऽपि जगत्प्रभो। नेष्टश्चन्द्रः कथं भाद्रे चतुर्थ्यां चासिते सिते ॥१॥
वेदानां जनकस्त्वं च कं पृच्छामि त्वया विना। वेदे पुराणे गोप्यं यन्न जानन्ति विपश्चितः ॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा चेदं वचनमब्रवीत् ॥२॥

**श्रीभगवानुवाच**

अतथ्यं वचनं चेदं निषिद्धं वैदिकैरपि। क्षमस्व नन्द भद्रं ते प्रश्नमन्यं कुरुष्व माम् ॥३॥
विश्वस्तं वचनं तात न प्रकाश्यं मनीषिभिः। विघ्नः प्रकाशे भवति सतां छिद्रं च दैवतः ॥४॥

**नन्द उवाच**

कथयस्व जगन्नाथ न भक्ते वञ्चनं कुरु। अदृश्यौ चापि देवेशौ राहुग्रस्तौ च पुण्यदौ ॥५॥

**श्रीभगवानुवाच**

शृणु नन्द प्रवक्ष्यामि कथामेतां पुरातनीम्। यां श्रुत्वा निष्कलङ्कश्च तीर्थस्नायी भवेन्नरः ॥६॥

---

## अध्याय ७९

### राहु से ग्रस्त सूर्य को न देखने का कारण बताना

**नन्द बोले**—हे जगत्प्रभो ! राहु से ग्रस्त सूर्य और चन्द्रमा तथा भादों मास के कृष्ण पक्ष और शुक्ल पक्ष की चतुर्थी में चन्द्रमा का दर्शन क्यों नहीं करना चाहिए ? ॥१॥ तुम वेदों के जनक हो, इसलिए तुम्हें छोड़कर और किससे पूछूं ? क्योंकि यह वेद और पुराण में गोपनीय है। इसे विद्वान् लोग भी नहीं जानते हैं। उनकी ऐसी बात सुनकर भगवान् ने यह कहा ॥२॥

**श्रीभगवान् बोले**—हे नन्द ! ऐसी बात कहने के लिए वैदिकों ने निषेध (मना) किया है। अतः इसके लिए क्षमा करो, मुझसे कोई दूसरी बात पूछो, क्योंकि हे तात ! ऐसी विश्वस्त बात विद्वान् लोग प्रकाशित नहीं करते हैं। प्रकाशित करने पर विघ्न होता है और दैव-संयोग से सज्जनों में फूट पड़ जाती है ॥३-४॥

**नन्द बोले**—हे जगन्नाथ ! बता दो। भक्त को वञ्चित न करो। देवेश्वर सूर्य और चन्द्रमा राहुग्रस्त होने पर अदृश्य होते हुए भी पुण्यदायक हैं ॥५॥

**श्रीभगवान् बोले**—हे नन्द ! इस पुरानी कथा को, जिसके सुनने से मनुष्य कलङ्करहित और तीर्थ-

सर्वपातकिनं दृष्ट्वा यत्पापं लभते नरः। आख्यानश्रवणेनैव भस्मीभूतं भविष्यति ॥७॥
एकदा जमदग्निश्च महाकौतूहलान्वितः। रेणुकासहितस्तुष्टो जगाम नर्मदातटम् ॥८॥
निर्जने नर्मदातीरे विजहार तया सह। नवोढया च सुन्दर्या नवयौवनयुक्तया ॥९॥
सुवेषया सुस्मितया रत्नभूषणयुक्तया। नतया स्तनभारेण श्रोणीभारेण मन्दया ॥१०॥
सुन्दरीणामतुलया श्वेतचम्पकवर्णया। सुपूर्णचन्द्राननया कटाक्षयुतया तथा ॥११॥
अतीवसूक्ष्माम्बरया कामबाणार्तया व्रज। पुलकाञ्चितसर्वाङ्गसंभोगेनापि मूर्च्छया ॥१२॥
पुंस्कोकिलयुते रम्ये शब्दिते सुमधुव्रते। सुगन्धिवायुसंयुक्ते पुष्पतल्पान्विते शुभे ॥१३॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं वस्त्रमाल्यधरं मुनिम्। महारासरसाढ्यं तमुवाच भास्करः स्वयम् ॥१४॥
वेदकर्तुः प्रपौत्रस्त्वं ब्रह्मणश्च जगत्पतेः। चतुर्वेदविधेयेषु सुनिष्णातः सदा शुचिः ॥१५॥
वेदाङ्गकर्ता धर्मज्ञः श्रेष्ठो वेदविदां वरः। महातपस्वी तेजस्वी ब्रह्मचारी च सुव्रती ॥१६॥
युष्मद्विधोक्तं शास्त्रं च पठित्वाऽन्यश्च पण्डितः। वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः ॥१७॥
धर्मं त्यजति धर्मज्ञो ह्यधर्मेण रतः कथम्। दिवामैथुनदोषं च वक्ति वेदो विशेषतः ॥१८॥

---

स्नान का फल प्राप्त करता है, तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो! सम्पूर्ण पातक करनेवाले को देखकर मनुष्य को जिस पाप का भागी होना पड़ता है वह सब पाप इस आख्यान के श्रवण करने मात्र से भस्मीभूत हो जाता है ॥६-७॥

एक बार जमदग्नि बड़े कौतूहल एवं प्रसन्न मन से अपनी पत्नी रेणुका को साथ लिये नर्मदा जी के तट पर गये। वहाँ नर्मदा के निर्जन तट पर उन्होंने उसके साथ विहार किया, जो नवविवाहिता, सुन्दरी, नवीनयौवना, उत्तम वेशवाली, मन्द मुसकानेवाली, रत्नों के भूषणों से भूषित, स्तनों के भार से झुकी हुई, नितम्बभार से मन्द-मन्द चलनेवाली, सुन्दरियों में अनुपम, श्वेत चम्पा के समान रूप-रङ्गवाली, उत्तम पूर्णचन्द्र के समान मुखवाली एवं कटाक्ष करनेवाली थी ॥८-११॥ हे व्रज! वह अत्यन्त सूक्ष्म वस्त्र पहने हुई थी तथा काम के बाणों से अति पीड़ित थी। उसके सर्वाङ्ग में रोमाञ्च हो आया था और सम्भोग के कारण वह मूर्च्छित हो गयी थी। कोयल की कूक, भौंरों के गुञ्जार तथा सुगन्धित वायु के सञ्चार से युक्त एवं पुष्पों की शय्या से समन्वित तट पर चन्दन-चर्चित सर्वाङ्गवाले तथा वस्त्र-माला धारण करनेवाले मुनि जमदग्नि उस सुन्दरी के साथ महारास के रस का उपभोग कर रहे थे। उस समय स्वयं सूर्य ने उनसे कहा—'तुम जगत्पति ब्रह्मा के, जो वेदों के कर्ता हैं, प्रपौत्र हो और स्वयं चारों वेदों के कार्यों में अतिनिष्णात, सदा पवित्र, वेदाङ्ग के रचयिता, धर्मज्ञाता, वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ, महातपस्वी, तेजस्वी, ब्रह्मचारी और उत्तमव्रती हो ॥१२-१६॥ तुम लोगों के सुरचित शास्त्रों को पढ़कर अन्य लोग पण्डित हो जाते हैं। वेद के कथनानुसार आचरण करना धर्म है और उसके प्रतिकूल चलना अधर्म है। अतः धर्मज्ञ होकर धर्म क्यों छोड़ रहे हो? और अधर्म में तत्पर कैसे हो गये हो? जबकि वेद दिन में मैथुन करने को विशेष दोष बतलाता है ॥१७-१८॥ मैं धर्मी पुरुषों का साक्षी हूँ, इसीलिए

अहं च धर्मिणां साक्षी तेन त्वां कथयामि ते । सूर्यस्य वचनं श्रुत्वा तत्याज मैथुनं द्विजः ॥१९॥
दृष्ट्वा पुरो विप्ररूपं सूर्यं तेजस्विनं सुरम् । उवाच सूर्यं रक्तास्यः कोपलज्जासमन्वितः ॥
रेणुका लज्जिता तत्र विधार्य वाससी सती ॥२०॥

### जमदग्निरुवाच

को भवान्पण्डितंमन्यो न त्वदन्योऽस्ति पण्डितः । अहं भृगोर्भगवतः शिष्यस्त्वं कश्यपस्य च ॥२१॥
चतुर्वेदांश्च जानामि धर्माधर्मनिरूपणे । वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः ॥२२॥
अज्ञानी पुरुषः शश्वज्जडितश्च स्वकर्मणा । तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा ॥२३॥
अन्ये भवांश्च धर्मश्च साक्षी सर्वे च कर्मणाम् । फलदाता च शास्त्रज्ञो यतस्त्वत्तनयः सदा ॥२४॥
न वैष्णवानां शास्तारो यूयमस्माकमेव च । न वासुदेवभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित् ॥२५॥
हरेः सुदर्शनं चक्रं शश्वद्रक्षति वैष्णवान् । नारायणश्च भगवान्स्वयं ब्रह्मा च शंकरः ॥२६॥
शास्ता यमश्च नास्माकं त्वं वै नापि दिवाकर । राजपुत्रो यथा स्थाने वयं स्वच्छन्दगामिनः ॥२७॥
शक्तोऽहं भस्मसात्कर्तुं यमं सर्वसुरांस्तथा । महेन्द्रप्रभृतीन्सूर्य क्षणेनैवावलीलया ॥२८॥
कस्त्वं धर्मप्रवक्ता मे याहि स्वस्थानमेव च । मम शास्ता तु भगवाञ्छ्रीकृष्णः प्रकृतेः परः ॥२९॥

---

तुमसे कह रहा हूँ। सूर्य की बात सुनकर मुनि ने सम्भोग करना बन्द कर दिया और ब्राह्मण रूप में तेजस्वी सूर्य देव को देखकर कोप एवं लज्जा के कारण मुख लाल किये हुए उन्होंने कहा। उस समय रेणुका ने लज्जित होकर वस्त्रों को धारण कर लिया ॥१९-२०॥

**जमदग्नि बोले**—अपने को पण्डित माननेवाले आप कौन हैं? तुम्हें छोड़कर दूसरा कोई पण्डित ही नहीं है। मैं भगवान् भृगु का शिष्य हूँ और तुम कश्यप के शिष्य हो। धर्म और अधर्म के निरूपण में मैं चारों वेदों को जानता हूँ। वेद में कहे हुए के अनुसार आचरण धर्म और उसके प्रतिकूल अधर्म है, यह जो तुम कह रहे हो वह अज्ञानी पुरुषों के लिए है, जो अपने कर्म से निरन्तर बँधे रहने के कारण जड़वत् हैं। किन्तु सर्वभक्षी अग्नि की भाँति तेजस्वी पुरुषों को (विपरीत आचरणों में) कोई दोष नहीं होता है। अन्य लोग, आप और सभी धर्म के साक्षी हैं तथा तुम्हारे शास्त्रज्ञ पुत्र (धर्म) कर्मों के फलदाता भी हैं, तथापि हम वैष्णवों के तुम लोग शासक नहीं हो। भगवान् वासुदेव के भक्तों का कहीं अशुभ नहीं होता, क्योंकि भगवान् का सुदर्शन चक्र वैष्णवों की निरन्तर रक्षा करता है। अतः हे दिवाकर! स्वयं नारायण भगवान् ब्रह्मा, शिव, यम और तुम भी हमारे शासक नहीं हो। राजकुमार की भाँति हम लोग सर्वथा स्वच्छन्दगामी हैं। मैं यम समेत समस्त देवों को भस्म कर सकता हूँ। हे सूर्य! महेन्द्र आदि को तो एक क्षण में लीला की भाँति समाप्त कर सकता हूँ ॥२१-२८॥ मेरे धर्म के वक्ता तुम कौन हो? अपने घर चले जाओ। मेरे शासक तो भगवान् श्रीकृष्ण हैं जो प्रकृति से परे हैं। आज

अद्य मे निर्जने स्थाने रसभङ्गस्त्वया कृतः। मम शापात्पापदृश्यो राहुग्रस्तो भविष्यसि ॥३०॥
द्रष्टुं त्वां ये घनाः सर्वे दूरीभूता भवन्ति ते। त्वामाच्छन्नं करिष्यन्ति वायुना प्रेरितास्तथा ॥३१॥
स्वतेजसा भवान्गर्वाद्धततेजा भविष्यसि। मेघाच्छन्नः स्वल्पतेजा राहुग्रस्तो भवान्भव ॥३२॥
ब्राह्मणस्य वचः श्रुत्वा भगवान्भास्करः स्वयम्। ततः पुटाञ्जलिर्भूत्वा तुष्टाव मुनिपुंगवम् ॥३३॥

## भास्कर उवाच

अवध्याः सर्वे धर्मज्ञ धन्या मान्याः पुरस्कृताः। नारायणश्च भगवाञ्छंभुर्ब्रह्मा स्वयं प्रभुः ॥३४॥
गणेशश्चापि शेषश्च धर्मश्चापि सनातनः। स्तुवन्ति ब्राह्मणं सर्वे विप्ररूपी जनार्दनः ॥३५॥
विप्रदत्तश्च यो ब्रह्मन्वयमस्मन्मुखो द्विजः। हुताशनश्च द्विमुखाः सुराः सर्वे द्विजो वरः ॥३६॥
क्षमस्व वैष्णवः शुद्धः स्वधर्मं स समाचर। वैष्णवानां कुतः कोपो हृदि येषां जनार्दनः ॥३७॥
अस्माभिः पूजिता विप्रा युष्माभिः पूजिताः सुराः। परस्परं स्नेहपात्रं चेदमाचरणं द्विज ॥३८॥
अहमेवं त्वया शप्तो मया शप्तो भवान्भव। अन्यथा मां वदन्त्येवं सूर्यं निस्तेजसं जनाः ॥३९॥
पराभूतः क्षत्रियेण भविष्यसि द्विजेश्वर। मरणं क्षत्रियास्त्रेण भवतश्च भविष्यति ॥४०॥
सूर्यस्य वचनं श्रुत्वा चुकोप ब्राह्मणः पुनः। तं शशापातिरक्तास्यः शंभुना निर्जितो भवान् ॥४१॥

---

इस निर्जन स्थान में तुमने आकर मेरा रसभङ्ग किया है, इस कारण मेरे शाप से तुम पाप दृश्य (देखने से पाप-दायी) और राहुग्रस्त होगे ॥२९-३०॥ तुम्हें देखने के लिए आनेवाले मेघ तुमसे सदैव दूर रहते थे किन्तु अब वायु द्वारा प्रेरित होकर वे तुम्हें आच्छादित करेंगे, अपने तेज का गर्व करने के कारण तुम हततेजा (तेजहीन) हो जाओगे। अतः मेघों से आच्छन्न, अल्पतेजवाले और राहुग्रस्त तुम होगे। ब्राह्मण की बात सुनकर भगवान् भास्कर ने स्वयं हाथ जोड़कर मुनिश्रेष्ठ जमदग्नि की स्तुति की ॥३१-३३॥

**भास्कर बोले**––हे धर्मज्ञाता ! सभी ब्राह्मण धन्य, मान्य, आदरणीय एवं अवध्य हैं। स्वयं नारायण भगवान्, शिव, ब्रह्मा, गणेश, शेष, सनातन धर्म तथा ब्राह्मण रूपी जनार्दन भी ब्राह्मण की स्तुति करते हैं। ब्रह्मन् ! हम लोग ब्राह्मण का दिया हुआ पाते हैं। ब्राह्मण और अग्नि हमारे मुख हैं। सभी देवता दो मुखवाले हैं। ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं। आप शुद्ध वैष्णव हैं। अपने धर्म का आचरण कीजिये। वैष्णवों में क्रोध कहाँ ? उनके हृदय में तो निरन्तर जनार्दन भगवान् निवास करते हैं। हम लोगों द्वारा ब्राह्मण पूजित हैं और आप लोगों द्वारा देवगण पूजित हैं, अतः हे द्विज ! यह आचरण परस्पर में एक-दूसरे का स्नेह भाजन है। तुमने मुझे शाप दे दिया है, तो मैं भी तुम्हें शाप दे रहा हूँ। नहीं तो, लोग मुझे कहेंगे कि––सूर्य में कुछ भी तेज नहीं है। अतः हे द्विजेश्वर ! तुम क्षत्रिय द्वारा पराजित होगे और क्षत्रिय के अस्त्र द्वारा ही आपका मरण भी होगा। सूर्य की बात सुनकर (ब्राह्मण) देव पुनः क्रुद्ध हो गये, जिसके कारण उनका मुखमण्डल अतिलाल हो गया। उन्होंने सूर्य को पुनः शाप दिया––'आप शिव द्वारा पराजित होंगे' ॥३४-४१॥ हे व्रज ! इस प्रकार दोनों का

उभयोः कलहं ज्ञात्वा कश्यपेन सह व्रज । आजगाम स्वयं ब्रह्मा विधाता जगतामपि ॥४२॥
आगत्य ब्रह्मा संत्रस्तं बोधयामास भास्करम् । मुनिश्रेष्ठं च धर्मज्ञं धर्मज्ञानां गुरोर्गुरुः ॥४३॥

## ब्रह्मोवाच

क्षमस्व भास्कर त्वं च साक्षान्नारायणो भवान् । युष्माकं परिपाल्यश्चाप्यवध्यो ब्राह्मणः सदा ॥४४॥
अहं करोमि भवतो विप्रशापान्तमुल्बणम् । अत्राहमागतस्त्रस्तो भृगुणा प्रेरितस्ततः[1] ॥४५॥
स्फुटोऽहं प्रेरितश्चापि कश्यपेन मरीचिना । शान्तो भव सुरश्रेष्ठ साक्षी त्वं सर्वकर्मणाम् ॥४६॥
कुत्रचिद्दिवसे ब्रह्मंस्त्वं तत्र कुत्रचित्क्षणम् । भविष्यसि घनाच्छन्नः सद्यो मुक्तो भविष्यसि ॥४७॥
न्यूनातिरवते वर्षे च राहुग्रस्तो भविष्यसि । तत्रादृश्यश्च केषांचित्पुण्यदृश्यो हि कस्यचित् ॥४८॥
अन्यथा सर्वकालेन पुण्यदृश्यो भवान्भुवि । त्वां दृष्ट्वा च नमस्कृत्य सर्वे निष्पापिनो जनाः ॥४९॥
जन्मसप्ताष्टरिः फाङ्कचतुर्थे दशमे तथा । जन्मर्क्षे निधने नृणामदृश्यस्त्वं भविष्यसि ॥५०॥
अस्तकाले घनाच्छन्ने मध्याह्नस्थे जलेऽपि वा । अर्धोदिते च काले च पापदृश्यो भविष्यसि ॥५१॥
भार्यादुःखनिमित्तेन भार्यया हेतुभूतया । श्वशुरेण शालकेन हततेजा भविष्यसि ॥५२॥
अन्यथा तव तेजश्च संज्ञा सहितुमक्षमा । मालीसुमालियुद्धे च शंभुना त्वं पराजितः ॥५३॥

---

कलह जानकर जगत् के विधाता ब्रह्मा स्वयं कश्यप को साथ लिये वहां आये । वहां पहुँचने पर धर्मज्ञों के गुरु के गुरु ब्रह्मा ने संत्रस्त सूर्य और धर्मज्ञ एवं मुनिश्रेष्ठ जमदग्नि को समझाना आरम्भ किया ॥४२-४३॥

**ब्रह्मा बोले**—हे भास्कर ! तुम साक्षात् नारायण हो, अतः क्षमा करो, ब्राह्मण तुम्हारे परिपोष्य (भलीभाँति पालन-पोषण करने योग्य) और सदा अवध्य हैं । मैं तुम्हारे उत्कट ब्राह्मणशाप का अन्त बताता हूँ, क्योंकि मैं त्रस्त होकर यहाँ आया हूँ । मुझे भृगु ने प्रेरित किया । कश्यप और मरीचि ने भी प्रेरित किया है । अतः मैं स्पष्ट कहता हूँ । हे सुरश्रेष्ठ ! शान्त हो जाओ । तुम समस्त कर्मों के साक्षी हो । किसी दिन कुछ क्षणों के लिए तुम मेघों से आच्छन्न होकर पुनः तुरन्त उससे मुक्त हो जाओगे ॥४४-४७॥ कम और अधिक मास-वाले वर्ष में तुम राहु द्वारा ग्रस्त होगे और उस समय कुछ लोगों के लिए अदृश्य (न देखने योग्य) और किन्हीं के लिए तुम्हारा दर्शन पुण्यप्रद होगा । इसके अतिरिक्त सब समय आप पुण्यदृश्य (दर्शन करने से पुण्यप्रद) रहेंगे । तुम्हें देखने एवं नमस्कार करने से लोग पापरहित होंगे ॥४८-४९॥ जन्म-स्थान, सातवें, आठवें, बारहवें, नवम, चतुर्थ और दसवें स्थान में रहने से तुम मनुष्यों के लिए अदृश्य (न देखने योग्य) रहोगे और उसी भाँति अस्त समय, मेघाच्छन्न होने पर, मध्याह्न में, जल में और अर्ध उदित होने पर पापदृश्य (देखने पर पापप्रद) रहोगे ॥५०-५१॥ पत्नी के दुःख के कारण पत्नी के हेतु बन जाने पर श्वसुर और साले के द्वारा तुम्हारा तेज कम कर दिया जायगा । अन्यथा तुम्हारी पत्नी संज्ञा तुम्हारा तेज सहन करने में असमर्थ होगी ।

---

१ क. °तः स्तुतः ।

इत्येवमुक्त्वा सूर्यं च बोधयामास ब्राह्मणम् । नम्रं शापपराभूतं लज्जितं कोपितं व्रज ।।५४।।
हे विप्र स्वगृहं गच्छ गच्छ वत्स यथासुखम् । त्वत्तेजसा क्षणेनैव भस्मीभूतं भवेज्जगत् ।।५५।।
सूर्यस्त्वत्परिपाल्यश्च भवान्सूर्यस्य नित्यशः । परस्परं च पूज्यश्च संबन्धः पोष्यपोषकः ।।५६।।
हर्यंशेन क्षत्रियेण कार्तवीर्यार्जुनेन च । भविष्यसि न संदेहः पराभूतो द्विजो मृतः ।।५७।।
पुरा ते प्राक्तनं सर्वं कदाचिन्न हि खण्डितम् । नारायणश्च स्वांशेन तव पुत्रो भविष्यति ।।५८।।
त्रिःसप्तकृत्वो जगतीं निःक्षत्रां च करिष्यति । मृत्युस्ते यशसो बीजं भविष्यति महीतले ।।५९।।
इत्येवमुक्त्वा ब्रह्मा च ययौ गेहं व्रजेश्वर । प्रययौ जमदग्निश्च भास्करश्च स्वमन्दिरम् ।।६०।।
इत्येवं कथितं तात आख्यानं पुण्यकारकम् । राहुग्रस्तो भास्करश्चाप्यदृश्यो येन हेतुना ।।६१।।
चतुर्थ्यामुदितश्चन्द्रो भाद्रे मासि सितासिते । अदृश्यो नष्टरूपश्च श्रूयतां येन हेतुना ।।६२।।
राहुग्रस्तः कलङ्की वा पुरा शप्तो मया पितः । सर्वं त्वां कथयिष्यामि कथामेतां पुरातनीम् ।।६३।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० भगवन्नन्दसं०
एकोनाशीतितमोऽध्यायः ।।७९।।

---

माली और सुमाली नामक दैत्यों के युद्ध में तुम शिव द्वारा पराजित होगे ।।५२-५३।। हे व्रज ! सूर्य से इतना कहकर उस ब्राह्मण से कहा, जो नम्र, शाप द्वारा पराजित, लज्जित एवं क्रुद्ध थे । हे विप्र ! अब अपने घर जाओ, हे वत्स ! तुम्हारे तेज द्वारा सारा जगत् क्षणमात्र में भस्म हो सकता है । अतः ऐसा न करके यथासुख घर चले जाओ, क्योंकि सूर्य नित्य तुम्हारे परिपाल्य (भली-भाँति पालन के योग्य) हैं और तुम सूर्य के । इस प्रकार तुम दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध पूज्य और पोष्य-पोषक रूप है । क्षत्रियवंश में हरि के अंश से उत्पन्न कार्तवीर्यार्जुन नामक राजा से तुम पराजित होगे और उन्हीं के हाथों से तुम्हारी मृत्यु भी होगी ।।५४-५७।। तुम्हारा जन्मान्तरीय कर्म अभी सब नष्ट नहीं हुआ है । किन्तु नारायण भगवान् अपने अंश द्वारा तुम्हारे पुत्र होंगे, जो इस पृथ्वी को इक्कीस बार निःक्षत्रिय करेंगे और तुम्हारी मृत्यु भूमण्डल में तुम्हारे यश का कारण बनेगी ।।५८-५९।। हे व्रजेश्वर ! इतना कहकर ब्रह्मा अपने ब्रह्मलोक चले गये और अनन्तर जमदग्नि एवं भास्कर भी अपने-अपने घर गये । हे तात ! जिस कारण सूर्य राहुग्रस्त और अदृश्य (न देखने योग्य) होते हैं, वह पुण्यप्रद आख्यान मैंने तुम्हें सुना दिया । हे पिता ! भादों मास के कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष की चतुर्थी में उदय होने पर चन्द्रमा जिस कारण अदृश्य (न देखने योग्य), नष्टरूप, राहुग्रस्त एवं मेरे शाप द्वारा कलङ्की हुआ है, उन सब पुरानी कथाओं को मैं अब तुम्हें बता रहा हूँ सुनो ।।६०-६३।।

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण में श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद-नारायण-संवाद में भगवान् और नन्द के संवाद कथन नामक उन्यासीवाँ अध्याय समाप्त ।।७९।।

# अथाशीतितमोऽध्यायः

**श्रीकृष्ण उवाच**

पुरा तारा गुरोः पत्नी नवयौवनसंयुता। रत्नभूषणभूषाढ्या वरसूक्ष्माम्बरा सती ॥१॥
सुश्रोणी सस्मिता रम्या सुन्दरी सुमनोहरा। अतीव कबरीरम्या मालतीमाल्यभूषिता ॥२॥
सिन्दूरबिन्दुना सार्कं चारुचंदनबिन्दुभिः। कस्तूरीबिन्दुनाऽधश्च भालमध्यस्थलोज्ज्वला ॥३॥
रत्नेन्द्रसारनिर्माणक्वणन्मञ्जीरञ्जीता । सुवक्रलोचना श्यामा सुचारुकज्जलोज्ज्वला ॥४॥
सुचारुसारमुक्ताभदन्तपङ्क्तिमनोहरा । रत्नकुण्डलयुग्मेन चारुगण्डस्थलोज्ज्वला ॥५॥
कामिनीष्वतुला बाला गजेन्द्रमन्दगामिनी। सुकोमला चन्द्रमुखी कामाधारा च कामुकी ॥६॥
स्वर्गमन्दाकिनीतीरे स्नाता स्निग्धाम्बरा वरा। ध्यायन्ती गुरुपादं सा स्वगृहं गमनोन्मुखी ॥७॥
दृष्ट्वा तस्याश्च सर्वाङ्गमनङ्गबाणपीडितः। भाद्रे चतुर्थ्यां चन्द्रश्च जहार चेतनां व्रज ॥८॥
ज्ञानं क्षणेन संप्राप्य रथस्थो रसिको बली। रथमारोहयामास करे धृत्वा च तारकम् ॥९॥

---

# अध्याय ८०

## भाद्रपद-शुक्ल चतुर्थी-चन्द्र को न देखने का कारण बताना

**श्रीकृष्ण बोले**—पूर्व समय में गुरु बृहस्पति की पत्नी तारा जो नवीन यौवन सम्पन्न, रत्नों के आभूषणों से सुभूषित, अत्युत्तम और सूक्ष्म वस्त्र पहने हुई, पतिव्रता, उत्तम श्रोणी भागवाली, मन्दहास करनेवाली, रमणीय, सुन्दरी और अत्यन्त मनोहर थी, उसका सुन्दर जूड़ा मालती की मालाओं से भूषित था। उसका उज्ज्वल भाल उत्तम चन्दन की बिन्दी के साथ सिन्दूर की बिन्दी और उसके नीचे कस्तूरी की बिन्दी से सुशोभित था। उसके पैरों में रत्नेन्द्र के सारभाग से बने हुए नूपुरों की झनकार हो रही थी। उसकी टेढ़ी चितवन थी। नेत्र उत्तम काजलों से सुप्रकाशित हो रहे थे। अत्यन्त उत्कृष्ट एवं सुन्दर मोती के समान दाँतों की पंक्तियाँ मनोहारिणी थीं। रत्नों के युगल कुण्डलों से सुन्दर गण्डस्थल प्रकाशमय हो रहा था। इस प्रकार वह कामिनियों में अनुपम बाला गजेन्द्र की भाँति मन्द-मन्द गमन करनेवाली, अतिकोमला, चन्द्रमुखी, काम की आधार एवं कामुकी थी। वह स्वर्गमन्दाकिनी के किनारे स्नान करने के उपरान्त स्निग्ध वस्त्र पहने हुई, गुरु-चरण का ध्यान करती हुई ज्यों घर जाने को प्रस्तुत हुई कि उसे देखकर चन्द्रमा सर्वांग में काम के बाणों से पीड़ित होकर अचेत हो गया। हे व्रज! भाद्रपद की चतुर्थी में मूर्च्छित चन्द्रमा को क्षण में पुनः चेतना प्राप्त हुई और रथ पर बैठे ही उस बलवान् रसिक ने (बलात्) तारा का दोनों हाथ पकड़कर अपने

कामोन्मत्तः कामिनीं तां समाश्लिष्य चुचुम्ब च। शृङ्गारं कर्तुमुद्युक्तं तमुवाच गुरुप्रिया ॥१०॥

## तारकोवाच

त्यज मां त्यज मां चन्द्र सुरेषु कुलपांसन। गुरुपत्नीं ब्राह्मणीं च पातिव्रत्यपरायणाम् ॥११॥
गुरुपत्नीसंगमने ब्रह्महत्याशतं भवेत्। गुरुपत्नी विप्रपत्नी यदि सा च पतिव्रता ॥१२॥
ब्रह्महत्यासहस्रं च तस्याः संगमने लभेत्। पुत्रस्त्वं तव माताऽहं धैर्यं कुरु सुरेश्वर ॥१३॥
धिक्त्वां श्रुत्वा सुरगुरुर्भस्मीभूतं करिष्यति। पुत्राधिकश्च शिष्यश्च प्रियो मत्स्वामिनो भवान् ॥१४॥
स्वधर्मं रक्ष पापिष्ठ मामेवं मातरं त्यज। दास्यामि स्त्रीवधं तुभ्यं यदि मां संग्रहीष्यसि ॥१५॥
विलङ्घ्य तारावचनं तां च संभोक्तुमुद्यतम्। शशाप तारा कोपेन निष्कामा सा पतिव्रता ॥१६॥
राहुग्रस्तो घनग्रस्तः पापदृश्यो भवान्भव। कलङ्की यक्ष्मणा ग्रस्तो भविष्यसि न संशयः ॥१७॥
चन्द्रं शप्त्वा तदा तूर्णं कामदेवं शशाप सा। तेजस्विना केनचित्त्वं भस्मीभूतो भविष्यसि ॥१८॥
चन्द्रस्तारां गृहीत्वा च कृत्वाऽपि रमणं व्रज। क्रोडे निधाय प्रययौ रुदतीं तां शुचाऽन्वितम् ॥१९॥
निर्जने निर्जने रम्ये शैले शैले मनोहरे। सरोनदनदीनां च तीरे तीरे मनोहरे ॥२०॥

---

रथ पर बैठा लिया और काम से उन्मत्त होने के नाते उस कामुक ने कामिनी का आलिगन करके चुम्बन किया। अनन्तर सम्भोग के लिए उद्यत चन्द्र से तारा ने कहा ॥९-१०॥

**तारा बोली**—हे चन्द्र! मुझे छोड़ दे, देवकुलकलङ्क! छोड़ मुझे, मैं तुम्हारी गुरुपत्नी और ब्राह्मणी हूँ, मैं सदा पतिव्रतधर्म का पालन करती हूँ। गुरुपत्नी के साथ समागम करने से सौ ब्रह्महत्याओं का भागी होना पड़ता है। गुरुपत्नी यदि ब्राह्मणपत्नी और पतिव्रता है, तो उसके साथ सम्भोग करने से सहस्रब्रह्महत्याओं का पाप लगता है ॥११-१२½॥ अतः हे सुरेश्वर। धैर्य धारण करो (देखो) मैं तुम्हारी माता हूँ, और तुम मेरे पुत्र हो। यदि ऐसा (अनुचित) कार्य करते हो, तो तुम्हें धिक्कार है और यह सुनते ही देवगुरु (बृहस्पति) तुम्हें भस्म कर देंगे। मेरे स्वामी के तुम शिष्य हो और उन्हें पुत्र से भी अधिक प्रिय हो। अतः रे पापी! ऐसा मत कर, मुझ माता को छोड़ दे और अपने धर्म की रक्षा कर, अन्यथा (नहीं तो) यदि मुझे फिर पकड़ेगा तो तुम्हें मैं स्त्रीहत्या का दोष लगाऊँगी। चन्द्रमा ने तारा की सभी बातें अनसुनी कर दीं और उसके साथ सम्भोग करने को पुनः उद्यत हो गया। यह देखकर तारा ने, जो निष्काम (कामरहित) एवं पतिव्रता थी, क्रुद्ध होकर उन्हें शाप दिया—'तुम राहु से ग्रस्त, मेघों से आच्छन्न और पापदृश्य (दर्शनमात्र से पापप्रद) हो जाओ। इसी प्रकार कलङ्की और यक्ष्मारोग से पीड़ित होगे', इसमें संशय नहीं ॥१३-१७॥ इस प्रकार चन्द्रमा को शाप देकर उसने कामदेव को भी शीघ्रता से शाप दिया—'किसी तेजस्वी पुरुष द्वारा तुम भस्म किये जाओगे।' हे व्रज! तदुपरान्त चन्द्रमा ने तारा को पकड़कर (बलात्) रमण किया और रोदन करती एवं बिलखती उस रमणी को पुनः अपने अङ्क में रखकर वहाँ से प्रस्थान कर दिया ॥१८-१९॥ अनन्तर निर्जन, रमणीक एवं मनोहर प्रत्येक पर्वत, सरोवर और नद-नदियों के मनोहर तटों पर स्थित पुष्पवाटिकाओं में, जो भौंरों और कोकिलों

मधुव्रतपिकोक्ते च पुष्पोद्याने सुपुष्पिते। रम्यायां पुष्पशय्यायां स रेमे रामया सह ॥२१॥
चंदनोक्षितसर्वाङ्गो मधुपानरतः सुरः। सुखसंभोगसंसक्तो बुबुधे न दिवानिशम् ॥२२॥
मलये मलयारण्ये मलयानिलसंयुते। स्यन्दने चन्दनवने पश्चिमोदधिसंनिधौ ॥२३॥
त्रिकूटे वटमूले च तत्र चन्द्रसरोवरे। सुचारुशतपत्राणां पत्रे चन्दनर्चचिते ॥२४॥
सुचारुचम्पकोद्याने चम्पकानिलपूजिते। क्षीरोदकाञ्चनीभूमौ क्रौञ्चकाञ्चनपर्वते ॥२५॥
रत्नशैले मणिमये मणिमन्दिरसुन्दरे। माणिक्यमुक्तासारेण हीरहारेण शोभिते ॥२६॥
सुचारुवस्त्रचित्राढये श्वेतचामरदर्पणैः। भूषिते रत्नदीपैश्च देवक्रीडे प्रियस्थले ॥२७॥
वारुणीं मदिरां पीत्वा वरुणानीसमन्वितः। वरुणो रमते यत्र तत्र रेमे तया सह ॥२८॥
पावने पवनोद्याने पारिजातानिलेन च। सुगन्धिमोहिते रत्नमालातीरे च निर्मले ॥२९॥
ऋक्षशैले कल्पवृक्षवने वह्निप्रियाश्रमे। पपौ च कामधेनूनां क्षीरं क्षीरोदधेस्तटे ॥३०॥
वह्निशुद्धांशुकयुगं वह्निस्तस्मै ददौ मुदा। वरुणो रत्नमालां च रत्नच्छत्रं समीरणः ॥३१॥
तत्र दृष्ट्वाऽसुरगुरुं बलिगेहात्समागतम्। प्रणम्य सर्वमुक्त्वा च चन्द्रस्तं शरणं ययौ ॥३२॥
शुक्रस्तं बोधयामास वचनं नीतियुक्तितः। निरपेक्षो मुनिश्रेष्ठो वेदवेदाङ्गपारगः ॥३३॥

---

की मधुरध्वनि से पूर्ण एवं विकसित पुष्पों से सुशोभित रमणीक पुष्प-शय्या पर उस सुन्दरी के साथ सुखपूर्वक सम्भोग किया। इस प्रकार चन्दनचर्चित सर्वाङ्ग किये चन्द्रमा मधु (आसव) पान करके तारा के साथ सुख सम्भोग करने में इतना संसक्त हो गया कि उसे दिन-रात का कुछ भी ज्ञान नहीं रहा ॥२०-२२॥ वह मलय पर्वत पर मलयानिलसेवित मलयवन में, रथ पर, चन्दन वन में, पश्चिम सागर के तट पर, त्रिकूट पर्वत पर, वट-मूल में, चन्द्र सरोवर में, उत्तम कमलों के चन्दन-चर्चित पत्तों पर, चम्पा के वायु से सुसेवित एवं अतिरमणीक चम्पकवाटिका में, क्षीरसागर की सुवर्णमयी भूमि पर, क्रौञ्चपर्वत, सुवर्णपर्वत, रत्नपर्वत एवं रत्नों के पर्वत पर, मणिमय स्थान एवं सुन्दर मणि-मन्दिर में, जो माणिक्य और मुक्ता के सारभाग एवं हीरा के हार से सुभूषित, अतिसुन्दर, चित्र-विचित्र वस्त्र, श्वेत चामर, दर्पण तथा रत्न दीपों से समलंकृत था, प्रियस्थल में, देवक्रीड में और वारुणी मदिरा पान करके वरुण जहाँ वरुणानी के साथ रमण करते हैं उस स्थान पर चन्द्रमा ने तारा के साथ सम्भोग किया। पुनः पावन पावनोद्यान में, पारिजात के वायु से सुगन्धित रत्नमाला नदी के निर्मल तट पर, ऋक्षपर्वत पर, कल्पवृक्ष के वन में और अग्निप्रिया (स्वाहा) के आश्रम में उसके साथ सम्भोग किया। फिर क्षीरसागर के तट पर कामधेनुओं के क्षीर का पान किया ॥२३-३०॥ वहाँ अग्नि ने अग्नि की भाँति विशुद्ध जोड़ा वस्त्र उसे हर्ष से प्रदान किया, वरुण ने रत्नमाला दी और वायु ने रत्न का छत्र समर्पित किया ॥३१॥ वहाँ उसे बलि के घर से लौटे हुए असुरों के गुरु शुक्राचार्य दिखायी पड़े। चन्द्रमा ने उन्हें प्रणाम करके अपना समस्त वृत्तान्त कहा और उनकी शरण ली। निरपेक्ष, वेद-वेदांग के पारगामी तथा मुनिश्रेष्ठ शुक्राचार्य नीतिपूर्ण बातों से उसे समझाने लगे ॥३२-३३॥

**शुक्र उवाच**

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि गुरवे देहि तारकाम्। शंभोश्च गुरुपुत्राय पौत्राय ब्रह्मणश्च वै ॥३४॥
पूजिताय सुराणां च देया तस्मै निशापते। प्रियाय तत्प्रियां दत्त्वा शीघ्रं त्वं शरणं व्रज ॥३५॥
गुरुपत्नीं मातृतुल्यां त्यज मद्वचनाद्विधो। कुरु पापक्षयं पापनिवृत्तिस्तु महाफला ॥३६॥
सतीनां गुरुपत्नीनां ग्रहणे च बलेन च। ब्रह्महत्यासहस्राणां पातकं लभते जनः ॥३७॥
कुम्भीपाके च पच्यन्ते यावद्वै ब्रह्मणः शतम्। साम्यं नारायणस्थाने तृणपर्वतयोः सुर ॥३८॥
कस्त्वं वत्स हरेः स्थाने कर्मभोगोऽस्ति ब्रह्मणः। नारायणाश्रिताः सर्वे जीविनस्त्रिविधा भवे ॥३९॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० भगवन्नन्दसं०
ताराहरणेऽशीतितमोऽध्यायः ॥८०॥

⊙

---

शुक्र बोले—वत्स ! सुनो, मैं कह रहा हूँ कि—गुरु (बृहस्पति) को जो शिव जी के गुरुपुत्र और ब्रह्मा के पौत्र हैं, तारा सौंप दो। निशापते ! तुम देवों के पूजित और प्रिय गुरु को, उनकी प्रिया (तारा) सौंपकर शीघ्र उनकी शरण में चले जाओ ॥३४-३५॥ हे विधो ! तुम मेरे कथनानुसार अपनी गुरुपत्नी को छोड़ दो, क्योंकि वे माता के समान हैं और अपने पाप का प्रक्षालन कर डालो, क्योंकि पाप से छुटकारा पाना महाफल है। पतिव्रता गुरुपत्नी के साथ बलात् सम्भोग करने से मनुष्य को सहस्रों ब्रह्महत्या के पातक का भागी होना पड़ता है ॥३६-३७॥ तथा कुम्भीपाकनरक में सौ ब्रह्मा की आयु पर्यन्त रहना पड़ता है। हे सुर ! नारायण के यहाँ तृण से लेकर पर्वत तक में समानता का व्यवहार होता है। इसलिए हे वत्स ! भगवान् के स्थान में जब ब्रह्मा को भी कर्म-भोग करना पड़ता है, तो तुम्हारी क्या बात है। संसार में देव-राक्षस और त्रिविध जीव सभी नारायण के आश्रित हैं ॥३८-३९॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद और नारायण के संवाद-प्रकरण में भगवान् और नन्द के संवाद में ताराहरण नामक अस्सीवाँ अध्याय समाप्त ॥८०।

⊙

# अथैकाशीतितमोऽध्यायः

श्रीकृष्ण उवाच

एतस्मिन्नन्तरे शुक्रः सुरश्रेणीं ददर्श सः। आकाशमार्गादायान्तीं रणशस्त्रास्त्रधारिणीम् ॥१॥
पताकानां त्रिकोटिश्च शतकोटिर्महारथाः। शतकोटिर्गजेन्द्राणां रथानां तच्चतुर्गुणम् ॥२॥
अश्वानां तच्छतगुणं समूहं च सुदारुणम्। पदातीनां समूहं च तुरङ्गेभ्यश्च षड्गुणम् ॥३॥
दुंदुभीवाद्यभाण्डानां पञ्चलक्षं तथैव च। पटहानां त्रिलक्षं च डिण्डिमानां द्विलक्षकम्[1] ॥४॥
ऐरावते महेन्द्रं च श्वेताश्वे धर्ममेव च। कुबेरं वरुणं वह्निं रथस्थं पवनं तथा ॥५॥
महिषस्थं यमं चैव स्यन्दनस्थं दिवाकरम्। ईशानं च [2]वृषेन्द्रस्थमनन्तं नागवाहम् ॥६॥
आदित्यांश्च वसून्रुद्रान्सिद्धगन्धर्वकिन्नरान्। जीवन्मुक्तमुनीनां च समूहं सूर्यवर्चसम् ॥७॥
तान्दृष्ट्वा निर्भयः शुक्रः समाश्वास्य निशाकरम्। सुराणां द्विगुणं सैन्यमाजुहाव व्रजेश्वर ॥८॥
रत्नमालानदीतीरे हुताशनप्रियाश्रमे। तत्र तस्थौ दैत्यसैन्यं पुण्यक्षीरोदधेस्तटे ॥९॥

---

## अध्याय ८१

### तारा-हरण

**श्रीकृष्ण बोले**—इसी बीच शुक्र ने आकाशमार्ग से आती हुई देव-सेना को देखा, जो युद्ध के शस्त्रास्त्र धारण किये थी ॥१॥ उस सेना में तीन करोड़ पताकाएँ, सौ करोड़ महारथ, सौ करोड़ गजेन्द्र, उसके चौगुने रथ, उसके सौगुने अति भीषण घोड़ों के समूह और घोड़ों के छहगुने अधिक पैदल चलने-वालों का समूह था ॥२-३॥ पाँच लाख दुन्दुभी आदि वाद्य भाण्ड, तीन लाख ढोल और दो लाख डिंडिम वाद्य थे ॥४॥ ऐरावत पर महेन्द्र, श्वेत घोड़े पर धर्म तथा कुबेर, वरुण, अग्नि और पवन रथ पर बैठे थे ॥५। भैंसे पर यमराज, रथ पर सूर्य, वृषेन्द्र पर महादेव और नाग पर अनन्त स्थित थे। आदित्यगण, वसुगण, रुद्रगण, सिद्ध, गन्धर्व, किन्नर एवं सूर्य के समान तेजस्वी और जीवन्मुक्त मुनियों के वृन्द थे ॥६-७॥ हे व्रजेश्वर ? उन देव-सेनाओं को देखकर शुक्र निर्भय रहे और चन्द्रमा को आश्वासन (धैर्य) देकर देवों की दुगुनी सेना बुलायी ॥८॥ दैत्यों की सेना पुण्य क्षीरसागर के तट के समीप रत्नमाला नदी के किनारे

---

१ ख. त्रि० । २ क. गजेन्द्र° ।

एतस्मिन्नन्तरे शुक्रः समीपे सरसस्तटे। पुण्याश्रमेऽक्षयवटे सुरसैन्यात्समागतम् ॥१०॥
ददर्श वृषभस्थं च शंकरं सर्वशंकरम्। त्रिशूलपट्टिशधरं व्याघ्रचर्माम्बरं वरम् ॥११॥
तेजःस्वरूपं परमं भक्तानुग्रहविग्रहम्। सर्वसंपत्प्रदातारं सर्वज्ञं सर्वकारणम् ॥१२॥
सर्वेश्वरं सर्वपूज्यं सर्वरूपं सनातनम्। शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणम् ॥१३॥
सस्मितं परमात्मानं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा। संत्रस्तः सहसोत्थाय प्रणनाम पदाम्बुजे ॥१४॥
ददौ शुभाशिषं तस्मै सुप्रसन्नः परात्परः। रत्नसिंहासने तं च वासयामास सादरम् ॥१५॥
अथ तत्रान्तरे विप्र पुरतस्तं ददर्श सः। शान्तं स्वयं विधातारं रत्नस्यन्दनसुन्दरम् ॥१६॥
वह्निशुद्धांशुकाधानं रत्नमालाविभूषितम्। प्रसन्नं सुस्मितं शुद्धं जगतामीश्वरं परम् ॥१७॥
कर्मणां फलदातारं तपोरूपं तपस्विनाम्। वेदानां जनकं वेदप्रसूं कान्तं मनोहरम् ॥१८॥
पुटाञ्जलिस्तदा त्रस्तः प्रणनाम सुरेश्वरम्। रत्नसिंहासने रम्ये वासयामास भक्तितः ॥१९॥
पूजां चकार भक्त्या च तयोश्चरणपङ्कजे। नोचितं कुशलप्रश्नं तयोः कल्याणमेव च ॥२०॥
विधाता जगतां नन्द शुक्राचार्यं पुरस्थितम्। सुनीतिं कथयामास यत्नतः शंभुसंमतः ॥२१॥

---

अग्निप्रिया के आश्रम में आकर ठहर गयी ॥९॥ इसी समय शुक्र ने समीपवाले सरोवर के तट पर स्थित पुण्याश्रमवाले अक्षयवटों के नीचे ठहरी हुई देव-सेना में से आये हुए शिव जी को देखा, जो वृष (बैल) पर स्थित समस्तकल्याणकारी, त्रिशूल और पट्टिश अस्त्र लिये, बाघम्बर पहने, परम तेजः स्वरूप, भक्तों के अनुग्रहार्थ देह धारण करनेवाले, सम्पूर्ण सम्पत्ति के प्रदाता, सर्वज्ञ, सबके कारण, सबके ईश्वर, सर्वपूज्य, सर्वरूप, सनातन, शरण में आये दीन-दुःखियों की रक्षा करने में तत्पर रहनेवाले, मन्दहासयुक्त, परमात्मा एवं ब्रह्मतेज से प्रज्वलित थे। शुक्र घबड़ाकर सहसा उठे और उनके चरण-कमल में सादर प्रणाम किया ॥१०-१४॥

अत्यन्त प्रसन्न होकर परात्पर भगवान् शिव ने उन्हें शुभाशिष प्रदान किया। पुनः शुक्र ने उन्हें सादर रत्न-सिंहासन पर सुखासीन कराया। हे विप्र! उसी बीच शुक्र ने सामने ब्रह्मा को देखा, जो शान्त स्वयं विधाता, रत्न के सुन्दर रथ पर स्थित, अग्नि विशुद्ध वस्त्र पहने, रत्नमाला से भूषित, प्रसन्न, मन्दहास-युक्त, शुद्ध जगत् के परम ईश्वर, कर्मों के फलदाता, तपस्विजनों के तपः स्वरूप, वेदों के जनक, वेदों के उत्पत्ति-स्थान, कान्त और मनोहर थे ॥१५-१८॥ त्रस्त शुक्र ने हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया और भक्तिपूर्वक रमणीक रत्न-सिंहासन पर सुरेश्वर को बैठाया। शुक्र ने बड़ी भक्ति से उन दोनों देवों के चरण-कमल की पूजा की और कल्याणस्वरूप होने के कारण उन दोनों से कुशल प्रश्न करना उचित नहीं समझा ॥१९-२०॥ अनन्तर जगद्विधाता ब्रह्मा ने शिव की सम्मति से सामने स्थित शुक्राचार्य से यत्नपूर्वक सुनीति कहना आरम्भ किया ॥२१॥

### ब्रह्मोवाच

शृणु शुक्र प्रवक्ष्यामि दुर्नीतिं शशिनः सुत। लज्जाकारं त्रिजगतां कर्म वेदबहिष्कृतम् ॥२२॥
स्नात्वा गृहोन्मुखीं तारां गुरुपत्नीं पतिव्रताम्। गृहीत्वा शरणापन्नस्त्वयि पापश्च सांप्रतम् ॥२३॥
प्रस्तुतं देवसैन्यं च पश्य वत्स रणोद्यतम्। अहं शंभुस्त्वत्समीपं तदर्थं च समागतौ ॥२४॥

### शंभुरुवाच

चन्द्रमानय हे विप्र यद्यात्मशिवमिच्छसि। संहरिष्ये शिरस्तस्य त्रिशूलेन च पापिनः ॥२५॥
अन्यथा संहरिष्यामि सर्वदैत्यान्क्षणेन च। मयि रुष्टे रक्षिता को दैत्यानां च भवेद्द्विज ॥२६॥
सद्यः पाशुपतेनैव वायव्यस्त्रेण च सांप्रतम्। सुराणां रिपुवर्गं च हरिष्यामि च लीलया ॥२७॥
दुर्वाससो मदंशस्य गुरुस्तस्याङ्गिरा मुनिः। परस्पराच्च संबन्धाद्गुरुपुत्रो गुरुर्मम ॥२८॥
बृहस्पतिश्च तेजस्वी तं भस्मीकर्तुमीश्वरः। न चकार कृपालुश्चेत्प्रियशिष्येण हेतुना ॥२९॥
उतथ्यपत्नीं दृष्ट्वा स पुरा रेमे स्वकामतः। तत्पतेः शापतोऽस्यैव परग्रस्ता प्रिया सती ॥३०॥
पत्नीं मद्गुरुपुत्रस्य देहि तारां मनोहराम्। मद्वैरिणं च चन्द्रं च भ्रातृभार्यापहारिणम् ॥३१॥
शरणागतदीनार्तं न हि रक्षेद्यदीश्वरः। पच्यते निरये तावद्यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥३२॥

---

**ब्रह्मा बोले**—हे सुत शुक्र ! सुनो, चन्द्रमा की दुर्नीति बताता हूँ, जो तीनों लोक में लज्जा-कारक और वेद-विरुद्ध कर्म है ॥२२॥ स्नान करके गृहगमन के लिए तैयार गुरु-पत्नी पतिव्रता तारा को बलात् अपनाकर यह पापी तुम्हारी शरण में रह रहा है। हे वत्स ! देखो, देवों की सेनाएँ इसीलिए युद्ध करने के लिए तैयार हैं। उसी निमित्त हम और शिव जी तुम्हारे यहाँ आये हैं ॥२३-२४॥

**शम्भु बोले**—हे विप्र ! यदि अपना कल्याण चाहते हो, तो चन्द्रमा को शीघ्र यहाँ उपस्थित करो। मैं इस त्रिशूल द्वारा उस पापी का सिर अलग करूँगा अन्यथा क्षणमात्र में सम्पूर्ण दैत्यों का संहार कर दूँगा, क्योंकि हे द्विज ! मेरे रुष्ट हो जाने पर दैत्यों की रक्षा कौन कर सकता है ? मैं अभी पाशुपत और वायु अस्त्र द्वारा देवों के शत्रुओं का लीलापूर्वक संहार कर दूँगा। अङ्गिरा मुनि मेरे अंश से उत्पन्न होनेवाले दुर्वासा के गुरु हैं। परस्पर के सम्बन्ध से बृहस्पति मेरे गुरुपुत्र हैं। तेजस्वी गुरु ही चन्द्रमा को भस्म कर सकते हैं, किन्तु प्रिय शिष्य होने के कारण कृपालुतावश उन्होंने वैसा नहीं किया। पूर्वकाल में बृहस्पति ने (अपने ज्येष्ठ भ्राता) उतथ्य की पत्नी को देखते ही कामातुर होकर उसके साथ रमण किया था। इसीलिए उसके पति उतथ्य के शापवश इनकी प्रिय पत्नी दूसरे से ग्रस्त हो गयी ॥२५-३०॥ मेरे गुरुपुत्र की मनोहर भार्या तारा तथा भ्राता की पत्नी का अपहरण करनेवाले मेरे वैरी चन्द्रमा को भी सौंप दो ॥३१॥ समर्थ पुरुष यदि शरण में प्राप्त दीन-दुःखी की रक्षा नहीं करता है, तो चौदह इन्द्रों के समय तक उसे नरक में पचना

अत्र नास्ति विचारो मे पापिष्ठे शरणागते । पापी यं शरणं याति स पापी च न संशयः ॥३३॥
देहि तं विप्रशार्दूल पापिनं मातृगामिनम् । बहिष्कृत्य स्वाश्रमाच्च तारासाध्वीसमन्वितम् ॥३४॥

## शुक्र उवाच

सुराणामसुराणां च सर्वेषां जगतामपि । त्वमेव शास्ता भगवान्को वा शास्ति सुरेऽसुरे ॥३५॥
कृत्वा सुराणां साहाय्यं कथं दैत्यान्हनिष्यसि । संहर्तुः सर्वजगतां दैत्यौघे किं च पौरुषम् ॥३६॥
त्वं ज्योतिः परमं ब्रह्म सगुणो निर्गुणः स्वयम् । गुणभेदान्मूर्तिभेदो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः ॥३७॥
बलिद्वारे गदापाणिः स्वयमेव भवान्प्रभो । स्वयं प्रदत्ता शक्राय तस्मै श्रीरपि लीलया ॥३८॥
क्षमस्व भगञ्छंभो हर क्रोधं च संहर । किं पौरुषं च भवतो ब्रह्मणस्यापि हिंसया ॥३९॥
अहं जीवञ्छरीरेण न दास्यामि निशाकरम् । शरणागतदीनार्तं लज्जितं पापसंयुतम् ॥४०॥
अहं च त्वत्पदाम्भोजे शरणं यामि शंकर । यथोचितं कुरु विभो जगत्सर्वं तथैव च ॥४१॥
शुक्रस्य वचनं श्रुत्वा प्रसन्नो भगवाञ्छिवः । इत्युवाच निशानाथं समानय शुभं भवेत् ॥४२॥
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा बोधयित्वा कविं विभुः । समानीय निशानाथं तारकासहितं व्रज ॥४३॥

---

पड़ता है। यहाँ अत्यन्त पापी के शरणागत होने पर मुझे उसका कुछ भी विचार नहीं करना है, क्योंकि पापी जिसकी शरण में जाता है वह भी पापी है, इसमें संशय नहीं ॥३२-३३॥ विप्रवर ! पतिव्रता तारा समेत उस मातृगामी पापी को अपने आश्रम से बाहर करके सौंप दो ॥३४॥

शुक्र बोले—देवों, असुरों एवं समस्त जगत् के तुम्हीं शासन करनेवाले भगवान् हो। देवों और असुरों पर अन्य और कौन शासन कर सकता है ? इसलिए देवों की सहायता करते हुए आप दैत्यों का संहार क्यों करेंगे ? आप समस्त जगत् के संहार करनेवाले हैं तो केवल दैत्य-समूहों पर क्या पौरुष दिखायेंगे ॥३५-३६॥ तुम ज्योतिःस्वरूप एवं स्वयं सगुण, निर्गुण, परब्रह्म हो। (सत्त्वादि) गुण-भेद के कारण ब्रह्मा, विष्णु और शिव रूप में प्रकट होकर तुम मूर्ति-भेद बनाये हुए हो। हे प्रभो ! बलि के दरवाजे पर गदा हाथ में लिये आप ही खड़े रहते हैं, तथा इन्द्र को और बलि को भी स्वयं आपने ही लीलापूर्वक राज्यलक्ष्मी प्रदान की है ॥३७-३८॥ हे भगवन् ! हे शम्भो ! हे हर ! आप क्रोध त्याग दें। ब्राह्मण की हिंसा करके आप कौन-सा पौरुष दिखलायेंगे ? मैं इस शरीर से जीवित रहते हुए उस चन्द्रमा को नहीं दे सकूँगा, जो मेरी शरण में प्राप्त, दीन, दुःखी, लज्जित और पापी हो गया है। इसलिए हे शङ्कर ! मैं तुम्हारे चरण-कमल की शरण में हूँ। हे विभो ! आपको जैसा उचित समझ पड़े, करें। आपके अधीन मैं ही नहीं अपितु सम्पूर्ण जगत् है। शुक्र की बात सुनकर भगवान् शिव ने प्रसन्न होकर कहा—(शुक्र !) निशानाथ चन्द्रमा को यहाँ लाओ। आने पर उसका कल्याण ही होगा ॥३९-४२॥ हे व्रज !' इस बीच अधीश्वर ब्रह्मा ने कवि शुक्र को समझा-बुझाकर तारा समेत चन्द्रमा को लाकर शिव के चरण-कमल में समर्पित कर दिया। शिव ने बड़े प्रेम से

शंभोश्च चरणाम्भोजे चकार च समर्पणम् । शंभुस्तं प्रीतियुक्तश्च वासयामास वक्षसि ॥४४॥
दत्त्वा तस्मै पादरेणुं निष्पापं च चकार सः । दत्त्वा तन्मस्तके हस्तं कृपालुरभयं ददौ ॥४५॥
क्षीरोदे स्नापयित्वा च प्रायश्चित्तेन शंकरः । चकार चन्द्रं निष्पापं ब्रह्मणा सहितः शुचिम् ॥४६॥
योगेन चन्द्रं योगीन्द्रो द्विखण्डं तं चकार सः । ररक्षार्धं ललाटे च सोऽप्यर्धं ब्रह्मणः पुरः ॥४७॥
अत एव महादेवो बभूव चन्द्रशेखरः । मृगाङ्को लज्जितस्तत्र कलङ्की देवसंसदि ॥४८॥
लज्जया च स्वयोगेन देहत्यागं चकार सः । तच्छरीरं च क्षीरोदे ब्रह्मणा च समर्पितम् ॥४९॥
रुरोदात्रिश्च कृपया शुचा क्षीरोदधेस्तटे । अत्रेश्चक्षुर्जलं तस्य पपात च जले व्रज ॥५०॥
तस्माद्बभूव चन्द्रश्च निष्पापो देवसंसदि । ब्रह्मा च भगवाञ्छंभुरभिषेकं चकार तम् ॥
उवाच तं महादेवो निर्भयं देवसंसदि ॥५१॥

## महादेव उवाच

स्वस्थानं गच्छ पुत्र त्वं कुरुष्व विषयं मुदा । पश्चात्तस्याश्च[1] शापेन यक्ष्मग्रस्तो भविष्यसि ॥५२॥
व्यर्थं पतिव्रताशापं कर्तुमीशश्च को भुवि । मदाशिषा यक्ष्मणश्च प्रतीकारो भविष्यति ॥५३॥

---

चन्द्रमा को अपने हृदय से लगा लिया ॥४३-४४॥ फिर उन्होंने अपना चरण-रज देकर चन्द्रमा को निष्पाप कर दिया। कृपालु शिव ने उसके मस्तक पर हाथ फेरकर अभय प्रदान किया। पश्चात् शिव और ब्रह्मा ने प्रायश्चित्त के निमित्त चन्द्रमा को क्षीरसागर में स्नान कराकर एकदम उन्हें पापरहित एवं पवित्र कर दिया। अनन्तर योगीन्द्र शिव ने योग द्वारा चन्द्रमा को दो खण्डों में विभक्त करके एक खण्ड को ब्रह्मा के सामने ही अपने ललाट पर रख लिया। अतएव महादेव तभी से चन्द्रशेखर कहे जाने लगे। और दूसरा खण्ड, जिसमें मृग का चिह्न अङ्कित है, कलङ्की होने के नाते वहाँ देवों के बीच लज्जित होने लगा ॥४५-४८॥ उपरान्त उसने योग द्वारा अपनी देह का त्याग कर दिया और ब्रह्मा ने इस शरीर को क्षीरसागर में डाल दिया। यह देखकर वहाँ क्षीरसागर के तट पर स्थित अत्रिमुनि करुणावश रोदन करने लगे। हे व्रज ! अत्रिमुनि के नेत्रों का जल क्षीरसागर के जल में ज्यों पड़ा, उसी क्षण चन्द्रमा पापरहित हो गये ॥४९-५०॥ अनन्तर भगवान् शिव और ब्रह्मा ने चन्द्रमा का अभिषेक किया तथा महादेव जी ने देवों की सभा में उस निर्भय चन्द्रमा से कहा ॥५१॥

**महादेव बोले**—हे पुत्र ! अब तुम अपने घर जाओ और सहर्ष विषय का उपभोग करो। पश्चात् तुम्हें तारा के शापवश यक्ष्मा से पीड़ित होना पड़ेगा ॥५२॥ भूतल में पतिव्रता का शाप व्यर्थ करने में कौन समर्थ हो सकता है ? किन्तु मेरे आशीर्वाद से तुम्हारे यक्ष्मा (रोग) का भी प्रतीकार हो जायगा। हे

---

१ क. 'श्चाच्छ्वशुरशा'।

यस्माद्भाद्रचतुर्थ्यां तु गुरुपत्नीक्षतिः[1] कृता। तस्मात्तस्मिन्दिने वत्स पापदृश्यो युगे युगे ॥५४॥
नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि। अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥५५॥
देहत्यागेन हे वत्स कर्मभोगो न नश्यति। प्रायश्चित्तान्न संदेहो ह्यस्तमेव भविष्यति ॥५६॥
तारापहरणाद्वत्स कलङ्कश्चन्द्रमण्डले। मृगाकृतिर्विलग्नश्च भविष्यति युगे युगे ॥५७॥
शृणु वाक्यमिहाऽऽगच्छ तारके च पतिव्रते। सत्यं ब्रूहि कस्य गर्भं त्यक्त्वा शुद्धा भव प्रिये ॥५८॥
अकामतो बलात्साध्वी न स्त्री जारेण दुष्यति। कामतो नरकं याति यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥५९॥
उवाच तारा ब्रह्माणं गर्भं चन्द्रस्य सस्मितम्। जहसुर्देवताः सर्वाः शंभुश्च मुनिसंघकाः ॥६०॥
ददौ तारां च गुरवे लज्जिताय व्रजेश्वर। बृहस्पतिर्ययौ गेहं गृहीत्वा च पतिव्रताम् ॥६१॥
तया प्रसूतं पुत्रं च सुन्दरं कनकप्रभम्। गृहीत्वा प्रययौ चन्द्रो नमस्कृत्य विधिं शिवम् ॥६२॥
ययुर्देवाश्च मुनयः शंभुश्च कमलोद्भवः। प्रययौ स्वगृहं शुक्रो दैत्ययुक्तो मुदाऽन्वितः ॥६३॥
एतत्ते कथितं नन्द ह्याख्यानं पुण्यदं शुभम्। एतच्छ्रुत्वा तु निष्पापो निष्कलङ्को नरो भवेत् ॥६४॥
धन्यं यशस्यमायुष्यं सर्वसंपत्करं परम्। शोकापनोदनं हर्षकरं सर्वत्र मङ्गलम् ॥६५॥

---

वत्स ! भादों चतुर्थी में तुमने गुरुपत्नी (तारा) को क्षति पहुँचायी है, इसलिए प्रत्येक युग में उस दिन तुम पापदृश्य (देखने से पापप्रद) रहोगे ॥५३-५४॥ क्योंकि सैकड़ों करोड़ कल्पों के बीत जाने पर भी बिना भोग किये कर्म नष्ट नहीं होता है। इसलिए अपना किया हुआ शुभ (पुण्य)-अशुभ (पाप) कर्म भोगना पड़ता है। हे वत्स ! देह त्याग करने से भी कर्म-भोग नष्ट नहीं होता है, किन्तु प्रायश्चित्त करने से वह निःसन्देह नष्ट हो जाता है ॥५५-५६॥ हे वत्स ! तारा का अपहरण करने के फलस्वरूप चन्द्रमा में मृग के आकार का कलङ्क प्रत्येक युग में लगा रहेगा। पतिव्रते, यहाँ आओ, बात सुनो। सच बोलो, यह गर्भ किसका है। प्यारी ! इसे त्यागकर शुद्ध हो जाओ। न चाहती हुई पतिव्रता स्त्री जार पुरुष द्वारा बलपूर्वक भोगी जाने पर दूषित नहीं होती है और चाह के साथ उपभोग कराने पर उसे चन्द्र-सूर्य के समय तक नरक में निवास करना पड़ता है ॥५७-५९॥ तदुपरान्त तारा ने मुसकराकर ब्रह्मा से कहा—यह गर्भ चन्द्रमा का है। इसे सुनकर सभी देवगण, शिव और मुनि वृन्द हँसने लगे ॥६०॥ हे व्रजेश्वर ! लज्जित बृहस्पति को ब्रह्मा ने तारा सौंप दी। गुरु इस पतिव्रता को साथ लिये अपने घर चले गये। तारा ने उसी स्थान पर पुत्र प्रसव भी किया था, जो सुन्दर एवं सुवर्ण के समान कान्तिमान् था। उसे चन्द्रमा ने अपना लिया और शिव तथा ब्रह्मा को नमस्कार करके बालक को लेकर अपने घर चले गये। अनन्तर देवलोग, मुनि-समूह, शिव और ब्रह्मा भी अपने-अपने घर चले गये तथा शुक्र भी दैत्यों समेत प्रसन्न चित्त से अपने घर गये। हे नन्द ! इस प्रकार पुण्यप्रद और शुभ यह आख्यान तुम्हें सुना दिया, जिसे सुनकर मनुष्य निष्पाप और निष्कलङ्क होता है ॥६१-६४॥ यह (आख्यान) धन्य, यशस्वी, आयुवर्धक, समस्त सम्पत्तिदायक, शोकनाशक, हर्षकारक और सर्वत्र मङ्गलमय है। अतः हे व्रजेश्वर नन्द ! शोक त्याग दो, घर जाओ और

---

१ क. क्षता कृ॰।

त्यज शोकं सदा नन्द गृहं व्रज व्रजेश्वर। ब्रूहि सर्वं यशोदां च मत्प्रसूं गोपिकागणम् ॥६६॥
बोधयिष्यसि सर्वां तां स्त्रीजातिं शोकसंयुताम्। मदीयज्ञानदत्तेन हर्षयुक्तः सदा भव ॥६७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्म० उत्त० नारदना० ताराहरणं
नामैकाशीतितमोऽध्यायः ॥८१॥

•

# अथ द्व्यशीतितमोऽध्यायः

**नन्द उवाच**

श्रुतं सर्वं महाभाग दुःस्वप्नं कथय प्रभो। उवाच तं वै भगवाञ्छ्रूयतामिति तद्वचः ॥१॥

**श्रीभगवानुवाच**

स्वप्ने हसति यो हर्षाद्विवाहं यदि पश्यति। नर्तनं गीतमिष्टं च विपत्तिस्तस्य निश्चितम् ॥२॥
दन्ता यस्य विपीड्यन्ते विचरन्तं च पश्यति। धनहानिर्भवेत्तस्य पीडा चापि शरीरजा ॥३॥

---

मेरी जननी यशोदा समेत समस्त गोपियों से यह सब कहो ॥६५-६६॥ फिर सभी शोकाकुल स्त्रियों को समझाना और स्वयं मेरे दिये हुए ज्ञान द्वारा सदा प्रसन्न रहना ॥६७॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण में श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद और नारायण के संवाद में
तारा-हरण नामक इक्यासीवाँ अध्याय समाप्त ॥८१॥

•

## अध्याय ८२

### दुःस्वप्न और उसकी शान्ति

**नन्द बोले**—हे महाभाग, हे प्रभो! मैंने सब कुछ सुन लिया है, अब दुःस्वप्न का फल बतायें! भगवान् ने उनकी बात पर कहा कि सुनिये ॥१॥

**श्रीभगवान् बोले**—जो स्वप्न में हर्षातिरेक से हँसता है या विवाह और मनोनुकूल नाच-गाना देखता है, उसके लिए विपत्ति निश्चित है ॥२॥ जिसके दाँत तोड़े जाते हैं या उन्हें गिरते हुए देखता है, उसके धन की हानि और शारीरिक पीड़ा उत्पन्न होती है ॥३॥ जो शरीर में तेल लगाये गधा, ऊँट या भैंसे पर

अभ्यङ्गितस्तु तैलेन यो गच्छेद्दक्षिणां दिशम्। खरोष्ट्रमहिषारूढो मृत्युस्तस्य न संशयः ॥४॥
स्वप्ने कर्णे[1] जपापुष्पमशोकं करवीरकम्। विपत्तिस्तस्य तैलं च लवणं यदि पश्यति ॥५॥
नग्नां कृष्णां छिन्ननासां शूद्रस्य विधवां तथा। कपर्दकं तालफलं दृष्ट्वा शोकमवाप्नुयात् ॥६॥
स्वप्ने रुष्टं ब्राह्मणं च ब्राह्मणीं कोपसंयुताम्। विपत्तिश्च भवेत्तस्य लक्ष्मीर्याति गृहाद्ध्रुवम् ॥७॥
वनपुष्पं रक्तपुष्पं पलाशं च सुपुष्पितम्। कार्पासं शुक्लवस्त्रं च दृष्ट्वा दुःखमवाप्नुयात् ॥८॥
गायन्तीं च हसन्तीं च कृष्णाम्बरधरां स्त्रियम्। दृष्ट्वा कृष्णां च विधवां नरो मृत्युमवाप्नुयात् ॥९॥
देवता यत्र नृत्यन्ति गायन्ति च हसन्ति च। आस्फोटयन्ति धावन्ति तस्य देहो मरिष्यति ॥१०॥
वान्तं मूत्रं पुरीषं च वैद्यं रौप्यं सुवर्णकम्। प्रत्यक्षमथवा स्वप्ने जीवितं दशमावधि ॥११॥
कृष्णाम्बरधरां नारीं कृष्णमाल्यानुलेपनाम्। उपगूहति यः स्वप्ने तस्य मृत्युर्भविष्यति ॥१२॥
मृतवत्सं च मुण्डं च मृगस्य च नरस्य च। यः प्राप्नोत्यस्थिमालां च विपत्तिस्तस्य निश्चितम् ॥१३॥
रथं खरोष्ट्रसंयुक्तमेकाकी योऽधिरोहयेत्। तत्रस्थोऽपि च जागर्ति मृत्युरेव न संशयः ॥१४॥
अभ्यङ्गितस्तु हविषा क्षीरेण मधुनाऽपि च। तक्रेणापि गुडेनैव पीडा तस्य विनिश्चितम् ॥१५॥

---

बैठे दक्षिण दिशा हो जाता है उसकी निःसन्देह मृत्यु होती है ॥४॥ स्वप्न में अपने कान में लगे जपा-पुष्प (अड़हुल), अशोक और कनेर (कनैल) के पुष्प को तथा तेल और नमक को देता है, उसे विपत्ति प्राप्त होती है। नंगी, काली और नक-कटी शूद्र की विधवा स्त्री एवं कौड़ी तथा ताड़फल देखने से शोक प्राप्त होता है ॥५-६॥ स्वप्न में रुष्ट ब्राह्मण और क्रुद्ध ब्राह्मणी को देखने पर विपत्ति प्राप्त होती है और लक्ष्मी उसके घर से निश्चित चली जाती है। जंगली फूल, लाल फूल, पलाश पुष्प, कपास और श्वेत वस्त्र देखने से दुःख प्राप्त होता है ॥७-८॥ काला वस्त्र पहने गान करती एवं हँसती हुई स्त्री तथा काले वर्ण की विधवा को देखने से मनुष्य को मृत्यु प्राप्त होती है। जिस मनुष्य के स्वप्न में देवता नृत्य-गान करते, हँसते, ताल ठोंकते और दौड़ते दिखायी देते हैं उसका निश्चित मरण होता है ॥९-१०॥ स्वप्न में वमन, मूत्र, मल, वैद्य, चांदी और सुवर्ण प्रत्यक्ष देखने से दस दिन के भीतर जीवन पर संकट आता है। जो पुरुष स्वप्न में काला वस्त्र, काले रङ्ग की माला धारण करनेवाली तथा कृष्णाङ्गराग लगानेवाली स्त्री का आलिङ्गन करता है, उसकी मृत्यु होती है ॥११-१२॥ मृतक बछड़ा, मृग या मनुष्य का मुण्ड अथवा अस्थियों (हड्डियों) की माला जिसे स्वप्न में प्राप्त होती है, उस पर निश्चित विपत्ति आती है। गधे या ऊँट जुते हुए रथ पर जो अकेले बैठता है और बैठने पर जाग जाता है, तो उसे निःसन्देह मृत्यु प्राप्त होती है ॥१३-१४॥ जो अपने को घी, दूध, शहद, मट्ठा या गुड़ से सराबोर देखता है, उसे निश्चित पीड़ा प्राप्त होती है। जो स्वप्न में रक्त वस्त्र,

---

१ क. चूर्णं।

रक्ताम्बरधरां नारीं रक्तमाल्यानुलेपनाम् । उपगूहति यः स्वप्ने तस्य व्याधिर्विनिश्चितम् ॥१६॥
पतितान्नखकेशांश्च निर्वाणाङ्गारमेव च । भस्मपूर्णां चितां दृष्ट्वा लभते मृत्युमेव च ॥१७॥
श्मशानं शुष्ककाष्ठं च तृणानि लोहमेव च । शमीं च किंचित्कृष्णाश्वं दृष्ट्वा दुःखं लभेद्ध्रुवम् ॥१८॥
पादुकां फलकं रक्तं पुष्पमाल्यं भयानकम् । माषं मसूरं मुद्गं वा दृष्ट्वा सद्यो व्रणं लभेत् ॥१९॥
कटकं सरठं काकं भल्लूकं वानरं गवम् । पूयं गात्रमलं स्वप्ने केवलं व्याधिकारणम् ॥२०॥
भग्नभाण्डं क्षतं शूद्रं गलत्कुष्ठं च रोगिणम् । रक्ताम्बरं च जटिलं सूकरं महिषं खरम् ॥२१॥
अन्धकारं महाघोरं मृतजीवं भयंकरम् । दृष्ट्वा स्वप्ने योनिलिङ्गं विपत्तिं लभते ध्रुवम् ॥२२॥
कुवेषरूपं म्लेच्छं च यमदूतं भयंकरम् । पाशहस्तं पाशशस्त्रं दृष्ट्वा मृत्युं लभेन्नरः ॥२३॥
ब्राह्मणो ब्राह्मणी बाला बालको वा सुतः सुता । विलापं कुरुते कोपाद्दृष्ट्वा दुःखमवाप्नुयात् ॥२४॥
कृष्णं पुष्पं च तन्माल्यं सस्यं शस्त्रास्त्रधारिणम् । म्लेच्छां च विकृताकारां दृष्ट्वा मृत्युं-
लभेद्ध्रुवम् ॥२५॥
त्यक्तप्राणं मृतं दृष्ट्वा मृत्युं च लभते ध्रुवम् । मत्स्यादि धारयेद्यो हि तद्भ्रातुर्मरणं ध्रुवम् ॥२६॥
वाद्यं च नर्तनं गीतं गायनं रक्तवाससम् । मृदङ्गं वाद्यमानं तं दृष्ट्वा दुःखं लभेद्ध्रुवम् ॥२७॥

---

रक्त पुष्पों की माला और अंगराग से युक्त स्त्री का आलिङ्गन करता है, उसे निश्चित व्याधि घेरती है ॥१५-१६॥ गिरे हुए नाखून, केश, बुझा हुआ कोयला और राख की ढेरवाली चिता देखने से मृत्यु प्राप्त होती है। श्मशान, सूखा काठ, तृण, लोहा, शमी वृक्ष और कुछ काले रंग का घोड़ा देखने से निश्चित दुःख प्राप्त होता है ॥१७-१८॥ खड़ाऊँ, ललाट की हड्डी, रक्त पुष्पों की भयानक माला, उड़द, मसूर और मूंग देखने से तुरन्त (शरीर में) व्रण हो जाता है। स्वप्न में सेना, गिरगिट, कौवा, भालू, वानर, नीलगाय तथा पीव (शरीर का मल) देखने से केवल रोग उत्पन्न होते हैं ॥१९-२०॥

स्वप्न में फूटा बर्तन, घाव, गलत्कुष्ठ का रोगी, रक्तवस्त्र, जटाधारी, सूकर, भैंसा, गधा, महाघोर अन्धकार, भयङ्कर मृतक जीव, योनि और लिङ्ग देखने से निश्चित विपत्ति प्राप्त होती है ॥२१-२२॥ निन्दित वेष और रूपवाला म्लेच्छ, हाथ में पाश और शस्त्र लिये भीषण यमदूत एवं पाश शस्त्र देखने से मनुष्य को मृत्यु प्राप्त होती है। स्वप्न में ब्राह्मण, ब्राह्मणी स्त्री, बालक, पुत्र और पुत्री कुपित होकर विलाप करते दिखायी दें तो दुःख प्राप्त होता है ॥२३-२४॥ काला पुष्प, काले पुष्पों की माला, फसल, शस्त्र-अस्त्रधारी व्यक्ति और विकृत आकारवाली म्लेच्छ स्त्री को देखने से निश्चित मृत्यु प्राप्त होती है। स्वप्न में जो मत्स्य आदि धारण करता है, उसके भ्राता का निश्चित मरण होता है ॥२५-२६॥ वाद्य (बाजा) नृत्य, गीत, गायन, रक्त वस्त्र एवं बजते हुए मृदङ्ग को देखने से दुःख प्राप्त होता है। घायल,

---

१ क. विदार्यं ।

छिन्नं वाऽपि कबन्धं वा विकृतं मुक्तकेशिनम्। क्षिप्रं नृत्यं च कुर्वन्तं दृष्ट्वा मृत्युं लभेन्नरः ॥२८॥
मृतो वाऽपि मृता वाऽपि कृष्णा म्लेच्छा भयानका। उपगूहति यं स्वप्ने तस्य मृत्युर्विनिश्चितम् ॥२९॥
येषां दन्ताश्च भग्नाश्च केशाश्चापि पतन्ति हि। धनहानिर्भवेत्तस्य पीडा वा तच्छरीरजा ॥३०॥
उपद्रवन्ति यं स्वप्ने शृङ्गिणो दंष्ट्रिणोऽपि वा। बालका मानवाश्चैव तस्य राजकुलाद्भयम् ॥३१॥
छिन्नवृक्षं पतन्तं च शिलावृष्टिं तुषं क्षुरम्। रक्ताङ्गारं भस्मवृष्टिं दृष्ट्वा दुःखमवाप्नुयात् ॥३२॥
गृहं पतन्तं शैलं वा धूमकेतुं भयानकम्। भग्नस्कन्धं तरोर्वाऽपि दृष्ट्वा दुःखमवाप्नुयात् ॥३३॥
रथगेहशैलवृक्षगोहस्तितुरगाम्बरात्। भूमौ पतति यः स्वप्ने विपत्तिस्तस्य निश्चितम् ॥३४॥
उच्चैः पतन्ति गर्तेषु भस्माङ्गारयुतेषु च। क्षारकुण्डेषु चूर्णेषु मृत्युस्तेषां न संशयः ॥३५॥
बलाद्गृह्णाति दुष्टश्चच्छत्रं च यस्य मस्तकात्। पितुर्नाशो भवेत्तस्य गुरोर्वाऽपि नृपस्य वा ॥३६॥
सुरभिर्यस्य गेहाच्च याति त्रस्ता सवत्सिका। प्रयाति पापिनस्तस्य लक्ष्मीरपि वसुंधरा ॥३७॥
पाशेन कृत्वा बद्धं च यं गृहीत्वा प्रयान्ति च। यमदूताश्च ये म्लेच्छास्तस्य मृत्युर्विनिश्चितम् ॥३८॥
गणको ब्राह्मणो वाऽपि ब्राह्मणी वा गुरुस्तथा। परिरुष्टः शपति यं विपत्तिस्तस्य निश्चितम् ॥३९॥
विरोधिनश्च काकाश्च कुक्कुटा भल्लुकास्तथा। पतन्त्यागत्य यद्गात्रे तस्य मृत्युर्न संशयः ॥४०॥

---

बिना सिर का (धड़), खुले केशवाले तथा शीघ्रता से नृत्य करते हुए बेडौल प्राणी को देखकर मृत्यु को प्राप्त करता है ॥२७-२८॥ काले वर्ण का मृतक म्लेच्छ या काले रङ्ग की मृतक एवं भीषण म्लेच्छ स्त्री स्वप्न में जिसका आलिंगन करती है उसकी निश्चित मृत्यु होती है। जिनके दाँत या केश भग्न होकर गिरते हैं, उसके धन की हानि और शारीरिक पीड़ा होती है ॥२९-३०॥ सींगवाले या दाँतवाले जीव अथवा बालक या युवा पुरुष जिसके साथ उपद्रव करते हैं, उसे राजकुल से भय प्राप्त होता है। कटकर गिरते हुए वृक्ष, पत्थर की वर्षा, भूसी, छूरा, लाल अंगारा और भस्म (राख) की वर्षा देखने से दुःख प्राप्त होता है ॥३१-३२॥ गिरते हुए गृह या पर्वत, भयानक धूमकेतु अथवा वृक्ष के टूटे स्कन्ध को देखने से दुःख प्राप्त होता है। जो स्वप्न में रथ, घर, पर्वत, वृक्ष, गौ, हाथी और आकाश से भूमि पर गिरता है, उसे निश्चित विपत्ति प्राप्त होती है ॥३३-३४॥ जो ऊँचाई से राख या अंगारयुक्त गड्ढों में, क्षारकुण्डों तथा चूनों पर गिरता है, उसकी निश्चित मृत्यु होती है। जिसके मस्तक पर से कोई दुष्ट बलपूर्वक छत्र ले लेता है, उसके पिता, गुरु या राजा का अवश्य नाश होता है ॥३५-३६॥ जिसके घर से बछड़ा समेत गौ भयभीत होकर निकल जाती है, उस पापी के घर से लक्ष्मी और पृथिवी अवश्य निकल जाती हैं। यम के दूत या म्लेच्छगण जिसे पाश से बाँधकर पकड़े हुए जाते हैं उसकी निश्चित मृत्यु होती है ॥३७-३८॥ ज्योतिषी, ब्राह्मण, ब्राह्मणी या गुरु रुष्ट होकर जिसे शाप देते हैं, उस पर निश्चित ही विपत्ति आती है। शत्रु, कौवे, मुर्गे और भालू जिसके शरीर पर टूट पड़ते हैं, उसकी निःसन्देह मृत्यु होती है ॥३९-४०॥

---

१ ख. 'धं नरं वा।

महिषा भल्लुका उष्ट्राः सूकरा गर्दभास्तथा । रुष्टा धावन्ति यं स्वप्ने स रोगी निश्चितं भवेत् ॥४१॥
रक्तचन्दनकाष्ठानि घृताक्तानि जुहोति यः । गायत्र्याश्च सहस्रेण तेन शान्तिर्विधीयते ॥४२॥
सहस्रधा जपेद्यो हि भक्त्यैनं मधुसूदनम् । निष्पापो हि भवेत्सोऽपि दुःस्वप्नः सुस्वप्नो भवेत् ॥४३॥
अच्युतं केशवं विष्णुं हरिं सत्यं जनार्दनम् । हंसं नारायणं चैव ह्येतन्नामाष्टकं शुभम् ॥४४॥
शुचिः पूर्वमुखः प्राज्ञो दशकृत्वश्च यो जपेत् । निष्पापोऽपि भवेत्सोऽपि दुःस्वप्नः शुभवान्भवेत् ॥४५॥
विष्णुं नारायणं कृष्णं माधवं मधुसूदनम् । हरिं नरहरिं रामं गोविन्दं दधिवामनम् ॥४६॥
भक्त्या चेमानि नामानि दश भद्राणि यो जपेत् । शतकृत्यो भक्तियुक्तो जप्त्वा नीरोगतां व्रजेत् ॥४७॥
लक्षधा हि जपेद्यो हि बन्धनान्मुच्यते ध्रुवम् । जप्त्वा च दशलक्षं च महावन्ध्या प्रसूयते ॥४८॥
हविष्याशी यतः शुद्धो दरिद्रो धनवान्भवेत् । शतलक्षं च जप्त्वा च जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥४९॥
ॐ नमः शिवं दुर्गां गणपतिं कार्तिकेयं दिनेश्वरम् । धर्मं गङ्गां च तुलसीं राधां लक्ष्मीं सरस्वतीम् ॥५०॥
नामान्येतानि भद्राणि जले स्नात्वा च यो जपेत् । वाञ्छितं च लभेत्सोऽपि दुःस्वप्नः शुभवान्भवेत् ॥५१॥
ॐ ह्रीं क्लीं पूर्वदुर्गतिनाशिन्यै महामायायै स्वाहा । कल्पवृक्षो हि लोकानां मन्त्रः सप्तदशाक्षरः ॥५२॥

---

स्वप्न में जिसके ऊपर रुष्ट होकर भैंसा, भालू, ऊँट, सूअर और गधा दौड़ते हैं, वह निश्चित रोगी होता है। रक्तचन्दन की लकड़ियों को घृत में भिगोकर गायत्री मंत्र द्वारा सहस्र आहुति प्रदान करने पर दुःस्वप्न की शान्ति हो जाती है ॥४१-४२॥ भक्तिपूर्वक भगवान् 'मधुसूदन' का नाम सहस्र बार जप करने से वह मनुष्य निष्पाप हो जाता है और उसका दुःस्वप्न सुखप्रद हो जाता है। अच्युत, केशव, विष्णु, हरि, सत्य, जनार्दन, हंस और नारायण, इन आठ शुभ नामों का पवित्रतापूर्वक पूर्वाभिमुख होकर दस बार जप करने से बुद्धिमान् व्यक्ति पापरहित होता है और उसका दुःस्वप्न शुभप्रद हो जाता है। विष्णु, नारायण, कृष्ण, माधव, मधुसूदन, हरि, नरहरि, राम, गोविन्द और दधिवामन, इन कल्याणकारी दस नामों का भक्तिपूर्वक सौ बार जप करने से मनुष्य नीरोग होता है। जो लाख बार जप करता है, वह निश्चित रूप से बन्धन-मुक्त होता है। दस लाख जप करने से महावन्ध्या भी प्रसव करती हैं। हविष्य भोजन करते हुए शुद्धिपूर्वक जपते रहने पर दरिद्र धनवान् होता है और सौ लाख इसका जप करने से मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है। ॐ नमः शिव, दुर्गा, गणपति, कार्तिकेय, सूर्य, धर्म, गङ्गा, तुलसी, राधा, लक्ष्मी और सरस्वती इन भद्र नामों का स्नान करके जल में जप करने से अभीष्ट-सिद्धि होती है और दुःस्वप्न शुभप्रद हो जाता है ॥४३-५१॥ 'ॐ ह्रीं क्लीं पूर्वदुर्गतिनाशिन्यै महामायायै स्वाहा।' यह सत्रह अक्षरों का मंत्र लोगों के लिए कल्पवृक्ष

शुचिश्च दशधा जप्त्वा दुःस्वप्नः सुखवान्भवेत् । शतलक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम् ।।५३।।
सिद्धमन्त्रस्तु लभते सर्वसिद्धिं च वाञ्छिताम् । ॐ नमो मृत्युंजयायेति स्वाहान्तं लक्षधा जपेत् ।।५४।।
दृष्ट्वा च मरणं स्वप्ने शतायुश्च भवेन्नरः । पूर्वोत्तरमुखो भूत्वा स्वप्नं प्राज्ञे प्रकाशयेत् ।।५५।।
काश्यपे दुर्गते नीचे देवब्राह्मणनिन्दके । मूर्खे चैवानभिज्ञे च न च स्वप्नं प्रकाशयेत् ।।५६।।
अश्वत्थे गणके विप्रे पितृदेवासनेषु च । आर्ये च वैष्णवे मित्रे दिवा स्वप्नं प्रकाशयेत् ।।५७।।
इति ते पुण्यमाख्यातं कथितं पापनाशनम् । धन्यं यशस्यमायुष्यं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ।।५८।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० भगवन्नन्दसं०
द्व्यशीतितमोऽध्यायः ।।८२।।

---

के समान है ।।५२।। पवित्र होकर इसके दस बार जप करने से दुःस्वप्न सुखप्रद हो जाता है। सौ लाख जप करने से मनुष्यों को इस मंत्र की सिद्धि हो जाती है, और मंत्र सिद्ध हो जाने पर सभी वांछित सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं ।।५३-५४।।

स्वप्न में मरण देखकर 'ॐ नमो मृत्युञ्जयाय स्वाहा' मंत्र का एक लाख जप करने से मनुष्य सौ वर्ष की आयु प्राप्त करता है। पूर्व या उत्तर मुख होकर विद्वान् व्यक्ति से अपना स्वप्न कहना चाहिए, किन्तु काश्यपगोत्री, दरिद्र, नीच, देवों एवं ब्राह्मणों के निन्दक, मूर्ख और अनभिज्ञ को स्वप्न नहीं बताना चाहिए ।।५५-५६।। अश्वत्थ (पीपल) ज्योतिषी, ब्राह्मण, पितरों और देवों के आसनों, आर्य, वैष्णव और मित्र से दिन का स्वप्न कहना चाहिए। इस प्रकार पापनाशक, धन्य, यश और आयु का वर्द्धक यह पुण्य आख्यान तुम्हें बता दिया; अब और क्या सुनना चाहते हो? ।।५७-५८।।

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद और नारायण के संवाद में भगवान् और नन्द विषयक संवाद वर्णन नामक बयासीवाँ अध्याय समाप्त ।।८२।।

# अथ त्र्यशीतितमोऽध्यायः

## नन्द उवाच

वेदानां कारणं त्वं च ब्रह्मादीनां च पुत्रक। सर्वं कथय भद्रं ते कं पृच्छामि त्वया विना ॥१॥
विप्राणां यो हि धर्मश्च क्षत्रविट्शूद्रकर्मणाम्। संन्यासिनां च यो धर्मो यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ॥२॥
विप्राणां विधवास्त्रीणां वैष्णवानां सतामपि। पतिव्रतानां स्त्रीणां च तत्सर्वं वक्तुमर्हसि ॥३॥
गृहिणां गृहिणीनां च शिष्याणां च विशेषतः। पुत्राणां चापि कन्यानां पितरं मातरं प्रति ॥४॥
स्त्रीजातिश्च कतिविधा भक्तः कतिविधः प्रभो। ब्रह्माण्डं च कतिविधं वदनं च किमात्मकम्
किं नित्यं कृत्रिमं किं च ब्रूहि सर्वं क्रमेण च ॥५॥

## श्रीभगवानुवाच

संध्यापूतः सदा विप्रः कुरुते मम सेवनम्। नित्यं भुङ्क्ते मत्प्रसादमनिवेद्य[1] कदाचन ॥६॥

---

# अध्याय ८३

## ब्राह्मण, वैष्णव, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, संन्यासी और विधवा के धर्म

**नन्द बोले**—हे पुत्र ! तुम वेदों और ब्रह्मा आदि सभी के कारण हो, अतः सब बताओ, तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हारे बिना मैं किससे पूछूं ? ॥१॥ ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों, शूद्रों, संन्यासियों, योगियों, ब्रह्मचारियों, विप्रों विधवा स्त्रियों, सज्जनों और पतिव्रता स्त्रियों के जो धर्म हैं, वह सब मुझे बता दो ॥२-३॥ प्रभो ! गृहस्थों, गृहस्थ-पत्नियों, विशेषकर शिष्यों और माता-पिता के प्रति पुत्रों एवं कन्याओं के जो धर्म हैं, उन सबको बतला दें। प्रभो ! स्त्रियों की कितनी जातियां होती हैं ? भक्तों के कितने भेद हैं ? ब्रह्माण्ड कितने प्रकार का होता है ? वदन (बोली या मुख) किस प्रकार का होता है ? नित्य क्या है ? और कृत्रिम क्या है ? क्रमशः यह सब बतलाओ ॥४-५॥

**श्रीभगवान् बोले**—संध्या-वन्दन से पवित्र हुआ ब्राह्मण सदैव मेरी सेवा करता है। नित्य मेरे प्रसाद का भोजन करता है, और बिना मुझे भोग लगाये कभी नहीं खाता है ॥६॥ जो विष्णु को अर्पित नहीं किया

---

१ क. °द्यमभक्षणम्।

अन्नं विष्ठा जलं मूत्रं यद्विष्णोरनिवेदितम् । विष्णुप्रसादभोजी च जीवन्मुक्तश्च ब्राह्मणः ॥७॥
नित्यं तपस्यानिरतः शुचिः शान्तश्च शास्त्रवित् । व्रततीर्थाश्रितो धर्मी नानाध्यापनसंयुतः ॥८॥
विष्णुमन्त्रं गृहीत्वा च कृत्वा च गुरुसेवनम् । गृहीत्वा तदनुज्ञां च पश्चाद्भवति स गृही ॥९॥
दक्षिणां नित्यपूजानां गुरवे च निवेदयेत् । गुरूणां पोषणं नित्यं कर्तव्यं नात्र संशयः ॥१०॥
सर्वेषामपि वन्द्यानां पिता चैव महान् गुरुः । पितुः शतगुणैर्माता मातुः शतगुणैः सुरः ॥११॥
मन्त्रदस्तन्त्रदश्चैव सुराणां च चतुर्गुणः । नारायणश्च भगवान्गुरुः प्रत्यक्ष ईश्वरः ॥१२॥
उद्देशे दीयते तस्मै सुरायेति श्रुतौ श्रुतम् । प्रत्यक्षभोक्ता स्वगुरुः स्वयं देही जनार्दनः ॥१३॥
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुरेव स्वयं शिवः । गुरौ च सर्वदेवाश्च तिष्ठन्ति सततं मुदा ॥१४॥
गुरौ तुष्टे हरिस्तुष्टो यस्मिंस्तुष्टे च देवता । गुरुः पुत्रसमं स्नेहं शिष्येषु न[1] करिष्यति ॥१५॥
लभते ब्रह्महत्यां च भुङ्क्ते कृत्वा च नाऽऽशिषम् । स्वधर्मनिरतो विप्रो ब्राह्मणश्च सदा शुचिः ॥१६॥
विष्णुसेवी सदा विप्रस्तदन्योऽप्यशुचिः सदा । ब्राह्मणो वृषवाहश्च शूद्राणां सूपकारकः ॥१७॥
ब्राह्मणो देवलश्चैव संध्याहीनश्च दुर्बलः । ब्राह्मणश्च दिवाशायी शूद्रश्राद्धान्नभोजनः ॥१८॥

---

गया है, वह अन्न विष्ठा और जल मूत्र के समान माना जाता है। अतः विष्णु के प्रसाद का भक्षण करनेवाला ब्राह्मण जीवन्मुक्त होता है ॥७॥ नित्य तपस्या में लीन रहनेवाला, पवित्र, शान्त, शास्त्रवेत्ता, व्रतों और तीर्थों का सेवी, अनेक विषयों के अध्यापन-कार्य में संलग्न, धर्मात्मा ब्राह्मण विष्णुमन्त्र से दीक्षित होकर गुरु की सेवा करता है। तत्पश्चात् उसकी आज्ञा शिरोधार्य करके संग्रही (गृहस्थ) बनता है। उसे गुरु को नित्य पूजन की दक्षिणा समर्पित करनी चाहिए तथा नित्य गुरुजनों का पोषण-पालन करना चाहिए, इसमें संशय नहीं है ॥८-१०॥ सभी वन्दनीय व्यक्तियों में पिता महान् गुरु होता है। पिता से सौगुनी माता, माता से सौगुना इष्टदेव और इष्टदेवों से चौगुना मन्त्र-तन्त्र देनेवाला गुरु श्रेष्ठ है। यह प्रत्यक्ष रूप में ऐश्वर्यशाली भगवान् नारायण है। उसी के उद्देश्य से देवों को समर्पित किया जाता है, ऐसा वेदों में सुना गया है। अपना गुरु प्रत्यक्ष भोक्ता तथा देह धारण किये हुए स्वयं जनार्दन है ॥११-१३॥ गुरु ही ब्रह्मा, गुरु ही विष्णु और गुरु ही स्वयं शिव है। सभी देवता गुरु में सुप्रसन्न मन से निरन्तर निवास करते हैं। अतः गुरु के प्रसन्न होने पर भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं, और उनके प्रसन्न होने पर सम्पूर्ण देवगण सन्तुष्ट होते हैं। गुरु भी यदि शिष्यों पर पुत्रों के समान स्नेह नहीं करता है, अभिवादन करने पर शुभाशिष नहीं प्रदान करता है, तो उसे भी ब्रह्महत्या का भागी होना पड़ता है। अपने धर्म में संलग्न रहनेवाला और विष्णु की सेवा करनेवाला ब्राह्मण सदा पवित्र होता है और अन्य सदा अपवित्र रहता है। जो ब्राह्मण वृषों (बैलों) द्वारा जीविकोपार्जन करता है, शूद्रों की रसोई बनाता है, पुजारी का काम करता है, संध्या नहीं करता, दिन में शयन करता है, शूद्रों के श्राद्धान्न को खाता है और शूद्रों

---

१. क. च ।

शूद्राणां शवदाही च ते च शूद्रसमा द्विजाः। शालग्राममहामन्त्रं कृत्वा पूजां विधानतः ॥१९॥
भुङ्क्ते नैवेद्यशेषं च तत्पादोदकमेव च। हरेः पादोदकं पीत्वा तीर्थस्नायी भवेन्नरः ॥२०॥
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति। स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः ॥२१॥
शालग्रामशिलातोयैर्योऽभिषेकं समाचरेत्। गङ्गाजलाद्दशगुणं शालग्रामजलं व्रज ॥२२॥
नित्यं भुङ्क्ते च यो विप्रो जीवन्मुक्तः सुरैः समः। विप्राणां नित्यकृत्यं च विष्णोर्नैवेद्यभोजनम् ॥२३॥
यत्नेन पूजनं तस्य तत्पादोदकसेवनम्। नित्यं त्रिसंध्यं कुरुते भक्त्या च मम पूजनम् ॥२४॥
एकादश्यां न भुङ्क्ते च मम वै जन्मवासरे। शिवरात्रौ च हे तात श्रीरामनवमीदिने ॥२५॥
न च भुङ्क्ते व्रती यो हि जीवन्मुक्तो हि स द्विजः। पृथिव्यां यानि तीर्थानि तस्य पादे च तानि च ॥२६॥
विप्रपादोदकं पीत्वा तीर्थस्नायी भवेन्नरः। विप्रपादोदकक्लिन्ना यावत्तिष्ठति मेदिनी ॥२७॥
तावत्पुष्करपात्रेषु पिबन्ति पितरो जलम्। विष्णुप्रसादभोजी च पवित्रां कुरुते महीम् ॥२८॥
तीर्थानि च नरांश्चैव जीवन्मुक्तो हि स द्विजः। सर्वतीर्थेषु स स्नातो व्रतानां च फलं लभेत् ॥२९॥
पदे पदेऽश्वमेधस्य लभते निश्चितं फलम्। वह्निवायुसमः पूतस्तेजसा भास्करोपमः ॥३०॥

---

के शवों का दाह करता है ऐसे ब्राह्मण शूद्र के समान हैं। जो ब्राह्मण शालग्राम की सविधि अर्चना करके उनके चरणोदक का पान करता है, उन्हें समर्पित करके नैवेद्य (प्रसाद) का भोजन करता है तथा उनके चरणोदक को पीता है, वह सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो जाता है और उसे विष्णुलोक की प्राप्ति होती है, क्योंकि हरि का चरणोदक पीकर मनुष्य तीर्थस्नायी हो जाता है। जो शालग्राम शिला के जल से अभिषेक करता है, उसने समस्त तीर्थों में स्नान कर लिया और वह सम्पूर्ण यज्ञों में दीक्षित हो चुका। हे व्रज ! शालग्राम शिला का जल गङ्गाजल से दसगुना अधिक श्रेयस्कर होता है। अतः जो ब्राह्मण इसका पान नित्य करता है, वह जीवन्मुक्त होकर देवों के समान हो जाता है। इसलिए ब्राह्मणों के लिए नित्य कर्म है कि विष्णु का नैवेद्य भोजन करें ॥१४-२३॥ विष्णु का यत्नपूर्वक पूजन करना तथा उनके चरणोदक का पान करना यह भी नित्यकर्म है। हे तात ! जो तीनों काल में संध्योपासन तथा भक्तिपूर्वक मेरा अर्चन करता है और एकादशी, जन्माष्टमी, शिवरात्रि और श्री रामनवमी के दिन भोजन नहीं करता है, व्रत रखता है, वह द्विज जीवन्मुक्त होता है। पृथिवी पर जितने तीर्थ हैं वे सब उसके चरणों में निवास करते हैं ॥२४-२६॥ ब्राह्मण के चरणोदक का पान करने से मनुष्य तीर्थस्नायी होता है। ब्राह्मण के चरणोदक से पृथिवी जब तक भीगी रहती है, तब तक उसके पिता कमल पत्र के पात्रों में जल पीते हैं। विष्णु के प्रसाद को भक्षण करनेवाला द्विज पृथिवी, तीर्थों एवं मनुष्यों को पवित्र करता हुआ जीवन्मुक्त हो जाता है। उसे सभी तीर्थों में स्नान करने और समस्त व्रतों के अनुष्ठान करने का फल प्राप्त होता है ॥२७-२९॥ वह पग-पग में अश्वमेध का फल प्राप्त करता है। अग्नि और वायु के समान वह पवित्रात्मा और

यमदूतं यमं चैव स च स्वप्ने न पश्यति। वैकुण्ठे मोदते सोऽपि पार्षदो हरिणा सह ॥३१॥
न भवेत्तस्य पातो हि विप्रस्य हरिसेविनः। विष्णुमन्त्रोपासकश्च स एव वैष्णवो द्विजः ॥३२॥
ब्राह्मणो वैष्णवः प्राज्ञो न हि तस्मात्परः पुमान्। वेदोक्तो वा पुराणोक्तस्तन्त्रोक्तो वा ॥
मनुः शुचिः ॥३३॥
विचारतो गृहीत्वा तं शैवः शाक्तश्च वैष्णवः। गुरुवक्त्राद्विष्णुमन्त्रो यस्य कर्णे विशत्ययम् ॥३४॥
तं वैष्णवं महापूतं प्रवदन्ति मनीषिणः। मन्त्रग्रहणमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥३५॥
भित्त्वा ब्रह्माण्डमखिलं यास्यत्येव हरेः पदम्। पूर्वान्सप्त परान्सप्त सप्त मातामहादिकान् ॥३६॥
सोदरानुद्धरेद्भक्तस्तत्प्रसूं तत्प्रसूं तथा। जपेन्नारायणक्षेत्रे पुरश्चरणपूर्वकम् ॥३७॥
पुरुषाणां सहस्रं च लीलयाऽऽत्मानमुद्धरेत्। मन्त्रग्रहणमात्रेण फलमेतद्व्रजेश्वर ॥३८॥
पुरश्चरणसंपर्कात्पुरुषाणां शतं शतम्। ऐकान्तिको वैष्णवश्च पुंसां लक्षं समुद्धरेत् ॥३९॥
क्रिया विष्णुपदे यस्य संकल्पाश्च बहिःकृता। द्विजाः सुरा मम प्राणा भक्तः प्राणा- ॥
त्परः प्रियः ॥४०॥
विश्वेषु प्रियपात्रेषु न मे भक्तात्परः प्रियः। तेजीयांसं गुरुं दृष्ट्वा सर्वत्र रक्षितुं क्षमम् ॥४१॥

---

सूर्य के समान तेजस्वी होता है। यमदूत एवं यम को स्वप्न में भी नहीं देखता है और अन्त में भगवान् का पार्षद बनकर उनके साथ वैकुण्ठ में आनन्द करता है ॥३०-३१॥ भगवान् की सेवा करनेवाले ब्राह्मण का कभी भी पतन नहीं होता है। विष्णुमन्त्र की उपासना करनेवाला द्विज ही वैष्णव कहा जाता है ॥३२॥ वैष्णव ब्राह्मण विद्वान् होता है। उससे बढ़कर पुरुष दूसरा नहीं है। वेदोक्त या पुराणोक्त या तन्त्रोक्त मन्त्र पवित्र होता है ॥३३॥ विचारपूर्वक मन्त्र को ग्रहण करके मनुष्य शैव या शाक्त या वैष्णव कहलाता है। गुरुमुख से निकलकर विष्णु का मन्त्र जिसके कर्ण-कुहर में प्रविष्ट होता है, उसको विद्वान् लोग महान् पवित्र वैष्णव कहते हैं। मन्त्र ग्रहण करने मात्र से मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है ॥३४-३५॥ वह समस्त ब्रह्माण्ड का भेदन करके, भगवान् के लोक को चला जाता है। भक्त अपनी पूर्व-पर की सात-सात पीढ़ियों, मातामह (नाना) आदि की सात पीढ़ियों, सोदरों, उनकी माता तथा उसकी माता का उद्धार करता है। नारायण क्षेत्र में पुरश्चरणपूर्वक मन्त्र का जप करनेवाला सहस्र पीढ़ियों समेत अपना उद्धार अनायास ही कर लेता है। हे व्रजेश्वर! मन्त्र का ग्रहण करते ही यह फल प्राप्त होता है ॥३६-३८॥ पुरश्चरणपूर्वक जप करने से मनुष्य अपनी सौ-सौ पीढ़ियों का उद्धार करता है। अनन्य वैष्णव, जिसके संकल्प तो बाहर होते हैं, परन्तु क्रियाएँ विष्णुपद में होती हैं, वह अपने एक लाख पूर्व पुरुषों का उद्धार कर देता है। ब्राह्मण और देवता मेरे प्राण हैं, परन्तु भक्त प्राणों से भी बढ़कर प्रिय है ॥३९-४०॥ समस्त लोकों में जितने प्रिय पात्र हैं, उनमें भक्त से अधिक प्यारा मेरे लिए दूसरा

करोति मन्त्रग्रहणं तस्माद्भूयाद्विचक्षणः[1] । वयोहीनाज्ज्ञानहीनाद्विद्याहीनात्तथैव च ।।
जातिहीनाद्गुरोर्मन्त्रं गृह्णीयान्न कदाचन ।।४२।।
अशास्त्रार्थं[2] क्षतं मन्त्रं न गृह्णीयात्कदाचन । मूर्खादाश्रमहीनाच्च पितुः संन्यासिनस्तथा ।।४३।।
रोगिणो वंशहीनाच्च भार्याहीनात्तथैव च । मन्त्रक्षिप्तात्तथा मन्त्रं न गृह्णीयात्कदाचन ।।४४।।
विष्णुमन्त्रं न गृह्णीयाद्विष्णुभक्तिविहीनतः । न च शैवान्न शाक्ताच्च गृह्णीयाद्वैष्णवाद्द्विजात् ।।४५।।
वयोहीनात्तथाऽल्पायुर्ज्ञानहीनादपण्डितः । विद्याहीनाद्भवेन्मूढो जातिहीनात्क्षयो भवेत् ।।४६।।
मूर्खान्मूर्खो भवेत्सद्यो दुःखी स्वाश्रमहीनतः । यशोहानिः पितुश्चैव मृत्युः संन्यासिनस्तथा ।।४७।।
रोगिणो व्याधियुक्तश्च निर्वंशो वंशहीनतः । भार्याहीनोऽपि स्त्रीहीनान्मन्त्रक्षिप्ताद्गुरो समः ।।४८।।
विष्णुभक्तिविहीनाच्च भक्तिहीनो भवेन्नरः । शैवाच्छाक्ताद्गृहीत्वा च हरौ भक्तिर्न वर्धते ।।४९।।
ब्राह्मणो वैष्णवः शुद्धः पक्वान्नं दातुमीश्वरः । पक्वान्नं हरये दातुमक्षमश्चेतरो जनः ।।५०।।
ओंकारोच्चारणाद्धोमाच्छालग्रामशिलार्चनात् । मह्यं पक्वान्नदानाच्च विप्रादन्यो व्रजेदधः ।।५१।।
उदासीनाद्दुराचारान्न गृह्णीयान्मनुं सुधीः । दैवाद्यदि च गृह्णीयाद्धनहीनो भवेद्ध्रुवम् ।।५२।।

---

कोई नहीं है । तेजस्वी तथा सर्वत्र रक्षा करने में समर्थ गुरु को देखकर जो उससे मन्त्र ग्रहण करता है, वह विद्वान् होता है । अवस्था में हीन, ज्ञान में हीन, विद्या में हीन और जाति में हीन गुरु से कभी भी मन्त्र ग्रहण नहीं करना चाहिए ।।४१-४२।।

शास्त्र के अर्थ के विरुद्ध तथा क्षतिपूर्ण मन्त्र का भी ग्रहण नहीं करना चाहिए । इसी प्रकार मूर्ख, आश्रम-हीन, पिता, संन्यासी, रोगी, वंशहीन, स्त्रीहीन द्वारा और मन्त्र भूल जानेवाले व्यक्ति से मन्त्र कभी भी ग्रहण न करे । विष्णु की भक्ति से रहित, शैव और शाक्त से भी विष्णु मन्त्र का ग्रहण नहीं करना चाहिए, केवल वैष्णव ब्राह्मण द्वारा ही उस मन्त्र का ग्रहण करे ।।४३-४५।। अवस्थाहीन व्यक्ति से मन्त्र ग्रहण करने पर मनुष्य अल्पायु होता है, ज्ञानहीन से मन्त्र ग्रहण करने पर मूर्ख, विद्याहीन से मन्त्र लेने पर मूढ़ और जातिहीन से मन्त्र ग्रहण करने पर क्षय होता है । मूर्ख से ग्रहण करने पर मूर्ख, आश्रमहीन से ग्रहण करने पर दुःखी, पिता से यश की हानि, संन्यासी से मृत्यु, रोगी से रोग, वंशहीन से निर्वंश, स्त्रीहीन से भार्यारहित और मन्त्र भूल जानेवाले से मन्त्र ग्रहण करने पर उसी के समान (मन्त्र भुलक्कड़) हो जाता है ।।४६-४८।। विष्णु-भक्ति-हीन पुरुष से मंत्र ग्रहण करने पर मनुष्य भक्तिहीन होता है और शैव एवं शाक्त द्वारा विष्णु मंत्र ग्रहण करने पर भगवद्भक्ति की वृद्धि नहीं होती है ।।४९।। शुद्ध, वैष्णव ब्राह्मण ही (भगवान् को) पक्वान्न (पकाया हुआ भोजन) समर्पण कर सकता है, तदितर लोग कभी नहीं, क्योंकि ब्राह्मणेतर जाति का व्यक्ति यदि ओंकार का उच्चारण, होमकर्म, शालग्राम का पूजन और भगवान् को पक्वान्न प्रदान करता है, तो उसका अधःपतन होता है ।।५०-५१।।

विद्वान् व्यक्ति उदासीन और दुराचारी से मंत्र ग्रहण न करे । यदि दैव संयोग वैसा हो जाता है, तो

---

१ क. 'त्कृष्णो वि' । २ ख. शास्त्रार्थं चाक्ष' ।

ब्राह्मणानां सदा भक्ष्यं हविष्यं च निरामिषम् । आमिषस्य परित्यागात्सूर्यवत्तेजसा भवेत् ॥५३॥
नित्यं नूतनभाण्डेन कर्तव्यः पाक एव च । अथवा पक्षपर्यन्तं ततस्त्याज्यं मनीषिभिः ॥५४॥
स्थानं सुसंस्कृतं कृत्वा पाकं निर्वृत्य पूजकः । स्थाने परिष्कृते विप्रो दत्त्वा मह्यं च भक्तितः ॥५५॥
तदा निवेद्य भुङ्क्ते च दत्त्वा विप्राय सादरम् । अनिवेद्य च भुक्त्वा च सुरापीतिर्भवेद्द्विजः ॥५६॥
चन्द्रसूर्योपरागे वै चाऽऽशौचे मृतजातयोः । स्पृष्टेनाशुचिना सद्यः पाकभाण्डं परित्यजेत् ॥५७॥
भृष्टं द्रव्यं तथाऽन्नं च धृत्वा धौते च वाससी । पादप्रक्षालनं कृत्वा भुङ्क्ते स्थाने परिष्कृते ॥५८॥
द्विर्भोजनं न कर्तव्यं स्थिते सूर्ये द्विजातिभिः । निष्फलं तद्भवेत्कर्म भुक्त्वा च नरकं व्रजेत् ॥५९॥
यात्रां युद्धं नदीतीरं पुनर्भोजनमैथुने । वर्जयेच्छ्राद्धदिवसे हविष्याशी च संयमी ॥६०॥
द्विजाय विष्णुभक्ताय पात्रं दद्याद्बुधाय च । वृषलीपतये चैव न दद्याच्छूद्रयाजिने ॥६१॥
संध्याहीनाय दुष्टाय वृषवाहाय यत्नतः । शुक्रविक्रयिणे[1] चैव देवलाय कदाचन ॥६२॥
प्रदत्तं पात्रमेतेभ्यो ब्राह्मणं नरकं नयेत् । पात्रे भुक्त्वा तद्दिवसे मैथुनान्नरकं व्रजेत् ॥६३॥

---

वह अवश्य धनहीन होता है ॥५२॥ ब्राह्मणों को सदैव आमिषरहित हविष्यान्न भोजन करना चाहिए । मांस परित्याग करने से वह सूर्य के समान तेजस्वी होता है ॥५३॥ मनीषी ब्राह्मणों को नित्य नवीन पात्र में पाक बनाना चाहिए अथवा एक पक्ष (१५ दिन) तक बनाकर अनन्तर उसका त्याग कर दे । पूजा करनेवाले को चाहिए कि सुसंस्कार किये स्थान में पाक बनाकर अतिपरिष्कृत (लिपे-पुते) स्थान में भक्तिपूर्वक मुझे अर्पित करे ॥५४-५५॥ मुझे निवेदन और ब्राह्मण भोजन कराने के अनन्तर स्वयं भोजन करे । मुझे बिना निवेदन किये अन्न का भोजन करने पर ब्राह्मण शराबी की भाँति अपवित्र हो जाता है । चन्द्र-सूर्य ग्रहण होने पर, मृतक या जन्म के अशौच लगने पर और अपवित्र लोगों से स्पर्श किये जाने पर पाक-पात्र को तुरन्त बदल देना चाहिए ॥५६-५७॥ भूने हुए पदार्थ को और अन्न को भी धुले हुए दो वस्त्र धारण करके पैर धोकर लिपे-पुते शुद्ध स्थान में भोजन करना चाहिए । द्विजातियों को सूर्य के रहते दो बार भोजन नहीं करना चाहिए । क्योंकि वैसा करने पर वह कर्म निष्फल होता है और भोक्ता नरकगामी होता है ॥५८-५९॥ हविष्यान्न भोजन करनेवाले संयमी के लिए श्राद्ध का दिन यात्रा, युद्ध, नदी के तट, पुनर्भोजन और मैथुन वर्जित है । विद्वान् एवं वैष्णव को ही पात्र देना चाहिए । शूद्रा के पति, शूद्र को याग करानेवाले, संध्याकर्महीन, दुष्ट, बैलों द्वारा जीविका निर्वाह करनेवाले, शुक-विक्रेता और देवल (मन्दिरों के पुजारी) ब्राह्मण को कभी नहीं देना चाहिए । क्योंकि इन ब्राह्मणों को पात्र प्रदान करने से दाता नरकगामी होता है । श्राद्धदिन पात्र में भोजन करके स्त्री-सम्भोग करने से नरक में जाना पड़ता है ॥६०-६३॥ हे तात ! कन्या बेचनेवाला व्यक्ति सबसे बड़ा पापी होता है ।

---

१ क. शुकवि° ।

सर्वेभ्यः पातकी तात कन्याविक्रयकारकः । मूल्यं गृहीत्वा यो दद्यात्स महारौरवं व्रजेत् ॥६४॥
कन्यालोमप्रमाणान्तं वर्षं च पितृभिः सह । कुम्भीपाके पच्यते च पुत्रश्चापि पुरोहितः ॥६५॥
तस्मात्कन्यां सुपात्राय दानं कुर्याद्विचक्षणः । शूद्रवद्ब्राह्मणेभ्यश्च नैव तद्वंशजाय च ॥६६॥
विप्रवैष्णवयोर्धर्मः कथितश्च व्रजेश्वर । यदुक्तं च पुराणैश्च चतुर्भिः श्रुतिभिस्तथा ॥६७॥
द्विजार्चनं क्षत्रियाणां तथा नारायणार्चनम् । राज्यानां पालनं चैव रणे निर्भयता तथा ॥६८॥
नित्यं दानं ब्राह्मणेभ्यः शरणागतरक्षणम् । पुत्रतुल्यं प्रजानां च दुःखिनां परिपालनम् ॥६९॥
शस्त्रास्त्राणां च नैपुण्यं रणे शौण्डीर्यमेव च । तपश्च धर्मकृत्यं च यत्नतः कुरुते मुदा ॥७०॥
पण्डितं नीतिशास्त्रज्ञं नित्यं च परिपालयेत् । नियोजयेत्सभामध्ये नित्यं सद्भिश्च संयुते ॥७१॥
हस्त्यश्वरथपादातं सेनाङ्गं च चतुष्टयम् । पालयेद्यत्नतो नित्यं यशस्वी च प्रतापवान् ॥७२॥
रणे निमन्त्रितश्चैव दाने न विमुखो भवेत् । रणे वा यस्त्यजेत्प्राणांस्तस्य स्वर्गो यशस्करः ॥७३॥
वैश्यानामपि वाणिज्यमीश्वरः कृषिपालने । विप्रदेवार्चनं दानं तपस्या व्रतसेवनम् ॥७४॥
विप्राणामर्चनं नित्यं शूद्रधर्मो विधीयते । तत्कृषी तद्धनग्राही शूद्रश्चाण्डालतां व्रजेत् ॥७५॥
गृध्रः कोटिसहस्राणि शतजन्मानि सूकरः । श्वापदः शतजन्मानि शूद्रो विप्रधनापहः ॥७६॥

---

जो मूल्य लेकर कन्या देता है, उसे महारौरव नामक नरक में जाना पड़ता है ॥६४॥ फिर कन्या के शरीर में जितने रोएँ होते हैं, उतने वर्षों तक पितरों समेत वह, उसका पुत्र और पुरोहित भी कुम्भीपाक नरक में कष्ट भोगते हैं ॥६५॥

इसलिए बुद्धिमान् व्यक्ति सुपात्र को कन्यादान करे। शूद्रों के समान आचरण करनेवाले ब्राह्मणों और उसके वंशजों को कन्या नहीं देनी चाहिए ॥६६॥ हे व्रजेश्वर ! इस प्रकार मैंने तुम्हें ब्राह्मण और वैष्णव का धर्म सुना दिया जो पुराणों तथा चारों वेदों में कथित है ॥६७॥

अब क्षत्रियों के धर्म सुनो। क्षत्रियों को सदा यत्नपूर्वक ब्राह्मण-पूजन, नारायण-पूजन, राज्यों का पालन, युद्ध में निर्भयता, ब्राह्मणों को नित्य दान, शरणागत की रक्षा, दुःखी प्रजाओं का पुत्र के समान भली-भाँति पालन, शस्त्रास्त्रों की कुशलता, युद्ध में पराक्रम, तप एवं धर्मकार्य करते रहना चाहिए ॥६८-७०॥ नीति-शास्त्र-मर्मज्ञ पण्डित का नित्य परिपालन करना चाहिए और सत्पुरुषों से भरी हुई सभा में उसे नित्य नियुक्त करना चाहिए ॥७१॥ प्रतापी एवं यशस्वी क्षत्रिय हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैनिकों से युक्त चतुरङ्गिणी सेना का नित्य यत्नपूर्वक पालन करे। रण में निमन्त्रित होने पर युद्धदान से विमुख न हो। क्योंकि जो क्षत्रिय रण में प्राण त्याग करता है, उसे यशस्कर स्वर्ग की प्राप्ति होती है ॥७२-७३॥ वैश्यों का धर्म वाणिज्य (व्यापार), खेती करना, ब्राह्मणों और देवों की अर्चना, दान, तप एवं व्रत का पालन है। इसी प्रकार ब्राह्मणों की नित्य पूजा करना शूद्र का धर्म कहा गया है। ब्राह्मण को कष्ट देनेवाला तथा उसके धन पर अधिकार कर लेनेवाला शूद्र चाण्डालता को प्राप्त हो जाता है ॥७४-७५॥ ब्राह्मण का धन अपहरण करनेवाला शूद्र सहस्र करोड़ जन्मों तक गृध्र, सौ जन्मों तक सूकर और सौ जन्मों तक हिंसक पशु होता है। जो शूद्र ब्राह्मणी

यः शूद्रो ब्राह्मणीगामी मातृगामी स पातकी । कुम्भीपाके पच्यते स यावद् ब्रह्मणः शतम् ॥७७॥
कुम्भीपाके तप्ततैले भुक्तः सर्पैरहर्निशम् । शब्दं च विकृताकारं कुरुते यमताडनात् ॥७८॥
ततश्चाण्डालयोनिः स्यात्सप्तजन्मसु पातकी । सप्तजन्मसु सर्पश्च जलौकाः सप्तजन्मसु ॥७९॥
जन्मकोटिसहस्रं च विष्ठायां जायते कृमिः । पुंश्चलीनां योनिकृमिः स भवेत्सप्तजन्मसु ॥८०॥
गवां व्रणकृमिः स्याच्च पातकी सप्तजन्मसु । योनौ योनौ भ्रमत्येवं न पुनर्जायते नरः ॥८१॥
संन्यासिनां च यो धर्मो मन्मुखाच्च निशामय । दण्डग्रहणमात्रेण नरो नारायणो भवेत् ॥८२॥
पूर्वकर्माणि दग्ध्वा च परकर्मनिकृन्तनम् । कुरुते चिन्तयेन्मां च ह्यायाति मम मन्दिरम् ॥८३॥
संन्यासिनः पदस्पर्शात्सद्यः पूता वसुंधरा । सद्यः पुनन्ति तीर्थानि वैष्णवस्य यथा व्रज ॥८४॥
संन्यासिनश्च स्पर्शेन निष्पापो जायते नरः । संन्यासिनं भोजयित्वा चाश्वमेधफलं लभेत् ॥८५॥
नत्वा च कामतो दृष्ट्वा राजसूयफलं लभेत् । फलं संन्यासिनां तुल्यं यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ॥८६॥
संन्यासी याति सायाह्ने क्षुधितो गृहिणां गृहम् । सदन्नं वा कदन्नं वा तद्दत्तं नैव वर्जयेत् ॥८७॥
न याचते च मिष्टान्नं न कुर्यात्कोपमेव च । न धनग्रहणं कुर्यादेकवासा निरीहतः ॥८८॥

---

के साथ सम्भोग करता है, वह माता के साथ सम्भोग करने के समान पातकी होता है। उसके कारण वह कुम्भीपाक नरक में सौ ब्रह्मा की आयु पर्यन्त पचता रहता है ॥७६-७७॥ कुम्भीपाक में तप्ततेलवाले कुण्ड में दुःखानुभव करता हुआ वह नित्य सर्पों द्वारा पीड़ित होता है और यमदूतों के ताड़ना करने पर चीत्कार करता रहता है। अनन्तर वह पातकी सात जन्मों तक चाण्डाल, सात जन्मों तक सर्प, सात जन्मों तक जोंक और सहस्रकोटि जन्मों तक विष्ठा का कीड़ा होता है। फिर वह पातकी सात जन्मों तक पुंश्चली स्त्रियों की योनि का कीड़ा तथा सात जन्मों तक गौओं के व्रण का कीड़ा होता है। इस प्रकार वह नाना योनियों में भ्रमण करता रहता है, फिर कभी मनुष्य नहीं होता है ॥७८-८१॥

अब मेरे मुख से संन्यासियों के धर्म सुनो, मनुष्य दण्ड ग्रहण मात्र से नारायणस्वरूप हो जाता है। जो संन्यासी मेरा ध्यान करता है, वह अपने पूर्वजन्म के कर्मों को दग्ध करके वर्तमान जन्म के कर्मों का उच्छेद कर डालता है। अन्त में वह मेरे लोक को चला आता है ॥८२-८३॥ हे व्रज ! जैसे वैष्णव के चरणस्पर्श से तीर्थ तत्काल पवित्र हो जाते, वैसे ही संन्यासी के चरणस्पर्श होने से पृथ्वी तुरन्त पवित्र हो जाती है ॥८४॥ मनुष्य संन्यासी का स्पर्श करने से पापरहित हो जाता है। संन्यासी को भोजन कराने से अश्वमेध का फल प्राप्त करता है ॥८५॥ अकस्मात् संन्यासी को देखकर उसे नमस्कार करके राजसूय यज्ञ का फल पाता है। संन्यासी, यति और ब्रह्मचारी इन सबके दर्शन-स्पर्शन का फल एक-सा होता है। सायंकाल के समय संन्यासी क्षुधा-पीड़ित होकर गृहस्थों के घर जाये और उत्तम-मध्यम जैसा भी अन्न वे लोग उसे दें, उसका परित्याग न करे ॥८६-८७॥ न तो मिष्टान्न की याचना करे, न कोप करे और न धन ग्रहण करे, एक वस्त्र धारण करे,

शीतग्रीष्मसमानश्च लोभमोहविवर्जितः। तत्र स्थित्वैकरात्रं च प्रातरन्यत्स्थलं व्रजेत् ॥८९॥
यानमारोहणं कृत्वा गृहीत्वा गृहिणो धनम्। गृहं कृत्वा गृही रम्यात्स्वधर्मात्पतितो भवेत् ॥९०॥
कृत्वा च कृषिवाणिज्यं कुवृत्तिं कुरुते च यः। स संन्यासी हृताचारः स्वधर्मात्पतितो भवेत् ॥९१॥
अशुभं च शुभं वाऽपि स्वकर्म कुरुते यदि। बहिष्कृतः स्वधर्मी[1] वाऽप्युपहास्यश्च वै भवेत् ॥९२॥
ब्राह्मणी पतिहीना या भवेन्निष्कामिनी सदा। एकभुक्ता दिनान्ते सा हविष्यान्नरता सदा ॥९३॥
न धत्ते दिव्यवस्त्रं च गन्धद्रव्यं सुतैलकम्। स्रजं च चन्दनं चैव शङ्खसिन्दूरभूषणम् ॥९४॥
त्यक्त्वा मलिनवस्त्रा स्यान्नित्यं नारायणं स्मरेत्। नारायणस्य सेवां च कुरुते नित्यमेव च ॥९५॥
तन्नामोच्चारणं शश्वत्कुरुते नान्यभक्तितः। पुत्रतुल्यं च पुरुषं सदा पश्यति धर्मतः ॥९६॥
मिष्टान्नं न च भुङ्क्ते सा न कुर्याद्विभवं व्रज। एकादश्यां न भोक्तव्यं कृष्णजन्माष्टमीदिने ॥९७॥
श्रीरामस्य नवम्यां तु शिवरात्रौ पवित्रया। अघोरायां च प्रेतायां चन्द्रसूर्योपरागयोः ॥९८॥
भ्रष्टं द्रव्यं परित्यज्य भुज्यते परमेव च। ताम्बूलं विधवास्त्रीणां यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ॥९९॥
संन्यासिनां च गोमांससुरातुल्यं श्रुतौ श्रुतम्। रक्तशाकं मसूरं च जम्बीरं पर्णमेव च ॥१००॥
अलाबुर्वर्तुलाकारा वर्जनीया च तैरपि। पर्यङ्कशायिनी नारी विधवा पातयेत्पतिम् ॥१०१॥

---

निरीह हो जाये, शीतकाल और ग्रीष्म काल में एक-सा रहे और लोभ-मोह का परित्याग कर दे। इस प्रकार वहाँ एक रात्रि रहकर प्रातःकाल दूसरे स्थान को चला जाय ॥८८-८९॥ सवारी पर बैठने, गृहस्थों से धन लेने, रम्य गृह बनाकर गृही होने से संन्यासी अपने धर्म से पतित हो जाता है ॥९०॥ जो संन्यासी खेती और व्यापार करके कुकर्म करता है, उसका आचरण भ्रष्ट हो जाता है और वह अपने धर्म से पतित हो जाता है ॥९१॥ यदि वह अपना जातीय शुभ-अशुभ कोई कर्म करता है, तो वह आश्रम से बहिष्कृत होकर उपहास का पात्र बनता है ॥९२॥ (इसी प्रकार) विधवा ब्राह्मणी को भी सदा कामनारहित होना चाहिए। वह दिनान्त में एक बार हविष्यान्न भोजन करे ॥९३॥ दिव्यवस्त्र न पहने, सुगंधित पदार्थ, सुवासित तेल, माला, चन्दन, शंख, सिन्दूर और आभूषण का त्याग करके मलिन वस्त्र पहने। नित्य नारायण का चिन्तन करे। नित्य नारायण की ही सेवा करे। अनन्यभक्तिपूर्वक निरन्तर उनके नाम का कीर्तन करती रहे। धर्मानुसार परपुरुष को सदा पुत्र के समान देखे। हे व्रज! कभी मिष्टान्न न खाये, वैभव के लिए प्रयत्न न करे। श्रीकृष्ण की जन्माष्टमी, श्रीराम-नवमी, शिवरात्रि, नरकचतुर्दशी एवं चन्द्र-सूर्य के ग्रहण में भोजन न करे। भूने हुए द्रव्य का परित्याग करके पायस भोजन करे। विधवा स्त्री, यति, ब्रह्मचारी और संन्यासियों को ताम्बूल, गोमांस एवं मदिरा के समान होता है, ऐसा वेदों में कहा गया है। उन्हें रक्तवर्ण के शाक, मसूर, जम्बीर नीबू, पान तथा गोल लौकी का सेवन नहीं करना चाहिए। पलँग पर शयन करनेवाली विधवा स्त्री अपने पति का अधःपतन कराती है ॥९४-१०१॥

---

१ क. धर्माच्चाप्यु°।

यानमारोहणं कृत्वा विधवा नरकं व्रजेत्। न कुर्यात्केशसंस्कारं गात्रसंस्कारमेव च ॥१०२॥
केशवेणी जटारूपं तत्क्षौरं तीर्थकं विना। तैलाभ्यङ्गं न कुर्वीत नहि पश्यति दर्पणम् ॥१०३॥
मुखं च परपुंसां च यात्रां नृत्यं महोत्सवम्। नर्तनं[1] गायनं चैव सुवेषं पुरुषं शुभम् ॥१०४॥
शृणुयाच्च सतां धर्मं सामवेदनिरूपितम्। परमार्थं परं चैव निबोध कथयामि ते ॥१०५॥
अध्यापनमध्ययनं शिष्याणां परिपालनम्। गुरूणां सेवनं नित्यं द्विजदेवार्चनं तथा ॥१०६॥
सिद्धान्तशास्त्रनैपुण्यं भावनं स्वात्मतोषणम्। व्याख्यानम् परिशुद्धं च ग्रन्थाभ्यस्तं च संततम् ॥१०७॥
व्यवस्थापरिशुद्ध्यर्थं विचारो वेदसंमतः। शास्त्रार्थाचरणं चैव कर्तव्यं स्वयमेव च ॥१०८॥
देवाह्निकेषु नैपुण्यं वेदाचरणमीप्सितम्। वेदोक्तभक्षणं चैव पवित्राचरणं सदा ॥१०९॥
पतिव्रतानां यं धर्मं तं निबोध व्रजेश्वर। नित्यं तु भर्तुर्यौत्सुक्यात्तत्पादोदकमीप्सितम् ॥११०॥
भक्तिभावेन सततं भोक्तव्यं तदनुज्ञया। व्रतं तपस्यां देवार्चां परित्यज्य प्रयत्नतः ॥१११॥
कुर्याच्चरणसेवां च स्तवनं परितोषणम्। तदाज्ञारहितं कर्म न कुर्याद्वैरतः सती ॥११२॥
नारायणात्परं कान्तं ध्यायते सततं सती। परपुंसां मुखं चैव सुवेषपुरुषं परम् ॥११३॥

---

सवारी पर बैठने से विधवा नरकगामिनी होती है। उसे केशों में तेल आदि नहीं लगाना चाहिए और शरीर के अङ्गों को सौन्दर्य के लिए सजाना नहीं चाहिए, जटारूप में परिवर्तित केश-वेणी को तीर्थ में गये बिना कटाना नहीं चाहिए। वह शरीर में तेल न लगाये, दर्पण न देखे, परपुरुष का मुख दर्शन न करे। यात्रा, नृत्य और महोत्सव में सम्मिलित न हो, नाच-गान न करे और उत्तमवेशधारी सुन्दर पुरुष को न देखे ॥१०२-१०४॥ सामवेद में कहे हुए सज्जनों के धर्म का श्रवण करे। अब मैं आपसे परमोत्कृष्ट परमार्थ का वर्णन करता हूँ, सुनो ॥१०५॥ अध्यापन अध्ययन, शिष्यों का पालन, गुरुजनों की सेवा, ब्राह्मणों और देवों की नित्य पूजा, सिद्धान्त शास्त्र में निपुणता, उत्तम भावना, आत्मसन्तोष, अत्यन्त शुद्ध व्याख्यान, निरन्तर ग्रंथों का अभ्यास, अत्यन्त शुद्ध व्यवस्था के लिए वेदानुकूल विचार तथा शास्त्रानुसार स्वयं आचरण करना चाहिए। देवकर्म में कुशलता, अभीष्ट वेदाचरण, वेद-विहित वस्तुओं का भक्षण तथा सदा पवित्राचरण करते रहना चाहिए ॥१०६-१०९॥ हे व्रजेश्वर ! अब पतिव्रताओं का जो धर्म है, उसे सुनो। पतिव्रता स्त्री पति के प्रति उत्सुकता रखकर उसके चरणोदक का नित्य पान करे। निरन्तर भक्तिभाव से उसकी आज्ञा लेकर भोजन करे। व्रत, तपस्या और देवों की अर्चना त्यागकर प्रयत्न से पति-चरण की सेवा एवं स्तुति करती हुई उसे भली-भाँति सन्तुष्ट रखे ॥११०-११२॥ सती स्त्री बिना उसकी आज्ञा प्राप्त किये वैरभाव से कोई कर्म न करे। सती स्त्री नारायण से बढ़कर अपने पति का निरन्तर ध्यान करती है। वे व्रज ! परपुरुष के मुख-दर्शन,

---

१ क. नर्तकं।

यात्रामहोत्सवं नृत्यं नर्तनं गायनं व्रज। परक्रीडां च सततं न हि पश्यति सुव्रता ॥११४॥
यद्भक्ष्यं स्वामिनो नित्यं तदेवमपि योषिताम्। नहि त्यजेत्तु तत्सङ्गं क्षणमेव च सुव्रता ॥११५॥
उत्तरे नोत्तरं दद्यात्स्वामिनश्च पतिव्रता। न कोपं कुरुते शुद्धा ताडिता चापि कोपतः ॥११६॥
क्षुधितं भोजयेत्कान्तं दद्यात्पानं च भोजनम्। न बोधयेत्तं निद्रालुं प्रेरयेन्नैव कर्मसु ॥११७॥
पुत्राणां च शतगुणं स्नेहं कुर्यात्पति सती। पतिर्बन्धुर्गतिर्भर्ता दैवतं कुलयोषितः ॥११८॥
शुभं दृष्ट्वा सुधातुल्यं कान्तं पश्यति सुन्दरी। सस्मितं वदनं कृत्वा भक्ति भावेन यत्नतः ॥११९॥
पुरुषाणां सहस्रं च सती स्त्री च समुद्धरेत्। पतिः पतिव्रतानां च मुच्यते सर्वपातकात् ॥१२०॥
नास्ति तेषां कर्मभोगः सतीनां व्रततेजसा। तया सार्धं च निष्कर्मी मोदते हरिमन्दिरे ॥१२१॥
पृथिव्यां यानि तीर्थानि सतीपादेषु तान्यपि। तेजश्च सर्वदेवानां मुनीनां च सतीषु च ॥१२२॥
तपस्विनां तपः सर्वं व्रतिनां यत्फलं व्रज। दाने फलं यद्दातॄणां तत्सर्वं तासु संततम् ॥१२३॥
स्वयं नारायणः शंभुर्विधाता जगतामपि। सुराः सर्वे च मुनयो भीतास्ताभ्यां च संततम् ॥१२४॥
सतीनां पादरजसा सद्यः पूता वसुंधरा। पतिव्रतां नमस्कृत्वा मुच्यते पातकान्नरः ॥१२५॥

---

उत्तम वेशधारी सुन्दर पुरुष, यात्रा, महोत्सव, नृत्य, गान एवं दूसरे की क्रीड़ा को पतिव्रता स्त्री कभी नहीं देखती है ॥११३-११४॥ नित्य जो वस्तु स्वामी भक्षण करता है, वही पतिव्रता को भी मान्य होता है। पतिव्रता एक क्षण भी अपने पति का साथ नहीं छोड़ती है ॥११५॥ पतिव्रता अपने स्वामी से उत्तर-प्रत्युत्तर कभी नहीं करती। क्रुद्ध भाव से पति द्वारा ताडित होने पर भी वह पति पर क्रोध नहीं करती है ॥११६॥ पतिव्रता भूखे पति को भोजन कराये और उसे जल एवं भोजन दे। निद्रालु होने पर उसे न जगाये और काम करने के लिए प्रेरित भी न करे ॥११७॥ सती स्त्री पुत्रों से सौगुना अधिक स्नेह पति से करे, क्योंकि कुलवधू का पति ही एकमात्र बन्धु, गति एवं देवता होता है ॥११८॥

वह अमृत के समान शुभकारक अपने पति को देखकर बड़े यत्न से भक्तिभावपूर्वक मुसकराते हुए उसकी ओर निहारती है ॥११९॥ सती स्त्री अपने सहस्रों पीढ़ियों का उद्धार करती है। पतिव्रताओं का पति समस्त पातकों से मुक्त हो जाता है ॥१२०॥ सतियों के पातिव्रत्य तेज से उसका कर्मभोग समाप्त हो जाता है। वे निष्काम होकर पतिव्रता के साथ भगवान् के लोक में आनन्दानुभव करता है ॥१२१॥ पृथिवी पर जितने तीर्थ हैं, वे सभी सती के चरणों में निवास करते हैं। समस्त देवों और मुनियों का तेज सती स्त्रियों में सदा वर्तमान रहता है ॥१२२॥ हे व्रज ! समस्त तप से, तपस्वी जनों को व्रतोपवास से व्रतियों को और दान से दाताओं को जो फल प्राप्त होता है, वह सारा-का-सारा पतिव्रताओं में निरन्तर वर्तमान रहता है ॥१२३॥ इसी कारण उन दोनों से स्वयं नारायण, शिव, जगत् के विधाता (ब्रह्मा), समस्त देवगण एवं मुनिवृन्द निरन्तर भयभीत रहते हैं ॥१२४॥ सती स्त्रियों के चरणरज से वसुन्धरा तुरन्त पवित्र हो जाती है और पतिव्रता को नमस्कार करने से मनुष्य पातक-मुक्त हो जाता है ॥१२५॥ पतिव्रता महापुण्यवती होती है, वह अपने तेज से तीनों

त्रैलोक्यं भस्मसात्कर्तुं क्षणेनैव पतिव्रता। स्वतेजसा समर्था सा महापुण्यवती सदा ॥१२६॥
सतीनां च पतिः साधुः पुत्रो निःशंक एव च। न हि तस्य भयं किंचिद्देवेभ्यश्च यमादपि ॥१२७॥
शतजन्मपुण्यवतां गेहे जाता पतिव्रता। पतिव्रताप्रसूः पूता जीवन्मुक्तः पिता तथा ॥१२८॥
सती स्त्री प्रातरुत्थाय त्यक्त्वा च रात्रिवाससम्। भर्तारं च नमस्कृत्य करोति स्तवनं मुदा ॥१२९॥
गृहकार्यं ततः कृत्वा स्नात्वा धौते च वाससी। गृहीत्वा शुक्लपुष्पं च भक्तितः पूजयेत्पतिम् ॥१३०॥
स्नापयित्वा सुपूतेन जलेन निर्मलेन च। तस्मै दत्त्वा धौतवस्त्रं तत्पादौ क्षालयेन्मुदा ॥१३१॥
आसने वासयित्वा च दत्त्वा भाले च चन्दनम्। सर्वाङ्गलेपनं कृत्वा दत्त्वा माल्यं गलेऽपि च ॥१३२॥
सामवेदोक्तमन्त्रेण भोगद्रव्यैः सुधोपमैः। संपूज्य भक्तितः कान्तं स्तुत्वा च प्रणमेन्मुदा ॥१३३॥
ॐ नमः कान्ताय शान्ताय सर्वदेवाश्रयाय स्वाहा। इत्यनेनैव मन्त्रेण दत्त्वा पुष्पं च चन्दनम् ॥१३४॥
पाद्यार्घ्यं धूपदीपौ च वस्त्रं नैवेद्यमुत्तमम्। जलं सुवासितं शुद्धं ताम्बूलं च सुवासितम् ॥१३५॥
दत्त्वा स्तोत्रं पठेद्यत्कृतं वै पाठ्यमेव च। ॐ नमः कान्ताय भर्त्रे च शिरश्चन्द्रस्वरूपिणे[1] ॥१३६॥
नमः शान्ताय दान्ताय सर्वदेवाश्रयाय च। नमो ब्रह्मस्वरूपाय सतीप्राणपराय च ॥१३७॥
नमस्याय च पूज्याय हृदाधाराय ते नमः। पञ्चप्राणाधिदेवाय चक्षुषस्तारकाय च ॥१३८॥

---

को क्षणमात्र में भस्म करने के लिए सदा समर्थ रहती है ॥१२६॥ सती स्त्रियों के पति साधु होते हैं और पुत्र निःशङ्क होता है, उसे देवों और यमराज से भी कुछ भय नहीं होता है ॥१२७॥ इसलिए सौ जन्मों तक पुण्य करनेवालों के घर में पतिव्रता उत्पन्न होती है। पतिव्रता की जननी पवित्र हो जाती है और उसका पिता जीवन्मुक्त हो जाता है ॥१२८॥ सती स्त्री प्रातःकाल उठकर रात के वस्त्र बदल लेने के उपरान्त प्रसन्न होकर पति को नमस्कार करके हर्ष से उसकी स्तुति करे ॥१२९॥ अनन्तर गृहकार्य करके स्नानोपरान्त दो स्वच्छ वस्त्र धारण करे। फिर श्वेत पुष्प लेकर भक्ति से पति की पूजा करे ॥१३०॥ अत्यन्त पवित्र एवं निर्मल जल से पति को नहलाकर उसे दो स्वच्छ वस्त्र दे और सहर्ष उसके चरणों को धोये ॥१३१॥ फिर आसन पर बैठाकर उसके मस्तक में चन्दन, सर्वाङ्ग में लेपन, गले में माला, सामवेद के मंत्रों के उच्चारणपूर्वक अमृत के समान भोग पदार्थों द्वारा पति की भक्तिपूर्वक पूजा एवं स्तुति करके हर्ष से उसे प्रणाम करे ॥१३२-१३३॥ 'ॐ नमः कान्ताय शान्ताय सर्व देवाश्रयाय स्वाहा' इस मन्त्र द्वारा पति को पुष्प, चन्दन देकर पाद्य अर्घ्य, धूप, दीप, वस्त्र, उत्तम नैवेद्य, सुवासित एवं शुद्ध जल तथा सुवासित ताम्बूल अर्पित करके स्तोत्र पाठ करना चाहिए—ॐ चन्द्रशेखर स्वरूप प्रियतम पति को नमस्कार है। आप शान्त, दान्त तथा समस्त देवों के आश्रयरूप हैं आपको नमस्कार है। ब्रह्मस्वरूप एवं सती के प्राण-परायण को नमस्कार है ॥१३७॥ नमस्कार करने योग्य पूज्य एवं हृदय के आधार रूप तुम्हें नमस्कार है। पाँचों प्राणों के अधीश्वर, आँखों के तारे, पत्नियों के ज्ञानाधार

---

१ क. शिवच'।

ज्ञानाधाराय पत्नीनां परमानन्दरूपिणे । पतिर्ब्रह्मा पतिर्विष्णुः पतिरेव महेश्वरः ॥१३९॥
पतिश्च निर्गुणाधारो ब्रह्मरूप नमोऽस्तु ते । क्षमस्व भगवन् दोषं ज्ञानाज्ञानकृतं च यत् ॥१४०॥
पत्नीबन्धो दयासिन्धो दासीदोषं क्षमस्व मे । इदं स्तोत्रं महापुण्यं सृष्ट्यादौ पद्मया कृतम् ॥१४१॥
सरस्वत्या च धरया गङ्गया च पुरा व्रज । सावित्र्या च कृतं पूर्वं ब्रह्मणे चापि नित्यशः ॥१४२॥
पार्वत्या च कृतं भक्त्या कैलासे शंकराय च । मुनीनां च सुराणां च पत्नीभिश्च कृतं पुरा ॥१४३॥
पतिव्रतानां सर्वासां स्तोत्रमेतच्छुभावहम् । इदं स्तोत्रं महापुण्यं या शृणोति पतिव्रता ॥१४४॥
नरोऽन्यो वाऽपि नारी वा लभते सर्ववाञ्छितम् । अपुत्रो लभते पुत्रं निर्धनो लभते धनम् ॥१४५॥
रोगी च मुच्यते रोगाद्बद्धो मुच्येत बन्धनात् । पतिव्रता च स्तुत्वा च तीर्थस्नानफलं लभेत् ॥१४६॥
फलं च सर्वं तपसां व्रतानां च व्रजेश्वर । इदं स्तुत्वा नमस्कृत्वा भुङ्क्ते सा तदनुज्ञया ॥
उक्तः पतिव्रताधर्मो गृहिणां श्रूयतां व्रज ॥१४७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० भगवन्नन्दसं०
त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥८३॥

•

---

और परमानन्द रूप को नमस्कार है। पति ही ब्रह्मा, पति ही विष्णु, पति ही महेश्वर एवं पति ही निर्गुणाधार ब्रह्म रूप हैं, तुम्हें नमस्कार है । हे भगवन् ! ज्ञान-अज्ञानवश किये हुए मेरे दोषों को क्षमा करें ॥१३८-१४०॥ पत्नीबन्धो ! आप दया के सागर हैं । अतः मुझ दासी का अपराध क्षमा करें । हे व्रज ! पूर्व समय सृष्टि के आरम्भ में (लक्ष्मी), सरस्वती, पृथिवी और गङ्गा ने इस महान् पुण्यदायक स्तोत्र का पाठ किया था । सावित्री ने पूर्वकाल में भी ब्रह्मा की इसी मंत्र द्वारा नित्य स्तुति की थी । कैलास पर पार्वती ने भक्तिपूर्वक शिव का स्तवन किया था । प्राचीन काल में मुनियों और देवों की स्त्रियों ने अपने-अपने पतियों की इसी से स्तुति की थी । समस्त पतिव्रताओं के लिए यह स्तोत्र शुभप्रद है । इस महापुण्य स्तोत्र का, जो पतिव्रता या अन्य नर-नारी श्रवण करते हैं उनके सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं । पुत्रहीन को पुत्र प्राप्त होता है तथा निर्धन पुरुष धन प्राप्त करता है । रोगी रोगमुक्त और बँधा हुआ बन्धन-मुक्त हो जाता है । हे व्रजेश्वर ! पतिव्रता स्त्री इस स्तोत्र द्वारा स्तुति करने पर तीर्थस्नान का फल प्राप्त करती है तथा समस्त तप और व्रतों के भी फल उसे प्राप्त होते हैं । इस स्तोत्र द्वारा स्तुति और नमस्कार करने के उपरान्त पति की आज्ञा से उसे भोजन करना चाहिए । हे व्रज ! मैंने तुम्हें पतिव्रता का धर्म बता दिया । अब गृहस्थों का धर्म सुनो ॥१४१-१४७॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण में श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद-नारायण-संवाद में भगवान् और नन्द के संवाद वर्णन नामक तिरासीवाँ अध्याय समाप्त ॥८३॥

•

# अथ चतुरशीतितमोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

द्विजदेवार्चनं चैव करोति सततं गृही। स्वधर्माचरणं चैव चातुर्वर्ण्यं च नित्यशः ॥१॥
कुर्वन्ति गृहिणामाशां सर्वे देवादयस्तथा। अकृत्वाऽतिथिपूजां च गृहस्थश्च सदाऽशुचिः ॥२॥
पितरः कर्मकाले चातिथिकाले च देवताः। सर्वे गृहस्थमायान्ति निपानमिव धेनवः ॥३॥
समायाति प्रयत्नेन सयाह्ने क्षुधितोऽतिथिः। पूजां लब्ध्वाऽऽशिषं कृत्वा प्रयाति गृहिणो गृहात् ॥४॥
अकृत्वाऽतिथिपूजां च गृही भवति पातकी। त्रैलोक्यजनितं पापं लभते नात्र संशयः ॥५॥
अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते। पितरस्तस्य देवाश्च वह्नयश्च तथैव च ॥६॥
निराशाः प्रतिगच्छन्ति गृहिणोऽतिथयो गृहात्। स्त्रीघ्नैर्गोघ्नैः कृतघ्नैश्च ब्राह्मणैर्गुरुतल्पगैः ॥७॥
तुल्यदोषो भवत्येव [1]येनातिथिरनर्चितः। स्वात्मनः पातकं दत्त्वा पुण्यमादाय गच्छति ॥८॥

---

# अध्याय ८४

## चारों वर्णों के भक्ष्याभक्ष्य का कथन तथा कर्मपरिणाम

**श्रीभगवान् बोले**—गृहस्थ ब्राह्मणों और देवों की नित्य अर्चना करता है। चारों वर्णवाले मनुष्यों को नित्य अपने-अपने धर्मों का आचरण करना चाहिए। सभी देव आदि लोग गृहस्थों की नित्य आशा करते हैं। इसीलिए विना अभ्यागत का सम्मान किये गृहस्थ सदा अपवित्र रहता है ॥१-२॥ (पिण्डदान) आदि कर्म करने के समय पितर लोग और अतिथि पूजन के समय सभी देवता उसी प्रकार गृहस्थों के यहाँ आते हैं, जैसे गौएँ जल से भरे हुए हौज के पास जाती हैं ॥३॥ सायंकाल क्षुधापीड़ित होकर अतिथि बड़े यत्न से गृहस्थ के यहाँ आता है। वहाँ सुसम्मानित होकर आशिष देकर गृहस्थ के घर से विदा होता है ॥४॥ अतिथि की पूजा न करनेवाला गृहस्थ पातकी होता है। उसे तीनों लोकों के पाप प्राप्त होते हैं, इसमें संशय नहीं ॥५॥ जिसके घर से अतिथि निराश होकर लौट जाता है, तो उसके घर से उसके पितर, देव और अग्नि भी निराश होकर चले जाते हैं ॥६॥ जो अतिथि की पूजा नहीं करता है, उसे स्त्रीघाती, गोघाती, कृतघ्न और गुरुपत्नीगामी ब्राह्मणों के समान निश्चित दोषभागी होना पड़ता है, तथा वह अतिथि उसे पातक देकर और उसका पुण्य

---

१ क. यस्याति॰।

तस्मात्कृत्वा सर्वसेवां देवादींश्च शुभाशयः । पोष्याणां भरणं कृत्वा पश्चाद्भुङ्क्ते स धर्मवित् ॥९॥
यस्य माता गृहे नास्ति भार्या च पुंश्चली तथा । अरण्यं तेन गन्तव्यमरण्याद्दुःखदं गृहम् ॥१०॥
पतिं द्वेष्टि सदा दुष्टा विषतुल्यं च पश्यति । ददाति तस्मै नाऽऽहारं भर्त्सनं कुरुते सदा ॥११॥
पूजितं मुनितुल्यं च सा च पापीयसी परम् । संततं तृणवन्मत्वा न्यक्कारं कुरुते सदा ॥१२॥
दुर्वाक्यवह्निना दग्धो मृत तुल्यश्च जीवति । यावज्जीवनपर्यन्तं संप्राप्य दुष्टवंशजाम् ॥१३॥
गृहिणीनां सदाचारं श्रूयतां तच्छ्रुतौ श्रुतम् । गृहिणी पतिभक्ता च देवब्राह्मणपूजिता ॥१४॥
सा शुद्धा प्रातरुत्थाय नमस्कृत्य पतिं सुरम् । प्राङ्गणे मङ्गलं दद्याद्गोमयेन जलेन च ॥१५॥
गृहकृत्यं च कृत्वा च स्नात्वाऽऽगत्य गृहं सती । सुरं विप्रं पतिं नत्वा पूजयेद्गृहदेवताम् ॥१६॥
गृहकृत्यं सुनिर्वृत्य भोजयित्वा पतिं सती । अतिथिं पूजयित्वा च स्वयं भुङ्क्ते सुखं सती ॥१७॥
पुत्रैश्च पूजितस्तातः शिष्यैश्च पूजितो गुरुः । आज्ञया कुरुते कर्म पुत्रः शिष्यश्च भृत्यवत् ॥१८॥
न प्रेरयेद्गुरुं तातं पुत्रः शिष्यश्च कर्मसु । पित्रे च गुरवे नित्यं सर्वस्वं च समर्पयेत् ॥१९॥
न कुर्यान्नरबुद्धिं च गुरौ पितरि संततम् । कृत्वा च नरबुद्धिं च ब्रह्महत्यां लभेद्ध्रुवम् ॥२०॥

---

लेकर चला जाता है ॥७-८॥ इसीलिए धर्मवेत्ता उदार गृहस्थ प्रसन्नतापूर्वक देव आदि समस्त की सेवा करके पोष्य वर्गों (पुत्र आदि) को खिला-पिलाकर पश्चात् भोजन करते हैं ॥९॥ जिसके घर में माता नहीं है तथा पत्नी व्यभिचारिणी है, उसे घर छोड़कर जङ्गल चला जाना चाहिए, क्योंकि उसके लिए घर अरण्य से भी दुःखप्रद होता है ॥१०॥ दुष्ट स्त्री पति से सदा द्वेष रखती है, उसे विष के समान देखती है, भोजन नहीं देती है और नित्य उसकी भर्त्सना करती है ॥११॥

मुनि के समान पूजित पति को वह पापिनी निरन्तर तृण के समान (तुच्छ) समझकर सदा धिक्कारती रहती है ॥१२॥ इस प्रकार दुष्टवंश की कन्या को प्राप्त करने पर पुरुष उसके दुष्ट वचन रूपी अग्नि से दग्ध होकर जीवन पर्यन्त मृतक के समान जीवित रहता है ॥१३॥ वेद में बताये हुए गृहिणी स्त्रियों के अब सदाचार सुनो ! गृहिणी स्त्री पतिभक्ता और देव-ब्राह्मणपूजिता होती है ॥१४॥ वह शुद्धा स्त्री प्रातः उठकर पति और देवता को नमस्कार करके प्राङ्गण (अँगनाई) में गोबर और जल से लीपकर मङ्गल कार्य सम्पन्न करती है ॥१५॥ पश्चात् गृहकार्य करके वह सती स्नान करती है और घर आकर देव, ब्राह्मण एवं पति को नमस्कार करके गृहदेवता की अर्चना करती है ॥१६॥ सती गृहिणी गृहकार्य से भली-भाँति निवृत्त होकर पति को भोजन कराती है और अतिथिपूजन के उपरान्त सुख से स्वयं भोजन करती है ॥१७॥ पुत्रों द्वारा पिता पूजित होता है और शिष्यों द्वारा गुरु पूजित होता है । इस प्रकार पुत्र और शिष्य दोनों सेवक की भाँति आज्ञानुसार कर्म करते हैं ॥१८॥ गुरु और पिता को पुत्र एवं शिष्य काम करने के लिए प्रेरित न करें । पिता और गुरु को नित्य अपना सर्वस्व समर्पण करना चाहिए ॥१९॥ गुरु और पिता में कभी भी नर बुद्धि नहीं करनी चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से उसे निश्चित ही ब्रह्महत्या प्राप्त होती है ॥२०॥ पुत्र को पिता से अधिक माता का सम्मान करना

मातरं पूजयेद्भक्त्या पितुश्चाप्यधिकां तथा । मातुः परं गुरुं चैव पूजयेद्भक्तियोगतः ॥२१॥
पिता माता गुरुर्भार्या शिष्यः पुत्रः सदाऽक्षमः । अनाथा भगिनी कन्या नित्यं पोष्या गुरुप्रिया ॥२२॥
एवं च कथितं तात सर्वेषां धर्ममुत्तमम् । स्त्रीजातिर्वास्तवी शुद्धा ताश्च सर्वाः पतिव्रताः ॥२३॥
सर्वा जातिरेकविधा चाऽऽदौ सृष्टा च ब्रह्मणा । ताः सर्वाः प्रकृतेरंशाः पवित्राः पण्डिताधिकाः ॥२४॥
केदारकन्याशापेन स हि धर्मः क्षयं गतः । तदा कोपेन धात्रा च कृत्या स्त्री च विनिर्मिता ॥२५॥
कृत्या स्त्री त्रिविधा जातिर्ब्रह्मणा निर्मिता पुरा । उत्तमा प्रथमा सा च मध्यमा चाधमा व्रज ॥२६॥
उत्तमा पतिभक्ता सा किंचिद्धर्मसमन्विता । प्राणान्तेऽपि न कुरुते तं जारमयशस्करम् ॥२७॥
पूजयेत्सा यथा कान्तं तथा देवद्विजातिथीन् । व्रतानि चोपवासांश्च कुरुते सर्वपूजनम् ॥२८॥
गुरुणा रक्षिता यत्नाज्जारं च न भजेद्भयात् । सा कृत्रिमा मध्यमा च यथाकिंचित्पतिं भजेत् ॥२९॥
स्थानं नास्ति क्षणं नास्ति नास्ति प्रार्थयिता नरः । तेन हे नन्द तासां च सतीत्वमुपजायते ॥३०॥
अधमा परमा दुष्टाऽत्यन्तासद्वंशजा तथा । अधर्मशीला दुःशीला दुर्मुखा कलहान्विता ॥३१॥
पतिं भर्त्सयते नित्यं जारं च सेवते सदा । दुःखं ददाति कान्ताय विषतुल्यं च पश्यति ॥३२॥
जारद्वारमुपायेन हन्ति कान्तं मनोहरम् । धर्मिष्ठं च वरिष्ठं च गरिष्ठं च महीतले ॥३३॥

---

चाहिए और माता से अधिक गुरु की पूजा भक्तिपूर्वक करनी चाहिए । इस प्रकार पिता-माता, गुरु, पत्नी, शिष्य, स्वयं अपना निर्वाह करने में असमर्थ पुत्र, अनाथ, भगिनी, कन्या और गुरु की पत्नी का नित्य भरण-पोषण करना कर्तव्य है ॥२१-२२॥ हे तात ! इस भांति मैंने स्त्री का उत्तम धर्म बता दिया । स्त्री जाति वस्तुतः शुद्ध है और उसमें सभी पतिव्रताएँ अधिक शुद्ध होती हैं । सृष्टि के आदि में ब्रह्मा ने एक ही प्रकार से सारी जातियों की रचना की थी । वे सभी उत्तम बुद्धिवाली पवित्र स्त्रियाँ प्रकृति के अंश से उत्पन्न हुई थीं ॥२३-२४॥ जब केदार की कन्या के शापवश धर्म क्षीण हो गया था तब ब्रह्मा ने क्रुद्ध होकर कृत्या स्त्री (स्त्रीजाति) का निर्माण किया । हे व्रज ! पूर्वकाल में ब्रह्मा ने कृत्या स्त्री जाति को तीन भागों में विभक्त कर दिया था । उनमें पहली उत्तमा, दूसरी मध्यमा और तीसरी अधमा कही जाती है । धर्मसम्पन्ना उत्तमा स्त्री पति की भक्त होती है । वह प्राणों पर आ बीतने पर भी अपकीर्ति पैदा करनेवाले जार पुरुष को नहीं स्वीकारती है ॥२५-२७॥ वह पति की भाँति देव, ब्राह्मण और अतिथि की पूजा करती है । व्रत, उपवास करती हुई सबकी पूजा करती है । मध्यमा कृत्रिमा स्त्री वह है, जो गुरुजनों द्वारा सुरक्षित होने से भयवश जार पुरुष का साथ नहीं करती है और अपने पति को कुछ-कुछ मानती है । हे नन्द ! स्थान न मिलने के कारण, समय न रहने के कारण और उनसे प्रार्थना करनेवाले पुरुष के न रहने के कारण ही उन स्त्रियों का सतीत्व धर्म स्थिर रहता है ॥२८-३०॥ नीच कुल में उत्पन्न अधमा स्त्री तो परम दुष्टा होती है । वह अधार्मिक, दुष्ट स्वभाववाली, कटुमुखी और कलह (झगड़ा) करनेवाली होती है ॥३१॥

पति की नित्य भर्त्सना करती है और जार पति की सदा सेवा करती है । पति को नित्य दुःख देती है तथा उसे विष के समान देखती है ॥३२॥ इतना ही नहीं, उस जार पुरुष के द्वारा युक्ति से भूतल में धर्मिष्ठ,

कामदेवसमं चापि जारं पश्यति कामतः[1] । शुभदृष्ट्या कटाक्षेण शश्वत्पापीयसी मुदा ॥३४॥
सुवेषं पुरुषं दृष्ट्वा युवानं रतिशूकरम् । योनिः क्लिद्यति नारीणां कामिनीनां निरन्तरम् ॥३५॥
ददाति भर्त्रे नाऽऽहारं विषोक्ति वक्ति संततम् । अधमं चिन्तयेच्छश्वज्जारं च परमं मुदा ॥३६॥
गुरुभिर्भर्त्सिता सा च रक्षिता च शतेन च । तथाऽपि जारं कुरुते नापि साध्यः नृपैरपि ॥३७॥
नास्ति तस्याः प्रियं किंचित्सर्वं कार्यवशेन च । गावस्तृणमिवारण्ये प्रार्थयन्ती नवं नवम् ॥३८॥
विद्युदाभा जले रेखा तस्या प्रीतिस्तथैव च । अधर्मयुक्ता सततं कपटं वक्ति निश्चितम् ॥३९॥
व्रते तपसि धर्मे च न मनो गृहकर्मणि । न गुरौ न च देवेषु जारे स्निग्धं च चञ्चलम् ॥४०॥
स्त्रीजातित्रिविधानां च कथा च कथिता मया । भक्तानां त्रिविधानां च लक्षणं श्रूयतामिति ॥४१॥
तृणशय्यारतो भक्तो मन्नामगुणकीर्तिषु । मनो निवेशयेत्त्यक्त्वा संसारसुखकारणम् ॥४२॥
ध्यायते मत्पदाब्जं च पूजयेद्भक्तिभावतः । अहैतुकीं तस्य देवाः संकल्परहितस्य च ॥४३॥
सर्वसिद्धिं न वाञ्छन्ति तेऽणिमादिकमीप्सितम् । ब्रह्मत्वममरत्वं वा सुरत्वं सुखकारणम् ॥४४॥

---

श्रेष्ठ और गौरवशाली अपने सुन्दर पति का हनन भी करती है। यह पापिन कामवश जार पुरुष को कामदेव के समान सौन्दर्यपूर्ण देखती है और स्नेहभरी आँखों से निरन्तर कटाक्ष करती रहती है ॥३३-३४॥ सुन्दर वेष-वाले युवा और रति कर्म में शूकर के समान लम्पट जार को देखकर कामिनी स्त्रियों की योनि निरन्तर जल से आर्द्र होने लगती है ॥३५॥ अधमा स्त्री अपने पति को भोजन नहीं देती है, निरन्तर विष भरी बातें बोलती हैं, और अधर्म तथा जार का बड़े प्रेम से निरन्तर चिन्तन करती रहती है ॥३६॥ गुरुजनों से डाँट-फटकार पाने पर और सैकड़ों की देखभाल में रहने पर भी वह जार बना लेती है। राजा लोग भी उसे ठीक नहीं कर सकते। उसका प्रिय कोई नहीं होता है, कार्यवश ही वह सब कुछ करती है। अरण्य में नयी घास को चाहनेवाली गौओं के समान वे नित्य नये-नये पुरुष को चाहती हैं ॥३७-३८॥ बिजली के प्रकाश और जल की रेखा के समान उसकी प्रीति क्षणिक होती है, वह अधर्म से युक्त होकर निरन्तर कपटपूर्ण बातें करती है। व्रत, तप, धर्म, गृहकार्य, गुरु तथा देवता में उसका मन कुछ भी नहीं लगता है, मन केवल अपने जार के लिए स्नेहपूर्ण और चञ्चल रहता है ॥३९-४०॥ इस भाँति मैंने तीन प्रकार की स्त्री जाति की कथा तुम्हें कह दी अब तीन प्रकार के भक्तों का लक्षण सुनो।

भक्त तृण की शय्या (कुश की चटाई) पर ही सुख से रहकर संसार के सुख-साधनों का त्याग करके मेरे नाम, गुण और कीर्ति (के गाने) में मन को लगाये रहता है ॥४१-४२॥ मेरे चरण-कमल का ध्यान और भक्ति-भावना से उसकी अर्चना करता है। संकल्प-कामना आदि से रहित उस भक्त को देवता लोग अहैतुकी भक्ति प्रदान करते हैं। वे भक्त उसे अणिमादिक समस्त सिद्धियाँ तथा सुख के कारणभूत ब्रह्मत्व और अमरत्व

---

[1] क. कामुका।

दास्यं विना नहीच्छन्ति सालोक्यादिचतुष्टयम् । नैव निर्वाणमुक्तिं च सुधापानमभीप्सितम् ॥४५॥
वाञ्छन्ति निश्चलां भक्तिं मदीयामतुलामपि । स्त्रीपुंविभेदो नास्त्येव सर्वजीवेषु भिन्नता ॥४६॥
तेषां सिद्धेश्वराणां च प्रवराणां व्रजेश्वर । क्षुत्पिपासादिकं निद्रालोभमोहादिकं रिपुम् ॥४७॥
त्यक्त्वा दिवानिशं मां च ध्यायन्ते च दिगम्बराः । समद्भक्तोत्तमो नन्द श्रूयतां मध्यमादिकम् ॥४८॥
नाऽऽसक्तः कर्मसु गृही पूर्वप्राक्तनतः शुचिः । करोति सततं चैव[1] पूर्वकर्मनिकृन्तनम् ॥४९॥
न करोत्यपरं यत्नात्संकल्परहितः स च । सर्वं कृष्णस्य यत्किंचिन्नाहं कर्ता च कर्मणः ॥५०॥
कर्मणा मनसा वाचा सततं चिन्तयेदिति । न्यूनभक्तश्च तन्न्यूनः स च प्राकृतिकः श्रुतौ ॥५१॥
यमं वा यमदूतं वा स्वप्नेऽपि न च पश्यति । पुरुषाणां सहस्रं च पूर्वभक्तः समुद्धरेत् ॥५२॥
पुंसां शतं मध्यमश्च तच्चतुर्थं च प्राकृतः । भक्तश्च त्रिविधस्तात कथितश्च तवाऽऽज्ञया ॥५३॥
ब्रह्माण्डरचनाख्यानं श्रूयतां सावधानतः । ब्रह्माण्डरचनार्थं च भक्ता जानन्ति यत्नतः ॥५४॥
मुनयश्च सुराः सन्तः किंचिज्जानन्ति दुःखतः । जानामि विश्वं सर्वार्थं ब्रह्माऽऽनन्तो महेश्वरः ॥५५॥

---

को भी नहीं चाहते । इतना ही नहीं, बिना मेरी सेवा के वे सालोक्य आदि चारों प्रकार की मुक्तियों को भी नहीं चाहते हैं । उसे निर्वाण (मोक्ष) की और अभीष्ट अमृत पान की भी चाह नहीं रहती है । वह केवल मेरी अतुल एवं निश्चल भक्ति का इच्छुक रहता है । समस्त जीवों से इसमें यह भिन्नता रहती है कि उसके भीतर स्त्री-पुरुष का भेद नहीं रहता है ॥४३-४६॥ हे व्रजेश्वर ! ऐसे सिद्धेश्वरों में अग्रगण्य (भक्तों) को क्षुधा, पिपासा, निद्रा, लोभ, मोह आदि रिपुगण बाधा नहीं पहुँचा पाते हैं । वे (भक्त) दिगम्बर होकर (अर्थात् वस्त्र की भी चिन्ता न करके) रात-दिन मेरा ध्यान करते हैं । हे नन्द ! वह मेरा सर्वोत्तम भक्त है । अब मध्यम आदि भक्तों के बारे में सुनो ! जो गृहस्थ अपने पूर्वजन्म के संस्कारवश पवित्र होकर कर्मों में आसक्त नहीं होता है, बल्कि अपने पूर्व-कर्मों को सतत नष्ट करता रहता है और प्रयत्नपूर्वक संकल्परहित होकर अन्य कर्म नहीं करता है वह समझता है कि सब कुछ भगवान् कृष्ण का है, मैं किसी कर्म का कर्ता नहीं हूँ ॥४७-५०॥ वह मन, वाणी एवं कर्म से इसी का निरन्तर चिन्तन करता है । ऐसा भक्त 'न्यून भक्त' कहलाता है । उससे भी न्यून भक्त प्राकृतिक कहलाता है, ऐसा वेद में वर्णित है । मेरा भक्त यम या यमदूत को स्वप्न में भी नहीं देखता है । उत्तम भक्त अपनी सहस्रों पीढ़ियों का उद्धार करता है । मध्यम भक्त सौ पीढ़ियों का और प्राकृतिक भक्त पचीस पीढ़ियों का उद्धार करता है । हे तात ! तुम्हारी आज्ञा से मैंने तीन प्रकार के भक्तों का वर्णन कर दिया; अब ब्रह्माण्ड-रचना का व्याख्यान सावधानी से सुनो । ब्रह्माण्ड-रचना का प्रयोजन भक्त प्रयत्न करके जानते हैं ॥५१-५४॥

मुनिगण, देवगण और संत लोग कठिनाई से कुछ जान पाते हैं । विश्व का समस्त प्रयोजन मैं पूर्णतया जानता

---

१ ख. कर्म ।

धर्मः सनत्कुमारश्च नरनारायणावृषी । कपिलश्च गणेशश्च दुर्गा लक्ष्मीः सरस्वती ॥५६॥
वेदाश्च वेदमाता च सर्वज्ञा राधिका स्वयम् । एते जानन्ति विश्वार्थं नान्यो जानाति कश्चन ॥५७॥
वैषम्यार्थं च सुधियः सर्वे विज्ञातुमक्षमाः । नित्याकाशो यथाऽऽत्मा च तथा नित्या दिशो दश ॥५८॥
यथा नित्या च प्रकृतिस्तथैव विश्वगोलकः । गोलोकश्च यथा नित्यस्तथा वैकुण्ठ एव च ॥५९॥
एकदा मयि गोलोके रासे नित्यं प्रकुर्वति । आविर्भूता च वामाङ्गाद्बाला षोडशवार्षिकी ॥६०॥
श्वेतचम्पकवर्णाभा शरच्चन्द्रसमप्रभा । अतीव सुन्दरी रामा रमणीनां परावरा ॥६१॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्या कोमलाङ्गी मनोहरा । वह्निशुद्धांशुकाधाना रत्नाभरणभूषिता ॥६२॥
यथा जलदपङ्क्तिश्च बलाकाभिर्विभूषिता । सिन्दूरबिन्दुना चारुचन्द्रचन्दनबिन्दुभिः ॥६३॥
कस्तूरीबिन्दुभिः सार्धं सीमन्ताधः स्थलोज्ज्वला । अमूल्यरत्ननिर्माणसुस्निग्धकिरणोज्ज्वला ॥६४॥
रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलसमुज्ज्वला । कुङ्कुमालक्तकस्तूरीचारुचन्दनपत्रकैः ॥६५॥
विचित्रैश्च सुचित्रैश्च सुकपोलस्थलोज्ज्वला । खगेन्द्रचञ्चुविजितनासामौक्तिकशोभिता ॥६६॥
गजेन्द्रगण्डनिर्मुक्तमुक्ताभूषणभूषिता । शुक्त्या विमुक्तमुक्ताभदन्तपङ्क्तिमनोहरा ॥६७॥

---

हूँ। फिर ब्रह्मा, महेश्वर, धर्म, सनत्कुमार, नर-नारायण ऋषि, कपिल, गणेश, दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, वेद, वेदमाता (सावित्री) और स्वयं सर्वज्ञा राधिका; ये विश्व का प्रयोजन जानते हैं; अन्य कोई नहीं जानता है। सभी विद्वान् विषमता का प्रयोजन जानने में असमर्थ होते हैं। जिस प्रकार आत्मा नित्य है, उसी भाँति आकाश नित्य है, दशो दिशाएँ नित्य हैं ॥५५-५८॥ जिस प्रकार प्रकृति नित्य है, उसी प्रकार समस्त विश्वगोलक (ब्रह्माण्ड) नित्य है और वैकुण्ठ भी नित्य है। एक बार गोलोक में रास करते हुए मेरे बायें अङ्ग से एक सोलह वर्ष की सुन्दरी प्रकट हुई। वह श्वेत चंपा के समान रंगवाली और शारदीय चन्द्रमा के समान कान्ति पूर्ण थी। वह ललना अत्यन्त सुन्दरी एवं समस्त स्त्रियों में अत्यन्त श्रेष्ठ थी। वह मन्द मुसुकान समेत प्रसन्न मुख, कोमल अङ्गवाली एवं मनोहर थी। वह अग्नि जैसे विशुद्ध वस्त्र पहने हुई थी और रत्नों के भूषणों से इस भाँति भूषित थी, जैसे मेघों की पंक्ति बलाकाओं से भूषित होती हो। सिन्दूर की बिन्दी से, सुन्दर चन्द्रमा जैसे चन्दन बिन्दुओं से और कस्तूरी-बिन्दुओं से इसके सीमन्त (माँग) के नीचे का भाग समुज्ज्वल था। वह अमूल्य रत्नों के बने आभूषणों के अति स्निग्ध किरणों से उज्ज्वल थी ॥५९-६४॥ रत्नों के युगल कुण्डलों से उसका गण्डस्थल प्रकाशित हो रहा था, कुंकुम, अलक्तक (महावर) और कस्तूरी की चित्र-विचित्र रचनाओं से युक्त उसके उज्ज्वल कपोलस्थल थे। पक्षिराज (गरुड़) की चोंच को तिरस्कृत करनेवाली उसकी नासिका मोतियों से सुशोभित थी ॥६५-६६॥ वह गजेन्द्र के गण्डस्थल से निकली हुई गजमुक्ता के आभूषणों से विभूषित थी।

---

१ क. °रात्परा ।

वलिताकलिताऽतीव पक्वबिम्बाधरा वरा। शश्वत्पूर्णेन्दुनिन्दास्या पद्मनिन्दितलोचना ॥६८॥
कृष्णसारनिभोद्भिन्नसुचारुकज्जलोज्ज्वला । अमूल्यरत्ननिर्माणकेयूरकङ्कणोज्ज्वला ॥६९॥
मणीन्द्रराजराजीभिः शङ्खयुग्मकरोज्ज्वला। रत्नाङ्गुलीयकैरेभिरमृताङ्गुलभूषिता ॥७०॥
रत्नेन्द्रराजराजेन क्वणन्मञ्जीररञ्जिता। रत्नपाशकराजीभिः पादाङ्गुलिविराजिता ॥७१॥
सुन्दरालक्तरागेण चरणाधःस्थलोज्ज्वला। गजेन्द्रगामिनी रामा कामिनी वामलोचना ॥७२॥
मां ददर्श कटाक्षेण रमणी रमणोत्सुका। रासे संभूय रामा सा दधार पुरतो मम ॥७३॥
तेन राधा समाख्याता पुराविद्भिः प्रपूजिता। प्रहृष्टा प्रकृतिश्चास्यास्तेन प्रकृतिरीश्वरी ॥७४॥
शक्ता स्यात्सर्वकार्येषु तेन शक्तिः प्रकीर्तिता। सर्वाधारा सर्वरूपा मङ्गलार्हा च सर्वतः ॥७५॥
सर्वमङ्गलदक्षा सा तेन स्यात्सर्वमङ्गला। वैकुण्ठे सा महालक्ष्मीर्मूर्तिभेदे सरस्वती ॥७६॥
प्रसूय वेदान्विदिता वेदमाता च सा सदा। सावित्री सा च गायत्री धात्री त्रिजगतामपि ॥७७॥
पुरा संहृत्य दुर्गं च सा दुर्गा च प्रकीर्तिता। तेजसः सर्वदेवानामाविर्भूता पुरा सती ॥७८॥
तेनाऽऽद्या प्रकृतिर्ज्ञेया सर्वासुरविमर्दिनी। सर्वानन्दा च सानन्दा दुःखदारिद्र्यनाशिनी ॥७९॥

---

शुक्ति (सितुही) से निकली हुई मोतियों के समान उसके दाँतों की पंक्तियाँ मनोहर थीं। पके बिम्बाफल के समान सुन्दर अधर था। उसका मुख पूर्ण चन्द्र को निरन्तर निन्दित करनेवाला था। कमल को तिरस्कृत करनेवाले नेत्र थे, जो मृग के नेत्रों के समान विकसित थे और काजल लगाने से अत्यन्त सुन्दर एवं प्रकाशपूर्ण थे। बाँहों में अमूल्य रत्नों के बने केयूर (भुजबन्द) और कङ्कण से कलाई चमक रही थी। मणीन्द्रों की पंक्तियों और शंख से युगल कर (हाथ) प्रकाशित थे। रत्नों की अँगूठियों से उसकी अमृतमयी अँगुलियाँ सुभूषित थीं ॥६७-७०॥ रत्नेन्द्रराज के बने एवं मधुर ध्वनिपूर्ण नूपुर से रञ्जित, रत्नों के बने पाश (बिछियों) से चरणों को अँगुलियाँ शोभित थीं। सुन्दर महावर के रङ्ग से चरण का निचला भाग उद्भासित था। गजेन्द्र के समान मन्द-मन्द गमन करनेवाली, रमणीय और सुन्दर नेत्रवाली वह कामिनी रमणोत्सुक होकर मुझे कटाक्ष से देखने लगी। रास में सम्मिलित उस रमणी ने मुझे आगे से धारण कर लिया इसलिए प्राचीन विद्वानों ने उसे 'राधा' कहकर सम्मानित किया। उसकी प्रकृति अत्यन्त प्रसन्न हुई, इसलिए वह ईश्वरी प्रकृति कहलायी। ॥७१-७४॥ समस्त कार्यों में समर्थ होने के कारण उसे शक्ति कहा गया। वह सब ओर से सबकी आधार, सर्वरूप सब ओर से मङ्गल योग्य एवं समस्त मङ्गलों में निपुण होने के कारण सर्वमङ्गला कही गयी। वह वैकुण्ठ में महालक्ष्मी व दूसरे रूप से सरस्वती कहलायी ॥७५-७६॥

वेदों को उत्पन्न करके वह वेदमाता नाम से जानी गयी। वही सावित्री गायत्री तथा तीनों लोकों की धात्री है ॥७७॥ पूर्वकाल में दुर्ग नामक असुर का हनन करने से दुर्गा कही गयी। पहले वह सती समस्त देवों के तेज से प्रकट हुई थी ॥७८॥ इसलिए समस्त असुरों का मर्दन करनेवाली वह आद्या प्रकृति कही जाती है। वह सबको आनन्द देनेवाली, आनन्द से युक्त और दरिद्रता की विनाशिनी, शत्रुओं को भय देनेवाली एवं

शत्रूणां भयदात्री च भक्तानां भयहारिणी। दक्षकन्या सती सा च शैलजातेति पार्वती ॥८०॥
सर्वाधारस्वरूपा सा कलया सा वसुंधरा। कलया तुलसी गङ्गा कलया सर्वयोषितः ॥८१॥
सृष्टिं करोमि च यया तात शक्त्या पुनः पुनः। दृष्ट्वा तां रासमध्यस्थां मम क्रीडा तया सह ॥८२॥
बभूव सुचिरं तात यावद्वै ब्रह्मणः शतम्। अत्यद्भुतं कौतुकं च महाश्रृङ्गारमीप्सितम् ॥८३॥
तयोर्द्वयोर्धर्मराशिः सुस्राव रासमण्डले। तस्मान्मनोहरं जज्ञे नाम्नाकारसरोवरम् ॥८४॥
पपात धर्मधाराऽधो वेगेन विश्वगोलके। बभूव जलपूर्णं च ब्रह्माण्डानां च गोलकम् ॥८५॥
जलपूर्णं पुरा सर्वं सृष्टिशून्यं व्रजेश्वर। श्रृङ्गारान्ते च तस्यां च वीर्याधानं मया कृतम् ॥८६॥
दधार गर्भं सा राधा यावद्वै ब्रह्मणः शतम्। सुस्राव सा तदन्ते च डिम्भं च परमाद्भुतम् ॥८७॥
चुकोप देवी तं दृष्ट्वा रुरोद विषसाद सा। पादेन प्रेरयामास तमधो विश्वगोलके ॥८८॥
स पपात जले तात सर्वाधारो महान्विराट्। दृष्ट्वाऽपत्यं जलस्थं च मया शप्ता च सा पुरा ॥८९॥
अनपत्या च सा राधा मच्छापेन पुरा विभो। तेन प्रसूताः क्रमतो दुर्गा लक्ष्मीः सरस्वती ॥९०॥
चतस्रः परिपूर्णास्ताः प्रसूताश्च सुनिश्चितम्। देव्योऽन्याश्चापि कामिन्यस्ताः प्रसूता व्रजेश्वर ॥९१॥
कलया प्रभवो यासां कलांशांशेन वा व्रज। जज्ञे महान्विराडश्चेन डिम्भेन कलयाऽऽश्रयः ॥९२॥

---

भक्तों के भय को दूर करनेवाली है। वही दक्ष-कन्या सती पर्वत से प्रकट होने के कारण पार्वती कही गयी ॥७९-८०॥ वह सबकी आधारस्वरूप एक कला से पृथिवी, एक कला से तुलसी, एक कला से गङ्गा और फिर समस्त स्त्री स्वरूप है। हे तात ! मैं उसी शक्ति से पुनः-पुनः सृष्टि करता हूँ। उस शक्ति को रासमण्डल के मध्य में अवस्थित देखकर मैंने उसके साथ सौ ब्रह्मा के काल तक रतिक्रीड़ा की। उसके अत्यन्त अद्भुत कौतुक (तमाशा) तथा अभीष्ट महाश्रृंगार भी देखा ॥८१-८३॥ अनन्तर उस रासमण्डल में दोनों के शरीर से पसीने की राशि वह निकली, जिससे एक मनोहर सरोवर बन गया ॥८४॥ वह पसीने की धारा बड़े वेग से नीचे विश्व-गोलक में गिरी जिससे समस्त ब्रह्माण्डों का गोलक जल से परिपूर्ण हो गया ॥८५॥ हे व्रजेश्वर ! पहले सब कुछ जल से परिपूर्ण और सृष्टि से शून्य था। श्रृङ्गारोपभोग करने के अनन्तर मैंने उस बाला में वीर्याधान किया ॥८६॥ राधा ने उस गर्भ को सौ ब्रह्मा के समय तक धारण करके पश्चात् एक परम अद्भुत शिशु को जन्म दिया। उसको देखकर (राधा) देवी कुपित हो गयी और फिर विलाप एवं विषाद प्रकट किया। अनन्तर उसे अपने चरण से इस प्रकार झटक दिया कि वह नीचे विश्वगोलक में जाकर गिरा। हे तात ! वह सर्वाधार महान् विराट् जल में गिरा। मैंने उस सन्तान को जल में पड़ा देखकर राधा को शाप दे दिया। हे विभो ! मेरे उसी पूर्वकालीन शाप से राधा अनपत्या (सन्तानरहित) हो गयी। इसलिए क्रमशः दुर्गा, लक्ष्मी और सरस्वती प्रकट हुई। (राधा को मिलाकर) उन चार देवियों ने निश्चित रूप से प्रसव किया। हे व्रजेश्वर ! फिर अन्य कामिनियों ने भी (सन्तान) उत्पन्न कीं, जिनकी कला से या कला के अंश के अंश से एक डिम्भ समूह उत्पन्न हुआ। उस डिम्भ से महान् विराट् प्रकट हुआ, जो (मेरी) कला के आश्रित था ॥८७-९२॥ मैंने

अमृताङ्गुष्ठपीयूषं मया दत्तं पपौ च सः। जले स्थावररूपश्च शेते च निजकर्मणः ॥९३॥
उपधानं जलं तल्पं तस्य योगबलेन च। तस्य लोम्नां च कूपानि जलपूर्णानि संततम् ॥९४॥
प्रत्येकं क्रमतस्तेषु शेते क्षुद्रविराट् पुनः। सहस्रपत्रं कमलं जज्ञे क्षुद्रस्य नाभितः ॥९५॥
तत्र जज्ञे वरो ब्रह्मा तेनायं कमलोद्भवः। तत्राऽऽविर्भूय स विधिश्चिन्ताग्रस्तो बभूव सः ॥९६॥
कस्माद्देहः क्व माता मे पिता वा क्व च बान्धवः। दिव्यं त्रिलक्षवर्षञ्च बभ्राम कमलान्तरे ॥९७॥
ततो दिव्यं पञ्चलक्षं सस्मार तपसा च माम्। तदा मया दत्तमन्त्रं जजाप कमलान्तरे ॥९८॥
दिव्यवर्षसप्तलक्षं नियतं संयतः शुचिः। तदा मत्तो वरं लब्ध्वा स्रष्टा सृष्टिं चकार सः ॥९९॥
मायया प्रति ब्रह्माण्डे ब्रह्मविष्णुशिवात्मकाः। दिक्पाला द्वादशादित्या रुद्राश्चैकादशापि च ॥१००॥
नवग्रहाष्टौ वसवो देवाः कोटित्रयं तथा। ब्राह्मणक्षत्रविट्शूद्रा यक्षगन्धर्वकिन्नराः ॥१०१॥
भूतादयो राक्षसाश्चाप्येवं सर्वं चराचरम्। विश्वे विश्वे विनिर्माणाः स्वर्गाः सप्त क्रमेण च ॥१०२॥
सप्तसागरसंयुक्ता सप्तद्वीपा वसुंधरा। काञ्चनीभूमिसंयुक्ता तमोयुक्तं स्थलं तथा ॥१०३॥
पातालाश्च तथा सप्त ब्रह्माण्डमेभिरेव च। विश्वे विश्वे चन्द्रसूर्यो पुण्यक्षेत्रं च भारतम् ॥१०४॥
तीर्थान्येतानि सर्वत्र गङ्गादीनि व्रजेश्वर। यावन्ति लोमकूपानि महाविष्णोः क्रमेण च ॥१०५॥

---

उस शिशु को अपने अमृतमय अँगूठे से अमृत दिया। वह उसे पी गया। वह अपने कर्म से स्थावर (वृक्ष आदि) रूप होकर जल में शयन करने लगा। योगबल द्वारा जल ही उसकी शय्या और तकिया बन गया। उसके शरीर के समस्त लोमकूप निरन्तर जल से परिपूर्ण रहते थे। प्रत्येक लोमकूप में क्रमशः क्षुद्र विराट् शयन करता है। क्षुद्रविराट् की नाभि से सहस्र पत्तोंवाला कमल उत्पन्न हुआ। उसी कमल से श्रेष्ठ ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई, अतएव इन्हें कमलोद्भव कहा जाता है। उस कमल से उत्पन्न होकर ब्रह्मा चिन्ता करने लगे कि—मेरी देह किससे उत्पन्न हुई है और मेरे माता-पिता एवं बान्धव कौन हैं? इसी भाँति सोचते-विचारते उन्हें उस कमल के बीच दिव्य (देवता के वर्ष के मान से) तीन लाख वर्ष व्यतीत हो गये। पश्चात् उन्होंने दिव्य पाँच लाख वर्षों तक तप के द्वारा मेरा स्मरण किया तब मैंने उन्हें मन्त्र प्रदान किया, जिसे संयत और पवित्र होकर उन्होंने नियमपूर्वक दिव्य सात लाख वर्षों तक उस कमल के भीतर जप किया। अनन्तर मुझसे वर प्राप्त करके उन्होंने स्रष्टा होकर सृष्टि करना आरम्भ किया ॥९३-९९॥

इस प्रकार माया द्वारा प्रत्येक ब्रह्माण्ड में ब्रह्मा, विष्णु, शिव, दिक्पाल, बारह आदित्य, ग्यारह रुद्र, नवग्रह, आठ वसु, तीन करोड़ देवता और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, भूत आदि राक्षसगण एवं चराचर उत्पन्न हुए। प्रत्येक विश्व क्रमशः सात स्वर्ग, सात समुद्र, सात द्वीप, स्वर्णभूमि तथा अन्धकारयुक्त और स्थलवाली पृथ्वी, पाताल और सात ब्रह्माण्ड हैं। हे व्रजेश्वर! प्रत्येक ब्रह्माण्ड में चन्द्रमा, सूर्य, पुण्यप्रदेश भारत और गङ्गा आदि तीर्थ विद्यमान हैं। महाविष्णु के जितने लोमकूप हैं, क्रमशः उतने ही असंख्य विश्व हैं और विश्वों के ऊपर निराधार वैकुण्ठलोक स्थित है। इन सबका निर्माण मेरी इच्छा से हुआ है। वेद भी

विश्वान्येव हि तावन्ति ह्यसंख्यातानि च ध्रुवम् । विश्वेषामूर्ध्वभागे च वैकुण्ठश्च निराश्रयः ॥१०६॥
मदिच्छया विनिर्माणा वेदाः कथितुमक्षमाः । कुयोगिनाम् दृष्टश्चाभक्तानां विनिश्चितम् ॥१०७॥
तस्मादुपरि गोलोकः पञ्चाशत्कोटियोजनः । वायुना धार्यमाणश्च विचित्रः परमाश्रमः ॥१०८॥
अतीव रम्यनिर्माणो नित्यरूपो मदिच्छया । शतशृङ्गेण शैलेन पुण्यवृन्दावनेन च ॥१०९॥
सुरासमण्डलेनापि नद्या विरजया युतः । कोटियोजनविस्तीर्णा प्रस्थेन विरजा व्रज ॥११०॥
दैर्घ्यं तस्याः शतगुणं परितः परमा शुभा । अमूल्यरत्ननिकरैर्हीरमाणिक्ययोस्तथा ॥१११॥
मणीनां कौस्तुभादीनामसंख्यानां मनोहरा । अमूल्यरत्ननिर्माणं तत्रापि प्रतिमन्दिरम् ॥११२॥
मनोहरं च प्राकारमदृष्टं विश्वकर्मणा । गोपीभिर्गोपनिकरैर्वेष्टितं कामधेनुभिः ॥११३॥
कल्पवृक्षैः पारिजातैरसंख्यैश्च सरोवरैः । पुष्पोद्यानैः कोटिभिश्च संवृतं रासमण्डलम् ॥११४॥
वेष्टितं वेष्टितैर्गोपैर्मन्दिरैः शतकोटिभिः । रत्नप्रदीपयुक्तैश्च पुष्पतल्पसमन्वितैः ॥११५॥
सुगन्धिचन्दनामोदैः कस्तूरीकुङ्कुमान्वितैः । क्रीडोपयुक्तैर्भोगैश्च ताम्बूलैर्वासितैर्जलैः ॥११६॥
धूपैः सुरभिरम्यैश्च माल्यैश्च रत्नदर्पणैः । रक्षकै रक्षितं शश्वद्राधादासीत्रिकोटिभिः ॥११७॥
अमूल्यरत्नाभरणैर्वह्निशुद्धांशुकैरपि । लक्षमत्तगजेन्द्राणां वेष्टितं च बलैः क्रमात् ॥११८॥
नवयौवनसंपन्नै रूपैर्निरुपमैरपि । रम्यं च वर्तुलाकारं चन्द्रबिम्बं यथा व्रज ॥११९॥

---

इन्हें बताने में असमर्थ हैं । निन्दित योगियों और अभक्तों के लिए वैकुण्ठ निश्चित रूप से अदृश्य है । उसके ऊपर पचास करोड़ योजन की दूरी पर गोलोक स्थित है । वह वायु पर आधारित विचित्र एवं परम सुन्दर है ॥१००-१०८॥ उसका निर्माण अत्यन्त रमणीक हुआ है । मेरी इच्छा से वह नित्य रूप है । सौ शिखरवाले पर्वत, पुण्यवृन्दावन, अति उत्तम रासमण्डल और विरजा नदी से सुशोभित है । हे व्रज ! वह विरजा नदी एक करोड़ योजन चौड़ी, उसके सौ गुने योजन लम्बी और चारों ओर से परम शुभ है । उसमें अमूल्य रत्नों के समूह, हीरा, माणिक्य और असंख्य कौस्तुभ आदि मणियाँ भरी पड़ी हैं । वह मनोहर है । गोलोक के प्रत्येक भवन का निर्माण अमूल्य रत्नों से किया गया है ॥१०९-११२॥ वहाँ की चहारदीवारी अत्यन्त सुन्दर है, जिसे विश्वकर्मा भी नहीं देख सके हैं । गोलोक का रासमण्डल गोप-गोपियों के समूहों, कामधेनुओं, असंख्य पारिजात वृक्षों, कल्पवृक्षों, सरोवरों और करोड़ों पुष्प-वाटिकाओं से घिरा हुआ है ॥११३-११४॥ वह रासमण्डल गोपों से घिरे सौ करोड़ भवनों से युक्त हैं, जिनमें रत्नों के प्रदीप, पुष्पशय्या, सुगन्धित चन्दन के आमोद, कस्तूरी, कुंकुम, क्रीड़ा करने के उपयुक्त भोगपदार्थ, ताम्बूल, सुवासित जल, अत्यन्त सुगन्धित धूप, मालाएँ, रत्नों के दर्पण, रक्षकगण और राधा की तीन करोड़ दासियाँ रहती हैं, जो अमूल्य रत्नों के आभूषणों से सुभूषित एवं अग्निविशुद्ध वस्त्रों से सुशोभित हैं । वह (रासमण्डल) एक लाख मतवाले गजराजों की सेना से वेष्टित है ॥११५-११८॥ उसके सैनिक नवीन यौवन सम्पन्न एवं अनुपम सौन्दर्य से परिपूर्ण हैं । हे व्रज ! यह रासमण्डल रमणीय चन्द्र-

अमूल्यरत्नरचितं दशयोजनविस्तृतम् । कस्तूरीकुङ्कुमै रम्यैः सुगन्धिचन्दनार्चितम् ॥१२०॥
आवृतं मङ्गलघटैः फलपल्लवसंयुतैः । दधिलाजैश्च पर्णैश्च स्निग्धदूर्वाङ्कुरैः फलैः ॥१२१॥
श्रीरामकदलीस्तम्भैरसंख्यैश्च मनोहरैः । पट्टसूत्रनिबद्धैश्च स्निग्धैश्चन्दनपल्लवैः ॥१२२॥
चन्दनासक्तमाल्यैश्च भूषणैश्च विभूषितम् । अमूल्यरत्नरचितं शतशृङ्गमनोहरम् ॥१२३॥
कोटियोजनमूर्ध्वं च दैर्ध्यं शतगुणोत्तरम् । शैलप्रस्थपरिमितं पञ्चाशत्कोटियोजनम् ॥१२४॥
अतीव कमनीयं च वेदानिर्वचनीयकम् । प्राकारमिव तस्यापि गोलोकस्य मनोहरम् ॥१२५॥
परितो वेष्टितं रम्यं हीरहारसमन्वितम् । तत्र वृन्दावनं रम्यं युक्तं चन्दनपादपैः ॥१२६॥
कल्पवृक्षैश्च रम्यैश्च मन्दारैः कामधेनुभिः । शोभितं शोभनाढ्यैश्च पुष्पोद्यानैर्मनोहरैः ॥१२७॥
क्रीडासरोवरै रम्यैः सुरम्यै रतिमन्दिरैः । अतीव रम्यं रहसि रासयोग्यस्थलान्वितम् ॥१२८॥
रक्षितं रक्षकै रम्यैरसंख्यैर्गोपिकागणैः । परितो वर्तुलाकारं त्रिलक्षयोजनं वनम्[1] ॥१२९॥
षट्पदध्वनिसंयुक्तं पुंस्कोकिलरुतान्वितम् । तत्राक्षयो वटो रम्यो रहस्ये बहुविस्तृतः ॥१३०॥
सहस्रयोजनोर्ध्वश्च परितश्च चतुर्गुणः । गोपीनां कल्पवृक्षश्च सर्ववाञ्छाफलप्रदः ॥१३१॥

---

बिम्ब के समान गोलाकार, अमूल्य रत्नों द्वारा रचित और दसयोजन विस्तृत है। वह रमणीक कस्तूरी, कुंकुम एवं सुगन्धित चन्दन से अर्चित, फल-पल्लवयुक्त, मङ्गल-कलशों से वेष्टित, दही, लावा, पत्तों, स्निग्ध दूर्वा के अंकुरों, फलों, मनोहर एवं संख्यातीत श्रीराम कदली के स्तम्भों, रेशमी धागे से बँधे चन्दन के स्निग्ध पल्लवों, चन्दन लिप्त मालाओं और भूषणों से भूषित है। वह अमूल्य रत्नों से रचित एवं सौ शिखरों से मनोहर है। वह एक करोड़ योजन ऊँचा और उससे सौ गुना लम्बा है। पचास करोड़ योजन तक पर्वत की चोटी के परिमाण में वह अत्यन्त कमनीय है। वेदों में भी वह अनिर्वचनीय है। वह इस गोलोक की सुन्दर चहारदीवारी के समान है ॥११९-१२५॥

वह चारों ओर हीरों के हार से आवृत होने के कारण अति मनोहर है। वहाँ अत्यन्त रमणीक वृन्दावन स्थित है जो चन्दन वृक्षों; रमणीय कल्पवृक्षों, मन्दार वृक्षों, कामधेनुओं, अत्यन्त सुशोभित एवं मनोहर पुष्प-वाटिकाओं, रम्य क्रीड़ा सरोवरों और सुरम्य रतिमन्दिरों से युक्त है। वह अत्यन्त भव्य तथा एकान्त में रास करने योग्य स्थान से समन्वित है ॥१२६-१२८॥ वहाँ असंख्य रमणीय गोपिकाएँ रक्षाकार्य करती हैं। तीन लाख योजन का वह वन चारों ओर से गोलाकार है। उसमें भौंरों के गुञ्जार और कोकिलों की कूक होती रहती है। उस वन में रमणीक अक्षयवट एकान्त में स्थित है। वह अति विस्तारयुक्त, एक सहस्र योजन ऊँचा और चौगुने योजन में चारों ओर घेरेवाला है। गोपियों का सकल कामनादायक कल्पवृक्ष भी उसी

---

[1] ख. वरम्।

क्रीडान्वितैरावृतश्च राधादासीत्रिलक्षकैः । विरजातीरनीराणां वायुना शीतलेन च ॥१३२॥
पुष्पान्वितेन मन्देन पवित्रश्च सुगन्धिना । दासीगणैरसंख्यैश्च वृन्दावनविनोदिनी ॥१३३॥
तत्र क्रीडति राधा सा मम प्राणाधिदेवता । सेयं श्रीदामशापेन वृषभानुसुताऽधुना ॥१३४॥
ब्रह्मादिदेवैः सिद्धेन्द्रैर्मुनीन्द्रैः पूजिता व्रज । सिद्धैर्गुणैर्बलैर्बुद्धचा ज्ञानयोगश्च विद्यया ॥१३५॥
तात सर्वप्रकारेण वन्द्या मत्सदृशी प्रिया । इत्येवं कथितं नन्द ब्रह्माण्डानां च वर्णनम् ॥
यथोचितं परिमितं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥१३६॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० भगवन्नन्दसं०
चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥८४॥

•

# अथ पञ्चाशीतितमोऽध्यायः

नन्द उवाच

वर्णानां च चतुर्णां च भक्ष्याभक्ष्यं च सांप्रतम् । विपाकं कर्मणां चैव सर्वेषां प्राणिनामपि ॥१॥
कथयस्व महाभाग कारणानां च कारणम् । त्वत्तोऽन्यं कं च पृच्छामि नितान्नं सन्तमीश्वरम् ॥२॥

---

स्थान में स्थित है ॥१२९-१३१॥ वहाँ राधा जी की दासियाँ क्रीड़ा में लिप्त रहती हैं। विरजा तट के जल से शीतल, पुष्पों के सुगन्ध से सुगन्धित और मन्द वायु बहता रहता है। असंख्य दासीगणों से युक्त वृन्दावन-विहारिणी एवं मेरे प्राणों की अधिष्ठात्री देवी वह राधा विराजमान है। वही (राधा) श्रीदामा के शापवश इस समय वृषभानु की पुत्री हुई हैं ॥१३२-१३४॥ हे व्रज ! वह ब्रह्मा आदि देवगणों, सिद्धराजों और मुनिवृन्दों से पूजित हैं। वह मेरी प्रिया सिद्ध गुणों, बलों, बुद्धि, ज्ञानयोग और विद्या द्वारा सभी प्रकार से मेरे समान वन्दनीय हैं। हे नन्द ! इस प्रकार ब्रह्माण्डों का वर्णन यथोचित और परिमित रूप में कर दिया, अब और क्या सुनना चाहते हो ? ॥१३५-१३६॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण में श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद-नारायण-संवाद-प्रकरण में
भगवान् और नन्द के संवाद से संबंधित चौरासीवाँ अध्याय समाप्त ॥८४॥

•

## अध्याय ८५

### चारों वर्णों के भक्ष्याभक्ष्य का कथन तथा कर्म-परिणाम

**नन्द बोले**—हे महाभाग ! इस समय मुझे चारों वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रों) के भक्ष्य-अभक्ष्य और सभी प्राणियों के कर्म का फल बताइये, क्योंकि आप कारणों के कारण, सन्त और ईश्वर हैं। इसलिए आपसे अन्य और किससे पूछूँ ॥१-२॥

## श्रीभगवानुवाच

भक्ष्याभक्ष्यं चतुर्णां च वर्णानां च यथोचितम्। वेदोक्तं श्रूयतां तात सावधानं निशामय ॥३॥
अयःपात्रे पयःपानं गव्यं सिद्धान्नमेव च। भृष्टादिकं मधु गुडं नारिकेलोदकं तथा ॥४॥
फलं मूलं च यत्किंचिदभक्ष्यं मनुरब्रवीत्। दग्धान्नं तप्तसौवीरमभक्ष्यं ब्रह्मनिर्मितम् ॥५॥
नारिकेलोदकं कांस्ये ताम्रपात्रे स्थितं मधु। गव्यं च ताम्रपात्रस्थं सर्वं मद्यं घृतं विना ॥६॥
ताम्रपात्रे पयःपानमुच्छिष्टे घृतभोजनम्। दुग्धं सलवणं चैव सद्यो गोमांसभक्षणम् ॥७॥
अभक्ष्यं मधुमिश्रं च घृतं तैलं गुडं तथा। आर्द्रकं गुडसंयुक्तमभक्ष्यं श्रुतिसंमतम् ॥८॥
पीतशेषजलं चैव माघे च मूलकं तथा। जपादिकं च शयने सदा प्राज्ञः परित्यजेत् ॥९॥
द्विर्भोजनं च दिवसे संध्ययोर्भोजनं तथा। भक्ष्यं च रात्रिशेषे च ध्रुवं प्राज्ञः परित्यजेत् ॥१०॥
पानीयं पायसं चूर्णं घृतं लवणमेव च। स्वस्तिकं गुडकं चैव क्षीरं तक्रं तथा मधु ॥११॥
हस्ताद्धस्तगृहीतं च सद्यो गोमांसमेव च। कर्पूरं रौप्यपात्रस्थमभक्ष्यं श्रुतिसंमतम् ॥१२॥
परिवेषणकारी चेद्भोक्तारं स्पृशते यदि। अभक्ष्यं च तदन्नं च सर्वेषामेव संमतम् ॥१३॥
नकुलानां गण्डकानां महिषाणां च पक्षिणाम्। सर्पाणां सूकराणां च गर्दभानां विशेषतः ॥१४॥

---

**श्रीभगवान् बोले**—हे तात ! मैं चारों वर्णों के लिए वेदोक्त यथोचित भक्ष्याभक्ष्य बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो। लोहे के पात्र में जल, गव्य (दूध, दही, घी), सिद्धान्न, भूना पदार्थ, मधु, गुड़, नारियल का जल, फल, मूल आदि जो कुछ रखा जाय वह अभक्ष्य हो जाता है, ऐसा मनु ने कहा है। जला हुआ अन्न और ब्राह्मण द्वारा बनायी गयी जो की कांजी अभक्ष्य है ॥३-५॥ कांस्य पात्र में नारियल का जल, ताँबे के पात्र में मधु और गव्य (दूध, दही), सभी मद्य के समान अभक्ष्य हो जाता है केवल घी को छोड़कर ॥६॥ ताँबे के पात्र में दुग्धपान, जूठे पात्र में घृत, भोजन और नमक समेत दूध का पान करना सद्यः गोमांस भक्षण के समान है ॥७॥ मधुमिश्रित घी, तेल, गुड़ और गुड़युक्त अदरक अभक्ष्य है ऐसा श्रुति का कहना है ॥८॥ पीने से बचा जल, माघ-मास में मूली और शय्या पर जप आदि कर्म विद्वानों को नहीं करना चाहिए ॥९॥ दिन में दो बार भोजन, दोनों संध्याओं में भोजन और रात्रि के पिछले पहर में भोजन विद्वानों को निश्चित ही त्याग देना चाहिए ॥१०॥ जल, पायस (खीर आदि), चूर्ण (आटा आदि), घी, नमक, स्वस्तिक (पीठी), गुड़, दूध, मट्ठा और मधु किसी के हाथ से हाथ में लेना सद्यः गोमांस के समान है। चाँदी के पात्र में कपूर भी वेदानुसार अभक्ष्य है ॥११-१२॥ भोजन परोसनेवाला यदि भोजन करनेवाले को छू लेता है तो उसका अन्न अभक्ष्य हो जाता है, यह सभी की राय है ॥१३॥ हे व्रजेश्वर ! नेवलों, गैंड़ों, भैंसों, पक्षियों, सर्पों, सूकरों, विशेषतया गधों, बिल्लियों, स्यारों, मुर्गों,

मर्जाराणां शृगालानां कुक्कुटानां व्रजेश्वर। व्याघ्राणामपि सिंहानां त्याज्यं मांसं नृणां सदा ॥१५॥
जलौकसां च नक्राणां गोधिकानां तथैव च। मण्डूकानां कर्कटानां चुञ्चुकानां च निश्चितम् ॥१६॥
गवां च चमरीणां च न कलौ मांसभक्षणम्। हस्तिनां घोटकानां च नृणामेव च रक्षसाम् ॥१७॥
दंशश्च मशकश्चैव मक्षिका च पिपीलिका। अन्येषां च निषिद्धानां लोके वेदे व्रजेश्वर ॥१८॥
वानराणां भल्लुकानां शरभाणां तथैव च। निषिद्धं मृगनाभीनां गर्दभानां च मांसकम् ॥१९॥
अभक्ष्यं महिषीणां च दुग्धं दधि घृतं तथा। स्वस्तिकं च तथा तत्र विप्राणां नवनीतकम् ॥२०॥
मांसमुच्चैःश्रवसकं तस्य दुग्धादिकं तथा। वर्णानां च चतुर्णां चाप्यभक्ष्यं च श्रुतौ श्रुतम् ॥२१॥
अभक्ष्यमार्द्रकं चैव सर्वेषां च रवेर्दिने। पर्युषितं जलं चान्नं विप्राणां दुग्धमेव च ॥२२॥
वर्णानां च चतुर्णां चाप्यवीरान्नस्य भक्षणम्। तदन्नं च सुरातुल्यं गोमांसाधिकमेव च ॥२३॥
अवीरान्नं च यो भुङ्क्ते ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः। पितृदेवार्चनं तस्य निष्फलं मनुरब्रवीत् ॥२४॥
ब्राह्मणानां वैष्णवानामभक्ष्यं मत्स्यमेव च। इतरेषामभक्ष्यं च पञ्चपर्वसु निश्चितम् ॥२५॥
पितृदेवावशेषे च भक्ष्यं मांसं न दूषितम्। पञ्चपर्वसु त्याज्यं च सर्वेषां मनुरब्रवीत् ॥२६॥
असंस्कृतं च लवणं तैलं चाभक्ष्यमेव च। भक्ष्यं पवित्रं सर्वेषां व्यञ्जनं वह्निसंस्कृतम् ॥२७॥

---

व्याघ्रों, सिंहों और मनुष्यों का मांस सदा त्याज्य है ॥१४-१५॥ उसी प्रकार जल में रहनेवाले मगरमच्छों, गोहों, मेढकों, केकड़ों, छछूंदरों और चमरी गायों का मांस कलियुग में नहीं खाना चाहिए। हे व्रजेश्वर ! हाथियों, घोड़ों, मनुष्यों, राक्षसों, डांसों, मच्छरों, मक्खियों, चीटियों तथा लोक और वेद में निषिद्ध अन्य जीवों का मांस नहीं खाना चाहिए ॥१६-१८॥ इसी प्रकार वानर, भालू, ऊँट (या अष्टपाद पशु-विशेष), कस्तूरी मृग और गधे का मांस नहीं खाना चाहिए ॥१९॥ ब्राह्मणों के लिए भैंस के दूध, दही, घी, मक्खन और उसमें बना हुआ स्वस्तिक पीठी निषिद्ध हैं ॥२०॥ घोड़े का मांस और (घोड़ी के) दूध आदि चारों वर्णों के लिए अभक्ष्य है, ऐसा वेद में कहा गया है ॥२१॥ रविवार के दिन सभी के लिए अदरक अभक्ष्य है और ब्राह्मणों के लिए वासी जल, अन्न एवं दूध अभक्ष्य है ॥२२॥

पति-पुत्र हीना विधवा का अन्न-भक्षण चारों वर्णों के लिए वर्जित है, क्योंकि उसका अन्न मदिरा के समान और गोमांस से भी अधिक दोषयुक्त है ॥२३॥ इसलिए ज्ञान की कमी के कारण जो ब्राह्मण ऐसी विधवा का अन्न भोजन करता है, उसकी पितरों और देवों की अर्चना निष्फल हो जाती है। ऐसा मनु ने कहा है ॥२४॥ ब्राह्मणों और वैष्णवों के लिए मत्स्य अभक्ष्य है और अन्य जातिवालों के लिए पाँचों पर्व, तिथियों (अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या, पूर्णिमा और सूर्य संक्रान्ति) में निषिद्ध है यह निश्चित है ॥२५॥ पितृ-कार्य और देव-कार्य में भक्ष्य मांस दूषित नहीं है। पाँचों पर्वों (उक्त तिथियों) में सभी के लिए मांस निषिद्ध है, ऐसा मनु ने कहा है ॥२६॥ विना संस्कार किया हुआ नमक और तेल अभक्ष्य है किन्तु अग्नि द्वारा संस्कृत पवित्र व्यञ्जन

एकहस्ते घृतं तोयमभक्ष्यं सर्वसंमतम् । आविलं कृमियुक्तं च[1] परिशुद्धं च निर्मलम् ॥२८॥
अभक्ष्यं ब्राह्मणानां च वैष्णवानां विशेषतः । अनिवेद्यं हरेरेव यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ॥२९॥
पिपीलिकामिश्रितं च मधु गव्यं गुडं तथा । यत्किंचिद्वस्तु वा तात न भक्ष्यं च श्रुतौ श्रुतम् ॥३०॥
पक्षिभक्ष्यं कीटभक्ष्यं शुद्धं पक्वफलं तथा । काकभक्ष्यमभक्ष्यं च सर्वेषां द्रव्यमेव च ॥३१॥
घृतपक्वं तैलपक्वं मिष्टान्नं शूद्रसंस्कृतम् । अभक्ष्यं ब्राह्मणानां च शूद्रभक्ष्यं[2] च पीठकम् ॥३२॥
सर्वेषामशुचीनां च जलमन्नं परित्यजेत् । आशौचान्तात्परदिने शुद्धमेव न संशयः ॥३३॥
विपाकं कर्मणामेव दुष्करं श्रुतिसंमतम् । भक्ष्याभक्ष्यं च कथितं यथाज्ञानं व्रजेश्वर ॥३४॥
क्रमाच्चतुर्षु वेदेषु चोक्तं मतचतुष्टयम् । सर्वेषां सारभूतं च कथयामि पितः शृणु ॥३५॥
नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि । अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥३६॥
तीर्थानां च सुराणां च सहायेन नृणामपि । किंचिद्भवति साहाय्यं कायव्यूहेन सर्वतः[3] ॥३७॥
प्रायश्चित्तानि चीर्णानि निश्चितम् मत्पराङ्मुखम् । न निष्पुनन्ति हे तात सुराकुम्भमिवाऽऽपगाः ॥३८॥

---

सभी के लिए भक्ष्य है ॥२७॥ एक हाथ पर घी और जल सर्वसम्मत से अभक्ष्य होता है । गँदला और कृमियुक्त जल वर्जित है और निर्मल जल भी परिशुद्ध न होने पर निषिद्ध है ॥२८॥ ब्राह्मणों, विशेषकर वैष्णवों, संन्यासियों और ब्रह्मचारियों के लिए भगवान् को निवेदित किये बिना कोई भी पदार्थ नहीं खाना चाहिए ॥२९॥ हे तात ! चीटी मिश्रित मधु, दूध, दही, घी, गुड़ एवं अन्य पदार्थ भी अभक्ष्य हैं, ऐसा वेद में सुना गया है ॥३०॥ पक्षी और कीड़ों का खाया हुआ पका फल शुद्ध ही रहता है किन्तु कौए का खाया हुआ सभी पदार्थ सबके लिए अभक्ष्य है । शूद्र द्वारा बनाया हुआ घृतपक्व और तैलपक्व मिष्टान्न तथा पीठक शूद्रों के खाने योग्य होता है, ब्राह्मणों के लिए नहीं । सभी अपवित्र लोगों का अन्न और जल त्याग देना चाहिए । अशौच समाप्त होने के दूसरे दिन सब शुद्ध हो जाता है, इसमें संशय नहीं ॥३१-३३॥ कर्मों का परिणाम दुष्कर ही होता है, ऐसा श्रुतियों का अभिमत है । हे व्रजेश्वर ! अपनी जानकारी के अनुसार सभी लोगों के भक्ष्याभक्ष्य का वर्णन मैंने कर दिया ॥३४॥ हे पिता ! यद्यपि चारों वेदों में इसके लिए क्रमशः चार मत होने के कारण मतभेद है, तथापि सभी का सारभूत मैं बता रहा हूँ, उसे सुनो ॥३५॥ सैकड़ों कोटि कल्प व्यतीत होने पर भी किया हुआ कर्म बिना फलोपभोग किये क्षीण (नष्ट) नहीं होता है । अतः अपने द्वारा किया हुआ कर्म अवश्य ही भोगना पड़ता है ॥३६॥ तीर्थों और देवों के सहयोग से विभिन्न शरीरों में, मनुष्यों को भी कुछ सहायता हो जाती है ॥३७॥ हे तात ! मेरे विमुख रहनेवाले को प्रायश्चित्त कर्म उसी प्रकार पवित्र नहीं कर पाते जैसे मदिरा के कलश को नदियाँ पवित्र नहीं कर पातीं ॥३८॥

---

१ ख. चाप° । २ क. भृष्टं पिपी° । ३ क. यत्नतः ।

प्रायश्चित्तेन पुण्येन न हि शुध्यन्ति मानवाः। सर्वारम्भेण वैश्येन्द्र दानेन योगतोऽपि वा ॥३९॥
शुभाशुभं च यत्कर्म विना भोगान्न च क्षयः। भोगेन शुद्धिमाप्नोति ततो मुक्तिर्भवेन्नृणाम् ॥४०॥
न नष्टं दुष्कृतं कर्म सुकृतेन च कर्मणा। न नष्टं सुकृतं कर्म कृतेन दुष्कृतेन च ॥४१॥
यज्ञेन तपसा वाऽपि व्रतेनानशनेन च। तीर्थस्नानेन दानेन जपेन नियमेन च ॥४२॥
भुवः प्रदक्षिणेनैव पुराण श्रवणेन च। उपदेशेन पुण्येन पूजया गुरुदेवयोः ॥४३॥
स्वधर्माचरणेनैवातिथीनां पूजनेन च। ब्रह्मणां पूजनेनैव भोजनेन विशेषतः ॥४४॥
यद्दत्तमपि विप्राय तत्प्राप्तं पूर्णरूपतः। बीजरूपं च तद्दानं क्षेत्ररूपं च ब्राह्मणः ॥४५॥
एकेन कर्मणा तात स्वर्गं प्राप्नोति मानवः। कर्मणा न हि मोक्षं च तदेव मम सेवया ॥४६॥
स्वर्गं च सुकृतेनैव नरकं दुष्कृतेन च। व्याधिर्जन्म च योनौ च कुत्सिते च ततः शुचिः ॥४७॥
गोघ्नो यो ब्राह्मणानां च कामतश्चोपपातकी। दन्दशूकत्वमाप्नोति गोलोमसमवर्षकम् ॥४८॥
सर्पेण भक्षितस्तेन ज्वालया गरलस्य च। तृषितो व्यथितश्चैव निराहारः कृशोदरः ॥४९॥
ततः कुण्डात्समुत्थाय गौर्भवेल्लोमवर्षकम्। ततः कुष्ठी च चाण्डालो वर्षलक्षं ततो नरः ॥५०॥
तदा भवेद्ब्राह्मणश्च कुष्ठयुक्तो हि कर्मणा। भोजयित्वा विप्रलक्षं निर्व्याधिश्च भवेच्छुचिः ॥५१॥

---

हे वैश्येन्द्र ! पुण्य प्रायश्चित्त और सब प्रकार के दान एवं योग द्वारा भी मनुष्य इस विषय में शुद्ध नहीं होता है, क्योंकि वह शुभ-अशुभ कर्म बिना उपभोग किये नष्ट नहीं होता है। उसके भोग करने पर ही मनुष्य शुद्ध होता है और तभी उसकी मुक्ति होती है ॥३९-४०॥ पाप कर्म सुकर्म द्वारा नष्ट नहीं होता है और न पाप कर्म द्वारा सुकर्म नष्ट होता है ॥४१॥ यज्ञ, तप, व्रत, उपवास, तीर्थस्नान, दान, जप, नियम, पृथ्वी की प्रदक्षिणा, पुराण-श्रवण, पुण्योपदेश, गुरु और देव की पूजा, स्वधर्माचरण, अतिथि-पूजन, ब्राह्मणों का पूजन और विशेषतया उन्हें भोजन कराने से भी दुष्कर्म का विनाश नहीं होता है ॥४२-४४॥ ब्राह्मण को जो दिया जाता है, वह पूर्ण रूप से प्राप्त होता है, क्योंकि ब्राह्मण क्षेत्र रूप है और वह दान बीज के समान है। तात ! मनुष्य एक कर्म द्वारा स्वर्ग प्राप्त कर लेता है, परन्तु मोक्ष कर्म से नहीं प्राप्त होता है। वह केवल मेरी सेवा द्वारा प्राप्त होता है ॥४५-४६॥ पुण्य कर्म करने से स्वर्ग प्राप्त होता है और पाप कर्म करने से नरक की प्राप्ति होती है तथा कुत्सित कर्म करने से व्याधि और नीच योनि में जन्म प्राप्त होता है, तत्पश्चात् पवित्र होता है ॥४७॥ ब्राह्मणों में जो गोहत्या करनेवाला है और स्वेच्छापूर्वक छोटे-बड़े पाप करनेवाला है, वह गोलोम की संख्या प्रमाण वर्षों तक दन्दशूक नामक नरक में वास करता है ॥४७-४८॥ वहाँ वह सर्प के डसने पर उसकी विष ज्वाला से तृषित, व्यथित, निराहार और कृशोदर (सटे हुए पेटवाला) हो जाता है। उपरान्त उस कुण्ड से निकलकर गौ के शरीर में जितने रोएँ होते हैं उतने वर्षों तक वह गौ की योनि में उत्पन्न होता है। पुनः एक लाख वर्षों तक कुष्ठ का रोगी और चाण्डाल होता है, उसके बाद मनुष्य होता है ॥४९-५०॥ पश्चात् कर्मवश कुष्ठ रोग युक्त ब्राह्मण होता है जो एक लाख ब्राह्मणों को भोजन कराने पर व्याधिरहित

अकामतस्तदर्धं च क्षत्रियस्यापि कामतः । अकामतस्तदर्धं च तदर्धं च विशस्तथा ॥५२॥
तदर्धं शूद्रगोघ्नश्च भुङ्क्ते पापं न संशयः । प्रायश्चित्तेन शुद्धश्च भुङ्क्ते शेषं च कर्मणः ॥५३॥
अनुकल्पे चतुर्थं च पापं भुङ्क्ते न संशयः । चतुर्गुणं च गोघ्नानां ब्राह्मणानां च पातकम् ॥५४॥
भुङ्क्ते पापं च ब्रह्मघ्नो ब्राह्मणश्चेतरोऽपि वा । क्रमेणानेन बोध्यं च कामतोऽकामतोऽपि वा ॥५५॥
प्रायश्चित्तं जन्म कर्म व्याधिरेव न संशयः । गोघ्नो भवति गौश्चापि यावद्वर्षं च निश्चितम् ॥५६॥
चतुर्गुणं च तेषां च ब्रह्मघ्नो विट्कृमिर्भवेत् । ततो भवति म्लेच्छश्च तावद्वर्षंचतुर्गुणम् ॥५७॥
ततश्चान्धो भवेद्विप्रः पूर्वेषां च चतुर्गणम् । ब्राह्मणानां चतुर्लक्षं भोजयित्वा शुचिर्भवेत् ॥५८॥
चक्षुष्मांश्च यशस्वी च भवेत्सोऽप्यतिपातकात् । स्त्रीघ्नश्चतुर्णां वर्णानां वेदे सोऽप्यतिपातकी ॥५९॥
कालसूत्रं च प्राप्नोति स्त्रीलोमसमवर्षकम् । भक्षितः कृमिणा तत्र निराहारो व्यथायुतः ॥६०॥
ततो भवति लोके च तावद्वर्षं च पातकी । ततः पापी भवेत्सोऽपि यक्ष्मग्रस्तश्च कर्मणा ॥६१॥
वर्षाणां शतकं चैव विप्रलक्षं च भोजयेत् । ततः शुद्धो ब्राह्मणश्च विद्वांस्तपसि संयतः ॥६२॥
किंचिद्भुङ्क्ते पापशेषं स्वर्णदानाच्छुचिर्भवेत् । गर्भघ्नश्च महापापी संप्राप्नोति शुनीमुखम्[1] ॥६३॥

---

और शुद्ध हो जाता है ॥५१॥ अनिच्छावश वैसा कर्म करने पर उसका आधा फल भोगना पड़ता है। इसी भाँति क्षत्रिय को भी ऐसा सकाम करने पर उपर्युक्त पूर्ण फल और अनिच्छावश करने से आधा फल भोगना पड़ता है। उसका आधा वैश्य को और उसका आधा पाप गोहन्ता शूद्र को भोगना पड़ता है, इसमें संशय नहीं। उपरान्त प्रायश्चित्त कर्म द्वारा शुद्ध होकर कर्म का शेष फल भोगता है। अनुकल्प में पाप का चौथाई फल भोगता है, इसमें संशय नहीं। गोहन्ता ब्राह्मण को उसका चौगुना पाप भोगना पड़ता है ॥५२-५४॥ इसी प्रकार ब्रह्मघाती ब्राह्मण या इतर जातिवाला व्यक्ति क्रमशः सकाम या अनिच्छावश वैसा कर्म करने पर इसी प्रकार पाप का फल भोगता है। प्रायश्चित्त जन्म और कर्म व्याधि ही है, इसमें संशय नहीं। गोहत्या करनेवाला भी उतने वर्षों तक निश्चित रूप से गौ होता है जितने उस गौ के शरीर में रोएँ होते हैं ॥५५-५६॥ ब्रह्मघाती उनसे भी चौगुने वर्षों तक विष्ठा का कीड़ा होता है, फिर उनसे चौगुने वर्षों तक म्लेच्छ होता है। इसके उपरान्त उनसे चौगुने वर्षों तक अन्धा ब्राह्मण होता है, जो चार लाख ब्राह्मण भोजन कराने पर शुद्ध होता है ॥५७-५८॥

अतिपातक से मुक्त होने पर वह नेत्रवान् और यशस्वी होता है। चारों वर्णों में स्त्रीहन्ता वेद में अतिपातकी कहा गया है। वह स्त्री-लोम के समान वर्षों तक कालसूत्र नामक नरक में रहकर कीड़ों द्वारा भक्षित, निराहार और व्यथापीड़ित होता है ॥५९-६०॥ अनन्तर वह पातकी उतने ही वर्षों तक लोक में जन्म ग्रहण कर पापी तथा यक्ष्मारोग पीड़ित होता है ॥६१॥ पश्चात् सौ वर्षों तक एक लाख ब्राह्मणों को भोजन कराने से शुद्ध होकर वह विद्वान् एवं तपः परायण ब्राह्मण होता है। पश्चात् भी कुछ शेष पाप का उपभोग करता है तथा सुवर्णदान करने से शुद्ध हो जाता है। गर्भ का हनन करनेवाला महापापी शुनीमुख नामक नरक

---

१ क. शुचिर्मु' ।

वर्षाणां शतकं चैव घोटकश्च भवेद्ध्रुवम् । वर्षाणां शतकं चैव सूक्ष्मशस्त्रेण पीडितः ।।६४।।
ततः पापी भवेद्वैश्यो द्रव्ययुक्तो[१] हि कर्मणा । पञ्चाशद्वर्षपर्यन्तं स्वर्णदानाद्भवेच्छुचिः ।।६५।।
ततः स्वकुलजातोऽपि निर्व्याधिर्ब्राह्मणः शुचिः । ब्राह्मणः क्षत्रियघ्नश्च क्षत्रियो वा विना रणात् ।।६६।।
तप्तशूलं च प्राप्नोति वर्षाणां च सहस्रकम् । क्वथितं तप्तलोहेन चाऽऽर्तनादं करोति च ।।६७।।
ततो भवेन्मत्तगजो वर्षाणां शतकं तथा । ततो रक्तविकारी च शूद्रो वर्षशतं तथा ।।६८।।
गजदानेन मुक्तश्च व्याधितश्च ततो द्विजः । वैश्यघ्नश्चापि वैश्यश्च शूद्रघ्नो वैश्य एव च ।।६९।।
वैश्यघ्नश्चापि शूद्रश्च समं पापं लभेद्ध्रुवम् । कृमिकुण्डं च प्राप्नोति वर्षाणां शतकं तथा ।।७०।।
कृमिभिर्भक्षितो दुःखी किरातश्च भवेत्ततः । वर्षाणां शतकं चैव कृमिव्याधिसमन्वितः ।।७१।।
ततो मन्दाग्नियुक्तश्च ब्राह्मणो दैन्यवान्व्रज । पञ्चाशद्वर्षपर्यन्तं दुर्बलश्च कृशोदरः ।।७२।।
मुक्तिर्भवति युक्तेन तीर्थे चाश्वप्रदानतः । शूद्रघ्नो ब्राह्मणश्चैव कामतोऽकामतोऽपि वा ।।७३।।
सावित्री लक्षजाप्येन तदर्धेन शुचिर्भवेत् । चतुर्वर्णः कुक्कुरघ्नो[२] ह्यभिशप्तश्च शंभुना ।।७४।।
वर्षाणां शतकं चैव प्राप्नोति रौरवं नरः । ततो भवेत्कुक्कुरश्च[३] वर्षाणामपि षोडश ।।७५।।
ततः शुद्धो भवेद्विप्रो भक्षितः कुक्कुरेण[४] च । गङ्गास्नानेन दानेन स्वर्णस्यापि भवेच्छुचिः ।।७६।।

---

में जाता है वहाँ वह सौ वर्षों तक सूक्ष्म शस्त्र से पीड़ित किया जाता है। फिर उसे निश्चय ही सौ वर्षों तक घोड़े की योनि में जन्म लेना पड़ता है ।।६२-६४।। पश्चात् वह पापी धनवान् वैश्य होता है और पचास वर्षों तक सुवर्णदान करने से शुद्ध होता है ।।६५।। अपने कुल में पुनः उत्पन्न होकर नीरोग एवं पवित्र ब्राह्मण होता है। युद्ध के बिना क्षत्रिय को मारनेवाला ब्राह्मण या क्षत्रिय तप्तशूल नामक नरक में जाकर सहस्र वर्षों तक दुःखानुभव करता है। वह तपाये लोहे द्वारा पकने पर आर्तनाद करता रहता है। उपरान्त सौ वर्षों तक मतवाला हाथी होकर पुनः सौ वर्षों तक रक्त विकार का रोगी शूद्र होता है ।।६६-६८।। पश्चात् गजदान द्वारा रोगमुक्त होकर शुद्ध ब्राह्मण होता है। इसी प्रकार वैश्यहन्ता वैश्य, शूद्रहन्ता वैश्य या वैश्य का हनन करनेवाला शूद्र ये सब समान पाप के भागी होते हैं। इन्हें सौ वर्षों तक कृमिकुण्ड में रहना पड़ता है, जहाँ कीड़ों के काटने से वे दुःखी होते हैं। पश्चात् व्याध होकर सौ वर्षों तक कीड़े युक्त व्याधि से पीड़ित होते हैं। हे व्रज ! तदुपरान्त वे मन्दाग्नि के रोगी और दीन-हीन ब्राह्मण होते हैं। पश्चात् पचास वर्षों तक दुर्बल कृशोदर रहकर तीर्थ में अश्वदान द्वारा मुक्त होते हैं ।।६९-७२½।। इच्छा-अनिच्छावश शूद्र का हनन करनेवाला ब्राह्मण एक लाख सावित्री मन्त्र के जप अथवा उसके आधे (पचास सहस्र) जप करने से शुद्ध हो जाता है। कुत्ते का वध करने-वाले चारों वर्ण शिव से अभिशप्त होने के कारण सौ वर्षों तक रौरव नामक नरक में जाते हैं। अनन्तर सोलह वर्ष वह कुत्ता होता है। अनन्तर कुत्ते द्वारा भक्षित होने पर वह शुद्ध ब्राह्मण होता है तथा गङ्गास्नान और

---

१. क. दत्तयु° । २ ख. मर्कुटघ्नो । ३ ख. भुङ्क्ते कुक्कुटश्च । ४ ख. मर्कुटे ।

मार्जारघ्नश्चतुर्वर्णो गङ्गास्नानाद्भवेच्छुचिः। विप्राय लवणं दत्त्वा षट्पलं च प्रमुच्यते ॥७७॥
हत्वा सर्पांश्चतुर्वर्णो मम पादेन चिह्नितान्। ब्रह्महत्याचतुर्थं च पातकं च लभेद्ध्रुवम् ॥७८॥
असिपत्रं च नरकं वर्षाणां शतकं तथा। प्राप्नोति यातनायुक्तो विच्छिन्नस्तीक्ष्णधारया ॥७९॥
ततो भवति सर्पश्च डुण्डुभो वर्षपञ्चकम्। नरेण ताडितो दुःखी मृत्योर्भवति पीडितः ॥८०॥
ततो भवेन्नरः पापी ज्वरयुक्तो हि दुर्बलः। वर्षाणां पञ्चकेनैव मृतो भवति कर्मणा ॥८१॥
अश्वघ्नश्च गजघ्नश्च चतुर्वर्णश्च पातकी। वर्षाणां दशकं पापान्मूत्रकुण्डं प्रयाति च ॥८२॥
ततो भवति हस्ती च घोटको वा व्रजेश्वर। यावद्विंशतिवर्षाणि ततः शूद्रो भवेद्ध्रुवम् ॥८३॥
अहंकृती व्याधियुक्तो रौप्यदानेन मुच्यते। ब्राह्मणानां च शतकं भोजयित्वा शुचिर्भवेत् ॥८४॥
क्षुद्रजन्तुवधेनैव क्षुद्रजन्तुर्भवेन्नरः। वर्षाणां शतकं चैव क्षुद्रव्याधिं तरेत्ततः ॥८५॥
कृपा कार्या सता शश्वदहिंस्रेषु च जन्तुषु। हिंसायां न हि दोषश्च हिंस्राणां च व्रजेश्वर ॥८६॥
अश्वत्थघ्नश्चतुर्वर्णो ब्रह्महत्याचतुर्थकम्। पापं च लभते तात चासिपत्रं व्रजेद्ध्रुवम् ॥८७॥
स तीक्ष्णेनापि शस्त्रेण विच्छिन्नश्च दिवानिशम्। वर्षाणां शतकं चैव भुङ्क्ते परमयातनाम् ॥८८॥
ततो भवति वृक्षश्च शाल्मलिर्वर्षलक्षकम्। ततो भवति शूद्रश्च छिन्नाङ्गो व्याधिसंयुतः ॥८९॥

---

सुवर्णदान करने पर वह सदैव के लिए पवित्र हो जाता है ॥७२-७६॥ बिल्ली की हत्या करनेवाले चारों वर्ण गङ्गास्नान से शुद्ध होते हैं और ब्राह्मण को छह पल नमक देकर वे पाप से मुक्त होते हैं ॥७७॥

मेरे चरण के चिह्न से युक्त सर्पों की हत्या करनेवाले चारों वर्ण ब्रह्महत्या के चौथाई पाप पाते हैं। उपरान्त सौ वर्षों तक असिपत्र नामक नरक में जाकर तीक्ष्णधार से कट-कटकर यातना भोगते हैं। पश्चात् पांच वर्षों तक डुण्डुभ (जलसर्प) होते हैं, जो मनुष्य द्वारा ताड़ित होकर दुःखपूर्ण मृत्यु प्राप्त करते हैं ॥७८-८०॥ अनन्तर यह पापी मनुष्य होकर ज्वरयुक्त एवं दुर्बल होते हैं और पाँचवें वर्ष के अन्त में कर्मवश मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। हे व्रजेश्वर! उसके उपरान्त बीस वर्षों तक हाथी या घोड़े होकर पुनः शूद्र होते हैं, जो अभिमानी और व्याधियुक्त रहते हैं। तब वे चाँदी दान करने और सौ ब्राह्मणों को भोजन कराने से शुद्ध होते हैं ॥८१-८२॥ छोटे जीवों का वध करने से मनुष्य क्षुद्र जीव होता है। सौ वर्षों से छोटी-छोटी व्याधियों से पीड़ित रहकर पश्चात् मुक्त होता है ॥८३-८४॥ हे व्रजेश्वर! इसलिए अहिंसक जीवों पर सदा कृपा ही रखनी चाहिए। किन्तु हिंसक जीवों की हिंसा करने में दोष नहीं लगता है। हे तात! पीपल वृक्ष काटनेवाले चारों वर्ण ब्रह्महत्या के चौथाई पाप भोगते हैं। जिससे वे असिपत्र नामक नरक में जाकर तीक्ष्ण शस्त्र द्वारा रात-दिन छिन्न-भिन्न हुआ करते हैं। फिर सौ वर्षों तक परमयातनाओं के अनुभव के उपरान्त एक लाख वर्षों तक सेमर के वृक्ष होते हैं, पश्चात् विकलांग एवं व्याधिपीड़ित शूद्र होते हैं ॥८५-८८॥ इस प्रकार जीवन पर्यन्त दुःखानुभव करने के पश्चात् वह व्रण (घाव)-वाली व्याधि से युक्त ब्राह्मण होता है। फिर सुवर्ण दान करने से वे नीरोग भी

यावज्जीवनपर्यन्तं ततो विप्रो भवेद्ध्रुवम् । व्रणव्याधिसमायुक्तो मुच्यते स्वर्णदानतः ॥९०॥
मिथ्यासाक्ष्यप्रदाता च कृतघ्नोऽतिकृतघ्नकः । विश्वासघाती मित्रघ्नो विप्राणां धनहारकः ॥९१॥
शूद्रश्राद्धान्नभोजी च शूद्राणां शवदाहकः । शूद्राणां सूपकारश्च वृषवाहकपातकी ॥९२॥
धावको देवलश्चापि चैतेऽतिपापिनस्तथा । कुम्भीपाकं प्रयान्त्येव वर्षाणां च सहस्रकम् ॥९३॥
तत्रैव तप्ततैलेन संतप्तश्च दिवानिशम् । भक्षितो व्यथितश्चैव सर्पाकारेण जन्तुना ॥९४॥
गृध्रः कोटिसहस्राणि शतजन्मानि शूकरः । श्वापदः शतजन्मानि शूद्रो रोगी भवेत्ततः ॥९५॥
मन्दाग्निज्वरसंयुक्तः पञ्चाशद्वर्षकं तथा । सुवर्णानां शतपलं दत्त्वा शुद्धो भवेद्ध्रुवम् ॥९६॥
चतुर्वर्णो वस्त्रहारी गव्यहारी च मानवः । रौप्यमुक्तापहारी च शूद्रद्रव्यापहारकः ॥९७॥
वर्षाणां च सहस्रं च बकजातिर्भवेद्ध्रुवम् । मूत्रकुण्डं च वै भुक्त्वा वर्षाणां शतकं तथा ॥९८॥
ततो भवेच्छूद्रजातिर्वर्षाणां शतकं व्रज । कुष्ठव्याधिसमायुक्तो गलितश्चैव पातकी ॥९९॥
ततो भवेद्ब्राह्मणश्च कुण्ठावशेषसंयुतः । स्वर्णषट्पलदानेन व्याधितो मुच्यते शुचिः ॥१००॥
शाकापहारकश्चैव[1] फलापहारकस्तथा । यक्षः पृथिव्यां संभूतो लीलाद्रव्यापहारकः ॥१०१॥

---

होते हैं ॥८९॥ मिथ्यासाक्ष्य (झूठी गवाही) देनेवाला, कृतघ्न, अतिकृतघ्न, विश्वासघात करनेवाला, मित्रहन्ता, ब्राह्मणों का धनापहारी, शूद्र के यहाँ श्राद्धान्न भोजन करनेवाला, शूद्रों के शव (मुर्दे) का दाह करनेवाला, शूद्रों का रसोइया, वृषवाहक (बैलों द्वारा जीविका चलानेवाला) पातकी, धावक (हरकारा) और देवल (मन्दिर में देव पूजन द्वारा जीविका चलानेवाला पुजारी) ये सब महापापी कहे गये हैं। इन्हें हजारों वर्षों तक कुम्भीपाक नरक में रहना पड़ता है ॥९०-९३॥ वे तेल से रात-दिन संतप्त किये जाते हैं, व्याधिपीड़ित होते हैं और सर्पाकार जन्तुओं द्वारा भक्षित होते हैं ॥९४॥

अनन्तर इस लोक में सहस्रों करोड़ जन्मों तक गीध, सौ जन्मों तक सूकर और सौ जन्मों तक कुत्ता होकर अन्त में रोगी शूद्र होते हैं, जो मन्दाग्नि ज्वर से पीड़ित रहकर पचास वर्षों तक जीवित रहते हैं। सौ पल सुवर्ण दान करने से वे निश्चित रोगमुक्त हो जाते हैं ॥९५-९६॥ चारों वर्णों में जो मनुष्य वस्त्र चुरानेवाला, दूध, दही, घी की चोरी करनेवाला, चाँदी और मुक्ता का अपहरण करनेवाला तथा शूद्र के धन को लूट लेनेवाला होता है, वह सौ वर्षों तक मूत्रकुण्ड का भोग करके पुनः हजार वर्षों तक बगुले की योनि में उत्पन्न होता है, यह ध्रुव है ॥९७-९८॥ तदनन्तर वह सौ वर्षों तक शूद्र जाति में जन्म लेता है। वहाँ वह पातकी जीवनपर्यन्त गलित कुष्ठ के रोग से पीड़ित रहता है। पश्चात् थोड़ा बहुत कोढ़ से युक्त होकर ब्राह्मण होता है। वहाँ छह पल सुवर्ण दान करने से वह रोगमुक्त एवं शुद्ध हो जाता है ॥९९-१००॥ खजाना लूटनेवाला, शाक एवं फल

---

१ ख. कोशाप।

वर्षाणां शतकं चैव चापपक्षी भवेद्ध्रुवम् । ततो भवेत्कृष्णवर्णः शूद्रश्च भारते भुवि ॥१०२॥
ततो भवेद्ब्राह्मणश्चाप्यधिकाङ्गोऽपि जन्मनि[1] । पुनर्जन्मद्विजो भूत्वा मुच्यते विप्रभोजनात् ॥१०३॥
पक्वद्रव्यापहारी च पशुयोनिभवेद्ध्रुवम् । यस्याण्डकोशो गन्धाक्तः कस्तूरी यस्य नाम च ॥१०४॥
सप्तजन्ममृगो भूत्वा ततो भवति गन्धकः । जन्मैकं च ततः शूद्रो गलत्कुष्ठी च जन्मनि ॥१०५॥
ततो रोगावशेषेण संयुतो ब्राह्मणः कृशः । स्वर्णषट्पलदानेन मुच्यते नात्र संशयः ॥१०६॥
धान्यापहारी दुःखी च कृपणः सप्तजन्मसु । विष्ठाकुण्डं वर्षशतं संप्राप्य मुच्यते भिया ॥१०७॥
स्वर्णापहारी कुष्ठी च मानवः पतितो भवेत् । स्वर्णदानप्रतिग्राही विट्कुण्डं च प्रयाति च ॥१०८॥
ततो वर्षशतं भुक्त्वा पुरीषं च दिवानिशम् । ततो व्याधो भवेच्छूद्रो रक्तदोषेण संयुतः ॥१०९॥
तज्जन्मपातकं भुक्त्वा ब्राह्मणश्च पुनर्भवेत् । व्याधिशेषावयुक्तश्च मुच्यते स्वर्णदानतः ॥११०॥
अगम्यानां च गामी च पूर्वोक्तं रौरवं व्रजेत् । कुम्भीपाकं महाघोरं वर्षाणां चाप्यसंख्यकम् ॥१११॥
ततो भवेत्पुंश्चलीनां योनीनां च कृमिस्तथा । वर्षाणां च सहस्रं च विट्कृमिर्वर्षलक्षकम् ॥११२॥
पशुयोनिर्भवेत्तस्मात्तस्माच्च क्षुद्रजन्तवः । ततो भवेन्म्लेच्छजातिस्ततः शूद्राधमस्तदा ॥११३॥
ततो भवति विप्रश्च व्याधियुक्तो नपुंसकः । पुनश्च ब्राह्मणो भूत्वा तीर्थपर्यटनेन च ॥११४॥

---

चुरानेवाला और खेल-खेल में द्रव्य चुरानेवाला मनुष्य भूतल पर यक्ष होता है ॥१०१॥ फिर सौ वर्षों तक नीलकण्ठ रहकर पश्चात् भारत भूतल पर कृष्ण वर्ण शूद्र होता है ॥१०२॥ पश्चात् अधिक अंगोंवाला ब्राह्मण होकर पुनः ब्राह्मण होता है । वहाँ ब्राह्मणों को भोजन कराने से पातक मुक्त हो जाता है ॥१०३॥ पका फल आदि चुराने-वाला ऐसी पशुयोनि में जन्म ग्रहण करता है जिसका अण्डकोश गन्धमय होता है, उसे ही कस्तूरी कहते हैं । इस भाँति सात जन्मों तक मृग होकर पश्चात् गन्धक (गंधियारा) होता है । उपरान्त एक जन्म में गलत्कुष्ठ का रोगी शूद्र होता है । पश्चात् अवशिष्ट रोग से युक्त दुर्बल ब्राह्मण होता है । वहाँ वह छह सुवर्ण दान करने से रोगमुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं ॥१०४-१०६॥ धान्य का अपहरण करनेवाला सात जन्मों तक दुःखी और कृपण होता है । अनन्तर सौ वर्षों तक विष्ठाकुण्ड में रहकर भय से मुक्त हो जाता है ॥१०७॥ सुवर्ण चुरानेवाला मनुष्य कुष्ठ का रोगी एवं पतित मनुष्य होता है और सुवर्ण दान लेने से भी विष्ठा कुण्ड में सौ वर्षों तक रहकर दिन-रात पुरीष (पाखाना) भक्षण करता है । पश्चात् व्याध फिर रक्तविकारयुक्त शूद्र होता है । उस जन्म में समस्त पातक का उपभोग करके पुनः अवशिष्ट रोग से युक्त ब्राह्मण होता है । वहाँ वह सुवर्णदान करने से शेष पातक से मुक्त हो जाता है ॥१०५-११०॥ अगम्या स्त्रियों के साथ गमन करनेवाला रौरव ।
पश्चात् असंख्य वर्षों तक महाघोर कुम्भीपाक नरक में रहकर एक सहस्र वर्षों तक पुंश्च
कीड़ा होता है फिर एक लाख वर्षों तक विष्ठा का कीड़ा होता है । अनन्तर पशु
उपरान्त क्षुद्र जन्तु होता है । पुनः म्लेच्छ जाति में उत्पन्न होकर अधम शूद्र होत

---

१ ख. °न्मभिः ।

क्रमेण शुद्धो भवति वंशहीनश्च पातकात्। भोजयित्वा विप्रलक्षं पुत्रं च लभते शुचिः ॥११५॥
मानवः क्रोधयुक्तश्च गर्दभः सप्तजन्मसु। मानवः कलहाविष्टः सप्तजन्मसु वायसः ॥११६॥
शालग्रामप्रतिग्राही कालसूत्रं व्रजेद्ध्रुवम्। वर्षाणां शतकं चैव खञ्जरीटो भवेत्ततः ॥११७॥
लोहचोरश्च निर्वंशो मषीचोरश्च कोकिलः। शुकोऽप्यञ्जनचोरश्च मिष्टचोरः कृमिर्भवेत् ॥११८॥
विप्रद्वेषी गुरुद्वेषी शिरसां च कृमिर्भवेत्। पुंश्चलीं कामिनीं तात भुक्त्वा च रौरवं व्रजेत् ॥११९॥
ततो वृथा कृमिश्चैव वर्षाणां शतकं तथा। ततोऽपि विधवा चैव वन्ध्या च सप्तजन्मसु ॥१२०॥
अस्पृश्या जातिहीना च च्छिन्ननासा भवेत्क्रमात्। रक्तद्रव्यापहारी च रक्तदोषान्वितो भवेत् ॥१२१॥
आचारहीनो यवनः खञ्जो भवति हिंसकः। अदीक्षितो वङ्कुरश्च दुष्टदर्शी च काणकः ॥१२२॥
अहंकारी कर्णहीनो बधिरो वेदनिन्दकः। वाक्यहर्ता च मूकश्च हिंसकः केशहीनकः ॥१२३॥
मिथ्यावादी श्मश्रुहीनो दुर्वाक्यो दन्तहीनकः। जिह्वाहीनः सत्यहारी दुष्टोऽप्यङ्गुलिहीनकः ॥१२४॥
ग्रन्थापहारो मूर्खश्च व्याधियुक्तो भवेद्ध्रुवम्। अश्वग्राही च तच्चोरो लालामूत्रं व्रजेदिति ॥१२५॥
वर्षाणां च शतं स्थित्वा घोटकश्च भवेद्ध्रुवम्। गजचोरो गजग्राही विट्कुण्डे च सहस्रकम् ॥१२६॥
स्थित्वा वर्षं भवेद्धस्ती तत्पश्चाद्वृषलो भवेत्। अयज्ञे छागहन्ता च च्छागचोरप्रतिग्रही ॥१२७॥

---

एवं व्याधिपीड़ित ब्राह्मण होकर पुनः ब्राह्मण-जन्म ग्रहण करता है, जो तीर्थाटन से क्रमशः शुद्ध तो होता है, किन्तु पातक के कारण वंशहीन रहता है और एक लाख ब्राह्मण भोजन कराने पर शुद्ध होकर पुत्र की प्राप्ति करता है ॥१११-११५॥

क्रोधी मनुष्य सात जन्मों तक गधा होता है, कलहप्रिय (झगड़ालू) सात जन्मों तक कौवा होता है। शालग्राम का प्रतिगृह (दान) लेनेवाला काल सूत्र नामक नरक में सौ वर्षों तक दुःखानुभव करता है पश्चात् इस लोक में खंजन पक्षी होता है ॥११६-११७॥ लोह चुरानेवाला निर्वंश होता है, मसी (स्याही) चुरानेवाला कोकिल होता है। अञ्जन चुरानेवाला तोता और मिष्टान्न-चोर कीड़ा होता है ॥११८॥ ब्राह्मणद्वेषी और गुरुद्वेषी सिर के कीड़े होते हैं। हे तात! पुंश्चली स्त्रियों के साथ रमण करनेवाला रौरव नरक का उपभोग करके सौ वर्षों तक निरर्थक कीड़ा होता है। पश्चात् सात जन्मों तक विधवा, वन्ध्या, अस्पृश्या (अछूत), जातिहीन और छिन्ननासा (नककटी) क्रमशः वह होता रहता है। रक्तवर्ण की वस्तु चुरानेवाला रक्त दोष से दूषित होता है ॥११९-१२१॥ आचारहीन यवन होता है, हिंसा करनेवाला लंगड़ा होता है, दीक्षाहीन बौना होता है, दुष्टदर्शी (बुरी निगाह से देखनेवाला) काना होता है। अभिमानी कानरहित, वेद की निन्दा करनेवाला बहरा, वाक्य का अपहरण करनेवाला गूंगा, हिंसा करनेवाला केशरहित, मिथ्याभाषी दाढ़ी-मूंछरहित, दुष्ट वाक्य बोलनेवाला दन्तविहीन, सत्य का अपहर्ता जिह्वाहीन, दुष्टता करनेवाला अंगुलिरहित, ग्रन्थ चुरानेवाला मूर्ख और रोगी होता है। घोड़े का दान लेनेवाला लालामूत्र नामक नरक में सौ वर्षों तक रहकर निश्चित ही घोड़ा होता है ॥१२२-१२५½॥ हाथी का चोर और उसका दान लेनेवाला एक सहस्र वर्षों तक विष्ठा के कुण्ड में रहकर उतने ही समय तक हाथी होता है और उसके पश्चात् शूद्र होता है। बिना यज्ञ के बकरे की

पूयकुण्डे वर्षशतं स्थित्वा चाण्डालतां व्रजेत्। छागश्च वर्षपर्यन्तं तदा भवति मानवः ॥१२८॥
शत्रुशस्त्रेण च्छिन्नश्च तदा मुक्तो भवेद्द्विजः। दत्तापहारी वाग्दानं कृत्वाऽपहरते पुनः ॥१२९॥
स भवेन्म्लेच्छयोनौ च भुक्त्वा च नरकं व्रजेत्। एकाकी मिष्टमश्नाति कालसूत्रं व्रजेद्ध्रुवम् ॥१३०॥
तत्र वर्षशतं स्थित्वा प्रेतो वर्षसहस्रकम्। तदा भवति जन्मैकं मक्षिका च पिपीलिका ॥१३१॥
जन्मैकं भ्रमरश्चैव जन्मैकं मधुमक्षिका। जन्मैकं वरलश्चैव जन्मैकं दंश एव च ॥१३२॥
जन्मैकं मशकश्चैव जन्मैकं पूतिकं स्मृतम्। जन्मैकं तल्पकीटश्च तदा शूद्रो भवेद्ध्रुवम् ॥१३३॥
असद्बुद्धिर्व्याधियुक्तस्तदा मुक्तो भवेद्द्विजः। तैलचोरस्तैलकारो मूर्ध्नि कीटस्त्रिजन्मकम्[1] ॥१३४॥
तदा भवेत्स्वर्णकारो जन्मैकं दुष्टमानसः। विश्वैकलिपिकर्ता च भक्ष्यदादुर्धनं हरेत् ॥१३५॥
तमःकुण्डे वर्षशतं स्थित्वा स्वर्णवणिग्भवेत्। जन्मैकं च दुराचारो जन्मैकं करणो भवेत् ॥१३६॥
कायस्थेनोदरस्थेन मातुर्मांसं न खादितम्। तत्र नास्ति कृपा तस्य दन्ताभावेन केवलम् ॥१३७॥
स्वर्णकारः स्वर्णवणिक् कायस्थश्च व्रजेश्वर। नरेषु मध्ये ते धूर्ताः कृपाहीना महीतले ॥१३८॥

---

हत्या करनेवाला, चोरी करने या दान लेनेवाला सौ वर्ष तक पीव के कुण्ड में रहकर अन्त में चाण्डाल होता है और पुनः एक वर्ष तक बकरा होने के बाद वह मनुष्य होता है ॥१२६-१२८॥ वहाँ शत्रु के शस्त्र से कटकर वह पापमुक्त ब्राह्मण होता है। दत्तापहारी (देकर ले लेनेवाला), वाग्दान करके पुनः उसका अपहरण करनेवाला म्लेच्छ योनि में उत्पन्न होता है, पश्चात् नरक जाता है। (बहुतों के साथ में) अकेला मीठी वस्तु खानेवाला निश्चित ही कालसूत्र नामक नरक में जाता है, वहाँ सौ वर्षों तक रहकर अन्त में एक सहस्र वर्षों तक प्रेत होता है, पुनः क्रमशः एक-एक जन्म मक्खी और चींटी होता है ॥१२९-१३१॥

एक जन्म भौंरा, एक जन्म मधु (शहद) की मक्खी, एक जन्म बर्रे, एक जन्म डाँस, एक जन्म मच्छर, एक जन्म दुर्गन्धयुक्त कीट और एक जन्म खटमल होने के उपरान्त दुर्बुद्धि एवं रोगी शूद्र होता है। पश्चात् पातक मुक्त होकर ब्राह्मण हो जाता है। तेल का चोर तथा तेल पेरनेवाला तीन जन्मों तक सिर का कीड़ा (जूँ) होता है। पश्चात् एक जन्म में दुष्टबुद्धिवाला सोनार होता है। समस्त संसार का एक लिपिकर्ता (ब्रह्मा) भी (यदि) अन्नदाता का धन हरण करे तो वह भी सौ वर्षों तक तमस् (अन्धकार) के कुण्ड में रहकर सुवर्ण का व्यापारी होता है, पुनः एक जन्म में दुराचारी होकर एक जन्म में करण (कायस्थ) होता है। माता के उदर में रहकर कायस्थ ने यदि माता का मांस नहीं खाया है, तो उसमें उसकी कृपा नहीं है, वह केवल दाँत के न होने से ही वैसा नहीं कर पाया ॥१३२-१३७॥ हे व्रजेश्वर! सोनार, सोने का व्यापारी (जौहरी आदि) और कायस्थ ये सभी मनुष्यों में धूर्त होते हैं और भूमण्डल में इनके समान कोई निर्दयी नहीं होता है ॥१३८॥ इन लोगों का हृदय सदैव छुरे की धार के समान (तेज) होता है। सैकड़ों में कोई एक कायस्थ सज्जन भी होता है। किन्तु वे

---

१ क. °लकीटो।

हृदयं क्षुरधाराभं तेषां नास्ति च सादरम्। शतेषु सज्जनः कोऽपि कायस्थो नेतरौ च तौ ॥१३९॥
सुबुद्धिः शिवयुक्तश्च शास्त्रज्ञो धर्ममानसः। न विश्वसेत्तेषु तात स्वात्मकल्याणहेतवे ॥१४०॥
सीमापहारी दुष्टश्च भूमिचोरश्च हिंसकः। भूमिदानापहारी च कालसूत्रं व्रजेद्ध्रुवम् ॥१४१॥
षष्टिवर्षसहस्राणि क्षुत्पिपासार्दितः स्थितः। ततोऽपि तानि नामानि विष्ठायां जायते कृमिः ॥१४२॥
ततो भवेदसच्छूद्रो जन्मैकं च ततः शुचिः। तस्माज्ज्ञानैः सावधानं भवेत्प्राज्ञश्च यत्नतः ॥१४३॥
रक्तवस्त्रापहारी च जन्मैकं रक्तकीटकः। ततः शूद्रश्च जन्मैकं ततो विप्रो भवेच्छुचिः ॥१४४॥
त्रिसंध्यहीनो विप्रश्च प्रातःशायी च यो नरः। संध्याशायी दिवाशायी यज्ञसूत्रापहारकः ॥१४५॥
अशुद्धः संध्याकारी च वेदवेदाङ्गनिन्दकः। तद्विरुद्धः स्वर्गमार्गस्त्रिजन्मपतितो द्विजः ॥१४६॥
यः शूद्रो ब्राह्मणीगामी कुम्भीपाके व्रजेद्ध्रुवम्। वर्षाणां च त्रिलक्षं च पच्यते तत्र पीडितः ॥१४७॥
दिवानिशं प्रदग्धश्च तप्ततैले च दारुणे। ततो भवेद्योनिकीटः पुंश्चलीनां च पातकी ॥१४८॥
षष्टिवर्षसहस्राणि चाऽऽहारं तस्य तन्मलम्। ततो भवति चाण्डालो जन्मलक्षं क्रमेण च ॥१४९॥
ततः शूद्रो गलत्कुष्ठी जन्मैकं च ततः शुचिः। सोऽपि विप्रो व्याधिशेषस्तीर्थपर्यटनाच्छुचिः ॥१५०॥
असच्छूद्रश्च भवति सोऽस्थानेऽसरपूजिते। दत्त्वा देवाय नैवेद्यमपवित्रं च मानवः ॥१५१॥

---

दोनों सोनार और जौहरी तो कभी नहीं (सज्जन) होते हैं ॥१३९॥ हे तात ! इसलिए सुबुद्धि, कल्याण-युक्त, शास्त्रज्ञ और धार्मिक लोगों को अपने कल्याण के लिए उन पर विश्वास नहीं करना चाहिए। सीमा का अपहर्ता दुष्ट, भूमिचोर, हिंसक और भूमिदान का अपहरण करनेवाला निश्चित ही कालसूत्र नरक में जाता है ॥१४०-१४१॥ वहाँ साठ सहस्र वर्षों तक क्षुधा और प्यास से दुःखी रहकर वे सब विष्ठा के कीड़े होते हैं। पुनः एक जन्म असत् (अस्पृश्य) शूद्र होकर पश्चात् पातकमुक्त हो जाते हैं। इसलिए विद्वानों को सदैव प्रयत्नपूर्वक ज्ञान द्वारा सावधान रहना चाहिए ॥१४२-१४३॥ रक्त वस्त्र का चोर एक जन्म लाल रंग का कीड़ा होता है, पुनः एक जन्म शूद्र होने के बाद वह पातकमुक्त ब्राह्मण होता है ॥१४४॥ तीनों काल के सन्ध्या-वन्दन से रहित ब्राह्मण और प्रातःकाल दिन में एवं संध्यासमय शयन करनेवाला मनुष्य, यज्ञोपवीत का चोर, अशुद्ध रहकर संध्या करनेवाला और वेद-वेदाङ्ग का निन्दक तीन जन्मों तक पतित होता है और स्वर्ग-मार्ग के विरुद्ध नरकगामी होता है ॥१४५-१४६॥

ब्राह्मणी के साथ गमन करनेवाला शूद्र कुम्भीपाक नरक में अवश्य जाता है और वहाँ तीन लाख वर्षों तक निरन्तर पीड़ित होता रहता है। पुनः भयंकर तप्ततैलवाले कुण्ड में दिन-रात जलने के अनन्तर वह पातकी पुंश्चली स्त्री की योनि का कीड़ा होता है। साठ सहस्र वर्षों तक वहाँ योनिमल खाने के उपरान्त क्रमशः एक लाख जन्मों तक चाण्डाल होता है। पश्चात् एक जन्म में घावयुक्त कोढ़वाला शूद्र होता है। इसके बाद शुद्ध होकर व्याधियुक्त ब्राह्मण होता है, फिर तीर्थाटन करने से वह शुद्ध हो जाता है ॥१४७-१५०॥ जो मानव असुर-पूजित अनुचित स्थान में देवता को अपवित्र नैवेद्य अर्पित करता है, वह असत् शूद्र होता है ॥१५१॥ केशयुक्त

सकेशं पार्थिवं लिङ्गं संपूज्य यवनो भवेत्। दुर्बलेन भवेदन्धः कुत्सितेन च कुत्सितः ॥१५२॥
अङ्गहीनो दरिद्रश्च व्याधियुक्तश्च मानवः। अश्रद्धया च निर्माणे निर्माणसदृशं फलम् ॥१५३॥
मृद्भस्मगोशकृत्पिण्डैस्तथा वालुकयाऽपि वा। कृत्वा लिङ्गं सकृत्पूज्य वसेत्कल्पायुषं दिवि ॥१५४॥
ततो भवति विप्रश्च महाप्राज्ञश्च भूमिमान्। राजा भवेद्भारते च लिङ्गानां शतपूजनात् ॥१५५॥
सहस्रपूजनात्सोऽपि लभते निश्चितं फलम्। स्थित्वा च सुचिरं स्वर्गे राजेन्द्रो भारते भवेत् ॥१५६॥
अयुते च तदीशश्च लक्षे च पृथिवीश्वरः। पूजने चातिभक्त्या चाप्यतिरिक्तं फलं लभेत् ॥१५७॥
तीर्थस्नानेन दानेन विप्राणां भोजनेन च। नारायणार्चया चैव विप्रजातिश्च कर्मणा ॥१५८॥
अतिरिक्तेन तपसा पण्डितो ब्राह्मणो भवेत्। पण्डितो ब्राह्मणश्चैव वैष्णवश्च जितेन्द्रियः ॥१५९॥
अनेकजन्मपुण्येन जायते भारते भुवि। तस्याङ्घ्रिस्पर्शनेनैव सद्यः पूता वसुंधरा ॥१६०॥
तीर्थाः कुर्वन्ति तीर्थानि जीवन्मुक्ताश्च वैष्णवाः। स्वपुंसां च सहस्रं च पुनन्तीति श्रुतौ श्रुतम् ॥१६१॥
पापेन वैद्यजन्मैव दुश्चिकित्सोऽपि ब्राह्मणः। दुश्चिकित्सस्तथा वैद्यो व्यालग्राही त्रिजन्मसु ॥१६२॥
अतिक्रूरो दुराचारो द्वेष्टा च सुरविप्रयोः। स भवेत्कुटिलव्यालो वर्षाणां च सहस्रकम् ॥१६३॥
पुंश्चलीलम्पटानां च दूती या कामिनी व्रज। कालसूत्रे वर्षशतं स्थित्वा च गोधिका भवेत् ॥१६४॥

---

पार्थिव शिवलिंग को पूजा करनेवाला व्यक्ति यवन होता है, दुर्बल पार्थिव लिङ्ग बनाने से अन्धा, निन्दित बनाने से निन्दित और अश्रद्धा से निर्माण करने पर अङ्गहीन, दरिद्र और रोगी होता है, क्योंकि निर्माण के समान ही उसे फल प्राप्त होता है ॥१५२-१५३॥ मिट्टी, भस्म और गोबर के पिण्डों से अथवा वालुका से शिवलिङ्ग बनाकर उसकी एक बार भी पूजा करने से स्वर्ग में एक कल्प पर्यन्त निवास होता है ॥१५४॥ पश्चात् महाबुद्धिमान् एवं भूमिसम्पन्न ब्राह्मण होता है। उस प्रकार के सौ लिङ्गों की पूजा करने से मनुष्य भारतवर्ष में राजा होता है ॥१५४-१५५॥ एक सहस्र शिवलिङ्गों की पूजा करने से मनुष्य निश्चित फल को प्राप्त करता है। वह स्वर्ग में अति चिरकाल तक रहकर पुनः भारत में महाराजा होता है ॥१५६॥ दस सहस्र लिङ्गों की अर्चना करने पर मनुष्य भारत का अधीश्वर और एक लाख की पूजा करने पर भूमण्डलेश्वर होता है और अतिभक्ति से पूजन करने पर अतिरिक्त फल भी प्राप्त होता है ॥१५७॥ तीर्थ-स्नान, दान, ब्राह्मणभोजन और नारायण की अर्चना करने से कर्मानुसार ब्राह्मण कुल में जन्म होता है ॥१५८॥ अतिरिक्त तप करने से मनुष्य पण्डित ब्राह्मण और जितेन्द्रिय वैष्णव होता है। फिर अनेक जन्मों के पुण्यफल से वह भारत-भूमि पर जन्म लेता है। उसके चरणस्पर्श से पृथिवी तुरन्त पवित्र हो जाती है। जीवयुक्त एवं वैष्णव ब्राह्मण तीर्थों को तीर्थत्व प्रदान करते हैं और अपनी सहस्रों पीढ़ियों को पवित्र बना देते हैं, ऐसा वेद में सुना गया है ॥१५९-१६१॥ पाप के कारण ही ब्राह्मण वैद्य होता है और दुष्ट चिकित्सक भी। फिर वह तीन जन्मों तक दुष्ट चिकित्सक, वैद्य एवं सँपेरा होता रहता है ॥१६२॥

जो अत्यन्त क्रूर दुराचारी तथा देव-ब्राह्मण का द्वेषी होता है, वह एक सहस्र वर्षों तक अति कुटिल सर्प होता है ॥१६३॥ हे व्रज ! जो स्त्री पुंश्चली स्त्रियों और लम्पटों की दूती होती है, वह कालसूत्र नरक में सौ

जन्मैकं गोधिका भूत्वा हरिणश्च त्रिजन्मसु। जन्मैकं महिषश्चैव जन्मैकं भल्लुको भवेत् ॥१६५॥
जन्मैकं गण्डकश्चैव शृगालश्च त्रिजन्मसु। परकीयतडागं च[1] लुप्त्वा सस्यं ददाति च ॥१६६॥
स भवेन्नक्रजातिश्च कच्छपश्च त्रिजन्मसु। वृथा मांसं च यो भुङक्ते मत्स्यलुब्धश्च ब्राह्मणः ॥१६७॥
भुङक्ते मांसमदत्तं च स मीनश्च मृगो भवेत्। वर्षाणां च सहस्रं च तात भुक्त्वा च किल्बिषम् ॥१६८॥
कर्मभोगाच्छुचिर्भूत्वा स पुनर्ब्राह्मणो भवेत्। एकादशीविहीनश्च ब्राह्मणः पतितो भवेत् ॥१६९॥
भक्ष्यस्य द्विगुणं दत्त्वा तेन पापेन मुच्यते। मम जन्मदिने चैव यो भुङक्ते मानवोऽधमः ॥१७०॥
त्रैलोक्यजनितं पापं सोऽपि भुङक्ते न संशयः। भुक्त्वा च नरकं सर्वं पश्चाच्चण्डालतां व्रजेत् ॥१७१॥
एवं च शिवरात्रौ च श्रीरामनवमीदिने। उपवासासमर्थश्च हविष्यान्नं समाचरेत् ॥१७२॥
ततोऽशक्तो दुर्बलश्च भोजयेद्ब्राह्मणानपि। कृत्वा महोत्सवं पुण्यं मदीयं पातकाच्छुचिः ॥१७३॥
तस्माद्यत्नेन कर्तव्यं नामसंकीर्तनं मम। गृध्रः कोटिसहस्राणि शतजन्मानि सूकरः ॥१७४॥
श्वापदः शतजन्मानि कुह्वां च निशि भोजनात्। अदीक्षितो द्विजश्चैव शङ्खचिल्लः शुको भवेत् ॥१७५॥
अनुद्वाही द्विजश्चैव राजहंसो भवेद्ध्रुवम्। चित्रवस्त्रापहारी च मयूरश्च त्रिजन्मसु ॥१७६॥

---

वर्षों तक रहकर गोह होती है। एक जन्म तक गोह होने के बाद तीन जन्मों तक हरिण, एक जन्म भैंसा, एक जन्म भालू, एक जन्म गैंडा और तीन जन्मों तक स्यार होती है। जो दूसरे का तालाब और फसल काटकर दान करता है, वह एक जन्म में मगर तथा तीनों जन्मों में कछुवा होता है। जो मछली का लोभी ब्राह्मण व्यर्थ का मांस तथा बिना दिया हुआ मांस खाता है, वह मछली और मृग होता है। हे तात ! वह एक सहस्र वर्षों तक पाप (का फल) भोगकर कर्मभोग से शुद्ध होकर पुनः ब्राह्मण हो जाता है। एकादशी का व्रत न करनेवाला ब्राह्मण पतित होता है ॥१६४-१६९॥ किन्तु खाये गये पदार्थ के द्विगुण दान करने पर वह पातकमुक्त हो जाता है। मेरे जन्म दिन (भाद्रपद के कृष्णाष्टमी को) जो अधम मनुष्य भोजन करता है, वह तीनों लोकों का पाप खाता है, इसमें संशय नहीं। खाने के बाद वह नरक में जाता है और पश्चात् चाण्डाल हो जाता है ॥१७०-१७१॥ इसी प्रकार शिवरात्रि और श्रीरामनवमी के दिन भी जानना चाहिए। यदि उपवास करने में असमर्थ हो तो हविष्यान्न खाये और मेरा पुण्य महोत्सव सम्पन्न करके ब्राह्मण भोजन भी कराये। इससे वह पापमुक्त होकर शुद्ध हो जाता है ॥१७२-१७३॥ इसलिए उस दिन प्रयत्नपूर्वक मेरा नाम संकीर्तन करना चाहिए। अमावस्या की रात में भोजन करने से सहस्र करोड़ जन्मों तक गीध, सौ जन्मों तक सूकर, सौ जन्मों तक हिंसक जन्तु होना पड़ता है। अदीक्षित ब्राह्मण श्वेत वर्ण की चील और तोता होता है ॥१७४-१७५॥ विवाह रहित द्विज राजहंस होता है। चित्रित वस्त्र चुरानेवाला व्यक्ति तीन जन्मों तक मयूर होता है ॥१७६॥ तेजपात का अपहर्ता चिरकाल तक

---

[1] ख. सुप्तस°।

तेजःपत्रापहारी च भवेत्कारण्डवश्चिरम् । सुराणां प्रतिमाचोरोऽप्यन्धश्च सप्तजन्मसु ॥१७७॥
दरिद्रो व्याधियुक्तश्च बधिरश्चापि कुब्जकः । स्त्रीतैलमधुमांसानि रवौ वा पञ्चपर्वसु ॥१७८॥
सेवते यो महामूढो वज्रदंष्ट्रं व्रजेद्ध्रुवम् । पातकी दुःखितस्तत्र वर्षाणां च सहस्रकम् ॥१७९॥
ततो भवति म्लेच्छश्च चाण्डालः सप्तजन्मसु । व्याधियुक्तस्ततः शूद्रो ब्राह्मणश्च ततः शुचिः ॥१८०॥
तस्माद्यत्नान्न भोक्तव्यं भारते धर्मभीरुणा । ब्राह्मणं च सुरं दृष्ट्वा न नमेद्यो नराधमः ॥१८१॥
यावज्जीवनपर्यन्तमशुचिर्यवनो भवेत् । अभ्युत्थानं न कुरुते दृष्ट्वा चाऽऽगतब्राह्मणम् ॥१८२॥
स भवेद्ब्रह्मघाती च सप्तजन्मसु निश्चितम् । शिवद्वेषी कुक्कुटश्च देवलः सप्तजन्मसु ॥१८३॥
पितृदेवार्चनं हन्ति वेदोक्तं ज्ञानदुर्बलः । स याति नरकं पापी वर्षाणां च सहस्रकम् ॥१८४॥
ततश्च रौरवं भुक्त्वा तीर्थकाकस्त्रिजन्मसु । त्रिजन्मसु शृगालश्च तीर्थे भुङ्क्ते शवं व्रज ॥१८५॥
त्रिजन्मसु भवेत्सोऽपि तीर्थेषु शवरक्षकः । शवानां करमादत्ते कर्मणा कृतपातकी ॥१८६॥
नित्यं सुरार्चनं कृत्वा दाम्भिको ज्ञानदुर्बलः । गुरुं च नार्चयेद्भक्त्या तस्मै नान्नं ददाति यः ॥१८७॥
स भवेद्देवलो दुःखी देवशापेन पातकी । नित्यं सुरार्चनं कृत्वा दाम्भिको ज्ञानदुर्बलः ॥१८८॥
पूजाफलं न लभते देवद्रोही स दारुणः । दीपनिर्वाणकर्ता च खद्योतः सप्तजन्मसु ॥१८९॥

---

बत्तख होता है। देवों की प्रतिमाएँ चुरानेवाला सात जन्मों तक अन्धा, दरिद्र, रोगी, बधिर और कूबड़ा होता है। रविवार को तथा पाँच पर्वों के दिन जो महामूर्ख व्यक्ति स्त्री, तेल, मधु तथा मांस का भोग करता है, वह निश्चित ही वज्रदंष्ट्र नामक नरक में जाता है और वहाँ वह पातकी एक सहस्र वर्षों तक दुःखानुभव करता है। पश्चात् सात जन्मों तक म्लेच्छ एवं चाण्डाल होकर रोगी शूद्र होता है और अन्त में ब्राह्मण होकर शुद्ध हो जाता है ॥१७७-१८०॥

इसलिए भारत में धर्मभीरु पुरुष को उस दिन यत्न करके भोजन नहीं करना चाहिए। जो नराधम ब्राह्मण और देवता को देखकर नमस्कार नहीं करता है, वह जीवनपर्यन्त अशुद्ध यवन होता है। जो आये हुए ब्राह्मण को देखकर उठकर स्वागत नहीं करता, वह सात जन्मों तक निश्चित रूप से ब्रह्मघाती होता है। शिव का द्वेषी और देवल (मन्दिर का पुजारी) सात जन्मों तक मुर्गा होता है ॥१८१-१८३॥ जो अज्ञानी पितरों और देवताओं के वेदोक्त पूजन का विनाश करता है, वह पापी रौरव नरक में जाता है। वहाँ सहस्र वर्षों तक नरक में रहने के बाद तीन जन्मों तक तीर्थकाक होता है। फिर तीन जन्मों तक किसी तीर्थ में सियार होकर शव भोजन करता है। हे व्रजेश्वर ! पुनः वह पातकी तीन जन्मों तक तीर्थों में शवों की रक्षा तथा कफन खसोटी करता है। जो मूर्ख एवं दम्भी पुरुष नित्य देवार्चन करके न तो भक्तिपूर्वक गुरु की अर्चना करता है और न उसे भोजन ही देता है, वह पातकी देव द्वारा अभिशप्त होकर दुःखी देवल (मन्दिर का पुजारी) होता है और घोर देवद्रोही होता है, उसे पूजा फल नहीं मिलता है। (हाथ से) दीपक बुझानेवाला सात जन्मों तक जुगुनू होता है

अतीव मत्स्यलुब्धश्चाप्यनैवेद्यं च खादति । स भवेन्मत्स्यरङ्कश्च मार्जारः सप्तजन्मसु ॥१९०॥
गोणीहर्ता[1] कपोतश्च मालाहर्ता विहंगमः । चटको धान्यचोरश्च मांसचोरश्च कुंजरः ॥१९१॥
कविः प्रहर्ता विदुषां माण्डूकः सप्तजन्मसु । असत्कविर्ग्रामविप्रो नकुलः सप्तजन्मसु ॥१९२॥
कुष्ठी भवेच्च जन्मैकं कृकलासस्त्रिजन्मसु । जन्मैकं वरलश्चैव ततो वृक्षपिपीलिका ॥१९३॥
ततः शूद्रश्च वैश्यश्च क्षत्रियो ब्राह्मणस्तथा । कन्याविक्रयकारी च चतुर्वर्णो हि मानवः ॥१९४॥
सद्यः प्रयाति तामिस्रं यावच्चन्द्रदिवाकरौ । ततो भवति व्याधश्च मांसविक्रयकारकः ॥१९५॥
ततो व्याधि (धो) र्भवेत्पश्चाद्यो यथा पूर्वजन्मनि । मन्नामविक्रयी विप्रो न हि मुक्तो भवेद्ध्रुवम् ॥१९६॥
मृत्युलोके च मन्नामस्मृतिमात्रं न विद्यते । पश्चाद्भवेत्स गोयोनौ जन्मैकं ज्ञानदुर्बलः ॥१९७॥
ततश्छागस्ततो मेषो महिषः सप्तजन्मसु । महाचक्री च कुटिलो धर्महीनस्तु मानवः ॥१९८॥
जन्मैकं तैलकारश्च कुम्भकारस्तथैव च । मिथ्याकलङ्कवक्ता च देवब्राह्मणनिन्दकः ॥१९९॥
स भवेत्स्वर्णकारश्च रजकः सप्तजन्मसु । ब्राह्मणक्षत्रविट्शूद्राः कुत्सिताः शौचवर्जिताः ॥२००॥

---

॥१८४-१८९॥ जो इष्टदेव को निवेदन किये बिना ही खाता है तथा मछली का अत्यन्त लोभी है, वह मछरंगा पक्षी होता है तथा सात जन्मों तक बिलाव की योनि में जाता है ॥१९०॥ बोरा चुरानेवाला कबूतर, माला का अपहर्ता पक्षी, धान्य का चोर गौरैया पक्षी और मांस का चोर हाथी होता है ॥१९१॥ विद्वानों पर प्रहार करनेवाला सात जन्मों तक मेढक होता है। जो असत् कवि (तुच्छ विद्वान्) होकर गांव भर का विप्र (पुरोहित या पूज्य) बन बैठता है, वह सात जन्मों तक नेवला, एक जन्म में कोढ़ी और तीन जन्मों तक गिरगिट होता है। फिर एक जन्म में बर्रे होने के बाद वृक्ष की चींटी होता है। तत्पश्चात् क्रमशः शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण होता है। चारों वर्णों में कन्या बेचनेवाला मानव तुरन्त तामिस्र नामक नरक को जाता है और तब तक वहाँ रहता है जब तक सूर्य और चन्द्रमा रहते हैं। तब वह मांस बेचनेवाला व्याध होता है। तब पूर्वजन्म के अनुसार उसे व्याधि होती है ॥१९२-१९५½॥

मेरा नाम बेचनेवाला ब्राह्मण मुक्त नहीं होता, यह ध्रुव है। मृत्युलोक में रहते हुए जिसे मेरे नाम का स्मरण नहीं होता, वह अज्ञानी एक जन्म में गौ, तदन्तर छाग, तत्पश्चात् मेढ़ा और सात जन्मों तक भैंसा होता है। जो मनुष्य महान् षड्यन्त्री, कुटिल और धर्महीन होता है, वह एक जन्म में तेली फिर कुम्हार होता है। जो मिथ्याकलङ्क का प्रचारक एवं देवों तथा ब्राह्मणों का निन्दक होता है, वह एक जन्म में सोनार होकर सात जन्मों तक धोबी होता है। जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र निन्दित एवं शौचरहित होते हैं, वे दस हजार वर्षों तक म्लेच्छ योनि में उत्पन्न होते रहते हैं ॥१९६-२००½॥ जो मनुष्य स्त्री का लोभी, कामुक और सदा स्त्री

---

१ क. गोणाह॰ ।

जन्म तेषां म्लेच्छयोनौ वर्षाणामयुतं तथा । अतीव कामिनीलुब्धः कामुकः स्त्रीरतः सदा ॥२०१॥
यक्ष्मग्रस्तो भवेत्सद्यः परत्रापि नपुंसकः । कामतो योषितां श्रोणीस्तनास्ये यश्च पश्यति ॥२०२॥
स भवेद्दृष्टिहीनश्च परत्रापि नपुंसकः । विप्रोऽभिचारकर्ता च हिंसको ज्ञानदुर्बलः ॥२०३॥
यात्येवमन्धतामिस्रं वर्षाणामयुतं तथा । तदा भवति दैवज्ञोऽप्यग्रदानी च दुर्मतिः ॥२०४॥
ततः शूद्रो भवेद्विप्रो भोगेन कर्मणस्तथा । शास्त्रज्ञाता च दैवज्ञो मिथ्या वदति लोभतः ॥२०५॥
स भवेच्च ध्रुवं ज्येष्ठी वानरः सप्तजन्मसु । अनेकजन्मतपसा भारते ब्राह्मणो भवेत् ॥२०६॥
सुबुद्धिरतिधर्मिष्ठो धर्महीनश्च पातकी । स्वधर्मनिरतो विप्रः परमाच्च हुताशनात् ॥२०७॥
पवित्रश्चातितेजस्वी तस्माद्भीताः सुराः सदा । नदीषु च यथा गङ्गा तीर्थेषु पुष्करं यथा ॥२०८॥
पुरीषु च यथा काशी यथा ज्ञानिषु शंकरः । शास्त्रेषु च यथा वेदा यथाऽश्वत्थश्च पादपे ॥२०९॥
मम पूजा तपस्यासु व्रतेष्वनशनं यथा । तथा जातिषु सर्वासु ब्राह्मणः श्रेष्ठ एव च ॥२१०॥
विप्रपादेषु तीर्थानि पुण्यानि च व्रतानि च । विप्रपादरजः शुद्धं पापव्याधिविमर्दनम् ॥२११॥
शुभाशीर्वचनं तेषां सर्वकल्याणकारणम् । एतत्ते कथितं तात विपाकः कर्मणामहो ॥२१२॥
यथाश्रुतं यथाज्ञातं[1] तदशेषं निशामय । श्रुत्वा धर्मविपाकं च वाचकाय सुवर्णकम् ॥२१३॥

---

परायण होता है, वह शीघ्र यक्ष्मा रोग से पीड़ित हो जाता है और दूसरे जन्म में नपुंसक होता है ॥२०१½॥ जो मनुष्य काम भाव से (परायी) स्त्रियों के श्रोणी भाग, स्तन और मुख को देखता है, वह अन्धा होता है और अगले जन्म में नपुंसक होता है। जो ब्राह्मण ज्ञानहीन होते हुए आभिचारिक कर्म करनेवाला तथा हिंसक होता है, वह इस प्रकार दस हजार वर्षों तक अन्धतामिस्र नरक में वास करता है, पश्चात् ज्योतिषी, अग्रदान लेनेवाला और मतिहीन होता है। तदनन्तर शूद्र होता है, फिर कर्मभोग के अनुसार ब्राह्मण होता है ॥२०२-२०४½॥ शास्त्र का मर्मज्ञ ज्योतिषी यदि लोभवश मिथ्या भाषण करता है, तो वह सात जन्मों तक निश्चित ही वानरों का सरदार होता है। फिर अनेक जन्मों की तपस्या के फलस्वरूप वह भारतवर्ष में उत्तम बुद्धि सम्पन्न परम धर्मात्मा ब्राह्मण होता है। धर्महीन व्यक्ति पातकी होता है। अपने धर्म में तत्पर रहनेवाला ब्राह्मण अग्नि से भी परम पवित्र और अति तेजस्वी होता है, जिससे देवगण भी सदैव भयभीत रहते हैं। जिस प्रकार नदियों में गङ्गा, तीर्थों में पुष्कर, पुरियों में काशीपुरी, ज्ञानियों में शङ्कर, शास्त्रों में वेद, वृक्षों में पीपल, तपस्याओं में मेरी पूजा एवं व्रतों में उपवास करना श्रेष्ठ है, उसी प्रकार सभी जातियों में ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं ॥२०५-२१०॥ ब्राह्मणों के चरणों में सभी तीर्थ, पुण्य एवं व्रत आदि निवास करते हैं और ब्राह्मण का चरणरज अतिशुद्ध होता है, जो पापव्याधि का नाश करता है। उनका शुभाशीर्वाद समस्तकल्याणकारी होता है। हे तात ! इस प्रकार यथाश्रुत और यथाज्ञात कर्मों का धर्मविपाक तुम्हें सुना दिया, अब जो अवशिष्ट है, उसे सुनो। विपाक सुनने पर वाचक

---

१ क. °ज्ञानं।

दद्यात्तस्मै च रौप्यं च वस्त्रं ताम्बूलमेव च। सुवर्णशतकं दद्यात्सद्यो देही च गोकुलम् ॥
रौप्यं वस्त्रं च ताम्बूलं मत्प्रीत्या ब्राह्मणाय च ॥२१४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० भगवन्नन्दसं०-
पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥८५॥

•

# अथ षडशीतितमोऽध्यायः

नन्द उवाच

केदारकन्याप्रस्तावात्कथितं कर्मकीर्तनम्। कृत्यास्त्रीणां प्रसङ्गेन तद्व्यासेन वद प्रभो ॥१॥
केदारकन्या सा का वा को वा केदारभूपतिः। कस्य वंशे च तज्जन्म तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥२॥

श्रीकृष्ण उवाच

पुरा तु ब्रह्मणः पुत्रो मनुः स्वायंभुवस्तथा। तस्य स्त्री शतरूपा च धन्या मान्या च योषिताम् ॥३॥
प्रियव्रतोत्तानपादौ तयोः पुत्रौ बभूवतुः। उत्तानपादपुत्रश्च ध्रुव एव महायशाः[1] ॥४॥

---

ब्राह्मण को सुवर्ण, चांदी, वस्त्र और ताम्बूल देना चाहिए। मेरी प्रसन्नता के लिए वाचक ब्राह्मण को सौ सुवर्ण मुद्राएँ, गौएँ, चांदी, वस्त्र एवं ताम्बूल अर्पित करना चाहिए ॥२११-२१४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण में श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद-नारायण-संवाद में
भगवान् और नन्द के संवाद-वर्णन नामक पचासीवाँ अध्याय समाप्त ॥८५॥

•

# अध्याय ८६

## वृन्दा का उपाख्यान

**नन्द बोले**—हे प्रभो! केदार-कन्या के प्रस्ताव द्वारा आपने कर्मों का विपाक (परिणाम) कहकर सुना दिया और प्रसङ्ग से कृत्या स्त्रियों का भी वर्णन कर दिया है, अब विस्तारपूर्वक यह सुनाइये कि—यह केदार-कन्या कौन थी, केदार भूप कौन थे और किस वंश में उनका जन्म हुआ था? ॥१-२॥

**श्रीकृष्ण बोले**—पूर्वकाल में ब्रह्मा के पुत्र स्वायम्भुव मनु हुए थे, जिनकी शतरूपा नामक पत्नी स्त्रियों में धन्या एवं मान्या थी ॥३॥ उनके प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो पुत्र हुए, उनमें उत्तानपाद के

---

१ क. °हाशयः।

तत्पुत्रो नन्दसावर्णिः[1] केदारश्च तदात्मजः। सप्तद्वीपपतिः श्रीमान्केदारो वैष्णवः स्वयम् ॥५॥
तस्य रक्षानिमित्तेन तत्सभायां सुदर्शनम्। गवां लक्षं नवं शुद्धं स्वर्णशृङ्गं च भूषितम् ॥६॥
वह्निशुद्धानि वस्त्राणि दत्तानि वरुणेन च। सुवर्णानां तथा लक्षं सर्वसस्यां वसुंधराम् ॥७॥
मणिरत्नं च मुक्ताश्च हीरकं परमं तथा। माणिक्यमश्वरत्नानां लक्षं लक्षं च हस्तिनाम् ॥८॥
रौप्यं प्रवालं मिष्टान्नं शतधान्याचलं वरम्। नित्यं नित्यं ब्राह्मणेभ्यो ददौ च रत्नभूषणम् ॥९॥
शतलक्षं ब्राह्मणानां भोजयामास नित्यशः। जलभोजनपात्राणि सुवर्णानां ददौ नृपः ॥१०॥
सुवर्णानां यज्ञसूत्रमङ्गुलीयकमुत्तमम्। आसनं स्वर्णरत्नानां ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥११॥
ब्राह्मणानां च लक्षं च सूपकारं नृपस्य च। ब्राह्मणानां द्विलक्षं च परिवेषणकारकम् ॥१२॥
घृतकुल्या मधुकुल्या दधिकुल्या मनोहराः। गुडकुल्या दुग्धकुल्या नित्यं प्रार्थनमीप्सितम् ॥१३॥
प्रातरारभ्य संध्यान्तं विप्राणां भोजनं तथा। दुःखिनां भिक्षुकाणां च धनदानं यथोचितम् ॥१४॥
फलमूलाशनो राजा वैष्णवश्च जितेन्द्रियः। सर्वं मदर्पणं कृत्वाऽजपन्मां च दिवानिशम् ॥१५॥
एकदा सूपकारश्च तमुवाच नृपेश्वरम्। विप्राणां भोजनायैव दशलक्षमुपस्थितम् ॥१६॥
भुञ्जते ब्राह्मणाश्चाद्य रूक्षमन्नं वद प्रभो। कुर्वन्तु भक्षणं ते वै विप्राः सूपादिना नृप ॥१७॥
चतुर्योजनपर्यन्तमधिकारो नृपस्य च। यो राजा तच्छतगुणः स एव मण्डलेश्वरः ॥१८॥

---

महायशस्वी ध्रुव पुत्र हुए, ध्रुव के पुत्र नन्दसावर्णि और नन्दसावर्णि के पुत्र केदार हुए। वे सातों द्वीपों के अधीश्वर, श्रीमान् एवं वैष्णव थे ॥४-५॥ उनकी रक्षा के लिए उनकी सभा में सुदर्शन चक्र रहता था। वे ब्राह्मणों को नित्य नवीन, शुद्ध और सुवर्ण भूषित सींगोंवाली एक लाख गौ, वरुणप्रदत्त अग्निविशुद्ध वस्त्र, एक लाख सुवर्ण मुद्रा, फूली-फली पृथ्वी, मणिरत्न, मुक्ता, हीरा, परमोत्तम माणिक्य, एक लाख घोड़े, एक लाख हाथी, चाँदी, मूँगा, मिष्टान्न और धान्यों के श्रेष्ठ सौ पर्वत तथा रत्नों के भूषण दान करते थे। सौ लाख ब्राह्मणों को नित्य भोजन कराते थे। राजा सुवर्ण के जलपात्र और भोजनपात्र समेत सुवर्ण के यज्ञोपवीत, सुन्दर अँगूठियाँ और सुवर्ण तथा रत्नों के आसन प्रसन्नतापूर्वक ब्राह्मणों को दान करते थे ॥६-११॥ एक लाख ब्राह्मण राजा के यहाँ भोजन बनानेवाले रसोइये थे और दो लाख ब्राह्मण उनके यहाँ भोजन परोसनेवाले थे ॥१२॥ उनके यहाँ नित्य घी, मधु, दही, गुड़ और दुग्ध की सुन्दर क्यारियाँ बह रही थीं। राजा प्रातःकाल से लेकर संध्यासमय तक नित्य ब्राह्मण भोजन और दुःखियों एवं भिक्षुओं को यथोचित धन प्रदान करते थे ॥१३-१४॥ वे स्वयं फल-मूल का आहार करते हुए वैष्णव और जितेन्द्रिय थे। अपना सभी कुछ मुझे अर्पण करके दिन-रात मेरा जप करते थे ॥१५॥ एक बार रसोइये ने आकर उस महाराज से कहा--राजन्! दस लाख ब्राह्मण भोजन करने के लिए आये हैं। आज ब्राह्मण रूखा भोजन कर रहे हैं। प्रभो! बतायें कि क्या करें। नृप! ब्राह्मण दाल आदि के साथ भोजन करें। (ऐसा हम चाहते हैं) ॥१६-१७॥

राजा का अधिकार चार योजन (सोलह कोस) तक होता है। जो राजा उससे सौ गुना अधिक हो, वही

---

१ क. वत्स°।

तत्तद्दशगुणो राजा राजेन्द्रः परिकीर्तितः। राजेन्द्राणां पञ्चलक्षं नित्यं केदारसंसदि ॥१९॥
अमूल्यरत्नमाणिक्यं मुक्ताहीरं[1] मणीश्वरम्। गजरत्नमश्वरत्नं केदाराय करं ददौ ॥२०॥
कमलाकलया जाता यज्ञकुण्डसमुद्भवा। वह्निशुद्धांशुकाधाना रत्नभूषणभूषिता ॥२१॥
कामुकी कामिनीश्रेष्ठा कन्या कमललोचना। कन्याऽस्मि ते महाराजेत्युवाच नृपतिं च सा ॥२२॥
राजा संपूज्य तां भक्त्या तस्थौ पत्नीं समर्प्य च। सा विज्ञाय प्रसूं तातं कृत्वा च विनयं मुदा ॥२३॥
ययौ पुण्यवनं रम्यं तपसे यमुनान्तिकम्। तत्तपस्यावनं यस्मात्तस्माद्वृन्दावनं स्मृतम् ॥२४॥
तपसा वरयायास मां वरं च वरं वरम्। ब्रह्मा ददौ वरं तस्यै पश्चात्कृष्णं लभिष्यसि ॥२५॥
स चैकदा नदीतीरे वसन्ते सस्मिता सती। शयाना पुष्पशय्यायां रत्नाभरणभूषिता ॥२६॥
ब्रह्मा परीक्षितुं यातः साध्वीं च सुमनोहराम्। ददर्श कन्या रहसि युवानं पुरुषं परम् ॥२७॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं रत्नभूषणभूषितम्। सस्मितं कामुकं रम्यं रमणीनां च वाञ्छितम् ॥२८॥
यथा षोडशवर्षीयं कुमारं कनकप्रभम्। कोटिकन्दर्पलीलाभं पीताम्बरधरं वरम् ॥२९॥

---

मण्डलेश्वर कहलाता है, मण्डलेश्वर से दस गुना अधिक राजा राजेन्द्र (महाराज) कहा जाता है। केदार की सभा में पाँच लाख महाराज नित्य उपस्थित रहते थे। वे लोग अमूल्य रत्न माणिक्य, मोती, हीरा, उत्तम मणि, गजरत्न एवं अश्वरत्न कर रूप में उन्हें भेंट करते थे ॥१८-२०॥ उन्हीं के यज्ञकुण्ड से लक्ष्मी अपनी कला से कामिनियों में श्रेष्ठ कमलनयनी कन्या के रूप में प्रकट हुई। उस (कन्या) ने अग्निविशुद्ध वस्त्र तथा रत्नों के आभूषण धारण कर रखे थे। उसने राजा से कहा—'हे महाराज! मैं आपकी कन्या हूँ।' यह सुनकर राजा ने भक्तिपूर्वक उसकी पूजा की और पत्नी को समर्पित करके वे खड़े हो गये। अनन्तर उस कन्या ने अपनी माता और पिता से विनय-विनम्र प्रार्थना करके तप करने के लिए यमुना के समीप रमणीक पुण्यवन को सहर्ष प्रस्थान किया। वहाँ उसने तपस्या की। उसकी तपस्या का स्थान होने के कारण वह वन वृन्दावन कहलाया ॥२१-२४॥ उसने तपस्या के द्वारा मुझे ही पति रूप में प्राप्त करने के उत्तम वरदान की याचना की और ब्रह्मा ने उसे वर दिया कि 'तुम बाद में कृष्ण को (पति रूप में) प्राप्त करोगी' ॥२५॥ वह एक बार वसन्त के समय नदी-तट पर पुष्प-शय्या पर रत्न-भूषणों से सुभूषित होकर मन्दहास करती हुई शयन किये पड़ी थी। उसी समय उस मनोहरा पतिव्रता की परीक्षा करने के लिए ब्रह्मा (प्रेषित धर्म) वहाँ आये। कन्या ने भी एकान्त स्थान में बैठे उस युवा एवं सुन्दर पुरुष को देखा, जो सर्वाङ्ग में चन्दन लिप्त, रत्नों के भूषणों से भूषित, सुन्दरियों के लिए अभीष्ट, रमणीक एवं हँसमुख कामुक था। जिस प्रकार सोलह वर्ष का कुमार होता है, उसी भाँति वह पुरुष भी सुवर्ण के समान कान्तिपूर्ण, करोड़ों काम की शोभा से सम्पन्न, पीताम्बरधारी, शरद् ऋतु के चन्द्रमा के समान मुख-वाला और शारदीय कमल के समान नेत्रवाला था। उस ब्राह्मण कुमार को देखकर वह कन्या (शय्या से) उठी

---

१ ख. 'हारं।

शरत्पार्वणचन्द्रास्यं शरत्पद्मसुलोचनम्। दृष्ट्वा तं च समुत्थाय वासयामास संनिधौ ॥३०॥
पूजां चकार भक्त्या च फलं मूलं ददौ मुदा। सुवासितं जलं दत्त्वा प्रणनाम मुदाऽन्विता ॥३१॥
पूजां गृहीत्वा मुदितः सादरं तामुवाच ह। विप्ररूपी च भगवान्प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा ॥
कामुकीनां च काम्यं च सतीनां दुष्करं व्रज ॥३२॥

## धर्म उवाच

भवती कस्य कन्या वा किं ते नाम मनोहरे। किं करोषि रहस्येव तन्मे कथितुमर्हसि ॥३३॥
कस्य हेतोस्तपस्या ते किं वा वाञ्छसि सुन्दरि। वरं वृणीष्व भद्रं ते यत्ते मनसि वाञ्छितम् ॥३४॥

## वृन्दोवाच

विप्र केदारकन्याऽहं वृन्दा वृन्दावने स्थिता। तपः करोमि रहसि चिन्तयामि हरिं पतिम् ॥३५॥
यदि दातुं समर्थोऽसि देहि मे वाञ्छितं वरम्। असमर्थोऽसि चेद्गच्छ किं ते प्रश्नेन ब्राह्मण ॥३६॥

## धर्म उवाच

निरीहमवितर्क्यं च परमात्मानमीश्वरम्। निर्गुणं च निराकारं भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥३७॥
का क्षमा तं पतिं कर्तुं विना लक्ष्मीं सरस्वतीम्। चतुर्भुजस्य द्वे भार्ये हरेर्वैकुण्ठशायिनः ॥३८॥
गोलोके द्विभुजस्यापि श्रीवंशीवदनस्य च। किशोरगोपवेषस्य परिपूर्णतमस्य च ॥३९॥

---

और उसे अपने समीप बैठाया ॥२६-३०॥ भक्तिपूर्वक उसकी पूजा की और हर्ष से फल-मूल एवं सुवासित जल समर्पित करके प्रणाम किया। हे व्रज! ब्राह्मण रूपी भगवान् (धर्म) ने जो ब्रह्मतेज के कारण देदीप्यमान हो रहे थे, प्रसन्नतापूर्वक पूजा ग्रहण करने के उपरान्त सादर उस कुमारी से कहा, जो कामुकी स्त्रियों के लिए अभीष्ट एवं पतिव्रताओं के लिए दुष्कर था ॥३१-३२॥

**धर्म बोले**—हे मनोहरे! आप किसकी कन्या हैं? आपका नाम क्या है? और यहाँ एकान्त में निवास क्यों कर रही हैं? मुझे बतायें। हे सुन्दरि! किस कारण तप कर रही हो? क्या तुम्हारी अभिलाषा है, तुम्हारा कल्याण हो। अपने मनोनुकूल वरदान माँगो ॥३३-३४॥

**वृन्दा बोली**—हे विप्र! मैं केदारनाथ की कन्या हूँ, वृन्दा मेरा नाम है, वृन्दावन में रहकर यहाँ एकान्त में भगवान् हरि को पति बनाने की अभिलाषा से तप कर रही हूँ। हे ब्राह्मण! यदि दे सकते हो तो यही अभिष्ट वर प्रदान करो, यदि असमर्थ हो तो जाओ, तुम्हें प्रश्न करने से क्या (लाभ)? ॥३५-३६॥

**धर्म बोले**—(भगवान् तो,) निरीह (इच्छारहित), तर्क करने से परे, परमात्मा, ईश्वर, निर्गुण, निराकार और भक्तों के अनुग्रहार्थ शरीरधारी हैं, इसलिए लक्ष्मी और सरस्वती के बिना उन्हें कौन स्त्री पति बनाने में समर्थ हो सकती है? वैकुण्ठ में सोनेवाले चतुर्भुज हरि की दो स्त्रियाँ हैं और गोलोक निवासी-मुख में श्री

तस्य भार्या स्वयं राधा महालक्ष्मीः परात्परा। ब्रह्मस्वरूपा परमा परमात्मानमीश्वरम् ॥४०॥
भजते सततं शान्तं सुरम्यं श्यामसुन्दरम्। कोटिकन्दर्पसौन्दर्यनिन्दितं सुकलेवरम् ॥४१॥
अमूल्यरत्नाभरणं सत्यं च नित्यविग्रहम्। पीताम्बरधरं रम्यं दातारं सर्वसंपदाम् ॥४२॥
श्रीकृष्णश्च द्विधारूपो द्विभुजश्च चतुर्भुजः। चतुर्भुजश्च वैकुण्ठे गोलोके द्विभुजः स्वयम् ॥४३॥
यन्निमेषो भवेद्वृन्दे ब्रह्मणः पततेन च। पञ्चविंशत्सहस्रेण युगेनेन्द्रस्य पातनम् ॥४४॥
चतुर्दशेन्द्रावच्छिन्नकालेन ब्रह्मणो दिनम्। तावतीति निशा तस्य विधातुर्जगतामपि ॥४५॥
एवं त्रिंशद्दिनैर्मासं द्विषट्के मासि वर्षकम्। एवं शतायुस्तस्यैव निबोध बोधतत्परम् ॥४६॥
यावज्जीवनपर्यन्तं सेवन्ते सनकादयः। कल्पानां कोटिकोटिं च तन्न साध्यश्च यो विभुः ॥४७॥
सहस्रवक्त्रः शेषश्च सेवते च जपन्सदा। दिवानिशं च यं भक्त्या कल्पकोटिशतं शतम् ॥४८॥
तन्न साध्यो हितकरो दुराराध्यः परात्परः। ब्रह्मा ब्रह्मस्वरूपं तं भजेज्जन्मनि जन्मनि ॥४९॥
वक्त्रैश्चतुर्भिः सततं स्तौति नित्यं सनातनम्। वेदेऽनिर्वचनीयश्च वेदानां जनको विधिः ॥५०॥
विधाता फलदाता च दाता च सर्वसंपदाम्। तन्न साध्यो हि भगवान्कालकालान्तकान्तकः ॥५१॥

---

वंशी से युक्त, किशोर गोप का वेश धारण करनेवाले, गोलोक में निवास करनेवाले तथा परिपूर्णतम द्विभुज श्रीकृष्ण जो हैं, उनकी पत्नी स्वयं परात्परा महालक्ष्मी राधा है। वे परब्रह्मस्वरूपिणी राधा उन श्यामसुन्दर की सदा सेवा करती रहती हैं जो परम आत्मबल से सम्पन्न ऐश्वर्यशाली, शान्त और परम सौन्दर्यशाली हैं, जिनका सुन्दर शरीर करोड़ों कामदेवों के सौन्दर्य की निन्दा करनेवाला, अमूल्य रत्नाभरणों से भूषित, सत्यस्वरूप और अविनाशी है तथा जो रमणीय पीताम्बर धारण करनेवाले और सम्पूर्ण सम्पत्तियों के दाता हैं ॥३७-४२॥ वे श्रीकृष्ण चतुर्भुज और द्विभुज रूप में विभक्त होकर वैकुण्ठ में चार भुजाओं से और गोलोक में दो भुजाओं से निवास करते हैं ॥४३॥ हे वृन्दे! ब्रह्मा के पतन (मरण) से श्रीकृष्ण का एक निमेष होता है। पचीस सहस्र युग बीतने के अनन्तर इन्द्र का पतन होता है और ऐसे चौदह इन्द्रों का शासन-काल जगत् के विधाता ब्रह्मा का एक दिन होता है उतनी ही बड़ी उनकी रात्रि भी होती है ॥४४-४५॥ ऐसे तीस दिनों का एक मास और बारह मासों का एक वर्ष होता है। ऐसे सौ वर्षों की ब्रह्मा की आयु होती है ॥४६॥ उन ब्रह्मा की आयु समाप्ति, जिनका एक निमेष होता है, सनक आदि महर्षि जिनकी जीवनपर्यन्त सेवा करते रहते हैं, परन्तु करोड़ों कल्पों में भी जो विभु साध्य नहीं होते, सहस्रमुखधारी शेषनाग अरबों-खरबों कल्पों तक जिनकी भक्तिपूर्वक रात-दिन सेवा तथा नाम-जप करते रहते हैं, परन्तु वे परात्पर, दुराराध्य, हितकारी भगवान् साध्य नहीं होते। जो ब्रह्मा वेदों के उत्पादक, विधाता, फलदाता और सम्पूर्ण सम्पत्तियों के दाता हैं, वे प्रत्येक जन्म में उन ब्रह्मस्वरूप अविनाशी सनातनदेव का सदा अपने चारों मुखों द्वारा निरन्तर स्तवन करते रहते हैं, परन्तु वेदों द्वारा अनिर्वचनीय, काल के काल तथा अन्तक के अन्तक उन भगवान् को सिद्ध नहीं कर पाते ॥४७-५१॥

संहारकर्त्ता जगतां कलया रुद्ररूपतः । स स्तौति पञ्चवक्त्रेण कोऽन्योऽन्यस्यापि का कथा ॥५२॥
तत्परश्च प्रियो नास्ति वृन्दे भगवतः शृणु । सर्वशक्तिस्वरूपा सा दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥५३॥
ब्रह्मस्वरूपा परमा मूलप्रकृतिरीश्वरी । नारायणी विष्णुमाया वैष्णवी सा सनातनी ॥५४॥
यन्मायया जगद्भ्रान्तमनित्ये भ्रमते सदा । सा स्तौति भक्त्या यं देवं वृन्देऽप्यङ्गे दिवानिशम् ॥५५॥
स्तौति भक्त्या स्वशक्त्या च गजवक्त्रः षडाननः । ध्यायते यं गणेशश्च सर्वादौ यस्य पूजनम् ॥५६॥
भगवान्सर्वदेवेशो ज्ञानिनां च गुरोर्गुरुः । सिद्धेन्द्रेषु च देवेन्द्रे योगीन्द्रे ज्ञानिनां गुरौ ॥५७॥
न गणेशात्परो विद्वान्गणेशश्च सुराधिपः । सरस्वती च यं स्तोतुमशक्ता परमेश्वरी ॥५८॥
दिवानिशं पादपद्मं भक्त्या पद्मा निषेवते । यत्कटाक्षाज्जगत्सर्वं परिपूर्णतमं शिवम् ॥५९॥
यद्भयाद्वाति वातोऽयं सूर्यस्तपति यद्भयात् । वर्षतीन्द्रो वहत्यग्निर्मृत्युश्चरति जन्तुषु ॥६०॥
पृथिवी सेवया यस्य सर्वाधारा वसुंधरा । समुद्रा निश्चलाः शैला यस्य भीताश्च सुन्दरि ॥६१॥
तीर्थसारा च सा गङ्गा पवित्रा मुक्तिदायिनी । जगतां पावनी देवी यस्य पादाब्जसेवया ॥६२॥
पवित्रा तुलसी देवी स्मरणाद्यस्य सेवनात् । नवग्रहाश्च दिक्पाला भीता यस्य प्रतापतः ॥६३॥
ब्रह्माण्डेषु च सर्वेषु ब्रह्मविष्णुशिवात्मकाः । अन्ये ये ये सुरेशाश्च शेषाद्या मुनयस्तथा ॥६४॥

---

जो अपनी कला से रुद्र रूप धारण करके जगत् का संहार करते हैं, पाँचों मुखों से उनकी स्तुति करते हैं, जिनसे बढ़कर भगवान् को दूसरा कोई प्रिय नहीं है, उनके द्वारा जब भगवान् साध्य नहीं होते, तब दूसरे की क्या बात है ॥५२॥ वृन्दे ! जो दुर्गा समस्त शक्तिस्वरूपा, दुर्गतिनाशिनी, ब्रह्मस्वरूपा, परमा, मूल प्रकृति, ईश्वरी, नारायणी, विष्णुमाया, वैष्णवी और सनातनी हैं, जिनकी माया से भ्रान्त होकर जगत् अनित्य में सतत भ्रमण करता रहता है, वे भी जिन देव की भक्तिपूर्वक स्तुति करती रहती हैं । गजमुख (गणेश) और षडानन (कार्तिकेय) अपनी शक्ति के अनुसार भक्ति से जिनकी स्तुति करते हैं । जिन (गणेश) की सर्वप्रथम पूजा होती है, जो सम्पूर्ण देवताओं के स्वामी और ज्ञानियों के गुरु हैं, जिन गणेश से बढ़कर सिद्धेन्द्र, देवेन्द्र, योगीन्द्र एवं ज्ञानियों के गुरुओं में कोई विद्वान् नहीं है, जो गणों के स्वामी और देवताओं के अधिपति हैं वे भगवान् गणेश जिनका ध्यान करते हैं । परमेश्वरी सरस्वती जिनकी स्तुति करने में असमर्थ हैं । लक्ष्मी जिनके चरण-कमल की रात-दिन भक्तिपूर्वक सेवा करती हैं । जिनके कटाक्ष से समस्त जगत् परिपूर्णतम एवं कल्याणमय है । जिनके भय से वायु चलता है, जिनके भय से सूर्य तपते हैं, इन्द्र वर्षा करते हैं, अग्नि जलाता है और मृत्यु प्राणियों में विचरण करता है ॥५३-६०॥ जिनकी सेवा करने से पृथ्वी समस्त की आधारस्वरूपा और धन की भाण्डार हो गयी है। सुन्दरी ! जिनसे भयभीत होकर समुद्र और पर्वत निश्चल होकर मर्यादा में स्थित रहते हैं ॥६१॥ जिनके चरण-कमल की सेवा से गङ्गा देवी तीर्थों की साररूपा, पवित्र, मुक्तिदायिनी और लोकों को पावन करनेवाली हैं ॥६२॥

जिनके स्मरण और सेवन से तुलसी देवी पवित्र हो गयी हैं, जिनके प्रताप से नवग्रह और दिक्पाल भयभीत रहते हैं । सभी ब्रह्माण्डों में जो-जो ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा अन्यान्य देवेश्वर, शेष आदि देवेश और

केचित्कलास्वरूपश्चाप्यंशरूपाश्च केचन । केचित्कलांशाः कृष्णस्य केचिच्च परमात्मनः ॥६५॥
पतिमिच्छसि कल्याणि प्रकृतेः परमीश्वरम् । गोलोके राधिका साध्यो नान्येषां च कदाचन ॥६६॥
मां भजस्व महाभागे नृपाणामीश्वरं पतिम् । बलवन्तं च देवेभ्यो दैत्येभ्यश्च वरानने ॥६७॥
सुखानि यानि कल्याणि त्रिषु लोकेषु सन्ति वै । भुङक्ष्व तान्येव सर्वाणि मत्प्रसादान्न संशयः ॥६८॥
सप्तसागरपारे च काञ्चनी रुचिरा वरे । देवानां क्रीडनार्थाय विधात्रा निर्मिता पुरी ॥६९॥
तत्रैव गच्छ भद्रं ते रम रामे मया सह । महेन्द्रस्य प्रियवनं पुष्पोद्यानसमन्वितम् ॥७०॥
गच्छ स्वर्णमयीं लङ्कां नानारत्नविभूषिताम् । तत्रैव गच्छ भद्रं ते रम रामे मया सह ॥७१॥
विस्पन्दकं सुवसनं नन्दकं पुष्पभद्रकम् । तत्रैव गच्छ भद्रं ते रम रामे मया सह ॥७२॥
सुमेरुगह्वरं वाऽपि क्षीरोदं वा मनोहरम् । तत्रैव गच्छ भद्रं ते रम रामे मया सह ॥७३॥
सत्यलोकं ब्रह्मलोकं रम्यं सद्म रहःस्थलम् । तत्रैव गच्छ भद्रं ते रम रामे मया सह ॥७४॥
मलये निलयं रम्यं [1]रत्नेन्द्रसारनिर्मितम् । सुगन्धियुक्तं सततं शुद्धं चन्दनवायुना ॥७५॥
मालती यूथिका रम्या केतकी माधवी तथा । चारुचम्पकपुष्पाणां गन्धेन सुमनोहरम् ॥७६॥
पिकानां भ्रमराणां च मधुरध्वनिसंयुतम् । तत्रैव गच्छ भद्रं ते रम रामे मया सह ॥७७॥

---

मुनिवृन्द हैं, उनमें से कुछ परमात्मा श्रीकृष्ण के फलस्वरूप, कुछ अंशरूप तथा कुछ कलांशरूप हैं। हे कल्याणि ! तुम उन्हीं परमेश्वर को, जो प्रकृति से परे हैं, अपना पति बनाना चाहती हो, परन्तु वे केवल गोलोक में राधिका द्वारा साध्य है, दूसरा कोई भी उन्हें सिद्ध नहीं कर सकता ॥६३-६६॥ इसलिए हे महाभागे ! हे वरानने ! मुझे ही पति बनाकर सुखोपभोग करो, मैं राजाओं का अधीश्वर एवं देवों-दैत्यों से भी अधिक बलवान् हूँ। हे कल्याणि ! तीनों लोकों में जितने सुख हैं मेरी कृपा से मेरे साथ रहने पर उन सबका उपभोग तुम्हें प्राप्त होगा इसमें संशय नहीं ॥६७-६८॥ सातों सागरों के पार देवों के क्रीडनार्थ ब्रह्मा ने मनोहर काञ्चनी पुरी का निर्माण किया है ॥६९॥ हे रामे ! तुम्हारा कल्याण हो, वहीं चलकर मेरे साथ रमण करो। वहाँ महेन्द्र का प्रिय वन पुष्पोद्यान विद्यमान है ॥७०॥ सोने की लंका सोने के आभूषणों से विभूषित है। सुन्दरि ! तुम्हारा कल्याण हो, वहीं चलो, मेरे साथ रमण करो ॥७१॥ विस्पन्दक, सुवसन, नन्दक और पुष्पभद्रक नामक उपवन हैं। सुन्दरि ! वहीं चलकर मेरे साथ रमण करो ॥७२॥ सुमेरु पर्वत की सुन्दर गुफा और मनोहर क्षीरसागर में चलकर, हे रामे ! वहीं चलकर मेरे साथ रमण करो ॥७३॥ सत्यलोक, ब्रह्मलोक एवं रमणीक अन्य एकान्त स्थान में चलकर, हे रामे ! वहाँ मेरे साथ रमण करो ॥७४॥ मलय पर्वत पर रत्नेन्द्र के सारभाग से निर्मित, सुगन्धियुक्त और चन्दन वायु द्वारा निरन्तर शुद्ध एक रमणीय भवन है। वह मालती, जूही, सुन्दर केतकी, माधवी तथा चारु चम्पा पुष्पों के सुगन्ध से अति मनोहर और कोयलों एवं भ्रमरों की मधुर ध्वनि से युक्त हैं। सुन्दरि ! वहीं चलो और मेरे साथ रमण करो

---

१ ख. महेन्द्र°।

इन्द्रस्य वरुणस्यैव वायोरपि यमस्य च। धनेश्वरस्य वह्नेश्च धर्मस्य शशिनस्तथा ॥७८॥
सुरम्यं लोकमेतेषां मध्ये देवि यथेच्छसि। तत्रैव गच्छ भद्रं ते रम रामे मया सह ॥७९॥
रत्नद्वीपं मणिद्वीपं रम्यं चन्द्रसरोवरम्। तत्रैव गच्छ भद्रं ते रम रामे मया सह ॥८०॥
इत्येवमुक्त्वा संभोक्तुं गच्छन्तं तं छलेन च। न वास्तवपरीक्षार्थं सतीत्वं बोधितुं व्रज ॥८१॥
उवाच सा नृपसुता कोपवक्त्रास्यलोचना। हितं सत्यं योगयुक्तं[1] धर्मार्थं च यशस्करम् ॥८२॥

## वृन्दोवाच

धैर्यं कुरु महाभाग श्रेष्ठो जातिषु ब्राह्मणः। ब्राह्मणानां तपो मूलं सत्यं वेदव्रतं धृतिः ॥८३॥
परस्त्रीसहसंभोगः स्वभावश्चाप्यधर्मिणाम्। अधर्मेणैव हे विप्र दुष्टोऽभद्राणि पश्यति ॥८४॥
ततः सपत्ने जयति समूलस्थो विनश्यति। पतिव्रतानां गमने बलात्कारेण निश्चितम् ॥८५॥
मातृगामी भवेत्सद्यो ब्रह्महत्याशतं भवेत्। कुम्भीपाके पच्यते च यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥८६॥
प्रदग्धस्तैलतप्तेषु न मृतः सूक्ष्मदेहतः। ताडितो यमदूतैश्च लोहदण्डेन मूर्धनि ॥८७॥
क्षणं सुखं चिरं दुःखं सर्वनाशस्य कारणम्। अगम्यागमनं दुःखं धर्मिष्ठो नैव वाञ्छति ॥८८॥

---

॥७५-७७॥ हे देवि ! इन्द्र, वरुण, वायु, यम, कुवेर, अग्नि, धर्म और चन्द्रमा के लोक अत्यन्त रमणीय हैं। इनमें से जहाँ चाहो वहीं चलकर मेरे साथ रमण करो ॥७८-७९॥ रत्नद्वीप, मणिद्वीप और चन्द्रसरोवर रमणीक हैं। वहीं चलकर, हे सुन्दरि ! मेरे साथ रमण करो ॥८०॥ हे व्रज ! इस प्रकार कहकर (केदार-कन्या का) सतीत्व जानने के लिए, वास्तविक परीक्षा के लिए नहीं, वे उसकी ओर छल से बढ़े ॥८१॥ क्रोध से लाल मुख और नेत्रोंवाली उस राजकन्या ने हितकर, सत्य, योगयुक्त, यशस्कर एवं धर्मार्थ वचन कहा ॥८२॥

**वृन्दा बोली**--हे महाभाग ! धैर्य धारण करो, सभी जातियों में ब्राह्मण श्रेष्ठ होता है। ब्राह्मण का मूल तप, सत्य वेद, व्रत और धैर्य है। हे विप्र ! परायी स्त्री के साथ सम्भोग करना अधर्मी पुरुषों का ही स्वभाव होता है। अधर्म के कारण ही दुष्ट को अमङ्गल-दर्शन होता है ॥८३-८४॥ तत्पश्चात् वह शत्रु पर विजय प्राप्त करता है और फिर समूल नष्ट हो जाता है। जो पतिव्रताओं के साथ बलप्रयोग द्वारा सम्भोग करता है, वह निश्चित ही मातृगामी कहलाता है और उसे तुरन्त सौ ब्रह्महत्या का पाप लग जाता है। वह चन्द्रमा और सूर्य के समय तक कुम्भीपाक नरक में पचता रहता है ॥८५-८६॥ वह तप्त तेल के कुण्ड में जलाया जाता है, किन्तु सूक्ष्म देह होने के कारण मरता नहीं है। यमदूत लोह के डंडे से उसके सिर पर आघात करते रहते हैं। इसमें क्षणमात्र सुख और चिरकाल तक दुःख भोगना पड़ता है। यह सर्वनाश का कारण है। इसीलिए इस अगम्यागमन रूप दुःख को धर्मात्मा लोग कभी नहीं चाहते ॥८७-८८॥ हे ब्राह्मण ! तुम्हारा ज्ञान दुर्बल है, तुम्हारा कल्याण हो, मुझे

---

१ क. वेद ।

क्षमस्व गच्छ भद्रं ते ब्राह्मण ज्ञानदुर्बल । यथा दीपशिखां दृष्ट्वा कीटः पतति निश्चितम् ॥८९॥
मिष्टं दृष्ट्वा वडीशाग्रे लुब्धमीनो मृगो यथा । यथा विषावतं भक्ष्यं च भुङ्क्ते भोक्ता बुभुक्षितः ॥९०॥
गृह्णाति दुष्टो दुष्टं च विषकुम्भं पयोमुखम् । तथा दृष्ट्वा परस्त्रीणां मुखपद्मं मनोहरम् ॥९१॥
विनाशबीजं मोहेन भ्रान्तो भवति लम्पटः । मुखं च रुचिरं स्त्रीणां श्रोणियुग्मं स्तनौ तथा ॥९२॥
कामाधारं नाशबीजमधर्मस्थलमेव च । भगं नरककुण्डं च लालामूत्रसमन्वितम् ॥९३॥
दुर्गन्धियुक्तं पापं च यमदण्डस्य कारणम् । यथा लिङ्गं विशत्येव पापयोनौ च योषिताम् ॥९४॥
तथा पुमान्विशत्येव रौरवे च युगे युगे । रहस्यं चाऽऽपदं दृष्ट्वा मां त्वं धर्षितुमिच्छसि ॥९५॥
अत्रैव सर्वदेवाश्च लोकपालाश्च ब्राह्मण । जाज्वल्यमानो धर्मश्च साक्षी शास्ता च कर्मणाम् ॥९६॥
यमश्च दण्डकर्ता च स्थापितो हरिणा स्वयम् । स्वयं कृष्णश्च धर्मात्मा[1] ज्ञानरूपो महेश्वरः ॥९७॥
दुर्गा बुद्धिर्मनो ब्रह्मा चेन्द्रियाणि सुरास्तथा । सर्वप्राणिषु तिष्ठन्ति साक्षिणः कर्मणां द्विज ॥९८॥
क्व गुप्तं क्व रहस्यं वा ब्राह्मण ज्ञानदुर्बल । क्षमस्व गच्छ भद्रं ते अवध्याश्च द्विजातयः ॥९९॥
शक्ताऽहं भस्मसात्कर्तुं गच्छ वत्स यथासुखम् । तपस्यासु मम गतमष्टोत्तरशतं युगम् ॥१००॥

---

क्षमा करो और जाओ। जिस प्रकार दीपशिखा को देखकर कीड़ा (फतिगा) निश्चित ही उस पर टूट पड़ता है, लोभी मीन और मृग काँटे के अग्रभाग में मिष्टान्न को देखकर उसे निगलना चाहता है। भूखा मनुष्य विष मिश्रित भोजन कर लेता है ॥८९-९०॥ दुष्ट व्यक्ति मुख पर छलछलाते हुए दूधवाले विष के घड़े को ग्रहण कर लेता है, उसी भाँति परायी स्त्री के मनोहर मुखकमल को, जो विनाश का कारण है, देखकर लम्पट पुरुष मोहवश भ्रान्त हो जाता है। स्त्रियों के सुन्दर मुख, दोनों नितम्ब, स्तन और कामाधार (भग) नाश का बीज एवं अधर्म स्थल है। लार और मूत्र से युक्त भग तो नरक का कुण्ड, दुर्गन्धियुक्त, पापरूप एवं यमराज के यहाँ दण्ड पाने का कारण है। उस पाप रूप योनि में जिस प्रकार लिङ्ग प्रवेश करता है उसी भाँति वह पुरुष भी युग-युग में रौरव नरक में प्रवेश करता है। ब्राह्मण! एकान्त और आपत्ति देखकर जो तुम मेरी धर्षणा करना चाहते हो तो यहीं समस्त देवता, लोकपाल, कर्मों के शासक तथा साक्षी जाज्वल्यमान धर्म, स्वयं श्रीहरि द्वारा नियुक्त दण्डकर्ता यमराज, स्वयं धर्ममूर्ति कृष्ण, ज्ञानस्वरूप महेश्वर, दुर्गा, बुद्धि, मन, ब्रह्मा, इन्द्रिय तथा देवगण उपस्थित हैं ॥९१-९८॥

ये सभी प्राणियों में कर्मों के साक्षी होकर विद्यमान रहते हैं। अतः अज्ञानी ब्राह्मण! कौन-सा स्थान गुप्त है और कौन-सा रहस्यमय? द्विज! अतः मुझे क्षमा करो, जाओ, तुम्हारा कल्याण हो। हे वत्स! द्विजाति लोग अवध्य होते हैं, अतः सुखपूर्वक चले जाओ। अन्यथा मैं भस्म करने में समर्थ हूँ। मुझे तपस्या करते

---

[1] क. सर्वात्मा।

नास्ति गोत्रं मत्पितुश्च न माता न पिता मम । सर्वान्तरात्मा भगवान्कृष्णो रक्षति मां द्विज ॥१०१॥
कृष्णेन स्थापितो धर्मो मां च रक्षति नित्यशः । आदित्यश्च तथा चन्द्रः पवनश्च हुताशनः ॥१०२॥
ब्रह्मा शंभुर्भगवती दुर्गा रक्षति मां सदा । येन शुक्लीकृता हंसाः शुकाश्च हरिताः कृताः ॥१०३॥
मयूराश्चित्रिता येन स मे रक्षां करिष्यति । अनाथबालवृद्धानां रक्षकाः सर्वदेवताः ॥१०४॥
नारीबुद्ध्या न मां धर्मस्त्यक्त्वा गच्छेद्धि सर्वदा । मां मातरं परित्यज्य गच्छ वत्स यथासुखम् ॥१०५॥
इत्येवमुक्त्वा देवी सा तस्थौ तत्र धरा यथा । आगच्छन्तं च संभोक्तुं मा यान्तं बोधनेन च ॥१०६॥
सशापेति च सा कोपाद्ब्रह्मबन्धो क्षयो भव । क्षयो भव दुराचार हे पापिष्ठ क्षयो भव ॥१०७॥
पुनः शप्तं स्वयं सूर्यो वारयामास यत्नतः । एतस्मिन्नन्तरे तात तत्रैव जगदीश्वराः ॥१०८॥
आजग्मुरतिसंत्रस्ता ब्रह्मविष्णुशिवादयः । धर्मं दृष्ट्वा कलारूपं रुरुदुस्त्रिदशेश्वराः ॥१०९॥
कृत्वा क्रोडेऽतीव कृशं कुह्वा भीतं यथा विधुम् । निश्चेष्टं मलिनं दग्धं सतीकोपाग्निना व्रज ॥११०॥

### श्रीभगवानुवाच

क्षमस्व वृन्दे मद्भक्ते जन्ममृत्युजराहरे । धर्मं जीवय मद्भक्तं रक्ष धर्मं पतिव्रते ॥१११॥

---

हुए एक सौ आठ युग बीत गये हैं इसलिए मेरे पिता का कोई गोत्र नाम नहीं है और न मेरे पिता-माता हैं ॥९९-१००½॥ हे द्विज ! सभी के अन्तरात्मा स्वरूप भगवान् कृष्ण मेरी रक्षा करते हैं। कृष्ण का स्थापित किया हुआ धर्म मेरी नित्य रक्षा करता है। सूर्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि ब्रह्मा, शिव और भगवती दुर्गा—ये मेरी सदा रक्षा करते हैं ॥१०१-१०२½॥ जिन्होंने हंस को शुद्ध (श्वेत) बनाया, शुक को हरा, मोर को रंग-बिरंगा बनाया, वही मेरी रक्षा करेंगे। अनाथ, बाल, वृद्धों की रक्षा सभी देवता करते हैं, अतः नारी समझकर धर्म मेरा परित्याग करके नहीं जा सकते हैं ॥१०३-१०४½॥ हे वत्स ! मुझ माता को छोड़कर सुखपूर्वक चले जाओ। इस प्रकार कह-कर वह देवी पृथ्वी की भाँति वहाँ निश्चल स्थित रही ॥१०५-१०५½॥ उद्बोधन देने पर भी सम्भोग करने के लिए पुनः आते हुए उस ब्राह्मण को कुमारी ने क्रोध से शाप दे डाला—अधम ब्राह्मण ! तुम्हारा नाश हो जाय, दुराचारी ! तुम्हारा नाश हो, पापिष्ठ ! तुम्हारा नाश हो ! ऐसा कहकर वह पुनः शाप देने जा रही थी कि सूर्य ने बड़े प्रयत्न से उसे रोक दिया। हे तात ! इस बीच जगत् के अध्यक्ष ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि अति भयभीत होकर वहाँ आ गये और धर्म को कलामात्र शेष देखकर वे देवगण रोदन करने लगे। हे व्रज ! धर्म को उठाकर अपनी गोद में रखा, जो चतुर्दशी युक्त अमा से भयभीत चन्द्रमा के समान कृश, पतिव्रता के कोपाग्नि से दग्ध, निश्चेष्ट और मलिन हो गया था ॥१०६-११०॥

**श्रीभगवान् बोले**—हे वृन्दे ! तू जन्म, मृत्यु एवं जरा की अपहारिणी मेरी भक्ता है, तू उसे क्षमा कर। हे पतिव्रते ! धर्म को जीवित कर, मेरे भक्त धर्म की रक्षा कर ॥१११॥

### ब्रह्मोवाच

ध्वान्तपूर्णं जगत्सर्वं विना धर्मं बभूव ह। कम्पितौ चन्द्रसूर्यौ च शेषश्चापि वसुंधरा ॥११२॥

### महादेव उवाच

प्रनष्टं च जगत्सर्वं विना धर्मेण सुन्दरि। धर्मं जीवय भद्रं ते स्वस्ति तेऽस्तु वरानने ॥११३॥

### सूर्य उवाच

वरं वृणीष्व भद्रं ते यत्ते मनसि वाञ्छितम्। धर्मं जीवय भद्रं ते रक्ष सृष्टिं पतिव्रते ॥११४॥

### अनन्त उवाच

धर्मं करोषि तपसा कथं धर्मं विहंसि च। धर्मं जीवय भद्रं ते सर्वधर्मो भवेत्तव ॥११५॥

### चन्द्र उवाच

द्विजरूपधरो धर्मस्त्वां परीक्षितुमागतः। ब्रह्मणा प्रेरितश्चैव निर्दोषश्च विहिंसितः ॥११६॥

### महेन्द्र उवाच

तपसोपार्जितो धर्मो धर्मेण च फलं नृणाम्। कथं फलं च तपसां यदि धर्मः क्षयं गतः ॥११७॥

---

**ब्रह्मा बोले**—बिना धर्म के सारा जगत् अन्धकारमय हो गया है। चन्द्रमा, सूर्य, पृथिवी और शेष कांप रहे हैं ॥११२॥

**महादेव बोले**—हे सुन्दरि! धर्म के बिना समस्त संसार नष्ट हो गया; अतः हे वरानने! तुम्हारा कल्याण हो, धर्म को जीवित करो ॥११३॥

**सूर्य बोले**—हे पतिव्रते! अपना मनोनीत वरदान मांग लो, तुम्हारा कल्याण हो, धर्म को जीवित करके सृष्टि की रक्षा करो ॥११४॥

**अनन्त बोले**—तप द्वारा धर्म ही तो करती हो, फिर उसकी हिंसा क्यों करती हो? तुम्हारा कल्याण हो, धर्म को जीवित करो, जिससे तुम्हारा समस्त धर्म सम्पन्न हो जाय ॥११५॥

**चन्द्र बोले**—ब्रह्मा द्वारा प्रेरित होकर यह ब्राह्मणरूपधारी धर्म तुम्हारी परीक्षा करने आया था; अतः यह निर्दोष ही मारा गया ॥११६॥

**महेन्द्र बोले**—तप द्वारा धर्म उपार्जित किया जाता है और धर्म द्वारा मनुष्यों को फल प्राप्त होता है। यदि धर्म नष्ट हो गया, तो तप का फल कैसे प्राप्त होगा? ११७॥

वरुण उवाच

धर्मं जीवय धर्मिष्ठे धर्मं रक्ष सनातनम्। निष्फलं कर्मिणां कर्म विना धर्मेण धार्मिके ॥११८॥

पवन उवाच

जगत्पूतं कुरु शुभे धर्मं जीवय सांप्रतम्। धर्मे प्रनष्टे तपसां तवापूर्वं विनङ्क्ष्यति ॥११९॥

वह्निरुवाच

स्वधर्मोपार्जनं कर्तुमागताऽसि च भारतम्। विहंसि धर्ममज्ञात्वा पुनर्जीवय सुन्दरि ॥१२०॥

यम उवाच

वेदोक्तकर्मकर्तॄणामहं विश्वे[1] वरानने। धर्मानुसारात्फलदो धर्मं जीवय सत्वरम् ॥१२१॥
देवानां वचनं श्रुत्वा समुत्थाय पतिव्रता। नमस्कृत्य सुरेशांश्च तानुवाच तपस्विनी ॥१२२॥

वृन्दोवाच

अहं देवा न जानामि धर्मं ब्राह्मणरूपिणम्। कृतः क्षयो मया कोपान्मां परीक्षितुमागतः ॥१२३॥
जीवयामि ध्रुवं धर्मं युष्माकं च प्रसादतः। इत्येवमुक्त्वा सा वृन्दा चेत्युवाच व्रजेश्वर ॥१२४॥

---

**वरुण बोले**—हे धर्मिष्ठे ! धर्म को जीवित करके सनातन धर्म की रक्षा करो। हे धार्मिके ! धर्म के बिना प्राणियों के कर्म निष्फल हो जायेंगे ॥११८॥

**पवन बोले**—हे शुभे ! सम्प्रति धर्म को जीवित करके जगत् को पवित्र करो। धर्म के नष्ट रहने पर तुम्हारे तप का भी अपूर्व (फल) नष्ट हो जायगा ॥११९॥

**अग्नि बोले**—हे सुन्दरि ! अपना धर्मोपार्जन करने के लिए तुम भारत में आयी हो और बिना जाने ही तुमने धर्म की हिंसा कर दी है। अतः उसे पुनर्जीवित करो ॥१२०॥

**यम बोले**—हे सुमुखि ! विश्व में वेदोक्त कर्म करनेवाले प्राणियों को धर्मानुसार मैं फल प्रदान करता हूं, अतः धर्म को शीघ्र जीवित करो ॥१२१॥ देवों की बात सुनकर वह तपस्विनी पतिव्रता उठकर खड़ी हो गयी और नमस्कारपूर्वक उन देवों से कहने लगी ॥१२२॥

**वृन्दा बोली**—हे देव ! मैं ब्राह्मण रूपी धर्म को नहीं जानती थी, जो मेरी परीक्षा करने आये थे और जिन्हें मैंने कोपवश विनष्ट कर दिया है। किन्तु आप लोगों की कृपा से मैं अवश्य ही धर्म को जीवित कर दूंगी। हे व्रजेश्वर ! इस प्रकार कहकर वृन्दा बोली—यदि मेरा तप सत्य है और मेरा विष्णु-पूजन करना सत्य

---

१ ख. °प्रवेश्वरानने।

तपः सत्यं यदि मम सत्यं च विष्णुपूजनम् । तेन पुण्येन सद्योऽत्र द्विजो भवतु विज्वरः ॥१२५॥
यदि मे च भवेत्सत्यं व्रतं सत्यं तपः शुचि । तेन पुण्येन सत्येन द्विजो भवतु विज्वरः ॥१२६॥
यदि नारायणः सत्यः सर्वात्मा नित्यविग्रहः । ज्ञानात्मकः शिवः सत्यो द्विजो भवतु विज्वरः ॥१२७॥
ब्रह्म सत्यं च ते देवाः प्रकृतिः परमा यदि । यज्ञः सत्यस्तपः सत्यं द्विजो भवतु विज्वरः ॥१२८॥
इत्येवमुक्त्वा सा वृन्दा धर्मं क्रोडे चकार च । तं दृष्ट्वा च कलारूपं रुरोद कृपया सती ॥१२९॥
एतस्मिन्नन्तरे मूर्तिर्धर्मभार्या शुचाऽऽकुला । निपत्य विष्णुपादे च शिरसा चेत्युवाच सा ॥१३०॥

## मूर्तिरुवाच

हे नाथ करुणासिन्धो दीनबन्धो कृपां कुरु । तूर्णं जीवय कान्तं मे जगन्नाथ कृपामय ॥१३१॥
पतिहीना च या नारी पापिनी सा भवार्णवे । यथाऽऽस्यं चक्षुर्विरतं प्राणहीना यथा तनूः ॥१३२॥
मितं ददाति हि पिता मितं भ्राता मितं सुतः । मितं बन्धुर्मितं माता सर्वदाता पतिः प्रभुः[1] ॥१३३॥
इत्येवमुक्त्वा सा देवी तत्र तस्थौ रुरोद च । उवाच वृन्दां भगवान्सर्वात्मा प्रकृतेः परः ॥१३४॥

## श्रीभगवानुवाच

त्वयाऽऽयुस्तपसा लब्धं यावदायुश्च ब्रह्मणः । तदेव देहि धर्माय गोलोकं गच्छ सुन्दरि ॥१३५॥

---

है तो उस पुण्य के प्रभाव से यह ब्राह्मण तुरन्त दुःखरहित हो जाये । यदि मुझमें सत्य हो, मेरा व्रत सत्य तथा तप शुद्ध हो, तो उस पुण्य तथा सत्य के प्रभाव से द्विज क्लेशरहित हो जाये । यदि नित्यमूर्ति सर्वात्मा नारायण और ज्ञानात्मक शिव सत्य हैं, तो यह ब्राह्मण सन्तापरहित हो जाये । यदि ब्रह्म सत्य हो देवगण परमा प्रकृति, यज्ञ और तप सत्य हो, तो यह ब्राह्मण संतापरहित हो जाये । इस प्रकार कहकर वृन्दा ने धर्म को अपनी गोद में रख लिया और उसे कलामात्र शेष देखकर दयावश रोदन करने लगी ॥१२३-१२९॥ इसी बीच धर्म की पत्नी मूर्ति शोकाकुल होकर भगवान् विष्णु के चरण पर गिर पड़ी और कहने लगी ॥१३०॥

**मूर्ति बोली**—हे नाथ ! हे करुणासिन्धो ! हे दीनबन्धो ! कृपा करो । हे कृपामय जगन्नाथ ! मेरे पति को शीघ्र जीवित करें ॥१३१॥ जो नारी पति से हीन हो जाती है, वह संसार-सागर में पापिनी समझी जाती है । वह नेत्रविहीन मुख और प्राणशून्य देह के समान होती है ॥१३२॥ पिता, माता भ्राता, पुत्र और बन्धु आदि तो परिमित (सुख) देते हैं, किन्तु प्रभुस्वरूप पति उसे सभी कुछ देता है । इतना कहकर वह देवी वहाँ खड़ी हो गयी और रोदन करने लगी । तब सर्वात्मा एवं प्रकृति से परे भगवान् ने वृन्दा से कहा ॥१३३-१३४॥

**श्रीभगवान् बोले**—हे सुन्दरि ! तुमने तप द्वारा ब्रह्मा की आयु के समान आयु प्राप्त की है, वही धर्म को देकर स्वयं गोलोक में निवास करो ॥१३५॥ इसी शरीर से तप द्वारा तुम मुझे पश्चात् प्राप्त करोगी ।

---

१ क. स्वयम् ।

तन्वाऽनया च तपसा पश्चान्मां च लभिष्यसि । पश्चाद्गोलोकमागत्य वाराहे च वरानने ॥१३६॥
वृषभानसुता त्वं च राधाच्छाया भविष्यसि । मत्कलांशश्च रायाणस्त्वां विवाह ग्रहीष्यति ॥१३७॥
मां लभिष्यसि रासे च गोपीभिः राधया सह । राधा श्रीदामशापेन वृषभानसुता यदा ॥१३८॥
सा चैव वास्तवी राधा त्वं च च्छायास्वरूपिणी । विवाहकाले रायाणस्त्वां च च्छायां ग्रहीष्यति ॥१३९॥
त्वां दत्त्वा वास्तवी राधा साऽन्तर्धाना भविष्यति । राधैवेति विमूढाश्च विज्ञास्यन्ति च गोकुले ॥१४०॥
स्वप्ने राधापदाम्भोजं न हि पश्यन्ति बल्लवाः । स्वयं राधा मम क्रोडे छाया रायाणकामिनी ॥१४१॥
विष्णोश्च वचनं श्रुत्वा ददावायुश्च सुन्दरी । उत्तस्थौ पूर्णं धर्मश्च तप्तकाञ्चनसंनिभः ॥
पूर्वस्मात्सुन्दरः श्रीमान्प्रणनाम परात्परम् ॥१४२॥

## वृन्दोवाच

देवाः शृणुत मद्वाक्यं दुर्लङ्घ्यं सावधानतः । न हि मिथ्या भवेद्वाक्यं मदीयं च निशामय ॥१४३॥
क्षयो भवेति वाक्यं च मयोक्तं कोपभीतया । वारत्रयं पुनर्वक्तुं वारयामास भास्करः ॥१४४॥
सत्ये च परिपूर्णोऽयं यथापूर्वो यथाऽधुना । त्रिपादश्चापि त्रेतायां द्वापरे द्विपदो तथा ॥१४५॥

---

हे वरानने ! गोलोक में आने के पश्चात् तुम वाराह कल्प में वृषभान की सुता—राधा की छाया—होकर उत्पन्न होगी । वहाँ (वृन्दावन में) मेरे कलांश से रायाण जन्म ग्रहण करेंगे । अनन्तर विवाह संस्कार द्वारा वे तुम्हें अपनायेंगे । राधा और गोपियों के साथ रासक्रीड़ा के अवसर पर मुझसे तुम मिलोगी ॥१३६-१३७½॥ जिस समय श्रीदामा के शाप से राधा वृषभान की कन्या होकर प्रकट होंगी, उस समय वह वास्तविक राधा और तुम उसकी छाया के रूप में प्रकट रहोगी । विवाह के समय रायाण तुम्हीं को ग्रहण करेगा, क्योंकि वह वास्तविक राधा तुम्हें सौंपकर स्वयं अन्तर्हित हो जायगी । इसलिए गोकुलनिवासी सभी मूढ़जन तुम्हें वास्तविक राधा ही समझेंगे, किन्तु गोपगण राधा के चरणकमल को स्वप्न में भी नहीं देख सकते हैं । क्योंकि स्वयं राधा मेरे अङ्क में स्थित रहती है और उसकी छाया रायाण की पत्नी होगी । विष्णु की ऐसी बातें सुनकर उस सुन्दरी ने अपनी आयु प्रदान कर दी । फिर तो धर्म पूर्ण रूप से उठकर खड़े हो गये, जो तपाये सुवर्ण के समान गौर वर्ण और पहले से भी अधिक सुन्दर लगने लगे । उन्होंने परात्पर भगवान् को प्रणाम किया ॥१३८-१४२॥

**वृन्दा बोली**—हे देवगण ! सावधान होकर मेरा दुर्लङ्घ्य वचन सुनिये, जो कभी मिथ्या नहीं हो सकता है । मैंने क्रुद्ध होकर 'क्षयो भव (नष्ट हो जाओ)' शब्द का जो तीन बार प्रयोग किया और चौथी बार पुनः कहने के लिए तैयार हुई कि सूर्य ने मना कर दिया, उसका फल यों होगा—यह धर्म सत्ययुग में जैसे परिपूर्ण था उसी तरह इस समय भी रहेगा, परन्तु त्रेता में इसके तीन पैर, द्वापर में दो पैर और कलियुग के प्रथमांश में एक पैर

एकपादश्च धर्मोऽयं कलेश्च प्रथमे हरे। शेषे कलाषोडशांशः पुनः सत्ये यथा पुरा ॥१४६॥
त्रिर्निर्गतं मम मुखात्क्षयस्तेन ततः क्रमात्। पुनरुक्ते च मनसि वारयामास भास्करः ॥१४७॥
तेनैव हेतुनाऽयं च कलिशेषे कलामयः। तथा शप्तः स्थितो दुर्गे कलिशेषे तथा ध्रुवम् ॥१४८॥
एतस्मिन्नन्तरे नन्द ददृशुर्देवता रथम्। गोलोकादागतं वेगादतीव सुन्दरं शुभम् ॥१४९॥
अमूल्यरत्ननिर्माणं हीरहारपरिष्कृतम्। मणिमाणिक्यमुक्ताभिर्वस्त्रैश्च श्वेतचामरैः ॥१५०॥
विभूषितं भूषणैश्च रुचिरै रत्नदर्पणैः। नत्वा हरिं हरं वृन्दा ब्रह्माणं सर्वदेवताः ॥१५१॥
समारुह्य रथं दृष्ट्वा गोलोकं च जगाम सा। देवा जग्मुश्च स्वस्थानं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥१५२॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० भगवन्नन्दसं०
षडशीतितमोऽध्यायः ॥८६॥

•

---

रह जायगा। कलियुग के शेष भाग में यह कला का षोडशांश मात्र रह जायगा। सत्ययुग आने पर यह पुनः परिपूर्ण हो जायगा। मेरे मुख से जो तीन बार 'क्षय' शब्द निकला, इसीलिए क्रम से मैंने क्षय का विधान कर दिया है और पुनः कहने जा रही थी कि सूर्य ने रोक दिया, इस कारण यह मन में ही रह गया और इसीलिए वह शेष कलि में कलामय होकर स्थित रहेगा। अर्थात् शेष कलि रूपी दुर्ग में इस प्रकार अभिशप्त होकर स्थित रहेगा ॥१४३-१४७॥ नन्द जी ! इसी बीच गोलोक से अत्यन्त वेग द्वारा आये हुए रथ को देवों ने देखा, जो शुभमूर्ति एवं अति सुन्दर था। उसका निर्माण अमूल्य रत्नों द्वारा हुआ था। उसमें हीरे के हार लटक रहे थे और वह मणि, माणिक्य, मुक्ता, वस्त्र, श्वेत चामर, भूषण एवं मनोहर दर्पणों से सुशोभित था। वृन्दा विष्णु, शिव, ब्रह्मा और समस्त देवों को नमस्कार करके उस रथ पर सवार होकर गोलोक को चली गयी। तदनन्तर देववृन्द अपने-अपने स्थान को चले गये। पुनः क्या सुनना चाहते हो? ॥१४८-१५२॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद-नारायण के संवाद प्रकरण में
भगवान् और नन्द के संवाद में छियासीवाँ अध्याय समाप्त ॥८६॥

•

# अथ सप्ताशीतितमोऽध्यायः

नन्द उवाच

त्वां ज्ञातुं नहि शक्ताश्च वेदा वेदप्रभुं[1] स्वयम् । सुरा ब्रह्मेशशेषाद्या मुनिसिद्धादयस्तथा ॥१॥
को भवानिति विज्ञातुं परं कौतूहलं मम । तत्सर्वं स्वात्मयाथार्थ्यं निर्जने कथय प्रभो ॥२॥

नारायण उवाच

एतस्मिन्नन्तरे तत्र कृष्णं द्रष्टुं मुनीश्वराः । आजग्मुः सहसा वत्स ज्वलन्तो ब्रह्मतेजसा ॥३॥
पुलहश्च पुलस्त्यश्च क्रतुश्च भृगुरङ्गिराः । प्रचेताश्च वसिष्ठश्च दुर्वासाः कण्व एव च ॥४॥
कात्यायनः पाणिनिश्च कणादो गौतमस्तथा । सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः ॥५॥
कपिलश्चाऽऽसुरिश्चैव वायुः पञ्चशिखस्तथा । विश्वामित्रो वाल्मीकिश्च कश्यपश्च पराशरः ॥६॥
विभाण्डको मरीचिश्च शुक्रोऽत्रिश्च बृहस्पतिः । गार्ग्यश्चापि तथा वात्स्यो व्यासश्च जैमिनिस्तथा ॥७॥
मितवागृष्यशृङ्गश्च याज्ञवल्क्यः शुकस्तथा । सौभरिः शुद्धजटिलो भरद्वाजः सुभद्रकः ॥८॥
मार्कण्डेयो लोमशश्च आसुरिश्च विटङ्कणः । अष्टावक्र शतानन्दो वामदेवश्च भागुरिः ॥९॥

---

# अध्याय ८७

## भगवान् और नन्द के संवाद के समय सनत्कुमार का आगमन

**नन्द बोले**—हे प्रभो ! आप वेदाधीश्वर को जानने में वेद, ब्रह्मा, शिव, शेष आदि देवगण और मुनि, सिद्ध आदि सभी असमर्थ हैं । अतः आप कौन हैं, यह जानने के लिए अब मुझे परम कौतूहल हो रहा है । इसलिए इस निर्जन प्रदेश में अपना यथार्थ तत्त्व बताने की कृपा करें ॥१-२॥

**नारायण बोले**—हे वत्स ! इसी बीच भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शनार्थ वहाँ मुनीश्वर वृन्द सहसा आ गये, जो ब्रह्मतेज से प्रज्वलित हो रहे थे । वे थे—पुलह, पुलस्त्य, क्रतु, भृगु, अङ्गिरा, प्रचेता, वसिष्ठ, दुर्वासा, कण्व, कात्यायन, पाणिनि, कणाद, गौतम, सनक, सनन्द, सनातन, कपिल, आसुरि, वायु पञ्चशिख, विश्वामित्र, वाल्मीकि, कश्यप, पराशर, विभाण्डक, मरीचि, शुक्र, अत्रि, बृहस्पति गार्ग्य, वात्स्य, व्यास, जैमिनि, मितवाक्, ऋष्यशृङ्ग, याज्ञवल्क्य, शुक, सौभरि, शुद्धजटिल, भरद्वाज, सुभद्रक, मार्कण्डेय, लोमश, आसुरि,

---

१ क. °दविदः प्रभो ।

संवर्तश्चाप्युतथ्यश्च नरोऽहं चापि नारद। जाबालिः पर्शुरामश्चाप्यगस्त्यः पैल एव च ॥१०॥
युधामन्युर्गौरमुखोऽप्युपमन्युः श्रुतश्रवाः। मैत्रेयश्च्यवनश्चैव वररुच्यर्षिरेव च ॥११॥
तान्दृष्ट्वा सहसोत्थाय नमस्कृत्य पुटाञ्जलिः। सिंहासनेषु रम्येषु वासयामास सादरम् ॥१२॥
पूजयामास विधिवत्कुशलप्रश्नपूर्वकम्। परस्परं च संभाष्य मध्ये कृष्ण उवास सः ॥१३॥
एतस्मिन्नन्तरे कृष्णस्तेजोराशिं ददर्श सः। ददृशुस्ते च मुनयोऽप्याकाशे च समुज्ज्वलम्[1] ॥१४॥
तेजसोऽभ्यन्तरे वत्स कुमारं कनकप्रभाम्। यथैव पञ्चवर्षीयं नग्नं बालकमीप्सितम् ॥१५॥
आविर्बभूव सहसा सभामध्ये च नारद। उत्तिष्ठमानं सहसा तं दृष्ट्वा मुनिपुंगवाः ॥१६॥
प्रणेमुर्मुनयः सर्वे शौरिश्च प्रणनाम तम्। सस्मितं स्निग्धनेत्रं च कृत्वा युक्तिं च सादरम् ॥१७॥
स सर्वानाशिषं कृत्वा समुवास च संसदि। उवाच तांश्च शौरिं च भगवन्तं सनातनम् ॥१८॥

## सनत्कुमार उवाच

भद्रं वो मुनयः शश्वत्तपसां फलमीप्सितम्। कृष्णस्य कुशलप्रश्नं शिवबीजस्य निष्फलम् ॥१९॥
सांप्रतं कुशलं वश्च दर्शनं परमात्मनः। भक्तानुरोधाद्देहस्य परस्य प्रकृतेरपि ॥२०॥

---

विटङ्कण, अष्टावक्र, शतानन्द, वामदेव, भागुरि, संवर्त्त, उतथ्य, नर, मैं नारायण, नारद, जाबालि, पर्शुराम, अगस्त्य, पैल, युधामन्यु, गौरमुख, उपमन्यु, श्रुतश्रवा, मैत्रेय, च्यवन और वररुचि ऋषि ॥३-११॥ उन्हें देखकर भगवान् श्रीकृष्ण सहसा उठ खड़े हुए और हाथ जोड़कर सबको नमस्कार किया। अनन्तर रमणीक सिंहासन पर सबको सादर बैठाकर कुशल-मङ्गल पूछा और सविधि पूजा की। परस्पर बात-चीत करने के उपरान्त श्रीकृष्ण उन सब के मध्य में बैठ गये। इसी बीच श्रीकृष्ण को आकाश में एक तेजःपुञ्ज दिखायी पड़ा। उसे मुनियों ने भी देखा ॥१२-१४॥

उस तेज के भीतर सुवर्ण की-सी कान्तिवाले, पञ्चवर्षीय नग्न बालक के रूप में सनत्कुमार जी थे। नारद ! उस सभा के बीच वे सहसा प्रकट हो गये। उन्हें एकाएक सामने खड़े देखकर मुनिवरों ने प्रणाम किया और श्रीकृष्ण ने भी मुस्कानयुक्त एवं स्निग्ध नेत्रोंवाले कुमार को युक्तिपूर्वक सादर सिर झुकाया। तब बालक ने सबको आशिष प्रदान कर सभा में सुखासीन हुए और उन लोगों से तथा सनातन भगवान् श्रीकृष्ण से बोले ॥१५-१८॥

**सनत्कुमार ने कहा**—हे मुनिवृन्द ! आपका निरन्तर कल्याण हो और अपने तप का अभीष्ट फल प्राप्त हो, किन्तु कल्याण के कारणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण के विषय में कुशल-प्रश्न करना निष्फल है। इस समय आप लोगों का भी कुशल (ही कुशल है), क्योंकि आप लोग उन परमात्मा का दर्शन कर रहे हैं, जो भक्तों के

---

१ क. ततोज्ज्व°।

निर्गुणस्य निरीहस्य सर्वबीजस्य तेजसा। भारावतरणार्येव चाऽऽविर्भूतस्य सांप्रतम् ॥२१॥

श्रीकृष्ण उवाच

शरीरधारिणश्चापि कुशलप्रश्नमीप्सितम्। तत्कथं कुशलप्रश्नं मयि विप्र न विद्यते ॥२२॥

सनत्कुमार उवाच

शरीरे प्राकृते नाथ संततं च शुभाशुभम्। नित्यदेहे क्षेमबीजे शिवप्रश्नमनर्थकम् ॥२३॥

श्रीभगवानुवाच

यो यो विग्रहधारी च स च प्राकृतिकः स्मृतः। देहो न विद्यते विप्र तां नित्यां प्रकृतिं विना ॥२४॥

सनत्कुमार उवाच

रक्तबिन्दूद्भवा देहास्ते च प्राकृतिका स्मृताः। कथं प्रकृतिनाथस्य बीजस्य प्राकृतं वपुः ॥२५॥
सर्वबीजस्य सर्वादिर्भवांश्च भगवान्स्वयम्। सर्वेषामवताराणां प्रधानं बीजमव्ययम् ॥२६॥
कृत्वा वदन्ति वेदाश्च नित्यं सत्यं सनातनम्। ज्योतिःस्वरूपं परमं परमात्मानमीश्वरम् ॥२७॥
मायया सगुणं चैव मायेशं निर्गुणं परम्। प्रवदन्ति च वेदाङ्गास्तथा वेदविदः प्रभो ॥२८॥

---

अनुरोधवश देहधारी, प्रकृति से भी परे, निर्गुण, निरीह, सबके बीज और इस समय तेज से पृथिवी का भार उतारने के लिए आविर्भूत हुए हैं ॥१९-२१॥

**श्रीकृष्ण बोले**—हे विप्र ! शरीरधारी मात्र के लिए कुशल-प्रश्न करना अभीष्ट होता है। तब भला मेरे विषय में कुशल प्रश्न क्यों नहीं है ? ॥२२॥

**सनत्कुमार बोले**—हे नाथ ! प्राकृत शरीर में निरन्तर शुभ और अशुभ होते रहते हैं किन्तु जो नित्य एवं कल्याण का बीज है उसके विषय में कुशल-प्रश्न निरर्थक है ॥२३॥

**श्रीभगवान् बोले**— हे विप्र ! जो-जो शरीरधारी है, वह प्राकृतिक कहा गया है और उस नित्य प्रकृति के बिना शरीर का अस्तित्व ही असंभव है ॥२४॥

**सनत्कुमार बोले** —जो शरीर रज-वीर्य से उत्पन्न होते हैं, वे ही प्राकृतिक कहे जाते हैं, किन्तु जो प्रकृति के स्वामी और कारण हैं, उनका शरीर प्राकृतिक कैसे हो सकता है ? आप समस्त कारणों के आदि कारण, सब के आदि, स्वयं भगवान्, सभी अवतारों में प्रधान बीज एवं अविनाशी हैं ॥२५-२६॥ वेद आपको सदा नित्य सनातन, ज्योतिःस्वरूप, परमश्रेष्ठ परमात्मा तथा ईश्वर कहते हैं ॥२७॥ प्रभो ! वेदांग तथा वेदज्ञ लोग भी आपको मायापति, निर्गुण, परात्पर माया द्वारा सगुण रूप हुआ बतलाते हैं ॥२८॥

### श्रीकृष्ण उवाच

सांप्रतं वासुदेवोऽहं रक्तवीर्याश्रितं वपुः। कथं न प्राकृतो विप्र शिवप्रश्नमभीप्सितम् ॥२९॥

### सनत्कुमार उवाच

वासुः सर्वनिवासश्च विश्वानि यस्य लोमसु। तस्य देवः परं ब्रह्म वासुदेव इतीरितः ॥३०॥
वासुदेवेति तन्नाम वेदेषु च चतुर्षु च। पुराणेष्वितिहासेषु यात्रादिषु च दृश्यते ॥३१॥
रक्तवीर्याश्रितो देहः क्व ते वेदे निरूपितः। साक्षिणो मुनयश्चैव धर्मः सर्वत्र एव च ॥३२॥
साक्षिणो मम वेदाश्च रविचन्द्रौ च सांप्रतम् ॥३३॥

### भृगुरुवाच

सत्यं वदसि विप्रेन्द्र त्वमेव वैष्णवाग्रणीः। स्वागतं कुशलं शश्वत्किंनिमित्तमिहाऽऽगतः ॥३४॥

### सनत्कुमार उवाच

श्रूयतां मुनयः सर्वे श्रूयतां कृष्ण सांप्रतम्। अहो येन निमित्तेन चातिशीघ्रमिहाऽऽगतः ॥३५॥

### श्रीकृष्ण उवाच

भगवन्सर्वधर्मज्ञ किंनिमित्तमिहाऽऽगतः। सर्वं जानासि सर्वज्ञ त्वमेव विदुषां वरः ॥३६॥

---

**श्रीकृष्ण बोले**--हे विप्र ! सम्प्रति मैं वासुदेव (वसुदेव-पुत्र) हूं। मेरा शरीर रक्त-वीर्य के आश्रित है। फिर यह प्राकृत कैसे नहीं है और इसके लिए कुशल-प्रश्न अभीष्ट क्यों नहीं है ? ॥२९॥

**सनत्कुमार बोले**--जिसके लोमों में असंख्य विश्व स्थित हैं, जो सबका निवास-स्थान है, उसे 'वासु' कहते हैं, उसका देवता परब्रह्म 'वासुदेव' ऐसा कहा जाता है। 'वासुदेव' यह नाम पुराणों, इतिहासों एवं यात्रा आदि में दिखायी देता है। भला आपके रक्त-वीर्य निर्मित शरीर का वेद में कहाँ निरूपण हुआ है ? इसके लिए ये मुनिगण तथा धर्म सर्वत्र साक्षी हैं। इस अवसर पर वेद और सूर्य-चन्द्रमा मेरे साक्षी हैं ॥३०-३३॥

**भृगु बोले**--हे विप्रेन्द्र ! तुम सत्य कह रहे हो, वैष्णवों में तुम्हीं प्रधान हो, इसलिए स्वागत है और निरन्तर कुशल तो है न ? किस निमित्त से आपका यहाँ आगमन हुआ है ? ॥३४॥

**सनत्कुमार बोले**--हे मुनिगण एवं भगवान् कृष्ण ! इस समय मैं जिस निमित्त से यहाँ आया हूं, इसे आप सब लोग सुनें ॥३५॥

**श्रीकृष्ण बोले**--हे भगवन् सर्वधर्मज्ञ ! आप किस निमित्त यहाँ आये हैं, आप विद्वानों में श्रेष्ठ एवं सर्वज्ञाता हैं, सब कुछ जानते हैं, अतः बतायें, किस प्रयोजन से आप यहाँ पधारे हैं ? ॥३६॥

### सनत्कुमार उवाच

धन्योऽसि भगवञ्छश्वन्मान्योऽसि जगतामपि। सर्वेश्वरेश्वरोऽसि त्वं तत्परो नास्ति विश्वतः ॥३७॥

### श्रीकृष्ण उवाच

यज्ञानां च व्रतानां च तपस्यानां द्विजेश्वर। सततं फलदाताऽहं दक्षिणाभिः सहेति च ॥३८॥
इति श्रुत्वा कुमारश्च जवेन प्रययौ वने। मत्वाऽऽश्चर्यं च वचनं वारयामास तेऽपि तम् ॥३९॥

### ऋषय ऊचुः

हे सिद्धेन्द्र महाभाग कुमार करुणामय। का शङ्कितकथा प्रोक्ता भगवत्कृष्णसंनिधौ ॥४०॥
किं पुत्र दृष्टमाश्चर्यं श्रुतं किमपि कुत्रचित्। अतीव कृत्वा विस्तीर्णमस्माकं वक्तुमर्हसि ॥४१॥
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा पार्वत्या सह शंकरः। अनन्तश्चापि धर्मश्च श्रीसूर्यश्च निशाकरः ॥४२॥
आदित्या वसवो रुद्रा दिक्पालाद्याश्च देवताः। श्रीकृष्णः[1] सहसोत्थाय संभाव्य[2] च पृथक्पृथक् ॥४३॥
मधुपर्कादिकं दत्त्वा पूजयामास भक्तितः। प्रणेमुरृषयः सर्वे शेषं शंभुं विधिं शिवाम् ॥४४॥
परस्परं च संभाषा बभूव द्विजदेवयोः। समुवासाऽऽसने मध्ये कुमारः कनकप्रभः ॥
कथां कथितुमारेभे संसदि द्विजदेवयोः ॥४५॥

---

**सनत्कुमार बोले**—भगवन्! आप धन्य हैं, जगत् के सतत मान्य हैं, समस्त ईश्वरों के ईश्वर हैं और विश्व में आपसे बढ़कर कोई नहीं है ॥३७॥

**श्रीकृष्ण बोले**—द्विजेश्वर! दक्षिणाओं के साथ यज्ञ, व्रत एवं तपस्या का फल निरन्तर मैं ही प्रदान करता हूँ। यह सुनकर कुमार वेग से वन को जाने लगे; किन्तु उनके वचन को आश्चर्यजनक मानकर मुनियों ने उन्हें रोक लिया ॥३८-३९॥

**ऋषिगण बोले**—हे सिद्धेन्द्र, हे महाभाग, हे करुणामय, हे कुमार भगवान् कृष्ण के समीप कौन-सी शंकायुक्त बात की? हे पुत्र! क्या कोई आश्चर्य देखा है या कहीं कुछ सुना है? उसे विस्तारपूर्वक हमें बताओ ॥४०-४१॥ इसी बीच ब्रह्मा, पार्वती समेत शिव, अनन्त, धर्म, श्रीसूर्य, चन्द्रमा, आदित्यगण, वसुगण, रुद्रगण और दिक्पाल आदि देवता वहाँ आये और उन्हें देखकर भगवान् श्रीकृष्ण ने सहसा खड़े होकर सबका पृथक्-पृथक् स्वागत किया और मधुपर्क आदि देकर भक्तिपूर्वक पूजा की। सभी ऋषियों ने शेष, शिव, ब्रह्मा और पार्वती को प्रणाम किया—ब्राह्मणों और देवताओं में परस्पर वार्तालाप हुआ, सोने की-सी कान्तिवाले सनत्कुमार ने आसन पर बैठकर द्विजों और देवताओं की सभा में कथा कहना प्रारम्भ किया ॥४२-४५॥

---

१ ख. °कृष्णं। २ क. °भास्य।

## सनत्कुमार उवाच

मया गतश्च गोलोको न दृष्टो राधिकापतिः। ततो गतं च वैकुण्ठं तत्र नास्ति चतुर्भुजः ॥४६॥
ततो गतश्च क्षीरोदस्तत्र नास्ति हरिः स्वयम्। परिश्रान्तो विषण्णश्च स्नातं क्षीरोदधेस्तटे ॥४७॥
विस्तीर्णवालुकामध्ये कच्छपः शतयोजनः। भीतश्च कम्पितस्तत्र दृष्टो दुःखी च शुष्कितः ॥४८॥
निःसारितो राघवेण मीनेन च महात्मना। धन्योऽसीति मयोक्तश्च नाहं धन्य उवाच सः ॥४९॥
क्षीरोदः सागरो धन्यो जन्तवो यत्र मद्विधाः। मत्तो महत्तराश्चापि ह्यसंख्याश्च महामुने ॥५०॥
भवान्धन्योऽस्ति क्षीरोद तेनोक्तो नाहमेव च। धन्या वसुंधरा देवी यत्रैव सप्तसागराः ॥५१॥
धन्याऽसि वसुधेत्युक्ता नाहमेवेत्युवाच सा। धन्योऽनन्तो ममाऽऽधारः कृष्णांशो नागराड्विभुः ॥५२॥
सहस्रमूर्ध्नां मध्येऽहं मूर्ध्नि शूर्पे च सर्षपः। धन्योऽसि शेषेत्युक्तोऽयं धन्यो नाहमुवाच वै ॥५३॥
धन्यः कूर्मो ममाऽऽधारो गच्छ तत्रैव वै मुने। धन्योऽसि कूर्मेत्युक्तोऽयं नाहं धन्योऽस्मिवं मुने ॥५४॥
वायुना धार्यमाणोऽहं मत्तो धन्यतमश्च सः। धन्योऽसीत्युक्तः पवनो धन्यो नाहमुवाच सः ॥५५॥
धन्यश्च भगवान्ब्रह्मा विधाता जगतामपि। धन्योऽसि तत्र धाता च धन्यो नाहमुवाच सः ॥५६॥
धन्यो महेश्वरो देवो योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः। सर्वाराध्यः सर्वपूज्यो धर्मरूपः सनातनः ॥५७॥

---

**सनत्कुमार बोले**—मैं गोलोक गया था, वहाँ राधिका-पति भगवान् कृष्ण को नहीं देखा। तब वैकुण्ठ गया; वहाँ भी चार भुजावाले विष्णु को नहीं देखा, तब क्षीरसागर पहुँचा। वहाँ भी स्वयं हरि न मिले। अनन्तर परिश्रान्त और खिन्न होकर वहीं क्षीरसागर में स्नान किया और देखा कि विस्तृत बालुका के बीच सौ योजन का एक कछुआ पड़ा हुआ है। वह भयभीत, कम्पित, दुःखी एवं शुष्क दिखायी दिया। उसे विशालात्मा राघव मछली ने निकाल दिया था। मैंने उससे कहा कि तुम धन्य हो। उसने कहा, हे महामुने! मैं धन्य नहीं हूँ, क्षीरसागर धन्य है, जिसमें मेरे समान और मुझसे भी बड़े असंख्य जन्तु भरे पड़े हैं ॥४६-५०॥ मैंने उससे भी कहा—हे क्षीरसागर! आप धन्य हैं, उसने कहा मैं धन्य नहीं हूँ, यह पृथिवी देवी धन्य हैं; जिसमें मेरे ऐसे सात सागर स्थित हैं ॥५१॥ मैंने कहा—फिर वसुधा धन्य है; उसने कहा नहीं, नागराज अनन्त धन्य हैं, जो मेरे आधार, भगवान् कृष्ण के अंश एवं व्यापक हैं। उनके सहस्रसिरों के मध्य एक सिर पर मैं सूप में सरसों के समान स्थित हूँ। मैंने कहा—तो फिर शेष धन्य हैं; उन्होंने कहा—मैं धन्य नहीं हूँ! हे मुने! मेरा आधार कच्छप धन्य है, आप वहीं जायँ। मैंने कच्छप से कहा—तुम धन्य हो। उसने कहा—हे मुने! मैं धन्य नहीं हूँ: मुझे वायु धारण करता है (अर्थात् मेरा आधार वायु है) इसलिए वह मुझसे अधिक धन्य है। मैंने पवन से कहा– 'तुम धन्य हो।' उसने कहा—भगवान् ब्रह्मा धन्य हैं, जो तीनों लोकों के रचयिता हैं। मैंने कहा—'ब्रह्मन्! आप धन्य हैं।' उन्होंने कहा—मैं धन्य नहीं हूँ। महेश्वर देव धन्य हैं, जो योगीन्द्रों के गुरु के गुरु, सबके आराध्यदेव, सर्वपूज्य, धर्मरूप, सनातन, काल के काल, संहर्ता, स्वयं

कालकालश्च संहर्ता स्वयं मृत्युंजयः प्रभुः। धन्योऽसि तत्र शंभुश्च धन्यो नाहमुवाच सः ॥५८॥
सर्वादौ पूजनं यस्य ज्ञानिनां च गुरोर्गुरुः। धन्यो गणेश्वरो देवो देवानां प्रवरः परः ॥५९॥
सिद्धेन्द्रेषु मुनीन्द्रेषु देवेन्द्रेषु श्रुतौ श्रुतम्। योगीन्द्रेषु च प्राज्ञेषु न गणेशात्परः पुमान् ॥६०॥
निम्नगासु यथा गङ्गा तीर्थेषु पुष्करं यथा। वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः ॥६१॥
वेदो नारायणः साक्षाद्वयं पूज्या व्यवस्थया। तस्माच्छास्त्राणि सर्वाणि पुराणानि च सन्ति वै ॥६२॥
यस्मान्निरूपितो धर्मश्चेतिहासश्च संहिता। तस्माद्धन्याश्च ते वेदा वदन्त्यत्र मनीषिणः ॥६३॥
यूयं धन्याश्च मान्याश्चेत्युक्ता वेदा मया ततः। ऊचुस्ते न वयं धन्या यज्ञसंघश्च सांप्रतम् ॥६४॥
वयं व्यवस्थाकर्तारो यज्ञौघः फलदः स्वयम्। तस्माद्धन्यः स एवापि गच्छ गच्छ महामुने ॥६५॥
धन्योऽसि यज्ञसंघोऽसीत्युक्तस्तत्र मया विभो। ऊचुस्ते न वयं धन्या धन्यं कर्म शुभं मुने ॥६६॥
शुभकर्मासि धन्यं त्वं नाहं धन्यमुवाच तत्। कर्मणां फलदाता यः कर्महेतुश्च सांप्रतम् ॥६७॥
धातुर्विधाता भगवान्सर्वादिः सर्वकारकः। श्रीकृष्णः परमात्मा च धन्यो मान्यश्चनिश्चितम् ॥६८॥
धर्मालयं ततो गत्वा न दृष्ट्वा जगदीश्वरम्। मथुरामागतो द्रष्टुं परिपूर्णतमं प्रभुम् ॥६९॥

---

मृत्युञ्जय एवं प्रभु हैं। मैंने उनसे कहा—'आप धन्य हैं।' उन्होंने कहा—मैं धन्य नहीं हूँ। गणेशदेव धन्य हैं, जिनकी सबसे प्रथम पूजा होती है, जो ज्ञानियों के गुरु के गुरु, देवों में श्रेष्ठ एवं महान् हैं। क्योंकि मैंने वेदों में सुना है कि—सिद्धेन्द्र, मुनीन्द्र, देवेन्द्र, योगीन्द्र और विद्वानों में गणेश से बढ़कर अन्य कोई नहीं है ॥५२-६०॥

जिस प्रकार नदियों में गङ्गा और तीर्थों में पुष्कर श्रेष्ठ है उसी भांति वे सब में परमोत्तम हैं। अनन्तर गणेश को धन्य कहने पर उन्होंने कहा—वेद में कहा हुआ धर्म है और उसके प्रतिकूल अधर्म। वेद साक्षात् नारायण स्वरूप है। वेद की व्यवस्था से ही हम पूज्य हैं। उसी से सभी शास्त्र और पुराण हुए हैं। उसी से धर्म, इतिहास और संहिताओं का निरूपण हुआ है। अतः विद्वानों के कथनानुसार वेद धन्य हैं। तब मैंने वेदों से कहा—'तुम धन्य हो।' उन्होंने कहा—मैं धन्य नहीं हूँ, सम्प्रति यज्ञसमुदाय धन्य है। क्योंकि हम लोग केवल व्यवस्था करते हैं और स्वयं यज्ञसङ्घ फल प्रदान करता है। हे महामुने! इसलिए वही धन्य है; आप वहीं जाइये ॥६१-६५॥ हे विभो! वहाँ मैंने यज्ञसमुदाय से कहा—'तुम्हीं लोग धन्य हो'। उन्होंने भी कहा—हे मुने! हम लोग धन्य नहीं हैं; शुभ कर्म धन्य है ॥६६॥ मैंने पुनः शुभ कर्म से कहा—'तुम धन्य हो।' उसने भी कहा—मैं धन्य नहीं हूँ। परमात्मा श्रीकृष्ण ही निश्चित धन्य-मान्य हैं, जो कर्मों के फलदाता, कर्म के कारण, ब्रह्मा के भी ब्रह्मा, सबके आदि, सबके स्रष्टा एवं भगवान् हैं ॥६७-६८॥ पश्चात् धर्मालय में जाने पर वहाँ जगदीश्वर को न देख उन परिपूर्णतम प्रभु को देखने के लिए यहाँ मथुरा में आया हूँ, जो समस्त

यज्ञानां तपसां चैव व्रतानां शुभकर्मणाम् । ईश्वरं फलदातारं परमात्मानमेव च ॥७०॥
कारणं कारणानां च ब्रह्मादीनां पुरःसरम् । धन्योऽसीति मयोक्तश्च दक्षिणाभिः सहेति च ॥७१॥
इत्युक्तेन[1] भगवता कथितं सर्वकारणम् । दक्षिणाभिश्च फलदो हतयज्ञो ह्यदक्षिणः ॥७२॥
दक्षिणा विप्रमुद्दिश्य तत्काले तु न दीयते । एक रात्रे व्यतीते तु तद्दानं द्विगुणं भवेत् ॥७३॥
मासे शतगुणं प्रोक्तं द्विमासे तु सहस्रकम् । संवत्सरे व्यतीते तु स दाता नरकं व्रजेत् ॥७४॥
वर्षाणां च सहस्रं च मूत्रकुण्डे निपत्य च । ततश्चाण्डालतां याति व्याधियुक्तश्च पातकी ॥७५॥
दात्रा न दीयते दानं ग्रहीत्रा चेन्न गृह्यते । उभौ तौ नरकं प्राप्तौ वर्षाणां च सहस्रकम् ॥७६॥
यजमानश्च चाण्डालो ब्रह्मणस्तत्पुरोहितः । व्याधियुक्तावुभौ तौ च पापिनौ कर्मणः फलात् ॥७७॥
सर्वे देवाश्च मुनयो जहसुर्विस्मयं ययुः । विस्मयं च ययौ नन्दस्तत्याज पुत्रभावकम् ॥७८॥
ररोद च सभामध्ये लज्जाहीनः शुचाऽऽकुलः । त्यज मोहमितीत्युक्त्वा बोधयामास पार्वती ॥७९॥

### नन्द उवाच

अमूल्यरत्नं माणिक्यं यथा कुजन्मनो गृहे । स्थितं तेन च देवेश तथाऽहं वञ्चितः प्रभो ॥८०॥

---

यज्ञ, तप एवं व्रत आदि शुभ कर्मों के फलदाता, ईश्वर, परमात्मा एवं कारणों के कारण हैं और ब्रह्मा आदि देवों के अग्रणी हैं। मैंने उनसे कहा—'आप दक्षिणासमेत धन्य हैं।' मेरे ऐसा कहने पर भगवान् ने समस्त कारणों को बताया और कहा—दक्षिणाओं के साथ यज्ञ फलदायक हैं और दक्षिणारहित यज्ञ विनष्ट है ॥६९-७२॥ यज्ञ में ब्राह्मण को यदि तत्काल दक्षिणा नहीं दी जाती है तो एक रात बीत जाने पर वह दूनी हो जाती है ॥७३॥

एक मास व्यतीत होने पर सौ गुनी और दो मास व्यतीत होने पर हजार गुनी हो जाती है। एक वर्ष बीत जाने पर तो दाता को नरक जाना पड़ता है ॥७४॥ वहाँ मूत्रकुण्ड में एक सहस्र वर्षों तक रहकर पश्चात् वह पातकी रोगी चाण्डाल होता है ॥७५॥ यदि दाता नहीं देता है और ग्रहीता नहीं लेता है तो वे दोनों एक सहस्र वर्षों तक नरक में रहते हैं। पश्चात् यजमान और उसका पुरोहित ब्राह्मण चाण्डाल होते हैं। वे दोनों पापी अपने उस कर्म के फलस्वरूप रोगी होते हैं ॥७६-७७॥ यह सुनकर सभी देवता और मुनि हँस पड़े और विस्मित हुए। नन्द ने भी आश्चर्यचकित होकर भगवान् के प्रति पुत्रभाव को त्याग दिया। वे सभा के मध्य लज्जारहित एवं शोकाकुल होकर रोदन करने लगे। यह देखकर पार्वती ने उन्हें समझाया और कहा—मोह का सर्वथा त्याग कर दो ॥७८-७९॥

**नन्द बोले**—हे देवेश ! जिस प्रकार किसी कुजन्मा के घर अमूल्य रत्न, माणिक्य आदि स्थित हो और उसे उसका ज्ञान न हो; उसी प्रकार हे प्रभो ! मैं भी वञ्चित रह गया ॥८०॥ भगवन् ! आप प्रकृति से परे हैं,

---

१ क. 'त्युक्तो भगवांस्तत्र च' ।

ममापराधं भगवन् क्षमस्व प्रकृतेः परः। यास्यामि न पुनर्गेहं गोकुलं यमुनातटम् ॥८१॥
वृन्दावनं तथाऽऽवासं क्रीडावासं गदाग्रज। तत्सर्वं च यशोदाया गोपिकान्तिकमेव च ॥८२॥
किं ब्रवीमि यशोदां च प्रेयसीं राधिकामपि। प्रेमपात्रं च बालौघं वद भोः कथयामि किम् ॥८३॥
इत्युक्त्वा च सभामध्ये मूर्च्छां संप्राप नारद। क्रोडे कृत्वा जगन्नाथो बोधयामास तत्क्षणम् ॥८४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० भगवन्नन्दसं०
सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥८७॥

•

## अथाष्टाशीतितमोऽध्यायः

**श्रीकृष्ण उवाच**

चेतनं कुरु हे तात हे तात चेतनं कुरु। जलबुद्बुदवत्सर्वं संसारं सचराचरम् ॥१॥
त्यज मोहं महाभाग मायां स्तौहि परात्पराम्। ब्रह्मस्वरूपां परमां सर्वमोहनिकृन्तनीम् ॥२॥

---

मेरा अपराध क्षमा करें। हे गदाग्रज ! मैं घर, गोकुल, यमुनातट, वृन्दावन, निवासस्थान, क्रीड़ागृह, यशोदा के पास तथा गोपियों के पास कहीं नहीं जाऊँगा ॥८१-८२॥ भला, आप ही बताइये, वहाँ जाकर मैं यशोदा तथा तुम्हारी प्रेयसी राधिका को भी क्या उत्तर दूँगा और तुम्हारे प्रेमपात्र बालक समूह से भी क्या कहूँगा ? नारद ! इतना कहकर नन्द सभा के मध्य मूर्च्छित हो गये। तब उसी क्षण जगन्नाथ (श्रीकृष्ण) उन्हें गोद में लेकर समझाने लगे ॥८३-८४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण में श्रीकृष्ण-जन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद-नारायण के संवाद प्रकरण में
भगवान् और नन्द के संवाद-वर्णन नामक सतासीवाँ अध्याय समाप्त ॥८७॥

•

## अध्याय ८८

### श्रीकृष्ण के द्वारा नन्द को दुर्गास्तोत्र प्रदान

**श्रीकृष्ण बोले**—हे तात ! चेत करो। हे तात ! चेत में आओ। चर-अचर सहित यह सारा संसार जल के बुलबुले के समान है ॥१॥ हे महाभाग ! मोह त्यागकर परात्परा, ब्रह्मस्वरूपा, परमा, समस्त मोह विनाशिनी, मुक्ति देनेवाली, महाभागा, विष्णु की माया और सनातनी माया (देवी) की स्तुति करो। त्रिपुरासुर

मुक्तिप्रदां महाभागां विष्णुमायां सनातनीम् । त्रिपुरस्य वधे घोरे महायुद्धे भयाकुले ।।३।।
येन स्तोत्रेण शंभुश्च तया दैत्यं जघान सः । स्तोत्रराजं प्रदास्यामि सर्वमोहनिकृन्तनम् ।।
सर्ववाञ्छाप्रदं नन्द श्रूयतामत्र संसदि ।।४।।

## नन्द उवाच

सर्वविघ्नविनाशाय दुःखप्रशमनाय च । विभूतये च यशसे नृणां वाञ्छितसिद्धये ।।५।।
स्तोत्रमेकं महादेव्या जगन्मातुर्जगत्प्रभो । परं दुर्गतिनाशिन्या गोपनीयं सुदुर्लभम् ।।६।।
देहि मह्यं विनीताय भक्ताय भक्तवत्सल । वेदानां जनकस्त्वं च निर्गुणश्च परात्परः ।।७।।

## श्रीभगवानुवाच

शृणु वक्ष्यामि वैश्येन्द्र स्तोत्रं यत्परमाद्भुतम् । सर्वविघ्नविनाशार्थं मोहपाशनिकृन्तनम् ।।८।।
रणत्रस्तेन विभुना शंकरेण पुरा कृतम् । नारायणोपदेशेन प्रेरितेन च ब्रह्मणा ।।९।।
शत्रुग्रस्तं शि दृष्ट्वा स ब्रह्माणमुवाच ह । उवाच शंकरं ब्रह्मा रथस्थं पतितं रणे ।।१०।।
सुरसंकटशान्त्यर्थं दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम् । मूलप्रकृतिमाद्यां तां स्तौ (स्तु) हि ब्रह्मस्वरूपिणीम् ।।११।।
हरिणा प्रेरितोऽहं च त्वां वदामि सुरेश्वर । विना शक्तिसहायेन को वा कं जेतुमीश्वरः ।।१२।।
ब्रह्मणश्च वचः श्रुत्वा दुर्गां सस्मार शंकरः । पुटाञ्जलिपरो भूत्वा भक्तिनम्रात्मकंधरः ।।१३।।

---

के घोर एवं भयानक महायुद्ध में उसके वध करने के निमित्त शिव ने जिस स्तोत्र द्वारा देवी की स्तुति करके दैत्य का वध किया था, हे नन्द ! वह स्तोत्रराज मैं तुम्हें इस सभा में प्रदान करूँगा । वह (स्तोत्रराज) समस्त मोह का विनाशक और सम्पूर्ण मनोरथों का पूरक है । उसे सुनो ।।२-४।।

**नन्द बोले**—प्रभो ! भक्तवत्सल ! मनुष्यों के सम्पूर्ण विघ्नों के विनाश, दुःखों के प्रशमनपूर्वक ऐश्वर्य, यश और अभीष्ट सिद्धि के लिए दुर्गतिनाशिनी जगज्जननी महादेवी का वह दुर्लभ, गोपनीय, परमोत्तम एकमात्र स्तोत्र मुझ विनीत भक्त को दीजिये । आप भक्तवत्सल, वेदों के उत्पादक, निर्गुण एवं परात्पर हैं ।।५-७।।

**श्रीभगवान् बोले**—हे वैश्येन्द्र ! पूर्वकाल में रण से भयभीत होकर शिव ने नारायण के उपदेश तथा ब्रह्मा की प्रेरणा से जिसके द्वारा स्तवन किया था, वह परम अद्‌भुत तथा समस्त विघ्नों के विनाश के लिए मोह-पाश को काटनेवाला स्तोत्र मैं बता रहा हूँ, सुनो ।।८-९।। शत्रु से घिरे हुए शिव को देखकर नारायण ने ब्रह्मा को बतलाया । तब ब्रह्मा ने रणस्थल में रथ पर पड़े हुए शिव से कहा—सुरों के संकट नाशार्थ उस दुर्गा की स्तुति करो, जो दुर्गति को नष्ट करनेवाली, मूलप्रकृति, आद्याशक्ति और ब्रह्मस्वरूपा हैं ।।१०-११।। सुरेश्वर ! मैं हरि की प्रेरणा से ऐसा कह रहा हूँ । क्योंकि शक्ति की सहायता के बिना कौन किसे जीतने में समर्थ हुआ है ? ।।१२।। ब्रह्मा की बात सुनकर शङ्कर ने भक्ति से कन्धे झुकाये और हाथ जोड़े दुर्गा जी का स्मरण किया ।

स्नातः पादौ च प्रक्षाल्य धृत्वा धौते च वाससी। आचान्तः कुशहस्तश्च शुचिर्विष्णुं च संस्मरन् ॥१४॥

महादेव उवाच

रक्ष रक्ष महादेवि दुर्गे दुर्गतिनाशिनि। मां भक्तमनुरक्तं च शत्रुग्रस्तं कृपामयि ॥१५॥
विष्णुमाये महाभागे नारायणि सनातनि। ब्रह्मस्वरूपे परमे नित्यानन्दस्वरूपिणि ॥१६॥
त्वं च ब्रह्मादिदेवानामम्बिके जगदम्बिके। त्वं साकारे च गुणतो निराकारे च निर्गुणात् ॥१७॥
मायया पुरुषस्त्वं च मायया प्रकृतिः स्वयम्। तयोः परं ब्रह्म परं त्वं बिभर्षि सनातनि ॥१८॥
वेदानां जननी त्वं च सावित्री च परात्परा। वैकुण्ठे च महालक्ष्मीः सर्वसंपत्स्वरूपिणी ॥१९॥
मर्त्यलक्ष्मीश्च क्षीरोदे कामिनी शेषशायिनः। स्वर्गेषु स्वर्गलक्ष्मीस्त्वं राजलक्ष्मीश्च भूतले ॥२०॥
नागादिलक्ष्मीः पाताले गृहेषु गृहदेवता। सर्वसस्यस्वरूपा त्वं सर्वैश्वर्यविधायिनी ॥२१॥
रागाधिष्ठातृदेवी त्वं ब्रह्मणश्च सरस्वती। प्राणानामधिदेवी त्वं कृष्णस्य परमात्मनः ॥२२॥
गोलोके च स्वयं राधा श्रीकृष्णस्यैव वक्षसि। गोलोकाधिष्ठिता देवी वृन्दा वृन्दावने वने ॥२३॥
श्रीरासमण्डले रम्या वृन्दावनविनोदिनी। शतशृङ्गाधिदेवी त्वं नाम्ना चित्रावलीति च ॥२४॥
दक्षकन्या कुत्रकल्पे कुत्रकल्पे च शैलजा। देवमाताऽदितिस्त्वं च सर्वाधारा वसुंधरा ॥२५॥

---

स्नानोपरान्त चरण प्रक्षालनपूर्वक दो वस्त्र धारणकर उन्होंने हाथ में कुश लेकर आचमन किया और पवित्र होकर विष्णु का स्मरण करते हुए कहा ॥१३-१४॥

महादेव बोले—हे महादेवि दुर्गे! तुम दुर्गति का नाश करनेवाली हो। अतः मेरी रक्षा करो। मैं तुम्हारा अनुरक्त भक्त हूँ और इस समय शत्रु से घिर गया हूँ। इसलिए मेरी रक्षा करो, रक्षा करो ॥१५॥ महाभागे! तुम भगवान् विष्णु की माया, नारायणी, सनातनी, ब्रह्मस्वरूप और परम नित्यानन्दस्वरूपा हो ॥१६॥ जगदम्बिके! तुम ब्रह्मा आदि देवों की माता, सगुण होने से साकार और निर्गुण होने से निराकार हो। तुम माया द्वारा पुरुष, माया द्वारा स्वयं प्रकृति और उन दोनों से परे परब्रह्म हो तथा हे सनातनि! तुम उस परब्रह्म को धारण करती हो ॥१७-१८॥ तुम वेदों की जननी परात्परा सावित्री हो। वैकुण्ठ में समस्त सम्पत्तिस्वरूपा महालक्ष्मी, क्षीरसागर में शयन करनेवाले विष्णु की पत्नी मर्त्यलक्ष्मी, स्वर्ग में स्वर्गलक्ष्मी, भूमण्डल पर राजलक्ष्मी हो ॥१९-२०॥ पाताल में नाग आदि की लक्ष्मी, गृहों में गृह-देवता, समस्त सस्यस्वरूपा तथा समस्त ऐश्वर्यों का विधान करनेवाली हो ॥२१॥ तुम्हीं ब्रह्मा की रागाधिष्ठात्री देवी सरस्वती हो और परमात्मा कृष्ण के प्राणों की अधीश्वरी हो ॥२२॥ गोलोक में श्रीकृष्ण के वक्षःस्थल पर रहनेवाली गोलोक की अधिष्ठात्री देवी स्वयं राधा हो। वृन्दावन नामक वन में वृन्दा और श्री रासमण्डल में रमणीय वृन्दावन-विनोदिनी हो। सौ शिखरवाले पर्वत (शतशृंग) की चित्रावली नामक अधिष्ठात्री देवी हो ॥२३-२४॥ तुम्हीं किसी कल्प में दक्षपुत्री सती, किसी कल्प में हिमालय कन्या पार्वती, देवमाता अदिति, समस्त की आधारस्वरूपा पृथिवी हो।

त्वमेव गङ्गा तुलसी त्वं च स्वाहा स्वधा सती । त्वदंशांशांशकलया सर्वदेवादियोषितः ॥२६॥
स्त्रीरूपं चातिपुंरूपं देवि त्वं च नपुंसकम् । वृक्षाणां वृक्षरूपा त्वं सृष्टा चाङ्कुररूपिणी ॥२७॥
वह्नौ च दाहिका शक्तिर्जले शैत्यस्वरूपिणी । सूर्ये तेजःस्वरूपा च प्रभारूपा च संततम् ॥२८॥
गन्धरूपा च भूमौ च आकाशे शब्दरूपिणी । शोभास्वरूपा चन्द्रे च पद्मसंघे च निश्चितम् ॥२९॥
सृष्टौ सृष्टिस्वरूपा च पालने परिपालिका । महामारी च संहारे जले च जलरूपिणी ॥३०॥
क्षुत्त्वं दया त्वं निद्रा त्वं तृष्णा त्वं बुद्धिरूपिणी । तुष्टिस्त्वं चापि पुष्टिस्त्वं श्रद्धास्त्वं च क्षमा स्वयम् ॥३१॥
शान्तिस्त्वं च स्वयं भ्रान्तिः कान्तिस्त्वं कीर्तिरेव च । लज्जा त्वं च तथा माया भुक्ति-मुक्तिस्वरूपिणी ॥३२॥
सर्वशक्तिस्वरूपा त्वं सर्वसंपत्प्रदायिनी । वेदेऽनिर्वचनीया त्वं त्वां च जानाति कश्चन ॥३३॥
सहस्रवक्त्रस्त्वां स्तोतुं न च शक्तः सुरेश्वरि । वेदा न शक्ताः को विद्वान्न च शक्ता सरस्वती ॥३४॥
स्वयं विधाता शक्तो न न च विष्णुः सनातनः । किं स्तौमि पञ्चवक्त्रैस्तु[1] रणत्रस्तो महेश्वरि ॥३५॥
कृपां कुरु महामाये मम शत्रुक्षयं कुरु । इत्युक्त्वा च सकरुणं रणस्थे पतिते रणे ॥३६॥

---

तुम्हीं गङ्गा, तुलसी, स्वाहा, स्वधा हो। तुम्हारे अंशांश की अंश-कला से समस्त देव-पत्नियाँ उत्पन्न हुई हैं ॥२५-२६॥ हे देवि ! तुम्हीं स्त्रीरूप, पुरुष एवं नपुंसक हो। तुम वृक्षों में वृक्षारूपा हो और अंकुररूप से तुम्हारा सृजन हुआ है ॥२७॥

तुम अग्नि में दाहिका शक्ति, जल में शीतलता, सूर्य में तेजोरूपा तथा कान्तिरूपा भी हो। तुम पृथिवी में गन्धरूपा और आकाश में शब्दरूपिणी हो। चन्द्रमा और कमल-समूह में निश्चित रूप से शोभा रूप हो ॥२८-२९॥ सृष्टि, सृष्टिरूप, पालन कार्य में परिपालिकाशक्ति, संहार करने में महामारी और जल में जलरूपिणी हो ॥३०॥ तुम्हीं क्षुधा, दया, निद्रा, तृष्णा, बुद्धि, तुष्टि, पुष्टि, श्रद्धा, क्षमा, शान्ति, भ्रान्ति, कान्ति, कीर्ति, लज्जा, माया एवं भुक्ति-मुक्ति स्वरूपिणी हो ॥३१-३२॥ समस्त शक्तिस्वरूपा, समस्त सम्पत्ति देनेवाली एवं वेद में निर्वचनीया हो। अतः तुम्हें कोई नहीं जानता है ॥३३॥ हे सुरेश्वरि ! सहस्रमुखवाले शेष तुम्हारी स्तुति करने में असमर्थ हैं, वेद असमर्थ हैं और सरस्वती भी असमर्थ हैं तो अन्य कौन विद्वान् समर्थ हो सकता है ? ॥३४॥ तुम्हारी स्तुति करने में स्वयं विधाता और सनातन विष्णु भी समर्थ नहीं हैं तो हे महेश्वरि ! मैं रण में डरा हुआ अपने पाँचों मुखों द्वारा क्या स्तुति कर सकता हूँ इसलिए, महामाये ! मेरे ऊपर कृपा करके शत्रुओं का नाश करो। सकरुणस्वर से ऐसा कहकर उस रण भूमि में शिव जी रथ के ऊपर गिर पड़े ॥३५-३६॥ अनन्तर परमात्मा नारायण की

---

१ क. 'वक्त्रेण ।

आविर्बभूव सा दुर्गा सूर्यकोटिसमप्रभा। नारायणेन कृपया प्रेरिता परमात्मना ॥३७॥
शिवस्य पुरतः शीघ्रं शिवाय च जयाय च। इत्युवाच महादेवी [1]मायाशक्त्याऽसुरं जहि ॥३८॥

दुर्गोवाच

वरं वृणीष्व भद्रं ते यत्ते मनसि वाञ्छितम्। भवान्वरः सुराणां च जयं तुभ्यं ददाम्यहम् ॥३९॥

महादेव उवाच

क्षयो भवतु दैत्यस्य इति मे परमेश्वरि। देहीति वाञ्छितं दुर्गे परमाद्ये सनातनि ॥४०॥

भगवत्युवाच

हरिं स्मर महाभाग जय दैत्यं जगद्गुरुः। स्वयं विधाता भगवांस्त्वमेव ज्योतिरीश्वरः ॥४१॥
एतस्मिन्नन्तरे विष्णुर्वृषरूपो बभूव ह। दधार कलया मूर्ध्ना शूलपाणे रथं विभुः ॥४२॥
ऊर्ध्वचक्रमयोग्रं च प्रकृतिं च चकार सः। शस्त्रं ददौ मन्त्रपूतमुद्दधार ततो रथम् ॥४३॥
शिवः शस्त्रं गृहीत्वा च ध्यात्वा विष्णुं महेश्वरीम्। जघान त्रिपुरं शीघ्रं स पपात महीतले ॥४४॥
तुष्टुवुः शंकरं देवाश्चक्रुश्च पुष्पवर्षणम्। दुर्गा तस्मै ददौ शूलं पिनाकं विष्णुरेव च ॥४५॥

---

कृपा द्वारा प्रेरित होकर करोड़ों सूर्यों के समान प्रभापूर्ण दुर्गा शिव के मंगल और विजय के लिए उनके सामने प्रकट हुईं। महादेवी ने उनसे कहा--माया शक्ति के द्वारा शत्रु का वध करो ॥३८॥

**दुर्गा बोलीं**--तुम्हारा कल्याण हो। अपना मन इच्छित वर माँगो ! तुम देवों में श्रेष्ठ हो। अतः मैं तुम्हें जय प्रदान करूँगी ॥३९॥

**महादेव बोले**--परमेश्वरि ! तुम आद्या सनातनी शक्ति हो। अतः दुर्गे ! इस दैत्य का क्षय हो, यही वरदान मुझे अभीष्ट है ॥४०॥

**भगवती बोलीं**--महाभाग ! जगद्गुरो ! तुम्हारी विजय होगी। तुम स्वयं भगवान्, विधाता और ज्योतिरूप ईश्वर हो। श्री हरि का स्मरण करो और दैत्य को जीत लो। इसी बीच भगवान् विष्णु ने कलामात्र से वृषरूप धारण करके अपने सिर पर शिव का रथ उठा लिया ॥४१-४२॥ उस उग्र रथ का पहिया ऊपर उठ गया था, उसे प्रकृतिस्थ कर दिया। फिर शंकर को एक मन्त्रपूत शस्त्र भी दिया। शिव ने शस्त्र-धारण करके विष्णु और महेश्वरी दुर्गा का ध्यान किया और त्रिपुर दैत्य का वध किया। वह (दैत्य) पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥४३-४४॥ उस समय देवताओं ने शिव का स्तवन किया और पुष्पवर्षा की। दुर्गा ने शिव को त्रिशूल, विष्णु ने पिनाक (धनुष) और ब्रह्मा ने शुभाशिष प्रदान किया। हर्षमग्न मुनियों ने भी वैसा ही किया। सभी

---

१ क. मया श॰।

ब्रह्मा शुभाशिषं चैव मुनयश्चापि हर्षिताः । ननृतुर्देवताः सर्वा जगुर्गन्धर्वकिन्नराः ॥४६॥
एतस्मिन्नन्तरे तात स्तवराजमनुत्तमम् । विघ्नविघ्नकरं शीघ्रं शत्रुसंहारकारणम् ॥४७॥
परमैश्वर्यजनकं सुखदं परमं शुभम् । निर्वाणमोक्षदं चैव हरिभक्तिप्रदं ध्रुवम् ॥४८॥
गोलोकवासदं चैव सर्वसिद्धिप्रदं वरम् । स्तोत्रराजप्रपठनात्प्रसन्ना पार्वती सदा ॥४९॥
लोभमोहकामक्रोधकर्ममूलनिकृन्तनम् । बलबुद्धिकरं चैव जन्ममृत्युविनाशनम् ॥५०॥
धनपुत्रप्रियाभूमिसर्वसंपत्प्रदं नृणाम् । शोकदुःखहरं चैव सर्वासिद्धिप्रदं वरम् ॥५१॥
स्तोत्रराजप्रपठनान्महावन्ध्या प्रसूयते । बन्धनान्मुच्यते दुःखी[1] भयान्मुच्येत निश्चितम् ॥५२॥
रोगाद्विमुच्यते रोगी दरिद्रश्च धनी भवेत् । दावाग्निमध्ये न मृतो भग्नः पोतो महार्णवे ॥५३॥
दस्युग्रस्तो रिपुग्रस्तो हिंस्रजन्तुसमन्वितः । स्तोत्रेणानेन वैश्येन्द्र कल्याणं लभते नरः ॥५४॥
तैजसानां यथा रत्नमाश्रमाणां द्विजो यथा । नदीनां च यथा गङ्गा मन्त्राणां प्रणवो यथा ॥५५॥
तुलसी सर्वपत्राणां धराणां च वसुंधरा । पुष्पाणां पारिजातं च काष्ठानां चन्दनं यथा ॥५६॥
विष्णुपूजा च तपसां व्रतेष्वेकादशी यथा । ज्ञानिनां च यथा शंभुः सिद्धानां च गणेश्वरः ॥५७॥
देवानां च यथा विष्णुर्वेदाः शास्त्रेषु तन्त्रतः । देवीनां च यथा दुर्गा शान्तानां कमला यथा ॥५८॥

---

देवता नाचने लगे और गन्धर्व गाने लगे ॥४५-४६॥ हे तात ! उसी बीच अनुपम स्तवराज भी प्रकट हुआ, जो विघ्नों, विघ्नकर्ताओं और शत्रुओं का संहारक, परमैश्वर्यप्रद, सुखदायक, परम शुभ, निर्वाणमोक्षप्रद, निश्चित हरिभक्ति देनेवाला, गोलोक का निवासप्रद और समस्त सिद्धि प्रदायक है। इस स्तोत्रराज का पाठ करने से पार्वती सदा प्रसन्न होती हैं ॥४७-४९॥

यह स्तोत्र लोभ, काम, क्रोध और कर्ममूल का नाशक, बल-बुद्धिदायक और जन्म-मृत्यु-नाशक है। यह मनुष्यों को धन-पुत्र-पत्नी, भूमि एवं संपूर्ण सम्पत्ति देता है तथा उनके शोक-दुःख का नाश करता है और समस्त सिद्धियाँ प्रदान करता है। इस स्तोत्रराज के पाठ करने से महावन्ध्या भी प्रसव करती है। दुःखी मनुष्य बन्धन और भय से मुक्त हो जाता है ॥५०-५२॥ रोगी रोग से मुक्त और निर्धन धनवान् होता है। दावाग्नि में पड़ने पर भी इसके प्रभाव से मनुष्य मृतक नहीं होता है और न महासागर में जहाज ही टूटता है। हे वैश्येन्द्र ! इस स्तोत्र के प्रभाव से मनुष्य दस्यु (लुटेरों) शत्रुओं और हिंसक जन्तुओं से घिर जाने पर कल्याण ही प्राप्त करता है। ॥५३-५४॥ हे व्रज ! जिस प्रकार तैजस पदार्थों में रत्न, वर्णाश्रमों में द्विज, नदियों में गङ्गा, मन्त्रों में प्रणव (ओंकार), समस्त पत्तों में तुलसी, धराओं में वसुन्धरा, पुष्पों में पारिजात, काष्ठों में चन्दन, तपस्याओं में विष्णु-पूजा, व्रतों में एकादशी, ज्ञानियों में शिव, सिद्धों में गणेश, देवों में विष्णु, शास्त्रों में वेद, देवियों में दुर्गा,

---

१ क. दुःखात्।

सरस्वती च विदुषां राधिका सुन्दरीषु च। तथा स्तोत्रेष्विदं स्तोत्रं नातः परतरं व्रज ॥५९॥
पुरा दत्तं ब्रह्मणे च पुष्करे सूर्यपर्वणि। दैत्यग्रस्ताय भीताय सर्वदुर्गहरं परम् ॥६०॥
शिवाय शत्रुग्रस्ताय ददौ ब्रह्मा मदाज्ञया। शिवश्च सनकादिभ्यः पुरा दुर्वाससे ददौ ॥६१॥
सनत्कुमारो भगवान्कृपया गौतमाय च। पुलहाय पुलस्त्याय ददौ चाङ्गिरसे मुदा ॥६२॥
तथा चन्द्राय सूर्याय सूर्यश्चापि यमाय च। यमश्च चित्रगुप्ताय कृपया च पुरा ददौ ॥६३॥
नित्यं पठिष्यसि स्तोत्रं गोलोकगमनाय वै। साक्षात्पश्यसि भो तात तामेव पार्वतीमिह ॥६४॥
यस्मै कस्मै न दातव्यं पापिने गोपनं कुरु। नारायणस्य भक्ताय शान्ताय विदुषे तथा ॥६५॥
सर्वज्ञाय च विप्राय दातव्यं च प्रयत्नतः। विप्राय वृषवाहाय वृषलीपतये तथा ॥६६॥
शूद्राणां सूपकाराय शूद्रश्राद्धान्नभोजिने। कन्याविक्रयिणे चैव ब्राह्मणाय विशेषतः ॥६७॥
सर्वसिद्धिं च लभते सिद्धस्तोत्रे भवेद्यदि। दशायुतजपेनैव सिद्धस्तोत्रो भवेन्नरः ॥६८॥
अग्निस्तम्भं जलस्तम्भं मृत्स्तम्भं मनसस्तथा। अश्वमेधसहस्राच्च पृथिव्याश्च प्रदक्षिणात् ॥६९॥
स्नानाच्च सर्वतीर्थानां स्तोत्रमेतच्च पुण्यदम्। दत्तं तुभ्यं मया तात मम प्राणसमं व्रज ॥७०॥
स्तवनं कुरु पार्वत्याश्चेदानीं मम संसदि। श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा नन्दस्तुष्टाव पार्वतीम् ॥७१॥

---

शान्त प्रकृतियों में कमला, विद्वानों में सरस्वती और सुन्दरियों में राधिका (श्रेष्ठ) हैं, उसी भाँति स्तोत्रों में योग यह स्तोत्र श्रेष्ठ है। इससे बढ़कर अन्य कोई स्तोत्र नहीं है ॥५५-५९॥ पूर्वकाल में सूर्यग्रहण के समय पुष्कर क्षेत्र में मैंने समस्त कठिनाइयों का हरण करनेवाला स्तोत्रराज दैत्यों से घिरे हुए एवं भयभीत ब्रह्मा को प्रदान किया था ॥६०॥ ब्रह्मा ने मेरी आज्ञा से शत्रु से घिरे शिव को, शिव ने सनकादि और दुर्वासा को प्रदान किया ॥६१॥ भगवान् सनत्कुमार ने कृपया गौतम, पुलह, पुलस्त्य, अङ्गिरा, चन्द्र और सूर्य को प्रदान किया। सूर्य ने यम को दिया और यम ने चित्रगुप्त को प्रदान किया ॥६१-६३॥ हे तात! नित्य इसका पाठ करने से गोलोक प्राप्त होता है और इसी के प्रभाव से यहाँ साक्षात् पार्वती का दर्शन कर रहे हो ॥६४॥ यह स्तोत्र जिस किसी को नहीं दिया जा सकता है और न पापी को देना उचित है। इसे केवल नारायणभक्त, शान्त विद्वान् एवं सर्वज्ञ ब्राह्मण को देना चाहिए। विशेषतया वृषवाहक एवं वृषलीपति ब्राह्मण को तथा शूद्रों के पाचक, शूद्रों के श्राद्धान्न खानेवाले और कन्या-विक्रेता ब्राह्मण को कभी नहीं देना चाहिए। इस स्तोत्र के सिद्ध होने पर समस्त सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं और दस सहस्र जप करने से यह स्तोत्र सिद्ध हो जाता है ॥६५-६८॥

इसके द्वारा अग्निस्तम्भन, जलस्तम्भन, मृत्तिका स्तम्भन और मन का स्तम्भन होता है। यह स्तोत्रराज सहस्रअश्वमेध, पृथिवी की प्रदक्षिणा और समस्त तीर्थों में स्नान करने से अधिक पुण्यप्रद है। हे तात! अपने प्राण के समान यह स्तोत्र मैंने तुम्हें दिया है ॥६९-७०॥ अब मेरी सभा में तुम पार्वती जी की स्तुति करो। विप्रेन्द्र! श्रीकृष्ण की बात सुनकर नन्द ने इसी स्तोत्र द्वारा समस्त सम्पत्तिदायिनी पार्वती जी की स्तुति

स्तोत्रेणानेन विप्रेन्द्र सर्वसंपत्प्रदायिनीम् । वरं तस्मै ददौ दुर्गा गोलोकवासमीप्सितम् ॥७२॥
दुर्लभं परमं ज्ञानं वेदे यन्न श्रुतं मुने । राजेन्द्रत्वं गोकुले च कृष्णभक्ति सुदुर्लभाम् ॥७३॥
तद्दास्यं चापि¹ परतो महत्त्वं सिद्धमेव च । वरं दत्त्वा ययौ दुर्गा संभाष्य शंभुना सह ॥७४॥
जग्मुर्देवाश्च मुनयः स्तुत्वा च नन्दनन्दनम् । उवाच नन्दं श्रीकृष्णो व्रज नन्द व्रजान्वितः ॥
प्रहृष्टस्त्यक्तमोहश्च बोधेन दुर्लभेन च ॥७५॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० भगवन्नन्दसं० अष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥८८॥

•

# अथ नवाशीतितमोऽध्यायः

श्रीकृष्ण उवाच

गच्छ गच्छ गृहं गच्छ व्रजराज व्रजं व्रज । सर्वं तत्त्वं त्वया ज्ञातं दृष्टाश्च मुनयः सुराः ॥१॥
श्रुतं मे धन्यमाख्यानं नानाख्यानं सुदुर्लभम् । दुर्गायाः स्तोत्रराजं च जन्मपाशनिकृन्तनम् ॥२॥

---

की । अनन्तर प्रसन्न होकर दुर्गा ने उन्हें अभीष्ट गोलोक-निवास का वर प्रदान किया ॥७१-७२॥ मुने ! पश्चात् परम दुर्लभ ज्ञान, जो वेद में भी नहीं सुना गया है, तथा गोकुल में राजेन्द्रत्व पद, अतिदुर्लभ कृष्ण की भक्ति, उनका दास्य पद और महत्त्व सिद्धि का वर देकर दुर्गा शिव से बातचीत करके चली गयीं । देवगण और मुनि-गण भी नन्दनन्दन की स्तुति करके चले गये ॥७३-७४॥ तब श्रीकृष्ण ने नन्द से कहा । अब आप दुर्लभ ज्ञान से संयुक्त होने के कारण मोह का त्याग करके प्रसन्न मन से व्रजवासियों समेत व्रज को लौट जाइये ॥७५॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण में श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद-नारायण के संवाद में भगवान् और नन्द के संवाद वर्णन नामक अट्ठासीवाँ अध्याय समाप्त ॥८८॥

•

## अध्याय ८९

### श्रीकृष्ण द्वारा नन्द प्रार्थना तथा वर प्रदान

**श्रीकृष्ण बोले**—हे व्रजराज ! अब व्रज चले जाइये; क्योंकि समस्त तत्त्वों का ज्ञान और मुनियों एवं देवों के दर्शन भी आपको साक्षात् हो चुके हैं । मेरे द्वारा अत्यन्त दुर्लभ एवं धन्य नाना प्रकार के आख्यान और जन्म एवं पाप का विनाश करनेवाला दुर्गा का स्तोत्रराज सुन लिया ॥१-२॥ हे तात ! जो कुछ सामने

---

१ ख. चाऽऽप पं ।

स्थितं तत्ते निगदितं हर्षेण च सुखेन च। मत्कृतं बालभावेन चापराद्धं च तत्क्षणम् ॥३॥
यत्सुखं न कृतं तात पित्रोश्च नृपमन्दिरे। कृतं सुखं तत्परं च स्वर्गादपि सुदुर्लभम् ॥४॥
मदीयं प्रियवाक्यं च प्रह्वत्वं विनयं नयम्। परिहासं बहुतरं यशोदां गोपिकागणम् ॥५॥
बालकानां समूहं च राधां चापि विशेषतः। एकत्र च स्थितं तेषु बन्धुवर्गेषु कर्मणा ॥६॥
इहैवापि सुखं भुक्त्वा गच्छ गोलोकमुत्तमम्[1]। सार्धं यशोदया तात रोहिण्या गोपिकागणैः ॥७॥
गोपानां बालकैः सार्धं वृषभानेन गोपकैः। राधामाता कलावत्या राधया सह यास्यसि ॥८॥
रथानां शतलक्षं च गोलोकादागतं पितः। अमूल्यरत्ननिर्माणं हीरहारपरिष्कृतम् ॥९॥
मणिमाणिक्यमुक्तानां मालाजालविभूषितम्। वह्निशुद्धांशुकैः रम्यैराच्छन्नं पीतवर्णकैः ॥१०॥
पार्षदप्रवरैः रम्यैर्वेष्टितं श्वेतचामरैः। सद्रत्नदर्पणैः रम्यैर्गोपिकाभिश्च गोपकैः ॥११॥
वेष्टितं च तदारुह्य कौतुकाद्यास्यसि ध्रुवम्। त्यक्त्वा च पार्थिवं देहं दिव्यदेहं विधाय च ॥१२॥
अयोनिसंभवा राधा राधामाता कलावती। यास्यत्येव हि तेनैव नित्यदेहेन निश्चितम् ॥१३॥
पितृणां मानसी कन्या धन्या मान्या कलावती। धन्या च सीतामाता च दुर्गामाता च मेनका ॥१४॥
अयोनिसंभवा दुर्गा तारा सीता च सुन्दरी। अयोनिसंभवास्ताश्च धन्या मेना कलावती ॥१५॥
इत्येव कथितं तात गोपनीयं सुदुर्लभम्। वरोऽयं दत्तस्तुभ्यं च मया च दुर्गया तया ॥१६॥

---

उपस्थित था, उसका मैंने आपसे हर्ष और सुखपूर्वक वर्णन कर दिया। मैंने बाल चपलतावश जो कुछ अपराध किया हो, उसे क्षमा करेंगे। मैं अपने पिता, माता और (यहाँ) राजमहल में जो सुख नहीं प्राप्त कर सका, उससे बढ़कर एवं स्वर्ग से भी अतिदुर्लभ सुख आपके यहाँ प्राप्त कर चुका हूँ ॥३-४॥ मेरे प्रिय वचन, नम्रता, विनय, नय, बहुसंख्यक परिहास, यशोदा, गोपिकागण बालसमूह और विशेषतया राधा—ये सभी एकत्र स्थित हैं। उन बन्धुवर्गों के साथ कर्मानुसार यहीं सुख भोगकर उत्तम गोलोक को जाइये ॥५-७॥ हे तात! इस लोक में सुखोपभोग करने के अनन्तर यशोदा, रोहिणी, गोपीगण, गोपबालक, वृषभानगोप, राधा की माता कलावती और राधा के साथ आप पार्थिव देह को त्यागकर गोलोक जायँगे। हे पिता! उस समय गोलोक से सौ लाख रथ आयेंगे, जो अमूल्य रत्नों द्वारा सुनिर्मित, हीरे के हारों से सुसज्जित, मणि, माणिक्य और मोतियों की मालाओं से सुशोभित और अग्निविशुद्ध एवं पीत रंग के सुन्दर वस्त्रों से आच्छन्न, श्वेत चामर लिये हुए रमणीक पार्षद प्रवरों से आवेष्टित तथा उत्तम एवं रमणीक रत्न-दर्पणों और गोप-गोपियों से सुशोभित रहेंगे। उसी पर सुखासीन होकर आप कुतूहल से जायँगे ॥८-१२॥ राधा एवं उनकी माता कलावती अयोनिजा होने के नाते उसी नित्य देह से जायँगी क्योंकि कलावती पितरों की धन्या-मान्या मानसी कन्या है। सीता जी की माता, पार्वती की माता मेना, दुर्गा, तारा, सुन्दरी सीता—ये सब अयोनिजा हैं। मेना और कलावती सहित ये सब धन्य हैं ॥१३-१५॥ हे तात! इस भाँति मैंने गोपनीय और अतिदुर्लभ रहस्य तुम्हें बता दिया और दुर्गा एवं मैंने तुम्हें

---

१ क. 'कमन्ततः।

श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा प्रत्युवाच व्रजेश्वरः। पुनरेव जगन्नाथं तद्भक्तो भक्तवत्सलम् ॥१७॥

नन्द उवाच

युगानां च चतुर्णां च यं यं धर्मं सनातनम्। क्रमेण कृष्णविस्तीर्णं कृत्वा मां कथय प्रभो ॥१८॥
कलिशेषे भवेद्यद्यद्गुणदोषं कलेस्तथा। का गतिर्वा पृथिव्याश्च धर्मस्य प्राणिनां तथा ॥१९॥
नन्दस्य वचनं श्रुत्वा हृष्टः कमललोचनः। कथां कथितुमारेभे विचित्रां मधुरान्विताम् ॥२०॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० भगवन्नन्दसं०
एकोननवतितमोऽध्यायः ॥८९॥

•

# अथ नवतितमोऽध्यायः

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु नन्द प्रवक्ष्यामि सानन्दं मानसं यथा। कथां रम्यां सुमधुरां पुराणेषु परिष्कृताम्[1] ॥१॥

---

वरदान भी दे दिया। श्रीकृष्ण की बात सुनकर उनके भक्त व्रजेश्वर नन्द ने पुनः भक्तवत्सल एवं जगन्नाथ कृष्ण से कहा ॥१६-१७॥

**नन्द बोले**—प्रभो, कृष्ण! चारों युगों के जो-जो सनातन धर्म हैं, क्रमशः उन्हें सविस्तार बताने की कृपा करें ॥१८॥ कलियुग के गुण, दोष एवं शेष कलि में पृथिवी, धर्म और प्राणियों की कौन-सी गति होगी—यह बता दें ॥१९॥ नन्द की बात सुनकर कमलनयन भगवान् ने हर्षित होकर विचित्र एवं मधुरतम कथा को कहना आरम्भ किया ॥२०॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण में श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद-नारायण-संवाद में भगवान्
और नन्द के संवाद वर्णन नामक नवासीवाँ अध्याय समाप्त ॥८९॥

•

# अध्याय ९०

## चारों युगों का निरूपण

**श्रीकृष्ण बोले**—हे नन्द! अत्यन्त आनन्द मन से सुनो! तुम्हें एक अतिमधुर एवं रमणीक कथा सुना रहा हूँ जो पुराणों में भी अति सुन्दरतापूर्ण कही गयी है। कृतयुग में सभी लोग धार्मिक होते हैं, धर्म परि-

---

१ क. परिश्रुताम्।

परिपूर्णतमो धर्मो धार्मिकाश्च कृते युगे। परिपूर्णतमं सत्यं परिपूर्णतमा दया ॥२॥
अतीव प्रज्वलद्रूपा वेदाश्चत्वार एव च। वेदाङ्गाश्चापि विविधामाश्चेतिहासाच संहिताः ॥३॥
पुराणानि सुरम्याणि पञ्चरात्राणि पञ्च च। रुचिराणि सुभद्राणि धर्मशास्त्राणि यानि च ॥४॥
विप्रा वेदविदः सर्वे पुण्यवन्तस्तपस्विनः। नारायणं ते ध्यायन्ति तन्मन्त्रं च जपन्ति च
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याश्चतुर्वर्णाश्च वैष्णवाः। शूद्रा ब्राह्मणभृत्याश्च सत्यधर्मपरायणाः
राजानो धार्मिकाश्चैव प्रजापालनतत्पराः। गृह्णन्त्येव प्रजानां च षोडशांशकरान्नृपाः ॥
करशून्याश्च विप्राश्च पूज्याः स्वच्छन्दगामिनः। संततं सर्वसस्याढ्या रत्नाधारा वसुंधरा ॥८॥
गुरुभक्ताश्च शिष्याश्च पितृभक्ताः सुतास्तथा। योषितः पतिभक्ताश्च पतिव्रतपरायणाः ॥९॥
ऋतौ संभोगिनः सर्वे न स्त्रीलुब्धा न लम्पटाः। न भयं दस्युचौर्याणां न तत्र पारदारिकाः ॥१०॥
तरवः पूर्णफलिनः पूर्णक्षीराश्च धेनवः। बलवन्तो जना सर्वे दीर्घाः सौन्दर्यसंयुताः ॥११॥
लक्षवर्षायुषः केचित्पुण्यवन्तो ह्यरोगिणः। यथा विप्रा विष्णुभक्तास्त्रिवर्णा विष्णुसेविनः ॥१२॥
जलपूर्णा नदी नद्यः संततं कंदरास्तथा। तीर्थपूताश्चतुर्वर्णास्तपः पूता द्विजातयः

---

पूर्णतम रहता है, सत्य परिपूर्णतम रहता है और दया सर्वत्र परिपूर्णतम रहती है ॥१-२॥ चारों (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष) विविध भाँति के इतिहास और संहिताएँ अत्यन्त प्रज्व रूप में रहती हैं। अत्यन्त रमणीय पुराण, पाँचों पञ्चरात्र और कल्याणमय सभी धर्मशास्त्र अत्यन्त रुचिर में रहते हैं ॥३-४॥ सभी ब्राह्मण लोग वेदों के निष्णात विद्वान्, पुण्यवान् और तपस्वी होते हैं। निरन्तर नारायण के ध्यान में रहकर उनके मन्त्र का जप करते रहते हैं ॥५॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य आदि चारों वर्ण वैष्णव होते हैं। शूद्र ब्राह्मणों की सेवा में रहकर सत्य धर्म का पालन करते हैं ॥६॥ राजा लोग धार्मिक होने के कारण प्रजाओं के पालन-पोषण करने में तत्पर रहते हैं और समय पर उनसे षोडशांश (सोलहवाँ भाग) कर के रूप में ग्रहण करते हैं ॥७॥ ब्राह्मण वर्ग कर (आदि) से मुक्त रहकर पूज्य एवं स्वच्छन्दगामी होते हैं। पृथिवी निरन्तर सभी प्रकार की फसलोंवाली हरियाली से सुशोभित और रत्नों से भरी रहती है ॥८॥ शिष्य गुरुभक्त, पुत्र पितृभक्त और स्त्रियाँ पतिभक्त रहकर पतिव्रत-धर्म-परायणा होती हैं ॥९॥ सभी लोग ऋतुकाल में ही स्त्रियों के साथ सम्भोग करते हैं और स्त्री-लोभी एवं लम्पट नहीं होते हैं। इस युग में लुटेरों-चोरों का भय नहीं रहता है और न कोई परायी स्त्री को अपनाता है ॥१०॥ वृक्ष फूल-फल से लदे रहते हैं, गौएँ पूर्ण दुग्ध देती हैं। सभी मनुष्य बलवान्, लम्बे डील-डौलवाले और अत्यन्त सुन्दर होते हैं। कोई-कोई पुण्यवान् व्यक्ति एक लाख वर्षों तक जीवित रहते हैं और नीरोग होते हैं। जिस प्रकार ब्राह्मण विष्णु के भक्त होते हैं उसी भाँति शेष तीन वर्ग के लोग भी विष्णु भगवान् की सेवा करते हैं ॥११-१२॥

नद एवं नदियाँ निरन्तर जल से पूर्ण रहती हैं और कन्दराएँ सुशोभित रहती हैं। चारों वर्णों के लोग

---

१ ख. 'न्मनसका उ'।

मनःपूताश्च निखिलाः खलहीनं जगत्त्रयम् । सत्कीर्तिपरिपूर्णं च यशस्यं मङ्गलान्वितम् ॥१४॥
पितरः सर्वकालेषु तिथिकालेषु देवताः । सर्वकालेष्वतिथयः पूजिताश्च गृहे गृहे ॥१५॥
त्रिवर्णा विप्रभक्ताश्च विप्रभोजततत्पराः । ब्राह्मणस्य मुखं क्षेत्रमनूषरमकण्टकम् ॥१६॥
नारायणोत्कीर्तनेन हर्षयुक्तास्तदुत्सवे । न शत्रवो जनानां च सर्वे सर्वहितैषिणः ॥१७॥
नाऽऽत्मप्रशंसकाः केचित्सर्वे परगुणोत्सुकाः । देवानां द्विजानां च विदुषां तत्र निन्दकाः ॥१८॥
पुरुषा योषितश्चापि न हि मूर्खाश्च पण्डिताः । न दुःखिनो जनाः सत्ये सर्वेषां रत्नमन्दिरम् ॥१९॥
मणिमाणिक्यरत्नौघरत्नस्वर्णसमन्वितम् । न भिक्षुका न रोगार्ताः शोकहीनाश्च हर्षिताः ॥२०॥
न हि भूषणहीनाश्च नरा नार्यश्च केचन । न पापिनो न धूर्ताश्च न क्षुधार्ता न कुत्सिताः ॥२१॥
जराहीनाः प्राणिनश्च शश्वद्यौवनसंस्थिताः । आधिव्याधिविहीनाश्च निर्विकाराश्च देहिनः ॥२२॥
यदुक्तो वै सत्ययुगे धर्मः सत्यं दयादिकम्[1] । पादहीनश्च त्रेतायां सत्यार्धं द्वापरेऽपि च ॥२३॥
धर्मैकपाच्च प्रथमे कलेश्चातिकृशोऽबलः । दुष्टानां दस्युचौर्याणामङ्कुरः प्रभवेद्व्रज ॥२४॥

---

तीर्थों में स्नानादि द्वारा पवित्र होते हैं, और द्विजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) लोग तप द्वारा भी अपने को पवित्र रखते हैं। इस प्रकार धरातल के सभी लोग मनःपूत (शुद्धहृदय) होते हैं, तीनों लोकों में खल (दुष्ट) का नाम तक नहीं सुनायी देता है, चारों ओर सत्कीर्ति से परिपूर्ण, यश से धवल एवं मङ्गलमय दिखायी देता है ॥१३-१४॥ सभी दिनों में यथासमय पितर लोग, तिथियों में देववृन्द और सभी समय अतिथि वर्ग घर-घर पूजित होते हैं। तीनों वर्णों के लोग ब्राह्मणभक्त और ब्राह्मण भोजन कराने में तत्पर रहते हैं, क्योंकि ब्राह्मण का मुख ऊसररहित एवं अकण्टक क्षेत्र है ॥१५-१६॥ भगवान् के उत्सव में नारायण नाम का कीर्तन करते हुए सभी लोग अत्यन्त हर्षित रहते हैं। उस युग में देवताओं, ब्राह्मणों एवं विद्वानों की कोई निन्दा नहीं करता है, न कोई अपनी प्रशंसा करता है, सब-के-सब दूसरे के गुण-गान करने में ही अनुरक्त रहते हैं; मनुष्यों के शत्रु नहीं होते हैं; सब लोग एक दूसरे के हितैषी होते हैं ॥१७-१८॥ पुरुष और स्त्रियाँ सभी पण्डित होते हैं, कोई मूर्ख नहीं होते। कोई दुःखी नहीं होता, सभी के रत्नों के महल होते हैं, जो मणि-माणिक्य, रत्नसमूह और सुवर्ण आदि से युक्त रहते हैं। उस समय न कोई भिक्षुक होता है और न रोग पीड़ित, सभी लोग शोक आदि से रहित होकर सब समय प्रसन्न रहते हैं ॥१९-२०॥ पुरुष-स्त्री कोई भी भूषण-विहीन नहीं दिखायी देते हैं। न कोई पापी होता है, न धूर्त। न क्षुधा-पीड़ित होता है और न निन्दित। सभी प्राणी जरा-रहित होकर निरन्तर युवा, आधि-व्याधि से रहित और विकार शून्य होते हैं ॥२१-२२॥ इस प्रकार सत्ययुग में जो सत्य, दया आदि धर्म बतलाया गया है, वह त्रेता युग में एक चरण से हीन और द्वापर में सत्ययुग का आधा रह जाता है ॥२३॥ कलि के प्रारम्भ में वही धर्म निर्बल और कृश हो जाता है तथा उसका एक ही पाद अवशिष्ट रह जाता है। व्रजेश्वर! उस समय दुष्टों, डाकुओं और चोरों का अंकुर उत्पन्न होने लगता है ॥२४॥ कुछ लोग दिन-रात अधर्म करने में ही

---

१ क 'याधिकम्।

अधर्मनिरताः केचिद्भीताः संगोपिनस्तथा । भीता गुप्ताश्च पुंश्चल्यो भीताश्च पारदारिकाः ॥२५॥
धर्मिष्ठानां भयं शश्वदधर्मिष्ठाश्च कम्पिताः । स्वल्पधर्मरता भूपाः स्वल्पवेदरता द्विजाः ॥२६॥
व्रतधर्मरताः केचित्सर्वे स्वच्छन्दगामिनः । यावत्तिष्ठन्ति तीर्थानि यावत्तिष्ठन्ति साधवः ॥२७॥
यावत्तिष्ठन्ति ग्रामाणां देवाः शास्त्राणि पूजनम् । तावत्किंचित्तपः सत्यं स्वर्गधर्मांश एव च ॥२८॥
कलेर्दोषनिधेस्तात गुण एको महानपि । मानसं संभवेत्पुण्यं सुकृतं न हि दुष्कृतम् ॥२९॥
तीर्थादिके गते तात नष्टो धर्मांश एव च । कलारूपश्च धर्मश्च यथा कुह्वां निशाकरः ॥३०॥

## नन्द उवाच

तीर्थान्येतानि सर्वाणि तिष्ठन्त्येव कियद्दिनम् । साधवो ग्राम्यदेवाश्च शास्त्राण्येतानि वत्सक ॥३१॥

## श्रीकृष्ण उवाच

कलौ दशसहस्राणि हरिस्तिष्ठति मेदिनीम् । देवानां प्रतिमा पूज्या शास्त्राणि च पुराणकम् ॥३२॥
तदर्धमपि तीर्थानि गङ्गादीनि सुनिश्चितम् । तदर्धं ग्रामदेवाश्च वेदाश्च विदुषामपि ॥३३॥
अधर्मः परिपूर्णश्च तदन्ते च कलौ पितः । एकवर्णा भविष्यन्ति वर्णाश्चत्वार एव च ॥३४॥

---

संलग्न रहते हैं, कुछ लोग अधर्म करने पर भयभीत होते हैं, अतः उसे गुप्त रखने का प्रयत्न करते हैं। पुंश्चली स्त्रियाँ भयभीत रहती हुई भी गुप्त पाप करती हैं और पुरुष भी भयभीत होते हुए भी परस्त्रीसम्भोग करते ही हैं। उस समय धार्मिक पुरुषों को निरन्तर भय बना रहता है और अधर्मी लोग भी काँपते रहते हैं। राजा लोग स्वल्पधर्म करेंगे और ब्राह्मण लोग वेदों के स्वल्प अध्ययन करेंगे ॥२५-२६॥ व्रतों और धर्मों में निरत रहने-वाले कुछ ही लोग होंगे; तथा सभी लोग स्वच्छन्द रहेंगे (अर्थात् मनमानी करेंगे)। धरातल पर जब तक तीर्थ, साधु-महात्मा, ग्राम-देवता एवं शास्त्र रहेंगे तथा पूजा-पद्धति विद्यमान रहेगी, तभी तक कुछ तप, सत्य तथा स्वर्गदायक धर्म का अंश बना रहेगा ॥२७-२८॥ तात ! दोष के भाण्डाररूप इस कलि में एक महान् गुण भी है। इसमें मानसिक पुण्य तो होगा, पाप नहीं। तात ! तीर्थ आदि के चले जाने पर धर्म का अंश भी नष्ट हो जायगा। अमावस्या में चन्द्रमा की भाँति धर्म कलारूप से शेष रह जायगा ॥२९-३०॥

**नन्द बोले**—वत्स ! ये सभी तीर्थ, साधु, ग्राम-देवता और ये शास्त्र उस युग में कितने दिन इस भूतल पर रहेंगे ? ॥३१॥

**श्रीकृष्ण बोले**—कलियुग में भगवान् इस पृथिवी पर दस सहस्र वर्ष रहते हैं, उतने ही दिन देवों की प्रतिमाएँ, शास्त्र और पुराण पूजित होते हैं ॥३२। और उसके आधे समय (पाँच सहस्र वर्षों) तक गङ्गा आदि तीर्थ सुनिश्चित रहेंगे तथा उसके आधे समय ग्रामदेवता एवं विद्वानों के वेद स्थायी रहेंगे ॥३३॥ पिता जी ! कलियुग के अन्त में परिपूर्ण अधर्म स्थित हो जायगा। उस समय चारों वर्ण के लोग एक जाति (शूद्रवर्ग) में हो

न मन्त्रपूतोद्वाहश्च न हि सत्यं न च क्षमा। स्त्रीस्वीकाररतो नित्यं ग्राम्यधर्मप्रधानतः ॥३५॥
न यज्ञसूत्रं तिलकं ब्राह्मणानां च नित्यशः। संध्याशास्त्रविहीनाश्च विप्रवंशाः श्रुता अपि ॥३६॥
सर्वैः सार्धं च सर्वेषां भक्षणं नियमच्युतम्। अभक्ष्यभक्षा लोकाश्च चतुर्वर्णाश्च लम्पटाः ॥३७॥
नारीषु न सती काचित्पुंश्चली च गृहे गृहे। करोति तर्जनं कान्तं भृत्यतुल्यं च कम्पितम् ॥३८॥
जाराय दत्त्वा मिष्टान्नं ताम्बूलं वस्त्रचन्दनम्। न ददात्येव चाऽऽहारं स्वामिने दुःखिने पितः ॥३९॥
पुत्रेण भर्त्सितस्तातः शिष्येण भर्त्सितो गुरुः। प्रजाभिस्ताडितो भूपो भूपेन पीडिताः प्रजाः ॥४०॥
दस्युचोरैश्च दुष्टैश्च शिष्टाश्च परिपीडिताः। सस्यहीना च वसुधा क्षीरहीनाश्च धेनवः ॥४१॥
स्वल्पक्षीरे घृतं नास्ति नवनीतं च नित्यशः। सत्यहीना जनाः सर्वे नित्यं मिथ्या वदन्ति च ॥४२॥
शौचसंध्याशास्त्रहीना ब्राह्मणा वृषवाहकाः। सूपकाराश्च शूद्राणां शूद्राणां शवदाहकाः ॥४३॥
शूद्रस्त्रीनिरताः शश्वच्छूद्रा विप्रवधूरताः। खादन्ति यस्य विप्रस्य भक्ष्यं च परिपाचकाः ॥४४॥
मातुः परां तस्य पत्नीं शूद्रा गृह्णन्ति लम्पटाः। भृत्यश्च हत्वा राजानं स्वयं राजा भविष्यति ॥४५॥
नारी हत्वा पतिं कामाद्व्रजेज्जारं च कौतुकात्। पुत्रश्च पितरं हत्वा स्वयं भूपो भविष्यति ॥४६॥

---

जायेंगे ॥३४॥ उस समय मन्त्र द्वारा विवाह नहीं होगा, लोगों में सत्य और क्षमा नहीं रहेगी। ग्राम्य धर्म (स्त्री-सम्भोग) की प्रधानता के कारण विवाह सदा स्त्री की स्वीकृति करने पर ही निर्भर करेगा। ब्राह्मण नित्य यज्ञोपवीत नहीं पहनेंगे, तिलक नहीं लगायेंगे एवं विद्वान् ब्राह्मण भी नित्य संध्योपासन नहीं करेंगे ॥३५-३६॥ सभी के साथ सभी लोग नियम त्यागकर भोजन करेंगे। इस प्रकार चारों वर्णों के लोग अभक्ष्य का भक्षण करेंगे और लम्पट होंगे। स्त्रियों में कोई सती पतिव्रता नहीं होगी, घर-घर में पुंश्चली स्त्री रहेगी, जो अपने पति की तर्जना करेगी और वह सेवक के समान सदैव भयभीत होकर काँपता रहेगा ॥३७-३८॥ पिता जी ! अपने जार (उप) पति को मिष्टान्न, भोजन, पान और वस्त्र-चन्दन प्रदान करेगी, किन्तु अपने दुःखी पति को भोजन भी नहीं दे सकेगी। पुत्र द्वारा पिता की और शिष्य द्वारा गुरु की नित्य भर्त्सना होगी। प्रजाओं द्वारा राजा नित्य ताड़ित किया जायगा और राजा प्रजाओं को पीड़ित करेगा ॥३९-४०॥ लुटेरों, चोरों और दुष्टों से शिष्ट (भले) लोग अति पीड़ित होंगे। भूमि में खेती की फसल नष्ट हो जाया करेगी, गौएँ दूध से रहित होंगी। स्वल्प दुग्ध में मक्खन-घृत नहीं निकलेगा। सभी लोग सत्यरहित होकर नित्य मिथ्या बोलेंगे ॥४१-४२॥ पवित्रता, सन्ध्योपासन एवं शास्त्रों से रहित होकर ब्राह्मण लोग वृषवाहक (बैलों द्वारा जीविकोपार्जन), शूद्रों के पाचक (रसोइये), शूद्रों के शवों के दाहक और शूद्रों की स्त्रियों में आसक्त रहेंगे। शूद्र लोग ब्राह्मण-पत्नियों में निरत रहेंगे। रसोइया तथा लम्पट शूद्र जिस ब्राह्मण का अन्न खायेंगे उसकी पत्नी को, जो माता से भी बढ़कर (पूज्य) होती है, हथिया लेंगे। नौकर राजा को मारकर स्वयं राजसिंहासन पर बैठ जायगा। स्त्री पति का हनन करके कामवश जार पति को कुतूहल से अपना लेगी। पुत्र पिता का हनन करके स्वयं भूप हो जायगा

सर्वे स्वच्छन्दनिरताः शिश्नोदरपरायणाः । वञ्चरा व्याधियुक्ताश्च कुत्सिताश्च कुचैलकाः ॥४७॥
विक्षुण्णमन्त्रलिप्ताश्च[1] मिथ्यामन्त्रप्रचारकाः । जातिहीनाश्च गुरवो वयोहीनाश्च निन्दकाः ॥४८॥
राजानश्चापि म्लेच्छाश्च यवना धर्मनिन्दकाः । सत्कीर्तिमपि साधूनां कुर्वन्त्युन्मूलनं मुदा ॥४९॥
पितृदेवद्विजातीनामतिथीनां च नित्यशः । पूजा नास्ति गुरूणां च पित्रोश्च पूजनं स्त्रियाः ॥५०॥
स्त्रीबन्धूनां गौरवं च स्त्रीणां च सततं पितः । चोरः सत्कुलजातिश्च ब्रह्मदेवस्वहारकः ॥५१॥
मानं वहन्ति लोभेन युगधर्मेण कौतुकात् । देवायतनहीनं च जगत्सर्वं भयाकुलम् ॥५२॥
अराजकं च दुर्नीतं संततं कलिदोषतः । बुभुक्षिताः कुचैलाश्च दरिद्रा व्याधिनो नराः ॥५३॥
कपर्दकघटाध्यक्षो राजेन्द्रो हि घटेश्वरः । वृद्धाङ्गुष्ठसमा लोका वृक्षाः शाकसमास्तथा ॥५४॥
तालानां नारिकेलाणां पनसानां तथैव च । फलानि सर्षपाण्येव तत्क्षुद्रं च ततः परम् ॥५५॥
जलभाजनपात्रेण सस्येन वाससा तथा । विहीनं मन्दिरं सर्वं गृहाणामपरिष्कृतम् ॥५६॥
गन्धकेन परिवृतं दीपहीनं तमोयुतम् । हिंस्रजन्तुभयाद्भीता जनाः सर्वे च पापिनः ॥५७॥
सर्वे च कलहाविष्टा[1] पुंश्चल्यः कलहप्रियाः । रूपवत्यो न कामिन्यो नराश्चापि न रूपिणः ॥५८॥
नद्यो नदाः कंदराश्च तडागाश्च सरोवराः । जलपद्मविहीनाश्च जलहीना घनास्तथा ॥५९॥

---

॥४३-४६॥ इस प्रकार सभी लोग स्वच्छन्द, शिश्नोदरपरायण, पेटू, रोगी, निन्दित, मैले-कुचैले, खण्डित मन्त्रों से युक्त और मिथ्या मन्त्रों के प्रचारक होंगे। गुरु जातिहीन, अवस्थाहीन और निन्दक होंगे ॥४७-४८॥ राजा लोग म्लेच्छ होंगे तथा यवन आदि सभी धर्म की निन्दा करते हुए साधुओं की उज्ज्वल कीर्ति को सहर्ष नष्ट करेंगे ॥४९॥

पितरों, देवों की पूजा और ब्राह्मणों, अतिथिवर्ग, गुरुवर्ग एवं माता-पिता का सम्मान नहीं होगा। वे स्त्री की ही आवभगत में लगे रहेंगे ॥५०॥ पिता जी ! स्त्री के बन्धुओं को मान्यता प्राप्त होगी और स्त्रियों का गौरव निरन्तर बढ़ेगा। उत्तम कुलवाले चोर होंगे और ब्राह्मण तथा देवों के धन का अपहरण करेंगे। कलियुग में लोग कौतुकवश लोभयुक्त धर्म से मान को धारण करेंगे। सारा संसार देवालय आदि से शून्य तथा भयाकुल रहेगा ॥५१-५२॥ कलि-दोष के कारण चारों ओर अराजकता और दुर्नीति बढ़ जायगी। सभी लोग अत्यन्त क्षुधापीड़ित, मैले-कुचैले एवं दरिद्र होंगे। कौड़ियों से भरे घड़े का स्वामी अध्यक्ष (राजा) कहा जायगा और उस प्रकार के अनेक घड़े रखनेवाला व्यक्ति राजेन्द्र होगा। अँगूठे के बराबर लोग होंगे और शाक (साग) के समान वृक्ष ॥५३-५४॥ ताड़, नारियल और कटहल के फल राई के समान होंगे और अन्य फल उनसे भी लघु। उस समय घरों में जलपात्र, अन्न और वस्त्र की अत्यन्त कमी रहेगी, गिरे-पड़े खँड़हर-से घर होंगे ॥५५-५६॥ वे दुर्गन्धों से आच्छन्न, दीपकविहीन एवं अन्धकारमय रहेंगे। सभी मनुष्य पापी एवं हिंसक जन्तुओं से भयभीत रहेंगे। उस समय सभी लोग फल के लोभी और स्त्रियाँ झगड़ालू होंगी, न स्त्रियाँ सुन्दरी होंगी और न पुरुष रूपवान् होंगे ॥५७-५८॥ नदियाँ, नद, कन्दराएँ और तालाब-सरोवर आदि जलाशय जल एवं कमल से रहित होंगे

---

१ क. 'न्त्रक्षिप्ता'। १ ख. फललोभिष्ठाः।

अपत्यहीना नार्यश्च कामुक्यो जारसंयुताः । अश्वत्थच्छेदिनः सर्वे वृक्षहीना वसुंधरा ।।६०।।
फलहीनाश्च तरवः शाखाः स्कन्धविहीनकाः । फलानि स्वादुहीनानि चान्नानि च जलानि च ।।६१।।
मानवाः कटुवक्तारो निर्दया धर्मवर्जिताः । तदन्ते द्वादशादित्याः संहरिष्यन्ति मानवान् ।।६२।।
सर्वाञ्जन्तूंश्च तापेन बहुवृष्टया व्रजेश्वर । अवशिष्टा च पृथिवी कथामात्रावशेषिता ।।६३।।
कलौ गते च पृथिवी क्षेत्रं वर्षागते तथा । पुनः सत्यप्रवृत्तिश्च भविष्यति क्रमेण वै ।।६४।।
इत्येवं कथितं सर्वं गच्छ तात व्रजं सुखम् । अहं दुग्धमुखो बालः पुत्रस्ते कथयामि किम् ।।६५।।
नवनीतं घृतं दुग्धं दधि तक्रं परिष्कृतम् । स्वस्तिकं शुभकर्मार्हं मिष्टान्नं च सुधोपमम् ।।६६।।
मिष्टद्रव्यं च यत्किंचित्पितृदेवनिमित्तकम् । भुक्तं बलाच्च तत्सर्वं बालानां रोदनं बलम् ।।६७।।
तत्क्षमस्वापराधं मे बालदोषः पदे पदे । त्वं पिता तव पुत्रोऽहं यशोदा जननी मम ।।६८।।
मदीयं परिहासं च यशोदां रोहिणीं वद । कुमारास्याच्छ्रुतं सर्वं सोऽहमित्येवमीप्सितम् ।।६९।।
कीर्तयिष्यसि तत्सर्वं सर्वं गोकुलवासिनम् । कालः करोति संसर्गं बन्धूनां बन्धुभिः सह ।।७०।।
कालः करोति विच्छेदं विरोधं प्रीतिमेव च । कालः सृष्टिं च कुरुते कालश्च परिपालनम् ।।७१।।

---

और मेघ जल से शून्य होंगे। स्त्रियाँ सन्तानहीना, कामुकी और सदैव जार पति के साथ रहेंगी। सभी लोग पीपल के वृक्ष को काटेंगे, पृथिवी वृक्षरहित होगी, वृक्षों में फल-शाखाएँ और स्कन्ध नहीं रहेंगे। फल स्वादिष्ट नहीं होंगे और अन्न-जल भी स्वादरहित होंगे। मनुष्य लोग कूट वक्ता, निर्दयी एवं धर्मरहित होंगे। अनन्तर बारहों सूर्य अपने ताप और बहुवृष्टि द्वारा मनुष्यों तथा समस्त जन्तुओं का संहार कर डालेंगे। व्रजेश्वर! उस समय पृथ्वी और उसकी कथा मात्र शेष रह जायगी ।।५६-६३।।

जैसे वर्षा के बीत जाने पर क्षेत्र खाली हो जाता है, वैसे ही कलियुग के व्यतीत होने पर पृथ्वी जीवों से रहित हो जायगी। तब पुनः क्रमशः सतयुग की प्रवृत्ति होगी ।।६४।। तात! इस प्रकार मैंने आपको सब कुछ सुना दिया, अब सुखपूर्वक व्रज चले जायँ। मैं तो आपका दुधमुँहा बालक हूँ, भला मैं (धर्म के विषय में) क्या कह सकता हूँ ।।६५।। व्रज में रहकर नवनीत (मक्खन), घी, दूध, दही, मट्ठा, स्वस्तिक के आकार का पकवान, शुभ कर्मों के योग्य अमृत के समान मधुर मिष्टान्न एवं पितरों, देवों के निमित्त बने हुए अन्य मधुर पदार्थ का मैंने (रोकर) बलात् भोजन किया है, क्योंकि बालकों का रोना ही बल होता है। इसलिए पद-पद पर हुए मेरे बाल-दोष को आप क्षमा करें, आप मेरे पिता हैं, मैं आपका पुत्र हूँ, और यशोदा मेरी माता हैं ।।६६-६८।। मेरा यह परिहास यशोदा और रोहिणी से भी कहना और यह भी बताना कि मैंने यह सब कुछ उसी कुमार बालक के मुख से सुना है। अनन्तर यह सब सभी गोकुलवासियों को भी सुनाना, क्योंकि बन्धुओं के साथ बन्धुओं का सम्पर्क काल द्वारा ही होता है ।।६९-७०।। उनके वियोग, उनके साथ विरोध और प्रीति भी काल ही कराता है। काल ही सृष्टि करता है, काल ही परिपालन करता है, काल ही आनन्द प्रदान करता है और

कालः करोति सानन्दं कालः संहरते प्रजाः। सुखं दुःखं भयं शोकं जरां मृत्युं च जन्म च ॥७२॥
सर्वं कर्मानुरोधेन काल एव करोति च। सर्वं कालकृतं तात विस्मयं न व्रजं व्रज ॥७३॥
कुतस्त्वं गोकुले वैश्यो नन्दो वैश्याधिपो नृपः। वसुदेवसुतोऽहं च मथुरायामहो कुतः ॥७४॥
पिता मे कंसभीतेन त्वद्गृहे च समर्पितः। पितुः परः पिता त्वं च माता मातुः पराऽपि वा ॥७५॥
मया दत्तेन ज्ञानेन पार्वत्या च व्रजेश्वर। त्यज मोहं महाभाग गच्छ तात सुखं गृहम् ॥७६॥

## नन्द उवाच

स्मर वृन्दावनं तात रम्यं पुण्यं महोत्सवम्। गोकुलं गोकुलं रम्यं सुन्दरं यमुनातटम् ॥७७॥
रमणीनां सुरम्यं च त्वत्प्रियं रासमण्डलम्। गोपालिका गोपबालान्यशोदां रोहिणीं प्रियाम् ॥७८॥
प्राणाधिकां राधिकां न कथं स्मरसि पुत्रक। वारमेकं स्वल्पदिनं गोकुलं गच्छ वत्सक ॥७९॥
इत्येवमुक्त्वा नन्दश्च क्रोडे कृष्णं चकार सः। नेत्राश्रुणा च पूर्णेन तं सिषेच शुचाऽन्वितः ॥८०॥
चुचुम्ब तद्गण्डयुगं कृत्वा वक्षसि मोहतः। सानन्दः परमानन्दो भगवांस्तमुवाच सः ॥८१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० भगवन्नन्दसं०
नवतितमोऽध्यायः ॥९०॥

---

काल ही प्रजाओं का संहार भी करता है। इस प्रकार सुख, दुःख, भय, शोक, जरा, मृत्यु और जन्म आदि सब कुछ कर्मवश काल ही करता है। हे तात! इस भाँति सब कुछ कालकृत ही समझना चाहिए, इसमें आश्चर्य नहीं। क्योंकि कहाँ तुम गोकुल के रहनेवाले वैश्यों के अधीश्वर राजा नन्द और कहाँ मथुरा में वसुदेव-पुत्र मैं ॥७१-७४॥ मेरे पिता कंस से भयभीत होकर तुम्हारे घर मुझे छोड़ आये थे। इसीलिए तुम पिता से बढ़कर मेरे पिता हो और माता से बढ़कर यशोदा माता हैं। अतः हे महाभाग, व्रजेश्वर! पार्वती समेत मेरे द्वारा दिये गये इस ज्ञानोपदेश से मोह को त्यागकर सुखपूर्वक घर जाओ ॥७५-७६॥

**नन्द बोले**—तात! रमणीक एवं पुण्य उस वृन्दावन का स्मरण करो। महोत्सवपूर्ण गोकुल, गौएँ, सुन्दर यमुनातट, गोपियों का अति रमणीक और तुम्हारा प्रिय रासमण्डल, गोपियों, गोपबालकों, यशोदा, रोहिणी एवं प्राणों से भी अधिक प्रिय राधिका का स्मरण क्यों नहीं कर रहे हो? हे पुत्र! हे वत्स! इन्हीं लोगों के लिए एक बार थोड़े दिनों के लिए गोकुल अवश्य चलो। इतना कहकर नन्द ने कृष्ण को अपनी गोद में बैठा लिया और आँसुओं के जल से उन्हें सींचने लगे। हृदय से लगाकर उनके युगल गण्डस्थल (कनपटी) का मोहवश चुम्बन करने लगे। अनन्तर परमानन्द भगवान् ने आनन्दमग्न होकर उनसे कहा ॥७७-८०॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण में श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद-नारायण के संवाद में
नब्बेवाँ अध्याय समाप्त ॥९०॥

# अथैकनवतितमोऽध्यायः

### श्रीभगवानुवाच

निषेकेन परिष्वङ्गो विभेदस्तेन वा भवेत्। क्षणेन दर्शनं तेन निषेकः केन वार्यते ॥१॥
गमनागमनार्थं चाप्युद्धवः कथयिष्यति। प्रस्थापयामि तं शीघ्रं विज्ञास्यसि ततः पितः ॥२॥
यशोदां रोहिणीं चैव गोपिकां गोपबालकान्। प्राणाधिकां राधिकां तां गत्वा संबोधयिष्यति ॥३॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र वसुदेवश्च देवकी। बलदेवश्चोद्धवश्च तथाऽक्रूरश्च सत्वरम् ॥४॥

### वसुदेव उवाच

नन्द त्वं बलवाञ्ज्ञानी सद्बन्धुश्च सखा मम। त्यज मोहं गृहं गच्छ वत्सस्तेऽयं यथा मम ॥५॥
दूरीभूता[1] गोकुलाच्च मथुरा नास्ति बान्धव। महोत्सवे सदानन्दे नन्द द्रक्ष्यसि पुत्रकम् ॥६॥

### देवक्युवाच

यथाऽयमावयोः पुत्रस्तथैव भवतो ध्रुवम्। सालसः केन हे नन्द शुचा देहो हि लक्ष्यते ॥७॥

---

## अध्याय ९१

### देवकी और वसुदेव का नन्द के प्रति भाषण

**श्रीभगवान् बोले**—कर्मफल भोग के अनुसार ही मिलन और वियोग होता है, तथा उसी के कारण क्षणमात्र में दर्शन भी हो जाता है। अतः उसका विरोध कौन कर सकता है? पिता जी! मैं शीघ्र ही उद्धव को भेज रहा हूँ, उन्हीं के द्वारा सब कुछ मालूम हो जायगा। मेरा जाना न जाना वे वहाँ बतायेंगे ॥१-२॥ वे वहाँ पहुँचकर यशोदा, रोहिणी, गोपियों, बालकों और प्राणों से अधिक प्रिया राधिका को प्रबोधित करेंगे ॥३॥ उसी बीच वहाँ वसुदेव, देवकी, बलदेव, अक्रूर और उद्धव आ गये ॥४॥

**वसुदेव बोले**—हे नन्द! तुम महाज्ञानी, सद्बन्धु एवं मेरे सखा हो, मोह त्यागकर घर जाओ। यह शिशु (बच्चा) जैसे हमारा है वैसे आपका है। हे बान्धव! यह मथुरापुरी गोकुल का द्वार रूप है, जब कोई सानन्द महोत्सव होगा, तो आप अवश्य आकर पुत्रों को देखेंगे।

**देवकी बोली**—हे नन्द! यह (श्रीकृष्ण) जैसे हमारे पुत्र हैं वैसे आपके भी हैं। फिर किसलिए आपका शरीर

---

१ ख. द्वारभू॰।

एकादशाब्दं सबलः स्थित्वा ते मन्दिरे सुखम् । कथं स्वकल्पदिनेनैव शोकग्रस्तो भविष्यसि ॥८॥
तिष्ठ पुत्रेण सार्धं च मथुरायां कियद्दिनम् । पूर्णचन्द्राननं पश्य जन्म त्वं सफलं कुरु ॥९॥

**श्रीभगवानुवाच**

गच्छोद्धव सुखं भद्रं भविष्यति तव प्रियम् । प्रहर्षं गोकुलं गत्वा यशोदां रोहिणीं प्रसूम् ॥१०॥
गोपबालसमूहं च राधिकां गोपिकागणम् । प्रबोधयाऽऽध्यात्मिकेन मद्दत्तेन शुचश्छिदा ॥११॥
नन्दस्तिष्ठतु सानन्दं मन्मातुराज्ञया शुचा । नन्दस्थितिं मद्विनयं यशोदां कथयिष्यसि ॥१२॥
इत्येवमुक्त्वा श्रीकृष्णः पित्रा मात्रा बलेन च । अक्रूरेण समं तूर्णं ययावभ्यन्तरं गृहम् ॥१३॥
उद्धवो रजनीं स्थित्वा मथुरायां च नारद । प्रभाते प्रययौ शीघ्रं रम्यं वृन्दावनं वनम् ॥१४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना०
एकनवतितमोऽध्यायः ॥९१॥

•

---

आलस्य और शोक से मुरझाया हुआ दीख रहा है ? वे ग्यारह वर्ष तक आपके घर सुखपूर्वक रहकर वहीं बलवान् हुए हैं । थोड़े समय से यहाँ हैं, तो आप चिन्तित क्यों हो रहे हैं ? ॥५-८॥ अच्छा होगा, आप बच्चे के साथ यहाँ मथुरापुरी में कुछ दिन रहकर इस पूर्णचन्द्रमुख का दर्शन करें और अपने जन्म को सफल करें ॥९॥

**श्रीभगवान् बोले**—हे उद्धव ! तुम सहर्ष गोकुल जाओ ! वहाँ तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध होगा । वहाँ पहुँचकर माता यशोदा, रोहिणी, गोप-बालक-वृन्द, राधिका और गोपियों को मेरे बताये हुए इस आध्यात्मिक ज्ञान द्वारा, जिससे शोक आदि नष्ट होते हैं, प्रबोधित करो ॥१०-११॥ मेरी माता की आज्ञा है, अतः नन्द सानन्द यहाँ कुछ दिन ठहरेंगे। नन्द का रहना और मेरा विनय यशोदा माता से कह देना ॥१२॥ इतना कहकर भगवान् श्रीकृष्ण पिता-माता, बलभद्र और अक्रूर समेत महल के भीतर चले गये ॥१३॥ नारद ! अनन्तर उद्धव ने मथुरापुरी में रात्रि व्यतीत कर प्रातःकाल रमणीय वृन्दावन की ओर प्रस्थान किया ॥१४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारायण-नारद-संवाद में
इक्यानबेवाँ अध्याय समाप्त ॥९१॥

•

# अथ द्विनवतितमोऽध्यायः

## नारायण उवाच

श्रीकृष्णप्रेरितो हृष्टः प्रणम्य च गणेश्वरम् । स्मरन्नारायणं शंभुं दुर्गां लक्ष्मीं सरस्वतीम् ॥१॥
गङ्गां च मनसि ध्यात्वा दिगीशं तं महेश्वरम् । प्रजगामोद्धवश्चैव दृष्ट्वा मङ्गलसूचकम् ॥२॥
शुश्राव दुंदुभिं घण्टानादं शङ्खध्वनिं तथा । हरिशब्दं च संगीतं शुश्राव मङ्गलध्वनिम् ॥३॥
पतिपुत्रवतीं साध्वीं प्रदीपं माल्यदर्पणम् । परिपूर्णतमं कुम्भं दधिलाजफलानि च ॥४॥
दूर्वाङ्कुरं शुक्लधान्यं रजतं काञ्चनं मधु । ब्राह्मणानां समूहं च कृष्णसारं वृषं घृतम् ॥५॥
सद्योमांसं गजेन्द्रं च नृपेन्द्रं श्वेतघोटकम् । पताकां नकुलं चाषं शुक्लं पुष्पं च चन्दनम् ॥६॥
दृष्ट्वैवं पथि कल्याणं प्राप वृन्दावनं वनम् । ददर्श पुरतो वृक्षं भाण्डीरे वटमक्षयम् ॥७॥
स्निग्धपर्णं रक्तवर्णं पुण्यदं तीर्थमीप्सितम् । सुवेषान्बालकांश्चैव रत्नभूषणभूषितान् ॥८॥
वदतो बालकृष्णेति रुदतश्च शुचाऽन्वितान् । तानाश्वास्य ययौ दूरं प्रविश्य नगरं मुदा ॥९॥
ददर्श नन्दशिविरं रचितं विश्वकर्मणा । मणिरत्नविनिर्माणं मुक्तामाणिक्यहीरकैः ॥१०॥

---

# अध्याय ९२

## राधा स्तोत्र

**नारायण बोले**—भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा प्रेरित उद्धव ने सहर्ष गणेश्वर को प्रणाम और नारायण, शिव, दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, गङ्गा एवं दिक्पाल का मन में ध्यान करके मङ्गल-सूचक शुभ शकुनों के दर्शन-पूर्वक गोकुल को प्रस्थान किया ॥१-२॥ दुन्दुभि (नगाड़े), घण्टा और शंख की ध्वनि, भगवन्नाम का संकीर्तन व संगीत तथा मङ्गल ध्वनि को मार्ग में सुनते हुए एवं पति-पुत्रवतीपतिव्रता स्त्री, प्रदीप, माला, दर्पण, जल-परिपूर्ण कलश, दही, लावा, फल, दूर्वाङ्कुर, शुक्ल धान्य, चाँदी, सुवर्ण, मधु, ब्राह्मण-वृन्द, कृष्णसार (मृग) वृष (बैल), घी, ताजा मांस, गजराज, राजेन्द्र, श्वेत घोड़ा, पताका, नेवला, नीलकण्ठ, श्वेत पुष्प और चन्दन को देखते हुए वे कल्याणमय वृन्दावन पहुँचे। वहाँ सामने सर्वप्रथम उन्होंने भाण्डीर वन में अक्षयवट को देखा, जिसका रंग लाल था, पत्ते चिकने थे तथा जो पुण्यदाता और अभीष्ट तीर्थ था। तत्पश्चात् सुन्दर वेशवाले बालकों को देखा, जो रत्नों के भूषणों से भूषित थे और बालकृष्ण का नाम ले-लेकर शोकवश रो रहे थे। उनको आश्वासन देकर आनन्दपूर्वक नगर में प्रवेश करके आगे दूर निकल गये ॥३-९॥ उन्होंने वहाँ विश्वकर्मा का बनाया हुआ नन्द का सुन्दर भवन देखा, जो मणि-रत्न का बना हुआ, मोती, माणिक्य और हीरों से चारों ओर

परिच्छन्नं मनोरम्यं सद्रत्नकलशान्वितम् । द्वारं चित्रं विचित्राढ्यं दृष्ट्वा च प्रविवेश सः ।।११।।
अवरुह्य रथात्तूर्णं तस्थौ तत्प्राङ्गणे मुदा । यशोदा रोहिणी शीघ्रं पप्रच्छ कुशलं परम् ।।१२।।
आसनं च जलं गां च मधुपर्कं ददौ मुदा । क्व नन्दः क्व बलः कृष्णः सत्यं तत्कथयोद्धव ।।१३।।
उद्धवः कथयामास सर्वं भद्रं क्रमेण च । सार्धं च बलकृष्णाभ्यां नन्दः सानन्दपूर्वकम् ।।१४।।
आयास्यति विलम्बेन कृष्णोपनयनावधि । युष्माकं कुशलं तत्त्वं विज्ञाय विधिपूर्वकम् ।।१५।।
अहं यास्यामि मथुरां यशोदे शृणु सांप्रतम् । श्रुत्वा मङ्गलवार्तां च यशोदा रोहिणी मुदा ।।१६।।
ब्राह्मणाय ददौ रत्नं सुवर्णं वस्त्रमीप्सितम् । उद्धवं भोजयामास मिष्टान्नं च सुधोपमम् ।।१७।।
मणिश्रेष्ठं च रत्नं च ददौ तस्मै च हीरकम् । वाद्यं च वादयामास भद्रं नानाविधं तथा ।।१८।।
ब्राह्मणान्भोजयामास कारयामास मङ्गलम् । वेदांश्च पाठयामास परमानन्दपूर्वकम् ।।१९।।
शंकरं पूजयामास विप्रद्वारा परं विभुम् । नानोपहारैर्नैवेद्यैः पुष्पधूपप्रदीपकैः ।।२०।।
चन्दनैर्वस्त्रताम्बूलैर्मधुगव्यघृतादिभिः । भवानीं पूजयामास श्रीवृन्दारण्यदेवताम् ।।२१।।
षोडशोपचारैर्द्रव्यैर्बलिभिर्विविधैर्मुने । महिषाणां शतं शुद्धं छागलानां सहस्रकम् ।।२२।।
मेषाणामयुतं शुद्धं युक्तमादाय पञ्चकम् । ब्राह्मणेभ्यः स्वर्णशतं धेनूनां च शतं तथा ।।२३।।

---

जटित, मनोरम एवं उत्तम रत्न के कलशों से सुशोभित था। उसके चित्र-विचित्र द्वार को देखकर भीतर प्रवेश किया। उसके आंगन में पहुँचकर तुरन्त ही रथ से उतरकर भूतल पर खड़े हो गये। उन्हें देखकर यशोदा और रोहिणी ने शीघ्र उनसे कुशल-समाचार पूछा ।।१०-१२।। हर्ष से आसन पर बैठकर जल, अर्घ्य और मधुपर्क प्रदान किया और पूछा--हे उद्धव ! नन्द, बलराम और कृष्ण कहाँ हैं, सत्य बताओ। अनन्तर उद्धव ने क्रमशः उन सबकी मांगलिक बातें बतायीं। उन्होंने कहा--यशोदे ! बलराम और कृष्ण के साथ नन्द आनन्दपूर्वक रह रहे हैं, कृष्ण के उपनयन (यज्ञोपवीत) संस्कार होने के उपरान्त आयेंगे, अतः उनके आने में अभी विलम्ब है। इसलिए तुम लोगों के कुशल समाचार के निमित्त मैं यहाँ आया हूँ, उन्हें सविधि बताकर और जानकर पुनः मैं मथुरा लौट जाऊँगा। कुशल-मंगल सुनकर यशोदा और रोहिणी ने आनन्द से रत्न-सुवर्ण समेत मनोहर वस्त्र ब्राह्मणों को प्रदान किया। अनन्तर उद्धव को अमृत की भाँति मधुर मिष्टान्न भोजन कराया। मणिश्रेष्ठ, रत्न और हीरा उपहार दिया एवं अनेक प्रकार के मंगलवाद्य बजवाये ।।१३-१८।।

ब्राह्मण भोजन कराया, मंगलोत्सव किया, परमानन्दपूर्वक वेदों का पाठ कराया और ब्राह्मणों द्वारा अनेक भाँति के उपहार-नैवेद्य, पुष्प, धूप-दीप आदि से शङ्कर की पूजा करायी। चन्दन, वस्त्र, ताम्बूल, मधु, गव्य (गौ के दूध-दही-घी) आदि षोडशोपचार द्वारा वृन्दारण्य की भवानी देवी की अर्चना करायी और अनेक भाँति के बलि प्रदान कराये--जिसमें सौ भैंसे, एक सहस्र बकरे और दस सहस्र भेड़ें थीं। कृष्ण के कल्याणार्थ ब्राह्मणों को सौ सुवर्ण मुद्राओं समेत सौ धेनुओं का दान किया और शीघ्र दक्षिणा समर्पित की तथा बार-बार आदर-

प्रददौ दक्षिणां तूर्णं कृष्णकल्याणहेतवे । उद्धवं पूजयामास सादरं च पुनः पुनः ॥२४॥
समाश्वास्य यशोदां च रोहिणीं गोपबालकान् । वृद्धान्गोपालिकाः सर्वाः प्रययू रासमण्डलम् ॥२५॥
ददर्श रासं रुचिरं चन्द्रमण्डलवर्तुलम् । श्रीरामकदलीस्तम्भशतकैरुपशोभितम् ॥२६॥
युक्तैश्च स्निग्धवसनैश्चन्दनानां च पल्लवैः । पट्टसूत्रनिबद्धैश्च श्रीयुक्तमाल्यजालकैः ॥२७॥
दधिलाजफलैः पट्टैः पुष्पैर्दूर्वाङ्कुरैरपि । चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमैः परिसंस्कृतम् ॥२८॥
वेष्टितं रक्षितं यत्नाद्गोपिकानां त्रिकोटिभिः । त्रिलक्षैः सुन्दरै रम्यैः संसक्तं रतिमन्दिरैः ॥२९॥
लक्षगोपैः परिवृतं कृष्णागमनशङ्कितैः । यमुनां दक्षिणां कृत्वा प्रययौ मालतीवनम् ॥३०॥
चन्दनानां चम्पकानां यूथिकानां तथैव च । केतकीमाधवीनां च वनं कृत्वा प्रदक्षिणम् ॥३१॥
बकुलानां वञ्जुलानामशोकानां च काननम् । मल्लिकानां पलाशानां शिरीषाणां तथैव च ॥३२॥
धात्रीणां काञ्चनानां च कर्णिकानां वनं तथा । नागेश्वराणां विपिनं लवङ्गानां तथैव च ॥३३॥
वनं च शालतालानां हिन्तालानां वनं तथा । पनसानां रसालानां लाङ्गलीनां मनोहरम् ॥३४॥
मन्दारकाननं रम्यं वामं कृत्वा च सत्वरम् । दृष्ट्वा कुन्दवनं रम्यं संप्राप्य मधुकाननम् ॥३५॥
पुंस्कोकिलानां शब्देन मधुरेण समन्वितम् । मधुव्रतसमूहानां मधुरध्वनिपूरितम् ॥३६॥
वन्यवृक्षैः परिवृतं माध्वीकाधारमीप्सितम् । वातेन वन्यपुष्पाणां परितः सुरभीकृतम् ॥३७॥

---

पूर्वक पूजा की ॥१९-२४॥ उपरान्त उद्धव ने यशोदा, रोहिणी, गोप-बालकों, वृद्धजनों और सभी गोपियों को भली-भाँति आश्वासन देकर रासमण्डल की ओर प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचकर उन्होंने ब्रह्ममण्डल की भाँति गोलाकार एवं रुचिर उस रासमण्डल को देखा, जो श्रीराम कदली के सैकड़ों स्तम्भों से सुशोभित, स्निग्ध वस्त्रों से सुसज्जित, पट्टसूत्र में बँधे चन्दन पल्लवों और सुन्दरमाला-समूहों से सुभूषित था। पुनः दही, लावा, फल, पट्ट वस्त्र, पुष्प, दूर्वाङ्कुर, चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, कुंकुम से सुसंस्कृत, तथा तीन करोड़ गोपियों से रक्षित एवं घिरा हुआ था। उसमें तीन लाख रति-मन्दिर थे, जो रमणीक एवं सुन्दर थे। कृष्ण के आगमन की प्रतीक्षा में एक लाख गोप वहाँ सदैव रहते थे। उसे देखते एवं यमुना को दाहिनी ओर छोड़ते हुए उद्धव मालती वन गये ॥२५-३०॥ वहाँ से पुनः चन्दनवन, चम्पकवन, जूहीवन, केतकी वन और माधवी वन की प्रदक्षिणा करते हुए तथा बकुल वन, वञ्जुलवन, यशोदावन, मल्लिकावन, पलाशवन, शिरीषवन, धात्री (आँवले का) वन, काञ्चनवन, कर्णिकावन, नागेश्वरवन, लवंगवन, शाखू के वन, ताड़वन, हिन्ताल वन, पनस (कटहल) वन, आम्रवन, मनोहर लाङ्गली वन एवं रमणीक मन्दार वन को बायीं ओर छोड़ते एवं कुन्दनवन को देखते हुए रमणीक मधुवन पहुँचे, जो कोकिल की मधुर कूक और भौंरों की मधुर गूँज से सुशोभित, वन्यवृक्षों से वेष्टित, मदिरा का आधार, हृद्य, जंगली पुष्पों की सुगन्धित वायु से सुगन्धित था। उसे देखने के अनन्तर यशोदा के बनाये हुए राजमार्ग से शान्त और रहस्य-

तद्दृष्ट्वा राजमार्गेण यशोदोक्तेन सांप्रतम् । ययौ शीघ्रं निरुद्विग्निं रहस्यं बदरीवनम् ॥३८॥
श्रीफलानां च निम्बानां नारिङ्गाणां वनं तथा । पद्मानां करवीराणां तुलसीनां च काननम् ॥३९॥
दृष्ट्वा रक्तिमवर्णं च सुपक्वफलमीप्सितम् । तदेव वामतः कृत्वा विवेश कदलीवनम् ॥४०॥
अतीव निर्जने रम्ये ददर्श राधिकाश्रमम् । मणीन्द्राणां च प्राकारं परिखादुर्गवेष्टितम् ॥४१॥
अत्यगम्यं रिपूणां च मित्राणां सुगमं सुखम् । गोप्यं संकेतमार्गं च रक्षकैः परिरक्षितम् ॥४२॥
नानाचित्रविचित्राढ्यं निर्मितं विश्वकर्मणा । मणीन्द्रमुक्तामाणिक्यहीरहारोज्ज्वलं परम् ॥४३॥
रत्नेन्द्रसाररचितं रत्नस्तम्भैः सुशोभितम् । रत्नसोपानसंसक्तमन्दिरेण मनोहरम् ॥४४॥
अमूल्यरत्नखचितं कलशैः परिशोभितम् । वह्निशुद्धांशुकाभिश्च पताकाभिः परिष्कृतम् ॥४५॥
सद्रत्नदर्पणोत्कृष्टं चर्चितं श्वेतचामरैः । ददर्श सिंहद्वारं च युक्तं रत्नकपाटकैः ॥४६॥
द्वारोपरि विचित्रं च रम्यं वृन्दावनं वनम् । कदम्बकाननं रम्यं तद्वस्त्रहरणादिकम् ॥४७॥
विश्वकर्माविरचितं सुरम्यं रासमण्डलम् । नानारत्नकुटीरं च गोपगोपीसमन्वितम् ॥४८॥
रक्षितं गोपिकालक्षैर्वेत्रहस्तैर्मनोहरैः । स्वच्छन्दाचरणैः शश्वदमितैर्बलिभिर्मुदा ॥४९॥
तद्द्वारं पुरतो दृष्ट्वा विलङ्घ्य च जगाम सः । द्वितीयं द्वारमुल्लङ्घ्य तस्मादुत्तममीप्सितम् ॥५०॥
द्वारं चतुर्थं संप्राप्य सर्वस्माच्च विलक्षणम् । तत्पश्चात्पञ्चमं द्वारं ददर्श चित्रमुत्तमम् ॥५१॥
द्वारषट्कं च प्रययौ सर्वत्र रुचिरं परम् । रामरावणयोर्युद्धं भित्तिचित्रं मनोहरम् ॥५२॥

---

मय बदरी वन, श्रीफल (बेल) वन, नींबवन नारङ्गीवन, कमलवन, करवीरवन एवं तुलसी वन में पहुँचे। वहाँ रक्तिम (लाल) रंग के पके फल एवं मनोहर फलों को देखकर उसे बायें भाग में छोड़ते हुए उद्धव ने कदली वन में प्रवेश किया ॥३१-४०॥ वहाँ अत्यन्त निर्जन एवं रमणीय प्रदेश में राधिका जी के परम रमणीक आश्रम को देखा, जो मणीन्द्रों की चहारदिवारी, खाईं दुर्ग से घिरा, शत्रुओं के लिए अगम्य, मित्रों के लिए सुखपूर्वक गम्य, गोप्य एवं संकेत मार्ग युक्त, रक्षकों द्वारा चारों ओर से सुरक्षित, नाना प्रकार के चित्रों से विभूषित, विश्वकर्मा द्वारा सुरचित, मणीन्द्र, मुक्ता, माणिक्य एवं हीरों के हारों से परम प्रकाशित, रत्नेन्द्रों के सारभाग से रचित, रत्न स्तम्भों से सुशोभित, रत्नों की सीढ़ियों से युक्त मन्दिर से मनोहर, अमूल्य रत्नों से खचित कलशों से सुभूषित, अग्निविशुद्ध वस्त्रों की पताकाओं से परिष्कृत, उत्तम रत्न-दर्पणों से अत्युत्कृष्ट और श्वेत चामरों से सुचर्चित था। फिर उसके सिंहद्वार को देखा, जिसमें रत्नों के किवाड़ लगे थे। द्वार के ऊपर विश्वकर्मा द्वारा विचित्र एवं रमणीक वृन्दावन, कदम्बवन, चीरहरण आदि तथा अतिरमणीक रास-मण्डल चित्रित किया हुआ था। वहाँ अनेक भाँति के रत्नकुटीर बने थे, जो गोप-गोपियों से युक्त थे ॥४१-४८॥ मनोहर हाथों में बेत के डंडे लिये हुई एक लाख गोपियाँ उस द्वार की सुरक्षा कर रही थीं। वे स्वच्छन्द विचरण करनेवाली थीं। उनके हाथों में अनेक प्रकार के उपहार थे, उस द्वार को आगे देखकर तथा पार करके उद्धव ने दूसरे तथा तीसरे द्वार को भी पार किया। अनन्तर सबसे विलक्षण चौथे द्वार पर पहुँचने के बाद पाँचवें द्वार पर, उत्तम चित्र को देखा। फिर छठे द्वार पर पहुँचे। वहाँ सर्वत्र परम मनोहरता थी। उसकी दीवालों पर विश्वकर्मा द्वारा राम-रावण का

दशावतारं विष्णोश्च कृत्रिमं रासमण्डलम् । यमुनाजलकेलिं च रचितां विश्वकर्मणा ॥५३॥
गोपिकानां सहस्रेण षष्ठं द्वारं च रक्षितम् । रत्नेन्द्रसारनिर्माण भूषणैर्भूषितेन च ॥५४॥
सद्रत्नदण्डहस्तेन हीरकैर्भूषितेन च । मणीन्द्रमुक्तामाणिक्यहीरहारान्वितेन[1] च ॥५५॥
माधवी तत्प्रधाना सा पप्रच्छ सांप्रतं शिवम् । ददौ प्रत्युत्तरं सर्वं क्रमेण च स उद्धवः ॥५६॥
गत्वा विज्ञापयामास राधाप्रियसखीगणम् । सा माधवी महाहृष्टा तत्र संस्थाप्य तं मुदा ॥५७॥
श्रुत्वा मङ्गलवार्तां च राधाप्रियसखीगणैः । कृत्वा शङ्खध्वनिं घण्टामृदङ्गपटहस्वनम् ॥५८॥
कृत्वा निर्मञ्छनं शीघ्रमुद्धवं प्रियमागतम्[2] । हृष्टा प्रवेशयामास राधाभ्यन्तरमुत्तमम् ॥५९॥
अमूल्यरत्ननिर्माणं गत्वा मन्दिरमुत्तमम् । ददर्श पुरतो राधां कुह्वां चन्द्रकलोपमाम् ॥६०॥
सुपक्वपद्मनेत्रां च शयानां शोकमूर्च्छिताम् । रुदतीं रक्तवदनां विलष्टां च त्यक्तभूषणाम् ॥६१॥
निश्चेष्टां च निराहारां सुवर्णवर्णकुण्डलाम् । शुष्किताधरकण्ठां च किंचिन्निःश्वाससंयुताम् ॥६२॥
प्रणनाम च तां दृष्ट्वा भक्तिनम्रात्मकंधरः । पुलकाञ्चितसर्वाङ्गो भक्त्या भक्तः स उद्धवः ॥६३॥

---

मनोहर युद्ध-चित्र, भगवान् विष्णु के दसों अवतार-चित्र, रासमण्डल एवं यमुना-जल-केलि को विश्वकर्मा ने साकार कर दिया था। छठे द्वार की सुरक्षा में एक सहस्र गोपियाँ नियुक्त थीं। वे गोपियाँ रत्नेन्द्रों के सारभाग के बने भूषणों से भूषित, उत्तम रत्नदण्डों को हाथों में लिये हुई तथा मणीन्द्र, मुक्ता, माणिक्य और हीरों से सुभूषित थीं ॥४९-५५॥ उनमें सर्व-प्रधान माधवी नामक सखी ने उद्धव से समयोचित कुशल-वार्ता पूछी। उद्धव ने क्रमशः सबका समुचित उत्तर दिया ॥५६॥ अनन्तर उस माधवी ने अत्यन्त हर्षित होकर उद्धव को उसी स्थान पर ठहराकर भीतर राधिका जी की प्रिय सखियों से निवेदन किया। उस मंगल-वार्ता को सुनकर उन सखियों ने शङ्ख, घण्टा, मृदंग और ढोल बजाकर आये हुए प्रिय उद्धव का स्वागत किया और हर्षित होकर उन्हें राधिका जी के भीतरी भवन में पहुँचा दिया ॥५७-५९॥ उस अमूल्य रत्नों के बने उत्तम भवन में पहुँचकर उद्धव ने सामने राधिका जी को देखा। वे चन्द्रकला के समान सुन्दरी थीं। उनके नेत्र पूर्ण विकसित कमल के सदृश थे। उन्होंने आभूषणों का त्याग कर दिया था। केवल कानों में सुवर्ण के रंग-विरंगे कुण्डल झलमला रहे थे। अत्यन्त क्लेश के कारण उनका मुख लाल हो गया था। वे शोक से मूर्च्छित हो भूमि पर पड़ी हुई रो रही थीं। उनकी चेष्टाएँ शान्त थीं। उन्होंने आहार का त्याग कर दिया था। उनके अधर और कण्ठ सूख गये थे। केवल कुछ-कुछ साँस चल रही थी। उन्हें इस अवस्था में देखकर भक्त उद्धव के सर्वांग में रोमांच हो आया। उन्होंने भक्तिपूर्वक सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम करते हुए कहा ॥६०-६३॥

---

१ क. 'सार'। २ क. 'मीप्सितम्।

## उद्धव उवाच

वन्दे राधापदाम्भोजं ब्रह्मादिसुरवन्दितम् । यत्कीर्तिः कीर्तनेनैव पुनाति भुवनत्रयम् ॥६४॥
नमो गोकुलवासिन्यै राधिकायै नमो नमः । शतशृङ्गनिवासिन्यै चन्द्रावत्यै नमो नमः ॥६५॥
तुलसीवनवासिन्यै वृन्दारण्यै नमो नमः । रासमण्डलवासिन्यै रासेश्वर्यै नमो नमः ॥६६॥
विरजातीरवासिन्यै वृन्दायै च नमो नमः । वृन्दावनविलासिन्यै कृष्णायै च नमो नमः ॥६७॥
नमः कृष्णप्रियायै च शान्तायै च नमो नमः । कृष्णवक्षःस्थितायै च तत्प्रियायै नमो नमः ॥६८॥
नमो वैकुण्ठवासिन्यै महालक्ष्म्यै नमो नमः । विद्याधिष्ठातृदेव्यै च सरस्वत्यै नमो नमः ॥६९॥
सर्वैश्वर्याधिदेव्यै च कमलायै नमो नमः । पद्मनाभप्रियायै च पद्मायै च नमो नमः ॥७०॥
महाविष्णोश्च मात्रे च पराद्यायै नमो नमः । नमः सिन्धुसुतायै च मर्त्यलक्ष्म्यै नमो नमः ॥७१॥
नारायणप्रियायै च नारायण्यै नमो नमः । नमोऽस्तु विष्णुमायायै वैष्णव्यै च नमो नमः ॥७२॥
महामायास्वरूपायै संपदायै नमो नमः । नमः कल्याणरूपिण्यै शुभायै च नमो नमः ॥७३॥
मात्रे चतुर्णां वेदानां सावित्र्यै च नमो नमः । नमोऽस्तु बुद्धिरूपायै ज्ञानदायै नमो नमः ॥७४॥
नमो दुर्गविनाशिन्यै दुर्गादेव्यै नमो नमः । तेजःसु सर्वदेवानां पुरा कृतयुगे मुदा ॥७५॥

---

**उद्धव बोले**—राधा जी के चरण-कमलों की मैं वन्दना कर रहा हूँ, जो ब्रह्मा आदि देवों द्वारा वन्दित हैं और जिनके गुणगान करने से तीनों लोक पवित्र होते हैं। गोकुलवासिनी को नमस्कार है, राधिका जी को बार-बार नमस्कार है; शतशृंग (सौ शिखर) वाले पर्वत की निवासिनी चन्द्रावती को बार-बार नमस्कार है, तुलसीवनवासिनी तथा वृन्दावन-वासिनी को बार-बार नमस्कार है, रास-मण्डलवासिनो रासेश्वरी को बार-बार नमस्कार है ॥६४-६६॥ विरजातीरनिवासिनी वृन्दा को बार-बार नमस्कार है; वृन्दावन की विलासिनी कृष्णा को बार-बार नमस्कार है; कृष्ण-प्रिया को नमस्कार है, शान्ता को बार-बार नमस्कार है। भगवान् कृष्ण के वक्षःस्थल पर रहनेवाली उनकी प्रिया को बार-बार नमस्कार है ॥६७-६८॥ वैकुण्ठवासिनी को नमस्कार है, महालक्ष्मी को बार-बार नमस्कार है। विद्याओं की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती को बार-बार नमस्कार है। समस्त ऐश्वर्यों की अधीश्वरी कमला को बार-बार नमस्कार है। भगवान् पद्मनाभ की प्रिया पद्मा को बार-बार नमस्कार है ॥६९-७०॥ महाविष्णु की माता एवं परा आद्या शक्ति को बार-बार नमस्कार है। सिन्धुसुता को नमस्कार है, मर्त्य (मनुष्य) लोक की लक्ष्मी को बार-बार नमस्कार है। नारायण की प्रिया नारायणी को बार-बार नमस्कार है, विष्णुमाया को नमस्कार है, वैष्णवी को बार-बार नमस्कार है ॥७१-७२॥ महामायास्वरूप सम्पदा को बार-बार नमस्कार है, कल्याणरूपिणी को नमस्कार है, शुभा को बार-बार नमस्कार है। चारों वेदों की माता सावित्री को बार-बार नमस्कार है। दुर्गविनाशिनी को नमस्कार है, दुर्गा देवी को बार-बार नमस्कार है ॥७३-७४॥ पूर्व समय कृतयुग में देवों की तेजोराशि में अपना अधिष्ठान करनेवाली प्रकृति को बार-बार

अधिष्ठानकृतायै च प्रकृत्यै च नमो नमः । नमस्त्रिपुरहारिण्यै त्रिपुरायै नमो नमः ।।७६।।
सुन्दरीषु च रम्यायै निर्गुणायै नमो नमः । नमो निद्रास्वरूपायै निर्गुणायै नमो नमः ।।७७।।
नमो दक्षसुतायै च नमः सत्यै नमो नमः । नमः शैलसुतायै च पार्वत्यै च नमो नमः ।।७८।।
नमो नमस्तपस्विन्यै ह्युमायै च नमो नमः । निराहारस्वरूपायै ह्यपर्णायै नमो नमः ।।७९।।
गौरीलोकविलासिन्यै नमो गौर्यै नमो नमः । नमः कैलासवासिन्यै माहेश्वर्यै नमो नमः ।।८०।।
निद्रायै च दयायै च श्रद्धायै च नमो नमः । नमो धृत्यै क्षमायै च लज्जायै च नमो नमः ।।८१।।
तृष्णायै क्षुत्स्वरूपायै स्थितिकर्त्र्यै नमो नमः । नमः संहाररूपिण्यै महामायै नमो नमः ।।८२।।
भयायै चाभयायै च मुक्तिदायै नमो नमः । नमः स्वधायै स्वाहायै शान्त्यै कान्त्यै नमो नमः ।।८३।।
नमस्तुष्ट्यै च पुष्ट्यै च दयायै च नमो नमः । नमो निद्रास्वरूपायै श्रद्धायै च नमो नमः ।।८४।।
क्षुत्पिपासास्वरूपायै लज्जायै च नमो नमः । नमो धृत्यै क्षमायै च चेतनायै नमो नमः ।।८५।।
सर्वशक्तिस्वरूपिण्यै सर्वमात्रे नमो नमः । अग्नौ दाहस्वरूपायै भद्रायै च नमो नमः ।।८६।।
शोभायै पूर्णचन्द्रे च शरत्पद्म नमो नमः । नास्ति भेदो यथा देवि दुग्धधावल्ययोः सदा ।।८७।।
यथैव गन्धभूम्योश्च यथैव जलशैत्ययोः । यथैव शब्दनभसोर्ज्योतिः सूर्यकयोर्यथा ।।८८।।

---

नमस्कार है। त्रिपुर की विनाशकारिणी को नमस्कार है, त्रिपुरा को बार-बार नमस्कार है ।।७५-७६।। सुन्दरियों में रम्य रूप एवं निर्गुणा को बार-बार नमस्कार है, निद्रास्वरूपा को नमस्कार है, निर्गुणा को बार-बार नमस्कार है ।।७७।। दक्षसुता को नमस्कार है, सतीरूप को बार-बार नमस्कार है । शैलसुता को नमस्कार है, पार्वती को बार-बार नमस्कार है। तपस्विनी को बार-बार नमस्कार है, उमा को बार-बार नमस्कार है। निराहारस्वरूपा अपर्णा को बार-बार नमस्कार है ।।७८-७९।। गौरी-लोक-विलासिनी को नमस्कार है । गौरी को बार-बार नमस्कार है । कैलासवासिनी को नमस्कार है, माहेश्वरी को बार-बार नमस्कार है ।।८०।। निद्रा, दया एवं श्रद्धा रूपा को बार-बार नमस्कार है । धृति, क्षमा को नमस्कार है, लज्जा को बार-बार नमस्कार है । तृष्णा, क्षुधा स्वरूपा और स्थिति करनेवाली को बार-बार नमस्कार है । संहाररूपिणी को नमस्कार है । महामारी को बार-बार नमस्कार है ।।८१-८२।। भयस्वरूपा, अभयस्वरूपा एवं मुक्ति देनेवाली को बार-बार नमस्कार है । स्वधा-स्वाहा को नमस्कार है, शान्ति-कान्ति को बार-बार नमस्कार है ।।८३।। तुष्टि, पुष्टि को नमस्कार है, दया को बार-बार नमस्कार है। निद्रास्वरूपा को नमस्कार है, श्रद्धा को बार-बार नमस्कार है ।।८४।। क्षुधा, पिपासा और लज्जा को बार-बार नमस्कार है । धृति-क्षमा को नमस्कार है, चेतना को बार-बार नमस्कार है ।।८५।। समस्त शक्तिस्वरूपा और सबकी माता को बार-बार नमस्कार है । अग्नि में दाहस्वरूपा को एवं भद्रा को बार-बार नमस्कार है, एवं पूर्ण चन्द्रमा और शारदीय कमल की शोभा को बार-बार नमस्कार है ।।८६३।। देवी जी ! जिस प्रकार दुग्ध और उसकी धवलता में, गन्ध एवं भूमि में, जल तथा शीतलता में, शब्द और आकाश में एवं प्रभा तथा सूर्य में भेद नहीं है, उसी भाँति लोक, वेद एवं पुराणों में राधा-माधव का अभेद बताया गया है।

लोके वेदे पुराणे च राधामाधवयोस्तथा। चेतनं कुरु कल्याणि देहि मामुत्तरं सति ॥८९॥
इत्युक्त्वा चोद्धवस्तत्र प्रणनाम पुनः पुनः। इत्युद्धवकृतं स्तोत्रं यः पठेद्भक्तिपूर्वकम् ॥९०॥
इह लोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते हरिमन्दिरम्। न भवेद्बन्धुविच्छेदो रोगः शोकः सुदारुणः ॥९१॥
प्रोषिता स्त्री लभेत्कान्तं भार्याभेदी लभेत्प्रियाम्। अपुत्रो लभते पुत्रान्निर्धनो लभते धनम् ॥९२॥
निर्भूमिर्लभते भूमिं प्रजाहीनो लभेत्प्रजाम्। रोगाद्विमुच्यते रोगी बद्धो मुच्येत बन्धनात् ॥९३॥
भयान्मुच्येत भीतस्तु मुच्येताऽऽपन्नआपदः। अस्पष्टकीर्तिः सुयशा मूर्खो भवति पण्डितः ॥९४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० राधास्तोत्रं
नाम द्विनवतितमोऽध्यायः ॥९२॥

•

# अथ त्रिनवतितमोऽध्यायः

### नारायण उवाच

उद्धवस्तवनं श्रुत्वा चेतनां प्राप्य राधिका। विलोक्य कृष्णाकारं च तमुवाच शुचाऽन्विता ॥१॥

---

कल्याणी ! सती ! चेतना करो और मुझे उत्तर दो। इतना कहकर उद्धव ने राधा जी को बार-बार प्रणाम किया। इस प्रकार इस उद्धवकृत स्तोत्र का जो भक्तिपूर्वक पाठ करता है, वह इस लोक में सुखोपभोग करने के उपरान्त भगवान् के लोक में जाता है। उसे बन्धु-वियोग, रोग, अतिघोर शोक कभी नहीं होता ॥८७-९१॥ (इसके पाठ से) प्रोषितभर्तृका स्त्री (जिसका पति परदेश में हो) को पति की प्राप्ति होती है, भार्यारहित को पत्नी, पुत्रहीन को पुत्र, निर्धन को धन, भूमिहीन को भूमि, प्रजा (सन्तान) हीन को प्रजा की प्राप्ति होती है। रोगी रोग से, बंधा हुआ बन्धन से, डरा हुआ भय से और विपत्तिग्रस्त व्यक्ति विपत्ति से छुटकारा पा जाता है और अस्पष्ट कीर्तिवाला व्यक्ति उत्तम यशस्वी तथा मूर्ख पण्डित हो जाता है ॥९२-९४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तपुराण में श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारायण-नारद के संवाद में
राधास्तोत्र नामक बानबेवाँ अध्याय समाप्त ॥९२॥

•

# अध्याय ९३

## राधा और उद्धव का संवाद

**नारायण बोले**—उद्धव का स्तोत्र सुनकर राधा जी की चेतना लौट आयी। तब उन्होंने शोकान्वित होकर उद्धव को कृष्ण के समान आकारवाला देखकर उनसे कहा ॥१॥

### राधिकोवाच

किन्नाम भवतो वत्स केन वा प्रेरितो भवान्। आगतो वा कुत इति ब्रूहि मां केन हेतुना ॥२॥
कृष्णाकृतिस्त्वं सर्वाङ्गैर्मन्ये त्वां कृष्णपार्षदम्। कृष्णस्य कुशलं ब्रूहि बलदेवस्य सांप्रतम् ॥३॥
नन्दस्तिष्ठति तत्रैव हेतुना केन तद्वद। समायास्यति गोविन्दो रम्यं वृन्दावनं वनम् ॥४॥
पुनर्द्रक्ष्यामि तस्यैव पूर्णचन्द्रमुखं शुभम्। पुनः क्रीडां करिष्यामि तेनाहं रासमण्डले ॥५॥
जले च विहरिष्यामि पुनर्वा सखिभिः सह। श्रीनन्दनन्दनाङ्गे च पुनर्दास्यामि चन्दनम् ॥६॥

### उद्धव उवाच

उद्धवेत्यभिधानं मे क्षत्रियोऽहं वरानने। प्रेषितः शुभवार्तार्थं कृष्णेन परमात्मना ॥७॥
तवान्तिकं समायातः पार्षदोऽहं हरेरपि। कृष्णस्य बलदेवस्य शिवं नन्दस्य सांप्रतम् ॥८॥

### राधिकोवाच

अस्ति तद्यमुनाकूलं सुगन्धिपवनोऽस्ति सः। तस्य केलिकदम्बानां मूलमस्त्येव सांप्रतम् ॥९॥
पुण्यं वृन्दावनं रम्यं तद्विद्यमानमीप्सितम्। पुंस्कोकिलानां विरुतं तल्पं चन्दनचर्चितम् ॥१०॥
चतुर्विधं च भोज्यं च मधुपानं च सुन्दरम्। दुरन्तो दुःखदोऽप्यस्ति पापिष्ठो मन्मथस्तथा ॥११॥
ते च रत्नप्रदीपाश्च ज्वलन्ति रासमण्डले। मणीन्द्रसारनिर्माणमस्त्येव रतिमन्दिरम् ॥१२॥

---

**राधिका बोलीं**—हे वत्स ! आपका नाम क्या है ? किसने आपको भेजा है ? कहाँ से आये हो ? और किस कारण आये हो ? मुझे बताओ ॥२॥ तुम्हारे सभी अङ्ग कृष्ण के समान हैं, इससे मैं मानती हूँ कि तुम कृष्ण के पार्षद हो, अतः सम्प्रति कृष्ण-बलदेव का कुशल समाचार बताओ। और यह भी बताओ कि नन्द वहाँ किस कारण ठहरे हुए हैं। क्या इस रमणीक वृन्दावन में कृष्ण अब पुनः आयेंगे और मैं उनके शुभ एवं पूर्णचन्द्र मुख का दर्शन करूँगी ? रासमण्डल में पुनः उनके साथ क्रीड़ा करूँगी ? सखियों समेत उनके साथ जल में विहार करूँगी ? और उन नन्दनन्दन के अंग में चन्दन लगा पाऊँगी ? ॥३-६॥

**उद्धव बोले**—सुमुखि ! मैं क्षत्रिय हूँ, उद्धव मेरा नाम है, परमात्मा कृष्ण ने यहाँ शुभ समाचार के लिए मुझे भेजा है। मैं भगवान् का पार्षद भी हूँ, इसीलिए तुम्हारे समीप आया हूँ। सम्प्रति कृष्ण, बलदेव और नन्द वहाँ कुशलपूर्वक रह रहे हैं ॥७-८॥

**राधिका बोलीं**—वह यमुना का तट विद्यमान है, सुगन्धित वायु है, उनके केलि करने का कदम्ब वृक्ष भी वर्तमान है, रम्य एवं अभीष्ट पुण्य वृन्दावन स्थित है, कोकिलों की कूक, चन्दन-चर्चित शय्या, चारों प्रकार के भक्ष्य-भोज्य समेत सुन्दर मधु (पेयपदार्थ) भी है। वह दुरन्त (बलवान्), दुःखप्रद एवं पापी मन्मथ (कामदेव) भी वर्तमान है, रासमण्डल में वे रत्नप्रदीप प्रज्वलित हैं, मणीन्द्र के सारभाग का बना हुआ रति-मन्दिर है,

गोपाङ्गनागणोऽस्त्येव पूर्णचन्द्रोऽस्ति शोभितः । सुगन्धिपुष्परचितं तल्पं चन्दनर्चितम् ॥१३॥
ताम्बूलं रतिभोगार्हं कर्पूरादिसुसंस्कृतम् । सुगन्धिमालतीमाल्यं श्वेतचामरदर्पणम् ॥१४॥
मुक्तामाणिक्यसंसक्तहीरहारमनोहरम् । कस्तूरीकुङ्कुमाक्तं च पात्रपूर्णं च चन्दनम् ॥१५॥
नानोपकाननं रम्यं रम्यक्रीडासरोवरम् । सुगन्धिपुष्पोद्यानं च पद्मश्रेणीमनोहरम् ॥१६॥
अस्त्येवं सर्वविभवः प्राणनाथः कुतो मम । हा कृष्ण हा रमानाथ क्वासि मे प्राणवल्लभ ॥१७॥
क्व वाऽपराधो दास्याश्च दासीदोषः पदे पदे । इत्येवमुक्त्वा सा देवी पुनर्मूर्च्छामवाप सा ॥१८॥
चेतनां कारयामास पुनरेव स उद्धवः । तां दृष्ट्वा परमाश्चर्यं मेने क्षत्रियपुंगवः ॥१९॥
सखीभिः सप्तभिः शश्वत्सेवितां श्वेतचामरैः । गोपीनां च त्रिलक्षैश्च सुप्रियैः प्रियसेविताम् ॥२०॥
दिवानिशं वेष्टितां च गोपीनां शतकोटिभिः । काचित्कज्जलहस्ता च काचिन्माल्यधराऽपरा ॥२१॥
काचित्सिन्दूरहस्ता च काचिद्गोरोचनाकरा । काचिच्चन्दनपात्रं च हस्ते कृत्वा च तिष्ठति ॥२२॥
काचिद्दर्पणहस्ता च काचित्कुङ्कुमवाहिका । कस्तूरीपात्रमिष्टं च काचिद्वहति तत्र वै ॥२३॥
काचिच्चम्पकपात्रं च करे धृत्वा च तिष्ठति । मधुभिर्मधुरैः पूर्णं पात्रं धृत्वा शुचाऽन्विता ॥२४॥
काचित्सुगन्धितैलं च गृहीत्वा परितिष्ठति । काचिद्वहति ताम्बूलं कर्पूरादिसुवासितम् ॥२५॥
काचिद्वासितमच्छं च जलं धृत्वा च तिष्ठति । क्रीडापुत्तलिकां काचिच्चित्राढ्यां परिरक्षति ॥२६॥

---

गोपियाँ हैं, शोभायुक्त पूर्ण चन्द्रमा है, सुगन्धित पुष्पों द्वारा सुरचित तथा चन्दन-चर्चित सुन्दर शय्या है, रति-सम्भोग के उपयुक्त कर्पूरादि सुवासित ताम्बूल है, सुगन्धित मालती की माला है, श्वेत चामर है, दर्पण है, मुक्ता-माणिक्य मिश्रित हीरे का मनोहर हार है, विभिन्न प्रकार के रमणीक उपवनों समेत क्रीड़ासरोवर है, सुगन्धित पुष्पों का उपवन है और मनोहर कमलों की पंक्तियाँ हैं, इस प्रकार समस्त ऐश्वर्य वर्तमान है, पर मेरे प्राणनाथ कहाँ हैं ? हा कृष्ण ! हा रमानाथ ! हे मेरे प्राणवल्लभ ! कहाँ हो । इस दासी का क्या अपराध है, अथवा दासी का अपराध तो पद-पद पर है ही । इतना कहकर वह देवी पुनः मूर्च्छित हो गयीं ॥६-१८॥ अनन्तर उद्धव ने उन्हें पुनः चेतना प्राप्त करायी और उन्हें देखकर क्षत्रियश्रेष्ठ उद्धव को महान् आश्चर्य हुआ । उस समय सात सखियाँ लगातार श्री राधा पर श्वेत चँवर डुला रही थीं; तीन लाख प्रिय गोपियाँ प्रिया (राधा) की सेवा में व्यस्त थीं । सौ करोड़ गोपियों से वे दिन-रात घिरी हुई रहती थीं । जिनमें कोई हाथ में काजल लिये और कोई माला लिये खड़ी थीं ॥१९-२१॥ कोई हाथ में सिन्दूर लिये, कोई गोरोचन लिये, कोई चन्दन पात्र हाथ में लिये खड़ी थीं । कोई हाथ में दर्पण लिये, कोई कुंकुम लिये और कोई गोपी अभीष्ट कस्तूरी-पात्र लिये खड़ी थीं ॥२२-२३॥ कोई हाथ में चम्पक-पात्र लिये और कोई मधुर मधु (आसव) का पूर्ण पात्र लिये शोकाकुल हो रही थीं । कोई सुगन्धित तेल लिये, कोई कर्पूरादि सुवासित ताम्बूल लिये और कोई सुवासित एवं स्वच्छ जल लिये हुई थीं । कोई चित्र-विचित्र क्रीड़ा पुत्तलिका की देखभाल कर रही थीं ॥२४-२६॥ कोई गेंद लिये थीं, कोई रत्नाभरण की और कोई

काचिद्वहति कन्दूकं काचिच्च रत्नभूषणम् । वह्निशुद्धांशुकं काचिदमूल्यं परिरक्षति ॥२७॥
काचिद्भक्ष्योपहारं च गृहीत्वा परिवर्तते । काचिच्च केशवेशार्थं करोति माल्यमीप्सितम् ॥२८॥
काचित्कङ्कतिकां धृत्वा पुरतः परितिष्ठति । काचिद्यावकहस्ता च काचिद्धात्रीरसं मुदा ॥२९॥
दूरतोऽपि वहत्येवं भीता च परितिष्ठति । काचिद्भीता भिया स्तौति काचिद्रोदिति शोकतः ॥३०॥
काचित्तां बोधयेत्येवं विदग्धा विरहातुराम् । काचिदुत्तापतप्ता च स्निग्धतल्पे मनोहरे ॥३१॥
स्थापयेद्दाहदूरार्थं स्निग्धपद्मदले शुभे[1] । एवंभूतां च तां दृष्ट्वा चोवाच पुनरुद्धवः ॥
सुप्रियं कर्णपीयूषं विनयेन च भीतिवत् ॥३२॥

## उद्धव उवाच

जाने त्वां देवदेवीशां सुस्निग्धां सिद्धयोगिनीम् । सर्वशक्तिस्वरूपां च मूलप्रकृतिमीश्वरीम् ॥३३॥
श्रीदामशापाद्धरणीं प्राप्तां गोलोककामिनीम् । कृष्णप्राणाधिकां देवीं तद्वक्षःस्थलवासिनीम् ॥३४॥
शृणु देवि प्रवक्ष्यामि शुभवार्तामभीप्सिताम् । सुस्थिरं सखिभिः सार्धं हृदयस्निग्धकारिणीम् ॥३५॥
दुःखदावाग्निदग्धायाः सुधावर्षणरूपिणीम् । विरहव्याधियुक्ताया रसायनसमां शुभाम् ॥३६॥

---

अग्नि विशुद्ध एवं अमूल्य वस्त्र की सुरक्षा में जुटी थीं । कोई भक्ष्य-उपहार लिये घूम रही थीं । कोई केश सँवारने के लिए सुन्दर माला गूँथ रही थीं, कोई कंघा लिये सामने खड़ी थीं, कोई हाथ में महावर लिये और कोई आंवले का रस लिये दूर भयभीत-सी खड़ी थीं । कोई भयभीत होकर प्रार्थना कर रही थीं, कोई शोक-खिन्न होकर रोदन कर रही थीं । कोई विदग्धा (चतुर) गोपी विरहिणी राधा को प्रबोधन दे रही थीं तथा कोई स्निग्ध एवं मनोहर शय्या पर पड़ी राधा को, उनके विरह संताप से संतप्त हो उनका संताप दूर करने के लिए स्निग्ध एवं पवित्र कमल दल की शय्या पर शयन करा रही थीं । राधा को इस अवस्था में पहुँची हुई देखकर उद्धव ने डरे हुए की भांति पुन: विनयपूर्वक कानों को अमृत के समान लगनेवाले परम प्रिय वचन कहा ॥२७-३२॥

**उद्धव बोले**—मैं तुम्हें जानता हूँ, तुम देवों और देवियों की अधीश्वरा, अति स्निग्ध, सिद्ध योगिनी, समस्त शक्तिस्वरूपा, मूल प्रकृति, ईश्वरी और गोलोक की सुन्दरी हो । श्रीदामा के शापवश इस पृथ्वी पर अवतीर्ण हुई हो । देवि ! तुम श्रीकृष्ण की प्राणप्रिया तथा उनके वक्षःस्थल पर निवास करनेवाली हो ॥३३-३४॥ देवि ! सखियों समेत सुस्थिर होकर सुनो, मैं तुम्हें शुभ समाचार बता रहा हूँ, जो अभीष्ट, हृदय को स्निग्ध करनेवाला, दुःख रूपी दावाग्नि से दग्ध होनेवाली के लिए अमृत वर्षा रूप और विरह रूपी व्याधि से पीड़ित होनेवाली के लिए शुभ रसायन के समान है ॥३५-३६॥ वसुदेव ने कृष्ण के यज्ञोपवीत संस्कार होने के समय

---

१ क. मुने ।

तत्र तिष्ठति नन्दोऽयं सानन्दो मुदितः सदा । निमन्त्रितश्च वसुना कृष्णोपनयनावधि ।।३७।।
गृहीत्वा सबलं कृष्णं साङ्गे मङ्गलकर्मणि । स नन्दः परमानन्दो मुदाऽऽयास्यति गोकुलम् ।।३८।।
आगत्य कृष्णो मुदितः प्रणम्य मातरं पुनः । नक्तमायास्यति मुदा पुण्यं वृन्दावनं वनम् ।।३९।।
अचिराद्द्रक्ष्यसि सति श्रीकृष्णमुखपङ्कजम् । सर्वं विरहदुःखं च संत्यक्ष्यसि च सांप्रतम् ।।४०।।
सुस्थिरा भव मातस्त्वं त्यज शोकं सुदारुणम् । वह्निशुद्धांशुकं रम्यं परिधाय प्रहर्षिता ।।४१।।
अमूल्यरत्ननिर्माणभूषणग्रहणं कुरु । गृहाण चन्दनं स्निग्धं कस्तूरीकुङ्कुमान्वितम् ।।४२।।
कुरुष्व केशसंस्कारं मालतीमाल्यभूषितम् । सुवेषं कुरु कल्याणि गण्डे च चित्रपत्रकम् ।।४३।।
सिन्दूरबिन्दुं सीमन्ते कस्तूरीचन्दनान्वितम् । अलक्तकावक्तं चरणं युक्तं यावकभूषणैः ।।४४।।
कुरुष्व तिष्ठ चोत्तिष्ठ रत्नसिंहासने वरे । सपङ्कपङ्कजं तल्पं त्यज सार्धं शुचा सति ।।४५।।
भुङ्क्ष्व कृष्णेन मनसा विशुद्धं मधुरं मधु । संस्कृतं भासितं तोयं ताम्बूलं च सुवासितम् ।।४६।।
रत्नेन्द्रसारनिर्माणपर्यङ्के सुमनोहरे । वह्निशुद्धांशुकावृते च मालतीमाल्यभूषिते ।।४७।।
सुगन्धियुक्ते कस्तूरीजातीचम्पकचन्दनैः । परितो मालतीमाल्यहीरहारविभूषिते ।।४८।।
मणीन्द्रमुक्तामाणिक्यसुन्दरैश्च परिष्कृते । पुष्पमाल्योपधाने च मङ्गलार्हे मुदाऽन्विता ।।४९।।

---

तक नन्द को निमन्त्रित कर, वहाँ ठहरा लिया है इसलिए नन्द वहाँ सदैव आनन्दमग्न रहते हैं। पश्चात् उस मंगल कर्म के समाप्त होने पर नन्द बलभद्र समेत कृष्ण को साथ लेकर हर्षपूर्वक गोकुल को लौटेंगे ।।३७-३८।। उस समय श्रीकृष्ण प्रसन्नता के साथ पुनः माता को प्रणाम करेंगे और रात में हर्षपूर्वक इस पुण्यमय वृन्दावन में पधारेंगे ।।३९।। पतिव्रते ! श्रीकृष्ण के मुख-कमल को तुम शीघ्र देखोगी और उस समय तुम्हारा सारा विरह-दुःख दूर हो जायगा ।।४०।। माता! तुम सुस्थिर होकर इस भीषण शोक का अब त्याग करो और अत्यन्त प्रसन्न-चित्त होकर अग्नि विशुद्ध एवं रमणीक वस्त्र धारण करो। अमूल्य रत्नाभरणों से शरीर सुसज्जित करो, कस्तूरी-कुंकुम-मिश्रित स्निग्ध चन्दन का लेपन करो, केशों को मालती मालाओं से भूषित करो। हे कल्याणि! इस प्रकार सुन्दर वेश बनाकर कपोल पर कामकला विन्यास (पत्र रचना) करो, माँग को कस्तूरी-चन्दन समेत सिन्दूर की बिन्दी से सुशोभित करो, एवं महावर आदि भूषणों से चरण युगल को सुभूषित करो और उठो, इस उत्तम रत्न-सिंहासन पर विराजमान हो जाओ। पंक (कीचड़) समेत इस पंकज (कमल) की शय्या को शोक सहित त्याग दो ।।४१-४५।। कृष्ण के प्रति आसक्त मन से पवित्र एवं मधुर मधु (आसव) का पान करो, निर्मल एवं सुवासित जल और ताम्बूल खाकर रत्नेन्द्र के सारभाग से बनी अति मनोहर पलंग पर प्रसन्नतापूर्वक शयन करो, जो अग्नि विशुद्ध वस्त्र से सुसज्जित, मालती की मालाओं से सुभूषित, कस्तूरी, चमेली, चम्पा और चन्दनों द्वारा पूर्ण सुगन्धित, चारों ओर मालती की मालाओं और हीरा के हारों से सुशोभित, मणीन्द्र, मुक्ता एवं माणिक्य द्वारा सुन्दर एवं परिष्कृत और मंगलमय पुष्पमालाओं के उपधान (तकिया) से सुभूषित है। हे देवेशि ! गोपियाँ

शयनं कुरु देवेशि गोपीभिः सेविता सदा । करोतु सेवनं शश्वत्प्रियालिः श्वेतचामरैः ॥५०॥
पदारविन्दसेवां च गोपीभक्ता मनोहरे । सद्रत्नसारनिर्माणपर्यङ्के सुमनोहरे ॥५१॥
इत्येवमुक्त्वा स मुने पुनस्तूष्णीं बभूव ह । प्रणम्य पादपद्मं च ब्रह्मादिसुरवन्दितम् ॥५२॥
उद्धवस्य वचः श्रुत्वा सस्मिता राधिका सती । यौतुकं च ददौ तस्मै रत्नसाराङ्गुलीयकम् ॥५३॥
अमूल्यं सुन्दरं रम्यं विश्वकर्मविनिर्मितम् । मुखदृश्यं पीतवर्णं सुदीप्तं सुप्रदीपवत् ॥५४॥
कृष्णाय वह्निना दत्तमपूर्वं रासमण्डले । मणिकुण्डलयुग्मं चामूल्यरत्नविनिर्मितम् ॥५५॥
अमूल्यरत्ननिर्माणं सर्वभूषणमीप्सितम् । वह्निशुद्धांशुकयुगं रत्ननिर्माणनायकम् ॥५६॥
हीरहारविनिर्माणं हारं च सुमनोहरम् । पुरा दत्तं च सुप्रीत्या कृष्णाय वरुणेन च ॥५७॥
श्रीसूर्येण च यद्दत्तं श्रीकृष्णाय स्यमन्तकम् । प्रदत्तं कौ (यौ) तुकं तस्मै यद्दत्तं हरिणा पुरा ॥५८॥
यद्दत्तं च महेन्द्रेण रत्नसिंहासनं वरम् । तत्प्रदत्तं मुदा देव्या तस्मै प्रीत्या च राधया ॥५९॥
मणीन्द्रसारनिर्माणं छत्ररत्नं मनोहरम् । मुक्तामाणिक्यसारेण हीरहारसमन्वितम् ॥६०॥
विचित्ररत्नपद्मेन विचित्रं वारुणं[2] सदा । शोभितं[1] परितश्चान्यै रत्ननिर्माणदर्पणैः ॥६१॥
यद्दत्तं ब्रह्मणा प्रीत्या हरये रासमण्डले । सुप्रीत्या राधया तत्र प्रदत्तमुद्धवाय च ॥६२॥

---

आपकी सेवा करती ही हैं, कुछ प्रिय सखियाँ तो श्वेत चामरों द्वारा सेवा में निरन्तर संलग्न हैं, किन्तु मैं चाहता हूँ कि—आप रत्नों के सारभाग के बने अति मनोहर इस सिंहासन पर सुखासीन हों और तब भक्त गोपियाँ आपके चरणारविन्द की सेवा करती रहें । हे मुने ! इतना कहकर उद्धव राधा जी के चरण-कमल को जिसकी वन्दना ब्रह्मा आदि देवगण नित्य किया करते हैं, प्रणाम करके चुप हो गये ॥४६-५२॥ उद्धव की बात सुनकर मुसकराती हुई पतिव्रता राधिका ने उपहार के रूप में उन्हें रत्नों के सारभाग की बनी अँगूठी प्रदान की, जो अमूल्य, सुन्दर, रमणीक एवं विश्वकर्मा द्वारा बनायी गयी थी । फिर अमूल्य रत्नों के बने दो मणिमय कुण्डल दिये, जिनमें मुख दिखायी पड़ता था, जिनका रंग पीला था, जो अपूर्व थे तथा उत्तम प्रदीप के समान भास्वर थे, जिन्हें रास-मण्डल में अग्नि ने भगवान् कृष्ण को प्रदान किया था । फिर अमूल्य रत्नों के बने समस्त अभीष्ट आभूषण, रत्नों के निर्माण में सर्वश्रेष्ठ, अग्नि विशुद्ध दो वस्त्र, हीरों का अति मनोहर हार, जिसे पूर्वसमय वरुण ने बड़े प्रेम से कृष्ण को दिया था, तथा सूर्य द्वारा भगवान् कृष्ण को दिया गया स्यमन्तक मणि भी उद्धव को दे दिया । वह मणि पूर्व-काल में राधा को भगवान् ने अर्पित किया था ॥५३-५८॥ इसके बाद महेन्द्र का दिया हुआ परमोत्तम रत्न-सिंहासन भी देवी राधा ने अत्यन्त प्रसन्नता से उद्धव को समर्पित किया । पुनः मणीन्द्र के सारभाग का बना हुआ वरुण का मनोहर छत्ररत्न, जो मुक्ता और माणिक्य के सारभाग समेत हीरों के हार से सुशोभित, विचित्र रत्न कमल द्वारा चित्रित, रत्न दर्पणों से चारों ओर भूषित एवं ब्रह्मा द्वारा रासमण्डल में सप्रेम श्रीकृष्ण को

---

१ ख. °शोभं । २ क. वारुणा ।

मणिसारविनिर्माणं मणिराजविराजितम् । जपामाल्यं संस्कृतं च यद्दत्तं शंभुना पुरा ॥६३॥
तदेव दत्तं तस्मै चाप्यमूल्यं पुण्यदं शुभम् । जन्ममृत्युजराव्याधिहरं चातिमनोहरम् ॥६४॥
चन्द्रकान्तमणिं रम्यं चन्द्रदत्तं परिष्कृतम् । चन्द्रावलीं ददौ तस्मै सुदीप्तं पूर्णचन्द्रवत् ॥६५॥
विशुद्धं मधुपूर्णं च मधुपात्रं यदक्षयम् । धर्मेण यत्प्रदत्तं च तद्दत्तं प्रियया हरेः ॥६६॥
जलभोजनपात्रं च शुद्धं स्वर्णविनिर्मितम् । मिष्टान्नं परमान्नं च ददौ सुस्वादुमिष्टकम्[1] ॥६७॥
भोजनं कारयित्वा च कर्पूरादिसुवासितम् । ताम्बूलं च ददौ शीघ्रं माल्यं सुस्निग्धचन्दनम् ॥६८॥
शुभाशिषं च प्रददौ वाञ्छितं प्रवरं वरम् । ज्ञानं कृष्णेन यद्दत्तं गोलोके रासमण्डले ॥६९॥
पुरुषाणां शतं यावन्निश्चलां कमलां ददौ । विद्यां यशस्करीं शुद्धां यशः कीर्तिं सुनिर्मलाम् ॥७०॥
सर्वसिद्धिं हरेर्दास्यं हरिभक्तिं च निश्चलाम् । पार्षदप्रवरत्वं च पार्षदं च हरेरिति ॥७१॥
वरं प्रसादं दत्त्वा च समुत्थाय मुदाऽन्वितम् । वह्निशुद्धांशुके धृत्वा चामूल्यं रत्नभूषणम् ॥७२॥
हीरहारं रत्नमालां परिधाय मनोहराम् । सिन्दूरं कज्जलं पुष्पमाल्यं सुस्निग्धचन्दनम् ॥७३॥
रत्नसिंहासनस्थं तं पूजिता पूजितं मुदा । वेष्टिता हर्षनिरतं गोपीनां शतकोटिभिः ॥
तप्तकाञ्चनवर्णाभा शतचन्द्रसमप्रभा ॥७४॥

---

समर्पित था, राधा ने अत्यन्त प्रेम से उद्धव को सौंप दिया ॥५९-६२॥ अनन्तर मणि के सारभाग द्वारा सुरचित, मणिराजभूषित, सुसंस्कृत एवं जिसे पूर्वकाल में शिव ने दिया था, वह अमूल्य पुण्यप्रद, पवित्र, जन्म, मृत्यु, जरा एवं व्याधिनाशक और अतिमनोहर जपामाल्य उद्धव को दे दिया। पुनः चन्द्रप्रदत्त, परिष्कृत, रमणीक एवं पूर्ण चन्द्र के समान भास्वर रमणीक चन्द्रकान्त मणि तथा चन्द्रावली उद्धव को दे दी ॥६३-६५॥ विशुद्ध, मधुपूर्ण तथा अक्षय मधुपात्र, जिसे धर्मराज ने दिया था, राधा ने उद्धव को सौंप दिया ॥६६॥ सुवर्णनिर्मित शुद्ध भोजन-पात्र समेत जलपात्र प्रदान करके उन्हें मिष्टान्न समेत खीर तथा स्वादिष्ट अन्न का भोजन कराया। कर्पूरादि सुवासित ताम्बूल अर्पित किया, माला समेत अतिस्निग्ध चन्दन प्रदान किया ॥६७-६८॥ अभीष्ट शुभाशिष देकर प्रवर ज्ञान प्रदान किया, जिसे गोलोक के रासमण्डल में भगवान् कृष्ण ने राधा को बताया था। उनके कुल में सौ पीढ़ी तक कमला (लक्ष्मी) के निश्चल रहने के वरदान समेत यशस्करी विद्या, शुद्ध यश, अतिनिर्मल कीर्ति, समस्त सिद्धियाँ, भगवान् का दास्यपद, भगवान् की अटल भक्ति और भगवान् के श्रेष्ठ पार्षद होने का अभीष्ट वर प्रदान किया। इस भाँति प्रसन्नतापूर्वक वस्तु समेत वर प्रदान करने के अनन्तर राधिका जी ने उठकर अग्नि विशुद्ध युगल वस्त्र, अमूल्य रत्नों के आभूषण, हीरे के हार तथा मनोहर रत्नों की माला धारण करके सिन्दूर, काजल, पुष्पमाला एवं अतिस्निग्ध चन्दन लगाया और रत्नसिंहासनासीन उद्धव की अर्चना की। उस समय राधा के शरीर का रंग तपाये हुए सुवर्ण के समान चमकीला था और कान्ति सैकड़ों चन्द्रमाओं के सदृश उद्दीप्त थी। सौ करोड़ गोपियाँ उन्हें घेरे हुए थीं। तत्पश्चात् उन्होंने हर्षपूर्वक रत्नसिंहासन पर विराजमान हर्षमग्न उद्धव की पूजा करके कहा ॥६९-७४॥

---

१ ख. 'पिष्ठ'।

## राधिकोवाच

सत्यमायास्यति हरिः सत्यं निष्कपटं वद । वद तथ्यं भयं त्यक्त्वा सत्यं ब्रूहि सुसंसदि ॥७५॥
वरं कूपशताद्वापी वरं वापीशतात्क्रतुः । वरं क्रतुशतात्पुत्रः सत्यं पुत्रशतात्किल ॥७६॥
न हि सत्यात्परो धर्मो नानृतात्पातकं परम् ॥७७॥

## उद्धव उवाच

सत्यमायास्यति हरिः सत्यं द्रक्ष्यसि सुन्दरि । ध्रुवं त्यक्ष्यसि संतापं दृष्ट्वा चन्द्रमुखं हरेः ॥७८॥
मद्दर्शनान्महाभागे गतस्ते विरहज्वरः । नानाभोगसुखं भुक्त्वा त्यज चिन्तां दुरत्ययाम् ॥७९॥
अहं प्रस्थापयास्यामि गत्वा मधुपुरीं हरिम् । विधाय तत्प्रबोधं च कार्यमन्यत्करिष्यति ॥८०॥
विदायं कुरु मे मातर्यास्यामि हरिसंनिधिम् । सर्वं तं कथयिष्यामि त्वद्वृत्तान्तं यथोचितम् ॥८१॥

## राधिकोवाच

गमिष्यसि यदा वत्स मथुरा सुमनोहराम् । शृणु दुःखकथां कांचित्तिष्ठ वत्स स्थिरो भव ॥८२॥
मां विस्मृतो न भवसि विरहज्वरकातराम् । कथयिष्यसि मत्कान्तं ध्रुवं प्रस्थापयिष्यसि ॥८३॥
नारीणां मनसो वार्तां को वा जानाति पण्डितः । किंचिच्छास्त्रानुसारेण प्रकरोति निरूपणम् ॥८४॥

---

**राधिका बोलीं**—क्या कृष्ण सचमुच आयेंगे ? निष्कपट भाव से सत्य कहो, इस विशाल सभा में निर्भय होकर सत्य कहो ! क्योंकि सौ कूपों से एक बावली श्रेष्ठ है, सौ बावलियों से एक यज्ञ श्रेष्ठ है, सौ यज्ञों से एक पुत्र श्रेष्ठ है और सौ पुत्रों से बढ़कर सत्य है । सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं है और असत्य (झूठ) से बढ़कर कोई पातक नहीं है ॥७५-७७॥ (अनन्तर उद्धव ने कहा—)

**उद्धव बोले**—हे सुन्दरि ! भगवान् सचमुच आयेंगे, तुम सत्य ही उन्हें देखोगी और भगवान् के चन्द्रमुख का दर्शन करके निश्चित ही सन्ताप दूर करोगी ॥७८॥ हे महाभागे ! मेरे देखने से ही तुम्हारा विरह-ज्वर समाप्त हो गया । अनेक प्रकार के सुखों का उपभोग करके दुःखदायी चिन्ता को छोड़ दो ॥७९॥ मैं मथुरा-पुरी जाकर हरि को समझा-बुझाकर भेजूंगा । वे अन्य सभी कार्य पूर्ण करेंगे । माता ! अब मुझे बिदा दो। मैं भगवान् के पास जाऊंगा । वहाँ पहुँचकर तुम्हारा यथोचित वृत्तान्त उन्हें सुनाऊँगा ॥८०-८१॥

**राधिका बोलीं**—हे वत्स ! यदि तुम्हें उस अति मनोहर मथुरापुरी अब जाना ही है, तो थोड़े समय बैठो और सुस्थिर होकर कुछ मेरी दुःखद गाथा भी सुन लो । मैं उनके विरह ताप से अति संतप्त हूँ, अतः वहाँ पहुँचकर मुझे भूल न जाना और मेरे प्रियतम से कहना तथा उन्हें अवश्य भेज देना ॥८२-८३॥ अन्यथा स्त्रियों के मन की बात भला कौन विद्वान् जान सकता है ? विद्वान् शास्त्रानुसार कुछ ही निरूपण कर सकता है।

वेदा वक्तुं न शक्ताश्च शास्त्राणि किं वदन्ति च। कथयिष्यामि त्वां सर्वं पुत्र कृष्णं च वक्ष्यसि ॥८५॥
गेहे वने न भेदो मे पश्वादिषु तथा नृषु। किं वा जलं किमु स्वप्नमज्ञानं च दिवानिशम् ॥८६॥
आत्मानं च न जानामि चोदयं चन्द्रसूर्ययोः। क्षणं प्राप्य हरेर्वार्ता चेतनं मे बभूव ह ॥८७॥
कृष्णाकृतिं च पश्यामि शृणोमि मुरलीध्वनिम्। कुलं लज्जां भयं त्यक्त्वा चिन्तयामि हरेः पदम् ॥८८॥
संप्राप्य सर्वजगतामीश्वरं प्रकृतेः परम्। न ज्ञानं[1] मायया तस्य ज्ञात्वा गोपपतेर्मम ॥८९॥
ध्यायन्ते यत्पदाम्भोजं वेदा ब्रह्मादयः सुराः। स भर्त्सितो मया कोपाद्धृदि शल्यमिदं मम ॥९०॥
तत्पदाम्भोजसेवाभिर्गुणप्रस्तावतोऽपि वा। तद्भक्त्या यत्क्षणो नीतो ध्यातो ध्यानेन पूजया ॥९१॥
तत्रापि मङ्गलं सर्वं हर्षमायुर्व्यवस्थितम्। विघ्नं च हृदि संतापस्तद्विच्छेदे सदोद्धव ॥९२॥
क्रीडाप्रीतिर्न भविता तादृशीष्टा पुनर्मम। तादृशं प्रेमसौभाग्यं निर्जने न[2] च संगमः ॥९३॥
वृन्दावनं न यास्यामि तत्सङ्गे पुनरुद्धव। चन्दनं वा न दास्यामि नन्दनन्दनवक्षसि ॥९४॥
मालां तस्मै न दास्यामि न द्रक्ष्यामि मुखाम्बुजम्। मालतीनां केतकीनां चम्पकानां च काननम् ॥९५॥
पुनरेव न यास्यामि सुन्दरं रासमण्डलम्। हरिसङ्गे न यास्यामि रम्यं चन्दनकाननम् ॥९६॥

---

जब वेद उसका वर्णन करने में असमर्थता प्रकट करते हैं, तब शास्त्र क्या कह सकते हैं? किन्तु पुत्र! मैं तुम्हें सब कुछ बताऊँगी, तुम जाकर कृष्ण से कहना ॥८४-८५॥ मुझे (उनके वियोग के कारण) घर और वन में पशु आदि तथा मनुष्य में जल और (स्थल में?) स्वप्न में कोई भेद ज्ञान नहीं रहता है, दिन-रात अज्ञान में पड़ी रहती हूँ। मैं अपने को स्वयं नहीं जानती हूँ, सूर्य-चन्द्रमा का उदय-अस्त नहीं मालूम होता है, केवल भगवान् का कुशल समाचार सुनने के कारण मुझे इस समय क्षणिक चेतना प्राप्त हुई है ॥८६-८७। मैं (सभी समय) भगवान् के स्वरूप को देखती हूँ, मुरली की तान सुनती हूँ; अपने कुल की लज्जा और भय त्यागकर मैं हरि के चरण का ध्यान करती हूँ। समस्त जगत् के अधीश्वर एवं प्रकृति से परे रहनेवाले उस ईश्वर को पाकर मुझे उनकी माया के कारण ज्ञान न हुआ, मैं उन्हें गोपपति ही समझती रही ॥८८-८९॥ ब्रह्मा आदि देवगण और चारों वेद जिनके चरणकमल का ध्यान सतत करते रहते हैं, मैंने क्रुद्ध होकर उनकी भर्त्सना की है, यह बात मेरे हृदय में कांटे की तरह चुभ रही है। हे उद्धव! उनके चरणकमल की सेवा, उनके गुणगान एवं भक्तिपूर्वक उनके ध्यान-पूजन द्वारा जो क्षण मेरे बीतते हैं उनमें मेरा सभी भाँति का मङ्गल, हर्ष और आयु की सुव्यवस्था पूर्णरूपेण निहित है। अब उनके वियोग में हृदय में संताप रूप विघ्न सदा वर्तमान रहता है, इसी कारण पुनः उनके साथ निर्जन में वैसी क्रीडा, प्रेम, सौभाग्य और मिलन अब न हो सकेगा ॥९०-९३॥ उनके साथ पुनः उनके वृन्दावन न जा सकूंगी; उन नन्द-नन्दन के हृदय में चन्दन का लेप न कर सकूंगी। न उन्हें माला पहना सकूंगी न उनका मुखकमल देख सकूंगी। मालती, केतकी एवं चम्पा के वनों में और सुन्दर रासमण्डल में न जा सकूंगी। हरि के साथ रमणीक चन्दन वन, मलय के रत्नमन्दिर, माधवीवन, रमणीक एवं रहस्यमय

---

१ क. ज्ञातं मायया यस्य ज्ञात्वा गोपपतिर्मं। २ क. नवसं।

पुनरेव न यास्यामि मलयं रत्नमन्दिरम् । माधवीनां वनं रम्यं रहस्यं मधुकाननम् ॥९७॥
श्रीखण्डकाननं रम्यं स्वच्छं चन्द्रसरोवरम् । विस्पन्दकं सुरवनं नन्दनं पुष्पभद्रकम् ॥९८॥
भद्रकं हरिणां सार्धं न यास्यामि पुनः पुनः । क्व सा रम्या विकसिता माधवे माधवीलता ॥९९॥
क्व गता माधवो रात्रिः क्व मधुः क्वापि माधवः । इत्येवमुक्त्वा सा राधा ध्यात्वा कृष्ण-पदाम्बुजम् ॥
पुनर्मूर्च्छां च संप्राप्य रुवती पुलकान्विता ॥१००॥

इति श्रीब्रह्म० महा० नारदना० श्रीकृष्णजन्मख० उत्तर० राधोद्धवसं०
त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥९३॥

•

# अथ चतुर्नवतितमोऽध्यायः

नारायण उवाच

उद्धवो विस्मयं प्राप्य भयं च विपुलं मुने । चेतनं कारयामास तामुवाच मृतामिव ॥१॥
तद्भक्तिं समभिज्ञाय स्वात्मानं भक्तसंख्यकम् । तुच्छं मेने जगत्सर्वं दृष्ट्वा भाग्यवतीं[1] सतीम् ॥२॥

---

मधुवन, श्रीखण्डवन, रमणीक एवं स्वच्छ चन्द्रसरोवर, देवों के नन्दन वन, पुष्पभद्रक और भद्रक वन में अब भगवान् के साथ जाने का सुअवसर कभी न मिलेगा । वसन्त ऋतु में विकसित वह सुन्दर माधवीलता कहाँ है ? वसन्त की रात कहाँ चली गयी ? वसन्त ऋतु कहाँ चला गया ? और हाय ! वे माधव कहाँ गये ? इतना कहकर भगवान् कृष्ण के चरण-कमल का ध्यान करने लगीं । उनके शरीर में रोमांच हो आया और वे रोती हुई पुनः मूर्च्छित हो गयीं ॥९४-१००॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारायण-नारद के संवाद में
राधा और उद्धव के संवाद वर्णन नामक तिरानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥९३॥

•

## अध्याय ९४

### उद्धवकृत राधा-प्रार्थना

**नारायण बोले**—मुने ! राधिका को मृतक के समान मूर्च्छित पड़ी देखकर उद्धव को आश्चर्य एवं अत्यन्त भय प्राप्त हुआ । उपरान्त उन्होंने किसी प्रकार उनमें चेतना करायी और उनसे बोले ॥१॥ पतिव्रता एवं भाग्यवती राधिका की भक्ति देखकर उद्धव ने भक्तों की गणना में अपने को और समस्त जगत् को अत्यन्त तुच्छ समझा ॥२॥

---

१ क. भागव° ।

## उद्धव उवाच

चेतनं कुरु कल्याणि जगन्मातर्नमोऽस्तु ते। त्वमेव प्राक्तनं सर्वं कृष्णं द्रक्ष्यसि सांप्रतम् ॥३॥
त्वत्तो विश्वं पवित्रं च त्वत्पादरजसा मही। सुपवित्रं त्वद्वदनं पुण्यवत्यश्च गोपिकाः ॥४॥
लोकास्त्वामेव गायन्ति संगीतैर्मङ्गलस्तवैः। त्वत्सुकीर्ति च देवाश्च[1] सनकाद्याश्च संततम् ॥५॥
कृतपापहरां पुण्यां तीर्थपूजां च निर्मलाम्। हरिभक्तिप्रदां भद्रां सर्वविघ्नविनाशिनीम् ॥६॥
त्वमेव राधा त्वं कृष्णस्त्वं पुमान्प्रकृतिः परा। राधामाधवयोर्भेदो न पुराणे श्रुतौ तथा ॥७॥
राधिकां मूर्च्छितां दृष्ट्वा पश्चात्कृत्वा तमुद्धवम्। उवाच माधवी गोपी राधायाः पुरतः स्थिता ॥८॥

## माधव्युवाच

किं वा चोरस्य कृष्णस्य रूपं वा वेषमुत्तमम्। किं सुखं विभवं किं वा गौरवं चाप्यनुत्तमम् ॥९॥
किं वा तद्वीर्यमैश्वर्यं शौर्यं वा दुरतिक्रमम्। किं वा सिद्धं प्रसिद्धं वा किं वा तुल्यं गुणोत्तमम् ॥१०॥
इतो वा कुत आयातः पुनरेव कुतो गतः। बालको गोपवेषश्च नहि राजात्मजः पुमान् ॥११॥
त्वं किं स्मरसि कल्याणि गोपालं नन्दनन्दनम्। आत्मानं रक्ष यत्नेन कः प्रियः स्वात्मनः परः ॥१२॥

---

**उद्धव बोले**—हे जगत् की माता! हे कल्याणि! चेतना लाओ, तुम्हें नमस्कार है। तुम्हीं पूर्वजन्मकृत समस्त कर्म हो। अब तुम्हें श्रीकृष्ण के दर्शन होंगे ॥३॥ यह समस्त विश्व तुम्हीं से पवित्र हुआ है, तुम्हारे चरण-कमल की धूलि से यह पृथ्वी पवित्र हुई है। तुम्हारा वदन अत्यन्त पवित्र है और गोपिकाएँ पुण्यवती हैं ॥४॥ संगीत एवं मंगल स्तोत्रों द्वारा लोग गीत तथा मंगल-स्तोत्रों द्वारा तुम्हारा ही (गुण) गान करते हैं, देवगण और सनकादि ऋषिगण निरन्तर तुम्हारी ही पवित्र कीर्ति का वर्णन करते हैं, जो (कीर्ति) पापहारिणी, पुण्यस्वरूपा, तीर्थपूजारूप, निर्मल, भगवान् की भक्ति देनेवाली, कल्याणरूपा एवं समस्त विघ्नों का विनाश करनेवाली है ॥५-६॥ तुम्हीं राधा, तुम्हीं कृष्ण, तुम्हीं पुरुष और तुम्हीं पराप्रकृति हो। पुराणों और वेदों में कहीं भी राधा-माधव का भेद वर्णन नहीं किया गया है। तदुपरान्त राधा को मूर्च्छित देखकर उन उद्धव को पीछे करके और राधा के सामने खड़ी होकर माधवी गोपिका कहने लगी ॥७-८॥

**माधवी बोली**—उस चोर कृष्ण के रूप, उत्तम वेश, सुख, ऐश्वर्य, परमोत्तम गौरव, पराक्रम, ऐश्वर्य, अपार शौर्य, सिद्धि और प्रसिद्धि ही क्या है? तुम्हारे सदृश उनमें कौन-सा उत्तम गुण है? वे यहाँ कहीं से आ गये और पुनः कहीं चले गये। गोप के वेश में वे बालक ही तो हैं। कोई राजकुमार नहीं हैं। अतः हे कल्याणि! उस नन्द नन्दन गोपाल का तुम स्मरण ही क्यों करती हो? तुम प्रयत्नपूर्वक अपनी रक्षा करो, क्योंकि आत्मा से बढ़कर कौन होता है ॥९-१२॥

---

१ क. वेदाश्च सनकश्चापि सं°।

## मालत्युवाच

धिक्त्वां राधेऽतिनिर्लज्जां तवैव जीवनं वृथा। जगतो युवतीनां च करोषि सुयशःक्षयम् ॥१३॥
नारीणां गोपनं कार्यं सुव्यक्ते स्वयशःक्षयम्। यत्नेन चक्षुषो याऽहं सखि संचरणं[1] कुरु ॥१४॥
अन्तरे पतिभावं च संगोप्य भावनं कुरु। न वै जातिश्च शत्रूणां मित्राणां च सुरेश्वरि ॥१५॥
शत्रुः कार्यवशेनैव मित्रं च कर्मणा भवेत्। स्वकार्यमुद्धरेत्प्राज्ञः कार्यध्वंसेन मूर्खता ॥१६॥
कः कस्य वल्लभो राधे कः कस्याप्रिय एव च। कार्यं च समयं ज्ञात्वा सन्तः कुर्वन्ति संततम् ॥१७॥
शत्रुर्धनापहारी च प्राणहर्ता ततः परः। कटुवक्ता दुःखदाता शत्रूणां लक्षणं शृणु ॥१८॥
स्वकुलात्त्वां बहिष्कृत्य विसृज्य शोकसागरे। गृहीत्वा चेतनं प्राणान्निष्ठुरो दारुणो गतः ॥१९॥
किं किं स्मरसि मूढे हि त्यज शोकं सुदारुणम्। आत्मानं रक्ष यत्नेन कः प्रियः स्वात्मनः परः ॥२०॥

## पद्मावत्युवाच

भवता कथितं पूर्णं यमुनाजलसंनिधौ। अरसस्य रतिर्दूरं नारीणां न सुखं प्रिये ॥२१॥
विद्युज्ज्वाला जले रेखा खलानां प्रीतिरेव च। न नीतिर्नीतिशास्त्रेषु सुविश्वासः खलेषु च ॥२२॥

---

**मालती बोली**—हे राधे ! तुम्हारी इस अतिनिर्लज्जता को धिक्कार है और तुम्हारा जीवन व्यर्थ है। इस समय तुम समस्त संसार की युवतियों के सुयश का नाश कर रही हो, स्त्रियों को अपना कार्य सदैव गुप्त रखना चाहिए, क्योंकि प्रकट हो जाने पर अपने ही यश का नाश होता है। अतः हे सखि ! (आँखें खोलो और) यत्नपूर्वक नेत्रों का संचार करो (अर्थात् आँखों से इधर-उधर देखो)। भीतर हृदय में पति भाव को गुप्त रखकर अपना प्रेम (कार्य) करो। हे सुरेश्वरि ! शत्रु और मित्र की कोई जाति नहीं होती है। कार्य के अनुरोधवश कोई शत्रु हो जाता है और कर्म द्वारा ही कोई मित्र होता है ॥१३-१५॥ बुद्धिमान् व्यक्ति अपने कार्य को बना लेता है, क्योंकि कार्य को बिगड़ने देना मूर्खता है ॥१६॥ राधे ! कौन किसका प्रिय है और कौन किसका अप्रिय ? (सज्जन) पुरुष समय को पहचानकर निरन्तर कार्य करते हैं ॥१७॥ शत्रु का लक्षण सुनो। शत्रु, धन और प्राण का अपहरण करनेवाला, अप्रियवादी एवं दुःख देनेवाला होता है ॥१८॥ तुम्हें अपने कुल (जाति-बिरादरी) से बहिष्कृत कराकर अपने वियोग द्वारा शोक-सागर में छोड़कर और तुम्हारा चेतन प्राण लेकर निष्ठुर एवं भयंकर कृष्ण चले गये। मूढ़ ! फिर क्यों तुम उनका स्मरण करती हो ? इस भीषण शोक का त्याग करो और यत्नपूर्वक अपनी रक्षा करो, क्योंकि आत्मा से बढ़कर कौन प्रिय होता है ? ॥१९-२०॥

**पद्मावती बोली**—प्रिये ! यमुना-जल के समीप एक बार आपने पूर्णरूप से कहा था कि अरसिक पुरुष का प्रेम ही बहुत दूर रहता है, उससे स्त्रियों को कभी सुख नहीं मिल सकता है। क्योंकि (बिजली) की

---

१ क. संवरणं।

यदा त्वं यमुनाकूले मुखं वीक्ष्य हरेरहो । सस्मितं सकटाक्षं च पुनः कृत्वाऽस्य गोपनम् ॥२३॥
पुनः पुनस्त्वं संवीक्ष्य त्वया त्यक्तं च चेतनम् । गृहं[1] त्यक्त्वा गुरुभयं सखीनां वचनं शुभम् ॥२४॥
संततं ध्यायसे कृष्णं नाऽऽहारं जीवनं तथा । क्व कृष्णो मथुरायां च क्वापि त्वं कदलीवने ॥२५॥
त्वं यदि त्यजसि प्राणांस्नाऽऽविर्भवति सोऽधुना । काले द्रक्ष्यसि स्वात्मानं यदि रक्षसि सुन्दरि ॥२६॥

## चन्द्रमुख्युवाच

प्राक्तनेन शुभं सर्वं सुखं च विभवश्चिरम् । दुःखं शोको प्राक्तनेन विपत्संपच्च सांप्रतम् ॥२७॥
भारते पुण्यभूमौ च सर्वेषामीप्सिते वरे । लभेत्पतिं हरिं कान्तं तपसा प्रकृतेः परम् ॥२८॥
तथाऽपि प्रदहेद्गात्रं कामबाणेन सांप्रतम् । अस्याः शत्रुः कथं चन्द्रो मधुर्वा मधुमाधवौ ॥२९॥
शंकरेण प्रदग्धोऽभूत्पुनरेव स मन्मथः । चन्द्रं भक्षतु राहुश्च पुनश्चोद्वमनं तथा ॥३०॥
मधुश्च मित्रशोकेन प्राणांस्त्यक्त्वा ययौ[2] यमम् । सुधासिन्धुश्च चेन्दुर्यो विषसिन्धुश्च मां प्रति ॥३१॥

---

चमक और जल में की गयी रेखा की भाँति ही खल की प्रीति (क्षणिक) होती है। इसी कारण नीतिशास्त्रों में यह नीति बनायी गयी है कि—खल का कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिए। जिस समय यमुना-तट पर हरि का मुख देखते ही तुमने मन्द मुसकान समेत बार-बार सुन्दर कटाक्ष किया था और उसे गुप्त भी रखा था; किन्तु पुनः उन्हें बार-बार देखने से (आसक्ति के कारण) तुम्हारी चेतना लुप्त-सी हो गयी थी। उसी का यह परिणाम है कि तुमने घर और गुरुजनों के भय को त्यागकर सखियों की बात भी अनसुनी कर दी है और कृष्ण का निरन्तर ध्यान करती हो। आहार और जीवन की भी अपेक्षा नहीं करती हो ॥२१-२४॥ कृष्ण कहाँ मथुरा में रह रहे हैं और तुम कहाँ कदली वन में पड़ी हो। यदि तुम उनके लिए अपने प्राणों को भी त्याग दो, तो वे इस समय यहाँ प्रकट नहीं होंगे। अतः हे सुन्दरि ! यदि तुम अपनी रक्षा करती हो तो समय आने पर उनका दर्शन अवश्य करोगी ॥२५-२६॥

**चन्द्रमुखी बोली**—पूर्वजन्म के कर्मानुसार सभी प्रकार के कल्याण, सुख, चिरकालीन ऐश्वर्य, दुःख, शोक, विपत्ति और सम्पत्ति की प्राप्ति होती है। सम्प्रति सबके लिए अभीष्ट और श्रेष्ठ पुण्यभूमि भारत में तप के द्वारा तुम प्रकृति से परे प्रियतम हरि को पति के रूप में प्राप्त करोगी ॥२७-२८॥ इस समय काम के बाणों से अपनी देह को क्यों जला रही हो ? चन्द्रमा, कामदेव या वसन्त इसके शत्रु कैसे हैं ! क्योंकि शिव ने कामदेव को दग्ध कर दिया था। राहु ने चन्द्रमा को निगलकर उगिल दिया था और वसन्त अपने मित्र के शोक में प्राण त्यागकर यमराज के पास पहुँच गया था। जो चन्द्रमा सुधा का सिन्धु कहलाता था, वह मेरे लिए (मेरी सखी के लिए) विष-सिन्धु हो गया है। उत्तम वेश प्रज्वलित अग्नि के समान है, चन्दन घी की आहुति हो गया

---

१ क. °हं कार्यं गु°। २ ख. °वनम्।

सुवेषः स्याज्ज्वलद्वह्निश्चन्दनं तद् घृताहुतिः । संततं प्रवहेद्गात्रं सुगन्धिश्च समीरणः ।।३२।।
त्यक्ताहारा मम सखी पश्य श्वसिति जीवति । प्रशंसां कुरु कृष्णस्य मुखेन कुरुनन्दन ।।३३।।
तन्नामस्मृतिमात्रेण तद्गुणश्रवणेन च । तद्वार्तया च शुभया सहसा चेतनं भवेत् ।।३४।।

## शशिकलोवाच

त्वं किं माधवि जानासि कृष्णमात्मानमीश्वरम् । यं तं ब्रह्मादयो देवा वेदाश्चत्वार एव च ।।३५।।
ध्यायन्ति संततं सन्तः पादपद्मं सुरेप्सितम् । पद्मा सरस्वती दुर्गा सोऽनन्तोऽपि महेश्वरः ।।३६।।
यं न जानन्ति सिद्धेन्द्र मुनीन्द्रा मनवस्तथा । सर्वात्मनः कुतो रूपं निर्गुणस्य कुतो गुणाः ।।३७।।
सत्यमुक्तं च सत्यस्य यत्तदेव यथोचितम् । धत्ते भारावतरणे पृथिव्याश्च मनोहरम् ।।३८।।
सुखमाह्लादकं रम्यं भक्तानुग्रहविग्रहम् । किमनिर्वचनीयं च रूपं जनमनोहरम् ।।३९।।
कोटिकन्दर्पलावण्यं लीलाधाम शुभाश्रयम् । यत्पादपद्ममधुरं मधु मन्दाकिनीजलम् ।।४०।।
दध्रे शिरसि भक्त्या च सर्वेशः शंकरः परः । शश्वत्करोति वैरागी तीर्थकीर्तेश्च कीर्तनम् ।।४१।।
क्षणं नृत्यति भक्त्या च पञ्चवक्त्रेण गायति । आहारं भूषणं वस्त्रं परित्यज्य दिगम्बरः ।।४२।।

---

है और सुगन्धित वायु शरीर को निरन्तर जला रहा है ।।२९-३२।। देखो मेरी यह सखी खान-पान छोड़कर निश्चेष्ट केवल श्वास मात्र से जीवित है। अतः हे कुरुनन्दन ! अपने मुख द्वारा कृष्ण की अत्यन्त प्रशंसा करो, क्योंकि उनके नाम स्मरण मात्र से तथा उनके गुणों के श्रवण और उनके शुभ समाचार से इन्हें शीघ्र चेतना प्राप्त हो जायगी ।।३३-३४।।

**शशिकला बोली**—माधवि ! ब्रह्मा आदि समस्त देवता एवं चारों वेद जिनके ध्यान में मग्न रहते हैं, जिनके देवताओं द्वारा सतत अभीप्सित चरण-कमल का संत लोग सदा ध्यान करते हैं, कमला, सरस्वती, दुर्गा, अनन्त, महेश्वर, सिद्धेन्द्र, मुनीन्द्र और मनुगण भी जिन्हें जानने में असमर्थ हैं, उन परमात्मा श्रीकृष्ण को क्या तुम जानती हो ? जो सर्वात्मा हैं, उनका कैसा रूप ? और जो निर्गुण हैं, उनके कैसे गुण ? सत्यस्वरूप भगवान् के जिस सत्यस्वरूप का वर्णन किया गया है, जो सुखदायक, आह्लादजनक, रमणीय, भक्तानुग्रहमूर्ति, लीलाधाम और मंगलों का आश्रयस्थान है, जिसका लावण्य करोड़ों कामदेव से बढ़कर है, जिस जन-मनोहर रूप से बढ़कर अनिर्वचनीय कोई भी रूप नहीं है, उसी मनोहर रूप को श्रीकृष्ण पृथ्वी का भार उतारने के समय धारण करते हैं। मन्दाकिनी का जल जिनके मधुर पाद-पद्मों का धोवन है, जिसे परात्पर सर्वेश्वर शंकर भक्ति-पूर्वक अपने सिर पर धारण करते हैं, विरक्त होकर सदा उन तीर्थकीर्ति का कीर्तन करते हैं तथा भोजन, वस्त्र एवं भूषण को त्यागकर दिगम्बर (नग्न) होकर भक्ति के आवेश में क्षणभर में नृत्य करने लगते हैं और अपने पाँचों मुखों द्वारा उनके गुणों का गान करने लगते हैं, ब्रह्मा, शेष, सनत्कुमार और योगवेत्ता सिद्धों के समुदाय जिनके परम

ब्रह्म ज्योतिःस्वरूपं च ध्यात्वा शुभ्रं सुनिर्मलम् । ब्रह्मा च तपसा जन्म नयत्येव हि सेवया ॥
शेषः सनत्कुमारश्च सिद्धसंघश्च योगवित् ॥४३॥

## सुशीलोवाच

निर्मञ्छनार्हं न भवेत्तस्य कामशतं शतम् । चन्द्रोऽश्विनीकुमारो वा रूपेषु केन गण्यते ॥४४॥
असंख्येषु च विश्वेषु ब्रह्मविष्णुशिवादयः । मुनयो मनवः सिद्धा भक्ताः सन्तश्च संततम् ॥४५॥
ध्यायन्ते यत्पदाम्भोजं निर्गुणस्याऽऽत्मनश्च वै । वेदाः स्तोतुं न शक्ताश्च यमीशं च सरस्वती ॥४६॥
जडीभूता च भीता च स्तवनेन क्षमापयेत् । सहस्रवक्त्रः स्तवने कम्पितश्च निरन्तरम् ॥४७॥
वेदानां जनको ब्रह्मा स्तोत्रेण तस्य हीश्वरः । तं सत्यं नित्यमीशं च माधवी परिनिन्दति ॥४८॥
अपवित्रा सभा भूता गोपीनां जीवनं वृथा । तासु पुण्यवती राधा ध्यायते यं दिवानिशम् ॥४९॥
यन्नामस्मृतिमात्रेण कोटिजन्मार्जितं सखि । कृतपापभयं शोकः प्रणश्यति न संशयः ॥५०॥

## रत्नमालोवाच

दधार वामहस्तेन शैलं गोवर्धनं हरिः । ततः किं तद्यशः शौर्यं जगतां जनकस्य च ॥५१॥
शैलानां च सहस्रं यो भेत्तुं शक्तश्च दैत्यराट् । लीलामात्रेण तेषां च लक्षं हन्तुं क्षमो हरिः ॥५२॥

---

निर्मल शुभ्र ब्रह्मज्योतिः स्वरूप का ध्यान करके तपस्या एवं सेवा द्वारा जीवन-यापन करते हैं, उन श्रीकृष्ण की महिमा कौन जान सकता है ? ॥३५-४३॥

**सुशीला बोली**—सैकड़ों कामदेव उन (श्रीकृष्ण) की तुलना के योग्य नहीं हैं और उनके समक्ष रूप-सौन्दर्य में चन्द्रमा या अश्विनी कुमारों की क्या गणना हो सकती है ॥४४॥ असंख्य ब्रह्माण्डों में ब्रह्मा, विष्णु एवं शिवादि देवगण, मुनिवृन्द, मनुगण, सिद्ध लोग, भक्त और सन्त महात्मा जिस निर्गुण परमात्मा के चरण-कमल का सतत ध्यान करते हैं, जिनकी स्तुति करने में चारों वेद असमर्थ हैं, सरस्वती जड़ीभूत हो जाती हैं और भयभीत होकर स्तुति द्वारा उनसे क्षमा प्रार्थना करती हैं, सहस्रमुखवाले शेष जिनकी स्तुति करने में निरन्तर कम्पित होते हैं, वेदों के जनक ब्रह्मा जिसके स्तोत्र द्वारा ईश्वर कहलाते हैं, उन सत्य, नित्य, परमेश्वर की माधवी निन्दा कर रही है ॥४५-४८॥ इसलिए यह सभा अपवित्र हो गयी और गोपियों का जीवन व्यर्थ हो गया। इनमें केवल राधा ही पुण्यवती हैं, जो दिन-रात उनका ध्यान करती रहती हैं, जिनके नामस्मरण मात्र से, सखी ! करोड़ों जन्मों के पाप का भय और शोक नष्ट हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं ॥४९-५०॥

**रत्नमाला बोली**—कृष्ण ने बायें हाथ से गोवर्धन पर्वत को धारण किया था, तो उससे जगतों के जनक का क्या यश और शौर्य बढ़ा ? क्योंकि जो सहस्रों पर्वतों को खण्ड-खण्ड कर सकता है ऐसे लाखों दैत्यराजों को

यदंशकलया जातः सूकरो विष्णुरीश्वरः । वसुधां दशनाग्रेण चोद्धार च लीलया ॥५३॥
शैलानां च सहस्राणि यत्र सन्ति महीतले । दैत्याश्च वाऽप्यसंख्याश्च वीराः शूरास्तथैव च ॥५४॥
तेनैव कर्मणा तस्य न शौर्यं न च पौरुषम् । न यशश्च प्रशंसा वा सखि सर्वात्मनाऽऽत्मना ॥५५॥

## पारिजातोवाच

सप्तद्वीपा च वसुधा सशैलवनसागरा । काञ्चनीभूमिसहिता सर्वाधारा मनोहरा ॥५६॥
सप्त स्वर्गाश्च विविधा ब्रह्मलोकावधि प्रिये । विचित्राः सुन्दराश्चैव पातालानां च सप्त च ॥५७॥
एतैः परिमितं विश्वं ब्रह्माण्डं ब्रह्मणा कृतम् । महद्विष्णोर्लोमकूपे तदेवं चाणुवत्स्थितम् ॥५८॥
तस्य यावन्ति लोमानि तानि विश्वानि सन्ति च । स एव षोडशांशश्च कृष्णस्य परमात्मनः ॥५९॥
तस्यैव किं यशः शौर्यं महिमानमनूपमम् । घस्मरी[1] गोपकन्या च किं वा जानाति माधवी ॥६०॥

## माधव्युवाच

मया यदुक्तं न ज्ञात्वा मूढा जल्पन्ति गोपिकाः । उद्धव शृणु मे वाक्यं यन्मया कथितं शुभम् ॥६१॥
स्वेच्छया सगुणो विष्णुः स्वेच्छया निर्गुणो भवेत् । भुवो भारावतरणे गोपवेषः शिशुर्विभुः ॥६२॥

---

लीला की भाँति मारने में कृष्ण समर्थ हैं ॥५१-५२॥ उनकी अंशकला से अवतीर्ण ईश्वर विष्णु ने सूकर का रूप धारण करके उस पृथ्वी को अपने दाँत के अग्रभाग से लीलापूर्वक उद्धार किया, जिसके तल पर हजारों पर्वत, असंख्य दैत्य तथा शूर-वीर रहते हैं ॥५३-५४॥ हे सखि ! उस कर्म से भी उनकी वीरता, पौरुष, यश या प्रशंसा नहीं होती; क्योंकि वे सर्वात्मा हैं ॥५५॥

**पारिजाता बोली**—प्रिये ! सातों द्वीप, पर्वत, वन, सागर, काञ्चनी भूमि (मेरु पर्वत), सातों स्वर्ग और ब्रह्मलोक पर्यन्त सबकी आधार यह मनोहारिणी वसुन्धरा है जिसके नीचे विचित्र एवं सुन्दर सात पाताल स्थित हैं और यही सब मिलकर विश्व (अर्थात् ब्रह्माण्ड) कहलाता है । जिसका निर्माण ब्रह्मा करते हैं, वही (ब्रह्मा) महाविष्णु के लोमकूप में अणुवत् (सूक्ष्म रूप से) अवस्थित रहता है ॥५६-५८॥ क्योंकि जितने लोम हैं उतने ब्रह्माण्ड उनमें अवस्थित हैं । सो वह महाविष्णु परमात्मा कृष्ण का सोलहवाँ अंश है ॥५९॥ इसलिए उस हरि के यश, शौर्य और अनुपम महिमा का क्या वर्णन किया जाय ? अथवा यह पेटू गोपकन्या माधवी उसे क्या जाने ? ॥६०॥

**माधवी बोली**—उद्धव ! मेरी बातों को न समझकर ये मूढ़ गोपियाँ व्यर्थ की बात कर रही हैं । अतः मेरी कही हुई शुभ बात सुनिये ॥६१॥ भगवान् विष्णु अपनी इच्छा से सगुण होते हैं और अपनी ही इच्छा से निर्गुण । वह परमात्मा पृथ्वी के भार उतारने के निमित्त गोपवेश धारणकर शिशुरूप में अवस्थित हैं ॥६२॥

---

१ ख. 'यत्स्मरी ।

यदि वेदाः पुराणानि सिद्धाः सन्तश्च संततम् । ब्रह्मेशशेषभक्ताश्च न जानन्ति यमीश्वरम् ॥६३॥
तं किं जानामि मूढाऽहं घस्मरी[1] गोपकन्यका । तथाऽपि मद्वचः सत्यं श्रूयतां वत्स तत्क्षणम् ॥६४॥
किमनिर्वचनीयं च रूपं शौर्यं यशो बलम् । वीर्यं वेषं च सिद्धिं चाप्यन्यो वा यो[2] गुणो हरेः ॥६५॥
स्वेच्छामयस्य तस्यैव सगुणस्य च सांप्रतम् । किमनिर्वचनीयं च वर्तते तद्विशेषणम् ॥६६॥
निर्गुणस्य च विष्णोश्च देहहीनस्य स्वात्मनः । वर्तते च किमाख्येयं तस्य रूपादिकं च किम् ॥६७॥
मां निन्दति महामूढा न बुद्धा वचनं मम । एषा जानाति किं मूढा तं सत्यं प्रकृतेः परम् ॥६८॥
ज्योतिः स्वरूपं परमं परमात्मानमीश्वरम् । तमनिर्वचनीयं च भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥६९॥
यत्पादपद्मं पद्मा सा त्रैलोक्यजननी परा । सेवते कम्पिता भीता दासीवत्सततं भिया ॥७०॥
विष्णुमाया च प्रकृतिर्मूलरूपा सनातनी । ब्रह्मस्वरूपा परमा भीता दक्षिणपार्श्वतः ॥७१॥
सरस्वती जडीभूता भीता च परमेश्वरी । स्तोतुं न शक्ता वेदाः किं स्तुवन्ति परमेश्वरम् ॥७२॥
तासां तद्वचनं श्रुत्वा चोद्धवो भक्तिविह्वलः । पुलकाञ्चितसर्वाङ्गो रुरोद च पपात च ॥७३॥
मूर्च्छां संप्राप्य भक्त्या च ध्यात्वा तं परमेश्वरम् । तुच्छं मेने स चाऽऽत्मानं गोपीं भक्त्याऽप्युवाच सः ॥७४॥

---

यदि वेद, पुराण, सिद्धगण, सन्त-महात्मा, ब्रह्मा, महेश, शेष और भक्तगण उन्हें नहीं जानते हैं तो मैं मूढ़ एवं पेटू गोपकन्या उन्हें क्या जान सकती हूँ ? तथापि हे वत्स ! मेरी सच्ची बात इसी क्षण सुनिये । क्या भगवान् के रूप, शौर्य, यश, बल, वीर्य, वेश, सिद्धि या अन्य जो भी गुण हैं, अनिर्वचनीय हैं वे स्वेच्छामय सगुण कृष्ण का क्या वह विशेषण सम्प्रति अनिर्वचनीय है ? देह से रहित निर्गुण परमात्मा का क्या नाम है ? उसके रूप आदि भी क्या हैं ? ॥६३-६७॥ मेरी बात को न समझकर ये महामूढ़ गोपियाँ मेरी निन्दा कर रही हैं । यह मूर्खा प्रकृति से परे, सत्यरूप, ज्योतिःस्वरूप, परम, परमात्मा, ईश्वर, अनिर्वचनीय और भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए शरीरधारी को क्या जानें ? ॥६८-६९॥ उनके चरण-कमल की सेवा त्रैलोक्य-जननी कमला दासी की भाँति भयभीत होकर निरन्तर किया करती हैं । वह विष्णु की माया, मूलरूपा प्रकृति, सनातनी एवं ब्रह्मस्वरूपा है । फिर भी उनके दक्षिण पार्श्व से परम भयभीत रहती है । (इसी भाँति) परमेश्वरी सरस्वती भयभीत होने के कारण जड़ीभूत हो जाती है, जिससे स्तुति करने में असमर्थ रहती है । तो उस परमेश्वर की वेद क्या स्तुति कर सकते हैं ॥७०-७२॥ उन (गोपियों) की ऐसी बातें सुनकर उद्धव भक्ति से विह्वल हो गये । उनके सर्वाङ्ग में रोमाञ्च हो आया । वे रोदन करने लगे और मूच्छित होकर गिर पड़े । पश्चात् चेतना प्राप्त होने पर भक्तिपूर्वक परमेश्वर का ध्यान करके उद्धव (गोपियों के आगे) अपने को अत्यन्त तुच्छ समझने लगे और भक्तिपूर्वक उन्होंने गोपियों से कहा ॥७३-७४॥

---

१ ख. यत्स्म° । २ क. योऽगुणो हरिः ।

### उद्धव उवाच

धन्यं यशस्यं द्वीपानां जम्बुद्वीपं मनोहरम् । यत्र भारतवर्षं च पुण्यदं शुभदं तथा ॥७५॥
वणिजां च पुण्यकृतं वाणिज्यस्थलमीप्सितम् । अत्र कृत्वा सुपुण्यं च भुङ्क्तेऽन्यत्र शुभं फलम् ॥७६॥
धन्यं भारतवर्षं तु पुण्यदं शुभदं वरम् । गोपीपादाब्जरजसा पूतं परमनिर्मलम् ॥७७॥
ततोऽपि गोपिका धन्या मान्या योषित्सु भारते । नित्यं पश्यन्ति राधायाः पादपाद्मं सुपुण्यदम् ॥७८॥
षष्टिवर्षसहस्राणि तपस्तप्तं च ब्रह्मणा । राधिकापादपद्मस्य रेणूनामुपलब्धये ॥७९॥
गोलोकवासिनी राधा कृष्णप्राणाधिका परा । तत्र श्रीदामशापेन वृषभानसुताऽधुना ॥८०॥
ये ये भक्ताश्च कृष्णस्य देवा ब्रह्मादयस्तथा । राधायाश्चापि गोपीनां कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥८१॥
कृष्णभक्ति विजानाति योगीन्द्रश्च महेश्वरः । राधा गोप्यश्च गोपाश्च गोलोकवासिनश्च ये ॥८२॥
किंचित्सनत्कुमारश्च ब्रह्मा चेद्विषयी तथा । किंचिदेव विजानन्ति सिद्धा भक्ताश्च निश्चितम् ॥८३॥
धन्योऽहं कृतकृत्योऽहमागतो गोकुलं यतः । गोपिकाभ्यो गुरुभ्यश्च हरिभक्ति लभेऽचलाम् ॥८४॥
मथुरां च न यास्यामि तीर्थकीर्तेश्च कीर्तनम् । श्रोष्यामि किंकरो भूत्वा गोपीनां जन्मजन्मनि ॥८५॥
न गोपीभ्यः परो भक्तो हरेश्च परमात्मनः । यादृशीं लेभिरे गोप्यो भक्ति नान्ये च तादृशीम् ॥८६॥

---

**उद्धव बोले**—सभी द्वीपों में यह जम्बूद्वीप धन्य, यशस्वी एवं मनोहर है, जिसमें पुण्यदायक एवं शुभप्रद भारतवर्ष अवस्थित है । यह व्यापारियों का पुण्यस्थान है, और उनके पुण्यरूप व्यापार करने का उत्तम स्थल है क्योंकि यहाँ उत्तम पुण्य करके उसका फलोपभोग अन्यत्र किया जाता है ॥७५-७६॥ राधा जी के चरण-कमल की धूलि से यह भारतवर्ष अत्यन्त पवित्र, परम निर्मल, धन्य, पुण्यदायक, शुभप्रद और श्रेष्ठ है । उससे भी अधिक भारत में सभी स्त्रियों में गोपियाँ धन्या-मान्या हैं, जो अत्यन्त पुण्यप्रद राधा जी के चरण-कमल का नित्य दर्शन करती हैं ॥७७-७८॥ इन्हीं राधिका जी के चरण-कमल की धूलि की प्राप्ति के लिए ब्रह्मा ने साठ सहस्र वर्षों तक तप किया था (पर असफल ही रहे) । वही गोलोकवासिनी राधा जो भगवान् कृष्ण के प्राणों से भी उन्हें अधिक प्रिय हैं श्रीदामा के शापवश इस समय यहाँ वृषभान की पुत्री रूप में अवस्थित है ॥७९-८०॥ जो-जो श्रीकृष्ण के भक्त हैं, वे राधा के भी भक्त हैं । ब्रह्मा आदि देवगण गोपियों की सोलहवीं कला के भी समान नहीं हैं ॥८१॥ भगवान् कृष्ण की भक्ति को केवल योगिराज महेश्वर, राधा, गोपियाँ, गोपगण और गोलोकवासी जितने हैं वे सब जानते हैं ॥८२॥ कुछ सनत्कुमार को और विषयी होने पर भी कुछ ब्रह्मा को ज्ञात है । सिद्ध और भक्त भी कुछ निश्चित जानते हैं । मैं तो गोकुल में आने से धन्य एवं कृत-कृत्य हो गया हूँ । यहाँ गुरुस्वरूपा गोपिकाओं से मुझे अचल हरि-भक्ति प्राप्त हुई है । अब मैं मथुरा कभी नहीं जाऊँगा; जन्म-जन्मान्तर में गोपियों का ही सेवक बनकर तीर्थकीर्ति कृष्ण का कीर्त्तन श्रवण करूँगा । क्योंकि परमात्मा श्रीकृष्ण के भक्तों में गोपियों से बढ़कर कोई भक्त नहीं है, गोपियों ने जैसी भक्ति पायी है वैसी अन्य किसी ने नहीं पायी ॥८३-८६॥

### कलावत्युवाच

पितॄणां मानसी कन्या धन्या मेना कलावती। वयं तिस्रो भगिन्यश्च भ्रमामः पृथिवीतले ॥८७॥
धन्या जनकपत्नी नः सीतामाता पतिव्रता। अयोनिसंभवा राधा अहं चायोनिसंभवा ॥८८॥
राधा श्रीदामशापेन वृषभानसुता भुवि। सनत्कुमारशापेन वयमेव महीतले ॥८९॥
क्षीरोदसागरं रम्यं श्वेतद्वीपं मनोहरम्। तिस्रो भगिन्यो भक्त्या च विष्णुं द्रष्टुं गता वयम् ॥९०॥
अभ्युत्थानादि न कृतं कोपादस्माञ्छशाप ह। सनत्कुमारो भगवान्योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः ॥९१॥

### सनत्कुमार उवाच

मूढास्तिष्ठत भूमौ च पुनः स्वर्गं न यास्यथ। मर्त्यप्राणिप्रिया भूत्वा चाहंकारेण हेतुना ॥९२॥
पुनर्वरं च प्रत्येकं ददौ तुष्टो द्विजेश्वरः। विष्णोर्वंशस्य शैलस्य हिमाधारस्य कामिनी ॥९३॥
ज्येष्ठा भवतु त्वत्कन्या भविष्यत्येव पार्वती। धन्या प्रिया तु भवतु योगिनो जनकस्य च ॥९४॥
तस्य कन्या महालक्ष्मीः सीतादेवी भविष्यति। वृषभानस्य वैश्यस्य योगिनां प्रवरस्य च ॥९५॥
दुर्वाससश्च शिष्यस्य कनिष्ठा च कलावती। भविष्यति प्रिया साध्वी द्वापरान्ते च गोकुले ॥९६॥
कलावतीसुता राधा देवी गोलोकवासिनी। श्रीदामगोपशापेन भविष्यति न संशयः ॥९७॥

---

**कलावती बोली**--पितरों की धन्या, मेना और कलावती नामक तीन कन्याएँ मानससंभवा हैं और ये हम तीनों भगिनियाँ पृथिवी पर स्वेच्छया भ्रमण किया करती हैं। इनमें पतिव्रता धन्या राजा जनक की पत्नी हुई हैं, जो सीता जी की माता हैं। मैं और राधिका भी अयोनिजा हैं। श्रीदामा के शापवश राधा महीतल पर वृषभान की कन्या हुई हैं और सनत्कुमार के शापवश हम तीनों (भगिनियों) को भी पृथिवी पर अवतरित होना पड़ा ॥८७-८९॥ एक बार हम तीनों बहनें क्षीरसागर के रमणीक एवं मनोहर श्वेतद्वीप में भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णु के दर्शनार्थ गयीं ॥९०॥ उसी बीच वहाँ योगीन्द्रों के गुरु के गुरु भगवान् सनत्कुमार भी आ गये, किन्तु हम लोगों ने उठकर उनका स्वागत आदि नहीं किया, जिससे कुपित होकर उन्होंने शाप दे दिया ॥९१॥

**सनत्कुमार बोले**—अरी मूर्खाएँ! अहङ्कार के कारण तुम सब मर्त्यलोक में मनुष्यों की पत्नी होकर पृथ्वीतल पर रहो, जिससे पुनः स्वर्ग न जा सकोगी ॥९२॥ अनन्तर उस द्विजेश्वर ने प्रसन्न होकर प्रत्येक को पुनः वर प्रदान किया—मेना से कहा—भगवान् विष्णु के वंश में उत्पन्न हिमालय पर्वत की तुम पत्नी बनोगी और तुम्हारी कन्या का नाम पार्वती होगा। धन्या योगी जनक की प्रिया होगी, जिसके यहाँ महालक्ष्मी सीता नाम से पुत्री रूप में अवतरित होगी। द्वापर के अन्त में गोकुल में दुर्वासा के शिष्य योगिप्रवर वृषभान वैश्य की कनिष्ठा पतिव्रता पत्नी यह कलावती होगी ॥९३-९६॥ कलावती की कन्या गोलोकवासिनी राधा देवी होंगी जो श्रीदामा के शापवश वहाँ अवतरित होंगी, इसमें संशय नहीं ॥९७॥ ब्रह्मा, महेश्वर और शेष के अधीश्वर (श्रीकृष्ण)

ईशो ब्रह्मेशशेषाणां भारावतरणेन च। आगमिष्यति पृथ्वीं च पुण्यक्षेत्रं च भारतम् ॥९८॥
कलावती वृषभानः कौतुकात् कन्यया सह। जीवन्मुक्तश्च गोलोकं गमिष्यति न संशयः ॥९९॥
धन्या च सीतया सार्धं वैकुण्ठं च गमिष्यति। मेनका योगिनी सिद्धा पार्वत्याश्च वरेण च ॥१००॥
कल्पान्ते विष्णुलोके च लक्ष्मीवन्मोदते चिरम्। विना विपत्त्या महिमा केषां कुत्र भविष्यति ॥१०१॥
कर्मणा च गते दुःखे प्रभवेद्दुर्लभं सुखम्। पुरा पितॄणां कन्याश्च स्वर्गभोगविलासिकाः ॥१०२॥
लक्ष्मीसमा वरेणापि विप्रस्य विष्णुदर्शनात्। कर्मक्षयं चाप्यस्माकं बभूव विष्णुदर्शनात् ॥१०३॥
पुण्येन तेन तीव्रेण कुमारस्यापि दर्शनम्। श्रुतं तत्र कुमारास्याज्ज्ञानं परमदुर्लभम् ॥१०४॥
ब्रह्मविष्णुशिवादीनां सिद्धानां जगतामपि। ईश्वरः परमात्मा च श्रीकृष्णः प्रकृतेः परः ॥
निर्गुणश्च निरीहश्च परः स्वेच्छामयो वरः ॥१०५॥

## तुलस्युवाच

सर्वप्राणिषु देवाश्च तिष्ठन्त्येव पृथक्पृथक्। प्राणो विष्णुश्च विषयी मनो ब्रह्मा च चेतना ॥१०६॥
प्रकृतिर्बुद्धिरूपा च सर्वशक्त्यधिदेवता। ज्ञानस्वरूपः शंभुश्च स्वयं धर्मश्च पूरुषः ॥१०७॥
निर्गुणः परमात्मा च तद्ब्रह्म प्रकृतेः परम्। स एव कृष्णः साक्षी च कर्मणां जीविनामपि ॥१०८॥
भोक्ता च सुखदुःखानां जीवस्तत्प्रतिबिम्बकः। चक्षुषोश्चन्द्रसूर्यौ च जिह्वायां च सरस्वती ॥१०९॥

---

पृथ्वी का भार उतारने के लिए महीतल पर अवस्थित पुण्यक्षेत्र भारत में प्रकट होंगे ॥९८॥ इसलिए अपनी पुत्री राधा देवी के साथ वृषभान और कलावती जीवन्मुक्त रहकर गोलोक को जायेंगे, इसमें सन्देह नहीं ॥९९॥ धन्या भी सीता के साथ वैकुण्ठ गमन करेंगी और मेनका पार्वती के वरदान द्वारा सिद्धयोगिनी होकर कल्पान्त में विष्णु-लोक में लक्ष्मी की भाँति चिरकाल तक आनन्दानुभव करेगी। विना दुःखानुभव प्राप्त किये किसको कहाँ महिमा (महत्व) प्राप्त हुई है? ॥१००-१०१॥ कर्मवश दुःखानुभव कर लेने के उपरान्त दुर्लभ सुख की प्राप्ति होती है। पूर्वकाल में पितरों की ये कन्याएँ स्वर्ग में भोग-विलास करती थीं, जो ब्राह्मण के वरदान और भगवान् विष्णु के दर्शन करने से लक्ष्मी के समान थीं। फिर विष्णु के दर्शन करने से हम लोगों का कर्म क्षीण हो गया। उसी उच्च पुण्य के द्वारा हमें कुमार का दर्शन प्राप्त हुआ और उस समय कुमार के मुख से परम दुर्लभ ज्ञान सुना कि—श्रीकृष्ण, ब्रह्मा, विष्णु और शिवादि देवों, सिद्धों एवं समस्त जगत् के ईश्वर, परमात्मा हैं, प्रकृति से परे, निर्गुण, निरीह, श्रेष्ठ, परम स्वेच्छामय एवं श्रेष्ठ हैं ॥१०२-१०५॥

**तुलसी बोली**—समस्त प्राणियों के भीतर देवता पृथक्-पृथक् अवस्थित रहते हैं। विष्णु प्राणरूप से, विषयी ब्रह्मा मन एवं चेतना, समस्त शक्तियों की अधिष्ठात्री देवी प्रकृति बुद्धिरूप से, शिव ज्ञानस्वरूप, स्वयं धर्म पुरुष रूप, भगवान् श्रीकृष्ण, जो निर्गुण, परमात्मा, परब्रह्म एवं प्रकृति से परे हैं, जीवों के कर्मों के साक्षी हैं और सुख-दुःख का भोक्ता जीव उनका प्रतिबिम्ब है। आँखों में सूर्य-चन्द्रमा, जिह्वा में सरस्वती, त्वचा, वसुंधरा,

वसुंधरा त्वचि सदा बाह्वोस्ते लोकपालकाः। आत्मनश्चापि ते सर्वे परिचारकरूपिणः ॥११०॥
आत्मन्येव प्रियास्ते च सर्वे गच्छन्ति जीविनः। यथा संसदि संसारे नरदेह (व) मिवानुगाः ॥१११॥
तस्मात्सर्वात्मनाऽऽत्मानं भजन्ति संततं सदा। सन्तश्च परया भक्त्या ध्यायन्ते योगिनो मुदा ॥११२॥
कर्मिणां कर्मणां साक्षी कुतः कर्म च गोपनम्। अन्तर्यामी च कृष्णश्च प्रचारं कुरुते मुदा ॥११३॥

## कालिकोवाच

नरा बालाश्च वृद्धाश्च युवानस्त्रिविधास्तथा। देवादयश्च ये सिद्धाः सर्वे जानन्ति तं परम् ॥११४॥

## उद्धव उवाच

सांप्रतं मूर्च्छितां राधां युक्तो बोधयितुं बुधः। अत्र युक्तिः प्रधाना त्वं तां प्रबोधय चोद्धव ॥११५॥
चेतनं कुरु कल्याणि जगन्मातर्निबोध माम्। उद्धव कृष्णभक्तस्य किंकरस्यापि किंकरम् ॥११६॥
प्रसादं कुरु मातर्मां यास्यामि मथुरां पुनः। न स्वतन्त्रः पराधीनो योषा दारुमयी यथा ॥११७॥
यथा वृषो वशीभूतो वृषवाहस्य संततम्। तथा मातर्जगत्सर्वं जगन्नाथस्य निश्चितम् ॥११८॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० राधोद्धवसं०
चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥९४॥

•

---

तथा बाहुओं में लोकपाल अवस्थित रहते हैं ॥१०६-११०॥ ये सभी आत्मा के परिचारकरूपी हैं। आत्मा को अत्यन्त प्रिय हैं। जिस प्रकार संसार रूपी संसद् में अनुयायी लोग राजा के पास जाते हैं, उसी प्रकार जीव परमात्मा के पास जाते हैं। इसलिए सन्त लोग सब प्रकार से परमात्मा का भजन करते हैं। योगी लोग परम भक्ति से हर्षपूर्वक ध्यान करते हैं। कृष्ण जीवों के कर्मों के साक्षी हैं। अतः उनका कर्म कहाँ और गोपन कहाँ ? अन्तर्यामी कृष्ण हर्ष से उसका प्रचार करते हैं ॥१११-११३॥

**कालिका बोली**—बालक, वृद्ध और युवा आदि तीनों प्रकार के मनुष्य तथा जो देवता आदि और सिद्धगण हैं, वे सभी उन परमेश्वर श्रीकृष्ण को जानते हैं। इस समय मूर्च्छित पड़ी राधिका को सचेत करना ही बुद्धिमानी है। हे उद्धव ! अतः इसके लिए जो प्रधान युक्ति हो, उसके द्वारा इन्हें चैतन्य करो ॥११४-११५॥

**उद्धव बोले**—हे कल्याणि ! हे जगन्मातः ! चेतना प्राप्त करो, मैं कृष्ण के भक्तों के किंकरों का किंकर उद्धव हूँ। हे मातः ! मुझ पर कृपा करो। मैं अब मथुरा जाना चाहता हूँ। मैं कठपुतली की भाँति पराधीन हूँ और जिस प्रकार बैल सदा जोतनेवाले के अधीन रहता है उसी भाँति मैं जगन्नाथ के अधीन हूँ ॥११६-११८॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण में श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारायण-नारद के संवाद में
राधा और उद्धव के वार्तालाप विषयक चौरानबेवाँ अध्याय समाप्त ॥९४॥

•

# अथ पञ्चनवतितमोऽध्यायः

## नारायण उवाच

उद्धवस्य वचः श्रुत्वा चेतनं प्राप्य राधिका। सा चोवाच समुत्थाय रत्नसिंहासने वरे ॥१॥
उवाच मधुरं देवी हृदयेन विदूयता। गोपीभिः सप्तभिर्भक्त्या सेविता श्वेतचामरैः ॥२॥

## राधिकोवाच

मथुरां गच्छ वत्स त्वं मां च (न) विस्मर संपदा। अतोऽप्यधर्मो नास्त्येव भवतो भवसागरे ॥३॥
मदीयं वचनं सर्वं गत्वा कथय सांप्रतम्। श्रीकृष्णं परमानन्दं शीघ्रमानय मत्प्रभुम् ॥४॥
योषिज्जन्मनि योषित्सु संप्राप्य तादृशं पतिम्। भेदो बभूव कस्या वा मदन्या काऽपि दुःखिनी[1] ॥५॥
किं ददासि प्रबोधं मे नास्ति मे बोधनोचितम्[2]। निष्फलो देहिनां देहो विनाऽऽत्मानं सहोद्धव ॥६॥
संप्रीत्या सह सौभाग्यं गौरवं नित्यनूतनम्। अतीव दुर्लभं प्रेम रहस्यं नवसंगमम् ॥७॥
स्मरामि मनसा शश्वन्नान्यो मनसि वर्तते। रात्रौ निद्रां परित्यज्य स्मरणं शोकवर्धनम् ॥८॥

---

# अध्याय ९५

## राधा द्वारा उद्धव को उपदेश तथा मथुरा जाने की आज्ञा प्रदान

**नारायण बोले**—उद्धव की बात सुनने पर राधिका को चेतना प्राप्त हुई। अनन्तर उठकर रत्न-सिंहासन पर सुखासीन हो हार्दिक दुःख प्रकट करती हुई उन्होंने मधुर वचन कहा, उस समय सात गोपियाँ भक्ति-पूर्वक श्वेत चामरों द्वारा उनकी सेवा कर रही थीं ॥१-२॥

**राधिका बोलीं**—वत्स ! तुम मथुरा जाओ, परन्तु वहाँ सुख में पड़कर मुझे भूल मत जाना। क्योंकि (ऐसा करने से) इस संसार-सागर में तुम्हारे लिए इससे बढ़कर दूसरा अधर्म नहीं है। इस समय वहाँ जाकर मेरी सभी बातें उनसे कहो और मेरे स्वामी श्रीकृष्ण को, जो परमानन्द स्वरूप हैं, मेरे निकट शीघ्र लाने का प्रयत्न करो ॥३-४॥ स्त्री-जन्म में स्त्रियों के मध्य वैसा पति पाकर (मेरे अतिरिक्त) किसे (पति से) वियोग हुआ है ? मुझसे भिन्न कोई (ऐसी) दुःखिनी है क्या ? मुझे तुम क्या प्रबोधन दे रहे हो ? मुझे उद्बोधन देना उचित नहीं है। उद्धव ! प्राण की देह आत्मा के बिना सदा निष्फल रहती है। हरि के साथ वह परम प्रीति, सौभाग्य, नित्य नवीन आदर, अत्यन्त दुर्लभ प्रेम, एकान्त-भाषण और नव समागम यही मैं मन से स्मरण करती हूँ। मेरे मन में

---

१ क. 'खिता। २ ख. 'धर्मोचि'।

मामुद्धर ध्रुवं वत्स निमग्नां शोकसागरे । जीवाभयप्रदानेन तीर्थे स्नानफलं नृणाम् ।।९।।
प्रबोधितुं न शक्नोमि दुर्निवारं च मानसम् । चिन्तये चरणाम्भोजं कृष्णस्य परमात्मनः ।।१०।।
तद्गुणं महिमानं च प्रीतिं च प्रेमसागरम् । स्मारं स्मारं च सौभाग्यं मनो मे न स्थिरं चलम् ।।११।।
जगतां युवतीनां च कासां वा दुःखमीदृशम् । श्रीकृष्णभेदवदुःखं च का वा जानाति मां विना ।।१२।।
किंचिज्जानाति सीता साऽप्यहं च विधिबोधितम् । मत्परा दुःखिनी नास्ति कामिनीषु जगत्त्रये ।।१३।।
का वा याति प्रतीतिं मे श्रुत्वा च मानसीं व्यथाम् । कासां वा मत्समं दुःखं युवतीनां सुतोद्धव ।।१४।।
राधिकासदृशी स्त्रीषु न भूता न भविष्यति । दुःखिनी विरहातप्ता सुखसौभाग्यवर्जिता ।।१५।।
संप्राप्य कल्पवृक्षं च पतिं च जगतां पतिम् । वञ्चिताऽहं विधात्रा च निर्दयेन च पापिना[1] ।।१६।।
जीवनं सफलं जन्म सुस्निग्धं चक्षुषी मनः । तत्पादपद्मवक्त्रेन्दुरूपवेषप्रदर्शनात् ।।१७।।
यन्नामश्रुतिमात्रेण पञ्च प्राणाः प्रहर्षिताः । स्मृतिमात्रात्प्रफुल्लचन्त आत्मा सुस्निग्ध एव च ।।१८।।
यश्च स्पर्शं सुरतौ यशस्त्रिभुवनष्वपि । कया वा संपदा वत्स विस्मरामि तमीश्वरम् ।।१९।।
त्रैलोक्यविजयं रूपं गुणमेव बिभर्ति यः । न निर्मितो यो विधिना तेनैव निर्मितो विधिः ।।२०।।

---

अन्य बात है ही नहीं । रात्रि में निद्रा त्यागकर यही शोक बढ़ानेवाला स्मरण करती रहती हूँ ।।५-८।। वत्स ! मेरा उद्धार अवश्य करो, मैं शोकसागर में डूबी जा रही हूँ । मनुष्यों के लिए जीव को अभयदान देने से बढ़कर तीर्थस्थान का फल नहीं होता ।।९।। मेरा मन अति दुर्निवार है । मैं उसे समझा नहीं सकती । परमात्मा कृष्ण के चरण-कमल का सतत चिन्तन करती हूँ—उनके गुण, महिमा, प्रीति, प्रेमसागर एवं उस अपने सौभाग्य को बार-बार स्मरण करके मेरा मन स्थिर नहीं होता है, चलायमान रहता है । भला जगत् की युवतियों में किसको ऐसा दुःख है ? मेरे बिना श्रीकृष्ण के वियोग दुःख को कौन अन्य स्त्री जान सकती है ? ।।१०-१२।। इस प्रकार के दुःख को कुछ सीता जी जानती थीं और दुर्दैववश मैं तो जानती ही हूँ । तीनों लोकों में मुझसे बढ़कर कोई अन्य स्त्री दुःखिनी नहीं है । मेरी मानसिक व्यथा सुनकर किस स्त्री को विश्वास हो सकता है ? पुत्र उद्धव ! स्त्रियों में किसे मेरे समान दुःख प्राप्त है ।।१३-१४।। स्त्रियों में राधिका के समान दुःखिनी, वियोगसंतप्ता और सुख सौभाग्य-रहिता अन्य कोई भी स्त्री न हुई और न होगी ।।१५।। संसार के पति को, जो कल्पवृक्ष हैं, पति के रूप में पाकर मैं निर्दयी एवं पापी विधाता के द्वारा वञ्चित कर दी गयी ।।१६।। उनके चरण-कमल, मुखचन्द्र, रूप और वेश के दर्शन से मेरा जीवन, जन्म, स्नेहपूर्ण नेत्र और मन सफल हो गया ।।१७।। जिनके नाम के श्रवण मात्र से पाँचों प्राण प्रहृष्ट हो जाते हैं और (जिनके) स्मरण मात्र से वे प्रफुल्ल हो उठते हैं और आत्मा अति स्निग्ध हो जाता है । जिन्होंने सुरतकाल में मेरा स्पर्श किया और इतने मात्र से तीनों भुवनों में मुझे यश की प्राप्ति हुई, उन परमेश्वर को मैं कौन-सी सम्पदा पाकर विस्मरण कर सकती हूँ ? ।।१८-१९।। जो तीनों लोकों पर विजय पाने-वाला रूप और गुण धारण करते हैं, जिन्हें ब्रह्मा ने नहीं रचा है, बल्कि जो स्वयं ब्रह्मा के रचयिता हैं, जो समस्त

---

१ क. 'पिनी ।

तं विधेश्च विधातारं दातारं सर्वसंपदाम् । कल्पवृक्षात्परं शान्तं लक्ष्मीकान्तं मनोहरम् ॥२१॥
सर्वेशं सर्वबीजं च परमात्मानमीश्वरम् । कया वा संपदा तात विस्मरामि च तं पतिम् ॥२२॥
यस्य निर्मञ्छनार्हश्च न चन्द्रो न च मन्मथः । नैवाश्विनीकुमारश्च गुणसाम्यं न विश्वतः ॥२३॥
ध्यायन्ते यत्पदाम्भोजं ब्रह्मेशशेषसंज्ञकाः । कया वा संपदा तात विस्मरामि च तं प्रभुम् ॥२४॥
स्वप्ने पश्यन्ति ये रूपमतुलं च मनोहरम् । तेऽपि सर्वं परित्यज्य ध्यायन्ते तमहर्निशम् ॥२५॥
गुणेन शैलः सलिलं शुष्ककाष्ठं द्रवेदिति । मृतवृक्षो मुकुलितः स्तम्भितश्च समीरणः ॥२६॥
सूर्यश्च जलधिश्चैव स्थगितो भक्तिभावतः । कया वा संपदा पुत्र विस्मरामि च तं प्रियम् ॥२७॥
यद्भयाद्वाति वातोऽयं सूर्यस्तपति यद्भयात् । वर्षतीन्द्रो दहत्यग्निर्मृत्युश्चरति जन्तुषु ॥२८॥
यद्भयात्फलिनो वृक्षाः पुष्पिताः समयेऽपि च । समुद्राः स्वात्मविषये ग्रहाश्च मुनयः सुराः ॥२९॥
कालस्य कालः संहर्तुः संहर्ता स्रष्टुरीश्वरः । स्वाधीनश्च स्वतन्त्रश्च स्वयमेवाऽऽत्मसंज्ञकः ॥३०॥
कया वा संपदा भक्त विस्मरामि च तं प्रभुम् । प्रबोधो नास्ति तद्भेदे येन मां बोधयेद्बुधः ॥३१॥
मां च बोधयितुं शक्ता न सावित्री सरस्वती । न वेदा न च वेदाङ्गाः के वा सन्तश्च के सुराः ॥३२॥
सहस्रवक्त्रोऽनन्तश्च वेदानां जनको विधिः । न शंभुर्न गणेशश्च योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः ॥३३॥
स्थितेर्गतिश्चिन्तनीया मार्गशून्ये कुतो गतिः । कालसाध्यं च सर्वं च सुखं दुःखं शुभाशुभम् ॥३४॥

---

सम्पत्तियों के प्रदाता, कल्पवृक्ष से बढ़कर शान्त, लक्ष्मीकान्त, मनोहर, सर्वेश, समस्त के बीज, परमात्मा एवं ईश्वर हैं और मेरे पति हैं, उन्हें किस सम्पदा को पाकर मैं भूल सकती हूँ? ॥२०-२२॥ तात ! (सौन्दर्य में) जिनकी उपमा के योग्य न चन्द्रमा हैं, न कामदेव और न अश्विनीकुमार ही हैं, संसार में जिनके गुणों की समता नहीं है और जिनके चरणकमल का ध्यान ब्रह्मा, ईश तथा शेष करते हैं, उन प्रभु को मैं कौन-सी सम्पदा पाकर भूल जाऊँ ? ॥२३-२४॥ जो स्वप्न में भी उनके अतुल एवं मनोहर रूप का दर्शन कर लेते हैं, वे सब कुछ त्याग-कर रात-दिन उन्हीं का ध्यान करते हैं। जिनके गुण से पर्वत जल हो जाता है और शुष्क काष्ठ पिघल जाता है, मरे हुए वृक्ष में कलियाँ लग जाती हैं, वायु रुक जाता है और सूर्य एवं समुद्र भक्ति भाव से स्थगित हो जाते हैं, हे पुत्र ! ऐसे प्रिय को कौन-सी सम्पत्ति पाकर भूल जाऊँ ? ॥२५-२७॥ जिनके भय से वायु बहता है, सूर्य तपता है, मेघ बरसता है, अग्नि जलता है, मृत्यु प्राणियों में विचरण करता है। जिनके भय से वृक्ष समय-समय पर फूलते-फलते हैं और समुद्र, ग्रहगण, मुनिवृन्द और देववृन्द अपने-अपने विषय में लगे रहते हैं। और जो काल के काल हैं, संहारकर्ता शिव और सृष्टिकर्ता ब्रह्मा के स्वामी हैं, जो स्वाधीन, स्वतन्त्र और स्वयं ही आत्मा नाम-वाले हैं, उन प्रभु को मैं कौन-सी सम्पत्ति पाकर भूल सकती हूँ ? भक्त ! उनसे विमुक्त होने पर मुझमें ज्ञान ही नहीं है, जिसके द्वारा कोई विद्वान् मुझे सान्त्वना दे सके ॥२८-३१॥ सावित्री, सरस्वती, वेद, वेदाङ्ग, सन्त, महात्मा, देवगण, सहस्रमुखवाले अनन्त, वेद-जनक ब्रह्मा, योगीन्द्रों के गुरु के गुरु शिव और गणेश भी मुझे समझाने में समर्थ नहीं हैं ॥३२-३३॥ जिसकी स्थिति है उसी की गति का विचार किया जा सकता है। जिसका कोई मार्ग ही नहीं है, उसकी गति कहाँ ? शुभाशुभ एवं सुख-दुःख काल द्वारा साध्य हैं। यहाँ तक कि जगत् के

दुर्निवारः स कालश्च कालसाध्यं जगत्सु च । उत्तिष्ठ मथुरां गच्छ सुखं वत्स मनोहरम् ।।३५।।
व्रजवासं परित्यज्य भवांश्च [1]गमनोत्सुकः । सुचिरं कृष्णविच्छेदो दुःखाय न सुखाय च ।।३६।।
पश्य चन्द्रमुखं तस्य जन्ममृत्युजरापहम् । राधिकावचनं श्रुत्वा रुरोद भृशमुद्धवः
रुदतीं राधिकां दृष्ट्वा बन्धुविच्छेदकातराम् ।।३७।।

इति० श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० राधोद्धवसं०
पञ्चनवतितमोऽध्यायः ।।९५।।

•

# अथ षण्णवतितमोऽध्यायः

### नारायण उवाच

श्रीकृष्णस्मरणं कृत्वा गमनोन्मुखमुद्धवम् । नतं राधापदाम्भोजे शिरसा पुलकाञ्चितम् ।।१।।
उवाच माधवी गोपी रुदती प्रेमविह्वला । भवतं रुदन्तमुच्चैश्च राधाविच्छेदकातरम् ।।२।।

---

सभी पदार्थ काल के वशीभूत हैं और वह काल दुर्निवार है । हे वत्स ! उठो, सुखपूर्वक उस मनोहर मथुरापुरी को जाओ । आप व्रज निवास त्यागकर वहाँ जाने के लिए समुत्सुक हैं । अतिचिरकाल तक श्रीकृष्ण से अलग रहना दुःख का ही कारण होता है। उससे सुख नहीं मिलता ।।३४-३६।। वहाँ पहुँचकर तुम जन्म, मृत्यु एवं बुढ़ापे का विनाश करनेवाले उनके चन्द्रमुख का दर्शन करो । राधिका का ऐसा वचन सुनकर तथा बन्धु-वियोग से कातर हुई, राधिका को देखकर उद्धव बहुत रोने लगे ।।३७।।

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद और नारायण के संवाद में राधा और उद्धव के संवाद नामक पञ्चानबेवाँ अध्याय समाप्त ।।९५।।

•

# अध्याय ९६

## राधा द्वारा कालगति का निरूपण

**नारायण बोले**—श्रीकृष्ण के स्मरणपूर्वक मथुरा जाने के लिए तैयार उद्धव से, जो राधा जी के चरण-कमल में सिर से प्रणाम कर पुलकित हो गये थे तथा राधा-वियोग से कातर होकर उच्च स्वर से रोने लगे थे, माधवी गोपी ने प्रेमविह्वल होकर रोती हुई कहने लगी ।।१-२।।

---

1 क. °नोन्मुखः ।

## माधव्युवाच

उद्धव शृणु वक्ष्यामि क्षणं तिष्ठ यथोचितम् । निगूढं परमं ज्ञानं यत्ते मनसि वाञ्छितम् ।।३।।
सुदुर्लभं पुराणेषु वेदेषु गोपनीयकम् । प्रश्नं कुरु महाभाग राधिकां त्रिजगत्प्रसूम् ।।४।।
इत्युक्त्वा सा च गोपीशा समुवास सुसंसदि । उवाच मधुरं शान्तामुद्धवश्चापि राधिकाम् ।।५।।

## उद्धव उवाच

एकाकी भवमायाति यात्येकाकी पुनः पुनः । प्राणी कर्मानुरोधेन स्वकर्मफलभुक्पुमान् ।।६।।
कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव प्रलीयते । सुखं दुःखं भयं शोकं कर्मणैवाभिपद्यते ।।७।।
जन्तुर्भोगावशेषेण भोगं भुङ्क्ते भवेषु च । पुनश्च कर्मणो भोगात्समायाति च याति च ।।८।।
रत्नादिकं च यत्किंचिन्मह्यं दत्तं त्वया सति । मया सार्धं न यात्येव तेन मे किं प्रयोजनम् ।।९।।
भवाब्धितारणे देवि भवती तरणिर्वरा[1] । कर्णधारः स्वयं कृष्णः सर्वेषां पारकारकः ।।१०।।
किंचिद्दानं देहि मह्यं भवाब्धिपारकारणम् । प्राप्य प्रसादं यास्यामि मथुरां कृष्णमूलकम् ।।११।।
यां यां कालगतिं मातः सुराणां च नृणामपि । पितॄणां ब्रह्मलोकस्य तदूर्ध्वस्य च तां वद ।।१२।।

---

**माधवी बोली**— हे उद्धव ! उचित समझो तो क्षण भर रुको । जो तुम्हारे मन में है, वही निगूढ़ परम ज्ञान मैं कहूँगी, सुनो ।।३।। महाभाग ! तीनों लोकों की जननी राधिका जी से वही प्रश्न करो, जो पुराणों में अति दुर्लभ और वेदों में अति गोपनीय है । इतना कहकर गोपेश्वरी उत्तम सभा में बैठ गयी । अनन्तर शान्त राधिका से उद्धव ने भी मधुर वाणी में पूछा ।।४-५।।

**उद्धव बोले**—प्राणी अकेला ही संसार में आता है और पुनः अकेला ही यहाँ से जाता है । कर्म के अनुसार प्राणी या पुरुष अपने कर्मों का फल भोगता है ।।६।। जीव कर्म द्वारा ही जन्म ग्रहण करता है और कर्म के ही कारण विलीन होता है । सुख, दुःख, भय, शोक आदि सभी कुछ जीव को कर्म से प्राप्त होते हैं ।।७।। भोग के शेष रहने पर जीव संसार में (जन्म ग्रहणकर) उस भोग को भोगता है और पुनः कर्मों के भोगवश वह यहाँ (संसार में) आता है तथा जाता है । इसलिए हे पतिव्रते ! आपने जो रत्न आदि मुझे दिये हैं, वे मेरे साथ नहीं जायँगे । फिर उनसे मेरा क्या प्रयोजन ? ।।८-९।। देवी ! संसार-सागर को पार करने के लिए आप सुन्दर नौका स्वरूप हैं और भगवान् श्रीकृष्ण, जो सभी लोगों को पार करते हैं, स्वयं नाविक हैं । अतः संसार-सागर पार करनेवाला कुछ दान मुझे प्रदान कीजिये । जिससे मैं उस प्रसाद को ग्रहणकर कृष्ण के समीप मथुरा चला जाऊँ ।।१०-११।। हे माता ! देवों और मनुष्यों एवं पितरों तथा ब्रह्मलोक के ऊपर के काल (समय) की

---

१ क. रमणी ।

तामेव दुस्तरां घोरां तीर्त्वा याम हरेः पदम् । एवंभूतमुपायं च देहि मे कमलालये ॥१३॥
दूरतो यत्पदाम्भोजं ध्यायन्ते च दिवानिशम् । देवा ब्रह्मेशशेषाद्यास्त्वं तद्वक्षःस्थलस्थिता ॥१४॥
उद्धवस्य वचः श्रुत्वा जहास कमलालया । वाससा नेत्रनीरं च संमार्ज्य तमुवाच सा ॥१५॥

## राधोवाच

माधवीवचनेनैव करोषि प्रश्नमुद्धव । स्त्रीजातिरबला लोके किं वा ज्ञानं ददामि ते ॥१६॥
शुद्धां कालगतिं वत्स जानाति भगवान्हरिः । ब्रह्मा महेशः शेषश्च वेदाश्चत्वार एव च ॥१७॥
किंचिद्वेदानुसारेण सन्तो जानन्ति पुत्रक । श्रूयतां कृष्णवक्त्रेण गोलोके रासमण्डले ॥१८॥
गोलोके चापि वैकुण्ठे ब्रह्मलोके च सांप्रतम् । या च दृष्टा कालगतिस्तामेव कथयामि ते ॥१९॥
नृणां पितॄणां देवानां ब्रह्मलोकादिकस्य च । बहिर्लोकस्य ब्रह्माण्डात्पातालानां च निश्चितम् ॥२०॥
दुरत्ययां कालगतिं येनोपायेन पण्डिताः । निस्तरन्ति बुधश्रेष्ठ कथयामि निशामय ॥२१॥
भजन्ति जगतां नाथं कालकालं जगद्गुरुम् । निर्गुणं च निरीहं च परमात्मानमीश्वरम् ॥२२॥
सद्यः पतति देहोऽयं विना येन सदात्मना । तं निषेव्य कालगतिं तरत्येव हि केवलम् ॥२३॥
आयुर्हरति सर्वेषां प्राणिनां रविरेव च । श्रीहरेः शुद्धभक्तानां सतां पुण्यवतां विना ॥२४॥

---

गति मुझे बताने की कृपा करें ॥१२॥ हे कमलालये ! मुझे इस प्रकार का उपाय बतायें जिसके द्वारा मैं उस घोर एवं दुस्तर कालगति को पारकर भगवान् के परम पद को प्राप्त कर सकूँ ॥१३॥ क्योंकि ब्रह्मा, महेश एवं शेष आदि देवगण दूर से ही जिनके चरणकमल का दिन-रात ध्यान करते रहते हैं, उनके वक्षःस्थल पर आप विराजमान रहती हो ॥१४॥ उद्धव का वचन सुनकर कमलालया राधिका हँस पड़ीं । उपरान्त वस्त्र से आँसू पोंछकर उनसे कहने लगीं ॥१५॥

**राधिका बोलीं**—हे उद्धव ! माधवी के कहने से तुम प्रश्न कर रहे हो, तो यह बताओ—लोक में स्त्री जाति तो अबला कही गयी है, फिर मैं तुम्हें कौन-सा ज्ञान प्रदान कर सकती हूँ ? ॥१६॥ वत्स ! शुद्ध कालगति को भगवान् श्रीकृष्ण जानते हैं और ब्रह्मा, महेश, शेष एवं वेद—ये चारों भी ॥१७। पुत्र ! वेदानुसार सन्त लोग भी कुछ जानते हैं । अब गोलोक के रासमण्डल में भगवान् कृष्ण के मुख से मैंने जिस प्रकार सुनी है और गोलोक, वैकुण्ठ एवं ब्रह्मलोक में जिस भाँति देखी है, वह कालचक्र तुम्हें बता रही हूँ, सुनो ॥१८-१९॥ बन्धुश्रेष्ठ ! मनुष्यों, पितरों, ब्रह्मलोक आदि और पाताललोकों एवं ब्रह्माण्ड के बाहर रहनेवाले लोकों की भी उस घोर कालगति को जिस उपाय द्वारा पण्डित लोग पार करते हैं उसे कह रही हूँ, सुनो । जिन परमात्मा, ईश्वर को पण्डित लोग भजते हैं, जो जगत् के नाथ, काल के काल, जगत् के गुरु, निर्गुण, निरीह हैं और जिन सर्वात्मा के बिना यह देह तुरन्त नष्ट हो जाती है, केवल उसी की सेवा करके उस कालगति को पार किया जा सकता है ॥२०-२३॥ उन पुण्यवान् सज्जनों को छोड़कर, जो भगवान् श्रीकृष्ण के शुद्ध भक्त हैं, सभी प्राणियों की आयु

विधेर्मानसिकान्पुत्रांश्चतुरः पश्य पुत्रक। सनकादीन्भागवतान्येषां च सुस्थिरं वयः ॥२५॥
रुद्राद्यान्वयसा नित्याञ्ज्ञानिनां च गुरोर्गुरून्। बालाननुपनीतांश्च पञ्चवर्षशिशून्यथा ॥२६॥
अभ्यन्तरे महास्फीतान्सस्मितांश्च दिगम्बरान्। श्रीकृष्णध्यानपूतांश्च तीर्थपूतांश्च वैष्णवान् ॥२७॥
वेदवेदाङ्गशास्त्राणां चिन्ताहीनान्प्रफुल्लितान्। भक्त्या दिवानिशं शश्वद्धरिभावेन तत्परान् ॥२८॥
बाह्यपूजाविहीनांश्च [1]पूतान्मानसिकांस्तथा। मृत्युञ्जयान्महाभागान्कालव्यालजितस्तथा ॥२९॥
सनकं च सनन्दं च तृतीयं च सनातनम्। परं सनत्कुमारं च ये स्मरन्ति च सर्वशः ॥३०॥
तीर्थस्नानफलं लब्ध्वा मुच्यते कृतपातकात्। हरिभक्तिर्भवेत्तेषां हरिदास्यं लभन्ति च ॥३१॥
मृकण्डुबालकं पश्य कर्मणा च द्विजोत्तमम्। दशवर्षायुषं तीव्रं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ॥३२॥
हरिसेवनतः पश्चात्सप्तकल्पान्तजीविनम्। वोढुं पञ्चशिखं पश्य लोमशं चाऽऽसुरिं तथा ॥३३॥
सर्वकर्मविहीनं च हरिसेवनतत्परम्। शतकल्पायुषं चैव ध्यायमानं हरेः पदम् ॥३४॥
जमदग्नेः सुतं पश्य रामं तं चिरजीविनम्। हनुमन्तं बलिं व्यासमश्वत्थामानमेव च ॥३५॥
विभीषणं कृपं विप्रं जाम्बवन्तं च भल्लुकम्। हरिभावनया चैते शुद्धाः सुचिरजीविनः ॥३६॥

---

का अपहरण सूर्य ही कर लेते हैं ॥२४॥ उदाहरणस्वरूप ब्रह्मा के चारों मानस पुत्र भगवद्भक्त सनकादिकों पर दृष्टिपात करो। उनकी आयु सुस्थिर रहती है ॥२५॥ वे पांच वर्ष के अनुपवीत (यज्ञोपवीत संस्कार-रहित) शिशुओं की भाँति सदैव बने रहते हैं और उसी अवस्था से वे एकादश रुद्रों, द्वादश आदित्यों और ज्ञानियों के गुरु के भी गुरु हैं। वे भीतर से शुद्ध हैं, मुखों पर प्रसन्नता छायी रहती है; वेश दिगम्बर है। वे कृष्ण के ध्यान से पवित्र, विष्णुभक्तिपरायण और तीर्थों को भी पावन करनेवाले हैं ॥२६-२७॥ वे वेद, वेदाङ्ग एवं शास्त्रों की समस्त चिन्ताओं से रहित, विकसितवदन, भक्तिपूर्वक दिन-रात निरन्तर हरि-भावना में ही तत्पर रहते हैं ॥२८॥ वे बाह्यपूजा से रहित, मन से पवित्र, मृत्यु को जीतनेवाले, महानुभाव और कालरूपी सूर्य को जीत लेनेवाले हैं। उनके नाम सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार हैं। जो इनका नित्य स्मरण करते हैं, वे समस्त पातकों से मुक्त होकर तीर्थस्नान के फल प्राप्त करते हैं तथा उन्हे हरि भक्ति तथा भगवान् के दास्यपद की प्राप्ति होती है ॥२९-३१॥ मृकण्डु ऋषि के पुत्र (मार्कण्डेय) को देखिये! जो कर्म द्वारा परमोत्तम द्विज हुए हैं और ब्रह्मतेज से जाज्वल्यमान दस वर्ष की आयु (में ही इन्होंने) भगवान् की सेवा करके सात कल्पों का जीवन प्राप्त किया है। फिर वोढु, पञ्चशिख, लोमश और आसुरि को भी देखो। ये (सांसारिक) समस्त कर्मों से रहित होकर एकमात्र भगवान् की ही सेवा में लगे रहते हैं। इनकी आयु सौ कल्पों की है। ये हरि के चरणों में ध्यानमग्न रहते हैं ॥३२-३४॥ पुनः जमदग्नि के पुत्र चिरजीवी परशुराम, हनुमान्, बलि व्यास, अश्वत्थामा-विभीषण, ब्राह्मण कृपाचार्य एवं जाम्बवान् भालू को देखो। ये हरि के ध्यान से शुद्ध और अतिचिरंजीवी

---

१ क. पूजामा°।

सिद्धेन्द्रेषु मुनीन्द्रेषु नरेष्वन्येषु चोद्धव। हरिभावनशुद्धाश्च सर्वे ते चिरजीविनः ॥३७॥
प्रह्लादं पश्य दैत्येषु हिरण्यकशिपोः सुतम्। हरिद्विषो दुरन्तस्य हरिभावनतत्परम् ॥३८॥
चिरायुषं कालजितं पश्यान्यं चाप्यसंख्यकम्। अनेकजन्मतपसा लब्ध्वा जन्म च भारते ॥३९॥
ये हरिं तं न सेवन्ते ते मूढाः कृतपापिनः। वासुदेवं परित्यज्य विषये निरतो जनः ॥४०॥
त्यक्त्वाऽमृतं महामूढो विषं भुङ्क्ते निजेच्छया। कस्य स्त्री कस्य वा पुत्रः कस्य वा बान्धवास्तथा ॥४१॥
कः कस्य बन्धुर्विपदि श्रीकृष्णेन बिना भुवि। तस्मात्सन्तः सदा कृष्णं भजन्त्येव दिवानिशम् ॥४२॥
जन्ममृत्युजराव्याधिहरं सर्वहरं परम्। कालस्य तरणोपायं भजनं परमात्मनः ॥४३॥
आनन्दनन्दनस्यैव परिपूर्णतमस्य च। शृणु कालगतिं वत्स मदीयज्ञानगोचराम् ॥४४॥
नराणां च पितॄणां च सुराणां चापि ब्रह्मणः। नागानां राक्षसादीनां तत्परेषां च पुत्रक ॥४५॥
कथयामि निगूढार्थं सावधानं निशामय। सर्वस्माच्च परं स्थानं सर्वाधारो महान्विराट् ॥४६॥
यस्य लोमसु विश्वानि चासंख्यानि च तानि च। सर्वस्माच्च परं सूक्ष्मं परमाणुं निशामय ॥४७॥
कालारम्भात्मकं सर्वमनूहं[1] परमीप्सितम्। चरमः[2] सद्विशेषाणामनेकोऽसंयुतः सदा ॥४८॥

---

हैं ॥३५-३६॥ उद्धव ! इनके अतिरिक्त सिद्धेन्द्रों, मुनीन्द्रों और मनुष्यों में भी जो निरन्तर हरि-भावना में निमग्न रहकर शुद्ध हुए हैं, वे चिरजीवी हैं ॥३७॥ दैत्यों में भगवान् के अत्यन्त द्वेषी हिरण्यकशिपु के पुत्र प्रह्लाद को देखो। वे भगवान् के ध्यान में तल्लीन रहते हैं, जिससे चिरजीवी एवं कालजित् हो गये हैं। ऐसे अन्य असंख्य लोग भी हो गये हैं। अतः अनेक जन्मों की तपस्या के फलस्वरूप इस भारतवर्ष में जन्म ग्रहणकर जो भगवान् की सेवा नहीं करते हैं, वे मूढ़ और पापी हैं। भगवान् वासुदेव को छोड़कर विषयों में लीन रहनेवाला व्यक्ति महान् मूढ़ है और अपनी इच्छा से अमृत का त्यागकर विष भक्षण करता है। यहाँ किसकी स्त्री, किसका पुत्र और किसके भाई-बन्धु हैं ? इस भूतल पर विपत्ति आने पर श्रीकृष्ण के बिना कौन किसका बन्धु होता है ? इसीलिए सन्त-महात्मा दिन-रात श्रीकृष्ण का भजन करते हैं ॥३८-४२॥ श्रीकृष्ण जन्म, मृत्यु एवं जरा और रोग के विनाशक हैं एवं परम सर्व (दुःख) हारी हैं। उन आनन्द-नन्दन परमात्मा श्रीकृष्ण का भजन, काल पर विजय पाने का उपाय है। वत्स ! मेरे ज्ञान के अनुसार मनुष्यों, पितरों, देवों और ब्रह्मा, नागों, राक्षसों एवं दूसरों की कालगति को सुनो ॥४३-४५। मैं अत्यन्त गूढ़ अर्थ बता रही हूँ, सावधान होकर सुनो। महान् विराट् सबसे श्रेष्ठ और सबके आधार हैं, जिनके लोमों में असंख्य विश्व भरे पड़े हैं। सबसे सूक्ष्म परमाणु है, उसे भी सुन लो। काल उसी परमाणु से आरम्भ होता है। वह परमाणु, सर्वस्वरूप, अतर्क्य, परम वाञ्छित, विशेषों का अन्तिम, अनेक और सदा असंयुक्त रहता है। जिससे लोगों को एक होने का भ्रम होता है उसे ही

---

१ क. 'स्यानू'। २ ख. 'पर'।

परमाणुः स विज्ञेयो नृणामैक्यभ्रमो यतः । परमाणुद्वयेनाणुस्त्रसरेणुस्तु ते त्रयः ॥४९॥
त्रसरेणुत्रिकेणापि त्रुटिरुक्ता मनीषिभिः । वेधस्त्रुटिशतेनैव त्रिवेधेन लवस्तथा ॥५०॥
त्रिलवेन निमेषश्च त्रिनिमेषेण च क्षणः । काष्ठा पञ्चक्षणेनैव लघुश्च दशकाष्ठया ॥५१॥
लघुपञ्चदशं दण्डस्तत्प्रमाणं निशामय । द्वादशार्धपलोन्मानं चतुर्भिश्चतुरङ्गुलैः ॥५२॥
स्वर्णमाषैः कृतच्छिद्रं यावत्प्रस्थजलप्लुतम् । दण्डद्वये मुहूर्तः स्यात्षष्टिदण्डात्मिका तिथिः ॥५३॥
तदष्टभागः प्रहरः प्रमाणं च निरूपणम् । चतुर्भिः प्रहरं रात्रिश्चतुर्भिर्दिनमुच्यते ॥५४॥
तिथिपञ्चदशेनैव पक्षमानं प्रकीर्तितम् । पक्षद्वयेन मासः स्याच्छुक्लकृष्णाभिधेन च ॥५५॥
ऋतुर्मासद्वयेनैव तत्षट्केनैव वत्सरः । वसन्तग्रीष्मवर्षाश्च शरद्धेमन्तशीतकाः ॥५६॥
वर्षाः पञ्चविधा ज्ञेयाः कालविद्भिर्निरूपिताः । संवत्सरः प्रवत्सर इलावत्सर एव च ॥५७॥
अनुवत्सरो वत्सरोऽयमिति कालविदो विदुः । अब्दो द्विषट्कमासैश्च तन्नाम शृणु चोद्धव ॥५८॥
वैशाखो ज्येष्ठ आषाढः श्रावणो भाद्र एव च । आश्विनः कार्तिको मार्गः पौषो माघस्तु फाल्गुनः ॥५९॥
चैत्रस्तु चरमो ज्ञेयो वर्षशेषो निरूपितः । वसन्तश्चैत्रवैशाखमासयुग्मेन कीर्तितः ॥६०॥

---

परमाणु जानना चाहिए। परमाणु द्वय मिलकर अणु (द्व्यणुक) और तीन अणु मिलकर त्रसरेणु, तीन त्रसरेणु (अर्थात् नौ अणु) मिलकर एक त्रुटि होती है, ऐसा विद्वानों ने कहा है। पुनः सौ त्रुटि मिलकर एक वेध, तीन वेध मिलकर एक लव, तीन लव मिलकर एक निमेष और तीन निमेष मिलकर एक क्षण होता है। पाँच क्षण मिलकर एक काष्ठा, दस काष्ठा मिलकर एक लघु, पन्द्रह लघु का दण्ड होता है, उसका प्रमाण सुनो। किसी पात्र में रखे हुए एक सेर जल में छह पल के बराबर एक कोई पात्र डाल दे, जो चार मासेवाले चार अंगुल के सुवर्ण (तार) से छेदा गया हो, वह जितने समय में उस जल में डूब जाये उसे एक दण्ड कहते हैं। इस प्रकार दो दण्ड का एक मुहूर्त और साठ दण्ड की एक तिथि होती है, जिसका आठवाँ भाग प्रहर नाम से प्रमाणित किया गया है। इस भाँति चार प्रहर का दिन और चार प्रहर की रात्रि होती है ॥४६-५४॥ पन्द्रह तिथियों का एक पक्ष (पाख) कहा गया है और शुक्ल-कृष्ण नामक दो पक्ष मिलकर एक मास होता है, दो मास मिलकर एक ऋतु और छह ऋतु मिलकर एक वर्ष होता है। वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त, शिशिर ये ही छहों ऋतुएँ हैं ॥५५-५६॥ कालवेत्ताओं ने पाँच प्रकार के वर्ष भी बताये हैं--संवत्सर, प्रवत्सर, इलावत्सर, अनुवत्सर और वत्सर यही उनके नाम हैं, जिसे कालवेत्ता लोग जानते हैं। हे उद्धव! बारह मास का एक शब्द (वर्ष) होता है, उनके नाम हैं--वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद (भादों), आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष (अगहन), पौष, माघ, फाल्गुन और चैत्र। वर्ष का अन्तिम मास चैत्र कहा गया है। चैत्र और वैशाख मास को वसन्त ऋतु, ज्येष्ठ और आषाढ़ मास को ग्रीष्म कहा गया है। श्रावण एवं भाद्रपद मास को वर्षा ऋतु, आश्विन एवं कार्तिक को शरद्

ज्येष्ठाषाढद्वयेनैव ग्रीष्मस्तु परिकीर्तितः । वर्षा श्रावणभद्रे च ह्याश्विने कार्तिके शरत् ॥६१॥
मार्गे पौषे च हेमन्तः शिशिरो माघफाल्गुने । अब्दस्तु चायने द्वे वै चोत्तरे दक्षिणायने ॥६२॥
माघादिषड्दिवनिमितमुत्तरायणमीप्सितम् । श्रावणादिमासषट्कं दक्षिणायनमेव च ॥६३॥
माघादाषाढपर्यन्तं दिनं वृद्धं क्रमेण वै । नक्तं वृद्धं श्रावणाश्च पौषपर्यन्तमेव च ॥६४॥
प्रतिपत्पूर्णिमान्तश्च शुक्लपक्षः प्रकीर्तितः । पूर्णिमायाः प्रतिपदश्चामावास्यान्त एव च ॥६५॥
कृष्णपक्षस्तु विज्ञेयो वेदविद्भिर्निरूपितः । द्वितीया च तृतीया च चतुर्थी पञ्चमी तथा ॥६६॥
षष्ठी च सप्तमी चैव ह्यष्टमी नवमी तथा । दशम्येकादशी चापि द्वादशी च त्रयोदशी ॥६७॥
चतुर्दशी कुहूर्यावद्दिनं तु गणनं स्मृतम् । अश्विनी भरणी चापि कृत्तिका रोहिणी तथा ॥६८॥
मृगशिरस्तथाऽऽर्द्रा च नक्षत्रे द्वे पुनर्वसू । पुष्याश्लेषे मघा चैव पूर्वा चोत्तरफाल्गुनी ॥६९॥
हस्तचित्रे तथा स्वाती विशाखा चानुराधिका । ज्येष्ठा मूलं तथा ज्ञेया पूर्वाषाढोत्तरा तथा ॥७०॥
श्रवणाभिजिती चैव धनिष्ठा च प्रकीर्तिता । ततः शतभिषा ज्ञेया पूर्वाभाद्रपदा तथा ॥७१॥
तथोत्तरा तु विज्ञेया रेवती चरमा स्मृता । अष्टाविंशति नक्षत्रं कलत्रं शशिनस्तथा ॥७२॥
क्रमेण ताभिः सार्धं च चन्द्रस्तिष्ठति नित्यशः । सप्तविंशति नक्षत्रं कलत्रं च श्रुतौ श्रुतम् ॥७३॥
अभिजिच्छ्रवणच्छाया तेनाष्टाविंशतिः स्मृता । एकदा च मधौ चन्द्रो रोहिण्या वामया सह ॥७४॥
रेमे दिवानिशं नित्यं श्रवणा च चुकोप सा । छायां च दत्त्वा चन्द्राय ययौ तातान्तिकं भिया ॥७५॥

---

ऋतु, मार्गशीर्ष एवं पौष को हेमन्त ऋतु तथा माघ और फाल्गुन को शिशिर ऋतु कहते हैं। उत्तरायण और दक्षिणायन यही दो अयन हैं; इन्हीं दोनों को मिलाकर वर्ष कहा जाता है ॥५७-६२॥ माघ मास से लेकर आषाढ़ मास तक को उत्तरायण और श्रावण से पौष मास तक को दक्षिणायन कहा जाता है।

श्रावण मास से पौष मास तक रात्रि की वृद्धि होती है। वेदवेत्ताओं ने प्रतिपदा तिथि से लेकर पूर्णिमा तिथि तक शुक्ल पक्ष और पूर्णिमा की प्रतिपदा से लेकर अमावस्या तक को कृष्ण पक्ष कहा है। (प्रतिपदा), द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी और अमावस्या तक के दिन (तिथि) की गणना की जाती है ॥६४-६७॥ अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त; चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, श्रवण, अभिजित्, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वा भाद्रप्रदा, उत्तरा भाद्रपदा और रेवती अन्तिम नक्षत्र है। इस प्रकार ये अट्ठाईस नक्षत्र चन्द्रमा की पत्नियाँ हैं, इनके साथ क्रमशः (पारी-पारी से) चन्द्रमा नित्य रहता है। यद्यपि वेद में सत्ताईस ही नक्षत्र चन्द्र-पत्नी रूप में प्रख्यात हैं तथापि श्रवण नक्षत्र की छाया को अभिजित् कहते हैं, जिसे मिलाकर अट्ठाईस की संख्या पूरी होती है ॥६८-७३॥ एक बार चैत्र मास में चन्द्रमा अपनी सुन्दरी पत्नी रोहिणी के साथ नित्य दिन-रात रमण करते रहे। यह देखकर श्रवणा ने कोप किया और चन्द्रमा को अपनी छाया सौंपकर स्वयं डर से अपने पिता के

ततः पितरमादाय सा चक्रे च विभागकम् । बभूव तेन नक्षत्रमभिजिन्नामकं पुरा ॥७६॥
एतच्छ्रुत्वा कृष्णमुखाच्छतशृङ्गे च पर्वते । नक्षत्रं कथितं वत्स तिथ्या भ्रमति नित्यशः ॥७७॥
योगं च करणं चैव मद्वक्त्रेण निशामय । विष्कम्भः प्रीतिरायुष्मान्सौभाग्यः शोभनस्तथा ॥७८॥
अतिगण्डः सुकर्मा च धृतिः शूलस्तथैव च । गण्डो वृद्धिर्ध्रुवश्चैव व्याघातो हर्षणस्तथा ॥७९॥
वज्रं सिद्धिर्व्यतीपातो वरीयान्परिघः शिवः । सिद्धिः साध्यः शुभः शुक्लो ब्रह्मेन्द्रो वैधृतिस्तथा ॥८०॥
कीर्तितस्ते योगगणः करणं श्रूयतामिति । बवश्च बालवश्चैव कौलवस्तैतिलस्तथा ॥८१॥
गरश्च वणिजश्चापि विष्टिश्च शकुनिस्तथा । चतुष्पाच्चापि नागश्च किंस्तुघ्न इति कीर्तितम् ॥८२॥
नराणां चापि मासेन पितॄणां च दिवानिशम् । शुक्ले चापि दिनं तेषां कृष्णे नक्तं प्रकीर्तितम् ॥८३॥
वत्सरेण नराणां च सुराणां च दिवानिशम् । दिनं तेषामुत्तरे च नक्तं च दक्षिणायने ॥८४॥
मन्वन्तरं तु दिव्यानां युगानामेकसप्ततिः । मनोरायुः परिमितं शक्रस्याऽऽयुः प्रकीर्तितम् ॥८५॥
पञ्चविंशत्सहस्रं च तथा पञ्चशतं परम् । तत्र सूर्यगतिर्नास्ति शक्रपातानुसारतः ॥८६॥
दिवानिशं च जानन्ति ब्रह्मलोकनिवासिनः । दण्डद्वयं नरपलं शक्रपातेन तत्पलम् ॥८७॥
एवं त्रिंशद्दिनेनैव धातुर्मासः प्रकीर्तितः । अब्दो द्वादशभिर्मासैरेवं तस्य शतायुषः ॥८८॥
ब्रह्मणः पतनेनैव निमेषाच्छ्रीहरेरपि । धातुः पातानुसारेण वैकुण्ठे न दिवानिशम् ॥८९॥

---

पास चली गयी। तब पिता को लेकर उसने सबको समय बाँट दिया। इस कारण प्राचीन समय से ही अभिजित् नामक नक्षत्र वर्तमान है। हे वत्स! शतशृङ्ग नामक पर्वत पर कृष्ण के मुख से मैंने इसी प्रकार नक्षत्रों को सुना है, जो तिथियों के साथ नित्य भ्रमण किया करते हैं। अब मेरे मुख से योगों और करणों को सुनो। विष्कम्भ, प्रीति, आयुष्मान्, सौभाग्य, शोभन, अतिगण्ड, सुकर्मा, धृति, शूल, गण्ड, वृद्धि, ध्रुव, व्याघात, हर्षण, वज्र, सिद्धि, व्यतीपात, वरीयान्, परिघ, शिव, सिद्धि, साध्य, शुभ, शुक्ल, ब्रह्मेन्द्र और वैधृति––यही योगगण हैं। करण भी सुनो––बव, बालव, कौलव, तैतिल, गर, वणिज, विष्टि, शकुनि चतुष्पाद, नाग और किंस्तुघ्न––यही करण हैं ॥७४-८२॥ मनुष्यों के मास के समान पितरों के दिन-रात होते हैं। (मनुष्यों के) शुक्ल पक्ष पितरों के दिन और कृष्ण पक्ष उनकी रात्रि कही गयी है। इसी भाँति मनुष्यों के वर्ष के समान देवताओं के दिन-रात होते हैं––उत्तरायण देवों के दिन और दक्षिणायन रात्रि होती है। इकहत्तर दिव्य युगों का एक मन्वन्तर होता है ॥८३-८४॥ मनु की आयु के समान ही इन्द्र की आयु होती है, जो पचीस सहस्र पाँच सौ वर्ष की बतायी गयी है। ब्रह्मलोक में सूर्य की गति नहीं है, वहाँ के निवासी इन्द्रपतन द्वारा दिन-रात जानते हैं (अर्थात् इन्द्र के समय तक उनका एक दिन और उसके पतन होने पर उनकी रात्रि होती है) ॥८५-८६॥ मनुष्यों के पल की भाँति ब्रह्मा का भी पल होता है, दो पल का एक दण्ड और दो दण्ड का एक मुहूर्त तथा इन्द्र के पतनानुसार उनका एक दिन एवं तीस दिनों का एक मास होता है और बारह मासों का एक वर्ष होता है। इसी भाँति उनकी भी आयु सौ वर्षों की होती है। ब्रह्मा के पतन होने पर भी कृष्ण का भी एक निमेष होता है। ब्रह्मा के पतनानुसार वैकुण्ठ

तत्र सूर्यगतिर्नास्ति चैवं गोलोकतः स्मृतम् । वैकुण्ठवासिनः सर्वे न वै जानन्त्यहर्निशम् ।।९०।।
चन्द्रस्यापि ग्रहाणां च गतिर्नास्ति च तत्र वै । चक्रं नैव भ्रमत्येव राशीनामिच्छया हरेः ।।९१।।
दिनं च तेजसा दीप्तं कृष्णस्य परमात्मनः । नक्तं तेजोविहीनं च हरौ च मन्दिरं गते ।।९२।।
एवं कालगतिस्तत्र विष्णुलोकेऽस्ति संततम् । कालस्वरूपो भगवान्परमात्मा निराकृतिः ।।९३।।
चन्द्रसूर्यगतिर्नास्ति पातालेषु च सप्तसु । तद्वासिनश्च जानन्ति शङ्कन्ते न दिवानिशम् ।।९४।।
दिने च मूर्ध्नि नागानां मणिर्ज्वलति नित्यशः । संध्यायां दीप्तमग्निश्च रात्रिश्च तमसाऽऽवृता ।।९५।।
कालं ताम्रीप्रमाणेन जानन्ति तन्निवासिनः । यथा भुवि तथा तत्र परिमाणं प्रकीर्तितम् ।।९६।।
कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुर्युगम् । दिव्यैर्द्वादशसाहस्रैर्वत्सरैश्चापि तन्मितम् ।।९७।।
अष्टौ शतान्यप्यधिकं सहस्राणां चतुष्टयम् । दिव्यैर्वर्षैः कृतयुगं कालविद्भिर्निरूपितम् ।।९८।।
अष्टाविंशत्सहस्राण्यप्यधिकं परिमाणकम् । लक्षाणां च सप्तदशं नृमानं परिकीर्तितम् ।।९९।।
अधिकं षट्शतान्येव सहस्राणां त्रयं[1] तथा । दिव्यैर्वर्षैश्च त्रेतेति वत्स कालविदो विदुः ।।१००।।
षण्णवतिसहस्राणि लक्षैर्द्वादशभिः सह । नृणां वर्षैश्च त्रेतेति कालविद्भिः प्रकीर्तितः ।।१०१।।
चतुष्टयं शतानां चाप्यधिकं द्विसहस्रकम् । वर्षं दिव्यं द्वापरं च कालज्ञैः परिकीर्तितम् ।।१०२।।

---

और गोलोक में दिन-रात नहीं होते हैं, क्योंकि वहाँ सूर्य की गति नहीं है। वैकुण्ठ में रहनेवाले दिन-रात को नहीं जानते हैं। वहाँ चन्द्रमा और ग्रहों की गति नहीं है। भगवान् की इच्छा से वहाँ राशिचक्र भी नहीं घूमता है। वहाँ केवल परमात्मा कृष्ण के प्रदीप्त तेज द्वारा दिन होता है और उनके महल में चले जाने पर वहाँ रात्रि होती है ।।८७-९२।।

ऐसी कालगति वहाँ विष्णुलोक में सतत रहती है। भगवान् कालस्वरूप, परमात्मा एवं निराकार हैं। सात पातालों में भी चन्द्र-सूर्य की गति नहीं है। वहाँ के निवासी यह बात जानते हैं इसी कारण उन्हें दिन-रात की कोई शङ्का ही नहीं होती है। वहाँ दिन में नागों के सिरों पर मणियाँ नित्य प्रज्वलित रहती हैं, संध्या समय अग्नि प्रदीप्त होती है और रात्रि अन्धकार से ढकी रहती है। वहाँ के निवासी घटीयन्त्र से कालव्यवस्था जानते हैं। जैसे पृथ्वी पर है वैसा ही परिमाण वहाँ भी है। कृत (सत्य) युग, त्रेता, द्वापर और कलि—ये चार युग हैं, जो दिव्य बारह सहस्र वर्ष के होते हैं। उनमें कृतयुग दिव्य चार सहस्र आठ सौ वर्षों का होता है, ऐसा कालवेत्ताओं ने बताया है। यह (सत्ययुग) मनुष्यों के वर्ष से सत्रह लाख अट्ठाईस सहस्र वर्षों का होता है। हे वत्स ! एक लाख छह सौ दिव्य वर्षों का त्रेतायुग होता है, ऐसा कालवेत्ताओं ने कहा है। यह मनुष्यों के वर्ष से बारह लाख छानबे सहस्र वर्षों का होता है। कालज्ञाताओं ने दो सहस्र चार सौ दिव्य वर्षों का द्वापर बताया

---

१ ख. शतं ।

चतुःषष्टिसहस्राणि लक्षैरष्टभिरेव च। नृणां वर्षैर्द्वापरं च कालज्ञैः परिकीर्तितम् ॥१०३॥
अधिकं द्विशतं चैव दिव्यं वर्षसहस्रकम्। एवंमितं कलियुगं वत्स प्राज्ञैर्निरूपितम् ॥१०४॥
द्वात्रिंशच्च सहस्रं च चतुर्लक्षं नृमानकम्। वर्षं चेति कलियुगे चकार कालकोविदः ॥१०५॥
लक्षैर्द्विचत्वारिंशद्भिः सह विंशतसहस्रकैः। नृमानवर्षैः कालज्ञैर्व्यक्तमेव चतुर्युगम् ॥१०६॥
इति ते कथितं वत्स कालसंख्यानिरूपणम्। यथाश्रुतं यथाज्ञानं गच्छ वत्स हरेः पुरम् ॥१०७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० राधोद्धवसं०
कालनिरूपणं नाम षण्णवतितमोऽध्यायः ॥९६॥

•

# अथ सप्तनवतितमोऽध्यायः

नारायण उवाच

गच्छन्तमुद्धवं दृष्ट्वा संत्रस्ता श्रीहरेः प्रिया। समुत्थायाऽऽसनाच्छीघ्रं हृदयेन विदूयता ॥१॥
गोपीभिः सहिता शीघ्रं समुद्विग्ना महासती। ददौ शुभाशिषं तस्मै तस्य मूर्ध्नि करं तया ॥२॥

---

है जो मनुष्यों के वर्ष से आठ लाख चौंसठ सहस्र वर्षों का होता है, ऐसा कालवेत्ताओं ने कहा है ॥९३-१०३॥ हे वत्स ! एक सहस्र दो सौ दिव्य वर्षों का कलियुग होता है, ऐसा विद्वानों ने बताया है। फिर मनुष्यों के वर्ष से चार लाख बत्तीस हजार वर्षों का कलियुग होता है ऐसी गणना कालवेत्ताओं ने की है। पुनः कालवेत्ताओं ने मनुष्यों के वर्ष से अस्सी लाख बीस सहस्र वर्षों का एक चतुर्युग बताया है। हे वत्स ! जैसा मैंने सुना और जैसा मेरा ज्ञान है, तदनुसार कालसंख्या का निरूपण तुमसे कर दिया; अब हरि की पुरी (मथुरा) को जाओ ॥१०४-१०७॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण में श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद-नारायण के संवाद-प्रकरण में
राधा और उद्धव के संवाद में कालनिरूपण नामक छानबेवाँ अध्याय समाप्त ॥९६॥

•

# अध्याय ९७

## उद्धव को राधा द्वारा ज्ञानोपदेश

**नारायण बोले—** जाने के लिए तैयार उद्धव को देखकर श्रीहरिप्रिया राधिका संत्रस्त हो गयीं और हार्दिक वेदना का अनुभव करती हुई आसन से शीघ्र उतर पड़ीं ॥१॥ गोपियों समेत महासती राधिका ने उद्विग्न होकर उद्धव के सिर पर हाथ रखा और शुभाशिष प्रदान किया ॥२॥ तत्पश्चात् उद्धव को स्निग्ध दूर्वा, अक्षत,

स्निग्धदूर्वाक्षतं शुक्लधान्यं पुष्पं च मङ्गलम् । प्रेरयामास लाजांश्च फलं पर्णं तथा दधि ॥३॥
दर्पणं दर्शयामास पूर्णकुम्भं सपल्लवम् । सफलं गन्धसिन्दूरकस्तूरीचन्दनान्वितम् ॥४॥
पुष्पमाल्यं प्रदीपं च रत्नं गन्धं द्विजोत्तम । पतिपुत्रवती साध्वी काञ्चनं रजतं तथा ॥५॥
तमुवाच महासाध्वी हितं सत्यं च मङ्गलम् । संगोप्यं साश्रुनेत्रं च पतितं दुःखिता हृदि ॥६॥

## राधिकोवाच

शुभं भवतु मार्गस्ते कल्याणमस्तु संततम् । ज्ञानं लभ हरेः स्थानात्कृष्णस्य सुप्रियो भव ॥७॥
कृष्णभक्तिः कृष्णदास्यं वरेषु च वरं वरम् । श्रेष्ठा पञ्चविधा मुक्तेर्हरिभक्तिर्गरीयसी ॥८॥
ब्रह्मत्वादपि देवत्वादिन्द्रत्वादमरादपि । अमृतात्सिद्धिलाभाच्च हरिदास्यं सुदुर्लभम् ॥९॥
अनेकजन्मतपसा संभूय भारते द्विजः । हरिभक्तिं यदि लभेत्तस्य जन्म सुदुर्लभम् ॥१०॥
सफलं जीवनं तस्य कुर्वतः कर्मणः क्षयम् । पितॄणां च सहस्राणि स्वस्य मातुश्च निश्चितम् ॥११॥
मातामहानां पुंसां च शतानां सोदरस्य च । बान्धवस्यापि पत्न्याश्च गुरूणां शिष्यभृत्ययोः ॥१२॥
तत्कर्म शोभनं वत्स यच्च कृष्णे समर्पणम् । तत्कर्म शोभनं शुद्धं कृष्णसंतोषणं यतः ॥१३॥
संकल्पसाधनं कर्म संप्रीतिविधिपूर्वकम् । तदेव मङ्गलं धन्यं परिणामसुखावहम् ॥१४॥

---

श्वेत धान्य, पुष्प, मङ्गल की वस्तुएँ—लावा, फल, पान, दधि, दर्पण, पल्लव समेत पूर्ण कलश, गन्ध, सिन्दूर, कस्तूरी एवं चन्दन समेत पुष्पमाला, प्रदीप, रत्न, गन्ध, पति-पुत्रवती साध्वी स्त्री, सुवर्ण तथा चाँदी का दर्शन कराया ॥३-५॥ द्विजोत्तम ! तदनन्तर दुःखी हृदयवाली महासाध्वी राधिका ने नेत्रों में आँसू भरकर चरणों में पड़े हुए उद्धव से हितकारक, सत्य, गोपनीय मंगल वचन कहा ॥६॥

**राधिका बोलीं**--तुम्हारा मार्ग शुभमय हो, तुम्हें सतत कल्याण प्राप्त हो, भगवान् के स्थान से ज्ञान लाभ करो और कृष्ण के अत्यन्त प्रियपात्र बनो ॥७॥ समस्त वरदानों में तुम्हें—कृष्ण की भक्ति और कृष्णदास्य —यह श्रेष्ठ वरदान प्राप्त हो । पाँच प्रकार की मुक्तियों में हरि-भक्ति ही श्रेष्ठ है ॥८॥ ब्रह्मत्व, देवत्व, इन्द्रत्व, अमरत्व, अमृत और सिद्धियों के लाभ आदि सभी से हरिदास्य पद अति दुर्लभ है ॥९॥ अनेक जन्मों की तपस्या द्वारा भारत में जन्म ग्रहण कर जो ब्राह्मण भगवान् की भक्ति प्राप्त करता है, उसका जन्म अति दुर्लभ है ॥१०॥ प्राक्तन कर्मों को कर्म द्वारा क्षीण करते हुए उसी का जन्म सफल है । उसके सहस्रों पितरों, माता, मातामहों, सैकड़ों पूर्वजों, सहोदर भाई, बान्धव, पत्नी, गुरुजन, शिष्य और भृत्य का भी जीवन निश्चय ही सफल हो जाता है । वत्स ! जो कर्म श्रीकृष्ण को समर्पण कर दिया जाय, वही उत्तम कर्म है । जिस कर्म से श्रीकृष्ण को सन्तुष्ट किया जा सके, वही कर्म शुद्ध एवं शोभन है । संकल्प को सिद्ध करनेवाला जो कर्म प्रीति एवं विधिपूर्वक किया जाता है, वही मंगलकारक, धन्य और परिणाम में सुखदायक होता है । श्रीकृष्ण के उद्देश्य से

तद्व्रतं तत्तपः सत्यं तद्भक्तिः पूजनं तथा । तदुद्देश्यमनशनं केवलं दास्यकारणम् ॥१५॥
समस्तपृथिवीदानं प्रादक्षिण्यं भुवस्तथा । समस्ततीर्थस्नानं च समस्तं च व्रतं तपः ॥१६॥
समस्तयज्ञकरणं सर्वदानफलं तथा । समस्तवेदवेदाङ्गपठनं पाठनं तथा ॥१७॥
भीतस्य रक्षणं चैव ज्ञानदानं सुदुर्लभम् । अतिथीनां पूजनं च शरणागतरक्षणम् ॥१८॥
सर्वदेवार्चनं चैव वन्दनं जपनं मनोः । भोजनं विप्रदेवानां पुरश्चरणपूर्वकम् ॥१९॥
गुरुशुश्रूषणं चैव पित्रोर्भक्तिश्च पोषणम् । सर्वं श्रीकृष्णदास्यस्य कलां नार्हति षोडशीम् ॥२०॥
तस्मादुद्धव यत्नेन भज कृष्णं परात्परम् । निर्गुणं च निरीहं च परमात्मानमीश्वरम् ॥२१॥
नित्यं सत्यं परं ब्रह्म प्रकृतेः परमीश्वरम्[1] । परिपूर्णतमं शुद्धं भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥२२॥
कर्मिणां कर्मणां साक्ष्यप्रदं निर्लिप्तमेव च । ज्योतिःस्वरूपं परमं कारणानां च कारणम् ॥२३॥
सर्वस्वरूपं सर्वेशं सर्वसंपत्प्रदं शुभम् । भक्तिदं दास्यदं स्वस्य निजसंपत्पदप्रदम् ॥२४॥
विसृज्य ज्ञातिबुद्धिं च मात्सर्यमशुभप्रदम् । भज तं परमानन्दं सानन्दं नन्दनन्दनम् ॥२५॥
वेदे कौथुमिशाखायां तस्य नाम्नां सहस्रकम् । नन्दनन्दननामोक्तं कृतौ विघ्नं सुदुर्लभम् ॥२६॥
उद्धवः सर्वमाकर्ण्य परमं विस्मयं ययौ । ज्ञानं संप्राप्य संपूर्णं परिपूर्णो बभूव ह ॥२७॥

---

किया हुआ व्रत, उपवास, तपस्या, सत्य भाषण, भक्ति तथा पूजन केवल उनकी दासता-प्राप्ति का कारण होता है ॥११-१५॥ समस्त पृथिवी का दान, भूमण्डल की प्रदक्षिणा, समस्त तीर्थों में स्नान, सम्पूर्ण व्रत, तप, समस्त यज्ञों का सम्पादन, समस्त दानफल, समस्त वेद-वेदांग का पठन-पाठन, भयभीत की रक्षा, अति दुर्लभ ज्ञानदान, अतिथियों का पूजन, शरणागत की रक्षा, समस्त देवों की अर्चना, वन्दन एवं मंत्र-जप, पुरश्चरणपूर्वक ब्राह्मणों और देवों को भोजन देना, गुरुशुश्रूषा, माता-पिता की भक्ति और पोषण-पालन आदि ये सभी श्रीकृष्ण के दास्यपद की सोलहवीं कला के भी समान नहीं हैं ॥१६-२०॥ इसलिए हे उद्धव ! परात्पर भगवान् कृष्ण को भजो, जो गुणरहित, इच्छारहित, परमात्मा, ईश्वर, नित्य, सत्य, परब्रह्म, प्रकृति से परे, परिपूर्णतम, शुद्ध भक्तों पर अनुग्रहार्थ प्रकट होनेवाले कर्मियों के कर्मों के साक्षी, निर्लिप्त, ज्योतिःस्वरूप, कारणों के भी परम कारण, सर्वस्वरूप, सर्वेश, समस्त सम्पत्प्रदाता, शुभदायक, भक्तिप्रद, दास्य पद और अपनी सम्पत्ति प्रदान करनेवाले हैं। अतः अशुभकारक मात्सर्य तथा ज्ञाति-बुद्धि को छोड़कर परमानन्द स्वरूप नन्दनन्दन को सानन्द भजो ॥२१-२५॥ वेद की कौथुमी शाखा में उनका सहस्र नाम नन्दनन्दन नाम से वर्णित हैं। उनका पाठ करने पर विघ्न अति दुर्लभ हो जाता है ॥२६॥ इन सभी बातों को सुनकर उद्धव को महान् आश्चर्य हुआ, सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके वे परिपूर्ण हो गये ॥२७॥

---

१ क. °मीप्सितम् ।

स्ववस्त्रं च गले बद्ध्वा दण्डवत्प्रणनाम ताम्। मूर्ध्नः केशैश्च तत्पादं निबध्य च पुनः पुनः ॥२८॥
पुलकाञ्चितसर्वाङ्गः साश्रुनेत्रश्च भक्तितः। तद्विच्छेदशुचा प्रेम्णा रुरोदोच्चैश्च नारद ॥२९॥
रुरोद राधा तत्प्रेम्णा रुरोद बल्लवीगणः। उद्धवस्य गलं धृत्वा स्थापयामास लोभतः ॥३०॥
उद्धवं मूर्च्छितं दृष्ट्वा जृम्भितं त्यक्तचेतनम्। शीघ्रमुत्थापयामास राधिका कृष्णमानसम् ॥३१॥
चेतनं कारयामास जलं दत्त्वा मुखाम्बुजे। शुभाशिषं च प्रददौ वत्स जीवेति नारद ॥३२॥
उद्धवश्चेतनां प्राप्य तमुवाच सुसंसदि। रुवतीनां च गोपीनां पुरतः परमार्थदम् ॥३३॥

## उद्धव उवाच

धन्यो यशस्यो द्वीपानां जम्बुद्वीपः सुदुर्लभः। यत्र भारतवर्षं तु सर्वेषामीप्सितं वरम् ॥३४॥
अहो भारतवर्षे तु पुण्यं वृन्दावनं वनम्। राधापादाब्जसंस्पर्शरजः पूतं सुरेप्सितम् ॥३५॥
धन्या मान्या च पृथिवी त्रिषु लोकेषु पूजिता। राधायास्तीर्थपूतायाः पादाब्जरजसा वरा ॥३६॥
षष्टिवर्षसहस्राणि दिव्यानि पुष्करे पुरा। ब्रह्मणा च तपस्तप्तं वेदोक्तं भक्तिपूर्वकम् ॥३७॥
गोलोके राधिकाकृष्णदर्शनार्थं मनोरथात्। गोलोके राधिकाकृष्णो न दृष्टः स्वप्नतस्तदा ॥३८॥
श्रुता तेनाऽऽकाशवाणी सत्यरूपा च लीलया। वाराहे भारते वर्षे पुण्ये वृन्दावने वने ॥३९॥

---

अनन्तर उद्धव ने अपने गले में वस्त्र बाँधकर और अपने सिर के बालों को राधिका जी के चरणों पर रखकर उन्हें बार-बार दण्डवत् प्रणाम किया ॥२८॥ हे नारद! उनके सर्वाङ्ग में रोमाञ्च हो आया, भक्ति के कारण आँखों में आँसू भर गये, प्रेमवश राधा जी के वियोग से कातर होकर उच्च स्वर से रोदन करने लगे ॥२९॥ अनन्तर राधा भी प्रेमवश रोदन करने लगीं और समस्त गोपियाँ भी। उपरान्त राधिका ने उद्धव को उनके गले के सहारे उठाकर बैठाया; किन्तु उद्धव को जँभाई लेकर चेतनाहीन एवं मूर्च्छित देखकर राधिका ने कृष्णगत चित्तवाले उद्धव को शीघ्र उठाया और मुखकमल में जल देकर उन्हें चैतन्य कराया। हे नारद! उन्हें उन्होंने 'वत्स! चिरञ्जीव' यों कहकर शुभाशिष प्रदान किया ॥३०-३२॥ चेतना प्राप्त होने पर उद्धव ने उस सुन्दर सभा के बीच रोदन करती हुई गोपियों के सामने राधिका से परमार्थ वचन कहा ॥३३॥

**उद्धव बोले**—समस्त द्वीपों में जम्बुद्वीप धन्य, यशस्वी एवं अति दुर्लभ है, जहाँ सबको अभीष्ट और श्रेष्ठ भारतवर्ष है ॥३४॥ अहो! उस भारतवर्ष में वृन्दावन नामक पुण्यवन है, जो राधिका के चरण-कमल के रज से पवित्र एवं देवों को अभीष्ट है ॥३५॥ यद्यपि यह पृथिवी तीनों लोकों में धन्या, मान्या एवं पूजित है, तथापि तीर्थों को पवित्र करनेवाली राधिका के चरण-कमल के रज के स्पर्श से वह और श्रेष्ठ हो गयी है ॥३६॥ पूर्व समय में ब्रह्मा ने गोलोक में राधिका-कृष्ण के दर्शनार्थ पुष्कर क्षेत्र में साठ सहस्र वर्षों तक भक्तिपूर्वक वेदानुसार तप किया, परन्तु उस समय स्वप्न में भी उन्हें गोलोक में राधिका-कृष्ण के दर्शन नहीं प्राप्त हुए। तदनन्तर उन्हें लीलापूर्वक सत्यरूपा आकाशवाणी सुनायी पड़ी—'वाराह कल्प में भारतवर्ष के पुण्य वृन्दावन नामक वन में जब परम रमणीय रासोत्सव प्रारंभ

रासोत्सवे महारम्ये तत्रैव रासमण्डले । द्रक्ष्यसीति च देवानां मध्ये सुस्थो न संशयः ॥४०॥
श्रुत्वा च विरतो ब्रह्मा तपसः स्वगृहं गतः । कृष्णो दृष्टश्च हृष्टश्च परिपूर्णमनोरथः ॥४१॥
गोपानां गोपिकानां च सफलं जन्म जीवनम् । नित्यं पश्यन्ति ते पादपद्मं ब्रह्मादिदुर्लभम् ॥४२॥
मानिनीं राधिकां सन्तः सदा सेवन्ति नित्यशः । योगीन्द्राश्च मुनीन्द्राश्च सिद्धेन्द्रा वैष्णवास्तथा ॥४३॥
सतीं पुण्यां तीर्थपूतां स्वतः शुद्धां सुदुर्लभाम् । सुलभं यत्पदाम्भोजं ब्रह्मादीनां सुदुर्लभम् ॥४४॥
यत्पादपद्मनखरं कृतं यावकचिह्नितम् । सर्वेश्वरेश्वरेणैव कृष्णेन परमात्मना ॥४५॥
चकार यस्याः पूजां च स्तोत्रराजं सुदुर्लभम् । शतशृङ्गे स्वयं कृष्णो गोलोके रासमण्डले ॥४६॥
पारिजातप्रसूनानामञ्जलिं गन्धचन्दनम् । ददौ दूर्वाक्षतं स्निग्धं यस्याः पादारविन्दयोः ॥४७॥
त्रिंशत्सहस्रकोटीनां गोपीनामीश्वरी च या । तत्षट्त्रिंशत्सखीनां च ईश्वरी राधिकाभिधा ॥४८॥
ये वा द्विषन्ति निन्दन्ति पापिनश्च हसन्ति च । कृष्णप्राणाधिकादेवदेवीं च राधिकां वराम् ॥४९॥
ब्रह्महत्याशतं ते च लभन्ते नात्र संशयः । तत्पापेन च पच्यन्ते कुम्भीपाके च रौरवे ॥५०॥
तप्ततैले महाघोरे ध्वान्ते कीटे च यन्त्रके । चतुर्दशेन्द्रावच्छिन्नं पितृभिः सप्तभिः सह ॥५१॥
ततः परं च जायन्ते जन्मैकं लोकजन्मतः । दिव्यं वर्षसहस्रं च विष्ठाकीटाश्च पापतः ॥५२॥

---

होगा, तब वहीं रासमण्डल में देवों के बीच सुखासीन उनके दर्शन अवश्य करोगे, इसमें सन्देह नहीं ॥३७-४०॥ यह सुनकर ब्रह्मा तप से विरत होकर अपने घर चले गये । पश्चात् समय पर उन्हें दर्शन प्राप्त हुआ, उनका मनोरथ परिपूर्ण हो गया, वे बहुत प्रसन्न हुए ॥४१॥ गोपों और गोपियों के जन्म-जीवन सफल हैं; क्योंकि वे नित्य राधा के ब्रह्मादि-दुर्लभ चरण-कमल का दर्शन करते हैं ॥४२॥ सन्त-महात्मा, योगीन्द्र, मुनीन्द्र, सिद्धेन्द्र और वैष्णव संत सती राधिका की, जो मानिनी, पुण्यमयी, तीर्थों को पावन बनानेवाली, स्वतः शुद्ध और अत्यन्त दुर्लभ हैं, नित्य निरन्तर सेवा करते हैं । जिससे उनको राधा का वह चरण-कमल सुलभ हो जाता है, जिसका मिलना ब्रह्मा आदि देवताओं के लिए भी अत्यन्त कठिन है ॥४३-४४॥ सर्वेश्वरेश्वर परमात्मा कृष्ण ने जिनके चरण-कमलों के नखों को महावर से अंकित किया था; गोलोक में स्थित शतशृंग पर्वत पर रासमण्डल में स्वयं श्रीकृष्ण ने सुदुर्लभ स्तोत्रराज द्वारा जिनकी पूजा की थी तथा जिनके चरण-कमलों में कोमल दुर्वांकुर, अक्षत, गन्ध और चन्दन निवेदित करके पारिजातपुष्पों की पुष्पाञ्जलि समर्पित की थी; जो छत्तीस सखियों की स्वामिनी और तीस हजार गोपियों की अधीश्वरी हैं; जिनका नाम राधिका है; जो श्रीकृष्ण की प्राणप्रिया और देवताओं की भी पूजनीया हैं, उन सर्वश्रेष्ठ राधिका से जो पापी द्वेष करते हैं या उनकी निन्दा करते हैं या खिल्ली उड़ाते हैं, उन पापियों को सैकड़ों ब्रह्महत्याएँ लगती हैं, इसमें संशय नहीं। उसी पाप के कारण वे कुम्भीपाक और रौरव नरक में, संतप्त तेल के कुण्ड में, महाघोर अन्धकार में और पेरनेवाले यन्त्र में अपनी सात पीढ़ियों समेत चौदह इन्द्रों के समय तक पचते रहते हैं ॥४५-५१॥ उसके पश्चात् लोक-जन्म के अनुसार वे एक जन्म में उस पाप के कारण एक दिव्य सहस्र वर्षों तक विष्ठा के कीट होकर उत्पन्न होते

पुंश्चलीनां योनिकीटास्तद्रक्तमलभक्षकाः। मलकीटाश्च तन्मानवर्षं च पूयभक्षकाः ॥५३॥
वेदे च काण्वशाखायामित्याह कमलोद्भवः। इत्युक्तवन्तं तं यान्तमुवाच राधिका पुनः॥
रुदन्तं च रुदन्ती सा कृष्णविच्छेदकातरा ॥५४॥

## राधिकोवाच

गच्छ वत्स मधुपुरीं सर्वं बोधय माधवम्। यथा पश्यामि गोविन्दं प्रयत्नेन तथा कुरु ॥५५॥
निष्फलं च गतं जन्म गच्छ मिथ्यादुराशया। आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम् ॥५६॥
पश्चाद्विचिन्त्य गोविन्दं जीवन्मुक्ता बभूव सा। इत्युक्त्वा राधिका तत्र ररोद च भृशं पुनः ॥५७॥
प्रणम्य तां रुदन्तीं च यशोदाभवनं ययौ। अथोद्धवे गते राधा मूर्च्छां संप्राप नारद ॥५८॥
तत्याज चेतनां शश्वद्बभूव ध्यानतत्परा। पङ्कस्थे पङ्कजदले सजले शयने मुने ॥५९॥
गोप्यस्तां स्थापयामासुः साश्रुनेत्रोत्पला वराः। तत्स्पर्शमात्राच्छयनं भस्मीभूतं बभूव ह ॥६०॥
पुनः स्निग्धस्थले स्निग्धनिचोले चन्दनाङ्किते। पुनस्तां स्थापयामासुर्विरहज्वरकातराम् ॥६१॥
सहसा शुष्कतां प्राप सुगन्धि चन्दनोदकम्। निमेषेण शतयुगं तद्बभूवोद्धवं विना ॥६२॥

---

हैं ॥५२॥ अनन्तर उतने ही वर्षों तक पुंश्चली स्त्रियों की योनि के रक्त, मल का भक्षण करनेवाले कीड़े तथा मवाद चाटनेवाले मलकीट होते हैं ॥५३॥ वेद की कण्वशाखा में ब्रह्मा ने ऐसा कहा है। इतना कहकर पुनः जाने के लिए उद्यत एवं रोते हुए उन उद्धव से कृष्ण के वियोग से कातर हुई राधिका ने रोदन करते हुए कहा ॥५४॥

**राधिका बोलीं**—हे वत्स ! मथुरापुरी जाओ और माधव (कृष्ण) से मेरी सभी बातें कहो और ऐसा प्रयत्न करो, जिससे मैं गोविन्द को (पूर्व की भांति) देख सकूं। जाओ, मैंने मिथ्या दुराशा की थी। मेरा जन्म निष्फल हो गया ॥५५-५६॥ (संसार में) आशा ही परम दुःख है और (सांसारिक सभी वस्तुओं आदि से) निराश होना महान् सुख है। पश्चात् भगवान् गोविन्द के ध्यान में मग्न होकर वे जीवन्मुक्त हो गयीं। इतना कहकर राधिका जी उसी स्थान पर अत्यन्त रोदन करने लगीं और रोदन करती हुई उन्हें प्रणाम करके उद्धव यशोदा के भवन में चले गये ॥५७-५८॥ हे नारद ! उद्धव के चले जाने पर राधिका मूच्छित हो गयीं, वे इस प्रकार ध्यानमग्न हुईं कि उनकी चेतना का ही त्याग हो गया। मुने ! ऐसा देखकर गोपियों ने अपने नयन-कमलों में आँसू भरकर राधिका को सजल पंकस्थित कमल दल की शय्या पर शयन कराया, किन्तु उनकी देह का स्पर्श होते ही वह शय्या जल गयी ॥५९-६०॥ पुनः गोपियों ने वियोग-ज्वर से अधीर होनेवाली राधिका को, एक ऐसे कोमल स्थान पर सुलाया, जिस पर कोमल चद्दर बिछी हुई थी और चन्दन मिश्रित जल का छिड़काव किया गया था, परन्तु वह सुगन्धित चन्दनयुक्त जल भी सहसा सूख गया। उद्धव के बिना राधा को एक निमेष सौ युगों के समान प्रतीत होने लगा ॥६१-६२॥ हा उद्धव ! हा उद्धव ! शीघ्र जाकर कृष्ण से कहो।

हा होद्धवोद्धव हरिं शीघ्रं गत्वा वदेति च। समानय हरिं शीघ्रं मत्प्राणेश्वरमित्यपि ॥६३॥
इत्युक्तवचनां[1] दीनां संतापहृतचेतनाम्। रुरुदुर्गोपिकाः सर्वा राधां कृत्वा स्ववक्षसि
चेतनां कारयामासुर्बोधयामासुरीप्सितम् ॥६४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० राधोद्धवसं०
सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥९७॥

•

# अथाष्टनवतितमोऽध्यायः

## नारायण उवाच

अथोद्धवो यशोदां च प्रणम्य त्वरया मुदा। खर्जूरकाननं वामे कृत्वा च यमुनां ययौ ॥१॥
स्नात्वा भुक्त्वा च तत्रैव जगाम मथुरां पुनः। ददर्श वटमूले च गोविन्दं रहसि स्थितम् ॥२॥
प्रफुल्लोऽप्युद्धवं दृष्ट्वा सस्मितं तमुवाच सः। रुदन्तं शोकदग्धं च साश्रुनेत्रं च कातरम् ॥३॥

---

और मेरे प्राणेश्वर हरि को शीघ्र ले आओ, इस प्रकार कहनेवाली और संताप से अपहृत चेतनावाली दीन राधिका को अपनी छाती से लगाकर सभी गोपियाँ रोदन करने लगीं। फिर राधा को होश में लाकर उन्हें अभीष्ट ढाढस बँधाने लगीं ॥६३-६४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण में श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद-नारायण के संवाद में
राधोद्धव-संवाद वर्णन नामक सत्तानबेवाँ अध्याय समाप्त ॥९७॥

•

# अध्याय ९८

## उद्धव का मथुरागमन और श्रीकृष्ण के साथ संभाषण

**नारायण बोले**--उद्धव ने यशोदा जी के यहाँ जाकर प्रसन्नतापूर्वक उन्हें प्रणाम किया। पुनः शीघ्र वहाँ से विदा होकर खजूर वन को बायें करके यमुना जी पहुँचे। वहीं स्नान-भोजन करके पश्चात् मथुरा चले गये। यहाँ एकान्त में वट की छाया में बैठे हुए गोविन्द को देखा और भगवान् ने भी प्रसन्न मन से उद्धव को देखकर उनसे मुसकराते हुए बोले। उस समय उद्धव शोक से दग्ध होने के कारण रो रहे थे, नेत्रों से आँसू झर रहे थे और वे भयभीत थे ॥१-३॥

---

१ क. 'वन्ती सहसा सततं हृ'।

### श्रीभगवानुवाच

आगच्छोद्धव कल्याणं राधा जीवति जीवति । कल्याणयुक्ता गोप्यश्च जीवन्ति विरहज्वरात् ॥४॥
शुभं गोपशिशूनां च वत्सानां च गवामपि । माता मे पुत्रविरहाद्यशोदा कीदृशी[1] च सा ॥५॥
वद बन्धो यथार्थं तत्त्वां दृष्ट्वा किमुवाच सा । त्वयोक्ता जननी किं वा पुनः सा किमुवाच माम् ॥६॥
दृष्टं तद्यमुनाकूलं पुण्यं वृन्दावनं वनम् । निर्जनोपवनौघैश्च सुरम्यं रासमण्डलम् ॥७॥
रम्यं कुञ्जकुटीरौघै रम्यं क्रीडासरोवरम् । पुष्पोद्यानं विकसितं संकुलं च मधुव्रतैः ॥८॥
भाण्डीरे च वटो दृष्टः सुस्निग्धो बालकान्वितः । दृष्टो गोष्ठो गवां दृष्टं गोकुलं गोकुलव्रजम् ॥९॥
यदि जीवति राधा सा दृष्ट्वा त्वां किमुवाच माम् । तत्सर्वं वद हे बन्धो चाऽऽन्दोलयति मे मनः ॥१०॥
किमूचुर्गोपिकाः सर्वाः किमुचुर्गोपबालकाः । गोपाश्च वृद्धाः किंवोचुर्वयस्या जनकस्य मे ॥११॥
बलदेवस्य जननी किमूचे रोहिणी सती । किमुचूरपरास्तात बन्धुवल्लभवल्लवाः ॥१२॥
किं भुक्तं किमपूर्वं वा दत्तं मात्रा च राधया । कीदृग्वाक्यं सुमधुरं संभाषा कीदृशीति च ॥१३॥
गोपानां गोपिकानां च शिशूनां मातुरेव च । राधायाश्चापि कीदृग्वा मयि प्रेमोद्धवाधिकम् ॥१४॥
मां च स्मरति माता मे मां च स्मरति रोहिणी । मां च स्मरति सा राधा मत्प्रेमविरहाकुला ॥१५॥

---

**श्रीभगवान् बोले**—उद्धव ! आओ कल्याण तो है न ? राधा जीवित है न ? विरह-ताप से संतप्त कल्याणमयी गोपियाँ जीवित हैं न ? गोप-बालकों, बछड़ों तथा गौओं का कल्याण है न ? मेरी माता यशोदा पुत्र-वियोग से कैसी हो गयी है ? ॥४-५॥ बन्धु ! तुम्हें देखकर उन्होंने क्या कहा ? मुझे सही बताओ तुमने माता से क्या कहा ? और पुनः उसने मेरे लिए क्या कहा ॥६॥ क्या तुमने वह यमुनातट, पुण्य वृन्दावन नामक वन, निर्जन उपवनों समेत अति रमणीक रासमण्डल, रमणीक कुञ्ज कुटीर समूहों से सुरम्य क्रीडासरोवर, भौंरों से व्याप्त एवं विकसित पुष्पवाटिका, भांडीर वन में शीतल छाया एवं बालकों से युक्त वटवृक्ष, गौओं का गोष्ठ, गोकुल तथा गोसमुदाय देखे ? ॥७-९॥ यदि राधा जीवित है तो उसने तुम्हें देखकर मेरे लिए क्या कहा ? हे बन्धु ! वह सब बताओ क्योंकि मेरा मन अधीर हो रहा है ॥१०॥ समस्त गोपियों ने क्या कहा ? गोप-बालकों ने क्या कहा ? वृद्ध गोपों, मेरे पिता के मित्रों ने क्या कहा ? ॥११॥ हे तात ! बलदेव की माता सती रोहिणी ने क्या कहा ? और अन्य प्रिय बन्धुओं की पत्नियों ने कौन-सी बात कही ? ॥१२॥ वहाँ क्या भोजन किया ? माता (यशोदा) और राधा ने कौन-सी अपूर्व वस्तु उपहार में दी ? उन्होंने किस ढंग से बातचीत की ? और उनके वचन कैसे मधुर थे ॥१३॥ उद्धव ! गोपों, गोपिकाओं, बच्चों और माता तथा राधिका का मेरे प्रति कैसा प्रेम है ? (पूर्ववत् या) अधिक ॥१४॥ क्या मेरी माता मुझे स्मरण करती है ? क्या रोहिणी स्मरण करती हैं ? क्या मेरे प्रेम-वियोग से व्याकुल होकर राधिका मेरा स्मरण करती हैं ? ॥१५॥ क्या गोपियाँ, गोप और गोपबालक

---

१ क. 'शी बरा ।

मां च स्मरन्ति गोप्यश्च गोपाश्च गोपबालकाः। भाण्डीरे वटमूले च बालाः क्रीडन्ति मां विना ॥१६॥
दत्तमन्नं ब्राह्मणीभिर्यत्र भुक्तं सुधोपमम्। प्रमदाबालकैः सार्धं तद्दृष्टं पदमीप्सितम् ॥१७॥
इन्द्रयागस्थलं दृष्टं दृष्टो गोवर्धनो वरः। ब्रह्मणा च हृता गावो यत्र तद्दृष्टमुत्तमम् ॥१८॥
श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा शोकोक्तं मधुरान्वितम्। उद्धवः समुवाचेदं भगवन्तं सनातनम् ॥१९॥

## उद्धव उवाच

यद्यदुक्तं त्वया नाथ सर्वं दृष्टं यथेप्सितम्। सफलं जीवनं जन्म कृतमत्रैव भारते ॥२०॥
दृष्टं भारतसारं च पुण्यं वृन्दावनं वनम्। तत्सारं व्रजभूमौ च सुरम्यं रासमण्डलम् ॥२१॥
तत्सारभूता गोलोकवासिन्यो गोपिकाः वराः। दृष्टा तत्सारभूता च राधा रासेश्वरी परा ॥२२॥
कदलीवनमध्ये च निर्जने सुहृदस्थले। पङ्कस्थे पङ्कजदले सजले चन्दनार्चिते ॥२३॥
शयनेऽतिविषण्णा सा रत्नभूषणवर्जिता। अतीव मलिना क्षीणाऽऽच्छादिता शुक्लवाससा ॥२४॥
सेविता सखिभिस्तत्र सततं श्वेतचामरैः। कृशोदरी निराहारा क्षणं श्वसिति च क्षणम् ॥२५॥
क्षणं जीवति किं वा सा विरहज्वरपीडिता। किं वा जलं स्थलं किं वा नक्तं किं वा दिनं हरे ॥२६॥
नरं पशुं न जानाति किं परं किमु बान्धवम्। बाह्यज्ञानविरहिता ध्यायमाना पदं तव ॥२७॥

---

मेरा स्मरण करते हैं ? क्या मेरे न रहने पर ग्वालबाल भाण्डीर वन में वटवृक्ष के नीचे क्रीड़ा करते हैं ? ॥१६॥ ब्राह्मणियों द्वारा दिये गये उस अमृतमय अन्न को जहां स्त्रियों और बालकों के साथ मैंने खाया था, क्या उस अभीष्ट स्थान को तुमने देखा है ? ॥१७॥ इन्द्रयाग का स्थान, श्रेष्ठ गोवर्धन पर्वत और ब्रह्मा ने जहाँ गौओं को चुरा लिया था, उस उत्तम स्थान को देखा है ॥१८॥ श्रीकृष्ण का शोकपूर्ण मधुर वचन सुनकर उद्धव ने सनातन भगवान् से कहा ॥१९॥

**उद्धव बोले**—नाथ ! आपने जो कुछ कहा है, उन सभी अभीष्ट स्थानों को मैंने देख लिया और इस भारतवर्ष में अपने जीवन और जन्म को सफल कर लिया ॥२०॥ भारतवर्ष के सारभूत पुण्यमय वृन्दावन को भी देख लिया, व्रजभूमि में उन वन का सारभूत अति रमणीक रासमण्डल है, रासमण्डल का सारभूत गोलोकवासिनी श्रेष्ठ समस्त गोपियाँ हैं और उन गोपियों की सारभूता परात्पर रासेश्वरी श्री राधिका हैं ॥२१-२२॥ वे कदली वन के बीच निर्जन सुहृदस्थल में कमल दल की शय्या पर, जो पङ्क के मध्य सजल एवं चन्दनों से तर की गयी थी, रत्न-भूषणों को त्यागकर अत्यन्त खिन्न होकर पड़ी थीं। वे अत्यन्त मलिन, क्षीण तथा धवल वस्त्र से आच्छादित थीं ॥२३-२४॥ सखियाँ श्वेत चामरों से उनकी निरन्तर सेवा कर रही थीं। वे भोजन त्याग चुकी हैं। उनका उदर कृश हो गया है। वे क्षण-क्षण पर साँस लेती हैं ॥२५॥ इस प्रकार विरहज्वर से पीड़ित राधा क्या क्षण भर जीवित रह सकती हैं ? हरे ! वे यह भी नहीं जानती हैं कि क्या जल है और क्या स्थल है, क्या रात है और क्या दिन है, कौन मनुष्य है और कौन पशु, कौन अपना है और कौन पराया। वे बाह्यज्ञान से रहित होकर केवल आपके चरणों का ही ध्यान कर रही हैं ॥२६-२७॥ तीनों लोकों

त्रैलोक्ये यशसा भाति तन्मृत्युर्यशसंभवः। स्त्रीहत्यां नैव वाञ्छन्ति ज्ञान हीनाश्च दस्यवः ॥२८॥
गच्छ शीघ्रं जगन्नाथ कदलीवनमीप्सितम्। बहिर्भूता न जगतां सा राधा त्वत्परायणा ॥२९॥
अतीव भक्ता न त्याज्या प्रभुणा रक्षिता सदा। न हि राधापरा भक्ता न भूतो न भविष्यति ॥३०॥
मन्मथः शंकराद्भीतो भवांश्च तत्पुरःसुरः। भवद्विधं पतिं प्राप्य कामदग्धा च राधिका ॥३१॥
तस्मात्सर्वपरं कर्म तन्न केनापि वार्यते। मधुर्दहति चन्द्रश्च सततं किरणेन च ॥३२॥
शश्वत्सुगन्धिवायुश्चाप्यनाथा सर्वपीडिता। तप्त काञ्चनवर्णाभा साऽधुना कज्जलोपमा ॥३३॥
सुवर्णवर्णकेशी च वासोवेषविवर्जिता। स्वयं विधाता त्वद्भक्तः सुराणां प्रवरो विभुः ॥३४॥
त्वद्भक्तः शंकरो देवो योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः। सनत्कुमारस्त्वद्भक्तो गणेशो ज्ञानिनां वरः[1] ॥३५॥
मुनीन्द्राश्च कतिविधास्त्वद्भक्ता धरणीतले। त्वद्भक्ता यादृशी राधा न भक्तादृशोऽपरः ॥३६॥
ध्यायते यादृशी राधा स्वयं लक्ष्मीर्न तादृशी। हरिरायाति चेत्येवं राधाग्रे स्वीकृतं मया ॥३७॥
शीघ्रं गच्छ महाभाग तदेव सार्थकं कुरु। उद्धवस्य वचः श्रुत्वा जहासोवाच माधवः ॥
वेदोक्तं कथयामास सहितं सत्यसुव्रतम् ॥३८॥

---

में उनका यश सुशोभित है अतः उनकी मृत्यु भी यशोमूल कही जायगी। ज्ञानहीन दस्युगण भी स्त्री-हत्या नहीं चाहते हैं, तो आप क्यों चाहेंगे ? अतः हे जगन्नाथ ! उस अभीष्ट कदली वन में शीघ्र जाइये। आप में निरत रहनेवाली वह राधा संसार से बाहर नहीं हैं। प्रभु द्वारा सदा रक्षित अत्यन्त भक्त राधा त्यागने योग्य नहीं हैं। राधा से बढ़कर आपकी भक्ता न कोई हुई है और न होगी ॥२८-३०॥ कामदेव शिव से भयभीत हैं और आप शिव के अग्रगामी हैं। आप जैसे पति को पाकर भी राधिका काम द्वारा दग्ध हो रही हैं ॥३१॥ इसलिए कर्म ही प्रधान है, उसे कोई रोक नहीं सकता है। वसन्त ऋतु और चन्द्रमा भी अपनी किरणों द्वारा उन्हें दग्ध कर रहा है। सुगन्धित वायु भी निरन्तर जला रहा है, अतः वे अनाथ होकर सबसे पीड़ित हो रही हैं। तपाये सुवर्ण की भाँति उनकी चमकीली कान्ति इस समय काजल की भाँति श्याम हो गयी है ॥३२-३३॥ सिर के केश सुवर्ण वर्ण के समान हो गये हैं, और वे स्वयं वस्त्र एवं वेश से रहित हैं। यद्यपि देवों में श्रेष्ठ और प्रभु स्वयं ब्रह्मा भी आपके भक्त हैं ॥३४॥ योगीन्द्रों के गुरु के गुरु शिव भी आपके भक्त हैं। सनत्कुमार एवं ज्ञानिप्रवर गणेश भी आपके भक्त हैं ॥३५॥ धरातल पर अनेक भाँति के मुनीन्द्रगण आपके भक्त हैं किन्तु जैसी भक्त राधिका हैं वैसा कोई दूसरा भक्त नहीं है ॥३६॥ जिस प्रकार राधिका आपका ध्यान करती हैं, स्वयं लक्ष्मी उस ढंग से ध्यान नहीं कर सकती हैं। कृष्ण आयेंगे-यह मैंने राधिका के सामने स्वीकार किया है अतः हे महाभाग ! आप शीघ्र जाकर मेरी बात को सार्थक करें। उद्धव की बात सुनकर माधव हँस पड़े और वेदोक्त हितकारक एवं उत्तम सत्यव्रत का वर्णन करते हुए कहा ॥३७-३८॥

---

१ क. गुरुः।

### श्रीभगवानुवाच

स्त्रीषु धर्मविवाहेषु वृत्यर्थे प्राणसंकटे। गवामर्थे ब्राह्मणार्थे नानृतं स्याज्जुगुप्सितम् ॥३९॥
तत्स्वीकारविहीनेन कुतस्त्वं नरकः कुतः। गोलोकं याति मद्भक्तो नरकं न हि पश्यति ॥४०॥
त्वदङ्गीकारसाफल्यं करिष्यामि तथाऽपि च। यास्यामि स्वप्ने तन्मूलं गोपीनां मातुरेव च ॥४१॥
इत्याकर्ण्य ययौ गेहमुद्धवश्च महायशाः। हरिर्जगाम स्वप्ने च गोकुलं विरहाकुलम् ॥४२॥
स्वप्ने राधां समाश्वास्य दत्वा ज्ञानं सुदुर्लभम्। संतोष्य क्रीडया तां च गोपिकाश्च यथोचितम् ॥४३॥
बोधयित्वा यशोदां च स्तनं पीत्वा च निद्रिताम्। गोपान्गोपशिशूंश्चैव बोधयित्वा ययौ पुनः ॥४४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० अष्टनव-
तितमोऽध्यायः ॥९८॥

●

---

**श्रीभगवान् बोले**—स्त्रियों में हास्य में, धर्म-विवाहों में, जीविका के लिए, प्राण-संकट उपस्थित होने पर, गौओं के लिए और ब्राह्मण के लिए असत्य बोलना निन्दित नहीं होता है ॥३९॥ अतः उसे स्वीकार न करने पर भी कहाँ तुम और कहाँ नरक (अर्थात् तुम्हें नरक नहीं होगा)। मेरा भक्त गोलोक जाता है, नरक नहीं ॥४०॥ तथापि तुम्हारे स्वीकार को सफल करूँगा। मैं स्वप्न में राधिका, गोपियों और माता यशोदा के पास जाऊँगा ॥४१॥ यह सुनकर महायशस्वी उद्धव अपने घर चले गये और भगवान् स्वप्न से विरहव्याकुल हो गोकुल में जा पहुँचे ॥४२॥ वहाँ स्वप्न में राधिका को उन्होंने आश्वासन देते हुए अति दुर्लभ ज्ञान प्रदान किया और क्रीड़ा द्वारा उन्हें एवं गोपियों को सन्तुष्ट किया। निद्रामग्न यशोदा जी को प्रबोधन देकर उनका स्तन पान किया और गोपों तथा गोप-बालकों को समझा-बुझाकर पुनः मथुरा चले गये ॥४३-४४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद-नारायण के संवाद में
अट्ठानबेवाँ अध्याय समाप्त ॥९८॥

●

# अथ नवनवतितमोऽध्यायः

## नारायण उवाच

एतस्मिन्नन्तरे गर्गो वसुदेवाश्रमं ययौ। दण्डी छत्री च जटिलो दीप्तश्च ब्रह्मतेजसा ॥१॥
शुक्लयज्ञोपवीती च तपस्वी संयतः सदा। शुक्लदन्तः शुक्लवासा यदोः कुलपुरोहितः ॥२॥
तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय देवकी प्रणनाम च। वसुदेवश्च भक्त्या च रत्नसिंहासनं ददौ ॥३॥
मधुपर्कं कामधेनुं वह्निशुद्धांशुकं तथा। दत्त्वा गन्धं पुष्पमाल्यं पूजयामास भक्तितः ॥४॥
मिष्टान्नं परमान्नं च पिष्टकं मधुरं मधु। भोजयामास यत्नेन ताम्बूलं वासितं ददौ ॥५॥
प्रणम्य कृष्णं मनसा सबलं तं विलोक्य च। उवाच वसुदेवं च देवकीं च पतिव्रताम् ॥६॥

## गर्ग उवाच

वसुदेव निबोधेनं सबलं पश्य पुत्रकम्। उपनीतोचितं शुद्धं वयसा सांप्रतं वरम् ॥७॥

## वसुदेव उवाच

शुभक्षणं कुरु गुरो यदूनां पूज्यदैवत। उपनीतोचितं शुद्धं प्रशंस्यं च सतामपि ॥८॥

---

# अध्याय ९९

## भगवान् के उपनयन में गणेश का अभिषेक

**नारायण बोले**—इसी बीच गर्गाचार्य वसुदेव के यहाँ आये, जो दण्ड, छत्र लिये, जटा जूट बाँधे, ब्रह्म तेज से प्रदीप्त, शुक्लयज्ञोपवीत से भूषित, तपस्वी, संयत रहनेवाले, श्वेत दाँत और श्वेत वस्त्रवाले एवं यदुवंशियों के पुरोहित थे ॥१-२॥ उन्हें देखकर देवकी और वसुदेव ने सहसा उठकर भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और रत्नसिंहासन दिया ॥३॥ अनन्तर मधुपर्क, कामधेनु, अग्निविशुद्ध वस्त्र, गन्ध और पुष्प-माला समर्पित करके भक्तिपूर्वक उनकी पूजा की ॥४॥ मिठाई, खीर, पकवान तथा मधुर मधु बलपूर्वक भोजन कराया और सुवासित ताम्बूल प्रदान किया ॥५॥ मन से श्रीकृष्ण को प्रणाम करके बलराम समेत उन्हें देखकर गर्ग ने वसुदेव तथा पतिव्रता देवकी से कहा ॥६॥

**गर्ग बोले**—वसुदेव जी ! बलभद्र समेत पुत्र (कृष्ण) को देखो और विचार करो कि अब इनकी अवस्था यज्ञोपवीत संस्कार के योग्य हो गयी है ॥७॥

**वसुदेव बोले**—गुरो ! आप यदुकुल के पूज्य देवता हैं, उपनयन के योग्य शुद्ध एवं शुभ मुहूर्त निश्चित करें, जो सज्जनों के लिए भी प्रशंसनीय हो ॥८॥

## गर्ग उवाच

सर्वेभ्यो बान्धवेभ्योऽपि देह्यामन्त्रणपत्रिकाम् । संभारं कुरु यत्नेन वसुदेव वसूपम ॥९॥
परश्वः शुभमेवास्ति चोपेनतुमिहार्हसि । दिनं सतामपि मतं विशुद्धं चन्द्रतारयोः ॥१०॥
गर्गस्य वचनं श्रुत्वा वसुदेवो वसूपमः । प्रस्थापयामास सर्वान्बन्धून्मङ्गलपत्रिकाम् ॥११॥
घृतकुल्यां दुग्धकुल्यां दधिकुल्यां मनोहराम् । मधुकुल्यां गुडकुल्यां प्रचकार समन्वितः ॥१२॥
राशिं नानोपहाराणां मणिरत्नं सुवर्णकम् । नानालंकारवस्त्रं च मुक्तामाणिक्यहीरकम् ॥१३॥
श्रीकृष्णो देववर्गांश्च मुनीन्द्रसिद्धपुंगवान् । सस्मार मनसा भक्त्या भक्तांश्च भक्तवत्सलः ॥१४॥
शुभे दिने च संप्राप्ते ते च सर्वे समाययुः । मुनीन्द्रा बान्धवा देवा राजानो बहुशस्तथा ॥१५॥
देवकन्या नागकन्या राजकन्याश्च सर्वशः । विद्याधर्यश्च गन्धर्वाश्चाऽऽययुर्वाद्यभाण्डकाः ॥१६॥
ब्राह्मणा भिक्षुका भट्टा यतयो ब्रह्मचारिणः । संन्यासिनश्चावधूता योगिनश्च समाययुः ॥१७॥
स्त्रीबान्धवाः स्वबन्धूनां वर्गा मातामहस्य च । बन्धूनां बान्धवाः सर्वे स्वाययुः शुभकर्मणि ॥१८॥
भीष्मो द्रोणश्च कर्णश्चाप्यश्वत्थामा कृपो द्विजः । सुपुत्रो धृतराष्ट्रश्च सभार्यश्च समाययौ ॥१९॥
कुन्ती सपुत्रा विधवा हर्षशोकसमाप्लुता । नानादेशोद्भवा योग्या राजानो राजपुत्रकाः ॥२०॥
अत्रिर्वसिष्ठश्च्यवनो भरद्वाजो महातपाः । याज्ञवल्क्यश्च भीमश्च गार्ग्यो गर्गो महातपाः ॥२१॥

---

**गर्ग बोले**—वसुतुल्य वसुदेव ! सभी बन्धुओं को निमन्त्रणपत्र दो, यत्न से सभी सामग्री एकत्रित करो। परसों ही शुभ मुहूर्त है। उस दिन चन्द्रमा और तारा अनुकूल हैं। वह दिन सत्पुरुषों को भी मान्य है, अतः उसी मुहूर्त में तुम उपनयन कर सकते हो ॥९-१०॥

गर्गाचार्य की बात सुनकर वसूपम वसुदेव ने सभी बन्धुओं के पास माङ्गलिक निमन्त्रणपत्र भेज दिया फिर घी, दूध, दही, मधु और गुड़ की मनोहर नहरें बनवायीं और विभिन्न उपहार की वस्तुओं—मणि, रत्न, सुवर्ण, अनेक भाँति के अलङ्कार, वस्त्र, मुक्ता, माणिक्य एवं हीरों की राशि लगवा दी ॥११-१३॥ इधर भक्त-वत्सल श्रीकृष्ण ने भक्तिपूर्वक देवों, मुनीन्द्रों तथा सिद्धश्रेष्ठों का मन-ही-मन स्मरण किया ॥१४॥ इस शुभ अवसर पर वे सभी वर्ग के लोग वहाँ आये-जिनमें मुनीन्द्रगण, बन्धुवर्ग, देवगण एवं अनेक राजागण थे ॥१५॥ स्त्री पक्ष से देवकन्याएँ, नागकन्याएँ, राजकुमारियाँ, विद्याधरियाँ और बाजे बजानेवाले गन्धर्व भी आये ॥१६॥ ब्राह्मण, भिक्षुक, भट्ट, यति, ब्रह्मचारी, संन्यासी, अवधूत एवं योगिवृन्द भी पधारे ॥१७॥ उस शुभ कर्म में स्त्रियों के बन्धु वर्ग, अपने बन्धुओं का समुदाय, (नाना) के यहाँ के लोग और बन्धुओं के भी बन्धुगण ये सभी सम्मिलित हुए ॥१८॥

भीष्म, द्रोण, कर्ण, अश्वत्थामा, कृपाचार्य और पत्नी-पुत्रों समेत धृतराष्ट्र आये ॥१९॥ पुत्रों समेत कुन्ती भी आयीं, जो विधवा एवं हर्ष-शोक-संयुक्त थीं। अनेक देशों के योग्य राजा लोग तथा राजकुमार गण आये ॥२०॥ अत्रि, वसिष्ठ, च्यवन, महातपस्वी भरद्वाज, याज्ञवल्क्य, भीम, गार्ग्य, महातपा गर्गाचार्य,

वत्सः सपुत्रश्च धर्मो जैगीषव्यः पराशरः । पुलहश्च पुलस्त्यश्चाप्यगस्त्यश्चापि सौभरिः ॥२२॥
सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः । सनत्कुमारो भगवान्वोढुः पञ्चशिखस्तथा ॥२३॥
दुर्वासाश्चाङ्गिरा व्यासो व्यासपुत्रः शुकस्तथा । कुशिकः कौशिको राम ऋष्यशृङ्गो विभाण्डकः ॥२४॥
शृङ्गी च वामदेवश्च गौतमश्च गुणार्णवः । क्रतुर्यतिश्चाऽऽरुणिश्च शुक्राचार्यो बृहस्पतिः ॥२५॥
अष्टावक्रो वामनश्च वाल्मीकिः पारिभद्रकः । पैलो वैशंपायनश्च प्रचेताः पुरुजित्तथा ॥२६॥
भृगुर्मरीचिर्मधुजित्कश्यपश्च प्रजापतिः । अदितिर्देवमाता च दितिर्दैत्यप्रसूस्तथा ॥२७॥
सुमन्तुश्च सुभानुश्च कण्वः कात्यायनस्तथा । मार्कण्डेयो लोमशश्च कपिलश्च पराशरः ॥२८॥
पाणिनिः पारियात्रश्च पारिभद्रश्च पुंगवः । संवर्तश्चाप्युतथ्यश्च नरोऽहं चापि नारद ॥२९॥
विश्वामित्रः शतानन्दो जाबालिस्तैतिलस्तथा[1] । सांदीपनिश्च ब्रह्मांशो योगिनां ज्ञानिनां गुरुः ॥३०॥
उपमन्युर्गोरमुखो मैत्रेयश्च श्रुतश्रवाः । कठः कचश्च करखो भरद्वाजश्च धर्मवित् ॥३१॥
सशिष्या मुनयः सर्वे वसुदेवाश्रमं ययुः । वसुदेवश्च तान्दृष्ट्वा ववन्दे दण्डवद्भुवि ॥३२॥
अथास्मिन्नन्तरे ब्रह्मा सस्मितो हंसवाहनः । रत्ननिर्माणयानेन पार्वत्या सह शंकरः ॥३३॥
नन्दी स्वयं महाकालो वीरभद्रः सुभद्रकः । मणिभद्रः पारिभद्रः कार्तिकेयो गणेश्वरः ॥३४॥
गजेन्द्रेण महेन्द्रश्च धर्मश्चन्द्रो रविस्तथा । कुबेरो वरुणश्चैव पवनो वह्निरेव च ॥३५॥

---

पुत्र समेत वत्स, धर्म, जैगीषव्य, पराशर, पुलह, पुलस्त्य, अगस्त्य, सौभरि, सनक, सनन्द, सनातन, सनत्कुमार, वोढु, पञ्चशिख, दुर्वासा, अङ्गिरा, व्यास, व्यासपुत्र-शुक, कुशिक, कौशिक, परशुराम, शृङ्गीऋषि, विभाण्डक, शृङ्गी, वामदेव, गुणसागर, गौतम, क्रतु, यति, आरुणि, शुक्राचार्य, बृहस्पति, अष्टावक्र, वामन, वाल्मीकि, पारिभद्रक, पैल, वैशम्पायन, प्रचेता, पुरुजित्, भृगु, मरीचि, मधुजित्, प्रजापति कश्यप, देवमाता अदिति, दैत्यजननी दिति, सुमन्तु, सुभानु, कण्व, कात्यायन, मार्कण्डेय, लोमश, कपिल, पराशर, पाणिनि, पारियात्र, पारिभद्र, पुंगव, संवर्त, उतथ्य, नर, मैं (नारायण), विश्वामित्र, शतानन्द, जाबालि, तैतिल, योगियों और ज्ञानियों के गुरु ब्रह्मांश-भूत सान्दीपनि, उपमन्यु, गोरमुख, मैत्रेय, श्रुतश्रवा, कठ, कच, करख, धर्मवेत्ता भरद्वाज और शिष्यों समेत समस्त मुनिगण वसुदेव के यहाँ पहुँचे। वसुदेव ने उन्हें देखकर पृथिवी में दण्डवत् लेटकर सबकी वन्दना की ॥२१-३२॥

इसी बीच हंस पर बैठे हुए प्रसन्न मुख ब्रह्मा, रत्नों के विमान पर पार्वती समेत शिव, नन्दी, स्वयं महाकाल, वीरभद्र, सुभद्रक, मणिभद्र, पारिभद्र, कार्तिकेय, गणेश्वर, ऐरावत पर बैठे महेन्द्र, धर्म, चन्द्र, सूर्य, कुबेर,

---

१ क. 'तिलि'।

यमः संयमिनीनाथो जयन्तो नलकूबरः। सर्वे ग्रहाश्च वसवो रुद्राश्च सगणस्तथा ॥३६॥
आदित्याश्च तथा शेषो नानादेवाः समाययुः। वसुदेवश्च भक्त्या च ववन्दे शिरसा भुवि ॥३७॥
तुष्टाव परया भक्त्या देवेन्द्रांश्च तथा सुरान्। भक्तिनम्रात्ममूर्धा च पुलकाञ्चितविग्रहः ॥३८॥

वसुदेव उवाच

परं ब्रह्म परं धाम परमेशः परात्परः। स्वयं विधाता मद्गेहे जगतां परिपालकः ॥३९॥
वेदानां जनकः स्रष्टा सृष्टिहेतुः सनातनः। सुराणां च मुनीन्द्राणां सिद्धेन्द्राणां गुरोर्गुरुः ॥४०॥
स्वप्ने यत्पादपद्मं च क्षणं द्रष्टुं सुदुर्लभम्। शिवस्मरणमात्रेण सर्वानिष्टाः पलायिताः ॥४१॥
सर्वसंकटमुत्तीर्यं कल्याणं लभते नरः। सर्वाग्रे पूजनं यस्य देवानामग्रणीः परः ॥४२॥
घटेषु मङ्गलं मन्त्रैर्भक्त्या चाऽऽवाहनेन च। स्वयं गणेशो भगवान् साक्षाद्विघ्नविनाशकः ॥४३॥
कार्तिकेयश्च भगवान्देवादीनां च पूजितः। देवानां प्रवरा पूज्या महालक्ष्मीः परात्परा ॥४४॥
मद्गेहे पार्वती माता जगतामादिरूपिणी। सर्वशक्तिस्वरूपा च मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥४५॥
परापराणां परमा परब्रह्मस्वरूपिणी। यस्याः पादौ समाराध्य वाञ्छितं लभते नरः ॥४६॥
शरत्काले च भक्त्या च सा साक्षान्मम मन्दिरे। सर्वदेवैश्च सहिता सगणा भक्तवत्सला ॥४७॥

---

वरुण, पवन, अग्नि, संयमिनी के अधीश्वर यम, जयन्त, नल-कूबर, सम्पूर्ण ग्रह, वसुगण, गणों समेत रुद्र, समस्त आदित्य, शेष एवं अनेक देव लोग वहाँ आये। वसुदेव ने भक्तिपूर्वक पृथ्वी पर सिर टेककर सभी लोगों की वन्दना की और देवेन्द्र आदि देवों की पराभक्ति के साथ स्तुति की। उस समय उनका सिर भक्ति से झुक गया और शरीर पुलकायमान हो रहा था ॥३३-३८॥

**वसुदेव बोले**—आज स्वयं विधाता (ब्रह्मा) मेरे घर पधारे हैं, जो परब्रह्म, महान् तेजस्वी, परमेश्वर, परात्पर एवं जगत् के परिपालक हैं तथा वेदों के जनक, स्रष्टा, सृष्टि के कारण, सनातन और देवों, मुनीन्द्रों एवं सिद्धों के गुरु के गुरु हैं ॥३९-४०॥ स्वप्न में भी जिनके चरण-कमल का क्षणिक दर्शन अति दुर्लभ है और जिनके स्मरण करने मात्र से सभी प्रकार के अनिष्ट दूर भाग जाते हैं, वे शिव जी भी यहाँ आये हुए हैं। समस्त संकटों को पार करके (जिनकी कृपा से) मनुष्य कल्याण प्राप्त करता है। जिनकी अर्चना सर्वप्रथम की जाती है, जो देवों में प्रमुख (अगुवा) हैं और कलशों में भक्तिपूर्वक मन्त्रोच्चारण द्वारा जिनके मङ्गलस्वरूप का आवाहन किया जाता है, वे साक्षात् विघ्नविनाशक भगवान् गणेश स्वयं यहाँ आये हैं ॥४१-४३॥ भगवान् कार्तिकेय भी आये हैं, जो देवों आदि द्वारा पूजित हैं। देवों में श्रेष्ठ, पूज्या एवं परात्परा महालक्ष्मी ने मेरे घर में पदार्पण किया है। जो लोकों की आदि रूपिणी समस्तशक्ति स्वरूपा, मूल प्रकृति ईश्वरी, परात्परों में परम श्रेष्ठ और परब्रह्मस्वरूपिणी हैं, शरत्काल में भक्तिपूर्वक जिनके चरणों की आराधना करके मनुष्य अपना मनोरथ सफल करता है जो परमाद्या, कृपामयी और कृपा पर वश हो भारतभूमि पर आविर्भूत हुई हैं, उन भक्तवत्सला साक्षात्

कृपामयी च कृपया चाऽऽविर्भूता च भारते। धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं सफलं जीवनं मम ॥४८॥
आगताऽसि यतो दुर्गे परमाद्या च मद्गृहे। एवं सर्वांश्च तुष्टाव क्रमेण च परस्परम् ॥४९॥
सर्वान्मुनीन्द्रान्विप्रांश्च गले बद्ध्वांऽशुकं मुदा। प्रत्येकं वासयामास रत्नसिंहासने वरे ॥५०॥
पूजयामास विधिवत्क्रमेण च पृथक्पृथक्। प्रत्येकं वरयामास ब्रह्मादींश्च सुरानपि ॥५१॥
मुनिवर्गान्ब्राह्मणांश्च भक्त्या गर्गं पुरोहितम्। रत्नैः प्रवालैर्मणिभिर्मुक्तामाणिक्यहीरकैः ॥५२॥
भूषणैर्वसनैश्चैव माल्यैश्च गन्धचन्दनैः। रत्नसिंहासने रम्ये सर्वेषां मध्यदेशतः ॥५३॥
गणेशं वासयामास पूजार्थं शुभकर्मणि। सप्ततीर्थोदकेनैव सुवर्णकलशेन च ॥५४॥
पुष्पचन्दनयुक्तेन शीतेन वासितेन च। स्वर्गगङ्गाजलेनैव पुष्करोदकपुण्यतः ॥५५॥
पञ्चामृतेन शुद्धेन पञ्चगव्येन भक्तितः। हेरम्बं स्नापयामास समुद्रोदेन मन्त्रतः ॥५६॥
वरयामास माल्येन पारिजातस्य नारद। रत्नेन्द्रभूषणेनैव वह्निशुद्धेन वाससा ॥५७॥
गन्धचन्दनपुष्पैश्च रत्नमाल्याङ्गुलीयकम्। तुष्टाव पार्वतीपुत्रं सर्वदेवाधिपं शुभम्
विघ्ननिघ्नकरं शान्तं भगवन्तं सनातनम् ॥५८॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० भगवदुपनयने
गणेशाभिषेको नाम नवनवतितमोऽध्यायः ॥९९॥

•

---

माता पार्वती का सम्पूर्ण देवताओं और गणों के साथ मेरे मन्दिर में शुभागमन हुआ है। दुर्गे! चूँकि आप मेरे घर पधारी हैं, अतः मैं धन्य और कृतार्थ हो गया। मेरा जीवन सफल हो गया।

इस प्रकार वसुदेव ने गले में वस्त्र बाँधकर हर्षपूर्वक क्रमशः सभी देवों, मुनिवरों और विप्रों की स्तुति की एवं उन्हें पृथक्-पृथक् श्रेष्ठ रत्नसिंहासनों पर बैठाया ॥४४-५०॥ फिर क्रमशः अलग-अलग उनकी विधिवत् पूजा की। तत्पश्चात् भक्ति-भावित हृदय से रत्नों, प्रवालों, मणियों, मुक्ता-माणिक्य एवं हीरों समेत भूषणों, वस्त्रों, मालाओं और गन्धचन्दनों द्वारा ब्रह्मा आदि देवताओं, मुनिसमूहों, ब्राह्मणों और पुरोहित गर्ग का एक-एक करके वरण किया। उस शुभ कर्म में सभी के मध्य में रमणीक रत्नसिंहासन पर सुशोभित गणेश देव का पूजा के लिए उन्होंने वरण किया। सुवर्ण के कलश में स्थित सातों समुद्रों के जल, पुष्प-चन्दन युक्त शीतल एवं सुवासित स्वर्ग गंगाजल, पुष्कर का पुण्योदक पञ्चामृत, शुद्ध पञ्चगव्य और समुद्र जल से हेरम्ब गणेश को भक्तिपूर्वक समंत्रक स्नान कराया ॥५१-५६॥ नारद! पारिजात की माला, रत्नेन्द्र का भूषण, अग्निविशुद्ध वस्त्र, गन्ध, चन्दन, पुष्पों, रत्नों की माला और अँगूठी गणेश को निवेदित की। फिर सभी देवों के अधीश्वर, शुभरूप, विघ्न-विनाशक, शान्त और सनातन भगवान् (गणेश) की स्तुति की ॥५७-५८॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद-नारायण के संवाद विषयक
भगवान् के उपनयन-संस्कार में गणेशाभिषेक नामक निन्यानबेवाँ अध्याय समाप्त ॥९९॥

•

---

१ क. °पुरःसरम्।

## अथ शततमोऽध्यायः

### नारायण उवाच

अथादितिर्दितिश्चैव देवकी रोहिणी रतिः । सरस्वती च सावित्री यशोदा च पतिव्रता ॥१॥
लोपामुद्राऽरुन्धती च अहल्या तारका तथा । ययुस्ताः पार्वतीं दृष्ट्वा वेगेन मन्दिरादपि ॥२॥
परस्परं च संभाष्य समाश्लिष्य पुनः पुनः । प्रणम्य वेशयामासुर्मन्दिरं रत्ननिर्मितम्[1] ॥३॥
रत्नसिंहासने रम्ये वासयामासुरीश्वरीम् । वरयामासुर्माल्येन वाससा रत्नभूषणैः ॥४॥
पारिजातस्य पुष्पं च शक्रानीतं मनोहरम् । ददौ तत्पादपद्मे च देवकी भक्तिपूर्वकम् ॥५॥
सिन्दूरबिन्दुं सीमन्ते भाले चन्दनबिन्दुकम् । कस्तूरीकुङ्कुमाद्यैश्च प्रददौ परितस्तयोः ॥६॥
मिष्टान्नं भोजयामास शीततोयं सुवासितं । ताम्बूलं च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम् ॥७॥
अलक्तकं च प्रददौ नखेषु पादपद्मयोः । कुङ्कुमस्यापि रागं च सिषेवे श्वेतचामरैः ॥८॥
संपूज्य पार्वतीं देवीं मुनिपत्नीः क्रमेण च । पूजयामास विधिवत्पतिपुत्रवतीः सतीः ॥९॥
राजकन्या देवकन्या नागकन्या मनोहराः । मुनिकन्या बन्धुकन्याः पूजयामास सुव्रता ॥१०॥

---

## अध्याय १००

### अदिति आदि के द्वारा पार्वती का स्वागत-सत्कार

**नारायण बोले**—तदुपरान्त अदिति, दिति, देवकी, रोहिणी, रति, सरस्वती, सावित्री, पतिव्रता यशोदा, लोपामुद्रा, अरुन्धती, अहल्या, तारा, ये सभी देवियां पार्वती को देखकर तुरन्त मन्दिर से बाहर निकलीं और बारंबार आलिंगन करके नमस्कार करने लगीं। तत्पश्चात् परस्पर वार्तालाप करके उन्हें एक रत्ननिर्मित भवन में प्रवेश कराया। वहां रमणीक रत्नसिंहासन पर ईश्वरी (पार्वती) को प्रतिष्ठित करके माला, वस्त्र और रत्नभूषणों द्वारा उनका वरण किया ॥१-४॥ इन्द्र द्वारा लाये गये उस मनोहर पारिजात पुष्प को देवकी ने बड़ी भक्ति से उनके चरण-कमल में अर्पित कर दिया ॥५॥ उनके सीमंत (मांग) में सिन्दूर की बिन्दी, मस्तक में चन्दन की बिन्दी और उसके चारों ओर कस्तूरी, कुंकुम आदि से सुभूषित किया ॥६॥ मिष्टान्न भोजन कराकर सुवासित शीतल जल प्रदान किया। कर्पूरादि से सुवासित उत्तम ताम्बूल अर्पित किया। उनके चरण-कमलों के नखों में महावर और कुंकुम लगाकर श्वेत चामरों द्वारा उनकी सेवा की ॥७-८॥ उत्तमव्रती ने इस प्रकार पार्वती की अर्चना करके मुनिपत्नियों, पति-पुत्रवती सतियों, राजकन्याओं, देवकन्याओं, मनोहर नागकन्याओं एवं मुनिकन्याओं और भाई-

---

१ क. 'रत्नशोभितम्।

वाद्यं नानाविधं रम्यं वादयामास कौतुकात् । मङ्गलं कारयामास भोजयामास ब्राह्मणान् ॥११॥
भैरवीं पूजयामास मथुराग्रामदेवताम् । उपचारैः षोडशभिः षष्ठीं मङ्गलचण्डिकाम् ॥१२॥
पुण्यं स्वस्त्ययनं शुद्धं वारयामास मङ्गलम् । वेदांश्च पाठयामास वसुदेवस्य वल्लभा ॥१३॥
स्वर्गगङ्गासुजलेनैव सुवर्णकलशेन च । स्नापयामास सबलं श्रीकृष्णं पुत्रवत्सला ॥१४॥
वस्त्रचन्दनमाल्यैश्च तयोर्वेषं चकार सा । रत्नेन्द्रसारनिर्माणभूषणैश्च मनोहरैः ॥१५॥
मातृभूषणभूषाढ्यः सबलः कृष्ण एव च । आययौ च सभां देवमुनीन्द्राणां च नारद ॥१६॥
दृष्ट्वा तं जगतां नाथमुत्तस्थौ प्रजवेन च । स्वयं विधाता शंभुश्च शेषो धर्मश्च भास्करः ॥१७॥
देवाश्च मुनयश्चैव कार्तिकेयो गणेश्वरः । पृथक्पृथक् क्रमेणैव तुष्टाव परमेश्वरम् ॥१८॥

### ब्रह्मोवाच

नाथानिर्वचनीयोऽसि भक्तानुग्रहविग्रहः । वेदानिर्वचनीयं च कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः ॥१९॥

### महादेव उवाच

देहेषु देहिनां शश्वत्स्थितं निर्लिप्तमेव च । कर्मिणां कर्मणां शुद्धं साक्षिणं साक्षतं विभुम् ॥
किं स्तौमि रूपशून्यं च गुणशून्यं च निर्गुणम् ॥२०॥

---

बन्धुओं की कन्याओं की पूजा की ॥१०॥ कौतुकवश अनेक भाँति के रमणीक बाजे बजवाये, मंगलाचरण कराया और ब्राह्मणों को खिलाया ॥११॥

मथुरा की ग्रामदेवता भैरवी और षष्ठी का षोडशोपचार द्वारा पूजन किया ॥१२॥ वसुदेव जी की वल्लभा देवकी ने पुण्य एवं शुद्ध स्वस्त्ययन रूप मंगल तथा वेदों का पाठ कराया ॥१३॥ पुत्रवत्सला देवकी ने स्वर्ग-गङ्गा के उत्तम जल भरे सुवर्ण कलश द्वारा बलभद्र समेत श्रीकृष्ण को नहलाया और वस्त्र, चन्दन, माला एवं रत्नेन्द्र के सारभाग के बने मनोहर भूषणों द्वारा उन दोनों का उत्तम वेश बनाया ॥१४-१५॥ नारद ! माता द्वारा भूषणों से सुभूषित हो बलभद्र समेत श्रीकृष्ण देवों और मुनीन्द्रों की सभा में आये ॥१६॥ उन्हें देखकर स्वयं विधाता (ब्रह्मा), शिव, शेष, धर्म और सूर्य शीघ्रता से उठकर खड़े हो गये । फिर देवगण, मुनिवृन्द, कार्तिकेय और गणेश आदि ने पृथक्-पृथक् परमेश्वर श्रीकृष्ण की स्तुति की ॥१७-१८॥

**ब्रह्मा बोले**—नाथ ! तुम अनिर्वचनीय हो केवल भक्तों पर अनुग्रहार्थ शरीर धारण करते हो। तुम वेद के लिए भी अनिर्वचनीय हो, इसलिए तुम्हारी स्तुति करने में कौन समर्थ हो सकता है ? ॥१९॥

**महादेव बोले**—प्राणियों की देहों में निरन्तर स्थित रहते हुए भी निर्लिप्त रहते हो और कर्मियों के कर्मों के शुद्ध साक्षी और अविनाशी विभु (व्यापक परमात्मा) हो, अतः मैं तुम्हारी स्तुति क्या करूँ ? क्योंकि तुम रूप-रहित, गुणशून्य एवं निर्गुण हो ॥२०॥

## अनन्त उवाच

किंवा जानाम्यहं नाथ त्वामज्ञोऽनन्तमीश्वरम् । अनन्तकोटिब्रह्माण्डकारणं दुःखतारणम् ॥२१॥
महाविष्णोश्च लोम्नां च विवरेषु जलेषु च । सन्ति विश्वान्यसंख्यानि चित्राणि कृत्रिमाणि च ॥२२॥
सन्ति सन्तश्च देवाश्च ब्रह्मविष्णुशिवात्मकाः । त्वदंशाः प्रतिबिम्बेषु तीर्थानि भारतं तथा ॥२३॥
ब्रह्माण्डैकस्थितोऽहं च सूक्ष्मनागस्वरूपकः । स्थापितश्च त्वया कूर्मे गजेन्द्रे मशको यथा ॥२४॥
परमाणुपरं सूक्ष्मं विश्वेषु नास्ति कुत्रचित् । महाविष्णोः परं स्थूलं समो नास्ति च कुत्रचित् ॥२५॥
महाविष्णोः परस्त्वं च त्वत्परो नास्ति कश्चन । स्थूलात्स्थूलतरो देवः सूक्ष्मात्सूक्ष्मतमो महान् ॥२६॥
आधारश्च महाविष्णो जलरूपो भवान्स्वयम् । जलाधारो हि गोलोकस्त्वं च स्थावररूपधृक् ॥२७॥
सर्वाधारो महान्वायुः श्वासनिःश्वासरूपकः । भक्तानुग्रहदेहस्य नित्यस्य भवतो विभो ॥२८॥
वक्त्रैर्बहुतरैर्वाऽथ त्वया दत्तैः पुरैव च । स्तोतुमिच्छामि त्वद्योगं न दत्तं ज्ञानमैश्वरम् ॥२९॥

## देवा ऊचुः

त्वामनन्तं यदि स्तोतुं देवोऽनन्तो न हीश्वरः । न हि स्वयं विधाता च न हि ज्ञानात्मकः शिवः ॥
सरस्वती जडीभूता किं कुर्मः स्तवनं वयम् ॥३०॥

---

**अनन्त बोले**—नाथ ! मैं ज्ञानहीन हूँ, अतः आप अनन्त ईश्वर को क्या जान सकता हूँ । क्योंकि आप अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड के कारण और दुःख से तारनेवाले हो । महाविष्णु के लोम-कूपों तथा जलों में विचित्र एवं कृत्रिम असंख्य विश्व भरे पड़े हैं ॥२१-२२॥ उसमें सन्तगण, देवगण, ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव तुम्हारे अंशस्वरूप हैं तथा समस्त तीर्थ समेत भारतप्रदेश स्थित है ॥२३॥ सूक्ष्म नागस्वरूप धारणकर मैं ब्रह्माण्ड के एक भाग में स्थित हूँ । आपने मुझे कूर्म पर उसी प्रकार ठहराया है, जैसे गजराज पर मच्छर ॥२४॥ समस्त विश्व में परमाणु से बढ़कर सूक्ष्म कहीं कुछ नहीं है और महाविष्णु से बढ़कर कहीं कोई स्थूल नहीं है । महाविष्णु से परे (बढ़कर) तुम हो और तुमसे परे (बढ़कर) कोई नहीं है । इसलिए आप स्थूल से भी बढ़कर स्थूल देव हैं और सूक्ष्म से भी महान् सूक्ष्म हैं । महाविष्णु के आधार जल रूप आप स्वयं हैं । गोलोक का आधार जल है और आप स्थावररूप को धारण किये हुए हैं ॥२५-२७॥ विभो ! भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए देह धारण किये हुए नित्य स्वरूप आपका श्वास और निःश्वास रूप महान् वायु सबका आधार है ॥२८॥ आपने मुझे पूर्व समय में ही अनेकों मुख प्रदान कर दिये थे । उमसे मैं आपके योग की स्तुति करना चाहता हूँ, किन्तु आपने ईश्वरीय ज्ञान तो दिया ही नहीं ॥२९॥

**देवगण बोले**—यदि आप अनन्त की स्तुति करने में अनन्त देव समर्थ नहीं हैं, स्वयं विधाता और ज्ञानात्मक शिव भी समर्थ नहीं हैं एवं सरस्वती जड़ीभूत हो जाती हैं, तो हम लोग आपकी स्तुति क्या कर सकेंगे ? ॥३०॥

मुनीन्द्रा ऊचुः

वेदा न शक्ताः स्तोतुं वेत्त्वा चैव ज्ञातुमीश्वरम् । वयं वेदविदः सन्तः किं कुर्मः स्तवनं तव ॥३१॥
इदं स्तोत्रं महापुण्यं देवैश्च मुनिभिः कृतम् । यः पठेत्संयतः शुद्धः पूजाकाले च भक्तितः ॥३२॥
इह लोके सुखं भुक्त्वा लब्ध्वा ज्ञानं निरञ्जनम् । रत्नयानं समारुह्य गोलोकं स च गच्छति ॥३३॥
इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० भगवदुपनयने
शततमोऽध्यायः ॥१००॥

•

# अथैकाधिकशततमोऽध्यायः

नारायण उवाच

संस्तूय देवा मुनयो विरेमुर्नहि मानसे । ददृशुः प्राङ्गणे कृष्णं शोभितं पीतवाससा ॥१॥
यथा सौदामिनीयुक्तं नवीनजलदं मुने । बकपङ्क्तियुतं चैव मालतीमालया तथा ॥२॥
कपाले मण्डलाकारकस्तूरीयुक्तचन्दनम् । सकलङ्कं मृगाङ्कं च शोभितं जलदे तथा ॥३॥

---

**मुनीन्द्रगण बोले**—आप ईश्वर को जानने और स्तुति करने में यदि वेद समर्थ नहीं हैं तो वेदवेत्ता होते हुए भी हम लोग आपकी क्या स्तुति कर सकते हैं ? ॥३१॥ इस प्रकार देवों एवं मुनियों द्वारा रचित इस महापुण्य स्तोत्र को, जो पूजा के समय संयत एवं शुद्ध होकर भक्ति-भाव से पढ़ते हैं, वे इस लोक में सुखोपभोग करने के उपरान्त परमोत्तम ज्ञान प्राप्त करके रत्नविमान द्वारा गोलोक को जाते हैं ॥३२-३३॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद और नारायण के संवाद में
भगवान् के उपनयन संस्कार वर्णन नामक सौवाँ अध्याय समाप्त ॥१००॥

•

# अध्याय १०१

## बलराम और कृष्ण के उपनयन के बाद सबकी बिदाई

**नारायण बोले**—देवगण और मुनियों ने मानसिक स्तुति करके ज्यों ही विराम किया कि—सामने प्राङ्गण में पीताम्बरभूषित कृष्ण दिखायी पड़े ॥१॥ मुने ! जिस प्रकार विद्युत् समेत नवीन मेघ बगुला की पंक्तियों से सुन्दर दिखायी देता है, उसी भाँति मालती की माला पहने भगवान् कृष्ण सुशोभित हो रहे थे ॥२॥ उनके भाल में मण्डलाकार कस्तूरी चन्दन इस प्रकार सुशोभित हो रहा था, जैसे मेघ में कलंक (श्यामता)

द्विभुजं श्यामलंकान्तं राधाकान्तं मनोहरम् । ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥४॥
रत्नकेयूरवलयरत्नमञ्जीररञ्जितम् । रुदन्तं पितुरुत्सङ्गे बलेन सहितं परम् ॥५॥
अथ मङ्गलकाले च शुभलग्ने मनोरमे । संवीक्षिते ग्रहैः सौम्यैर्जाग्रल्लग्नाधिपे स्थिते ॥६॥
असद्ग्रहैरदृष्टे च सद्ग्रहेक्षित एव च । शुभकर्मसमारम्भं स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥७॥
चकार वसुदेवश्चाप्याज्ञया सुरविप्रयोः । दत्त्वा सुवर्णशतकं ब्राह्मणाय च सादरम् ॥८॥
देवेन्द्रांश्च मुनीन्द्रांश्च नमस्कृत्य पुरोहितम् । गणेशं च दिनेशं च वह्निं च शंकरं शिवाम् ॥९॥
संपूज्य देवषट्कं च साक्षतैर्देवसंसदि । उपचारैः षोडशभिः संयतो भक्तिपूर्वकम् ॥१०॥
पुत्राधिवासनं चक्रे वेदमन्त्रेण संसदि । संपूज्य नानादेवांश्च दिक्पालांश्च नवग्रहान् ॥११॥
दत्त्वा पञ्चोपचारांश्च भक्त्या षोडशमातृकाः । दत्त्वा च वसुधारां च सप्तवारान्घृतेन च ॥१२॥
चेदिराजं वसुं नत्वा संपूज्य प्रययौ पुनः । वृद्धिश्राद्धं सुनिर्वाप्य यत्किचिद्दैविकं[1] तथा ॥१३॥
यज्ञं कृत्वा तु वेदोक्तं यज्ञसूत्रं ददौ मुदा । बलदेवाग्रजायैव कृष्णाय परमात्मने ॥१४॥
गायत्रीं च ददौ ताभ्यां मुनिः सांदीपनिस्तथा । भिक्षां ददौ च प्रथमं पार्वती परमादरात् ॥१५॥
अमूल्यरत्नपात्रस्थं मुक्तामाणिक्यहीरकम् । हीरसारविनिर्माणं पित्रा दत्तं च हारकम् ॥१६॥

---

सहित चन्द्रमा भूषित होते हैं ॥३॥ वे दो भुजाओं से सुशोभित, श्यामल, सुन्दर, राधाकान्त, मनोहर, मन्द मुसुकान समेत प्रसन्न मुख, भक्तों पर अनुग्रहार्थ शरीर धारण करनेवाले, रत्नों के केयूर (अंगुद), कङ्कण और रत्न-मंजीर से सुभूषित होकर बलभद्र समेत पिता की गोद में बैठे रो रहे थे ॥४-५॥ अनन्तर मनोरम शुभ लग्न के आने पर जबकि लग्नेश उच्च स्थान में स्थित था, उस पर सौम्य ग्रहों की दृष्टि पड़ रही थी, केवल सद्ग्रह ही उसे देख रहे थे तथा असद्ग्रहों की दृष्टि से परे था। ऐसे समय देवों और ब्राह्मणों की आज्ञा शिरोधार्य कर वसुदेव जी ने (ब्राह्मणों द्वारा) स्वस्तिवाचनपूर्वक शुभ कर्म आरम्भ किया ॥६-७॥ ब्राह्मण को सौ सुवर्ण मुद्रा सादर समर्पित करने के उपरान्त उन्होंने देवेन्द्रों और मुनीन्द्रों समेत पुरोहित (गर्गाचार्य) को नमस्कार किया एवं गणेश, सूर्य, अग्नि, शिव और पार्वती इन छहों की भक्तिपूर्वक अक्षत सहित षोडशोपचार द्वारा देव-समाज में समर्चना की ॥८-१०॥ पुनः वेद मन्त्रों के उच्चारणपूर्वक पुत्रों का अधिवासन (सुगन्धित पदार्थ का अनुलेप अर्थात् हरिद्राकर्म) किया। फिर अनेक देवों, दिक्पालों तथा नवग्रहों का भलीभांति पूजन करके षोडशमातृकाओं को पञ्चोपचार समर्पित किया। घी से सात बार वसुधारा दी ॥११-१२॥ अनन्तर चेदिराज वसु का पूजन-नमस्कार करके वे आगे बढ़े और वृद्धिश्राद्ध को समाप्त करके जो कुछ अन्य देवता सम्बन्धी कार्य था, उसे सम्पन्न किया। इसके बाद वेदोक्त यज्ञ करके हर्षपूर्वक अग्रज बलदेव और परमात्मा श्रीकृष्ण को यज्ञोपवीत से सुशोभित किया। सान्दीपनि मुनि ने उन दोनों बालकों को गायत्री मंत्र प्रदान किया। सर्वप्रथम सती पार्वती ने परम आदर से बहुमूल्य रत्न द्वारा निर्मित पात्र में रखे हुए मोती, माणिक्य, और

---

[1] क. दैदिकं।

शुभाशिषं च प्रददौ शुक्लपुष्पेण दूर्वया। ततोऽदितिर्दितिश्चैव मुनिपत्न्यश्च देवकी ॥१७॥
यशोदा रोहिणी हृष्टा सावित्री च सरस्वती। प्रत्येकं प्रददौ भिक्षां मणिकाञ्चनभूषिताम् ॥१८॥
देवकन्या नागकन्या राजकन्या पतिव्रताः। कामिन्यो बान्धवानां च सस्मिताः स्निग्धलोचनाः ॥१९॥
इन्द्राणी वरुणानी च पवनानी च रोहिणी। कुबेरपत्नी स्वाहा च रतिः कामस्य कामिनी ॥२०॥
प्रत्येकं प्रददौ भिक्षां रत्नभूषणभूषिताम्। भिक्षां गृहीत्वा भगवान्सबलो भक्तिपूर्वकम् ॥२१॥
किंचिद्ददौ च गर्गाय किंचित्स्वगुरवे तथा। वैदिकं कर्म निर्वाप्य गर्गाय दक्षिणां ददौ ॥२२॥
देवांश्च भोजयामास ब्राह्मणांश्चापि सादरम्। ये ये समाययुर्यज्ञे ते च दत्त्वा शुभाशिषम् ॥२३॥
कृष्णाय बलदेवाय प्रहृष्टाः प्रययुर्गृहम्। नन्दः सभार्यो निर्वाप्य शुभकर्म सुतस्य वै ॥२४॥
क्रोडे कृत्वा बलं कृष्णं चुचुम्ब वदनं तयोः। उच्चै रुरोद नन्दश्च यशोदा च पतिव्रता
श्रीकृष्णस्तं समाश्वास्य बोधयामास यत्नतः ॥२५॥

## श्रीकृष्ण उवाच

सानन्दं गच्छ हे मातर्यशोदे तात सत्वरम्। त्वमेव माता पोष्ट्री त्वं पिता च परमार्थतः ॥२६॥
अवन्तिनगरं तात यास्यामि सबलोऽधुना। मुनेः सांदीपनेः स्थानं वेदपाठार्थमीप्सितम् ॥२७॥

---

हीरों को भिक्षा रूप में समर्पित किया। पिता वसुदेव जी ने हीरे का बना हुआ हार देकर श्वेत पुष्प समेत दूर्वा से शुभाशिष प्रदान किया। तत्पश्चात् अदिति, दिति, देवकी, यशोदा, रोहिणी, सावित्री, सरस्वती आदि देवियों ने क्रमशः मणि और सुवर्ण से भूषित भिक्षा प्रदान की ॥१३-१८॥

पश्चात् देवकन्याओं, नागकन्याओं, पतिव्रताओं, राजकुमारियों और बन्धुओं के घर की सुन्दरियों ने मन्द-मुसुकान समेत स्नेह भरे नेत्रों से देखती हुई उन्हें भिक्षा प्रदान की ॥१९॥ फिर इन्द्राणी, वरुणानी, वायु की पत्नी रोहिणी, कुबेरपत्नी स्वाहा और काम की पत्नी रति ने क्रमशः रत्नभूषण-भूषित भिक्षा प्रदान की। बलभद्र समेत भगवान् कृष्ण ने उन भिक्षाओं को ग्रहण करके उनमें से कुछ अंश गर्गाचार्य को और कुछ अपने गुरु को समर्पित किया। फिर वैदिक कर्म समाप्त करके गर्गाचार्य को दक्षिणा दी ॥२०-२२॥ देवों और ब्राह्मणों को सादर भोजन कराया। अनन्तर उस यज्ञ में उनके यहाँ जितने लोग आये थे, सब-के-सब अत्यन्त हर्ष से कृष्ण एवं बलदेव को शुभाशीष प्रदान करके अपने-अपने घर चले गये। तब पत्नी समेत नन्द ने पुत्र के उस शुभ कर्म को समाप्त करके बलभद्र समेत कृष्ण को अपनी गोद में लेकर उन दोनों का मुख चूमने लगे। उस समय नन्द और पतिव्रता यशोदा उच्च स्वर से रो पड़ीं। तब श्रीकृष्ण ने बड़े यत्न से उन्हें आश्वासन देकर समझाते हुए कहा ॥२३-२५॥

**श्रीकृष्ण बोले**--माता यशोदा ! तात ! आप लोग आनन्दपूर्वक शीघ्र जायें। हमारा पालन-पोषण करनेवाली माता आप हो और परमार्थतः पिता आप हैं ॥२६॥ तात ! इस समय बलदेव के साथ हम वेदादि के अध्ययनार्थ अवन्तिनगर-निवासी मुनि सान्दीपनि के यहाँ जा रहे हैं ॥२७॥ चिरकाल के बाद वहाँ से लौटने

तत आगत्य सुचिरं काले भवति दर्शनम् । कामः करोति फलनं स च भेदं करोति च ॥२८॥
सर्वं कालकृतं मातर्भेदं संमीलनं नृणाम् । सुखं दुःखं च हर्षं च शोकं च मङ्गलालयम् ॥२९॥
मया दत्तं च तत्त्वं च योगिनामपि दुर्लभम् । सर्वं नन्दश्च सानन्दं त्वामेव कथयिष्यति ॥३०॥
इत्युक्त्वा जगतां नाथो वसुदेवसभां ययौ । तदाज्ञया क्षणं प्राप्य ययौ सांदीपनेर्गृहम् ॥३१॥
वसुदेवं देवकीं च संभाष्य विनयेन च । नन्दः सभार्यः प्रययौ हृदयेन विदूयता ॥३२॥
मुक्तामणिं सुवर्णं च माणिक्यं हीरकं तथा । वह्निशुद्धांशुकं रत्नं नन्दाय देवकी ददौ ॥३३॥
श्वेताश्वं च गजेन्द्रं च सुवर्णरथमुत्तमम् । नन्दाय कृष्णः प्रददौ वसुदेवश्च सादरम् ॥३४॥
तयोरनुव्रजन्विप्रा देवकीप्रमुखाः स्त्रियः । वसुदेवस्तथाऽक्रूरोऽप्युद्धवश्च ययौ मुदा ॥३५॥
कालिन्दीनिकटं गत्वा ते सर्वे रुरुदुः शुचा । परस्परं च संभाष्य ते सर्वे स्वालयं ययुः ॥३६॥
कुन्ती सपुत्रा विधवा वसुदेवाज्ञया मुने । नानारत्नमणिं प्राप्य प्रययौ स्वालयं मुदा ॥३७॥
वसुदेवो देवकी च पुत्रकल्याणहेतवे । नानारत्नमणिं वस्त्रं सुवर्णं रजतं तथा ॥३८॥
मुक्तामाणिक्यहारं च मिष्टान्नं च सुधोपमम् । भट्टेभ्यो ब्राह्मणेभ्यश्च प्रददौ सादरं मुदा ॥३९॥

---

पर आपके दर्शन होंगे। माता जी ! काल ही ग्रहण करता है और वही भेद उत्पन्न करता है। यहाँ तक कि मनुष्यों के जो वियोग, मिलन-सुख, दुःख, हर्ष, शोक और मङ्गल आदि हैं, उन सबका कर्ता काल ही है ॥२८-२९॥ मैंने योगिदुर्लभ तत्त्वज्ञान पिता जी को बतलाया है। वे आनन्दपूर्वक सारा रहस्य तुम्हें बतलायेंगे ॥३०॥ इतना कहकर जगत् के अधीश्वर भगवान् श्रीकृष्ण वसुदेव की सभा में गये। वहाँ थोड़ी देर रहकर वे दोनों पुनः सान्दीपनि मुनि के घर चले गये ॥३१॥ तदुपरान्त यशोदा और नन्द ने विनय-विनम्र होकर वसुदेव समेत देवकी से बातचीत करते हुए दुःखी हृदय से जाने को उद्यत हुए ॥३२॥ उस समय देवकी ने नन्द को मोती-मणि, सुवर्ण, माणिक्य, हीरा और अग्निविशुद्ध वस्त्र भेंट किये और कृष्ण एवं वसुदेव ने उन्हें श्वेत वर्ण के घोड़े, गजेन्द्र तथा सुवर्ण के परमोत्तम रथ सादर अर्पित किये ॥३३-३४॥ उन दोनों के चलते समय ब्राह्मणगण, देवकी-प्रमुख स्त्रियाँ, वसुदेव, अक्रूर और उद्धव बड़ी प्रसन्नता से उनके पीछे-पीछे चले ॥३५॥ यमुनातट पर पहुँचकर सभी लोग शोक के कारण रोने लगे। फिर परस्पर वार्तालाप करके वे सब-के-सब अपने-अपने घर लौट गये ॥३६॥ मुने ! वसुदेव जी की आज्ञा से पुत्रों के समेत विधवा कुन्ती अनेक भाँति के रत्नों एवं मणियों को पाकर प्रसन्नतापूर्वक अपने घर गयीं। वसुदेव-देवकी ने पुनः पुत्रों के कल्याणार्थ हर्ष से अनेक भाँति के रत्न-मणि, वस्त्र, सुवर्ण, चाँदी, मुक्ता, माणिक्यहार और अमृतोपम मिष्टान्न भट्टों और ब्राह्मणों को सादर समर्पित किया ॥३७-

महोत्सवं वेदपाठं हरेर्नामैकमङ्गलम् । विप्राणां भोजनं चैव कारयामास यत्नतः ॥४०॥
ज्ञातीनां बान्धवानां च पुरस्कारं यथोचितम् । चकार मणिमाणिक्यमुक्तावस्त्रैर्मनोहरैः ॥४१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मखं० नारदना० उत्त० भगवदुपनयनं नामैकाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०१॥

•

# द्व्यधिकशततमोऽध्यायः

## नारायण उवाच

कृष्णः सांदीपनेर्गेहं गत्वा च सबलो मुदा । नमश्चकार स्वगुरुं गुरुपत्नीं पतिव्रताम् ॥१॥
शुभाशिषं गृहीत्वा च दत्त्वा रत्नमणिं हरिः । गुरवे तस्य भार्यायै तमुवाच यथोचितम् ॥२॥

## श्रीकृष्ण उवाच

त्वत्तो विद्यां लभिष्यामि वाञ्छितां वाञ्छितं मम । कृत्वा शुभक्षणं विप्र मां पाठय यथोचितम् ॥३॥

---

३९॥ फिर यत्नपूर्वक महोत्सव मनाया गया जिसमें वेद-पाठ, भगवान् के नाम संकीर्तन और ब्राह्मणों को भोजन कराया गया । इसके बाद जाति-भाइयों को यथोचित रूप से मणि, माणिक्य, मोती और मनोहर वस्त्र पुरस्कार रूप में प्रदान किये ॥४०-४१॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण में श्रीकृष्ण जन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद और नारायण के संवाद में भगवदुपनयन वर्णन नामक एक सौ एक अध्याय समाप्त ॥१०१॥

•

# अध्याय १०२

## बलराम और कृष्ण का सान्दीपनि के निकट विद्याभ्यास

**नारायण बोले**—बलदेव समेत कृष्ण ने सान्दीपनि मुनि के घर पहुँचकर अपने गुरु और पतिपरायण गुरुपत्नी को सहर्ष नमस्कार किया ॥१॥ उनसे शुभाशिष लेकर हरि ने गुरु और गुरुपत्नी को रत्नमणि प्रदान करते हुए उनसे यथोचित कहा ॥२॥

**श्रीकृष्ण बोले**—हे विप्र ! मैं आपसे अपनी अभीष्ट विद्या प्राप्त करूँगा ऐसी लालसा है । इसलिए शुभ मुहूर्त निश्चय करके मुझे विद्याध्ययन यथोचित रूप से कराइये ॥३॥ अनन्तर ॐ शब्द के उच्चारण द्वारा

ओमित्युक्त्वा मुनिश्रेष्ठः पूजयामास तं मुदा। मधुपर्कप्राशनेन गवा वस्त्रेण चन्दनैः ॥४॥
मिष्टान्नं भोजयामास ताम्बूलं च सुवासितं। सुप्रियं कथयामास तुष्टाव परमेश्वरम् ॥५॥

सान्दीपनिरुवाच

परं ब्रह्म परं धाम परमीश परात्पर। स्वेच्छामयं स्वयंज्योतिर्निर्लिप्तैको निरङ्कुशः ॥६॥
भक्तैकनाथ भक्तेष्ट भक्तानुग्रहविग्रह। भक्तवाञ्छाकल्पतरो भक्तानां प्राणवल्लभ ॥७॥
मायया बालरूपोऽसि ब्रह्मेशशेषवन्दितः। मायया भुवि भूपाल भुवो भारक्षयाय च ॥८॥
योगिनो यं विदन्त्येवं ब्रह्मज्योतिः सनातनम्। ध्यायन्ते भक्तनिवहा ज्योतिरभ्यन्तरे मुदा ॥९॥
द्विभुजं मुरलीहस्तं सुन्दरं[1] श्यामरूपकम्। चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं सस्मितं भक्तवत्सलम् ॥१०॥
पीताम्बरधरं देवं वनमालाविभूषितम्। लीलापाङ्गतरङ्गैश्च निन्दितानङ्गमूर्च्छितम् ॥११॥
अलक्तभवनं तद्वत्पादपद्मं सुशोभनम्। कौस्तुभोद्भासिताङ्गं च दिव्यमूर्ति मनोहरम् ॥१२॥
ईषद्धास्यप्रसन्नं च सुवेषं प्रस्तुतं सुरैः। देवदेवं जगन्नाथं त्रैलोक्यमोहनं परम् ॥१३॥
कोटिकन्दर्पलीलाभं कमनीयमनीश्वरम्। अमूल्यरत्ननिर्माणभूषणौघेन भूषितम् ॥१४॥

---

स्वीकृति प्रदान करते हुए उन मुनिश्रेष्ठ ने मधुपर्क-प्राशन, गौ, वस्त्र और चन्दन से उन्हें सम्मानित किया, मिष्टान्न भोजन कराया और सुवासित ताम्बूल दिया, प्रिय वार्तालाप किया और उन परमेश्वर की स्तुति की ॥४-५॥

**सान्दीपनि बोले**—हे परात्पर ! आप परब्रह्म, परम धाम, परम ईश, स्वेच्छामय, स्वयंज्योति, निर्लिप्त, अद्वितीय, निरंकुश, भक्तों के एकमात्र स्वामी, भक्तों के इष्टदेव, भक्तों के अनुग्रहार्थ देह धारण करनेवाले, भक्तों का मनोरथ पूरा करने के लिए कल्पवृक्ष और भक्तों के प्राण-वल्लभ हैं ॥६-७॥ आप माया से बालक रूप धारण करनेवाले, ब्रह्मा, महेश्वर एवं शेष द्वारा वन्दित और पृथ्वी का भार उतारने के लिए माया से पृथ्वीपति (राजा) बने हुए हैं ॥८॥ योगीगण जिसे सनातन ब्रह्मज्योति जानते हैं और भक्त लोग अपने हृदय में बड़ी प्रसन्नता से जिस ज्योति का सतत ध्यान करते हैं। जिनके दो भुजाएँ हैं, हाथ में मुरली सुशोभित है, सर्वाङ्ग में चन्दन का अनुलेप लगा हुआ है, जिनका सुन्दर श्यामरूप है, जो मन्द मुसकान युक्त, भक्तवत्सल, पीताम्बरधारी, वनमाला से विभूषित तथा अपने चञ्चल नेत्रों द्वारा कामदेव को सहज ही में निन्दित और मूर्च्छित करनेवाले हैं, जिनका चरणकमल अलक्तक (आलता) के उत्पत्ति-स्थान की भाँति अत्यन्त शोभायमान है और शरीर कौस्तुभमणि से उद्भासित हो रहा है, जिनकी मनोहर दिव्यमूर्ति है, जो हर्षवश मन्द-मन्द मुसकरा रहे हैं, जिनका सुन्दर वेश है, देवगण जिनकी स्तुति करते हैं, जो देवों के देव, जगन्नाथ, त्रिलोकी को मोहित करनेवाले, सर्वश्रेष्ठ, करोड़ों कामदेवों की-सी कान्तिवाले, कमनीय, ईश्वररहित (स्वयं ईश्वर), अमूल्य रत्नों के बने हुए भूषणों से विभूषित, श्रेष्ठ, सर्वोत्तम, वरदायक, वरदाताओं

---

१ क. सादरं।

वरं वरेण्यं वरदं वरदानामभीप्सितम् । चतुर्णामपि वेदानां कारणानां च कारणम् ॥१५॥
पाठार्थं मत्प्रियस्थानमागतोऽसि च मायया । पाठं ते लोकशिक्षार्थं रमणं गमनं रणम् ॥
स्वात्मारामस्य च विभोः परिपूर्णतमस्य च ॥१६॥

## गुरुपत्न्युवाच

अद्य मे सफलं जन्म सफलं जीवनं मम । पातिव्रत्यं च सफलं सफलं च तपोवनम् ॥१७॥
मद्दक्षहस्तः सफलो दत्तं येनान्नमीप्सितम् । तदाश्रमं तीर्थपरं तीर्थपादपदाङ्कितम् ॥१८॥
त्वत्पादरजसा पूता गृहाः प्राङ्गणमुत्तमम् । त्वत्पादपद्मं दृष्ट्वा चैवाऽऽवयोर्जन्मखण्डनम् ॥१९॥
तावद्दुःखं च शोकश्च तावद्भोगश्च रोगकः । तावज्जन्मानि कर्माणि क्षुत्पिपासादिकानि च ॥२०॥
यावात्त्वत्पादपद्मस्य भजनं नास्ति दर्शनम् । हे कालकाल भगवन्स्रष्टुः संहर्तुरीश्वर ॥२१॥
कृपां कुरु कृपानाथ मायामोहनिकृन्तन । इत्युक्त्वा साश्रुनेत्रा सा क्रोडे कृत्वा हरिं पुनः ॥
स्वस्तनं पाययामास प्रेम्णा च देवकी यथा ॥२२॥

## श्रीकृष्ण उवाच

मातस्त्वं मां कथं स्तौषि बालं दुग्धमुखं सुतम् । गच्छ गोलोकमिष्टं च स्वामिना सह सांप्रतम् ॥२३॥
त्यक्त्वा प्राकृतिकं मिथ्या नश्वरं च कलेवरम् । विधाय निर्मलं देहं जन्ममृत्युजराहरम् ॥२४॥

---

के इष्टदेव और चारों वेदों तथा कारणों के भी कारण हैं, वही आप लीलावश पढ़ने के लिए मेरे प्रिय स्थान पर आये हैं। आप तो अपने आत्मा में रमण करनेवाले, विभु एवं परिपूर्णतम हैं, अतः आपके विद्याध्ययन, रमण, गमन और युद्ध आदि सभी कार्य लोक-शिक्षार्थ है ॥६-१६॥

**गुरुपत्नी बोलीं**—आज मेरा जन्म सफल हो गया, मेरा जीवन सफल हो गया, पातिव्रत्य सफल हो गया और तपोवन का वास सफल हो गया। मैंने जिस हाथ से अभीष्ट अन्न आपको अर्पित किया है वह मेरा दाहिना हाथ सफल हो गया। तीर्थ स्वरूप चरणकमल से अङ्कित होने के कारण यह आश्रम तीर्थ से बढ़कर पवित्र हो गया है। आपके चरण रज से घर पवित्र और आँगन उत्तम हो गये। आपके चरणकमल के दर्शन से ही हम दोनों के जन्म-मरण का निवारण हो गया ॥१७-१९॥ क्योंकि तभी तक मनुष्यों को दुःख, शोक, भोग, रोग, जन्म, कर्म, क्षुधा, पिपासा आदि कष्टप्रद होते हैं, जब तक आपके चरणकमल का दर्शन और भजन नहीं होता है। हे भगवन्! आप काल के काल, स्रष्टा और संहर्ता के भी ईश्वर हैं ॥२०॥ हे कृपानाथ! माया-मोह को काटनेवाले! आप कृपा करें। इतना कहकर गुरुपत्नी ने सजल नेत्र होकर भगवान् को अपनी गोद में बैठा लिया और प्रेमवश देवकी की भाँति उन्हें अपने स्तनों के दूध पिलाने लगीं ॥२१-२२॥

**श्रीकृष्ण बोले**—माता! तुम अपने इस दुधमुँहे पुत्र की स्तुति क्यों करती हो? मिथ्या और नश्वर इस प्राकृत देह को छोड़कर जन्म, मृत्यु और जरा के अपहारी, निर्मल, दिव्य शरीर धारण करके तुम पति

इत्युक्त्वा चतुरो वेदान्पठित्वा मुनिपुंगवात् । मासेन परया भक्त्या दत्त्वा पुत्रं मृतं पुरा ।।२५।।
रत्नानां च त्रिलक्षं च मणीनां पञ्चलक्षकम् । हीरकाणां चतुर्लक्षं मुक्तानां पञ्चलक्षकम् ।।२६।।
माणिक्यानां द्विलक्षं च वस्त्रं त्रैलोक्यदुर्लभम् । हारं च दुर्गया दत्तं हस्तरत्नाङ्गुलीयकम् ।।२७।।
दशकोटिं सुवर्णानां गुरवे दक्षिणां ददौ । अमूल्यरत्ननिर्माणं नारीसर्वाङ्गभूषणम् ।।२८।।
गुरुप्रियायै प्रददौ वह्निशुद्धांशुकं वरम् । मुनिर्दत्त्वा च पुत्राय तत्सर्वं प्रियया सह ।।२९।।
सद्रत्नरथमारुह्य ययौ गोलोकमुत्तमम् । तमद्भुतं हरिं दृष्ट्वा प्रययौ स्वालयं मुदा ।।३०।।
एवं ब्रह्मण्यदेवस्य चरित्रं शृणु नारद । इदं स्तोत्रं महापुण्यं यः पठेद्भक्तिपूर्वकम् ।।३१।।
श्रीकृष्णे निश्चलां भक्तिं लभते नात्र संशयः । अस्पष्टकीर्तिः सुयशा मूर्खो भवति पण्डितः ।।३२।।
इह लोके सुखं प्राप्य यात्यन्ते श्रीहरेः पदम् । तत्र नित्यं हरेर्दास्यं लभते नात्र संशयः ।।३३।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० मुनिपत्नीस्तोत्रं
नाम द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१०२।।

●

---

के साथ अभीष्ट गोलोक को चली जाओ ।।२३-२४।। इतना कहकर श्रीकृष्ण ने एक ही मास में परम भक्ति के साथ मुनिवर सान्दीपनि से चारों वेदों का अध्ययन करके पूर्वकाल में मरे हुए पुत्र को वापस लाकर उन्हें समर्पित किया ।।२५।। पुनः तीन लाख रत्न, पाँच लाख मणियाँ, चार लाख हीरे, पाँच लाख मुक्ता, दो लाख माणिक्य तीनों लोकों में अत्यन्त दुर्लभ वस्त्र, दुर्गा जी का दिया हुआ हार, हाथ की अँगूठी और दस करोड़ सुवर्ण मुद्राएँ गुरु को समर्पित कीं । पश्चात् अमूल्य रत्नों के बने स्त्रियों के सर्वाङ्ग भूषण और अग्नि विशुद्ध वस्त्र गुरुपत्नी को दिये । इसके अनन्तर मुनि सान्दीपनि ने वह सब वस्त्राभूषण पुत्र को सौंपकर स्वयं पत्नी समेत उत्तम रत्नों के रथ पर बैठकर उत्तम गोलोक को चले गये । इस आश्चर्य को देख हरि भी सहर्ष अपने घर को लौट गये ।। २५-३०।। नारद ! इस प्रकार उस ब्रह्मण्यदेव का और भी चरित सुनो ! इस महापुण्य स्तोत्र का जो भक्तिपूर्वक पाठ करेगा, उसे श्रीकृष्ण की अटल भक्ति प्राप्त होगी, इसमें संदेह नहीं । इसके प्रभाव से कीर्तिहीन उत्तम यशस्वी और मूर्ख पण्डित हो जाता है । इस लोक में सुख भोगकर अन्त में भगवान् के पद को प्राप्त होता है । वहाँ उसे नित्य हरि की दासता सुलभ रहती है, इसमें संशय नहीं ।।३१-३३।।

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद-नारायण के संवाद में
मुनि-पत्नी-स्तोत्र नामक एक सौ दूसरा अध्याय समाप्त ।।१०२।।

●

# अथ त्र्यधिकशततमोऽध्यायः

### नारायण उवाच

अथाऽऽगत्य मधुपुरीं प्रणम्य पितरं विभुः[1] । सबलो वटमूले च सस्मार गरुडं हरिः ॥१॥
सादरं लवणोदं च विश्वकर्माणमीप्सितम् । तत्याज गोपवेषं च नृपवेषं दधार सः ॥२॥
एतस्मिन्नन्तरे चक्रमाजगाम हरिं स्वयम् । परं सुदर्शनं नाम सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥३॥
तेजसा हरिणा तुल्यं परं वैरिविमर्दनम् । अव्यर्थमस्त्रमस्त्राणां प्रवरं परमं परम् ॥४॥
रत्नयानं पुरः कृत्वा गरुडो हरिसंनिधिम् । विश्वकर्मा सशिष्यश्च जलधिः कम्पितस्तथा ॥५॥
हरिं प्रणेमुस्ते सर्वे मूर्ध्ना च भक्तिपूर्वकम् । सस्मितः सादरं यत्नात्तानुवाच क्रमाद्विभुः ॥६॥

### श्रीकृष्ण उवाच

हे समुद्र महाभाग स्थलं च शतयोजनम् । देहि मे नगरार्थं च पश्चाद्दास्यामि निश्चितम् ॥७॥
नगरं कुरु हे कारो त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् । रमणीयं च सर्वेषां कमनीयं च योषिताम् ॥८॥

---

# अध्याय १०३

## श्रीकृष्ण के द्वारा द्वारका का निर्माण

**नारायण बोले**—बलदेव समेत श्रीकृष्ण ने मथुरापुरी लौटकर अपने पिता को प्रणाम किया और वटवृक्ष के नीचे बैठकर उन्होंने आदर के साथ गरुड़, क्षीरसागर एवं विश्वकर्मा का स्मरण किया। अनन्तर उन्होंने गोपवेश बदलकर राजवेश धारण किया। इसी बीच सुदर्शन चक्र भगवान् के पास आया, जो करोड़ों सूर्य के समान प्रभापूर्ण था, हरि के सदृश तेजस्वी, शत्रुओं का परम नाशक, कभी व्यर्थ (खाली) न जानेवाला एवं अस्त्रों में परम श्रेष्ठ था। पश्चात् रत्न के रथ को भगवान् के सामने करके गरुड़, शिष्य समेत विश्वकर्मा और काँपता हुआ सागर—इन सब लोगों ने भक्तिपूर्वक सिर झुकाकर भगवान् को प्रणाम किया। तब सर्वव्यापी भगवान् ने क्रमशः उनसे आदर सहित मुसकराते हुए कहा ॥१-६॥

**श्रीकृष्ण बोले**—महाभाग समुद्र! मुझे नगर-निर्माण करने के लिए सौ योजन विस्तृत भूमि दो। पश्चात् मैं लौटा दूंगा ॥७॥ हे शिल्पी (विश्वकर्मा)! तुम यहाँ एक ऐसा नगर बनाओ, जो तीनों लोकों में

---

१ क. प्रसूम।

वाञ्छितं चापि भक्तानां वैकुण्ठसदृशं परम्। सर्वेषामपि स्वर्गाणां परं पारमभीप्सितम् ॥९॥
दिवानिशं खगश्रेष्ठ संनिधौ विश्वकर्मणः। स्थितिं कुरु महाभाग यावन्निर्माति द्वारकाम् ॥१०॥
दिवानिशं च मत्पार्श्वे चक्रश्रेष्ठ स्थितिं कुरु। ओमित्युक्त्वा तु प्रययुः सर्वे चक्रं विना मुने ॥११॥
कंसस्य पितरं भद्रमुग्रसेनं महाबलम्। नृपं चकार नगरे क्षत्रियाणां सतामपि ॥१२॥
विजित्य च जरासंधं निहत्य यवनं तथा। उपायेन महाभाग निर्माणक्रममीश्वरः ॥१३॥

### श्रीभगवानुवाच

शतयोजनपर्यन्तं नगरं सुमनोहरम्। पद्मरागैर्मरकतैरिन्द्रनीलैरनुत्तमैः ॥१४॥
रुचकैः पारिभद्रैश्च पलङ्कैश्च[1] स्यमन्तकैः। गन्धकैर्गालिमैश्चैव चन्द्रकान्तादिभिस्तथा ॥१५॥
सूर्यकान्तादिभिश्चैव पुत्रैश्च स्फटिकाकृतैः। हरिद्वर्णैश्च मणिभिः श्यामैर्गौरमुखैश्चयैः ॥१६॥
गोरोचनाभिः पीतैश्च दाडिमीबीजरूपकैः। पद्मबीजनिभैश्चैव नीलैः कमलवर्णकैः ॥१७॥
मणिभिः कज्जलाकारैरुज्ज्वलैश्च परिष्कृतैः। श्वेतचम्पकवर्णाभैस्तप्तकाञ्चनसंनिभैः ॥१८॥
स्वर्णमूल्यशतगुणैरीषद्रक्तैः सुशोभनैः। गरिष्ठैश्च वरिष्ठैश्च मणिश्रेष्ठैश्च पूजितैः ॥१९॥
यथाविधानं यद्योग्यं यत्र यन्मुक्तमीप्सितम्। मणीनां हरणं चैव यक्षसंघा हिमालयात् ॥२०॥

---

दुर्लभ सबके लिए रमणीय, स्त्रियों के लिए अत्यन्त सुन्दर, भक्तों के लिए वाञ्छनीय, वैकुण्ठ के समान परम उत्कृष्ट, समस्त स्वर्गों से परे और सबके लिए अभीष्ट हो ॥८-९॥ महाभाग खगश्रेष्ठ ! जब तक विश्वकर्मा द्वारकापुरी का निर्माण करें, तब तक तुम रात-दिन उनके साथ ही रहो ॥१०॥ चक्रश्रेष्ठ ! तुम दिन-रात मेरे ही साथ रहो। मुने ! सभी लोगों ने ॐ शब्द कहकर अपनी स्वीकृति प्रदान की और चक्र के अतिरिक्त सभी लोग वहाँ से चले गये ॥११॥ महाभाग ! अनन्तर श्रीकृष्ण ने मथुरा नगर में कंस के पिता महाबली एवं भद्रपुरुष उग्रसेन को क्षत्रियों तथा सज्जनों का भी राजा बना दिया। फिर युक्ति से जरासंध को पराजित किया और कालयवन का वध किया। पश्चात् नगर के निर्माण का क्रम चालू किया ॥१२-१३॥

**श्रीभगवान् बोले** –विश्वकर्मा ! तुम सौ योजन के विस्तारवाला एक अति मनोहर नगर बनाओ, जो पद्मराग, मरकत, अत्युत्तम इन्द्रनील, मनोहर पारिभद्र, पलङ्क, स्यमन्तक, गन्धक, गालिम, चन्द्रकान्त, सूर्यकान्त, स्फटिक की रची हुई पुत्तलियों, पीली, श्याम, श्वेत और नीली मणियों, अनार के दाने के सदृश पीली गोरोचना, कमल-बीज के सदृश, नीले कमल के-से रंगवाली, कज्जल के-से आकारवाली, उज्ज्वल, परिष्कृत, श्वेत चम्पा के समान कान्तिवाली, तपाये हुए स्वर्ण की-सी चमकीली, स्वर्ण के मूल्य से सौ गुनी अधिक मूल्यवाली, थोड़ी-थोड़ी लाल, परम सुन्दर, वजनदार, सर्वोत्तम और पूजनीय उत्तम मणियों द्वारा वास्तुशास्त्र के विधानानुसार यथायोग्य घटा-बढ़ाकर बनाया जाय। जब तक तुम नगर का निर्माण करोगे तब तक यक्षगण हिमालय पर्वत से

---

१ क. पलकैः।

दिवानिशं करिष्यन्ति यावन्निर्माणपूर्वकम् । यक्षैश्च सप्तभिर्लक्षैः कुबेरप्रेरितैरपि ॥२१॥
वेतालक्षैः कूष्माण्डलक्षैः शंकरयोजितैः । दानवैर्ब्रह्मरक्षोभिः शैलकन्यानियोजितैः ॥२२॥
कुरु दिव्यं च पत्नीनां सहस्राणां च षोडश । अन्यपत्नीजनस्यापि चाष्टाधिकशतस्य च ॥२३॥
शिबिरं परिखायुक्तमुच्चैःप्राकारवेष्टितम् । युक्तद्वादशशालं च सिंहद्वारपरिष्कृतम् ॥२४॥
युक्तं चित्रैर्विचित्रैश्च कृत्रिमैश्च कपाटकैः । निषिद्धवृक्षरहितं प्रसिद्धैश्च परिष्कृतम् ॥२५॥
सुलक्षणं चन्द्रवेधं प्राङ्गणं च तथैव च । यदूनामाश्रमं दिव्यं किंकराणां तथैव च ॥२६॥
सर्वत्र सिद्धं निलयमुग्रसेनस्य भूभृतः । आश्रमं सर्वतोभद्रं वसुदेवस्य मत्पितुः ॥२७॥

### विश्वकर्मोवाच

के ते वृक्षाः प्रशस्ताश्च निषिद्धाश्चापि केचन । भद्राभद्रप्रदाश्चापि तान्वदस्व जगद्गुरो ॥२८॥
केषामस्थिनियुक्तं च शिबिरं च शुभाशुभम् । दिशि कुत्र जलं भद्रमभद्रं च वद प्रभो ॥२९॥
भद्रप्रदश्च को वृक्षो दिशि कुत्र प्रवर्तते । किं प्रमाणं गृहाणां च प्राङ्गणानां सुरेश्वर[1] ॥३०॥
मङ्गलं कुसुमोद्यानं दिशि कुत्र तरोस्तथा । प्राकाराणां किं प्रमाणं परिखाणां सुरेश्वर ॥३१॥
द्वाराणां च गृहाणां च प्राकाराणां प्रमाणकम् । कस्य कस्य तरोः काष्ठं प्रशस्तं शिबिरे प्रभो ॥३२॥
अमङ्गलं वा केषां च सर्वं मां वक्तुमर्हसि ॥३३॥

---

मणियों को रात-दिन लाते रहेंगे। कुबेर द्वारा प्रेरित सात लाख यक्ष, शङ्कर जी द्वारा नियुक्त एक लाख वेताल और एक लाख कूष्माण्डगण और शैलपुत्री पार्वती द्वारा नियुक्त दानवगण एवं ब्रह्मराक्षसगण तुम्हारे सहायक बने रहेंगे ॥१४-२२॥ मेरी सोलह सहस्र एक सौ आठ पत्नियों के लिए सुन्दर महलों का निर्माण करो, जो खाइयों से युक्त तथा ऊँची-ऊँची चहारदीवारियों से घिरे हों। जो प्रत्येक बारह कमरों से युक्त एवं सिंहद्वार से परिष्कृत हो ॥२३-२४॥ जो चित्र-विचित्र कृत्रिम किवाड़ों से युक्त हों, निषिद्ध वृक्षों से रहित और प्रसिद्ध वृक्षों से सम्पन्न हो और जिनके आँगन शुभलक्षणयुक्त एवं चन्द्रवेध हों। इसी प्रकार यदुवंशियों एवं उनके सेवकों के लिए भी दिव्य आश्रम बनाये जायँ ॥२५-२६॥ राजा उग्रसेन का भवन सर्वप्रसिद्ध तथा मेरे पिता वसुदेव का आश्रम सर्वतोभद्र होना चाहिए ॥२७॥

**विश्वकर्मा बोले**—जगद्गुरो! (गृह-निर्माण करने में) कौन वृक्ष प्रशस्त हैं और कौन निषिद्ध हैं एवं शुभ-अशुभ प्रदान करनेवाले कौन हैं? उन सबको बताइये ॥२८॥ प्रभो! किनकी अस्थि पड़ने पर भवन शुभ और किनकी अस्थियों से अशुभ होता है? शिविर की किस दिशा में जल मंगलकारक और किस दिशा में अमांगलिक होता है? सुरेश्वर! परकोटों, खाइयों, दरवाजों और गृहों और चहारदीवारियों का क्या प्रमाण है? प्रभो! शिविर निर्माण में किस-किस वृक्ष का काष्ठ प्रशस्त माना गया है और किन वृक्षों के काष्ठ अमंगल-जनक होते हैं? यह सब मुझे बतला दीजिये ॥२९-३३॥

---

१ क. जगद्गुरो।

### श्रीभगवानुवाच

आश्रमे नारिकेलश्च गृहिणां च धनप्रदः। शिबिरस्य यदीशाने पूर्वे पुत्रप्रदस्तरुः ॥३४॥
सर्वत्र मङ्गलार्हश्च तरुराजो मनोहरः। रसालवृक्षः पूर्वस्मिन्नृणां संपत्प्रदस्तथा ॥३५॥
शुभप्रदश्च सर्वत्र सुरकारो निशामय। बिल्वश्च पनसश्चैव जम्बीरो बदरी तथा ॥३६॥
प्रजाप्रदश्च पूर्वस्मिन्दक्षिणे धनदस्तथा। संपत्प्रदश्च सर्वत्र यतो हि वर्धते गृही ॥३७॥
जम्बूवृक्षश्च दाडिम्बः कदल्याम्रातकस्तथा। बन्धुप्रदश्च पूर्वस्मिन्दक्षिणे मित्रदस्तथा ॥३८॥
सर्वत्र शुभदश्चैव धनपुत्रशुभप्रदः। हर्षप्रदो गुवाकश्च दक्षिणे पश्चिमे तथा ॥३९॥
ईशाने सुखदश्चैव सर्वत्रैव निशामय। सर्वत्र चम्पकः शुद्धो भुवि भद्रप्रदस्तथा ॥४०॥
अलाबुश्चापि कूष्माण्डमायाम्बुश्च सकिंशुकः। खर्जूरी कर्कटी चापि शिबिरे मङ्गलप्रदा ॥४१॥
वास्तूककारबिल्वश्च वार्ताकश्च शुभप्रदः। लताफलं च शुभदं सर्वं सर्वत्र निश्चितम् ॥४२॥
प्रशस्तं कथितं कारो निषिद्धं च निशामय। वन्यवृक्षो निषिद्धश्च शिबिरे नगरेऽपि च ॥४३॥
वटो निषिद्धः शिबिरे नित्यं चोरभयं यतः। नगरेषु प्रसिद्धश्च दर्शनात्पुण्यदस्तथा ॥४४॥
निषिद्धः शाल्मलिश्चैव शिबिरे नगरे पुरे। दुःखप्रदश्च सततं भूपालानां सदाऽपि च ॥४५॥

---

**श्रीभगवान् बोले**--आश्रम में नारियल के वृक्ष लगाने से गृही को धन प्राप्त होता है। घर के ईशानकोण में और पूर्व दिशा में लगाया हुआ वृक्ष पुत्रप्रद होता है ॥३४॥ वह मनोहर वृक्षराज सब ओर मंगलप्रद होता है। घर के पूर्व दिशा में आम का वृक्ष लगाने से मनुष्यों को सम्पत्ति प्राप्त होती है और वह सर्वत्र शुभप्रद होता है। देव शिल्पी ! बेल, कटहल, जम्बीरी नींबू और बेर के वृक्ष पूर्व दिशा में लगाने से सन्तान, दक्षिण दिशा में लगाने से धन प्राप्त होता है और वे सर्वत्र सम्पत्तिप्रद होते हैं। इनसे गृहस्थ की उन्नति होती है ॥३५-३७॥ जामुन, केला और आमला के वृक्ष पूर्व में बन्धुप्रद तथा दक्षिण में मित्र की वृद्धि करनेवाले होते हैं और सर्वत्र शुभदायक होते हैं। सुपारी का वृक्ष दक्षिण में धनपुत्रशुभप्रद, पश्चिम में हर्षदायक और ईशानकोण में तथा सर्वत्र सुखद होता है। भूतल पर चम्पा का वृक्ष शुद्ध तथा सर्वत्र मंगलकारक होता है ॥३८-४०॥ लौकी, कुम्हड़ा, आयाम्बु, पलाश, खजूर और कर्कटी के वृक्ष शिविर में मंगलप्रद होते हैं। वास्तूक (बथुआ), बेल और बैंगन के पौधे भी शुभप्रद होते हैं। सारी फलवती लताएँ निश्चय ही सर्वत्र शुभदायिनी हैं ॥४१-४२॥ शिल्पिन् ! इस प्रकार शुभदायक वृक्षों को मैंने बता दिया है, अब निषिद्ध वृक्षों को सुनो ! जंगली वृक्ष आश्रम में और नगर में कहीं नहीं लगाना चाहिए। शिविर में वटवृक्ष नहीं लगाना चाहिए, इससे चोर का भय होता है। किन्तु नगरों में वटवृक्ष प्रसिद्ध है। उसके दर्शन करने से पुण्य होता है ॥४३-४४॥ आश्रम, नगर और गाँव में सेमर का पेड़ लगाना सर्वथा निषिद्ध है। राजाओं के लिए वह निरन्तर दुःखप्रद होता है ॥४५॥ हे शिल्पी ! इमली का वृक्ष गाँवों

न निषिद्धः प्रसिद्धश्च ग्रामेषु नगरेषु च। विद्यामतिनिषिद्धस्तु सततं दुःखदस्तदा ॥४६॥
हे कारो तिन्तिडीवृक्षो यत्नात्तं परिवर्जयेत्। शतेन धनहानिः स्यात्प्रजाहानिर्भवेद्ध्रुवम् ॥४७॥
शिबिरेऽतिनिषिद्धश्च नगरे किंचिदेव च। न निषिद्धः प्रसिद्धश्च ग्रामेषु नगरेषु च ॥४८॥
विद्यामतिनिषिद्धश्च प्राज्ञस्तं परिवर्जयेत्। खर्जूरश्च गडुश्चैव[1] निषिद्धः शिबिरे तथा ॥४९॥
न निषिद्धः प्रसिद्धश्च ग्रामेषु नगरेषु च। वृक्षश्च चणकादीनां धान्यं च मङ्गलप्रदम् ॥५०॥
ग्रामेषु नगरे चापि शिबिरे च तथैव च। इक्षुवृक्षश्च शुभदः संततं शुभदस्तथा ॥५१॥
अशोकश्च शिरीषश्च कदम्बश्च शुभप्रदः। कश्चिद्धरिद्रा शुभदा शुभदश्चाऽऽर्द्रकस्तथा[3] ॥५२॥
हरीतकी च शुभदा ग्रामेषु नगरेषु च। न बाधा[1] भद्रदा नित्यं चाऽऽमलकी ध्रुवम् ॥५३॥
गजानामस्थि शुभदमश्वानां च तथैव च। कल्याणमुच्चैःश्रवसां वास्तौ स्थापनकारिणाम् ॥५४॥
न शुभप्रदमन्येषामुच्छिन्नकारणं परम्। वानराणां नराणां च गर्दभानां गवामपि ॥५५॥
कुक्कुराणां[4] शृगालानां मार्जाराणामभद्रकम्। भेटकानां सूकराणां सर्वेषां च शुभप्रदम् ॥५६॥
ईशाने चापि पूर्वस्मिन्पश्चिमे च तथोत्तरे। शिबिरस्य जलं भद्रमन्यत्राशुभमेव च ॥५७॥

---

में लगाना निषिद्ध नहीं है, किन्तु शिविर में उसका रहना ठीक नहीं है। वह विद्या-बुद्धि का विनाशक तथा दुःखप्रद होता है। निश्चय ही प्रजा और धन की हानि होती है। अतः यत्नपूर्वक उससे बचना चाहिए ॥४६-४७॥ आश्रम में इमली का वृक्ष अत्यन्त निषिद्ध है, नगर में कुछ ही निषिद्ध है और गाँवों एवं कस्बों में निषिद्ध नहीं, बल्कि प्रसिद्ध है ॥४८॥

खजूर और काँटेदार वृक्ष भी शिविर में नहीं रहना चाहिए। क्योंकि वे विद्या और बुद्धि को नष्ट कर देनेवाले हैं, उनसे दूर रहना ही ठीक है ॥४९॥ गाँवों और नगरों में चने आदि अन्नों के पौधे निषिद्ध नहीं, बल्कि प्रसिद्ध हैं। वहाँ धान्य मंगलप्रद होता है ॥५०॥ गाँवों, नगरों और आश्रमों में गन्ने का वृक्ष सतत शुभप्रद होता है। अशोक, सिरिस, कदम्ब शुभदायक होते हैं। हल्दी, अदरक, हरीतकी और आमलकी—ये गाँवों तथा नगरों में सदा शुभदायिनी तथा कल्याणकारिणी होती हैं।

वास्तुभूमि में स्थापन करनेवालों के लिए गज की अस्थि शुभदायिनी और उच्चैःश्रवा के वंशज घोड़ों की हड्डी कल्याणकारिणी होती है ॥५१-५४॥ अन्य की अस्थियाँ सर्वनाश करनेवाली होती हैं। वानरों, मनुष्यों, गधों, गौओं, कुत्तों, सियारों एवं बिल्लियों की अस्थियाँ निरन्तर अशुभप्रद होती हैं। भेड़ और शूकरों की अस्थियाँ सभी लोगों के लिए शुभदायक होती हैं ॥५५-५६॥ शिविर के ईशान कोण, पूर्व, पश्चिम और उत्तर में जल का रहना उत्तम है और अन्यत्र रहना अशुभदायक है ॥५७॥ शिल्पिन्! विद्वानों को चाहिए कि गृह की

---

१ क. बाधा[1]। २ क. गुडश्चै[1]। ३ क. 'स्वरक'। ४ क. कुटानां।

दीर्घे प्रस्थे समानं च न कुर्यान्मन्दिरे बुधः। चतुरस्रे गृहे कारो गृहिणां धननाशनम् ॥५८॥
दीर्घप्रस्थः परिमितो नेत्राङ्केनापि संहृतम्। शून्येन रहितं भद्रं शून्यं शून्यप्रदं नृणाम् ॥५९॥
प्रस्थे हस्तद्वयात्पूर्वं दीर्घे हस्तत्रयं तथा। गृहाणां शुभदं द्वारं प्राकारस्य गृहस्य च ॥६०॥
न मध्यदेशे कर्तव्यं किंचिन्न्यूनाधिके शुभम्। चतुरस्रं चन्द्रवेधं शिबिरं मङ्गलप्रदम् ॥६१॥
अभद्रदं सूर्यवेधं शिबिरं मङ्गलप्रदम्। अभद्रदं सूर्यवेधं प्राङ्गणं च तथैव च ॥६२॥
शिबिराभ्यन्तरे भद्रा स्थापिता तुलसी नृणाम्। धनपुत्रप्रदात्री च पुण्यदा हरिभक्तिदा ॥६३॥
प्रभाते तुलसीं दृष्ट्वा स्वर्णदानफलं लभेत्। मालती यूथिका कुन्दं माधवी केतकी तथा ॥६४॥
नागेश्वरं मल्लिकां च काञ्चनं बकुलं शुभम्। अपराजिता च शुभदा तेषामुद्यानमीप्सितम् ॥६५॥
पूर्वे च दक्षिणे चैव शुभदं नात्र संशयः। ऊर्ध्वं षोडशहस्तेभ्यो नैव कुर्याद्गृहं गृही ॥६६॥
ऊर्ध्वं विंशतिहस्तेभ्यः प्राकारं न शुभप्रदम्। सूत्रधारं तैलकारं स्वर्णकारं च हीरकम् ॥६७॥
वाटीमूले ग्राममध्ये न कुर्यात्स्थापनं बुध। ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं सच्छूद्रं गणकं शुभम् ॥६८॥
भट्टं वैद्यं पुष्पकारं स्थापयेच्छिबिरान्तिके। प्रस्थे च परिखामानं शतहस्तं प्रशस्तकम् ॥६९॥
पारतः शिबिराणां च गम्भीरं दशहस्तकम्। संकेतपूर्वकं चैव परिखाद्वारमीप्सितम् ॥७०॥

---

लम्बाई-चौड़ाई कभी भी समान न रखे, क्योंकि चौकोर गृह बनाने से गृही का धन नाश होता है ॥५८॥ घर की परिमित लम्बाई-चौड़ाई में पृथक्-पृथक् दो का भाग देने से यदि शेष शून्यरहित हो तो शुभ अन्यथा शून्य शेष आने पर वह घर मनुष्यों के लिए शून्यप्रद होता है ॥५९॥ गृहों की चौड़ाई में पश्चिम से दो हाथ पूर्व और लम्बाई में दक्षिण से तीन हाथ हटकर घर का तथा परकोटे का द्वार रखना शुभदायक होता है ॥६०॥ (गृह के) मध्यभाग में दरवाजा नहीं बनाना चाहिए, क्योंकि वह कुछ कम वेश में ही रखने पर शुभकारक होता है। चौकोर घर चन्द्रवेध होने पर मंगलप्रद होता है। परन्तु मंगलप्रद गृह भी सूर्यवेध होने पर अमंगलकारक हो जाता है। उसी प्रकार सूर्यवेध आँगन भी अमंगलदायक होता है ॥६१-६२॥ लगायी हुई तुलसी मनुष्यों के लिए कल्याणकारिणी, धन-पुत्र प्रदान करनेवाली, पुण्यदायिनी तथा हरिभक्ति देनेवाली होती है ॥६३॥ प्रातःकाल तुलसी का दर्शन करने से सुवर्ण दान का फल प्राप्त होता है। घर के पूर्व और दक्षिण भाग में मालती, जूही, कुन्द, माधवी, केतकी, नागेश्वर, बेला, काञ्चन (श्यामधतूर), मौलसिरी और शुभदायिनी अपराजिता—इन पुष्पों का उद्यान शुभप्रद होती है इसमें संशय नहीं। गृहस्थ को सोलह हाथ से अधिक ऊँचा घर नहीं बनवाना चाहिए और बीस हाथ से ऊँची चहारदीवारी भी गृही को शुभ नहीं होती है। बुद्धिमान् पुरुष को घर के समीप तथा गाँव के बीच में बढ़ई, तेली और सोनार को नहीं बसाना चाहिए। किन्तु घर के पास-पड़ोस में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, सत्शूद्र, ज्योतिषी, भाट, वैद्य और माली को घर के समीप रखना चाहिए। शिविर के चारों ओर सौ हाथ लंबी और दस हाथ की गहरी खाई प्रशस्त बतायी गयी है और उस खाई का दरवाजा संकेत युक्त

शत्रोरगम्यं मित्रस्य गम्यमेव सुखेन च। शाल्मलीनां तिन्तिडीनां हिन्तालानां तथैव च ॥७१॥
निम्बाणां सिन्धुवाराणां[1] बदरीणामभद्रकम्। धत्तूराणां वटानां चाप्येरण्डानामवाञ्छितम् ॥७२॥
एतेषामतिरिक्तानां शिबिरे काष्ठमीप्सितम्। वृक्षं च वज्रहस्तं च भूधरो वर्जयेदधः ॥७३॥
पुत्रदारधनं हन्यादित्याह कमलोद्भवः। कथितं लोकशिक्षार्थं कुरु काष्ठं विना पुरीम् ॥७४॥
शुभक्षणं चाप्यधुना गच्छ वत्स यथासुखम्। विश्वकर्मा हरिं नत्वा जगाम पक्षिणा सह ॥७५॥
समुद्रस्य समीपं च वटमूलं मनोहरम्। सुष्वाप तत्र नक्तं च कारुश्च पक्षिणा सह ॥७६॥
स्वप्ने द्वारवतीं रम्यां ददर्श गरुडस्तथा। यत्किंचित्कथितं कारुं कृष्णेन परमात्मना ॥७७॥
तदेव लक्षणं सर्वं ददर्श नगरे मुने। कारुं हसन्ति स्वप्ने च सर्वे ते शिल्पकारिणः ॥७८॥
गरुडं गरुडाश्चान्ये बलवन्तश्च पक्षिणः। बुद्धो ददर्श गरुडो विश्वकर्मा च लज्जितः ॥७९॥
अतीव द्वारकां रम्यां शतयोजनविस्तृताम्। ब्रह्मादीनां च नगरं विजित्य च विराजिताम् ॥
तेजसाऽऽच्छादितं सूर्यं रत्नानां च परिष्कृताम् ॥८०॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० द्वारकानिर्माणारम्भे त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१०३॥

•

---

होना चाहिए, जो अपने हितैषियों के लिए आने-जाने में सुखकर हो तथा शत्रु के लिए अगम्य हो। भवन के निर्माण में सेमर, इमली, हिन्ताल (जंगली खजूर), नीम, सिन्धुवार (म्योड़ी), गूलर, धतूर, बरगद और रेंड़--इनके अतिरिक्त अन्य वृक्षों का ही काष्ठ काम में लाना चाहिए। राजा काष्ठ तथा वज्रहस्त को नीचे न लगाये। (?) अन्यथा पुत्र, स्त्री और धन का विनाश हो जाता है, ऐसा ब्रह्मा ने बताया है। वत्स ! यह सब मैंने लोक-शिक्षा के लिए कहा है। अब तुम सुखपूर्वक जाओ और बिना काष्ठ के ही पुरी का निर्माण करो। क्योंकि उसके लिए यही शुभ मुहूर्त है।

विश्वकर्मा ने भगवान् को नमस्कार किया और गरुड़ के साथ वहाँ से चल पड़े ॥६४-७५॥ समुद्र तट पर मनोहर वटवृक्ष के नीचे आकर उन्होंने गरुड़ के साथ वहाँ रात्रि में शयन किया ॥७६॥ स्वप्न में गरुड़ को रमणीक द्वारकापुरी का दर्शन हुआ। मुने ! परमात्मा कृष्ण ने विश्वकर्मा से जो कुछ कहा था, वे सारे-के-सारे लक्षण उन्हें उस नगर में दिखायी पड़े। स्वप्न में वे सभी कारीगर विश्वकर्मा की और दूसरे बलवान् गरुड़ पक्षी की हँसी उड़ा रहे थे। जागने पर उस पुरी को देखकर गरुड़ और विश्वकर्मा लज्जित हुए ॥७७-७९॥ वह द्वारकापुरी अत्यन्त रमणीक और सौ योजनों में फैली हुई थी। वह ब्रह्मा आदि देवों की नगरी को विजित कर विराजमान थी। उसमें रत्नों की कारीगरी की गयी थी, जिसके कारण उसके तेज से सूर्य ढक गये थे ॥८०॥

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद-नारायण के संवाद में द्वारकापुरी के निर्माणारम्भ में एक सौ तीसरा अध्याय समाप्त ॥१०३॥

•

---

१ ख. 'राणामुम्बराणां'।

# अथ चतुरधिकशततमोऽध्यायः

**नारायण उवाच**

एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा भवान्या च भवः स्वयम् । अनन्तश्चापि धर्मश्च भास्करश्च हुताशनः ॥१॥
कुबेरो वरुणश्चैव पवनश्च यमस्तथा । महेन्द्रश्चापि चन्द्रश्च रुद्राश्चैकादशैव ते ॥२॥
अन्ये देवाश्च मुनयो वसवः सप्त एव च । आदित्याश्चापि दैत्याश्च गन्धर्वाः किन्नरास्तथा ॥३॥
आययुर्द्वारकां द्रष्टुं श्रीकृष्णं च बलं तथा । आगच्छन्तं च सहसा वटमूलं मनोहरम् ॥४॥
दृष्ट्वा च देवताः सर्वास्तुष्टुवुः पुरुषोत्तमम् । आकाशाच्च विमानैश्च संप्राप्य वटमूलकम् ॥५॥
ददृशुर्द्वारकां रम्यामतीव सुमनोहराम् । मुक्तामाणिक्यहीरेण रत्नराजिविराजिताम् ॥६॥
परितश्चतुरस्रां च शतयोजनसंमिताम् । सप्तभिः परिखाभिश्च गम्भीराभिश्च वेष्टिताम् ॥७॥
प्राकारैर्नवभिर्युक्तां लक्षैः क्रीडासरोवरैः । मनोहरैः सपद्मैश्च सहितैश्च मधुव्रतैः ॥८॥
शोभितां सर्वतोभद्रैः पुष्पोद्यानत्रिलक्षकैः । प्रफुल्लपुष्पैः पवनैः सर्वत्र सुरभीकृताम् ॥९॥
आमोदितां च शीतेन मन्दचन्दनवायुना । तरुभिर्नारिकेलाणां शोभितां शतकोटिभिः ॥१०॥
गुवाकानां च वृक्षैश्च भूषितां तच्चतुर्गुणैः । चतुर्गुणैर्गुवाकानां युक्तामाम्रमहीरुहैः ॥११॥

---

# अध्याय १०४

## द्वारका में प्रवेश और उग्रसेन का अभिषेक वर्णन

**नारायण बोले**—इसी बीच ब्रह्मा, भवानी पार्वती को साथ लिये स्वयं शिव और अनन्त, धर्म, भास्कर, अग्नि, कुबेर, वरुण, वायु, यमराज, महेन्द्र, चन्द्रमा, ग्यारह रुद्र, अन्य देवगण, मुनिवृन्द, सातों वसुगण, बारह आदित्य, दैत्यगण, गन्धर्व और किन्नर लोग द्वारिकाधीश भगवान् श्रीकृष्ण समेत बलभद्र के दर्शनार्थ द्वारकापुरी आये। अनन्तर उस मनोहर वटवृक्ष के समीप आते हुए पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण को देखकर देवगण, जो अपने-अपने विमानों द्वारा आकाश मार्ग से आकर वहाँ पहले से ही उपस्थित थे, उनकी स्तुति करने लगे ॥१-५॥ तत्पश्चात् उन्होंने द्वारकापुरी देखी, जो अत्यन्त रमणीक, अति मनोहर और मुक्ता, माणिक्य, हीरे एवं रत्नों की पंक्तियों से सुभूषित थी, तथा चारों ओर से सौ योजन की लम्बी-चौड़ी तथा सात खाइयों से घिरी हुई, नौ चहारदीवारियों से युक्त एवं भ्रमर सहित मनोहर कमल पुष्पों-वाले एक लाख क्रीड़ासरोवरों से सुशोभित थी ॥६-८॥ वहाँ सर्वतोभद्र तथा तीन लाख पुष्पवाटिकाएँ थीं। वायु खिले हुए पुष्पों की सुगंध फैला रहे थे। चन्दन सम्पृक्त शीतल मन्द वायु उसको आमोदित कर रहा था। सैकड़ों करोड़ नारियल के वृक्षों से वह नगरी शोभित थी। वहाँ नारियल के चौगुने सुपाड़ी के वृक्ष थे। फिर सुपाड़ी के चौगुने आम के पेड़ थे। आम के बराबर कटहल के वृक्ष चारों ओर सुशोभित थे। उतने ही तालों के

परीतां पनसानां च वृक्षैराम्रसमैर्मुने । सुशोभितां च तालानां द्रुमैराम्रसमैर्मुने ॥१२॥
अश्वत्थैर्बदरीभिश्च बिल्वैराम्रातकैर्वटैः । शाल्मलीभिश्च जम्बूभिः कदम्बैश्चापि शोभिताम् ॥१३॥
वंशैश्च तिन्तिडीभिश्च चम्पकैर्बकुलैस्तथा । नागेश्वरैर्नागरङ्गैर्जम्बीरैर्दाडिमैर्युताम् ॥१४॥
खर्जूरैरर्जुनैः पिष्टैरिक्षुभिः काञ्चनैरपि । हरीतकीभिर्धात्रीभिरिन्दुभिः परितः प्लुताम् ॥१५॥
शालैः प्रियालैर्हिन्तालैः शिरीषैः सप्तपर्णकैः । अन्यैर्नानाद्रुमैरिष्टैरिष्टां युक्तां परिप्लुताम् ॥१६॥
असंख्यैर्मन्दिरं रम्यैरत्युच्चैरपि संस्कृताम् । रत्नेन्द्रसारनिर्माणैर्मुक्तामाणिक्यभूषितैः ॥१७॥
माणिक्यहीरकैश्चित्रैः सद्रत्नकलशान्वितैः । मणिभिर्निर्मितैरिष्टैः सोपाननिकरैर्वरैः ॥१८॥
कपाटैः कठिनैर्दिव्यैरर्गलाकीलकैर्युताम् । हरिन्मणीनां स्तम्भानां कदम्बैरपि संयुतैः ॥१९॥
नानाचित्रैर्विचित्रैश्च[1] सुचित्रैश्च परिष्कृतैः । दर्पणैः सूक्ष्मवस्त्रैश्च शोभितैः श्वेतचामरैः ॥२०॥
प्राङ्गणैः पद्मरागाद्यैरिन्द्रनीलपरिष्कृताम् । वीथीभी रत्नखचितैं राजमार्गैः समन्विताम् ॥२१॥
ग्रीष्ममध्याह्नसूर्याभां ज्वलितां रत्नतेजसा । गवाक्षलक्षैः संयुक्तां वाजिशालापरिष्कृताम् ॥२२॥
दृष्ट्वा च द्वारकां रम्यां ते देवा विस्मयं ययुः । प्रसन्नवदनो देवो लाङ्गली भगवानजः ॥२३॥
सस्मार यदुवंशानां समूहमुग्रसेनकम् । वसुदेवं देवकीं च पाण्डवांश्च समातृकान् ॥२४॥
नन्दं यशोदां गोपालान्राजेन्द्रमुनिपुंगवान् । गन्धर्वान्किन्नरांश्चैव सहितो यदुपुंगवैः ॥२५॥

---

भी वृक्ष थे । पीपर, बेर, बेल, आँवले, बरगद, सेमल, जामुन तथा कदम्ब के वृक्षों से वह (नगरी) शोभायमान थी । बाँस, इमली, चम्पा, मौलसिरी, नागकेसर, नारंगी, नीबू, अनार, खजूर, अर्जुनवृक्ष, पिष्टक, ईख, कचनार, हरीतकी तथा धात्री आदि वृक्षों से वह व्याप्त थी । सालवृक्ष, प्रियाल (चिरौंजी), शिरीष, सप्तपर्ण (छतिवन) तथा अन्य अनेक वांछनीय वृक्षों से युक्त थी ॥९-१६॥

द्वारकापुरी बहुत ऊँचे तथा रमणीय असंख्य मन्दिरों से युक्त थी । उन मन्दिरों का निर्माण उत्तम रत्नों के सारभाग से किया गया था, जिनमें मोती, मणि तथा हीरे जड़े हुए थे । उत्तम रत्नों के कलशों से वे युक्त थे। उनमें मणियों की सीढ़ियाँ बनी हुई थीं । वे दृढ़ किवाड़ों, अर्गलाओं (सिटकिनियों), कीलों तथा पन्ने के खंभों के समूहों से शोभित थे । वहाँ के आँगन पद्मरागों (लाल मणियों) तथा इन्द्रनीलमणियों से परिष्कृत थे । गलियों में रत्न जड़े हुए थे । सड़कें प्रशस्त थीं । ग्रीष्मऋतु के मध्याह्नकालीन सूर्य के समान चमकनेवाले रत्नों से वह नगरी जगमगा रही थी । उसमें लाखों खिड़कियाँ तथा अश्वशालाएँ थी ॥१७-२२॥ वे देवगण रमणीय द्वारकापुरी को देखकर आश्चर्य में पड़ गये। प्रसन्नमुख भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलराम ने यदुकुल के मान्य व्यक्तियों के साथ यदुवंशियों के समूह, उग्रसेन, वसुदेव, देवकी, माताओं समेत पाण्डवों, नन्द-यशोदा, गोपालों, श्रेष्ठ राजाओं और मुनियों, गन्धर्वों तथा किन्नरों का स्मरण किया ॥२३-२५॥ हे नारद !

---

१ क. रत्नचित्रैं ।

नन्दो यशोदा गोपाश्च जनन्या सह पाण्डवाः । गन्धर्वाः किन्नराश्चैव विद्याधर्यश्च नारद ॥२६॥
किन्नर्यश्चापि नर्तक्यो गायका वाद्यभाण्डकाः । भिक्षुका भाण्डकाश्चैव भट्टाश्च गणकास्तथा ॥२७॥
नानादेशोद्भवा भूपा वैद्याश्चान्ये च मानवाः । संन्यासिनश्च यतयोऽवधूता ब्रह्मचारिणः ॥२८॥
आययुर्मुनयः सर्वे सशिष्याः सिद्धपुंगवाः । सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः ॥२९॥
सनत्कुमारो भगवाञ्ज्ञानिनां च गुरोर्गुरुः । शिष्यैस्त्रिकोटिभिः सार्धं पञ्चवर्षो दिगम्बरः ॥३०॥
शिष्यैस्त्रिलक्षैः सहितो दुर्वासा भगवानजः । लक्षशिष्यैः कश्यपश्च वाल्मीकिश्च त्रिलक्षकैः ॥३१॥
लक्षशिष्यैर्गौतमश्च कोटिभिश्च बृहस्पतिः । शुक्रस्त्रिकोटिभिः सार्धं भरद्वाजश्च लक्षकैः ॥३२॥
शिष्यैस्त्रिकोटिभिः सार्धमङ्गिरा भगवानजः । वसिष्ठः कोटिभिः शिष्यैः प्रचेताः कोटिभिस्तथा ॥३३॥
त्रिलक्षैश्च पुलस्त्यश्चाप्यगस्त्यः कोटिभिः सह । पुलहो लक्षशिष्यैश्च क्रतुर्लक्षैस्तथैव च ॥३४॥
अत्रिस्त्रिकोटिभिः शिष्यैर्भृगुश्च पञ्चकोटिभिः । त्रिकोटिभिर्मरीचिश्च शतानन्दः सहस्रकैः ॥३५॥
सार्धं त्रिकोटिभिः शिष्यैर्ऋष्यशृङ्गो विभाण्डकः । पाणिनिः कोटिभिः शिष्यैर्लक्षैः कात्या-
यनस्तथा ॥३६॥
याज्ञवल्क्यः सहस्रैश्च व्यासः शिष्यत्रिकोटिभिः । शिष्यैर्लक्षैश्च सहितो गर्गः कुलपुरोहितः ॥३७॥
गालवश्च सहस्रैश्च सहस्रैः सोभरिस्तथा । त्रिकोटिभिर्लोमशश्च मार्कण्डेयस्त्रिकोटिभिः ॥३८॥
कोटिभिर्वामदेवश्च जैगीषव्यस्त्रिकोटिभिः । सांदीपनिर्देवलश्च सच्छिष्यैश्च त्रिकोटिभिः ॥३९॥

---

(उस समय जगद्गुरु (श्रीकृष्ण) के पास ये लोग आये——) नन्द, यशोदा, गोपवृन्द, माताओं समेत पाण्डव, गन्धर्व, किन्नर, विद्याधरियाँ, किन्नरियाँ, नर्तकियाँ, गानेवाले, बजानेवाले, भिक्षुक, भाण्डक, भाट, गणक, अनेक देशों में उत्पन्न राजा, वैद्य, मनुष्य, संन्यासी, यति, अवधूत, ब्रह्मचारी, शिष्य समेत मुनिगण, सिद्धवृन्द, सनक, सनन्द, तृतीय सनातन और ज्ञानियों के गुरु के गुरु, पाँच वर्ष की अवस्थावाले तथा नग्न रहनेवाले भगवान् सनत्कुमार अपने तीन करोड़ शिष्यों के साथ आये ॥२६-३०॥ तीन लाख शिष्यों समेत भगवान् अजन्मा, दुर्वासा, एक लाख शिष्यों के साथ कश्यप, तीन लाख शिष्यों के साथ वाल्मीकि, एक लाख शिष्यों के साथ गौतम, करोड़ों शिष्यों के साथ बृहस्पति, तीन करोड़ शिष्यों के साथ शुक्राचार्य, लाख शिष्यों के साथ भरद्वाज, तीन करोड़ शिष्यों के साथ भगवान् अजन्मा अङ्गिरा, करोड़-करोड़ शिष्यों के साथ वसिष्ठ तथा प्रचेता, तीन लाख के साथ पुलस्त्य, करोड़ों के साथ अगस्त्य, लाख-लाख के साथ पुलह तथा क्रतु, तीन करोड़ के साथ अत्रि, पाँच करोड़ शिष्यों के साथ भृगु, तीन करोड़ के साथ मरीचि, हजारों के साथ शतानन्द, साढ़े तीन करोड़ के साथ विभाण्डक ऋष्यशृङ्ग, करोड़ शिष्यों के साथ पाणिनि तथा लाखों के साथ कात्यायन आये ॥३१-३६॥ हजारों के साथ याज्ञवल्क्य, तीन करोड़ शिष्यों के साथ व्यास, लाखों शिष्यों के साथ कुलपुरोहित गर्ग, हजार-हजार के साथ गालव तथा सोभरि, तीन-तीन करोड़ के साथ लोमश तथा मार्कण्डेय, करोड़ों के साथ वामदेव, तीन करोड़ के साथ जैगीषव्य, फिर तीन करोड़ उत्तम शिष्यों के साथ सांदीपनि तथा देवल, करोड़ों शिष्यों के साथ वोढु, लाखों के साथ पञ्चशिख, मैं नारायण और तीन करोड़ शिष्यों के साथ मेरा

वोढुः शिष्यैः कोटिभिश्च लक्षैः पञ्चशिखस्तथा। अहं नारायणश्चैव नरो मम सहोदरः ॥४०॥
शिष्यैस्त्रिकोटिभिः सार्धं विश्वामित्रश्च कोटिभिः। त्रिकोटिभिर्जरत्कारुरास्तीकश्च
त्रिकोटिभिः ॥४१॥
त्रिकोटिभिः पर्शुरामो वत्सो लक्षैश्च शिष्यकैः। दक्षस्त्रिलक्षैः शिष्यैश्च कपिलः पञ्चकोटिभिः ॥४२॥
संवर्तश्च त्रिलक्षैश्चाप्युतथ्यश्च तथैव च। सहस्रैर्जैमिनिश्चैव पैलो लक्षैस्तथैव च ॥४३॥
सुवर्णश्च सहस्रैश्च वैशम्पायन एव च। शिष्यैर्लक्षैः समेतश्च व्यासशिष्यः पुरोगमः ॥४४॥
लक्षैः शिष्यैस्तथा शृङ्गी चोपमन्युस्तथैव च। सहस्रैश्च गौरमुखः कचो लक्षैर्गुरोः सुतः ॥४५॥
अश्वत्थामा तथा द्रोणः कृपाचार्यः सशिष्यकः। भीष्मः कर्णश्च शकुनी राजा दुर्योधनस्तथा ॥
नृपस्य भ्रातरः सर्वे चान्ये भूपा जगद्गुरुम् ॥४६॥

## श्रीभगवानुवाच

शुभकर्मणि निष्पन्ने यास्यन्ति ये समागताः। शिवब्रह्मादयो देवा मुनयश्च यथाऽपरे ॥४७॥
भवांश्च यादवैः सार्धं प्रविश द्वारकां पुरीम्। मत्पित्रा मातृभिः सार्धं माहेन्द्रे च क्षणे नृप ॥४८॥
अपरे यदवोऽन्ये च यास्यन्ति मथुरां पुरीम्। श्रुत्वेति विरसो राजा तमुवाच भयाकुलः ॥४९॥

## उग्रसेन उवाच

वासुदेव न यास्यामि भूमिं तां पैतृकीं पुनः। सर्वतीर्थपरां शुद्धां दैवे कर्मणि पैतृके ॥५०॥
पावके भूमिदेशे च पितृणां निर्वपेत्तु यः। तद्भूमिः[1] स्वामिपितृभिः श्राद्धकर्मणि हन्यते ॥५१॥

---

सहोदर नर, करोड़ों के साथ विश्वामित्र, तीन-तीन करोड़ के साथ जरत्कारु आस्तीक तथा पर्शुराम, लाखों शिष्यों के साथ वत्स, तीन लाख शिष्यों के साथ दक्ष, पाँच करोड़ के साथ कपिल, तीन-तीन लाख के साथ संवर्त तथा उतथ्य, हजारों के साथ जैमिनि, लाखों के साथ पैल, हजारों के साथ सुवर्ण, लाखों शिष्यों के साथ व्यास के प्रमुख शिष्य वैशम्पायन, फिर लाख-लाख के साथ शृङ्गी और उपमन्यु, हजारों के साथ गौरमुख तथा लाखों के साथ गुरुपुत्र कच आये ॥३७-४५॥ अश्वत्थामा तथा द्रोणाचार्य, शिष्य समेत कृपाचार्य, भीष्म, कर्ण, शकुनि, राजा दुर्योधन तथा उसके सभी भाई जगद्गुरु के पास पधारे ॥४६॥

**श्रीभगवान् बोले**—जो लोग यहाँ आये हैं, वे शुभ कार्य सम्पन्न हो जाने पर जायँगे। हे राजन्! आप माहेन्द्र नामक मुहूर्त में यादवों तथा मेरे पिता एवं माताओं के साथ द्वारका में प्रवेश कीजिये। और दूसरे जो यदुवंशी हैं, वे मथुरापुरी चले जायँगे। यह सुनकर राजा (उग्रसेन) विरस एवं भयाक्रान्त होकर उनसे कहने लगे ॥४७-४९॥

**उग्रसेन ने कहा**— हे वासुदेव! नहीं, मैं अपनी पैतृक भूमि को (ही) जाऊँगा, क्योंकि देवकर्म और पितृकर्म के लिए पैतृक भूमि सभी तीर्थों से बढ़कर पवित्र है, अग्नि में और भूमि पर जो पितरों को पिण्ड देता है, उस

---

१ ख. मं।

पितृणां निष्फलं श्राद्धं देवानामपि पूजनम् । किंचित्फलप्रदं चैव संपूर्णं पैतृके स्थले ॥५२॥
पुत्रपौत्रकलत्रेभ्यः प्राणेभ्यः प्रेयसी सदा । दुर्लभा पैतृकी भूमिः पितुर्मातुर्गरीयसी ॥५३॥
तत्सत्यं च पवित्रं च दैवे कर्मणि पैतृके । क्रीडा च दत्ते दानं च परदत्तमशुद्धकम् ॥५४॥
म्रियते पैतृकीभूम्यां तीर्थतुल्यफलं लभेत् । गङ्गाजलसमं पूतं पितृखातोदकं हरे ॥५५॥
तत्र स्नात्वा जले पूते गङ्गास्नानफलं लभेत् । पितृणां तर्पणं तत्र पवित्रं देवपूजनम् ॥५६॥
पैतृकी जन्मभूमिश्चेद्द्विगुणं तत्फलं लभेत् । पैतृकीभूमितुल्या च दानभूमिः सतामपि ॥५७॥

## वासुदेव उवाच

भोगास्ते वचनं कि[1] वा निषेकः केन वार्यते । पैतृकी तीर्थतुल्या सा किं तीर्थं द्वारकापरम् ॥५८॥
सर्वतीर्थपरा श्रेष्ठा द्वारका बहुपुण्यदा । यस्याः प्रवेशमात्रेण नराणां जन्मखण्डनम् ॥५९॥
दानं च द्वारकायां च श्राद्धं च देवपूजनम् । चतुर्गुणं च तीर्थानां गङ्गादीनां च भूमिप ॥६०॥
गच्छ ब्रह्मादिभिः सार्धं मुनिभिर्यादवैः सह । राजेन्द्रभवनं तत्र गृहाणा[2] सादरं पुनः ॥६१॥

---

भूमि को (भू) स्वामी तथा पितरगण श्राद्धकर्म में विनष्ट कर देते हैं। उसका किया हुआ पितरों का श्राद्ध तथा देव-पूजन भी निष्फल होता है अथवा किञ्चित् फलदायक होता है। किन्तु पैतृक स्थान में (उसी का किया हुआ पितृ-श्राद्ध तथा देवपूजन) सम्पूर्ण फल देता है। पैतृक भूमि (मनुष्य को) पुत्र, पौत्र, पत्नी तथा प्राणों से भी बढ़कर प्रिय होती है। दुर्लभ पैतृक भूमि माता-पिता से भी श्रेष्ठ होती है। अतः देवकर्म और पितृकर्म के लिए वह सत्य एवं पवित्र है। वहाँ क्रीड़ा में भी जो दिया जाता है वह दान कहलाता है। वहाँ दूसरे का दिया हुआ दान अपवित्र है। पैतृक भूमि में मरने पर तीर्थ तुल्य फल का लाभ होता है। हे हरे ! पितृभूमि के तालाब का जल भी गङ्गाजल के समान पवित्र होता है। उसके पवित्र जल में स्नान करके मनुष्य गंगास्नान का फल लाभ करता है। वहाँ पितरों का तर्पण तथा देव-पूजन पवित्र माना गया है। यदि जन्मभूमि पैतृक (पितृपरम्परा से प्राप्त) हो तो वहाँ तर्पण आदि का फल दूना मिलता है ॥५०-५७॥

**श्रीकृष्ण बोले**—आपका वचन सत्य है। जन्म को कौन रोक सकता है ? (अर्थात् जहाँ जिसका जन्म होना लिखा है वहीं होता है) और पैतृक भूमि तीर्थ के समान होती है। किन्तु क्या वह तीर्थ द्वारकापुरी से बढ़कर है ? द्वारका सब तीर्थों से श्रेष्ठ एवं बहुत पुण्य देनेवाली है। जिस (द्वारका) में प्रवेश मात्र करने से मनुष्यों का जन्म खंडित हो जाता है (अर्थात् मोक्ष मिल जाता है)। हे राजन् ! द्वारकापुरी में दान, श्राद्ध तथा देव-पूजन का फल गंगा आदि तीर्थों की अपेक्षा चौगुना मिलता है ॥५८-६०॥ ब्रह्मा आदि देवों, मुनियों तथा यादवों के साथ आप आदरपूर्वक राजेन्द्र-भवन में जाइये। यह द्वारकापुरी इन्द्र की अमरावती का नित्य

---

१ क. श्रुत्वा। २ क. ेहाण।

करोति शश्वन्न्यक्कारं महेन्द्रस्यामरावतीम् । निवस त्वं सुधर्मायां माहेन्द्रे च क्षणे नृप ।।६२।।
जम्बूद्वीपस्थिता भूपा राजेन्द्रमण्डलेश्वराः । करं दास्यन्ति तुभ्यं च महेन्द्राय सुरा यथा ।।६३।।
भूयाज्जितः कुबेरश्च धनेन धनसंपदा । तेजसा भास्करश्चापि महेन्द्रः संपदः तथा ।।६४।।
देवा जिता रणेनैव पुण्येन मुनयो जिताः । तपस्विनश्च तपसा व्रतिनश्च व्रतेन च ।।६५।।
उग्रसेनसमो राजा न भूतो न भविष्यति । सभायां यस्य भगवान्बलदेवो महाबलः ।।६६।।
विश्वं च यस्य शिरसां सहस्राणां नरेश्वर । एकस्मिञ्शिरसि न्यस्तं शूर्पे च सर्षपो यथा ।।६७।।
न ह्यनन्तसमो देवो बलेन बलवत्तरः । यद्गुणानां च नास्त्यन्तस्तेनानन्तं जगुर्बुधाः ।।६८।।
वसवोऽष्टौ महाभागा रुद्राश्च शंकरं विना । बलिनो द्वादशादित्या महेन्द्रश्च सुरैः समः ।।६९।।
न समर्था ध्रुवं जेतुमुग्रसेनं नृपेश्वरम् । कृष्णस्य वचनं श्रुत्वा प्रसन्नवदनो नृपः ।।७०।।
प्रययौ यादवैः सार्धं महेन्द्रभवनात्परम् । स्वालयं द्वारकामध्ये ज्वलन्तं मणितेजसा ।।७१।।
सहस्रैर्द्वारपालैश्च शूलिभिर्दण्डहस्तकैः । नियुक्तं रक्षितं द्वारं ददर्श मानवेश्वरः ।।७२।।
अभ्यन्तरे च शिबिरं द्वारेभ्यः षड्भ्य एव च । मन्दिराणां च शतकं रत्नानां परिभूषणम् ।।७३।।
कोटिं मत्तगजेन्द्राणां ददर्श गजमन्दिरे । चतुर्युगं गजौघं च गजानां षड्गुणं तथा ।।७४।।
महाबलांश्च तुरगान्सूर्याश्वं च हसन्ति ये । गजेन्द्रराजं सर्वेषां वाहनानामपीश्वरम् ।।७५।।

---

तिरस्कार करती है। हे राजन् ! आप महेन्द्र नामक मुहूर्त में सुधर्मा नामक देवसभा में प्रवेश करें। जम्बूद्वीप के रहनेवाले बड़े-बड़े राजा तथा सामन्तगण आपको उसी प्रकार कर देंगे जैसे देवगण इन्द्र को देते हैं। आप धन-सम्पत्ति में कुबेर को, तेज में सूर्य को, सम्पदा में इन्द्र को, युद्ध में देवताओं को, पुण्य में मुनियों को, तपस्या में तपस्वियों को तथा व्रत में व्रतियों को जीत लें। उग्रसेन के समान राजा न हुआ है और न होगा, जिनकी सभा में महाबली बलराम विराजमान हैं, जिनके हजारों सिरों के मध्य एक ही सिर पर (सम्पूर्ण) विश्व उसी प्रकार अवस्थित है जैसे सूप में सरसों ।।६१-६७।। बलवानों में श्रेष्ठ बलदेव के समान कोई बली नहीं है। उनके गुणों का अन्त नहीं है, इसीलिए विद्वानों ने उनको अनन्त नाम से पुकारा है ।।६८।। आठ वसु, बिना शंकर के महाभाग रुद्रगण, बलवान् बारह आदित्यगण तथा देवताओं के साथ इन्द्र भी राजा उग्रसेन को जीतने में समर्थ नहीं हो सकते। कृष्ण की बात सुनकर प्रसन्नमुख राजा ने यादवों के साथ प्रस्थान किया। उसने द्वारका के मध्य में मणियों के तेज से जगमगाते हुए अपने भवन को देखा, जिसके द्वार पर हाथों में दण्ड एवं शूल लिये हुए हजारों द्वारपाल नियुक्त थे ।।६९-७२।। छह द्वारों के भीतर शिविर था। वहाँ सैकड़ों प्रकार के रत्नों से भूषित प्रासाद थे। गजशाला में राजा ने एक करोड़ मतवाले गजराज देखे। सामान्य हाथियों का समूह चार करोड़ की संख्या में था। हाथियों के छह गुने महाबलवान् घोड़ों को देखा, जो (गति) में सूर्य के घोड़ों का उपहास कर रहे थे। हे नारद ! वहाँ के गजराजों का समूह, इन्द्र के ऐरावत को, जो

हसत्यैरावतं शश्वन्महेन्द्रस्य च नारद। अत्युच्चैरुच्चैःश्रवसां ददर्श कोटिमीप्सितम् ॥७६॥
खराणां दशकोटिं च पादातं षड्गुणं तथा। निर्माणं रत्नसाराणां रथानां पञ्चलक्षकम् ॥७७॥
पञ्चलक्षं सारथीनां तत्राश्वं षड्गुणं तथा। अश्ववाटं तत्समं च सुधर्मां च सभामपि ॥७८॥
ददर्शाभ्यन्तरे रम्ये देवौघमुनिसंयुताम्। वह्निशुद्धांशुकै रम्यैर्भूषितां रक्तकम्बलैः ॥७९॥
रत्नसिंहासनै रम्यैर्भूषितां रक्तपिङ्गलैः। अमूल्यरत्ननिर्माणवीथीनां तेजसोज्ज्वलाम् ॥८०॥
वेष्टितां च महाभीतैः किंकरैः शतकोटिभिः। प्रविवेश सभां रम्यां श्रुत्वा शङ्खध्वनिं शुभम् ॥८१॥
वाद्यं च दुंदुभीनां च मुनीनां वेदमन्त्रकम्। दृष्ट्वा नृपं समुत्तस्थौ वेगेन सबलो हरिः ॥८२॥
ब्रह्मा महेश्वरश्चैव शेषश्च देवपुंगवाः। समुत्तस्थुः सुराः सर्वे मुनयश्च महाव्रताः ॥८३॥
राजेन्द्राश्चापि सिद्धेन्द्रा वसुदेवपुरोगमाः। रत्नसिंहासने रम्ये चोग्रसेनो महाबलः ॥८४॥
समुवास महेन्द्रस्य मुनीनामाज्ञया हरेः। देवानां च गुरूणां च गर्गस्यापि तथैव च ॥८५॥
सप्ततीर्थोदकेनैव पूर्णकुम्भेन नारद। चकार वेदमन्त्रैश्च नृपस्याप्यभिषेचनम् ॥८६॥
तस्मै वस्त्रयुगं दत्तं वह्निशुद्धं मनोहरम्। वरुणेन पुरा दत्तं कृष्णाय परमात्मने ॥८७॥
माल्यं च पारिजातानां चन्दनं रत्नभूषणम्। रत्नच्छत्रं ददौ तस्मै बलदेवो महाबलः ॥८८॥
ब्रह्मा कमण्डलुं चैव शूलं चापि महेश्वरः। पार्वती रत्नमाल्यं च हारं च मालती सती ॥८९॥

---

सभी वाहनों का प्रभु है, हंसी उड़ा रहा था। फिर राजा ने उच्चैःश्रवा की कोटि के बड़े ऊँचे-ऊँचे वांछनीय घोड़ों को देखा। वहाँ दस करोड़ गधे, उनके छह गुने पैदल, रत्नों के सारभाग से निर्मित पाँच लाख रथ, पाँच लाख सारथी, उनके छह गुने घोड़े, उतने ही घुड़सवार तथा सुधर्मा नामक सभा भी राजा ने देखी ॥७३-७८॥ जिसके भीतर रमणीक प्रदेश में देववृन्द और मुनिवृन्द विराजमान थे। वह सभा अग्नि जैसी कान्तिवाले रमणीय रेशमी वस्त्रों, रक्त कम्बलों तथा लाल एवं पिंगल वर्ण के रत्न निर्मित रमणीय सिंहासनों से शोभित थी। वह अमूल्य रत्नों की पंक्तियों के तेज से उज्ज्वल थी। सौ करोड़ अनुशासित भृत्यों से घिरी हुई थी। उस रमणीय सभा में प्रवेश करके शंख की पवित्र ध्वनि, दुंदुभियों का शब्द तथा मुनियों का वेदमंत्र सुनकर और राजा को देखकर बलराम सहित श्रीकृष्ण उठकर खड़े हो गये ॥७९-८२॥ ब्रह्मा, शिव, शेषनाग, श्रेष्ठ देव, महाव्रती मुनिगण तथा सकल देवगण उठकर खड़े हो गये। वसुदेव को आगे किये राजेन्द्रगण तथा सिद्ध-समूह भी खड़े हो गये। तब महाबलशाली उग्रसेन इन्द्र, मुनियों, श्रीकृष्ण, देवों, गुरुजनों तथा गर्ग की आज्ञा से रत्ननिर्मित रमणीय सिंहासन पर बैठ गये। नारद ! सातों तीर्थों के जल से भरे घट से वेद-मंत्रों के द्वारा राजा का अभिषेक किया गया। फिर राजा को अग्निपवित्र तथा मनोहर दो वस्त्र दिये जो वरुण ने पहले परमात्मा कृष्ण को दिये थे ॥८३-८७॥ महाबली बलदेव ने उन्हें रत्न का छत्र दिया। ब्रह्मा ने कमण्डलु, शंकर ने त्रिशूल, पार्वती ने रत्न की माला, सती

अन्ये देवाश्च मुनयो राजेन्द्राः सिद्धपुंगवाः । यौतकं च ददौ तस्मै क्रमेण च पृथक्पृथक् ॥९०॥
वसुदेवो ददौ तस्मै शुभदं श्वेतचामरम् । पवनेन पुरा दत्तं कृष्णाय परमात्मने ॥९१॥
नन्दो ददौ च सुरभिं कामधेनुं च पूजिताम् । यशोदा देवकी तस्मै रत्नश्रेष्ठं ददौ मुदा ॥९२॥
सप्तभिः किंकरैश्चापि सेवितः श्वेतचामरैः । दधार च्छत्रमक्रूरो भक्त्या चैवाऽऽज्ञया हरेः ॥९३॥
रत्नसिंहासने रम्ये ददर्श रत्नदर्पणम् । अतीव पुण्यावाप्यं च हरिणा च पुरस्कृतः ॥९४॥
चक्रुः स्तुतिं च भट्टाश्च भिक्षुका ब्राह्मणास्तथा । ददुः शुभाशिषं तस्मै देवाश्च मुनयस्तथा ॥९५॥
ब्राह्मणेभ्यो ददौ राजा रत्नकोटिं च भक्तितः । भट्टेभ्यो रत्नशतकं भिक्षुकेभ्यस्तथैव च ॥९६॥
अभिषिच्य नृपेन्द्रं च देवांश्च मुनिपुंगवान् । संपूज्य ब्राह्मणांश्चापि भट्टान्भिक्षुं द्विजं गुरुम् ॥९७॥
स्वालयं च ययुः सर्वे यादवाश्च मुदाऽन्विताः । ये ये हरेः पार्षदाश्च ते सर्वे स्वालयं ययुः ॥९८॥
प्रभाते चाऽऽययुः सर्वे सुधर्मां च सभां हरेः । नमस्कृत्य नृपेन्द्रं च चोषुः सर्वे च संसदि ॥९९॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० द्वारकाप्रवेश
उग्रसेनाभिषेको नाम चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥१०४॥

•

---

मालती ने हार तथा अन्य देवताओं, मुनियों, श्रेष्ठ राजाओं तथा सिद्धों ने क्रमशः अलग-अलग उन्हें उपहार दिये ॥८८-९०॥ वसुदेव ने उन्हें शुभदायक श्वेत चामर दिया जो परमात्मा कृष्ण को वसुदेव ने दिया था ॥९१॥ नन्द ने पूजित कामधेनु गौ दी । यशोदा तथा देवकी ने हर्ष के साथ श्रेष्ठ रत्न दिये ॥९२॥ सात भृत्य श्वेत चामर से सेवा करने लगे । अक्रूर ने श्रीकृष्ण की आज्ञा से भक्तिपूर्वक छत्र धारण किया । रमणीय रत्नसिंहासन पर राजा ने रत्नों का दर्पण देखा जो अत्यन्त पुण्यों से ही प्राप्त हो सकता था । फिर श्रीकृष्ण ने पुरस्कार दिया । अनन्तर भाट स्तुति करने लगे और ब्राह्मण, देवता तथा मुनिगण उन्हें आशीर्वाद देने लगे । राजा ने ब्राह्मणों को भक्तिपूर्वक करोड़ों रत्न दिये । फिर भाटों तथा भिक्षुकों को सैकड़ों रत्न दिये । समस्त यादववृन्द महाराज का अभिषेक करके तथा देवों, मुनिवरों, ब्राह्मणों, भाटों, भिक्षु, द्विज एवं गुरु की पूजा करके प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने भवन को गये । श्रीकृष्ण के जो-जो पार्षद थे, वे सब अपने घर को चले गये और प्रातःकाल वे सब श्रीकृष्ण की सुधर्मा नामक सभा में (पुनः) आ गये । सभा में वे सब महाराज को नमस्कार करके बैठ गये ॥९३-९९॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड में, द्वारका में उग्रसेन का राज्याभिषेक
नामक एक सौ चौथा अध्याय समाप्त ॥१०४॥

•

# अथ पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

## नारायण उवाच

अथ वैदर्भराजेन्द्रो महाबलपराक्रम। विदर्भदेशे पुण्याश्च सत्यशीलश्च भीष्मकः ॥१॥
राजा नारायणांशश्च दाता च सर्वसंपदाम्। धर्मिष्ठश्च गरीयांश्च वरिष्ठश्चापि पूजितः ॥२॥
तस्य कन्या महालक्ष्मी रुक्मिणी योषितां वरा। अतीव सुन्दरी रम्या रमा रामासु पूजिता ॥३॥
नवयौवनसंपन्ना रत्नाभरणभूषिता। तप्तकाञ्चनवर्णाभा तेजसोज्ज्वलिता सती ॥४॥
शुद्धसत्त्वस्वरूपा सा सत्यशीला पतिव्रता। शान्ता दान्ता नितान्ता चाप्यनन्तगुणशालिनी ॥५॥
इन्द्राणी वरुणानी च चन्द्रनारी च रोहिणी। कुबेरपत्नी सूर्यस्त्री स्वाहा शान्ता कलावती ॥६॥
अन्यासु रमणीयासु श्रेष्ठा च सुमनोहरा। रुक्मिण्या भीष्मकन्यायाः कलां नार्हति षोडशीम् ॥७॥
तां दृष्ट्वा राजराजेन्द्रो बालक्रीडारतां पराम्। बालां सुशोभां कुर्वन्तीं यथाऽभ्रेषु विधोः कलाम् ॥८॥
शरत्पूर्णेन्दुशोभाढ्यां शरत्कमललोचनाम्। विवाहयोग्यां युवतीं लज्जानम्राननां शुभाम् ॥९॥
सहसा चिन्तितो धर्मो धर्मशीलश्च सुव्रतः। सुतां पप्रच्छ पुत्रांश्च ब्राह्मणांश्च पुरोहितान् ॥१०॥

---

# अध्याय १०५

## रुक्मिणी-विवाह का आरम्भ

**नारायण बोले**—विदर्भ देश का महाराज भीष्मक महान् वल एवं पराक्रम से युक्त, पुण्यात्मा एवं सत्यशील था। विष्णु के अंश से उत्पन्न वह राजा समस्त सम्पत्तियों का दाता, धर्मिष्ठ, श्रेष्ठ, वरिष्ठ तथा सम्मानित था ॥१-२॥ उसकी पुत्री महालक्ष्मीस्वरूपा रुक्मिणी थी। वह स्त्रियों में श्रेष्ठ, अत्यन्त सुन्दरी, रमणीय, रमण करनेवाली, रमणियों में पूजित, नवयौवन से सम्पन्न, रत्नों के आभूषणों से विभूषित, तपे हुए सोने के समान वर्णवाली, तेज से उज्ज्वल, साध्वी, शुद्ध सत्त्वस्वरूप, सत्यशील, पतिव्रता, शान्त (विषय से मन को रोकनेवाली) अत्यन्त दान्त (विषय से बाह्य इन्द्रियों को रोकनेवाली) और अनन्त गुणों से युक्त थी ॥३-५॥ इन्द्राणी, वरुणानी, चन्द्रमा की पत्नी रोहिणी कुवेर की पत्नी, सूर्य की स्त्री, स्वाहा, शान्ता, कलावती तथा अन्य रमणियों में श्रेष्ठ एवं अत्यन्त सुन्दरी स्त्रियाँ भीष्मकन्या रुक्मिणी की सोलहवीं कला के वरावर भी नहीं हैं ॥६-७॥ महाराज भीष्म ने बादलों में चन्द्रकला की भाँति शोभा उत्पन्न करती हुई वाला (रुक्मिणी) को वालोचित क्रीड़ा में निरत देखा। वह शरद् ऋतु के पूर्ण चन्द्रमा के समान शोभा से सम्पन्न थी। उसके नेत्र शरत्कालीन कमल के समान थे। वह विवाह के योग्य युवती हो गयी थी। वह लज्जा से विनम्रमुखी एवं पवित्र थी। (उसे देखकर) धर्मशील एवं उत्तमव्रती राजा सहसा चिन्तित हो गया और पुत्री, पुत्रों, ब्राह्मणों एवं पुरोहितों से पूछने लगा ॥८-१०॥

### भीष्मक उवाच

कं वृणोमि सुतार्थं च वरार्हं प्रवरं वरम्। मुनिपुत्रं देवपुत्रं राजेन्द्रसुतमीप्सितम् ॥११॥
विवाहयोग्या कन्या मे वर्धमाना मनोहरा। शीघ्रं पश्य वरं योग्यं नवयौवनसंस्थितम् ॥१२॥
धर्मशीलं सत्यसंधं नारायणपरायणम्। वेदवेदाङ्गविज्ञं च पण्डितं सुन्दरं शुभम् ॥१३॥
शान्तं दान्तं क्षमाशीलं गुणिनं चिरजीविनम्। महाकुलप्रसूतं च सर्वत्रैव प्रतिष्ठितम् ॥१४॥
करोषि राजपुत्रं चेद्रणशास्त्रविशारदम्। महारथं प्रतापार्हं रणमूर्ध्नि च सुस्थिरम् ॥१५॥
करोषि देवपुत्रं चेद्दृशं गुणयुतं तथा। करोषि मुनिपुत्रं चेच्चतुर्वेदविशारदम् ॥१६॥
वावदूकं विचारज्ञं सिद्धान्तेषु नितान्तकम्। नृपेन्द्रवचनं श्रुत्वा तमुवाच मुनेः सुतः ॥१७॥
गौतमस्य शतानन्दो वेदवेदाङ्गपारगः। आप्तः प्रवक्ता विज्ञश्च धर्मी कुलपुरोहितः ॥
पृथिव्यां सर्वतत्त्वज्ञो निष्णातः सर्वकर्मसु ॥१८॥

### शतानन्द उवाच

राजेन्द्र त्वं च धर्मज्ञो धर्मशास्त्रविशारदः। पूर्वाख्यानं च वेदोक्तं कथयामि निशामय ॥१९॥
भुवो भारावतरणे स्वयं नारायणो भुवि। वसुदेवसुतः श्रीमान्परिपूर्णतमः प्रभुः ॥२०॥

---

**भीष्मक ने कहा**—पुत्री के लिए वर योग्य किस श्रेष्ठ वर का वरण करूँ? मुनिपुत्र का या देवपुत्र का या अभीष्ट राजाधिराज के पुत्र का (किसका वरण करूँ)? ॥११॥ मेरी बढ़ती हुई मनोहर कन्या विवाह के योग्य हो गयी है। (इसके लिए) योग्य वर को शीघ्र ढूंढ़िये, जो नवयुवक, धर्मशील, सत्यसन्ध विष्णुभक्त, वेदवेदाङ्ग का ज्ञाता, पण्डित, सुन्दर, पवित्र, शान्त, दान्त, क्षमाशील, गुणी, चिरजीवी, महान् कुल में उत्पन्न तथा सभी जगह प्रतिष्ठित हो ॥१२-१४॥ यदि (किसी) राजपुत्र को करते हैं तो वह युद्धशास्त्र में विशारद महारथी, प्रतापी तथा युद्ध के आगे सुस्थिर रहनेवाला हो ॥१५॥ यदि (किसी) देवपुत्र को करते हैं तो वह गुणवान् हो। यदि मुनिपुत्र को करते हैं तो वह चारों वेदों में विशारद, उत्तम वक्ता, विचारशील तथा सिद्धान्तों का नितान्त रूप से पालन करनेवाला हो। महाराज की बात सुनकर गौतम मुनि के पुत्र शतानन्द जो वेद-वेदांग मे पारंगत, कुशलता के कारण भी अन्यथा न बोलनेवाले, श्रेष्ठ वक्ता, विज्ञ, धर्मी, कुलपुरोहित, पृथ्वी पर सभी तत्त्वों के ज्ञाता एवं समस्त कर्मों में निष्णात थे, राजा से बोले ॥१६-१८॥

**शतानन्द ने कहा**—हे राजेन्द्र! आप धर्मों के ज्ञाता एवं धर्मशास्त्रों में निष्णात हैं। मैं आपको वेद का प्राचीन आख्यान कह रहा हूँ, सुनिये ॥१९॥ पृथ्वी का भार उतारने के लिए स्वयं नारायण पृथ्वी

विधातुश्च विधाता च ब्रह्मेशशेषवन्दितः । ज्योतिःस्वरूपः परमो भक्तानुग्रहविग्रहः ॥२१॥
परमात्मा च सर्वेषां प्राणिनां प्रकृतेः परः । निर्लिप्तश्च निरीहश्च साक्षी च सर्वकर्मणाम् ॥२२॥
राजेन्द्र तस्मै कन्यां च परिपूर्णतमाय च । दत्त्वा यास्यसि गोलोकं पितॄणां शतकैः सह ॥२३॥
लभ सारूप्यमुक्तिं च कन्यां दत्त्वा परत्र च । इहैव सर्वपूज्यश्च भव विश्वगुरोर्गुरुः ॥२४॥
सर्वस्वं दक्षिणां दत्त्वा महालक्ष्मीं च रुक्मिणीम् । समर्पणं कुरु विभो कुरुष्व जन्मखण्डनम् ॥२५॥
विधाता लिखितो राजन्संबन्धः सर्वसंमतः । द्वारकानगरे कृष्णं शीघ्रं प्रस्थापय द्विजम् ॥२६॥
कृत्वा शुभक्षणं तूर्णं सर्वेषामपि संमतम् । आनीय परमात्मानं भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥२७॥
ध्यानानुरोधहेतुं च नित्यदेहमनुत्तमम् । दृष्टिमात्रात्कुरु नृप स्वजन्मकर्मखण्डनम् ॥२८॥
यं न जानन्ति चत्वारो वेदाः संतश्च देवताः । सिद्धेन्द्राश्च मुनीन्द्राश्च देवा ब्रह्मादयस्तथा ॥२९॥
ध्यायन्ते ध्यानपूताश्च योगिनो न विदन्ति यम् । सरस्वती जडीभूता वेदाः शास्त्राणि यानि च ॥३०॥
सहस्रवक्त्रः शेषश्च पञ्चवक्त्रः सदाशिवः । चतुर्मुखो जगद्धाता कुमारः कार्तिकस्तथा ॥३१॥
ऋषयो मुनयश्चैव भक्ताः परमवैष्णवाः । अक्षमाः स्तवने यस्य ध्यानासाध्यश्च योगिनाम् ॥३२॥
बालकोऽहं महाराज तद्गुणं कथयामि किम् । शतानन्दवचः श्रुत्वा प्रफुल्लवदनो नृपः ॥३३॥

---

पर अवतीर्ण हुए हैं। वे प्रभु श्रीमान् वसुदेव के पुत्र, परिपूर्णतम, विधाता के भी विधाता एवं ब्रह्मा, शिव और अनन्तशेष द्वारा वन्दित, ज्योतिरूप, श्रेष्ठ, भक्तों के लिए शरीर धारण करनेवाले, सभी प्राणियों के परमात्मा, प्रकृति से परे, निर्लिप्त, निरीह और सभी कर्मों के साक्षी हैं ॥२०-२२॥ हे राजेन्द्र ! उन परिपूर्णतम (भगवान्) को कन्या देकर आप अपने सैकड़ों पूर्वजों के साथ गोलोक जायेंगे ॥२३॥ कन्या देकर आप मरने पर सारूप्य मोक्ष लाभ करें और इस लोक में भी सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वपूज्य बनें ॥२४॥ सर्वस्व दक्षिणा देकर महालक्ष्मी रुक्मिणी समर्पित कीजिये। हे विभो ! ऐसा करने से आपको जन्म नहीं लेना पड़ेगा (अर्थात् आप मुक्त हो जायेंगे) ॥२५॥ राजन् ! यह सर्वसम्मत सम्बन्ध ब्रह्मा का लिखा हुआ है। अतः आप द्वारकानगर में कृष्ण के पास शीघ्र ब्राह्मण को भेजिये ॥२६॥ सबकी राय से शीघ्र शुभ मुहूर्त विचारकर भक्तों पर अनुग्रहार्थ शरीर धारण करनेवाले, ध्यानलक्ष्य और सर्वोत्तम नित्यदेहधारी परमात्मा (श्रीकृष्ण) को बुलाइये। राजन् ! उनके मात्र दर्शन से अपने जन्म-कर्मों का क्षय कीजिये ॥२७-२८॥ जिस परमात्मा को चारों वेद, सन्त, देवता, सिद्धेन्द्र, मुनीन्द्र तथा ब्रह्मा आदि नहीं जानते हैं, ध्यान से पवित्र हुए योगी लोग जिसका ध्यान करते हैं किन्तु जान नहीं पाते हैं; जिसकी स्तुति करने में सरस्वती जड़ हो जाती हैं, वेद, शास्त्र, सहस्र मुखवाले शेष, पाँच मुखवाले शिव, चार मुखवाले ब्रह्मा, कुमार कार्तिकेय, ऋषि, मुनि, भक्त तथा परम वैष्णव भी असमर्थ हैं और योगी लोग ध्यान से सिद्ध नहीं कर पाते हैं, हे महाराज ! मैं बालक होकर उसके गुण को क्या बताऊँ ? शतानन्द की बात सुनकर राजा का मुख प्रसन्नता से खिल उठा। उसने वेग से उठकर ब्राह्मण

आलिङ्गनं ददौ तस्मै समुत्थाय जवेन च। नानारत्नं सुवर्णं च वस्त्रं च रत्नभूषणम् ॥३४॥
ददौ तस्मै प्रदानं च प्रसादसुमुखो नृपः। गजेन्द्रं तुरगं श्रेष्ठं रथं च मणिनिर्मितम् ॥३५॥
रत्नसिंहासनं रम्यं धनं च विपुलं तथा। भूमिं च सर्वसस्याढ्यां शश्वद्वृष्टिकरीं शुभाम् ॥३६॥
अकृष्टसाध्यां पूज्यां च ग्रामं सर्वप्रशंसितम्। एतस्मिन्नन्तरे रुक्मिश्चुकोप नृपनन्दनः ॥३७॥
कम्पितोऽधर्मयुक्तश्च रक्तास्यो रक्तलोचनः। उवाच पितरं विप्रं सभायामस्थिरस्तदा ॥३८॥
उत्थाय तिष्ठन्पुरतः सर्वेषां च सभासदाम् ॥३९॥

रुक्मिरुवाच

शृणु राजेन्द्र वचनं हितं तथ्यं प्रशंसितम्। त्यज वाक्यं भिक्षुकाणां लोभिनां क्रोधिनामहो ॥४०॥
नर्तकानां च वैश्यानां भट्टानामर्थिनामपि। कायस्थानां च भिक्षूणामसत्यं वचनं सदा ॥४१॥
घटकानां नाटकानां स्त्रीलुब्धानां च कामिनाम्। दरिद्राणां च मूर्खाणां स्तुतिपूर्वं वचः सदा ॥४२॥
निहत्य कालयवनं राजेन्द्रं दूरतो[१] भिया। उपायेन महाबाहो लब्धं कृष्णेन तद्धनम् ॥४३॥
द्वारकायां धनी कृष्णो यवनस्य धनेन च। जरासंधभयेनैव समुद्राभ्यन्तरे गृही ॥४४॥
जरासंधशतं चैव क्षणेनैव च लीलया। क्षमोऽहं हन्तुमेकाकी राज्ञश्चान्यस्य का कथा ॥४५॥

---

का आलिंगन किया और प्रसन्नमुख राजा ने उसे गजेन्द्र, अश्व, मणि-निर्मित उत्तम रथ, रमणीय सिंहासन, प्रचुर धन, सभी प्रकार के धान्य उपजानेवाली, निरन्तर वर्षा से युक्त, बिना जोते भी अन्न देनेवाली, पवित्र एवं पूज्य भूमि और सर्व-प्रशंसित ग्राम दिये। इस बीच राजा का पुत्र रुक्मी कुपित हो गया। वह अधर्मयुक्त होने से काँपने लगा। उसके मुख और नेत्र लाल हो गये। उस समय चंचल होकर वह सभा में सभी सदस्यों के सामने खड़ा हो गया और पिता एवं ब्राह्मण से बोला ॥२९-३९॥

**रुक्मी ने कहा**—राजेन्द्र! हितकारी, यथार्थ एवं प्रशंसित वचन सुनिये। भिक्षुकों, लोभियों और क्रोधियों का वचन त्याग दीजिये ॥४०॥ (क्योंकि) नर्तकों, वैश्यों, भाटों, याचकों, कायस्थों और भिक्षुकों की बात सदा असत्य होती है ॥४१॥ घटकों, अभिनेताओं, स्त्री-लम्पटों, कामुकों, दरिद्रों और मूर्खों की बात सदा चापलूसी की होती है ॥४२॥ हे पराक्रमी! कृष्ण ने डर के मारे दूर से ही युक्ति के द्वारा कालयवन को मारकर उसका धन ले लिया ॥४३॥ कृष्ण यवन के धन से द्वारका में धनी कहलाता है। जरासन्ध के भय से ही वह समुद्र के भीतर घर बनाकर रहता है ॥४४॥ मैं अकेला ही क्षणभर में सैकड़ों जरासन्धों को लीलापूर्वक मारने में समर्थ हूँ, दूसरे राजा की बात ही क्या? ॥४५॥ मैं दुर्वासा का शिष्य हूँ और युद्धशास्त्र में

---

१ क. पुरं।

दुर्वाससश्च शिष्योऽहं रणशास्त्रविशारदः। ध्रुवं भीष्मक तेनैव विश्वं संहर्तुमीश्वरः ॥४६॥
मत्समः पर्शुरामश्च शिशुपालश्च मत्समः। सखा च बालवाञ्छूरः स्वर्गं जेतुं स च क्षमः ॥४७॥
महेन्द्रं सगणं जेतुमहमीशः क्षणेन च। जित्वा युद्धे जरासंधं दुर्बलं योगिनं नृप ॥४८॥
अहंकारयुतः कृष्णो वीरं स्वं मन्यते धिया। यद्यायास्यति मद्ग्रामं विवाहं कर्तुमीप्सितम् ॥४९॥
ध्रुवं प्रस्थापयिष्यामि क्षणेन यममन्दिरम्। अहो नन्दस्य वैश्यस्य तस्मै गोरक्षकाय च ॥५०॥
साक्षाज्जाराय गोपीनां गोपालोच्छिष्टभोजिने। करोषि कन्यास्वीकारं देवयोग्यां च रुक्मिणीम् ॥५१॥
दातुमिच्छसि वाक्येन भिक्षुकस्य द्विजस्य च। राजेन्द्र बुद्धिहीनोऽसि वचनाद्दव्(दुर्ब)लस्य च ॥५२॥
मा राजपुत्रो मा शूरो मा कुलीनश्च मा शुचिः। मा दाता म धनाढ्यश्च मा योग्यो मा जितेन्द्रियः ॥५३॥
कन्यां देहि सुपुत्राय शिशुपालाय भूमिप। बलेन रुद्रतुष्टाय राजेन्द्रतनयाय च ॥५४॥
निमन्त्रणं कुरु नृप नानादेशभवान्नृपान्। बान्धवांश्च मुनीन्द्रांश्च पत्रद्वारा त्वरान्वितः ॥५५॥
अङ्गं कलिङ्गं मगधं सौराष्ट्रं वल्कलं वरम्। राटं[1] वरेन्द्रं वङ्गं च गुर्जरांटिं च पेठरम् ॥५६॥
महाराष्ट्रं विराटं च मुद्गलं च मुरङ्गकम्। भल्लकं गल्लकं खर्वं दुर्गं प्रस्थापय द्विजम् ॥५७॥

---

विशारद हूँ। भीष्मक! इसी से मैं संसार का संहार करने में निश्चित समर्थ हूँ ॥४६॥ मेरे समान परशुराम हैं और मेरे समान मेरा मित्र शिशुपाल भी बलवान् तथा वीर है। वह स्वर्ग को जीतने में समर्थ है ॥४७॥ मैं क्षणभर में गण समेत इन्द्र को जीतने में समर्थ हूँ। राजन्! युद्ध में दुर्बल एवं योगी जरासंघ को जीतकर कृष्ण अभिमानी हो गया है और बुद्धि से अपने को वीर मानता है। यदि वह अभिलषित विवाह करने के लिए मेरे गाँव में आयेगा तो निश्चित ही मैं उसे क्षणभर में यमालय भेज दूँगा। ओह! भिक्षुक ब्राह्मण की बात पर तुम वैश्य नन्द के उस गौ चरवाहे, गोपियों के साक्षात् जार (उपपति) और गोपालों की जूठन खानेवाले को देव-योग्य रुक्मिणी देना चाहते हो। राजेन्द्र! तुम बुद्धहीन हो, जो दुर्बल की बात पर ऐसा करना चाहते हो। वह (कृष्ण) न तो राजपुत्र है, न वीर है, न कुलीन है, न पवित्र है, न दाता है, न धनाढ्य है और न जितेन्द्रिय है ॥४८-५३॥ राजन्! तुम सपूत शिशुपाल को कन्या दो, जिसने बल के द्वारा शंकर को सन्तुष्ट किया था और जो महाराज का पुत्र है ॥५४॥ तुम शीघ्रतापूर्वक देश देशान्तरों के राजाओं, बन्धुओं एवं मुनीन्द्रों को पत्र द्वारा निमन्त्रित करो ॥५५॥ अंगदेश, कलिंगदेश, मगधदेश, सौराष्ट्रदेश, श्रेष्ठ वल्कलदेश राटदेश, अत्यन्त श्रेष्ठ वंगदेश, गुर्जरदेश, पेठरदेश, महाराष्ट्रदेश, विराटदेश, मुद्गलदेश, मुरंगकदेश, भल्लकदेश, गल्लकदेश, खर्वदेश और दुर्गदेश में ब्राह्मणों को

---

१ क. 'राठं।

घृतकुल्यासहस्रं च मधुकुल्यासहस्रकम् । दधिकुल्यासहस्रं च दुग्धकुल्यासहस्रकम् ॥५८॥
तैलकुल्यापञ्चशतं गुडकुल्याद्विलक्षकम् । शर्कराणां राशिशतं मिष्टान्नानां चतुर्गुणम् ॥५९॥
यवगोधूमचूर्णानां पिष्टराशिशतं शतम् । पृथुकानां राशिलक्षमन्नानां च चतुर्गुणम् ॥६०॥
गवां लक्षं छेदनं च हरिणानां द्विलक्षकम् । चतुर्लक्षं शशानां च कूर्माणां च तथा कुरु ॥६१॥
दशलक्षं छागलानां भेटानां तच्चतुर्गुणम् । पर्वणि ग्रामदेव्यै च बलिं देहि च भक्तितः ॥६२॥
एतेषां पक्वमांसं च भोजनार्थं च कारय । परिपूर्णं व्यञ्जनानां सामग्रीं कुरु भूमिप ॥६३॥
अथ श्रुत्वा च तद्वाक्यं राजेन्द्रः सपुरोहितः । चकार[1] मन्त्रणं तूर्णं निर्जने[2] मन्त्रिणा सह ॥६४॥
द्विजं प्रस्थापयामास द्वारकां योग्यमीप्सितम् । कृत्वा च शुभलग्नं च सर्वेषामभिवाञ्छितम् ॥६५॥
राजा संभृतसंभारो बभूव सत्वरं मुदा । निमन्त्रणं च सर्वत्र चकार च सुताज्ञया ॥६६॥
विप्रः सुधर्मां संप्राप्य नृपैर्देवैश्च वेष्टिताम् । प्रददौ पत्रिकां भद्रामुग्रसेनाय भूभृते ॥६७॥
प्रफुल्लवदनो राजा श्रुत्वा पत्रं सुमङ्गलम् । सुवर्णानां सहस्रं च ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥६८॥
दुंदुभिं वादयामास द्वारकायां च सर्वतः । देवान्मुनीन्नृपांश्चैव ज्ञातिवर्गांश्च बान्धवान् ॥६९॥
भट्टांश्च भिक्षुकांश्चैव भोजयामास सादरम् । श्रीकृष्णस्य सुवेषं च कारयामास भूपतिः ॥७०॥

---

भेजिये ॥५६-५७॥ एक हजार घी की नहर, एक हजार मधु की नहर, एक हजार दही की नहर, एक हजार दूध की नहर, पाँच सौ तेल की नहर, दो लाख गुड़ की नहर, चीनी की पाँच सौ राशि (बड़ा परिमाण), मिठाइयों की दो हजार राशि, यव और गेहूँ के आटे की सौ सौ राशि, चिउरे की चार लाख राशि, अन्नों की चार लाख राशि, एक लाख गौएँ, दो लाख हरिण, चार लाख खरहे, उतने ही कछुए, दस लाख बकरे, उसके चौगुने भेट (भेड़ें)—इनकी बलि पर्व के दिन ग्राम-देवी को भक्तिपूर्वक दीजिये और इनका पका हुआ मांस भोजन के लिए तैयार करवाइये। राजन्! तरकारियों की सामग्री भी भरपूर होनी चाहिए ॥५८-६३॥ अनन्तर उस (रुक्मी) की बात सुनकर पुरोहित समेत महाराज ने शीघ्र एकान्त में मंत्री से विचार-विमर्श किया ॥६४॥ योग्य एवं अभीष्ट ब्राह्मण को द्वारका भेजा और सबके पसन्द का शुभ लग्न स्थिर करके राजा भारी समारोह की शीघ्रता करने लगा। पुत्र की आज्ञा से उसने सर्वत्र निमन्त्रण भेजा। ब्राह्मण ने राजाओं-देवताओं से भरी सुधर्मा नामक सभा में प्रवेश करके राजा उग्रसेन को मंगल-पत्रिका दी। सुमंगल-पत्र की बात सुनकर राजा का मुख प्रफुल्लित हो गया। तब प्रसन्नता से उसने ब्राह्मणों को एक सहस्र स्वर्णमुद्राएँ दीं ॥६५-६८॥ द्वारका में सब ओर नगाड़ा बजवाया। देवताओं, मुनियों, राजाओं, सम्बन्धियों, बन्धुओं, भाटों तथा भिक्षुकों को आदरपूर्वक भोजन करवाया और श्रीकृष्ण का सुन्दर वेश बनवाया, जो अत्यन्त रमणीय, अतुलनीय तथा तीनों लोक में

---

१ ख. 'काराऽम' । २ ख. निर्जेन ।

अतीव रम्यमतुलं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् । यात्रां च कारयामास जगतां प्रवरं वरम् ॥७१॥
वेदमन्त्रेण रम्येण माहेन्द्रे सुमनोहरे । आदौ ब्रह्मा रथस्थश्च सावित्र्या सहितो ययौ ॥७२॥
रथस्थश्च महाहृष्टो भवान्या च भवः स्वयम् । शेषश्चापि दिनेशश्च गणेशश्चापि कार्तिकः ॥७३॥
महेन्द्रश्च तथा चन्द्रो वरुणः पवनस्तथा । कुबेरश्च यमो वह्निरीशानोऽपि ययौ मुदा ॥७४॥
देवानां च त्रिकोटयश्च मुनीनां षष्टिकोटयः । राजेन्द्राणां त्रिलक्षं च श्वेतच्छत्रं त्रिलक्षकम् ॥७५॥
उग्रसेनो बभौ राजा नक्षत्रेषु यथा शशी । ययौ प्रसन्नवदनः कुण्डिनाभिमुखो बली ॥७६॥
रत्ननिर्माणयानेन बलदेवो महाबलः । वसुदेवश्चोद्धवश्च नन्दोऽक्रूरश्च सात्यकिः ॥७७॥
गोपाला यादवेन्द्राश्च चन्द्रवंश्याश्च ते ययुः । धृतराष्ट्रसुताः सर्वे दुर्योधनपुरोगमाः ॥७८॥
युधिष्ठिरस्तथा भीमः फाल्गुनो नकुलस्तथा । सहदेवश्च यानैश्च प्रययुः पञ्च पाण्डवाः ॥७९॥
भीष्मो द्रोणश्च कर्णश्चाप्यश्वत्थामा महाबलः । कृपाचार्यश्च शकुनिः शल्यश्च प्रययौ मुदा ॥८०॥
भटानां च त्रिकोटयश्च विप्राणां शतकोटयः । संन्यासिनां सहस्रं च यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ॥८१॥
द्विसहस्रं जितक्रोधाश्चावधूतास्तथैव च । उत्पलानां सहस्रं च सहस्रं पुष्पकारिणाम्[1] ॥८२॥
नानाशिल्पकराश्चैव विचित्रं चित्रमेव च । लक्षं च वाद्यभाण्डानां नर्तकानां च लक्षकम् ॥८३॥
गन्धर्वाणां गायकानां लक्षमेव तु नारद । तत्र कल्पे भवत्येव गन्धर्वश्चोपबर्हणः ॥८४॥

---

दुर्लभ था। फिर संसार की सर्वश्रेष्ठ वरयात्रा करवायी, जो (यात्रा) सुन्दर वेद-मन्त्र से मनोहर माहेन्द्र योग में प्रारंभ हुई। पहले ब्रह्मा सावित्री के साथ रथ पर आरूढ़ होकर चले। प्रमुदित होकर शिव भी पार्वती के साथ रथारूढ़ हुए। फिर अनन्त शेष, सूर्य, गणेश, कार्तिकेय, इन्द्र, चन्द्र, वरुण, वायु, कुबेर, यम, अग्नि तथा ईशान भी हर्ष से चले ॥६९-७४॥ तीन करोड़ देवता, छह करोड़ मुनि, तीन लाख महाराज और तीन लाख श्वेत छत्र उस (वरयात्रा) में थे ॥७५॥

उनके बीच राजा उग्रसेन उसी प्रकार शोभित हुए जिस प्रकार नक्षत्रों के बीच चन्द्रमा। वे बली प्रसन्नमुख होकर कुण्डिनपुर की ओर चले ॥७६॥ रत्नों के बने वाहन से महाबली बलदेव चले। वसुदेव, उद्धव, नन्द, अक्रूर, सात्यकि, गोपगण, यादवेन्द्र, चन्द्रवंशी राजा लोग तथा दुर्योधन आदि सभी धृतराष्ट्रपुत्र चले। युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव—ये पाँचों पाण्डव वाहन से चले ॥७७-७९॥ भीष्म, द्रोण, कर्ण, महाबली अश्वत्थामा, कृपाचार्य, शकुनि एवं शल्य हर्ष से चले ॥८०॥ तीन करोड़ शूर, सौ करोड़ ब्राह्मण, एक हजार संन्यासी, योगी तथा ब्रह्मचारी चले ॥८१॥ दो हजार क्रोधजयी मुनि तथा अवधूत (साधु) चले। एक हजार कमलपुष्प ढोनेवाले और एक हजार अन्य पुष्प ढोनेवाले भी चले। विचित्र चित्र उपस्थित करनेवाले अनेक शिल्पी चले। एक लाख बाजे, एक लाख नर्तक और एक लाख गन्धर्व तथा गवैये चले।

---

१ °ष्पधारिणाम्।

पञ्चाशत्कामिनीभिश्च त्वमेव तेषु मध्यगः। विद्याधरीणां लक्षं च लक्षमप्सरसां तथा ॥८५॥
किन्नराणां त्रिलक्षं च गन्धर्वाणां त्रिलक्षकम् ॥८६॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० रुक्मिण्युद्वाहे
पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०५॥

•

# अथ षडधिकशततमोऽध्यायः

## नारायण उवाच

एतस्मिन्नन्तरे राजा ककुद्मी च महाबलः। वरार्थं कन्यकायाश्च ब्रह्मलोकात्समागतः ॥१॥
प्रददौ रेवतीं कन्यां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम्। अमूल्यरत्नभूषाढ्या त्रिषु लोकेषु दुर्लभाम् ॥२॥
बलाय बलदेवाय संप्रदानेन कौतुकात्। वयो यस्या गतं सत्ये युगानां सप्तविंशतिः ॥३॥
दत्त्वा कन्यां विधानेन मुनिदेवेन्द्रसंसदि। गजेन्द्राणां त्रिलक्षं च जामात्रे यौतुकं ददौ ॥४॥
दशलक्षं तुरङ्गाणां रथानां लक्षमेव च। रत्नालंकारयुक्तानां दासीनां चापि लक्षकम् ॥५॥
मणिलक्षं रत्नलक्षं स्वर्णकोटिं च सादरम्। वह्निशुद्धांशुकं रम्यं मुक्तामाणिक्यहीरकम् ॥६॥

---

हे नारद ! तुम उस कल्प में उपबर्हण नामक गन्धर्व हुए थे, जो पचास कामिनियों के मध्य में चल रहे थे। एक लाख विद्याधरी, एक लाख अप्सराएँ, तीन लाख किन्नर और तीन लाख गन्धर्व भी चले ॥८२-८६॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तर भाग में नारद-नारायण-संवाद में
रुक्मिणी के विवाह-प्रसंग में एक सौ पाँचवाँ अध्याय समाप्त ॥१०५॥

•

# अध्याय १०६

## रेवती और बलराम का विवाह

**नारायण बोले**—इसी बीच महाबली राजा ककुद्मी अपनी कन्या के वर के लिए ब्रह्मलोक से वहाँ आये। उन्होंने नित्य स्थिर यौवनवाली, अमूल्य रत्नाभूषणों से सम्पन्न, तीनों लोकों में दुर्लभ अपनी रेवती नामक कन्या बलवान् बलदेव को कौतूकवश दान दे दी। सत्ययुग में जन्म लिये उस कन्या की अवस्था में सत्ताईस युग बीत गये थे ॥१-३॥ मुनियों, देवताओं तथा इन्द्र की सभा में कन्या देकर जामाता को तीन लाख हाथी दहेज में प्रदान किये ॥४॥ दस लाख घोड़े, एक लाख रथ, रत्नों के आभूषणों से युक्त एक लाख दासियाँ, एक लाख मणि, एक लाख रत्न, आदर के साथ एक करोड़ सुवर्ण, अग्नि जैसी कान्तिवाले सुन्दर वस्त्र, मोती,

दत्त्वा कन्यां च राजेन्द्रो बलाय बलशालिने। रत्नेन्द्रसारयानेन तैः सार्धं कुण्डिनं ययौ ॥७॥
अथान्तरे च निर्बन्धे साङ्गे मङ्गलकर्मणि। रेवतीं वेशयामास योषितां कमलाकलाम् ॥८॥
देवकी रोहिणी चैव यशोदा नन्दगेहिनी। अदितिश्च दितिः शान्तिर्जयं कृत्वा च मन्दिरम् ॥९॥
ब्राह्मणान्भोजयामास ददौ तेभ्यो धनं मुदा। मङ्गलं कारयामास वसुदेवस्य वल्लभा ॥१०॥
अथ देवाश्च मुनयो राजेन्द्राः कटकैः सह। संप्रापुर्लीलात्रेण कुण्डिनं नगरं मुदा ॥११॥
ददृशुर्नगरं सर्वे ह्यतीव सुमनोहरम्। सप्तभिः परिखाभिश्च गभीराभिश्च वेष्टितम् ॥१२॥
प्राकारैः सप्तभिर्युक्तं द्वाराणां शतकैस्तथा। नानारत्नैश्च मणिभिर्निर्मितं विश्वकर्मणा ॥१३॥
नगरस्य बहिर्द्वारं ददृशुर्वरयात्रिणः। रक्षितं रक्षकैः सार्धं चतुर्भिश्च महारथैः ॥१४॥
रुक्मिश्च शिशुपालश्च दन्तवक्त्रो महाबली। शाल्वो मायाविनां श्रेष्ठो युद्धशास्त्रविशारदः ॥१५॥
नानाशास्त्रैस्तथाऽस्त्रैश्च रथस्थश्च रणोन्मुखः। विलोक्य कृष्णसैन्यं च चुकोप नृपनन्दनः ॥१६॥
उवाच निष्ठुरं वाक्यं श्रुतितीक्ष्णं सुदुष्करम्। उपहास्य मुनीन्द्रांश्च देवांश्च मुनिपुंगवान् ॥१७॥

### रुक्मिरुवाच

अहो कालकृतं कर्म दैवं च केन वार्यते। किंवाऽहं कथयिष्यामि देवेन्द्राणां च संसदि ॥१८॥

---

मानिक और हीरे प्रदान किये ॥५-६॥ तब राजेन्द्र (ककुद्मी) बलशाली बलराम को कन्या देकर उत्तम रत्नों के बने वाहन से उन लोगों के साथ कुण्डिन नगर को चले ॥७॥ इधर मांगलिक कृत्यों के सांगोपांग सम्पन्न हो जाने पर देवकी, रोहिणी, नन्दपत्नी यशोदा, अदिति, दिति तथा शान्ति ने लक्ष्मी की कलास्वरूप रमणीरत्न रेवती को जय-जयकारपूर्वक गृह-प्रवेश कराया ॥८-९॥ वसुदेव की पत्नी ने ब्राह्मणों को भोजन कराकर हर्ष से उन्हें धन दिया तथा मंगल कराया ॥१०॥ इसके बाद देवता, मुनि तथा राजेन्द्रगण सेनाओं के साथ हर्ष से लीलापूर्वक कुण्डिनपुर पहुँच गये ॥११॥ सबने देखा कि नगर बहुत सुन्दर है, सात गहरी खाइयों से घिरा हुआ है, सात चहारदीवारी और सौ द्वार वहाँ बने हुए थे। विश्वकर्मा ने अनेक प्रकार के रत्नों एवं मणियों से नगर का बाहरी द्वार (सिंहदरवाजा) बनाया था, जिसे सभी बरातियों ने देखा। उस द्वार पर रक्षकों के साथ चार महारथी पहरा दे रहे थे ॥१२-१४॥ रुक्मी, शिशुपाल, महाबली दन्तवक्त्र, मायावियों में श्रेष्ठ एवं युद्धविद्या-विशारद शाल्व—यही चार महारथी थे। राजकुमार रुक्मी अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से युक्त होकर युद्धोन्मुख था। वह कृष्ण की सेना को देखकर कुपित हुआ और देवताओं एवं मुनीन्द्रों का उपहास करके कर्णभेदी तथा अत्यन्त कठोर वचन बोलने लगा ॥१५-१७॥

**रुक्मी बोला**—अहो! काल का किया हुआ कर्म और प्रारब्ध को कौन रोक सकता है। अथवा देवेन्द्रों की सभा में मैं क्या कहूँ ॥१८॥ देवता के योग्य सुन्दरी कन्या रुक्मिणी को ग्रहण करने के लिए नन्द

प्रहीतुं रुक्मिणीं कन्यां देवयोग्यां मनोहराम् । आयाति देवैर्मुनिभिर्नन्दस्य पशुरक्षकः ॥१९॥
साक्षाज्जारश्च गोपीनां गोपोच्छिष्टान्नभोजनः । जातेश्च निर्णयो नास्ति भक्ष्यमैथुनयोस्तथा ॥२०॥
किं नु राजेन्द्रपुत्रश्च किं नु वा मुनिपुत्रकः । वसुदेवः क्षत्रियश्च भक्षणं वैश्यमन्दिरे ॥२१॥
शिशुकाले च स्त्रीहत्या कृताऽनेन दुरात्मना । कुब्जा मृता च संभोगाद्वाससा रजको मृतः ॥२२॥
राजेन्द्रस्य वधे दुष्टो ब्रह्महत्यां लभेद्ध्रुवम् । मथुरायां च धर्मिष्ठः सद्यः कंसो निपातितः ॥२३॥

शाल्व उवाच

यदुक्तं रुक्मिणा देवाः किमसत्यं च तत्र वै । को वाऽयं रुक्मिणीभर्ता नन्दस्य पशुरक्षकः ॥२४॥

शिशुपाल उवाच

अहो भुवि किमाश्चर्यं देवा ब्रह्मादयस्तथा । मुनीन्द्रा ब्रह्मणः पुत्राश्चाऽऽययुर्मानवाज्ञया ॥२५॥

दन्तवक्त्र उवाच

संततं ब्राह्मणा लुब्धा देवाश्च भक्तवत्सलाः । आययुर्ब्रह्मपुत्राश्च नन्दपुत्राज्ञया कथम् ॥२६॥
तेषां च वचनं श्रुत्वा चुकोप देवसंघकः । मुनिराजेन्द्रसंघश्च लाङ्गलीत्यादयस्तथा ॥२७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० रुक्मिण्युद्वाहे
षडधिकशततमोऽध्यायः ॥१०६॥

---

का चरवाहा देवताओं और मुनियों के साथ आ रहा है। ॥१९॥ वह चरवाहा गोपियों का साक्षात् जार है तथा गोपों का जूठा खानेवाला है। न तो उसकी जाति का कोई निश्चय है और न भोजन एवं मैथुन का ही ॥२०॥ क्या वह महाराज का पुत्र है या मुनि का पुत्र है ? (उसका पिता) वसुदेव क्षत्रिय है और वह वैश्य के घर में भोजन करता है ॥२१॥ उस दुष्टात्मा ने बाल्यावस्था में स्त्रीहत्या की है। उसके साथ संभोग करने से कुब्जा मरी और वस्त्र से धोबी मरा ॥२२॥ महाराज का वध करने से ब्रह्महत्या लगती है और उसने मथुरा में धर्मात्मा कंस का वध किया है ॥२३॥

**शाल्व ने कहा**—देवताओ ! रुक्मी ने जो कहा है उसमें क्या असत्य है ? यह नन्द का चरवाहा रुक्मिणी का पति बननेवाला कौन होता है ? ॥२४॥

**शिशुपाल ने कहा**—आह ! संसार में इससे बढ़कर क्या आश्चर्य होगा कि ब्रह्मा आदि देवगण तथा ब्रह्मा के पुत्र मुनिवर मनुष्य की आज्ञा से आये हैं ॥२५॥

**दन्तवक्त्र ने कहा**—ब्राह्मण तो नित्य लोभी होते हैं और देवता भक्तवत्सल होते हैं, किन्तु ब्रह्मा के पुत्र क्यों नन्द के पुत्र की आज्ञा से आये हैं ? उनकी बात सुनकर देव-समूह मुनियों और राजेन्द्रों का समूह तथा बलराम आदि कुपित हो गये ॥२६-२७॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद-नारायण के संवाद-प्रकरण में रुक्मिणी-विवाह के प्रसंग में एक सौ छठा अध्याय समाप्त ॥१०६॥

# अथ सप्ताधिकशततमोऽध्यायः

## नारायण उवाच

अथ कोपपरीतश्च बलदेवो महाबलः। हलेन रुक्मियानं च बभञ्ज मुनिपुंगव ॥१॥
घोटकान्सारथिं चैव निहत्य जगतीपतिः। भूमिष्ठं चापि पापिष्ठं रुक्मिं हन्तुं जगाम सः ॥२॥
रुक्मी च शरजालेन वारयामास लीलया। नागास्त्रं योजयामास बद्धुं हलिनमीश्वरम् ॥३॥
नागास्त्रं गारुडेनैव संजहार हली स्वयम्। जग्राह कोपाद्रुक्मी च परं पाशुपतं मुने ॥४॥
अव्यर्थं वैरिमर्दं च शतसूर्यसमप्रभम्। अभितो हलिना रुक्मी जृम्भणास्त्रेण जृम्भितः ॥५॥
भूमिष्ठः स्थाणुमद्रुक्मी निद्रास्त्रेणैव निद्रितः। शाल्वस्तं निद्रितं दृष्ट्वा शतबाणान्मुमोच तम् ॥६॥
शैलवृष्टिं शिलावृष्टिं जलवृष्टिं चकार सः। ज्वलदङ्गारवृष्टिं च शरवृष्टिं चकार ह ॥७॥
बलाच्चास्त्रेण सर्वाणि वारयामास लाङ्गली। हलेन तद्रथं चूर्णं चकार रणमध्यतः ॥८॥
घोटकान्सारथिं चैव जघान चैव लीलया। कोपाद्बलेन तं हन्तुं वाग्बभूवाशरीरिणी ॥९॥

---

# अध्याय १०७

## बलभद्र द्वारा शाल्व आदि का मर्दन और भीष्मककृत कृष्णस्तोत्र

**नारायण बोले**—मुनिवर ! इसके बाद महाबली बलदेव (अपने अस्त्र) हल से रुक्मी के रथ को तोड़ दिया ॥१॥ जगत् के स्वामी बलदेव रुक्मी के घोड़ों और सारथि को भी मारकर भूमि पर खड़े पापिष्ठ रुक्मी को भी मारने के लिए गये ॥२॥ रुक्मी ने बाणों के समूह से लीलापूर्वक रोक दिया और प्रभु बलराम को बाँधने के लिए नागास्त्र की योजना की ॥३॥ बलभद्र ने स्वयं गरुड़ास्त्र के द्वारा नागास्त्र का संहार कर दिया। मुने ! रुक्मी ने क्रोध से श्रेष्ठ पाशुपतास्त्र को उठाया, जो व्यर्थ न होनेवाला, शत्रु का मर्दन करनेवाला और सैकड़ों सूर्य के समान चमकनेवाला था। किन्तु बलदेव ने रुक्मी को चारों ओर से जृम्भास्त्र के द्वारा जृम्भित (जम्हाई लेने में व्यस्त) कर दिया ॥४-५॥ रुक्मी निद्रास्त्र से ही निद्रित होकर ठूंठ पेड़ के समान भूमि पर स्थित हुआ। शाल्व ने उसे निद्रित देखकर बलदेव पर सौ बाण छोड़े, पर्वतों की वृष्टि, चट्टानों की वृष्टि, जल की वृष्टि, जलते हुए अंगारों की वृष्टि और बाणों की वृष्टि की ॥६-७॥ किन्तु बलराम ने अस्त्र के द्वारा सबको बलपूर्वक रोक दिया और अपने हल से युद्ध के बीच उस (शाल्व) के रथ को चूर-चूर कर दिया ॥८॥ उसके घोड़ों और सारथि को भी लीलापूर्वक मार डाला। फिर क्रोध से उसको मारने के लिए दौड़े। किन्तु आकाशवाणी हुई कि शाल्व को छोड़ दो, यह कृष्ण के द्वारा मारा जानेवाला है। युद्ध में आपके पौरुष का क्या कहना है, जिसके मस्तक पर

त्यज शाल्वं कृष्णवध्यं तव किं पौरुषं रणे। यस्य मूर्ध्नि च ब्रह्माण्डं शूर्पे च सर्षपं यथा ॥१०॥
तच्छ्रुत्वा बलदेवश्च हलेन तस्य मस्तकम्। चकार चूर्णं व्यथितः पपात रणमूर्धनि ॥११॥
शाल्वस्य पतनं दृष्ट्वा शिशुपालो महाबली। चकार शरवृष्टिं च जलवृष्टिं यथा भुवि ॥१२॥
हली तस्य रथं चूर्णं चकार लाङ्गलेन च। अर्धचन्द्रेण तद्बाणान्वारयामास लीलया ॥१३॥
तं हन्तुं शंकरः साक्षान्निषेधं च चकार तम्। कृष्णवध्यं त्यज बल पार्षदप्रवरं हरेः ॥१४॥
दन्तवक्त्रस्य दन्तं च बभञ्ज स हलेन च। सुप्रवृत्तस्य युद्धेन ते सर्वे जहसुश्च तम् ॥१५॥
बलस्य विक्रमं दृष्ट्वा सर्वे वीराः पलायिताः। चक्रुः प्रवेशनं सर्वे कुण्डिनं वरयात्रिकाः ॥१६॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र शतानन्दो महामुनिः। कोटिभिर्मुनिभिः सार्धमाजगाम हरेः पुरः ॥१७॥
पुरं प्रवेशयामास शतद्वारं च दुर्गमम्। अगम्यं चापि शत्रूणां मित्राणां च सुखप्रदम् ॥१८॥
देवकन्या नागकन्या राजकन्यास्तथैव च। मुनिकन्या वरं द्रष्टुं सस्मिताश्च समाययुः ॥१९॥
ददृशुर्योषितः सर्वा निमेषरहितेन च। प्रसन्नं कारयामास सस्मितश्चन्द्रशेखरः ॥२०॥
रत्नेन्द्रसारनिर्माणरथस्थं परमेश्वरम्। सर्वेषां परमात्मानं भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥२१॥
नवीनजलदश्यामं शोभितं पीतवाससा। चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं वनमालाविभूषितम् ॥२२॥
रत्नकेयूरवलयरत्नमालाकुलोज्ज्वलम्। रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजितम् ॥२३॥

---

ब्रह्माण्ड उसी प्रकार अवस्थित रहता है जैसे सूप में सरसों ॥९-१०॥ यह सुनकर बलदेव ने हल से उसके मस्तक को चूर कर दिया, जिससे वह व्यथित होकर युद्ध के अग्रभाग में गिर पड़ा ॥११॥ शाल्व का पतन देखकर महाबली शिशुपाल ने बाणों की उस प्रकार वृष्टि की जैसे पृथ्वी पर जल की वृष्टि होती है ॥१२॥ बलराम ने हल से उसके रथ को चूर्ण कर दिया ॥१३॥ स्वयं शंकर ने उसको मारने से रोकते हुए कहा– बलभद्र ! विष्णु के श्रेष्ठ पार्षद शिशुपाल को मत मारो, क्योंकि इसका वध कृष्ण के हाथ से होना है ॥१४॥ युद्ध में प्रवृत्त दन्तवक्त्र के दाँत को बलराम ने हल से तोड़ दिया, क्योंकि वे सब उनकी हँसी उड़ा रहे थे ॥१५॥ बलराम का पराक्रम देखकर सभी वीर भाग गये। तब सभी बरातियों ने कुण्डिनपुर में प्रवेश किया ॥१६॥ इतने में महामुनि शतानन्द करोड़ों मुनियों के साथ वहाँ कृष्ण के सामने आये ॥१७॥ सौ द्वारवाले दुर्गम नगर में, जो शत्रुओं के लिए अगम्य और मित्रों के लिए सुखप्रद था, सबको प्रवेश कराया ॥१८॥ देवताओं की कन्याएँ, नागकन्याएँ, राजकन्याएँ और मुनिकन्याएँ वर को देखने के लिए मुसकराहट के साथ आयीं ॥१९॥

शंकर ने मुसकराते हुए, परमेश्वर (श्रीकृष्ण) को प्रसन्न किया और सभी महिलाओं ने अपलक नेत्रों से वर को देखा, जो श्रेष्ठ रत्नों के सारभाग से बनाये गये रथ पर अवस्थित, सबके परमात्मा, भक्तों पर दया करने के लिए शरीर धारण करनेवाले, नवीन मेघ के समान श्यामवर्णवाले, पीतवस्त्र से सुशोभित, सभी अंगों में चन्दन से लिप्त, वनमाला से विभूषित, रत्नों के बने केयूर (बाजूबंद), कड़े तथा रत्नमाला से उज्ज्वल,

रत्नेन्द्रसारनिर्माणक्वणन्मञ्जीररञ्जितम् । सस्मितं मुरलीहस्तं पश्यन्तं रत्नदर्पणम् ॥२४॥
सप्तभिः पार्षदैर्गोपैः सेवितं श्वेतचामरैः । नवयौवनसंपन्नं शरत्कमललोचनम् ॥२५॥
शरत्पूर्णेन्दुतुल्यास्यं[1] भक्तानुग्रहकारकम् । कोटिकन्दर्पसौन्दर्यं सत्यं नित्यं सनातनम् ॥२६॥
तीर्थपूतं कीर्तिपूतं ब्रह्मेशशेषवन्दितम् । परमाह्लादकं रूपं कोटिचन्द्रसमप्रभम् ॥२७॥
ध्यानासाध्यं दुराराध्यं परमं प्रकृतेः परम् । दूर्वया पट्टसूत्रं च रत्नेन्द्रसारदर्पणम् ॥२८॥
दधानं कर्तकासार्धं[2] कदल्याः स्फुटमञ्जरीम् । चूडां त्रिविक्रमाकारां मालतीमाल्यभूषिताम् ॥२९॥
पुष्पं नारीप्रदत्तं च मुकुटं मस्तकोज्ज्वलम् । दृष्ट्वा वरं युवत्यश्च मूर्च्छां संप्रापुरीश्वरम् ॥३०॥
रुक्मिणीजीवनं धन्यं श्लाघ्यमित्यूचुरीप्सितम् । जामातरं सा ददर्श राज्ञी भीष्मककामिनी ॥३१॥
निमेषरहिता तुष्टा प्रसन्नवदनेक्षणा । राजा प्रसन्नवदनः सामात्यः सपुरोहितः ॥३२॥
समागत्य सुरान्विप्रान्भूपांश्च प्रणनाम सः । ददौ योग्याश्रमं तेभ्यो भक्ष्यपूर्णं सुधोपमम् ॥३३॥
दिवानिशं चाप्युवाच दीयतां दीयतामिति । सुखं निनाय रजनीं देवैश्च बान्धवैः सह ॥३४॥
वसुदेवः प्रभाते च प्रातःकृत्यं चकार सः । स्नात्वा संध्यादिकं कृत्वा धृत्वा धौते च वाससी ॥३५॥

---

रत्नों के जोड़े कुण्डलों से शोभायमान गण्डस्थलवाले, उत्तम रत्नों के सारभाग से बने और बजते हुए नूपुरों से शोभित, मुसकराते हुए, हाथ में मुरली लिये हुए, रत्न के दर्पण को देखते, सात पार्षद गोपों द्वारा धवल चामरों से सेवित, नवयौवन संपन्न, शरदृतु के कमल के समान नेत्रोंवाले, शरदृतु के पूर्ण चन्द्र के समान मुखवाले, भक्तों पर अनुग्रह करनेवाले, करोड़ों कामदेव के समान सुन्दर, सत्य, नित्य, सनातन, तीर्थ से पवित्र, कीर्ति से पवित्र, ब्रह्मा, शंकर तथा शेष से वन्दित, परम आह्लादक रूपवाले, करोड़ चन्द्रमा के समान कान्तिवाले, ध्यान द्वारा असाध्य, दुःख में आराधनीय, प्रकृति से परे, दूर्वा, पट्टसूत्र और रत्नेन्द्र के सारभाग से बना दर्पण, कैंची या छुरी के साथ कदलीवृक्ष की खिली मंजरी, त्रिविक्रम (वामन) जैसी आकृतिवाली तथा मालतीपुष्प की माला से विभूषित चूड़ा, रमणी का दिया हुआ पुष्प और मस्तक पर उद्भासित होनेवाला मुकुट धारण किये हुए थे। ऐश्वर्यशाली वर को देखकर युवतियाँ मूर्च्छित हो गयीं ॥२०-३०॥ वे कहने लगीं कि रुक्मिणी का जीवन धन्य है, श्लाघनीय है और वांछनीय है। भीष्मक की पत्नी रानी अपलक नेत्रों से जामाता को देखकर सन्तुष्ट हुई, उसके मुख और नेत्र खिल उठे। प्रसन्नमुख राजा ने मंत्री-पुरोहित के साथ आकर देवताओं, ब्राह्मणों और राजाओं को प्रणाम किया और उन्हें समुचित निवास-स्थान दिया, जहाँ अमृततुल्य भोजन-सामग्री भरी पड़ी थी। वहाँ रात-दिन कहा जाता था कि दीजिये दीजिये। वसुदेव ने वहाँ देवताओं और बंधुओं के साथ सुख से रात वितायी ॥३१-३४॥ प्रातःकाल उन्होंने प्रातःकालीन कृत्य—स्नान-सन्ध्या आदि करके धुले हुए दो वस्त्र पहनकर वेदमन्त्र से विष्णु का आवा-

---

१ क. ॰निन्दास्यं । २ साध्वं ।

चकार वेदमन्त्रेण शुभाधिवासनं हरेः। संपूज्य मातृकाः सर्वाः साक्षाच्च सर्वदेवताः ॥३६॥
प्रदाय वसुधारां च वृद्धिश्राद्धादिकं तथा। ब्राह्मणान्भोजयामास देवांश्च बान्धवांस्तथा ॥३७॥
वाद्यं च वादयामास कारयामास मङ्गलम्। सुवेषं कारयामास वरस्यापि[1] प्रशंसितम् ॥३८॥
सज्जं च कारयामास नरयानं[2] सुशोभनम्। एवं राजा भीष्मकश्च विवाहार्हं च मङ्गलम् ॥३९॥
पुरोहितैर्वेदमन्त्रैः सर्वं कर्म चकार सः। मणिरत्नं धनं चापि मुक्तामाणिक्यहीरकम् ॥४०॥
भक्ष्यद्रव्यं च वस्त्रं चाप्युपहारमनुत्तमम्। भट्टेभ्यो ब्राह्मणेभ्योऽपि भिक्षुकेभ्यो ददौ मुदा ॥४१॥
वाद्यं च वादयामास कारयामास मङ्गलम्। सुवेषं कारयामास रुक्मिण्याश्च मनोहरम् ॥४२॥
राज्ञीभिर्मुनिपत्नीभिर्विधानं च यथोचितम्। ततः शुभे क्षणे प्राप्ते माहेन्द्रे परमोदये ॥४३॥
विवाहोचितलग्ने च लग्नाधिपतिसंयुते। सद्ग्रहेक्षणशुद्धे चाप्यसतां दृष्टिवर्जिते ॥४४॥
शुभक्षणे शुभर्क्षे च विशुद्धे चन्द्रतारयोः। वेधदोषादिरहिते शलाकादिविवर्जिते ॥४५॥
दंपत्योः शर्मयोग्ये च परिणामसुखप्रदे। एवंभूते च समये भीष्मकप्राङ्गणं हरिः ॥४६॥
आजगाम सुरैः सार्धं मुनिविप्रपुरोहितैः। ज्ञातिभिर्बान्धवैः सार्धं पित्रा मात्रा नृपैस्तथा ॥४७॥
गोपालकैः पार्षदैश्च वयस्यैश्च मनोहरैः। भट्टैश्च गणकैर्ज्योतिःशास्त्रज्ञानविशारदैः ॥४८॥
वाद्यैर्नानाविधैश्चैव नर्तकैर्गायनैस्तथा। नानाशिल्पकरैश्चैव मालाकारैस्तथाऽपरैः ॥४९॥

---

पूजन, सभी मातृकाओं और साक्षात् सभी देवताओं की पूजा करके वसुधारा (घृत की धारा) दी तथा नान्दी-श्राद्ध किया। फिर ब्राह्मणों, देवताओं और बंधुओं को भोजन कराया ॥३५-३७॥ बाजे बजवाये और मांगलिक आचार सम्पन्न किये। वर का प्रशंसनीय सुन्दर वेश बनवाया। सुन्दर पालकी सजायी गयी। इसी प्रकार राजा भीष्मक ने भी विवाहोचित सभी मंगल कर्म पुरोहितों और वेद मन्त्रों द्वारा सम्पन्न किये। मणि, रत्न, धन, मोती, माणिक्य, हीरा, भोजन-सामग्री और भेंट के सुन्दर वस्त्र भाटों, ब्राह्मणों और भिक्षुकों को हर्ष से दिये। बाजे बज-वाये, मांगलिक आचार कराया और रुक्मिणी का मनोहर तथा सुसज्जित वेश बनवाया ॥३८-४२॥ रानियों और मुनि-पत्नियों ने यथोचित विधियाँ पूरी कीं। तदनन्तर शुभ क्षण प्राप्त होने पर, माहेन्द्रयोग में, लग्न के स्वामी से सयुक्त विवाहोचित लग्न में, उत्तम ग्रहों की दृष्टि से शुद्ध एवं असत् ग्रहों की दृष्टि से रहित शुभ क्षण में, शुभ नक्षत्र में, चन्द्रमा और तारे के शुद्धि में, वेधदोष आदि से रहित एवं शलाका आदि से वर्जित होने पर और दम्पती के परिणाम में सुखप्रद तथा कल्याणकारण योग होने पर, ऐसे समय में श्रीकृष्ण भीष्मक के प्रांगण में पधारे ॥४३-४६॥ उनके साथ में देवता, मुनि, ब्राह्मण, पुरोहित, सगे-सम्बन्धी, माता-पिता, राजा, गोप, पार्षद, मित्र, भाट और ज्योतिषशास्त्र के ज्ञान में निपुण ज्योतिषी लोग थे। अनेक प्रकार के बाजे, नाचनेवाले, गानेवाले, कारीगर, माली तथा दूसरे, विद्याधरियाँ, अप्सराएँ और किन्नरियाँ थीं। देवताओं, मुनियों, राजेन्द्रों और

---

१ ख. स्याप्रतिमस्य च। २ क. वरं।

विद्याधर्यप्सरोभिश्च किन्नरीभिश्च सत्वरम् । स्थलं च ददृशुर्देवा मुनयश्च नृपेश्वराः ॥५०॥
सर्वे समागता ये च विवाहदर्शनोत्सुकाः । रम्भास्तम्भसहस्रैश्च पट्टसूत्रपरिष्कृतैः ॥५१॥
चम्पकानां चन्दनानां रसालानां च पल्लवैः । माल्यैर्नानाविधैश्चैव पीतरक्तसितान्वितैः ॥५२॥
परितो मङ्गलघटैः फलपल्लवसंयुतैः । कस्तूरीचन्दनावतैश्च कुङ्कुमेन विराजितैः ॥५३॥
पर्णैर्लाजैः फलैः पुष्पैर्दूर्वाभिरुपशोभितैः । मुनिभिर्ब्राह्मणैश्चैव राजेन्द्रैरपि वेष्टितम् ॥५४॥
रत्नेन्द्रसारनिर्माणवेदीयुक्तं मनोहरम् । चर्चितं चन्दनस्निग्धैः कस्तूरीकुङ्कुमान्वितैः ॥५५॥
सुगन्धिशीतमन्दैश्च पवनैः सुरभीकृतम् । रत्नानां च सहस्रैश्च ज्वलितं ज्वलदीप्तकैः ॥५६॥
नानाप्रकारधूपैश्च गन्धद्रव्यैः सुवासितम् । चित्रैर्विचित्रैर्विविधैः शिल्पिनां पुण्यकारिणाम्[1] ॥५७॥
परितः परितश्चैव शोभनार्हैः सुशोभनैः । गन्धर्वाणां च संगीतैर्मधुरैर्मधुरीकृतम् ॥५८॥
विद्याधरीणां नृत्यैश्च नर्तकीनां च शिल्पिनाम् । तत्र निश्चेष्टचित्रैश्च जनराजिविराजितम् ॥५९॥
गुप्तद्वारैर्गवाक्षैश्च युवतीभिश्च वीक्षितम् । मङ्गलेन घटेनैव विदुषा च पुरोधसा ॥६०॥
कुशहस्तेन भूपेन दानेन दानवस्तुना । दृष्ट्वा च प्राङ्गणं राज्ञो देवा ब्रह्मादयस्तथा ॥६१॥
अवरुह्य रथात्तूर्णं तिष्ठन्ति प्राङ्गणे मुदा । राजेन्द्रा दानवेन्द्राश्च मुनयः सनकादयः ॥६२॥
श्रीकृष्णश्चापि भगवान्पार्षदप्रवरैः सह । तान्दृष्ट्वा सहसोत्थाय जवेन भीष्मकस्तथा ॥६३॥

---

विवाह देखने की उत्सुकता से आये हुए लोगों ने विवाह-स्थल को देखा, जहाँ रेशमी धागे से सुशोभित हजारों केले के स्तम्भ गड़े हुए थे। चम्पा, चन्दन तथा आम के पल्लव, अनेक प्रकार की लाल, पीली तथा उजली मालाएँ, चारों तरफ फल-पल्लव से युक्त मंगलकलश, कस्तूरी एवं चन्दन समन्वित केसर, पत्ते, लावे, फल, पुष्प तथा दूर्वा से उपशोभित मुनि, ब्राह्मण तथा राजेन्द्र लोग उस स्थल को घेरे हुए थे ॥४७-५४॥

महारत्नों के सारभाग से बनी वेदी वहाँ थी। वह स्थल चन्दन से स्निग्ध, कस्तूरी तथा कुंकुम से युक्त, सुगन्धित, शीतल एवं मन्द पवन से सुगन्धित हो रहा था। हजारों रत्ननिर्मित दीपक जल रहे थे। नाना प्रकार के धूप तथा गन्धद्रव्य सुवास फैला रहे थे। पुण्यकारी शिल्पियों के द्वारा अनेक प्रकार के आकर्षक चित्र, चारों ओर बनाये गये थे। गन्धर्वों के मधुर संगीत हो रहे थे ॥५५-५८॥ विद्याधरियों तथा नर्तकियों के नृत्य हो रहे थे। शिल्पियों के मूक चित्रों तथा जन-समूहों से वह स्थल सुशोभित था ॥५९॥ गुप्त द्वारों तथा खिड़कियों से युवतियाँ (वहाँ का दृश्य) देख रही थीं। राजा हाथ में कुश लिये, मंगल-कलश तथा विद्वान् पुरोहित के साथ उपस्थित था। ब्रह्मा आदि देवों ने राजा का प्रांगण देखा। सब हर्ष से शीघ्र ही रथ से उतरकर आँगन में आ गये। राजेन्द्र, दानवेन्द्र तथा सनक आदि मुनिगण उपस्थित हुए। भगवान् श्रीकृष्ण भी श्रेष्ठ पार्षदों के साथ विराजमान हुए। उन लोगों को देखकर भीष्मक ने सहसा वेग से उठकर देवों, मुनीन्द्रों

---

१ क. पुरिका°।

मूर्ध्ना ववन्दे देवांश्च मुनीन्द्रांश्च नृपांस्तथा। रत्नसिंहासनेष्वेव सुरम्येषु पृथक्पृथक् ॥६४॥
क्रमतो वासयामास संपूज्य सादरेण च। राजा तुष्टाव भक्त्या च तान्सर्वान्भक्तिपूर्वकम् ॥
वसुदेवं वासुदेवं साश्रुनेत्रः पुटाञ्जलिः ॥६५॥

## भीष्मक उवाच

अद्य मे सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम्। बभूव जन्मकोटीनां कर्ममूलनिकृन्तनम् ॥६६॥
स्वयं विधाता जगतां प्रदाता सर्वसंपदाम्। स्वप्ने यत्पादपद्मं च द्रष्टुं नैव क्षमः प्रभो ॥६७॥
तपसां फलदाता च संस्रष्टा प्राङ्गणे मम। स्वात्मारामेषु पूर्णेषु शुभप्रश्नमनीप्सितम् ॥६८॥
योगीन्द्रैरपि सिद्धेन्द्रैः सुरेन्द्रैश्च मुनीन्द्रकैः। ध्यानादृष्टश्च यो देवः स शिवः प्राङ्गणे मम ॥६९॥
कालस्य कालो भगवान्मृत्योर्मृत्युश्च यः प्रभुः। मृत्युंजयश्च सर्वेशो नराणां दृष्टिगोचरः ॥७०॥
यस्य मूर्ध्ना सहस्रेषु मूर्ध्नि विश्वं चराचरम्। नास्त्यन्तः सर्ववेदेषु सोऽयं च मम प्राङ्गणे ॥७१॥
सर्वकामप्रणेयो हि सर्वाग्रे यस्य पूजनम्। श्रेष्ठो देवगणानां च स गणेशो ममाङ्गणे ॥७२॥
मुनीनां वैष्णवानां च प्रवरो ज्ञानिनां गुरुः। सनत्कुमारो भगवान्प्रत्यक्षः प्राङ्गणे मम ॥७३॥
ब्रह्मपुत्राश्च पौत्राश्च प्रपौत्राश्चापि वंशजाः। ते सर्वे मद्गृहेऽद्यैव ज्वलन्तो ब्रह्मतेजसा ॥७४॥
अहो कल्पान्तपर्यन्तं तीर्थीभूतो ममाऽऽश्रमः। येषां पादोदकैस्तीर्थं विशुद्धं तद्गृहे मम ॥७५॥

---

तथा राजाओं को मस्तक झुकाकर प्रणाम किया, फिर रमणीय रत्नसिंहासनों पर पृथक्-पृथक् क्रमशः सबको बैठाया। राजा ने आदरपूर्वक सबकी पूजा करके भक्तिपूर्वक सबकी स्तुति की। हाथ जोड़कर अश्रुपूर्णनेत्र हो वसुदेव तथा वासुदेव (श्रीकृष्ण) की स्तुति करने लगा ॥६०-६५॥

**भीष्मक ने कहा**—आज मेरा जन्म सफल हो गया, जीवन भी सुन्दर बन गया। करोड़ों जन्मों के किये कर्मों का मूल उच्छिन्न हो गया ॥६६॥ जो संसार के स्वयं विधाता तथा सकल सम्पत्तियों के दाता हैं और जिनके चरण-कमल को स्वप्न में भी देखने में मैं समर्थ नहीं हूँ, वे तपस्याओं के फलदाता तथा स्रष्टा मेरे आँगन में विराजमान हैं। आत्माराम और पूर्ण व्यक्ति से कुशल-मंगल पूछना इष्ट नहीं है ॥६७-६८॥ जिनको योगीन्द्र, सिद्धेन्द्र, सुरेन्द्र और मुनीन्द्र भी ध्यान में नहीं देख पाते हैं, वे शंकर देव मेरे आँगन में हैं। तथा जो प्रभु काल के भी काल हैं, मृत्यु के भी मृत्यु हैं, मृत्युञ्जय हैं और सबके स्वामी हैं, वे भगवान् लोगों को दृष्टिगोचर हो रहे हैं ॥६९-७०॥ जिनके सहस्र मस्तक पर चराचर विश्व अवस्थित है और समस्त वेदों में जिनका अन्त नहीं बताया गया है वे मेरे आँगन में विराजमान हैं ॥७१॥ जो समस्त कामनाओं में स्नेह से देखने योग्य हैं, सबसे पहले जिनका पूजन किया जाता है और जो देवगणों में श्रेष्ठ हैं, वे गणेश मेरे आँगन में विराजमान हैं ॥७२॥ जो मुनियों और वैष्णवों में सर्वश्रेष्ठ हैं तथा ज्ञानियों के गुरु हैं, वे भगवान् सनत्कुमार मेरे आँगन में प्रत्यक्ष हैं ॥७३॥ ब्रह्मा के पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र और जो भी वंशज ब्रह्मतेज से चमक रहे हैं, अहा! वे सब आज मेरे घर में विद्यमान हैं ॥७४॥ मेरा घर कल्प के अन्त तक तीर्थ बन गया है। जिन चरणों के जल से तीर्थ भी पवित्र होता

पृथिव्यां यानि तीर्थानि तानि तीर्थानि सागरे। सागरे यानि तीर्थानि विप्रपादेषु तानि च ॥७६॥
विप्रपादोदकक्लिन्ना यावत्तिष्ठति मेदिनी। तावत्पुष्करपत्रेषु[1] पिबन्ति पितरो जलम् ॥७७॥
विप्रपादोदकं भुक्त्वा दत्त्वा विप्राय दक्षिणाम्। स्नानानां सर्वतीर्थानां फलमाप्नोति निश्चितम् ॥७८॥
निकृन्तनं च विपदां व्याधिनिर्मूलकारणम्। सुखदं शुभदं सारं विप्रपादोदकं नृणाम् ॥७९॥
न गङ्गासदृशं तीर्थं न देवो माधवात्परः। सनत्कुमाराद्भक्तो न न हि कल्पतरोस्तरुः ॥८०॥
न पुष्पं पारिजाताच्च न व्रतं हरिवासरात्। पूजने न हि पूज्यं च न पत्रं तुलसीपरम् ॥८१॥
न देवी प्रकृतेश्चापि नाऽऽधारः पवनात्परः। न हि स्थूलो महाविष्णोर्न सूक्ष्मं परमाणुतः ॥८२॥
न ब्राह्मणात्परः पूतो नाऽऽश्रमश्च न तीर्थकम्। न देवो न परः कोऽपि चेत्याह कमलोद्भवः ॥८३॥
ब्रह्मविष्णुशिवादीनां प्रकृतेश्च परः प्रभुः। ध्यानासाध्यो दुराराध्यो योगिनामपि निश्चितम् ॥८४॥
निर्गुणश्च निराकारो भक्तानुग्रहविग्रहः। स एव चक्षुषो नृणां साक्षाद्देवश्च मद्गृहे ॥८५॥
देवैर्ब्रह्मेशशेषैश्च ध्यातं यत्पादपङ्कजम्। धनेशेन गणेशेन दिनेशेनापि दुर्लभम् ॥८६॥
इत्युक्त्वा भीष्मकः कृष्णं समानीय स्वयं पुरः। तुष्टाव सामवेदोक्तस्तोत्रेण परमेश्वरम् ॥८७॥

---

हैं, वे मेरे घर में हैं ॥७५॥ पृथ्वी पर जो तीर्थ हैं वे तीर्थ समुद्र में हैं और समुद्र में जो तीर्थ हैं वे ब्राह्मण के चरणों में हैं। ब्राह्मण के चरणोदक से पृथ्वी जहाँ तक भीगी रहती है, वहाँ तक कमल के पत्तों में पितर लोग जल पीते हैं ॥७६-७७॥ ब्राह्मण का चरणोदक पीकर ब्राह्मण को दक्षिणा देने से सकल तीर्थों में स्नान करने का फल निश्चित ही मिलता है। विप्र का चरणोदक मनुष्यों की विपत्तियों का नाशक, व्याधि को निर्मूल करने का कारण, सुखदायक, मंगलकारक तथा सार वस्तु है ॥७८-७९॥ गंगा के समान कोई तीर्थ नहीं, हरि से बढ़कर कोई देवता नहीं, सनत्कुमार से बढ़कर कोई भक्त नहीं, कल्पवृक्ष से बढ़कर कोई वृक्ष नहीं, पारिजात से बढ़कर कोई पुष्प नहीं, हरिवासर से बढ़कर कोई व्रत नहीं, पूजा में तुलसी पत्र से बढ़कर कोई पूजोपयोगी पत्र नहीं, प्रकृति से बढ़कर कोई देवी नहीं, वायु से बढ़कर कोई आधार नहीं, महाविष्णु से बढ़कर कोई स्थूल नहीं और परमाणु से बढ़कर कोई सूक्ष्म नहीं है ॥८०-८२॥ ब्राह्मण से अधिक पवित्र न तो कोई आश्रम है और न तीर्थ ही है। देवता भी कोई बढ़कर नहीं है, यह ब्रह्मा ने कहा है ॥८३॥ ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि तथा प्रकृति से परे जो प्रभु हैं, वे ध्यान द्वारा असाध्य हैं, कठिनाई से आराधना करने योग्य हैं, निर्गुण हैं, निराकार हैं और भक्त पर अनुग्रह करने के लिए शरीर धारण करनेवाले हैं। वे ही साक्षात् देव मेरे घर में मनुष्यों को दृष्टिगोचर हो रहे हैं ॥८४-८५॥ उनके चरणकमल का दुर्लभ ध्यान ब्रह्मा, शिव, अनन्तशेष, कुबेर, गणेश तथा सूर्य भी किया करते हैं ॥८६॥ यह कहकर भीष्मक स्वयं कृष्ण को सामने ले आये और सामवेदोक्त स्तोत्र के द्वारा परमेश्वर की स्तुति करने लगे ॥८७॥

---

१ क. पात्रेण।

## भीष्मक उवाच

सर्वान्तरात्मा सर्वेषां साक्षी निर्लिप्त एव च । कर्मिणां कर्मणामेव कारणानां च कारणम् ॥८८॥
केचिद्वदन्ति त्वामेकं ज्योतीरूपं सनातनम् । केचिच्च परमात्मानं जीवो यत्प्रतिबिम्बकः ॥८९॥
केचित्प्राकृतिकं जीवं सगुणं भ्रान्तबुद्धयः । केचिन्नित्यशरीरं च बुद्धा (धा) श्च सूक्ष्मबुद्धयः ॥९०॥
ज्योतिरभ्यन्तरे नित्यं देहरूपं सनातनम् । कस्मात्तेजः प्रभवति साकारमीश्वरं विना ॥९१॥
एवं स्तुत्वा स चाऽऽचान्तः स्मरन्विष्णुं च नारद । पाद्यं पद्मार्चिते पादपद्मे चायं ददौ मुदा ॥९२॥
अर्घ्यं च प्रददौ तत्र दूर्वापुष्पजलान्वितम् । मधुपर्कं च सुरभि सर्वाङ्गे गन्धचन्दनम् ॥९३॥
यत्प्रदत्तं महेन्द्रेण शुभकर्मणि यौतुकम् । पारिजातस्य माल्यं च जामातुश्च गले ददौ ॥९४॥
कुबेरेण च यद्दत्तममूल्यरत्नभूषणम् । चकार वरणं तस्य स राजा भक्तिपूर्वकम् ॥९५॥
वह्निशुद्धांशुकयुगं यद्दत्तं वह्निना पुरा । ददौ तदेव कृष्णाय परिपूर्णतमाय च ॥९६॥
ज्वलितं रत्नमुकुटं यद्दत्तं विश्वकर्मणा । ददौ तन्मस्तके राजा कृष्णस्य परमात्मनः ॥९७॥
धूपं रत्नप्रदीपं च नैवेद्यं सुमनोहरम् । नानाप्रकारपुष्पं च रत्नसिंहासनं ददौ ॥९८॥
सप्ततीर्थोदकं चैव पुनराचमनीयकम् । ताम्बूलं च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम् ॥९९॥

---

**भीष्मक ने कहा**—आप सबके अन्तरात्मा, सबके साक्षी, निर्लिप्त, कर्मियों के, कर्मों के तथा कारणों के भी कारण हैं ॥८८॥ कोई आपको एक, प्रकाशरूप तथा सनातन कहते हैं और कोई परमात्मा कहते हैं, जिसका प्रतिबिम्ब जीव है ॥८९॥ भ्रान्त बुद्धिवाले लोग आपको सगुण एवं प्राकृतिक जीव कहते हैं और कोई सूक्ष्म बुद्धिवाले विद्वान् नित्यशरीर कहते हैं ॥९०॥ कोई आभ्यन्तरिक प्रकाश, नित्य तथा सनातन देह रूप बताते हैं; क्योंकि साकार ईश्वर के बिना तेज की उत्पत्ति नहीं हो सकती ॥९१॥ नारद ! इस प्रकार स्तुति करके राजा ने आचमन तथा विष्णु का स्मरण किया। फिर लक्ष्मी द्वारा पूजित चरण-कमल में उसने पैर धोने का जल समर्पित किया ॥९२॥ दूर्वा, पुष्प एवं जल सहित अर्घ्य प्रदान किया । मधुपर्क (दही, घी, मधु, जल और शक्कर के योग से बना हुआ द्रव्य) दिया । समस्त अंगों में सुगन्धित चन्दन लगाया ॥९३॥ इन्द्र ने शुभ कर्म में जो उपहारस्वरूप पारिजात की माला दी थी, वह जामाता के गले में पहना दी ॥९४॥ कुबेर ने जो अमूल्य रत्न का आभूषण दिया था, उसे राजा ने वरण में भक्तिपूर्वक दे दिया ॥९५॥ पूर्वकाल में अग्नि ने जो अग्नि समान शुद्ध एक जोड़ा वस्त्र दिया था, वही परिपूर्णतम श्रीकृष्ण को दे दिया ॥९६॥ विश्वकर्मा ने जो चमकीला रत्नमुकुट प्रदान किया था, वह राजा ने परमात्मा कृष्ण के मस्तक पर पहना दिया ॥९७॥ धूप, रत्नदीप, अत्यन्त मनोहर नैवेद्य, नाना प्रकार के पुष्प तथा रत्नसिंहासन दिये ॥९८॥ सात तीर्थों का जल, पुनः आचमनीय और कर्पूर आदि से सुवासित रमणीय तथा उत्तम ताम्बूल, रतिवर्धक मनोरम शय्या और पीने के लिए सुवासित

शय्यां रतिकरीं रम्यां पानार्थं वासितं जलम् । कृत्वा च वरणं राजा परिहारं चकार तम् ॥१००॥
कृताञ्जलिपुटो राजा तस्मै पुष्पाञ्जलिं ददौ ॥१०१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० रुक्मिण्युद्वाहे
सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥१०७॥

•

# अथाष्टाधिकशततमोऽध्यायः

नारायण उवाच

एतस्मिन्नन्तरे देवी महालक्ष्मीश्च रुक्मिणी । आजगाम सभामध्ये मुनिदेवादिभिर्युते ॥१॥
रत्नसिंहासनस्था च रत्नालंकारभूषिता । वह्निशुद्धांशुकाधाना कबरीभारभूषिता ॥२॥
पश्यन्ती सस्मिता साध्वी ह्यमूल्यरत्नदर्पणम् । कस्तूरीबिन्दुभिर्युक्ता स्निग्धचन्दनर्चचिता ॥३॥
सिंदूरबिंदुना शश्वद्भालमध्यस्थलोज्ज्वला । तप्तकाञ्चनवर्णाभा शतचन्द्रसमप्रभा ॥४॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गा मालतीमाल्यशोभिता । सप्तभिर्नृपपुत्रैश्च समानीता च बालकैः ॥५॥

---

जल प्रदान किये । (इस प्रकार) राजा ने वरण करके क्षमा प्रार्थना की । अनन्तर हाथ जोड़कर राजा ने उन्हें पुष्पाञ्जलि दी ॥९९-१०१॥

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद-नारायण-संवाद में रुक्मिणी के विवाह के प्रसंग में एक सौ सातवाँ अध्याय समाप्त ॥१०७॥

•

# अध्याय १०८

## श्रीकृष्ण को रुक्मिणी समर्पण

**नारायण ने कहा**—इस बीच महालक्ष्मी रुक्मिणी देवी मुनियों और देवताओं आदि से युक्त सभा में आयी ॥१॥ वह रत्नों के सिंहासन पर विराजमान, रत्ननिर्मित आभूषणों से विभूषित, अग्नि समान शुद्ध वस्त्र पहने हुई और जूड़े के भार से सुशोभित थी । वह साध्वी मंद मुसकान के साथ अमूल्य रत्न के दर्पण को देख रही थी । कस्तूरी की बिन्दियाँ तथा चिकना चन्दन उसके अंगों में लगे थे । उज्ज्वल भाल के मध्य में सिन्दूर का बिन्दु था । उसकी कान्ति तपे हुए सोने की तरह थी । सैकड़ों चन्द्रमा के समान छटा थी । सम्पूर्ण अंगों में चन्दन लगा था । मालती की माला से वह शोभित थी । सात बालक राजकुमार उसे (सभा में) ले आये थे ।

देवेन्द्राश्च मुनीन्द्राश्च सिद्धेन्द्रा नृपपुंगवाः। ददृशू रुक्मिणीं देवीं महालक्ष्मीं पतिव्रताम् ॥६॥
सप्तप्रदक्षिणाः कृत्वा प्रणम्य स्वपतिं सती। सिषेच शीततोयेन स्निग्धचन्दनपल्लवैः ॥७॥
तां सिषेच जगत्कान्तः कान्तां शान्तां च सस्मिताम्। ददर्श कान्तः कान्तां च कान्तं कान्ता शुभे क्षणे ॥८॥
अथ देवी पितुः क्रोडे समुवास शुभानना। लज्जया नम्रवदना ज्वलन्ती च स्वतेजसा ॥९॥
राजा देवेश्वरीं तस्मै परिपूर्णतमाय च। प्रददौ संप्रदानेन वेदमन्त्रेण नारद ॥१०॥
वसुदेवाज्ञया कृष्णः स्वस्तीत्युक्त्वा स्थितो मुदा। जग्राह देवीं देवश्च भवानीं च भवो यथा ॥११॥
सुवर्णानां पञ्चलक्षं कृष्णाय परमात्मने। दक्षिणां तां ददौ राजा परिपूर्णतमाय च ॥१२॥
शुभकर्मणि निष्पन्ने कृत्वा कन्यां च वक्षसि। ररोद राजा मोहेन मुनिदेवेन्द्रसंसदि ॥१३॥
परिहारेण वचसा कृत्वा तस्मै समर्पणम्। सिषेच कन्यां धन्यां च नेत्रयुग्मजलेन च ॥१४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० रुक्मिण्युद्वाहेऽष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०८॥

---

॥२-५॥ देवेन्द्रों, मुनीन्द्रों, सिद्धेन्द्रों तथा महाराजों ने महालक्ष्मी रूप पतिव्रता रुक्मिणी देवी को देखा ॥६॥ सती ने सात बार परिक्रमा करके अपने पति को प्रणाम किया, शीतल जल से सम्पृक्त चिकने चन्दन-पल्लवों से सिञ्चन किया। फिर संसार के स्वामी (कृष्ण) ने भी शान्त एवं मुसकराती हुई उस प्रियतमा का सिञ्चन किया। तब शुभ क्षण में पति ने पत्नी को और पत्नी ने पति को देखा ॥७-८॥ तत्पश्चात् पवित्र मुखवाली देवी (रुक्मिणी) अपने तेज से चमकती हुई और लज्जा से अधोमुख होकर पिता की गोद में बैठ गयी ॥९॥ नारद ! राजा ने उस परिपूर्णतम (कृष्ण) को वेदमंत्र के साथ देवेश्वरी (कन्या) दे दी ॥१०॥ वसुदेव की आज्ञा से कृष्ण 'स्वस्ति' कहकर हर्ष से अवस्थित हुए। देव (कृष्ण) ने देवी (रुक्मिणी) को उसी प्रकार ग्रहण किया जिस प्रकार शंकर ने पार्वती को ग्रहण किया था ॥११॥ राजा ने परिपूर्णतम परमात्मा कृष्ण को पाँच लाख सुवर्ण-मुद्रा दक्षिणा दी ॥१२॥ शुभ कर्म सम्पन्न हो जाने पर राजा कन्या को छाती से लगाकर मुनियों और देवेन्द्रों की सभा में मोह से रोने लगा ॥१३॥ फिर क्षमा-प्रार्थना के वचन से कृष्ण को समर्पित करके दोनों नेत्रों के जल (आँसू) से धन्य कन्या को भिगो दिया ॥१४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद-नारायण के संवाद में रुक्मिणी-विवाह-प्रकरण में एक सौ आठवाँ अध्याय समाप्त ॥१०८॥

# अथ नवाधिकशततमोऽध्यायः

## नारायण उवाच

एतस्मिन्नन्तरे राज्ञी रुक्मिणीजननी शुभा। पतिपुत्रवतीभिश्च साध्वीभिः सहिता मुदा ॥१॥
आगत्य मङ्गलं कृत्वा तत्र निर्मञ्छनादिकम्। दंपती वेशयामास रत्ननिर्माणमन्दिरम् ॥२॥
नानाचित्रविचित्राढ्यं हीरहारेण भूषितम्। मुक्तामाणिक्यरत्नेन सुदीप्तं दर्पणेन च ॥३॥
ददर्श कृष्णस्तत्रैव दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम्। सरस्वतीं च सावित्रीं रतिं च रोहिणीं सतीम् ॥४॥
देवपत्नीं राजपत्नीं मुनिपत्नीं पतिव्रताम्। रत्नसिंहासनस्थां च रत्नभूषणभूषिताम् ॥५॥
उत्तस्थुराराद्दृष्ट्वा च श्रीकृष्णं जगतीपतिम्। रत्नसिंहासने रम्ये वारयामास तां मुदा ॥६॥
स्तुतिं चक्रुश्च देवाश्च मुनिपत्न्यश्च माधवम्। पुटाञ्जलियुतास्तत्र क्रमेण च पृथक्पृथक् ॥७॥
भोजयामास राज्ञी च वरेण सह कन्यकाम्। सकर्पूरं सताम्बूलं प्रददौ वासितं जलम् ॥८॥
दुर्गा कृष्णाय प्रददौ तत्र मङ्गलपत्रिकाम्। सर्वासामाज्ञया देवी पठेति तमुवाच सा ॥९॥
पपाठ पत्रिकां कृष्णो देवीसंसदि सस्मितः। लक्ष्मी सरस्वती दुर्गा सावित्री राधिका सती ॥१०॥
तुलसी पृथिवी गङ्गाऽरुन्धती यमुनाऽदितिः। शतरूपा च सीता च देवहूतिश्च मेनका ॥११॥

---

# अध्याय १०९

## श्रीकृष्ण और रुक्मिणी का विवाहोत्सव

**नारायण बोले**—इसी बीच रुक्मिणी की माता मंगलमयी रानी ने पतिपुत्रवती नारियों के साथ सहर्ष आकर परछन आदि वैवाहिक मंगलाचार सम्पन्न किया। फिर वर-वधू को रत्न-निर्मित भवन में प्रवेश कराया ॥१-२॥ वह भवन अनेक प्रकार के चित्रों तथा हीरा के हारों से विभूषित था। मुक्ता, माणिक्य आदि रत्नों तथा दर्पणों से जगमगा रहा था ॥३॥ कृष्ण ने वहीं दुर्गतिनाशिनी दुर्गा, सरस्वती, सावित्री, रति, रोहिणी, सती, देवपत्नी, राजपत्नी, पतिव्रता मुनिपत्नी को रत्नों के सिंहासनों पर आसीन तथा रत्नों के आभूषणों से विभूषित देखा ॥४-५॥ संसार के स्वामी श्रीकृष्ण को देखकर वे लोग आदर से उठकर खड़ी हो गयीं और रत्न के रमणीय सिंहासन पर उन्हें हर्ष से बैठाया ॥६॥ देवताओं तथा मुनिपत्नियों ने हाथ जोड़कर क्रमशः अलग-अलग उनकी स्तुति की ॥७॥ रानी ने वर के साथ कन्या को भोजन कराया, सुवासित जल तथा कर्पूर सहित ताम्बूल दिया ॥८॥ दुर्गा ने कृष्ण को मंगल-पत्रिका दी और सबकी आज्ञा से उस देवी ने कहा—'इसको पढ़िये'। देवियों की सभा में कृष्ण ने मुसकराते हुए उसे पढ़ा—'लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, सावित्री, सती, राधिका, तुलसी, पृथ्वी, गंगा, अरुन्धती, यमुना, अदिति, शतरूपा,

देव्यश्चैताश्च दंपत्योः कुर्वन्तु मङ्गलं परम्। पपाठ चेति कृष्णश्च शुश्रुवुर्जहसुश्च ताः ॥१२॥

पार्वत्युवाच

रुक्मिणीं रुक्मिणीकान्त त्वां पश्यन्तीं च सस्मिताम्। पश्य प्रौढां रूपवतीं सुन्दरीं नवयौवनाम् ॥१३॥

शच्युवाच

तव योग्या च युवती रत्नभूषणभूषिता। त्वां प्रार्थयन्ती सुचिरमवमन्यान्यमीश्वरम् ॥१४॥

सावित्र्युवाच

यथा वरस्तथा कन्या विधिना योजिता पुरा। विदग्धाया विदग्धेन सर्वत्र संगमः शुभः ॥१५॥

रत्युवाच

ईश्वरेण परीहासं का वा कर्तुं क्षमा भुवि। ध्यानासाध्यो दुराराध्यश्चावमन्यान्यमीश्वरम् ॥१६॥

गायत्र्युवाच

यथा वरस्तथा कन्या च क्षुब्धे[1] भैष्मके गृहे ॥१७॥

---

सीता, देवहूति और मेनका—ये देवियाँ दम्पती का परम मंगल करें।' कृष्ण ने पढ़ा और वे देवियाँ सुनकर हँसने लगीं ॥९-१२॥

**पार्वती बोलीं**—हे रुक्मिणी के प्रियतम! मुसकराहट के साथ आपको देखती हुई, प्रौढ़, रूपवती, सुन्दरी और नवयुवती रुक्मिणी को आप देखिये ॥१३॥

**इन्द्राणी बोलीं**—अन्य प्रभु लोगों का अपमान करके दीर्घकाल से आपको चाहती हुई, रत्न के आभूषणों से भूषित युवती (रुक्मिणी) आपके योग्य है ॥१४॥

**सावित्री बोलीं**—जैसा वर है वैसी कन्या है, विधाता ने इसकी योजना पहले ही कर दी थी। योग्य के साथ योग्य का संगम सभी जगह शुभ होता है ॥१५॥

**रति बोलीं**—अन्यान्य प्रभुओं का अपमान करके ईश्वर के साथ परिहास करने के लिए पृथ्वी पर भला कौन समर्थ है? ॥१६॥

**गायत्री बोलीं**—चहल-पहल से युक्त भीष्मक के गृह में जैसा वर है वैसी कन्या है ॥१७॥

---

१ क. 'क्षुब्धो भीष्मको।

### रोहिण्युवाच

सत्यं ब्रूहि जगन्नाथ कामिनीनां च संसदि । कीदृशी राधिका रम्या रुक्मिणी चापि कीदृशी ॥१८॥

### सरस्वत्युवाच

राधायां यादृशी प्रीतो रुक्मिण्यां नैव तादृशी । सा सङ्गिनी पूर्वकाले सर्वक्रीडासु वर्धिनी ॥१९॥
प्राणाधिष्ठातृदेवी सा पञ्चप्राणाधिका सती । रुक्मिणी कमला साक्षात्संपदामधिदेवता ॥२०॥
सर्वशक्तिस्वरूपा च कृष्णस्य परमात्मनः । बुद्धेरप्यधिदेवी च दुर्गा नारायणी परा ॥२१॥
देवाधिष्ठातृदेवी त्वं सावित्री वेदमातृका । विद्याधिदेवताऽहं च ततोऽन्याश्च कलाकलाः ॥२२॥
न ब्रह्मणि शिवे शेषे गणेशे च दिनेश्वरे । न भक्तेषु च पद्मायां न शिवायां च मय्यपि ॥२३॥
प्रसादो यादृशस्तस्यामन्येषु[1] च न तादृशः । त्रैलोक्ये पृथिवी धन्या सुपुण्यं भारतं यतः ॥२४॥
तत्र वृन्दावनं धन्यं राधापादाब्जचिह्नितम् । सर्वासामपि देवीनां राधा पुण्यवती सती ॥२५॥
राधापादाब्जनखरे ददौ स्निग्धमलक्तकम् । अयमेवमिति श्रुत्वा जहसुः सर्वयोषितः ॥२६॥
ध्यायन्ते दूरतः सर्वा राधा वक्षःस्थलस्थिता । तस्माद्राधां नमस्कृत्य तुलनां मन्यते किल ॥२७॥

---

**रोहिणी बोलीं**—हे जगन्नाथ ! रमणियों की सभा में सत्य कहिये कि आपको राधिका कैसी लगती थी और रुक्मिणी कैसी लगती है (अर्थात् दोनों में कौन अधिक प्रिय है) ? ॥१८॥

**सरस्वती बोलीं**—राधा में इनकी जैसी प्रीति है वैसी रुक्मिणी में नहीं है । पूर्वकाल में वह इनकी सभी क्रीड़ाओं में साथ रहती थी और क्रीड़ारस बढ़ाती थी ॥१९॥ वह इनकी प्राणाधिष्ठात्री देवी है, पाँचों प्राणों से भी अधिक प्रिय है । रुक्मिणी साक्षात् लक्ष्मी है, संपत्तियों की अधिदेवता है ॥२०॥ (राधा) परमात्मा कृष्ण की समस्तशक्तिस्वरूपा है और बुद्धि की भी अधिदेवी है । दुर्गा, नारायणी, देवताओं की अधिष्ठात्री देवी तुम पार्वती, वेदमाता सावित्री, विद्या की अधिदेवता मैं (सरस्वती) और अन्य देवियाँ (राधा की) कला की कलाएँ हैं ॥२१-२२॥ ब्रह्मा, शिव, अनन्त शेष, गणेश, सूर्य, भक्त, लक्ष्मी, पार्वती और मुझ पर तथा अन्य पर भी कृष्ण की वैसी कृपा नहीं रहती है जैसी राधा पर रहती है । तीनों लोक में पृथ्वी धन्य है, जिसलिए कि इस पर भारतवर्ष है । भारतवर्ष में भी वृन्दावन धन्य है, जहाँ राधा के चरणकमल का चिह्न पड़ा हुआ है । राधा समस्त देवियों से अधिक पुण्यवती एवं सती है । राधा के चरणकमल के नाखून पर इन्होंने ही चिकना महावर लगाया था । यह सुनकर सभी स्त्रियाँ हँस पड़ीं ॥२३-२६॥ सभी स्त्रियाँ जिनका दूर से ध्यान करती हैं, उनके वक्षःस्थल पर राधा विराजमान रहती हैं । इसलिए राधा को नमस्कार करके तुलना करनी

---

१ क. ॰मेतेषु ।

सरस्वतीवचः श्रुत्वा सावित्री पार्वती सती । अन्याश्च योषितः सर्वाः साध्वित्यूचुश्च संसदि ॥२८॥
लोपामुद्राऽनसूया चाप्यहल्याऽरुन्धती तथा । सर्वास्ता मुनिपत्न्यश्च रभसं चक्रुरीश्वरम् ॥२९॥
अथ देवांश्च भूपांश्च मुनीन्द्रांश्चापि भीष्मकः । पूजयामास विधिना भोजयामास सादरम् ॥३०॥
खाद्यतां खाद्यतां लोका दीयतां दीयतामिति । शब्दो बभूव नगरे वाद्यसंगीतमङ्गलैः ॥३१॥
अथ प्रभाते ब्रह्मेशशेषास्त्रिदशास्तथा । यानमारोहणं भूपाश्चक्रिरे च त्वरान्विताः ॥३२॥
राजा महोग्रसेनश्च वसुदेवस्त्वरान्वितः । कारयामास यात्रां च श्रीकृष्णं रुक्मिणीं सतीम् ॥३३॥
सुभद्रा रुक्मिणीमाता कन्यां कृत्वा स्ववक्षसि । रुरोदोच्चैस्तत्सखीभिर्बान्धवैरित्युवाच सा ॥३४॥

## सुभद्रोवाच

क्व यासि मां परित्यज्य वत्से मातरमीश्वरीम् । कथं जीवामि त्वां त्यक्त्वा कथं त्वं वाऽपि जीवसि ॥३५॥
महालक्ष्मीर्मम गृहात्कन्यारूपा च मायया । वसुदेवालयं यासि वासुदेवप्रिया सतीः ॥३६॥
इत्युक्त्वा कन्यकां शोकात्सिषेव नेत्रजैर्जलैः । भीष्मकः साश्रुनेत्रश्च कन्यां कृष्णे समर्प्य च ॥३७॥
तं च कृत्वा परीहारं रुरोदोच्चैरतीव सः । रुरोद रुक्मिणी देवी श्रीकृष्णश्चापि मायया ॥३८॥
रथमारोपयामास वसुदेवः सुतं वधूम् । एतस्मिन्नन्तरे राजा जामात्रे यौतुकं ददौ ॥३९॥
गजेन्द्राणां सहस्रं च षड्गुणं च तुरंगमम् । दासीनां च सहस्रं च किंकराणां शतं शतम् ॥४०॥

---

चाहिए ॥२७॥ सरस्वती की बात सुनकर सावित्री, सती पार्वती और अन्य सभी महिलाएँ सभा में बोल पड़ीं—'आपने ठीक कहा है' ॥२८॥ लोपामुद्रा, अनसूया, अहल्या, अरुन्धती तथा सभी मुनि-पत्नियों ने कृष्ण को बधाई दी ॥२९॥ अनन्तर भीष्मक ने देवताओं, राजाओं तथा मुनीन्द्रों की विधिपूर्वक पूजा की और सादर भोजन कराया । ३०॥ नगर में मांगलिक वाद्य एवं संगीत के साथ 'खाइये-खाइये और दीजिये-दीजिये' इस प्रकार शब्द होने लगा ॥३१॥ तदुपरान्त प्रातःकाल ब्रह्मा, महादेव, अनन्त शेष आदि देवगण तथा वसुदेव शीघ्रतापूर्वक सवारी पर चढ़ने लगे ॥३२॥ राजा उग्रसेन तथा वसुदेव ने शीघ्रता से श्रीकृष्ण एवं सती रुक्मिणी को यात्रा करवायी ॥३३॥ रुक्मिणी की माता सुभद्रा पुत्री को अपनी छाती से लगाकर सखियों और बन्धुओं के साथ ऊँचे स्वर में रोने लगी, फिर बोली ॥३४॥

सुभद्रा ने कहा—बेटी ! रानी माँ को छोड़कर कहाँ जा रही हो ? तुम्हें त्यागकर मैं कैसे जीऊँगी ? और तुम भी (मुझे छोड़कर) कैसे जीओगी ? ॥३५॥ माया से कन्या रूप बनी हुई महालक्ष्मी तुम कृष्ण की पतिव्रता पत्नी बनकर मेरे घर से वसुदेव के घर जा रही हो ॥३६॥ यह कहकर शोक से (सुभद्रा ने) कन्या को आँसुओं से भिगो दिया । भीष्मक अश्रुपूर्ण नेत्रों से कृष्ण को कन्या समर्पित करके त्रुटि के लिए क्षमा-याचना कर जोर-जोर से रोने लगे । रुक्मिणी देवी भी रोने लगीं और माया से कृष्ण भी रोने लगे ॥३७-३८॥ वसुदेव ने पुत्र और पुत्रवधू को रथ पर चढ़ाया । इस बीच राजा ने जामाता को दहेज दिया, जिसमें एक हजार हाथी, छह गुने घोड़े, एक हजार दासियाँ, सौ-सौ नौकर, एक सहस्र रत्न, बहुमूल्य रत्नों का आभूषण, आदर के

रत्नानां च सहस्रं च वैवामूल्यरत्नभूषणम् । स्वर्णानां परिशुद्धानां पञ्चलक्षं च सादरम् ॥४१॥
तोयभोजनपात्राणि कृतानि विश्वकर्मणा । सौवर्णानि च रम्याणि सुरभीः प्रददौ मुदा ॥४२॥
दुग्धवतीनां धेनूनां सवत्सानां सहस्रकम् । अमूल्यानि च रम्याणि वह्निशुद्धांशुकानि च ॥४३॥
वसुदेवश्चोग्रसेनो देवैश्च मुनिभिः सह । प्रहृष्टवदनः शीघ्रं द्वारकाभिमुखं ययौ ॥४४॥
प्रविश्य स्वपुरीं रम्यां कारयामास मङ्गलम् । वाद्यं च वादयामास सुन्दरं सुमनोहरम् ॥४५॥
देवकी रोहिणी रम्या यशोदा नन्दगेहिनी । अदितिश्च दितिश्चैव तथा च वरकामिनी ॥४६॥
श्रीकृष्णं रुक्मिणीं रम्यां विलोक्य च पुनः पुनः । गृहं प्रवेशयामास कारयामास मङ्गलम् ॥४७॥
चतुर्विधं भोजयित्वा देवांश्च मुनिपुंगवान् । नृपांश्च बान्धवांश्चैव परीहारं चकार च ॥४८॥
भट्टेभ्यो ब्राह्मणेभ्योऽपि ददौ रत्नादिकं मुदा । तांश्चापि भोजयामास परितुष्टांश्च[1] सस्मितान् ॥४९॥
एवं भुक्त्वा धनं लब्ध्वा ययुः सर्वे गृहं मुदा । मङ्गलं कारयामास वसुदेवस्य वल्लभा ॥५०॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० रुक्मिण्युद्वाहो
नाम नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०९॥

●

---

साथ पाँच लाख शुद्ध सुवर्ण (मुद्रा), विश्वकर्मा द्वारा निर्मित जल एवं भोजन के रमणीय स्वर्णपात्र और गौएँ हर्षपूर्वक दी गयी थीं। वे गौएँ दुधारू थीं। उनके बछड़े एक हजार थे। सुन्दर एवं अग्नितुल्य चमकनेवाले बहुमूल्यक वस्त्र दिये। वसुदेव और उग्रसेन देवताओं और मुनियों के साथ प्रसन्नमुख होकर द्वारका की ओर शीघ्रता से जाने लगे ॥३९-४४॥ अपनी नगरी में प्रवेश करके मंगल करवाया और सुन्दर एवं मनोरम बाजे बजवाये ॥४५॥ देवकी, रमणीय रोहिणी, नन्द-पत्नी यशोदा, अदिति, दिति तथा श्रेष्ठ स्त्रियाँ श्रीकृष्ण और रमणीय रुक्मिणी को बार-बार देखकर घर में ले गयीं तथा मंगलाचार करने लगीं ॥४६-४७॥ देवताओं, मुनिश्रेष्ठों, राजाओं तथा बन्धुओं को चार प्रकार का भोजन कराकर त्रुटि के लिए क्षमायाचना की ॥४८॥ भाटों और ब्राह्मणों को हर्ष से रत्न आदि दिये और सन्तुष्ट एवं मुसकराते हुए उन लोगों को भी भोजन कराया ॥४९॥ इस प्रकार भोजन करके धन पाकर सब लोग हर्षपूर्वक घर चले। वसुदेव की पत्नी ने मंगलाचार कराया ॥५०॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद-नारायण के संवाद में
रुक्मिणी-विवाह वर्णन नामक एक सौ नवाँ अध्याय समाप्त ॥१०९॥

●

---

१ क. °तुष्टान्प्रशंसितान् ।

# अथ दशाधिकशततमोऽध्यायः

नारायण उवाच

आगतेषु गतेष्वेवं साङ्गे मङ्गलकर्मणि । नन्दो यशोदया सार्धं पुत्राभ्याशं समाययौ ॥१॥

यशोदोवाच

ज्ञानं च भवता दत्तं पित्रे नन्दाय माधव । मां चापि मातरं वत्स कृपां कुरु कृपानिधे ॥२॥
मामुद्धर महाभाग धरोद्धारणकारण । भवाब्धितरणे भीमे भीतां च पतितामपि ॥३॥
मायामयी सा प्रकृतिर्भवाब्धितरणे तरिः । त्वमेव कर्णधारश्च भक्तोत्तीर्णे कृपामय ॥४॥
यशोदावचनं श्रुत्वा जहास पुरुषोत्तमः । उवाच मातरं भक्त्या ज्ञानिनां च गुरोर्गुरुः ॥५॥

श्रीभगवानुवाच

ज्ञानं[1] योगात्मकं मातर्ज्ञानं च विषयात्मकम् । ज्ञानं भक्त्यात्मकं श्रेष्ठं मद्दास्यकारणं शुभम् ॥६॥
ज्ञानं पञ्चविधं प्रोक्तं सर्ववेदेषु संमतम् । भक्त्यात्मकं सर्वपरं तेषां च लक्षणं शृणु ॥७॥

---

# अध्याय ११०

## राधा और यशोदा का संवाद आरम्भ

**नारायण बोले**—इस प्रकार मांगलिक कार्य के अवसर पर आये हुए लोगों के चले जाने पर नन्द यशोदा के साथ पुत्र के समीप गये ॥१॥

**यशोदा बोलीं**—हे माधव ! आपने पिता नन्द को ज्ञान दे दिया, अब हे वत्स ! कृपानिधान ! मुझ माता पर भी कृपा करो ॥२॥ महाभाग ! पृथ्वी का उद्धार करनेवाले ! भयंकर भव-सागर के पार करने में भयभीत एवं पतित मेरा भी उद्धार करो ॥३॥ वह मायामयी प्रकृति ही भवसागर से पार करने में नौका है और हे कृपामय ! तुम्हीं कर्णधार हो ॥४॥ यशोदा की बात सुनकर पुरुषोत्तम हँसने लगे। फिर ज्ञानियों के गुरु के भी गुरु ने भक्ति के साथ माता से कहा ॥५॥

**श्रीभगवान् बोले**—माता ! ज्ञान योग-सम्बन्धी होता है और ज्ञान विषय-सम्बन्धी होता है, पर भक्ति-सम्बन्धी ज्ञान श्रेष्ठ होता है। वह मेरे दास्यभाव का पवित्र कारण है ॥६॥ सभी वेदों में ज्ञान पाँच प्रकार का बताया गया है। परन्तु भक्ति-सम्बन्धी ज्ञान सबसे श्रेष्ठ है। उन सबका लक्षण सुनो ॥७॥ भूख, प्यास आदि

---

१ क. सिद्धियों।

क्षुत्पिपासादिकानां च खण्डनं स्वान्तशोधनम् । नाडीनां शोधनं चैव चक्राणामपि भेदनम् ॥८॥
शक्तिकुण्डलिनीयुक्तमीश्वरं चिन्तयेत्ततः । इन्द्रियाणां च दमनं लोभादीनां च वर्जनम् ॥९॥
मूलाधारं स्वधिष्ठानं मणिपूरमनाहतम् । विशुद्धं च तथा ज्ञाख्यं चक्रषट्कं प्रकीर्तितम् ॥१०॥
नारीणामपि दुर्बोधं मूर्खाणां च विशेषतः । ज्ञानं योगात्मकं साध्वि सिद्धानां साध्यमीप्सितम् ॥११॥
जन्तूनामपि सर्वेषां ज्ञानं स्वविषये तथा । सन्तः सर्वे विजानन्ति स्वेच्छया च मदीयया ॥१२॥
सिद्ध्यात्मकं च सिद्धानां नियुक्तं सर्वकर्मसु । चतुस्त्रिंशत्सु सिद्धानां साधनं बोधनं तथा ॥१३॥
ज्ञानं मोक्षात्मकं सिद्धं परं निर्वाणकारणम् । निवृत्तिमार्गमारूढं भक्तस्तत्रैव वाञ्छति ॥१४॥
भक्त्यात्मकं च यज्ज्ञानं तुभ्यं राधा प्रदास्यति । तस्यां च मानवं भावं त्यक्त्वा ज्ञानं करिष्यति ॥१५॥
नन्दाय दत्तं यज्ज्ञानं तच्च तुभ्यं प्रदास्यति । गच्छ नन्दव्रजं मातर्नन्देन सह सादरम् ॥१६॥
इत्युक्त्वा विनयं कृत्वा जगामाभ्यन्तरं हरिः । नन्दो यशोदया सार्धं प्रययौ कदलीवनम् ॥१७॥
ददर्श राधां तत्रैव निद्रितां त्यक्तभूषणाम् । दधानां शुक्लवस्त्रं च निराहारां कृशोदरीम् ॥१८॥
पङ्कस्थे पङ्कजदले सजले चन्दनार्चिते । शयानां शुष्कितौष्ठीं च साश्रुनेत्रां च मूर्च्छिताम् ॥१९॥
ध्यायमानां पदाम्भोजं कृष्णस्य परमात्मनः । बाह्यज्ञानपरित्यक्तां तन्निविष्टैकमानसाम् ॥२०॥

---

पर विजय, अपने अभ्यन्तर का शोधन, नाड़ियों का शोधन तथा चक्रों का भेदन करके शक्तिकुण्डलिनीयुक्त ईश्वर का चिन्तन करे। इन्द्रियों का दमन और लोभ आदि का त्याग करे ॥८-९॥ मूलाधार, अपना अधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध तथा ज्ञ—ये छह चक्र कहलाते हैं ॥१०॥ ये स्त्रियों तथा मूर्खों के लिए विशेषरूप से दुर्बोध (कठिनाई से जानने योग्य) हैं। हे पतिव्रते ! योगात्मक ज्ञान सिद्धों के लिए साध्य एवं वांछित है ।११॥ अपने (आत्मा के) विषय में ज्ञान सभी जन्तुओं के लिए अपेक्षित है। मेरी इच्छा से सभी सज्जन लोग अपने को जानते हैं ॥१२॥ सिद्धि सम्बन्धी ज्ञान सिद्धों के लिए सभी कर्मों में नियुक्त है। चौंतीस प्रकार के सिद्धों के लिए साधन तथा ज्ञान अपेक्षित है ॥१३॥ मोक्षात्मक ज्ञान सिद्ध है और परम निर्वाणकारक है। ऐसा ज्ञान निवृत्तिमार्ग पर आरूढ़ होता है। भक्त पुरुष उसको नहीं ही चाहता है ॥१४॥ भक्त्यात्मक जो ज्ञान है, वह तुम्हें राधा प्रदान करेगी। उसके प्रति मनुष्य-भाव को त्यागकर तुम ज्ञान प्राप्त करोगी ॥१५॥ नन्द को जो ज्ञान दिया गया है, वही तुम्हें प्रदान करेगी। माता ! तुम नन्द के साथ आदरपूर्वक नन्द के व्रज में जाओ ॥१६॥ यह कहकर विनम्रता दिखाकर कृष्ण भीतर चले गये और नन्द यशोदा के साथ कदली-वन को गये ॥१७॥ वहाँ उन्होंने राधा को देखा, जो पंकस्थ चन्दनचर्चित जलयुक्त कमल-दल की शय्या पर अचेत हो शयन कर रही थीं। राधा ने आभूषणों को उतार दिया था। वे उज्ज्वल वस्त्र पहने हुई थीं। निराहार होने से उनका उदर कृश हो गया, ओंठ सूख गये थे, नेत्रों में आँसू भरे थे और मूर्च्छा आती थी। वे परमात्मा श्रीकृष्ण के

पश्यन्तीं सस्मितं कान्तं पश्यन्तीं तन्मुखाम्बुजम् । हसन्तीं च रुदन्तीं च स्वप्ने कान्तसमीपतः ॥२१॥
सखीभिः परितः शश्वत्सेवितां श्वेतचामरैः । दिवानिशं रक्षितां च गोपीभिः शतकोटिभिः ॥२२॥
सावधानपराभिश्च वेत्रहस्ताभिरीश्वरीम् । सप्तद्वारेषु युक्ताभिः परितः प्राङ्गणेषु च ॥२३॥
तां दृष्ट्वा विस्मयं प्राप्य सभार्यो नन्द एव च । ननाम परया भक्त्या दण्डवत्प्रणिपत्य च ॥२४॥
निद्रां त्यक्त्वा च सहसा बुबुधे सेश्वरेच्छया । क्षणेन चेतनां प्राप विषयज्ञानवर्जिताम् ॥२५॥
पुरतो दंपती दृष्ट्वा पप्रच्छ सादरं सती । उवाच मधुरं चैवं तत्रैव सखिसंसदि ॥२६॥

## राधिकोवाच

कस्त्वं चात्र समायातो ब्रूहि वा किं प्रयोजनम् । न च मे विषयज्ञानं न जानामि नरं पशुम् ॥२७॥
किं जलं वा स्थलं किंवा किंवा नक्तं दिनं शृणु । स्त्रियं पुमांसं क्लीबं वा नाहं जानामि भेदकम् ॥२८॥
राधिकावचनं श्रुत्वा नन्दश्च विस्मयं ययौ । भीता यशोदा निकटं गोपीसंभाषिता ययौ ॥२९॥
उवास निकटे तस्याः समुवाच प्रियं वचः । उवास तत्र नन्दश्च गोपीदत्तासनेन च ॥३०॥

## यशोदोवाच

चेतनं कुरु राधे त्वमात्मानं रक्ष यत्नतः । द्रक्ष्यसि प्राणनाथं च संप्राप्ते मङ्गले दिने ॥३१॥

---

चरण-कमल का ध्यान कर रही थीं, उनका बाहरी ज्ञान लुप्त था, वे एकमात्र उन्हीं (श्रीकृष्ण) में निविष्टचित्त थी। वे स्वप्न में मुसकराते हुए प्रियतम को देख रही थी और उन्हीं के मुखकमल को निहार रही थीं। प्रियतम के समीप कभी हँसती तो कभी रोती थीं। चारों ओर सखियाँ श्वेत चामरों से उनकी निरन्तर सेवा कर रही थी। सैकड़ों करोड़ गोपियाँ, जिनके हाथों में बेंत थे और जो आँगन के चारों तरफ सात द्वारों में नियुक्त होकर अत्यन्त सावधान थीं, दिन-रात राधा की रखवाली कर रही थीं ॥१८-२३॥ उनको देखकर पत्नी समेत नन्द ने आश्चर्य में पड़कर परम भक्ति से नमस्कार तथा दण्डवत् प्रणाम किया ॥२४॥ तब ईश्वर (कृष्ण) की इच्छा से वह (राधा) एकाएक निद्रा त्याग जाग उठीं और क्षणभर में विषय-ज्ञान से रहित चेतना प्राप्त की। सामने दम्पती को देखकर सती ने आदर के साथ पूछा और वहीं सखियों की सभा में मधुर वचन कहा ॥२५-२६॥

**राधिका बोलीं**—तुम कौन हो? यहाँ किस प्रयोजन से आये हो? बताओ। मुझे विषय का ज्ञान नहीं है। मैं मनुष्य या पशु को भी नहीं जान रही हूँ ॥२७॥ सुनो, मैं यह भी नहीं जानती कि कौन जल है या कौन स्थल है, दिन है कि रात है। यहाँ तक कि स्त्री, पुरुष या नपुंसक—इनमें कोई भेद भी मैं नहीं जानती ॥२८॥ राधिका की बात सुनकर नन्द को महान् आश्चर्य हुआ। गोपी की बात से यशोदा डरते-डरते उनके समीप गयीं और उनके पास बैठकर प्रिय वचन बोलीं। वहाँ नन्द भी गोपी के दिये हुए आसन पर बैठ गये ॥२९-३०॥

**यशोदा बोलीं**—राधे! चेत करो; तुम यत्नपूर्वक अपनी रक्षा करो; क्योंकि मंगल दिन आने पर तुम

त्वत्तो विश्वं पवित्रं च स्वकुलं च सुरेश्वरि । गोप्यश्च पुण्यवत्यश्च त्वत्पादाम्बुजसेवया ॥३२॥
लोका गायन्ति त्वत्कीर्ति तीर्थपूतां सुमङ्गलाम् । सन्तो वेदाश्च चत्वारः पुराणानि पुरातनीम् ॥३३॥
अहं यशोदा नन्दोऽयं बुद्धिरूपे निबोध माम् । वृषभानसुता त्वं च मां निशामय सुव्रते ॥३४॥
द्वारकानगराद्भद्रे श्रीकृष्णसंनिधानतः । तवान्तिकमागताऽहं प्रेरिता हरिणा सति ॥३५॥
शृणु मङ्गलवार्तां च मङ्गलं च गदाभृतः । आराद्द्रक्ष्यसि कृष्णं तं हे देवि चेतनं कुरु ॥३६॥
भक्त्यात्मकं परिज्ञानं देहि मह्यं च सांप्रतम् । त्वद्भर्तुरुपदेशेन त्वत्समीपं समागतौ ॥३७॥
पश्चदायास्यति हरिस्त्वां मुहूर्तं वरानने । भविष्यत्यचिरेणैव श्रीदाम्नः शापमोचनम् ॥३८॥
यशोदावचनं श्रुत्वा वार्तां प्राप्य गदाभृतः । श्रीकृष्णनामस्मरणाद्दूरीभूतममङ्गलम् ॥३९॥
संप्राप चेतनं राधा संभाव्य कृष्णमातरम् । उवाच मधुरं शान्ता लौकिकीं भक्तिमुत्तमाम् ॥४०॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० राधायशोदासं०
दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११०॥

●

---

अपने प्राणनाथ के दर्शन करोगी ॥३१॥ हे सुरेश्वरि ! तुमने विश्व को तथा अपने कुल को पवित्र कर दिया है। तुम्हारे चरण-कमलों की सेवा से गोपियाँ पुण्यवती हो गयी हैं ॥३२॥ जनसमूह, संतगण, चारों वेद और पुराण तुम्हारी प्राचीन एवं तीर्थों की भाँति पवित्र सुमंगल कीर्ति का गान करेंगे ॥३३॥ बुद्धिरूपे ! मैं यशोदा हूँ, ये नन्द हैं, और तुम वृषभाननन्दिनी राधा हो । सुव्रते ! मेरी बात सुनो ॥३४॥ भद्रे ! मैं द्वारकानगरी से श्रीकृष्ण के पास से तुम्हारे निकट आयी हूँ । सती ! श्रीहरि ने ही मुझे तुम्हारे पास भेजा है ॥३५॥ अब तुम उन गदाधर भगवान् का मंगल-समाचार एवं संदेश सुनो । तुम्हें शीघ्र ही उन श्रीकृष्ण के दर्शन होंगे । देवि ! चेतना में आ जाओ ॥३६॥ इस समय मुझे भक्त्यात्मक ज्ञान का उपदेश दो । हम दोनों तुम्हारे पति के उपदेश से तुम्हारे पास आये हैं ॥३७॥ सुमुखी ! इसके बाद श्रीहरि तुम्हारे पास आयेंगे और तुम शीघ्र ही श्रीदामा के शाप से मुक्त हो जाओगी ॥३८॥ यशोदा की बात सुनकर और गदाधर का समाचार पाकर श्रीकृष्ण के नामस्मरण से राधा का अमंगल दूर हो गया ॥३९॥ राधा ने चेतना प्राप्त की और शान्त होकर कृष्ण की माता का सम्मान करके मधुर वाणी से उत्तम लौकिक भक्ति का वर्णन किया ॥४०॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद-नारायण-संवाद में
राधा और यशोदा के वार्तालाप में एक सौ दसवाँ अध्याय समाप्त ॥११०॥

●

# अथैकादशाधिकशततमोऽध्यायः

राधिकोवाच

ज्ञानात्मकश्च परमो ब्रह्मेशशेषपूजितः । ज्ञानं च न ददौ तुभ्यं मन्मूलं प्रेषिता सति ॥१॥
तेनैव च्छद्मना तुभ्यं[1] भावार्थं बोधयामि किम् । वेदाः सन्तश्च भावार्थं नैव जानन्ति तस्य च ॥२॥
स्त्रीजातिरबला मूढा वस्तुतोऽज्ञानतत्परा । ततस्तद्विरहेणैव संततं हतचेतना ॥३॥
किं वाऽहं कथयिष्यामि ज्ञानं पञ्चविधेषु च । भक्त्यात्मकं सर्वपरं निबोध कथयामि ते ॥४॥
श्रीकृष्णस्य वरेणापि न[2] साधो निर्भयो भव । गोलोके चापि पतनं संभवेच्च कुयोगिनः ॥५॥
तस्मात्सर्वं परित्यज्य भजस्व परमेश्वरम् । पुत्रबुद्धिं परित्यज्य ब्रह्मरूपं निशामय ॥६॥
यशोदे भवती सर्वं परित्यज्य न नश्वरम् । गत्वा वृन्दावनं रम्यं[3] पुण्यक्षेत्रं च भारतम् ॥७॥
कृत्वा त्रिकालस्नानं च निर्मले यमुनाजले । कृत्वाऽष्टदलपद्मं च स्निग्धेन चन्दनेन च ॥८॥
ध्यानेन गर्गदत्तेन शुद्धेन मनसा सति । संपूज्य परमानन्दं सानन्दं व्रज तत्पदम् ॥९॥
कृत्वा निकृन्तनं कर्म पितृभिः शतकैः सह । वैष्णवेन सहाऽऽलापं कुरुष्व सततं सति ॥१०॥

---

# अध्याय १११

**राधिका बोलीं**—हे पतिव्रते ! भगवान् कृष्ण परम ज्ञानस्वरूप तथा ब्रह्मा, शंकर और अनन्तशेष के वन्दनीय हैं। उन्होंने तुमको ज्ञान नहीं दिया और मेरे समीप भेज दिया ॥१॥ उसी बहाने मैं तुमको उनके भाव का तात्पर्य समझा रही हूँ। वेद तथा सन्त गण भी उनके भाव का तात्पर्य नहीं जानते हैं ॥२॥ मैं तो जाति की स्त्री, अबला, मूढ़, वस्तुतः अज्ञान में तत्पर रहनेवाली हूँ और उन्हीं के विरह से मेरी चेतना सतत नष्ट हुई रहती है ॥३॥ ऐसी दशा में पाँच प्रकार के ज्ञानों के विषय में मैं क्या कह सकती हूँ। तो भी भक्त्यात्मक जो सर्वश्रेष्ठ ज्ञान है, उसे मैं बता रही हूँ, सुनो ॥४॥ हे साधो ! श्रीकृष्ण के वरदान से भी निर्भय मत हो। कुयोगी का गोलोक से भी पतन हो जाना संभव है ॥५॥ इसलिए सबका परित्याग करके परमेश्वर का भजन करो। पुत्र का भाव त्यागकर ब्रह्मरूप का श्रवण करो ॥६॥ हे यशोदे ! आप इन सारे विनाशशील पदार्थों का परित्याग करके पुण्य क्षेत्र भारत में स्थित रमणीय वृन्दावन जाइये ॥७॥ वहाँ निर्मल यमुना-जल में त्रिकाल स्नान करके सुकोमल चन्दन से अष्टदल कमल बनाकर शुद्ध मन से गर्ग-प्रदत्त ध्यान द्वारा परमानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण का भली-भाँति पूजन करो और आनन्दपूर्वक उनके परम पद में लीन हो जाओ ॥८-९॥ सती ! सौ पूर्व पुरुषों के साथ अपने कर्म का उच्छेद करके सदा वैष्णवों के ही साथ वार्तालाप करो ॥१०॥

---

१ ख. नेतुं । २ ख. त्वं । ३ क. शुद्धं ।

वरं हुतवहज्वालां भक्तो वाञ्छति पञ्जरम् । वरं च कण्टके वासं वरं च विषभक्षणम् ॥११॥
हरिभक्तिविहीनानां न सङ्गं नाशकारणम् । स्वयं नष्टो भक्तिहीनो बुद्धिभेदं करोति च ॥१२॥
अङ्कुरो भक्तिवृक्षस्य भक्तसङ्गेन वर्धते । परं हरिकथालापपीयूषासेचनेन च ॥१३॥
अभक्तालापदीपाग्निज्वालायाः कलयापि च । अङ्कुरः शुष्कतां याति पुनः सेकेन वर्धते ॥१४॥
तस्मादभक्तसङ्गं च सावधानः परित्यज । यथा दृष्ट्वा कालसर्पं नरो भीत्वा पलायते ॥१५॥
यशोदे च प्रयत्नेन स्वात्मनः पुत्रमीश्वरम् । राम नारायणानन्त मुकुन्द मधुसूदन ॥१६॥
कृष्ण केशव कंसारे हरे वैकुण्ठ वामन । इत्येकादश नामानि पठेद्वा पाठयेदिति ॥१७॥
जन्मकोटिसहस्राणां पातकादेव मुच्यते । राशब्दो विश्ववचनो मश्चापीश्वरवाचकः ॥१८॥
विश्वानामीश्वरो यो हि तेन रामः प्रकीर्तितः । रमते रमया सार्धं तेन रामं विदुर्बुधाः ॥१९॥
रमाया रमणस्थानं रामं रामविदो विदुः । राश्चेति लक्ष्मीवचनो मश्चापीश्वरवाचकः ॥२०॥
लक्ष्मीपतिं गतिं रामं प्रवदन्ति मनीषिणः । नाम्नां सहस्रं दिव्यानां स्मरणे यत्फलं लभेत् ॥२१॥
तत्फलं लभते नूनं रामोच्चारणमात्रतः । सारूप्यमुक्तिवचनो सारेति च विदुर्बुधाः ॥२२॥
यो देवोऽप्ययनं तस्य स च नारायणः स्मृतः । नाराश्च कृतपापाश्चाप्ययनं गमनं स्मृतम् ॥२३॥

---

भक्त अग्नि की ज्वाला, पिंजरे में बंद होना, काँटों में रहना और विष खाना स्वीकार करता है, परन्तु हरि-भक्तिशून्य लोगों का संग ठीक नहीं समझता है, क्योंकि वह नाश का कारण होता है। भक्ति से रहित पुरुष स्वयं तो नष्ट होता ही है, साथ ही दूसरे की बुद्धि में भेद उत्पन्न कर देता है ॥११-१२॥ भक्त के संग से तथा हरि-कथाला रूपी अमृत के सिञ्चन से भक्ति रूपी वृक्ष का अंकुर बढ़ता है; किन्तु भक्तिहीनों के साथ वार्तालाप रूपी प्रदीप्ताग्नि की ज्वाला की एक कला के स्पर्श से भी वह अंकुर सूख जाता है, फिर सींचने से ही उसकी वृद्धि होती है ॥१३-१४॥ इसलिए भक्ति-हीनों का संग सावधानी से उसी प्रकार त्याग दो जैसे मनुष्य काल-सर्प को देखकर डरकर भाग जाता है ॥१५॥ हे यशोदे! अपने पुत्र ईश्वर का प्रयत्नपूर्वक भजन करो। राम, नारायण, अनन्त, मुकुन्द, मधुसूदन, कृष्ण, केशव, कंसारि, हरि, वैकुण्ठ और वामन—इन ग्यारह नामों को जो पढ़ता या पढ़ाता है, वह हजारों करोड़ जन्मों के पाप से मुक्त हो जाता है। 'रा' शब्द विश्ववाची और 'म' ईश्वरवाचक है, इसलिए जो लोगों का ईश्वर है, उसी कारण 'राम' कहा जाता है। वह रमा के साथ रमण करता है, इसी कारण विद्वान् लोग उसे 'राम' कहते हैं ॥१६-१९॥ रमा का रमण-स्थान होने के कारण रामतत्त्ववेत्ता 'राम' बतलाते हैं। 'रा' लक्ष्मीवाची और 'म' ईश्वरवाचक है; इसलिए मनीषीगण लक्ष्मी-पति को 'राम' कहते हैं। सहस्रों दिव्य नामों के स्मरण से जो फल प्राप्त होता है, वह फल निश्चय ही 'राम' शब्द के उच्चारणमात्र से मिल जाता है ॥२०-२१½॥ विद्वानों का कथन है कि 'नार' शब्द का अर्थ सारूप्य-मुक्ति है; उसका जो देवता 'अयन' है, उसे नारायण कहते हैं। किये हुए पा को नार' और गमन को 'अयन' कहते हैं। उन पापों का जिससे गमन होता है, वही ये नारायण कहे जाते हैं। एक बार 'नारायण' शब्द के

यतो हि गमनं तेषां सोऽयं नारायणः स्मृतः । सकृन्नारायणेत्युक्त्वा पुमान्कल्पशतत्रयम् ॥२४॥
गङ्गादिसर्वतीर्थेषु स्नातो भवति निश्चितम् । नारं च मोक्षणं पुण्यमयनं ज्ञानमीप्सितम् ॥२५॥
तयोर्ज्ञानं भवेद्यस्मात्सोऽयं नारायणः प्रभुः । नास्त्यन्तो यस्य वेदेषु पुराणेषु चतुर्षु च ॥२६॥
शास्त्रेष्वन्येषु योगेषु तेनानन्तं विदुर्बुधाः । मुकुमध्ययमानं च निर्वाणं मोक्षवाचकम् ॥२७॥
तद्ददाति च यो देवो मुकुंदस्तेन कीर्तितः । मुकुं भक्तिरसप्रेमवचनं वेदसंमतम् ॥२८॥
यस्तं ददाति भक्तेभ्यो मुकुंदस्तेन कीर्तितः । सूदनं मधुदैत्यस्य यस्मात्स मधुसूदनः ॥२९॥
इति सन्तो वदन्तीशं वेदे भिन्नार्थमीप्सितम् । मधु क्लीबं च माध्वीके कृतकर्मशुभाशुभे ॥३०॥
भक्तानां कर्मणां चैव सूदनं मधुसूदनः । परिणामाशुभं कर्म भ्रान्तानां मधुरं मधु ॥३१॥
करोति सूदनं यो हि स एव मधुसूदनः । कृषिरुत्कृष्टवचनो णश्च सद्भक्तिवाचकः ॥३२॥
अश्चापि दातृवचनः कृष्णं तेन विदुर्बुधाः । कृषिश्च परमानन्दे णश्च तद्दास्यकर्मणि ॥३३॥
तयोर्दाता च यो देवस्तेन कृष्णः प्रकीर्तितः । कोटिजन्मार्जिते पापे कृषिःक्लेशे च वर्तते ॥३४॥
भक्तानां णश्च निर्वाणे तेन कृष्णः प्रकीर्तितः । नाम्नां सहस्रं दिव्यानां त्रिरावृत्त्या चयत्फलम् ॥३५॥
एकावृत्त्या तु कृष्णस्य तत्फलं लभते नरः । कृष्णनाम्नः परं नाम न भूतं न भविष्यति ॥३६॥

---

उच्चारण से मनुष्य तीन सौ कल्पों तक गंगा आदि समस्त तीर्थों में स्नान के फल का भागी होता है। 'नार' को पुण्य मोक्ष और 'अयन' को अभीष्ट ज्ञान कहते हैं। उन दोनों का ज्ञान जिससे हो, वे ही ये प्रभु नारायण हैं। जिसका चारों वेदों, पुराणों, शास्त्रों तथा अन्यान्य योग ग्रन्थों में अन्त नहीं मिलता; इसी कारण विद्वान् लोग उसका नाम 'अनन्त' बतलाते हैं। 'मुकु' अध्ययमान, निर्वाण तथा मोक्षवाचक है, उसे जो देवता देता है, उसी कारण वह 'मुकुन्द' कहा जाता है। 'मुकु' वेदसम्मत भक्तिरसपूर्ण प्रेमयुक्त वचन को कहते हैं, उसे जो भक्तों को देता है, वह 'मुकुन्द' कहलाता है। चूंकि वे मधु दैत्य का हनन करनेवाले हैं, इसलिए उनका एक नाम 'मधुसूदन' है॥२२-२९॥ यों सन्त लोग वेद में विभिन्न अर्थ का प्रतिपादन करते हैं। 'मधु' नपुंसकलिंग तथा किये हुए शुभाशुभ कर्म और माध्वीक (महुए की मदिरा) का वाचक है, अतः उसके तथा भक्तों के कर्मों के सूदन करनेवाले को 'मधुसूदन' कहते हैं। जो कर्म परिणाम में अशुभ और भ्रान्तो के लिए मधुर है, उसे 'मधु' कहते हैं, उसका जो सूदन करता है, वही 'मधुसूदन' है। 'कृषि' उत्कृष्टवाची, 'ण' सद्भक्तिवाचक और 'अ' दातृवाचक है; इसी से विद्वान् लोग उसे 'कृष्ण' कहते हैं। 'कृषि' परमानन्दवाचक और 'ण' उनके दास्यकर्म का वाचक है। उन दोनों के देनेवाले जो देव हैं, इसी से 'वे' कृष्ण कहलाये। करोड़ों जन्म के अर्जित पाप तथा क्लेश का वाचक 'कृषि' है और 'ण' भक्तों के निर्वाण का वाचक है, इसी से कृष्ण कहलाये। हजार दिव्य नामों के तीन बार आवृत्ति करने से जो फल मिलता है, वह फल कृष्ण नाम की एक आवृत्ति से मनुष्य पा जाता है। कृष्ण नाम से श्रेष्ठ नाम

सर्वेभ्यश्च परं नाम कृष्णेति वैदिका विदुः । कृष्ण कृष्णेति हे गोपी यस्तं स्मरति नित्यशः ॥३७॥
जलं भित्त्वा यथा पद्मं नरकादुद्धरेच्च[1] सः । कृष्णेति मङ्गलं नाम यस्य वाचि प्रवर्तते ॥३८॥
भस्मीभवन्ति सद्यस्तु महापातककोटयः । अश्वमेघसहस्रेभ्यः फलं कृष्णजपस्य च ॥३९॥
वरं तेभ्यः पुनर्जन्म नातो भक्तपुनर्भवः । सर्वेषामपि यज्ञानां लक्षाणि च व्रतानि च ॥४०॥
तीर्थस्नानानि सर्वाणि तपांस्यनशनानि च । वेदपाठसहस्राणि प्रादक्षिण्यं भुवः शतम् ॥४१॥
कृष्णनामजपस्यास्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् । तेषां लोभाद्भवेत्स्वर्गफलं च सुचिरं नृणाम् ॥४२॥
स्वर्गादवश्यं पुंसश्च जपकर्तुर्हरेः पदम् । के जले सर्वदेहेऽपि शयनं यस्य चाऽऽत्मनः ॥४३॥
वदन्ति वैदिकाः सर्वे तं देवं केशवं परम् । कंसश्च पातके विघ्ने रोगे शोके च दानवे ॥४४॥
तेषामरिर्निहन्ता च स कंसारिः प्रकीर्तितः । रुद्ररूपेण संहर्ता विश्वानामपि नित्यशः ॥४५॥
भक्तानां पातकानां च हरिस्तेन प्रकीर्तितः । मा च ब्रह्मस्वरूपा या मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥४६॥
नारायणीति विख्याता विष्णुमाया सनातनी । महालक्ष्मीस्वरूपा च वेदमाता सरस्वती ॥
राधा वसुंधरा गङ्गा तासां स्वामी च माधवः ॥४७॥

---

न हुआ है और न होगा ॥३०-३६॥ वैदिक विद्वानों का कहना है कि 'कृष्ण' नाम सबसे श्रेष्ठ है । हे गोपी ! जो व्यक्ति नित्य 'कृष्ण', 'कृष्ण' कहकर उनका स्मरण करता है, उसका वे उसी प्रकार नरक से उद्धार करते हैं जैसे जल को भेदकर कमल निकल आता है । 'कृष्ण' यह मंगलमय नाम जिसकी वाणी में विद्यमान रहता है, उसके करोड़ों महापातक तुरन्त भस्म हो जाते हैं । 'कृष्ण' नाम का जप हजारों अश्वमेध के फल से श्रेष्ठ है क्योंकि उनसे पुनर्जन्म की प्राप्ति होती है, पर नाम-जप से भक्त आवागमन से मुक्त हो जाता है । समस्त यज्ञ, लाखों व्रत, तीर्थस्नान, सभी प्रकार के तप, उपवास, सहस्रों वेदपाठ, सैकड़ों बार पृथ्वी की प्रदक्षिणा—ये सभी इस 'कृष्ण' नाम-जप की सोलहवीं कला की समानता नहीं कर सकते । उन उपर्युक्त कर्मों के लोभ से मनुष्यों को चिरकाल के लिए स्वर्गरूप फल की प्राप्ति होती है और उस स्वर्ग से पतन अवश्यम्भावी है. किन्तु जपकर्ता पुरुष श्रीहरि के परम पद को प्राप्त कर लेता है ॥३७-४२½॥ 'क' जल को कहते हैं, उस जल में तथा समस्त शरीरों में भी जो आत्मा शयन करता है, उस देव को सभी वैदिक लोग 'केशव' कहते हैं । 'कंस' शब्द का प्रयोग पातक, विघ्न, रोग, शोक और दानव के अर्थ में होता है, उनका जो 'अरि' अर्थात् हनन करनेवाला है, वह 'कंसारि' कहा जाता है । जो रुद्र रूप से नित्य विश्वों का तथा भक्तों के पातकों का संहार करते रहते हैं, इसी कारण वे 'हरि' कहलाते हैं । जो ब्रह्मस्वरूपा 'मा' मूल प्रकृति, ईश्वरी, नारायणी, सनातनी, विष्णु-माया, महालक्ष्मीस्वरूपा, वेदमाता सरस्वती, राधा, वसुन्धरा और गंगा नाम से विख्यात हैं, उनके स्वामी

---

१ क. °द्वराम्यहम् ।

ब्रह्मेशशेषादिभिर्वन्द्यं ध्यानैर्न किंचित्सनकादिभिश्च।
वेदैः पुराणैर्न निरूपितं च भजस्व भक्त्या नवनीतचोरम् ॥४८॥
क्व चापि दुग्धं क्व दधि घृतं वा नवोद्धतं वा क्व च तक्रमीप्सितम्।
तेषां क्व चोरो भवति क्व चापि क्व बन्धनं[1] ते भवमूलमध्ये ॥४९॥
न योगिभिः सिद्धगणैर्मुनीन्द्रैर्न भक्तसंघैर्भवपद्मशेषैः।
योगेर्न बद्धो न हि रक्षितुं क्षमैः कथं स बद्धस्तव मूलमध्यतः ॥५०॥
प्रेम्णा नु भक्त्या स्तवनेन पूजया भजस्व पुत्रं तरसा च भारते।
हृत्पद्ममध्ये स्थितमीश्वरं परं ध्यानेन यत्नेन च संततं सति ॥५१॥
वरं वृणुष्व भद्रं ते यत्ते मनसि वाञ्छितम्। सर्वं दास्यामि जगति देवानामपि दुर्लभम् ॥५२॥

## यशोदोवाच

हरौ च निश्चला भक्तिस्तद्दास्यं वाञ्छितं मम। तव नाम्नश्च व्युत्पत्तिः का वा तद्वक्तुमर्हसि ॥५३॥

## राधिकोवाच

भवेद्भक्तिर्निश्चला ते हरेर्दास्यं च दुर्लभम्। लभस्व मद्वरेणापि कथयामि सुनिर्णयम् ॥५४॥

---

(ध्रव) को 'माधव' कहते हैं ॥४३-४७॥ हे सती! ब्रह्मा, विष्णु, महेश और शेष आदि जिनकी वन्दना करते हैं, सनकादि मुनि ध्यान द्वारा जिनका कुछ भी रहस्य नहीं जान पाते और वेद-पुराण जिनका निरूपण करने में असमर्थ हैं, उन नवनीत (माखन)-चोर का भक्तिपूर्वक भजन करो। दूध, दही तथा नया मथकर तैयार किया हुआ घी और अभीष्ट मट्ठा—ये सब कहाँ हैं? उनका चुरानेवाला कहाँ है? और तुम्हारा संसार के मूल-मध्य में बन्धन कहाँ है? योगी, सिद्धगण, मुनीन्द्र, भक्तसमुदाय, ब्रह्मा, शिव और शेष योग द्वारा जिन्हें बाँध नहीं सके; वह तुम्हारे ओखली-मूल से कैसे बँध गया? अतः भारतवर्ष में शीघ्र ही हृत्कमल के मध्य में स्थित परमेश्वररूप अपने पुत्र का प्रेम, भक्ति, स्तवन, पूजन और यत्नपूर्वक ध्यान करते हुए भजन करो। तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारे मन में जो इच्छा हो, वह वरदान माँग लो। जो देवताओं के लिए भी दुर्लभ होगा, वह सब कुछ मैं तुम्हें प्रदान करूँगी ॥४८-५२॥

**यशोदा बोलीं**—श्रीहरि के चरणों में निश्चल भक्ति तथा उनकी दासता—यही मेरा अभीष्ट वर है। साथ ही तुम्हारे नाम की क्या व्युत्पत्ति है? यह भी मुझे बताओ ॥५३॥

**राधिका बोलीं**—मेरे वरदान से तुम्हें श्रीहरि में निश्चल भक्ति तथा दुर्लभ दास्य प्राप्त हो। (अब)

---

[1] क. °न भवमूलं च मध्ये।

पुरा नन्देन दृष्टाऽहं भाण्डीरे वटमूलके। मया च कथितो नन्दो निषिद्धश्च व्रजेश्वरः ॥५५॥
अहमेव स्वयं राधा छाया रायणकामिनी। रायणः श्रीहरेरंशः पार्षदप्रवरो महान् ॥५६॥
राशब्दश्च महाविष्णुर्विश्वानि यस्य लोमसु। विश्वप्राणिषु विश्वेषु धा धात्री मातृवाचकः ॥५७॥
धात्री माताऽहमेतेषां मूलप्रकृतिरीश्वरी। तेन राधा समाख्याता हरिणा च पुरा बुधैः ॥५८॥
अहं सुदामशापेन वृषभानसुताऽधुना। शतवर्षं च विच्छेदो हरिणा सह सांप्रतम् ॥५९॥
वृषभानश्च कृष्णस्य पार्षदप्रवरो महान्। पितृणां मानसी कन्या मम माता कलावती ॥६०॥
अयोनिसंभवाऽहं च मम माता च भारते। पुनः सार्धं च युष्माभिर्यास्यामि श्रीहरेः पदम् ॥६१॥
इति ते कथितं सर्वं व्रजं व्रज व्रजेश्वरि। व्रजेश्वरेण सहिता स्वामिना ज्ञानिना सति ॥६२॥
ममाधुना च भवती ध्यानस्य व्यवधानिका। ध्यानभङ्गे महादोषो नराणामपि सुन्दरि ॥६३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० राधायशोदासं०
एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१११॥

●

---

उत्तम निर्णय बताती हूँ ॥५४॥ पूर्वकाल में नन्द ने मुझे भाण्डीरवन में वटवृक्ष के मूल में देखा। मैंने प्रजापति नन्द को रोका और कहा--'मैं ही स्वयं राधा हूँ और छायारूप से रायण की पत्नी हूँ। रायण हरि के अंश से उत्पन्न हैं और (उनके) श्रेष्ठ पार्षदों में महान् हैं ॥५५-५६॥ 'रा' शब्द महाविष्णु है, जिनके लोमों में अनेक विश्व हैं 'धा' शब्द विश्व के प्राणियों एवं विश्वों में मातृवाचक धाय है ॥५७॥ मूलप्रकृति और ईश्वरी मैं ही इनकी धात्री माता (धाय) हूँ इसी कारण पूर्वकाल में हरि तथा विद्वानों ने मेरा नाम 'राधा' रखा ॥५८॥ सुदामा के शाप के कारण मैं इस समय वृषभान की पुत्री हूँ। अब सौ वर्ष तक हरि के साथ मेरा वियोग बना रहेगा ॥५९॥ वृषभान कृष्ण के श्रेष्ठ पार्षद और महान् हैं। मेरी माता कलावती पितरों की मानसी कन्या है ॥६०॥ भारतवर्ष में मैं और मेरी माता दोनों अयोनिजा हैं। मैं आप लोगों के साथ पुनः हरि के धाम में जाऊँगी ॥६१॥ हे व्रजेश्वरी! इस प्रकार सब बातें मैंने बता दीं। हे सती! अब तुम ज्ञानी स्वामी व्रजेश्वर के साथ व्रज को लौट जाओ ॥६२॥ इस समय आप मेरे ध्यान में व्यवधान उत्पन्न कर रही हैं। हे सुन्दरी! ध्यान भंग होने पर मनुष्यों को भी महान् दोष लगता है ॥६३॥

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखंड के उत्तरार्द्ध में नारद-नारायण के संवाद-
प्रकरण में राधा-यशोदा-संवादात्मक एक सौ ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ॥१११॥

●

# अथ द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः

## नारायण उवाच

वासुदेवो द्वारकायां वसुदेवाज्ञया मुने । प्रययौ रत्नरुचिरं रुक्मिणीमन्दिरं वरम् ॥१॥
शुद्धस्फटिकसंकाशममूल्यरत्ननिर्मितम् । पुरतः परितो रम्यं नानाचित्रेण चित्रितम् ॥२॥
अमूल्यरत्नकलशं श्वेतचामरदर्पणैः । वह्निशुद्धांशुकैः शुद्धैः परितः परिशोभितम् ॥३॥
ददर्श रुक्मिणीं देवीमतीव नवयौवनाम् । रत्नपर्यङ्कमारुह्य शयानां सस्मितां मुदा ॥४॥
अप्रौढां च नवोढां तां नवसंगमलज्जिताम् । अमूल्यरत्ननिर्माणभूषणेन विभूषिताम् ॥५॥
सुचारुकबरीभारां मालतीमाल्यभूषिताम् । दृष्ट्वा कृष्णं भीष्मकन्या सहसा प्रणनाम सा ॥६॥
तां संप्राप्य जगन्नाथो रत्नतल्पे उवास सः । शुभक्षणे च शुभया स रेमे रामया सह ॥७॥
सुखसंभोगमात्रेण मूर्च्छामाप मुदा सती । तस्यां जज्ञे कामदेवो भस्मीभूतश्च शंभुना ॥८॥
स शम्बरं निहत्यैव तत्र प्राप रतिं सतीम् । रतिर्मायावतीनाम्ना संकेतेन सुरस्य च ॥
छायां दत्त्वा च शयने गृहिणी शम्बरालये ॥९॥

---

# अध्याय ११२

## प्रद्युम्नाख्यान तथा दुर्वासा चरित

**नारायण बोले**—मुनि ! द्वारका में वसुदेव की आज्ञा से कृष्ण रत्नों से शोभायमान रुक्मिणी के उत्तम भवन में गये। वह (भवन) स्वच्छ स्फटिक के समान (उज्ज्वल) तथा बहुमूल्यक रत्नों से निर्मित, सामने तथा चारों ओर से रमणीय और नाना प्रकार के चित्रों से चित्रित था ॥१-२॥ अमूल्य रत्नों के कलशों से युक्त तथा श्वेत चँवरों, दर्पणों और अग्निशुद्ध पवित्र वस्त्रों द्वारा सब ओर से सुशोभित था ॥३॥ वहाँ रुक्मिणी देवी को देखा, जो अत्यन्त नवयुवती थी, रत्न के पलँग पर चढ़कर लेटी हुई थी, और आनन्द से मुसकरा रही थी। वह प्रौढ़ नहीं थी, नवविवाहिता थी, (अतएव) नये संगम से लज्जित हो रही थी। वह अमूल्य रत्नों के बने आभूषणों से सुशोभित तथा अत्यन्त सुन्दर जूड़े के भार से युक्त और मालती की माला से विभूषित थी। उस भीष्म-पुत्री ने सहसा कृष्ण को देखकर प्रणाम किया ॥४-६॥ उसको पाकर वे जगत्पति (कृष्ण) रत्न के पलँग पर बैठ गये और शुभ क्षण आने पर उस पवित्र रमणी के साथ रमण करने लगे ॥७॥ वह सती संभोग-सुख के कारण आनन्द से मूर्च्छित हो गयी। उससे कामदेव की उत्पत्ति हुई, जिसे शंकर ने भस्म कर डाला था ॥८॥ उसने शम्बर दैत्य को मारकर वहीं पतिव्रता रति को प्राप्त किया। (उस समय) रति देवता के संकेत से मायावती नाम से शम्बर के घर में रहती हुई अपनी छाया को उसके पास भेजती थी ॥९॥

### नारद उवाच

जहार शम्बरं कामो दैत्यं केन प्रकारतः । कथयस्व महाभाग विस्तरेण शुभां कथाम् ॥१०॥

### नारायण उवाच

समतीते च सप्ताहे रुक्मिणीसूतिकागृहात् । गृहीत्वा बालकं दैत्यो जगाम स्वालयं जवात् ॥११॥
अपुत्रकश्च दैत्येशः पुत्रं प्राप्य प्रहर्षितः । मायावत्यै ददौ हृष्टो हृष्टा मायावती सती ॥१२॥
अतीव पालनेनैव वर्धयामास बालकम् । सरस्वती तां रहसि कथयामास निर्जने ॥१३॥

### सरस्वत्युवाच

शिवकोपानले पूर्वं भस्मीभूतः पतिस्तव । स चायं रुक्मिणीपुत्रो दैत्येनैव समाहृतः ॥१४॥
माययाऽपि च मायेशो रुक्मिणीसूतिकागृहात् । समानीय ददौ तुभ्यं पतिस्तेऽयं न चाऽऽत्मजः ॥१५॥
कामं च कथयामास जगन्माता च सा सती । तव पत्नी रतिश्चेयं रमस्व रामया सह ॥१६॥
त्वमेव रुक्मिणीपुत्रो नान्यदैत्यस्य मन्मथः । कुररीव सती नित्यं रोदिति स्म त्वया विना ॥१७॥
इत्युक्त्वा च ययौ वाणी ब्रह्माणी ब्रह्मणः पदम् । स रेमे निर्जने नित्यं रामया सह सुन्दरः ॥१८॥
एकदा मन्मथं दैत्यो ददर्श रहसि स्थितम् । शृङ्गारं रामया सार्धं कुर्वन्तं कौतुकेन च ॥१९॥

---

**नारद बोले**—महाभाग ! कामदेव ने किस प्रकार शम्बरासुर को मारा था ? वह शुभ कथा विस्तार से बताइये ॥१०॥

**नारायण बोले**—एक सप्ताह बीत जाने पर दैत्य रुक्मिणी के सूतिकागृह से बालक को वेगपूर्वक लेकर अपने घर ले गया । पुत्रहीन दैत्यराज पुत्र को पाकर बहुत प्रसन्न हुआ । उसने मायावती को सौंप दिया । सती मायावती उसे देखकर हर्षित हुई ॥११-१२॥ उसने अतिशय पालन के द्वारा बालक को बढ़ा दिया । सरस्वती ने जनशून्य एकान्त में उससे कहा ॥१३॥

**सरस्वती बोलीं**—पूर्वकाल में तुम्हारा पति शंकर के क्रोधाग्नि में भस्म हो गया था । यह वही रुक्मिणी का पुत्र दैत्य द्वारा अपहृत किया गया है ॥१४॥ मायेश (माया करने में परम प्रवीण) ने माया के द्वारा ही रुक्मिणी के सूतिकागृह से इसे लाकर तुम्हें दिया है । यह तुम्हारा पति है, पुत्र नहीं है ॥१५॥ उस सती जगन्माता (सरस्वती) ने काम से भी कहा कि यह तुम्हारी पत्नी रति है । इसके साथ रमण करो ॥१६॥ तुम्हीं रुक्मिणी के पुत्र कामदेव हो. दूसरे दैत्य के पुत्र नहीं हो । पतिव्रता (रति) तुम्हारे बिना कुररी पक्षी की तरह नित्य रोती थी ॥१७॥ इतना कहकर ब्रह्मा की पत्नी सरस्वती ब्रह्मलोक को चली गयीं । वह सुन्दर कामदेव सुन्दरी रति के साथ एकान्त में नित्य रमण करने लगा ॥१८॥ एक बार दैत्य ने एकान्त में अवस्थित कन्दर्प को रति के साथ शृंगार करते हुए कौतुक से देखा ॥१९॥ मुसकराती हुई रति के वक्षःस्थल के बीच

सस्मितं सस्मितायाश्च मध्यवक्षःस्थलस्थितम् । रतिं ददर्श कामेन मूर्च्छितां सुरतोत्सुकाम् ॥२०॥
दृष्ट्वा चुकोप दैत्यश्च जग्राह खड्गमुत्तमम् । उवाच खड्गहस्तश्च कामदेवं रतिं सतीम् ॥२१॥

शम्बर उवाच

धिक् त्वां महाकामुकं च मूर्खं पण्डितमानिनम् । महापातकिनां श्रेष्ठं प्रमत्तं मातृगामिनम् ॥२२॥
धिक् त्वां च पुंश्चलीं मत्तां कामुकीं हतचेतनाम् । पुत्रं गृहीत्वा रहसि करोषि सुरतिं सति ॥२३॥
इत्येवमुक्त्वा खड्गं च तामेव हन्तुमुद्यतः । जिघांसन्तं रतिं दैत्यं प्रेरयामास मन्मथः ॥२४॥
पपात दूरतो ब्रह्मन्मूर्च्छितः स्वाङ्गपीडितः । पुनश्च चेतनां प्राप्य कोपेन प्रज्वलन्निव ॥२५॥
शिवदत्तं च शूलं च जग्राह निर्भरेण च । शतसूर्यप्रभं शूलं प्रलयाग्निसमं मुने ॥२६॥
दृष्ट्वाऽऽजग्मुश्च देवाश्च ब्रह्मेशशेषसंज्ञकाः । पवनः कथयामास कर्णे कामस्य यत्नतः ॥२७॥
स्मर स्मर महामायां दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम् । पवनस्य वचः श्रुत्वा दुर्गां सस्मार मन्मथः ॥२८॥
शूलं बभूव तस्याङ्गे रम्यं माल्यं मनोहरम् । ब्रह्मास्त्रेण च तं दैत्यं जघान मन्मथो मुदा ॥२९॥
रतिं गृहीत्वा यानेन जगाम द्वारकां पुरीम् । प्रययुर्देवताः सर्वा स्तुत्वा च पार्वतीं स्वयम् ॥३०॥
रुक्मिणी मङ्गलं कृत्वा प्रजग्राह रतिं सुतम् । उत्सवं कारयामास परं स्वस्त्ययनं हरिः ॥३१॥
ब्राह्मणान्भोजयामास पूजयामास पार्वतीम् । अथ कृष्णः क्रमेणैव वेदोक्ते मङ्गले दिने ॥३२॥

---

कामदेव को और काम के साथ सुरत करने में उत्सुक होने से मूर्च्छित रति को देखकर दैत्य कुपित हो गया। उसने उत्तम खड्ग उठा लिया। हाथ में खड्ग लेकर उसने कामदेव और सती रति से कहा ॥२०-२१॥

**शम्बर बोला**—मूर्ख, अपने को पंडित माननेवाला, महापातकियों में श्रेष्ठ, उन्मत्त, माता के साथ संभोग करनेवाला, महाकामी तुझको धिक्कार है ॥२२॥ पुंश्चली, मतवाली, कामुकी और चेतना-रहित तुझको धिक्कार है। सती ! पुत्र को लेकर एकान्त में सुरत कर रही है ॥२३॥ इस प्रकार कहकर उसी को मारने के लिए उसने तलवार उठायी। रति को मारने की इच्छा करते हुए दैत्य को कामदेव ने ढकेल दिया ॥२४॥ ब्रह्मन् ! वह दैत्य अपने अंगों में पीड़ा का अनुभव करते हुए मूर्च्छित होकर दूर में गिर पड़ा। फिर चेतना पाकर क्रोध से जलते हुए, शिव के दिये हुए शूल को दृढ़ता से पकड़ लिया। मुने ! सौ सूर्यों के समान चमकनेवाले तथा प्रलयकालीन अग्नि के तुल्य शूल को देखकर ब्रह्मा, महेश अनन्तशेष नामक देवता लोग वहाँ आ गये। पवनदेव ने काम के कान में कहा—'तुम दुर्गति का नाश करनेवाली महामाया दुर्गा का यत्नपूर्वक स्मरण करो। वायुदेव की बात सुनकर कन्दर्प ने दुर्गा का स्मरण किया ॥२५-२८॥ (जिससे) शूल अस्त्र उसके शरीर पर रमणीय एवं मनोहर माला बन गया। तब कामदेव ने हर्षपूर्वक ब्रह्मास्त्र से उस दैत्य को मार डाला ॥२९॥ रति को लेकर विमान से द्वारकापुरी पहुँच गया। सभी देवता भी स्वयं पार्वती की स्तुति करके चले गये ॥३०॥ रुक्मिणी ने मंगलाचार पूरा करके रति और पुत्र को ग्रहण किया। श्रीकृष्ण ने स्वस्त्यय करके बड़ा उत्सव मनाया ॥३१॥ ब्राह्मणों को भोजन कराया और पार्वती का पूजन किया। अनन्तर कृष्ण ने

सप्तानां रमणीनां च पाणिग्राहं चकार ह । कालिन्दीं सत्यभामां च सत्यां नाग्निजितीं सतीम् ॥३३॥
जाम्बवतीं लक्ष्मणां च समुद्वाहं चकार सः । ताभिः सार्धं क्रमेणैव पुत्रोत्पत्तिं[1] चकार ह ॥३४॥
एकस्यां दशपुत्राश्च कन्यकैका क्रमेण च । निहत्य नरकं दैत्यं सपुत्रं[2] च नृपेश्वरम् ॥३५॥
बलवन्तं मुरं दैत्यं जघान रणमूर्धनि । ददर्श कन्यास्तत्रस्याः सहस्राणां च षोडश ॥३६॥
शताधिका वयस्याश्च शश्वत्सुस्थिरयौवनाः । प्रफुल्लवदनाः सर्वा रत्नभूषणभूषिताः ॥३७॥
शुभक्षणे च तासां च पाणिं जग्राह माधवः । ताभिः सार्धं स रेमे च क्रमेण च शुभक्षणे ॥३८॥
एकस्यां दशपुत्राश्च कन्यकैका क्रमेण च । हरेरेतान्यपत्यानि बभूवुश्च पृथक्पृथक् ॥३९॥
एकदा द्वारकां रम्यां दुर्वासा मुनिपुंगवः । शिष्यैस्त्रिकोटिभिः सार्धमाजगामावलीलया ॥४०॥
राजा महोग्रसेनश्च सपुत्रः सपुरोहितः । वसुदेवो वासुदेवोऽप्यक्रूरश्चोद्धवस्तथा ॥४१॥
नीत्वा षोडशोपचारं प्रणेमुर्मुनिपुंगवम् । शुभाशिषं च प्रददौ तेभ्यो ब्रह्मन्पृथक्पृथक् ॥४२॥
एकानंशां च कन्यां तां ददौ तस्मै शुभक्षणे । मुक्तामाणिक्यहीरांश्च रत्नं च यौतकं ददौ ॥४३॥
स रेमे रामया सार्धं माहेन्द्रे रत्नमन्दिरे । रत्नेन्द्रसारनिर्माणं ददौ तस्मै शुभाश्रमम् ॥४४॥
एकदा स मुनिश्रेष्ठः समालोच्य स्वचेतसा । शयानं कुत्रचिद्रम्यपर्यङ्के रत्ननिर्मिते ॥४५॥

---

वेदानुसार शुभ दिन में क्रमशः सात रमणियों से विवाह किया--कालिन्दी, सत्यभामा, सत्या, नाग्निजिती, सती, जाम्ववती और लक्ष्मण से उनका विवाह हुआ। उन सबसे क्रमशः पुत्र भी उत्पन्न किये। क्रमशः एक स्त्री से दस पुत्र और एक कन्या की उत्पत्ति हुई। नरक नामक दैत्य राजा को पुत्र सहित मारकर अग्रयुद्ध में मुर नामक वलवान् दैत्य को भी निहत किया। वहाँ सोलह हजार कन्याओं को देखा ॥३२-३६॥ उन (कन्याओं) की सौ से अधिक सखियाँ थीं। वे सब नित्य सुस्थिर यौवन से सम्पन्न, हँसमुख और रत्नों के आभूषणों से विभूषित थीं ॥३७॥ श्रीकृष्ण ने शुभ मूहूर्त में उन सबका पाणिग्रहण किया और उनके साथ शुभ मुहूर्त में रमण किया ॥३८॥ श्रीकृष्ण की एक पत्नी से दस पुत्र तथा एक कन्या का जन्म हुआ। इसी प्रकार क्रमशः सभी पत्नियों से पृथक्-पृथक् सन्तानें हुईं ॥३९॥ एक वार मुनिवर दुर्वासा तीन करोड़ शिष्यों के साथ रमणीय द्वारकापुरी में लीलापूर्वक आये ॥४०॥ ब्रह्मन्! पुत्र और पुरोहित के साथ राजा महोग्रसेन, वसुदेव, श्रीकृष्ण, अक्रूर तथा उद्धव ने मुनिवर का षोडशोपचार पूजन करके प्रणाम किया। मुनि ने उन्हें अलग-अलग शुभाशीर्वाद दिया ॥४१-४२॥ वसुदेव ने शुभ मुहूर्त में अपनी एकानंशा नाम की कन्या मुनि को दी, साथ ही मुक्ता, माणिक्य, हीरा तथा अन्य रत्न भी उन्हें दहेज में दिये ॥४३॥ मुनि ने महेन्द्र पर्वत पर बने रत्नों के भवन में सुन्दरी (एकानंशा) के साथ रमण किया। (वसुदेव ने दुर्वासा को) उत्तम रत्नों का बना एक पवित्र आश्रम भी दिया ॥४४॥ एक वार मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा ने अपने मन में विचारकर देखा कि व्यापक श्रीकृष्ण

---

१ क. स रेमे च पृथक्पृथक्। २ क. पुरं।

श्रुतवन्तं पुराणं च श्रद्धया कुत्रचिद्विभुम्। महोत्सवे नियुक्तं च कुत्रचित्प्राङ्गणे शुभे ॥४६॥
ताम्बूलं भुक्तवन्तं च भक्त्या दत्तं च सत्यया। कुत्रचित्सेवितं तल्पे रुक्मिण्या श्वेतचामरैः ॥४७॥
कालिन्दीसेवितपदं शयानं कुत्रचिन्मुदा। सर्वत्र समसंभाषां चकार भगवान्मुनिम् ॥४८॥
विस्मयं प्रययौ विप्रो दृष्ट्वा तत्परमाद्भुतम्। तुष्टाव जगतीनाथं रुक्मिणीमन्दिरे पुनः॥
वसन्तं च सुधर्मायां सतां संसदि सुन्दरम् ॥४९॥

## दुर्वासा उवाच

जय जय जगतां नाथ जितसर्व जनार्दन सर्वात्मक सर्वेश सर्वबीज पुरातन निर्गुण निरीह ॥५०॥
निर्लिप्त निरञ्जन निराकार भक्तानुग्रहविग्रह सत्यस्वरूपसनातन [1]निःस्वरूप नित्यनूतन ॥५१॥
ब्रह्मेशशेषधनेशवन्दित पद्मया सेवितपादपद्म ब्रह्मज्योतिरनिर्वचनीय वेदाविदितगुणरूप॥
महाकाशसंमाननीय परमात्मन्नमोऽस्तु ते ॥५२॥
इत्येवमुक्त्वा मनसा हरेरनुमतेन च। प्रणम्य तस्थौ विप्रेन्द्रस्तत्रैव पुरतो हरेः ॥५३॥
तमुवाच जगन्नाथो हितं सत्यं पुरातनम्। ज्ञानं च वेदविहितं सर्वेषां च सतां मतम् ॥५४॥

---

कहीं तो रत्ननिर्मित रमणीय पलँग पर शयन कर रहे हैं, कहीं श्रद्धापूर्वक पुराण सुन रहे हैं, कहीं पवित्र आँगन में महोत्सव मनाने में संलग्न हैं, कहीं सत्या द्वारा दिये गये ताम्बूल को चबा रहे हैं, कहीं पलँग पर रुक्मिणी द्वारा श्वेत चँवरों से सेवित हो रहे हैं। कहीं आनन्द से शयन कर रहे हैं और कालिन्दी चरण दबा रही हैं। भगवान् (श्रीकृष्ण) ने मुनि के साथ सर्वत्र समान रूप से संभाषण किया ॥४५-४८॥ उनका परम अद्भुत रूप देखकर विप्र (दुर्वासा) को आश्चर्य हुआ। फिर मुनि रुक्मिणी के भवन में, सुधर्मा सभा में तथा सज्जनों की गोष्ठी में वास करते हुए श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगे ॥४९॥

**दुर्वासा बोले**—हे जगन्नाथ, आपकी जय हो जय हो। सबको जीतनेवाले, हे जनार्दन, सबके आत्मस्वरूप, सबके प्रभु, पुरातन, निर्गुण, निरीह, निर्लिप्त, निष्कलंक, निराकार, भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए शरीर धारण करनेवाले, सत्यस्वरूप, सनातन, रूप-रहित, नित्यनवीन, ब्रह्मा, शिव, शेष तथा कुबेर द्वारा वन्दित, लक्ष्मी द्वारा सेवित चरणारविन्दवाले, ब्रह्मज्योति, अनिर्वचनीय, वेदों द्वारा अज्ञात गुण-रूपवाले, महाकाश के समान सम्माननीय और परमात्मा! आपको नमस्कार है ॥५०-५२॥ इस प्रकार मन-ही-मन कहकर प्रणाम करके श्रीकृष्ण की अनुमति से द्विजवर वहीं भगवान् के सामने खड़े हो गये ॥५३॥ तब जगत् के प्रभु ने ज्ञान बतलाना प्रारम्भ किया, जो हितकारक, सत्य, प्राचीन, वेदविहित और सज्जनों को मान्य था ॥५४॥

---

१ क. नित्यस्व॰।

### श्रीभगवानुवाच

मा भैर्विप्र शिवांशस्त्वं किं न जानासि ज्ञानतः । अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते ।।५५।।
अहमात्मा च सर्वेषां शवाः सर्वे मया विना । प्राणिदेहान्मयि गते यान्त्येव सर्वशक्तयः ।।५६।।
जातावप्येक एवाहं व्यक्तावेव पृथक्पृथक् । यो भुङक्ते तस्य तृप्तिः स्यान्नान्येषां च कदाचन ।।५७।।
पृथग्जीवादिसर्वेषां प्रतिमानं च प्राणिनाम् । परिपूर्णतमोऽहं च गोलोके रासमण्डले ।।५८।।
श्रीदामशापाद्राधा सा मां द्रष्टुमक्षमाऽधुना । सर्वे चैवांशरूपेण कलया च तदंशतः ।।५९।।
रुक्मिणीमन्दिरे चांशोऽप्यन्यासां मन्दिरे कलाः । ममापि कुत्रचिच्चांशं कुत्रचिच्च कलाकलाः ।।६०।।
कलाकलांशाः कुत्रापि प्रतिमासु च देहिषु । इत्युक्त्वा जगतां नाथो गृहस्याभ्यन्तरं ययौ ।।
दुर्वासाश्च प्रियां त्यक्त्वा श्रीहरेस्तपसे गतः ।।६१।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० मुनिकृष्णसं०
द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ।।११२।।

●

---

**श्रीभगवान् बोले**--विप्र ! तुम शिव के अंश हो, डरो मत । क्या ज्ञान के द्वारा तुम नहीं जानते हो कि मैं सबका उत्पत्तिस्थान हूँ और सभी मुझसे उत्पन्न होते हैं । सबका आत्मा मैं ही हूँ, मेरे बिना सभी निष्प्राण हैं । प्राणियों के शरीर से मेरे चले जाने पर सभी शक्तियाँ चली जाती हैं । अकेला मैं ही जाति (समूह) रूप से तथा व्यक्ति रूप से भी पृथक्-पृथक् व्यक्त हो रहा हूँ । जो भोजन करता है, उस (भोजन) से उसी की तृप्ति होती है, दूसरों की कभी नहीं होती । जीवादि समस्त प्राणियों की प्रतिमाएँ भिन्न-भिन्न होती हैं । गोलोक-स्थित रासमण्डल में परिपूर्णतम मैं ही हूँ । श्रीदामा के शाप के कारण वह राधा इस समय मुझे देखने में असमर्थ है । सभी राधा के अंश तथा कलांश रूप से उत्पन्न हुए हैं । रुक्मिणी के भवन में (राधा का) अंश है और अन्य (देवियों) के भवन में कलाएँ हैं । मेरा भी शरीरधारियों की प्रतिमाओं में कहीं अंश है, कहीं कला की कला है और कहीं कला का कलांश है । इतना कहकर जगन्नाथ घर के भीतर चले गये । दुर्वासा भी प्रिया को छोड़कर श्रीकृष्ण के लिए तप करने चले गये ।।५५-६१।।

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण में श्रीकृष्णजन्मखंड के उत्तरार्द्ध में नारद-नारायण के संवाद में
दुर्वासा और श्रीकृष्ण-संबंधी एक सौ बारहवाँ अध्याय समाप्त ।।११२।।

●

# अथ त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः

## नारायण उवाच

सशिष्यश्चापि दुर्वासास्त्यक्त्वा च द्वारकां पुरीम् । कैलासं प्रययौ भक्त्या शंकरं द्रष्टुमीश्वरम् ॥१॥
गत्वा मुनिश्च कैलासं प्रणनाम शिवं शिवाम् । तुष्टाव परया भक्त्या सशिष्यः प्रणतः शुचिः ॥२॥
तत्सर्वं कथयामास वृत्तान्तं श्रीहरेरपि । आत्मनस्तपसस्तत्त्वं स्ववैराग्यं च चेतसः ॥३॥
मुनेश्च वचनं श्रुत्वा प्रहस्य पार्वती सती । तमुवाच हितं सत्यं साक्षाच्छंकरसंनिधौ ॥४॥

## पार्वत्युवाच

धर्मतत्त्वं न जानासि धर्मिष्ठं मन्यसे स्वयम्[1] । अनपत्यां परित्यज्य क्व यासि तपसे मुने ॥५॥
अनपत्यां च युवतीं कुलजां च पतिव्रताम् । त्यक्त्वा भवेयुः संन्यासी ब्रह्मचारी यतीति वा ॥६॥
वाणिज्ये वा प्रवासे वा चिरं दूरं प्रयाति यः । तीर्थे वा तपसे वाऽपि मोक्षार्थं जन्म खण्डितुम् ॥७॥

---

# अध्याय ११३

## दुर्वासा के प्रति पार्वती का उद्बोधन तथा श्रीकृष्ण चरित

**नारायण बोले**—शिष्य समेत दुर्वासा द्वारकापुरी को छोड़कर भक्ति से ईश्वर शंकर को देखने के लिए कैलास को चले ॥१॥ कैलास पर पहुँचकर शिष्य सहित मुनि पवित्र एवं प्रणत होकर शिव और शिवा को प्रणाम करके परम भक्ति से स्तुति करने लगे ॥२॥ अनन्तर श्रीकृष्ण का वह सब वृत्तांत, अपनी तपस्या का तत्त्व और चित्त का अपना वैराग्य बताया ॥३॥ मुनि की बात सुनकर सती पार्वती ने हँसकर साक्षात् शंकर के समीप मुनि से हितकारक एवं सत्य वचन कहा ॥४॥

**पार्वती बोलीं**—मुनि ! तुम धर्म का तत्त्व नहीं जानते हो और अपने को धर्मिष्ठ मानते हो। संतान-रहित स्त्री को त्यागकर तपस्या के लिए कहाँ जा रहे हो ? जो संतान-रहित युवती, कुलीन और पति-व्रता स्त्री को त्यागकर संन्यासी, ब्रह्मचारी अथवा यति हो जाता है अथवा व्यापार या परदेश करने के लिए बहुत दूर चला जाता है, मोक्ष के लिए अथवा जन्म का खंडन करने के लिए तीर्थवासी या तपस्वी हो जाता है,

---

१ ख. स्वकम् ।

न मोक्षस्तस्य भवति धर्मस्य स्खलनं ध्रुवम् । अभिशापेन भार्याया नरकं च परत्र च ॥८॥
इहैव च यशोनाश इत्याह कमलोद्भवः । द्वारकां गच्छ हे विप्र स्वधर्मं रक्ष सांप्रतम् ॥९॥
एकानंशां मदंशां च धर्मतः परिपालय । पादपद्मार्जितं[1] पादपद्मं सर्वसुदुर्लभम् ॥१०॥
संततं शंभुना गीतं मुनीन्द्रैः सनकादिभिः । परित्यज सुरतरोः कृष्णस्य परमात्मनः ॥११॥
क्व यासि तपसे वत्स सुधां त्यक्त्वा मनोहराम् । श्रीकृष्णपादपद्मं च स्वप्ने जपति यो मुने ॥१२॥
शतजन्मकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः । यद्बाल्ये यच्च कौमारे वार्धके यच्च यौवने ॥१३॥
कामतोऽकामतो वाऽपि भस्मीभूतं च पातकम् । साक्षाद्यो भारते वर्षे श्रीकृष्णचरणाम्बुजम् ॥१४॥
दृष्ट्वा सद्यो भवेत्पूज्यो जीवन्मुक्तो भवेद्ध्रुवम् । कोटिजन्मार्जितात्सद्यः कृतपापाद्विमुच्यते ॥१५॥
सर्वाण्येव हि तीर्थानि यतः पूतानि नित्यशः । तद्व्रतं तत्तपः सत्यं तत्पुण्यं तच्च पूजनम् ॥१६॥
सफलं कृष्णसंबन्धि स्वजन्मखण्डनं यतः । कृष्णभक्तिविहीनश्च ब्राह्मणो वेदपारगः ॥१७॥
तत्सङ्गाच्च तदालापाद्भक्तभक्तिः प्रणश्यति । कृष्णस्योच्छिष्टभोजी यः कृष्णभक्तश्च ब्राह्मणः ॥१८॥
आवह्निपवनात्पूतः पूतं कर्तुं जगत्क्षमः । श्रीकृष्णं च परित्यज्य क्व यासि तपसे द्विज ॥१९॥
तपसां फलमाप्नोति श्रीकृष्णस्मरणेन च । यतो भक्तिर्न च भवेच्छ्रीकृष्णे परमात्मनि ॥२०॥

---

उसे मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है और धर्म का नाश निश्चित रूप से होता है । पत्नी के शाप के कारण, उसे मरने पर नरक में जाना पड़ता है, इसी लोक में उसके यश का नाश हो जाता है, ऐसा ब्रह्मा ने कहा है। हे विप्र ! इस समय द्वारका जाइये और अपने धर्म की रक्षा कीजिये ॥५-९॥ मेरे अंश से उत्पन्न एकानंशा का धर्मपूर्वक पालन कीजिये । वत्स ! कल्पवृक्षस्वरूप परमात्मा श्रीकृष्ण के चरणारविन्द का—जो लक्ष्मी द्वारा अर्जित तथा सबके लिए अत्यन्त दुर्लभ है, शंकर एवं सनक आदि मुनीन्द्र जिसका सतत् गुणगान करते रहते हैं और जो मनोहर अमृत के समान है—परित्याग करके तपस्या के लिए कहाँ जा रहे हो ? मुनि ! जो स्वप्न में भी श्रीकृष्ण के चरण-कमल का जप करता है, वह सौ जन्मों के किये हुए पाप से मुक्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है । उसके द्वारा बाल्यावस्था, कौमारावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था में जान में अथवा अनजान में जो कुछ पाप किया जाता है, वह सारा-का-सारा भस्म हो जाता है। भारतवर्ष में जो श्रीकृष्ण के चरणकमल का साक्षात् दर्शन करता है, वह सद्यः पूज्य तथा दर्शनीय हो जाता है, यह ध्रुव है । वह करोड़ों जन्मों के किये हुए संचित पाप से तुरन्त मुक्त हो जाता है ॥१०-१५॥ उससे सभी तीर्थ नित्य पवित्र होते हैं । जो श्रीकृष्ण से सम्बंध रखनेवाला है, वही व्रत, वही तप, वही सत्य, वही पुण्य और वही पूजन सफल है; क्योंकि उससे अपनी जन्म-परम्परा का नाश होता है । कृष्ण की भक्ति से विहीन ब्राह्मण वेदपारंगत ही क्यों न हो, उसके संग से तथा उसके साथ वार्तालाप करने से भक्त की भक्ति नष्ट होती है । जो ब्राह्मण कृष्ण का प्रसाद खाता है तथा कृष्ण का भक्त है, वह पवित्रात्मा अग्नि-वायु से लेकर संसार तक को पवित्र करने में समर्थ हो जाता है । हे द्विज ! श्रीकृष्ण को छोड़कर तपस्या के लिए कहाँ जा रहे हो ॥१६-१९॥ श्रीकृष्ण के स्मरणमात्र से तपस्याओं का फल प्राप्त होता है । जिस (गुरु) से परमात्मा श्रीकृष्ण में भक्ति न हो, वह गुरु परम शत्रु है और

---

१ क. °दपार्चितं ।

स गुरुः परमो वैरी करोति जन्म निष्फलम् । पार्वतीवचनं श्रुत्वा शंकरः प्रेमविह्वलः ॥२१॥
पुलकाञ्चितसर्वाङ्गस्तुष्टाव परमेश्वरीम् । दुर्वासाः प्रणतिं कृत्वा शिवदुर्गापदाम्बुजे ॥२२॥
स्मारं स्मारं कृष्णपदं पुनश्च द्वारकां ययौ । तत्र गत्वा हरिं दृष्ट्वा तुष्टाव [1]परमेश्वरम् ॥२३॥
एकानंशालयं गत्वा स च रेमे तया सह । कृष्णो युधिष्ठिरध्यानात्प्रययौ हस्तिनापुरम् ॥२४॥
कुन्तीं संभाष्य भूपं च भ्रातृंश्च प्रमुदाऽन्वितः । उपायेन जरासंधं निहत्य शाल्वमेव च ॥२५॥
कारयामास यज्ञं च विधिबोधितदक्षिणाम् । मुनीन्द्रैश्च नृपेन्द्रैश्च राजसूयमभीप्सितम् ॥२६॥
शिशुपालं दन्तवक्त्रं तत्र यज्ञे जघान सः । अतीव निन्दां कुर्वन्तं सभायां सुरभूपयोः ॥२७॥
पपात तच्छरीरं च जीवो गत्वा हरेः पदम् । न दृष्ट्वा तत्र सर्वेशं तुष्टावाऽऽगत्य माधवम् ॥२८॥

## शिशुपाल उवाच

वेदानां जनकोऽसि त्वं वेदाङ्गानां च माधव । सुराणामसुराणां च प्राकृतानां च देहिनाम् ॥२९॥
सूक्ष्मां विधाय सृष्टिं च कल्पभेदं करोषि च । मायया च स्वयं ब्रह्मा शंकरः शेष एव च ॥३०॥
मनवो मुनयश्चैव देवाश्च सृष्टिपालकाः । कलांशेनापि कलया दिक्पालाश्च ग्रहादयः ॥३१॥
स्वयं पुमान्स्वयं स्त्री च स्वयमेव नपुंसकः । कारणं च स्वयं कार्यं जन्यश्च जनकः स्वयम् ॥३२॥

---

(शिष्य के) जन्म को निष्फल कर देता है। पार्वती की बात सुनकर शंकर प्रेम से विह्वल हो गये। उनके सभी अंगों में रोमांच हो आया। तब उन्होंने परमेश्वरी (पार्वती) की स्तुति की। दुर्वासा शंकर और पार्वती के चरणारविन्दों में प्रणाम करके कृष्ण के चरणों का स्मरण करते हुए द्वारका चले गये। वहाँ पहुँचकर परमेश्वर कृष्ण को देखकर स्तुति करने लगे ॥२०-२३॥ फिर एकानंशा के भवन में जाकर उन्होंने उसके साथ रमण किया। कृष्ण युधिष्ठिर द्वारा स्मरण किये जाने के कारण हस्तिनापुर को चले गये ॥२४॥ वहाँ कुन्ती, राजा युधिष्ठिर तथा भाइयों से हर्षपूर्वक बातचीत करके युक्ति से जरासंध तथा शाल्व का वध किया और मुनीन्द्रों तथा राजेन्द्रों के साथ शास्त्रानुमोदित दक्षिणावाला अभीष्ट राजसूय यज्ञ कराया ॥२५-२६॥ उस यज्ञ में उन्होंने देवताओं और राजाओं के समक्ष अत्यन्त निन्दा करते हुए शिशुपाल का तथा दन्तवक्त्र का वध किया। उस (शिशुपाल) का शरीर पात होते ही जीव वैकुण्ठ चला गया। वहाँ विष्णु को न देखकर वह लौट आया और सर्वेश्वर माधव की स्तुति करने लगा ॥२७-२८॥

**शिशुपाल बोला**—हे माधव ! आप वेदों, वेदांगों, सुरों, असुरों और प्राकृत देहधारियों के उत्पादक हैं ॥२९॥ आप सूक्ष्म सृष्टि की रचना करके उसमें कल्पभेद करते हैं। आप ही माया से स्वयं ब्रह्मा, शंकर तथा शेष हैं। मनु, मुनि, देवता, सृष्टिपालक आपके कलांश से तथा दिक्पाल और ग्रह आदि आपके कलांश से उत्पन्न हुए हैं ॥३१॥ आप स्वयं पुरुष हैं, स्वयं स्त्री हैं और स्वयं ही नपुंसक हैं। आप कारण तथा कार्य

---

१ क. पुरुषोत्तमम् ।

यन्त्रस्य च गुणो दोषो यन्त्रिणश्च श्रुतौ श्रुतम् । सर्वे यन्त्रा भवान्यन्त्री त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥३३॥
मम क्षमस्वापराधं मूढस्य द्वारिणस्तव । ब्रह्मशापात्कुबुद्धेश्च रक्ष रक्ष जगद्गुरो ॥३४॥
इत्येवमुक्त्वा क्रमतो जयो विजय एव च । मुदा तौ ययतुः शीघ्रं वैकुण्ठद्वारमीप्सितम् ॥३५॥
शिशुपालस्य स्तोत्रेण सर्वे ते विस्मयं ययुः । परिपूर्णतमं कृत्वा मेनिरे कृष्णमीश्वरम् ॥३६॥
कारयित्वा राजसूयं भोजयामास ब्राह्मणान् । कुरुपाण्डवयुद्धं च कारयामास भेदतः ॥३७॥
भुवो भारावतरणं चकार स कृपानिधिः । पुनर्ययौ द्वारकां च चिरं स्थित्वा नृपाज्ञया ॥३८॥
विप्राया मृतवत्साया जीवयामास पुत्रकान् । मृतस्थानात्समानीय तन्मात्रे प्रददौ सुतान् ॥३९॥
तद्दृष्ट्वा देवकी तुष्टा ययाचे मृतपुत्रकान् । मृतस्थानात्समानीय ददौ मात्रे सहोदरान् ॥४०॥
सद्यो जहार दारिद्र्यं सुदाम्नो ब्राह्मणस्य च । समागतस्य स्वगृहाद्द्वारका शरणार्थिनः ॥४१॥
तस्मै ददौ राजलक्ष्मीं निश्चलां सप्तपौरुषीम् । पृथुकानां कणं भुक्त्वा भक्तस्य भक्तवत्सलः ॥४२॥
बभूव तस्य राज्यं च यथेन्द्रस्यामरावती । यथा धनेश्वरो देवो धनाढ्यः स बभूव ह ॥४३॥
निश्चलां हरिभक्तिं च ददौ दास्यं सुदुर्लभम् । अविनाशिनि गोलोके यथेष्टं पदमुत्तमम् ॥४४॥
जहार पारिजातं च शक्राहंकारमेव च । सत्यां च कारयामास पुण्यकं व्रतमीप्सितम् ॥४५॥

---

और उत्पाद्य एवं उत्पादक भी हैं ॥३२॥ यन्त्र का गुण और दोष यन्त्री पर निर्भर करता है, ऐसा वेद में सुना गया है। सभी यन्त्र हैं और आप यन्त्री हैं, (अतः) सब आपमें प्रतिष्ठित हैं ॥३३॥ हे संसार के गुरु ! मैं आपका दुर्बुद्धि एवं मूढ़ द्वारपाल हूँ, मेरा अपराध क्षमा कीजिये और ब्रह्मा के शाप से बचाइये बचाइये ॥३४॥ इस प्रकार कहकर क्रमशः जय और विजय (शिशुपाल और दन्तवक्र) हर्ष से अभीष्ट वैकुण्ठ के द्वार पर शीघ्र पहुँच गये ॥३५॥ शिशुपाल के स्तोत्र से सभी लोग आश्चर्यान्वित हुए और (सभी ने) कृष्ण को परिपूर्णतम ईश्वर माना ॥३६॥ तत्पश्चात् राजसूय यज्ञ कराकर ब्राह्मणों को भोजन कराया और फूट डालकर कौरवों तथा पाण्डवों में युद्ध कराया। वे कृपानिधि भगवान् (इस प्रकार) पृथ्वी का भार उतारकर पुनः द्वारकापुरी चले गये। वहाँ राजा (उग्रसेन) की आज्ञा से चिरकाल तक निवास करके मृतवत्सा ब्राह्मणी के पुत्रों को जिलाया। मृत-स्थान से लाकर (उन) पुत्रों को उनकी माता को दे दिया ॥३७-३९॥ यह देखकर देवकी प्रसन्न हुई। उन्होंने अपने मृत पुत्रों की याचना की। भगवान् मृत-स्थान से सहोदरों को लाकर माता को सौंप दिया ॥४०॥ अनन्तर अपने घर से द्वारका आये हुए शरणार्थी सुदामा नामक ब्राह्मण की दरिद्रता को तुरन्त दूर कर दिया ॥४१॥ भक्तवत्सल (भगवान्) ने भक्त (सुदामा) के चिउरों का कण खाकर उसे सात पुरुषों तक निश्चल रहनेवाली राजलक्ष्मी प्रदान की ॥४२॥ जैसे इन्द्र की अमरावती है वैसा उसका राज्य हो गया। कुबेरदेव के समान वह धनाढ्य हो गया ॥४३॥ उसे निश्चल हरि-भक्ति तथा अत्यन्त दुर्लभ दास्य तथा अविनाशी गोलोक में उत्तम अभीष्ट पद प्रदान किये ॥४४॥ उन्होंने पारिजात वृक्ष का हरण किया तथा इन्द्र का अहंकार मिटाया तथा सत्या से अभीष्ट पुण्यकव्रत कराया ॥४५॥ सर्वत्र

वर्धयामास सर्वत्र नित्यं नैमित्तिकं मुने। तत्र व्रते कुमाराय स्वात्मानं दक्षिणां ददौ ॥४६॥
ब्राह्मणान्भोजयामास तेभ्यो रत्नं ददौ मुदा। सत्यभामातिमानं च वर्धयामास सर्वतः ॥४७॥
रुक्मिण्या [1]अतिसौभाग्यमन्यासां च नवं नवम्। वैष्णवानां सुराणां च विप्राणामपि पूजनम् ॥४८॥
वर्धयामास सर्वत्र नित्यं नैमित्तिकं मुने। परमाध्यात्मिकं ज्ञानमुद्धवाय ददौ प्रभुः ॥४९॥
अर्जुनं कथयामास गीतां च रणमूर्धनि। कृत्वा निष्कण्टकं चैव कृपया च कृपानिधिः ॥५०॥
युधिष्ठिराय पृथिवीराज्यलक्ष्मीं ददौ प्रभुः। दुर्गां च पूजयामास[2] वैष्णवीं ग्रामदेवताम् ॥५१॥
यज्ञं च कारयामास कोटिहोमान्वितं शुभम्। नानाप्रकारनैवेद्यैर्धूपदीपैर्मनोहरैः ॥५२॥
ब्राह्मणान्भोजयामास पार्वतीप्रीतये तथा। रैवते पर्वते रम्ये चामूल्यरत्नमन्दिरे ॥५३॥
गणेशं पूजयामास देवानामीश्वरं परम्। लड्डुकानां तिलानां च सुस्वादु सुमनोहरम्[3] ॥५४॥
परिपुष्टं पञ्चलक्षं नैवेद्यं च ददौ मुदा। लड्डुकं स्वस्तिकानां च सप्तलक्षं सुधोपमम् ॥५५॥
गणेश्वराय प्रददौ शर्कराशतराशिकम्। पक्वरम्भाफलानां च दशलक्षमपूपकम् ॥५६॥
मिष्टान्नं पायसं रम्यं स्वादु स्वस्तिकपिष्टकम्। घृतं च नवनीतं च दधि दुग्धं सुधोपमम् ॥५७॥
धूपं दीपं पारिजातपुष्पमाल्यमभीप्सितम्। सुगन्धि चन्दनं गन्धं वह्निशुद्धांशुके ददौ ॥५८॥
यज्ञं च कारयामास कोटिहोमान्वितं शुभम्। ब्राह्मणान्भोजयामास तुष्टाव स गणेश्वरम् ॥५९॥

---

नित्य और नैमित्तिक कर्मों को बढ़ावा दिया। उस व्रत में सनत्कुमार के प्रति अपने आपको दक्षिणा रूप में समर्पित किया ॥४६॥ ब्राह्मणों को भोजन कराया तथा उन्हें हर्ष से रत्न प्रदान किया। सत्यभामा के प्रति अत्यन्त सम्मान को, सब ओर बढ़ाया ॥४७॥ मुने ! रुक्मिणी तथा अन्य रानियों के नये-नये सौभाग्य को वैष्णवों, देवों तथा ब्राह्मणों के पूजन को और नित्य-नैमित्तिक कर्म को सर्वत्र बढ़ाया। फिर प्रभु ने उद्धव को परम आध्यात्मिक ज्ञान दिया। युद्ध के अग्रभाग में अर्जुन को गीता का उपदेश दिया। कृपानिधि भगवान् ने दयावश पृथ्वी को निष्कण्टक करके युधिष्ठिर को पृथिवी की राजलक्ष्मी प्रदान की। दुर्गा को वैष्णवी ग्रामदेवता के स्थान पर पूजित कराया। नाना प्रकार के नैवेद्यों तथा मनोहर धूप-दीपों द्वारा करोड़ों हवनों से युक्त शुभ यज्ञ कराया। ब्राह्मणों को भोजन कराया गया तथा पार्वती की प्रसन्नता के लिए रमणीय रैवत पर्वत पर अमूल्य रत्नों के बने भवन में देवताओं के परम ईश्वर गणेश का पूजन कराया। उस समय (गणेश को) अत्यन्त मनोहर, स्वादिष्ट तथा परिपुष्ट तिल के पाँच लाख लड्डू, स्वस्तिकाकार अमृतोपम सात लाख मोदक, शक्कर की सैकड़ों राशियाँ, पके केले के फल, दस लाख पूए, मिष्टान्न, रमणीय खीर, पूरी-कचौड़ी, घी, मक्खन, दही, अमृतोपम दूध, धूप-दीप, पारिजात के पुष्पों की माला, सुगन्धित चन्दन, गन्ध और अग्निशुद्ध वस्त्र प्रदान किये ॥४८-५८॥ करोड़ों हवनों से युक्त शुभ यज्ञ कराया, ब्राह्मणों को भोजन कराया और गणपति की

---

१ क. अपि। २ क. कारयामास। ३ ख. 'हराम्। परितुष्टिं।

वाद्यं दशविधं चैव वादयामास तत्र वै । सूर्यं च पूजयामास साम्बः कुष्ठक्षयाय च ॥६०॥
हविष्यं कारयामास तं च साम्बं समातरम् । परिपूर्णं वत्सरं चाप्युपहारैरनुत्तमैः
वरं ददौ च साम्बाय स्तोत्रं च भास्करः स्वयम् ॥६१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० गणेशपूजा
नाम त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११३॥

•

# अथ चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः

नारायण उवाच

कृष्णपुत्रश्च प्रद्युम्नो महाबलपराक्रमः । तत्पुत्रोऽप्यनिरुद्धश्च विधातुरंश एव च ॥१॥
एकदाऽसावनिरुद्धो नवयौवनसंयुतः । सुप्तो रहसि पर्यङ्के पुष्पचन्दनचर्चिते ॥२॥
स्वप्ने ददर्श युवतीं पुष्पोद्याने सुपुष्पिते । सुगन्धिपुष्पतल्पे च स्निग्धचन्दनचर्चिते ॥३॥

---

स्तुति की ॥५९॥ उस समय दस प्रकार के बाजे बजवाये । कुष्ठ रोग की निवृत्ति के लिए साम्ब ने सूर्य का पूजन किया । एक वर्ष तक माता समेत साम्ब ने हविष्यान्न भोजन करके अत्युत्तम उपहारों से सूर्य की आराधना की । तब स्वयं सूर्य ने साम्ब को वरदान तथा स्तोत्र प्रदान किये ॥६०-६१॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद-नारायण के संवाद में
गणेशपूजा नामक एक सौ तेरहवाँ अध्याय समाप्त ॥११३॥

•

## अध्याय ११४

### ऊषा और अनिरुद्ध का संगम

**नारायण बोले**—कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न थे, जो महान् बल और पराक्रम से युक्त थे । उनके पुत्र अनिरुद्ध थे, जो विधाता के अंश से उत्पन्न हुए थे ॥१॥ एक दिन नवयौवन से युक्त वे अनिरुद्ध एकान्त में पुष्प और चन्दन से शोभित पलंग पर सोये हुए थे ॥२॥ उन्होंने स्वप्न में एक युवती को देखा, जो खिले हुए पुष्पों

शयानां सुस्मितां रम्यां नवयौवनसंयुताम् । अमूल्यरत्ननिर्माणभूषणेन विभूषिताम् ।।४।।
चारुकेयूरवलयशङ्खकङ्कणशोभिताम् । मणिकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजिताम् ।।५।।
अतीव सूक्ष्मवसनां क्वणन्मञ्जीररञ्जिताम् । पक्वबिम्बाधरोष्ठीं च शरत्कमललोचनाम् ।।६।।
शरत्पद्मप्रभामुष्टकोटीन्दुनिन्दिताननाम् । मुक्तापङ्क्तिसमासाद्यदन्तपङ्क्तिमनोहराम् ।।७।।
त्रिवक्रकबरीभारां मालतीमाल्यभूषिताम् । कस्तूरीकुङ्कुमालक्तस्निग्धचन्दनकज्जलैः ।।८।।
पत्रावलीविरचितसुकपोलस्थलोज्ज्वलाम् । दाडिमीकुसुमाकारसिन्दूरबिन्दुभूषिताम् ।।९।।
श्रीरामकदलीस्तम्भनिन्दितोरुस्थलोज्ज्वलाम् । अत्युच्चैर्वर्तुलाकारस्तनयुग्मविभूषिताम् ।।१०।।
नितम्बभारनम्रां च कामबाणप्रपीडिताम् । कामुकीं कमनीयां च पश्यन्तीं वक्रचक्षुषा ।।११।।
कुङ्कुमालक्तरक्ताक्तपादपद्मविराजिताम् । वायुप्रेरणवस्त्रेण व्यक्तगुप्तस्थलोज्ज्वलाम् ।।१२।।
तां दृष्ट्वा कामपुत्रश्च कामोन्मथितमानसः । उवाच मधुरं रम्यं काममत्तां सुकोमलाम् ।।१३।।
चारुचम्पकवर्णाभां कामेन पुलकान्विताम् । अतिप्रौढां नवोढां च शृङ्गारेच्छासुचञ्चलाम् ।।१४।।

---

के उद्यान में स्निग्ध चन्दन से चर्चित सुगन्धित पुष्पों की शय्या पर लेटी हुई मुस्करा रही थी। वह सुन्दरी, नवयौवन से सम्पन्न तथा बहुमूल्यक रत्नों के बने आभूषणों से विभूषित थी। सुन्दर बाजूबंद, कड़े और शंख के कंकण से शोभित थी। उसके गण्डस्थलों पर एक जोड़ा मणि-निर्मित कुण्डल विराजमान थे। वह अत्यन्त महीन वस्त्र पहने हुई थी। बजते हुए नूपुरों से रंजित थी। पके बिम्बाफल के समान (लाल) उसके अधरोष्ठ थे। नेत्र शरद् ऋतु के कमल के समान थे। उसका मुख शरत्कालीन कमल की प्रभा को चुरानेवाला तथा करोड़ों चन्द्रमा को विनिन्दित करनेवाला था। उसके दांतों की मनोहर पंक्ति मोतियों की पंक्ति के समान थी। वह तीन जगह टेढ़े जूड़े के भार से तथा मालती की माला से विभूषित थी। वह कस्तूरी, कुंकुम, महावर, सरस चन्दन तथा काजल से युक्त थी। उसके सुन्दर कपोलों पर पत्रावली की रचना की गयी थी। अनार के फूल के समान लाल सिन्दूर के बिन्दु से वह भूपित थी। उसकी जांघें रामकदली (केले) के स्तम्भ को तिरस्कृत करनेवाली थीं। उसके दोनों स्तन अत्यन्त उन्नत तथा गोल-मटोल थे। वह नितम्ब के भार से झुकी हुई तथा काम-वाण से अत्यन्त पीड़ित थी। वह सुन्दरी कामुकी तिरछी दृष्टि से देख रही थी। कुंकुम और महावर से रंगे उसके दोनों पैर लाल कमल जैसे शोभा पा रहे थे। वायु के झोंके से वस्त्र के हट जाने पर उसके गुप्त स्थल व्यक्त हो जाने से वह काम से मतवाली, अत्यन्त कोमल, सुन्दर चंपा के समान वर्ण-कान्ति-वाली, काम से रोमांचित, अत्यन्त प्रौढ़, नवविवाहिता और शृंगार की इच्छा से अत्यन्त चंचल उस (कामिनी) को देखकर काम से विह्वल हुआ काम-पुत्र मधुर एवं रमणीय वचन बोला ।।१३-१४।।

---

१ ख मत्तः ।

## अनिरुद्ध उवाच

किं देवी किं च गान्धर्वी का त्वं कामिनि कानने। कस्य स्त्री कस्य कन्या वा कं वा वाञ्छसि सुन्दरि ॥१५॥
त्रैलोक्यातुलसौन्दर्या मुनिमानसमोहिनी। न बिभेषि कथं ब्रूहि स्वयमेकाकिनी च माम् ॥१६॥
अहं त्रैलोक्यनाथस्य पौत्रः कामात्मजोऽधुना। कान्तेऽहमनिरुद्धश्च नवीनयौवनाहतः ॥१७॥
कमनीयश्च कामी च कामशास्त्रविशारदः। कामुकीकामनां पूर्णां कर्तुमेवेश्वरः स्वयम् ॥१८॥
मां भजस्व सुशीले त्वं सुवेषं च सुशीलकम्। रतिशूरं रतिरसप्राज्ञं रतिरसप्रियम् ॥१९॥
रतिपुत्रं रतिरसं प्रमत्तं रसिकं प्रिये। युवानं व्याधिहीनं च कामुकं कामुकीच्छति ॥२०॥
विदग्धासु[1] विदग्धं च कान्तमायाति कामतः। विदग्धाया विदग्धेन संगमो गुणवान्भवेत् ॥२१॥
प्रच्छाद्य लोचनास्यं च नवसंगमलज्जिता। विलोकयन्ती वक्राक्षिकोणेन तमुवाच सा ॥२२॥

## कामिन्युवाच

कामुकः कामपुत्रोऽसि कामेन व्याकुलोऽधुना। भवांश्चेत्कामुकीयोग्यो न कामश्चिन्तितः कथम् ॥२३॥
पौत्रस्त्रैलोक्यनाथस्य स्वतः संभावितस्य च। स्वयं योग्यो योग्यपुत्रो विवाहं न कथं (व्यधाः) चन ॥२४॥

---

**अनिरुद्ध ने कहा**—हे कामिनी ! क्या तुम वन की देवी हो ? क्या गन्धर्व-कन्या हो ? किसकी स्त्री या किसकी कन्या हो ? सुन्दरी ! किसको चाहती हो ? ॥१५॥ तुम तीनों लोक में अनुपम सुन्दरी और मुनियों के मन को मोहित करनेवाली हो। बताओ, तुम स्वयं अकेली होकर मुझसे डरती क्यों नहीं हो ? ॥१६॥ मैं इस समय तीनों लोक के स्वामी का पौत्र तथा कामदेव का पुत्र हूँ। कान्ते ! मेरा नाम अनिरुद्ध है। मैं नवीन यौवन से पीड़ित, सुन्दर, कामी, कामशास्त्र में पारंगत तथा कामुकी की कामना को पूर्ण करने में स्वयं समर्थ हूँ ॥१७-१८॥ हे सुशीले ! तुम सुन्दर वेशवाले, अच्छे स्वभाववाले, रति करने में वीर, रतिरस के पण्डित, रति-रस के प्रेमी, रति के पुत्र, रति-रस-स्वरूप, मतवाले तथा रसिक मुझसे प्रेम करो। प्रिये ! कामुकी स्त्री नीरोग तथा युवक कामुक की इच्छा करती है ॥१९-२०॥ समर्थ स्त्री समर्थ पति के पास कामभाव से आती है। क्योंकि समर्थ स्त्री का समर्थ पुरुष के साथ संगम कराना गुणवान् है ॥२१॥ तब वह नवीन संगम से लज्जित होकर आँख-मुँह को ढककर तिरछी दृष्टि से देखती हुई बोली ॥२२॥

**कामिनी ने कहा**—तुम कामुक, काम के पुत्र हो और इस समय काम से व्याकुल हो। आप यदि कामुकी के योग्य हैं तो काम के विषय में सोचा क्यों नहीं ? ॥२३॥ आप स्वतः प्रतिष्ठित त्रैलोक्य-पति के पौत्र हैं, योग्य व्यक्ति के पुत्र हैं और स्वयं योग्य हैं, तब विवाह क्यों नहीं किया ? ॥२४॥ विवाहिता पत्नी यज्ञपत्नी,

---

१. अत्र विदग्धासु इति पाठः समीचीनः।

विवाहिता यज्ञपत्नी सा च पुण्यव्रता सती। निश्चला सततं साध्या वर्धिनी सङ्गिनी सदा ॥२५॥
भयप्रीतिदानसाध्या गुप्तपत्नी त्वनिश्चला। नैमित्तिका न नित्या सा सा च वेदविवर्जिता ॥२६॥
परं नरकसोपाना परत्रेहायशस्करा। साधुस्तत्र न हि रतो वंशजो वैष्णवो यदि ॥२७॥
यदि पूर्वं भवेद्भ्रान्तो निवृत्तः साधुसङ्गतः। प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला ॥२८॥
प्रायश्चित्ती पुनर्लिप्तो निवृत्तः पातकी यदि। उपहास्यो भुवि भवेत्सर्वं कुञ्जरशौचवत् ॥२९॥
सुशीला सुन्दरी शान्ता धर्मपत्नी प्रशंसिता। पतिव्रता सुसाध्या सा शश्वत्सुप्रियवादिनी ॥३०॥
कोमलाङ्गी विदग्धा च श्यामा रतिसुखप्रदा। एवंभूतां परित्यज्य वैष्णवस्तपसे व्रजेत् ॥३१॥
सा चेत्परिणता साध्वी शान्ता पुत्रवती यदा। अन्यथा च वृथा सर्वं तपसः स्खलनं भवेत् ॥३२॥
असाधुश्च कुवंशश्चेत्परनारीं प्रयाति चेत्। स याति नरकं घोरं पितृभिः सप्तभिःसह ॥३३॥
अहमूषा बाणकन्या बाणः शंकरकिंकरः। बाणस्त्रैलोक्यविजयी शंकरो जगतां पतिः ॥३४॥
न स्वतन्त्रा पराधीना त्रिषु कालेषु कामिनी। पुंश्चली या स्वतन्त्रा साऽप्यसद्वंशप्रसूतिका ॥३५॥
पिता ददाति कन्यां तां सुयोग्याय वराय च। कन्या वरं न याचेत धर्म एष सनातनः ॥३६॥

---

पुण्यव्रतवाली, पतिव्रता, सतत निश्चल रहनेवाली, वंश में रहनेवाली, (गोत्र आदि की) वृद्धि करनेवाली और सदा संगिनी (जीवनसंगिनी) होती है ॥२५॥ गुप्त पत्नी (रखैल) भय, प्रीति तथा दान से वश में रहने-वाली और अस्थिर होती है। ऐसी पत्नी नैमित्तिका (कारणवश रहनेवाली) होती है, नित्या (सदा रहने-वाली) नहीं। ऐसी पत्नी को रखना वेदादि शास्त्रों में वर्जित है ॥२६॥ नैमित्तिका पत्नी नरक जाने की सीढ़ी और इस लोक में तथा परलोक में अपयश दिलानेवाली होती है। कुलीन तथा वैष्णव साधु पुरुष नैमित्तिका पत्नी में निरत नहीं होता है ॥२७॥ यदि पहले भ्रान्त हो गया हो तथा सत्संग न करता हो तो उस स्थिति में कोई नैमित्तिका में निरत हो सकता है। क्योंकि यह प्राणियों की प्रवृत्ति है, पर निवृत्ति का होना महान् फलदायक है ॥२८॥ यदि निवृत्तिमार्गी व्यक्ति पुनः विषय में लिप्त हो जाये तो वह पातकी प्रायश्चिती और पृथ्वी पर उपहासास्पद है। उसकी सारी क्रिया हस्ति-स्नान के समान है ॥२९॥ जो धर्मपत्नी सुशील, सुन्दरी, शान्त, प्रशंसित, पतिव्रता, वशवर्तिनी, सदा प्रिय बोलनेवाली, कोमलाङ्गी, दक्ष, श्यामा (युवती) तथा रतिसुखदायिनी है, ऐसी पत्नी का परित्याग करके वैष्णव तपस्या करने के लिए तभी जाय जब वह साध्वी पुत्रवती, परिणतवयस्का तथा शान्त चित्तवाली हो जाय, अन्यथा उसकी सारी तपस्या नष्ट हो जायगी ॥३०-३२॥ यदि कोई नीचकुल का नीच पुरुष परस्त्री के पास जाता है तो वह सात पीढ़ियों के साथ घोर नरक में पड़ता है ॥३३॥ मैं बाण की पुत्री ऊषा हूँ, बाण शंकर के सेवक तथा तीनों लोक के विजेता हैं और शंकर संसार के स्वामी हैं ॥३४॥ कुलीन स्त्री तीनों काल में भी स्वतन्त्र नहीं होती, बल्कि पराधीन रहती हैं। पुंश्चली जो स्वतन्त्र होती हैं वह नीच वंश में उत्पन्न हुई रहती है ॥३५॥ पिता योग्य वर को कन्या देता है। कन्या वर की याचना नहीं करती हैं, यह सनातन धर्म है ॥३६॥ तुम योग्य हो और मैं भी योग्या हूँ। प्रभो! यदि मुझे

त्वं च योग्योऽसि योग्याऽहं मामिच्छसि यदि प्रभो। बाणं प्रार्थय शंभुं वाऽप्यथवा पार्वतीं सतीम् ॥३७॥
इत्युक्त्वा सुन्दरी साध्वी सान्तर्धाना बभूव ह। निद्रां तत्याज सहसा कामी कामात्मजो मुने ॥३८॥
बुद्ध्वा स्वप्नं स विज्ञाय कामेन व्यथितान्तरः। बभूव व्याकुलोऽशान्तो न दृष्ट्वा प्राणवल्लभाम् ॥३९॥
त्यक्त्वाऽऽहारमनिद्रश्च प्रमत्तश्च कृशोदरः। क्षणं तिष्ठति शेते च क्षणं रहसि रोदिति ॥४०॥
पुत्रं दृष्ट्वा तु क्रन्दन्तं देवकी रुक्मिणी रतिः। अन्याश्च योषितः सर्वाः कथयामासुरीश्वरम् ॥४१॥
तासां च वचनं श्रुत्वा प्रहस्य मधुसूदनः। उवाच सर्वतत्त्वज्ञः कृष्णश्च पूर्णमानसः ॥४२॥

श्रीभगवानुवाच

कामातुरा बाणकन्या रतिं दृष्ट्वा शिवेशयोः। वरं संप्राप दुर्गाया व्याकुला मदनास्त्रतः ॥४३॥
स्वप्नं च दर्शयामास साऽनिरुद्धं च पार्वती। मम पौत्रं प्रमत्तं च चकार कौतुकेन च ॥४४॥
तत्पुत्रीं च प्रमत्तां तां करोमि स्वप्नतोऽधुना। स्वच्छन्दं तिष्ठ न चिरं नास्ति चिन्ता मनोव्यथा ॥४५॥
इति कृष्णः समाश्वास्य सर्वात्मा सर्वसिद्धिवित्। स्वप्नं च दर्शयामास बाणपुत्रीं च कामुकीम् ॥४६॥
सुप्ता सुतल्पे बाला सा पुष्पचन्दनचर्चिते। नवयौवनसंयुक्ता रत्नभूषणभूषिता ॥४७॥
शयाना रत्नपर्यङ्के ददर्श स्वप्नमीप्सितम्। अतीव निर्जने देशे रत्ननिर्माणमन्दिरे ॥४८॥

---

चाहते हो तो बाण से या शंकर से अथवा सती पार्वती से प्रार्थना करो ॥३७॥ इतना कहकर वह साध्वी सुन्दरी अन्तर्धान हो गयी। मुने! तब काम-पुत्र कामी (अनिरुद्ध) का एकाएक निद्रा-भंग हो गया ॥३८॥ वह स्वप्न समझकर काम से व्यथित हो उठा। प्राणप्रिया को न देखकर वह अशान्त एवं व्याकुल हो गया ॥३९॥ तब भोजन त्यागकर निद्रारहित, प्रमत्त एवं क्षीणकाय होने लगा। किसी क्षण खड़ा रहता था, किसी क्षण सो जाता था और किसी क्षण एकान्त में रोने लगता था ॥४०॥ पुत्र को रोते हुए देखकर देवकी, रुक्मिणी, रति तथा अन्य स्त्रियों ने भगवान् (कृष्ण) से कहा ॥४१॥ उनकी बात सुनकर सभी तत्त्वों के जाननेवाले मनस्वी मधुसूदन कृष्ण ने हँसकर कहा ॥४२॥

**श्रीभगवान् बोले**—शिव-पार्वती की रति देखकर बाण की पुत्री कामातुर हो गयी। तब कामदेव के अस्त्र से व्याकुल होकर उसने पार्वती से वर प्राप्त किया ॥४३॥ पार्वती ने अनिरुद्ध को स्वप्न दिखलाया और कौतुकवश मेरे पौत्र को प्रमत्त बना दिया ॥४४॥ अब मैं स्वप्न में बाणपुत्री को प्रमत्त बना देता हूँ। तुम (लोग) स्वच्छन्द रहो। अधिक देर तक चिन्ता मनोव्यथा नहीं रहेगी ॥४५॥ इस प्रकार आश्वासन देकर सब के आत्मा और सकल सिद्धियों के वेत्ता कृष्ण ने कामयुक्त बाणपुत्री को स्वप्न दिखलाया ॥४६॥ नवयौवन से युक्त तथा रत्नों के आभूषणों से भूषित वह बाला पुष्पों और चन्दनों से शोभित सुन्दर पलँग पर लेटी हुई मनोवांछित स्वप्न देखने लगी। अत्यन्त निर्जन स्थान में रत्नों के बने भवन में सोये हुए एक पुरुष को देखा, जो

नवीननीरदश्याममतीव नवयौवनम् । कोटिकन्दर्पलीलाभं सस्मितं सुमनोहरम् ॥४९॥
रत्नकेयूरवलयरत्नमञ्जीररञ्जितम् । रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजितम् ॥५०॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं भूषितं पीतवाससा । सुचारुमालतीमाल्यवक्षः स्थलसमुज्ज्वलम् ॥५१॥
शयानं रत्नपर्यङ्के पुष्पचन्दनचर्चिते । तं दृष्ट्वा सहसा साध्वी तन्मूलं प्रययौ मुदा ॥५२॥
उवाच मधुरं साध्वी हृदयेन विदूयता । कामात्मजप्रिया कान्ता कामबाणप्रपीडिता ॥५३॥

## ऊषोवाच

कस्त्वं कामुक भद्रं ते मां भजस्व स्मरातुराम् । अतिप्रौढां नवोढां च नवसंगमलालसाम् ॥५४॥
तवानुरक्तां भक्तां च गान्धर्वेण समुद्वह । विवाहाष्टप्रकारेषु गान्धर्वः सुलभो नृणाम् ॥५५॥
अनुरक्तां प्रियां प्राप्य त्यजेद्यः कपटी पुमान् । तस्माद्याति महालक्ष्मीः शापं दत्त्वा सुदारुणम् ॥५६॥

## पुमानुवाच

अहं कृष्णस्य पौत्रश्च कामदेवात्मजः स्वयम् । कथं गृह्णामि त्वां कान्ते तयोरनुमतिं विना ॥५७॥
इत्येवमुक्त्वा स पुमानन्तर्धानं चकार सः । कामेन व्याकुला कान्ता न दृष्ट्वा कान्तमीप्सितम् ॥५८॥
निद्रां त्यक्त्वा समुत्थाय तल्पादेव मनोहरात् । विषसाद सखीमध्ये प्रमत्ता रुदती भृशम् ॥५९॥
पप्रच्छ तां वराऽऽलीनां किं किमित्येव निश्चितम् । उवाच बोधयामास चित्रलेखा सुयोगिनी ॥६०॥

---

नवीन मेघ के समान श्यामवर्ण, अत्यन्त नवयुवक करोड़ों कन्दर्प के समान शोभा से युक्त मुस्कराता हुआ, अत्यन्त मनोहर, रत्नों के अंगद, वलय तथा मंजीर से सुशोभित, रत्नों के बने दो कुण्डलों से शोभायमान कपोलस्थलवाला, चन्दन से चर्चित सर्वाङ्ग शरीरवाला, पवीत वस्त्र से विभूषित तथा सुन्दर मालती की माला से उज्ज्वल वक्षःस्थलवाला था। उसे पुष्प और चन्दन से चर्चित रत्ननिर्मित पलंग पर लेटा हुआ देखकर वह साध्वी हर्ष के साथ सहसा उसके पास पहुँची ॥४७-५२॥ तब हृदय से सन्तप्त होती हुई सुन्दरी एवं साध्वी मदन-पुत्र-प्रिया कामबाण से पीड़ित होकर मधुर वचन बोली ॥५३॥

**ऊषा ने कहा**—हे कामुक ! तुम कौन हो ? मुझ कामातुरा का सेवन करो। अत्यन्त प्रौढ़, नवेली, नये समागम की लालसावाली, तुम्हारे प्रति अनुरक्त और भक्त मुझसे गान्धर्व विवाह कर लो। आठ प्रकार के विवाहों में गान्धर्व विवाह मनुष्यों के लिए सुलभ है ॥५४-५५॥ जो कपटी पुरुष अनुरक्त स्त्री को त्याग देता है, उसके यहाँ से महालक्ष्मी भयंकर शाप देकर चली जाती है ॥५६॥

**पुरुष बोला**—मैं स्वयं कृष्ण का पौत्र तथा कामदेव का पुत्र हूँ, इसलिए हे सुन्दरी ! उसकी अनुमति के बिना मैं तुम्हें कैसे ग्रहण कर सकता हूँ ? ॥५७॥ इस प्रकार कहकर वह पुरुष अन्तर्हित हो गया। तब अभीष्ट प्रियतम को न देखकर सुन्दरी काम से व्याकुल हो गयी ॥५८॥ वह निद्रा त्यागकर सुन्दर पलंग पर से उठ बैठी और प्रमत्त होकर रोती हुई, सखियों के बीच विषाद करने लगी ॥५९॥ सखियों में श्रेष्ठ योगिनी चित्रलेखा ने उससे पूछा—क्या हुआ ? फिर उसे समझाने लगी ॥६०॥

### चित्रलेखोवाच

चेतनं कुरु कल्याणि कस्मात्ते भीतिरुल्बणा। स्वयं शंभुः शिवा साक्षाद्दुर्लङ्घ्ये नगरे सति ॥६१॥
शिवस्मरणमात्रेण सर्वारिष्टं पलायते। शिवं भवति सर्वत्र शिव एव शिवालयः ॥६२॥
ध्यानाद्दुर्गतिनाशिन्याः सर्वं दुर्गं विनश्यति। ददाति मङ्गलं तस्मै सर्वमङ्गलमङ्गला ॥६३॥
चित्रलेखावचः श्रुत्वा किंचिन्नोवाच सुन्दरी। त्यक्त्वाऽऽहारं च निद्रां च पुरुषं चिन्तयेत्सदा ॥६४॥
चित्रलेखा सखी गत्वा बाणमाह च तत्प्रियाम्। दुर्गां च शंकरं स्कन्दं गणेशं योगिनां गुरुम् ॥६५॥
चित्रलेखावचः श्रुत्वा रुरोदोच्चैर्भृशं सती। बाणश्च शंकराभ्याशे विषसाद प्रमुच्छितः ॥
जहास शंकरो दुर्गा कार्तिकेयो गणेश्वरः ॥६६॥

### गणेश्वर उवाच

यो ददाति ध्रुवं दुःखमन्यस्मै दम्भमोहितः। सूक्ष्मधर्मविचारेण स विन्दसि चतुर्गुणम् ॥६७॥
शिवेशयोश्च क्रीडां च दृष्ट्वा या काममोहिता। वरं तस्यै ददौ दुर्गा वरमेव सुदुर्लभम् ॥६८॥
स्वप्ने गत्वा स्वयं देवी मत्तं कृत्वा स्मरात्मजम्। अधुना वामपार्श्वे च शंभोस्तिष्ठति मूकवत् ॥६९॥
सर्वं ज्ञात्वा च सर्वज्ञो भगवान्हरिरीश्वरः। स्वप्ने सुवेषं पुरुषं दर्शयामास कन्यकाम् ॥७०॥
सुवेषं पुरुषं दृष्ट्वा युवानं युवती सती। परमेच्छा भवेत्तस्या धर्मभीत्या निवर्तते ॥७१॥

---

**चित्रलेखा बोली**—हे शुभे ! चेत करो, किससे तुम्हें भयंकर भय हुआ है ? स्वयं शिव तथा साक्षात् पार्वती यहाँ हैं और यह नगर दुर्लंघ्य है ॥६१॥ शिव के स्मरण मात्र से सकल अरिष्ट भाग जाते हैं। सर्वत्र कल्याण होता है। शिव का निवास कल्याण ही है ॥६२॥ दुर्गतिनाशिनी (पार्वती) का ध्यान करने से सभी क्लेश नष्ट हो जाते हैं। सर्वमंगलमंगला (पार्वती) उसे मंगल प्रदान करती हैं ॥६३॥ चित्रलेखा की बात सुनकर सुन्दरी (ऊषा) कुछ नहीं बोली। (बल्कि) भोजन-शयन त्यागकर उसी पुरुष का सदा चिन्तन करने लगी ॥६४॥ सखी चित्रलेखा ने जाकर बाण, उसकी पत्नी, दुर्गा, शंकर तथा योगियों के गुरु गणेश से ऊषा की स्थिति बता दी ॥६५॥ चित्रलेखा की बात सुनकर साध्वी (बाणप्रिया) जोर-जोर से रोने लगी। बाण भी शंकर के समीप दुःख करते-करते मूच्छित हो गया। यह देखकर शंकर, दुर्गा और गणेश हँसने लगे ॥६६॥

**गणेश बोले**—जो व्यक्ति दम्भ से मोहित होकर दूसरे को निश्चित रूप से दुःख देता है, वह सूक्ष्म धर्म के विचार से चौगुना दुःख पाता है ॥६७॥ शिव-पार्वती की क्रीड़ा देखकर जो काममोहित हो गयी थी, उसे दुर्गा ने दुर्लभ वर (पति) पाने का ही वरदान दिया था ॥६८॥ स्वयं देवी (पार्वती) ने जाकर स्वप्न में काम-पुत्र को प्रमत्त कर दिया और अब शंकर के वाम भाग में चुपचाप बैठी है ॥६९॥ सर्वज्ञ एवं ईश्वर भगवान् कृष्ण ने सब कुछ जानकर स्वप्न में कन्या को सुन्दर स्वरूपवाला पुरुष दिखला दिया ॥७०॥ सुस्वरूप युवा पुरुष को देख सती युवती को परम इच्छा तो होती है, किन्तु धर्म के भय से वह निवृत्त हो जाती है ॥७१॥ सुस्वरूप पुरुष

सुवेषं पुरुषं दृष्ट्वा पुंश्चली पापवंशजा। त्यजेन्निद्रां च स्वाहारं पतिं पुत्रं धनं गृहम् ॥७२॥
चेतनं गृहकार्यं च कुललज्जां कुलद्वयम्। युवानं रतिशूरं चाप्यतिनीचं[1] न हि त्यजेत् ॥७३॥
त्यजेज्जातिं च धर्मं च प्राणांश्च परिणामतः। तस्मात्प्राज्ञः प्रयत्नेन प्राणेभ्यो युवतीं सदा ॥७४॥
परिरक्षेच्च सततं मायायुक्तां न विश्वसेत्। हृदयं क्षुरधाराभं नारीणां मधुरं वचः ॥७५॥
तासां मनो न जानन्ति सन्तो वेदाश्च वैदिकाः। प्रयातु द्वारकां सद्यश्चित्रलेखा सुयोगिनी ॥७६॥
अनिरुद्धं समाहर्तुं प्रमत्तमवलीलया। इति श्रुत्वा महादेवो गणेशं तमुवाच ह ॥७७॥
न शृणोति यथा बाणः शुभकार्यं तथा कुरु। चित्रलेखा ययौ तूर्णं द्वारकाभवनं हरेः ॥७८॥
सर्वेषामपि दुर्लङ्घ्यं लीलया प्रविवेश सा। निद्रितं चानिरुद्धं च समाहृत्य च योगतः ॥७९॥
रथमारोहयामास निद्रितं बालकं मुदा। सा मनोयायिनी भद्रा गृहीत्वा बालकं मुने ॥८०॥
मुहूर्ताच्छोणितपुरं कृत्वा शङ्खध्वनिं ययौ। अथाऽऽश्रमाभ्यन्तरे च रुरुदुः सर्वयोषितः ॥८१॥
अहो बाणहरो वत्सः क्व गतः प्राणवल्लभः। कृष्णस्ताश्च समाश्वास्य सर्वज्ञः सर्वतत्त्ववित् ॥८२॥
साम्बकामबलैः सार्धं कृष्णः सात्यकिना तथा। गृहीत्वा गरुडं वीरं रथमारुह्य सत्वरः ॥८३॥

---

को देखकर पापी वंश में उत्पन्न पुंश्चली स्त्री निद्रा, भोजन, पति, पुत्र, धन, गृह, चेतना, गृहकार्य, कुल की लज्जा दोनों (पति और पिता के) कुल, जाति, धर्म और परिणामतः प्राणों को भी त्याग देती है, किन्तु अत्यन्त नीच रति-वीर युवक को नहीं छोड़ती है। इसलिए विद्वान् व्यक्ति सदा प्राणों से भी अधिक युवती की रक्षा का प्रयत्न करे, किन्तु मायाविनी (स्त्री) का विश्वास न करे। क्योंकि नारियों का वचन तो मधुर होता है, पर हृदय उस्तुरे की धार के समान होता है ॥७२-७५॥ उनके मन को सन्त लोग, वेद तथा वेद के विद्वान् भी नहीं जानते हैं। श्रेष्ठ योगिनी चित्रलेखा लीलापूर्वक प्रमत्त अनिरुद्ध को लाने के लिए शीघ्र द्वारकापुरी को प्रस्थान करे। यह सुनकर महादेव ने गणेश से कहा ॥७६-७७॥ जिससे बाण न सुने उस प्रकार शुभ कार्य करो। चित्रलेखा शीघ्रता से द्वारका में हरि के भवन में पहुँच गयी ॥७८॥ सबके लिए दुर्लंघ्य भवन में प्रविष्ट होकर उसने सोये हुए अनिरुद्ध को योग से अपहृत करके निद्रित बालक को हर्ष से रथ पर चढ़ा लिया। मुने! कल्याणी चित्रलेखा मन के समान वेगशालिनी थी। वह शंखध्वनि करके क्षणभर में शोणितपुर पहुँच गयी। इधर (कृष्ण के) आश्रम के भीतर (अनिरुद्ध को न देखकर) सभी स्त्रियाँ यह कहकर रोने लगीं कि हाय बाण का हरण करनेवाला प्राणों का प्यारा बालक कहाँ चला गया। सर्वज्ञ एवं सकल तत्त्वों के ज्ञाता श्रीकृष्ण उन्हें आश्वासन देकर शीघ्र ही साम्ब, कामदेव, सेना तथा सात्यकि के साथ वीर गरुड़ को लेकर रथ पर चढ़कर सुदर्शन चक्र, पाञ्चजन्य शंख, पद्म और कौमोदकी गदा से युक्त होकर शोणितपुर के लिए प्रस्थित

---

१ क. °प्यनीति च न।

सुदर्शनं पाञ्चजन्यं पद्मं कौमोदकीं गदाम्। पश्चाद्यास्यतिदेवेशो नगरं शोणितं तथा ॥८४॥
सगणैः शंकरेणैव पार्वत्या परिरक्षितम्। अथ सा योगिनी धन्या पुण्या मान्या च योषिताम् ॥८५॥
शिष्या दुर्वाससः शान्ता सिद्धयोगेन सिद्धिदा। बालकं बोधयामास रुदन्तं मातरं स्मरन् ॥८६॥
स्नापयित्वा ददौ तस्मै माल्यचन्दनभूषणम्। कृत्वा सुवेषं बालस्य कन्यान्तःपुरमीप्सितम् ॥८७॥
चक्रे प्रवेशं योगेन रक्षकैश्चापि रक्षितम्। तामूषां निद्रितां दृष्ट्वा निराहारां कृशोदरीम् ॥८८॥
शीघ्रं च बोधयामास सखीभिः परिरक्षिताम्। ऊषां कृत्वा च सुस्नातां वस्त्रभूषणभूषिताम् ॥८९॥
वस्त्रैर्माल्यैश्चन्दनैश्च सिन्दूरपत्रकैः शुभैः। द्वयोः संभाषणं तत्र माहेन्द्रे च शुभक्षणे ॥९०॥
कारयामास गुप्त्या च सखीनां संमतेन च। पतिव्रता पतिं दृष्ट्वा सा रेमे विगतज्वरा ॥९१॥
गान्धर्वेण विवाहेन तामुवाह स्मरात्मजः। रतिर्बभूव सुचिरमुभयोः सुखकारणम् ॥९२॥
दिवानिशं न बुबुधे स्मरपुत्रः स्मरातुरः। ऊषा कामातुरा प्रौढा नवोढा नवसंगमात् ॥९३॥
मूर्च्छां संप्राप पुंसश्च स्पर्शमात्रेण कामुकी। एवं नित्यं च रहसि संगमः सुमनोहरः॥
बभूव सुचिरं विप्र राजा शुश्राव रक्षकात् ॥९४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० ऊषानिरुद्धयोः संगमे चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११४॥

•

---

हो गये, जो (नगर) गणों के साथ शंकर तथा पार्वती से सुरक्षित था ॥७९-८४½॥ इधर दुर्वासा की शिष्या योगिनी चित्रलेखा ने, जो नारियों में धन्य, पवित्र, मान्य, शान्त तथा योगसिद्ध होने के कारण सिद्धिदायिनी थी, माता का स्मरण करके रोते हुए बालक को समझाया ॥८५-८६॥ फिर स्नान कराकर उसे माला और चन्दन से विभूषित किया। इस प्रकार बालक का सुन्दर वेश बनाकर अभिप्रेत कन्या के अन्तःपुर में, जो रक्षकों से सुरक्षित था, योगबल से प्रवेश किया। वहाँ आहार से रहित, क्षीण मध्यभागवाली तथा सखियों से सुरक्षित ऊषा को शीघ्र जगा दिया। उसे स्नान कराकर वस्त्रों, आभूषणों, मालाओं, चन्दनों तथा पवित्र सिन्दूर-पत्रकों से सुसज्जित किया। फिर माहेन्द्र नामक शुभ मुहूर्त में, सखियों की सम्मति से दोनों में गुप्त वार्तालाप कराया। पति को देखकर पतिव्रता (ऊषा) का सन्ताप दूर हो गया। उसने कन्दर्प-पुत्र से गान्धर्व विवाह करके रमण किया। दोनों ने दीर्घकाल तक सुखजनक रति-क्रीड़ा की ॥८७-९२॥ कामपीड़ित अनिरुद्ध ने दिन और रात को नहीं समझा। नये समागम से कामातुर ऊषा, जो प्रौढ़ा और नवोढ़ा थी, पुरुष के स्पर्श मात्र से मूर्च्छित हो गयी थी। इस प्रकार बहुत दिनों तक एकान्त में उन दोनों का संगम नित्य चलता रहा। विप्र! पश्चात् राजा ने रक्षक से उनके बारे में सुना ॥९३-९४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद-नारायण के संवाद में ऊषा और अनिरुद्ध के संगम-प्रकरण में एक सौ चौदहवाँ अध्याय समाप्त ॥११४॥

•

# अथ पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः

नारायण उवाच

अथ भीता रक्षकास्ते समूचुर्बाणमीश्वरम् । स्कन्दं गणेशं दुर्गां च दण्डवत्प्रणिपत्य च ॥१॥

रक्षका ऊचुः

अहो दुष्टश्च कालोऽयमतीव दुरतिक्रमः । स्वतन्त्रा बालिका प्रौढा पतिमिच्छति सांप्रतम् ॥२॥
असङ्गसंगमं नाथ साधूनां दुःखकारणम् । संसर्गजा गुणा दोषा भवन्ति सततं नृणाम् ॥३॥
चित्रलेखा स्वयं दूती समानीय परं वरम् । रणशूरं महावीरं नृपेन्द्रं च महारथम् ॥४॥
युवानं व्याधिहीनं च कन्दर्पादपि सुन्दरम् । संभोगं कारयामास बुबुधे न दिवानिशम् ॥५॥
सांप्रतं तव कन्या साऽप्यूषा गर्भवती सती । कुलजा कुलयोश्चैव तप्ताङ्गारस्वरूपिणी ॥६॥
दौहित्रो वाऽपि दौहित्री बभूव सांप्रतं तव । कन्यां पश्य महाप्रौढां नगरीं नागरान्विताम् ॥७॥
नखविक्षतसर्वाङ्गीं वराधीनां च चञ्चलाम् । पुंसश्च सङ्गिनीं शश्वद्रहस्ये रतिसङ्गिनीम् ॥८॥
सस्मितां सकटाक्षां च चञ्चलेक्षणवीक्षिताम् । एवं श्रुत्वा लज्जितश्च बाणस्तत्र चुकोप ह ॥९॥

---

# अध्याय ११५

## कन्या के समाचार से बाण का युद्ध के लिए उद्यत होना

**नारायण ने कहा**—तदनन्तर भयभीत हुए रक्षकगण कार्तिकेय, गणेश और दुर्गा को दण्डवत् (भूमि पर लेटकर) प्रणाम करके राजा बाण से बोले ॥१॥

**रक्षकों ने कहा**—'हाय ! यह काल अत्यन्त दुष्ट एवं दुर्लंघ्य है। इस समय प्रौढ़ कन्या स्व[illegible] होकर पति को चाहती है ॥२॥ हे नाथ ! दुर्जन का संग सज्जनों के लिए दुःख का कारण बनता है। मनुष्यों [illegible] लिए गुण और दोष सतत संसर्ग से उत्पन्न होते हैं ॥३॥ चित्रलेखा स्वयं दूती बनकर एक श्रेष्ठ वर [illegible] आयी, जो युद्धवीर, महावीर, राजेन्द्र, महारथी, युवक, नीरोग तथा कन्दर्प से भी बढ़कर सुन्दर है। उसके [illegible] बिना दिन-रात को समझे संभोग कराया। तब आपकी पुत्री सती ऊषा भी गर्भवती हो गयी। कुलीन वह दोनों कुलों के लिए तपे हुए अंगार के समान हो गयी। इस समय आपको दौहित्री या दौहित्र [illegible] आप अत्यन्त प्रौढ़, चतुर पुरुष से युक्त तथा (स्वयं) चतुर कन्या को देखिये, जिसके सम्पूर्ण अ[illegible] पड़ा है, जो वर के अधीन, चंचल, पुरुष के संग में रहनेवाली, एकान्त में निरन्तर रा[illegible] मुसकराती हुई, कटाक्ष करनेवाली और चंचल नेत्रों से देखनेवाली है।' ऐसा सुनकर बाण

युद्धाय च मतिं चक्रे वारितः शंभुना भृशम् । वारितश्च गणेशेन स्कन्देन शिवया तथा ॥१०॥
भैरव्या भद्रकाल्या च योगिनीभिश्च संततम् । अष्टभिर्भैरवैश्चैव रुद्रैरेकादशात्मकैः ॥११॥
भूतैः प्रेतैश्च कूष्माण्डैर्वेतालैर्ब्रह्मराक्षसैः । योगीन्द्रैरपि सिद्धेन्द्रै रुद्रैश्चण्डादिभिस्तथा ॥१२॥
'कोटर्या ग्रामदेव्या च यथा मात्रा हिताय च । उवाच शंकरो बाणं मूढं पण्डितमानिनम् ॥
हितं सत्यं नीतिशास्त्रं परिणामसुखावहम् ॥१३॥

## महादेव उवाच

शृणु बाण प्रवक्ष्यामि कथामेतां पुरातनीम् । भुवो भारावतरणे भारते स्वयमीश्वरः ॥१४॥
निहत्य सर्वान्राजेन्द्रान्द्वारकायां विराजते । यस्य लोमसु विश्वानि तस्य वासः सदीश्वरः ॥१५॥
वासुदेव इति ख्यातः कथ्यते तेन कोविदैः । धातुर्विधाता भगवांश्चक्रपाणिः स्वयं भुवि ॥१६॥
ब्रह्मविष्णुशिवादीनामीश्वरः प्रकृतेः परः । निर्गुणश्च निरीहश्च भक्तानुग्रहविग्रहः ॥१७॥
परं ब्रह्म परं धाम परमात्मा च देहिनः । यस्मिन्गते शवो जीवो संग्रामस्तेन संभवेत् ॥१८॥
शस्त्रविद्धो महाकाशो[2] यथा मूढ दिशस्तथा । तथाऽऽत्मा च निराकारो देही च ध्यानहेतुना ॥१९॥
तस्य पुत्रोऽनिरुद्धश्च महाबलपराक्रमः । त्रैलोक्यमपि संहर्तुं क्षणेन च क्षमः स्वयम् ॥२०॥
सर्वे देवाश्च दैत्याश्च बलवन्तो महारथाः । ते सर्वे चानिरुद्धस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥२१॥

---

हो उठा ॥४-९॥ उसने युद्ध करने का विचार कर लिया, पर शंकर ने रोक दिया । गणेश, कार्तिकेय, पार्वती, भैरवी, भद्रकाली, योगिनी, आठ भैरव, ग्यारह रुद्र, भूत, प्रेत, कूष्माण्ड, वेताल, ब्रह्मराक्षस, योगीन्द्र, सिद्धेन्द्र, चण्ड आदि रुद्र, ग्रामदेवी कोटरी, माता और शंकर हित के लिए पण्डितमानी मूर्ख बाण से हितकारक, सत्य, नीतिशास्त्र के अनुकूल तथा परिणाम में सुख देनेवाली बात कहने लगे ॥१०-१३॥

**महादेव ने कहा**—बाण ! मैं प्राचीन कथा कह रहा हूँ, सुनो। पृथ्वी का भार उतारने के लिए साक्षात् ईश्वर भारतवर्ष में अवतार लेकर सभी राजेन्द्रों को मारकर द्वारका में विराजमान हैं। जिनके लोमों में समस्त विश्व विद्यमान हैं, उनका निवास सत् ईश्वर है। इसी से विद्वानों ने उन्हें वासुदेव कहा है। भगवान् श्रीकृष्ण पृथ्वी पर स्वयं ब्रह्मा के भी ब्रह्मा हैं। वे ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि के भी प्रभु, प्रकृति से परे, निर्गुण, निरीह, भक्तों पर अनुग्रहार्थ शरीर धारण करनेवाले, परब्रह्म, परमधाम और प्राणी के परमात्मा हैं। जिनके चले जाने पर जीव शव बन जाता है, उनके साथ युद्ध कैसे संभव हो सकता है? ॥१४-१८॥ जैसे शस्त्रों से ढक दिये जाने पर महान् आकाश में दिशाओं का पता नहीं चलता है उसी प्रकार मनुष्य ध्यान के बल से निराकार आत्मा को नहीं देख पाता है ॥१९॥ उनके पुत्र तथा महान् बली और पराक्रमी अनिरुद्ध तीनों लोक को एक क्षण में विनष्ट करने में समर्थ हैं ॥२०॥ सभी देवता, दैत्य और बलवान् महारथी लोग अनिरुद्ध की सोलहवीं कला

---

१ क. संप्रोच्य प्रा । क. काशो ।

**ययोरेव समं वित्तं ययोरेव समं बलम् । तयोर्विवाहो[1] मैत्री च न तु पुष्टविपुष्टयोः ॥२२॥**
**बलिः पिता ते दैत्यानां सारभूतो महारथः । क्षणेन येन नीतश्च सुतलं स हरेः कला ॥२३॥**
**सर्वे चांशकलाः पुंसः परिपूर्णतमस्य च । वृन्दावनेश्वरस्यापि कृष्णस्य परमात्मनः ॥२४॥**

## पार्वत्युवाच

**ध्यायते ध्याननिष्ठश्च हृत्पद्मे च दिवानिशम् । ब्रह्मा महेशः शेषश्च भगवन्तं सनातनम् ॥२५॥**
**दिनेशश्च गणेशश्च योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः । ध्यायते परमात्मानं भगवन्तं सनातनम् ॥२६॥**
**सनत्कुमारः कपिलो नरो नारायणस्तथा । ध्यायते हृदयाम्भोजे भगवन्तं सनातनम् ॥२७॥**
**मनवश्च मुनीन्द्राश्च सिद्धेन्द्रा योगिनां वराः । ध्यानासाध्यं च ध्यायन्ते भगवन्तं सनातनम् ॥२८॥**
**सर्वादिं सर्वबीजं च सर्वेशं च परात्परम् । ध्यायन्ते ज्ञानिनः सर्वे भगवन्तं सनातनम् ॥२९॥**

## गणेश उवाच

**अभाग्यं च बलेश्चापि वैष्णवस्य महात्मनः । मूढोऽयमीदृशः पुत्रः प्रह्लादस्य च धीमतः ॥३०॥**

## स्कन्द उवाच

**अये भ्रातर्न श्रुता च हिरण्यकशिपोः कथा । हिरण्याक्षस्य च मधोः कैटभस्य महात्मनः ॥३१॥**

---

के बराबर भी नहीं हैं ॥२१॥ जिन दो व्यक्तियों में समान धन हो और जिनमें बल की भी समानता हो, उन्हीं दोनों में विवाह और मैत्री शोभा देती है । बलवान् और निर्बल का सम्बन्ध उचित नहीं होता ॥२२॥ जिन्होंने तुम्हारे पिता बलि को, जो दैत्यों के सारभूत, महारथी एवं हरि की कला थे, क्षणभर में पाताल पहुँचा दिया, उन्हीं वृन्दावन के स्वामी परिपूर्णतम पुरुष परमात्मा श्रीकृष्ण की सभी प्राणी अंशकलाएँ हैं ॥२३-२४॥

**पार्वती ने कहा**—ब्रह्मा, महेश, शेषनाग और ध्यानरत जन अपने हृदयकमल में दिन-रात भगवान् सनातन का ध्यान करते हैं ॥२५॥ सूर्य, गणेश और योगीन्द्रों के गुरु के गुरु (शिव) भगवान् सनातन परमात्मा का ध्यान करते हैं ॥२६॥ सनत्कुमार, कपिल, नर तथा नारायण अपने हृदय-कमल में भगवान् सनातन का ध्यान करते हैं ॥२७॥ मनु, मुनीन्द्र, सिद्धेन्द्र तथा योगिप्रवर लोग ध्यान से अप्राप्य भगवान् सनातन का ध्यान करते हैं ॥२८॥ सभी ज्ञानी लोग सबके आदि, सबके बीज, सबके प्रभु और परात्पर भगवान् सनातन का ध्यान करते हैं ॥२९॥

**गणेश ने कहा**—बुद्धिमान् प्रह्लाद तथा विष्णु-भक्त महात्मा बलि का भी दुर्भाग्य है जो ऐसा मूर्ख पुत्र हुआ ॥३०॥

**कार्तिकेय ने कहा**—भाई जी ! क्या आपने महात्मा हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष, मधु तथा कैटभ की कथा

---

१ क. बाहो ।

पूर्वजास्तेऽपि ते दैत्या महाबलपराक्रमाः। क्रमेण विष्णुना नीता लीलया यमसादनम् ॥३२॥
भगवान्यस्य संहर्ता स्वयं नारायणः प्रभुः। तस्य को रक्षिता भ्रातर्निवर्तस्व शुभाय च ॥३३॥
तेषां च वचनं श्रुत्वा तानुवाचासुरेश्वरः। कोपरक्तास्यनयनो धनुष्पाणिर्यथाऽन्तकः ॥३४॥

## बाण उवाच

शृणु मातः प्रवक्ष्यामि शृणु तात महेश्वर। शृणु भ्रातर्गणपते शृणु भ्रातश्च कार्तिक ॥३५॥
शुभाशुभं प्राक्तनेन प्राणिनां कर्मिणां तथा। कृतकर्मातिरिक्तं च कार्यं केषां च वर्तते ॥३६॥
नाप्राप्तकालो म्रियते विद्धः शरशतैरपि। तृणाग्रेणापि संस्पृष्टः प्राप्तकालो न जीवति ॥३७॥
यस्माच्च यस्य निर्वाणं विधात्रा लिखितं पुरा। तदेव नित्यं सत्यं च निषेकः केन वार्यते ॥३८॥
संग्रामे कातरो यो हि निष्फलं तस्य जीवनम्। जयी यशश्च लभते मृतः स्वर्गं च गच्छति ॥३९॥
प्रविश्य कन्यां गृह्णाति नगरं शिवरक्षितम्। पार्वत्या च गणेशेन युद्धेन बलिना तथा ॥४०॥
को वा गृह्णाति कन्यां च कस्य वा जीवितस्य च। सगर्भा तव कन्येति सभायां रक्षको वदेत् ॥४१॥
इति मे वज्रतुल्यं च श्रुतिकौटं परं वचः। [1]अतोऽनिरुद्धं हत्वा च घातयिष्यामि कन्यकाम्
अन्यथा ज्वलदग्नौ च त्यक्ष्यामि च कलेवरम् ॥४२॥

---

नहीं सुनी है? वे महान् बलशाली एवं पराक्रमी दैत्य आपके पूर्वज थे। उन्हें क्रमशः विष्णु ने लीलापूर्वक यमलोक पहुँचा दिया था ॥३१-३२॥ हे भाई! स्वयं प्रभु नारायण जिसका संहार करनेवाले हैं, उसे कौन बचा सकता है? (अतः) तुम कल्याण के लिए (युद्धपथ से) निवृत्त हो जाओ ॥३३॥ उनकी बात सुनकर क्रोध से लाल मुख और नेत्रवाले तथा हाथ में धनुष लिये यमराज के समान दैत्यराज (बाण) ने उनसे कहा ॥३४॥

**बाण ने कहा**—हे माता, हे पिता शंकर, हे भाई गणेश, हे भाई कार्तिकेय, सुनिये, मैं कहता हूँ। कर्म करनेवाले प्राणियों को पहले के किये हुए कर्म के अनुसार शुभ और अशुभ फल मिलते हैं। किये हुए कर्म के अतिरिक्त किसको क्या फल मिलता है? ॥३५-३६॥ बिना समय आये प्राणी सैकड़ों बाणों से विद्ध होने पर भी नहीं मरता है और समय आ जाने पर तिनके के अग्रभाग से छू जाने पर भी जीवित नहीं रहता ॥३७॥ विधाता ने पूर्वकाल में जिससे जिसका मारा जाना लिख दिया है वही सत्य है। अवश्यम्भावी फल को कौन रोक सकता है? ॥३८॥ जो व्यक्ति युद्ध में कायर बन जाता है, उसका जीवन व्यर्थ है। युद्ध में जय प्राप्त करनेवाला व्यक्ति यश पाता है और मर जाने पर स्वर्ग को जाता है ॥३९॥ उसने शंकर, पार्वती और गणेश के द्वारा सुरक्षित नगर में घुसकर कन्या को ग्रहण कर लिया, जैसा कि युद्ध के द्वारा बलवान् पुरुष करता है, किस जीवित पुरुष की कन्या को कौन इस तरह ग्रहण करता है? सभा में रक्षक ने मुझसे कहा कि कन्या गर्भवती हो गयी है। यह वचन मेरे कान के भीतर परम वज्र के समान लग रहा है। इसीलिए मैं अनिरुद्ध को मारकर कन्या को भी मार दूँगा, अन्यथा प्रज्वलित अग्नि में शरीर को छोड़ दूँगा ॥४०-४२॥

---

१ क. रणेऽ—।

### कोटर्युवाच

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि माताऽहं तेऽपि धर्मतः। दुरन्तेनापि पुत्रेण पित्रोर्दुःखं पदे पदे ॥४३॥
कन्या परगृहीता साऽप्यन्यस्मै दातुमक्षमा। श्रीकृष्णस्यापि पौत्राय प्रद्युम्नस्य सुताय च ॥४४॥
अनिरुद्धाय महते स्वेच्छया देहि कन्यकाम्। पूतोऽसि भारते वर्षे सप्तभिः पितृभिः सह ॥४५॥
यौतुकं देहि सर्वस्वं यशसे महसे[1] भुवि। अन्यथा रणमध्ये च त्वां हनिष्यति माधवः ॥४६॥
सुदर्शनेन चक्रेण को वा त्वां रक्षितुं क्षमः। कोटरीवचनं श्रुत्वा चुकोप दैत्यपुंगवः ॥४७॥
प्रययौ रथमारुह्य यत्र पौत्रो हरेर्मुने। स्कन्दः सेनापतिर्भूत्वा प्रययौ शंकराज्ञया ॥४८॥
बाणः स्वस्त्ययनं चक्रे गणेशश्च शिवः स्वयम्। बाणं शुभाशिषं चक्रे पार्वती कोटरी तथा ॥४९॥
अष्टौ च भैरवाश्चैव रुद्राश्चैकादशैव ते। सर्वे युद्धाय हन्तारो बभूवुः शस्त्रपाणयः ॥५०॥
एतस्मिन्नन्तरे दूतोऽप्यनिरुद्धमुवाच ह। पार्वत्या प्रेरितश्चैव बाणपत्न्या च सत्वरम् ॥५१॥

### दूत उवाच

अनिरुद्धोत्तिष्ठ भद्रं पार्वतीवचनं शृणु। भव सांनाहिको वत्स कुरु युद्धं बहिर्भव ॥५२॥
भीतोषा रुदती त्रस्ता सस्मार पार्वतीं सतीम्। रक्ष रक्ष महामाये मत्प्राणेश्वरमीप्सितम् ॥५३॥

---

**कोटरी बोली**—वत्स ! सुनो, मैं धर्म से तुम्हारी भी माता हूँ। दुष्ट पुत्र से भी माता-पिता को पद-पद पर दुःख होता है। दूसरे के द्वारा ग्रहण की गयी वह (ऊषा अब) दूसरे को देने योग्य नहीं है। श्रीकृष्ण के पुत्र और प्रद्युम्न के पुत्र महान् अनिरुद्ध को अपनी इच्छा से कन्या दे दो। इससे तुम भारतवर्ष में सात पीढ़ियों के साथ पवित्र हो जाओगे ॥४३-४५॥ फिर पृथ्वी पर यश तथा तेज प्राप्त करने के लिए अपना सर्वस्व दहेज में दे दो; अन्यथा युद्ध के बीच हरि सुदर्शन-चक्र से तुमको मार डालेंगे। कौन तुम्हें बचा सकेगा ? कोटरी की बात सुनकर दैत्यराज क्रुद्ध हो गया। मुनि ! वह रथ पर चढ़कर वहाँ चला गया, जहाँ कृष्ण के पौत्र थे तब शंकर की आज्ञा से कार्तिकेय सेनापति होकर विदा हुए। बाण ने स्वस्तिवाचन कराया। गणेश, साक्षात् शिव, पार्वती तथा कोटरी ने बाण को शुभाशीर्वाद दिया। आठ भैरव और ग्यारह रुद्र—ये सब हाथ में शस्त्र लेकर युद्ध के लिए हन्ता हो गये। इस बीच पार्वती और बाण-पत्नी के द्वारा प्रेरित होकर दूत ने शीघ्र ही अनिरुद्ध से कहा ॥४६-५१॥

**दूत बोला**—अनिरुद्ध ! उठो और पार्वती का मंगल-वचन सुनो—'वत्स ! कवच धारण कर लो और बाहर होकर युद्ध करो' ॥५२॥ भयभीत ऊषा ने रोती हुई सती पार्वती का स्मरण किया—'महामाया ! मेरे मनोनीत प्राणेश्वर की रक्षा करो। अत्यन्त भयंकर संग्राम में निर्भय रहते हुए भी इन्हें अभय दान दो। तुम्हीं

---

१ ख. हुते।

अभयेऽप्यभयं देहि संग्रामे घोरदारुणे । त्वमेव जगतां माता स्नेहस्ते सर्वतः समः ॥५४॥
अथानिरुद्धः संनाही शस्त्रपाणिर्बभूव ह । ऊषादत्तं रथं प्राप्य चकाराऽऽरोहणं मुदा ॥५५॥
बहिः संभूय शिबिराद्ददर्श बाणमीश्वरः । सांनाहिकं शस्त्रपाणिं रक्तास्यलोचनं परम् ॥५६॥
दृष्ट्वाऽनिरुद्धं बाणश्च तमुवाच रुषाऽन्वितः । घोरसंग्राममध्ये च विषोक्ति प्रज्वलन्निव ॥५७॥

## बाण उवाच

अये वीर महादुष्ट नीतिशास्त्रविवर्जित । चन्द्रवंशकुलाङ्गार पुण्यक्षेत्रेऽयशस्कर ॥५८॥
पिता ते शम्बरं हत्वा जग्राह तस्य कामिनीम् । ततो जातो भवानेव निरोधं स्वकुलक्षमम् ॥५९॥
पितामहो वासुदेवो मथुरायां च क्षत्रियः । गोकुले वैश्यपुत्रश्च नाम्ना च नन्दनन्दनः ॥६०॥
वृन्दावने च गोपस्य नन्दस्य पशुरक्षकः । साक्षाज्जारश्च गोपीनां दुष्टः परमलम्पटः ॥६१॥
जघान पूतनां सद्यो नारीघाती ह्यधार्मिकः । आगत्य मथुरां कुब्जां जघान मैथुनेन च ॥६२॥
दुर्बलं नरकं हत्वा स्त्रीसमूहं मनोहरम् । जग्राह योनिलुब्धश्च स्वपुत्रमतिनिष्ठुरः ॥६३॥
भीष्मकं मानवं जित्वा तत्पुत्रं चापि दुर्बलम् । जग्राह कन्यकां तस्य देवयोग्यां च रुक्मिणीम् ॥६४॥
सत्राजितः सूर्यभृत्यो देवात्प्राप मणीश्वरम् । घातयित्वा ह्युपायेन जग्राह मणिकन्यकाम् ॥६५॥
कुरुपाण्डवयुद्धं च कारयित्वा च दारुणम् । युधिष्ठिरस्य यज्ञे च शिशुपालं जघान सः ॥६६॥

---

संसार की माता हो । तुम्हारा स्नेह सब ओर समान है ॥५३-५४॥ इसके बाद अनिरुद्ध ने कवच पहनकर हाथों में शस्त्र ले लिया और ऊषा के दिये हुए रथ पर हर्ष से आरोहण किया ॥५५॥ शिविर से बाहर होने पर उन्होंने बाण को देखा, जो कवच पहने हुए, हाथों में शस्त्र लिये हुए और अत्यन्त रक्तनेत्र था ॥५६॥ बाण अनिरुद्ध को देखकर क्रोध से युक्त होकर घोर संग्राम में मानो विषमय वचन उगलने लगा ॥५७॥

**बाण बोला**—रे वीर, महान् दुष्ट, नीतिशास्त्र के ज्ञान से शून्य, चन्द्रवंश के (नाश के) लिए अङ्गार-स्वरूप, पवित्र क्षेत्र में अपयश का कार्य करनेवाला ! तेरे पिता ने शम्बरासुर को मारकर उसकी पत्नी को ले लिया । उससे तू उत्पन्न हुआ । अपने कुल के योग्य निरोध तू है (?) ॥५८-५९॥ तेरा पितामह वासुदेव (कृष्ण) मथुरा में क्षत्रिय है, गोकुल में वैश्यपुत्र है और नाम से नन्द का पुत्र है ॥६०॥ वह वृन्दावन में नन्दगोप के पशुओं का चरवाहा है । गोपियों का साक्षात् उपपति वह दुष्ट परम लम्पट है ॥६१॥ उसने पूतना का सद्यःवध किया है, इसलिए स्त्रीघाती और अधार्मिक है । उसने मथुरा आकर कुब्जा को मैथुन के द्वारा मार दिया ॥६२॥ अत्यन्त निष्ठुर तथा योनि के लोभी उसने अपने दुर्बल पुत्र नरक को मारकर मनोहर स्त्री-समूह को अपना लिया ॥६३॥ मानव भीष्मक को तथा उसके दुर्बल पुत्र को भी जीतकर उसकी देवयोग्य रुक्मिणी नामक कन्या को ग्रहण कर लिया ॥६४॥ सूर्य के सेवक सत्राजित ने भाग्य से उत्तम मणि प्राप्त किया, पर युक्ति से उसको भी मारकर मणि सहित कन्या को ले लिया ॥६५॥ कौरवों और पाण्डवों में भयंकर युद्ध कराकर युधिष्ठिर के यज्ञ में उस निर्दय ने शिशुपाल, दन्तवक्त्र, शाल्व और जरासंध को मार दिया और पृथ्वी के अत्यन्त दारुण

दन्तवक्त्रं च शाल्वं च जरासंधं च दारुणः। संजहार भुवो भूपसमूहमतिदारुणम् ॥६७॥
उपायान्नरकं हत्वा सर्वस्वं तज्जहार सः। दुर्बलो राजभीतश्चसमुद्रं शरणं गतः ॥६८॥
जित्वा च भ्रातरं शक्रं भार्याया वचनेन च। जग्राह पारिजातं च पुष्पं च स्वर्गदुर्लभम् ॥६९॥
कंसं निहत्यार्धमिष्ठो भ्रातरं मातुरेव च। जग्राह तस्य सर्वस्वं परं किं कथयामि ते ॥७०॥
जित्वा च भल्लुकं युद्धे जग्राह तस्य कन्यकाम्। तत्पितुर्भगिनी कुन्ती चतुर्णां कामिनी भुवि ॥७१॥
द्रौपदी भ्रातृपत्नी च पञ्चानां कामिनी तथा। गोष्ठीनो[1] योनिलुब्धश्च शश्वत्परमलम्पटः ॥७२॥
तज्ज्येष्ठो बलदेवश्च शश्वत्पिबति वारुणीम्। यमुनां भ्रातृपत्नीं च करोत्याह्वानमीप्सितम् ॥७३॥
जहार भगिनीं तस्य कौन्तेयः शक्रनन्दनः। सुभद्रां मातुलसुतां संनिबोध कुलक्रमम् ॥७४॥
बाणस्य वचनं श्रुत्वा चुकोप कामनन्दनः। उवाच परमार्थं च योग्यं प्रत्युत्तरं मुने ॥७५॥

## अनिरुद्ध उवाच

पिता मे कामदेवश्च ब्रह्मपुत्रः पुरा शुचिः। यस्यास्त्रेण वशीभूतं त्रैलोक्यं सततं शृणु ॥७६॥
शिवकोपानलेनैव भस्मीभूतः स्वकर्मतः। कृष्णस्य पुत्रोऽप्यधुना सर्वेषां परमात्मनः ॥७७॥
पतिव्रता रतिर्माता पतिशोकेन सांप्रतम्। शम्बरस्य गृहे तस्थौ हृता तेन बलेन च ॥७८॥

---

भूप-समूह का संहार किया। उपाय से नरक को मारकर उसका सर्वस्व हरण कर लिया। राजा से भयभीत एवं दुर्बल वह समुद्र की शरण में गया ॥६६-६८॥ पत्नी के कहने से उसने भाई इन्द्र को जीतकर स्वर्ग में दुर्लभ पारिजात पुष्प को ले लिया ॥६९॥ उस पापी ने माता के भाई (मामा) कंस को मारकर उसका सर्वस्व अपहरण कर लिया। और तुमसे क्या कहूँ। उसने युद्ध में भालू (जाम्बवान्) को जीतकर उसकी कन्या को ले लिया। उसके पिता की बहन कुन्ती चार पुरुषों की कामिनी बनी ॥७०-७१॥ उसके भाई की पत्नी द्रौपदी पाँच पुरुषों की कामिनी है। वह गायों के स्थान में रहनेवाला, योनि का लोभी तथा परम लम्पट है। उसका बड़ा भाई बलदेव नित्य वारुणी मदिरा पीता है और भाई की पत्नी यमुना को इच्छानुसार बुलाता है। इसलिए कुन्ती-पुत्र अर्जुन ने उसकी बहन (अपने) मामा की पुत्री—सुभद्रा का अपहरण कर लिया, यह तू (अपनी) वंश-परम्परा को जान ॥७२-७४॥ मुने ! बाण की बात सुनकर अनिरुद्ध कुपित हो गये और समुचित तत्त्वपूर्ण उत्तर दिया ॥७५॥

**अनिरुद्ध ने कहा**—मेरे पिता कामदेव पूर्वकाल में परम पवित्र ब्रह्मा के पुत्र थे। जिनके अस्त्र से तीनों लोक वशीभूत है ॥७६॥ वे अपने कर्म-दोष के कारण शंकर के क्रोधाग्नि से भस्मीभूत हो गये। इस समय वे सबके प्रभु कृष्ण के पुत्र हैं। मेरी माता रति पतिव्रता हैं। वे पति के शोक से शम्बर के गृह में रही थी। उसने

---

1 क. ष्टी ते।

छायां मायावतीं दत्त्वा मायया शयनेन च। रतिं स्वधर्मं संरक्ष्य धर्मसाक्षी च तद्गृहे ॥७९॥
निहत्य शम्बरं शत्रुं गृहीत्वा स्वप्रियां सतीम्। आजगाम द्वारकां च चन्द्रसूर्यौ च साक्षिणौ ॥८०॥
पितामहं वासुदेवं त्वं किं जानासि मूढवत्। यं च सन्तो न जानन्ति वेदाश्चत्वार एव च ॥८१॥
वासुः सर्वनिवासश्च विश्वानि यस्य लोमसु। तस्य देवः परं ब्रह्म वासुदेव इति स्मृतः ॥८२॥
शंकरं पृच्छ साक्षाच्च यस्य भृत्योऽधुना भवान्। कृष्णभृत्यस्य च बलेः पुत्रोऽसि किंकरात्मजः ॥८३॥
गोकुले वैश्यपुत्रत्वं ब्रूहि त्वं ज्ञानदुर्बल। भोजनं वेदविहितं शश्वत्क्षत्रियवैश्ययोः ॥८४॥
द्रोणः प्रजापतिः श्रेष्ठा धरा तस्य प्रिया सती। पुत्रं च तपसा लेभे परमात्मानमीश्वरम् ॥८५॥
द्रोणो नन्दो वैश्यराजो यशोदा सा धरा सती। वृषभानसुता राधा सुदाम्नः शापकारणात् ॥८६॥
त्रिंशत्कोटिं च गोपीनां गृहीत्वा भर्तुराज्ञया। पुण्यं च भारतं क्षेत्रं गोलोकावाजगाम सा ॥८७॥
ताभिः सार्धं स रेमे च स्वपत्नीभिर्मुदाऽन्वितः। पाणिं जग्राह राधायाः स्वयं ब्रह्मा पुरोहितः ॥८८॥
गोपकोटिश्च गोलोकादाजगाम मुदाऽन्विता। तेजसा हरितुल्यास्ते पार्षदप्रवरा हरेः ॥८९॥
गोरक्षणं हरेरेव गोपवेषस्य चाऽऽत्मनः। गोपानां शिशुरक्षार्थं मायेशस्यापि मायया ॥९०॥
पूतना बलिकन्या च भगिनी च तवासुर। दृष्ट्वा च वामनं विन्ध्या चकार पुत्रमानसम् ॥९१॥

---

उनका बलपूर्वक हरण किया था। उन्होंने अपनी छाया मायावती असुर को देकर अपने धर्म की रक्षा की थी। उसके घर में धर्म इस बात का साक्षी है ॥७७-७९॥ मेरे पिता शत्रु शम्बर को मारकर अपनी पतिव्रता पत्नी को लेकर द्वारका चले आये। चन्द्रमा और सूर्य इसके साक्षी हैं ॥८०॥ तुम मेरे पितामह वासुदेव को मूढ़ की भाँति क्या समझोगे? जिन्हें सत्पुरुष एवं चारों वेद भी नहीं जानते हैं ॥८१॥ सबके निवास को वासु कहते हैं, जिनके रोओं में सम्पूर्ण विश्व रहते हैं, उनके देव परब्रह्म वासुदेव कहे गये हैं ॥८२॥ साक्षात् शंकर से पूछो, जिनके भृत्य आप हैं। कृष्ण के भृत्य बलि के पुत्र होने से तुम उनके दास के पुत्र हो ॥८३। तुम अज्ञानी होने के कारण उन्हें गोकुल में वैश्य का पुत्र बताते हो। क्षत्रिय और वैश्य के यहाँ परस्पर भोजन करना वेदविहित है ॥८४॥ द्रोण प्रजापति थे और उनकी पतिव्रता पत्नी धरा भी श्रेष्ठ थी। उन्होंने तपस्या के द्वारा परमात्मा ईश्वर को पुत्र रूप में प्राप्त किया ॥८५॥ वही द्रोण वैश्यराज नन्द हुए और सती धरा यशोदा हुई। राधा सुदामा के शाप के कारण वृषभान की पुत्री हुई ॥८६॥ वे स्वामी की आज्ञा से तीस करोड़ गोपियों को लेकर पवित्र भारतवर्ष में गोलोक से आ गयीं ॥८७॥ (इसीलिए) भगवान् ने अपनी उन पत्नियों के साथ हर्षपूर्वक रमण किया। उन्होंने राधा से विवाह किया, जिसमें स्वयं ब्रह्मा पुरोहित थे ॥८८॥ एक करोड़ गोप गोलोक से हर्षान्वित होकर आये, वे सब हरि के श्रेष्ठ पार्षद थे और हरि के समान तेजस्वी थे ॥८९॥ माया के प्रभु, गोपवेषधारी हरि ही अपने गोपों के शिशुओं की रक्षा के लिए माया से गो-रक्षा कर रहे हैं ॥९०॥ हे असुर! पूतना बलि की पुत्री और तुम्हारी बहन थी। वही पूर्वजन्म में विन्ध्या थी, जिसने वामनावतार (भगवान्) को देखकर

एवंभूतो यदि मम पुत्रो भवति सांप्रतम्। स्तनं ददामि तनयं कृत्वा वक्षसि सुन्दरम् ॥९२॥
तस्याः पूर्णं मानसं च चकार भगवान्प्रभुः। स्तनं दत्त्वा च गोलोकं ययौ सा रत्नयानतः ॥९३॥
कुब्जा सा भगिनी पूर्वं रावणस्य दुरात्मनः। श्रीरामं चकमे कामान्नाम्ना शूर्पणखा सती ॥९४॥
नासां चिच्छेद तस्याश्च लक्ष्मणो धार्मिकेश्वरः। तपसा च वरं लेभे ब्रह्मणः प्रियमीश्वरम् ॥९५॥
तेन पुण्येन तं लब्ध्वा गोलोकं सा जगाम ह। गोपी बभूव गोलोके कृष्णस्याऽऽलिङ्गनेन च ॥९६॥
नरको हरिवध्यश्च स्वपूर्वप्राक्तनेन च। पाणिं जग्राह कन्यानां साक्षिणौ शशिभास्करौ ॥९७॥
भीष्मकन्या महालक्ष्मीः श्रीकृष्णस्य प्रिया सती। वैकुण्ठादागता साध्वी ब्रह्मणोऽनुमतेन च ॥९८॥
सत्राजितस्य कन्या सा सत्यभामा वसुंधरा। ददौ कृष्णाय राजा स तं मणिं यौतुकेन च ॥९९॥
भुवो भारावतरणहेतुना गमनं हरेः। संजहार भुवो भारं कुरुपाण्डवयुद्धतः ॥१००॥
शिशुपालो दन्तवक्त्रो जयो विजय एव च। द्वारिणौ द्वारषट्के च वैकुण्ठे श्रीहरेरपि ॥१०१॥
कुमारशापात्पतितौ प्राप्य जन्मत्रयं ध्रुवम्। हिरण्यकशिपुश्चैव तवैव पूर्वपूरुषः ॥१०२॥
तस्य भ्राता हिरण्याक्षस्तेनैव वरुणो जितः। हरिर्नृसिंहरूपेण तं जघानावलीलया ॥१०३॥
सूकरेण हतोऽन्यश्च पूर्वजन्मकथां शृणु। द्वितीये जन्मनि पुरा रावणः कुम्भकर्णकः ॥१०४॥

---

मन में पुत्र की कामना की कि यदि मेरा पुत्र ऐसा होता तो मैं अपनी छाती पर इस सुन्दर बालक को रखकर स्तन-पान कराती ॥९१-९२॥ भगवान् प्रभु ने उसकी इच्छा पूरी की। वह स्तनपान कराकर रत्ननिर्मित विमान से गोलोक चली गयी ॥९३॥ कुब्जा पूर्वजन्म में दुरात्मा रावण की बहन शूर्पणखा थी, जिसने काम-वासना से श्रीराम को चाहा। परम धार्मिक लक्ष्मण ने उसकी नाक काट ली। तब उसने तपस्या के द्वारा ब्रह्मा से वर प्राप्त किया और उसी के पुण्य से ईश्वर को पति के रूप में पाकर वह गोलोक चली गयी। कृष्ण के आलिंगन के प्रभाव से वह गोलोक में गोपी हुई ॥९४-९६॥ नरकासुर अपने पूर्वकर्म के कारण हरि के द्वारा मारा गया। वहाँ हरि ने कन्याओं से विवाह किया, जिसके साक्षी सूर्य और चन्द्रमा हैं ॥९७॥ भीष्म की पुत्री महालक्ष्मी श्रीकृष्ण की पतिव्रता पत्नी हुई, ब्रह्मा की आज्ञा से वैकुण्ठलोक से यहाँ आयी थी। वह सत्राजित की कन्या सत्यभामा हुई। राजा ने कृष्ण को वह कन्या दी और दहेज में वह (स्यमन्तक) मणि भी दिया। पृथ्वी का भार उतारने के लिए श्रीहरि का इस लोक में आगमन हुआ। इसलिए उन्होंने कौरव-पाण्डव के युद्ध द्वारा पृथ्वी का भार उतारा ॥९८-१००॥ शिशुपाल और दन्तवक्त्र भगवान् के वैकुण्ठ में जय और विजय नाम के द्वारपाल थे। वे कुमार (सनक, सनन्दन आदि) के शाप के कारण वैकुण्ठ से च्युत होकर तीन बार जन्म लिया। एक जन्म में, उनमें से एक तो हिरण्यकशिपु हुआ, जो तुम्हारा ही पूर्वपुरुष था और दूसरा उसी का भाई हिरण्याक्ष हुआ। उसी ने वरुण को जीता था। उसको विष्णु ने नृसिंहरूप धारण करके लीलापूर्वक मार दिया ॥१०२-१०३॥ दूसरे (हिरण्याक्ष) को शूकरावतार (भगवान्) ने मारा। अब पूर्वजन्म की कथा सुनो। दूसरे जन्म में वे रावण

श्रीरामेण हतौ तौ द्वौ शेषजन्म कलौ तयोः । श्रीकृष्णेन हतौ तौ द्वौ धर्मपुत्रावुभौ तथा ॥१०५॥
जरासंधश्च शाल्वश्च दुरात्मा कंस एव च । प्राक्तनात्तस्य वध्यास्ते भुवो भारजिहीर्षया ॥१०६॥
मांधातुः सुतमध्ये च यवनश्चापि प्राक्तनात् । लक्ष्मीश्वरस्य कृष्णस्य धनेन किं प्रयोजनम् ॥१०७॥
प्रतिज्ञया च सत्यायाः पुण्यकव्रतकारणात् । पारिजातं समानीय चकार स्वात्मनो व्रतम् ॥१०८॥
स्वयं जाम्बवती देवी दुर्गांशा भल्लुकात्मजा । पाणिं जग्राह तस्याश्च तपसा भारते हरिः ॥१०९॥
कुन्त्याश्च क्षेत्रजाः पुत्राः केवलं भर्तुराज्ञया । कलौ निषिद्धं त्रियुगे प्रसिद्धं पलपैतृकम् ॥११०॥
युधिष्ठिरो धर्मपुत्रो भीमश्च पवनात्मजः । महेन्द्रपुत्रो धर्मिष्ठः फाल्गुनो विजयी भुवि ॥१११॥
यस्मै पाशुपतं शंभुः प्रददौ च स्वयं पुरा । अश्वमेधं गवालम्भं संन्यासं पलपैतृकम् ॥११२॥
देवरेण सुतोत्पत्तिं कलौ पञ्च विवर्जयेत् । द्रौपद्याः पञ्च भर्तारः शंकरस्य वरेण च ॥११३॥
बलदेवः पुष्पमधु पूतं पिबति नित्यशः । चकार यमुनाह्वानं स्नानार्थं धार्मिकः शुचिः ॥११४॥
सुभद्रां च ददौ कृष्णः फाल्गुनाय महात्मने । कन्यकां मातुलानां च दाक्षिणात्यः परिग्रहः ॥११५॥
देशेष्वन्येषु दोषोऽयमित्याह कमलोद्भवः ॥११६॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० बाणानिरुद्धसं०
पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११५॥

---

और कुम्भकर्ण हुए, जिन्हें श्रीराम ने मारा । फिर बाद के जन्म में वे दोनों धर्मपुत्र हुए, जिन्हें श्रीकृष्ण ने निहत किया । जरासन्ध, शाल्व और दुरात्मा कंस भी पहले के कर्म के कारण, भूभार दूर करने के इच्छुक श्रीकृष्ण के वध्य हुए । मान्धाता के पुत्रों में से यवन भी पूर्वकर्म के कारण उनके द्वारा मारा गया । लक्ष्मीपति कृष्ण को धन से क्या प्रयोजन ? ॥१०४-१०७॥ सत्या के पुण्यकव्रत में सहयोग करने की प्रतिज्ञा के कारण उन्होंने पारिजात वृक्ष लाकर दिया था । भल्लुक की पुत्री जाम्बवती देवी स्वयं दुर्गा के अंश से उत्पन्न हुई थीं । उनकी तपस्या के कारण हरि ने भारत में उसका पाणिग्रहण किया ॥१०८-१०९॥ कुन्ती के क्षेत्रज पुत्र हुए केवल स्वामी की आज्ञा से । नियोग से सन्तान उत्पन्न करना कलियुग में निषिद्ध है और तीनों युगों में प्रसिद्ध है ॥११०॥ युधिष्ठिर धर्म के पुत्र हैं, भीम वायु के पुत्र और धर्मिष्ठ अर्जुन इन्द्र के पुत्र हैं, जिन्होंने पृथ्वी पर विजय प्राप्त किया और जिनको पूर्वकाल में स्वयं शंकर ने पाशुपतास्त्र प्रदान किया । वैसे कलियुग में ही पाँच चीजें वर्जित हैं—(१) अश्वमेध, (२) गोमेध, (३) संन्यास, (४) नियोग द्वारा तथा (५) देवर से पुत्र उत्पन्न करना । द्रौपदी के पाँच पति शंकर के वरदान से हुए ॥१११-११३॥ बलराम पवित्र पुष्परस नित्य पीते हैं । वे धार्मिक और पवित्र हैं । उन्होंने स्नान के लिए यमुना का आह्वान किया था ॥११४॥ कृष्ण ने महात्मा अर्जुन को सुभद्रा दी थी । दक्षिण में मामा की पुत्री से विवाह करना वैध है ॥११५॥ किन्तु अन्य देशों में यह दोष है, ऐसा ब्रह्मा ने कहा है ॥११६॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद-नारायण के संवाद में बाण तथा अनिरुद्ध का संवाद कथन नामक एक सौ पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥११५॥

# अथ षोडशाधिकशततमोऽध्यायः

बाण उवाच

अनिरुद्ध बुधोऽसि त्वं त्वयोक्तं सत्यमेव च । शंभुना चैवमुक्तं च सर्वं बुद्धं स्वचेतसा[1] ।।१।।
त्वयोक्तं शंकरवरात्पञ्चानां स्वामिनां प्रिया । द्रौपदी च महाभागा तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ।।२।।
शम्बरेण हृता पूर्वं तव माता कथं रतिः । देवैरपि कथं दत्ता देवास्तेन जिता कथम् ।।३।।

अनिरुद्ध उवाच

एकदा रघुनाथश्च सीतया लक्ष्मणेन च । स्नातः सरसि तत्रस्थो रम्ये पञ्चवटीतटे ।।४।।
उवाच सीता हेमन्ते जलं सुस्वादु निर्मलम् । तयाऽन्नं व्यञ्जनं रम्यं सर्वं वस्तु सुशीतलम् ।।५।।
फलावबचयनं चक्रे सीतायै प्रददौ मुदा । ततो ददौ लक्ष्मणाय पश्चाद्भुङ्क्ते स्वयं प्रभुः ।।६।।
लक्ष्मणस्तद्गृहीत्वा च नैव भुङ्क्ते फलं जलम् । मेघनादवधार्थं च सीतोद्धारणकारणात् ।।७।।
निद्रां न याति नो भुङ्क्ते वर्षाणां च चतुर्दश । य एवं पुरुषो योगी तद्वध्यो रावणात्मजः ।।८।।

---

# अध्याय ११६

## अनिरुद्ध द्वारा द्रौपदी के पाँच पति होने का वर्णन

**बाण बोले**--अनिरुद्ध ! तुम विद्वान् हो. तुमने सत्य ही कहा है। महादेव ने भी ऐसा कहा था। मैंने अपने मन से सब समझ लिया ।।१।। तुमने जो यह कहा कि शंकर के वरदान से महाभाग्यशालिनी द्रौपदी पाँच स्वामियों की प्रिया हुई, वह मुझे विस्तार से बताओ ।।२।। तुम्हारी माता रति को शम्बर ने क्यों अपहृत किया ? देवताओं ने क्यों दे दी ? और देवताओं को उसने कैसे जीत लिया ? ।।३।।

**अनिरुद्ध बोले**--एक बार पञ्चवटी में रामचन्द्र जी सीता और लक्ष्मण के साथ सरोवर में स्नान करके उसके रमणीय तट पर बैठे हुए थे। सीता ने कहा--हेमन्त ऋतु में जल निर्मल तथा स्वादिष्ट है। अन्न, मनोहर व्यञ्जन तथा सभी वस्तुएँ अत्यन्त शीतल हैं। रघुनाथ ने फल-संग्रह किया और हर्षपूर्वक सीता को प्रदान किया। तदन्तर लक्ष्मण को देकर पश्चात् स्वयं प्रभु ने भोग लगाया। लक्ष्मण ने फल और जल ले तो लिया पर खाया नहीं। क्योंकि वे सीता का उद्धार करने के लिए मेघनाद का वध करना चाहते थे। मेघनाद का वध वही व्यक्ति कर सकता था, जो चौदह वर्ष तक न तो सोये और न भोजन करे। इसी बीच कमल-लोचन

---

१ क. 'तेजसा ।

एतस्मिन्नन्तरे रामं द्रष्टुं कमललोचनम् । वह्निस्तत्र समायातो द्विजरूपी कृपानिधिः ॥
भविष्यत्कथयामास श्रुतिकोटपरं वचः ॥९॥

### वह्निरुवाच

शृणु राम महाभाग सीतासंगोपनं कुरु । सप्ताहाभ्यन्तरे चैव रावणो दुष्टराक्षसः ॥१०॥
दुर्निवार्यः प्राक्तनेन जानकीं च हरिष्यति । विधात्रा लिखितं कर्म प्राक्तनं केन वार्यते ॥११॥
वेदैश्चतुर्भिः कथितं न च दैवात्परं वरम् ॥१२॥

### राम उवाच

सीतां गृहीत्वा त्वं गच्छ च्छायाऽत्रैव तु तिष्ठतु । कलत्रवर्जनं कर्म सर्वेषां च जुगुप्सितम् ॥१३॥
सीतां गृहीत्वा प्रययौ रुदतीं च हुताशनः । सीतया सदृशी छाया तस्थौ श्रीरामसंनिधौ ॥१४॥
सा च च्छाया हृता पूर्वं रावणेनावलीलया । समुद्दधार तां रामो निहत्य तं सबान्धवम् ॥१५॥
वह्नौ परीक्षाकाले च च्छाया वह्नौ विवेश सा । अग्निश्छायां च संरक्ष्य ददौ रामाय जानकीम् ॥१६॥
रामस्तां च गृहीत्वा च प्रययौ स्वाश्रमं मुदा । छाया तस्थौ वह्निपार्श्वे हृदयेन विदूयता ॥१७॥
सा च च्छाया तपश्चक्रे नारायणसरोवरे । तपश्चकार दिव्यं च शतवर्षं च शूलिनः ॥१८॥
वरं वृणुष्व भद्रे त्वमुवाच शंकरश्च ताम् । उवाच सा शिवं व्यग्रा भर्तृदुःखेन दुःखिता ॥१९॥

---

भगवान् का दर्शन करने के लिए कृपानिधान अग्नि ब्राह्मण का रूप धारण करके वहाँ आये और कर्ण-कटु वचन कहने लगे ॥४-९॥

**अग्निदेव बोले**—हे महाभाग राम ! सीता जी को आप छिपा दें । क्योंकि पूर्वजन्म के कर्मवश दुष्ट राक्षस रावण, जिसे रोका नहीं जा सकता, सात दिन के भीतर सीता को हर ले जायगा । विधाता ने जो पहले का कर्म लिख दिया, उसे कौन रोक सकता है ? चारों वेदों का कहना है कि दैव से बढ़कर श्रेष्ठ दूसरा कोई नहीं है ॥१०-१२॥

**राम बोले**—सीता को लेकर तुम जाओ और छाया (सीता) यहीं रहे । स्त्री के बिना कर्म करना सबके लिए वर्जित है (इसलिए छाया मेरे पास रहेगी) ॥१३॥ अग्निदेव रोती हुई सीता को लेकर चले गये और सीता के समान छाया श्रीराम के पास रह गयी ॥१४॥ उस छाया को रावण ने प्राचीनकाल में लीलापूर्वक अपहृत किया । फिर राम ने बन्धु समेत रावण को मारकर सीता का उद्धार किया ॥१५॥ अग्नि-परीक्षा के समय वह छाया अग्नि में प्रविष्ट हो गयी । अग्नि ने छाया को संरक्षण देकर राम को सीता दे दी ॥१६॥ राम उन्हें लेकर हर्ष से अपने आश्रम में चले गये । छाया सीता हृदय से दुःखी होती हुई अग्नि के समीप रहने लगी ॥१७॥ उस छाया ने नारायण नामक सरोवर में तप किया । दिव्य सौ वर्षों तक उसने शंकर का तप किया ॥१८॥ शंकर ने उससे कहा—'भद्रे ! तुम वर माँगो ।' पति के दुःख से दुःखी एवं व्याकुल उसने शिव से कहा—पति

पतिं देहि पञ्चधा सा वरं वव्रे त्रिलोचनम्। सर्वसंपत्प्रदस्तुष्टस्तस्यै शर्वो वरं ददौ ॥२०॥

महादेव उवाच

साध्वि त्वं पञ्चधा ब्रूहि पतिं देहीति व्याकुला। पञ्चेन्द्राश्च हरेरंशा भविष्यन्ति प्रियास्तव ॥२१॥
ते च सर्वे च पञ्चेन्द्राश्चाधुना पञ्च पाण्डवाः। सा च च्छाया द्रौपदी च यज्ञकुण्डसमुद्भवा ॥२२॥
कृतयुगे वेदवती त्रेतायां जनकात्मजा। द्वापरे द्रौपदी छाया तेन कृष्णा त्रिहायणी ॥२३॥
वैष्णवी कृष्णभक्ता च तेन कृष्णा प्रकीर्तिता। स्वर्गलक्ष्मीर्महेन्द्राणां सा च पश्चाद्भविष्यति ॥२४॥
राजा ददौ फाल्गुनाय कन्यायाश्च स्वयंवरे। पप्रच्छ मातरं वीरो वस्तु प्राप्तं मयाऽधुना ॥२५॥
तमुवाच स्वयं माता गृहाण भ्रातृभिः सह। शंभोर्वरेण पूर्वं च परत्र मातुराज्ञया ॥२६॥
द्रौपद्याः स्वामिनस्तेन हेतुना पञ्च पाण्डवाः। चतुर्दशानामिन्द्राणां पञ्चेन्द्राः पञ्च पाण्डवाः ॥२७॥
शंकरेणाभिसंशप्ता सा मात्रा भर्त्सितेन च। भर्ता ते भस्मसाद्भूतो हरकोपानलेन च ॥२८॥
हे रति त्वं मया शप्ता दैत्यग्रस्ता भवाधुना। विजित्य देवान्सेन्द्रांश्च शम्बरस्त्वां हरिष्यति ॥२९॥
पुनरुक्तं वरं प्रादात्सतीत्वं ते न यास्यति। छायां दत्त्वा तिष्ठ गेहे यावज्जीवति ते पतिः ॥३०॥
इति ते कथितं सर्वमितिहासं पुरातनम्। देवानां गुप्तचरितं शृणु दैत्येन्द्र सांप्रतम् ॥३१॥

---

दीजिये।' यह पाँच बार उसने शंकर से वर माँगा। सकल सम्पदा देनेवाले शिव ने सन्तुष्ट होकर उसे वर दे दिया ॥१९-२०॥

**महादेव बोले**—हे पतिव्रते! तुमने व्याकुल होकर 'पति दीजिये' यह वाक्य पाँच बार कहा। इसलिए विष्णु के अंश रूप पाँच इन्द्र तुम्हारे पति होंगे ॥२१॥ वे सभी पाँच इन्द्र इस समय पाँच पाण्डव हैं और वह छाया यज्ञकुण्ड से उत्पन्न द्रौपदी है ॥२२॥ वही छाया सत्ययुग में वेदवती, त्रेता में जानकी और द्वापर में द्रौपदी हुई है। इसी से कृष्णा (द्रौपदी) त्रिहायणी (तीन बार उत्पन्न) कहलाती है ॥२३॥ द्रौपदी वैष्णवी तथा कृष्ण-भक्ता है, इसी से कृष्णा कहलायी। पश्चात् वह महेन्द्रों की स्वर्गलक्ष्मी होगी ॥२४॥ राजा ने कन्या के स्वयंवर में अर्जुन को उसे दिया। वीर (अर्जुन) ने माता से कहा—'मैंने इस समय एक चीज पायी है ॥२५॥ स्वयं माता ने उनसे कहा कि भाइयों के साथ उसे ग्रहण करो। अतएव पहले शिव के वरदान से और पश्चात् माता की आज्ञा से द्रौपदी के पाँच पाण्डव पति हुए। वे पाँचों पाण्डव चौदह इन्द्रों में से पाँच इन्द्र हैं ॥२६-२७॥ शंकर ने मेरी माता को शाप दिया कि तुम्हारा पति मेरे क्रोधाग्नि से भस्म हो जायगा। इस पर उसने शंकर की भर्त्सना की। तब शंकर ने पुनः उससे कहा—'हे रति! तुम मेरे शाप से इस समय दैत्य के अधीन हो जाओगी। शम्बर इन्द्र समेत देवताओं को जीतकर तुम्हारा हरण करेगा' ॥२८-२९। यों कहकर उन्होंने पुनः वरदान भी दिया—'तुम्हारा सतीत्व नष्ट नहीं होगा। तुम छाया देकर उसके घर में रहो, जब तक कि तुम्हारा पति जीवित नहीं हो जाता' ॥३०॥ यह सब प्राचीन इतिहास मैंने बता दिया। अब हे दैत्यराज! देवताओं का

एतस्मिन्नन्तरे तत्र सुभद्रश्च महाबलः । कुम्भाण्डभ्राता बलवान्बाणसेनापतीश्वरः ॥३२॥
निर्भर्त्स्य बाणं समरे शस्त्रपाणिर्महारथः । श्रीकृष्णपौत्रं शूलं च चिक्षेप प्रलयाग्निवत् ॥३३॥
अर्धचन्द्रेण तच्छूलं चिच्छेद कामपुत्रकः । शक्तिं चिक्षेप भद्रश्च शतसूर्यसमप्रभाम् ॥३४॥
वैष्णवास्त्रेण चिच्छेद तां शक्तिं कामपुत्रकः । नारायणास्त्रं चिक्षेप सुभद्रो रणमूर्धनि ॥३५॥
प्रणम्य शेते निर्भीतो मदनस्य सुतो बली । ऊर्ध्वमस्त्रं च बभ्राम शतसूर्यसमप्रभम् ॥३६॥
प्रलीनमस्त्रमाकाशे विश्वसंहारकारणम् । अस्त्रे गते सोऽनिरुद्धो गृहीत्वा च महानसिम् ॥३७॥
प्रबभञ्ज भद्ररथं जघानाश्वांश्च सारथिम् । जघान तं सुभद्रं च लीलया रणमूर्धनि ॥३८॥
हते सुभद्रे बाणश्च महाबलपराक्रमः । बाणानां शतकं चापि चिक्षेप रणमूर्धनि ॥३९॥
कामात्मजोऽग्निबाणेन बाणौघं प्रददाह सः । बाणश्चिक्षेप ब्रह्मास्त्रं सृष्टिसंहारकारणम् ॥४०॥
दृष्ट्वा कामात्मजः शीघ्रं सबीजं मन्त्रपूर्वकम् । ब्रह्मास्त्रेणैव सहसा संजहारावलीलया ॥४१॥
बाणः पाशुपतं क्षेप्तुं समारेभे च कोपतः । निषिद्धश्च गणेशेन स्कन्देन शंभुना तथा ॥४२॥
तद्दृष्ट्वा सोऽनिरुद्धस्तं धनुर्बाणौघसंयुतम् । मुमोच[1] जृम्भणे युद्धे शीघ्रं तं च महारथम् ॥४३॥

---

गुप्त चरित्र सुनो ॥३१॥ इसी बीच वहाँ महाबली सुभद्र आ गया, जो कुम्भाण्ड का भाई तथा बाण का बलवान् सेनापति था ॥३२॥ उस महारथी ने बाण की भर्त्सना की तथा अस्त्र-शस्त्रों से युक्त होकर युद्ध में श्रीकृष्ण के पौत्र (अनिरुद्ध) पर प्रलयाग्नि के समान शूल को फेंका ॥३३॥ (परन्तु) काम-पुत्र ने (अपने) अर्धचन्द्र नामक अस्त्र से उस शूल को काट दिया। तब भद्र ने सौ सूर्यों के समान चमकनेवाली शक्ति (अस्त्र) को फेंका ॥३४॥ अनिरुद्ध ने वैष्णवास्त्र से उस शक्ति को काट दिया। सुभद्र ने संग्राम के बीच नारायणास्त्र का प्रयोग किया ॥३५॥ बलवान् मदन-पुत्र उसे प्रणाम करके निर्भयातपूर्वक सो गया। सौ सूर्यों की सी प्रभावाला अस्त्र ऊपर घूमने लगा ॥३६॥ फिर विश्व के संहार का कारण (वह) अस्त्र आकाश में छिप गया। अस्त्र के चले जाने पर उस महान् अनिरुद्ध ने खड्ग लेकर भद्र के रथ को तोड़ डाला और घोड़ों तथा सारथि को मार दिया। फिर युद्ध के अग्रभाग में सुभद्र को लीला वंक निहत किया ॥३७-३८॥ सुभद्र के निहत हो जाने पर महान् बल एवं पराक्रमवाले बाण ने युद्ध के अग्रभाग में सौ बाण चलाये ॥३९॥ उस कामपुत्र ने बाणों के समूह को अग्निबाण से जला दिया। तब बाण ने सृष्टि के संहार का कारणभूत ब्रह्मास्त्र चला दिया ॥४०॥ उसे देखकर काम-पुत्र ने शीघ्र मंत्र एवं बीज के साथ ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करके लीलापूर्वक उसका संहार कर दिया ॥४१॥ बाण ने क्रोध से पाशुपतास्त्र चलाने का उपक्रम किया, किन्तु गणेश, कार्तिकेय और शिव ने उसे रोक दिया ॥४२॥ उसे देखकर अनिरुद्ध ने बाण-समूह चलाकर युद्ध में उस महारथी को शीघ्र जृम्भण (जंभाई लेने) में डाल

---

१ क. चकार।

जडो बभूव बाणश्च निश्चेष्टो रणमूर्धनि । पुनश्चिक्षेप निद्रास्त्रं निद्रितं तं चकार सः ।।४४।।
बाणं तं निद्रितं दृष्ट्वा गृहीत्वा खड्गमुत्तमम् । बाणं हन्तुं समुद्यन्तं वारयामास कार्तिकः ।।४५।।
स्कन्दश्च शतबाणैश्च वारयामास लीलया । अनिरुद्धं महाभागं बलवन्तं धनुर्धरम् ।।४६।।
अनिरुद्धश्च सहसा तथा शक्त्या दुरत्यया । बभञ्ज कार्तिकरथं रत्नेन्द्रसारनिर्मितम् ।।४७।।
गदया कार्तिकः क्रुद्धोऽप्यनिरुद्धरथं मुदा । बभञ्ज लीलया तत्र क्षणेन रणमूर्धनि ।।४८।।
अनिरुद्धोऽर्धचन्द्रेण क्षुरधारेण लीलया । चिच्छेद कार्तिकधनुर्भल्लास्त्रेण नियोजितम् ।।४९।।
जघान कार्तिकस्तं च गदया च दुरन्तया । गदां जग्राह तद्धस्ताज्जवेन मदनात्मजः ।।५०।।
शूलं गृहीत्वा स्कन्दं च तमेव हन्तुमुद्यतम् । अनिरुद्धश्च कोपेन प्रेरयामास दूरतः ।।५१।।
कार्तिकः पुनरागत्य गृहीत्वा कामपुत्रकम् । गृहीत्वा च करेणैव पातयामास भूतले ।।५२।।
अनिरुद्धो गृहीत्वाऽसिं प्रभुस्तस्थौ महाबलः । तयोर्विरोधं दूरं च प्रचकार गणेश्वरः ।।५३।।
कार्तिकः प्रययौ गेहमूषागेहं स्मरात्मजः । सर्वं निवेदितुं शंभुं प्रययौ स गणेश्वरः ।।५४।।

इति० श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० बाणयु०
षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ।।११६।।

●

---

दिया ।।४३।। रण के अग्रभाग में बाण जड़ होकर निश्चेष्ट हो गया । पुनः अनिरुद्ध ने निद्रास्त्र छोड़कर उसे निद्रा के अधीन कर दिया ।।४४।। उस वाण को निद्रित देखकर अनिरुद्ध उत्तम खड्ग लेकर बाण को मारने के लिए उद्यत हो गया, पर कार्तिकेय ने उसे रोक दिया ।।४५।। कार्तिकेय ने सौ बाणों के द्वारा बलवान्, महाभाग्यशाली एवं धनुर्धारी अनिरुद्ध को लीलापूर्वक रोक दिया ।।४६।। अनिरुद्ध ने नष्ट न होनेवाले शक्ति-अस्त्र से कार्तिकेय के रथ के, जो उत्तम रत्न के सारभाग से बनाया गया था, टुकड़े-टुकड़े कर दिये ।।४७।। रण के अग्रभाग में क्रुद्ध कार्तिकेय ने अनिरुद्ध के रथ को हर्ष से क्षणमात्र में लीलापूर्वक तोड़ डाला ।।४८।। अनिरुद्ध ने क्षुर की धार के समान अर्धचन्द्र नामक अस्त्र से कार्तिकेय के धनुष को काटकर भल्लास्त्र का प्रयोग कर दिया ।।४९।। तब कार्तिकेय ने भयंकर गदा से उस पर प्रहार किया । किन्तु मदनपुत्र ने उनके हाथ से उस गदा को वेगपूर्वक पकड़ लिया ।।५०।। फिर क्रुद्ध अनिरुद्ध ने शूल लेकर मारने के लिए उद्यत उसी कार्तिकेय के ऊपर दूर से फेंक दिया ।।५१।। तब कार्तिकेय ने आकर अनिरुद्ध को पकड़कर हाथ ही से उसे भूमि पर पटक दिया ।।५२।। महाबली अनिरुद्ध ने तलवार उठा ली । तब गणेश ने (आकर) उन दोनों के विरोध को दूर कर दिया ।।५३।। कार्तिकेय (अपने) घर चले गये और कामपुत्र ऊषा के घर गया । गणेश जी शंकर को सब बताने के लिए चले गये ।।५४।।

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद-नारायण के संवाद में
बाणयुद्ध-वर्णन नामक एक सौ सोलहवाँ अध्याय समाप्त ।।११६।।

●

# अथ सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः

### नारायण उवाच

गणेशस्तु शिवस्थानं गत्वा नत्वा महेश्वरम् । सर्वं विज्ञापयामास क्रमेण च पृथक्पृथक् ।।१।।
बाणानिरुद्धयोर्युद्धं सुभद्रनिधनं तथा । स्कन्दानिरुद्धयोर्युद्धमनिरुद्धस्य विक्रमम् ।।२।।
गणेशवचनं श्रुत्वा प्रहस्य भगवान्भवः । उवाच श्लक्ष्णया वाचा सुगुप्तं वेदसंमतम् ।।३।।

### महादेव उवाच

गणेश्वर महाभाग श्रूयतां वचनं मम । हितं तथ्यं नीतिसारं परिणामसुखावहम् ।।४।।
असंख्यविश्वसंघं च सर्वं कृष्णात्मजं सुतम् । कृष्णं जानीहि यत्कार्यं कारणानां च कारणम् ।।५।।
ब्रह्मादितृणपर्यन्तं जगत्सर्वं गणेश्वर । निबोध सत्यं कृष्णं स भगवन्तं सनातनम् ।।६।।
गोलोके द्विभुजं शान्तं राधाकान्तं मनोहरम् । शिशुरूपं गोपवेषं परिपूर्णतमं प्रभुम् ।।७।।
गोपीभिर्गोपनिकरैः सहितं कामधेनुभिः । पुण्ये वृन्दावने रम्ये सुन्दरे रासमण्डले ।।८।।
चरन्तं मुरलीहस्तं ब्रह्मेशशेषवन्दितम् । शतशृङ्गे च शैलेशे वटमूले निराकुले ।।९।।
गोष्ठे भाण्डीरनिकटे निर्मले विरजातटे । नवीननीरदश्यामं शोभितं पीतवाससा ।।१०।।

---

# अध्याय ११७

### गणेश-शिव-संवाद

**नारायण बोले**—गणेश ने शंकर के स्थान में जाकर शिव को प्रणाम करके क्रमशः अलग-अलग सब कुछ बता दिया ।।१।। बाण और अनिरुद्ध का युद्ध, सुभद्र का निधन, कार्तिकेय और अनिरुद्ध का युद्ध एवं अनिरुद्ध का पराक्रम भी बताया ।।२।। गणेश की बात सुनकर भगवान् शंकर ने सुन्दर, सुगुप्त एवं वेदानुकूल वचन कहा ।।३।।

**महादेव बोले**—गणेश ! महाभाग ! मेरी बात सुनो, जो सत्य, नीति का सार रूप तथा परिणाम में सुखदायक है ।।४।। असंख्य विश्वों का समूह, कृष्णपुत्र प्रद्युम्न, अनिरुद्ध तथा जो कार्य और कारणों का कारण है, वह सब कुछ श्रीकृष्ण को ही जानो ।।५।। गणपति ! ब्रह्मा से लेकर तृणपर्यंत सम्पूर्ण जगत् को सनातन भगवान् श्रीकृष्ण का ही रूप समझो ।।६।। जो गोलोक में दो भुजाधारी शान्त, राधा के प्रियतम, सुन्दर, शिशु-रूप, गोपवेशधारी, परिपूर्णतम प्रभु हैं ।।७।। गोपियों, गोप-समुदायों तथा कामधेनुओं से घिरे रहते हैं; पवित्र रमणीय वृन्दावन के रासमण्डल में जो हाथ में मुरली लिये विचरते रहते हैं; ब्रह्मा, शंकर और शेष जिनकी वन्दना करते हैं; जो शैलराज शतशृङ्ग पर वटवृक्ष के शान्त मूल प्रदेश में तथा भाण्डीर के निकट विरजा

यथा नवं घनौघं च सौदामिन्या विराजितम् । आविर्भावश्च तेषां वै गोलोके रासमण्डले ॥११॥
तावन्तो गोकुले रम्ये पुण्ये वृन्दावने वने । सर्वे चांशकलाः पुंसःकृष्णस्तु भगवान्स्वयम् ॥१२॥
परिपूर्णतमः कामो ब्रह्मशापत्स्वविस्मृतः । तस्य पुत्रोऽनिरुद्धश्च महाबलपराक्रमः ॥१३॥
मया प्रस्थापितः स्कन्दो महायुद्धे सुदारुणे । मृतो बाणश्च संग्रामे तेन स्कन्देन रक्षितः ॥१४॥
स्कन्दानिरुद्धयोर्युद्धे समत्वं तु गणेश्वर । अष्टौ च भैरवाः सर्वे रुद्राश्चैकादशैव ते ॥१५॥
अष्टौ च वसवश्चैते देवाः शक्रादयस्तथा । तथैव द्वादशादित्याः सर्वे दैत्येश्वरास्तथा ॥१६॥
देवानामग्रणीः स्कन्दो बाणश्च सगणस्तथा । सर्वे ते चानिरुद्धं च संग्रामे जेतुमक्षमाः ॥१७॥
अनिरुद्धः स्वयं ब्रह्मा प्रद्युम्नः काम एव च । बलदेवः स्वयं शेषः कृष्णश्च प्रकृतेः परः ॥१८॥
एतत्ते कथितं सर्वं बाणं रक्ष गणेश्वर । भवाञ्शुभस्वरूपश्च विघ्नखण्डनकारकः ॥१९॥
आराधायास्यति हरिर्गृहीत्वा च सुदर्शनम् । अव्यर्थमस्त्रप्रवरं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥२०॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० बाणयुद्धे
शिवलम्बोदरसं० सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११७॥

●

---

नदी के निर्मल तट पर स्थित गोष्ठ में विहार करते हैं, जिनके शरीर का वर्ण नूतन जलधर के समान श्याम हैं; जो पीत वस्त्र से उसी प्रकार शोभायमान हैं जैसे मेघों की नयी घटा बिजली से शोभित होती है । उन सबका गोलोकस्थित रासमण्डल में आविर्भाव होता है । रमणीय गोकुल एवं पवित्र वृन्दावन में जितने जीव हैं वे सभी (परम) पुरुष की अंशकलाएँ हैं, किन्तु कृष्ण स्वयं भगवान् हैं ॥८-१२॥ परिपूर्णतम काम ब्रह्मा के शाप के कारण अपने को भूल गया है । उसका पुत्र अनिरुद्ध महान् बल एवं पराक्रम से युक्त है ॥१३॥ मैंने अत्यन्त भयंकर महासंग्राम में कार्तिकेय को भेजा है । युद्ध में बाण मर चुका था, पर स्कन्द ने उसे बचा लिया ॥१४॥ हे गणेश ! युद्ध में स्कन्द और अनिरुद्ध समान तो हैं, किन्तु आठ भैरव, सभी ग्यारह रुद्र, आठो वसु, इन्द्र आदि देवता, बारह सूर्य, सभी दानवेश्वर, देवताओं के अग्रणी स्कन्द तथा गण सहित बाण—ये सभी युद्ध में अनिरुद्ध को जीतने में असमर्थ हैं ॥१५-१७॥ अनिरुद्ध स्वयं ब्रह्मा, प्रद्युम्न, कामदेव, बलदेव, स्वयं शेष तथा कृष्ण प्रकृति से परे हैं ॥१८॥ गणेश्वर ! यह सब तुमसे कह दिया । तुम बाण की रक्षा करो । आप कल्याणस्वरूप तथा विघ्नों का विनाश करनेवाले हैं ॥१९॥ श्रीकृष्ण अस्त्रश्रेष्ठ सुदर्शन को, जो अमोघ तथा करोड़ों सूर्य के समान कान्तिमान् है, लेकर शीघ्र आयेंगे ॥२०॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद-नारायण के संवाद-प्रकरण में बाणयुद्ध के विषय में शिव तथा गणेश के संवाद में एक सौ सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥११७॥

●

# अथाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः

नारायण उवाच

गणेशं बोधयित्वा तु शंभुरभ्यन्तरं ययौ। तत्र सिंहासने रम्ये दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥१॥
भैरवी भद्रकाली च उग्रचण्डा च कोटरी। ताः समुत्थाय सहसा प्रणेमुर्जगदीश्वरम् ॥२॥
तत्राऽऽययौ गणेशश्च कार्तिकेयश्च वीर्यवान्। बाणश्च वीरभद्रश्च स्वयं नन्दी सुनन्दकः ॥३॥
महाकालो महामन्त्री ह्यथाष्टौ भैरवास्तथा। सिद्धेन्द्राश्चापि योगीन्द्रा रुद्राश्चैकादशैव ते ॥४॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र मणिभद्रः समाययौ। सिंहद्वारे स्वयं द्वारी तमीश्वरमुवाच सः ॥५॥

मणिभद्र उवाच

असंख्यानि च सैन्यानि यादवानां महेश्वर। बलदेवश्च प्रद्युम्नः साम्बश्च सात्यकिस्तथा ॥६॥
राजा महोग्रसेनश्च भीमश्च स्वयमर्जुनः। अक्रूरश्चोद्धवश्चैव जयन्तः शक्रनन्दनः ॥७॥
रत्नेन्द्रसारनिर्माणरथेन्द्रे सुमनोहरे। विधेर्विधाता भगवाञ्छ्रीकृष्णः परमेश्वरः ॥८॥
सप्तभिः पार्षदैर्गोपैः सेवितः श्वेतचामरैः। कन्दर्पकोटिलीलाभो वनमालाविभूषितः ॥९॥
दधार चक्रमतुलं कोटिसूर्यसमप्रभम्। गदां कौमोदकीं शूलमव्ययं संनिधाय च ॥१०॥

---

# अध्याय ११८

## दुर्गा का बाण को युद्ध से विरत होने को सलाह देना

**नारायण बोले**—गणेश को समझाकर शंकर भीतर गये। वहाँ रमणीय सिंहासन पर बैठी हुई दुर्गतिनाशिनी दुर्गा, भैरवी, भद्रकाली उग्रचण्डा तथा कोटरी—इन सबने एकाएक उठकर जगदीश (शंकर) को प्रणाम किया ॥२॥ अनन्तर गणेश, पराक्रमी कार्तिकेय, बाण, वीरभद्र, स्वयं नन्दी, सुनन्दक, महामन्त्री महाकाल, आठों भैरव, सिद्धेन्द्र, योगीन्द्र और एकादश रुद्र—ये सभी वहाँ आ गये। इसी बीच सिंहद्वार पर पहरा देनेवाला स्वयं मणिभद्र वहाँ आया और उन ईश्वर (शिव) से बोला ॥३-५॥

**मणिभद्र ने कहा**—हे महेश्वर! यादवों की सेना असंख्य है। उसमें बलदेव, प्रद्युम्न, साम्ब, सात्यकि, राजा उग्रसेन, भीम, स्वयं अर्जुन, अक्रूर, उद्धव, इन्द्रपुत्र जयन्त, सर्वोत्तम रत्नों के सारभाग से निर्मित अत्यन्त मनोहर रथ पर बैठे हुए, विधाता के भी विधाता और परमेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण हैं। सात गोप पार्षद श्वेत चँवरों से उनकी सेवा कर रहे हैं, करोड़ों कन्दर्प की शोभा के समान उनकी छवि है। वे वनमाला से विभूषित हैं, करोड़ों सूर्य के समान चमकते हुए अनुपम चक्र को वे धारण किये हुए हैं। रथ के बीच में कौमोदकी गदा,

रथमध्ये महाशङ्खं विश्वसंहारकारणम् । महारथानां लक्षैश्च रथानां च त्रिकोटिभिः ॥११॥
त्रिकोटिभिर्गजेन्द्राणां मल्लानां च त्रिकोटिभिः । शतकोटिभिरश्वानां चर्मिणां तच्चतुर्गुणैः ॥१२॥
खड्गिनां तत्सप्तगुणैर्द्विगुणैस्तद्धनुष्मताम् । एभिः सार्धं च त्वरितमाययौ शोणितं पुरम् ॥१३॥
परितो वेष्टयामास लङ्कां दाशरथिर्यथा । सहस्रतालमानां च ज्वलदग्निशिखोज्ज्वलाम् ॥१४॥
ऊर्ध्वे च परिखायुक्तां दुर्लङ्घ्यामसुरैः सुरैः । स्वर्गगङ्गाम्बुराशीनां समूहैर्वृष्टिभिस्तथा ॥१५॥
पक्षीन्द्रो गरुडः साक्षान्निर्वाणं च चकार सः । मणीन्द्रसारनिर्माणं प्राकाराभ्रंलिहं पुरम् ॥१६॥
बभञ्ज लक्षं मल्लानां बलदेवश्च लाङ्गलैः । उद्यानानां त्रिलक्षं च चकारोत्पाटनं प्रभो ॥१७॥
प्रविवेश महाद्वारं द्वारपालान्निपत्य च । एवं श्रुत्वा महादेवश्चोवाच सुरसंसदि ॥१८॥
पार्वतीं भद्रकालीं च स्कन्दं गणपतिं तथा । अष्टौ च भैरवांश्चैव रुद्रांश्च वीरभद्रकम् ॥
महाकालं नन्दिनं च सर्वान्सेनापतींस्तथा ॥१९॥

## महादेव उवाच

गोलोकनाथो भगवांश्चक्रपाणिः समागतः । विश्वौघं भङ्क्तुमीशो यः क्षणेन नगरं च किम् ॥२०॥
सर्वोपायैश्च सर्वे ते बाणं रक्षन्तु यत्नतः । बाणो गच्छतु संग्रामं स्मृत्वा लम्बोदरं परम् ॥२१॥
बाणस्य दक्षिणे स्कन्दः पुरतश्च गणेश्वरः । वामे च भैरवा रुद्राः स्वयं नन्दी महारथः ॥२२॥

---

अमोघ शूल तथा विश्व के संहार का कारणरूप महान् शंख (पाञ्चजन्य) रखकर तीन करोड़ गजराजों, तीन करोड़ मल्लों, सौ करोड़ घोड़ों, उनके चारगुने कवचधारियों, उनके सात गुने खड्गधारियों, उनके दुगुने धनुर्धारियों के साथ शीघ्र आ गये ॥६-१३॥ उन्होंने शोणितपुर को उसी तरह घेर लिया जैसे राम ने लंका को, जो हजारों तालवृक्ष जितनी ऊँची थी, जलती हुई अग्नि की लपटों से उज्ज्वल थी, ऊपर में भी खाइयों से युक्त थी, तथा देवताओं और असुरों से दुर्लंघ्य थी। पक्षियों के राजा साक्षात् गरुड़ ने स्वर्गगंगा की जलराशियों के समूहों तथा वृष्टियों से, उत्तम मणियों के सारभाग से बनायी गयी बहुत ही ऊँची चहारदीवारी का विनाश कर दिया है ॥१४-१६॥ बलदेव ने हल के द्वारा लाखों मल्लों को विनष्ट कर दिया और तीन लाख उद्यानों को उखाड़ डाला है ॥१७॥ वे द्वारपालों को मारकर महाद्वार में घुस आये हैं। ऐसा सुनकर महादेव ने देवताओं की सभा में पार्वती, भद्रकाली, स्कन्द, गणपति, आठों भैरवों, रुद्रों, वीरभद्र, महाकाल, नन्दी तथा सभी नवों सेनापतियों से कहा ॥१८-१९॥

**महादेव बोले**—गोलोकनाथ भगवान् कृष्ण आ गये हैं, जो क्षणभर में विश्व-समूह को नष्ट कर सकते हैं; फिर इस विश्व की क्या बात है? ॥२०॥ सब लोग सभी उपायों से यत्नपूर्वक बाण की रक्षा करें। बाण श्रेष्ठ गणेश का स्मरण करके युद्ध में जाय ॥२१॥ बाण के दक्षिण में स्कन्द, आगे गणेश, वामभाग में भैरव, रुद्र, स्वयं महारथी नन्दी, महाकाल, वीरभद्र तथा अन्यान्य सैनिक उसकी रक्षा करें। ऊर्ध्वभाग में दुर्गा, भद्र-

महाकालो वीरभद्रो ये चान्ये सैनिकास्तथा। ऊर्ध्वे दुर्गा भद्रकाली ह्युग्रचण्डा च कोटरी ॥२३॥
बाणं रक्ष महाभागे दुर्गे दुर्गतिनाशिनि। कृष्णस्य भवती शक्तिस्तेन नारायणी स्मृता ॥२४॥
विष्णुमाये जगन्मातः सर्वमङ्गलमङ्गले। अव्यर्थाच्चक्रसाराच्च रक्ष बाणं सुदर्शनात् ॥२५॥
बाणः प्रियो मे सर्वेभ्यो गणेशात्कार्तिकादपि। बाणमूर्ध्नि करं देहि पादाब्जरजसा सह ॥२६॥
शिवस्य वचनं श्रुत्वा दुर्गा दुर्गतिनाशिनी। प्रहस्योवाच मधुरं याथार्थ्यं समयोचितम् ॥२७॥

पार्वत्युवाच

मणिरत्नादिकं यद्यन्मुक्तामाणिक्यहीरकम्। सर्वस्वं कन्यकामूषां रत्नभूषणभूषिताम् ॥२८॥
रत्नभूषणभूषाढ्यमनिरुद्धं परं वरम्। पुरस्कृत्य देहि बाण कृष्णाय परमात्मने ॥
राज्यं कुरुष्व निर्विघ्नं किं युद्धमात्मना सह। ॥२९॥
यस्मिन्गते गताः प्राणाः स जीवश्चेन्द्रियैः सह। शक्तिश्चाहं मनो ब्रह्मा स्वयं ज्ञानात्मकं शिवः ॥३०॥
सद्यः पतति देहश्च शिवं त्यक्त्वा शवो भवेत्। को वा तिष्ठति संग्रामे चक्रस्य तेजसा शिव ॥३१॥
नाऽऽत्माऽऽकाशो बाणविद्धो युद्धं किं स्वात्मना सह। परमात्मा च सर्वेषां भक्तानुग्रहविग्रहः ॥३२॥
नित्यः सत्यो हि कृष्णश्च परिपूर्णतमः प्रभुः। गणेशः कार्तिकेयश्च भवानपि तयोः परः ॥३३॥
किंकरेषु प्रियो बाणो न हि कृष्णात्परः प्रियः। वैकुण्ठेऽहं महालक्ष्मीर्गोलोके राधिका स्वयम् ॥३४॥

---

काली, उग्रचण्डा और कोटरी रहें ॥२२-२३॥ हे दुर्गतिनाशिनी दुर्गा! बाण की रक्षा करो। महाभागे! आप कृष्ण की शक्ति हैं, इसलिए नारायणी कही जाती हैं ॥२४॥ विष्णु की माया! जगज्जननी! सभी मंगलों की मंगलस्वरूपा! चक्रों के साररूप तथा अमोघ सुदर्शन से बाण की रक्षा करो ॥२५॥ बाण मुझे सबसे प्रिय है—गणेश से और कार्तिकेय से भी। तुम बाण के सिर पर चरण-कमल की धूलि के साथ हाथ रखो ॥२६॥ शिव की बात सुनकर दुर्गतिनाशिनी दुर्गा हँसकर मधुर, यथार्थ एवं समयोचित बात बोलीं ॥२७॥

**पार्वती ने कहा**—बाण! मणि, रत्न, मोती, माणिक्य, हीरा तथा सर्वस्व के साथ रत्नों के आभूषणों से विभूषित कन्या ऊषा को और रत्नों के आभूषणों से अलंकृत श्रेष्ठ वर अनिरुद्ध को आगे करके परमात्मा कृष्ण को सौंप दो और निष्कण्टक राज्य करो। आत्मा के साथ युद्ध कैसा? ॥२८-२९॥ जिसके चले जाने पर प्राण इन्द्रियों सहित नष्ट हो जाते हैं, वह जीव है। मैं ही शक्ति हूँ, ब्रह्मा मन है और स्वयं शिव ज्ञानस्वरूप हैं ॥३०॥ शिव का त्यागकर शरीर तुरन्त गिर जाता है और शवरूप हो जाता है। हे शिव! युद्ध में सुदर्शन चक्र के तेज के सामने भला कौन ठहर सकता है? श्रीकृष्ण सबके परमात्मा, भक्तों पर अनुग्रहार्थ शरीर धारण करनेवाले नित्य सत्य तथा परिपूर्णतम प्रभु हैं। आकाश के समान आत्मा बाण से वेधा नहीं जा सकता। (तब) अपने आत्मा के साथ युद्ध कैसा? गणेश, कार्तिकेय और दोनों से भी परे आप मेरे लिए प्रिय हैं ॥३१-३३॥ सेवकों में बाण मुझे प्रिय हैं। किन्तु श्रीकृष्ण से बढ़कर दूसरा कोई प्रिय नहीं है। मैं ही वैकुण्ठ में महालक्ष्मी,

शिवाऽहं शिवलोकेऽपि ब्रह्मलोके सरस्वती । अहं निहत्य दैत्यांश्च दक्षकन्या सती पुरा ॥३५॥
त्वन्निन्दया त्यक्तदेहा सा चाहं शैलकन्यका । रक्तबीजस्य युद्धे च काली च मूर्तिभेदतः ॥३६॥
सावित्री वेदमाताऽहं सीता जनककन्यका । रुक्मिणी द्वारवत्यां च भारते भीष्मकन्यका ॥३७॥
सुदाम्नः शापतो दैवाद्वृषभानसुताऽधुना । धर्मपत्नी च कृष्णस्य पुण्ये वृन्दावने वने ॥३८॥
भगवन्तं च सर्वज्ञं त्वां शिवं च सनातनम् । किं वाऽहं कथयामीति कर्त्तव्यं समयोचितम् ॥३९॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० बाणयुद्धेऽष्टा-
दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११८॥

•

# अथैकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

नारायण उवाच

पार्वतीवचनं श्रुत्वा गणेशश्च शिवः स्वयम् । कार्तिकेयश्च काली च तां प्रशंसां चकार ह ॥१॥
उवाच भगवाञ्शंभुर्जगतां मातरं पराम् । ज्योतिः स्वरूपां परमां मूलप्रकृतिमीश्वरीम् ॥२॥

---

गोलोक में स्वयं राधा, शिवलोक में शिवा और ब्रह्मलोक में सरस्वती हूँ। मैं ही पूर्वकाल में दैत्यों को मारकर सती दक्ष-कन्या हुई थी। फिर मैं तुम्हारी निन्दा के कारण देह त्यागकर पर्वत-पुत्री (पार्वती) हूँ। रक्तबीज के युद्ध में मैं स्वरूप-भेद से काली हुई। मैं ही वेदमाता सावित्री, जनक-पुत्री सीता और भारत-भूमि पर द्वारका में रुक्मिणी हूँ। इस समय दैववश सुदामा के शाप से मैं वृषभान की पुत्री (राधा) होकर पुण्य वृन्दावन नामक वन में कृष्ण की धर्मपत्नी हूँ। आप सर्वज्ञ, सनातन भगवान् शिव हैं। आपको समयोचित कर्तव्य के बारे में क्या कहूँ? ॥३४-३९॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद-नारायण के संवाद में
बाणयुद्ध के प्रसंग में एक सौ अठारहवाँ अध्याय समाप्त ॥११८॥

•

# अध्याय ११९

## बलि द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति

**नारायण बोले**—पार्वती की बात सुनकर गणेश, स्वयं शिव, कार्तिकेय और काली उनकी प्रशंसा करने लगे ॥१॥ भगवान् शंकर ने जगन्माता (पार्वती) से, जो परात्परा, ज्योतिःस्वरूपा, परमा, मूलप्रकृति तथा ईश्वरी हैं, कहा ॥२॥

## महादेव उवाच

त्वया यदुक्तं देवेशि सर्वं वेदोक्तमीप्सितम् । अयुक्तमुपहास्यं च समरं परमात्मना ॥३॥
बाणो ददातु कन्यां तां स्वर्णभूषणभूषिताम् । सामञ्जस्यं यशस्यं च शुभदं सर्वकर्मसु ॥४॥
न ददाति यदा बाणो हिरण्यकशिपोः प्रजा । युद्धे पराङ्मुखो भीतो भगवत्ययशस्करः ॥५॥
बाणो गच्छतु संनाही रणशास्त्रविशारदः । पश्चाच्चाऽऽगमनं कुर्मो वयं सांनाहिकाः शिवे ॥६॥
उवाच बाणं तां दातुं स च न स्वीचकार ह । दुर्गा तं बोधयामास न बुबोध च सद्वचः ॥७॥
एतस्मिन्नन्तरे तां च सभामेव मनोरमाम् । आजगाम महाधर्मो बलिश्च वैष्णवाग्रणीः ॥८॥
रथं रत्नेन्द्रनिर्माणं समारुह्य महाबलः । प्रतप्तैः सप्तभिर्दैत्यैः सेवितः श्वेतचामरैः ॥९॥
दैत्येन्द्राणां सप्तलक्षैरावृतः परमास्त्रवित् । अवरुह्य रथात्तूर्णं गणेशं च शिवां शिवम् ॥१०॥
प्रणम्य कार्तिकेयं च स उवास च संसदि । उत्तस्थुराराद्दृष्ट्वा ते सर्वे शंकरं विना ॥
तमुवाच महादेवः संभाष्य प्रियभाषणम् ॥११॥

## महादेव उवाच

भगवंश्चतुरस्त्वं च प्रदाता सर्वसंपदाम् । अयं हि परमो लाभो वैष्णवानां समागमः ॥१२॥

---

**महादेव बोले**—हे देवेशि ! तुमने जो कहा, वह सब वेदप्रतिपादित एवं वांछनीय है । परमात्मा के साथ युद्ध करना अनुचित एवं उपहासास्पद है ॥३॥ बाण उस कन्या को सुवर्ण के आभूषणों से विभूषित करके दे दें । यही सब कार्यों में सामञ्जस्य, यशस्कर तथा शुभदायक है ॥४॥ हे भगवती ! यदि बाण न दे, क्योंकि वह हिरण्यकशिपु का वंशज है और डरकर युद्ध से पराङ्मुख होना अयशस्कर है तो रणशास्त्रविशारद बाण कवच पहनकर जाय और शिवे ! उसके पीछे हम लोग भी कवच धारण करके चलें ॥५-६॥ बाण से कन्या देने के लिए कहा गया, पर उसने स्वीकार नहीं किया । दुर्गा ने उसे समझाया, पर उसने उत्तम बात को नहीं समझा ॥७॥ इसी बीच वैष्णवों में अग्रणी महान् धर्मात्मा बलि उस मनोरमा सभा में आ गये ॥८॥ वे महाबली उत्तम रत्नों के सारभाग से बने रथ पर आरूढ़ होकर आये थे । उस समय सात तपे-तपाये दैत्य श्वेत चँवरों द्वारा उनकी सेवा कर रहे थे और सात लाख दैत्येन्द्र उन्हें घेरे हुए थे । वे महान् अस्त्रवेत्ता शीघ्र रथ से उतरकर गणेश, शिवा, शिव तथा कार्तिकेय को प्रणाम करके सभा में बैठ गये । उन्हें दूर ही से देखकर शंकर को छोड़कर वे सब उठ खड़े हुए । तब शंकर ने कुशल-प्रश्न पूछने के बाद उनसे कहा ॥९-११॥

**महादेव बोले**—भगवन् ! तुम चतुर हो, सकल सम्पदा का दान करनेवाले हो । यह महान् लाभ है

---

१ क. 'श्च ग' ।

तीर्थान्यपि च पूतानि वैष्णवस्पर्शमात्रतः । सर्वेषामाश्रमाणां च पूजितो ब्राह्मणः शुचिः ।।१३।।
ततोऽधिकः पूजितोऽपि ब्राह्मणो यदि वैष्णवः । न हि पूतं च पश्यामि वैष्णवब्राह्मणात्परम् ।।१४।।
स पूतः पवनादेव स पूतश्च हुताशनात् । तीर्थेभ्योऽपि च सर्वेभ्यो बिभेति च ततः सुरः ।।१५।।
न हि पापानि तद्देहे वह्नौ शुष्कतृणादिवत् ।।१६।।

बलिरुवाच

कथं स्तौषि जगन्नाथ भृत्यमस्तव्यमीश्वरः । प्रदत्तं परमैश्वर्यं त्वया नाथ सुदुर्लभम् ।।१७।।
अधुना [1]स्थापितो दैवात्सर्वधः सुतलेऽपि च । इन्द्राय दत्तमैश्वर्यं मत्तो भक्तात्सुरेश्वर ।।१८।।
त्वया वामनरूपेण सर्वरूपोऽसि सर्वतः । बाणं बोधय भद्रं च मम प्राणात्मजं परम् ।।१९।।
आत्मना सह युद्धं च देवेष्वपि विगर्हितम् । इत्युक्त्वा च शिवं नत्वा शिरसा प्रणनाम तम् ।।२०।।
सामवेदोक्तस्तोत्रेण तुष्टाव परमेश्वरम् । पुलकाञ्चितसर्वाङ्गः साश्रुनेत्रोऽतिविह्वलः ।।२१।।
ध्यायमानश्च नित्यं यो हृत्पद्मे सुमनोहरे । शुक्रेण दत्तं मन्त्रं च जप्त्वा चैकादशाक्षरम् ।।२२।।

बलिरुवाच

अदित्याः प्रार्थनेनैव मातुर्देव्या व्रतेन च । पुरा वामनरूपेण त्वयाऽहं वञ्चितः प्रभो ।।२३।।

---

कि वैष्णवों का समागम हो ।।१२।। वैष्णव के स्पर्श मात्र से तीर्थ भी पवित्र हो जाते हैं । सभी आश्रमों (जातियों) में पवित्र ब्राह्मण जित है । ब्राह्मण भी यदि वैष्णव है तो वह अधिक पूजित है । वैष्णव ब्राह्मण से बढ़कर पवित्र तो मैं किसी को देखता ही नहीं ।।१३-१४।। वह वायु से भी पवित्र है, अग्नि से भी पवित्र है और सभी तीर्थों से भी पवित्र है । उससे देवता भी डरते हैं ।।१५।। उसके शरीर में पाप उसी तरह नहीं ठहर पाते जैसे अग्नि में सूखे तृण आदि ।।१६।।

**बलि बोले**—हे जगन्नाथ ! हे ईश्वर ! आप स्तुति के अयोग्य भृत्य की क्यों स्तुति कर रहे हैं ? नाथ ! आपने अत्यन्त दुर्लभ परम ऐश्वर्य मुझे प्रदान किया है ।।१७।। हे देवों के ईश्वर ! आप सब ओर से सर्वरूप होते हुए भी वामन रूप से मुझे दैववश सुतल से भी नीचे स्थापित किया है और मुझ भक्त से ऐश्वर्य लेकर इन्द्र को दिया है । मेरे प्राणप्रिय श्रेष्ठ पुत्र आयुष्मान् बाण को समझा दीजिये । आत्मा के साथ युद्ध करना देवताओं में भी निन्दित है । इतना कहकर सिर झुकाकर शिव को प्रणाम किया । पश्चात् सामवेदोक्त स्तोत्र से परमेश्वर की स्तुति की । उस समय उनके सर्वाङ्ग में रोमांच हो गया, आँखों से आँसू बहने लगे और अत्यन्त विह्वल होकर अत्यन्त मनोहर हृदय-कमल पर (भगवान् का) ध्यान करते हुए, शुक का दिया हुआ ग्यारह अक्षरोंवाला मन्त्र जपने लगा ।।१८-२२।।

**बलि ने कहा**—प्रभो ! पूर्वकाल में माता अदिति देवी के व्रत और प्रार्थना से ही आपने वामन-रूप धारण

---

१ क. 'पिता दैत्याः स' ।

संपद्रूपा महालक्ष्मीर्दत्ता भक्ताय भक्तितः। शक्राय मत्तो भक्ताय भ्रात्रे पुण्यवते ध्रुवम् ॥२४॥
अधुना मम पुत्रोऽयं बाणः शंकरकिंकरः। आराच्च रक्षितः सोऽपि तेनैव भक्तबन्धुना ॥२५॥
परिपुष्टश्च पार्वत्या यथा मात्रा सुतस्तथा। गृहीतवांश्च तत्कन्यां बलेन युवतीं सतीम् ॥२६॥
समुद्यतश्च तं हन्तुं कार्तिकेनापि वारितः। आगतोऽसि पुनर्हन्तुं पौत्रस्य दमने क्षमः ॥२७॥
सर्वात्मनश्च सर्वत्र समभावः श्रुतौ श्रुतः। करोषि जगतां नाथ कथमेवं व्यतिक्रमः ॥२८॥
त्वया च निहतो यो हि तस्य को रक्षिता भुवि। सुदर्शनस्य तेजो हि सूर्यकोटिनिभं परम् ॥२९॥
केषां सुराणामस्त्रेण तवैव च निवारितम्। यथा सुदर्शनं चैवमस्त्राणां प्रवरं वरम्[1] ॥३०॥
तथा भवांश्च देवानां सर्वेषामीश्वरः परः। यथा भवांस्तथा कृष्णो विधाता वेधसामपि ॥३१॥
विष्णुः सत्त्वगुणाधारः शिवः सत्त्वाश्रयस्तथा। स्वयं विधाता रजसः सृष्टिकर्ता पितामहः ॥३२॥
कालाग्निरुद्रो भगवान्विश्वचसंहारकारकः। तमसश्चाऽऽश्रयः सोऽपि रुद्राणां प्रवरो महान् ॥३३॥
स एव शंकरांशश्चाप्यन्ये रुद्राश्च तत्कलाः। भवांश्च निर्गुणस्तेषां प्रकृतेश्च परस्तथा ॥३४॥
सर्वेषां परमात्मा वै प्राणा विष्णुस्वरूपिणः। मानसं च स्वयं ब्रह्मा स्वयं ज्ञानात्मकः शिवः ॥३५॥
प्रवरा सर्वशक्तीनां बुद्धिः प्रकृतिरीश्वरी। स्वात्मनः प्रतिबिम्बस्ते जीवः सर्वेषु देहिषु ॥३६॥

---

करके मुझे छला था और संपत्ति रूपी महालक्ष्मी मुझसे छीनकर भक्ति से भक्त को दी। वह भक्त पुण्यात्मा भाई इन्द्र है ॥२३-२४॥ इस समय मेरा पुत्र बाण शंकर का किंकर है। उसकी भक्तों के बन्धु शंकर ने अपने पास रखकर रक्षा की है ॥२५॥ पार्वती ने उसका पालन-पोषण उसी भाँति किया जैसे माता पुत्र का (पालन) करती है। (आपके पौत्र) उसकी साध्वी युवती कन्या को बलपूर्वक ग्रहणकर उसे मारने के लिए उद्यत हुए तो कार्तिकेय ने रोका। उस पौत्र के दमन करने में समर्थ होते हुए भी आप बाण को पुनः मारने के लिए आये हैं ॥२६-२७॥ सर्वात्मा का सबके प्रति समान भाव रहता है, ऐसा वेद में सुना गया है। हे संसार के प्रभु! आप क्यों ऐसा व्यतिक्रम (उलटा) कर रहे हैं? ॥२८॥ जिसको आपने मार दिया, भला उसको संसार में कौन बचा सकता है। सुदर्शन (चक्र) का तेज, करोड़ों सूर्य के समान है ॥२९॥ किन देवताओं के अस्त्र ने उसे रोका है? जैसे सुदर्शन अस्त्रों में सबसे श्रेष्ठ है, उसी प्रकार आप देवों में सर्वश्रेष्ठ हैं। जैसे आप हैं वैसे कृष्ण, जो विधाताओं के भी विधाता हैं ॥३०-३१॥ विष्णु सत्त्व गुण के आधार, शिव सत्त्व के आश्रयस्थान और स्वयं सृष्टिकर्ता ब्रह्मा रजोगुण के विधाता हैं ॥३२॥ जो तमोगुण के आश्रय (एकादश) रुद्रों में सर्वश्रेष्ठ, विश्व के संहारकर्ता एवं महान् हैं ॥३३॥ वे ही भगवान् कालाग्निरुद्र शंकर के अंश हैं। इनके अतिरिक्त अन्य रुद्रगण शंकर की कलाएँ हैं। उन सबमें आप गुणरहित तथा प्रकृति से परे हैं। आप सबके परमात्मा हैं। सभी प्राणियों के प्राण विष्णु के स्वरूप हैं। स्वयं ब्रह्मा मन रूप हैं और स्वयं शिव ज्ञानात्मक हैं ॥३४-३५॥ समस्त शक्तियों में श्रेष्ठ ईश्वरी प्रकृति बुद्धि हैं। समस्त देहधारियों में जो जीव है, वह आपके आत्मा का प्रतिबिम्ब है ॥३६॥

---

१ क. परम्।

जीवः स्वकर्मणां भोगी स्वयं साक्षी भवांस्तथा। सर्वे यान्ति त्वयि गते नरदेवे यथाऽनुगाः ॥३७॥
सद्यः पतति देहश्च शवोऽस्पृश्यस्त्वया विना। बुद्धाः सन्तो न जानन्ति वञ्चितास्तव मायया ॥३८॥
त्वां भजन्त्येव ये सन्तो मायामेतां तरन्ति ते। त्रिगुणा प्रकृतिर्दुर्गा वैष्णवी च सनातनी ॥३९॥
परा नारायणीशानी तव माया दुरत्यया। त्वदंशाः प्रतिविश्वेषु ब्रह्मविष्णुशिवात्मकाः ॥४०॥
सर्वेषामपि विश्वेषामाश्रयो यो महान्विराट्। स शेते च जले योगाद्विश्वेशो गोकुले यथा ॥४१॥
स एव वासुर्भगवांस्तस्य देवो भवान्परः। वासुदेव इति ख्यातः पुराविद्भिः प्रकीर्तितः ॥४२॥
त्वमेव कलया सूर्यस्त्वमेव कलया शशी। कलया च हुताशश्च कलया पवनः स्वयम् ॥४३॥
कलया वरुणश्चैव कुबेरश्च यमस्तथा। कलया त्वं महेन्द्रश्च कलया धर्म एव च ॥४४॥
त्वमेव कलया शेष ईशानो नैर्ऋतिस्तथा। मुनयो मनवश्चैव ग्रहाश्च फलदायकाः ॥४५॥
कलाकलायाश्चांशेन सर्वे जीवाश्चराचराः। त्वं ब्रह्म परमं ज्योतिर्ध्यायन्ते योगिनः सदा ॥४६॥
तं त्वाऽऽद्रियन्ते भक्तास्ते ध्यायन्ते च तदन्तरे। नवीननीरदश्यामं पीतकौशेयवाससम् ॥४७॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं भक्तेशं भक्तवत्सलम्। चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं द्विभुजं मुरलीधरम् ॥४८॥
मयूरपिच्छचूडं च मालतीमाल्यभूषितम्। अमूल्यरत्ननिर्माणकेयूरवलयान्वितम् ॥४९॥

---

जीव अपने कर्मों का भोक्ता है और स्वयं आप उसके साक्षी हैं। आपके चले जाने पर सभी उसी प्रकार आपका अनुगमन करते हैं जैसे राजा के चलने पर उसके अनुगामी ॥३७॥ आपके निकल जाने पर शरीर तुरंत धराशायी हो जाता है और शव होकर अस्पृश्य बन जाता है। परन्तु आपकी माया से वंचित होने के कारण बुद्धिमान् सन्त लोग इसे नहीं जानते ॥३८॥ जो सन्त लोग आपका भजन करते हैं, वे ही इस माया का पार पाते हैं। त्रिगुणा प्रकृति, दुर्गा, वैष्णवी, सनातनी, परा, नारायणी और ईशानी ये सब आपकी माया के स्वरूप हैं। इनसे पार पाना अत्यन्त कठिन है। प्रत्येक विश्व में होनेवाले ब्रह्मा, विष्णु और महेश आपके ही अंश हैं ॥३९-४०॥ जैसे विश्वेश्वर श्रीकृष्ण गोकुल में वास करते हैं उसी तरह जो समस्त लोकों के आश्रय हैं, वे महान् विराट् योगबल से जल में शयन करते हैं ॥४१॥ वे ही भगवान् वासु हैं, जिनके परम देवता आप हैं। इसी से 'वासुदेव' नाम से विख्यात हैं—ऐसा पुरातत्त्ववेत्ता कहते हैं ॥४२॥ आप ही कला से सूर्य हैं। आप ही कला से चन्द्रमा हैं। आप ही कला से अग्नि हैं। आप ही कला से स्वयं वायु हैं और आप ही कला से वरुण, कुबेर तथा यम हैं। आप ही कला से महेन्द्र हैं और आप ही कला से धर्म हैं। आप ही कला से शेष, ईशान, नैर्ऋति, मनु तथा फलदायक ग्रह हैं। आप ही की कला की कला के अंश से सभी जीव तथा चर-अचर उत्पन्न हुए हैं। आप ही परम ज्योतिःस्वरूप ब्रह्म हैं। योगी लोग सदा आप ही का ध्यान करते हैं ॥४३-४६॥ भक्त लोग आपका आदर करते हैं और हृदय में ध्यान करते हैं। (ध्यान ऐसे स्वरूप का करते हैं—) जिनका शरीर नवीन मेघ के समान श्याम है; पीताम्बर जिनका परिधान है; जिनका प्रसन्न मुख मुस्कराहट से युक्त है; जो भक्तों के स्वामी तथा भक्तवत्सल हैं; जिनका सर्वाङ्ग चन्दन से अनुलिप्त है; जिनकी दो भुजाएँ हैं; जो मुरली धारण

मणिकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजितम् । रत्नसाराङ्गुलीयं च क्वणन्मञ्जीररञ्जितम् ॥५०॥
कोटिकन्दर्पलीलाभं शरत्कमललोचनम् । शरत्पूर्णेन्दुनिन्दास्यं चन्द्रकोटिसमप्रभम् ॥५१॥
वीक्षितं सस्मिताभिश्च गोपीनां कोटिकोटिभिः[1] । वयस्यैः पार्षदैर्गोपैः सेवितं श्वेतचामरैः ॥५२॥
गोपबालकवेषं च राधावक्षःस्थलस्थितम् । ध्यानासाध्यं दुराराध्यं ब्रह्मेशशेषवन्दितम् ॥५३॥
सिद्धेन्द्रैश्च मुनीन्द्रैश्च योगीन्द्रैः प्रणतं स्तुतम् । वेदानिर्वचनीयं च परं स्वेच्छामयं विभुम् ॥५४॥
स्थूलस्थूलतमं रूपं सूक्ष्मात्सूक्ष्मतमं परम् । सत्यं नित्यं प्रशस्तं च प्रकृतेः परमीश्वरम् ॥५५॥
निर्लिप्तं च निरीहं च भगवन्तं सनातनम् । एवं ध्यात्वा च ते पूताः स्निग्धदूर्वाक्षता जलम् ॥५६॥
पद्मापद्मार्चिते पादपद्मे च दातुमुत्सुकाः । वेदाः स्तोतुमशक्तास्त्वामशक्ता सा सरस्वती ॥५७॥
शेषः स्तोतुमशक्तश्च स्वयंभूः शंभुरीश्वरः । गणेशश्च दिनेशश्च महेन्द्रश्चन्द्र एव च ॥५८॥
स्तोतुं नालं धनेशश्च किमन्ये जड़बुद्धयः । गुणातीतमनीहं च किं स्तौमि निर्गुणं परम् ॥५९॥
अपण्डितोऽयमसुरो न सुरः क्षन्तुमर्हसि । बलेस्तद्वचनं श्रुत्वा तमुवाच जगत्पतिः ॥
परिपूर्णतमः श्रीमान्भक्तं च भक्तवत्सलः ॥६०॥

---

किये हुए हैं, जिनकी चूड़ा में मोरपंख लगा हुआ है; जो मालती की माला, अमूल्य रत्ननिर्मित बाजूबंद और कंकण से युक्त हैं; मणियों के बने हुए दोनों कुण्डलों से जिनका गण्डस्थल उद्भासित हो रहा है; जो रत्नों के सारभाग से बनी हुई अंगूठी और बजती हुई करधनी से सुसज्जित हैं; जिनकी आभा करोड़ों कामदेवों का उपहास कर रही है, जिनके नेत्र शारदीय कमल की शोभा को पराजित कर रहे हैं; जिनकी मुख-छवि शरत्पूर्णिमा के चन्द्रमा की निन्दा कर रही है और प्रभा करोड़ों चन्द्रमाओं के समान है; करोड़ों-करोड़ों गोपियाँ मुस्कराती हुई जिनकी ओर निहार रही हैं; समवयस्क गोप-पार्षद श्वेत चँवर डुलाकर जिनकी सेवा कर रहे हैं, जिनका वेश बालक के सदृश है; जो राधा के वक्षःस्थल पर स्थित एवं ध्यान द्वारा असाध्य एवं दुराराध्य हैं; ब्रह्मा, महेश तथा शेष जिनकी वन्दना करते हैं; सिद्धेन्द्र, मुनीन्द्र तथा योगीन्द्र प्रणत होकर जिनका स्तवन करते हैं; जो वेदों द्वारा अनिर्वचनीय, परम स्वेच्छामय और सर्वव्यापक हैं; जिनका स्वरूप स्थूल से स्थूलतम और सूक्ष्म से सूक्ष्मतम है; जो सत्य, नित्य, प्रशस्त प्रकृति से परे, ईश्वर, निर्लिप्त और निरीह हैं; उन सनातन भगवान् का इस प्रकार ध्यान करके वे पवित्र हो जाते हैं और लक्ष्मी द्वारा समर्चित चरण-कमलों में कोमल दूर्वांकुर, अक्षत और जल निवेदित करने के लिए उत्सुक हो उठते हैं। वेद, सरस्वती, शेष, ब्रह्मा, गणेश सूर्य, महेन्द्र, चन्द्रमा तथा कुबेर भी आपकी स्तुति करने में असमर्थ हैं और जड़ बुद्धिवालों का तो कहना ही क्या? गुणों से परे, निरीह तथा परम निर्गुण की स्तुति ही मैं क्या कर सकता हूँ? यह (बाण) एक मूर्ख असुर है, सुर नहीं है, अतः इसे क्षमा करें। बलि का वचन सुनकर संसार के स्वामी, परिपूर्णतम, श्रीमान् तथा भक्त-वत्सल (भगवान्) ने उससे कहा ॥४७-६०॥

---

१ क. °टिभिः सह।

## श्रीभगवानुवाच

मा भैर्वत्स गृहं गच्छ सुतलं रक्षितं मया। मद्वरेण प्रसादेन त्वत्पुत्रोऽप्यजरामरः ॥६१॥
दर्पहानिं करिष्यामि तस्य मूर्खस्य दर्पिणः। प्रह्लादाय वरो दत्तो भक्ताय च तपस्विने ॥६२॥
ममावध्यश्च त्वद्वंशश्चेति प्रीतेन चेतसा। तव पुत्राय दास्यामि ज्ञानं मृत्युंजयं परम् ॥६३॥
त्वया कृतमिदं स्तोत्रं सामवेदोक्तमीप्सितम्। पुरा सनत्कुमाराय प्रदत्तं ब्रह्मणा तथा ॥६४॥
सिद्धाश्रमे पुण्यतमे[1] प्रशस्ते सूर्यपर्वणि। गौतमाय प्रदत्तं च गौर्या मन्दाकिनीतटे ॥६५॥
शंकरेण च शिष्याय भक्ताय च दयालुना। ब्रह्मणे च मया दत्तं शिवाय विरजातटे ॥६६॥
भृगवे च पुरा दत्तं कुमारेण च धीमता। त्वं च दास्यसि बाणाय बाणः स्तोष्यत्यनेन माम् ॥६७॥
इदं स्तोत्रं महापुण्यमुपविश्य गुरोर्मुखात्। वृतस्य पूजितस्यापि वस्त्रभूषणचन्दनैः ॥६८॥
सुस्नातो यः पठेन्नित्यं पूजाकाले च भक्तितः। कोटिजन्मार्जितात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥६९॥
विपदां खण्डनं स्तोत्रं कारणं सर्वसंपदाम्। वारणं दुःखशोकानां भवाब्धिघोरतारणम् ॥७०॥
खण्डनं गर्भवासानां जरामृत्युहरं परम्। बन्धनानां च रोगाणां खण्डनं भक्तमण्डनम् ॥७१॥

---

**श्रीभगवान् बोले**—वत्स ! मत डरो, मेरे द्वारा सुरक्षित सुतल को जाओ। मेरे वरदान तथा प्रसन्नता से तुम्हारा पुत्र भी अजर-अमर है। मैं उस अभिमानी मूर्ख का गर्व दूर कर दूंगा। मैंने तपस्वी एवं भक्त प्रह्लाद को प्रसन्नचित्त से वर दिया था कि तुम्हारे वंशज को मैं नहीं मारूँगा। तुम्हारे पुत्र को मृत्युंजय नामक परम ज्ञान प्रदान करूँगा ॥६१-६३॥ तुम्हारे द्वारा की गयी यह सामवेदोक्त वांछनीय स्तुति को पूर्व-काल में ब्रह्मा ने सूर्यग्रहण के अवसर पर प्रशस्त पुण्यतम सिद्धाश्रम में सनत्कुमार को प्रदान किया था। गौरी ने मन्दाकिनी के तट पर उसे गौतम को बतलाया था। दयालु शंकर ने अपने भक्त शिष्य ब्रह्मा को इसका उपदेश किया था। विरजा के तट पर मैंने इसे शिव को प्रदान किया था। पूर्वकाल में बुद्धिमान् सनत्कुमार ने उसे महर्षि भृगु को बतलाया था। इस समय तुम इसे बाण को दोगे और बाण इसके द्वारा स्तवन करेगा ॥६४-६७॥ इस महापुण्यदायक स्तोत्र को ऐसे गुरु के मुख से, जिनका वस्त्र, आभूषण तथा चन्दन से वरण तथा पूजन किया गया हो, सुनकर नित्यपूजाकाल में जो भक्तिपूर्वक पाठ करता है, वह करोड़ों जन्मों के अर्जित पाप से मुक्त हो जाता है ॥६८-६९॥ यह स्तोत्र विपत्तियों का नाश करनेवाला तथा सकल संपत्तियों का कारण है। यह दुःख और शोक का निवारण करनेवाला तथा दारुण संसार-सागर से पार उतारनेवाला है ॥७०॥ गर्भ-वासों का खण्डन करनेवाला, वृद्धावस्था और मृत्यु का हरण करनेवाला और बन्धनों तथा रोगों से छुटकारा दिलानेवाला है। यह भक्तों का आभूषण है ॥७१॥ जो इसका पाठ करता है, वह मानो

---

1 क. °तीर्थे।

स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः। व्रती व्रतेषु सर्वेषु तपस्वी च तपःसु च ॥७२॥
स सत्यं सर्वदानानां फलं च लभते ध्रुवम्। लक्षधा स्तोत्रपाठेन स्तोत्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम् ॥७३॥
सर्वसिद्धिं च लभते सिद्धिस्तोत्रो भवेद्यदि। इहलोके देवतुल्योऽप्यन्ते याति हरेः पदम् ॥७४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० बाणयुद्धे बलिकृतश्रीकृष्णस्तोत्रं नामैकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥११९॥

•

# विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

### नारायण उवाच

अथ कृष्णश्च भगवानुद्धवेन बलेन च। दूतं प्रस्थापयामास विधाय मन्त्रणं शुभम् ॥१॥
शिवो गणपतिर्यत्र दुर्गा दुर्गतिनाशिनी। कार्तिकेयो भद्रकाली चोग्रचण्डा च कोटरी ॥२॥
आगत्य नत्वा दूतश्च गणेशं च शिवं शिवाम्। मानवांश्चापि पूज्यांश्च समुवाच यथोचितम् ॥३॥

### दूत उवाच

बाणमाह्वयते कृष्णः संग्रामार्थं महेश्वर। किं वाऽनिरुद्धमूषां च गृहीत्वा शरणं व्रज ॥४॥

---

सभी तीर्थों में स्नान कर चुका, सभी यज्ञों में दीक्षा ले चुका तथा सभी व्रतों में व्रती और सभी तपों में तपस्वी हो चुका। उस मनुष्य को निश्चित ही स्तोत्र की सिद्धि प्राप्त हो जाती है। यदि स्तोत्रसिद्धि हो जाती है तो वह सभी सिद्धियों को प्राप्त कर लेता है। फिर इस लोक में देवता के समान होकर अन्त में विष्णुपद को प्राप्त करता है ॥७२-७४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद-नारायण के संवाद में बाण-युद्ध के प्रसंग में बलि द्वारा कृत श्रीकृष्ण-स्तोत्र नामक एक सौ उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ॥११९॥

•

# अध्याय १२०

## बाण द्वारा युद्ध के बाद कन्या-समर्पण

**नारायण बोले**--इसके उपरान्त भगवान् कृष्ण ने उद्धव और बलराम के साथ मन्त्रणा करके दूत को भेजा ॥१॥ जहाँ शिव, गणेश, दुर्गतिनाशिनी पार्वती, कार्तिकेय, भद्रकाली, उग्रचण्डा और कोटरी थीं वहाँ आकर दूत ने गणेश, शिव, पार्वती और पूज्य मनुष्यों को भी प्रणाम करके यथोचित कहा ॥१-३॥

**दूत बोला**--हे महेश! कृष्ण युद्ध के लिए बाण का आह्वान कर रहे हैं। अथवा वह अनिरुद्ध और

रणे निमन्त्रितो यो हि न याति भयकातरः। परत्र नरकं याति सप्तभिः पितृभिः सह ॥५॥
दूतस्य वचनं श्रुत्वा सभामध्ये यथोचितम्। उवाच पार्वती देवी स्वयं शंकरसंनिधौ ॥६॥

पार्वत्युवाच

गच्छ बाण महाभाग गृहीत्वा तव कन्यकाम्। सर्वस्वं यौतकं दत्त्वा श्रीकृष्णं शरणं व्रज ॥७॥
सर्वेषामीश्वरं बीजं दातारं सर्वसंपदाम्। वरं वरेण्यं शरणं कृपालुं भक्तवत्सलम् ॥८॥
पार्वतीवचनं श्रुत्वा तमूचुस्ते सुरेश्वराः। प्रशशंसुःसभामध्ये धन्यधन्येति सर्वदा ॥९॥
कोपाविष्टश्च बाणोऽयमुत्तस्थौ सहसाऽसुरः। सांनाहिको धनुष्पाणिः प्रणम्य शंकरं ययौ ॥१०॥
सर्वैर्निषिध्यमानश्च कम्पितो रक्तलोचनः। सांनाहिकश्च दैत्यानां त्रिकोट्या च महाबलः ॥११॥
कुम्भाण्डः कूपकर्णश्च निकुम्भः कुम्भ[1] एव च। सेनापतीश्वरश्चैते ययुः सांनाहिकास्तथा ॥१२॥
उन्मत्तभैरवश्चैव संहारभैरवस्तथा। असिताङ्गो भैरवश्च रुरुभैरव एव च ॥१३॥
महाभैरवसंज्ञश्च कालभैरव एव च। प्रचण्डभैरवश्चैव क्रोधभैरश्चैव एव च ॥१४॥
प्रययुः शक्तिभिः सार्धं सर्वे सांनाहिकाश्च ते। कालाग्निरुद्रो भगवान्रुद्रैः सांनाहिको ययौ ॥१५॥
उग्रचण्डा प्रचण्डा च चण्डिका चण्डिनायिका। चण्डेश्वरी च चामुण्डा चण्डी चण्डकपालिका ॥१६॥

---

ऊषा की शरण में जाय ॥४॥ जो युद्ध में निमन्त्रण पाकर भय के मारे नहीं जाता है, वह मरने पर अपने सात पूर्वजों के साथ नरक में जाता है ॥५॥ सभा के बीच दूत की बात सुनकर स्वयं शंकर के पास पार्वती देवी ने यथोचित बात कही ॥६॥

**पार्वती बोलीं**—महाभाग बाण ! तुम पुत्र तथा दहेज में सर्वस्व देकर श्रीकृष्ण की शरण में जाओ, जो सबके ईश्वर, बीज, सकल सम्पत्तियों के दाता, श्रेष्ठ, वरेण्य, रक्षक, कृपालु तथा भक्तवत्सल हैं ॥७-८॥ पार्वती का वचन सुनकर सभा में उपस्थित सभी देवेन्द्रों ने धन्य-धन्य कहते हुए उनकी प्रशंसा की और बाण से सदा वैसा करने के लिए कहा ॥९॥ परन्तु बाण क्रोध से आगबबूला हो गया, उसका शरीर कांपने लगा और नेत्र लाल हो गये। फिर तो वह असुर सहसा उठ खड़ा हुआ और सबके मना करने पर भी कवच से सुसज्जित हो हाथ में धनुष ले शंकर को प्रणाम करके कवच धारण किये महाबलवान् दैत्य तीन करोड़ सेनाओं के साथ चल पड़ा। उसके पीछे कुम्भाण्ड, कूपकर्ण, निकुम्भ, कुम्भ और सेनापति ईश्वर कवच धारण करके चल पड़े ॥१०-१२॥ फिर उन्मत्त भैरव, संहारभैरव, असिताङ्गभैरव, रुरुभैरव, महाभैरव, कालभैरव, प्रचण्ड भैरव और क्रोधभैरव—ये सब कवच धारण करके शक्तियों के साथ गये। कवचधारी भगवान् कालाग्निरुद्र भी रुद्रों के साथ गये ॥१३-१५॥ उग्रचण्डा, प्रचण्डा, चण्डिका, चण्डिनायिका, चण्डेश्वरी, चामुण्डा, चण्डी, चण्ड-

---

१ क. सम।

अष्टौ च नायिकाः सर्वाः प्रययुः खर्परान्विताः। कोटरी रत्नयानस्था शोणितग्रामदेवता ॥१७॥
प्रययौ सा प्रफुल्लास्या खड्गखर्परधारिणी। इन्द्राणी वैष्णवी शान्ता ब्रह्माणी ब्रह्मवादिनी ॥१८॥
कौमारी नारसिंही च वाराही विकटाकृतिः। माहेश्वरी महामाया भैरवी भीमरूपिणी ॥१९॥
अष्टौ च शक्तयः सर्वा रथस्थाः प्रययुर्मुदा। रत्नेन्द्रसारयानस्था प्रययौ भद्रकालिका ॥२०॥
रक्तवर्णा त्रिनयना जिह्वाललनभीषणा। शूलशक्तिगदाहस्ता खड्गखर्परधारिणी ॥२१॥
प्रययौ शूलहस्तश्च वृषभस्थो महेश्वरः। स्कन्दश्च शिखियानस्थः शस्त्रपाणिर्धनुर्धरः ॥२२॥
एवं च प्रययुः सर्वे गणेशं पार्वतीं विना। एभिर्युक्तं महादेवं दृष्ट्वा च भद्रकालिकाम् ॥२३॥
प्रचक्रे चक्रपाणिश्च संभाषां च यथोचिताम्। बाणः शङ्खध्वनिं कृत्वा प्रणम्य पार्वतीश्वरम् ॥२४॥
धनुर्दधार सगुणं दिव्यास्त्रेण नियोजितम्। बाणं समुद्यतं दृष्ट्वा सात्यकिः परवीरहा ॥२५॥
निषिध्यमानस्तैः सर्वैः संनाही प्रययौ मुदा। बाणश्चिक्षेप दिव्यास्त्रमञ्जनं नाम नारद ॥२६॥
अव्यर्थं ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डाभं सुतीक्ष्णकम्। दृष्ट्वाऽस्त्रं सात्यकिः साक्षात्किंचिन्नम्रो बभूव सः ॥२७॥
किं वा न दग्धः प्रययौ नभोमध्यं सुदारुणम्। वह्निं चिक्षेप बाणश्च सात्यकिर्वारुणेन च ॥२८॥

---

-कपालिका ये सभी आठों नायिकाएँ हाथ में खप्पर ले उसके पीछे चलीं। शोणितपुर की ग्रामदेवी कोटरी ने भी रत्ननिर्मित रथ पर सवार हो प्रस्थान किया। उस समय उसका मुख प्रफुल्लित था और वह खड्ग एवं खप्पर लिये हुई थी। इन्द्राणी, शान्तस्वरूपा वैष्णवी, ब्रह्मवादिनी ब्रह्माणी, कौमारी, नारसिंही, विकट आकारवाली वाराही, महामाया माहेश्वरी और भीमरूपिणी भैरवी—ये सभी आठों शक्तियाँ हर्ष से रथ पर सवार हो प्रस्थित हुईं। भद्रकालिका ने उत्तम रत्नों के सारभाग से बने रथ पर अवस्थित हो प्रयाण किया। उनका वर्ण लाल था, नेत्र तीन थे और जीभ लपलपाने के कारण वे भयंकर लग रही थीं। उन्होंने हाथों में शूल, शक्ति, गदा, खड्ग और खप्पर धारण कर रखा था ॥१६-२१॥ फिर महादेव हाथ में त्रिशूल ले नन्दीश्वर पर चढ़कर तथा धनुर्धर कार्तिकेय हाथ में शस्त्र ले अपने वाहन मयूर पर सवार होकर चले। इस प्रकार गणेश और पार्वती को छोड़कर सभी लोगों ने प्रयाण किया। इनसे युक्त महादेव और भद्रकाली को देखकर चक्रपाणि (श्रीकृष्ण) ने यथोचित संभाषण किया। बाण ने शंखध्वनि कर शंकर को प्रणाम करके धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाकर उस पर दिव्यास्त्र का संधान किया। बाण को उद्यत देखकर शत्रु-वीर का हन्ता सात्यकि लोगों के द्वारा मना किये जाने पर भी कवच धारण करके प्रस्थित हुआ। हे नारद! बाण ने उस पर अञ्जन नामक दिव्यास्त्र का प्रयोग किया। वह अस्त्र अमोघ, ग्रीष्म ऋतु के मध्याह्नकालीन सूर्य के समान चमकीला तथा अत्यन्त तीक्ष्ण था। अस्त्र को देखकर वह सात्यकि स्वयं किंचित् नम्र हो गया ॥२२-२७॥ जिससे वह दग्ध नहीं हुआ और आकाश के मध्य में चला गया। तब बाण ने अग्नि का प्रक्षेप किया, जिसे सात्यकि ने वरुणास्त्र से शान्त कर दिया।

प्रज्वलन्तं तालमानं निर्वाणं च चकार सः। चिच्छेद वारुणं घोरं प्रचण्डं भीममुल्बणम् ॥२९॥
चिच्छेद सात्यकिश्चैव पार्जन्येनावलीलया। चिक्षेप पवनं बाणः प्रचण्डं भीममुल्बणम् ॥३०॥
चिच्छेद सात्यकिश्चैव पर्वतास्त्रेण लीलया। नारायणास्त्रं चिक्षेप बाणश्च रणमूर्धनि ॥३१॥
सात्यकिर्दण्डवद्भूमौ पपातार्जुनशिक्षया। माहेश्वरं प्रचिक्षेप बाणः शस्त्रविदां वरः ॥३२॥
सात्यकिर्वैष्णवास्त्रेण प्रचिच्छेदावलीलया। ब्रह्मास्त्रं चापि चिक्षेप बाणश्च रणमूर्धनि ॥३३॥
क्षणं चकार निर्वाणं ब्रह्मास्त्रेण च सात्यकिः। नागास्त्रं चापि चिक्षेप बाणो रणविशारदः ॥३४॥
सात्यकिर्गारुडेनैव संजहार क्षणेन च। जग्राह शूलमव्यर्थं शंकरस्य सुदारुणम् ॥३५॥
तुष्टाव सात्यकिर्दुर्गां गले माल्यं बभूव ह। जग्राह धनुषा बाणो बाणं पाशुपतं तथा ॥३६॥
बाणं सबाणं जृम्भं च सात्यकिश्च चकार ह। बाणं तं जृम्भितं दृष्ट्वा कार्तिकेयो महाबलः ॥३७॥
अर्धचन्द्रं च चिक्षेप कामश्चिच्छेद लीलया। गदां चिक्षेप च स्कन्दः प्रातःसूर्यसमप्रभाम् ॥३८॥
वैष्णवास्त्रेण कामश्च निर्वाणं च चकार सः। नारायणास्त्रं स्कन्दश्च प्राक्षिपच्च त्वरान्वितः ॥३९॥
पपात दण्डवद्भूमौ प्रद्युम्नः कृष्णशिक्षया। स्कन्दः शक्तिं च चिक्षेप प्रलयाग्निसमप्रभाम् ॥४०॥
कामो नारायणास्त्रेण निर्वाणं च चकार ताम्। ब्रह्मास्त्रं च प्रचिक्षेप कार्तिको रणमूर्धनि ॥४१॥
ब्रह्मास्त्रेणापि कामश्च निर्वाणं च चकार सः। जग्राह कार्तिकं कोपाद्दिव्यं पाशुपतं तदा ॥४२॥

---

उसने तालवृक्ष जितनी ऊँची लपटों को बुझा दिया। फिर बाण ने अत्यन्त भयानक एवं प्रचण्ड वायु को चला दिया ॥२८-३०॥ किन्तु सात्यकि ने पर्वतास्त्र से लीलापूर्वक उसे काट दिया। तब बाण ने प्रधान युद्ध में नारायणास्त्र का प्रयोग किया ॥३१॥ किन्तु सात्यकि अर्जुन की शिक्षा से भूमि पर डंडे की तरह लेट गया। फिर शस्त्रवेत्ताओं में श्रेष्ठ बाण ने माहेश्वर अस्त्र को चला दिया ॥३२॥ उसे सात्यकि ने वैष्णव अस्त्र से लीलापूर्वक काट दिया। तब बाण ने मुख्य युद्ध में ब्रह्मास्त्र को चला दिया ॥३३॥ सात्यकि ने ब्रह्मास्त्र से (ही) क्षण भर में उसे शान्त कर दिया। तब रणविशारद बाण ने नागास्त्र का प्रयोग किया ॥३४॥ सात्यकि ने गरुड़ास्त्र से ही क्षणभर में उसका संहार कर दिया। तब बाण ने शंकर का अमोघ तथा अत्यन्त दारुण शूल उठा लिया ॥३५॥ सात्यकि ने दुर्गा की स्तुति की, जिससे शूल उसके गले में माला बन गया। तब बाण ने धनुष पर पाशुपत नामक बाण चढ़ाया ॥३६॥ किन्तु सात्यकि ने बाण सहित बाण को जम्हाई से युक्त कर दिया। उस बाण को जम्हाई से युक्त देखकर महाबलशाली कार्तिकेय ने अर्धचन्द्र नामक अस्त्र को छोड़ दिया। किन्तु काम ने उसे लीलापूर्वक काट दिया। फिर कार्तिकेय ने प्रातःकालीन सूर्य के समान कान्तिवाली गदा चलायी ॥३७-३८॥ काम ने वैष्णवास्त्र से उसे शान्त कर दिया। स्कन्द ने शीघ्रता में आकर नारायणास्त्र चलाया किन्तु प्रद्युम्न कृष्ण की शिक्षा से भूमि पर दण्ड की भाँति लेट गया। स्कन्द ने प्रलयाग्नि के समान कान्तिवाले शक्ति नामक अस्त्र को छोड़ा। काम ने नारायणास्त्र से उसे शान्त कर दिया। तब कार्तिकेय ने क्रोध से दिव्य पाशुपतास्त्र उठा लिया ॥३९-४२॥ किन्तु काम ने निद्रास्त्र से उसको निद्रित कर दिया।

निद्रास्त्रेणापि मदनो निद्रितं च चकार तम् । कार्तिकं निद्रितं दृष्ट्वा बाणं च जृम्भितं तथा ॥४३॥
कोपात्कामं च सरथं जग्राह भद्रकालिका । क्रोडे कृत्वा च बाणं च स्कन्दं च जगतां प्रसूः ॥४४॥
रणस्थलाच्च प्रययौ यत्रैव पार्वती सती । कार्तिकं बोधयामास बाणं सुस्थं चकार सा ॥४५॥
सहसा सरथः कामो नासारन्ध्रेण वर्त्मना । बहिर्बभूव संत्रस्तः प्रययौ च रणस्थलम् ॥४६॥
दृष्ट्वा कामं च सरथं जहसुर्यादवास्तदा । सर्वे शैवाश्च तत्रस्थाः शुष्ककण्ठा भयाकुलाः ॥४७॥
अथ बाणः पुनः क्रुद्धो रथमारुह्य कोपतः । कार्तिकेयश्च भगवान्युद्धाय पुनरागतः ॥४८॥
बाणः पञ्च शरांश्चैव चिक्षेप रणमूर्धनि । अर्धचन्द्रेण चिच्छेद बलदेवो महाबलः ॥४९॥
रथं बभञ्ज बाणस्य लाङ्गलेन च लाङ्गली । जघान सूतमश्वांश्च मुसलेनावलीलया ॥५०॥
कुर्वन्तमुद्यमं छेत्तुं हलिनं च महाबलः । कालाग्निरुद्रो भगवान्वारयामास लीलया ॥५१॥
रथं कालाग्निरुद्रस्य बभञ्ज लाङ्गली रुषा । हलेन सूतमश्वांश्च जघान रणमूर्धनि ॥५२॥
कालाग्निरुद्रः कोपेन चिक्षेप ज्वरमुल्बणम् । बभूवुर्यादवाः सर्वे ज्वराक्रान्ता हरिं विना ॥५३॥
तं दृष्ट्वा भगवान्कृष्णः ससर्ज वैष्णवं ज्वरम् । तं चिक्षेप ज्वरं हन्तुं माहेशं रणमूर्धनि ॥५४॥
बभूव ज्वरयोर्युद्धं मुहूर्तमतिदारुणम् । वैष्णवज्वरनिष्क्रान्तो रणमूर्ध्नि पपात सः ॥
परं बभूव निश्चेष्टस्तुष्टाव माधवं पुनः ॥५५॥

---

कार्तिकेय को निद्रित तथा बाणासुर को जृम्भित देखकर भद्रकाली ने क्रोध से रथ सहित काम को पकड़ लिया और वह जगन्माता बाण तथा स्कन्द को गोद में रखकर युद्धस्थल से वहीं चली गयीं, जहाँ सती पार्वती थीं। उन्होंने कार्तिकेय को जगाया तथा बाण को स्वस्थ किया ॥४३-४५॥ इस बीच नाक के छिद्र-मार्ग से रथ सहित काम एकाएक निकल गया और डरा-डरा युद्ध-स्थल में पहुँच गया ॥४६॥ उस समय रथ सहित काम को देखकर यादवगण हँसने लगे। वहाँ अवस्थित सभी शिवगण शुष्ककण्ठ तथा भय से व्याकुल हो गये ॥४७॥ अनन्तर बाण पुनः क्रुद्ध होकर रथ पर आरूढ़ हो गया और भगवान् कार्तिकेय क्रोध से पुनः युद्ध के लिए आ गये ॥४८॥ बाण ने रण के अग्रभाग में पाँच शरों का प्रयोग किया। उन्हें महाबली बलदेव ने अर्धचन्द्र नामक अस्त्र से काट दिया ॥४९॥ हलधर ने हल से बाण के रथ को तोड़ दिया और मुसल नामक अस्त्र से सारथि एवं अश्वों को लीलापूर्वक मार डाला ॥५०॥ फिर बाण को मारने के लिए प्रयत्न करते हुए बलराम को महाबली भगवान् कालाग्निरुद्र ने लीलापूर्वक रोक दिया ॥५१॥ तब बलभद्र ने क्रोध से कालाग्निरुद्र के रथ को तोड़ डाला और मुख्य युद्ध में हल से सूत तथा अश्वों को मार दिया ॥५२॥ कालाग्निरुद्र ने क्रोध में भयंकर ज्वर छोड़ा। इससे श्रीकृष्ण के अतिरिक्त समस्त यादव ज्वरी हो गये ॥५३॥ उसे देखकर भगवान् कृष्ण ने वैष्णव ज्वर की सृष्टि की और प्रधान युद्ध में शिव के ज्वर को विनष्ट करने के लिए उस (वैष्णव) ज्वर को चला दिया। दो घड़ी तक उन दोनों ज्वरों में तुमुल संग्राम हुआ। प्रधान युद्ध में माहेश्वर ज्वर वैष्णव ज्वर से अभिभूत होकर चेष्टारहित हो गया। पुनः चेतना प्राप्त करने पर उसने श्रीकृष्ण की स्तुति की ॥५४-५५॥

## ज्वर उवाच

प्राणान्रक्ष जगन्नाथ भक्तानुग्रहविग्रह । त्वमात्मा पुरुषः पूर्णः सर्वत्र समता तव ।।५६।।
ज्वरस्य वचनं श्रुत्वा संजहार स्वकं ज्वरम् । माहेश्वरो ज्वरो भीतो रणादेव हि निर्ययौ ।।५७।।
बाणश्च पुनरागत्य बाणानां च सहस्रकम् । चिक्षेप मन्त्रपूतं च प्रलयाग्निशिखोपमम् ।।५८।।
फाल्गुनः शरजालेन वारयामास लीलया । चिक्षेप शक्तिं बाणश्च ग्रीष्मसूर्यसमप्रभाम् ।।५९।।
चिच्छेद लीलया तां च सव्यसाची महाबलः । स जग्राह पाशुपतं शतसूर्यसमप्रभम् ।।६०।।
अत्यर्थमतिघोरं च विश्वसंहारकारकम् । तद्दृष्ट्वा चक्रपाणिश्च चक्रं चिक्षेप दारुणम् ।।६१।।
हस्तानां च सहस्रं च सपाशुपतमुल्बणम् । चिच्छेद रणमध्ये च पपाताचलसिंहवत् ।।६२।।
शस्त्रं पाशुपतं चैव ययौ पशुपतेः करम् । अव्यर्थं दारुणं लोके प्रलयाग्निशिखोपमम् ।।६३।।
बाणरक्तसमूहेन बभूव च महानदः । बाणः पपात निश्चेष्टो व्यथितो हतचेतनः ।।६४।।
तत्राऽऽजगाम भगवान्महादेवो जगद्गुरुः । रुरोदाऽऽगत्य मोहेन बाणं कृत्वा स्ववक्षसि ।।६५।।
[1]शिवाश्रुपतनेनैव संबभूव सरोवरम् । चेतनं कारयामास करुणासागरः प्रभुः ।।६६।।
बाणं गृहीत्वा प्रययौ यत्र देवो जनार्दनः । [2]चक्रे पद्मार्चिते पादपद्मे [3]बाणसमर्पणम् ।।६७।।

---

**ज्वर बोला**—हे जगन्नाथ ! भक्तों पर अनुग्रहार्थ शरीर धारण करनेवाले ! आप सबके आत्मा और पूर्ण पुरुष हैं। आपकी सर्वत्र समता है ।।५६।। ज्वर की बात सुनकर श्रीकृष्ण ने अपने ज्वर को लौटा लिया। तब माहेश्वर ज्वर भयभीत होकर रणभूमि से भाग खड़ा हुआ ।।५७।। अनन्तर बाण ने पुनः आकर ऐसे हजारों बाण चलाये, जो प्रलयकालीन अग्नि की ज्वाला के समान कान्तिमान् तथा मन्त्रों द्वारा पवित्र किये गये थे। अर्जुन ने खेल ही खेल में बाण-समूह द्वारा रोक दिया। तब बाण ने ग्रीष्मकालीन सूर्य के समान प्रभा-वाली शक्ति को चलाया ।।५८-५९।। उसे महाबली अर्जुन ने लीलापूर्वक काट दिया ।।६०।। तब बाण ने सौ सूर्यों के समान प्रभावाले पाशुपत को, जो अत्यंत भयंकर तथा विश्व का संहार करनेवाला था, उठा लिया। उसे देखकर श्रीकृष्ण ने भयंकर (सुदर्शन) चक्र को चला दिया ।।६१।। उस चक्र ने रणभूमि में बाण के हजारों हाथों को काट डाला और वह भयंकर पाशुपतास्त्र पहाड़ी सिंह की भाँति भूमि पर गिर पड़ा ।।६२।। फिर पाशुपतास्त्र, जो अमोघ, लोक में दारुण एवं प्रलयकालीन अग्नि के समान था, शिव के हाथ में चला गया ।।६३।। बाण के शोणित-समूह से एक महान् नद बन गया। वह चेष्टाशून्य होकर गिर पड़ा तथा व्यथा के कारण उसकी चेतना नष्ट हो गयी ।।६४।। वहाँ संसार के गुरु भगवान् महादेव आये। वे आकर मोह से बाण को छाती से लगाकर रोने लगे ।।६५।। शंकर के आँसू गिरने से वहाँ सरोवर हो गया। करुणासागर प्रभु उसे चेतना में ले आये ।।६६।। फिर बाण को लेकर वहाँ चले, जहाँ भगवान् जनार्दन थे। (वहाँ पहुँचकर) उन्होंने लक्ष्मी द्वारा पूजित चरण-कमल पर बाण को समर्पित कर दिया ।।६७।। फिर शंकर भक्तों के प्रभु तथा संसार

---

१ क. शिवं पाशुपतेनै । २ क. पद्मं । ३ क. बाणं समर्प्य च ।

तुष्टाव जगतां नाथं भवतेशं चन्द्रशेखरः । बलिना च स्तुतं येन वेदोक्तेन च तेन च ॥६८॥
हरिर्मृत्युंजयं ज्ञानं ददौ बाणाय धीमते । करपद्मं ददौ गात्रे तं चकाराजरामरम् ॥६९॥
बाणः स्तोत्रेण तुष्टाव भक्त्या बलिकृतेन च । वरां कन्यां समानीय रत्नभूषणभूषिताम् ॥७०॥
प्रददौ हरये भक्त्या तत्रैव देवसंसदि । गजेन्द्राणां पञ्चलक्षमश्वानां तच्चतुर्गुणम् ॥७१॥
दासीनां च सहस्रं च रत्नभूषणभूषितम् । सहस्रं कामधेनूनां वत्सयुक्तं च सर्वदम् ॥७२॥
माणिक्यानां च मुक्तानां रत्नानां शतलक्षकम् । मणीन्द्राणां हीरकाणां शतलक्षं मनोहरम् ॥७३॥
जलभाजनपात्राणि सुवर्णनिर्मितानि च । सहस्राणि ददौ तस्मै भक्तिनम्रात्मकंधरः ॥७४॥
वराणि सूक्ष्मवस्त्राणि वह्निशुद्धांशुकानि च । ददौ[1] बाणश्च सर्वाणि स्वभक्त्या शंकराज्ञया ॥७५॥
ताम्बूलानां[2] मधूनां च पूर्णपात्राणि नारद । सहस्राणि ददौ भक्त्या वराणि विविधानि च ॥७६॥
कन्यां समर्पयामास पादपद्मे हरेरपि । रुरोदोच्चैः स्वभक्त्या च परिहारं चकार सः ॥७७॥
कृष्णस्तस्मै वरं दत्त्वा वेदोक्तं च शुभाशिषम् । शंकरानुमतेनैव प्रययौ द्वारकां पुरीम् ॥७८॥
गत्वा कन्यां नवोढां तां बाणस्यापि महात्मनः । रुक्मिण्यै प्रददौ शीघ्रं देवक्यै च हरिः स्वयम् ॥७९॥

---

के स्वामी (श्रीकृष्ण) की उसी वेदोक्त स्तोत्र से स्तुति करने लगे, जिससे बलि ने की थी ॥६८॥ तब श्रीकृष्ण ने बुद्धिमान् बाण को मृत्युंजय ज्ञान प्रदान किया और शरीर पर (अपना) करकमल रखकर उसे अजर-अमर बना दिया ॥६९॥ अनन्तर बाण ने बलि के द्वारा किये गये स्तोत्र से भक्तिपूर्वक स्तुति की और श्रेष्ठ कन्या को रत्नों के आभूषण से विभूषित करके वहीं सजे देवसभा में श्रीकृष्ण को भक्तिपूर्वक दे दी । फिर उसने भक्ति से कंधे झुकाकर पाँच लाख हाथी, बीस लाख घोड़े, रत्नाभूषणों से विभूषित एक सहस्र दासियाँ, सब कुछ प्रदान करनेवाली तथा बछड़ों सहित एक हजार गौएँ, सौ लाख माणिक्य, मुक्ता, रत्न, श्रेष्ठ मणि तथा हीरे और हजारों स्वर्णनिर्मित जलपात्र दिये ॥७०-७४॥ शंकर की आज्ञा से बाण ने अग्निशुद्ध उत्तम सूक्ष्म वस्त्र भक्तिपूर्वक समर्पित किये ॥७५॥ हे नारद ! ताम्बूल और मधु से भरे भाँति-भाँति के हजारों पात्र भी दिये ॥७६॥ हरि के चरण-कमल पर कन्या को रख दिया और भक्ति से उच्च स्वर में रोने लगा । हरि ने उसका निवारण किया ॥७७॥ पश्चात् श्रीकृष्ण उसे वेदोक्त शुभाशीर्वाद तथा वरदान देकर शंकर की आज्ञा से ही द्वारकापुरी को प्रस्थित हुए ॥७८॥ पहुँचने पर शीघ्र ही स्वयं हरि ने महात्मा बाण की नवविवाहिता कन्या रुक्मिणी तथा

---

१ क तस्मै सुवर्णं च स्व । २ ख, 'नां च घूर्णानां ।

महोत्सवं मङ्गलं च कारयामास यत्नतः। ब्राह्मणान्भोजयामास ब्राह्मणेभ्यो धनं ददौ ॥८०॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० बाणयुद्धं नाम विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२०॥

•

## अथैकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

### नारायण उवाच

अथ कृष्णः सुधर्मायां निवसन्सगणस्तथा। तत्राऽऽजगाम विप्रश्च प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा ॥१॥
आगत्य दृष्ट्वा तुष्टाव भक्त्या च पुरुषोत्तमम्। उवाच मधुरं शान्तो भीतो विनयपूर्वकम् ॥२॥

### ब्राह्मण उवाच

शृगालो वासुदेवश्च राजेशो मण्डलेश्वरः। त्वामुवाच स यद्वाक्यं सावधानं निशामय ॥३॥

---

देवकी को समर्पित कर दी ॥७९॥ फिर यत्नपूर्वक मांगलिक महोत्सव कराया तथा ब्राह्मण-भोजन कराकर ब्राह्मणों को धन दिया ॥८०॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्ध में नारद-नारायण के संवाद में बाण-युद्ध नामक एक सौ बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१२०॥

•

## अध्याय १२१

### शृगालोपाख्यान

**नारायण बोले**—इसके उपरान्त (एक बार) श्रीकृष्ण अपने गणों के साथ सुधर्मा सभा में विराजमान थे। वहाँ ब्रह्मतेज से जाज्वल्यमान एक ब्राह्मण आया। आकर वह शान्त (ब्राह्मण) पुरुषोत्तम (श्रीकृष्ण) की भक्ति से विनयपूर्वक मधुर स्तुति करने लगा ॥१-२॥

**ब्राह्मण बोला**—एक शृगाल नामक वासुदेव (अर्थात् अपने को श्रीकृष्ण माननेवाला) राजाधिराज है। उसने आपको जो (कटु) वाक्य कहा है, उसे सावधान होकर सुनो ॥३॥

### शृगाल उवाच

वैकुण्ठे वासुदेवोऽहं देवेशश्च चतुर्भुजः। लक्ष्मीपतिश्च जगतां धाता धातुश्च पालकः ॥४॥
ब्रह्मणा प्रार्थितोऽहं च भारावतरणाय च। भुवो भारतवर्षं च तदर्थं गमनं मम ॥५॥
वसुदेवसुतो' वैश्यः क्षत्रियश्चाप्यहंकृतः। आत्मानं भवतविष्णुश्च मायावी च प्रतारकः ॥६॥
जनं' जनेन निर्जित्य दुर्बलं बलिना सह। योधयित्वा महाधूर्तो घातयामास भूपतीन् ॥७॥
दुर्योधनं जरासंधं भूपमन्यं च दुर्बलम्। भीमेन घातयामास बलिनाऽल्पेन भूतले ॥८॥
द्रोणं भीष्मं च कर्णं च यं यमन्यं च भूतले। बलीयसाऽर्जुनेनैव घातयामास 'मायया ॥९॥
यं यमन्यं दुर्बलं च प्रसिद्धमप्रसिद्धकम्। प्रसिद्धेन बलवता घातयामास मायया ॥१०॥
शिशुपालं दन्तवक्त्रं कंसं च चिररोगिणम्। मत्पुत्रं नरकं चैव दुर्बलं केशिनं मुरम् ॥११॥
स्वयं जघान संकेताच्छलेन सहसा बत। न धर्मयुद्धे कपटी स च बालो' ह्यधार्मिकः ॥१२॥
जघान पूतनां कुब्जां स्त्रीघाती वस्त्रहेतुना। जघान रजकं शिष्टमशिष्टश्च प्रतारकः ॥१३॥
हिरण्यकशिपुं दैत्यं हिरण्याक्षं महाबलम्। मधुं च कैटभं चैव हत्वाऽहं सृष्टिरक्षकः ॥१४॥
अहमेव स्वयं ब्रह्मा ह्यहमेव स्वयं शिवः। अहं विष्णुश्च जगतां पाता दुष्टापहारकः ॥१५॥

---

**शृगाल ने कहा**—वैकुण्ठ में मैं ही देवाधिदेव, चतुर्भुज, लक्ष्मीपति, संसार को धारण करनेवाला और ब्रह्मा का पालन करनेवाला वासुदेव हूँ ॥४॥ पृथ्वी का भार उतारने के लिए ब्रह्मा ने मेरी ही प्रार्थना की थी। इसी कारण भारतवर्ष में मेरा आगमन हुआ है ॥५॥ वसुदेव का पुत्र तो वैश्य है और अहंकारी क्षत्रिय भी है। वह अपना भक्त विष्णु को भी मानता है। वह मायावी तथा ठग है ॥६॥ व्यक्ति के द्वारा व्यक्ति को जीतकर, बलवान् के साथ दुर्बल को भिड़ाकर उस महाधूर्त ने राजाओं का विनाश किया ॥७॥ भू-पृष्ठ पर अल्प बली (कृष्ण) ने दुर्योधन, जरासन्ध तथा अन्य दुर्बल राजा को भीम के द्वारा मरवाया ॥८॥ द्रोण, भीष्म, कर्ण और जो कोई भूतल पर दूसरे थे, उनको अत्यन्त बलवान् अर्जुन से ही मरवाया ॥९॥ इस प्रकार जो कोई दुर्बल प्रसिद्ध या अप्रसिद्ध व्यक्ति रहे, उन्हें उसने प्रसिद्ध बलवान् व्यक्ति के द्वारा छल से मरवाया ॥१०॥ शिशुपाल, दन्तवक्त्र, चिररोगी कंस, मेरे पुत्र नरकासुर तथा दुर्बल केशी और मुर नामक दैत्यों को सहसा छल करके स्वयं मार दिया। धर्मयुद्ध में कपट नहीं करना चाहिए। उस अधार्मिक बालक ने पूतना तथा कुब्जा को मार डाला। इस प्रकार वह स्त्रीघाती है। वस्त्र के लिए उस अशिष्ट धोखेबाज ने शिष्ट रजक (धोबी) को मार दिया। मैंने महाबली दैत्यराज हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष, मधु और कैटभ को मारकर सृष्टि की रक्षा की है ॥११-१४॥ मैं ही स्वयं शिव तथा मैं ही लोकों का पालक एवं दुष्टों का संहारक विष्णु

---

१ क. 'सुतः कृष्णः। २ क. जल जलेन। ३ ख. लीलया। ४ क. बालादया'।

अंशेन कलया सर्वे मनवो मुनयस्तथा। स्वयं नारायणोऽहं च निर्गुणः प्रकृतेः परः ॥१६॥
लज्जया कृपया चैव मित्रबुद्ध्या क्षमा कृता। यद्गतं तद्गतं भद्र युद्धं कुरु मया सह ॥१७॥
शृणोमि दूतद्वारेण ह्यतीवोच्चैरहंकृतम्। उचितं दमनं तस्याप्युन्नतानां निपातनम् ॥१८॥
राज्ञश्च परमो धर्मोऽप्यहं शास्ता भुवोऽधुना। शङ्खं चक्रं गदां पद्मं गृहीत्वाऽहं चतुर्भुजः ॥१९॥
द्वारकां तां गमिष्यामि युद्धाय सगणः स्वयं। युद्धं कुरु यदीच्छाऽस्ति मा मां च शरणं व्रज ॥२०॥
यदि मा यास्यति मम शरणं शरणागतः। भस्मीभूतां करिष्यामि द्वारकां च क्षणेन च ॥२१॥
सबलं च सपुत्रं त्वां सगणं च सबान्धवम्। क्षणेन दग्धुं [1]शक्तोऽहमसहायेन लीलया ॥२२॥
तपस्विनं च वृद्धं च जित्वा युद्धे च शंकरम्। शक्रं भगाङ्गं जित्वा च रोगिणं ब्रह्मशापतः ॥२३॥
मत्तोऽसि वीरमात्मानं मन्यमानस्त्वमेव च। स्त्रीजितो हि वृथार्थं च पारिजातस्य हेतुना ॥२४॥
लम्पटो योनिलुब्धश्च राधाधीनश्च गोकुले। अधुना किंकरसमः सत्यादीनां च योषिताम् ॥२५॥
इत्येवमुक्त्वा विप्रश्च तूष्णींभूय स्थितो मुने। श्रीकृष्णः सगणः श्रुत्वा भृशमुच्चैर्जहास सः ॥२६॥
भोजयित्वा च संपूज्य ब्राह्मणं च चतुर्विधम्। निनाय रजनीं दुःखाद्वाक्शल्यमान ज्वरात् ॥२७॥
प्रभाते रथमारुह्य सगणः सत्वरं मुदा। लीलामात्रेण प्रययौ शृगालो नृपतिर्यतः ॥२८॥

---

हूँ ॥१५॥ सभी मनुगण तथा मुनि समुदाय मेरी अंश-कला से उत्पन्न हुए हैं। मैं स्वयं नारायण, निर्गुण तथा प्रकृति से परे हूँ ॥१६॥ भद्र ! अब तक मैंने तुम्हें लज्जा तथा कृपा के कारण मित्र-बुद्धि से क्षमा कर दी थी; किन्तु जो बीत गया, सो बीत गया; अब तुम मेरे साथ युद्ध करो ॥१७॥ मैंने दूत के द्वारा सुना है कि तुम्हारा अहंकार बहुत बढ़ गया है, अतः उसका दमन करना उचित है। ऊँचे सिर उठानेवालों को कुचल डालना राजा का परम धर्म है, और इस समय मैं ही पृथ्वी का शासक हूँ। मैं स्वयं चतुर्भुज रूप धारण करके शंख, चक्र, गदा, पद्म लेकर सेना सहित युद्ध के लिए उस द्वारका को जाऊँगा। यदि तुम्हारी इच्छा हो तो युद्ध करो, अन्यथा मेरी शरण ग्रहण करो ॥१८-२०॥ यदि तुम शरणागत होकर मेरी शरण में न आओगे तो मैं क्षणभर में द्वारकापुरी को जला डालूँगा ॥२१॥ मैं अकेला ही लीलापूर्वक क्षणभर में सेना, पुत्र, गण और बन्धु-बान्धवों सहित तुम्हें जला डालने में समर्थ हूँ ॥२२॥ युद्ध में तपस्वी और वृद्ध शंकर को जीतकर तथा ब्रह्मशाप से रोगी और भग अंगवाले इन्द्र को जीतकर तुम अपने को वीर मानते हुए उन्मत्त हो गये। तुम व्यर्थ के लिए पारिजात के कारण स्त्री द्वारा जीत लिये गये हो ॥२३-२४॥ तुम लम्पट, योनि के लोभी तथा गोकुल में राधा के अधीन हो। इस समय सत्यभामा आदि महिलाओं के दास के समान तुम हो ॥२५॥ इस प्रकार कहकर मुने ! ब्राह्मण चुप हो गया और (उसे) सुनकर सदस्यों सहित ठहाका मारकर हँसने लगे ॥२६॥ फिर ब्राह्मण की पूजा करके (उसे) चार प्रकार के (भक्ष्य, भोज्य, लेह्य तथा चोष्य) भोजन कराये। (शृगाल की) वाणीरूपी काँटे के चुभाने से मानसिक ताप होने के कारण उन्होंने कष्ट से रात बितायी ॥२७॥ प्रातःकाल वे बड़ी उतावली के साथ हर्षपूर्वक गणों सहित रथ पर सवार होकर सहसा वहाँ जा पहुँचे, जहाँ राजा शृगाल था ॥२८॥

---

१ क. शक्राय सह यानेन।

श्रुत्वा शृगालो वार्तां तां कृत्रिमश्च चतुर्भुजः । आजगाम हरेः स्थानं युद्धाय सगणः स्वयम् ॥२९॥
कृष्णश्चक्रे च संभाषां मित्रबुद्धया च लौकिकीम् । आश्लेषं मधुरालापं स्निग्धनेत्रश्च सस्मितः ॥३०॥
राजा निमन्त्रणं चक्रे कृष्णो न स्वीचकार तत् । उवाच कृष्णभीतश्च त्यक्त्वा दम्भं च दर्शनात् ॥३१॥

## शृगाल उवाच

चक्रेण मच्छिरश्छित्त्वा सुशीघ्रं द्वारकां व्रज[1] । पापः पततु देहोऽयमनित्यो नश्वरस्तथा ॥३२॥
अहं सुभद्रस्ते द्वारि जयश्च विजयो यथा । सर्वं जानासि[2] सर्वज्ञ मा विलम्बं कुरु प्रभो ॥३३॥
लक्ष्मीशापेन भ्रष्टोऽहं कालः पूर्णो बभूव मे । शतवर्षेण शापान्ते यास्यामि भवनं तव ॥३४॥

## श्रीकृष्ण उवाच

पूर्वं मां मित्र प्रहर पश्चाद्युद्धं करोम्यहम् । सर्वं जानामि वैकुण्ठं गच्छ वत्स यथासुखम् ॥३५॥
शृगालो दशबाणांश्च चिक्षेप माधवं प्रति । ते प्रणम्य ययुः शीघ्रमाकाशं कालरूपिणः ॥३६॥
गदां चिक्षेप राजा स प्रलयाग्निशिखोपमाम् । कृष्णाङ्गस्पर्शमात्रेण बभञ्ज च क्षणेन च ॥३७॥

---

कृत्रिम चार भुजाओंवाला शृगाल समाचार पाकर युद्ध के लिए गण सहित स्वयं श्रीकृष्ण के पास पहुँच गया ॥२९॥ कृष्ण ने मित्र की बुद्धि से उससे लौकिक सम्भाषण किया । स्नेहयुक्त नेत्रों से देखकर मुसकराते हुए उन्होंने आलिङ्गन एवं मधुर वार्तालाप किया ॥३०॥ राजा ने (उन्हें) निमन्त्रण दिया, किन्तु कृष्ण ने स्वीकार नहीं किया । तब कृष्ण के दर्शन से दंभ त्यागकर वह भयभीत होकर बोला ॥३१॥

**शृगाल ने कहा**—चक्र से मेरा सिर काटकर आप शीघ्र चले जाइये । यह पापी, अनित्य तथा नाशशील शरीर गिर जाय ॥३२॥ मैं आपके द्वार पर रहनेवाला सुभद्र हूँ जैसे जय और विजय हैं । हे प्रभो ! हे सर्वज्ञ ! आप सब कुछ जानते हैं, विलम्ब मत कीजिये ॥३३॥ मैं लक्ष्मी के शाप से भ्रष्ट हो गया था, अब मेरा समय पूरा हो गया है । सौ वर्ष के बाद शाप के अन्त में मैं आपके भवन में जाऊँगा ॥३४॥

**श्रीकृष्ण बोले**—हे मित्र ! पहले तुम प्रहार करो, पश्चात् मैं युद्ध करूँगा । वत्स ! मैं सब जानता हूँ । तुम सुखपूर्वक वैकुण्ठ जाओ ॥३५॥ शृगाल ने श्रीकृष्ण के प्रति दस बाण चलाये । वे कालरूपी बाण प्रणाम करके शीघ्र आकाश में चले गये ॥३६॥ तब राजा ने प्रलयकालीन अग्नि की लपटों के समान गदा को चलाया । किन्तु वह (गदा) श्रीकृष्ण के अंग-स्पर्शमात्र से टूट-फूट गयी ॥३७॥ फिर शूल, मुसल, शक्ति तथा फरसे को फेंका । पर कृष्ण के अंग-स्पर्शमात्र से क्षणभर में वे (अस्त्र) टूट गये ॥३८॥ तब अत्यन्त भयंकर

---

१ ल त्यज । २ क. 'द मानिनो न' । ३ क. 'मि ।

शूलं चिक्षेप मुसलं शक्तिं च परशुं तथा। कृष्णाङ्गस्पर्शमात्रेण बभञ्ज च क्षणेन च ॥३८॥
धनुश्चिक्षेप खड्गं च कालरूपं सुदारुणम्। कृष्णाङ्गस्पर्शमात्रेण बभञ्ज च क्षणेन च ॥३९॥
दृष्ट्वा निरस्त्रं राजानमित्युवाच कृपानिधिः। गृहं गत्वा सुतीक्ष्णं च मित्रास्त्रमानयेति च ॥४०॥

### शृगाल उवाच

नाऽऽत्माऽऽकाशोऽस्त्रविद्धश्च किं युद्धमात्मना सह। मामुद्धर भवाब्धेश्च धरोद्धारणकारण ॥४१॥
भवाब्धिं विषमं नाथ विषयं च विषाधिकम्। छिन्धि मे निगडं मायां मोहजालं स्वकर्मणः ॥४२॥
कर्मणामीश्वरस्त्वं च विधाता धातुरेव च। दाता शुभफलानां च प्रदाता सर्वसंपदाम् ॥४३॥
कारणं प्राक्तनानां च तेषां च खण्डने क्षमः। यामि गेहं च वैकुण्ठं तवैव द्वारसप्तमम् ॥४४॥
त्यक्त्वा च नश्वरं देहं प्राकृतं पाञ्चभौतिकम्। मित्रस्य स्तवनं श्रुत्वा वचनं च सुधोपमम् ॥४५॥
रुरोद समरे तत्र कृपया च कृपानिधिः। बभूव तत्र सहसा कृष्णनेत्राश्रुबिन्दुना ॥४६॥
दिव्यं बिन्दुसरो नाम तीर्थानां प्रवरं परम्। तत्तोयस्पर्शमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः॥
सप्तजन्मार्जितात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥४७॥

### श्रीभगवानुवाच

कथमेतादृशी बुद्धिर्मित्र ते निर्मलं मनः। दूतद्वारा कथं चोक्तं निष्ठुरं दारुणं वचः ॥४८॥

---

काल रूपी खड्ग और धनुष चलाया, किन्तु श्रीकृष्ण के अंग का स्पर्श होते ही वह क्षण भर में छिन्न-भिन्न हो गया ॥३९॥ राजा को अस्त्रविहीन देखकर कृपानिधान (श्रीकृष्ण) ने उससे कहा—मित्र! जाकर अत्यन्त तीक्ष्ण अस्त्र ले आओ ॥४०॥

**शृगाल बोला**—आत्मा और आकाश अस्त्र से बेधे नहीं जा सकते। (इसलिए) आत्मा के साथ युद्ध कैसा? हे पृथ्वी का उद्धार करनेवाले! मुझे भव-सागर से पार करें ॥४१॥ हे प्रभो! विषम भवसागर, विष से भी अधिक (सांसारिक) विषय तथा स्वकर्मजनित माया-मोहरूपी साँकल को छिन्न-भिन्न कर दें ॥४२॥ आप कर्मों के ईश्वर, ब्रह्मा के भी विधाता, शुभ फलों और सकल सम्पत्तियों के दाता, प्राक्तन कर्मों के कारण तथा उनके खण्डन में समर्थ हैं ॥४३॥ मैं अपने पञ्चभूतनिर्मित, प्राकृत तथा नश्वर शरीर का त्याग करके आप ही के वैकुण्ठ के सातवें द्वार पर जाऊँगा। मित्र की स्तुति तथा अमृतोपम वचन सुनकर दयानिधि (भगवान्) वहाँ युद्ध में दयावश रोने लगे। श्रीकृष्ण के नेत्रों से गिरे हुए अश्रुबिन्दुओं से वहाँ एकाएक 'बिन्दुसर' नामक दिव्य सरोवर प्रकट हुआ, जो तीर्थों में श्रेष्ठ है। उसके जल के स्पर्शमात्र से मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है और सात जन्मों के संचित पाप से छूट जाता है, इसमें संदेह नहीं है ॥४४-४७॥

**श्रीभगवान् बोले**—मित्र! यदि तुम्हारा मन निर्मल है तो बुद्धि ऐसी कैसे हुई? और दूत द्वारा निष्ठुर एवं भयंकर वचन कैसे कहलाया? ॥४८॥

### शृगाल उवाच

एवमुक्तो मया त्वं च तेन क्रोधादिहाऽऽगतः। अन्यथा दुर्लभं नाथ स्वप्नेऽपि तव दर्शनम् ॥४९॥
एतस्मिन्नन्तरे योगाद्देहं त्यक्त्वा च प्राकृतम्। दृष्ट्वा कृष्णं च यानेन वैकुण्ठं प्रययौ मुदा ॥५०॥
सप्ततालप्रमाणं च ज्योतिस्तत्र महोल्बणम्। पद्मैः पद्मार्चितं पादपद्मं नत्वा जगाम ह ॥५१॥
गत्वा च द्वारकां कृष्णो नत्वा च पितरं प्रसूम्। श्रीकृष्णः सगणः शीघ्रं दृष्ट्वा च परमाद्भुतम् ॥५२॥
प्रफुल्लवदनः श्रीमान्द्वारकाभिमुखं ययौ। जगाम रुक्मिणीगेहं पुष्पचन्दनवासितम् ॥५३॥
पुष्पचन्दनतल्पे च नक्तं रेमे तया सह। मूर्च्छां संप्राप स भैष्मी कृष्णं कृत्वा स्ववक्षसि ॥५४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० शृगालवासुदेव-मोक्षणं नामैकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२१॥

---

शृगाल बोला—मैंने इस प्रकार आपसे कहा इसीलिए तो आप क्रोध से यहाँ आये। अन्यथा हे नाथ ! स्वप्न में भी आपका दर्शन होना दुर्लभ है ॥४९॥ इसी बीच वह योग द्वारा प्राकृत शरीर को त्यागकर कृष्ण को देखकर वाहन से हर्षपूर्वक वैकुण्ठ को चला गया ॥५०॥ उस समय वहाँ सात ताल वृक्ष जितनी लंबी एक अत्यन्त उत्कट ज्योति निकली और वह कमलों से कमला द्वारा पूजित (श्रीकृष्ण के) चरण-कमल को प्रणाम करके चली गयी ॥५१॥ गण सहित श्रीमान् श्रीकृष्ण परम अद्भुत चरित्र को देखकर प्रफुल्लमुख हो द्वारका की ओर चल पड़े। द्वारका पहुँचकर माता-पिता को प्रणाम करके पुष्प और चन्दन से सुवासित रुक्मिणी के घर गये। वहाँ रात्रि में पुष्प-चन्दन की शय्या पर उसके साथ रमण किया। वह रुक्मिणी भी कृष्ण को छाती पर रखकर मूर्च्छित हो गयी ॥५२-५४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण में श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद और नारायण के संवाद में शृगाल वासुदेव की मुक्ति नामक एक सौ इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१२१॥

# अथ द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

## नारद उवाच

सर्वासां रमणीनां च कृष्णेन परमात्मना । समुद्वाहश्च कथितस्त्वया भगवता मुदा ॥१॥
स्यमन्तकस्य च मणेरुपाख्यानमभीप्सितम् । तन्न श्रुतं महाभाग तन्मां व्याख्यातुमर्हसि ॥२॥

## नारायण उवाच

भाद्रशुक्लचतुर्थ्यां च तारकां हृतवाञ्छशी । तां तत्याज स कृष्णायां गुरुस्तां च गृहीतवान् ॥३॥
गुरुणा भर्त्सिता तारा सगर्भा लज्जिता सती । शशाप लज्जया कोपाच्चन्द्रं कामातुरं पुरा ॥४॥

## तारोवाच

भव शापकलंकी त्वं यस्त्वां पश्यति देहभृत् । पापं दृष्ट्वा स पापी च कलंकी च भविष्यति ॥५॥
इति श्रुत्वा स चन्द्रश्च नारायणसरोवरे । नारायणतपस्तप्त्वा मुमोच कृतपातकात् ॥६॥
तपःक्लिष्टं च तं दृष्ट्वा भगवान्पुरुषोत्तमः । तमुवाच महाभीतं कृपया च कृपानिधिः ॥७॥

---

# अध्याय १२२

## स्यमन्तक मणि का उपाख्यान

**नारद बोले**—कृष्ण के साथ सभी रमणियों का विवाह तो आपने हर्षपूर्वक बता दिया ॥१॥ किन्तु स्यमन्तक मणि का उपाख्यान अभीष्ट है । हे महाभाग ! वह मैंने नहीं सुना है, उसे आप (कृपया) बता दें ॥२॥

**नारायण बोले**—पूर्वकाल में भाद्रपद-शुक्ल-चतुर्थी को चन्द्रमा ने तारा का हरण किया और आश्विन-कृष्ण-चतुर्थी को उसे छोड़ दिया । तब बृहस्पति ने उसको ग्रहण किया । सती तारा गर्भवती (होने से) लज्जित थी । बृहस्पति ने उसकी भर्त्सना की और तारा ने कामातुर चन्द्रमा को लज्जा और क्रोध से शाप दे दिया ॥३-४॥

**तारा बोलीं**—तुम (मेरे) शाप से कलंकी होगे । जो प्राणी (भाद्र-शुक्ल-चतुर्थी को) तुझ पापी को देखेगा, वह पापी और कलंकी होगा ॥५॥ यह सुनकर वह चन्द्रमा नारायण-सरोवर में नारायण की तपस्या करके किये हुए पाप से मुक्त हो गया ॥६॥ तप से क्षीण उस (चन्द्रमा) को अत्यन्त भीत देखकर दयानिधि भगवान् नारायण ने कृपा करके उससे कहा ॥७॥

श्रीभगवानुवाच

मुक्तो भव कलंकी त्वं सर्वकालं कलानिधे। शापस्थानं तारकाया भाद्रे मासि सितासिते ॥८॥
चतुर्थ्यामुदितं चन्द्रं यस्तु पश्यति कामतः। तं याति तत्कलङ्कश्च स कलंकी भविष्यति ॥९॥
हरिणा दीयते ताले भाद्रे मासि सितासिते। चतुर्थ्यामुदितश्चन्द्रो नेक्षितव्यः कदाचन ॥१०॥
स्वयं दृष्ट्वा स्ववाक्यं च पालनं कर्तुमर्हति। भाद्रे चन्द्रं चतुर्थ्यां तु स कलंकी बभूव ह ॥११॥
कलंकी येन रूपेण तद्वक्ष्यामि निशामय। स मुमोच कलंकाच्च लोकशिक्षार्थमीश्वरः ॥१२॥
सत्राजितः सूर्यभक्तस्तपस्तप्त्वा च पुष्करे। स्यमन्तकं मणिश्रेष्ठं संप्राप भास्करादपि ॥१३॥
अष्टौ भारान्सुवर्णानां प्रसूते नित्यमेव च। विष्णोर्मणावधिष्ठानं महापूते च पुण्यदे ॥१४॥
सत्राजितः सत्यभामां दत्त्वा कृष्णाय भक्तितः। यौतुकार्थे मणिं दातुमुद्यतो महते महान् ॥१५॥
तं निषिध्य प्रसेनश्च दुर्मतिः कालपीडितः। मणिं गृहीत्वा प्रययौ पुण्यां वाराणसीं पुरीम् ॥१६॥
निहत्य तं पथि बलात्सिंहः सबल एव च। मणिं जग्राह रुचिरं सूत्रबद्धं गले दधौ ॥१७॥
कलिङ्गराजपुत्रश्च ब्रह्मशापात्सुदारुणात्। विप्रेणाभ्युदितस्तेन पशुयोनिं जगाम सः ॥१८॥
निहत्य सिंहं गहने भल्लूको जाम्बवान्बली। मणिं गृहीत्वा प्रययौ स्वपुरं रत्ननिर्मितम् ॥१९॥
ऊचुः सर्वे द्वारकायां मणिं जग्राह माधवः। तस्य बुद्धिं न जानीमः केनोपायेन वेति च ॥२०॥

---

**श्रीभगवान् बोले**—हे चन्द्रमा ! तुम कलंक से सब समय मुक्त हो जाओ। तारा का शाप-स्थान वह बनेगा, जो भाद्रपद के शुक्ल तथा कृष्ण पक्ष की चतुर्थी में उदित चन्द्रमा को स्वेच्छा से देखेगा। उसके पास चन्द्रमा का कलंक चला जायगा और वह कलंकी होगा ॥८-९॥ भाद्रपद के दोनों पक्षों में हरि ताली बजाकर कहते हैं कि चतुर्थी तिथि में उदित चन्द्रमा को कभी भी नहीं देखना चाहिए ॥१०॥ स्वयं (ऐसे चन्द्र को) देखकर अपने वाक्य का पालन करते हैं। भाद्र मास की चतुर्थी तिथि को वे कलंकी हुए थे ॥११॥ जिस रूप से वे कलंकी हुए, वह बताऊँगा, सुनिये। वे प्रभु लोगों को शिक्षा देने के लिए कलंक से मुक्त हुए ॥१२॥ सूर्य के भक्त सत्राजित ने पुष्कर तीर्थ में तपस्या करके सूर्य से ही स्यमन्तक नामक उत्तम मणि प्राप्त की ॥१३॥ स्यमन्तक नित्य आठ भर (दो हजार पल का एक वजन) सुवर्ण उत्पन्न करता था। उस महान् पवित्र एवं पुण्यदायक मणि में विष्णु का अधिष्ठान है ॥१४॥ सत्राजित ने कृष्ण को भक्तिपूर्वक सत्यभामा देकर महापुरुष (कृष्ण) को दहेज में मणि देने के लिए उद्यत हुए। काल के अधीन दुर्मति प्रसेन ने उसको मना करके मणि लेकर पवित्र वाराणसी पुरी को चला गया ॥१५-१६॥ किन्तु मार्ग में एक बलवान् सिंह ने उसे मारकर सूत्र में बँधे हुए मनोज्ञ मणि को ले लिया और गले में धारण कर लिया ॥१७॥ वह (सिंह) कलिंगराज का पुत्र था, जिसे भयंकर ब्रह्मशाप पड़ गया था। फिर ब्राह्मण के अनुग्रह से वह पशुयोनि में चला गया था ॥१८॥ उस सिंह को वन में बलवान् भालू जाम्बवान् ने मार डाला और मणि लेकर वह अपने रत्ननिर्मित नगर में चला आया ॥१९॥ (इधर) द्वारका में सभी लोग कहने लगे कि कृष्ण ने मणि ले ली। उनकी बुद्धि का पता पाना

इति श्रुत्वा तु भगवान्कलंककृन्तनाय च । प्रययौ काननं घोरं चौरचिह्नेन वर्त्मना ॥२१॥
मृतं प्रसेनं दृष्ट्वा च दुःखी सिंहं ददर्श सः । मणिशून्यं च तं दृष्ट्वा विषसाद च माधवः ॥२२॥
सर्वं ज्ञात्वा च सर्वज्ञो भल्लूकभवनं ययौ । रुदन्तं बालकं तत्र धात्रीक्रोडे ददर्श सः ॥२३॥
बालकं बोधयामास सा धात्री करुणान्विता । मणिं गृहाण बालेति तव ह्येष स्यमन्तकः ॥२४॥
सिंहः प्रसेनमवधीत्सिंहो जाम्बवता हतः । सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः ॥२५॥
इति धात्र्युक्तसुश्लोकं यश्च स्मृत्वा जलं पिबेत् । दैवदुष्टनष्टचन्द्रदोषादेव प्रमुच्यते ॥२६॥
कामतो यदि पश्यन्ति दाम्भिका वेदनिन्दकाः । कलङ्किनो भवन्त्येवमित्याह कमलोद्भवः ॥२७॥
कृष्णो धात्रीवचः श्रुत्वा मणिं जग्राह बालकात् । धात्री गत्वा च भल्लूकं कथयामास कोपतः ॥२८॥
जाम्बवांश्च समागत्य तुष्टाव प्रणिपत्य सः । कन्यां जाम्बवतीं तस्मै यौतुकार्थं मणिं ददौ ॥२९॥
द्वारकां मणिमानीय दर्शयामास यादवान् । प्रभुश्च सर्वतः शुद्धो निष्कलङ्को बभूव सः ॥३०॥
एतत्ते कथितं वत्स मणेराख्यानमुत्तमम् । अध्यायश्रवणादेव निष्कलङ्को भवेन्नरः ॥३१॥
यच्छ्रुतं धर्मवक्त्रेणः तदुक्तं च यथागमम् । सुदुर्लभमुपाख्यानं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥३२॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० स्यमन्तकमणि-
हरणं नाम द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२२॥

•

---

कठिन है कि किस उपाय से उन्होंने मणि ले ली ॥२०॥ यह सुनकर भगवान् (कृष्ण) कलंक को मिटाने के लिए चोर के चिह्नवाले मार्ग से घोर जंगल में पहुँच गये ॥२१॥ प्रसेन को मरा हुआ देखकर दुःखी हुए उन्होंने सिंह को देखा, किन्तु उसे मणि से शून्य देखकर माधव को विषाद हुआ ॥२२॥ फिर सर्वज्ञ (कृष्ण) सब कुछ जानकर भालू के घर गये। वहाँ धाय की गोद में रोते हुए बालक को देखा ॥२३॥ वह करुणायुक्त धाय बालक को समझा रही थी कि हे बच्चे ! मणि लो, यह स्यमन्तक मणि तुम्हारी है ॥२४॥ सिंह ने प्रसेन को मारा और सिंह को जाम्बवान् ने मार दिया। हे कुमार ! मत रोओ यह स्यमन्तक तुम्हारा है ॥२५॥ यह धाय का पढ़ा हुआ सुन्दर श्लोक स्मरण करके जो जल पीता है, वह दैववशात् देखे गये नष्ट चन्द्रमा (भाद्र-शुक्ल-चतुर्थी) के दोष से मुक्त हो जाता है ॥२६॥ जो दंभी तथा वेदनिन्दक पुरुष यदि स्वेच्छा से (नष्ट चन्द्र को) देखते हैं, तो कलंकी अवश्य होते हैं, ऐसा ब्रह्मा ने कहा है ॥२७॥ कृष्ण ने धात्री की बात सुनकर बालक से मणि ले ली। धाय ने क्रोध से भालू के पास जाकर कह दिया ॥२८॥ जाम्बवान् आकर प्रणाम करके स्तुति करने लगा। (पश्चात् उसने) कन्या जाम्बवती देकर दहेज में मणि दे दी ॥२९॥ प्रभु कृष्ण ने द्वारका में मणि लाकर यादवों को दिखलायी और वे सर्वथा शुद्ध एवं निष्कलंक हो गये ॥३०॥ वत्स ! यह मणि का उत्तम उपाख्यान तुम्हें बता दिया। इस अध्याय के श्रवण मात्र से मनुष्य निष्कलंक हो जायगा ॥३१॥ जो धर्मराज के मुख से सुना था, वह अत्यन्त दुर्लभ उपाख्यान शास्त्रानुसार सुना दिया, अब पुनः क्या सुनना चाहते हो ? ॥३२॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद-नारायण के संवाद में
स्यमन्तकमणि-हरण नामक एक सौ बाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥१२२॥

•

# अथ त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

## नारद उवाच

गणेशपूजनाख्यानं पुराणेषु च दुर्लभम्। श्रुतं तद्ब्रह्मणो वक्त्रात्सामान्यं च समासतः ॥१॥
महिमानं गणपतेः सर्वपूज्येश्वरस्य च। व्यासेन श्रोतुमिच्छामि योगीन्द्राणां गुरोर्गुरोः ॥२॥
सिद्धाश्रमे महापूजा [1]त्रैलोक्यस्थैः कृता पुरा। राधामाधवयोस्तत्र पुनः संमीलनं पुरा ॥३॥
अतीते वर्षशतके श्रीदाम्नः शापमोक्षणे। आदौ चकार पूजां च सा च राधा कथं मुने ॥४॥
स्थितेषु च सुरेन्द्रेषु ब्रह्मविष्णुशिवादिषु। नागेन्द्रे च स्थिते शेषे नागेषु च महत्सु च ॥५॥
राजेन्द्रेषु च भूमौ च बलिष्ठेष्वसुरेषु च। गन्धर्वेषु च रक्षःसु चान्येषु बलवत्सु च ॥६॥
विस्तरेण महाभाग तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥७॥

## नारायण उवाच

त्रैलोक्ये पृथिवी धन्या मान्या पुण्यवती सती। तत्र भारतवर्षं च कर्मणां फलदं शुभम् ॥८॥
धन्यं यशस्यं पूज्यं च पुण्यक्षेत्रे च भारते। सिद्धाश्रमं महापुण्यक्षेत्रं मोक्षप्रदं शुभम् ॥९॥

---

# अध्याय १२३

## गणेश महिमा वर्णन

**नारद बोले**—पुराणों में दुर्लभ गणेश-पूजन का सामान्य आख्यान तो मैंने ब्रह्मा के मुख से संक्षेप में सुन चुका हूँ, अब सबके पूज्य योगीन्द्रों के गुरु के भी गुरु गणपति की महिमा विस्तार में सुनना चाहता हूँ ॥१-२॥ पूर्वकाल में सिद्धाश्रम में तीनों लोक के लोगों ने महापूजा की थी। वहाँ पहले राधा और कृष्ण का पुनर्मिलन हुआ था ॥३॥ सौ वर्ष बीत जाने पर जब श्रीदामा का शाप हट गया तब हे मुनि! उस राधा ने पहले (गणेश की) पूजा कैसे की? ॥४॥ ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवेन्द्रों, नागराज शेष, अन्य महान् नागों, पृथ्वी पर के राजेन्द्रों, बलिष्ठ असुरों, गन्धर्वों और दूसरे बलवान् राजाओं के रहते, हे महाभाग! (गणेश की ही पूजा कैसे की?) यह विस्तार से मुझे बताइये ॥५-७॥

**नारायण बोले**—तीनों लोक में पुण्यवती होने के कारण पृथ्वी धन्य एवं मान्य है। वहाँ (पृथ्वी पर) कर्मों का शुभ फल देनेवाला भारतवर्ष है ॥८॥ पुण्यक्षेत्र में सिद्धाश्रम नामक एक महान् पुण्यमय शुभ क्षेत्र है, जो धन्य, यशस्य, पूज्य और मोक्ष देनेवाला है ॥९॥ योगीन्द्र और मुनीन्द्र कपिल आदि भी वहाँ सिद्धेन्द्र

---

१ ख. दिवौकोभिः।

सनत्कुमारो भगवांस्तत्र सिद्धो बभूव ह। स्वयं विधाता तत्रैव तप्त्वा सिद्धो बभूव ह ॥१०॥
योगीन्द्राश्च मुनीन्द्राश्च सिद्धेन्द्राः कपिलादयः। शतक्रतुर्महेन्द्रश्च तत्र कृत्वा बभूव ह ॥११॥
तेन सिद्धाश्रमं नाम सर्वेषामपि दुर्लभम्। अधिष्ठानं गणेशस्य तत्रैव सततं मुने ॥१२॥
अमूल्यरत्ननिर्माणगणेशप्रतिमां शुभाम्। वैशाख्यां पूर्णिमायां च पूजां कुर्वन्ति देवताः ॥१३॥
नागाश्च मानवाश्चैव दैत्या गन्धर्वराक्षसाः। सिद्धेन्द्राश्च मुनीन्द्राश्च योगीन्द्राः सनकादयः ॥१४॥
तत्राऽऽजगाम शंभुश्च पार्वत्या सह शंकरः। सगणः कार्तिकेयश्च स्वयं ब्रह्मा प्रजापतिः ॥१५॥
तत्राऽऽजगाम शेषश्च नागेन्द्रैः सह सत्वरम्। तत्राऽऽजग्मुः सुराः सर्वे मनवो मुनयस्तथा ॥१६॥
आजग्मुस्ते नृपाः सर्वे पूजार्थं हृष्टमानसाः। आययौ भगवान्कृष्णो द्वारकावासिभिः सह ॥१७॥
आजगाम तथा नन्दः सार्धं गोकुलवासिभिः। गोपीत्रिशतकोटीभिर्गोलोकवासिभिः सह ॥१८॥
गजेन्द्रकोटितुल्याभिर्बलिष्ठाभिः सहाऽऽलिभिः। आययौ सुन्दरी राधा कृष्णप्राणाधिदेवता ॥१९॥
रासेश्वरी सुरसिका शतवर्षे गते सति। सुस्नाता [1]सुदती शुद्धा धृत्वा धौते च वाससी ॥२०॥
संयता सा निराहारा गत्वा च मणिमण्डपम्। सुप्रक्षालितपादाब्जा कान्ता भुवनपावनी ॥२१॥
श्रीकृष्णप्रीतिकामाऽथ सुसंकल्पं विधाय च। गङ्गोदकेन हेरम्बं स्नापयामास भक्तितः ॥२२॥

---

बने। सौ यज्ञ करके (देवराज) महेन्द्र भी हुए ॥११॥ इसी कारण उसे सिद्धाश्रम कहते हैं। वह सभी के लिए दुर्लभ है। मुने ! वहाँ गणेश नित्य निवास करते हैं ॥१२॥ वहाँ गणेश की अमूल्य रत्नों की बनी हुई एक सुन्दर प्रतिमा है, जिसकी वैशाखी पूर्णिमा के दिन सभी देवता, नाग, मनुष्य, दैत्य, गन्धर्व, राक्षस, सिद्धेन्द्र, मुनीन्द्र, योगीन्द्र और सनकादि महर्षि पूजा करते हैं ॥१३-१४॥ उस अवसर पर वहाँ पार्वती के साथ शंकर, गणों सहित कार्तिकेय और स्वयं प्रजापति पधारे ॥१५॥ नागेन्द्रों के साथ शेष भी वहाँ शीघ्र आ पहुँचे। फिर सभी देवता, मनु और मुनिगण भी वहाँ आये ॥१६॥ सभी नरेश प्रसन्न मन से गणेश की पूजा करने के लिए वहाँ उपस्थित हुए। द्वारकावासियों के साथ भगवान् कृष्ण भी आये ॥१७॥ उसी तरह गोकुलवासियों के साथ नन्द जी आये। तदनन्तर सुरसिका, रासेश्वरी और श्रीकृष्ण के प्राणों की अधिदेवता सुन्दरी राधा भी सौ वर्ष व्यतीत हो जाने पर तीन सौ करोड़ गोलोकवासिनी गोपियों के साथ, जो करोड़ों गजराजों के समान बलिष्ठ थीं, पधारीं। वहाँ सुन्दर दाँतोंवाली राधा ने भली-भाँति स्नान करके शुद्ध हो धुली हुई साड़ी और कंचुकी धारण की ॥१८-२०॥ फिर भुवनपावनी कान्ता राधा ने अपने चरण-कमलों का अच्छी तरह प्रक्षालन किया। तत्पश्चात् वे निराहार रहकर इन्द्रियों को वश में करके मणिमण्डप में गयीं ॥२१॥ वहाँ उन्होंने श्रीकृष्ण-प्राप्ति की कामना से उत्तम संकल्प का विधान करके भक्तिपूर्वक गंगाजल से गणेश को स्नान कराया

---

१ क. सुन्दरी।

ध्यानं च सामवेदोक्तं चकार शुक्लपुष्पतः। माता चतुर्णां वेदानां वसोश्च जगतामपि ॥२३॥
बुद्धिरूपा भगवती ज्ञानिनां जननी परा। ध्यानात्मकं स्वपुत्रं तं परं ध्यानं चकार सा ॥२४॥
खर्वं लम्बोदरं स्थूलं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा। गजवक्त्रं वह्निवर्णमेकदन्तमनन्तकम् ॥२५॥
सिद्धानां योगिनामेव ज्ञानिनां च गुरोर्गुरुम्। ध्यानं मुनीन्द्रैर्देवेन्द्रैर्ब्रह्मेशशेषसंज्ञकैः ॥२६॥
सिद्धेन्द्रैर्मुनिभिः सद्भिर्भगवन्तं सनातनम्। ब्रह्मस्वरूपं परमं मङ्गलं मङ्गलालयम् ॥२७॥
सर्वविघ्नहरं शान्तं दातारं सर्वसंपदाम्। भवाब्धिमायापोतेन कर्णधारं च कर्मिणाम् ॥२८॥
शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणम्। ध्यायेद्ध्यानात्मकं साध्यं भक्तेशं भक्तवत्सलम् ॥२९॥
इति ध्यात्वा स्वशिरसि दत्त्वा पुष्पं पुनः सती। सर्वाङ्गशोधनं न्यासं वेदोक्तं च चकार सा ॥३०॥
पुनश्च ध्यात्वा ध्यानेन तेनैव शुभदायिना। ददौ पुष्पं पादपद्मे राधा लम्बोदरस्य च ॥३१॥
सप्ततीर्थोदकेनैव शीतेन वासितेन च। ददौ पाद्यं पादपद्मे तैः पद्मादिभिरर्चिते ॥३२॥
दूर्वाक्षतैः शुक्लपुष्पैः सुगन्धिचन्दनोदकैः। अर्घ्यं ददौ तच्छिरसि स्वयं गोलोकवासिनी ॥३३॥
सचन्दनं स्निग्धमाल्यं पारिजातस्य सुन्दरम्। ददौ गले गणेशस्य स्वयं रासेश्वरी मुदा ॥३४॥
कस्तूरीकुङ्कुमाक्तं च सुगन्धि स्निग्धचन्दनम्। सर्वाङ्गे प्रददौ तस्य वृन्दावनविनोदिनी ॥३५॥

---

॥२२॥ इसके बाद चारों वेदों, वसु और लोकों की माता, ज्ञानियों की परा जननी एवं बुद्धिरूपा भगवती राधा श्वेत पुष्प लेकर सामवेदोक्त प्रकार से अपने पुत्रभूत गणेश का यों ध्यान करने लगीं ॥२३-२४॥ जो छोटे कदवाले, बड़े पेटवाले, स्थूलकाय, ब्रह्मतेज से उद्भासित, हाथी के मुखवाले, अग्नि के समान कान्तिमान्, एकदन्त और असीम हैं, जो सिद्धों, योगियों और ज्ञानियों के गुरु हैं; ब्रह्मा, शिव और शेष आदि देवेन्द्र, मुनीन्द्र, सिद्धेन्द्र मुनिगण तथा सन्त लोग जिनका ध्यान करते हैं; जो ऐश्वर्यशाली, सनातन, ब्रह्मस्वरूप, परम मंगल, मंगल के स्थान, सम्पूर्ण विघ्नों को हरनेवाले, शान्त, सम्पूर्ण सम्पत्तियों के दाता, कर्मयोगियों के लिए भवसागर में मायारूपी जहाज के कर्णधारस्वरूप, शरणागत दीन-दुःखियों की रक्षा में तत्पर, ध्यानरूप, साधना करने योग्य भक्तों के स्वामी और भक्तवत्सल हैं; उन गणेश का ध्यान करना चाहिए ॥२५-२९॥ इस प्रकार ध्यान करके सती राधा ने उस पुष्प को अपने मस्तक पर रखकर पुनः सर्वांगों को शुद्ध करनेवाला वेदोक्त न्यास किया ॥३०॥ तत्पश्चात् उसी शुभदायक ध्यान के द्वारा पुनः ध्यान करके राधा ने उन लम्बोदर के चरणकमल में पुष्पाञ्जलि समर्पित की ॥३१॥ फिर गोलोकवासिनी स्वयं श्री राधिका ने सुगन्धित और सुशीतल तीर्थजल, दूर्वा, चावल, श्वेतपुष्प और सुगन्धित चन्दनयुक्त अर्घ्य उनके मस्तक पर चढ़ाया ॥३२-३३। पारिजात पुष्पों की सुन्दर, चिकनी और चन्दनयुक्त माला गणेश के गले में पहनायी ॥३४॥

वृन्दावनविनोदिनी राधा ने कस्तूरी-केसर-युक्त, सुगन्धित एवं स्नेहिल चन्दन गणेश के सर्वांग में

सुगन्धि शुक्लं पुष्पं च सुगन्धि चन्दनार्चितम् । ददौ तस्य पदाम्भोजे महापद्मलया सती ॥३६॥
सुगन्धियुक्तं धूपं च पूतैर्वस्तुभिरन्वितम् । ददौ कृष्णप्रिया तस्मै जगतामीश्वराय च ॥३७॥
दीपं घृतप्रदीप्तं च ध्वान्तविध्वंसकारणम् । ददौ तस्मै सुरेशाय परमाद्या सनातनी ॥३८॥
नैवेद्य विविधं रम्यं सुस्वादु सुमनोहरम् । चोष्यं चर्व्यं लेह्यपेये सुधातुल्यं चतुर्विधम् ॥३९॥
फलानि च सुपक्वानि त्रैलोक्ये दुर्लभानि च । मधुराणि च मूलानि ग्राम्यारण्यानि नारद ॥४०॥
तानि त्वन्यान्यसंख्यानि तिलानां लड्डुकानि च । लड्डुकानि सुपक्वानि स्वादूनि सुरसानि च ॥४१॥
यवगोधूमचूर्णानां पक्वानि पिष्टकानि च । घृताक्तानि च रम्याणि शर्करासहितानि च ॥४२॥
स्वस्तिकानां लड्डुकानि स्थूलानि सुन्दराणि च । भृष्टद्रव्यं च विविधमक्षतं शर्करान्वितम् ॥४३॥
घृतकुल्यां दुग्धकुल्यां मधुकुल्यां मनोहराम् । गुडस्य दघ्नः कुल्यां च पायसानां तथैव च ॥४४॥
पिष्टकानां स्वस्तिकानां रम्भाणां राशिरेव च । मिष्टव्यञ्जनयुक्तानि शाल्यन्नानि शुभानि च ॥४५॥
ददौ तस्मै सुरेशाय कृष्णप्राणाधिदेवता । अमूल्यरत्ननिर्माणं रम्यं सिंहासनं वरम् ॥४६॥
ददौ विघ्नविनाशाय विरजातटवासिनी । सूक्ष्मवस्त्रयुगं रम्यममूल्यं वह्निशुद्धकम् ॥४७॥
ददौ शैलात्मजायैव[1] शतशृङ्गनिवासिनी । विशुद्धसर्पिषा युक्तं निर्मलं मधुरं मधु ॥४८॥

---

लगाया ॥३५॥ महापद्मवासिनी सती राधा ने सुगन्धित शुक्ल पुष्प और सुगन्धयुक्त चन्दन-लेप गणेश के चरण-कमल में अर्पित किया ॥३६॥ कृष्ण की प्रिया ने पवित्र वस्तुओं से युक्त सुगन्धित धूप संसार के प्रभु श्रीगणेश को प्रदान किया ॥३७॥ परम आद्या (सर्वश्रेष्ठ) एवं सनातनी राधा ने घी से जला हुआ अन्धकार विध्वंसक दीपक उस देवेन्द्र (गणेश) को समर्पित किया ॥३८॥ सुस्वादु रमणीय नैवेद्य, अमृततुल्य चार प्रकार के अन्न-चोष्य, चर्व्य लेह्य और पेय, तीनों लोक में दुर्लभ सुपक्व फल, ग्राम्य और वन्य मधुर कन्द और अन्य असंख्य कन्दमूल, तिल के लड्डू और भाँति-भाँति के लड्डू घी-चीनी से युक्त यव और गेहूँ के रमणीय एवं सुस्वादु पिष्टक (पकवान), सुन्दर और स्थूल स्वस्तिकों के लड्डू (पिष्टक विशेष), भुने हुए विविध प्रकार के पदार्थ तथा चीनी, मनोहर घृत की धारा, दूध की धारा, मधु की धारा, गुड़ तथा दही की धारा, खीर, पिष्टक, स्वस्तिक तथा केलों की राशि, मिठाइयों तथा व्यंजनों से युक्त पवित्र अन्न, चावल भी उस देवेश को कृष्ण के प्राणों की देवी (राधा) ने समर्पित किये । अमूल्य रत्ननिर्मित श्रेष्ठ सिंहासन, सुन्दर, सूक्ष्म तथा अग्निशुद्ध दो वस्त्र श्रीगणेश को शत-शृङ्ग पर्वत पर निवास करनेवाली (राधा) ने दिये । फिर वृन्दावननिवासिनी (राधा) ने अत्यन्त शुद्ध घी

---

१ क. 'रमका' ।

मधुपर्कं ददौ तस्मै वृन्दावननिवासिनी। ताम्बूलं च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम् ॥४९॥
सर्वसंपत्प्रदात्रे च वृषभानसुता ददौ। सप्ततीर्थोदकं शुद्धं सुसितं च सुवासितम् ॥५०॥
पानार्थं च जलं तस्मै ददौ गोपीश्वरी मुदा। अमूल्यं दुर्लभं चैव विशुद्धं श्वेतचामरम् ॥५१॥
ददौ तस्मै परेशाय मूलप्रकृतिरीश्वरी। अमूल्यरत्ननिर्माणं मुक्तामाणिक्यहीरकैः ॥५२॥
परिष्कृतं सुतल्पं च पुष्पचन्दनचर्चितम्। सितसूक्ष्मांशुकेनैव परितश्च परिष्कृतम् ॥५३॥
ददौ शिवात्मजायैव कृष्णवक्षःस्थलस्थिता। दत्त्वा च कामधेनुं च सवत्सां वाञ्छितप्रदाम् ॥५४॥
कृत्वाऽतीव परीहारं वृन्दा पुष्पाञ्जलिं ददौ। दिव्येन मूलमनुना सबीजेनोज्ज्वलेन च ॥५५॥
ददौ षोडशोपचारं कालिन्दीकूलवासिनी। ॐ गं गौं गणपतये विघ्नविनाशिने स्वाहा ॥५६॥
इत्येवमेव मन्त्रं च गणेशं षोडशाक्षरम्। सा जजाप सहस्रं च परं कल्पतरुं वरम् ॥५७॥
तुष्टाव परया भक्त्या भक्तिनम्रात्मकंधरा। साश्रुनेत्रा पुलकिता स्तोत्रेण कौथुमेन च ॥५८॥

## राधिकोवाच

परं धाम परं ब्रह्म परेशं परमेश्वरम्। विघ्ननिघ्नकरं शान्तं पुष्टं कान्तमनन्तकम् ॥५९॥
सुरासुरेन्द्रैः सिद्धेन्द्रैः स्तुतं स्तौमि परात्परम्। सुरपद्मदिनेशं च गणेशं मङ्गलायनम्[1] ॥६०॥

---

से युक्त निर्मल तथा मधुर मधु और मधुपर्क गणेश को दिये। कर्पूर आदि से सुवासित सुन्दर तथा श्रेष्ठ ताम्बूल सकलसम्पदादायक (गणेश) को वृषभान कुमारी (राधा) ने दिया। अनन्तर गोपीश्वरी ने पीने के लिए सात तीर्थों का सुवासित, सुशीतल तथा पवित्र तीर्थजल दिया। ईश्वरी एवं मूलप्रकृति (राधा) ने हर्ष से अमूल्य दुर्लभ तथा पवित्र श्वेत चामर दिया। फिर कृष्ण के वक्षःस्थल पर रहनेवाली राधा ने उस परम प्रभु (गणेश) को अमूल्य रत्नों का बना हुआ तथा मोती, माणिक्य और हीरे से सुसज्जित, पुष्प और चन्दन से युक्त तथा शुभ्र एवं सूक्ष्म रेशमी वस्त्र से चारों ओर परिष्कृत सुन्दर शय्या प्रदान की। फिर कामना सिद्ध करनेवाली सवत्सा कामधेनु देकर अत्यन्त परिहार (प्रायश्चित्त) करके वृन्दा ने पुष्पाञ्जलि प्रदान की तथा बीज सहित दिव्य एवं उज्ज्वल मूलमन्त्र से षोडशोपचार समर्पित किया। पश्चात् कालिन्दीतटवासिनी (राधा) ने 'ॐ गं गौं गणपतये विघ्नविनाशिने स्वाहा' गणेश के इस षोडशाक्षर मन्त्र का, जो श्रेष्ठ कल्पतरु के समान है, एक हजार जप किया। फिर वह भक्तिवश कन्धा झुकाकर नेत्रों में आँसू भरकर पुलकित शरीर से परम भक्ति के साथ सामवेदोक्त स्तोत्र द्वारा स्तुति करने लगी ॥३६-५८॥

**राधा बोलीं**—जो परमधाम, परब्रह्म, परेश, परमेश्वर, विघ्नों के विनाशक, शान्त, पुष्ट, मनोहर और अनन्त हैं; प्रधान-प्रधान सुर और असुर जिनका स्तवन करते हैं; जो देवरूपी कमल के लिए सूर्य और मंगलों के आश्रय-स्थान हैं; उन परात्पर गणेश की मैं स्तुति करती हूँ। यह उत्तम स्तोत्र महान् पुण्यमय तथा

---

१ क °लयम्।

इदं स्तोत्रं महापुण्यं विघ्नशोकहरं परम् । यः पठेत्प्रातरुत्थाय सर्वविघ्नात्प्रमुच्यते ।।६१।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१२३।।

•

# अथ चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

### नारायण उवाच

राधा संपूज्य विधिना स्तुत्वा लम्बोदरं सती । अमूल्यरत्ननिर्माणं सर्वाङ्गभूषणं ददौ ।।१।।
राधायाः स्तवनं श्रुत्वा पूजां दृष्ट्वा च वस्तु च । उवाच मधुरं शान्तः शान्तां त्रैलोक्यमातरम् ।।२।।

### गणेश उवाच

तव पूजा जगन्मातर्लोकशिक्षाकरी शुभे । ब्रह्मस्वरूपा भवती कृष्णवक्षःस्थलस्थिता ।।३।।
यत्पादपद्ममतुलं ध्यायन्ते ते सुदुर्लभम् । सुरा ब्रह्मेशशेषाद्या मुनीन्द्राः सनकादयः ।।४।।

---

विघ्न और शोक को हरनेवाला है। जो प्रातःकाल उठकर इसका पाठ करता है, वह सम्पूर्ण विघ्नों से मुक्त हो जाता है ।।५९-६१।।

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद-नारायण के संवाद-प्रकरण में एक सौ तेईसवाँ अध्याय समाप्त ।।१२३।।

•

# अध्याय १२४

## गणेश-कृत राधा-प्रशंसा तथा ब्रह्मा, शिव, अनन्त आदि के द्वारा राधा की स्तुति

**नारायण बोले**--सती राधा ने गणेश का विधिपूर्वक पूजन एवं स्तवन करके अमूल्य रत्नों के बने, समस्त अंगों में (पहनने योग्य) आभूषण प्रदान किये ।।१।। राधा का स्तवन सुनकर और पूजा तथा पूजन-सामग्री देखकर शान्त गणेश ने शान्त स्वभाववाली त्रिलोकजननी (राधा) से मधुर वचन कहा ।।२।।

**गणेश बोले**--जगन्माता ! तुम्हारी यह पूजा लोगों को शिक्षा देनेवाली है। शुभे ब्रह्मस्वरूपा एवं कृष्ण के वक्षःस्थल पर निवास करनेवाली हैं। जिनके अनुपम चरण-कमल का ध्यान, ब्रह्मा, ईश तथा शेष

जीवन्मुक्ताश्च भक्ताश्च सिद्धेन्द्राः कपिलादयः। तस्य प्राणाधिदेवी त्वं प्रिया प्राणाधिका परा ॥५॥
वामाङ्गनिर्मिता राधा दक्षिणाङ्गश्च माधवः। महालक्ष्मीर्जगन्माता तव वामाङ्गनिर्मिता ॥६॥
वसोः सर्वनिवासस्य प्रसूस्त्वं परमेश्वरी। वेदानां जगतामेव मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥७॥
सर्वाः प्राकृतिका मातः सृष्टयां[1] च त्वद्विभूतयः। विश्वानि कार्यरूपाणि त्वं च कारणरूपिणी ॥८॥
प्रलये ब्रह्मणः पाते तन्निमेषो हरेरपि। आदौ राधां समुच्चार्य पश्चात्कृष्णं परात्परम् ॥९॥
स एव पण्डितो योगी गोलोकं[2] याति लीलया। व्यतिक्रमे महापापी ब्रह्महत्यां लभेद्ध्रुवम् ॥१०॥
जगतां भवती माता परमात्मा पिता हरिः[3]। पितुरेव गुरुर्माता पूज्या वन्द्या परात्परा ॥११॥
भजते देवमन्यं वा कृष्णं वा सर्वकारणम्। पुण्यक्षेत्रे महामूढो यदि निन्दति राधिकाम् ॥१२॥
वंशहानिर्भवेत्तस्य दुःखशोकमिहैव च। पच्यते निरये घोरे यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥१३॥
गुरुश्च ज्ञानोद्गिरणाज्ज्ञानं स्यान्मन्त्रतन्त्रयोः। स च मन्त्रश्च तत्तन्त्रं भक्तिः स्याद्‌युवयोर्यतः ॥१४॥
निषेव्य मन्त्रं देवानां जीवा जन्मनि जन्मनि। भक्ता भवन्ति दुर्गायाः पादपद्मे सुदुर्लभे ॥१५॥
निषेव्य मन्त्रं शंभोश्च[4] जगतां कारणस्य च। तदा प्राप्नोति युवयोः पादपद्मं सुदुर्लभम् ॥१६॥

---

आदि देवता, सनक आदि मुनीन्द्र और कपिल आदि जीवन्मुक्त, भक्त तथा सिद्धेन्द्र करते हैं, उन श्रीकृष्ण की आप प्राणाधिदेवी तथा प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं ॥३-५॥ श्रीकृष्ण के दक्षिणांग माधव हैं और वामांग से राधा प्रादुर्भूत हुईं। संसार की माता महालक्ष्मी आपके वामांग से प्रकट हुई हैं ॥६॥ आप सबके निवासभूत वसु की माता, परमेश्वरी, वेदों और लोकों की ईश्वरी मूलप्रकृति हैं ॥७॥ माता ! सृष्टि में सभी प्राकृतिक स्त्रियाँ आपकी विभूति हैं। सारे विश्व कार्यरूप हैं और आप कारणरूप है ॥८॥ प्रलयकाल में जब ब्रह्मा का पतन हो जाता है, वह विष्णु का एक निमेष कहलाता है। जो पहले राधा का उच्चारण करके पश्चात् परात्पर कृष्ण का उच्चारण करता है, वही पण्डित तथा योगी लीलापूर्वक गोलोक को जाता है। उलटा (अर्थात् पहले कृष्ण पश्चात् राधा का उच्चारण) करने पर वह महापापी निश्चय ही ब्रह्महत्या का भागी होता है ॥९-१०॥ आप संसार की माता हैं और परमात्मा हरि पिता हैं। किन्तु माता पिता से भी श्रेष्ठ, पूज्य, वन्दनीय एवं परात्पर है ॥११॥ पुण्यक्षेत्र भारत में जो महामूर्ख सबके कारणरूप कृष्ण या अन्य देवता का भजन करता है, लेकिन राधा की निन्दा करता है, उसके वंश की हानि होती है तथा दुःख-शोक भोगना पड़ता है और उसे भयंकर नरक में तब तक पकाया जाता है जब तक सूर्य और चन्द्रमा की स्थिति रहती है ॥१२-१३॥ ज्ञान का उद्‌गिरण करने से गुरु कहलाता है। ज्ञान मन्त्र और तन्त्र का होता है। वह मन्त्र और तन्त्र आप दोनों की भक्ति हैं। देवों के मन्त्र का सेवन करके जीव दुर्गा के अत्यन्त दुर्लभ चरण-कमल के भक्त होते हैं ॥१४-१५॥ संसार के कारणरूप शिव के मन्त्र का सेवन करके जीव आप दोनों के अत्यन्त दुर्लभ चरण-कमल को प्राप्त

---

१ क. सृष्ट्वाऽन्यास्तद्वि। २ क. लोकं पाति च ली। ३ क. 'मक्तः। ४ क. तश्याश्च।

युवयोः पादपद्मं च दुर्लभं प्राप्य पुण्यवान्। क्षणार्धं षोडशांशं च नहि मुञ्चति दैवतः ॥१७॥
भक्त्या च युवयोर्मन्त्रं गृहीत्वा वैष्णवादपि। स्तवं वा कवचं वाऽपि कर्ममूलनिकृन्तनम् ॥१८॥
योजयेत्परया भक्त्या पुण्यक्षेत्रे च भारते। पुरुषाणां सहस्रं च स्वात्मना सार्धमुद्धरेत् ॥१९॥
गुरुमभ्यर्च्य विधिवद्वस्त्रालंकारचन्दनैः। कवचं धारयेद्यो हि विष्णुतुल्यो भवेद्ध्रुवम् ॥२०॥
यद्दत्तं वस्तु मे मातस्तत्सर्वं सार्थकं कुरु। देहि विप्राय मत्प्रीत्या तदा भोक्ष्यामि सांप्रतम् ॥२१॥
देवे देयानि दानानि देवे देया च दक्षिणा। तत्सर्वं ब्राह्मणे दद्यात्तदानन्त्याय कल्पते ॥२२॥
ब्राह्मणानां मुखं राधे देवानां मुखमुख्यकम्। विप्रभुक्तं च यद्द्रव्यं प्राप्नुवन्त्येव देवताः ॥२३॥
विप्रांश्च भोजयामास तत्सर्वं राधिका सती। बभूव तत्क्षणादेव प्रीतो लम्बोदरो मुने ॥२४॥
एतस्मिन्नन्तरे देवा ब्रह्मेशशेषसंज्ञकाः। आययुर्वं मूलं च देवपूजार्थमेव च ॥२५॥
तत्र गत्वा शिवचरो देवान्देवीरुवाच सः। श्रीकृष्णं शुष्ककण्ठश्च भयभीतश्च रक्षकः ॥२६॥

## रक्षक उवाच

गणेशं पूजयामास सर्वादौ च शुभक्षणे। वृषभानसुता राधा प्रकृत्य स्वस्तिवाचनम् ॥२७॥
सहिता सा बलवती गोपीत्रिशतकोटिभिः। वारितोऽहं वलिष्ठाभिर्युष्मांश्च कथयामि तत् ॥२८॥
सर्वादौ पूजयेद्यो हि सोऽनन्तं फलमालभेत्। मध्ये मध्यविधं पुण्यं शेषे स्वल्पमिति स्मृतम् ॥२९॥

---

करता है ॥१६॥ आप दोनों के दुर्लभ चरण-कमल को पाकर पुण्यवान् व्यक्ति दैववश आधे क्षण या षोडशांश काल के लिए भी उसका त्याग नहीं करता ॥१७॥ पुण्यक्षेत्र भारत में जो व्यक्ति वैष्णव से आप दोनों का भक्ति-पूर्वक मन्त्र या स्तोत्र या कर्ममूल का उच्छेद करनेवाले कवच को ग्रहण करके परम भक्ति के साथ उसका जप करता है, वह अपने साथ सहस्र पीढ़ियों का उद्धार करता है ॥१८-१९॥ जो व्यक्ति वस्त्र, आभूषण, चन्दन आदि से गुरु की विधिवत् पूजा करके कवच को धारण करता है, वह निश्चित ही विष्णु के समान हो जाता है ॥२०॥ हे माता ! जो वस्तुएँ मुझे दी हैं, उन सबको सार्थक करो। इस समय मेरी प्रीति के कारण (सब वस्तुएँ) ब्राह्मणों को दे दो, तब मैं भोजन करूँगा ॥२१॥ देवता को देने योग्य जो दान और दक्षिणा हो, वह सब ब्राह्मण को दे देने से अनन्त फलदायक हो जाता है ॥२२॥ हे राधे ! ब्राह्मणों का मुख देवताओं का मुख्य मुख है। (इसलिए) ब्राह्मण जिस वस्तु को खाते हैं, उसे देवता अवश्य प्राप्त करते हैं ॥२३॥ मुने ! सती राधा ने वह सब वस्तुएँ ब्राह्मणों को खिला दी। (इससे) गणेश उसी क्षण प्रसन्न हो गये ॥२४॥ इसी बीच ब्रह्मा, ईश तथा शेष नामक देवता देवपूजन के लिए वट के नीचे आये ॥२५॥ वहाँ जाकर एक रक्षक शिवदूत ने, जो भयभीत था और जिसका कण्ठ सूख गया था, देवों, देवियों तथा श्रीकृष्ण से कहा ॥२६॥

**रक्षक बोला**—वृषभान की पुत्री राधा ने शुभ मुहूर्त में स्वस्तिवाचन करके सबसे पहले गणेश का पूजन किया ॥२७॥ वह बलवती राधा तीन सौ करोड़ गोपियों के साथ है। उन बलिष्ठ गोपियों ने मुझे भगा दिया। मैं आप लोगों से यह भी कहता हूँ कि जो सबसे पहले गणेश का पूजन करता है वह अनन्त फल का भागी होता है। मध्य में पूजन करने से मध्यम फल मिलता है और अन्त में पूजन करने से स्वल्प फल कहा

देवेन्द्रेषु मुनीन्द्रेषु देवस्त्रीषु स्थितासु च । गोपीभिश्च सह तया राधया पूजितः परः ॥३०॥
दूतवाक्यं समाकर्ण्य जहसुः सर्वदेवताः । मुनयो मनवश्चैव राजानो देवयोषितः ॥३१॥
रुक्मिण्याद्या रमण्यश्च या देव्यो विस्मयं ययुः । सरस्वती च सावित्री पार्वती परमेश्वरी ॥३२॥
रोहिणी च सती संज्ञा स्वाहाद्या देवयोषितः । मुदिताः प्रययुः सर्वा मुनिपत्न्यः पतिव्रताः ॥३३॥
मुनयो मनवः सर्वे देवाश्चापि नरास्तथा । श्रीकृष्णः स गणैः सार्धं ये चान्ये प्रययुर्मुदा ॥३४॥
ते सर्वे विविधैर्द्रव्यैः पूजां चक्रुः शुभक्षणे । बलिष्ठा दुर्बलाश्चैव क्रमेण च पृथक्पृथक् ॥३५॥
लड्डुकानां च राशीनां शतकोटिर्बभूव ह । शर्कराणां तदर्धं च स्वस्तिकानां तथैव च ॥३६॥
अन्नानां भव्यवस्तूनां शतकोटिर्बभूव ह । असंख्यानि फलान्येव स्वादूनि मधुराणि च ॥३७॥
मधुकुल्या दुग्धकुल्या दधिकुल्या घृतस्य च । बभूवुः शतसंख्याश्च त्रैलोक्यानां च पूजने ॥३८॥
पूजां कृत्वा तु ते सर्वे समूषुश्च सुखासने । पार्वती परमप्रीत्या राधास्थानं समाययौ ॥३९॥
सा राधा पार्वतीं दृष्ट्वा समुत्थाय जवेन च । यथायोग्यं च संभाषां चकार सादरं मुदा ॥४०॥
आश्लेषणं चुम्बनं च बभूव च परस्परम् । उवाच मधुरं दुर्गा राधां कृत्वा स्ववक्षसि ॥४१॥

## पार्वत्युवाच

किंवा प्रश्नं करिष्यामि त्वां राधा मङ्गलालयाम् । गता ते विरहज्वाला श्रीदाम्नः शापमोक्षणे ॥४२॥

---

गया है ॥२८-२९॥ देवेन्द्रों, मुनीन्द्रों और देवस्त्रियों के रहते राधा ने गोपियों के साथ देवश्रेष्ठ (गणेश) की पूजा की ॥३०॥ दूत की बात सुनकर सभी देवता, मुनि, मनु, राजा और देवों की स्त्रियाँ हँसने लगीं ॥३१॥ रुक्मिणी आदि रमणियाँ तथा जो देवियाँ थीं, वे आश्चर्य में पड़ गयीं। सरस्वती, सावित्री, परमेश्वरी पार्वती, सती रोहिणी, संज्ञा और स्वाहा आदि देवस्त्रियाँ मुदित होकर पधारीं। सभी पतिव्रता मुनिपत्नियाँ भी आयीं। मुनि, मनु, सभी देवता, मनुष्य, गणों समेत श्रीकृष्ण और अन्य भी हर्ष से आये ॥३२-३४॥ इन सबों ने शुभ मुहूर्त में भाँति-भाँति के द्रव्यों से पूजा की। क्रमशः बलिष्ठों और दुर्बलों ने अलग-अलग पूजन किया ॥३५॥ उस पूजन में लड्डुओं के सौ करोड़ ढेर लग गये। उसके आधे शक्करों और स्वस्तिकों के भी ढेर लग गये ॥३६॥ अन्नों और रमणीय वस्तुओं के सौ करोड़ ढेर लगे। सुस्वादु और मधुर फल तो असंख्य थे ॥३७॥ मधु, दूध दही और घी की सैकड़ों नहरें बहने लगीं जिनसे तीनों लोकों का पूजन हो सकता था ॥३८॥ पूजा करके वे सब सुखदायक आसन पर बैठ गये। तब पार्वती परम स्नेह से राधा के स्थान पर गयीं ॥३९॥ राधा पार्वती को देखकर शीघ्रता से उठ खड़ी हुई और हर्ष एवं आदर के साथ यथोचित संभाषण करने लगीं ॥४०॥ उन्होंने परस्पर आलिंगन और चुम्बन किया, फिर पार्वती ने राधा को अपनी छाती से लगाकर मधुर वचन कहा ॥४१॥

**पार्वती बोलीं**—मंगलों की आश्रय राधा तुमसे मैं क्या पूछूँ? श्रीदामा के शाप से मुक्ति मिल जाने

सततं मन्मनः प्राणास्त्वय्येव मयि ते तथा। न ह्येवमावयोर्भेदः शक्तिपुरुषयोस्तथा ॥४३॥
ये त्वां निन्दन्ति मद्भक्तास्त्वद्भक्ताश्चापि मामपि। कुम्भीपाके च पच्यन्ते यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥४४॥
राधामाधवयोर्भेदं ये कुर्वन्ति नराधमः। वंशहानिर्भवेत्तेषां पच्यन्ते नरके चिरम् ॥४५॥
यान्ति सूकरयोनिं च पितृभिः शतकैः सह। षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां कृमयस्तथा ॥४६॥
त्वयैव पूजितः पुत्रो न मया च गणेश्वरः। सर्वादौ सर्वपूज्योऽयं यथा तव तथा मम ॥४७॥
यावज्जीनपर्यन्तं न विच्छेदो भविष्यति। राधामाधवयोर्देवि दुग्धधावल्ययोर्यथा ॥४८॥
सिद्धाश्रमे महातीर्थे पुण्यक्षेत्रे च भारते। निर्विघ्नं लभ गोविन्दं संपूज्य विघ्नखण्डनम् ॥४९॥
रासेश्वरी त्वं रसिका श्रीकृष्णो रसिकेश्वरः। विदग्धाया विदग्धेन संगमो गुणवान्भवेत् ॥५०॥
श्रीदाम्नः शापनिर्मुक्ता शतवर्षान्तरं सति। कुरुष्व मद्वरेणाद्य कृष्णेन सह संगमम् ॥५१॥
ममाऽऽज्ञया दुर्लभया सुवेषं कुरु सुन्दरि। सुदुर्लभः कामिनीनां सत्पुंसा सह संगमः ॥५२॥
चक्रुः सुवेषं राधायाः प्रियाल्यश्च शिवाज्ञया। रत्नसिंहासने रम्ये वासयामासुरीश्वरीम् ॥५३॥
पुरतो रत्नमाला सा रत्नमालां गले ददौ। राधाया दक्षिणे हस्ते क्रीडापद्मं मनोहरम् ॥५४॥

---

पर तुम्हारी वियोग की ज्वाला शान्त हो गयी ॥४२॥ मेरे मन और प्राण सतत तुममें लगे रहते हैं। उसी तरह तुम्हारे मन और प्राण भी मुझमें लगे रहते हैं। इस प्रकार हम दोनों में कोई भेद नहीं है जैसे शक्ति और पुरुष में कोई भेद नहीं होता ॥४३॥ जो मेरे भक्त तुम्हारी निन्दा करते हैं और तुम्हारे भक्त मेरी निन्दा करते हैं, वे कुम्भीपाक नरक में तब तक पकते रहते हैं जब तक सूर्य और चन्द्रमा रहते हैं ॥४४॥ जो नराधम राधा और माधव में भेद-बुद्धि करते हैं, उनका वंश-नाश होता और वे चिरकाल तक नरक में पकते हैं ॥४५॥ इसके बाद सौ पीढ़ियों के साथ सूकर-योनि में साठ हजार वर्षों तक जाते रहते हैं और पश्चात् विष्ठा के कीड़े होते हैं ॥४६॥ पुत्र गणेश की पूजा सर्वप्रथम तुम्हीं ने की, मैंने नहीं। यह सबके लिए सबसे पहले पूज्य है। यह जैसे तुम्हारे लिये है वैसे मेरे लिये है ॥४७॥ देवी ! जीवनपर्यन्त राधा और माधव में पृथक्ता नहीं होगी, जैसे दूध और धवलता में नहीं होती ॥४८॥ पुण्यक्षेत्र भारत में विघ्ननाशक (गणेश) की पूजा करके तुम निर्विघ्न श्रीकृष्ण को प्राप्त करो ॥४९॥ तुम रासेश्वरी एवं रसिका हो और श्रीकृष्ण रसिकेश्वर हैं। रसिक ईश्वर हैं। चतुर स्त्री का चतुर पुरुष के साथ संगम गुणवान् (उत्तम) होता है ॥५०॥ हे सती ! सौ वर्षों के बाद श्रीदामा के शाप से मुक्ति पा जाने पर तुम आज मेरे वरदान से श्रीकृष्ण से संगम करो ॥५१॥ हे सुन्दरी ! मेरे दुर्लभ आदेश से सुन्दर वेश रचो। कामिनियों को अच्छे पुरुष के साथ संगम करना दुर्लभ होता है ॥५२॥ पार्वती की आज्ञा से राधा की प्रिय सखियाँ राधा का सुन्दर वेश बनाने लगीं। रत्नों के बने रमणीय सिंहासन पर उन्होंने राधा को बैठाया ॥५३॥ आगे से रत्नमाला ने राधा के गले में रत्नों की माला पहनायी। दाहिने हाथ में सुन्दर क्रीड़ा-कमल दिया ॥५४॥ पद्ममुखी ने उनके दोनों

ददौ पद्ममुखी पादपद्मयुग्मेऽप्यलक्तकम् । प्रददौ सुन्दरी गोपी सिन्दूरं सुन्दरं वरम् ॥५५॥
चन्दनेन समायुक्तं सीमन्ताधः स्थलोज्ज्वलम् । सुचारुकबरीं रम्यां चकार मालती सती ॥५६॥
मनोहरां मुनीनां च मालतीमाल्यभूषिताम् । कस्तूरीकुङ्कुमायुक्तं च चारुचन्दनपत्रकम् ॥५७॥
स्तनयुग्मे सुकठिने चकार चन्दना सती । चारुचम्पकपुष्पाणां मालां गन्धमनोहराम् ॥५८॥
मालावती ददौ तस्यै प्रफुल्लां नवमल्लिकाम् । रतीषु रसिका गोपी रत्नभूषणभूषिताम् ॥५९॥
तां चकारातिरसिकां वरां रतिरसोत्सुकाम् । शरत्पद्मदलाभं च लोचनं कज्जलोज्ज्वलम् ॥६०॥
कृत्वा ददौ सुललितं वस्त्रं च ललिता सती । महेन्द्रेण प्रदत्तं च पारिजातप्रसूनकम् ॥६१॥
सुगन्धियुक्तं तस्याश्च पारिजातं करे ददौ । सुशीलं मधुरोक्तं च भर्तुः पार्श्वे यथोचितम् ॥६२॥
शिक्षां चकार नीतिं च सुशीला गोपिका सती । स्त्रीणां च षोडशकलां विपत्तौ विस्मृतां तयोः ॥६३॥
स्मरणं कारयामास राधामाता कलावती । शृङ्गारविषयोक्तं च वचनं च सुधोपमम् ॥६४॥
स्मरणं कारयामास भगिनी च सुधामुखी । कमलानां चम्पकानां दले चन्दनचर्चिते ॥६५॥
चकार रतितल्पं च कमला चाऽऽशु कोमलम् । चारुचम्पकपुष्पं च कृष्णार्थं पुटकस्थितम् ॥६६॥
चकार चन्दनाक्तं च स्वयं च पार्वती सती । पुष्पं केलिकदम्बानां स्तवकं च मनोहरम् ॥६७॥
कदम्बमालां कृष्णार्थं विद्यमानां चकार सा । ताम्बूलं च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम् ॥६८॥

---

चरणकमलों में आलता लगाया । सुन्दरी गोपी ने सुन्दर एवं श्रेष्ठ सिन्दूर दिया ॥५५॥ माँग से नीचे के स्थल को चन्दन से उज्ज्वल बना दिया । सती मालती ने सुन्दर एवं भव्य जूड़े की रचना की ॥५६॥ मालती की माला से विभूषित वह जूड़ा मुनियों के भी मन का हरण करनेवाला था । सती चन्दना ने अत्यन्त कठोर दोनों स्तनों पर कस्तूरी और कुंकुम से मिश्रित सुन्दर चन्दन-पत्रक की रचना की । मालावती ने सुन्दर चम्पक-पुष्पों की सुगन्धित एवं मनोहर माला तथा खिली हुई नवमल्लिका दी । रतियों में रसिका गोपी ने राधा को रत्नों के आभूषणों से विभूषित, रतिरस के लिए उत्सुक और उच्चकोटि की अत्यन्त रसिक बना दिया । सती ललिता ने शरद्ऋतु के कमल-दल के समान नेत्रों में काजल लगाकर अत्यन्त सुन्दर वस्त्र दिया और इन्द्र का दिया हुआ पारिजात का सुगन्धित पुष्प उनके हाथ में दिया । सती सुशीला गोपी ने स्वामी के पास किस प्रकार सुशील बनकर मधुरालाप करना चाहिए—इस नीति की शिक्षा दी । राधा की माता कलावती ने विपत्तिकाल में विस्मृत हुई स्त्रियों की सोलह कलाओं का स्मरण कराया । बहिन सुधामुखी ने शृंगार-विषय-सम्बन्धी अमृतोपम वचन की ओर ध्यान आकर्षित किया । कमला ने शीघ्र ही कमल और चम्पा के चन्दनचर्चित पत्ते पर कोमल रतिशय्या सजायी । स्वयं सती चम्पावती ने चम्पा के सुन्दर पुष्प को चन्दन से अनुलिप्त करके श्रीकृष्ण के लिए दोनों में सजाकर रखा । फिर उसने श्रीकृष्ण की प्रसन्नता के लिए केलि-कदम्बों का पुष्प, मनोहर स्तवक (गुलदस्ता) और कदम्ब-पुष्पों की माला तैयार की । कृष्णप्रिया ने श्रीकृष्ण के लिए कर्पूर आदि

कृष्णप्रिया च कृष्णार्यं चकार वासितं जलम् । एतस्मिन्नन्तरे सर्वमाश्रमं सजलस्थलम् ॥६९॥
साक्षाद्गोरोचनाभं च ददृशुर्मुनयः सुराः । ते सर्वे विस्मयं गत्वा पप्रच्छुः कृष्णमीश्वरम् ॥७०॥
उवाच भगवांस्तांश्च सर्वज्ञः सर्वकारण ॥७१॥

## श्रीभगवानुवाच

अभिशप्ता च श्रीदाम्ना भ्रष्टशोभा राधिका । सर्वं ज्ञानं विसस्मार मद्विच्छेदज्वरातुरा ॥७२॥
विमुक्ते वर्षशतके ज्ञानं सस्मार सा सती । सिद्धाश्रमं च पीताभं रासेश्वर्याश्च तेजसा ॥७३॥
परमाह्लादकं तेजश्चन्द्रकोटिसमप्रभम् । सुखदृश्यं च सुखदं चक्षुषां प्राणिनामपि ॥७४॥
तच्छ्रुत्वा परमाश्चर्यं मुनयो मनवस्तथा । देव्यश्च सर्वदेवास्ते ब्रह्मेशानादयस्तथा ॥७५॥
जवेन गत्वा तत्स्थानं भक्तिनम्रात्मकंधरा । सर्वे जनास्ते ददृशुस्त्रैलोक्यस्थाश्च राधिकाम् ॥७६॥
श्वेतचम्पकवर्णाभामतुलां सुमनोहराम् । मोहिनीं मानसानां च मुनीनामूर्ध्वरेतसाम् ॥७७॥
सुकेशीं सुन्दरीं श्यामां न्यग्रोधपरिमण्डलाम् । नितम्बकठिनश्रोणीं स्तनयुग्मोन्नताननाम् ॥७८॥
कोटीन्दुनिन्दितास्यां तां सस्मितां सुदतीं सतीम् । कज्जलोज्ज्वलरूपां च शरत्कमललोचनाम् ॥७९॥
महालक्ष्मीं बीजरूपां परमाद्यां सनातनीम् । परमात्मस्वरूपस्य प्राणाधिष्ठातृदेवताम् ॥८०॥
स्तुतां च पूजितां चैव परां च परमात्मने । ब्रह्मस्वरूपां निर्लिप्तां नित्यरूपां च निर्गुणाम् ॥८१॥

---

से सुवासित, श्रेष्ठ एवं रुचिर पान तथा सुगन्धित जल उपस्थित किया । इसी समय देवताओं तथा मुनियों ने देखा कि जल-स्थल सहित सारा आश्रम गोरोचन के समान उद्भासित हो रहा है । उन सबों ने विस्मित होकर भगवान् कृष्ण से पूछा । सर्वज्ञ एवं सबके कारणस्वरूप भगवान् ने उनसे कहा ॥५७-७१॥

**श्रीभगवान् बोले**—श्रीदामा के शाप से राधिका हतश्री हो गयी थी । मेरे वियोग के ताप से व्याकुल होकर वह सारा ज्ञान खो बैठी ॥७२॥ सौ वर्ष बीत जाने पर उस सती को ज्ञान की स्मृति हुई । रासेश्वरी (राधा) के तेज से यह सिद्धाश्रम पीत वर्ण का हो गया है । करोड़ों चन्द्रमा के समान इनका परम आह्लादक तेज सुखपूर्वक देखने योग्य तथा प्राणियों के नेत्रों को सुख देनेवाला है ॥७३-७४॥ यह सुनकर मुनियों, मनुओं, देवियों तथा ब्रह्मा, शम्भु आदि देवों को बड़ा आश्चर्य हुआ ॥७५॥ उन्होंने शीघ्रता से उस स्थान पर पहुँचकर भक्ति से कन्धे को झुका लिया । तीनों लोकों में वास करनेवाले सभी लोगों ने राधिका के दर्शन किये ॥७६॥ उनके शरीर की कान्ति श्वेत चम्पा के समान परम मनोहर एवं अनुपम है, जो ऊर्ध्वरेता मुनियों के मनों को भी मोह में डाल देती है; वे सुन्दर केशोंवाली, सुन्दरी, षोडशवर्षीया, कठिन स्तनों, भारी नितम्ब और पतली कमर-वाली तथा उन्नत कुचोंवाली हैं; उनका मुख करोड़ों चन्द्रमा को तिरस्कृत करनेवाला है; वे सदा मुसकराती रहती हैं; उनके दाँत बड़े सुन्दर हैं, उनके शरत्कालीन कमल के समान विशाल नेत्र कज्जल से सुशोभित रहते हैं, वे महालक्ष्मी, बीजरूपा, परमा, आद्या, सनातनी और परमात्मस्वरूप श्रीकृष्ण के प्राणों की अधिष्ठात्री

विश्वानुरोधात्प्रकृतिं भक्तानुग्रहविग्रहाम् । सत्यस्वरूपां शुद्धां च पूतां पतितपावनीम् ॥८२॥
सुतीर्थपूतां सत्कीर्तिं विधात्रीं वेधसामपि । महत्प्रियां च महतीं महाविष्णोश्च मातरम् ॥८३॥
रासेश्वरेश्वरीं रम्यां रसिकां रसिकेश्वरीम् । वह्निशुद्धांशुकाधामां स्वेच्छारूपां शुभालयाम् ॥८४॥
गोपीभिः सप्तभिः शश्वत्सेवितां श्वेतचामरैः । चतसृभिः प्रियालीभिः पादपद्मोपसेविताम् ॥८५॥
अमूल्यरत्ननिर्माणभूषणोच्चैर्विभूषिताम् । चारुकुण्डलयुग्मेन श्रुतिगण्डस्थलोज्ज्वलाम् ॥८६॥
सुनासां गजमुक्ताढ्यां खगेन्द्रचञ्चुनिन्दिताम् । कुङ्कुमालक्तकस्तूरीस्निग्धचन्दनर्चिताम् ॥८७॥
दधानां सुकपोलं च कोमलाङ्गीं सुकामुकीम् । गजेन्द्रगामिनीं रामां कमनीयां सुकामिनीम् ॥८८॥
कामास्त्रजयरूपां च कामकाम्यालयां वराम् । क्रीडाकमलमम्लानं पारिजातप्रसूनकम् ॥८९॥
अमूल्यरत्ननिर्माणं दधानां दर्पणोज्ज्वलम् । नानारत्नविचित्राढ्यरत्नसिंहासनस्थिताम् ॥९०॥
पद्मैः पद्मार्चितं पादपद्मं च मङ्गलालयम् । हृत्पद्मे ध्यायमानं च कृष्णस्य परमात्मनः ॥९१॥
कर्मणा मनसा वाचा स्वप्ने जागरणेऽपि च । तत्प्रीतिं प्रेम सौभाग्यं स्मरन्तीं नित्यनूतनम् ॥९२॥
भावानुरक्तसंसक्तां शुद्धभक्तां पतिव्रताम् । धन्यां मान्यां गौरवर्णां शश्वद्वक्षःस्थलस्थिताम् ॥९३॥
प्रियासु प्रियभक्तेषु सुप्रियां प्रियवादिनीम् । कृष्णवामाङ्गसंभूतामभेदां गुणरूपयोः ॥९४॥

---

देवता हैं; परमात्मा की प्राप्ति के लिए उनकी स्तुति-पूजा की जाती है; वे परा, ब्रह्मस्वरूपा, निर्लिप्ता, नित्यरूपा, निर्गुणा, विश्व के अनुरोध से प्रकृति, भक्तानुग्रहमूर्ति, सत्यस्वरूपा, शुद्ध, पवित्र, पतितपावनी, उत्तम तीर्थों को पवित्र करनेवाली, सत्कीर्तिसम्पन्ना, ब्रह्मा की भी विधात्री, महाप्रिया, महती, महाविष्णु की माता, रासेश्वर की स्वामिनी, रमणीया, रसिका, रसिकेश्वरी, अग्निशुद्ध वस्त्र धारण करनेवाली, स्वेच्छारूपा और मंगल की आलय हैं; सात गोपियाँ श्वेत चँवर डुलाकर उनकी निरन्तर सेवा करती रहती हैं, चार प्रिय सखियाँ उनके चरण-कमल की सेवा में तत्पर रहती हैं; अमूल्य रत्नों के बने हुए आभूषण उनकी शोभा बढ़ा रहे हैं, दोनों मनोहर कुण्डलों से उनके कर्ण और कपोल उद्भासित हो रहे हैं और उनकी सुन्दर नासिका में गजमुक्ता लटक रही है, जो गरुड़ की चोंच का उपहास करनेवाली है; उनका शरीर कुंकुम-कस्तूरीमिश्रित सुस्निग्ध चन्दन से चर्चित है, उनके कपोल सुन्दर और अंग कोमल हैं; वे कामुकी, गजराज की-सी चालवाली, कमनीया एवं सुन्दरी नायिका कामदेव के अस्त्र की विजयस्वरूपा, काम की अभिलषणीय आलयस्वरूपा तथा श्रेष्ठ हैं; उनके हाथ में प्रफुल्ल क्रीडाकमल, पारिजात का पुष्प और अमूल्य रत्न-जटित स्वच्छ दर्पण शोभा पाते हैं, वे नाना प्रकार के रत्नों की विचित्रता से युक्त रत्न-सिंहासन पर विराजमान होती हैं, वे परमात्मा श्रीकृष्ण के पद्मा द्वारा समर्चित मंगलरूप चरण-कमल का अपने हृदय-कमल में ध्यान करती हैं, वे प्रगाढभावानुरक्त, शुद्धभक्त, पतिव्रता, धन्या, मान्या, गौरवर्णा, निरन्तर श्रीकृष्ण के वक्षःस्थल पर वास करनेवाली, प्रियाओं और प्रिय भक्तों में परम प्रिय, प्रियवादिनी, श्रीकृष्ण के वामांग से आविर्भूत, गुण और रूप में अभिन्न, गोलोक में वास करनेवाली,

गोलोकवासिनीं देवदेवीं सर्वोपरिस्थिताम् । वृषभानसुताख्यां तां पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥९५॥
गोपीश्वरीं गुप्तरूपां सिद्धिदां सिद्धिरूपिणीम् । ध्यानासाध्यां दुराराध्यां वन्दे सद्भक्त-वन्दिताम् ॥९६॥
ध्याने ध्यानेन राधाया ध्यायन्ते ध्यानतत्पराः । इहैव जीवन्मुक्तास्ते परत्र कृष्णपार्षदाः ॥९७॥
दृष्ट्वा ब्रह्मा च सर्वादौ तुष्टाव परमेश्वरीम् । स्वयं विधाता जगतां मातरं वेधसामपि ॥९८॥

## ब्रह्मोवाच

षष्टिवर्षसहस्राणि दिव्यानि परमेश्वरि । पुष्करे च तपस्तप्तं पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥९९॥
त्वत्पादपद्ममधुरमधुलुब्धेन चेतसा । मधुव्रतेन [1]लोलेन प्रेरितेन मया सति ॥१००॥
तथाऽपि न मया लब्धं त्वत्पादपद्ममीप्सितम् । न दृष्टमपि स्वप्नेऽपि जाता वागशरीरिणी ॥१०१॥
वाराहे भारते वर्षे पुण्ये वृन्दावने वने । सिद्धाश्रमे गणेशस्य पादपद्मं च द्रक्ष्यसि ॥१०२॥
राधामाधवयोर्दास्यं कुतो विषयिणस्तव । निवर्तस्व महाभाग परमेतत्सुदुर्लभम् ॥१०३॥
इति श्रुत्वा निवृत्तोऽहं तपसे भग्नमानसः । परिपूर्णं तदधुना वाञ्छितं तपसः फलम् ॥१०४॥

---

देवाधिदेवी, सबके ऊपर अवस्थित, गोपीश्वरी, गुप्तिरूपा, सिद्धिदा, सिद्धिरूपिणी, ध्यान द्वारा असाध्य, दुराराध्य, सद्भक्तों द्वारा वन्दित और पुण्यक्षेत्र भारत में वृषभाननन्दिनी के रूप में प्रकट हुई हैं; उन राधा की मैं वन्दना करता हूँ ॥७७-९६॥

जो ध्यानपरायण मानव समाधि-अवस्था में ध्याननिष्ठ होकर राधा का ध्यान करते हैं वे इस लोक में तो जीवन्मुक्त होते ही हैं, परलोक में श्रीकृष्ण के पार्षद होते हैं। तदुपरान्त लोकों के विधाता स्वयं ब्रह्मा ने ब्रह्माओं की भी जननी परमेश्वरी राधा को देखकर सर्वप्रथम स्तुति करना प्रारम्भ किया ॥९७-९८॥

**ब्रह्मा बोले**—हे परमेश्वरी ! मेरा चित्त तुम्हारे चरण-कमल के मधुर मधु में लुब्ध हो गया था; अतः चंचल मधुव्रत से प्रेरित होने के कारण मैंने देव-वर्ष के हिसाब से साठ हजार वर्षों तक पुण्यक्षेत्र भारत के पुष्कर तीर्थ में तपस्या की, तो भी तुम्हारा अभीष्ट चरण-कमल मुझे प्राप्त नहीं हुआ। यहाँ तक कि मुझे स्वप्न में भी उसका दर्शन नहीं हुआ। तब उस समय आकाशवाणी हुई कि वाराह कल्प में पवित्र भारतवर्ष के वृन्दावन नामक वन में स्थित सिद्धाश्रम में तुम गणेश के चरण-कमल को देखोगे ॥९९-१०२॥ तुम्हारे जैसे विषयी पुरुष को राधा-माधव की दासता कैसे मिल सकती है ? महाभाग ! तुम निवृत्त हो जाओ। यह परम दुर्लभ है ॥१०३॥ यह सुनकर तपस्या से टूटे हुए मनवाला मैं विरत हो गया। किन्तु तपस्या के फल रूप में यह मनोरथ आज परिपूर्ण हुआ है ॥१०४॥

---

१ ख. लोभेन ।

**महादेव उवाच**

पद्मैः पद्मार्चितं पादपद्मं यस्य सुदुर्लभम् । ध्यायन्ते ध्याननिष्ठाश्च शश्वद्ब्रह्मादयः सुराः ॥१०५॥
मुनयो मनवश्चैव सिद्धाः सन्तश्च योगिनः । द्रष्टुं नैव क्षमाः स्वप्ने भवती तस्य वक्षसि ॥१०६॥

**अनन्त उवाच**

वेदाश्च वेदमाता च पुराणानि च सुव्रते । अहं सरस्वती सन्तः स्तोतुं नालं च संततम् ॥१०७॥
अस्माकं स्तवने यस्य भ्रूभङ्गं च सुदुर्लभम् । तवैव भर्त्सने भीताश्चावयोरन्तरं हरेः ॥१०८॥
एवं देवाश्च देव्यश्चाप्यन्ये ये च समागताः । प्रणतास्तुष्टुवुः सर्वे मुनिमन्वादयस्तथा ॥१०९॥
लज्जया नम्रवक्त्राश्च रुक्मिण्याद्याश्च योषितः । मलीमसं च चक्रुस्ताः श्वासेन रत्नदर्पणम् ॥११०॥
मृततुल्या सत्यभामा निराहारा कृशोदरी । मनसोऽप्यभिमानं च सर्वं तत्याज नारद ॥१११॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० सिद्धाश्रमतीर्थयात्राप्रसङ्गे गणेशपूजनं ब्रह्मेशशेषादिकृतराधिकास्तोत्रं नाम चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२४॥

•

---

**महादेव बोले**—लक्ष्मी द्वारा कमलों से पूजित जिनका चरण-कमल अत्यन्त दुर्लभ है। ब्रह्मा आदि देवता, मुनिगण, मनु, सिद्ध, सन्त और योगी लोग ध्याननिष्ठ होकर जिनका निरन्तर ध्यान करते रहते हैं, किन्तु स्वप्न मे भी दर्शन करने में समर्थ नहीं होते हैं, उनके वक्षःस्थल पर आप निवास करती हैं ॥१०५-१०६॥

**अनन्त बोले**—हे उत्तम व्रत करनेवाली ! वेद, वेदमाता (सावित्री), पुराण, मैं, सरस्वती और सन्तगण तुम्हारी सतत स्तुति करने में समर्थ नहीं हैं ॥१०७॥ हमारी स्तुति करने पर जिन हरि की अत्यन्त दुर्लभ भौंह टेढ़ी हो जाती है, वे तुम्हारी ही भर्त्सना से भयभीत हैं, यही हम दोनों में अन्तर है ॥१०८॥ इस प्रकार देवता, देवियाँ, मुनि तथा मनु आदि जो दूसरे लोग आये हुए थे, उन सबने प्रणामपूर्वक स्तुति की ॥१०९॥ (यह देखकर) रुक्मिणी आदि महिलाओं का मुख लज्जा से झुक गया। उन्होंने (अपनी लम्बी) साँस से रत्नदर्पण को मलिन कर दिया ॥११०॥ नारद ! भोजनरहित, क्षीण कटिवाली सत्यभामा ने तो मृतक के समान होकर मन के अभिमान को भी त्याग दिया ॥१११॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद-नारायण के संवाद में सिद्धाश्रमतीर्थ के यात्राप्रसंग में गणेश-पूजन तथा ब्रह्मा, शिव आदि के द्वारा की गयी राधा की स्तुति नामक एक सौ चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१२४॥

•

# अथ पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

### नारद उवाच

गणेशपूजनादेव राधास्तोत्रात्परं विभो। बभूव किं रहस्यं वा तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥१॥

### नारायण उवाच

गणेशपूजने तीर्थे ये देवाश्च समाययुः। मुनयश्चापि योगीन्द्रा वसन्तो वटमूलके ॥२॥
वसुदेवो देवकी च परमादरपूर्वकम्। पप्रच्छ शंभुं ब्राह्मणमनन्तं मुनिपुंगवान् ॥३॥
भवेद्भवाब्धितरणमावयोरुत्तमा गतिः। शीघ्रं ब्रूत महाभागा दीनयोर्दीनबान्धवाः ॥४॥
भवाब्धितरणे तर्या तत्र यूयं च नाविकाः। न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ॥५॥
यज्ञरूपाणि पुण्यानि व्रतान्यनशनानि च। तपांसि नानादानानि विप्रदेवार्चनानि च ॥६॥
चिरं पुनन्ति सर्वाणि दर्शनादेव वैष्णवाः। सतां च विष्णुभक्तानां रजसां स्पर्शमात्रतः ॥७॥
पूतानां पादपद्मानां सद्यः पूता वसुंधरा। तीर्थानि च पवित्राणि समुद्राः पर्वतास्तथा ॥८॥

---

# अध्याय १२५

## वसुदेव द्वारा राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान

**नारद बोले**—हे प्रभो ! गणेश-पूजन और राधा-स्तोत्र के बाद वहाँ कौन-सी रहस्यमयी घटना घटी, वह मुझे बताइये ॥१॥

**नारायण बोले**—गणेशपूजन-तीर्थ में जो देवता, मुनि और योगीन्द्र आये हुए थे, वे सभी वटवृक्ष के नीचे निवास कर रहे थे ॥२॥ उनमें से शिव, ब्रह्मा, शेषनाग और श्रेष्ठ मुनियों से वसुदेव और देवकी ने परम आदरपूर्वक पूछा—'हे महाभाग ! आप लोग दीनों के बन्धु हैं, इसलिए हम दोनों दीनों की उत्तम गति कैसे होगी ? और संसार-सागर से पार कैसे उतरेंगे ? यह शीघ्र बताइये ॥३-४॥ आप लोग भवसागर से पार करनेवाली नौका के नाविक हैं। क्योंकि तीर्थ जलमय ही नहीं होते हैं और देवता मृत्तिका तथा शिलामय ही नहीं होते (अपितु वे शक्ति-सम्पन्न होते हैं) ॥५॥ यज्ञ रूप पुण्य, व्रत, उपवास, तप, अनेकविध दान, विप्रों और देवताओं की अर्चनाएँ—ये सब चीजें चिरकाल में कर्ता को पावन बनाती हैं, किन्तु वैष्णव दर्शन से ही पवित्र कर देते हैं। विष्णु भक्त सन्तों के पावन चरणकमलों की धूलि के स्पर्शमात्र से पृथ्वी तत्क्षण पवित्र हो जाती है और तीर्थ, समुद्र तथा पर्वत भी पवित्र हो जाते हैं ॥६-८॥ देवगण भी पापरूपी ईंधन के लिए अग्निरूप वैष्णव-दर्शन की

सुरा दर्शनमिच्छन्ति पातकेन्धनपावकम् । सोऽज्ञानि नैव बुबुधे ज्ञानं च ज्ञानिना सह ॥९॥
परमं स्वादुरूपं च दधिदुग्धरसं यथा । यथा कृष्णस्य तातोऽहं सङ्गी सुचिरमेव च ॥१०॥
तथैव देवकी माता ज्ञानिनां च गुरोर्गुरोः । वसुदेववचः श्रुत्वा प्रहस्य शंकरः स्वयम् ॥
चतुर्णामपि वेदानामुवाच जनको गुरुः ॥११॥

## महादेव उवाच

संनिकर्षो ज्ञानिनां चाप्यनादरणकारणम् । यान्ति गङ्गाम्भसा पूतास्तीर्थान्यन्यानि सिद्धये ॥१२॥
वासुदेवस्य तातोऽयं वसुदेवश्च पण्डितः । ज्ञानिनः कश्यपस्यांशो वसोस्तातस्य चाऽऽत्मनः ॥१३॥
पृच्छति ज्ञानमस्मांश्च कृष्णाज्ञान्पुत्रबुद्धितः । अहो दुर्गा महामाया ज्ञानिनामपि मोहिनी ॥१४॥
विष्णुमाया दुराराध्या न साध्या जगतामपि । वयं च मोहिताः शश्वद्वेदानां जनकस्तथा ॥१५॥
ब्रह्मा कृष्णं परीक्षेत मोहितस्तस्य मायया । ध्यायते यत्पदाम्भोजं तपसा जीवनावधि ॥१६॥
इन्द्रेषु दशलक्षेष्वप्यधिकाष्टशतेषु च । पातेषु ब्रह्मणः पाते निमेषो माधवस्य च ॥१७॥
सह तेनेन्द्रयुद्धं[1] च पारिजातस्य हेतुना । पारिजाततरुं दत्त्वा मया शक्रश्च रक्षितः ॥१८॥

---

कामना करते हैं। जो ज्ञानी के साथ रहकर ज्ञान को नहीं समझ सका, वह अज्ञानी है। ज्ञान तो वैसा ही परम स्वादिष्ट होता है जैसा दही-दूध का रस। हे ज्ञानियों के गुरु के भी गुरु! जैसे मैं श्रीकृष्ण का पिता और दीर्घकाल से संगी हूँ उसी प्रकार देवकी भी उनकी माता है। वसुदेव की बात सुनकर स्वयं शंकर, जो चारों वेदों के भी जनक एवं गुरु हैं, अट्टहास करके बोले ॥९-११॥

**महादेव बोले**—ज्ञानियों के समीप रहना भी उनके अनादर का कारण होता है। जैसे गंगाजल से पवित्र हुए लोग भी सिद्धि के लिए अन्य तीर्थों में जाते हैं ॥१२॥ ये वासुदेव के पिता वसुदेव पण्डित हैं और अपने पिता वसुरूप ज्ञानी कश्यप के अंश से उत्पन्न हुए हैं ॥१३॥ श्रीकृष्ण में पुत्रबुद्धि होने से ये कृष्ण को न जाननेवाले हमसे ज्ञान पूछते हैं। अहो! विष्णु की माया दुर्गा, महामाया ज्ञानियों को भी मोह में डालनेवाली है। विष्णु की माया दुःसेव्य तथा तीनों लोक के लिए भी असाध्य है। हम लोग निरन्तर उससे मोहित रहते हैं, नहीं तो उनकी माया से मोहित होकर ब्रह्मा, जो वेदों के भी जनक हैं तथा जीवनपर्यन्त तपस्या के द्वारा जिनके चरण-कमल का ध्यान करते रहते हैं ऐसे कृष्ण की परीक्षा करते? ॥१४-१६॥ दस लाख आठ सौ इन्द्रों के पतन हो जाने पर जब ब्रह्मा का पतन होता है तब माधव का एक निमेष (पलक मारने का समय) होता है ॥१७॥ उन्हीं (कृष्ण) के साथ पारिजात के लिए इन्द्र का युद्ध हुआ था। मैंने पारिजात वृक्ष देकर इन्द्र की रक्षा की थी ॥१८॥ जो ज्ञान या विषय सम्बन्धी तत्त्व वाणी

---

१ ख. देवेन्द्र°।

यज्ज्ञानं न गिरामेव तत्त्वं वा विषयात्मकम् । नहि किंचित्तदज्ञानां' तस्माद्ध्यानं सदैव हि ॥१९॥
प्राणिनामात्मनो ज्ञानमस्माकं ज्ञानमस्ति च । तदूर्ध्वं तत्समं नैव कृष्णं पृच्छ शुभाशुभम् ॥२०॥
ब्रह्मणश्च चतुर्यामं कल्पं कल्पविदो विदुः । सप्तकल्पान्तजीवी च मार्कण्डेयो महामुनिः ॥२१॥
अष्टानवतिशक्रेषु पातेषु पतनं मुनेः । 'ततः प्राप्तं हरेर्दास्यं मुनिना तपसः फलात् ॥२२॥
प्रलये ब्रह्मणः पाते पतनं लोमशस्य च । दिक्पालानां ग्रहाणां च तदायुश्चिरजीविनाम् ॥२३॥
अन्येषामपि देवानां मुनीनामूर्ध्वरेतसाम् । तदेवाऽऽयुश्च रुद्राणां मां च मृत्युंजयं विना ॥२४॥
प्रलये च विधेः पाते शिवलोकेऽप्यहं शिवः । ब्रह्मभालोद्भवः शंभुः सर्वादिः' सर्गभाषणः ॥२५॥
कृष्णवामाङ्गसंभूता यथा राधा तथैव च । तथैव दुर्गा लक्ष्मीश्च सावित्री च सरस्वती ॥२६॥
आदित्योऽप्यदितेः पुत्रः कायव्यूहेन द्वादश । तथैव च महेन्द्रश्च कायव्यूहाच्चतुर्दश ॥२७॥
तथैव वसवश्चाष्टौ रुद्राश्चैकादशैव ते । मनुपाते चेन्द्रपातो विषयात्पतनं भवेत् ॥२८॥
समाययौ च सर्वेषां निधनं प्रलयेऽपि च । प्रलये दर्शयामास ब्रह्माण्डं च जलप्लुतम् ॥२९॥
ब्रह्माणं च स्वलोकं च स्वात्मानं शक्तिभिश्च माम् । सर्वेषां मूलरूपश्च सर्वेशः कृष्ण एव च ॥३०॥

---

से परे है वह अज्ञ जनों को कुछ भी पल्ला नहीं पड़ता है, इसलिए सदैव ध्यान करना ही उचित है ॥१९॥ प्राणियों के आत्मा का ज्ञान तो मुझे है, किन्तु उससे ऊपर और उसके समान ज्ञान नहीं है । इसलिए शुभ या अशुभ के विषय में कृष्ण से पूछिये ॥२०॥ ब्रह्मा के चार पहर को कल्पवेत्ताओं ने एक कल्प माना है । महामुनि मार्कण्डेय सात कल्पों तक जीवित रहे ॥२१॥ अट्ठानवे इन्द्रों का पतन हो जाने पर मार्कण्डेय मुनि का पतन हुआ था । तत्पश्चात् मुनि ने तपस्या के फल से कृष्ण की दास्य-भक्ति प्राप्त की ॥२२॥ प्रलयकाल में ब्रह्मा का पतन होने पर लोमश ऋषि का भी पतन हो जाता है, फिर दिक्पालों तथा ग्रहों का पतन हो जाता है । चिरजीवियों की आयु भी उतनी ही होती है ॥२३॥ अन्य देवताओं की, ऊर्ध्वरेता मुनियों की और मुझ मृत्युञ्जय को छोड़कर रुद्रों की भी यही आयु है ॥२४॥ प्रलयकाल में ब्रह्मा का पतन हो जाने पर शिवलोक में मैं शिव भी ब्रह्मा के ललाट से उत्पन्न होता हूँ । शिव सबका आदि है—यह गर्ग का वचन है ॥२५॥ कृष्ण के वामभाग से जिस प्रकार राधा हुई उसी प्रकार दुर्गा, लक्ष्मी, सावित्री और सरस्वती भी हुई ॥२६॥ अदिति के पुत्र आदित्य शरीर-रचना-भेद से बारह हुए। उसी प्रकार महेन्द्र भी शरीर-रचना-भेद से चौदह हुए ॥२७॥ उसी तरह वसु आठ और रुद्र ग्यारह हुए । मनु का पतन होने पर इन्द्र का पतन हो जाता है । इनका विषय से पतन होता है ॥२८॥ प्रलय में सबका निधन हो जाता है । प्रलय में (भगवान् कृष्ण ने) ब्रह्माण्ड को, ब्रह्मा को, अपने लोक को, शक्तियों के साथ अपने आपको और मुझे जल से आप्लावित करके दिखाया । कृष्ण ही सबके मूलरूप तथा सबके प्रभु

---

१ 'ज्ञानात्साध्यानां च । २ क. तपः । ३ क. 'दिगंभंभाषणम् ।

भज पुत्रं राजसूये यज्ञेशं यज्ञकारणम् । विधिवद्दक्षिणां दत्त्वा भवाब्धिं तर यादव ॥३१॥
मुक्तिस्ते नास्ति निर्वाणा विषयी कश्यपो भवान् । न ते दास्यं भक्तधनमदितिर्देवकी तथा ॥३२॥
व्रज स्वर्गं भोगबीजं स्वस्थानममरालयम् । शिवस्य वचनं श्रुत्वा संयतश्च शुभक्षणे ॥३३॥
तत्र संभृतसंभारो राजसूयं चकार सः । वसुदेवस्य हव्यं च साक्षाच्च जगृहुः सुराः ॥३४॥
यत्र साक्षाच्च यज्ञेशो यज्ञोऽयं दक्षिणा सह । पूर्णाहुतिं दत्तवन्तं वसुदेवमुवाच सः ॥
सनत्कुमारो भगवान्वासुदेवाज्ञया मुने ॥३५॥

## सनत्कुमार उवाच

सर्वस्वं दक्षिणां देहि तूर्णं लक्ष्मीपतेः पितः । सार्थकं कुरु कर्मेदं वेदोक्तं वचनं शृणु ॥३६॥
दक्षिणां विप्रमुद्दिश्य तत्कालं चेन्न दीयते । मुहूर्ते तु व्यतीते सा दक्षिणा द्विगुणा भवेत् ॥३७॥
वासरे च बहिर्भूते भवेत्साऽपि चतुर्गुणा । त्रिरात्रे समतीते षड्गुणा दक्षिणा भवेत् ॥३८॥
पक्षान्ते तु शतगुणा मासान्ते तु चतुर्गुणा । षण्मासेऽप्यधिके न्यूने च साहस्रगुणा तथा ॥३९॥
वर्षान्ते सा लक्षगुणा ब्रह्मणोक्तं च यादव । उभौ च नरकं यांतः कर्मकर्तृपुरोहितौ ॥४०॥
वासुदेवश्च तच्छ्रुत्वा सर्वस्वमुत्ससर्ज सः । अधिकारांश्च साह्लादो वासुदेवाज्ञया तथा ॥४१॥

---

हैं ॥२९-३०॥ अतः हे यदुवंशी (वसुदेव) राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान करके उसमें अपने पुत्र श्रीकृष्ण की, जो यज्ञ के कारण यज्ञेश हैं, समर्चना कीजिये, फिर विधिपूर्वक दक्षिणा देकर भवसागर से पार हो जाइये ॥३१॥ आपको निर्वाणमोक्ष नहीं मिलेगा। आप विषयी कश्यप हैं। भक्त का जो धन है दास्य वह भी आपको नहीं मिलना है। उसी प्रकार देवकी अदिति हैं ॥३२॥ आप (देवकी समेत) भोग के बीजस्वरूप स्वर्ग जाइये, जो आपका अपना स्थान तथा देवालय है। शिव की बात सुनकर जितेन्द्रिय वसुदेव ने सामग्री जुटाकर शुभ मुहूर्त में राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान किया। उस यज्ञ में साक्षात् यज्ञेश और दक्षिणा सहित ये यज्ञ विद्यमान थे, अतः देवताओं ने साक्षात् प्रकट होकर वसुदेव के हव्य को ग्रहण किया। मुने ! तत्पश्चात् जब वसुदेव पूर्णाहुति दे चुके तब श्रीकृष्ण की आज्ञा से भगवान् सनत्कुमार ने वसुदेव से कहा ॥३३-३५॥

**सनत्कुमार बोले**—हे लक्ष्मीपति के पिता ! इसकी दक्षिणा में आप अपना सर्वस्व तुरन्त दे दीजिये और इस कर्म को सार्थक कीजिये। आप वेदोक्त वचन मुझसे सुनें। ३६॥ ब्राह्मण को उद्देश्य करके यदि तत्काल दक्षिणा नहीं दे दी जाती है तो दो घड़ी समय बीत जाने पर वह दक्षिणा दूनी हो जाती है ॥३७॥ एक दिन निकल जाने पर वह दक्षिणा चौगुनी हो जाती है। तीन रात बीत जाने पर दक्षिणा छह गुनी हो जाती है ॥३८॥ एक पक्ष बीत जाने पर सौ गुनी और एक मास बीत जाने पर चार सौ गुनी हो जाती है। छह मास या उससे अधिक या कम बीत जाने पर भी हजार गुनी हो जाती है ॥३९॥ हे यदुवंशी ! एक वर्ष बीत जाने पर लाख गुनी हो जाती है; तो कर्मकर्ता और पुरोहित दोनों नरक जाते हैं, ऐसा ब्रह्मा ने कहा है ॥४०॥ वह सुनकर वसुदेव ने कृष्ण की आज्ञा से आह्लाद के साथ अपना सर्वस्व और अधिकार भी दे डाला ॥४१॥ साक्षात् लक्ष्मी-

अमूल्यानां च रत्नानां दशकोटिमनुत्तमाम् । ददौ गर्गाय सर्वादौ स्वयं लक्ष्मीपतेः पिता ।।४२।।
शतकोटिं मणीन्द्राणां स्वर्णानां तच्चतुर्गुणम् । माणिक्यानां च मुक्तानां हीरकाणां तथैव च ।।४३।।
रौप्यं प्रवालं परमं स्वर्णपात्राणि यानि च । स्वस्त्रीणां स्ववधूनां चाप्यमूल्यरत्नभूषणम् ।।४४।।
श्वेतचामरलक्षं च लक्षं च रत्नदर्पणम् । कामधेनुगणं सर्वं शतकोटिं गजानपि ।।४५।।
शतकोटिं गजेन्द्राणामश्वानां तच्चतुर्गुणम् । यद्धनं यादवानां च राज्ञो राजानुमोदनात् ।।४६।।
ग्रामाणां शतलक्षं च ससस्यं फलितं तरुम् । धान्याचलानां लक्षं च शाल्यन्नानां तथैव च ।।४७।।
पायसं पिष्टकं चैव मिष्टान्नं च सुधोपमम् । स्वस्तिकानां तिलानां च रम्याणि लड्डुकानि च ।।४८।।
दध्नां मधूनां दुग्धानां गुडानां हविषामपि । कुल्यानां शतकं दत्त्वा परिहारं चकार सः ।।४९।।
सकर्पूरं च ताम्बूलं सुशीतं वासितं जलम् । सुगन्धि चन्दनं चैव पारिजातस्य मालिकाम् ।।५०।।
आसनानि च रम्याणि वह्निशुद्धांशुकानि च । रत्ननिर्माणतल्पानि पुष्पाणि च फलानि च ।।५१।।
प्रददौ ब्राह्मणेभ्यश्च प्रफुल्लवदनेक्षणः । देवांश्च भोजयामास ब्राह्मणानां मुखैः शुभैः ।।५२।।
देवाश्च मुनयो रात्रौ स्वरामाभिश्च रेमिरे । प्रभाते प्रययुः सर्वे श्रीकृष्णानुमतेन च ।।५३।।
यादवाः प्रययुः सर्वे द्वारकां कृष्णपालिताम् । अमूल्यरत्नपूर्णां च रुक्मिणीदर्शनेन च ।।५४।।

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना०
पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१२५।।

•

---

पति के पिता (वसुदेव ने पहले अमूल्य एवं सर्वोत्तम दस करोड़ रत्न गर्ग को दिये ।।४२।। सौ करोड़ सर्वोत्तम मणि, उसके चौगुने सुवर्ण, माणिक्य, मोती, हीरे, चाँदी, मूँगे, सुवर्ण-पात्र, अपनी स्त्रियों और बहुओं के अमूल्य रत्नाभूषण, एक लाख उजले चँवर, उतने ही रत्न-दर्पण, कामधेनुओं का समूह, सौ करोड़ हाथी, सौ करोड़ गजराज, चार सौ करोड़ घोड़े, यादवों का धन, राजा की स्वीकृति से राजा (उग्रसेन) का धन, धान्य समेत सौ लाख ग्राम, फले हुए वृक्ष, एक लाख धान्य-पर्वत और उतने ही कोमल अन्न के पर्वत, खीर, मीठी, अमृत-जैसी मिठाई, स्वस्तिक और तिल के सुन्दर लड्डू, दही, मधु दूध, गुड़ और घी की नहरें देकर वसुदेव ने प्रायश्चित्त किया ।।४३-४९।। फिर कर्पूर सहित ताम्बूल, शीतल और सुवासित जल, सुगन्धित चन्दन, पारिजातपुष्पों की माला, सुन्दर आसन, अग्नि के समान निर्मल वस्त्र, रत्नों के बने पुष्प और फल ब्राह्मणों को प्रसन्नतापूर्वक दिये)। ब्राह्मणों के पवित्र मुखों द्वारा देवताओं को भोजन कराया (अर्थात् ब्राह्मण-भोजन कराकर देवताओं को सन्तुष्ट किया) ।।५०-५२।। रात्रि में देवों और मुनियों ने अपनी-अपनी पत्नियों के साथ रमण किया और प्रातःकाल श्रीकृष्ण की आज्ञा से सब-के-सब चले गये ।।५३।। तब सभी यदुवंशी भी रुक्मिणी की दृष्टि पड़ने से अमूल्य रत्नों से परिपूर्ण एवं श्रीकृष्ण द्वारा सुरक्षित द्वारका को प्रस्थान कर गये ।।५४।।

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद और नारायण के संवाद में
एक सौ पचीसवाँ अध्याय समाप्त ।।१२५।।

•

# अथ षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

### नारायण उवाच

गणेशपूजनं कृत्वा माधवो यादवैः सह। देवैर्मुनिभिरन्यैश्च देवीभिः सह नारद ॥१॥
अंशेन देवो देवीभी रुक्मिण्याद्याभिरेव च। प्रययौ द्वारकां रम्यां तस्थौ सिद्धाश्रमे स्वयम् ॥२॥
कृत्वा सुप्रीतिसंभाषां सार्धं गोलोकवासिभिः। गोपैः सुहृद्भिर्नन्देन मात्रा गोप्या यशोदया ॥३॥
उवाच मातरं तातं सुनीतं च यथोचितम्। गोपांश्च गोकुलस्थांश्च बन्धुवर्गांश्च सांप्रतम् ॥४॥

### श्रीभगवानुवाच

गच्छ नन्दव्रजं नन्द हे तात प्राणवल्लभ। मातर्यशोदे त्वमपि परमार्ये[1] यशस्विनि ॥५॥
भुक्त्वा कालावशेषं च गच्छ गोलोकमुत्तमम्[2]। सालोक्यमुक्तिं दास्यामि सार्धं गोकुलवासिभिः ॥६॥
इत्युक्त्वा भगवान्कृष्णः पित्रोरनुमतेन च। जगाम राधिकास्थानं नन्दश्च गोकुलं तथा ॥७॥
ददर्श राधां रुचिरां मुक्ताहारां च सस्मिताम्। यथा द्वादशवर्षीयां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम् ॥८॥

---

# अध्याय १२६

## राधा और कृष्ण का पुनः मिलाप

**नारायण ने कहा**—हे नारद ! इस प्रकार श्रीकृष्ण ने यादवों, देवों मुनियों, अन्यान्य व्यक्तियों और देवियों के साथ गणेश-पूजन का कार्य सम्पन्न किया ॥१॥ अनन्तर वे अपने एक अंश से रुक्मिणी आदि देवियों के साथ रमणीय द्वारकापुरी को चले गये और स्वयं साक्षात् रूप से सिद्धाश्रम में ही ठहर गये ॥२॥ वहाँ वे गोलोकवासी गोप-सखाओं, नन्द तथा माता यशोदा गोपी के साथ प्रेमपूर्वक वार्तालाप करके पुनः माता, पिता, गोकुलवासी गोपों तथा बन्धुवर्गों से सामयिक यथोचित वचन बोले ॥३-४॥

**श्रीभगवान् बोले**—पिता जी, प्राणप्रिय नन्द जी, आप अपने व्रज को लौट जाइये। परम श्रेष्ठ यशस्विनी माता यशोदा ! तुम भी उत्तम गोकुल को जाओ और वहाँ आयु के शेष काल पर्यन्त भोग करके गोकुलवासियों के साथ सालोक्य मोक्ष प्राप्त करोगी ॥५-६॥ इतना कहकर भगवान् कृष्ण माता-पिता की आज्ञा से राधिका के स्थान को चले गये तथा नन्द जी गोकुल को प्रस्थित हुए ॥७॥ वहाँ पहुँचकर श्रीकृष्ण ने मोतियों के हार से युक्त मुसकराती हुई सुन्दरी राधा को देखा। उनका यौवन नित्य स्थिर रहनेवाला था, जिससे उनकी अवस्था बारह

---

१ क. 'मार्थे'। २ ख. गोकुलमु'।

रत्नोच्चे रासनस्थां च गोपीत्रिशतकोटिभिः। आवृतां वेत्रहस्ताभिः सस्मिताभिश्च सांप्रतम् ॥९॥
दृष्ट्वा च दूरतो राधा श्रीकृष्णं प्राणवल्लभम्। शिशुवेषं सुवेषं च सुन्दरेशं च सस्मितम् ॥१०॥
नवीनजलदश्यामं पीतकौशेयवाससम्। चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं रत्नभूषणभूषितम् ॥११॥
मयूरपिच्छचूडं च मालतीमाल्यशोभितम्। ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥१२॥
क्रीडाकमलमम्लानं धृतवन्तं मनोहरम्। मुरलीहस्तविन्यस्तं सुप्रशस्तं च दर्पणम् ॥१३॥
जवेन च समुत्थाय गोपीभिः सह सादरम्। प्रणम्य परया भक्त्या तुष्टाव परमेश्वरम् ॥१४॥

## राधिकोवाच

अद्य मे सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम्। यद्दृष्ट्वा मुखचन्द्रं ते सुस्निग्धं लोचनं मनः ॥१५॥
पञ्च प्राणाश्च स्निग्धाश्च परमात्मा च सुप्रियः। उभयोर्हर्षबीजं च दुर्लभं[1] बन्धुदर्शनम् ॥१६॥
शोकार्णवे निमग्नाऽहं प्रदग्धा विरहानलैः। त्वद्दृष्ट्याऽमृतवृष्ट्या च सुसिक्ताऽद्य सुशीतला ॥१७॥
शिवा शिवप्रदाऽहं च शिवबीजा त्वया सह। शि (श) व स्वरूपा निश्चेष्टाऽप्यदृश्या च त्वया विना ॥१८॥

---

वर्ष की थी ॥८॥ वे रत्न-निर्मित ऊँचे आसन पर विराजमान थीं। उस समय मुसकराती हुई असंख्य गोपियाँ हाथों में बेंत लिये उन्हें घेरे हुए थीं ॥९॥ राधा ने दूर से ही प्राणप्रिय श्रीकृष्ण को आते देखा। उनका परम सौन्दर्यशाली सुन्दर बालक वेश था। वे मन्द-मन्द मुसकरा रहे थे। उनके शरीर की कान्ति नवीन मेघ के समान श्याम थी; वे रेशमी पीताम्बर धारण किये हुए थे; उनका सर्वाङ्ग चन्दन से अनुलिप्त था; रत्नों के आभूषण उन्हें सुशोभित कर रहे थे; उनकी शिखा में मयूर-पिच्छ शोभा दे रहा था; वे मालती की माला से विभूषित थे; उनका प्रसन्नमुख मन्द हास्य की छटा बिखेर रहा था; वे साक्षात् भक्तानुग्रहमूर्ति थे तथा मनोहर प्रफुल्ल क्रीड़ा-कमल लिये हुए थे; उनके एक हाथ में मुरली और दूसरे हाथ में सुप्रशस्त दर्पण था। उन्हें देखकर राधा तुरन्त ही गोपियों के साथ उठ खड़ी हुई और परमभक्तिपूर्वक उन परमेश्वर को प्रणाम करके स्तुति करने लगीं ॥१०-१४॥

**राधा बोलीं**—आज मेरा जन्म सफल हो गया और जीवन सुजीवन (धन्य) हो गया, जो आपके मुखचन्द्र को देखा। मेरे नेत्र और मन परम प्रसन्न हो गये ॥१५॥ पाँचों प्राण स्नेहार्द्र और आत्मा हर्ष-विभोर हो गया। दुर्लभ बन्धु-दर्शन दोनों (द्रष्टा और दृश्य) के हर्ष का कारण होता है ॥१६॥ मैं शोक-रूपी सागर में डूब गयी थी और वियोगाग्नि से जल गयी थी, किन्तु आज आपकी पीयूषवर्षिणी दृष्टि से बिलकुल शीतल हो गयी हूँ ॥१७॥ मैं आपके साथ कल्याणमयी, कल्याण देनेवाली और कल्याण का कारण भी हूँ, किन्तु आपके

---

१ क च सुलभं।

त्वयि तिष्ठति देहे च देही श्रीमाञ्छुचिः स्वयम् । सर्वशक्तिस्वरूपा च शिवरूपा गते त्वयि ॥१९॥
स्त्रीपुंसोर्विरहो नाथ सामान्यश्च सुदारुणः । यान्त्येव शक्तिभिः प्राणा विच्छेदात्परमात्मनः ॥२०॥
इत्युक्त्वा राधिका देवी परमात्मानमीश्वरम् । स्वासने वासयामास कृत्वा पादार्चनं मुदा ॥२१॥
रत्नसिंहासने श्रीमानुवास राधया सह । गोपीभिः सप्तभिः शश्वत्सेवितः श्वेतचामरैः ॥२२॥
चन्दना सा ददौ गात्रे सुगन्धि चन्दनं हरेः । सस्मिता रत्नमाला सा रत्नमालां गले ददौ ॥२३॥
पद्मैः पद्मार्चिते पादपद्मे पद्मावती सती । अर्घ्यं ददौ सा सजलं दूर्वां पुष्पं च चन्दनम् ॥२४॥
मालती मालतीमाल्यं चूडायां च हरेर्ददौ । चम्पापुष्पस्य पुटकं ददौ चम्पावती सती ॥२५॥
पारिजाता च हरये पारिजातं ददौ मुदा । सकर्पूरं च ताम्बूलं वासितं शीतलं जलम् ॥२६॥
ददौ कदम्बमाला सा कदम्बमालिकां शुभाम् । क्रीडाकमलमम्लानममूल्यं रत्नदर्पणम् ॥२७॥
ददौ हस्ते हरेरेव कमला सा सुकोमला । वरुणेन पुरा दत्तं वस्त्रयुग्मं च सुन्दरम् ॥२८॥
साक्षाद्गोरोचनाभं च सुन्दरी हरये ददौ । मधुपात्रं मधुस्तस्मै मधुरं मधुपूर्णकम् ॥२९॥
सुधापूर्णं सुधापात्रं ददौ भक्त्या सुधामुखी । चकार पुष्पशय्यां च गोपी चन्दनचर्चिताम् ॥३०॥
अम्लानमालतीपुष्पमालाजालविभूषिताम् । रत्नेन्द्रसारनिर्माणमन्दिरे सुमनोहरे ॥३१॥

---

बिना शवस्वरूप, निश्चेष्ट तथा अदृश्य हो जाती हूँ ॥१८॥ आपके रहते देह में आत्मा शोभासम्पन्न और पवित्र रहता है तथा स्वयं मैं सर्वशक्तिस्वरूप बनी रहती हूँ किन्तु आपके चले जाने पर मैं शवरूप हो जाती हूँ ॥१९॥ नाथ ! स्त्री-पुरुष का सामान्य वियोग भी अत्यन्त दारुण होता है, किन्तु परमात्मा से वियोग होने पर शक्तियों समेत पाँचों प्राण ही चले जाते हैं ॥२०॥ यह कहकर राधा देवी ने परमात्मा प्रभु (श्रीकृष्ण) को अपने आसन पर बैठाया और हर्ष से उनके चरणों की पूजा की ॥२१॥ तदनन्तर श्रीमान् श्रीकृष्ण राधा के साथ रत्न-निर्मित सिंहासन पर विराजमान हुए। सात गोपियाँ उन पर श्वेत चामर डुलाने लगीं ॥२२॥ चन्दना ने हरि के शरीर में सुगन्धित चन्दन लगाया। मुसकराती हुई रत्नमाला ने गले में रत्नमाला पहनायी ॥२३॥ सती पद्मावती ने कमलों से दोनों चरण-कमल पूजे। उसने जल सहित दूर्वा, पुष्प तथा चन्दन का अर्घ्य दिया ॥२४॥ मालती ने हरि के मस्तक को मालती की माला से अलंकृत किया। सती चम्पावती ने चम्पापुष्पों का गुच्छा दिया ॥२५॥ पारिजाता ने हर्ष से हरि को पारिजात पुष्प, कर्पूरसहित ताम्बूल तथा सुगन्धित शीतल जल प्रदान किया ॥२६॥ कदम्बमाला ने कदम्बपुष्पों की शुभ माला, ताजा क्रीडाकमल और अमूल्य रत्न-दर्पण समर्पित किया ॥२७॥ सुकोमला कमला ने पूर्वकाल में वरुण के दिये हुए सुन्दर दो वस्त्र हरि के हाथ में ही रख दिये ॥२८॥ सुन्दरी मधु ने साक्षात् गोरोचना की-सी आभावाले मधुर मधु से भरा हुआ मधुपात्र हरि को समर्पित किया ॥२९॥ सुधामुखी ने अमृत से भरा हुआ अमृतपात्र भक्तिपूर्वक निवेदित किया। गोपी ने चन्दनचर्चित पुष्पशय्या तैयार की ॥३०॥ वह शय्या प्रफुल्लित मालती पुष्पों की मालाओं से सुशोभित थी। वह ऐसे मनोहर भवन में रखी गयी, जो उत्तम रत्नों के सारभाग से बनाया गया था ॥३१॥ वह उत्तम मणियों, मोतियों, माणिक्यों और हीरों के हारों से

मनीन्द्रमुक्तामाणिक्यहीरहारविभूषिते । कस्तूरीकुङ्कुमावक्तेन वायुना सुरभीकृते ॥३२॥
रत्नप्रदीपशतकैर्ज्वलद्भिश्च सुदीपिते । धूपिते सततं धूपैर्नानावस्तुसमन्वितैः ॥३३॥
कृत्वा शय्यां रतिकरीं ययुर्गोप्यश्च सस्मिताः । दृष्ट्वा रहसि तल्पं च सुरम्यं सुमनोहरम् ॥३४॥
माधवो राधया सार्धं विवेश रतिमन्दिरम् । नानाप्रकारहास्यं च परिहासं स्मरोचितम् ॥३५॥
द्वयोर्बभूव तल्पे च मदनातुरयोस्तथा । माल्यं ददौ च कृष्णाय ताम्बूलं च सुवासितम् ॥३६॥
कस्तूरीकुङ्कुमाक्तं च चन्दनं श्यामवक्षसि । चारु चम्पकपुष्पं च चूडायां प्रददौ सती ॥३७॥
सहस्रदलसंसक्तक्रीडापद्मं करे ददौ । प्रक्षिप्य मुरलीं हस्तात्प्रददौ रत्नदर्पणम् ॥३८॥
पारिजातस्य कुसुममम्लानं पुरतो ददौ । उवाच मधुरं राधा रहस्ये मधुरं वचः
सस्मिता सस्मितं शान्तं कान्तं कान्ता मनोहरम् ॥३९॥

## राधिकोवाच

निष्फलं मङ्गलप्रश्नं मङ्गले मङ्गलालये । सर्वमङ्गलबीजे च माङ्गल्ये मङ्गलप्रदे ॥४०॥
तथाऽपि कुशलप्रश्ने सांप्रतं समयोचितम् । लौकिको व्यवहारोऽपि वेदेभ्यो बलवांस्तथा ॥४१॥
कुशलं रुक्मिणीकान्त सत्यभामेश सांप्रतम् । महेन्द्रेण समं युद्धं लीलया च यदाज्ञया ॥४२॥
पारिजाततरुं स्वर्गादुत्पाट्य चामरावतीम् । गत्वा विजित्य देवांश्च तस्यै दत्तमिति श्रुतम् ॥४३॥

---

विभूषित था। कस्तूरी और कुंकुम युक्त वायु से सुगन्धित किया गया था ॥३२॥ रत्नों के बने सैकड़ों प्रज्वलित दीपकों से प्रकाशित था। नाना प्रकार की वस्तुओं से समन्वित धूपों से निरन्तर धूपित रहता था ॥३३॥ वहाँ रति-करी शय्या का निर्माण करके गोपियाँ हँसती हुई चली गयीं। तब एकान्त में मन को आकर्षित करनेवाली उस परम रमणीय शय्या को देखकर माधव ने राधा के साथ रति-गृह में प्रवेश किया। शय्या पर कामातुर हुए उन दोनों में कामोचित नाना प्रकार के हास-परिहास होने लगे। सती (राधा) ने माधव को माला पहनायी, सुवासित ताम्बूल दिया और उनके वक्षःस्थल पर कस्तूरी और कुंकुम से युक्त चन्दन का अनुलेप किया; फिर उनकी चूड़ा में सुन्दर चम्पा का फूल लगाया, हाथ में सहस्रदलयुक्त क्रीड़ा-कमल दिया और उनके हाथ से मुरली छीनकर उसमें रत्न-दर्पण पकड़ा दिया। उनके आगे पारिजात का खिला हुआ पुष्प रख दिया। तत्पश्चात् मुसकराती हुई राधा शान्तमूर्ति, कमनीय और मनोहर प्रियतम से मधुर वचन मधुरता के साथ बोलीं ॥३४-३९॥

**राधिका ने कहा**—नाथ ! जो स्वयं मंगलों का भाण्डार, सम्पूर्ण मंगलों का कारण, मंगलरूप तथा मंगलों का प्रदाता है, उनके विषय में कुशल-मंगल का प्रश्न करना तो निष्फल ही है, तो भी इस समय कुशल पूछना उचित है; क्योंकि लौकिक व्यवहार वेद से भी बलवान् होता है ॥४०-४१॥ रुक्मिणीरमण ! हे सत्यभामा के स्वामी ! इस समय कुशल तो है न ? जिस (सत्यभामा) की आज्ञा से आपने देवराज के साथ लीलापूर्वक युद्ध करके पारिजात वृक्ष को स्वर्ग से उखाड़कर अमरावती में पहुँचकर देवताओं को जीतकर उसी (सत्यभामा) को दे

पुण्यकं च कृतं तेन पारिजातेन सुव्रतम् । त्वामेव साध्यं कान्तं च संपूर्णे दक्षिणां ददौ ॥४४॥
ब्रह्मेशशेषासाध्यस्त्वं तया साध्यः कृतः कथम् । सर्वाभ्यः कामिनीभ्यश्च सत्यभामां बिभेषि च ॥४५॥
रुक्मिण्यां प्रेमसौभाग्यमतिरिक्तं च गौरवम् । भयं माल्यं च धन्यायां सत्यायां सततं श्रुतम् ॥४६॥
सत्यं जाम्बवतीकान्त वद मां च सुनिश्चितम् । तासु सर्वासु कान्तासु कस्यास्ते प्रेम चाधिकम् ॥४७॥
शृङ्गारे सर्वभावे वा तासु का रसिका परा । त्वयि स्निग्धा विदग्धा का तासु धन्याऽतिसुव्रता ॥४८॥
सा स्त्री भावानुरक्ता या भार्यां पाति पतिश्च सः । प्रेमातिरिक्तं स्त्रीपुंसोस्त्रैलोक्येषु सुदुर्लभम् ॥४९॥
रसिका स्त्री विजानाति सती गुणवती पतिम् । गुणज्ञं रसिकं शूरं सुशीलं सुरतौ सदा ॥५०॥
दूराद्धावति पद्मार्थं मधुलोभान्मधुव्रतः । भेकस्तन्न हि जानाति तन्मूर्ध्नि पादमुत्सृजेत् ॥५१॥
यन्त्री जानाति संगीतरसं यन्त्रं च नैव च । दुग्धास्वादं विदग्धश्च न दर्वी नैव भाजनम् ॥५२॥
परिपक्वफलास्वादं जानन्ति भोगिनः सुखम् । एकत्रावस्थिताः शश्वन्नकिंचित्फलिनो यथा ॥५३॥
सुशीलजलास्वादं विजानन्ति [1]तृषालवः । न च वापी न घटश्चैकत्रावस्थितो यथा ॥५४॥

---

दिया था, ऐसा हमने सुना है ॥४२-४३॥ उस पारिजात से उसने पुण्यक नामक उत्तम व्रत किया । उसके सम्पन्न होने पर आप ही वश्य पति को दक्षिणा के रूप में दे डाला ॥४४॥ ब्रह्मा, शिव और शेष के लिए भी आप असाध्य हैं फिर उसने आपको वश में कैसे कर लिया ? सभी कामिनियों की अपेक्षा सत्यभामा से आप अधिक डरते भी हैं ॥४५॥ रुक्मिणी के प्रति आपका प्रेमसौभाग्य आपके लिए अतिरिक्त गौरव है । धन्य सत्या के प्रति आपका भय और माल्य-समर्पण सतत सुना जाता है ॥४६॥ हे जाम्बवती के प्रियतम ! मुझसे सत्य बताओ कि उन सभी प्रियाओं में किसका प्रेम तुम्हारे प्रति अधिक है ॥४७॥ सब प्रकार के शृंगार करने में कौन अधिक रसिक है ? उनमें से धन्य एवं परमोत्तम व्रतवाली कौन तुमसे प्रेम करने में निपुण है ? ॥४८॥ स्त्री वही है जो भाव से अनुरक्त रहती है और पति वही है जो स्त्री का पालन करता है । स्त्री-पुरुष में प्रेम का अतिरेक होना तीनों लोकों में अत्यन्त दुर्लभ है ॥४९॥ रसिक, सती एवं गुणवती स्त्री गुणों के ज्ञाता, रसिक, वीर तथा सुशील पति को सदा सुरति में जानती है ॥५०॥ भौंरा मधु के लोभ से कमल के पास दूर से दौड़कर जाता है । किन्तु मेढक उसको नहीं जानता है, अतः उसके शिरोभाग पर पैर रख देता है ॥५१॥ यन्त्र (वाद्य) बजानेवाला पुरुष संगीत का रस जानता है, यन्त्र नहीं (जानता है) । निपुण व्यक्ति दूध का स्वाद जानता है, करछुल और (दुग्ध) पात्र नहीं ॥५२॥ जैसे भोगी (खानेवाले) सुपक्व फल का स्वाद आसानी से जानते हैं, किन्तु सदा एक ही साथ रहनेवाले वृक्ष कुछ नहीं जानते हैं ॥५३॥ जैसे प्यासे लोग अत्यन्त शीतल जल का स्वाद जानते हैं, किन्तु एक साथ रहनेवाले तालाब और घट नहीं जानते हैं ॥५४॥ जैसे भोक्ता चावल

---

१ ख. कृषीवलाः ।

भोगिनो हि विजानन्ति शालिस्वादुरसं परम् । एकत्रावस्थितं चेत्तु न क्षेत्रं भाजनं यथा ।।५५।।
बुबुधे चन्दनाघ्राणं चन्दनार्थी च भोगवित् । न गर्दभो भारवाही न तस्य पात्रिका यथा ।।५६।।
यं न जानन्ति वेदाश्च ब्रह्मेशानादयस्तथा । योगिनो मुनयः सिद्धास्तं किं जानन्ति योषितः ।।५७।।
सौभाग्यं गौरवं प्रेम दुर्लभं नित्यनूतनम् । योषितां च परं नैव चूर्णीभूतं क्षणेन च ।।५८।।
अत्युच्छ्रितो निपतनं प्राप्नोत्येव ध्रुवं प्रभो । आराद्विपत्तिवीजं च वैष्णवानां विहिंसनम् ।।५९।।
श्रीदामा च मया शप्तस्त्वद्भक्तो भक्तवत्सलः । एतादृशी विपत्तिर्मे पुत्रश्रीदामशापतः ।।६०।।
ईश्वरः कस्य वा बन्धुः प्रियो वा विप्रियस्तथा । सततं भक्तिसाध्यश्च यो भक्तश्च तदीश्वरः ।।६१।।
वेदाश्च वैदिकाः सन्तः पुराणानि वदन्ति च । राधाया माधवः साध्यो भगवानिति निष्फलम् ।।६२।।
जित्वा च सगणं शंभुं बाणस्य भुजकृन्तनम् । कृत्वा च रुक्मिणीपौत्रः समानीतः सभार्यकः ।।६३।।
अहो त्वयि समायाते रुक्मिणी किमुवाच ह । प्रेम स्थितं समानं ते किं विवृद्धं च गौरवम् ।।६४।।
कुरुपाण्डवयुद्धेन कुरवो निहतास्त्वया । पाण्डवार्थे तथा भूपाः क्व साम्यं परमात्मनः ।।६५।।
साक्षान्महेन्द्रजातस्य कौन्तेयस्यार्जुनस्य च । राजमण्डलमध्यस्थो भवानेव हि सारथिः ।।६६।।
तेन भक्तेन शुद्धेन भीष्मेण च महात्मना । लज्जितेन किमुक्तं ते महतीषु सभासु च ।।६७।।
देवैरपि कथं दृष्टो ब्रह्मेशशेषसंज्ञकैः । भक्तासिहैर्भूतैः सर्वैर्न चोक्तं किंचिदेव सः ।।६८।।

---

के सुस्वादु रस को जानते हैं, किन्तु एक साथ रहनेवाले खेत तथा पात्र नहीं जानते हैं ।।५५।। जैसे चन्दन चाहनेवाला भोगवेत्ता चन्दन की गंध को जानता है, किन्तु भार ढोनेवाला गधा और (चन्दन का) पात्र नहीं जानते हैं ।।५६।। जिसको वेद, ब्रह्मा, शंकर, योगी, मुनि तथा सिद्ध लोग नहीं जानते हैं, उसको स्त्रियाँ क्या जानेंगी ? ।।५७।। नित्य नवीन सौभाग्य, गौरव और प्रेम दुर्लभ होता है, किन्तु स्त्रियाँ इनको क्षण भर में ही चूर-चूर कर देती हैं ।।५८।। प्रभो ! अत्यन्त ऊँचाई पर पहुँच जाने पर निश्चित ही पतन होता है । वैष्णवों की हिंसा शीघ्र ही विपत्ति का बीज बन जाती है ।।५९।। आपके भक्तवत्सल भक्त श्रीदामा को मैंने शाप दिया था । इसलिए पुत्र श्रीदामा के शाप से मेरे ऊपर ऐसी विपत्ति आयी ।।६०।। ईश्वर किसके बन्धु या प्रिय या अप्रिय हैं । वे सतत भक्ति से साध्य (अनुकूल) होते हैं और जो भक्त है, उसके वे ईश्वर हैं ।।६१।। वेद, वैदिक, सन्त और पुराण कह रहे हैं कि भगवान् श्रीकृष्ण राधा के वश्य हैं, यह कहना निष्फल है ।।६२।। गण समेत शंकर को जीतकर, वाण की भुजाओं को काटकर आप भार्या समेत रुक्मिणी-पौत्र (अनिरुद्ध) को ले आये ।।६३।। हाय ! तुम्हारे आने पर रुक्मिणी ने क्या कहा था ? तुम्हारा प्रेम (सब पर) समान है । क्या उससे प्रतिष्ठा बढ़ गयी ? ।।६४।। कौरव-पाण्डव युद्ध के द्वारा तुमने पाण्डवों के लिए कौरवों तथा राजाओं को मरवाया (बताओ) परमात्मा की समदृष्टि कहाँ है ।।६५।। साक्षात् इन्द्र से उत्पन्न कुन्तीपुत्र अर्जुन के राजमण्डल के बीच आप ही सारथि हुए ।।६६।। उस शुद्ध भक्त महात्मा भीष्म ने लज्जित होकर बड़ी सभा में तुमसे क्या कहा था ? ।।६७।। ब्रह्मा, शिव तथा शेष नामक देवों ने तुम्हें कैसा देखा ? सभी भक्तराज चुप रहे, कुछ नहीं बोले । तुम वही

यश्चानिर्वचनीयश्च वेदेषु च चतुर्षु च। पुराणेष्वितिहासेषु प्रकृतेः पर ईश्वरः ॥६९॥
निर्गुणश्च निरीहश्च निर्लिप्तः सर्वकर्मणाम्। कर्मणां साक्षिरूपश्च भक्तानुग्रहविग्रहः ॥७०॥
परं ब्रह्म परं ज्योतिः परमेशः परात्परः। परमात्मा च सर्वेषां सूतो नररथस्थितः ॥७१॥
त्वया कुब्जा च संभुक्ता वृद्धा क्षत्रियकामिनी। अपुत्रिणी चाधिकाङ्गी [1]यूनाऽस्पृश्या च प्राक्तनात् ॥७२॥
त्वया च निहतः कंसो मातुलः केन हेतुना। आयास्यतीति कृत्वा च गतं न पुनरागतम् ॥७३॥
निहत्य यादवान्सर्वान्विभज्य द्वारकां पुरीम्। त्वां निबध्य समानेतुमीश्वरी वारिता जनैः ॥७४॥
इत्युक्त्वा राधिका देवी भृशमुच्चै रुरोद सा। मूर्च्छां संप्राप सहसा निर्निःश्वासा बभूव ह ॥७५॥
गोप्यो गवाक्षजालस्थाः शुश्रुवुर्ददृशुस्तथा। दृष्ट्वा तमाययुः सर्वा ऊचू राधा मृतेति च ॥७६॥
उच्चैस्ता रुरुदुः सर्वाः क्रोडे कृत्वा च राधिकाम्। ऊचुस्ता रक्ष रक्षेति हरे नरहरे प्रभो ॥७७॥

## गोप्य ऊचुः

किं कृतं किं कृतं कृष्ण त्वया राधा मृता च नः। राधां जीवय भद्रं ते यास्यामः काननं वयम् ॥७८॥
अन्यथा स्त्रीवधं तुभ्यं दास्यामः सर्वयोषितः। गोपीनां वचनं श्रुत्वा राधिकायाश्च माधवः ॥७९॥

---

हो जो चारों वेदों में अनिर्वचनीय, पुराणों और इतिहासों में प्रकृति से परे, ईश्वर, निर्गुण, निरीह, सभी कर्मों से निर्लिप्त, कर्मों के साक्षिरूप, भक्तों पर अनुग्रहार्थ शरीर धारण करनेवाले, परब्रह्म, परम प्रकाश, परात्पर और परमात्मा होकर मनुष्य के सारथि हुए हो ॥६८-७१॥ तुमने पहले वृद्धा एवं क्षत्रिय स्त्री कुब्जा से संभोग किया, जो पुत्ररहित, अधिक अंगोंवाली और युवक द्वारा अस्पृश्य थी ॥७२॥ तुमने मामा कंस को किस हेतु से मारा? 'आयेंगे' यह कहलाकर जो तुम गये, सो पुनः नहीं आये ॥७३॥ यादवों को मारकर द्वारकापुरी को विभक्त करके रहनेवाले तुमको बाँधकर लाने के लिए आज्ञा देनेवाली ईश्वरी को लोगों ने रोक दिया था ॥७४॥ इतना कहकर वे राधिका देवी जोर-जोर से अत्यधिक रोने लगीं। एकाएक मूर्च्छित हो गयीं और साँस लेना भी बंद हो गया ॥७५॥ झरोखे पर बैठी गोपियों ने सुना और देखा। देखकर सभी उनके पास आयीं और सब कहने लगीं कि राधा मर गयीं ॥७६॥ वे सब राधा को गोद में उठाकर रोने लगीं और बोलीं—'प्रभो! हरे! नरहरे! रक्षा करो, रक्षा करो' ॥७७॥

**गोपियों ने कहा**—कृष्ण! आपने क्या किया? क्या किया? हमारी राधा मर गयीं। आप राधा को जिला दें। आपका कल्याण होगा। हम लोग वन में चली जायेंगी ॥७८॥ अन्यथा हम सभी स्त्रियाँ स्त्रीहत्या (का दोष) तुम्हें दे देंगी। नारद! राधिका की गोपियों की बात सुनकर माधव ने कहा और अमृतवर्षिणी दृष्टि

---

१ क. मूलास्पर्शा।

उवाच जीवयामास सुधावृष्ट्या च नारद । उत्तस्थौ राधिका देवी रुदती मानिनी सती ॥८०॥
गोप्यस्तां बोधयामासुः क्रोडे कृत्वा पुनः पुनः ॥८१॥

### श्रीकृष्ण उवाच

शृणु राधे प्रवक्ष्यामि ज्ञानमाध्यात्मिकं परम् । यच्छ्रुत्वा हालिको मूर्खः सद्यो भवति पण्डितः ॥८२॥
जात्याऽहं जगतां स्वामी किं रुक्मिण्यादियोषिताम् । कार्यकारणरूपोऽहं व्यक्तो राधे पृथक्-पृथक् ॥८३॥
एकात्माऽहं च विश्वेषां जात्या ज्योतिर्मयः स्वयम् । सर्वप्राणिषु व्यक्त्या चाप्याब्रह्मादितृणादिषु ॥८४॥
एकस्मिंश्च भुक्तवति न तुष्टोऽन्यो जनस्तथा । मय्यात्मनि गतेऽप्येको मृतोऽप्यन्यः सुजीवति ॥८५॥
जात्याऽहं कृष्णरूपश्च परिपूर्णतमः स्वयम् । गोलोके गोकुले [1]पुण्ये क्षेत्रे वृन्दावने वने ॥८६॥
द्विभुजो गोपवेषश्च [2]स्वयं राधापतिः शिशुः । गोपालैर्गोपिकाभिश्च सहितः कामधेनुभिः ॥८७॥
चतुर्भुजोऽहं वैकुण्ठे द्विधारूपः सनातनः । लक्ष्मीसरस्वतीकान्तः सततं शान्तविग्रहः ॥८८॥
यन्मानसी सिन्धुकन्या मर्त्यलक्ष्मीपतिर्भुवि । श्वेतद्वीपे च क्षीरोदे तत्रापि च चतुर्भुजः ॥८९॥
अहं नारायणर्षिश्च नरो धर्मः सनातनः । धर्मवक्ता च धर्मिष्ठो धर्मवर्त्मप्रवर्तकः ॥९०॥

---

से राधा को जिला दिया । मान करनेवाली सती राधा देवी रोती हुई उठ बैठीं । तब गोपियाँ उन्हें अंक में लेकर बार-बार उद्‌बोधन देने लगीं ॥७७-८१॥

**श्रीकृष्ण बोले**—राधे ! सुनो, उत्तम आध्यात्मिक ज्ञान बताऊँगा, जिसे सुनकर मूर्ख हलवाहा भी तुरन्त पण्डित हो जाता है ॥८२॥ राधे ! मैं जन्म से ही लोकों का स्वामी हूँ, फिर रुक्मिणी आदि महिलाओं की तो बात ही क्या है । मैं कार्य-कारण रूप से पृथक्-पृथक् व्यक्त होता हूँ ॥८३॥ मैं स्वयं ज्योतिर्मय हूँ, समस्त विश्वों का एकमात्र आत्मा हूँ और तृण से लेकर ब्रह्मापर्यन्त सम्पूर्ण प्राणियों में व्याप्त हूँ ॥८४॥ जैसे एक के भोजन कर लेने पर दूसरे व्यक्ति की तुष्टि नहीं होती, उसी तरह मुझ आत्मा के चले जाने पर एक मर भी जाता है तो दूसरा जीवित रहता है ॥८५॥ जन्म से ही मैं स्वयं कृष्णरूप में परिपूर्णतम हूँ । गोलोक, गोकुल तथा पवित्र क्षेत्र वृन्दावन में स्वयं राधापति मैं दो भुजाओं से युक्त, गोपवेशधारी तथा शिशुरूप में क्रीड़ा करता हूँ । ग्वाले, गोपियाँ और गौएँ ही मेरी सहायक होती हैं ॥८६-८७॥ वैकुण्ठ में चतुर्भुज रूप से रहता हूँ, वहाँ मैं ही लक्ष्मी और सरस्वती का प्रियतम हूँ और सदा शान्त रूप से वास करता हूँ ॥८८॥ भूतल पर श्वेतद्वीप और क्षीरसागर में मानसी, सिन्धुकन्या और मर्त्यलक्ष्मी के जो पति हैं, वह भी मैं ही हूँ और वहाँ भी मैं चतुर्भुज रूप से ही रहता हूँ ॥८९॥ मैं स्वयं नारायण ऋषि हूँ और धर्मवक्ता, धर्मिष्ठ तथा धर्ममार्ग के प्रवर्तक सनातन धर्म

---

१ क. रम्ये । २ क. त्वया ।

शान्तिर्लक्ष्मीस्वरूपा च धर्मिष्ठा च पतिव्रता । अत्र तस्याः पतिरहं पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥९१॥
सिद्धेशः सिद्धिदः साक्षात्कपिलोऽहं सतीपतिः । नानारूपधरोऽहं च व्यक्तिभेदेन सुन्दरि ॥९२॥
अहं चतुर्भुजः[1] शश्वद्द्वारवत्यां रुक्मिणीपतिः । अहं क्षीरोदशायी च सत्यभामागृहे शुभे ॥९३॥
अन्यासां मन्दिरेऽहं च कायव्यूहात्पृथक्पृथक् । अहं नारायणर्षिश्च फाल्गुनस्यास्य सारथिः ॥९४॥
स नरर्षिर्धर्मपुत्रो मदंशो बलवान्भुवि । तपसाऽऽराधितस्तेन सारथ्येऽहं च पुष्करे ॥९५॥
यथा त्वं राधिका देवि गोलोके गोकुले तथा । वैकुण्ठे च महालक्ष्मीर्भवती च सरस्वती ॥९६॥
भवती मर्त्यलक्ष्मीश्च क्षीरोदशायिनः प्रिया । धर्मपुत्रवधूस्त्वं च शान्तिर्लक्ष्मीस्वरूपिणी ॥९७॥
कपिलस्य प्रिया कान्ता भारते भवती सती । त्वं सीता मिथिलायां च त्वच्छाया द्रौपदी सती ॥९८॥
द्वारवत्यां महालक्ष्मीर्भवती रुक्मिणी सती । पञ्चानां पाण्डवानां च भवती कलया प्रिया ॥९९॥
रावणेन हृता त्वं च त्वं च रामस्य[3] कामिनी । नानरूपा यथा त्वं च च्छायया कलया सती १००॥
नानारूपस्तथाऽहं च स्वांशेन कलया तथा । परिपूर्णतमोऽहं च परमात्मा परात्परः ॥१०१॥
इति ते कथितं सर्वमाध्यात्मिकमिदं सति । राधे सर्वापराधं मे क्षमस्व परमेश्वरि ॥१०२॥

---

नर हैं ॥९०॥ धर्मिष्ठा तथा पतिव्रता शान्ति लक्ष्मी स्वरूपा है और इस पुण्यक्षेत्र भारतवर्ष में मैं उसका पति हूँ ॥९१॥ मैं ही सिद्धेश्वर, सिद्धियों के दाता और साक्षात् कपिल हूँ ! सुन्दरि ! इस प्रकार व्यक्तिभेद से मैं नाना रूप धारण करता हूँ ॥९२॥ चतुर्भुजरूपधारी मैं ही सदा द्वारका में रुक्मिणी का स्वामी होता हूँ, क्षीरसागर में शयन करनेवाला मैं ही सत्यभामा के शुभ भवन में वास करता हूँ तथा अन्यान्य रानियों के महलों में मै ही पृथक्-पृथक् शरीर धारण करके क्रीड़ा करता हूँ । मैं नारायण ऋषि ही इस अर्जुन का सारथि हूँ ॥९३-९४॥ अर्जुन वह नर-ऋषि है, धर्म का पुत्र है, बलवान् है और मेरे अंश से भूतल पर उत्पन्न हुआ है । उसने पुष्कर क्षेत्र में सारथि-कार्य के लिए तपस्या द्वारा मेरी आराधना की थी ॥९५॥ (प्रिये) ! जैसे तुम गोलोक में राधिका देवी हो, उसी तरह गोकुल में भी हो । तुम्हीं वैकुण्ठ में महालक्ष्मी और सरस्वती हो ॥९६॥ क्षीरोदशायी की प्रिया मर्त्यलक्ष्मी तुम्हीं हो । धर्म की पुत्रवधू लक्ष्मीस्वरूपिणी शान्ति के रूप में तुम्हीं वर्तमान हो ॥९७॥ भारतवर्ष में कपिल की प्रिय पत्नी सती भारती तुम्हारा ही नाम है । तुम्हीं मिथिला में सीता नाम से विख्यात थी । सती द्रौपदी तुम्हारी ही छाया है ॥९८॥ द्वारका में महालक्ष्मी के अंश से प्रकट हुई सती रुक्मिणी के रूप में तुम्हीं वास करती हो । पाण्डवों की पत्नी द्रौपदी तुम्हारी कला है ॥९९॥ तुम्हीं राम की पत्नी सीता थीं; रावण ने तुम्हारा ही अपहरण किया था । सति ! जैसे तुम अपनी छाया और कला से नाना रूपों में प्रकट हो, वैसे ही मैं भी अपने अंश और कला से अनेक रूपों में व्यक्त हूँ । मैं ही परिपूर्णतम परात्पर परमात्मा हूँ ॥१००-१०१॥ सति ! इस प्रकार मैंने तुम्हें यह सारा आध्यात्मिक ज्ञान बता दिया । राधे ! परमेश्वरि !

---

१ 'जांशश्च द्वा' । २ ख. भारती । ३ क. 'रायणका' ।

श्रीकृष्णवचनं श्रुत्वा परितुष्टा च राधिका। परितुष्टाश्च गोप्यश्च प्रणेमुः परमेश्वरम् ॥१०३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना०
षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२६॥

•

# अथ सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

### नारायण उवाच

श्रीकृष्णवचनं श्रुत्वा प्रहृष्टा गोपिका मुदा। मन्दिरं प्रययुः सर्वाः प्रणम्य राधिकां प्रभुम् ॥१॥
राधाशृङ्गारभावं च कलाषोडशपूर्वकम्। चकार सस्मिता साध्वी वक्रचञ्चललोचना ॥२॥
दत्त्वा च चन्दनं माल्यं स्वामिने पुनरेव च। रहस्यं च परीहास्यं पुनरेव चकार सः ॥३॥
आकृष्य राधिकां कृष्णः समानीय स्ववक्षसि। ओष्ठाधरं कपोलं च गण्डयुग्मं चुचुम्ब च ॥४॥
राधा चुचुम्ब कृष्णस्य मुखचन्द्रं मनोहरम्। चकार कृष्णं प्राणेशं बाहुभ्यां च स्ववक्षसि ॥५॥
शृङ्गारं षोडशविधं कामशास्त्रोक्तमीप्सितम्। स्त्रीपुंसोस्तोषजनकं चकार भगवान्प्रभुः ॥६॥

---

मेरे सारे अपराधों को क्षमा कर दो ॥१०२॥ श्रीकृष्ण की बात सुनकर राधा और गोपियाँ भी सन्तुष्ट हो गयीं तथा परमेश्वर (श्रीकृष्ण) को प्रणाम करने लगीं ॥१०३॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद और नारायण के संवाद में
एक सौ छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१२६॥

•

# अध्याय १२७

## राधा और कृष्ण का शृङ्गार

**नारायण बोले**—श्रीकृष्ण की बात सुनकर अत्यन्त हर्षित हुई सभी गोपियाँ राधा और श्रीकृष्ण को प्रणाम करके घर चली गयीं ॥१॥ चंचल टेढ़ी चितवनवाली पतिव्रता राधा मुस्कराकर सोलहों कलाओं के साथ शृंगार किया ॥२॥ पुनः स्वामी को चन्दन और माला देकर एकान्त का परिहास किया ॥३॥ तब कृष्ण ने राधा को खींचकर अपने वक्ष पर ले लिया और उनके ओंठ, अधर, कपोल तथा दोनों गण्डस्थलों का चुम्बन लिया ॥४॥ राधा ने भी कृष्ण के मनोहर मुखचन्द्र का चुम्बन करके प्राणेश्वर को बाँहों में जकड़कर अपनी छाती पर चढ़ा लिया ॥५॥ तब भगवान् कृष्ण स्त्री-पुरुष को सन्तोष देनेवाले कामशास्त्रोक्त सोलह प्रकार के अभीष्ट शृंगार का उपयोग करने लगे ॥६॥ राधा के सर्वांग में नख-क्षत किया, दाँतों से अधर को काटा फिर

नखविक्षतसर्वाङ्गा दशनेनाधरक्षता । पुलकाञ्चितदेहा स तन्द्रिता वामनस्तनी ॥७॥
मूर्च्छिता सुखसंभोगाद्विलग्ना हतचेतना । श्वासमात्रावशेषा च निद्रामुद्रितलोचना ॥८॥
रतिशूरा कोमलाङ्गी कान्तवक्षःस्थलस्थिता । शीते सुखोष्णसर्वाङ्गी ग्रीष्मे सा सुखशीतला ॥९॥
शृङ्गारकाले सुखदा सान्द्रश्रोणिपयोधरा । नितम्बभारानम्रा च प्रसङ्गे सुखदायिका ॥१०॥
विदग्धा रसिका श्रेष्ठा कामुकी च वराङ्गना । सहसा चेतनं प्राप्य शुश्राव कोकिलध्वनिम् ॥११॥
श्रुत्वा परमभीता सा दीना दीनविशङ्कया । उवाच परमा सा च परमेशं परात्परम्
बाहुश्रोणियुगाभ्यां च निबध्य च पुनः पुनः ॥१२॥

## राधिकोवाच

रासं गच्छ महाभाग पुण्यं वृन्दावनं वनम् । तत्र क्रीडां करिष्यामि जलेन च स्थलेन च ॥१३॥
पुनर्यास्यामि मलयं सुन्दरं मणिमन्दिरम् । अपरं यद्रहस्यं वा जन्मना न श्रुतं मया ॥१४॥
तत्र यामि त्वया सार्धमिति मे लालसा परा । परस्परं कालापेन प्रययौ रजनी शुभा ॥१५॥
अरुणोदयकालेऽपि न त्यजेन्माधवं सती । माधवः प्रीतिवचसा बोधयामास साधनात् ॥१६॥
प्रातः कृत्यं ततः कृत्वा स्वारुरोह रथं हरिः । गोपीभी राधया सार्धं शरत्कमललोचनः ॥१७॥
योजनायतविस्तीर्णं गृहैस्त्रिशतकोटिभिः । मणीन्द्रसारनिर्माणंज्वंलद्भिरुपशोभितम् ॥१८॥

---

तो रोमाञ्चित शरीरवाली तथा सिकुड़े हुए स्तनोंवाली राधा ऊँघने लगी । सुखसंभोग में आसक्त तथा नष्ट चेतनावाली राधा मूर्च्छित हो गयीं । श्वास मात्र चल रहे थे और आँखें निद्रा से मुंद गयी थीं ॥७-८॥ रतिशूर कोमलाङ्गी, प्रियतम के वक्षःस्थल पर अवस्थित, शीतकाल में सुखद गर्मी से युक्त समस्त अंगोंवाली, ग्रीष्मकाल में सुखद शैत्यवाली, शृंगारकाल में सुख देनेवाली, सघन नितम्ब एवं स्तनोंवाली, नितम्ब के भार से कुछ झुकी हुई, रति-प्रसंग में सुख देनेवाली, निपुण, रसिक, श्रेष्ठ, कामुकी तथा उत्तम वनिता राधा ने एकाएक चेत में आकर कोयलों की ध्वनि सुनी ॥९-११॥ सुनकर वे बहुत डर गयीं । सशंकित और दीन होकर देवी ने परात्पर परमेश्वर श्रीकृष्ण को दोनों बाँहों तथा श्रोणियों से जकड़कर कहा ॥१२॥

**राधिका बोलीं**—महाभाग ! पवित्र वृन्दावन नामक वन चलो । वहाँ जल में और स्थल में क्रीड़ा करूँगी ॥१३॥ उसके बाद मलयाचल पर सुन्दर मणिमन्दिर में तथा और भी जो एकान्त स्थान हैं जिन्हें मैंने जन्म से अभी तक नहीं सुना है, वहाँ भी तुम्हारे साथ जाऊँगी, यह मेरी बड़ी लालसा है । (इस प्रकार) परस्पर बातचीत करने में शुभ रात्रि बीत चली ॥१४-१५॥ सूर्योदय होने पर भी जब सती (राधा) ने श्रीकृष्ण को नहीं छोड़ा तब माधव ने युक्तिपूर्वक प्रेमपूर्ण वचन से उन्हें समझाया ॥१६॥ तदनन्तर शरत्कालीन कमल के-से नेत्रोंवाले श्रीहरि प्रातः कृत्य समाप्त करके राधा तथा गोपियों के साथ रथ पर सवार हो गये ॥१७॥ वह रथ एक योजन लम्बा-चौड़ा था । वह बहुमूल्य मणियों के बने हुए तीन सौ करोड़ गृहों से

गोलोकादागतं तत्र मनोयायि मनोहरम् । सहस्रचक्रसंयुक्तं सहस्राश्वैः[1] प्रचालितम् ॥१९॥
मणिस्तम्भैस्त्रिकोटीभी रत्नराजिविराजितम् । मुक्तामाणिक्यपरमैर्हीरहारैः सुशोभितम् ॥२०॥
नानाचित्रैर्विचित्रैश्च श्वेतचामरदर्पणैः । वह्निशुद्धांशुकैर्दीप्तैर्मालाजालैर्विभूषितम् ॥२१॥
रत्ननिर्माणतल्पैश्च पुष्पचन्दनचर्चितम् । समानरूपवेषैश्च गोपीलक्षैः समावृतम् ॥२२॥
रथेन तेन भगवान्पुनर्वृन्दावनं ययौ । तत्र गत्वा निशाकाले विजहार जले स्थले ॥२३॥
शृङ्गारं सुचिरं कृत्वा वनेषूपवनेषु च । राधिकां दर्शयामास यथासर्वं च नूतनम् ॥२४॥
विस्पन्दके सुरसने माहेन्द्रे नन्दने वने । सुमेरुशिखरे रम्ये पर्वते गन्धमादने ॥२५॥
शैले शैले सुन्दरे च कन्दरे कन्दरे वने । पुष्पोद्याने सुरहसि नद्यां नद्यां नदे नदे ॥२६॥
समुद्रपुलिने रम्ये पारिजातवने वने । सुभद्रे पुष्पभद्रे च नारायणसरोवरे ॥२७॥
पवनस्यैव निलये मलये च सुरालये । त्रिकूटे भद्रकूटे च पञ्चकूटे सुकूटके ॥२८॥
देवानां कमनीयायां काञ्चन्यां च तथैव च । समुद्रे च समुद्रे च द्वीपे द्वीपे मनोहरे ॥२९॥
स्वर्वटे प्रवरे रम्ये पुण्यचन्द्रसरोवरे । सुपार्श्वे मुनिपार्श्वे च स रेमे राधया सह ॥३०॥
शीघ्रं च पुनरागत्य जम्बूद्वीपं च पुण्यदम् । द्वारकां दर्शयामास पर्वतं रैवतं तथा ॥३१॥

---

सुशोभित था। मन के समान वेगवाले तथा गोलोक से आये हुए उस सुन्दर रथ में सहस्रों पहिये लगे थे और सहस्रों घोड़े उसे चला रहे थे। तीन करोड़ मणिस्तम्भों और झालरों से उसकी विशेष शोभा हो रही थी। मुक्ता, माणिक्य और उत्तम हीरे के हारों से वह परम सुहावना लग रहा था। वह नाना प्रकार की चित्रकारियों, श्वेत चँवर और दर्पण से, अतिशुद्ध चमकीले वस्त्रों और मालासमूहों से विभूषित था। उसमें रत्नों की बनी हुई पुष्पचन्दनचर्चित अनेकों शय्याएं शोभा दे रही थीं। समान रूप और वेशवाली लाखों गोपियों से वह समावृत था ॥१८-२२॥

उस रथ से भगवान् पुनः वृन्दावन चले गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने रात्रि के समय जल और स्थल पर विहार किया ॥२३॥ पुनः सुन्दर शृंगार करके वनों और उपवनों में राधा को सब कुछ नूतन ही दिखलाया ॥२४॥ फिर विस्पन्दक, सुरसन, महेन्द्र और नन्दनवन में सुमेरु की चोटी तथा रमणीय गन्धमादन पर्वत पर, सुन्दर-सुन्दर पर्वत, कन्दरा और वन में, अत्यन्त गुप्त पुष्पोद्यान में, प्रत्येक नदियों और नदों के जल में, समुद्र के तट पर, पारिजात वृक्षों के मनोहर वन में, सुभद्र पुष्पभद्र और नारायण सरोवर में, पवन के आवासस्थान तथा देवताओं की निवास-भूमि मलयपर्वत पर, चित्रकूट, भद्रकूट, पञ्चकूट और सुकूट पर, देवों की स्वर्णमयी कमनीय भूमि पर, प्रत्येक समुद्र तथा मनोहर द्वीप में, श्रेष्ठ स्वर्गलोक में, पुण्यमय रमणीय चन्द्रसरोवर में और मुनियों के आश्रमों के आस-पास उन्होंने राधा के साथ विहार किया ॥२४-३०॥ पुनः शीघ्र ही पुण्यप्रद जम्बूद्वीप में आकर द्वारका तथा रैवतक पर्वत को दिखलाया ॥३१॥

---

१ क. °क्षैः ।

गोकुलं पुनरागत्य गोपगोकुलसंकुलम् । तत्र दृष्ट्वा च भाण्डीरं पुण्यं वृन्दावनं ययौ ॥३२॥
श्रीकृष्णागमनं श्रुत्वा यशोदा नन्द एव च । गोपा गोप्यश्च वृद्धाश्चाप्यश्रुनेत्रा निराकुलाः ॥३३॥
वारणेन्द्रं पुरस्कृत्य वेश्या च नटनर्तकाः । पतिपुत्रवतीं साध्वीं ब्राह्मणीं ब्राह्मणं तथा ॥३४॥
यथा देवाश्च वह्निं च दृष्ट्वा नन्दं च मातरम् । आययुर्बालकृष्णश्च राधया सह माधवः ॥३५॥
मातुः क्रोडमारुरोह प्रहस्य मधुसूदनः । नन्दो यशोदया सार्धं चुचुम्ब मुखपङ्कजम् ॥३६॥
आश्लिश्य भृशमुच्चैश्च सिषेच नेत्रजैर्जलैः । स्वयं च भगवान्कृष्णो यशोदायाः स्तनं पपौ ॥३७॥
तादृशं ददृशुः सर्वे यादृशो मथुरां ययौ । मुरलीहस्तविन्यस्तं रत्नभूषणभूषितम् ॥३८॥
यथैकादशवर्षीयं शोभितं पीतवाससा । मयूरपिच्छचूडं च मालतीमाल्यमण्डितम् ॥३९॥
मन्दिरं वेशयामास राधया सह माधवम् । यशोदा मङ्गलं कृत्वा भोजयामास ब्राह्मणान् ॥४०॥
पूजां चकार गोपीनां मुनीनां च यथा जनः । मणिरत्नं प्रवालं च सुवर्णं परमं तथा ॥४१॥
मुक्तामाणिक्यहीरं च ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा । गजरत्नं गवां रत्नमश्वरत्नं मनोहरम् ॥४२॥
आसनानि च पात्राणि भूषणानि तथैव च । धान्यान्यपि च सस्यानि वस्त्राणि च तथा ददौ ॥४३॥
अपूर्वं दर्शयामास राधया सह माधवम् । गोपीगणं च मिष्ठान्नं सादरेणापि नारद ॥४४॥

---

फिर गोप और गो-समूह से व्याप्त गोकुल में आये । वहाँ भाण्डीरवन को देखकर वे पुण्यमय वृन्दावन में गये ॥३२॥ श्रीकृष्ण का आगमन सुनकर नन्द, यशोदा और बूढ़े गोप तथा गोपियाँ प्रसन्न हो गये और उनके नेत्रों में (हर्ष से) आँसू छलक आये ॥३३॥ फिर तो उन्होंने गजराज, वेश्या, नटों, नर्तकों, पति-पुत्रवाली साध्वी ब्राह्मणी और ब्राह्मण को आगे करके उनका उसी प्रकार स्वागत किया जैसे देवगण अग्नि का करते हैं । तब माधव नन्द और माता को देखकर राधा के साथ बालकृष्ण के रूप में आये ॥३४-३५॥ फिर मधुसूदन हँसकर माता की गोद में जा बैठे । तब यशोदा सहित नन्द उनका मुख-कमल चूमने लगे ॥३६॥ और बहुत कसकर आलिंगन करके नेत्रों के अश्रुजल से उन्हें सींचने लगे । उधर भगवान् कृष्ण यशोदा का स्तनपान करने में जुट गये ॥३७॥ उस समय सभी लोगों ने श्रीकृष्ण को उसी रूप में देखा, जिस रूप में मथुरा गये थे । उनके हाथ में मुरली शोभा पा रही थी वे रत्नों के आभूषणों से विभूषित थे । उनकी ग्यारह वर्ष की किशोरावस्था थी, पीताम्बर उनकी शोभा बढ़ा रहा था, शिखा में मयूरपिच्छ की निराली छटा थी और वे मालती की माला से सुसज्जित थे ॥३८-३९॥ तत्पश्चात् यशोदा राधा सहित माधव को महल के भीतर लिवा ले गयीं । वहाँ उन्होंने मांगलिक कार्य सम्पन्न करके ब्राह्मणों को भोजन कराया और गोपियों का उसी प्रकार पूजन किया जैसे लोग मुनियों का करते हैं । फिर आनन्दमग्न हो ब्राह्मणों को मणि, रत्न, मूँगा, उत्तम सुवर्ण, मोती, माणिक्य हीरा, गजरत्न, गोरत्न, मनोहर अश्वरत्न, धान्य, फसल लगी हुई खेती और वस्त्र दान किये ॥४०-४३॥ राधा के साथ माधव को अपूर्व वस्तु का दर्शन कराया । नारद ! फिर गोपियों को भी आदरपूर्वक मिष्टान्न का

दुन्दुभीन्वादयामास कारयामास मङ्गलम् । देवांश्च भोजयामास सानन्दं च मनोहरम् ॥४५॥

इति० श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मखण्ड० उत्त० नारदना०
सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२७॥

•

# अथाष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

### नारायण उवाच

श्रीकृष्णश्च समाह्वानं गोपांश्चापि चकार सः । भाण्डीरे वटमूले च तत्र स्वयमुवास ह ॥१॥
पुराऽन्नं च ददौ तस्मै यत्रैव ब्राह्मणीगणः । उवास राधिका देवी वामपार्श्वे हरेरपि ॥२॥
दक्षिणे नन्दगोपश्च यशोदासहितस्तथा । तद्दक्षिणे वृषभानस्तद्वामे सा कलावती ॥३॥
अन्ये गोपाश्च गोप्यश्च बान्धवाः सुहृदस्तथा । तानुवाच स गोविन्दो यथार्थ्यं समयोचितम् ॥४॥

### श्रीभगवानुवाच

शृणु नन्द प्रवक्ष्यामि सांप्रतं समयोचितम् । सत्यं च परमार्थं च परलोकसुखावहम् ॥५॥

---

भोजन कराया, दुन्दुभियाँ बजवायीं, मंगल कराया और देवगणों को आनन्दपूर्वक मनोहर पदार्थों का भोग समर्पित किया ॥४४-४५॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद और नारायण के संवाद में
एक सौ सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त ॥१२७॥

•

# अध्याय १२८

## कृष्ण द्वारा कलि के दोषों का निरूपण

**नारायण बोले**—श्रीकृष्ण ने गोपों को बुलाया और वे स्वयं भाण्डीरवन में वटवृक्ष के नीचे बैठ गये ॥१॥ पहले ब्राह्मणियों ने जहाँ उनको भोजन दिया था, वहीं राधा देवी हरि के बायें भाग में बैठ गयीं ॥२॥ हरि के दक्षिण भाग में यशोदा सहित नन्दगोप उनसे दक्षिण वृषभान और उनके बायें कलावती बैठीं ॥३॥ फिर अन्य गोप, गोपियाँ, बंधु और मित्र बैठ गये । उन सबसे गोविन्द ने समयानुकूल यथार्थ वचन कहा ॥ ॥

**श्रीभगवान् बोले**—हे नन्द! सुनो मैं इस समय समयोचित बात कहूँगा, जो सत्य, परमार्थ तथा परलोक

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं भ्रमं सर्वं निशामय। विद्युद्दीप्तिर्जले रेखा यथा तोयस्य बुद्बुदम् ॥६॥
मथुरायां सर्वमुक्तं नावशेषं च किंचन। यशोदां बोधयामास राधिका कदलीवने ॥७॥
तदेव सत्यं परमं भ्रमध्वान्तप्रदीपकम्। विहाय मिथ्यामायां च स्मर तत्परमं पदम् ॥८॥
जन्ममृत्युजराव्याधिहरं हर्षकरं परम्। शोकसंतापहरणं कर्ममूलनिकृन्तनम् ॥९॥
मामेव परमं ब्रह्म भगवन्तं सनातनम्। ध्यायं ध्यायं पुत्रबुद्धिं त्यक्त्वा लभ परं पदम् ॥१०॥
गोलोकं गच्छ शीघ्रं त्वं सार्धं गोकुलवासिभिः। आरात्कलेरागमनं कर्ममूलनिकृन्तनम् ॥११॥
स्त्रीपुंसोर्नियमो नास्ति जातीनां च तथैव च। विप्रे संध्यादिकं नास्ति चिह्नं यज्ञोपवीतकम् ॥१२॥
यज्ञसूत्रं च तिलकं शेषं लुप्तं सुनिश्चितम्। दिवाव्यवायनिरतं विरतं धर्मकर्मणि ॥१३॥
यज्ञानां च व्रतानां च तपसां लुप्तमेव च। केदारकन्याशापेन धर्मो नास्त्येव केवलम् ॥१४॥
स्वच्छन्दगामिनीस्त्रीणां पतिश्च सततं वशे। ताडयेत्सततं तं च भर्त्संयेच्च दिवानिशम् ॥१५॥
प्राधान्यं स्त्रीकुटुम्बानां स्त्रीणां च सततं व्रज। स्वामी च भक्तस्तासां च पराभूतो निरन्तरम् ॥१६॥
कलौ च योषितः सर्वा जारसेवासु तत्पराः। शतपुत्रसमः स्नेहस्तासां जारे भविष्यति ॥१७॥

---

में सुख देनेवाली है ॥५॥ ब्रह्मा से लेकर तृणपर्यन्त सभी पदार्थ बिजली की चमक, जल के ऊपर की हुई रेखा और जल के बुलबुले के समान भ्रमरूप ही है, ऐसा जानें ॥६॥ मथुरा में मैं सब कुछ बता चुका हूँ, कुछ भी शेष नहीं रहा। कदलीवन में राधा ने यशोदा को समझाया था ॥७॥ वही परम सत्य भ्रमरूपी अन्धकार का विनाश करने के लिए दीपक है। इसलिए तुम मिथ्या माया छोड़कर उसी परम पद का स्मरण करो ॥८॥ वह पद जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि का विनाशक, महान् हर्षदायक, शोक-सन्ताप का हारक और कर्ममूल का उच्छेदक है ॥९॥

मुझ परम ब्रह्म सनातन भगवान् का बार-बार ध्यान करके (मेरे प्रति) पुत्र की बुद्धि (भावना) को त्यागकर परम पद को प्राप्त करो ॥१०॥ अब कर्म की जड़ काट देनेवाले कलियुग का आगमन संन्निकट है, अतः तुम गोकुलवासियों के साथ शीघ्र गोलोक को जाओ ॥११॥ कलियुग में स्त्री-पुरुष का नियम नहीं है। उसी प्रकार जातियों का नियम नहीं है। ब्राह्मण संध्या आदि नहीं करेगा। (अपना) चिह्न यज्ञोपवीत भी धारण नहीं करेगा ॥१२॥ (अथवा) यज्ञसूत्र और तिलक धारण करेगा और शेष वस्तु निश्चित ही लुप्त हो जायगी। वह दिन में मैथुन करने में निरत रहेगा और धर्म-कर्म से विरत हो जायगा ॥१३॥ यज्ञ, व्रत और तपस्याएँ लुप्त हो जायेंगी। केदार-कन्या के शाप के कारण धर्म बिलकुल नहीं रह जायगा ॥१४॥ स्वच्छन्द विचरण करनेवाली स्त्रियों के वश में पति सतत रहेंगे। वे स्त्रियाँ दिन-रात सतत पतियों की भर्त्सना एवं ताड़ना करेंगी ॥१५॥ स्त्री-कुटुम्बों और स्त्रियों की सतत प्रधानता रहेगी। निरन्तर पराभव को प्राप्त करनेवाला स्वामी उन स्त्रियों का भक्त होगा ॥१६॥

कलियुग में सभी स्त्रियाँ जार (उपपति) की सेवा में तत्पर रहेंगी। जार के प्रति उन (स्त्रियों) का स्नेह सौ

ददाति तस्मै भक्ष्यं च यथा भृत्याय कोपतः। सस्मिता सकटाक्षा साऽमृतदृष्ट्या निरन्तरम् ॥१८॥
जारं पश्यति कामेन विषदृष्ट्या पतिं सदा। सततं गौरवं तासां स्नेहं च जारबान्धवे ॥१९॥
पत्यौ करप्रहारं च नित्यं नित्यं करोति च। मिष्टान्नं श्रद्धया भक्त्या जाराय प्रददाति च ॥२०॥
वेषयुक्ता च सततं जारसेवनतत्परा। प्राणा बन्धुर्गतिश्चाऽऽत्मा कलौ जारश्च योषिताम् ॥२१॥
लुप्ता चातिथिसेवा च प्रलुप्तं विष्णुसेवनम्। पितृणामर्चनं चैव देवानां च तथैव च ॥२२॥
विष्णुवैष्णवयोर्द्वेषी सततं च नरो भवेत्। वाममन्त्रोपासकाश्च चतुर्वर्णाश्च तत्पराः ॥२३॥
शालग्रामं च तुलसीं कुशं गङ्गोदकं तथा। न स्पृशेन्मानवो धूर्तो म्लेच्छाचाररतः सदा ॥२४॥
कारणं कारणानां च सर्वेषां सर्वबीजकम्। सुखदं मोक्षदं शश्वद्दातारं सर्वसंपदाम् ॥२५॥
त्यक्त्वा मां परया भक्त्या क्षुद्रसंपत्प्रदायिनम्। वेदनिघ्नं[1] वाममन्त्रं जपेद्विप्रश्च मायया ॥२६॥
सनातनी विष्णुमाया वञ्चितं तं करिष्यति। ममाऽऽज्ञया भगवती जगतां च दुरत्यया ॥२७॥
कलेर्दशसहस्राणि मदर्चा भुवि तिष्ठति। तदर्धानि च वर्षाणि गङ्गा भुवनपावनी ॥२८॥
तुलसी विष्णुभक्ताश्च यावद्गङ्गा च कीर्तनम्। पुराणानि च स्वल्पानि तावदेव महीतले ॥२९॥
मम चोत्कीर्तनं नास्ति एतदन्ते कलौ व्रज। एकवर्णा भविष्यन्ति किराता बलिनः शठाः ॥३०॥

---

पुत्रों के समान होगा ॥१७॥ स्त्री पति को भोजन क्रोध से उसी प्रकार देगी जैसे भृत्य (नौकर) को (कोई) देता है। स्त्री जार को निरन्तर कटाक्ष के साथ अमृतपूर्ण दृष्टि से देखती रहेगी। वह अपने पति को सदा विषपूर्ण दृष्टि से देखेगी। उन स्त्रियों का जार के बान्धवों के प्रति सतत गौरव और स्नेह बना रहेगा ॥१८-१९॥ वह पति पर नित्य हस्तप्रहार करेगी, पर जार को श्रद्धा-भक्ति के साथ मिठाई खिलायेगी ॥२०॥ वह सज-धजकर जार की सेवा में सतत तत्पर रहेगी। कलियुग में जार स्त्रियों के प्राण, बन्धु, गति और आत्मा है ॥२१॥ (कलियुग) में अतिथि-सेवा, विष्णु-सेवा तथा पितरों और देवताओं की अर्चना लुप्त हो जायगी ॥२२॥ मनुष्य विष्णु एवं वैष्णव जन से निरन्तर द्रोह करेगा। चारों वर्ण वामाचार के मन्त्रों की उपासना में तत्पर रहेंगे ॥२३॥ सदा म्लेच्छों के आचार में निरत रहनेवाला मनुष्य शालग्राम, तुलसी, कुश तथा गंगाजल का स्पर्श भी नहीं करेगा ॥२४॥ ब्राह्मण भी मायावश, कारणों के कारण, सबके बीज, सुखदायी, मोक्षदाता और समस्त सम्पत्तियों के निरन्तर दाता मुझे छोड़कर क्षुद्रसम्पत्तिदायी एवं वेद-हन्ता वाम-मन्त्र का जप परम भक्ति से करेगा ॥२५-२६॥ सनातनी एवं संसार के लिए दुस्तर भगवती विष्णुमाया मेरी आज्ञा से उस (ब्राह्मण) को वञ्चित कर देगी ॥२७॥ कलियुग में दस हजार वर्षों तक पृथ्वी पर मेरी पूजा होती रहेगी। उसके आधे (पाँच हजार वर्षों तक) संसार को पवित्र करनेवाली गंगा (पृथ्वी पर) रहेगी ॥२८॥ जब तक गंगा रहेगी तभी तक भूतल पर तुलसी, विष्णुभक्त जन, कीर्त्तन तथा स्वल्प पुराण रहेंगे ॥२९॥ हे व्रजराज! कलियुगान्त में मेरा कोई कीर्त्तन नहीं करेगा। भील, बली तथा शठ लोग एक वर्ण के हो जायँगे ॥३०॥

---

[1] क. °निन्दां।

पित्रोः सेवा गुरोः सेवा सेवा च देवविप्रयोः । विवर्जिता नराः सर्वे चातिथीनां तथैव च ॥३१॥
सस्यहीना भवेत्पृथ्वी साऽनावृष्ट्या निरन्तरम् । फलहीनोऽपि वृक्षश्च जलहीना सरित्तथा ॥३२॥
वेदहीनो ब्राह्मणश्च बलहीनश्च भूपतिः । जातिहीना जनाः सर्वे म्लेच्छो भूपो भविष्यति ॥३३॥
भृत्यवत्ताडयेत्तातं पुत्रः शिष्यस्तथा गुरुम् । कान्तं च ताडयेत्कान्ता लुब्धकुक्कुटवद्गृही ॥३४॥
नश्यन्ति सकला लोकाः कलौ शेषे च पापिनः । सूर्याणामातपात्केचिज्जलौघेनापि केचन ॥३५॥
हे वैश्येन्द्र प्रतिकलौ' न नश्यति वसुंधरा । पुनः सृष्टौ' भवेत्सत्यं सत्यबीजं निरन्तरम् ॥३६॥
एतस्मिन्नन्तरे विप्र रथमेव मनोहरम् । चतुर्योजनविस्तीर्णमूर्ध्वे च पञ्चयोजनम् ॥३७॥
शुद्धस्फटिकसंकाशं रत्नेन्द्रसारनिर्मितम् । अम्लानपारिजातानां मालाजालविराजितम् ॥३८॥
मणीनां कौस्तुभानां च भूषणेन विभूषितम् । अमूल्यरत्नकलशं हीरहारविलम्बितम् ॥३९॥
मनोहरैः परिष्वक्तं सहस्रकोटिमन्दिरैः । सहस्रद्वयचक्रं च सहस्रद्वयघोटकम् ॥४०॥
सूक्ष्मवस्त्राच्छादितं च गोपीकोटीभिरावृतम् । गोलोकादागतं तूर्णं ददृशुः सहसा व्रजे ॥४१॥
कृष्णाज्ञया तमारुह्य ययुर्गोलोकमुत्तमम् । राधा कलावती देवी धन्या चायोनिसंभवा ॥४२॥
गोलोकादागता गोप्यश्चायोनिसंभवाश्च ताः । श्रुतिपत्न्यश्च ताः सर्वाः स्वशरीरेण नारद ॥४३॥

---

मनुष्य माता-पिता, गुरु, देवता, ब्राह्मण और अतिथियों की सेवा से रहित हो जायेंगे ॥३१॥ निरन्तर अनावर्षण से पृथ्वी सस्यहीन हो जायगी । वृक्ष फलरहित और नदी जल से हीन हो जायगी ॥३२॥

ब्राह्मण वेद (के ज्ञान) से शून्य और राजा बलहीन होगा । सभी लोग जाति से हीन होंगे तथा राजा म्लेच्छ होगा ॥३३॥ पुत्र पिता को और शिष्य गुरु को भृत्य (नौकर) की तरह पीटेगा । घर में पत्नी पति पर लोभी मुर्गे की तरह प्रहार करेगी ॥३४॥ कलि के शेष भाग में सभी पापी लोग नष्ट हो जायेंगे । कुछ तो सूर्यों की धूप से और कुछ जलराशि से विनष्ट होंगे ॥३५॥ हे वैश्यराज ! प्रत्येक कलियुग में पृथ्वी नष्ट नहीं होती है । पुनः सृष्टि होने पर निरन्तर सब सत्य बीज सत्य होने लगता है ॥३६॥ विप्र ! इसी बीच एक मनोहर रथ वहाँ आ पहुँचा । वह पाँच योजन लम्बा और चार योजन चौड़ा था । शुद्ध स्फटिक के समान उसकी कान्ति थी । वह रत्नेन्द्र के सारभाग से बनाया हुआ था । पारिजात पुष्प की अम्लान मालाओं से उसकी शोभा बढ़ रही थी । कौस्तुभ मणियों के आभूषण से वह विभूषित था । उस पर अमूल्य रत्नों के कलश थे तथा हीरों के हार लटक रहे थे । एक अरब मनोहर मन्दिरों से वह आलिंगित था । दो हजार चन्द्रों और दो हजार घोड़ों से वह युक्त था । सूक्ष्म वस्त्रों से आच्छादित एवं करोड़ों गोपियों से घिरा था । व्रज में गोलोक से शीघ्र आये हुए रथ को लोगों ने देखा ॥३७-४१॥ कृष्ण की आज्ञा से लोग उस पर चढ़कर उत्तम गोलोक को चले गये । नारद ! राधा और धन्यवाद की पात्र कलावती का जन्म किसी गर्भ से नहीं हुआ था । वे सभी अयोनिजा थीं ।

---

१ ख. सति । ख. सृष्टिर्म० ।

सर्वे त्यक्त्वा शरीराणि नश्वराणि सुनिश्चितम् । गोलोकं च ययौ राधा सार्धं गोकुलवासिभिः ॥४४॥
ददर्श विरजातीरं नानारत्नविभूषितम् । तदुत्तीर्य ययौ विप्र शतशृङ्गं च पर्वतम् ॥४५॥
नानामणिगणाकीर्णं रासमण्डलमण्डितम् । ततो ययौ कियद्दूरं पुण्यं वृन्दावनं वनम् ॥४६॥
सा ददर्शाक्षयवटमूर्ध्वे त्रिशतयोजनम् । शतयोजनविस्तीर्णं शाखाकोटिसमावृतम् ॥४७॥
रक्तवर्णैः फलौघैश्च स्थूलैरपि विभूषितम् । गोपीकोटिसहस्रैश्च सार्धं वृन्दा मनोहरा ॥४८॥
अनुव्रजं सादरं च सस्मिता सा समाययौ । अवरुह्य रथात्तूर्णं राधां सा प्रणनाम च ॥४९॥
रासेश्वरीं तां संभाष्य प्रविवेश स्वमालयम् । रत्नसिंहासने रम्ये हीरहारसमन्विते ॥५०॥
वृन्दा तां वासयामास पादसेवनतत्परा । सप्तभिश्च सखीभिश्च सेवितां श्वेतचामरैः ॥५१॥
आययुर्गोपिकाः सर्वा द्रष्टुं तां परमेश्वरीम् । नन्दादिकं प्रकल्प्यैतद्राधा वासं पृथक्पृथक् ॥५२॥
परमानन्दरूपा सा परमानन्दपूर्वकम् । स्ववेश्मनि महारम्ये प्रतस्थे गोपिका सह ॥५३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० अष्टा-
विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२८॥

•

---

उनके रूप में श्रुति पत्नियाँ ही अपने शरीर से प्रकट हुई थीं । वे सभी अपने नश्वर शरीर का त्याग करके गोलोक को चली गयी । गोकुलवासियों के साथ राधा भी गोलोक को गयीं ॥४२-४४॥

ब्रह्मन् ! मार्ग में उन्हें विरजा नदी का तट दिखायी पड़ा, जो नाना प्रकार के रत्नों से विभूषित था । उसे पार करके वे शतशृङ्ग पर्वत पर गयीं ॥४५॥ वहाँ उन्होंने अनेक प्रकार के मणिसमूहों से व्याप्त रासमण्डल को देखा । उससे कुछ दूर आगे जाने पर पुण्यमय वृन्दावन मिला ॥४६॥ वहाँ उन्होंने अक्षयवट को देखा जो तीन सौ योजन ऊँचा था, सौ योजन चौड़ा था और करोड़ों शाखाओं से युक्त था ॥४७॥ लाल रंग के बड़े-बड़े फल-समूह उसकी शोभा बढ़ा रहे थे । उसके नीचे मनोहर वृन्दा हजारों करोड़ों गोपियों के साथ विराजमान थीं ॥४८॥ उसे देखकर राधा तुरन्त ही रथ से उतरकर आदर-सहित मुसकराती हुई उसके निकट गयीं । वृन्दा ने राधा को नमस्कार किया ॥४९॥ रासेश्वरी से बात करके वह उन्हें अपने भवन के भीतर लिवा ले गयी । वहाँ वृन्दा ने राधा को हीरे के हारों से समन्वित एक रमणीय रत्नसिंहासन पर बैठाया और स्वयं उनकी चरण-सेवा में जुट गयी । सात सखियाँ श्वेत चँवर डुलाकर उनकी सेवा करने लगी ॥५०-५१॥

परमेश्वरी राधा को देखने के लिए सभी गोपिकाएँ आ पहुँची । पश्चात् राधा ने नन्द आदि के लिए पृथक्-पृथक् आवासस्थान की व्यवस्था की फिर परमानन्दरूपा राधा ने अपने अत्यन्त रमणीय भवन की ओर गोपियों के साथ प्रस्थान किया ॥५२-५३॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद और नारायण के संवाद में
एक सौ अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥१२८॥

•

# अथैकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

### नारायण उवाच

श्रीकृष्णो भगवांस्तत्र परिपूर्णतमः प्रभुः। दृष्ट्वा सालोक्यमोक्षं च सद्यो गोकुलवासिनाम् ॥१॥
उवास पञ्चभिर्गोपैर्भाण्डीरे वटमूलके। ददर्श गोकुलं सर्वं गोकुलं व्याकुलं तथा ॥२॥
अरक्षकं च व्यस्तं च शून्यं वृन्दावनं वनम्। योगेनामृतदृष्ट्या च कृपया च कृपानिधिः ॥३॥
गोपीभिश्च तथा गोपैः परिपूर्णं चकार सः। तथा वृन्दावनं चैव सुरम्यं च मनोहरम् ॥४॥
गोकुलस्थांश्च गोपांश्च समाश्वासं चकार सः। उवाच मधुरं वाक्यं हितं नीतं च दुर्लभम् ॥५॥

### श्रीभगवानुवाच

हे गोपगण हे बन्धो सुखं तिष्ठ स्थिरो भव। रमणं प्रियया सार्धं सुरम्यं रासमण्डलम् ॥६॥
तावत्प्रभृति कृष्णस्य पुण्ये वृन्दावने वने। अधिष्ठानं च सततं यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥७॥
तथा जगाम भाण्डीरं विधाता जगतामपि। स्वयं शेषश्च धर्मश्च भवान्या च भवः स्वयम् ॥८॥
सूर्यश्चापि महेन्द्रश्च चन्द्रश्चापि हुताशनः। कुबेरो वरुणश्चैव पवनश्च यमस्तथा ॥९॥

---

# अध्याय १२९

## द्वारका का लय तथा श्रीकृष्ण का अपने धाम में गमन

**नारायण बोले**—परिपूर्णतम प्रभु भगवान् श्रीकृष्ण ने वहाँ गोकुलवासियों के सद्यः सालोक्यमोक्ष को देखकर भाण्डीरवन में वटमूल के नीचे पाँच गोपों के साथ बैठ गये। उन्होंने समस्त गोकुल पर दृष्टिपात किया। उस समय गोकुल व्याकुल, रक्षकहीन तथा व्यस्त दीख रहा था। वृन्दावन भी सूना लग रहा था। तब कृपानिधान भगवान् ने कृपा करके योग द्वारा गोकुल पर अमृत-वृष्टि की तथा गोपियों और गोपों से उसे परिपूर्ण कर दिया। वृन्दावन को रमणीय एवं मनोहर बना दिया ॥१-४॥ गोकुल में रहनेवाले गोपों को आश्वासन देते हुए मधुर, हितकर, नीतियुक्त एवं दुर्लभ वचन कहने लगे ॥५॥

**श्रीभगवान् बोले**—हे गोपगण! हे भाई! सुख से रहो, स्थिर हो जाओ। प्रिया के साथ रमण होगा। अत्यन्त रमणीय रासमण्डल बनेगा। पवित्र वृन्दावन वन में कृष्ण की तब तक स्थिति रहेगी जब तक सूर्य और चन्द्रमा रहेंगे ॥६-७॥ (इतना कहकर) तीनों लोक के विधाता (कृष्ण) भाण्डीरवन में चले गये। अनन्तर प्रभु जहाँ विराजमान थे वहाँ स्वयं शेष (नाग), धर्मराज, गौरी सहित शिव, सूर्य, इन्द्र, चन्द्र, अग्नि, कुबेर, वरुण,

ईशानश्चापि देवाश्च बसवोऽष्टौ तथैव च। सर्वे ग्रहाश्च रुद्राश्च मुनयो मनवस्तथा ॥१०॥
त्वरिताश्चाऽऽययुः सर्वे यत्राऽऽस्ते भगवान्प्रभुः। प्रणम्य दण्डवद्भूमौ तमुवाच विधिः स्वयम् ॥११॥

## ब्रह्मोवाच

परिपूर्णतम ब्रह्मस्वरूप नित्यविग्रह। ज्योतिःस्वरूप परम नमोऽस्तु प्रकृतेः पर ॥१२॥
सुनिर्लिप्त निराकार साकार ध्यानहेतुना। स्वेच्छामय परं धाम परमात्मन्नमोऽस्तु ते ॥१३॥
सर्वकार्यस्वरूपेश कारणानां च कारण। ब्रह्मेशशेषदेवेश सर्वेश ते नमोऽस्तु ते ॥१४॥
सरस्वतीश पद्मेश पार्वतीश परात्पर। हे सावित्रीश राधेश रासेश्वर नमोऽस्तु ते ॥१५॥
सर्वेषामादिभूतस्त्वं सर्वः सर्वेश्वरस्तथा। सर्वपाता च संहर्ता सृष्टिरूप नमोऽस्तु ते ॥१६॥
त्वत्पादपद्मरजसा धन्या पूता वसुंधरा। शून्यरूपा त्वयि गते हे नाथ परमं पदम् ॥१७॥
यत्पञ्चविंशत्यधिकं वर्षाणां शतकं गतम्। त्यक्त्वेमां स्वपदं यासि रुदतीं विरहातुराम् ॥१८॥

## महादेव उवाच

ब्रह्मणा प्रार्थितस्त्वं च समागत्य वसुंधराम्। भूभारहरणं कृत्वा प्रयासि स्वपदं विभो ॥१९॥
त्रैलोक्ये पृथिवी धन्या सद्यः पूता पदाङ्किता। वयं च मुनयो धन्याः साक्षाद्दृष्ट्वा पदाम्बुजम् ॥२०॥

---

पवन, यम, ईशान, देव, आठो वसु, सभी ग्रह, मुनि और मनु शीघ्रता से आ गये। स्वयं ब्रह्मा ने (भगवान् को) भूमि पर दण्डवत् प्रणाम करके उनसे कहा ॥८-११॥

**ब्रह्मा बोले**—हे परिपूर्णतम ! ब्रह्मस्वरूप ! नित्यदेह ! ज्योतिःस्वरूप ! परम ! प्रकृति से परे ! आपको नमस्कार है ॥१२॥ अत्यन्त निर्लिप्त ! निराकार ! ध्यान के कारण साकार ! स्वेच्छामय ! परमधाम ! परमात्मन् ! आपको नमस्कार है ॥१३॥ सर्वकार्यस्वरूप के ईश ! कारणों के कारण ! ब्रह्मा, ईश, शेष और देवों के ईश ! सर्वेश ! आपको नमस्कार है ॥१४॥ सरस्वती के प्रभु ! लक्ष्मी के प्रभु ! पार्वती के प्रभु ! श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ ! हे सावित्री के प्रभु ! राधा के प्रभु ! रास के ईश्वर ! आपको नमस्कार है ॥१५॥ आप सबके आदि हैं, सबके ईश्वर हैं, सबके रक्षक हैं, संहारक हैं और सृष्टिरूप हैं, ऐसे आपको नमस्कार है ॥१६॥ आपके चरणकमल की धूलि से पृथ्वी पवित्र एवं धन्य हो गयी, किन्तु हे नाथ ! आपके परम धाम चले जाने पर वह शून्यरूप हो जायगी ॥१७॥ एक सौ पचीस वर्ष बीत गये, आप विरह से व्याकुल एवं रोती हुई इस पृथ्वी को छोड़कर अपने धाम को जा रहे हैं ॥१८॥

**महादेव बोले**—विभो ! ब्रह्मा के प्रार्थना करने पर आपने पृथ्वी पर अवतार लिया और भूमि का भार उतारकर (अब अपने लोक को आप) जा रहे हैं ॥१९॥ तीनों लोक में पृथ्वी धन्य है, जो आपके चरणों से अंकित होकर सद्यः पवित्र हो गयी है। आपके चरणकमल को साक्षात् देखकर हम और मुनि लोग भी धन्य

ध्यानासाध्यो दुराराध्यो मुनीनामूर्ध्वरेतसाम् । अस्माकमपि[1] यश्चेशः सोऽधुना चाक्षुषो भुवि ।।२१।।
वासुः सर्वनिवासश्च विश्वानि यस्य लोमसु । देवस्तस्य महाविष्णुर्वासुदेवो महीतले ।।२२।।
सुचिरं तपसा लब्धं सिद्धेन्द्राणां सुदुर्लभम् । यत्पादपद्ममतुलं चाक्षुषं सर्वजीविनाम् ।।२३।।

## अनन्त उवाच

त्वमनन्तो हि भगवन्नाहमेव कलांशकः । विश्वैकस्थे क्षुद्रकूर्मे मशकोऽहं गजे यथा ।।२४।।
असंख्यशेषाः कूर्माश्च ब्रह्मविष्णुशिवात्मकाः । असंख्यानि च विश्वानि तेषामीशः स्वयं भवान् ।।२५।।
अस्माकमीदृशं नाथ सुदिनं क्व भविष्यति । स्वप्नादृष्टश्च यश्चेशः स दृष्टः सर्वजीविनाम् ।।२६।।
नाथ प्रयासि गोलोकं पूतां कृत्वा वसुंधराम् । तामनाथां रुदन्तीं च निमग्नां शोकसागरे ।।२७।।

## देवा ऊचुः

वेदाःस्तोतुं न शक्ता यं ब्रह्मेशानादयस्तथा । तमेव स्तवनं किं वा वयं कुर्मो नमोऽस्तु ते ।।२८।।
इत्येवमुक्त्वा देवास्ते प्रययुर्द्वारकां पुरीम् । तत्रस्थं भगवन्तं च द्रष्टुं शीघ्रं मुदाऽन्विताः ।।२९।।
अथ तेषां च गोपाला ययुर्गोलोकमुत्तमम् । पृथिवी कम्पिता भीता चलन्तः सप्तसागराः ।।३०।।

---

हो गये ।।२०।। जो ऊर्ध्वरेता मुनियों के भी ध्यान में नहीं आते हैं, जिनकी आराधना करना कठिन है और हमारे भी प्रभु हैं, वे इस समय पृथ्वी पर दृष्टिगोचर हो रहे हैं ।।२१।। विष्णु सबके निवास-स्थान हैं, जिनके लोमों में (असंख्य) विश्व रहते हैं, उनके देवता महाविष्णु हैं जो भूतल पर वासुदेव (श्रीकृष्ण) हैं ।।२२।। जिनका अनुपम चरणकमल सिद्धेन्द्रों के लिए भी अत्यन्त दुर्लभ है, जिसे दीर्घकालीन तपस्या के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है, वह समस्त जीवों के लिए दृष्टिगोचर हो गया ।।२३।।

**अनन्त बोले**—आप ही अनन्त भगवान् हैं और मैं आपकी कला का अंश हूँ, विश्व के एक भाग में स्थित छुद्र कूर्म पर मैं उसी तरह रहता हूँ जैसे हाथी पर मच्छर। ब्रह्मा, विष्णु और शिव रूपी शेषनाग और कूर्म भी असंख्य हैं । विश्व असंख्य हैं । उनके प्रभु स्वयं आप हैं ।।२४-२५।। नाथ ! हमारा ऐसा सुदिन कहाँ होगा ? जो प्रभु स्वप्न में भी नहीं दिखायी देते हैं, वे समस्त जीवों के दृष्टिगोचर हुए हैं । नाथ ! आप पृथ्वी को पवित्र करके गोलोक को जा रहे हैं और वह (पृथ्वी) अनाथ एवं शोक-सागर में निमग्न होकर रोदन कर रही है ।।२६-२७।।

**देवगण बोले**— वेद तथा ब्रह्मा, शंकर आदि भी जिनकी स्तुति करने में समर्थ नहीं हैं, उनकी स्तुति हम क्या करेंगे ? आपको नमस्कार है ।।२८।। इस प्रकार कहकर वे देव-गण हर्षविभोर होकर शीघ्र ही वहाँ पर स्थित भगवान् का दर्शन करने के लिए द्वारकापुरी चले गये ।।२९।। इसके बाद उनके गोपाल उत्तम गोलोक को चले गये । तब पृथ्वी कम्पायमान हो गयी और सातों सागर चलायमान हो गये ।।३०।। ब्रह्मशाप से श्रीहत हुई द्वारका

---

१ ख. 'मनघश्चे' ।

हतश्रियं द्वारकां च त्यक्त्वा च ब्रह्मशापतः । मूर्ति कदम्बमूलस्थां विवेश राधिकेश्वरः ॥३१॥
ते सर्वे चैरकायुद्धे निपेतुर्यादवास्तथा । चितामारुह्य देव्यश्च प्रययुः स्वामिभिः सह ॥३२॥
अर्जुनः स्वपुरं गत्वा समुवाच युधिष्ठिरम् । स राजा भ्रातृभिः सार्धं ययौ स्वर्गं च भार्यया ॥३३॥
दृष्ट्वा कदम्बमूलस्थं तिष्ठन्तं परमेश्वरम् । देवा ब्रह्मादयस्ते च प्रणेमुर्भक्तिपूर्वकम् ॥३४॥
तुष्टुवुः परमात्मानं देवं नारायणं प्रभुम् । श्यामं किशोरवयसं भूषितं रत्नभूषणैः ॥३५॥
वह्निशुद्धांशुकाधानं शोभितं वनमालया । अतीव सुन्दरं शान्तं लक्ष्मीकान्तं मनोहरम् ॥३६॥
व्याधास्त्रसंयुतं पादपद्मं पद्मादिवन्दितम् । दृष्ट्वा ब्रह्मादिदेवांस्तानभयं सस्मितं ददौ ॥३७॥
पृथिवीं तां समाश्वास्य रुदतीं प्रेमविह्वलाम् । व्याधं प्रस्थापयामास परं स्वपदमुत्तमम् ॥३८॥
बलस्य तेजः शेषे च विवेश परमाद्भुतम् । प्रद्युम्नस्य च कामे[1] वै वाऽनिरुद्धस्य ब्रह्मणि ॥३९॥
अयोनिसंभवा देवी महालक्ष्मीश्च रुक्मिणी । वैकुण्ठं प्रययौ साक्षात्स्वशरीरेण नारद ॥४०॥
सत्यभामा पृथिव्यां च विवेश कमलालया । स्वयं जाम्बवती देवी पार्वत्यां विश्वमातरि ॥४१॥
या या देव्यश्च यासां चाप्यंशरूपाश्च भूतले । तस्यां तस्यां प्रविविशुस्ता एव च पृथक्पृथक् ॥४२॥

---

का परित्याग कर राधिकेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण कदम्ब के मूल में स्थित मूर्ति में प्रविष्ट हो गये ॥३१॥ वे समस्त यादव सरपत द्वारा युद्ध करके नष्ट हो गये और देवियाँ भी चिता पर आरूढ़ होकर स्वामिजनों के साथ प्रस्थान कर गयीं ॥३२॥ अर्जुन ने अपने पुर (हस्तिनापुर) जाकर युधिष्ठिर को इस समाचार से अवगत कराया। वे राजा (युधिष्ठिर) भाइयों तथा भार्या के साथ स्वर्ग चले गये ॥३३॥ कदम्ब के मूल पर स्थित होकर बैठे हुए परमेश्वर (भगवान् श्रीकृष्ण) को देखकर वे ब्रह्मा आदि देवगण भक्तिपूर्वक प्रणाम करने लगे ॥३४॥ वे श्याम वर्ण, किशोर वय, रत्नों के आभूषणों से विभूषित, अग्नि के समान देदीप्यमान, शुद्ध वस्त्र पहने हुए, वनमाला से सुशोभित, अतीव सुन्दर, शान्त, लक्ष्मी के कान्त, मनोहर, व्याध के अस्त्र से युक्त, लक्ष्मी आदि देवियों से वन्दनीय चरणकमलवाले नारायण, परमात्मा एवं सर्वव्यापक देव (भगवान् श्रीकृष्ण) की स्तुति करने लगे। भगवान् श्रीकृष्ण ने भी उन ब्रह्मा आदि देवों को देखकर उन्हें मुस्कराते हुए अभय प्रदान किया ॥३५-३७॥ भगवान् ने प्रेम से विह्वल होकर रोती हुई उस पृथ्वी को आश्वासन देकर व्याध को अपना उत्तम परम पद प्रदान किया ॥३८॥ नारद ! बलराम का परम अद्भुत तेज शेषनाग में प्रविष्ट हो गया। प्रद्युम्न का तेज काम में तथा अनिरुद्ध का ब्रह्मा में प्रविष्ट हो गया। अयोनिसंभवा, महालक्ष्मी देवी रुक्मिणी साक्षात् अपने शरीर से वैकुण्ठलोक को प्रस्थान कर गयीं ॥३९-४०॥ लक्ष्मी की अंशावतार सत्यभामा पृथ्वी में समा गयीं। देवी जाम्बवती स्वयं ही विश्वमाता पार्वती में प्रविष्ट हुईं ॥४१॥ भूतल पर जो-जो देवियाँ जिन-जिन देवियों की अंशरूप में थीं उन-उन में वे पृथक्-पृथक् रूप से लीन हो गयीं ॥४२॥ साम्ब का परम अद्भुत तेज स्कन्द में

---

१ क. कामकं।

साम्बस्य तेजः स्कन्दे च विवेश परमाद्भुतम्। कश्यपे वसुदेवश्चाप्यदित्यां देवकी तथा ॥४३॥
रुक्मिणीमन्दिरं त्यक्त्वा समस्तां द्वारकां पुरीम्। स जग्राह समुद्रश्च प्रफुल्लवदनेक्षणः ॥४४॥
लवणोदः समागत्य तुष्टाव पुरुषोत्तमम्। रुरोद तद्वियोगेन साश्रुनेत्रश्च विह्वलः ॥४५॥
गङ्गा सरस्वती पद्मावती च यमुना तथा। गोदावरी स्वर्णरेखा कावेरी नर्मदा मुने ॥४६॥
शरावती बाहुदा च कृतमाला च पुण्यदा। समाययुश्च ताः सर्वाः प्रणेमुः परमेश्वरम् ॥४७॥
उवाच जाह्नवी देवी रुदती परमेश्वरम्। साश्रुनेत्राऽतिदीना सा विरहज्वरकातरा ॥४८॥

## भागीरथ्युवाच

हे नाथ रमणश्रेष्ठ यासि गोलोकमुत्तमम्। अस्माकं का गतिश्चात्र भविष्यति कलौ युगे ॥४९॥

## श्रीभगवानुवाच

कलेः पञ्चसहस्राणि वर्षाणि तिष्ठ भूतले। पापानि पापिनो यानि तुभ्यं दास्यन्ति स्नानतः ॥५०॥
मन्मन्त्रोपासकस्पर्शाद्भस्मीभूतानि तत्क्षणात्। भविष्यन्ति दर्शनाच्च स्नानादेव हि जाह्नवि ॥५१॥
हरेर्नामानि यत्रैव पुराणानि भवन्ति हि। तत्र गत्वा सावधानमाभिः सार्धं च श्रोष्यसि ॥५२॥
पुराणश्रवणाच्चैव हरेर्नामानुकीर्तनात्। भस्मीभूतानि पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च ॥५३॥
भस्मीभूतानि तान्येव वैष्णवालिङ्गनेन च। तृणानि शुष्ककाष्ठानि दहन्ति पावका यथा ॥५४॥

---

प्रविष्ट हो गया; कश्यप में वासुदेव का तथा अदिति में देवकी का तेज समा गया ॥४३॥ प्रफुल्ल मुख एवं नेत्र-वाले उस समुद्र ने रुक्मिणी का भवन छोड़कर सारी द्वारकापुरी को आत्मसात् कर लिया ॥४४॥ फिर लवण समुद्र ने आकर पुरुषोत्तम की स्तुति की और उनके वियोग में अश्रुपूर्ण नेत्रों से, विह्वल होकर रोने लगा ॥४५॥ मुने ! गङ्गा, सरस्वती, पद्मावती, यमुना, गोदावरी, स्वर्णरेखा, कावेरी, नर्मदा, शरावती, बाहुदा तथा पुण्य-दायिनी कृतमाला आदि समस्त सरिताएँ वहाँ पर आयीं और परमेश्वर को प्रणाम करने लगीं ॥४६-४७॥ विरह के ज्वर से कातर, अश्रुपूर्ण नेत्रोंवाली, अत्यन्त दीन वे जाह्नवी देवी रोती हुई परमेश्वर श्रीकृष्ण से बोलीं ॥४८॥

**भागीरथी ने कहा**— रमणश्रेष्ठ नाथ ! आप तो उत्तम गोलोक को प्रस्थान कर रहे हैं। आनेवाले कलियुग में हमारी क्या गति होगी ? ॥४९॥

**श्रीभगवान् बोले**—जाह्नवी ! तुम कलियुग के पाँच हजार वर्षों तक भूतल पर निवास करो। पापी लोग स्नान करके जो पाप देंगे वे सब मेरे मन्त्रों के उपासकों के स्पर्श, दर्शन एवं स्नान से तत्क्षण भस्म हो जायेंगे ॥५०-५१॥ जहाँ कहीं हरि के नाम का कीर्तन एवं पुराणों का वाचन हो वहाँ जाकर सावधानी से इनके साथ श्रवण करोगी ॥५२॥ पुराणों के श्रवण तथा हरिनाम के कीर्त्तन करने से ब्रह्महत्या आदि पातक भस्मीभूत हो जाते हैं ॥५३॥ वे पाप वैष्णवों के आलिङ्गन से भी भस्म होते हैं जैसे अग्नि तृण एवं सूखे काष्ठ जला

तथाऽपि वैष्णवा लोके पापानि पापिनामपि । पृथिव्यां यानि तीर्थानि पुण्यान्यपि च जाह्नवि ॥५५॥
मद्भक्तानां शरीरेषु सन्ति पूतेषु संततम् । मद्भक्तपादरजसा सद्यः पूता वसुंधरा ॥५६॥
सद्यः पूतानि तीर्थानि सद्यः पूतं जगत्तथा । मन्मन्त्रोपासका विप्रा ये मदुच्छिष्टभोजिनः ॥५७॥
मामेव नित्यं ध्यायन्ते ते मत्प्राणाधिकाः प्रियाः । तदुपस्पर्शमात्रेण पूतो वायुश्च पावकः ॥५८॥
कलेर्दशसहस्राणि मद्भक्ताः सन्ति भूतले । एकवर्णा भविष्यन्ति मद्भक्तेषु गतेषु च ॥५९॥
मद्भक्तशून्या पृथिवी कलिग्रस्ता भविष्यति । एतस्मिन्नन्तरे तत्र कृष्णदेहाद्विनिर्गतः ॥६०॥
चतुर्भुजश्च पुरुषः शतचन्द्रसमप्रभः । शङ्खचक्रगदापद्मधरः श्रीवत्सलाञ्छनः ॥६१॥
सुन्दरं रथमारुह्य क्षीरोदं स जगाम ह । सिन्धुकन्या च प्रययौ स्वयं मूर्तिमती सती ॥६२॥
श्रीकृष्णमनसा जाता मर्त्यलक्ष्मीर्मनोहरा । श्वेतद्वीपं गते विष्णौ जगत्पालनकर्तरि ॥६३॥
शुद्धसत्त्वस्वरूपे च द्विधारूपो बभूव सः । दक्षिणांशश्च द्विभुजो गोपबालकरूपकः ॥६४॥
नवीन जलदश्यामः शोभितः पीतवाससा । श्रीवंशवदनः श्रीमान्सस्मितः पद्मलोचनः ॥६५॥
शतकोटीन्दुसौन्दर्यं शतकोटिस्मरप्रभाम् । दधानः परमानन्दः परिपूर्णतमः प्रभुः ॥६६॥
परं धाम परं ब्रह्मस्वरूपो निर्गुणः स्वयम् । परमात्मा च सर्वेषां भक्तानुग्रहविग्रहः ॥६७॥
नित्यदेहश्च भगवानीश्वरः प्रकृतेः परः । योगिनो यं वदन्त्येवं ज्योतीरूपं सनातनम् ॥६८॥

---

डालते हैं । जाह्नवी ! पृथ्वी पर जितने तीर्थ एवं पुण्य हैं वे सब मेरे भक्तों के पवित्र शरीर में निरन्तर वर्तमान रहते हैं । मेरे भक्तों के चरणों की धूलि से वसुन्धरा सद्यः पवित्र हो जाती है ॥५४-५६॥ समस्त तीर्थ एवं जगत् भक्तों की चरण-धूलि से ही सद्यः पवित्र होते हैं । जो विप्र मेरे मन्त्रों के उपासक हैं और मेरा प्रसाद भोजन करते हैं ॥५७॥ नित्य प्रति मेरा ही ध्यान करते हैं, वे मेरे प्राणों से भी बढ़कर प्रिय हैं । उनके स्पर्शमात्र से वायु तथा अग्नि भी पवित्र हो जाते हैं ॥५८॥ इस भूतल पर कलियुग के दस हजार वर्षों तक मेरे भक्तगण रहेंगे । मेरे भक्तों के जाने के बाद सभी मनुष्य एक वर्ण के हो जायँगे ॥५९॥ मेरे भक्तों से सूनी पृथिवी कलिकाल से ग्रस्त हो जायगी । इतने में ही कृष्ण के शरीर से चतुर्भुज, सैकड़ों चन्द्रमा के समान कान्ति बिखेरने-वाला, शङ्ख, चक्र, गदा तथा कमल धारण किये हुए, श्रीवत्स नामक चिह्न से युक्त पुरुष निकल पड़ा ॥६०-६१॥ वह सुन्दर रथ पर आरूढ़ होकर क्षीरसागर चला गया । सागरपुत्री लक्ष्मी भी मूर्तिमती होकर चली गयी ॥६२॥ जगत् के पालक विष्णु के श्वेत द्वीप चले जाने पर श्रीकृष्ण के मन से मनोहर मर्त्यलक्ष्मी उत्पन्न हुई । शुद्ध सत्त्वस्वरूप में वे (कृष्ण) दो रूपों में विभक्त हो गये । उनका दाहिना अंश दो भुजाओंवाला गोप बालक के आकार का हो गया ॥६३-६४॥ वह स्वरूप नवीन मेघ के समान साँवला, पीताम्बर से सुशोभित, मुख में मुरली लिये, श्रीसम्पन्न, मुस्कराता हुआ, कमलनेत्र, सौ करोड़ चन्द्रमा के सौन्दर्य एवं सौ करोड़ काम की कान्ति को धारण करनेवाला, परमानन्द, परिपूर्णतम प्रभु और परमधाम, परब्रह्म, स्वयं निर्गुण परमात्मा तथा सभी भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए शरीर धारण करनेवाला, नित्यदेह, भगवान् एवं प्रकृति से परे है । योगी

ज्योतिरभ्यन्तरे नित्यरूपं भक्ता विदन्ति यम्। वेदा वदन्ति सत्यं यं नित्यमाद्यं विचक्षणाः ॥६९॥
यं वदन्ति सुराः सर्वे परं स्वेच्छामयं प्रभुम्। सिद्धेन्द्रा मुनयः सर्वे सर्वरूपं वदन्ति यम् ॥७०॥
यमनिर्वचनीयं च योगीन्द्रः शंकरो वदेत्। स्वयं विधाता प्रवदेत्कारणानां च कारणम् ॥७१॥
शेषो वदेदनन्तं यं नवधारूपमीश्वरम्। तर्काणामेव षण्णां च षड्विधं रूपमीप्सितम् ॥७२॥
वैष्णवानामेकरूपं वेदानामेकमेव च। पुराणानामेकरूपं तस्मान्नवविधं स्मृतम् ॥७३॥
न्यायोऽनिर्वचनीयं च यं मतं शंकरो वदेत्। नित्यं वैशेषिकाश्चाऽऽद्यं तं वदन्ति विचक्षणाः ॥७४॥
सांख्या वदन्ति तं देवं ज्योतीरूपं सनातनम्। मीमांसा सर्वरूपं च वेदान्तः सर्वकारणम् ॥७५॥
पातञ्जलोऽप्यनन्तं च वेदाः सत्यस्वरूपकम्। स्वेच्छामयं पुराणं च भक्ताश्च नित्यविग्रहम् ॥७६॥
सोऽयं गोलोकनाथश्च राधेशो नन्दनन्दनः। गोकुले गोपवेषश्च पुण्ये वृन्दावने वने ॥७७॥
चतुर्भुजश्च वैकुण्ठे महालक्ष्मीपतिः स्वयम्। नारायणश्च भगवान्यन्नाम मुक्तिकारणम् ॥७८॥
सकृन्नारायणेत्युक्त्वा पुमान्कल्पशतत्रयम्। गङ्गादिसर्वतीर्थेषु स्नातो भवति नारद ॥७९॥
सुनन्दनन्दकुमुदैः पार्षदैः परिवारितः। शङ्खचक्रगदापद्मधरः श्रीवत्सलाञ्छनः ॥८०॥
कौस्तुभेन मणीन्द्रेण भूषितो वनमालया। देवैः[1] स्तुतश्च यानेन वैकुण्ठं स्वपदं ययौ ॥८१॥

---

लोग उन्हें सनातन ज्योतिःस्वरूप कहते हैं ॥६५-६८॥ भक्त लोग अन्तःकरण में नित्यरूप ज्योति जानते हैं। वेद उन्हें सत्य कहते हैं। विचक्षण पण्डित जन उन्हें नित्य एवं आद्य कहते हैं। सभी देवता लोग उन्हें उत्कृष्ट स्वेच्छामय प्रभु कहते हैं। सभी सिद्धेन्द्र एवं मुनि उन्हें सर्वरूप कहते हैं ॥६९-७०॥ योगीन्द्र शंकर उन्हें अनिर्वचनीय कहते हैं। विधाता स्वयं उन्हें कारणों का कारण कहते हैं ॥७१॥ शेष भगवान् उन्हें नवधारूप-वाले ईश्वर एवं अनन्त कहते हैं। छह दर्शनों के ही इनके छह प्रकार के रूप अभीष्ट हैं ॥७२॥ वैष्णवों के एक, वेदों के एक, पुराणों के एक, उन्हीं सब को मिलाकर इनके नव रूप कहे गये हैं ॥७३॥ न्यायशास्त्र इसे निर्वचनीय कहता है जिस मत को शंकर भी स्वीकार करते हैं। वैशेषिक विद्वान् उसे नित्य एवं आद्य कहते हैं ॥७४॥

उस देव को सांख्य लोग सनातन ज्योतिःस्वरूप कहते हैं। मीमांसा शास्त्र उसे सर्वरूप तथा वेदान्त सर्वकारण कहता है ॥७५॥ पातञ्जलयोग अनन्त तथा वेद जिसे सत्यस्वरूप कहते हैं। पुराण उन्हें स्वेच्छामय तथा भक्त लोग नित्यविग्रह कहते हैं ॥७६॥ यही वे गोलोकनाथ राधा के ईश तथा नन्दनन्दन हैं। वे गोकुल तथा वृन्दावन के वन में गोपवेषधारी हैं ॥७७॥ वैकुण्ठ में स्वयं चतुर्भुज महालक्ष्मीपति हैं। वे ही नारायण भगवान् हैं जिनका नाम मुक्ति का कारण है ॥७८॥ नारद! एक बार भी नारायण नाम का उच्चारण करके पुरुष तीन सौ कल्पों तक गङ्गा आदि सब तीर्थों में स्नान कर चुका होता है ॥७९॥ अनन्तर सुनन्द, नन्द और कुमुद नामक पार्षदों से घिरे हुए, शङ्ख, चक्र, गदा एवं कमल धारण किये हुए, श्रीवत्स लाञ्छन से सुशोभित मणीन्द्र कौस्तुभ तथा वनमाला से विभूषित, विष्णु भगवान् देवों द्वारा स्तुति किये जाते हुए विमान द्वारा

---

१ ख. वेदैः।

गते वैकुण्ठनाथे च राधेशश्च स्वयं प्रभुः। चकार वंशीशब्दं च त्रैलोक्यमोहनं परम् ॥८२॥
मूर्च्छांप्रापुर्देवगणा मुनयश्चापि नारद। अचेतना बभूवुश्च मायया पार्वतीं विना ॥८३॥
उवाच पार्वती देवी भगवन्तं सनातनम्। विष्णुमाया भगवती सर्वरूपा सनातनी ॥८४॥
परब्रह्मस्वरूपा या परमात्मस्वरूपिणी। सगुणा निर्गुणा सा च परा स्वेच्छामयी सती ॥८५॥

## पार्वत्युवाच

एकाऽहं राधिकारूपा गोलोके रासमण्डले। रासशून्यं च गोलोकं परिपूर्णं कुरु प्रभो ॥८६॥
गच्छ त्वं रथमारुह्य मुक्तामाणिक्यभूषितम्। परिपूर्णतमाऽहं च तव वक्षःस्थलस्थिता ॥८७॥
तवाऽऽज्ञया महालक्ष्मीरहं वैकुण्ठगामिनी। सरस्वती च तत्रैव वामे[1] पार्श्वे हरेरपि ॥८८॥
तवाहं मनसा जाता सिन्धुकन्या तवाऽऽज्ञया। सावित्री वेदमाताऽहं कलया विधिसंनिधौ ॥८९॥
तेजःसु सर्वदेवानां पुरा सत्ये तवाऽऽज्ञया। अधिष्ठानं कृत तत्र धृतं देव्या शरीरकम् ॥९०॥
शुम्भादयश्च दैत्याश्च निहताश्चावलीलया। दुर्गं निहत्य दुर्गाऽहं त्रिपुरा त्रिपुरे वधे ॥९१॥
निहत्य रक्तबीजं च रक्तबीजविनाशिनी। तवाऽऽज्ञया दक्षकन्या सती सत्यस्वरूपिणी ॥९२॥
योगेन त्यक्त्वा देहं च शैलजाऽहं तवाऽऽज्ञया। त्वया दत्त्वा (त्ता) शंकराय गोलोके रासमण्डले ॥९३॥

---

अपने धाम वैकुण्ठ को चले गये ॥८०-८१॥ वैकुण्ठनाथ के चले जाने के बाद स्वयं राधेश प्रभु (श्रीकृष्ण) ने परम त्रैलोक्यमोहन वंशीनिनाद किया ॥८२॥ नारद ! इस निनाद को सुनकर देवगण एवं मुनिगण मूर्च्छित हो गये। पार्वती को छोड़कर सभी माया से अचेत हो गये ॥८३॥ विष्णुमाया, सर्वरूपा, सनातनी, परब्रह्म-स्वरूपा, परमात्मस्वरूपिणी, सगुणा, निर्गुणा, परम स्वेच्छामयी सती भगवती पार्वती देवी बोलीं ॥८४-८५॥

**पार्वती ने कहा**—प्रभो ! मैं अकेली राधिका के रूप में गोलोक के रासमण्डल में थी। आप रास से शून्य गोलोक को परिपूर्ण करें ॥८६॥ आप मुक्ता एवं माणिक्य से विभूषित रथ पर आरूढ होकर जायें। मैं आपके वक्षःस्थल पर स्थित होती हुई अत्यन्त परिपूर्ण थी ॥८७॥ आपकी आज्ञा से मैं वैकुण्ठगामिनी महा-लक्ष्मी थी और वहीं पर हरि के वाम पार्श्व में विराजमान सरस्वती भी थी ॥८८॥ मैं आपके मन से उत्पन्न हुई आपकी आज्ञा से सागर की कन्या हुई। मैं वेदमाता सावित्री थी और कला से ब्रह्मा के समीप रहती थी ॥८९॥ पहले सत्ययुग में आपकी आज्ञा से समस्त देवताओं के तेज में मैंने अधिष्ठान किया था और देवी का शरीर धारण किया था ॥९०॥ लीलापूर्वक मैंने शुम्भ आदि दैत्यों का वध किया था। दुर्ग नामक असुर का वध करने के कारण दुर्गा एवं त्रिपुर का वध करने के कारण त्रिपुरा कहलायी ॥९१॥ रक्तबीज का वध कर रक्तबीज-विनाशिनी कहलायी। आपकी आज्ञा से सत्यस्वरूपिणी दक्षकन्या सती हुई ॥९२॥ आपकी आज्ञा से योग द्वारा शरीर का परित्याग कर शैलपुत्री कहलायी जिसे आपने गोलोक के रासमण्डल में शंकर को प्रदान कर दिया ॥९३॥ मैं विष्णु

---

१ समा।

विष्णुभक्तिरहं तेन विष्णुमाया च वैष्णवी । नारायणस्य मायाऽहं तेन नारायणी स्मृता ॥९४॥
कृष्णप्राणाधिकाऽहं च प्राणाधिष्ठातृदेवता । महाविष्णोश्च वासोश्च जननी राधिका स्वयम् ॥९५॥
तवाऽऽज्ञया पञ्चधाऽहं पञ्चप्रकृतिरूपिणी । कलाकलांशयाऽहं च देवपत्न्यो गृहे गृहे ॥९६॥
शीघ्रं गच्छ महाभाग तत्राऽहं विरहातुरा । गोपीभिः सहिता रासं भ्रमन्ती परितः सदा ॥९७॥
पार्वतीवचनं श्रुत्वा प्रहस्य रसिकेश्वरः । रत्नयानं समारुह्य ययौ गोलोकमुत्तमम् ॥९८॥
पार्वती बोधयामास स्वयं देवगणं तथा । मायावंशीरवाच्छन्नं विष्णुमाया सनातनी ॥९९॥
कृत्वा ते हरिशब्दं च स्वगृहं विस्मयं ययुः । शिवेन सार्धं दुर्गा सा प्रहृष्टा स्वपुरं ययौ ॥१००॥
अथ कृष्णं समायान्तं राधा गोपीगणैः सह । अनुव्रजं ययौ हृष्टा सर्वज्ञा प्राणवल्लभम् ॥१०१॥
दृष्ट्वा समीपमायान्तमवरुह्य रथात्सती । प्रणनाम जगन्नाथं शिरसा सखिभिः सह ॥१०२॥
गोपा गोप्यश्च मुदिताः प्रफुल्लवदनेक्षणाः । दुंदुभिं वादयामासुरीश्वरागमनोत्सुकाः ॥१०३॥
विरजां च समुत्तीर्य दृष्ट्वा राधां जगत्पतिः । अवरुह्य रथात्तूर्णं गृहीत्वा राधिकाकरम् ॥१०४॥
शतशृङ्गं च बभ्राम सुरम्यं रासमण्डलम् । दृष्ट्वाऽक्षयवटं पुण्यं पुण्यं वृन्दावनं ययौ ॥१०५॥
तुलसीकाननं दृष्ट्वा प्रययौ मालतीवनम् । वामे कृत्वा कुन्दवनं माधवीकाननं तथा ॥१०६॥

---

की भक्ति थी अतः विष्णुमाया और वैष्णवी कहलायी । मैं नारायण की माया थी अतः नारायणी कही गयी ॥९४॥ मैं कृष्ण के प्राणो से भी अधिक प्राणों की अधिष्ठात्री देवता, महाविष्णु एवं वासु की जननी स्वयं श्रीराधा थी ॥९५॥ आपकी आज्ञा से मैं पञ्चप्रकृति के रूप में पाँच प्रकार की हुई । मैं कलाओं तथा कलाओं के अंश से घर-घर में देवपत्नियाँ बनी ॥९६॥ महाभाग ! आप शीघ्र जायें । मैं वहाँ पर विरह से व्यथित हूँ । गोपियों के साथ सदैव रास के चारों ओर घूमती रहती हूँ ॥९७॥ पार्वती के वचन सुनकर रसिकेश्वर भगवान् हँसकर रत्नों के यान पर आरूढ़ होकर उत्तम गोलोक को चले गये ॥९८॥ इसके पश्चात् सनातनी विष्णुमाया पार्वती ने माया की वंशी के निनाद से अचेत हुए देवगण को स्वयं जगाया ॥९९॥ वे देवगण हरि शब्द का उच्चारण करके विस्मयपूर्वक अपने-अपने घर चले गये । दुर्गा भी शिव के साथ प्रसन्नतापूर्वक अपने पुर चली गयीं ॥१००॥ इसके बाद कृष्ण को आते हुए देखकर सर्वज्ञा श्रीराधा ने भी व्रज को त्यागकर गोपीगण के साथ प्रसन्नतापूर्वक प्राणवल्लभ का अनुसरण किया ॥१०१॥ समीप आते हुए देखकर सती श्रीराधा ने रथ से उतरकर सखियों के साथ उन्हें शिरसा प्रणाम किया ॥१०२॥ प्रफुल्लित मुख एवं नेत्रवाले गोप एवं गोपियों ने ईश्वर के आगमन से उत्सुक होकर प्रसन्नतापूर्वक दुन्दुभिवादन किये ॥१०३॥ विरजा नदी को पारकर जगत्पति श्रीकृष्ण ने श्रीराधा को देखकर तुरन्त रथ से उतरकर उनका हाथ पकड़ लिया और शतशृङ्ग पर्वत पर रमणीय रासमण्डल में वे भ्रमण करने लगे । अनन्तर पुण्य अक्षयवट का दर्शन कर पुण्य वृन्दावन चले गये ॥१०४-१०५॥ वहाँ पर तुलसी के वन को देखकर कुन्दवन एवं माधवीकानन को बायें करके मालतीवन

चकार दक्षिणे कृष्णश्चम्पकारण्यमीप्सितम् । चकार पश्चात्तूर्णं च चारुचन्दनकाननम् ॥१०७॥
ददर्श पुरतो रम्यं राधिकाभवनं परम् । उवास राधया सार्धं रत्नसिंहासने वरे ॥१०८॥
सकर्पूरं च ताम्बूलं बुभुजे वासितं जलम् । सुष्वाप पुष्पतल्पे च सुगन्धिचन्दनार्चिते ॥१०९॥
स रेमे रामया सार्धं निमग्नो रससागरे । इत्येवं कथितं सर्वं धर्मवक्त्राच्च यच्छ्रुतम् ॥११०॥
गोलोकारोहणं रम्यं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥१११॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० गोलोकारोहणं नामैकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१२९॥

•

## अथ त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

### नारद उवाच

सर्वं श्रुतं महाभाग नावशेषमभीप्सितम् । किमपूर्वं पुराणं च ब्रह्मवैवर्तमिष्टदम् ॥१॥
अधुना किं करिष्यामि तन्मां ब्रूहि जगद्गुरो । आज्ञां कुरु तपस्यां च कर्तुं यामि हिमालयम् ॥२॥

---

चले गये ॥१०६॥ दाहिने अभीष्ट चम्पकारण्य तथा पीछे मनोहर चन्दनवन को शीघ्रता में छोड़ दिया और सामने परम रम्य राधिका भवन का दर्शन किया तथा श्रेष्ठ रत्नसिंहासन पर श्रीराधा के साथ विराजमान होकर निवास करने लगे ॥१०७-१०८॥ वहाँ पर उन्होंने सुगन्धित कर्पूर सहित ताम्बूल एवं सुवासित जल का सेवन करते हुए सुगन्धित चन्दन से चर्चित पुष्पशय्या पर शयन किया ॥१०९॥ वे रस-सागर में निमग्न होकर प्रिया के साथ रमण करने लगे । इस प्रकार धर्म के मुख से जो कुछ सुना था, वह आपको बता दिया ॥११०॥ गोलोक गमन अत्यन्त सुन्दर है । क्या और भी कुछ सुनना चाहते हो ?॥१११॥

श्रीब्रह्मवैवर्तपुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद-नारायण के संवाद में गोलोकारोहण नामक एक सौ उन्तीसवां अध्याय समाप्त ॥१२९॥

•

## अध्याय १३०

### नारद-विवाह

**नारद बोले**—महाभाग ! सब सुन लिया । अभीष्ट कुछ भी शेष नहीं रहा । अभीष्टदायक यह ब्रह्मवैवर्तपुराण क्या ही अपूर्व है ॥१॥ जगद्गुरो ! अब आप मुझे बताइये कि मैं क्या करूँ । आज्ञा दीजिये । हिमालय पर तपस्या करने के लिए जा रहा हूँ ॥२॥

### नारायण उवाच

उपबर्हणगन्धर्वः पञ्चाशत्कामिनीपतिः । जन्मान्तरे भवानासीदधुना ब्रह्मपुत्रकः ॥३॥
तास्वेका च सती रम्या तपसा शंकरं परम् । आराध्य च वरं लेभे वाञ्छितं नारदं पतिम् ॥४॥
सा च सृञ्जयकन्या च स्वर्णष्ठीवीसहोदरा । तां विवाहं कुरुष्वेति शंकराज्ञा कथं वृथा ॥५॥
सुन्दरी सुन्दरीष्वेवं कोमलां कमलाकलाम् । पतिव्रतां महाभागां रम्यां सुप्रियवादिनीम् ॥६॥
कामुकीं कमनीयां च शश्वत्सुस्थिरयौवनाम् । विधात्रा लिखितं कर्म प्राक्तनं केन वार्यते ॥७॥
नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि । अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥८॥

### सूत उवाच

नारायणवचः श्रुत्वा हृदयेन विदूयता । प्रणम्य प्रययौ शीघ्रं नारदः सृञ्जयालयम् ॥९॥

### शौनक उवाच

अहो सूत महाभाग श्रुतं किं परमाद्भुतम् । किमपूर्वं रहस्यं च सरसं च पुरातनम् ॥१०॥
अधुना श्रोतुमिच्छामि विवाहं नारदस्य च । अतीन्द्रियस्य च मुनेर्ब्रह्मपुत्रस्य सांप्रतम् ॥११॥

### सूत उवाच

नारदो मू (गु) ढरूपश्च दृष्ट्वा सृञ्जयकन्यकाम् । तपस्विनीं महाभागां विष्णुव्रतपरायणाम् ॥१२॥

---

**नारायण ने कहा**—आप जन्मान्तर में पचास कामिनियों के पति उपबर्हण नामक गन्धर्व थे अब आप ब्रह्मा के पुत्र हैं ॥३॥ उनमें से एक कामिनी रमणीय एवं सती थी जिसने उत्कृष्ट तपस्या द्वारा शंकर की आराधना करके नारद को पति के रूप में पाने का वाञ्छित वर प्राप्त कर लिया है ॥४॥ वह सृञ्जय की कन्या तथा स्वर्णष्ठीवी की सगी बहन है। उससे आप विवाह कर लें। शंकर की आज्ञा व्यर्थ कैसे हो सकती है ? ॥५॥ वह सुन्दरियों में सुन्दरी, सुकोमला एवं लक्ष्मी की कला है। पतिव्रता, महाभाग्यवाली, रम्या एवं अत्यन्तप्रियवादिनी है। कामुकी, कमनीया तथा निरन्तर स्थिरयौवनवाली है। अतः अवश्य उससे विवाह कर लें। विधाता द्वारा लिखा गया पूर्वजन्म के कर्मों का फल कौन मिटा सकता है ? ॥६-७॥ सौ करोड़ कल्पों तक बिना भोगे हुए कर्म क्षीण नहीं होता। शुभ तथा अशुभ कर्मों को अवश्यमेव भोगना पड़ता है ॥८॥

**सूत बोले**—नारायण के वचन सुनकर पीड़ित हृदय से नारद प्रणाम करके शीघ्र सृञ्जय के घर चले गये ॥९॥

**शौनक बोले**—महाभाग सूत ! हम लोगों ने क्या ही अद्भुत, सरस, अपूर्व एवं पुरातन रहस्य सुना ॥१०॥ अब ब्रह्मा के पुत्र अतीन्द्रिय मुनि, नारद का विवाह सुनना चाहता हूँ ॥११॥

**सूत बोले**—नारद जी गुप्तरूप से तपस्विनी, महाभागा, विष्णु के व्रत में परायण सृञ्जय की कन्या को

ययौ ब्रह्मसभां रम्यां सर्वदेवैः समावृताम् । प्रणम्य पितरं शान्तः सर्वं तत्त्वमुवाच तम् ।।१३।।
ब्रह्मा प्रहृष्टवदनः श्रुत्वा वार्तां शुभावहाम् । तपस्विनं च पुत्रं च संप्राप्य[1] जगतां पतिः ।।१४।।
रत्ननिर्माणयानेन सार्धं देवैः शुभे क्षणे । पुत्रं कृत्वा च पुरतो ययौ सृञ्जयमन्दिरम् ।।१५।।
तच्छ्रुत्वा सृञ्जयो राजा रत्नभूषणभूषिताम् । गृहीत्वा कन्यकां रम्यां नारदाय ददौ मुदा ।।१६।।
सर्वस्वं दक्षिणां दत्त्वा मणिमुक्तादिकं तथा । पुटाञ्जलियुतो भूत्वा परिहारं चकार सः ।।१७।।
कन्यां समर्प्य ब्रह्माणं राजा च योगिनां वरः[2] । रुरोद भृशमुच्चैश्च वत्से वत्से इतीरितम् ।।१८।।
क्व यासि त्यक्त्वा मद्गेहं शून्यं कमललोचने । अहं यामि वनं घोरं त्वां त्यक्त्वा जीवितो मृतः ।।१९।।
प्रणम्य पितरं कन्या रुदन्तं मातरं तथा । रुदतीं तां रुदन्ती साऽप्यारुरोह रथं विधेः ।।२०।।
गृहीत्वा च सभार्यं च पुत्रं धाता मुदाऽन्वितः । प्रययौ ब्रह्मलोकं च देवेन्द्रैर्मुनिभिः सह ।।२१।।
ब्राह्मणान्भोजयामास साङ्गे मङ्गलकर्मणि । देवानपि च सिद्धांश्च वादयामास दुंदुभिम् ।।२२।।
नारदस्तु मुनिश्रेष्ठो बाधितः[3] पूर्वकर्मणा । यस्य यत्प्राक्तनं विप्र दुर्लङ्घ्य केन वार्यते ।।२३।।
सुरम्ये पुष्पतल्पे च सुगन्धिचन्दनार्चिते । स रेमे रामया सार्धं बुबुधे न दिवानिशम् ।।२४।।
एवं कृत्वा विवाहं च विरतो मुनिसत्तमः । उवास ब्रह्मलोकेषु वटमूले मनोहरे ।।२५।।

---

देखकर समस्त देवताओं से घिरी हुई, रमणीय ब्रह्मा की सभा में गये और पिता को प्रणाम करके उनसे शान्त भाव से समस्त तत्त्व निवेदित किया ।।१२-१३।। संसार के स्वामी ब्रह्मा जी तपस्वी पुत्र से मिलकर और उस शुभावह वार्ता को सुनकर प्रसन्नमन से शुभमुहूर्त्त में देवों के साथ रत्ननिर्मित विमान से पुत्र को सामने करके सृञ्जय के भवन में गये ।।१४-१५।। यह समाचार सुनकर राजा सृञ्जय ने रत्नों के आभूषण से भूषित, मनोहर कन्या का दान प्रसन्नतापूर्वक नारद को कर दिया ।।१६।। मणि मुक्ता आदि सर्वस्व दक्षिणा देकर उस राजा ने हाथ जोड़कर अनुनय-विनय किया ।।१७।। योगियों में श्रेष्ठ राजा सृञ्जय ब्रह्मा को कन्या समर्पित कर 'वत्से वत्से' कहकर अत्यधिक रोदन किया ।।१८।। हे कमल के समान नेत्रोंवाली पुत्री ! मेरे घर को सूना कर तुम कहाँ जा रही हो ? तुम्हें त्यागकर मैं घोर वन में जा रहा हूँ क्योंकि मैं तो तुम्हारे बिना जीवित ही मृत हो गया हूँ ।।१९।। कन्या अपने रोते हुए माता-पिता को प्रणाम करके स्वयं रोती हुई ब्रह्मा के रथ पर आरूढ़ हो गयी ।।२०।। ब्रह्मा जी प्रसन्नतापूर्वक भार्या समेत पुत्र को साथ लेकर देवेन्द्र और मुनियों के साथ ब्रह्मलोक चले गये ।।२१।। वहाँ पर अङ्गभूत मङ्गलकर्म में ब्राह्मणों को भोजन कराया, साथ ही देवताओं और सिद्धों को भी भोजन कराकर दुन्दुभिवादन करवाया ।।२२।। मुनिश्रेष्ठ नारद तो पूर्वकर्मों से बाधित हो गये । हे विप्र ! जिसका जो पूर्वकर्म है वह दुर्लङ्घ्य है । उसका निवारण कौन कर सकता है ? अर्थात् कोई नहीं ।।२३।। वे सुगन्धित चन्दन से चर्चित, सुरम्य पुष्प-शय्या पर रमणी के साथ रमण करने लगे और उन्हें दिन तथा रात का आभास नहीं हुआ ।।२४।। इस प्रकार विवाह करके मुनिश्रेष्ठ नारद विरत हो गये । वे ब्रह्मलोक

---

१ ख. संभाव्य । २ क. वरम् । ३ क. माहेन्द्रं । ४ क. राधितः पुण्यकं ।

तत्राऽऽजगाम नग्नश्च प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा। सनत्कुमारो भगवान्साक्षाच्च बालको यथा ॥२६॥
सृष्टेः पूर्वश्च वयसा यथैव पञ्चहायनः। अचूडोऽनुपनीतश्च वेदसंध्याविहीनकः ॥२७॥
कृष्णेति मन्त्रं जपति यस्य नारायणो गुरुः। अनन्तकालकल्पं च भ्रातृभिश्च त्रिभिः सह ॥२८॥
वैष्णवानामग्रणीशो ज्ञानिनां च गुरोर्गुरुः। आराद्दृष्ट्वा नारदस्तं भ्रातरं च सतां वरम् ॥२९॥
सहसा शिरसा भूमौ दण्डवत्प्रणनाम तम्। उवाच नारदं बालः प्रहस्य परमार्थकम् ॥३०॥

## सनत्कुमार उवाच

अये भ्रातः किं करोषि कुशलं युवतीपतेः। स्त्रीपुंसोर्वर्धते प्रेम नित्यं तन्नित्यनूतनम् ॥३१॥
अर्गलं ज्ञानमार्गस्य भक्तिद्वारकपाटकम्। मोक्षमार्गव्यवहितं चिरं बन्धनकारणम् ॥३२॥
गर्भवासस्य बीजं च परं नरककारणम्। पीयूषबुद्ध्या गरलं भुङ्क्ते पापी नराधमः ॥३३॥
परं नारायणं त्यक्त्वा यस्याऽऽस्ते विषये मनः। स वञ्चितो मायया चामृतं त्यक्त्वा विषं भजेत् ॥३४॥
सर्वेषां कर्मभोगोऽस्ति[1] कर्मिणामीश्वरं विना। वयं विधातुः पुत्राश्च सा बुद्धिरिति देहिनाम् ॥३५॥
यदि ते नास्ति भोगश्च कथं गन्धर्वजन्म च। कथं दासीसुतस्त्वं च मुक्तश्च भक्तसङ्गतः ॥३६॥

---

में मनोहर वटवृक्ष के नीचे निवास करने लगे ॥२५॥ वहाँ पर नग्न, ब्रह्मतेज से जाज्वल्यमान, मानो बालक रूप में साक्षात् भगवान्, सृष्टि के पूर्व से ही रहनेवाले, मानो पाँच वर्ष की अवस्थावाले, चूडाकरण, उपनयन एवं वैदिकसन्ध्या से विहीन, 'कृष्ण' इस मन्त्र का जप करनेवाले जिनके गुरु नारायण हैं ऐसे, अनन्तकाल तक विचरण करनेवाले, ज्ञानी वैष्णवों में अग्रणी, भक्तों में श्रेष्ठ, गुरुओं के भी गुरु सनत्कुमार तीन भाइयों के साथ आये। सज्जनों में श्रेष्ठ उन भाई को देखकर नारद जी ने शीघ्र ही उन्हें सहसा भूमि पर सिर से दण्डवत् प्रणाम किया। उन बालक मुनि ने हँसकर नारद से परमार्थ वचन कहा ॥२६-३०॥

**सनत्कुमार बोले**—अरे बन्धो! क्या कर रहे हो? युवतीपति आपका कुशल तो है? स्त्री-पुरुष का नित्य नूतन प्रेम बढ़ तो रहा है? ॥३१॥ यह प्रेम ज्ञानमार्ग का बाधक है। भक्तिद्वार का कपाटस्वरूप है। मोक्षमार्ग का व्यवधान है और चिरकाल तक बन्धन का कारण है ॥३२॥ यह गर्भवास का बीज है तथा नरक का परमकारण है। नराधम पापी पुरुष इसका पान पीयूषबुद्धि से करता है ॥३३॥ जिसका मन परम नारायण का परित्याग कर विषय में लीन होता है वह माया से वञ्चित होकर अमृत त्यागकर विष का सेवन करता है॥३४॥ ईश्वर के अतिरिक्त अन्य सभी कर्मियों को कर्म का भोग करना पड़ता है। हम लोग विधाता के पुत्र हैं। यह बुद्धि तो देहधारी प्राणियों की है ॥३५॥ यदि तुम्हारा भोग नहीं था तो कैसे गन्धर्व के यहाँ तुम्हारा जन्म हुआ और कैसे तुम दासी-पुत्र हुए तथा भक्तों के सङ्ग द्वारा मुक्त हुए? ॥३६॥ हे भाई! इस

---

१ ख. कामभो।

निर्गच्छ तपसे भ्रातस्त्यज मायामयीं प्रियाम् । सुपुण्ये भारते वर्षे तपसा भज माधवम् ॥३७॥
स्थिते नारायणे स्वेशे[1] परे स्वपददातरि । विषयी विषयान्धश्च वञ्चितो मायया ध्रुवम् ॥३८॥
गृहाण मम मन्त्रं च कृष्ण इत्यक्षरद्वयम् । सर्वेषामेव मन्त्राणां सारात्सारं परात्परम् ॥३९॥
सर्वेषु च पुराणेषु वेदेषु च चतुर्षु च । धर्मशास्त्रेषु तन्त्रेषु नास्त्येवास्मात्परो मनुः ॥४०॥
नारायणेन दत्तो मे पुष्करे सूर्यपर्वणि । असंख्यकल्पं जप्त्वाऽहं भ्रमामि सर्वपूजितः ॥४१॥
इत्युक्त्वा स्नापयित्वा तं ददौ तस्मै परं मनुम् । दिवानिशं स जपति पूतया मणिमालया ॥४२॥
तस्मै शुभाशिषं दत्त्वा मन्त्रं च वैष्णवाग्रणीः । गोलोकं प्रययौ द्रष्टुं भगवन्तं सनातनम् ॥४३॥
नारदस्तु मनुं प्राप्य सर्वसिद्धिप्रदं वरम् । श्रीकृष्णे निश्चलां भक्तिं पूर्वकर्मनिकृन्तनीम् ॥४४॥
त्यक्त्वा मायामयीं भार्यां भारतं तपसे ययौ । कृतमालानदीतीरे ददर्श शंकरं परम् ॥४५॥
दृष्ट्वा च सहसा मूर्ध्ना प्रणनाम शिवं मुनिः । तमुवाच जगन्नाथो भक्तं च भक्तवत्सलः ॥४६॥

## महादेव उवाच

अहो नारद दृष्ट्वा त्वां प्रसन्नोऽहं स्वतेजसा । भक्तानां दर्शनं यत्र सुदिनं तच्छरीरिणाम् ॥४७॥

---

मायामयी प्रिया का परित्याग कर तपस्या करने के लिए निकल पड़ो । इस सुपूज्य भारतवर्ष में तपस्या द्वारा माधव का भजन करो ॥३७॥ अपने पद को प्रदान करनेवाले तथा जीवों के ईश नारायण के स्थित रहने पर जो विषयी है और विषयों से अन्धा बना है वह निश्चय ही माया द्वारा वञ्चित है ॥३८॥ समस्त मन्त्रों के सार का भी सार, उत्कृष्ट से उत्कृष्ट 'कृष्ण' यह दो अक्षर का मन्त्र है, तुम इसे मुझसे ग्रहण करो ॥३९॥ सभी पुराणों, चारो वेदों, धर्मशास्त्रों तथा तन्त्रों में कहीं भी इससे बढ़कर कोई मन्त्र नहीं है ॥४०॥ पुष्कर क्षेत्र में सूर्यपर्व पर नारायण ने यह मुझे दिया था जिसका असंख्य कल्पों तक जप करके मैं सबके द्वारा पूजित होकर विचरण करता हूँ ॥४१॥ इतना कहकर उन्होंने स्नान कराकर नारद जी को वह श्रेष्ठ मन्त्र प्रदान किया, जिसे वे पवित्र मणिमाला द्वारा रात-दिन जपने लगे ॥४२॥ वैष्णवों में अग्रणी सनत्कुमार उन्हें शुभ आशीर्वाद एवं मन्त्र प्रदानकर भगवान् सनातन का दर्शन करने के लिए गोलोक चले गये ॥४३॥ नारद ने सर्वसिद्धिप्रद श्रेष्ठ मन्त्र प्राप्तकर श्रीकृष्ण में पूर्वकर्म की छेदिका, निश्चला भक्ति प्राप्त कर ली ॥४४॥ वे मायामयी भार्या का परित्याग कर तपस्या करने के लिए भारतवर्ष चले गये । वहाँ पर कृतमाला नदी के किनारे श्रेष्ठ शंकर का दर्शन किया ॥४५॥ उन्हें देखते ही नारद मुनि ने सहसा शिव को शिरसा प्रणाम किया । भक्तवत्सल, जगन्नाथ भगवान् शंकर ने उस भक्त से कहा ॥४६॥

**महादेव बोले**—अरे नारद ! तुम्हें अपने तेज से देखकर मैं प्रसन्न हूँ । जिस दिन भक्तों का दर्शन होता है वह शरीरधारियों के लिए सुदिन होता है ॥४७॥ देहधारियों के लिए भक्तों का संगम परम लाभ-

---

१ क. स्वांशे ।

अयं हि परमो लाभो देहिनां भक्तसंगमः । स स्नातः सर्वतीर्थेषु यो ददर्श च वैष्णवम् ॥४८॥
अपि प्राप्तो महामन्त्रः सर्वतन्त्रसुदुर्लभः । मया दत्तो गणेशाय स्कन्दाय स्वात्मजाय च ॥४९॥
मह्यं दत्तश्च कृष्णेन गोलोके रासमण्डले । ब्रह्मणे चापि धर्माय धर्मो नारायणाय च ॥५०॥
ब्रह्मा सनत्कुमाराय तुभ्यं दत्तश्च तेन वै । मन्त्रग्रहणमात्रेण जनो नारायणो भवेत् ॥५१॥
विचारणं च नास्त्यत्र कालाकालं शुभाशुभम् । पञ्चलक्षजपेनैव पुरश्चरणमस्य च ॥५२॥
ध्यानं च सामवेदोक्तं तेन ध्यायेच्च वैष्णवः । ध्यानं च पापदहनं कर्ममूलनिकृन्तनम् ॥५३॥
कृष्णं नवघनश्यामं किशोरं पीतवाससम् । शतकोटीन्दुसौन्दर्यं दधानमतुलं परम् ॥५४॥
भूषितं भूषणौघैस्तैरमूल्यरत्ननिर्मितैः । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं कौस्तुभेन विराजितम् ॥५५॥
मयूरपिच्छचूडं च मालतीमाल्यमण्डितम् । ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं नित्योपास्यं शिवादिभिः ॥५६॥
ध्यानासाध्यं दुराराध्यं निर्गुणं प्रकृतेः परम् । सर्वेषां परमात्मानं भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥५७॥
वेदानिर्वचनीयं तं वरं सर्वेश्वरं भजे । ध्यानेनानेन तं ध्यात्वा भगवन्तं सनातनम् ॥५८॥
भज तं परमानन्दं सत्यं नित्यं परात्परम् । इत्युक्त्वा स्वपदं शंभुर्जगाम परमेश्वरः ॥५९॥

---

दायक होता है। जिसने श्री वैष्णवों का दर्शन कर लिया, उसने मानो सभी तीर्थों में स्नान कर लिया ॥४८॥ क्या तुमको सर्वतन्त्रों में दुर्लभ महामन्त्र प्राप्त हो गया जिसे मैंने गणेश तथा अपने आत्मज स्कन्द को दिया था ॥४९॥ इस मन्त्र को कृष्ण भगवान् ने गोलोक में रासमण्डल में मुझे, ब्रह्मा तथा धर्म को दिया था। धर्म ने नारायण को दिया था ॥५०॥ ब्रह्मा ने सनत्कुमार को तथा उन्होंने तुमको दिया। इस मन्त्र के ग्रहणमात्र से मनुष्य नारायण हो जाता है ॥५१॥ इसके जप में काल, अकाल, शुभ तथा अशुभ का विचार नहीं करना है। पांच लाख जप करने से ही इसका पुरश्चरण हो जाता है ॥५२॥ सामवेद में ध्यान कहा गया है उससे ही श्री वैष्णव को ध्यान करना चाहिए। यह ध्यान पापों का दहन करनेवाला तथा कर्मों के मूल को काटनेवाला है ॥५३॥ मैं नवीन घन के समान श्याम, किशोर, पीताम्बरधारी, परम अतुल सैंकड़ों करोड़ चन्द्रमा के सौन्दर्य को धारण करनेवाले, अमूल्य रत्नों से निर्मित भूषण समूह से विभूषित, चन्दन से लिप्त समस्त अंगोंवाले, कौस्तुभमणि से सुशोभित, मयूर पिच्छ सिर पर धारण किये, मालती की माला से मण्डित, थोड़ी-सी हँसी से प्रसन्नमुखवाले, शिव आदि देवों द्वारा नित्य उपास्य, ध्यान द्वारा असाध्य, दुराराध्य, निर्गुण, प्रकृति से परे, सबके परमात्मा, भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए विग्रह (शरीर धारण करनेवाले), वेदों द्वारा अनिर्वचनीय, सर्वेश्वर, श्रेष्ठ कृष्ण का भजन करता हूँ। इस ध्यान से उन सनातन भगवान् का ध्यानकर परमानन्द-स्वरूप, सत्य, नित्य एवं पर से पर उन भगवान् कृष्ण का भजन करो। इतना कहकर परमेश्वर शम्भु स्वधाम

तं प्रणम्य जगन्नाथं नारदस्तपसे ययौ। नारदः श्रीहरिं स्मृत्वा योगात्त्यक्त्वा कलेवरम् ॥
निलीनः पादपद्मे च पाद (पद्मा) पद्मार्चिते हरेः ॥६०॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० नारदविवाहादि-
प्रकरणं नाम त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३०॥

•

## अथैकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

### शौनक उवाच

अत्यपूर्वमुपाख्यानं श्रुतं परममद्भुतम्। सुगोप्यं च सुगोप्यं रम्यं रम्यं नवं नवम् ॥१॥
किमनिर्वचनीयं च कमनीयं मनोहरम्। सुदुर्लभा कथा प्रोक्ता पुराणेषु पुरातनी ॥२॥
एवंभूतं च सुदिनं कदाऽस्माकं भविष्यति। तज्जन्म सफलं धन्यं यत्र वैष्णवसंगमः ॥३॥
गर्भवासोच्छेदनं च कर्ममूलनिकृन्तनम्। हरिदास्यप्रदं शुद्धं भक्तानां भक्तिवर्धनम् ॥४॥
असाधुसङ्गदुर्बुद्धिपापोन्मूलनकारणम्। गणेशजन्मोपाख्यानं पुराणेषु सुदुर्लभम् ॥५॥

---

चले गये ॥५४-५९॥ उन जगन्नाथ शिव को प्रणाम करके नारद जी तपस्या करने चले गये। नारद योग से अपने कलेवर का परित्यागकर श्री हरि का स्मरण करके कमला द्वारा अर्चित श्री हरि के चरणकमल में निलीन हो गये ॥६०॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण में श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद-नारायण-संवाद में
नारदविवाहादि-प्रकरण नामक एक सौ तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१३०॥

•

## अध्याय १३१

### अग्नि और सुवर्ण की उत्पत्ति

**शौनक बोले**—मैंने परम अद्भुत, अति गोपनीय, अत्यन्त रम्य एवं परम नवीन यह अपूर्व उपाख्यान सुना ॥१॥ पुराणों में क्या ही अनिर्वचनीय, कमनीय एवं मनोहर, प्राचीन तथा अति दुर्लभ कथा कही गयी है ॥२॥ इस प्रकार का सुन्दर दिन कब हमारा होगा? जिसमें श्री वैष्णवों का संगम हो वह जन्म सफल एवं धन्य हो जाता है ॥३॥ वह (वैष्णव का संगम) गर्भवास का उच्छेदक, कर्म के मूल को काटनेवाला, हरि की दासता को प्रदान करनेवाला शुद्ध एवं भक्ति को बढ़ानेवाला है ॥४॥ असाधुसङ्ग, दुर्बुद्धि एवं पापों के उन्मूलन का कारण गणेश के जन्म का उपाख्यान पुराणों में अत्यन्त दुर्लभ है ॥५॥ क्या ही अपूर्व एवं उत्कृष्ट तुलसी

तुलसीराधिकाख्यानं किमपूर्वं श्रुतं परम् । अन्यद्यद्यद्गोपनीयं व्यक्तमव्यक्तमीप्सितम् ॥६॥
सर्वं श्रुतं महाभाग परिपूर्णं मनोहरम् । अधुना श्रोतुमिच्छामि वह्नेरुत्पत्तिमीप्सिताम् ॥
स्वर्णस्य च महाभाग तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥७॥

## सूत उवाच

सामग्रीकरणं सृष्टेर्जलमेव हुताशनः । तथैव प्रकृतिर्नित्या महानेव तथैव च ॥८॥
यथा दिशो महाकाशो यथैव सृष्टिगोलकम् । प्रकृतेर्महतश्च स्याद्यथाऽहंकार एव च ॥९॥
यथैव शब्दस्तन्मात्रं तथैव च हुताशनः । तथाऽपि तत्समुत्पत्तिं कथयामि निशामय ॥१०॥
एकदा सृष्टिकाले च ब्रह्मानन्तमहेश्वराः । श्वेतद्वीपं ययुः सर्वे द्रष्टुं विष्णुं जगत्पतिम् ॥११॥
परस्परं च संभाषां कृत्वा सिंहासनेषु च । ऊचुः सर्वे सभामध्ये सुरम्ये पुरतो विभोः ॥१२॥
विष्णुगात्रोद्भवास्तत्र कामिन्यः कमलाकलाः । तत्र नृत्यन्ति गायन्ति विष्णुगाथाश्च सुस्वरम् ॥१३॥
तासां च कठिनां श्रोणिं कठिनं स्तनमण्डलम् । सस्मितं मुखपद्मं च दृष्ट्वा ब्रह्मा सुकामुकः ॥१४॥
मनोनिवारणं कर्तुं न शशाक पितामहः । वीर्यं पपात चच्छाद लज्जया वाससा विभुः ॥१५॥
तद्वीर्यं वस्त्रसहितं प्रतप्तं कामतापतः । क्षीरोदे प्रेरयामास संगीते विरते द्विज ॥१६॥

---

तथा राधिका का उपाख्यान सुना । इसके अतिरिक्त अन्य जो-जो गोपनीय व्यक्त, अव्यक्त, अभीष्ट, परिपूर्ण तथा मनोहर आख्यान था, हे महाभाग ! वह सब मैंने सुना । अब मैं अभीष्ट अग्नि तथा स्वर्ण की उत्पत्ति को सुनना चाहता हूँ । हे महाभाग ! उसका व्याख्यान मुझसे करें ॥६-७॥

**सूत बोले**--सृष्टि की सामग्री के साधनभूत जैसे जल, अग्नि तथा नित्या प्रकृति है, उसी प्रकार महत् तत्त्व भी है ॥८॥ जिस प्रकार दिशाएँ, महाकाश है । जैसे यह सृष्टिगोलक है । प्रकृति और महत् से जायमान जिस प्रकार अहंकार है ॥९॥ जिस प्रकार शब्द तथा तन्मात्राएँ हैं उसी प्रकार अग्नि भी है । फिर भी उसकी उत्पत्ति मैं बताता हूँ, सुनिये ॥१०॥ एक समय सृष्टिकाल में ब्रह्मा, अनन्त एवं महेश्वर जगत्पति विष्णु का दर्शन करने के लिए श्वेत द्वीप गये ॥११॥ वे सब परस्पर संभाषण करके सुरम्य सभा के मध्य विष्णु भगवान् के सामने सिंहासनों पर आसीन हो गये ॥१२॥ वहाँ पर विष्णु के शरीर से उत्पन्न लक्ष्मी की कलाभूत कामिनियाँ नृत्य करती रहती हैं और सुन्दर स्वर में विष्णु की गाथा का गायन करती हैं ॥१३॥ उनकी कठोर श्रोणी एवं कठोर स्तनमण्डल तथा स्मितपूर्ण मुखकमल को देखकर ब्रह्मा जी अच्छी तरह कामुक हो गये ॥१४॥ हे द्विज ! ब्रह्मा जी अपने मन को नहीं रोक सके । उनका वीर्यपात हो गया और विभु ब्रह्मा जी उसे लज्जित होकर वस्त्र से ढक दिया और संगीत का विराम होने पर काम के ताप से प्रतप्त उस वीर्य को वस्त्र समेत क्षीरसागर में प्रवाहित कर दिया ॥१५-१६॥ ब्रह्मा-

---

१ ख. नवं यद्य॰ ।

जलादुत्थाय पुरुषः प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा। उवास ब्रह्मणः क्रोडे लज्जितस्य च संसदि ॥१७॥
एतस्मिन्नन्तरे रुष्टो जलादुत्थाय सत्वरः। प्रणम्य वरुणो देवान्बालं नेतुं समुद्यतः ॥१८॥
बालो दधार ब्रह्माणं बाहुभ्यां च भयाद्रुदन्। किंचिन्नोवाच जगतां विधाता लज्जया द्विज ॥१९॥
बालकस्य करे धृत्वा चकाराऽऽकर्षणं रुषा। वरुणश्च सभामध्ये तं चिक्षेप प्रजापतिः ॥२०॥
पपात दूरतो देवो वरुणो दुर्बलस्ततः। मूर्छां संप्राप मृतवत्कोपदृष्ट्या विधेरहो ॥२१॥
चेतनं कारयामासामृतदृष्ट्या च शंकरः। संप्राप्य चेतनं तत्र समुवाच जलेश्वरः ॥२२॥

वरुण उवाच

बालो जले समुद्भूतो मम पुत्रोऽयमीप्सितः। अहं गृहीत्वा यास्यामि ब्रह्मा मां ताडयेत्कथम् ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

बालकः शरणापन्नो मयि विष्णो महेश्वर। कथं दास्यामि भीतं च रुदन्तं शरणागतम् ॥२४॥
शरणागतदीनार्तं यो न रक्षेदपण्डितः। पच्यते निरये तावद्यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥२५॥
उभयोर्वचनं श्रुत्वा प्रहस्य मधुसूदनः। उवाच तत्र सर्वज्ञः सर्वेशश्च यथोचितम् ॥२६॥

---

तेज से प्रज्वलित होता हुआ एक पुरुष जल से निकलकर सभा के मध्य लज्जित होकर बैठे हुए ब्रह्मा की गोद में बैठ गया ॥१७॥ इतने में ही रुष्ट होकर तुरन्त जल से निकलकर वरुण ने देवों को प्रणामकर बालक को ले जाने का प्रयास किया ॥१८॥ बालक भय से रोता हुआ दोनों हाथों से ब्रह्मा को पकड़ लिया किन्तु हे द्विज ! जगत् के विधाता लज्जा के कारण कुछ नही बोले ॥१९॥ वरुण ने रुष्ट होकर बालक का हाथ पकड़कर उसे खींचा। सभा के बीच प्रजापति ब्रह्मा ने उन्हें दूर फेंक दिया ॥२०॥ उसके बाद दुर्बल वरुण देवता दूर जाकर गिरे और विधाता की कोपदृष्टि से मृतक के समान मूर्च्छित हो गये ॥२१॥ शंकर भगवान् ने अमृतदृष्टि से उन्हें सचेत कर दिया। चेतना प्राप्तकर वरुण उनसे बोले ॥२२॥

**वरुण ने कहा**—यह बालक जल में उत्पन्न हुआ है। अतः मेरा अभीष्ट पुत्र है। मैं इसे लेकर जाऊंगा। ब्रह्मा जी मुझे कैसे पीटेंगे ॥२३॥

**ब्रह्मा बोले**—विष्णो ! हे महेश्वर ! यह बालक मेरी शरण में आया है। अतः मैं भयभीत एवं रोते हुए शरणागत इस बालक को कैसे दे दूँ ? ॥२४॥ जो मूर्ख शरणागत, दीन तथा आर्त्त की रक्षा नहीं करता है जब तक सूर्य और चन्द्रमा हैं तब तक नरक में निवास करता है ॥२५॥ दोनों की बातें सुनकर सर्वज्ञ मधुसूदन हँसकर यथोचित वचन बोले ॥२६॥

### श्रीभगवानुवाच

दृष्ट्वा तु कामिनीश्रोणिं वीर्यं धातुः पपात तत् । लज्जया प्रेरयामास क्षीरोदे निर्मले जले ॥२७॥
ततो बभूव बालश्च धर्मतो विधिपुत्रकः । क्षेत्रज्ञश्च सुतः शास्त्रे वरुणस्यापि गौणतः ॥२८॥

### महादेव उवाच

यो विद्यायोनिसंबन्धो वेदेषु च निरूपितः । शिष्ये पुत्रे च समता चेति वेदविदो विदुः ॥२९॥
मन्त्रं ददातु वरुणो विद्यां च बालकाय च । पुत्रो विधातुर्वह्निश्च शिष्यश्च वरुणस्य च ॥३०॥
विष्णुर्ददातु बालाय दाहिकां शक्तिमुज्ज्वलाम् । सर्वदग्धो हुताशश्च निर्वाणो वरुणेन च ॥३१॥
विष्णुश्च दाहिकां शक्तिं ददौ तस्मै शिवाज्ञया । मन्त्रं विद्यां च वरुणो रत्नमालां मनोहराम् ॥३२॥
क्रोडे कृत्वा च तं बालं चुचुम्ब मायया सुरः । ब्रह्मणे च ददौ साक्षाद्विष्णुशंकरयोरपि ॥३३॥
प्रणम्य विष्णुं ब्रह्मा च ययौ शंभुः स्वमन्दिरम् । अग्न्युत्पत्तिश्च कथिता स्वर्णोत्पत्तिं निशामय ॥३४॥
एकदा सर्वदेवाश्च समूषुः स्वर्गसंसदि । तत्र कृत्वा च नृत्यं च गायन्त्यप्सरसां गणाः ॥३५॥
विलोक्य रम्भां सुश्रोणिं सकामो वह्निरेव च । पपात वीर्यं चच्छाद लज्जया वाससा तथा ॥३६॥
उत्तस्थौ स्वर्णपुञ्जश्च वस्त्रं क्षिप्त्वा ज्वलत्प्रभः । क्षणेन वर्धयामास स सुमेरुर्बभूव ह ॥३७॥

---

**श्रीभगवान् ने कहा**—कामिनी की श्रोणी को देखकर ब्रह्मा का वीर्यपात हो गया। उन्होंने लज्जा से उसे क्षीरसागर के निर्मल जल में फेंक दिया ॥२७॥ उससे उत्पन्न हुआ बालक धर्मतः विधिविहित तो ब्रह्मा का ही पुत्र है किन्तु शास्त्र में वर्णित क्षेत्रज्ञ पुत्र गौणरूप से वरुण का भी है ॥२८॥

**महादेव बोले**—वेदों में जो विद्या और योनि का सम्बन्ध निरूपित है उससे शिष्य और पुत्र में समता होती है। इस बात को वेदज्ञ लोग जानते हैं। तात्पर्य यह है कि योनि के सम्बन्ध से पुत्र होता है और विद्या के सम्बन्ध से शिष्य। अतः दोनों में साम्य है ॥२९॥ अतः वरुण इस बालक को मन्त्र एवं विद्या प्रदान करें। यह अग्नि नामक बालक विधाता का पुत्र है और वरुण का शिष्य होगा ॥३०॥ विष्णु भगवान् इस बालक को उज्ज्वल दाहिकाशक्ति प्रदान करें। यह अग्नि सबको जलानेवाला हो और वरुण इसके बुझानेवाले बनें ॥३१॥ शिव की आज्ञा से विष्णु भगवान् ने उसे दाहिकाशक्ति प्रदान कर दी और वरुण ने मन्त्र, विद्या एवं मनोहर रत्नमाला प्रदान की ॥३२॥ वरुण देवता ने उस बालक को गोद में लेकर मायापूर्वक चूमा और साक्षात् ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकर को भी दिया ॥३३॥ ब्रह्मा और शंकर विष्णु भगवान् को प्रणामकर अपने-अपने धाम में चले गये। इस प्रकार अग्नि की उत्पत्ति बता दी गयी अब स्वर्ण की उत्पत्ति सुनिये ॥३४॥ एक बार सभी देवता स्वर्ग की सभा में बैठे थे। वहाँ पर अप्सराएँ नृत्यकर गायन कर रही थीं ॥३५॥ सुन्दर श्रोणीवाली रम्भा अप्सरा को देखकर अग्निदेव सकाम हो गये। उनका वीर्यपात हो गया जिसे उन्होंने लज्जावश वस्त्र से ढक लिया ॥३६॥ वस्त्र को फेंककर वह वीर्य जाज्वल्यमान स्वर्णपुञ्ज के रूप में उठ खड़ा हुआ और

हिरण्यरेतसं वह्निं प्रवदन्ति मनीषिणः। इति ते कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥३८॥

इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० वह्निसुवर्णोत्पत्तिर्नामैकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३१॥

•

## अथ द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

शौनक उवाच

श्रुतं सर्वं नावशेषं धर्मेश ब्राह्मणं च माम्। कथयस्व महाभाग पुराणं पुनरेव हि ॥१॥
एवंविधं पुराणं च जन्मनैव न हि श्रुतम्। न दृष्टं न श्रुतं तात ता (त्वा) दृशं वाचकं तथा ॥२॥

सूत उवाच

श्रूयतां भो महाभाग सावधानं च संयतम्। अध्यायश्रवणेनैव पुराणफलमालभेत् ॥३॥
ब्रह्मखण्डं च कथितं परं ब्रह्मनिरूपणम्। तदनिर्वचनीयं च येषामपि यथागमम् ॥४॥
साकारं च निराकारं सगुणं निर्गुणं पृथक्। येषामपि यथा शक्तिस्तथैव ध्यानमेव च ॥५॥

---

क्षण भर में बढ़कर सुमेरु (पर्वत) बन गया ॥३७॥ उसे मनीषी लोग हिरण्यरेतस् अग्नि कहते हैं। यह स्वर्णोत्पत्ति के विषय में सब बता दिया। अब अधिक क्या सुनना चाहते हो? ॥३८॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद-नारायण के संवाद में वह्निसुवर्णोत्पत्ति नामक एक सौ एकतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१३१॥

•

## अध्याय १३२

### सम्पूर्ण कथा का संक्षेप

**शौनक बोले**—हे धर्मेश! मैंने सब कुछ सुन लिया। कुछ अवशिष्ट नहीं है। हे महाभाग! मुझ ब्राह्मण से पुनः पुराण का कथन करें ॥१॥ जन्म से ही मैंने इस प्रकार का पुराण नहीं सुना। हे तात! मैंने आपके समान वाचक न देखा है, न सुना है ॥२॥

**सूत बोले**—हे महाभाग! आप संयत होकर सावधानी से सुनें। अध्याय के श्रवण से ही पुराण का फल प्राप्त हो जाता है ॥३॥ परं ब्रह्म के निरूपण से युक्त ब्रह्म खण्ड का कथन कर दिया। वह अनिर्वचनीय है। जो कोई आगम द्वारा उसे अवगत नहीं कर सकता ॥४॥ यह साकार, निराकार, सगुण तथा पृथक्-पृथक् निर्गुण भी है। जिसकी जैसी शक्ति होती है, वह उसके अनुसार ही ध्यान करता है ॥५॥ हे द्विजोत्तम!

गोलोकादेर्वर्णनं च क्रमेण च पृथक्पृथक् । तत्रोपयुक्तोपाख्यानं यद्यत्प्रासङ्गिकं द्विज ।।६।।
जातीनां निर्णयश्चैव संकराणां तथैव च । यद्यद्विशिष्टोपाख्यानं तत्तत्प्रश्नानुरोधतः ।।७।।
राधामाधवयोः क्रीडा महाविष्णोः समुद्भवः । निरूपणं च विश्वेषां समासेन द्विजोत्तम ।।८।।
ब्रह्मनारदयोश्चैव संवादः परमार्थतः । विवेको नारदस्यैव मुनीन्द्रस्य तथैव च ।।९।।
आज्ञया ब्रह्मणश्चैव नरनारायणाश्रमम् । गमनं नारदस्यैव तेन सार्धं च दर्शनम् ।।१०।।
तयोः संभाषणं चैव नारदाद्य (य) निवेदनम् । तत्र देव ब्रह्मखण्डं क्रमेणोक्तं द्विजोत्तम ।।११।।
श्रूयतां प्रकृतेः खण्डं सुधाखण्डसमं मुने । प्रकृतेर्लक्षणं प्रोक्तं प्रकृतीनां च वर्णनम् ।।१२।।
उपाख्यानं च तासां च वर्णनं पूजनादिकम् । लक्ष्मीः सरस्वती दुर्गा सावित्री राधिका तथा ।।१३।।
एतासां चरितं चैवमन्यासां च पृथक्पृथक् । उपाख्यानं महालक्ष्म्याः सरस्वत्यास्तथैव च ।।१४।।
अपूर्वं राधिकाख्यानं सावित्र्याश्च तथैव च । संवादो यमसावित्र्योः सत्यवज्जीवदानकम् ।।१५।।
कुण्डानां वर्णनं प्रोक्तं तेषां च लक्षणं तथा । जीविकर्मविपाकश्च भोगनिर्णय एव च ।।१६।।
अपूर्वं राधिकाख्यानं पुराणेषु सुगोप्यकम् । सुयज्ञस्य नृपेन्द्रस्य चरितं परमाद्भुतम् ।।१७।।
प्रोक्तं तुलस्युपाख्यानं परमाद्भुतमेव च । महायुद्धं च संवादे महेशशङ्खचूडयोः ।।१८।।
तुलसीकृष्णसंवादस्तयोः संभोग एव च । निधनं शङ्खचूडस्य श्रीदाम्नः शापमोक्षणम् ।।१९।।

---

मैंने ब्रह्मखण्ड में क्रम से पृथक्-पृथक् गोलोक आदि का वर्णन उनमें उपयुक्त प्रासङ्गिक उपाख्यानों के साथ किया। प्रश्न के अनुसार जातियों तथा संकरों का निर्णय किया साथ ही और जो-जो विशिष्ट उपाख्यान अपेक्षित थे उनका निरूपण किया। राधामाधव की क्रीड़ा, महाविष्णु की उत्पत्ति आदि का सक्षेप में निरूपण किया। परमार्थतः ब्रह्मा तथा नारद का संवाद, मुनीन्द्र नारद का विवेक, ब्रह्मा की आज्ञा से उनका नरनारायण के आश्रम में गमन, उनका दर्शन, संभाषण तथा नारद से निवेदन आदि का वर्णन किया ।।६-११।। हे मुने ! अब आप सुधाखण्ड के समान प्रकृतिखण्ड का श्रवण करें। प्रकृति का लक्षण और उनके भेदों का वर्णन किया गया है ।।१२।। उनका उपाख्यान, वर्णन तथा पूजन आदि को बताया। लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, सावित्री, राधा, इनका तथा अन्य प्रकृति के भेदों का पृथक्-पृथक् उपाख्यान किया। इसके अतिरिक्त महालक्ष्मी तथा महासरस्वती का उपाख्यान भी वर्णित है ।।१३-१४।। राधिका एवं सावित्री का उपाख्यान अपूर्व है। यम और सावित्री का संवाद, सत्यवान् का जीवनदान, कुण्डों का वर्णन तथा उनका लक्षण, जीव एवं कर्म का विपाक, भोगों का निर्णय आदि वर्णित है ।।१५-१६।।

पुराणों में अतिगोपनीय राधिका का आख्यान अपूर्व है। सुयज्ञ नामक राजा का चरित परम अद्भुत है ।।१७।। परम अद्भुत तुलसी का उपाख्यान, संवादपूर्वक महेश तथा शङ्खचूड का महान् युद्ध कहा गया है ।।१८।। तुलसी तथा कृष्ण का संवाद, उन दोनों का संभोग, शङ्खचूड का निधन तथा श्रीदामा का शापमोक्ष

पदप्राप्तिः सुराणां च विपदां खण्डनं तथा । जीविनां मोक्षबीजं च गङ्गोपाख्यानमीप्सितम् ॥२०॥
तथैव मनसाख्यानं परं हर्षविवर्धनम् । स्वाहास्वधाख्यानमेवमन्यासां च निरूपणम् ॥२१॥
यद्यत्प्रासङ्गिकाख्यानं वक्तुः प्रश्नानुरोधतः । प्रोक्तं तत्प्रकृतेः खण्डं खण्डं गणपतेः शृणु ॥२२॥
अतीव मधुरं रम्यं स्वादु स्वादु पदे पदे । सुगोप्यं तत्पुराणेषु रम्यं रम्यं नवं नवम् ॥२३॥
सुदुर्लभमुपाख्यानं श्रोतृप्रीतिकरं परम् । प्रोक्ता क्रीडा च परमा पार्वतीपरमेशयोः ॥२४॥
स्कन्दोत्पत्तिः प्रथमतः क्रीडाभङ्गस्तयोस्तथा । पार्वतीतोषणं चैवमभिमानविमोक्षणम् ॥२५॥
पुण्यकं च व्रतं विष्णोर्देव्याश्चरितमुत्तमम् । वरदानं हरेरेव सुव्रतां पार्वतीं प्रति ॥२६॥
हरेश्च दर्शनं चैव ब्राह्मणातिथिरूपिणः । आविर्भावो गणेशस्य कृपया शिवमन्दिरे ॥२७॥
दर्शनं पुत्रवक्त्रस्य पार्वतीपरमेशयोः । परमानन्दरूपं च शिवगेहे महोत्सवम् ॥२८॥
देवाद्या ददृशुः सर्वे बालं नित्यमजं विभुम् । सत्यस्वरूपं परमं परब्रह्मस्वरूपिणम् ॥२९॥
सर्वविघ्नहरं शान्तं दातारं सर्वसंपदाम् । तपसां जपयज्ञानां व्रतानां फलदं विभुम् ॥३०॥
अतीव कमनीयं च रमणीयं च योषिताम् । प्राणाधिकं प्रियतमं पार्वतीपरमेशयोः ॥३१॥
परमात्मस्वरूपं च भगवन्तं सनातनम् । सर्वेशं सर्वबीजं च साक्षान्नारायणात्मकम् ॥३२॥
यद्दर्शनाच्च स्तवनात्प्रणामात्पूजनात्तथा । ध्यानासाध्यं दुराराध्यं जन्मकोट्यघनाशनम् ॥३३॥

---

वर्णित है ॥१९॥ देवताओं की विपत्ति का खण्डन तथा उनकी पदप्राप्ति, प्राणियों के मोक्ष का बीज अभीष्ट गङ्गोपाख्यान वर्णित है ॥२०॥ परम हर्ष को बढ़ानेवाला मनसा का आख्यान, स्वाहा स्वधा का आख्यान तथा अन्य देवियों का आख्यान निरूपित है ॥२१॥ प्रश्नों के क्रम में वक्ता द्वारा प्रासङ्गिक अन्य आख्यानों का भी प्रकृतिखण्ड में वर्णन किया गया है। अब गणपतिखण्ड का श्रवण करें ॥२२॥ यह गणपतिखण्ड अतीव मधुर, रम्य एवं पग-पग पर स्वाद प्रदान करनेवाला है। अत्यन्त रमणीय एवं नवीन यह खण्ड पुराणों में अतिगोपनीय है ॥२३॥ श्रोताओं को परम रुचिकर यह उपाख्यान सुदुर्लभ है। इसमें पार्वती तथा परमेश्वर की परम क्रीड़ा का वर्णन है ॥२४॥ इसमें सर्वप्रथम दोनों का क्रीड़ा भङ्ग तथा स्कन्द की उत्पत्ति का वर्णन है। पार्वती का परितोष तथा अभिमान का मोक्षण वर्णित है ॥२५॥ विष्णु का पुण्यव्रत तथा देवी का उत्तमचरित, सुन्दरव्रत में लीन पार्वती के प्रति विष्णु का वरदान इसमें वर्णित है ॥२६॥ ब्राह्मण अतिथि रूपी हरि का दर्शन, शिवमन्दिर में कृपापूर्वक गणेश का जन्म वर्णित है ॥२७॥ पार्वती तथा परमेश्वर का पुत्रमुख दर्शन, शिव के भवन में परमानन्दरूप महोत्सव वर्णित है ॥२८॥ नित्य, अज, विभु, सत्यस्वरूप, परब्रह्मरूप बालक का सभी देव आदि गणों द्वारा दर्शन वर्णित है ॥२९॥ वह बालक समस्त विघ्नों का हर्त्ता, समस्त संपत्तियों का दाता, तप, जप, यज्ञ, व्रत के फलों का दाता, विभु, अतीव कमनीय, नारीजन का रमणीय, पार्वती तथा परमेश्वर का प्राणों से अधिक प्रियतम, परमात्मस्वरूप, भगवान् सनातन, सर्वेश, सर्वबीज, साक्षात् नारायणात्मक है ॥३०-३२॥ जिसके दर्शन, स्तवन, प्रणाम तथा पूजन से, ध्यान द्वारा असाध्य, दुराराध्य करोड़ों जन्म के पापों का विनाश हो जाता है

कार्तिकोद्धरणं प्रोक्तं तस्याभिषेक एव च। गणेशपूजनं चैव सर्वविघ्नविनाशनम् ॥३४॥
जमदग्नेश्च युद्धं च कार्तवीर्यार्जुनेन च। सुरभीहरणं चैव निधनं च मुनेस्तथा ॥३५॥
पतिव्रतारेणुकायाश्चितारोहणमेव च। प्रतिज्ञातं भृगोश्चैव दारुणं च सुदारुणम् ॥३६॥
निःक्षत्रीकरणं चैवमेकविंशतिकं द्विज। संवादो ज्ञानलाभश्च गणेशपर्शुरामयोः ॥३७॥
तयोर्युद्धं दारुणं च हेरम्बदन्तभञ्जनम्। दुर्गायाश्च विलापश्चाभिशापो भार्गवं प्रति ॥३८॥
स्मरणे पर्शुरामस्याप्याविर्भावो हरेरपि। पार्वतीं बोधयामास स्वयं नारायणः प्रभुः ॥३९॥
वर्णनं शिवलोकस्य परमाश्चर्यमीप्सितम्। प्रदत्तं पर्शुरामाय महास्त्रं शंकरेण च ॥४०॥
मन्त्रं च कवचं चैव कृष्णस्य परमात्मनः। वरदानं चाभयं च प्रदानं सर्वसंपदाम् ॥४१॥
त्रिःसप्तकृत्वो भूपानां निधनं च चकार सः। बभूव भृगुणा विप्र भुवश्च भारमोक्षणम् ॥४२॥
प्रश्नानुरोधक्रमतः पूर्वोपाख्यानमेव च। प्रोक्तं गणपतेः खण्डं समासेन द्विजोत्तम ॥४३॥
श्रीकृष्णजन्मखण्डं च श्रूयतां सावधानतः। जन्ममृत्युजराव्याधिहरं मोक्षकरं परम् ॥४४॥
हरिदास्यप्रदं शुद्धं सुश्राव्यं च सुधोपमम्। अत्यपूर्वमुपाख्यानं रम्यं रम्यं नवं नवम् ॥४५॥
न श्रुतं जन्मना यद्यत्स्वादु स्वादु पदे पदे। प्रदीपं सर्वसत्त्वानां[1] भवाब्धितारणं परम् ॥४६॥

---

॥३३॥ इस खण्ड में कार्तिक का उद्धार और उनके अभिषेक का वर्णन है। सर्वविघ्नविनाशक गणेश का पूजन भी वर्णित है ॥३४॥ कार्त्तवीर्य अर्जुन के साथ जमदग्नि का युद्ध, सुरभी का हरण, मुनि का निधन, ॥३५॥ पतिव्रता रेणुका का चितारोहण, भयङ्कर एवं अत्यन्त दारुण भृगु की प्रतिज्ञा, ॥३६॥ हे द्विज ! इक्कीस बार निःक्षत्रियकरण, गणेश और परशुराम का संवाद तथा ज्ञानलाभ, ॥३७॥ उन दोनों का भयंकर युद्ध तथा उसमें गणेश का दन्तभग्न, दुर्गा का विलाप तथा भार्गव को शाप, ॥३८॥ परशुराम के स्मरण करने पर हरि का आविर्भाव, नारायण प्रभु का स्वयं पार्वती को समझाना ॥३९॥ परम आश्चर्यजनक, अभीष्ट शिवलोक का वर्णन, शंकर द्वारा परशुराम को महान् अस्त्र का प्रदान करना ॥४०॥ परमात्मा कृष्ण का मन्त्रकवच, वरदान, अभयदान, सर्वसम्पत्ति का प्रदान ॥४१॥ भृगु द्वारा इक्कीस बार राजाओं का निधन तथा पृथ्वी के भार का मोक्षण ॥४२॥ हे द्विजोत्तम ! प्रश्नों के अनुरोधक्रम से पहले का उपाख्यान तथा गणपतिखण्ड संक्षेपतः वर्णित है ॥४३॥ अब जन्म-मृत्यु जरा एवं व्याधि का हरण करनेवाले, परममोक्षप्रद, श्रीकृष्णजन्म-खण्ड का सावधानीपूर्वक श्रवण करें ॥४४॥ यह उपाख्यान अपूर्व, अतिरमणीय, नितनूतन, हरिदास्यप्रद, शुद्ध, सुधासदृश श्रवणयोग्य है ॥४५॥ जो पग-पग पर स्वादप्रद है उसे मानवजन्म लेकर न सुना गया (तो जीवन व्यर्थ है) यह खण्ड समस्त सत्त्वों या तत्त्वों का प्रदीप है और भवसागर से पार होने का उत्कृष्ट साधन है ॥४६॥

---

१ क, तत्त्वा०।

कर्मोपभोगरोगाणां मर्दनं च रसायनम्। श्रीकृष्णचरणाम्भोजप्राप्तिसोपानकारणम् ॥४७॥
श्रीदामराधाकलहवर्णनं दारुणं द्विज। तयोः शापप्रकथनं ततस्तेषां विसर्जनम् ॥४८॥
ब्रह्मणा प्रार्थितस्यैव हरेर्जन्म महीतले। प्रोक्तं च जन्मखण्डे च परमाद्भुतमेव च ॥४९॥
आविर्भावो हरेरेव वसुदेवस्य मन्दिरे। कंसासुरभयेनैव गोकुले गमनं हरेः ॥५०॥
वृषभानसुता राधा श्रीदाम्नः शापहेतुना। बालक्रीडावर्णनं च गोकुले परमात्मनः ॥५१॥
दैत्यादिनिधनं चैव कीर्तितं हरिणा तथा। गर्गस्याऽऽगमनं प्रोक्तं शुभान्नप्राशनं हरेः ॥५२॥
निधनं पूतनायाश्च सद्यः शकटभञ्जनम्। श्रीकृष्णबन्धमोक्षं च यमलार्जुनभञ्जनम् ॥५३॥
त्रैलोक्यदर्शनं वक्त्रे गोवत्साहरणं तथा। कृत्वा गोवत्सनिर्माणं ब्रह्मणः स्तवनं हरेः ॥५४॥
सहसा गोकुलं त्यक्त्वा पुण्यं वृन्दावनं वनम्। भयाज्जगाम नन्दश्च सार्धं च नन्दनेन च ॥५५॥
वृन्दावनस्य निर्माणं प्रोक्तं च परमाद्भुतम्। सार्धं च बालकैः सार्धं तत्र संक्रीडनं हरेः ॥५६॥
सवन्नं ब्राह्मणीनां च भोजनं कथितं हरेः। वरदानं च तासां वै प्रावर्तनेन निरूपणम् ॥५७॥
ऋतूनां वर्णनं चैव वस्त्रापहरणं तथा। वरदानं च गोपीनां कृष्णेनैव कृतं द्विज ॥५८॥
कात्यायनीव्रतं प्रोक्तं श्रीदुर्गापूजनं तथा। पार्वत्या च वरो दत्तो गोपीभ्यो यमुनातटे ॥५९॥
तालानां भक्षणं प्रोक्तं शक्रयागविमर्दनम्। राधया सह कृष्णस्य विरहो मेलनं तथा ॥६०॥

---

यह ऐसा रसायन है कि जो कर्मों के उपभोग तथा रोगों का मर्दन कर देता है और श्रीकृष्ण भगवान् के चरणकमल की प्राप्ति के सोपान का कारण है ॥४७॥ इसमें हे द्विज ! श्रीदामा और राधा के कलह का दारुण वर्णन है। दोनों का शापकथन तथा उनका (गोलोक से) विसर्जन वर्णित है ॥४८॥ इस जन्मखण्ड में परम अद्भुत ब्रह्मा द्वारा प्रार्थित भूतल पर हरि का जन्म कहा गया है ॥४९॥ वसुदेव के भवन से हरि का आविर्भाव तथा असुर कंस के भय से उनका गोकुल गमन (वर्णित है) ॥५०॥ श्रीदामा के शापवश श्रीराधा जी का वृषभानु की पुत्री होना तथा परमात्मा का गोकुल में बालक्रीडावर्णन निहित है ॥५१॥ हरि द्वारा दैत्यों का निधन, गर्ग का आगमन तथा हरि का शुभ अन्नप्राशन वर्णित है ॥५२॥ इसमें पूतना का सद्यः निधन, शकटासुर का विनाश, श्रीकृष्ण की बन्धनमुक्ति तथा यमलार्जुन वृक्ष का भग्न होना वर्णित है ॥५३॥ मुख में तीनों लोकों का दर्शन, गायों और बछड़ों का अपहरण तथा पुनः हरि का गोवत्स निर्माण एवं ब्रह्मा द्वारा स्तुति वर्णित है ॥५४॥ नन्द का उत्पातों के भय से पुत्र के साथ सहसा गोकुल का परित्याग कर पुण्य वृन्दावन गमन (इस खण्ड में वर्णित है) ॥५५॥ परम अद्भुत वृन्दावन का निर्माण तथा वहाँ पर बालकों के साथ हरि की क्रीड़ा का वर्णन है ॥५६॥ श्रीहरि का ब्राह्मणी वर्ग के स्वादिष्ट अन्न का भोजन और उनका वरदान पहले से वर्णित है कात्यायनीव्रत, श्रीदुर्गापूजन, यमुना के तट पर पार्वती द्वारा गोपियों को वरदान, तालफल का भक्षण ॥५७॥ हे द्विज ! ऋतुओं का वर्णन, वस्त्रापहरण तथा कृष्ण का गोपियों को वरदान वर्णित है ॥५८॥ इन्द्र के यज्ञ का भङ्ग, कृष्ण का राधा के साथ विरह एवं मिलन, गोपीक्रीड़ा, कृष्ण के क्रोड में राधा का

गोपीक्रीडा च संप्रोक्ता कृष्णक्रोडे च राधिका। छाया रायणगेहे च संप्रोक्ता मायया हरेः ॥६१॥
शृङ्गारं षोडशविधं कृत्वा तु रासमण्डले। अन्तर्धानं हरेरेव राधया सह कानने ॥६२॥
मलयागमनं चैव तया सार्धं द्विजोत्तम। राधामाधवयोश्चैव संवादस्तत्र निर्जने ॥६३॥
[1]कैवल्यमपि गोपीनां प्रोक्तं नानाविधं मुने। पुनरागमनं चैव पुण्यं वृन्दावनं वनम् ॥६४॥
श्रीकृष्णदर्शनं चैव गोपीनां हर्षवर्धनम्। नानाप्रकारक्रीडा च प्रोक्ता तस्य जले स्थले ॥६५॥
गोपीनामपि सौभाग्यं राधायाश्च विशेषतः। प्रोक्तं व्यासेन सौन्दर्यं रम्यं रम्यं नवं नवम् ॥६६॥
नभःस्थितानां देवानां दर्शनं प्रोक्तमेव च। मनसः स्खलनं चैव देवीनां रासमण्डले ॥६७॥
अंशेन लेभिरे जन्म देव्यश्चोक्तमिदं द्विज। अक्रूरागमनं चैव गोपीनां च विलापनम् ॥६८॥
प्रोक्तं सर्वं क्रमेणैव चाक्रूरभर्त्सनं तथा। मथुरागमनं विष्णोः शोकं गोकुलवासिनाम् ॥६९॥
राधिकाविरहज्वालाजालं प्रोक्तं यथोचितम्। स्वमूर्तिदर्शनं चैवमक्रूरं यमुनातटे ॥७०॥
मथुरावेशनं प्रोक्तं निधनं रजकस्य च। कुब्जया सह संभोगस्तस्या मोक्षणमेव च ॥७१॥
प्रसादनं कुविन्दस्य मालाकारस्य मोक्षणम्। धनुषो भञ्जनं शंभोर्हस्तिनो निधनं तथा ॥७२॥
सभाप्रवेशनं प्रोक्तं नानारूपप्रदर्शनम्। कंसस्य निधनं प्रोक्तं तद्बन्धूनां विलापनम् ॥७३॥

---

आसीन होना, हरि की माया से श्रीराधा के छायारूप से रायण के गृह में निवास, सोलहो शृंगार करके रासमण्डल में वन में श्रीराधा के साथ कृष्ण का अन्तर्धान होना, हे द्विजोत्तम! उनके साथ मलयाचल पर आगमन, उस निर्जन में राधाकृष्ण का संवाद इस जन्मखण्ड में वर्णित है ॥५९-६३॥ हे मुने! नानाविध गोपियों का मोक्ष तथा पुनः वृन्दावन में आगमन, श्रीकृष्ण का दर्शन, गोपियों का हर्षवर्द्धन तथा श्रीकृष्ण की जल-स्थल में नानाविध क्रीड़ा वर्णित है ॥६४-६५॥ गोपियों का विशेषरूप से श्रीराधा के सौभाग्य का वर्णन, उनके अतिरमणीय एवं नितनूतन सौन्दर्य का वर्णन, व्यास जी ने किया है ॥६६॥ आकाशमण्डल में स्थित देवों का दर्शन कहा ही गया है। रासमण्डल में देवियों के मनःस्खलन का वर्णन किया जा चुका है ॥६७॥ हे द्विज! यह भी कहा गया है कि देवियों ने अंशतः जन्म लिया था। अक्रूर का आगमन और गोपियों का विलाप, अक्रूर की भर्त्सना, विष्णु का मथुरा-आगमन तथा गोकुलवासियों का शोक, यह सब क्रमपूर्वक कहा जा चुका है ॥६८-६९॥ राधिका के विरहज्वालाजाल का यथोचित वर्णन किया गया है। यमुनातट पर अक्रूर को अपनी मूर्ति का दर्शन कराना आदि वर्णित है ॥७०॥ भगवान् का मथुरा प्रवेश, रजक का निधन, कुब्जा के साथ संभोग तथा उसका मोक्ष कहा जा चुका है ॥७१॥ जुलाहे को प्रसन्न करना तथा माली का मोक्ष, शम्भु के धनुष का भंग, हाथी का निधन, सभा में प्रवेश, नानारूप का प्रदर्शन, कंस का निधन तथा उसके बन्धु-जनों का विलाप वर्णित है ॥७२-७३॥ उस कंस का विधिवत् अन्तिम संस्कार, उसके पिता का राजा के स्थान

---

१ क. वैकल्यं।

संस्कारं तस्य विधिवद्राजत्वं तत्पितुस्तथा। विलापनं च नन्दस्य स्तवनं परमाद्भुतम् ॥७४॥
प्रोक्तस्तयोश्च संवादो निर्जने तातपुत्रयोः। परमाध्यात्मिकं ज्ञानं नन्दाय च[1] ददौ विभुः ॥७५॥
मुनीनां गमनं चैव धन्योपाख्यानमेव च। कथितं च कुमारेण प्रोक्तमेव सुदुर्लभम् ॥७६॥
उद्धवागमनं प्रोक्तं राधास्थानं च निर्जनम्। ज्ञानं तयोश्च संवादे प्रोक्तमेव शुभावहम् ॥७७॥
यज्ञोपवीतं कृष्णस्य विद्यादानं गुरोर्गृहे। मृतपुत्रप्रदानं च प्रोक्तं तद्गुरवे पुरा ॥७८॥
जरासंधस्य दमनं निधनं यवनस्य च। द्वारकायाश्च निर्माणं विश्वकारोद्यमं तथा ॥७९॥
द्वारकावेशनं प्रोक्तमुग्रसेनविलापनम्। रुक्मिणीहरणं चैव नृपाणां दमनं तथा ॥८०॥
सर्वासां कामिनीनां च प्रोक्तमुद्वाहनं तथा। मायावतीमोक्षणं च निधनं शम्बरस्य च ॥८१॥
धर्मपुत्रराजसूये शिशुपालस्य मोक्षणम्। दन्तवक्त्रस्य च मुनेः शाल्वस्य निधनं तथा ॥८२॥
मणेश्च हरणं चैव पारिजातस्य स्वर्गतः। कुरुपाण्डवयुद्धं च भुवश्च भारमोक्षणम् ॥८३॥
ऊषाया हरणं प्रोक्तं बाणस्य भुजकृन्तनम्। बलेश्च स्तवनं प्रोक्तमनिरुद्धस्य विक्रमः ॥८४॥
राधायशोदासंवादः प्रोक्तः परमदुर्लभः। मोक्षणं च शृगालस्य प्रोक्तं च परमाद्भुतम् ॥८५॥
तीर्थयात्राप्रसङ्गेन गणेशपूजनं तथा। दर्शनं राधिकासार्धं कृष्णस्य परमात्मनः ॥८६॥
राधाया दर्शनं देव्या राधातेजःप्रकाशनम्। राधया रमणं तीर्थे भ्रमणं रहसि स्मृतम् ॥८७॥

---

पर पुनः आसीन होना, नन्द का विलाप तथा उनका अद्भुत स्तवन वर्णित है ॥७४॥ निर्जन में उन दोनों पिता-पुत्र का संवाद, भगवान् द्वारा नन्द को परम आध्यात्मिक ज्ञान प्रदान करना वर्णित है ॥७५॥ मुनियों का गमन, धन्या का उपाख्यान, इन समस्त उपाख्यानों का कथन कुमार ने किया है। ये अति दुर्लभ कथाएँ कही जा चुकी हैं ॥७६॥

उद्धव का आगमन, निर्जन राधा का स्थान, उन दोनों के संवाद में शुभावह ज्ञान कहा जा चुका है ॥७७॥ कृष्ण का यज्ञोपवीत, गुरुगृह में विद्यमान, गुरु को मृतक पुत्र का दान, यह सब पहले कहा जा चुका है ॥७८॥ जरासंघ का दमन, यवन का निधन, द्वारका का निर्माण तथा विश्वकर्मा का उद्यम वर्णित है ॥७९॥ द्वारकाप्रवेश, उग्रसेन का विलाप, रुक्मिणीहरण, राजाओं का नमन भी वर्णित है ॥८०॥ सभी कामिनियों का विवाह, मायावती का मोक्ष तथा शम्बर का निधन कहा जा चुका है ॥८१॥ युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में शिशुपाल तथा दन्तवक्त्र का मोक्ष, शाल्वमुनि का निधन पूर्वतः वर्णित है ॥८२॥ मणि का हरण, स्वर्ग से पारिजात का हरण, कौरव-पाण्डव के युद्ध द्वारा भूभारहरण वर्णित है ॥८३॥ ऊषा का हरण, बाणासुर की भुजाओं का कर्तन, बलि का स्तवन और अनिरुद्ध का पराक्रम कहा जा चुका है ॥८४॥ परमदुर्लभ राधा-यशोदा का संवाद कहा गया है, शृगाल का परम अद्भुत मोक्ष बताया गया है ॥८५॥ तीर्थयात्रा के प्रसंग में गणेशपूजन तथा श्रीराधा के साथ परमात्मा का दर्शन कथित है ॥८६॥ श्रीराधा का देवीदर्शन, राधा के तेज

---

1 ख. जगतामपि

निधनं यदुवंशानां ब्रह्मशापेन शौनक। मोक्षणं पाण्डवानां च स्वपदे गमनं हरेः ॥८८॥
विवाहो नारदस्यैवोत्पत्तिर्वह्निसुवर्णयोः। प्रोक्तं सर्वं महाभाग पुनरेव समासतः ॥८९॥
चतुःखण्डः पुराणं च ब्रह्मवैवर्तमेव च। अतः परं मुनिश्रेष्ठ किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥९०॥
इति श्रीब्रह्म० महा० श्रीकृष्णजन्मख० उत्त० नारदना० अनुक्रमणिकं
नाम द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३२॥

•

## अथ त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

शौनक उवाच

अद्य मे सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम्। यत्फलं ब्रह्मवैवर्ते निर्विघ्नं मोक्षकारणम् ॥१॥
अभयं देहि हे वत्स हे तात मह्यमेव च। तदा निवेदनं किंचिदस्तीति च करोम्यहम् ॥२॥

सूत उवाच

त्यज भीतिं महाभाग प्रश्नं कुरु यदिच्छसि। सर्वं ते कथयिष्यामि यद्यद्गोप्यं मनोहरम् ॥३॥

---

का प्रकाशन, राधा के साथ रमण तथा एकान्त में तीर्थभ्रमण वर्णित है ॥८७॥ हे शौनक ! ब्रह्मशाप से यदुवंश का निधन, पाण्डवों का मोक्ष तथा हरि का स्वधाम गमन कीर्तित है ॥८८॥ नारद का विवाह तथा अग्नि एवं सुवर्ण की उत्पत्ति हे महाभाग। संक्षेप में सब कहा गया है ॥८९॥ यह ब्रह्मवैवर्त पुराण चार खण्डों में विभक्त है। हे मुनिश्रेष्ठ ! अब इसके आगे पुनः क्या सुनना चाहते हैं ॥९०॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद-नारायण-संवाद में
अनुक्रमणिका नामक एक सौ बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१३२॥

•

## अध्याय १३३

### पुराण के लक्षण, संख्या आदि का कथन

**शौनक बोले**—आज मेरा जन्म सफल हो गया। जीवन सुन्दर बन गया। क्योंकि ब्रह्मवैवर्त में निर्विघ्न एवं मोक्षकारक फल है ॥१॥ वत्स ! तात ! मुझे अभय प्रदान करो, तब मुझे जो कुछ निवेदन करना है, करूँगा ॥२॥

**सूत बोले**— महाभाग ! भय का परित्याग करें। जो इच्छा हो प्रश्न करें। जो गोपनीय और मनोहर है वह सब मैं आप से कहूँगा ॥३॥

### शौनक उवाच

अधुना श्रोतुमिच्छामि पुराणानां च लक्षणम् । संख्यानमपि तेषां च फलमस्यैव पृथक् ॥४॥

### सूत उवाच

विस्तराणि पुराणानि चेतिहासश्च शौनक । संहितां पञ्चरात्राणि कथयामि यथागतम् ॥५॥
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च । वंशानुचरितं विप्र पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥६॥
एतदुपपुराणानां लक्षणं च विदुर्बुधाः । महतां च पुराणानां लक्षणं कथयामि ते ॥७॥
सृष्टिश्चापि विसृष्टिश्च स्थितिस्तेषां च पालनम् । कर्मणां वासना वार्ता मनूनां चाक्रमेण च ॥८॥
वर्णनं प्रलयानां च मोक्षस्य च निरूपणम् । उत्कीर्तनं हरेरेव वेदानां च पृथक्पृथक् ॥९॥
दशाधिकं लक्षणं च महतां परिकीर्तितम् । संख्यानं च पुराणानां निबोध कथयामि ते ॥१०॥
परं ब्रह्मपुराणं च सहस्राणां दशैव तु । पञ्चोनषष्टिसाहस्रं पाद्ममेव प्रकीर्तितम् ॥११॥
त्रयोविंशतिसाहस्रं वैष्णवं च विदुर्बुधाः । चतुर्विंशतिसाहस्रं शैवं चैव निरूपितम् ॥१२॥
ग्रन्थोऽष्टादशसाहस्रं श्रीमद्भागवतं विदुः । पञ्चविंशतिसाहस्रं नारदीयं प्रकीर्तितम् ॥१३॥
मार्कण्डं नवसाहस्रं पुराणं पण्डिता विदुः । चतुःशताधिकं पञ्चदशसाहस्रमेव च ॥१४॥
परमग्निपुराणं च रुचिरं परिकीर्तितम् । चतुर्दशसहस्राणि परं पञ्चशताधिकम्[1] ॥१५॥

---

शौनक बोले—वत्स ! इस समय मैं पुराणों का लक्षण, उनकी संख्या और फल सुनना चाहता हूँ ॥४॥

सूत बोले—शौनक ! पुराण विस्तृत हैं, इतिहास, संहिता और पञ्चरात्र सबको मैं शास्त्रों के अनुसार कहता हूँ ॥५॥ पुराण के पांच लक्षण होते हैं, सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित ॥६॥ इसे ही विद्वान् लोग उपपुराणों का भी लक्षण कहते हैं । अब हम महापुराणों का लक्षण बता रहे हैं ॥७॥ सृष्टि, विसृष्टि, स्थिति, उनका पालन, कर्मों की वासना विना क्रम के मनुओं की वार्त्ता, प्रलयों का वर्णन, मोक्ष का निरूपण, हरि का उत्कृष्ट कीर्तन, वेदों का पृथक्-पृथक् कीर्तन, ये दस लक्षण प्रधान पुराणों के अधिक हैं । अब मैं पुराणों की संख्या बताता हूँ । आप उन्हें समझें ॥८-१०॥ सबसे उत्कृष्ट ब्रह्मपुराण है जिसमें दस हजार श्लोक हैं । इसके पश्चात् पचपन हजार श्लोकों का पद्मपुराण है ॥११॥ विद्वान् लोग तेईस हजार श्लोकों का विष्णु पुराण मानते हैं । शिव पुराण चौबीस हजार श्लोकों का है ॥१२॥ अठारह हजार श्लोकों का श्रीमद्भागवत है । नारदीय पुराण पचीस हजार श्लोकों का है ॥१३॥ मार्कण्डेय पुराण नव हजार श्लोकों का है, ऐसा पण्डित जन जानते हैं । पन्द्रह हजार चार सौ श्लोकों का अग्निपुराण उत्कृष्ट एवं रुचिर है ।

---

१ क. 'पञ्चशताऽधि' ।

पुराणप्रवरं चैव भविष्यं परिकीर्तितम् । अष्टादशसहस्रं च ब्रह्मवैवर्तमीप्सितम् ॥१६॥
सर्वेषां च पुराणानां सारमेव विदुर्बुधाः । एकादशसहस्रं तु परं लिङ्गपुराणकम् ॥१७॥
चतुर्विंशतिसाहस्रं वाराहं परिकीर्तितम् । एकाशीतिसहस्रं च परमेव शताधिकम् ॥१८॥
वरं स्कन्दपुराणं च सद्भिरेवं निरूपितम् । वामनं दशसाहस्रं कौर्मं सप्तदशैव तु ॥१९॥
मात्स्यं चतुर्दश प्रोक्तं पुराणं पण्डितैस्तथा । ऊनविंशतिसाहस्रं गारुडं परिकीर्तितम् ॥२०॥
परं द्वादशसाहस्रं ब्रह्माण्डं परिकीर्तितम् । एवं पुराणसंख्यानं चतुर्लक्षमुदाहृतम् ॥२१॥
अष्टादशपुराणानामेवमेव विदुर्बुधाः । एवं चोपपुराणानामष्टादश प्रकीर्तिता ॥२२॥
इतिहासो भारतं च वाल्मीकं काव्यमेव च । पञ्चकं पञ्चरात्राणां कृष्णमाहात्म्यपूर्वकम् ॥२३॥
वसिष्ठं नारदीयं च कापिलं गौतमीयकम् । परं सनत्कुमारीयं पञ्चरात्रं च पञ्चकम् ॥२४॥
पञ्चकं संहितानां च कृष्णभक्तिसमन्वितम् । ब्रह्मणश्च शिवस्यापि प्रह्लादस्य तथैव च ॥२५॥
गौतमस्य कुमारस्य संहिताः परिकीर्तिताः । इति ते कथितं सर्वं क्रमेण च पृथक्पृथक् ॥२६॥
अस्त्येवं विपुलं शास्त्रं ममापि च यथागमम् । उवाचेदं पुराणं च गोलोके रासमण्डले ॥२७॥
श्रीकृष्णो भगवान्साक्षाद्ब्रह्माणं च स्वभक्तकम् । ब्रह्मा धर्मं च धर्मिष्ठं धर्मो नारायणं मुनिम् ॥२८॥
नारायणो नारदं च नारदो मां च भक्तकम् । अहं त्वां च मुनिश्रेष्ठ वरिष्ठं कथयामि तत् ॥२९॥

---

चौदह हजार पाँच सौ श्लोकों का पुराणप्रवर भविष्य पुराण है। अठारह हजार श्लोकों का ब्रह्मवैवर्तपुराण है ॥१४-१६॥

इस ब्रह्मवैवर्तपुराण को विद्वान् लोग सभी पुराणों का तत्त्व मानते हैं। लिंगपुराण ग्यारह हजार श्लोकों का है ॥१७॥ वराह पुराण चौबीस हजार श्लोकों का है। सज्जनों ने इक्यासी हजार एक सौ श्लोकों का स्कन्दपुराण निरूपित किया है। दस हजार श्लोकों का वामन पुराण तथा सत्रह हजार श्लोकों का कूर्म पुराण है ॥१८-१९॥ पण्डितों ने मत्स्यपुराण को चौदह हजार श्लोकों का कहा है। गरुड़ पुराण उन्नीस हजार श्लोकों का है ॥२०॥ ब्रह्माण्ड पुराण बारह हजार श्लोकों का है। इस प्रकार पुराणों के श्लोकों की संख्या चार लाख है ॥२१॥ इस प्रकार अठारह पुराणों की श्लोक संख्या विद्वान् लोग बताते हैं। इसी प्रकार अठारह उपपुराण भी हैं ॥२२॥ महाभारत इतिहास है तथा वाल्मीकि रामायण काव्य है। पञ्चरात्र कृष्णमाहात्म्यपूर्वक पाँच है ॥२३॥ पाँचो पञ्चरात्र इस प्रकार हैं —वसिष्ठरात्र, नारदीयरात्र, कपिलरात्र, गौतमीय तथा सनत्कुमारीय ॥२४॥ कृष्णभक्ति से समन्वित संहिताएँ भी पाँच हैं। ब्रह्मसंहिता, शिवसंहिता, प्रह्लादसंहिता, गौतमसंहिता तथा कुमारसंहिता, इस प्रकार मैंने आपको सब पृथक्-पृथक् बता दिया ॥२५-२६॥ इस प्रकार यह एक विशाल शास्त्र है। गोलोक में रासमण्डल में इस पुराण को आगम के अनुसार साक्षात् श्रीकृष्ण भगवान् ने मुझसे तथा अपने भक्त ब्रह्मा से बताया था। ब्रह्मा ने धर्मिष्ठ धर्म से तथा धर्म ने नारायण मुनि से बताया था ॥२७-२८॥ नारायण ने नारद को और नारद ने मुझ भक्त को बताया था। हे मुनिश्रेष्ठ! मैं आपको वरिष्ठ समझकर उसे बता रहा हूँ ॥२९॥ यह

सुदुर्लभं पुराणं च ब्रह्मवैवर्तमीप्सितम् । यद्‌वृणोत्येव विश्वौघं जीविनां परमात्मकम् ॥३०॥
तद्‌ब्रह्म साक्षिरूपं च कर्मणामेव कर्मिणाम् । तद्‌ब्रह्म विवृतं यत्र तद्विभूतिमनुत्तमाम् ॥३१॥
तेनेदं ब्रह्मवैवर्तमित्येवं च विदुर्बुधाः । पुण्यप्रदं पुराणं च मङ्गलं मङ्गलप्रदम् ॥३२॥
सुगोप्यं च रहस्यं च यत्र रम्यं नवं नवम् । हरिभक्तिप्रदं चैव दुर्लभं हरिदास्यदम् ॥३३॥
सुखदं ब्रह्मदं सारं शोकसंतापनाशनम् । सरितां च यथा गङ्गा सद्यो मुक्तिप्रदा शुभा ॥३४॥
तीर्थानां पुष्करं शुद्धं यथा काशी पुरीषु च । सर्वेषु भारतं वर्षं सद्यो मुक्तिप्रदं शुभम् ॥३५॥
यथा सुमेरुः शैलेषु पारिजातं च पुष्पतः । पत्रेषु तुलसीपत्रं व्रतेष्वेकादशीव्रतम् ॥३६॥
वृक्षेषु कल्पवृक्षश्च श्रीकृष्णश्च सुरेषु च । ज्ञानीन्द्रेषु महादेवो योगीन्द्रेषु गणेश्वरः ॥३७॥
सिद्धेन्द्रेष्वेव कपिलः सूर्यस्तेजस्विनां यथा । सनत्कुमारो भगवान्वैष्णवेषु यथाऽग्रणीः ॥३८॥
भूपेषु च यथा रामो लक्ष्मणश्च धनुष्मताम् । देवीषु च यथा दुर्गा महापुण्यवती सती ॥३९॥
प्राणाधिका यथा राधा कृष्णस्य प्रेयसीषु च । ईश्वरीषु यथा लक्ष्मीः पण्डितेषु सरस्वती ॥४०॥
तथा सर्वपुराणेषु ब्रह्मवैवर्तमेव च । नातो विशिष्टं सुखदं मधुरं च सुपुण्यदम् ॥४१॥

---

अभीष्ट ब्रह्मवैवर्तपुराण सुदुर्लभ हैं । जो विश्व-समूह का वरण करता है; जीवधारियों का परमात्मस्वरूप है; वही ब्रह्म कर्म करनेवालों के कर्मों का साक्षी रूप है । उस ब्रह्म का तथा उसकी अनुपम विभूति का जिसमें विवरण किया गया है; उसी कारण विद्वान लोग इसे 'ब्रह्मवैवर्त' कहते हैं । यह पुराण मंगलमय, पुण्यप्रद तथा मंगलप्रद है ॥३०-३२॥ यह अत्यन्त गोपनीय तथा अत्यन्त मनोहर नवीन रहस्यों से भरा है । यह हरिभक्ति देनेवाला तथा सुदुर्लभ हरिदास्य देनेवाला है ॥३३॥ यह सुखद, ब्रह्मप्रदाता, सारभूत, शोक एवं संताप का नाशक तथा नदियों में जिस प्रकार गङ्गा सद्यो मुक्तिदायिनी एवं शुभ है वैसे ही यह भी है ॥३४॥ तीर्थों में जिस प्रकार पुष्कर शुद्ध है, पुरियों में काशी, सभी वर्षों में भारतवर्ष जिस प्रकार तुरन्त मुक्ति देनेवाला और शुभ है (वैसे यह पुराण है) ॥३५॥

पर्वतों में जिस प्रकार सुमेरु पर्वत, पुष्पों में पारिजात का पुष्प, पत्रों में तुलसीपत्र तथा व्रतों में एकादशीव्रत (श्रेष्ठ है वैसे यह पुराण श्रेष्ठ है) ॥३६॥ वृक्षों में कल्पवृक्ष, देवों में श्रीकृष्ण, ज्ञानीन्द्रों में महादेव तथा योगीन्द्रों में गणेश जिस प्रकार श्रेष्ठ हैं (वैसे यह पुराण भी है) ॥३७॥ सिद्धेन्द्रों में जिस प्रकार कपिल ऋषि, तेजस्वियों में सूय, वैष्णवों में भगवान सनत्कुमार जिस प्रकार अग्रणी हैं (वैसे यह पुराण है) ॥३८॥ राजाओं में राम, धनुर्धारियों में लक्ष्मण, देवियों में महापुण्यवती सती दुर्गा जिस प्रकार श्रेष्ठ है (वैसे यह पुराण है) ॥३९॥ कृष्ण की प्रेयसियों में जिस प्रकार श्रीराधा प्राणाधिक प्रिय हैं, ईश्वरी में लक्ष्मी तथा पण्डितों में सरस्वती जैसे श्रेष्ठ हैं (वैसे यह पुराण श्रेष्ठ है) । इससे विशिष्ट, सुखद, मधुर एवं पुण्य प्रदान करनेवाला अन्य कोई पुराण नहीं है ॥४०-४१॥

संदेहभञ्जनं चैव पुराणं परिकीर्तितम् । इह लोके च सुखदं सुप्रदं सर्वसंपदाम् ।।४२।।
शुभदं पुण्यदं चैव विघ्ननिघ्नकरं परम् । हरिदास्यप्रदं चैव परलोके प्रहर्षदम् ।।४३।।
यज्ञानामपि तीर्थानां व्रतानां तपसां तथा । भुवः प्रदक्षिणस्यापि फलं नास्य समानकम् ।।४४।।
चतुर्णामपि वेदानां पाठादपि वरं फलम् । शृणोतीदं पुराणं च संयतश्चेह पुत्रक ।।४५।।
गुणवन्तं च विद्वांसं वैष्णवं पुत्रमालभेत् । शृणोति दुर्भगा चेत्तु सौभाग्यं स्वामिनो लभेत् ।।४६।।
मृतवत्सा काकवन्ध्या महावन्ध्या च पापिनी । पुराणश्रवणाल्लेभे पुत्रं च चिरजीविनम् ।।४७।।
अपुत्रो लभते पुत्रमभार्यो लभते प्रियाम् । अस्पष्टकीर्तिः सुयशा मूर्खो भवति पण्डितः ।।४८।।
रोगार्तो मुच्यते रोगाद्बद्धो मुच्येत बन्धनात् । भयान्मुच्येत भीतस्तु मुच्येतापन्न आपदः ।।४९।।
अरण्ये प्रान्तरे भीतो दावाग्नौ मुच्यते ध्रुवम् । अघं कुष्ठं च दारिद्र्यं रोगं शोकं च दारुणम् ।।५०।।
पुण्यवान्श्रवणादेव[1] नैव जानात्यपुण्यवान् । श्लोकार्धं श्लोकपादं वा यः शृणोति सुसंयतः ।।५१।।
गोलक्षदानपुण्यं च लभते नात्र संशयः । चतुःखंडं पुराणं च शुद्धकाले जितेन्द्रियः ।।५२।।
संकल्पतो यः शृणोति भक्त्या दत्त्वा च दक्षिणाम् । यद्बाल्ये यच्च कौमारे वार्धके यच्च यौवने ।।५३।।

---

अब पुराणश्रवण का फल प्रतिपादित किया जा रहा है--इस पुराण को संदेह का भञ्जन करनेवाला कहा गया है । यह इस लोक में सुख देनेवाला तथा सर्वसम्पत्तिप्रदाता है ।।४२।। यह शुभदायक, पुण्यदायक, विघ्नविनाशक, हरिदास्यप्रद तथा परलोक में प्रसन्नता प्रदान करनेवाला है ।।४३।। यज्ञ, तीर्थ, व्रत, तप तथा पृथ्वी की प्रदक्षिणा का भी फल इसके समान नहीं है ।।४४।। हे पुत्रक ! यदि कोई संयत होकर इस पुराण का श्रवण करता है तो उसे चारों वेदों के पाठ से बढ़कर फल प्राप्त होता है ।।४५।। यदि कोई पुत्रहीन व्यक्ति इस पुराण का श्रवण करता है तो वह गुणवान्, विद्वान् तथा वैष्णव पुत्र प्राप्त करता है। यदि दुर्भगा नारी सुने तो सौभाग्यवती होकर स्वामी का सौभाग्य प्राप्त करती है ।।४६।। मृतवत्स, काकवन्ध्या, महावत्सा एवं पापिनी स्त्री पुराण श्रवण करने से चिरजीवी पुत्र प्राप्त करती है ।।४७।। पुत्रहीन व्यक्ति पुत्र पाता है तथा भार्याविहीन प्रिया भार्या प्राप्त करता है । जिसकी कीर्ति स्पष्ट नहीं होती वह सुन्दर यशवाला हो जाता है और मूर्ख पण्डित हो जाता है ।।४८।। रोग से पीड़ित व्यक्ति रोग से मुक्त हो जाता है, बद्ध पुरुष बन्धन से मुक्त हो जाता है। भीत पुरुष भय से मुक्त हो जाता है और आपन्न पुरुष आपत्ति से छुटकारा पा जाता है ।।४९।। वीरान जंगल में तथा दावाग्नि में भयभीत मनुष्य भय से मुक्त हो जाता है । पुण्यवान् व्यक्ति श्रवण करने से ही पाप, कुष्ठ, दारिद्र्य, रोग तथा दारुण शोक से छूट जाता है । पापी व्यक्ति इसे नहीं जानता । जो कोई सुसंयत होकर श्लोक का आधा या चौथाई ही सुनता है वह लक्ष गोदान का फल पाता है, इसमें संशय नहीं है । जो जितेन्द्रिय शुद्धकाल में चारों खण्डों से युक्त इस पुराण को भक्तिपूर्वक दक्षिणा देकर संकल्पपूर्वक सुनता है, वह बाल्यावस्था कुमारावस्था, युवावस्था तथा वृद्धावस्था में करोड़ों जन्मों के अर्जित पापों से छुटकारा पा जाता है, इसमें संशय नहीं । वह रत्ननिर्मित

---

१ क. पुराणश्रं ।

कोटिजन्मार्जितात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः। रत्ननिर्माणयानेन धृत्वा श्रीकृष्णरूपकम् ॥५४॥
नित्यं गत्वा च गोलोकं कृष्णदास्यं लभेद्ध्रुवम्। असंख्यब्रह्मणां पाते न भवेत्तस्य पातनम् ॥५५॥
समीपे पार्षदो भूत्वा सेवां च कुरुते चिरम्। श्रुत्वा च ब्रह्मखण्डं च सुस्नातः संयतः शुचिः ॥५६॥
पायसं पिष्टकं चैव फलं ताम्बूलमेव च। भोजयित्वा वाचकं च तस्मै दद्यात्सुवर्णकम् ॥५७॥
चन्दनं शुक्लमाल्यं च सूक्ष्मवस्त्रं मनोहरम्। निवेद्य वासुदेवं च वाचकाय प्रदीयते ॥५८॥
श्रुत्वा च प्रकृतेः खण्डं सुश्राव्यं च सुधोपमम्। भोजयित्वा च दध्यन्नं तस्मै दद्याच्च काञ्चनम् ॥५९॥
सवत्सां सुरभिं रम्यां दद्याद्वै भक्तिपूर्वकम्। श्रुत्वा गणपतेः खण्डं विघ्ननाशाय संयतः ॥६०॥
स्वर्णयज्ञोपवीतं च श्वेताश्वच्छत्रमाल्यकम्। प्रदीयते वाचकाय स्वस्तिकं तिललड्डुकम् ॥६१॥
परिपक्वफलान्येव कालदेशोद्भवानि च। श्रीकृष्णजन्मखण्डं च श्रुत्वा भक्तश्च भक्तितः ॥६२॥
वाचकाय प्रदद्याच्च परं रत्नाङ्गुलीयकम्। सूक्ष्मवस्त्रं च माल्यं च स्वर्णकुण्डलमुत्तमम् ॥६३॥
माल्यं च वरदोलां च सुपक्वं क्षीरमेव च। सर्वस्वं दक्षिणां दद्यात्स्तवनं कुरुते ध्रुवम् ॥६४॥
शतकं ब्राह्मणानां च भोजयेत्परमादरात्। ब्राह्मणं वैष्णवं शास्त्रनिष्णातं पण्डितं वरम् ॥६५॥
कुरुते वाचकं शुद्धमन्यथा निष्फलं भवेत्। श्रीकृष्णविमुखाद्दुष्टान्नोपदिष्टाच्च ब्राह्मणात् ॥६६॥

---

यान से श्रीकृष्ण भगवान् का रूप धारणकर नित्य गोलोक में जाकर निश्चित ही कृष्ण का दास्य प्राप्त करता है। असंख्य ब्रह्मा का विनाश हो जाने पर भी उसका विनाश नहीं होता है ॥५०-५५॥ भगवान् के समीप पार्षद होकर चिरकाल तक सेवारत रहता है। अच्छी तरह स्नान करके संयत होकर पवित्र मन से ब्रह्मखण्ड सुनकर वाचक को खीर-पूड़ी, फल एवं ताम्बूल खिलाकर सुवर्ण की दक्षिणा दे ॥५६-५७॥ फिर चन्दन, सफेद माला तथा मनोहर सूक्ष्मवस्त्र भगवान् को निवेदित करके वाचक को प्रदान करे ॥५८॥ सुन्दर सुनने योग्य, अमृतोपम प्रकृतिखण्ड सुनकर वाचक को दही के साथ अन्न खिलाकर उसे स्वर्ण प्रदान करना चाहिए ॥५९॥ फिर भक्तिपूर्वक सुरम्य बछड़े सहित गाय का दान देना चाहिए। विघ्नविनाश के लिए गणपतिखण्ड को संयत होकर श्रवण करे ॥६०॥ फिर वाचक को स्वर्णनिर्मित यज्ञोपवीत, सफेद घोड़ा, छत्र, माला, स्वस्तिक, तिल का लड्डू तथा काल देशानुसार पके फल दान करे। भक्तजन भक्तिपूर्वक श्रीकृष्णजन्मखण्ड को सुनकर वाचक को रत्ननिर्मित अँगूठी, सूक्ष्मवस्त्र, माला, स्वर्णनिर्मित उत्तम कुण्डल, सुन्दर पालकी, अच्छी तरह पका हुआ दूध और अपना सर्वस्व दक्षिणा में देकर निश्चित रूप से स्तुति करे ॥६१-६४॥ परम आदर से सौ ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए। विष्णु-भक्त, शास्त्रनिष्णात उत्तम पण्डित तथा शुद्ध ब्राह्मण को वाचक बनाना चाहिए अन्यथा सब निष्फल हो जाता है। जो कोई श्रीकृष्ण से विमुख, दुष्ट एवं उपदेशरहित ब्राह्मण से इस श्रीकृष्ण की भक्ति से संयुक्त पुराण का श्रवण करता है, वह भक्ति तथा

---

१ क. व्यासदे'।

श्रीकृष्णभक्तियुक्तं च पुराणं[1] यः शृणोति च । भक्तिं पुण्यं न लभते हन्ति पुण्यं पुराकृतम् ॥६७॥
श्रीकृष्णभक्तियुक्ताच्च पुराणं यः शृणोति च । भक्तिं पुण्यं च लभते यात्यन्ते श्रीहरेः पदम् ॥६८॥
एतत्ते कथितं सर्वं यच्छ्रुतं गुरुवक्त्रतः । बिदायं देहि विप्रेन्द्र यामि नारायणाश्रमम् ॥६९॥
दृष्ट्वा विप्रसमूहं च नमस्कर्तुं समागतः । कथितं ब्रह्मवैवर्तं भवतामाज्ञया परम् ॥७०॥
नमोऽस्तु ब्राह्मणेभ्यश्च कृष्णाय परमात्मने । शिवाय ब्रह्मणे नित्यं गणेशाय नमो नमः ॥७१॥
कायेन मनसा वाचा परं भक्त्या दिवानिशम् । भज सत्यं परं ब्रह्म राधेशं त्रिगुणात्परम् ॥७२॥
नमो देव्यै सरस्वत्यै पुराणगुरवे नमः । सर्वविघ्नविनाशिन्यै दुर्गादेव्यै नमो नमः ॥७३॥
युष्माकं पादपद्मानि दृष्ट्वा पुण्यानि शौनक । अद्य सिद्धाश्रमं यामि यत्र देवो गणेश्वरः ॥७४॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे श्रीकृष्णजन्मखण्ड उत्तरार्धे नारदनारायणसंवादे
सूतशौनकसंवादे त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३३॥

●

समाप्तोऽयं श्रीमद्ब्रह्मवैवर्तपुराणस्यश्रीकृष्णजन्मखण्डस्योत्तरार्धः ।
समाप्तमिदं श्रीमद्ब्रह्मवैवर्तपुराणस्य चतुर्थं श्रीकृष्णजन्मखण्डं
श्रीमद्व्यासमुनिप्रणीतं ब्रह्मवैवर्तपुराणं च

---

पुण्य तो नहीं प्राप्त करता अपितु पूर्वकृत पुण्य का विनाश कर डालता है ॥६५-६७॥ जो कोई श्रीकृष्ण की भक्ति से युक्त ब्राह्मण से पुराण सुनता है वह भक्ति तथा पुण्य प्राप्त करता है और अन्त में श्रीहरि के स्थान को प्राप्त करता है ॥६८॥ यह जो कुछ गुरुमुख से सुना था वह सब मैंने आपको सुना दिया । विप्रेन्द्र ! मुझे विदा करें । मैं श्री नारायण के आश्रम को जा रहा हूँ ॥६९॥ विप्रसमूह को देखकर नमस्कार करने के लिए चला आया था । आप लोगों की आज्ञा से श्रेष्ठ ब्रह्मवैवर्त पुराण का कथन किया ॥७०॥ ब्राह्मणों को, परमात्मा कृष्ण को, शिव को, ब्रह्मा को तथा गणेश को नित्य नमस्कार है ॥७१॥ त्रिगुण से परे, सत्यस्वरूप, परब्रह्म, राधेश का काया से, मन से, वाणी से तथा भक्ति से रात-दिन भजन करो ॥७२॥ देवी सरस्वती, पुराणगुरु (व्यास) तथा सर्वविघ्नविनाशिनी दुर्गा देवी को बारम्बार नमस्कार है ॥७३॥ हे शौनक ! आप लोगों के पुण्यमय चरण-कमल का दर्शन करके आज मैं उस सिद्धाश्रम को जा रहा हूँ, जहाँ गणपतिदेव विराजमान हैं ॥७४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध में नारद-नारायण-संवाद के अन्तर्गत
सूत-शौनक संवाद में एक सौ तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१३३॥

●

श्रीकृष्णजन्मखण्ड का उत्तरार्द्ध समाप्त ।
श्रीमद् व्यासमुनिप्रणीत श्रीमद्ब्रह्मवैवर्तपुराण का चतुर्थ श्रीकृष्णजन्मखण्ड तथा ब्रह्मवैवर्तपुराण समाप्त ॥

---

१ ख. °णं न शृणोति यः ।